चौखम्बा संस्कृत सीरीज

१५६

****

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

स्कन्दमहापुराणम्

मूल तथा भाषानुवाद

भाषाभाष्यकार

एस. एन. खण्डेलवाल

प्रथमं माहेश्वरखण्डम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : द्वितीय, वि०सं० २०७६, सन् २०१९
मूल्य : रू० १५००.००

ISBN : 978-81-7080-439-0 (प्रथम भाग)

इस पुस्तक का सर्वाधिकार प्रकाशक के पास सुरक्षित है। इसके किसी भी अंश का किसी भी रूप में पुनर्मुद्रण या किसी भी विधि (जैसे—इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या कोई अन्य विधि) से प्रयोग या किसी ऐसे यन्त्र में भण्डारण जिससे इसे पुन: प्राप्त किया जा सके, प्रकाशक की लिखित पूर्वानुमति के बिना नहीं किया जा सकता।

© चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
फोन : (आफिस) (०५४२) २३३३४५८
(आवास) (०५४२) २३३५०२०, २३३४०३२
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice01@gmail.com
web-site : www.chowkhambasanskritseries.com

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १११८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३५०२०

निवेदन

इस महापुराण के आठ खण्डों के अनुवाद करने में सर्वप्रथम मैं गुरुकृपा को ही प्रधान आधार मानता हूं, जिसके अभाव में अस्सी हजार श्लोकों का भाषाभाष्य प्रस्तुत कर सकना संभव ही नहीं था। यद्यपि इस ग्रन्थ के मूल में अंकित की गई भूमिका अपने आप में पूर्ण है तथा जाग्रत प्रज्ञालोक प्राप्त विद्वानों द्वारा लिखी गई है, तथापि कुछ सूचनात्मक अंश को पाठकों की सुविधा हेतु देना आवश्यक समझ कर यह निवेदन प्रस्तुत है।

(क) मत्स्य, वायु तथा अन्य ग्रन्थों के अनुसार इसकी श्लोक संख्या इक्यासी हजार है; जबकि अग्निपुराण (२७२।१७) के अनुसार इसकी श्लोक संख्या चौरासी हजार है। भविष्य पुराण के ब्राह्मपर्व में कहा गया है कि पूर्वकाल में प्रत्येक पुराण में मूलतः बारह हजार ही श्लोक थे। लेकिन कालान्तर में गाथायें वर्द्धित होते रहने से इनका विस्तार होता गया। इससे स्पष्ट है कि स्कन्दपुराण का भी पूर्वरूप यही बारह हजार श्लोकों का रहा होगा, कालान्तर में ऋषिगण द्वारा क्रमशः वर्द्धित किया गया इसका इतना विस्तृत रूप आज उपलब्ध है।

(ख) पुराणों में से पद्म, स्कन्द तथा भविष्य पुराण विशेषतः **तीर्थों से सम्बन्धित** हैं। लिंग, वामन, मार्कण्डेय **साम्प्रदायिक पुराण** हैं। वायु, ब्रह्माण्ड आदि **ऐतिहासिक इतिवृत्त** पूर्ण हैं। इस दृष्टि से स्कन्दपुराण में करीब-करीब पूर्णतः तीर्थ विवरण प्रमुख है।

(ग) इस पुराण का नाम स्कन्द के नाम से होने पर भी स्कन्ददेव का वर्णन विस्तार से नहीं है। हरप्रसाद शास्त्री महोदय के अनुसार नेपाल दरबार पुस्तकालय में इसकी एक प्रति सातवीं सदी की संरक्षित है। इसकी इससे पूर्व की प्रति नहीं मिलती। इस ग्रन्थ में महेश्वर हीं प्रधान देवता हैं। सर्वत्र लिङ्गार्चन ही प्रमुख है।

(घ) एकमत से यह सप्त खण्डात्मक है यथा—माहेश्वर, वैष्णव, ब्राह्म, काशी, आवन्त्य, नागर तथा प्रभास। अन्य मत से यह छः संहितायुक्त है यथा—सनत्कुमार, सूत, शांकरी, वैष्णवी, ब्राह्मी तथा सौर। इनमें से सूतसंहिता आनन्दाश्रम प्रेस से छपी मिल जाती है। स्कन्दपुराण के सप्तखण्डात्मक रूप का मूल ग्रन्थ पहले वेंकटेश्वर प्रेस से छपा था। तदनन्तर बंगाल के स्वनामधन्य विद्वान् पंचानन तर्करत्न का भी संस्करण बंगभाषा में छपा था। पश्चात् काल में सेठ मनसुखलाल मोर ने भी इसे मुद्रित (केवल मूल) कराकर निःशुल्क वितरण कराया था।

(ङ) इस पुराण में आदि से अन्त तक सर्वत्र तीर्थ विवरण दृष्टिगोचर होता है। आश्चर्य की बात तो यह है जिस अध्याय में जिस तीर्थ का वर्णन है, उस तीर्थ को सभी तीर्थों से उत्तम कहा गया है तथा यह प्रतिपादित किया गया है कि उससे बढ़कर कोई तीर्थ है ही नहीं। तत्पश्चात् उसी के अगले अध्याय में अन्य तीर्थ का वर्णन मिलता है, उसे भी सभी तीर्थों से उत्तम तथा उसके समान पृथिवी पर कोई तीर्थ ही नहीं है, यह प्रतिपादित किया गया है। इससे पाठकों के मन में भ्रम होना स्वाभाविक ही है। इसका समाधान यह है भारतीय साधन धारा के अनुसार हम जिस देवता का पूजन कर रहे होते हैं, उसे ही उस समय सर्वश्रेष्ठ मानना चाहिये। इसी प्रकार हम जिस तीर्थ में जब पहुंचे तब उसे सर्वश्रेष्ठ मानने की भावना करें। उस तीर्थ तथा उस देवता की श्रेष्ठता की भावना पर अन्य तीर्थ तथा देवता की उत्कर्ष भावना नहीं रहनी चाहिये। तभी तीर्थ तथा देवता फलप्रसु होते हैं। भावना ही फल देती है। भावनाहीन को तीर्थ अथवा देवता फल नहीं देते। अतः जिस तीर्थ में जब व्यक्ति जाये, उस समय उसके मन में उस तीर्थ की उत्कृष्टता के सम्बन्ध में कोई शंका तथा द्विधा नहीं रहनी चाहिये।

(च) इस महापुराण में भारत के सभी तीर्थों का प्रायशः वर्णन है। मुख्यतः शैवतीर्थों का समावेश अधिक है। एक प्रकार से यह भारत की प्राचीन पर्यटन गाईड भी कही जा सकती है। हमारे देश में तीर्थ परम्परा के कारण उस समय के व्यक्ति आवागमन के साधनों की अल्पगति के भी रहते तथा संसाधनों के अभाव में भी भारत का पर्यटन अध्यात्म बुद्धि से करते थे, केवल अपने नगर अथवा ग्राम में सिमटे नहीं रहते थे। इससे देश की अखण्डता, प्रकृति से निकटता, उस समय के प्रदूषण रहित शुद्ध नदी, सरोवर आदि जल का संस्पर्श मन, मस्तिष्क को निरोग रखता था तथा देश के सभी भाग से, वहां की आचंलिक संस्कृति से, तीर्थयात्री का सम्पर्क होता था। इससे देश की भाषागत, भौगौलिक तथा सांस्कृतिक एकता अक्षुण्ण बनी रहती थी। जिसका आज क्षेत्रवाद के कारण नाश हो रहा है।

इस महापुराण के आठ खण्डों के प्रकाशनार्थ प्राच्यविद्या ग्रन्थों के प्रकाशक तथा संस्कृत प्रेमी बाबू ब्रजमोहनदास जी गुप्ता का उत्साहवर्द्धन ही था, जो मैं अल्पशक्ति तथा अल्पमति व्यक्ति इस महापुराण के अस्सी हजार श्लोकों के भाषानुवाद का साहस कर सका। इन सबकी पृष्ठभूमि में गुरुकृपा सर्वोपरि है। वही वह जीवनीशक्ति है, जिसके संचार से "पंगु चढ़ै गिरिवर गहन" मुझ जैसा एक सामान्य व्यक्ति भी इस महाप्रयास में सफल हो सका।

जन्माष्टमी, सन् २०१४ ई.

निवेदक

एस. एन. खण्डेलवाल

स्कन्दपुराण-माहेश्वर खण्ड अनुशीलन

(जगद्गुरु रामानुजाचार्य आचार्यपीठाधिपति स्वामी श्री राघवाचार्य महाराज)

स्कन्ददेवता

स्कन्द देव हैं। षण्मतस्थापक आचार्य शङ्कर ने जिन छः मतों को मान्यता दी उनमें से एक के यह आराध्य एवं उपास्य देव हैं। वह शोषक हैं असत् के, असद्वृत्तियों के एवं असुरों के। स्कन्दयति, शोषयति, अर्थात् जो शोषण करता है, वही देव स्कन्द है। परमतत्त्व में असद्वृत्तियों को नष्ट करने की सामर्थ्य सदा विद्यमान रहती है। अतः परमतत्त्व स्कन्द है। विष्णु के सहस्र नामों में एक 'स्कन्द' नाम है। शिव के सहस्र नामों में भी स्कन्द नाम है। देववृत्त के अनुसार भूतभावन शङ्कर के आत्मज हैं—षडानन स्कन्द, जो देवों के सेनापति हैं। 'सेनानीनामहंस्कन्दः' अर्थात् सेनापतियों में मैं स्कन्द हूँ, के अनुसार भगवान् की विभूति हैं।

स्कन्दपुराण

पुराण वाङ्मय में स्कन्द के नाम से दो ग्रन्थ मिलते हैं। एक खण्डों में विभक्त है, दूसरा संहिताओं में विभक्त हैं। नारदीयपुराण अपनी सूची में खण्डात्मक पुराण का ग्रहण किया है। नारदीयपुराण में स्कन्दपुराण के सात खण्ड गिनाये गये हैं—(१) माहेश्वर, (२) वैष्णव, (३) ब्राह्म, (४) काशी, (५) अवन्ती, (६) नागर, (७) प्रभास। अन्य मतानुसार अवन्ती और नागर के स्थान पर रेवा और तापी खण्ड गिने जाते हैं। यह सप्तखण्डात्मक पुराण महापुराण माना जाता है। छः संहिताओं वाला स्कन्दपुराण पुराण है। दोनों ही पुराण वाङ्मय के जाज्वल्यमान रत्न हैं। दोनों के श्लोकों की संख्या ८१ हजार बतायी जाती है।

विषय की दृष्टि से सम्पूर्ण पुराण में महेश्वर शिव और माहेश्वरधर्म की प्रधानता है। कहा भी है—

(१) यस्मिन्प्रतिपदं साक्षान्महादेवो व्यवस्थितः। (नारदीपुराण)

(२) यत्र माहेश्वराधर्माः षण्मुखेन प्रकाशिताः। (नारदीयपुराण)

(३) यत्र माहेश्वरान्धर्मानधिकृत्य च षण्मुखः। (मत्स्यपुराण)

अर्थ यह है कि (१) स्कन्दपुराण के प्रत्येक पद में शिव प्रतिष्ठित हैं। (२) षड़ानन स्कन्द ने इस पुराण में माहेश्वर (शैव) धर्म का प्रतिपादन किया है। (३) शैव धर्म को ही लक्ष्य में रखकर स्कन्द ने इस पुराण का उपदेश दिया।

माहेश्वरखण्ड

महापुराण का प्रथम खण्ड माहेश्वर खण्ड है। इसमें तीन उपखण्ड है—(१) केदारखण्ड, (२) कुमारीखण्ड और (३) अरूणाचल माहात्म्य। जहां स्कन्द महापुराण के सात खण्ड सप्तद्वीपवती पृथ्वी का संकेत करते हैं, माहेश्वर खण्ड के तीनों उपखण्ड भारतभूमि के प्रतीक हैं। केदार उत्तर में है। महीसागर संगम (कुमारी) पश्चिम में है। अरुणाचल दक्षिण में है। केदारखण्ड में ३५ अध्याय हैं। कुमारिकाखण्ड में ६६ अध्याय हैं। अरुणाचल माहात्म्य के पूर्वार्ध में तेरह और उत्तरार्ध में चौबीस कुल ३७ अध्याय हैं।

दक्ष यज्ञ विध्वंस से केदारखण्ड की कथा आरम्भ होती है। विषभक्षण का वर्णन करती हुई कथा पार्वती के चरित्र तक पहुंचती है, तब स्कन्द का चरित्र आता है। शिव पार्वती के राज्याभिषेक पर खण्ड का उपसंहार होता है।

कुमारिकाखण्ड में महीसागरसंगम का माहात्म्य है। अर्जुन की यात्रा से प्रसंग आरम्भ होता है। क्रमशः यहां के एक-एक तीर्थ एवं एक-एक आराध्य देव का वर्णन किया गया है। अर्जुन ने यहां के पांच तीर्थों के पांच ब्राहों का उद्धार किया। नारद ने कलाप ग्राम के ब्राह्मणों को यहां ले जाकर बसाया। कुमार कार्तिकेय, भरतपुत्र शशशृङ्ग की कन्या कुमारी इन्द्रद्युम्न और उनके सहयोगी, ऐतरेय आदि ने यहां साधना की। शिवलिङ्गों के अतिरिक्त विष्णु, सूर्य एवं देवी की भी यहां प्रतिष्ठा हुई।

अरुणाचल माहात्म्य का विषय स्पष्ट है। अरुणाचल के नाम से शिव के प्रकट होने से माहात्म्य का आरंभ होता है। देवताओं ऋषियों की आराधना का तथा यहां के तीर्थों का वर्णन करते हुए वज्राङ्ग की साधना पर माहात्म्य की पूर्ति होती है।

माहेश्वरधर्म

जहां तक माहेश्वर धर्म का सम्बन्ध है, प्रत्येक प्रसङ्ग में किसी न किसी रूप में शैवधर्म की चर्चा आ गई है। भस्मधारण, रुद्राक्षधारण, शिवत्रयोदशी, शिवपूजा, आदि शैवधर्म के आचरणों का प्रतिपादन किया गया है। आचारवान् व्यक्ति ही नहीं प्रत्युत अनाचारपरायण लोग भी शैवधर्म के अनुष्ठान से सुगति प्राप्त करने में समर्थ हुए, इसके उदाहरणों से खण्ड परिपूर्ण है।

शिवतत्त्व

शैवधर्म के दर्शन का सर्वस्व है—शिवतत्त्व। शिवतत्त्व के आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक तीनों ही रूपों की विशद मीमांसा इस खण्ड में उपलब्ध होती है।

दक्ष यज्ञ विध्वंस से शुष्क कर्म का निषेध तथा ज्ञानपूर्वक कर्म का समर्थन किया गया है। दक्ष को पुनः जीवित कर शङ्कर ने बताया—

केवलं कर्मणा त्वं हि संसारात्तर्तुमिच्छसि।।
....
न शक्नुवन्ति मां प्राप्तुं मूढा कर्मवशा नराः।
तस्माज्ज्ञानपरोऽभूत्वा कुरु कर्म समाहितः।। केदारखण्ड ५।४१,४२,४३

आशय यह है कि तुम केवल कर्म के द्वारा संसार सागर से पार जाना चाहते हो। कर्म के वशीभूत हुए मनुष्य मुझे प्राप्त नहीं कर पाते, इसलिये तुम ज्ञानपरायण होकर कर्म करो।

ज्ञान के द्वारा प्राप्त होने वाला आत्मसाक्षात्कार ही वास्तविक अमरत्व है। इनसे भिन्न केवल कर्म के द्वारा समुद्र मंथन होने पर कालकूट विष ही प्रकट होता है। शिव की पराशक्ति प्रकृति से जन्मे हुए (साक्षात्प्रकृत्या सम्भूतः) गणेश ने यह विघ्न उपस्थित किया था (मया विघ्नं विनोदेन कृतं तेषां सुदुर्जयम्) यह गणेश माया पुत्रोऽपि निर्मायः हैं अर्थात् माया से उत्पन्न होकर भी माया से रहित हैं। उनकी प्रार्थना से प्रसन्न होकर शिव ने विष के भय को दूर किया और गणेशोपासना का विधान किया। यह भी बताया गया है कि शिव ने गणेश के अज्ञान के मस्तक को काटकर और ज्ञान का मस्तक लगाकर गजानन गणेश बना दिया। (केदारखण्ड १०।२८-३६)।

दक्ष कन्या सती वस्तुतः शिव की पराशक्ति थीं। हिमालय के यहां यही सती पार्वती के रूप में अवतीर्ण हुईं। शङ्कर के द्वारा काम के भस्म किये जाने के पश्चात् पार्वती ने तपस्या की। तब शङ्कर और पार्वती का विवाह

हुआ। शङ्कर विशुद्ध आत्मा और पार्वती महाविद्या के संयोग से जो तेज प्रकट हुआ, उसने अग्नि और कृत्तिकाओं के माध्यम से गंगा में पहुंच कर स्कन्द (षडानन कुमार) रूप ग्रहण किया। इन्हीं कुमार के द्वारा तारकासुर का वध हुआ। केदारखण्ड में यह कथा विस्तारपूर्वक वर्णित है। कुमारिका खण्ड में इनकी पुनरावृत्ति की गई है। यह कुमार शिव के अपर रूप है। (कुमारोह्यपरः शम्भुः केदारखण्ड ३१।२)। कुमार का दर्शन तत्काल सफलता प्रदान करने वाला है। स्कन्द दर्शन का यही सिद्धान्त है।

केदारखण्ड में चौतीसवें अध्याय में शङ्कर-पार्वती की जिस द्यूतक्रीडा का वर्णन है, वह स्पष्टतः माया विरचित वितान है। "अहं शिवात्मिका मूढ शिवोनित्यं मयिस्थितः" अर्थात् मैं पार्वती शिवात्मिका हूं और शिव निरन्तर मुझमें प्रतिष्ठित हैं, यह पार्वती का परिचय है। इस द्यूतक्रीडा के अन्त में शङ्कर एकाकी निर्जन वन में समाधिस्थ हो गये। प्रकृति से वियुक्त आत्मा की यही स्थिति है, तब पार्वती ने शङ्कर का अन्वेषण किया और प्राप्त किया।

अरुणाचल माहात्म्य के पूर्वार्ध के तीसरे अध्याय में पार्वती ने शङ्कर के नेत्र बन्द कर दिये। यह देवी का विनोद था (देवी विनोदरूपेण पिधत्ते पुरज्जिद्दृशः), किन्तु ऐसा करने पर तुरन्त त्रिलोकी में अंधकार हो गया। जब देवी ने नेत्र छोड़ दिया, सोमसूर्याग्निरूपाणां प्रकाशमभवज्जगत् के अनुसार जगत् में सोम, सूर्य एवं अग्नि का प्रकाश हो गया। इसके बाद ही पार्वती ने तपस्या की और अरुणाचल पर शिव को प्राप्त किया। यहां शङ्कर ने स्पष्ट कर दिया कि प्रकृति स्त्वं पुमानहम् कि तुम (पार्वती) प्रकृति हो और मैं पुरुष हूं।

लिङ्गान्वेषण

शिवतत्त्व लिङ्गरूप है। केदारखण्ड का वचन है–

लिङ्गरूपी महादेवो येनेदं धार्यते जगत्। अ० ७।५२

अर्थात् महादेव लिङ्गरूप हैं। कार्य जगत् में रजोगुण तथा सतोगुण इसका पार पाने में समर्थ न हो सके। दारुवन में यही स्थिति हुई। आत्मस्वरूप तो गुणातीत है। इस तत्व तक पहुंचने के लिये सत्वगुण की पीठिका पर महेश्वर की उपासना करनी होगी। जैसा कि कहा है—

पीठिका विष्णुरूपं स्याल्लिङ्गरूपी महेश्वरः। केदारखण्ड ८।२६

पीठिका विष्णुरूप (सत्वरूप) है और उस पर महेश्वर लिङ्गरूप में विराजमान हैं। रावण ने पीठिकारहित लिङ्ग की पूजा की, जो उसके शाप का कारण बनी (केदारखण्ड ८।८३-८४), अतः लिङ्गोपासना में पीठिका समेत महेश्वर का पूजन अपेक्षित है। इसी रूप में माहेश्वरखण्ड में स्थान-स्थान पर विभिन्न लिङ्गों का वर्णन किया गया है। शैवागमों का मन्तव्य यही है (अरुणाचल माहात्म्य उत्तरार्ध १६।४६,५०)। इस प्रकार प्रतिपादित शिवतत्त्व के साथ त्रिमूर्ति का कैसा सामञ्जस्य है, इसका भी उत्तर माहेश्वर खण्ड में दिया गया है। विष्णु शिव से भिन्न हैं, ब्रह्मा शिव से भिन्न हैं, ऐसा मानकर बताया गया है कि पार्वती के अनुग्रह से यह सामञ्जस्य सम्पन्न हुआ है। कहा है—

क्रमेण दौर्हदवती भूत्वा प्रासूत पार्वती। गजाननञ्च हेरम्बं सेनान्यञ्च षडाननम्।।
तौ चागमविदः प्राहुर्नारायणचतुर्मुखौ। पूर्वापराधशुध्यर्थं देवीगर्भसमुद्भवौ।।

(अरुणाचल मा०उ० १७।२३-२४)

आशय यह है कि आगम वेत्ताओं के अनुसार नारायण गजानन के रूप में और ब्रह्मा षडानन के रूप में प्रकट हुए। त्रिमूर्ति की अभिव्यक्ति माहेश्वरागम की विशेषता है।

।।श्री गणेशणायनमः।।

स्कन्दपुराण के विषय में

श्रीकृष्ण चन्द्र आनन्द कन्द की असीम अनुकम्पा से गुरुमण्डल ग्रन्थमाला २०वें पुष्प के रूप में महापुराणों में सर्वाधिक श्लोक संख्या (८१०००) वाले इस स्कन्दपुराण के प्रथम माहेश्वर खण्ड को प्रस्तुत करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। भविष्य में क्रमशः सभी खण्डों को यथावसर पर सम्पादन करवा निकालने का प्रयत्न किया जा रहा है।

इस महापुराण की समीक्षा सम्मान्य विद्वज्जन ही इसके अविकलपारायण द्वारा कर सकते हैं। मुझे तो इस विशाल महापुराण के सम्पादन कार्य को सुन्दर रूप से नाना हस्तलिखित प्रतियों तथा अद्यावधि प्रकाशित स्कन्दपुराण की प्रतियों के तुलनात्मक सम्पादन की विशेषता पर ही दो शब्द निवेदन करना अनिवार्य जंचता है।

स्कन्दपुराण के इस प्रस्तुत भाग को नवल किशोर प्रेस (लखनऊ), श्री वेङ्कटेश्वरप्रेस, (बम्बई) और बङ्गवासी प्रेस (कलकत्ता) पद्मपुराणों की प्रतियों को आदर्श रखकर छपाया है। इसके आगे वैष्णव खण्ड का प्रकाशन हाथ में लिया जाये, इसके पूर्व सभी सम्मान्य महानुभावों से इस महान् ग्रन्थ को पाठ, विषय एवं तुलनात्मक कार्य सभी प्रकार से परिपूर्ण करने के साथ-साथ उनमें ग्राह्य पाठ भेदों की समीक्षा आवश्यक है। अतः पुराणप्रेमी विद्वज्जन सहयोग कर इस ओर मुझे पथ-प्रदर्शन करेंगे, तो मैं अत्यन्त कृतकार्य होऊंगा।

इस विशाल ग्रन्थ राशि का अविकल पारायण, अध्ययन, मनन और प्रवचन सर्वत्र भूमण्डल में ज्ञान प्रसारार्थ हो यही आप महानुभावों से मेरी करबद्ध प्रार्थना है।

इस उमा महेश्वर खण्ड की समीक्षा पूज्यपाद जगद्गुरु श्री १०८ वैष्णावाचार्य श्री राघवाचार्य जी महाराज, आचार्यपीठाधिपति बरेली ने कृपा कर की है। इसके लिये मैं हृदय से कृतज्ञ एवं श्रद्धाविनत हूँ। सदा की भाँति श्रीब्रह्मदत्तजी त्रिवेदी शास्त्री (लक्ष्मणगढ़-सीकर) एवं पण्डित रामनाथ जी दाधीच पुराण सांख्य स्मृति तीर्थ (नवलगढ़) ने पूर्ण परिश्रम से, इस खण्ड का सम्पादन कार्य किया है। दोनों की सम्पादन और ज्ञानयज्ञ में विशेष सफल होने की कला में सदा सफलतापूर्वक वाग्देवता की कृपा बनी रहे, यही एकमेव हार्दिक अभिलाषा है।

अन्त में, मैं आप पुराण प्रेमी विद्वज्जन से मेरी अपूर्णताओं के लिये सादर क्षमा याचना करता हुआ, बारम्बार इस महान् ज्ञान यज्ञ के सदनुष्ठान की सादर प्रार्थना करता हूँ, जिससे विश्व भर में ज्ञान की अमर बूंटी के उपयोग से मानव सृष्टि क्रम को आध्यात्मिक साधनों से सुख-शान्ति और आनन्द का केन्द्र बना एक अपूर्व युग का उदय करें, जहां रागद्वेष, अशान्ति, कलह, घृणा सदा के लिये विलय होकर भ्रातृभाव, समता, प्रेम, सहिष्णुता और दिव्य विभूतियों का प्रसार हो—

"कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्"

विषयानुक्रमणिका

अध्याय		पृष्ठांक
	केदारखण्ड	
१.	मङ्गलाचरणवर्णनम्	३
२.	दक्षयज्ञ वर्णन	८
३.	सती का दक्षभवन प्रवेश	१४
४.	देवताओं के साथ शिवगण का युद्ध	२१
५.	वीरभद्र द्वारा दक्ष शिरच्छेद	२७
६.	लिङ्ग प्रतिष्ठा प्रकरण	४४
७.	देवों द्वारा लिङ्ग स्तुति	५०
८.	तस्कर वृत्तान्त वर्णन	५५
९.	गुरु की अवज्ञा से इन्द्र का राज्यभंग	६६
१०.	समुद्रमन्थन में गणेशकृत विघ्न वर्णन	७६
११.	श्रीगणेशपूजा विधानवर्णन	८४
१२.	समुद्रमन्थन वर्णन	९१
१३.	देवासुर युद्ध, रुद्राक्ष माहात्म्य	९७
१४.	विष्णु कालनेमि युद्ध वर्णन	१०७
१५.	गुरु की अवज्ञा से राज्यनाश	११०
१६.	बृहस्पति को इन्द्राणी का शाप	१२०
१७.	दधीचि का देहत्याग, उनकी पत्नी द्वारा देवों को शाप दिया जाना	१२८
१८.	बुद्धि विकल देवगण का नाना रूप धारण	१५२
१९.	बलि को गुरु का शाप, प्रभु की आज्ञा स बलि का सुतलगमन	१७१
२०.	लिंगरूपी शिव का निर्गुणत्व, तारकासुर वृत्तान्त	१७७
२१.	हिमालय का शिव के पास गमन, शिवं के पास देवगण द्वारा कामदेव को भेजना, मदनदहन	१८४
२२.	ब्रह्मादि देवगण का शिव समीप गमन, शिव का पार्वती दर्शन, पार्वती का पितृगृह गमन	१९९
२३.	सप्तर्षिगण का हिमालय आगमन, विवाहार्थ मण्डप निर्माण	२१०
२४.	हिमवान् के यहां मण्डपरचना आदि	२१८
२५.	शंकर की आरती हेतु मेना का आगमन शिवपार्वती विवाहोत्सव	२२४
२६.	हिमालय द्वारा कन्यादान वर्णन	२३२
२७.	सबका विवाहोपरान्त स्वस्थान गमन, स्कन्दोत्पत्ति वर्णन	२३७
२८.	देवताओं के साथ स्कन्द का गमन, देवदैत्य सेना का वर्णन	२४६
२९.	मुचुकुन्द तारक युद्ध वर्णन, देवता तथा तारक का युद्ध	२५१
३०.	इन्द्र-तारकासुर युद्ध वर्णन, कुमार द्वारा तारक वध	२५८

अध्याय	पृष्ठांक
३१. शौनकादि ऋषियों का प्रश्न, शिव का यम को उपदेश, शिवलिङ्ग माहात्म्य	२६३
३२. श्वेतराज का चरित्र, कालदहन, शिवभक्ति महिमा वर्णन, कालकृत महेशस्तव, श्वेत को शिव प्राप्ति	२७२
३३. चण्डलुब्धक का वर्णन, राशिनक्षत्र निरूपण, शिवरात्रि महिमा	२८०
३४. कैलास पर नारद का आगमन, गिरिजा के साथ भगवान् की अक्षक्रीड़ा, भृंगी का पार्वती के प्रति आक्रोश, शंकर द्वारा वनगमन	२८९
३५. पार्वती का शबरी रूप से गन्धमादन पर्वत गमन, उनको वापस लाना, बृहस्पति कृत शिवराज्याभिषेक, नारद द्वारा स्त्री संग के विरुद्ध कथन	३०२
कौमारिकाखण्ड	
१. पञ्चतीर्थ वर्णन, पार्थ द्वारा तीर्थोद्धार, अर्जुन द्वारा अप्सरा का उद्धार	३११
२. नारद द्वारा तीर्थ प्रशंसा, कात्यायन-सारस्वत संवाद, दान महिमा, शौचादि नियम प्रशंसा	३१९
३. महीसागर संगम महिमा वर्णन, स्तम्भतीर्थ वर्णन, देवशर्मा नारद संवाद	३२९
४. दानभेद प्रशंसा, वैदिक दान मार्ग वर्णन	३३६
५. सुतनु-ब्राह्मण संवाद, स्वर-व्यंजन विशेषता वर्णन, तिथि निरूपण	३४४
६. नारद द्वारा महीसागर संगम पर ब्राह्मणों को स्थापित करना, स्थान प्रतिष्ठा, चिरकारी प्रसंग	३५५
७. इन्द्रद्युम्न प्रसंग, पृथिवी प्रादुर्भाव वर्णन, गालव मुनि की भार्या के प्रति शिवगण का मोह, कम्बल का पूर्वजन्म वृत्तान्त	३६७
८. नाड़ीजंघ के प्रयास से इन्द्रद्युम्न की शंका निवृत्ति, उलूकत्व प्राप्ति वर्णन, बिल्व महिमा	३७६
९. गृध्र का पूर्वजन्म वृत्तान्त, दमनक महोत्सव, बलात्कार से गृध्र योनि प्राप्ति, पुनः पश्चाताप से ऋषि का अनुग्रह	३८३
१०. कूर्म का दीर्घायु प्राप्त करना	३८८
११. कूर्म का पूर्वजन्म वृत्तान्त, ईश्वर का शाप	३९१
१२. लोमश आख्यान, शिवपूजा महिमा, महेश्वर से वर प्राप्ति	३९६
१३. शापभ्रष्टों के लिए वाराणसी जाकर उद्धार कथन, शतरुद्रीय लिंग महिमा, नकुल-याज्ञवल्क्य संवाद, संवर्त्त संवाद, महीसागर संगम महिमा, शतरुद्रीय, इन्द्रद्युम्नेश्वर माहात्म्य, सब की शिवसारूप्य प्राप्ति	४०२
१४. कुमारेश्वर लिंग माहात्म्य, दक्षपुत्रियों को नाना पुत्रलाभ, वज्राङ्ग तपप्रभाव वर्णन, वज्राङ्ग-स्त्री संवाद	४१९
१५. कुमारेश महिमा, तारक उत्पत्ति, तारक दैत्य का युद्धार्थ सैन्य आवाहन	४२७
१६. तारक-इन्द्र युद्ध उपक्रम, युद्धवर्णन, इन्द्र-बृहस्पति विमर्श	४३३
१७. यम-उग्रसेन युद्ध, ग्रसन पराक्रम वर्णन	४३९
१८. नारद-अर्जुन संवाद, देव-तारक युद्ध वर्णन, निर्ऋत्-जम्भ युद्ध	४४४
१९. विष्णु-कालनेमि युद्ध, विष्णु कृत कालनेमि पराजय	४५२
२०. दैत्यगण से विष्णु का युद्ध, दैत्यसंहार, विष्णु-शुंभ युद्ध वर्णन	४५८

अध्याय	पृष्ठाक
२१. (तारक विजय) निमि द्वारा देवसैन्य पीड़न, जम्भ-इन्द्रयुद्ध, युद्धक्षेत्र का वीभत्स दृश्य वर्णन, तारक-विष्णु युद्ध, तारक राज्याभिषेक, दिव्य स्त्री साक्षात्कार, विष्णु हरि एकरूपता, तारक का ब्राह्मण के पास गमन	४६६
२२. कुमारेश महिमा, पार्वती जन्म, देवगण-ब्राह्मण संवाद	४९१
२३. नारद द्वारा पार्वती का सामुद्रिक शास्त्र से फलादेश, पार्वती द्वारा दक्षिण हाथ ऊपर उठाने का रहस्यवर्णन	४९७
२४. कामदहन	५०२
२५. पार्वती का तप, शंकर विरोधी वचन का निषेध करना, इस प्रकार पार्वती परीक्षा, ब्राह्मणरूपी शिव की सन्तुष्टि, शिव-पार्वती विवाह	५०६
२६. शिवगौरी विवाह वर्णन	५१७
२७. पार्वती प्रकोप, शंकर गण वर्णन, पार्वती के कृष्ण वर्ण के प्रति शिव का व्यंग	५२५
२८. पार्वती का तप हेतु हिमालय गमन	५३२
२९. कुमार का सर्वदेव सेनापति पद पर अभिषेक, पार्वती के मुख से सिंहोत्पत्ति, वीरक को शाप तथा वर प्रदान, तप के पश्चात् पार्वती का पुनः महेश गृह आगमन, स्कन्द प्रहर वर्णन, शिव-पार्वती संवाद	५३४
३०. कार्त्तिकेय का सेनापति पद पर अभिषेक, नाना अस्त्र प्रदान किया जाना	५५२
३१. स्कन्द का तारक-विजय अभियान वर्णन	५५७
३२. तारकस्कन्द संवाद, तारक का पराक्रम, लिंगस्थापना से ब्रह्महत्या नाश, तारक वध	५६१
३३. तारक वध से दुःखी कार्त्तिकेय द्वारा प्रायश्चित्त, शिवलिंग स्थापना	५७७
३४. स्कन्दकृत शिवस्तुति, शिवलिंग माहात्म्य, कुमारेश अर्चना का फल वर्णन	५८२
३५. स्तम्भेश्वर माहात्म्य	५९२
३६. सिद्धेश्वर लिंग स्थापना, माहात्म्य	५९३
३७. बर्बरीक तीर्थ, सप्तद्वीप वर्णन, द्वीपाधिपति वर्णन	५९८
३८. ऊर्ध्वलोक वर्णन	६०६
३९. सप्तलोक व्यवस्था, चतुर्युगवर्णन, बर्करिकाख्यान, नवखण्ड ग्रामसंख्या, बर्करेश्वर माहात्म्य	६११
४०. चतुर्युग व्यवस्था, शिवानन्द वर्णन, कालभीतिकृत शिवस्तुति, पितृतर्पणादि विचार, धर्मशास्त्र निरूपण, कलियुग में शूद्रराज्य वर्णन	६२४
४१. शिवपूजाविधान वर्णन, नारकीय गति वर्णन, सदाचार प्रतिपादन	६४७
४२. ऐतरेय चरित्र वर्णन, मातृपुत्र संवाद में संसार की असारता, कष्ट बहुलता वर्णन, परमार्थ प्रतिपादन, ऐतरेय कृत् भगवत् स्तुति, वरप्राप्ति	६६३
४३. भट्टादित्य स्थापना, सूर्यपूजा वर्णन, सूर्यार्घ्य महिमा वर्णन	६८३
४४. भट्टादित्य महिमा, दिव्यकरण विधि वर्णन, फालशुद्धिवर्णन	६९०
४५. नन्दभद्र प्रसंग, सत्यव्रत-योगादि विषय वर्णन	६९७

अध्याय	पृष्ठांक
४६. नन्दभद्र संशय समाधान, बाल-नन्दभद्र संवाद, बाल का पूर्वजन्म वृत्तान्त, बहूदक तीर्थ महिमा	७०८
४७. नानादेवी पीठ वर्णन, देवी-स्कन्द संवाद	७२२
४८. सोमनाथ माहात्म्य, हाटकेश्वर वर्णन	७३०
४९. आदित्य-कमठ संवाद, गर्भ से बाह्यावस्था वर्णन	७३३
५०. जीव की पारलौकिक गति, देहसन्धारकारण, पापियों को यमयातना	७३९
५१. जयादित्य स्तुति, उनकी महिमा का वर्णन, हारीत आदि द्वारा बालक की प्रशंसा, कमठ को सूर्य वरदान प्राप्ति	७४७
५२. कोटितीर्थ महिमा	७५५
५३. कोटितीर्थ माहात्म्य	७५९
५४. नारद महात्म्य, कृष्ण कृत नारदस्तव	७६२
५५. गौतमेश्वर महिमा, अष्टांग योग विस्तार वर्णन, योगसद्धि प्राप्ति वर्णन, योगप्रवृत्ति लक्षण वर्णन	७६७
५६. ब्रह्मेश्वर, मोक्षेश्वर, गर्भेश्वर माहात्म्य	७७९
५७. नीलकण्ठ माहात्म्य	७८०
५८. तीर्थ श्रेष्ठत्व, ब्रह्मा-धर्म का संवाद	७८१
५९. घटोत्कच का प्राग्ज्योतिषपुर गमन, कृष्ण-कामाख्या वार्त्ता, घटोत्कच गमन	७८७
६०. मौर्वी का घटोत्कच से प्रश्न वर्णन, बर्बरीकोत्पत्ति वर्णन	७९५
६१. महाविद्या साधनार्थ गुप्त क्षेत्र में देव्याराधन का आदेश, गणेश्वर विधि	८०१
६२. क्षेत्रपाल पूजा, महाविद्यासाधन, रुद्राविर्भाव, कालिकाविर्भाव वर्णन	८०७
६३. बर्बरीक (सुहृदय द्वारा) महाविद्या को प्रसन्न करने हेतु साधना, शेष स्थापित लिंग पूजन	८१३
६४. भीम-बर्बरीक विवाद, भीमेश्वर लिंग प्रतिष्ठा, भीमेश्वर माहात्म्य	८२०
६५. युधिष्ठिर-भीम संवाद, भीम का देवीदर्शन वर्णन, गयत्राडा देवी वर्णन	८२७
६६. कुरुक्षेत्र में सैन्य-सज्जा, भीम-युधिष्ठिर संवाद, बर्बरीक द्वारा हस्तलाघव प्रदर्शन, कृष्ण द्वारा उसका शिरच्छेद, वर प्राप्ति, गुप्तक्षेत्र माहात्म्य समापन	८३७

अरुणाचलमाहात्म्य (पूर्वार्ध)

१. लिंग प्रादुर्भाव, विष्णु ज्योतिस्वरूप, शिव प्रभाव	८५१
२. ब्रह्मा-विष्णुकृत शिवस्तुति, स्थावर लिंग महिमा, अरुणाचलेश्वर लिंग महिमा	८५७
३. अरुणाचल प्रतिष्ठा, गौरी का कैलास से आगमन, कम्पा नदी तथा आम्रतल महत्व वर्णन, शिव विरह	८६२
४. विजया द्वारा पार्वती को सान्त्वना, कम्पा के किनारे पार्वती का तप, पार्वती का गौतमाश्रम गमन	८६९
५. पार्वती का गौतमाश्रम आने का कारण, अरुणाचल महत्व वर्णन, शिवाविर्भाव	८७५
६. अरुणाचल स्थित नाना तीर्थों का वर्णन, वहां सिद्धि प्राप्ति वर्णन, अरुणाद्रि महिमा	८८१
७. अरुणाचलस्थ नानातीर्थ माहात्म्य, शिव-गौतम संवाद	८९१

अध्याय	पृष्ठांक
८. अरुणेश्वर आराधन माहात्म्य, शिव वरदान वर्णन, शिवोपदेश	८९५
९. शिव के मुख्य नाम, अरुणाद्रि प्रदक्षिणा माहात्म्य, उपचार फल वर्णन	९०३
१०. तप:काल में महिषासुर युद्ध वर्णन, मायासुर-देवी संवाद	९१२
११. महिषासुर वध, गौतम-देवी वार्त्ता, अरुणाचल माहात्म्य	९२१
१२. देवी शिव समागम, सनवती तीर्थ स्थापना, शिवभक्त के प्रति विश्वास का उपदेश, अरुणाचल शोभा तथा शिवागमन वर्णन	९२९
१३. शिव द्वारा अरुणाचल को सर्वश्रेष्ठत्व प्रदान	९३६
अरुणाचलमाहात्म्य (उत्तरार्ध)	
१. स्थानमाहात्म्य वर्णन	९४३
२. नन्दीश्वर-मार्कण्डेय संवाद, विभिन्न सशक्ति शिवक्षेत्र वर्णन	९४५
३. अरुणाचल रहस्य वर्णन	९५१
४. अरुणाचल महिमा वर्णन, अरुणाचल का शिवरूपत्व	९५३
५. कर्मविपाक वर्णन	९५८
६. पापनाशार्थ प्रायश्चित्त वर्णन	९६०
७. काम्य कर्म वर्णन	९६४
८. सृष्टि वर्णन	९६८
९. ब्रह्मा-विष्णु के विवाद का वर्णन	९७०
१०. विवादरत ब्रह्मा-विष्णु के मध्य लिंग प्रादुर्भाव	९७३
११. विष्णु द्वारा लिंग के अधोभाग के ज्ञान हेतु गमन	९७६
१२. ब्रह्मा द्वारा लिंग के ऊर्ध्वभाग अन्वेषण प्रयास का वर्णन, ब्रह्मा-केतक संवाद	९७८
१३. लिंग के अग्रभाग न देख पाने के कारण ब्रह्मा का असत्य साक्ष्य देने के लिए केतकीच्छद से प्रार्थना	९८१
१४. ज्योतिर्लिंग में शंकर प्रादुर्भाव वर्णन	९८३
१५. शिव द्वारा ब्रह्मा के प्रति रोष प्रकट करना, विष्णु के प्रति प्रेम सम्मान प्रकट करना, ब्रह्मा द्वारा शिव को प्रसन्न करने हेतु उद्यम	९८६
१६. ब्रह्माकृत शिव स्तव, ब्रह्मा-विष्णु को वर प्राप्ति, शिवाज्ञा से अरुणाचलेश मन्दिर निर्माण	९८८
१७. शिवपार्वती-विहार	९९४
१८. पार्वती द्वारा अरुणाचलेश्वर परिचरण, गौतम द्वारा अरुणाचल के स्थानों का वर्णन	९९७
१९. देवी का तप काल में महिषासुर वध वर्णन, मातृ द्वारा दुर्गा स्तुति	१००३
२०. पार्वतीकृत अरुणाचलेश्वर स्तव	१०१०
२१. शिव द्वारा पार्वती प्रशंसा	१०१३
२२. वज्राङ्गद वृत्तान्त, पितृभक्ति का फल गणेश को प्राप्त होना	१०१६
२३. कलाधर कान्तिशालि वृत्तान्त	१०२०
२४. पुत्र को राज्य देकर वज्रांगद की सद्गति का तथा वरप्राप्ति का वर्णन	१०२२

केदारखण्डम्

॥ श्रीगणेशायनमः॥

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवाय॥

श्रीमन्महर्षिवेदव्यासप्रणीतम्

स्कन्दमहापुराणम्

तत्रादौ प्रथमं माहेश्वरखण्डम्प्रारभ्यते

केदारेश्वरखण्डम्

प्रथमोऽध्यायः

मङ्गलाचरणवर्णनम्

ॐ नारायणं नमस्कृत्य नरंचैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतींचैव ततो जयमुदीरयेत्॥१॥

व्यास उवाच

यस्याज्ञयाजगत्स्त्रष्टाविरिञ्चिःपालकोहरिः। संहर्त्ता कालरुद्राख्योनमस्तस्मैपिनाकिने॥२॥

तीर्थानामुत्तमं तीर्थं क्षेत्राणांक्षेत्रमुत्तमम्। तत्रैव नैमिषारण्येशौनकाद्यास्तपोधनाः।
दीर्घसत्रं प्रकुर्वन्तः सत्रिणः कर्मचेतसः॥३॥

तेषांसन्दर्शनौत्सुक्यादागतो हि महातपाः। व्यासशिष्योमहाप्राज्ञोलोमशोनामनामतः॥४॥

तत्रागतं ते ददृशुर्मुनयो दीर्घसत्रिणः। उत्तस्थुर्युगपत्सर्वे सार्घ्यहस्ताः समुत्सुकाः॥५॥

दत्त्वाऽर्घ्यपाद्यंसंत्कृत्य मुनयोवीतकल्मषाः। तं पप्रच्छुर्महाभागाःशिवधर्मंसविस्तरम्॥६॥

नारायण, नर, नरोत्तम, देवी तथा सरस्वती को प्रणाम करके जय (पुराण) वर्णन करता हूं।

व्यासदेव कहते हैं—जिनकी आज्ञा से ब्रह्मा जगत्स्त्रष्टा, हरि जगत्पालक तथा कालरुद्र जगत् संहर्त्ता हैं, उन देव पिनाकपाणि को प्रणाम। नैमिषारण्य अतीव पुण्यप्रंद स्थान है। वह सभी क्षेत्रों से उत्तम है। उत्तम क्षेत्रों तथा समस्त तीर्थों की तुलना में वह उत्तम है। शौनकादि कर्मवान् याज्ञिक तपस्वीगण ने नैमिषारण्य में दीर्घ यज्ञ आरम्भ किया था। उनके दर्शन की लालसा लेकर एक बार व्यासशिष्य महातपा महाबुद्धि लोमश मुनि ने वहां आगमन किया। दीर्घ यज्ञ के व्रती मुनिगण ने उनको वहां आया देखकर युगपत् उत्सुक चित्त से हाथों में अर्घ्य लेकर उनका सत्कार किया तथा उनके निकट आकर उनसे सुविस्तृत शिवधर्म के सम्बन्ध में पूछना आरम्भ किया।।१-६।।

ऋषय ऊचुः

कथयस्व महाप्राज्ञ! देवदेवस्य शूलिनः। महिमानं महाभागध्यानार्चनसमन्वितम्॥७॥
सम्मार्जने किं फलं स्यात्तथारङ्गावलीषु च। प्रदाने दर्पणस्याऽथतथा वै चामरस्यच॥८॥
प्रदाने च वितानस्यतथाधारागृहस्य च। दीपदाने किं फलंस्यात्पूजायांकिंफलंभवेत्॥९॥
कानि कानि च पुण्यानि कथ्यतां शिवपूजने। इतिहासपुराणानि वेदाध्ययनमेवच॥१०॥
शिवस्याग्रे प्रकुर्वन्तिकारयन्त्यथवानराः। किं फलं च नृणांतेषां कथ्यतांविस्तरेणहि।
शिवाख्यानपरो लोके त्वत्तो नान्योऽस्ति वै मुने!॥११॥

ऋषिगण कहते हैं—हे महाप्राज्ञ! देवदेव शूलपाणि के ध्यान तथा अर्चनप्रणाली के साथ उनकी महिमा को व्यक्त करें। उनके अंगमार्जन, रङ्गादि योग से उनका उपलेपन करने, उनको दर्पण-चामर-चन्द्रातप-धारागृह-दीपदान से तथा उनकी अर्चना से क्या पुण्य होता है? यह सब आप कहिये। शिवदेव के समक्ष इतिहास, पुराण अथवा वेदपाठ करने से अथवा कराने से मनुष्यों को क्या फल मिलता है? यह भी आप विस्तार से कहिये।।६-११।।

इति श्रुत्वा वचस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम्। उवाच व्यासशिष्योऽसौ शिवमाहात्म्यमुत्तमम्॥१२॥

लोमश उवाच

अष्टादशपुराणेषुगीयते वै परः शिवः। तस्माच्छिवस्यमाहात्म्यंवक्तुंकोऽपि न पार्यते॥१३॥
शिवेति व्यक्षरंनामव्याहरिष्यन्तियेजनाः। तेषांस्वर्गश्चमोक्षश्च भविष्यतिनचान्यथा॥१४॥
उदारो हि महादेवो देवानां पतिरीश्वरः। येन सर्वं प्रदत्तं हि तस्मात्सर्व इतिस्मृतः॥१५॥

हे मुने! इस जगत् में आपसे उत्तम शिवध्यान तत्पर अन्य कोई भी नहीं है। भावितात्मा मुनिगण का यह सब वाक्य सुनकर व्यासशिष्य लोमश उत्तम शिव महिमा का कीर्त्तन करने लगे। लोमश कहते हैं—अठारहों पुराणों में शिव को ही परमपुरुष कहा गया है। अतः सम्पूर्ण शिवमहिमा कह सकने की शक्ति किसी में भी नहीं है। जो कोई भी इन दो अक्षर के 'शिव' नाम कीर्त्तन को करते हैं, उनको स्वर्ग तथा मोक्ष निश्चित रूप से मिलता है। उदारचेता महादेव देवताओं के अधिपति हैं। इस जगत् को सर्ववस्तु प्रदाता वे ही हैं। इसी कारण उनको 'सर्व' कहा गया है।।१२-१५।।

ते धन्यास्ते महात्मानो ये भजन्ति सदाशिवम्॥१६॥
विनासदाशिवं यो हि संसारंतर्तुमिच्छति। स मूढो हि महापापः शिवद्वेषी न संशयः॥१७॥
भक्षितं हि गरं येन दक्षयज्ञो विनाशितः। कालस्य दहनं येन कृतं राज्ञः प्रमोचनम्॥१८॥

जो सर्वदा शिवसेवा में रत रहते हैं, वे ही धन्य तथा महिमान्वित हैं। सदाशिवदेव की सेवा के बिना जो मनुष्य संसार से उद्धार की चेष्टा करता है, वह वास्तव में मूढ़, महापापी तथा शिवद्वेषी हैं। जिन्होंने विषभक्षण किया था, दक्षयज्ञ ध्वंस किया था, जिनके प्रभाव से काल दग्ध हो गया था तथा जिन्होंने श्वेतराजा को छुटकारा प्रदान कराया था, उनकी सेवा करना सभी का कर्त्तव्य है।।१७-१८।।

ऋषय ऊचुः

यथागरं भक्षितं च यथायज्ञो विनाशितः। दक्षस्य च तथा ब्रूहि परं कौतूहलं हि नः॥१९॥

ऋषिगण कहते हैं—महादेव ने जिस प्रकार से विषभक्षण किया था तथा दक्षयज्ञ ध्वंस किया था, वह हमसे कहिये। हम सबको वह सुनने को अधिक कुतूहल हो रहा है।।१९।।

सूत उवाच

दाक्षायणी पुरादत्ता शङ्कराय महात्मने। वचनाद्ब्रह्मणो विप्रा दक्षेण परमेष्ठिना॥२०॥
एकदाहि स दक्षो वै नैमिषारण्यमागतः। यदृच्छावशमापन्न ऋषिभिः परिपूजितः॥२१॥
स्तुतिभिःप्रणिपातैश्चतथासर्वैः सुरासुरैः। तत्र स्थितोमहादेवोनाभ्युत्थानाभिवादने।
चकाराऽस्य ततः क्रुद्धो दक्षो वचनमब्रवीत्॥२२॥
सर्वत्र सर्वे हि सुरासुरा भृशं नमन्ति मां विप्रवराः समुत्सुकाः।
कथं ह्यसौ दुर्जनवन्महात्मा भूतादिभिः प्रेतपिशाचयुक्तः।
श्मशानवासी निरपत्रपो ह्ययं कथं प्रणामं न करोति मेऽधुना॥२३॥
पाखण्डिनो दुर्जनाः पापशीला विप्रं दृष्ट्वा चोद्धता उन्मदाश्च।
वध्यास्त्याज्याः सद्भिरेवंविधा हि तस्मादेनं शापितुं चोद्यतोऽस्मि॥२४॥

सूतजी कहते हैं—हे विप्रगण! प्राक्काल में परमेष्टि ब्रह्मा के कथनानुसार दक्ष प्रजापति ने अपनी कन्या दाक्षायणी को महात्मा शंकर को प्रदान किया था। तदनन्तर एक बार दक्ष प्रजापति अपनी इच्छा से नैमिषारण्य में आये। तब ऋषिगण एवं अन्य असुर एवं सुरगण ने स्तुति तथा प्रणाम द्वारा उनकी अर्चना किया। वहां पर महादेव अवस्थान करते थे। लेकिन उन्होंने दक्ष प्रजापति को देखकर न तो उठे और न उनका अभिवादन ही किया। तब दक्ष ने क्रुद्ध होकर कहा—सुर-असुर तथा प्रधान-प्रधान विप्रगण, सभी सर्वत्र व्यग्रता से पुनः-पुनः मुझे प्रणाम करते रहते हैं, लेकिन इस भूत-प्रेत-पिशाच से घिरे श्मशानवासी निर्लज्ज शिव ने क्यों इस क्षण मुझे प्रणाम नहीं किया? इसने शिव महात्मा होकर भी मेरे प्रति दुर्जनवत् व्यवहार क्यों किया? जो पाखण्डी, दुर्जन, पापी, गर्वित तथा ब्राह्मण के प्रति असत् व्यवहार करने वाले हैं, उनका वध करना अथवा उनको त्याग देना ही साधुगण का कर्तव्य है। अतः मैं इस शिव को शाप देकर सबके लिए त्याज्य घोषित करने हेतु उद्यत होता हूं।।२०-२४।।

इत्येवमुक्त्वा स महातपास्तदा रुषान्वितो रुद्रमिदं बभाषे॥२५॥
शृण्वन्त्वमी विप्रतमा! इदानीं वचो हि मे कर्तुमिहार्हथैतत्।
रुद्रो ह्ययं यज्ञबाह्यो वृतो मे वर्णातीतो वर्णपरो यतश्च॥२६॥
नन्दीनिशम्यतद्वाक्यं शैलादोहिरुषान्वितः। अब्रवीत्त्वरितोदक्षं शापदंतंमहाप्रभम्॥२७॥

इस प्रकार तब महातपा दक्ष क्रुद्ध हो गये। यह सब कहने के पश्चात् वे रुद्र को दिखलाकर ब्राह्मणों से कहने लगे—"हे श्रेष्ठ ब्राह्मणगण! आप सब अब मेरी बातों को सुनें। साथ ही जो मैं कहता हूं, वह करने के लिए प्रस्तुत रहिये। इस रुद्र का मैंने जामातारूपेण वरण किया था। लेकिन यह वर्णातीत तथा वर्णतत्पर है, इसलिए उसे इसी क्षण से यज्ञ से बहिर्भूत करता हूं।", तभी शैलाद नन्दी यह बात सुनकर तत्काल क्रोधित होकर उन शापित महाप्राज्ञ दक्ष प्रजापति से कहने लगे।।२५-२७।।

नन्द्युवाच

यज्ञबाह्यो हि मे स्वामीमहेशोऽयंकृतः कथम्। यस्य स्मरणमात्रेणयज्ञाश्चसफलाह्यमी।
यज्ञो दानं तपश्चैव तीर्थानि विविधानि च॥२८॥
यस्य नाम्ना पवित्राणि सोऽयं शप्तोऽधुना कथम्॥२९॥
वृथा ते ब्रह्मचापल्याच्छप्तोऽयंदक्ष दुर्मते। येनेदं पालितं विश्वं सर्वेण च महात्मना।
शप्तोऽयं स कथं पाप! रुद्रोऽयं ब्राह्मणाधम!॥३०॥

नन्दी कहते हैं—मेरे प्रभु महादेव को किस कारण से तुमने यज्ञ से बहिर्भूत किया? जिनके स्मरण मात्र से सभी यज्ञ सफल होते हैं, केवल यज्ञ ही नहीं, दान-तपस्या तथा विविध तीर्थ जिनके नाम को लेने मात्र से पवित्र हो जाते हैं, ये वही महेश्वर हैं। इनको तुमने अभिशप्त कैसे कर दिया?

हे दुर्मति दक्ष! तुमने व्यर्थ ब्रह्म चापल्य के कारण इनको अभिशाप दिया है। हे ब्राह्मणाधम! ये महात्मा शिव ही इस विश्व का पालन करते हैं। अन्त में ये ही रुद्रमूर्त्ति धारण करते हैं। तुमने इनको अभिशाप कैसे दे दिया?॥२८-३०॥

एवं निर्भर्त्सितस्तेन नन्दिना हि प्रजापतिः। नन्दिनञ्चशशापाथ दक्षोरोषसमन्वितः॥३१॥
यूयं सर्वे रुद्रवरा वेदबाह्याश्च वै भृशम्। शप्ता हि वेदमार्गैश्च तथात्यक्ता महर्षिभिः॥३२॥
पाखण्डवादसंयुक्ताः शिष्टाचारबहिष्कृताः। कपालिनःपानरतास्तथा कालमुखाह्यमी॥३३॥

इस प्रकार नन्दी से निर्भत्सित होकर दक्ष ने रोष में भरकर नन्दी को भी अभिशाप प्रदान किया। दक्ष ने कहा—"तुम सभी तथा ये काल प्रमुख रुद्रगण भी वेद से बहिर्भूत हो गये। तुम सब वेद विधि से अभिशप्त तथा महर्षिगण द्वारा परित्यक्त होकर पाखण्डवाद में निरत, शिष्टाचार से बहिर्भूत, कपालधारी तथा मद्यपानशील होकर रहोगे॥३१-३३॥

इतिशप्तास्तदातेन दक्षेण शिवकिंकराः। तदा प्रकुपितो नन्दी दक्षं शप्तुं प्रचक्रमे॥३४॥
शप्ता वयं त्वया विप्र साधवः शिवकिंकराः। वृथैव ब्रह्मचापल्यादहं शापं ददामिते॥३५॥
वेदवादरता यूयं नान्यदस्तीति वादिनः। कामात्मनः स्वर्गपरा लोभमोहसमन्विताः॥३६॥
वैदिकञ्च पुरस्कृत्य ब्राह्मणाः शूद्रयाजकाः। दरिद्रिणो भविष्यन्ति प्रतिग्रहरताः सदा॥३७॥
दक्ष! केचिद् भविष्यन्ति ब्राह्मणाः ब्रह्मराक्षसाः॥३८॥

दक्ष के इस प्रकार से शाप देने पर तथा शिव के अनुचरों को अभिशप्त किये जाने पर नन्दी ने भी अत्यन्त क्रोधित होकर दक्ष को अभिशाप देना चाहा। उन्होंने कहा—"हे विप्र! हम साधु तथा शीलवान् शिवकिंकर हैं। तुमने वृथा ब्रह्म चापल्यवशात् हम लोगों को अभिशप्त किया है। अतः मैं भी तुमको अभिशाप देता हूं। तुम तथा तुम्हारे सहयोगी ब्राह्मणगण वेदवाद से निरत हो जायेंगे। ये सभी यह घोषित करेंगे कि याग आदि से साध्य स्वर्गफल के अतिरिक्त अन्य कोई सार रूप ईश्वरतत्व नहीं है तथा ये लोग कामात्मा, स्वर्गतत्पर तथा लोभ-मोह से युक्त रहेंगे। ये वैदिक धर्म को दोषारोपित करके शूद्रयाजी हो जायेंगे तथा सतत् दरिद्र तथा दान मांगते फिरेंगे। हे दक्ष! इनमें से कुछ ब्राह्मण तो ब्रह्मराक्षस भी हो जायेंगे॥३४-३८॥

लोमश उवाच

विप्रास्ते शापितास्तेन नन्दिना कोपिना भृशम्। अथाकर्ण्येश्वरो वाक्यं नन्दिनः प्रहसन्निव।
उवाच वाक्यं मधुरं बोधयुक्तं सदाशिवः॥३९॥

लोमश कहते हैं—नन्दी ने कुपित होकर ब्राह्मणों को यह अभिशाप प्रदान किया। तत्पश्चात् सदाशिव प्रभु ईश्वर ने नन्दी का वाक्य सुनकर हंसते हुये यह ज्ञानमय मधुर वाक्य कहा।।३९।।

महादेव उवाच

कोपं नार्हसि वै कर्त्तुं ब्राह्मणान्प्रति वै सदा। ब्राह्मणाः गुरवोह्येते वेदवादरताः सदा॥४०॥
वेदोमन्त्रमयः साक्षात्तथासूक्तमयो भृशम्। सूक्ते प्रतिष्ठितोह्यात्मासर्वेषामपिदेहिनाम्॥४१॥
तस्मान्नात्मविदो निन्द्या आत्मैवाहं नचेतरः।
कोऽयं कस्तं क्व चाहं वै कस्माच्छप्ता हि वै द्विजाः॥४२॥
प्रपञ्चरचनां हित्वा बुद्धो भव महामते!। तत्त्वज्ञानेन निर्वर्त्यस्वस्थः क्रोधादि वर्जितः॥४३॥

महादेव कहते हैं—हे नन्दी! तुम कभी भी ब्राह्मणों के प्रति क्रोध न करो। ये वेदवादरत ब्राह्मणगण सदा गुरुरूप होते हैं। अतः आत्मविद् व्यक्ति कदापि निन्दनीय नहीं होते। यह आत्मा मैं ही हूं। मैं आत्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हूं। अतः यह कौन है, तुम कौन हो? तथा मैं कौन हूं? यह विचार करो। अतः द्विजगण को अभिशप्त क्यों किया? हे महामति! समस्त प्रपञ्च रचना का त्याग करके शुद्ध बुद्ध होकर अवस्थान करो। तत्वज्ञान के द्वारा सब कुछ को निरस्त करके स्वस्थ (अपने आपमें स्थित) हो जाओ। क्रोधादि से मुक्त हो जाओ।।४०-४३।।

एवं प्रबोधितस्तेन शम्भुना परमेष्ठिना। विवेकपरमो भूत्वा शैलादो हि महातपाः।
शिवेन सह संगम्य परमानन्दसम्प्लुतः॥४४॥
दक्षोऽपिहि रुषाविष्टऋषिभिः परिवारितः। ययौस्थानंस्वकं तत्र प्रविवेशरुषान्वितः॥४५॥
श्रद्धां विहाय परमां शिवपूजकानां निन्दापरः स हि बभूव नराधमश्च।
सर्वैं महर्षिभिरुपेत्य स तत्र शर्वम् देवं निनिन्द न बभूव कदापि शान्तः॥४६॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे पुराणप्रस्तावदक्षवृत्तान्तवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥१॥

परमेष्ठि भगवान् शम्भु द्वारा इस प्रकार से प्रबोधित किये जाने पर शिलाद (नन्दी) ने एकमात्र विवेक का आश्रय लिया तथा शिवसायुज्य लाभ द्वारा परमानन्द से सराबोर हो गये। उधर दक्ष ने क्रोध में भरकर ऋषिगण के साथ स्वस्थान के लिए प्रस्थान किया। तभी से दक्ष प्रजापति शिवपूजकगण के प्रति श्रद्धाहीन हो गये। वे सर्वदा शिवपूजकों की निन्दा करते रहते। यहां तक कि वे ऋषिगण के साथ सम्मिलित होकर देवदेव शर्व शंकर की भी निन्दा करते थे। वे कभी भी शिवनिन्दारहित नहीं रहते थे।।४४-४६।।

॥प्रथम अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

द्वितीयोऽध्यायः

दक्षयज्ञ वर्णन

लोमश उवाच

एकदा तु तदा तेनयज्ञःप्रारम्भितो महान्। तत्राऽऽहूतास्तदा सर्वे दीक्षितेनतपस्विनाः॥१॥
ऋषयोविविधास्तत्रवशिष्ठाद्याःसमागताः। अगस्त्यःकश्यपोऽत्रिश्चवामदेवस्तथाभृगुः॥२॥
दधीचो भगवान्व्यासो भरद्वाजोऽथ गौतमः। एते चान्ये च बहवः समाजग्मुर्महर्षयः॥३॥
तथा सर्वे सुरगणालोकपालास्तथाऽपरे। विद्याधराश्चगन्धर्वाः किन्नराप्सरसागणाः॥४॥
सप्तलोकात्समानीतो ब्रह्मालोकपितामहः। वैकुण्ठाच्च तथाविष्णुः समानीतोमखम्प्रति॥५॥
देवेन्द्रो हि समानीतइन्द्राण्यासह सुप्रभः।
तथा चन्द्रो हि रोहिण्यावरुणः प्रिययासह॥६॥
कुबेरः पुष्पकारूढ़ो मृगारूढ़ोऽथ मारुतः। बस्तारूढ़ः पावकश्च प्रेतारूढ़ोऽथ निर्ऋतिः॥७॥
एते सर्वे समायातायज्ञवाटे द्विजन्मनः। ते सर्वे सत्कृतास्तेन दक्षेण च दुरात्मना॥८॥
भवनानिमहार्हाणि सुप्रभाणिमहान्तिच। त्वष्ट्राकृतानिदिव्यानिकौशल्येन महात्मना॥९॥
तेषु सर्वेषु धिष्ण्येषु यथाजोषं समास्थिताः॥१०॥

लोमश कहते हैं—दक्ष प्रजापति ने एक बार महायज्ञ प्रारम्भ किया। उन्होंने यज्ञ में दीक्षित होकर उस समय तपस्वी वेश में स्थित हो विविध ऋषिगण को आमन्त्रित किया। उन्होंने देवगण को भी आमन्त्रित किया था। उनका निमन्त्रण पाकर अगस्त्य, कश्यप, अत्रि, वामदेव, भृगु, दधीचि, व्यास, भरद्वाज तथा गौतम आदि अनेक महर्षिगण आये। इसके अतिरिक्त लोकपालगण, सभी देवगण, विद्याधरगण, गन्धर्वगण, किन्नर तथा अप्सरागण, सत्यलोक से लोकपितामह ब्रह्मा, वैकुण्ठ से विष्णु, इन्द्राणी के साथ इन्द्र, रोहिणी के साथ चन्द्रमा, अपनी स्त्री के साथ वरुण, पुष्पक विमान पर आरुढ़ कुबेर, मृगारूढ़ मरुत्, बकरे पर आरुढ़ अग्नि, प्रेतारूढ़ निर्ऋति प्रभृति सभी दक्षयज्ञ में आये। दक्ष ने भी उन सबको यथायोग्य सम्मान प्रदान किया। यज्ञ के उपलक्ष्य में विश्वकर्मा ने स्वयं यज्ञालय में महार्ह तथा महान् उज्वलता युक्त भवन निर्माण किया। इन महात्मा विश्वकर्मा के निर्माण कौशल के कारण वहां के सभी गृह स्वर्गीय शोभा युक्त थे। उन सब दिव्य गृहों में निमन्त्रित देवता अपने-अपने पद तथा गौरव के अनुरूप निवास करने लगे।।१-१०।।

वर्त्तमाने महायज्ञे तीर्थे कनखले तथा। ऋत्विजश्च कृतास्तेनभृग्वाद्याश्चतपोधनाः॥११॥
दीक्षायुक्तस्तदा दक्षः कृतकौतुकमङ्गलः। भार्ययासहितोविप्रैःकृतस्वस्त्ययनोभृशम्॥१२॥
रेजे महत्त्वेन तदा सुहृद्भिः परितः सदा। एतस्मिन्नन्तरे तत्र दधीचिर्वाक्यमब्रवीत्॥१३॥

यह महायज्ञ कनखल तीर्थ में आरम्भ किया गया। भृगु प्रभृति तपोधनगण इस यज्ञ में ऋत्विक् कार्य के व्रती थे। यज्ञ के दिन कृतकौतुक-मंगल प्रजापति दक्ष अपनी पत्नी के साथ दीक्षित होकर सुहृद्गण को उनकी अपनी

महिमा के साथ विराजमान कराने लगे। विप्रगण वहां के अमंगल विनाशार्थ स्वस्तिवाचन में प्रवृत्त हो गये। तभी यज्ञस्थल में खड़े होकर महामुनि दधीचि कहने लगे।।११-१३।।

दधीचिरुवाच

एते सुरेशा ऋषयो महत्तराः सलोकपालाश्च समागतास्तव।
तथाऽपि यज्ञस्तु न शोभते भृशं पिनाकिना तेन महात्मना विना॥१४॥
येनैव सर्वाण्यपि मङ्गलानि जातानि शंसन्ति महाविपश्चितः।
सोऽसौ न दृष्टोऽत्र पुमान्पुराणो वृषध्वजो नीलकण्ठः कपर्दी॥१५॥
अमङ्गलान्येव च मङ्गलानि भवन्ति येनाधिकृतानि दक्ष!।
त्रियम्बकेनाऽथ सुमङ्गलानि भवन्ति सद्यो ह्यपमङ्गलानि॥१६॥
तस्मात्त्वयैव कर्तव्यमाह्वानं परमेष्ठिना। त्वरितंचैवशक्रेण विष्णुना प्रभविष्णुना॥१७॥

ऋषि दधीचि कहते हैं—हे दक्ष! ये सभी महामान्य ऋषि तथा लोकपाल गण, देवता आदि तुम्हारे भवन में आये हैं, तथापि महात्मा पिनाकपाणि शंकर के बिना यह यज्ञ शोभायमान नहीं हो रहा है। मुख्य-मुख्य विद्वानों का कथन है कि भगवान् पिनाकपाणि द्वारा ही समस्त मंगल संघठित होता है तथापि मैं उन वृषध्वज, नीलकण्ठ, पुराणपुरुष को यहां नहीं देख पा रहा हूं। हे दक्ष! जिनकी स्थिति होने से अमंगल भी मंगल में परिवर्तित हो जाता है तथा जिनकी स्थिति न होने के कारण समस्त मंगल भी अमंगलरूप हो जाते हैं, तुम शीघ्र ब्रह्मा, प्रभविष्णु विष्णु तथा जिष्णु द्वारा उनको निमन्त्रित करो।।१४-१७।।

सवैरिव हि गन्तव्यं यत्र देवो महेश्वरः॥१८॥
दाक्षायण्यासमेतं तमानयध्वंत्वरान्विताः। तेनसर्वंपवित्रंस्याच्छम्भुनायोगिनाभृशम्॥१९॥
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्यासमग्रंसुकृतंभवेत्। तस्मात्सर्वप्रयत्नेनसमानेयो वृषध्वजः॥२०॥

अधिक क्या कहा जाये, जहां महेश्वरदेव अवस्थित हैं, वहां देव, ऋषि सभी जायें। तुम भी शीघ्र दाक्षायणी (पत्नी) के साथ जाकर देवदेव को यहां ले आओ। उन परमयोगी शंभु के आगमन से सभी पवित्र होंगे। जिनके स्मरण तथा नामोच्चार से समग्र सुकृति का संचय होता है, सभी प्रयत्न से उन वृषभध्वज को ले आओ।।१८-२०।।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रहसन्नाह दुष्टधीः। मूलंविष्णुर्हि देवानां यत्रधर्मःसनातनः॥२१॥
यस्मिन्वेदाश्चयज्ञाश्चकर्माणिविविधानिच। प्रतिष्ठितानिसर्वाणिसोऽसौविष्णरिहागतः॥२२॥
सत्यलोकात्समायातोब्रह्मालोकपितामहः। वेदैश्चोपनिषद्भिश्चआगमैर्विविधैःसह॥२३॥
तथा सुरगणैः साकमागतःसुरराट्स्वयम्। तथा यूयं समायाता ऋषयोवीतकल्मषाः॥२४॥
येयेयज्ञोचिताः शान्तास्तेतेसर्वे समागताः। वेदवेदार्थतत्त्वज्ञाःसर्वेयूयं दृढ़व्रताः॥२५॥
अत्रैव च किमस्माकंरुद्रेणाऽपिप्रयोजनम्। कन्यादत्ता मयाविप्रा ब्रह्मणानोदितेनहि॥२६॥
अकुलीनो ह्यसौ विप्रानष्टोनष्टप्रियःसदा। भूतप्रेतपिशाचानां पतिरेको दुरत्ययः॥२७॥

आत्मसम्भावितो मूढः स्तब्धो मौनी समत्सरः।
कर्मण्यस्मिन्नयोग्योऽसौ नानीतो हि मयाऽधुना॥२८॥

दुष्टबुद्धि प्रजापति दक्ष दधीचि का यह वाक्य सुनकर हंसते-हंसते कहने लगा—"देवताओं में विष्णु ही वरेण्य हैं। उनमें ही सनातन धर्म प्रतिष्ठित है। जिनमें समस्त वेद, समस्त यज्ञ तथा सर्वविध कर्म प्रतिष्ठित हैं, वे विष्णु स्वयं यहां आये हैं। लोकपितामह ब्रह्मा, समस्त वेद, उपनिषद् तथा विविध आगम के साथ सत्यलोक से यहां आये हैं। सुरराज इन्द्र स्वयं सुरगण के साथ यहां आये हैं। साथ ही आपके समान निष्पाप ऋषियों का भी यहां आगमन हुआ है। आप सब वेदवाद तथा वेदार्थ के तत्ववेत्ता हैं। जब आप सब यहां आये हैं, तब रुद्र का मुझे क्या प्रयोजन? हे विप्रगण! मैंने ब्रह्मा के कथन के अनुसार ही रुद्र को कन्यादान किया था, तथापि मैं यह अच्छी तरह जानता हूं कि शंकर कुलीन नहीं हैं। वे नष्ट, नष्टप्रिय हैं। भूत-प्रेत-पिशाचों के स्वामी हैं। वे अति दुर्जय, आत्माभिमानी, मूढ़, स्तब्ध, मौनी तथा मत्सर पूर्ण होने के कारण इस कर्म के योग्य नहीं हैं। इसी कारण मैंने उनको निमन्त्रित ही नहीं किया।।२१-२८।।

तस्मात्त्वया न वक्तव्यं पुनरेवंवचोद्विज!। सर्वैर्भवद्भिः कर्तव्यो यज्ञोमे सफलोमहान्॥२९॥
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य दधीचिर्वाक्यमब्रवीत्॥३०॥

हे द्विज! मैं आपको भी निषेध करता हूं। आगे आप और ऐसा वाक्य न कहें। आप सब मिलकर मेरे इस यज्ञ को सम्पन्न करायें। दक्ष का यह वचन सुनकर दधीचि उनसे कहने लगे।।२९-३०।।

दधीचिरुवाच

सर्वेषामृषिवर्याणांसुराणांभावितात्मनाम्। अनयोऽयंमहाञ्जातोविनातेनमहात्मना॥३१॥
विनाशोऽपिमहान्सद्योह्यत्रत्यानांभविष्यति। एवमुक्त्वादधीचोऽसावेकएवविनिर्गतः॥३२॥
यज्ञवाटाच्च दक्षस्यत्वरितः स्वाश्रमंययौ। मुनौ विनिर्गते दक्षः प्रहसन्निदमब्रवीत्॥३३॥
गतः शिवप्रियोवीरोदधीचिर्नामनामतः। आविष्टचित्तामन्दाश्च मिथ्यावादरताः खलाः॥३४॥
वेदबाह्या दुराचारास्त्याज्यास्तेह्यत्रकर्मणि। वेदवादरता यूयं सर्वेविष्णुपुरोगमाः॥३५॥
यज्ञं मे सफलं विप्राः कुर्वन्तु ह्यचिरादिव। तदा ते देवयजनं चक्रुःसर्वे महर्षयः॥३६॥

दधीचि कहते हैं—यज्ञक्षेत्र में महात्मा महेश्वर अनुपस्थित हैं। यह समस्त भावितात्मा सुरगण तथा ऋषिप्रवरगण के लिये दुर्भाग्यपूर्ण है। मैं दिव्य दृष्टि से देख रहा हूं कि यहां महाविनाश होने वाला है।

यह कहकर दधीचि मुनि एकाकी ही दक्ष की उस यज्ञ सभा से त्वरित वेग से बाहर हो गये। वहां से वे अपने आश्रम चले आये। मुनि के चले जाने पर दक्ष हंसता हुआ कहने लगा—"मुझे ज्ञात है कि दधीचि मुनि शिवप्रिय हैं। तभी वे वीर की तरह यज्ञस्थल से चले गये। जो मन्दबुद्धि हैं, मिथ्यावादरत हैं, खलप्रकृति, दुराचारी हैं, वे वेदवाह्य हैं। तथा ऐसा कर्म सदा निन्दनीय है। साथ ही वर्जित कर्म है, यह निश्चित है। जो भी हो, आप लोग विष्णु के साथ वेदवादनिष्ठ हैं। आप देवता तथा ऋषिगण यहां हैं। यही मेरे लिये यथेष्ट है। आपलोगों की उपस्थिति में विप्रगण यज्ञ सफल करें। तब सभी महर्षिगण देवयजन करने लगे।।३१-३६।।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र पर्वतेगन्धमादने। धारागृहे विमानेन सखीभिःपरिवारिता॥३७॥

दाक्षायणीमहादेवीचकारविविधास्तदा। क्रीडाविमानमध्यस्थाकन्दुकाद्याः सहस्त्रशः॥३८॥
क्रीडासक्ता तदा देवीददर्शाऽथमहासती। यज्ञं प्रयान्तं सोमंच रोहिण्यासहितंप्रभुम्॥३९॥
क्वगमिष्यतिचन्द्रोऽयंविजये पृच्छसत्त्वरम्। तयोक्ताविजयादेवीतंपप्रच्छयथोचितम्॥४०॥

इसी समय गन्धमादन पर्वत के किसी धारागृह के समीप (चट्टान के समीप) सखियों से घिरी विमानचारिणी महादेवी दक्षकन्या सती विविध क्रीड़ा कर रही थीं। दक्षकन्या विमान में ही रहते कन्दुक प्रभृति सैकड़ों-हजारों क्रीड़ा में लगी थीं। तभी उन क्रीड़ासमासक्त देवी महासती ने देखा कि रोहिणी के साथ चन्द्रमा यज्ञार्थ निमन्त्रित होकर जा रहे हैं। यह देखकर महादेवी सती ने अपनी सखी विजया से कहा– हे विजये! पूछो! चन्द्रमा कहां जा रहे हैं। देवी की आज्ञानुसार विजया ने चन्द्रमा से पूछा।।३७-४०।।

कथितं तेनतत्सर्वंदक्षस्यैवमखादिकम्। तच्छुत्वा त्वरिता देवीविजया जातसम्भ्रमा।
कथयामास तत्सर्वं यदुक्तं शशिना भृशम्॥४१॥
विमृश्य कारणं देवी किमाह्वानं करोति न।
दक्षः पिता मे माता च विस्मृता मां कुतोऽधुना॥४२॥
पृच्छामि शङ्करं चाऽद्य कारणं कृतनिश्चया। स्थापयित्वा सखीस्तत्र आगता शङ्करम्प्रति॥४३॥

तब विजया के पूछने पर चन्द्र ने दक्ष यागादि का समस्त वृत्तान्त विजया से कहा। विजया ने वह सुनकर ससंभ्रम शशि द्वारा कथित सभी कारण देवी से कहा। तब देवी सती वह कारण मन ही मन विचार करने लगीं कि दक्ष ने उनको क्यों नहीं बुलाया। उन्होंने विचार किया, "दक्ष मेरे पिता हैं। उनकी पत्नी मेरी माता हैं। इन दोनों ने मेरे माता-पिता होकर भी हमें निमन्त्रण क्यों नहीं भेजा? तब मैं अभी पति शंकर जी के पास जाकर इसका कारण पूछती हूं।" यह विचार करके सती ने वहीं अपनी सखियों को रोक दिया तथा स्वयं शंकर जी के यहां आ गयीं।।४१-४३।।

ददर्श तं सभामध्येत्रिलोचनमवस्थितम्। गणैः परिवृतं सर्वैश्चण्डमुण्डादिभिस्तदा॥४४॥
गणोभृङ्गिस्तथानन्दीशैलादोहिमहातपाः। महाकालो महाचण्डोमहामुण्डोमहाशिराः॥४५॥
धूम्राक्षो धूम्रकेतुश्च धूम्रपादस्तथैवच। एतेचान्ये च बहवो गणा रुद्रानुवर्त्तिनः॥४६॥
केचिद् भयानका रौद्राः कबन्धाश्च तथा परे।
विलोचनाश्च केचिच्च वक्षोहीनास्तथा परे॥४७॥
एवं भूताश्च शतशः सर्वे ते कृत्तिवाससः। जटाकलापसम्भूताः सर्वे रुद्राक्षभूषणाः॥४८॥
जितेन्द्रिया वीतरागाः सर्वे विषयवैरिणः। एभिः सर्वैः परिवृतः शङ्करो लोकशङ्करः।
दृष्टस्तया उपाविष्ट आसने परमाद्भुते॥४९॥

वहां आकर भगवती देखती हैं कि सभामध्य में त्रिलोचन देव आसीन हैं। उनके चतुर्दिक् चण्ड-मुण्ड आदि प्रमथगण विराजित हैं। बाण, भृंगी, नन्दी, शैलाद, महाकाल, महाचण्ड, महामुण्ड, महाशिरा, धूम्राक्ष, धूमकेतु तथा धूम्रपाद आदि समस्त रुद्रानुचर तथा अन्य अनेक रुद्रानुचर, जो रौद्र प्रकृति हैं, वहां बैठे हैं। उनमें से कुछ

भयानक, रौद्ररूप तथा कबन्ध मात्र थे। किसी को नेत्र ही नहीं थे, कोई-कोई तो वक्ष रहित ही था। ऐसे सैकड़ों-सैकड़ों गण वहां स्थित थे। वे सभी कृत्तिवास थे। सभी जटाजूट युक्त, सभी रुद्राक्ष से भूषित, जितेन्द्रिय, वीतराग तथा विषयों से विमुख थे। लोकों को शुभत्व प्रदान करने वाले भगवान् शिव इन सब परिषदवृन्द से घिरे हुये परमासनासीन थे।।४४-४९।।

आक्षिप्तचित्ता सहसा जगाम शिवसन्निधिम्।
शिवेन स्थापिता स्वाङ्के प्रीतियुक्तेन वल्लभा॥५०॥
प्रेम्णोदिता वचोभिः सा बहुमानपुरःसरम्। किमागमनकार्यं मे वद शीघ्रं सुमध्यमे॥५१॥
एवमुक्ता तदा तेन उवाचासितलोचना॥५२॥

देवी सती ने भगवान् को इस अवस्था में परमासनासीन देखा। वे सहसा भगवान् हर के चित्त का आकर्षण करती उनके समीप आ गयीं। प्रभु शंकर ने उनको प्रेमपूर्वक अपनी गोद में बैठा कर उनका नाना प्रकार से मान-सम्मान करते हुये प्रेमगर्भित वाणी में कहा—'हे सुमध्यमे! तुम्हारे आगमन का कारण क्या है? वह मुझसे शीघ्रता से कहो।' तब असित नेत्रों वाली दाक्षायणी सती ने प्रत्युत्तर में कहा।।५०-५२।।

सत्युवाच

पितुर्मम महायज्ञे कस्मात्तव न रोचते। गमनं देवदेवेश! तत्सर्वं कथय प्रभो॥५३॥
सुहृदामेष वै धर्मः सुहृद्भिः सह संगतिम्। कुर्वन्ति यन्महादेवसुहृदां प्रीतिवर्धिनीम्॥५४॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन अनाहूतोऽपि गच्छ भोः। यज्ञवाटं पितुर्मेऽद्य वचनान्मे सदाशिव॥५५॥

सती कहती हैं—हे देव! मेरे पिता द्वारा अनुष्ठित महायज्ञ में आप जाने का मन क्यों नहीं बना रहे हैं? हे प्रभु! मुझसे उसका कारण व्यक्त करें। देखिये! सुहृद के प्रति सुहृद का जो धर्म है, तदनुसार इस प्रकार का सुखप्रीतिकारी सम्मिलन सतत् वांछित रहता है। हे सदाशिव! मेरी बात मानकर आप अभी मेरे पिता के यज्ञ में चलिये।।५३-५५।।

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा बभाषे सूनृतं वचः। त्वया भद्रे न गन्तव्यं दक्षस्य यजनं प्रति॥५६॥
तस्य ते मानिनः सर्वे ससुरासुरकिंनराः। ते सर्वे यजनं प्राप्ताः पितुस्तव न संशयः॥५७॥
अनाहूताश्च ये सुभ्रु गच्छन्ति परमन्दिरम्। अपमानं प्राप्नुवन्ति मरणादधिकं ततः॥५८॥
परेषां मन्दिरं प्राप्त इन्द्रोऽपिलघुतां व्रजेत्। तस्मात्त्वया न गन्तव्यं दक्षस्य यजनंशुभे॥५९॥
एवमुक्ता सती तेन महेशेन महात्मना। उवाच रोषसंयुक्तं वाक्यं वाक्यविदांवरा॥६०॥

महादेव ने सतीदेवी का यह सुनृत वचन सुनकर कहा—हे भद्रे! मैं तो नहीं जाऊंगा, साथ ही तुम्हारा भी वहां जाना उचित कर्त्तव्यरूप नहीं है। सुर-असुर-किन्नरादि में दक्ष की दृष्टि में जो सम्भ्रान्त व्यक्ति हैं, वे वहां गये हैं। तुम्हारे पिता की ओर से उनको सम्मान तथा अभ्यर्थना भी मिली है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे सुभ्रु! यहां तो बात यह है कि यदि हम वहां अनिमन्त्रित बिना बुलाये जाते हैं, तब अवमानना ही होगी। यह अवमानना मरणान्तक कष्ट से भी अधिक होगी। देखो! बिना बुलाये दूसरे के यहां जाना तो स्वर्ग के इन्द्र को भी लघुत्व प्रदान करके छोटा बना देगा। हे शुभे! तुमको दक्षयज्ञ में नहीं जाना चाहिये। महात्मा महेश्वर त्रिलोचन का यह कथन सुनकर वाग्विद् गण में श्रेष्ठ सती रोष पूर्वक कहने लगीं।।५६-६०।।

यज्ञो हि सत्यंलोकेत्वं स त्वं देववरेश्वर!। अनाहूतोऽसितेनाऽद्य पित्रामेदुष्टचारिणा।
तत्सर्वं ज्ञातुमिच्छामि तस्य भावं दुरात्मनः॥६१॥
तस्माच्चाऽद्यैव गच्छामियज्ञवाटंपितुर्म्मम। अनुज्ञां देहि मे नाथ देवदेव! जगत्पते!॥६२॥

सती कहती हैं— हे देवदेव! इस जगत् में आप ही सत्य यज्ञरूप हैं। तथापि मेरे पिता ने इस समय दुष्टाचरण का आश्रय लेकर आपको नहीं बुलाया। जो भी हो, मैं अपने दुर्वृत्त पिता के वास्तविक अभिप्राय को जानना चाहती हूं। हे नाथ! देवदेव! जगत्पति! मुझे आज्ञा दीजिये।।६१-६२।।

इत्युक्तोभगवान्रुद्रस्तया देव्याशिवःस्वयम्। विज्ञाताखिलदृग्द्रष्टा भगवान्भूतभावनः॥६३॥
स तामुवाच देवेशो महेशः सर्वसिद्धिदः। गच्छ देवि! त्वरायुक्तावचनान्ममसुव्रते॥६४॥

देवी सती के यह कहने पर अखिल तत्वज्ञ देवदेव सर्वसिद्धिप्रिय भगवान् भूतभावन रुद्र ने स्वयं सती से कहा—हे सुव्रते! तुम मेरे कथनानुसार शीघ्र यज्ञक्षेत्र में जाओ। यह नन्दी तुम्हारे वाहन बने। नाना प्रकार के प्रमथ वृन्द से घिरी तुम पितृगृह प्रस्थान कर दो।।६३-६४।।

एवं नन्दिनमारुह्य नानाविधगणान्विता। गणाः षष्टिसहस्त्राणिजग्मू रौद्राः शिवाज्ञया॥६५॥
तैर्गणैः संवृता देवी जगाम पितृमन्दिरम्। निरीक्ष्यतद्बलंसर्वंमहादेवोऽतिविस्मितः॥६६॥
भूषणानि महार्हाणि तेभ्यो देव्यै परन्तपः। प्रेषयामास चाव्यग्रो महादेवोऽनुपृष्ठतः॥६७॥
देव्या गतं वै स्वपितुर्गृहं तदा विमृश्य सर्वं भगवान् महेशः।
दाक्षायणी पित्रवमानिता सती न यास्यतीति स्वपुरं पुनर्जगौ॥६८॥

॥इति स्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे दक्षयज्ञम्प्रति सतीदेव्या गमनवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

तब शिव की आज्ञानुसार ६०००० प्रमथगण ने देवी के साथ प्रस्थान किया। भगवती सती नन्दी पर आरूढ़ होकर तथा घोर गणवृन्द से परिवृत होकर पितृगृह गयीं। यहां इन हजारों प्रमथ सैन्य को देखकर महादेव अत्यन्त विस्मित हो गये। उन्होंने प्रमथगण के हाथों देवी के महामूल्यवान् आभूषणों को भी भेज दिया। वे देवी को विदा करने हेतु उनका अनुगमन करते कई पग धीरे-धीरे चले। चलते-चलते महेश्वर यह विचार किये जा रहे थे कि दाक्षायणी सती पिता से अपमानित की गई हैं। अतः वे पितृगृह वास्तव में नहीं जायेंगी। ऐसा विचार करते देवाधिदेव कुछ दूर साथ जाकर अपनी पुरी वापस लौट आये।।६५-६८।।

॥द्वितीय अध्याय समाप्त॥

तृतीयोऽध्यायः

सती का दक्षभवन प्रवेश

लोमश उवाच

दाक्षायणी गतातत्र यत्र यज्ञो महानभूत्। तत्पितुःसदनं गत्वा नानाश्चर्यसमन्वितम्॥१॥
द्वारिस्थितातदादेवीअवतीर्य निजासनात्। नंदिनोहि महाभागा देवलोकं निरीक्ष्यच॥२॥
मातरं पितरं दृष्ट्वा सुहृत्सबन्धिबान्धवान्। अभिवाद्यैव पितरं मातरं च मुदान्विता॥३॥
बभाषे वचनं देवी प्रस्तावसदृशं तदा। अनादृतस्तया कस्माच्छम्भुःपरमशोभनः॥४॥
येन पूतमिदं सर्वं समग्रं सचराचरम्। यज्ञो यज्ञविदां श्रेष्ठो यज्ञाङ्गो यज्ञदक्षिणः॥५॥
द्रव्यं मन्त्रादिकं सर्वं हव्यं कव्यं च यन्मयम्। विना तेन कृतं सर्वमपवित्रं भविष्यति॥६॥

लोमश कहते हैं—जहां दक्ष का यह महायज्ञ हो रहा था, वहां दाक्षायणी सती पहुंचीं। उनको नाना आश्चर्यमय पित्रालय में आते देखकर उपस्थित देवगण अपने-अपने आसन से उठकर उनके सम्मानार्थ द्वार पर आकर खड़े हो गये। देवगण उनके आगमन से आनन्दित हो उठे। महाभागा सती ने वहां उन देवगण का अवलोकन किया। उन्होंने वहां पिता-माता तथा अन्य बन्धु-बान्धवों को देख सबका हर्षपूर्वक अभिवादन करने के अनन्तर पिता से प्रस्तावपूर्वक प्रश्न किया—"हे पिता! आपने परम सुन्दर शम्भु को निमन्त्रित क्यों नहीं किया? आपको ज्ञात है कि उनके द्वारा ही सचराचर जगत् परिपूत होता है। वे यज्ञ हैं, यज्ञविदों में श्रेष्ठ हैं। सभी यज्ञ द्रव्य, सभी मन्त्र, हव्यकव्यादि सब उनके ही रूप हैं। उनके बिना जो कुछ भी किया जायेगा, वह सब अपवित्र होगा"॥१-६॥

शंभुना हि विना तात कथं यज्ञः प्रवर्तते। एते कथं समायाता ब्रह्मणा सहिताःपितः॥७॥
हे भृगो! त्वं न जानासि हे कश्यप महामते। अत्रेवशिष्ठ एकस्त्वं शक्र किं कृतमद्यते॥८॥
हे विष्णो त्वं महादेवं जानासि परमेश्वरम्। ब्रह्मन् किं त्वन्न जानासि महादेवस्य विक्रमम्॥९॥
पुरा पञ्चमुखो भूत्वा गर्वितोऽसिसदाशिवम्। कृतश्चतुर्मुखस्तेनविस्मृतोऽसितदद्भुतम्॥१०॥

हे तात! उन शम्भु के अभाव में यज्ञ कैसे सम्पन्न हो सकेगा? हे पिता! जहां शिव ही निमन्त्रित नहीं हैं, वहां ब्रह्मा के साथ ये सब देवता आदि कैसे आ पहुंचे? हे ऋषि भृगु! क्या आपका ज्ञान हरण हो गया? हे महामति कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ! क्या आप सब ज्ञान रहित हो गये? हे विष्णु! आपको तो परमेश महादेव का तत्व ज्ञात है। हे ब्रह्मन्! (ब्रह्मदेव) क्या आप महादेव का विक्रम नहीं जानते? पूर्व में आपने पञ्चमुख युक्त रहते महादेव के समक्ष अत्यन्त गर्वयुक्त वाक्य कहे थे। तभी उन्होंने आपको पञ्चमुख से चतुर्मुख बना दिया! क्या आप वह अद्भुद् घटना भूल गये?॥७-१०॥

भिक्षाटनंकृतंयेन पुरा दारुवने विभुः। शप्तोऽयं भिक्षुको रुद्रो भवद्भिः सखिभिस्तदा॥११॥
शप्तेनाऽपि च रुद्रेण भवद्भिर्विस्मृतं कथम्। यस्यावयवमात्रेण पूरितं सचराचरम्॥१२॥

लिङ्गभूतं जगत्सर्वं जातं तत्क्षणमेवहि। लयनाल्लिङ्गमित्याहुः सर्वे देवाः सवासवाः॥१३॥
सर्वे देवाश्च सम्भूता यतो देवस्य शलिनः। सोऽसौवेदान्तगोदेवस्त्वयाज्ञातुंनपार्यते॥१४॥

पूर्वकाल में जो विभु भिक्षुक वेश में दारुवन में भिक्षाटन कर रहे थे, आपने सुहृद होकर भी उनको अभिशाप दिया था। क्या आप उन पूर्वाभिशप्त रुद्रदेव को इस समय विस्मृत कर गये? जिनके अवयव मात्र से यह सचराचर जगत् परिव्याप्त रहता है, यह समग्र जगत् क्षणमात्र में जिनमें लिंगरूपेण परिणति प्राप्त कर जाता है, जिनको लयकारण कहकर इन्द्रादि देवताओं ने लिंग नाम से अभिहित किया है, जिन शूलपाणि देवदेव के अंग से समग्र देवगण सम्भूत हैं तथा जो एकमात्र वेदान्त प्रतिपाद्य हैं, उन देवदेव को क्या आप अब भी पहचान नहीं सके? जो एकमात्र वेदान्त प्रतिपाद्य हैं, क्या उन देवदेव को क्या आप जानने में असमर्थ हैं?॥११-१४॥

तस्यावचनमाकर्ण्यदक्षःक्रुद्धोऽब्रवीद्वचः। किंत्वयाबहुनोक्तेनकार्यंनास्तीहसाम्प्रतम्॥१५॥
गच्छ वा तिष्ठ वा भद्रे! कस्मात्त्वं हि समागता।
अमङ्गलो हि भर्ता ते अशिवोऽसौ सुमध्यमे!॥१६॥
अकुलीनो वेदबाह्यो भूतप्रेतपिशाचराट्। तस्मान्नाकारितो भद्रे यज्ञार्थं चारुभाषिणि॥१७॥
मया दत्ताऽसिसुश्रोणिपापिनामन्दबुद्धिना। रुद्रायाविदितार्थाय उद्धताय दुरात्मने॥१८॥
तस्मात्कार्यं परित्यज्य स्वस्था भव शुचिस्मिते!।
दक्षेणोक्ता तदा पुत्री सा सती लोकपूजिता॥१९॥
निंदायुक्तंस्वपितरंविलोक्य रुषिताभृशम्। चिन्तयन्तीतदा देवी कथंयास्यामि मन्दिरे॥२०॥

महादेवी सती का यह वचन सुनकर दक्ष ने क्रुद्ध होकर कहा—"हे भद्रे! तुम जाना चाहो तो जाओ, रुकना चाहो तो रुको, तुमको अधिक वाक्यों का व्यय नहीं करना चाहिये। तुम यहां क्यों आई? हे सुमध्यमे! तुम्हारे पति अमंगल, अकुलीन, वेदवाह्य तथा भूत-प्रेत-पिशाचगण के राजा हैं। इसीलिए मैंने उनको यज्ञ में आमन्त्रित नहीं किया। हे चारुभाषिणी! सुश्रोणी! मैं नितान्त अल्पज्ञ तथा पापी हूं। तभी अज्ञात कुलशील, उद्धत प्रकृति, दुरात्मा रुद्र को तुम्हारा पाणिग्रहण करा दिया! हे शुचिस्मिते! तभी कहता हूं, तुम इस यज्ञकार्य का त्याग करके स्वस्थ हो जाओ।" दक्ष के यह कहने पर लोकपूज्या सती ने पतिनिन्दातत्पर अपने पिता की ओर देखा तथा अत्यन्त कुपित होकर मन ही मन सोचने लगीं कि अब मैं किस प्रकार अपने गृह वापस जाऊं?॥१५-२०॥

शङ्करं द्रष्टुकामाऽहं किं वक्ष्येतेनपृच्छिता। योनिंदतिमहादेवंनिंद्यमानं शृणोतियः।
तावुभौ नरके यातो यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥२१॥
तस्मात्त्यक्ष्याम्यहं देहं प्रवक्ष्यामि हुताशनम्॥२२॥

मेरी उत्कट इच्छा देवाधिदेव शंकर के दर्शन की हो रही है, लेकिन जब वे यहां के सम्बन्ध में पूछेंगे, तब उनको क्या उत्तर दूंगी? जो व्यक्ति महादेव की निन्दा करता है तथा उनकी निन्दा जो सुनता है, ये दोनों प्रकार के व्यक्ति तब तक नरकवासी रहते हैं, जब तक जगत् में चन्द्र-सूर्य की स्थिति है। अतः देहत्याग ही मेरा कर्त्तव्य होना चाहिये। मैं अग्नि में प्रवेश करूंगी॥२१-२२॥

एवंमीमांसमानासाशिवरुद्रेतिभाषिणी। अपमानाभिभूतासाप्रविवेशहुताशनम्॥२३॥

हाहाकारेण महता व्याप्तमासीद्दिगन्तरम्। सर्वे ते मञ्चमारूढाःशस्त्रैर्व्याप्तानिरन्तराः॥२४॥

शस्त्रैः स्वैर्जघ्नुरात्मानं स्वानि देहानि चिच्छिदुः।
केचित्करतले गृह्य शिरांसि स्वानि चोत्सुकाः॥२५॥

इस प्रकार से अपना कर्त्तव्य निश्चित करके सती मुख से शिव-रुद्र इत्यादि नामोच्चार करने लगीं। उन्होंने अपमान से अभिभूत होकर तत्क्षण अग्नि में प्रवेश किया। यह दृश्य देखकर दिग्दिगन्त से महान् हाहाकार ध्वनि उत्थित होने लगी। सती के साथ आये प्रमथगण यज्ञमंच पर चढ़ गये। इस दुर्घटना को देखकर वे अस्त्र-शस्त्र से व्याप्त हो गये। वे अपने-अपने अस्त्रों के प्रहार से अपनी ही देह का छेदन करते जा रहे थे। कोई-कोई तो उत्सुकता से अपना शिर काट कर हथेली पर रख रहा था।।२३-२५।।

नीराजयन्तस्त्वरिता भस्मीभूताश्च जज्ञिरे। एवमूचुस्तदा सर्वे जगर्ज्जुरतिभीषणम्॥२६॥

शस्त्रप्रहारैः स्वाङ्गानि चिच्छिदुश्चातिभीषणाः।
ते तथा विलयं प्राप्ता दाक्षायण्या समन्तदा॥२७॥

वह मस्तक हाथ पर लेकर उससे मानों आरती कर रहा हो, ऐसे उसे भ्रामित करते-करते शीघ्र भस्मीभूत हो जाता। वे गण सती के देहत्याग का घोर शब्द में वर्णन करते हुये अत्यन्त भीषण गर्जन करने लगे। इस भयानक घटना से असन्तुलित होकर वे अपने-अपने अंगों को काटते जा रहे थे। इस प्रकार से २०००० प्रमथगण सती के साथ ही लयीभूत हो गये!।।२६-२७।।

गणास्तत्रायुतेद्वेच तदद्भुतामिवाऽभवत्। ते सर्वे ऋषयो देवा इन्द्राद्याः समरुद्गणाः॥२८॥

विश्वेऽश्विनौ लोकपालास्तूष्णीं भूतास्तदाऽभवन्।
विष्णुं वरेण्यं केचिच्च प्रार्थयन्तः समन्ततः॥२९॥

एवं भूतस्तदा यज्ञोजातस्तस्य दुरात्मनः। दक्षस्य ब्रह्मबन्धोश्चऋषयो भयमागताः॥३०॥
एतस्मिन्नान्तरे विप्रा! नारदेन महात्मना। कथितंसर्वमेवैतद्दक्षस्य च विचेष्टितम्॥३१॥

तब की यह घटना अत्यन्त विस्मयजनक थी। इन्द्रादि देवता, ऋषि, मरुद्गण, विश्वेदेवगण, अश्विनीकुमारद्वय तथा लोकपालगण इस घटना से स्तब्ध होकर बैठे थे। उनमें से कोई-कोई तो वरेण्य विष्णु से ही इस उपस्थित विपत्ति से सम्बन्धित संकट से त्राण हेतु प्रार्थना कर रहे थे। दुरात्मा दक्ष के यज्ञ की परिणति इसी प्रकार से हो गयी! दक्ष के ब्रह्मबन्धु ऋषिगण इस घटना से भयभीत हो गये। हे विप्र! इसी बीच महात्मा नारद ने दक्षकृत समस्त चेष्टा (तथा उसके दुष्कृत्य) से भगवान् ईश्वर त्रिलोचन महादेव को अवगत करा दिया।।२८-३१।।

तदाकर्ण्येश्वरो वाक्यंनारदस्यमुखोद्गतम्। चुकोपपरमंक्रुद्ध आसनादुत्पतन्निव॥३२॥
उद्धृत्यचजटांरुद्रो लोकसंहारकारकः। आस्फोटयामास रुषा पर्वतस्य शिरोपरि॥३३॥
ताड़नाच्चसमुद्भूतोवीरभद्रोमहायशाः। तथा कालीसमुत्पन्नाभूतकोटिभिरावृता॥३४॥
कोपान्निःश्वसितेनैवरुद्रस्य च महात्मनः। ज्ञातं ज्वराणाविंशतंसन्निपातास्त्रयोदश॥३५॥

भगवान् ने नारद से इस घोर वृत्तान्त को सुना तथा अत्यन्त क्रोधित हो गये तथा आसन से उठ कर उन्होंने अपने मस्तक से एक जटा उखाड़ कर लोकसंहारक रुद्ररूप से पर्वत के शिखर पर जोरों से पटका। इस जटा के

आघात से वहां तत्क्षण महायशस्वी वीरभद्र प्रादुर्भूत हो गये। तभी क्रोधान्वित महात्मा रुद्र की निःश्वासवायु से करोड़ों भूतों से परिवृता महादेवी काली का आविर्भाव हो गया। साथ ही १०० प्रकार के ज्वर तथा १३ प्रकार के सन्निपात भी आविर्भूत हो गये।।३२-३५।।

विज्ञप्तो वीरभद्रेणरुद्रोरौद्रपराक्रमः। किंकार्यं भवतःकार्यं शीघ्रमेव वद प्रभो!।।३६।।

तब वीरभद्र ने रौद्रपराक्रम रुद्रदेव शिव से कहा—"हे प्रभो! आपका कौन-सा कार्य करना है? शीघ्र आदेश करें"।।३६।।

इत्युक्तोभगवान्रुद्रोप्रेषयामास सत्त्वरम्। गच्छवीरमहाबाहोदक्षयज्ञंविनाशय।।३७।।
शासनंशिरसाधृत्वादेवदेवस्यशूलिनः। कालिकाऽऽलिहितो वीरःसर्वभूतैःसमावृतः।
वीरभद्रो महातेजा ययौ दक्षमखं प्रति।।३८।।
तदानीमेवसहसादुर्निमित्तानि चाऽभवन्। रूक्षोववौतदा वायुः शर्कराभिः समावृतः।
असृग्वर्षति देवश्च (पर्जन्य) तिमिरेणाऽऽवृता दिशः।।३९।।
उल्कापाताश्च बहवः पेतुरुर्व्यां सहस्त्रशः।।४०।।

वीरभद्र के यह कहने पर शंकर ने उससे कहा—"हे वीर! महाबाहो! तुम तत्काल जाकर दक्ष के यज्ञ का नाश करो।" तब वीरभद्र देवदेव महात्मा शूलपाणि के आदेश को शिरोधार्य करके मेघवृन्द तथा भूतगण से परिवृत होकर दक्षयज्ञस्थल की ओर दौड़ पड़े। तभी समस्त अपशकुन तथा दुर्निमित्त भी प्रकट होने लगे। देखते-देखते बालू के कणों से भरी रुक्ष वायु प्रवाहित होने लगी। पर्जन्यदेव असृक्, रुधिर वर्षण करने लगे। दिक्मण्डल अन्धकाराच्छन्न हो गया तथा उर्वीतल (पृथिवीतल) पर उल्कापात होने लगा।।३७-४०।।

एवं विधान्यरिष्टानि ददृशुर्विबुधादयः। दक्षोऽपिभयमापन्नोविष्णुंशरणमाययौ।।४१।।
रक्षरक्षमहाविष्णोत्वंहिनःपरमोगुरुः। यज्ञोऽसि त्वंसुरश्रेष्ठ! भयान्मांपरिमोचय।।४२।।
दक्षेण प्रार्थ्यमानोहिजगाद मधुसूदनः। मयारक्षा विधातव्याभवतोनात्र संशयः।।४३।।
अवज्ञा हि कृतादक्ष त्वयाधर्ममजानता। ईश्वरावज्ञया सर्वं विफलंचभविष्यति।।४४।।
अपूज्यायत्र पूज्यन्तेपूजनीयोन पूज्यते। त्रीणि तत्रप्रवर्तन्तेदुर्भिक्षं मरणं भयम्।।४५।।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेनमाननीयोवृषध्वजः। अमानितान्महेशात्त्वांमहद्भयमुपस्थितम्।।४६।।
अधुनैव वयं सर्वे प्रभवोन भवामहे।
भवतो दुर्न्नयेनैव नाऽत्रकार्या विचारणा।।४७।।

वहां के लोग इस प्रकार से अरिष्ट समूह का दर्शन करने लगे। दक्ष इससे भयभीत होकर विष्णु के शरणापन्न हो गये। वे विष्णु से कहने लगे—"हे महाविष्णु! रक्षा करिये। आप ही हम लोगों के परमगुरु हैं। हे देवप्रवर! आप यज्ञरूप हैं। हमारी भय से रक्षा करें।" दक्ष का प्रार्थना वाक्य सुनकर मधुसूदन उनको अभयदान देते कहने लगे—"मैं तुम्हारी रक्षा निःसन्देह करूंगा, तथापि हे दक्ष! तुमने धर्म की अज्ञानता के कारण ईश्वर की अवज्ञा किया है। ईश्वर की अवज्ञा के कारण तुम्हारे सभी कर्म विफल हो जायेंगे। जहां अपूज्य का पूजन तथा पूज्य की अवज्ञा होती है, वहां दुर्भिक्ष, मरण तथा भय, ये तीनों होते हैं। अतः तुम सर्वप्रथम भगवान् वृषध्वज का सम्मान

करो। यहां महेश्वर की अवमानना की गई है। तभी तुम्हारे लिए महाभय उपस्थित है। यहीं मेरा प्रभुत्व नष्ट होगा। तुम्हारे ही कारण यह घटना घटित हो रही है, इसमें किंचित् सन्देह नहीं है।।४१-४७।।

विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा दक्षश्चिन्तापरोऽभवत्।
विवर्णवदनो भूत्वा तूष्णीमासीद्भुवि स्थितः॥४८॥
वीरभद्रो महाबाहू रुद्रेणैवप्रचोदितः। काली कात्यायनीशानाचामुण्डा मुण्डमर्द्दिनी॥४९॥
भद्रकालीतथाभद्रात्वरितावैष्णवी तथा। नवदुर्गादिसहितोभूतानांचगणोमहान्॥५०॥
शाकिनी डाकिनी चैवभूतप्रमथगुह्यकाः। तथैवयोगिनीचक्रंचतुःषष्ट्या समन्वितम्॥५१॥
निर्जग्मुः सहसा तत्र यज्ञवाटं महाप्रभम्। वीरभद्रसमेता ये गणाः शतसहस्त्रशः॥५२॥
पार्षदाःशङ्करस्यैतेसर्वेरुद्रस्वरूपिणः। पञ्चवक्त्रा नीलकण्ठाःसर्वेतेशस्त्रपाणयः॥५३॥
छत्रचामरसंवीताः सर्वे हरपराक्रमाः। दशबाहवस्त्रिनेत्रा जटिला रुद्रभूषणाः॥५४॥
अर्धचन्द्रधराः सर्वे सर्वे चैव महौजसः। सर्वे ते वृषभारूढाः सर्वे ते वेषभूषणाः॥५५॥

विष्णु का यह वचन सुनकर दक्ष चिन्तातुर हो गये। उनका चेहरा विवर्ण हो गया। वे स्तब्ध होकर पृथिवी पर बैठ गये। इधर महाबाहु वीरभद्र को रुद्रदेव ने दक्षयज्ञ विध्वंस हेतु भेजा। उनके साथ काली, कात्यायनी, ईशानी, मुण्डमर्दिनी, चामुण्डा, भद्रकाली, भद्रा, त्वरिता, वैष्णवी ये नवदुर्गा तथा महाभूतवृन्द, शाकिनी-डाकिनी, भूत-प्रमथ-गुह्यक तथा ६४ योगिनी भी निर्गत हो गयीं। वे सहसा दक्ष के यज्ञमण्डप में पहुंचीं। वीरभद्र के साथ शतसहस्त्र संख्यक प्रमथगण भी आये। वे सभी भगवान् त्रिलोचन के अनुचर थे। वे रुद्र के समान रूप वाले, पंचमुख, नीलकण्ठ, शस्त्रधारी थे। सभी छत्र चामर शोभित थे। सभी हर के समान पराक्रमी थे। सभी १० बाहुवाले, त्रिनेत्र, जटाधारी, रुद्राक्ष भूषणधारी, अर्द्धचन्द्रधारी, महा ओजस्वी, वृषवाहन तथा सज्जित थे।।४८-५५।।

सहस्त्रबाहुर्भुजगाधिपैर्वृतस्त्रिलोचनो भीमबलो भयावहः।
एभिः समेतश्च तदा महात्मा स वीरभद्रोऽभिजगाम यज्ञम्॥५६॥
युग्यानां च सहस्त्रेण द्विप्रमाणेनस्यंदनम्। सिंहानांप्रयुतेनैवबाह्यमानं च तस्य तत्॥५७॥
तथैव दंशिताः सिंहाबहवः पार्श्वरक्षकाः। शार्दूलामकरामत्स्यागजाश्चैव सहस्त्रशः।
छत्राणि विविधान्येव चामराणि तथैव च॥५८॥
मूर्द्धनिधियमाणानिसर्वतोऽग्राणिसर्वशः। ततोभेरी महानादाःशङ्खाश्चविविधस्वनाः।
पटहा गोमुखाश्चैव शृङ्गाणि विविधानि च॥५९॥
ततोऽवाद्यन्ततान्येवघनानिसुषिराणि च। कलगानपराः सर्वे सर्वे मृदंगवादिनः॥६०॥
अनेकलास्यसंयुक्ता वीरभद्राग्रतोऽभवन्। रणवादित्रनिर्घोषैर्जगर्जुरमितौजसः॥६१॥
तेन नादेन महता नादितं भुवनत्रयम्। एवं सर्वे समायाता गणारुद्रप्रणोदिताः॥६२॥
यज्ञवाटं च दक्षस्यविनाशार्थंप्रहारिणः। रजसाचाऽऽवृतंव्योमतमसा च वृतादिशः॥६३॥

वे सहस्रबाहु, भीमबल, भीषण, त्रिनेत्र, वीरभद्र इन सभी अनुचर-सहचरगण के साथ घिरे हुये दक्षयज्ञस्थल पर आये। वीरभद्र का रथ २ हजार युगकाष्ठ युक्त था। वह प्रयुत संख्यक सिंह-व्याघ्र से खींचा जा रहा था। इसके अतिरिक्त असंख्य सज्जित सिंह तथा हजारों-हजार व्याघ्र, मकर, मत्स्य तथा गज वीरभद्र के पार्श्वरक्षक के रूप में नियुक्त थे। वीरभद्र के मस्तक पर विविध चामर तथा छत्र सज्जित था। उनके युद्ध हेतु कूच करते समय न जाने कितनी भेरी, शंख, पटह, गोमुख तथा विविध शृङ्गादि वाद्य महानाद के साथ वादित होने लगे। साथ ही साथ वंशी तथा मजीरे की वाद्यध्वनि भी होती जा रही थी। वहां अनगिनत मृदंग भी बज रहे थे तथा उत्तम गायन भी हो रहा था। वे गण नाना प्रकार से नृत्य करते-करते वीरभद्र के रथ के आगे-आगे चलने लगे। वे बीच-बीच में महागंभीर शब्द से निर्घोष गर्जन भी करते चल रहे थे। इससे समस्त त्रिभुवन शब्दायमान हो उठा। रुद्रप्रेरित प्रमथादि वृन्द दक्ष के विनाशार्थ अस्त्र-शस्त्र लेकर इस प्रकार यज्ञस्थल पहुंचे। उनके आगमन से उड़ी धूल से आकाश आच्छादित हो गया। दिशायें अन्धकार की घनता के कारण तमःस्तोम से परिव्याप्त हो गयीं।।५६-६३।।

सप्तद्वीपवती पृथ्वी चचाल साद्रिकानना। ते दृष्ट्वा महदाश्चर्यं लोकक्षयकरं तदा॥६४॥
उत्तस्थुर्युगपत्सर्वे देवदैत्यनिशाचराः। ते वै ददृशुरायांतींरुद्रसेनां भयावहाम्॥६५॥
पृथ्वीं केचित्समायाता गगने केचिदागताः। दिशश्च प्रदिशश्चैव समावृत्य तथा परे॥६६॥
अनंता ह्यक्षयाः सर्वे शूरा रुद्रसमा युधि। एवं भूतं च तत्सैन्यं रुद्रैश्च परिवारितम्।
दृष्ट्वोचुर्विस्मिताः सर्वे यामोऽद्य शस्त्रपाणयः॥६७॥
इन्द्रो हि गजमारूढो मृगारूढः सदागतिः। यमो महिषमारूढ़ो यमदण्डसमन्वितः॥६८॥
कुबेरः पुष्पकारूढः पाशीमकरमेवच। अग्निर्बस्तसमारूढो निर्ऋतिः प्रेतमेव च॥६९॥
तथाऽन्येसुरसङ्घाश्चयक्षचारणगुह्यकाः। आरुह्यवाहनान्येव स्वानि स्वानि प्रतापिनः॥७०॥
स्वेषामुद्योगमालोक्यदक्षश्चाश्रुमुखस्ततः। दण्डवत्पतितोभूमौ सर्वानेवाऽभ्यभाषत॥७१॥

सप्तद्वीपा पृथिवी वन-पर्वत के साथ कम्पायमान हो उठी। देव-दैत्य-निशाचरादि सभी ने इस लोकक्षयकारी महत् आश्चर्य व्यापार, जो एक साथ घटित हो रहा था, देखा। भीषण रुद्रसैन्य वहां पहुंच गया था। इस सैन्य समूह में से कुछ सैन्य स्थलमार्ग से, कुछ आकाश से पहुंचे। कुछ अनेक दिक्-विदिक् को आवृत करते आये। यह समस्त रुद्रसैन्य अनन्त-अक्षय-शौर्य सम्पन्न था। इसमें सभी शूरवीर रुद्र के समान ही थे। रुद्ररूपी गणों से परिवृत इस सैन्य समागम को देखकर देवगण विस्मयापन्न होकर कहने लगे—"चलें! हम भी शस्त्र लेकर युद्धार्थ सन्नद्ध हो जायें!" तब इन्द्र ऐरावत पर, मरुत् मृग पर, दण्डपाणि यम महिष पर, कुबेर पुष्पक विमान पर, वरुण मकर पर, अग्नि बकरे पर, निर्ऋति प्रेत पर, अन्य देवता, यक्ष, चारण, गुह्यक गण अपने-अपने प्रसिद्ध वाहनों पर आरूढ़ होकर आये। दक्ष प्रजापति अपने पक्ष वालों का उद्योग देखकर साश्रु नयन से भूतल पर दण्डवत् गिर कर कहने लगे।।६४-७१।।

युष्मद्बलेनैवमयायज्ञः प्रारम्भितो महान्। सत्कर्मसिद्धये यूयं प्रमाणं सुमहाप्रभाः॥७२॥
विष्णो त्वं कर्मणः साक्षाद्यज्ञानांपरिपालकः। धर्मस्य वेदगर्भस्यब्रह्मण्यस्त्वंचमाधव!॥७३॥
तस्माद्रक्षाविधातव्या यज्ञस्याऽस्यमहाप्रभो!। दक्षस्यवचनंश्रुत्वा उवाचमधुसूदनः॥७४॥

दक्ष कहते हैं—हे देवगण! आपके ही बल से बलवान होकर मैंने यह महायज्ञ आरम्भ किया है। मेरी इस यज्ञक्रिया को सम्पन्न करने के लिए आप जैसे महाप्रभावसम्पन्न व्यक्तिगण ही सम्पूर्णतः सहायक सिद्ध होते हैं। हे विष्णु! आप तो साक्षात् यदुपति हैं। हे माधव! आप वेदगर्भ धर्म के ब्रह्मण्य हैं। हे प्रभो! यह यज्ञ आप द्वारा ही रक्षित हो। दक्ष का वचन सुनकर मधुसूदन करने लगे।।७२-७४।।

मया रक्षा विधातव्याधर्मस्यपरिपालने। तत्सत्यं तु त्वयोक्तं हिकिंतुतस्यव्यतिक्रमः।।७५।।
यातस्त्वद्यैव यज्ञस्ययत्त्वयोक्तंसदाशिवम्। नैमिषेऽनिमषक्षेत्रेतदा किं न स्मृतंत्वया।।७६।।
योऽयं रुद्रोमहातेजा यज्ञरूपःसदाशिवः। यज्ञबाह्यःकृतो मूढ! तच्च दुर्मन्त्रितं तव।।७७।।
रुद्रकोपाच्चकोह्यत्र समर्थो रक्षणे तव। न पश्यामि च तं विप्रत्वां वै रक्षति दुर्मतिम्।।७८।।
किं कर्म किमकर्मेति तन्न पश्यतिदुर्मते। समर्थं केवलं कर्म न भविष्यति सर्वदा।।७९।।

मधुसूदन कहते हैं—धर्मरक्षार्थ यज्ञरक्षा हो, यह मेरा कर्त्तव्य है। यह तुमने यथार्थ कहा है। लेकिन अभी इसमें व्यतिक्रम हो गया। यह तभी घटित हो गया था, जब तुमने नैमिषारण्य में सदाशिव से कटु वचन बोला था। तब क्या तुम्हारी स्मृति नहीं जागी थी? जो रुद्र महातेजवान्, यज्ञरूपी सदाशिव हैं, उनको तुमने यज्ञ से बाहर किया, यह तुम्हारी दुर्मति है। इसमें सन्देह है ही नहीं। तथापि अब रुद्र कोप से कौन तुम्हारी रक्षा कर सकेगा? हे विप्र! जो तुमको रुद्रकोप से बचा सके, ऐसा कोई भी रक्षक मुझे तो दिखलाई नहीं पड़ रहा है। हे दुर्मति! क्या कर्म है तथा क्या अकर्म है, यह तुमको दिखलाई नहीं पड़ा। केवल कर्म बल से ही लोकरक्षा नहीं होती।।७५-७९।।

सेश्वरं कर्म विद्ध्येत तत्समर्थत्वेन जायते। नह्यन्यः कर्मणो दाता ईश्वरेण विना भवेत्।।८०।।
ईश्वरस्य चयेभक्ताः शान्तास्तद्गतमानसाः। कर्म्मणोहि फलं तेषांप्रयच्छति सदाशिवः।।८१।।
यज्ञबाह्यःकृतोमूढ तच्च दुर्मन्त्रितं तव। केवलं कर्मचाश्रित्य निरीश्वरपरा जनाः।
निरयन्ते च गच्छन्ति कोटियज्ञशतैरपि।।८२।।
पुनः कर्ममयैःपाशैर्बद्धा जन्मनि जन्मनि। निरयेषु प्रपच्यन्ते केवलं कर्म्मरूपिणः।।८३।।

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीति साहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे वीरभद्रप्रादुर्भाववर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः।।३।।

जो कर्म ईश्वर सेवामूलक होता है, उसी से अपनी रक्षा होती है। ईश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई भी कर्मफल प्रदाता नहीं होता। जो ईश्वरभक्त हैं, शान्त तथा गदगद् चित्त हैं, उनके कृतकर्म का फल स्वयं सदाशिव प्रदान करते हैं। जो केवल कर्म करके निरीश्वरवाद के अनुयायी होते हैं, वे भले ही करोड़ों यज्ञ करें, उनको नरक में ही जाना होगा, वे जन्म-जन्मान्तर तक कर्ममय पाश में बंधे रह कर पुनः-पुनः नरकाग्नि में पतित होते रहते हैं।।८०-८३।।

।।तृतीय अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

चतुर्थोऽध्यायः

देवताओं के साथ शिवगण का युद्ध

लोमश उवाच

विष्णुनोक्तं वचः श्रुत्वादक्षोवचनमब्रवीत्। वेदानामप्रमाणं च कृतं ते मधुसूदन!॥१॥
वैदिकंकर्मचोत्सृज्यकथंसेश्वरतां व्रजेत्। तदुच्यतांमहाविष्णो! येनधर्मःप्रतिष्ठितः।
दक्षेणोक्तो महाविष्णुरुवाच परिसान्त्वयन्॥२॥
त्रैगुण्यविषया वेदाः सम्भवन्ति न चान्यथा॥३॥
वेदोदितानिकर्माणिईश्वरेणविना कथम्। सफलानि भविष्यन्तिविफलान्येव तानिच॥४॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ईश्वरं शरणं व्रज। एवं ब्रुवति गोविन्द आगतः सैन्यसागरः।
वीरभद्रेण सदृशो ददृशुस्तं तदा सुराः॥५॥

लोमश कहते हैं—विष्णुवाक्य को सुनकर दक्ष ने कहा—हे मधुसूदन! आपने तो वेदविधान को ही अप्रमाणित कर दिया। देखिये, वैदिक कर्म का त्याग करके किस प्रकार से ईश्वर-परायणता प्राप्त हो सकेगी? हे महाविष्णु! आप इस धर्मयुक्त वाक्य का अब प्रकाशन करें। दक्ष का वाक्य सुनकर महाविष्णु ने दक्ष को सान्त्वना देते हुये कहा—सभी वेद त्रैगुण्यविषयक हैं, इसमें सन्देह नहीं है। तथापि वेदादि में जो भी कर्म है, ईश्वर के बिना उसकी सफलता की संभावना कैसे होगी? फलतः वह सब कर्म विफल हो जाते हैं। इसलिए सभी प्रयत्न द्वारा ईश्वर के शरणागत हो जाओ। गोविन्द यह कह रहे थे, तभी वहां रुद्रदेव की भेजी सेना वीरभद्र के साथ समुद्र की तरह आ गयी। देवगण ने वीरभद्र के साथ आई विशाल सेना को देखा।।१-५।।

इन्द्रोऽपि प्रहसन्विष्णुमात्मवादरतंतदा। वज्रपाणिःसुरैःसार्धंयोद्धुकामोऽभवत्तदा॥६॥
भृगुणाचारितः शीघ्रमुच्चाटनपरेणहि। तदा गणाः सुरैः सार्धं युयुधुस्ते गणान्विताः॥७॥
शरतोमरनाराचैर्जघ्नुस्तेच परस्परम्। नेदुः शङ्खाश्च बहुशस्तस्मिन्रणमहोत्सवे॥८॥
तथा दुन्दुभयोनेदुः पटहाडिण्डिमादयः। तेन शब्देन महताश्लाघ्यमानास्तदा सुराः।
लोकपालैश्च सहिता जघ्नुस्ताञ्छिवकिङ्करान्॥९॥

तब वज्रपाणि इन्द्र ने आत्मवादरत-विष्णु का उपहास किया तथा युद्धार्थ देवगण के साथ सन्नद्ध हो गये। उच्चाटन कार्यपटु भृगु ने उस सैन्यसागर को शीघ्र उस स्थान से दूर करने का प्रयास किया। तभी देवगण के साथ प्रमथों का युद्ध आरम्भ हो गया। बाण, तोमर, नाराच वर्षण से वे परस्परतः एक-दूसरे को आहत करने लगे। इस रण महोत्सव में अनेक शंखों का वादन हो रहा था। वहां दुन्दुभि, पटह तथा डिन्डिम आदि वाद्य बज रहे थे। उस महाशब्द से लोकपालों तथा सुरगण में उत्तेजना आई तथा उत्साह भर गया। वे शिवकिंकरगण का विनाश करने लगे।।६-९।।

खड्गैश्चाऽपि हताः केचिद्गदाभिश्चविपोथिताः। देवैःपराजिताःसर्वेगणाःशतसहस्त्रशः॥१०॥

इन्द्राद्यैर्लोकपालैश्चगणास्तेचपराङ्मुखाः। कृताश्चतत्क्षणादेवभृगोर्मन्त्रबलेनहि॥११॥
उच्चाटनंकृतंतेषांभृगुणायज्विना तदा। यजनार्थं च देवानांतुष्ट्यर्थंदीक्षितस्य च॥१२॥

तब प्रमथगण की सहस्त्रों सेना देवगण द्वारा पराजित होने लगी। कोई प्रमथगण खड्गाघात से मरे, कोई गदाघात से चूर्ण हो गया। भृगु के मन्त्रबल से इन्द्रादि लोकपालगण ने इन सभी प्रमथ सैन्य को तत्क्षण युद्ध से विमुख कर दिया। यागशील ऋषि भृगु ने मन्त्र बल से उनको रणभूमि त्यागार्थ विवश कर दिया। देवगण की अर्चना तथा दीक्षित यजमान दक्ष की प्रसन्नता हेतु भृगु ने यह कृत्य किया।।१०-१२।।

तेनैव देवा जयिनोजातास्तत्क्षणमेवहि। स्वानां पराजयं दृष्ट्वा वीरभद्रोरुषान्वितः॥१३॥
भूतान्प्रेतान्पिशाचांश्च कृत्वातानेव पृष्ठतः। वृषभस्थान्पुरस्कृत्य स्वयं चैव महाबलः।
तीक्ष्णं त्रिशूलमादाय पातायामास तान्रणे॥१४॥
देवान्यक्षान्पिशाचांश्चगुह्यकान्राक्षसांस्तथा। शूलघातैश्च ते सर्वेगणादेवान्प्रजघ्निरे॥१५॥
केचिद् द्विधाकृताः खड्गैर्मुद्गरैश्चाऽपि पोथिताः।
परश्वधैः खण्डशश्च कृताः केचिद्रणाजिरे॥१६॥

इस कार्य से देवगण की शीघ्र विजय हो गयी। इधर वीरभद्र अपने पक्ष की पराजय का संवाद मिलने से क्रोधित हो गये। उन्होंने भूत-प्रेत-पिशाच को पीछे किया तथा वृषभस्थ प्रमथों को आगे किया तथा तीक्ष्ण त्रिशूल लेकर स्वयं देवगण को धराशायी करने लगे। अन्य प्रमथवृन्द ने देवता-यक्ष तथा देवपक्षीय पिशाच-गुह्यक तथा राक्षसों पर प्रहार तथा शूलाघात करना प्रारम्भ किया। देवपक्ष का कोई खड्ग के आघात से दो टुकड़े हो गया, कोई मुद्गर प्रहार से चिपटा हो गया, कोई रणांगण में पारस्परिक युद्ध में खण्ड-विखण्ड हो गया।।१३-१६।।

शूलैर्भिन्नाश्चशतशःकेचिच्चशकलीकृताः। एवं पराजिताः सर्वे पलायनपरायणाः॥१७॥
परस्परं परिष्वज्यगतास्तेऽपित्रिविष्टपम्। केवलंलोकपालाश्चइन्द्राद्यास्तस्थुरुत्सुकाः।
बृहस्पतिं पृच्छमानाः कुतोऽस्माकं जयो भवेत्।
बृहस्पतिरुवाचेदं सुरेन्द्रं त्वरितस्तदा॥१८॥

उन देवपक्ष वालों में से सैकड़ों-सैकड़ों शूलाघात से भिद गये। कोई-कोई टुकड़े-टुकड़े हो गये। इस प्रकार पराजित देवसैन्य ने वहां से पलायन किया। देवगण ने अन्तिम समय में एक-दूसरे का आलिंगन करके परलोक गमन (मृत होकर) किया। केवल इन्द्रादि लोकपाल नहीं भागे। वे बृहस्पति से यह प्रश्न करके कि हमारी कब जय होगी, उत्तर ज्ञात करने हेतु वहीं बैठ गये। तब बृहस्पति ने चिन्तित होकर देवराज से कहा।।१७-१८।।

बृहस्पतिरुवाच

यदुक्तं विष्णुना पूर्वं तत्सत्यं जातमद्य वै॥१९॥
अस्ति चेदीश्वरः कश्चित्फलरूप्यस्य कर्म्मणः। कर्तारंभजतेसोऽपिनह्यकर्तुः प्रभुर्हिसः॥२०॥
न मन्त्रौषधयःसर्वेनाभिचारानलौकिकाः। न कर्माणि न वेदाश्च न मीमांसाह्ययंतथा।
ज्ञातुमीशाः सम्भवन्ति भक्त्या ज्ञेयास्त्वनन्यया॥२१॥

शान्त्या च परया तुष्ट्या ज्ञातव्यो हि सदाशिवः॥२२॥
तेन सर्वंसम्भवन्तिसुखदुःखात्मकं जगत्। परन्तु सम्वदिष्यामिकार्याकार्यविवक्षया॥२३॥

बृहस्पति कहते हैं—"पूर्व में विष्णु ने जो कहा था, वह अब सत्य होगा। यदि कोई कर्मफलरूपी ईश्वर हैं, तब वे कर्म-कर्त्ता के ही अनुगामी होते हैं। अर्थात् कर्मानुष्ठान से ही कर्म फल मिलता है। लेकिन जो कर्म नहीं करता, वे उसके प्रभु नहीं हैं। अर्थात् कर्म करने से ही फल प्राप्ति होती है। कर्म न करने पर उनका प्रभुत्व कहां? जो कुछ मन्त्रौषधि, अभिचार, लौकिक कर्म तथा मीमांसाद्वय एवं वेद हैं, वे ईश्वर को जानने में समर्थ ही नहीं हैं। ईश्वर केवल एकनिष्ठ व्यक्ति से ही जाने जाते हैं। परम शान्ति तथा तुष्टि द्वारा ही सदाशिव को प्राप्त किया जा सकता है। उनके ही कर्तृत्व से इस सुख-दुःखात्मक जगत् की स्थिति एवं अस्तित्व है। तथापि मैं कार्य-अकार्य के निर्णयार्थ कुछ कहूंगा"।।१९-२३।।

त्वमिन्द्र! बालिशो भूत्वा लोकपालैः सहाद्य वै।
आगतो बालिशो भूत्वा इदानीं किं करिष्यसि॥२४॥
एतेरुद्रसहायाश्च गणाःपरमशोभनाः। कुपिताश्च महाभागा न तु शेषं प्रकुर्वते॥२५॥
एवं बृहस्पतेर्वाक्यंश्रुत्वातेऽपिदिवौकसः। चिन्तामापेदिरेसर्वेलोकपाला महेश्वराः॥२६॥

"हे इन्द्र! तुम मूर्ख हो। तभी अन्य लोकपालगण के साथ तुम यहां आये। मैं और भी कहता हूं, पुनः कहता हूं, तुम मूर्ख हो! अब तुम क्या कर सकोगे? तुम्हारी क्या शक्ति है? देखो! ये महाभाग रुद्र सहचरगण अत्यन्त शोभायमान हो रहे हैं। इनके कुपित होने पर कोई भी बचाने वाला नहीं है।" वे सभी स्वर्ग के लोकपालगण बृहस्पति का यह वाक्य सुनकर चिन्तित हो गये।।२४-२६।।

ततोऽब्रवीद्वीरभद्रोगणैःपरिवृतो भृशम्। सर्वे यूयं बालिशत्वादवदानार्थमागताः॥२७॥
अवदानानिदास्यामितृप्त्यर्थंभवतांत्वरन्। एवमुक्ता शितैर्बाणैर्जघानाऽथ रुषान्वितः॥२८॥
तैर्बाणैर्निहताः सर्वे जग्मुस्ते च दिशो दश॥२९॥

उधर प्रमथवृन्द से घिरे वीरभद्र ने कहा—"हे लोकपालगण! तुम सब मूर्खता के कारण यहां युद्ध के लिए आये हो। मैं भी तुम्हारी युद्धकामना तृप्ति के लिए शीघ्र जबाबी युद्ध करूंगा।" यह कहकर वीरभद्र क्रोधित होकर अति तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से देवताओं को निहत करने लगे। इन बाण प्रहार से वे देवगण दसों दिशाओं में पलायित हो गये।।२७-२९।।

गतेषु लोकपालेषु विद्रुतेषु सुरेषु च। यज्ञवाटे समायातो वीरभद्रो गणान्वितः॥३०॥
तदा त ऋषयः सर्वे सर्वमेवेश्वरेश्वरम्। विज्ञप्तुकामाःसहसाऊचुरेवं जनार्दनम्॥३१॥
रक्ष यज्ञंहि दक्षस्ययज्ञोऽसित्वं न संशयः। एतच्छ्रुत्वातु वचनमृषीणांवै जनार्दनः॥३२॥
योद्धुकामःस्थितोयुद्धेविष्णुरध्यात्मदीपकः। वीरभद्रोमहाबाहुःकेशवंवाक्यमब्रवीत्॥३३॥

लोकपालगण के पहले ही चले जाने पर सभी देवगण वहां से भाग गये। तब वीरभद्र सदल-बल यज्ञमण्डप में आये। ऋषिगण सर्वेश्वर जनार्दन से अपने मन का अभिप्राय प्रकट करने लगे—"हे देव! आप ही यज्ञमूर्त्ति हैं।

आप दक्षयज्ञ की रक्षा करें।'' अध्यात्म-ज्ञानोद्दीपक जनार्दन ने ऋषिगण का वचन सुना तथा युद्धार्थ युद्धक्षेत्र में खड़े हो गये। तब महाबाहु वीरभद्र केशव से कहने लगे।।३०-३३।।

अत्रत्वयागतंकस्माद्विष्णो! वेत्त्रामहाबलम्। दक्षस्यपक्षमाश्रित्यकथंजेष्यसितद्वद।।३४।।
दाक्षायण्याकृतंयच्च न दृष्टं किं त्वयाऽनघ!। त्वंचाऽपियज्ञेदक्षस्यअवदानार्थमागतः।
अवदानं प्रयच्छामि तव चाऽपि महाभुज!।।३५।।
एवमुक्त्वा प्रणम्यादौ विष्णुं सदृशरूपिणम्।
वीरभद्रोऽग्रतो भूत्वा विष्णुं वाक्यमथाऽब्रवीत्।।३६।।
यथाशम्भुस्तथात्वंहिममनास्त्यत्रसंशयः। तथाऽपित्वंमहाबाहोयोद्धुकामोऽग्रतःस्थितः।
नेष्याम्यपुनरावृत्तिं यदि तिष्ठेस्त्वमात्मना।।३७।।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वीरभद्रस्यधीमतः। उवाच प्रहसन्देवोविष्णुःसर्वेश्वरेश्वरः।।३८।।

वीरभद्र कहते हैं—''हे विष्णु! आप यहां क्यों आये? दक्ष का पक्ष लेकर आप कैसे विजयी होंगे? हे अनघ! इसके पूर्व दाक्षायणी को जो करना पड़ा, क्या आपने वह नहीं देखा? तब भी यदि आप यज्ञ में युद्ध हेतु आये हैं, तव मैं भी आपके साथ जबाबी युद्ध करूंगा। ''वीरभद्र यह कह कर विष्णु के निकट आये तथा प्रणामोपरान्त कहने लगे—हे देव! मेरे लिये जैसे शम्भु हैं, वैसे आप हैं। इसमें कोई भी सन्देह नहीं है। हे महाबली! आप युद्धकामनार्थ सामने आये हैं। जो भी हो! यदि आप इसी भावना से आये हैं तब आपको आज लौटना नहीं होगा।'' धीमान् वीरभद्र का वचन सुनकर सर्वेश्वरेश्वर विष्णु सहास्य कहने लगे।।३४-३८।।

विष्णुरुवाच

रुद्रतेजःप्रसूतोऽसि पवित्रोऽसि महामते। अनेन प्रार्थितः पूर्वं यज्ञार्थं च पुनःपुनः।।३९।।
अहंभक्तपराधीनस्तथासोऽपि महेश्वरः। तेनैव कारणेनाऽत्रदक्षस्य यजनं प्रति।।४०।।
आगतोऽहं वीरभद्र! रुद्रकोपसमुद्भव!। अहं निवारयामित्वां त्वंवामां विनिवारय।।४१।।

विष्णु कहते हैं—हे महामति! तुम्हारा जन्म रौद्रतेज से हुआ है। तुम अवश्य पवित्र हो। लेकिन क्या करूं? इस दक्ष ने यज्ञरक्षार्थ बारम्बार मेरी प्रार्थना किया है। मैं तथा महेश्वर दोनों ही भक्त के अधीन हैं। अतः हे रुद्रकोप से उत्पन्न वीरभद्र! या तो मैं तुमको युद्ध से निवृत्त करूंगा, अथवा तुम मुझे युद्ध से निवारित करो।।३९-४१।।

इत्युक्तयतिगोविन्दे प्रहस्य स महाभुजः। प्रश्रयावनतोभूत्वा इदमाह जनार्दनम्।।४२।।
यथा शिवस्तथा त्वं हि यथा त्वं च तथा शिवः।
सेवकाश्च वयं सर्वे तव बा शङ्करस्य च।।४३।।
तच्छुत्वा वचनंतस्यसोऽच्युतः सम्प्रहस्यच। इदं विष्णुर्महावाक्यं जगादपरमेश्वरः।।४४।।
योधयस्वमहाबाहोमयासार्धमशङ्कितः। तवाऽस्त्रैःपूर्यमाणोऽहंगच्छामिभवनंस्वकम्।।४५।।
तथेत्युक्त्वा तु वीरोऽसौ वीरभद्रो महाबलः। गृहीत्वा परमास्त्राणिसिंहनादैर्जगर्जह।।४६।।
विष्णुश्चाऽपिमहाघोषंशङ्खनादंचकारसः। तच्छुत्वा ये गतादेवारणंहित्वाऽऽययुःपुनः।।४७।।

गोविन्द का वाक्य सुनकर विनयावनत होकर महाबली वीरभद्र ने जनार्दन से कहा—"जैसे शिव हैं, वैसे आप हैं। मैं तो आप दोनों का किंकर हूं।" भगवान् अच्युत विष्णु ने वीरभद्र का यह कथन सुना तथा हंसते हुये यह महावाक्य कहा— "हे महाबली! निःशंक हो तुम मेरे साथ अवश्य युद्ध करो। मैं तुम्हारे अस्त्रों से आच्छन्न होकर अपने धाम गमन करूंगा।" वीरभद्र ने विष्णु का वचन सुनकर कहा—"ठीक है, यही हो!" उन्होंने परम उत्तम अस्त्र लेकर सिंहनाद किया तथा गर्जन करने लगे। तब विष्णु ने गम्भीर निर्घोष से शंखवादन किया। जो देवगण रणभूमि से पलायित हो गये थे, वे शंखनाद सुनकर लौट आये।।४२-४७।।

व्यूहं चक्रुस्तदा सर्वे लोकपालाः सवासवाः। तदेन्द्रेण हतो नन्दी वज्रेण शतपर्वणा।।४८।।
नन्दिना च हतः शक्रस्त्रिशूलेन स्तनान्तरे। वायुनाच हतो भृङ्गी भृङ्गिणा वायुराहतः।।४९।।
शूलेन सितधारेण संनद्धो दण्डधारिणा। यमेन सह संग्रामं महाकालो बलान्वितः।।५०।।
कुबेरेण च संगम्य कूष्माण्डानां पतिः स्वयम्। वरुणेन समं युद्धं मुण्डश्चैवमहाबलः।।५१।।
युयुधे परया शक्त्या त्रैलोक्यं विस्मयन्निव। नैर्ऋतेन समागम्य चण्डश्च बलवत्तरः।।५२।।
युयुधेपरमास्त्रेण नैर्ऋत्यं च विडम्बयन्। योगिनीचक्रसंयुक्तो भैरवो नायकोमहान्।।५३।।
विदार्य देवानखिलान्पपौ शोणितमद्भुतम्। क्षेत्रपालास्तथा चान्ये भूतप्रमथगुह्यकाः।
शाकिनी डाकिनी रौद्रा नवदुर्गास्तथैव च।।५४।।
योगिन्यो यातुधान्यश्च तथा कूष्माण्डकादयः।
नेदुः पपुः शोणितं च बुभुजुः पिशितं बहु।।५५।।
भक्ष्यमाणंतदासैन्यंविलोक्यसुरराट् स्वयम्। विहायनन्दिनंपश्चाद्वीरभद्रंसमाक्षिपत्।।५६।।

जब देवसेना हेतु इन्द्र ने लोकपालों के साथ मिलकर व्यूह निर्माण किया, तब इन्द्र ने अपने शतपर्व वज्र से नन्दी को आहत किया। तब नन्दी ने भी इन्द्र के स्तनान्तर पर त्रिशूल का आघात किया। वायु ने भृङ्गी को तथा भृङ्गी ने वायु को आहत किया। रुद्रपक्षीय महाकाल तीक्ष्ण धार वाला शूल लेकर देवपक्षीय दण्डधारी यम से युद्धरत हो गये। कुबेर के साथ कूष्माण्डपति तथा वरुण के साथ महाबली मुण्ड, बलवान् चण्ड निर्ऋति के साथ त्रैलोक्य को विस्मयापन्न करने वाला युद्ध करने लगे। योगिनी चक्र के साथ महान् भैरव नायक ने परमास्त्र प्रयोग से नैर्ऋत पक्ष को विताड़ित किया। वे समस्त देवबल को (देवसैन्य को) विदारित करके उनका रक्तपान करने लगे। क्षेत्रपाल, भूत, प्रमथ, शाकिनी, डाकिनी, रौद्रा, नवदुर्गा, योगिनी, यातुधानी तथा कूष्माण्डिका रणस्थल में गर्जन तथा रक्तपान करने लगीं। वे प्रचुर मात्रा में (उन मृत देव आदि का) मांस भक्षण करने लगीं। सुरराज इन्द्र ने अपनी सेना को खाया जाता देखकर नन्दी का त्याग कर दिया तथा वीरभद्र पर आक्रमण किया।।४८-५६।।

वीरभद्रो विहायैव विष्णुं देवेन्द्रमास्थितः। तयोर्युद्धमभूद्घोरं बुधाङ्गारकयोरिव।।५७।।
वीरभद्रंपदाशक्रो हन्तुकामस्त्वरान्वितः। तावच्छक्रं गजस्थं हि पूरयामास मार्गणैः।।५८।।
वीरभद्रो रुषाविष्टो दुर्निवार्यो महाबलः। तदेन्द्रेणाहतः शीघ्रं वज्रेण शतपर्वणा।।५९।।
सगजञ्च सवज्रं च वासवंगन्तुमुद्यतः। हाहाकारोमहानासीद् भूतानांतत्रपश्यताम्।।६०।।

वीरभद्र ने तब विष्णु को छोड़ दिया तथा देवेन्द्र के ऊपर चढ़ाई कर दिया। जैसे मंगल एवं बुधग्रह परस्पर

वैरी हैं, उसी प्रकार उन दोनों में युद्ध छिड़ गया। जैसे ही इन्द्र ने वीरभद्र को निहत करना चाहा, तभी वीरभद्र ने गज पर बैठे इन्द्र को बाणों के जाल से आच्छन्न कर दिया। महाबली क्रोध में भरकर अत्यन्त दुर्द्धर्ष हो गये। तब इन्द्र ने अपने शतपर्वा वज्र से उनको तत्काल आहत किया। वीरभद्र वज्र तथा ऐरावत हाथी के साथ इन्द्र के ग्रासार्थ उद्यत हो गये! यह दृश्य देखने वाले प्राणीगण महान् हाहाकार करने लगे।।५७-६०।।

वीरभद्रं तथाभूतं हन्तुकामं पुरन्दरम्। त्वरमाणस्तदा विष्णुर्वीरभद्राग्रतः स्थितः।।६१।।
शक्रं च पृष्ठतः कृत्वा योधयामास वै तदा। वीरभद्रस्य विष्णोश्च युद्धं परमभूत्तदा।।६२।।
शस्त्रास्त्रैर्विविधाकारैर्योधयामासतुस्तदा। पुनर्नन्दिनमालोक्य शक्रो युद्धविशारदः।।६३।।
द्वन्द्वयुद्धं सुतुमुलं देवानां प्रमथैः सह। प्रमथा मथिता देवैः सर्वे ते प्राद्रवद्रणात्।।६४।।

जब वीरभद्र पुरन्दर को एवंविध निहत करने हेतु उद्यत हो गये, तभी विष्णु अत्यन्त शीघ्रता से वीरभद्र के सामने आ गये तथा इन्द्र को अपने पीछे सुरक्षित करके वीरभद्र से स्वयं युद्धरत हो गये। इन दोनों के बीच अत्यन्त विषम युद्ध होने लगा। युद्धविद्या विशारद इन्द्र नन्दी को देखकर उनके साथ युद्धरत हो गये। अब पुनः देवगण तथा प्रमथगण के बीच तुमुल द्वन्द्वयुद्ध आरम्भ हो गया। देवताओं के हाथों प्रमथगण मथित होकर रण से पलायन कर गये।।६१-६४।।

गणान्पराङ्मुखान्दृष्ट्वासर्वेतेव्याधयो भृशम्। रुद्रकोपात्समुद्भूतादेवाश्चाऽपिप्रदुद्रुवुः।।६५।।
ज्वरैस्तु पीड़ितान्देवान्दृष्ट्वाविष्णुर्हसन्निव। जीवग्राहेण जग्राह देवांस्तांश्चपृथक्पृथक्।।६६।।
देवाश्विनौ तदाऽऽहूय व्याधीन्हन्तुं तदाभृतिम्।
ददौ ताभ्यां प्रयत्नेन गणयित्वा सुबुद्धिमान्।।६७।।

प्रमथगण को युद्ध से विमुख देखकर रुद्रकोप से उत्पन्न व्याधियां प्रादुर्भूत हो गयीं। उनको देखकर देवता भागने लगे। तब विष्णु ने ज्वरपीड़ित देवताओं को देखकर हंसते-हंसते ज्वरगण को पृथक्-पृथक् रूप से जीवग्राह किया। उन्होंने अश्विनीकुमारद्वय को वहां बुलाकर उनको व्याधिविनाशार्थ नियुक्त किया तथा विशेष-विचार द्वारा उनके लिए उपयुक्त तृप्ति विधान किया।।६५-६७।।

ज्वरांश्चसन्निपातांश्चअन्ये भूतद्रुहस्तदा। तान्सर्वान्निगृहीत्वाऽथअश्विनौतौमुदान्वितौ।
विज्वरानथ देवांश्च कृत्वा मुमुदतुश्चिरम्।।६८।।
तैर्जितं योगिनीचक्रं भैरवं व्याकुलीकृतम्। तीक्ष्णाग्रैः पातयामासुः शरैर्भूतगणानपि।।६९।।
सुरैर्विद्रावितं सैन्यं विलोक्य पतितं भुवि। वीरभद्रो रुषाविष्टो विष्णुंवचनमब्रवीत्।।७०।।

उन अश्विनीकुमारद्वय ने सन्निपात, ज्वर तथा अन्य भूतद्रोहीगण को निगृहीत करके आत्मसंतोष का लाभ किया। उन्होंने देवगण को ज्वररहित होने से हर्ष का अनुभव किया। व्याधिरहित देवताओं ने समस्त योगिनीचक्र को पराजित किया तथा भैरवगण को व्याकुल कर दिया। साथ ही तीक्ष्ण बाणवर्षा से भूतवृन्द को भूपतित किया। यह देखकर वीरभद्र क्रोधित होकर विष्णु से कहने लगे।।६८-७०।।

त्वं शूरोऽसिमहाबाहो! देवानांपालकोह्यसि। युध्यस्वमांप्रयत्नेनयदि ते मतिरीदृशी।।७१।।
इत्युक्त्वा तं समासाद्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम्। ववर्ष निशितैर्बाणैर्वीरभद्रोमहाबलः।।७२।।

तदा चक्रेण भगवान्वीरभद्रं जघान सः। आयान्तं चक्रमालोक्यग्रसितं तत्क्षणाच्चतत्॥७३॥
ग्रसितं चक्रमालोक्य विष्णुः परपुरञ्जयः। मुखंतस्य परामृज्य विष्णुनोद्गलितं पुनः॥७४॥
स्वचक्रमादाय महानुभावो दिवंगतोऽक्षो भुवनैकभर्त्ता।
ज्ञात्वा च तत्सर्वमिदं च विष्णुः कृती कृतं दुष्प्रसहं परेषाम्॥७५॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीति साहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे वीरभद्रादीनां विष्ण्वादिभिः सह युद्धवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

वीरभद्र कहते हैं—हे महाबाहो! आप शूर तथा देवताओं के पालक हैं। तब आप मुझसे युद्ध करिये। महाबली वीरभद्र ने सर्वेश्वर विष्णु से यह कह कर घनघोर बाण वर्षा करने लगे। तब विष्णु ने वीरभद्र के प्रति चक्र निःक्षेप किया। तब चक्र आते देखकर वीरभद्र ने उसे निगल लिया। परपुर विजयी विष्णु ने अपने चक्र को निगला जाते देखकर अपने हाथों से वीरभद्र के गले से उस चक्र को बलपूर्वक निकाल कर उसका उद्धार किया। भुवनैक पालक महानुभाव विष्णु ने अपना चक्र लिया तथा युद्ध त्याग कर स्वर्ग चले गये। वे प्रभु कृती हैं। सब कुछ उनको ज्ञात है। तब भी युद्ध में अनेक असाध्य कार्य उन्होंने किया था॥७१-७५॥

॥चतुर्थ अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

पञ्चमोऽध्यायः

वीरभद्र द्वारा दक्ष शिरच्छेद

लोमश उवाच

विष्णौ गते तदा सर्वे देवाश्च ऋषिभिः सह। विनिर्जिता गणैः सर्वे ये च यज्ञोपजीविनः॥१॥
भृगुञ्च पातयामास श्मश्रूणां लुञ्चनं कृतम्। द्विजांश्चोत्पाटयामास पूष्णो विकृतविक्रियान्॥२॥
विडम्बिता स्वधा तत्र ऋषयश्चविडम्बिताः। वघृषुस्ते पुरीषेणवितानाग्नौरुषान्विताः॥३॥
अनिर्वाच्यं तदाचक्रुर्गणाः क्रोधसमन्विताः। अन्तर्वेद्यन्तरगतो दक्षो वै महतो भयात्॥४॥
तं निलीनं समाज्ञाय आनिनाय रुषान्वितः। कपोलेषु गृहीत्वा तं खड्गेनोपहतंशिरः॥५॥

लोमश कहते हैं—जैसे ही विष्णु ने स्वर्ग प्रस्थान किया, तब प्रमथगण ने यज्ञोपजीवी समस्त देवगण को पराजित कर दिया। उन्होंने भृगुऋषि को भूमि पर गिराकर उनकी मूंछें उखाड़ लिया। तब उस यज्ञक्षेत्र में प्रमथगण ने पूषा के दांत उखाड़ा, स्वधा को विडम्बित किया तथा ऋषिगण को भी लांछित किया। प्रथमों ने क्रोधाविष्ट होकर वैतानाग्नि के अन्दर मलोत्सर्ग करके उसे अपवित्र किया। वहां रुद्रगण प्रमथों ने क्रोधित होकर जो-जो कार्य किया,

वे अनिर्वचनीय हैं। दक्ष प्रजापति तब अत्यन्त भयभीत होकर यज्ञवेदी के भीतर छिप गया। वीरभद्र यह जान गये तथा उन्होंने क्रोध से भरकर उसको वहां से खींच कर निकाला। उन्होंने उसका कपाल पकड़ कर सिर काट दिया।।१-५।।

अभेद्यं तच्छिरो मत्वा वीरभद्रः प्रतापवान्।
स्कन्धं पद्भ्यां समाक्रम्य कन्धरेऽपीडयत्तदा॥६॥
कन्धरात्पाट्यमानाच्च शिरश्छिन्नं दुरात्मनः। दक्षस्य च तदा तेन वीरभद्रेणधीमता।
तच्छिरः सुहुतं कुण्डे ज्वलिते तत्क्षणात्तदा॥७॥
ये चान्ये ऋषयो देवाः पितरो यक्षराक्षसाः। गणैरुपद्रुताः सर्वे पलायनपरा ययुः॥८॥
चन्द्रादित्यगणाः सर्वे ग्रहनक्षत्रतारकाः। सर्वे विचलिताह्यासन् गणैस्तेऽपिह्युपद्रुताः॥९॥

प्रतापी वीरभद्र ने उस शिर को अभेद्य देखकर पैरों का प्रहार किया तथा कंधे पर रखकर पीसने लगे। कन्धे से पीसे जाने पर दुरात्मा दक्ष का मस्तक छिन्न हो गया। तब धीमान् वीरभद्र ने उस मस्तक को ज्वलित अग्निकुण्ड में फेंक दिया। वहां जो सब देव, ऋषि, पितर, यक्ष, राक्षस थे, वे सब प्रमथगण के उपद्रव के कारण वहां से भाग चले। किम्बहुना, प्रमथों के उपद्रव के कारण चन्द्र-आदित्य, ग्रह-नक्षत्र, तारक आदि विचलित हो उठे।।६-९।।

सत्यलोकंगतो ब्रह्मा पुत्रशोकेन पीडितः। चिन्तयामासचाव्यग्रः किं कार्यंकार्यमद्यवै॥१०॥

अब पुत्रशोक (दक्षवध) से पीड़ित ब्रह्मा अपने सत्यलोक चले गये। वहां जाकर वे अविचलित चित्त से चिन्तन करने लगे कि अब मेरा कार्य क्या होगा?।।१०।।

मनसा दूयमानेन शं न लेभे पितामहः। ज्ञात्वा सर्वं प्रयत्नेन दुष्कृतं तस्य पापिनः॥११॥
गमनाय मतिं चक्रे कैलासं पर्वतं प्रति। हंसारूढ़ो महातेजाः सर्वदेवैः समन्वितः॥१२॥
प्रविष्टः पर्वतश्रेष्ठं स ददर्श सदाशिवम्। एकान्तवासिनं रुद्रं शैलादेन समन्वितम्॥१३॥
कपर्दिनं श्रियायुक्तंवेदाङ्गानां च दुर्गमम्। तथाविधं समालोक्यब्रह्माक्षोभपरोऽभवत्॥१४॥
दण्डवत्पतितो भूमौ क्षमापयितुमुद्यतः। संस्पृशं तत्पदाब्जं च चतुर्मुकुटकोटिभिः।
स्तुतिं कर्तुं समारेभे शिवस्य परमात्मनः॥१५॥

तब पितामह ने पापी दक्ष के सभी दुष्कृत्य को समझ लिया। तब दुःखपूर्ण मन के कारण उनको किसी प्रकार से भी शान्ति नहीं मिल पा रही थी। वे कैलाश जाने का विचार करने लगे। महातेजस्वी ब्रह्मा सुरगण से परिवृत होकर हंस पर बैठे तथा पर्वतश्रेष्ठ कैलास पर पहुंचे। वहां उन्होंने अविलम्ब सदाशिव को देखा। वे एकान्त में स्थित थे। वे कपर्दी, श्रीमान् हैं तथा वेद-वेदाङ्ग द्वारा भी नहीं जाने जा सकते। ब्रह्मा उनको इस अवस्था में देखकर क्षुब्ध हो गये। ब्रह्मा उनके समक्ष भूतल पर दण्डवत् होकर गिर पड़े। इस प्रकार उनकी प्रसन्नता प्राप्त करने हेतु, अपने मुकुट की कोटि द्वारा उनके चरण कमल का स्पर्श किया। तदनन्तर वे परमात्मा शिव की स्तुति करने लगे।।११-१५।।

ब्रह्मोवाच

नमो रुद्राय शान्तायब्रह्मणेपरमात्मने। त्वं हि विश्वसृजांस्त्रष्टा धाता त्वं प्रपितामहः॥१६॥

नमो रुद्राय महते नीलकण्ठाय वेधसे। विश्वाय विश्वबीजाय जगदानन्दहेतवे॥१७॥
ओङ्कारस्त्वं वषट्कारः सर्वारम्भप्रवर्त्तकः। यज्ञोऽसि यज्ञकर्माऽसियज्ञानांचप्रवर्त्तकः॥१८॥
सर्वेषां यज्ञकर्तृणां त्वमेव प्रतिपालकः। शरण्योऽसिमहादेव! सर्वेषां प्राणिनां प्रभो।
रक्ष रक्ष महादेव! पुत्रशोकेन पीडितम्॥१९॥

ब्रह्मा कहते हैं—जो रुद्र शान्त, ब्रह्म, परमात्मा हैं, उनको प्रणाम करता हूं। हे देव! आप विश्व के स्रष्टागण के भी स्रष्टा हैं। आप विधाता तथा प्रपितामह हैं। आप रुद्र, महान् नीलकण्ठ, वेधा, विश्व, विश्वबीज तथा जगदानन्द कारण हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं। आप ओङ्कार, वषट्कार, सर्वारम्भ प्रवर्त्तक हैं। आप यज्ञ, यज्ञकर्म, यज्ञसमूह के प्रवर्त्तक, समस्त यज्ञकर्त्तागण के प्रतिपालक भी हैं। हे महादेव, हे प्रभु! आप समस्त प्राणीगण को शरण देने वाले हैं। हे महादेव! मैं पुत्रशोकार्त्त हूं। आप मेरी रक्षा करें। मेरी रक्षा करें।।१६-१९।।

महादेव उवाच

शृणुष्वाऽवहितोभूत्वामम वाक्यं पितामह!।
दक्षस्ययज्ञभङ्गोऽयंनकृतश्चमयाक्वचित् ॥२०॥
स्वीयेन कर्मणा दक्षो हतो ब्रह्मन्न संशयः॥२१॥
परेषां क्लेशदं कर्म न कार्यं तत्कदाचन। परमेष्ठिन् परेषां यदात्मनस्तद्भविष्यति॥२२॥

महादेव कहते हैं—हे पितामह! आप एकाग्रता से मेरा वाक्य सुनें। मैंने दक्षयज्ञ ध्वंस नहीं किया था। हे ब्रह्मन्! अपने कर्मानुसार ही दक्ष मारा गया। इसमें सन्देह नहीं है। तभी कहा है कि अन्य को कष्ट देने वाला कर्म कदापि न करें। हे परमेष्ठिन्! दूसरे को जो दिया जाता है, वह स्वयं को ही मिलता है।।२०-२२।।

एवमुक्त्वा तदा रुद्रो ब्रह्मणा सहितः सुरैः। ययौ कनखलं तीर्थं यज्ञवाटं प्रजापतेः॥२३॥
रुद्रस्तदा ददर्शाऽथ वीरभद्रेण यत्कृतम्। स्वाहा स्वधा तथा पूषा भृगुर्मतिमताम्बरः॥२४॥
तदाऽन्यऋषयः सर्वे पितरश्च तथाविधाः। येऽन्ये च बहस्तत्र यक्षगन्धर्वकिन्नराः॥२५॥
त्रोटिता लुञ्चिताश्चैव मृताः केचिद्रणाजिरे॥२६॥

रुद्रदेव के यह कहने पर सभी लोग ब्रह्मा तथा देवगण प्रजापति दक्ष के यज्ञस्थल कनखल गये। रुद्रदेव ने वहां वीरभद्र द्वारा किये गये यज्ञ विध्वंस कार्य को देखा। वे देखते हैं कि स्वाहा, स्वधा, पूषा, धीमान् भृगु ऋषि तथा अन्य ऋषि, समस्त पितृपुरुष तथा यक्ष, गन्धर्व, किन्नरगण में से अनेक आहत चूर्णीकृत हैं तथा अनेक रणांगण में मृत भी पड़े हैं।।२३-२६।।

शम्भुं समागतं दृष्ट्वा वीरभद्रो गणैः सह। दण्डप्रणामसंयुक्तस्तस्थावग्रे सदाशिवम्॥२७॥
दृष्ट्वा पुरःस्थितं रुद्रो वीरभद्रं महाबलम्। उवाच प्रहसन्वाक्यं किं कृतं वीरनन्विदम्॥२८॥
दक्षमानय शीघ्रं भो येनेदं कृतमीदृशम्। यज्ञे विलक्षणं तात यस्येदं फलमीदृशम्॥२९॥
एवमुक्तः शङ्करेण वीरभद्रस्त्वरान्वितः। कबन्धमानयित्वाऽथ शम्भोरग्रे तदाक्षिपत्॥३०॥

तभी प्रमथों से घिरे वीरभद्र ने शम्भुदेव को आया देखकर उनको दण्डवत् प्रणाम किया तथा उनके

निकट बैठ गये। रुद्रदेव शिव ने महाबली वीरभद्र को सम्मुख देखकर सहास्य मुद्रा से उनसे कहा—"हे वीर! तुमने यह क्या किया? हे तात! जिसने यज्ञ में विसदृश व्यवस्था करके ऐसे विषम फल को पाया है, उस दक्ष को शीघ्र यहां लाओ।" शंकर का यह कथन सुनकर वीरभद्र ने शीघ्रता से दक्ष का कबन्ध (धड़) वहां लाकर रख दिया।।२७-३०।।

तदोक्तः शङ्करेणैव वीरभद्रो महामनाः। शिरः केनापनीतं च दक्षस्याऽस्य दुरात्मनः॥३१॥
दास्यामि जीवनं वीर कुटिलस्याऽपि चाधुना। एवमुक्तः शङ्करेण वीरभद्रोऽब्रवीत्पुनः॥३२॥
मया शिरोहुतंचाग्नौतदानीमेव शङ्कर!। अवशिष्टं शिरःशम्भो पशोश्च विकृताननम्॥३३॥
इतिज्ञात्वा ततोरुद्रःकबन्धोपरिचाक्षिपत्। शिरः पशोश्चविकृतं कूर्चयुक्तं भयावहम्॥३४॥
स दक्षो जीवितं लेभे प्रसादाच्छङ्करस्यच। सदृष्ट्वाऽग्रे तदारुद्रं दक्षोलज्जासमन्वितः।
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा शङ्करं लोकशङ्करम्॥३५॥

तब शंकर ने महामना वीरभद्र से कहा—"इस दुरात्मा दक्ष का मस्तक कौन हर ले गया? हे वीर! भले ही दक्ष कुटिल प्रकृति था, तथापि मैं उसे जीवन प्रदान करूंगा।" शंकर का यह वचन सुनकर वीरभद्र ने कहा—"हे शंकर! मैंने दक्ष के मस्तक की आहुति तभी अग्नि में प्रदान कर दिया था। हे शम्भु! अब पशु के विकृत चेहरे बचे हैं।" रुद्रदेव ने यह घटना जान कर दक्ष के कबन्ध (धड़) के ऊपर पशु का कूर्चयुक्त विकृत भीषण मस्तक स्थापित किया। शंकर की कृपा से दक्ष को पुनर्जीवन प्राप्त हो गया! दक्ष ने अपने सामने रुद्र को देखकर लज्जित भाव से प्रणामोपरान्त लोकमंगलकारी शंकर की स्तुति प्रारम्भ कर दिया।।३१-३५।।

दक्ष उवाच

नमामि देवं वरदं वरेण्यं नमामि देवेशवरं सनातनम्।
नमामि देवाधिपमीश्वरं हरं नमामि शम्भुं जगदेकबन्धुम्॥३६॥
नमामि विश्वेश्वर! विश्वरूपं सनातनं ब्रह्म निजात्मरूपम्।
नमामि सर्वं निजभावभावं वरं वरेण्यं वरदं नतोऽस्मि॥३७॥

दक्ष कहता है—मैं वरद,, वरेण्य, देवेश, सनातन शिव को प्रणाम करता हूं। जो देवों के स्वामी, ईश्वर, हर, जगदेक बन्धु, शम्भु हैं, उनको प्रणाम! जो विश्वेश्वर, विश्वरूप, सनातन, स्वस्वरूप ब्रह्म हैं, उनको प्रणाम! जो सर्व हैं, अपने आपमें अपने ही भाव से भावित हैं, जो वरेण्य तथा वर देने वाले हैं, मैं उनके चरणों में प्रणत होता हूं।।३६-३७।।

लोमश उवाच

दक्षेण संस्तुतो रुद्रो बभाषे प्रहसन्नहः॥३८॥

लोमश कहते हैं—दक्ष के स्तव से सन्तुष्ट होकर शंकर हास्यपूर्वक उनसे कहने लगे।।३८।।

हर उवाच

चतुर्विधाभजन्तेमांजनाः सुकृतिनः सदा। आर्तोजिज्ञासुरर्थार्थीज्ञानी च द्विजसत्तम!॥३९॥

तस्मान्मेज्ञानिनःसर्वेप्रियाःस्युर्नाऽत्रसंशयः। विनाज्ञानेनमांप्राप्तुंयतन्तेतेहिबालिशाः॥४०॥
केवलं कर्मणा त्वं हि संसारात्तर्तुमिच्छसि॥४१॥
न वेदैश्चनदानैश्च नयज्ञैस्तपसाक्वचित्। न शक्नुवन्तिमांप्राप्तुंमूढ़ाः कर्मवशा नराः॥४२॥
तस्माज्ज्ञानपरोभूत्वाकुरुकर्म्मसमाहितः। सुखदुःखसमो भूत्वासुखीभव निरन्तरम्॥४३॥

शंकर कहते हैं—हे दक्ष! इस संसार में आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी तथा ज्ञानी, चतुर्विध सुकृतिशाली लोग सदा मेरी सेवा करते हैं। इनमें से ज्ञानी मेरे सर्वाधिक प्रिय पात्र हैं, इसमें सन्देह नहीं है। जो ज्ञान के बिना मुझे पाने का प्रयत्न करते हैं, वे मूर्ख हैं। तुमने केवल कर्म द्वारा संसार सागर को पार करने का प्रयत्न किया था। देखो! कर्मफल लालसा से मूढ़ बने मनुष्य वेदपाठ, दान, यज्ञ, तप आदि के द्वारा मुझे कभी भी प्राप्त नहीं कर सकते। तभी तुम अब ज्ञाननिष्ठ होकर सावधानी पूर्वक कर्म करो। सुख-दुःख में तुम्हारा समान भाव बना रहे। तुम इस प्रकार से सर्वदा सुखी रहो।।३९-४३।।

लोमश उवाच

उपदिष्टस्तदा तेन शम्भुनापरमेष्ठिना। दक्षं तत्रैवसंस्थाप्यययौ रुद्रः स्वपर्वतम्॥४४॥
ब्रह्मणाऽपितथासर्वेभृग्वाद्याश्चमहर्षयः। आश्वासिताबोधिताश्चज्ञानिनश्चाऽभवन्क्षणात्॥४५॥
गतः पितामहो ब्रह्मा ततश्च सदनं स्वकम्॥४६॥

लोमश कहते हैं—परमेष्ठी शम्भु इस प्रकार से दक्ष को उपदेश देकर दक्ष को वहां स्थापित करके कैलास पर्वत की ओर चले गये। तब ब्रह्मा ने भृगु आदि महर्षिगण को आश्वस्त किया। तदनन्तर उनको प्रबोधित किया। इससे वे सभी उसी समय से ब्रह्मज्ञानी हो गये। तब पितामह ब्रह्मा भी अपने निवास स्थल चले गये।।४४-४६।।

दक्षोऽपिच स्वयं वाक्यात्परंबोधमुपागतः। शिवध्यानपरोभूत्वातपस्तेपे महामनाः॥४७॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संसेव्यो भगवाञ्छिवः॥४८॥
सम्मार्जनंचकुर्वन्तिनराये च शिवाङ्गणे। ते वै शिवपुरंप्राप्यजगद्वन्द्या भवन्ति च॥४९॥
ये शिवाय प्रयच्छन्तिदर्प्पणंसुमहाप्रभम्। भविष्यन्तिशिवस्याग्रेपार्षदत्वेन ते नराः॥५०॥
चामराणि प्रयच्छन्तिदेवदेवस्यशूलिनः। चामरैर्वीज्यमानास्तेभविष्यन्ति जगत्त्रये॥५१॥
दीपदानं प्रयच्छन्ति महादेवालये नराः। तेजस्विनोभविष्यन्ति ते त्रैलोक्ये प्रदीपकाः॥५२॥

दक्ष को तभी से शिववाक्य द्वारा परम बोध की प्राप्ति हो गयी। वे तभी से शिवध्यान में निमग्न होकर तपस्या करने लगे। अतः सर्वप्रयत्न से भगवान् शिव की सेवा को कर्त्तव्य बनाये। जो मनुष्य शिवमन्दिर को मार्जित स्वच्छ करता है, वह शिवपुर प्राप्त करके जगत् निवासीगण का वन्दनीय हो जाता है। जो शिव को निर्मल दर्पण प्रदान करता है, वह शिव के पास उनका पार्षद होकर विराजित हो जाता है। जो देवदेव शूलपाणि हेतु चामर दान करता है, वह मृत्यु के उपरान्त तीनों लोक में चामर द्वारा सेवित होता है। जो मनुष्य शिव मन्दिर में दीप दान करता है, वह तेजस्वी होकर त्रैलोक्य का प्रदीप हो जाता है।।४७-५२।।

धूपं ये वै प्रयच्छन्तिशिवायपरमात्मने। यशस्विनोभविष्यन्ति उद्धरन्ति कुलद्वयम्॥५३॥
नैवेद्यं ये प्रयच्छन्तिभक्त्या हरिहराग्रतः। सिक्थेसिक्थेक्रतुफलंप्राप्नुवन्तिहितेनराः॥५४॥
भग्नंशिवालयं ये च प्रकुर्वन्तिनरोत्तमाः। प्राप्नुवन्तिफलं ते वै द्विगुणंनात्र संशयः।
नूतनं ये प्रकुर्वन्ति इष्टकैरश्मनाऽपि वा॥५५॥
स्वर्गेहितेप्रमोदन्तेयावत्तिष्ठति निर्मलम्। यशो भूमौद्विजश्रेष्ठानात्रकार्या विचारणा॥५६॥

जो परमात्मा शिव को धूप प्रदान करते हैं, वे यशस्वी होकर मातृकुल तथा पितृकुल का उद्धार कर देते हैं। जो भक्ति के साथ हरि-हर को नैवेद्य प्रदान करते हैं, उनको पग-पग पर यज्ञफल प्राप्त होता है। जो भग्न शिवालय का जीर्णोद्धार कराते हैं, उनको (निर्माण कराने वाले से) द्विगुण फल की प्राप्ति होती है। जो ईंट अथवा पत्थर से नये शिवालय का निर्माण कराते हैं, वे स्वर्ग में विहार करते हैं। हे द्विजप्रवरगण! उनका निर्मल यश चिरकाल पर्यन्त पृथिवी पर विराजमान रहता है, इसमें तनिक सन्देह नहीं है।।५३-५६।।

कारयन्ति च येविप्राःप्रासादंबहुभूमिकम्। शिवस्याथमहाप्राज्ञाःप्राप्नुवन्तिपरांगतिम्॥५७॥
शुद्धंधवलितंये च कुर्वन्तिहरमन्दिरम्। स्वीयं परकृतंचाऽपितेऽपियान्तिपरां गतिम्॥५८॥
वितानं येप्रयच्छन्तिनराःसुकृतिनोऽपि हि। तारयन्तिकुलंकृत्स्नंशिवलोकंगताःपुनः॥५९॥

जो महाप्राज्ञ व्यक्ति शिव के लिए विस्तृत भूमि में प्रासाद बनवाते हैं, उनको परमगति प्राप्त होती है। जो स्वयं बनाये अथवा अन्य के द्वारा बनाये गये शिव मन्दिर को चूना-सफेदी इत्यादि विलेपन द्वारा धवल बनाये रखते हैं, उनको परमगति प्राप्त होती है। जो सुकृति मनुष्य शिव हेतु वितान प्रदान करते हैं, वे अपने कुल को तारकर शिवलोक जाते हैं।।५७-५९।।

येचनादमयींघण्टांनिबध्नन्तिशिवालये। तेजस्विनःकीर्तिमन्तोभविष्यन्तिजगत्त्रयें॥६०॥
एककालंद्विकालंवात्रिकालंचानुपश्यति। आढ्योवाऽपिदरिद्रोवासुखंदुःखात्प्रमुच्यते॥६१॥
श्रद्धावान्भजतेयो वा शिवायपरमात्मने। कुलकोटिं समुद्धत्यशिवेनसहमोदते॥६२॥
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासंपुरातनम्। ऐन्द्रद्युम्नेश्च सम्वादं यमस्य च महात्मनः॥६३॥

जो शिवालय में घण्टा लगवाते हैं, वे तीनों लोकों में तेजस्वी तथा कीर्तिशाली हो जाते हैं। जो दिन में एक बार-दो बार अथवा तीन बार शिवदर्शन करते हैं, वे आड्य (धनी) अथवा दरिद्र क्यों न हों, उनकी चिरकालीन दुःख से मुक्ति हो जाती है। जो श्रद्धालु व्यक्ति महात्मा शिव के प्रति भक्तियुक्त है, वह अपनी करोड़ों पीढ़ी का उद्धारक होकर शिव के साथ विहार करता है। इस सम्बन्ध में यम तथा इन्द्रद्युम्न पुत्र के सम्बन्ध में घटित एक इतिहास उदाहरणार्थ उल्लिखित है।।६०-६३।।

पुरा कृतयुगे ह्यासीदिन्द्रसेनोनराधिपः। प्रतिष्ठानाधिपो वीरोमृगयारसिकः सदा॥६४॥
अब्रह्मण्यः सदाक्रूरः केवलासुतृपः सदा। परप्राणैर्निजप्राणान्पुष्णातिस खलःसदा॥६५॥
परस्त्रीलम्पटोऽत्यन्तंपरद्रव्येषुलोलुपः। ब्राह्मणाघातितास्तेन सुरापश्च निरन्तरम्॥६६॥

प्राचीन काल में सत्ययुग में इन्द्रसेन नामक राजा प्रतिष्ठानपुरी का अधिपति था। वह वीर, सतत् शिकार करने वाला, अब्रह्मण्य, क्रूर, सदा आत्मतृप्ति में लगा तथा नियत दुष्ट स्वभाव वाला था। यह अन्य के प्राणों द्वारा

अपने प्राण का पोषण करता था। वह नितान्त परनारी लम्पट तथा परद्रव्य के प्रति लोलुप था। वह ब्राह्मणों का हत्यारा तथा अत्यन्त मद्यप भी था।।६४-६६।।

गुरुतल्पगतोऽत्यर्थं सदा सौवर्णतस्करः। तथाभूतानुगाः सर्वे राज्ञस्तस्यदुरात्मनः॥६७॥
एवं बहुविधं राज्यं चकार स दुरात्मवान्। ततःकालेन महतापञ्चत्वं प्राप दुर्मतिः॥६८॥
तदायाम्यैश्चनीतोऽसाविन्द्रसेनो दुरात्मवान्। यमान्तिकमनुप्राप्तस्तदाराजा सकल्मषः॥६९॥
यमेन दृष्टस्तत्रासाविन्द्रसेनोऽग्रतःस्थितः। अभ्युत्थानपरोभूत्वाननामशिरसाशिवम्॥७०॥
दूतान् सम्भर्त्सयामास यमो धर्मभृतांवरः। पाशैर्बद्धं चेन्द्रसेनं मुक्त्वाप्रोवाचधर्मराट्॥७१॥

इसे गुरुपत्नीगमन में भी कोई संकोच नहीं था। स्वर्ण अपहरण को भी वह त्रुटिपूर्ण कर्म नहीं मानता था। इस दुरात्मा राजा के जो सब अनुचर तथा सहचर थे, सभी उसी की तरह दुरात्मा थे। यह दुर्वृत्त राजा इस प्रकार से गर्हित वृत्ति का आश्रय लेकर दीर्घकाल पर्यन्त राज्य करता रहा। अन्त में कालक्रमेण वह दुर्मति मृत हो गया। तत्पश्चात् यमदूत उस दुर्वृत्त राजा को यमपुरी ले गये। पापी इन्द्रसेन को यम के समक्ष लाया गया। उसकी ओर देखकर धर्मधारी लोगों के वरेण्य यम उठे तथा उन्होंने शिव को प्रणाम करके यमदूतों को बुरा भला कहा। पाशबद्ध चन्द्रसेन को बन्धनमुक्त करके उससे धर्मराज कहने लगे।।६७-७१।।

गच्छ पुण्यतमाँल्लोकान्भुङ्क्ष्व राजन्यसत्तम!।
यावदिन्द्रश्च नाकेऽस्ति यावत्सूर्यो नभस्तले॥७२॥
पञ्चभूतानियावच्चतावत्त्वंचसुखीभव। सुकृती त्वं महाराजशिवभक्तोऽसि नित्यदा॥७३॥

यमराज कहते हैं—हे राजन्! जाओ! तुम जाकर समस्त पुण्यलोक का भोग करो। जब तक जगत् के आकाश में चन्द्र-सूर्य की सत्ता रहेगी, तब तक तुम पुण्यलोकों में रहो। हे महाराज! तुम नित्य शिवभक्त तथा सुकृती हो।।७२-७३।।

यमस्य वचनंश्रुत्वा इन्द्रसेनोऽभ्यभाषत। अहं शिवं न जानामिमृगयारसिकोह्यहम्॥७४॥
तच्छुत्वा वचनं तस्ययमो भाष्यमभाषत। आहर प्रहरस्वेति उक्तं चेदं सदा त्वया॥७५॥
तेन कर्मविपाकेनसदापूतोऽसिमानद!। तस्मात्त्वंगच्छकैलासपर्वतंशङ्करम्प्रति॥७६॥

यम का वचन सुनकर इन्द्रसेन ने कहा—शिव कौन हैं, मैं नहीं जानता, मैं तो सतत् मृगया करता रहता था। यम ने उनकी बात सुनकर प्रत्युत्तर में कहा—तुम अपने राजत्व काल में सदा आहर-प्रहर प्रभृति शब्द कहा करते थे। इस प्रकार तुम्हारे मुख से 'हर' यह नाम उच्चारित होता था। इससे तुम पवित्र हो गये। हे मानद! तुम कैलास पर्वत पर शंकर के पास जाओ।।७४-७६।।

एवं सम्भाषमाणस्य यमस्य च महात्मनः। आगताः शिवदूतास्ते वृषारूढा महाप्रभाः॥७७॥
नीलकण्ठाः दशभुजाःपञ्चवक्त्रास्त्रिलोचनाः।
कपर्द्दिनःकुण्डलिनःशशाङ्काङ्कितमौलयः ॥७८॥
तान्दृष्ट्वा सहसोत्थाय यमो धर्मभृतांवरः। पूजयामास तान्सर्वान्महेन्द्रप्रतिमांस्तदा॥७९॥

त्वरितेनैव ते सर्वे ऊचुर्वैवस्वतं यमम्। अत्रागतो महाभाग इन्द्रसेनोऽमितद्युतिः।
नाम्नः प्रवर्तको नित्यं रुद्रस्य च महात्मनः॥८०॥

महात्मा इस प्रकार वार्त्तालाप कर ही रहे थे कि वहां शिवदूतगण पहुंच गये। ये सभी शिवदूत वृष पर आरूढ़, महा तेजस्वी, नीलकण्ठ, दशभुज, पंचशिर वाले, त्रिनेत्र, कपर्दी, कुण्डली थे। सबके शिर पर चन्द्रमा विराजित थे। धर्मधारी गण के वरेण्य यम ने इन महेन्द्र के समान रूप वाले शिवदूतों को देखकर तत्क्षण उठ कर पूजन किया। तभी वे सब सूर्यपुत्र यम से कहने लगे—"हे महाभाग! जो नित्य महात्मा रुद्र का नाम कीर्त्तन करते थे, वे अमितद्युति महात्मा इन्द्रसेन यहां आये हैं क्या?"।।७७-८०।।

श्रुत्वा च वचनंतेषां यमेन च पुरस्कृतः। इन्द्रसेनोविमानस्थःप्रेषितो हि शिवालयम्॥८१॥
आनीतोऽयं तदातैश्च पार्षदप्रवरोत्तमैः। शम्भुना हि तदा दृष्ट इन्द्रसेनोऽमितद्युतिः॥८२॥
अभ्युत्थायागतोरुद्रः परिष्वज्यतदानृपम्। अर्द्धासनगतंकृत्वाइन्द्रसेनं ततोऽब्रवीत्॥८३॥
किं दातव्यंनृपश्रेष्ठ! प्रयच्छामि तवेप्सितम्। इति श्रुत्वावचस्तस्यमहेशस्यतदा नृपः।
आनन्दाश्रुकणान्मुंचन्प्रेम्णा नोवाच किञ्चन॥८४॥
तदाकृतोमहेशेनपार्षदोहिमहात्मना। चण्डोनाम्नाचविख्यातोमुण्डस्य च सखाप्रियः॥८५॥

उन शिवगणों का वचन सुनकर यम ने उन इन्द्रसेन को आगे किया तथा विमान द्वारा शिव के पास भेजा। जब शम्भु के प्रधान-प्रधान पारिषद इन अमित तेजस्वी इन्द्रसेन को लाये, तब शम्भु ने उसको देखते ही उठ कर आलिंगन किया तथा अपने आधे आसन पर बैठा कर कहा—"हे राजन्! तुम्हें मैं क्या वांछित वस्तु प्रदान करूं?" वह राजा महादेव का कथन सुनकर आनन्दाश्रु छलकाते प्रेम में भरकर कुछ भी न कह सका, तब महेश्वर ने उसे अपने पार्षदों में स्थान प्रदान किया। यहां वह चण्ड नामक शिवपार्षद बना, जो शिवगण मुण्ड का प्रिय सखा था।।८१-८५।।

नामोच्चारणमात्रेण रुद्रस्य परमात्मनः। सिद्धिम्प्राप्तो हि पापिष्ठइन्द्रसेनोनराधिपः॥८६॥
हरे हरेति वै नाम्ना शम्भोश्चक्रधरस्यच। रक्षिता बहवोमर्त्याः शिवेन परमात्मना॥८७॥
महेशान्नापरो देवो दृश्यते भुवनत्रये। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूजनीयः सदाशिवः॥८८॥
पत्रैः पुष्पैःफलैर्वाऽपि जलैर्वा विमलैः सदा।
करवीरैःपूज्यमानः शङ्करोवरदोभवेत्॥८९॥
करवीराद्दशगुणामर्कपुष्पं विशिष्यते। विभूत्यादिकृतं सर्वं जगदेतच्चराचरम्॥९०॥
शिवस्याङ्गणलग्नायातस्मात्तांधारयेत्सदा। ततस्त्रिपुण्ड्रेयत्पुण्यंतच्छृणुध्वंद्विजोत्तमाः॥९१॥

इस प्रकार से पापात्मा राजा इन्द्रसेन ने (अज्ञानतः ही सही) रुद्र का नामोच्चारण करके सिद्धि प्राप्त किया। हे हर! हे हरे, शम्भु तथा चक्रधर, ये नामोच्चार करने से परमात्मा शिव द्वारा अनेक मनुष्यों की रक्षा की गयी है। इस त्रिभुवन में महेश की अपेक्षा किसी श्रेष्ठ देवता को नहीं देखा गया, इसलिए सर्व प्रयत्नपूर्वक एकमात्र सदाशिव का ही पूजन करे। पत्र-पुष्प-फल-विमल जल तथा कनेर से शंकर पूजन द्वारा वे वरद हो जाते हैं। कनेर से मदार पुष्प की १० गुनी महिमा है। यह चराचर समस्त जगत् शिवविभूति से निर्मित है।

यह विभूति (भस्म) सदा शिव के अंगों से युक्त रहती है। अतः यह सर्वदा वरणीय है। इसी प्रकार से त्रिपुण्ड्र धारण द्वारा समस्त पापों का नाश होता है तथा पुण्य उदित होता है।।८६-९१।।

सर्वपापहरं पुण्यं तच्छृणुध्वंद्विजोत्तमाः। स्तेनः कोऽपि महापापोघातितोराजदूतकैः॥९२॥
तं खादितुंसमायातःश्वाशिरस्युपरि स्थितः। नखान्तरालसंलग्नारक्षातस्यैव पापिनः॥९३॥
ललाटे पतिता तस्य त्रिपुण्ड्राङ्कितमुद्रया। चैतन्येन विनातस्य देहमात्रैकलग्नया॥९४॥
कैलासं तस्करो नीतो रुद्रदूतैस्ततस्तदा। विभूतेर्महिमानं तु को विशेषितुमर्हति॥९५॥

हे द्विजोत्तमगण! जो इस विभूति से त्रिपुण्ड्र लगाता है, उसका जो पुण्यसंचय है, उसे सुनें। एक बार एक अत्यन्त पापी तस्कर राजरक्षकों द्वारा मारा गया। इस मारे गये तस्कर का मांस खाने के लिए आया एक कुत्ता उसके मस्तक पर चढ़ गया, तब इस कुत्ते के नखों में लगी धूलरेखा उस शव के मस्तक पर त्रिपुण्ड्र ऐसी लग गयी। मात्र इसी से वह तस्कर रुद्रदूतगणों द्वारा तत्काल कैलास ले जाया गया। अतः विभूति की जो महिमा है, उसे कौन अधिक कह सकता है।।९२-९५।।

विभूत्यामण्डिताङ्गानांनराणांपुण्यकर्मणाम्। मुखेपञ्चाक्षरोयेषांरुद्रास्तेनाऽत्रसंशयः॥९६॥
जटाकलापिनोयेच ये रुद्राक्षविभूषणाः। ते वै मनुष्यरूपेणरुद्रानास्त्यत्र संशयः॥९७॥
तस्मात्सदाशिवःपुम्भिःपूजनीयोहिनित्यशः। प्रातर्मध्याह्नकालेचसायंसंध्याविशिष्यते॥९८॥

जिन पुण्यकर्मा मनुष्यों का अंग विभूतिमण्डित है तथा मुख से सदा पंचाक्षर मन्त्र (ॐ नमः शिवाय) का उच्चारण होता है, वे साक्षात् रुद्र हैं। इसमें तनिक संदेह नहीं है। जो जटाजूटधारी तथा रुद्राक्ष धारण से शोभायमान हैं, वे भी साक्षात् मनुष्यरूपी रुद्र हैं। इसमें भी संदेह नहीं है। इसलिये सदाशिव सदैव पूज्य हैं। प्रातः, मध्याह्न, सायाह्न तीनों काल में शिवदर्शन प्रशस्त है।।९६-९८।।

प्रातस्तु दर्शनाच्छम्भोर्नैशमेनोव्यपोहति। मध्याह्नेदर्शनाच्छम्भोःसप्तजन्मार्जितंनृणाम्॥९९॥
पापंप्रणाशमायातिनिशायां नैव गण्यते। शिवेति द्व्यक्षरं नाम महापापप्रणाशनम्।
येषां मुखोद्गतं नृणां तैरिदं धार्यते जगत्॥१००॥
शिवाङ्गणे तु या भेरी स्थापिता पुण्यकर्मभिः। तस्यानादेनपूतावैये च पापरताजनाः।
पाषण्डिनोऽप्यसद्वादास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥१०१॥

प्रातः शिवदर्शन से रात्रि कृत पाप निवृत्त होता है। मध्याह्न में शिवदर्शन से सात जन्मों के पाप से प्राणी छूट जाता है। निशाकृत शिवदर्शन से पाप नामक कुछ भी बाकी नहीं रह जाता। "शिव" यह दो अक्षरों का नाम महापातक नाशक है। यह नाम जिनके मुख से उच्चरित होता है, यह जगत् उनके ही द्वारा रक्षित है। जो पुण्यकर्मा शिवमन्दिर के आंगन में मेरी स्थापना करते हैं, वहां के भेरी नाद से पवित्र होकर न जाने कितने पापिष्ठ, पाखंडी, असद्-वक्ता मनुष्य परम गति लाभ करते हैं।।९९-१०१।।

पशोर्यस्यच सम्बद्धा चर्मणा च शिवालये। नृभिर्यास्थापिताभेरी मृदंग मुरजादि च।
स पशुः शिवसान्निध्यमाप्नोत्यत्र न संशयः॥१०२॥
तस्मात्ततं च विततं घनं सुषिरमेव च। चामराणि महार्हाणि मञ्चकाः शयनानि च॥१०३॥

गाथाश्च इतिहासाश्च गायनंचयथाविधि। बहुरूपादिकंशम्भोःप्रियान्येतानिकल्पयेत्॥१०४॥
कल्पयित्वाचगच्छन्तिशिवलोकंहिपापिनः ।
सुधर्माणोमहात्मानःशिवपूजाविशारदाः ॥१०५॥
गुरोर्मुखाच्च सम्प्राप्तशिवपूजारताश्च ये। शिवरूपेण ये विश्वं पश्यन्ति कृतनिश्चयाः॥१०६॥

जिस पशु के चर्म को वेष्ठित करने से भेरी, मृदंग, मूरज आदि वाद्य शिवालय में स्थापित किया जाता है, वह पशु भी शिव का सान्निध्य प्राप्त कर लेता है। इसलिए तत, वितत, घन, सुषिर, महार्ह, चामर, शयनमञ्च, गाथा, इतिहास तथा विचित्र गीति, यह यथाविधि प्रयुक्त हो, तब यह शम्भुप्रिय है। अतएव वहां तत, वितत, घन, सुषिर, महार्ह, चामर तथा शयनमञ्च, गाथा, इतिहास, विविध गीति, ये सभी यधाविधि प्रयुक्त हो जायें, तब वह शम्भु हेतु प्रीतिकारी होता है। इन सबके द्वारा आराधना अवश्य कर्त्तव्य है। ऐसा व्यक्ति पापी होकर भी शिवलोक गमन करता है। जो शिवपूजा विधान जानते हैं, जो गुरु से शिवपूजा पद्धति जान कर इस पूजा कार्य में लगे हैं, वे सभी कृतनिश्चयी भक्त समस्त विश्व में शिवरूप दर्शन करते हैं।।१०२-१०६।।

सम्यग्बुद्ध्या समाचारा वर्णाश्रमयुता नराः।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चान्ये तथा नराः॥१०७॥
श्वपचोऽपिवरिष्ठःसशम्भोःप्रियतरोभवेत्। शम्भुनाऽधिष्ठितं सर्वं जगदेतच्चराचरम्॥१०८॥
तस्मात्सर्वं शिवमयं ज्ञातव्यं सुविशेषतः। वेदैः पुराणैः शास्त्रैश्च तथौपनिषदैरपि॥१०९॥
आगमैर्विविधैःशम्भुर्ज्ञातव्योनात्र संशयः। निष्कामैश्च सकामैश्च पूजनीयः सदाशिवः॥११०॥

जो सम्यक् बुद्धि द्वारा सदाचार तथा वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हैं, ऐसे ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र किंवा अन्य कोई भी जाति क्यों न हो, वे सभी सुधर्मिष्ठ महात्मा ही हैं। अधिक क्या कहें, शिवपूजक चाण्डाल भी वरिष्ठ तथा शम्भुप्रिय हो जाता है। यह सचराचर जगत् शिव से अधिष्ठित है। अतः सभी शिवमय ही है। वेद, पुराण, उपनिषद् तथा नाना आगम वाक्य एकमात्र शम्भु से ही जाना जा सकता है। इस सम्बन्ध में कोई संशय नहीं है। चाहे व्यक्ति सकाम हो अथवा निष्काम हो, प्रत्येक के लिए शिवार्चन विहित कहा गया है।।१०७-११०।।

लोमश उवाच

कथयामि पुरावृत्तमितिहासं पुरातनम्। नंदी नाम पुरा वैश्यो ह्यवन्तीपुरमावसत्॥१११॥
शिवध्यानपरो भूत्वा शिवपूजां चकार सः। नित्यंतपोवनस्थंहि लिङ्गमेकं समर्चयत्॥११२॥
उषस्युषसि चोत्थाय प्रत्यहं शिववल्लभः। नंदी लिङ्गार्च्चनरतो बभूवातिशयेन हि॥११३॥
लिङ्गंपञ्चामृतेनैव यथोक्तेनाभ्यषेचयत्। विप्रैः समावृतो नित्यं वेदवेदाङ्गपारगैः॥११४॥
यथा शास्त्रेण विधिना लिङ्गार्च्चनपरोऽभवत्।
स्नापयित्वा ततः पुष्पैर्नानाश्चर्यसमन्वितैः॥११५॥
मुक्ताफलैरिन्द्रनीलैर्गोमेदैश्चनिरन्तरम्। वैडूर्यैश्चैव नीलैश्चमाणिक्यैश्च तथाऽर्चयत्॥११६॥

लोमश कहते हैं—इस सम्बन्ध में मैं एक प्राचीन इतिहास कहता हूं। पूर्वकाल में अवन्ती नगरी में नन्दी

नामक वैश्य निवास करता था। वह सदा शिवाराधन तत्पर था। सदा शिवपूजा निरत रहता था। वह सदैव शिवध्यान में लगा रहता। उसके तपोवन में एक शिवलिंग था। नन्दी वैश्य नित्य प्रति उस लिंग की अर्चना करता। वह शिववल्लभ वैश्य नित्य ऊषा काल में जागकर शिवार्चना तत्पर रहा करता था। वह नित्य वेद-वेदाङ्ग पारंगत ब्राह्मणों की सहायता से पञ्चामृत से यथाविधि प्रभु शिव का अभिषेक कार्य सम्पन्न करता था। साथ ही शास्त्रोक्त विधान से लिंगार्चन में लगा रहता। शिवलिंग को इस प्रकार स्नान कराने के पश्चात् वह वैश्य नाना प्रकार के पुष्प, मुक्ताफल, इन्द्रनील, गोमेद, वैदूर्य, नीलकान्त तथा माणिक्य आदि से उनकी अर्चना करता।।१११-११६।।

एवं नन्दीमहाभागोबहून्यब्दानिचार्च्चयत्। विजनस्थंतदा लिङ्गंनानाभोगसमन्वितम्॥११७॥
एकदा मृगयासक्तः किरातो भूतहिंसकः। अविवेकपरोभूत्वा मृगयारसिकः सदा॥११८॥
पापी पापसमाचारो विचरन्गिरिकन्दरे। अनेकश्वापदाकीर्णे हन्यमान इतस्ततः॥११९॥
एवंविचरमाणोऽसौ किरातोभूतहिंसकः। यदृच्छयागतस्तत्रयत्र लिङ्गं सुपूजितम्॥१२०॥

उदकंवीक्षमाणोऽसौतृषया पीडितो भृशम्।
ततो वनेचरः शीघ्रंदृष्ट्वा तोयेसमाविशत्॥१२१॥
तीरे संस्थाप्य दुष्टात्मा तत्सर्वं मृगयादिकम्।
गण्डूषोत्सर्जनं कृत्वा पीत्वा तोयं च निर्गतः॥१२२॥

महाभाग्यवान नन्दी ने अनेक वर्ष पर्यन्त इस निर्जन प्रदेशस्थ शिवलिंग की विविध भोगों से अर्चना किया। इसी बीच एक शिकार में आसक्त व्याध इस लिंगपूजा स्थान में पहुंचा। वह नित्य प्राणीगण की हिंसा करने वाला, अविवेकी तथा पापाचारी था। वह श्वापद समाकीर्ण गिरि-कन्दराओं में इतःस्ततः विचरता तथा अनेक जीवों की हत्या करता-करता स्वेच्छा से यहां आया। वह व्याध प्यास से पीड़ित था। उसने वन में सरोवर को जलपूर्ण देखकर उसमें प्रवेश किया। उस दुष्टात्मा ने अपनी समस्त शिकार की सामग्री सरोवर के तट पर रखी तथा जल में जाकर मुख धोकर जलपान के पश्चात् सरोवर से बाहर निकला।।११७-१२२।।

शिवालयं ददर्शाग्रे अनेकाश्चर्यमण्डितम्। दुष्टंसुपूजितंलिङ्गं नानारत्नैः पृथक्पृथक्॥१२३॥
तथालिङ्गं समालक्ष्य यदा पूजां समाहरत्। रत्नानि सर्वभूतानि विधूतानि इतस्ततः॥१२४॥
स्नपनं तस्य लिङ्गस्य कृतं गण्डूषवारिणा। करेणैकेन पूजार्थं विल्वपत्राणिसोऽर्पयत्॥१२५॥
द्वितीयेन करेणैव मृगमांसं समर्पयत्। दण्डप्रणामसंयुक्तः सङ्कल्पं मनसाऽकरोत्॥१२६॥

जल से बाहर आने पर उसने सामने ही एक आश्चर्यजनक शिवालय को देखा। वहां उसने देखा कि कोई व्यक्ति पृथक्-पृथक् नाना रत्नों का उपहार अर्पित करके शिवलिंग का पूजन कर रहा है। व्याध ने यह देखकर स्वयं भी लिंगपूजा का आयोजन किया। इस समय वहां वणिक् द्वारा उपहार में प्रदान किये गये रत्न इतःस्ततः बिखरे पड़े थे। अब वह व्याध लिंग पूजन में प्रवृत्त हो गया। तब उस व्याध ने मुंह में भरे जल से उस लिंग को स्नान कराया। वह एक हाथ से लिंग पर बिल्वपत्र चढ़ा रहा था तथा अन्य दूसरे हाथ से मृगमांस अर्पित कर रहा था। उसने दण्ड प्रणाम के पश्चात् मन ही मन संकल्प किया।।१२३-१२६।।

अद्यप्रभृति पूजां वै करिष्यामिप्रयत्नतः। त्वं मे स्वामी च भक्तोऽहमद्यप्रभृति शङ्कर!॥१२७॥

एवं नैयमिको भूत्वा किरातो गृहमागतः। नन्दी ददर्श तत्सर्वं किरातेन इतस्ततः॥१२८॥
चिन्तायुक्तोऽभवन्नंदी जातं किं छिद्रमद्यमे। कथितानि च विघ्नानिशिवपूजारतस्यच।
उपस्थितानि तान्येव मम भाग्यविपर्ययात्॥१२९॥
एवं विमृश्य सुचिरं प्रक्षाल्य शिवमंदिरम्। यथागतेन मार्गेण नंदी स्वगृहमागतः॥१३०॥

उसने कहा कि आज से मैं यत्नपूर्वक शिव पूजा करूंगा। आज से तुम मेरे स्वामी हो तथा मैं तुम्हारा भक्त हूं। वह किरात यह नियम ग्रहण करके स्वगृह आया। किरात ने जिस प्रकार से पूजा किया था, वह सब नन्दी ने आने पर देखा। नन्दी चिन्ता करने लगा—"यह क्या? मेरी पूजा में यह सब व्यतिक्रम किसने कर दिया? कहा गया है कि शिवपूजनरत व्यक्ति के समक्ष नाना विघ्न आते हैं। क्या मेरे दुर्भाग्य से ये सब विघ्न यहां उपस्थित हो गये?" नन्दी ने इस प्रकार चिन्ता करते-करते शिवमन्दिर को स्वच्छ किया तथा पूजनोपरान्त अपने घर लौटा।।१२७-१३०।।

ततो नन्दिनमागत्य पुरोधा गतमानसम्। अब्रवीद्वचनं तं तु कस्मात्त्वं गतमानसः॥१३१॥
पुरोहितं प्रति तदा नन्दी वचनमब्रवीत्॥१३२॥
अद्य दृष्टं मया विप्र अमेध्यं शिवसन्निधौ। केनेदं कारितं तत्र न जानामि कथञ्चन॥१३३॥
ततः पुरोधा वचनं नन्दिनं चाब्रवीत्तदा। येन विस्खलितं तत्ररत्नादीनां प्रपूजनम्।
सोऽपि मूढ़ो न सन्देहः कार्याकार्येषु मन्दधीः॥१३४॥
तस्माच्चिन्तानकर्तव्यात्वयाअणुरपि प्रभो। प्रभाते च मयासार्द्धंगम्यतांतच्छिवालयम्॥१३५॥
निरीक्षणार्थं दुष्टस्यतत्कार्यंविदधाम्यहम्। एतच्छुत्वा तु वचनं नन्दी तस्यपुरोधसः॥१३६॥
आस्थितः स्वगृहे नक्तं द्रूयमानेन चेतसा। तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामाहूय च पुरोधसम्॥१३७॥

नन्दी के घर लौटने पर उसके पुरोहित ने उसे विमन स्थिति में देखकर पूछा—"क्यों तुम इस प्रकार से अमनस्क हो रहे हो?" नन्दी ने पुरोहित को उत्तर दिया—"हे विप्र! आज मैंने शिव मन्दिर जाने पर वहां मन्दिर में दूषित वस्तु देखा। किसने यह सब कार्य किया, मैं नहीं जानता।" पुरोहित ने नन्दी से कहा—"तुम तो रत्नादि से पूजा करते हो। यह सब वर्जित दूषित द्रव्य जिसने वहां फैलाया है, वह वास्तव में मूढ़ ही है। क्या कार्य है तथा क्या अकार्य है, वह कुछ नहीं जानता। हे प्रभो! तुम इस सम्बन्ध में अणुमात्र भी चिन्ता न करो। हमारे साथ तुम शिवालय चलो, ताकि हम प्रभात काल में उस दुष्ट द्वारा किये गये कार्य का अवलोकन करके, जैसे भी हो, उस व्यक्ति के लिये उपाय करें।" पुरोहित का वचन सुनकर नन्दी ने भग्न मन से अपने गृह में रात्रि व्यतीत किया। इस प्रकार वणिक ने रात्रि अपने गृह में व्यतीत करके प्रातः पुरोहित को बुलाया।।१३१-१३७।।

गतः शिवालयं नदीसमं तेन महात्मना। ततो दृष्टं पूर्वदिनं कृतं तेन दुरात्मना॥१३८॥
सम्यक्प्रपूजनं कृत्वा नानारत्नपरिच्छदम्। पञ्चोपचारसंयुक्तं चैकादश्यन्वितं तथा॥१३९॥
अनेकस्तुतिभिः स्तुत्वा गिरीशं ब्राह्मणैः सह। तदा यामद्वयं जातंस्तूमानस्यनन्दिनः॥१४०॥
आयातो हि महाकालस्तथारूपोमहाबलः। कालरूपोमहारौद्रोधनुष्याणिः प्रतापवान्॥१४१॥

तं दृष्ट्वा भयवित्रस्तो नन्दी स विललाप ह।
पुरोधाश्चैव सहसाभयभीतस्तदाऽभवत्॥१४२॥
किरातेन कृतंतत्र यथापूर्वमविस्खलम्। तां पूजां प्रपदाऽऽहत्य बिल्वपत्रंसमर्पयत्॥१४३॥
स्नपनं तस्य कृत्वा च ततोगण्डूषवारिणा। नैवेद्यं तत्पलं चैव किरातः शिवमर्पयत्॥१४४॥
दण्डवत्पतितो भूमावुत्थाय स्वगृहं गतः। तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यंचिन्तयामास वैचिरम्॥१४५॥

वे पुनः एक साथ शिवालय गये। पूर्व दिन उस दुरात्मा व्याध ने जो कुछ किया था, वह आज नन्दी एवं उनके पुरोहित ने प्रत्यक्ष देखा। तदनन्तर नन्दी ने नाना रत्नोपहार, एकादश अभिषेक के साथ सविधि पञ्चोपचार पूजा सम्पन्न किया। उसने ब्राह्मणों के साथ अनेक स्तुति भी किया। नन्दी को यह सब करते उस दिन दो प्रहर का समय बीत गया। इसी अवसर पर एक महाकाल रूपी महाबली भीषण पुरुष धनुष धारण किये हुये वहां आया। उसे देखकर नंदी भय से विह्वल होकर रुदन करने लगा। उसके पुरोहित भी भयग्रस्त हो गये। किरात ने पहले दिन जो कुछ किया था, वही उसने आज भी किया। नन्दी ने जिन सामग्री से पूजा किया था, उसे उसने पैरों से ढकेल कर लिंग पर बिल्वपत्र प्रदान करके मुंह में भरे पानी से शिवलिंग को स्नान कराकर मांस द्वारा शिव को नैवेद्य प्रदानोपरान्त दण्डवत् भूपतित होकर प्रणाम किया। तत्पश्चात् अपने गृह चला गया! यह महाश्चर्य देखकर नन्दी तथा उसके पुरोहित विचार करने लगे।।१३८-१४५।।

पुरोधसा सह तदा नन्दी व्याकुलचेतसा। तेन चाकारिता विप्रा बहवो वेदवादिनः॥१४६॥
निवेद्यतेषुतत्सर्वंकिरातेन च यत्कृतम्। किं कार्यमथ भो विप्राःकथ्यतांचयथातथम्॥१४७॥
सम्प्रधार्य ततः सर्वे मिलित्वा धर्मशास्त्रतः।
ऊचुः सर्वे तदा विप्रा नन्दिनं चातिशङ्कितम्॥१४८॥
इदं विघ्नं समुत्पन्नं दुर्निवार्यं सुरैरपि। तस्मादानय लिङ्गंस्वं स्वगृहं वैश्यसत्तम!॥१४९॥
तथेतिमत्वाऽसौनन्दीशिवस्योत्पाटनं तदा। कृत्वास्वगृहमानीयप्रतिष्ठाप्ययथाविधि॥१५०॥
सुवर्णपीठिकां कृत्वा नवरत्नसुशोभिताम्। उपचारैरनेककैश्च पूजयामास वै तदा॥१५१॥

यह महाश्चर्य देखकर नन्दी तथा उसके पुरोहित व्याकुल हो गये। तदनन्तर दीर्घकाल पर्यन्त विचार करके उन्होंने वेदज्ञ ब्राह्मणगण को बुलाया। तत्पश्चात् उनसे किरात कृत समस्त घटना का निवेदन करके नन्दी ने कहा—"हे विप्रगण! अब मैं क्या करूं? यह आप उचित रूप से बतायें।" यह कहने पर सभी ब्राह्मणों ने धर्मशास्त्र का अवलोकन करके शंकित चित्त वाले नन्दी से कहा—"यह जो विघ्न उपस्थित है, देवता भी इसका निवारण नहीं कर सकते। हे वैश्यप्रवर! तुम इस लिंग को अपने घर ले जाओ।" नन्दी ने इस आदेश को शिरोधार्य करके लिंग को वहां से उखाड़ा तथा अपने घर लाकर शास्त्रोक्त विधान से उनकी प्रतिष्ठा किया। उन्होंने नवरत्नमण्डित पीठिका प्रस्तुत करके नाना उपचारों से तब शिवलिंगार्चन किया।।१४६-१५१।।

अथापरेद्युरायातः किरातः शिवमन्दिरम्। यावद्विलोकयामास लिङ्गमैशं न दृष्टवान्॥१५२॥
मौनं विहाय सहसा ह्याक्रोशन्निदमब्रवीत्।
हे शम्भो! क्व गतोऽसि त्वं दर्शयात्मानमद्य वै॥१५३॥

न दृष्टोऽसि मया त्वं हि त्यजाम्यद्यकलेवरम्।
हे शम्भो! हे जगन्नाथ! त्रिपुरान्तकर! प्रभो!॥१५४॥
हे रुद्र! हे महादेव! दर्शयात्मानमात्मना॥१५५॥

अगले दिन वह किरात यथासमय शिवमन्दिर आया, किन्तु उसे वह शैव लिङ्ग कहीं भी परिलक्षित नहीं हो रहा था। वह मौन त्याग कर कातर कण्ठ से क्रन्दन करने लगा—"हे शम्भु! आप कहां चले गये? मुझे दर्शन प्रदान करें। यदि मैं आपको नहीं देख पाऊंगा, तब मैं अपना शरीर त्याग कर दूंगा। हे शम्भु! जगन्नाथ, त्रिपुरान्तक, रुद्र, महादेव आप स्वयं अपना दर्शन प्रदान करिये"॥१५२-१५५॥

एवं साक्षेपमधुरैर्वाक्यैः क्षिप्तः सदाशिवः। किरातेनततोरङ्गैर्वीरोऽसौजागरं स्वकम्।
बिभेदाऽशुततोबाहूनास्फाट्यौवरुषाऽब्रवीत्॥१५६॥
हे शम्भो दर्शयात्मानं कुतो मां त्यज्य यास्यसि॥१५७॥
इतिक्षित्वाततोऽन्त्राणिमांसमुत्कृत्यसर्वतः। तस्मिन्गर्तेकरेणैव किरातःसहसाक्षिपत्॥१५८॥
स्वस्थं च हृदयं कृत्वासस्नौतत्सरसि ध्रुवम्। तथैव जलमानीयबिल्वपत्रंत्वरान्वितः॥१५९॥
पूजयित्वा यथान्यायं दण्डवत्पतितो भुवि॥१६०॥
ध्यानस्थितस्ततस्तत्र किरातः शिवसन्निधौ। प्रादुर्भूतस्तदा रुद्रः प्रमथैःपरिवारितः॥१६१॥

वह किरात इस प्रकार से वह आक्षेप के साथ मधुर वाक्य कहता सदाशिव को दर्शनदानार्थ उत्प्रेरित करने लगा। तदनन्तर उद्दाम अनुराग में भरे उस वीर व्याध ने अपना पेट चीरा तथा क्रोध के साथ अपनी भुजायें फहराता कहने लगा—"हे शम्भु! आप मुझे अपने स्वरूप का दर्शन दीजिये। मुझे छोड़ कर आप कहां जायेंगे?" यह कह कर वह अपनी आंतों को काट कर उस गर्त में छोड़ने लगा, जहां से वणिक ने शिवलिंग को उखाड़ा था। तदनन्तर हृदय को स्वस्थ करके वहां सरोवर में स्नान किया, अब पूर्ववत् व्यग्रतापूर्वक बिल्वपत्र तथा मुख में जल लाकर यथायथ पूर्ववत् अर्चना करके वह दण्डवत् भूमि पर गिर पड़ा। तदनन्तर वह किरात भगवान् शिव के ध्यान में ध्यानस्थ हो गया। तभी इस स्थिति में प्रमथगण से घिरे शिव आविर्भूत हो गये॥१५६-१६१॥

कर्पूरगौरो द्युतिमान् कपर्दी चन्द्रशेखरः। तं गृहीत्वा करे रुद्र उवाच परिसान्त्वयन्॥१६२॥
भो भो वीर! महाप्राज्ञमद्भक्तोऽसिमहामते। वरंवृणीष्वात्महितंयत्तेऽभिलषितंमहत्॥१६३॥
एवमुक्तः स रुद्रेण महाकालो मुदान्वितः। पपात दण्डवद्भूमौ भक्त्या परमयायुतः।
ततो रुद्रं बभाषे स वरं सम्प्रार्थयाम्यहम्॥१६४॥

उनकी आकृति कर्पूरवत् गौर तथा प्रभायुक्त थी। वे कपर्दी चन्द्रशेखर रूपी होकर विराजित थे। इस प्रकार से आविर्भूत रुद्र ने किरात को हाथ पकड़कर उठाकर सान्त्वना पूर्वक कहा—"हे महामति! महाप्राज्ञ, वीर! तुम ही मेरे भक्त हो। तुमको जो भी वांछित वर चाहिये, वह मांगो।" रुद्र के यह कहने पर वह महाकाल रूपी व्याध मुदित तथा परम भक्तिभाव से पृथिवी पर दण्डवत् गिर गया। तदनन्तर रुद्रदेव से कहने लगा॥१६२-१६४॥

अहं दासोऽस्मि ते रुद्र! त्वं मे स्वामी न संशयः॥१६५॥

एतद्बुद्ध्वाऽऽत्मनो भक्तिं देहि जन्मनि जन्मनि।
त्वं माता च पिता त्वं च त्वं बन्धुश्च सखा हि मे॥१६६॥
त्वं गुरुस्त्वंमहामन्त्रोमन्त्रवेद्योऽसि सर्वदा। तस्मात्त्वदपरंनान्यत्त्रिषुलोकेषुकिञ्चन॥१६७॥

किरात कहता है—"हे रुद्र! मैं आपका दास हूं, आप मेरे स्वामी हैं। इसमें संशय नहीं है। यह जान कर आप मुझे यह वर प्रदान करें, जिससे आपके प्रति मेरी जन्म-जन्मान्तर में भक्ति बनी रहे। हे देव! आप ही माता-पिता-बन्धु-सखा-गुरु-मन्त्रवेद्य तथा महामन्त्र हैं। आपके अतिरिक्त तीनों लोकों में अन्य कुछ भी नहीं है"॥१६५-१६७॥

निष्कामं वाक्यमाकर्ण्य किरातस्य तदा भवः। ददौ पार्षदमुख्यत्वं द्वारपालत्वमेवच॥१६८॥
तदा डमरुनादेन नादितं भुवनत्रयम्। भेरीझाङ्कारशब्देन शङ्खानां निनदेन च॥१६९॥
तदा दुन्दुभयो नेदुःपटहाश्च सहस्त्रशः। नन्दी तं नादमाकर्ण्य विस्मयात्त्वरितोययौ॥१७०॥
तपोवनं यत्र शिवःस्थितः प्रमथसम्वृतः। किरातो हि तथादृष्टोनन्दिना च तदाभृशम्।
उवाच प्रश्रितो वाक्यं स नन्दी विस्मयान्वितः॥१७१॥
किरातं स्तोतुकामोऽसौ परमेण समाधिना॥१७२॥
इहानीतस्त्वया शम्भुस्त्वंभक्तोऽसिपरन्तप!।
त्वंभक्तोऽहमिहप्राप्तो मां निवेदयशङ्करे॥१७३॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य किरातस्त्वरयान्वितः। नन्दिनंच करे गृह्य शङ्करं समुपागतः॥१७४॥

भगवान् भव भूतनाथ ने किरात का यह निष्काम वचन सुनकर उसे अपने प्रधान पार्षद तथा द्वारपाल का पद प्रदान किया। उस समय डमरुनाद, भेरी की झंकार तथा शंखवादन शब्द से तीनों लोक निनादित हो उठे। तभी हजारों-हजार दुन्दुभि तथा पटह भी बजने लगे। नन्दी यह वाद्यध्वनि सुनकर वहां तपोवन में आया, जहां प्रमथगणों से घिरे शिव स्थित थे। वहां नन्दी ने विस्मय से देखा कि वहां किरात भी है। तब वह नन्दी उत्तम समाधियोग के साथ स्तुति करने के अभिप्राय से विनीत भाव से कहने लगा—"हे परन्तप! तुम ही शम्भु के परम भक्त हो। तुमने शंभु को यहां बुलाया, अतएव तुम ही शम्भु के यथार्थ भक्त व्यक्ति हो। मैं यहां आया हूं, यह तुम ही शम्भु से निवेदित करो।" किरात ने नन्दी का यह वचन सुना तथा वह तत्काल नन्दी का हाथ पकड़कर उसे भगवान् त्रिलोचन के निकट ले आया॥१६८-१७४॥

प्रहस्यभगवान्रुद्रःकिरातंवाक्यमब्रवीत्। कोऽयं त्वया समानीतोगणानामिहसन्निधौ॥१७५॥

किरातं उवाच

विज्ञप्तोऽसौकिरातेन शङ्करो लोकशङ्करः। तव भक्तः सदा देव! तव पूजारतो ह्यसौ॥१७६॥
प्रत्यहं रत्नमाणिक्यैः पुष्पैश्चोच्चावचैरपि। जीवितेन धनेनाऽपि पूजितोऽसिन संशयः॥१७७॥
तस्माज्जानीहि मन्मित्रं नन्दिनं भक्तवत्सल!॥१७८॥

तब भगवान् रुद्र ने हंसते हुये किरात से कहा—"यह मेरे पास तुम किसे ले आए?" यह सुनकर किरात ने

लोकशंकर शिव से सभी घटना कहते हुये कहा—"हे देव! यह व्यक्ति सर्वदा आपका भक्त तथा आपकी पूजा में निरत रहा है। नाना रत्न, माणिक्य, उत्तम पुष्प, यहां तक कि जीवन न्योछावर करके भी आपकी पूजा करता रहा है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे भक्तवत्सल देव! आप इस नन्दी को मेरा ही मित्र समझें"।।१७५-१७८।।

महादेव उवाच

न जानामि महाभाग नन्दिनंवैश्यचर्चितम्।
त्वं मेभक्तःसखाचेति महाकाल! महामते!॥१७९॥
उपाधिरहिता ये च येऽपिचैवमनस्विनः।
तेऽतीव मे प्रियाभक्तास्तेविशिष्टानरोत्तमाः!॥१८०॥

महादेव कहते हैं—हे महाभाग! मैं वैश्य जातीय नन्दी को नहीं जानता। हे महामते! महाकाल! तुम तो मेरे भक्त तथा सखा हो। जो सर्वोपाधिरहित मनस्वी पुरुष हैं, वे ही मेरे प्रिय भक्त तथा वे ही विशिष्ट पुरुषश्रेष्ठ होते हैं।।१७९-१८०।।

किरात उवाच

तव भक्तो ह्यहं तात स च मे प्रियकृत्तरः। तावुभौ स्वीकृतौ तेन पार्षदत्वेन शम्भुना॥१८१॥
ततो विमानानि बहूनि तत्र समागतान्येव महाप्रभाणि।
किरातवर्येण स वैश्यवर्य उद्धारितस्तेन महाप्रभेण॥१८२॥
कैलासं पर्वतंप्राप्तौ विमानैर्वेगवत्तरैः। सारूप्यमेव सम्प्राप्तावीश्वरेण महात्मना॥१८३॥

किरात कहता है—"हे तात! मैं आपका भक्त हूं। यह नन्दी मेरा प्रिय सखा है।" यह सुनकर शम्भु ने उस किरात तथा नन्दी दोनों को अपने पार्षदों में सम्मिलित कर लिया। तदनन्तर वहां महोज्वल विमानों का आगमन हुआ। किरात तथा नन्दी, ये दोनों ही उस वेगवाही विमान पर बैठ कर कैलास पहुंचे। इस प्रकार किरात द्वारा उस वैश्वयवर्य का उद्धार हो गया। कैलास पर्वत पहुंच कर उनको महात्मा महेश्वर का सारूप्य प्राप्त हो गया।।१८१-१८३।।

नीराजितौ गिरिजयाशिवेन सहितौ तदा। उवाचेदं ततो देवी प्रहस्य गजगामिनी॥१८४॥
यथा त्वं हि महादेव! तथा चैतौन संशयः। स्वरूपेण च गत्याचहास्यभावैःसुपूजितौ॥१८५॥
मया त्वमेक एवाऽऽसीः सेवितोवैनसंशयः। देव्यास्तद्वचनंश्रुत्वाकिरातोवैश्यएव च॥१८६॥
सद्यः पराङ्मुखौ भूत्वा शङ्करस्य च पश्यतः।
भवावस्त्वनुकम्प्यौ च भवता हि त्रिलोचन!॥१८७॥
तव द्वारि स्थितौ नित्यं भवावस्ते नमोनमः॥१८८॥

वहां गिरिजा ने शिव सहित उनकी आरती उतारी। तब वे देवी गजगामिनी हंसते हुये कहने लगीं—"हे महादेव! जैसे आप हैं, वेसे ही ये दोनों हैं। सारूप्य में, गतिभंगी में, हास्य में, आकार में, इंगित में ये सभी प्रकार से आपकी ही तरह शोभित हैं। तथापि जो भी हो, मैं केवल आपकी ही सेवा हेतु आई हूं।" देवी का यह वचन सुनते ही किरात तथा वैश्य, दोनों ही भगवान् शंकर की ओर घूम कर कहने लगे—"हे देव त्रिलोचन!

हम आपकी कृपा पाने के आकांक्षी हैं। हम आपके द्वारपाल होकर स्थित रहेंगे। हे देव! आपको पुनः-पुनः प्रणाम''।।१८४-१८८।।

तयोर्भावं स भगवान्विदित्वा प्रहसन्भवः। उवाचपरया भक्त्याभवतोरस्तुवाञ्छितम्।।१८९।।
तदा प्रभृति द्वावेतौ द्वारपालौबभूवतुः। शिवद्वारिस्थितौ विप्रा मध्याह्ने शिवदर्शिनौ।।१९०।।

भगवान् भव ने उनका अभिप्राय जानकर कहा—''तुम लोगों को तुम्हारे भक्तिरूपी गुण द्वारा वांछित विषय सिद्ध हो जाये।'' महादेव का वचन सुनकर उसी दिन से किरात तथा वैश्य उनके द्वारपाल होकर रहने लगे। हे विप्रगण! तभी से वे शिव के द्वार पर स्थित रहकर द्वारपाल का कार्य करने लगे तथा नित्य मध्याह्न में शिव का दर्शन करते थे।।१८९-१९०।।

एको नंदी महाकालो द्वावेतौशिववल्लभौ। ऊचतुस्तौ मुदा युक्तावेक एव सदाशिवः।।१९१।।
एकाङ्गुलिं समुद्धृत्य महादेवोऽभ्यभाषत। तथा नन्दी उवाचेदमुद्धृत्यस्वाङ्गुलिद्वयम्।
एवं सञ्ज्ञान्वितौ द्वारि तिष्ठतस्तौ महात्मनः।।१९२।।
शङ्करस्य महाभागाः शृण्वन्तु ऋषयो ह्यमी।।१९३।।
शैलादेन पुराप्रोक्तं शिवधर्ममनन्तकम्। प्राणिनां कृपया विप्राःसर्वेषांदुष्कृतात्मनाम्।
ये पापिनोऽप्यधर्मिष्ठा अन्धा मूकाश्च पङ्गव।।१९४।।
कुलहीना दुरात्मानः श्वपचा अपि मानवाः।।१९५।।
यादृशास्तादृशाश्चान्येशिवभक्तिपुरस्कृताः। तेऽपिगच्छन्ति सान्निध्यंदेवदेवस्यशूलिनः।।१९६।।
लिङ्गंसिकतामयं ये च पूजयन्ति विपश्चितः। तेरुद्रलोकंगच्छन्तिनात्रकार्यांविचारणा।।१९७।।

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे शिवशास्त्रे शिवभक्तिमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः।।५।।

एक बार वे नन्दी तथा महाकाल किरात, ये दोनों ही शिव को प्रिय थे। वे प्रेमपूर्वक कहने लगे—''हमारे लिए तो एकमात्र शिव ही अभीप्सित हैं। हमें अन्य कुछ नहीं चाहिये। यह सुनकर महादेव ने एक उंगली उन्नत किया। तब नन्दी ने अपनी दो उंगली उन्नत किया। एवंविध संज्ञान्वित होकर वे महात्मा महादेव के द्वार पर स्थित हो गये। हे महाभाग! ऋषिगण! श्रवण करें। पूर्वकाल में शैलाद नन्दीश्वर ने अनन्त शिवधर्म कहा था। हे विप्रों! शैलाद ने दुष्कृती प्राणी वर्ग के प्रति कृपान्वित होकर यह सब कहा था। जो पापी, अधार्मिक, अन्धे, मूक, पंगु, अकुलीन, दुरात्मा अथवा श्वपच हैं, किंवा चाहे अन्य प्रकार के लोग हैं, वे शिवभक्ति का आश्रय लेकर देवदेव शूलपाणि का सान्निध्य प्राप्त कर लेते हैं। जो मनुष्य बालू का लिंग बनाकर अर्चना करते हैं, वे रुद्रलोक गमन करते हैं। इस विषय में अन्य आलोचना आवश्यक नहीं है।।१९१-१९७।।

।।पञ्चम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

षष्ठोऽध्यायः

लिङ्ग प्रतिष्ठा प्रकरण

ऋषय ऊचुः

लिङ्गे प्रतिष्ठा च कथं शिवंहित्वाप्रवर्तिता। तत्कथ्यतां महाभाग! परं शुश्रूषतांहिनः॥१॥

ऋषि कहते हैं—शिव को छोड़ कर उनकी लिंग प्रतिष्ठा कैसे प्रवर्त्तित हुई? हम यह जानना चाहते हैं?॥१॥

लोमश उवाच

यदा दारुवने शम्भुर्भिक्षार्थं प्राचरत्प्रभुः॥२॥
दिगम्बरो मुक्तजटाकलापो वेदान्तवेद्यो भुवनैकभर्ता।
स ईश्वरो ब्रह्मकलापधारो योगीश्वराणां परमः परश्च॥३॥
अणोरणीयान्महतो महीयान्महानुभावो भुवनाधिपो महान्।
स ईश्वरो भिक्षुरूपी महात्मा भिक्षाटनं दारुवने चकार॥४॥
मध्याह्नऋषयोविप्रास्तीर्थंजग्मुःस्वकाश्रमात्। तदानीमेवसर्वास्ताऋषिभार्याःसमागताः॥५॥

लोमश कहते हैं—जो वेदान्त वेद्य हैं, भुवनैक भर्त्ता हैं, वेदान्तवेद्य तथा योगीश्वरगण के परम पुरुष हैं, जब वे प्रभु शम्भु भिक्षार्थ दारुवन में विचरणशील थे, तब उन्होंने कोई वस्त्र नहीं पहना था। उनके मस्तक का जटाकलाप उन्मुक्तावस्था में था। वे अणु से भी अणु, महान् से भी महीयान, सर्वभुवनाधिपति तथा महानुभव महापुरुष हैं। ये ईश्वर एक बार भिक्षुवेश में दारुवन में भिक्षाटन में प्रवृत्त हो गये। तब मध्याह्न काल था। ऋषिगण अपने आश्रम से मध्याह्न स्नानार्थ तीर्थ में गये थे। वहां केवल ऋषिपत्नियां ही आश्रम में उपस्थित थीं।।२-५।।

विलोकयन्त्यःशम्भुंतमाचख्युश्चपरस्परम्। कोऽसौ भिक्षुकरूपोऽयमागतोऽपूर्वदर्शनः॥६॥
अस्मैभिक्षां प्रयच्छामोवयं च सखिभिः सह। तथेतिगत्वासर्वास्तागृहेभ्यआनयन्मुदा॥७॥
भिक्षान्नं विविधं श्लक्ष्णं सोपचारं च शक्तितः। प्रदत्तं भक्षितं तेन देवदेवेनशूलिना॥८॥
काचित्प्रियतमंशम्भुंबभाषेविस्मयान्विता। कोऽसित्वंभिक्षुकोभूत्वाआगतोऽत्रमहामते॥९॥
ऋषीणामाश्रमं शुद्धं किमर्थं नो निषीदसि। तयोक्तोऽपि तदाशम्भुर्बभाषेप्रहसन्निव॥१०॥

वे सब शम्भु को इस अवस्था में आते देखकर परस्परतः कहने लगीं—"इन अपूर्वदर्शन भिक्षु को कौन यहां लाया? जो भी हो, हम सखीगण के साथ इनको भिक्षा देंगे।" यह कहकर वे गृह में जाकर उत्तम भिक्षा लाईं तथा देवदेव शिव को अपनी सामर्थ्य के अनुरूप तब देवदेव शूलपाणि की इच्छानुसार भिक्षा दिया। तब किसी रमणी ने प्रियदर्शन शम्भु को देखकर विस्मय से कहा—"हे महामति! आपको भिक्षुक वेश में यहां कौन लाया? यह तो ऋषियों का पवित्र आश्रम है, यहां क्यों नहीं बैठ रहे हैं?" रमणी द्वारा यह कहने पर शम्भु ने हंसते हुये कहा।।६-१०।।

ईश्वरोऽहं सुकेशान्ते पावने प्राप्तवानिमम्। ईश्वरस्य वचःश्रुत्वा ऋषिभार्याऽवाचतम्॥११॥
ईश्वरोऽसि महाभाग कैलासपतिरेव च। एकाकिनः कथं देव! भिक्षार्थमटनं तव॥१२॥
एवमुक्तस्तया शम्भुः पुनस्तामब्रवीद्वचः। दाक्षायण्या विरहितो विचरामि दिगम्बरः॥१३॥
भिक्षाटनार्थं सुश्रोणि! सङ्कल्परहितः सदा। तया सत्या विना किञ्चित् स्त्रीमात्रं मम भामिनि!।
न रोचते विशालाक्षि! सत्यं प्रति वदामि ते॥१४॥

शम्भु कहते हैं—"हे सुश्रोणी! मैं ईश्वर हूं। इस पावन आश्रम में आया हूं।" ईश्वर होने की बात सुनकर ऋषिपत्नी ने कहा—"हे महाभाग! तब तो आप निश्चय ही कैलासपति ही हैं। तथापि हे देव! आप एकाकी भिक्षाटन क्यों कर रहे हैं?" इसके उत्तर में शम्भु ने कहा—"पत्नी दाक्षायणी के साथ मेरा वियोग हो गया है। तभी मैं दिगम्बर होकर विचरण कर रहा हूं। हे सुश्रोणी! मैं भिक्षाटन संकल्प रहित करता हूं। हे भामिनी! मेरी पत्नी सती अब नहीं हैं। सती के बिना अन्य कोई भी रमणी मुझे रुचिकर नहीं है। हे विशालाक्षी! यह मैं सत्य कहता हूं"।।११-१४।।

तस्योक्तं वचनं श्रुत्वाऽवाचकमलेक्षणा। स्त्रियो हि सुखसंस्पर्शाःपुरुषस्य न संशयः॥१५॥
ताःस्त्रियो वर्जिताः शम्भो! त्वादृशेन विपश्चिता॥१६॥
इति च प्रमदाःसर्वामिलितायत्र शङ्करः। भिक्षापात्रं च तच्छम्भोःपूरितं च महागुणैः॥१७॥
अन्नैश्चतुर्विधैः षड्भी रसैश्च परिपूरितम्। यदा शम्भुर्गन्तुकामः कैलासं पर्वतं प्रति।
तदा सर्वा विप्रपत्न्यो ह्यन्वगच्छन्मुदान्विताः॥१८॥
गृहकार्यं परित्यज्य चेरुस्तद्गतमानसाः। गतासु तासु सर्वासु पत्नीषु ऋषिसत्तमाः॥१९॥

शम्भु का यह वाक्य सुनकर उस कमलनयनी कामिनी ने कहा—"हे शम्भु! स्त्री जाति तो पुरुष हेतु सुखस्पर्श रूप है। इस स्त्री जाति को आपके समान एक विज्ञ व्यक्ति ने त्याग दिया?" यह कहकर सभी स्त्रियां शम्भु के समीप आईं तथा उनको उत्तम-उत्तम भिक्षादान करके उनका भिक्षापात्र भर दिया। चतुर्विध अन्न तथा षड्विध रसयुक्त भोज्य से उनका भिक्षापात्र पूर्ण हो गया। तदनन्तर जब शम्भु कैलास जाने लगे, तब समस्त ऋषिपत्नियां प्रसन्नतापूर्वक उनका अनुगमन करने लगीं। वे अपने गृहकार्य त्याग कर तद्गत् चित्त होकर शम्भु के पीछे-पीछे चल पड़ीं। क्रमशः सभी आश्रमों को त्याग कर समस्त ऋषिपत्निगण ने यही किया। जब सभी पत्नियां चली गयीं, तभी वहां ऋषिगण आ गये।।१५-१९।।

यावदाश्रममभेत्य तावच्छून्यंव्यलोकयन्। परस्परमथोचुस्ते पत्न्यः सर्वाः कुतोगताः॥२०॥
न विदामोऽथवैसर्वाःकेननष्टेन चाहृताः। एवं विमृश्यमानास्तेविचिन्वन्तस्ततस्ततः॥२१॥
समपश्यंस्ततःसर्वेशिवस्यानुगताश्चताः। शिवं दृष्ट्वा तु सम्प्राप्ताऋषयस्ते रुषान्विताः॥२२॥
शिवस्याथाग्रतो भूत्वा ऊचुःसर्वे त्वरान्विताः।
किं कृतं हि त्वया शम्भो! विरक्तेन महात्मना।
परदारापहर्त्ताऽसि त्वमृषीणां न संशयः॥२३॥

वे आकर देखते हैं कि वहां आश्रम शून्य पड़ा है। यह देखकर सब आपस में बातें करने लगे—"हमारी पत्नियां कहां चली गयीं, कुछ भी ज्ञात नहीं है। क्या किसी नीच ने उन सब का हरण किया?" इन लोगों ने इस प्रकार परामर्श करके आश्रम के चतुर्दिक् अनुसन्धान प्रारम्भ कर दिया। तदनन्तर ऋषियों ने देखा कि उनकी पत्नियां दूरस्थ शिव का अनुगमन कर रही हैं। शिव को देखकर सभी उपस्थित ऋषिगण क्रोधित हो गये तथा शिव के पास आकर व्यग्रतापूर्वक कहने लगे। ऋषि कहते हैं—"हे शम्भु! आप तो विषयों से विरक्त महात्मा हैं। यह आपने क्या किया? वास्तव में आप परस्त्रीहरण करने वाले हैं"।।२०-२३।।

एवं क्षिप्तःशिवोमौनीगच्छमानोऽपिपर्वतम्। तदासऋषिभिःप्राप्तोमहादेवोऽव्ययस्तथा॥२४॥
यस्मात्कलत्रहर्ता त्वं तस्मात्षण्ढो भवत्वरम्। एवं शप्तः समुनिभिर्लिङ्गंतस्यापतद्भुवि।
भूमिप्राप्तं च तल्लिङ्गं ववृधे तरसा महत्॥२५॥
आवृत्यसप्तपातालान्क्षणाल्लिङ्गमधोर्ध्वतः। व्याप्यपृथ्वींसमग्रांचअन्तरिक्षंसमावृणोत्॥२६॥

ऋषिगण का यह आक्षेप सुनकर भी शिव मौनी होकर कैलास चले गये, तथापि ऋषिगण के क्रोध की निवृत्ति नहीं हो सकी। उन्होंने तब शिव के लिए यह अभिसम्पात रूप वाक्य कहा—"आपने अव्यय महादेव होकर भी हमारी पत्नियों का हरण किया है। अतः आपको शीघ्र क्लीवत्व सहना होगा।" जैसे ही ऋषिगण ने यह अभिशाप प्रदान किया, वैसे ही तत्क्षण शिव का लिङ्ग धरती पर पतित हो गया। यह लिङ्ग भूतल पर गिरते ही वेगपूर्वक वर्द्धित होने लगा। देखते-देखते वह क्षणमात्र में सप्त पाताल, समग्र पृथिवी तथा अन्तरिक्ष प्रभृति सभी अधः तथा ऊर्ध्व स्थानों में परिव्याप्त हो गया।।२४-२६।।

स्वर्गाःसमावृताःसर्वेस्वर्गातीतमथाभवत्। न मही न च दिक्चक्रं न तोयंनचपावकः॥२७॥
नचवायुर्नवाऽऽकाशंनाहंकारो न वा महत्।
न चाव्यक्तंनकालश्च न महाप्रकृतिस्तथा॥२८॥
नासीद्द्वैतविभागंचसर्वंलोनंचतत्क्षणात्। यस्माल्लीनंजगत्सर्वंतस्मिंल्लिङ्गेमहात्मनः॥२९॥
लयनाल्लिङ्गमित्येवं प्रवदन्ति मनीषिणः। तथाभूतं वर्द्धमानं दृष्ट्वा तेऽपि सुरर्षयः॥३०॥
ब्रह्मेन्द्रविष्णुवाय्वग्निलोकपालाः सपन्नगाः। विस्मयाविष्टमनसःपरस्परमथाऽब्रुवन्॥३१॥
किमायामंचविस्तारंक्वञ्चान्तःक्वचपीठिका। इतिचिन्तान्वितोविष्णुमूचुःसर्वेसुरास्तदा॥३२॥

क्रमशः यह लिङ्ग स्वर्ग को भी आवृत करके स्वर्गातीत हो गया। तब पृथिवी, दिक्मण्डल, जल, पावक, वायु, आकाश, अहंकार, महत्, अव्यक्त, काल किंवा महाप्रकृति रूप कोई द्वैतरूप विभाग ही नहीं रह गया। सब कुछ तत्क्षण लिंग में लीन हो गया। जब महात्मा शिव के लिंग में समस्त जगत् लयीभूत हो गया, तभी उसका नाम मनीषिाण ने लिङ्ग रखा है। इस समय ब्रह्मा-इन्द्र-विष्णु-वायु-अग्नि तथा लोकपाल प्रमुख देवता, देवर्षि उस वर्द्धित लिंग का दर्शन करके परस्परतः कहने लगे कि इस लिंग का आयाम अथवा विस्तार कितना है? इसका अन्त अथवा पीठिका (उदय) कहां है?

यह चिन्तन करते-करते समस्त देवगण ब्रह्मा तथा विष्णु के निकट जाकर कहने लगे।।२७-३२।।

देवा ऊचुः

अस्य मूलं त्वया विष्णो! पद्मोद्भव! च मस्तकम्।
युवाभ्यां च विलोक्यं स्यात्स्थाने स्यात्परिपालकौ॥३३॥

देवगण कहते हैं—"हे विष्णु! हे पद्मोद्भव! इस लिंग का मूल तथा मस्तक (विस्तार) कहां है? यह आप सबको देखना चाहिये। क्योंकि आप लोग ही जगत् के योग्य पालक हैं।।३३।।

श्रुत्वा तुतौमहाभागौवैकुण्ठकमलोद्भवौ। विष्णुर्गतो हि पातालं ब्रह्मा स्वर्गंजगामह॥३४॥
स्वर्गं गतस्तदा ब्रह्मा अवलोकनतत्परः। नापश्यत्तत्र लिङ्गस्य मस्तकं च विचक्षणः॥३५॥
तथागतेन मार्गेण प्रत्त्यावृत्याब्जसम्भवः। मेरुपृष्ठमनुप्राप्तः सुरभ्या लक्षितस्ततः॥३६॥
स्थिता या केतकीच्छायामुवाच मधुरंवचः। तस्या वचनमाकर्ण्य सर्वंलोकपितामहः।
उवाच प्रहसन्वाक्यं छलोक्त्या सुरभिं प्रति॥३७॥
लिङ्गं महाद्भुतंदृष्टंयेनव्याप्तंजगत्त्रयम्। दर्शनार्थं च तस्यान्तं देवैःसम्प्रेषितोऽस्म्यहम्॥३८॥
न दृष्टं मस्तकं तस्यव्यापकस्यमहात्मनः। किं वक्ष्येऽहं च देवाग्रे चिन्तामेचातिवर्तते॥३९॥
लिङ्गस्य मस्तकंदृष्टंदेवानां च मृषा वदेः। ते सर्वे यदि वक्ष्यन्तिइन्द्राद्यादेवतागणाः।
ते सन्ति साक्षिणो देवा अस्मिन्नर्थे वद त्वरम्॥४०॥
अर्थेऽस्मिन्भव साक्षी त्वं केतक्या सह सुव्रते!॥४१॥

महाभाग विष्णु तथा ब्रह्मा यह वाक्य सुनकर उस लिंग का परिमाण जानने हेतु चले। विष्णु पाताल की ओर तथा ब्रह्मा ऊर्ध्व में स्वर्ग की ओर चल पड़े। तथापि अनेक अनुसन्धान के उपरान्त भी वे यह नहीं जान सके कि इसका मस्तक कहां तक है? अतएव वे जिस मार्ग से गये थे, उसी मार्ग से वापस आ गये। लौटते समय ब्रह्मा मेरुपृष्ठ पर उतरे थे। वहां उनका साक्षात् सुरभि के साथ हो गया। सुरभि गौ केतकी वृक्ष की छाया में बैठी थीं। उन्होंने ब्रह्मा को देखकर मधुर वाणी में वार्तालाप किया। उसका वचन सुनकर लोकपितामह ब्रह्मा ने हंसते हुये छलपूर्वक कहा—"हे सुरभि! यह परम अद्भुत लिंग तीनों लोकों को व्याप्त किये हुये है, क्या तुमने उसे देखा? उस लिंग का अन्त देखने हेतु देवगण ने मुझे भेजा, किन्तु उस महीयान लिंग का मस्तक मैं नहीं देख सका। अब मैं देवगण से जाकर क्या कहूंगा? यही चिन्ता सता रही है कि यदि मैं देवगण से यह कहूं कि मैं लिंग का मस्तक देखकर आया हूं, तब इन्द्रादि प्रमुख देवता मुझे झूठा मानेंगे। तब मैं कहूंगा कि मेरे इस दर्शन व्यापार में सुरभि साक्षी है, जो देवगण को साक्ष्य देगी। जंब वे पूछें, तब तुम मेरे पक्ष में गवाही देना। हे सुरभि! यह तुमसे मेरा अनुरोध है। तुम केतकी वृक्ष के साथ मेरी ओर से गवाही देना"।।३४-४१।।

तद्वचः शिरसागृह्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः। केतकी सहिता तत्र सुरभी तदमानयत्॥४२॥

परमेष्ठि ब्रह्मा के वचन को सुनकर सुरभि ने उसे शिरोधार्य किया तथा केतकी के साथ एक होकर भगवान् ब्रह्मा का सम्मान किया।।४२।।

एवं समागतो ब्रह्मा देवाग्रे समुवाच ह॥४३॥
लिङ्गस्य मस्तकं देवा दृष्टवानहमद्भुतम्। समीचीनं चर्चितं च केतकीदलसंयुतम्॥४४॥

विशालं विमलंश्लक्ष्णं प्रसन्नतरमद्भुतम्। रम्यं च रमणीयं च दर्शनीयं महाप्रमम्॥४५॥
एतादृशं मयादृष्टं न दृष्टंतद्विनाक्वचित्। ब्रह्मणो हि वचः श्रुत्वा सुराविस्मयमाययुः॥४६॥

तत्पश्चात् ब्रह्मा ने देवगण से कहा—"हे देवगण! मैंने लिङ्ग का अद्भुद् मस्तक देखा है। वह अतीव सुन्दर है। उसकी मैंने केतकी दल से अर्चना की है। मैंने देखा है कि वह विशाल, विमल, मसृण, प्रसन्न, अपूर्व, रम्य, सुदृश्य तथा महाप्रभ है। मैंने लिंग तो देखा, तथापि लिंग के अतिरिक्त भी कुछ है, ऐसा नहीं देखा।" ब्रह्मा की बात सुनकर सभी देवता विस्मयापन्न हो गये।।४३-४६।।

एवं विस्मयपूर्णास्तेइन्द्राद्यादेवतागणाः। तिष्ठन्ति तावत्सर्वेशोविष्णुरध्यात्मदीपकः॥४७॥
पातालादागतः सद्यः सर्वेषामवदत्त्वरन्। तस्याष्यन्तो न दृष्टो मे ह्यवलोकनतत्परः॥४८॥
विस्मयोमे महाञ्जातः पातालात्परतश्चरन्। अतलं सुतलं चापि वितलं च रसातलम्॥४९॥
तथा गतस्तलंचैव पातालं च तथातलम्। तलातलानि तान्येवं शून्यवद्यद्विभाव्यते॥५०॥
शून्यादपि च शून्यं च तत्सर्वंसुनिरीक्षितम्। न मूलं च नमध्यञ्चचान्तोह्यस्यनविद्यते॥५१॥
लिङ्गरूपी महादेवो येनेदं धार्यते जगत्। यस्य प्रसादादुत्पन्ना यूयं च ऋषयस्तथा॥५२॥

ब्रह्मा का वचन सुनकर देवगण विस्मयापन्न हो गये। वे विस्मित चित्त हो बैठ गये। उधर पाताल से ज्ञानदीपक, सर्वेश्वर विष्णु भी वापस लौटे तथा सुरगण से अपनी परिदर्शन प्रणाली का वर्णन करते विष्णु ने कहा—"मैंने अनेक स्थानों पर खोजा, तथापि उस लिङ्ग का अन्त कहीं नहीं मिला। इससे महान् विस्मय हो रहा है। मैं पाताल से क्रमशः अतल, सुतल, नितल, रसातल, तलातल प्रभृति स्थानों पर गया। उसके बाद के स्थान मुझे शून्य लगे। उस शून्य की अपेक्षा और भी शून्य जो स्थान हैं, उन सबको मैंने सूक्ष्मता से खोजा, तथापि उस लिंग के मूल, मध्य, अन्त का पता ही नहीं चला। मुझे प्रतीत होता है कि महादेव ही लिङ्ग रूप हैं। वे ही इस जगत् को धारण करते हैं। इसी के प्रसाद से आप सब तथा ऋषिगण उत्पन्न हुये हैं"।।४७-५२।।

श्रुत्वा सुराश्च ऋषयस्तस्यवाक्यमपूजयन्। तदा विष्णुरुवाचेदं ब्रह्माणं प्रहसन्निव॥५३॥
दृष्टं हि चेत्त्वया ब्रह्मन् मस्तकंपरमार्थतः। साक्षिणःकेत्वयातत्रअस्मिन्नर्थेप्रकल्पिताः॥५४॥
आकर्ण्यवचनं विष्णोर्ब्रह्मालोकपितामहः। उवाच त्वरितेनैव केतकी सुरभीति च॥५५॥
तेदेवा मम साक्षित्वे जानीहिपरमार्थतः। ब्रह्मणो हि वचःश्रुत्वासर्वेदिवास्त्वरान्विताः॥५६॥
आह्वानं चक्रिरे तस्याः सुरभ्याश्च तया सह। आगते तत्क्षणादेवकार्यार्थंब्रह्मणस्तदा॥५७॥

"उन्होंने ही समस्त जगत् को धारण किया है। उनकी ही कृपा से देवता तथा ऋषि उत्पन्न होते हैं।" देवता तथा ऋषिगण ने विष्णु का वचन सुनकर इस उपदेश का अभिनन्दन किया। तब विष्णु हास्यपूर्ण मुद्रा में ब्रह्मा से कहने लगे—"हे ब्रह्मन्! आपने यदि सत्य ही लिंग का मस्तक देखा हो तब कहिये। आपके इस दर्शन व्यापार का कौन साक्षी है? किसे आपने साक्षी बनाया?" विष्णु का वाक्य सुनकर ब्रह्मा ने व्यग्रता से कहा—"मेरे साक्षी हैं, केतकी तथा सुरभी गौ। हे देवगण, उनको ही मेरा साक्षी जानें।" ब्रह्मा का वचन सुनकर देवगण ने तत्काल सुरभि तथा केतकी को बुलाया। ब्रह्मा का कार्य जानकर केतकी तथा सुरभि तत्काल आ गये।।५३-५७।।

इन्द्राद्यैश्च तदादेवैरुक्ता च सुरभीततः। उवाच केतकी सार्द्धं दृष्टो वै ब्रह्मणा सुराः॥५८॥

लिङ्गस्य मस्तको देवाःकेतकीदलपूजितः। तदा नभोगता वाणीसर्वेषां शृण्वतामभूत्॥५९॥
सुरभ्याचैवयत्प्रोक्तंकेतक्याचतथा सुराः। तन्मृषोक्तं च जानीध्वंनहृष्टोह्यस्यमस्तकः॥६०॥
तदा सर्वेऽथविबुधाःसेन्द्रा वै विष्णुना सह। शेपुश्च सुरभिंरोषान्मृषावादनतत्पराम्॥६१॥
मुखेनोक्तं त्वयाऽद्यैवमनृतं च तथा शुभम्। अपवित्रं मुखंतेऽस्तु सर्वधर्मबहिष्कृतम्॥६२॥
सुगन्धकेतकीचाऽपिअयोग्या त्वं शिवार्चने। भविष्यसि न सन्देहोअनृताचैवभामिनि॥६३॥

इन्द्रादि देवताओं ने सुरभि तथा केतकी से ब्रह्मा के वाक्य की यथार्थता जाननी चाही। तब सुरभी एवं केतकी ने एक स्वर में उत्तर दिया—"हे सुरगण! हम जानते हैं, ब्रह्मा ने लिंग का मस्तक देखा है। साथ ही केतकी दल से उस मस्तक का पूजन भी किया है।" इनकी इस साक्षी को सबके द्वारा सुनते ही वहां पर सहसा आकाशवाणी सुनी गयी। देवता उसे सुनने लगे। आकाशवाणी का तात्पर्य था कि "हे देवगण! सुरभी तथा केतकी ने जो कुछ भी कहा है, वह सत्य नहीं है। आप सब यह जानें कि ब्रह्मा ने लिंग का मस्तक देखा ही नहीं है।" तब इन्द्रादि विबुधगण तथा विष्णु ने रोष में भरकर मिथ्यावादिनी सुरभी को अभिशाप देते कहा—"हे शुभे! जिस मुख से तुमने अभी मिथ्या वचन कहा है, तुम्हारा वह मुख अपवित्र तथा सर्वधर्म गर्हित हो जाये। हे केतकी! तुम अत्यन्त सुगन्धित हो, तथापि आज से तुम्हारे पुष्प से शिवपूजा नहीं होगा"।।५८-६३।।

तदानभोगतावाणीब्रह्माणं च शशाप वै। मृषोक्तं च त्वया मन्द! किमर्थंबालिशेनहि॥६४॥
भृगुणा ऋषिभिःसाकंतथैव च पुरोधसा। तस्माद्यूयं न पूज्याश्चभवेयुःक्लेशभागिनः॥६५॥
ऋषयोऽपि च धर्मिष्ठास्तत्त्ववाक्यबहिष्कृताः।
विवादनिरता मूढ़ा अतत्त्वज्ञाः समत्सराः॥६६॥
याचकाश्चावदान्याश्च नित्यं स्वज्ञानघातकाः।
आत्मसंभाविताःस्तब्धाः परस्परविनिन्दकाः॥६७॥
एवं शप्ताश्च मुनयो ब्रह्माद्या देवतास्तथा। शिवेन शप्तास्ते सर्वेलिङ्गं शरणमाययुः॥६८॥

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीति साहस्र्यां सहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे श्रीशिवलिङ्गमाहात्म्ये ब्रह्मादिशापवृत्तान्तवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः।।६।।

तदनन्तर उस आकाशवाणी ने ब्रह्मा को अभिशाप प्रदान किया और कहा—"हे मूढ़! तुमने किस लिए भृगु तथा अन्य ऋषिगण से मिथ्या वाक्य कहा? इस अपराध के कारण तुम्हारी पूजा नहीं होगी। परन्तु क्लेशगामी होगे। ये धर्मिष्ठ ऋषिगण भी उस वाक्य से बहिष्कृत होंगे। ये सब विवाद में निरत, मूढ़चित्त, अतत्वदर्शी, मात्सर्य युक्त, याचक, परस्पर एक दूसरे के निन्दक होंगे। इस प्रकार ये सब ज्ञान विघ्नकारी, देहात्मवादी तथा स्तब्ध होंगे।" इस प्रकार आकाशवाणी ने ब्रह्मा तथा मुनिगण को अभिशाप दे दिया, तब उन्होंने जाना कि शिव ने ही अभिशाप दिया है। अतः सभी शिव के शरणापन्न हो गये।।६४-६८।।

॥षष्ठ अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

सप्तमोऽध्यायः

देवों द्वारा लिङ्ग स्तुति

लोमश उवाच

तदा च ते सुराः सर्व ऋषयोऽपिभयान्विताः। ईडिरे लिङ्गमैशंचब्रह्माद्याज्ञानविह्वलाः॥१॥

लोमश कहते हैं—तब ब्रह्मादि तथा समस्त देवता ज्ञानविह्वल एवं भयाकुल होकर ईश्वर शिव की स्तुति करने लगे॥१॥

ब्रह्मोवाच

त्वं लिङ्गरूपी तु महाप्रभावो वेदान्तवेद्योऽसि महात्मरूपी।
येनैव सर्वे जगदात्ममूलं कृतं सदानन्दपरेण नित्यम्॥२॥

त्वं साक्षीसर्वलोकानांहर्ता त्वं च विचक्षणः। रक्षणोऽसिमहादेवभैरवोऽसिजगत्पते॥३॥
त्वया लिङ्गस्वरूपेणव्याप्तमेतज्जगत्त्रयम्। क्षुद्राश्चैव वयं नाथ! मायामोहितचेतसः॥४॥
अहं सुराऽसुराः सर्वे यक्षगन्धर्वराक्षसाः। पन्नगाश्चपिशाचाश्च तथा विद्याधराह्यमी॥५॥
त्वं हि विश्वसृजांस्त्रष्टा त्वं हि देवोजगत्पतिः। कर्त्तात्वंभुवनस्यास्यत्वंहर्तापुरुषःपरः॥६॥
त्राह्यस्माकं महादेव! देवदेवनमोऽस्तुते। एवं स्तुतो हि वै धात्रा लिङ्गरूपीमहेश्वरः॥७॥
ऋषयःस्तोतुकामास्तेमहेश्वरमकल्मषम्। अस्तुवन्गीर्भिरग्र्याभिः श्रुतिगीताभिरादृताः॥८॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे महादेव! आप ही वेदान्तवेद्य, महाप्रभावशाली, लिङ्गरूपी महात्मा हैं। आप ही सदानन्दरूपेण स्वयं जगत् का उत्पादन करते हैं। आप ही समस्त लोक के साक्षी हैं। आप ही हर्त्ता, विचक्षण, रक्षक तथा भैरव हैं। हे जगत्पति! आपने लिंगरूपेण समस्त जगत् को व्याप्त किया है। हे नाथ! हम माया-मोहित चित्त क्षुद्र व्यक्ति हैं। मैं तथा समस्त देवता, असुर, यक्ष, गन्धर्व, पन्नग, पिशाच, विद्याधर आपके सामने तो क्षुद्रतम हैं। आप विश्वस्त्रष्टागण के भी स्त्रष्टा हैं। आप ही देव जगत्पति भी हैं। आप ही भुवन के कर्त्ता, हर्त्ता तथा देव परमपुरुष हैं। हे महादेव! आप हमारी रक्षा करें। आपको हमारा प्रणाम!

विधाता ने जब इस प्रकार लिंगरूपी महेश्वर की स्तुति सम्पन्न किया, तब ऋषिगण भी प्रभु का स्तव करने के अभिलाषी हो गये। वे अत्यन्त श्रद्धा के साथ उत्तम स्तुतिगायन के द्वारा अकल्मष महेश्वर का स्तव करने लगे॥२-८॥

ऋषय ऊचुः

अज्ञानिनो वयं कामान्न विदामोऽस्य संस्थितिम्।
त्वं ह्यात्मा परमात्मा च प्रकृतिस्त्वं विभाविनी॥९॥
त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमीश्वरो वेदविदेकरूपो महानुभावैः परिचिन्त्यमानः॥१०॥

त्वमात्मा सर्वभूतानामेको ज्योतिरिवैधसाम्।
सर्वं भवति यस्मात्त्वत्तस्मात्सर्वोऽसि नित्यदा॥११॥
यस्माच्च सम्भवत्येतत्तस्माच्छम्भुरिति प्रभुः॥१२॥
त्वत्पादपङ्कजं प्राप्ता वयं सर्वे सुरादयः। ऋषयो देवगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः॥१३॥
तस्माच्च कृपया शम्भो पाह्यस्माज्जगतःपते!॥१४॥

ऋषि कहते हैं—हम सभी अत्यन्त अज्ञानी हैं। आपकी संस्थानवार्ता को हम नहीं जानते। हे देव! आप ही आत्मा, परमात्मा तथा विश्वविभाविनी प्रकृति हैं। आप ही माता-पिता-बन्धु तथा सखा हैं। आप ही ईश्वर, वेदवित्, एकरूप हैं। महान् ध्यानपरायण आपका ही चिन्तन करते रहते हैं। जैसे काष्ठ में अग्नि सन्निहित है, उसी प्रकार आप ही सभी प्राणियों की आत्मा हैं। आप से ही समस्त वस्तुसमूह उद्भूत है। तभी आप सर्व हैं। आपसे ही सब कुछ संभव होता है, तभी आप शम्भु हैं। देवता, ऋषि, गन्धर्व, विद्याधर तथा महान् सर्पगण आपके ही चरणकमल की प्राप्ति हेतु लालायित रहते हैं। हे जगत्पति शम्भु! आप कृपा करके हमारा परित्राण करें।।९-१४।।

महादेव उवाच

शृणुध्वं तु वचोमेऽद्य क्रियतां च वरान्वितैः। विष्णुं सर्वेप्रार्थयन्तुत्वरितेनतपोधनाः॥१५॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शङ्करस्य महात्मनः। विष्णुं सर्वे नमस्कृत्यईडिरे च तदा सुराः॥१६॥

महादेव कहते हैं—आप सब मेरी बातों को सुनकर शीघ्रता से मेरे द्वारा कहे गये कार्य को सम्पन्न करें। हे तपोधनगण! आप सब शीघ्र विष्णु के पास जाकर प्रार्थना करिये। महात्मा शंकर का यह वचन सुनकर सभी ने विष्णु को प्रणाम किया तथा उनकी स्तुति करने लगे।।१५-१६।।

देवा ऊचुः

विद्याधराः सुरगणा ऋषयश्च सर्वे त्रातास्त्वयाऽद्य सकला जगदेकबन्धो।
तद्वत्कृपाकर! जनान्परिपालयाऽद्य त्रैलोक्यनाथ! जगदीश! जगन्निवास!॥१७॥
प्रहस्य भगवान्विष्णुरुवाचेदं वचस्तदा। दैत्यैः प्रपीड़िता यूयं रक्षिताश्च पुरामया॥१८॥
अद्यैवभयमुत्पन्नं लिङ्गादस्माच्चिरन्तनम्। न श क्यतेमयात्रातुमस्माल्लिङ्गभयात्सुराः॥१९॥
अच्युतेनैवमुक्तास्तेदेवाश्चिन्तान्विताभवन्। तदानभोगतावाणीउवाचाश्वास्यवैसुरान्॥२०॥
एतल्लिङ्गं संवृणुष्व पूजनाय जनार्दन। पिण्डीभूत्वा महाबाहोरक्षस्व सचराचरम्।
तथेति मत्वा भगवान्वीरभद्रोऽभ्यपूजयत्॥२१॥

देवगण कहते हैं—"हे जगदेकनाथ! विद्याधर, सुर तथा ऋषि, सभी का आपने पूर्वकाल में परित्राण किया है। हे त्रिलोकीनाथ! जगदीश, जगन्निवास! आप कृपापूर्वक जनगण का पालन करें।" भगवान् विष्णु ने हास्यपूर्वक कहा—"पूर्व में दैत्यों ने आप लोगों को पीड़ित किया था, तब मैंने रक्षा की थी। अब लिंग से एक चिरन्तन भय उपस्थित है। हे देवगण! इस लिंग भय से बचाने की शक्ति मुझमें नहीं है।" यह कहकर अच्युत ने देवगण को चिन्तित कर दिया। तब सुरगण को आश्वस्त करते एक आकाशवाणी होने लगी—हे जनार्दन! इस लिंग की अर्चना

को वरण करो। हे महाबाहु! तुम इस लिंग का आधार पिण्ड बन कर चराचर का रक्षण करो। भगवान् वीरभद्र ने इस वाक्य से आशायुक्त होकर सबसे पहले लिंग पूजन किया।।१७-२१।।

ब्रह्मादिभिः सुरगणैः सहितैस्तदानींसम्पूजितः शिवविधानरतो महात्मा।
स वीरभद्रः शशिशेखरोऽसौ शिवप्रियो रुद्रसमस्त्रिलोक्याम्॥२२॥
लिङ्गस्यार्चनयुक्तोऽसौ वीरभद्रोऽभवत्तदा। तद्रूपस्यैव लिङ्गस्य येन सर्वमिदं जगत्॥२३॥
उद्भाति स्थितिमाप्नोतिंतथाविलयमेति च। तल्लिङ्गंलिङ्गमित्याहुर्लयनात्तत्त्ववित्तमाः॥२४॥
ब्रह्माण्डगोलकैर्व्याप्तं तथा रुद्राक्षभूषितम्। तथा लिङ्गं महज्जातं सर्वेषां दुरतिक्रमम्॥२५॥

वे ब्रह्मादि देवगण के ही साथ तत्काल शिवध्यानतत्पर हो गये। इन वीरभद्र के मस्तक पर चन्द्र था। वे शिवप्रिय तथा रुद्र के समान हैं। अब वीरभद्र उस समय लिंगार्चन करने लगे। लिंग रुद्र का ही रूप है। उससे ही यह जगत् उद्भूत हुआ है। उसी में जगत् स्थान पा रहा है। इसी में विलीन भी हो जायेगा। तभी तत्त्ववेत्ता इसे लिङ्ग नाम से अभिहित करते हैं। यह लिंग ब्रह्माण्ड गोलक में व्याप्त है। यह रुद्राक्ष से भूषित तथा अत्यन्त महदाकृति है। तभी यह दुरतिक्रम्य है।।२२-२५।।

तदा सर्वेऽथ विबुधा ऋषयो वै महाप्रभाः। तुष्टुवुश्च महालिङ्गं वेदवादैःपृथक्पृथक्॥२६॥
अणोरणीयांस्त्वंदेवतथा त्वं महतोमहान्। तस्मात्त्वयाविधातव्यंसर्वेषांलिङ्गपूजनम्॥२७॥
तदानीमेव सर्वेण लिङ्गं च बहुशःकृतम्। सत्ये ब्रह्मेश्वरं लिङ्गं वैकुण्ठे च सदाशिवः॥२८॥
अमरावत्यां सुप्रतिष्ठममरेश्वरसञ्ज्ञकम्। वरुणेश्वरं च वारुण्यां याम्यांकालेश्वरंप्रभुम्॥२९॥
नैर्ऋतेश्वरं च नैर्ऋत्यां वायव्यांपावनेश्वरम्। केदारं मृत्युलोके च तथैव अमरेश्वरम्॥३०॥
ओङ्कारं नर्मदायां च महाकालं तथैव च। काश्यां विश्वेश्वरं देवं प्रयागेललितेश्वरम्॥३१॥
त्रियम्बकं ब्रह्मगिरौ कलौ भद्रेश्वरं तथा। द्राक्षारामेश्वरंलिङ्गं गङ्गासागरसङ्गमे॥३२॥
सौराष्ट्रे च तथा लिङ्गंसोमेश्वरमितिस्मृतम्। तथासर्वेश्वरंविन्ध्येश्रीशैलेशिखरेश्वरम्।
कान्त्यामल्लालनाथं च सिंहनाथं च सिगले॥३३॥
विरूपाक्षं तथा लिङ्गंकोटिशङ्करमेव च। त्रिपुरान्तकं च भीमेशममरेश्वरमेव च॥३४॥
भोगेश्वरं च पाताले हाटकेश्वरमेव च। एवमादीन्यनेकानि लिङ्गानि भुवनत्रये।
स्थापितानि तदा देवैर्विश्वोपकृतिहेतवे॥३५॥

तब समस्त महामति देवता तथा ऋषिगण विभिन्न वेदवाक्य से महालिङ्ग का स्तव करने लगे।

देवर्षिगण कहते हैं—"हे देव! लिङ्गरूपिन्! आप अणु से भी अणु तथा महत् से भी महत् हैं। अतः सभी जिससे लिंग पूजा कर सकें, आप वह विधान करिये।" देवर्षिगण की यह प्रार्थना सुनकर शंकर ने उस लिंग को बहुधा विभक्त कर दिया। सत्यलोक में उनका ब्रह्मेश्वर लिंग, वैकुण्ठ में सदाशिव लिंग, अमरावती में सुप्रतिष्ठ अमरेश्वर, वरुणालय में वरुणेश्वर, यमालय में कालेश्वर, निर्ऋतिपुर में नैर्ऋतेश्वर, वायुलोक में पवनेश्वर, मृत्युलोक में केदार तथा अमरेश्वर, नर्मदा तट पर ओंकारेश्वर तथा महाकाल, काशी में विश्वेश्वर, प्रयाग में ललितेश्वर, ब्रह्माचल

में त्र्यम्बक, कलि में भद्रेश्वर, गंगासागर संगम में द्राक्षारामेश्वर, सौराष्ट्र में सोमेश्वर, विन्ध्याचल में सर्वेश्वर, श्रीशैल में शिखरेश्वर, कान्तीपुर में अल्पालनाथ, सिंहल में सिंहनाथ, विरूपाक्ष-कोटिशंकर-त्रिपुरान्तक-भीमेश-अमरेश्वर तथा भोगेश्वर तथा पाताल में हाटकेश्वर लिंग प्रतिष्ठित है। ये तीनों लोकों के लिंग हैं। देवदेव ने विश्व के उपकारार्थ इनको स्थापित किया है।।२६-३५।।

लिङ्गैश्चैश्च तथा सर्वैः पूर्णमासीज्जगत्त्रयम्। तथा च वीरभद्रांशाः पूजार्थममरैःकृताः॥३६॥
तत्रविंशति संस्कारास्तेषामष्टाधिकाभवन्। कथिताःशङ्करेणैव लिङ्गस्यार्चनसूचकाः॥३७॥
सन्ति रुद्रेण कथिताः शिवधर्माः सनातनाः।
वीरभद्रो यथा रुद्रस्तथाऽन्ये गुरवःस्मृताः॥३८॥
गुरोर्जाताश्च गुरवो विख्याता भुवनत्रये। लिङ्गस्य महिमानं तु नन्दीजानातितत्त्वतः॥३९॥
तथास्कन्दोहिभगवानन्येतेनामधारकाः। यथोक्ताःशिवधर्माहिनन्दिनापरिकीर्त्तिताः॥४०॥
शैलादेन महाभागा विचित्रा लिङ्गधारकाः। शवस्योपरिलिङ्गं च धियते च पुरातनैः॥४१॥

इसी प्रकार देवताओं ने और भी अनेक लिंग विश्व के उपकारार्थ स्थापित किये हैं। तब लिंगेश्वरगणों से यह तीनों लोक पूर्णतः व्याप्त हो गया। अमरगण ने वीरभद्र के वंशजों को इन लिंगों की पूजार्थ नियुक्त किया। इन सभी लिंगों के २८ संस्कार हैं। स्वयं शंकर ने लिंगार्चन के लिए इन संस्कारों को कहा था। रुद्र कथित सनातन धर्म भी अनेक हैं। वीरभद्र रुद्रवत् हैं। अन्य गुरुगण भी तदनुरूप हैं। इसके अतिरिक्त गुरुपुत्रगण भी त्रिभुवन में गुरुपद वाच्य हैं। अतः वे भी रुद्रतुल्य हैं। नन्दीश्वर को लिंग महिमा यथायथ ज्ञात है। भगवान् स्कन्द को तथा अन्य ख्यातिनामा (शिवभक्त तथा शैवाचार्यगण) लोगों को भी लिंग का माहात्म्य ज्ञात है। प्रचलित शिवधर्म को नन्दीश्वर ने कहा है। वे विचित्र लिंगधारक हैं। उनके मुख से महाभाग्यवान लिंगधारकों को यह ज्ञात हुआ है। प्राचीन शैवगण शव पर लिंग धारण करते थे।।३६-४१।।

लिङ्गेन सहपञ्चत्वं लिङ्गेन सह जीवितम्। एते धर्माः सुप्रतिष्ठाः शैलादेन प्रतिष्ठिताः॥४२॥
धर्मः पाशुपतः श्रेष्ठः स्कन्देन प्रतिपालितः॥४३॥
शुद्धापञ्चाक्षरीविद्याप्रासादी तदनन्तरम्। षडक्षरी तथा विद्याप्रासादस्यचदीपिका॥४४॥
स्कन्दात्तत्समनुप्राप्तमगस्त्येन महात्मना। पश्चादाचार्यभेदेनह्यागमा बहवोऽभवन्॥४५॥

शैलाद नन्दीश्वर ने यह धर्म प्रतिष्ठित किया कि लिंग के साथ पंचत्व (मृत्यु) प्राप्त करना तथा लिंग के ही साथ जीना। स्कन्द द्वारा स्थापित शैव धर्म उत्तम है। पञ्चाक्षरी विद्या शुद्धा है। तत्पश्चात् प्रासादबीज (ॐ) तदनन्तर प्रासाद बीज की दीपिका, षडक्षरी विद्या, ये सभी बीजमन्त्र महात्मा अगस्त्य ने स्कन्ददेव से प्राप्त किया था। तत्पश्चात् आचार्य भेद से अनेक आगम हो गये।।४२-४५।।

किं नु वै बहुनोक्तेन शिव इत्यक्षरद्वयम्। उच्चारयन्ति ये नित्यं ते रुद्रा नात्र संशयः॥४६॥
सतांमार्गंपुरस्कृत्य ये सर्वे ते पुरान्तकाः। वीरा माहेश्वरा ज्ञेयाः पापक्षयकरानणाम्॥४७॥

अधिक क्या कहें—जो 'शिव' इस अक्षरद्वय का नित्य उच्चारण करते हैं, वे भी साक्षात् रुद्र हैं। इसमें संदेह नहीं है। जो साधुजन प्रदर्शित-आचारित पथ पर चलते हैं तथा आजीवन तपःश्चरणरत रहते हैं, वे माहेश्वर वीर

कहे जाते हैं। ये सभी वीर सामान्य लोगों का पाप क्षय कराने में सक्षम हैं।।४६-४७।।

प्रसङ्गेनानुषङ्गेणश्रद्धयाचयदृच्छया। शिवभक्तिम्प्रकुर्वन्ति ये वै ते यान्तिसद्गतिम्।।४८।।

शृणुध्वं कथयामीह इतिहासं पुरातनम्।
कृतं शिवालये यच्च पतंग्या मार्जनं पुरा।।४९।।

आगता भक्षणार्थं हि नैवेद्यं केन चार्पितम्। मार्जनं रजसस्तस्याःपक्षाभ्यामभवत्पुरा।।५०।।
तेन कर्मविपाकेन उत्तमं स्वर्गमागता। भुक्त्वा स्वर्गसुखं चोग्रं पुनः संसारमागता।।५१।।
काशिराजसुता जातासुन्दरी नामविश्रुता। पूर्वाभ्यासाच्च कल्याणी बभूवपरमासती।।५२।।

प्रसंग में, अनुषङ्ग में, श्रद्धा अथवा स्वेच्छा से जो शिवभक्ति समन्वित हैं, उनको सद्गति प्राप्त होना निश्चित है। श्रवण करें। इस सम्बन्ध में एक प्राचीन इतिहास कहता हूं। प्राचीन काल में एक पतंगी ने जिस प्रकार शिवालय को स्वच्छ किया था, अब वही प्रसंग कहता हूं। एक बार किसी व्यक्ति ने शिव को नैवेद्य दान किया। यह पतंगी उस नैवेद्य का भक्षण करने आई। उसके पंखों की वायु से शिव के पास की धूल साफ हो गयी। यह अनेक दिन पूर्व की घटना है। जो भी हो, इस कर्मविपाक के कारण पतंगी को श्रेष्ठ स्वर्ग मिला। उसने दीर्घकाल उत्कट स्वर्गसुख भोगकर पुनः संसार में जन्म लिया। इस बार उसका जन्म काशिराज की कन्या के रूप में हुआ। वह सुन्दरी नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध थी। पूर्वजन्म के अभ्यास के कारण यह कन्या सुन्दरी स्वभावतः कल्याणरूपा थी। वह परम सती थी।।४८-५२।।

उषस्युषसि तन्वंगीशिवद्वाररतासदा। सम्मार्जनं च कुरुते भक्त्या परमया युता।।५३।।
स्वयमेव तदा देवी सुन्दरीराजकन्यका। तथाभूतां च तां दृष्ट्वाऋषिरुद्दालकोऽब्रवीत्।।५४।।
सुकुमारी सती बाले स्वयमेव कथं शुभे!। संमार्जनं च कुरुषे कन्यकेत्वंशुचिस्मिते!।।५५।।
दासी दास्यश्चबहवःसन्ति देवि! तवाग्रतः। तवाज्ञयाकरिष्यन्तिसर्वंसंमार्जनादिकम्।।५६।।

पितृगृह में रहती हुई कृशांगी सुन्दरी नित्यप्रति उषाकाल में शिवमन्दिर में जाकर भक्ति के साथ वहां सफाई किया करती। एक बार उद्दालक ऋषि ने उसे इस स्थिति में देखकर कहा—"हे कुमारी! हे शुभे! तुम सुकुमारी सती बालिका हो। तुम अपने हाथों से क्यों यह सम्मार्जन कर रही हो? हे देवी! शुचिस्मिते! तुम्हारे यहां तो न जाने कितने दास-दासी हैं। वे तुम्हारे आगे-पीछे रहते हैं। तुम्हारी आज्ञा द्वारा वे यह सब कार्य सम्पन्न कर देंगे!"।।४८-५६।।

ऋषेस्तद्वचनंश्रुत्वा प्रहस्येदमुवाच ह। शिवसेवां प्रकुर्वाणाः शिवभक्तिपुरस्कृताः।।५७।।
ये नराश्चैव नार्यश्च शिवलोकं व्रजन्तिवै।।५८।।
संमार्जनंचपाणिभ्यांपद्भ्यांयानंशिवालये। तस्मान्मया च क्रियतेसम्मार्जनमतन्द्रितम्।।५९।।
अन्यत्किञ्चिन्न जानामिएकंसम्मार्जनंविना। ऋषिस्तद्वचनंश्रुत्वामनसा च विमृश्यहि।।६०।।

ऋषि का कथन सुनकर राजनन्दिनी सुन्दरी ने हंस कर कहा—"जो स्त्री-पुरुष शिव के प्रति भक्तियुक्त होकर शिवसेवा करते हैं, वे अन्त में शिवलोक ही जाते हैं। हाथों से शिव मन्दिर का सम्मार्जन करना तथा पैदल शिवालय जाना उत्तम विधि है। तभी मैं स्वयं सतर्कतापूर्वक शिवालय में सफाई करती हूं। मैं केवल यही

सम्मार्जन धर्म जानती हूं। अन्य धर्म मुझे विदित नहीं है। ऋषि ने उसका वचन सुनकर मन ही मन विचार किया।।५७-६०।।

अनया किं कृतं पूर्वं केयं कस्य प्रसादतः। तदा ज्ञातं च ऋषिणा तत्सर्वं ज्ञानचक्षुषा।
विस्मयेन समाविष्टस्तूष्णींभूतोऽभवत्तदा।।६१।।
सविस्मयोऽभूदथ तद्विदित्वा उद्दालको ज्ञानवतां वरिष्ठः।
शिवप्रभावं मनसा विचिन्त्य ज्ञानात्परं वोधमवाप शान्तः।।६२।।
।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे शिवशास्त्रे शिवालयसम्मार्जनमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः।।७।।

उन्होंने विचार किया कि यह राजकन्या पहले क्या थी? इसने क्या किया, किसकी कृपा से इस प्रकार का उत्तम जन्म मिला? ऋषि के यह चिन्तन करते ही उनके ज्ञाननेत्र में सब बातें प्रकट हो गयीं। इससे वे विस्मय में पड़ गये तथा मौन होकर स्थित हो गये। ऋषि उद्दालक ने मन ही मन शिव के प्रभाव का चिन्तन करके ज्ञान के उत्कर्ष द्वारा परम बोध प्राप्त किया।।६१-६२।।

।।सप्तम अध्याय समाप्त।।

अष्टमोऽध्यायः

तस्कर वृत्तान्त वर्णन

लोमश उवाच

तस्करोऽपि पुरा ब्रह्मन्सर्वधर्मबहिष्कृतः। ब्रह्मघ्नोऽसौसुरापश्चसुवर्णस्य च तस्करः।।१।।
लम्पटोहि महापाप उत्तमस्त्रीषु सर्वदा। द्यूतकारी सदा मन्दः कितवैः सह संगतः।।२।।
एकदा क्रीड़तातेनहारितं द्यूतमद्भुतम्। कितवैर्मर्द्यमानो हि तदा नोवाच किञ्चन।।३।।
पीडितोऽप्यभवत्तूष्णींतैरुक्तःपापकृत्तमः। द्यूते त्वया च तद्द्रव्यंहारितं किं प्रयच्छसि।।४।।
नो वा तत्कथ्यतांशीघ्रं याथातथ्येनदुर्मते!। यद्धारितं प्रयच्छामि रात्रावित्यब्रवीच्चसः।।५।।

लोमश कहते हैं—पुराकाल में सर्वधर्म बहिष्कृत एक तस्कर था। वह ब्रह्महत्यारा, मद्यपायी, स्वर्ण चोर था। वह प्रचण्ड पापी तथा उत्तम नारियों के संग वाला लम्पट था। यह मन्दमति तस्कर कितवगण के साथ मिलकर सदा जूआ खेलता रहता था। एक दिन वह कितवगण के साथ द्यूत में हार गया। कितवगण अपने प्राप्य द्रव्य वसूलने हेतु उसका उत्पीड़न करने लगे, तथापि वह उत्पीड़न के विरुद्ध कुछ नहीं बोला। केवल मौनावलम्बन करके रह गया।

तब कितवगण ने उससे कहा—"हे दुर्मति, पापात्मा! तूने जो द्रव्य जूये में हारा है, वह हमें देगा कि नहीं। स्पष्ट बोल।" तब तस्कर ने उत्तर दिया—"हां, मैंने जो हारा है, वह रात्रि में प्रदान करूंगा"।।१-५।।

तैर्मुक्तस्तेन वाक्येन गतास्ते कितवादयः। तदा निशीथसमयेगतोऽसौ शिवमन्दिरम्।।६।।
शिरोऽधिरुह्यशम्भोश्चघण्टामादातुमुद्यतः। तावकैलासशिखरे शम्भुः प्रोवाचकिंकरान्।।७।।
अनेन यत्कृतं चाद्य सर्वेषामधिकं भुवि। सर्वेषामेव भक्तानां वरिष्ठोऽयं च मत्प्रियः।।८।।
इतिप्रोक्त्वाऽऽनयामासवीरभद्रादिभिर्गणैः ।
ते सर्वेत्वरिताजग्मुःकैलासाच्छिववल्लभात्।।९।।

तस्कर का वचन सुनकर कितवगण वहां से चले गये। रात्रि हो जाने पर वह तस्कर एक शिवमन्दिर में गया। वह मन्दिर के शिवलिंग पर खड़ा हो गया तथा वहां लगा घन्टा उतारने का उपक्रम करने लगा। तभी कैलास स्थित भगवान् शंकर ने अपने किंकरों से कहा—"इस तस्कर ने आज जो कुछ किया, ऐसा कार्य जगत् में अत्यन्त श्रेयस्कर है। मेरे जितने भी भक्त हैं, उनमें से यह तस्कर अत्यन्त वरिष्ठ है तथा यह मेरा अत्यन्त प्रिय है।" शंकर ने यह कहकर उस तस्कर को अपने यहां लाने का आदेश प्रदान किया। आज्ञा सुनते ही वीरभद्र आदि प्रमथगण तीव्रतापूर्वक कैलास पर्वत से चल पड़े।।६-९।।

सर्वैर्डमरुनादेन नादितं भुवनत्रयम्। तान्दृष्ट्वा सहसोत्तीर्य तस्करोऽसौदुरात्मवान्।
लिङ्गस्य मस्तकात्सद्यः पलायनपरोऽभवत्।।१०।।
पलायमानं तं दृष्ट्वा वीरभद्रः समाह्वयत्।।११।।
कस्माद्बिभेषि रे मन्द देवदेवो महेश्वरः। प्रसन्नस्तवजातोऽद्य उदारचरितोह्यसौ।।१२।।
इत्युक्त्वा तं विमानेचकृत्वाकैलासमाययौ। पार्षदो हि कृतस्तेनतस्करो हि महात्मना।।१३।।
तस्माद् भाव्या शिवे भक्तिः सर्वेषामपि देहिनाम्।
पशवोऽपि हि पूज्याः स्युः किम्पुनर्मानवा भुवि।।१४।।

उनके चलते ही डमरु की ध्वनि से त्रैलोक्य ध्वनित हो गया। जब वे शिवमंदिर पहुंचे तब दुरात्मा तस्कर शिवगणों को देखकर सहसा शिवलिंग के ऊपर से उतर कर भागने का प्रयत्न करने लगा। उसे पलायित होते देखकर वीरभद्र ने उसे पुकार कर कहा—"हे मूर्ख! तुम किसके भय से भयभीत हो रहा है? साक्षात् उदार कीर्ति देवदेव महेश्वर तुम्हारे प्रति प्रसन्न हैं।" यह कहकर वीरभद्र उस तस्कर को विमान पर बैठा कर कैलास ले आये। महात्मा महेश्वर ने उसे अपने पार्षद का पद प्रदान किया। इसलिए सभी देहधारीगण को चाहिये कि वे भगवान् भव के प्रति भक्ति करें। भवभक्त (शिवभक्त) पशु भी पूजित होते हैं। तब भूतलचारी मनुष्य की तो बात ही क्या?।।१०-१४।।

येतार्किकास्तर्कपरास्तथामीमांसकाश्चये। अन्योन्यवादिनश्चान्येचान्येवात्मवितर्ककाः।।१५।।
एकवाक्यं न कुर्वन्तिशिवार्चनबहिष्कृताः। तर्को हि क्रियतेयैश्च ते सर्वेकिं शिवंविना।।१६।।
तथा किं बहुनोक्तेनसर्वेऽपिस्थिरजंगमाः। प्राणिनोऽपि हि जायन्तेकेवलंलिङ्गधारिणः।।१७।।

पिण्डीयुक्तं यथा लिङ्गं स्थापितं च यथाऽभवत्।
तथा नरा लिङ्गयुक्ताः पिण्डीभूतास्तथा स्त्रियः॥१८॥
शिवशक्तियुतं सर्वं जगदेतच्चराचरम्। तं शिवंमोढ्यतस्त्यक्त्वामूढाश्चान्यंभजन्ति ये॥१९॥

जो सतत् तर्क करते हैं तथा जो मीमांसक हैं, अथवा जो अन्यान्य मतवादी हैं अथवा जो आत्मतत्व निर्णय में भी तर्क करते हैं, वे शिवार्चन से विमुख होकर क्या एक वाक्य भी शिवसन्तोषार्थ प्रयोग नहीं कर सकते? जो तर्क करते हैं, क्या उनका तर्क शिव से अलग है? अधिक कहने की क्या आवश्यकता? इस चराचर में जो कुछ प्राणी हैं, वे सभी लिंगधारी (सूक्ष्म देहधारी) हैं। जब लिंग पिण्डीयुक्त होता है, (गर्भस्थ होता है) तथा जिस प्रकार से स्थापित होता है, मनुष्य भी तदनुरूप लिंगयुक्त होता है तथा स्त्रीगण उसी प्रकार पिण्डीभूत हो जाती हैं। यह सचराचर जगत् शिवशक्त्यात्मक है, जो शिव का परित्याग करके मूर्खता के कारण अन्य की सेवा करते हैं, वे वास्तव में मूढ़ ही हैं।।१५-१९।।

धर्मस्यात्यन्तिकंतुच्छंनश्वरंक्षणभङ्गुरम्। यो विष्णुःसशिवोज्ञेयोयःशिवोविष्णुरेवसः॥२०॥
पीठिका विष्णुरूपंस्याल्लिङ्गरूपीमहेश्वरः। तस्माल्लिङ्गार्चनं श्रेष्ठंसर्वेषामपि वै द्विजाः॥२१॥
ब्रह्मा मणिमयं लिङ्गं पूजयत्यनिशंशुभम्। इन्द्रो रत्नमयं लिङ्गंचन्द्रो मुक्तामयं तथा॥२२॥
भानुस्ताम्रमयंलिङ्गं पूजयत्यनिशं शुभम्। रौक्मं लिङ्गं कुबेरश्च पाशीचारक्तमेवच॥२३॥
यमो नीलमयं लिङ्गं राजतं नैर्ऋतस्तथा। काश्मीरं पवनो लिङ्गमर्चयत्यनिशं विभोः॥२४॥

आत्यन्तिक धर्म नश्वर तथा क्षणभंगुर होता है। जो विष्णु हैं, वे ही शिव हैं। जो शिव हैं, वे ही विष्णु हैं। महेश्वर लिंग रूपी हैं। उनकी पीठिका विष्णुरूपा है। हे द्विजगण! इसीलिए लिङ्गार्चन सर्वश्रेष्ठ है। स्वयं ब्रह्म निरन्तर शुभ मणिमय लिंगार्चन करते हैं। इस प्रकार से इन्द्र रत्नमय, चन्द्र मुक्तामय, भानु ताम्रमय, कुबेर स्वर्णमय, वरुण ईषत् रक्तिमवर्ण, यम नीलमय, नैर्ऋत् रजतमय लिंग की अर्चना करते हैं। इस प्रकार पवन काश्मीर लिंग की सदैव अर्चना करते हैं।।२०-२४।।

एवंतेलिङ्गिताःसर्वेलोकपालाःसवासवाः। तथा सर्वेऽपिपातालेगन्धर्वाः किंनरैःसह॥२५॥
दैत्यानांवैष्णवाःकेचित्प्रह्लादप्रमुखाद्विजाः। तथाहिराक्षसानां च विभीषणपुरोगमाः॥२६॥
बलिश्च नमुचिश्चैव हिरण्यकशिपुस्तथा। वृषपर्वा वृषश्चैवसंह्लादोबाण एव च॥२७॥
एते चान्ये च बहवःशिष्या शुक्रस्य धीमतः। एवं शिवार्चनरताः सर्वे ते दैत्यदानवाः॥२८॥
राक्षसा एवते सर्वे शिवपूजान्विताः सदा। हेतिः प्रहेतिः संयातिर्विघसः प्रघसस्तथा॥२९॥
विद्युज्जिह्वस्तीक्ष्णदंष्ट्रोधूम्राक्षोभीमविक्रमः। मालीचैवसुमाली च माल्यवानतिभीषणः॥३०॥
विद्युत्केशस्तडिज्जिह्वो रावणश्च महाबलः। कुम्भकर्णो दुराधर्षो वेगदर्शी प्रतापवान्॥३१॥
एतेहिराक्षसाःश्रेष्ठाःशिवार्चनरताः सदा। लिङ्गमभ्यर्च्य च सदासिद्धिं प्राप्ताःपुरा तुते॥३२॥

इस प्रकार से वे इन्द्रादि लोकपाल सभी लिंगार्चना में निरत हो गये। स्वर्ग की तरह पाताल में भी गंधर्व, किन्नर, दैत्यगण में प्रह्लाद आदि प्रमुख वैष्णवगण, विभीषण प्रमुख राक्षसगण, बलि, नमुचि, हिरण्यकशिपु,

वृषपर्वा, वृष, संह्लाद, बाण ये सब तथा धीमान् शुक्र के अन्यान्य अनेक शिष्य शिवार्चन तत्पर थे। दैत्य, दानव, राक्षस सभी सदा शिवपूजन में निविष्ट थे। हेति, प्रहेति, संयाति, विघस्, प्रघस, विद्युजिह्व, तीक्ष्णदंष्ट्रा, धूम्राक्ष, भीमविक्रम, माली, सुमाली, अति भीषण माल्यवान्, विद्युत्केश, तड़ितजिह्व, महाबली रावण, दुराधर्ष कुंभकर्ण, प्रतापी वेगदर्शी आदि राक्षस सदा शिवार्चन तत्पर थे। इन्होंने शिवलिंग की अर्चना द्वारा पूर्व में सिद्धि पाया था।।२५-३२।।

रावणेन तपस्तप्तं सर्वेषामपि दुःसहम्। तपोधिपो महादेवस्तुतोष च तदा भृशम्।।३३।।
वरान्प्रायच्छत तदा सर्वेषामपि दुर्लभान्। ज्ञानं विज्ञानसहितं लब्धंतेन सदाशिवात्।।३४।।
अजेयत्वं च संग्रामे द्वैगुण्यं शिरसामपि। पञ्चवक्त्रो महादेवोदशवक्त्रोऽथ रावणः।।३५।।
देवानृषीन्पितृंश्चैव निर्जित्यतपसा विभुः। महेशस्यप्रसादाच्चसर्वेषामधिकोऽभवत्।।३६।।
राजा त्रिकूटाधिपतिर्महेशेनकृतो महान्। सर्वेषांराक्षसानां च परमासनमास्थितः।।३७।।

रावण ने सबसे कठोर तपःश्चरण किया था, इससे तपफल देने वाले महादेव उस पर प्रसन्न हो गये तथा उसे सर्वजन दुर्लभ वरों को प्रदान किया था। रावण ने सदाशिव से विज्ञान, संग्राम में अजेयत्व तथा १० शिर प्राप्त किया। वरदाता शिव ५ शिरों वाले हैं। रावण ने ५ शिर का दूना १० शिर होने का वर शिव से प्राप्त किया। महेश्वर की कृपा से रावण ने देव, ऋषि तथा पितृगण पर विजय पाया तथा सर्वपेक्षा श्रेष्ठ हो गया। महेश्वर ने उसे राज्यपद देकर त्रिकूट पर्वत का आधिपत्य प्रदान किया। वह समस्त राक्षस समाज में श्रेष्ठ आसन पर आसीन हुआ।।३३-३७।।

तपस्विनां परीक्षायै यदृषीणां विहिंसनम्। कृतंतेन तदा विप्रा रावणेन तपस्विना।।३८।।
अजेयो हि महाञ्जातो रावणो लोकरावणः। सृष्ट्यन्तरं कृतं येन प्रसादाच्छंकरस्य च।।३९।।
लोकपाला जितास्तेन प्रतापेन तपस्विना। ब्रह्माऽपि विजितोयेन तपसापरमेण हि।।४०।।

हे विप्रगण! तपस्वी रावण ने अपने वर की सफलता की परीक्षा लेने के लिए तपस्वी ऋषिगण की हिंसा का कार्य किया। लोकों को रुलाने वाला रावण शिव की ही कृपा से सर्वत्र अजेय तथा महान् पद पर उन्नीत हुआ। शिव की कृपा से उसने एक अभिनव सृष्टि का प्रवर्त्तन किया। तपस्वी रावण ने अपने प्रताप से लोकपालों को पराजित किया। यहां तक कि अपने तप के प्रभाव से उससे ब्रह्मा तक पराजित हो गये।।३८-४०।।

अमृतांशुकरोभूत्वाजितोयेनशशी द्विजाः। दाहकत्वाज्जितोबह्निरीशः कैलासतोलनात्।।४१।।
ऐश्वर्येणजितश्चेन्द्रो विष्णुःसर्वगतस्तथा। लिंगार्चनप्रसादेनत्रैलोक्यंच वशीकृतम्।।४२।।

हे द्विजगण! उसके यहां शशि सर्वदा अमृतांश रूपेण विराजमान रहते थे। रावण ने दाहक शक्ति के बल से अग्नि को भी जीता था। उसने कैलास पर्वत को उठाया तथा ऐश्वर्य पद पर आरूढ़ हो गया। उसने ऐश्वर्यगुण से इन्द्र को जय किया। वह स्वयं सर्वत्र गतिमान् होकर विष्णु के समान प्रतिभात हो रहा था। इस प्रकार उसने शिवलिङ्गार्चन द्वारा त्रैलोक्य को वशीभूत कर लिया।।४१-४२।।

तदा सर्वे सुरगणा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः। मेरुपृष्ठं समासाद्य सुमंत्रं चक्रिरे तदा।।४३।।
पीड़िताः स्मोरावणेनतपसादुष्करेण वै। गोकर्णाख्येगिरौदेवाः श्रूयतां परमाद्भुतम्।।४४।।

साक्षाल्लिंगार्चनं येन कृतमस्ति महात्मना। ज्ञानगेयं ज्ञानगम्यं यद्यत्परममद्भुतम्।
तत्कृतं रावणेनैव सर्वेषां दुरतिक्रमम्॥४५॥

रावण के तप करते समय ब्रह्मा-विष्णु आदि प्रमुख देवताओं ने मेरुपृष्ठ पर यह मन्त्रणा की—"अहो! रावण की दुष्कर तपस्या से हम पीड़ित हो रहे हैं। हे देवगण! श्रवण करो। यह तपस्या का अद्भुद् कार्य गोकर्ण पर्वत पर हो रहा है। महात्मा रावण वहां पर रहकर शिवलिंग की अर्चना कर रहा है। जो ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञानगम्य सर्वलोक दुर्लभ परम अद्भुद् पूजा कार्य है, रावण वही कर रहा है"।।४३-४५।।

वैराग्यंपरमास्थायऔदार्यं च ततोऽधिकम्। तेनैव ममता त्यक्तारावणेनमहात्मना॥४६॥
संवत्सरसहस्त्राच्च स्वशिरो हि महाभुजः। कृत्त्वा करेणलिंगस्य पूजनार्थं समर्पयत्॥४७॥
रावणस्य कबंधं चतदग्रे च समीपतः। योगधारणया युक्तं परमेण समाधिना॥४८॥
लिंगेलयंसमाधायकयापिकलया स्थितम्। अन्यच्छिरोविवृश्यैवंतेनापिशिवपूजनम्।
कृतं नैवान्यमुनिना तथा चैवापरेण हि॥४९॥

महात्मा रावण परम वैराग्य का अवलम्बन लेकर तपस्या रत है। वह औदार्य से अन्वित है। उसने सभी प्रकार की माया-ममता का त्याग कर दिया है। महातेजस्वी रावण ने १००० वर्ष तक अपने मस्तक बारम्बार काट कर शिवलिंग के अर्चनार्थ अर्पण किया। लिंग के पास रावण का धड़ स्थित रहकर परमसमाधि के बल से योगधारणा में तत्पर है। उसका एक-एक मस्तक पहले लिंग में लयीभूत हो जाता है। (पुनः मस्तक उत्पन्न हो जाता है)। तब वह पुनः नये निकले मस्तक को भी काट कर उसके द्वारा शिवार्चन करता है। रावण जो कार्य कर रहा है, वह अन्य ऋषि-मुनि द्वारा संभव नहीं है।।४६-४९।।

एवं शिरांस्येव बहूनि तेन समर्पितान्येव शिवार्चनार्थे।
भूत्वा कबंधो हि पुनः पुनश्च तदा शिवोऽसौ वरदो बभूव॥५०॥
मया विनासुरस्तत्र पिंडीभूतेन वै पुरा। वरान्वरय पौलस्त्ययथेष्टं तान्ददाम्यहम्॥५१॥
रावणेन तदा चोक्तः शिवः परममंगलः। यदि प्रसन्नोभगवन्देयो मे वर उत्तमः॥५२॥
न कामयेऽन्यं च वरमाश्रये त्वत्पदांबुजम्। यथातथा प्रदातव्यं यद्यस्ति च कृपामयि॥५३॥
तदा सदाशिवेनोक्तोरावणोलोकरावणः। मत्प्रसादाच्चसर्वंत्वंप्राप्स्यसेमनसेप्सितम्॥५४॥

इस प्रकार उसने शिवार्चनार्थ पुनः-पुनः मस्तक अर्पण किया तथा स्वयं धड़ मात्र बच जाता था। यह देखकर शिव उसे वर देने हेतु उद्यत होकर आये। शिव ने उसे सम्बोधित करके कहा—"हे पौलस्त्य! तुम इच्छित वर मांगो। मैं तुम्हें प्रदान करूंगा।" रावण ने परममंगलमय शिव से कहा—"हे भगवान्! यदि आप प्रसन्न होकर मुझे वर प्रदानार्थ आये हैं, तब मुझे यह कहना है कि मैं अन्य वर नहीं चाहता। मैं केवल आपकी चरणधूलि ही चाहता हूं। यदि मुझ पर आपकी कृपा है, आप मुझे अपनी चरणधूलि ही प्रदान करें।" यह सुनकर सदाशिव ने रावण से कहा—"तुम मेरी कृपावशात् समस्त इच्छित प्राप्त करो"।।५०-५४।।

एवं प्राप्तं शिवात्सर्वं रावणेनसुरेश्वराः। तस्मात्सर्वैर्भवद्भिश्च तपसापरमेण हि॥५५॥
विजेतव्योरावणोऽयमितिमे मनसिस्थितम्। अच्युतस्यवचःश्रुत्वाब्रह्माद्यादेवतागणाः॥५६॥

चिंतामापेदिरे सर्वे चिरंते विषयान्विताः। ब्रह्माऽपि चेंद्रियग्रस्तः सुतां रमितुमुद्यतः॥५७॥
इन्द्रोहि जारभावाच्च चन्द्रोहि गुरुतल्यगः। यमः कदर्यभावाच्च चंचलत्वात्सदागतिः॥५८॥
पावकःसर्वभक्षित्वात्तथाऽन्येदेवतागणाः। अशक्ता रावणंजेतुंतपसा च विजृंभितम्॥५९॥

"हे सुरेश्वर गण! इस प्रकार रावण ने शिव से समस्त इच्छित वर प्राप्त कर लिया। अतः तुम सब भी परम तपस्या द्वारा रावण को जय करो। यही मेरा मनोगत अभिप्राय है।" अच्युत का वाक्य सुनकर ब्रह्मादि देवता अपनी विषयासक्ति के कारण चिन्तित हो गये। ब्रह्मा तो इन्द्रियों के वश में होकर अपनी पुत्री से ही रमणेच्छा करने लगे थे। इन्द्र ने जारभाव प्राप्त किया था (अहिल्या आदि से छलपूर्वक रमण किया था)। चन्द्र ने गुरुपत्नी गमन किया था। यम सदा कदर्यभाव के वशीभूत रहते हैं। वायु सर्वदा चंचल हैं। अग्नि सर्वभक्षी हैं। इस प्रकार अन्य देवता भी विषयों में आसक्त हैं। तभी तपबल से उद्दीप्त रावण को जीतने की शक्ति उनमें नहीं है।।५५-५९।।

शैलादो हि महातेजा गणश्रेष्ठः पुरातनः। बुद्धिमान्नीतिनिपुणो महाबलपराक्रमी॥६०॥
शिवप्रियो रुद्ररूपी महात्मा ह्युवाच सर्वानथ चन्द्रमुख्यान्।
कस्माद्यूयं संभ्रमादागताश्च एतत्सर्वं कथ्यतां विस्तरेण॥६१॥
नंदिना च तदा सर्वे पृष्टाः प्रोचुस्त्वरान्विताः॥६२॥

शिलाद पुत्र महात्मा नन्दी महादेव के अति पुरातन गणाधिपति हैं। वे बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, महाबली, शिवप्रिय तथा शिवस्वरूप हैं। उन्होंने इन्द्रादि प्रमुख देवगण से कहा—"आप सब ससंभ्रम यहां क्यों आये हैं? सब समस्या सविस्तार कहिये।" देवगण ने नन्दी के प्रश्न का त्वरित रूप से उत्तर देना प्रारम्भ किया।।६०-६२।।

देवा ऊचुः

रावणेन वयंसर्वेनिर्जितामुनिभिः सह। प्रसादयितुमायाताः शिवं लोकेश्वरेश्वरम्॥६३॥

देवगण कहते हैं—रावण ने हमें तथा मुनिगण को पूर्णतः परास्त कर दिया। तभी हम सब शिव को प्रसन्न करने के लिए आये हैं।।६३।।

प्रहस्य भगवान्नंदी ब्रह्माणं वै ह्युवाच ह। क्वयूयं क्व शिवः शंभुस्तपसा परमेण हि।
द्रष्टव्यो हृदि मध्यस्थः सोऽद्य द्रष्टुं न पार्यते॥६४॥
यावद्भावा ह्यनेकाश्चइन्द्रियार्थास्तथैव च। यावच्च ममताभावस्तावदीशो हि दुर्लभः॥६५॥
जितेन्द्रियाणांशांतानांतन्निष्ठानांमहात्मनाम्। सुलभोलिंगरूपीस्याद्भवतांहिसुदुर्लभः॥६६॥
तदा ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च विपश्चितः। प्रणम्यनंदिनं प्राहुः कस्मात्त्वं वानराननः।
तत्सर्वं कथयान्यं च रावणस्य तपोबलम्॥६७॥

भगवान् नन्दी ने यह सुनकर हास्यपूर्ण मुद्रा से कहा—"कहां आप लोग! कहां मंगलयम महादेव! वे सभी प्राणीसमूह के हृदय के अन्दर स्थित रहते हैं। परम तप द्वारा ही उनका दर्शन मिलता है। इसलिए इस भाव में उनका दर्शन प्राप्त हो सकना आप सबके लिए संभव नहीं है। जब तक प्रपञ्चभाव तथा विषयों में आसक्ति है, जब तक मन में ममता का भाव विद्यमान है, तब तक ईश्वर का साक्षात्कार दुर्लभ है। जो जितेन्द्रिय, शान्त, तद्गत चित्त

महात्मा हैं, लिङ्गरूपी भगवान् उनके लिए ही सुलभ हैं।'' तब ब्रह्मादि देवता तथा विज्ञ ऋषि नन्दी को प्रणाम करके पूछने लगे। देवता कहते हैं—''हे महाशय! आपका मुख वानरवत् क्यों है? यह कहें तथा रावण के तपोबल को कहें''।।६४-६७।।

नंदीश्वर उवाच

कुबेरोऽधिकृस्तस्तेनशंकरेणमहात्मना। धनानामाधिपत्ये च तं द्रष्टुं रावणोऽत्रवै।।६८।।
आगच्छत्त्वरया युक्तः समारुह्यस्ववाहनम्।
मां दृष्ट्वा चाब्रवीत्क्रुद्धः कुबेरोह्यत्रआगतः।।६९।।
त्वया दृष्टोऽथवाऽत्रासौकथ्यतामविलंबितम्। किंकार्यं धनदेनाद्यइतिपृष्टोमयाहिसः।।७०।।
तदोवाच महातेजा रावणो लोकरावणः। मय्यश्रद्धान्वितो भूत्वा विषयात्मासुदुर्मदः।।७१।।
शिक्षापयितुमारब्धोमैवंकार्यमितिप्रभो। यथाऽहं च श्रियायुक्तआढ्योऽहं बलवानहम्।
तथा त्वं भव रे मूढ मा मूढत्वमुपार्जय।।७२।।
अहं मूढः कृतस्तेन कुबेरेणमहात्मना। मया निराकृतो रोषात्तपस्तेपे स गुह्यकः।।७३।।

नन्दीश्वर कहते हैं—महात्मा शंकर ने पूर्व में कुबेर को धनाध्यक्ष पद पर नियुक्त किया था। एक बार रावण उनको देखने आया। रावण अपने वाहन पर बैठ कर शीघ्रता से आया। उसने मुझे देखकर क्रोध से कहा—''क्या कुबेर यहां आये थे? अथवा आपने उनको कहीं और देखा?'' मैंने रावण से पूछा—''कुबेर से तुम्हारा क्या प्रयोजन है? महातेजस्वी रावण वीतश्रद्ध तथा विषयसेवन से मदमत्त होकर कहने लगा—''हे प्रभो! आप मुझे शिक्षा देने के लिए उद्यत हैं? ऐसा कार्य आप न करें। मैं जैसा श्रीमान्, तेजस्वी तथा बली हूं, आप भी ऐसे हो सकते हैं। तथापि हे मूढ़! मूढ़त्व का अर्जन न करें। महात्मा कुबेर ने मुझे मूढ़ बना दिया। मेरे रोकने पर भी वह गुह्यक रोषपूर्वक तप करने चला गया''।।६८-७३।।

कुबेरः स हि नंदिन्किमागतस्तव मंदिरम्। दीयतां च कुबेरोऽद्यनात्रकार्याविचारणा।।७४।।
रावणस्यवचःश्रुत्वाह्यवोचंत्वरितोऽप्यहम्। लिंगकोसिमहाभागत्वमहं च तथाविधः।।७५।।
उभयोः समतांज्ञात्वावृथाजल्पसि दुर्मते। यथोक्तः स त्ववादीन्मां वदनार्थेबलोद्धतः।।७६।।
यथा भवद्भिः पृष्टोऽहं वदनार्थे महात्मभिः। पुरावृत्तंमयाप्रोक्तंशिवार्चनविधेःफलम्।
शिवेन दत्तं सारूप्यं न गृहीतं मया तदा।।७७।।

''जो भी हो, हे नन्दी! मैं पूछता हूं कि क्या कुबेर यहां आया था? आप कुबेर को मुझे प्रदान करें। इस विषय में दुविधा में न पड़ो।''

रावण का कथन सुनकर मैंने व्यग्रतापूर्वक रावण से कहा—''हे महाभाग! तुम लिङ्ग के उपासक हो, मैं भी वही हूं। हे दुर्मति! हम दोनों का आपसी समत्व जान कर भी तुम जल्पना कर रहे हो।'' मेरे यह कहने पर उसने मेरे वानर मुख के विषय में कहा। उसी प्रकार आप भी इस विषय में प्रश्न कर रहे हैं। मैंने रावण से भी इस विषय में शिवार्चन के फल का प्रसंग कहा था। शिव मुझे अपना सारूप्य प्रदान कर रहे थे, तथापि मैंने तब वह ग्रहण नहीं किया''।।७४-७७।।

याचितं च मया शंभोर्वदनं वानरस्य च। शिवेन कृपया दत्तं मम कारुण्यशालिना॥७८॥
निराभिमानिनो ये च निर्दंभानिष्परिग्रहाः। शंभोःप्रियास्तेविज्ञेयाह्यन्येशिवबहिष्कृताः॥७९॥
तथावदन्मया सार्द्धं रावणस्तपसोबलात्। मया च याचितान्येवदश वक्राणिधीमता॥८०॥

"मैंने शिव से वानर का ही मुख मांगा। करुणापूर्ण शिव ने कृपापूर्वक मुझे वही प्रदान किया। जो अभिमानरहित, दम्भहीन तथा अपरिग्रह युक्त हैं, वे ही शम्भु को प्रिय हैं। इसके अतिरिक्त अन्य सभी शिवकृपा से वंचित रहते हैं। जो भी हो, जब मैंने शिव से प्रार्थना किया, तब तपोबल से रावण भी शिव से प्रार्थना करने लगा कि "मैं बुद्धिपूर्वक १० सिर चाहता हूं"।।७८-८०।।

उपहासकरं वाक्यंपौलस्त्यस्यतदासुराः। मयातदा हि शप्तोऽसौरावणोलोकरावणः॥८१॥
ईदृशान्येव वक्त्राणि येषां वै संभवति हि। तैः समेतो यदाकोऽपिनरवर्यो महातपाः।
मां पुरस्कृत्य सहसा हनिष्यति न संशयः॥८२॥
एवं शप्तोमया ब्रह्मन्रावणो लोकरावणः। अर्चितं केवलं लिङ्गं विना तेन महात्मना॥८३॥
पीठिकारूपसंस्थेनविनातेनसुरोत्तमाः। विष्णुनाहिमहाभागास्तस्मात्सर्वं विधास्यति॥८४॥
देवदेवोमहादेवो विष्णुरूपी महेश्वरः। सर्वे यूयंप्रार्थयन्तु विष्णुं सर्वगुहाशयम्॥८५॥
अहं हि सर्वदेवानां पुरोवर्ती भवाम्यतः। ते सर्वे नंदिनो वाक्यंश्रुत्वा मुदितमानसाः।
वैकुण्ठमागता गीर्भिर्विष्णुं स्तोतुं प्रचक्रिरे॥८६॥

हे सुरगण! मैंने पुलस्त्यपुत्र का यह वाक्य उपहासात्मक ही माना था। मैंने समझा कि वानरमुख मांगने के कारण वह उपहास कर रहा है। मैंने तब उसे अभिशाप दिया कि जिसका मुख मेरी तरह होगा, कोई महातपा उसके साथ होकर तथा उसे आगे करके निश्चय तुम्हारा वध करेगा। हे ब्रह्मन्! मैंने लोकों को रुलाने वाले रावण को यही अभिशाप दिया। उन साक्षात् महात्मा शिव के अतिरिक्त केवल उनकी लिंगमूर्त्ति की ही अर्चना किया। हे सुरोत्तमगण! आप महाभाग्यवान् हैं। विष्णु आपके सहायक हैं। वे पीठिका स्थित साक्षात् शिव के बिना भी आपका समस्त कार्य सम्पन्न करेंगे। आप सत्य जाने कि देवदेव महादेव महेश्वर ही विष्णु हैं। इसलिए आप सभी सर्वगुहाशायी (सर्व प्राणिगण में स्थित), विष्णु को ही अपनी प्रार्थना का ज्ञापन करिये। मैं निश्चय ही सभी देवगण का अग्रवर्त्ती रहूंगा। देवगण ने नन्दी का वाक्य सुनकर मुदित मन से वैकुण्ठ गमन किया तथा नाना वाक्य द्वारा विष्णु का स्तवन किया।।८१-८६।।

देवा ऊचुः

नमो भगवते तुभ्यं देवदेव! जगत्पते!। त्वदाधारमिदं सर्वं जगदेतच्चराचरम्॥८७॥
एतल्लिङ्गंत्वयाविष्णोधृतं वै पिण्डिरूपिणा। महाविष्णुस्वरूपेणघातितौ मधुकैटभौ॥८८॥
तथा कमठरूपेण धृतो वै मंदराचलः। वराहरूपमास्थाय हिरण्याक्षो हतस्त्वया॥८९॥
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो हतोनृहरिरूपिणा। त्वयाचैव बलिर्बद्धो दैत्यो वामनरूपिणा॥९०॥
भृगूणामन्वये भूत्वा कृतवीर्यात्मजोहतः। इतोप्यस्मान्महाविष्णो तथैव परिपालय॥९१॥

रावणस्य भयादस्मात्त्रातुं भूयोऽर्हसि त्वरम्॥९२॥

देवगण कहते हैं—हे जगत्पति देवदेव! आपको प्रणाम! इस चराचर जगत् के आप ही एकमात्र अधिष्ठान हैं। हे विष्णु! आपने ही पिण्डरूपी लिङ्गरूप धारण किया है। आपने मधु-कैटभ का महाविष्णु रूपेण संहार किया था। आपही ने कच्छप रूप से मन्दराचल को धारण किया। आपने वाराहरूपी होकर हिरण्याक्ष का वध किया। आपने नृसिंहरूपेण दैत्य हिरण्यकशिपु का विनाश किया तथा वामन रूपी होकर बलि को बांध दिया। आपने ही भृगुवंश में जन्म लेकर कार्त्तवीर्य अर्जुन को निहत किया। हे महाविष्णु! इस रावण से आप हमारी रक्षा करिये। हम रावण के भय से त्रस्त हैं। आप शीघ्र हमारा परित्राण करिये।।८७-९२।।

एवं संप्रार्थितो देवैर्भगवान्भूतभावनः। उवाच च सुरान्सर्वान्वासुदेवो जगन्मयः॥९३॥
हे देवाः श्रूयतां बाक्यंप्रस्तावसदृशंमहत्। शैलादिं च पुरस्कृत्यसर्वे यूयं त्वरान्विताः।
अवतारान्प्रकुर्वन्तु वानरीं तनुमाश्रिताः॥९४॥
अहंहिमानुषो भूत्वा ह्यज्ञानेन समावृतः। संभविष्याम्ययोध्यायां गृहे दशरथस्य च।
ब्रह्मविद्यासहायोऽस्मि भवतां कार्यसिद्धये॥९५॥

देवगण की यह प्रार्थना सुनकर भगवान् भूतभावन वासुदेव ने उन देवगण से कहा—"हे देवगण! आप अपनी प्रार्थना के अनुरूप मेरा वचन सुनें। आप सभी शिलादपुत्र नन्दीश्वर को आगे करके वानर देहधारी होकर भूतल पर जन्म ग्रहण करें। मैं मनुष्य देहधारी होकर अज्ञान से आवृत होकर अयोध्या में दशरथ के गृह में अवतरित रहूंगा। आप सबकी कार्यसिद्धि के लिए मैं महाविद्या की सहायता ग्रहण करूंगा।।९३-९५।।

जनकस्यगृहेसाक्षाद्ब्रह्मविद्याजनिष्यति। भक्तो हि रावणःसाक्षाच्छिवध्यानपरायणः॥९६॥
तपसा महता युक्तो ब्रह्मविद्यां यदेच्छति। तदा सुसाध्योभवति पुरुषो धर्मनिर्जितः॥९७॥
एवं संभाष्य भगवान्विष्णुः परममङ्गलः। बालीचेन्द्रांशसभूतः सुग्रीवोंऽशुमतःसुतः॥९८॥
तथा ब्रह्मांशसम्भूतो जाम्बवानृक्षकुञ्जरः। शिलादतनयोनन्दीशिवस्यानुचरः प्रियः॥९९॥
यो वै चैकादशोरुद्रो हनूमान्स महाऋषिः। अवतीर्णः सहायार्थं विष्णोरमिततेजसः॥१००॥

राजर्षि जनक के गृह में साक्षात् ब्रह्मविद्या (सीता) का आविर्भाव होगा। रावण भक्तियुक्त तथा शिवध्यान तत्पर होकर महातपस्या द्वारा जब इस ब्रह्मविद्या की कामना करेगा, तब धर्मच्युत होने के कारण वध योग्य हो जायेगा। परममंगलमय विष्णु के यह कहने पर इन्द्रांश से बाली, सूर्यवीर्य से सुग्रीव तथा ब्रह्मांश से ऋक्षप्रवर जामवन्त उत्पन्न हो गये। जो शिव के अनुरूप तथा एकादश रुद्रों में अन्यतम श्रेष्ठ थे, वे शिलादपुत्र नन्दीश्वर ही महाकपि हनुमान होकर अवतरित हो गये। उन्होंने अमित तेजस्वी विष्णु की सहायता हेतु जन्म ग्रहण किया।।९६-१००।।

मैन्दादयोऽथ कपयस्ते सर्वे सुरसत्तमाः। एवं सर्वेसुरगणाअवतेरुर्यथातथम्॥१०१॥
तथैव विष्णुरुत्पन्नः कौशल्यानन्दवर्द्धनः। विश्वस्य रमणाच्चैव राम इत्युच्यते बुधै॥१०२॥
शेषोऽपि भक्त्या विष्णोश्च तपसाऽवातरद्भवि॥१०३॥
दोर्दण्डावपि विष्णोश्च अवतीर्णौप्रतापिनौ। शत्रुघ्नभरताख्यौ च विख्यातौभुवनत्रये॥१०४॥

मिथिलाधिपतेः कन्यायाउक्ताब्रह्मवादिभिः। सा ब्रह्मविद्याऽवतरत्सुराणांकार्यसिद्धये॥१०५॥

इस प्रकार अन्य देवता मैन्द-द्विविद आदि वानररूपी होकर अवतीर्ण हो गये। अयोध्या में कौशल्या का आनन्द वर्द्धन करने वाले विष्णु का आविर्भाव हुआ। वे विश्व को आराम देने के कारण राम कहे गये। तदनन्तर विष्णु के प्रति भक्तिमान होकर अनन्तदेव शेष भी तपबल से भूतल पर अवतीर्ण हो गये। विष्णु के दोनों प्रतापशाली बाहुदण्ड भरत तथा शत्रुघ्न नाम से विश्वविख्यात होकर अवतीर्ण हुये। ब्रह्मवादी विद्वान् जिनको मिथिलाराज की कन्या कहते हैं, वे हैं साक्षात् ब्रह्मविद्या। ये देवताओं की कार्यसिद्धि हेतु अवतीर्ण होकर सीता नाम से प्रसिद्ध हो गयीं।।१०१-१०५।।

सीता जाता लाङ्गलस्य इयं भूमिविकर्षणात्।
तस्मात्सीतेति विख्याता विद्या सान्वीक्षिकी तदा।
मिथिलायां समुत्पन्ना मैथिलीत्यभिधीयते॥१०६॥
जनकस्य कुले जाता विश्रुताजनकात्मजा। ख्याता वेदवती पूर्वं ब्रह्मविद्याऽघनाशिनी॥१०७॥
सा दत्ता जनकेनैव विष्णवे परमात्मने॥१०८॥

सीता हल द्वारा भूमि जोतते समय पृथिवी से उत्पन्न हुई थीं। तभी इनका नाम सीता पड़ा। ये आन्वीक्षिकी विद्या रूप से उस समय मिथिला में जन्मीं, तभी इनको मैथिली भी कहा गया। इन्होंने जनक कुल में जन्म लिया, अतः इनको जनकात्मजा भी कहा गया। पूर्वकाल में ये पापनाशिनी ब्रह्मविद्या वेदवती कहलाती थीं। राजा जनक ने ब्रह्मविद्या सीता को परमात्मा विष्णु को प्रदान किया।।१०६-१०८।।

तयाऽथ विद्यया सार्द्धं देवदेवो जगत्पतिः। उग्रे तपसिलीनोऽसौविष्णुः परममङ्गलः॥१०९॥
रावणं जेतुकामो वै रामो राजीवलोचनः। अरण्यवासमकरोद्देवानां कार्यसिद्धये॥११०॥
शेषावतारोऽपि महांस्तपः परमदुष्करम्। ततान परयाशक्त्या देवानांकार्यसिद्धये॥१११॥
शत्रुघ्नो भरतश्चैव तेपतुः परमन्तपः॥११२॥
ततोऽसौ तपसा युक्तः सार्द्धं तैर्देवतागणैः। सगणं रावणं रामः षड्भिर्मासैरजीहनत्।
विष्णुना घातितः शस्त्रैः शिवसारूप्यमाप्तवान्॥११३॥

देवदेव जगत्पति (श्रीराम) इन विद्या से अन्वित होकर उग्र तपस्या में रत हो गये। तदनन्तर परममंगलमय राजीवलोचन विष्णु ने राम नाम से प्रसिद्ध होकर रावण को जय करने हेतु देवकार्य सिद्धि के लिए अरण्य में वास किया। शेषावतार लक्ष्मण परम शक्ति समन्वित होकर देवकार्यार्थ अत्यन्त दुष्कर तपः अनुष्ठान में रत हो गये। शत्रुघ्न तथा भरत ने भी उत्तम तपस्याचरण किया। तत्पश्चात् राम ने परम तपोबल से युक्त होकर देवगण (वानर रूपी) की सहायता से क्रमागत छः मास के प्रयत्न से रावण का वध किया। वह विष्णु द्वारा शस्त्र से मारा जाकर शिवसारूप्य मुक्ति पा गया।।१०९-११३।।

सगणः स पुनः सद्यो बन्धुभिः सह सुव्रताः॥११४॥
शिवप्रसादात्सकलं द्वैताद्वैतमवाप ह। द्वैताद्वैतविवेकार्थमृषयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्सर्वं प्राप्तुवन्तीह शिवार्चनरता नराः॥११५॥

येऽर्चयन्तिशिवंनित्यंलिङ्गरूपिणमेवच। स्त्रियोवाऽप्यथवाशूद्राःश्वपचाह्यन्त्यवासिनः।
तं शिवं प्राप्नुवन्त्येव सर्वदुःखोपनाशनम्॥११६॥
पशवोऽपि परं याताः किं पुनर्मानुषादयः॥११७॥
ये द्विजा ब्रह्मचर्येण तपःपरममास्थिताः। वर्षैरनेकैर्यज्ञानां तेऽपि स्वर्गपरा भवन्॥११८॥

हे सुव्रतगण! रावण ने बन्धुगण के साथ तत्क्षण शिवकृपा द्वारा समस्त द्वैताद्वैत प्राप्त किया। द्वैताद्वैत विषय में तो ऋषिगण भी मोहग्रस्त हो जाते हैं। तथापि मनुष्यगण शिवार्चन के प्रभाव से इससे समस्त तत्त्व से युक्त हो जाते हैं। जो कोई भी स्त्री-पुरुष-शूद्र-चाण्डाल अथवा अन्य कोई नित्य लिङ्गरूपी शिवार्चन करता है, वह सर्वदुःखहारी शिव को प्राप्त कर लेता है। अधिक क्या कहें, शिवभावना से तो पशुगण भी परमपद प्राप्त कर लेते हैं। मनुष्यों की तो बात ही क्या! जो ब्राह्मण ब्रह्मचर्य बल द्वारा परमतपस्याचरण करते हैं, तब अनेक वर्ष में सम्पन्न होने वाले यज्ञ करते हैं, वे स्वर्ग प्राप्त करते हैं।।११४-११८।।

ज्योतिष्टोमो वाजपेयो ह्यतिरात्रादयो ह्यमी।
यज्ञाः स्वर्गं प्रयच्छन्ति सत्त्रिणां नात्र संशयः॥११९॥
तत्र स्वर्गसुखं भुक्त्वापुण्यक्षयकरं महत्। पुण्यक्षयेऽपि यज्वानो मर्त्यलोकं पतन्तिवै॥१२०॥
पतितानां च संसारे दैवाद्बुद्धिः प्रजायते। गुणत्रयमयी विप्रास्तासु तास्विहयोनिषु॥१२१॥
यथा सत्त्वं संभवति सत्त्वयुक्तभवं नराः। राजसाश्च तथा ज्ञेयास्तामसाश्चैव ते द्विजाः॥१२२॥
एवं संसारचक्रेऽस्मिन्भ्रमिता बहवो जनाः। यदृच्छयादैवगत्या शिवं संसेवते नरः॥१२३॥
शिवध्यानपराणां च नराणां यतचेतसाम्। मायानिरसनंसद्योभविष्यति न चान्यथा॥१२४॥
मायानिरसनात्सद्यो नश्यत्येव गुणत्रयम्।
यदागुणत्रयातीतोभवतीति स मुक्तिभाक्॥१२५॥
तस्माल्लिङ्गार्चनं भाव्यंसर्वेषामपिदेहिनाम्। लिङ्गरूपी शिवोभूत्वात्रायते सचराचरम्॥१२६॥
पुरा भवद्भिः पृष्टोऽहं लिङ्गरूपीकथंशिवः।
तत्सर्वं कथितंविप्रायाथातथ्येन सम्प्रति॥१२७॥
कथं गरं भक्षितवाञ्छिवो लोकमहेश्वरः। तत्सर्वं श्रूयतां विप्रा यथावत्कथयामि वः॥१२८॥

।।इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमेमाहेश्वरखण्डे केदारखण्डे शिवशास्त्रे शिवलिङ्गार्चनमाहात्म्यकथने श्रीरामावतारकथावर्णनं नामाऽष्टमोऽध्यायः।।८।।

यद्यपि ज्योतिष्टोम, वाजपेय, अतिरात्रादि यज्ञ निःसंदिग्ध रूप से यज्ञकर्त्ताओं को स्वर्ग देता है, तथापि याज्ञिकगण स्वर्गसुख भोगने के अनन्तर पुण्यक्षय होने पर पुनः मृत्युलोक में गिरते हैं तथा जन्म लेते हैं। हे विप्रगण! ऐसे संसार पतित लोगों में हठात् गुणत्रयात्मक बुद्धि उत्पन्न होती है तथा वे उन-उन गुण के उत्कर्ष के कारण वैसी ही योनियों में भ्रमण करते हैं। सत्वयुक्त गुण से जन्म लेने वाले सत्वमय होते हैं। तथापि प्राणी राजस एवं तामस

प्रकृति लेकर भी जन्म लेते हैं। इस संसार चक्र में असंख्य नाना प्राणी भ्रमणरत रहते हैं। उनमें से कोई-कोई दैवात् शिवसेवातत्पर निकलता है! जो शिवध्यान परायण यत्चित्त मनुष्य हैं, उसके चित्त से माया रूपी आवरण शीघ्र हट जाता है। माया के निरस्त होते ही गुणत्रय का नाश होता है। जब मानव गुणत्रयातीत स्थिति प्राप्त करता है, तब वह मुक्तिभाजन है। तभी सभी देहीगण का कर्त्तव्य है लिङ्गार्चन। इस अर्चना के फल से मानव लिङ्गरूपी शिव होकर चराचर समग्र जगत् का परित्राण कर देता है। शिव कैसे लिंगरूपी हो गये, यह आपने पहले पूछा था। मैंने सम्प्रति उसका यथायथ वर्णन भी कर दिया। हे विप्रगण! शिव ने विषभक्षण क्यों किया था, अब आप सबके समक्ष वह प्रसंग कहता हूं।।११९-१२८।।

।।अष्टम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

नवमोऽध्यायः

गुरु की अवज्ञा से इन्द्र का राज्यभंग

लोमश उवाच

एकदा तु सभामध्यआस्थितोदेवराट्स्वयम्। लोकपालैःपरिवृतोदेवैश्चऋषिभिस्तथा।।१।।
अप्सरोगणसंवीतो गन्धर्वैश्च पुरस्कृतः। उपगीयमानविजयः सिद्धविद्याधरैरपि।।२।।
तदाशिष्यैः परिवृतो देवराजगुरुः सुधीः। आगतोऽसौ महाभागोवृहस्पतिरुदारधीः।।३।।
तं दृष्ट्वः सहसा देवाःप्रणेमुःसमुपस्थिताः। इन्द्रोपिद्दृशे तत्र प्राप्तंवाचस्पतिंतदा।।४।।
नोवाच किञ्चिद्दुर्मेधावचो मानपुरःसरम्। नाह्वानं नासनं तस्य न विसर्जनमेवच।।५।।
शक्रं प्रमत्तंज्ञात्वाऽथ मदाद्राज्यस्य दुर्मतिम्। तिरोधानमनुप्राप्तो वृहस्पतीरुषान्वितः।।६।।

लोमश कहते हैं—एक बार देवराज सभा में आसीन थे। लोकपाल तथा ऋषिगण उनके चतुर्दिक् विराजित थे। अप्सरागण-गन्धर्वगण उनके पुरोभाग में स्थित थे। सिद्ध एवं विद्याधर उनके विजय गीतों को गा रहे थे। तभी शिष्यों से घिरे धीमान् महाभाग देवगुरु बृहस्पति का वहां शुभागमन हुआ। देवगण ने उनको देखते ही उठ कर तत्काल प्रणाम किया। लेकिन देवराज इन्द्र ने बृहस्पति को देखकर भी अपनी दुर्बुद्धि तथा अभिमान के कारण उनसे कुछ भी नहीं कहा। उनका आवाहन (कुशल प्रश्न-स्वागत कथन), आसनादि कोई व्यवस्था ही नहीं किया। तब देवगुरु उस इन्द्र को मदान्ध तथा प्रमत्त एवं दुर्मतियुक्त जानकर रोषपूर्ण स्थिति में उनकी राज्यसभा से अन्तर्हित हो गये।।१-६।।

गते देवगुरौतस्मिन्विमनस्काऽभवन्सुराः। यक्षानागाःसगन्धर्वाऋषयोऽपितथाद्विजाः।।७।।
गान्धर्वस्यावसानेतु लब्धसञ्ज्ञोहरिःसुरान्। पप्रच्छत्वरितेनैव क्व गतो हि महातपाः।।८।।
तदैव नारदेनोक्तः शक्रो देवाधिपस्तथा। त्वयाकृताह्यवज्ञा च गुरोर्नास्त्यत्र संशयः।।९।।

गुरोरवज्ञया राज्यं गतं ते बलसूदन!। तस्मात्क्षमापनीयोऽसौ सर्वभावेन हि त्वया॥१०॥
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्यनारदस्य महात्मनः। आसनात्सहसोत्थायतैः सर्वैः परिवारितः।
आगच्छत्त्वरया शक्रो गुरोर्गेहमतन्द्रितः॥११॥

देवगुरु के इस प्रकार चले जाने के कारण देवगण विमनस्क, अनमने हो गये। यक्ष, नाग, गन्धर्व तथा ऋषिगण इस घटना से क्रोधित हो गये। तदनन्तर जब संगीत समाप्त हो गया, तब इन्द्र को होश आया। उन्होंने देवगण से पूछा—"महातपस्वी बृहस्पति इतनी शीघ्रतापूर्वक कहां चले गये?" तब नारद ने देवराज से कहा—"आपने देवगुरु की सम्पूर्ण अवज्ञा किया है। इस अपमान के कारण गुरु ने आपका राज्य त्याग कर दिया। हे बलसूदन! अतएव उनके पास जाकर सर्वतोभावेन उनसे क्षमा प्रार्थना करिये। यही उचित भी है।" इन्द्र ने देवर्षि नारद से यह सुना तथा तत्काल उठकर अपने सहचरों से घिर कर तत्काल गुरुगृह गये।।७-११।।

पृष्ट्वा तारांप्रणम्यादौ क्व गतो हि महातपाः।
न जानामीत्युवाचेदं तारा शक्रं निरीक्षती॥१२॥

वहां पर गुरुपत्नी तारा को प्रणाम करके पूछा—"माता! महातपस्वी बृहस्पति कहां गये? तारा ने इन्द्र की ओर देखकर कहा—"यह संवाद मुझे ज्ञात नहीं है"।।१२।।

तदा चिन्तान्वितोभूत्वाशक्रःस्वगृहमाव्रजत्। एतस्मिन्नन्तरे स्वर्गेह्यनिष्टान्यद्भुतानि च॥१३॥
अभवन्सर्वदुःखार्थे शक्रस्य च महात्मनः। पातालस्थेन बलिना ज्ञातं शक्रस्य चेष्टितम्॥१४॥
ययौ दैत्यैः परिवृतः पातालादमरावतीम्। तदा युद्धमतीवाऽऽसीद्देवानां दानवैः सह॥१५॥
देवाः पराजिता दैत्यैः राज्यं शक्रस्य तत्क्षणात्।
सम्प्राप्तं सकलं तस्य मूढस्य च दुरात्मनः॥१६॥
नीतं सर्वप्रयत्नेन पातालं त्वंरितं गताः। शुक्रप्रसादात्ते सर्वे तथा विजयिनोऽभवन्॥१७॥

इन्द्र चिन्तातुर होकर देवलोक लौट आये। तभी से स्वर्ग में अभूतपूर्व नाना उत्पात घटित होने लगा। इन्द्र के लिए नाना प्रकार के अमाङ्गलिक अपशकुन प्रादुर्भूत होने लगे। तभी पातालस्थ बलि इन्द्र की यह अवस्था जानकर दैत्यों से परिवृत हो तत्काल अमरावती पहुंचा तथा उस पुरी को अवरुद्ध (घेर) कर लिया। देवतां तथा दैत्यों में भीषण युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में देवताओं को दैत्यों ने बुरी तरह पराजित कर दिया। वह सर्वप्रयत्न पूर्वक स्वर्गराज्य का सार सर्वस्व पाताल ले गया। दैत्यों ने शुक्राचार्य की कृपा से यह विजय पाई।।१३-१७।।

शक्रोऽपि निःश्रिकोजातोदेवैस्त्यक्तस्ततोभृशम्। देवीतिरोधानगताबभूव कमलेक्षणा॥१८॥
ऐरावतो महानागस्तथैवोच्चैःश्रवा हयः।. एवमादीनि रत्नानिअनेकानि बहुन्यपि॥१९॥
नीतानिसहसादैत्यैर्लोभादसाधुवृत्तिभिः। पुण्यभाञ्जि च तान्येवपतितानि च सागरे।
तदा स विस्मयाविष्टो बलिराह गुरुम्प्रति॥२०॥
देवान्निर्जित्य चास्माभिरानीतानिबहूनि च। रत्नानि तु समुद्रेऽथपतितानि तदद्भुतम्।
बलेस्तद्वचनं श्रुत्वा उशना प्रत्युवाच तम्॥२१॥

अश्वमेधशतेनैव सुरराज्यं भविष्यति। दीक्षितस्य न सन्देहस्तस्माद्धोक्ता स एवच॥२२॥
अश्वमेधं विना किञ्चित्स्वर्गं भोक्तुं न पार्यते॥२३॥
गुरोर्वचनमाज्ञाय तूष्णींभूतो बलिस्ततः। बभूव देवैः सार्द्धं च यथोचितमकारयत्॥२४॥

इन्द्र भ्रष्टश्री हो गये। देवताओं ने उनका त्याग कर दिया। देवी लक्ष्मी उनके यहां से तिरोहित हो गयीं। महागज ऐरावत, उच्चैःश्रवा अश्व इत्यादि तथा जो कुछ रत्न था, असद्वृत्ति दैत्यगण लोभवशात् सहसा सब ले गये तथा अनेक पवित्र वस्तुओं को सागर में फेंक दिया। तब बलि ने विस्मय से गुरु से पूछा—"हे गुरुदेव! देवगण को जीत कर मैं अनेक रत्न लाया हूं। लाते समय अनेक रत्न सागर में गिर गये।" बलि का कथन सुनकर शुक्र ने उत्तर दिया—यज्ञ में दीक्षित होकर १०० अश्वमेध सम्पन्न होने पर ही कोई देवलोक का राज्य तथा वहां के राज्यभोग का अधिकारी हो सकेगा। इसके बिना कोई भी स्वर्ग राज्यभोग नहीं कर पायेगा। गुरु का वाक्य सुनकर इन्द्र मौन हो गये तथा उन्होंने देवगण के प्रति यथोचित कार्य किया।।१८-२४।।

इन्द्रोऽपिशोच्यतांप्राप्तोजगाम परमेष्ठिनम्। विज्ञापयामास्तथासर्वं राज्यभयादिकम्।
शक्रस्य वचनं श्रुत्वा परमेष्ठी उवाच ह॥२५॥
संमिलित्वा सुरान्सर्वांस्त्वया साकं त्वरान्विताः।
आराधनार्थं गच्छामो विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम्॥२६॥
तथेति गत्वा ते सर्वेशक्राद्यालोकपालकाः। ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य तटं क्षीरार्णवस्य च॥२७॥
प्राप्योपविश्य ते सर्वे हरिं स्तोतुं प्रचक्रमुः॥२८॥

उधर इन्द्र अत्यन्त शोचनीय स्थिति में होकर ब्रह्मा के पास गये तथा अपने पराजय के विषय को उनसे निवेदित किया। इन्द्र की व्यथा सुनकर ब्रह्मा ने कहा—"तुम तथा सभी देवता एक साथ मिलकर मेरे साथ सर्वेश्वर विष्णु की आराधना के लिए चलो।" ब्रह्मदेव के कथनानुसार इन्द्रादि लोकपाल उनको आगे करके क्षीरसागर तट गये। वहां बैठ कर सभी विष्णुस्तव द्वारा नारायण की स्तुति करने लगे।।२५-२८।।

ब्रह्मोवाच

देवदेव जगन्नाथ सुरासुरनमस्कृत। पुण्यश्लोकाव्ययानन्त परमात्मन्नमोऽस्तुते॥२९॥
यज्ञोऽसि यज्ञरूपोऽसियज्ञांगोऽसि रमापते। ततोऽद्य कृपयाविष्णोदेवानां वरदोभव॥३०॥
गुरोरवज्ञयाचाद्य भ्रष्टराज्यः शतक्रतुः। जातः सुरर्षिभिः साकं तस्मादेनं समुद्धर॥३१॥

ब्रह्मदेव कहते हैं—हे देवदेव, जगन्नाथ, हे सुरासुरगण द्वारा नमस्कृत, हे पुण्यश्लोक, अव्यय, अनन्त, परमात्मन्! आपको प्रणाम! आप ही यज्ञ, यज्ञरूप तथा यज्ञाङ्ग हैं। हे रमापति! हे विष्णु! अब आप कृपापूर्वक देवगण के प्रति वरप्रद हो जायें। गुरु की अवज्ञा के फलस्वरूप शतक्रतु इन्द्रदेव सुर तथा ऋषिगण सहित राज्यभ्रष्ट हो गये हैं। अब तो आप ही रक्षक हैं।।२९-३१।।

श्रीभगवानुवाच

गुरोरवज्ञया सर्वं नश्यतीति किमद्भुतम्। ये पापिनोह्यधर्मिष्ठाः केवलं विषयात्मकाः।
पितरौ निन्दितौ यैश्च निर्दैवास्ते न संशयः॥३२॥

अनेन यत्कृतं ब्रह्मन्सद्यस्तत्फलमागतम्। कर्मणा चास्य शक्रस्य सर्वेषां संकटागमः॥३३॥
विपरीतो यदा कालः पुरुषस्य भवेत्तदा। भूतमैत्रीं प्रकुर्वन्ति सर्वकार्यार्थसिद्धये॥३४॥
तेन वै कारणेनेन्द्र मदीयं वचनं कुरु। कार्यहेतोस्त्वया कार्यो दैत्यैः सह समागमः॥३५॥

भगवान् कहते हैं—गुरु की अवज्ञा से जो समस्त नष्ट होता है, इसमें विस्मय की क्या बात है? जो पापी अधार्मिक, विषयनिष्ठ हैं, जो मातृ-पितृ निन्दक हैं, उनको अदृष्ट से यही फल मिलता है। हे ब्रह्मन्! इन इन्द्र ने जो किया है, उसका फल इनको तत्काल मिल गया। हे ब्रह्मन्! इस एक इन्द्र के कर्मदोष के कारण समस्त देवगण के समक्ष संकट आया है। जब पुरुष का समय विपरीत होता है, तब अन्य लोगों से मित्रता करे। हे इन्द्र! अब तुम मेरे कथन का पालन करो। प्रयोजनार्थ तुमको दैत्यों के साथ मित्रता कर लेनी चाहिये।।३२-३५।।

एवं भगवताऽऽदिष्टः शक्रः परमबुद्धिमान्। अमरावतीं ययौहित्वा सुतलं दैवतैः सह॥३६॥
इन्द्रं समागतं श्रुत्वा इन्द्रसेनो रुषान्वितः। बभूव सह सैन्येन हन्तुकामः पुरन्दरम्॥३७॥
नारदेन तदा दैत्या बलिश्च बलिनां वरः। निवारितस्तद्वधाच्च वाक्यैरुच्चावचैस्तथा॥३८॥
ऋषेस्तस्यैव वचनात्त्यक्तमन्युर्बलिस्तदा। बभूव सह सैन्येन आगतो हि शतक्रतुः॥३९॥
इन्द्रसेनेन दृष्टोऽसौ लोकपालैः समावृतः। उवाच त्वरयायुक्तःप्रहसन्निव दैत्यराट्॥४०॥

इस प्रकार से भगवत् वाक्य को शिरोधार्य करके परम बुद्धिमान् इन्द्र अमरावती छोड़कर देवताओं के साथ सुतल आये। इन्द्र को आया सुनकर दैत्य इन्द्रसेन क्रोधपूर्वक सेना के साथ इन्द्र के वधार्थ कृतसंकल्प हो गया। तभी नारद ने ऊंचा-नीचा समझा कर दैत्यों तथा दैत्यपति बलि को इन्द्रवध से रोका। बलि ने ऋषि की बात मानकर सब मनमुटाव त्याग दिया। इन्द्र सैन्यबल के साथ आये थे। इन्द्रसेन ने कहा—"इन्द्र तो लोकपालों के साथ आये हैं।" दैत्यराज ने हंसते हुये यह कहा।।३६-४०।।

कस्मादिहागतः शक्र! सुतलं प्रतिकथ्यताम्। तस्यैतद्वचनंश्रुत्वास्मयमानउवाचतम्॥४१॥
वयं कश्यपदायादा यूयं सर्वे तथैव च। यथा वयं तथा यूयं विग्रहोहि निरर्थकः॥४२॥
मम राज्यं क्षणेनैव नीतं दैववशात्त्वया। तथा ह्येतानि तान्येव रत्नानि सुबहून्यपि।
गतानि तत्क्षणादेव यत्नानीतानि वै त्वया॥४३॥
तस्माद्विमर्शःकर्तव्यःपुरुषेणविपश्चिता। विमर्शाज्जायते ज्ञानं ज्ञानान्मोक्षो भविष्यति॥४४॥
किंतु मे बत उक्तेन जाने नच तवाग्रतः। शरणार्थी ह्यहं प्राप्तः सुरैः सहतवान्तिकम्॥४५॥

दैत्यराज बलि (इन्द्रसेन) कहता है—"हे इन्द्र! सुतल में आपके आगमन का क्या कारण है? आप वह कारण कहिये।" यह सुनकर इन्द्र ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—"हम दोनों ही कश्यप की सन्तान हैं। अतः हम दोनों के बीच वैर निरर्थक है। मैं जैसा हूं, आप भी वैसे ही हैं। दैवात् मेरा राज्य आपके अधीन है। मेरे पास अतुलित धन-रत्न था, वह भी क्षणमात्र में आप उठा लाये। यह सब विचार कर विज्ञ पुरुष के लिए विवेक का आश्रय लेना चाहिये। विवेक तथा विमर्श से ज्ञानोदय होता है तथा ज्ञान से ही मोक्ष प्राप्ति होती है। जो भी हो, इस सम्बन्ध में अधिक बोलना व्यर्थ है। मैं आपके समान ज्ञानी नहीं हूं। मैं शरणार्थी होकर देवगण के साथ आपके यहां आया हूं"।।४१-४५।।

एतच्छ्रुत्वा तु शक्रस्यवाक्यंवाक्यविदां वरः। प्रहस्योवाचमतिमाञ्छक्रंप्रतिविदांवरः॥४६॥
त्वमागतोऽसि देवेन्द्र! किमर्थं तन्न वेद्म्यहम्॥४७॥

इन्द्र का यह वचन सुनकर वक्ताओं में अग्रणी बलि हास्ययुक्त मुद्रा में कहने लगा—"हे इन्द्र! आप किसलिये आये हैं, वह कहें। मैं आपकी बात नहीं समझ सका।।४६-४७।।

शक्रस्तद्वचनं श्रुत्वा ह्यश्रुपूर्णाकुलेक्षणः। किञ्चिन्नोवाच तत्रैनं नारदो वाक्यमब्रवीत्॥४८॥
बले त्वं क्किंजानासिकार्याकार्यविचारणाम्। धर्मो हि महतामेषशरणागतपालनम्॥४९॥
शरणागतं च विप्रं च रोगिणं वृद्धमेव च। य एतान्न च रक्षन्ति ते वै ब्रह्महणो नराः॥५०॥
शरणागतशब्देन आगतस्तव सन्निधौ। संरक्षणाय योग्यश्च त्वया नास्त्यत्र संशयः।
एवमुक्तो नारदेन तदा दैत्यपतिः स्वयम्॥५१॥
विमृश्य परया बुद्धया कार्याकार्यविचारणम्। शक्रं प्रपूजयामास बहुमानपुरःसरम्।
लोकपालैः समेतं च तथा सुरगणैः सह॥५२॥
प्रत्ययार्थं च सत्त्वानि ह्यनेकानि व्रतानि वै। बलिप्रत्ययभूतानि स चकार पुरन्दरः॥५३॥

यह सुनकर इन्द्र के नेत्र अश्रुओं से भर गये। वह कुछ भी न बोल सके।

तब नारद ने आकर कहा—"हे बलि! क्या तुमको कार्याकार्य का ज्ञान नहीं है? देखो! शरणागत का पालन ही महान् लोगों का धर्म है। जो शरणागत की, ब्राह्मण की, व्याधिग्रस्त की तथा वृद्ध की रक्षा नहीं करते, वे ब्रह्मघ्न हैं। जो 'शरण में आया हूं' कहकर तुम्हारे पास आये, उसकी रक्षा तुम्हारा कर्त्तव्य है। नारद का यह वचन सुनकर दैत्यपति बलि ने अपनी विशिष्ट बुद्धि द्वारा कार्याकार्य की विवेचना किया। तब उसने इन्द्र एवं लोकपालों तथा देवगण की सम्मान से साथ अभ्यर्थना किया। वहां पुरन्दर ने बलि के प्रत्ययार्थ अनेक सात्विक व्रतनियमादि का अनुष्ठान किया।।४८-५३।।

एवं स समयं कृत्वाशक्रःस्वार्थपरायणाः। बलिना सहचावात्सीदर्थशास्त्रपरो महान्॥५४॥
एवं निवसतस्तस्य सुतलेऽपि शतक्रतोः। वत्सरा बहवोह्यासंस्तदा बुद्धिमकल्पयत्।
संस्मृत्य वचनं विष्णोर्विमृश्य च पुनःपुनः॥५५॥
एकदातु सभामध्यआसीनोदेवराट् स्वयम्। उवाचप्रहसन्वाक्यंबलिमुद्दिश्यनीतिमान्॥५६॥

सर्वशास्त्रवेत्ता इन्द्र ने अपने स्वार्थसाधनार्थ इस प्रकार का नियम करके बलि के साथ रहने लगे। इस प्रकार सुतल में निवास करते-करते इन्द्र को अनेक वर्ष व्यतीत हो गये। उन्होंने सदा विष्णु के कथन का स्मरण करके पुनः अपनी विवेचना द्वारा एक उपाय की कल्पना किया। एक दिन नीतिनिपुण देवराज इन्द्र ने बलि की सभा में स्थित होकर कथाप्रसंग की आड़ में बलि से प्रसन्नतापूर्वक कहा।।५४-५६।।

प्राप्तव्यानित्वयावीरअस्माकं च त्वयाबले। गजादीनिबहून्येव रत्नानि विविधानि च॥५७॥
गतानि तत्क्षणादेवसागरेपतितानि वै। प्रयत्नो हि प्रकर्तव्योह्यस्माभिस्त्वरयान्वितैः॥५८॥
तेषां चोद्धरणे दैत्य रत्नानामिह सागरात्। तर्हि निर्मथनं कार्यंभवताकार्यसिद्धये॥५९॥

बलिः प्रवर्तितस्तेनशक्रेण सुरसूदनः। उवाच शक्रं त्वरितः केनेदं मथनं भवेत्॥६०॥

इन्द्र कहते हैं—"हे वीर बलिराज! आपने हमारा गजादि अनेक रत्न प्राप्त किया है, तथापि बहुत कुछ तभी सागर में गिर गया। हे दैत्य! सागर से उन रत्नों का उद्धार करने के लिए हमारा अवश्य कर्त्तव्य है कि हम प्रयत्न करें। आप एक कार्य करें। अपनी कार्यसिद्धि हेतु सागर मन्थन में प्रवृत्त हो जायें। इन्द्र ने जब देवशत्रु बलि को इस कार्य हेतु प्रेरित किया, तब बलि व्यग्रतापूर्वक पूछने लगा कि हे इन्द्र! यह मंथन कैसे होगा?।।५७-६०।।

तदा नभोगतावाणीमेघगंभीरनिःस्वना। उवाच देवादैत्याश्च मन्थध्वं क्षीरसागरम्॥६१॥
भवतां बलवृद्धिश्च भविष्यति न संशयः॥६२॥
मन्दरश्चैवमन्थानंरज्जुं कुरुतवासुकिम्। पश्चाद्देवाश्चदैत्याश्चमेलयित्वाविमथ्यताम्॥६३॥

तभी मेघगंभीर स्वर में वहां आकाशवाणी सुनी गयी, हे देवता तथा दैत्यों! तुम सब क्षीरसागर मन्थन करो। इससे तुम्हारी बलवृद्धि होगी। इस कार्य हेतु मंथन दण्ड होगा मन्दर पर्वत तथा वासुकी नाग की मन्थन रज्जु (रस्सी) होगी। देव-दैत्य दोनों मिलकर सागर मन्थन में प्रवृत्त हो जाओ।।६१-६३।।

नभोगतां च तां वाणींनिशम्याथतदा सुराः। दैत्यैः सार्द्धंततः सर्व उद्यम चक्रुरुद्यताः॥६४॥
पातालान्निगताः सर्वे तदा तेऽथ सुरासुराः। आजग्मुरतुलं सर्वे मन्दरं पर्वतोत्तमम्॥६५॥
दैत्याश्चकोटिसंख्याकास्तथादेवा न संशयः। उद्युक्ता सहसा प्राऽयुर्मंदरं कनकप्रभम्॥६६॥
सरत्नं वर्तुलाकारं स्थूलं चैव महाप्रभम्। अनेकरत्नसंवीतं नानाद्रुमनिषेवितम्॥६७॥
चन्दनैः पारिजातैश्चनागपुन्नागचम्पकैः। नानामृगगणाकीर्णं सिंहशार्दूलसेवितम्॥६८॥
एवंविधं महाशैलं दृष्ट्वा ते सुरसत्तमाः। ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे तदा ते सुरसत्तमाः॥६९॥

देवगण तथा दैत्यों ने यह आकाशवाणी सुनी तथा दोनों सागरमंथनार्थ उद्यत हो गये। सुरासुर दोनों रसातल से बाहर निकले तथा अनुपम मन्दरपर्वत आये। दैत्यों की संख्या थी एक करोड़। देवगण भी एक करोड़ थे। वे सब कनकोज्वल मन्दराचल पहुंचे। यह मन्दरपर्वत रत्नमय, वर्त्तुलाकार, स्थूल तथा महोज्वल था। वह नाना रत्नमण्डित था। वहां विविध द्रव्यराशि विराजमान थी। चन्दन, पारिजात, नाग, पुन्नाग, चम्पा आदि विविध वृक्ष तथा पर्वत वहां स्थित थे। वह नाना जाति के पशुओं, मृग, सिंह, शार्दूलादि हिंस्र जन्तुओं से भरा था। इस महागिरि का दर्शन करके सभी देवश्रेष्ठ जन ने तब अंजलिबद्ध होकर कहा।।६४-६९।।

देवाऊचुः

अद्रे सुरा वयं सर्वे विज्ञप्तुमिह चागताः। तच्छृणुष्वमहाशैल परेषामुपकारकः॥७०॥
एवमुक्तस्तदा शैलो देवैर्दैत्यैः स मन्दरः। उवाच निःसृतो भूत्वा परं विग्रहवान्वचः॥७१॥
तेन रूपेणरूपी स पर्वतो मन्दराचलः। किमर्थमागताः सर्वे मत्समीपं तदुच्यताम्॥७२॥
तदा बलिरुवाचेदं प्रस्तावसदृशं वचः। इन्द्रोऽपि त्वरयायुक्तो बभाषे सूनृतंवचः॥७३॥
अस्माभिः सहकार्यार्थे भवत्वं मन्दराचल!। अमृतोत्पादनार्थे त्वं मंथानंभव सुव्रत्॥७४॥
तथेति मत्वा तद्वाक्यं देवानां कार्यसिद्धये। ऊचेदेवासुरांश्चेदमिन्द्रंप्रतिविशेषतः॥७५॥

देवगण कहते हैं—"हे पर्वत! हम देवता हैं। तुमसे कुछ निवेदनार्थ आये हैं। हे परोपकारी महापर्वत! तुम निवेदन सुनो।" तब मन्दरगिरी देव-दैत्यगण का यह वाक्य सुनकर विशिष्ट विग्रह धारण करके अपने प्रसिद्ध रूप से रूपवान् होकर कहने लगा—"आप सब मेरे पास किस प्रयोजन से आये हैं?" सबसे पहले बलि ने ही प्रस्ताव के अनुरूप वाक्य कहा—"हे मन्दरपर्वत! हम लोगों के साथ मिलकर एक कार्य साधन में प्रवृत्त हो जाओ। हे सुव्रत! हमारे अमृतोत्पादन कार्य हेतु तुम हमारे मन्थन दण्ड बनो।" मन्दरगिरि देवकार्य सम्पन्न करने हेतु सहमत हो गया तथा इन्द्र को लक्ष्य करके कहने लगा।।७०-७५।।

छेदितौ चत्वयापक्षौ वज्रेणशतपर्वणा। गन्तुं कथं समर्थोऽहं भवतां कार्यसिद्धये॥७६॥
तदा देवासुराः सर्वे स्तूयमाना महाचलम्। उत्पाटयेयुरतुलं मंदरं च ततोऽद्भुतम्॥७७॥
क्षीरार्णवं नेतुकामा ह्यशक्तास्ते ततोऽभवन्। पर्वतः पतितःसद्योदेवदैत्योपरि ध्रुवम्॥७८॥
केचिद्भग्नामृताःकेचित्केचिन्मूर्छापराभवन्। परीवादरताःकेचित्केचित्क्लेशत्वमागताः॥७९॥

एवं भग्नोद्यमा जाता असुराः सुरदानवाः।
चेतनां परमां प्राप्तास्तुष्टुवुर्जगदीश्वरम्॥८०॥

मन्दराचल कहता है—"हे इन्द्र! आपने पहले अपने १०० पर्वों वाले वज्र को छोड़कर मेरे दोनों पंखों को काट दिया, अतः अब आप सब के कार्य हेतु मैं कैसे जा सकूंगा।" तब सुर-असुर मिलित रूप से उस महापर्वत का स्तव करने लगे तथा अपूर्व अनुपम मन्दराचल को वहां से उखाड़ लिया। वे मन्दर को वहां से ले जाने का प्रयत्न करने लगे तथापि नहीं ले जा सके। वह पर्वत देवगण तथा दैत्यगण के मस्तक पर गिर पड़ा। इससे कोई भयभीत हो गया, कोई-कोई मर गया, कोई-कोई मूर्च्छित हो गिर पड़ा। कोई किसी और पर दोष थोपने लगा। कोई-कोई अत्यन्त क्लेश से ग्रस्त हो गया। इस प्रकार देवता तथा दैत्य, दोनों वर्ग वाले उद्यमविहीन हो गये। अन्ततः वे चेतना आने पर जगदीश्वर की स्तुति करने लगे।।७६-८०।।

रक्ष रक्ष महाविष्णो शरणागतवत्सल। त्वया ततमिदं सर्वं जंगमाजंगमं चयत्॥८१॥
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थंप्रादुर्भूतोहरिस्तदा। तान्दृष्ट्वासहसा विष्णुर्गरुड़ोपरिसंस्थितः॥८२॥
लीलया पर्वतश्रेष्ठमुत्तभ्यारोपयत्क्षणात्। गरुत्मति तदा देवः सर्वेषामभयं ददौ॥८३॥
ततउत्थाय तान्देवान्क्षीरोदस्योत्तरं तटम्। नीत्वा तं पर्वतंवृद्धंनिक्षिप्याप्सुततोययौ॥८४॥
तदा सर्वे सुरगणाः स्वागत्य असुरैःसह। वासुकिंच समादायचक्रिरे समयंचतम्॥८५॥
मन्थानं मंदरं चैव वासुकिंरज्जुमेव च। कृत्वा सुराऽसुराःसर्वे ममन्थुः क्षीरसागरम्॥८६॥

देवगण कहते हैं—"हे महाविष्णु! हे शरणागतवत्सल! रक्षा करिये। आपने ही चराचर विश्व का विस्तार किया है।" जब सुर-असुर इस प्रकार स्तव करने लगे, तब देवकार्य की सिद्धि हेतु हरि वहीं प्रकट हो गये। गरुड़वाहन विष्णु ने देवगण को इस अवस्था में देखकर तत्क्षण लीला से मन्दरपर्वत को उठाया तथा वहां स्थित देव-दानवों को अभयदान दिया। उन्होंने पर्वत को उठाकर समुद्र में फेंक कर स्वस्थान गमन किया। तब सुर तथा असुरगण मिलित होकर वासुकी के पास गये तथा उनको मन्थन स्थल पर ले आये। उन दैत्य तथा देवगण ने मन्दर को मथानी बनाया। वासुकी को मन्थनरज्जु बनाकर वे क्षीरसागर का मंथन करने लगे।।८१-८६।।

क्षीराब्धेर्मथ्यमानस्य पर्वतो हि रसातलम्। गतः सतत्क्षणादेव कूर्मो भूत्वारमापतिः।
उद्धृतस्तत्क्षणादेव तदद्भुतमिवाभवत्॥८७॥
भ्राम्यमाणस्ततः शैलो नोदितःसुरदानवैः। भ्रममाणो निराधारो बोधश्चेवगुरुं विना॥८८॥
परमात्मा तदाविष्णुराधारो मंदरस्य च। दोर्भिश्चतुर्भिःसंगृह्य ममन्थाब्धिं सुखावहम्॥८९॥
तदा सुरासुराः सर्वे ममंथुः क्षीरसागरम्। एकीभूत्वा बलेनैवमतिमात्रं बलोत्कटाः॥९०॥

क्षीरसागर मथा ही जा रहा था कि मन्दराचल रसातल में धंसने लगा! तब रमापति नारायण ने कूर्मरूप धारण करके तत्क्षण मन्दराचल का उद्धार किया। उनका यह कार्य अत्यन्त विस्मयप्रद था। सुर तथा असुरगण द्वारा चालित मन्दरपर्वत वैसी ही निराधार अवस्था में घूमने लगा जैसे गुरु के बिना बोध नहीं होता। परमात्मा विष्णु ने मन्दर पर्वत का आधार बनकर अपनी चारों बाहु से उसे पकड़ा तथा समुद्र मन्थन को सुखप्रद बना दिया। बल से पूर्ण सुर-असुरगण सम्मिलित रूप से तनिक बल प्रयोग से ही क्षीरसागर का मन्थन करने लगे।।८७-९०।।

पृष्ठकण्ठोरुजान्वन्तः कमठस्य महात्मनः। तथाऽसौ पर्वतश्रेष्ठो वज्रसारमयो दृढ़ः।
उभयोर्घर्षणादेव वडवाग्निः समुत्थितः॥९१॥
हलाहलं च संजातं तद्दृष्ट्वा नारदेन हि। ततो देवानुवाचेदं देवर्षिरमितद्युतिः॥९२॥
न कार्यं मथनं चाब्धेर्भवद्भिरधुनाऽखिलैः। प्रार्थयध्वंशिवं देवाः सर्वे दक्षस्य याजनम्।
तद्विस्मृतिं च वो यातं वीरभद्रेण यत्कृतम्॥९३॥
तस्माच्छिवः स्मर्यतां चाशु देवाः परः पराणामपि वा परश्च।
परात्परः परमानन्दरूपो योगिध्येयो निष्प्रपञ्चो ह्यरूपः॥९४॥

अब पर्वतप्रवर मन्दराचल महात्मा कच्छप के पृष्ठ, कण्ठ, उरु तथा जानु पर वज्रसार रूपेण दृढ़ता से घूमने लगा। कच्छप पर मन्दर पर्वत के घर्षण से वहां बड़वाग्नि तथा हलाहल विष उत्थित हो गया। यह देखकर अमित प्रभाव वाले देवर्षि नारद ने कहा—"तुम सब अब समुद्र मन्थन न करके प्रार्थना करो। दक्षयज्ञ में जो वीरभद्र ने किया था, क्या उसे तुम सब भूल गये? जो भी हो, अब सभी परात्पर, परमानन्दमय, योगीजन ध्येय, प्रपञ्च से अतीत, निराकार शिव का शीघ्र स्मरण करो"।।९१-९४।।

तेमथ्यमानास्त्वरितादेवाःस्वात्मार्थसाधकाः। अभिलाषपराःसर्वेनशृण्वन्तियतोजड़ाः॥९५॥
उपदेशैश्च बहुभिर्नोपदेश्याः कदाचन! ते रागद्वेषसंघाताः सर्वे शिवपराङ्मुखाः॥९६॥

तब देवता स्वार्थसाधन में लगे थे। उन्होंने कामना के वशीभूत होकर सागर मन्थन में स्वयं को लगा रखा था। इसी कारण वे नारद का कथन नहीं सुन सके। वास्तव में जो राग-द्वेष के वश में होकर शिव से विमुख हो जाते हैं, अनेक उपदेश द्वारा भी उनका प्रबोधन नहीं होता। समस्त उपदेश व्यर्थ हो जाता है।।९५-९६।।

केवलोद्यमसंवीता ममंथुः क्षीरसागरम्। अति निर्मथनाज्जातं क्षीराब्धेश्च हलाहलम्।
त्रैलोक्यदहनेप्रौढंप्राप्तंहन्तुं दिवौकसः। अत ऊर्ध्वं दिशःसर्वाव्याप्तं कृत्स्नंनभस्तलम्॥९७॥
ग्रसितुं सर्वभूतानां कालकूटं समभ्ययात्॥९८॥

दृष्ट्वा वृहंतं स्वकरस्थमोजसा तं सर्पराजं सह पर्वतेन।
तत्रैव हित्वा प्रययुस्तदानीं पलायमाना ह्यसुरैः समेताः॥९९॥

क्षीरसागर मन्थन काल में देवगण की यही अवस्था थी। वे राग-द्वेष के वशीभूत हो गये थे। शिव के प्रति उनकी श्रद्धा नहीं थी। वे उद्यमनिष्ठ होकर क्षीरसागर मंथन करते जा रहे थे। अत्यधिक मन्थन के कारण क्षीरसागर से हलाहल का प्रादुर्भाव हो गया। यह हलाहल त्रैलोक्य दहन में सक्षम था। यह देवजनों का ग्रास करने के लिए उपस्थित था। देखते-देखते यह हलाहल कुछ समय में ही समस्त आकाश एवं दिक्मण्डल में व्याप्त हो गया। जगत् के सभी प्राणीगण के ग्रासार्थ यह निकला। देव-दानव यह देखकर वृहत्काय वासुकि तथा मन्दर पर्वत को छोड़ कर वहां से भाग खड़े हुये।।९७-९९।।

तथैव सर्व ऋषयो भृग्वाद्याः शतशस्ततः। दक्षस्य यजनं तेन यथा जातं तथा भवन्॥१००॥
सत्यलोकं गताःसर्वे भृगुणानोदिताभृशम्। वेदवाक्यैश्च विविधैःकालकूटंप्रशाम्यति।
देवा नास्त्यत्र सन्देहः सत्यं सत्यं वदामि वः॥१०१॥

उनको भागते देखकर भृगु आदि सैकड़ों ऋषिगण भी वहां से भाग गये। पूर्व में दक्षयज्ञ में जो पलायन का खेल चला था, कालकूट के आविर्भाव से देव-दानव तथा ऋषिगण की वही अवस्था हो गयी। तब भृगु के प्रेरित करने पर सब सत्यलोक पहुंचे। भृगु ने कहा कि विविध वेदवाक्य के प्रयोग से इस कालकूट का शमन हो जायेगा। हे देवगण! मैं सत्य कहता हूं। यह सन्देह रहित वाक्य है।।१००-१०१।।

भृगुणोक्तं वचः श्रुत्वा कालकूटविषार्दिताः।
सत्यलोकं समासाद्य ब्रह्माणंशरणंययुः॥१०२॥
ददौ जाज्वल्यमानंवैकालकूटंप्रभोज्ज्वलम्। दृष्ट्वाब्रह्माऽथतान्दृष्ट्वाह्यकर्मज्ञान्सुरासुरान्।
तेषां शपितुमारेमे नारदेन निवारितः॥१०३॥

कालकूट विष से जर्जरित देव-ऋषिगण भृगु का वाक्य सुनकर सत्यलोक में ब्रह्मा की शरण में गये। ब्रह्मा प्रभा पटलोज्वल कालकूट तथा अकर्मण्य देवगण तथा असुरगण को देखकर एक बार तो शाप देने के लिए उद्यत हो गये, तथापि तभी नारद ने उनको इस कार्य से रोक दिया।।१०२-१०३।।

ब्रह्मोवाच

अकार्यंकिंकृतंदेवाःकस्मात्क्षोभोऽयमुद्यतः।
ईश्वरस्यचजातोऽद्यनान्यथाममभाषितम् ॥१०४॥
ततो देवै परिवृतो वेदोपनिषदैस्तथा। नानागमैः परिवृतः कालकूटभयाद्ययौ॥१०५॥
ततश्चिन्तान्विता देवा इदमूचुः परस्परम्।
अविद्याकामसंवीताः कुर्यामः शङ्करं च कम्॥१०६॥
ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य तदा देवास्त्वरान्विताः। वैकुण्ठमाव्रजन्सर्वेकालकूटभयार्दिताः॥१०७॥

ब्रह्मदेव कहते हैं—"हे देवगण! तुमने यह कैसा अकार्य किया? किस कारण से यह क्षोभ उत्पन्न हुआ।

यह क्षोभ निश्चय ही ईश्वर का कार्य है। मेरी यह बात अन्यथा नहीं है।" यह कहकर ब्रह्मा ने वेद, उपनिषद्, नाना आगमों से परिवृत होकर कालकूट के भय से अपना स्थान छोड़ दिया। इससे देवता चिन्तित होकर परस्परतः कहने लगे—"हम अविद्या से तथा काम से (कामना से) आक्रान्त हैं। अब किसका अपने कल्याण हेतु आश्रय लिया जाये?" देवगण कालकूट भय से कातर होकर यह कहते-कहते ब्रह्मा को आगे करके वैकुण्ठ गये।।१०४-१०७।।

ब्रह्मादयश्चर्षिगणाश्च तदा परेशं विष्णुं पुराणपुरुषं प्रभविष्णुमीशम्।
वैकुण्ठमश्रितधोक्षजमाधवन्ते सर्वे सुरा सुरगणाःशरणं प्रयाताः॥१०८॥
तावत्प्रवृद्धं सुमहत्कालकूटंसमभ्ययात्। दग्ध्वादो ब्रह्मणो लोकं वैकुण्ठं च ददाह वै॥१०९॥
कालकूटाग्निना दग्धो विष्णुः सर्वगुहाशयः।
पार्षदैःसहितः सद्यस्तमालसदृशच्छविः॥११०॥
वैकुण्ठं च सुनीलंचसर्वलोकैः समावृतम्। जलकल्मषसंवीताः सर्वे लोकास्तदाभवन्॥१११॥
अष्टावरणसंवीतं ब्रह्माण्ड़ं ब्रह्मणा सह। भस्मीभूतं चकाराशु जलकल्मषमद्भुतम्॥११२॥
नोभूमिर्नजलं चाग्निर्न वायुर्न नभस्तदा। नाहङ्करो न च महान्मूला विद्यातथैव च।
शिवस्य कोपात्संजातं तदा भस्माकुलं जगत्॥११३॥

।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीति साहस्र्यां संहितायां प्रथममाहेश्वरखण्डान्तर्गते केदारखण्डे समुद्रमथनवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥९॥

ब्रह्मादि देवता, दानव, ऋषिगण उन वैकुण्ठपति, परात्पर, पुराणपुरुष, अधोक्षज, माधव, भगवान् विष्णु के पास जाकर उनके शरणापन्न हो गये। इतने में ही वह महान् कालकूट प्रवृद्ध वेग से वहां भी पहुंच गया। यहां तक कि सर्वान्तर्यामी विष्णु भी अपने पार्षदों के साथ कालकूट से दग्ध हो गये। समग्र वैकुण्ठ तथा सभी अन्य लोक विष प्रभाव से नीलवर्ण हो गया। सभी विषदग्ध लोक उस समय जलकल्मष से भर गया। उस जलकल्मष ने ब्रह्मा सहित अष्टावरण वाले ब्रह्माण्ड को दग्ध कर दिया। भूमि, जल, अग्नि, आकाश, अहंकार, महामूल अविद्या की भी सत्ता नहीं रही। शिव कोप से समस्त जगत् भस्म हो गया।।१०८-११३।।

॥नवम अध्याय समाप्त॥

दशमोऽध्यायः

समुद्रमन्थन में गणेशकृत विघ्न वर्णन

मुनय ऊचुः

यत्त्वयाकथितंब्रह्मन्ब्रह्माण्डंसचराचरम्। भस्मीभूतंरुद्रकोपात्कालकूटाग्िननाऽखिलम्॥१॥
ब्रह्माण्डान्तरतः किं तु रुद्रं मन्यामहे वयम्। तदा चराचरं नष्टं ब्रह्मविष्णुपुरोगमम्॥२॥
भस्मीभूतं रुद्रकोपात्कथं सृष्टिःप्रवर्तिता।
कुतो ब्रह्मा च विष्णुश्च कुतश्चन्द्रपुरोगमाः॥३॥
अन्ये सुरासुराः कुत्र भस्मीभूतालयंगताः। अत ऊर्ध्वं किमभवत्तत्सर्वं वक्तुमर्हसि॥४॥
व्यासप्रसादात्सकलंवेत्थत्वंनापरोहितत्। तस्माज्ज्ञानमयंशास्त्रं तज्जानासिनचापरः॥५॥
इति पृष्टस्तदा सर्वैर्मुनिभिर्भावितात्मभिः। सूतो व्यासंनमस्कृत्यवाक्यंचेदमथाब्रवीत्॥६॥

मुनिगण कहते हैं—हे ब्रह्मन्! आपने कहा कि रुद्र कोप से उत्थित कालकूटाग्नि के प्रभाव से चराचर ब्रह्माण्ड दग्ध हो गया, किन्तु रुद्र भी तो ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत ही हैं। ब्रह्मा-विष्णु चराचर जगत् ही रुद्रकोप से भस्मीभूत हो गया, तब सृष्टि कैसे बची? तब ब्रह्मा कहां थे, विष्णु कहां थे, रुद्र कहां थे? इन्द्रादि देव तथा दैत्य लय होकर कहां गये। विषाग्नि दाहनोपरान्त क्या हुआ? वह आप कहें। आपको व्यास की कृपा से सब ज्ञात है। आपकी तरह यह रहस्य कोई नहीं जानता। ज्ञानमय शास्त्रों को आप जितना जानते हैं, उतना किसी को भी ज्ञात नहीं है। भावितात्मा मुनिगण द्वारा यह पूछे जाने पर सूत लोमश ने व्यास को प्रणाम करके कहा।।१-६।।

लोमश उवाच

यदा ब्रह्माण्डमध्यस्था व्याप्ता देवा विषाग्निना। हरिब्रह्मादयो ह्येते लोकपालाः सवासवाः।
तदा विज्ञापितः शम्भुर्हेरम्बेन महात्मना॥७॥

सूत लोमश कहते हैं—जब इस ब्रह्माण्ड में हरि, ब्रह्मा प्रभृति देवता तथा लोकपालगण विषाग्नि द्वारा व्याप्त हो गये, तब महात्मा हेरम्ब प्रभु शिवशंकर से कहने लगे।।७।।

हेरम्ब उवाच

हे रुद्र हे महादेव हे स्थाणो! हे जगत्पते। मया विघ्नं विनोदेन कृतंतेषां सुदुर्जयम्॥८॥
भयेनमतिमोहात्त्वांनार्च्चयन्तिचमामपि। उद्योगंयेप्रकुर्वन्तितेषांक्लेशोऽधिकोभवेत्॥९॥
एवमभ्यर्थितस्तेन पिनाकी वृषभध्वजः। विघ्नान्धकारसूर्येण गणाधिपतिनातदा॥१०॥
लिङ्गरूपोऽब्रवीच्छम्भुर्निराकारो निरामयः। निरञ्जनो व्योमकेशःकपर्दी नीललोहितः॥११॥

हेरम्ब कहते हैं—हे रुद्र, महादेव, स्थाणु, जगत्पति! मैंने लीलाक्रम से देवगण हेतु यह सुदुर्जय विघ्न किया है। जो भय से किंवा मोहमति के कारण आपकी तथा मेरी अर्चना नहीं करते, वे चाहे जो उद्योग करें, उससे उनको

और क्लेश ही मिलेगा। विघ्नरूप तिमिरराशि के विनाशक गणाधिनाथ के यह कहने पर पिनाकपाणि, वृषध्वज, निराकार, निरंजन, निरामय, नीललोहित, कपर्दी लिङ्गरूपी शम्भु कहने लगे।।८-११।।

महेश्वर उवाच

हेरम्ब शृणुमेवाक्यं श्रद्धया परयायुतः। अहङ्कारात्मकंचैव जगदेतच्चराचरम्।।१२।।
स्थितिं करोत्यहङ्कारः प्रलयोत्पत्तिमेव च। जगदादौ गणपते तदा विज्ञप्तिमात्रतः।।१३।।
मायाविरहितं शान्तं द्वैताद्वैतपरं सदा। ज्ञप्तिमात्रस्वरूपं तत्सदानन्दैकलक्षणम्।।१४।।

महेश्वर कहते हैं—हे हेरम्ब! मेरा कथन सुनो। जो कह रहा हूं, उसे परम श्रद्धा के साथ सुनो। यह सचराचर जगत् अहंकारात्मक है। इसकी स्थिति-उत्पत्ति तथा प्रलय का कर्त्ता है केवल अहंकार। हे गणपति! सृष्टि के आदि में मेरा स्वरूप ज्ञप्तिमात्र था। वह मायारहित, शान्त, सतत् आनन्दरूप तथा द्वैतरहित था।।१२-१४।।

गणपतिरुवाच

यदि त्वं केवलो ह्यात्मा परमानन्दलक्षणः। तस्मात्त्वदपरं किञ्चिन्नान्यदस्ति परंतप।।१५।।
नानारूपं कथं जातं सुरासुरविलक्षणम्। विचित्रं मोहजननं त्रिभिर्देवैश्च लक्षितम्।।१६।।
भूतग्रामैश्चतुर्भिश्च नानामेदैःसमन्वितैः। जातंसंसारचक्रं च नित्यानित्यविलक्षणम्।।१७।।
परस्परविरोधेन ज्ञानवादेन मोहिताः। कर्मवादरताः केचित्केचित् स्वगुणमाश्रिताः।।१८।।
ज्ञाननिष्ठाश्च ये केचित्परस्परविरोधिनः। एवं संशयमापन्नं त्राहि मां वृषभध्वज!।।१९।।
अहं गणश्चकुत्रत्यः क्व चायं वृषभः प्रभो।
एते चान्ये च बहवः कुतोजाताश्चकुत्रवै।।२०।।
कृताः सर्वे महाभागाः सात्त्विकाराजसाश्च वै। प्रहस्यभगवाञ्छम्भुर्गणेशं वक्तुमुद्यतः।।२१।।

गणपति कहते हैं—"यदि आप केवल आनन्दमय आत्मा ही हैं, तब आपकी अपेक्षा अन्य कुछ भी नहीं है। अतः ये सुर-असुर आदि विचित्ररूप, विविध भेदभिन्न चतुर्विध भूतग्रामात्मक त्रिदेव लक्षित विचित्र मोहात्मक नित्यानित्य संसारचक्र कैसे उत्पन्न हो गया? इस संसार चक्र में कोई-कोई परस्पर विरोधी ज्ञानवाद से मोहित है, कोई-कोई अपने-अपने गुणानुसार कर्मवाद में लगा है, कोई ज्ञाननिष्ठ है, अथच यह विरुद्ध भावापन्न स्थिति क्यों है? हे वृषध्वज! मैं इस प्रकार से संशयापन्न हुआ हूं, मेरा परित्राण करें। हे प्रभो! मैं गणपति कहां से आया? यह वृषभ कहां से आया? और जिन अनेक व्यक्तियों का उल्लेख किया, ये कहां से आये? कहां से जन्मे? ये कहां थे? ये महाभाग सभी सात्विक एवं राजस प्रकृति रूपेण उत्पाटित हैं।" यह सुनकर भगवान् शम्भु गणेश से कहने लगे।।१५-२१।।

महेश्वर उवाच

कालशक्त्या च जातानि रजःसत्त्वतमांसि च। तैरावृतंजगत्सर्वंसदेवासुरमानुषम्।।२२।।
परिदृश्यमानमेतच्चानश्वरं परमार्थतः। विद्ध्येतत्सर्वंसिद्ध्यैव कृतकत्वाच्च नश्वरम्।।२३।।

महेश्वर कहते हैं—हे गणेश! काल प्रभाव से सत्त्व-रजः तथा तमः रूप त्रिविध गुण आविर्भूत होता है। वही

परिदृश्यमान सुर-असुर-नरपति युक्त समस्त जगत् को आवृत करता है। परमार्थ ज्ञान से यह जगत् नश्वर नहीं है। तथापि मायाविरचित रूपेण यह नश्वर है।।२२-२३।।

लोमश उवाच

यावद् गणेशसंयुक्तो भाषमाणःसदाशिवः। लिङ्गरूपी विश्वरूपः प्रादुर्भूताः सदाशिवात्।।२४।।
शिवरूपा जगद्योनिः कार्यकारणरूपिणी। लिङ्गरूपी स भगवान्निमग्नस्तत्क्षणादभूत्।।२५।।
एका स्थिता पराशक्तिर्ब्रह्मविद्यात्मलक्षणा। गणेशोविस्मयाविष्टो ह्यवलोकनतत्परः।।२६।।

लोमश कहते हैं—लिंग रूपी विश्वरूप सदाशिव जब गणपति से कथनोपकथन कर रहे थे, तभी सदाशिव से एक परमाशक्ति का आविर्भाव हुआ। ये शिवरूपा, जगद्योनि तथा निखिल कार्य तथा कारणरूपा थीं। इनके आविर्भूत होने मात्र से लिंगरूपी भगवान् तत्काल उनमें निमग्न हो गये। केवल ब्रह्मविद्यात्मरूपा एकमात्र परमाशक्ति ही अवस्थित रह गयीं। गणेश विस्मयपूर्वक उनकी ओर ही देखने लगे।।२४-२६।।

ऋषय ऊचुः

प्रकृत्यन्तर्गतं सर्वं जगदेतच्चराचरम्। गणेशस्य पृथक्त्वं च कथं जातं तदुच्यताम्।।२७।।

ऋषिगण कहते हैं—यह सचराचर जगत् प्रकृति के ही अन्तर्गत है। किन्तु गणेश का पृथक्त्व कहां से हो गया? इसे व्यक्त करें।।२७।।

लोमश उवाच

साक्षात्प्रकृत्याःसम्भूतोगणेशोभगवानभूत्। यथारूपः शिवःसाक्षात्तद्रूपो हि गणेश्वरः।।२८।।
शिवेन सहसंग्रामो ह्यभूत्तस्य महात्मनः। अज्ञानात्प्राकृतो भूत्वा बहुकालं निरन्तरम्।।२९।।
तस्य दृष्ट्वा ह्यजेयत्वं गजारूढस्यतत्तदा। त्रिशूलेनाहनच्छम्भुःसगजंतमपातयत्।।३०।।
तदा स्तुतो महादेवः परशक्त्या परन्तपः। परशक्तिमुवाचेदं वरं वरय शोभने!।।३१।।

लोमश कहते हैं—भगवान् गणेश साक्षात् प्रकृति से आविर्भूत हैं। वे साक्षात् शिवरूप हैं। शिव के साथ इन महात्मा गणेश का संग्राम हुआ था। गणेश्वर अज्ञान के कारण दीर्घकाल तक प्राकृत मनुष्य जैसे स्थित थे। शम्भु ने गजारूढ़ अवस्था में उनका अजेयत्व देखकर त्रिशूल से उनके गज के साथ उनको निहत कर दिया। तब इन परन्तप महादेव का परमाशक्ति स्तव करने लगीं। तब महादेव ने उनसे कहा—"हे शोभने! तुम वर ग्रहण करो।" उस समय पराशक्ति ने उत्तम वर मांगा।।२८-३१।।

तदावृतो महादेवो वरेण परमेणहि। योऽयं त्वयाहतो देव मम पुत्रो न संशयः।।३२।।
त्वां न जानात्ययंमूढः प्रकृत्यंशसमुद्भवः। तस्मात्पुत्रं जीवयेमं मम तुष्ट्यर्थमेव च।।३३।।
प्रहस्य भगवान्रुद्रो मायापुत्रमजीवयत्। सिन्धुरवदनेनैव मुखे स समयोजयत्।।३४।।
तदा गजानना जातः प्रसादाच्छङ्करस्य च। मायापुत्रोऽपि निर्मायोज्ञानवान्सम्बभूवह।।३५।।
आत्मज्ञानामृतेनैव नित्यतृप्तो निरामयः।
समाधिसंस्थितो रौद्रः कालकालान्तकोऽभवत्।।३६।।

योगदण्डार्थमुत्पाट्य स्वकीयं दशनं महत्। करे गृह्य गणाध्यक्षः शब्दब्रह्मातिवर्तते।
ऋद्धिसिद्धिद्वयेनैव एकत्वेन विराजितः॥३७॥

पराशक्ति ने कहा—हे देव! आपने जिसे निहत किया है, वह मेरा पुत्र है। प्रकृति के अंशजात पुत्र ने मूढ़ता के कारण आपको नहीं जाना, अतः मेरी सन्तुष्टि हेतु आप इसे जीवन दान करें। तब भगवान् रुद्र ने हंस कर उस मायापुत्र को जीवनदान दिया तथा उनके शिर की जगह गज का शिर जोड़ा। ये मायानन्दन शंकर की कृपा से गजानन हो गये। वे माया के पुत्र होने पर भी माया से मुक्त तथा ज्ञानवान हुये। गजानन आंत्मज्ञानरूपी अमृतपान से नित्य तृप्त तथा निरामय हैं। वे समाधि स्थिति में स्थित रुद्रांश हैं। वे काल के भी कालस्वरूप हो अवस्थित हैं। गणेश ने योगदण्ड हेतु अपना दांत उखाड़ कर अपने हाथ में धारण किया है तथा वे शब्दब्रह्म के भी अतीत हैं। वे ऋद्धि-सिद्धि के साथ एकीभूत होकर विराजित हैं।।३२-३७।।

ये ते गणाश्चविघ्नाश्चयेचान्येऽभ्यधिकाभुवि।
तेषामपिपतिर्जातःकृतोऽसौशम्भुनातदा ॥३८॥
तस्माद्विलोकयामासप्रकृतिंविश्वरूपिणीम्। पृथक्स्थित्वाग्रतोजानाल्लिङ्गंप्रकृतिमेव च।
ददर्श विमलं लिङ्गं प्रकृतिस्थं स्वभावतः॥३९॥

भूतल में जो सब विघ्न तथा गण और तदपेक्षा जितने श्रेष्ठ व्यक्ति हैं, शम्भु द्वारा वे गणेश तभी सबके अधिपति किये गये। इसीलिए वे पृथक् भाव से स्थित होकर सम्मुखीन विश्वरूपा प्रकृति को देख रहे थे।।३८-३९।।

आत्मानं च गणैः सार्द्धं तथैव च जगत्त्रयम्। लीनं लिङ्गे समस्तं तद्धेरम्बोज्ञानवानपि॥४०॥
मुमोह च पुनः सञ्ज्ञां प्रतिलभ्यप्रयत्नतः। ननामशिरसाताभ्यामीशाभ्यां स गणेश्वर॥४१॥
तदा ददर्श तत्रैव लोकसंहारकारकम्। ब्रह्माणं चैव रुद्रं च विष्णुञ्चैवसदाशिवम्॥४२॥
ददर्श प्रेततुल्यानि लिङ्गशक्त्यात्मकानि च। ब्रह्माण्डगोलकान्येवकोटिशः परमाणुवत्॥४३॥
लीयन्ते च विलीयन्ते महेशे लिङ्गरूपिणि। प्रकृत्यन्तर्गतंलिङ्गं लिङ्गस्यान्तर्गताच सा॥४४॥
शक्त्या लिङ्गञ्च संछन्नं तदा सर्वमदृश्यत।
लिङ्गेन शक्तिः संछन्ना परस्परमवर्तत॥४५॥
शिवाभ्यां संश्रितंलोकंजगदेतच्चराचरम्। गणेशोवाऽपितज्ज्ञानं न परेऽपि तथाविदन्॥४६॥

हेरम्ब ने प्रमथगण के साथ स्वयं को तथा त्रिलोकी को लिंग में लीन देखा। देखकर वे मोहापन्न हो गये, यद्यपि वे ज्ञानी थे। उन्होंने और भी देखा कि लिंग एवं शिवशक्त्यात्मक प्रेतप्राय ब्रह्माण्डगोलक कोटि-कोटि परमाणु की तरह महेश्वर में लीन हो जा रहा है। उन्होंने यह भी देखा कि लिंग प्रकृति के अन्तर्गत है तथा प्रकृति भी लिंग के अन्तर्गत है। अर्थात् दोनों एक-दूसरे में अनुप्रविष्ट हैं। इन पराशक्ति द्वारा ही समस्त लिंग आच्छन्न है। साथ ही इस लिंग द्वारा यह शक्ति आवृत है। इस प्रकार से शिव एवं शक्ति परस्परतः एक-दूसरे को आवृत करके रहती है। यह चराचर समस्त लोक शिव तथा शिवशक्ति योग से संश्रित है। एकमात्र गणेश ही इस ज्ञान से ज्ञानयुक्त हैं। और किसी को भी यह ज्ञान प्राप्त नहीं है।।४०-४६।।

तदोवाच महातेजा गणाध्यक्षोगणैःसह। सशक्तिकं स्तूयमानः शक्त्या च परयातदा॥४७॥

जो भी हो, महातेजस्वी गणाधिपति उस समय अपने गण के साथ शक्ति (प्रकृति) युक्त शंभु का स्तव अपने असाधारण शक्तिबल से करने लगे॥४७॥

गणेश उवाच

नमामि देवं शक्त्यान्वितं ज्ञानरूपं प्रसन्नं ज्ञानात्परं परमं ज्योतिरूपम्।
रूपात्परं परमं तत्त्वरूपंतत्त्वात्परं परमं मङ्गलञ्च आनन्दाख्यं निष्कलं निर्विषादम्।
धूमात्परमयो वह्निर्धूमवत्प्रतिभासते। प्रकृत्यन्तर्गतस्त्वं हि लक्ष्यसे ज्ञानसम्भवः॥४८॥

गणेश कहते हैं—जो ज्ञानरूप, शक्तियुक्त, प्रसन्न, ज्ञानातीत, परमज्योतिरूप, रूपातीत, परमतत्व, तत्वातीत, परममंगल, आनन्दमय, निष्कल तथा दुःखरहित हैं, मैं उन देवदेव को प्रणाम करता हूं। हे विभु! लौहाग्नि में (तपे लाल लौह में) वास्तविक धुआं नहीं होती तथापि वह जैसे साधारण अग्नि की तरह धूमयुक्त प्रतीत होता है, आप भी उसी प्रकार से प्रकृति के अन्तर्गत न होकर भी असम्यक् दर्शन के कारण प्रकृति के अन्तर्गत लक्षित होते हैं। वास्तव में आप ज्ञानमय ही हैं॥४८॥

प्रकृत्यन्तर्गस्त्वं हि मायाव्यक्तिरितीयसे॥४९॥
एवंविधस्त्वं भगवन्स्वमायया सृजस्यथो लुम्पसि पासि विश्वम्।
अस्माद् गरात्सर्वमिदं प्रनष्टं सब्रह्मविप्रेन्द्रयुतं चराचरम्॥५०॥
तथा पुराऽऽसीर्भगवान्महेशस्त्रैलोक्यनाथोऽसि चराचरात्मा।
कुरुष्व शीघ्रं सहजीवकोशं चराचरं तत्सकलं प्रदग्धम्॥५१॥

आप प्रकृति के अन्तर्गत होकर भी माया से व्यतिरिक्त (पृथक्) हैं। हे प्रभो! आप इस प्रकार से अपनी माया का सृजन-पालन-संहार करते हैं। ब्रह्मादि सभी देवता तथा समस्त जगत् इस विषम विष से नष्ट होने का उपक्रम कर रहे हैं। हे भगवन्! आप पहले जिस प्रकार चराचर जगत् में आत्मस्वरूप त्रिलोचन त्रिलोकीनाथ महेश होकर विराजित थे, उसी प्रकार से समस्त जीवकोश के साथ चराचर जगत् का पुनः पालन करें (जीवित करें) जो दग्ध हो गया है॥४९-५१॥

लोमश उवाच

एवं स्तुतो गणेशेन भगवान्भूतभावनः। यदुत्थितं कालकूटं लोकसंहारकारकम्॥५२॥
लिङ्गरूपेण तद्ग्रस्तं विमलंचाकरोत्तदा। सदेवासुरमर्त्यांश्च सर्वांणित्रिजगन्तिच।
तत्क्षणाद्रक्षितान्येव कृपया परया युतः॥५३॥

लोमश कहते हैं—गणेश के द्वारा इस प्रकार से स्तव किये जाने से भगवान् भूतभावन ने उस लोकसंहारक कालकूट का लिंगरूपेण ग्रास कर लिया तथा उसे विशुद्ध कर दिया। सुर-असुर-नर यहां तक कि समस्त तीनों लोक शिवकृपा से तत्क्षण रक्षित हो गया॥५२-५३॥

ब्रह्मा विष्णुः सुरेन्द्रश्चलोकपालाःसहर्षयः। यक्षा विद्याधराःसिद्धागन्धर्वाप्सरसांगणाः।
उत्थिताश्चैव ते सर्वे निद्रा परिगता इव॥५४॥

विस्मयेन समाविष्टा बभूवुर्जातसाध्वसाः। सर्वे देवा सुराश्चैवऊचुराश्चर्यवत्ततः॥५५॥
क्व कालकूटं सुमहद्येन विद्रावितावयम्। मृतप्रायाः कृताः सद्यः सलोकपालकाह्यमी॥५६॥
इत्यबुवंस्तदा दैत्यास्तूष्णींभूतास्तदा स्थिताः। शक्रादयो लोकपाला विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम्।
ब्रह्माणञ्च पुरस्कृत्य इदमूचुः समेधिताः॥५७॥
केनेदंकारितंविष्णो न विदामोऽल्पमेधसः। तदा प्रहस्य भगवान्ब्रह्मणा सहतैः सुरैः॥५८॥
समाधिमगमन्सर्वेऽप्येकाग्रमनसस्तदा। तत्त्वज्ञानेन निर्हत्यकामक्रोधादिकान्द्विजाः॥५९॥
तदात्मनि स्थितं लिङ्गमपश्यन्विबुधादयः। विष्णुं पुरस्कृत्य तदा तुष्टुवुः परमार्थतः॥६०॥

ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र तथा अन्य लोकपाल, ऋषि-यक्ष-विद्याधर-सिद्ध-गन्धर्व तथा अप्सरायें (जो सब दग्ध हो गये थे) ऐसे उठे मानों निद्रा से जाग गये हों। इससे उनके अन्दर भय एवं विस्मय, इन दोनों का उन्मेष हुआ। तब देवता तथा असुरगण आपस में यह बातें करने लगे कि "वह प्रबल कालकूट कहां हैं, जिसने हमें विदारित किया था?" दैत्यगण यह कहकर मौन हो गये, लेकिन इन्द्रादि लोकपाल इस समस्त घटना की पृष्ठभूमि का कारण जानने के लिए उद्यत होकर सर्वेश्वर विष्णु तथा ब्रह्मा के यहां गये। उन्होंने वहां उत्तेजित भाव से पूछा—"हे विष्णु! यह कार्य किसने किया? हम अल्पबुद्धि हैं। तभी उनको जान सकने में असमर्थ हैं।" यह सुनकर भगवान् विष्णु हंसे तथा ब्रह्मा एवं सभी देवताओं के साथ समाधि का अवलम्बन लिया। हे द्विजगण! उन्होंने तत्त्वज्ञान द्वारा काम-क्रोधादि शत्रुगण को निगृहीत करके एकाग्र मन से उन आत्मस्थ लिंगमूर्त्ति प्रभु का दर्शन किया। इस दर्शन से प्रबोधित होकर विष्णु तथा देवगण को परमार्थ बोध हुआ तथा वे लिङ्ग की स्तुति करने लगे।।५४-६०।।

आत्मना परमात्मानं योगिनः पर्युपासते॥६१॥
लिङ्गमेव परंज्ञानं लिङ्गमेव परंतपः। लिङ्गमेव परोधर्मो लिङ्गमेव परागतिः।
तस्माल्लिङ्गात्परतरं यच्च किञ्चिन्न विद्यते॥६२॥
एवं ब्रुवन्तो हि तदा सुरासुराः सलोकपाला ऋषिभिश्च साकम्।
विष्णुं पुरस्कृत्य तमालवर्णं शम्भुं शरण्यं शरणं प्रपन्नाः॥६३॥

विष्णु आदि देवगण कहते हैं—"योगीगण आत्मा द्वारा जिन परमात्मा की स्तुति करते हैं, ये लिङ्ग वे ही परमात्मा हैं। ये लिङ्ग ही परम ज्ञान, परम तप, परम धर्म तथा परम गति हैं। अतएव लिङ्ग की अपेक्षा परात्पर अन्य कुछ भी नहीं है।" तमालवर्ण विष्णु तथा देवगण, इन्द्र आदि लोकपालगण, ऋषिगण तथा असुरगण यह बात कहते-कहते तत्काल सर्वशरण्य विष्णु के शरणापन्न हो गये।।६१-६३।।

त्राहि त्राहि महादेव! कृपालो परमेश्वर!। पुरा त्राता तथा सर्वे तथा त्वं त्रातुमर्हसि॥६४॥
तद्देवदेव भवतश्चरणारविन्दं सेवानुबन्धमहिमानमनन्तरूपम्।
त्वदाश्रितं यत्परमानुकम्पया नमोऽस्तु ते देववर! प्रसीद॥६५॥

वे पुनः कहने लगे—हे कृपालु महादेव! हमारी रक्षा करिये। पूर्व काल में आपने जिस प्रकार से सबकी रक्षा का कार्य किया था, अब वैसे ही हमारा त्राण करिये। हे देवदेव! आप अनन्तरूप के चरणारविन्द में हमने आश्रय लिया है। हे देवप्रवर! आपको प्रणाम! आप प्रसन्न हो जायें।।६४-६५।।

लिङ्गस्वरूपमध्यस्थो भगवान्भूतभावनः। सर्वैः सुरगणैः साकं बभाषेदं रमापतिः॥६६॥
त्वं लिङ्गरूपी भगवाञ्जगतामभयप्रदः। विष्णुना संस्तुतो देवो लिङ्गरूपी महेश्वरः॥६७।
मृतास्त्राता गरात्सर्वे तस्मान्मृत्युञ्जय प्रभो। रक्ष रक्ष महाकालत्रिपुरांत नमोऽस्तुते॥६८॥

इस स्तुति को सुनकर भगवान् भूतभावन से लिंग के मध्य में सभी देवताओं तथा रमापति विष्णु ने एक साथ कहा—"हे भगवान्! आप जगत् को अभय देने वाले लिङ्ग रूपी हैं।" विष्णु ने लिङ्गरूपी महेश्वर की स्तुति करते हुये और भी कहा—"हे प्रभो! आपने विषाग्नि से मृत प्राणीगण को जीवन प्रदान करके उनकी रक्षा की है। तभी आपका नाम है मृत्युञ्जय। हे महाकाल! रक्षा करिये-रक्षा करिये! हे त्रिपुरान्तक! आपको हमारा प्रणाम! आपको पुनः पुनः प्रणाम!।।६६-६८।।

विष्णुना संस्तुतो देवोलिङ्गरूपीमहेश्वरः। प्रादुर्बभूव साम्बोऽथ बोधयन्निव तत्सुरान्॥६९॥
हे विष्णो हे सुराःसर्वेऋषयःश्रूयतामिदम्। मन्यतेऽपिहिसंसारेअनिन्ये नित्यता कुलम्॥७०॥
अविलोकयताऽऽत्मानमात्मनाविबुधादयः। किं यज्ञैः किं तपोभिश्चकिमुद्योगेनकर्मणाम्॥७१॥
एकत्वेन पृथक्त्वेन किञ्चित्रैवप्रयोजनम्। यस्माद्भवद्भिर्भिलितैः कृतं यत्कर्मदुष्करम्॥७२॥

क्षीराब्धेर्मथनं तत्तु अमृतार्थं कथं कृतम्।
मृत्युञ्जयं निराकृत्य अवज्ञाय च मां सदा॥७३॥

तस्मात्सर्वे मृत्युमुखंपतिता वै न संशयः। अस्माभिर्निर्मितोदेवोगणेशः कार्यसिद्धये॥७४॥
न नमन्तिगणेशं च दुर्गांचैवतथाविधाम्। क्लेशभाजोभविष्यन्तिनात्रकार्याविचारणा॥७५॥

विष्णु द्वारा यह स्तव किये जाने पर वे लिंगरूपी महादेव मानों देवगण के प्रबोधनार्थ प्रादुर्भूत हो गये। उन्होंने कहा—हे विष्णु! हे सुरगण! हे ऋषिगण! आप मेरी बात सुनें। इस अनित्य संसार में एकमात्र आत्मा ही नित्य है। आप देवगण इस आत्मा का आत्मा से ही अवलोकन करें। यज्ञ, तप, कर्मारम्भ, एकत्व-पृथक्त्व, इन सबका कोई प्रयोजन ही नहीं है। आप सबने मिलकर अमृत मन्थनार्थ जो दुष्कर कर्म किया है, वह मुझ मृत्युञ्जय की अवज्ञा करके कैसे सम्पन्न कर सकेंगे? जो भी हो, आप सब इस अपराध के लिये मृत्यु मुख में पतित होंगे। मैंने कार्यसिद्धि हेतु गणेश को प्रस्तुत किया है। जो गणेश तथा दुर्गा को प्रणाम नहीं करता, वह अवश्य दुःखभागी होगा, इसमें अन्य विचार की आवश्यकता नहीं है।।६९-७५।।

यूयं सर्वे त्वधर्मिष्ठाःस्तब्धाःपण्डितमानिनः। कार्याकार्यमविज्ञायकेवलं मानमोहिताः॥७६॥
तस्मात्कालमुखे सर्वे पतिता नात्र संशयः। सर्वे श्रुतिपरा यूयमिन्द्राद्या देवतागणाः॥७७॥
प्ररोचनपराः सर्वेक्षुद्राश्चेन्द्रादयोवृथा। नात्मानं च प्रपञ्चेन वेत्सि त्वं हि शचीपते॥७८॥
कृतः प्रयत्नो हि महानमृतार्थं त्वया शठ!। अश्वमेधशतेनैव यद्राज्यं प्राप्तवानसि।
अपि तच्च पराधीनं तन्न जानासि दुर्मते!॥७९॥

आप सब अधर्मी, पाण्डित्य के अभिमानी, जड़ हैं। कार्य-अकार्य के सम्बन्ध में आप सबको कोई ज्ञान ही नहीं है। अपने मान से आप सब स्वयं मोहित हैं। अतः आप सबको काल के मुख में गिरना ही है। यह निश्चित है।

आप सब इन्द्रादि देवता केवल वेदबोधित कर्म में तत्पर रहते हैं। प्रलोभन तथा प्रवंचना में ही आप सब आसक्त रहते हैं। इसलिए आप सभी क्षुद्र तथा अकर्मण्य हैं। हे इन्द्र! आपको विशेषतः यह ज्ञात नहीं है कि आत्मा क्या है? हे शठ! तुमने अमृत के लिए महती चेष्टा किया है। हे दुर्मति! जो राज्य तुमने १०० अश्वमेध यज्ञों से पाया था, वह तो अब पराधीन है। इसका भी तुमको ज्ञान नहीं है।।७६-७९।।

यैर्वेदवाक्यैस्त्वंमूढ संस्तुतोऽसितपस्विभिः। ते मूढास्तोषयन्तित्वांतत्तद्रागपरायणाः॥८०॥
विष्णोत्वंचपक्षपातान्नजानासिहिताहितम्। केचिद्धतास्त्वयाविष्णोरक्षिताश्चैवकेचन॥८१॥
इच्छायुक्तस्त्वमत्रैव सदाबालकचेष्टितः। येऽन्ये च लोकपाःसर्वेतेषांवार्ताकुतस्त्विह॥८२॥

हे मूढ! जो तपस्वी वेदवाक्य से तुम्हारा स्तव करते हैं, वे भी मूढ हैं। वे विषयों में आकृष्ट होकर तुमको व्यर्थ में प्रसन्न करते हैं। हे विष्णु! तुम भी पक्षपात दोष के कारण हित-अनहित ज्ञान रहित हो। तुमने न जाने कितनों की हत्या किया है। न जाने कितनों की रक्षा किया है। तुम स्वेच्छाचारी होकर सर्वदा बालकवत् चेष्टा करते रहते हो। अन्य जो लोकपाल हैं, उनका वर्णन करने का क्या फल!।।८०-८२।।

अन्यथा हि कृतेह्यर्थेअन्यथात्वंभविष्यति। कार्यसिद्धिर्भवेद्येनभवद्भिर्विस्मृतं च तत्॥८३॥
येनाद्य रक्षिताः सर्वे कालकूटमहाभयात्। ये न नीलीकृतोविष्णुर्येन सर्वे पराजिताः॥८४॥
लोका भस्मीकृता येन तस्माद्येनाऽपि रक्षिताः।
तस्यार्च्चनाविधिः कार्यो गणेशस्य महात्मनः॥८५॥
कर्मारम्भेतुविघ्नेशं ये नार्चन्तिगणाधिपम्। कार्यसिद्धिर्नतेषां वै भवेत्तु भवतां यथा॥८६॥
एतन्महेशस्य वचो निशम्य सुरासुराः किन्नरचारणाश्च।
पूजाविधानं परमार्थतोऽपि पप्रच्छुरेनं च तदा गिरिशम्॥८७॥

।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे समुद्रमन्थनाख्याने शिवकृतविषभक्षणवृत्तान्तवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः।।१०।।

यदि कोई भी कार्य अन्याय के लिए प्रारम्भ किया जाये तो उसका परिणाम व्यर्थ ही होगा। देखो! जिसके द्वारा कार्यसिद्धि होगी, उसे तुम सदा भूल गये। जिसने अभी तुम सबकी कालकूट विष से रक्षा की है, जिस कालकूट ने विष्णु को नील बना कर तुम सबको पराजित किया है तथा जिसके विष से समस्त लोक भस्मीभूत हो गये, उन महात्मा गणेश की अर्चना करो। कर्मारम्भ में जो विघ्नेश्वर गणपति की अर्चना नहीं करता, तुम लोगों की ही तरह उसकी कार्यसिद्धि नहीं होती। सुर-असुर, किन्नर तथा चारण प्रभृति महेश्वर का यह कथन सुनकर उनसे गणपति पूजा के सम्बन्ध में जिज्ञासा करने लगे।।८३-८७।।

।।दशम अध्याय समाप्त।।

एकादशोऽध्यायः

श्रीगणेशपूजा विधानवर्णन

माहेश्वर उवाच

प्रतिपक्षेचतुर्थ्यां तु पूजनीयो गणाधिपः। स्नात्वा शुक्लतिलैः शुद्धैः शुक्लपक्षेसदानृभिः॥१॥
कृत्वा चावश्यकं सर्वं गणेशस्यार्चनक्रियाम्। प्रयत्नेनैव कुर्वीतगंधमाल्याक्षतादिभिः॥२॥
ध्यानमादौ प्रकर्तव्यं गणेशस्य यथा विधि। आगमा बहवो जाता गणेशस्ययथाममम॥३॥
बहुधोपासका यस्मात्तमःसत्त्वरजोन्विताः। गणभेदेन तान्वेव नामानिबहुधाऽभवन्॥४॥
पञ्चवक्त्रोगणाध्यक्षोदशबाहुस्त्रिलोचनः। कान्तस्फटिकसङ्काशोनीलकण्ठोगजाननः॥५॥
मुखानि तस्य पञ्चैव कथयामि यथातथम्॥६॥

महेश्वर कहते हैं—प्रत्येक पक्ष की चतुर्थी के दिन श्रीगणेश की अर्चना की जाये। शुक्लपक्ष में विशुद्ध (भूंसी हटाकर) श्वेत तिल द्वारा स्नान कराकर अत्यन्त आवश्यक समस्त विधि सम्पन्न करके गन्ध, माला, अक्षत द्वारा यत्नतः गणेश की पूजा की जाये। पूजा आरम्भ करके सविधि (प्रथमतः) गणेश का ध्यान करना कर्त्तव्य है। मेरी ही तरह गणेश के भी अनेक आगम हैं। इसीलिए सत्व पूजन, रजोमय पूजन तथा तमोमय पूजन भेद से अनेक उपासक सम्प्रदायों का प्रवर्त्तन हुआ है। गणभेद से अनेक नाम कहे गये हैं। यथा—पंचवक्त्र, गणाध्यक्ष, दशवाहु, त्रिलोचन, कमनीय, स्फटिकवत्, नीलकण्ठ तथा गजानन। गणेश का मुख ५ प्रकार का है। अब प्रत्येक मुख का वर्णन सुनें॥१-६॥

मध्यमं तु मुखंगौरंचतुर्दन्तंत्रिलोचनम्। शुण्डादण्डमनोज्ञं च पुष्करे मोदकान्वितम्॥७॥
तथान्यत् पीतवर्णं च नीलं च शुभलक्षणम्। पिङ्गलं च तथाशुभ्रंगणेशस्य शुभाननम्॥८॥
तथा दशभुजेष्वेव ह्यायुधानि ब्रवीमिवः। पाशं परशुपद्मे च अङ्कुशं दन्तमेव च॥९॥
अक्षमालांलाङ्गलं च मुसलंवरदंतथा। पूर्णं च मोदकैःपात्रंपाणिना च विचिन्तयेत्॥१०॥

उनका मध्यम मुख गौरवर्ण है। वह चतुर्दन्त तथा त्रिनेत्र हैं। सूंड़ मनोज्ञ (मनोहर) है, जो पुष्कर तथा मोदक युक्त है। उनका अन्य मुख पीतवर्ण है। अन्य मुख नील, पिंगल तथा शुभ्रवर्ण हैं। ये सभी शुभ लक्षण युक्त हैं। उनकी १० भुजाओं में जो आयुध हैं, उनको यथाक्रम कहता हूं। पाश, परशु, पद्म, अंकुश, दन्त, अक्षमाला, हल, मूसल, वरमुद्रा तथा मोदकपात्र दसों हाथों में स्थित है। इन सबको उन्होंने हाथों से धारण किया है। इस रूप में उनका चिन्तन करना चाहिये॥७-१०॥

लम्बोदरं विरूपाक्षं निवीतं मेखलान्वितम्। योगासने चोपविष्टं चन्द्रलेखाङ्कशेखरम्॥११॥
ध्यानंचसात्त्विकंज्ञेयंराजसं हि नृणामिव। शुद्धचामीकराभासं गजाननमलौकिकम्॥१२॥
चतुर्भुजं त्रिनयनमेकदन्तं महोदरम्। पाशाङ्कुशधरं देवं दन्तमोदकपात्रकम्॥१३॥
नीलंच तामसंध्यानमेवं त्रिविधमुच्यते। ततः पूजा प्रकर्तव्या भवद्भिःशीघ्रमेव च॥१४॥

एकविंशतिदूर्वाभिर्द्वाभ्यां नाम्ना पृथक् पृथक्। सर्वनामभिरेकैवदीयते गणनायके॥१५॥
तथैवनामभिर्देया एकविंशतिमोदकाः। दशनामान्यहं वक्ष्ये पूजनार्थं पृथक् पृथक्॥१६॥
गणाधिप नमस्तेऽस्तु उमापुत्राघनाशन!। विनायकेशपुत्रेति सर्वसिद्धिप्रदायक!॥१७॥
एकदन्तेभवक्त्रेति तथा मूषकवाहन!। कुमारगुरवे तुभ्यं पूजनीयः प्रयत्नतः॥१८॥

वे लम्बोदर, विरूपाक्ष, मेखलायुक्त हैं, जो योगासन पर स्थित हैं। मस्तक पर चन्द्रकला शोभित है। यह गजानन का **सात्विक ध्यान** है। अब उनका **राजस ध्यान** सुनो। वे विशुद्ध स्वर्ण के समान, गजमुख, अलौकिक रूपयुक्त, चतुर्भुज, त्रिनयन, एकदन्त, महोदर, पाशधारी, अंकुशधारी हैं। दांतों पर मोदक पात्र है। अब **तामस ध्यान** कहते हैं। यह नीलवर्ण ध्यान है। इस प्रकार ध्यानोपरान्त उनकी पूजा की जाये। पहले २१ दूर्वा लेकर दो-दो-दो दूर्वा पर गणेश का नामोच्चार करके अर्पित करें। तत्पश्चात् सभी नामों का एक साथ उच्चारण करके बची एक दूर्वा प्रदान करे। (पहले १० नाम × २ दूर्वा = २०। बची १ दूर्वा सभी नाम एक साथ लेकर अर्पित करे) इसी प्रकार इसी क्रम से २१ मोदक भी प्रदान करे (अर्थात् २-२ नाम लेकर दो-दो मोदक। अन्त में सभी नामोच्चार के उपरान्त एक मोदक)। अब इस हेतु १० नाम कहते हैं, जिनका उपरोक्त दूर्वा तथा मोदक दान में उच्चारण होगा। यथा—"हे गणाधिप, उमापुत्र, अघनाशक, विनायक, ईश्वरपुत्र, सर्वसिद्धिप्रद, एकदन्त, इभवक्त्र, मूषक वाहन आपको प्रणाम! आप कुमार गुरु तथा सर्वत्र पूज्य हैं"।।११-१८।।

एवमुक्त्वासुरान्सद्यःपरिष्वज्य च सादरम्। विष्णुंगुहाशयंसद्योब्रह्माणं च सदाशिवः॥१९॥
तिरोधानं गतःसद्यः शम्भुः परमशोभनः। प्रणम्य शम्भुं ते सर्वेगणाध्यक्षार्च्चने रताः॥२०॥

सदाशिव देवताओं से यह विधान बतला कर तत्क्षण अन्तर्ध्यान हो गये। देवगण ने तब परम शोभन शम्भु को प्रणाम किया तथा गणेश की उपासनार्थ तत्पर हो गये।।१९-२०।।

ततः सम्पूज्य विधिवद्गणाध्यक्षार्च्चने रताः। उपचारैरनेकैश्च दूर्वाभिश्च पृथक् पृथक्॥२१॥
सन्तुष्टो हि गणाध्यक्षो देवानां वरदोऽभवत्। प्रदक्षिणंनमस्कृत्यतैः सर्वैरभितोषितः॥२२॥
तमोगुणान्विताः सर्वे ह्यसुरा नाभ्यपूजयन्। उपहासपरास्ते वै देवान्प्रत्यसुरोत्तमाः॥२३॥

तदनन्तर गणेशोपासन में निरत होकर देवगण ने नाना उपचार तथा दूर्वा द्वारा यथाविधि पृथक्-पृथक् भाव से उनकी पूजा किया। देवगण की इस पूजा से भगवान् गणाध्यक्ष गणेश सन्तुष्ट हो गये तथा वे देवगण को वरदान देने के लिए उद्यत हो गये। देवताओं ने प्रदक्षिणा तथा प्रणाम द्वारा उनको और भी सन्तुष्ट किया, तथापि तमोगुणान्वित असुरगण ने इस पूजनार्थ योगदान नहीं किया। उल्टे वे लोग इस पूजा को देखकर देवगण का उपहास करने लगे!।।२१-२३।।

पूजयित्वा शाङ्करिं ते पुनः क्षीरार्णवं ययुः। ब्रह्मा विष्णुश्च ऋषयोदेवदैत्याःसुरोत्तमाः॥२४॥
मन्थानं मन्दरं कृत्वा रज्जुं कृत्वाऽथ वासुकिम्।
ममन्थुश्च तदा देवा विष्णुं कृत्वाऽथ सन्निधौ॥२५॥
मध्यमाने तदाऽब्धौ च निर्गतश्चन्द्रअग्रतः। पीयूषपूर्णः सर्वेषां देवानां कार्यसिद्धये॥२६॥

ब्रह्मा-विष्णु-ऋषिगण-देवता-दैत्य तथा अन्य मुख्य देवता सभी अब समुद्र मन्थनार्थ चल पड़े। मन्दराचल

को मन्थनदण्ड तथा वासुकी की रस्सी बना कर विष्णु के सान्निध्य में भीषण समुद्र के मंथन का कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। इस बार के मन्थन में सबसे पहले चन्द्र बाहर निकले। ये पीयूष रसपूर्ण थे तथा देवकार्य सिद्ध करना इनका लक्ष्य था।।२४-२६।।

शौनक उवाच

अर्णवे किं पुराचन्द्रोनिक्षिप्तःकेन सुव्रत!। गजादिकानि रत्नानिकथितानि त्वयापुरा॥२७॥
एतत्सर्वं समासेन आदौ कथय मे प्रभो!। ज्ञात्वा सर्वेवयं सूत! पश्चादावर्णयामहे॥२८॥

शौनक कहते हैं—हे सुव्रत! पूर्वकाल में किसने किसलिये चन्द्रमा समुद्र में फेंक दिया था? आपने पहले कहा था कि सागर में गज तथा अनेक रत्न थे? हे प्रभो! सागर में जो-जो था, आप संक्षेप में उसका वृत्तान्त मुझसे कहिये। हे सूत! हम यह सब आपसे सुनकर उसका वर्णन अन्य लोगों से करेंगे।।२७-२८।।

तेषां तद्वचनं श्रुत्वासूतोवाक्यमुपाददे। रसचन्द्रआपोमयोविप्रा अत्रिपुत्रोगुणान्वितः॥२९॥
उत्पन्नो ह्यनसूयायां ब्रह्मणोंऽशात्समुद्भवः। रुद्रस्यांशाद्धिदुर्वासा विष्णोरंशात्तुदत्तकः॥३०॥

उन लोगों का वचन सुनकर सूतजी कहने लगे—"हे विप्रगण! अत्रिपुत्र चन्द्रमा गुणवान् तथा जलमय हैं। वे ब्रह्मा के अंश से अनुसूया के गर्भ से जन्मे थे। इसी प्रकार रुद्रांश से दुर्वासा का तथा विष्णु के अंश से दत्तात्रेय का जन्म हुआ।।२९-३०।।

क्षीराब्धिं मथ्यमानं तु दृष्ट्वा चन्द्रो मुदान्वितः।
क्षीराब्धिरपि चन्द्रश्च दृष्ट्वा सोऽप्युत्सुकोऽभवत्॥३१॥
प्रविष्टश्चोभयप्रीत्या शृण्वतां भो द्विजोत्तमाः। चन्द्रोह्यमृतपूर्णोऽभूदग्रतो देवसन्निधौ॥३२॥
दृष्ट्वा च कान्तिं त्वरितोऽथ चन्द्रो नीराजितो देवगणैस्तदानीम्।
वादित्रघोषैस्तुमुलैरनेकैर्मृदङ्गशंखैः पटहैरनेकैः॥३३॥
नमश्चक्रुश्च ते सर्वे ससुरासुरदानवाः। तदागर्गं पृच्छमाना बलं चन्द्रस्य तत्त्वतः॥३४॥

क्षीरसागर के मन्थन के कारण चन्द्रमा मुदित हो गये थे। चन्द्र को देखकर क्षीरसागर भी उत्सुक हो गया था। हे द्विजप्रवरगण! इस पारस्परिक प्रीति के कारण ही चन्द्रमा ने क्षीरसागर में प्रवेश किया था। अब सागर से चन्द्रोत्थान का प्रसंग सुनें। चन्द्रमा सागर से निकल कर देवगण के अग्रभाग में अमृतमय रूपेण विराजमान हो गये। उनकी कान्ति को देखकर देवता उनकी आरती उतारने लगे। तुमुल वाद्यों के निर्घोष, मृदङ्ग, शंख, पटह ध्वनि के साथ उनका आरती कार्य चला। सुर-असुर तथा दानवों ने चन्द्र को प्रणाम किया तथा उन्होंने ऋषि गर्गाचार्य से उनके बल-वृत्तान्त तत्वतः जानना चाहा।।३१-३४।।

गर्भेणोक्तास्तदा देवाः सर्वेषां बलमद्य वै। केन्द्रस्थानगताः सर्वे भवतामुत्तमा ग्रहाः॥३५॥
चन्द्रंगुरुः समायातो बुधश्चैव समागतः। आदित्यश्च तथा शुक्रः शनिरंगारकोमहान्॥३६॥
तस्माच्चन्द्रबलं श्रेष्ठं भवतां कार्यसिद्धये। गोमन्तसञ्ज्ञको नाम मुहूर्त्तोऽयं जयप्रदः॥३७॥
एवमाश्वासिता देवागर्गेणैव महात्मना।ममन्थुरब्धिं त्वरितागर्जमाना महाबलाः॥३८॥

द्विगुणं बलमापन्ना महात्मानो दृढ़व्रताः। महेशं स्मरमाणास्ते गणेशं च पुनः पुनः॥३९॥
निर्मथ्यमानादुदधेर्गर्जमानाच्च सर्वशः। निर्गता सुरभिः साक्षाद् देवानांकार्यसिद्धये॥४०॥
तुष्टा कपिलवर्णा सा ऊधोभारेणभूयसा। तरंगोपरि गच्छन्ती शनकैः शनकैस्ततः॥४१॥
कामधेनुं समायान्तीं दृष्ट्वा सर्वे सुरासुराः। पुष्पवर्षेणमहता ववर्षुरमितप्रभाम्॥४२॥

गर्गाचार्य कहते हैं—"हे देवगण! अब सबका बल केन्द्रीभूत हो गया। हमारे सामने सभी उत्तम ग्रह आये हैं। बृहस्पति, बुध, सूर्य, शुक्र, शनि एव मंगल चन्द्रमा से मिलित होकर आपकी कार्यसिद्धि हेतु चन्द्रबल के कारण श्रेष्ठ स्थान पर स्थित हैं।" जब महात्मा गर्ग ने देवताओं को यह आश्वासन दिया, तब महाबली देवता गर्जन करते हुये समुद्र मन्थन करने लगे। महात्मा देवताओं ने महेश तथा गणेश को पुनः-पुनः प्रणाम करके दूना बल प्राप्त किया। उस गर्जन करने वाले जलधि के मन्थन से देवगण की कार्य सिद्धि हेतु साक्षात् सुरभि गौ प्रादुर्भूत हो गयीं। वे प्रसन्नमूर्त्ति थीं। उनका कपिल वर्ण था। वे विपुल स्तन भार से आक्रान्त होकर तरंगों के ऊपर से धीरे-धीरे आईं। सुरों तथा असुरों ने कामधेनु को आते देख विपुल पुष्पवर्षा से उनका स्वागत किया।।३५-४२।।

तदा तूर्याण्यनेकानि नेदुर्वाद्यान्यनेकशः। आनीता जलमध्याच्च संवृता गोशतैरपि॥४३॥
तासुनीलाश्चकृष्णाश्चकपिलाश्चकपिञ्जलाः। बभ्रवःश्यामकारक्ताजम्बूवर्णाश्चपिङ्गलाः।
आभिर्युक्ता तदा गोभिः सुरभिः प्रत्यदृश्यत॥४४॥
असुरासुरसम्वीतां कामधेनुं ययाचिरे। ऋषयो हर्षसंयुक्तादेवान्दैत्यांश्च तत्क्षणात्॥४५॥
सर्वेभ्यश्चैवविप्रेभ्यो नानागोत्रेभ्य एवच। सुरभीसहिता गावोदातव्यो नात्रसंशयः।
तैर्याचितास्तेऽत्र सुरासुराश्च ददुश्च ता गाः शिवतोषणाय॥४६॥
तैः स्वीकृतास्ता ऋषिभिः सुमङ्गलैर्महात्मभिः पुण्यतमैः सुरभ्यः॥४७॥

अनेक प्रकार के तूर्यों तथा वाद्यों की ध्वनि होने लगी। १०० गौओं से आवृता कामधेनु सागर से निकल कर तट पर आई। उनके साथ समागत गौओं में से कोई नील, कोई कृष्ण, कोई कपिञ्जल, कोई वभ्रु, कोई श्याम, कोई रक्त, कोई पिंगल, कोई जम्बूवर्ण की थीं। इन सब गौओं से घिरी होकर सुरभि सबके नेत्रों के सामने से प्रादुर्भूत हो गयीं। तब ऋषिगण हर्षोत्फुल्ल होकर देवता तथा दैत्यों से कामधेनु को मांगने लगे। नाना गोत्रीय ब्राह्मणों को सुरभि (गौदान) दान सबको करना चाहिये। अतएव ब्राह्मणों-ऋषियों द्वारा सुरभि हेतु याचना करने पर सुरों तथा असुरों ने शिव की प्रसन्नता प्राप्ति के लिए उनको गोदान किया। पुण्यचेता महात्मा ऋषियों ने सुरासुर प्रदत्त सुरभिदान को ग्रहण किया।।४३-४७।।

पुण्याहंमुनिभिःसर्वैःकारितास्तेतदासुराः। देवानांकार्यसिद्ध्यर्थमसुराणांक्षयाय च॥४८॥
पुनः सर्वे सुसंरब्धाममन्थुः क्षीरसागरम्। मथ्यमानात्तदा तस्मादुदधेश्च तथाऽभवत्॥४९॥
कल्पवृक्षः पारिजातश्चूतः सन्तानकस्तथा। तान्द्रुमानेकतः कृत्वा गन्धर्वनगरोपमान्।
ममन्थुरुग्रं त्वरिताः पुनः क्षीरार्णवं बुधाः॥५०॥

सभी मुनिगण तब सुरगण हेतु पुण्याहवाचन करने लगे। इस पुण्याहवाचन का उद्देश्य था, देवताओं की कार्यसिद्धि तथा असुर विनाश! जो भी हो, अब सभी और भी विक्रम पूर्वक क्षीरसागर मंथन में प्रवृत्त हो गये।

उस मंथन किये जा रहे सागर से कल्पवृक्ष, पारिजात, आम्र तथा सन्तानक नामक कई वृक्ष आविर्भूत हो गये। देवताओं ने उन गन्धर्व नगर के समान वृक्षों को एक ओर रख कर पुनः व्यग्रतापूर्वक औषधिमन्थन प्रारम्भ कर दिया।।४८-५०।।

निर्मथ्यमानादुदधेरभवत्सूर्यवर्चसम्। रत्नानामुत्तमं रत्नं कौस्तुभाख्यं महाप्रभम्।।५१।।
स्वकीयेन प्रकाशेन भासयन्तं जगत्त्रयम्। चिन्तामणिंपुरस्कृत्य कौस्तुभं ददृशुर्हिते।।५२।।
सर्वेसुराददुस्तं वै कौस्तुभंविष्णवेतदा। चिन्तामणिंततःकृत्वा मध्ये चैवसुरासुराः।
ममन्थुः पुनरेवाब्धिं गर्जन्तस्ते बलोत्कटाः।।५३।।

अब इस मथित हो रहे समुद्र से एक सूर्य के समान उज्वल ज्योतियुक्त कौस्तुभ नामक महाप्रभायुक्त महारत्न निकला। यह रत्न अपनी प्रभा से तीनों लोकों को उद्भासित करने लगा। देवगण चिन्तामणि रूप इस रत्न का दर्शन करने लगे। इसे उन लोगों ने विष्णु को प्रदान किया। तब सुर तथा असुर चिन्तामणि को देकर गर्जन करते पुनः मंथनरत हो गये।।५१-५३।।

मथ्यमानात्ततस्तस्मादुच्चैः श्रवाःसमद्भुतम्। बभूव अश्वोरत्नानां पुनश्चैरावतो गजः।।५४।।
तथैवगजरत्नं च चतुःषष्ट्यासमन्वितम्। गजानांपाण्डुराणां च चतुर्द्दन्तंमदान्वितम्।।५५।।
तान्सर्वान्मध्यतः कृत्वा पुनश्चैव ममन्थिरे। निर्मथ्यमानादुदधेर्निर्गतानि बहून्यथ।।५६।।
मदिरा विजया भृंगी तथा लशुनगृंजनाः। अतीव उन्मादकरो धत्तूरः पुष्करस्तथा।।५७।।
स्थापितानैकपद्येनतीरेनदनदीपतेः। पुनश्चतेतत्रमहासुरेन्द्राममन्थुरब्धिंसुरसत्तमैःसह।।५८।।

अब मथित किये जा रहे सागर से उच्चैःश्रवा नामक अश्व एवं ऐरावत हाथी निकले। ऐरावत के साथ ६४ हाथी और भी निकले थे। सभी हाथी पाण्डुर वर्ण, चार दांतों वाले तथा मदमत्त थे। उन गजों तथा अश्व को मध्य में रख कर देव-दानव पुनः सागर मन्थन करने लगे। उस मथित सागर से इस बार मदिरा, विजया, भृङ्गी, लहसुन, गृञ्जन, अत्यन्त उन्मादप्रद धतूरा तथा पुष्कर निकला। इनके निकलते ही सुर-असुरगण ने इनको किनारे रखा तथा पुनः समुद्र मन्थन में प्रवृत्त हो गये।।५४-५८।।

निर्मथ्यमानादुदधेस्तदासीत्सा दिव्यलक्ष्मीर्भुवनैकनाथा।
आन्वीक्षिकीं ब्रह्मविदो वदन्ति तथा चान्ये मूलविद्यां गृणन्ति।।५९।।
ब्रह्मविद्यां केचिदाहुः समर्थाः केचित्सिद्धिमृद्धिमाज्ञामथाशाम्।
यां वैष्णवींयोगिनः केचिदाहुस्तथा च मायां मायिनो नित्ययुक्ताः।।६०।।
वदन्ति सर्वे केनसिद्धान्तयुक्तां यां योगमायां ज्ञानशक्त्यान्विता ये।
ददृशुस्तांमहालक्ष्मीमायान्तींशनकैस्तदा ।
गौरां च युवतींस्निग्धांपद्मकिंजल्कभूषणाम्।।६१।।
सुस्मितांसुद्विजांश्यामांनवयौवन भूषणाम्। विचित्रवस्त्राभरणरत्नानेकोद्यतप्रभाम्।।६२।।
बिम्बोष्ठीं सुनसांतन्वींसुग्रीवांचारुलोचनाम्। सुमध्यां चारुजघनांबृहत्कटितटांतथा।।६३।।

नानारत्नप्रदीपैश्च नीराजितमुखाम्बुजाम्। चारुप्रसन्नवदनां हारनूपुरशोभिताम्॥६४॥
मूर्द्धनि धियमाणेनच्छत्रेणऽपिविराजिताम्। चामरैर्वीज्यमानांतांगङ्गाकल्लोललोहितैः॥६५॥

इस बार के समुद्र मन्थन द्वारा भुवनपावनी दिव्य लक्ष्मी प्रादुर्भूता हो गयीं। ब्रह्मवेत्ता उनको आन्वीक्षिकी कहते हैं। अन्य लोग उनका मूलविद्यारूपेण स्तव करते हैं। उनको कोई-कोई ब्रह्मविद्या कहते हैं। अन्य उनको ऋद्धि, सिद्धि, आशा तथा समर्था आज्ञा भी कहते हैं। कोई उनको वैष्णवी अथवा योगिनी किंवा माया कहते हैं। कोई ज्ञानशक्तियुक्त विद्वान् उनको केनोपनिषद् में प्रतिपाद्य ब्रह्मविद्या, योगमाया भी कहते हैं। सुर तथा असुरगण ने इन महालक्ष्मी को धीरे-धीरे वहां आते देखा। ये लक्ष्मी देवी गौरवर्णा, युवती, स्निग्धा, पद्मकिञ्जल्क मण्डिता, चारुहासिनी, सुन्दर दन्तपंक्तियों वाली, श्यामा, नवयौवनभूषणा, विचित्र वस्त्रों तथा आभरणों वाली, अनेक रत्नसमूहों की प्रभा से प्रभान्वित, बिम्बोष्ठि, सुन्दर नासिका वाली, उत्तम ग्रीवा तथा नेत्रों वाली, तन्वङ्गी, सुमध्यमा, सुन्दर जघनों वाली, विपुल नितम्बों से युक्त थीं। विभिन्न रत्नों की प्रभा मानों उनके मुखमण्डल की आरती उतार रही हो। वे हार-नूपुर से शोभित थीं। उनका मुख सुन्दर तथा सुप्रसन्न था। उनके मस्तक के ऊपर सुन्दर छत्र शोभित था। गंगा की लहरों के समान हिलते चामर द्वारा उनका चामर व्यजन हो रहा था।।५९-६५।।

पाण्डुरं गजमारूढां स्तूयमानां महर्षिभिः। सुरद्रुमपुष्पमालां बिभ्रतींमल्लिकायुताम्॥६६॥
कराग्रे धियमाणां तां दृष्ट्वादेवाःसमुत्सुकाः। आलोकनपरायावत्तावत्तान्ददृशेह्यसौ॥६७॥
देवांश्च दानवांश्चैवसिद्धचारणपन्नगान्। यथा माता स्वपुत्रांश्चमहालक्ष्मीस्तथासती।
आलोकितास्तथा देवास्तया लक्ष्म्या श्रियान्विताः॥६८॥
सञ्जातास्तत्क्षणादेव राज्यलक्षणलक्षिताः॥६९॥

वे पाण्डुरवर्ण के हाथी पर बैठी थीं। महर्षिगण उनकी स्तुति कर रहे थे। उन्होंने मल्लिका तथा कल्पलता की माला उंगलियों से पकड़ रखी थी। देवगण उनको उत्सुकता से देखने लगे। लक्ष्मीदेवी ने तभी देवगण की ओर दृष्टिपात किया, जैसे माता अपने पुत्रों को देखती है, उसी प्रकार से लक्ष्मी देवी देव-दानव-सिंह-चारण तथा सर्पों-नागों की ओर देखने लगीं। उन लक्ष्मी के दृष्टिपात मात्र से देवगण तभी श्रीमान् हो गये। उसी समय से उनमें मानों राज्यप्राप्ति के लक्षण लक्षित होने लगे।।६६-६९।।

दैत्यास्ते निःश्रिका जाता ये श्रियाऽनवलोकिताः॥७०॥
निरीक्ष्यमाणा च तदा मुकुन्दं तमालनीलं सुकपोलनासम्।
विभ्राजमानं वपुषा परेण श्रीवत्सलक्ष्मं सदयावलोकम्॥७१॥
दृष्ट्वा तदैव सहसा वनमालयान्विता लक्ष्मीर्गजादवततार सुविस्मयन्ती।
कण्ठे ससर्ज पुरुषस्य परस्य विष्णोर्मालां श्रिया विरचितां भ्रमरैरुपेताम्॥७२॥
वामाङ्गमश्रित्य तदा महात्मनः सोपाविशत्तत्र समीक्ष्य ता उभौ।
सुराः सदैत्या मुदमापुरद्भुतां सिद्धाप्सरःकिन्नरचारणाश्च॥७३॥

श्रीदेवी ने उस दृष्टि से दैत्यों को नहीं देखा। अतः वे श्रीभ्रष्ट लगने लगे। तभी लक्ष्मी देवी की दृष्टि तमाल के समान नीलवर्ण, सुन्दर कपोल तथा सुन्दर नासिका वाले मुकुन्द पर पड़ गयी। वनमालाधारिणी लक्ष्मी उन

विशिष्ट विग्रहधारी श्रीवत्सचिह्नित, सदय दृष्टि वाले मुकुन्द को देखकर विस्मयपूर्वक हाथी से उतरीं तथा उन परम पुरुष विष्णु के कण्ठ में एक स्वहस्त रचित तथा भ्रमरों से व्याप्त पुष्पमाला पहना दिया। यह देखकर सुर-असुर, सिद्ध, किन्नर, अप्सरा, चारण सभी को प्रसन्नता प्राप्त हो गयी। तदनन्तर वे विष्णु के वामाङ्ग का आश्रय लेकर बैठ गयीं।।७०-७३।।

सर्वेषामेवलोकानामैकपद्येन सर्वशः। हर्षो महानमभूत्तत्र लक्ष्मीनारायणागमे॥७४॥
लक्ष्म्यावृतो महाविष्णुर्लक्ष्मीस्तेनैव सम्वृता। एवं परस्परं प्रीत्याह्यवलोकनतत्परौ॥७५॥
शंखाश्च पटहाश्चैव मृदंगानकगोमुखाः। भेर्यश्च झर्झरीणां च स शब्दस्तुमुलोऽभवत्॥७६॥
बभूव गायकानां च गायनं सुमहत्तदा। ततानि विततान्येव घनानि सुषिराणि च॥७७॥
एवं वाद्यप्रभेदैश्चविष्णुं सर्वात्मना हरिम्। अतोषयन्सुगीतज्ञागन्धर्वाप्सरसांगणाः॥७८॥
तथा जगुर्नारदतुम्बुरादयो गन्धर्वयक्षाः सुरसिद्धसंघाः।
संसेवमानाः परमात्मरूपं नारायणं देवमगाधबोधम्॥७९॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे समुद्रमन्थनाख्याने लक्ष्मीप्रादुर्भाववर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥११॥

लक्ष्मी तथा नारायण के इस समागम से समस्त लोकों में महान् हर्ष व्याप्त हो गया। लक्ष्मी ने महाविष्णु का तथा महाविष्णु ने लक्ष्मी का वरण किया। तब लक्ष्मी एवं नारायण परस्परतः एक-दूसरे का अवलोकन करने लगे। उस शुभ अवसर पर शंख-पटह-मृदङ्ग-आनक, गोमुख-भेरी-झर्झरी आदि का तुमुल शब्द उत्थित हो गया। गायकों की महान् संगीत ध्वनि भी उत्थित होने लगी। संगीतज्ञ अप्सरा तथा गन्धर्वगण तत-वितत-घन एवं सुषिर वाद्यभेद से विष्णु को प्रसन्न करने लगे। नारद तथा तुम्बुरु आदि गन्धर्व एवं यक्षगण, देवता तथा सिद्धगण परमात्म मूर्त्ति, अगाध बुद्धि नारायण देव को सन्तुष्ट करने हेतु गान-गायन करने लगे।।७४-७९।।

॥एकादश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

द्वादशोऽध्यायः

समुद्रमन्थन वर्णन

लोमश उवाच

प्रणम्य परमात्मानं रमायुक्तं जनार्दनम्। अमृतार्थं ममन्थुस्ते सुरासुरगणाः पुनः॥१॥
उदधेर्मथ्यमानाच्च निर्गतः सुहायशाः। धन्वन्तरिरिति ख्यातो युवामृत्युञ्जयः परः॥२॥
पाणिभ्यां पूर्णकलशंसुधायाः परिगृह्य वै। यावत्सर्वे सुराः सर्वे निरीक्षन्तेमनोहरम्॥३॥
तदा दैत्याः समं गत्वा हर्तुकामा बलादिव।
सुधया पूर्णकलशं धन्वन्तरिकरे स्थितम्॥४॥
यावत्तरंगमालाभिरावृतोऽभूद्भिषक्तमः। शनैः शनैः समायातो दृष्टोऽसौ वृषपर्वणा॥५॥
करस्थः कलशस्तस्य हृतस्तेन बलादिव। असुराश्च ततः सर्वे जगर्जुरतिभीषणम्॥६॥

सूत लोमश कहते हैं— रमायुक्त जनार्दन को प्रणाम करके सुर तथा असुर पुनः अमृत हेतु सागर मन्थन करने लगे। इस बार मथे जा रहे समुद्र से धन्वन्तरि निकले। धन्वन्तरि युवक थे तथा द्वितीय मृत्युञ्जय लग रहे थे। वे अपने दोनों हाथों में सुधा भरा कलश लेकर आविर्भूत हुये थे। जब देवता इन मनोहर पुरुष को देख रहे थे, तभी दैत्यगण एक साथ आगे आकर उन कलशों का हरण करने की योजना बनाने लगे। वे भिषग् पुरुष तरंग मालाओं से आवृत स्थिति में धीरे-धीरे आ रहे थे। दानवेन्द्र वृषपर्वा ने उनको देखा तथा बलपूर्वक उनके हाथों से कलश छीन लिया। इस बार सभी असुर एकत्र होकर भीषण गर्जन किये जा रहे थे।।१-६।।

कलशं सुधया पूर्णं गृहीत्वातेसमुत्सुकाः। दैत्याःपातालमाजग्मुस्तदादेवाभ्रमान्विताः॥७॥
अनुजग्मुः सुसंनद्धायोद्धुकामाश्च तैः सह। तदा देवान्समालोक्य बलिरेवमभाषत॥८॥

दैत्यगण ने सुधाकलश हरण कर लिया तथा उत्सुक चित्त के साथ पाताल चले गये। इससे देवगण उद्भ्रान्त से हो गये थे। वे असुरों के साथ युद्धार्थ सज्जित होने लगे। तब बलि ने देवताओं को देखकर कहा।।७-८।।

बलिरुवाच

वयं तु केवलं देवाः सुधया परितोषिताः। शीघ्रमेव प्रगन्तव्यं भवद्भिश्च सुरोत्तमैः॥९॥
त्रिविष्टपं मुदायुक्तैःकिमस्माभिःप्रयोजनम्। पुराऽस्माभिःकृतं मैत्रंभवद्भिःस्वार्थतत्परैः।
अधुना विदितं तत्तु नात्र कार्या विचारणा॥१०॥

बलि कहते हैं—हे देवगण! हम प्रचुर सुधापान से तृप्त हो गये। अब तुम लोग मुदित होकर शीघ्र स्वर्ग जाओ। अब हमसे तुम्हारा क्या प्रयोजन? तुम लोगों ने पहले अपने स्वार्थ हेतु हमारे साथ मित्रता किया था। मैंने तुम्हारी सभी अभिसन्धि को जान लिया। अब इस सम्बन्ध में कुछ भी सोचना नहीं है।।९-१०।।

एवं निर्भर्त्सितास्तेन बलिना सुरसत्तमाः। यथागतेन मार्गेण जग्मुर्नारायणं प्रभुम्॥११॥

तं दृष्ट्वा विष्णुना सर्वे सुरा भग्नमनोरथाः। आश्वासितावचोभिश्चनानानुनयकोविदैः॥१२॥
मा त्रासं कुरुतात्रार्थ आनयिष्यामि तां सुधाम्। एवमाभाष्य भगवान्मुकुन्दोऽनाथसंश्रयः॥१३॥
स्थापयित्वा सुरान्सर्वांस्तत्रैव मधुसूदनः। मोहिनीरूपमास्थायदैत्यानामग्रतोऽभवत्॥१४॥

जब बलिराज द्वारा इस प्रकार से देवताओं की भर्त्सना की गयी, तब वे उचित पथ पर जाकर (उचित प्रकार से विचार कर) प्रभु नारायण की शरण में गये। जब विष्णु ने देखा कि देवगण का सभी मनोरथ भग्न हो गया है तब विष्णु ने देवताओं को नाना प्रबोध वाक्यों से आश्वस्त किया। विष्णु ने कहा—"तुम लोग तनिक भी त्रास का अनुभव न करो। मैं वह सुधा वापस लाऊंगा।" अनाथों के आश्रयरूप भगवान् यह कह कर देवगण को वहीं रोक कर मोहिनी मूर्त्ति धारण करके दैत्यों के यहां आये।।११-१४।।

तावद्दैत्याःसुसंरब्धाः परस्परमथाबुवन्। विवादः सर्वदैत्यानाममृतार्थे तदाऽभवत्॥१५॥
एवं प्रवर्तमानेतु मोहिनीरूपमाश्रिताम्। दृष्ट्वा योषां तदा दैवात्सर्वभूतमनोरमाम्॥१६॥
विस्मयेन समाविष्टा बभूवुस्तृषितेक्षणाः। तां संमान्य तदा दैत्यराजो बलिरुवाच ह॥१७॥

बलिरुवाच

सुधा त्वयाविभक्तव्या सर्वेषां गतिहेतवे। शीघ्रत्वेन महाभागे कुरुष्व वचनं मम॥१८॥
एवमुक्ता ह्यवाचेदं स्मयमाना बलिंप्रति। स्त्रीणांनैवचविश्वासः कर्तव्योहिविपश्चिता॥१९॥
अनृतंसाहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता। अशौचं निर्घृणत्वंचस्त्रीणांदोषाःस्वभावजाः॥२०॥
निःस्नेहत्वंच विज्ञेयं धूर्तत्वंचैव तत्त्वतः। स्वस्त्रीणांचैवविज्ञेयादोषानास्त्यत्र संशयः॥२१॥

इस समय वहां दैत्यगण अमृत के लिए परस्परतः बातें कर रहे थे। इसी के चलते उनमें विवाद उपस्थित हो गया। यह विवाद आरम्भ होने पर वे सर्वभूत मनोहर मनोरम मोहिनी मूर्त्ति धारिणी रमणी को देखकर सभी तृषित दृष्टि से उसे देखने लगे। बलिराज उनके प्रति सम्मान प्रदर्शन करता बोला—"हे महाभागे! तुम मेरी बात रक्खो। समस्त लोगों की सुगति के लिये तुम शीघ्रता से इस सुधा को बांट दो।" बलि की यह बात सुनकर मोहिनी ने हंसते हुये कहा—"विद्वान् लोग स्त्री जाति का भरोसा नहीं करते। असत्य, साहस, माया, मूर्खता, अतिलोभ, अशौच तथा निर्घृणता स्त्री जाति का स्वाभाविक दोष है। निःस्नेहता तथा धूर्त्तता में भी स्त्री जाति का दोष है"।।१५-२१।।

यथैव श्वापदानांचवृकाहिंसापरायणाः। काका यथाण्डजानांचश्वापदानांचजम्बुकाः।
धूर्ता तथा मनुष्याणां स्त्री ज्ञेया सततं बुधैः॥२२॥
मया सह भवद्भिश्च कथं सख्यं प्रवर्तते। सर्वथाऽत्र न विज्ञेयाः के यूयं चैव काह्यहम्॥२३॥
तस्माद्भवद्भिः संचिन्त्य कार्याकार्यविचक्षणैः। कर्तव्यंपरयाबुद्ध्याप्रयातासुरसत्तमाः॥२४॥

जैसे वृक् (भेड़ियां) श्वापदगण का, काक अण्डज मात्र का तथा जम्बूक (शृगाल) जैसे सभी जन्तुगण के प्रति स्वभावतः हिंसा तत्पर रहता है, वैसे ही स्त्रियां पुरुषों के प्रति कपटपरायण रहती हैं। यही बुद्धिमानों का अभिमत है। इसलिये तुम्हारे साथ मेरा सखाभाव सम्बन्ध कैसे हो? तुम कौन हो, अथवा मैं कौन हूं, इसे तुम लोग वास्तव में

नहीं जानते। इसलिए कार्य-अकार्य का विचार करके तुम कर्त्तव्य करो। अथवा बुद्धियोग से विचार करके यहां से चले जाओ।।२२-२४।।

बलिरुवाच

यास्त्वया कथिता नार्यो ग्राम्या ग्राम्यजनप्रियाः।
तासां त्वं कथ्यमानां मध्यगा नासि शोभने!॥२५॥
किं त्वया बहुनोक्तेन कुरुष्व वचनंहिनः। सा मोहिनीदं प्रोवाच बलेर्वाक्यादनन्तरम्॥२६॥
करिष्यामि च ते वाक्यं सूक्तासूक्तमिति प्रभो!॥२७॥

बलि कहता है—"तुमने जिस नारीगण का लक्षण बतलाया है, वे ग्राम्य नारीगण के लक्षण हैं। ग्राम्य जन ही उन स्त्रियों को चाहते हैं। हे शोभने! तुम उन कथित नारीगण में से नहीं हो। तुम और अधिक बातें न करके मेरे कथनानुसार कार्य सम्पन्न करो।" बलि का कथन समाप्त होने पर मोहिनी ने कहा—"हे प्रभु! चाहे तुम्हारा कथन संगत हो अथवा असंगत हो, मैं उसका पालन करूंगी।।२५-२७।।

बलिरुवाच

अद्यामृतं च सर्वेषां विभजस्व यथातथम्। त्वया दत्तं च गृह्णीमः सत्यं सत्यंवदामिते॥२८॥
एवमुक्ता तदादेवीमोहिनीसर्वमङ्गला। उवाचाऽथासुरान्सर्वान्नोचयँल्लौकिकींस्थितिम्॥२९॥

बलि कहता है—"अब तुम यथायथ रूप से अमृत का विभाग करो। तुम्हारे द्वारा प्रदत्त अमृत मैं ग्रहण करूंगा। यह पूर्ण सत्य है।" बलि का वाक्य सुनकर सर्वमङ्गला मोहिनी ने असुरों से समस्त लौकिकी स्थिति के सम्बन्ध में कहना प्रारम्भ किया।।२८-२९।।

भगवानुवाच

यूयं सर्वेकृतार्थाश्च जातादैवेनकेनचित्। अद्योपवाससंयुक्ता अमृतस्याधिवासनम्॥३०॥
क्रियतामसुराःश्रेष्ठाः शुभेच्छाकिञ्चिदस्तिवः। श्वोभूते पारणंकुर्याद्व्रतार्चनरतिश्च वः॥३१॥
न्यायोपार्जितवित्तेन दशमांशेन धीमता। कर्तव्यो विनियोगश्च ईशप्रीत्यर्थहेतवे॥३२॥
तथेति मत्वा ते सर्वे यथोक्तंदेवमायया। चक्रुस्तथैव दैतेया मोहिता नातिकोविदाः॥३३॥

मोहिनी रूपी श्रीभगवान् कहते हैं—तुम सब अवश्य किसी दैवी घटना से कृतार्थ हो सके हो। आज तुम सभी उपवासी रहो। हे असुरप्रवरगण! यदि तुम लोगों में तनिक भी सुखेच्छा हो, तब इस प्रकार से उपवासी रहकर तब अमृतास्वादन करना। व्रतार्चना के तुम सभी अनुरागी हो। अतः आगामी दिन उपवास के अनन्तर पारण करना। देखो! धीमान् व्यक्ति न्यायोपार्जित वित्त का $\frac{१}{१०}$ ईश्वरार्थ नियोग करें। यही विधान है। देवमायारूपा मोहिनी ने जो कुछ भी कहा, असुरगण ने वही हितकर मानकर स्वीकार किया।।३०-३३।।

मयासुरेण च तदा भवनानि कृतानिवै। मनोज्ञानि महार्हाणि सुप्रभाणि महान्तिच॥३४॥
तेधूपविष्टास्ते सर्वे सुस्नाताः समलङ्कृताः। स्थापयित्वा सुसंरब्धाःपूर्णं कलशमग्रतः॥३५॥
रात्रौ जागरणं सवः कृतं परमया मुदा। अथोषसि प्रवृत्ते च प्रातःस्नानयुता भवन्॥३६।

असुरा बलिमुख्याश्च पङ्क्तिभूता यथाक्रमम्। सर्वमावश्यकंकृत्वातदा पानरताभवन्॥३७॥
बलिश्च वृषपर्वाच नमुचिः शंख एव च। सुदंष्ट्रश्चैव संह्लादी कालनेमिर्विभीषणः॥३८॥
वातापिरिल्वलः कुम्भो निकुम्भः प्रच्छदस्तथा।
तथा सुन्दोपसुन्दौ च निशुम्भः शुम्भ एव च॥३९॥
महिषो महिषाक्षश्च बिडालाक्षः प्रतापवान्।
चिक्षुराख्यो महाबाहुर्जृम्भणोऽथ वृषासुरः॥४०॥
विबाहुर्बाहुकोघोरस्तथावै घोरदर्शनः। एते चान्येचबहवो दैत्यदानवराक्षसाः।
यथाक्रमं चोपविष्टा राहुः केतुस्तथैव च॥४१॥

तब दानव मय, दानव शिल्पी ने तत्काल महार्ह महाभवन का निर्माण किया। स्नानोपरान्त अलंकृत असुरगण सुधाकलश सामने रखकर मयासुर निर्मित उस भवन में स्थित हो गये। परम हर्ष के साथ उन लोगों ने रात्रिजागरण किया। तत्पश्चात् प्रभात होने पर असुरगण प्रातः स्नानोपरान्त श्रेणीबद्ध होकर यथाक्रमेण बैठे तथा समस्त कार्य सम्पन्न करके अमृतपानरत हो गये। बलि, वृषपर्वा, नमुचि, शंख, सुदंष्ट्र, संल्हाद आदि, कालनेमि, विभीषण, वातापि, इल्वल, कुम्भ, निकुम्भ, प्रच्छद, सुन्द, उपसुन्द, निशुम्भ, शुम्भ, महिष, महिषाक्ष, बिड़ालाक्ष, चिक्षुराक्ष, महाबाहु जृंभण, वृषासुर, विवाहु, बाहुक, घोर तथा घोरदर्शन तथा अन्य और भी दैत्य, दानव, राक्षस क्रमपूर्वक अमृतपानार्थ बैठे। राहु तथा केतु नामक दो असुरों को भी उसमें स्थान मिला।।३४-४१।।

तेषां तु कोटिसंख्यानां दैत्यानां पङ्क्तिरास्थिता॥४२॥
ततस्तया तदा देव्या अमृतार्थंहिवैद्विजाः। यज्जातं तच्छृणुध्वंहितया देव्याकृतं महत्॥४३॥
सर्वे विज्ञापिताःसद्योगृहीतकलशातदा। शोभया परयायुक्तासाक्षात्साविष्णुमोहिनी॥४४॥
करस्थेन तदा देवी कलशेन विराजिता। शुशुभे परया कान्त्या जगन्मङ्गलमङ्गला॥४५॥
परिवेषधराः सर्वे सुरास्तेह्यसुरान्तिकम्। आगतास्तत्क्षणादेव यत्र ते ह्यसुरोत्तमाः॥४६॥
तान्दृष्ट्वा मोहिनी सद्य उवाच प्रमदोत्तमा॥४७॥

इस प्रकार करोड़ों दैत्य पंक्तिबद्ध होकर बैठ गये। हे द्विजगण! तब अमृत हेतु मोहिनी ने जो कार्य किया, उस महान् कार्य को सुनो। मूर्तिमान विष्णुमोहिनी देवी परम शोभायुक्त होकर सुधाकलश द्वारा शोभित हो रहीं थीं। जगत् मंगल की मंगलभूत वे देवी परम कान्तिछटा के साथ विराजित थीं। तभी देवगण वेश बदलकर असुरों के पास आ गये। वरवर्णिनी मोहिनी देवी ने यह देखकर कहा।।४२-४७।।

मोहिन्युवाच

एते ह्यतिथयो ज्ञेया धर्मसर्वस्वसाधनाः। एभ्योदेयं यथाशक्त्या यदि सत्यंवचोमम।
प्रमाणं भवतां चाद्य कुरुध्वं मा विलम्बथ॥४८॥
परेषामुपकारं च ये कुर्वन्तिस्वशक्तितः। धन्यास्ते चैव विज्ञेयाः पवित्रालोकपालकाः॥४९॥
केवलात्मोदरार्थाय उद्योगंये प्रकुर्वते। ते क्लेशभागिनो ज्ञेया नात्रकार्या विचारणा॥५०॥

तस्माद्विभजनं कार्यं मयैतस्यशुभव्रताः। देवेभ्यश्च प्रयच्छध्वं यद्धि चात्मप्रियाप्रियम्॥५१॥

मोहिनी कहती हैं—ये अतिथि परम धर्म के साधक हैं। मैं सत्य कहती हूं। इनको यथाशक्ति अमृत प्रदान करो। मैं सत्य कहती हूं। इनको अमृत दान करना कर्त्तव्य है। हे असुरों! तुम लोग अभी इसके लिए अनुमति प्रदान करो। विलम्ब न करो। देखो, जो अपने साधन के अनुरूप अन्य का उपकार करते हैं, वे धन्य हैं। वे पवित्र तथा लोकोत्तम हैं। जो केवल अपने ही भोगास्वादनार्थ प्रयत्न करते हैं, वे क्लेश का ही भोग कर रहे हैं। हे शुभव्रतगण! मैं इस अमृत का भाग करके अतिथियों को दान करूंगी। यह दान तुमको प्रिय लगे किंवा अप्रिय लगे, इनको भी भाग प्रदान करो।।४८-५१।।

इत्युक्ते वचने देव्यातथाचक्रुरतन्द्रिताः। आह्वयामासुरसुराः सर्वान्देवान्सवासवान्॥५२॥
उपविष्टाश्चते सर्वे अमृतार्थंचभोद्विजाः। तेषूपविश्यमानेषु ह्युवाच परमं वचः।
मोहिनी सर्वधर्मज्ञा असुराणां स्मयन्निव॥५३॥

मोहिनी के यह कहने पर असुरों ने उसी बात का निरालस भाव से पालन किया। तब असुरगण ने अमृतपानार्थ देवताओं को बुलाया। हे द्विजगण! सुरगण भी वहां अमृत पान के लिए बैठ गये। उनके बैठ जाने पर सर्वधर्मज्ञा मोहिनी तनिक हंसते हुये असुरगण से कहने लगीं।।५२-५३।।

मोहिन्युवाच

आदौ ह्यभ्यागताः पूज्या इति वै वैदिकी श्रुतिः॥५४॥
तस्माद्यूयं वेदपराः सर्वे देवपरायणाः। बुवन्तु त्वरितेनैव आदौ केषां ददाम्यहम्।
अमृतं हि महाभागा बलिमुख्या वदन्तु भोः॥५५॥

मोहिनी कहती है—वैदिकी श्रुति के अनुसार पहले अतिथि पूजा होनी चाहिये। तुम सब वेदज्ञानयुक्त तथा वेदाचार निष्ठ हो। तुम सब तत्काल कहो कि मैं पहले किसे अमृत दान करूं। हे बलिप्रमुख महाभाग असुरों! शीघ्र व्यवस्था करो।।५४-५५।।

बलिनोक्तातदादेवी यत्ते मनसिरोचते। स्वामिनी त्वं न सन्देहो ह्यस्माकंसुन्दरानने॥५६॥
एवं संमानिता तेन बलिना भावितात्मना। परिवेषणकार्यार्थं कलशं गृह्य सत्वरा॥५७॥
तस्मान्नरेन्द्रकरभोरुलसद्दुकूला श्रोणीतटालसगतिर्मदविह्वलाङ्गी।
सा कूजती कनकनूपुरसिञ्जितेन कुम्भस्तनी कलशपाणिरथाविवेश॥५८॥
तदा तु देवी परिवेषयन्ती सा मोहिनी देवगणाय साक्षात्।
ववर्ष देवेषु सुधारसं पुनः पुनः सुधाहाररसामृतं यथा॥५९॥
पुनश्च ते देवगणाः सुधारसं दत्तं तया परया विश्वमूर्त्या।
देवेन्द्रमुख्याः सह लोकपाला गन्धर्वयक्षाप्सरसां ग्रणाश्च॥६०॥

तब बलि ने ही मोहिनी से कहा—"हे सुन्दर मुख वाली! तुम हम सब की स्वामिनी हो। इसमें सन्देह नहीं है। तुम्हारी जो रुचि हो, वही करो।" भावितात्मा बलि द्वारा इस प्रकार सम्मानित किये जाने पर वे परिवेशन कार्यार्थ

सुधाकलश उठाकर आगे बढ़ीं। कुम्भस्तनी मोहिनी ने अमृत कलश हाथों में लेकर देव-दैत्य समूह के बीच में प्रवेश किया। तब उनके मदमत्त हाथी की सूंड़ के समान उरु प्रदेश से वस्त्राञ्चल खिसक गया था। वे नितम्बों की थिरकन भरी चाल के साथ मन्द-मन्द बढ़ती जा रही थीं। उनके अंग मानो मदविह्वल थे। वे मोहिनी देवी सुधा वितरण कार्य में व्यापृत होकर पुनः-पुनः देवताओं पर ही सुधावर्षण करती जा रही थीं। इन्द्र प्रमुख लोकपालगण, अन्य देवगण, गन्धर्व, यक्ष तथा अप्सरागण वहां बैठे थे। विश्वमूर्त्ति रूपा मोहिनी उनको पुनः पुनः सुधारस पान कराती जा रहीं थीं।।५६-६०।।

सर्वे दैत्या आसनस्थास्तदानीं चिन्तान्विताः क्षुधया पीड़िताश्च।
तूष्णींभूता बलिमुख्या द्विजेन्द्रा मनस्विनो ध्यानपरा बभूवुः॥६१॥

देवपक्षीय जब सुधापान कर रहे थे, तब दैत्यवृन्द अपने-अपने आसन पर चिन्तित तथा क्षुधापीड़ित बैठे थे। हे द्विजप्रवरगण! बलि आदि प्रमुख मनस्वीगण तब ध्यानस्थ की तरह मौनी बैठे हुये थे!।।६१।।

ततस्तथाविधान्दृष्ट्वा दैत्यांस्तान्मोहमाश्रितान्। तदाराहुश्चकेतुश्चद्वावेतौ दैत्यपुङ्गवौ॥६२॥
देवानां रूपमास्थाय अमृतार्थंत्वरान्वितौ। उपविष्टौ तदा पद्भ्यांदेवानाममृतार्थिनौ॥६३॥
यदाऽमृतं पातुकामो राहुः परमदुर्जयः। चन्द्रार्काभ्यां प्रकथितो विष्णोरमिततेजसः॥६४॥
तदा तस्य शिरश्छिन्नं राहोर्दुर्विग्रहस्य च। शिरो गगनमापेदे कबन्धं च महीतले।
भ्रममाणं तदा ह्यद्रींश्चूर्णयामास वै तदा॥६५॥
साद्रिश्च सर्वभूलोकश्चूर्णितश्च तदाऽभवत्। तया तेन च देहेन चूर्णितं सचराचरम्॥६६॥
दृष्ट्वा तदा महादेवस्तस्योपरितुसंस्थितः। निवासः सर्वदेवानां तस्याः पादतलेऽभवत्॥६७॥
पीडनं तत्समीपेऽथ निवास इति नाम वै॥६८॥

तभी राहु एवं केतु नामक दो प्रधान दैत्यों ने जब समस्त दैत्यों को मोहित देखा, तब वे देवताओं का रूप धारण करके देवपंक्ति में व्यग्रतापूर्वक बैठ गये। जहां परम दुर्मद राहु अमृतपानार्थ उद्यत हो गया, तभी सूर्य तथा चन्द्रमा ने यह बात अमित तेजस्वी विष्णु से कह दिया। तभी विष्णु ने उस दुराग्रही राहु का मस्तक चक्र से काट दिया। मस्तक तब गगनपथ की ओर दौड़ पड़ा तथा कबन्ध पृथिवी पर सभी स्थानों को चूर्ण करने लगा। केवल पर्वत ही नहीं, समस्त भूलोक को उस कबन्ध ने चूर्णित कर दिया। किम्बहुना, मोहिनी देवी ने ही वह राहुदेही होकर चराचर को चूर्णित किया था। महादेव यह देखकर उस देह पर अवस्थित हो गये। तब से मोहिनी के चरणतल में समस्त देवताओं का निवास हो गया। उनके द्वारा जगत् का निपीड़न तथा पद तल में देवगण का निवास होने से उनका चरणकमल महद्गण का आलय कहा गया।।६२-६८।।

महतामालयंयस्माद्यस्यास्तच्चरणाम्बुजम्। महालयेतिविख्याता जगत्त्रयविमोहिनी॥६९॥
केतुश्चधूमरूपोऽसावाकाशे विलयं गतः। सुधां समर्प्य चन्द्राय तिरोधानगतोऽभवत्॥७०॥
वासुदेवोजगद्योनिर्जगतांकारणंपरम्। विष्णोःप्रसादात्तज्जातं सुराणांकार्यसिद्धिदम्॥७१॥
असुराणां विनाशाय जातं दैवविपर्ययात्। विना दैवेनजानीध्वमुद्यमो हि निरर्थकः॥७२॥
यौगपद्येन तैः सर्वैःक्षीराब्धेर्मंथनंकृतम्। सिद्धिर्जाता हि देवानामसिद्धिरसुरान्प्रति॥७३॥

ततश्च ते देववरान्प्रकोपिता दैत्याश्च मायाप्रविमोहिताः पुनः।
अनेकशस्त्रास्त्रयुतास्तदाऽभवन्विष्णौ गते गर्जमानास्तदानीम्॥७४॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे समुद्रमंथनाख्याने देवानाममृतप्राशनवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

उनका पादपद्म महत् जन का आलय होने के कारण वे त्रिभुवनमोहिनी देवी महालया कही जाती हैं। तदनन्तर केतु धूमरूपेण आकाश में विलीन हो गया। इधर जगद्योनि जगत्कारण वासुदेव चन्द्र को सुधा प्रदान करके वहां से तिरोहित हो गये। विष्णु की कृपा से देवगण का कार्य सिद्ध हो गया।

इस दैवी विपर्यय से असुरों का विनाश सूचित हुआ। अतः दैव के बिना समस्त उद्यम निरर्थक हैं। दृष्टान्त देखो—सुर तथा असुर, दोनों ने एक साथ क्षीरसागर का मन्थन किया। तथापि देवगण की तो कार्यसिद्धि हो गयी, असुरगण की कार्यसिद्धि नहीं हो सकी। तब दैत्य क्रोधित तथा माया से मोहित होकर विविध अस्त्र-शस्त्र धारण करके गर्जन करते तत्क्षण देवों के प्रति आक्रामक हो गये। असुरों ने जब यह आक्रमण किया, तब वहां विष्णु उपस्थित नहीं थे।।६९-७४।।

॥द्वादश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

त्रयोदशोऽध्यायः

देवासुर युद्ध, रुद्राक्ष माहात्म्य

लोमश उवाच

ततस्ते गर्ज्जमानाश्च आक्षिपन्तःसुरान्रणे। शतक्रतुप्रमुख्यांस्तान्महाबलपराक्रमान्॥१॥
विमानमारुह्य तदा महात्मा वैरोचनिः सर्वबलेन सार्द्धम्।
दैत्यैः समेतो विविधैर्महाबलैः सुरान्प्रदुद्राव महाभयावहम्॥२॥
स्वानि रूपाणिबिभ्रंतःसमापेतुः सहस्त्रशः। केचिद्व्याघ्रान्समारूढा महिषाश्चतथापरे॥३॥
अश्वान्केचित्समारूढाद्विपान्केचित्तथापरे। सिंहास्तथापरेरूढाःशार्दूलाञ्छरभांस्तथा॥४॥
मयूरान्राजहंसांश्च कुक्कुटांश्च तथा परे। केचिद्धयान्समारूढा उष्ट्रानश्वतरानपि॥५॥
गजान्खरान्परे चैव शकटांश्च तथा परे। पादाता बहवो दैत्याः खड्गशक्त्यृष्टिपाणयः॥६॥
परिघायुधिनः पाशशूलमुद्गरपाणयः। असिलोमान्विताः केचिद्धुशुण्डीपरिघायुधाः॥७॥

हयनागरथाश्चान्ये समारूढाः प्रहारिणः। विमानानि समारूढाबलिमुख्याः सहस्त्रशः॥८॥
स्पर्द्धमानास्तथाऽन्योन्यं गर्जन्तश्च मुहुर्मुहुः। वृषपर्वा ह्युवाचेदं बलिनं दैत्यपुङ्गवम्॥९॥

लोमश कहते हैं—इस प्रकार इन्द्र आदि महाबली पराक्रमी देवगण से असुरों ने गर्जन पूर्वक नाना कटु वाक्य कहे तथा युद्धार्थ आह्वान किया। तब विरोचन नन्दन बलि अनेक महाबली दैत्यगण से घिर कर अत्यन्त भीषण रूप से देवगण की ओर दौड़ पड़ा। असुरों अपना नाना रूप धारण करके सैकड़ों-सहस्त्रों की संख्या में आकर टूट पड़े। कोई व्याघ्र, कोई महिष, कोई अश्व, कोई हाथी, कोई सिंह, कोई व्याघ्र, कोई शरभ, कोई मयूर, कोई राजहंस, कोई मुर्गा, कोई ऊंट, कोई खच्चर, कोई गज, कोई गधे, कोई-कोई छकड़े पर बैठ कर रणभूमि में आया। अनेक दैत्य खड्ग, लाठी, शक्ति, परिघ, पाश, शूल, मुद्गर हाथों में लेकर पैदल ही दौड़ पड़े। कितने पैदल सैनिक भुशुण्डि, तलवार तथा परिघ लेकर युद्धार्थ दौड़े। अन्य योद्धाओं में से कोई अश्व पर, हाथी पर अथवा रथ पर बैठ कर रणभूमि में पहुंचा। बलि की प्रमुखता में हजारों-हजार असुर नायक विमान में बैठ कर बारम्बार एक दूसरे से ऊंची आवाज में गर्जने लगे। तब वृषपर्वा ने दैत्यप्रवर बलि से कहा।।१-९।।

त्वया कृतं महाबाहो इन्द्रेण सह सङ्गमम्।
विश्वासो नैव कर्तव्योदुर्हृदा च कथञ्चन॥१०॥
ऊनेनाऽपि हि तुच्छेन वैरिणाऽपि कथञ्चन। मैत्रीबुद्धिमता कार्या आपद्यपिनिवर्तते॥११॥
न विश्वसेत् पूर्वविरोधिना क्वचित्पराजिताः स्मोऽथ बले त्वयाऽधुना।
पुराणदुष्टाः कथमद्य वै पुनर्मन्त्रं विकर्तुं न च ते यतेरन्॥१२॥
इत्यूचुस्तेदुराधर्षायोद्धुकामाव्यवस्थिताः। ध्वजैश्छत्रैः पताकैश्चरणभूमिममण्डयन्॥१३॥
चामरैश्चजिशःसर्वालोपितं च रणस्थलम्। तथा सर्वेसुरास्तत्रदैत्यान्प्रतिसमुत्सुकाः॥१४॥
पीत्वाऽमृतं महाभागावाहन्यारुह्यदंशिताः। गजारूढोमहेन्द्रोऽपिवज्रपाणिःप्रतापवान्।
सूर्यश्चोच्चैःश्रवारूढो मृगारूढश्च चन्द्रमाः॥१५॥

वृषपर्वा कहता है—हे महाबाहो! आपने ही इन्द्र से समझौता किया था। आप यह नहीं जानते थे कि शत्रु का कदापि विश्वास न करे। यदि वैरी हीन किंवा तुच्छ भी हो तो उससे मैत्री करना बुद्धिमान का कर्त्तव्य नहीं है। ऐसी मैत्री तो विपत्ति की खान है। विशेष करके जो पूर्व वैरी है, उस पर विश्वास करना कदापि संगत नहीं है। हे बलि! यह देखो। आपने इस प्रकार विश्वास किया, तभी हम (अमृतप्रसंग में) पराजित हो गये। देवता आरम्भ से ही दुष्टबुद्धि हैं। वे पुनः कभी भी हमारे साथ मन्त्रणा का प्रयत्न नहीं करेंगे। दुर्द्धर्ष असुरगण यही आपस में कहते हुये युद्धार्थ सन्नद्ध हो गये। ध्वज, छत्र, पताका तथा चामर समूह से रणभूमि तथा दिशायें ढंक-सी गयीं। रणभूमि इनसे आवृत-सी हो गयी। अमृतपान से तृप्त महाभाग देवगण अपने-अपने वाहनों पर बैठ कर सज्जित रूप से दैत्यों के प्रति युद्ध करने हेतु उत्सुक हो उठे! महेन्द्र गज पर आरूढ़ थे। परमप्रतापी सूर्य अश्व पर तथा चन्द्रमा मृगारूढ़ थे।।१०-१५।।

छत्रचामरसंवीताःशोभिताविजयश्रिया। प्रणम्य विष्णुंते सर्वइन्द्राद्याजयकाङ्क्षिणः॥१६॥
ते विष्णुनाह्यनुज्ञाताअसुरान्प्रति वै रुषा। असुराश्च महाकायाभीमाक्षाभीमविक्रमाः॥१७॥

तेषां घोरमभूद्युद्धं देवानां दानवैः सह। तुमुलं च महाघोरं सर्वभूतभयावहम्॥१८॥
शरधारान्वितं सर्वं बभूव परमाद्भुतम्। ततश्चटचटाशब्दा बभूवुश्च दिशोदश॥१९॥

ये सभी छत्र, चामर तथा विजयश्री से शोभित थे। इन्द्रादि देवताओं ने जय की इच्छा के साथ विष्णु को प्रणाम किया। उनकी आज्ञा पाकर वे क्रोधपूर्वक असुरों से युद्धरत हो गये। असुर भी कमजोर नहीं थे। सभी भीमाकार, भीमनेत्र तथा भीमविक्रमी थे। तदनन्तर देवगण के साथ दानवों का घोर युद्ध छिड़ गया। केवल घोर ही नहीं, यह युद्ध तो महाघोर तुमुल युद्ध था। यह सभी प्राणीगण के लिए भयानक था। समस्त रणभूमि शरवर्षा से आच्छन्न हो गयी। दिशाओं में भयानक चट्-चट् की ध्वनि उत्थित होती जा रही थी।।१६-१९।।

ततो निमिषमात्रेण शरघातयुता भवन्। शरतोमरनाराचैराहताश्चापतन्भुवि॥२०॥
विध्यमानास्तथाकेचिद्विविधुश्चापरान्रणे। भल्लैर्भग्नाश्चपतितानाराचैः शकलीकृताः॥२१॥
क्षुरप्रहारिताः केचिद्दैत्या दानवराक्षसाः। शिलीमुखैर्मारिताश्च भग्नाः केचिच्चदानवाः॥२२॥
एवं भग्नं दानवानां च सैन्यं दृष्ट्वा देवा गर्जमानाः समन्तात्।
हृष्टाः सर्वे संमिलित्वा तदानीं लब्ध्वा युद्धे ते जयं श्लाघयन्ते॥२३॥

तदनन्तर शर, तोमर तथा नाराच से आहत होकर सैकड़ों वीर पृथिवी पर गिरने लगे। दोनों पक्षों में से सभी एक-दूसरे विपक्षी को विद्ध करने में तत्पर थे। कोई-कोई अन्य योद्धा को विद्ध भी कर चुका था। योद्धागण प्रहार द्वारा भग्न होकर तथा नाराच प्रहार से खण्डित होकर गिरते जा रहे थे। कोई दानव-दैत्य-राक्षस क्षुरास्त्र के प्रहार से, कोई शिलीमुख की मार से, कोई अस्त्र के प्रहार से छिन्न-भिन्न होकर भूपतित हो रहा था। इस प्रकार दैत्य-दानव सैन्य सम्पूर्णतः भग्न हो गया। देवता चतुर्दिक् गर्जन करने लगे। इसी समय देवगण मिलित होकर युद्ध में जयलाभ होने के कारण प्रसन्न चित्त हो अपनी-अपनी बहादुरी का वर्णन आपस में करने लगे।।२०-२३।।

शङ्खवादित्रघोषेण पूरितं च जगत्त्रयम्। देवान्प्रति कृतामर्षा दानवास्ते महाबलाः॥२४॥
बलिप्रभृतयः सर्वे संभ्रमेणोत्थिताः पुनः। विमानैः सूर्यसंकाशैरनेकैश्च समन्विताः॥२५॥
द्वन्द्वयुद्धं सुतुमुलं देवानां दानवैः सह। सम्प्रवृत्तं पुनश्चैव परस्परजिगीषया॥२६॥
बलिना दानवेन्द्रेण महेन्द्रोयुयुधे तदा। तथा यमो महाबाहुर्नमुच्या सह संगतः॥२७॥
नैर्ऋतः प्रघसेनैव पाशी कुम्भेन सङ्गतः। निकुम्भेनैव सुमहद्युद्धं चक्रे सदारयः॥२८॥
सोमेन सह राहुश्च युद्धं चक्रे सुदारुणम्। राहुणा चन्द्रदेहोत्थममृतं भक्षितं तदा।
सम्पर्कादमृतस्यैव यथा राहुस्तथाऽभवत्॥२९॥

शंख तथा अन्य वाद्यों का निर्घोष त्रिभुवन में परिपूरित हो गया। तब बलि आदि प्रमुख महाबली दानवगण देवताओं के ऊपर क्रुद्ध हो गये तथा पुनः सभी उठे। वे सूर्य के समान तेजस्वी विमानों पर बैठ कर युद्धार्थ प्रस्तुत हो गये। दानवों एवं देवताओं के बीच परस्पर विजयेच्छा को लेकर पुनः तुमुल युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में दैत्यराज बलि के साथ इन्द्र का, महाबाहु यम के साथ नमुचि का, नैर्ऋत का प्रघस के साथ, वरुण का कुंभ के साथ, पवन का निकुम्भ के साथ युद्ध होने लगा। राहु ने चन्द्र के साथ घोर युद्ध किया तथा चन्द्र के देह से उत्थित अमृत का भक्षण करने लगा! राहु अमृत के सम्पर्क के कारण एक ही तरह से अवस्थित हो गया।।२४-२९।।

तानिसर्वाणि दृष्टानि शम्भुना परमेष्ठिना। आश्रयोऽहं च सर्वेषांभूतानांनात्र संशयः।
असुराणां सुराणाञ्च सर्वेषामपि वल्लभः॥३०॥
एवमुक्तस्तदाराहुःप्रणम्यशिरसा शिवम्। मौलौस्थितस्तदाचन्द्रोअमृतंव्यसृजद्भयात्॥३१॥
तेनतस्य हि जातानि शिरांसि सुबहून्यपि। ऐकपद्येन तेषां च स्त्रजंकृत्वा मनोहराम्।
बबन्ध शम्भुः शिरसि शिरोभूषणवत्कृतम्॥३२॥
अशनात्कालकूटस्य नीलकण्ठोऽभवत्तदा। देवानांकार्यसिद्ध्यर्थंमुण्डमाला तथाकृता।
दधार शिरसा तां च मुण्डमालां महेश्वरः॥३४॥

इसी समय परमेष्ठि शम्भु ने समस्त दृश्य देखा तथा राहु से कहा—"मैं सर्वभूताश्रय हूं। सुर-असुर सबका वल्लभ (प्रिय हूं)।" शिव के यह कहने पर राहु ने शिर झुका कर उनको प्रणाम किया। तब महादेव के शिरस्थित चन्द्रमा ने अमृत क्षरण किया। उससे राहु के अनेक मस्तक उत्पन्न हो गये। इन सब मस्तकों को समाविष्ट करके शम्भु ने एक मनोरम माला ग्रथित किया तथा अपने मस्तक पर शिर के आभूषण रूपेण बांध लिया। उन्होंने कालकूट भक्षण किया था, तभी वे नीलकण्ठ हैं। देवगण की कार्यसिद्धि हेतु उन्होंने मुण्डमाला बनाकर अपने मस्तक पर धारण किया।।३०-३४।।

तया स्त्रजाऽसौ शुशुभे महात्मा देवादिदेवस्त्रिपुरान्तको हरः।
गजासुरो येन निपातितो महानथान्धको येन कृतश्च चूर्णः॥३५॥
गङ्गा धृता येन शिरस्सुमध्ये चन्द्रं च चूड़े कृतवान्भयापहः।
वेदाः पुराणानि तथाऽऽगमाश्च तथैव नानाश्रुतयोऽथ शास्त्रम्॥३६॥
जल्पन्ति नानागमभेदभेदैर्मीमांसमानाश्च भवन्ति मूकाः।
नानागमाचार्यमतप्रभेदैर्निरूप्यमाणो जगदेकबन्धुः॥३७॥
शिवं हि नित्यं परमात्मदैवं वेदैकवेद्यं परमात्मदिव्यम्।
विहाय तं मूढ़जनाः प्रमत्ताः शिवं न जानन्ति परमात्मरूपम्॥३८॥

जिन्होंने गजासुर का वध तथा अन्धकासुर को निहत किया, जिन्होंने मस्तक पर गंगा तथा अपने शिर पर चन्द्र को धारण किया, विविध श्रुति-पुराण-वेद-आगम तथा अन्य शास्त्र जिनकी महिमा का कीर्त्तन करते हैं, मीमांसकगण विभिन्न आगमभेद से जिनका तत्व निरूपण करते-करते वाणी रहित निर्वाक् हो जाते हैं, जो संसार के एकमात्र बन्धु हैं, जिनको नाना आगमों के आचार्यगण के सम्प्रदायों में भिन्न-भिन्न मतों द्वारा निरूपित किया जाता है, वे परमात्मा देवाधिदेव त्रिपुरहरण कर्त्ता हर, इस मुण्डमाला से शोभित हो गये। एकमात्र शिव ही नित्य परमार्थ वस्तु हैं। वेदवाक्य में वे ही एकमात्र वेद्य हैं, वे ही दिव्य परमात्मा हैं। प्रमादी मूढ़ लोग इन परमात्ममूर्त्ति शिव को नहीं जानते।।३५-३८।।

येनैव सृष्टं विधृतं च येन येन श्रितं येन कृतं समग्रम्।
यस्यांशभूतं हि जगत् कदाचिद्वदान्तवेद्यः परमात्मा शिवश्च॥३९॥

आढ्योवाऽपिदरिद्रो वा उत्तमोह्यधमोऽपिवा। शिवभक्तिरतोनित्यंशिवएवन संशयः॥४०॥
योवापरकृतांपूजांशिवस्योपरिशोभिताम्। दृष्ट्वा सन्तोषमायातिदायं प्राप्नोतितत्समम्॥४१॥
ये दीपमालां कुर्वन्ति कार्तिक्यां श्रद्धयान्विताः। यावत्कालं प्रज्वलन्ति दीपास्ते लिङ्गमग्रतः।
तावद्युगसहस्राणि दाता स्वर्गे महीयते॥४२॥
कौसुम्भतैलसंयुक्ता दीपा दत्ताःशिवालये। दारास्तेऽपि कैलासेमोदन्तेशिवसन्निधौ॥४३॥
अतसीतैलसंयुक्ता दीपादत्ताःशिवालये। दातारस्तेऽपि कैलासे मोदन्ते शिवसन्निधौ॥४४॥

वे प्रमादी शिव का त्याग कर देते हैं। जिन्होंने समग्र जगत् को सृष्ट किया है, जो पालन करते हैं तथा इसके आश्रयरूपेण स्थित हैं, यह जगत् जिनका अंशरूप प्रतिभात होता है, जो वेदान्त वाक्यों से कदाचित् वेद्य हो जाते हैं, वे शिव ही साक्षात् परमात्मा हैं। धनी हो-दरिद्र हो, उत्तम हो-अधम हो, तथापि जो सदा शिवभक्ति लीन हैं, वह साक्षात् शिव हैं। इसमें कोई संशय नहीं करे। अन्यथा जो दूसरे की शिवपूजा देखकर सन्तुष्ट होते हैं, उनको भी पूजक के समान फललाभ होता है। जो श्रद्धापूर्वक कार्त्तिक मास में लिङ्ग के समीप दीपमाला प्रदान करते हैं, जब तक वह प्रदीप प्रज्वलित रहता है, उतने हजार युग वे दीपदाता व्यक्ति स्वर्ग में विहार करते हैं। जो व्यक्ति शिवालय में कुसुम्भ तैल की दीपपंक्ति दान करते हैं, ऐसे दाता कैलास में शिव सन्निधान में मुदित मन से समय व्यतीत करते हैं।।३९-४४।।

ज्ञानिनोऽपि हि जायन्ते दीपदानफलेन हि॥४५॥
तिलतैलेन संयुक्तादीप्तादत्ताःशिवालये। तेशिवंयन्ति संयुक्ताः कुलानां च शतेन वै॥४६॥
घृताक्तायैः कृतादीपादीपिताश्चशिवालये। ते यान्ति परमंस्थानंकुललक्षसमन्विताः॥४७॥
कर्पूरागुरुधूपैश्च ये यजन्तिसदाशिवम्। आरार्तिकां सकर्पूरां ये कुर्वन्ति दिने दिने।
ते प्राप्नुवन्ति सायुज्यं नात्र कार्या विचारणा॥४८॥

दीपदान के फल से दीपप्रदाता ज्ञानी हो जाता है। जो शिवालय में तिलतैलान्वित दीपावली दान करते हैं, वे कुलदेवता के साथ शिवसायुज्य की प्राप्ति करते हैं। जो शिवालय में घृताक्त दीप प्रज्वलित करते हैं, वे १ लाख कुल के साथ परमपद की प्राप्ति करते हैं। जो अगुरु, कर्पूर, धूप से सर्वदा शिवार्चना करते हैं तथा नित्य कर्पूर द्वारा शिव की आरती करते हैं, उनको शिव सायुज्य की प्राप्ति होती है।।४५-४८।।

एककालं द्विकालंवात्रिकालं ये ह्यतन्द्रिताः। लिङ्गार्चनं प्रकुर्वन्ति ते रुद्रानात्र संशयः॥४९॥
रुद्राक्षधारणं ये च कुर्वन्ति शिवपूजने। दानेतपसि तीर्थे च पर्वकाले ह्यतन्द्रिताः।
तेषां यत्सुकृतं सर्वमनन्तं भवति द्विजाः॥५०॥

जो तन्द्रारहित होकर एक बार, दो बार अथवा तीनों बार प्रतिदिन लिंगार्चन (तीनों सन्ध्याओं में नित्य) करते हैं, वे साक्षात् रुद्र हैं। हे द्विजगण! जो शिवपूजा में, दान मे, तपस्या में, तीर्थ में किंवा पर्वकाल में आलस्यरहित होकर रुद्राक्ष धारण करते हैं, उनका समस्त अर्जित पुण्य अक्षय हो जाता है।।४९-५०।।

रुद्राक्षायेशिवेनोक्तास्ताञ्छणुध्वंद्विजोत्तमाः। आरभ्यैकमुखंतावद्यावद्ववक्त्राणिषोडश।
एतेषां द्वौ च विज्ञेयौ श्रेष्ठौ तारयितुं द्विजाः॥५१॥

रुद्राक्षाणां पञ्चमुखस्तथा चैकमुखः स्मृतः। ये धारयन्त्येकमुखं रुद्राक्षमनिशं नराः।
रुद्रलोकं च गच्छन्ति मोदन्ते रुद्रसन्निधौ॥५२॥
जपस्तपःक्रियायोगःस्नानं दानार्चनादिकम्। क्रियते यच्छुभंकर्म्महन्नन्तंचाक्षधारणात्॥५३॥
शुनः कण्ठनिबद्धोऽपिरुद्राक्षोयदिवर्तते। सोऽपि सन्तारितस्तेननात्र कार्याविचारणा॥५४॥
तथा रुद्राक्षसम्बन्धात्पापमपि क्षयं व्रजेत्। एवं ज्ञात्वा शुभंकर्मकार्यंरुद्राक्षबन्धनात्॥५५॥

हे विप्रगण! अब शिव ने एकमुखी से लेकर १६ मुखी तक के रुद्राक्ष का जो विवरण कहा है, उसे सुनें। इन १६ प्रकार के रुद्राक्षों में से एकमुखी तथा पञ्चमुखी ही श्रेष्ठ होता है। जो व्यक्ति सदा एकमुखी रुद्राक्ष धारण करते हैं, वे रुद्रलोक गमन करते हैं। वे रुद्र सन्निधान में विहार करते हैं। तप-जप-क्रिया-योगसाधना-स्नान-दान-अर्चनादि जो कुछ शुभ कर्म होता है, वह सभी उस समय रुद्राक्ष धारण से अनन्त हो जाता है। इसमें कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है। रुद्राक्ष को यदि कुत्ते के गले में बांध दिया जाये, तब उसे भी सद्गति प्राप्त होगी। इसमें सन्देह न करे। रुद्राक्ष के संसर्ग से पाप क्षयीभूत हो जाते हैं। यह तत्व जान कर रुद्राक्ष पहन कर शुभ कर्म करे।।५१-५५।।

त्रिपुण्ड्रधारणं येषां विभूत्या मन्त्रपूतया। ते रुद्रलोके रुद्राश्च भविष्यन्ति न संशयः॥५६॥
कपिलायाश्चसंगृह्य गोमयंचान्तरिक्षगम्। शुष्कंकृत्वाऽथसंदाह्यंविभूत्यर्थं शिवप्रियैः॥५७॥
विभूतीति समाख्यातासर्वपापप्रणाशिनी। ललाटेंऽगुष्ठरेखा च आदौ भाव्या प्रयत्नतः॥५८॥
मध्यमां वर्जयित्वा तु अंगुलीकद्वयेन च। एवं त्रिरेखासंयुक्तो ललाटे यस्य दृश्यते।
स शैवः शिववज्ज्ञेयो दर्शनात्पापनाशनः॥५९॥

जो मन्त्र से अभिमन्त्रित भस्म का त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं, वे रुद्रलोक जाकर रुद्र हो जाते हैं। इसमें कोई संशय नहीं है। कपिला गौ का गोबर मिट्टी पर गिरने के पहले ही बीच में ग्रहण करके शिवप्रिय भक्त उसे शुष्क करके जलाकर भस्म बनायें। वही विभूति है। यह सर्वपापनाशक होता है। पहले यत्नपूर्वक ललाट पर अंगूठे के द्वारा रेखा बनाये। तदनन्तर मात्र अनामिका एवं तर्जनी से ललाट पर दो रेखा बनाये। इस प्रकार जिसके ललाट पर तीन रेखा होती हैं, वे ही शैव हैं। उनको साक्षात् शिव जाने। उनके दर्शन से ही पापों का नाश हो जाता है।।५६-५९।।

जटाधराश्चये शैवाः सप्त पञ्चतथा नव। जटा ये स्थापयिष्यन्ति शैवेन विधिनायुताः॥६०॥
ते शिवं प्राप्नुवन्तीह नात्र कार्या विचारणा। रुद्राक्षधारणं कार्यं शिवभक्तैर्विशेषतः॥६१॥
अल्पेन वा महत्त्वेन पूजितो वा सदाशिवः। कुलकोटिं समुद्धृत्य शिवेन सह मोदते॥६२॥
तस्माच्छिवात्परतरंनास्तिकिञ्चिद्द्विजोत्तमाः। यदैवमुच्यतेशास्त्रेतत्सर्वंशिवकारणम्॥६३॥
शिवोदाताहिलोकानांकर्त्ताचैवानुमोदिता। शिवशक्त्यात्मकंविश्वंजानीध्वंहिद्विजोत्तमाः॥६४॥
शिवेतिद्व्यक्षरंनामत्रायतेमहतोभयात्। तस्माच्छिवश्चिन्त्यतांवैस्मर्यतांच द्विजोत्तमाः॥६५॥

जो सब शैव जटाधारी हैं, जो शैव विधि के अनुसार ७-५-९ जटा मस्तक में स्थापित करते हैं, वे इसी

जन्म में शिवसायुज्य प्राप्त कर लेते हैं। यह संदेहरहित तथ्य है। शिवभक्तगण विशेषतः रुद्राक्ष धारण करें। अल्प किंवा प्रचुर उपचारों से (जैसी वित्तशक्ति हो तदनुरूप) सदाशिव की पूजा द्वारा व्यक्ति अपने करोड़ों कुलों का उद्धारक होकर शिव के साथ विहार करता है। हे द्विजप्रवरगण! शिव से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। शास्त्रों में जो कुछ भी कहा गया है, सब शिव के ही निमित्त कहा गया है। शिव समस्त लोकों के दाता, कर्त्ता तथा अनुमन्ता हैं। यह विश्व शिव शक्त्यात्मक है। हे विप्रगण! यह 'शिव' दो अक्षर का नाम महान् भय से त्राण करता है। हे द्विजगण! आप सब शिव का स्मरण तथा चिन्तन करें।।६०-६५।।

ऋषय ऊचुः

सोमनाथस्यमाहात्म्यंज्ञातंतस्य प्रसादतः। राहोः शिरोभयात्सर्वे रक्षिताः परमेष्ठिना।।६६।।
सुराश्चेन्द्रादयश्चान्येतस्मिन्युद्धेसुदारुणे। अत ऊर्ध्वं सुराः सर्वे किमकुर्वत उच्यताम्।।६७।।
शिवस्य महिमा सर्वःश्रुतस्तवमुखोद्गतः। अथ युद्धस्य वृत्तान्तः कथ्यतां परमार्थतः।।६८।।

ऋषिगण कहते हैं—उनकी ही कृपा से हमने सोमनाथेश्वर का माहात्म्य जाना है। इस सुदारुण युद्ध में इन्द्रादि देवताओं की रक्षा राहु के शिर से परमेष्ठि महादेव द्वारा की गई। यह भी हमें ज्ञात हो गया। तदनन्तर देवगण ने क्या किया? यह कहने की कृपा करिये। हमने आपके मुख से शिवमहिमा को सुना है। अब यथायथ रूप से युद्ध वृत्तान्त कहिये।।६६-६८।।

लोमश उवाच

यदा हि दैत्यैश्च पराजिताः सुराः शम्भुं च सर्वे शरणं प्रपन्नाः।
शिवं प्रणेमुः सहसा सुरोत्तमा युद्धाय सर्वे च मनो दधुस्तदा।।६९।।
तथैव दैत्या अपि युध्यमाना उत्साहयुक्तातिबलाश्च सर्वे।
देवैः समेताश्च पुनः पुनश्च युद्धं प्रचक्रुः परमास्त्रयुक्ताः।।७०।।
एवं च सर्वे ह्यसुराः सुराश्च शक्त्यृष्टिशूलैःपरिघैः परश्वधैः।
जयार्थिनो मर्षयुताः परस्परं सिंहा यथा हैमवतीं दुरत्ययाः।
निहन्यमाना ह्यसुराः सुरैस्तदा नानास्त्रयोगैः परमैर्निपेतुः।।७१।।
चक्रुस्ते सकलामुर्वीं मांसशोणितकर्दमाम्। महीं वृक्षाद्रिसंयुक्तां ससागरवनाकराम्।।७२।।

सूत लोमश कहते हैं—जब सुरगण दैत्यों से परास्त होकर शिव के शरणापन्न हुये, तब वे शिव को प्रणाम करके ही सहसा युद्धार्थ उद्यत हो रहे थे। इधर दैत्यगण भी उत्साहित होकर अतीव प्रबलता से युद्धरत हो गये। उन्होंने परमास्त्रों द्वारा देवताओं से पुनः-पुनः युद्ध किया। इस प्रकार से सुर तथा असुर, उभय पक्षों वाले शक्ति, शूल, लाठी, परिघ द्वारा परस्पर जयार्थी होकर सक्रोध एक-दूसरे को हताहत करने लगे। सुरगण नाना अस्त्रों का प्रयोग कर रहे थे। असुरगण एक-एक करके धराशायी होते जा रहे थे। उनका यह युद्ध देखकर लगता था कि हिमालय की गुफा का सिंह आपस में ही युद्ध कर रहा हो! देवता तथा असुरों के इस युद्ध के कारण समस्त पृथिवी मांस तथा रक्तप्रवाह के कीचड़ द्वारा व्याप्त हो गयी। फलस्वरूप सागर, कानन पर्वत तथा पौधों से भरी हुई पृथिवी रक्त से आप्लावित होती जा रही थी।।६९-७२।।

शिरांसि च कबन्धानिकवचानिमहान्तिच। ध्वजारथाःपताकाश्चगजवाजिशिरांसिच॥७३॥
वहन्त्यश्चापगा ह्यासन्नद्यो भीरुभयावहाः। अगाधाः शोणितोदाश्च तरंतो ब्रह्मराक्षसाः।
ते नयन्ति परान्भूतप्रेतप्रमथराक्षसान्॥७४॥
शाकिनीडाकिनीसङ्घायक्षिण्योऽथसहस्त्रशः। नानाकेलिषुसंयुक्ताःपरस्परमुदान्विताः॥७५॥
एवं संक्रीडमानास्ते भूतप्रमथराक्षसाः। रणेतस्मिन्महारौद्रे देवासुरसमागमे॥७६॥

इस रक्त स्रोत से तब डरपोक लोगों को भय देने वाली भयंकर महानदी प्रवाहमान हो गयी। यह नदी अगाध थी तथा इसका जल था मृत लोगों का रक्त। ब्रह्मराक्षसगण इन नदियों में तैर रहे थे। ढेरों मस्तक, धड़, कवच, रथ, ध्वजा, पताका, हाथी-घोड़ों के मस्तक भी बहते जा रहे थे। हजारों शाकिनी तथा डाकिनियां मुदित मन से परस्पर केलि करती थीं तथा अन्य भूत, प्रेत, प्रमथ, राक्षसों को भी इस रक्त नदी में तैरने हेतु भेज रही थीं। भूत-प्रमथादि तथा राक्षसगण इस देवासुर के महायुद्ध में क्रीड़ा कर रहे थे।।७३-७६।।

बलिना सह देवेन्द्रो युयुधेऽद्भुतविक्रमः। शक्त्या जघान देवेन्द्रं वैरोचनिरमर्षणः॥७७॥
तां शक्तिं वञ्चयामास महेन्द्रोलघुविक्रमः। जघान स बलिं यत्नाद्दैत्येन्द्रं परमेण हि॥७८॥
वज्रेण शितधारेण बाहुं चिच्छेद विक्रमी। गतासुरपतद्भूमौ विमानात्सूर्यसन्निभात्॥७९॥
पतितंच बलिं दृष्ट्वा वृषपर्वा रुषान्वितः। ववर्ष शरधाराभिः पयोद इव पर्वतम्॥८०॥
महेन्द्रं सगजंचैव सहमानं शिताञ्छरान्। तदा युद्धमभूद्घोरं महेन्द्रवृषपर्वणोः॥८१॥
निपात्य वृषपर्वाणमिन्द्रः परबलार्दनः॥८२॥
ततो वज्रेण महता दानवानवधीद्रणे। शिरसिच्छेदिताः केचित् केचित्कन्धरतो हताः॥८३॥
विह्वलाश्चकृताःकेचिदिन्द्रेण कुपितेनच। तथा यमेन निहता वायुना वरुणेन च॥८४॥
कुवेरेण हताश्चान्ये नैर्ऋतेन तथा परे। अग्निना निहताः केचिदीशेनैव विदारिताः॥८५॥

अद्भुद् पराक्रमी इन्द्र बलिराज के साथ युद्धरत थे। बलि ने क्रोधान्वित होकर शक्ति का प्रहार देवेन्द्र पर किया। मामूली बल द्वारा इन्द्र ने शक्ति को व्यर्थ कर दिया। तदनन्तर उन्होंने अपने तीक्ष्ण वज्र से बलि को आहत किया, जिससे बलि की बाहु छिन्न हो गई। विक्रान्त बलि मृतप्राय होकर अपने सूर्य के समान विमान से भूपतित हो गया। बलि को गिरा देखकर वृषपर्वा क्रोधित होकर बाणों की वर्षा करने लगा। प्रतीत होता था मानों मेघ पर्वतों पर वृष्टिवर्षा में प्रवृत्त हो गया। तब देवेन्द्र भी अपने वाहन हाथी के साथ इस तीक्ष्ण बाण वर्षा को सहने लगे। इससे महेन्द्र एवं वृषपर्वा के बीच तुमुल युद्ध छिड़ गया। शत्रुदमन इन्द्र ने मुहूर्त्त मात्र में वृषपर्वा को गिरा कर अपने बृहद् वज्र से अन्य दानवों का वध प्रारम्भ किया। उस समय दानवों में कोई छिन्नशिर, कोई छिन्न स्कन्ध तथा कोई विह्वल हो उठा। कुपित इन्द्र के हाथों दानवों की यह हालत होने लगी। इन्द्र की ही तरह यम, वायु, वरुण, कुबेर, निर्ऋति तथा अग्नि भी अन्य असुरों को निहत, निपातित तथा विदीर्ण करने लगे।।७७-८५।।

एवं तदा तैर्निहता बलीयसो महासुरा विक्रमशालिनश्च।
सुरैस्तु सर्वैः सह लोकपालैः शिवप्रसादाभिहतास्तदानीम्॥८६॥

ततो महादैत्यवरो दुरात्मा सकालनेमिः परमास्त्रयुक्तः।
ययौ तदानीं सुरसत्तमांस्तान्हन्तुं सदा क्रूरमतिः स एकः॥८७॥
सिंहारूढो दंशितश्च त्रिशूलेनहिसंयुतः। दैत्यानामर्बुदेनैव सिंहारूढेन सम्वृतः॥८८॥

बलविक्रमयुक्त महासुरगण इस प्रकार से देवगण के हाथों मृत होने लगे। इन्द्रादि लोकपाल के साथ अन्य देवता भी शिव से प्राप्त वर के प्रभाव से असुरों का वध करने लगे। तभी महादैत्य दुरात्मा कालनेमि परमास्त्र लेकर एकाकी देवश्रेष्ठगण को मारने दौड़ पड़ा। क्रूर बुद्धि कालनेमि सिंहासीन होकर सुसज्जित रूप से त्रिशूलधारी था। वह अर्बुद संख्यक सिंहारूढ़ दैत्यसेना से घिरा था।।८६-८८।।

तेसिंहादंशिताःसर्वे महाबलपराक्रमाः। तेषु सिंहेषु चारूढा महादैत्याश्च तत्समाः॥८९॥
आयान्तीं दैत्यसेनां तां सर्वां सिंहविभूषिताम्। कालनेमियुतांदृष्ट्वा देवाइन्द्रपुरोगमाः।
भयमाजग्मुरतुलं तदा ध्यानपरा भवन्॥९०॥
किं कुर्मोऽद्य वयं सर्वे कथं जेष्यामचाद्भुतम्। एतादृशमसंख्याकमनीकंसिंहसम्वृतम्॥९१॥
एवं विचिन्त्यमानास्ते ह्यागतस्तत्र नारदः। नारदेन च सत्सर्वं पुरावृत्तं महत्तरम्॥९२॥
कथितं च महेन्द्राय कालनेमेस्तपोबलम्। अजेयत्वं च संग्रामे वरदानबलेन तु॥९३॥

दैत्यों के वाहन वे सिंह भी सज्जित तथा महाबली तथा पराक्रमी थे। सिंहविक्रमी महादैत्यगण इन सिंहों पर आरूढ़ थे। कालनेमि परिचालित यह सिंहारूढ़ विशाल दैत्य सेना आते देखकर इन्द्रादि प्रमुख देवता अत्यन्त भयभीत होकर सोचने लगे कि अब हम क्या करें? किस प्रकार से इस असंख्य सिंह युक्त अद्भुत दैत्य सेना को पराजित किया जा सकेगा? वे इस चिन्ता में पड़े ही थे कि तभी महर्षि नारद वहां आये। उन्होंने देवेन्द्र से कालनेमि का पूर्व इतिहास कहा। कालनेमि तपबल तथा वर प्रभाव से उन देवताओं से अविजित था। यह नारद ने बताया।।८९-९३।।

विष्णुं विना वयं देवा अशक्तारणमण्डले। जेतुंच स ततो विष्णुः स्मर्यतां परमेश्वरः।
तमालनीलो वरदः सर्वैर्विजयकाङ्क्षिभिः॥९४॥
नारदस्य वचःश्रुत्वा तदा देवास्त्वरान्विताः। ध्यानेनच महाविष्णुंततःपरबलार्दनम्।
स्मरन्तः परमात्मानमिदमूचुश्च तं विभुम्॥९५॥

अन्त में नारद ने यह भी कहा कि विष्णु के बिना रणक्षेत्र में कोई भी इसे जीत नहीं सकेगा। इसलिए जो तमालवत् नीलवर्ण, वरप्रद परमेश हैं, उनका स्मरण विजय हेतु करो। नारद का वाक्य सुनकर देवगण अरिबलमर्दन महाविष्णु परमात्मा का स्मरण करके प्रार्थना करने लगे।।९४-९५।।

देवा ऊचुः

नमस्तुभ्यं भगवते नमस्ते विश्वमङ्गलम्। श्रीनिवास नमस्तुभ्यं श्रीपते ते नमो नमः॥९६॥
अद्यास्मान्भयभीतांस्त्वं कालनेमिभयार्दितान्। त्रातुमर्हसिदैत्याच्च देवानामभयप्रद!॥९७॥
एवं ध्यातः संस्मृतश्च प्रादुर्भूतोहरिस्तदा। नीलो गरुडमारुह्य जगतामभयप्रदः॥९८॥

चक्रपाणिस्तदायातो देवानां विजयाय च। गगनस्थं महाविष्णुं गरुडोपरिसंस्थितम्।
श्रीवासमेनं दुर्धर्षं योद्धुकामं ददर्शिरे॥९९॥
तथा दृष्ट्वा कालनेमिस्तदानीं प्रहस्यमानोऽतिरुषा बलान्वितः।
कस्त्वं महाभाग! वरेण्यरूपः श्यामो युवा वारणमत्तविक्रमः।
करे गृहीतं निशितं महाप्रभं चक्रं च कस्मात्कथयस्व मे प्रभो!॥१००॥

देवगण कहते हैं—"हे भगवान्! आपको प्रणाम! हे श्रीनिवास! आप विश्व के मंगलरूप हैं। आपको प्रणाम! हे श्रीपति! आपको हमारा पुनः-पुनः प्रणाम! हे देवताओं को अभय देने वाले! हम कालनेमि के भय से पीड़ित हैं। आप हमारा दैत्यभय से त्राण करें।" देवगण द्वारा इस प्रकार ध्यान तथा स्मरण किये जाने पर जगत् को अभय देने वाले नीलकान्ति हरि गरुड़ पर आरूढ़ हो प्रकट हो गये।" देवगण को विजय प्रदान करने श्रीहरि ने आगमन किया था। देवगण ने देखा कि वे श्रीनिवास दुर्द्धर्ष महाविष्णु युद्धकामना से आकाश में स्थित हैं। वे जगत् को अभय देने वाले प्रभु विष्णु चक्रधारी होकर देवगण को विजय प्रदान करने आये थे। बली कालनेमि ने उनको देखकर तत्काल हंसते-हंसते रोषपूर्ण स्वर में कहा—"हे महाभाग! आप मत्त हाथी की तरह विक्रमी श्यामवर्ण वरेण्य मूर्त्ति युगपुरुष कौन हैं? आपने महाप्रभायुक्त तीक्ष्ण चक्र क्यों धारण किया है? कृपया कहें"॥९६-१००॥

श्रीभगवानुवाच

युद्धार्थमिह चायातो देवानां कार्यसिद्धये। त्वं स्थिरो भव रे मन्द दहाम्यद्यनसंशयः॥१०१॥
श्रुत्वा भगवतो वाक्यं कालनेमिः प्रतापवान्।
उवाच रुषितो भूत्वा भगवन्तमधोक्षजम्॥१०२॥
मूलभूतो हि देवानां भगवान्युद्धदुर्मदः। युद्धं कुरु मया सार्द्धं यदि शूरोऽसिसम्प्रति॥१०३॥
प्रहस्य भगवाविष्णुरुवाचेदं महाप्रभः। गगनस्थो भवत्वं हि महीस्थोऽहंभवामि वै॥१०४॥
अप्रशस्तं च विषमं युद्धं चैव यथाभवेत्।
तथाकुरु महाबाहो! गगने वा महीतले॥१०५॥
तथेति मत्वा हि महानुभावो दैत्यैः समेतोऽर्बुदसंख्यकैश्च।
सिंहोपरिस्थैश्च महानुभावैर्महाबलैः क्रूरतरैस्तदानीम्॥१०६॥
गगनमथ जगाहे मदमन्दं महात्मा ह्यसुरगणसमेतो विश्वरूपं जिघांसुः।
त्रिशिखमपरमुग्रं गृह्य सन्देशचेष्टादशनविकृतवक्त्रो योद्धुकामोहरिंसः॥१०७॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे समुद्रमन्थनाख्याने देवासुरसंग्रामवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥

श्रीभगवान् कहते हैं—"मैं देवकार्य को सम्पन्न करने के लिए युद्धार्थ आया हूं। हे मूढ़! रुको! मैं तुमको

निश्चितरूपेण दग्ध करूंगा।'' भगवान् का वाक्य सुनकर प्रतापी कालनेमि क्रोधयुक्त होकर अधोक्षज श्रीहरि से कहने लगा—''मैं जानता हूं कि रणदुर्मद भगवान् देवताओं के आदिभूत हैं। यदि आप शूर हैं, तब मेरे साथ अभी युद्ध करें।'' भगवान् विष्णु ने सहास्य कहा—तुम गगनस्थ हो। आज मैं पृथिवी पर युद्ध करूंगा। हे महाबाहु! जिससे अप्रशस्त युद्ध तथा विषम युद्ध हो, तुम आकाश अथवा पृथिवी पर जहां चाहे स्थित होकर युद्ध करो। महानुभाव कालनेमि ने तत्काल भगवान् का कथन मानकर विश्वरूपी हरि की हिंसा करने हेतु सिंहस्थ १ अर्बुद सैन्य दैत्य सैन्य के साथ धीरे-धीरे बढ़ने लगा। इस समय क्रोध के कारण उसने ओठ को दांतों से दबाया था। जिससे उसका मुख विकृत हो गया। वह युद्ध कामना से त्रिकूट शिखर की तरह हरि को ग्रहण करने हेतु उद्यत हो गया।।१०१-१०७।।

।।त्रयोदश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

चतुर्दशोऽध्यायः

विष्णु कालनेमि युद्ध वर्णन

लोमश उवाच

ततो युद्धमतीवाऽऽसीदसुरैर्विष्णुना सह।'ततः सिंहाःसपक्षास्ते दंशिताः परमाद्भुताः।।१।।
असुरैरुह्यमानास्ते गरुत्मन्तं व्यदारयन्। सिंहास्ते दारितास्तेनखण्डशश्च विदारिताः।।२।।
विष्णुना च तदादैत्याश्चक्रेणशकलीकृताः। हतांस्तानसुरान्दृष्ट्वाकालनेमिः प्रतापवान्।।३।।
त्रिशूलेनाहनद्विष्णुं रोषपर्याकुलेक्षणः। तमायान्तं च जगृहे मुकुन्दोऽनाथसंश्रयः।।४।।
करेण वामेन जघान लीलया तं कालनेमिं ह्यसुरं महाबलम्।
तेनैव शूलेन समाहतोसौ मूर्च्छान्वितोऽसौ सहसा पपात।।५।।

तदनन्तर विष्णु के साथ असुरों का दारुण युद्ध छिड़ गया। तब पंखयुक्त सिंहों को सज्जित कर परम अद्भुद् रूपेण स्थित असुरों ने उन पर आरोहण किया। सर्वाग्र में सिंह दल विष्णुवाहन गरुड़ को विदीर्ण करने का प्रयत्न करने लगा। तब गरुड़ ने भी सिंह समूह को खण्ड-खण्ड करके विदीर्ण कर दिया। तदनन्तर विष्णु ने चक्र प्रहार से दैत्यदल को खण्ड-खण्ड किया। प्रतापी कालनेमि ने असुरों को मृत होते देखकर रोष कषायित नेत्रों से देखते हुये त्रिशूल से विष्णु को आहत किया। दैत्य द्वारा छोड़े त्रिशूल को आते देखकर अनाथों के रक्षक विष्णु ने उसे बायें हाथ से पकड़ लिया तथा लीलापूर्वक उसी त्रिशूल से ही महाबली कालनेमि को आहत किया। उस शूल से आहत कालनेमि सहसा मूर्च्छित होकर भूपतित हो गया।।१-५।।

पतितः पुनरुत्थाय शनैरुन्मील्यलोचने। पुरतः स्थितमालोक्य विष्णुं सर्वगुहाशयम्।।६।।
लब्धसञ्ज्ञोऽब्रवीद्वाक्यंकालनेमिर्महाबलः। तव युद्धंनदास्यामि नास्तिलोकेस्पृहामम्।।७।।

ये येऽसुरा हता युद्धे अक्षयंलोकमाप्नुयुः। ब्रह्मणोवचनात्सद्य इन्द्रेण सहः संगताः॥८॥
भुञ्जतो विविधान्भोगान्देववद्विचरन्तिते। इन्द्रेण सहिताः सर्वे संसारेच पतन्त्यथ॥९॥
तस्माद्युद्धेन मरणं न काङ्क्षे क्षणभङ्गुरम्। अन्यजन्मनि मे वीर! वैरभावान्न संशयः।
दातुमर्हसि मे नाथ! कैवल्यं केवलं परम्॥१०॥
तथेति दैत्यप्रवरो निपातितः परेण पुंसा परमार्थदेन।
दत्त्वाऽभयं देवतानां तदानीं तथा सुधां देवताभ्यः प्रदत्त्वा॥११॥
कालनेमिर्हतोदैत्योदेवाजाताह्यकण्टकाः। शल्यरूपो महान्सद्योविष्णुनाप्रभविष्णुना॥१२॥
तिरोधानं गतः सद्योभगवान्कमलेक्षणः। इन्द्रोऽपि कदनं कृत्वा दैत्यानांपरमाद्भुतम्॥१३॥
पतितानांक्लीबरूपाणांभग्नानां भीतचेतसाम्। मुक्तकच्छशिखानांचचक्रेसकदनक्रिय॥१४॥
अर्थशास्त्रपरोभूत्वा महेन्द्रो दुरतिक्रमः। दैत्यानां कालरूपोऽसौशचीपतिरुदाधोः॥१५॥

महाबली कालनेमि पृथिवी पर से पुनः उठा तथा धीरे से अपने नेत्रद्वय खोल कर सामने स्थित सर्वान्तर्यामी विष्णु से अपनी संज्ञा लौटने पर कहने लगा—"हे विष्णु! मैं युद्ध नहीं करूंगा। संसार में मेरी स्पृहा नहीं है। जो सब असुर युद्ध में निहत हुये हैं, उनको अक्षय लोक मिलेगा। ब्रह्मा के कथनानुसार सद्यः यह मृत असुरबल इन्द्र के साथ मिलेगा तथा विविध भोगों का उपभोग करके विविध भोगों का उपभोग करेगा तथा देवगणवत् विचरण करेगा। तदनन्तर पुण्य समाप्त होने पर (पुण्य क्षय) हो जाने पर इन्द्र के साथ सभी मृत्युलोक में पतित होंगे। मैं युद्ध करके क्षणभंगुर स्वर्ग की कामना नहीं करता। हे वीर! हे नाथ! आप वैरभाव से मुझे मृत करके जन्मान्तर में परम कैवल्य प्रदान करें।" दैत्य की प्रार्थना के अनुरूप उन परमार्थदाता परमपुरुष ने दैत्यप्रवर कालनेमि का वध करके देवगण को अभय रूपी अमृत प्रदान किया। कालनेमि का वध हो जाने पर देवगण निष्कण्टक हो गये। कालनेमि देवगण के लिए कांटे की तरह था। प्रभविष्णु महाविष्णु ने उसे तत्काल निपतित कर दिया। तदनन्तर भगवान् पुण्डरीकाक्ष तत्क्षण अन्तर्हित हो गये। इधर देवराज इन्द्र ने दैत्यगण का दारुण उत्पीड़न किया। उन्होंने गिरे, क्लीव, भग्न, भीतचित्त, मुक्तकेश तथा मुक्त शिखा वाले असुरों का भी विषम उत्पीड़न किया। दुरन्तबली शचीपति महेन्द्र उदार होकर भी अर्थशास्त्र के मतानुसार कालस्वरूपी हो गये।।६-१५।।

एवं निहन्यमानानामसुराणां शचीपतेः। निवारणार्थं भगवानागतो नारदस्तदा॥१६॥
युद्धहस्ताश्च ये वीरा ह्यसुरा रणमण्डले। तेषामनु कथं कर्त्ताभीतानां च विहिंसनम्॥१७॥
ये भीतांश्च प्रपन्नांश्च घातयन्ति मदोद्धताः। ब्रह्मघ्नास्तेऽपि विज्ञेया महापातकसंयुताः॥१८॥
तस्मात्त्वया न कर्तव्यं मनसाऽपि विहिंसनम्। एवमुक्तस्तदाशक्रोनारदेन महात्मना॥१९॥
सुरसेनान्वितःसद्य आगतोहि त्रिविष्टपम्। तदा सर्वे सुरगणाः सुहृद्भ्यश्च परस्परम्।
बभूवुर्मुदिताः सर्वे यक्षगन्धर्वकिन्नराः॥२०॥

जब शचीपति इस प्रकार से असुरों का वध करने लगे, तब भगवान् नारद उनको इस कार्य से रोकने हेतु आये। नारद ने कहा—"जो सब असुर वीर युद्ध में निहत हो गये, उनका वध करने के बाद क्यों भयभीत लोगों

की हिंसा कर रहे हैं? जो मद से उन्मत्त होकर भयभीत अथवा शरणापन्न की हत्या करता है, वह महापापी ब्रह्महत्यारा है। अब आप मन द्वारा भी इनकी हिंसा न करें।'' महात्मा नारद का वचन सुनकर इन्द्र देवसेना के साथ अविलम्ब स्वर्ग लौट आये। इससे देवता, यक्ष, गन्धर्व, किन्नरगण अपने-अपने सुहृदगण के साथ अत्यन्त प्रसन्न हो गये।।१६-२०।।

तदा इन्द्रोऽमरावत्यां सह शच्याऽभिषेचितः॥२१॥
देवर्षिप्रमुखैश्चैव ब्रह्मर्षिप्रमुखैस्तथा। शक्रोऽपि विजयम्प्राप्तः प्रसादाच्छङ्करस्य च॥२॥
तदा महोत्सवो विप्रा देवलोके महानभूत्। शंखाश्च पटहाश्चैव मृदंगा मुरजा अपि।
तथाऽऽनकाश्च भेर्यश्च नेदुर्दन्दुभयः समम्॥२३॥
गायकाश्चैवगन्धर्वाः किन्नराश्चाप्सरोगणाः। ननृतुर्जगुस्तुष्टुवुश्चसिद्धचारणगुह्यकाः॥२४॥
एवं विजयमापन्नः शक्रोदेवेश्वरस्तदा। देवैर्हतास्तदादैत्याः पतितास्ते महीतले॥२५॥

तदनन्तर प्रधान-प्रधान ऋषि तथा ब्रह्मर्षिगण ने मिलकर इन्द्र का शची के साथ अमरावती के सिंहासन पर अभिषेक किया। इस प्रकार इन्द्र शंकर की कृपा से विजयी हो गये। हे विप्रगण! तब देवलोक में एक महान् महोत्सव का आयोजन हुआ। शंख-पटह, मृदंग-मूरुज, आनक, भेरी तथा दुन्दुभि एक साथ बजाये जाने लगे। गन्धर्व-किन्नर-अप्सरा प्रभृति का गायक दल, गीत-नृत्य में प्रवृत्त हो गया तथा सिद्ध-चारण एवं गुह्यकगण स्तव करने लगे। इस प्रकार इन्द्र विजयी होकर देवगण के अधिपति बने। इधर सुरगण द्वारा हत असुरगण पृथिवी पर गिरे हुये पड़े थे।।२१-२५।।

गतासवो महात्मानो बलिप्रमुखतोह्यमी। तपस्तप्तुं पुरा विप्रो भार्गवो मानसोत्तरम्॥२६॥
गतः शिष्यैःपरिवृतस्तस्माद्युद्धं न वेद तत्। अवशेषाश्च ये दैत्यास्तेगताभार्गवम्प्रति॥२७॥
कथितं वै महद्वृत्तमसुराणां क्षयावहम्। निशम्य मन्युमाविष्टो ह्यागतो भृगुनन्दनः॥२८॥
शिष्यैः परिवृतोभूत्वामृतांस्तानसुरानपि। विद्यया मृतजीविन्यापतितान्समजीवयत्॥२९॥
निद्रापायगता यद्वदुत्थितास्ते तदाऽसुराः। उत्थितः स बलिः प्राह भार्गवं ह्यमितद्युतिम्॥३०॥

बलि आदि प्रमुख महात्मा असुरगण सभी वहां रणक्षेत्र में प्राणहीन स्थिति में पड़े थे। युद्धारम्भ होने के पूर्व महर्षि शुक्राचार्य शिष्यों के साथ मानसोत्तर पर्वत पर तप हेतु गये थे। अतः वे इस दारुण युद्ध का विवरण जान ही नहीं पाये। युद्ध की समाप्ति होने पर मरने से बचे दानव भार्गव के निकट गये। उन्होंने उन भार्गव शुक्र से यह वृत्तान्त कहा। भृगुनन्दन शुक्र ने उस असुर क्षयकारी भीषणयुद्ध का विवरण सुना। वे यह सुनकर दैन्यपूर्ण मन के साथ शिष्यों सहित शीघ्रता से रणक्षेत्र पहुंचे तथा मृतसंजीवनी विद्या के प्रभाव से मृत पतित असुरगण को जीवित किया, जैसे लोग निद्रा समाप्त होने पर उठते हैं, वैसे ही असुरगण उठ गये। उठते ही बलि ने अमित द्युतिमान् भार्गव से कहा।।२६-३०।।

जीवितेन किमद्यैव मम नास्ति प्रयोजनम्। पातितस्त्रिदशेन्द्रेण यथा कापुरुषस्तथा॥३१॥
बलिनोक्तं वचः श्रुत्वा शुक्रोवचनमब्रवीत्। मनस्विनो हि ये शूराः पतन्तिसमरेबुधाः॥३२॥
ये शस्त्रेण हताः सद्योम्रियमाणा व्रजन्ति वै। त्रिविष्टपं न सन्देह इतिवेदानुशासनम्॥३३॥

एवमाश्वासयामास बलिनं भृगुनन्दनः। ततस्तताप विविधं दैत्यानां सिद्धिदायकम्॥३४॥
तथा दैत्या गताः सर्वे भृगुणा च प्रचोदिताः।
पातालमवसन्सर्वे बलिमुख्याः सुखेन वै॥३५॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे शिवशास्त्रे देवासुरसंग्रामे भार्गवेण मृतदैत्यसञ्जीवनवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥

बलि कहता है—"अब जीवन बचाकर क्या होगा? मेरे जीने का कोई प्रयोजन नहीं है। आज त्रिदशपति इन्द्र ने मुझे कापुरुष जैसे गिरा दिया।" बलि का वचन सुनकर गुरु शुक्र ने कहा—"जो मनस्वी व विज्ञ वीर होते हैं, वे ही शस्त्र से मृत होकर सद्यः मृत्यु प्राप्त करके स्वर्ग जाते हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। यह वेद का नियम है।" भार्गव शुक्र ने इस प्रकार बलि को आश्वासित करके दैत्यगण को सिद्धि प्रदान करने वाले विविध तपोनुष्ठान को किया। इधर बलि आदि प्रमुख दैत्यगण भार्गव की प्रेरणा से पातालगामी होकर सुखपूर्वक निवास करने लगे॥३१-३५॥

॥चतुर्दश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

पञ्चदशोऽध्यायः

गुरु की अवज्ञा से राज्यनाश

ऋषय ऊचुः

राज्यंप्राप्तो हि देवेन्द्रःकथितस्ते गुरुग्विना। गुरोरवज्ञयाजातोराज्यभ्रंशो हि तस्यतु॥१॥
केन प्रणोदितश्चेन्द्रो बभूव चिरमासने। तत्सर्वं कथयाऽऽशुत्वं परं कौतूहलं हि नः॥२॥

ऋषिगण कहते हैं—बृहस्पति न रहने पर भी इन्द्र को राज्य प्राप्त हुआ। गुरु की अवमानना के कारण वे राज्यभ्रष्ट हुये थे, यह आपने कहा है। तथापि अब हमारी जिज्ञासा है कि बृहस्पति की अनुपस्थिति में किसकी प्रेरणा से इन्द्र राज्यासन पर दीर्घकाल तक विराजित थे। यह सुनने हेतु हमें अत्यन्त कुतूहल हो रहा है। आप यह सब प्रकाश्य रूप से कहिये॥१-२॥

लोमश उवाच

गुरुणाऽपि विना राज्यं कृतवान्स शचीपतिः।
विश्वरूपोक्तविधिना इन्द्रो राज्ये स्थितो महान्॥३॥
विश्वकर्मसुतो विप्रा विश्वरूपो महानृपः। पुरोहितोऽथ शक्रस्य याजकश्चाभवत्तदा॥४॥

तस्मिन्यज्ञेऽवदानैश्च यजने असुरान्सुरान्। मनुष्यांश्चैव त्रिशिरा अपरोक्षं शचीपतेः॥५॥
देवान्ददाति साक्रोशं दैत्यांस्तूष्णीमथाददात्।
मनुष्यान्मध्यपातेन प्रत्यहं स ग्रहान् द्विजः॥६॥
एकदा तु महेन्द्रेण सूचितो गुरुलाघवात्। अलक्ष्यमाणेन तदाज्ञातं तस्यचिकीर्षितम्॥७॥
दैत्यानां कार्यसिद्ध्यर्थमवदानंप्रयच्छति। असौपुरोहितोऽस्माकंपरेषां च फलप्रदः॥८॥
इति मत्वा तदा शक्रो वज्रेण शतपर्वणा। चिच्छेद तच्छिरांस्येव तत्क्षणादभवद्वधः॥९॥

लोमश कहते हैं—बृहस्पति की सहायता के बिना ही इन्द्र राज्य कर रहे थे। विश्वरूप की वर्णित विधि के अनुसार वे स्वर्गराज्य पर अवस्थित हुये। विश्वरूप विश्वकर्मा के पुत्र थे। वे एक महत्वपूर्ण व्यक्ति थे। विश्वरूप इन्द्र के पुरोहित तथा याजक बने। इन्द्रभवन में जो यज्ञ हुआ था, उसे विश्वरूप ने ही किया। उसमें इन्द्र के बिना जाने विश्वरूप ने असुर, सुर, नर सभी का सत्कार किया था। विश्वरूप का अन्य नाम था त्रिशिरा। वे देवगण को आक्रोश के साथ, दैत्यों को सादर मन ही मन तथा मनुष्यों को बिना आक्रोश तथा बिना श्रद्धा यज्ञ भाग दे रहे थे। एक बार महेन्द्र ने गुरु के इस क्रिया-चातुर्य का अनुमान किया, साथ वे अलक्ष्य रूप से भी उनके इस क्रियाकलाप से अवगत हो गये। इन्द्र ने सोचा कि हमारे पुरोहित दैत्यगण की कार्यसिद्धि के लिए उनको यज्ञभाग अर्पित कर रहे हैं। वे पराये को फल दे रहे हैं। यह सोचकर इन्द्र ने अपने शतपर्वयुक्त वज्र से त्रिशिरा का मस्तक काट दिया। तत्क्षण यह वध कार्य सम्पन्न हो गया।।३-९।।

येनाकरोत्सोमपानमजायन्तकपिञ्जलाः। ततोऽन्येनसुरापानात्कलविङ्काभवन्मुखात्॥१०॥
अन्याननादजायन्त तित्तिरा विश्वरूपिणः। एवं हतो विश्वरूपः शक्रेणमन्दभागिना॥११॥
ब्रह्महत्या तदोद्भूतादुर्धर्षा च भयावहा। दुर्धर्षा दुर्मुखादुष्टाचण्डालरजसान्विता॥१२॥
ब्रह्महत्या सुरपानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः। इत्येषामप्यघवतामिदमेव च निष्कृतिः॥१३॥
नाम व्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषयामतिः। त्रिशिरा धूम्रहस्ता सा शक्रंग्रस्तुमुपाययौ॥१४॥
ततो भयेन महता पलायनपरोऽभवत्। पलायमानं तं दृष्ट्वा ह्यनुयाता भयावहा॥१५॥

त्रिशिरा जिस मुख से सोमपान करते थे, उस मुख से (पक्ष) कपिञ्जलगण निर्गत हुये। जिस मुख से सुरापान करते थे, उस मुख से कलविङ्कगण (पक्षी) निर्गत हुये। उनके अन्य मुख से तीतर प्रादुर्भूत हो गये। मन्दभाग्य इन्द्र द्वारा विश्वरूप का वध किये जाने के कारण अत्यन्त भीषण ब्रह्महत्या प्रादुर्भूत हो गयी। यह ब्रह्महत्या दुर्द्धर्ष, भीषण, दुर्मुख, दुष्ट तथा चाण्डाल रज से युक्त थी। ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरुपत्नी गमन आदि पाप का निवारण विष्णु नामोच्चार से होता है। नामोच्चार के कारण मन उसमें ही रम जाता है। जो भी हो, वह त्रिशिरा की धूम्रहस्ता ब्रह्महत्या शीघ्र ही इन्द्र का ग्रास करने के लिए उद्यत हो गयी। इन्द्र भय से भागने लगे। इन्द्र को भागते देखकर वह भीषण ब्रह्महत्या उनके पीछे-पीछे भाग कर पकड़ने का प्रयत्न करने लगी।।१०-१५।।

यतो धावति साऽधावत्तिष्ठन्तमनुतिष्ठति। अंगकृता यथा छायाशक्रस्य परिवेष्टितुम्।
आयाति तावत्सहसा इन्द्रोऽप्यप्सु न्यमज्जत॥१६॥
शीघ्रत्वेन यथा विप्राश्चिरन्तनजलेचरः॥१७॥

एवं दिव्यशतं पूर्णं वर्षाणां च शचीपतेः। वसतस्तस्य दुःखेन तथा चैव शतद्वयम्।
अराजकं तदा जातं नाकपृष्ठे भयावहम्॥१८॥
तदा चिन्तान्विता देवा ऋषयोऽपि तपस्विनः।
त्रैलोक्यं चाऽऽपदा ग्रस्तं बभूव च तदा द्विजाः॥१९॥

इन्द्र जहां-जहां जाते थे, ब्रह्महत्या भी उधर जाती। अपने देह की छाया के समान यह ब्रह्महत्या इन्द्र को आवेष्टित करने के लिए उनका अनुसरण करती रहती। इन्द्र भयग्रस्त होकर जल के भीतर छिप गये। हे विप्रगण! इन्द्र ने इतनी शीघ्रता से जल में प्रवेश किया, मानों वे एक चिरन्तर जलचर प्राणी हों। इस प्रकार जल में छिपे उनको १०० दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये। उन्होंने दुःखपूर्वक और भी दिव्य २०० वर्ष पर्यन्त जल में निवास किया। तब शासक न होने के कारण स्वर्ग में भयानक अराजकता छा गयी। तब देवता, ऋषि, तपोधन, सभी चिन्तित हो गये। हे द्विजप्रवर! उस समय समस्त त्रैलोक्य ही विपत्ति ग्रस्त था।।१६-१९।।

एकोऽपि ब्रह्महा यत्र राष्ट्रे वसति निर्भयः। अकालमरणं तत्र साधूनामुपजायते॥२०॥
राजा पापयुतो यस्मिन्राष्ट्रे वसति तत्र वै। दुर्भिक्षं चैव मरणं तथैवोपद्रवाद्विजाः॥२१॥
भवन्ति बहवोऽनर्थाः प्रजानां नाशहेतवे। तस्माद्राज्ञा तु कर्तव्यो धर्मःश्रद्धापरेणहि॥२२॥
तथा प्रकृतयो राज्ञः शुचित्वेन प्रतिष्ठिताः। इन्द्रेण च कृतं पापं तेन पापेन वै द्विजाः।
नानाविधैर्महातापैः सोपद्रवमभूज्जगत्॥२३॥

वास्तव में एक भी ब्राह्मण हत्यारा जिस राज्य में निर्भय रहता है, वहां साधुजन अकाल मृत्यु से मृत होते हैं। हे द्विजगण! जिस राज्य का राजा पापी है, वहां दुर्भिक्ष, भय, महामारी तथा अन्य प्रजानाशक अनेक उपद्रव तथा अनर्थ उपस्थित होते रहते हैं। तभी श्रद्धावान् होकर राजा सदैव धर्माचरण करे। राजा के पवित्र होने से उसकी मण्डली भी पवित्रता में प्रतिष्ठित होती है। हे द्विजगण! इन्द्र ने पाप किया, उस पाप के फल से जगत् नाना विष, महाताप तथा उपद्रवों से आकुल हो गया।।२०-२३।।

शौनक उवाच

अश्वमेधशतेनैव प्राप्तं राज्यं महत्तरम्। देवानामखिलं सूत कस्माद्विघ्नमजायत।
शक्रस्य च महाभाग! यथावत्कथयस्व नः॥२४॥

शौनक कहते हैं—हे सूत लोमश! इन्द्र तो १०० अश्वमेध करके विपुल विशाल देवराज्य प्राप्त करते हैं। तब उनके यहां सहसा ऐसा विघ्न क्यों होता है? हे महाभाग! समस्त वृत्तान्त हम लोगों से यथायथ कहिये।।२४।।

सूत उवाच

देवानां दानवानां च मनुष्याणां विशेषतः। कर्म्मैव सुखदुःखानां हेतुभूतं न संशयः॥२५॥
इन्द्रेण च कृतं विप्रा महद्भूतं जुगुप्सितम्। गुरोरवज्ञा च कृता विश्वरूपवधः कृतः॥२६॥
गौतमस्य गुरोः पत्नीसेवितातस्यतत्फलम्। प्राप्तंमहेन्द्रेण चिरंयस्यनास्तिप्रतिक्रिया॥२७॥
ये हि दुष्कृतर्म्माणोनकुर्वन्ति च निष्कृतिम्। दुर्दशां प्राप्नुवन्त्येतेयथैवेन्द्रःशतक्रतुः॥२८॥

सूत कहते हैं—देव, दानव, विशेष करके मानवगण के सम्बन्ध में एकमात्र कर्म ही सुख-दुःख का कारण है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे विप्रगण! इन्द्र ने महान् गर्हित कार्य किया था। उन्होंने गुरु की अवज्ञा किया था तथा विश्वरूप का वध किया था। गुरु गौतम की पत्नी अहिल्या के साथ इन्द्र ने जो अन्यायपूर्ण आचरण किया था, उसका फल उन्होंने दीर्घकाल पर्यन्त भोग किया। उस फल प्राप्ति की प्रतिक्रिया (प्रायश्चित्त) एव प्रतिविधान है ही नहीं। जो दुष्कृतकारी व्यक्ति अपने दुष्कार्य की प्रतिक्रिया (पश्चाताप) नहीं करता तथा प्रतिविधान (प्रायश्चित्त) नहीं करता, वह शतक्रतु इन्द्र की तरह दुर्दशा का भागी होता है।।२५-२८।।

दुष्कृतोपार्जितस्यातःप्रायश्चित्तंहितत्क्षणात्। कर्त्तव्यंविंधिवद्विप्राःसर्वपापोपशान्तये॥२९॥
उपपातकमध्यस्तं महापातकतां व्रजेत्॥३०॥
ततः स्वधर्मनिष्ठांच ये कुर्वन्ति सदा नराः। प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने तेषां पापं विनश्यति॥३१॥
प्राप्नुवन्त्युत्तमं लोकं नात्र कार्या विचारणा।
तस्मादसौ दुराचारः प्राप्तो वै कर्मणः फलम्॥३२॥
सम्प्रधार्य तदासर्वेलोकपालास्त्वरान्विताः। वृहस्पतिमुपागम्यसर्वमात्मनिधिष्ठितम्।
कथयामासुरव्यग्रा इन्द्रस्य च गुरुम्प्रति॥३३॥

हे विप्रगण! इसीलिये नियम है कि सर्वपाप प्रशमनार्थ अर्जित दुष्कार्य का प्रायश्चित्त तत्क्षण करना चाहिये। इसका कारण है कि उपपातक जब दीर्घकाल स्थायी हो जाते हैं, तब वे ही महापातक हो जाते हैं। इसीलिए विधान बनाया गया है कि सभी लोग प्रातः-मध्याह्न-सायाह्न स्व-स्व धर्म का आचरण करें। इससे पापों का नाश होता है। ऐसे लोग निःसन्दिग्ध रूप से उत्तम लोक गमन करते हैं। जो भी हो, ये दुराचारी इन्द्र शीघ्र ही अपने कर्मफल को पा गये। जब अन्य लोकपालगण को यह ज्ञात हुआ, तब सभी ने तत्क्षण व्यग्रतापूर्वक बृहस्पति के यहां जाकर उनको समस्त वृत्तान्त निवेदित किया।।२९-३३।।

देवैरुक्तं वचोविप्रानिशम्य च वृहस्पतिः। अराजकं च सम्प्राप्तंचिन्तयामासबुद्धिमान्॥३४॥
किं कार्यं चाद्य कर्तव्यं कथं श्रेयो भविष्यति।
देवानां चाद्य लोकानामृषाणां भवितात्मनाम्॥३५॥
मनसैव च तत्सर्वं कार्याकार्यं विचार्य च। जगाम शक्रं त्वरितो देवैः सह महायशाः॥३६॥
प्राप्तो जलाशयंतंचयत्राऽऽस्ते हि पुरन्दरः। यस्यतीरेस्थिताहत्याचण्डालीवभयावहा॥३७॥

उन्होने अविचलित भाव से गुरु के प्रति इन्द्रकृत् व्यवहार का भी वर्णन किया। हे विप्रगण! बुद्धिमान् बृहस्पति देवताओं की बातों को सुनकर वर्त्तमान अराजकता के विषय में चिन्तित हो गये। उन्होंने विचार करना प्रारम्भ किया—"अब मेरा क्या कर्त्तव्य है? क्या अकर्त्तव्य हैं? क्या करने से देवता, ऋषि तथा लोक का मंगल होगा?" वे इसी प्रकार से चिन्तन कर रहे थे। इसी के अन्तर्गत उन्होंने कार्याकार्य का विचार किया। उन्होंने शीघ्रता से देवगण को साथ लेकर वहां गमन किया, जहां ब्रह्महत्या के भय से इन्द्र छिपे थे। जिस जलाशय के जल में इन्द्र छिपे थे, महामना बृहस्पति वहीं पर आये। चाण्डाली जैसी ब्रह्महत्या उस जलाशय के किनारे स्थित थी।।३४-३७।।

तत्रोपविष्टास्ते सर्वेदेवाऋषिगणान्विताः।
आह्वानं च कृतं तस्यशक्रस्यगुरुणास्वयम्॥३८॥
समुत्थितस्ततः शक्रो ददर्श स्वगुरुं तदा। वाष्पपूरितवक्त्रो हि वृहस्पतिमभाषत॥३९॥
प्रणिपत्य च तत्रत्यान्कृताञ्जलिरभाषत। तदा दीनमुखो भूत्वा मनसा संविमृश्यच॥४०॥
स्वयमेव कृतं पूर्वमज्ञानलक्षणं महत्। अधुनैव मया कार्यं किं कर्तव्यं वद प्रभो!॥४१॥

देवता, ऋषि तथा स्वयं बृहस्पति जलाशय के किनारे बैठे हुये थे। वे वहीं से इन्द्र का आह्वान करने लगे। उनके आह्वान से इन्द्र उठे तथा अपने गुरु देवगुरु बृहस्पति का दर्शन किया। तब देखते-देखते उनका शरीर वाष्प से भर गया। उन्होंने बृहस्पति को प्रणाम किया तथा वहां आये सभी को हाथ जोड़ कर कृतज्ञता पूर्वक प्रणाम किया। उनका मुख तब दैन्य से भरा था। उन्होंने मन ही मन स्वकृत कार्य के विषय में जानना चाहा। यही चिन्तन करके इन्द्र मन ही मन विचार करने लगे—"मैंने अज्ञानपूर्वक पूर्व में एक गुरुतर पाप कार्य किया था। हे प्रभो! अब मेरा कर्त्तव्य कहें"।।३८-४१।।

ग्रहस्योवाच भगवान्बृहस्पतिरुदारधीः। पुरा त्वया कृतं यच्च तस्येदं कर्मणः फलम्॥४२॥
मांच उद्दिश्यभोइन्द्रतद्भोगादेवसंक्षयः। प्रायश्चित्तं हि हत्याया न दृष्टं स्मृतिकारिभिः॥४३॥
अज्ञानतो हि यज्जातं पापं तस्य प्रतिक्रिया।
कथिता धर्मशास्त्रज्ञैःसकामस्य न विद्यते॥४४॥
सकामेन कृतं पापमकामं नैव जायते। ताभ्यां विषयभेदेन प्रायश्चित्तं विधीयते॥४५॥
मरणान्तो विधिः कार्योकामेन हि कृतेन हि। अज्ञानजनिते पापे प्रायश्चितंविधीयते॥४६॥

उदारबुद्धि बृहस्पति ने इन्द्र की बात सुनकर कहा—"तुमने मेरे प्रति पूर्व में जो अपकर्म किया था, यह सब उसी कर्म का फल है। हे इन्द्र! पाप का क्षय एकमात्र फलभोग से ही होता है तथापि ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त स्मृतिकारों के अनुसार है ही नहीं! जो पाप अज्ञानतः किया जाता है, धर्मशास्त्रकारों ने उसके ही प्रतिविधान की व्यवस्था की है। तथापि जानबूझ कर जो पाप किया जाता है, उसकी कोई प्रतिक्रिया की व्यवस्था नहीं है। ज्ञानकृत पाप कभी भी अज्ञानकृत पाप में अन्तर्भुक्त नहीं हो सकता। विषयभेद से दोनों पापों की प्रायश्चित विधि विहित होती है। ज्ञानकृत पाप का प्रायश्चित्त मृत्यु पर्यन्त ही है, तथापि अज्ञान जनित पाप हेतु विशेष-विशेष प्रायश्चित्त की व्यवस्था है (अर्थात् ज्ञानकृत पाप का प्रायश्चित्त मरने तक करना होगा)।।४२-४६।।

तस्मात्त्वया कृतं यच्च स्वयमेवहतो द्विजः। पुरोहितश्चविद्वांश्चतस्मान्नास्तिप्रतिक्रिया॥४७॥
यावन्मरणमप्येति तावदप्सु स्थिरो भव।४८॥
शताश्वमेधसञ्ज्ञञ्च यत्फलं तव दुर्मते। तन्नष्टं तत्क्षणादेव घातितो हि द्विजो यदा॥४९॥
सच्छिद्रे च यथातोयं न तिष्ठति घटेऽण्वपि। तथैव सुकृतं पापे हीयते च प्रदक्षिणम्॥५०॥
तस्माच्च दैवसंयोगात्प्राप्तं स्वर्गादिकंच यैः। यथोक्तं तद्भवेत्तेषां धर्मिष्ठानां न संशयः॥५१॥

अतएव जब तुमने स्वयं एक ब्राह्मण पुरोहित का विनाश किया है, तब इस पाप की कोई प्रतिक्रिया नहीं है। जब तक तुम्हारी मृत्यु नहीं हो जाती, तुम इसी जलाशय में स्थित रहो। हे दुर्मति! तुम्हारा जो १०० अश्वमेध का

फल था, वह उसी क्षण नष्ट हो गया, जब तुमने ब्राह्मण की हत्या की। जैसे छेदयुक्त घट में तनिक भी जल नहीं रुक पाता, उसी प्रकार पापी के सभी सुकृत क्षयीभूत हो जाते हैं। जिसने दैव के कारण स्वर्ग फल पाया है, उसे धर्मिष्ट होने के ही कारण ही वह सब फल मिल सका है''।।४७-५१।।

एतच्छुत्वा वचस्तस्य शक्रो वचनमब्रवीत्। कुकर्मणा मदीयेनप्राप्तमेतन्न संशयः॥५२॥
अमरावतीमाशु त्वं गच्छदेवर्षिभिःसह। लोकानांकार्यसिद्ध्यर्थेदिवानां च बृहस्पते!।
इन्द्रं कुरु महाभाग! यस्ते मनसि रोचते॥५३॥
यथा मृतस्तथाऽहं वै ब्रह्महत्यावृतोमहान्। रागद्वेषसमुत्थेन पापेनास्मिपरिल्लुतः॥५४॥
तस्मात्त्वरान्विता यूयं देवराजानमाशु वै। कुर्वन्तु मदनुज्ञाताः सत्यं प्रति वदामिवः॥५५॥

इन्द्र ने बृहस्पति का कथन सुनकर कहा—''मैं अपने कुकर्म का फल भोग कर रहा हूं। जो भी हो, हे बृहस्पति! अब आप शीघ्रता से ऋषिगण के साथ देवराजधानी अमरावती जायें। हे महाभाग! वहां देवता तथा मनुष्यगण की कार्यसिद्धि हेतु आप जिसे चाहें, उसे इन्द्र पद पर स्थापित करें। मैं अब ब्रह्महत्या से आच्छन्न होकर मृत व्यक्ति की तरह ही रहूंगा। राग-द्वेष जनित पाप के ताप से मैं सर्वदा परितप्त रहता हूं। अतः आप लोग मेरी आज्ञा के अनुसार शीघ्र किसी को देवराज पद पर प्रतिष्ठित करिये। मैं यह आप सबसे सत्य ही कह रहा हूं''।।५२-५५।।

एवमुक्तास्तदा सर्वे वृहस्पतिपुरोगमाः। एत्यामरावतीं तूर्णं पुरन्दरविचेष्टितम्।
कथयामासुरव्यग्राः शचीं प्रति यथा तथा॥५६॥
राज्यस्य हेतोः किं कार्यं विमृशन्तः परस्परम्॥५७॥
एवं विमृश्यमानानां देवानां तत्र नारदः। यदृच्छयागतस्तत्र देवर्षिरमितद्युतिः॥५८॥

इन्द्र का यह वचन सुनकर बृहस्पति तथा प्रमुख ऋषि एवं देवता अमरावती वापस आये तथा उन्होंने शान्तिपूर्वक इन्द्र द्वारा कही समस्त व्यवस्था शची से यथावत् कहा। अब राज्यरक्षा हेतु क्या करना है, इसी विषय को लेकर देवता आपस में बातें कर रहे थे, तभी अमितद्युति युक्त देवर्षि नारद का वहां आगमन हुआ। देवताओं ने उनका सत्कार किया। नारद देवगण से कहने लगे।।५६-५८।।

उवाच पूजितो देवान् कस्माद्यूयं विचेतसः।
तेनोक्ताः कथयामासुः सर्वं शक्रस्य चेष्टितम्॥५९॥
गतमिन्द्रस्य चेन्द्रत्वमेनसा परमेण तु। ततः प्रोवाच तान्देवान्देवर्षिर्नारदो वचः॥६०॥
यूयं देवाश्च सर्वज्ञास्तपसां विक्रमेण च। तस्मादिन्द्रोहिकर्तव्यो नहुषःसोमवंशजः॥६१॥
सोऽस्मिन्नाष्ट्रे प्रतिष्ठाप्यस्त्वरितेनैवनिर्जराः। एकोनमश्वमेधानांशतं तेन महात्मना।
कृतमस्ति महाभागा नहुषेण च यज्वना॥६२॥

देवर्षि ने उन सबसे पूछा—''यहां सब क्यों अनमने से परिलक्षित हो रहे हैं?'' उनके इस कथन पर देवताओं ने इन्द्र द्वारा किये समस्त कार्य का देवर्षि से वर्णन किया। देवगण ने कहा—''उत्कट पाप से इन्द्र का इन्द्रत्व नष्ट हो गया।'' तब देवर्षि कहने लगे—''देवगण! तुम सब सर्वज्ञ हो तथा तपस्या एवं विक्रम में अतुलनीय

हो। इसलिए तुम सब चन्द्रवंशी नहुष को इन्द्र पद पर अभिषिक्त करो। इसमें विलम्ब उचित नहीं है। इस राजपद पर शीघ्रता से उनको प्रतिष्ठित करो। हे निर्जरगण! इस महात्मा नहुष ने ९९ अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न कर लिया है।।५९-६२।।

शच्या श्रुतं च तद्वाक्यं नारदस्य मुखोद्गतम्। गतान्तःपुरमव्यग्राबाष्पपूरितलोचना।।६३।।
नारदस्य वचः श्रुत्वा सर्वे देवान्वमोदयन्।।६४।।
नहुषं राज्यमारोढुमैकपद्येन ते यदा। आनीतो हि तदा राजा नहुषो ह्यमरावतीम्।।६५।।
राज्यं दत्तं महेन्द्रस्य सुरैः सर्वैर्महर्षिभिः। तदाऽगस्त्यादयः सर्वे नहुषं पर्युपासत।
गन्धर्वाप्सरसो यक्षा विद्याधरमहोरगाः।।६६।।
यक्षाः सुपर्णाः पतगा ये चान्ये स्वर्गवासिनः।।६७।।
तदा महोत्सवोजातो देवपुर्यां निरन्तरः। शंखतूर्यमृदङ्गानि नेदुर्दुन्दुभयः समम्।।६८।।
गायकाश्च जुगुस्तत्र तथा वाद्यानि वादकाः। नर्तकाननृतुस्तत्र तथा राज्यमहोत्सवे।
अभिषिक्तस्तदा तत्र बृहस्पतिपुरोगमैः।।७०।।

तभी नारद द्वारा कहे वाक्यों को शची ने सुना। नारद की बात से उनके नेत्र आंसुओं से भर गये। वे गंभीरतापूर्वक अन्तःपुर चली गयीं। तथापि इधर नारद की बातों का समस्त देवमण्डली ने अनुमोदन कर दिया। अतः जब देवगण नहुष को राज्यपद पर स्थापित करने हेतु लाये गये तब उनको वहां आते ही सभी देवता एवं महर्षिगण ने तत्क्षण स्वर्गराज्य प्रदान किया। उस समय अगस्त्य आदि महर्षिगण नहुष की परिचर्या करने लगे। गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, विद्याधर, महान् सर्प तथा अन्य सभी स्वर्गस्थ उनके सेवाकार्य में लग गये। तभी से देवगण का महान् उत्सव प्रारम्भ हो गया। शंख, तूर्य, मृदंग, दुन्दुभि एक साथ बजाई जाने लगी। गायक गायन करने लगे। वादकगण वाद्य बजाने लगे। नर्त्तक नृत्यरत हो गये। उस महोत्सव में यह सब आयोजन होने लगा। बृहस्पति के नेतृत्व में प्रधान स्वर्गस्थ लोगों ने नहुष का अभिषेक इस प्रकार सम्पन्न किया।।६३-७०।।

अर्चितो देवसूक्तैश्च यथावद् ग्रहपूजनम्। कृतवांश्चैवऋषिभिर्विद्वद्भिर्भावितात्मभिः।।७१।।
तथा च सवैः परिपूजितो महान्राजा सुराणां नहुषस्तदानीम्।
इन्द्रासने चेन्द्रसमानरूपः संस्तूयमानः परमेण वर्चसा।।७२।।
सुगन्धदीपैश्च सुवाससा युतोऽलङ्कारभोगैः सुविराजिताङ्गः।
बभौ तदानीं नहुषो मुनीन्द्रैः संस्तूयमानो हि तथाऽमरेन्द्रैः।।७३।।
इति परमकलान्वितोऽसौ सुरमुनिवरगणैश्च पूज्यमानः।
नहुषनृपवरोऽभवत्तदानीं हृदि महता हृच्छयेन तप्तः।।७४।।

नहुष उवाच

इन्द्राणी कथमद्यैव नायातिममसन्निधौ। तां चाह्वयतशीघ्रं भो मा विलम्बितुमर्हथ।।७५।।
नहुषस्यवचःश्रुत्वा वृहस्पतिरुदारधीः। शचीभवनमासाद्य उवाच च सविस्तरम्।।७६।।

शक्रस्य दुर्निमित्तेन ह्यानीतो नहुषोऽत्रवै। राज्यार्थेभामिनित्वंच अर्द्धासनगताभव॥७७॥

जब नृपश्रेष्ठ नहुष इस प्रकार स्वर्गराज्य के सिंहासन पर अधिष्ठित हो गये, तब उनका हृदय प्रबल कामाग्नि से तप्त होने लगा। नहुष ने कहा—"इन्द्राणी अब तक मेरे पास क्यों नहीं आई, तुम सब उसे शीघ्र यहां लाओ, विलम्ब न करो।" नहुष का वाक्य सुनकर उदार बुद्धि बृहस्पति शची के पास जाकर उसे विस्तारपूर्वक सब बातें बतलाने लगे। उन्होंने कहा—"हे भामिनी! इन्द्र के साथ घटी दुर्लक्षण घटना के कारण नहुष को राज्यरक्षार्थ यहां लाया गया। तुम अभी जाकर उसके साथ राज्यासन की अर्द्धासन भागी बन जाओ"।।७१-७७।।

शची प्रहस्य चोवाच वृहस्पतिमकल्मषम्। असौ न परिपूर्णोहियज्ञैः शक्रासनेस्थितः।
एकोनमश्वमेधानां शतं कृतमेन वै॥७८॥
तस्मान्नयोग्योमां प्राप्तुं तत्त्वतोहिविमृश्यताम्। यदिमांसाभिलाषोहिपरस्त्रियमचेतनः।
अवाह्यवाहनेनैव अत्रागत्य लभेत माम्॥७९॥
तथेति गत्वा त्वरितो बृहस्पतिरुवाचतम्। नहुषं कामसन्तप्तं शच्योक्तं च यथातथम्॥८०॥
तथेति मत्वा राजाऽसौ नहुषःकाममोहितः। विमृश्य परयाबुद्ध्याअवाह्यंकिंप्रशस्यते॥८१॥

तब शची ने निष्पाप बृहस्पति से कहा—"अभी जो इन्द्रासन पर स्थित हुये हैं, इन्होंने १०० यज्ञ पूर्ण नहीं किये हैं। इन्होंने मात्र ९९ यज्ञ पूर्ण किये हैं, तभी ये राजा मुझे पाने का अभी भी योग्य अधिकारी नहीं हैं। इस सम्बन्ध में वह स्वयं विवेचना करे। अथवा मैं परस्त्री हूं। यदि इतने पर भी वह अज्ञानवश मेरी अभिलाषा कर रहे हों, तब ऐसे वाहन पर बैठ कर यहां आये, जो वाहन के योग्य न हो। तभी वह मुझे प्राप्त कर सकते हैं।" बृहस्पति ऐसा ही हो, कहकर शीघ्रता से नहुष के पास गये। वहां जाकर उन्होंने कामसन्तप्त नहुष से समस्त वृत्तान्त कहा। राजा नहुष ने काममोहित होकर उस बात की स्वीकृती दिया, अपनी विशेष बुद्धि से सोचने लगे कि शची के कथनानुरूप कौन सा वाहन हो, जो वाहन के अयोग्य हो!।।७८-८१।।

स बुद्ध्या च चिरं स्मृत्वा ब्राह्मणाश्च तपस्विनः।
अवाह्याश्च भवन्त्यस्मादात्मानं वाहयाम्यहम्॥८२॥
द्वाभ्यांचतस्याःप्राप्त्यर्थमितिमेहदिवर्तते। शिबिकांचददौताभ्यांद्विजाभ्यां काममोहितः॥८३॥
उपविश्यतदातस्यां शिबिकायांसमाहितः। सर्पसर्पेति वचनान्नोदयामास तौ तदा॥८४॥
अगस्त्यः शिबिकावाहीततःक्रुद्धोऽशपन्नृपम्। विप्राणामवमन्तात्वमुन्मत्तोऽजगरोभव॥८५॥
शापोक्तिमात्रतोराजा पतितोब्राह्मणस्यहि। तथैवाजगरो भूत्वा विप्रशापो दुरत्ययः॥८६॥
यथाहिनहुषोजातस्तथा सर्वेऽपितादृशाः। विप्राणामवमानेन पतन्ति निरयेऽशुचौ॥८७॥

नहुष ने दीर्घकाल पर्यन्त चिन्तन करके स्थिर किया कि तपस्वी ब्राह्मण ही वाहन योग्य नहीं होते। अतः उनके द्वारा ही मैं स्वयं को वहन कराऊंगा। शची को पाने हेतु दो ब्राह्मण का प्रयोजन है। यही मेरी मनोकामना है। यह कहकर काममोहित नहुष ने दो ब्राह्मणों के कंधों पर पालकी रखी तथा उसपर स्वयं बैठ कर ब्राह्मण द्वय को सर्प-सर्प (अर्थात् शीघ्र चलो) कह कर शीघ्रता से चलने के लिए प्रेरित करने लगा। दोनों पालकी वाहक में से एक अगस्त्य मुनि थे। उन्होंने क्रोधित होकर तत्काल नहुष को शाप दिया कि "तुम मदान्ध होकर ब्राह्मणों का अपमान

कर रहे हो, अतः अजगर हो जाओ।'' ब्राह्मण की शापोक्ति मात्र से राजा स्वर्गच्युत होकर अजगर रूप हो गया। विप्रशाप अत्यन्त दुरत्यय होता है। वास्तव में ब्राह्मण का शाप अत्यन्त अकाट्य तथा भयानक होता है। राजा नहुष की तरह ही ब्राह्मण का अपमान करने वाले अपवित्र नरकों में गिरते हैं।।८२-८७।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पदं प्राप्यविचक्षणैः। अप्रमत्तैर्नरैर्भाव्यभिहामुत्र च लब्धये॥८८॥
तथैवनहुषःसर्पो जातोऽरण्येमहाभये। एवं चैवाभवत्तत्र देवलोके ह्यराजकम्॥८९॥
तथैव ते सुराःसर्वे विस्मयाविष्टचेतसः। अहो बत महत्कष्टं प्राप्तं राज्ञा ह्यनेन वै॥९०॥
न मर्त्यलोकोनस्वर्गो जातोह्यस्य दुरात्मनः। सतामवज्ञयासद्यः सुकृतं दग्धमेव हि॥९१॥

इसीलिए बुद्धिमान् व्यक्ति गौरवमय पद प्राप्त करके ऐहिक एवं पारलौकिक मंगलार्थ सर्वविध प्रयत्न के द्वारा अप्रमत्त ही रहे। जो भी हो, इधर भीषण अरण्य में नहुष सर्प योनि में रहने लगा। स्वर्ग में इस घटना से अराजकता हो गयी। सभी देवता विस्मित होकर कहने लगे—''यह राजा महान् कष्ट पा रहा है। इस दुरात्मा को स्वर्ग अथवा मृत्युलोक दोनों से हाथ धोना पड़ा। वास्तव में सत् व्यक्ति की अवमानना से समस्त सुकृति राशि तत्काल नष्ट हो जाती है''।।८८-९१।।

याज्ञिको ह्यपरोलोके कथ्यतांच महामुने। तदोवाच महातेजा नारदो मुनिसत्तमः॥९२॥
ययातिं च महाभागा आनयध्वं त्वरान्विताः। देवदूतास्तु वै तूर्णं ययातिं द्रुतमानयन्॥९३॥
विमानमारुह्य तदा महात्मा ययौ दिवं देवदूतैः समेतः।
पुरस्कृतो देववरैस्तदानीं तथोरगैर्यक्षगन्धर्वसिद्धैः॥९४॥
आयातःसोऽमरावत्यां त्रिदशैरभितोषितः। इन्द्रासने चोपविष्टोबभाषेच स सत्वरम्॥९५॥
नारदेनैवमुक्तस्तु त्वं राजाह्याज्ञिकोह्यसि। सतामवज्ञया प्राप्तो नहुषो दन्दशूकताम्॥९६॥
ये प्राप्नुवन्तिधर्मिष्ठा दैवेनपरमं पदम्। प्राक्तनेनैव मूढास्ते न पश्यन्ति शुभाशुभम्॥९७॥
पतन्ति नरके घोरे स्तब्धा वै नात्र संशयः॥९८॥

''जो भी हो, हे महामुने! क्या मृत्युलोक में कोई अन्य यज्ञकर्त्ता नहीं है क्या? आप यह बतायें।'' तब महातेजसम्पन्न नारद मुनि ने कहा—''हे महाभागगण! आप लोग शीघ्रता से राजा ययाति को ले आयें।'' तत्पश्चात् देवदूत शीघ्र जाकर ययाति को ले आये। महात्मा ययाति देवदूतों के साथ तत्काल उनके विमान पर बैठ कर स्वर्गराज्य में पहुंचे। वहां मुख्य देवगण, उरग (सर्प), यक्ष, गन्धर्व, सिद्धगण ने उनकी अभ्यर्थना की तथा स्वर्ग में उनको लाये। उनके अमरावती आगमन पर देवताओं ने उनको नाना प्रकार से सन्तुष्ट किया। ययाति भी इन्द्रासनासीन होकर अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे। तब नारद कहने लगे—''हे राजन! आप याज्ञिक राजा हैं। साधुओं की अवमानना करके यहां के पूर्व राजा नहुष ने सर्पत्व प्राप्त किया। जो व्यक्ति भाग्यक्रम से उत्तम पद की प्राप्ति करते हैं, वे अपने पूर्वजन्म के कर्म के कारण मूढ़त्व प्राप्त करके शुभ क्या है तथा अशुभ क्या है, इसका पर्यवेक्षण नहीं कर पाते। उनको ज्ञानरहित होकर घोर नरक में गिरना पड़ता है।।९२-९८।।

ययातिरुवाच

यैःकृतं चामितं पुण्यं तेषां विघ्नःप्रजायते। अल्पकत्वेन देवर्षे विद्धि सर्वं परं मम॥९९॥

महादानानि दत्तानि अन्नदानयुतानिच। गोदानानि बहून्येव भूमिदानयुतानि च॥१००॥
तथैव सर्वाण्यपि चोत्तमानि दानानि चोक्तानि मनीषिभिर्यदा।
एतानि सर्वाणि मया तदैव दत्तानि काले च महाविधानतः॥१०१॥
यज्ञैरिष्टं वाजपेयातिरात्रैर्ज्योतिष्टोमै राजसूयादिभिश्च।
शास्त्रप्रोक्तैरश्वमेधादिभिश्च यूपैरेषाऽलङ्कृता भूः समन्तात्॥१०२॥
देवदेवोजगन्नाथ इष्टो यज्ञैरनेकशः। गालवाय पुरा दत्ता कन्या त्वेषा च माधवी॥१०३॥
पत्नीत्वेन चतुर्भ्यश्च दत्ताः कन्यामुनेतदा। गालवस्यगुरोरर्थे विश्वामित्रस्य धीमतः॥१०४॥
एवं भूतान्यनेकानि सुकृतानि मयापुरा। महान्ति च बहून्येव तानि वक्तुं न पार्यते॥१०५॥

ययाति कहते हैं—हे देवर्षि! जिन्होंने अपरिमित पुण्यार्जन किया है, उनको स्वल्प मात्र में ही विघ्न घटित हो जाता है। मैंने जो कुछ किया है, सब उत्तम कार्य ही किया है। मैंने अन्नदान के साथ सभी महादान किया है। भूमिदान तथा गोदान किया है। इनके अतिरिक्त जिन उत्तम दानों को मनीषीगण ने कहा है, वह सब मैंने अत्यन्त समारोह से सम्पन्न किया है। बाजपेय, अतिरात्र, ज्योतिष्टोम, राजसूय तथा अश्वमेधादि शास्त्रविहित यज्ञों से तथा असंख्य यज्ञयूपों (स्तम्भों) द्वारा मैंने इस भूमि को अलंकृत किया है। मेरे यज्ञानुष्ठानों में देवदेव जगन्नाथ अनेक बार अर्चित हुये हैं। मैंने गालव ऋषि को पूर्वकाल में माधवी नाम्नी कन्या प्रदान किया है। गालव के गुरु धीमान् विश्वामित्र के निमित्त ४ ऋषियों को ४ कन्या पत्नी रूप में प्रदान किया है। हे मुनिवर! मैंने पूर्वकाल में अनेक सुकर्मों द्वारा पुण्यार्जन किया है। ये सब सुकृत इतने बहुल तथा महान् हैं, जिनका मैं वर्णन सम्पूर्णतः नहीं कर सकता।।९९-१०५।।

भूयः पृष्टः सर्वदेवैः स राजा कृतं सर्वं गुप्तमेवं यथार्थम्।
विज्ञातुमिच्छाम यथार्थतोऽपि सर्वे वयं श्रोतुकामा ययाते॥१०६॥
वचोनिशम्यदेवानां ययातिरमितद्युतिः। कथयामास तत्सर्वं पुण्यशेषं यथार्थतः॥१०७॥
कथितं सर्वमेतच्चनिःशेषं व्यासवत्तदा। स्वपुण्यकथनेनैव ययातिरपतद्भुवि॥१०८॥
तत्क्षणादेव सर्वेषां सुराणांतत्र पश्यताम्। एवमेव तथा जातमराजकमतन्द्रितम्॥१०९॥
अन्योनदृश्यते लोके याज्ञिको योहितत्रवै। शक्रासनेऽभिषेकार्थं श्रूयतांहिद्विजोत्तमाः॥११०॥
सर्वे सुराश्च ऋषयोऽथ महाफणीन्द्रा गन्धर्वयक्षखगचारणकिन्नराश्च।
विद्याधराःसुरगणाप्सरसां गणाश्च चिन्तापराः समभवन्मनुजास्तथैव॥१११॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे शिवशास्त्रे देवेन्द्रस्वाराज्याभिषेकवृत्तान्ते देवेन्द्रस्यब्रह्महत्योपद्रुतौ नहुषशापययाति-भूपपुण्यक्षयवृत्तान्तवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥१५॥

सभी देवताओं ने पुनः राजा ययाति से पूछा—"हे राजन्! आपके जो सब गुप्त पुण्य संचित हैं, उनको भी

हम जानना चाहते हैं।'' तब अमित द्युति ययाति ने अपने सभी पुण्यों का यथायथ वर्णन किया। इस प्रकार ययाति ने अपने किये गये तथा अर्जित पुण्यों का विस्तृत रूप से स्वयं ही वर्णन किया। अपने मुख से अपना पुण्य कथन करने के कारण ययाति तत्क्षण देवगण के सामने ही स्वर्ग से भूतल पर गिर गये। इस प्रकार से स्वर्ग में पुनः अराजकता छा गयी। तब भूलोक में ऐसा कोई नहीं मिला, जिसका अभिषेक इन्द्रासन पर किया जा सके। हे द्विजोत्तमगण! सुनें। तब सभी ऋषि, नागेन्द्र, गन्धर्व, यक्ष, पक्षी, चारण, किन्नर, विद्याधर, अप्सरा, मनुष्य राजा के न होने के कारण चिन्तित हो गये।।१०६-१११।।

॥पञ्चदश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

षोडशोऽध्यायः

बृहस्पति को इन्द्राणी का शाप

लोमश उवाच

ततः शची तान्प्रोवाचवाचंधर्मार्थसंयुताम्। मा चिंता क्रियतांदेवावृहस्पतिपुरोगमाः॥१॥
गच्छत त्वरिताःसर्वे शक्रंद्रष्टुं विचक्षणाः। ब्रह्महत्याभिभूतोऽसौयत्रास्तेसुरसत्तमः॥२॥
बहूनां कारणेनैव विश्वरूपो हि मंदधीः। हतस्तेन महेन्द्रेण सर्वैःसोऽपि निराकृतः॥३॥
तस्मात्सर्वैर्भवद्भिश्च गंतव्यं यत्र स प्रभुः। अवज्ञा हि कृता पूर्वं महेन्द्रेण तवानघ॥४॥
अवज्ञामात्रक्षुब्धेन त्वया शप्तः पुरंदरः। तथैव शापितश्चासि मया त्वं हि बृहस्पते॥५॥
निरस्तोऽपि हि तस्मात्त्वमवसानपरो भव॥६॥
यथा मदर्थमानीतौ शक्रे जीवति तावुभौ। त्वयि जीवति भो ब्रह्मन्कार्यंतवकरिष्यति॥७॥
कोऽपिसौभाग्यवाँल्लोकेतवक्षेत्रे जनिष्यति। पुत्रं विख्यातनामानमत्र नैवास्तिसंशयः॥८॥
गच्छ शीघ्रंसुरैसार्द्धंशक्रमानय मा चिरम्। प्रयासि त्वरितो नो चेत्पुनःशापंददामिते॥९॥

लोमश कहते हैं—तदनन्तर शची ने देवगण से धर्मोचित वाक्य कहा—''हे बृहस्पति! तथा प्रमुख देवगण! आप चिन्तित न हों। आप सब शीघ्रता के साथ इन्द्र को देखने वहां जायें, जहां वे देवप्रवर ब्रह्महत्या से अभिभूत पड़े हैं। नाना कारणों से महेन्द्र ने उस मन्दबुद्धि विश्वरूप का वध किया था तथा अन्य देवगण ने भी उसे निराकृत किया था। अतः जहां वे प्रभु हैं, आप सब वहीं जायें। हे निष्पाप बृहस्पति! महेन्द्र ने पूर्वकाल में आपकी अवज्ञा का अपराध किया था, उस अवज्ञा मात्र से क्षुब्ध होकर आपने उनको शापित कर दिया। हे बृहस्पति! इस कारण मैंने भी आपको शाप प्रदान किया। आप अपमानित हुये थे, इसी कारण आपने इन्द्र के जीवित रहते दो कल्पित इन्द्रों को स्वर्ग लाकर स्वर्ग राज्य प्रदान किया था। हे ब्रह्मन्! जो होना था, हो गया। अब मैं वह सब विस्मृत करके आपके सम्बन्ध में कहती हूं कि इस जगत् का कोई सौभाग्यशाली जीवात्मा आपके क्षेत्र से उत्पन्न होगा। आपके जीते

जी वह आपके कार्य का निर्वहन करेगा। आपका वह पुत्र प्रसिद्ध व्यक्ति होगा। इसमें सन्देह नहीं है। अब आप देवगण के साथ जायें। शीघ्र इन्द्र को यहां ले आयें। यदि आप इन्द्र को शीघ्र लाने का प्रयत्न नहीं करते, तब आपको पुनः अभिशाप प्रदान करूंगी।।१-९।।

शच्योक्तं वचनं श्रुत्वा सुरैः सार्द्धंजगाम सः। पुरंदरं गताःसर्वे ब्रह्महत्याभिपीडितम्।।१०।।

सरसस्तीरमासाद्य ते शक्रं चाभ्यवादयन्।
दृष्टाः शक्रेण ते सर्वे तदा ह्यप्सु स्थितेन वै।।११।।

उवाच देवान्देवेशः कस्माद्यूयमिहागताः। अहं हि पातकग्रस्तो ब्रह्महत्यापरिप्लुतः।
अप्सु तिष्ठामि भो देवा एकाकी तपसान्वितः।।१२।।

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य सर्वे देवाः शतक्रतोः। ऊचुर्विह्वलिता एनं देवराजानमद्भुतम्।।१३।।

शची का कथन सुनकर बृहस्पति देवगण के साथ उस स्थान का त्याग करके वहां गये, जहां पर ब्रह्महत्या से पीड़ित पुरन्दर स्थित थे। वहां के सरोवर तीर पर जाकर ये लोग बैठे। तब सभी ने इन्द्र का अभिवादन किया। तब जल मध्यगत इन्द्र ने देवगण से कहा—"तुम सब यहां क्यों आये हो? पापग्रस्त होकर तथा ब्रह्महत्या से पीड़ित होकर मैं एकाकी जल में तपःश्चरण कर रहा हूं।" देवताओं ने शतक्रतु इन्द्र का वचन सुनकर विह्वलता पूर्वक देवराज से कहना प्रारम्भ किया।।१०-१३।।

एतादृशं न वाच्यं ते परेषामुपकारतः। कृतं त्वयैव यत्कर्म विश्वरूपवधादिकम्।।१४।।
विश्वकर्मसुतेनैव कृतं याजनमद्भुतम्। येन देवाः क्षयं यांति ऋषयोऽपि महाप्रभाः।।१५।।
तस्माद्धतस्त्वया देव परेषामुपकारतः। ततः सर्वे वयं प्राप्तास्त्वां नेतुममरावतीम्।।१६।।

देवगण कहते हैं—हे देवेश! आप ऐसा न कहें। विश्वरूप की हत्या आदि जो कर्म आपने किया था, वह लोगों के उपकार हेतु ही किया था। विश्व कर्मानन्दन विश्वरूप ने एक विचित्र यज्ञ प्रारम्भ किया था। उससे महाप्रभावयुक्त देवता तथा ऋषिगण का क्षय हो रहा था। आपने देवगण तथा ऋषियों के क्षय को रोकने के ही लिए विश्वरूप का वध किया था। हे देव! यह आपका कार्य तो परोपकारार्थ था। जो भी हो, हम सब आपको अमरावती ले जाने आये हैं।।१४-१६।।

एवं विवदमानेषुदेवेषु च तदाऽब्रंवीत्। ब्रह्महत्या त्वरायुक्ता देवेन्द्रं वरयाम्यहम्।।१७।।

तदा बृहस्पतिर्वाक्यमुवाच सहसैव तु।।१८।।

वृहस्पतिरुवाच

वासार्थं च करिष्यामः स्थानानि तव सांप्रतम्।
प्रसांत्विता तदा हत्या देवैस्तत्कार्यगौरवात्।।१९।।
विमृश्य सर्वे विभजुश्चतुर्द्धा हत्यां सुरास्ते ऋषयो मनीषिणः।
यक्षाः पिशाचा उरगाः पतंगास्तथा च सर्वे सुरसिद्धचारणाः।।२०।।
आदौ क्षमांप्रतितदाऊचुःसर्वे दिवौकसः। हे क्षमेंऽशस्त्वयाग्राह्योहत्यायाःकार्यसिद्धये।।२१।।

देवगण के इस अनुरोध को सुनकर ब्रह्महत्या ने शीघ्रता से कहा—"मैं देवेन्द्र का वरण करती हूं।" तब बृहस्पति ने सहसा यह कहा—"हे ब्रह्महत्ये! तुम्हारे निवासार्थ मैं स्थान निश्चित करता हूं।" यह कहने पर अपने कार्य के समाधानार्थ देवगण ने ब्रह्महत्या को सान्त्वना प्रदान किया तथा उन लोगों ने विशेष विचार करके ब्रह्महत्या को ४ भागों में विभक्त कर दिया। तब समस्त देवता, ऋषि, यक्ष, पिशाच, नाग, पतङ्ग (पक्षी), सिद्ध, चारण, पृथिवी से कहने लगे—"हे धरती! तुम हमारे कार्य की सिद्धि हेतु ब्रह्महत्या का कुछ अंश ग्रहण करो"।।१७-२१।।

सुराणां तद्वचः श्रुत्वा धरित्री कंपिताऽवदत्।
कथं ग्राह्यो मया ह्यंशो हत्यायास्तद्विमृश्यताम्।।२२।।
अहं हि सर्वभूतानां धात्रीविश्वं धराम्यहम्। अपवित्राभविष्यामिएनसा संवृताभृशम्।।२३।।

देवताओं का यह वाक्य सुनकर धरती कम्पित होकर कहने लगी—"मैं कैसे ब्रह्महत्या का अंश ग्रहण कर सकूंगी? यह आप विचार करें। मैं सभी प्राणीगण को धारण करती हूं। यह विश्व धारण करती हूं। यदि मेरा शरीर पाप से व्याप्त हो जायेगा, तब मैं अपवित्र हो जाऊंगी"।।२२-२३।।

पृथ्व्यास्तद्वचनंश्रुत्वाबृहस्पतिरुवाचतम्। माभैषीश्चारुसर्वांगिनिष्पापासिनचान्यथा।।२४।।
यदायदुकुलेश्रीमान्वासुदेवोभविष्यति। तदातत्पदविन्यासान्निष्पापा त्वं भविष्यसि।।२५।।
कुरु वाक्यं त्वमस्माकं नात्र कार्या विचारणा।।२६।।

धरती का यह वाक्य सुनकर बृहस्पति ने कहा—"हे चारु अंगों वाली! तुम भय न करो। तुम निष्पाप ही रहोगी। जब यदुकुल में श्रीमान् वासुदेव का आविर्भाव होगा, तब उनके चरणों के पड़ने से तुम पवित्र हो जाओगी। अतः मेरे वाक्य का पालन करो। व्यर्थ इधर-उधर न करो।।२४-२६।।

इत्युक्ता पृथिवी तेषां निष्पापासाकरोद्वचः। ततोवृक्षान्समाहूय सर्वे देवाऽबुवन्वचः।।२७।।
हत्यांशो हि ग्रहीतव्यो भवद्भिः कार्यसिद्धये। एवमुक्ताऽबुवन्वृक्षादेवान्सर्वेसमागताः।।२८।।
वयं सर्वे तथाभूतास्तापसानांफलप्रदाः। तदा हत्यान्विताः सर्वे भविष्यंतितपस्विनः।।२९।।
पापिनो हि महाभागास्तस्मात्सर्वं विमृश्यताम्।
तदा पुरोधसा चोक्ताः सर्वे वृक्षाः समागताः।।३०।।

बृहस्पति का यह कथन सुनकर निष्पाप पृथिवी देवी ने उनके आदेश का यथावत् पालन किया। तत्पश्चात् देवताओं ने वृक्षों को बुला कर कहा—"हमारी कार्यसिद्धि हेतु तुम लोगों को हत्या का अंश ग्रहण करना ही होगा।" देवगण की यह बात सुनकर वृक्षों ने वहां आकर देवताओं से कहा—"हम तो तपस्वियों को फल देते हैं। यदि हम हत्यायुक्त हो जाते हैं, तब महाभाग तपस्वीगण हमारा फल खाकर पापयुक्त हो जायेंगे। अतः इस सम्बन्ध में आप सभी पुनर्विचार करें"।।२७-३०।।

मा चिंता क्रियतां सर्वैः प्रसादाच्चशतक्रतोः। छेदिताश्चैव सर्वे वै ह्यनेकांशत्वमागताः।।३१।।
ततो विटपिनो नित्यं यूयं सर्वे भविष्यथ। इत्युक्तास्तेतदासर्वेऽगृह्णन्हत्यांविभागशः।।३२।।

तब बृहस्पति ने समागत वृक्षगण से कहा—"इन्द्र की कृपा से तुम चिन्ता न करो। यदि तुमको काटा भी

जायेगा तथापि तुम बहुलता से पुनः पनप जाओगे। इस प्रकार नित्य विराजित रहोगे। बृहस्पति का यह वचन सुनकर वृक्षगण ने आंशिक रूपेण ब्रह्महत्या ग्रहण किया।।३१-३२।।

ततो ह्यपः समाहूय ऊचुः सर्वे दिवौकसः।
अद्भिश्च गृह्यतामद्य हत्यांशः कार्यसिद्धये।।३३।।

तदाह्यापोमिलित्वाथऊचुःसर्वाः पुरोधसम्। यानिकानिचपापानितथादुश्चरितानिच।।३४।।
अस्मत्संपर्कसंबंधात्स्नानशौचाशनादिभिः। पुनंति प्राणिनः सर्वे पापेनपरिवेष्टिताः।।३५।।
तासां वचनमाकर्ण्य बृहस्पतिरुवाच ह। मा भयं क्रियतामाप एनसा दुस्तरेण हि।।३६।।
आपः पुनंतु सर्वेषां चराचरनिवासिनाम्। तदा स्त्रियः समाहूय बृहस्पतिरुवाच ह।।३७।।
अद्यैव ग्राह्यो हत्यांशः सर्वकार्यार्थसिद्धये। निशम्य तद्गुरोर्वाक्यमूचुःसर्वाश्चयोषितः।।३८।।
पापमाचरते योषा तेन पापेन नान्यथा। लिप्यंते बहवः पक्षा इति वेदानुशासनम्।।३९।।

श्रुतमस्ति न ते किंचिद्धे पुरोधो विमृश्यताम्।
योषिद्भिः प्रोच्यमानोऽपि उवाचाथ बृहस्पतिः।।४०।।

तब देवगण ने जलराशि को बुला कर कहा—"हमारी कार्यसिद्धि के लिए तुम भी हत्यांश ग्रहण करो।" तब समस्त जलराशि ने एक साथ इसका प्रतिवाद करते बृहस्पति से कहा—"जो कुछ पाप अथवा दुष्कार्य होता है, वह हमारे सम्पर्क द्वारा स्नान, शौच तथा आचमन से छूट जाता है। पापाक्रान्त प्राणी पवित्र हो जाता है।" जलराशि का कथन सुनकर बृहस्पति ने कहा—"हे जलराशि! तुम इस दुस्तर पाप का भय न करो। चराचर वासी (सूर्य) सभी जलराशि को पवित्र करेंगे।" तदनन्तर बृहस्पति ने स्त्रीगण का आह्वान करके कहा—"सबकी कार्यसिद्धि हेतु तुम सब ब्रह्महत्यांश ग्रहण करो।" गुरुवाक्य को (बृहस्पति के वाक्य को) ग्रहण करके स्त्रियों ने कहा—"जिस पाप में बहुत से पुरुष लिप्त होते हैं, वह अन्यथा नहीं होता। यही वेद का अनुशासन है।" हे सुरपुरोहित! आपने क्या यह नहीं सुना। जो भी हो, आप इस सम्बन्ध में सुविचार करें। स्त्रियों के ऐसा कहने पर बृहस्पति कहने लगे।।३३-४०।।

माभयंक्रियतांसर्वाःपापादस्मात्सुलोचनाः। भविष्याणांतथान्येषांभविष्यतिफलप्रदः।
हत्यांशो यो हि सर्वासां यथाकामित्वमेव च।।४१।।
एवमंशाश्चहत्यायाश्चत्वारः कल्पिताःसुरैः। निवासमकरोत्सद्यस्तेषुहत्याद्विजोत्तमाः।।४२।।
निष्पापो हि यदा जातो महेन्द्रो ह्यभिषेचितः। देवपुर्यां सुरगणैस्तथैव ऋषिभिःसह।
शच्या समेतो हि तदा पुरंदरो बभूव विश्वाधिपतिर्महात्मा।।४३।।

बृहस्पति कहते हैं—हे सुलोचनागण! इस पाप से तुम भय न करो। यह भविष्य में पुरुषों को फलप्रद होगा। यह हत्यांश स्त्रियों का स्वेच्छाचार कहा गया। (अर्थात् स्वेच्छाचार से निवृत्ति जिस स्त्री में होगी, वह हत्यांश से मुक्त रहेगी। स्वेच्छाचारी को यह हत्यांश लगेगा) स्वेच्छाचरण से निवृत्ति ही शास्त्र का निर्देश है। जब नारीगण इसे मानेंगी तब पुरुषों का मंगल होगा। इस संयम से वर्णसंकरता नहीं हो सकेगी। इस प्रकार देवताओं ने ब्रह्महत्या के ४ अंश कल्पित किये थे। उनके निर्देश के अनुसार ब्रह्महत्या तत्क्षण इन ४ आधार में निवास करने लगी। इस

प्रकार महेन्द्र निष्पाप होकर सुरगण तथा ऋषिगण द्वारा देवलोक के सिंहासन पर अभिषिक्त हो गये। इस प्रकार इन्द्र शची के साथ विश्वाधिपति के रूप में प्रतिष्ठित हो गये।।४१-४३।।

देवैः समेतो हि महानुभावैर्मुनीश्वरैः सिद्धगणैस्तदानीम्॥४४॥
तदाऽग्नयः शोभना वायवश्च सर्वे ग्रहाः सुप्रभाः शांतियुक्ताः।
जाताः सद्यः पृथिवी शोभमाना तथाऽद्रयो मणिप्रभवा बभूवुः॥४५॥
प्रसन्नानि तथा ह्यासन्मनांसि च मनस्विनाम्॥४६॥
नद्यश्चामृतवाहिन्यो वृक्षा ह्यासन्सदाफलाः। अकृष्टपच्यौषधयो बभूवुश्चामृतोपमाः॥४७॥
ऐकपद्येन सर्वेषामिंद्रलोकनिवासिनाम्। बभूव परमोत्साहो महामोदकरस्तथा॥४८॥

महानुभाव देवगण, मुनिगण तथा सिद्धगण ने इसमें योगदान दिया। उस समय अग्नि तथा वायु की सुशोभन स्थिति हो गई। ग्रहगण प्रभावान् तथा शान्त हो गये। पृथिवी समृद्ध हो गयी, अद्रिगण (पर्वत) मणिमय हो गये। मनस्वीगण का मन प्रसन्न हो गया। नदियां अमृतवाहिनी हो गयीं। वृक्षगण फल से भर गये। सभी औषधियां अकृष्टपचा (बिना जोते प्रचुर उत्पन्न हो गयीं) हो गयीं। इन्द्रलोकवासी समस्त व्यक्ति एक साथ परमानन्दमय महोत्सव मनाने लगे।।४४-४८।।

लोमश उवाच

एतस्मिन्नंतरे त्वष्टा दृष्ट्वा चेन्द्रमहोत्सवम्। बभूव रुषितोऽतीव पुत्रशोकप्रपीडितः॥४९॥
जगाम निर्वेदपरस्तपस्तप्तुं सुदारुणम्। तपसा तेन संतुष्टो ब्रह्मा लोकपितामहः॥५०॥
त्वष्टारमब्रवीत्तुष्टो वरं वरय सुव्रत। तदा वव्रे वरं त्वष्टा सर्वलोकभयावहम्।
वरं पुत्रो हि दातव्यो देवानां हि भयावहः॥५१॥
तथेति च वरो दत्तो ब्रह्मणा परमेष्ठिना। वरदानात्सद्य एव बभूव पुरुषस्तदा॥५२॥
वृत्रनामांकितस्तत्र दैत्यो हि परमाद्भुतः। धनुषां शतमात्रं हि प्रत्यहं ववृधेऽसुरः॥५३॥
पातालान्निर्गतादैत्याये पुराऽमृतमंथने। घातिताःसुरसङ्घैश्चभृगुणाजीवितास्त्वरात्॥५४॥
सर्वं महीतलं व्याप्तं तेनैकेन महात्मना॥५५॥

लोमश कहते हैं—इस समय विश्वकर्मा इन्द्र के अभिषेक का महोत्सव देखकर अत्यन्त क्रोधित हो गये। उनका हृदय पुत्रशोक से (विश्वरूप वध से) पीड़ित था। वे निर्विण्ण भाव से तीव्र तपःश्चरण हेतु गये।

तदनन्तर लोकपितामह ब्रह्मा ने उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर उनसे कहा—"आप मुझे पुत्र का वर प्रदान करिये। मेरा वह पुत्र देवगण के लिए भयंकर हो।" ब्रह्मा ने 'ऐसा ही हो' कहकर विश्वकर्मा को वरदान दिया। वरदान के फल से उसी समय एक पुरुष आविर्भूत हो गया। इसका नाम था वृत्र। यह परम अद्भुद् दैत्य था। वह नित्य १०० धनुष बढ़ने लगा। पूर्व में समुद्र मंथन काल में जितने असुर मरे थे तथा शुक्राचार्य ने जिनको पुनर्जीवित किया था, वे सभी पाताल से बाहर आकर उससे मिल गये। इस महात्मा दैत्य ने एकाकी ही समस्त पृथिवी को व्याप्त कर लिया।।४९-५५।।

तदा सर्वेऽपि ऋषयोवध्यमानास्तपस्विनः। ब्रह्माणंत्वरिताः सर्वेऊचुर्व्यसनमागतम्॥५६॥
तथा चेंद्रादयो देवा गंधर्वाः समरुद्गणाः। ब्रह्मणा कथितंसर्वंत्वष्टुश्चैतच्चिकीर्षितम्॥५७॥
भवद्वधार्थंजनितस्तपसा परमेण तु। वृत्त्रोनाम महातेजाः सर्वदैत्यापिधो महान्॥५८॥
तथापि यत्नः क्रियतांयथावध्यो भवेदसौ।
निशम्य ब्रह्मणोवाक्यमूचुर्देवाःसवासवाः॥५९॥

वह ऋषि तथा तपस्वियों को उत्पीड़ित करता था। तब देवता-गन्धर्व तथा अन्य देवता मिलकर शीघ्रता से ब्रह्मा के पास गये। वहां उन्होंने अपनी विपत्ति का वर्णन ब्रह्मा से किया। तब ब्रह्मा ने कहा—यह विपत्ति विधान ब्रह्मा का कर्म है। हे इन्द्र! तुम्हारे वधार्थ विश्वकर्मा ने परम तपबल से वृत्र नामक महातेजस्वी महादैत्य का उत्पादन किया है। यद्यपि यह सहज वध योग्य नहीं है, तथापि इसके वध का यत्न करते रहना चाहिये। ब्रह्मा का वाक्य सुनकर इन्द्रादि देवता कहने लगे॥५६-५९॥

देवा ऊचुः

यदाइन्द्रोहिहत्यायाविमुक्तःस्थापितोदिवि। तदास्माभिरकार्यं वै कृतमस्तिदुरासदम्॥६०॥
शस्त्राण्यस्त्राण्यनेकानि संक्षिप्तानिह्यबुद्धितः।
दधीचस्याश्रमेब्रह्मकिंन्ककार्यं करवामहे॥६१॥

देवगण कहते हैं—जब ब्रह्महत्या से मुक्त होकर इन्द्र स्वर्ग राज्य पर स्थापित किये गये हैं, तब हमने उसके पहले एक बड़ा अकार्य किया था। हे ब्रह्मन्! हमने अज्ञानता के कारण दधीचि मुनि के आश्रम में अपने अस्त्र-शस्त्र छिपा दिये थे। अब हम इस सम्बन्ध में क्या करें?॥६०-६१॥

तच्छुत्वा प्रहसन्वाक्यं देवान्ब्रह्मा तदाऽब्रवीत्।
चिरं स्थितानि विज्ञायागच्छध्वं तानि वै सुराः॥६२॥
गत्वा देवास्तदा सर्वे नापश्यन्स्वं स्वमायुधम्।
पप्रच्छुश्च दधीचिं ते सोऽवादीन्नैव वेद्म्यहम्॥६३॥
पुनर्ब्रह्माणमागत्य ऊचुः सर्वे मुनेर्वचः॥६४॥
ब्रह्मोवाच तदादेवान्सर्वेषांकार्यसिद्धये। तस्यास्थीन्येव याचध्वंप्रदास्यति न संशयः॥६५॥

यह सुनकर ब्रह्मदेव ने हास्यपूर्वक कहा—"हे देवगण! तुम्हारे अस्त्र-शस्त्र दीर्घकाल से वहां हैं, यह जानकर तुम सब वहां जाओ।" यह सुनकर देवगण दधीचि ऋषि के आश्रम में गये, तथापि वहां अस्त्र-शस्त्र कुछ भी नहीं मिला। तब उन्होंने इस संबंध में उन ऋषि से पूछा। ऋषि दधीचि कहने लगे—"मैं कुछ नहीं जानता, तब देवगण पुनः ब्रह्मा के पास आये तथा मुनि का वृत्तान्त कहा।" ब्रह्मा ने कहा—"सबकी कार्यसिद्धि हेतु तुम सब दधीचि ऋषि से उनकी अस्थि मांगो। वे निश्चय ही वह प्रदान करेंगे"॥६२-६५॥

तच्छुत्वा ब्रह्मणो वाक्यं शक्रो वचन मब्रवीत्॥६६॥
विश्वरूपो हतो देव देवानां कार्यसिद्धये। एक एव तदा ब्रह्मन्पापिष्ठोऽहं कृतः सुरैः॥६७॥

तथा पुरोधसा चैव निःश्रीकस्तत्क्षणात्कृतः। दिष्ट्यापरमयाचाहंप्रविष्टोनिजमंदिरम्।
दधीचं घातयित्वा वै तस्यास्थीनि बहून्यपि॥६८॥
अस्त्राणि तानि भगवन्कृतानि ह्यशुभानि वै॥६९॥
त्वष्ट्रा हि जनितो यो वै वृत्रोनामैष दैत्यराट्। कथं तं घातयाम्येवंसततंपारभीरुणा।
शक्रेणोक्तं निशम्याथ ब्रह्मा वाक्यमुवाच ह॥७०॥

ब्रह्मदेव का यह वाक्य सुनकर इन्द्र ने कहा—"हे देव! मैंने देवगण की कार्यसिद्धि हेतु विश्वरूप का वध किया। इससे देवगण मुझे पापिष्ठ कहने लगे। साथ ही मेरे पुरोहित बृहस्पति ने भी मुझे तत्क्षण श्रीभ्रष्ट कर दिया। अपने विशेष सौभाग्यबल से मैंने अब अपने भवन में तो प्रवेश किया, किन्तु यदि अब दधीचि मुनि का विनाश करके उनकी अस्थि द्वारा अस्त्र-शस्त्र बनाता हूं, तब हे प्रभु! मेरे द्वारा तो और पाप कर्म सम्पन्न होगा। उस दैत्यराज वृत्र को विश्वकर्मा ने उत्पन्न किया है। इसका मैं कैसे वध करूं।" सर्वथा पाप से डरने वाले इन्द्र ने ब्रह्मा से यही कहा॥६६-७०॥

अर्थशास्त्रपरेणैव विधिना तमबोधयत्। आततायिनमायांतं ब्राह्मणं वा तपस्विनम्।
हंतुकामं जिघांसीयान्न तेन ब्रह्महा भवेत्॥७१॥

ब्रह्मा ने इन्द्र का वचन सुनकर अर्थशास्त्र सम्बन्धित विधि के अनुसार यह वचन कहा—"आततायी व्यक्ति भले ही ब्राह्मण अथवा तपस्वी जो भी हो, यदि वह हत्या करने आता है, तब उसका वध करो। इससे ब्रह्महत्या का पाप नहीं लगेगा"॥७१॥

इन्द्र उवाच

दधीचस्य वधाद्ब्रह्मन्नहं भीतो न संशयः। तस्माद्ब्रह्मवधात्सत्यंमहदेनोभविष्यति॥७२॥
अतो न कार्यमस्माभिर्ब्राह्मणानां तु हेलनम्। हेलनाद् बहवो दोषा भविष्यंति न चान्यथा॥७३॥
अदृष्टं परमं धर्म्यं विधिना परमेण हि। कर्तव्यं मनसा चैवं पुरुषेण विजानता॥७४॥
निःस्पृहं तस्य तद्वाक्यं श्रुत्वा ब्रह्मा ह्युवाच तम्।
शक्र! स्वबुद्ध्या वर्तस्व दधीचिं गच्छ सत्वरम्॥७५॥
याचस्व तस्यचास्थीनिदधीचेःकार्यगौरवात्। गुरुणा सहितःशक्रोदेवैःसहसमन्वितः॥७६॥
तथेति गत्वा ते सर्वे दधीचस्याश्रमं शुभम्। नानासत्त्वसमायुक्तं वैरभावविवर्जितम्॥७७॥

इन्द्र कहते हैं—हे ब्रह्मन्! दधीचि मुनि का वध करने में मैं निश्चित भयभीत हूं। मुझे लगता है कि ऐसे ब्रह्मवध से मैं प्रचुर पाप एकत्र कर लूंगा। इसलिए ब्राह्मण वध कर सकना मेरे लिए कोई कर्त्तव्य नहीं है। ब्राह्मण की अवहेलना करने से महान् दोष होता है। यह बात कदापि अन्यथा नहीं है। ब्रह्मा ने इस प्रकार इन्द्र का निस्पृहता व्यञ्जक वाक्य सुनकर कहा—"हे इन्द्र! तुम यह निश्चित करो। शीघ्र दधीचि के पास जाओ तथा कार्य के गुरुत्व को देखते हुये दधीचि से अस्थि हेतु प्रार्थना करो।" इन्द्र ने यह कहा कि ऐसा ही करूंगा तथा बृहस्पति एवं सभी देवगण के साथ वे दधीचि के रम्य आश्रम में आये। वह आश्रम नाना जातीय प्राणियों से भरा था। तथापि वहां उन प्राणियों में पारस्परिक वैर नहीं था॥७२-७७॥

मार्जारमूषकाश्चैव परस्परमुदान्विताः। ऐकपद्येन सिंहाश्च गजिन्यः कलभैः सह॥७८॥
तथाजात्यश्चविविधाःक्रीडायुक्ताःपरस्परम्। नकुलैः सहसर्पाश्चक्रीडायुक्ताःपरस्परम्॥७९॥
एवंविधान्यनेकानि ह्याश्चर्याणि तदाश्रमे। पश्यंतो विबुधाः सर्वे विस्मयं परमंययुः॥८०॥
अथासने मुनिश्रेष्ठं ददृशुः परमास्थितम्। तेजसापरमेणैव भ्राजमानं यथा रविम्॥८१॥
विभावसुं द्वितीयं वा सुवर्चासहितंतदा। यथाब्रह्मा हि सावित्र्यातथासौमुनिसत्तमः॥८२॥

वहां मूषक तथा विडाल, सिंह तथा हथिनी और उसके शावक परस्पर मुदित होकर क्रीड़ा करते थे। नकुल के साथ सर्प विविध क्रीड़ारत थे। देवगण ने दधीचि के आश्रम में इस प्रकार की आश्चर्यजनक घटना देखी। इससे वे सभी विस्मित हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने देखा कि ऋषिप्रवर दधीचि अपने परमासन पर समासीन हैं। वे अपने तेज से सूर्य के समान प्रदीप्त हो रहे थे। उनको देखकर देवगण ने सोचा कि मानों द्वितीय विभावसु सूर्य विराजमान हैं। जैसे सावित्री के साथ ब्रह्मा शोभित होते हैं, वैसे ही मुनिप्रवर दधीचि अपनी पत्नी सुवर्चा के साथ वहां स्थित थे।।७८-८२।।

तं प्रणम्य ततो देवा वचनं चेदमब्रुवन्। त्वं दाता त्रिषु लोकेषुत्वत्सकाशमिहागताः॥८३॥
निशम्य वचनं तेषां देवानां मुनिरब्रवीत्। किमर्थमागताः सर्वे वदध्वं तत्सुरोत्तमाः॥८४॥
प्रयच्छामि न संदेहो नान्यथा मम भाषितम्।
तदोचुः सहिताः सर्वे दधीचिं स्वार्थकामुकाः॥८५॥
भयभीता वयं विप्र भवद्दर्शनकांक्षिणः। त्रातारं त्वां समाकर्ण्यब्रह्मणानोदितावयम्॥८६॥

देवगण ने उनको प्रणाम करके कहा—"हे मुनिवर! आप त्रैलोक्य में विख्यात दाता हैं। तभी हम आपके पास आये हैं।" देवताओं का निवेदन सुनकर दधीचि ने कहा—"हे सुरप्रवरगण! आप क्यों आये हैं, बिना संकोच उसे कहें। मैं आप लोगों द्वारा प्रार्थित वस्तु अवश्य प्रदान करूंगा। आपकी याचना व्यर्थ नहीं होगी।" तब स्वार्थपर देवगण ने एक साथ दधीचि से कहा—"हे विप्र! हम शत्रुभय से भयभीत हैं। तभी आपके दर्शनार्थ हम आये। हमें भय से त्राण दिलाने वाले एकमात्र आप ही हैं। तभी ब्रह्मदेव ने हमें आपके पास भेजा है"।।८३-८६।।

सम्प्राप्ता विद्धि तत्सर्वं दातुमर्होऽथ सुव्रत!॥८७॥
निशम्य वचनं तेषां किं दातव्यं तदुच्यताम्॥८८॥
ततो देवाब्रुवन्विप्र दैत्यानां निधनाय नः। शस्त्रनिर्माणकार्यार्थं तवास्थीनिप्रयच्छवै॥८९॥
प्रहस्योवाच विप्रर्षिस्तिष्ठध्वं क्षणमेव हि। स्वयमेव त्वहं देवास्त्यक्ष्याम्यद्यकलेवरम्॥९०॥
इत्युक्त्वा तानथो पत्नींसमाहूय सुवर्चसम्। प्रोवाचसमहातेजाःशृणुदेविशुचिस्मिते॥९१॥

हे सुव्रत! यही जानकर आपके पास हम आये हैं। आप हमें प्रार्थित विषय प्रदान करिये। दधीचि ने देवगण की प्रार्थना सुनकर कहा—"आपको क्या प्रदान करना होगा, कहें।" देवगण कहते हैं—हे विप्र! दैत्यों का वध करने के लिए आप अपनी अस्थि प्रदान करिये"। विप्रर्षि दधीचि ने तब हंसते हुये कहा—"हे देवगण! आप एक क्षण रुकिए। मैं स्वयं ही अपना शरीर त्याग रहा हूं।" देवगण से यह कह कर महातेजस्वी दधीचि ने अपनी पत्नी सुवर्चा को बुला कर कहा—"हे देवी! शुचिस्मिते, सुनो!"।।८७-९१।।

अस्थ्यर्थं याचितो देवैस्त्यजाम्येतत्कलेवरम्। ब्रह्मलोकं व्रजाम्यद्य परमेणसमाधिना॥९२॥
मयि याते ब्रह्मलोकं त्वं स्वधर्मेण तत्र माम्।
प्राप्स्यस्येव न संदेहो वृथा चिन्तां च मा कृथाः॥९३॥

हे देवी! देवगण ने मेरी अस्थियों को चाहा है। अतः मैं अपना शरीर त्याग करके परम समाधियोग से ब्रह्मलोक जाऊंगा। मेरे ब्रह्मलोक जाने पर तुम भी अपने धर्म के कारण मुझे वहीं प्राप्त करोगी। यह निश्चित है। अतः वृथा चिन्ता न करना।।९२-९३।।

इत्युक्त्वा तां स्वपत्नींसप्रेषयामासचाश्रमम्। ततोदेवाग्रतोविप्रःसमाधिमगमत्तदा॥९४॥
समाधिना परेणैव विसृज्य स्वं कलेवरम्। ब्रह्मलोकं गतः सद्यः पुनर्नावर्तते यतः॥९५॥
दधीचिनामा मुनिवृन्दवर्यः शिवप्रियः शिवदीक्षाभियुक्तः।
परोपकारार्थमिदं कलेवरं शीघ्रं स विप्रोऽत्यजदात्मना तदा॥९६॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे देवैरस्थिकृताभ्यर्थितस्यदधीचेर्योगिनस्वदेहविसर्जनंनामषोडशोऽध्यायः॥६॥

दधीचि मुनि ने यह कहने के पश्चात् अपनी पत्नी को आश्रम भेज दिया। तदनन्तर वे देवताओं के समक्ष समाधिस्थ हो गये। उन्होंने परम समाधियोग द्वारा अपना देह त्याग किया तथा मरणोपरान्त वहां गये, जहां जाने पर कोई भी पुनः संसार में जन्म नहीं लेता। ऐसे ब्रह्मलोक में दधीचि ने गमन किया। दधीचि मुनि मुनिगण में श्रेष्ठ, शिवप्रिय तथा शिवमन्त्र दीक्षित थे। उन्होंने परोपकारार्थ अपना देह त्यागा।।९४-९६।।

॥षोडश अध्याय समाप्त॥

सप्तदशोऽध्यायः

दधीचि का देहत्याग, उनकी पत्नी द्वारा देवों को शाप दिया जाना

लोमश उवाच

ततः सर्वे सुरगणा दृष्ट्वा तं विलयं गतम्। चिंतयंतः सुरगणाः कथं च विदधामहे॥१॥
सुरभिं चाह्वयित्वाथ तदोवाच शचीपतिः। कलेवरं दधीचस्य लिह्यास्त्वंवचनान्मम॥२॥
तथेति च वचोमत्वातत्क्षणादेवलिह्य तत्। निर्मांसं च कृतंसद्यस्तयाधेन्वाकलेवरम्॥३॥

जगृहुस्तानिचास्थीनिचक्रुःशस्त्राणि वै सुराः। तस्य वंशोद्भवंवज्रंशिरोब्रह्मशिरस्तथा॥४॥
अन्यानि चास्थीनि बहूनि तस्य ऋषेस्तदानीं जगृहुः सुराश्च।
तथा शिराजालमयांश्च पाशांश्चक्रुः सुरा वैरयुताश्च दैत्यान्॥५॥
शस्त्राणि कृत्वा ते सर्वे महाबलपराक्रमाः। ययुर्देवास्त्वरायुक्ता वृत्रघातनतत्पराः॥६॥

लोमश कहते हैं—तब देवगण दधीचि ऋषि का यह परलोक गमन देखकर चिन्तित हो गये कि हम किस प्रकार से अपना कार्य सिद्ध करें? इस प्रकार चिन्ता करके इन्द्र ने सुरभी गौ को बुलाया तथा कहा—"हे सुरभि! मेरे कथन के अनुरूप तुम दधीचि के शरीर को चाटो। तब सुरभि ने इन्द्र के कथन को मानते हुये उन ऋषि के शरीर को चाटते हुये मांस रहित कर दिया। तब देवगण ने उस देह के अस्थिपुंज को लेकर अविलम्ब अस्त्र-शस्त्र निर्माण किया। दधीचि की मेरुदण्ड की अस्थि से वज्र तथा मस्तक से ब्रह्मशिर अस्त्र बना। इसके अतिरिक्त दधीचि की शिराओं से पाशास्त्र बनाया गया। महाबली पराक्रमी देवताओं ने दैत्यों के वधार्थ अस्त्रों का निर्माण करके वृत्रासुर के वधार्थ यात्रा किया।।१-६।।

ततः सुवर्च्चाश्च दधीचिपत्नी या प्रेषिता सा सुरकार्यसिद्धये।
व्यलोकयत्तत्र समेत्य सर्वं मृतं पतिं देहमथो ददर्श तम्॥७॥
ज्ञात्वा च तत्सर्वमिदं सुराणां कृत्यं तदानीं च चुकोप साध्वी।
ददौ सती शापमतीव रुष्टा तदा सुवर्चा ऋषिवर्यपत्नी॥८॥
अहो सुरा दुष्टतराश्च सर्वे सर्वे ह्यशक्ताश्च तथैव लुब्धाः।
तस्माच्च सर्वेऽप्रजसो भवंतु दिवौकसोऽद्यप्रभृतीत्युवाच सा॥९॥

तत्पश्चात् सुरकार्य के साधनार्थ अपने जीवित रहते दधीचि ने जिन मुनिपत्नी सुवर्चा को आश्रम से अन्यत्र भेजा था, वे मुनिपत्नी वापस आईं तथा अपने पति की देह को मृत देखा। साध्वी सुवर्चा ने इसे देवगण का ही कार्य जाना तथा तभी क्रोधित हो गईं। उन सती ऋषिपत्नी सुवर्चा ने अति क्रोधित होकर यह अभिशाप दिया—हे दुष्ट देवताओं! तुम अक्षम तथा लोभी प्रकृति हो। अतः अब से तुम सभी पुत्ररहित रहोगे!।।७-९।।

एवं शापं ददौ तेषां सुराणां सा तपस्विनी। प्रविश्याश्वत्थमूलेसास्वोदरंदारयत्तदा॥१०॥
निर्गतो जठराद्गर्भो दधीचस्य महात्मनः। साक्षाद्रुद्रावतारोऽसौ पिप्पलादोमहाप्रभः॥११॥
प्रहस्य जननी गर्भंमुवाच रुषितेक्षणा। सुवर्चा तं पिप्पलादं चिरं तिष्ठास्य सन्निधौ॥१२॥
अश्वत्थस्य महाभाग सर्वेषां सफलो भवेः। तथैवभाषमाणा सा सुवर्चा तनंय प्रति।
पतिमन्वगमत्साध्वी परमेण समाधिना॥१३॥
एवं दधीचपत्नी सा पतिना स्वर्गमाव्रजत्॥१४॥

सती शिरोमणि सुवर्चा ने देवगण को यह शाप दिया। वे एक पीपल के पेड़ के नीचे गईं तथा वहीं अपना उदर चीर दिया। उनके उदर से महात्मा दधीचि द्वारा स्थापित गर्भ तत्काल बहिर्गत हो गया। इस गर्भ से निकले महाप्रभावान् बालक का नाम पड़ा पिप्पलाद। ये साक्षात् रुद्रावतार थे। क्रोधित नेत्रों वाली माता सुवर्चा ने प्रसन्नता से पिप्पलाद नामक बालक से कहा—"हे महाभाग! तुम इस अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष के समीप सर्वदा स्थित रहो। तुम

सबके लिये फलदायक हो जाओ।'' साध्वी सुवर्चा ने अपने पुत्र से यह कहकर समाधि द्वारा देहत्याग करके पति का अनुगमन किया। वह दधीचिपत्नी सुवर्चा पति के पास स्वर्ग चली गयीं।।१०-१४।।

ते देवाः कृतशस्त्रास्त्रादैत्यान्प्रतिसमुत्सुकाः। आजग्मुश्चेंद्रमुख्यास्तेमहाबलपराक्रमाः॥१५॥

गुरुं पुरस्कृत्य तदाज्ञया ते गणाः सुराणां बहवस्तदानीम्।
भुवं समागत्य च मध्यदेशमूचुश्च सर्वे परमास्त्रयुक्ताः॥१६॥

समागतानुपसृत्य देवांश्चेन्द्रपुरोगमान्। ययौ वृत्रो महादैत्यो दैत्यवृन्दसमावृतः॥१७॥
यथा मेरोश्च शिखरं परिपूर्णं प्रदृश्यते। तथा सोऽपि महातेजाविश्वकर्म्मसुतोमहान्॥१८॥
तेन दृष्टो महेन्द्रश्च महेन्द्रेण महासुरः। देवानां दानवानां च दर्शनं च महाद्भुतम्॥१९॥
तदा ते बद्धवैराश्च देवदैत्याः परस्परम्। अन्योन्यमभिसंरब्धाः जगर्जुः परमाद्भुतम्॥२०॥

इधर इन्द्रादि प्रमुख महाबली देवगण अस्त्र-शस्त्र से सज्जित होकर उत्साह के साथ दैत्यगण के प्रति युद्धाभियान पर निकल पड़े। बृहस्पति उनके आगे-आगे चले। उनके आदेश से सुरगण स्वर्ग से अपने परमस्त्रों को धारण करके पृथिवी पर आये। उन्होंने कहा—''यह मध्य देश है। वृत्र ने यह जान लिया है कि इन्द्रादि देवता युद्धार्थ आ रहे हैं। अतः अन्य असुरों से घिर गया है। जैसे मेरु की चोटी परिपूर्ण दृष्टिगोचर होती है, यह महातेजस्वी विश्वकर्मा का पुत्र महान् आकार वाला दृष्टिगोचर हो रहा है।'' तब महेन्द्र ने वृत्रासुर को तथा वृत्रासुर ने महेन्द्र को देखा। इस प्रकार से देवता तथा दानवों ने भी परस्परतः एक दूसरे को देखा तथा संगठित हो गये। तब देवता तथा असुर एक दूसरे की प्रतिस्पर्द्धा में अतिभीषण गर्जना करने लगे।।१५-२०।।

वादित्राणि च भीमानिवाद्यमानानि सर्वशः। श्रूयन्तेऽत्र गभीराणिसुरासुरसमागमे॥२१॥
वाद्यमानेषु तूर्येषु ते सर्वे त्वरयान्विताः। अनेकः शस्त्रसंघातैर्जघ्नुरन्योन्यमोजसा॥२२॥
तदा देवासुरे युद्धे त्रैलोक्यं सचराचरम्। भयेन महता युक्तं बभूव गतचेतनम्॥२३॥

छेदिताः स्फोटिताश्चैव केचिच्छस्त्रैर्द्विधा कृताः।
नाराचैश्च तथा केचिच्छस्त्रास्त्रैः शकलीकृताः॥२४॥

भल्लैश्चेरुर्हताः केचिद्व्यंगभूता दिवौकसः। रश्मयो मेघसंभूताः प्रकाशंतेनभस्स्विव॥२५॥

इस भीषण देवासुर संग्राम के लिये भयंकर रणवाद्य बजने लगे। चतुर्दिक् इन वाद्यों की गंभीर ध्वनि होने के कारण सबके कान भी प्रतिध्वनित हो रहे थे। तूर्य भी बजाये जाने लगे। इसके साथ ही दोनों पक्षीय योद्धागण विभिन्न अस्त्र-शस्त्र से तेजी से एक दूसरे से युद्धरत हो गये। इस सुरासुर युद्ध के कारण उस समय समस्त त्रैलोक्य महाभय से भयभीत होकर चेतनाहीन प्रतीत हो रहा था। दोनों पक्ष के योद्धाओं में से कोई-कोई छेदित, कोई स्फोटित हुआ। कोई दो टुकड़ों में कट गया। कोई-कोई नाराच आदि के प्रहार से खण्ड-खण्ड हो गया। कोई-कोई अंग-भंग कटने से हताहत हो गया। देवसैन्य वाले भी कोई-कोई विकलाङ्ग हो गये। तब अस्त्र-शस्त्रों से रणभूमि ऐसी ढंक गई, मानों श्रावण में मेघ से गगन ढंक गया हो!।।२१-२५।।

शिरांसि पतितान्येव बहूनि च नभस्तलात्। नक्षत्राणीव च यथामहाप्रलयसंकुलम्॥२६॥
प्रवर्तितं मध्यदेशे सर्वभूतक्षयावहम्। शक्रेण सह संग्रामं चकार नमुचिस्तदा॥२७॥

वज्रेण जघ्ने तरसा नमुचिं देवराट् स्वयम्।
न रोमैकं च त्रुटितं नमुचेरसुरस्य च॥२८॥
वज्रेणापि तदा सर्वे विस्मयं परमं गताः। असुराश्च सुराश्चैव महेन्द्रो व्रीडितस्तदा॥२९॥
गदया नमुचिं जघ्ने गदा सापि विचूर्णिता। नमुचेरङ्गलग्नाऽपि पपात वसुधातले॥३०॥
तथा शूलेन महता तं जघान पुरंदरः। तच्छूलं शतधा चूर्णं नमुचेरङ्गमाश्रितम्॥३१॥
एवं तं विबिधैः शस्त्रैराजघान सुरारिहा। प्रहस्यमानो नमुचिर्न जघान पुरंदरम्॥३२॥

जैसे महाप्रलय में नक्षत्र भूपतित होते हैं, तदनुरूप वीरों के अनेक मुण्ड कट कर धरती पर गिरने लगे। इस प्रकार मध्य देश में सर्वभूत भयंकर महासमर प्रवर्त्तित हो गया। तब दानव नमुचि इन्द्र से युद्ध करने लगा। देवराज ने वज्र से नमुचि पर प्रहार किया, लेकिन उससे तो नमुचि का एक रोम भी नहीं उखड़ सका। तब सुर-असुर सभी को इस घटना से विस्मय होने लगा। महेन्द्र लज्जित हो गये। तब उन्होंने गदा से नमुचि पर प्रहार किया, तथापि गदा नमुचि के अंग से लगते ही चूर्ण होकर पृथिवी पर गिर गयी। तब इन्द्र ने उस पर शूल से प्रहार किया। नमुचि के अंग का स्पर्श होते ही शूल शतधा चूर्ण हो गया। असुरघाती इन्द्र ने इस प्रकार से नाना अस्त्रों से नमुचि को आहत किया, तथापि नमुचि ने इन्द्र पर एक भी आघात नहीं किया था। वह केवल हंसता रहता।।२६-३२।।

तूष्णींभूतस्तदा चेन्द्रश्चिंतयापरयायुतः। किं कार्यंकिमकार्यं वा इतीन्द्रोनाविदत्तदा॥३३॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र महायुद्धे महाभये। जाता नभोगता वाणी इन्द्रमुद्दिश्य सत्वरम्॥३४॥
जह्येनमद्याशु महेन्द्र! दैत्यं दिवौकसां घोरतरं भयावहम्।
फेनेन चैवाशु महासुरेन्द्रमपां समीपेन दुरासदेन॥३५॥
अन्येन शस्त्रेण च आहतोऽसौ वध्यः कदाचिन्न भवत्ययन्तु।
तस्माच्च देवेश! वधार्थमस्य कुरु प्रयत्नं नमुचेर्दुरात्मनः॥३६॥

तब इन्द्र मौनी होकर अत्यन्त चिन्तित से हो गये। अधिक सोचने पर भी वे क्या करना चाहिये, यह निश्चय नहीं कर सके। तभी इस भीषण महायुद्ध में इन्द्र के लिए एक आकाशवाणी उत्थित हो गयी। इस वाणी का तात्पर्य इस प्रकार था—हे इन्द्र! इस स्वर्ग के निवासी लोगों के लिए भयानक महादैत्य को जल के समीप स्थित कड़े फेन द्वारा शीघ्र निहत करो। यह महासुर इसके अतिरिक्त यह महासुर अन्य अस्त्रों द्वारा कदापि मृत नहीं होगा। हे देवेन्द्र! तुम इस दुरात्मा नमुचि के वधार्थ सन्नद्ध हो जाओ।।३३-३६।।

निशम्य वाचं परमार्थयुक्तां दैवीं सदानंदकरीं शुभावहाम्।
चक्रे परं यत्नवतां वरिष्ठो गत्वोदधेः पारमनन्तवीर्यः॥३७॥
तत्रागतं समीक्ष्याथ नमुचिः क्रोधमूर्च्छितः। हत्वा शूलेन देवेन्द्रं प्रहसन्निदमब्रवीत्॥३८॥
समुद्रस्य तटः कस्मात्सेवितःसुरसत्तम। विहाय रणभूमिं च त्यक्तशस्त्रोऽभवद्भवान्॥३९॥
त्वदीयेनैव वज्रेण किं कृतं मम दुर्मते!॥४०॥
तथान्यानि च शस्त्राणि अस्त्राणि सुबहूनि च। गृहीतानि पुरामंद हंतुंमामेवचाधुना॥४१॥

किं करिष्यसिमांहंतुंयुद्धायसमुपस्थितः। केन शस्त्रेण रे मंद योद्धुमिच्छसिसंयुगे॥४२॥
त्वां घातयामि चाद्यैवयदितिष्ठसि संयुगे। नो चेद्गच्छ मया मुक्तश्चिरं जीवसुखीभव॥४३॥

अनन्तवीर्य तथा यत्नतत्पर लोगों में वरिष्ठ वासव इन्द्र तब इस परमार्थयुक्त शुभप्रदा आनन्दप्रदायिनी दैववाणी को सुनकर समुद्र तीर पर गये। नमुचि वहां इन्द्र को आया देखकर क्रोध से जल-भुन गया तथा शूलास्त्र (बरछी) से इन्द्र को आहत करके हंसते-हंसते कहने लगा—"हे सुरश्रेष्ठ! रणभूमि से भाग कर तथा अस्त्र-शस्त्र त्याग कर समुद्र के तट पर क्यों शरण लिया है? हे दुर्मति! तुम वज्र से मेरा क्या बिगाड़ सके। हे मन्दबुद्धि! पहले तुमने मेरा वध करने हेतु वज्र के अतिरिक्त भी नाना अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग किया था। अब मेरे विनाशार्थ क्या करने की इच्छा है? युद्धार्थ यहां आये हो? हे मन्द व्यक्ति! किस अस्त्र से मेरे साथ युद्ध करोगे? यदि तुम युद्धभूमि से न भागो, तब मैं तुम्हारा वध करूंगा। यदि युद्ध नहीं करना चाहते, तब भाग जाओ। इससे मुझसे बच कर तुम चिरंजीवी तथा सुखी हो जाओगे।।३७-४३।।

एवं स गर्वितं तस्य वाक्यमाहवशोभिनः। श्रुत्वा महेन्द्रोऽपि रुषा जगृहे फेनमद्भुतम्॥४४॥
फेन करस्थं दृष्ट्वा तु असुरा जहसुस्तदा॥४५॥
क्षयं गतानि चास्त्राणि फेनेनैव पुरन्दरः। हंतुमिच्छति मामद्य शतक्रतुरुदारधीः॥४६॥
एवं प्रहस्य नमुचिरवज्ञाय पुरंदरम्। सावज्ञं पुरतस्तत्थौ नमुचिर्दैत्यपुंगवः॥४७॥
तदैव तं स फेनेन शीघ्रमिन्द्रो जघान ह॥४८॥
हते तु नमुचौदेवाः सर्वे चैव मुदान्विताः। साधुसाध्वितिशब्देनऋषयश्चाभ्यपूजयन्॥४९॥

युद्धार्थ उद्यत नमुचि का यह कथन सुनकर महेन्द्र ने जलधि से उन अद्भुद् फेन को ग्रहण किया। इन्द्र के हाथ में फेन देखकर वह असुर हंसने लगा। नमुचि ने कहा—"अस्त्र-शस्त्र व्यर्थ हो गये। अब १०० यज्ञ सम्पन्न करने वाला महाबुद्धिमान इन्द्र फेन से मेरा विनाश करने हेतु आया है?" यह कहकर दैत्यश्रेष्ठ नमुचि ने इन्द्र को अवज्ञाभरी दृष्टि से देखा तथा वहीं बैठा रहा। अब इन्द्र ने विलम्ब किये बिना उसी समय नमुचि का फेन द्वारा वध कर दिया। नमुचि का वध हो जाने से देवता मुदित हो गये। ऋषियों ने भी साधुवाद द्वारा इन्द्र का अभिनंदन किया।।४४-४९।।

तदा सर्वे जयंप्राप्ताहत्वानमुचिमाहवे। दैत्यास्तेकोपसंरब्धायोद्धुकामामुदान्विताः॥५०॥
पुनः प्रववृते युद्धं देवानां दानवैः सह। शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैः परस्परवधैषिभिः॥५१॥
यदा ते ह्यसुरा देवैः पातिताश्च पुनःपुनः। तदा वृत्रो महातेजाः शतक्रतुमुपाव्रजत्॥५२॥
वृत्रं दृष्ट्वा तदा सर्वे ससुरासुरमानवाः। भयेन महताविष्टाः पतिता भुवि शेरते॥५३॥
एवं भीतेषु सर्वेषु सुरसिद्धेषु वै तदा। इन्द्रश्चैरावणारूढो वज्रपाणिः प्रतापवान्॥५४॥
छत्रेण धियमाणेन चामरेण विराजितः। तदा सर्वैः समेतो हि लोकपालैः प्रतापितः॥५५॥
वृत्रं विलोक्य ते सर्वे लोकपाला महेश्वराः।
भयभीताश्च ते सर्वे शिवं शरणमन्वयुः॥५६॥

नमुचि की मृत्यु से देवता विजयी हो गये। यह देख दैत्य क्रोध में भरकर युद्धार्थ उत्साह पूर्वक आये। अब देवासुर संग्राम पुनः आरम्भ हो गया। परस्पर एक दूसरे का वध करने की इच्छा के साथ शस्त्रास्त्र की वर्षा होने लगी। जब देवता असुरों को पुनः-पुनः भूपतित करने लगे, तब महातेजस्वी वृत्रासुर देवगण की ओर आक्रामक होकर दौड़ पड़ा। सुर-असुर-नर इत्यादि सभी वृत्रासुर को देखकर भूमि पर भय के कारण गिरने लगे! देवता तथा सिद्धों के इस प्रकार भयभीत होने पर इन्द्र ऐरावत पर वज्र लेकर विराजमान हो गये। उनके मस्तक पर छत्र लगा था। पार्श्व में चामर व्यजन हो रहा था। समस्त लोकपाल भी उनकी सहायतार्थ आये थे। ये सभी वृत्र को देखते ही भयभीत हो गये। इन सबने तभी शिव की शरण ग्रहण किया!।।५०-५६।।

मनसाचिन्तयन्सर्वे शंकरं लोकशंकरम्। लिंगं संपूज्य विधिवन्महेन्द्रो जयकामुकः।।५७।।
गुरुणा विदितः सद्यो विश्वासेन परेण हि। उवाच च तदा शक्रं बृहस्पतिरुदारधीः।।५८।।

सभी देवता-लोकपाल आदि भगवान् लोकशंकर शंभु का मन ही मन चिन्तन करने लगे। महेन्द्र ने जय के लिए बृहस्पति के आदेशानुसार परम विश्वास के साथ विधिवत-लिङ्गपूजा सम्पन्न किया था।।५७-५८।।

बृहस्पतिरुवाच

कार्तिके शुक्लपक्षे तु मंदवारे त्रयोदशी। समग्रा यदि लभ्येत सर्वप्राप्त्यै न संशयः।।५९।।
तस्यां प्रदोषसमये लिंगरूपी सदाशिवः। पूजनीयो हि देवेन्द्र सर्वकामार्थसिद्धये।।६०।।
स्नात्वा मध्याह्नसमयेतिलामलकसंयुतम्। शिवस्य चार्चनंकुर्याद्गंधपुष्पफलादिभिः।।६१।।
पश्चात्प्रदोषवेलायां स्थावरंलिंगमर्च्चयेत्। स्वयंभुस्थाप्तिं चापिपौरुषेयमपौरुषम्।।६२।।
जने वा विजने वापि अरण्ये वा तपोवने। तल्लिंगमर्च्चयेद्भक्त्या प्रदोषे तु विशेषतः।।६३।।
ग्रामाद् बहिः स्थितं लिंगं ग्रामाच्छतगुणं फलम्।
बाह्याच्छतगुणं पुण्यमरण्ये लिंगमद्भुतम्।।६४।।
आरण्याच्छतगुणं पुण्यमर्चितंपार्वतंतथा। पार्वताच्चैव लिंगाच्चफलंचायुतसंज्ञितम्।
तपोवनाश्रितं लिंगं पूजितं वा महाफलम्।।६५।।

तब बृहस्पति ने इन्द्र से कहा था—कार्त्तिक शुक्लपक्ष के शनिवार को पड़ने वाली त्रयोदशी के दिन शिव प्राप्ति का अपूर्व संयोग है। इसमें सन्देह नहीं है। हे देवेन्द्र! इस दिन प्रदोषकाल में सर्वसिद्धि हेतु लिंगात्मक सदाशिव की पूजा करनी चाहिये। मध्याह्न में स्नानोपरान्त गन्ध-पुष्प-फल द्वारा तिल एवं आमलकी से शिवार्चना करे। प्रदोष वेला के समय पुनः स्थावर लिंग की पूजा करे। लोकालय में, निर्जन में, अरण्य किंवा तपोवन में पुरुषों द्वारा स्थापित अथवा अपौरुषेय शिवलिंग की प्रदोष में भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। इससे महाफल प्राप्त होता है। ग्राम के बाहर जो लिंग स्थापित हैं, उसका पूजन फल ग्राम के अन्दर लिंग पूजन की तुलना से सौ गुना अधिक मिलेगा। अरण्य की तुलना में पर्वत स्थित शिवार्चना का फल सौ गुना है। पर्वतस्थ लिंग से १००० गुना अधिक फल तपोवन स्थित लिंग पूजन से प्राप्त होता है।।५९-६५।।

तस्मादेतद्विभागेन शिवपूजनार्चनं बुधैः। कर्तव्यं निपुणत्वेन तीर्थस्नानादिकं तथा।।६६।।
पंचपिंडान्समुद्धृत्य स्नानमात्रेण शोभनम्। कूपे स्नानं प्रकुर्वीत उद्धृतेन विशेषतः।।६७।।

इसलिए जो विज्ञ व्यक्ति हैं, वे विभागक्रम से तथा निपुणता के साथ शिवार्चना तथा तीर्थस्नान सम्पन्न करें। यदि कूप जल से स्नान करना हो, वहां से ५ मृत्तिका पिण्ड निकाले। यदि तालाब में स्नान करे तब वहां से १० मृत्तिका पिण्ड निकाले। तब स्नान करे। नदी का स्नान उत्तम है। महानदी स्नान तो अत्यन्त विशिष्ट है।।६६-६७।।

तडागे दश पिंडांश्च उद्धृत्यस्नानमाचरेत्। नदीस्नानंविशिष्टं च महानद्यांविशेषतः॥६८॥
सर्वेषामपि तीर्थानां गंगास्नानं विशिष्यते। देवखाते च तत्तुल्यं प्रशस्तंस्नानमाचरेत्॥६९॥
प्रदीपानां सहस्त्रेण दीपनीयः सदाशिवः। तता दीपशतेनापि द्वात्रिंशद्दीपमालया॥७०॥
घृतेन दीपयेद्दीपाञ्छिवस्य परितुष्टये। तथा फलैश्च दीपैश्च नैवेद्यैर्गंधधूपकैः॥७१॥
उपचारैः षोडशभिर्लिंगरूपी सदाशिवः। पूज्यः प्रदोषवेलायां नृभिः सर्वार्थसिद्धये॥७२॥
प्रदक्षिणं प्रकुर्वीत शतमष्टोत्तरं तथा। नमस्कारान्प्रकुर्वीत तावत्संख्यान्प्रयत्नतः॥७३॥
प्रदक्षिणनमस्कारैः पूजनीयः सदाशिवः। नाम्नां शतेन रुद्रोऽसौस्तवनीयो यथाविधि॥७४॥

सभी तीर्थों की तुलना में गंगास्नान और भी श्रेष्ठ है। देवखात में स्नान (मन्दिर के निकट के तालाब) भी गंगास्नानवत् ही है। हजारों दीपक जलाकर शिवलिंग को उद्भासित करे। इस प्रकार १०० दीप, ३२ दीपमाला तथा शिव की प्रसन्नता हेतु घृतदीप द्वारा भी शिवालय को आलोकित करे। इस प्रकार दीप, नाना फल, नैवेद्य, गन्धधूपादि षोडशोपचार द्वारा प्रदोष काल में सदाशिव भगवान् की पूजा मनुष्य के लिए सर्वार्थ सिद्धिदायक है। तदनन्तर १०८ प्रदक्षिणा तथा इतना ही प्रणाम करना चाहिये। तत्पश्चात् इन भगवान् शिव का स्तव उंनके १०० नामों से करे।।६८-७४।।

नमो रुद्राय भीमाय नीलकण्ठाय वेधसे। कपर्द्दिने सुरेशाय ब्योमकेशाय वै नमः॥७५॥
वृषध्वजाय सोमाय नीलकण्ठाय वै नमः। दिगंबराय भर्गाय उमाकांतकपर्द्दिने॥७६॥
तपोमयाय व्याप्ताय शिपिविष्टाय वै नमः। व्यालप्रियाय व्यालायव्यालानांपतयेनमः॥७७॥
महीधराय व्याघ्राय पशूनां पतये नमः। त्रिपुरांतकसिंहाय शार्दूलोग्ररवाय च॥७८॥
मीनाय मीननाथाय सिद्धाय परमेष्ठिने। कामांतकाय बुद्धायबुद्धीनां पतये नमः॥७९॥
कपोताय विशिष्टाय शिष्टाय परमात्मने। वेदाय वेदबीजाय देवगुह्याय वै नमः॥८०॥
दीर्घाय दीर्घदीर्घाय दीर्घार्घाय महाय च। नमो जगत्प्रतिष्ठाय व्योमरूपाय वै नमः॥८१॥

वे नाम इस प्रकार हैं—रुद्र, भीम, नीलकण्ठ, वेधा, कपर्दी, सुरेश, व्योमकेश, वृषध्वज, नीलकण्ठ (नीलकण्ठ द्वितीय बार कहा गया) दिगम्बर, भर्ग, उमाकान्त कपर्दी (यह भी द्वितीय बार कहा गया), तमोमय, व्याप्त, शिपिविष्ट, व्यालप्रिय तथा व्यालपति एवं व्याल को प्रणाम! महीधर, व्याघ्र, पशुपति को प्रणाम! त्रिपुरान्तक, सिंह एवं शार्दूलवत् उग्ररवकारी, मीन, मीननाथ, कामान्तक, सिद्ध, परमेष्ठि, बुद्ध, बुद्धिपति को प्रणाम! कपोत, विशिष्ट, शिष्ट, परमात्मा, वेद, वेदबीज, वेदगुह्य को प्रणाम! दीर्घ, दीर्घ से भी दीर्घ, दीर्घार्द्ध, मह को प्रणाम! जगत् प्रतिष्ठ, व्योमरूप को प्रणाम!।।७५-८१।।

गजासुरविनाशाय ह्यंधकासुरभेदिने। नीललोहितशुक्लाय चण्डमुण्डप्रियाय च॥८२॥

भक्तिप्रियाय देवाय ज्ञानज्ञानाव्ययाय च। महेशाय नमस्तुभ्यं महादेवहराय च॥८३॥

हे गजासुर विनाशक, अंधकासुर हन्ता, नीललोहित, शुक्ल, चण्ड-मुण्डप्रिय, भक्तिप्रिय, देव ज्ञानाज्ञान अव्यय, महेश! आपको प्रणाम! हे महादेव हर! आपको प्रणाम!।।८२-८३।।

त्रिनेत्राय त्रिवेदाय वेदांगाय नमोनमः। अर्थाय अर्थरूपाय परमार्थाय वै नमः॥८४॥
विश्वरूपाय विश्वाय विश्वनाथाय वै नमः। शंकराय च कालाय कालावयवरूपिणे॥८५॥
अरूपाय च सूक्ष्माय सूक्ष्मसूक्ष्माय वै नमः। श्मशानवासिने तुभ्यं नमस्ते कृत्तिवाससे॥८६॥
शशांकशेखरायैव रुद्रविश्वाश्रयाय च। दुर्गाय दुर्गसाराय दुर्गावयवसाक्षिणे॥८७॥
लिंगरूपाय लिंगाय लिंगानां पतये नमः। नमः प्रणवरूपाय प्रणवार्थाय वै नमः।
नमोनमः कारणकारणाय ते मृत्युंजयायात्मभवस्वरूपिणे॥८८॥
त्रियम्बकायासितकंठ भर्ग! गौरीपते! सकलमंगलहेतवे नमः॥८९॥

त्रिनेत्र, त्रिवेद, वेदांग, अर्थ, अर्थरूप, परमार्थ, विश्वरूप, विश्व, विश्वनाथ, शंकर, काल, कालावयव, अरूप, सूक्ष्म, सूक्ष्म से सूक्ष्म को प्रणाम! हे देव! आप श्मशानवासी, कृत्तिवास हैं, आप शशांक शेखर, रुद्र, विश्वाश्रय, दुर्ग, दुर्गसार, दुर्गा वयवसाक्षी, लिंगरूप, लिंगपति हैं। आपको प्रणाम! आप प्रणवरूप, मृत्युञ्जय, आत्मभवरूप, त्र्यम्बक, असितकण्ठ, भर्ग, गौरीपति तथा समस्त मंगल के कारण हैं। आपको बारम्बार प्रणाम है।।८४-८९।।

बृहस्पतिरुवाच

नाम्नांशतं महेशस्य उच्चार्यं व्रतिना तदा। प्रदक्षिणनमस्कारैरेतत्संख्यैः प्रयत्नतः।
कार्यं प्रदोषसमये तुष्ट्यर्थं शंकरस्य च॥९०॥
एवं व्रतं समुद्दिष्टं तव शक्र! महामते। शीघ्रं कुरु महाभाग पश्चाद्युद्धं कुरु प्रभो॥९१॥
शंभो प्रसादात्सर्वं ते भविष्यति जयादिकम्॥९२॥
वृत्रो ह्ययं महातेजा दैतेयस्तपसापुरा। शिवं प्रसादयामास पर्वते गंधमादने॥९३॥
नाम्ना चित्ररथो राजा वनं चित्ररथस्य तत्। एतज्जानीहि भो इन्द्र शिवपुर्याः समीपतः॥९४॥
यस्मिन्वने महाभाग न संति च षड्ऊर्मयः। तस्माच्चैत्ररथं नाम वनं परममंगलम्।
तस्य राज्ञः शिवेनैव दत्तं यानं महाद्भुतम्॥९५॥
कामगं किंकिणीयुक्तं सिद्धचारणसेवितम्। गंधर्वैरप्सरोयक्षैः किंनरैरुपशोभितम्॥९६॥

बृहस्पति कहते हैं—व्रती व्यक्ति महेश्वर का शतनाम उच्चारण करें तथा असंख्य प्रदक्षिणा तथा प्रणाम द्वारा शंकर को प्रसन्न करने हेतु प्रदोष काल में यत्नतः अर्चना करें। हे इन्द्र! यह व्रत तुम्हारे लिए ही कहा है। हे महाभाग! पहले इस व्रताचरण को करके तब युद्धार्थ प्रस्तुत हो जाओ। शम्भु की कृपा से तुमको विजयलाभादि सर्व अभीष्ट सिद्धि होगी। जिस महातेजस्वी वृत्रासुर को देख रहे हो, इसने प्राचीन काल में गन्धमादन पर्वत पर तपस्या द्वारा शिव की प्रसन्नता को अर्जित किया था। चित्ररथ वन राजा चित्ररथ द्वारा अधिकृत है। हे इन्द्र! यह भवन

शिवपुरी के पास स्थित है। हे महाभाग! इस वन में षड्ऊर्मि नहीं है। (षड्ऊर्मि– मानव अस्तित्व की ६ लहरें। आप्टे शब्दकोश के अनुसार) अतएव चित्ररथ वन परम मंगल का निकेतन है। भगवान् शिव ने राजा चित्ररथ को एक अद्भुद् कामचारी (इच्छानुरूप चलने वाला) यान दिया था। इसमें किंकिणीयां बजती रहती थीं। यह सिद्धचारण सेवित, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, किन्नरगण द्वारा उपशोभित था।।९०-९६।।

ततस्तेनैव यानेन पृथिवीं पर्यटन्पुरा। तथा गिरीशमुख्यांश्च द्वीपांश्च विविधांस्तथा॥९७॥
एकदा पर्यटन्नाजा नाम्ना चित्ररथो महान्। कैलाशमागतस्तत्र स ददर्श पराद्भुतम्॥९८॥
सभातलं महेशस्य गणैश्चैव विराजितम्। अर्द्धांगलग्नया देव्या शोभितं च महेश्वरम्॥९९॥
निरीक्ष्य देव्या सहितं सदाशिवं देव्यान्वितं वाक्यमिदं बभाषे॥१००॥
वयं च शंभो! विषयान्विताश्च मंत्र्यादयः स्त्रीजिताश्चापि चान्ये।
न लोकमध्ये वयमेव चाज्ञाः स्त्रीसेवनं लज्जया नैव कुर्मः॥१०१॥
एतद्वाक्यं निशम्याथ महेशः प्रहसन्निव। उवाच न्यायसंयुक्तं सर्वेषामपि शृण्वताम्॥१०२॥
भयं लोकापवादाच्च सर्वेषामपि नान्यथा। ग्रासितं कालकूटं च सवषामपि दुर्जरम्॥१०३॥
तथापि उपहासो मे कृतो राज्ञा हि दुर्जरः। तं चित्ररथमाहूयगिरिजा वाक्यमब्रवीत्॥१०४॥

राजा चित्ररथ इस यानवाहन से प्रधान-प्रधान पर्वत तथा विविध द्वीपादि का पर्यटन करता था। इस प्रकार उसने समस्त पृथिवी का पर्यटन किया था। महाराज चित्ररथ पर्यटन करते-करते एक बार कैलास आये। उन्होंने वहां महेश्वर के परम अद्भुत समातल का निरीक्षण किया। वे देखते हैं कि वहां सभा में असंख्य प्रमथ विराजित थे। वहां अर्द्धाङ्ग संगिनी देवी के साथ महेश्वर शोभित हो रहे थे। चित्ररथ देवी के साथ सदाशिव को देखकर यह कहने लगा—"हे शम्भु! मैं तथा मेरे मन्त्रीगण ये सब विषयों में आसक्त हैं। इसके अतिरिक्त अन्य और स्त्रीजित् व्यक्ति भी हैं। मैं अज्ञ होकर भी लोकलाज के कारण स्त्री सेवा नहीं करता।" महेश ने यह श्रवण करके अन्य सब को यह सब सुनाते हुये यह कहा—"लोकापवाद से तो सभी डरते हैं, यह निश्चित है। तथापि सबसे दुर्जय कालकूट विष का मैंने ग्रास कर लिया, तब भी राजा चित्ररथ मेरा उपहास कर रहे हैं!" तब गिरिजा ने चित्ररथ को सम्बोधित करके कहा।।९७-१०४।।

गिरिजोवाच

रे दुरात्मन्कथं त्वज्ञ शंकरश्चोपहासितः। मया सहैव मंदात्मन्द्रक्ष्यसेकर्मणःफलम्॥१०५॥
साधूनां समचित्तानामुपहासं करोति यः।
देवो वाप्यथवा मर्त्यः स विज्ञेयोऽधमाधमः॥१०६॥
एते मुनींद्राश्च महानुभावस्तथा ह्यमी ऋषयो वेदगर्भाः।
तथैव सर्वे सनकादयो ह्यमी अज्ञाश्च सर्वे शिवमर्चयन्ते?॥१०७॥
रे मूढ सर्वेषु जनेष्वभिज्ञस्त्वमेक एवाद्य न चापरे जनाः।
तस्मादभिज्ञं हि करोमि दैत्यं देवैर्द्विजैश्चापि बहिष्कृतं त्वाम्॥१०८॥

देवी कहती हैं—"हे मूर्ख दुरात्मा! तुम मेरे हितरूप शंकर का उपहास क्यों कर रहे हो? हे मन्दबुद्धि! इस दुष्कर्म का फल तुमको अभी प्राप्त होगा। देवता हो अथवा मनुष्य हो, जो व्यक्ति समचेता साधुओं का उपहास करता है, वह अधम से भी अधम है। जितने महानुभाव मुनीन्द्र तथा वेदवादी शौनकादि ऋषिगण हैं, क्या सभी अज्ञ हैं? अतएव तुमको देव-द्विज बहिष्कृत एक अभिज्ञ दैत्य बना देती हूं।।१०५-१०८।।

एवं शप्तस्तया देव्या भवान्या राजसत्तमः। राजा चित्ररथः सद्यः पपातसहसादिवः॥१०९॥
आसुरीं योनिमासाद्य वृत्रोनाम्नाऽभवत्तदा।
तपसा परमेणैवत्वष्ट्रासंयोजितः क्रमात्॥११०॥
तपसा तेन महता अजेयो वृत्र उच्यते। तस्माच्छंभुं समभ्यर्च्य प्रदोषेविधिनाऽधुना॥१११॥
जहि वृत्रं महादैत्यं देवानां कार्यसिद्धये। गुरोस्तद्वचनं श्रुत्वा उवाचाथ शतक्रतुः।
सोद्यापनविधिं ब्रूहि प्रदोषस्य च मेऽधुना॥११२॥

इस प्रकार से राजाओं में श्रेष्ठ चित्ररथ देवी भवानी से शाप पाकर सहसा स्वर्ग से पतित होकर आसुरी योनि में पड़कर वृत्र कहलाया। वृत्रासुर विश्वकर्मा के तपः प्रभाव से विश्वकर्मा के पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। उसने महान् तपस्या द्वारा सर्वत्र अजेयत्व भी प्राप्त किया। तदनन्तर अब प्रदोष व्रताचरण यथाविधि करके महादैत्य वृत्र का विनाश करो। गुरु का वचन सुनकर इन्द्र ने कहा—"आप उद्यापन विधि के साथ प्रदोष पूजा का वर्णन करिये"।।१०९-११२।।

बृहस्पतिरुवाच

कार्तिके मासि संप्राप्ते मंदवारे त्रयोदशी। संपूर्तिस्तु भवेत्तत्र संपूर्णव्रतसिद्धये॥११३॥
वृषभो राजतः कार्यः पृष्ठे तस्य सुपीठकम्। तस्योपरिन्यसेद्देवमुमाकातंत्रिलोचनम्॥११४॥
पंचवक्त्रं दशभुजमर्द्धाङ्गे गिरिजां सतीम्। एवं चोमामहेशं च सौवर्णं कारयेद्बुधः॥११५॥
सवृषं ताम्रपत्रेच वस्त्रेण परिगुंठिते। स्थापयित्वोमया सार्द्धं नानाभोगसमन्वितम्॥११६॥
विधिना जागरं कुर्याद्रात्रौ श्रद्धासमन्वितः। पंचामृतेन स्नपनं कार्यमादौप्रयत्नतः॥११७॥

बृहस्पति कहते हैं—कार्तिक मास की शुक्ला त्रयोदशी जब शनिवासरी हो, तब इस सम्पूर्ण व्रत को अंगों के साथ करना होगा। इसमें एक रजतमय वृष प्रस्तुत करे। उस पर सुन्दर पीठ रखे। उसके ऊपर भगवान् उमाकान्त की मूर्त्ति स्थापित करे। गिरिजा उनकी पत्नी अर्द्धाङ्गिनी हैं। अभिज्ञ व्यक्ति इस प्रकार से स्वर्णमय उमा-महेश्वर प्रस्तुत करे। महेश त्रिलोचन हों। वे पंचमुख तथा १० भुज हों। वृष के साथ उमा-महेश्वर को वस्त्र से आवृत ताम्रपात्र में विविध भोगवस्तु के साथ स्थापित करके विधिमत रात्रि जागरण करे। तदनन्तर श्रद्धा के साथ पञ्चामृत द्वारा सयत्न स्नान कराये।।११३-११७।।

गोक्षीरस्नानं देवेश! गोक्षीरेण मयाकृतम्। स्नपनं देवदेवेश गृहाण परमेश्वर!॥११८॥
दध्ना चैव मयादेव स्नपनं क्रियतेऽधुना। गृहाण च मया दत्तं सुप्रसन्नो भवाद्य वै॥११९॥
सर्पिषा च मया देव स्नपनं क्रियतेऽधुना। गृहाण श्रद्धयादत्तं तव प्रीत्यर्थमेव च॥१२०॥

इदं मधु मया दत्तं तव प्रीत्यर्थमेव च। गृहाण त्वं हि देवेश मम शान्तिप्रदो भव॥१२१॥
सितया देवदेवेश स्नपनं क्रियतेऽधुना। गृहाण श्रद्धया दत्तां सुप्रसन्नो भव प्रभो॥१२२॥
एवं पंचामृतेनैव स्नपनीयो वृषध्वजः। पश्चादर्घ्यं प्रदातव्यं ताम्रपात्रेणधीमता।
अनेनैव च मंत्रेण उमाकान्तस्य तुष्टये॥१२३॥

तदनन्तर कहे—मैं गोक्षीर से आपको दुग्धस्नान कराता हूं (**दुग्धमन्त्र**)। आप इसे ग्रहण करें।

दधिस्नानमन्त्र—हे देव! अब मैं आपको दधि स्नान कराता हूं। आप इस स्नानीय को ग्रहण करें। तदनन्तर मुझ पर प्रसन्न होइये।

घृत स्नान मन्त्र—हे देव! मैं घृत द्वारा आपको स्नान कराता हूं। आपकी प्रसन्नता हेतु मैं जो कुछ सश्रद्ध भाव से अर्पित कर रहा हूं, उसे ग्रहण करिये।

मधुदान मन्त्र—हे देवेश! आपकी प्रसन्नता हेतु मधु प्रदान करता हूं। इसे ग्रहण करके आप मुझ पर प्रसन्न हो जायें।

शर्करादान मन्त्र—हे देवेश! मैं यह शर्करा आपको प्रदान करता हूं। इससे स्नान करें। आप मेरे द्वारा श्रद्धापूर्वक दी गयी वस्तु से प्रसन्न हो जायें।

इस प्रकार पञ्चामृत द्रव्य द्वारा वृषभध्वज को स्नान करायें। तदनन्तर ताम्रपात्र में अर्घ्य स्थापन करके उनकी प्रसन्नतार्थ नीचे लिखे मन्त्र द्वारा अर्घ्यदान करो॥११८-१२३॥

अर्घ्योऽसि त्वमुमाकान्त अर्घेणानेन वै प्रभो।
गृहाणत्वं मया दत्तं प्रसन्नो भवशंकर॥१२४॥
मया दत्तं च ते पाद्यं पुष्पगन्धसमन्वितम्। गृहाण देवदेवेश प्रसन्नो वरदो भव॥१२५॥
विष्टरं विष्टरेणैव मया दत्तं च वै प्रभो। शांत्यर्थं तव देवेश वरदो भव मे सदा॥१२६॥
आचमनीयं मया दत्तं तव विश्वेश्वर प्रभो। गृहाण परमेशान तुष्टो भव ममाद्य वै॥१२७॥
ब्रह्मग्रन्थिसमायुक्तं ब्रह्मकर्मप्रवर्तकम्। यज्ञोपवीतं सौवर्णं मया दत्तं तव प्रभो॥१२८॥
सुगन्धं चन्दनं देव! मया दत्तं च वै प्रभो!।
भक्त्या परमया शंभो! सुगन्धं कुरु मां भव!॥१२९॥
दीपं हि परमं शंभो घृतप्रज्वलितं मया। दत्तं गृहाण देवेश मम ज्ञानप्रदो भव॥१३०॥
दीपं विशिष्टं परमं सर्वौषधिविजृंभितम्। गृहाण परमेशान मम शान्त्यर्थमेव च॥१३१॥
दीपावलिं मया दत्तां गृहाण परमेश्वर। आरार्तिकप्रदानेन मम तेजःप्रदो भव॥१३२॥
फलदीपादिनैवेद्यतांबूलादिक्रमेण च। पूजनीयो विधानज्ञैस्तस्यां रात्रौ प्रयत्नतः॥१३३॥
पश्चाज्जागरणं कार्यं गृहे वा देवतालये। वितानमंडपं कृत्वा नानाश्चर्यसमन्वितम्।
गीतवादित्रनृत्येन अर्चनीयः सदाशिवः॥१३४॥

अर्घ्यदान मन्त्र है—हे प्रभो! उमाकान्त! मैं इस अर्घ्य से आपकी अर्चना कर रहा हूं। हे शंकर! आप इसे

ग्रहण करके प्रसन्न हो जायें। हे देवदेवेश! यह पुष्प-गन्धादि-पाद्य आपको अर्पण किया। आप इसे ग्रहण करें। प्रसन्न होकर वर प्रदान करें। हे प्रभो! आपकी शान्ति के लिए मैं यह प्रदान करता हूं। आप मुझ पर प्रसन्न हो जायें।

पाद्यमन्त्र—हे देवेश! मैं पुष्प गन्धादि युक्त पाद्य प्रदान करता हूं। आप इसे ग्रहण करके वरप्रद हो जायें।

आसनमन्त्र—हे प्रभो! आपकी शान्ति हेतु आसन प्रदान करता हूं। इसे ग्रहण करके आप मुझे सदा वर प्रदान करें।

आचमनीय मन्त्र—हे प्रभो! मैं आपको आचमनीय प्रदान करता हूं। हे परमेश्वर! आप इसे ग्रहण करके मुझ पर प्रसन्न हो जायें।

यज्ञोपवीत मन्त्र—यह ब्रह्मग्रन्थियुक्त तथा ब्रह्मकर्म प्रवर्त्तक है। आप इस मन्त्रयुक्त यज्ञोपवीत को ग्रहण करें।

सुगन्ध चन्दनादि प्रदान मन्त्र—हे देव! यह सुगन्ध, चन्दन मैं भक्ति के साथ अर्पण करता हूं। हे भव शम्भु! आप मुझे सुगन्धित करें।

दीप प्रदान मन्त्र—हे शम्भु! यह घृत से प्रज्वलित परम दीप दान करता हूं। इसे ग्रहण करके मुझे ज्ञान प्रदान करें। मैं आपकी शान्ति हेतु सर्वौषधि समुद्भासित विशिष्ट दीप प्रदान करता हूं। आप इसे ग्रहण करें।

दीपावलि प्रदान मन्त्र—हे परमेश्वर! मेरे द्वारा प्रदत्त दीपावलि ग्रहण करें तथा आरति दान द्वारा मुझे तेज प्रदान करें।

इस प्रकार सश्रद्ध भाव के साथ फल, दीप, नैवेद्य, ताम्बूलादि द्वारा विधि-विधान ज्ञाता पूजक पूजा करे। तदनन्तर गृह अथवा देवालय में रात्रि जागरण करना होगा। विविध आश्चर्यप्रद वस्तु के साथ वितान मण्डप बनाये। वहां गीत, नृत्य तथा वाद्य द्वारा सदाशिवार्चन करना चाहिये।।१२४-१३४।।

अनेनैव विधानेन प्रदोषोद्यापनेविधिः। कार्यो विधिमता शक्र सर्वकार्यार्थसिद्धये॥१३५॥
गुरुणा कथितं सर्वं तच्चकार शतक्रतुः। तेनैव च सहायेन इन्द्रो युद्धपरायणः॥१३६॥
वृत्रं प्रति सुरैः सार्द्धं युयुधे च शतक्रतुः। तुमुलं युद्धमभवद्देवानां दानवैः सह॥१३७॥
तस्मिन्सुतुमुले गाढे देवदैत्यक्षयावहे। द्वंद्वयुद्धं सुतुमुलमतिवेलं भयावहम्॥१३८॥
व्योमो यमेन युयुधे ह्यग्निना तीक्ष्णकोपनः। वरुणेन महादंष्ट्रोवायुना च महाबलः॥१३९॥
द्वन्द्वयुद्धरताः सर्वे अन्योन्यबलकांक्षिणः॥१४०॥
तथैव ते देववरा महाभुजाः संग्रामशूरा जयिनस्तदाऽभवन्।
पराजयं दैत्यवराश्च सर्वे प्राप्तास्तदानीं परमं समंतात्॥१४१॥

हे इन्द्र! समस्त कार्यसिद्धि हेतु इस प्रकार के विधान द्वारा विधानज्ञ व्यक्ति प्रदोष व्रत का उद्यापन व्रत के अंगों के पालन के साथ करे। बृहस्पति के यह कहने पर इन्द्र ने उनके उपदेशानुरूप सब कार्य सम्पन्न किया। उन्होंने बृहस्पति की सहायता से युद्धोद्यत होकर सुरगण के साथ वृत्रासुर पर हमला किया। तब देवों एवं दानव सैन्य में तुमुल युद्ध आरम्भ हो गया। जब यह युद्ध भीषणतम हो गया; तब सुर-असुर, दोनों ही पक्षों का क्षय होने लगा। तब अति भीषण द्वन्द्वयुद्ध होने लगा। यम के साथ व्योम का, अग्नि के साथ तीक्ष्णकोपन का, वरुण

के साथ महादंष्ट्र का, वायु के साथ महाबल असुर का युद्ध होने लगा। दोनों पक्ष एक दूसरे पर बढ़ने की इच्छा करने लगे। कुछ ही देर में संग्राम शूर देवगण युद्ध में जयी हो गये। तब दैत्यगण युद्ध में पूर्ण पराजित हो गये।।१३५-१४१।।

दृष्ट्वा सुरैर्दैत्यवरान्पराजितान्पलायमानानथ कान्दिशीकान्।
तदैव वृत्रः परमेण मन्युना महाबलो वाक्यमिदं बभाषे॥१४२॥

वृत्र उवाच

हे दैत्याः परमार्ताश्च कस्माद्यूयं भयातुराः। पलायनपराः सर्वे विसृज्य रणमद्भुतम्॥१४३॥
स्वंस्वं पराक्रमं वीरा युद्धाय कृतनिश्चयाः। दर्शयध्वं सुरगणास्सूदयध्वं महाबलाः॥१४४॥
गदाभिः पट्टिशैः खड्गैः शक्तितोमरमुद्गरैः।
असिभिर्भिन्दिपालैश्च पाशतोमरमुष्टिभिः॥१४५॥
तदा देवाश्च युयुधुर्दधीचास्थिसमुद्भवैः। शस्त्रैरस्त्रैश्च परमैरसुरान्समदारयन्॥१४६॥
पुनर्दैत्याहता देवैः प्राप्तास्तेऽपि पराजयम्। पुनश्च तेन वृत्रेणनोद्यमानाः सुरान्प्रति।
यदा हि ते दैत्यवराः सुरेशैर्निहन्यमानाश्च विदुद्रुवुर्दिशः॥१४७॥
केचिद् दृष्ट्वा दानवास्ते तदानीं भीतित्रस्ताः क्लीबरूपाः क्रमेण॥१४८॥

देवों से पराजित असुरगण उस समय दिक्भ्रान्तभाव से इधर-उधर भागने लगे। महाबली वृत्रासुर यह देखकर अत्यन्त क्रोधपूर्वक कहने लगा। "हे दैत्यों! तुम आर्त्त एवं पराजित होकर रणभूमि त्याग कर भाग रहे हो? हे वीरों! तुम युद्ध के लिए दृढ़ता से सन्नद्ध होकर अपना-अपना पराक्रम प्रदर्शित करो। हे महाबली असुरों! तुम गदा, पट्टिश, खड्ग, शक्ति, तोमर, मुद्गर, तलवार, भिन्दिपाल तथा अन्य अस्त्र-शस्त्र द्वारा देवताओं का संहार करो।" तब देवगण दधीचि की अस्थि से बने उत्तम अस्त्रों द्वारा युद्धरत हो गये। उनके प्रत्येक अस्त्रघात से असुर सैन्य ध्वंसीभूत होने लगी। इस बार भी देवताओं के हाथों प्रचुर दैत्य सेना निहत हो गयी। दैत्यपक्ष पराजित हो गये। वृत्रासुर ने पुनः असुरों को देवताओं के विरुद्ध उत्तेजित किया, तब असुरगण भी देवताओं के साथ युद्धरत हो गये। इस घोर युद्ध में दैत्यपक्ष के प्रधान-प्रधान वीर देवगण के शस्त्र से आहत होने लगे तथा इधर-उधर भागने लगे। कोई-कोई कापुरुष दानव भयग्रस्त तथा त्रस्त हो गया।।१४२-१४८।।

वृत्रेण कोपिना चैवं धिक्कृता दैत्यपुंगवाः। हे पुलोमन्महाभागवृषपर्वन्नमोस्तु ते॥१४९॥
हे धूम्राक्ष महाकाल महादैत्य वृकासुर। स्थूलाक्ष हे महादैत्य स्थूलदंष्ट्र नमोस्तु ते॥१५०॥
स्वर्गद्वारं विहायैव क्षत्रियाणांमनस्विनाम्। पलायध्वंकिमर्थंवासंग्रामाङ्गणमुत्तमम्॥१५१॥
संगरे मरणं येषां ते यांति परमं पदम्। यत्र तत्र च लिप्सेत संग्रामे मरणं बुधः॥१५२॥
त्यजन्ति संगरं ये वै ते यांति निरयं ध्रुवम्॥१५३॥
ये ब्राह्मणार्थे भृत्यार्थे स्वार्थे वै शस्त्रपाणयः। संग्रामं ये प्रकुर्वंति महापातकिनो नराः॥१५४॥
शस्त्रघातहता ये वै मृता वा संगरे तथा। ते यांति परमंस्थानं नात्रकार्याविचारणा॥१५५॥

शस्त्रैर्विच्छिन्नदेहा ये गवार्थेस्वामिकारणात्। रणेमृताः क्षतायेवैतेयांतिपरमांगतिम्॥१५६॥
तस्माद्रणेऽपि ये शूराः पापिनोनिहताःपुरः। प्राप्नुवंतिपरं स्थानंदुर्लभं ज्ञानिनामपि॥१५७॥
अथवा तीर्थगमनं वेदाध्ययनमेव च। देवतार्चनयज्ञादिश्रेयांसि विविधानि च॥१५८॥
ऐकपद्येन तान्येव कलांनार्हन्ति षोडशीम्। संग्रामे पतितानांचसर्वशास्त्रेष्वयंविधिः॥१५९॥

इससे वृत्रासुर कुपित हो गया तथा दैत्य सेना को देखते हुये उनके प्रधान-प्रधान सेनापतियों को धिक्कारने लगा। वृत्रासुर कहने लगा—हे पुलोमा, महाभाग, वृषपर्वा, तुम सबको नमस्कार! हे धूम्राक्ष! महाकाल, महादैत्य वृकासुर, हे महादैत्य! स्थूलाक्ष, स्थूलदंष्ट्र! तुम लोगों को भी नमस्कार! जो संग्राम मनस्वी क्षत्रियों के लिए स्वर्ग का द्वार है, तुम उसे त्याग कर संग्राम से क्यों भागे? जो संग्राम में मृत होता है, उसे परमपद प्राप्त होता है। विज्ञ व्यक्ति कहीं भी संग्राम में मरने की कामना करते हैं। जो संग्राम का त्याग करते हैं, उनकी निश्चित रूप से नरक में गति होती है। जो ब्राह्मण के लिए, सेवक के लिए तथा अपने स्वार्थ हेतु शस्त्रधारी होकर युद्ध करते हैं, वे महापातकी होकर भी शस्त्र से आहत तथा मृत होकर परम स्थान प्राप्त करते हैं। इसमें तनिक सन्देह नहीं है। जो गौ अथवा स्वामी के लिए संग्राम में छिन्न शरीर, क्षत-विक्षत तथा मृत होते हैं, उनकी भी परमगति होती है। इसमें सन्देह नहीं है। इसीलिए कहा गया है कि समर में निहत पापीगण भी परमस्थान प्राप्त करते हैं। उनके द्वारा लब्धज्ञान पापीगण हेतु भी दुर्लभ है। अथवा तीर्थगमन, वेदाध्ययन, देवार्चन, यज्ञादि अन्य सभी मंगल कार्य को मिलाकर जो पुण्य होता है तथा संग्राम में मृत पुरुष का जो सुकृत संचित होता है, उनमें से संग्राम में मृत पुरुष का पुण्य अन्य सभी पुण्य कार्य से १६ गुणित अधिक होता है। सभी शास्त्रों का यही विधान है।।१४९-१५९।।

तस्माद्युद्धावदानं च कर्तव्यमविशंकितैः। भवद्भिर्नान्यथा कार्यं देववाक्यप्रमाणतः॥१६०॥
यूपं सर्वे शौरवृत्त्या समेताः कुलेन शीलेन महानुभावाः।
पदानि तान्येव पलायमाना गच्छंत्यशूरा रणमंडलाच्च॥१६१॥
त एव सर्वे खलु पापलोकान्गच्छंति नूनं वचनात्स्मृतेश्च॥१६२॥
ये पापिष्ठास्त्वधर्म्मस्था ब्रह्मघ्ना गुरुतल्पगाः। नरकं यांतिते पापं तथैवरणविच्युताः॥१६३॥
तस्माद्धवद्भिर्योद्धव्यं स्वामिकार्यभरक्षमैः। एवमुक्तास्तदा तेन वृत्रेणापि महात्मना॥१६४॥
चक्रुस्ते वचनं तस्य असुराश्च सुरान्प्रति। चक्रुः सुतुमुलं युद्धं सर्वलोकभयंकरम्॥१६५॥
तस्मिन्प्रवृत्ते तुमुले विगाढे वृत्रो महादैत्यपतिः स एकः।
उवाच रोषेण महाद्भुतेन शतक्रतुं देववरैः समेतम्॥१६६॥

अतएव अशंकित चित्त से युद्धरूपी अवदान कार्य में सभी का लिप्त होना कर्त्तव्य है। तुम भी वेदवाक्य के प्रमाणानुरूप इस विधान की अवज्ञा न करो। देखो! तुम सभी कुल, शील में समुन्नत महानुभव वीर व्यक्ति हो। जो कापुरुष हैं, वे ही रणभूमि से भाग कर चले जाते हैं। किन्तु तुम लोगों के लिए ऐसा पलायन कभी भी उचित नहीं है। रणक्षेत्र से पलायित व्यक्ति पापयुक्त लोकों में जाता है। यही स्मृतियों का कथन है। जो पापी, धर्मरहित, ब्रह्मघ्न, रणविमुख हैं, वे ही पापयुक्त नरक में गमन करते हैं। अतः स्वामी के कार्य के प्रति सन्नद्ध होकर अब तुम सभी युद्ध करो। महात्मा वृत्र के यह कहने पर असुरगण देवसमूह के प्रति वृत्रोक्त व्यवहार करते

हुये आक्रमणरत हो गये। उन्होने तब अत्यन्त लोक भयंकर युद्ध प्रारम्भ कर दिया, जो तुमुल युद्धरूपी हो गया। उस घोर तुमुल युद्ध के प्रारम्भ होने पर महादैत्याधिपति वृत्र अकेले रोष में भरकर सुरगण से घिरे इन्द्र से कहने लगा।।१६०-१६६।।

वृत्र उवाच

शृणुवाक्यंमयाचोक्तंधर्म्मार्थसहितंहितम्। त्वंदेवानांपतिर्भूत्वानजानासिहिताहितम्।।१६७।।
किंबलार्थपरो भूत्वा विश्वरूपो हतस्त्वया।
प्राप्तमद्यैव भो इन्द्र तस्येदंकर्म्मणःफलम्।।१६८।।
ये दीर्घदर्शिनोमंदामूढाधर्मबहिष्कृताः। अकल्पाः कार्यसिद्ध्यर्थंयत्कुर्वंतिचनिष्फलम्।
तत्सर्वं विद्धि देवेन्द्र! मनसा संप्रधार्यताम्।।१६९।।
तस्माद्धर्म्मपरो भूत्वा युध्यस्वगतकल्मषः। भ्रातृहात्वंममैवेंद्रतस्मात्त्वांघातयाम्यहम्।।१७०।।
मा प्रयाहि स्थिरो भूत्वा देवैश्च परिवारितः। एवमुक्तस्तुबृत्रेणशक्रोऽतीवरुषान्वितः।
ऐरावतं समारुह्य ययौ वृत्रजिघांसया।।१७१।।

वृत्रासुर कहता है—हे इन्द्र! आज तुम मेरा धर्म तथा अर्थमय वाक्य सुनो। तुम देवपति होकर भी हित-अनहित नहीं जानते। तुमने किस प्रकार बल तथा स्वार्थपर होकर विश्वरूप का वध किया था? हे इन्द्र! आज तुम्हारे उसी कर्म का फल सामने है। जो अदूरदर्शी हैं, अन्ध, मूढ़, धर्म बहिष्कृत हैं, वे कार्यसिद्धि हेतु चाहे जो करें, सभी निष्फल होगा। हे देवेन्द्र! तुम यह जान लो तथा हृदयंगम करो। अथवा तुम धर्मसंगत भाव से, निष्पापभाव से युद्ध करो। हे इन्द्र! तुमने मेरे भाई का वध किया है। अतः मैं तुम्हारा वध करूंगा। पलायन न करना। देवगण के साथ स्थिरतापूर्वक रणक्षेत्र में रुको। वृत्रासुर के यह कहने पर इन्द्र अत्यन्त क्रोधित हो गये तथा वृत्र वधार्थ ऐरावत पर बैठ कर दौड़ पड़े।।१६७-१७१।।

इन्द्रमायांतमालोक्य वृत्रो बलवतां वरः। उवाच प्रहसन्वाक्यं सर्वेषां शृण्वतामपि।।१७२।।
आदौ मां प्रहरस्वेति तस्मात्त्वां घातयाम्यहम्।।१७३।।
इत्येवमुक्तो देवेन्द्रो जघान गदया भृशम्। वृत्रं बलवतां श्रेष्ठं जानुदेशे महाबलम्।।१७४।।
तामांपतंतीं जग्राह करेणैकेन लीलया। तयैवैनं जघानाशु गदया त्रिदिवेश्वरम्।।१७५।।

बली वृत्रासुर ने इन्द्र को आते देखकर सबके समक्ष हंसते-हंसते कहा—"हे इन्द्र! पहले तुम प्रहार करो, तब मैं तुम पर प्रहार करूंगा।" वृत्रासुर का वचन सुनकर इन्द्र ने वृत्र के जानुदेश पर लक्ष्य करके विषम गदाघात किया। वृत्रासुर ने इस गदा के गिरते ही उसे एक हाथ से पकड़ा तथा उसके द्वारा देवराज को आहत किया।।१७२-१७५।।

सा गदा पातयामास सवज्रं च पुरंदरम्। पतितं शक्रमालोक्य वृत्र ऊचेसुरान्प्रति।।१७६।।
नयध्वं स्वामिनं देवा! स्वपुरीममरावतीम्।
एतच्छ्रुत्वावचःसत्यं वृत्रस्य च महात्मनः।
तथाचक्रुःसुराःसर्वेरणाच्चेंद्रं समुत्सुकाः।।१७७।।

अपोवाह्य गजस्थं हि परिवार्य भयातुराः। सुराः सर्वेरणंहित्वाजग्मुस्तेत्रिदिवंप्रति॥१७८॥

वृत्र द्वारा छोड़ी गदा के प्रहार से वज्रहस्त इन्द्र भूपतित हो गये। इन्द्र को गिरते देखकर वृत्रासुर ने देवगण से कहा—"हे देवगण! तुम अपने स्वामी को अपनी पुरी अमरावती ले जाओ।" महात्मा वृत्र का यह वाक्य सुनकर देवगण ने वही किया। उन्होंने इन्द्र की अचेत देह को ऐरावत पर चढ़ाया तथा भीतिपूर्ण भाव से उनकी रक्षा करते हुये स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया।।१७६-१७८।।

ततो गतेषु देवेषु ननर्त च महासुरः। वृत्रो जहास च परं तेनापूर्यत दिक्तटम्॥१७९॥
चचाल च मही सर्वा सशैलवनकानना। चुक्षुभे च तदा सर्वं जंगमं स्थावरं तथा॥१८०॥
श्रुत्वा प्रयातं देवेन्द्रं ब्रह्मा लोकपितामहः। उपयातोऽथ देवेन्द्र स्वकमण्डलुवारिणा॥१८१॥
अस्पृशल्लब्धसंज्ञोऽभूत्तत्क्षणाच्च पुरंदरः॥१८२॥
दृष्ट्वा पितामहं चाग्रे व्रीडायुक्तोऽभवत्तदा। महेन्द्रं त्रपया युक्तं ब्रह्मोवाच पितामहः॥१८३॥

देवताओं के वहां से चले जाने पर महासुर वृत्र नृत्यरत होकर हंसने लगा। उसके हास्य से दिक्-दिगन्त व्याप्त हो गया। शैल-कानन से परिवृता पृथिवी कांपने लगी। चराचर समस्त जगत् स्तब्ध हो गया। तभी लोक पितामह ब्रह्मा इन्द्र की अपमान की स्थिति सुनकर इन्द्रालय आये। उन्होंने वहां अपने कमण्डलु के जल से इन्द्र के शरीर का स्पर्श कराया। इन्द्र ने तत्क्षण चैतन्य लाभ कर लिया। वे ब्रह्मा को सामने देखकर लज्जित हो गये। महेन्द्र को लज्जायुक्त देखकर ब्रह्मा ने उनसे कहा।।१७९-१८३।।

ब्रह्मोवाच

वृत्रो हि तपसा युक्तो ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः। त्वष्टुश्चतपसायुक्तोवृत्रश्चायं महायशाः।
अजेयस्तपसोग्रेण तस्मात्त्वं तपसा जय॥१८४॥
वृत्रासुरो दैत्यपतिश्च शक्र! ते समाधिना परमेणैव जय्यः।
निशम्य वाक्यं परमेष्ठिनो हरिः सस्मार देवं वृषभध्वजं तदा॥१८५॥
स्तुत्या तदा तं स्तवमानो महात्मा पुरंदरो गुरुणा नोदितो हि॥१८६॥

ब्रह्मा कहते हैं—"वृत्रासुर तपस्वी तथा ब्रह्मचारी है। यह महायशस्वी विश्वकर्मा की तपस्या के फल से उत्पन्न है; उनकी तीव्र तपस्या के फल से यह युद्ध में अजेय हैं। तुम भी तपःश्चरण से इसे जीतो। हे इन्द्र! दैत्यपति वृत्रासुर परम समाधि से विजयी होगा। ब्रह्मा का वाक्य सुनकर इन्द्र ने वृषध्वज का स्मरण किया। तदनन्तर बृहस्पति के उपदेश से महात्मा इन्द्र शम्भु की स्तुति करने लगे।।१८४-१८६।।

इन्द्र उवाच

नमो भर्गाय देवायदेवानामतिदुर्गम। वरदो भव देवेश! देवानां कार्यसिद्धये॥१८७॥
एवं स्तुतिपरो भूत्वा शचीपतिरुदारधीः। स्वकार्यदक्षो मंदात्माप्रपंचाभिरतःखलु॥१८८॥
प्रपंचाभिरता मूढाः शिवभक्तिपरा ह्यपि। न प्राप्नुवंति ते स्थानंपरमीशस्यरागिणः॥१८९॥

इन्द्र कहते हैं—"हे देवगण के अत्यन्त दुर्जय भर्ग! आप भव हैं। आपको प्रणाम! हे देवेश! देवगण की

कार्यसिद्धि हेतु आप वर प्रदान करें।'' उदार बुद्धि इन्द्र इस प्रकार से स्तव कार्य में तत्पर होकर भी वे अपने ही कर्म साधन (विजय) हेतु उद्यत थे। वे मूढ़चित्त तथा प्रपंचरत थे। उनको शिव सान्निध्य लाभ का अधिकार ही नहीं था। जो सब मूढ़बुद्धि शिवभक्ति युक्त होकर भी प्रपञ्च में लगे रहते हैं, वे परमेश्वर के परम स्थान को नहीं पा सकते।।१८७-१८९।।

निर्मला निरहंकारा ये जनाः पर्युपासते। मृडं ज्ञानप्रदं चेशं परेशं शंभुमेव च॥१९०॥
तेषां परेषां वरद इहामुत्र च शंकरः। महेन्द्रेण स्तुतः शर्वो रागिणा परमेण हि॥१९१॥
रागिणांहिसदाशंभुर्दुर्लभोनात्रसंशयः। तस्माद्विरागिणांनित्यंसन्मुखोहिसदाशिवः॥१९२॥
राजा सुराणां हि महानुरागी स्वकर्मसंसिद्धिमहाप्रवीणः।
तस्मात्सदा क्लेशपरः शचीपतिः स्वकामभावात्मपरो हि नित्यम्॥१९३॥
स्तवमानं तदा चेंद्रमब्रवीत्कार्यगौरवात्। विज्ञायाखिलदृग्द्रष्टा महेशो लिंगरूपवान्॥१९४॥
इन्द्र गच्छ सुरैः सार्द्धं वृत्रं वै दानवं प्रति। तपसैव च साध्योऽयं रणे जेतुं शतक्रतो॥१९५॥

जो सब निर्मल निरहंकार व्यक्ति ज्ञानदाता परमेश शम्भु की उपासना करते हैं, शंकर उनको इहकाल तथा परकाल में वर प्रदान करते हैं। महेन्द्र परम विषयानुरक्त थे। उन्होंने देवदेव प्रभु भव का स्तव किया, अतः उनके लिये शम्भु सुलभ न होकर दुर्लभ वस्तु हो गये। क्योंकि विषयासक्त हेतु शम्भु अतीव दुलर्भ हो जाते हैं। इसमें तनिक सन्देह नहीं है। देव सदाशिव विरागी लोगों के ही प्रति नित्य प्रसन्न रहते हैं। इन्द्र सुरगण के नृपति हैं। वे अपनी कार्यसिद्धि हेतु अत्यन्त व्यग्र हैं। तभी उनमें सदा क्लेश व्याप्त रहता है। उनका अन्तर्मन सर्वदा कामना से परिपूर्ण रहता है, अतः उनके लिये सदाशिव सुलभ ही नहीं हो रहे थे। तथापि इन्द्र को स्तव करते देखकर अखिलदर्शी अविनाशी लिंगरूपी महेश्वर समस्त वृत्तान्त से अवगत होकर अपने कार्य गौरव के कारण उन इन्द्र से कहने लगे—''हे इन्द्र! तुम देवताओं के साथ दानव वृत्रासुर की ओर जाओ। हे शतक्रतु! एकमात्र तप के द्वारा ही तुम इसे जीत पाओगे''।।१९०-१९५।।

इन्द्र उवाच

केनोपायेन साध्योऽयं वृत्रो दैत्यवरो महान्।
तच्छीघ्रं कथ्यतां शम्भो! येन मे विजयो भवेत्॥१९६॥

रुद्र उवाच

रणे न शक्यते हन्तुमपि देववरैरपि। तस्मात्त्वया हि कर्तव्यं कुत्सितं कर्म चाद्य वै॥१९७॥
अस्य शापः पुरा दत्तः पार्वत्या मम सन्निधौ।
असौ चित्ररथो नाम्ना विख्यातो भुवनत्रये॥१९८॥
पर्यटन्सुविमानेन मया दत्तेन भास्वता। उपहासादिमां योनिं संप्राप्तो दैत्यपुंगवः॥१९९॥
तस्मादजेयं जानीहि रणे रणविदाम्वर। एवमुक्तो महेन्द्रोऽयं शम्भुना योगिना भृशम्॥२००॥
तथेति मत्वा शक्रोऽसौ नियमं तमुपाददे॥२०१॥

इन्द्र कहते हैं—यह अतीव प्रबल दैत्य है। किस उपाय से इसका वध होगा? हे शम्भु! आप वह उपाय कहें, जिससे मुझे विजय मिले।'' रुद्र ने कहा—''सभी प्रधान देवता मिलकर भी १०० वर्ष में उसका विनाश नहीं कर सकते। अतः इसके लिये तुमको एक कुत्सित कार्य करना होगा। देवी पार्वती ने मेरे समक्ष इसे एक अभिशाप दिया था। यह वृत्र पूर्व में चित्ररथ नामक भुवनों में प्रसिद्ध राजा था। मैंने इसे एक उज्ज्वल विमान दिया था। यह उसी विमान से पृथिवी पर्यटन करते-करते एक बार कैलास पर जाकर मेरा उपहास कर रहा था। इस अपराध के कारण पार्वती के शाप से इसे दैत्ययोनि मिली थी। अतः यह रण में अजेय जानो।'' योगीप्रवर शम्भु यह कहकर अन्तर्हित हो गये। महेन्द्र ने शिववाक्य को ही युक्तिसंगत मानकर नियमों का पालन किया।।१९६-२०१।।

रन्ध्रं प्रतीक्ष्य वृत्रस्य तत्समीपे सहस्रकम्। वत्सराणां महाभागा वसन्हंतुं मनोदधे॥२०२॥
अन्तर्वेद्यां बहिः स्थित्वावज्रपाणिरनुज्ञया। गुरोः पुरोधसश्चैवस्वकार्यमकरोद्भृशम्॥२०३॥
एकदा नर्म्मदायां वै वृत्रो दानवपुंगवः। दैत्यैः परिवृतः सर्वैः समायातो यदृच्छया॥२०४॥
इन्द्रः पराभवंप्राप्तो नीतो देवैर्द्दिवं प्रति।
अहमेव हतारिश्च नान्योऽस्ति सदृशो मम॥२०५॥
मन्यमानः सदावृत्रः पौरुषेण समन्वितः। प्रदोषसमये विप्रा नर्मदायामुपस्थितः॥२०६॥
दृष्ठश्चेंद्रेण सुमहानसुरैः परिवारितः। वृत्रो बलवतां श्रेष्ठः प्रदोषसमये तदा॥२०७॥
तस्मिन्प्रदोषे संयुक्ता मंदवारेत्रयोदशी। नोदितो गुरुणा चेन्द्रः करे गृह्य बृहस्पतिः॥२०८॥
प्रदक्षिणानमस्कारैर्यथोक्तविधिना तदा। पूजितो लिंगरूपी च ओंकारो नर्मदातटे॥२०९॥
प्रदोषव्रतमाहात्म्याद्वज्रपाणिः प्रतापवान्। संजातस्ततत्क्षणादेवप्रसादाच्छंकरस्यच॥२१०॥
वृत्रोऽपि तपसा युक्तःप्रदोषसमये महान्। निद्रासक्तोऽभवत्तत्र शुंडेन प्रतिबोधितः॥२११॥

हे महाभागगण! तदनन्तर वृत्रासुर की छिद्रपरीक्षा में इन्द्र ने १००० वर्ष व्यतीत किये तथा उसके विनाशार्थ कृतसंकल्प हो गये। वज्रपाणि ने अपने पुरोहित की आज्ञा के अनुसार अवस्थित होकर अपना कार्यसाधन करना प्रारम्भ किया। इधर एक बार वृत्रासुर अन्य दानवों से परिवृत होकर स्वेच्छा से नर्मदा आया तथा सोचने लगा कि इन्द्र तो मुझसे पराजित हो गये। देवगण उसे लेकर स्वर्ग चले गये। मेरा शत्रु नष्ट हो गया। मैं निःशस्त्र हूं। मेरे समान अन्य कौन है? इस प्रकार से वृत्र स्वयं को सदा पुरुषार्थ युक्त मानने लगा। हे विप्रगण! वह जब नर्मदा नदीतट पर पहुंचा, तब प्रदोष काल था। इन्द्र ने तब वृत्रासुर को महान् असुरगण से घिरा देखा। वह शनिवार था तथा त्रयोदशी तिथि थी। यह देखकर बृहस्पति ने इन्द्र को देवार्चन का उपदेश दिया। इन्द्र ने नर्मदा तट पर प्रदक्षिणा तथा नमस्कार द्वारा यथाविधि लिंगरूपी ओंकार की पूजा सम्पन्न किया। प्रदोष व्रत के प्रभाव से शंकर की प्रसन्नता प्राप्त होकर इन्द्र तत्क्षण प्रतापवान् हो गये। महात्मा वृत्र तपोबल युक्त होकर भी प्रदोषकाल में निद्रासक्त था। तदनन्तर उसे शुंड ने जाग्रत किया।।२०२-२११।।

स्वापात्प्रदोषवेलायां तपसा चार्जितं फलम्। प्रनष्टंतत्क्षणादेवनिःश्रीकत्वमुपागतः॥२१२॥
देव्याः शापाच्च सञ्जातो वृत्रो भग्नमोरथः॥२१३॥

संध्यापादो गतो यावद्वृत्रस्तीर्थमुपाविशत्। परीतो विविदैर्दैत्यैर्नानायुधसमन्वितैः॥२१४॥
तस्य तत्कर्मणश्छिद्रं छिद्रान्वेषी शचीपतिः। ज्ञात्वा गतः शनैर्हन्तुमात्मशत्रुंशतक्रतुः॥२१५॥
तावद्दैत्याः सुसंरब्धा भीमा भीमपराक्रमाः। उत्तस्थुर्युगपत्सर्वे दुःसहाश्च शतक्रतुम्॥२१६॥
ततस्तैरभवद्युद्धमतिप्रबलदंडिभिः। सर्वे देवाः सहायार्थं तदाऽऽजग्मुः शतक्रतोः॥२१७॥
तदा दैत्याश्च देवाश्च युयुधुस्ते तरस्विनः। रात्रौ युद्धं समभवत्सुरासुरविमर्दनम्॥२१८॥

प्रदोषकाल में निद्रित होने से उसका तपः से अर्जित सभी पुण्यफल नष्ट हो गया। वह तत्काल भ्रष्टश्री हो गया। इधर देवी के शाप से भी वृत्रासुर भग्न मनोरथ हो गया था। तदनन्तर सन्ध्योपासना का समय आया। वृत्रासुर तब अनेक आयुधयुक्त दैत्यों से घिरा था। छिद्रान्वेशी शचीपति इन्द्र उसके कर्म के छिद्र से अवगत होकर शत्रु विनाशार्थ धीरे-धीरे अग्रसर होने लगे। उस समय भीमपराक्रमी दैत्यगण एक साथ इन्द्र के विरुद्ध उठ खड़े हो गये। तदनन्तर उस अति प्रबल दैत्यसैन्य के साथ इन्द्र का युद्धारंभ हो गया। इन्द्र की सहायतार्थ समस्त देवसैन्य तत्काल पहुंची। बली देव-दानव का तुमुल युद्ध प्रारम्भ हो गया। यह सुर-असुर विमर्दनकारी युद्ध रात्रि में आरम्भ हुआ था।।२१२-२१८।।

अनेकशस्त्रसंवीतं महारौद्रमवर्तत। एवं प्रवर्तमाने तु संग्रामे रौद्रदारुणे।
तदा वृत्रोऽथ सन्नद्धौ गृहीत्वा शूलमुल्बणम्॥२१९॥
इन्द्रप्रमुखतो भूत्वा जगर्जातिविभीषणम्। तस्य नादप्रणादेन त्रासितं भुवनत्रयम्॥२२०॥
ऐरावणं समारुह्य महेन्द्रः शुशुभे तदा। धियमाणेन च्छत्रेण चंद्रमण्डलशोभिना॥२२१॥
चामरैर्वीज्यमानोऽथ बभाषे दैत्यपुंगवम्॥२२२॥

इन्द्र उवाच

संग्रामं कुरु मे वृत्र बलेन महता वृतः। शूरस्त्वमसि शूराणां तपसा परमेण हि॥२२३॥

चारों ओर से अनगिनत अस्त्र-शस्त्रों की बौछार होने लगी। क्रमशः इस युद्ध ने अत्यन्त भीषण आकार ग्रहण कर लिया। इस प्रकार से इस भीषण संग्राम का आरम्भ हो जाने से वृत्रासुर सज्जित हो गया तथा एक भीषण शूल लेकर इन्द्र की ओर घोर गर्जन करता आया। इस भीषण गर्जन से त्रिभुवन ही त्रसित हो गया। महेन्द्र ऐरावत पर बैठे परम शोभायमान हो रहे थे। उनका मस्तक चन्द्रमण्डलवत् शोभा वाले राजच्छत्र से ढंका था। उनको चामर झला जा रहा था। तभी उन्होंने उस दैत्यपुङ्गव वृत्रासुर को सम्बोधित करके कहा—"हे वृत्र! तुम महान् सैन्य से परिवृत होकर मेरे साथ संग्राम करो। वास्तव में परम तपस्याबल के कारण तुम अत्यन्त प्रधान शूर रूप से विख्यात हो"।।२१९-२२३।।

एवमुक्तस्तदा तेन वृत्रो वाक्यमुवाच ह। आदौ प्रहर मामिंद्रपश्चात्त्वां घातयाम्यहम्॥२२४॥
तथेति मत्त्वा तदतीव दुःसहं वज्रं तदानीं शतधारमेव।
स मोक्तुकामो हि तदा पुरंदरो निवारितस्तेन महाप्रभेण।
पुरोधसा बुद्धिमतां वरेण तथेति मत्वा स चकार चेन्द्रः॥२२५॥

गदां प्रगृह्य देवेन्द्रो वृत्रं विव्याधतां गदाम्। वारयामास वृत्रोसावतिथिंकृपणोयथा॥२२६॥
व्यर्थां च स्वगदां दृष्ट्वा इन्द्रश्चिंतामवाप ह॥२२७॥
तं चिन्त्यमानं स तदा पुरंदरं वृत्रो बभाषे परिभर्त्समानः।
पुरा कृतं शक्र! महाद्भुतं त्वया जुगुप्सितं कर्म च विस्मृतं किम्।
येनैव जातोऽसि सहस्त्रनेत्रः शापान्महर्षेरथ गौतमस्य॥२२८॥
ये शूराश्चेन्द्रियग्रामं वर्तन्ते हि नियम्य तु। ते जयं प्राप्नुवंतीह नेतरे हि भवादृशाः॥२२९॥
रणाजिरं महाघोरं पापिनां नात्र संशयः॥२३०॥

इन्द्र का वचन सुनकर वृत्र ने कहा—"हे इन्द्र! पहले तुम मुझ पर प्रहार करो। तदनन्तर मैं तुम्हारे ऊपर अस्त्र प्रहार करूंगा।" इन्द्र ने कहा—"ऐसा ही हो।" तदनन्तर इन्द्र ने अत्यन्त दुस्तर शतधार वज्र को वृत्र पर फेंकने का विचार किया, लेकिन महाप्रभाववान् धीमान् बृहस्पति ने उनको यह कार्य करने से रोक दिया। इन्द्र ने बृहस्पति की आज्ञा को माना। तत्पश्चात् देवेन्द्र ने गदा उठाकर उससे वृत्रासुर पर प्रहार किया। जैसे कृपण व्यक्ति अतिथि को विमुख कर देता है, वैसे ही वृत्रासुर ने इन्द्र की गदा का निवारण कर दिया। अपनी गदा को व्यर्थ जाते देखकर इन्द्र चिन्तातुर हो गये। इन्द्र को चिन्तित देखकर तभी वृत्रासुर उनकी भर्त्सना करते कहने लगा—"हे इन्द्र! तुमने पूर्व में अत्यन्त अद्भुद् कर्म किये थे, क्या उनको भूल गये? तुम्हें याद नहीं है? किसलिये तुम गौतम के शाप के कारण सहस्त्रनेत्र हुये? क्या तुमको ज्ञात नहीं है कि जो शूर लोग इन्द्रिय जय करके स्थित रहते हैं, उनकी ही जय होती है। इसके विपरीत तुम्हारे समान अजितेन्द्रिय व्यक्ति कभी जयलाभ नहीं करते। यह समझ लो कि महाघोर रणभूमि में पापियों के लिए स्थान नहीं है। यह निश्चित जानो।।२२४-२३०।।

एवं निर्भर्त्सयामास देवेन्द्रं दैत्यपुंगवः। त्रिशूलं धूनयामास देवेन्द्रो हि तडित्सममम्॥२३१॥
तेन शूलेन महता वृत्रोऽद्भुतपराक्रमः। बभौ तीव्रेण तपसा यथा रुद्रो युगांतकृत्॥२३२॥
तथाभूतं समालक्ष्य देवराजः शतक्रतुः। अभ्युद्ययौ हन्तुकामो वृत्रं दानवपुङ्गवम्॥२३३॥
तमायांतमभिप्रेक्ष्य हन्तुकामं पुरन्दरम्। जहास परमं तत्र शक्रस्य च भयावहम्।
मुखं प्रसार्य सुमहदागतो हि पुरन्दरम्॥२३४॥
ग्रस्तुकामो महातेजादैत्यानामधिपस्तदा। आगत्य सहसा शक्रंग्रासयित्वासकुञ्जरम्॥२३५॥
सवज्रं सकिरीटं च ननर्त च जगर्ज्ज च। निमिषांतरमात्रेण ग्रसितोऽसौ पुरन्दरः॥२३६॥

दैत्य प्रमुख वृत्र ने इस प्रकार से इन्द्र की भर्त्सना किया, तब देवेन्द्र एक विद्युत् के समान त्रिशूल को घुमाने लगे। अद्भुद् पराक्रमी वृत्र इस त्रिशूल की प्रभा से शोभायमान होने लगा। प्रतीत हो रहा था कि मानों युगान्तकारी (सृष्टि का अन्त करने वाले) रुद्र अपनी तीव्र तपस्या से शोभित हो रहे हैं। देवराज इन्द्र वृत्र को इस प्रकार से देखकर उसका विनाश करने हेतु दौड़ पड़े। दानवपुंगव वृत्रासुर ने विनष्ट करने की इच्छा लेकर आते इन्द्र को देखकर इन्द्र के लिये उत्कट हास्य किया तथा अपना मुख फाड़कर पुरन्दर इन्द्र की ओर दौड़ पड़ा। वृत्र महातेजस्वी दैत्याधिपति इन्द्र को ग्रास करने की इच्छा से इन्द्र के पास पहुंचा तथा हाथी, वज्र तथा किरीट के साथ इन्द्र को ग्रसित करके गर्जन-तर्जन करने लगा। उसने निमेष मात्र में इन्द्र को ग्रस लिया।।२३१-२३६।।

हाहाकारो महानासीद्देवानां तत्र पश्यताम्।
भूकम्पो हि तदा ह्यासीदुल्कापातः सहस्त्रशः॥२३७॥
तिमिरेणावृतं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम्। नर्तमानस्तदा वृत्रो बभूव परमद्युतिः॥२३८॥
विध्यमानास्तदा सर्वे देवा ब्रह्माणमागताः। शशंसुः सर्वमेवैतद्वृत्रासुरविचेष्टितम्॥२३९॥
तच्छ्रुत्वा भगवान्ब्रह्माव्यथितोऽतीवविस्मितः। कथं जातंमहेन्द्रस्यव्यसनंपरमाद्भुतम्॥२४०॥
देवैः सह तदा ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः। तुष्टाव गिरिशं देवं परमेण समाधिना॥२४१॥

तब वहां उपस्थित देवताओं के मध्य से महान् हाहाकार की ध्वनि उठने लगी। तब भूकम्प हो गया। हजारों-हजार उल्कापात होने लगा। यह चराचरात्मक जगत् अन्धकारावृत हो गया। वृत्र अपने अतुल प्रभाव से मण्डित होकर नृत्यरत हो गया। तब देवगण व्यथित होकर ब्रह्मा के निकट जाकर वृत्रासुर के क्रियाकलाप का वर्णन करने लगे। ब्रह्मदेव यह सुनकर व्यथित तथा विस्मित होकर सोचने लगे—"कैसे महेन्द्र के प्रति यह अभावनीय संकट उपस्थित हो गया?" इस प्रकार से विस्मय प्रकट करके अखिल लोक पितामह ब्रह्मा ने देवताओं के साथ परम समाधि के साथ देवदेव गिरीश महादेव का स्तव करना प्रारम्भ किया।।२३७-२४१।।

ब्रह्मोवाच

ॐनमोलिङ्गरूपाय महादेवाय वै नमः। विश्वरूपाय देवाय विरूपाक्षाय वै नमः॥२४२॥
त्राहित्राहि त्रिलोकेश वृत्रग्रस्तं पुरन्दरम्। तदा नभोगतावाणीसर्वेषामेवशृण्वताम्॥२४३॥
उवाच हितकामाय विधिं लिंगार्चने सती। प्रदोषव्रतयुक्तेन इन्द्रेण विकृतं कृतम्॥२४४॥
निर्माल्यं पीठिकां चैव च्छायाप्रासादमेव च।
प्रदक्षिणांकृतवतापीठिकालंघनं कृतम्॥२४५॥
लंघयन्ति च ये मूढास्ते वै दंड्या न संशयः। चण्डस्य गणमुख्यस्य तस्मात्कुर्यात्प्रयत्नतः।
प्रदक्षिणानमस्कारौ लिङ्गार्च्चनसमन्वितः॥२४६॥
श्रेयःप्राप्त्येकबुद्ध्या वै प्रयत्नाल्लिंगपूजनम्। कार्यं दीक्षा परैर्नित्यं सर्वपापोपशांतये॥२४७॥

ब्रह्मा कहते हैं—"लिंगरूपी महादेव को प्रणाम, प्रणाम! आप विश्वरूप, विरूपाक्ष, देवदेव हैं। आपको प्रणाम! हे त्रिलोचन! वृत्र कवलित पुरन्दर की रक्षा करें, रक्षा करें।" यह स्तव करते ही एक आकाशवाणी सुनाई पड़ी। आकाशवाणी ने देवगण की हितकामनार्थ कहा—"इन्द्र ने प्रदोषव्रतावलम्बन करके भी लिंगार्चन विधि का सम्यक् पालन नहीं किया। इसलिये शिवलिङ्ग का प्रसाद, निर्माल्य, पीठिका तथा छाया सबकुछ उनके द्वारा-विकृत हो गया। उन्होंने लिङ्ग प्रदक्षिणा में पीठिका का लंघन किया था। जो मूढ़ व्यक्ति पीठिका का लंघन करते हैं, वे गणनायक चण्ड द्वारा दण्डित होते हैं। इसमें संदेह नहीं है। इसलिये लिङ्गार्चनार्थ प्रवृत्त होने पर अत्यन्त यत्नपूर्वक लिङ्गपूजा करनी चाहिये। दीक्षित व्यक्तिगण सर्वपापप्रशमनार्थ आजीवन लिंगपूजा करें"।।२४२-२४७।।

आशरीरं च तद्वाक्यं श्रुत्वा ब्रह्मादयः सुराः।
पप्रच्छुस्ते प्रांजलयो नभो वाणीं शुभावहाम्॥२४८॥

कथमर्चामहे लिंगं केनैव विधिना ततः। प्रातर्मध्याह्नसमये सायंकाले तथैव च।
कानि पुष्पाणि सायाह्ने मध्याह्ने च तथैव हि॥१२४९॥
प्रातःकाले तु तान्येव कथयस्व यथातथम्॥२५०॥
तदा नभोगता वाणी कथयामास विस्तरम्॥२५१॥
करवीरं चार्कपुष्पं बृहतीपुष्पमेव च। धत्तूरकुसुमं चैव शतपत्रं तथैव च॥२५२॥
आरग्वधं च पुन्नागं बकुल नागकेशरम्। ब्रध्नोत्पलं कदम्बं च मंदारकुसुमं तथा॥२५३॥
बहूनि वरपुष्पाणि बहूनि कमलान्यपि। त्रिकाले च पवित्राणि ज्ञेयानिसततं बुधैः।
जातीपुष्पं मल्लिकायाश्च पुष्पं पुष्पं मोगरकं नीलपुष्पं तथैव॥२५४॥
तथा पुष्पं कुटजं कर्णिकारं कौसुम्भाख्यं वारिजं रक्तवर्णम्॥२५५॥
एतान्येव च पुष्पाणिमध्याह्नेलिङ्गपूजने। विशिष्टानिमयोक्तानिसायाह्नेकथयाम्यहम्॥२५६॥
चंपकानित्रिकाले च पवित्राणि न संशयः। रात्रौमोगरकाण्येवपवित्राणिनसंशयः॥२५७॥
एवमर्च्चनभेदांश्च ज्ञात्वा तल्लिंगपूजने। कार्योविधिर्विधिज्ञैश्च सततं च शिवालये॥२५८॥

ब्रह्मादि देवगण यह आकाशवाणी सुनकर अंजलिबद्ध होकर उस शुभजननी आकाशवाणी के उद्देश्य से प्रश्न करने लगे—"हम किस प्रकार, किस विधि के द्वारा प्रातः-मध्याह्न तथा सायाह्न लिंगार्चना करें? उक्त कालत्रय में कौन-कौन सा पुष्प लिंगपूजार्थ प्रशस्त है? इसे यथायथ कहिये।" उस आकाशवाणी ने देवगण द्वारा पूछे गये विषय का विस्तार से वर्णन किया। यथा—"करवीर, मदार, बृहतीपुष्प, धतूरा, शतपत्र, आरग्वध, पुन्नाग, बकुल, नागकेशर, सूर्योद्भासित कमल, कदम्ब, मदार पुष्प तथा अन्य और भी उत्तम फूल एवं कदम्बदल से प्रातः-मध्याह्न-सायं लिंगार्चन करे। यह कालत्रय पवित्र होता है, यही बुद्धिमानों का मत है। जातीपुष्प, मल्लिका, मोगरा, नीलपुष्प, कुटज, कर्णिकार, कौस्तुभ, रक्तपद्म से मध्याह्न तथा सायाह्न पूजा करें। सभी प्रकार के चम्पा, तीनों काल में पूजार्थ प्रशस्त हैं। रात्रिकाल की पूजा हेतु मोगरा पुष्प प्रशस्त कहा गया है। लिंगपूजा का यह रहस्य जान कर विधिज्ञ व्यक्ति शिवमंदिर में सतत् पूजा व्यवस्था करे"।।२४८-२५८।।

वृषभांतरितो भूत्वा पीठिकांतरमेव च। प्रदक्षिणां च कुर्वीत कुर्वन्किल्बिषमश्नुते॥२५९॥
तथा ह्यनेन शक्रेण कृतंचैवप्रदक्षिणम्। राजसंभावमाश्रित्यतस्माज्जातं च निष्फलम्॥२६०॥
ग्रसितोऽद्यैव वृत्रेण सगजो हि पुरंदरः। भवद्भिरेव तत्कार्यं येन इन्द्रः प्रमुच्यते॥२६१॥
महारुद्रविधानेन मुक्तोभवति तत्क्षणात्। पुरंदरो ह्ययं देवा नात्र कार्याविचारणा॥२६२॥
तेनैव वचसा देवा रुद्रमभ्यर्च्य यत्नतः। यथोक्तेन विधानेन रुद्रसूक्तेन यत्नतः॥२६३॥
तथा चैकादशीरुद्र्या रुद्रमभ्यर्च्य वै सुराः। हवनं प्रत्यहं चक्रुर्दशांशेन द्विजोत्तमाः॥२६४॥
जपं च पूजां हवनं च चक्रुर्विमोक्तुकामाः सहसा पुरंदरम्।
शम्भोः प्रसादात्सहसा विनिर्गतः कुक्षिं भित्त्वा देवराजस्तदानीम्॥२६५॥

वृषभ को तथा पीठिका को लांघ कर कभी भी प्रदक्षिणा न करे। ऐसा करना पापफल प्रदान करता है।

लेकिन इन्द्र ने राक्षस भाववरण करके इसी प्रकार से प्रदक्षिणा की थी, तभी उनका पूजाकार्य निष्फल हो गया। तथा वृत्रासुर ने उनको वाहन ऐरावत के साथ ग्रास किया। वृत्रासुर के उदर से इन्द्र जिस उपाय से मुक्त हो सके, तुमलोग वैसा करो। हे देवगण! यथाविधि महारुद्र का पूजन सम्पन्न करने पर इन्द्र तत्क्षण मुक्त होंगे। इसमें सन्देह नहीं है।" यह आकाशवाणी देवगण ने सुना। वे रुद्रसूक्त का पाठ करके यथोक्त विधि के अनुरूप यत्नपूर्वक रुद्रदेव की अर्चना करने लगे। हे द्विजगण! सुरगण ने एकादश रुद्रसूक्त से अर्चना किया तथा उसके दशमांश से होम किया। पुरन्दर इन्द्र की मुक्ति हेतु देवगण ने जप, होम, पूजा का शीघ्रता पूर्वक निर्वाह किया। तब शम्भु की कृपा से देवराज सहसा वृत्र की कुक्षि का विदारण करके उसके उदर से बहिर्गत हो गये।।२५९-२६५।।

तं निर्गतं समीक्ष्याथदेवदेवेन्द्रमोजसा। सगजं च स वज्रं च सकिरीटंकुण्डलम्।
श्रिया परमया युक्तं पुरंदरं महौजसम्।।२६६।।
देवदुंदुभयो नेदुस्तथा शंखा ह्यनेकशः। गन्धर्वाप्सरसो यक्षा ऋषयश्च मुदान्विताः।।२६७।।
ऐकपद्येन सर्वेषां महाहर्षो दिवौकसाम्। संजातस्तत्क्षणादेव यदा मुक्तः पुरंदरः।
तदा शची समायाता यत्र मुक्तः पुरंदरः।।२६८।।
तत्र शच्या समेतोऽसावभिषिक्तो महर्षिभिः। पुण्याहवाचनं तस्य कृतंसर्वैः प्रयत्नतः।।२६९।।

इन्द्रदेव अपने हाथी, वज्र, मुकुट तथा कुण्डल के साथ बलपूर्वक बाहर निकलकर परमशोभा से अन्वित होकर महातेज से दीप्तिमान थे। उनको देखकर देवदुन्दुभि निनादित होने लगी। तब शंखध्वनि होने लगी। गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष तथा ऋषिगण प्रसन्न हो गये। तभी स्वर्ग के वासीगण के बीच एक साथ महान् हर्ष व्याप्त हो गया। जब इन्द्र मुक्त हो गये, तब उनकी पत्नी शची भी वहां आईं। वहां शची के साथ इन्द्र को महर्षिगण ने अभिषिक्त किया। ऋषियों ने वहां प्रयत्नपूर्वक पुण्याहवाचन भी किया।।२६६-२६९।।

एवं तदाभिषिक्तोऽसौ महेन्द्र ऋषिभिःपुनः। मही मंगलभूयिष्ठातदाजाताद्विजोत्तमाः।
दिशः प्रसन्नतां याता निर्मलञ्चाभवन्नभः।।२७०।।
शांतास्तदाऽग्रयो ह्यासन्मनांसि च महात्मनाम्।।२७१।।
एवमादीन्यनेकानि मंगलानि ततोऽभवन्।
मुक्ते शतक्रतौ तस्मिन्बभूव परमाद्भुतम्।।२७२।।
एवं प्रवर्तमाने तु महतां च महोत्सवे। तावद्वत्रस्य पतितं शरीरं च भयानकम्।।२७३।।
तत्रैव ब्रह्महत्या च पापिष्ठा पतिता भुवि।
गंगायमुनयोर्मध्ये अंतर्वेदीति कथ्यते।।२७४।।
पुण्यभूमिरितिख्याताप्रसिद्धा लोकपावनी। वृत्रहत्याप्रतिष्ठासायस्मिन्देशेसपापवान्।।२७५।।
मलस्य बहु संभूत्या मालावेति प्रकीर्तिता। तस्यांतुमलभूम्यां वैवृत्रस्यचमहच्छिरः।।२७६।।
षण्मासेष्वपतत्सर्वैः कृत्तं देवैः सवासवैः। एवं वृत्रवधं कृत्वा शक्रो जयमवाप ह।।२७७।।

इस प्रकार महेन्द्र का उस समय पुनः अभिषेक ऋषियों द्वारा सम्पन्न होने के कारण पृथिवी मंगलमयी हो

गयी। सभी दिशायें प्रसन्न हो गयीं। आकाश निर्मलता पूर्ण हो गया। अग्नियों ने शान्तभाव धारण किया तथा महात्मागण का मन प्रसन्न हो गया। इन्द्र की मुक्ति हो जाने के कारण इस प्रकार के नाना मांगलिक लक्षण आविर्भूत हो गये तथा परमाद्भुत व्यापार संघटित हो गया। इस प्रकार से महत् व्यक्तिगण का महोत्सव प्रवर्त्तित हुआ। इधर वृत्रासुर का भीषण शरीर वहां पतित था, वहीं-पापिष्ठ ब्रह्महत्या भी पड़ी थी। यह स्थान गंगा-यमुना का मध्यवर्त्ती तथा अन्तर्वेदी नाम से प्रख्यात है। इसे लोकपावनी पुण्यभूमि भी कहते हैं। जहां ब्रह्महत्या की प्रतिष्ठा है, वह पापमय देश नाना मलयुक्त होने के कारण मालव कहा गया है। उसी मलभूमि के पास वृत्रासुर का बृहद्शिर छः मास पड़ा था। इन्द्रादि समस्त देवगण ने मिलकर इस शिर के टुकड़े किया। इस प्रकार से वृत्र वधोपरान्त इन्द्र ने जय प्राप्त किया।।२७०-२७७।।

इन्द्रासने चोपविष्टोनिरांतकः शचीपतिः। एतस्मिन्नंतरेदैत्याः पातालवासिनंबलिम्।
शशंसुः सर्वमागत्य शक्रस्य च विचेष्टितम्॥२७८॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा वैरोचनी रुषान्वितः। शुक्रं प्रपच्छ स तदा कथमिंद्रो वशीभवेत्॥२७९॥
तेनोक्तं बलये राजञ्जयस्यन्दनलब्धये। महायज्ञं कुरुष्वाद्य तेन ते विजयो भवेत्।२८०॥
तेनोक्तो भृगुणा चैव बलिर्यज्ञार्थमुद्यतः। दधौ यानीह द्रव्याणि यज्ञयोग्यानितानिवै।
मेलयित्वा त्वरेणैव वैरोचनिरुदारधीः॥२८१॥
प्रवर्तितो महायज्ञो भार्गवेण महात्मना। दीक्षायुक्तो बलिरभूज्जुहुवे हव्यवाहनम्॥२८२॥

इस जयश्री को प्राप्त करके निरातंक चित्त के साथ वे इन्द्रासन पर आरूढ़ हो गये। तब सभी दैत्यों ने पातालवासी बलि से इन्द्र के कार्यकलाप का वर्णन किया। दैत्यों का वाक्य सुनकर विरोचन का पुत्र बलि क्रोधित होकर शुक्राचार्य के पास जाकर पूछने लगा—"यह इन्द्र कैसे हमारे वश में होगा?" शुक्राचार्य ने बलि से कहा—"राजन्! जयलाभार्थ एक महायज्ञ का अनुष्ठान करो। इसी से जय प्राप्त होगी।" शुक्राचार्य के यह कहने पर बलि यज्ञ का उद्योग करने लगा। शुक्र ने जिन द्रव्यों को यज्ञयोग्य कहा था, उदारबुद्धि बलि ने उसे शीघ्रता से लाकर महात्मा भार्गव की सहायता से उस महायज्ञ को प्रवर्त्तित किया। यज्ञ दीक्षित बलि अग्नि में आहुति देने लगा।।२७८-२८२।।

हूयमाने तदाग्नौ तु कर्मणा विधिहेतुना।
तस्मादुबलेःसमुत्पन्नः स्यंदनः परमाद्भुतः॥२८३॥
हयैश्चतुर्भिः संयुक्तो ध्वजे सिंहो महाप्रभः। शस्त्रास्त्रैःसंयुतःश्रीमान्हयैःश्वेतैरलंकृतः॥२८४॥
ततश्चावभृथस्नानं चक्रेशुक्रप्रणोदितः। स्यंदनं पूजयित्वाऽथ आरुरोह बलिस्तदा॥२८५॥
दैत्यैः परिवृतः सद्यो योद्धुकामः पुरंदरम्। सद्य एव दिवं प्राप्तो बलिर्वैरोचनोमहान्॥२८६॥
आगत्य सेनया सार्द्धमारुरोहामरावतीम्। संरुद्धां तां पुरीं दृष्ट्वा तदा ते सुरसत्तमाः।
विमर्शयित्वा सुचिरमूचुः सर्वे वृहस्पतिम्॥२८७॥
किं कुर्मोऽद्य महाभाग आगतादैत्यपुंगवाः। योद्धकामामहाघोराःसर्वे युद्धविशारदाः।
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा वृहस्पतिरभाषत॥२८८॥

एते घृतमुखा घोरा भृगुणा नोदिताः सुराः। अजेयाश्चैव ते सर्वे तपसा विक्रमेणच॥२८९॥
एतन्निशम्य वचनं च गुणाभियुक्तं सर्वे सुराः समभवंस्त्रपयाभियुक्ताः।
इन्द्रोऽपि बुद्धिविकलः परिचिंतया च व्रीडायुतः समभवत्परिभर्त्स्यमानः॥२९०॥

।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे बलिदैत्यस्य संग्रामोद्योगवर्णनं नाम सप्तदसोऽध्यायः।।१७।।

विधि-विधान के अनुसार अग्नि के हूयमान होने पर उसमें से बलि के लिए एक परमोत्तम रथ प्रादुर्भूत हो गया। इसमें ४ अश्व जुते थे। उसके ध्वज पर एक महाप्रतापी सिंह था। वह रथ अस्त्र-शस्त्र से परिवृत, श्रीयुक्त तथा श्वेत घोड़ों वाला था। तदनन्तर शुक्र के आदेशानुसार बलि का अवभृथ स्नान सम्पन्न हुआ। इस रथ का पूजन करके बलि उस पर बैठे। अब बलि ने दैत्यों से घिर कर इन्द्र से युद्ध की कामना से अविलम्ब स्वर्ग गमन किया। महाबली विरोचन पुत्र बलि दैत्यसेना के साथ स्वर्ग आया तथा उसने अमरावती पुरी को अवरुद्ध कर लिया। पुरी अवरुद्ध होते देखकर सुरश्रेष्ठगण ने दीर्घकाल तक परस्परतः परामर्श किया। तब सबने एक वाक्य से बृहस्पति से कहा—"हे महाभाग! प्रबल दैत्य सेना आई है। उसमें सभी रणपण्डित हैं। वे महाघोर तथा युद्धार्थ उत्सुक हैं। अब हम क्या करें।" देवगण की यह समस्या सुनकर बृहस्पति ने कहा—"हे सुरगण! ये सभी भीषण दैत्य महायज्ञ सम्पादन करके देवताओं को प्राप्त होने वाली हवि की लालसा से शुक्राचार्य के नेतृत्व में यहां आये हैं। तपस्या, विक्रम आदि में ये तुम लोगों से अजेय हैं।" बृहस्पति का यह कथन सुनकर सभी देवता लज्जित हो गये। सोचते-सोचते इन्द्र की बुद्धि विकल हो गई। वे बृहस्पति के द्वारा भर्त्सना पाकर लज्जा से आक्रान्त हो गये।।२८३-२९०।।

।।सप्तदश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अष्टादशोऽध्यायः

बुद्धि विकल देवगण का नाना रूप धारण

लोमश उवाच

कर्मणा परिभूतो हि महेन्द्रो गुरुमब्रवीत्। विनायत्नेनसंक्लेशात्तर्तुकर्म्मकिमुच्यताम्॥१॥
वृहस्पतिरुवाचेदं त्यक्त्वा चैवामरावतीम्। यास्यामोऽन्यत्रसर्ववैसकुटुंबाजिगीषवः॥२॥
तथा चक्रुः सुराः सर्वे हित्वा चैवामरावतीम्। बर्हिणो रूपमास्थायगतःसद्यःपुरंदरः॥३॥
काको भूत्वा यमः साक्षात्कृकलासो धनाधिपः।
अग्निः कपोतको भूत्वा भेको भूत्वा महेश्वरः॥४॥

नैर्ऋतस्तत्क्षणादेवकपोतोऽभूत्ततोगतः। पाशीकपिंजलोभूत्वावायुःपारावतोऽभवत्॥५॥
एवं नानातनुभृतो हित्वाते त्रिदिवं गताः। कश्यपस्याश्रमंपुण्यंसंप्राप्तास्तेभयातुराः॥६॥
अदितिं मातरं सर्वे शशंसुर्दैत्यचेष्टितम्॥७॥
अप्रियं तदुपाकर्ण्य ह्यदितिः पुत्रलालसा। उवाच कश्यपं सा दु सुराणांव्यसनंमहत्।
महर्षे! श्रूयतां वाक्यं श्रुत्वा तत्कर्तुमर्हसि॥८॥
दैत्यैः पराजिता देवा हित्वा चैवामरावतीम्। त्वदीयमाश्रमंप्राप्तास्तान्रक्षस्वप्रजापते॥९॥

लोमश कहते हैं—महेन्द्र अपने कर्म के प्रभाव से पराभूत होकर बृहस्पति से कहने लगे—"अनायास ही क्लेश से उत्तीर्ण हो सकूं, क्या ऐसा कर्म है? कृपया कहें।" बृहस्पति कहते हैं—"हम अमरावती त्याग कर अपने आत्मीय-कुटुम्ब के साथ जयलाभार्थ अन्यत्र जायें।" तब देवगण ने यही किया। उन्होंने अमरावती का त्याग किया तथा एक-एक करके सभी जाने के लिए उद्यत हो गये। पुरन्दर मयूर के वेश में, यम काकरूप में, कुबेर गिरगिट के वेश में, अग्नि कपोत रूप में, ईशान मेढक के रूप में, नैर्ऋत् भी कपोत रूप में, वरुण कपिञ्जलरूप में तथा वायु पारावत के वेश में तत्क्षण उस पुरी से निकल गये। इस प्रकार से भयातुर देवता नाना तिर्यक् योनिरूपी होकर देवलोक का त्याग करके पवित्र कश्यपाश्रम पहुंचे। उन्होंने माता अदिति से दैत्यों के दौरात्म्य का वर्णन किया। पुत्रवत्सला अदिति ने यह अप्रिय वाक्य सुनकर कश्यप से देवगण की विपुल कष्टवार्त्ता का वर्णन किया। महर्षि! मेरा वाक्य सुनें। सुनकर जो कर्त्तव्य हो वह करें। ये सभी दैत्यों से पराजित देवता अमरावती का त्याग करके आपके आश्रम में आये हैं। हे प्रजापति! आप इनकी रक्षा करें॥१-९॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वाकश्यपोवाक्यमब्रवीत्। तपसामहतातन्विजानीहित्वंचभामिनी।
अजेया ह्यसुराः साध्वि! भृगुणा ह्यनुमोदिताः॥१०॥
तेषां जयो हि तपसा उग्रेणाऽद्येन भामिनी। कुरु शीघ्रतरेणैव सुराणां कार्यसिद्धये॥११॥
व्रतमेतन्महाभागे कथयाम्यर्थसिद्धये। तत्कुरुष्व प्रयत्नेन यथोक्तविधिना शुभे॥१२॥
मासि भाद्रपदे देवि दशम्यां नियता शुचिः। एकभक्तं प्रकुर्वीतविष्णोःप्रीत्यर्थमेव च॥१३॥
प्रार्थनीयो हरिः साक्षात्सर्वकामवरेश्वरः। मंत्रेणानेन सुभगे तद्भक्तैर्वरवर्णिनि॥१४॥

अदिति का कथन सुनकर कश्यप ने कहा—"हे देवी! भामिनी! महत् तप बल से असुरगण अजेय हो गये हैं। हे साध्वी! भृगु ने उनके अजेयत्व का अनुमोदन किया है। हे भामिनी! असुरों के तपोबल से अधिक तपोबल संचय कर सकने पर ही देवताओं को जय मिलेगी। हे महाभाग! देवगण की कार्यसिद्धि हेतु तुम सब शीघ्रता से व्रताचरण करो। हे शुभे! यथोक्त विधि के अनुसार अत्यन्त यत्नपूर्वक इस व्रत का अनुष्ठान करो। इसकी अनुष्ठान प्रणाली यह है। भाद्रमासीय दशमी तिथि के दिन पवित्र होकर तथा संकल्प करके विष्णु की प्रसन्नता के लिए एक समय आहार करे। हे सुभगे! हे वरवर्णिनी! तदनन्तर वक्ष्यमाण मन्त्र-से सर्वकाम विष्णु के निकट हरिभक्त व्रती व्यक्ति यह प्रार्थना करे॥१०-१४॥

तव भक्तोऽस्म्यहं नाथ दशम्यादिदिनत्रयम्। व्रतं चराम्यहंविष्णोअनुज्ञांदातुमर्हसि॥१५॥
अनेनैव च मंत्रेण प्रार्थनीयो जगत्पतिः। एकभक्तं प्रकुर्वीत तच्च भक्तं च केवलम्॥१६॥

रंभापत्रे च भोक्तव्यं वर्जितं लवणेन हि। एकादश्यां चोपवासं प्रकुर्वीत प्रयत्नतः॥१७॥
रात्रौ जागरणं कुर्यात्प्रयत्नेन सुमध्यमे। द्वादश्यां निपुणत्वेन पारणा तु विधानतः।
कर्तव्या ज्ञातिभिः सार्द्धं भोजयित्वा द्विजोत्तमान्॥१८॥

यथा—"हे नाथ! मैं आपका भक्त हूं। दशमी से लगाकर तीन दिन मैं आपका व्रताचरण करूंगा। हे विष्णु! आप मुझे आज्ञा प्रदान करें।" इस मन्त्र से जगत्पति हरि की प्रार्थना करनी होगी। तदनन्तर एक समय ही भोंजन करे। उसके साथ अन्य वस्तु न खाये। केले के पत्ते पर नमक रहित भोजन करे। एकादशी के दिन यत्नपूर्वक उपवास तथा रात्रि जागरण करे। द्वादशी के दिन निपुण रूप से यथाविधि पारण करे। इस दिन जाति बन्धुगण के साथ श्रेष्ठ ब्राह्मणगण को भोजन अवश्य कराये। इस तरह से १२ मास पर्यन्त नियत भावेन यथाविधि पारण करे। इस दिन अपने बन्धुगण के साथ श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भोजन कराये।।१५-१८।।

एवं द्वादशमासांस्तु कुर्याद्व्रतमतंद्रितः। मासि भाद्रपदे प्राप्ते एकादश्यां प्रपत्नतः।
विष्णुमभ्यर्च्य यत्नेन कलशोपरि संस्थितम्॥१९॥
सौवर्णं राजतं वापि यथाशक्त्या प्रकल्पयेत्। श्रवणेनतुसंयुक्तांद्वादशींपापनाशिनीम्।
व्रती उपवसेद्यत्नात्सर्वदोषप्रशांतये॥२०॥
एवं हि कश्यपेनोक्तं श्रुत्वाऽदितिरथाचरत्।
व्रतं सांवत्सरं यावन्नियमेन समन्विता॥२१॥
वर्षांतेन व्रतेनैव परितुष्टो जनार्दनः। प्रादुर्बभूव द्वादश्यां श्रवणेन तदा द्विजाः॥२२॥
बटुरूपधरः श्रीशो द्विभुजः कमलेक्षणः। अतसीपुष्पसंकाशो वनमालाविभूषितः॥२३॥
तंदृष्ट्वाविस्मयाविष्टापूजांमध्येऽदितिस्तदा। कश्यपेनसमायुक्तासाऽस्तौषीत्कमलेक्षणा॥२४॥

इस प्रकार से १२ मास पर्यन्त नियत रूप से व्रतानुष्ठान करे। भाद्रमास की एकादशी के दिन कलश के ऊपर अपनी वित्तशक्ति के अनुसार स्वर्ण किंवा चांदी की विष्णुमूर्त्ति स्थापित करके यत्नतः उनकी अर्चना करे। श्रवण नक्षत्र युक्त द्वादशी पापनाशिनी है। समस्त दोषशान्ति हेतु इस दिन व्रती व्यक्ति साग्रह उपवासी रहे। अदिति ने कल्पोक्त व्रतविधि सुनकर १ वर्ष नियम पूर्वक इसका अनुष्ठान किया। तदनन्तर वर्षान्त काल में अदिति के व्रताचरण से सन्तुष्ट होकर श्रवणा द्वादशी तिथि के दिन भगवान् का प्राकट्य हो गया। हे द्विजगण! श्रीपति पुण्डरीकाक्ष, ने द्विभुजधारी वटुरूप से अपना प्राकट्य किया। उनका तात्कालिक वर्ण अलसी के पुष्प जैसा था। वह स्वरूप वनमाला युक्त था। अदिति ने पूजाकाल में उनको देखा तथा विस्मयाभिभूत हो गये। तत्पश्चात् कमलनयनी माता अदिति ने कश्यप के साथ उनकी स्तुति किया।।१९-२४।।

अदितिरुवाच

नमोनमः कारणकारणाय ते विश्वात्मने विस्वसृजे चिदात्मने।
वरेण्यरूपाय परावरात्मने ह्यकुंठबोधाय नमो नमस्ते॥२५॥
इति स्मृतस्तदाऽदित्या देवानां पतिरच्युतः। प्रहस्य भगवानाह अदितिं देवमातरम्॥२६॥

श्रीभगवानुवाच

तपसा परमेणैव प्रसन्नोऽहं तवानघे। अमुना वपुषा चैव देवानां कार्यसिद्धये॥२७॥
श्रुत्वा भगवतो वाक्यमदितिस्तमुवाचह। भगवन्पराजिता देवा असुरैर्बवत्तरैः।
तान्रक्ष शरणापन्नान्सुरान्सर्वाञ्जनार्दन॥२८॥

देवमाता अदिति कहती हैं—"आप कारण के भी कारण, विश्वात्मा, विश्वस्त्रष्टा, चिदात्मा हैं। आपको प्रणाम! पुनः प्रणाम! आप वरेण्यरूपी, परावरात्मा, अकुण्ठ बोध हैं, आपको पुनः पुनः प्रणाम!" अदिति द्वारा स्तव करने से भगवान् अच्युत ने प्रसनन होकर देवमाता से कहा—"हे निष्पापे! तुम्हारी परम तपस्या से मैं प्रसन्न हूं। मैं देवगण की कार्यसिद्धि हेतु प्रयत्न करूंगा।" अदिति ने भगवान् का कथन सुनकर कहा—हे प्रभो! बलवान असुरों ने देवताओं को परास्त कर दिया है। आप असुरों द्वारा पराजित किये गये देवगण की रक्षा करिये।।२५-२८।।

निशम्य वाक्यं किल तच्च तस्या विष्णुर्विकुंठाधिपतिः स एकः।
ज्ञात्वा च सर्वं सुरचेष्टितं तदा बलेश्च सर्वं च चिकीर्षितं च॥२९॥
किं कार्यमद्यैव मया हि कार्यं येनैव देवा जयमाप्नुवंति।
पराजयं दैत्यवराश्च सर्वे विष्णुः परात्मैव विचिंत्य सर्वम्॥३०॥
गदामुवाच भगवान्गच्छस्वाद्य वधं प्रति। वैरोचनिं महाभागे घातयस्वत्वरान्विता॥३१॥
गदोवाच हृषीकेशं प्रहसन्तीव भामिनी। मया ह्यशक्यो वधितुं ब्रह्मण्योहिबलिर्महान्॥३२॥
चक्रं प्रति तदा विष्णुरुवाच परिसांत्वयन्। त्वं गच्छ बलिनं हंतुं शीघ्रमेव सुदर्शन॥३३॥
तदोवाच त्वरेणैव चक्रपाणिं सुदर्शनम्। न शक्यते मया हंतुं बलिनं तं महाप्रभो!॥३४॥
ब्रह्मण्योऽसियथाविष्णोतथाऽसौदैत्यपुंगवः। धनुषाचतथैवोक्तःशार्ङ्गपाणिश्चविस्मितः।
चिंतयामास बहुधा विमृश्य सुचिरं बहु॥३५॥

वैकुण्ठाधिपति विष्णु ने अदिति का वाक्य सुनकर देवता तथा बलि के कार्य एवं कार्य के अभिप्राय से अवगत हो गये। तदनन्तर उन्होंने विचार किया कि मैं एकाकी ही अब ऐसा क्या कार्य करूं, जिसके द्वारा देवताओं को विजय प्राप्त हो, साथ ही दैत्य पराजित हो जायें? परमात्मा विष्णु ने इन सब समस्या पर विचार करने के पश्चात् अपनी गदा से कहा—"हे महाभाग! तुम वैरोचन बलि के वधार्थ शीघ्र जाओ। जाकर उसका वध करो।" गदा ने सहास्य प्रभु से कहा—"मैं उसका वध नहीं कर सकता, महात्मा बलि ब्रह्मतेज सम्पन्न है।" तब भगवान् ने चक्र से कहा—"हे सुदर्शन! तुम शीघ्र बलि के विनाशार्थ गमन करो।" तब सुदर्शन ने तत्काल चक्रधारी विष्णु से कहा—"हे महाप्रभु! मैं बलि का विनाश नहीं कर सकूंगा। जैसे आप ब्रह्मण्य हैं, तदनुरूप दैत्यराज बलि भी ब्रह्मण्य हैं।" तब शार्ङ्गधारी विष्णु ने उस धनुष को बलि वधार्थ आदेश दिया, तब धनुष ने भी इसी प्रकार का उत्तर प्रदान कर दिया। इससे भगवान् विस्मयापन्न होकर नाना प्रकार का चिन्तन करने लगे।।२९-३५।।

अत्रिरुवाच

तदा ते ह्यसुराः सर्वे किमकुर्वंस्तदुच्यताम्॥३६॥

अत्रि कहते हैं—"इस असुर ने ऐसा क्या कार्य किया था, वह कहिये।।३६।।

लोमश उवाच

तदा ते ह्यसुराः सर्वे बलिप्रभृतयो दिवि। रुरुधुर्नगरीं रम्यां योद्धुकामाः पुरंदरम्।।३७।।
न विदुर्ह्यसुराः सर्वे गतान्देवांस्त्रिविष्टपात्। नानारूपधरांस्तस्मात्कश्यपस्याश्रमंप्रति।।३८।।

लोमश कहते हैं—इस समय बलि तथा प्रमुख असुरगण ने सैन्य के साथ अमरावती का अवरोध इन्द्र के साथ युद्ध के लिये कर लिया, तथापि उनको अब तक यह पता नहीं चल सका था कि सभी देवता नाना रूप धारण करने के पश्चात् स्वर्ग से भाग कर कश्यप मुनि के आश्रम चले गये।।३७-३८।।

प्राकारमारुह्य तदा हि संभ्रमाद्दैत्याः सुरेशं प्रति हंतुकामाः।
यावत्प्रविष्टा ह्यमारवतीं तां शून्यामपश्यन्परितुष्टमानसाः।।३९।।
इन्द्रासने च शुक्रेण ह्यभिषिक्तो बलिस्तदा। महाभिषेकविधिना ह्यसुरैः परिवारितः।।४०।।
तथैवाधिष्ठितो राज्ये बलिर्वैरोचनो महान्। शुशुभे परया भूत्या महेन्द्राधिकृतस्तदा।।४१।।
नागैश्चासुरसंघैश्च सेव्यमानो महेन्द्रवत्। सुरद्रुमो जितस्तेन कामधेनुर्मणिस्तथा।।४२।।
दानैर्दाता च सर्वेषां येऽन्ये दानित्वमागताः। सर्वेषामेवभूतानांदानैर्दाताबलिर्महान्।।४३।।
यान्यान्कमायते कामांस्तान्सर्वान्वितरत्यसौ।
सर्वेभ्योऽपि स चार्थिभ्यो दानवानामधीश्वरः।।४४।।

तब दैत्यों ने उस इन्द्रपुरी अमरावती की चाहारदीवारी पर चढ़ कर इन्द्र को उत्पीड़ित करने हेतु पुरी के प्रति दृष्टिपात किया, तब देखा कि वह इन्द्रपुरी शून्य है। वहां एक भी देवता नहीं हैं। यह देखकर असुरगण का मन हर्षोत्फुल्ल हो गया। तब आचार्य शुक्र ने अभिषेक विधान के अनुसार इन्द्रासन पर बलि का अभिषेक कर दिया। विरोचननन्दन बलि अभिषेक के उपरान्त स्वर्गराज्य पर अधिष्ठित होकर अत्यन्त ऐश्वर्य के साथ सुशोभित हो गये। उन्होंने महेन्द्र के सभी पदों पर अधिकार कर लिया। नागगण तथा समस्त असुर उनकी सेवा इन्द्र जैसी ही करने लगे। इन्द्रपुरी का कल्पवृक्ष तथा कामधेनु एवं वहां की मणियों पर बलि को अधिकार प्राप्त किया। वह दाता रूप होकर दान द्वारा सबको तृप्त करता था। सभी प्राणियों को दान देने वाला वह महान् बलि दाता था। दानवों का अधिपति बलि दान मांगने वालों को, अर्थियों को उनकी इच्छानुरूप वस्तु प्रदान करता था।।३९-४४।।

शौनक उवाच

देवेन्द्रो हि महाभाग न ददाति कदाचन। कथं बलिरसौदाता कथयस्व यथातथम्।।४५।।

शौनक कहते हैं—हे महाभाग! देवेन्द्र इन्द्र तो कभी कुछ दान नहीं करते थे, तथापि उसी इन्द्र पद पर स्थित बलि किस प्रकार दाता हो गया? इसे कृपापूर्वक यथायथ रूप से कहिये।।४५।।

लोमश उवाच

यत्नतो येन यत्किंचित्क्रियते सुकृतं नरैः। शुभंवाप्यशुभंवापिज्ञातव्यं हि विपश्चिता।।४६।।
शक्रो हि याज्ञिको विप्रा अश्वमेधशतेन वै। प्राप्तराज्योऽमरावत्यांकेवलंभोगलोलुपः।।४७।।

अर्थितं तत्फलंविद्धिपुनः कार्पम्यमाविशत्। पुनर्मरणमाविश्यक्षीणपुण्योभविष्यति॥४८॥
य इन्द्र कृमिरेव स्यात्कृमिरिन्द्रो हि जायते। तस्माद्दानात्परतरं नान्यदस्तीहमोचनम्॥४९॥

लोमश कहते हैं—मनुष्य सुकृति होकर यत्नपूर्वक जो भी कार्य करते हैं, उसके शुभाशुभ परिणाम को विज्ञ व्यक्ति ही जान पाते हैं। हे विप्रगण! इन्द्र १०० अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न करने के उपरान्त स्वर्गराज्य प्राप्त करते हैं। वे राज्य प्राप्ति के उपरान्त भोगलोलुप हो जाते हैं। इस प्रकार राज्यपद प्राप्त होने के पश्चात् उनमें कार्पण्य (कंजूसी) आ जाती हैं। वे क्रमशः पुण्यफल भोग भोगते रहते क्षीणपुण्य हो जाते हैं। पुनः उनका वहां से मरण (च्युति) होता है। कर्मफल की विचित्रता से जो आज इन्द्र है, वही कीट हो जाता है तथा जो कीट है, उसे इन्द्रत्व प्राप्ति होती है। यह देखा गया है कि दान से बड़ा-मोक्ष का उपाय है ही नहीं। यह संशयरहित बात है। हे द्विजगण! भगवान् शूलपाणि की भक्ति तो मोक्ष से भी श्रेष्ठ स्थिति है।।४६-४९।।

दानाद्धिप्राप्यतेज्ञानंज्ञानान्मोक्षोनसंशयः। मोक्षात्परतराभक्तिः शूलपाणौहिवैद्विजाः॥५०॥
ददाति सर्वं सर्वेशः प्रसन्नात्मा सदाशिवः। किंचिदल्पेन तोयेन परितुष्यति शंकरः॥५१॥
अत्रैवोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम्। विरोचनसुतेनेदं कृतमस्ति न संशयः॥५२॥

प्रसन्नात्मा सदाशिव समस्त-सब कुछ दान करते हैं। यत्किंचित् जल दान से ही वे प्रसन्न हो जाते हैं। इस सम्बन्ध में एक प्राचीन इतिहास कहा जाता है। विरोचन के पुत्र बलि अवश्य ही इस इतिहास के अनुरूप कार्य करते थे।।५०-५२।।

कितवो हि महापापो देवब्राह्मणनिंदकः। निकृत्या परयोपेतः परदाररतो महान्॥५३॥
एकदा तु महापापात्कैतवाच्च जितं धनम्। गणिकार्थे च पुष्पाणितांबूलं चंदनंतथा॥५४॥
कौपीनमात्रं तस्यैवकितवस्यप्रदृश्यते। कराभ्यांस्वस्तिकंकृत्वागंधमाल्यादिकंचयत्॥५५॥
गणिकार्थमुपादाय धावमानो गृहं प्रति। तदाप्रस्खलितोभूमौनिपपातचतत्क्षणात्॥५६॥

प्राचीनकाल में एक महापापी कितव (धूर्त्त) था। वह सदा देव-ब्राह्मणों की निन्दा करता रहता था। जितने भी निकृष्ट कार्य हैं, उनमें से ऐसा कोई कार्य नहीं था, जिसे इस कितव ने न किया हो! वह परम परस्त्रीगामी भी था। एक बार इस कितव ने अति घृणित पाप कार्य तथा अन्यायपूर्ण धूर्त्तता द्वारा धनार्जन किया तथा किसी गणिका (वेश्या) हेतु पुष्प-ताम्बूल-चन्दनादि लेकर उसके गृह जाने लगा। उस समय उसके शरीर पर मात्र एक कौपीन के अतिरिक्त कोई वस्त्र नहीं था। वह हथेली को स्वस्तिक जैसा बनाकर उसी पर गंधमाला-ताम्बूल-चन्दनादि लिये गणिका के गृह की ओर जाने लगा। हठात् वह पैर फिसल जाने के कारण भूमि पर गिर पड़ा।।५३-५६।।

पतनान्मूर्च्छायायुक्तःक्षणमात्रंतदाऽभवत्। ततो मूर्छागतस्यास्यपापिनोऽनिष्टकारिणः॥५७॥
बुद्धिः सद्यः समुत्पन्ना कर्मणा प्राक्तनेन हि। निर्वेदं परमापन्नः कितवो दुःखसंयुतः॥५८॥
भूम्यां निपतितं यच्च गंधपुष्पादिकं महत्। समर्पितं शिवायेति कितवेनाप्यबुद्धिना॥५९॥
तेनैव सुकृतेनैव याम्यैनींतो यमालयम्। तं पापीति यमोऽवोचत्सर्वलोकभयावहः॥६०॥
पचनीयोसि मे मंद नरकेषु महत्सु च। इत्युक्तो धर्मराजेन कितवो वाक्यमब्रवीत्॥६१॥

इस गिरने से लगे आघात के कारण वह कितव तत्क्षण मूर्च्छाग्रस्त हो गया। क्षणमात्र मूर्च्छित रहने के पश्चात् उस अनिष्टकारी पापात्मा कितव की मूर्च्छा भंग हो गयी। तब पूर्व कर्मजनित प्रभाव से उसे सहसा सद्बुद्धि आई। वह वैराग्ययुक्त तथा दुःखी हो गया। भूमि पर उसकी जो गंधादि वस्तु गिर गयी थी, पुनः उसे उठाकर कितव ने शिवार्पित किया। इससे उस कितव को अपूर्व सुकृति रूप फल प्राप्त हुआ। तदनन्तर काल आने पर यमदूतगण उसे पापी मानकर यमालय ले गये। वहां समस्त लोक समूह के लिये भयंकर यम ने उसे देखकर कहा—"हे मूर्ख! तुमको महान् नरकों में जाना होगा।" धर्मराज का वचन सुनकर वह कितव कहने लगा।।५७-६१।।

पापाचारो हि भगवन्कश्चिन्नैव मया कृतः। विमृश्यतां मे सुकृतं याथातथ्येनभोयम।।६२।।
चित्रगुप्तेन चाख्यातं दत्तमस्ति त्वया पुनः। पतितं चैव देहांते शिवाय परमात्मने।।६३।।
तेन कर्मविपाकेन घटिकात्रयमेव च। शचीपतेः पदं विद्धि प्राप्स्यसि त्वं न संशयः।।६४।।
आगतस्तत्क्षणाद्देवः सुरैः सर्वैः समन्वितः। ऐरावतं समारूढोनीतोऽसौशक्रमंदिरम्।
शक्रः प्रबोधितस्तेन गुरुणा भावितात्मना।।६५।।
घटिकात्रितयं यावत्तावत्कालं पुरंदर। निजासनेऽपिस्थाप्यःकितवोऽपिममाज्ञया।।६६।।
गुरोर्वचनमाकर्ण्यकृत्वाशिरसितत्क्षणात्। गतोऽन्यत्रैवशक्रोऽसौकितवोहिप्रवेशितः।
भवनं देवराजस्य नानाश्चर्यसमन्वितम्।।६७।।

कितव ने कहा—"हे भगवन्! मैंने किसी भी समय कोई पाप नहीं किया। आप मेरे सुकृत के सम्बन्ध में सम्यक् विचार करिये।" तभी चित्रगुप्त ने कहा—"हां! तुमने अपनी मृत्यु के पूर्व परमात्मा शिव का भूपतित गन्ध-माला आदि प्रदान किया था। उस कर्म विपाक के कारण तुम ३ घटी पर्यन्त इन्द्र पद पर आसीन रहोगे।" यह बात हो रही थी, तभी देवगण से घिरे इन्द्र वहां ऐरावत हाथी पर बैठ कर आये। वे उस कितव को इन्द्रलोक ले गये तथा तभी भावितात्मा बृहस्पति ने इन्द्र से कहा—"हे इन्द्र! तुम मेरे आदेश से इस कितव को तीन घटी के लिये अपना आसन प्रदान करो।" गुरु का वाक्य शिरोधार्य करके इन्द्र वहां से चले गये। तब वह कितव नाना आश्चर्य समन्वित देवेन्द्र भवन में प्रविष्ट हुआ।।६२-६७।।

शक्रासनेऽभिषिक्तोऽसौ राज्यंप्राप्तःशतक्रतोः। शंभोर्गंधप्रदानाच्च पुष्पतांबूलसंयुतम्।।६८।।
किं पुनः श्रद्धया युक्ताः शिवाय परमात्मने। अर्पयंतिसदाभक्त्या गंधपुष्पादिकंमहत्।।६९।।
शिवसायुज्यमायाताः शिवसेनासमन्विताः। प्राप्नुवंतिमहामोदं शक्रोह्येषांचकिंकरः।।७०।।

इस प्रकार इन्द्रासन पर अभिषिक्त होकर उसने इन्द्र का राज्य प्राप्त किया। भगवान् त्रिलोचन को मात्र गन्ध-पुष्प तथा ताम्बूलादि प्रदान करने के कारण इस कितव को यह सौभाग्य सम्पदा मिली थी। तब जो लोग भक्ति तथा श्रद्धान्वित होकर परमात्मा शिव को प्रचुर गन्ध-पुष्पादि दान करते हैं, उनके सौभाग्य के विषय में कौन कह सकता है। वे शिव सायुज्य लाभ करते हैं। वे शिवसेवक बन जाते हैं। साथ ही महान् आनन्दलाभ भी करते हैं। ऐसे भक्त के इन्द्र भी दास हो जाते हैं।।६८-७०।।

शिवपूजारतानां च यत्सुखं शांतचेतसाम्। ब्रह्मशक्रादिकानांच तत्सुखंदुर्लभं महत्।।७१।।
वराकास्ते न जानन्ति मूढा विषयोलोलुपाः। वंदनीयो महादेवो ह्यर्चनीयः सदाशिवः।।७२।।

पूजनीयो महादेवः प्राणिभिस्तत्त्ववेदिभिः। तस्मादिंद्रत्वमगमत्कितवोघटिकात्रयम्॥७३॥
पुरोधसाभिषिक्तोऽसौ पुरंदरपदे स्थितः। तदानीं नारदेनोक्तः कितवोऽसौ महायशाः॥७४॥
इन्द्राणीमानयस्वेति यथा राज्यं सुशोभितम्। ततःप्रहस्यचोवाचकितवः शिववल्लभः॥७५॥
इन्द्राण्या नास्ति मे कार्यं न वाच्यं ते महामते। एवमुक्त्वाथकितवःप्रदातुमुपचक्रमे॥७६॥

शिवपूजनतत्पर शान्त चित्त व्यक्ति को जो सुख मिलता है, ब्रह्मा तथा इन्द्रादि हेतु भी वैसा सुख दुर्लभ ही है। तथापि विषय में व्यापृत मूढ़ लोग इस तत्व को नहीं जानते! ऐसे अज्ञ व्यक्ति नितान्त दीन ही हैं। तत्वदर्शी प्राणी के लिए महादेव सदाशिव सदैव वन्दनीय हैं तथा अर्चनीय हैं। इधर उस कितव ने ३ घटी हेतु इन्द्रपद पाया। तभी नारद ने आकर महामना कितव से कहा—"हे इन्द्र! तुम इन्द्राणी को बुलाओ। इससे तुम्हारा राज्य अत्यन्त सुखमय होगा।" तब उस शिववल्लभ कितव ने हंसते हुये कहा—"हे महामते! इन्द्राणी का मुझे कोई काम नहीं है। आप ऐसी बात मुझसे कदापि न कहें!" यह कहकर वह कितव दानकार्य में लग गया।।७१-७६।।

ऐरावतमगस्त्याय प्रददौ शिववल्लभः। विश्वामित्राय कितवो ददौ हयमुदारधीः॥७७॥
उच्चैःश्रवससंज्ञं च कामधेनुं महायशाः। ददौ वशिष्ठाय तदा चिंतामणिं महाप्रभम्॥७८॥
गालवाय महातेजास्तदा कल्पतरुं च सः। कौंडिन्याय महाभागः कितवोपिगृहंतदा॥७९॥
एवमादीन्यनेकानि रत्नानि विविधानि च। ददावृषिभ्यो मुदितः शिवप्रीत्यर्थमेव च॥८०॥
घटिकात्रितयं यावत्तावत्कालं ददौ प्रभुः। घटिकात्रितयादूर्ध्वं पूर्वस्वामी समागतः॥८१॥
पुरंदरोऽमरावत्यामुपविश्य निजासने। ऋषिभिः संस्तुतश्चैव शच्या सह तदाऽभवत्॥८२॥

इस शिवानुरक्त व्यक्ति ने सर्वाग्र में अगस्त्य ऋषि को ऐरावत हाथी, उदार बुद्धि विश्वामित्र को उच्चैःश्रवा अश्व, वशिष्ठ को कामधेनु, गालव को महाप्रभायुक्त चिन्तामणि तथा कौण्डिन्य ऋषि को कल्पतरु दान किया। शिव की प्रसन्नता हेतु यह दान सम्पन्न करके महातेजस्वी महाभाग कितव ने अपना गृह पर्यन्त दान किया। उसने मुदित चित्त से ये सभी विविध रत्न ऋषिगण को प्रदान किया। उसने तीन घटी के अपने स्वर्गराजत्व काल में केवल दान कार्य किया। तब निर्दिष्ट समय समाप्त होने पर राज्य के पूर्व स्वामी इन्द्र वहां आये। पुरन्दर इन्द्र अमरावती आकर शची के साथ अपने आसन पर आसीन हो गये तथा ऋषिगण उनकी स्तुति करने लगे।।७७-८२।।

शचीमुवाच दुर्मेधाः कितवेनासि भामिनि। भुक्ता ह्यस्यैव कथय याथातथ्येनशोभने॥८३॥
तदा प्रहस्य चोवाच पुरंदरमकल्मषा। आत्मौपम्येन सर्वत्र पश्यसि त्वं पुरंदर॥८४॥
असौ महात्मा कितवस्वरूपी शिवप्रसादात्परमार्थविज्ञः।
वैराग्ययुक्तो हि महानुभावो येनापि सर्वं परमं प्रसन्नम्॥८५॥
राज्यादिकं मोहमयं च पाशं त्यक्त्वा परेभ्यो विजयी स जातः॥८६॥
वचो निशम्य देवेश इन्द्राण्याःस पुरंदरः। व्रीडायुक्तोऽभवत्तूष्णीमिंद्रासनगतस्तदा॥८७॥

तब अपनी असंगत धारणा के कारण इन्द्र ने अपनी पत्नी शची से कहा—"हे भामिनी! कितव तुम्हारा भोग करके गया हैं। हे सुन्दरी! अब उस कितव के साथ का संभोग विवरण मुझे प्रदान करो।" यह सुनकर पवित्र चरित्र वाली शची ने हंसते हुये इन्द्र से कहा—"हे पुरन्दर! अपने जैसा ही आप सबको समझते हैं। अन्यथा ऐसी बातें

क्यों करते? यह महात्मा कितव शंभु की कृपा से परमार्थ तत्वज्ञ है। वह वैरागी तथा-महानुभाव है। तत्वसाक्षात्कारोपयोगी सभी साधन उसमें प्रादुर्भूत हैं। उसने इस राज्यादि मोहमय पाप का त्याग किया तथा इन शत्रुओं पर जय पाकर यहां विराजित था।" देवेन्द्र ने इन्द्राणी से यह सुनकर लज्जा का अनुभव किया तथा मौनी होकर बैठ गये।।८३-८७।।

वृहस्पतिमुवाचेदं वाक्यं वाक्यविदां वरः। ऐरावतो न दृश्येत तथैवोच्चैःश्रवाहयः।।८८।।
पारिजातादयः सर्वे पदार्थाः केन वा हृताः। ततो गुरुरुवाचेदं कितवेन कृतं महत्।।८९।।
ऋषिभ्यो दत्तमद्यैव यावत्सत्ता हितस्यवै। स्वसत्तायां महत्यांचस्वसत्तायेभवंति च।।९०।।
अप्रमत्ताश्च ये नित्यं शिवध्यानपरायणाः। ते प्रियाः शंकरस्यैवहित्वाकर्मफलानिवै।
केवल ज्ञानमाश्रित्य ते यांति परमं पदम्।।९१।।

तब वाक्यपटु इन्द्र ने बृहस्पति से कहा—"मैं ऐरावत तथा उच्चैःश्रवा को नहीं देख पा रहा हूं तथा अन्य पदार्थों का किसने हरण कर लिया?" तब बृहस्पति ने कहा—"उस कितव ने वह सब हर लिया। जब तक उसका स्वामित्व था, उसने उसी बीच ऋषिगण को यह सब वस्तु दान कर दी हैं। जो अपनी महती सत्ता से स्वत्ववान् होते हैं तथा जो अप्रमत्तता पूर्वक शिवार्चन तत्पर होते हैं, वे ही शंकर के प्रिय हैं। वे कर्मफल को त्याग कर केवल ज्ञानाश्रय से परमपद प्राप्त करते हैं।"।।८८-९१।।

एतच्छुत्वा वचनं तस्य चेन्द्रो वृहस्पतेर्वाक्यमिदं बभाषे।
प्रायो यमो वक्ष्यति सर्वमेतत्समृद्धये ह्यात्मनश्चैव शक्रः।।९२।।
तथेति मत्वा गुरुणा सहैव राजा सुराणां सहसा जगाम।
स्वकार्यकामो हि तथा पुरंदरो ययौ पुरीं संयमनीं तदानीम्।।९३।।
यमेन पूज्यमानो हि शक्रो वाक्यमुवाच ह। त्वया दत्तं मम पदं कितवाय दुरात्मने।।९४।।
अनेनैतत्कृतं कर्म्म जुगुप्सितं महत्तरम्। मदीयानि च रत्नानि यानि सर्वाण्यनेन वै।
एभ्य एभ्यः प्रदत्तानि धर्म्म! जानीहि तत्त्वतः।।९५।।
त्वं धर्मनामासि कथं कितवाय प्रदत्तवान्। ममराज्यविनाशायकृतमस्तित्वयाऽधुना।।९६।।
आनयस्व महाभाग गजादीनि च सत्वरम्। अन्यानिचैवरत्नानिदत्तानि चयतस्ततः।।९७।।
निशम्य वाक्यं शक्रस्ययमो वचनमब्रवीत्। कितवंचरुषाविष्टःकिंत्वयापापिनाकृतम्।।९८।।
भोगार्थं चैव यद्दतं शक्रराज्यं त्वयाऽधुना। प्रदत्तं च द्विजातिभ्योह्यन्यथावैकृतंमहत्।।९९।।
अकार्यं वै त्वया मूढ परद्रव्यापहारणम्। तेन पापेन महता निरयं प्रतिगच्छसि।।१००।।

इन्द्र ने बृहस्पति का यह वचन सुनकर उनसे कहा—"यम ने पहले ही मुझसे कहा था कि ये सभी आत्मसमृद्धि के निमित्त हैं।" इन्द्र ने यह बात मन में भी रखी तथा अपनी कार्यसिद्धि हेतु बृहस्पति के साथ यमपुरी संयमनी पहुंचे। वहां उनके पहुंचते ही यम ने इनकी पूजा की। तदनन्तर पूजित इन्द्र ने यम से कहा—"आपने मेरा पद दुरात्मा कितव को दिया था। उसने अत्यन्त गर्हित कर्म किया है। मेरे जो सब रत्न थे, उन सबको उसने विशिष्ट मुनिगण को दान किया है। हे धर्म! यह सभी संवाद सत्य है। आपने धर्मरूप होकर भी कितव को मेरा पद क्यों दे

दिया था? अब आप मेरे राज्यविनाशार्थ यह क्या कर रहे हैं? तथापि हे महाभाग! मेरे जो सब गज आदि तथा अन्य रत्न वह कितव जिस किसी को दान कर गया है, आप सब वापस ले आयें।'' यमदेव इन्द्र का वाक्य सुनकर क्रोधित हो गये। कितव उनकी ही पुरी में निवास कर रहा था। यम ने उसे रोषपूर्वक कहा—''पापी! तुमने यह क्या कार्य किया? तुम्हारे भोगार्थ इन्द्र राज्य दिया गया था। उसे तुमने द्विजगण को दे दिया। यह अकार्य तुम्हारा अन्याय है। हे मूढ़! तुमने पराये द्रव्य के अपहरण का कार्य किया है। इससे तो तुमने महापाप संचित कर लिया। तुमको नरक में निमग्न होना होगा।।९२-१००।।

यमस्य वचनं श्रुत्वा कितवो वाक्यमब्रवीत्। अहंनिरयगामीच नात्रकार्याविचारणा।
यावत्सत्ता मम विभो! जाता शक्रासने तथा।।१०१।।
तावद्दत्तं हि यत्किंचिद् द्विजेभ्यो हि यथातथम्।।१०२।।

यम उवाच

दानं प्रशस्तं भूम्यां च दृश्यते कर्म्मणः फलम्।
स्वर्गे दानं न दातव्यं केनचित्कस्यचित्क्वचित्।
तस्माद्दंड्योऽसि रे मूढ अशास्त्रीयं कृतं त्वया।।१०३।।
गुरुरात्मवतां सास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम्।
सर्वेषां पापशीलानां शास्ताऽहं नात्र संशयः।।१०४।।

यम का वाक्य सुनकर कितव ने कहा—''मैं नरकगामी हूं, यह निःसंदिग्ध है। हे विभो! इन्द्रासन पर जितने समय मेरा सत्व था, तब तक मैंने कुछ वस्तु ब्राह्मणों को दान ही किया है।'' यम ने कहा—''दान काल तो पृथिवी पर प्रशस्त है। वहीं कर्मफल मिलता है। स्वर्ग में कभी भी कोई वस्तु दान नहीं दी जाती। हे मूढ़! तुमने शास्त्र के विरुद्ध कार्य किया है। अतः दण्ड पाने योग्य हो। गुरु आत्मवानों का शास्ता होता है। राजा दुराचारियों का शासक होता है। मैं समस्त पापीगण का शासक हूं। इस नियम में कोई सन्देह नहीं है।।१०१-१०४।।

एवं निर्भर्त्सयित्वा तं कितवं धर्मराट्स्वयम्। उवाचचित्रगुप्तं च नरकेपच्यतामयम्।
तदा प्रहस्य चोवाच चित्रगुप्तो यमं प्रति।।१०५।।
कथं निरयगामित्वं कितवस्य भविष्यति। येन दत्तो ह्यगस्त्याय गच ऐरावतोमहान्।।१०६।।
तथाश्वो ह्यब्धिसंभूतो गालवाय महात्मने। विश्वामित्राय भद्रंते चिंतामणिर्महाप्रभः।।१०७।।
एवमादीनि रत्नानि दत्तानि कितवेन हि। तेन कर्मविपाकेन पूजनीयो जगत्त्रये।।१०८।।
शिवमुद्दिस्य यदत्तं स्वर्गे मर्त्ये च यैर्नरैः। तत्सर्वं त्वक्षयंविद्यान्निश्छिद्रं कर्मचोच्यते।
तस्मान्नरकगामित्वं कितवस्य न विद्यते।।१०९।।
यानियानिच पापानिकितवस्यमहात्मनः। भस्मीभूतानिसर्वाणिजातानिस्मरणाच्चवै।।११०।।

स्वयं यम ने कितव की इस प्रकार से भर्त्सना करके चित्रगुप्त से कहा—''इसे नरक में भेजो।'' तब यह सुनकर चित्रगुप्त ने हंसते हुये यम से कहा—''इस कितव का नरकवास क्यों होगा? इसने अगस्त्य को महागज

ऐरावत, विश्वामित्र को उच्चैःश्रवा, महात्मा गालव को महाप्रभ चिन्तामणि दान किया। इसी तरह कितव का यह कर्तृत्व है कि उसने रत्नादि अनेक वस्तु दान किया। इस कर्मफल के कारण यह कितव तो तीनों लोक में पूज्य है। स्वर्ग हो, नरक हो, मृत्युलोक हो, शिव के उद्देश्य से जो भी दान किया जाता है, अथवा जिस कर्म का अनुष्ठान किया जाता है, वह सब कर्म अक्षय तथा छिद्ररहित ही होता है। इस कारण कितव नरकगामी नहीं होगा। महात्मा कितव के जितने भी पाप थे, वे सभी शिवस्मरण से भस्म हो गये।।१०५-११०।।

शंभोःप्रसादात्सर्वाणिसुकृतानिचतत्क्षणात्। तद्वचश्चित्रगुप्तस्यनिशम्यप्रेतराट्स्वयम्।।१११॥
प्रहस्यावाङ्मुखो भूत्वा इदमाह शतक्रतुम्। त्वंहिराजासुरेन्द्राणांस्थविरोराज्यलंपटः।।११२॥
अश्वमेधशतेनैव एकं जन्मार्जितं कृतम्। त्वया नास्त्यत्र संदेहो ह्यर्ज्जितं तेन वै महत्।।११३॥
प्रार्थयित्वाह्यगस्त्यादीन्मुनीन्सर्वान्विशेषतः। अर्थेनप्रणिपातेनत्वयालभ्यानितानिच।
गजादिकानि रत्नानि येन त्वं च सुखी त्वरन्।।११४॥

उसके सभी पाप शम्भु की कृपा से उसी समय ही पुण्यरूप में परिणत हो गये। चित्रगुप्त का यह वचन सुनकर प्रेताधिपति यम ने अवनत मुख हो इन्द्र से कहा—"हे इन्द्र! आप देवताओं में स्थविर तथा भोगलम्पट राजा हैं। आपने एक ही जन्म में १०० अश्वमेध द्वारा यह राज्य अर्जित किया है, इसमें सन्देह नहीं है। किम्बहुना, इस १०० अश्वमेध से आपने महान् फलार्जन किया। अब जो भी हो, आप अगस्त्य आदि मुनिगण से प्रार्थना करके अर्थ प्रदान करके तथा प्रणाम करके वह गज-अश्वादि तथा रत्न वापस पाकर सुखी हो जायेंगे"।।१११-११४।।

तथेति मत्वा वचनं पुरंदरो गतः पुरीं स्वामविवेकदृष्टिः।
अभ्यर्थयामास विनम्रकंधरश्चर्षींस्ततो लब्धवान्पारिजातकम्।।११५॥
अनेनैव प्रकारेण लब्धराज्यः पुरंदरः। जातस्तदामरावत्यां राजा सह महात्मभिः।।११६॥
कितवस्य पुनर्जन्म दत्तं वैवस्वतेन हि। किंचित्कर्मविपाकेन विरोचनसुतोऽभवत्।।११७॥
सुरुचिर्जननी तस्य कितवस्याभवत्तदा। विरोचनस्य महिषी दुहिता वृषपर्वणः।
तस्थौ जठरमास्थाय तस्याः सोऽपि महात्मनः।।११८॥
तदाप्रभृतितस्यैव प्रह्लादस्यात्मजात्स वै। सुरुचेश्च तथाप्यासीद्धर्मे दाने महामतिः।।११९॥
तेनैव जठरस्थेन कृता मतिरनुत्तमा। क्रितवेन कृता विप्रा दुर्लभा या मनीषिणाम्।।१२०॥

अविवेकी इन्द्र यमवाक्य को श्रेयस्कर समझ कर अपनी पुरी गये तथा विनीत होकर ऋषिगण से प्रार्थना किया। तदनन्तर इस प्रकार उनको पारिजातादि सब वापस मिल गया। इस प्रकार इन्द्र उस समय से महात्माओं के साथ अमरावती पर राज्य करने लगे। इधर यम ने कितव को पुनर्जन्म प्रदान किया। किंचित कर्म विपाक के चलते उसने विरोचननन्दन बलि होकर जन्म लिया। कितव की माता अब सुरुचि थी। सुरुचि दैत्यराज विरोचन की पत्नी तथा वृषपर्वा की पुत्री थी। कितव विरोचन से जन्म लेकर सुरुचि के उदर में स्थित हो गया। जब वह गर्भ में था, तभी से उसकी दान-धर्मार्थ प्रशस्त मति हो गयी। कितव ने जठर में रहकर ही माता के प्रति यही मति उत्पादित किया। हे विप्रगण! कितव का किया कार्य मनीषीगण के लिए भी दुर्लभ है।।११५-१२०।।

एकदा वै तदा शक्रोययौ वैरोचनं प्रति। हतुकामोहि दैत्येन्द्रं विप्रोभूत्वाऽथयाचकः॥१२१॥
विरोचनगृहं प्राप्त इन्द्रो वाक्यमुवाच ह। स्थविरो ब्राह्मणो भूत्वा देहीति मम सुव्रत।
मनस्वी त्वं च दैत्येन्द्र! दाता च भुवनत्रये॥१२२॥
तव विप्रा महाभाग चरितं परमाद्भुतम्। वर्णयन्तिसमाजेषुस्थित्वाकीर्तिंचनिर्मलाम्।
याचकोऽहं च दैत्येन्द्र दातुमर्हसि सुव्रत!॥१२३॥

एक बार इन्द्र विरोचन को नष्ट करने के लिए आये तथा दैत्येन्द्र का विनाश करने के मन्तव्य से एक याचक ब्राह्मण का रूप धारण किया तथा विरोचन के गृह में चले आये। वहां स्थविर ब्राह्मण होकर उन्होंने कहा—"हे सुव्रत विरोचन! मुझे कुछ दान करो। हे दैत्येन्द्र! तुम मनस्वी दाता हो तथा इस कारण त्रैलोक्य प्रसिद्ध हो। हे महाभाग! विप्रगण समाज में तुम्हारे अपूर्व चरित्र तथा निर्मल कीर्त्ति का वर्णन करते हैं। हे सुव्रत दैत्यराज! मैं याचक हूं। कुछ दान करो"।।१२१-१२३।।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दैत्येन्द्रो वाक्यमब्रवीत्। किं दातव्यं तव विभोवदशीघ्रंममाधुना॥१२४॥
इन्द्रो हि विप्ररूपेण विरोचनमुवाच ह। याचयामि च दैत्येन्द्र! यदहं परिभावितः॥१२५।
आत्मप्रीत्याच दातव्यंममनास्त्यत्रसंशयः। उवाचप्रहसन्वाक्यंप्रह्लादस्यात्मजोऽसुरः॥१२६॥
ददाम्यात्मशिरो विप्र यदिकामयसेऽधुना। इदं राज्यमानायासमियंश्रीर्नान्यगामिनी।
अहं समर्पयिष्यामि तव नास्त्यत्र संशयः॥१२७॥
इत्युक्तस्तेन दैत्येन विमृश्य च तदा हरिः। उवाच देहि मे स्वीयं शिरोमुकुटसेवितम्॥१२८॥
एवमुक्ते तु वचने शक्रेण द्विजरूपिणा। त्वरन्महेन्द्राय तदा शिर उत्कृत्त्य वै मुदा।
स्वकरणे ददौ तस्मै प्रह्लादस्यात्मजोऽसुरः॥१२९॥

उनका वाक्य सुनकर दैत्यराज ने कहा—"हे विभु! मैं आपको क्या दान करूं? वह शीघ्र कहें।" इन्द्र ने विरोचन से कहा—"मेरी जो इच्छा है, हे दैत्यराज! मैं वहीं मांगूंगा। तुम अपनी आत्मप्रीत के अनुसार हमें दान दोगे, यह तो निःसंदिग्ध है।" तब असुरप्रवर विरोचन ने सहास्य कहा—"हे विप्र! यदि आप मांगें, तब तो मैं अपना शिर भी आपको दान करूंगा। यह निकटस्थ राज्य, यह अनन्तगामिनी लक्ष्मी, आप जो चाहें, वह मैं निःसन्देह समर्पित करूंगा।" दैत्य के यह कहने पर इन्द्र ने कुछ विचार करके कहा—"तुम यह मुकुट मण्डित मस्तक अर्पित करो।" द्विजरूपी इन्द्र के यह कहते ही प्रह्लादपुत्र विरोचन ने अपना मस्तक काट कर इन्द्र के हाथों में दिया।।१२४-१२९।।

प्रह्लादेन पुरा यस्तु कृतोधर्म्मःसुदुष्करः। केवलां भक्तिमाश्रित्यविष्णोस्तत्परचेतसा॥१३०॥
दानात्परतरं चान्यत्क्वचिद्वस्तु न विद्यते। तद्दानं च महापुण्यमार्तेभ्यो यत्प्रदीयते॥१३१॥
स्वशक्त्या यच्च किंचिच्च तदानन्त्याय कल्पते। दानात्परतरंनान्यत्त्रिषुलोकेषुविद्यते॥१३२॥

पूर्वकाल में प्रह्लाद ने एकाग्रतापूर्वक केवल विष्णुभक्ति का आश्रय लेकर दुष्कर धर्म संचय किया था। उनके पुत्र विरोचन ने अपना मस्तक दान किया। देखा जाये तो दान से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। जो आर्त्तजन को प्रदान

किया जाता है, वही दान महापुण्यप्रद है। अपनी शक्ति के अनुरूप जो दान दिया जाता है, वह अनन्त होकर प्राप्त होता है। दान से श्रेष्ठ त्रैलोक्य में कुछ नहीं है।।१३०-१३२।।

सात्त्विकं राजसं चैव तामसं च प्रकीर्तितम्। तथा कृतमनेनैवदानंसात्त्विकलक्षणम्।।१३३।।
शिर उत्कृत्त्य चेन्द्राय प्रदत्तं विप्ररूपिणे। किरीटः पतितस्तत्र मणयो हि महाप्रभाः।।१३४।।
ऐकपद्येन पतितास्ते जाता मण्डलाय वै। दैत्यानां च नरेन्द्राणां पन्नगानां तथैव च।।१३५।।
विरोचनस्य तद्दानं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्। गायंत्यद्यापि कवयो दैत्येंद्रस्यमहात्मनः।।१३६।।

दान भी सात्विक, राजस, तामस भेद से त्रिविध है। विरोचन ने सात्विक दान दिया था। उन्होंने अपना मस्तक काटकर विप्ररूपी इन्द्र को प्रदान किया। उनका मुकुट भूमि पर गिर पड़ा तथा सभी महाप्रभायुक्त मुकुटमणि भूपतित होकर दैत्य, राजागण तथा पन्नगादि (नागगण) गण की मण्डन सामग्री हो गयी। विरोचन के इस दान की ख्याति तीनों लोक में व्याप्त हो गई। आज भी महात्मा विरोचन की यह दान कथा कवियों द्वारा गायी जाती है।।१३३-१३६।।

विरोचनस्यपुत्रोऽभूत्कितवोऽसौमहाप्रभः। मृते पितरिजातोऽसौमातातस्यपतिव्रता।।१३७।।
कलेवरं च तत्याज पतिलोकं गता ततः। भार्गवेणाभिषिक्तोऽसौजनकस्यनिजासने।।१३८।।

पूर्वोक्त महाप्रभावशाली कितव इस विरोचन के पुत्र बलि के रूप में जन्मा। विरोचन के निधनोपरान्त इसका जन्म हुआ। उसकी माता महान् पतिव्रता थी। वे पुत्र जन्म के कुछ काल बाद ही पतिलोक चली गयीं। तब शुक्राचार्य ने इस विरोचन पुत्र को उसके पिता के पद पर प्रतिष्ठित किया।।१३७-१३८।।

नाम्ना बलिरिति ख्यातो बभूव च महायशाः।
तेनसर्वेसुरगणास्त्रासिताः सुमहाबलाः।।१३९।।
गतास्ते कथिताः पूर्वं कश्यपस्याश्रमं शुभम्। तदा बलिरभूदिन्द्रो देवपुर्यां महायशाः।।१४०।।
स्वयं ततापं तपसा सूर्यो भूत्वा तदाऽसुरः।
ईशो भूत्वा स्वयं चास्ते ऐशान्यां दिशि पालयन्।।१४१।।
तथा च नैर्ऋतो भूत्वा तथा त्वंबुपतिः स्वयम्। धनाध्यक्ष उदीच्यां वै स्वयमास्ते बलिस्तदा।
एवमास्ते बलिः साक्षात्स्वयमेव त्रिलोकभुक्।।१४२।।
शिवार्चनरतेनैव कितवेन बलिर्द्विजाः। पूर्वाभ्यासेन तेनेव महादानरतोऽभवत्।
एकदा तु सभामध्ये आस्थितो भृगुणा सह।।१४३।।

यह पुत्र महात्मा बलि कहलाया। इसके भय से समस्त महाबली देवता त्रस्त रहते थे। जब उन्होंने भीत होकर कश्यपाश्रम जाकर समस्त वृत्तान्त कहा था, तभी देवपुरी में बलि ही इन्द्र पद पर स्थित थे। वे तपः के बल से स्वयं ही सूर्यरूप से जगत् को ताप देने लगे। बलि ने ही स्वयं ईशानरूपी होकर ऐशानी दिशा का पालन किया तथा स्वयं ही नैर्ऋत् एवं वरुण मूर्त्ति होकर तथा धनाध्यक्ष बनकर उत्तर दिशा में स्थान बनाया। त्रिलोकभुक् बलि स्वयं सर्वाधिकार समन्वित होकर विराजित था। हे द्विजगण! शिवार्चनतत्पर कितव ही बलि हुआ था। वह पूर्व अभ्यास के कारण विपुल दान देने में तत्पर था। एक बार सभा में बलि शुक्र के साथ आसीन था।१३९-१४३।।

दैत्येन्द्रैः संवृत्तः श्रीमाञ्छंडामर्कौ वचोऽब्रवीत्॥१४४॥
आवासः क्रियतामत्र असुरैर्म्मम सन्निधौ। हित्वा पातालमद्यैव मा विलंबितुमर्हथ॥१४५॥
भार्गवस्तदुपश्रुत्य प्रहस्येदमुवाच ह। यज्ञैश्च विविधैश्चैव स्वर्गलोके महीयते॥१४६॥
याज्ञिकैश्च महाराज नान्यथास्वर्गमेव हि। भोक्तुं हि पार्यतेराजन्नान्यथाममभाषितम्॥१४७॥
गुरोर्वचनमाज्ञाय दैत्येन्द्रो वाक्यमब्रवीत्। मया कृतं च यत्कर्म तेन सर्वे महासुराः।
स्वर्गे वसंतु सुचिरं नात्र कार्या विचारणा॥१४८॥

महान् दैत्यों से घिरे श्रीमान् बलि ने षण्डामर्क से कहा—"असुरगण यहां मेरे साथ स्वर्ग में ही निवास करें। वे पाताल का त्याग करके यहां आयें। इस कार्य में वे विलम्ब कदापि न करें।" यह सुनकर शुक्राचार्य ने कहा—"लोक में विविध यज्ञ करने से तब कहीं जाकर स्वर्ग में रहने का अवसर मिलता है। हे महाराज! याज्ञिक के बिना किसी को स्वर्ग का अधिकार नहीं है। मेरा वाक्य अन्यथा होने वाला नहीं है।" गुरुवाक्य सुनकर दैत्येन्द्र ने उत्तर दिया—"मैंने जो कर्म किया है, उसी के फल से महादैत्य दीर्घकाल पर्यन्त स्वर्ग में आकर निवास करें। इस सम्बन्ध में कुछ भी विचारणीय नहीं है"।।१४४-१४८।।

प्रहस्योवाच भगवान्भार्गवाणां महातपाः। बलिनं बालिशं मत्वा शुक्रोबुद्धिमतांवरः॥१४९॥
यत्त्वयोक्तं च वचनं बले मम न रोचते। इहैव त्वं समागत्य वस्तुं चेच्छसि सुव्रत॥१५०॥
अश्वमेधशतेनैव यज त्वं जातवेदसम्। कर्म्मभूमिं गतो भूत्वा मा विलंबितुमर्हसि॥१५१॥
तथेति मत्वा स बलिर्महात्मा हित्वा तदानीं त्रिदिवं मनस्वी।
दैत्यैः समेतो गुरुणा च संगतो ययौ भुवं सोऽनुचरैः समेतः॥१५२॥
तन्नर्मदाया गुरुकुल्यसंज्ञकं तीरे महातीर्थमुदारशोभम्।
गत्वा तदा दैत्यपतिर्महात्मा जित्वा समग्रं वसुधातलञ्च॥१५३॥
ततोऽश्वमेधैर्बहुभिर्विचक्षणो गुरुप्रयुक्तः स महायशा बलिः।
ईजे च दीक्षां परमामुपेतो वैरोचनिं सत्यवतां वरिष्ठः॥१५४॥

बलि का वाक्य सुनकर महान् तपस्वी शुक्राचार्य ने जो भार्गवगण के वरेण्य थे, बलि को मूर्ख माना तथा हास्यपूर्वक कहा—"हे बलि! तुमने जो कहा, वह मुझे उचित नहीं लगा। हे सुव्रत! तुम यदि यहां आकर निवास करना चाहो, तब कर्मभूमि मृत्युलोक में जाकर १०० अश्वमेध से जातवेदा अग्नि का पूजन करो। विलम्ब न करो।" महात्मा मनस्वी बलि तत्काल गुरु की बात को श्रेयप्रद मानकर गुरु तथा अन्य दैत्यों के साथ तत्काल पृथिवी पर आये। पृथिवी पर आकर महात्मा दैत्याधिपति ने समस्त पृथिवी पर विजय प्राप्त किया। तदनन्तर बलि नर्मदा तटस्थ गुरुकुल्य नामक सुरम्य महातीर्थ में यज्ञ हेतु उद्यम करने लगे। तदनन्तर सत्यवादीगण के वरेण्य महात्मा बलि ने गुरु की आज्ञा से यज्ञ दीक्षा लेकर अनेक अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया।।१४९-१५४।।

कृत्वा ब्राह्मणमाचार्यमृत्विजःषोडशाऽभवन्। सुपरीक्षितेन तेनैव भार्गवेणमहात्मना॥१५५॥
यज्ञानामूनमेकेन शतं दीक्षापरेण हि। बलिना चाश्वमेधानां पूर्णं कर्तुं समादधे॥१५६॥

उन्होंने ब्रह्मा को आचार्य बनाया तथा १६ ऋत्विकों का महात्मा भार्गव के निर्वाचन क्रम से वरण किया। इस प्रकार वे यज्ञ में व्रती हो गये। यज्ञदीक्षित बलि ने ९९ अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किया तथा सौवां यज्ञ पूर्ण करे हेतु संकल्प किया।।१५५-१५६।।

यावद्यज्ञशतं पूर्णं तस्य राज्ञो भविष्यति। पुरा प्रोक्तं मया चात्र ह्यदित्या व्रतमुत्तमम्॥१५७॥
व्रतेन तेन संतुष्टो भगवान्हरिरीश्वरः। बटुरूपेण महता पुत्रभूतो बभूव ह॥१५८॥
अदित्याः कश्यपेनैव उपनीतस्तदा प्रभुः। उपनीतेऽथ संप्राप्तो ब्रह्मा लोकपितामहः॥१५९॥
दत्तं यज्ञोपवीतं च ब्रह्मणा परमेष्ठिना। दंडकाष्ठं प्रदत्तं हि सोमेन च महात्मना॥१६०॥
मेखला च समानीता अजिनं च महाद्भुतम्।
तथा च पादुके चैवमह्या दत्ते महात्मनः॥१६१॥
तत्र भिक्षा समानीता भवान्या चार्थसिद्धये। एवं भगवते दत्तं विष्णवे बटुरूपिणे॥१६२॥

जब बलि का सौवां यज्ञ पूर्ण होने जा रहा था, तब मैंने पूर्व में अदिति के जिस उत्तम व्रत का उल्लेख किया था, भगवान् हरि उस व्रत से प्रसन्न हो गये तथा वटु वामनाकार में उनके पुत्ररूपेण अवतरित हो गये। कश्यप ऋषि ने अपने इस पुत्र का उपनयन संस्कार किया। इस संस्कार में लोकपितामह ब्रह्मा भी आये थे। परमेष्टि ने अपने हाथों से यज्ञोपवीत प्रदान किया। महात्मा सोम ने दन्तकाष्ठ, पृथिवी ने मेखला, अजिन (मृगचर्म) तथा पादुकाद्वय दिया। भवानी उमा ने भिक्षा प्रदान किया। इस विधि से वटु रूपधारी विष्णु को संस्कारयोग्य सभी वस्तु प्रदान की गयीं। महातेजस्वी श्रीपति विष्णु तब वामन कहे गये।।१५७-१६२।।

अभिवंद्य तथा श्रीशो वामनो ह्यदितिं तथा। कश्यपं च महातेजा यज्ञवाटं जगाम च।
याज्ञिकस्य बलेराह च्छलनार्थं स्वयं प्रभुः॥१६३॥
तदा महेशः स जगाम स्वर्गं प्रकंपयन्गां प्रपदा भरेण।
स वामनो बटुरूपी च साक्षाद्विष्णुः परात्मा सुरकार्यहेतोः॥१६४॥
गीर्भिर्यथार्थाभिरभिष्टुतो जनैर्मुनीश्वरैर्देवगणैर्महात्मा।
त्वरेण गच्छन्स च यज्ञवाटं प्राप्तस्तदानीं जगदेकबन्धुः॥१६५॥

तदनन्तर भगवान् ने कश्यप तथा अदिति को प्रणाम किया तथा याज्ञिक बलि से छल करने हेतु उसके यज्ञस्थल की ओर प्रस्थान किया। उस समय बटुरूपी साक्षात् विष्णु वामन अपने चरणों से धरती को प्रकम्पित करके सुरकार्य साधनार्थ बलि के यज्ञ में जाने के लिए उद्यत हो गये। तब देवता, ऋषि तथा मनुष्यगण अपने कहे गये विविध वाक्यों से (वन्दना से) भगवान् वामन की स्तुति करने लगे। तदनन्तर वे जगत् के एकमात्र बन्धु वामनदेव शीघ्रता पूर्वक उस यज्ञस्थली में पहुंचे। वे वहां बलि को छलने के लिए आये थे।।१६३-१६५।।

उद्गापयन्साम यतो हिसाक्षाच्चकार देवो बटुरूपवेषः।
उद्गीयमानो भगवान्स ईश्वरो वेदान्तवेद्यो हरिरीश्वरः प्रभुः॥१६६॥
ददर्श तं महायज्ञमश्वमेधं बलेस्तदा। द्वारि स्थितो महातेजा वामनो बटुरूपधृक्॥१६७॥

ब्रह्मरूपेण महता व्याप्तमासीद्दिगन्तरम्। पवमानस्य च बटोर्वामनस्य महात्मनः।
तच्छ्रुत्वा च बलिः प्राह शंडामक्कर्वौ च बुद्धिमान्॥१६८॥
ब्राह्मणाः कतिसंख्याश्च आगताः सन्ति ईक्ष्यताम्॥१६९॥
तथेतिमत्वात्वरितावुत्थितौतौतदाद्विजाः। शण्डामक्कर्वौसमागम्यमंडपद्वारिसंस्थितौ॥१७०॥
ददृशाते महात्मानं श्रीहरिं बटुरूपिणम्। त्वरितौ पुनरायतौ बलेः शंसयितुं तदा॥१७१॥
ब्रह्मचारी समायात एक एव न चापरः। पठनादौ महाराज चागतस्तव सन्निधौ।
किमर्थं तन्न जानीवो जानीहि त्वं महामते!॥१७२॥

वटुरूपी विष्णु वहां सामगान गाते-गाते आये। आकर उन्होंने उस यज्ञभूमि को देखा। वेदान्तवेद्य भगवान् हरि वहां पर आये तथा वहां चल रहे सौवें अश्वमेध यज्ञ का निरीक्षण किया। महात्मा पावनमूर्त्ति वामनदेव के महान् ब्रह्मतेज से वहां दिक्-दिगन्त व्याप्त हो गया। जब बलि ने यह सुना कि उसके द्वार पर बटुरूपी महातेजस्वी वामन खड़े हैं, तब उन्होंने षण्डामर्क से कहा—"आप दोनों पर्यवेक्षण करके यह देखें कि कितने ब्राह्मण आये हैं?" हे द्विजगण! बलि के यह कहते ही षण्डामर्क अच्छा कहकर उठे तथा मण्डप द्वार में आकर उन्होंने बटुरूपी श्रीहरि को देखा। देखते ही वे यह संवाद बलि के पास कहने आये। उन्होंने आकर कहा—"द्वार पर एक ब्रह्मचारी आये हैं। और कोई नहीं आये हैं। हे महाराज! वे क्यों आये हैं, यह हम नहीं जानते। आप इस रहस्य से स्वयं अवगत हो जायें"।।१६६-१७२।।

एवमुक्ते तु वचने ताभ्यां स च महामनाः। उत्थितस्तत्क्षणादेव दर्शनार्थे बटुं प्रति॥१७३॥
स ददर्श महातेजा विरोचनसुतो महान्। दण्डवत्पतितो भूमौ ननाम शिरसा बटुम्॥१७४॥
आनयित्वा बटुं सद्यः संनिवेश्य निजासने। अर्घ्यपाद्येनमहताभ्यर्चयामास तं बटुम्॥१७५॥
विनम्रकंधरोभूत्वाउवाचाश्लक्ष्णयागिरा ।
कुतःकस्माच्चकस्यासितच्छीघ्रंकथ्यतांप्रभो ॥१७६॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य विरोचनसुतस्य वै। मनसा हृषितश्चासौ वामनोवक्तुरारभत्॥१७७॥

षण्डामर्क के यह कहने पर महामना बलि तत्क्षण उस बटु को देखने उठे। विरोचन नन्दन महातेजस्वी बलि ने देखा तथा दोनों हाथों को जोड़कर मस्तक भूमि पर रखकर उनको प्रणाम किया तथा साथ लाकर अपने आसन पर बैठाकर अर्घ्य-पादादि से उनकी अर्चना किया। तदनन्तर बलि ने विनम्र कण्ठ से मधुर स्वर में कहा—"हे प्रभो! आप किसलिये, कहां से आये हैं? वह कहें।" बलि का वाक्य सुनकर वामनदेव प्रसन्न चित्त से कहने लगे।।१७३-१७७।।

भगवानुवाच

त्वं हि राजात्रिलोकेशोनान्योभवितुमर्हसि। स्वकुलंन्यूनतांगच्छेद्योवैकापुरुषःस्मृतः॥१७८॥
समं वा चाधिकोवापि यो गच्छेत्पुरुषःस्मृतः। त्वयाकृतं च यत्कर्म्मनकृतंपूर्वजैस्तव॥१७९॥
दैत्यानां च वरिष्ठा ये हिरण्यकशिपादयः। कृतं महत्तपो येन दिव्यं वर्षसहस्रकम्॥१८०॥

शरीरं भक्षितं यस्य जुषाणस्य तपो महत्। पिपीलिकाभिर्बहुभिर्दंशैश्चैव समावृतम्॥१८१॥
अभवत्तस्य तज्ज्ञात्वा सुरेन्द्रो ह्यगमत्पुरा। नगरं तस्य च तदा सैन्येन महतावृतः॥१८२॥
तत्सन्निधौहताःसर्वेअसुरा दैत्यशत्रुणा। विन्ध्या तु महिषीतस्यनीयमानानिवारिता॥१८३॥
नारदेन पुराराजन्किंचित्कार्यंचिकीर्षुणा। शम्भोःप्रसादादखिलंमनसायत्समीक्षितम्।
दैत्येन्द्रेण च तत्सर्वं तपसैव वशीकृतम्॥१८४॥
तस्याः पुत्रोमहातेजा येननीतोऽभवत्सभाम्। तस्य पुत्रोमहाभागपितातेपितृवत्सलः।
नाम्ना विरोचनो विद्वानिन्द्रो येन महात्मना॥१८५॥
दानेन तोषितो राजन्स्वेनैव शिरसा तदा। तस्यात्मजोसिभोराजन्कृतं ते परमंयशः॥१८६॥

भगवान् कहते हैं—"तुम राजा तथा त्रिलोकाधिपति हो। तुम्हारे समान कोई नहीं है। जो कापुरुष होता है, वही अपने कुल में छोटा होता है (तुच्छ होता है) तथा अपने कुल की महिमा को न्यून करता है। जिसके जन्म से कुल सम अवस्था में रहता है, किंवा पूर्वापेक्षा उन्नत होता है, उसे ही यथार्थ पुरुष कहते हैं। तुमने जो कर्म किया है, उसे तुम्हारे पुरखे हिरण्यकशिपु प्रभृत दैत्यश्रेष्ठ भी नहीं कर सकते। तुम्हारे प्रपितामह ने दिव्य वर्ष मान से १००० वर्ष घोर तप किया था। वे निश्चल भाव से तपःश्चरण कर रहे थे, तब चींटी तथा अनेक जीव उनकी देह खाते रहते। उनकी इस स्थिति को देख इन्द्र ने महती सेना के साथ उनके नगर को घेर लिया तथा अनेक असुरों का वध कर दिया। इन्द्र तो तुम्हारे प्रपितामह की स्त्री विन्ध्या का अपहरण कर रहे थे। हे राजन्! कर्मज्ञ नारद ने उनको रोका था। तुम्हारे प्रपितामह दैत्येन्द्र ने मन ही मन जो भी संकल्प किया था, वह सब उन्होंने तपोबल तथा शम्भु की कृपा से वशीभूत (प्राप्त) किया। उनके पुत्र महातेजस्वी प्रह्लाद ने मुझे सभाक्षेत्र में उपस्थापित किया। हे महाभाग! तुम्हारे पिता विरोचन पितृवत्सल थे। तुम उन पितृवत्सल के पुत्र हो। वे विद्वान् थे। इन्होंने अपने मस्तक का दान करके विप्ररूपी इन्द्र को परितुष्ट किया। तुम्हारा भी अपार यश विस्तृत है"।।१७८-१८६।।

यशोदीपेन महता दग्धाः शलभवत्सुराः। इन्द्रोपि निर्जितो येनत्वयानास्त्यत्रसंशयः॥१८७॥
श्रुतमस्ति मया सर्वं चरितं तव सुव्रत। अल्पकोऽहमिहायातो ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः॥१८८॥
उटजार्थे च मे देहि भूमिं भूमिभृतांवरः। बटोस्तस्यैव तद्वाक्यं श्रुत्वा बलिरभाषत॥१८९॥

"तुमने अपने यशरूपी महादीप से देवताओं को पतंगों के समान किया है। अधिक क्या कहें, तुम्हारे द्वारा इन्द्र को विजित किया गया है। हे सुव्रत! तुम्हारे चरित को हम सभी सुनते आये हैं। मैं वामनाकृति ब्रह्मचारी यहां आया हूं। हे भूस्वामीगण के अग्रणी! मैं कुटीर निर्माणार्थ कुछ भूमि मांगने आया हूं। तुमसे प्रार्थना है कि मुझे वह दान करो।" बटुरूपी वामन का यह वचन सुनकर बलि कहने लगा।।१८७-१८९।।

हे वटो पंडितो भूत्वा यदुक्तं वचनं पुरा। शिशुत्वात्तन्न जानासिश्रुत्वामन्येयथार्थतः॥१९०॥
वद शीघ्रं महाभाग कियन्मात्रां महीं तव। दास्यामि त्वरितेनैवमनसातद्विमृश्यताम्॥१९१॥

बलि ने बटुक वामन का वाक्य सुनकर कहा—"हे बटुक! आपने पण्डितों की तरह सब बातों को कहा। वह सुनकर मुझे लगता है कि आपकी यह जानकारी शैशव सम्भूत नहीं है। हे महाभाग! जो भी हो! आप यह कहें कि कितनी भूमि मैं आपको प्रदान करूं। आप मांगने के पहले मन ही मन विशेष विवेचना कर लीजिये।।१९०-१९१।।

तदाह वामनो वाक्यं स्मयन्मधुरयागिरा। असन्तोषपरा ये च विप्रा नष्टा न संशयः॥१९२॥
सन्तुष्टा ये हि विप्रास्ते नान्ये वेषधरा ह्यमी। स्वधर्मनिरता राजन्निर्दम्भानिरवग्रहाः॥१९३॥
निर्मत्सरा जितक्रोधा वदान्या हि महामते। विप्रास्ते हि महाभाग तैरियंधार्यतेमही॥१९४॥
मनस्वी त्वं बहुत्वाच्च दातासि भुवनत्रये। तथापि मे प्रदातव्यामही त्रिपदसंमिता॥१९५॥

तब वामन ने ईषत हास्यपूर्ण मुद्रा में मधुर वाक्य कहा—"जो ब्राह्मण असन्तुष्ट रहते हैं, वास्तव में वे नष्ट ही हैं। जो सर्वावस्था में सन्तुष्ट हैं, वे ही यथार्थ ब्राह्मण हैं। बाकी सभी ब्राह्मण वेद ढोने वाले ही हैं। हे महामति! जो स्वधर्म निरत, दंभरहित, अप्रतिग्रही, निर्मत्सर, क्रोधजित्, वदान्य हैं, वे ही यथार्थ ब्राह्मण हैं। हे महाराज! इन सब ब्राह्मणों से ही पृथिवी रक्षित है। आप त्रिभुवन में मनस्वी तथा प्रचुर दान देने वाले हैं। मैं आपसे तीन पग भूमि मांगता हूं। आप मुझे वही प्रदान करिये।।१९२-१९५।।

बहुत्वे नास्ति मे कार्यं मह्या वै सुरसूदन। प्रवेशमात्रमुटजं तथा मम भविष्यति॥१९६॥
त्रिपदं पूर्यतेऽस्माकंवस्तुंनास्त्यत्र संशयः। देहि मे क्रमतोराजन्यावद्भूमिभविष्यति।
तावत्संख्या प्रदातव्या यदि दाताऽसि भो बले!॥१९७॥
प्रहस्य तमुवाचेदं बलिर्वैरोचनात्मजः। दास्यामि ते महीं कृत्स्नां सशैलवनकाननाम्॥१९८॥
मदीयां वै महाभाग मया दत्तां गृहाण वै। याचकोऽसिबटोपश्यदानंदैत्यात्प्रयाचसे॥१९९॥
याचको ह्यल्पको वाऽस्तु दाता सर्वं विमृश्य वै।
तथा विलोक्य चात्मानं ह्यर्थिभ्यश्च ददाति वै॥२००॥
आत्मौपम्येन सर्वत्र यो ददातिह्युदारधीः। तस्मान्नयाचितव्यं हि अर्थिनामंदभागिना॥२०१॥
वटो ददाम्यहं तेऽद्य सशैलवनकाननाम्। पृथ्वीं सपर्वतांसाब्धिंनान्यथाममभाषितम्॥२०२॥

"हे देवशत्रु! मुझे अधिक विस्तृत भूमि नहीं चाहिये। इस त्रिपाद भूमि से ही मेरी कुटीर प्रवेश योग्य होगी तथा उसी में मैं निवास करूंगा। इसमें तनिक संदेह नहीं है। हे राजन्! मुझे मेरे तीन पद के अनुसार भूमि दान करें। हे बलि! यदि आप सत्य ही यह दान देना चाहते हैं, तब जितनी भूमि मैं चाहता हूं, उतनी ही प्रदान करें।" विरोचननन्दन बलि ने हंसते हुये कहा—"हे महाभाग! आप ग्रहण करिये। मैं आपको सशैल-वन-कानन समस्त पृथिवी दान करता हूं। हे बटुक! आप याचक हैं। आपने दैत्य से दान मांगा है। याचक भले ही छोटा हो, दाता व्यक्ति को चाहिये कि समस्त विषय की विवेचना करके तथा अपनी सामर्थ्य देखकर अतिथि को दान करे। उदार बुद्धि व्यक्ति सर्वत्र अपनी सामर्थ्य के अनुसार दान करता है। मन्दभाग्य व्यक्ति उससे परिणाम निर्देश करके (कि इतना दान दीजिये) याचना न करे। हे बटुक! मैं आपको शैल-सागर-वन-कानन युक्त समस्त पृथिवी दान करता हूं। आप मेरी बात न टालिये"।।१९६-२०२।।

पुनः प्रोवाच स बटुर्विरोचनसुतं प्रति। पूर्यते मम दैत्येन्द्र क्रमतो हि पदैस्त्रिभिः॥२०३।
बटोस्तद्वचनं श्रुत्वा असुरेन्द्रो बलिस्तदा। उवाच प्रहसन्वाक्यं मन्यमानोबलिर्भृशम्।
गृह्यतां च मया दत्तां पदैस्त्रिभिरलंकृताम्॥२०४॥

इत्युक्तो वामनः प्राह प्रहसन्नसुरं प्रति। संकल्प्य सकलां पृथ्वीं दातुमर्हसि सुव्रत॥२०५॥

तब वामनदेव ने पुनः बलि से कहा—"हे दैत्यराज! मात्र ३ पैर भूमि पाकर ही मेरी प्रार्थना पूर्ण होगी। असुरराज बलि ने वामनदेव की यह प्रार्थना सुनकर सहास्य कहा—"अच्छा! तब आप मेरे द्वारा प्रदत्त ३ पग भूमि ग्रहण करिये।" बलि के यह कहने पर वामन ने प्रफुल्ल होकर कहा—"हे सुव्रत! जो भूमि दान कर रहे हो, उसे संकल्प करके अभी दान करो॥२०३-२०५॥

तथेति मत्वा बलिना सुपूजितः स वामनः कश्यपनन्दनो महान्।
बलिस्तदानीं सहसा नितांतं संस्तूयमानस्त्वृषिभिर्मुनीद्रैः॥२०६॥
तं पूजयित्वा स बलिर्यावद्दातुं समुद्यतः। गुरुणा वारितस्तावद्विरोचनसुतो महान्॥२०७॥
न दातव्यं त्वया दानं विष्णवे बटुरूपिणे। इन्द्रार्थमागतः सद्यो यज्ञविघ्नं करोति ते।
तस्मात्त्वया न पूज्यो हि विष्णुरध्यात्मदीपकः॥२०८॥
पुरा कृतमनेनैव मोहिनरूपधारिणा। देवेभ्यश्चामृतं दत्तं राहुर्येन हतो महान्॥२०९॥
येन विद्राविता दैत्याः कालनेमिर्हतो बली॥२१०॥
एवंविधोऽयं पुरुषो महात्मा स ईश्वरो विश्वपतिः स एव।
विमृश्य सर्वं मनसा महामते! हिताहितं कर्तुमिहार्हसि त्वम्॥२११॥

॥इति श्री स्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे बलियज्ञे वामनगमनवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥१८॥

यह सुनकर बलि ने तथास्तु कहकर वामन का पूजन किया। सहसा मुनि-ऋषिगण बलि की स्तुति करने लगे। बलि ने वामन का पूजन करके प्रार्थित त्रिपाद भूमि दान करना चाहा। तभी गुरु शुक्राचार्य ने दान से रोकते हुये कहा—"राजन्! तुम बटुक को भूमि दान न करना। ये इन्द्र के उपकार हेतु आये हैं। इनका उद्देश्य है यज्ञ में विघ्न करना। तभी इन आध्यात्मदीपक विष्णु की पूजा का प्रयोजन नहीं है। इन्होंने ही पूर्वकाल में मोहिनी रूपेण देवगण को अमृत देकर राहु को निहत किया था। इन्होंने ही दैत्यों का ताड़न किया था। कालनेमि इनके द्वारा मारा गया था। ये ही महात्मा हैं, साथ ही विश्वपति ईश्वर हैं। हे महामति! तुम मन ही मन यह विवेचना करके हित-अहित का विचार करो तथा जो कर्त्तव्य हो, उसे सम्पन्न करो"॥२०६-२११॥

॥अष्टादश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

ऊनविंशोऽध्यायः

बलि को गुरु का शाप, प्रभु की आज्ञा से बलि का सुतलगमन

लोमश उवाच

एवं सम्बोधितो दैत्यो गुरुणा भार्गवेण हि। उवाच प्रहसन्वाक्यंमेघगम्भीरयागिरा।
त्वयोक्तोऽहं हितार्थाय यैर्वाक्यैश्चालितोऽस्म्यहम्॥१॥
तव वाक्यं मम प्रीत्यै हितमप्यहितं भवेत्॥२॥
दास्यामि भिक्षितं चास्मै विष्णवेबटुरूपिणे। पात्रीभूतोह्ययंविष्णुःसर्वकर्मफलेश्वरः॥३॥
येषां हृदिस्थितोविष्णुस्ते वै पात्रतमा ध्रुवम्। यस्यनाम्नासर्वमिदंपवित्रमिवचोच्यते॥४॥
येन वेदाश्चयज्ञाश्चमन्त्रतन्त्रादयो ह्यमी। सर्वे संपूर्णतां यान्तिसोऽयंविश्वेश्वरोहरिः॥५॥
आगतः कृपया मेऽद्य सर्वात्मा हरिरीश्वरः। उद्धर्तुं मां न सन्देह एतज्जानीहि तत्त्वतः॥६॥

लोमश कहते हैं—बलि ने गुरु शुक्र का वाक्य सुनकर हास्यपूर्वक मेघगंभीर स्वर में कहा—"इसमें संदेह नहीं है कि आपने हित की बात कही है। विशेषतः मैं आपके ही वाक्य से चालित होता हूं। प्रीति हेतु कहा गया आपका हितकर वाक्य इस सम्बन्ध में अहितकारी हो गया है। मैं इन बटुरूपी विष्णु को दान करूंगा। समस्त कर्मफल के ईश्वर विष्णु दान योग्य हैं। किम्बहुना, जिसके हृदय में विष्णु का वास है, वह भी उत्तम दानपात्र है। उनके ही नाम से यह सब पवित्र है। वेद, यज्ञ, मन्त्र, तन्त्र सभी को जिनके नामोच्चार से परिपूर्णता प्राप्त होती है, वे ही सर्वेश्वर हरि हैं। ये सर्वात्मा हरि मेरे प्रति कृपा करके यहां आये हैं। मेरा उद्धार करना ही इनके आगमन का उद्देश्य है। मेरा इन सब बात में कोई भी सन्देह नहीं है।।१-६।।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा चुकोप च रुषान्वितः। भार्गवः शप्तुमारेभे दैत्येन्द्रंधर्म्मवत्सलम्॥७॥
मम वाक्यमतिक्रम्य दातुमिच्छस्यरिंदम। विगुणो भवरेमन्दतस्मात्त्वंनिःश्रिको भव॥८॥
एवं शशाप च तदा परमार्थविज्ञं शिष्यं महात्मानमगाधबोधम्।
स वै जगामाथ महाकविस्त्वरात्स्वमाश्रमं धर्म्मविदां वरिष्ठः॥९॥
गते तु भार्गवे तस्मिन्बलिर्विरोचनात्मजः। वामनंचार्चयित्वा स महीं दातुं प्रचक्रमे॥१०॥
विन्ध्यावलिः समागत्यबलेरर्द्धांगशोभिता। अवनिज्यबटोः पादौप्रददौ विष्णवेमहीम्॥११॥
संकल्पपूर्वेण तदा विधिना विधिकोविदः। संकल्पेनैव महता ववृधे भगवानजः॥१२॥

भार्गव शुक्राचार्य बलि का यह वचन सुनकर क्रोधित हो गये। यहां तक कि उन्होंने धर्मवत्सल बलि को शाप दिया कि "हे अरिंदम! तुम मेरी आज्ञा का अतिक्रमण करके भूमिदान कर रहे हो, इसीलिए हे मन्दबुद्धि! तुम विगुण तथा श्रीभ्रष्ट हो जाओ।" महाकवि शुक्राचार्य ने अपने परमार्थज्ञ अगाध बुद्धि महात्मा शिष्य को यह शाप दिया तथा

शीघ्रता से अपने आश्रम चले गये। भार्गव के चले जाने पर विरोचननन्दन बलि ने वामन की अर्चना किया तथा पृथिवी दान के लिए उद्यत हो गये।

तभी बलि की अर्द्धाङ्गिनी विन्ध्यावली ने भी आकर वामनदेव का चरण प्रक्षालन किया। विधिविधान वेत्ता ने संकल्प के साथ यथाविधि विष्णु को भूमिदान किया। तदनन्तर भगवान् विष्णु अपने महत् संकल्प द्वारा बढ़ने लगे।।११-१२।।

यदैकेन मही व्याप्ताविष्णुना प्रभविष्णुना। सर्वे स्वर्गाद्वितीयेनव्याप्तास्तेनमहात्मना।।१३।।
सत्यलोकगतो विष्णोश्चरणः परमेष्ठिना। कमण्डलुगतेनैव अंभसा चावनेनिजे।।१४।।
तत्पादसम्पर्कजलाच्च जाता भागरथी सर्वसुमंगला च।
यया त्रिलोकी च कृता पवित्रा यया च सर्वे सगराः समुद्धताः।
यया कपर्दः परिपूरितो वै शंभोस्तदानीं च भगीरथेन।।१५।।
तीर्थानां तीर्थमाद्यं च गंगाख्यमवतारितम्। तद्विष्णोश्चरणेनैव समेतं ब्रह्मणा कृतम्।।१६।।

प्रभविष्णु विष्णु ने तब अपने एक पाद से समस्त महीमण्डल को व्याप्त किया। उनके द्वितीयपाद द्वारा सभी स्वर्ग व्याप्त हो गये। यह द्वितीय पद सप्तलोक तक पहुंचा, जहां परमेष्ठि ब्रह्मा ने कमण्डलु के जल से उस चरण की अर्चना किया। पद संस्पृष्ट जल से निखिल मंगलकारिणी भगवती भागीरथी गंगा ने जन्म लिया। ये त्रिलोक पावनी हैं। इनके द्वारा ही समस्त सगरराज सन्तानों का उद्धार हुआ। इन्होंने ही शंकर की जटा को आप्लावित किया। इसी गंगा नामक आदितीर्थ को भगीरथ ने मर्त्यलोक में अवतरित कराया था। ब्रह्मा ने इसका संयोग विष्णुपद से कराया था।।१३-१६।।

त्रिविक्रमात्परो ह्यात्मा नाम्ना त्रिविक्रमोऽभवत्।
त्रिविक्रमक्रमाक्रान्तं त्रैलोक्यं च तदाऽभवत्।।१७।।
पदद्वयेन वा पूर्णं जगदेतच्चराचरम्। विहाय तत्स्वरूपं च देवदेवो जनार्दनः।
पुनश्च बटुरूपोऽसावुपविश्य निजासने।।१८।।
तदा देवाः सगंधर्वा मुनयः सिद्धचारणाः। आगताश्च बलेर्यज्ञं द्रष्टुं यज्ञपतिं प्रभुम्।।१९।।
तत्र ब्रह्मा समागत्यस्तुतिंचक्रेपरात्मनः। बलेस्तत्रैवचान्ये च दैत्येन्द्राश्चागतास्त्वरम्।।२०।।

त्रिपाद क्रम के कारण विष्णु त्रिविक्रम कहलाये। यह त्रैलोक्य, तब त्रिविक्रम के पदत्रय से आक्रान्त हो गया। अथवा उनके दो पैरों के माप से ही समस्त चराचर व्याप्त हो गया। अब देवदेव जनार्दन अपना व्यापक विराट स्वरूप छोड़कर पुनः बटुक रूपी होकर आसनासीन हो गये। तभी देव-गंधर्व-मुनिगण तथा सिद्ध-चामरगण बलि का यज्ञ तथा यज्ञेश्वर के अवलोकनार्थ वहां आये। ब्रह्मा भी वहां आकर परमात्मा श्रीहरि वामनरूपी जनार्दन की स्तुति करने लगे।।१७-२०।।

एभिः सर्वैः परिवृतो वामनो बलिसद्मनि। उपविश्यासने सोऽथ उवाच गरुडं प्रति।।२१।।
दैत्योऽसौ बालिशो भूत्वा दत्ताऽनेन मही मम। त्रिपदक्रमणेनैव गृहीतं च पदद्वयम्।।२२।।

पदमेकं प्रतिश्रुत्य न ददाति हि दुर्मतिः। तस्मात्त्वया गृहीतव्यं तृतीयं पदमेव च॥२३॥
इत्युक्तो गरुडस्तेन वामने महात्मना। वैरोचनिं विनिर्भर्त्स्य वाक्यं चेदमुवाचह॥२४॥
रे बले किं त्वयामूढकृतमस्तिजुगुप्सितम्। अविद्यमानेह्यर्थे हि किं ददासिपरमात्मने।
औदार्येण हि किं कार्यमल्पकेन त्वयाऽधुना॥२५॥

सभी समागत दर्शकगण के द्वारा परिवृत वामनदेव ने बलिगृह में अपने आसन पर बैठ कर जो बलि द्वारा प्रस्तुत किया गया था, गरुड़ से कहा—"इस मूर्ख दैत्य ने मुझे मेरे तीन पैर माप की भूमि दान किया था, जिसमें केवल दो पाद भूमि ही मिली है। इसने अभी भी संकल्पित १ पग भूमि नहीं दिया है। अतः तुम इससे तीसरे पैर माप की भूमि ग्रहण करो।" महात्मा वामन द्वारा गरुड़ से यह कहे जाने पर गरुड़ बलि की भर्त्सना करने लगे और कहा—"हे मूढ़ बलि! तुमने क्या गर्हित कार्य कर दिया? तुम्हारे पास अर्थ नहीं है, तथापि तुम परमात्मा को दान देने के लिए उद्यत हो गये? तुम क्षुद्र हो। तुम्हारी इस प्रकार की उदारता का क्या तात्पर्य?"॥२१-२५॥

इत्युक्तोबलिराविष्टःस्मयमानः खगेश्वरम्। वक्ष्यमाणमिदंवाक्यंगरुत्मन्तंतदाऽब्रवीत्॥२६॥
समर्थोऽस्मि महापक्ष कृपणो न भवाम्यहम्। येनेदं कारितंसर्वं तस्मैकिं प्रददाम्यहम्॥२७॥
असमर्थो ह्यहं तात कृतोऽनेन महात्मना। तदो वाच बलिं सोऽपितार्क्ष्यपुत्रोमहामनाः॥२८॥

गरुड़ की बात सुनकर बलि ने हंसते हुये खगेश्वर से यह वाक्य कहे—"हे महापक्षी! दान में मैं समर्थ हूं। कृपण नहीं हूं। जिन्होंने सब कुछ की उत्पत्ति की है, उनको मैं क्या प्रदान करूंगा? तथापि हे तात! मैं इनको जो कुछ दानार्थ प्रस्तुत हुआ था, उसमें इन महात्मा ने ही मुझे असमर्थ बना दिया।" तब महामना गरुड़ बलि से कहने लगे॥२६-२८॥

जानन्नपिचदैत्येन्द्रगुरुणाऽपिनिवारितः। विष्णवेऽपिमहींप्रादास्त्वयाकिंविस्मृतंमहत्॥२९॥
दातव्यं तत्पदं विष्णोस्तृतीयं यत्प्रतिश्रुतम्। न ददासिकथंवीर निरये च पतिष्यसि॥३०॥
नददासितृतीयं च पदं मे स्वामिनःकथम्। बलाद्गृह्णामि रे मूढइत्युक्त्वातंमहासुरम्।
बबन्ध वारुणैः पाशैर्विरोचनसुतं तदा॥३१॥

गरुड़ कहते हैं—हे दैत्येन्द्र! तुमको गुरु ने दान से रोका था। विष्णु को यह भूमि देना है, क्या तुम भूल गये। तुमको यह तीसरे पद माप की भूमि विष्णु को देनी है, क्योंकि तुमने वचन दिया है। वह तुमको देनी ही होगी। हे वीर! तुम इसे दान क्यों नहीं करोगे। दान न करने पर तुमको नरक जाना ही होगा। मेरे प्रभु के तृतीय पाद माप की भूमि देते हो अथवा नहीं? हे मूढ़! यदि तुम संकल्पित भूमि नहीं देते, तब उसे मैं बलात् ग्रहण करूंगा।" यह वचन गरुड़ ने उस महासुर से कहकर उस विरोचन पुत्र बलि को गरुड़ ने निष्ठुरता से वरुण पाश से बांध लिया॥२९-३१॥

नितरांनिष्ठुरोभूत्वागरुडोजयतांवरः। बद्धंस्वपतिमालोक्यविन्ध्यावलिःसमभ्ययात्॥३२॥
बाणमेकं समारोप्य वामनस्याग्रतः स्थिता। वामनेनतदापृष्टा केयं चात्राग्रतःस्थिता॥३३॥
तदोवाच महातेजाः प्रह्लादो ह्यसुराधिपः। बलेःपत्नीतित्वांप्राप्ताइयंविन्ध्यावलीसती॥३४॥

प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा वामनो वाक्यमब्रवीत्।
ब्रूहि विंध्यावले! वाक्यं किं कार्यं ते करोम्यहम्।
एवमुक्ता भगवता विंध्यावलिरभाषत॥३५॥

अपने पति को बंधा देखकर विन्ध्यावली पुत्र बाणासुर को गोद में लेकर वामनदेव के समक्ष आई। वामनदेव ने उससे पूछा—"यह कौन मेरे समक्ष उपस्थित है?" तब असुराधिप महातेजस्वी प्रह्लाद ने कहा—"यह बलि की पत्नी आपके समक्ष उपस्थित है। इस सती का नाम विन्ध्यावली है।" प्रह्लाद का वाक्य सुनकर वामनदेव ने कहा—"हे विन्ध्यावली! कहो, तुम्हारा क्या कार्य करूं। भगवान् का वचन सुनकर विन्ध्यावली कहने लगी।।३१-३५।।

विन्ध्यावलिरुवाच

कस्माद्बद्धो मम पतिर्गरुडेन महात्मना। तत्कथ्यतां महाभाग त्वरन्नेव जनार्द्दन।
तदोवाच महातेजा बटुवेषधरो हरिः॥३६॥

विन्ध्यावली कहती है—हे महाभाग जनार्दन! मेरे पति को महात्मा गरुड़ ने क्यों बांधा है? यह कृपया कहें।।३६।।

श्रीभगवानुवाच

अनेनैव प्रदत्तामे मही त्रिपदलक्षणा। पदद्वयेन च मयाक्रांतं त्रैलोक्यमद्य वै॥३७॥
अनेन मम दातव्यं तृतीयं पदमेव च। तस्माद्बद्धो मया साध्वि गरुडेनैव ते पतिः॥३८॥

तब बटु वेशधारी महातेजस्वी हरि ने कहा—"इन्होंने मुझे त्रिपाद परिमित भूमिदान का वचन दिया था। उसमें से मैंने दो पाद भूमि माप में त्रिलोक का अतिक्रमण कर लिया। अब इनको तृतीय पाद परिमित भूमिदान करना है। हे साध्वी! यह दान कार्य अवश्य सम्पन्न हो, इसी मन्तव्य से गरुड़ ने तुम्हारे पति को बांधा है"।।३७-३८।।

श्रुत्वा भगवतो वाक्यमुवाच परमं वचः। प्रतिश्रुतमनेनैव न दत्तं हि तव प्रभो॥३९॥
क्रान्तं त्रिभुवनं चाद्यत्वया विक्रमरूपिणा। तदस्माकंविजघ्नीथाःस्वर्गेवाप्यथवाभुवि॥४०॥
किंचिन्न दत्ता हि विभो देवदेव जगत्पते। प्रहस्य भगवानाह तदा विंध्यावलिं प्रभुः॥४१॥
पदानि त्रीणि मे चाद्य दातव्यानि कुतोऽधुना। शीघ्रं वदविशालाक्षियत्तेमनसिवर्तते।
तदोवाच च सा साध्वी ह्युरुक्रममवस्थिता॥४२॥
त्वया कुतो चेयमुरुक्रमेण क्रान्ता त्रिलोकी भुवनैकनाथ!।
तथैव सर्वं जगदेकबन्धो देयं किमस्माभिरतुल्यरूपिणे॥४३॥
तस्माद्विहाय तद्विष्णो त्वमेवं कुरुसंप्रति। प्रतिश्रुतानि मे भर्त्रापदानित्रीणिचाधुना।
ददाति मे पतिस्तेद्य नात्र कार्या विचारणा॥४४॥
निधेहि मे पदं त्वं हि शीर्ष्णिदेववरप्रभो। द्वितीयं मे शिशोस्त्वंहिकुरुमूर्ध्निजगत्पते॥४५॥
तृतीयं च जगन्नाथ कुरु शीर्ष्णि पतेर्मम। एवं त्रीणि पदानीश तवदास्यामि केशव॥४६॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा परितुष्टो जनार्दनः। उवाच श्लक्ष्णया वाचाविरोचनसुतंप्रति॥४७॥

श्रीवामनदेव का वाक्य सुनकर विन्ध्यावली ने यह परम वाक्य कहा—"हे प्रभो! मेरे पति ने संकल्पित दान नहीं किया, अथच आपने त्रिविक्रमरूपेण त्रिभुवन का अतिक्रमण कर लिया। हमारे पास स्वर्ग-मृत्युलोक में स्थान नहीं है। वह आपने ले लिया। हे विभो! देवदेव, जगत्पति! यह कैसा प्रसंग है?" तब भगवान् ने हंसते हुये कहा—"मैंने द्विपाद परिमित स्थान पाया है। तीसरे पाद परिमित भूमि कहां से दान करोगी? हे विशालाक्षी! तुम्हारे मन में जो है, उसे शीघ्र करो।" तब साध्वी विशालाक्षी ने वामनदेव से कहा—"हे भुवनैकपालक! आपने क्यों त्रैलोक्य को आक्रान्त किया? हे जगदेकबन्धु! आप अतुल्यरूपी सर्वस्वरूप हैं। आपके लिये हम पर क्या देय है? हे विष्णु! आप कठोरता का त्याग करके जो कहती हूं, वही करिये। मेरे पति ने आपको त्रिपाद भूमि दान करने हेतु संकल्प किया था। वे आपको अवश्य प्रदान करेंगे। हे प्रभो, देवदेव! आप मेरे मस्तक पर एक पैर रखिये। हे जगत्पति! आप अपना द्वितीय पद मेरे शिशु के मस्तक पर रखिये। हे जगन्नाथ! आप अपना तृतीय पद मेरे पति के मस्तक पर रखिये। इस प्रकार मैं आपको त्रिपाद स्थान देती हूं।" जनार्दन विन्ध्यावली के इस वाक्य से प्रसन्न हो गये। वे मधुर वाणी में विरोचनपुत्र बलि से कहने लगे।।३९-४७।।

भगवानुवाच

सुतलं गच्छ दैत्येन्द्र मा विलंबितुमर्हसि। सर्वैश्चासुरसंघैश्च चिरंजीवसुखी भव॥४८॥
परितुष्टोऽस्म्यहं तात किं कार्यं करवाणि ते। सर्वेषामपिदातॄणांवरिष्ठोऽसिमहामते॥४९॥
वरं वरय भद्रं ते सर्वान्कामान्ददामि ते। त्रिविक्रमेणैवमुक्तो विरोचनसुतस्तदा॥५०॥
विमुक्तो हि परिष्वक्तो देवदेवेन चक्रिणा। तदा बलिरुवाचेदं वाक्यं वाक्यविशारदः॥५१॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे दैत्येन्द्र! तुम सुतललोक जाओ। विलम्ब न करो। वहां जाकर असुरगण के साथ एकत्र निवास करो तथा सुखी हो जाओ। हे तात! मैं प्रसन्न हो गया। तुम्हारा कौन कार्य मुझे करना है? हे महामति! दाता व्यक्तिगण में तुम सर्वश्रेष्ठ हो। इसलिए वर ग्रहण करो। तुम्हारा मंगल हो। मैं तुम्हें जो कुछ चाहोगे, प्रदान करूंगा। त्रिविक्रम भगवान् ने विरोचननन्दन बलि से यह वचन कहकर उसे बन्धनमुक्त किया तथा उसका आलिंगन किया। तब वाक्य विशारद बलि भगवान् से कहने लगा।।४८-५१।।

त्वया कृतमिदं सर्वं जगदेतच्चराचरम्।
तस्मान्न कामये किंचित्त्वत्पदाब्जं विनाप्रभो॥५२॥
भक्तिरस्तु पदांभोजे तव देव जनार्दन। भूयोभूयश्च देवेश भक्तिर्भवतु शाश्वती॥५३॥
एवमभ्यर्थितस्तेन भगवान्भूतभावनः। उवाच परमप्रीतो विरोचनसुतं तदा॥५४॥

भगवानुवाच

बले त्वं सुतलं याहि ज्ञातिसंबंधिभिर्वृतः। एवमुक्तस्तदा तेन असुरो वाक्यमब्रवीत्॥५५॥

बलि कहता है—हे प्रभो! आप समस्त चर-अचर विश्व के विधाता हैं। अतः आपके चरणकमल के अतिरिक्त मेरी कोई कामना नहीं है। हे देवदेव जनार्दन! आपके प्रति मेरी शाश्वत भक्ति पुनः-पुनः वर्द्धित होती रहे।" जब बलि ने भगवान् भूतभावन की अभ्यर्थना इस प्रकार से किया, तब भगवान् परम प्रीति के साथ विरोचननन्दन बलि

से कहने लगे—"हे वत्स! तुम ज्ञाति तथा सम्बन्धी लोगों से परिवृत होकर सुतल में जाओ।" भगवान् के यह कहने पर असुरेन्द्र बलि कहने लगा।।५२-५५।।

सुतले किं नु मे कार्यं देवदेव वदस्व मे। तिष्ठामि तव सांनिध्ये नान्यथा वक्तुमर्हसि॥५६॥
तदोवाच हृषीकेशो बलिं तं कृपयाऽन्वितः। अहं तव समीपस्थो भवामिं सततंनृप॥५७॥
द्वारि स्थितस्तव विभो! निवसामि नित्यं माखिद्यतामसुरवर्य बलेशृणुष्व।
वाक्यं तु मे वरमहो वरदस्तवाद्य वैकुण्ठवासिभिरलं च भजामि गेहम्॥५८॥

बलि कहता है—"हे प्रभो! सुतल में मेरा क्या कार्य होगा? मैं तो आपके सान्निध्य में ही रहना चाहता हूं। आप इसके विरुद्ध आज्ञा न दीजिये।" यह सुनकर हृषीकेश ने कृपापरवश होकर कहा—"हे नृप! मैं तुम्हारे निकट सतत् निवास करूंगा। हे विभो! हे असुरप्रवर बलि! सुनो! मैं नित्य तुम्हारे द्वार पर निवास करूंगा। तुम खेद न करो। मैं वरप्रद हूं। मेरा यह वाक्य ही तुम्हारा वर हो गया! मैं वैकुण्ठवासीगण के साथ विशेष रूप से तुम्हारे घर में रहूंगा।।५६-५८।।

तच्छ्रुत्वावचनं तस्य विष्णोरतुलतेजसः। जगाम सुतलं दैत्यो ह्यसुरैः परिवारितः॥५९॥
तदा पुत्रशतेनैव बाणमुख्येन सत्वरम्। वसमानो महाबाहुर्दातॄणां च परा गतिः॥६०॥
त्रैलोक्ये याचका ये च सर्वे यान्ति बलिं प्रति।
द्वारि स्थितस्तस्य विष्णुः प्रयच्छति यथेप्सितम्॥६१॥
भुक्तिकामाश्चयेकेचिन्मुक्तिकामास्तथा परे। येषांयज्ञे च ते विप्रास्तत्तेभ्यःसंप्रयच्छति॥६२॥
एवंविधो बलिर्जातः प्रसादाच्छंकरस्य च। पुरा हि कितवत्वेन यद्दत्तं परमात्मने॥६३॥
अशुचिं भूमिमासाद्य गन्धपुष्पादिकं महत्। पतितं चार्पितं तेन शिवाय परमात्मने॥६४॥
किं पुनःपरयाभक्त्याचार्चयन्तिमहेश्वरम्। गंधं पुष्पंफलं तोयं ते यांतिशिवसन्निधिम्॥६५॥
शिवात्परतरो नास्ति पूजनीयो हि भो द्विजाः!।
ये हि मूकास्तथांधाश्च पंगवो ये जडास्तथा॥६६॥
जातिहीनाश्चचण्डालाःश्वपचाह्यंत्यजाह्यमी। शिवभक्तिपरानित्यंतेयान्तिपरमांगतिम्॥६७॥

अमित तेजस्वी विष्णु का यह कथन सुनकर दैत्येन्द्र बलि असुरों के साथ सुतल लोक चला गया। इस प्रकार से दानियों में श्रेष्ठ महाबाहु बलि सुतल में निवास करने लगा। त्रिभुवन के सभी याचक बलि के पास जाते थे। बलि के द्वार पर स्थित विष्णु ने बलि को यथेच्छ वर प्रदान किया था। जो मुक्तिकामी तथा भोगेच्छु थे, वे सभी बलि के यहां जाया करते। बलि के यज्ञ में जो लोग व्रती थे, उन ब्राह्मणगण को भी बलि ने यथेच्छ दान दिया। बलि का जन्म इसी प्रकार से दानी के रूप में हुआ था।

उसने पूर्वजन्म की कितव अवस्था में अशुद्ध (पृथिवी पर गिर गये) गन्ध-पुष्पादि को ही परमात्मा शिव को अर्पित किया था। उसी प्रकार के अकिञ्चित्कर दान के प्रभाव से वह कितव बलि के रूप में परम दानी होकर उत्पन्न हुआ। तब जो विधिपूर्वक तथा भक्ति के साथ शिवार्चन करते हैं, उनके विषय में (उनके सौभाग्य के सम्बन्ध में) क्या कहा जाये! शिवभक्त व्यक्ति गन्ध-पुष्प-जल आदि जो कुछ भी शिव को अर्पित करता है, वह

सब शिव को प्राप्त होता है। हे द्विजगण! शिव की अपेक्षा श्रेष्ठ एवं पूज्य कोई नहीं है। जो मूक-अन्ध-पंगु-जड़-जातिहीन अथवा अन्त्यज-श्वपच-चाण्डाल हैं, वे भी शिव के प्रति नित्य भक्ति सम्पन्न होकर परमगति प्राप्त करते हैं।।५९-६७।।

तस्मात्सदाशिवःपूज्यःसवैरिवमनीषिभिः। पूजनीयो हि सम्पूज्योह्यर्चनीयःसदाशिवः।।६८।।
महेशं परमार्थज्ञाश्चिंतयंति हृदिस्थितम्। यत्र जीवो भवत्येव शिवस्तत्रैव तिष्ठति।।६९।।
विना शिवेन यत्किंचिदशिवं भवति क्षणात्। ब्रह्माविष्णुश्च रुद्रश्चगुणकार्यकराह्यमी।।७०।।
रजोगुणान्वितोब्रह्माविष्णुःसत्त्वगुणान्वितः। तमोगुणाश्रितोरुद्रोगुणातीतोमहेश्वरः।।७१।।
लिंगरूपो महादेवो ह्यर्चनीयो मुमुक्षुभिः। शिवात्परतरो नास्ति भुक्तिमुक्तिप्रदायकः।।७२।।

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे बलये वरप्रदानवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः।।१९।।

इसलिये प्रत्येक मनीषी व्यक्ति को चाहिये कि वह सदा-सदाशिव की अर्चना करे। एकमात्र पूज्य सदाशिव ही अर्चनीय हैं। परमार्थज्ञ विद्वान् हृदयस्थ महेश्वर का ही चिन्तन करें। जहां जीव स्थित है, वहीं शिव भी स्थित रहते हैं। शिव के अभाव में जो कुछ भी है, अशिव हो जायेगा। ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र गुण कर्म तत्पर हैं। इनमें ब्रह्मा रजोगुणाश्रित, विष्णु सत्वगुणाश्रित तथा रुद्र तमोगुणाश्रित हैं। तथापि महेश्वर तो त्रिगुणातीत हैं। लिंगरूपी महादेव मुमुक्षुगण के लिये भी अर्चनीय हैं। शिव ही मुक्ति तथा मुक्तिदाता हैं। उनकी अपेक्षा श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है।।६८-७२।।

।।उनविंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

विंशोऽध्यायः

लिंगरूपी शिव का निर्गुणत्व, तारकासुर वृत्तान्त

ऋषय ऊचुः

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्चसगुणाःकीर्तितास्त्वया। लिङ्गरूपीतथैवेशो निर्गुणोऽसौकथंवद।
त्रिभिर्गुणैर्व्याप्तमिदं चराचरं जगन्महद्व्याप्यथ वाल्पकं वा।।१।।
मायामयं सर्वमिदं विभाति लिङ्गं विना केन कुतो विभाति।।२।।
यद्दृस्यमानं महदल्पकं च तन्नश्वरं कृतकत्वाच्च सूत!।।३।।
तस्माद्विमृश्य भोः सूत संशयं छेत्तुमर्हसि। व्यासप्रासादात्सकलंजानासित्वंनचापरः।।४।।

ऋषिगण कहते हैं—आपने ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र को सगुण कहा। जो लिंगरूपी देवाधिदेव हैं, वे निर्गुण कैसे हो गये? यह सचराचर जगत् महत् से लगाकर क्षुद्र (सूक्ष्म) पर्यन्त गुणत्रय से व्याप्त है। यह सभी मायामय हैं। लिंग के बिना, माया के बिना यह सब कैसे विभासित होता है? हे सूत लोमश! जो कुछ महत् अथवा अल्परूपेण परिदृश्य हो रहा है, सभी कृत्रिम तथा नश्वर है। अतः आप विशेष विवेचना द्वारा हमारा संशय दूर करिये। हे सूत! आप व्यास की कृपा से सबके ज्ञाता हैं। आपके अतिरिक्त यह सब जानने वाला कोई नहीं है।।१-४।।

सूत उवाच

व्यासेन कथितं सर्वमस्मिन्नर्थे शुकं प्रति॥५॥

शुक उवाच

लिङ्गरूपी कथं शम्भुर्निर्गुणः कथते त्वया। एतन्मे संशयं तात च्छेत्तुमर्हस्यशेषतः॥६॥

सूत कहते हैं—आपके द्वारा जिज्ञासित जो भी विषय हैं, शुकदेव ने गुरु से वह सब पूर्वकाल में कहा था। एक बार शुकदेव ने व्यासदेव से पूछा—"हे पिता! लिंगरूपी शंभु को आपने कैसे निर्गुण कहा? इस सम्बन्ध में मुझे संशय है। इसे सम्पूर्णतः कहें"।।५-६।।

व्यास उवाच

शृणु वत्स ब्रवीम्येतत्पुरा प्रोक्तं च नंदिना। अगस्त्यं पृच्छमानं च येन सर्वंश्रुतंशुक।
निर्गुणं परमात्मानं विद्धि लिङ्गस्वरूपिणम्। परा शक्तिस्तथा ज्ञेया निर्गुणा शाश्वती सती॥७॥
यया कृतमिदं सर्वं गुणत्रयविभावितम्। एतच्चराचरं विश्वं नश्वरं परमार्थतः॥८॥
एक एव परो ह्यात्मा लिङ्गरूपी निरंजनः। प्रकृत्या सह ते सर्वे त्रिगुणा विलयंगताः॥९॥
यस्मिन्नेव ततो लिङ्गं लयनात्कथितं पुरा। तस्माल्लिंगे लयं प्राप्तापराशक्तिःकुतोऽपरे॥१०॥
लीना गुणाश्च रुद्रोक्त्या यैरिदं बद्धमेव च। चराचरं महाभाग तस्माल्लिंगं प्रपूजयेत्॥११॥

व्यासदेव कहते हैं—हे वत्स शुक! सुनो! इस सम्बन्ध में मुनि अगस्त्य द्वारा पूछे जाने पर नन्दीश्वर ने जो कहा था, वह सब मैंने सुना है। वह सब मैं तुमसे कहता हूं। तुम लिंगरूपी परमात्मा को निर्गुण जानो। उनकी शाश्वती पराशक्ति भी निर्गुण है। उन्होंने समस्त जगत् का निर्माण त्रिगुणात्मक रूप से किया है। यह जो सचराचर विश्व दिखलाई पड़ रहा है, यह वास्तव में नष्ट हो जाने वाला है। एकमात्र लिंगरूपी परमात्मा ही सत्य हैं। प्रकृति सहित यह समस्त त्रिगुण लिंगरूपी परमात्मा में ही विलीन हो जाता है। तभी इसे लिंग कहा गया है। जब इस लिंग में पराशक्ति तक लीन हो जाती है, तब और कुछ का अस्तित्व किस प्रकार से बच सकता है? जिन समस्त गुणों द्वारा यह चराचर विश्व आबद्ध है, वह भी लिंग में ही लीन होता है। हे महाभाग! इसीलिये सर्वदा लिंग पूजन ही कर्त्तव्य होना चाहिये।।७-११।।

लिङ्गं च निर्गुणं साक्षाज्जानीध्वं भो द्विजोत्तमाः!।
लयाल्लिङ्गस्य माहात्म्यं गुणानां परिकीर्त्यते॥१२॥
शंकरःसुखदाता हि उच्यमानोमनीषिभिः। सर्वोहिकथ्यतेविप्राःसर्वेषामाश्रयोहिसः॥१३॥

शम्भुर्हि कथ्यते विप्रा यस्माच्च शुभसंभवः॥१४॥
एवं सर्वाणि नामानि सार्थकानि महात्मनः। तेनावृतं जगत्सर्वं शम्भुना परमेष्ठिना॥१५॥

हे द्विजश्रेष्ठगण! लिङ्ग ही साक्षात् निर्गुण ब्रह्म है। गुणसमूह के लय के कारण ही लिंग का माहात्म्य कहा गया है। मनीषीगण ने लिंग को सुख देने वाला होने के कारण ही शंकर कहा है। हे विप्रगण! सबका यह आश्रय है, तभी इसे सर्व कहते हैं। यह शुभ संभव होने के कारण शम्भु कहा गया है। इस प्रकार इन लिंगरूपी महात्मा के सभी नामों की सार्थकता है। इन परमेष्ठि शम्भु की मूर्त्ति द्वारा ही समस्त जगत् आवृत है।।१२-१५।।

ऋषय ऊचुः

यदा दाक्षायणी चाग्नौ पतिता यज्ञकर्मणि। दक्षस्य च महाभागातिरोधानगतासती॥१६॥
प्रादुर्भूता कदा सूत कथ्यतां तत्त्वयाऽधुना। परा शक्तिर्महेशस्य मिलिता च कथंपुनः॥१७॥
एतत्सर्वं महाभाग पूर्ववृत्तं च तत्त्वतः। कथनीयं च अस्माकं नान्योवक्ताऽस्तिकश्चन॥१८॥

ऋषिगण कहते हैं—पूर्वकाल में दक्षयज्ञ में महाभागा दाक्षायणी सती ने अग्नि में देहत्याग किया था, वे कब पुनः आविर्भूत हो गयीं? हे सूत! अब आप वह प्रसंग कहिये। महेश्वर की वो पराशक्ति पुनः कैसे महेश से मिलित हो सकीं?

हे महाभाग! यह समस्त पूर्व वृत्तान्त आप हमें बतायें। आपके अतिरिक्त अन्य वक्ता है ही नहीं।।१६-१८।।

सूत उवाच

जज्ञे दाक्षायणी ब्रह्मन्विदग्धावयवा यदा। विना शक्त्या महेशोऽपितताप परमं तपः॥१९॥
लीलागृहीतवपुषा पर्वते हिमवद्गिरौ। भृङ्गिणा सहविश्वेन नंदिना च तथैव च॥२०॥
तथा चण्डेन मुण्डेन तथान्यैर्बहुभिर्वृतः। दशभिः कोटिगुणितैर्गणैश्च परिवारितः॥२१॥
गणानां चैव कोट्या च तथा षष्ठिसहस्रकैः। एवं तत्र गणैर्देव आवृतो वृषभध्वजः॥२२॥
तपो जुषाणः सहसा महात्मा हिमालयस्याग्रगतस्तथैव।
गणैर्वृतो वीरभद्रप्रधानैः स केवलो मूलविद्याविहीनः॥२३॥

सूतजी कहते हैं—हे द्विजगण! दाक्षायणी ने दग्ध होने के उपरान्त जब जन्म ग्रहण किया, तब शक्ति के बिना ही महेश्वर परम तप में निविष्ट हो गये। नन्दी, भृङ्गी, विश्व, चण्ड, मुण्ड तथा अन्य १० करोड़ साठ हजार गण से परिवृत लीलादेहधारी देवदेव वृषभध्वज तप में प्रवृत्त हो गये। वीरभद्र आदि प्रमुख गणों से परिवृत वे महात्मा हिमालय के उन्नत प्रदेशस्थ अपने आश्रम में मूलविद्या (सती) के अभाव में केवलीभाव का वरण करके तपोमय हो गये।।१९-२३।।

एतस्मिन्नंतरेदैत्याःप्रादुर्भूता ह्यविद्यया। विष्णुना हि बलिर्बद्धस्तथा ते वै महाबलाः॥२४॥
जाता दैत्यास्ततो विप्राइन्द्रोपद्रवकारकाः। कालखंजामहारौद्राःकालकायास्तथापरे॥२५॥
निवातकवचाः सर्वे खरावकसंज्ञकाः। अन्ये च बहवो दैत्याः प्रजासंहारकारकाः॥२६॥
तारको नमुचेः पुत्रस्तपसा परमेण हि। ब्रह्माणं तोषयामास ब्रह्मा तस्य तुतोष वै॥२७॥

वरान्ददौ यथेष्टांश्च तारकाय दुरात्मने। वरं वृणीष्व भद्रं ते सर्वान्कामान्ददामि ते॥२८॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः। वरयामास च तदा वरं लोकभयावहम्॥२९॥

तदनन्तर अविद्या के प्रभाव से दैत्यों का प्रादुर्भाव हुआ। विष्णु ने बलि का बन्धन किया। ये सभी अविद्या से उत्पन्न महाबली दैत्य देवेन्द्र के प्रति उपद्रव तथा अत्याचार रत-हो-गये। कालखञ्ज, महाभयानक कालकेय, निवातकवच, रवरावक गण तथा अन्य असंख्य दैत्य प्रजा संहाररत हो गये। तब नमुचि का पुत्र तारक परम तपस्यारत हो गया। उसने ब्रह्मा को प्रसन्न कर लिया। ब्रह्मा ने तारकासुर द्वारा वांछित सभी वर उसे प्रदान कर दिया। ब्रह्मा ने कहा—"हे दैत्य! तुम वर ग्रहण करो। तुम्हारा मंगल हो। मैं तुमको सभी अभीष्ट वर देता हूं।" परमेष्ठि ब्रह्मा का वचन सुनकर तारक ने उनसे लोकभयंकर वर मांगा।।२४-२९।।

यदि मे त्वं प्रसन्नोऽसि अजरामरतांप्रभो। देहि मे यद्विजानासि अजेयत्वं तथैव च॥३०॥
एवमुक्तस्तदा तेन तारकेण दुरात्मना। उवाच प्रहसन्वाक्यममरत्वं कुतस्तव॥३१॥
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युरेतज्जानीहि तत्त्वतः। प्रहस्य तारकः प्राह अजेयत्वं च देहि मे॥३२॥

तारक ने कहा—"यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तब हे प्रभो! मुझे अजरत्व-अमरत्व तथा अजेयत्व का वर प्रदान करिये।" यह सुनकर ब्रह्मा ने कहा—"तुम्हें अमरत्व कैसे प्राप्त होगा? जन्म लेने वाले की तो मृत्यु निश्चित ही है।" तब तारक ने कहा—"ऐसी स्थिति में आप मुझे अजेयत्व का वर प्रदान करिये"।।३०-३२।।

ब्रह्मोवाच तदा दैत्यमजेयत्वं तवानघ। विनाऽर्भकेण दत्तं वै ह्यर्भकस्त्वां विजेष्यते॥३३॥
तदा स तारकः प्राह ब्रह्माणं प्रणतः प्रभो। कृतार्थोऽहं हि देवेश प्रसादात्तव संप्रति॥३४॥
एवं लब्धवरो भूत्वा तारको हि महाबलः। देवान्युद्धार्थमाहूय युयुधे तैः सहासुरः॥३५॥
मुचुकुन्दं समाश्रित्य देवास्ते जयिनोऽभवन्। पुनःपुनर्विकुर्वाणा देवास्ते तारकेणहि॥३६॥
मुचुकुन्दबलेनैव जयमापुः सुरास्तदा। किं कर्तव्यं हि चास्माकं युध्यमानैर्निरंतरम्॥३७॥
भवितव्यमिति स्मृत्वागतास्ते ब्रह्मणः पदम्। ब्रह्मणश्चाग्रतोभूत्वाह्यबुवंस्तेसवासवाः॥३८॥

ब्रह्मदेव कहते हैं—"ठीक है! मैं अजेयत्व का वर प्रदान करता हूं। तथापि बालक से युद्ध होने पर वह तुमको जीत लेगा।" यह सुनकर तारक ने कहा—"हे देवेश! आपकी कृपा से मैं कृतार्थ हो गया।" महाबली दैत्य तारक ने यह वर पाकर देवगण को युद्धार्थ ललकारा तथा उनसे युद्धरत हो गया, तब देवगण ने मुचुकुन्द की सहायता से जयलाभ किया। तारकासुर पुनः-पुनः देवगण के विरुद्ध उपद्रव करने लगा। देवता मुचुकुन्द के प्रभाव से पुनः-पुनः विजयी हो रहे थे। मुचुकुन्द के प्रभाव से जय पाकर देवगण सोचने लगे कि यह जो निरन्तर युद्ध हो रहा है, इसके लिए हमें अब क्या करना उचित है? बारम्बार युद्ध करते रहने से हमारा भविष्य क्या होगा? अतः इन्द्रादि देवता इस विषय में विचार करके ब्रह्मभवन गये। वहां वे ब्रह्मा के समक्ष अपना कष्ट कहने लगे।।३३-३८।।

देवा ऊचुः

बलिना सहपातालमास्तेऽसौमधुसूदनः। विष्णुंविना हिते सर्वे वृषाद्याःपतिताःपरैः॥३९॥

दैत्येन्द्रैश्च महाभाग त्रातुमर्हसि नः प्रभो। तदा नभोगता वाणीह्युवाचपरिसांत्व्यवै॥४०॥
हे देवाः क्रियतामाशु ममवाक्यं हि तत्त्वतः। शिवात्मजोयदादेवाभविष्यतिमहाबलः॥४१॥
युद्धे पुनस्तारकं च वधिष्यति न संशयः। येनोपायेन भगवाञ्छंभुः सर्वगुहाशयः॥४२॥
दारापरिग्रही देवास्तथा नीतिर्विधीयताम्। क्रियतां च परो यत्नोभवद्भिर्नान्यथावचः॥४३॥
यूयं देवा विजानीध्वमित्युवाचाशरीरवाक्। परं विस्मयमापन्ना ऊचुर्देवाःपरस्परम्॥४४॥

उन्होंने ब्रह्मा से कहा—"भगवान् मधुसूदन बलि के साथ पाताल में रहते हैं। विष्णु की अनुपस्थिति के कारण दैत्य शत्रुगण ने इन्द्रादि सभी को पराजित कर दिया। हे महाभाग! अब आप ही हमारे त्राणकर्त्ता हैं।" देवगण यह प्रार्थना कर रहे थे, तभी उन देवगण को सान्त्वना देते हुये एक आकाशवाणी सुनी गयी। इस आकाशवाणी का तात्पर्य यह था—"हे देवताओं! तुम सब मेरे कथन का पालन करो। हे देवताओं! जब महाबली शिवपुत्र का जन्म होगा, तब वे ही युद्ध में तारकासुर का निःसन्देह वध करेंगे। सर्वान्तर्यामी भगवान् शम्भु-जैसे विवाह करें, तुम सब उस नीति का सहारा लो। इसी हेतु तुम सब प्रयत्न करो। हे देवगण! मेरा वचन व्यर्थ नहीं है।" इस अशरीरी वाणी को सुनकर देवगण आपस में इसी सम्बन्ध में वार्त्ता करने लगे। वे इस वाणी को सुनकर विस्मयापन्न भी थे।।३९-४४।।

श्रुत्वा नभोगतांवाणीमाजामुस्तेहिमालयम्। वृहस्पतिंपुरस्कृत्यसर्वेदेवावचोऽब्रुवन्॥४५॥
हिमालयं महाभागाः सर्वे कार्यार्थगौरवात्। हिमालय महाभागश्रूयतांनोऽधुनावचः॥४६॥
तारकस्त्रासयत्यस्मान्साहाय्यंतद्वधेकुरु। त्वंर्शण्योभवास्माकंसर्वेषां च तपस्विनाम्।
तस्मात्सर्वे वयं याता महेन्द्रसहिता विभो!॥४७॥

यह आकाशवाणी सुनने के अनन्तर सभी देवता बृहस्पति को आगे करके हिमालय आये। अपने कार्य की गरिमा के कारण ये महाभागगण हिमालय से कहने लगे—"हे महाभाग हिमालय! हमारा वाक्य श्रवण करें! तारकासुर ने हमें परास्त किया है। उसके नाश कार्य में हमें आपकी सहायता चाहिये। हम सभी आजकल दीन हो गये हैं! आप हमें शरण दीजिये। हे विभो! हम अपनी इस दीनता के ही कारण इन्द्रादि के साथ यहां आये हैं"।।४५-४७।।

लोमश उवाच

एवमभ्यर्थितो देवैर्हिमवान्गिरिसत्तमः। उवाच देवान्प्रहसन्वाक्यं वाक्यविदाम्वरः॥४८॥
महेन्द्रमुद्दिश्य तदा ह्युपहाससमन्वितः। अक्षमाश्च वयं सर्वे महेन्द्रेण कृताः सुराः॥४९॥
किं कुर्मः सुरकार्यं च तारकस्य वधं प्रति। पक्षयुक्ता वयं सर्वे यदिस्यामसुरोत्तमाः॥५०॥
तदा वयं घातयामस्तारकं सह बांधवैः। अचलोऽहं विपक्षश्चकिं कार्यं करवाणि वः॥५१॥

लोमश कहते हैं—गिरिवर हिमालय देवगण की यह प्रार्थना सुनकर हंसे। तदनन्तर वाग्मी हिमालय ने उपहास के साथ तब इन्द्र से कहा—"महेन्द्र ने जो मेरी अवस्था की है, उससे हम सभी पर्वत अक्षम हो गये। (अर्थात् पूर्वकाल में हमारे पंख काट दिये) अतः तारक वधार्थ हम देवकार्य कैसे कर सकेंगे? हे सुरप्रवरगण! यदि हम पुनः पंखयुक्त हो सकें, तब हम बन्धु-बान्धवों के साथ तारकासुर का विनाश कर सकने में सक्षम हो सकेंगे। अब तो हम अचल हैं। साथ ही पंखविहीन हैं। अतः हमारे द्वारा क्या कार्य हो सकेगा?"।।४८-५१।।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सर्वे देवास्तमब्रुवन्। सर्वे यूयं वयं चैव असमर्था वधं प्रति।
तारकस्य महाभाग! एतत्कार्यं विचिन्त्यताम्॥५२॥
येन साध्यो भवेच्छत्रुस्तारको हि महाबलः। तदोवाच महातेजाहिमवान्ससुरान्प्रति॥५३॥
केनोपायेन भो देवास्तारकं हन्तुमिच्छथ। कथयन्तु त्वरेणैव कार्यं वेत्तुं ममैव हि॥५४॥
तदा सुरैः कथितं सर्वमेतद्वाण्या चोक्तं यत्पुरा कार्यहेतोः।
श्रुतं तदा गिरिणा वाक्यमेतत्प्रोवाचेदं हिमवान्पर्वतो हि॥५५॥
शिवस्य पुत्रेण च धीमता यदा वध्यो दैत्यस्तारको वै महात्मा।
तदा सर्वं सुरकार्यं शुभं स्याद्वाण्या चोक्तं सत्यमेतद्भवेच्च॥५६॥
तस्मात्तदेनत्क्रियतां भवद्भिर्यथा महेशः कुरुते परिग्रहम्।
कन्या यथा तस्य शिवस्य योग्या निरीक्ष्यतामाशु सुरैरिदानीम्॥५७॥

हिमवान् का वाक्य सुनकर देवता कहने लगे—"हे महाभाग! तारकासुर का वध कर सकने की शक्ति न हमारे अन्दर है, न आपमें ही है। महाबली तारक जैसे मारा जा सकेगा, इसका विचार करके देखें।" तब महातेजस्वी हिमवान् ने कहा—"हे देवगण! तुम लोग किस उपाय से तारकवध की योजना बना रहे हो? मेरी जानकारी के लिये वह सब शीघ्र कहो।" तब देवगण ने उस आकाशवाणी का वर्णन किया तथा तदनुसार आकाशवाणी द्वारा निर्देशित उपाय एवं समस्त वृत्तान्त हिमालय से कहा। हिमालय उसे सुनकर कहने लगे—"जब धीमान् शिवपुत्र महात्मा तारकवध करेंगे, तभी देवकार्य सम्पन्न होगा। आकाशवाणी का कथन सत्य है। अतएव महेश्वर जिस उपाय से विवाह कर सकें, उसका प्रयत्न करो। तुम सब यह पर्यवेक्षण करो कि शिव के योग्य कौन सी कन्या है"।।५२-५७।।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्योचुःसुरास्तदा। जनितव्यात्वयाकन्याशिवार्थंकार्यसिद्धये॥५८॥
सुराणां च गिरे वाक्यंकुरुशीघ्रंमहामते।आधारस्त्वं तु देवानांभविष्यसिनसंशयः॥५९॥
इत्युक्तो गिरिराजोऽथ देवैः स्वगृहमाविशत्। पत्नीमेनां च पप्रच्छसुरकार्यंसमागतम्॥६०॥
जनितव्यासुकन्यैकासुरकार्यार्थसिद्धये। देवानां च ऋषीणां च तथैव च तपस्विनाम्॥६१॥
प्रियं न भवति स्त्रीणांकन्याजननमेव च। तथाऽपि जनितव्या च कन्यैका च वरानने॥६२॥

हिमवान् का वाक्य सुनकर देवगण ने हंसते हुये कहा—"हे महामति! हमारी कार्यसिद्धि हेतु आप एक कन्या उत्पन्न करें। हे पर्वत! इस देववाणी का पालन आपको करना ही होगा। आप ही देवताओं के आधार होंगे। इसमें सन्देह नहीं है।" देवगण की बात सुनकर हिमवान् के अपने घर वापस आकर पत्नी से कहा—सुरगण की कार्यसिद्धि हेतु, देवता-ऋषि तथा तपस्वीगण के उपकारार्थ एक शोभना कन्या उत्पन्न करना होगा। हे वरानने! मैं जानता हूं कि कन्या जन्म स्त्री के लिये प्रिय नहीं होता, तथापि एक कन्या को जन्म देना ही होगा।।५८-६२।।

प्रहस्यमेना प्रोवाचस्वपतिं च हिमालयम्। यदुक्तं भवतावाक्यंश्रूयतां मे त्वयाऽधुना॥६३॥
कन्या सदा दुःखकरी नृणां पते! स्त्रीणां तथा शोककरी महामते!।
तस्माद्विमृश्य सुचिरं स्वयमेव बुद्ध्या यथा हितं शैलपते! तदुच्यताम्॥६४॥

तब मेनका ने हंसते हुये पति हिमालय से कहा—"आपने जो कहा है, उस सम्बन्ध में मैं कहती हूं। आप सुनें। हे महामति! मनुष्य हेतु कन्या सदा दुःखप्रदा होती है। यह विवेचना बुद्धि से करके जो उचित हो, वह करें।।६३-६४।।

हिमवांस्तदुपश्रुत्य प्रियाया वचनं तदा। उवाच वाक्यं मेधावी परोपकरणान्वितम्।।६५।।
येनयेन प्रकारेण परेषामुपजीवनम्। भविष्यति च तत्कार्यं धीमता पुरुषेण हि।।६६।।
स्त्रियापि चैव तत्कार्यं परोपकरणान्वितम्। एवं प्रवर्तिता तेन गिरिणा महिषीतदा।
दधार जठरे कन्यां मेना भाग्यवती तदा।।६७।।
महाविद्या महामायामहामेधास्वरूपिणी। रुद्रकाली च अम्बा च सतीदाक्षायणीपरा।।६८।।
तां विभूतिं विशालाक्षी जठरे परमां सती। बभार सा महाभागामेनाचारुविलोचना।।६९।।
स्तुतिं चक्रुस्तदा देवा ऋषयो यक्षकिन्नराः। मेनाया भूरिभाग्यायास्तथा हिमवतोगिरेः।।७०।।
एतस्मिन्नन्तरे जाता गिरिजा नाम नामतः। प्रादुर्भूता यदा देवी सर्वेषां च सुखप्रदा।।७१।।
देवदुंदुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः। जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः।।७२।।
पुष्पवर्षेण महता ववृषुर्विबुधास्तथा। तदा प्रसन्नमभवत्सर्वं त्रैलोक्यमेव च।।७३।।

हिमालय ने पत्नी का वाक्य सुना तथा परोपकारमूलक यह वाक्य कहा—"जो चाहे वह हो, जैसे भी हो, उस प्रकार से जिससे अन्य का हित हो सके, वह करना धीमान् का कर्त्तव्य होता है। इसी प्रकार नारियां भी परोपकार युक्त कार्य करें।" पर्वतराज हिमालय ने अपनी पत्नी को इस प्रकार प्रवर्त्तित किया। भाग्यवती मेना ने अपने उदर (गर्भ) से एक कन्या को जन्म दिया। यह कन्या महाविद्या, महामाया, महामेधा, रुद्रकाली, अम्बा तथा साक्षात् पराशक्ति सती दाक्षायणी थीं। जब विशालाक्षी, चारुनेत्रा, महाभागा, सती मेना ने इस विभूति को अपने गर्भ से जन्म दिया था, तब देवता, ऋषि, यक्ष, किन्नर आदि हिमालय पत्नी मेना की स्तुति करने लगे। तदनन्तर मेना से इन गिरिजा नामक कन्या ने जन्म लिया। ये देवी जब प्रादुर्भूत हो गयीं, तब सब कुछ सुखपूर्ण हो गया। देवदुन्दुभि का वादन होने लगा। अप्सरायें नृत्यरता हो गयीं। गन्धर्वगण गायनरत हो गये। देवगण अजस्र पुष्पवर्षण करने लगे। देवी के जन्म लेते ही समस्त त्रैलोक्य प्रसन्न हो गया।।६५-७३।।

यदाऽवतीर्णा गिरिजा महासती तदैव दैत्या भयमाविशंस्ते।
प्राप्ता मुदं देवगणा महर्षयः सचारणाः सिद्धगणास्तथैव।।७४।।

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे श्रीभवान्युत्पत्तिवर्णनंनाम विंशोऽध्यायः।।२०।।

जब महासती गिरिजा अवतीर्ण हो गयीं, तब दैत्यगण स्वतः ही भय से ग्रस्त हो गये। देव, महर्षि, चारण तथा सिद्ध आदि प्रसन्न हो गये।।७४।।

।।विंश अध्याय समाप्त।।

एकविंशोऽध्यायः

हिमालय का शिव के पास गमन, शिव के पास देवगण द्वारा कामदेव को भेजना, मदनदहन

लोमश उवाच

वर्द्धमाना तदा साध्वी रराज प्रतिवासरम्। अष्टवर्षा यदा जाता हिमालयगृहे सती॥१॥
महेशो हिमवद्द्रोण्यां ततापपरमं तपः। सर्वैर्गणैः परिवृतो वीरभद्रादिभिस्तदा॥२॥
एतत्तपो जुषाणं तं महेशं हिमवान्ययौ। तत्पादपल्लवं द्रष्टुं पार्वत्या सह बुद्धिमान्॥३॥
यावत्समागतोद्रष्टुंनंदिनासौनिवारितः। द्वारिस्थितेन च तदाक्षणमेकंस्थिरोऽभवत्॥४॥
पुनर्विज्ञापयामास नन्दिना हिमवान्गिरिः। विज्ञप्तो नंदिना शम्भुरचलो द्रष्टुमागतः॥५॥
तदाकर्ण्य वचस्तस्य नन्दिनः परमेश्वरः। आनयस्व गिरिं चात्र नंदिनंवाक्यमब्रवीत्॥६॥
तथेति मत्वा नन्दी तं पर्वतं च हिमाचलम्। आनयामास सतथा शंकरं लोकशंकरम्॥७॥

लोमश कहते हैं—सती हिमालय नन्दिनी गिरिजा नित्यप्रति पितृगृह में बढ़ती हुई विराजित थीं। जब वे १८ वर्षीया हो गयीं, तब महादेव वीरभद्र आदि गणाध्यक्षों से घिरे हिमगिरि की घाटी में अवस्थित हो गये। वहां वे तपस्यारत थे, तभी बुद्धिमान हिमालय उन तपस्वी महादेव के चरणकमलों के दर्शनार्थ पार्वती के साथ वहां गये। तथापि जब वे उनके दर्शनार्थ पहुंचे, तब आश्रम के द्वार पर स्थित नन्दी ने उनको भीतर जाने से रोक दिया। हिमालय नन्दी के रोकने पर वहीं द्वार पर रुक गये। तदनन्तर नन्दी ने भगवान् शिव से निवेदन किया कि अचलेश्वर हिमवान् आपके साक्षात्कार लाभार्थ आये हैं। परमेश्वर ने नन्दी का वाक्य सुनकर कहा—"उन गिरिश्रेष्ठ को यहां ले आओ।" नन्दी ने तथास्तु कहकर लोकशंकर शंकर के निकट हिमवान् को पहुंचाया।।१-७।।

दृष्ट्वा तदानीं सकलेश्वरं प्रभुं तपो जुषाणं विनिमीलितेक्षणम्॥८॥
कपर्दिनं चन्द्रकलाविभूषणं वेदान्तवेद्यं परमात्मनि स्थितम्।
ववंद शीर्ष्णा च तदा हिमाचलः परां मुदं प्रापदहीनसत्त्वः॥९॥
उवाच वाक्यं जगदेकमंगलं हिमालयो वाक्यविदां वरिष्ठः॥१०॥

गिरिराज ने वहां जाकर देखा कि सर्वलोकपति भगवान् शिव आंखें बन्द किये तप कर रहे हैं। उनका जटाभार लटक रहा है। मस्तक चन्द्रकला भूषित है। वे स्वयं वेदान्तवेद्य होकर भी परमतत्त्व में स्थित हैं। हिमालय ने भगवान् की इस अवस्था को देखकर शिर झुकाकर उनकी वन्दना करके अत्यन्त प्रसन्नता का लाभ किया। तब उन वक्ताओं में श्रेष्ठ हिमालय ने मन्दस्वर में उन जगत् का मंगल करने वाले भगवान् महादेव से कहा।।८-१०।।

सभाग्योऽहं महादेव प्रसादात्तव शंकर!। प्रत्यहं चागमिष्यामि दर्शनार्थं तव प्रभो॥११॥
अनया सह देवेश अनुज्ञां दातुमर्हसि। श्रुत्वा तु वचनं तस्य देवदेवो महेश्वरः॥१२॥

आगंतव्यं त्वया नित्यं दर्शनार्थं ममाचल। कुमारीं च गृहेस्थाप्यनान्यथाममदर्शनम्॥१३॥

हिमालय कहते हैं—"हे शंकर! महादेव! आपकी कृपा से मैं सौभाग्यशाली हो गया। हे प्रभो! आपके दर्शनार्थ मैं कन्या के साथ नित्य आऊंगा। हे देवेश! आप इसलिये मुझे आज्ञा दीजिये।" देवदेव महेश्वर ने हिमालय का कथन सुनकर कहा—"हे अचल! आप तो मेरे दर्शनार्थ नित्य आयें, तथापि आते समय इन कुमारी को घर पर ही छोड़ कर आया करें, अन्यथा मेरा दर्शन नहीं मिलेगा।।११-१३।।

अचलः प्रत्युवाचेदं गिरीशं नतकंधरः। कस्मान्मयानया सार्द्धं नागन्तव्यंतदुच्यताम्।
अचलं च व्रती शंभुः प्रहसन्वाक्यमब्रवीत्॥१४॥
इयं कुमारी सुश्रोणी तन्वी चारुप्रभाषिणी। नानेतव्या मत्समीपे वारयामिपुनःपुनः॥१५॥
एतच्छ्रुत्वा वचनं तस्य शम्भोर्निरामयं निःस्पृहनिष्ठुरं वा।
तपस्विनोक्तं वचनं निशम्य उवाच गौरी च विहस्य शम्भुम्॥१६॥

अचलराज हिमालय ने नतमस्तक होकर महादेव को उत्तर दिया—"मैं इसके साथ क्यों नहीं आ सकता?" तब व्रततत्पर शंभु ने कहा—"इन सुश्रोणी, चारुभाषिणी, तन्वी कुमारी को मेरे यहां नहीं लाना। मैं पुनः-पुनः निषेध करता हूं।" तपस्वी शंभु का यह निष्ठुर-निस्पृह वचन सुनकर गौरी कहने लगीं।।१४-१६।।

गौर्युवाच

तपःशक्त्यान्वितःशम्भोकरोषि विपुलं तपः। तव बुद्धिरियं जातातपस्तप्तुं महात्मनः।
कस्त्वं का प्रकृतिः सूक्ष्मा भगवंस्तद्विमृश्यताम्॥१७॥
पार्वत्यास्तद्वचः श्रुत्वा महेशो वाक्यमब्रवीत्॥१८॥
तपसा परमेणैव प्रकृतिंनाशयाम्यहम्। प्रकृत्या रहितः सुभ्रु! अहं तिष्ठामि तत्त्वतः।
तस्माच्च प्रकृतेः सिद्धैर्न कार्यः संग्रहः क्वचित्॥१९॥

गौरी कहती हैं—"आपने तप प्रभाव से अन्वित होकर विपुल तपस्या की है। आप महात्मा हैं। आपकी बुद्धि तपःसाधना में लगी रहती है। तथापि हे भगवन्! आप कौन हैं तथा सूक्ष्म प्रकृति कौन हैं? इसकी विशेष विवेचना करके देखें।" पार्वती का वचन सुनकर महेश ने कहा—"हे सुभ्रु! मैं परम तपस्या द्वारा प्रकृति का नाश करूंगा। तदनन्तर तपस्या युक्त होकर प्रकृति रहित स्थित रहूंगा। अतः प्रकृति के लिये साधकगण चेष्टा न करें।।१७-१९।।

पार्वत्युवाच

यदुक्तं परया वाचा वचनं शंकर! त्वया। सा किं प्रकृतिर्नैव स्यादतीतस्तां भवान्कथम्॥२०॥
यच्छृणोषि यदश्नासियच्चपश्यसिशंकर। वाग्वादेन च किं कार्यमस्माकं चाधुनाप्रभो॥२१॥
तत्सर्वं प्रकृतेः कार्यं मिथ्यावादो निरर्थकः। प्रकृतेः परतो भूत्वा किमर्थंतप्यते तपः॥२२॥
त्वया शम्भोऽधुना ह्यस्मिन्गिरौ हिमवति प्रभो!।
प्रकृत्या मिलितोऽसि त्वं न जानासि हि शंकर!॥२३॥

वाग्वादेन च किं कार्यमस्माकं चाधुनाप्रभो। प्रकृतेः परतस्त्वं च यदिसत्यंवचस्तव।
तर्हि त्वया न भेतव्यं मम शंकर! संप्रति॥२४॥
प्रहस्य भगवान्देवो गिरिजां प्रत्युवाच ह॥२५॥

महादेव उवाच

प्रत्यहं कुरु मे सेवां गिरिजे! साधुभाषिणी!॥२६॥
इत्येवमुक्त्वा गिरिजां महेशो हिमालयं वाक्यमथो बभाषे।
अत्रैव सोऽहं तपसा परेण चरामि भूम्यां परमार्थभावः॥२७॥
तपस्तप्तुमनुज्ञा मे दातव्या पर्वताधिप। अनुज्ञया विना किंचित्तपः कर्तुं न पार्यते॥२८॥

पार्वती कहती हैं—हे शंकर! आपने जिस वाणी की कृपा से जो वाक्य कहा, क्या यह प्रकृति नहीं है? इस प्रकृति का अतिक्रमण करके किस प्रकार आप स्थित रहेंगे? आप जो करते हैं, जो भक्षण करते हैं, जो देखते हैं, सभी प्रकृति का कार्य है। हे शंकर! हे प्रभो! इस वाद-विवाद का क्या प्रयोजन? मिथ्या वाक्य सदा निरर्थक होते हैं। हे शम्भु! प्रकृति के परे होना किसलिये? आप इस हिमवान् पर्वत पर तप कर रहे हैं। हे शंकर! आप प्रकृति के साथ यथार्थतः मिलित हैं, तथापि इस तथ्य को समझ नहीं पा रहे हैं। हे प्रभो! हमारे इस वाद-विवाद का क्या प्रयोजन? आप तो प्रकृति के परवर्त्ती (परे रहने वाले) हैं, यदि यह सत्य है तब हे शंकर! आपको भय का कुछ भी कारण नहीं है। भगवान् महादेव ने हास्यपूर्वक गिरिजा को प्रत्युत्तर दिया—"हे साधुभाषिणी! गिरिजे! तुम नित्य मेरी सेवा करो।" महेश ने गिरिजा से यह कथा कहकर हिमालय से कहा—"मैं परमार्थनिष्ठ होकर यहां नित्य परम तपःश्चरण करूंगा। हे पर्वताधिप! मुझे तपार्थ आदेश करें। आपकी अनुज्ञा के बिना मैं तनिक भी तप करने में सक्षम नहीं हूं"॥२०-२८॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य देवदेवस्य शूलिनः। प्रहस्य हिमवाञ्छंभुमिंदं वचनमब्रवीत्॥२९॥
त्वदीयं हि जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्। किमहं तु महादेव तुच्छो भूत्वा ददामि ते॥३०॥
एवमुक्तो हिमवता शंकरो लोकशंकरः। प्रहस्य गिरिराजं तं याहीति ग्राह सादरम्॥३१॥
शंकरेणाभ्यनुज्ञातः स्वगृहं हिमवान्ययौ। सार्द्धं गिरिजयासोऽपिप्रत्यहं दर्शनेस्थितः॥३२॥
एवं कतिपयः कालो गतश्चोपासनात्तयोः॥३३॥
सुतापित्रोश्च तत्रैव शङ्करो दुरतिक्रमः। पार्वतीं प्रति तत्रैव चिन्तामापेदिरे सुराः॥३४॥

यह वचन सुनकर देवदेव शूलपाणि से हंसकर हिमालय ने कहा—"यह मनुष्य-देवता-असुर से परिवृत समस्त जगत् आप का ही है। हे महादेव! मैं एक क्षुद्र व्यक्ति आपको क्या दान दूंगा?" हिमालय ने जब लोकशंकर शिव से यह कहा तब शंकर ने हिमालय से सश्रद्ध भाव से कहा—"अब आप गृह जायें।" हिमवान् शंकर की आज्ञा से अपने गृह चले गये। तदनन्तर गिरिराज के साथ नित्य गिरिजा शिवदर्शनार्थ आने लगी। इस प्रकार शिवोपासना में पिता-पुत्री का कुछ समय बीत गया। तथा शंकर इतने दुरतिक्रम हैं कि पार्वती के प्रति अनुरक्त नहीं हो सके। इससे देवता चिन्तित हो उठे॥२९-३४॥

ते चिन्त्यमानाश्च सुरास्तदानीं कथं महेशो गिरिजां समेष्यति।
किं कार्यमद्यैव वयं च कुर्मो वृहस्पते! तत्कथयस्व मा चिरम्॥३५॥
वृहस्पतिरुवाचेदं महेन्द्रं प्रति सद्वचः। एवमेतत्त्वया कार्यं महेन्द्र! श्रूयतां तदा॥३६॥
एतत्कार्यं मदनेनैव राजन्नान्यः समर्थो भविता त्रिलोके।
विप्लावितं तापसानां तपो हि तस्मात्त्वरात्प्रार्थनीयो हि मारः॥३७॥
गुरोर्वचनमाकर्ण्य आह्वयन्मदनं हरिः। आह्वानादाजगामाथ मदनः कार्यसाधकः॥३८॥
रत्या समेतः सह माधवेन स पुष्पधन्वा पुरतः सभायाम्।
महेन्द्रमागम्य उवाच वाक्यं सगर्वितं लोकमनोहरं च॥३९॥

इससे देवगण अत्यन्त चिन्तित हो उठे। वे सोचने लगे—"कैसे महेश का गिरिजा से मिलन होगा? अब हम क्या करें? हे बृहस्पति! आप निर्देश करें।" तब बृहस्पति ने महेन्द्र से कहा—"हे महेन्द्र! मेरा कथन सुनो। मैं जैसा कहता हूं, वह करो। हे देवराज! यह कार्य कामदेव द्वारा ही साध्य है। कामदेव के बिना और कोई यह कार्य नहीं कर सकता। मदन तो आपलोगों के तप में भी विघ्न कर देता है। अतः इस कार्य हेतु उससे प्रार्थना करें।" गुरु का वाक्य सुनकर इन्द्र ने मदन का आह्वान किया। इन्द्र का आह्वान सुनकर कर्म में सक्षम मदन (कामदेव) वहां आये। पुष्पधन्वा मदन रति तथा वसन्त के साथ महेन्द्र की सभा में आये तथा गर्वपूर्ण तथापि मनोहर वाणी से कहने लगे।।३५-३९।।

अहमाकारितः कस्माद् ब्रूहि मेऽद्य शचीपते!। किं कार्यं करवाण्यद्य कथ्यतां मा विलंबितम्॥४०॥
मम स्मरणमात्रेण विभ्रष्टा हि तपस्विनः। त्वमेव जानासि हरे मम वीर्यपराक्रमौ॥४१॥
मम वीर्यं च जानातिशक्तेःपुत्रः पराशरः। एवं चान्ये च बहवो भृग्वाद्याऋषयोह्यमी॥४२॥
गुरुरप्यभिजानाति भार्योतथ्यस्य चैव हि। तस्यां जातो भरद्वाजो गुरुणा संकरो हि सः॥४३॥
भर द्वाजो महाभाग इत्युवाच गुरुस्तदा। जानातिमम वीर्यं च शौर्यं चैव प्रजापतिः॥४४॥
क्रोधो हि मम बन्धुश्च महाबलपराक्रमः। उभाभ्यां द्रावितं विश्वं जंगमाजंगमंमहत्।
ब्रह्मादिस्तंबपर्यन्तं प्लावितं सचराचरम्॥४५॥

मदन कहता है—"हे शचीपति! आपने हमें किसलिये बुलाया है? कहें। मैं आपका कार्य करूंगा। अविलम्ब आदेश दीजिये। मेरे स्मरणमात्र से तपस्वी तपःभ्रष्ट हो जाते हैं। हे इन्द्र! मेरा वीर्य तथा पराक्रम कितना है, यह आपको ज्ञात है। शक्तिंपुत्र महर्षि पराशर भी मेरे पराक्रम को जानते हैं। भृगु प्रभृति अन्य ऋषि मेरा विलक्षण प्रभाव जानते हैं। बृहस्पति तथा बृहस्पति के भाई उतथ्य की पत्नी भी मेरी विलक्षणता को जानती हैं। बृहस्पति तथा बृहस्पति के भाई की पत्नी के संयोग से जब भरद्वाज का जन्म हुआ, तब बृहस्पति ने अपनी भातृवधू से कहा—"हे महाभागे! तुम इस द्वाज (दो पिता वाले) सन्तान का भरण करो।" जो भी हो, प्रजापति ब्रह्मा भी मेरी शूरवीरता को जानते हैं। महाबली पराक्रमी क्रोध मेरा मित्र है। मैं तथा मेरा मित्र क्रोध, दोनों मिलकर ब्रह्मा से स्तम्ब पर्यन्त चराचर विश्व को अपने अधिकार में कर सकते हैं।।४०-४५।।

देवा ऊचुः

मदनत्वं समर्थोसि अस्माञ्जेतुं सदैव हि। महेशं प्रति गच्छाशु सुरकार्यार्थसिद्धये।
पार्वत्या सहितं शम्भुं कुरुष्वाद्य महामते॥४६॥
एवमभ्यर्थितो देवैर्मदनो विश्वमोहनः। जगाम त्वरितो भूत्वा अप्सरोभिःसमन्वितः॥४७॥
ततो जगामाशु महाधनुर्द्धरो विस्फार्य चापं कुसुमान्वितं महत्।
तथैव बाणांश्च मनोरमांश्च प्रगृह्य वीरो भुवनैकजेता।
तस्मिन्हिमाद्रौ परिदृश्यमानोऽवनौ स्मरो योधयतां वरिष्ठः॥४८॥
तत्रागता तदारम्भाउर्वशीपुंजिकस्थली। सुम्लोचामिश्रकेशी च सुभगा चतिलोत्तमा॥४९॥
अन्याश्च विविधा जाताः साहाय्ये मदनस्य च। अप्सरसोगणैर्दृष्टामदनेन सहैवताः॥५०॥
सर्वे गणाश्च सहसा मदनेन विमोहिताः। भृङ्गिणा च तदा रंभा चण्डेनसह चोर्वशी॥५१॥
मेनका वीरभद्रेण चण्डेन पुंजिकस्थली। तिलोत्तमादयस्तत्र संवृताश्च गणैस्तदा॥५२॥
उन्मत्तभूतैर्बहुभिस्त्रपांत्यक्त्वामनीषिभिः। अकालेकोकिलाभिश्चव्याप्तमासीन्महीतलम्॥५३॥

देवगण कहते हैं—"हे मदन! यह हमें स्वीकार है कि तुम सबको जय कर सकते हो। अब देवकार्य सिद्धि हेतु एक बार महेश के पास जाओ। हे महामति! वहां पार्वती के साथ शम्भु का योग करा दो।" विश्व को मोहित करने वाला मदन इस प्रकार देवगण से अभ्यर्थना पाकर अप्सराओं के साथ शिव के यहां चल पड़ा। वह भुवनों पर विजय प्राप्त करने वाला वीरवर मन्मथ अपने धनु तथा पुष्पमय बाणों को लेकर पुष्पधनु पर चढ़ाकर हिमालय के शिवस्थल पर उपस्थित हो गया। योद्धाओं में श्रेष्ठ मदन के साथ उसकी सहायतार्थ रम्भा, उर्वशि, पुञ्जलीक स्थली, सुम्लोचा, मिश्रकेशी, तिलोत्तमा तथा अनेक सुरसुन्दरी वहां पहुंचीं। वहां प्रमथगण मदन के साथ उन अप्सराओं को देखकर तत्क्षण मदनावेश से मुग्ध हो गये। वहां भृंगी के साथ रम्भा, चण्ड के साथ उर्वशी, वीरभद्र के साथ मेनका, चण्ड नामक गण के साथ पुंजिकस्थली का मिलन हो गया। तिलोत्तमा आदि अप्सरायें भी वहां उन्मत्त प्राय गणनायकों के साथ मिल गयीं। वहां बिना ऋतु के ही कोकिल कूजन महीतल में व्याप्त हो गया।।४६-५३।।

अशोकाश्चंपकाश्चूता यूथ्यश्चैव कदंबकाः। नीपाःप्रियालाःपनसाराजवृक्षाश्चरायणाः॥५४॥
द्राक्षावल्ल्यः प्रदृश्यंते बहुला नागकेशराः। तथा कदल्यः केतक्यो भ्रमरैरुपशोभिताः॥५५॥
मत्तामदनसंगेन हंसीभिः कलहंसकाः। करेणुभिर्गजा ह्यासञ्छिखंडीभिः शिखंडिनः॥५६॥

हठात् अशोक, चम्पा, आम्र, जूही, कदम्ब, नीप, प्रियाल, पनस, राजवृक्ष, द्राक्षावल्ली, नागकेशर, कदली, केतकी आदि वृक्ष भ्रमर से शोभित होकर दृष्टिगोचर होने लगे। हंसीगण के साथ कलहंस, करेणु के साथ (हथिनी के साथ) गजराज, शिखण्डीगण के साथ शिखण्डिकुल सहसा काम के वशीभूत होकर मत्त हो उठा।।५४-५६।।

निष्कामा ह्यातुरा ह्यासञ्छिवसंपर्कजैर्गुणैः। अकस्माच्च तथाभूतं कथंजातंविमृश्यच॥५७॥
शैलादो हि महातेजानंदीह्यमितविक्रमः। रक्षसांविबुधानां वा कृत्यमस्तीत्यचिन्तयत्॥५८॥

एतस्मिन्नंतरे तत्र मदनो हि धनुर्द्धरः। पंचबाणान्समारोप्य स्वकीये धुनुषि द्विजाः।
तरोश्छायां समाश्रित्य देवदारुगतां तदा॥५९॥
निरीक्ष्य शभुं परमासने स्थितं तपो जुषाणं परमेष्ठिनां पतिम्।
गङ्गाधरं नीलतमालकंठं कपर्दिनं चन्द्रकलासमेतम्॥६०॥
भुजंगभोगांकितसर्वगात्रं पंचाननं सिंहविशालविक्रमम्।
कर्पूरगौरं परयान्वितं च स वेद्धुकामो मदनस्तपस्विनम्॥६१॥
दुरासदं दीप्तिमतां वरिष्ठं महेशमुग्रं सह माधवेन।
यावच्छिवं वेद्धुकामः शरेण तावद्याता गिरिजा विश्वमाता।
सखीजनैः संवृता पूजनार्थं सदाशिवं मंगलं मंगलानाम्॥६२॥

तथापि इस आश्रमस्थ में जो सर्वकामना रहित थे, वे भी नितान्त व्याकुल हो गये। तब शिलादपुत्र नन्दीश्वर ने यह चिन्तन प्रारम्भ किया कि "हठात् यह क्या हो रहा है?" उन्होंने सोचा कि देवता अथवा राक्षस अथवा कोई ऐसा कर रहा है। नन्दीश्वर के इस प्रकार से चिन्तन करते-करते धनुर्धारी कामदेव ने अपने धनुष पर ५ बाणों का सन्धान किया। हे द्विजगण! उसने देवदारु की छाया में देखा कि परमेष्ठीगण के स्वामी देवदेव शंभु तपस्वी की तरह परमासन पर स्थित हैं। वे गंगाधर हैं। उनका कण्ठ तमालवत् नील है। वे कपर्दी हैं। ललाट में चन्द्रकला शोभित है। उनका सर्वांग नागों से युक्त है। वे पांच मुख वाले तथा सिंह के समान विशाल विक्रमी हैं। उनकी आकृति कर्पूरवत् गौरप्रभ है। मदन ने जब शिव को अपने बाणों से विद्ध करना चाहा तभी विश्वजननी गिरिकन्या गिरिजा सखियों के साथ मंगल का भी मंगल करने वाले सदाशिव के पूजनार्थ पहुंचीं।।५७-६२।।

कनककुसुममालां संदधे नीलकण्ठेसितकिरणमनोज्ञादुर्ल्लभा सातदानीम्।
स्मितविकसितनेत्रा चारुवक्त्रं शिवस्य सकलजनजनित्रीवीक्षयमाणाबभूव॥६३॥
तावद्विद्धः शरेणैव मोहनाख्येन च त्वरात्। विध्यमानस्तदाशम्भुःशनैरुन्मील्यलोचने।
ददर्श गिरिजां देवोऽब्धिर्यथा शशिनः कलाम्॥६४॥
चारुप्रसन्नवदनां बिंबोष्ठींसस्मितेक्षणाम्। सुद्विजामग्रिजांतन्वींविशालवदनोत्सवाम्॥६५॥
गौरीं प्रसन्नमुद्रां च विश्वमोहनमोहनाम्। यया त्रिलोकरचना कृता ब्रह्मादिभिःसह॥६६॥
उत्पत्तिपालनविनाशकरी च या वै कृत्वाऽग्रतः सत्त्वरजस्तमांसि।
सा चेतनेन ददृशे पुरतो हरेण संमोहनी सकलमंगलमंगलैका॥६७॥
तां निरीक्ष्य भवो देवो गिरिजां लोकपावनीम्। मुमोहदर्शनात्तस्यामदनेनातुरीकृतः।
विस्मयोत्फुल्लनयनो बभूव सहसा शिवः॥६८॥
एवं विलोकमानोऽसौ देवदेवो जगत्पतिः। मनसा दूयमानेन इदमाह सदाशिवः॥६९॥

उन्होंने नीलकण्ठ के कण्ठ में कनक-कुसुमों की माला का अर्पण किया। तदनन्तर समस्त लोकमाता सती गिरिजा स्मित-विकसित नयनों से शिव के सुन्दर मुख का अवलोकन करने लगीं। कामदेव ने इसी समय अपने

मोहनाख्य बाण द्वारा उन्हें सत्वर रूप से विद्ध किया। कामदेव के शर से विद्ध होकर शंकर ने धीरे-धीरे अपने नेत्रों को खोलकर सामने शशिकला को देखा। मानों सागर शशिकला को देख रहा है। शंकर देखते हैं कि सामने प्रसन्न वदना, बिम्बोष्ठि, स्मित समुज्ज्वल नेत्रों से शोभिता, सुन्दर दन्तपंक्ति वाली, अनुपम सौन्दर्यशालिनी गौरी खड़ी हैं, जो विश्वमोहन को भी मोहित करने वाली हैं। जिन्होंने ब्रह्मादि के साथ त्रिलोक रचा है, सत्व-रजः-तमः गुण के द्वारा उत्पत्ति, स्थिति तथा नाश जिनका कार्य है, उन सर्वमंगल की भी मंगल भूता भगवती को भगवान् शिव ने देखा। भवदेव शंकर लोकपावनी गिरिजा को देखकर मोहित हो गये। उनके दर्शन से वे मदनातुर हो गये। विस्मयविमुग्ध शिव के नयन खिल उठे। जगत्पति देवदेव सदाशिव देवी गिरिजा को देखकर मन में कहने लगे।।६३-६९।।

अनया मोहितः कस्मात्तपःस्थोऽहंनिरामयः। कुतःकस्माच्चकेनेदंकृतमस्तिममाप्रियम्।।७०।।
ततो व्यलोकयच्छंभुर्दिक्षु सर्वासुसादरम्। तावद्दृष्टोदक्षिणस्यांदिशिह्यात्तशरासनः।।७१।।
चक्रीकृतधनुः सज्जं चक्रे वेद्धुं सदाशिवम्। यावत्पुनः संधयति मदनो मदनांतकम्।
तावद् दृष्टो महेशेन सरोषेण तदा द्विजाः।।७२।।
निरीक्षितस्तृतीयेन चक्षुषा परमेण हि। मदनस्तत्क्षणादेव ज्वालामालावृतोऽभवत्।
हाहाकारो महानासीद्देवानां तत्र पश्यताम्।।७३।।

भगवान् कहते हैं—"मैं तपस्वी तथा निरामय हूं। इस स्त्री से मैं क्यों मोहित हो गया? किसने कहां से मेरे प्रति अप्रिय कार्य किया है?" यह विचार कर भगवान् शिव ने चतुर्दिक् दृष्टि निःक्षेप किया। वे देखते हैं कि दक्षिण की ओर धनुष पकड़े तथा उसे चक्रीकृत करता कामदेव उनको विद्ध करने का प्रयत्न कर रहा है! हे द्विजगण! जैसे ही मदनारि शम्भु पर बाण छोड़ने का उपक्रम कामदेव ने किया, तभी महेश ने उसे घोर दृष्टि से देखा। उनके तृतीय नयन से तत्काल ज्वालामाला ने उद्भूत होकर मदन को घेर लिया। तब दर्शक देवगण के बीच से महा हाहाकार की ध्वनि उठ पड़ी।।७०-७३।।

देवा ऊचुः

देवदेव महादेव देवानां वरदो भव। गिरिजायाः सहायार्थं प्रेषितो मदनोऽधुना।।७४।।
वृथा त्वयाऽथ दग्धोऽसौ मदनो हि महाप्रभः।।७५।।
त्वया हि कार्यं जगदेकबंधो! कार्यं सुराणां परमेण वर्चसा।
अस्यां समुत्पत्स्यति देव! शंभो! तेनैव सर्वं भवतीह कार्यम्।।७६।।
तारकेण महादेव देवाः संपिडिता भृशम्। तदर्थंजीवितंचास्यदत्त्वा च गिरिजांप्रभो।।७७।।
वरयस्व महाभाग देवकार्ये भव क्षमः। गजासुरात्त्वया त्राता वयं सर्वे दिवौकसः।।७८।।
कालकूटाच्चनूनंहिरक्षिताः स्मो न चान्यथा। भस्मासुराच्चसर्वेशत्वयात्रातानसंशयः।।७९।।
मदनोयं समायातः सुराणां कार्यसिद्धये। तस्मात्त्वया रक्षणीय उपकारः परोहिनः।।८०।।
विनातेनजगत्सर्वंनाशमेष्यतिशंकरः। निष्कामस्त्वंकथंशंभोस्वबुद्ध्याचविमृस्यताम्।।८१।।

देवगण कहने लगे—हे देवदेव महादेव! आप देवताओं के लिए वरप्रद हो जायें। गिरिराजकन्या की सहायतार्थ ही मदन को यहां भेजा गया था। आपने व्यर्थ ही महाप्रभावी मदन को दग्ध कर दिया। हे संसार के एकमात्र बन्धु! आप अपनी परम तेजधारा द्वारा देवगण का कार्योद्धार किया था। हे देवशम्भु! इन गिरिजा के गर्भ से पुत्र उत्पन्न होगा, उनकी सहायता से ही देवगण का कार्य सम्पन्न होगा। हे महादेव! तारकासुर ने देवगण को अत्यन्त उत्पीड़ित किया है। हे प्रभु! आप इसलिये मदन को जीवन प्रदान करें तथा गिरिजा का वरण करें। हे महाभाग! इस प्रकार से आप देवकार्य सम्पन्न करें। पूर्वकाल में आपने ही गजासुर तथा कालकूट विष से देवसमाज की रक्षा की थी। हे सर्वेश्वर! भस्मासुर से भी आपने ही हमें त्राण दिलाया था। यह कामदेव! हम देवगण के ही कार्यसाधनार्थ आया था। आप इसकी रक्षा करें। इस प्रकार से हमारा यथेष्ट उपकार होगा। हे शिवशंकर! मदनरहित समस्त जगत् का ही नाश हो जायेगा। आप निष्काम होकर कैसे रहेंगे, इसे आप अपनी बुद्धि से ही विचारें।।७४-८१।।

तदोवाच रुषाविष्टो देवान्प्रति महेश्वरः। विना कामेन भो देवा भवितव्यंनचान्यथा।।८२।।
यदाकामं पुरस्कृत्य सर्वे देवाः सवासवाः। पदभ्रष्टाश्चदुःखेनव्याप्ता दैन्यंसमाश्रिताः।
कामो हि नरकायैव सर्वेषां प्राणिनां ध्रुवम्।।८३।।
दुःखरूपी ह्यनंगोऽयं जानीध्वं मम भाषितम्।।८४।।
तारकोऽपि दुराचारो निष्कामोऽद्य भविष्यति। विनाकामेनच कथं पापमाचरतेनरः।।८५।।
तस्मात्कामो मया दग्धः सर्वेषां शांतिहेतवे। युष्माभिश्च सुरैः सर्वैरसुरैश्च महर्षिभिः।।८६।।
अन्यैः प्राणिभिरेवात्र तपसे धीयतां मनः। कामक्रोधविहीनं च जगत्सर्वं मयाकृतम्।।८७।।
तस्मादेन पापिनं दुःखमूलं न जीवयिष्यामि सुराः प्रतीक्ष्यताम्।
निरन्तरं चात्मसुखप्रबोधमनंदलक्षणमगाधमनन्यरूपम्।।८८।।

तब महादेव ने रोष में भरकर देवताओं से कहा—"हे देवताओं! कामरहित होकर तुम लोगों की स्थिति असंभव नहीं होगी। देखो! जब इन्द्रादि देवता काम का अनुसरण करते हैं, तभी वे अपने पद से भ्रष्ट, दुःखी तथा दीनतायुक्त हो जाते हैं। काम सभी प्राणीगण हेतु नरक का कारण है। यह काम ही दुःखमय हैं। यह मेरा सत्य कथन है। अब तो कामदहन से दुराचारी तारक भी निष्काम होगा। यदि काम ही नहीं रहेगा, तब मनुष्य कहां से पाप करेगा? तभी सबकी शान्ति हेतु मैंने काम को दग्ध कर दिया। केवल देवता, ऋषि, सुर, नर, असुर ही नहीं, जगत् के समस्त प्राणीगण का अब मनःसमाधान हो गया। मैंने समस्त जगत् को काम-क्रोध हीन कर दिया। हे सुरगण! मैं इस दुःख के कारण पापी काम को कदापि जीवित नहीं करूंगा। अब तुम सब केवल निरन्तर आत्मसुख प्रबोधक अगाध अनन्त आनन्दमय की प्रतीक्षा में ध्यानस्थ होकर स्थित हो जाओ"।।८२-८८।।

एवमुक्तास्तदा तेन शंभुना परमेष्ठिना। ऊचुर्महर्षयः सर्वे शंकरं लोकशंकरम्।।८९।।
यदुक्तं भवता शंभो परं श्रेयस्करं हि नः। किंतुवक्ष्याम देवेश श्रूयतां चावधार्यताम्।।९०।।
यथा सृष्टमिदं विश्वं कामक्रोधसमन्वितम्। तत्सर्वं कामरूपं हि सकामो नतुहन्यते।।९१।।
धर्मार्थकाममोक्षाश्चचत्वांरो ह्येकरूपताम्। नीता येन महादेव स कामोऽयं न हन्यते।।९२।।

कथं त्वयाहि संदग्धः कामोहि दुरतिक्रमः। येन संघटितंविश्वमाब्रह्मस्थावरात्मकम्॥९३॥
कामेन हीयते विश्वंविश्वं कामेनपाल्यते। कामेनोत्पद्यतेविश्वंतस्मात्कामोमहाबलः॥९४॥
यस्मात्क्रोधो भवत्युग्रो येनत्वं च वशीकृतः। तस्मात्कामंमहादेवसंबोधयितुमर्हसि॥९५॥
त्वया संपादितो देव मदनो हि महाबलः। समर्थोहि समर्थत्वात्तत्सामर्थ्यंकरिष्यति॥९६॥

परमेष्ठि शम्भु के यह कहने पर महर्षिगण ने लोकशंकर शम्भु से कहा—"हे शम्भु! आपने जो कहा, वह सब हमारे लिये निःसन्देह परम मंगलमय अवश्य है। हे देवेश! इस सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है, उसे आप अवश्य सुनें तथा उसकी अवधारणा करें। इस विश्व की सृष्टि काम-क्रोधमय की गयी है। यहां सब कुछ कामरूपी है। आप द्वारा काम का हरण कदापि विहित नहीं है। हे महादेव! धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूप चतुर्वर्ग की सृष्टि (विधाता द्वारा) की गयी है। यह समस्त विश्व कामरूप है। इसलिए काम का हरण विहित कदापि नहीं है। आपने काम को दग्ध क्यों किया? काम दुरतिक्रम है। इसलिए ब्रह्मपर्यन्त विश्व काम से ही उद्भूत है। काम से ही विश्व का पालन तथा संहार होता है। अतः काम महाबली है। इसी से क्रोध की उत्पत्ति होती है। जिसके प्रभाव से आप भी अभिभूत हैं। हे महादेव! इस काम को पुनः प्रबोधित करें। हे देव! महाबली मदन आप द्वारा पुनः उत्पन्न होकर कार्यक्षम हो जायेगा। मदन के कार्यक्षम होते ही सर्वत्र अपने सामर्थ्य का विस्तार करेगा"।।८९-९६।।

ऋषिभिश्चैवमुक्तोऽपि द्विगुणं रूपमास्थितः। चक्षुषा हि तृतीयेन दग्धुकामोहरस्तदा॥९७॥
मुनिभिश्चारणैः सिद्धैर्गणैश्चापि सदाशिवः। स्तुतश्च वंदितोरुद्रः पिनाकी वृषवाहनः॥९८॥
मदनं च तथादग्ध्वा त्यक्त्वा तं पर्वतं रुषा। हिमवंताभिधंसद्यस्तिरोधानगतोऽभवत्॥९९॥
तिरोधानगतं देवी वीक्ष्य दग्धं च मन्मथम्। सकोकिलं सचूतंच सभृंगंसहचंपकम्।
तथैव दग्धं मदनं विलोक्य रत्या विलापं च तदा मनस्विनी॥१००॥
सबाष्पदीर्घं विमना विमृश्य कथं स रुद्रो यशगो भवेन्मम॥१०१॥

ऋषिगण के द्वारा यह कहे जाने पर उन्होंने दूना रूप धारण किया तथा अपने तृतीय नेत्र से सभी को दग्ध करने के लिए उद्यत हो गये। सदाशिव पिनाकी वृषवाहन रुद्र भूमि-सिद्ध-चारण द्वारा स्तुत तथा वन्दित होकर मदन को दग्ध करके हिमालय का त्याग करके वहां से सहसा अन्तर्धान हो गये। गिरिजा ने महादेव को वहां से तिरोहित तथा आम्र, कोकिल, भृङ्गगण तथा अपने पंचबाण सहित काम को दग्ध देखा। कामपत्नी-रति भी विलाप करने लगीं। तब मनस्विनी भगवती गिरिजा विमना होकर मन ही मन वाष्पयुक्त नेत्रों से सोचने लगीं कि ये रुद्र मेरे वशीभूत कैसे हो सकेंगे?।।९७-१०१।।

एवं विमृश्य सुचिरं गिरिजा तदानीं संमोहमाप च सती हि तथा बभाषे।
संमुह्यमाना रुदतीं निरीक्ष्य रतिर्महारूपवतीं मनस्विनीम्॥१०२॥
मा विषादं कुरु सखि! मदनं जीवयाम्यहम्।
त्वदर्थं भो विशालाक्षी! तपसाऽऽराधयाम्यहम्॥१०३॥
हरं रुद्रं विरूपाक्षं देवदेवं जगद्गुरुम्। मा चिंतां कुरु सुश्रोणि मदनं जीवयाम्यहम्॥१०४॥
एवमाश्वास्य तां साध्वी गिरिजां रतिरंजसा। तपस्तेपे च सुमहत्पतिंप्राप्तुंसुमध्यमा॥१०५॥

मदनो यत्र दग्धश्च रुद्रेण परमात्मना। तप्यमानां तपस्तत्र नारदो ददृशे तदा॥१०६॥

सती गिरिजा ने अनेक क्षण यही विचार किया। अन्त में वे मोहाच्छन्न सी हो गयीं। तत्पश्चात् साध्वी रति इन महारूपवती मनस्विनी गिरिराजपुत्री गिरिजा से रोते-रोते कहने लगीं—"हे सखी! तुम विषाद न करो। मैं मदन को पुनः जीवित करूंगी। हे विशालाक्षी! मैं तुम्हारे लिये तपःश्चरण करके हर रुद्र विरूपाक्ष देवदेव जगत्पति शिव की आराधना करूंगी। हे सुश्रोणि! तुम चिन्ता न करो। मैं मदन को पुनः जीवित करूंगी।" साध्वी रति गिरिजा से यह कहकर उनको आश्वस्त करने के उपरान्त पति को पाने के लिए महान् तप में निरत हो गयीं। जहां परमात्मा शिव ने मदनदहन किया था, वे वहीं तप करने लगीं। उस तप से तप्त होती रति को तब नारद ने देखा॥१०२-१०६॥

उवाच गत्वा सहसा भामिनीं रतिमंतिके। कस्यासित्वंविशालाक्षिकेनवातप्यतेतपः॥१०७॥
तरुणी रुपसंपन्ना सौभाग्येन परेण हि। नारदस्य वचः श्रुत्वा रोषेण महता तदा।
उवाच वाक्यं मधुरं किंचिन्निष्ठुरमेव च॥१०८॥

देवर्षि नारद ने रति के निकट जाकर कहा—"हे विशालाक्षी! तुम किसकी कन्या हो? क्यों तप कर रही हो? तुम तो युवती तथा रूपवती हो। तुम्हारे तो सौभाग्य की सीमा ही नहीं है।" रति ने नारद का यह वाक्य सुना तथा किंचित मधुरता से निष्ठुर वाक्य कहने लगीं॥१०७-१०८॥

रतिरुवाच

नारदोऽसि मया ज्ञातः कुमारस्त्वं न संशयः। स्वस्वरूपादर्शनं च कर्तुमर्हसि सुव्रत॥१०९॥
यथागतेनमार्गेणगच्छत्वंमाविलंबितम्। वटोनकिंचिज्ज्ञानासिकेवलंकलिकृन्महान्॥११०॥
परस्त्रीकामुकाःक्षुद्राविटाव्यसनिनश्चये। तथाह्यकर्मिणःस्तब्धास्तेषांमध्येत्वमग्रणीः॥१११॥

रति कहती हैं—हे सुव्रत! मुझे ज्ञात है कि आप नारद हैं। आप निश्चय ही बालक हैं। आप अपने स्वरूप को गोपित करके अन्य रूप दिखाने का प्रयत्न कर रहे हैं। अतः आप जिस मार्ग से आये हैं, उसी पर वापस चले जायें। विलम्ब न करें। हे बालक! आप कुछ नहीं जानते। आप केवल कलह करते घूमते हैं। हम सब आपको एक प्रधान कलही के रूप में जानते हैं। जो परनारी-कामुक, क्षूद्र, विट्, व्यसनी, अकर्मण्य, स्तब्ध हैं, आप उनके अगुआ हैं!॥१०९-१११॥

एवं निर्भर्त्सितो रत्या नारदो मुनिसत्तमः। स्वयं जगाम त्वरितं शंबरं दैत्यपुंगवम्॥११२॥
शशंस दैत्यराजाय दग्धं मदनमेव च। रुद्रेण क्रोधयुक्तेन तस्य भार्या मनस्विनी॥११३॥
तामानय महाभाग भार्यां कुरु महाबलः। अतीव रूपसम्पन्ना या आनीतास्त्वयाऽनघ।
तासां मध्ये रूपवती रतिः सा मदनप्रिया॥११४॥

मुनिप्रवर नारद इस प्रकार रति द्वारा भर्त्सना प्राप्त करने के उपरान्त स्वयं दैत्यराज शम्बर के पास गये। वहां जाकर नारद ने दैत्यराज से कहा—"रुद्र ने क्रोधित होकर कामदेव को दग्ध कर दिया। इस कामदेव की मनस्विनी पत्नी रति है। हे महाभाग! महाबली! तुम उसको पत्नी बनाओ। तुम अब तक जितनी रूपवती युवतियों को लाये हो, यह मदनप्रिया रति उनमें से सबसे प्रधान रूपवती है"॥११२-११४॥

एवमाकर्ण्य वचनं देवर्षेर्भावितात्मनः। जगाम सहसा तत्र यत्रास्ते सा सुशोभना॥११५॥

तां दृष्ट्वा सुविशालाक्षीं रतिं मदनमोहिनीम्। उवाच प्रहसन्वाक्यं शंबरो देवसंकटः।
एहि तन्वि! मया सार्द्धं राज्यं बोगान्यथेष्टतः॥११६॥

भावितात्मा देवर्षि नारद का वचन सुनकर शम्बरासुर तत्काल सुशोभना रति के तपस्यास्थल पर पहुंचा। वहां जाकर उसने मदनमोहिनी रति को देखा। तब देवशत्रु शम्बर रति से हंसते हुये कहने लगा।।११५-११६।।

भुंक्ष्व देवि! प्रसादान्मे तपसा किं प्रयोजनम्॥११७॥
एवमुक्ता तदा तेन शंबरेण महात्मना। उवाच तन्वी मधुरं महिषी मदनस्य सा॥११८॥

शम्बर कहता है—"हे तन्वङ्गी! तुम मेरे साथ चलो। हे देवी! तपस्या का तुमको क्या प्रयोजन? तुम मेरे महल में आकर राज्यसुख तथा अन्य भोगसुख का अनुभव करो।" सुरशत्रु शम्बर का वाक्य सुनकर तन्वंगी कामपत्नी उससे मधुर वाक्य कहने लगीं।।११७-११८।।

विधवाऽहं महाबाहो नैव भाषितुमर्हसि। राजा त्वं सर्वदैत्यानां लक्षणैःपरिवारितः॥११९॥
एतत्तद्वचनं श्रुत्वा शंबरः काममोहितः। करे ग्रहीतुकामोऽसौ तदा रत्या निवारितः॥१२०॥
विमृश्य मनसा सर्वमजेयत्वं च तस्य वै। मा स्पृशं त्वं च रे मूढ ममसंस्सर्शजेनवै॥१२१॥
संपर्केण च दग्धोऽसि नान्यथा मम भाषितम्। तदोवाच महातेजाःशंबरःप्रहसन्निव॥१२२॥
विभीषिकाभिर्हृीभिर्मांभीषयसिमानिनि ।
गच्छ शीघ्रंमम गृहं बहूक्त्याकिंप्रयोजनम्॥१२३॥
इत्युच्यमानेन तदा नीता सा प्रसभं तथा। स्वपुरं परमं तन्वी शंबरेण मनस्विनी॥१२४॥
कृता महानसेऽध्यक्षा नाम्ना मायावतीति च॥१२५॥

रति कहती हैं—हे महाबाहु! मैं विधवा स्त्री हूं। मुझसे ऐसे वाक्यों का प्रयोग नहीं करो। तुम सभी दैत्यों के राजा हो। तुममें समस्त राजलक्षण लक्षित हो रहा है। यह बात अनुचित कह रहे हो।" रति की बात सुनकर भी शम्बर नहीं रुका। वह रति का हाथ पकड़ने हेतु उद्यत हो गया। रति उसे रोकने लगीं। मन ही मन रति ने शम्बर को अजेय जानकर कठोरता से कहा—"हे मूढ़! मेरा स्पर्श न करो। मेरा स्पर्श करते ही तुम दग्ध होगे। मेरा वाक्य झूठ नहीं है।" महातेजस्वी शम्बर ने तब हास्यपूर्ण मुद्रा में कहा—"हे मानिनी! इस विभीषिका से मुझे भय क्यों दिखला रही हो? शीघ्र मेरे गृह चलो। अधिक बोलने का प्रयोजन नहीं है।" शम्बर यह कह कर मनस्विनी रति को बलात् अपनी सुन्दर नगरी में ले गया तथा रति को अपनी पाकशाला का अध्यक्ष नियुक्त किया, तब रति मायावती कहलाईं।।११९-१२५।।

ऋषय ऊचुः

पार्वत्याधिकृतं सर्वं मदनानयनं प्रति। शंबरेण हृता तन्वी मदनस्य प्रिया सती।
अत ऊर्ध्वं तदा सूत किं जातं तत्र वर्ण्यताम्॥१२६॥

ऋषिगण कहते हैं—मदन को पुनः लाने (जीवन देने हेतु) हेतु पार्वती ने भी अनेक साधना किया। इधर तपः साधना करती रति का हरण शम्बर ने किया था। हे सूत! तब जो कुछ हुआ, हमें बतायें।।१२६।।

सूत उवाच

गतं तदा शिवं दृष्ट्वा दग्ध्वा मदनमोजसा। पार्वती तपसायुक्ता स्थितातत्रैवभामिनि॥१२७॥
पित्रा तेन तदा तन्वी मात्रा चैव विचारिता। बाले एहि गृहं शीघ्रं मा श्रमंकर्तुमर्हसि॥१२८॥
उक्ता ताभ्यां तदा साध्वी गिरिजा वाक्यमब्रवीत्॥१२९॥

पार्वत्युवाच

नागच्छामि गृहं मातस्तात मे शृणु तत्त्वतः। वाक्यंधर्मार्थयुक्तंचयेनत्वं तोषमेष्यसि॥१३०॥
शंभुः परेषां परमो दग्धो येन महाबलः। मदनो मम सान्निध्यमानयेऽत्रैव तं शिवम्॥१३१॥
दुर्लभो हि तदा शंभुः प्राणिनां गृहमिच्छताम्।
नागच्छामि गृहं मातस्तस्मात्सर्वं विमृश्यताम्॥१३२॥

सूत कहते हैं—मदन को दग्ध करके शिव अन्तर्हित हो गये। यह देखकर भामिनी पार्वती तब से तप का नियम अवलम्बन करके स्थित हो गयीं। पार्वती के पिता तथा माता दोनों ने आकर पार्वती को रोकना चाहा। उन्होंने कहा—"हे बालिके! तुम गृह चलो। यह श्रम योग्य तुम नहीं हो।" उनके यह कहने पर पार्वती ने कहा—"हे माता-हे पिता! मैं गृह नहीं जाऊंगी। मेरा धर्ममय वाक्य सुनें। इस वाक्य से आप सन्तुष्ट हो जायेंगे। शम्भु परात्पर हैं। उन्होंने महाबली मदन को दग्ध किया है। मैं उनको आपके पास लाऊंगी। जो गृहमेघी प्राणी हैं, उनके लिए शंभु सुलभ नहीं हैं। हे मात्ता! मैं घर नहीं आऊंगी। आप इन सबकी विवेचना करके देखें"।।१२७-१३२।।

तदोवाच महातेजा हिमवान्स्वसुतां प्रति। दुराराध्यः शिवः साक्षात्सर्वदेवनमस्कृतः।
त्वया प्राप्तुमशक्यो हि तस्मात्त्वं स्वगृहं व्रज॥१३३॥
सा वाष्पपूरितेनैव कंठेन स्वसुतां प्रति। उवाच मेना तन्वंगि! याहि शीघ्रं गृहंप्रति॥१३४॥

यह सुनकर महातेजस्वी हिमवान् ने अपनी कन्या से कहा—"सुर समूह नमस्कृत शिव दुराराध्य हैं। उनको तुम साक्षात् प्राप्त नहीं कर सकती। अतः अपने घर चलो"।।१३३-१३४।।

तदा प्रहस्य चोवाच मातरं प्रति पार्वती। प्रतिज्ञां शृणु मे मातस्तपसा परमेण हि॥१३५॥
अत्रव तं समानीय वरयामि विचक्षणम्। नाशयामि च रुद्रस्य रुद्रत्वं वरवर्णिनि!॥१३६॥
सुखरूपं परित्यज्य गिरिजा च मनस्विनी।
शंभोराराधनं चक्रे परमेण समाधिना॥१३७॥

माता का यह वाक्य सुनकर पार्वती ने माता से कहा—"हे माता! मेरी प्रतिज्ञा सुनें! मैं परम तपः बल से उन विचक्षण शिव को यहां लाकर वरण करूंगी। हे वरवर्णिनी! मैं रुद्र के रुद्रत्व का उपनयन करूंगी।" यह कह कर मनस्विनी गिरिजा ने सुखभोग त्याग दिया तथा परम समाधि योग द्वारा शम्भु की आराधना करने लगीं।।१३५-१३७।।

जया च विजया चैव माधवी च सुलोचना। सुश्रुता च श्रुता चैव तथैव च शुकीपरा।
प्रम्लोचा सुभगा श्यामा चित्रांगी चारुणी स्वधा॥१३८॥

एतश्चान्याश्च बहवः सख्यस्ता गिरिजां प्रति।
उपासांचक्रिरे सा च देवगर्भा च भामिनी॥१३९॥
तपसा परमोग्रेण चरंती चारुहासिनी। मदनो यत्र दग्धश्च रुद्रेण च महात्मना।
तत्रैव वेदिं कृत्वा च तस्योपरि सुसंस्थिता॥१४०॥
त्यक्त्वा जलाशनं बाला पर्णादा ह्यभवच्च सा।
ततः साऽर्द्राणि पर्णानि त्यक्त्वा शुष्काणि चाददे॥१४१॥
शुष्काणि चैव पर्णानि नाशितानि तया यदा। अपर्णेतिचविख्याताबभूवतनुमध्यमा॥१४२॥

जया, विजया, माधवी, सुलोचना, सुश्रुता, श्रुता, शुकी, प्रम्लोचा, सुभगा, श्यामा, चित्राङ्गी, चारुणी तथा स्वधा तथा अन्य अनेक सखियां वहां गिरिजा की परिचर्या में लगीं रहती थीं। भामिनी चारुहासिनी देवी शैलजा कठोर तप में तत्पर हो गयीं। जहां महात्मा रुद्र ने कामदेव को दग्ध किया था, वे वहीं वेदी बनाकर उसके ऊपर स्थित थीं। बालिका पार्वती ने जल तक का त्याग किया था। वे मात्र पर्ण का ही भक्षण करती थीं। क्रमशः उन्होंने आर्द्र हरे पत्तों का भी भक्षण त्याग दिया तथा मात्र शुष्क पत्र का ही भक्षण करती थीं। कालक्रम से उन्होंने शुष्क पत्तों का भी भोजन त्याग दिया। इस प्रकार से सरस-नीरस-सभी प्रकार के पत्तों का भी त्याग करने के कारण पार्वती का नाम अपर्णा हो गया!॥१३८-१४२॥

वायुपानरता जाता अंबुपानादनंतरम्। कालक्रमेण महता बभूव गिरिजा सती।
एकांगुष्ठेन च तदा दधार च निजं वपुः॥१४३॥
एवमुग्रेण तपसा शंकराराधनं सती। चकार परया तुष्ट्या शंभोः प्रीत्यर्थमेव च॥१४४॥
परं भावं समाश्रित्य जगन्मंगलमंगला। तुष्ट्यर्थं च महेशस्य ततापं परमं तपः॥१४५॥
एवं दिव्यसहस्त्राणि वर्षाणि च ततापं वै। हिमालयस्तदागत्य पार्वतीं कृतनिश्चयाम्॥१४६॥
सभार्यः स सुतामाप्त उवाच च महासतीम्। मा खिद्यतां महादेवितपसानेनभामिनि॥१४७॥
क्व रुद्रो दृश्यते बाले विरक्तोनात्रसंशयः। त्वं तन्वी तरुणीबाला तपसाचविमोहिता॥१४८॥
भविष्यति न सन्देहः सत्यं प्रतिवदामि ते। तस्माद्दुत्तिष्ठ याह्याशु स्वगृहं वरवर्णिनि॥१४९॥
किं तेन तव रुद्रेण येनदग्धः पुराऽनघे। मदनो निविरकारित्वात्तं कथं प्रार्थयिष्यसि॥१५०॥
गगनस्थो यथा चन्द्रो ग्रहीतुं न हि शक्यते। तथैव दुर्गमःशंभुर्जानीहित्वंशुचिस्मिते॥१५१॥

सती ने दीर्घकाल से जल का भी त्याग कर दिया था तथा मात्र वायुपान ही करती रहती थीं। वे एक अंगूठे पर ही खड़ी रहकर तप कर रही थीं। इस प्रकार से सती ने शंभु की प्रसन्नता हेतु अत्यन्त सन्तोषपूर्वक तीव्र तप से उनकी आराधना कर रही थीं। इस प्रकार दिव्य सहस्त्र वर्ष पर्यन्त तप करने पर हिमालय सपत्नीक पार्वती के पास आये। उन्होंने अपनी प्रिय पुत्री सती गिरिजा से कहा—हे भामिनी महादेवी! तुम इस प्रकार से तपस्या करके खिन्न न होना। हे बालिके! इन रुद्र को तुम कहां देखोगी? वे तो विषयविरक्त हैं। तुम तन्वी तथा युवती बालिका हो। तप करके तुम भविष्य में निश्चित रूपेण विमोहिता हो जाओगी। यह मैंने सत्य कहा है। अतएव हे वरवर्णिनी! तुम उठो।

शीघ्र गृह जाओ। हे अनघे! जो स्वयं निर्विकार हैं तथा जिन्होंने मदन को दग्ध किया है, उन रुद्र से तुमको क्या प्राप्त होगा? कैसे तुम उनसे कुछ प्रार्थना करोगी? हे शुचिस्मिते! जैसे गगनगत चन्द्र कोई पकड़ नहीं पाता, उसी प्रकार से शम्भु भी दुर्लभ हैं।।१४३-१५१।।

तथैव मेनया चोक्ता तथा सह्याद्रिणा सती। मेरुणा मंदरेणैव मैनाकेन तथैव च॥१५२॥
एभिरुक्ता तदातन्वी पार्वती तपसिस्थिता। उवाच प्रहसन्तीव हिमवंतं शुचिस्मिता॥१५३॥
पुरा प्रोक्तं त्वया तात अंब किं विस्मृतं त्वया। अधुनैवप्रतिज्ञाञ्चशृणुध्वंममबांधवाः॥१५४॥
विरक्तोऽसौ महादेवो मदनोयेन वै हतः। तं तोषयामि तपसा शंकरं लोकशंकरम्॥१५५॥
सर्वे यूयं च गच्छन्तु नात्र कार्या विचारणा।
दग्धोहि मदनोयेन येनदग्धं गिरेर्वनम्॥१५६॥
तमानयामि चात्रैव तपसा केवलेन हि। तपोबलेन महता सुसेव्यो हि सदाशिवः॥१५७॥
तं जानीध्वं महाभागाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥१५८॥
संभाषमाणा जननीं तदानीं हिमालयं चैव तथा च मेनाम्।
तथैव मेरुं मितभाषिणी तदा सा मन्दरं पर्वतराजकन्या।
जग्मुस्तदा तेन पथा च पर्वता यथागतेनापि विचक्षमाणाः॥१५९॥
गतेषु तेषु सर्वेषु सखीभिः परिवारिता। तत्रैव च तपस्तेपे परमार्था सती तदा॥१६०॥

तदनन्तर सह्याद्रि, मेरु, मन्दर तथा मैनाक ने भी पार्वती को तपस्या करने से मना किया। जब तपःपरायण पार्वती से उन लोगों ने इस प्रकार कहा, तब शुचिस्मिता पार्वती ने हंसते हुये हिमालय से कहा—"हे तात! हे माता! मैंने पहले जो कहा था, क्या आप लोग उसे भूल गये? हे बान्धवगण! अब आप मेरी बात सुनें। मेरी प्रतिज्ञा यह है कि जिन्होंने मदन का वध किया है, वे महादेव यद्यपि विरक्त हैं, तब भी वे लोक शंकर हैं। उनको मैं तपःश्चरण से संतुष्ट करूंगी। आप सभी जायें। जिन्होंने मदन को तथा गिरिकानन को दग्ध किया है, मैं उनको केवल तपस्या द्वारा यहां लाऊंगी। भगवान् सदाशिव उत्तम तप द्वारा ही सेवित होते हैं। हे महाभागगण! आप उनको ऐसा ही समझें। मैंने यह सत्य कहा है।" मितभाषिणी पर्वतराज कन्या ने उसी समय पिता हिमालय, जननी मेनका तथा बन्धु मेरु-मन्दर आदि पर्वतों से यह कहा। तब वे सभी यथास्थान चले गये। उन सबके जाने के पश्चात् सखियों से घिरी परमार्थ तत्परा सती वहां तप करने लगीं।।१५२-१६०।।

तपसा तेन महता तप्तमासीच्चराचरम्। तदा सुरासुराः सर्वे ब्रह्माणं शरणं गताः॥१६१॥

देवा ऊचुः

त्वया सृष्टमिदं सर्वं जगद्देव! चराचरम्। त्रातुमर्हसि देवान्नस्त्वदन्यो नोपपद्यते॥१६२॥
अस्माकं रक्षणे शक्त इत्याकर्ण्य वचस्तदा। विमृश्य च तदा ब्रह्मा मनसा परमेण हि॥१६३॥

उनकी तीव्र तपस्या से सचराचर परितप्त हो उठा। तब देवता तथा असुर सभी ब्रह्मा के पास गये। देवगण ने ब्रह्मा से कहा—"हे देव! आपने ही सचराचर जगत् का सृजन किया है। देवों को भी आपने सृष्ट किया है। अतः

अब इनकी रक्षा करें। आपके बिना हमारी रक्षा करने वाला कोई नहीं है।'' यह सुनकर ब्रह्मा मन में चिन्तन करने लगे।।१६१-१६३।।

गिरिजातपसोद्भूतं दावाग्निपरमं महत्। ज्ञात्वा ब्रह्मा जगामाशुक्षीराब्धिंपरमाद्भुतम्।।१६४।।
तत्र सुप्तं सुपल्यंके शेषाख्ये चातिशोभने। लक्ष्म्या पादोपयुगलंसेव्यमानं निरन्तरम्।।१६५।।
दूरस्थेनापि ताक्ष्र्येण नतकन्धरधारिणा।
सेव्यमानं श्रिया कान्त्या क्षान्त्या वृत्या दयादिभिः।।१६६।।
नवशक्तियुतं विष्णुं पाषदैः परिवारितम्। कुमुदोऽथ कुमुद्वांश्च सकनश्च सनन्दनः।।१६७।।
सनातनो महाभागः प्रसुप्तो विजयोऽरिजित्। जयन्तश्च जयत्सेनो जयश्चैच महाप्रभः।।१६८।।
सनत्कुमारः सुतपा नारदश्चैव तुम्बुरुः। पाञ्चजन्यो महाशंखो गदाकौमोदकी तथा।।१६९।।
सुदर्शनं तथा चापं शार्ङ्गं च परमाद्भुतम्। एतानि वै रूपवन्ति दृष्टानि परमेष्ठिना।।१७०।।

ब्रह्मा ने विचार किया कि गिरिजा की प्रचण्ड तपस्या से महत् दावाग्नि उत्पन्न हो रही है। यह जाकर ब्रह्मा क्षीरसागर गये। वहां उन्होंने देखा कि पार्षदों से घिरे नवशक्तिशाली भगवान् विष्णु शेषशय्या पर शयन कर रहे हैं। लक्ष्मीदेवी निरन्तर उनके चरणकमल की सेवा कर रही हैं। दूर बैठे गरुड़ उनके समक्ष नतमस्तक होकर आदेश की प्रतीक्षा कर रहे हैं। श्री, कान्ति, क्षान्ति, वृत्ति, दया आदि उनकी सेवा कर रही हैं। कुमुद, कुमुद्वान्, सनक, सनन्दन, सनातन, विजय, अरिजित्, जयन्त, जयत्सेन, जय, सनत्कुमार, सुतपा, नारद, तुम्बुरु तथा मूर्त्तिमान महाशंख पाञ्चजन्य, कौमोदकी गदा, सुदर्शन चक्र, परम अद्भुद् शार्ङ्ग धनुष वहां विराजमान है। इन सबको ब्रह्मा ने वहीं मूर्त्तरूप देखा।।१६४-१७०।।

विष्णोः समीपे परमामनो भृशं समेत्य सर्वे सुरदानवास्तदा।
विष्णुञ्चाहुः परमेष्ठिनां पतिं तीरे तदानीमुदधेर्महात्मनः।।१७१।।
त्राहित्राहि महाविष्णो तप्तान्नः शरणागतान्। तपसोग्रेण महतापार्वत्याः परमेण हि।
शेषासने चोपविष्ट उवाच परमेश्वरः।।१७२।।

तदनन्तर सुर-असुर सबने मिलकर सागर तीरवासी परमेष्ठिगण के स्वामी विष्णु से तभी कहा—''हे महाविष्णु! हम आपके शरणागत हैं। हमारी रक्षा करें। रक्षा करें। हम सभी पार्वती की उग्र तपस्या से तप्त हो रहे हैं।'' यह सुनकर शेषासन पर समासीन परमेश्वर हरि ने देवगण से कहा।।१७१-१७२।।

युष्माभिः सहितश्चापि व्रजामि परमेश्वरम्। महादेवंप्रार्थयामो गिरिजांप्रतिवैसुराः।।१७३।।
पाणिग्रहार्थमधुना देवदेवः पिनाकधृक्। यथा नेष्यति तत्रैव करिष्यामोऽधुनावयम्।।१७४।।
तस्माद्वयं गमिष्यामो यत्र रुद्रो महाप्रभुः। तपसोग्रेण संयुक्तो ह्यास्ते परममंगलः।।१७५।।

भगवान् श्रीहरि कहते हैं—''हे देवगण! मैं आप सबके साथ महादेव के पास जाकर उनसे प्रार्थना करूंगा। देवदेव पिनाकपाणि जिससे पार्वती के पाणिग्रहणार्थ उनके पास चलें, हम सब वहीं कार्य करेंगे। अब वहां चलिये, जहां परम मंगलमय रुद्र उग्र तपस्या करते अवस्थित हैं। हम सब वहीं चलें''।।१७३-१७५।।

विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा ऊचुः सर्वे सुरासुराः।
न यास्यामो वयं सर्वे विरूपाक्षं महाप्रभम्॥१७६॥
यदा दग्धः पुरातेनमदनो दुरतिक्रमः। तथैव धक्ष्यत्यस्माकं नात्र कार्या विचारणा॥१७७॥
प्रहस्य भगवान्विष्णुरुवाच परमेश्वरः। मा भयं क्रियतां सर्वैः शिवरूपी सदाशिवः॥१७८॥
स न धक्ष्यति सर्वेषां देवानां भयनाशनः। तस्माद्भवद्भिर्गंतव्यं मया सार्द्धं विचक्षणाः॥१७९॥
शम्भुं पुराणं पुरुषं ह्यधीशं वरेण्यरूपं च परं पराणाम्।
तपो जुषाणां परमार्थरूपं परात्परं तं शरणं व्रजामि॥१८०॥

॥इति श्रीस्कांदे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे पार्वतीतपश्चर्यावर्णनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः॥२१॥

विष्णु का वचन सुनकर सभी देवगण ने कहा—"हम उन विरूपाक्ष महाप्रभु के पास नहीं जा सकते। उन्होंने पूर्व में दुरतिक्रम मदन को जैसे दग्ध किया था, निश्चित रूप से हमें भी दग्ध कर देंगे। यह सुनकर भगवान् विष्णु ने हंसते हुये कहा—"आप सब भयभीत न हों। वे सदाशिव सदा शिव (कल्याण) रूपी हैं। वे आप सबको दग्ध नहीं करेंगे। हे विज्ञगण! वे ही सभी देवगण के भय का हरण करने वाले हैं। आप सब मेरे साथ चलिये। वे पुराणपुरुष, सर्वाधिपति, वरेण्यमूर्त्ति, परात्पर, तपस्वी, परमार्थरूपी हैं। मैं उन शम्भु की शरण लेता हूं॥१७६-१८०॥

॥एकविंश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

द्वाविंशोऽध्यायः

ब्रह्मादि देवगण का शिव समीप गमन, शिव का पार्वती दर्शन, पार्वती का पितृगृह गमन

सूत उवाच

एवमुक्तास्तदा देवाविष्णुना परमेष्ठिना। जग्मुः सर्वेमहेशं च द्रष्टुकामाःपिनाकिनम्॥१॥
परे पारे समुद्रस्य परमेण समाधिना। योगपीठे स्थितं शम्भुं गणैश्च परिवारितम्॥२॥
यज्ञोपवीतविधिना उरसा बिभ्रतं वृतम्। वासुकिं सर्पराजं च कम्बलाश्वतरौ तथा॥३॥
कर्णद्वये धारयंतं तथा कर्कोटकेन हि। पुलहेन च बाहुभ्यां धारयंतं च कङ्कणे॥४॥

सन्नूपुरे शङ्खकपद्मकाभ्यां संधारयन्तं च विराजमानम्।
कर्पूरगौरं शितकण्ठमद्भुतं वृषान्वितं देववरं ददर्शुः॥५॥
तदा ब्रह्मा च विष्णुश्च ऋषयो देवदानवाः। तुष्टुवुर्विविधैः सूक्तैर्वेदोपनिषदन्वितैः॥६॥

सूतजी कहते हैं—परमेष्ठि विष्णु द्वारा आश्वस्त किये जाने पर सभी देवता तब पिनाकपाणि महेश्वर के दर्शनार्थ गये। उन्होंने जाकर देखा कि भगवान् शम्भु समुद्र के पार परम समाधिमग्न होकर योगपीठ पर स्थित हैं। उनको चारों ओर से प्रमथगण ने घेर रखा है। सर्पराज वासुकी उनके वक्षःस्थल पर यज्ञोपवीत जैसे विराजित हैं। कम्बल तथा अश्वतर नाग कुण्डल रूपेण कानों में हैं। कर्कोटक तथा पुलह नाग उनके कंकण रूप हैं। शंख तथा पद्म नाग उनके चरणों के नूपुर जैसे विराजमान हैं। भगवान् का वर्ण कर्पूर गौर हैं। वे वृषवाहन, शितिकण्ठ तथा देवप्रवर हैं। जब देवगण ने उनका दर्शन किया, तब ब्रह्मा-विष्णु-देव-दानव-ऋषिगण विविध सूक्त तथा उपनिषद् वाक्यों से उनकी स्तुति करने लगे।।१-६।।

ब्रह्मोवाच

नमो रुद्राय देवाय मदनान्तकराय च। भर्गाय भूमिभाग्याय त्रिनेत्राय त्रिविष्टपे॥७॥
शिपिविष्टाय भीमाय शेषशायिन्नमोनमः। त्र्यंबकाय जगद्धात्रे विश्वरूपाय वै नमः॥८॥
त्वं धाता सर्वलोकानांपितामातात्वमीश्वरः। कृपयापरयायुक्तःपाह्यस्मांस्त्वंमहेश्वरः॥९॥

ब्रह्मा तथा देवगण कहते हैं—जो रुद्र मदन विनाशक देवदेव हैं, उनको प्रणाम! जो भर्म, भूमिभाग्य, त्रिनेत्र, त्रिविष्टप्, शिपिविष्ट, भीम तथा शेषशायी हैं, उनको पुनः-पुनः प्रणाम! जो त्र्यम्बक, जगद्विधाता, विश्वरूप हैं, उनको पुनः-पुनः प्रणाम! हे महेश्वर! आप समस्त लोकों के धाता, पिता, माता, ईश्वर हैं। आप परम कृपालु होकर हमारी रक्षा करें।।७-९।।

इत्थं स्तुवत्सु देवेषु नन्दी प्रोवाच तान्प्रति। किमर्थमागता यूयं किं वा मनसिवर्तते॥१०॥
ते प्रोचुर्देवकार्यार्थं विज्ञप्तुं शम्भुमागताः। विज्ञप्तो नन्दिनातेन शैलादेन महात्मना।
ध्यानस्थितो महादेवः सुरकार्यार्थसिद्धये॥११॥

देवगण द्वारा इस प्रकार से स्तुति करते देखकर नन्दीश्वर ने देवताओं से कहा—"हे देवगण! आप क्यों आये हैं? आपकी क्या इच्छा है?" तब देवगण ने उत्तर दिया—"हम देवकार्य का निवेदन करने प्रभु त्रिपुरारि के पास आये हैं।" तब शिलादनन्दन ने सुरकार्य सिद्धि हेतु ध्यानस्थ महादेव से देवगण के आगमन का संवाद दिया।।१०-११।।

ब्रह्मादयः सुरगणाः सुरसिद्धसंघास्त्वां द्रष्टुमेव सुरवर्य! विशेषयन्ति॥
कार्य्यार्थिनोऽसुरवरैः परिभर्त्स्यमाना अभ्यागताः सपदि शत्रुभिरर्दिताश्च॥१२॥
तस्मात्त्वया हि देवेश त्रातव्याश्चाधुना सुराः।
एवं तेनतदाशम्भुर्विज्ञप्तोनंदिनाद्विजाः॥१३॥
शनैःशनैःरुपरमच्छंभुः परमकोपनः। समाधेः परमात्माऽसावुवाच परमेश्वरः॥१४॥

महादेव उवाच

कस्माद्यूयं महाभागा ह्यागता मत्समीपगाः। ब्रह्मादयो ह्यमी देवा ब्रूत कारणमद्य वै॥१५॥

नन्दीश्वर ने महादेव से कहा—"हे सुरश्रेष्ठ! ब्रह्मादि देवता तथा अन्य सिद्धगण विशेष कार्य हेतु आपके दर्शनार्थ आये हैं। उनको देखकर प्रतीत होता है, मानों शत्रु असुरेन्द्रगण ने उनको अपमानित तथा उत्पीड़ित किया है। तभी उनका सहसा आगमन हुआ है। हे देवेश! आप देवताओं की रक्षा करिये।" हे द्विजगण! नन्दी द्वारा यह कहे जाने पर परमशोभन शम्भु धीरे-धीरे समाधि से उतरे। तब वे परमात्मा परमेश्वर महादेव ने देवताओं से कहा—हे महाभाग इन्द्रादि, ब्रह्मा आदि देवता! आप सब कहां से मेरे स्थान पर आये हैं? आपके आज के दिन आने का कारण क्या है?॥१२-१५॥

तदा ब्रह्मा ह्युवाचेदं सुरकार्यं महत्तरम्। तारकेण कृतं शम्भो देवानां परमाद्भुतम्॥१६॥
कष्टात्कष्टतरं देवतद्विज्ञप्तुमिहागताः। हे शम्भो तव पुत्रेण औरसेन हतो भवेत्।
तारको देवशत्रुश्च नान्यथा मम भाषितम्॥१७॥
तस्मात्त्वया गिरिजा देव! शम्भो! गृहीतव्या पाणिना दक्षिणेन।
पाणिग्रहेणैव महानुभाव! दत्ता गिरीन्द्रेण च तां कुरुष्व॥१८॥
ब्रह्मणो हि वचः श्रुत्वा प्रहसन्न ब्रवीच्छिवः। यदा मया कृता देवीगिरिजासर्वसुन्दरी॥१९॥
तदा सर्वे सुरेन्द्राश्च ऋषयो मुनयस्तथा। सकामाश्च भविष्यंति अक्षमाश्च परे पथि॥२०॥
मदनो हि मया दग्धःसर्वेषां कार्यसिद्धये। मयाह्यधिकृतातन्वी गिरिजा च सुमध्यमा॥२१॥
तदानीमेव भो देवीःपार्वतीमदनं च सा। जीवयिष्यति भो ब्रह्मन्नात्रकार्याविचारणा॥२२॥
एवं विमृश्य भो देवाः कार्या कार्यविचारणा। मदनेनैव दग्धेन सुरकार्यं महत्कृतम्॥२३॥

तब ब्रह्मा ने कहा—हे शंभु! अभी एक अत्यन्त महत् देवकार्य आ पड़ा है। तारकासुर ने देवताओं को कष्टकर से भी भयानक कष्टकर स्थिति में कर रखा है। देवताओं को ऐसा कष्ट आज से पहले कभी नहीं हो सका था। अतः आपके पास हम सब यही कहने आये हैं। यदि आपका औरस पुत्र हो, तब उसी के द्वारा यह देवशत्रु तारकासुर मृत हो सकता है। यह बात अन्यथा नहीं है। अतः हे देव शम्भु! आप अपने दाहिने हाथ द्वारा गिरिजा का पाणिग्रहण करें। हे महानुभाव! आप द्वारा पाणिग्रहण करने से ही गिरिराज हिमालय उनको प्रदान करेंगे। हमारे अनुरोध से आपको यह कार्य करना ही होगा। ब्रह्मा का वाक्य सुनकर सदाशिव ने सहास्य वचन कहा—"जब मैं समस्त लोकों में सुन्दर गिरिजा से पाणिग्रहण करूंगा, तब सभी ऋषि तथा मुनिगण सकाम हो जायेंगे। तब वे कभी भी परमार्थमार्ग पर नहीं चल सकेंगे। सबकी कार्यसिद्धि के लिए मैंने काम को दग्ध किया था। जब मैं इन सुमध्यमा गिरीशनन्दिनी से भोग के लिए प्रवृत्त होऊंगा, तभी पार्वती उस मदन को पुनर्जीवित कर लेंगी। हे ब्रह्मन्! इस बात में कुछ भी सन्देहजनक नहीं है। हे देवगण! आप सब भी आपस में विचार आदि करके इस सिद्धान्त को ग्रहण करें कि मदन को दग्ध करके मैंने महत् देवकार्य किया है॥१६-२३॥

यूयं सर्वे च निष्कामा भयानास्त्यत्र संशयः। यथाऽहं च सुराःसर्वे तथायूयंप्रयत्नतः॥२४॥
तपः परमसंयुक्ताः कारयामः सुदुष्करम्। परमानन्दसंयुक्ताः सुखिनः सर्व एव हि॥२५॥

यूयंसमाधिनातेनमदनेन च विस्मृतम्। कामो हि नरकायैवतस्मात्क्रोधोऽभिजायते॥२६॥
क्रोधाद्भवति संमोहः सम्मोहाद्भ्रमते मनः। कामक्रोधौ परित्यज्यभवद्भिःसुरसत्तमैः।
सर्वैरेव च मन्तव्यं मद्वाक्यं नान्यथा क्वचित्॥२७॥

आप सब मेरे द्वारा कामदहन से निष्काम हो गये हैं। हे देवगण! जब मैंने निष्काम तप का आश्रय लिया है, वैसे ही आप सब तपस्याचरण करिये। इस प्रकार हम सब सुदुष्कर कार्य सम्पादित करेंगे तथा परमानन्दमय होकर सभी अत्यन्त सुख से विचरण करेंगे। हे देवगण! मदन के तिरोहित (दग्ध) होने से आप भूल गये कि काम तो नरक का द्वार है। उसी से क्रोध का जन्म होता है। क्रोध से सम्मोह तथा सम्मोह से मन में भ्रान्ति होने लगती है। अतः आप सभी प्रधान देवता सभी काम-क्रोध त्याग करें तथा मेरे वाक्य का पालन करें। मेरा वचन कभी व्यर्थ नहीं होता।।२४-२७।।

एवं विश्राव्यभगवान्स हि देवोवृषध्वजः। सुरान्प्रबोधयामासतथाऋषिगणान्मुनीन्॥२८॥
तूष्णींभूतोऽभवच्छंभुर्ध्यानमाश्रित्य वै पुनः। आस्ते पुरा यथावच्चगणैश्चपरिवारितः॥२९॥
ध्यानस्थितं च तं दृष्ट्वानन्दीसर्वान्विसृज्यतान्। सब्रह्मसेन्द्रान्विबुधानुवाचप्रहसन्निव॥३०॥
यथागतेन मार्गेण गच्छध्वं मा विलंबितम्।
तथेति मत्वा ते सर्वे स्वं स्वं स्थानमथाऽव्रजन्॥३१॥
गतेषु तेषु सर्वेषुसमाधिस्थोऽभवद्भवः। आत्मानमात्मानाकृत्वाआत्मन्येव विचिंतयन्॥३२॥

भगवान् वृषभध्वज शिव ने मुनि-ऋषि तथा देवगण को यह कहकर प्रबोधित किया। तदनन्तर वे ध्यानावस्थित होकर मौन हो गये। पूर्ववत् अब प्रमथगण उनको घेर कर अवस्थित हो गये। शम्भु को ध्यानस्थ देखकर ब्रह्मा तथा इन्द्रादि प्रमुख देवताओं को विदा करने हेतु नन्दीश्वर कहने लगे—"अब आप सब स्वस्थान गमन करें। विलम्ब न करें।" तब देवगण ने कहा—"ऐसा ही हो।" तथा वे सभी अपने-अपने स्थान पर चले गये। देवगण का प्रस्थान हो जाने पर भवदेव शिव समाधिस्थ हो गये। तब वे आत्मा द्वारा आत्मा में आत्मा का ही अवलोकन करने लगे।।२८-३२।।

परात्परतरं स्वच्छं निर्मलं निरवग्रहम्। निरञ्जनं निराभासं यस्मिन्मुह्यन्ति सूरयः॥३३॥
भानुर्नभात्यग्निरथो शशी वा न ज्योतिरेवं न च मारुतो न हि।
यं केवलं वस्तुविचारतोऽपि सूक्ष्मात्परं सूक्ष्मतरात्परं च॥३४॥
अनिर्देश्यमचिन्त्यं च निर्विकारं निरामयम्। ज्ञप्तिमात्रस्वरूपं च न्यासिनोयांतितत्रवै॥३५॥
शब्दातीतं निर्गुणं निर्विकारं सत्तामात्रं ज्ञानगम्यं त्वगम्यम्।
यत्तद्वस्तु सर्वदा मध्यते वै वेदातीतैश्चागमैर्मन्त्रभूतैः॥३६॥
तद्वस्तुभूतो भगवान्स ईश्वरः पिनाकपाणिर्भगवान्वृषध्वजः।
येनैव साक्षान्मकरध्वजो हतस्तपो जुषाणः परमेश्वरः सः॥३७॥

जो परात्पर, स्वच्छ, निर्मल, निरवग्रह, निरञ्जन, निराभास है, जिससे सूरिजन मुह्यमान हो जाते हैं। सूर्य,

अग्नि, चन्द्रमा अथवा अन्य ज्योति, जिसका प्रकाश नहीं है, जहां मरुत् की भी गति नहीं है, वस्तुविचार से जिसे सूक्ष्म-सूक्ष्मतम से भी अतीत कहते हैं, जो अनिर्देश्य, अचिन्त्य, निर्विकार, निरामय तथा ज्ञप्तिमात्र रूप वाला है, सन्यासीगण उस परमपद में प्रयाण करते हैं। जो शब्दातीत, निर्गुण, निर्विकार, सत्तामात्र, ज्ञानगम्य, अगम्यरूपेण मन्त्रमय वेद तथा आगम में सतत् कहा गया है, ये भगवान् पिनाकपाणि ईश्वर वृषध्वज ही उस वस्तुस्वरूप हैं। उन साक्षात् शिव वृषध्वज ने ही मकरध्वज कामदेव का वध किया था।।३३-३७।।

लोमश उवाच

गिरिजा हि तदा देवी ततापपरमं तपः। तपसा तेन रुद्रोऽपि उत्तमं भयमागतः।।३८।।
विजित्य तपसा देवी पार्वतीपरमेण हि। शम्भुं सर्वार्थदं स्थाणुंकेवलंस्वस्वरूपिणम्।।३९।।
यदा जितस्तया देव्यातपसावृषभध्वजः। समाधेश्चलितोभूत्वा यत्रसापार्वतीस्थिता।।४०।।
जगाम त्वरितेनैव देवदेवःपिनाकधृक्। तत्रापश्यत्स्थितांदेवींसखीभिःपरिवारिताम्।।४१।।
चेदिकोपरिविन्यस्तांयथैवशशिनःकलाम्। सदेवस्तांनिरीक्ष्याथबटुर्भूत्वाथतत्क्षणात्।।४२।।
ब्रह्मचारिस्वरूपेण महेशो भगवान्भवः। सखीनां मध्यमाश्रित्य ह्युवाच बटुरूपवान्।
किमर्थमालिमध्यस्था तन्वी सर्वाङ्गसुन्दरी।।४३।।
केयं कस्य कुतो याता किमर्थंतप्यते तपः। सर्वं मे कथ्यतांसख्योयाथातथ्येनसंप्रति।
तदोवाच जया रुद्रं तपसः कारणं परम्।।४४।।

लोमश कहते हैं—गिरिजा ने परम तप किया था। उनकी इस तपस्या से रुद्रदेव भी अत्यन्त भीत थे। देवी पार्वती ने सर्वार्थप्रद 'केवल' स्वरूपरूप शम्भु को तप से ही विजित किया था। देवी ने जब तपः द्वारा उनको विजित किया था, तब वे समाधि से उठे तथा जहां पार्वती स्थित थीं, वहीं त्वरापूर्ण रूप से गये। वहां आकर पिनाकपाणि ने देखा कि पार्वती सखियों से परिवृत होकर शशिकला के समान वेदी पर आसीन हैं। उनको देखकर भगवान् शंकर ने बटुरूप धारण किया तथा ब्रह्मचारी वेश में उन सखियों से कहा—"हे सखीगण! ये सर्वाङ्गसुन्दरी कृश अंगों वाली किसलिये सखियों के मध्य बैठी है? ये कौन है? कहां से आई है? क्यों तपःश्चरण कर रही है? तुम यह सभी वृत्तान्त मुझसे कहो"।।३८-४४।।

हिमाद्रेर्दुहितेयं वै तपसा रुद्रमीश्वरम्। प्राप्तुकामा पतित्वेन सेयमत्रोपविश्य च।।४५।।
तपस्तताप सुमत्हसर्वेषां दुरतिक्रमम्। बटो जानीहि मे वाक्यं नान्यथाममभाषितम्।।४६।।
तच्छ्रुत्वा वचनंतस्याः प्रहस्येदमुवाच ह। शृण्वतीनां सखीनां वै महेशो बटुरूपवान्।।४७।।
मूढेयं पार्वतीसख्यो न जानाति हिताहितम्।
किमर्थं च तपः कार्यं रुद्रप्राप्त्यर्थमेव च।।४८।।
सोऽमंगलः कपाली च श्मशानालय एव च।
अशिवःशिवशब्देनभण्यते च वृथाऽथवै।।४९।।
अनया हि वृतो रुद्रो यदा सख्यः समेष्यति। तदेयमशुभा तन्वी भविष्यति न संशयः।।५०।।

यो दक्षशापाद्विकृतो यज्ञबाह्योऽभवद्विटः। येह्यंगभूताः शर्वस्य सर्पाह्यासन्महाविषाः॥५१॥

तब जया नामक सखी रुद्रदेव के पास आकर पार्वती के तप का वर्णन करने लगीं। जया कहती हैं—"ये हिमालय पुत्री हैं। इन्होंने तप द्वारा रुद्र का पतिरूपेण वरण करने की कामना से यह व्रत ग्रहण किया है तथा इसीलिये यहां बैठकर ऐसी तीव्र तपस्या कर रही हैं, जो अन्य के लिये कदापि साध्य नहीं है। हे बटुदेव! आप अपने प्रश्न का यह सत्य उत्तर जाने।" जया का यह वचन सुनकर बटुरूपी महेश्वर ने अन्य सखीगण के समक्ष यह कहा—"हे सखीगण! मैं जान गया कि यह पार्वती नितान्त मूढ़ है। इसे अपने हित-अनहित का ज्ञान ही नहीं है। यह बालिका उस रुद्र की प्राप्ति हेतु क्यों व्यर्थ तपस्या कर रही है? वे रुद्र अमंगल, कपाली, श्मशानवासी तथा अशिव हैं। उनको तो व्यर्थ में शिव कहा गया है। हे सखीगण! तुम लोग यह जान लो, जैसे ही यह बालिका शिव का वरण पतिरूपेण करेगी, वैसे ही यह अमंगलमयी हो जोयगी, यह निश्चित है। यह विट् स्वभाव व्यक्ति दक्ष शाप से यज्ञ से बाहर कर दिया गया है। महाविषधर सर्प उसके अंगों में विराजित रहते हैं"।।५४-५१।।

शवभस्मान्वितो रुद्रः कृत्तिवासा ह्यमंगलः। पिशाचैः प्रमथैर्भूतैरावृतो हि निरंतरम्॥५२॥
तेन रुद्रेण किं कार्यमनया सुकुमारया। निवार्यतां सखीभिश्च मर्तुकामापिशाचवत्॥५३॥
इन्द्रं हित्वा मनोज्ञं च यमं चैवमहाप्रभम्। नैर्ऋतं च विशालाक्षंवरुणं च अपांपतिम्॥५४॥
कुबेरं पवनं चैव तथैव च विभावसुम्। एवमादीनि वाक्यानि उवाच परमेश्वरः॥५५॥
सखीनां शृण्वतीनां च यत्र सा तपसि स्थिता॥५६॥

"वह अमंगल मूर्त्ति कृत्तिवास रुद्र चिताभस्म से समावृत तथा भूत एवं प्रमथों से घिरा रहता है। यह सुकुमारी बाला उस कठोर रुद्र को लेकर क्या करेगी? तुम सब उसकी सखी हो। पिशाचवत् मरणाकांक्षी अपनी सखी को रोको। मनोज्ञ इन्द्र, महाप्रभ यम, विशाल नयन नैर्ऋत, जलाधीश वरुण, यक्षराज कुबेर, महाबली पवन, किंवा महाप्रभावशाली अग्नि हैं। इन सब को छोड़कर कठोरकर्मा रुद्र के प्रति इस बालिका की आसक्ति क्यों है?" जहां पार्वती तपःश्चरण कर रही थीं, परमेश्वर वहीं सखियों को सुना-सुनाकर इस प्रकार की बात कर रहे थे।।५२-५६।।

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य रुद्रस्य बटुरूपिणः। चुकोप च शिवासाध्वीमहेशं बटुरूपिणम्॥५७॥
जये त्वं विजये साध्विप्रम्लोचेऽप्यथ सुन्दरि। सुलोचनेमहाभागेसमीचीनं कृतंहिमे॥५८॥
किमेतस्य वटोः कार्यं भवतीनामिहाधुना। बटुस्वरूपमास्थाय आगतो देवनिंदकः॥५९॥
अयं विसृज्यतां सख्यः किमनेन प्रयोजनम्। बटुस्वरूपिणं रुद्रंकुपितासाततोऽब्रवीत्॥६०॥
बटो गच्छाशुत्वरितो न स्थेयं च त्वयाऽधुना। किमनेनप्रलापेनतवनास्तिप्रयोजनम्॥६१॥

बटुरूपी रुद्र का यह वाक्य सुनकर साध्वी गिरीजा उनके प्राति कुपित हो गईं। वे कहने लगीं—"हे जये, हे विजये, हे साध्वी, सुन्दरी प्रम्लोचा! हे महाभाग सुलोचने! तुम सबने तो मेरा महान् तथा अच्छा कार्य कर दिया! जब यह बटुक यहां तक पहुंच गया, तब तुम सब के अब यहां रहने का क्या काम? यह परनिन्दक बटुकरूपी होकर यहां आ गया! हे सखीगण! इसे यहां से विदा करो। यहां इसका क्या काम?" तदनन्तर पार्वती ने क्रोधित होकर बटुक से कहा—"हे बटुक! तुम तत्काल यहां से चले जाओ। तुम्हारे लिये यहां जगह नहीं है। जो प्रलाप तुमने किया है, ऐसे प्रलाप का कोई प्रयोजन यहां नहीं है"।।५७-६१।।

बटुर्निर्भर्त्सितस्तत्रतया चैवं तदा पुनः। प्रहस्य वै स्थिरोभूत्वापुनर्वाक्यमथाब्रवीत्॥६२॥
शनैःशनैरवितथं विजयां प्रति सत्वरम्। कस्मात्कोपस्तयातन्वि कृतः केनैव हेतुना॥६३॥
सर्वेषामपि तद्वाच्यं वचनंसूक्तमेव यत्। यथोक्तेन च वाक्येनकस्मात्तन्वी प्रकोपिता॥६४॥
यः शम्भुरुच्यतेलोके भिक्षुको भिक्षुकप्रियः। यदि मे ह्यनृतं प्रोक्तं तदाकोपइहोचितः॥६५॥
इयंतावत्सुरूपाचविरूपोऽसौसदाशिवः। विशालाक्षीत्वियंबालाविरूपाक्षो भवस्तथा॥६६॥
एवं भूतेन रुद्रेण मोहितेयंकथं भवेत्। सभाग्यो हि पतिःस्त्रीणांसदाभाव्योरतिप्रियः॥६७॥

जब पार्वती ने बटु का इस प्रकार तिरस्कार किया, तब वह बटु पुनः विजया से पार्वती के लिये धीरे-धीरे यह वाक्य कहने लगा—"हे तन्वी! तुम कोप क्यों कर रही हो? जो यथार्थ है, वह तो सभी से कहा जा सकता है। मैं यथार्थ कह रहा हूं, उससे तुम क्यों क्रोधित हो? जो संसार में शम्भु नाम से कहे जाते हैं, वे भिक्षुक हैं तथा भिक्षुकों को प्रिय हैं। यदि मेरा कथन असत्य है, तब तो तुम्हारा कोप उचित है। तुम तो सुरूपा स्त्री हो। उधर सदाशिव विरूप हैं। तुम विशालाक्षी, विशाल नेत्रों वाली बालिको हो। भवदेव हैं विरूपाक्ष! ऐसे विषम आकृति युक्त रुद्र को पतिरूपेण वरण करने का मोह तुमको क्यों हो गया? हे विजये! भाग्यवान् पति ही स्त्रियों को सदा रतिप्रिय होता है"॥६२-६७॥

इयं कथंमोहितास्तिनिर्गुणेनगुणात्मिका। न श्रुतो न च विज्ञातो न दृष्टःकेनवाशिवः॥६८॥
सकामानां च भूतानां दुर्लभो हि सदाशिवः। तपसा परमेणैव गर्वितेयं सुमध्यमा॥६९॥
निःस्तंभो हि सदा स्थाणुः कथं प्राप्स्यति तं पतिम्।
मयोक्तं कि विशालाक्षि! कस्मान्मे रुषिताऽधुना॥७०॥
यावद्रोषो भवेन्नृणां नारीणाञ्च विशेषतः। तेन रोषेण तत्सर्वं भस्मीभूतं भविष्यति॥७१॥
सुकृतं चोर्जितं तन्वि सत्यमेवोदितं सति। कामः क्रोधश्चलोभश्चदम्भोमात्सर्यमेवच॥७२॥
हिंसेर्ष्या च प्रपंचश्च तेनसर्वं विनश्यति। तस्मात्तपस्विभिर्युक्तं कामक्रोधादिवर्जनम्॥७३॥

सदाशिव निर्गुण हैं, गुणयुक्त बालिका उनसे किस प्रकार से मोहित होगी? शिव किसी से भी श्रुत, विज्ञात अथवा सृष्ट नहीं हैं। जो सकाम प्राणी हैं, वे शिव को कदापि प्राप्त नहीं कर सकते। तुम्हारी सखी सुमध्यमा बाला है, जो तपस्या से गर्वयुक्त हो गयी है, तथापि स्थाणु (शिव) सदैव अनभिगम्य हैं। अतः उनको ये कैसे पतिरूप से प्राप्त करेंगी? हे विशालाक्षी! क्या मेरी उक्ति असत्य है? यदि नहीं, तब क्यों कुपित होती हो? मनुष्य में, विशेषतः स्त्री में यदि कोप का जन्म होता है, तब-तब कोप उनके समस्त सुकृत को नष्ट कर देता है। हे तन्वी! हे सती! तुमने सुकृत अर्जित किया है, मैं यह सत्य कहता हूं। इसी सुकृत के प्रभाव से काम-क्रोध-लोभ-दम्भ-मात्सर्य, हिंसा, ईर्ष्या प्रपञ्चादि सभी नष्ट हो जायेंगे। अतः काम-क्रोधादि का वर्जन आवश्यक है॥६८-७३॥

यदीश्वरो हृदि मध्ये विभाव्यो मनीषिभिः सर्वदा ज्ञप्तिमात्रः।
तदा सर्वैर्मुनिवृत्त्या विभाव्यस्तपस्विभिर्नान्यथा चिंतनीयः॥७४॥

मनीषीगण के लिए हृदय में ज्ञप्तिमात्र ईश्वर की ही भावना करना उचित है। ऐसी स्थिति में तपस्वी मात्र को

मुनिवृत्ति का अवलम्बन करना उचित है। तपस्वी को चाहिये कि ईश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई की भावना न करे। (यहां बटुक का यह तात्पर्य है कि गिरिजा तपस्वी होकर भी ईश्वर की जगह शंकर की भावना क्यों कर रही हैं?)।।७४।।

एतच्छ्रुत्वा वचनं तस्य शंभोस्तदाऽब्रवीद्विजया तं च सर्वम्।
गच्छात्र किंचित्तव नास्ति कार्यं न वक्तव्यं वचनं बालिशान्यत्।।७५।।

उस समय बटुक रूपी शंभु का यह वचन सुनकर विजया ने उनसे कहा—"हे अबोध! तुम यहां से कहीं और जाओ। तुम्हारी यहां कोई आवश्यकता नहीं है। तुम ऐसे वाक्यों का प्रयोग कदापि न करो।।७५।।

एवं विवदमानं तं बटुरूपं सदाशिवम्। विसर्जयामास तदा विजया वाक्यकोविदा।।७६।।
तिरोधानं गतः सद्यो महेशो गिरिजां प्रति। अलक्ष्यमाणःसर्वासांसखीनांपरमेश्वरः।।७७।।

जब बटुरूपी सदाशिव इस प्रकार के विवाद में प्रवृत्त थे, तब वाक्यकोविदा विजया ने उनको विदा किया। इस पर महेश तत्क्षण अन्तर्हित हो गये। गिरिजा की सखियां उनको देख नहीं पा रही थीं।।७६-७७।।

प्रादुर्बभूव सहसा निजरूपधरस्तदा। यदा ध्यानस्थिता देवी निजध्यानपरा सती।।७८।।
तदा हृदिस्थोदेवेशोबर्हिर्दृष्टिचरोऽभवत्। नेत्रेउन्मील्यसासाध्वीगिरिजायतलोचना।
अपश्यद्देवदेवेशं सर्वलोकमहेश्वरम्।।७९।।
द्विभुजं चैकवक्त्त्रं च कृत्तिवाससमद्भुतम्। कपर्दं चंद्ररेखाङ्कं निवीतं गजचर्मणा।।८०।।
कर्णास्थौ हि महानागौ कंबलाश्वतरौ तदा। वासुकिः सर्पराश्च कृताहारो महाद्युतिः।।८१।।
वलयानि महार्हाणि तदा सर्पमयानि च। कृतानि तेन रुद्रेण तथा शोभाकराणि च।।८२।।
एवंभूतस्तदा शंभुः पार्वतीं प्रति चाग्रतः। उवाच त्वरया युक्तो वरंवरय भामिनि!।।८३।।

तदनन्तर प्रभु सदाशिव अपना रूप धारण करके वहां प्रादुर्भूत हो गये। सती ध्यान के द्वारा जिन देवाधिदेव को हृदय स्थित देखकर तप कर रही थीं, वे ही कमलनयनी आयतलोचना गिरिजा के आंख खोलने पर बाहर स्थित थे। सामने भगवती गिरिजा के आराध्यदेव विराजित थे। पार्वती ने देखा कि वे सर्वलोकमहेश्वर देवाधिदेव द्विभुज, एकमुख वाले, कृत्तिवास, अपूर्व श्री सम्पन्न, चन्द्ररेखान्वित, गजचर्मधारी हैं। उनके दोनों कानों में कम्बल तथा अश्वतर नाम सर्पद्वय विराजित हैं। सर्पराज महाप्रभावान् उनके हार रूप से शोभायमान हैं। उनके महान् वलय सर्पमय हैं। वे रुद्रदेव ऐसे सुन्दर वलय को धारण किये हुये हैं। इस प्रकार की आवृत्ति से सम्पन्न शम्भुदेव ने पार्वती से शीघ्रता से कहा—"हे भामिनी! वर का वरण करो।"।।७८-८३।।

व्रीडया परया युक्ता साध्वीप्रोवाच शंकरम्। त्वंनाथोममदेवेशत्वयाकिंविस्मृतंपुरा।।८४।।
दक्षयज्ञविनाशं च यदर्थं कृतवान्प्रभो। स त्वं साहं समुत्पन्ना मेनायां कार्यसिद्धये।।८५।।
देवानां देवदेवेश तारकस्य वधं प्रति। भवतो हि मया देव भविष्यति कुमारकः।।८६।।
तस्मात्त्वया हि कर्तव्यंममवाक्यं महेश्वर। गंतव्यंहिमवत्पार्श्वंनात्रकार्याविचारणा।।८७।।
याचस्व मां महादेव ऋषिभिः परिवारितः। करिष्यति न संदेहस्तववाक्यं चमेपिता।।८८।।

तब साध्वी पार्वती ने लज्जायुक्त हो शंकर से कहा—"हे देवेश! आप ही मेरे नाथ हैं। क्या यह आप भूल गये? हे प्रभो! पूर्व में आपने मेरे ही लिये यज्ञ विधान किया था। वही आप हैं तथा वही मैं हूं। मैंने देवगण की कार्यसिद्धि हेतु मेना के गर्भ से जन्म लिया है। हे देवदेवेश! तारकासुर के वधार्थ आपके द्वारा मेरे गर्भ से एक कुमार उत्पन्न होगा। हे महेश्वर! मेरे वचन की आपको रक्षा करनी होगी। अब आप हिमालय के पास जायें। इस कार्य हेतु अब संशय नहीं है। हे महादेव! आप मेरे पिता के पास जाकर मेरे लिए प्रार्थना करिये। मेरे पिता ऋषिगण के साथ आपकी प्रार्थना पूर्ण करेंगे। इसमें सन्देह नहीं है।।८४-८८।।

दक्षकन्या पुराऽहं वै पित्रादत्ता यदा तव। यथोक्तविधिना तत्र विवाहोनकृतस्त्वया॥८९॥
न ग्रहाः पूजितास्तेनदक्षेण च महात्मना। ग्रहाणां विषयत्वेन सच्छिद्रोऽयंमहानभूत्॥९०॥
तस्माद्यथोक्तविधिना कर्तुमर्हसि सुव्रत। विवाहं स्वं महाभागं देवानांकार्यसिद्धये॥९१॥

पूर्वकाल में जब मैं दक्ष की पुत्री थी, तब मेरे उन पिता ने मुझे आपको प्रदान किया था, तथापि उस समय वह विवाह यथाविधि निर्वाहित नहीं हो सका। उस विवाह में मेरे पिता महात्मा दक्ष ने यथाविधि ग्रहपूजन नहीं किया था। इससे ग्रहों की कोपदृष्टि के कारण वह विवाह छिद्रयुक्त हो गया। हे सुव्रत! देवगण की कार्यसिद्धि हेतु आप मेरा पाणिग्रहण यथाविधान करें।।८९-९१।।

तदोवाच महाबाहो गिरिजां प्रहसन्निव। स्वभावेनैव तत्सर्वं जंगमाजंगमं महत्।
जातं त्वया मोहितं च त्रिगुणैः परिवेष्टितम्॥९२॥
अहंकारात्समुत्पन्नं महत्तत्त्वं च पार्वति। महत्तत्त्वात्तमो जातं तमसा वेष्टितं नभः॥९३॥
नभसो वायुरुत्पन्नो वायोरग्निरजायत। अग्नेरापः समुत्पन्ना अद्भ्योजाता महीतदा॥९४॥
मह्यादिकानि स्थास्नूनि चराणि च वरानने। दृश्यं यत्सर्वमेवैतन्नश्वरं विद्धिमानिनि॥९५॥

यह सुनकर महाबाहु महादेव ने हंस कर गिरिजा से कहा—"हे पार्वती! स्वभावतः यह चराचर जगत् उत्पन्न होकर मोहित तथा त्रिगुणयुक्त होता है। अहंकार से–महत्तत्व की उत्पत्ति होती है तथा महत्तत्व से तमोगुण प्रादुर्भूत होता है। आकाश तमावृत है। आकाश से वायु, उससे अग्नि, अग्नि से जल तथा जल से पृथिवी उत्पन्न होती है। हे वरानने! यह दृश्यमान पृथिवी प्रभृति जो कुछ स्थावर तथा जंगम है, वह सब नश्वर कहा गया है।।९२-९५।।

एकोऽनेकत्वमापन्नो निर्गुणो हि गुणावृतः। स्वज्योतिर्भाति यो नित्यं परज्योत्स्नान्वितोऽभवत्।
स्वतंत्रः परतंत्रश्च त्वया देवि महत्कृतम्॥९६॥
मायामयं कृतमिदं च जगत्समग्रं सर्वात्मना अवधृतं परया च बुद्धया।
सर्वात्मभिः सुकृतिभिः परमार्थभावैः संसक्तिरिंद्रियगणैः परिवेष्टितं च॥९७॥
के ग्रहाः के उडुगणाः के बाध्यंते त्वया कृताः। विमुक्तश्चाधुनादेविशर्वार्थंवरवर्णिनि॥९८॥
गुणकार्यप्रसंगेन आवां प्रादुर्भवः कृतः। त्वं हि वै प्रकृतिः सूक्ष्मा रजःसत्त्वतमोमयी॥९९॥

एकमात्र स्वयम्प्रकाश—परम प्रभासम्पन्न पदार्थ ही नित्य विभासित होता है। वह एक होकर भी अनेक है। निर्गुण होकर भी सगुणरूप है। वह स्वतन्त्र भी है, परतन्त्र भी है। इस प्रकार दोनों नामों से युक्त है। हे देवी! तुम

ही प्रकृति रूप से इस मायामय विशाल विश्व का विस्तार करने वाली हो। तुमने ही परम बुद्धियोग द्वारा इसे सम्पूर्णतः धारण किया है। सर्वतत्वदर्शी सुकृतशाली व्यक्ति परमार्थ दृष्टि से इस विश्व को केवल एक इन्द्रियवेष्ठित समष्टि ही मानते हैं। वास्तव में मात्र एक परमार्थ (परम अर्थ) ही विद्यमान है। अतः कहां ग्रह हैं, कहां नक्षत्र हैं? यह सब तुम्हारे द्वारा किया-धरा है। कौन किसे बाधा देगा? हे वरवर्णिनी! शिव के लिए सब कुछ बाधा रहित है। मैं गुण-कार्य प्रसंगवशात् अवतरित होता हूं। तुम ही रजः-सत्व-तमोमयी सूक्ष्मा प्रकृति हो।।९६-९९।।

व्यापारदक्षा सततमहं चैव सुमध्यमे। हिमालयं न गच्छामि न याचामि कथंचन॥१००॥
देहीति वचनात्सद्यः पुरुषो याति लाघवम्। इत्थं ज्ञात्वाचभोदेविकिमस्माकंवदस्ववै॥१०१॥
कार्यं त्वदाज्ञया भद्रे तत्सर्वं वक्तुमर्हसि। तेनोक्तात्र तदा साध्वी उवाच कमलेक्षणा॥१०२॥

तुम ही सदा सर्वव्यापारदक्षा हो। हे सुमध्यमे! मैं हिमालय के पास नहीं जाऊंगा। उनसे कुछ भी प्रार्थना नहीं करूंगा, क्योंकि "प्रदान करो" यह कहने से व्यक्ति को तत्काल लघुत्व प्राप्त होता है। हे देवी! तुम यह जानकर मेरे सम्बन्ध में और क्या कहोगी? हे भद्रे! तुम्हारे आदेश से समस्त कार्य मेरे लिए करणीय हैं। (अतः तुम ही बलरूपा हो) यह सुनकर वह कमलनयनी साध्वी कहने लगीं।।१००-१०२।।

त्वमात्मा प्रकृतिश्चाहं नात्र कार्या विचारणा। तथापिशम्भो कर्तव्यं ममचोद्वहनंमहत्॥१०३॥
देहो ह्यविद्ययाक्षिप्तो विदेहो हि भवान्परः। तथाप्येवं महादेव शरीरावरणं कुरु॥१०४॥
प्रपञ्चरचनां शंभो कुरु वाक्यान्मम प्रभो। याचस्व मां महादेव सौभाग्यं चैवदेहिमे॥१०५॥

पार्वती कहती हैं—"हे देव! आप आत्मा हैं। मैं प्रकृति हूं। इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे प्रभो! इस समय आपका कर्त्तव्य है, मुझसे विवाह करना। जो सब देह है, वह सभी अविद्या से आवृत है। तथापि आप तो विदेह परमपुरुष हैं। हे महादेव! आप देहरूपी आवरण को धारण करिये। हे शम्भु! मेरे कथनानुरूप आप प्रपंच रचना करें। मेरे लिए आप हिमवान् से प्रार्थना करिये, इस प्रकार मुझे सौभाग्य प्रदान करिये"।।१०३-१०५।।

इत्येवमुक्तः स तथा महात्मा महेश्वरो लोकविडंबनाय।
तथैव मत्वा प्रहसञ्जगाम स्वमालयं देववरैः सुपूजितः॥१०६॥
एतस्मिन्नंतरे तत्र हिमवान्गिरिभिः सह। मेनया भार्यया सार्द्धमाजगाम त्वरान्वितः॥१०७॥
पार्वतीदर्शनार्थं च सुतैश्च परिवारितः। तेन दृष्टा महादेवी सखीभिः परिवारिता॥१०८॥
पार्वत्या च तदादृष्टोहिमवान्गिरिभिःसहः। अभ्युत्थानपरासाध्वीप्रणम्यशिरसातदा।
पितरौ च तदा भ्रातॄन्बन्धूंश्चैव च सर्वशः॥१०९॥
स्वमंकमारोप्य महायशास्तदा सुतां परिष्वज्य च वाष्पपूरितः।
उवाच वाक्यं मधुरं हिमालयः किं वै कृतं साध्वि! यथातथेन॥११०॥

जब देवी भगवती गिरिजा ने महात्मा महेश्वर से इस प्रकार कहा, तब लोक विडम्बना की दृष्टि से महादेव ने "यही हो" कहा तथा पार्वती के वाक्य का अनुमोदन करके प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थान वापस लौटे। जाते समय प्रधान-प्रधान देवता उनका पूजन कर रहे थे। इसी समय हिमालय ने अपनी पत्नी मेना तथा अन्य पर्वतों के साथ अपने पुत्रगण को लेकर वहां पार्वती को देखने हेतु आगमन किया। यहां आकर हिमवान् ने सखियों से घिरी पार्वती

को देखा। साध्वी पार्वती ने भी हिमवान् तथा सभी समागत पर्वतादि का दर्शन किया। उन्होंने उठ कर शिर नत करके पिता-माता तथा बन्धुगण का चरण वन्दन किया। तब महायशस्वी हिमालय ने कन्या का आलिंगन करके उसे गोद में बैठा कर वाष्पपूर्ण नेत्रों से मधुर वाक्य कहना प्रारम्भ किया। हिमवान् कहते हैं—"हे साध्वी! तुमने तत्वतः क्या किया"?।।१०६-११०।।

तत्कथ्यतां महाभागे सर्वं शुश्रूषतां हि नः। तच्छ्रुत्वा मधुरं वाक्यमुवाच पितरं प्रति॥१११॥
तपसा परमेणैव प्रार्थितो मदनांतकः। शांतं च मे महत्कार्यं सर्वेषामपि दुर्ल्लभम्॥११२॥
तत्र तुष्टो महादेवो वरणार्थं समागतः। स मयोक्तस्तदा शंभुर्मम पाणिग्रहः कथम्॥११३॥
क्रियते च तदा शंभो मम पित्रा विनाऽधुना। यथागतेनमार्गेणगतोऽसौत्रिपुरांतकः॥११४॥

"हे पुत्री! तुमने अब तक क्या किया, उसका वर्णन करो। हम सब सुनने के लिए उत्सुक हैं।" यह सुनकर पार्वती पिता से मधुर वाणी में कहने लगीं—"मैं कठोर तप करके मदनशत्रु शिव से प्रार्थना करती थी। मेरा यह सर्वजनदुर्लभ महत् कार्य सम्पन्न हो गया। महादेव मेरी तपस्या से प्रसन्न होकर मेरा वरण करने आये थे। मैंने उनसे कहा—"हे शम्भु! मेरे पिता की अनुपस्थिति में आप मेरा पाणिग्रहण कैसे करेंगे? मेरा यह कथन सुनकर वे त्रिपुरारि यथास्थान चले गये!।।१११-११४।।

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा अवाप परमां मुदम्। बंधुभिः सहधर्मात्मा उवाचस्वसुतांपुनः॥११५॥
स्वगृहं चाद्य गच्छामो वयं सर्वे च भूधराः। अनयाराधितोदेवः पिनाकीवृषभध्वजः॥११६॥
इत्यूचुस्ते सुराः सर्वे हिमालयपुरोगमाः। पार्वतीसहिताः सर्वे तुष्टुवुर्वाग्भिरादृताः।
तां स्तूयमानां च तदा हिमालयो ह्यारोप्य चांसं वरवर्णिनीं च॥११७॥
सर्वेऽथ शैलाः परिवार्य चोत्सुकाः समानयामासुरथ स्वमालयम्॥११८॥
देवदुंदुभयो नेदुः शंखतूर्याण्यनेकशः। वदित्राणि बहून्येव वाद्यमानानि सर्वशः॥११९॥
पुष्पवर्षेण महता तेनानीता गृहं प्रति॥१२०॥
सा पूज्यमाना बहुभिस्तदानीं महाविभूत्युल्लसिता तपस्विनी।
तथैव देवैः सह चारणैश्च महर्षिभिः सिद्धगणैश्च सर्वशः॥१२१॥

धर्मात्मा हिमालय कन्या का यह वाक्य सुनकर बन्धुजन के साथ अत्यन्त प्रसन्न हो गये तथा पुनः कहा—"हे भूधरगण! आइये हम शीघ्र स्वगृह चलें। मेरी पुत्री ने वृषध्वज पिनाकपाणि की आराधना किया है।" हिमालय के यह कहने पर सभी सादर पार्वती के साथ मिले तथा उनकी प्रशंसा करने लगे। तदनन्तर हिमालय ने वरवर्णिनी गिरिजा को अपने कंधे पर बैठाया तथा अपने स्थान पर पहुंचे। मार्ग में सभी पर्वतगण उत्कण्ठित होकर पार्वती का स्तव करते-करते उनको घेर कर चल रहे थे। तब देवदुन्दुभि, शंख, तूर्य एवं अन्य अनेक प्रकार के वाद्य बजने लगे। प्रबल पुष्पवर्षा होने लगी। हिमालय अपनी पुत्री को इस प्रकार अपने घर लौटा लाये। तब पार्वती बहुजनपूजिता हो गयीं। तपस्विनी उमा महाविभूतियोग के कारण उल्लसित थीं। देव, सिद्ध, महर्षि, चारण आदि चारों ओर से उनकी पूजा कर रहे थे।।११५-१२१।।

पूज्यमाना तदा देवीउवाचकमलासनम्। देवानृषीन्पितॄन्यक्षानन्यान्सर्वान्समागतान्॥१२२॥

गच्छध्वं सर्व एवैते येऽन्ये ह्यत्र समागताः। स्वंस्वंस्थानंयथाजोषंसेव्यतांपरमेश्वरः॥१२३॥
एवं तदानीं स्वपितुर्गृहं गता संशोभमाना परमेण वर्चसा।
सा पार्वती देववरैः सुपूजिता संचिन्तयन्ती मनसा सदाशिवम्॥१२४॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे पार्वत्यै शङ्करेण स्वरूपदर्शनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥२२॥

उन पूज्यमान देवी ने तब कमलासन ब्रह्मा से तथा समागत अन्य देवता, ऋषि, पितृगण, यक्ष तथा नागगण से कहा—"आप सब तथा अन्य जो यहां आये हैं, अब सब अपने-अपने स्थान हेतु प्रस्थान करें। आप सब यथासाध्य इन महेश्वर देव की सेवा हेतु तत्पर रहिये। यह कहकर पार्वती अपने पिता के घर शोभित होने लगीं। देवों ने उनकी पूजा सम्पन्न किया। अब भगवती पार्वती मन ही मन महादेव चिन्तन तत्पर हो गयीं॥१२२-१२४॥

॥द्वाविंश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

त्रयोविंशोऽध्यायः

सप्तर्षिगण का हिमालय आगमन, विवाहार्थ मण्डप निर्माण

लोमश उवाच

एतस्मिन्नंतरे तत्र महेशेन प्रणोदिताः। आजग्मुः सहसा सद्य ऋषयोऽपिहिमालयम्॥१॥
तान्दृष्ट्वा सहसोत्थाय हिमाद्रिः प्रीतमानसः। पूजयामास तान्सर्वानुवाच नतकंधरः॥२॥
किमर्थमागता यूयं बूतागमनकारणम्। तदोचुः सप्त ऋषयो महेशप्रेरिता वयम्॥३॥
समागतास्त्वत्सकाशं कन्यायाश्च विलोकने।
तानस्मान्विद्धि भो शैल! स्वां कन्यां दर्शयाशु वै॥४॥
तथेत्युक्त्वा ऋषिगणानानीता तत्र पार्वती। स्वोत्संगेपरिगृह्याशुगिरीन्द्रःपुत्रवत्सलः।
हिमवान्गिरिराजोऽथ उवाच प्रहसन्निव॥५॥
इयं सुता मदीया हि वाक्यं शृणुत मे पुनः। तपस्विनांवरिष्ठोऽसौविरक्तोमदनांतकः॥६॥
कथमुद्वहनार्थी च येनानंगः कृतः स्मरः। अत्यासन्नेचातिदूरे आढ्ये धनविवर्जिते।
वृत्तिहीने च मूर्खे च कन्यादानं न शस्यते॥७॥
मूढाय च विरक्ताय आत्मसंभाविताय च। आतुराय प्रमत्ताय कन्यादानं न कारयेत्॥८॥

तस्मान्मया विचार्यैव भवद्भिर्ऋषिसत्तमाः। प्रदातव्या महेशाय एतन्मे व्रतमुत्तमम्॥९॥

लोमश कहते हैं—इसी समय महेश्वर द्वारा प्रेरित ऋषिगण हिमालय के पास आये। हिमालय उनको आते देखकर शीघ्रता से उठे तथा नतशिर होकर प्रीतिपूर्वक उनका स्वागत तथा अर्चना सम्पन्न करके उनसे कहा—"आप लोगों का आगमन किसलिये हुआ है, उसे व्यक्त करें।" तब सप्तर्षि महर्षिगण ने महेश प्रेरित संवाद हिमालय से कहा—"हम आपकी कन्या के दर्शनार्थ आये हैं। हे शैलराज! अपनी कन्या हमें दिखलायें।" तब हिमालय अपनी कन्या पार्वती को वहां लाये। तब पुत्रवत्सल गिरिराज ने कन्या को बगल में बैठा कर हंसते हुये कहा—हे ऋषिगण! मेरा वाक्य सुनें। इस मेरी कन्या को देखिये। तपस्वीगण में वरिष्ठतम विषयों से विरक्त शिव, जिन्होंने कामदेव को भस्मीभूत कर दिया, वे किस प्रकार मेरी कन्या का पाणिग्रहण करेंगे? आपको ज्ञात है कि अति निकट, अति दूर अथवा निर्धन, वृत्तिहीन, किंवा मूर्ख को कन्या देना प्रशस्त नहीं है। साथ ही मूढ़, विरक्त, अभिमानी, आतुर तथा प्रमत्त व्यक्ति को भी कन्यादान विहित नहीं है। इसलिए हे मुनिगण! मैं आपसे परामर्श करके ही महेश्वर को कन्या प्रदान करूंगा। यही मेरा उत्तम व्रत है।।१-९।।

तच्छ्रुत्वा गिरिराजस्य वचनं ते महर्षयः। ऐकपद्येन ऊचुस्ते प्रहस्य च हिमालयम्॥१०॥
यया कृतं तपस्तीव्रं यया चाराधितः शिवः। तपसा तेन सन्तुष्टःप्रसन्नोऽद्यसदाशिवः॥११॥
अस्यास्तस्य च भोःशैल न जानासि च किंचन। महिमानं परंचैवतस्मादेनांप्रयच्छवै॥१२॥
शिवाय गिरिजामेनांकुरुष्ववचनं हि नः। तच्छ्रुत्वावचनंतेषामृषीणांभावितात्मनाम्॥१३॥
उवाच त्वरया युक्तः पर्वतान्पर्वतेश्वरः। हेमेरो हेनिषध किं गन्धमादन मन्दर।
मैनाक! क्रियतामद्य शंसध्वं च यथातथम्॥१४॥

गिरिराज का यह कथन सुनकर महर्षियों ने हंसते हुये एक वाक्य कहा—हे पर्वत! जिन्होंने तीव्र तप किया है, जिनके आराध्यदेव शिव हैं तथा जिनकी तपस्या से सदाशिव सदा सन्तुष्ट हैं, ऐसे शिव की महिमा तुम नहीं जानते। हे शैल! जो भी हो! तुम गिरिजा की भी महिमा से अवगत नहीं हो। अतः हमारा कहना है कि तुम गिरिनन्दिनी को शीघ्र शिव को प्रदान करो। इस प्रकार हमारे वाक्य की रक्षा करो। उन भावितात्मा ऋषिगण का वचन सुनकर पर्वतराज ने अन्य पर्वतों से कहा—"हे मेरु, हे निषध, हे गन्धमादन, हे मन्दर, हे मैनाक! तुम सब इस सम्बन्ध में कर्त्तव्य स्थिर करो। इस सम्बन्ध में क्या कहना चाहिये, वह परामर्श भी सम्यक्तः प्रदान करो।।१०-१४।।

मेना तदा उवाचेदं वाक्यं वाक्यविशारदा। अधुना किं विमर्शेन कृतं कार्यं तदैवहि॥१५॥
उत्पन्नेयं महाभागा देवकार्यार्थमेव च। प्रदातव्या शिवायेति शिवस्यार्थेऽवतारिता॥१६॥
अनयाराधितो रुद्रो रुद्रेण परिभाविता। इयं सती महाभागा शिवाय प्रतिदीयताम्॥१७॥

तभी वक्ताओं में निपुण मेना ने कहा—"अभी अन्य विचार आलोचना का क्या प्रयोजन? यह तो पहले ही निश्चित हो गया था कि यह भाग्यवती कन्या देवकार्य हेतु उत्पन्न हुई है। अतः यह शिव को ही प्रदान करनी चाहिये। इसने रुद्राराधन किया है। रुद्रदेव भी इसके लिए चिन्तित हैं। इसलिए इस भाग्यशाली सती को रुद्र को ही प्रदान करिये"।।१५-१७।।

निमित्तमात्रं च कृतंतया वै शिवपूजने। एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्यामेनायाःपरिभाषितम्॥१८॥
परितुष्टो हिमाद्रिश्च वाक्यं चेदमुवाच ह। ऋषीन्प्रति निरीक्षंस्तां कन्येयंममसंप्रति॥१९॥

ततः समानीय सुलोचनां तां श्यामां नितंबार्पितमेखलां शुभाम्।
वैडूर्यमुक्तावलयान्दधानां भास्वत्प्रभां चांद्रमसीं व रेखाम्॥२०॥
लावण्यामृतवापिकां सुवदनां गौरीं सुवासां शुभां
दृष्ट्वा ते ह्यषयोऽपि मोहमगमन्भ्रांतास्तदा सम्भ्रमात्।
नोचुः किञ्चन वाक्यमेव सुधियो ह्यासन्प्रमत्ता इव
स्तब्धाः कान्तिमतीमतीव रुचिरां त्रैलोक्यनाथप्रियाम्॥२१॥
एवं तदा ते ह्यषयोऽपि मोहिता रूपेण तस्याः किमुताथ देवताः।
तथैव सर्वे च निरीक्ष्य तन्वीं सतीं गिरीन्द्रस्य सुतां शिवप्रियाम्॥२२॥
ततः पुनश्चैत्य शिवं शिवप्रियाः शशंसुरस्मा ऋषयस्तदानीम्॥२३॥

"इन्होंने शिवपूजा को इस सम्बन्ध में निमित्त मात्र से किया है।" हिमालय मेना का यह वाक्य सुनकर सन्तुष्ट हो गये तथा ऋषिगण की ओर देखकर कहने लगे—"यह मेरी कन्या यहां है, अब इसका दर्शन करिये।" तब कन्या के आने पर ऋषियों ने उन गिरिजा का दर्शन किया। वे ऋषि देखते हैं कि यह हिमालय कन्या सुलोचना, नवयौवना, सुशोभना तथा नितम्बों पर निहत मेखला धारी हैं। ये चान्द्रमसी किरण के समान हैं। ये देह की प्रभा से समुज्वला हैं। इन्होंने वैदूर्य तथा मुक्तावलय धारण किया है। ये लावण्यरस वापी के समान विराजमान हैं। ये सुवदना, गौरवर्णा, अच्छे वस्त्र धारण करने वाली शोभना हैं। ऋषिगण उनको देखकर संभ्रम से भ्रान्त होकर मोहाच्छन्न हो गये! उनके मुख से बोली ही नहीं निकल रही थी! वे धी सम्पन्न होकर भी त्रिलोकीनाथ शिव की अर्द्धांगिनी को देखकर प्रमत्त ऐसे स्तब्ध हो गये! इस प्रकार जब पार्वती के रूप से ऋषिगण मोहित हो गये, तब अन्य देवताओं की तो बात ही क्या? जो भी हो, तदनन्तर शिवभक्त ऋषिगण शिवप्रिया सती नगेन्द्रनन्दिनी को देखकर पुनः शिव के पास आकर कहने लगे।।१८-२३।।

ऋषय ऊचुः

भूषिता हि गिरीन्द्रेण स्वसुता नास्ति संशयः। उद्वोढुं गच्छ देवेशदेवैश्चपरिवारितः॥२४॥
गच्छ शीघ्रं महादेव पावरतीमात्मजन्मने। तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां प्रहस्येदमुवाच ह॥२५॥
विवाहो हि महाभागानदृष्टो न श्रुतोऽपि वा। मयापुराचऋषयःकथ्यतां च विशेषतः॥२६॥
तदोचुर्ऋषयः सर्वे प्रहसंतः सदाशिवम्। विष्णुमाह्वय वै देव ब्रह्माणं च शतक्रतुम्॥२७॥
तथा ऋषिगणांश्चैव यक्षगन्धर्वपन्नगान्। सिद्धविद्याधरांश्चैवकिंनरांश्चाप्सरोगणान्॥२८॥
एतांश्चान्यांश्च सुबहूनानयस्वेतिसत्वरम्। तदाकर्ण्यऋषिप्रोक्तंवाक्यवाक्यविशारदः॥२९॥
उवाच नारदं देवो विष्णुमानय सत्वरम्। ब्रह्माणं च महेन्द्रं च अन्यांश्चैव समानय॥३०॥
शम्भोर्वचनमादाय शिरसा लोकपावनः। जगामत्वरितो भूत्वा वैकुण्ठंविष्णुवल्लभः॥३१॥

ददर्श देवं परमासने स्थितं श्रिया च देव्या परिसेव्यमानम्।
चतुर्भुजं देववरं महाप्रभं नीलोत्पलश्यामतनुं वरेण्यम्॥३२॥
महार्हरत्नावृतचारुकुण्डलं महाकिरीटोत्तमरत्नभास्वतम्।
सुवैजयन्त्या वनमालया वृतं स नारदस्तं भुवनैकसुन्दरम्॥३३॥

ऋषिगण कहते हैं—"हे महाभाग देवेश! पर्वतराज ने अपनी कन्या को सुसज्जित रखा है। इसमें सन्देह नहीं है। अतः देवगण के साथ आप गिरिकन्या से पाणिग्रहण करने चलिये। हे महादेव! पुत्रोत्पत्ति हेतु आप गिरिकन्या का साथ करें।" महादेव ने ऋषियों का वाक्य सुनकर सहास्य भाव से ऋषियों से कहा—"हे महाभागगण! विवाह क्या है, यह तो पहले मैंने कभी नहीं देखा! न तो सुना। अतः आप सब (क्या करना है) यह विशेषतः कहें।" तब ऋषियों ने हंसते हुये सदाशिव से कहा—"हे देव! आप विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र को बुलायें। ऋषिगण, यक्ष, गन्धर्व, पन्नग, सिद्ध, विद्याधर, किन्नर तथा अप्सराओं तथा औरों को भी शीघ्र बुलायें।" वाक्यविशारद सदाशिव ने ऋषियों का कथन सुनकर नारद से कहा—"हे देवर्षि! आप विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र तथा अन्य सबको बुला कर लायें।" लोकपावन नारद शम्भु का आदेश शिरोधार्य करके सबसे पहले वैकुण्ठ गये। वहां नारद देखते हैं कि वे समस्त भुवनों में सुन्दर रूप वाले नीलकमलदल के समान श्यामल वरेण्य प्रभु विष्णु परमासनासीन हैं। श्रीदेवी उनकी चरण सेवा में लगी हैं। वे चतुर्भुज तथा महाप्रभाव वाले हैं। उनका सुन्दर कर्णकुण्डल महान् रत्नों की महाप्रभा से युक्त है। उनके मस्तक पर स्थित महान् किरीट अपने में जड़े रत्नों द्वारा इतनी प्रभा विकिरित कर रहा है, जिससे वे देव विष्णु देदीप्यमान हैं। विजयिनी वनमाला से उनका वक्षःस्थल ढका है। यह देखकर नारद उन देव के समीप आये।।२४-३३।।

उवाच नारदोऽभ्येत्य शम्भोर्वाक्यमथादरात्। ब्रह्मवीणांवाद्यमानःसर्वज्ञऋषिसत्तमः॥३४॥
एह्येहि त्वं महाविष्णो! महादेवं त्वरान्वितः। उद्वाहनार्थं शम्भोश्च त्वमेकः कार्यसाधकः॥३५॥
प्रहस्य भगवान्प्राह नारदं प्रति वै तदा। कथमुद्वहने बुद्धिरुत्पन्ना तस्य शूलिनः।
विज्ञातार्थोऽपि भगवान्नारदं परिपृष्टवान्॥३६॥

नारद ने भगवान् विष्णु के पास आकर उनसे सादर महेश्वर का सन्देश सुनाया। ऋषिप्रवर सर्वज्ञ नारद विष्णु के पार्श्व में आते समय अपनी ब्रह्मवीणा बनाये जा रहे थे। उन्होंने जाकर कहा—"हे महाविष्णु! आइये। शीघ्रता से आप महादेव के पास चलिये। शम्भुदेव गिरिजा से विवाह कर रहे हैं। उस विवाह के कार्यसाधक एकमात्र आप ही हैं।" तब भगवान् विष्णु नारद से पूछने लगे। "शूलपाणि को विवाह करने की मति कैसे हो गयी?" यद्यपि नारायण सब जानते थे, तथापि उन्होंने नारद से यह पूछा।।३४-३६।।

नारद उवाच

तपसा महता रुद्रः पार्वत्या परितोषितः। स्वयमेवागतस्तत्र यत्रास्ते गिरिजासती॥३७॥
दासोऽहमवदच्छंभुः पार्वत्या परितोषितः। पार्वतीं च समभ्यर्थ्यवरयस्वचभामिनि॥३८॥
त्वरितेनावदच्छंभुस्त्वामाह्वयति सम्प्रति। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा देवदेवो जनार्दनः।
नारदेन समायुक्तः पार्षदैः परिवारितः॥३९॥

नारद कहते हैं—"हे देव! पार्वती ने कठोर तप करके रुद्रदेव को प्रसन्न किया था। उनके तपोबल से यह प्रभाव हुआ कि सती गिरिनन्दिनी जहां रहकर तप कर रहीं थीं, महादेव स्वयं वहां आये तथा पार्वती के व्यवहार से सन्तुष्ट होकर यह कहा—"हे देवी! मैं तुम्हारा दास हूं। हे भामिनी! मेरा वरण पतिरूप में करो।" इस प्रकार से शम्भु ने भगवती गिरिजा से प्रार्थना करके आपको भी बुलाया है। उनका वचन सुनकर देवदेव जनार्दन भी नारद तथा पार्षदगण के साथ शंभुगृह के लिए चल पड़े।।३७-३९।।

सुपर्णमारुह्य तदा महात्मा योगीश्वराणां प्रभुरच्युतो महान्।
ययौ तदाऽऽकाशपथा हरिः स्वयं सनारदो देववरैः समेतः॥४०॥
तं दृष्ट्वा त्वरितं देवो योगिध्येयांघ्रिपङ्कजः। अभ्युत्थाय मुदा मुक्तः परिष्वज्य च शार्ङ्गिणम्॥४१॥
तदा हरिहरौ देवावैकपद्येन तिष्ठतः। ऊचतुःस्म तदाऽन्योन्यं क्षेमं कुशलमेव च॥४२॥

महात्मा अच्युत हरि योगीश्वरगण के भी प्रभु हैं। वे गरुड़ासीन होकर नारद तथा अन्य देवताओं के साथ आकाशमार्ग से जाने लगे। योगीजन जिनके चरणों का ध्यान करते हैं, उन शम्भु ने देवाधिदेव शार्ङ्गपाणि श्रीहरि को देखा तथा उठकर उनका आलिंगन किया। देव हरि तथा हर यहां एक साथ एक ही आसन पर आसीन होकर परस्परतः कुशल प्रश्न पूछने लगे।।४०-४२।।

ईश्वर उवाच

गिरिजातपसाविष्णोजितोऽहंनात्रसंशयः। पाणिग्रहार्थमेवाद्य गन्तुकामोहिमालयम्॥४३॥
यथार्थेन च भो विष्णोकथयामितवाग्रतः। यदा दक्षेण भो विष्णोप्रदत्ताचपुरासती॥४४॥
न च संकल्पविधिना मया पाणिग्रहः कृतः। अधुनैव मया कार्यं कर्मविस्तारणं बहु॥४५॥
यत्कार्यं तन्न जानामि सर्वं पाणिग्रहोचितम्। शम्भोस्तद्वचनं श्रुत्वाग्रहस्यमधुसूदनः॥४६॥

ईश्वर कहते हैं—हे विष्णु! मैं पार्वती के तपःश्चरण से पराजित हो गया! इसमें सन्देह नहीं है। अब मैं उनसे पाणिग्रहणार्थ हिमालय गमन हेतु उत्सुक हूं। हे विष्णु! आपसे सब यथावृत्तान्त वर्णन किया। पूर्व में दक्ष ने अपनी कन्या सती मुझे प्रदान किया था, तब मैंने यथाविधि संकल्प करके उनका पाणिग्रहण नहीं किया था। मैंने तब सम्प्रति विकृतरूपेण वैध कर्मों का अनुष्ठान किया था। तब मुझे पाणिग्रहण कर्म का ज्ञान नहीं था। शम्भु का वचन सुनकर मधुसूदन हंस पड़े।।४३-४६।।

यावद्वक्तुं समारेभे तावद्ब्रह्मा समागतः। इन्द्रेण सह सर्वैश्च लोकपालैस्त्वरान्वितः॥४७॥
तथैव देवासुरयक्षदानवा नागाः पतंगाप्सरसो महर्षयः।
समेत्य सर्वे परिवक्तुमीशमूचुस्तदानीं शिरसा प्रणम्य॥४८॥
गच्छगच्छ महादेव अस्माभिः सहितः प्रभो। ततो विष्णुरुवाचेदं प्रस्तावसदृशंवचः॥४९॥
गृह्योक्तविधिना शंभो कर्म कर्तुमिहार्हसि॥५०॥

उन्होंने कुछ कहना ही चाहा था, तभी इन्द्र तथा अन्य लोकपालों के साथ ब्रह्मा वहां आ पहुंचे। तदनन्तर सुर, असुर, यक्ष, दानव, नाग, पक्षी, अप्सरा तथा महर्षियों का भी आगमन हुआ। सभी नतमस्तक होकर भगवान्

शिव को प्रणाम करके उनसे कहने लगे—"हे प्रभो! महादेव, आप चलिये।" तब विष्णु ने कहा—"हे शम्भु! अपनी गृहोक्त विधि के अनुसार आपको यह कर्म करना होगा"।।४७-५०।।

नान्दीमुखं मण्डपस्थापनं च तथा चैतत्कुरु धर्मेण युक्तम्।
महानदीसंगमं वर्जयित्वा कुर्वन्ति केचिद्वेदमनीषिणश्च।।५१।।
मण्डपस्थापनंचैवक्रियतां ह्यधुना विभो। तथोक्तोविष्णुना शम्भुश्चकारात्महितायवै।।५२।।
ब्रह्मादिभिः कृतं तेन सर्वमभ्युदयोचितम्। ग्रहाणां पूजनं चक्रे कश्यपो ब्रह्मणायुतः।।५३।।
तथाऽत्रिश्च वशिष्ठश्च गौतमोऽथ गुरुर्भृगुः। कण्वोबृहस्पतिःशक्तिर्जमदग्निःपराशरः।।५४।।
मार्कण्डेयः शिलावाकः शून्यपालोऽक्षतश्रमः।
अगस्त्यश्च्यवनो गर्गः शिलादोऽथ महामुनिः।।५५।।
एते चान्ये च बहवो ह्यागताः शिवसन्निधौ। ब्रह्मणा नोदितास्तत्र चक्रुस्ते विधिवत्क्रियाम्।।५६।।
वेदोक्तविधिना सर्वे वेदवेदांगपारगाः। चक्रू रक्षां महेशस्य कृतकौतुकमंगलाम्।।५७।।
ऋग्यजुःसामसहितैः सूक्तैर्नानाविधैस्तथा। मंगलानि च भूरीणि ऋषयस्तत्त्ववेदिनः।।५८।।
अभ्यंजनादिकं सर्वं चक्रुस्तस्य परात्मनः। ख्यातः कपर्दस्तस्यैव शिवस्यपरमात्मनः।।५९।।
अनेकैर्मौक्तिकैर्युक्ता मुण्डमालाऽभवत्तदा। ये सर्पा ह्यंगभूताश्च ते सर्वे तत्क्षणादिव।
बभूवुर्मंडनान्येव जातरूपमयानि च।।६०।।
सर्वभूषणसंपन्नो देवदेवो महेश्वरः। ययौ देवैः परिवृतःशैलराजपुरं प्रति।।६१।।

"आप धर्मोक्त नान्दीमुख तथा मण्डप स्थापना करिये। कोई-कोई वेदवादी मनीषी महानदी संगम त्याग करके ही ये दो कार्य करते हैं। जो भी हो, हे विभु! आप अब मण्डप स्थापना करिये।" विष्णु ने जो कहा, शंभु ने उसे ही हितकर समझ कर तत्काल किया। कश्यप मुनि ने ब्रह्मा के साथ ग्रहों की अर्चना किया। तभी अत्रि, वसिष्ठ, गौतम, बृहस्पति, भृगु, कण्व, शक्ति, जमदग्नि, पराशर, मार्कण्डेय, शिलावाक्, शून्यपाल, अक्षतश्रम, अगस्त्य, च्यवन, गर्ग, महामुनि शिलाद तथा अन्य अनेक मुनिवरगण शिव सन्निधान में आये। ब्रह्मा की प्रेरणा से वे सभी विधिवत् क्रिया करने लगे। उन्होंने वैदिक विधान से महादेव का मंगला रक्षा विधान किया। यह महादेव के लिए कौतुक ही था (क्योंकि समस्त जगत् के रक्षक का रक्षा विधान!) तत्ववेत्ता ऋषिगण ने नाना प्रकार से ऋक्-यजुः-साम सूक्त द्वारा परमात्मा शिव की अभ्यञ्जनादि मंगल क्रिया सम्पन्न किया। परमात्मा शिव का जो विशाल कपर्द था, उसे अनेक मुक्तामाला युक्त करके मुण्डमाला कृति बनाया गया। उनके अंगों से लिपटे जितने सर्प थे, उनको भूषण रूप किया गया। इस प्रकार देवाधिदेव महेश सर्वभूषण भूषित होकर हिमवान् की पुरी की ओर चल पड़े।।५१-६१।।

चण्डिका वरभगिनी तदा जाता भयावहा। प्रेतासना गताचण्डी सर्पाभरणभूषिता।।६२।।
हैमं कलशमादाय पूर्णं मूर्ध्ना महाप्रभा। परिवारैर्महाचण्डी दीप्तास्या ह्युग्रलोचना।।६३।।
तत्र भूतान्यनेकानि विरूपाणि सहस्त्रशः। तैः समेताग्रतश्चण्डी जगाम विकृताननाः।।६४।।

वे सर्वभूषण भूषित होकर प्रेतासनासीन थे। शिव वर थे। वर की बहन चण्डिका ने तब भीषण आकृति धारण किया। इन महप्रभा चण्डी ने अपने परिवार से युक्त होकर मस्तक पर एक पूर्ण स्वर्ण कलश स्थापित किया। उनका मुख-मण्डल प्रभासित हो उठा। नयन घूर्णित होने लगे। उनके साथ में हजारों विकृताकृति भूत भी चल पड़े।।६२-६४।।

तस्याः सर्वे पृष्ठतश्च गणाः परमदारुणाः। कोट्येकादशसंख्याकारौद्रारुद्रप्रियाश्च ये।।६५।।
तदा डमरुनिर्घोषव्याप्तमासीज्जगत्त्रयम्। भेरीभांकारशब्देन शंखानां निनदेन च।।६६।।
तथा दुंदुभिनिर्घोषैःशब्दःकोलाहलोऽभवत्। गणानांपृष्ठतोभूत्वासर्वेदेवाःसमुत्सुकाः।
अन्वयुः सर्वसिद्धाश्च लोकपालैः समन्विताः।।६७।।
मध्ये व्रजन्महेन्द्रोऽथ ऐरावतमुपास्थितः। शुभ्रेणोच्छ्रियमाणेन छत्रेण परमेण हि।।६८।।
चामरैर्वीज्यमानोऽसौ सुरैर्बहुभिरावृतः। तदा तु व्रजमानास्त ऋषयोबहवोह्यमी।।६९।।
भरद्वाजादयो विप्राः शिवस्योद्वहनं प्रति। शाकिन्योयातुधानाश्चवेतालाब्रह्मराक्षसाः।।७०।।
भूतप्रेतपिशाचाश्च तथान्यप्रमथादयः। पृच्छमानास्तदाचण्डीं पृष्ठतोऽन्वगमंस्तदा।।७१।।
क्व गता साऽधुना चण्डी धावमानास्तदा भृशम्।
प्राप्ता गता व्रजंतीं तां प्रणिपत्य महाप्रभाम्।।७२।।
अथ प्रोचुस्तदा सर्वे चण्डीं भैरवसंयुताम्। विनाऽस्माभिः कुतो यासि वद चण्डि! यथा तथा।।७३।।

उनके पृष्ठभाग में अत्यन्त दारुण प्रमथगण तथा ११ कोटि रुद्रप्रिय रुद्रगण भी चल रहे थे। तब डमरु की ध्वनि से त्रैलोक्य व्याप्त हो गया। भेरी का भांकार रूप शब्द, शंख का निनाद, दुन्दुभि का निर्घोष, यह सब मिलाकर घोर कोलाहल वहां उत्थित हो गया। प्रमथगण के पीछे-पीछे देवता, सिद्ध भी लोकपालों के साथ समुत्सुक चित्त से चले जा रहे थे। देवताओं में महेन्द्र ऐरावत पर बैठे थे। उनके मस्तक के ऊपर श्वेत छत्र फहरा रहा था। उनको चामर व्यजन किया जा रहा था। वे देवगण से घिरे चले जा रहे थे। शिव की विवाह यात्रा में भरद्वाज प्रभृति अनेक मुनिगण चले जा रहे थे। अनेक विप्रगण, शाकिनी, राक्षस, वेताल, ब्रह्मराक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच तथा अन्य प्रमथगण भी चले जा रहे थे। तदनन्तर धावमान महाप्रभायुता भैरवसहचारिणी चण्डी के पास पहुंच कर उन सबने प्रणाम करके कहा—"हे चण्डी! हम सबको छोड़ आप अकेली कहां जा रही हैं"?।।६५-७३।।

प्रहस्योवाच सा चंडी भूतानां तत्रशृण्वताम्। शम्भोरुद्वहनार्थायप्रेतारूढाव्रजाम्यहम्।।७४।।
हैमं कलशमादाय शिरसा बिभ्रती स्वयम्। करवालीस्वरूपेण चंडीजाता ततःस्वयम्।।७५।।
भूतैः परिवृता सर्वैः सर्वेषामग्रतोऽव्रजत्। गणास्तामनुजग्मुस्ते गणानांपृष्ठतः सुराः।।७६।।
इन्द्रादयो लोकपाला ऋषयस्तेऽग्रपृष्ठतः। ऋषीणांपृष्ठतो भूत्वा पार्षदाश्च महाप्रभाः।।७७।।
विष्णोरमितभावज्ञा मुकुंदाच्च मनोरमाः। सर्वे पयोदसंकाशाःस्रग्विणोवनमालिनः।
श्रीवत्सांकधराः सर्वे पीतवासोन्विताश्च ते।।७८।।
चतुर्भुजाः कुंडलिनः किरीटकटकांगदैः। हारनूपुरसूत्रैश्च कटिसूत्राङ्गुलीयकैः।
शोभिताः सर्व एवैते महापुरुषलक्षणाः।।७९।।

तेषां मध्ये गतो विष्णुः श्रियोपेतः सुरारिहा॥८०॥
बभौ त्रिलोकीकृतविश्वमंगलो महानुभावैर्हृदि कृत्य धिष्ठितः।
शिवेन साकं परमार्थदस्तदा हरिः परात्मा जगदेकबन्धुः॥८१॥
स ताक्ष्र्यपुत्रोपरि संस्थितो महाँल्लक्ष्म्या समेतो भुवनैकभर्ता।
स चामरैर्वीज्यमानो मुनीद्रैः सर्वैः समेतो हरिरीश्वरो महान्॥८२॥

तब भगवती चण्डी ने वहां सभी प्राणीगण को सुनाते हुये हास्यमयी मुद्रा में कहा—"मैं शम्भु के विवाह के लिए अपने मस्तक पर स्वर्ण कलश लेकर जा रही हूं।" तत्पश्चात् चण्डी ने स्वयं करवाली रूप धारण किया तथा भूत समूह से घिर कर आगे-आगे चलने लगीं। उनके पीछे इन्द्रादि देवता, उनके पीछे ऋषिगण चल रहे थे। उनके भी पीछे विष्णु के अमित तेजस्वी महाद्युति पार्षदगण ने प्रयाण किया। ये सभी पार्षद मुकुन्द से भी मनोरम थे। वे सभी महापुरुष लक्षण वाले थे। उनके मध्य में श्रीपति विष्णु शोभायमान थे। वे समस्त त्रैलोक्य के लिए मंगलस्वरूप हैं। उनके सभी पार्षद मेघ के समान, मालाधारी, वनमाली, श्रीवत्सधारी, पीत वर्ण के वस्त्र को पहने हुये, चतुर्भुज तथा किरीट, कटक, अंगद-हारयुक्त, मुकुट करधनी तथा अंगूठी आदि से शोभित थे। विष्णु ही अपने पार्षद भक्तों के हृदय में स्थित अभीष्ट देव हैं। वे ही संसार के एकमात्र बन्धु, परमात्मा हरि हैं। वे भुवनपालक महालक्ष्मी युक्त होकर गरुड़ पर आसीन थे। मुनिगण उनका चामर व्यजन कर रहे थे।।७४-८२।।

तथा विरंचिर्निजवाहनस्थो वेदैः समेतः सह षड्भिरंगैः।
तथाऽऽगमैः सेतिहासैः पुराणैः स संवृतो हेमगर्भो बभूव॥८३॥
वेधोहरिभ्यां च तदा सुरेन्द्रैः समावृतश्चर्षिभिः संपरीतः।
वृषारूढो वृषकेतुर्दुरापो योगीश्वरैरपि सर्वैरगम्यः॥८४॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं वृषभं धर्मवत्सलम्। समेतो मातृभिश्चैव गोभिश्च कृतलक्षणम्।
एभिस्समेतोऽसुरदानवैः सह ययौ महेशो विबुधैरलंकृतः॥८५॥
हिमालयं गिरिवर्यं तदानीं पाणिग्रहार्थं प्रमदोत्तमायाः॥८६॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे श्रीशिवस्य विवाहवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥

प्रभु हरि समस्त मुनिमण्डली से घिर कर चले। हेमगर्भ ब्रह्मा भी अपने वाहन हंस पर बैठ कर वेद, वेदाङ्ग, आगम, इतिहास तथा पुराणों के साथ चल पड़े। समस्त योगीगण निरन्तर ध्यान द्वारा भी जिनको प्राप्त नहीं कर पाते, वे वृषकेतु उस समय ब्रह्मा-हरि-सुरेन्द्र तथा ऋषियों से घिरे रहकर वृष पर बैठ कर चल पड़े। वह धर्मवत्सल वृषभ शुद्ध स्फटिक जैसा देदीप्यमान था। वे प्रभु मातृकाओं, देवताओं तथा अन्य सुर-असुर एवं दानवों से घिर कर वरवर्णिनी पार्वती के पाणिग्रहणार्थः हिमालय के लिए चल पड़े॥८३-८६॥

॥त्रयोविंश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

चतुर्विंशोऽध्यायः

हिमवान् के यहां मण्डपरचना आदि

लोमश उवाच

तथैव सर्वं परया मुदान्वितश्चक्रे गिरीन्द्रः स्वसुतार्थमेव।
गर्गं पुरस्कृत्य महानुभावो मांगल्यभूमिं परया विभूत्या॥१॥
आहूय विश्वकर्माणं कारयामास सादरम्। मंडपं च सुविस्तीर्णंवेदिकाभिर्मनोरमम्॥२॥
अयुतेनैव विस्तारं योजनानां द्विजोत्तमाः। मंडपं च गुणोपेतं नानाश्चर्यसमन्वितम्॥३॥
स्थावरं जंगमं चैव सदृशं च मनोहरम्। जंगमं च जितं तत्र स्थावरेण तथैव च॥४॥
जंगमेन च तत्रैव जितं स्थावरमेव च। पयसा च जिता तत्र स्थलभूमिरभूत्तदा॥५॥
जलं किं नु स्थलं तत्र न विदुस्तत्त्वतो जनाः। क्वचिसिंहाः क्वचिद्धंसाः सारसाश्च महाप्रभाः॥६॥
क्वचिच्छिखंडिनस्तत्र कृत्रिमाः सुमनोहराः। तथा नागाः कृत्रिमाश्च हयाश्चैव तथा मृगाः॥७॥
के सत्याः के असत्याश्चसंस्कृताविश्वकर्मणा। तथैवचैवं विधिनाद्वारपाअद्भुताःकृताः॥८॥

लोमश कहते हैं—इधर महानुभव गिरीन्द्र हिमालय ने परम प्रसन्न होकर पुरोहित वर्ग के साथ परामर्श करके विश्वकर्मा को बुलवाया तथा परम विभूति के साथ अपनी कन्या के लिए मंगलाभूमि की रचना करवाई। हे द्विजोत्तमगण! यह मण्डप १०००० योजन विस्तीर्ण तथा मनोरम वेदी से युक्त था। वह नाना गुणों का भण्डार होने के कारण दर्शकों के मन को नाना विस्मयरस से सराबोर कर देता था। मण्डप में स्थावर तथा जंगम एक दूसरे को जय करके विराजित हो गये। वहां जल ने स्थल को विजित किया। अर्थात् लोग यह नहीं जान पा रहे थे कि यह जल है अथवा स्थल है। (इसी प्रकार जो वहां स्थावर चित्र (अचल) बने थे, वे एकदम जीवन्त लगते थे, तभी यह कहा गया कि वहां स्थावर-जंगम ने एक दूसरे को जीत लिया!)। इस विशाल मण्डप में कहीं सिंह, कहीं हंस, कहीं सारस, कहीं मयूर, कहीं लता, कहीं अश्व, कहीं मनोहर मृग स्थित थे। किम्बहुना, ये सभी कृत्रिम बने थे। कृत्रिम होने पर भी इनको बनाने वाले विश्वकर्मा थे, अतः कौन कृत्रिम है अथवा जीवन्त है, यह समझ में नहीं आता था। इसी प्रकार वहां अनेक अद्भुद् द्वारपाल भी मण्डप में बनाये गये थे॥१-८॥

पुंसो धनूंषि चोत्कृष्य स्थावरा जंगमोपमाः। तथाश्वाः सादिभिश्चैव गजाश्च गजसादिभिः॥९॥
चामरैर्वीज्यमानाश्चकेचित्पुष्पांकुरान्विताः। केचिच्चपुरुषास्तत्रविरेजुःस्त्रग्विणस्तथा।
कृत्रिमाश्च तथा बह्वयः पताकाः कल्पितास्तथा॥१०॥
द्वारि स्थिता महालक्ष्मीः क्षीरोदधिसमुद्भवा॥११॥
गजाः स्वलंकृता ह्यासन्कृत्रिमा ह्यकृतोपमाः।
तथाऽश्वाः सादिभिश्चैव गजाश्च गजसादिभिः॥१२॥
रथा रथियुता ह्यासन्कृत्रिमा ह्यकृतोपमाः। सर्वेषां मोहनार्थायतथा च संसदःकृताः॥१३॥

महाद्वारि स्थितो नंदी कृतस्तेन हि मंडपे। शुद्धस्फटिकसंकाशो यथानन्दीतथैवसः॥१४॥
तस्योपरि महद्दिव्यं पुष्पकं रत्नभूषितम्। राजितं पल्लवच्छत्रैश्चामरैश्चसुशोभितम्॥१५॥

ये सभी द्वारपाल पुरुष धनुर्धारी थे। वे स्थावर होकर भी अचल, निर्मित होने पर भी जीवित से लग रहे थे। वहां घोड़े घुड़सवार के साथ तथा हाथी महावत के साथ बने थे। अनेकों कृत्रिम पुरुष भी बनाये गये थे। उनमें से कोई चामर हिलाते हुये, कोई-कोई पुष्पमुकुल से शोभित थे, कोई-कोई मालामण्डित हो विराजित (चित्रित) थे। वहां बहुसंख्यक कृत्रिम पताका भी रची गयी थी। वहां क्षीरसमुद्र से उत्पन्न महालक्ष्मी द्वार पर विराजमान थीं। अलंकृत हाथी कृत्रिम बने होने पर भी वास्तविक से लग रहे थे। सबको सम्मोहित करने हेतु भी अनेक सभा समिति इस मण्डप में चित्रित थी। आरोही (सवार) के साथ अश्व, हाथी तथा रथ कृत्रिम बने होकर भी वास्तविक से लगते थे। मण्डप के द्वार पर शुद्ध स्फटिकवत् नन्दी की मूर्त्ति स्थापित थी। यह कृत्रिम नन्दी भी वास्तविक जैसे ही प्रतीत हो रहे थे। एक रत्नमण्डित दिव्य पुष्पक भी वहां निर्मित था। वह पल्लव, छत्र, चामर द्वारा शोभित था।।९-१५।।

वामपार्श्वेगजौ द्वौ च शुद्धकाश्मीरसन्निभौ। चतुर्दन्तौषष्टिवर्षौमहात्मानौ महाप्रभौ॥१६॥
तथैव दक्षिणे पार्श्वे द्वावश्यौ दंशितौ कृतौ। रत्नालंकारसंयुक्ताँल्लोकपालांस्तथैवच॥१७॥
षोडश प्रकृतीस्तेन याथातथ्येन धीमता। सर्वे देवा यथार्थेन कृता वै विश्वकर्मणा॥१८॥
तथैव ऋषयः सर्वे भृग्वाद्याश्च तपोधनाः। विश्वे च पार्षदैःसाकमिंद्रो हि परमार्थतः॥१९॥
कृताः सर्वे महात्मानो याथातथ्येन धीमता।
एवंभूतः कृतस्तेन मण्डपो दिव्यरूपवान्॥२०॥
अनेकाश्चर्यसंभूतो दिव्यो दिव्यविमोहनः। एतस्मिन्नंतरे तत्र आगतो नारदोऽग्रतः॥२१॥
ब्रह्मणा नोदितस्तत्र हिमालयगृहं प्रति। नारदोऽथ ददर्शाग्रे आत्मानं विनयान्वितम्॥२२॥
भ्रांतो हि नारदस्तेन कृत्रिमेण महायशाः। अवलोकपरस्तत्र चरितं विश्वकर्मणः॥२३॥
प्रविष्टो मण्डपं तस्य हिमाद्रे रत्नचित्रितम्। सुवर्णकलशैर्जुष्टं रंभाद्यैरुपशोभितम्॥२४॥
सहस्त्रस्तम्भसंयुक्तं ततोऽद्रिः स्वगणैर्वृतः।
तमृषिं पूजयामास किं कार्यमितिपृष्टवान्॥२५॥

वामपार्श्व में शुद्ध काश्मीर कान्ति दो हाथी विराजित थे। वे ४ दांतों वाले, ६० वर्ष आयु वाले, विशालकाय तथा महाप्रभायुक्त निर्मित थे। इसी प्रकार दाहिनी ओर दो सुशोभित अश्व बने थे। धीमान् विश्वकर्मा ने वहां रत्न-अलंकारयुक्त, लोकपाल, १६ प्रकृति तथा समस्त देवगण का यथायथ रूप से निर्माण किया था। इसी प्रकार से कृत्रिम रूप से भृगु आदि तपोधन ऋषि, विश्वेदेवगण, पार्षदों से घिरे अपनी आकृति का निर्माण वहां विश्वकर्मा ने किया। धीमान् विश्वकर्मा ने समस्त स्वर्गस्थ महात्मागण की मूर्त्ति भी बिल्कुल उनके वास्तविक रूप में स्थापित किया। उनके द्वारा निर्मित यह दिव्य मण्डप तैयार हो जाने पर दिव्य लोगों को भी विमोहित कर रहा था, तभी नारद भी वहां भगवान् ब्रह्मा की प्रेरणा से आये। उन्होंने प्रवेश करते ही वहां स्थित अपनी विनीत प्रतिमा को स्थापित देखा! महात्मा नारद इस कृत्रिम रचना से भ्रान्त हो गये। उन्होंने विश्वकर्मा की रचनाओं को देखते

हुये हिमाद्रि के रत्नरचित मण्डप में प्रवेश किया। उन्होंने वहां देखा कि मण्डप स्वर्णकलश से शोभित है। वह रंभा प्रभृति देवाङ्गनाओं से अलंकृत है। वहां हजारों स्तम्भ बने हैं। साथ ही पर्वतराज हिमवान् अपने सहचरों से घिरे वहां आये तथा उन्होंने इन ऋषिप्रवर का पूजन किया। तदनन्तर यह पूछा कि आपके आने का कारण क्या है?।।१६-२५।।

नारद उवाच

आगतास्ते महात्मानो देवा इन्द्रपुरोगमाः। तथा महर्षयः सर्वे गणैश्च परिवारिताः।
महादेवो वृषारूढो ह्यागतोद्वहनं प्रति॥२६॥
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा हिमवान्गिरिसत्तमः। उवाच नारदं वाक्यं प्रशस्तमधुरं महत्॥२७॥
पूजयित्वा यथान्यायं गच्छ त्वं शंकरं प्रति॥२८॥
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा मुनिर्हिमवतो गिरेः। तथैव मत्वा वचनं शैलराजानमब्रवीत्।
मैनाकेन च सह्येन मेरुणा गिरिणा सह॥२९॥
एभिः समेतो ह्यधुना महामते! यतस्व शीघ्रं शिवमत्र चानय।
देवैः समेतं च महर्षिवर्यैः सुरासुरैरर्चितपादपंकजम्॥३०॥

नारद कहते हैं—"हे पर्वतराज! इन्द्रादि देवगण तथा प्रमथ वृन्द के साथ यहां सभी ऋषि आये हैं। महादेव भी वृष पर बैठ कर विवाहार्थ आ रहे हैं।" तदनन्तर गिरिराज हिमवान् ने यह सुनकर नारद से उदार मधुर वचन कहा तथा उनकी यथायोग्य पूजा करके अनुरोध किया कि "अब आप शंकर के पास जायें।" उनका वाक्य सुनकर नारद ने कहा, यही हो तथा शैलराज से कहा—"हे महामति! आप मैनाक, सह्य तथा सुमेरु आदि सहित जाकर सयत्न महादेव को यहां लायें। सुर तथा असुर जिनके चरणकमल की अर्चना करते हैं, उन शिव को देवता तथा महर्षियों के साथ जाकर यहां लाईये"।।२६-३०।।

तथेति मत्वा स जगाम तूर्णं सहैव तैः पर्वतराजभिश्च।
त्वरागतश्चैकपदेन शंभुं प्राप्नोदृषीणां प्रवरो महात्मा॥३१॥
तावद्दृष्टो महादेवो देवैश्च परिवारितः। तदा ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रश्चैव सुरैःसह॥३२॥
पप्रच्छुर्नारदं सर्वे येऽन्ये रुद्रचरा भृशम्। कथ्यतांपृच्छमानानामस्माकंकथ्यतेनहि।
एकैकस्यात्मजाः स्वाः स्वाः सह्यमैनाकमेरवः॥३३॥
कन्या दास्यंति वा शम्भोः किं त्विदानीं प्रवर्तते॥३४॥

हिमालय भी नारद का वचन स्वीकार करके अन्य पर्वतराज के साथ चल पड़े। इधर ऋषिवर महात्मा नारद भी शीघ्रता के साथ शम्भु के पास पहुंच गये। जब उन्होंने देवगण के साथ महादेव का दर्शन किया, तब ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा अन्य देवगण ने एक साथ नारद से पूछा। तथा रुद्र के अनुचरों ने भी बारम्बार पूछा—"हे ऋषिवर! हमारे प्रश्न का उत्तर दीजिये। आप क्यों नहीं बोलते? हम यह जानना चाहते हैं कि क्या सह्याद्रि, मैनाक तथा मेरु आदि भी क्या अपनी-अपनी कन्या शम्भु के हाथ में अर्पित करेंगे? इस सम्बन्ध में क्या हो रहा है, कहें"।।३१-३४।।

ततोऽवोचन्महातेजा नारदश्चर्षिसत्तमः। ब्रह्माणं पुरतः कृत्वा विष्णुम्प्रति सहेतुकम्।

एकांतमाश्रित्य तदा सुरेन्द्रं स नारदो वाक्यमिदं बभाषे॥३५॥
त्वष्ट्रा कृतं वै भवनं महत्तरं येनैव सर्वे च विमोहिता वयम्॥३६॥
पुरा कृतं तस्य महात्मनस्त्वया किं विस्मृतं तत्सकलं शचीपते!।
तस्मादसौ त्वा विजिगीषुकामो गृहे वसंस्तस्य गिरेर्महात्मनः॥३७॥

अहो विमोहितस्तेन प्रतिरूपेण भास्वता। तथा विष्णुः कृतस्तेन शंखचक्रगदादिभृत्॥३८॥
ब्रह्मा चैव तथाभूतस्तं चैव कृतवानसौ॥३९॥
मायामयो वृषभस्तेन वेषात्कृतो हि नागोश्वतरस्तथैव।
तथा चान्यान्यप्यनेनामरेन्द्र सर्वाण्येवोल्लिखितान्यत्र विद्धि॥४०॥

नारद ने उन सबको एक ओर ले जाकर कहा—"विश्वकर्मा ने हिमालय के लिए एक महाभवन का निर्माण किया है। वह देखकर मैं मोहित हो गया। हे शचीपति! पूर्व में तुमने इन त्वष्टा (विश्वकर्मा) के साथ (उनका पुत्रवध किया था) जो किया था, क्या वह भूल गये? निश्चित भूल गये हो। तभी वे तुम पर विजय पाने हेतु गिरिराज के गृह में निवास कर रहे हैं। आहा! विश्वकर्मा ने वहां जिन सब भास्वर प्रतिकृति का निर्माण किया है, वह देखकर मैं तो एक बार मोहित हो गया। उन्होंने वहां शंख-चक्र-गदाधारी विष्णु, सवाहन ब्रह्मा, मायामय वृष तथा अश्वतर नाग का निर्माण किया है। हे अमरेन्द्र! इन सबके अतिरिक्त भी अनेक प्रतिकृतियां वहीं पर उन्होंने बनाया है"॥३५-४०॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य देवेन्द्रो वाक्यमब्रवीत्॥४१॥
विष्णुं प्रति तदा शीघ्रं दृष्ट्वा यामि वसात्र भोः।
पुत्रशोकेन तप्तोऽसौ व्याजेनान्येन वाऽकरोत्॥४२॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा देवदेवो जनार्द्दनः। उवाच प्रहसन्वाक्यं शक्रमाप्तभयं तदा॥४३॥
निवातकवचैः पूर्वं मोहितोऽसि शचीपते। विद्याऽमृता तत्र मया समानीतोपसत्तये॥४४॥
महाविद्याबलेनैव प्रविश्य मण्डपेऽधुना। पर्वतो हिमवानेष तथाऽन्ये पर्वतोत्तमाः॥४५॥
विपक्षा हि कृताः सर्वे मम वाक्याच्च वासव!। हेतु स्मृत्वाऽथ वै त्वष्टा मायया ह्याकरोदिदम्॥४६॥
जयमिच्छंति वै मूढा न च भेतव्यमण्वपि॥४७॥

देवेन्द्र ने यह सुनकर विष्णु से कहा—"हे प्रभो! आप यहीं रुकें। मैं शीघ्र देखकर आता हूं कि यह विश्वकर्मा पुत्रशोक से परितप्त हैं अथवा छल का आश्रय लेकर यह कार्य कर रहा है।" देवदेव जनार्दन ने यह सुनकर हंसते हुये भीतिग्रस्त इन्द्र से कहा—"हे शचीपति! पूर्व में तुम निवातकवच दैत्यों की माया से मोहित हो गये थे। मैंने तब अमृत विद्या लाकर दिया था। तुम उसी विद्याबल से गिरिमण्डल में प्रवेश करो।" हिमवान् तथा पर्वतों तथा प्रधान पर्वतों को तुमने मेरी आज्ञा से पंखहीन किया था। हे इन्द्र! यह याद करके ही विश्वकर्मा ने माया द्वारा यह निर्माण किया है। मूढ़ ही जय की इच्छा करते हैं। इससे तुम तनिक भी भयभीत न हो॥४१-४७॥

एवं विवदमानांस्तान्देवाञ्छक्रपुरोगमान्। सांत्वयामास वै विष्णुर्नारदंततोऽब्रुवन्।
ददाति वा न ददाति कन्यां गिरीन्द्रः स्वां वै कथ्यतां शीघ्रमेव॥४८॥
किं तेन दृष्टं किं कृतं चाद्य शंस तत्सर्वं भो नारद! ते नमोऽस्तु॥४९॥

जब इस प्रकार इन्द्रादि देवता आपस में कल्पना-जल्पना करने लगे, तब विष्णु ने उनको सान्त्वना प्रदान किया। उन्होंने नारद से पूछा—"हिमवान् अपनी कन्या प्रदान करेंगे अथवा नहीं, यह आप शीघ्र बतायें। क्या उन्होंने देखा, क्या किया, वह सब आप कहिये। हे नारद! आपको हमारा प्रणाम!।।४८-४९।।

तच्छ्रुत्वा प्रहसञ्छंभुरुवाच वचनं तदा। कन्यां दास्यति चेन्मह्यं पर्वतो हि हिमालयः।
मायया मम किं कार्यं वद विष्णो! यथातथम्॥५०॥
केनाप्युपायेन फलं हि साध्यमित्युच्यते पंडितैर्न्यायविद्भिः।
तस्मात्सर्वैर्गम्यतां शीघ्रमेव कार्यार्थिभिश्चेन्द्रपुरोगमैश्च॥५१॥
तदा शिवोऽपि विश्वात्मा पंचबाणेन मोहितः। महाभूतेनभूतेशस्त्वन्येषांचैवकाकथा॥५२॥
एवं च विद्यमानेऽसौ शंभुः परमशोभनः। कृतो ह्यनंगेनवशे यथाऽन्यः प्राकृतोजनः॥५३॥
मदनो हि बली लोके येन सर्वमिदं जगत्। जितमस्तिनिजप्रौढ्यासदेवर्षिसमन्वितम्॥५४॥
सर्वेषामेव भूतानां देवानां च विशेषतः। राजा ह्यनंगो बलवान्यस्य चाज्ञा बलीयसी॥५५॥
पार्वतीस्त्रीस्वरूपेण अजेयो भुवनत्रये। तां दृष्ट्वा हि स्त्रियं सर्वेऋषयोऽपिविचक्षणाः॥५६॥
देवा मनुष्यागन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः। आज्ञानुल्लंघिनःसर्वे मदनस्य महात्मनः॥५७॥
तपोबलेन महता तथा दानबलेन च। वेत्तुं न शक्यो मदनो विनयेन विना द्विजाः॥५८॥
तस्मादनंगस्य महान्क्रोधो हि बलवत्तरः। ईश्वरं मदनेनैव मोहितं वीक्ष्य माधवः॥५९॥

शम्भु ने यह सुनकर कहा—"हे विष्णु! माया का क्या प्रयोजन! हिमालय मुझे कन्या देंगे अथवा नहीं, यह आप सत्य कहें! न्यायविद् विद्वानों का कथन है कि चाहे जैसे हो, कार्यसिद्धि करनी चाहिये। अतः इन्द्रादि आप सभी देवता कार्यसाधनार्थ वहां जायें।" जब भूताधिपति शिव विश्वात्मा होकर भी कामदेव के ५ बाणों से मोहित हो गये, तब औरों की बात ही क्या? परम शोभन शम्भु कुछ खिन्न हो गये। प्राकृत लोगों की तरह कामदेव ने उनको वशीभूत कर लिया। इस जगत् में कामदेव अतीव बली है। सभी देवता, विशेषतः सभी प्राणी सबका राजा है यह मदन! इसकी आज्ञा अत्यन्त बलवती है। मदन ने पार्वती के रमणीय रूप द्वारा त्रिभुवन में आश्रय लिया है। पार्वती को देखकर विचक्षण ऋषि भी मदन के आज्ञाकारी हो जाते हैं। देवता, मनुष्य, गन्धर्व, पिशाच, सर्प, राक्षस भी उसकी अधीनता को मानते हैं। हे द्विजगण! एकमात्र विनय के बिना विपुल तप बल अथवा दान बल द्वारा मदन को नहीं जाना जा सकता। अतः कामदेव का रोष अत्यन्त प्रबल है। इसमें सन्देह नहीं है। ईश्वर को मदन से विमोहित होते देख माधव कहने लगे।।५०-५९।।

उवाच वाक्यं वाक्यज्ञो मा चिन्तां कुरु वै प्रभो। यदुक्तं नारदेनैव मंडपं प्रतिसर्वशः॥६०॥
त्वष्ट्रा कृतं विचित्रं च तत्सर्वं मदनात्प्रभोः। तदानीं शंकरो वाक्यमुवाच मधुसूदनम्॥६१॥

अविद्यया वृतं तेन कृतं त्वष्ट्रा हि मण्डपम्। किंतु वक्ष्यामहेविष्णोमण्डपःकेवलेनहि॥६२॥
विवाहो हि महाभाग अविद्यामूल एव च। तस्मात्सर्वे वयंयाम उद्वाहार्थं च संप्रति॥६३॥
नारदं च पुरस्कृत्य सर्वे देवाः सवासवाः। हिमाद्रिसहिता जग्मुर्मन्दिरं परमाद्भुतम्।
अनेकाश्चर्यसंयुक्तं विचित्रं विश्वकर्मणा॥६४॥
कृतं च तेनाद्य पवित्रमुत्तमं तं यज्ञावाटं बहुभिः पुरस्कृतम्।
विचित्रचित्रं मनसो हरं च तं यज्ञवाटं स चकार बुद्धिमान्॥६५॥

माधव कहते हैं—"हे प्रभो! आप चिन्ता न करें। नारद ने मण्डप के सम्बन्ध में विश्वकर्मा का जो सब विचित्र कार्य कहा है, वह सभी मदन द्वारा ही घटित समझें।" तब शंकर ने माधव से कहा—"विश्वकर्मा ने अविद्या से आवृत मण्डप बनाया है। हे विष्णु! केवल वही मण्डप ही अविद्या से ओतप्रोत है, यह मैं नहीं कह रहा हूं। हे महाभाग! यह विवाह व्यापार ही अविद्यामूलक है। अतः अब हम सभी विवाहार्थ चलें।" शंकर के यह कहने पर नारद को आगे करके इन्द्रादि प्रमुख देवगण हिमाद्रि के साथ उनके परमाश्चर्यमय भवन में गये। विश्वकर्मा ने इसका निर्माण किया था। यह पवित्र, उत्तम, बहुजन प्रशंसित, चित्रितरूपेण विचित्र, मनोहर यज्ञमण्डपरूप बना था। धीमान् विश्वकर्मा ने इस प्रकार उसका निर्माण सम्पन्न किया था।।६०-६५।।

प्रवेक्ष्यमाणास्ते सर्वे सुरेन्द्रा ऋषिभिः सह। दृष्टा हिमाद्रिणा तत्र अभ्युत्थानगतोऽभवत्॥६६॥
तथैव तेषां च मनोहराणि हर्म्याणि तेन प्रतिकल्पितानि।
गन्धर्वयक्षाः प्रमथाश्च सिद्धा देवाश्च नागाप्सरसां गणाश्च।
वसंति यत्रैव सुखेन तेभ्यः स तत्र तत्रोपवनं चकार॥६७॥
तेषामर्थे महार्हाणि धाराजिरगृहाणि च। अत्यद्भुतानि शोभंते कृतान्येव महात्मना।
निवासार्थे कल्पितानि सावकाशानि तत्र वै॥६८॥
देवानां चैव सर्वेषामृषीणां भावितात्मनाम्॥६९॥

ऋषिगण के साथ देवगण जब इस यज्ञ मण्डप में गये, तब हिमाद्रि ने उनको देखकर उठ कर स्वागत किया। हिमवान् ने अभ्यागत व्यक्तिगण के निमित्त मनोहर आवास प्रस्तुत कराकर रखा था। गन्धर्व, यक्ष, प्रमथ, सिद्ध, देवता, नाग तथा अप्सरागण उन-उन गृहों में स्वच्छन्द रूप से ठहर गये। हिमालय ने प्रत्येक निवास के पास एक-एक उपवन भी विश्वकर्मा से बनवाया था। महात्मा विश्वकर्मा ने अतिथिगण के लिए महामूल्यवान् धारागृह समूह निर्मित किया था। अब वे महाश्चर्य रूप से शोभित हो गये। सभी देवता तथा भावितात्मा ऋषिगण के निवासार्थ वहां अनेक उत्तम विस्तृत गृह बने थे। इस प्रकार शिल्पी विश्वकर्मा ने वहां अनेक गृहों का निर्माण किया था। जो जिस श्रेणी का था, उसके लिए वैसा ही निवास बना था।।६६-६९।।

एवं विस्तारयामास विश्वकर्मा बहून्यपि। भन्दिराणि यथायोग्यं यत्रतत्रैवतिष्ठताम्।
भैरवाः क्षेत्रपालाश्च येऽन्ये च क्षेत्रवासिनः॥७०॥
श्मशानवासिनश्चान्ये येऽन्ये न्यग्रोधवासिनः॥७१॥

अश्वत्थसेविनश्चान्ये खेचराश्च तथा परे। येये यत्रोपविष्टाश्च तत्रतत्रैव तेन वै॥७२॥
कृतानि च मनोज्ञानि भवनानि महांति वै। तेषामेवानुकूलानि भूतानां विश्वकर्मणा॥७३॥
तत्रैव ते सर्वेगणैः समेता निवासितास्तेन हिमाद्रिणा स्वयम्।
सेंद्राः सुरा यक्षपिशाचरक्षसां गन्धर्वविद्याप्सरसां समूहाः॥७४॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे पार्वतीपरिणयने हिमाद्रिणा देवानां निवासस्थानकरणवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥२४॥

जो भैरव तथा क्षेत्रपाल थे तथा जो क्षेत्रवासी, श्मशानवासी, न्यग्रोधवासी (वटवृक्षवासी), अश्वत्थ वृक्षवासी तथा आकाशचारी थे तथा जो जहां चाहे रहने के अभ्यस्त थे, उन-उन भूतवृन्द हेतु वैसे ही मनोहर अनुकूल महाभवनों का भी निर्माण किया। तब हिमाद्रि ने स्वयं अभ्यागत इन्द्रादि देवगण, यक्ष, पिशाच, राक्षस, गन्धर्व, विद्याधर तथा अप्सराओं के लिये प्रमथवृन्द के साथ ही उन-उन निवास स्थानों का निर्माण किया॥७०-७४॥

॥चतुर्विंश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

पञ्चविंशोऽध्यायः

शंकर की आरती हेतु मेना का आगमन, शिवपार्वती विवाहोत्सव

लोमश उवाच

तत्रोपविविशुः सर्वे सत्कृताश्च हिमाद्रिणा। तेदेवाःसपरिवाराः सहर्षाश्च सवाहनाः॥१॥
तत्रैव च महामात्रं निर्मितं विश्वकर्मणा। दीप्त्यापरमयायुक्तं निवासार्थं स्वयम्भुवः॥२॥
तथैव विष्णोस्त्वपरं भवनं स्वयमेव हि। भास्वरं सुविचित्रं च कृतंत्वष्ट्रा मनोरमम्।
वण्डीगृहं मनोज्ञं च तथैव कृतवान्स्वयम्॥३॥
तथैव श्वेतं परमं मनोज्ञं महाप्रभं देववरैः सुपूजितम्।
कैलासलक्ष्मीप्रभया महत्या सुशोभितं तद्भवनं चकार॥४॥
तत्रैव शंभुः परया विभूत्या स स्थापितस्तेन हिमाद्रिणा वै॥५॥
एतस्मिन्नंतरे मेना समायाता सखीगणैः। नीराजनार्थं शंभुं च ऋषिभिः परिवारिता॥६॥
तदा वादित्रनिर्घोषैर्नादितं भुवनत्रयम्। नीराजनं कृतं तस्य मेनया च तपस्विनः॥७॥

लोमश कहते हैं—हिमालय से सत्कृत होकर सुरगण एक साथ अपने वाहन के साथ उन-उन भवनों में रहने लगे। ब्रह्मा के निवासार्थ विश्वकर्मा ने एक अत्यन्त दीप्तिमान् विशाल भवन बनाया था। विष्णु हेतु भी ऐसा एक भवन विश्वकर्मा द्वारा निर्मित किया गया। यह भवन स्वयं ही दीप्तिमान् रहता था। यह सुन्दर रूपेण चित्रित तथा मनोहारी था। विश्वकर्मा ने अपने हाथों अनेक लोगों के बैठने के लिए एक सभागृह भी बनवाया था। यह और भी मनोरम गृह था। इसी प्रकार से और एक श्वेतवर्ण गृह विश्वकर्मा ने निर्मित किया था। यह गृह अतीव मनोरम महाप्रभायुक्त तथा प्रधान-प्रधान देवगण द्वारा पूजित था, जो कैलाश पर्वत की शोभा से शोभित था। हिमालय ने इस परम समृद्धि युक्त गृह को शम्भु को दिया। इस अवसर पर मेनका भी शंभु की आरती उतारने सखियों तथा ऋषियों के साथ आईं। तब त्रिभुवन वाद्यों की ध्वनि से निनादित हो उठा। तब मेना ने तपस्वी शंभु की आरती उतारी।।१-७।।

अवलोक्य परा साध्वी मेनाऽजानाद्धरं तदा। गिरिजोक्तमनुस्मृत्य मेना विस्मयमागता॥८॥
यद्वै पुरोक्तं च तया पार्वत्या मम सन्निधौ। ततोऽधिकं प्रपश्यामि सौन्दर्यं परमेष्ठिनः।
महेशस्य मया दृष्टमनिर्वाच्यं च संप्रति॥९॥
एवं विस्मयमापन्ना विप्रपत्नीभिरावृता। अहतांबरयुग्मेन शोभिता वरवर्णिनी॥१०॥

परम साध्वी मेना ने उस समय उनके प्रति दृष्टिपात किया। तब वे हर (शंभु) की आकृति देख सकीं। वे गिरिजा का पूर्व कथन स्मरण करके विस्मयापन्न हो गयीं। मेना ने विचार किया कि गिरिजा ने मुझसे शिव के जिस रूप का वर्णन किया था, ये तो उससे कहीं सुन्दर लग रहे हैं! मैंने इस समय परमेष्ठी महेश के जिस रूप को देखा, वह तो अनिर्वचनीय है। इसी कारण वरवर्णिनी मेना विस्मय से भर गयीं। उनके साथ तब अनेक ब्राह्मण पत्नी भी थीं। मेना तब दो वस्त्रों से परिवृत (ढँक कर) शोभित होने लगीं।।८-१०।।

कंचुकी परमा दिव्या नानारत्नैश्च शोभिता। अंगीकृता तदादेव्या रराजपरयाश्रिया॥११॥
बिभ्रती च तदा हारं दिव्यरत्नविभूषितम्। वलयानि महार्हाणि शुद्धचामीकराणि च॥१२॥
तत्रोपविष्टा सुभगा ध्यायंती परमेश्वरम्। सखीभिः सेव्यमाना सा विप्रपत्नीभिरेवच॥१३॥
एतस्मिन्नंतरे तत्र गर्गो वाक्यमभाषत। पाणिग्रहार्थं शंभुं च आनयध्वं स्वमंदिरम्।
त्वरितेनैव वेलायामस्यामेव विचक्षणाः॥१४॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य गर्गस्य च महात्मनः। अभ्युत्थानपराः सर्वेपर्वताःसकलत्रकाः॥१५॥
महाविभूत्या संयुक्ताः सर्वेमंगलपाणयः। सालंकृतास्तदातेषांपत्न्योऽलंकारमंडिताः॥१६॥
उपायनान्यनेकानि जगृहुः स्निग्धलोचनाः। तदा वादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेणभूयसा॥१७॥

उनके अंगों में नाना रत्नमण्डित दिव्य कञ्चुकावरण था। मेना देवी ऐसे कंचुक को पहन कर परम शोभायमान हो गयीं। उन्होंने दिव्यरत्न जड़े हार तथा विशुद्ध चामीकर युक्त महामूल्य वलय धारण किया था। सुभगा मेना विप्रपत्नियों से घिरी थीं। साथ ही सखियों से सेविता थीं। वे उसी स्थिति में महेश्वर का ध्यान करने लगीं। तब गर्ग मुनि ने कहा—"हे बुद्धिमान् लोगों! पाणिग्रहणार्थ इसी बेला में शीघ्र शम्भु को उनके मन्दिर में लाओ।" महात्मा गर्ग का यह वाक्य सुनकर सभी पर्वत उठ खड़े हुये। सभी पर्वत महान् ऐश्वर्यवान्, मंगलपाणि,

अलंकारधारी थे। उनकी पत्नियां भी इसी प्रकार अलंकृत थीं। उन्होंने स्निग्ध नेत्रों से सभी उपायन (उपहार) ग्रहण किया। तब समस्त वाद्य बजने लगे। साथ ही विप्रगण ब्रह्मघोष करने लगे (उपायन विवाह हेतु देने के लिए लायीं)।।११-१७।।

आजग्मुः सकलत्रास्ते यत्र देवो महेश्वरः। प्रमथैरावृतस्तत्र चंड्या चैवाभिसेवितः॥१८॥
तथा महर्षिभिस्तत्र तथा देवगणैः सह। एभिः परिवृतः श्रीमाञ्छंकरो लोकशंकरः॥१९॥
श्रुत्वा वादित्रनिर्घोषं सर्वे शंकरसेवकाः। उत्थिता ऐकपद्येन दैवेर्ऋषिभिरावृताः॥२०॥
तथोद्यतो योगिनीचक्रयुक्तो गणो गमानां पतिरेकवर्चसाम्।
शिवं पुरस्कृत्य तदानुभावास्तथैव सर्वे गणनायकाश्च॥२१॥
तद्योगिनीचक्रमतिप्रचण्डं टंकारभेरीरवनिस्वनेन।
चण्डीं पुरस्कृत्य भयानकां तदा महाविभूत्या समलंकृतां तदा॥२२॥
कंठे कर्कोटकं नागं हारभूतं चकार सा। पदकं वृश्चिकानां च दंदशूकांश्च बिभ्रती॥२३॥

वे वहां सती को लाईं, जहां महेश्वर विराजमान थे। यहां महेश्वर को प्रमथगण ने घेर रखा था। यह स्थान चण्डी देवी द्वारा अतिसेवित था तथा महर्षि तथा देवर्षिगण से परिव्याप्त था। लोकशंकर श्रीमान् शंकर इस समुदाय से वेष्ठित होकर यहां विराजित थे। तभी शंकर के सेवकगण वाद्य निर्घोष सुनकर देवता तथा ऋषिगण के साथ खड़े हो गये। सभी लोग शिव को आगे करके समस्त योगिनी, तेजस्वी गणपतिगण तथा उनके अत्यन्त सहानुभव गणनायकगण भी उठ कर खड़े हो गये। अतीव प्रचण्ड योगिनी चक्र की टङ्कार तथा भेरी ध्वनि के साथ महाविभूति भूषिता भीषणा चण्डी को अग्रगामिनी किया गया। उन चण्डीदेवी ने कर्कोटक नाग का हार पहना था तथा वृश्चिक आदि दंशकों को पदकरूपेण धारण किया था।।१८-२३।।

कर्णावतंसान्सा दधे पाणिपादमयांस्तथा। रणेहतानांवीराणांशिरांस्युरसिचापरान्॥२४॥
द्वीपिचर्मपरीधाना योगिनीचक्रसंयुता। क्षेत्रपालावृता तद्वद्भैरवैः परिवारिता॥२५॥
तथा प्रेतैश्च भूतैश्च कपटैः परिवारिता। वीरभद्रादयश्चैव गणाः परमदारुणाः।
ये दक्षयज्ञनाशार्थे शिवेनाज्ञापितास्तदा॥२६॥
तथा काली भैरवी च माया चैव भयावहा। त्रिपुरा च जया चैव तथा क्षेमकरी शुभा॥२७॥
अन्याश्चैव तथासर्वाः पुरस्कृत्य सदाशिवम्। गंतुकामाश्चोग्रतराभूतैः प्रेतैःसमावृताः॥२८॥

रण में आहत वीरों के पैर तथा हाथ उनके कर्णाभूषण थे। ऐसे रण में मृत वीरगण के मस्तक की उनके वक्ष तक लटकती माला थी। उनके परिधान में हाथी का चर्म था तथा उन्होंने योगिनीचक्र भी धारण किया था। वे क्षेत्रपाल, भैरव, प्रेत तथा कपटरूप भृत्यवर्ग से घिरी थीं। इसके अतिरिक्त दक्षयज्ञ ध्वन्स हेतु शिव ने जिसे आदेश दिया था, ऐसे सभी भयंकर वीरभद्रादिगण उनके अनुगत थे। इसी प्रकार से काली, भैरवी, माया, भयावहा, त्रिपुरा, जया, शुभा, क्षेमकरी प्रभृति अन्य महाउग्र देवीगण भी भूत-प्रेत से घिरी होकर सदाशिव की अनुगामिनी थीं।।२४-२८।।

एताः सर्वा विलोक्याथ शिवभक्तो जनार्दनः। महर्षींश्च पुरस्कृत्य ह्यमरांश्च तथैव च।
अनसूयां पुरस्कृत्य तथैव च ह्यरुन्धतीम्॥२९॥

विष्णुरुवाच

चण्डीं कुरु समीपस्थां लोकपालनतां प्रभो!॥३०॥
तदुक्तं विष्णुना वाक्यं निशम्य जगदीश्वरः। उवाच प्रहसन्नेव चंडीं प्रति सदाशिवः॥३१॥
अत्रैव स्थीयतां चण्डि यावदुद्वहनंभवेत्। ममभावान्विजानासिकार्याकार्येसुशोभने॥३२॥
एवमाकर्ण्य वचनं शंभोरमिततेजसः। उवाच कुपिता चंडी विष्णुमुद्दिश्य सादरम्॥३३॥
तथान्ये प्रमथाः सर्वे विष्णुमूचुः प्रकोपिताः। यत्रयत्र शिवो भाति तत्रतत्रवयंप्रभो॥३४॥
त्वया निवारिताः कस्माद्वयमाभ्युदये परे। तेषां तद्वचनं श्रुत्वा केशवोवाक्यमब्रवीत्॥३५॥
चण्डीमुद्दिश्य प्रमथानन्यांश्चैव तथाविधान्। यूयं चैव मया प्रोक्तामाकोपतंकर्त्तुमर्हथ॥३६॥

शिवभक्त जनार्दन ने चण्डी का दर्शन करके महर्षि, देवगण, अरुन्धती तथा अनुसूया को आगे करके सदाशिव से कहा—"हे प्रभो! आप लोकपालों द्वारा नमस्कृत देवी चण्डी को अपने समक्ष स्थान दीजिये।" जगदीश सदाशिव ने जनार्दन का यह वचन सुनकर हास्यपूर्वक चण्डी से कहा—"हे चण्डिके! जब तक विवाह क्रिया समाप्त नहीं हो जाती, तब तक तुम यहीं स्थित रहो। हे सुशोभने! तुमको मेरा भावाभाव तथा कार्य-अकार्य सभी ज्ञात है।" अमित तेजस्वी प्रभु शिव का यह वाक्य सुनकर चण्डी विष्णु के लिए व्यग्रतापूर्वक बैठ गयीं तथा अन्य प्रमथों ने भी विष्णु से क्रोध में कहा—हे विभो! जहां शिव हैं, वहीं हम हैं! लेकिन उस परम अभ्युदय पूर्ण व्यापार से हमें अलग कर रखा है। (अर्थात् हम लोगों को विवाह कार्य में नहीं जाने दे रहे हैं।) उनका यह वाक्य सुनकर केशव ने चण्डी तथा प्रमथों से कहा—"मैंने तुमसे जो कहा है, उस पर क्रोध न करना"।।२९-३६।।

एवमुक्तास्तदातेनचंडीमुख्यागणास्तदा। एकांतमाश्रिताःसर्वेविष्णुवाक्याज्ज्वलद्धृदः॥३७॥
तावत्सर्वे समायाताः पर्वतेंद्रस्य मंत्रिणः। सकलत्राः संभ्रमेण महेशं प्रति सत्त्वरम्॥३८॥
पंचवाद्यप्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा। योषिद्भिः संवृतास्तत्र गीतशब्देन भूयसा॥३९॥
एवं प्राप्ता यत्र शंभुः सकलैः परिवारितः। आगत्यकलशैःसाकंस्नापितोहिसदाशिवः।
स्त्रीभिर्मंगलगीतेन सर्वाभरणभूषितः॥४०॥
ऋषयो देवगंधर्वास्तथान्ये पर्वतोत्तमाः। शंभ्वग्रगास्तदा जग्मुः स्त्रियश्चैव सुपूजिताः।
बभौ छत्रेण महता ध्रियमाणेन मूर्द्धनि॥४१॥
चामरैर्वीज्यमानोऽसौ मुकुटेनविराजितः। ब्रह्माविष्णुस्तथाचंद्रोलोकपालास्तथैवच॥४२॥
अग्रगा ह्यपि शोभंतः श्रिया परमया युताः। तथा शंखाश्च भेर्यश्च पटहानकगोमुखाः॥४३॥
तथैव गायकाः सर्वे जग्मुः परममंगलम्। पुनः पुनरवाद्यंत वादित्राणि महोत्सवे॥४४॥

विष्णु का यह वाक्य सुनकर चण्डी तथा गण लोग दग्ध हृदय से एकान्त में बैठ गये। तभी पर्वतों के राजा के मन्त्रीगण अपने पुत्रों के साथ शीघ्रता से महेश के दर्शनार्थ आये। वहां पांच प्रकार के वाद्य उच्च स्वर

में ब्रह्मघोष तथा गीतों की ध्वनि वहां उत्थित होने लगी। स्त्रियां सज्जित होकर वहां आईं, जहां शिव परिषदों के साथ अवस्थित थे। उन्होंने वहां पहुंच कर सदाशिव को कलस जल से स्नान कराया। इसी के साथ उन्होंने मंगल गीत भी गाया। स्नानोपरान्त शिव सभी प्रकार से भूषित किये गये। ऋषि, देव, गन्धर्व तथा अन्य पर्वतगण शम्भु के समक्ष आये। रमणीगण भी आदर सत्कार के साथ आईं। शिव के मस्तक पर एक विपुलाकृति छत्र लगाया गया। उनको मुकुट धारण कराया गया तथा उन पर चामर झला जाने लगा। ब्रह्मा, विष्णु, चन्द्र तथा अन्य लोकपाल उनके समक्ष स्थित हो गये। सभी परम शोभा से शोभित थे। वहां शंख, भेरी, पटह, आनक तथा गोमुखादि वाद्य बजाये जाने लगे तथा गायकगण मंगल गायन भी करने लगे। इस विवाह महोत्सव में वाद्ययन्त्र पुनः-पुनः बजाये जा रहे थे।।३७-४४।।

अरुन्धती महाभागा अनसूया तथैव च। सावित्रीचतथालक्ष्मीर्मातृभिःपरिवारिताः।।४५।।

एभिः समेतो जगदेकबंधुर्बभौ तदानीं परमेण वर्चसा।
सचन्द्रसूर्यानिलवायुना वृतः सलोकपालप्रवरैर्महर्षिभिः।।४६।।
स वीज्यमानः पवनेन साक्षाच्छत्रं च तस्मै शशिना ह्यधिष्ठितम्।
सूर्यः पुरस्तादभवत्प्रकाशकः श्रियान्वितो विष्णुरभूच्च सन्निधौ।।४७।।

इस विवाहोत्सव में महाभागा अरुन्धती, अनुसूया, सावित्री अन्य मातृगण से परिवृत होकर आईं। इस महान् समुदाय से घिरे जगत्बन्धु शंभु परम प्रत्ययरूपेण प्रतिभात हो रहे थे। सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु तथा अन्य लोकपाल उनके चतुर्दिक् महर्षियों के साथ स्थित थे। साक्षात् पवन उनको चामर झल रहे थे। चन्द्रमा प्रभु के छत्र पर अधिष्ठित थे। सूर्य सामने प्रकाश प्रदान कर रहे थे तथा उनके सन्निधान में लक्ष्मी के साथ विष्णु विराजमान थे।।४५-४७।।

पुष्पैर्ववर्षुर्ह्यवकीर्यमाणा देवास्तदानीं मुनिभिः समेताः।
ययौ गृहं कांचनकुट्टिमं महन्महाविभूत्या परिशोभितं तदा।
विवेश शंभुः परया सपर्यया संपूज्यमानो नरदेवदानवैः।।४८।।
एवं समागतः शंभुः प्रविष्टो यज्ञमण्डपम्। संस्तूयमानो विबुधैः स्तुतिभिः परमेश्वरः।।४९।।
गजादुत्तारयामास महेशं पर्वतोत्तमः। उपविश्य ततः पीठे कृत्वा नीराजनं महत्।।५०।।
मेनया सखिभिः साकं तथैव च पुरोधसा।
मधुपर्कादिकं सर्वं यत्कृतं चैव तत्र वै।।५१।।
ब्रह्मणा नोदितः सद्यः पुरोधाः कृतवान्प्रभुः। मंगलं शुभकल्याणं प्रस्तावसदृशं बहु।।५२।।

तभी आकाश से पुष्पवृष्टि होने लगी। देवगण पुष्पवर्षा करते-करते मुनिगण के साथ सम्मिलित हो गये। तदनन्तर महाविभूति मण्डित महादेव काञ्चनकुटीमय गृह में प्रविष्ट हो गये। देवता, मनुष्य, दानवादि सभी भगवान् त्रिलोचन की पूजा करने लगे। इस प्रकार पूजित होकर शंभु ने उस यज्ञमण्डप में प्रवेश किया। वहां विबुधवृन्द उन परमेश्वर का विविध स्तव गायन कर रहे थे। तदनन्तर पर्वतराज ने शंभु को हाथी से उतारा तथा यज्ञार्थ निश्चित पीठ पर भगवान् को उपविष्ट कराया। मेना भी अपनी सखियों तथा पुरोहितों के साथ शंभु की विशेष आरती करके

मधुपर्कादि जो द्रव्य वहां आया था, उसे त्रिलोचन देव को समर्पित किया। ब्रह्मा की प्रेरणा से भगवान् पुरोहितगण ने नियमानुरूप अनेक मांगलिक कृत्य सम्पन्न किये।।४८-५२।।

अन्तर्वेद्यां संप्रवेश्य यत्र सा पार्वती स्थिता। वेदिकोपरि तन्वंगी सर्वाभरणभूषिता।।५३।।
तत्रानीतोहरः साक्षाद्विष्णुना ब्रह्मणासह। लग्नंनिरीक्षमाणास्तेवाचस्पतिपुरोगमाः।।५४।।
गर्गो मुनिश्चोपविष्टस्तत्रैव घटिकालये। यावत्पूर्णा घटी जाता तावत्प्रणवभाषणम्।।५५।।
ॐपुण्येति प्रणिगदन्गर्गो बध्वंजलिं दधे। पार्वत्यक्षतपूर्णं च शिवोपरि ववर्ष वै।।५६।।
तथा संपूजितो रुद्रो दध्यक्षतकुशादिभिः। मुदा परमया युक्ता पार्वती रुचिराननना।।५७।।
विलोकयंती शंभुं तं यदर्थे परमं तपः। कृतं पुरा महादेव्या परेषां परमं महन्।।५८।।
तपसा तेन संप्राप्तो जगज्जीवनजीवनः। नारदेन ततः प्रोक्तो महादेवो वृषध्वजः।।५९।।

अन्तर्वेदिका पर तन्वंगी सर्वाभरणभूषिता पार्वती को ले आया गया। वे आकर वेदिका पर आसीन हो गयीं। तत्पश्चात् ब्रह्मा-विष्णु दोनों ने मिलकर मूर्त्तिमान हर (शिव) को वहां बैठाया। वाचस्पति आदि प्रमुख पुरोहितगण विवाह के लयकाल का निरीक्षण कर रहे थे। गर्गमुनि काल निरीक्षणार्थ घड़ीयन्त्रस्थ कक्ष में बैठे थे। जब घड़ी में समय परिलक्षित हुआ, तब गर्ग ऋषि ने 'ॐ' का उच्चारण किया। गर्ग ने 'ॐ' पुण्य इत्यादि यन्त्र पाठ करके वधू को अंजलि प्रदान किया। पार्वती ने अक्षत से अंजलि भरकर उस अक्षत का वर्षण भगवान् शिवशंकर पर किया। परात्परा महादेवी ने पूर्वकाल में जिनके लिए महान् तप किया था, उन जगत् के जीवन स्वरूप महादेव के रूप में उनको आज अपनी तपस्या का पूर्ण फल प्राप्त हो गया था। तदनन्तर नारद एवं गर्ग तथा नारद सनकादि अन्य मुनिगण भगवान् वृषभध्वज से कहने लगे।।५३-५९।।

तथा गंगादिभिश्चान्यैर्मुनिभिः सनकादिभिः। प्रतिपूजांकुरुक्षिप्रंपार्वत्याश्चत्रिलोचन।
तदा शिवेन सा तन्वी पूजितार्घ्याक्षतादिभिः।।६०।।
एवं परस्परं तौ च पार्वती परमेश्वरौ। अर्च्यमानौ तदानीं च शुशुभाते जगन्मयौ।।६१।।
त्रैलोक्यलक्ष्म्या संवीतौ निरीक्षंतौ परस्परम्। तदा नीराजितौ लक्ष्म्या सावित्र्या च विशेषतः।
अरुन्धत्या तदा तौ च दंपती परमेश्वरौ।।६२।।
अनसूया तथा शंभुं पार्वतीं च यशस्विनीम्। दृष्ट्वा नीराजयामास प्रीत्युत्कलितलोचना।।६३।।
तथैव सर्वा द्विजयोषितश्च नीराजयामासुरहो पुनःपुनः।
सतीं च शम्भुञ्च विलोकयंत्यस्तथैव सर्वा मुदिता हसन्त्यः।।६४।।

नारदादि ऋषि कहते हैं—"हे त्रिलोचन देव! आप भी शीघ्र भगवती गिरिजा की प्रतिपूजा करें।" तब शिव भी तन्वंगी गिरिजा की पूजा अक्षतादि से करने लगे। लक्ष्मी, सावित्री, अरुन्धती ने एक साथ परमेश दम्पति शिव-पार्वती की आरती उतारी। साध्वी अनुसूया ने यशस्विनी पार्वती-शम्भु का अवलोकन करके उनकी प्रीति-प्रफुल्ल नेत्र से आरती उतारी। इसी प्रकार समागत द्विजपत्नीगण ने भी पुनः-पुनः एवंविध उनका नीराजन किया। सती तथा शंभु को देखकर सभी रमणी विमोहित हो रही थीं। उनके मुख पर हास्यच्छटा विभासित तथा विकसित होने लगीं।।६०-६४।।

लोमश उवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र गर्गाचार्यप्रणोदितः। हिमवान्मेनया सार्द्धं कन्यां दातुं प्रचक्रमे॥६५॥
हैमं कलशमादाय मेना चार्द्धांगमाश्रिता। हिमाद्रेश्च महाभागा सर्वाभरणभूषिता॥६६॥
तदा हिमाद्रिणा प्रोक्तो विश्वनाथो वरप्रदः। ब्रह्मणा सह संगत्य विष्णुनाचतथैवच॥६७॥
सार्द्धं पुरोधसा चैव गर्गेण सुमहात्मना। कन्यादानं करोम्यद्य देवदेवस्य शूलिनः॥६८॥
प्रयोगो भण्यतां ब्रह्मन्नस्मिन्समय आगते। तथेति मत्वा तेसर्वेकालज्ञा द्विजसत्तमाः॥६९॥
कथ्यतां तात्र गोत्रं स्वं कुलं चैव विशेषतः। कथयस्व महाभागइत्याकर्ण्यवचस्तथा।
सुमुखो विमुखः सद्यो ह्यशोच्यः शोच्यतां गतः॥७०॥

लोमश कहते हैं—तभी आचार्य गर्ग की अनुमति क्रम से मेना के साथ हिमालय वहां कन्यादानार्थ उद्यत हो गये। महाभागा मेना समस्त आभूषणों से भूषित होकर स्वर्णकलश लेकर वहां आईं। वे हिमालय के साथ खड़ी हो गईं। हिमाचल ने वरप्रदाता विश्वनाथ से कहा—"मैं अब ब्रह्मा, विष्णु तथा महात्मा पुरोहित गर्गाचार्य के साथ देवदेव शूलपाणि के हाथ में कन्यादान करता हूं।" उन्होंने गर्ग से कहा—"हे ब्रह्मन्! अब शुभ मुहूर्त्त काल भी आ गया है। अतः अब आप तत्सम्बन्धित मन्त्र प्रयोग करिये।" सभी कालज्ञ द्विजश्रेष्ठ भी महादेव से कहने लगे—"हां मुहूर्त्त आ गया। हे तात! आप अपना गोत्र, कुल कहिये।" यह सुनकर सुन्दर मुख वाले महेश विमुख जैसे हो गये। वे अशोचनीय होकर भी चिन्ता करने लगे।।६५-७०।।

एवंविधः सुरवरैर्ऋषिभिस्तदानीं गंधर्वयक्षमुनिसिद्धगणैस्तथैव।
दृष्टो निरुत्तरमुखो भगवान्महेशो हास्यं चकार सुभृशं त्वथ नारदश्च॥७१॥
वीणां प्रकटयामास ब्रह्मपुत्रोऽथ नारदः। तदानीं वारितोधीमान्वीणांमावादयप्रभो॥७२॥

देवता, ऋषि, यक्ष, मुनि, गन्धर्व, सिद्धादि सबने देखा कि भगवान् हर निरुत्तर हो गये। यह देखकर देवर्षि नारद अतिशय हास्य करने लगे। उन्होंने अपनी वीणा बजाना प्रारम्भ कर दिया। हिमवान् ने उनको मना करते कहा—"हे प्रभो! आप वीणावादन न करें।।७१-७२।।

इत्युक्तः पर्वतेनैव नारदो वाक्यमब्रवीत्। त्वया पृष्टो भवःसाक्षात्स्वगोत्रकथनंप्रति॥७३॥
अस्य गोत्रं कुलं चैव नाद एव परं गिरे। नादे प्रतिष्ठितः शम्भुर्नादोह्यस्मिन्प्रतिष्ठितः॥७४॥
तस्मान्नादमयः शम्भुर्नादाच्चप्रतिलभ्यते। तस्माद्वीणा मयाचाद्य वादिता हि परंतप॥७५॥
अस्य गोत्रं कुलंनाम न जानंति हि पर्वत। ब्रह्मादयो हि विबुधा अन्येषांचैवकाकथा॥७६॥
त्वं हि मूढत्वमापन्नोनजानासि हि किंचन। वाच्यावाच्यंमहेशस्यविषयाहिबहिर्मुखाः॥७७॥
येये आगमिकाश्चाद्रे नष्टास्ते नात्र संशयः। आरूपोयंविरूपाक्षोह्यकुलीनोऽयमुच्यते॥७८॥
अगोत्रोऽयं गिरिश्रेष्ठ जामाता ते न संशयः। न कर्त्तव्योविमर्शोऽत्रभवता विबुधेनहि॥७९॥
न जानंति हरं सर्वे किं बहूक्त्या ममप्रभो। यस्याज्ञानान्महाभागमोहिताऋषयोह्यमी॥८०॥
ब्रह्माऽपि तं न जानाति मस्तकं परमेष्ठिनः। विष्णुर्गतो हि पातालंन दृष्टोहितथैवच॥८१॥

तेन लिङ्गेन महता ह्यगाधेन जगत्त्रयम्। व्याप्तमस्तीतितद्विद्धि किमनेन प्रयोजनम्॥८२॥
अनयाऽराधितं नूनं तव पुत्र्या हिमालय!। तत्त्वतो हि न जानासिकथंचैवमहागिरे॥८३॥
आभ्यामुत्पाद्यते विश्वमाभ्यां चैव प्रतिष्ठितम्। एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य नारदस्य महात्मनः॥८४॥
हिमाद्रिप्रमुखाः सर्वे तथा चेन्द्रपुरोगमाः। साधुसाध्वितितेसर्वेऊचुर्विस्मितमानसाः॥८५॥
ईश्वरस्य तु गांभीर्यं ज्ञात्वासर्वे विचक्षणाः। विस्मयेनसमाश्लिष्टाऊचुःसर्वेपरस्परम्॥८६॥

पर्वतराज का वचन सुनकर नारद ने कहा—"आप साक्षात् भवदेव से अपना गोत्र तथा कुल बतलाने हेतु कह रहे हैं। किन्तु इनका गोत्र-कुल सब ही "नाद" है। नाद में ही शम्भु प्रतिष्ठित हैं तथा नाद इनमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। इसलिए त्रिलोचन नादमय हैं। यही निश्चित है तथा नाद में ही इनकी प्राप्ति होती है। हे परन्तप! तभी मैं वीणावादन कर रहा हूं। हे पर्वत! ब्रह्मादि विबुधगण भी इनका गोत्र तथा कुल नहीं जानते! तब अन्य की तो बात ही क्या? आप भी मूढ़त्व को प्राप्त हैं। तब ही तो महेश के विषय में क्या कहना, क्या नहीं कहना, यह ज्ञान आपको नहीं है। यह सब बहिर्मुख विषय है। जो सब वस्तु आगमशील है (आती है) वह सब नश्वर ही है। हे पर्वतराज! यह निश्चय है कि विरूपाक्ष देव रूपहीन तथा अकुलीन (कुलरहित) हैं। इसमें संशय की कोई बात नहीं है। आप विद्वान् हैं। आपको इस विषय में दुविधा नहीं करनी चाहिये। हे प्रभो! इस सम्बन्ध में अधिक क्या कहूं? भगवान् हर का तत्व सभी नहीं जानते। हे महाभाग! जिनको न जान पाने के कारण ऋषिगण मोहित हो जाते हैं, ब्रह्मा भी जिनको नहीं जानते, वे भी इन परमेष्ठि का मस्तक (वृद्धि) नहीं देख पाये, विष्णु भी पाताल तक जाकर इनकी अन्त सीमा नहीं जान पाये, उन महान् अगाध लिङ्ग द्वारा यह त्रिलोक व्याप्त है। इस सम्बन्ध में अधिक क्या कहा जाये! हे हिमालय! आपकी कन्या ने अवश्य इनकी आराधना की है। हे महागिरि! आप इनके तत्व को क्यों हृदयंगम नहीं कर पा रहे हैं? इन हर-पार्वती से ही इस विश्व की उत्पत्ति है तथा इनमें ही इसकी स्थिति भी है। इन शिव-पार्वती से ही सब कुछ उद्भूत है।" महात्मा नारद का यह वाक्य सुनकर हिमाद्रि आदि प्रमुख कन्यापक्षीय लोग तथा इन्द्रादि प्रमुख वरपक्षीय लोग विस्मित मन से साधुवाद देने लगे। ईश्वर के गाम्भीर्य से अवगत होकर विचक्षण लोग विस्मय के साथ परस्पर मिलकर वार्त्ता करने लगे।।७३-८६।।

ऋषय ऊचुः

यस्याज्ञया जगदिदं च विशालमेव जातं परात्परमिदं निजबोधरूपम्।
सर्वं स्वतंत्रपरमेश्वरभावगम्यं सोऽसौ त्रिलोकनिजरूपयुतो महात्मा॥८७॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे शिवशास्त्रे शिवपार्वतीविवाहवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥२५॥

ऋषिगण कहते हैं—"जिनकी आज्ञा से यह महान् जगत् उत्पन्न होता है, वे यही त्रिलोकमूर्त्ति महात्मा त्रिलोचन ही हैं। ये परात्पर तथा नित्य बोधरूप हैं।।८७।।

॥पञ्चविंश अध्याय समाप्त॥

षड्विंशोऽध्यायः

हिमालय द्वारा कन्यादान वर्णन

लोमश उवाच

अथ ते पर्वतश्रेष्ठा मेर्वाद्या जातसंभ्रमाः। ऊचुस्ते चैकपद्येन हिमवन्तं महागिरिम्॥१॥

लोमश कहते हैं—तदनन्तर मेरु, मन्दर प्रभृति प्रधान पर्वतगण एक साथ महागिरि हिमाचल से कहने लगे॥१॥

पर्वता ऊचुः

कन्यादानं क्रियतां चाद्य शैल! श्रीमाञ्छम्भुर्भाग्यतस्तेऽद्य लब्धः।
हृन्मध्ये वै नात्र कार्यो विमर्शस्तस्मादेषा दीयतामीश्वराय॥२॥
तच्छ्रुत्वा वचनंतेषां सुहृदां वै हिमालयः। सम्यक्संकल्पमकरोद्ब्रह्मणानोदितस्तदा।
इमां कन्यां तुभ्यमहं ददामि परमेश्वर!॥३॥
भार्यार्थं प्रतिगृह्णीष्व मंत्रेणानेन दत्तवान्। अस्मै रुद्राय महते देवदेवाय शंभवे।
कन्या दत्ता महेशाय गिरीद्रेण महात्मना॥४॥
वेद्यां च बहिरानीतौ दंपती कमलेक्षणौ। उपवेशितौ बहिर्वेद्यां पार्वतीपरमेश्वरौ॥५॥
आचार्येणाथ तत्रैव कश्यपेन महात्मना। आह्वानं हवनार्थाय कृतमग्नेस्तदा द्विजाः॥६॥
ब्रह्मा ब्रह्मासनगतो बभूव शिवसन्निधौ। प्रवर्तमाने हवन ऋषयश्च विचक्षणाः॥७॥
ऊचुः परस्परं तत्र नानादर्शनवेदिनः। वेदवादरताः केचिदवदन्संमतेन वै॥८॥
एवमेव न चाप्येवमेवमेव न चान्यथा। कार्यमेव न वा कार्यं कार्याकार्यं तथा परे॥९॥
इत्येवं ब्रुवतां शब्दः श्रूयते शिवसन्निधौ। स्वकीयं मतमास्थाय ह्यब्रुवंस्ते परस्परम्।
तत्त्वज्ञानविहीनास्ते केवलं वेदबुद्धयः॥१०॥

पर्वतगण कहते हैं—"हे पर्वतराज! अब आप कन्यादान करें। ये श्रीमान् शंभु तो आपको भाग्य से मिले हैं। अब इस विषय में हृदय में अन्य विमर्श न करें। आप अपनी कन्या को ईश्वर के हाथों में प्रदान करिये।" हिमालय ने अपने सुहृदगण का यह विचार सुनकर ब्रह्मा के अनुमोदन से सम्यक् संकल्प ग्रहण किया। वे कहने लगे—"हे परमेश्वर! आपको मैं कन्या प्रदान करता हूं। आप इसे भार्या के रूप में ग्रहण करें।" यह मन्त्र पढ़कर हिमाचल ने देवदेव भगवान् रुद्रदेव को कन्या का पाणिग्रहण कराया। तदनन्तर पार्वती तथा परमेश्वर दम्पति को अन्तर्वेदी से बहिर्वेदी में लाया गया तथा वहां बैठाया गया। हे द्विजगण! तब महात्मा कश्यप ने हवनार्थ अग्नि का आह्वान किया। ब्रह्मा भी शिव के पास ब्रह्मसदन में बैठे थे। होमक्रिया आरम्भ होने पर विद्वान् ब्राह्मण परस्परतः शास्त्रालाप करने लगे। कतिपय ऋषि वेदवाद में निरत हो गये कि यह ऐसा है, यह

सिद्धान्त ऐसा नहीं है, इत्यादि! कार्य है, कार्य नहीं है, कार्याकार्य है, इत्यादि! इस प्रकार विभिन्न मतवादी शास्त्रीय वाद-प्रतिवादकारी ऋषियों के वचनों की ध्वनि शिव तक पहुंचने लगी। प्रत्येक व्यक्ति अपने मत को स्थापित करता, अन्य के मत का प्रतिवाद करता था। यह वादविवाद वहां होता जा रहा था। ये सभी तत्वज्ञान से रहित तथा मात्र वेदबुद्धि ही थे!।।२-१०।।

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा परस्परजयैषिणाम्। प्रहस्य नारदो वाक्यमुवाच शिवसन्निधौ।।११।।
यूयं सर्वे वादिनश्च वेदवादरतास्तथा। मौनमास्थायभो विप्राहृदि कृत्यसदाशिवम्।।१२।।
आत्मानं परमात्मानं पराणां परमं च तत्। येनेदं कारितं विश्वं यतः सर्वं प्रवर्त्तते।
यस्मिन्निलीयते विश्वं तस्मै सर्वात्मने नमः।।१३।।
सोऽयमास्तेऽधुना गेहे पर्वतेन्द्रस्य भो द्विजाः। मुखादस्यैव संजाताः सर्वे यूयं विचक्षणाः।।१४।।

इन परस्परतः जयेच्छु ऋषियों का वाक्य-विवाद सुनकर नारद ने शिव के पास ही स्थित रहते इन सबसे कहा—"आप सभी वेदवाद निरत होकर केवल विवाद तथा वितर्क कर रहे हैं। अब आप सभी मौनी होकर सदाशिव का हृदय में ध्यान करिये। यह जान लीजिये कि सदाशिव ही आत्मा, परमात्मा तथा परात्पर देव हैं। इन्होंने ही विश्व रचना की है। इनसे ही सबकुछ प्रवर्त्तित हो रहा है। इनमें ही विश्व का विलय हो जाता है। इसलिए इन सर्वात्मा को प्रणाम करता हूं। हे द्विजगण! ये सदाशिव इस समय पर्वतराज के गृह में विराजमान हैं। आप जैसे विद्वानों का प्रादुर्भाव इनके मुख से हुआ है"।।११-१४।।

एवमुक्तास्तदा तेन नारदेन द्विजोत्तमाः। उपदेशकरैर्वाक्यैबोधितास्ते द्विजोत्तमाः।।१५।।
वर्तमाने च यज्ञे च ब्रह्मा लोकपितामहः। ददर्श चरणौ देव्या नखेन्दुं च मनोहरम्।।१६।।
दर्शनात्स्खलितः सद्यो बभूवाम्बुजसंभवः। मदनेन समाविष्टो वीर्यं च प्राच्यवद्भुवि।।१७।।
रेतसा क्षरमाणेन लज्जितोऽभूत्पितामहः। चरणाभ्यां ममर्द्दाथ महद्गोप्यं दुरत्ययम्।।१८।।
बहवश्चर्षयो जाता वालखिल्याः सहस्त्रशः। उपतस्थुस्तदा सर्वे तातेतातेति चाब्रुवन्।।१९।।
नारदेन तदोक्तास्ते बालखिल्याः प्रकोपिना। गच्छंतु बटवो यूयं पर्वतं गन्धमादनम्।।२०।।
न स्थातव्यं भवद्भिश्च भवतां न प्रयोजनम्। इत्येवमुक्तास्ते सर्वे वालखिल्याश्च पर्वतम्।
नारदेन समादिष्टा ययुः सर्वे त्वरान्विताः।।२१।।
नारदेन ततो ब्रह्माऽऽश्वासितो वचनैः शुभैः। तावच्च हवनं पूर्णं जातं तस्य महात्मनः।।२२।।

जब नारद ने उन द्विजों से यह कहा, तब वे इस उपदेशात्मक वाक्यों से प्रबुद्ध हो गये। तब विवाह यज्ञ आरम्भ होने पर देवी के मनोहर नखचन्द्र की ओर पितामह ब्रह्मा की दृष्टि पड़ गयी। वह देखते ही कमलयोनि का वीर्य स्खलित हो गया। मदनावेश में उनका वीर्य भूमि पर गिरा। इस रेतःक्षरण कार्य से पितामह लज्जावनत हो गये। उस वीर्य से (८८०००) सहस्त्रों बालखिल्य ऋषियों की उत्पत्ति कही गयी है। तदनन्तर नारद ने कुपित होकर उनसे कहा—"हे बटुगण! तुम सब गन्धमादन पर्वत पर जाओ, यहां न रुको। तुम सबका यहां कोई प्रयोजन नहीं है।" नारद का आदेश पाकर वे बालखिल्य ऋषिगण गन्धमादन पर्वत चले गये। तब नारद ने अपनी सुन्दर वाणी से ब्रह्मदेव को आश्वासन प्रदान किया। इसी समय महात्मा महेश्वर का हवन कार्य सम्पूर्ण हो गया।।१५-२२।।

महेशस्य तथा विप्राः शांतिपाठपरा बभुः। ब्रह्मघोषेण महता व्याप्त मासीद्दिगंतरम्॥२३॥
ततो नीराजितो देवो देवपत्नीभिरुत्तमः। तथैव ऋषिपत्नीभिरर्चितः पूजितस्तथा॥२४॥

तथा गिरीन्द्रस्य मनोरमाः शुभा नीराजयामासुरथैव योषितः।
गीतैः सुगीतज्ञविशारदाश्च तथैव चान्ये स्तुतिभिर्महर्षयः॥२५॥
रत्नानि च महार्हाणि ददौ तेभ्यो महामनाः। हिमालयो महाशैलः संहृष्टः परितोषयन्॥२६॥

बभौ तदानीं सुरसिद्धसंघैर्वेद्यां स्थितोऽसौ सकलत्रको विभुः।
सर्वैरुपेतो निजपार्षदैर्गणैः प्रहृष्टचेता जगदेकसुन्दरः॥२७॥
एतस्मिन्नंतरे तत्र ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः। ऋषिगंधर्वयक्षाश्च येऽन्ये तत्र समागताः॥२८॥

सर्वान्समभ्यर्च्य तदा महात्मना महान्गिरीशः परमेण वर्चसा।
सद्रत्नवस्त्राभरणानि सम्यग्ददौ च ताम्बूलसुगन्धवार्यपि॥२९॥

तत्पश्चात् द्विजगण शान्ति मन्त्रों का पाठ करने लगे। उस समय विपुल ब्रह्मघोष से दिशायें आपूरित हो गयीं। तत्पश्चात् देवपत्नी समूह द्वारा देवदेव शंकर की नीराजना की गयी। ऋषिपत्नियों ने भी भगवान् का पूजन किया। गिरिराज की जो अन्य मनोहरा सुन्दरी पत्नियां थीं, उन्होंने भी शिव की आरती उतारी। अन्य संगीतज्ञ निपुण महर्षियों ने स्तुतिगीत द्वारा उनको प्रसन्न किया। महामना महापर्वतराज हिमालय प्रसन्न होकर जामाता को सन्तुष्ट करने हेतु महामूल्य रत्नसमूह प्रदान करने लगे। तब जगत् में एकमात्र सर्वसुन्दर भगवान् भवदेव शिव वहां पर देवता, सिद्ध तथा पार्षदों से घिरे तथा प्रसन्नचित्त होकर वेदी के ऊपर सपत्नीक बैठे हुये शोभायमान हो रहे थे। इस अवसर पर महापर्वत हिमालय ने ब्रह्मा, विष्णु आदि प्रमुख अतिथियों को तथा ऋषि, गन्धर्व, यक्ष आदि की अर्चना के साथ उनको वस्त्र, रत्न तथा आभूषण प्रदान किया। उनको ताम्बूल तथा सुगन्धित जल भी प्रदान किया।।२३-२९।।

तदा शिवं पुरस्कृत्याभ्यवजह्नुः सुरेश्वराः। तथासर्वे मिलित्वातु ऐकपद्येन मोदिताः॥३०॥
पंक्तीभूताश्च बुभुजुर्लिंगिना शृंगिणा सह। केचिद्गणाःपृथग्भूतानानाहास्यरसैर्विभुम्॥३१॥
अतोषयन्नारदाद्या अनेकालीकसंयुताः। तथा चण्डीगणाः सर्वे बुभुजुः कृतभाजनाः॥३२॥
वैताला क्षेत्रपालाश्च बुभुजुःकृतभाजनाः। साकिनीडाकिनीचैवयक्षिण्योमातृकादयः॥३३॥

योगिन्योऽथ चतुःषष्टिर्योगिनो हि तथा परे।
दश कोट्यो गणानां च कोट्येका च महात्मनाम्॥३४॥
एवं तु ऋषयः सर्वे तथाऽन्ये विबुधादयः। योगिनोहि मयाचान्येकथिताःपूर्वमेवहि॥३५॥

तब शिव को अग्रवर्त्ती करके सुरश्रेष्ठगण आहारार्थ विराजित हो गये। प्रमथगण तथा पर्वतगण सभी ने एक पंक्ति में भोजन किया। कोई-कोई दल अलग पंक्ति में बैठा भोजन कर रहा था। सभी नाना हास्यरस की बातें करते भगवान् सदाशिव को सन्तुष्ट करने लगे। अनेक अलीक वाक्य बोलने में कुशल नारदादि ऋषिगण के दल ने भी इस हास्यरस वार्त्ता में योगदान दिया। इस प्रकार से चण्डीगण, बेताल, क्षेत्रपाल, शाकिनी, डाकिनी, यक्षिणी,

मातृकादि ६४ योगिनी तथा योगीगण, ११ करोड़ महात्मा प्रमथगण, ऋषिगण, अन्यान्य विबुधगण तथा अन्य योगीगण ने वहां भोजन ग्रहण किया। ६४ योगिनीगण का नाम तो पहले ही कहा गया है।।३०-३५।।

योगिन्यश्चैव कथितास्तासां भक्ष्यंवदामि वः। खड्गानांकेचिदानीयक्रव्यंपवित्रमेवच।
भुञ्जन्ति चास्थिसंयुक्तं तथांत्राणि बुभुक्षिताः॥३६॥
आनीय केचिच्छीर्षाणि महिषाणां गुरूणि च॥३७॥
तथा केचिन्नृत्यमानास्तदानीं रोरूय्यमाणाः प्रथमाश्चैव चान्ये।
केचित्तूष्णीमास्थिता रुद्ररूपाः परेचान्याँल्लोकमानास्तथैव॥३८॥
योगिनीचक्रमध्यस्थो भैरवो हि ननर्त च। तथान्ये भूतवेताला मामेत्येवं प्रलापिनः॥३९॥
एवं तेषामुद्धवं हि निरीक्ष्य मधुसूदनः। उवाच प्रहसन्वाक्यं शंकरं लोकशंकरम्॥४०॥
एतन्गणान्वारय भो अत्र भक्तांश्च सम्प्रति।
अस्मिन्काले च यत्कार्यं सर्वैस्तत्कार्यमेवच॥४१॥
पांडित्येन महादेव तस्मादेतान्निवारय। तच्छ्रुत्वाभगवान्रुद्रो वीरभद्रमुवाचह॥४२॥

अब उनकी भक्ष्य सामग्री का वर्णन करता हूं। इन ६४ योगिनीगण में से कोई-कोई योगिनी खड्ग (गैंडा) नामक महाबली पशु का क्रव्य लाकर उसे पवित्र मानकर उसका अस्थि सहित भोजन करने लगी। कोई योगिनी भूख के कारण आंतों का भक्षण कर रही थी। कोई-कोई योगिनी भैंसे का विशाल मस्तक भक्षण कर रही थी। अन्य प्रमथों में से कोई-कोई तो क्रन्दन कर रहा था, कोई नृत्यरत था। कोई-कोई रुद्ररूपीगण मौनी होकर शान्त था। अन्य प्रमथ दूसरे प्रमथों का कृत्य देख रहे थे। योगिनी चक्रस्थ भैरवगण नृत्य करते जा रहे थे। अन्य भूत-बेताल लोग 'मा' 'मा' का चीत्कार कर रहे थे। उनके इस उत्सव व्यापार का अवलोकन करके मधुसूदन ने हंसते हुये लोकशंकर शिव से कहा—"हे देव! आप सम्प्रति प्रमत्त प्रमथों को रोकिये। हे महादेव! इस समय के सभी कर्त्तव्यों को विचक्षण रूप से सम्पन्न करना है। इसलिए इन सबको रोकें।" यह सुनकर भगवान् रुद्र ने वीरभद्र से कहा।।३६-४२।।

रुद्र उवाच

वारयस्व प्रमत्तांश्च क्षीबांश्चैव विशेषतः। तेनोक्तो वीरभद्रश्च शंभुना परमेष्ठिना।
आज्ञापिताः प्रमत्ताश्च वीरभद्रेण धीमता॥४३॥
प्रमथा वारितास्तेन तूष्णीमाश्रित्य ते स्थिताः॥४४॥

रुद्र कहते हैं—"इन सब प्रमत्त प्रमथों को रोको।" परमेष्ठि शंभु का यह आदेश पाकर धीमान् वीरभद्र ने प्रमथों को ऐसा न करने का निषेधपूर्ण आदेश दिया। तब वीरभद्र द्वारा रोके जाने पर वे प्रमथगण मौनावलम्बन द्वारा बैठ गये।।४३-४४।।

निश्चला योगिनीमध्ये भूतप्रमथगुह्यकाः।
शाकिन्यो यातुधानाश्च कूष्माण्डाः कोपिकर्पटाः॥४५॥

तथाऽन्ये भूतवेताला: क्षेत्रपालाश्च भैरवा:। सर्वे शान्ता: प्रमत्ताश्च बभूवु: प्रमथादय:॥४६॥
एवं विस्तारसंयुक्तं कृतमुद्वहनं तदा। हिमाद्रिणा परं विप्रा: सुमंगल्यं सुशोभनम्॥४७॥
चत्वारो दिवसा जाता: परिपूर्णेन चेतसा। हिमाद्रिणा कृतापूजा देवदेवस्य शूलिन:॥४८॥
वस्त्रालंकाराभरणै रत्नैरुच्चावचैस्तत:। पूजयित्वा महादेवं विष्णोर्वचनपरोऽभवत्॥४९॥

निश्चला योगिनी, भूत, प्रमथ, गुह्यक, शाकिनी, राक्षस, कूष्माण्ड, कोपिकर्पट तथा अन्य भूत-बेताल, क्षेत्रपाल, भैरव तथा प्रमत्त प्रमथों ने शान्त भाव वरण किया। हे विप्रगण! इस प्रकार हिमालय ने नाना आडम्बर के साथ इस विवाह व्यापार को सम्पन्न किया (व्यापार = कृत्य) ४ दिन पर्यन्त हिमालय ने पूरे मनोयोग के साथ देवदेव शूलपाणि की अर्चना किया था। नाना वस्त्र, अलंकार, आभरण, विचित्र रत्नादि से हिमालय ने देवदेव शूलपाणि को अर्चित किया। तदनन्तर इस प्रकार उन्होंने विष्णु के वचन का पालन किया।।४५-४९।।

लक्ष्मीसमेतं विष्णुं च वस्त्रालंकरणै: शुभै:। पूजयामास हिमवांस्तथा ब्रह्माणमेव च।
इन्द्रं पुरोधसा सार्द्धमिन्द्राण्या सहितं विभुम्॥५०॥
तथैव लोकपालांश्च पूजयित्वा पृथक्पृथक्॥५१॥
तथैव पूजिता चण्डी भूतप्रमथगुह्यकै:। वस्त्रालंकरणैश्चैव रत्नैर्नानाविधैरपि।
ये चान्य आगतास्तत्र ते च सर्वे प्रपूजिता:॥५२॥
एवं तदानीं प्रतिपूजिताश्च देवाश्च सर्वे ऋषयश्च यक्षा:।
गन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणास्तथैव मर्त्याप्सरसां गणाश्च॥५३॥

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे शिवपार्वतीविवाहमंगलोत्सववर्णनं नाम षड्विंशोऽध्याय:।।२६।।

उन्होंने लक्ष्मी के साथ शुभ वस्त्रालंकार से लक्ष्मी तथा विष्णु का पूजन किया। इस प्रकार से उन्होंने ब्रह्मा, बृहस्पति, इन्द्राणी-इन्द्र, अन्य लोकपालों की अलग-अलग अर्चना को सम्पन्न किया। भगवती चण्डी तथा अन्य सभी अतिथिगण की पूजा हिमाचल द्वारा वस्त्र, अलंकार, नाना रत्नों से यथाविधि की गयी। इस प्रकार तब देव, ऋषि, यक्ष, गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध, चारण, मर्त्य तथा अप्सरागण सबने वहां यथोचित पूजन प्राप्त किया।।५०-५३।।

।।षड्विंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

सप्तविंशोऽध्यायः

सबका विवाहोपरान्त स्वस्थान गमन, स्कन्दोत्पत्ति वर्णन

लोमश उवाच

तथैव विष्णुना सर्वे पर्वताश्च प्रपूजिताः। सह्याचलश्च विंध्यश्च मैनाको गंधमादनः॥१॥
माल्यवान्मलयश्चैव महेन्द्रो मंदरस्तथा। मेरुश्चैव प्रयत्नेन पूजितो विष्णुना तदा॥२॥
श्वेतः कृतः श्वेतगिरिर्नीलद्रिश्च तथैव च। उदयाद्रिश्च शृंगश्च अस्ताचलवरोमहान्॥३॥
मानसाद्रिस्तथा शैलः कैलासः पर्वतोत्तमः। लोकालोकस्तथा शैलःपूजितःपरमेष्ठिना॥४॥
एवं ते पर्वतश्रेष्ठाः पूजिता सर्व एव हि। तथान्ये पूजितास्तेन सर्वे पर्वतवासिनः॥५॥
विष्णुना ब्रह्मणा सार्द्धं कृतं सर्वं यथोचितम्।
अन्येऽहनि च संप्राप्ते वरयात्रा कृता तथा॥६॥
हिमाद्रिणा बंधुभिश्च पर्वतं गंधमादनम्। ययुः सर्वे सुरगणा गणाश्च बहवस्तथा॥७॥
प्रमथाश्च तथा सर्वे तथा चंडीगणाः परे। ये चान्ये बहवस्तत्र समायाता हिमालयम्॥८॥
शिवस्योद्वहनं विप्राः शिवेन परिभाविताः। परं हर्षं समापन्ना दृष्ट्वा तौ दंपती तदा॥९॥
पार्वतीसहितः शंभुः शंभुना सह पार्वती। पुष्पगन्धौयथास्यातां वागर्थाविवतत्त्वतः॥१०॥
तथा प्रकृतिपुंसौ च ऐकपद्येन नान्यथा। दंपती तौ गजारूढौ शुशुभाते महाप्रभौ॥११॥

लोमश कहते हैं—इस प्रकार ब्रह्मा तथा विष्णु ने पर्वतों की पूजा किया। सह्याद्रि, विन्ध्य, मैनाक, गन्धमादन, माल्यवान्, मलय, महेन्द्र, मन्दर तथा मेरु की पूजा विष्णुदेव ने सम्पन्न किया। ब्रह्मदेव ने श्वेतपर्वत, नीलाद्रि, उदयगिरि, श्रङ्गवान्, महेन्द्र, अस्ताचल, मानसगिरि, कैलास पर्वत, लोकालोक पर्वत की पूजा किया। इस प्रकार सबने प्रधान-प्रधान पर्वत पूजन सम्पन्न किया। ब्रह्मा के साथ विष्णु एवं अन्य पर्वतवासी गण की भी पूजा सम्पन्न की गयी। अगले दिन बन्धुओं के साथ हिमालय ने गन्धमादन पर्वत तक वर को साथ रहकर पहुंचाया। देवता, प्रमथगण, चण्डीगण, हिमालय आदि पर्वत तथा देवता तथा असुर साथ ही जाने लगे। शिव द्वारा सम्मानित ब्राह्मण भी शिव के विवाहोपलक्ष्य में इन नव दम्पत्ति शिव-शिवा को देखकर तत्काल प्रसन्न हो गये। पार्वती के साथ शम्भु तथा शम्भु के साथ पार्वती का कोई भी वस्तुगत भेद नहीं है। जैसे पुष्प तथा गन्ध, वाक्य तथा अर्थ अभिन्न हैं, जैसे प्रकृति तथा पुरुष अभिन्न हैं, उसी प्रकार शिवा-शिव में अभेद है। ये महप्रभ दम्पति हाथी पर आरूढ़ थे तथा अत्यन्त शोभायमान हो रहे थे।।१-११।।

विमानस्थस्तदा ब्रह्मा विष्णुश्च गरुडोपरि। ऐरावतगतश्चेंद्रः कुबेरः पुष्पकोपरि॥१२॥
पाशी च मकरारूढो यमो महिषमेव च। प्रेतारूढो नैर्ऋतः स्यादग्निर्बस्तगतो महान्॥१३॥
मृगारूढोऽथ पवन ईशो वृषभमेव च। इत्येवं लोकपालाश्च सग्रहाः परमेष्ठिनः॥१४॥
स्वैः स्वैर्बलैः परिक्रांतास्तथान्ये प्रमथादयः। हिमाद्रिश्च महाशैल ऋषभो गंधमादनः॥१५॥

सह्याचलो नीलगिरिर्मंदरो मलयाचलः। कैलासो हि महातेजा मैनाकश्च महाप्रभः॥१६॥
एते चान्ये च गिरयः श्रीमन्तो हि महाप्रभाः। सकलत्राश्चतेसर्वे ससुताश्च मनोरमाः॥१७॥
बलिनो रूपिणः सर्वे मेर्वाद्यास्तत्र पर्वताः। वरयात्राप्रसंगेन शिवार्चनपराभवन्॥१८॥
नंदिना ह्युपविष्टास्ते मार्वाद्यास्तत्र पर्वताः। वरयात्रा कृतातेन यथोक्ताच हिमाद्रिणा।
सर्वैस्तैर्बंधुभिः सार्द्धं पुनरागमनं कृतम्॥१९॥
स्वकालयस्थो हिमवान्स रेजे हि महायशाः। शिवसंपर्कजेनैव महसा परमेण च।
विख्यातो हि महाशैलस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः॥२०॥

ब्रह्मा विमान पर स्थित थे, गरुड़ पर विष्णु आसीन थे, इन्द्र ऐरावत पर, कुबेर पुष्पक विमान पर, वरुण मकर पर, यम महिष पर, निर्ऋति प्रेत पर, अग्नि बकरे पर, पवन मृग पर तथा ईशान वृषारूढ़ थे। इसी प्रकार ग्रहगण, लोकपालगण अपने-अपने दल के साथ जाने लगे। प्रमथगण तथा महापर्वत हिमाचल, ऋषभ, गन्धमादन, सह्य, नीलगिरि, मंदर, मलयाचल, कैलास, महत्तेजस्वी मैनाक पर्वत तथा अन्य श्रीमान् बलवान्, रूपवान्, महाप्रभ मेरु आदि मनोरम पर्वत अपने पुत्रादि के साथ वरयात्रा प्रसंग में शिवार्चन तत्पर हो गये। मेरु प्रभृति प्रमुख पर्वत नन्दी के साथ बैठे। हिमाद्रि ने उल्लिखित रूप से वरयात्रा सम्पन्न किया। तब वे समस्त बन्धु-बान्धवों के साथ लौट आये। तदनन्तर महामना हिमवान् अपने गृह में निवास करने लगे। महा समारोह से कन्यादान द्वारा जिन्होंने शंकर को अपने प्रति प्रसन्न किया था, वे महापर्वत हिमवान् शिवसम्पर्क जनित तेज प्रकर्ष द्वारा त्रैलोक्य प्रसिद्ध हो गये!॥१२-२०॥

कन्यादानेन महता तुष्टो यस्य च शंकरः। ते धन्यास्ते महात्मानः कृतकृत्यास्तथैवच॥२१॥
द्व्यक्षरं नाम येषां च जिह्वाग्रे संस्थितं सदा। शिवेति द्व्यक्षरं नाम यैर्हदीरितमद्यवै।
ते वै मनुष्यरूपेण रुद्रा एव न संशयः॥२२॥

जिनकी जिह्वा के अग्रभाग में 'शिव' यह दो अक्षर का नाम विद्यमान रहता है, वे ही यहां धन्य हैं। वे ही कृतार्थ तथा महात्मा हैं। 'शिव' यह दो अक्षर का नाम जिनके हृदय में सदा समुत्थित होता है, वे साक्षात् रुद्र हैं, भले ही वे मनुष्य देहधारी हैं। इसमें सन्देह न करें॥२१-२२॥

किंचिद्दानेन संतुष्टः पत्रेणापि तथैव च। तोयेनापि हि संतुष्टो महादेवो निरन्तरम्॥२३॥
पत्रेण पुष्पेण तथा जलेन प्रीतो भवत्येष सदाशिवो हि।
तस्माच्च सर्वैः प्रतिपूजनीयः शिवो महाभाग्यकरो नृणामिह॥२४॥
एको महाञ्ज्योतिरजः परेशः परापराणां परमो महात्मा।
निरंतरो निर्विकारो निरीशो निराबाधो निर्विकल्पो निरीहः॥२५॥
निरंजनो नित्यरूपो निरोधो नित्यानन्दो नित्यमुक्तः सदैव।
एवंभूतो देवदेवोऽर्च्चितश्च तैर्देवाद्यैर्विश्ववेद्यो भवश्च।
स्तुतो ध्यातः पूजितश्चिंतितश्च सर्वज्ञोऽसौ सर्वदा सर्वदश्च॥२६॥

महादेव तो किंचित वस्तु प्रदान करने मात्र से सन्तुष्ट हो जाते हैं। कुछ बिल्वपत्र, कुछ जल से ही उनको महान् सन्तोष होता है। पत्र-पुष्प-फल-जल से ही सदाशिव प्रसन्न हो जाते हैं। अतः विपुल भाग्य प्रदाता शिव मनुष्य हेतु सदा पूज्य हैं। वे अद्वितीय, महान्, ज्योतिः रूप, अजन्मा, परेश, परात्पर में भी परम, महात्मा, चिद्घन, निर्विकार, निरीश, निराकार, निर्विकल्प, निरीह, निरंजन, नित्यरूप, नित्यानन्द तथा नित्यमुक्त हैं। इस प्रकार विश्ववेद्य देवदेव, भवदेव ही देवगणार्चित, स्तुत तथा ध्यात (ध्यान योग्य), पूजित तथा मन में चिन्तनीय हैं। वे सर्वज्ञ तथा सब कुछ देने वाले हैं।।२३-२६।।

यथा वरिष्ठो हिमवान्प्रसिद्धः सर्वैर्गुणैः सर्वगुणो महात्मा।
विश्वेशवंद्यो हि तदा हिमालयो जातो गिरीणां प्रवरस्तदानीम्॥२७॥
मेनया सह धर्मात्मा यथास्थानगतस्ततः। सर्वान्विसर्जयामास पर्वतान्पर्वतेश्वरः॥२८॥
गतेषु तेषु हिमवान्पुत्रैः पौत्रैः प्रपौत्रकैः। राजा गिरीणां प्रवरो महादेवप्रसादतः॥२९॥
अथो गिरिजया सार्द्धं महेशो गन्धमादने। एकान्ते च मतिं चक्रे रमणार्थं स्वरूपवान्॥३०॥
सुरतेनैव महता तपसा हि समागमे। द्वयोः सुरतमारब्धं तद्द्वयोश्च तदाऽभवत्॥३१॥
अनिष्टं महदाश्चर्यं प्रलयोपममेव च। तस्मिन्महारते प्राप्ते नाविंदंत सुखं परम्॥३२॥
सर्वे ब्रह्मादयो देवाः कार्याकार्यव्यवस्थितौ। रेतसा च जगत्सर्वं नष्टं स्थावरजंगमम्॥३३॥

सर्वगुणों के आधार महात्मा हिमवान् पहले से ही अपने समस्त गुणों के कारण प्रसिद्ध तथा वरिष्ठ थे। उस समय ये इन विश्वेश द्वारा वन्दित होकर पर्वतों में भी गरीयान् (महान्) हो उठे। महात्मा पर्वतराज हिमालय ने अपने आवास पर जाकर समस्त पर्वतगण को विदा किया। उन सबके द्वारा अपने-अपने स्थान पर चले जाने के अनन्तर वरेण्य गिरिराज हिमालय महादेव की कृपा से पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्रों के साथ सुख तथा स्वच्छन्दता से निवास करने लगे। तदनन्तर वसन्त का आगमन होने पर महेश्वर ने गन्धमादन पर्वत पर महासुरत द्वारा गिरिजा के साथ एकान्त में विहाररत होने की इच्छा किया। इच्छामात्र से उन दोनों के मध्य काम क्रीड़ा प्रारम्भ हो गयी। यह महान् आश्चर्यप्रद कामक्रीड़ा थी। उससे मानों जगत् में प्रलय का अनिष्ट उपस्थित हो गया! इस महान् रतिक्रीड़ा के कारण ब्रह्मादि देवता कार्याकार्य व्यवस्था में तनिक भी सुख नहीं पा रहे थे। महेश्वर के वीर्यपात से समस्त स्थावर-जंगम जगत् नष्ट हो गया।।२७-३३।।

सस्मार चाग्निं ब्रह्मा च विष्णुश्चाध्यात्मदायकः।
मनसा संस्मृतः सद्यो जगामाग्निस्त्वरान्वितः॥३४॥
ताभ्यां संप्रेषितोऽपश्यद्रुचिरं शिवमंदिरम्। द्वारि स्थितं नंदिनं च ददर्शाग्रे महाप्रभम्॥३५॥
अग्निर्ह स्वस्तदाभूत्वा काश्मीरसदृशच्छविः। प्रविष्टोन्तःपुरंशंभोर्नानाश्चर्यसमन्वितम्॥३६॥
अनेकरत्नसंवीतं प्रासादैश्च स्वलंकृतम्। तदंगणमनुप्राप्य उपविश्याह हव्यवाट्॥३७॥
पाणिपात्रस्य मे ह्यम्ब भिक्षांदेह्यवरोधतः। तच्छुत्वावचनंतस्यपाणिपात्रस्यवालिका॥३८॥
यावद्गातुंचसारेभेभिक्षांतस्मैततः स्वयम्। उत्थायसुरतात्तस्माच्छिवोहिकुपितोभृशम्॥३९॥

रुद्रस्त्रिशूलमुद्यम्य भैरवो ह्यऽभवत्तदा। निवारितोगिरिजयावधात्तस्माच्छिवःस्वयम्।
भिक्षां तस्मै ददौ वाचा अग्नये जातवेदसे॥४०॥

ब्रह्मा तथा आध्यात्मदायक विष्णु ने अग्नि को स्मरण किया। स्मरण मात्र से वहां अग्नि तत्काल आ गये। ब्रह्मा तथा विष्णु की प्रेरणा से अग्नि ने शिवमन्दिर का दर्शन करके देखा कि उसके द्वार पर महाप्रभावशाली नन्दी स्थित हैं। उनका दर्शन होने पर अग्निदेव ने काश्मीर तुल्य कान्तिवान् ह्रस्व (सूक्ष्म) शरीर धारण किया तथा शम्भु के नाना आश्चर्यमय अन्तःपुर में प्रवेश किया। वहां देखा कि वह अन्तःपुर नाना रत्नछटा से व्याप्त है तथा प्रासादों के तारतम्य से अलंकृत है। (प्रासाद मालावत् है, अर्थात् जैसे माला में अनेक मणियां गुथी रहती हैं; वैसे ही एक के बाद एक प्रासाद बने हैं) इस अन्तःपुर में बैठ कर अग्नि कहने लगे—"हे माताः! इस अन्तःपुर में मेरे हाथों रूप पात्र में आप भिक्षा दान करें।" यह सुनकर अम्बिका वहां पर स्वयं उनको भिक्षादानार्थ पहुंची। तभी शिव कामक्रीड़ा से उठ कर अत्यन्त कोप से शूल उठाकर भैरवमूर्त्ति रूप हो गये, तथापि गिरिजा ने उनको हिंसा से रोका और गिरिजा ने जातवेदा अग्नि को भिक्षा प्रदान किया।।३४-४०।।

पाणौ भिक्षां गृहीत्वाथप्रत्यक्षंतेनचाग्निना। भिक्षिताकुपितातंवैशशापगिरिजा ततः॥४१॥
रे भिक्षो भविताशापात्सर्वभक्षोममाशुवै। अनेन रेतसासद्यःपीडांप्राप्स्यसि सर्वतः॥४२॥
इत्युक्तो भक्षयित्वाग्नी रेत ईशस्य हव्यवाट्।
यत्र देवाः स्थिताः सर्वे ब्रह्माद्याश्चैव सर्वशः॥४३॥
आगत्याकथयत्सर्वं तद्रेतोभक्षणादिकम्। सर्वे सगर्भा ह्यभवन्निन्द्राद्या देवतागणाः॥४४॥
अग्नेर्यथा हविश्चैव सर्वेषामुपतिष्ठति। आग्नेर्मुखोद्भवेनैव रेतसा ते सुरेश्वराः॥४५॥
सगर्भाह्यभवन्सर्वे चिंतया च प्रपीडिताः। विष्णुं शरणमाजग्मुर्देवदेवेश्वरं प्रभुम्॥४६॥

अग्नि ने अपनी हथेली पर भिक्षा लिया तथा प्रत्यक्ष रूप से विराजित हो गये। गिरिजा ने क्रोधित होकर अग्नि को शाप दिया—"हे भिक्षु! तुम मेरे शाप के कारण अब सर्वभक्षी हो जाओगे। इस वीर्य से तुम सर्वतोभावेन पीड़ित रहोगे।" हव्यवाहन अग्नि ने उस शिववीर्य का पान कर लिया तथा वहां गये, जहां ब्रह्मादि देवगण स्थित थे। अग्नि ने उन सब देवताओं से वीर्यभक्षणादि समस्त वृत्तान्त को कहा। तदनन्तर इन्द्रादि सभी देवता गर्भयुक्त हो गये! उनकी गर्भावस्था में होने का कारण यह है कि अग्नि में निहित हवि ही वे खाते हैं। इस हाल में चिन्तायुक्त देवता देवाधिपति विष्णु की शरण में गये।।४१-४६।।

देवा ऊचुः

त्वं त्राता सर्वदेवानां लोकानां प्रभुरेव च। तस्माद्रक्षा विधातव्या शरणागतवत्सल॥४७॥
वयं सर्वे मर्तुकामा रेतसाऽनेन पीडिताः। असुरेभ्यः परित्रस्ता वयंसर्वेदिवौकसः॥४८॥
शरणं शंकरं याताः परित्रातुं कृतोद्वहाः। यदा पुत्रो हिरुद्रस्य भविष्यति तदावयम्।
सुखिनः स्याम सर्वे वै निर्भयाश्च त्रिविष्टपे॥४९॥
एवं विष्टभ्यमानानां सर्वेषां भयमागतम्। अनेन रेतसा विष्णो जीवितुंशक्यतेकथम्॥५०॥

त्रिवर्गो हि यथा पुंसां कृतो हि सुपरिष्कृतः। विपरीतोभवत्येववविनादेवेननान्यथा॥५१॥
तस्मात्तद्वै बलं मत्वा सर्वेषामपिदेहिनाम्। कार्याकार्यव्यवस्थायांसर्वेमन्यामहेवयम्॥५२॥
तथा निशम्य देवानां परेशः परिदेवनम्। उवाचप्रहसन्वाक्यं देवानां देवतारिहा॥५३॥

देवगण कहते हैं—हे प्रभु! आप सर्वलोक के प्रभु हैं। आप सभी देवगण के त्राणकर्त्ता हैं। अतः हे शरणागतवत्सल! आप हमारी रक्षा करिये। हम सभी रेतःप्रवाह से पीड़ित हैं। मृत्यु जैसी स्थिति है। हम सभी असुरों के भय से भी भयभीत हैं। हम परित्राणार्थ सर्वप्रथम शंकर के शरणापन्न हुये थे। यह सोचा था कि जब रुद्र को पुत्र होगा, तब हम निर्भय होकर सुखपूर्वक स्वर्ग में रह सकेंगे। तथापि ऐसा नहीं हो सका! अब हम सब को यह नया भय हो गया है। हे विष्णु! इस रेतःप्रवाह से कैसे हम बच सकेंगे? यथायथ रूप से त्रिवर्ग का अनुष्ठान (धर्म-अर्थ-काम) शुभप्रद अवश्य है, तथापि वह देवदेव के अनुग्रह बिना हो ही नहीं सकता, यह निश्चित है। अतः सभी प्राणीगण के बलाबल को समझ कर समस्त कार्य-अकार्य की व्यवस्था हेतु हम आपको ही चुनते हैं।'' देवताओं का यह परिवेदन सुनकर भगवान् विष्णु सहास्य मुद्रा युक्त हो देवगण से कहने लगे।।४७-५३।।

स्तूयतां वै महादेवो महेशः कार्यगौरवात्॥५४॥
तथेति गत्वा ते सर्वे देवा विष्णुपुरोगमाः। तथा ब्रह्मादयः सर्व ईडिरे ऋषयो हरम्॥५५॥
ॐनमो भर्गाय देवाय नीलकंठाय मीढुषे। त्रिनेत्राय त्रिवेदाय लोकत्रितयधारिणे॥५६॥
त्रिस्वराय त्रिमात्राय त्रिवेदाय त्रिमूर्त्तये। त्रिवर्गाय त्रिधामाय त्रिपदाय त्रिशूलिने॥५७॥
त्राहि त्राहि महादेव! रेतसो जगतः पते!॥५८॥
ब्रह्मणा तु स्तुतो यावत्तावद्देवो वृषध्वजः। प्रादुर्बभूव तत्रैव सुराणां कार्यसिद्धये।
दृष्टस्तदानीं जगदेकबंधुर्महात्मभिर्देववरैः सुपूजितः॥५९॥
संस्तूयमानो विविधैर्वचोभिः प्रत्यग्रूपैः श्रुतिसंमतैश्च॥६०॥

देवगण कहते हैं—ॐ जो भर्गदेव हैं, नीलकण्ठ, मीढुष, त्रिनेत्र, त्रिदेव, लोकत्रयधारी, त्रिस्वर, त्रिमात्रा, त्रिवेद, त्रिमूर्त्ति, त्रिवर्ग, त्रिधाम, त्रिपद, त्रिशूली हैं, हे जगत्पति, हे महादेव! इस रेतः से हमारी रक्षा करें।'' तदनन्तर ब्रह्मा ने भी उनका स्तव किया। तत्काल देवदेव वृषभध्वज सुरगण की कार्यसिद्धि के लिए आविर्भूत हो गये। महात्मा देवगण ने तब जगदेकबन्धु महादेव का दर्शन करके उनका पूजन किया। इसके पश्चात् श्रुत्युक्त वाक्यों द्वारा उनका स्तवन किया। देवगण के स्तव करने पर परमेश्वर उनसे कहने लगे।।५४-६०।।

स्तुवतां चैव देवानामुवाच परमेश्वरः। त्रासं कुर्वंतु मा सर्वे रेतसाऽनेन पीडिताः॥६१॥
वमनं वै भवद्भिश्च कार्यमद्यैव भोः सुराः। तथेति मत्वा ते सर्व इन्द्राद्या देवतागणाः।
वेमुः सर्वे तदा विप्रास्तद्रेतः शंकरस्य च॥६२॥
ऐकपद्येन तद्रेतो महापर्वतसन्निभम्। तप्तचामीकरप्रख्यं बभूव परमाद्भुतम्॥६३॥
सर्वे चसुखिनोजाताइन्द्राद्यादेवतागणाः। विनाह्यग्निंचतेसर्वे परितुष्टास्तदाऽभवन्॥६४॥
तेनाग्निनापि चोक्तस्तु शंकरो लोकशंकरः। किं मयाद्य महादेव कर्तव्यं देवतावर!॥६५॥

तद्ब्रूहि मे प्रभोऽद्य त्वं येनाहं सर्वदा सुखी। भविष्यामि चयेनाहंदेवानांहव्यवाहकः॥६६॥

परमेश्वर शिव कहते हैं—"हे देवताओं! इस वीर्य द्वारा पीड़ित होकर तुम लोग भय न करो। तुम सब अभी वमन कर दो।" हे विप्रगण! इन्द्रादि देवताओं ने इसे उत्तम उपाय समझा तथा शंकर के वीर्य का वमन कर दिया। यह वीर्य एक साथ मिलकर प्रतप्त स्वर्णपर्वत जैसे अद्भुद् रूप में परिणत हो गया। इससे इन्द्रादि देवता सुखी हो गये। एकमात्र अग्नि को ही सन्तोष न मिल सका। उनको छोड़ कर सभी सन्तुष्ट हो गये थे। तदनन्तर अग्नि लोकशंकर प्रभु शंकर से कहने लगे—"हे देवदेव! मैं अब क्या करूं? हे प्रभो! आप वह उपाय कहें, जिससे मैं सर्वदा सुखी हो सकूं। आप वही करें, जिससे मैं देवगण का हव्यवाहन (हव्य प्रदाता) हो सकूं"।।६१-६६।।

तदोवाच शिवः साक्षाद्देवानामिहशृण्वताम्। रेतोविसृज्यतांयोनौतदाग्निःप्रहसन्निव॥६७॥
उवाच शंकरं देवं भवत्तेजो दुरासदम्। इदमुल्बणवत्तेजो धार्यते प्राकृतैः कथम्॥६८॥
ततः प्रोवाच भगवानग्निं प्रति महेश्वरः। मासिमासि प्रतप्तानां देहेतेजोविसृज्यताम्॥६९॥
तथेति मत्वा वचनं महाप्रभः स जातवेदाः परमेण वर्चसा।
समुज्ज्वलंस्तत्र महाप्रभावो बाह्ये मुहूर्त्ते हि चोपविष्टः॥७०॥
तदाप्रातःसमुत्थाय प्रातःस्नानपराःस्त्रियः। ययुःसदात्रृषीणांचसत्यस्ताजातवेदसम्॥७१॥
दृष्टाप्रज्वलितंतत्रसर्वास्ताःशीतकर्षिताः। तप्तुकामास्तदासर्व्वाह्यरुन्धत्यानिवारिताः॥७२॥

यह सुनकर साक्षात् शिव देवगण को सुनाते हुये अग्नि से कहने लगे—"तुम इस तेज को योनि में छोड़ो।" अग्नि ने शंकर से कहा—"हे प्रभो! आपका यह तेज अत्यन्त दुर्द्धर्ष है। यह उल्वण वत् तेज (अत्यन्त तीव्र तेज) कोई प्राकृतिक प्राणी कैसे धारण कर पायेगा?" भगवान् ने अग्नि से कहा—"माघ मास में जो अत्यन्त शीत से प्रभावित हो, उसकी देह में यह तेज निःक्षिप्त करो।" महाप्रभाव जातवेदा अग्नि ने शिववाक्य को ही श्रेयस्कर मानकर उस परम तेज से ज्वलित होते हुये ब्राह्ममुहूर्त्त में एक जलाशय में जाकर बैठ गये। प्रातःकाल वहां सती ऋषिपत्नियां स्नानार्थ आईं। स्नानांत में वे शीत से कष्ट पाकर सामने प्रज्ज्वलन्त अग्नि देखकर उधर जाने के लिए उद्यत हो गयीं, परन्तु अरुन्धती ने उनको रोक दिया।।६७-७२।।

तयानिवारिताश्चापितास्तेषुःकृत्तिकाःस्वयम्। यावत्तेपुश्चताःसवरितसःपरमाणवः।
विविशू रोमकूपेषु तासां तत्रैव सत्वरम्॥७३॥
नीरेतोऽग्निस्तदा जातो विश्रान्तः स्वयमेव हि॥७४॥

अरुन्धती के रोकने पर भी वे ऋषिपत्नी कृत्तिकायें उस आग को तापने लगीं। जब वे आग ताप रही थीं, उसी समय उनके रोमछिद्रों में से अग्नि द्वारा गृहीत वह वीर्यराशि परमाणुरूप हो अत्यन्त द्रुत वेग से उनके भीतर प्रविष्ट हो गयी। इस प्रकार अग्नि ने इस प्रचण्ड तेज रेतस् से मुक्त होकर विश्राम प्राप्त किया।।७३-७४।।

ततस्ता ऋषिभार्या हि ययुः स्वभवनंप्रति। ऋषिभिस्तुतदाशप्ताःकृत्तिकाखेचराभवन्॥७५॥
तदानीमेव ताः सर्वा व्यभिचारेण दुःखिताः। तत्ससर्जुस्तदा रेतःपृष्ठे हिमवतोगिरेः॥७६॥
ऐकपद्येन तद्रेतस्तप्तचामीकरप्रभम्। गंगायां च तदा क्षिप्रं कीचकैः परिवेष्टितम्॥७७॥
षण्मुखं बालकं ज्ञात्वा सर्वे देवा मुदान्विताः। गर्गेणोक्तास्तदंतेवैसुखेनह्रियतामिति॥७८॥

तत्पश्चात् ऋषिपत्नियां कृत्तिकागण अपने-अपने आश्रम चली गयीं। तब ऋषियों ने (रेतःप्रवेश जानकर) उनको शाप प्रदान किया। इस शाप से वे कृत्तिकायें आकाशस्थ नक्षत्र बनीं! व्यभिचार दोष के कारण वे कृत्तिकायें अत्यन्त दुःखी होकर हिमालय के पृष्ठभाग में उस रेतस् का विसर्जन कर आईं। क्रमशः सब का रेतस् एकीभूत होकर स्वर्ण के समान हो गया तथा घटना क्रम से वह शीघ्र गंगागर्भ में गिर कर कीचक[1] रूप हो गया। तब देवगण उस रेतः को षड्मुख बालक रूप में पाकर प्रसन्न हो गये। तदनन्तर गर्गाचार्य ने कहा—"इस बालक को सुख से लाओ"।।७५-७८।।

शंभोः पुत्रः प्रसादेन सर्वो भवति शाश्वतः। गंगायाःपुलिनेजातःकार्त्तिकेयोमहाबलः।।७९।।
उपविष्टोऽथ गांगेयो ह्यहोरात्रोषितस्तदा।
शाखो विशाखोऽतिबलः षण्मुखोऽसौ महाबलः।।८०।।
जातो यदाथ गंगायां षण्मुखः शंकरात्मजः। तदानीमेवगिरिजासंजाताप्रस्नुतस्तनी।।८१।।
शिवं निरीक्ष्य सा प्राह हे शंभो! प्रस्नवो महान्। संजातो मे महादेव! किमर्थस्तन्निरीक्ष्यताम्।
सर्वज्ञोऽपि महादेवो ह्यब्रवीत्तामथाज्ञवत्।।८२।।

"यह शम्भुपुत्र है। इसकी कृपा से सभी कार्य सम्पन्न होगा। इसका नाम होगा कार्त्तिकेय। यह महाबली होगा।" उस गांगेय कार्त्तिवीर्य ने वहां अहोरात्रि निवास किया। यह बालक शाख, विशाख, अतिबल तथा षड्मुख कहा गया। जैसे ही यह शंकरात्मज गंगागर्भ में जन्मा, तभी से गिरिजा के स्तन से दुग्ध क्षरण होने लगा। गिरिजा ने शिव के अभिमुख होकर कहा—"हे शम्भु! महादेव! यह स्तन से दुग्धक्षरण क्यों हो रहा है? यह आप देखें।" यह सुनकर सर्वज्ञ महादेव ने अनजान बनकर उत्तर दिया।।७९-८२।।

नारदस्तत्र चागत्य प्रोक्तवाञ्जन्म तस्य तत्। शिवाय च शिवायैचपुत्रोजातोहिसुंदरः।।८३।।
तदाकर्ण्य वचो विप्रा हर्षनिर्भरमानसाः। बभूवुः प्रमथाः सर्वे गंधर्वा गीततत्पराः।।८४।।
अनेकाभिः पताकाभिश्चैलपल्लवतोरणैः। तथा विमानैर्बहुभिर्बभौ प्रज्वलितो महान्।
पर्वतः पुत्रजननाच्छंकरस्य महात्मनः।।८५।।

तभी वहां नारद का आगमन हुआ। उन्होंने शिव-शिवा से कार्त्तिकेय का जन्म वृत्तान्त कहा—"एक सुन्दर पुत्र ने जन्म लिया है।" हे विप्रगण! नारद से यह संवाद पाकर प्रमथगण हर्षोत्फुल्ल हो गये। गन्धर्व गीत गाने लगे। महात्मा शंकर के पुत्रजन्म के कारण यथाविधि पताका, चैल, पल्लव, तोरण, नाना विमान से वह स्थान सुशोभित हो उठा।।८३-८५।।

तदा सर्वे सुरगणा ऋषयः सिद्धचारणाः। रक्षोगंधर्वयक्षाश्च अप्सरोगणसेविताः।।८६।।
ऐकपद्येन ते सर्वे सहिताः शंकरेण तु। द्रष्टुं गांगेयमधिकं जग्मुः पुलिनसंस्थितम्।।८७।।
ततो वृषभमारुह्य ययौ गिरिजया सह। अन्यैः समेतो भगवान्सुरैरिंद्रादिभिस्तथा।।८८।।

---

१. कीचक का शब्दकोष में अर्थ है, खोखला बांस, जिसमें से वायु के गुजरने से सांय-सांय शब्द होता है। यहाँ कीचक का तात्पर्य स्पष्ट नहीं हो रहा है।

तदा शंखाश्च भेर्यश्च नेदुस्तूर्याण्यनेकशः॥८९॥
तदानीमेव सर्वेशं वीरभद्रादयो गणाः। अन्वयुः केलिसंरब्धा नानावादित्रवादकाः।
वादयन्तश्च वाद्यानि ततानि वितानि च॥९०॥
केचिन्नृत्यपरास्तत्र गायकाश्च तथा परं। स्तावकाःस्तूयमानाश्चक्रुस्तेगुणकीर्तनम्।
एवंविधास्ते सुरसिद्धयक्षा गंधर्वविद्याधरपन्नगा ह्यमी॥९१॥
शिवेन सार्द्धं परिहृष्टचित्ता द्रष्टुं ययुस्तं वरदं च शांकरिम्॥९२॥

महात्मा शंकर समस्त सुर, सिद्ध, ऋषि, चारण, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष तथा अप्सरागण को अक्षय रूप से एक साथ लेकर गंगा पुलिन पर स्थित उस पुत्र का दर्शन करने चले। शंकर वृषभ पर आरोहण करके गिरिजा के साथ जाने लगे। उनके साथ ही इन्द्रादि देवता ने योगदान किया। तब विविध शंख-भेरी-तूर्य ध्वनि होने लगी। दर्शकों में से कोई-कोई नृत्य करने लगे, कोई संगीत तत्पर हो गये। कोई स्तवकार्यरत हो गये तथा अनेक स्तूयमान हो गये। इस प्रकार सभी गुण कीर्त्तन करने लगे। इस प्रकार सुर, सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व, विद्याधर तथा पन्नगगण शिव के साथ प्रसन्नचित्त वरप्रद शंकरपुत्र को देखने हेतु गये।।८६-९२।।

यावत्समाक्षयामासुर्गांगेयं शंकरोपमम्। ददृशुस्ते महत्तेजो व्याप्तमासीज्जगत्त्रयम्॥९३॥
तत्तेजसावृतं बालं तप्तचामीकरप्रभम्। सुमुखं सुश्रिया युक्तं सुनसं सुस्मितेक्षणम्॥९४॥
चारुप्रसन्नवदनं तथा सर्वाङ्गसुन्दरम्। तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यं गांगेयं प्रथितात्मकम्॥९५॥
ववंदिरे तदा बालं कुमारं सूर्यवर्चसम्। प्रमथाश्च गणाः सर्वे वीरभद्रादयस्तथा॥९६॥
परिवार्योपतस्थुस्ते वामदक्षिणभागतः। तथा ब्रह्मा च विष्णुश्च इन्द्रश्चापि सुरैर्वृतः॥९७॥
ऋषयो यक्षगंधर्वाः परिवार्य कुमारकम्। दंडवत्पतिता भूमौ केचिच्च नतकंधराः॥९८॥
प्रणेमुः शिरसा चान्ये मत्वा स्वामिनमव्ययम्।
अवाद्यंत विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे।
एवमभ्युदये तस्मिन्नृषयः शांतिमापठन्॥९९॥
एतस्मिन्नंतरे जातः शंकरो गिरिजापतिः। अवतीर्य वृषाच्छीघ्रं पार्वत्या सहसुव्रताः॥१००॥
पुत्रं निरैक्षत तदा जगदेकबंधुः प्रीत्या युतः परमया सह वै भवान्या।
स्नेहान्वितो भुजगभोगयुतो हि साक्षात्सर्वेश्वरः परिवृतः प्रमथैःप्रहृष्टः॥१०१॥

इस शंकर तुल्य गांगेय को देखने हेतु जब वे लोग उद्यत हो गये, तब देखा कि एक महातेज ने जगत्रय को व्याप्त किया है। वह बालक इस तेज से आवृत हो गया। उसकी आकृति तप्त स्वर्णवत् थी। वह सुमुख, श्रीमान्, सुन्दर नासिका वाला, सुस्मित नेत्र वाला, चारु एवं प्रसन्नवदन सर्वाङ्गसुन्दर था। गांगेय नाम से युक्त सूर्य के समान तेजस्वी कुमार को देखकर सबने इसकी वन्दना किया। वीरभद्र आदि प्रमथगण इस बालक के दक्षिण तथा वाम भाग को छूते हुये स्तव करने लगे। ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्रादि देवता उसे घेर कर खड़े थे। ऋषि-यक्ष-गन्धर्वगण इस कुमार को घेर कर दण्डवत् कन्धा झुकाकर भूतल पर गिर पड़े। अनेक ने उसे अव्यय पुरुष मानकर मस्तक नत

करके प्रणाम किया। उस कुमार दर्शन महोत्सव में विविध वाद्य बजने लगे। इस अभ्युदय व्यापार में ऋषिगण शान्तिपूर्ण मन्त्र पाठ कर रहे थे। तब शंकर वृष से उतर कर पार्वती के साथ पुत्रदर्शनार्थ गये। तब जगत् के एकमात्र बन्धु शिव-भवानी ने परम प्रीति के साथ पुत्र का निरीक्षण किया। भुजग भोग से परिवृत भवदेव शंकर पुत्र दर्शन से स्नेहान्वित होकर प्रमथों के साथ प्रसन्न हो गये।।९३-१०१।।

उपगुह्य गुहं तत्र पार्वती जातसंभ्रमा। प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुप्ता।।१०२।।
तदा नीराजितो देवैः सकलत्रैर्मुदान्वितैः। जयशब्देन महता व्याप्तमासीन्नभस्तलम्।।१०३।।
ऋषयो ब्रह्मघोषेण गीतेनैव च गायकाः। वाद्यैश्च वादकाश्चैव उपतस्थुःकुमारकम्।।१०४।।
स्वमंकमारोप्य तदा गिरीशः कुमारकं तं प्रभया महाप्रभम्।
बभौ भवानीपतिरेव साक्षाच्छ्रिया युतः पुत्रवतां वरिष्ठः।।१०५।।
दंपती तौ तदा तत्र ऐकपद्येन नंदतुः। अभिषिच्यमान ऋषिभिरावृतः सुरसत्तमैः।।१०६।।
कुमारः क्रीडयामास उत्संगे शंकरस्यच। कंठेस्थितंवासुकिंचपाणिभ्यांसमपीडयत्।।१०७।।
मुखंप्रपीडयित्वाऽसौ पाणीनगणयत्तदा। एकं त्रीणि दशाष्टौ च विपरीतक्रमेण च।
प्रहस्य भगवाञ्छंभुरुवाच गिरिजां तदा।।१०९।।
मंदस्मितेन च तदा भगवान्महेशः प्राप्तो मुदं च परमां गिरिजासमेतः।
प्रेम्णा सगद्गदगिरा जगदेकबंधुर्नोवाच किंचन तदा भुवनैकभर्ता।।११०।।

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे कार्त्तिकेयस्वामिकुमारोत्पत्तिवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः।।२७।।

उस समय पार्वती ने ससंभ्रम पुत्र का आलिंगन करके स्नेह से पूर्ण चित्त द्वारा उसे स्तनपान कराया। देवगण अपनी-अपनी पत्नियों के साथ मुदित मन से उस पुत्र की आरती उतारने लगे। जयशब्द से नभस्थल व्याप्त हो गया। ऋषिगण ब्रह्मघोष, गायकगण, गीतगायन तथा वादकगण वाद्य वादन द्वारा कुमार को अभिनन्दित कर रहे थे। तदनन्तर गिरीश महाप्रभ कुमार को अपनी गोद में स्थापित करके सुशोभित हो गये। भवानीपति उस समय पुत्रवानों में वरिष्ठ तथा श्रीयुक्त हो गये। ये दम्पति हर-पार्वती एक साथ आनन्द में भर गये। कुमार भी ऋषियों द्वारा अभिषिक्त तथा देवगण द्वारा परिवृत होकर शंकर की गोद में क्रीड़ा करने लगे। वे क्रीड़ा करते शंकर के कण्ठ पर लिपटे वासुकि नाग को हाथों से दबाने लगे। कुमार उसके मुख को दबाकर १-३, १०, ८ इस प्रकार से विपरीत क्रम से गणना कर रहे थे। शंभु ने हंसते हुये गिरिजा से यह कौतुक कहा। इस प्रकार से शंभु ने गिरिजा के साथ मन्द हास्य द्वारा परम प्रसन्नता प्राप्त किया। भुवनों के पालक, भुवनों के एकमात्र बन्धु इतने प्रेम गद्गद् हो गये कि वे कुछ भी स्पष्ट नहीं कह पा रहे थे।।१०२-११०।।

।।सप्तविंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अष्टाविंशोऽध्यायः

देवताओं के साथ स्कन्द का गमन, देवदैत्य सेना का वर्णन

लोमश उवाच

कुमारं स्वांकमारोप्य उवाच जगदीश्वरः। देवान्प्रति तदा रुद्रःसेन्द्रान्भगः प्रतापवान्॥१॥
किं कार्यं कथ्यतां देवाः कुमारेणाधुना मम। तदोचुः सहिताः सर्वे देवं पशुपतिंप्रति॥२॥
तारकाद्भयमुत्पन्नं सर्वेषांजगतांविभो। त्रातात्वंजगतांस्वामीतस्मात्त्राणंविधीयताम्॥३॥
कुमारेण हतोऽद्यैव तारको भविता प्रभो। तस्मादद्यैव यास्यामस्तारकं हंतुमुद्यताः॥४॥
तथेतिमत्वा सहसा निर्जग्मुस्ते तदा सुराः। कार्त्तिकेयं पुरस्कृत्य शंकरात्मजमेव हि॥५॥
सर्वे मिलित्वा सहसा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः। देवानामुद्यमंश्रुत्वा तारकोऽपिमहाबलः॥६॥
सैन्येन महता चैव ययौ योद्धं सुरान्प्रति। देवैर्दृष्टं समायातं तारकस्य महद्बलम्॥७॥
तदा नभोगता वाणी ह्युवाच परिसांत्व्यतान्। शांकरिंचपुरस्कृत्यसर्वेयूयंप्रतिष्ठिताः॥८॥
दैत्यान्विजित्य संग्रामे जयिनो हि भविष्यथ॥९॥

लोमश कहते हैं—प्रतापी जगदीश्वर भर्गः ने कुमार को अपने अंक में स्थापित करके इन्द्रादि देवगण से कहा—"हे देवताओं! ये कुमार अब क्या कार्य करेंगे, आप सब कहिये।" सभी देवगण ने पशुपति से कहा—"हे विभो! तारकासुर से हम सब को ही नहीं, समस्त जगत् को भय उत्पन्न हो गया है। आप ही त्राणकर्त्ता जगत्स्वामी हैं। अतः हमारा त्राण करें। हे प्रभो! तारकासुर अब कुमार के हाथों मारा ही जायेगा। इसलिए अब हम उद्यम के साथ तारक के वधार्थ जायें।" देवगण ने अन्ततः यही तय करके कार्त्तिकेय को आगे किया तथा यहां से युद्ध यात्रा प्रारम्भ कर दिया। ब्रह्मा तथा विष्णु प्रभृति प्रधान देवता इस यात्रा में साथ चले। उधर महाबली तारक ने देवगण के उद्यम का समाचार पाकर महासैन्य के साथ सुरगण के विरुद्ध युद्धयात्रा प्रारम्भ किया। देवताओं ने तारकासुर के महान् सैन्य को आते देखा। तभी वहां उनको सान्त्वना हेतु आकाशवाणी होने लगी, "देवगण! तुम सब शंकरनन्दन कुमार को अग्रगामी करके प्रस्थान करो। संग्राम में दैत्यों को पराजित करके शीघ्र विजय मिलेगी"।।१-९।।

वाचं तु खेचरीं श्रुत्वा देवाः सर्वे समुत्सुकाः। कुमारंचपुरस्कृत्यसर्वेतेगतसाध्वसाः॥१०॥
युद्धकामाः सुरा यावत्तावत्सर्वे समागताः। वरणार्थं कुमारस्यसुता मृत्योर्दुरत्यया॥११॥
ब्रह्मणा नोदिता पूर्वं तपः परमाश्रिता। तपसा तेन महता कुमारं प्रति वै तदा।
आगता दुहिता मृत्योः सेना नामैकसुन्दरी॥१२॥
तां दृष्ट्वा तेऽब्रुवन्सर्वे देवं पशुपतिं प्रति। एनं कुमारमुद्दिश्य आगता ह्यतिसुन्दरी॥१३॥
ब्रह्मणो वचनाच्चैव कुमारेण तदा वृता। अथ सेनापतिर्जातः कुमारः शांकरिस्तदा॥१४॥

देवताओं ने इस आकाशवाणी को सुनकर उत्सुक चित्त से कुमार को आगे किया तथा निर्भय हो गये। सभी

देवता युद्धार्थ कुमार के पास आये। तदनन्तर सेना नाम्नी दुरत्यया मृत्युपुत्री कुमार को पति रूप से वरण करने आई। इस सुन्दरी सेना ने ब्रह्मा की प्रेरणा से पूर्व काल में कुमार स्कन्द को पाने हेतु महान् तपस्या सम्पन्न किया था। देवगण ने उनको देखकर एक साथ पशुपति देव से कहा—"यह अति सुन्दरी सेना नामक कन्या कुमार का वरण करने हेतु उपस्थित है।" तदनन्तर ब्रह्मा के कहने पर कुमार ने उसका वरण किया। तब से शंकरात्मज कुमार सेनापति कहलाये।।१०-१४।।

तदा शंखाश्च भेर्यश्च पटहानकगोमुखाः। तथा दुंदुभयो नेदुर्मृदंगाश्च महास्वनाः॥१५॥
तेन नादेन महता पूरितं च नभस्तलम्। तदा गौरी च गंगा च कृत्तिका मातरस्तथा।
परस्परमथोचुस्ताः सुतो मम ममेति च॥१६॥
एवं विवादमापन्नाः सर्वास्ता मातृकादयः। निवारिता नारदेन मौढ्यं मा कुरुतेतिच॥१७॥
पार्वत्यां शंकराज्जातो देवकार्यार्थसिद्धये। तूष्णींभूतास्तदासर्वाःकृत्तिकामातृभिःसह॥१८॥
गुहेनोक्तास्तदा सर्वा ऋषिपत्न्यश्च कृत्तिकाः।
नक्षत्राणि समाश्रित्य भवद्भिः स्थीयतां चिरम्॥१९॥
तथा मातृगणस्तेन स्वामिना स्थापितो दिवि।
मृत्योः कन्याञ्च संगृह्य कार्त्तिकेयस्त्वरान्वितः॥२०॥
इन्द्रं प्रोवाच भगवान्कुमारः शंकरात्मजः। दिवं याहि सुरैः सार्द्धं राज्यंकुरुनिरन्तरम्॥२१॥
इन्द्रेणोक्तः कुमारो हि तारकेण प्रपीडताः। स्वर्गाद्विद्रावितः सर्वेवयंयातादिशोदश॥२२॥

उस समय शंख, भेरी, पटह, आनक, गोधूम, दुन्दुभि तथा महान् ध्वनि वाला मृदङ्ग एक साथ निनादित हो उठा। इस महानाद से नभस्थल पूरित हो गया। तब गौरी, गंगा तथा कृत्तिका प्रभृति मातृगण ने परस्परतः यह विवाद आरंभ किया कि यह पुत्र मेरा है–यह पुत्र मेरा है।" इस प्रकार मातृका आदि परस्परतः विवादरत हो गयीं। महर्षि नारद ने उनको रोकते हुये कहा—"आप इस प्रकार की मूढ़ता न करें। देवकार्य साधनार्थ यह कुमार शंकर के द्वारा पार्वती के गर्भ से उत्पन्न है।" यह सुनकर सभी मातृगण मौन हो गयीं। तब गुह (कुमार) ने ऋषिपत्नी कृत्तिकाओं से कहा—"आप नक्षत्रों का आश्रय लेकर चिरकाल पर्यन्त अवस्थान करें।" इस प्रकार प्रभु गुह ने मातृगण को स्वर्ग में स्थापित किया। तदनन्तर भगवान् कार्तिकेय ने मृत्युकन्या सेना को ग्रहण कर लिया। तब कार्त्तिकेय ने इन्द्र से कहा—"आप देवता लोग सभी स्वर्ग जाकर वहां चिरकाल राज्य भोग करें।" इन्द्र ने तब कुमार को यथार्थ स्थिति बतलाते हुये कहा—"हम सब तारक असुर से उत्पीड़ित होकर स्वर्ग से निकाल दिये गये हैं तथा चारों ओर भागे फिर रहे हैं"।।१५-२२।।

किं पृच्छसि महाभाग अस्मान्पदपरिच्युतान्। एवमुक्तस्तदातेनवज्रिणाशंकरात्मजः।
प्रहस्येन्द्रं प्रति तदा मा भैषीत्यभयं ददौ॥२३॥

"हे महाभाग! हम अपने-अपने पद से भ्रष्ट हो गये हैं। हमारी अवस्था के सम्बन्ध में अब और क्या जानना बाकी है?" जब वज्रपाणि इन्द्र ने शंकरात्मज कुमार स्कन्द से यह कहा, तब वे हास्यपूर्वक कहने लगे—"कोई भय नहीं" यह कहकर उन्होंने इन्द्र को अभय दिया।।२३।।

यावत्कथयतस्तस्य शांकरेश्च महात्मनः। कैलासं तु गते रुद्रे पार्वत्या प्रमथैः सह॥२४॥
आजगाम महादैत्यो दैत्यसेनाभिरावृतः। रणदुंदुभयो नेदुस्तथा प्रलयभीषणाः॥२५॥
रणकर्कशतूर्याणि डिंडिमान्यद्भुतानि च।
गोमुखाः खरशृङ्गाणि काहलान्येव भूरिशः॥२६॥
वाद्यभेदा अवाद्यन्त तस्मिन्दैत्यसमागमे। गर्जमानास्तदा वीरास्तारकेण सहैव तु॥२७॥
उवाच नारदो वाक्यं तारकं देवकण्टकम्॥२८॥

जब कार्त्तिकेय तथा इन्द्र का यह संवाद हो रहा था, तब पार्वती तथा प्रमथों के साथ रुद्रदेव कैलास पहुंच गये। इधर महादैत्य तारक दैत्यसेना से घिरा युद्धार्थ आया। तब प्रलयभीषण स्वरों वाली रणदुन्दुभि बजने लगी। दैत्य सेना के आगमन के कारण रणकर्कश तूर्य, अद्भुद् डिण्डिम, गोमुख, खरशृङ्ग, कहल प्रभृति भूरि-भूरि वाद्यों का वादन होने लगा। तारकासुर तथा उसकी ओर के वीर भीषण गर्जन करने लगे। यह देख नारद देवकण्टक तारकासुर से कहने लगे।।२४-२८।।

नारद उवाच

पुरा देवैः कृतो यत्नो वधार्थं नात्र संशयः। तवैव चासुरश्रेष्ठ मयोक्तं नान्यथा भवेत्॥२९॥
कुमारोऽयं च शर्वस्य तवार्थं चोपपादितः। एवं ज्ञात्वामहाबाहो कुरुयत्नं समाहितः॥३०॥

नारद कहते हैं—"हे असुरराज! देवगण तुम्हारे वधार्थ पहले से ही यत्न कर रहे हैं। हे असुरप्रवर! मेरा कथन झूठा नहीं है। इन शंकरपुत्र कुमार का जन्म तुम्हारे ही वधार्थ हुआ है। हे महाबली! यह सुनकर तुम सावधानी से युद्धायोजन करो"।।२९-३०।।

नारदोक्तं निशम्याथ तारकः प्रहसन्निव। उवाच वाक्यं मेधावी गच्छ त्वंच पुरन्दरम्॥३१॥
मम वाक्यं महर्षे त्वं वद शीघ्रं यथातथम्। कुमारंचपुरस्कृत्यमयायोद्धं त्वमिच्छसि॥३२॥
मूढभावं समाश्रित्य कर्तुमिच्छसि नान्यथा। मनुष्यमेकमाश्रित्य मुचुकुन्दाख्यमेवच॥३३॥
तत्प्रभावेऽमरावत्यां स्थितोऽसि त्वं न चान्यथा। कौमारं बलमाश्रित्य तिष्ठसे त्वं ममाग्रतः॥३४॥
त्वां हनिष्याम्यहं मन्द लोकपालैः सहैव हि। एवं कथय देवेन्द्रं देवर्षे नान्यथा वद॥३५॥

नारद का कथन सुनकर तारकासुर कहने लगा—"हे महर्षि! आप इन्द्र के यहां जायें। वहां जाकर मेरे द्वारा कहा वाक्य ठीक इसी प्रकार कहें—"हे पुरन्दर! तुमने कुमार को आगे करके मेरे साथ युद्ध करना चाहा है। तुम्हारी यह इच्छा तुम्हारी मूढ़ता से ही उपजी है। यह बात निश्चित है कि तुम मुचकुन्द नामक एक मनुष्य का आश्रय लेकर उसके प्रभाव से अमरावती में रह रहे हो! अब कुमार के बल का आश्रय लेकर मेरे सामने आये हो। हे मन्दबुद्धि! चाहे जो हो! मैं तुम्हारा वध तुम्हारे लोकपालों के साथ ही करूंगा।" हे देवर्षि! आप देवेन्द्र के पास जाकर यह संदेश कहें। इसके विपरीत न करें"।।३१-३५।।

तथेति मत्वा भगवान्स नारदो ययौ सुराञ्छक्रपुरोगमांश्च।
आचष्ट सर्वं ह्यसुरेन्द्रभाषितं सहोपहासं मतिमांस्तथैव॥३६॥

नारद उवाच

भवद्भिः श्रूयतां देवा वचनं मम नान्यथा। तारकेण यदुक्तं च सानुगेनावधार्यताम्॥३७॥

तारक उवाच

त्वां हनिष्यामि रे मूढ नान्यथा मम भाषितम्॥३८॥
मुचुकुन्दं समासाद्य लोकपालैश्च पूजितः। नत्वयाभीरुणायोत्स्येदेवोभूत्वानराश्रितः॥३९॥
तस्य वाक्यं निशम्योचुः सर्वे देवाः सवासवाः। कुमारंचपुरस्कृत्यनारदंचर्षिसत्तमम्॥४०॥
जानासि त्वं हि देवर्षे कुमारस्य बलाबलम्। अज्ञोभूत्वाकथंवाक्यमुक्तंतस्यममाग्रतः॥४१॥
प्रहस्य नारदो वाक्यमुवाच तस्य सन्निधौ। अहमप्युपहासं च वाक्यं तारकमुक्तवान्॥४२॥
जानीध्वममराः सर्वे कुमारं जयिनं सुराः। भविष्यत्यत्रमेवाक्यंनात्रकार्याविचारणा॥४३॥

भगवान् नारद ने "ऐसा ही कहूंगा" कह कर इन्द्रादि देवगण से असुरराज का संवाद कहा। नारद ने कहा—हे देवगण! आप सुनें! अपने अनुचरों के साथ तारकासुर ने जो कहा है, उसका विचार करें। तारक ने कहा है—"हे मूर्ख इन्द्र! मैं तुम्हारा वध करूंगा। मेरी बात अन्यथा नहीं होगी। तुम मुचकुन्द का आश्रय लेकर लोकपालों से पूजित हो रहे हो। तुम डरपोक हो, जो देवता होकर मनुष्य का आश्रय लिया है। तुम्हारे साथ बात की मेरी इच्छा नहीं हो रही है।" तारक का यह वाक्य ऋषि नारद से सुनकर इन्द्रादि देवताओं ने नारद से कहा—"हे देवर्षि! आप कुमार का यह बल अच्छी तरह जानते हैं। तब एक अज्ञ व्यक्ति की तरह ऐसे वाक्य हमारे समक्ष क्यों व्यक्त कर रहे हैं?" नारद ने हंसते हुये कहा—"मैं भी तारक से उपहास वाक्य ही कह कर आया हूं। जो भी हो, हे सुरगण! आप कुमार स्कन्द को इस युद्ध में निश्चय विजयी जानें। जो भी हो, हे देवगण! आप यह जान लें कि मेरा वाक्य अन्यथा नहीं होगा"।।३६-४३।।

नारदस्य वचः श्रुत्वा सर्वेदिवा मुदान्विताः। ऐकपद्येनचोत्तस्थुर्योद्धुकामाश्चतारकम्॥४४॥
कुमारं गजमारोप्य देवेन्द्रो ह्यग्रगोऽभवत्। सुरसैन्येन महता लोकपालैः समावृतः॥४५॥
तदा दुन्दुभयो नेदुर्भेरीतूर्याण्यनेकशः। वीणावेणुमृदंगानि तथा गन्धर्वनिस्वनाः॥४६॥

नारद का यह वाक्य सुनकर सभी देवता मुदित हो गये। सभी एक साथ तारक के साथ युद्ध की कामना लेकर उठ खड़े हो गये। देवेन्द्र ने कुमार को हाथी पर बैठाया तथा स्वयं विशाल शत्रु सैन्य लेकर तथा लोकपालों से घिर कर युद्धयात्रा प्रारम्भ किया। तब दुन्दुभि, भेरी, तूरी, वेणु, वीणा, मृदङ्ग प्रभृति विविध वाद्य बज उठे।।४४-४६।।

गजं दत्त्वा महेन्द्राय कुमारो यानमारुहत्। अनेकरत्नसंवीतं नानाश्चर्यसमन्वितम्।
विचित्रचित्रं सुमहत्तथाश्चर्यसमन्वितम्॥४७॥
विमानमारुह्य तदा महायशाः स शांकरिः सर्वगणैरुपेतः।
श्रिया समेतः परया बभौ महान्स वीज्यमानश्चमरैर्महाप्रभैः॥४८॥
प्राचेतसं छत्रमहामणिप्रभं रत्नैरुपेतं बहुभिर्विराजितम्।
धृतं तदा तेन कुमारमूर्द्धनि चन्द्रेण चान्द्रैः किरणैः सुशोभितम्॥४९॥

संमीलितास्तदा सर्वेदेवाइन्द्रपुरोगमाः।
बलैः स्वैः स्वैः परिक्रांतायोद्धुकामामहाबलाः॥५०॥
यमोऽपि स्वगणैः सार्द्धं मरुद्भिश्च सदागतिः। पाथोभिर्वरुणस्तत्र कुबेरो गुह्यकैःसह।
ईशोऽपि प्रमथैः सार्द्धं नैर्ऋतो व्याधिभिः सह॥५१॥
एवं तेऽष्टौ लोकपा योद्धुकामाः सर्वे मिलित्वा तारकं हंतुमेव।
पुरस्कृत्वा शांकरिं विश्ववंद्यं सेनापतिं चात्मविदां वरिष्ठम्॥५२॥

गन्धर्वों की कण्ठध्वनि भी उत्थित हो गयी। कुमार ने महेन्द्र को हाथी वापस दिया। स्वयं यान पर बैठे। यह यान अनेक रत्नमण्डित था। नाना आश्चर्यमय था। नाना चित्रों से चित्रित तथा महान् आश्चर्ययुक्त था। महात्मा शंकरात्मज तब विमान पर बैठकर गणों से युक्त तथा परम श्रीयुक्त होकर स्थित थे तथा महान् चामरगणों द्वारा उनको झला जा रहा था। चन्द्रमा ने कुमार के मस्तक पर अपने हाथों से ही उद्भासित महाप्राचेतस रूप छत्र धारण किया था। यह छत्र महान् मणियों से मण्डित तथा नाना रत्नों से रंजित था। इस प्रकार इन्द्रादि महाबली देवतागण अपने-अपने बल से पराक्रमशाली होकर युद्धकामना से युद्धार्थ आये। अपने गणों के साथ यम, मरुद्गणों के साथ सदागति, जलराशि के साथ वरुण, गुह्यकों के साथ कुबेर, प्रमथगणों के साथ ईशान तथा व्याधि (ज्वर) गण के साथ नैर्ऋत् तथा अष्ट लोकपाल युद्ध में तारक वधार्थ आये। ये सभी आत्मज्ञानियों में श्रेष्ठ विश्ववन्द्य देवसेनापति शंकरात्मज स्कन्द कुमार को अग्रवर्त्ती करके आये थे।।४७-५२।।

एवं ते योद्धुकामा हि अवतेरुश्च भूतलम्। अंतर्वेद्यां स्थिताःसर्वेगंगायमुनमध्यगाः॥५३॥
पातालाच्च समायातास्तारकस्योपजीविनः। चेरुरंगबलोपेता हन्तुकामाः सुरान्रणे॥५४॥
तारको हि समायातो विमानेन विराजितः। छत्रेण च महातेजा धियमाणेन मूर्द्धनि॥५५॥
चामरैर्वीज्यमानो हि शुशुभे दैत्यराट् स्वयम्॥५६॥
एवं देवाश्च दैत्याश्च अंतर्वेद्यां स्थितास्तदा। सैन्येनमहतातत्रव्यूहान्कृत्वापृथक्पृथक्॥५७॥

इस युद्धकामना से देवता आकाश से भूतल पर उतरे। वे गंगा-यमुना के मध्य में स्थित अन्तर्वेदी में स्थित हुये। तारक के असुरगण पाताल से निकल कर आये। वे बलपूर्वक सुरगण विनाशार्थ विचरणरत थे। महातेजस्वी तारकासुर विमान पर स्थित था। उसके मस्तक के ऊपर छत्र शोभायमान था। इस प्रकार देवता तथा दैत्य विपुल सैन्य द्वारा पृथक्-पृथक् गृह (व्यूह) बनाकर अन्तर्वेदी में स्थित हो गये।।५३-५७।।

गजान्कृत्वा ह्येकतश्चहयांश्चविविधांस्तथा। स्यंदनानिविचित्राणिनानारत्नयुतानिच॥५८॥
पदाता बहवस्तत्र शक्तिशूलपरश्वधैः। खड्गतोमरनाराचैः पाशमुद्गरशोभिताः॥५९॥
ते सेने सुरदैत्यानां सुशुभाते परस्परम्। हंतुकामास्तदा ते वैस्तूयमानाश्च बन्धुभिः॥६०॥

एक ओर हाथी, अन्य ओर विविध अश्व तथा नाना रत्नयुक्त रथ स्थापित थे। विपुल पैदल सेना शक्ति, शूल, पार्श्वध अस्त्र, खड्ग, तोमर, नाराच, पाश तथा मुद्गर से सज्जित थी। सुर तथा असुर दोनों सैन्यदल एक-दूसरे को (अपने विपक्षी सैन्य को) मारने के लिए उद्यत था। तदनन्तर उनके बन्धुगण उन सैनिकों के शौर्य-वीर्य की प्रशंसा करने लगे।।५८-६०।।

।।अष्टविंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

ऊनत्रिंशोऽध्यायः

मुचुकुन्द तारक युद्ध वर्णन, देवता तथा तारक का युद्ध

लोमश उवाच

उभे सेने तदा तेषां सुराणां चामरद्विषाम्। अनेकाश्चर्यसंवीते चतुरंगबलान्विते।
विरेजतुस्तदाऽन्योन्यं गर्जतो वाम्बुदागमे।।१।।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वल्गमानाः परस्परम्। देवासुरास्तदा सर्वे युयुधुश्च महाबलाः।।२।।
युद्धं सुतुमुलं ह्यासीद्देवदैत्यसमाकुलम्। रुण्डमुण्डांकितं सर्वं क्षणेन समपद्यत।।३।।
भूमौ निपतितास्तत्र शतशोऽथ सहस्त्रशः। केषांचिदुबाहवश्छिन्नाःखड्गपातैःसुदारुणैः।।४।।
मुचुकुंदो हि बलवांस्त्रैलोक्येऽमितविक्रमः।।५।।
तारको हि तदा तेन मुचुकुंदेन धीमता। खड्गेन चाहतस्तत्र सर्वप्राणेन वक्षसि।
प्रसह्य तत्प्रहारं च प्रहसन्वाक्यमब्रवीत्।।६।।

सुर तथा असुर पक्षीय चतुरंग सेना बलयुक्त अनेक आश्चर्ययुक्त सज्जा से सज्जित होकर वर्षाकालीन बादल की तरह परस्पर गर्जन कर रही थी। तत्पश्चात् सुर एवं असुरगण ने परस्पर स्पर्द्धा के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। क्रमशः यह देव-दैत्य सेना युक्त युद्ध तुमुलयुद्ध जैसा होने लगा। क्षणमात्र में ही समस्त रणक्षेत्र कटे-फटे मुण्डों से भर गया। शत-शत सहस्त्र-सहस्त्र योद्धा पृथिवी पर गिरकर पीड़ा से लोट रहे थे। दारुण खड्गपात से सैनिकों के बाहु कट कर गिर गये। त्रैलोक्य में अतीव बलवान तथा अमित पराक्रमी श्रीमान् मुचुकुन्द ने तारकासुर से युद्ध करते हुये खड्ग से उसके वक्ष पर भीषण आघात यथाशक्ति किया। तारकासुर ने उस खड्गाघात को सह लिया तथा हंस कर कहने लगे।।१-६।।

किं रे मूढ त्वयाचाद्यकृतमस्तिबलादिदम्। न त्वयायोद्धुमिच्छामिमानुषेणैवलज्जया।।७।।
तारकस्य वचः श्रुत्वा मुचुकुंदोऽभ्यभाषत। मया हतोऽसिदैत्येन्द्रनान्योभवितुमर्हसि।।८।।
दृष्ट्वा मे खड्गसंपातं न त्वं तिष्ठसिचाग्रतः। त्वां हन्मिपस्यमेशौर्यंदैत्यराजस्थिरोभव।।९।।

तारकासुर कहता है—"हे मूढ़! तुम क्यों शौर्य-वीर्य का प्रकाशन कर रहे हो? तुम मनुष्य हो। तुम्हारे साथ मैं युद्ध करने में लज्जा का अनुभव करता हूं तथा युद्ध की इच्छा नहीं करता।" तारक का वाक्य सुनकर मुचुकुन्द कहने लगे—हे दैत्येन्द्र! मेरे हाथों ही तुमको मरना है। यह वचन अन्यथा नहीं है। मेरे खड्ग प्रहार को देखकर तुम और अधिक देर मेरे सामने खड़े नहीं हो सकोगे। हे दैत्यराज! तुम स्थिर हो जाओ। देखो! मैं अभी तुम्हारा वध करूंगा।।७-९।।

एवमुक्त्वा तदा वीरो मुचुकुंदो महाबलः। यावज्जघान खड्गेनतावच्छक्त्यासमाहतः।
मान्धातुस्तनयस्तत्र पपात रणमण्डले॥१०॥
पतितस्तत्क्षमादेव चोत्थितः परवीरहा॥११॥
स सज्जमानोतिमहाबलो वै हन्तुं तदा दैत्यपतिं च तारकम्।
ब्रह्मास्त्रमुद्यम्य धनुर्गृहीत्वा मांधातृपुत्रो भुवनैकजेता॥१२॥
स तारकं योद्धुकामस्तरस्वी रुषान्वितोत्फुल्लविलोचनो महान्।
स नारदो ब्रह्मसुतो बभाषे तदा नृवीरं मुचुकुन्दमेवम्॥१३॥
न तारको हन्यते मानुषेण तस्मादेतन्मा विमोचीर्महास्त्रम्॥१४॥
निशम्य वचनं तस्य देवर्षेर्नारदस्य च। मुचुकुंद उवाचेदं भविता कोऽस्य मारकः॥१५॥

महातेजस्वी वीर मुचुकुन्द ने यह कहकर खड्ग द्वारा जैसे ही तारक पर आघात किया, तभी उसने शक्ति द्वारा मुचुकुन्द पर आघात किया। मान्धाता के पुत्र मुचुकुन्द इस आघात से रणक्षेत्र में गिर गये। लेकिन वे गिरते ही तत्क्षण उठ खड़े हो गये। तब भुवनों के विजेता अमित बली मान्धातानन्दन ने ब्रह्मास्त्र उठाकर तारकासुर के वध का विचार किया। उस तपस्वी उत्फुल्ल नयन मनुष्य वीर मुचुकुन्द को पुनः तारकासुर से युद्ध करते देख ब्रह्मपुत्र नारद ने उनसे कहा—"हे वीर! यह तारकासुर मनुष्य द्वारा वध्य नहीं है। इसलिए आप इस पर यह महान् अस्त्र न छोड़ें।" देवर्षि का यह वाक्य सुनकर मुचुकुन्द ने उनसे पूछा—"तब तारक को मृत्यु प्रदान करने वाला कौन होगा?"।।१०-१५।।

तदोवाच महातेजा नारदो दिव्यदर्शनः। एनं हंता कुमारश्च कुमारोऽयं शिवात्मजः॥१६॥
तस्माद्भवद्भिः स्थातव्यमैकपद्येन युध्यताम्। तिष्ठ त्वं चायतो भूत्वामुचुकुंदमहामते।
निशम्य वाक्यं च मनोहरं शुभं ह्युदीरितं तेन महाप्रभेण॥१७॥
सर्वे सुराः शांतिपरा बभूवुस्तेनैव साकं नृवरेण यत्नात्॥१८॥
ततो दुन्दुभयो नेदुः शंखाश्च कृतनिश्चयाः। ताडिता विविधैर्वाद्यैःसुरासुरसमन्वितैः॥१९॥
जगर्जुरसुरास्तत्र देवान्प्रति कृतोद्यमाः। शिवकोपोद्भवो वीरो वीरभद्रो रुषान्वितः॥२०॥
गणैर्बहुभिरासाद्य तारकं च महाबलम्। मुचुकुन्दं पृष्ठतः कृत्वा तथैव च सुरानपि॥२१॥
तदा ते प्रमथाः सर्वे पुरस्कृत्य कुमारकम्। युयुधुः संयुगे तत्र वीरभद्रादयो गणाः॥२२॥
त्रिशूलैर्ऋष्टिभिः पाशैः खड्गैःपरशुपट्टिशैः। निजघ्नुःसमरेऽन्योन्यंसुरासुरविमर्दने॥२३॥

तारको वीरभद्रेण त्रिशूलेन हतो भृशम्। पपात सहसा तत्र क्षणमूर्च्छापरिप्लुतः॥२४॥
उत्थाय च मुहूर्त्ताच्च तारको दैत्यपुंगवः। लब्धसंज्ञो बलाविष्टो वीरभद्रं जघान च॥२५॥
स शक्तिं च महातेज़ा वीरभद्रो हि तारकम्। त्रिशूलेन च घोरेणशिवस्यानुचरोबली॥२६॥

तब दिव्यदृष्टि सम्पन्न महातेजस्वी नारद ने कहा—"इसे मारने वाले होंगे शिवपुत्र कुमार। अतएव आप सब एक योग होकर युद्ध करें। हे महामति मुचुकुन्द! अब आप सज्जित भाव से रहिये।" महान् प्रभाव वाले नारद का यह वचन सुनकर राजा मुचुकुन्द के ही साथ समस्त देवसमाज शान्तियुक्त हो गया। तब शंख तथा दुन्दुभि का निनाद होने लगा। सुर-असुर सैन्य में विविध वाद्यों का वादन होने लगा। असुरगण युद्धोत्साह में मस्त होकर देवगण की ओर दौड़ पड़े। उधर शिवकोप से उत्पन्न वीरभद्र क्रोधित होकर आये तथा सुर वीरगण को तथा राजा मान्धाता के पुत्र मुचुकुन्द को अपने पीछे करके प्रमथगण के साथ मिलकर महाबली तारकासुर के विरुद्ध युद्धरत हो गये। वीरभद्र तथा प्रमुख प्रमथगण ने सभी कुमार स्कन्द को आगे करके युद्ध का आरम्भ किया। वे त्रिशूल, ऋष्टि, पाश, खड्ग, परशु तथा पट्टिश के द्वारा विपक्षी असुरों का वध करने लगे। इस सुर-असुर समूह के युद्ध में बलवान तारक वीरभद्र के त्रिशूल प्रहार से अत्यन्त आहत हो गया तथा वह कुछ क्षण के लिए मूर्च्छित हो गया। कुछ मुहूर्त्त के पश्चात् वह दैत्यप्रवर तारक संज्ञा प्राप्त होने पर उठा तथा उसने वीरभद्र की देह पर शक्ति का प्रहार किया। शिव के अनुचर महातेजस्वी वीरभद्र ने भी त्रिशूल के आघात से तारक को आहत किया।।१६-२६।।

एवं संयुध्यमानौ तौ जघ्नतुश्चेतरेतरम्। द्वंद्वयुद्धं सुतुमुलं तयोर्जातं महात्मनोः॥२७॥
सुरास्तत्रैव समरे प्रेक्षका ह्यभवंस्तदा। तयोर्भेरीमृदंगाश्च पटहानकगोमुखाः॥२८॥
तथा डमरुनादेन व्याप्तमासीज्जगत्त्रयम्। तेन घोषेण महता युध्यमानौ महाबलौ॥२९॥
शुशुभातेऽतिसंरब्धौ प्रहारैर्जर्जरीकृतौ। अन्योन्यमभिसंरब्धौ तौ बुधांगारकाविव॥३०॥
नारदेन तदा ख्यातो वीरभद्रस्य तद्वधः। न रोचते च तद्वाक्यं वीरभद्रस्य वै तदा॥३१॥

इस प्रकार वे दोनों युद्ध में परस्परतः एक दूसरे को आहत करने लगे। इन दोनों महावीरगण का तुमुल द्वन्द्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया। देवगण मात्र दर्शक होकर उस युद्ध को देख रहे थे। दोनों पक्ष के भेरी, मृदङ्ग, पटह, आनक, गोमुख तथा डमरू के नाद से तीनों लोक व्याप्त हो गया। उस महाशब्द से उत्साहित होकर महाबली दोनों योद्धा युद्ध करते-करते प्रहार से जर्जर होकर शोभित होने लगे। अत्यन्त क्रोध से परस्पर युद्ध करते हुये वे बुध तथा मंगल की तरह शोभायुक्त हो रहे थे। तभी नारद ने वहां वीरभद्र के पास आकर तारक वध के उपाय तथा कारण का वर्णन किया। तथापि वीरभद्र को नारद की बात का विश्वास नहीं हुआ। तारक के वध के सम्बन्ध में नारद का कथन वीरभद्र को उचित नहीं लगा।।२७-३१।।

नारदेन यदुक्तं हि तारकस्य वधं प्रति। यथा रुद्रस्तथा सोऽपि वीरभद्रो महाबलः॥३२॥
एवं प्रयुध्यमानौ तौ जघ्नतुश्चेतरेतरम्। अन्योन्यं स्पर्द्धमानौ तौगर्जंतौसिंहयोरिव॥३३॥
एवं तदा तौ भुवि युध्यमानौ महात्मना ज्ञानवतां वरेण।
स वीरभद्रो हि तदा निवारितो वाक्यैरनेकैरथ नारदेन॥३४॥

तथा निशम्य तद्वाक्यं नारदस्य मुखोद्गमम्। वीरभद्रोरुषाविष्टो नारदंप्रत्युवाच ह॥३५॥
तारकं च वधिष्यामि पश्य मेऽद्य पराक्रमम्। आनयंतिचयेवीराःस्वामिनंरणसंसदि।
ते पापिनो ह्यधर्मिष्ठा विमृशंति रणं गताः॥३६॥
भीरवस्ते तु विज्ञेयानवाच्यास्तेकदाचन। त्वंनजानासिदेवर्षेयोधानांचप्रतिक्रियाम्॥३७॥
मृत्युं च पृष्ठतः कृत्वारणभूमौगतव्यथाः। शस्त्राशस्त्रैर्भिन्नगात्राःप्रशस्तानात्रसंशयः॥३८॥

क्योंकि जैसे रुद्र वैसे ही महाबली वीरभद्र! इस प्रकार दोनों वीर तारक तथा वीरभद्र परस्पर युद्ध करते-करते एक दूसरे को आहत कर रहे थे। दोनों ही सिंह युगल की तरह गर्जना करते-करते परस्पर स्पर्द्धा कर रहे थे। इस प्रकार तारक तथा वीरभद्र को युद्ध में आसक्त देखकर ज्ञानीप्रवर महात्मा नारद ने अच्छी तरह समझा-बुझाकर अन्त में वीरभद्र को युद्ध से विरत किया। नारद के मुख से तारक के साथ युद्ध न करने के लिए जो वाणी निकल रही थी, उससे वीरभद्र क्रोधित होकर नारद से कहने लगे—"मैं अभी तारक का वध करूंगा। अब मेरा पराक्रम देखें। जो वीर प्रभु को रणक्षेत्र में लायेगा, वह पापी तथा अधर्मी है। जो वास्तविक योद्धा होते हैं, वे इसी प्रकार की विवेचना करते हैं कि जो डरपोक हैं, वे वीरों के आक्षेप के अयोग्य हैं। (अर्थात् वे वीरों पर आक्षेप करने लायक नहीं हैं)। हे देवर्षि! आप योद्धाओं की कार्यप्रणाली नहीं जानते। सच्चे योद्धा तो मृत्यु को भी पीछे रखकर रणभूमि में बाधारहित भाव से उपस्थित रहते हैं तथा शस्त्रास्त्र से अंग भंग भी झेलते हैं। ऐसे ही योद्धा प्रशंसनीय हैं"॥३२-३८॥

इत्युक्त्वा चावददेवान्वीरभद्रो महाबलः। शृण्वन्तु मम वाक्यानिदेवाइन्द्रपुरोगमाः॥३९॥
अतारकां महीञ्चाद्य करिष्ये नात्र संशयः॥४०॥

यह कहकर महाबली वीरभद्र ने देवताओं से कहा—हे इन्द्रादि देवगण! आप सब मेरा वाक्य सुनें। मुझे यह निश्चय है कि मैं इस पृथिवी को तारक रहित करूंगा॥३९-४०॥

अथ त्रिशूलमादाय तारकेण युयोध सः। वृषारूढैरनेकंश्च त्रिशूलवरधारिभिः॥४१॥
कपर्द्दिनो बृषांकाश्च गणास्तेतिप्रहारिणः। वीरभद्रं पुरस्कृत्य वीरभद्रपराक्रमाः॥४२॥
त्रिशूलधारिणः सर्वे सर्वे सर्पाङ्गभूषणाः। सचंद्रशेखराः सर्वे जटाजूटविभूषिताः॥४३॥
नीलकण्ठा दशभुजाः पञ्चवक्त्रास्त्रिलोचनाः। छत्रचामरसंवीताःसर्वेतेऽत्युग्रबाहवः॥४४॥
वीरभद्रं पुरस्कृत्य सर्वे हरपराक्रमाः। युयुधुस्ते तदा दैत्यास्तारकासुरजीविनः॥४५॥
पुनःपुनस्तैश्च तदा बभूवुर्गणैर्जितास्ते ह्यसुराः पराङ्मुखाः।
बभूव तेषां च तदातिसंगरो महाभयो दैत्यवरैस्तदानीम्॥४६॥
अमृष्यमाणाः परमास्त्रकोविदैस्ततो गणास्ते जयिनो बभूवुः।
गणैर्जितास्ते ह्यसुराः पराभवं तं तारकं ते व्यथिताः शशंसुः॥४७॥

यह कहकर वीरभद्र त्रिशूल लेकर तारक के साथ युद्धरत हो गये। वीरभद्र को आगे करके जो प्रमथ योद्धा असुरों से युद्ध कर रहे थे, उसमें से अनेक वृष पर बैठे थे तथा उत्तम शूलधारी थे। ये योद्धागण कपर्दी, वृषाङ्ग तथा

तीव्र प्रहार करने वाले थे। वे वीरभद्र जैसे पराक्रमी थे। वे सभी सर्प का भूषण धारण करने वाले, मस्तक पर चन्द्रयुक्त तथा जटाजूट भूषित, नीलकण्ठ, दशभुज, पंचमुख तथा तीन नेत्रों वाले थे। वे छत्र चामर से शोभित तथा दीर्घ बाहु थे। ये शिव के समान पराक्रमी प्रमथ सेनानी वीरभद्र की अगुआई में युद्ध करने लगे। उधर तारकासुर की असुर सेना ने भी यथाशक्ति युद्ध किया। असुरगण बराबर प्रमथों से पुनः पुनः पराजित होकर पीठ दिखाकर भागने लगे। इस प्रकार परमास्त्र पतित दैत्यों के साथ दैत्यवैरी देवगण का विषम संग्राम हो रहा था। अमर्ष से भरे प्रमथवृन्द ने उस समय जयलक्ष्मी लाभ किया। प्रमथों से परास्त असुरगण ने व्यथित होकर तारकासुर के पास आकर अपनी पराजय का वृत्तान्त कहा।।४१-४७।।

विनाम्य चापं हि तथा च तारकः स योद्धुकामः प्रविवेश सेनाम्।
यथा झषो वै प्रविवेश सागरं तथा ह्यसौ दैत्यवरो महात्मा।।४८।।
गणैः समेतो युयुधे तदानीं स वीरभद्रो हि महाबलश्च।
सर्वान्सुरांश्चेन्द्रमुखान्महाबलस्तथा गणान्यक्षपिशाचगुह्यकान्।
स दैत्यवर्योऽतिरुषं प्रविष्टः संमर्दयामास महाबलो हि।।४९।।

अब दैत्यों में अग्रणी तारकासुर ने धनुष मंगवाकर युद्ध कामना से विपक्षी देवसेना में प्रवेश किया। वह दृश्य देखकर प्रतीत होता था कि मानों कोई महामस्त्य सागर जल में प्रविष्ट हो गया हो। तभी महाबली वीरभद्र ने प्रमथ सेना के साथ तारकासुर के विनाशार्थ युद्ध प्रारम्भ किया। तदनन्तर महाबली तारक अत्यन्त क्रोध के साथ सेना के साथ आया तथा समरभूमि में प्रवेश कर इन्द्रादि देवता, प्रमथ वृन्द तथा यक्ष-पिशाच तथा गुह्यकों को एक-एक करके मर्दित करने लगा!।।४८-४९।।

ततः समभवद्युद्धं देवदानवसंकुलम्। देवदानवयक्षाणां सन्निपातकरं महत्।।५०।।
तथावृषागर्जमानाअश्वाञ्जघ्नुश्चसादिभिः। रथिभिश्चरथाञ्जघ्नुःकुञ्जरान्सादिभिःसह।।५१।।
वृषारूढैः सरथैस्ते च सर्वे निष्पाटिता ह्यसुराः पोथिताश्च।।५२।।
क्षयं प्रणीता बहवस्तदानीं पेतुः पृथिव्यां निहताश्च केचित्।
केचित्प्रविष्टा हि रसातलं च पलायमाना बहवस्तथैव।।५३।।
केचिच्च शरणं प्राप्ता रुद्रानुचरकिंकरान्। एवं नष्टं तदा सैन्यंविलोक्यासुरपालकः।
तारको हि रुषाविष्टो हन्तुं देवगणान्ययौ।।५४।।

उस समय देव-दानवों के मध्य महान् युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस युद्ध में देव-दानव तथा यक्षों का विषम विनाश होने लगा। वृषगण गर्जन करने लगे। अश्वारोही के साथ अश्वारोही का, रथियों से रथियों का, हाथी सवार से हाथी सवार का युद्ध होने लगा तथा वे निहत होने लगे। वृषारोही तथा रथी प्रमथों ने असुरों को समाप्त करना प्रारम्भ किया। विशाल सैन्य क्षयीभूत होकर पृथिवी पर गिर गयी। कोई एक ही आघात में मर गया। कोई रसातल में चला गया, कोई-कोई पलायन कर गया। बहुत सी असुर सेना ने रुद्र के अनुचर किंकरों की शरण ले लिया। इस प्रकार से असुरपालक तारक ने अपनी सेना को नष्ट देखा, इससे वह रुष्ट होकर देवगण का वध करने लगा।।५०-५४।।

भुजानामयुतं कृत्वा दैत्यराजो हि तारकः। आरुह्य सिंहं सहसा घातयामास तान्रणे॥५५॥
दंशितेन च सिंहेन वृषाः केचिद्विदारिताः। तथैव तारकेणैव घातिता बहवो गणाः॥५६॥
एवं कृतं तदा तेन तारकेण महात्मना। सर्वेषामेव देवानामशक्यस्तारको महान्॥५७॥
जातस्तदा महाबाहुस्त्रैलोक्यक्षयकारकः। तारकस्यानुगा दैत्या अजेया बलवत्तराः॥५८॥

दैत्यराज ने माया से अपनी १०००० भुजायें कर लीं। वह सहसा सिंह पर बैठकर आया तथा देवगण का युद्ध में नाश करने लगा। उसके सज्जित सिंह ने बहुसंख्यक वृषों का विदारण कर दिया। तारकासुर ने अनगिनत प्रमथ सैन्य का संहार किया। इस प्रकार से तारक युद्ध करने लगा। उसने एक-एक करके सभी देवगण को परास्त कर दिया। वह महाबाहु तारक तब त्रैलोक्य का क्षय करने वाला हो गया। इस स्थिति में अब तारक के अनुगामी दैत्यगण देवताओं के लिए अजेय हो गये।।५५-५८।।

महारूढा दंशिताश्च करालास्ते प्रहारिणः। तैरादृता गणाः सर्वे सिंहैश्चवृषभाहताः॥५९॥
एवं निहन्यमाना वै गणास्ते रणमण्डले। प्रहस्य विष्णुः प्रोवाच कुमारंशिववल्लभम्॥६०॥

विष्णुरुवाच

नान्यो हंतास्य पापस्य त्वद्बिना कृत्तिकासुत। तस्मात्त्वयाहिकर्त्तव्यंवचनंचमहाभुज॥६१॥
तारकस्य वधार्थाय उत्पन्नोऽसि शिवात्मज। तस्मात्त्वयैवकर्त्तव्यनिधनंतारकस्यच॥६२॥

ये सभी दैत्य रणकर्कश, कराल तथा विपक्षी पर प्रहार करने में पटु थे। ये गणों को ताड़ित करने लगे तथा दैत्यों के सिंह अब देवसेना के वृषों को नष्ट करते जा रहे थे। इस प्रकार अब रणक्षेत्र में गणों का नाश होता जा रहा था। तब विष्णु ने शिववल्लभ स्कन्द कुमार से कहा—"हे कृत्तिकानन्दन! तुम्हारे बिना अन्य कोई भी इस पापी का संहारकर्त्ता है ही नहीं। हे महाबली! अब मेरे वाक्य की रक्षा करो। हे शिवात्मज! तारक वधार्थ ही तुम्हारा जन्म हुआ है। अतः इसका संहार करना अब तुम्हारा कर्त्तव्य है"।।५९-६२।।

तच्छ्रुत्वाभगवान्क्रुद्धःपार्वतीनन्दनोमहान्। उवाचप्रहसन्वाक्यंविष्णुंप्रतियथोचितम्॥६३॥

मया निरीक्ष्यते सम्यक् चित्रयुद्धं महात्मनाम्।
अनभिज्ञोऽस्म्यहं विष्णो! कार्याकार्यविचारणे॥६४॥
केऽस्मदीयाः परे चैव न जानामि कथंचन। किमर्थयुध्यमानावै परस्परवधे स्थिताः॥६५॥
कुमारस्य वचः श्रुत्वा नारदो वाक्यमब्रवीत्॥६६॥

पार्वतीनन्दन प्रभु कार्त्तिकेय यह सुनकर हंसे तथा उन्होंने विष्णु से यथोचित रूप से कहा—"अभी मैं महात्माओं द्वारा किये गये विचित्र युद्ध का निरीक्षण कर रहा था। हे विभु! कार्याकार्य विचार का मैं ज्ञाता नहीं हूं। इस समय कौन मेरे पक्ष का है तथा कौन विपक्षी है, मैं यह भी जान नहीं पाता। ये परस्पर एक-दूसरे का वध करने हेतु अथवा किस कारण से युद्ध कर रहे हैं?" कुमार का वचन सुनकर देवर्षि नारद कहने लगे।।६३-६६।।

नारद उवाच

कुमारोऽसि महाबाहो शंकरस्यांशसंभवः। त्वंत्राताजगतांस्वामीदेवानांचपरागतिः॥६७॥

तारकेण पुरा वीर तपस्तप्तं सुदारुणम्। येनैव विजिता देवा येनस्वर्गस्तथथाजितः॥६८॥
तपसा तेन चोग्रेण अजेयत्वमवाप्तवान्। अनेनापि जितश्चेंद्रो लोकपालास्तथैवच॥६९॥
त्रैलोक्यं च जितं सर्वं ह्यनेनैव दुरात्मना। तस्मात्त्वया निहतव्यस्तारकः पापपूरुषः॥७०॥
सर्वेषां शं विधातव्यं त्वया नाथेन चाद्य वै। नारदस्यवचःश्रुत्वाकुमारःप्रहसन्महान्।
विमानादवतीर्याथ पदातिः परमोऽभवत्॥७१॥

नारद कहते हैं—"हे महाबाहो! तुम शंकर के अंश से उत्पन्न कुमार हो। तुम जगत् की रक्षा करने वाले प्रभु तथा परमगति हो। हे वीर! तारकासुर ने पूर्वकाल में दारुण तप किया था। उसके प्रभाव से इसने स्वर्ग तथा स्वर्गवासी लोगों को परास्त किया है। उग्र तपःप्रभाव से तारक अजेय हो गया है। इस दुरात्मा तारक ने इन्द्र, अन्य लोकपाल ही नहीं, समस्त त्रैलोक्य को जीता है। अतः इस पापी का वध ही तुम्हारा कर्त्तव्य है। तुम सबके नाथ हो। इसलिए सबका मंगल विधान करो।" नारद का वचन सुनकर शिवपुत्र कुमार प्रसन्न हो गये। वे विमान से उतर कर पैदल हो गये!।।६७-७१।।

पद्भ्यां तदाऽसौ परिधावमानः शिवात्मजोऽयं च कुमाररूपी।
करे समादाय महाप्रभावां शक्ति महोल्कामिव दीप्तियुक्ताम्॥७२॥
दृष्ट्वा तमायांतमतीव चंडमव्यक्तरूपं बलिनां वरिष्ठम्।
दैत्यो बभाषे सुरसत्तमानामसौ कुमारो द्वषतां निहंता॥७३॥
अनेन सार्द्धं ह्यहमेव वीरो योत्स्यामि सर्वानहमेव वीरान्।
गणांश्च सर्वानपि घातयामि महेश्वराँल्लोकपालांश्च सद्यः॥७४॥

उस समय शिवात्मज कुमार ने महाप्रभावयुक्ता महान् उल्का के समान दीप्तिवाली शक्ति हाथ में लिया तथा तारकासुर की ओर दौड़ पड़े। इन अव्यक्तरूप अति प्रचण्ड बली कुमार को आते देखकर दैत्यराज तारक ने कहा—"यह कुमार निश्चित रूप से देवशत्रुओं का वधकर्त्ता है। इसके साथ मैं ही युद्ध करूंगा। इससे युद्ध करके माहेश्वरवीर प्रमथों तथा अन्य लोकपालों को शीघ्र यमलोक का अतिथि बना दूंगा"।।७२-७४।।

इत्येवमुक्त्वा सततं महाबलः कुमारमुद्दिश्य ययौ च योद्धुम्।
जग्राह शक्तिं परमाद्भुतां च स तारको वाक्यमिदं बभाषे॥७५॥

तारक उवाच

कुमारो मेऽग्रतश्चाद्य भवद्भिश्च कथं कृतः। यूयं गतत्रपा देवा येषां राजापुरन्दरः॥७६॥
पुरा येन कृतं कर्म विदितं सर्वमेव तत्। प्रसुप्ताश्चार्दिता गर्भे जठरस्था निपातिताः॥७७॥
कश्यपस्यात्मजेनैव बहुरूपो हतोऽसुरः। नमुचिश्च हतो वीरो वृत्रस्चैव तथा हतः॥७८॥
कुमारं हंतुकामोऽसौ देवेन्द्रो बलघातकः। कुमारोऽयं मया देवाघातितोऽद्यनसंशयः॥७९॥
पुरा हतास्त्वया विप्रा दक्षयज्ञेन ह्यनेकशः। तत्कर्मणः फलं चाद्य वीरभद्र महामते।
दर्शयिष्यामि ते वीर! रणे रणविशारद!॥८०॥

इत्येवमुक्त्वा स तदा महात्मा दैत्याधिपो वीरवरः स एकः।
जग्राह शक्तिं परमाद्भुतां च स तारको युद्धविदां वरिष्ठः॥८१॥
इति परमरुषाभिभूतो दितितनयः परीवृतोऽसुरेन्द्रैः।
युधि मतिमकरोत्तदा निहंतुं समरविजयी स तारको बलीयान्॥८२॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे शिवशास्त्रे सुरतारकासुरसंग्रामवर्णनंनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥

—❀—

यह कहकर महाबली तारक कुमार से युद्ध के लिए आगे बढ़ा। उसने परम अद्भुद् शक्ति नामक अस्त्र उठाकर देवगण के लिए यह कहा—"हे देवताओं! तुमने एक कुमार को आगे करके मुझसे युद्ध करने भेजा है? इन्द्र तुम्हारा राजा है। तभी तुम सभी इतने लज्जाहीन हो। इन्द्र ने पूर्वकाल में जो कर्म किया है, वह तो सभी जानते हैं। दिति के गर्भस्थ सुप्त सन्तानों को इसी पुरन्दर ने निपातित किया था। कश्यपात्मज वीर नमुचि तथा वृत्र इसके ही हाथों मारे गये! अब उस इन्द्र ने इस कुमार बालक को मरने के अभिप्राय से यहां भेजा है। जो भी हो, हे देवताओं! मैं अभी इस कुमार का वध करूंगा।" तारक ने देवगण से यह कहकर तब वीरभद्र से कहा—"हे वीरभद्र! पूर्वकाल में दक्षयज्ञ में तुमने अनेक वीरों का वध किया था। हे महामति! रण पण्डित! इस कर्म का फल अभी इस युद्ध में तुमको चखाने जा रहा हूं।" युद्ध करने में सर्वोत्तम वीरभद्र ने महात्मा वीर तारक का यह वचन सुनकर एक परम अद्भुद् शक्ति उठाया। तब यह दितिपुत्र तारक रोष में भर गया। उसके चतुर्दिक् श्रेष्ठ असुर आ गये। इस प्रकार अनेक युद्धों का विजेता तारकासुर बली होकर शत्रुदल का विनाश करने के लिए सन्नद्ध हो गया॥७५-८२॥

॥उनत्रिंश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

त्रिंशोऽध्यायः

इन्द्र-तारकासुर युद्ध वर्णन, कुमार द्वारा तारक वध

लोमश उवाच

वल्गमानं तमायांतं तारकासुरमोजसा। आजघान च वज्रेण इन्द्रोमतिमतां वरः॥१॥
तेन वज्रप्रहारेण तारको विह्वलीकृतः। पतितोऽपि समुत्थाय शक्त्या तं प्राहरद्द्विषम्॥२॥
पुरन्दरं गजस्थं हि अपातयत भूतले। हाहाकारो महानासीत्पतिते च पुरन्दरे॥३॥

लोमश कहते हैं—इस स्पर्द्धायुक्त तारकासुर को आते देख प्रशस्तमति इन्द्र ने उसे बलपूर्वक वज्र से

आहत किया। इस वज्रप्रहार से तारक विह्वल हो गया तथा पृथिवी पर गिरने के पश्चात् पुनः उठा तथा अपनी शक्ति का प्रहार ऐरावत पर किया। इससे हाथी पर बैठे इन्द्र पृथिवी पर गिर पड़े। इस प्रकार से पुरन्दर इन्द्र के गिरने के कारण प्रचण्ड हाहाकार की ध्वनि (देवपक्ष से) उठने लगी।।१-३।।

तारकेणापि तत्रैव यत्कृतं तच्छृणु प्रभो। पतितं च पदाक्रम्य हस्ताद्वयं प्रगृह्यच।४॥
हतं देवेन्द्रमालोक्य तारको रिपुसूदनः। वज्रघातेन महताऽताडयत्तु पुरन्दरम्॥५॥
त्रिशूलमुद्यम्य महाबलस्तदा स वीरभद्रो रुषितः पुरन्दरम्।
संरक्षमाणो हि जघान तारकं शूलेन दैत्यं च महाप्रभेण॥६॥
शूलप्रहाराभिहतो निपपात महीतले। पतितोऽपि महातेजास्तारकः पुनरुत्थितः॥७॥
जघान परया शक्त्या वीरभद्रं तदोरसि। वीरभद्रोपि पतितः शक्तिघातेन तस्य वै॥८॥

अब तारकासुर का कृत्य सुनो। इन्द्र के आहत होकर गिरने पर तारक पैदल ही आक्रामक होकर इन्द्र के निकट पहुंचा तथा उनका वज्र बलात् छीन लिया। तब रिपुहन्ता तारक ने देखा कि इन्द्र निहत हो गये। यह देखकर भी उसने उसी वज्र के प्रहार से इन्द्र पर आघात किया। यह देखकर महाबली वीरभद्र त्रिशूल उठाकर अत्यन्त क्रोध के साथ इन्द्र की रक्षा करने वहां तत्काल पहुंचे तथा अपने महान् प्रभायुक्त त्रिशूल से तारक को आहत किया। महातेजस्वी तारकासुर शूल के प्रहार से अभिहत होकर पृथिवी पर गिरा, तथापि गिरते ही तत्काल उठ खड़ा हो गया और उसने वीरभद्र के वक्ष पर अपनी परम शक्ति का प्रहार किया। इस आघात से वीरभद्र भूपतित हो गये!।।४-८।।

सगणाश्चैव देवाश्च गंधर्वोरगराक्षसाः। हाहाकारेण महता चुक्रुशुश्च पुनः पुनः॥९॥
तदोत्थितः सहसा महाबलः स वीरभद्रो द्विषतां निहंता।
त्रिशूलमुद्यम्य तडित्प्रकाशं जाज्वल्यमानं प्रभया निरन्तरम्।
स्वरोचिषा भासितदिग्वितानं सूर्येन्दुबिम्बाग्न्युडुमण्डलाभम्॥१०॥
त्रिशूलेन तदा यावद्धंतुकामो महाबलः। निवारितः कुमारेण मावधीस्त्वं महामते॥११॥

यह घटना देखकर देवता, प्रमथ, गंधर्व, सर्पगण तथा राक्षसगण हाहाकार के शब्द के साथ पुनः-पुनः चीत्कार करने लगे। लेकिन शत्रुनाशक महाबली वीरभद्र शीघ्र ही उठे तथा उन्होंने एक भीषण त्रिशूल उठाया। यह त्रिशूल आकाशीय विद्युतवत् प्रभायुक्त, अपनी प्रभा से दिग्-दिगन्त को आलोकित करने वाला, सूर्य, चन्द्र, अग्नि तथा नक्षत्रमण्डल के समान प्रभापुञ्ज मण्डित था। वीरभद्र ने ऐसा त्रिशूल उठाया तथा तारक का हनन करने के लिए उद्यत हो ही गये थे कि कुमार ने उनको ऐसा करने से रोक दिया। उन्होंने कहा—"हे महामति! आप इसका वध न करें"।।९-११।।

जगर्ज च महातेजाः कार्त्तिकेयो महाबलः॥१२॥
तदा जयेत्यभिहितो भूतैराकाशसंस्थितैः। शक्त्या परमया वीरस्तारकं हंतुमुद्यतः॥१३॥
तारकस्य कुमारस्य संग्रामस्तत्र दुःसहः। जातस्ततो महाघोरः सर्वभूतभयंकरः॥१४॥
शक्तिहस्तौ च तौ वीरौयुयुधातेपरस्परम्। शक्तिभ्यांभिन्नहस्तौतौमहासाहससंयुतौ॥१५॥

परस्परं वञ्चयन्तौ सिंहाविव महाबलौ। वैतालिकीं समाश्रित्य तथावै खेचरींगतिम्॥१६॥
पार्वतं मतमाश्रित्य शक्त्या शक्तिं निजघ्नतुः। एभिर्मतैमहावीरौ चक्रतुर्युद्धमुत्तमम्॥१७॥

यह कहने के अनन्तर महाबली कार्त्तिकेय ने गर्जन किया। तब आकाशस्थ प्राणी उनके लिए जय शब्दोच्चार करने लगे। वीर कुमार ने परमशक्ति उठाया तथा तारक का छेदन करने हेतु उद्यत हो गये। इस कारण यह तारक तथा कुमार के मध्य महासमर का सूचक हो गया। यह महासमर सब प्राणीगण के लिये भयंकर था। दोनों वीरों के हाथों में शक्ति नामक अस्त्र था। ये परस्परतः युद्धरत हो गये। दोनों शक्ति अस्त्रधारी, महान् साहसी थे तथा दो सिंहों की तरह एक-दूसरे से अपनी रक्षा कर रहे थे। दोनों ने ही वैतालिकी तथा खेचरीगति का आश्रय लिया। कभी पर्वत रूप ग्रहण करके अपनी शक्ति से अन्य की शक्ति को आहत कर रहे थे। इस प्रकार इन दोनों महावीरों के बीच यह उत्तम युद्ध छिड़ गया!।।१२-१७।।

अन्योन्यसाधकौ भूत्वा महाबलपराक्रमौ। जघ्नतुः शक्तिधाराभी रणे रणविशारदौ॥१८॥
मूर्ध्नि कण्ठे तथा बाह्वोर्जान्वोश्चैव कटीतटे। वक्षस्युरसिपृष्ठेचचिच्छिदतुःपरस्परम्॥१९॥
तदा तौ युध्यमानौ च हन्तुकामौ महाबलौ। प्रेक्षका ह्यभवन्सर्वे देवगन्धर्वगुह्यकाः॥२०॥
ऊचुः परस्परं सर्वे कोऽस्मियुन्द्धेविजेष्यते। तदानभोगतावाणीउवाचपरिसांत्व्यवै॥२१॥

ये दोनों वीर रणयुद्ध विशारद महाबली पराक्रमी थे और अपने-अपने स्वार्थ की सिद्धि हेतु शक्ति समूह से एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। परस्परतः मस्तक, कण्ठ, बाहुद्वय, जानुद्वय, कटि, वक्ष तथा पृष्ठ का छेदन करते जा रहे थे। इन दोनों के बीच युद्ध छिड़ जाने पर सभी देवता, गन्धर्व, गुह्यकादि दर्शकरूपेण इस युद्ध का अवलोकन करने लगे। वे परस्परतः कहते जाते कि इस युद्ध में कौन जीतेगा? तभी इनको सान्त्वना देते हुये आकाशवाणी सुनाई पड़ी।।१८-२१।।

तारकं हि सुराश्चाद्यकुमारोऽयंहनिष्यति। माशोच्यतांसुरासर्वैःसुखेनस्थीयतांदिवि॥२२॥
श्रुत्वा तदा तां गगने समीरितां तथैव वाचं प्रमथैः परीतः।
कुमारकस्तं प्रति हन्तुकामो दैत्याधिपं तारकमुग्ररूपम्॥२३॥
शक्त्या तया महाबाहुराजघान स्तनांतरे। तारकं ह्यसुरश्रेष्ठं कुमारो बलवत्तरः॥२४॥
तं प्रहारमनादृत्य तारको दैत्यपुङ्गवः। कुमारं चाऽपि संक्रुद्धः स्वशक्त्याचाजघानवै॥२५॥
तेन शक्तिप्रहारेण शांकरिर्मूर्च्छितोऽभवत्। मुहूर्ताच्चेतनां प्राप्तःस्तूयमानोमहर्षिभिः॥२६॥

आकाशवाणी इस प्रकार थी—"हे देवताओं! अब कुमार तारकासुर का वध करेंगे। अब आप शोक न करें, क्योंकि अब सभी देवता स्वर्ग में सुखपूर्वक रहेंगे।" यह आकाशवाणी सुनकर महाबाहु कुमार ने प्रमथगणों से घिरे रहकर दैत्याधीश भीषण रूप तारकासुर के वधार्थ अपनी शक्ति से उसके स्तन प्रदेश पर प्रहार किया। प्रबल कुमार ने जब असुरश्रेष्ठ तारक पर प्रहार किया, तब वह क्रोधित हो गया। उसने अपनी शक्ति से कुमार को भी आहत कर दिया। इस शक्ति प्रहार से कुमार मूर्छित हो गये। मुहूर्त्त के पश्चात् चेतना लौटने पर महर्षि गण उनकी स्तुति करने लगे।।२२-२६।।

यथा सिंहो मदोन्मत्तो हंतुकामस्तथैव च। कुमारस्तारकं दैत्यमाजघान प्रतापवान्॥२७॥

एवं परस्परेणैव कुमारश्चैव तारकः। युयुधातेऽतिसंरब्धौ शक्तियुद्धपरायणौ॥२८॥
अभ्यासपरमावास्तामन्योन्यविजिगीषया। तथातौयुध्यमानौचचित्ररूपौ तपस्विनौ॥२९॥

तब प्रतापी कुमार ने मदोन्मत्त सिंह की तरह घातक होकर तारक को आहत किया। इस प्रकार से तारक तथा कुमार शक्तियुद्ध में तत्पर होकर अतीव तीव्रता से युद्ध कर रहे थे। अभ्यास में निष्णात दोनों वीर एक दूसरे को जीतने की इच्छा से विचित्र भाव से युद्ध कर रहे थे।।२७-२९।।

धाराभिश्च अणीभिश्च सुप्रयुक्तौ च जघ्नतुः। अवलोकपराः सर्वे देवगन्धर्वकिन्नराः॥३०॥
विस्मयं परमं प्राप्ता नोचुः किंचन तस्य वै। नववौचतदावायुर्निष्प्रभोऽभूद्दिवाकरः॥३१॥
हिमालयोऽथ मेरुश्च श्वेतकूटश्च दर्दुरः। मलयोऽथ महाशैलो मैनाको विन्ध्यपर्वतः॥३२॥
लोकालोको महाशैलो मानसोत्तरपर्वतः। कैलासो मन्दरो माल्यो गन्धमादनएवच॥३३॥
उदयाद्रिर्महेन्द्रश्च तथैवास्तगिरिर्महान्॥३४॥
एते चान्ये च बहवः पर्वताश्च महाप्रभाः। स्नेहार्द्रितास्तदाजग्मुः कुमारं चपरीप्सवः॥३५॥
ततः स दृष्ट्वा तान्सर्वान्भयभीतांश्चशांकरिः। पर्वतान्गिरिजापुत्रोबभाषेप्रतिबोधयन्॥३६॥

कुमार उवाच

मा खिद्यतमहाभागामाचिंताक्रियतांनगाः। घातयाम्यद्यपापिष्ठंसर्वेषामिहपश्यताम्॥३७॥
एवं समाश्वास्य तदा मनस्वी तान्पर्वतान्देवगणैः समेतान्।
प्रणम्य शम्भुं मनसा हरिप्रियः स्वां मातरं चैव नतः कुमारः॥३८॥

वे धारा तथा अनी प्रभृति सामरिक रीति के अनुसार एक दूसरे को आहत करने लगे। देव, गंधर्व, किन्नर आदि उनकी युद्धक्रीड़ा का अवलोकन करते-करते अत्यन्त विस्मयापन्न हो गये। उनके मुख से वाक्य ही नहीं निकल रहा था। वायु की गति तक रुद्ध हो गयी! सूर्यदेव प्रभाहीन से हो गये। हिमाचल, मेरु, श्वेतकूट, दर्दुर, मलय, महाशैल मैनाक, विन्ध्याचल, महापर्वत लोकालोक, मानसोत्तर, कैलास, मंदर, माल्यवान्, गन्धमादन, उदयाचल, महेन्द्र, अस्तगिरि तथा अन्य महाप्रभ अनेक पर्वत स्नेहप्रवण होकर वहां कुमार की सहायतार्थ आये। गिरिजानन्दन कुमार ने भयभीत पर्वतों को देखकर उनका प्रबोधन करते हुये कहा—"हे महाभागगण! आप सब खिन्न न हों। चिन्ता न करें। मैं अभी सबके समक्ष इस पापी तारक का वध करूंगा।" तदनन्तर मनस्वी कुमार ने देवताओं तथा पर्वतों को आश्वस्त करके मन ही मन शम्भु तथा जननी पार्वती को प्रणाम किया।।३०-३८।।

कार्त्तिकेयस्ततः शक्त्या निचकर्त रिपोः शिरः। तच्छिरो निपपातोर्व्यां तारकस्य च तत्क्षणात्।
एवं स जयमापेदे कार्त्तिकेयो महाप्रभुः॥३९॥
ददृशुस्तं सुरगणा ऋषयोगुह्यकाःखगाः। किंनराश्चारणाःसर्पास्तथाचैवाप्सरोगणाः॥४०॥
हर्षेणमहताविष्टास्तुष्टुवुस्तं कुमारकम्। विद्याधर्यश्च ननृतुर्गायकाश्च जगुस्तदा॥४१॥
एवं विजयमापन्नं दृष्ट्वा सर्वेमुदायुताः। ततोहर्षात्समागम्यस्यांकमारोप्य चात्मजम्॥४२॥
परिष्वज्य तु गाढेन गिरिजापि तुतोष वै। स्वोत्संगे चसमारोप्यकुमारंसूर्यवर्चसम्॥४३॥

लालयामास तन्वंगी पार्वती रुचिरेक्षणा। ऋषिभिःसत्कृतःशंभुःपार्वत्यासहितस्तदा।।४४।।
आर्यासनगता साध्वी शुशुभे मितभाषिणी। संस्तूयमानामुनिभिःसिद्धचारणपन्नगैः।।४५।।

तब कार्त्तिकेय ने अपने शक्ति अस्त्र से शत्रु तारक के मस्तक को काट दिया। तत्काल वह शिर पृथिवी पर गिर पड़ा। इस प्रकार महाप्रभु कार्त्तिकेय को विजयश्री प्राप्त हो गयी। सुरगण, ऋषि, गुह्यक, विमानचारी, किन्नर, चारण, सर्प, अप्सरागण कार्त्तिकेय का दर्शन करने आये। वे महाहर्षयुक्त होकर कुमार का स्तव करने लगे। विद्याधरियां नृत्यरत हो गयीं। गायकदल गायन करने लगा। कुमार की इस विजय से देवता मुदित हो गये। तब गिरिजा हर्ष में भरकर अपने क्रोड़ में कुमार को बैठाकर उनका आलिंगन करके सन्तुष्ट हो गयीं! सिद्ध, चारण, पन्नग, ऋषिगण कार्त्तिकेय की स्तुति करने लगे।।३९-४५।।

नीराजिता तदा देवैः पार्वती शंभुना सह। कुमारेण सहैवाथ शोभमाना तदा सती।।४६।।
हिमालयस्तदागत्य पुत्रैश्च परिवारितः। मेर्वाद्यैः पर्वतैश्चैव स्तूयमानः परोऽभवत्।।४७।।
तदा देवगणाः सर्व इन्द्राद्या ऋषिभिः सह। पुष्पवर्षेण महता ववर्षुरमितद्युतिम्।
कुमारमग्रतः कृत्वा नीराजनपरा बभुः।।४८।।
गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा। संस्तूयमानो विविधैः सूक्तैर्वेदविदां वरैः।।४९।।
कुमारविजयंनाम चरित्रं परमाद्भुतम्। सर्वपापहरं दिव्यं सर्वकामप्रदं नृणाम्।।५०।।
ये कीर्त्तयंति शुचयोऽमितभाग्ययुक्ताश्चानंत्यरूपमजरामरमादधानाः।
कौमारविक्रममहात्म्यमुदारमेतदानन्ददायकमनोर्थकरं नृणां हि।।५१।।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि कुमारस्य महात्मनः। चरितं तारकाख्यं च सर्वपापैःसमुच्यते।।५२।।

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे शिवशास्त्रे तारकासुरवधपूर्वकं स्वामिकार्त्तिकेयविजयोत्सववर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः।।३०।।

उस समय देवताओं ने पार्वती तथा पार्वतीपति भगवान् शिव की आरती उतारी। उस समय सती पार्वती कुमार के साथ सुशोभित हो रही थीं। उस समय वहां हिमालय मेरु प्रभृति पर्वतों के साथ आये तथा उनका सत्कार किया गया। तदनन्तर इन्द्रादि देवता तथा ऋषियों के साथ आये। उन्होंने एक साथ अमित प्रभावशाली कुमार पर पुष्पवर्षा करके तथा उनको अपने समक्ष रखकर उनका नीराजन करने लगे। श्रेष्ठ वेदज्ञ उच्चस्वर में ब्रह्मघोष तथा विविध सूक्त पाठ कर रहे थे। वहां गीतवाद्य ध्वनि भी हो रही थी। वे वेदज्ञ कुमार की स्तुति भी कर रहे थे। यह कुमारविजय चरित्र अत्यन्त अद्भुद, सर्वपापहारी, दिव्य तथा मनुष्यों की समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाला है। जो महाभाग पवित्र व्यक्ति इस चरित्र को पढ़ते हैं, वे अक्षर तथा अमर रूप हो जाते हैं। इस उदार कौमार विक्रम के प्रभाव से मनुष्य का मनोरथ सफल होता है तथा उनको आनन्द प्राप्त होता है। जो मानव महात्मा कुमार के साथ तारक के युद्ध वृत्तान्त को सुनता है, अथवा पाठ करता है, वह सर्वपाप रहित होता है।।४६-५२।।

।।त्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

एकत्रिंशोऽध्यायः

शौनकादि ऋषियों का प्रश्न, शिव का यम को उपदेश,

शिवलिंग माहात्म्य

शौनक उवाच

हत्वा तं तारकं संख्ये कुमारेण महात्मना। किं कृतं सुमहद्विप्र तत्सर्वं वक्तुमर्हसि॥१॥
कुमारो ह्यपरः शंभुर्येन सर्वमिदं ततम्। तपसा तोषितः शंभुर्ददाति परमं पदम्॥२॥
कुमारो दर्शनात्सद्यः सफलो हिनृणांसदा। येपापिनोह्यधर्म्मिष्ठाःश्वपचाअपिलोमश।
दर्शनाद्भूतपापास्ते भवन्त्येव न संशयः॥३॥
शौनकस्य वचः श्रुत्वा उवाच चरितंतदा। व्यासशिष्योमहाप्राज्ञःकुमारस्यमहात्मनः॥४॥

शौनक कहते हैं—महात्मा कुमार ने युद्ध में तारकासुर का वध करके कौन महान् कार्य किया, यह बतलाने की कृपा करें। कुमार तो द्वितीय शम्भु हैं। ये समस्त जगत् में व्याप्त हैं। तप से प्रसन्न शम्भु परमपद देते हैं, परन्तु कुमार तो दर्शनमात्र से मनुष्यों को तत्काल शुभ फल प्रदान करते हैं। जो लोभी, पापी, अधर्माचारी, श्वपच हैं, उनको भी कुमार के दर्शन से पाशों से मुक्ति मिलती हैं। व्यास-शिष्य महाप्राज्ञ सूत शौनकादि ऋषियों का वाक्य सुनकर कुमार का चरित्र कहने लगे।।१-४।।

लोमश उवाच

हत्वा तं तारकं संख्ये देवानामजयं ततः अवध्यं च द्विजश्रेष्ठाःकुमारोजयमाप्तवान्॥५॥
महिमा हि कुमारस्य सर्वशास्त्रेषु कथ्यते। वेदैश्च स्वागमैस्चापि पुराणैश्च तथैव च॥६॥
तथोपनिषदैश्चैव मीमांसाद्वितयेन तु। एवंभूतः कुमारोयमशक्यो वर्णितुं द्विजाः॥७॥
यो हि दर्शनमात्रेण पुनाति सकलंजगत्। त्रातारंभुवनस्यास्यनिशम्यपितृराट्स्वयम्॥८॥
ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य विष्णुं चैव सवासवम्। स ययौ त्वरितेनैवशंकरं लोकशंकरम्।
तुष्टाव प्रयतो भूत्वा दक्षिणाशापतिः स्वयम्॥९॥

लोमश कहते हैं—हे द्विजप्रवरगण! देवताओं के लिये अजेय तथा अवध्य तारकासुर को संग्राम में मारकर कुमार ने जयलाभ किया। कुमार की महिमा सभी शास्त्रों में कही गयी है। वेद, आगम, पुराण, उपनिषद्, उत्तर-पूर्व मीमांसा, सर्वत्र कुमार महिमा व्यक्त है। कुमार का ऐसा माहात्म्य है। हे द्विजगण! इनके चरित्र वर्णन की शक्ति किसी में नहीं है। वे दर्शन मात्र से समस्त जगत् को पावन कर देते हैं। एक बार इन पितृराट् (यम) लोकशंकर शंकर को त्रिभुवन का परित्राता रूप सुनकर ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र को आगे करके इन लोकशंकर शंकर के पास त्वरा पूर्वक आये। तदनन्तर प्रणत होकर इनकी स्तुति करने लगे।।५-९।।

नमो भर्गाय देवाय देवानां पतये नमः। मृत्युंजयाय रुद्राय ईशानाय कपर्द्दिने॥१०॥
नीलकंठाय शर्वाय व्योमावयवरूपिणे। कालाय कालनाथाय कालरूपाय वै नमः॥११॥

यमेन स्तूयमानो हि उवाच् प्रभुरीश्वरः। किमर्थमागतोऽसि त्वं तत्सर्वंकथयस्व नः॥१२॥

देवगण कहते हैं—हे भर्ग, देवदेव, देवों के स्वामी आपको प्रणाम! हे मृत्युञ्जय, रुद्र, ईशान, कपर्दी, नीलकण्ठ, शर्व, व्योमावयरूप, काल, काल के भी स्वामी, कालरूप आपको प्रणाम! इस प्रकार से स्तुत होकर प्रभु ईश्वर ने कहा—"तुम लोग अपने आगमन का समस्त कारण कहो।।१०-१२।।

यम उवाच

श्रूयतां देवदेवेश वाक्यं वाक्यविशारद। तपसा परमेणैव तुष्टिं प्राप्तोऽसिशंकरः॥१३॥
कर्मणा परमेणैव ब्रह्मा लोकपितामहः। तुष्टिमेति न संदेहो वराणां हि सदा प्रभुः॥१४॥
तथा विष्णुर्हि भगवान्वेदवेद्यः सनातनः। यज्ञैरनेकैः संतुष्ट उपवासव्रतैस्तथा॥१५॥
ददाति केवलं भावं येन कैवल्यमाप्नुयुः। नराः सवेर मम मतं नान्यथा हि वचो मम॥१६॥
ददाति तुष्टोवैभोगंतथास्वर्गादिसंपदः। सूर्योनमस्ययाऽऽरोग्यंददातीहनचान्यन्यथा॥१७॥
गणेशो हि महादेव अर्घ्यपाद्यादिचंदनैः। मंत्रावृत्त्या तथा शंभो निर्विघ्नंचकरिष्यति॥१८॥
तथान्ये लोकपाः सर्वे यथाशक्त्या फलप्रदाः। यज्ञाध्ययनदानाद्यैःपरितुष्टाश्च शंकर॥१९॥
महदाश्चर्यसंभूतं सर्वेषां प्राणिनामिह। कृतं च तव पुत्रेण स्वर्गद्वारमपावृतम्॥२०॥
दर्शनाच्च कुमारस्य सर्वे स्वर्गौकसो नराः। पापिनोऽपिमहादेवजातानास्त्यत्रसंशयः॥२१॥

यम कहते हैं—हे वाक्य विशारद देवेश! आप मेरा कथन सुनें। हे शंकर! आप परम तपःयोग से सन्तुष्ट होते हैं। लोकपितामह ब्रह्मा उत्तम कर्म से प्रसन्न होते हैं। वेदवेद्य विष्णु सनातन प्रभु नाना यज्ञ, उपवास तथा व्रत से प्रसन्न होते हैं, तब केवलीभाव प्रदान करते हैं। उससे मनुष्यों को कैवल्यपद प्राप्त होता है। यही मेरा मत है। मेरा वाक्य अन्यथा नहीं है। विष्णु प्रसन्न होकर स्वर्गादिभोग सम्पदा देते हैं। सूर्यदेव नमस्कारादि द्वारा उपासित होकर आरोग्य देते हैं। हे महादेव! गणेश अर्घ्य, पाद्य, चन्दनादि से अर्चित होकर तथा मन्त्रबल से आराधित होकर निर्विघ्नता प्रदान करते हैं। हे शंकर! अन्यान्य लोकपाल यज्ञ, अध्ययन, दानादि से सन्तुष्ट होकर यथाशक्ति फलदान करते हैं। तथापि प्राणीगण के पक्ष में यह महान् आश्चर्य घटना है कि आपके पुत्र ने स्वर्गद्वार की अर्गला ही हटा दिया है (अर्थात् स्वर्गद्वार को उन्मुक्त खोल दिया है)। कुमार के दर्शन मात्र से ही सभी पापी स्वर्ग प्राप्त करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है।।१०-२१।।

मया किंक्रियतांदेवकार्याकार्यव्यवस्थितौ। ये सत्यशीलाःशांताश्चवदान्यानिरवग्रहाः॥२२॥
जितेन्द्रिया अलुब्धाश्च कामरागविवर्जिताः। याज्ञिका धर्मनिष्ठाश्च वेदवेदांगपारगाः॥२३॥
यां गतिं यांति वै शंभो सर्वे सुकृतिनोपि हि। तांगतिंदर्शनात्सर्वेश्वपचाअधमाअपि॥२४॥
कुमारस्य च देवेश महदाश्चर्यकर्मणः। कार्त्तिक्यां कृत्तिकायोगसहितायां शिवस्य च॥२५॥
शिवस्य तनयं दृष्ट्वा ते यांति स्वकुलैः सह। कोटिभिर्बहुभिश्चैवमत्स्थानं परिमुच्यवै॥२६॥

हे देव! अब मैं लोगों के कार्य-अकार्य की क्या व्यवस्था करूं? जो सत्यशील, शान्त, वेदान्त, निरवग्रह, जितेन्द्रिय, निर्लोभ, कामराग रहित, यज्ञतत्पर, धर्मात्मा, वेद-वेदान्तज्ञ, सुकृतकर्मी हैं, उनको भी यही गति मिलती

है (वही गति मात्र स्कन्द के दर्शन से अनायास पापी पा जाते हैं)। हे शम्भु! जो चाण्डाल जैसे अधम हैं, वे भी अद्भुत् कर्मा कुमारदेव के दर्शनमात्र से ऐसी उत्तम गति के अधिकारी हो जा रहे हैं! कार्त्तिकमास की कृत्तिका युक्त चतुर्दशी के दिन शिवपुत्र कुमार का दर्शन करके अधम भी मेरा नरक स्थान की जगह अपने करोड़ों कुल वालों के साथ परमगति लाभ करते हैं!।।२२-२६।।

कुमारदर्शनात्सर्वे श्वपचा अपि यांति वै। सद्गतिं त्वरितेनैव किं क्रियेतमयाऽधुना।।२७।।

यमस्य वचनं श्रुत्वा शङ्करो वाक्यमब्रवीत्।।२८।।

"हे प्रभो! कुमार के दर्शन मात्र से श्वपचों को भी तत्काल सद्गति मिल जाती है। अब मेरे लिए क्या कार्य बचा है?" यम वाक्य सुनकर भगवान् शिव कहने लगे।।२७-२८।।

शङ्कर उवाच

येषां त्वंगप्तं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्। विशुद्धभावो भो धर्म्म तेषां मनसि वर्त्तते।।२९।।
सत्तीर्थगमनायैव दर्शनार्थं सतामिह। वाञ्छाचमहती तेषां जायतेपूर्वकारिता।।३०।।
बहूनां जन्मनामन्ते मयि भावोऽनुवर्त्तते। प्राणिनां सर्वभावेन जन्माभ्यासेनभो यम।।३१।।
तस्मात्सुकृतिनः सर्वे येषां भावोऽनुवर्त्तते। जन्मजन्मानुवृत्तानां विस्मयंनैवकारयेत्।
स्त्रीबालशूद्राः श्वपचाधमाश्च प्राग्जन्मसंस्कारवशाद्धि धर्म्म!।।३२।।
योनिं गताः पापिषु वर्त्तमानास्तथाऽपि शुद्धा मनुजा भवंति।।३३।।
तथा सितेन मनसा च भवन्ति सर्वे सर्वेषु चैव विषयेषु भवन्ति तज्ज्ञाः।
दैवेन पूर्वचरितेन भवन्ति सर्वे सुराश्चेन्द्रादयो लोकपालाः प्राक्तनेन।।३४।।
जाता ह्यमी भूतगणाश्च सर्वे ह्यमी ऋषयो ह्यमी देवताश्च।।३५।।

भगवान् कहते हैं—"हे धर्मराज! जिन पुण्य कर्मा व्यक्तियों का पाप नष्ट हो जाता है, उनके अन्तरतम में विशुद्धभाव का उदय होता है। उनकी महती इच्छा साधु दर्शन तथा तीर्थसेवन की हो जाती है। तब अनेक जन्मों का अवसान होने पर प्राणीगण का मेरे प्रति एकाग्रभाव जन्म लेता है। जन्म-जन्मान्तर के अनुवर्त्ती होकर मनुष्य के भाव मुझमें आबद्ध होते हैं। ऐसे मेरे प्रति एकनिष्ठ व्यक्ति ही सुकृति कहे जाते हैं। अतएव इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। हे धर्मराज! स्त्री, बालक, शूद्र, श्वपचाधम सभी पूर्वजन्मार्जित संस्कार के कारण पापयोनिगति तथा पापाचार में निरत रहने पर भी मात्र मन का मालिन्य हटते ही विशुद्ध हो जाते हैं। जब उनमें विशुद्धता आ जाती है, तब वे लोग सभी विषयों में अनुरक्त रहकर भी तत्वज्ञता प्राप्त कर लेते हैं। पूर्वजन्मार्जित अदृष्ट के कारण सभी लोग इन्द्रादि सुरलोकपाल पद पर भी समासीन होते हैं। ये जो भूतगण, ऋषिगण, देवगण हैं, ये भी प्राक्तन पुण्यफल के कारण ऐसे विराजमान हैं। (तुम कुमार के सम्बन्ध में विस्मय न करो)।।२९-३५।।

विस्मयो नैव कर्त्तव्यस्त्वया वापि कुमारके। कुमारदर्शने चैव धर्मराज निबोध मे।।३६।।
वचनं कर्मसंयुक्तं सर्वेषां फलदायकम्। सर्वतीर्थानि यज्ञाश्च दानिनि विविधानि च।
कार्याणि मनःशुद्ध्यर्थं नात्र कार्या विचारणा।।३७।।

मनसाभावितोह्यात्माआत्मनात्मानमेवच। आत्माअहंचसर्वेषांप्राणिनांहिव्यवस्थितः॥३८॥
अहं सदा भावयुक्तः आत्मसंस्थो निरंतरः। जंगमाजंगमानां च सत्यं प्रति वदामिते॥३९॥
द्वन्द्वातीतो निर्विकल्पो हि साक्षात्स्वस्थो नित्यो नित्ययुक्तो निरीहः।
कूटस्थो वै कल्पभेदप्रवादैर्बहिष्कृतो बोधबोध्यो ह्यनन्तः॥४०॥
विस्मृत्यचैनंस्वात्मानंकेवलंबोधलक्षणम्। संसारिणो हि दृश्यंतेसमस्ताजीवराशयः॥४१॥
अहं ब्रह्मा च विष्णुश्चत्रयोऽमीगुणकारिणः। सृष्टिपालनसंहारकारकानान्यथाभवेत्॥४२॥
अहंकारवृतेनैव कर्मणा कारितावयम्। यूयं च सर्वे विबुधा मनुष्याश्च खगादयः॥४३॥
पश्वादयः पृथग्भूतास्तथान्ये बहवो ह्यमी। पृथक्पृथक्समीचीना गुणवन्तश्च संसृतौ॥४४।
पतिता मृगतृष्णायां मायया च वशीकृता। वयं सर्वेचविबुधाःप्राज्ञाः पंडितमानिनः॥४५॥
परस्परं दूषयन्तो मिथ्यावादरताः खलाः॥४६॥

इसलिए तुमको स्कन्द के सम्बन्ध में आश्चर्य नहीं करना चाहिये। हे धर्मराज! कुमार के दर्शन के सम्बन्ध में मेरा वाक्य सुनो। मनःशुद्धि के लिए ही सर्व तीर्थाटन, सर्व यज्ञानुष्ठान तथा विविध दान कर्त्तव्य है। मन से आत्मा की भावना करनी चाहिये। मैं आत्मा द्वारा ही आत्मभावना में निमग्न रहता हूं। मैं ही सभी प्राणीगण की आत्मारूप में स्थित हूं। मैं सर्वदा भावयुक्त होकर चराचर प्राणीगण की आत्मा हूं। यह मैं तुमसे सत्य कह रहा हूं। आत्मा द्वन्द्व से अतीत-निर्विकल्प-स्वस्थ-नित्य-नित्ययुक्त, निरीह, कूटस्थ, कल्पभेद से वचनातीत, बोध से ही जाना जाने वाला तथा अनन्त है। बोधरूप अपनी आत्मा को भूल जाना ही समस्त संसार के प्राणीगण में दृष्ट होता है। मैं, ब्रह्मा, विष्णु तीनों ही त्रिविध गुणात्मक होकर सृष्टि-पालन-संहार कार्य करते हैं। अहंकारात्मक कर्म के कारण ही हम अपने-अपने कार्य में प्रवृत्त रहा करते हैं। तुम, सभी देवता, ये सभी मानव, पक्षी, पशु आदि जीववर्ग इस संसार में पृथक्-पृथक् गुण से अन्वित होकर नाना विभिन्न रूप में विराजमान रहते हैं। सभी माया के वशीभूत होकर मृगतृष्णा में पतित हैं। सभी प्राज्ञ तथा पण्डित-मानी होकर परस्परतः दोषार्पण करके मिथ्यावाद में निरत रहते हैं।।३६-४६।।

त्रैगुणा भवसंपन्ना अतत्त्वज्ञाश्च रागिणः। कामक्रोधभयद्वेषमदमात्सर्यसंयुताः॥४७॥
परस्परं दूषयन्तो ह्यतत्त्वज्ञा बहिर्मुखाः। तस्मादेवं विदित्वाथ असत्यं गुणभेदतः॥४८॥
गुणातीते च वस्त्वर्थे परमार्थैकदर्शनम्॥४९॥
यस्मिन्भेदोह्यभेदंचयस्मिन्रागोविरागताम्। क्रोधो ह्यक्रोधतांयातितद्धाम परमंशृणु॥५०॥

जो त्रिगुणमय, उपद्रवशील, तत्त्वज्ञानरहित, विषयानुरागी तथा काम-क्रोध-भय-द्वेष-मद-मात्सर्य युक्त हैं, उनकी ही बहिर्मुखी प्रवृत्ति होती है। इस विषय में लोग अपनी अज्ञता के कारण एक दूसरे पर दोषारोपण करते हैं। जो इस गुणभेदमय को असत्य जानकर गुणातीत का आश्रय लेते हैं, जहां पर भेद ही अभेद हो जाता है, राग ही विराग हो जाता है, क्रोध ही अक्रोध हो जाता है, वह धाम ही परम धाम है। अब उसके सम्बन्ध में सुनो।।४७-५०।।

न तद्भासयते शब्दः कृतकत्वाद्यथा घटः। शब्दो हि जायते धर्म्मः प्रवृत्तिपरमो यतः॥५१॥

प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च तथा द्वन्द्वानि सर्वशः। विलयंयांतियत्रैवतत्स्थानंशाश्वतं मतम्॥५२॥

निरंतरं निर्गुणं ज्ञप्तिमात्रं निरंजनं निर्विकारं निरीहम्।
सत्तामात्रं ज्ञानगम्यं स्वसिद्धं स्वयंप्रभं सुप्रभं बोधगम्यम्॥५३॥
एतज्ज्ञानं ज्ञानविदो वदन्ति सर्वात्मभावेन निरीक्षयन्ति।
सर्वातीतं ज्ञानगम्यं विदित्वा येन स्वस्थाः समबुद्ध्या चरन्ति॥५४॥
अतीत्य संसारमनादिमूलं मायामयं मायया दुर्विचार्थम्।
मायां त्यक्त्वा निर्ममा वीतरागा गच्छन्ति ते प्रेतराण्निर्विकल्पम्॥५५॥

जैसे लौकिक घट का ज्ञान शब्द से होता है, वैसे शब्द उसे प्रकाशित नहीं कर सकता। क्योंकि वह अकृत्रिम है, जबकि घट कृत्रिम है। लेकिन उन परमात्मा से ही प्रकृति प्रवण शब्दों की उत्पत्ति होती है। प्रवृत्ति-अप्रवृत्ति तथा समस्त (द्वैतरूपी) द्वन्द्व का जहां विलय हो जाता है, वहीं शाश्वत धाम कहा गया है। जो निरन्तर, निर्गुण, ज्ञप्तिमात्र (बोधमात्र), निरंजन, निर्विकार, निरीह, सत्तामात्र, ज्ञानगम्य, स्वसिद्ध, स्वप्रयत्न, सुप्रभ तथा बोधगम्य है। ज्ञानी उसे ही ज्ञान कहते हैं तथा उसका निरीक्षण सर्वात्मभावेन करते हैं। जो सर्वातीत ज्ञानगम्य वस्तु को जानकर समबुद्धियोग से स्वच्छभावेन विचरण करता है, वह इस माया वशीभूत होने के कारण दुर्विचार्य अनादिमूल संसार का अतिक्रमण करके माया का परिहार हो जाने के कारण निर्मल एवं वीतराग होकर निर्विकल्प भाव की प्राप्ति कर लेता है।।५१-५५।।

संसृतिः कल्पनामूलं कल्पना ह्यमृतोपमा। यैः कल्पनापरित्यक्तातेयांति परमांगतिम्॥५६॥
शुक्त्यां रजतबुद्धिश्च रज्जुबुद्धिर्यथोरणे। मरीचौ जलबुद्धिश्चमिथ्यामिथ्यैवनान्यथा॥५७॥

यह संसार कल्पनामूलक है। कल्पना को अमृत के समान कहा गया है। इसका जो त्याग कर देते हैं, उनको ही परमगति प्राप्त होती है। बालू में चांदी, रज्जु में सर्प तथा मरीचिका में जल दर्शन जैसे भ्रम ही है, उसी प्रकार जगत् प्रपंच भी तत्वदर्शन द्वारा मिथ्या प्रतीत होता है। यह अन्यथा कथन नहीं है।।५६-५७।।

सिद्धिः स्वच्छंदवर्त्तित्वंपारतंत्र्यंहिवैमृषा। बद्धोहिपरतंत्राख्योमुक्तःस्वातंत्र्यभावनः॥५८॥
एको ह्यात्मा विदित्वाथ निर्ममो निरवग्रहः। कुतस्तेषां बंधनं च यथाखेपुष्पमेव च॥५९॥
शशविषाणमेवैतज्ज्ञानं संसार एव च। किं कार्यं बहुनोक्तेन वचसा निष्फलेन हि॥६०॥
ममतां च निराकृत्यप्राप्तुकामाःपरंपदम्। ज्ञानिनस्तेहिविद्वांसोवीतरागाजितेन्द्रियाः॥६१॥
यैस्त्यक्तो ममताभावोलोभकोपौनिराकृतौ। तेयांतिपरमंस्थानंकामक्रोधविवर्जिताः॥६२॥
यावत्कामश्च लोभश्चरागद्वेषौव्यवस्थितौ। नाप्नुवंतिचतासिद्धिंशब्दमात्रैकबोधकाः॥६३॥

स्वच्छन्दता ही सिद्धि है। परितंत्र्य ही मिथ्या है। परतंत्र ही बद्ध है। जो (आत्म) स्वातन्त्र्य युक्त हैं, वे ही मुक्त पुरुष हैं। आत्मा ममता रहित, निरवग्रह है। उसे जान लेने पर बन्धन की सम्भावना नहीं रहती। वास्तव में बन्धन तो आकाश कुसुम के समान अलीक (मिथ्या) है। अनेक निष्फल वाक्य कहने का क्या प्रयोजन! यह सत्य जानो कि जैसे खरगोश की सींग कहना अलीक है (मिथ्या) है, उसी प्रकार संसार का अस्तित्व ज्ञान भी मिथ्या ही है। जो ममत्व बुद्धि त्यागकर परमपद प्राप्ति हेतु वीतराग, जितेन्द्रिय, तत्वज्ञ रहते हैं, वे ही यथार्थ ज्ञानी हैं। जो

लोभ-क्रोध-ममता का त्याग करके स्थित हैं, ऐसे कामक्रोधादि रहित साधु ही परमपद लाभ करते हैं। जब तक काम, लोभ, राग, द्वेष विद्यमान रहता है, तब तक सिद्धि नहीं मिलती।।५८-६३।।

यम उवाच

शब्दाच्छब्दः प्रवर्त्तेत निःशब्दं ज्ञानमेव च। अनित्यत्वंहिशब्दस्यकथंप्रोक्तंत्वया प्रभो।।६४।।
अक्षरं ब्रह्म परमं शब्दोवै ह्यक्षरात्मकः। तस्माच्छब्दस्त्वया प्रोक्तोनिरीक्षकइतिश्रुतम्।।६५।।
प्रतिपाद्यंहियत्किंचिच्छब्देनैवविनाकथम्। तत्सर्वंकथ्यतांशंभोकार्याकार्यव्यवस्थितौ।।६६।।

यम कहते हैं—हे प्रभो! शब्द से ही शब्द की प्रवृत्ति होती है। ज्ञान निःशब्द है। इस प्रकार आप शब्द के अनित्यत्व का ही क्यों कीर्त्तन कर रहे हैं? परब्रह्म अक्षर हैं। यह सुना है कि शब्द तो अक्षरात्मक है। तब आप तो शब्द का उल्लेख निरक्षर रूप से कर रहे हैं! जो कुछ प्रतिपाद्य विषय है, वह शब्द के बिना कैसे हो सकता है (अर्थात् कैसे व्यक्त हो सकेगा?)। हे शम्भु! कार्याकार्य व्यवहारार्थ आप यह सब कहिये।।६४-६६।।

शङ्कर उवाच

शृणुष्वावहितो भूत्वा परमार्थयुतं वचः। यस्य श्रवणमात्रेण ज्ञातव्यं नावशिष्यते।।६७।।
ज्ञानप्रवादिनः सर्व ऋषयो वीतकल्मषाः। ज्ञानाभ्यासेन वर्तते ज्ञानं ज्ञानविदोविदुः।।६८।।

शंकर कहते हैं—"मेरे परमार्थयुक्त वाक्यों को एकाग्रता से सुनो। इसके सुनने मात्र से कोई भी ज्ञातव्य विषय जानने से बाकी नहीं रह जायेगा। ज्ञानवादी निष्पाप ऋषिगण ज्ञानाभ्यास में ही स्थित रहते हैं। वे ज्ञान को ही परम वस्तु कहते हैं।।६७-६८।।

ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं ज्ञात्वा च परिगीयते।
कथं केन च ज्ञातव्यं किंतद्वक्तुंविवक्षितम्।।६९।।
एतत्सर्वं समासेन कथयामि निबोध मे। एको ह्यनेकधा चैव दृस्यते भेदभावनः।।७०।।
यथा भ्रमरिकादृष्टा भ्रम्यते च मही यम। तथात्मा भेदबुद्ध्या च प्रतिभातिह्यनेकधा।।७१।।
तस्माद्विमृश्य तेनैव ज्ञातव्यः श्रवणेन च। मंतव्यः सुप्रयोगेण मननेन विशेषतः।।७२।।
निर्द्धार्य चात्मनात्मानं सुखं बंधात्प्रमुच्यते। मायाजालमिदं सर्वं जगदेतच्चराचरम्।।७३।।
मायामयोऽयं संसारो ममतालक्षणो महान्। ममतांचबहिःकृत्वासुखंबंधात्प्रमुच्यते।।७४।।

जो ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञानगम्य है, जो अनुभव द्वारा ही व्यक्त होता है, वह किस प्रकार से किसका ज्ञातव्य हो सकता है? वह ज्ञातव्य क्या है—इन सब का मैं संक्षेप में वर्णन करता हूं। सुनो! आत्मा एक होकर भी अनेकतः भासित होता है। वह भेदबुद्धि के कारण अनेक रूप में परिदृश्यमान है। हे यम! जैसे भ्रमदर्शन से (जैसे गोल चक्कर लगाने पर) धरती घूमती लगती है, उसी प्रकार भेददर्शनात्मक बुद्धि के कारण एक आत्मा अनेक प्रकार से विभक्त दर्शित होती है। इसलिए विशेष रूप से चिन्तन द्वारा आत्मा का सदा श्रवण एवं मनन कर्त्तव्य है। वही एकमात्र ज्ञातव्य है। आत्मा द्वारा आत्मस्वरूप निर्णय कर सकने से अनायास ही बन्धन मुक्ति हो जाती है। यह समस्त जगत् मायाजाल से आवृत है। यह मायामय है। यह महान् ममतारूप है। ममता को हटाने से अनायास बन्धन मुक्ति प्राप्त होती है।।६९-७४।।

कोऽहं कस्त्वं कुतश्चान्ये महामायावलंविनः। अजागलस्तनस्येव प्रपंचोऽयंनिरर्थकः॥७५॥
निष्फलोऽयं निराभासो निःसारो धूमडंबरः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेनआत्मानंस्मरवैयम॥७६॥

मैं कौन हूं, तुम कौन हो? अन्य महामायावलम्वी कौन हैं? जैसे बकरे के गले में लटका स्तन निरर्थक है, उसी प्रकार समस्त प्रपञ्च निरर्थक हैं। यह निष्फल, निराभास तथा निःसार है। जैसे धूयें का स्तम्भ निरर्थक होता है, वैसे ही इसे जाने। हे यम! सर्व प्रयत्नपूर्वक आत्मा का ही स्मरण करना चाहिये।।७५-७६।।

लोमश उवाच

एवंप्रचोदितस्तेन शंभुना प्रेतराट्स्वयम्। बुद्धोभूत्वायमः साक्षादात्मभूतोऽभवत्तदा॥७७॥
कर्म्मणां हि च सर्वेषां शास्ता कर्मानुसारतः। बभूव डंबरो नृणांभूतानांचसमाहितः॥७८॥

लोमश कहते हैं—शम्भु द्वारा इस प्रकार से उपदेश पाकर प्रेतराज यम प्रबुद्ध हो गये। वे साक्षात् आत्मरूप हो गये। वे सर्वकर्म नियन्त्रक तथा समस्त प्राणीगण के प्रधान शासक हो गये।।७७-७८।।

ऋषय ऊचुः

हत्वा तु तारकं युद्धे कुमारेण महात्मना। अत ऊर्ध्वं कथ्यतां भोकिं कृतं महदद्भुतम्॥७९॥

ऋषिगण कहते हैं—महात्मा कुमार ने युद्ध में तारक का वध करके अन्य कौन सा विस्मयजनक कार्य किया, वह कहिये!।।७९।।

सूत उवाच

हते तु तारके दैत्ये हिमवत्प्रमुखाद्रयः। कार्त्तिकेयं समागत्य गीर्भी रम्याभिरेडयन्॥८०॥

सूतजी कहते हैं—तारक दैत्य के मृत होने पर हिमालय आदि प्रधान पर्वतगण ने एक साथ एकत्र होकर रम्य वाक्य विन्यास द्वारा कार्त्तिकेय का स्तव प्रारम्भ किया।।८०।।

गिरय ऊचुः

नमः कल्याणरूपाय नमस्ते विश्वमंगल। विश्वबंधो नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वभावन॥८१॥
वरिष्ठाः श्वपचा येन कृता वै दर्शनात्त्वया। त्वां नमामो जगद्बन्धुंत्वांवयंशरणागताः॥८२॥
नमस्ते पार्वतीपुत्र शंकरात्मज ते नमः। नमस्ते कृत्तिकासूनो अग्निभूत नमोऽस्तु ते।
नमोऽस्तु ते देववरैः सुपूज्य नमोऽस्तु ते ज्ञानविदां वरिष्ठ!॥८३॥
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद शरण्य सर्वार्तिविनाशदक्ष!॥८४॥
एवं स्तुतोगिरिभिःकार्त्तिकेयोह्युमासुतः। तान्गिरीन्सुप्रसन्नात्मा वरंदातुंसमुत्सुकः॥८५॥

पर्वतगण कहते हैं—"आप कल्याणमूर्त्ति हैं। आपको प्रणाम! हे विश्वमंगल, विश्वबन्धु, विश्वभावन! आपको पुनः पुनः प्रणाम! आप दर्शनमात्र से श्वपचों को भी महान् बना देते हैं। हम आपके शरणागत हैं। आप जगद्बन्धु हैं। आपको हमारा प्रणाम! हे पार्वतीपुत्र! शंकरात्मज! आपको प्रणाम! हे कृत्तिकानन्दन! हे अग्नि से उत्पन्न! आपको प्रणाम! हे देवदेवगण के पूज्य! हे ज्ञानियों में वरिष्ठ। आपको प्रणाम! हे देववर, शरण्य!

सर्वार्त्तिनाशक! आपको पुनः-पुनः प्रणाम! आप प्रसन्न हो जायें!'' इस प्रकार से उमासुत कार्त्तिकेय ने स्तुति किये जाने से सन्तुष्ट होकर गिरिगण को वर देना चाहा।।८१-८५।।

कार्त्तिकेय उवाच

भोभो गिरिवरा यूयं शृणुध्वंमद्वचोऽधुना। कर्मिभिर्ज्ञानिभिश्चैवसेव्यमानाभविष्यथ॥८६॥
भवत्स्वेवहि वर्त्तते दृषदो यत्नसेविताः। पुनन्तु विश्वं वचनान्मम ता नात्र संशयः॥८७॥
पर्वतीयानितीर्थानिभविष्यंतिनचान्यथा। शिवालयानिदिव्यानिदिव्यान्यायतनानिच॥८८॥
अयनानि विचित्राणि शोभनानि महांति च। भविष्यंति न संदेहः पर्वता वचनान्मम॥८९॥
योऽयं मातामहो मेऽद्यहिमवान्पर्वतोत्तमः। तपस्विनांमहाभागःफलदोहि भविष्यति॥९०॥
मेरुश्च गिरिराजोऽयमाश्रयो हि भविष्यति। लोकालोकोगिरिवरउदयाद्रिर्महायशाः॥९१॥
लिंगरूपो हि भगवान्भविष्यतिन चान्यथा। श्रीशैलोहिमहेन्द्रश्चतथासह्याचलोगिरिः॥९२॥
माल्यवान्मलयो विन्ध्यस्तथासौ गंधमादनः। श्वेतकूटस्त्रिकूटो हि तथादर्दुरपर्वतः॥९३॥
एते चान्ये च बहवः पर्वता लिंगरूपिणः। मम वाक्याद्भविष्यन्ति पापक्षयकरा ह्यमी॥९४॥
एवं वरं ददौ तेभ्यः पर्वतेभ्यश्च शांकरिः। ततो नंदी ह्युवाचाथ सर्वागमपुरस्कृतम्॥९५॥

कार्त्तिकेय कहते हैं—हे गिरिप्रवरगण! आप सब मेरा कथन सुनें। मैं कहता हूं कि आप सब कर्मी (तपस्वी आदि) तथा ज्ञानीजन से सेवित होंगे। आप सब पर जो शिलाये हैं, वे भी सयत्न सेवित होकर मेरे इस वाक्य के कारण जगत् को पवित्र करेंगी। यह निःसंशय है। वे सब शिलायें पवित्र पर्वतीय तीर्थ होंगी। हे पर्वतगण! मेरे वचन के कारण वे शिलायें दिव्य शिवालय, दिव्य गृह, विचित्र अयन होकर शोभित रहेंगी। ये तो मेरे नाना पर्वतराज हिमाचल हैं, ये महाभाग तपस्वीगण के लिए फलप्रद होंगे। ये पर्वतराज मेरु मेरा आश्रय होंगे। गिरिराज लोकालोक तथा महायशस्वी उदयगिरि पर भगवान् लिंगरूपी होकर विराजमान रहेंगे। श्रीशैल, महेन्द्र, सह्याद्रि, माल्यवान्, मलय, विन्ध्य, गन्धमादन, श्वेतकूट, त्रिकूट, दुर्दुर तथा अन्य पर्वत भी लिंगरूपी होंगे। ये सब मेरे वचन के अनुसार पापक्षय करेंगे।'' शंकरात्मज कुमार स्कन्ददेव ने यह वर पर्वतों को प्रदान किया। तब नन्दी कार्त्तिकेय से आगम सम्मत वाक्य कहने लगे।।८६-९५।।

नन्द्युवाच

त्वया कृता हि गिरयो लिंगरूपिण एवते। शिवालयाःकथंनाथपूज्याःस्युःसर्वदैवतैः॥९६॥

कुमार उवाच

लिंगं शिवालयं ज्ञेयं देवदेवस्य शूलिनः। सर्वैर्नृभिर्दैवतैश्च ब्रह्मादिभिरतन्द्रितैः॥९७॥
नीलं मुक्ता प्रवालं च वैडूर्यं चन्द्रमेव च। गोमेदं पद्मरागं च मारतं कांचनं तथा॥९८॥
राजतं ताम्रमारं च तथा नागमयं परम्। रत्नधातुमन्यायेव लिंगानिकथितानि ते॥९९॥
पवित्राण्येव पूज्यानि सर्वकामप्रदानि च। एतेषामपि सर्वेषां काश्मीरंहिविशिष्यते॥१००॥
ऐहिकामुष्मिकं सर्वं पूजाकर्तुः प्रयच्छति॥१०१॥

नन्दीश्वर कहते हैं— हे नाथ! आपने सभी पर्वतों को लिंगरूपी होने का वरदान दिया है, तब शिवालय देवगण के लिए कैसे पूज्य होगा?

कुमार ने यह प्रश्न सुनकर कहा—"देवदेव शूलपाणि का लिंग ही शिवालय कहलायेगा। समस्त मनुष्य तथा ब्रह्मा आदि देव प्रभृति सभी के लिए यह आलस्य रहित होकर पूज्य है। नीलमणि, मुक्ता, प्रवाल, वैदूर्य, चन्द्र, गोमेद, पद्मराग, मरकत, काञ्चन, चांदी, ताम्र, पीतल तथा सीसकादि नाना धातुमय लिंग वर्णित है। ये समस्त सर्वकामप्रद लिंग पूज्य हैं। इनमें काश्मीर लिंग सर्वाधिक प्रशस्त है। इस लिंग का पूजक ऐहिक तथा पारलौकिक समस्त सम्पदा भगवान् से प्राप्त करता है।।९६-१०१।।

नन्द्युवाच

लिंगानामपि पूज्यं स्वाद्बाणलिंगं त्वया कथम्। कथितं चोत्तमत्वेन तत्सर्ववदसुव्रत।।१०२।।

नन्दी कहते हैं—आपने लिङ्गों में से बाणलिङ्ग की विशेष पूजा का उल्लेख क्यों किया है? हे सुव्रत! इस लिंग के श्रेष्ठत्व को कहिये।।१०२।।

कुमार उवाच

रेवायां तोयमध्ये च दृश्यंते दृषदोहियाः। शिवप्रसादात्तास्तु स्युर्लिंगरूपानचान्यथा।।१०३।।
श्लक्ष्णमूलाश्च कर्तव्याः पिंडिकोपरिसंस्थिताः। पूजनीयाःप्रयत्नेनशिवदीक्षायुतेनहि।।१०४।।
पिण्डीयुक्तंचशास्त्रेणविधिनाचयजेच्छवम्। वरदोहिजगन्नाथःपूजकस्यनचान्यथा।।१०५।।
पंचाक्षरी यस्य मुखे स्थिता सदा चेतोनिवृत्तिः शिवचिन्तने च।
भूतेषु साम्यं परिवादमूकता षण्ढत्वमेवं परयोषितासु।।१०६।।

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे शिवशास्त्रे कार्त्तिकेयप्रोक्तशिवलिङ्गमाहात्म्यवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः।।३१।।

कुमार देव कहते हैं—रेवानदी के जल में जो सब उपल (शिला) देखी जाती है, वह सब शिवकृपा से लिंगरूपी होती है। शिवमन्त्र दीक्षित व्यक्ति उपल के मूल को चिकना करके उसे पिण्डिका पर स्थापित करे। तब यत्नतः पूजा करनी चाहिये। शास्त्रीय विधि से पिण्डीयुक्त शिवलिंग की ही पूजा करे। इस पूजा से जगन्नाथ उस भक्त के प्रति वरप्रद हो जाते हैं। जिनके मुख से सदा पञ्चाक्षरी शैव मन्त्र रहता है, जो शिव चिन्तन में ही आसक्त बने रहते हैं, जो सभी भूतसमूह के प्रति समदर्शी हैं, जहां विवाद हो, वहां मौनी रहते हैं तथा जो पराई नारी के प्रति आसक्त नहीं हैं, ऐसे पूजक के प्रति शिव वरप्रद हैं।।१०३-१०६।।

।।एकत्रिंश अध्याय समाप्त।।

द्वात्रिंशोऽध्यायः

श्वेतराज का चरित्र, कालदहन, शिवभक्ति महिमा वर्णन, कालकृत महेशस्तव, श्वेत को शिव प्राप्ति

लोमश उवाच

एवं तेशिवधर्माश्चकथितास्तेनवैद्विजाः। सविशेषाःपाशुपताःप्रसादाच्चैव विस्तरात्॥१॥
अनेकागमसंवीता यथातत्त्वमुदाहृताः। कापालिकानांभेदाश्च प्रोक्ता व्याससमासतः॥२॥
धर्मा नानाविधाः प्रोक्ता नन्दिनं प्रति वै तदा॥३॥

लोमश कहते हैं—हे द्विजगण! इस प्रकार कार्तिकेय ने नन्दी से शिवधर्म की व्याख्या किया। उन्होंने प्राञ्जल तथा विस्तारपूर्वक अनेक आगम सम्मत-समस्त पाशुपत धर्म का तथा उनके समस्त-व्यस्त भाव का एवं नाना कापालिक रहस्य को यथायथ रूप से वर्णन किया।।१-३।।

ऋषय ऊचुः

श्रुतं कुमारचरितमविशेषं सुमङ्गलम्। अस्माभिश्च महाभाग किंचित्पृच्छामहे वयम्॥४॥
श्वेतस्य राजसिंहस्य चरितं परमाद्भुतम्। येन संतोषितो रुद्रःशिवोभक्त्याऽप्रमेयया॥५॥
ते भक्तास्ते महात्मानोज्ञानिनस्ते च कर्मिणः। येऽर्चयंतिमहाशंभुंदेवंभक्त्यासमावृताः॥६॥
तस्मात्पृच्छामहे सर्वेचरितंशंकरस्यच। व्यासप्रसादात्सर्वं यज्ज्ञानासित्वंन चापरः॥७॥
निशम्य वचनं तेषां मुनीनां लोमशोऽब्रवीत्॥८॥

ऋषिगण कहते हैं—"हे महाभाग! हमने सुमंगल कुमार चरित को अशेष रूप से सुना। तथापि हम कुछ और जानने के इच्छुक हैं। जिन्होंने असाधारण भक्ति द्वारा मंगलमय रुद्रदेव को भावित किया है, उन श्वेतराज का परम अद्भुद् चरित्र हम जानना चाहते हैं। जो भक्ति के साथ शम्भु की आराधना करते हैं, वे ही महात्मा हैं। वे ही ज्ञानी तथा कर्मी कहे जा सकते हैं। अतएव हम शंकर का चरित्र जानना चाहते हैं। आप व्यास की कृपा से सब जानते हैं। अन्य यह सब नहीं जानते।" ऋषिगण का वचन सुनकर सूत लोमश कहने लगे।।४-८।।

लोमश उवाच

आकर्ण्यतां महाभागाश्चरितं परमाद्भुतम्। तस्यराज्ञोहिभजतोराजभोगांश्च सर्वशः।
मतिर्द्धर्मे समुत्पन्ना श्वेतस्य च महात्मनः॥९॥
पृथ्वीं पालयामास प्रजा धर्मेणपालयन्। ब्रह्मण्यःसत्वाक्छूरःशिवभक्तो निरंतरम्॥१०॥
राज्यं शशासाऽथ स शक्तितो नृपो भक्त्या तदा चैव समर्चयत्सदा।
शंभुं परेशं परमं परात्परं शांतं पुराणं परमात्मरूपम्॥११॥
आयुस्तस्य परिक्षीणमर्चतःपरमेश्वरम्। अथैतच्च महाभाग चरितंश्रूयतां मम॥१२॥

लोमश कहते हैं—हे महाभागगण! राजभोग के भागी श्वेतराज का अद्‌भुद् चरित्र सुनें। ये राजा धर्ममति थे। वे धर्मानुसार पृथिवी तथा प्रजामंडली का पालन करते रहते थे। ये ब्रह्मण्य, सत्यवादी, शूर तथा सदा शिवभक्त थे। वे यथाशक्ति राज्य शासन भी करते थे। ये परेश परात्पर परमपुराण पुरुष परमात्मा शान्त शम्भु की भक्तिपूर्वक अर्चना भी करते थे। परमेश्वरार्चन करते-करते उनकी आयु का क्षय हो गया। हे महाभाग! अब इस राजा का आगे का चरित्र सुनें।।९-१२।।

वाणी शिवकथायुक्ता परमाश्चर्यसंयुता। न वाऽऽधयोहि तस्यैवव्याधयोहिमहीपतेः॥१३॥
तस्य राज्ञोनबाधन्ते तथा चोपद्रवास्त्वमी। निरीतिको जनो ह्यासीन्निरुपद्रवएव च॥१४॥
अकृष्टपच्यौषधयस्तस्य राज्ञोऽभवन्भुवि। तपस्विनो ब्राह्मणाश्चवर्णाश्रमयुताजनाः॥१५॥
न पुत्रमरणेदुःखंनापमांनमारकाः। न दारिद्र्यं चतेसर्वे प्राप्नुवन्तिकदाचन॥१६॥
एवं बहुतरः कालस्तस्य राज्ञो महात्मनः। गतो हि सफलो विप्राःशिवपूजारतस्यवै॥१७॥
एकदा पूजमानं तं शंकरं परमार्थदम्। यमो हि प्रेषयामास यमदूतान्नृपंप्रति॥१८॥

इस राजा की रानी परमाश्चर्यमयी शिवकथा का श्रवण करती रहती थी। आधि-व्याधि तथा अन्य कोई उपद्रव उसे पीड़ित नहीं कर पाते थे। उनकी प्रजा भी इन बाधाओं से मुक्त तथा उपद्रव रहित थी। राज्य के ब्राह्मण तपस्वी थे। प्रजावर्ग वर्णाश्रमधर्म तत्पर था। वे कभी पुत्रमरण नहीं देखते थे। कोई अपमानित नहीं होता था। कोई किसी का हत्यारा नहीं था। किसी ने कभी भी दरिद्रता का भोजन नहीं किया था। इस प्रकार इस महात्मा राजा का दीर्घकाल व्यतीत हो गया। हे विप्रगण! शिवार्चन तत्पर राजा का पूरा समय इस प्रकार बीत गया। जब एक दिन राजा परम आश्चर्यमयी शिवपूजा में निरत थे, तभी यम ने इनको लाने के लिए अपने दूत भेजे।।१३-१८।।

वचनाच्चित्रगुप्तस्य श्वेत आनीयतामिति। तथेति मत्वा ते दूताआगताः शिवमंदिरम्॥१९॥
राजानंनेतुकामास्तेपाशहस्तामहाभयाः। यावत्समागतायाम्याराजनं ददृशुस्त्वरात्॥२०॥
न चक्रिरे तदा दूता आज्ञां धर्मस्य चैव हि। ज्ञात्वा सर्वं यमश्चैव आगतःस्वयमेवहि॥२१॥
उद्धृत्य दंडं सहसा नेतुकामस्तदा नृपम्।
ददर्श च महाबाहुः शिवध्यानपरायणम् ॥२२॥
शिवभक्तियुतं शांतं केवलं ज्ञानसंयुतम्। यतोऽपि दृष्ट्वा राजानं परं क्षोभमुपागमत्॥२३॥
चित्रस्थो ह्यभवत्सद्यःप्रेतराजोऽतिविह्वलः। कालरूपश्च यो नित्यंप्रजानांक्षयकारकः॥२४॥
आगतस्तत्क्षणादेवनृपं प्रति रुषान्वितः। खड्गेन सितधारेणचर्मणापरमेणहि॥२५॥

यम के मन्त्री चित्रगुप्त ने यमदूतों को आदेश दिया—"श्वेतराजा को ले आओ।" तब भयंकर यमदूत आज्ञा शिरोधार्य करके पाश लेकर राजा को लाने शिवमंदिर पहुंचे, जहां राजा पूजारत था। वे यमदूत धर्मराज की आज्ञा का पालन नहीं कर सके। तब समस्त व्यापार जान कर वे स्वयं यमदण्ड लेकर राजा को लेने आये। महाबाहु यम ने आते ही देखा कि राजा शिवध्यान तत्पर हैं। सदा शिवभक्तियुक्त, शान्त, केवली एवं ज्ञानी हैं। यम राजा को इस स्थिति में देखकर अत्यन्त क्रोधित हो गये। प्रेतराज यम विह्वल होकर चित्रलिखित के समान स्थित हो गये। तभी प्रजाक्षय करने वाला काल भी घोर तीक्ष्ण खड्ग तथा ढाल लेकर तत्क्षण राजा के यंहां आया।।१९-२५।।

तावत्तं ददृशे सोऽपि स्थितं द्वारि भयावृतम्। उवाच कालोहितदायमंवैवस्वतंप्रति॥२६॥
कस्मात्त्वया धर्मराज यो नीतोऽयं नृपोमहान्। यम दूतसहायश्चभीतवत्प्रतिभासिमे॥२७॥
कालात्ययो न कर्त्तव्यो वचनान्मम सुव्रत। कालेनोक्तस्तदा धर्म उवाच प्रस्तुतंवचः॥२८॥
तवाज्ञां च करिष्यामिनात्रकार्याविचारणा। असौदुरत्ययोऽस्माकंशिवभक्तोनिरंतरम्॥२९॥

उसने आकर यम को द्वार पर भययुक्त भाव से स्थित देखा। कहा—"हे धर्मराज! आपने अभी तक इस राजा को क्यों ग्रहण नहीं किया। हे यम! आपके तो दूत सहायक हैं, तथापि आपको भयभीत देखकर मुझे रोष हो रहा है। हे सुव्रत! आप मेरे कथनानुरूप समय व्यर्थ न करें।" काल के वचन को सुनकर धर्मराज यम कहने लगे—"हे देव! मैं आपकी आज्ञा का सम्पादन करूंगा। इसमें सन्देह नहीं है, किन्तु यह नित्य शिवभक्त व्यक्ति मेरे लिए दुराक्रम्य हो गया है।।२६-२९।।

चित्रस्था इव तिष्ठाम भयाद्देवस्य शूलिनः। यमस्य वचनंश्रुत्वाकालःक्रोधसमन्वितः।
राजानं हंतुमारेभे त्वरितः खड्गमाददे॥३०॥
त्रिगुणाष्टार्कसंकाशं प्रविवेश शिवालयम्। यावत्कोपेन महतातावद्दृष्टः पिनाकिना।
स्वभक्तं हन्तुकामोऽसौ श्वेतराजानमुत्तमम्॥३१॥
ध्यानस्थितं चात्मनि तं विशुद्धज्ञानप्रदीपेन विशुद्धचित्तम्।
आत्मानमात्मात्मतया निरन्तरं स्वयं प्रकाशं परमं पुरस्तात्॥३२॥
एवंविधं तं प्रसमीक्ष्य कालं संचिंत्यमानं मनसाऽचलेन।
शैवं पदं यत्परमार्थरूपं कैवल्यसायुज्यकरं स्वरूपतः॥३३॥
सदाशिवेन दृष्टोऽसौ कालःकालान्तकेनच। उच्छृंखलःखलोदर्पाद्विशमानोनिजांतिके॥३४॥

देवदेव शूलपाणि के भय से ही मैं यहां चित्रलिखित जैसा खड़ा हूं। यम का वाक्य सुनकर काल क्रोधित हो गया। वह खड्ग धारण करके राजा का विनाश करने के लिए उपक्रम करने लगा। वह २४ दिवाकरों के समान दीप्तिमान काल जब शिवमंदिर में प्रवेश करने लगा, तब पिनाकपाणि प्रभु शिव ने उसकी ओर महाकोप दृष्टि से देखा। श्वेतराज शिव का भक्त था, वह शुद्ध मन से ध्यानस्थ होकर विशुद्ध ज्ञानदीप से आत्मा से ही आत्मा में स्वयम्प्रकाश रूप स्थित परात्पर परमात्मरूप का चिन्तन कर रहा था। काल ऐसे उत्तम शिवभक्त का विनाश करने हेतु उद्यत हो गया। राजा कैवल्यप्रद तथा सायुज्यप्रद परमार्थरूपी शैवपद की चिन्तना में निमग्न था। तभी काल ने आक्रमण किया। काल को आक्रमणोद्यत देखकर कालात्मक सदाशिव ने उसकी ओर देखा। उच्छृङ्खल खलप्रकृति काल दण्ड मात्र में उनके अभिमुख दौड़ पड़ा।।३०-३४।।

नन्दिकेश्वरमध्यस्थो यावद्दृष्टो निजांतिके। शिवेन जगदीशेन भक्तवत्सलबन्धुना॥३५॥
निरीक्षितस्तृतीयेन चक्षुषा परमेष्ठिना। स्वभक्तं रक्षमाणेन भस्मसादभवत्क्षणात्॥३६॥
ददाह तं कालमनेकवर्णं व्यात्ताननं भीमबहूग्ररूपम्।
ज्वालावलीभिः परिदह्यमानमतिप्रचण्डं भुवनैकभक्षणम्॥३७॥

ददर्शिरे देवगणाः समेताः सयक्षगंधर्वपिशाचगुह्यकाः।
सिद्धाप्सरःसर्वखगाश्च पन्नगाः पतत्रिणो लोकपालास्तथैव॥३८॥
ज्वालामालावृतंकालमीश्वरस्याग्रतःस्थितम्। लब्धसंज्ञस्तदाराजाकालंस्वंहंतुमागतम्॥३९॥
पुनःपुनर्ददर्शाऽथ दह्यमानं कृशानुना। प्रार्थयामास स व्यग्रो रुद्रं कालाग्निसन्निभम्॥४०॥

जब भक्तवत्सल जगदीश शिव ने काल को अपने समीप तथा अपने तथा नन्दिकेश्वर के बीच में स्थित देखा तभी उन्होंने अपने भक्त के रक्षार्थ उसके प्रति अपने तृतीय नयन को खोला। तत्काल काल भस्मीभूत हो गया। अनेक वर्ण, मुख फाड़े, भीमबाहु, उग्रप्रकृति, प्रचण्ड स्वभाव तथा जगत् का एकमात्र ग्रास करने वाला काल तब शिव की नेत्राग्नि की ज्वाला से दग्ध हो गया। उस समय देवता, यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, अप्सरा, विमानचारी, पन्नग, पक्षी तथा लोकपाल, सभी ने इस काल को ईश्वर के समीप ज्वालाओं से आवृत देखा। तब तक राजा श्वेत की चेतना लौट आई थी। राजा ने देखा कि काल उनका ग्रास करने आया था। वह शिव की नयनाग्नि से दग्ध हो गया। राजा ने पुनः-पुनः इस घटना का अवलोकन किया तथा कालाग्नि स्वरूप रुद्रदेव से प्रार्थना करने लगे।।३५-४०।।

राजोवाच

नमोरुद्रायशांतायस्वज्योत्स्नायात्मवेधसे। निरंतराय सूक्ष्माय ज्योतिषां पतये नमः॥४१॥
त्राता त्वं हि जगन्नाथपितामातासुहृत्सखा। त्वमेवबंधुःस्वजनोलोकानांप्रभुरीश्वरः॥४२॥
किं कृतं हि त्वया शंभोकोऽसौदग्धोममाग्रतः। नजानामिचकिंजातंकृतंकेनमहत्तरम्॥४३॥
एवं प्रार्थयतस्तस्य श्रुत्वा च परिदेवनम्। उवाच शङ्करो वाक्यं बोधयन्निव तंनृपम्॥४४॥

राजा कहते हैं—हे जगन्नाथ! आप रुद्र, शान्त, स्वयम्प्रकाश, आत्मयोनि हैं। आपको प्रणाम! आप ही सूक्ष्म ज्योतिःपति हैं, आपको प्रणाम! हे प्रभो! आप ही त्राता, पिता-माता-सुहृद-सखा हैं। आप जगत् के प्रभु, बन्धु, आत्मीय तथा ईश्वर हैं। हे शम्भु! यह आपने क्या किया? आपने मेरे समक्ष किसे दग्ध किया? इसने क्या दुर्व्यवहार किया, मैं नहीं जानता। राजा का यह परिवेदन सुनकर प्रभु शिवशंकर राजा से कहने लगे।।४१-४४।।

रुद्र उवाच

मया दग्धो ह्यं कालस्तवार्थेचतवाग्रतः। दह्यमानोहिदृष्टस्तेज्वालामालाकुलोमहान्॥४५॥
एवमुक्तस्तदा तेन शंभुना राजसत्तमः। उवाच प्रश्रितो भूत्वा वचनं शिवमग्रतः॥४६॥
किमनेन कृतं शंभो अकृत्यं वद तत्त्वतः। य इमां प्रापितोऽवस्थां प्राणात्ययकरींभव॥४७॥
एवं विज्ञापितस्तेन ह्युवाच परमेश्वरः। भक्षकोऽयं महाराज सर्वेषां प्राणिनामिह॥४८॥
भक्षणार्थंतवविभोसोऽयंक्रूरोऽधुनाऽऽगतः। ममांतिकंमहाराजतस्माद्दग्धोमयाविभो॥४९॥
बहूनां क्षेममन्विच्छंस्तवार्थेऽन्हं विशेषतः॥५०॥
ये पापिनो ह्यधर्मिष्ठा लोकसंहारकारकाः। पाषंडवादसंयुक्ता बध्यास्ते मम चैव हि।
वाक्यं निशम्य रुद्रस्य श्वेतो वचनमब्रवीत्॥५१॥

कालेनैव हि लोकोऽयं पुण्यमाचरते सदा। धर्मनिष्ठाश्च केचित्तु भक्त्यापरमयायुताः॥५२॥
उपासनारताः केचिज्ज्ञानिनो हि तथा परे। केचिदध्यात्मसंयुक्ताश्चान्येमुक्ताश्चकेचन॥५३॥

कालो हि हर्ता च चराचराणां तथा ह्यसौ पालकोऽप्यद्वितीयः।
स स्रष्टा वै प्राणिनां प्राणभूतस्तस्मादेनं जीवयस्वाशु भूयः॥५४॥

रुद्र कहते हैं—"मैंने ही तुम्हारे समक्ष काल को दग्ध किया है। दग्ध होते समय तुमने इसे ज्वालामाला से घिरा हुआ देखा था।" तब शम्भु के इस वचन को सुनकर राजश्रेष्ठ ने विनीत रूप से शिव से कहा—"हे शम्भु! इस काल ने प्राणीगण के प्रति क्या अनिष्ट आचरण किया था, जो इसे प्राणान्तकारी दशा प्राप्त हो गयी?" राजा के यह कहने पर परमेश्वर ने उत्तर दिया—"महाराज! यह काल समस्त प्राणीगण का भक्षक है। अब यह क्रूरस्वभाव काल मेरे पास तुमको खाने आया था। हे महाराज! इसीलिए मैंने इसे दग्ध कर दिया। बहुत लोगों की मंगलकामना से विशेषतः तुम्हारे रक्षणार्थ इस काल का नाश किया गया। जो पापी, अधार्मिक, लोकसंहारक, पाषण्डवादी होते हैं, वे मेरे द्वारा वध्य हैं।" शम्भु का वाक्य सुनकर श्वेतराज कहने लगे—"काल के ही कारण लोग पुण्याचरण करते हैं। काल के ही भय से कोई धर्मात्मा, कोई परम भक्तियुक्त, कोई ज्ञानी, कोई उपासक, कोई आध्यात्मनिष्ठ तथा कोई-कोई मुक्त हो जाता है। काल ही चराचर का हर्त्ता तथा अद्वितीय पालनहार है। वही श्रेष्ठ है तथा प्राणियों का प्राण है। अतः आप इसे पुनर्जीवित कर दीजिये।।४५-५४।।

यदिसृष्टिपरोऽसित्वंकालंजीवयसत्वरम्। यदिसंहारभूतोऽसिसर्वेषांप्राणिनामिह॥५५॥
तर्ह्येवं कुरु शंभो त्वं कालस्यचमहात्मनः। विना कालेनयत्किंचिद्भविष्यति न शंकर॥५६॥

यदि आप सभी प्राणीगण के संहारक हैं, तब हे शम्भु! आपने महात्मा काल के ऊपर जो व्यवस्था भार दिया था, वही उचित है। तथापि यह स्थिर सिद्धान्त है कि काल के अभाव में कुछ भी नहीं स्थित रहेगा।।५५-५६।।

इति विज्ञापितस्तेन राज्ञा शंभुः प्रतापिना। चकार वचनं तस्यभक्तस्यचचिकीर्षितम्॥५७॥

शंभुःप्रहस्याऽथ तदा महेशः संजीवयामास पिनाकपाणिः।
चकार रूपं च यथा पुरासीदालिङ्गितोऽसौ यमदूतमध्ये॥५८॥
उपस्थितोऽसौ त्वथ लज्जमानस्तुष्टाव देवं वृषभध्वजं तम्।
नत्वा पुरःस्थाग्निमयं हि कालः सविस्मयो वाक्यमिदं बभाषे॥५९॥

राजा द्वारा यह निवेदन करने पर शम्भु ने तब भक्त के इच्छित वाक्य की रक्षा करते हुये काल को पुनर्जीवित कर दिया। पूर्व में काल की जो आकृति थी, महेश ने उसकी वैसी ही आकृति कर दिया। काल को देखकर उसका आलिंगन यमदूत करने लगे। काल ने उठकर लज्जित रूप से देवदेव वृषध्वज का स्तव किया। सम्मुखीन अग्निमय रुद्रदेव को प्रणाम करके सविस्मय यह कहा।।५०-५९।।

काल उवाच

कालांतक त्रिपुरेश त्रिपुरांतकर प्रभो। मदनो हि त्वया देव कृतोऽनंगो जगत्पते॥६०॥
दक्षयज्ञविनाश्च कृतो हि परमाद्भुतः। कालकूटं दुःप्रसहं सर्वेषां क्षयकृन्महत्॥६१॥

ग्रसितं तत्त्वया शंभो अन्येषामपि दुर्द्धरम्। लिंगरूपेण महताव्याप्तमासीज्जगत्त्रयम्॥६२॥
लयनाल्लिंगमित्युक्तं सर्वैरपि सुरासुरैः। यस्यान्तं न विदुर्देवा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः॥६३॥
लिंगस्य देवदेवस्य महिमानं परस्य च। नमस्ते परमेशाय नमस्ते विश्वमंगल!।
नमस्ते शितिकण्ठाय नमस्तस्मै कपर्दिने॥६४॥

काल कहता है—"हे कालान्तक, त्रिपुरहर, त्रिपुरेश, विभु, जगत्पति! आपने ही पूर्वकाल में मदन को अनङ्ग (अङ्गरहित) किया था। परमाद्भुत दक्षयज्ञ ध्वंस कार्य आप द्वारा ही सम्पन्न हुआ था। हे शम्भु! सर्वलोकक्षयकारी अन्य के लिए दुर्धर्ष दुःसह कालकूट का पान आप द्वारा ही किया गया था। हे महान्! आप लिंगरूप से सचराचर जगत् में व्याप्त रहते हैं। सुरासुरगण ने लयात्मक होने के कारण इसका लिङ्ग नाम निर्वाचित किया है। ब्रह्मा, विष्णु आदि प्रमुख देवता भी इस लिङ्ग के आदि-अन्त को नहीं जानते तथा वे लिङ्गमूर्त्ति परमदेव की महिमा से अवगत नहीं हैं। हे विश्वमंगल! परमेश! आपको प्रणाम! हे शितिकण्ठ, हे कपर्दी! आपको पुनः-पुनः प्रणाम।।६०-६४।।

नमोनमः कारणकारणाय ते नमोनमो मङ्गलमङ्गलात्मने।
ज्ञानात्मने ज्ञानविदां मनीषिणां त्वमादिदेवोऽसि पुमान्पुराणः॥६५॥
त्वमेव सर्वं जगदेकबन्धो वेदान्तवेद्योऽसि महानुभावः।
महानुभावैः परिकीर्त्तनीयस्त्वमेव विश्वेश्वर! विश्वमान्यः॥६६॥
त्वं पासि लुम्पसि जगत्त्रितयं महेश स्रष्टाऽसि भूतपतिरेव न कश्चिदन्यः॥६७॥

जो समस्त कारणों के कारण हैं, सभी मंगलों के मंगल हैं तथा जो ज्ञानी मनीषीगण के मत से ज्ञानात्मा हैं, ऐसे आप आदिदेव पुराणपुरुष हैं। आपको बारम्बार प्रणाम! हे समस्त जगत् के एकमात्र बन्धु! आप ही सकल तथा वेदान्त महानुभव हैं। हे विश्वेश्वर! वेदान्तविद् लोग आपको ही विश्वमान्य विश्वेश्वर मानते हैं। हे महेश्वर! आप ही त्रैलोक्य की सृष्टि-स्थिति-संहार का कार्य करते हैं। आपके अतिरिक्त अन्य कोई भूतपति है ही नहीं।।६५-६७।।

इति स्तुतस्तदा तेन कालेन जगदीश्वरः। उवाच कालो राजानं श्वेतं संबोधयन्निव॥६८॥

काल उवाच

मनुष्यलोके सकले नान्यस्त्वत्तो हि विद्यते। येन त्वया जितो देवो ह्यजेयो भुवनत्रये॥६९॥
मया हतमिदं विश्वं जगदेतच्चराचरम्। जेताऽहं सर्वदेवानां सर्वेषां दुरतिक्रमः॥७०॥
स हि ते जानुगो जातो महाराज प्रयच्छ मे। अभयं देवदेवाच्च शूलिनः परमेष्ठिनः॥७१॥
एवमुक्तस्तदा तेन श्वेतः कालेन चैव हि। उवाच प्रहसन्वाचा मेघनादगभीरया॥७२॥

काल इस प्रकार से जगदीश्वर शिव का स्तव करके वह राजा श्वेत से कहने लगा—"समस्त मनुष्य लोक में आपके अतिरिक्त आप ऐसे किसी व्यक्ति का अस्तित्व नहीं है। आपने अपने भक्तिबल से त्रिभुवन के लिए अज्ञेय देवदेव पर विजय पाई है। मैं तो चराचर विश्व का विनाशक हूं। मैं जेता तथा देवगण के लिए भी दुरतिक्रम्य हूं। आप मुझको परमेष्ठि देवदेव शूलपाणि से अभयदान दिलायें। काल के यह कहने पर राजा श्वेत ने हंसते हुये मेघगंभीर वाणी द्वारा काल से कहा"।।६८-७२।।

राजोवाच

शिवस्य परमं रूपंत्वमेकोनास्तिसंशयः। कालस्त्वमसिभूतानां स्थितिसंहाररूपवान्॥७३॥
तस्मात्पूज्यतमोऽसि त्वं सर्वेषां च नियामकः। त्वद्भयात्कृतिनःसर्वेशरणंपरमेश्वरम्।
व्रजन्ति विविधैर्भावैरात्मलक्षणतत्पराः॥७४॥

राजा कहता है—हे काल! आप शिव के ही परमरूप हैं। आप ही प्राणीसमूह के स्थित-संहाररूप हैं। आप सर्वपूज्य तथा सर्वनियामक हैं। आत्मनिष्ठगण आपके भय के कारण विनीत रूप से शिव के ही शरणापन्न हो जाते हैं।।७३-७४।।

सूत उवाच

तेनैव रक्षितः कालो राज्ञा परमधर्मिणा। शिवप्रसादमात्रेण लब्धसञ्ज्ञो बभूव ह॥७५॥
तदा यमेन स्तवितो मृत्युना यमदूतकैः। शिवं प्रणम्य संस्तुत्य श्वेतं राजानमेवच।
ययौस्वमाल्ययं विप्रा मेने स्वं जनितं पुनः॥७६॥
मायया सह पत्न्या च शिवस्य चरितंमहत्। अनुसंस्मृत्यसंस्मृत्यविस्मयंपरमंययौ॥७७॥

सूत कहते हैं—परम धार्मिक राजा ने इस प्रकार काल की रक्षा की थी। काल शिवकृपा पाकर मात्र लोकसंज्ञ हो गया। तब मृत्यु तथा यमदूतगण के साथ स्वयं यम भी राजा श्वेत की स्तुति करने लगे। तदनन्तर वे श्वेतराज को प्रणाम करके तथा स्तव करके अपने गृह गये। उन्होंने सोचा जैसे उनको पुनर्जन्म मिला हो। काल अपनी पत्नी माया के साथ शिव के उदार चरित का बारम्बार स्मरण करके पहले विस्मयापन्न हो गया, तदनन्तर भूतवृन्द को बुलाकर उनसे कहने लगा।।७५-७७।।

कथयामास सर्वेषां दूतानां स्वयमेव हि। आकर्ण्यतां मम वचो हे दूतास्त्वरितेनहि॥७८॥
कर्त्तव्यं च प्रयत्नेन नान्यथा मम भाषितम्॥७९॥

काल उवाच

ये त्रिपुण्ड्रं धारयंति तथा ये वै जटाधराः। ये रुद्राक्षधराश्चैव तथा येशिवनामिनः॥८०॥
उपजीवनहेतोश्च भिया ये ह्यपि मानवाः। पापिनोऽपि दुराचाराः शिववेषधराह्यमी॥८१॥
नानेतव्या भवद्भिश्च मम लोकं कदाचन।
वर्ज्यास्ते हि प्रयत्नेन पापिनोऽपिसदैवहि॥८२॥

काल कहता है—"हे दूतगण! मेरी बात शीघ्रता से सुनो। मैं जो कह रहा हूं, उसे तुम लोग सर्वप्रयत्नपूर्वक करना। जो त्रिपुण्ड्र, जटा अथवा रुद्राक्ष धारण करते हैं, अथवा जो व्यक्ति भय से किंवा जीविका हेतु शिव नाम कीर्त्तन करते हैं, वे अथवा जो पक्षान्तर से शिवमन्त्र जप करते हैं, वे सभी साधु हैं। वे सैकड़ों पाप वाले तथा दुराचारी होकर भी साक्षात् शिवरूपी हैं। इसमें सन्देह न करना। अतएव उनको मेरे लोक कदापि न लाना। वे पापी होकर भी तुम्हारे लिये वर्जनीय हैं"।।७८-८२।।

अन्येषां का कथा दूता येऽर्चयंति सदाशिवम्। भक्त्यापरमयासंभुंरुद्रास्तेनात्रसंशयः॥८३॥

रुद्राक्षमेकं शिरसा बिभर्ति यस्तता त्रिपुण्ड्रं च ललाटमध्यके।
पंचाक्षरीं ये प्रजपन्ति साधवः पूज्या भवद्भिश्च न चान्यथाक्वचित्॥८४॥
यस्मिन्राष्ट्रेऽथवादेशे ग्रामेचापिविचक्षणः। शिवभक्तोनदृश्येतस्मशानात्तुविशिष्यते।
तद्राष्ट्रं देशमित्याहुः सत्यं प्रतिवदामि वः॥८५॥
यस्मिन्नसंतिनित्यंहिशिवभक्तिसमन्विताः। तद्ग्रामस्थाजनाःसर्वेशासनीयानसंशयः॥८६॥
एवमाज्ञापयामासयमोऽपिनिजकिंकरान्। तथेतिमत्वातेसर्वेतूष्णीमासन्सुविस्मिताः॥८७॥

हे दूतगण! अन्य की क्या बात? जो परम भक्ति से सदाशिव शम्भु की अर्चना करते हैं, वे वास्तव में रुद्र हैं। अन्य नहीं हैं। जो व्यक्ति मस्तक पर मात्र एक रुद्राक्ष अथवा ललाट में त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं, किंवा पञ्चाक्षर शिवमन्त्र जपते हैं, वे सभी साधु हैं। तुम उनकी पूजा करना, इसके विपरीत न करना। जिस राज्य में, जिस देश में अथवा ग्राम में एक भी विज्ञ शिवभक्त नहीं है, मैं सत्य कहता हूं कि वह देश श्मशान की अपेक्षा भीषण है। जिस ग्राम में शिवभक्तिपूर्ण व्यक्ति (एक भी) विद्यमान नहीं है, वहां के निवासी तुम लोगों द्वारा दण्डनीय हैं। यम ने अपने किंकरों को यह आज्ञा प्रदान किया। वे सभी विस्मित हो गये तथा 'ऐसा ही होगा' कहकर मौन हो गये।।८३-८७।।

एवंविधोऽयं भुवनैकभर्ता सदाशिवो लोकगुरुः स एकः।
दाता प्रहर्ता निजभावयुक्तः सनातनोऽयं जगदेकबन्धुः॥८८॥
दग्ध्वा कालं महादेवो निर्भयं च ददौ विभुः। श्वेतस्यराजराजस्यमहीपालवरस्य च॥८९॥
तदा निर्भयमापन्नः श्वेतराजो महामनाः। भक्त्या च परया मुक्तो बभूव कृतनिश्चयः॥९०॥
तदा देवैः पूज्यमानऋषिभिःपन्नगैस्तथा। श्वेतोराजन्यवर्योऽसौशिवसायुज्यमाप्तवान्॥९१॥
एवं भक्तिपराणां च महेशे च जगद्गुरौ। सिद्धिः करतले तेषां सत्यं प्रतिवदामिवः॥९२॥
श्वपचोऽपि वरिष्ठःस्यात्प्रसादाच्छंकरस्य च। तस्मात्सर्वप्रयत्नेनपूजनीयोहि शंकरः॥९३॥
बहूनां जन्मनामन्ते शिवभक्तिः प्रजायते॥९४॥
ज्ञानिनां कृतबुद्धीनां जन्मजन्मनि शंकरः। किं मया बहुनोक्तेन पूजनीयः सदाशिवः॥९५॥
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। किरातेन कृतं यच्च व्रतं च परमाद्भुतम्।
येनैव तारितं विश्वं जगदेतच्चराचरम्॥९६॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे श्वेतराजचरिते शिवभक्तिप्रभावेण कालदहनवृत्तान्तवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥३२॥

वे भुवन के एकमात्र पालक सदाशिव इसी प्रकार के हैं। वे एकमात्र लोकगुरु, दाता, प्रहर्त्ता, स्वस्वभावयुक्त, सनातन तथा जगद्बन्धु हैं। विभु महादेव ने काल को दग्ध करके राजाधिराज श्वेत को अभय प्रदान किया था। महामना श्वेत राजा उसी दिन से पूर्णतः निर्भय हो गये। वे परम भक्तियुक्त होकर शिवसेवा हेतु कृतनिश्चय

हो गये। ऋषि तथा सर्पगण ने उस समय उनको पूजित किया। राजाओं के वरेण्य श्वेत ने अन्त में शिव सायुज्य प्राप्त किया। मैं सत्य कहता हूं। जो इस प्रकार से जगद्गुरु महेश्वर के प्रति भक्ति रखते हैं, सिद्धि उनके हाथों में है। इसमें सन्देह नहीं है। शंकर की कृपा से चाण्डाल भी वरिष्ठ हो जाता है, अतः सर्वप्रयत्नपूर्वक एकमात्र शंकर ही पूज्य हैं। अनेक जन्म के भोग के पश्चात् किसी को पूर्वजन्म के पुण्य तथा अदृष्ट के कारण शिवभक्ति उत्पन्न होती है। जो कृतबुद्धि ज्ञानी हैं, वे प्रतिजन्म में भक्तिमान हो जाते हैं। मैं और अधिक क्या कहूं। एकमात्र सदाशिव शंकर ही पूज्य हैं। पूर्व में एक किरात ने अद्भुद् व्रत किया था। इस विषय में इतिहास रूप से उसी का उदाहरण दिया जाता है। किरात ने इसी व्रत से समस्त भुवन पवित्र किया था।।८८-९६।।

।।द्वात्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

चण्डलुब्धक का वर्णन, राशिनक्षत्र निरूपण, शिवरात्रि महिमा

ऋषय ऊचुः

किन्नामा च किरातोऽभूत्किं तेन व्रतमाहितम्। तत्त्वं कथय विप्रेंद्रपरंकौतूहलंहिनः॥१॥
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामोयाथातथ्येनकथ्यताम्। नह्यन्योविद्यतेलोकेत्वद्विनावदतां वरः।
तस्मात्कथय भो विप्र! सर्वं शुश्रूषता हि नः॥२॥
एवमुक्तस्तदा तेन शौनकेन महात्मना। कथयामास तत्सर्वं पुष्कसेन कृतं च यत्॥३॥

ऋषिगण कहते हैं—इस किरात का क्या नाम था? उसने कौन व्रत किया? हे विप्रेन्द्र! वह कहें। यह जानने हेतु हमें अत्यन्त कुतूहल है। अतः इसे यथायथ कहिये। आपके बिना यह कथा कौन कह सकता है? अन्य कौन है जो यह सब बताये? हे विप्र! हमें सुनने की इच्छा हो रही है। आप सब कहें।।१-३।।

लोमश उवाच

आसीत्त्पुरा महारौद्रश्चण्डोनाम दुरात्मवान्। क्रूरसंगोनिष्कृतिकोभूतानांभयवाहकः।
जालेन मत्स्यान्दुष्टात्मा घातयत्यनिशं खलु॥४॥
भल्लैर्मृगाञ्छ्वापदांश्च कृष्णसारांश्च शल्लकान्॥५॥
खड्गांश्चैव च दुष्टात्मा दृष्ट्वा कांश्चिच्च पापवान्।
पक्षिणोऽघातयत्क्रुद्धो ब्राह्मणांश्च विशेषतः॥६॥
लुब्धको हि महापापो दुष्टो दुष्टजनप्रियः। भार्यातथाविधातस्यपुष्कसस्यमहाभया॥७॥
एवं विहरतस्तस्य बहुकालोऽत्यवर्तत। गते बहुतिथे काले पापौघनिरतस्य च॥८॥

निषङ्गेजलमादायक्षुत्पिपासार्दितोभृशम्। एकदानिशिपापीयाञ्छ्रीवृक्षोपरिसंस्थितः।
कोलं हन्तुं धनुष्पाणिर्जाग्रच्चाऽनिमिषेण हि॥९॥
माघमासेऽसितायांवैचतुर्दश्यामथाऽग्रतः। मृगमार्गविलोकार्थींबिल्वपत्राण्यपातयत्॥१०॥
श्रीवृक्षपर्णानि बहूनि तत्र स सञ्छेदयामास रुषान्वितोऽपि।
स्त्रीवृक्षमूले परिवर्तमानो लिङ्गं च तंस्योपरिदुष्टभावः॥११॥
ववर्ष गण्डूषजलं दुरात्मा यदृच्छया तानि शिवे पतन्ति।
श्रीवृक्षपर्णानि च दैवयोगाज्जातं च सर्वं शिवपूजनं तत्॥१२॥
गण्डूषवारिणा तेन स्नपनं च कृतं महत्। बिल्वपत्रैरसंख्यातैरर्चनं च महत्कृतम्॥१३॥
अज्ञानेनापि भो विप्राः पुष्कसेन दुरात्मना। माघमासेऽसितेपक्षेचतुर्दश्यांविधूदये॥१४॥
पुष्कसोऽथ दुराचारो वृक्षादवक्ततार सः। आगत्य जलसंकाशं मत्स्यान्हन्तुं प्रचक्रमे॥१५॥

महात्मा लोमश कहते हैं—पूर्वकाल में चण्ड नामक एक दुरात्मा चण्डाल जातीय व्याध था। वह क्रूरों का संगी, पापी तथा भूतगण हेतु भयावह था। वह दुरात्मा नित्य जाल से मछली, भाला से मृग, श्वापद, कृष्णसार, शल्लक तथा गैंडा नामक प्राणियों का वध करता था। वह पापी पक्षी को देखते ही वध करता। क्रोधित होने पर ब्राह्मणों का भी वध करता। यह लुब्धक महापापी था। वह तो स्वयं दुष्ट था, जितने दुष्ट थे, वे सभी उसके प्रिय थे। यह पुक्कस जितना भीषण था, उसकी पत्नी भी उतनी भीषणा थी। इस प्रकार से हिंसा करते-करते उस पुक्कस को दीर्घकाल व्यतीत हो गया। पापाचार में उसके दिन कटने लगे। एक बार रात्रि में वह पापी लुब्धक भूख-प्यास से पूर्ण पीड़ित होकर जाल कंधे पर रखकर एक बेलवृक्ष के ऊपर चढ़ा। शूकर मारना उसका लक्ष्य था, अतः रात्रि में वह समस्त रात्रि निर्निमेष नेत्रों से जाग रहा था।

उस दिन माघ कृष्ण चतुर्दशी तिथि थी। व्याध ने मृग मार्ग अवलोकनार्थ बेलपत्र की शाखाओं से बेलपत्र तोड़कर भूमि पर फैलाया (ताकि उसे खाने मृग आयें)। लुब्धक ने क्रोधित होकर ढेरों बिल्वपत्र वहां तोड़कर फैला दिया। उस बिल्ववृक्ष के नीचे एक शिवलिंग था। उस दुष्ट स्वभाव दुरात्मा लुब्धक ने उस लिंग पर एक गण्डूष (मुंह में भरकर) जल छोड़ा। वह जल तथा बिल्वपत्र, दोनों ही शिवलिंग पर पड़ा। दैवक्रम से उसी से शिवपूजा निष्पन्न हो गयी। उस गण्डूष जल द्वारा ही शिव का महास्नान सम्पादित हो गया। हे विप्रगण! दुरात्मा पुक्कस ने अज्ञानतः असंख्य बिल्वपत्र पेड़ से गिराकर मानों शिवपूजा सम्पन्न किया। तदनन्तर उस माघ कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि व्यतीत होने पर वह दुराचारी पुक्कस वृक्ष से नीचे उतरा तथा उसने जल के पास आकर मछली मारना प्रारम्भ किया।।४-१५।।

लुब्धकस्याऽपि भार्याभून्नाम्ना चैव घनोदरी। दुष्टासापापनिरता परद्रव्यापहारिणी॥१६॥
गृहान्निर्गत्य सायाह्ने पुरद्वारबहिः स्थिता। वनमार्गंप्रपश्यन्ती पत्युरागमनेच्छया॥१७॥
चिराद् भर्त्तरिनायातेचिन्तयामासलुब्धकी। अद्यसायाह्नवेलायामागताःसर्वलुब्धकाः॥१८॥
तमःस्तोमेन संछन्नाश्चतस्त्रोविदिशोदिशः। रात्रौ यामद्वयं यातं किं मतङ्गः समागतः॥१९॥
किं वा केसरलोभेन सिंहेनैव विदारितः। किंभुजंगफणारत्नहारीसर्पविषार्दितः॥२०॥

किं वा वराहदंष्ट्राग्रघातैः पंचत्वमागतः। मधुलोभेन वृक्षाग्रात्स वै प्रपतितो भुवि॥२१॥
क्वाऽन्वेषयमि पृच्छामि क्व गच्छामिचकम्प्रति। एवंविलप्यबहुधानिवृत्तास्वंगृहंप्रति॥२२॥
नैवान्नं नो जलं किंचिन्नभुक्तंतद्दिनेतया। चिंतयंतीपतिंचापिलुब्धकीत्वनयन्निशाम्॥२३॥

उस लुब्धक की पत्नी का नाम था घनोदरी। पति के आने में विलम्ब होता देखकर घनोदरी सोचने लगी। "सायं होते ही सभी लुब्धक घर आ जाते हैं। अन्धकार से सभी दिशायें अब आच्छन्न हैं। रात्रि का दो प्रहर व्यतीत हो गया। मेरा पति मतङ्ग क्यों नहीं आया? क्या मेरा पति किसी सिंह की खाल लाने की लालच में सिंह द्वारा मारा तो नहीं गया? किंवा सर्पमणि लाने की लालच में सर्प द्वारा डस तो नहीं लिया गया? अथवा किसी वनशूकर के दांतों से आहत होकर मर तो नहीं गया? किंवा वह मधु के लोभ में वृक्ष पर चढ़कर उससे गिर तो नहीं गया? क्या करूं? कहां खोजूं? किससे पूछूं? किस दिशा में जाऊं?" उसने दिन में अन्न-जल कुछ भी ग्रहण नहीं किया था। वह लुब्धकी घनोदरी पति के विषय में सोचती रही तथा रात जागते ही व्यतीत हो गई।।१६-२३।।

अथ प्रभाते विमले पुष्कसी वनमाययौ। अशनार्थं च तस्यान्नमादाय त्वरिता सती॥२४॥
भ्रममाणा वने तस्मिन्ददर्श महतीं नदीम्। तस्यास्तीरे समासीनंस्वपतिंप्रेक्ष्यहर्षिता॥२५॥
तदन्नं कूलतः स्थाप्य नदींतर्तुंप्रचक्रमे। निरीक्ष्यचाथमत्स्यान्सजालप्रोतान्समानयत्॥२६॥
तावत्तयोक्तश्चण्डोऽस्त्रावेहि शीघ्रंचभक्षय। अन्नं त्वदर्थमानीतमुपोष्यदिवसं मया॥२७॥
कृतं किमद्य रे मंद गतेऽहनि च किं कृतम्। नाऽशितंचत्वयामूढलंघितेनाद्य पापिना॥२८॥
नद्यांस्नातौतथातौचदम्पतीचशुचिव्रतौ। यावद्गतश्चभोक्तुंसतायवच्छ्वा स्वयमागतः॥२९॥
तेन सर्वं भक्षितं च तदन्नं स्वयमेव हि। चण्डी प्रकुपिता चैव श्वानंहन्तुमुपस्थिता॥३०॥

तत्पश्चात् प्रभात होने पर वह लुब्धकी घनोदरी अपने पति के लिए भोजन लेकर शीघ्रता से वन में गयी। वहां उसने अपने पति का अन्वेषण करते-करते एक नदी देखी। उस महानदी के उस पार उसने अपने पति को बैठे हुये देखा। तब वह जो भोजन लाई थी, उसे वहीं नदी के तट पर रखकर उस नदी को पार करने का प्रयत्न करने लगी। तभी उसने यह देखा कि जाल में फंसी अनेक मछलियों को लेकर उसका पति आ रहा है। उसे देखकर लुब्धकी ने उस प्रचण्ड व्याध से कहा कि "तुम शीघ्रता पूर्वक आओ। मैं समस्त दिन उपवासी रहकर तुम्हारे लिए भोजन लाई हूं। हे मन्दबुद्धि! तुम क्या कर रहे हो? बीते दिन तुमने क्या किया? हे मूढ़! तुमने कल पूरे दिन कुछ भी आहार नहीं किया।" यही कथा-वार्त्ता करते-करते उस व्याध दम्पति ने नदी स्नान करके अपनी देह पवित्र किया। जब वे यह सब कार्य स्नान तथा वार्त्ता कर रहे थे, तभी कहीं से एक कुत्ता नदी तट पर लुब्धकी द्वारा रखा गया वह भोजन पूर्णतः खा गया। तब यह देखकर वह चण्डी व्याधपत्नी क्रोधित होकर उस कुत्ते को मारने के लिए उद्यत हो गयी।।२४-३०।।

आवयोर्भक्षितं चान्नमनेनैव च पापिना। किं च भक्षयसे मूढ! भविताद्य बुभुक्षितः॥३१॥
एवं तयोक्तश्चण्डोऽसौ बभाषे तांशिवप्रियः। यच्छुनाभक्षितंचान्नंतेनाहंपरितोषितः॥३२॥
किमनेन शरीरेण नश्वरेण गतायुषा। शरीरं दुर्लभं लोके पूज्यतेक्षणभङ्गुरम्॥३३॥
ये पुष्णन्ति निजं देहं सर्वभावेन चाहताः। मूढास्ते पापिनोज्ञेयालोकद्वयबहिष्कृताः॥३४॥

तस्मान्मानंपरित्यज्यक्रोधं च दुरवग्रहम्। स्वस्थाभवविमर्शेनतत्त्वबुद्ध्यास्थिराभव॥३५॥

बोधिता तेन चंडी सा पुष्कसेन तदा भृशम्।
जागरादि च संप्राप्तः पुष्कसोऽपि चतुर्दशीम्॥३६॥

शिवरात्रिप्रसंगाच्च जायते यद्ध्यसंशयम्। तज्ज्ञानं परमं प्राप्तः शिवरात्रिप्रसंगतः॥३७॥

तब व्याधपत्नी ने लुब्धक से कहा—"यह पापी हमारा अन्न खा गया। हे मूढ़! हम भूखे रहकर कैसे जीवन व्यतीत करेंगे?" चण्ड ने अपनी पत्नी का कथन सुना तथा वह शिवप्रिय व्याध प्रत्युत्तर देते कहने लगा—"इस कुत्ते ने जो अन्न खा लिया, इससे मैं सन्तुष्ट हो गया। इस नश्वर तथा गतप्रायः जीवन का क्या प्रयोजन? जगत् के इस क्षारभूत देह को दुर्बल जानकर शिवपूजा करनी चाहिये। जो मूढ़ मात्र देह का ही सभी तरह से पोषण करते हैं, वे इहलोक तथा परलोक रहित पापी कहे जाते हैं। तभी मान-अपमान, दुस्तर ग्रह क्रोध का परिहार करके विवेकगुण से स्वच्छ हो जाओ तथा तत्त्वबोध के उदय से स्थिरता प्राप्त करो।" उस पुक्कस ने अपनी पत्नी को इस तरह से अनेक बार प्रबोधित किया। वह पुक्कस चतुर्दशी की रात्रि को भूखा रहकर सम्पूर्ण रात्रि जागरण युक्त था, अतः शिवरात्रि को जागरण तथा व्रत द्वारा ऐसा ज्ञान उसे मिल सका।।३१-३७।।

यामद्वयं च संजातममावास्यां तु तत्र वै। आगताश्च गणास्तत्र बहवःशिवनोदिताः॥३८॥
विमानानि बहून्यत्र आगतानि तदन्तिकम्। दृष्टानि तेनतान्येवविमानानिगणास्तथा॥३९॥
उवाच परयाभक्त्यापुष्कसोऽपिचतान्प्रति। कस्मात्समागतायूयंसर्वे रुद्राक्षधारिणः॥४०॥
विमानस्थाश्च केचिच्च वृषारूढाश्च केचन। सर्वेस्फटिकसंकाशाःसर्वे चन्द्रार्द्धशेखराः॥४१॥
कपर्द्दिनश्चर्मपरीतवाससो भुजङ्गभोगैः कृतहारभूषणाः।
श्रियान्विता रुद्रसमानवीर्या यथातथं भो वदतात्मनोचितम्॥४२॥
पुष्कसेन तदा पृष्टा ऊचुः सर्वे च पार्षदाः। रुद्रस्य देवदेवस्य संनम्राः कमलेक्षणाः॥४३॥

गणा ऊचुः

प्रेषिताः स्मो वयं चंड शिवेनपरमेष्ठिना। आगच्छत्वरितोभूत्वासस्त्रीको यानमारुह॥४४॥
लिंगार्च्चनं कृतंयच्च त्वयारात्रौशिवस्यच। तेनकर्मविपाकेनप्राप्तोऽसिशिवसन्निधिम्॥४५॥
तथोक्तो वीरभद्रेण उवाच प्रहसन्निव। पुष्कसोऽपि स्वया बुद्ध्याप्रस्तावसदृशं वचः॥४६॥

अगले दिन अमावस्या के द्वितीय प्रहर के व्यतीत होने पर शिव प्रेरित दूत उसके पास आये। तब एक-एक करके अनेक विमान वहां पहुंचे। लुब्धक उन सब विमानों तथा शिव के अनुचर प्रमथगणों को देख भक्ति के साथ कहने लगा—"हे महाभागगण! आप क्यों आये हैं? आपमें से कोई रुद्राक्षधारी है, कोई विमानचारी है तथा कोई वृष पर बैठा है। आप सभी स्फटिक के समान वर्ण वाले तथा सभी चन्द्रार्द्धशेखर, कपर्दी, चर्मधारी, भुजंग (सर्प) हार रूपी भूषण से शोभित, श्रीयुक्त तथा रुद्र के समान वीर्य वाले हैं। आप सब क्यों आये हैं? इसे शीघ्रता से कहें।" लुब्धक के यह कहने पर देवदेव रुद्र के पार्षदगण सभी कहने लगे—"हे चण्ड! हम परमेश शिव द्वारा भेजे गये हैं। तुम शीघ्र आओ। पत्नी के साथ यान पर बैठो। तुमने कल रात्रि में लिङ्गार्चन किया था। उस कर्म-

विपाक के कारण तुमको शिव-सन्निधि का लाभ हुआ है।'' गणाधिनायक वीरभद्र का वचन सुनकर चण्ड प्रसन्न हो गया। वह अपनी बुद्धि के अनुसार कहने लगा।।३८-४६।।

पुष्कस उवाच

किं मया कृतमद्यैव पापिना हिंसकेन च। मृगयारसिकेनैव पुष्कसेन दुरात्मना॥४७॥
पापाचारो ह्यहं नित्यं कथं स्वर्गंव्रजाम्यहम्। कथंलिंगार्चनमिदंकृतमस्तितदुच्यताम्॥४८॥
परं कौतुकमापन्नः पृच्छामि त्वां यथातथम्। कथयस्वमहाभागसर्वं चैवयथाविधि॥४९॥
इत्येवं पृच्छतस्तस्य पुष्कसस्य यथाविधि। कथयामास तत्सर्वंशिवधर्ममुदान्वितः॥५०॥

पुष्कस चण्ड कहता है—''मैं पापी, हिंसक, मृगया करने वाला दुष्टात्मा पुष्कस हूं। मैंने सदा पापाचरण किया है। अतः मैं कैसे स्वर्गगामी हो सकता हूं? मैंने कब तथा किस प्रकार लिङ्गार्चन किया? कृपया इसे बतायें। मैं परम कौतुकान्वित होकर आपसे यह पूछ रहा हूं। हे महाभाग! आप सब वृत्तान्त कहिये।'' चण्ड द्वारा यह प्रश्न सुनकर शिवधर्म वर्णन करने से मुदित होकर वीरभद्र यथाविधि समस्त वृत्तान्त कहने लगे।।४७-५०।।

वीरभद्र उवाच

देवदेवो महादेवो देवानां पतिरीश्वरः। परितुष्टोऽद्य हे चण्ड स महेश उमापतिः॥५१॥
प्रासंगिकतया माघे कृतं लिंगार्चनंत्वया। शिवतुष्टिकरं चाद्य पूतोऽसित्वं नसंशयः।
शिवरात्र्यां प्रसंगेन कृतमर्चनमेव च॥५२॥
कोलं निरीक्षमाणेन बिल्वपत्राणि चैव हि। च्छेदितानि त्वयाचंडपतितानितदैवहि।
लिङ्गस्य मस्तके तानि तेन त्वं सुकृती प्रभो!॥५३॥
ततश्च जागरो जातो महान्वृक्षोपरि ध्रुवम्। तेनैव जागरेणैव तुतोष जगदीश्वरः॥५४॥
छलेनैव महाभाग कोलसंदर्शनेन हि। शिवरात्रिदिने चाऽत्र स्वप्नस्ते न च योषितः॥५५॥
तेनोपवासेन च जागरेण तुष्टो ह्यसौ देववरो महात्मा।
तव प्रसादाय महानुभावो ददाति सर्वान्वरदो महांश्च॥५६॥

वीरभद्र कहते हैं—देवदेव महादेव देवताओं के पति हैं। वे साक्षात् ईश्वर हैं। हे चण्ड! वे उमापति महेश अब तुम्हारे प्रति सन्तुष्ट हैं। तुमने प्रसंगक्रमेण माघी चतुर्दशी के दिन शिव को प्रसन्न करने वाला शिवार्चन किया है। इससे तुम पावन हो गये, इसमें संदेह नहीं है। प्रसंगतः तुम्हारे द्वारा शिवरात्रि के दिन लिङ्गार्चन किया गया है। हे चण्ड! शूकर के शिकार के लिए तुमने बिल्व वृक्ष पर बैठ कर जो बिल्वपत्र तोड़े थे, वे सभी शिवलिङ्ग पर पड़ गये। उससे यह सुकृत उत्पन्न हो गया। उस रात्रि तुम उस वृक्ष पर बैठे जाग रहे थे। इससे जगदीश्वर तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हो गये। हे महाभाग! शूकर को देखने के बहाने उस शिवरात्रि के दिन तुम्हारा यह शुभ कर्म था तथा तुम्हारी पत्नी तुम्हारे गृह न लौटने के कारण प्रतीक्षा के लिए रात्रि पर्यन्त जाग रही थी। तुम लोगों द्वारा उस दिन का उपवास तथा जागरण महात्मा देवदेव शंकर को प्रसन्न कर गया। इससे संतुष्ट होकर देवदेव समस्त भोग तुमको प्रदान करने हेतु प्रस्तुत हैं।।५१-५६।।

एवमुक्तस्तदा तेन वीरभद्रेण धीमता। पुष्कसोऽपि विमानाग्र्यमारुरोहच पश्यताम्॥५७॥
गणानां देवतानां च सर्वेषां प्राणिनामपि। तदा दुंदुभयो नेदुर्भेर्यस्तूर्याण्यनेकशः॥५८॥
वीणावेणुमृदंगानि तस्य चाग्रे गतानि च। जगुर्गंधर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥५९॥
विद्याधरगणाः सर्वे तुष्टुवुः सिद्धचारणाः। चामरैर्वीज्यमानोहिच्छत्रैश्चविविधैरपि।
महोत्सवेन महता आनीतो गन्धमादनम्॥६०॥

धीमान् वीरभद्र के यह कहने पर वह व्याध चण्ड समग्र प्रमथ, देवता तथा अन्य प्राणियों के सामने विमान पर आसीन हो गया। तब बारम्बार दुन्दुभि, भेरी तथा तूर्यध्वनि हो रही थी। वीणा, वेणु, मृदङ्ग का मधुर स्वर उत्पन्न होने लगा। गन्धर्वगण गायन करने लगे। अप्सरायें नृत्यरता हो गयीं। विद्याधर, सिद्ध तथा चारण इस व्याध की स्तुति करने लगे। व्याध चामर झले जाने से तथा छत्र लगाये जाने से शोभित होकर महामहोत्सव से गन्धमादन पर्वत लाया गया।।५७-६०।।

शिवसान्निध्यमगमच्चण्डोऽसौ तेनकर्मणा। शिवरात्र्युपवासेन परं स्थानं समागमत्॥६१॥
पुष्कसोऽपि तथा प्राप्तः प्रसंगेन सदाशिवम्। किंपुनःश्रद्धयायुक्ताःशिवायपरमात्मने॥६२॥
पुष्पादिकं फलं गंधंतांबूलंभक्ष्यमृद्धिमत्। ये प्रयच्छंतिलोकेऽस्मिन्रुद्रास्तेनात्रसंशयः॥६३॥
चंडेन वै पुष्कसेन सफलं तस्य चाऽभवत्। प्रसंगेनापि तेनैवकृतंतच्चाऽल्पबुद्धिना॥६४॥

चण्ड व्याध शिवरात्रि के दिन उपवासादि कर्म के कारण शिवसान्निध्यरूप परम स्थान प्राप्त कर सका। प्रसंगक्रमेण सदाशिवार्चन से एक व्याध ने जब शिव सान्निध्य लाभ किया, तब श्रद्धायुक्त होकर परमात्मा शिव को जो पुष्प-फल-गन्ध-ताम्बूल तथा बहुमूल्य भक्ष्य वस्तु प्रदान करते हैं, वे इस जगत् में साक्षात् रुद्ररूप ही हैं। चण्ड व्याध अल्पबुद्धि था। उसने घटना क्रम के कारण जो शुभकर्म बिना जाने किया था, वह सफल हो गया।।६१-६४।।

ऋषय ऊचुः

किं पलं तस्य चोद्देशः केन चैव पुरा कृतम्। कस्माद्व्रतमिदंजातंकृतंकेनपुरा विभो॥६५॥

ऋषिगण कहते हैं—हे विभो! पूर्वकाल में किसने किस उद्देश्य से तथा किस फल की इच्छा से यह व्रत किया था?।।६५।।

लोमश उवाच

यदा सृष्टं जगत्सर्वं ब्रह्मणा परमेष्ठिना। कालचक्रं तदा जातं पुरा राशिसमन्वितम्॥६६॥
द्वादश राशयस्तत्र नक्षत्राणि तथैव च।
सप्तविंशतिसंख्यानि मुख्यानि कार्यसिद्धये॥६७॥
एभिः सर्वं प्रचंडं च राशिभिरुडुभिस्तथा। कालचक्रान्वितःकालः क्रीडयन्सृजतेजगत्॥६८॥
आब्रह्मस्तंबपर्यन्तं सृजत्यवति हंति च। निबद्धमस्ति तेनैव कालेनैकेन भो द्विजाः॥६९॥
कालो हि बलवाँल्लोकेएकएवनचापरः। तस्मात्कालात्मकंसर्वमिदंनास्त्यत्रसंशयः॥७०॥

आदौकालः कालनाच्च लोकनायकनायकः। ततोलोकाहिसंजाताःसृष्टिश्च तदनंतरम्॥७१॥

लोमश कहते हैं—हे द्विजगण! परमेष्ठि ब्रह्मा जब जगत् सृष्टिकार्य कर रहे थे, तब राशि समन्वित कालचक्र उदित हो गया। राशियों की संख्या १२ थी। नक्षत्र २७ थे। ये सभी कार्यसाधन में प्रधान सहायक होते हैं। इन सभी राशि-नक्षत्र के साथ कालचक्रान्वित काल अवलीला क्रम से इस जगत् की सृष्टि करता है। काल ही ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त (तृण पर्यन्त) समस्त भुवनों की सृष्टि-स्थिति तथा लय का कर्त्ता है। हे द्विजगण! सभी लोक एकमात्र काल के ही अन्तर्गत हैं। वही एकमात्र बली है। उससे प्रबल कोई नहीं है। अतः सब कुछ कालात्मक ही है। काल-कलना से ही लोकनायक होता है। काल पहले वर्त्तमान था। लोकपालों की उत्पत्ति उसके पश्चात् हुई थी। तदनन्तर सृष्टि की प्रवृत्ति (ब्रह्म में) घटित हो सकी थी।।६६-७१।।

सृष्टेर्लवो हि संजातो लवाच्च क्षणमेव च। क्षणाच्च निमिषंजातंप्राणिनांहिनिरंतरम्॥७२॥
निमिषाणां च षष्ट्या वै पल इत्यभिधीयते। पंचदश्या अहोरात्रैः पक्षइत्यभिधीयते॥७३॥
पक्षाभ्यां मास एव स्यान्मासाद्वादशवत्सरः। तंकालंज्ञातुकामेनकार्यंज्ञानंविचक्षणैः॥७४॥
प्रतिपद्दिनमारभ्य पौर्णमास्यन्तमेव च। पक्षः पूर्णो हि यस्माच्च पूर्णिमेत्यभिधीयते॥७५॥
पूर्णचन्द्रमसी या तु सा पूर्णा देवताप्रिया। नष्टस्तुंचंद्रोयस्यांवाअमासाकथिताबुधैः॥७६॥
अग्निष्वात्तादिपितृणां प्रियातीव बभूव ह। त्रिंशद्दिनानि ह्येतानिपुण्यकालयुतानि च।
तेषां मध्ये विशेषो यस्तं शृणुध्वं द्विजोत्तमाः॥७७॥
योगानां वा व्यतीपात ऊडूनां श्रवणस्तथा।
अमावास्यातिथीनांचपूर्णिमावैतथैवच ॥७८॥
संक्रांतयस्तथा ज्ञेयाः पवित्रा दानकर्मणि। तथाष्टमी प्रिया शंभोर्गणेशस्यचतुर्थिका॥७९॥

सृष्टि के पश्चात् लव, लव से क्षण, क्षण से प्राणीगण के लिए नियत निमेष सृष्ट हुआ। ६० निमेष का एक पल होता है। १५ अहोरात्र का एक पक्ष, दो पक्ष का एक मास तथा १२ मास का एक वर्ष होता है। यह कालतत्त्व जानने की इच्छा होने पर विद्वान् व्यक्ति ज्ञानार्जन करे। प्रतिपदा से प्रारम्भ करके पौर्णमासी पर्यन्त में एक पक्ष पूर्ण होगा। तभी इस पूर्णा तिथि को पूर्णिमा कहा गया। पूर्णचन्द्रमसी नामक पूर्णा तिथि देवगण को प्रिय है। जिस तिथि में चन्द्रदर्शन होता ही नहीं, वह अमावस्या है। यह अग्निष्वात्तादि पितरों को अतीव प्रिय है। हे द्विजश्रेष्ठगण! ये ३० दिन ही पुण्यकाल हैं। तथापि इनमें जो विशेष दिन हैं, उनको कहता हूं। योगों में व्यतीपात योग, नक्षत्रगण में श्रवण, तिथियों में अमावस्या तथा पूर्णिमा तथा सभी संक्रान्ति दानकर्मार्थ पवित्र तथा प्रशस्त कही गयी हैं। शम्भु अष्टमी तथा गणेश को चतुर्थी प्रिय है।।७२-७९।।

पञ्चमी नागराजस्य कुमारस्य च षष्ठिका। भानोश्चसप्तमीज्ञेयानवमीचण्डिकाप्रिया॥८०॥
ब्रह्मणो दशमी ज्ञेया रुद्रस्यैकादशी तथा। विष्णुप्रिया द्वादशी च अंतकस्यत्रयोदशी॥८१॥
चतुर्द्दशी तथा शंभोः प्रिया नास्त्यत्र संशयः। निशीथसंयुतायातुकृष्णपक्षे चतुर्द्दशी।
उपोष्या सा तिथिः श्रेष्ठा शिवसायुज्यकारिणी॥८२॥
शिवरात्रितिथिः ख्याता सर्वपापप्रणाशिनी। अत्रैवोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम्॥८३॥

नागराज को पंचमी, कुमार को षष्ठी, सूर्य को सप्तमी, चण्डिका को नवमी, ब्रह्मा को दशमी, रुद्र को एकादशी, विष्णु को द्वादशी, यम को त्रयोदशी, शम्भु को चतुर्दशी प्रिय है। इसमें संशय न करें। कृष्णपक्ष की जो चतुर्दशी रात्रिपर्यन्त हो, वह शिवसायुज्य प्रदा ही है। इस श्रेष्ठ तिथि को उपवासी रहे। शिवरात्रि नामक तिथि सभी पापों का हरण करती है। इस सम्बन्ध में एक प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध है।।८०-८३।।

ब्राह्मणी विधवा काचित्पुराह्यासीच्चचंचला। श्वपचाभिरतासाचकामुकी कामहेतुतः॥८४॥
तस्यां तस्य सुतो जातःश्वपचस्यदुरात्मनः। दुःसहो दुष्टनामात्मा सर्वधर्मबहिष्कृतः॥८५॥
महापापप्रयोगाच्च पापमारभते सदा। कितवश्च सुरापायी स्तेयी च गुरुतल्पगः॥८६॥
मृगयुश्च दुरात्मासौ कर्मचण्डाल एव सः। अधर्मिष्ठोह्यसद्वृत्तःकदाचिच्चशिवालयम्।
शिवरात्र्यां च संप्राप्तो ह्युषितः शिवसन्निधौ॥८७॥
श्रवणं शैवशास्त्रस्य यदृच्छाजातमंतिके। शिवस्य लिंगरूपस्य स्वयंभुवो यदा तदा॥८८॥
स एकत्रोषितो दुष्टः शिवरात्र्यांतुजागरात्। तेन कर्मविपाकेनपुण्यां योनिमवाप्तवान्॥८९॥
भुक्त्वापुण्यतमाँल्लोकानुषित्वाशाश्वतीःसमाः। चित्रांगदस्यपुत्रोऽभूद्भूपालेश्वरलक्षणः॥९०॥

पूर्वकाल में एक चंचल स्वभाव वाली ब्राह्मणी विधवा थी। यह कामुक विधवा कामवासना के कारण एक चाण्डाल के प्रति अनुरक्ता हो गयी। दुरात्मा चाण्डाल के संसर्ग से उसके गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हो गया। यह दुःसह नाम वाला दुष्ट स्वभाव तथा सभी धर्म से बहिष्कृत, महापापकर्मा तथा नित्य पापरत रहता है। क्रम से यह कितव (ब्राह्मणी-चाण्डाल संसर्गोत्पन्न) मद्यप, चोर, गुरुपत्नीगामी, शिकारी, दुरात्मा, कर्मचाण्डाल, अधर्मी, असद् वृत्ति वाला हो गया। एक बार यह दुर्वृत्त शिवरात्रि के दिन एक शिवमन्दिर में गया तथा रात्रि में वहां शिव सन्निधान में रह गया, जहां शिवशास्त्र का उपदेश हो रहा था। घटनाक्रमेण वे शब्द इस कितव के कानों में प्रविष्ट हो गये। इस प्रकार लिंगरूपी स्वयम्भु शिव के सान्निध्य में उस कितव ने एक रात्रि व्यतीत किया। इस जागरण कर्म के कारण अन्त में उसे पुण्ययोनि प्राप्त हुई थी। तदनन्तर अनेक वर्षों तक भोगसुख में जीवन व्यतीत करके उसने अनेक पुण्यतम लोकों में निवास किया तथा चित्राङ्गद के पुत्ररूप में भूपालों के अग्रणी रूप में जन्म लिया।।८४-९०।।

नाम्ना विचित्रवीर्योऽसौ सुभगः सुन्दरीप्रियः।
राज्यं महत्तरं प्राप्यनिःस्तम्भो हि महानभूत्॥९१॥
शिवे भक्तिं प्रकुर्वाणः शिवकर्मपरोऽभवत्। शैवशास्त्रं पुरस्कृत्य शिवपूजनतत्परः।
रात्रौ जागरणं यत्नात्करोति शिवसन्निधौ॥९२॥
शिवस्य गाथा गायंस्तु आनंदाश्रुकणान्मुहुः। प्रमुचंश्चैवनेत्राभ्यां रोमांचपुलकावृतः॥९३॥
आयुष्यं च गतं तस्य शिवध्यानपरस्य च। शिवोहिसुलभोलोकेपशूनां ज्ञानिनामपि॥९४॥
संसेवितुं सुखप्राप्त्यै ह्येक एव सदाशिवः। शिवरात्र्युपवासेन प्राप्तो ज्ञानमनुत्तमम्॥९५॥
ज्ञानात्सर्वमनुप्राप्तं भूतसाम्यं निरन्तरम्। सर्वभूतात्मकंज्ञात्वाकेवलं च सदाशिवम्।
विना शिवेन यत्किंचिन्नास्ति वस्त्वत्र न क्वचित्॥९६॥

उसका नाम था विचित्रवीर्य। वह देखने में सुपुरुष, सुन्दर तथा रमणियों का प्रिय था। उसने महान् राज्य का महाराजपद प्राप्त किया। शिव के प्रति उसकी अचला भक्ति थी। वह सदा शिवार्चन में लगा रहता था। विचित्रवीर्य शैवशास्त्र को ही उत्तम जानकर, शिवपूजा में लगा रहता था। वह यत्नतः शिव के पास रात्रि जागरण करता था। शिवगाथा का गायन करते-करते उसका कलेवर रोमांचित तथा पुलकित हो जाता। तब उसके नेत्रद्वय से आनन्दाश्रु निर्गत होने लगते। शिव ध्यान में निविष्ट रहते-रहते उसका आयुकाल अतीत होता गया। वास्तव में भले पशु हो, ज्ञानी हो, शिव सर्वसुलभ देवता हैं। सुख प्राप्ति हेतु सेवा करनी हो, तब एकमात्र सदाशिव ही सेव्य हैं। विचित्रवीर्य ने शिवरात्रि पर उपवासी रहकर उत्तम ज्ञानार्जन किया था। इस ज्ञान से उसे सतत् सर्वतोमुखी लाभ होता रहता था। वह एकमात्र सदाशिव को ही सर्वभूतात्मक देखता था, क्योंकि शिव के अतिरिक्त कहीं भी कुछ नहीं है!।।९१-९६।।

एवं पूर्णं निष्प्रपञ्चं ज्ञानं प्राप्नोति दुर्लभम्। प्राप्तज्ञानस्तदा राजाजातोहिशिववल्लभः॥९७॥
मुक्तिं सायुज्यतां प्राप्तः शिवरात्रेरुपोषणात्। तेन लब्धंशिवाज्जन्मपुरायत्कथितंमया॥९८॥
दाक्षायणीवियोगाच्च जटाजूटेन विस्तरात्। यउत्पन्नोमस्तकाच्चशिवस्यपरमात्मनः।
वीरभद्रेति विख्यातो दक्षयज्ञविनाशनः॥९९॥
शिवरात्रिव्रतेनैव तारिता बहवः पुरा। प्राप्ताः सिद्धिं पुरा विप्राभरताद्याश्चदेहिनः॥१००॥
मान्धाता धुन्धुमारिस्च हरिश्चन्द्रादयो नृपाः। प्राप्ताः सिद्धिमनेनैव व्रतेनपरमेणहि॥१०१॥
ततो गिरीशो गिरिजासमेतः क्रीडान्वितोऽसौ गिरिराजमस्तके।
द्यूतं तथैवाक्षयुतं परेशो युक्तो भवान्या स भृशं चकार॥१०२॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे शिवरात्रिव्रतमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥३३॥

जगत् में शिव के अतिरिक्त सब कुछ असत् है। इस प्रकार से उस राजा को निष्प्रपञ्च पूर्ण ज्ञान मिला, जिससे वह ज्ञानयुक्त होकर शिव का प्रिय हो गया। राजा शिवरात्रि जागरण करता उपवासी रहता था। तभी उसे शिव की सायुज्य मुक्ति प्राप्त हो गयी। पूर्व में जो चाण्डाल था, वही ज्ञानी राजा होकर जन्मा। यह जन्म उसे शिवकृपा से ही प्राप्त हो सका था। पूर्वकाल में दाक्षायणी सती के वियोग में शिव के मस्तक की विकृत जटाओं से दक्षयज्ञनाशक वीरभद्र रूप में यही व्याध उत्पन्न हुआ। शिवरात्रि व्रत से पूर्व में अनेकों का उद्धार हुआ है। हे विप्रगण! भरत आदि प्रसिद्ध राजा ने शिवरात्रि के फल से सिद्धि पाई थी। इस महाव्रत के प्रभाव से धुन्धुमारि, हरिश्चन्द्र आदि राजाओं को सिद्धि मिल चुकी है। इस प्रकार गिरीश प्रभु शंकर गिरिजा के साथ क्रीड़ान्वित होकर गिरिराज शिखर पर बैठकर गिरिजा के साथ द्यूत क्रीड़ा करने लगे।।९७-१०२।।

।।त्रयस्त्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

कैलास पर नारद का आगमन, गिरिजा के साथ भगवान् की अक्षक्रीड़ा, भृंगी का पार्वती के प्रति आक्रोश, शंकर द्वारा वनगमन

लोमश उवाच

राज्यं चकार कैलासे देवदेवो जगत्पतिः। गणैः समेतो बहुभिर्वीरैर्भद्रान्वितोमहान्।
ऋषिभिः सहितो रुद्रो देवैरिन्द्रादिभिः सह॥१॥
ब्रह्मा यस्य स्तुतिपरो विष्णुः प्रेष्यवदास्थितः॥२॥
इन्द्रो देवगणैः सार्द्धं सेवाधर्मपरोऽभवत्। यस्य च्छत्रधरश्चंद्रो वायुश्चामरधृक्तथा॥३॥
सूपान्नकर्ता सततं जातवेदा निरन्तरम्। गंधर्वा गायका यस्यस्तावकाश्चपिनाकिनः॥४॥
विद्याधराश्च बहवस्तथा चाप्सरसां गणाः। ननृतुश्चाग्रगा यस्य सोऽसौकैलासपर्वते॥५॥
पुत्रैर्गणेशस्कंदाद्यैस्तथागिरिजयासह। राज्यं प्रतापिभिश्चक्रेऽशंकरश्चंक्रमणेन च॥६॥

लोमश कहते हैं—देवदेव जगत्पति रुद्रदेव अब वीरभद्र तथा अन्य प्रमथगण, इन्द्रादि देवता तथा ऋषियों के साथ कैलास पर्वत पर निवास करने लगे। ब्रह्मा उनके स्तुतिगायक थे। भृत्यवत् विष्णु स्थित रहते थे तथा इन्द्रादि देवता उनकी सेवा करते थे। उनका छत्र चन्द्र वहन करते। वायु चामर झलते, अग्नि जातवेदा उत्तम अन्न प्रस्तुत करते तथा गन्धर्वगण उनके गायक तथा स्तावक थे (स्तावक = प्रशंसक)। विद्याधर तथा अप्सरायें भगवान् महादेव के समक्ष नृत्यादि किया करते। इस प्रकार प्रियतमा गिरिजा तथा प्रतापी पुत्र गणेश एवं स्कन्द कुमार के साथ वहां निःशङ्क भाव से भगवान् त्रिपुरारी शंकर विराजमान थे। वे इस प्रकार राज्य सुखानुभव करने लगे।।१-६।।

येनांधको महादैत्यः स देवानामरिर्महान्। दुष्टो विद्धस्त्रिशूलेनगगने स्थापितश्चिरम्॥७॥
हत्वा गजासुरं येन उत्कृत्त्य चर्म वै कृतम्। चिरं प्रावरणं दिव्यं तथा त्रिपुरदीपनम्।
विष्णुना पाल्यभूतेन रेजे सर्वाङ्गसुन्दरः॥८॥
तं द्रष्टुकामो भगवन्नारदो दिव्यदर्शनः। ययौ च पर्वतश्रेष्ठं कैलासं चन्द्रपाण्डुरम्॥९॥
सुधया परया चापि सेवितं परमाद्भुतम्। कर्पूरगौरं च तदा दृष्ट्वा तं सुमहाबलम्।
नारदो विस्मयाविष्टः प्रविष्टो गन्धमादनम्॥१०॥

जिन्होंने देवताओं के शत्रु महादैत्य दुर्वृत्त अन्धकासुर का भेदन शूल से किया था तथा उसे चिरकाल हेतु उसी पर लटका रखा था, जिन्होंने गजासुर का वध करके उसके चर्म को स्वयं धारण किया था, जिनके प्रभाव से त्रिपुर दग्ध हो सका था, जो प्रतिपाल्य स्थानीय (सबके पालनकर्त्ता) विष्णु के साथ सर्वाङ्ग सुन्दर रूप से विराजमान रहते हैं, उनको देखने दिव्यदर्शन भगवान् नारद चन्द्रवत् पाण्डुर आभा वाले कैलास नामक उस महान् पर्वत पर

पहुंचे। वहां पहुंच कर उन्होंने परम सुधासेवित परम अद्भुद् कर्पूरवत् गौरवर्ण सुमहाबल महादेव को देखा। महादेव का दर्शन पाकर वे विस्मयापन्न हो गये। इस प्रकार नारद ने गन्धमादन में प्रवेश किया।।७-१०।।

अनेकाश्चर्यसंयुक्तं तपनैश्च सुशोभितम्। गायद्विधाधरीभिश्च पूरितं च महाप्रभम्॥११॥
कल्पद्रुमाश्च बहवो लताभिः परिवेष्टिताः। घनच्छायासु तास्वेवविशिष्टाःकामधेनवः॥१२॥
पारिजातवनामोदलम्पटा बहवोऽलयः। कलहंसाश्च बहवः क्रीडमानाः सरस्सु च॥१३॥
शिखंडिनो महच्चक्रुस्तत्र केकारवं मुदा। पंचमालापिनः सर्वे विहंगाः संमदान्विताः॥१४॥
करिणः करिणीभिश्च मोदमानाःसुवर्चसः। सिंहास्तथागर्जमानाःशार्दूलैःसहसंगताः॥१५॥
वृषभा नंदिमुख्याश्च रेभमाना निरन्तरम्। देवद्रमाश्च बहवस्तथा चंदनवाटिकाः॥१६॥

वहां नारद देखते हैं कि यह पर्वत नाना आश्चर्य से मण्डित है। वह स्वर्ण समूह से समुज्ज्वल, गीत-गायन तत्पर विद्याधरी वृन्द से व्याप्त तथा महाप्रभा युक्त है। वहां लताओं द्वारा वेष्ठित अनेक कल्पवृक्ष स्थित हैं। उनकी घनी छाया में कामधेनु गौयें विश्राम कर रही हैं। पारिजात वन में आमोदरत भौरों के समूह से यह पर्वत समाकुल है। वहां अनेक कलहंस पर्वतस्थ अनेक सरोवरों में क्रीड़ा कर रहे हैं। वहां जितनी भी शिखण्डी (मोरनी) हैं, वे अपना प्रीतिभरा केकारव कर रही हैं। मदमत्त विहङ्गम वहां सदा पञ्चम स्वर में आलाप कर रहे हैं। हथिनियों के साथ हाथी क्रीड़ारत हैं। शार्दूल तथा सिंहों का गर्जन श्रुतिगोचर हो रहा है। नन्दी आदि प्रमुख प्रमथगण तथा वृषगण निरन्तर मदयुक्त आस्फालन तथा कुर्दन (रम्भाना) कर रहे हैं। वहां अनेक देववृक्ष तथा चन्दन वाटिकायें हैं।।११-१६।।

नागपुंनागबकुलाश्चंपका नागकेसराः। तथा च वनृजम्ब्वश्च तथा कनककेतकाः॥१७॥
कह्लाराः करवीराश्च कुमुदानि ह्यनेकशः। मंदराश्च बदर्यश्च क्रमुकाः पाटलास्तथा॥१८॥
तथान्ये बहवो वृक्षाः शम्भोस्तोषकराह्यमी। ऐकपद्येन दृष्टास्ते नानाद्रमलतान्विताः।
आरामा बहवस्तत्र द्विगुणाश्च बभूविरे॥१९॥
गगनान्निस्सृतः सद्यो गंगौघः परमाद्भुतः। पतितो मस्तके तस्य पर्वतस्य सुशोभिते॥२०॥
कूपो हि प्रयसां येन पवित्रं वर्तते जगत्। सोपि द्विधा तदा दृष्टो नारदेनमहात्मना॥२१॥

वहां नागवृक्ष, पुन्नाग, वकुल, चम्पा, नागकेशर, वन जामुने, कनककेतक, कल्हार, करवीर, कुमुद, मन्दार, बदरी, क्रमुक, पाटल तथा शम्भु को प्रसन्न करने वाले और भी सैकड़ों वृक्ष श्रेणीबद्ध लक्षित हो रहे थे। नाना द्रुम-लता युक्त उपवन वहां विद्यमान थे। वहां परमाद्भुद् गंगा प्रवाह आकाश से सद्यः निकल कर सुशोभन पर्वत शिखर पर गिर रहा था। इस जगत्पावन गंगाजलराशि को महात्मा नारद ने वहां दो धाराओं में बहते देखा।।१७-२१।।

सर्वं तदा द्विधाभूतं दृष्टं तेन महात्मना। नारदेन तदा विप्राः परमेण निरीक्षितः॥२२॥
एवं विलोकमानोऽसौ नारदो भगवानृषिः। त्वरितेन तथायातःशिवालोकनतत्परः॥२३॥
यावद्द्वारि स्थितोऽपश्यन्महदाश्चर्यमेव च। द्वारपालौ तदा दृष्टौ कृतकौ विश्वकर्मणा॥२४॥

नारदो मोहितो ह्यासीत्पप्रच्छ च सतौ तदा। अहंप्रवेष्टुमिच्छामिशिवदर्शनलालसः॥२५॥
तस्मादनुज्ञा दातव्यादर्शनार्थंशिवस्यच। अश्रृण्वन्तौतदादृष्ट्वानारदोविस्मितोऽभवत्॥२६॥
ज्ञानदृष्ट्याविलोक्याथतूष्णींभूतोऽभवत्तदा। कृत्रिमौहिचतौज्ञात्वाप्रविष्टोहिमहामनाः॥२७॥
तथान्ये तत्सरूपाश्च दृष्टास्तेन महात्मना। ऋषिः प्रणमितस्तैश्च नारदो भगवान्मुदा॥२८॥

हे विप्रगण! वहां महात्मा नारद ने देखा कि वहां सब कुछ दो भागों में विभाजित था। यह विस्मय देखते तथा पर्वत की शोभा देखते नारद ने तत्काल शिवदर्शनार्थ प्रस्थान किया। जैसे ही वे (शिव निवास के) द्वार पर पहुंचे, वहां भी उन्होंने एक विस्मय देखा। वहां विश्वकर्मा द्वारा निर्मित दो कृत्रिम द्वारपाल खड़े थे। नारद ने मोहित होकर उनसे कहा—"मैं शिवदर्शनेच्छा से अन्दर जाना चाहता हूं। अतः मुझे जाने की अनुमति प्रदान करो।" जब नारद को अपने प्रश्न का कोई उत्तर नहीं मिला, तब वे वास्तविकता जान कर विस्मित हो गये। उन्होंने ज्ञाननेत्र से सब जान लिया तथा मौनी हो गये। उन्होंने समझा था कि ये द्वारपाल कृत्रिम हैं। अब वे स्वयं द्वार से भीतर गये। वहां जाकर देखते हैं कि वहां ऐसी अनेक कृत्रिम मूर्त्ति स्थित हैं। अन्दर उन सबने भगवान् नारद को प्रीतिपूर्वक प्रणाम भी किया। इससे नारद मुदित हो गये।।२२-२८।।

एवमादीन्यनेकानि आश्चर्याणि ददर्श सः। ददर्शाथचसुव्यक्तंत्र्यम्बकंगिरिजान्वितम्॥२९॥
अर्धासनगता साध्वी शंकरस्य महात्मनः। तनयागिरिराजस्य ययाव्याप्तंजगत्त्रयम्॥३०॥
गौरी सितेक्षणा बाला तन्वंगी चारुलोचना। ययारूपीकृतःशम्भुरुपादेयःकृतोमहान्॥३१॥
निर्विकारो विकारैश्च बहुभिर्विकलीकृतः। अर्द्धांगलग्ना सा देवी दृष्टा तेन शिवस्यच॥३२॥
नारदेन तथा शम्भुर्दृष्टस्त्रिभुवनेश्वरः। शुद्धचामीकरप्रख्यः सेव्यमानः सुरासुरैः॥३३॥
शंखेन भोगिवर्येण सेवितंचांघ्रिपंकजम्। धृतराष्ट्रेण च तथा तक्षकेण विशेषतः।
तथा पद्मेन महता शेषेणाऽपि विशेषतः॥३४॥
अन्यैश्च नागवर्यैश्च सेवितो हि निरन्तरम्। वासुकिः कंठलग्नो हि हारभूतोमहाप्रभः॥३५॥

तदनन्तर नारद देखते हैं कि व्यक्त मूर्ति त्र्यम्बक गिरिजा के साथ वहां स्थित हैं। साध्वी देवी गौरी उन प्रभु शंकर के आधे आसन पर बैठी हैं। वे पर्वतराज पुत्री हैं तथा तीनों लोकों में विराजित हैं। वे चारुलोचना, तनुगात्री तथा प्रसन्न मुख वाली हैं। उन्होंने ही महादेव को रूपवान् तथा उपमेय किया है। महादेव निर्विकार हैं। तथापि इन गिरिजा देवी ने उनको विकारों से विकलीकृत किया है। नारद देखते हैं कि वे शिव की अर्द्धाङ्गि संगिनी होकर स्थित हैं। तदनन्तर नारद ने देखा कि त्रिभुवनेश्वर शम्भु भी विराजित हैं। उनकी देहप्रभा शुद्ध स्वर्णवत् है। सुर-असुर उनकी सेवा में लगे हैं। सर्पराज शंख उनके चरणकमल की सेवा कर रहे हैं। धृतराष्ट्र, तक्षक, महापद्म, अनन्त तथा अन्य महानागगण उनकी सेवा में सदैव लगे रहते हैं। महाप्रभायुक्त वासुकि उनके कण्ठ में हाररूपेण शोभायमान हैं।।२९-३५।।

कंबलाश्वतरौ नित्यं कर्णभूषणभूषितौ। जटामूलगताश्चान्ये महाफणिवरा ह्यमी॥३६॥
अनेकजातिसंवीता नानावर्णाश्च पद्मिनः। तक्षकः कुलिकः शंखो धृतराष्ट्रो महाप्रभः॥३७॥
पद्मो दंभः सुदंभश्च करालो भीषणस्तथा। एते चान्येचबहवोनागाश्चाशीविषा ह्यमी॥३८॥

अंगभूताहरस्याऽऽसन्पूज्यस्यास्यजगत्त्रये। फमैकयाशोभमानाः केचिद्भिपन्नगोत्तमाः॥३९॥
फणानां द्वितयं केषां त्रितयं च महाप्रभम्। चतुष्कं पंचकं षट्कं सप्तकंचाष्टकं तथा॥४०॥
नवकं दशकं चैव तथैकादशकं त्वथ। द्वादशकं चाष्टादशकमेकोनविंशकं तथा॥४१॥

चत्वारिंशत्फणाः केऽपि पंचाशत्कं च षष्टिकम्।
सप्ततिश्चाप्यशीतिश्च नवतिश्च तथैव च॥४२॥

तथा शतसहस्राणि ह्युतप्रयुतानि च। अर्बुदानि च रत्नानि तथा शङ्खमितानि च॥४३॥
अनंताश्च फणा येषां ते सर्पाः शिवभूषणाः। दृष्टास्तदानीं ते सर्वे नारदेन महात्मना॥४४॥

कम्बल तथा अश्वतर नामक नागद्वय उनके कर्णकुण्डल की तरह दीप्तिमान हैं। अन्य अनेक महासर्प उनके जटामूल में स्थित हैं। तक्षक, कुलीरक, शंख, धृतराष्ट्र, पद्म, दम्भ, सुदन्त, कराल, भीषण नामक विशिष्ट तथा नाना वर्ण वाले पद्मचिह्नयुक्त भयानक विषयुक्त नाग इन त्रिजगत् पूज्य भगवान् हर के अंगभूत रूप में विराजमान हैं। उनमें से कुछ एक फण वाले, कोई दो फण वाले, कोई तीन, कोई चार, कोई पांच, कोई छः, कोई सात, इस प्रकार ९, १०, ११, १२, १८, १९, ४०, ५०, ७०, ८०, ९०, १००, सहस्र, अयुत, अर्बुद तथा शंख गणना से परे फण वाले भी हैं। जिनके अनन्त फण हैं, वे सर्प भी शिव के भूषण रूप हैं। महात्मा नारद ने वहां यह सब विस्मय तथा आश्चर्य देखा।।३६-४४।।

विद्यावंतोऽपितेसर्वेभोगिनोऽपिसुशोभिताः। हारभूषणभूतास्तेमणिमंतोऽमितप्रभाः॥४५॥
अर्द्धचंद्रांकितो यस्य कपर्दस्त्वतिसुन्दरः। चक्षुषा च तृतीयेन भालस्थेन विराजितः॥४६॥
पंचवक्त्रो महादेवोबाहुभिर्दशभिर्वृतः। तथामरकतश्यामकंधरोऽतीवसुन्दरम्॥४७॥
उरो यस्य विशालं च तथोरुजघनं परम्। चरणद्वयं च रुद्रस्य शोभितं परमंमहत्॥४८॥
तद्दृष्टं चरणारविंदमतुलं तेजोमयं। सुन्दरंसंध्यारागसुमंगलंचपरमंतापापनुत्तिंकरम्॥४९॥

तेजोराशिकरं परात्परमिदं लावण्यलीलास्पदं।
सर्वेषां सुखवृद्धिकारणपरं शंभोः पदं पावनम्।
तथैव दृष्ट्वा परमं पराणां परा सती रूपवती च सुन्दरी।
सौभाग्यलावण्यमहाविभूत्या विराजमाना ह्यतिसुन्दरी शुभा॥५०॥

दृष्ट्वा तौ दम्पती शुद्धौ राजमानौ जगत्त्रये। अभिन्नौभेदमापन्नौनिर्गुणौगुणिनौचतौ॥५१॥
साकारौ च निराकारौ निरातंकौ सुखप्रदौ। ववंदे च मुदातौसनारदो भगवत्प्रियः।

उत्थायोत्थाय च तदा तुष्टाव जगदीश्वरौ॥५२॥

ये सभी सर्प विद्वान्, शोभन, अमित प्रभा वाले, मणिमण्डित थे तथा शिव के हार तथा आभूषण स्वरूप शोभित थे। जिनका अर्द्धचन्द्राङ्कित जटाजूट अतीव सुन्दर था तथा जिनके ललाट पर तृतीय नेत्र स्थित था, जिनके ५ मुख थे, जो दस बाहु वाले देवाधिदेव महादेव थे, जिनका कंकण मरकत जैसा श्यामवर्ण था, वक्षस्थल सुन्दर था, उरु प्रदेश विशाल थे, जंघा तथा चरणद्वय अतीव सुन्दर थे, उन देवदेव के तेजपुंजमय निरुपम चरणों का नारद ने

दर्शन किया। उन्होंने देखा कि वे चरणद्वय सन्ध्याकालीन गगन के समान समुज्ज्वल, सुमङ्गल, परमोत्तम तथा निखिल पाप, ताप नाशक हैं। शम्भु का यह पवित्र पद तेजःपुञ्ज का उद्धारक, परात्पर, लावण्यलीला का सम्पदास्वरूप तथा सुख-समृद्धि वर्द्धक है। तदनन्तर परात्परा रूपवती सुन्दरी गौरी नारद को दृष्टिगोचर हो गयीं।

नारद देखते हैं कि शिव सीमन्तिनी सती सौभाग्य तथा लावण्यरूपी महाविभूति द्वारा परम शोभा से शोभित हैं। इस तीनों लोकों के मूलभूत, परम पावन, इन देव दम्पति को देखकर भगवान् के प्रिय नारद ने उनकी प्रेमपूर्वक वन्दना किया। ये दम्पति अभिन्न होकर भी (बाह्य दृष्टि से) भिन्नतया प्रतीत होते हैं। ये निर्गुण होकर भी सगुण हैं। साकार होकर भी निराकार हैं। निरातङ्क होकर भी सुखविधायक भी हैं। नारद उनको बारम्बार प्रणाम करते तथा पुनः उठकर उन जगदीश्वर तथा जगदीश्वरी की स्तुति करते!।।४५-५२।।

नारद उवाच

नतोऽस्म्यहं देववरौ युवाभ्यां परात्पराभ्यां कलया तथापि।
दृष्टो मया दम्पती राजमानौ यौ बीजभूतौ सचराचरस्य॥५३॥
पितरौ सर्वलोकस्य ज्ञातौ चाद्यैव तत्त्वतः। मया नास्त्यत्र संदेहोभवतोःकृपयातथा॥५४॥
एवं स्तुतौ तदा तेन नारदेन महात्मना। तुतोष भगवाञ्छंभुः पार्वत्या सहितस्तदा॥५५॥

नारद कहते हैं—हे श्रेष्ठ देवदम्पति! आप परात्पर निराकार होकर भी अंशतः साकार रूप से विराजमान हैं। इस प्रकार से मेरे नेत्रों द्वारा दृष्टिगोचर हो रहे हैं। आप ही इस चराचर जगत् के बीज हैं। आप लोगों को प्रणाम करता हूं। अब यह तत्व भली प्रकार से मुझे ज्ञात हो गया। आपकी ही कृपा से मुझमें इस ज्ञान का जन्म हुआ है। इसमें सन्देह नहीं है। महात्मा नारद के इस स्तव से पार्वती तथा भगवान् शंकर सन्तुष्ट हो गये।।५३-५५।।

महादेव उवाच

सुखेन स्थीयते ब्रह्मन्किं कार्यं करवाणिते। तच्छ्रुत्वावचनंशंभोर्नारदोवाक्यमब्रवीत्॥५६॥
दर्शनं जातमद्यैव तेन तुष्टोऽस्म्यहं विभो। दर्शनात्सर्वमेवाद्य शंभो मम न संशयः॥५७॥
क्रीडनार्थमिहायातःकैलासंपर्वतोत्तमम्। हृदिस्थोहिसदानृणामास्थितोभगवन्प्रभो॥५८॥
तथापि दर्शनं भाव्यं सततं प्राणिनामिह॥५९॥

तब महादेव ने उनसे प्रश्न किया—"आप प्रसन्न तो हैं? हे ब्रह्मन्! कहिये आपका क्या काम करूं?" शंभु का वचन सुनकर नारद ने कहा—"हे विभो! आपके दर्शन से ही मैं सन्तुष्ट हो गया। हे शम्भु! इसी से मुझे निःसंदिग्ध रूप से सब कुछ मिल गया। मैं क्रीड़ार्थ ही इस पर्वतप्रवर कैलास आया था। हे प्रभो, भगवान्! आप सदा मनुष्यों के हृदय में अवस्थित रहते हैं तथापि आपका साक्षात्कार प्रत्येक को अवश्य करना चाहिये।।५६-५९।।

गिरिजोवाच

का क्रीडा हि त्वया भाव्यावदशीघ्रंममाग्रतः। तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वाउवाचप्रहसन्निव॥६०॥
द्यूतक्रीडा महादेवि दृश्यतेविविधाऽत्र च। भवेद्द्वाभ्यां च द्यूतेहि रमणाच्चमहत्सुखम्॥६१॥
इत्येवमुक्त्वोपरतं सती भृशमुवाच वाक्यं कुपिता ऋषिं प्रति।
कथं विजानासि परं प्रसिद्धं द्यूतं च दुष्टोदरकं मनस्विनाम्॥६२॥

त्वं ब्रह्मपुत्रोऽसि मुनिर्मनीषिणां शास्ता हि वाक्यं विविधैः प्रसिद्धैः।
चरिष्यमाणो भुवनत्रये सदा न हि त्वदन्यो ह्यपरो मनस्वी॥६३॥
एवमुक्तस्तदा देव्या नारदो देवदर्शनः। उवाच वाक्यं प्रहसन्निगिरिजां शिवसन्निधौ॥६४॥

गिरिजा कहती हैं—"हे मुनिवर! आपने कैसी क्रीड़ा करनी चाही है, आप किस क्रीड़ा के पक्षपाती हैं? उसे शीघ्र मुझसे कहें।" यह सुनकर नारद ने हास्यपूर्वक कहा—हे महादेवी! जगत् में नाना द्यूतक्रीड़ा परिलक्षित होती है। दो व्यक्ति द्यूत में प्रवृत्त होकर रमण से भी अधिक महासुख प्राप्त करते हैं।" नारद की यह उक्ति सुनकर देवी विरत हो गयीं तथा ऋषि नारद के प्रति अत्यन्त क्रोध से कहने लगीं—"आपने किस प्रकार द्यूत को ही प्रसिद्ध क्रीड़ा कहा? मनस्वी लोग इसे त्याज्य कहते हैं। हे मुनिवर! आप तो ब्रह्मा के पुत्र हैं। इस त्रिभुवन में आप सर्वत्र विचरण करते हैं। आपने अपने उत्तम वाक्यविन्यास द्वारा मनीषीगण तक को शिक्षित किया है। आपकी अपेक्षा प्रधान मनस्वी और कौन है? देवी द्वारा यह कहे जाने पर देवदर्शन नारद ने शिव के ही समीप गिरिजा से कहा—॥६०-६४॥

नारद उवाच

द्यूतं न जानामि न चाश्रयामि ह्यहं तपस्वी शिवकिङ्करश्च।
कथं च मां पृच्छसि राजकन्यके योगीश्वराणां परमं पवित्रे॥६५॥
निशम्य वाक्यं गिरिजा सती तदा ह्युवाच वाक्यं च विहस्य तं प्रति।
जानासि सर्वं च बटोऽद्य पस्य मे द्यूतं महेशेन करोमि तेऽग्रतः॥६६॥
इत्येवमुक्त्वा गिरिराजकन्यका जग्राह चाक्षान्भुवनैकसुन्दरी।
क्रीडां चकाराऽथ महर्षिसाक्ष्यके तत्रास्थिता सा हि भवेन संयुता॥६७॥
तौ दंपती क्रीडया सज्जमानौ दृष्टौ तदा ऋषिणा नारदेन।
सविस्मयोत्फुल्लमना मनस्वी विलोकमानोऽतितरां तुतोष॥६८॥
सखीजनेन संवीता तदा द्यूतपरा सती। शिवेन सह संगत्य च्छलाद्द्यूतमकारयत्॥६९॥
स पणं च तदा चक्रे छलेन महतावृतः। जिता भवानी च तदा शिवेन प्रहसन्निव॥७०॥

नारद कहते हैं—देवी द्वारा यह कहे जाने पर देवदर्शन नारद ने शिव के ही समीप गिरिजा से कहा—"मैं तपस्वी तथा शिवकिंकर हूं। द्यूत क्या है? मैं नहीं जानता, उसका कभी आश्रय भी नहीं लिया। हे गिरिराजकन्ये! हे योगीगण हेतु परम पावन! आप मुझसे इस सम्बन्ध में क्यों पूछ रही हैं?" गिरिजा ने नारद का यह कथन सुनकर उनसे कहा—"हे बटु! आप सब जानते हैं। मैं आपके समक्ष महेश के साथ यह क्रीड़ा करूंगी। आप यहां रह कर उसे देखें।" यह कहकर भुवनों में एकमात्र सुन्दरी गिरिराज कन्या ने अक्ष लिया तथा महादेव शिव के साथ वे क्रीड़ारत हो गयीं। जब वे देवदम्पति क्रीड़ारत थे, तब नारद उस क्रीड़ा को देख रहे थे। विस्मय के कारण उनका अन्तर्मन उत्फुल्ल हो गया। मनस्वी नारद ने इस क्रीड़ाव्यापार का अवलोकन किया तथा सन्तुष्ट हो गये। सती तब सखियों के साथ द्यूत क्रीड़ा में संलग्न हो गईं तथा छलपूर्वक द्यूत क्रीड़ा करने लगीं। तदनन्तर शिव भी विपुल छल के साथ द्यूतक्रीड़ारत हो गये। उन्होंने भवानी को पराजित कर दिया॥६५-७०॥

नारदोऽस्याः शिवेनाथ उपहासकरोऽभवत्। निशम्य हारितं द्यूतमुपहासं निशम्यच॥७१॥

नारदस्य दुरुक्तैश्च कुपिता पार्वती भृशम्। उवाच त्वरिता चैव दत्त्वाचैवार्द्धचंद्रकम्।
तथा शिरोमणी चैव तरले च मनोहरे॥७२॥
मुखं सुशोभनं चैवतथाकुपितसुंदरम्। दृष्टं हरेणचपुनःपुनर्द्यूतमकारयत्॥७३॥
तथा गिरिजया प्रोक्तः शंकरो लोकशंकरः। हारितं च मया दत्तः पणएवच नान्यथा॥७४॥
क्रियते च त्वयाशंभो कःपणोहितदुच्यताम्। ततःप्रहस्यचोवाचपार्वतींचत्रिलोचनः॥७५॥
मया पणोऽयं क्रियते भवानी त्वदर्थमेतच्च विभूषणं महत्।
सा चन्द्रलेखा हि महान्हि हारस्तथैव कर्णोत्पलभूषणद्वयम्॥७६॥
इदमेव त्वया तन्वि मां जित्वा गृह्यतां सुखम्। ततः प्रवर्तितं द्यूतं शंकरेण सहैव च॥७७॥

शिव के साथ नारद ने भी उपहास में योगदान किया। पार्वती द्यूत में हार गईं थीं। शिव उपहास कर रहे थे। यह देख-सुनकर पार्वती अत्यन्त कुपिता हो गयीं। उन्होंने नारद से कहा कि तुमको अर्द्धचन्द्र दूंगी। (अर्द्धचन्द्र अर्थात् गले में हथेली लगाकर भगाना)। इस कोप से उनकी मनोहर शिरोमणि चंचल हो गयी। सुन्दर मुख कोप के कारण और भी शोभायुक्त लगने लगा। भगवान् शिव गौरी की यह मुखश्री देखकर पुनः-पुनः द्यूत क्रीड़ा करने लगे। तदनन्तर गिरिजा ने लोकशंकर प्रभु शंकर से कहा—"मैं द्यूत हार गई। अब बाजी लगाइये। हे शम्भु! आप अब क्या बाजी लगायेगें, वह कहें।" तब त्रिलोचन ने हंसते हुये पार्वती से कहा—"हे भवानी! मैं आपके लिए महा आभूषण की बाजी लगाता हूं। यह चन्द्रलेखा, यह महाहार (वासुकि नाग का हार) तथा कर्ण के आभूषण (नागद्वय) की बाजी लगाया। हे देवी! आप मुझे जीत कर ये सभी आभूषण ग्रहण करें।" यह कहकर पुनः शिवपार्वती द्यूतक्रीड़ा तत्पर हो गये।।७१-७७।।

एवं विक्रीडमानौ तावक्षविद्याविशारदौ। तदा जितो भवान्याथ शंकरो बहुभूषणः॥७८॥
प्रहस्य गौरी प्रोवाच शंकरं त्वतिसुंदरी। हारितं च पणं देहि मम चाद्यैव शंकर॥७९॥
तदा महेशः प्रहसन्सत्यं वाक्यमुवाचह। नजितोऽहंत्वयातन्वितत्त्वतोहिविमृश्यताम्।
अजेयोऽहं प्राणिनां सर्वथैव तस्मान्न वाच्यं तु वचो हि साध्वि!॥८०॥
द्यूतं कुरुष्वाऽद्य यथेष्टमेव जेष्यामि चाहं च पुनः प्रपश्य॥८१॥
तदाम्बिकाऽऽह स्वपतिं महेशं मया जितोऽस्यद्य न विस्मयोऽत्र।
एवमुक्त्वा तदा शम्भुं करे गृह्य वरानना।
जितोऽसित्वंनसंदेहस्त्वंनजानासिशंकर ॥८२॥
एवं प्रहस्य रुचिरं गिरिजा तु शम्भुं सा प्रेक्ष्य नर्मवचसा स तयाऽभिभूतः।
देहीति मे सकलमंगलमंगलेश यद्धारितं स्मररिपो वचसानुमोदितम्॥८३॥

वे दोनों ही अक्षविद्या के परम पण्डित थे। अतः यह क्रीड़ा अत्यन्त दक्षभाव से चलने लगी। भवानी ने अनेक आभूषण जीत लिये। अब गौरी ने शंकर से हंसते हुये कहा—"हे शंकर! आपको मैंने क्रीड़ा में परास्त किया। अब जो बाजी तय थी, वह मुझे दीजिये।" तब महेश ने हंसकर कहा—"हे साध्वी! तत्वतः विचार करके

देखो! मैं तुमसे हारा नहीं हूं। हे साध्वी! इस त्रिभुवन के सभी प्राणियों से मैं अविजित हूं। हे तन्वी! ऐसा वाक्य न बोलो। पुनः द्यूत क्रीड़ा में प्रवृत्त हो जाओ। देखना! मैं तुमको पराजित कर दूंगा।'' अम्बिका अपने पति शंकर से कहने लगीं—''हे देव! मैंने आपको क्रीड़ा में पराजित किया है। इसमें विस्मित होने वाला कुछ भी नहीं है।'' यह कहकर वरानना गौरी ने शंकर की बांह पकड़ कर पुनः कहा—''हे शंकर! आप नहीं जानते। आपको मैंने जीत लिया। इसमें संदेह नहीं है।'' तदनन्तर देवी ने मधुर हास्य के साथ शंकर की ओर देखते हुये मधुर वाणी में यह व्यंग्य वाक्य कहा—''हे सर्वमंगल समूह का भी मंगल करने वाले! कामरिपु! आपने वाक्य से अनुमोदन करके जो बाजी लगाई थी, वह मुझे अर्पित करें।।७८-८३।।

शिव उवाच

अजेयोऽहंविशालाक्षितवनास्त्यत्रसंशयः। अहंकारेणयत्प्रोक्तंतत्त्वंतस्य विमृश्यताम्।।८४।।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रोवाच च विहस्य सा। अजेयो हि महादेवःसर्वेषामपिवैप्रभो।।८५।।
मयैकया जितोऽसित्वंद्यूतेनविमलेन हि। नजानासिचकिंचिच्चकार्याकार्यंविवक्षितम्।।८६।।
एवं विवदमानौ तौ दंपती परमेश्वरौ। नारदः प्रहसन्वाक्यमुवाच ऋषिसत्तमः।।८७।।

शिव कहते हैं—''हे विशालाक्षी! मैं तुमसे अजेय हूं। सन्देह नहीं है। तुम जो अहंकारपूर्वक कह रही हो, उस पर विचार करके देखो।'' शंकर का वाक्य सुनकर पार्वती विस्मय के साथ कहने लगीं—''हे महेश्वर! यह सत्य है कि महादेव सबसे अजेय हैं। लेकिन यह भी मिथ्या नहीं है कि एकमात्र मैं ही आपको विशुद्ध द्यूतक्रीड़ा में जीत चुकी हूं। जो भी हो, मैं इस सम्बन्ध में विवक्षित हूं। कार्याकार्य कुछ नहीं जानती।'' जब ये दम्पति इस प्रकार विवाद करने लगे, तब ऋषिप्रवर नारद ने हंसते हुये कहा।।८४-८७।।

नारद उवाच

आकर्णयाऽऽकर्णविशालनेत्रे वाक्यं तदेकं जगदेकमङ्गलम्।
असौ महाभाग्यवतां वरेण्यस्त्वया जितः किं च मृषा ब्रवीषि।।८८।।
अजितो हि महादेवो देवानां परमो गुरुः। अरूपोऽयं सुरूपोऽयं रूपातीतोऽयमुच्यते।।८९।।
एक एव परं ज्योतिस्तेषामपिचयन्महः। त्रैलोक्यनाथोविश्वात्माशंकरोलोकशंकरः।।९०।।
कथं त्वया जितो देवि ह्यजेयो भुवनत्रये। शिवमेवं न जानासि स्त्रीभावाच्च वरानने।।९१।।
नारदेनैवमुक्ता सा कुपिता पार्वती भृशम्। बभाषे मत्सरग्रस्ता साक्षेपं वचनं सती।।९२।।

नारद कहते हैं—''हे देवी! आकर्ण विशाल नेत्रे (जिनके नेत्र कान तक फैले हैं)! मेरा एक जगत् का मंगल करने वाला वाक्य सुनें। ये देव शंकर तो महाभाग्यवानों के भी वरेण्य हैं। आपने इनको जय किया, ऐसा मिथ्या वाक्य क्यों कह रही हैं? महादेव को आप जय नहीं कर सकतीं! वे देवगण के परम गुरु हैं। पण्डितों का कथन है कि ये अरूप-सुरूप तथा रूपातीत हैं। ये एकमात्र परमज्योति हैं। देवगण की जो तेजःसमष्टि है, वे भी ये ही हैं। ये ही त्रैलोक्यनाथ, विश्वात्मा, लोकशंकर शंकर हैं। हे देवी! ये तो तीनों लोकों हेतु अजेय हैं। आप इन पर कैसे जय प्राप्त करेंगी? हे वरानने! आप स्त्रित्व के कारण शिव को सम्यक्तः जान नहीं सकीं।'' नारद का वचन सुनकर पार्वती अत्यन्त क्रोधित हो गयीं। वे मात्सर्यवशात् आक्षेपमय वाक्य कहने लगीं।।८८-९२।।

पार्वत्युवाच

चापल्याच्च न वक्तव्यं ब्रह्मपुत्र नमोऽस्तु ते। तव भीताऽस्मि भद्रं ते देवर्षेमौनमावह॥९३॥
कथं शिवो हि देवर्ष उक्तोऽतोहित्वयाबहु। मत्प्रसादाच्छिवोजातईश्वरोयोहिपठ्यते॥९४॥
मया लब्धप्रतिष्ठोऽयं जातो नास्त्यत्र संशयः। एवं बहुविधंश्रुत्वानारदोमौनमाश्रयत्॥९५॥
उपस्थितं च तं दृष्ट्वा भृङ्गी वाक्यमथाब्रवीत्॥९६॥

पार्वती कहती हैं—"हे ब्रह्मपुत्र! आपको प्रणाम! तथापि आप चापल्यवशात् कुछ न बोलें। मैंने आपकी बातों से वास्तव में भय प्राप्त किया है। हे देवर्षि! आप मौन धारण करें। हे ऋषि! आपने शिव को महिमायुक्त कहा है। क्यों? जिसे आपने ईश्वर कहा है, ये तो मेरी कृपा से प्रादुर्भूत हुये हैं।" नारद ने ऐसे अनेक वाक्य सुनकर भी मौनावलम्बन किये रहना ही कर्त्तव्य माना। तब शिव के अनुचर भृंगी ने इस विषय के सम्बन्ध में कहना प्रारम्भ किया।।९३-९६।।

भृङ्ग्युवाच

त्वया बहु न वक्तव्यं पुनरेव च भामिनि। अजेयो निर्विकारो हि स्वामीममसुमध्यमे॥९७॥
स्त्रीभावयुक्ताऽसि वरानने त्वं देवं न जानासि परं पराणाम्।
कामं पुरस्कृत्य पुरा भवानि! समागताऽस्येव महेशमुग्रम्॥९८॥
यथा कृतं तेन पिनाकिना पुरा एतत्स्मृतं किं सुभगे वदस्व नः।
कृतो ह्यनंगो हि तदा ह्यनेन दग्धं वनं तस्य गिरैः पितुस्ते॥९९॥
पश्चात्त्वयाऽऽराधित एव एष शिवः पराणां परमः परात्मा॥१००॥
भृंगिणेत्येवमुक्ता सा ह्युवाच कुपिता भृशम्।
श्रृण्वतो हि महेशस्य वाक्यं रुष्टा च भृङ्गिणम्॥१०१॥

भृंगी कहते हैं—"हे भामिनी! आप पुनः ऐसे वाक्य का प्रयोग न करें। हे सुमध्यमे! मेरे प्रभु शिव अजेय तथा निर्विकार हैं। हे वरानने! आप स्त्री स्वभाव से युक्त हैं, तभी आप परात्पर देव को नहीं जान सकीं। हे भवानी! आपने पूर्वकाल में कामदेव को अग्रगामी करके महेश को पाया है। हे सुभगे! पूर्व में पिनाकपाणि प्रभु ने जो-जो किया है, क्या आपको स्मरण नहीं है? इन्होंने ही मदन को अनंग बनाया है। आपके पूर्व पिता दक्ष इनके ही द्वारा दण्डित हुये थे। तदनन्तर आपने भी परात्पर परात्मा शिव की आराधना सम्पन्न किया था।" भृंगी की इस बात से कुपित होकर भवानी महेश को सुना-सुना कर कहने लगीं।।९७-१०१।।

पार्वत्युवाच

हे भृङ्गिन्पक्षपातित्वाद्यदुक्तं वचन मम। शिवप्रियोऽसि रे मन्द भेदबुद्धिरतो ह्यसि॥१०२॥
अहं शिवात्मिका मूढ शिवो नित्यं मयि स्थितः।
कथं शिवाभ्यां भिन्नत्वं त्वयोक्तं वाग्बलेन हि॥१०३॥
श्रुतं च वाक्यं शुभदं पार्वत्या भृङ्गिणातदा। उवाचपार्वतींभृङ्गीरुषितःशिवसन्निधौ॥१०४॥

पितुयज्ञे च दक्षस्य शिवनिंदा त्वया श्रुता। अप्रियश्रवणात्सद्यस्त्वयात्यक्तंकलेवरम्॥१०५॥
तत्क्षणादेव तन्वङ्गि ह्यधुना किं कृतं त्वया। संभ्रमात्किं नजानासिशिवनिंदकमेवच॥१०६॥
कथंवा पर्वतश्रेष्ठाज्जातासि वरवर्णिनि। कथं वा तपसोग्रेण संतप्ताऽसि सुमध्यमे॥१०७॥
सप्रेमा च शिवे भक्तिस्तव नास्तीहसांप्रतम्। शिवप्रियासितन्वंगितस्मादेवंब्रवीमिते॥१०८॥
शिवात्परतरं नान्यत्त्रिषु लोकेषु विद्यते। शिवे भक्तिस्त्वया कार्यासप्रेमावरवर्णिनि॥१०९॥
भक्ताऽसि त्वं महादेवि महाभाग्यवतां वरे। संसेव्यतां प्रयत्नेन तपसोपार्जितस्त्वया॥११०॥
शिवो वरेण्यः सर्वेशो नान्यथा कर्तुमर्हसि। भृङ्गिणो वचनंश्रुत्वागिरिजातमुवाचह॥१११॥

पार्वती कहती हैं—हे भृङ्गी! तुमने पक्षपात के कारण मेरे प्रति अयुक्त बातों को कहा है। हे मन्दबुद्धि! तुम शिवप्रिय, भेदबुद्धिधारी हो। हे मूढ़! मैं शिवात्मिका हूं। शिव भी मुझमें नित्य स्थित हैं। तुमने किस प्रकार से अपने वाक्यबल द्वारा शिव-शिवा का भेद व्यक्त किया?" पार्वती का यह शुभ वाक्य भृङ्गी ने सुना तथा शिव के पास ही रहते पार्वती से कहने लगे—"पिता दक्ष के यज्ञ में आपने शिवनिन्दा सुनी थी। उस अप्रिय विषय को सुनकर आपने प्राणत्याग कर दिया था! हे तन्वङ्गी! अब आपने क्या किया? भ्रम के कारण आपने शिवनिन्दा को नहीं समझा? हे वरवर्णिनी! आपने किस प्रकार पर्वतश्रेष्ठ के यहां जन्म लिया था? हे सुमध्यमे! किस प्रकार आपने उग्र तपस्या से स्वयं को सन्तप्त किया था? अब देखता हूं कि आपकी शिव के प्रति प्रेमयुक्त भक्ति नहीं है। हे तनुगात्री! आप शिवप्रिया हैं। तभी मैंने आपसे यह सब कहा। शिव से बढ़ कर त्रैलोक्य में कुछ नहीं है। हे वरवर्णिनी! आप भक्ता हैं। हे महाभाग्यवानों में अग्रगण्य! आप तपस्या से प्राप्त शिव की सेवा करें। शिव वरेण्य तथा सर्वप्रिय हैं। इसके अतिरिक्त उनके प्रति अन्य भावना न रखिये।" भृङ्गी का वचन सुनकर गिरिजा ने कहा।।१०२-१११।।

गिरिजोवाच

रे भृङ्गिन्मौनमालम्ब्य स्थिरो भवाऽथ वा व्रज।
वाच्यावाच्यं न जानासि किं ब्रवीषि पिशाचवत्॥११२॥
तपसाकेनचानीतःकयाचापिशिवोह्ययम् ।
काहंकोऽसौत्वयाज्ञातोभेदबुद्ध्याब्रवीषिमे ॥११३॥
कोऽसि त्वंकेनयुक्तोऽसिकस्माच्चबहुभाषसे।
शापंतवप्रदास्यामिशिवःकिंकुरुतेऽधुना ॥११४॥
भृङ्गिणोक्ता तिरस्कृत्य तदा शापं ददौ सती। निर्मांसोभवरेमन्दरेभृङ्गिञ्छंकरप्रिया॥११५॥
एवमुक्त्वा तदा देवो पार्वती शंकरप्रिया। अथ कोपेन संयुक्ता पार्वती शंकरं तदा॥११६॥
करे गृह्य च तन्वंगीं भुजंगं वासुकिं तथा। उदतारयत्कंठात्सा तथान्यानि बहूनि च॥११७॥
शंभोर्जग्राह कुपिता भूषणानि त्वरान्विता।
हता चन्द्रकला तस्य गजाजिनमनुत्तमम्॥११८॥
कम्बलाश्वतरौ नागौ महेशकृतभूषणौ। हतौ तया महादेव्या छलोक्त्या च प्रहस्ययै॥११९॥

कौपीनाच्छादनं तस्य च्छलोक्त्या च प्रहस्य वै।
तदा गणाश्च सख्यश्च त्रपया पीडिता भवन्॥१२०॥
पराङ्मुखाश्च संजाता भृङ्गी चैव महातपाः। तथाचण्डोहिमुण्डश्चमहालोमामहोदरः।
एते चान्ये च बहवो गणास्ते दुःखिनोऽभवन्॥१२१॥
तांश्च दृष्ट्वा तथाभूतान्महेशो लज्जितोऽभवत्॥१२२॥
उवाच वाक्यं रुषितः पार्वतीं प्रति शंकरः॥१२३॥

पार्वती कहती हैं—"हे भृङ्गी! तुम मौन धारण करके बैठो, अथवा यहां से चले जाओ। तुम यह नहीं जानते कि क्या कहना चाहिये अथवा क्या नहीं कहना चाहिये। तुम पिशाचों जैसा क्या बोल रहे हो? किस तपस्या बल से शिव को लाकर पाया? मैं कौन, ये शिव कौन? तुमने भेदबुद्धि से मेरा तत्व क्या जाना? मुझे बताओ, तुम किसके साथ युक्त हुये हो? क्यों अनेक वाक्य बोलते हो? मैं तुमको शापित करूंगी। देखूं कि तुम्हारे शिव क्या करते हैं?" इस प्रकार देवी ने भृंगी के प्रति कुपित होकर उसका तिरस्कार करते हुये शाप प्रदान किया। "हे मन्द! हे शंकरप्रिय भृंगी! तुम मांसरहित हो जाओ।" शंकरप्रिया पार्वती ने तत्काल यह कहकर कोपपूर्वक तत्काल शंकर के सभी आभूषणों को ले लिया। तनुगात्री शिवा ने शिव के कण्ठ से वासुकि को उतार कर अपने हाथों में लिया। इस प्रकार शिव के अनेक भुजंग (सर्प) भूषणों को शिवदेह से उतारा। उनकी चन्द्रकला, उत्तम गजचर्म, कम्बल तथा अश्वतर नामक नागों के कर्णकुण्डल उन महादेवी ने छलोक्ति द्वारा हास्यपूर्वक ले लिया। भगवान् शिव ने जो कौपीन धारण कर रक्खी थी, उसे भी देवी ने हास्यपूर्वक हर लिया। तब प्रमथगण तथा सभी सखीगण लज्जा से वहां से हट गये। महातपा भृंगी, चण्ड, मुण्ड, महालोमा, महोदर तथा अन्य बहुत से गण यह देखकर दुःखी हो गये। उनकी यह अवस्था देखकर महेश लज्जित हो गये तथा कुपित होकर पार्वती से कहा।।११२-१२३।।

रुद्र उवाच

उपहासं प्रकुर्वंति सर्वे हि ऋषयो भृशम्। तथा ब्रह्मा चविष्णुश्चतथाचेन्द्रादयोह्यमीं॥१२४॥
उपहासपराः सर्वे किं त्वयाऽद्य कृतं शुभे। कुले जातासि तन्वंगिकथमेवंकरिष्यसि।
त्वया जितो ह्यहं सुभ्र यदि जानासि तत्त्वतः॥१२५॥
तर्ह्येवं कुरु मे देहि कौपनीनाच्छादनं परम्।
देहि कौपीनमात्रं मे नान्यथा कर्तुमर्हसि॥१२६॥
एवमुक्ता सती तेन शम्भुना योगिना तदा।
प्रहस्य वाक्यं प्रोवाच पार्वतीरुचिराननना॥१२७॥
किं कौपीनेन ते कार्यं मुनिना भावितात्मना। दिगम्बरेणैव तदा कृतं दारुवनं तथा॥१२८॥
भिक्षाटनमिषेणैव ऋषिपत्न्यो विमोहिताः। गच्छतस्ते तदा शंभोपूजनंतैर्महत्कृतम्॥१२९॥
कौपीनं पतितं तत्र मुनिभिर्नान्यथोदितम्।
तस्मात्त्वया प्रहातव्यं द्यूते हारितमेवतत्॥१३०॥

रुद्र कहते हैं—"हे शुभे! तुमने यह क्या किया? सभी ऋषि उपहास कर रहे हैं। ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्रादि सभी देवता तथा अन्य भी उपहास कर रहे हैं। तुमने अच्छे कुल में जन्म लेकर ऐसा क्यों किया? यदि तुम्हारी यही यथार्थ धारणा रही हो कि तुमने मुझे जीत लिया, तब यही करो। मेरी कौपीन मुझे वापस कर दो। इसे मना नहीं करना।" योगी शम्भु द्वारा यह कहे जाने पर सुन्दर आनन वाली सती पार्वती ने हास्यपूर्ण स्वर में कहा—हे शम्भु! आपको कौपीन देकर क्या होगा? आप भावितात्मा ऋषि हैं। दिगम्बर वेष में दारुवन में भिक्षाटन करते थे। आपने भावितात्मा मुनि बनकर भिक्षाटन के बहाने ऋषिपत्नीगण को मोहित किया था। हे शम्भु! यदि वहां आप पुनः गये थे, तब मुनिगण ने आपकी 'महापूजा' किया था। तब भी आपकी कौपीन गिर गयी थी। मेरी यह बात व्यर्थ नहीं है। अतः आपने द्यूतक्रीड़ा में जो हारा है, उसका अभी त्याग करना कर्त्तव्य है"।।१२४-१३०।।

तच्छ्रुत्वा कुपितो रुद्रः पार्वतीं परमेश्वरः। निरीक्षमाणोऽतिरुषा तृतीयेनैव चेक्षुषा।।१३१।।
कुपितं शङ्करं दृष्ट्वा सर्वे देवगणास्तदा। भयेन महताविष्टास्तथा गणकुमारकाः।।१३२।।

ऊचुः सर्वे शनैस्तत्र शङ्कितेन परस्परम्।
अद्याऽयं कुपितो रुद्रो गिरिजांप्रतिसंप्रति।।१३३।।
यथा हि मदनो दग्धस्तथेयं नान्यथा वचः।
एवं मीमांसमानास्ते गणा देवर्षयस्तदा।।१३४।।

विलोकितास्तया देव्या सर्वे सौभाग्यमुद्रया। उवाच प्रहसन्नेव सती सत्पुरुषं तदा।।१३५।।
किमालोकपरो भूत्वा चक्षुषा परमेण हि। नाहं कालो नकामोऽहंनाहंदक्षस्यवैमुखः।।१३६।।
त्रिपुरो नैव वै शम्भो नान्धको वृषभध्वज!। वीक्षितेनैव किन्तेन तवचाद्यभविष्यति।
वृथैव त्वं विरूपाक्षो जातोऽसि मम चाऽग्रतः।।१३७।।

यह सुनकर देवदेव रुद्र परमेश्वर पार्वती के प्रति क्रोधित हो गये। इस क्रोध से उद्दीप्त स्थिति में उन्होंने पार्वती का अपने तृतीय नेत्र से निरीक्षण किया। शंकर को कुपित देखकर देव तथा प्रमथगण भय से अत्यन्त आविष्ट हो गये तथा सभी शंकित भाव से एक दूसरे से कहने लगे—"आज रुद्रदेव गिरिजा के प्रति क्रोधित हैं। जैसे इन्होंने पहले मदन को दग्ध किया था, अब प्रतीत होता है कि उन्होंने पार्वती को भी उसी प्रकार से दग्ध किया। देवर्षि तथा प्रमथ सभी ऐसी आलोचना किये जा रहे थे, तभी पार्वती ने सबके प्रति दृष्टिपात किया। तदनन्तर उन्होंने हंसते हुये परम पुरुष महादेव से कहा—"आपने मेरे प्रति अपने तृतीय नेत्र से क्यों दृष्टिपात किया? हे शम्भु! हे वृषध्वज! आपको ज्ञात है, मैं न तो काल हूं (जिसे आपने दग्ध किया था), न तो काम ही हूं, न तो दक्षयज्ञ हूं। किंवा त्रिपुर अथवा अन्धक भी नहीं हूं। अतः आपके देखने से मेरा क्या होना है? आपका मेरे सामने विरूपाक्ष नाम तो व्यर्थ ही है।।१३१-१३७।।

एवमादीन्यनेकानि ह्युवाच परमेश्वरी। निशम्य देवो वाक्यानि गमनाय मनो दधे।।१३८।।
चनमेव वरं चाद्य विजनं परमार्थतः। एकाकी यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।।१३९।।

स सुखी परमार्थज्ञः सविद्वान्स च पण्डितः।
येनमुक्तौकामरागौसमुक्तः ससुखीभवेत्।।१४०।।

एवं विमृश्य च तदा गिरिजां विहाय श्रीशङ्करः। परमकारुणिकस्तदानीम्।
यातः प्रियाविरहितो वनमद्भुतं च सिद्धाटवीं परमहंसयुतां तथैव॥१४१॥
निर्गतं शंकरं दृष्ट्वा सर्वे कैलासवासिनः। निर्ययुश्च गणाःसर्वेवीरभद्रादयोऽनुतम्॥१४२॥
छत्रं भृङ्गी समादाय जगाम तस्य पृष्ठतः। चामरे वीज्यमाने च गंगायमुनसन्निभे॥१४३॥
ताभ्यां युक्तस्तदा नन्दी पृष्ठतोऽन्वगमत्सुधीः। वृषभोह्यग्रतोभूत्वापुष्पकेणविराजितः॥१४४॥
शोभमानो महादेव एभिः सर्वैः सुशोभनैः। अंतःपुरगता देवी पार्वती सा हि दुर्मनाः॥१४५॥

परमेश्वरी सती ने महेश्वर से इस प्रकार से नाना वाक्य कहे। देवदेव ने उनके सभी वाक्य सुनकर वहां से चले जाने का मन बनाया। उन्होंने विचार किया—"वास्तव में विजन वन ही मेरे लिये श्रेष्ठ है। जो एकाकी तथा सभी परिग्रह से अलग रहकर त्यागपूर्वक एकाग्रता से वनाश्रम में निवास करते हैं, वे ही सुखी हैं। वे ही परमार्थविद् हैं। वे ही पण्डित हैं। वे ही युक्त तथा ध्यानी हैं। परमकारुणिक शंकर ने तब यह निश्चित करके गिरिजा का त्याग किया तथा सिद्धाटवी नामक परमहंसगण से परिव्याप्त एक अद्भुद् स्थान पर गमन किया। शंकर को जाता देखकर कैलासवासी वीरभद्रादि समस्त प्रमथ उनके पीछे दौड़ पड़े। भृंगी उनके पीछे छत्र लेकर चले। सुधी नन्दी भी गंगा तथा यमुना के साथ उनको चामर झलते चले जा रहे थे। शंकर के वृष पूजकों से शोभित होकर उनके आगे-आगे चले। शंकर इन सब शोभन वस्तु से शोभित हो गये। तब पार्वती विमना होकर अन्तःपुर में चली गयीं।।१३८-१४५।।

सखीभिर्बहुभिस्तत्र तथान्याभिःसुसंवृता। गिरिजा चिन्तयामास मनसापरमेश्वरम्॥१४६॥
ततो दूरं गतः शंभुर्विसृज्य च गणांस्तदा। गणेशं च कुमारं चवीरभद्रंतथाऽपरान्॥१४७॥
भृङ्गिणं नन्दिनं चण्डं सोमनन्दिनमेव च। एतानन्यांश्च सर्वांश्च कैलासपुरवासिनः॥१४८॥
विसृज्य च महादेव एक एव महातपाः। गतो दूरं वनस्यान्ते तथा सिद्धवटं शिवः॥१४९॥
काश्मीररत्नोपलसिद्धरत्नवैदूर्यचित्रं सुधया परिष्कृतम्।
दिव्यासनं तस्य च कल्पितं भुवा तत्रास्थितो योगपतिर्महेशः॥१५०॥
पद्मासने चोपविष्टो महेशो योगवित्तमः। केवलं चात्मनात्मानंदध्यौमीलितलोचनः॥१५१॥
शुशुभे स महादेवः समाधौ चन्द्रशेखरः। योगपट्टः कृतस्तेन शेषस्य च महात्मनः।
वासुकिः सर्पराजश्च कटिबद्धः कृतो महान्॥१५२॥
आत्मानमात्मात्मतया च संस्तुतो वेदांतवेद्यो न हि विश्वचेष्टितः।
एको ह्यनेको हि दुरन्तपारस्तथा ह्यतर्क्यो निजबोधरूपः।
स्थितस्तदानीं परमं पराणां निरीक्षमाणो भुवनैकभर्ता॥१५३॥

॥इति श्री स्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे शिवशास्त्रे शिवपार्वतीद्यूतप्रसंगेनपार्वतीहारितसर्वस्वस्यशिवस्य कैलासं विहाय तपोवनगमनवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥३४॥

गिरिजा अपनी सखियों तथा अन्य अनेक परिचारिकाओं से घिरी रहकर महेश्वर का चिन्तन कर रही थीं। उधर शंकर अत्यन्त दूर चले गये। गणसमूह, गणेश, कार्त्तिकेय, गणाधिपति, वीरभद्र, भृंगी, नन्दी, चण्ड, सोम, नन्दी तथा अन्य कैलासपुर वासी सभी का परित्याग करके महादेव एकाकी दूर वन में एक सिद्ध वटवृक्ष के पास गये। वहां काश्मीर रत्नोपमा तथा सिद्ध रत्न समूह वैदूर्य आदि से चित्रित सुधा धवलित एक दिव्य आसन उनके लिए मानों स्वयं पृथिवी ने प्रस्तुत किया था। योगपति महेश उसके ऊपर पद्मासन में निमीलित नयनों से आत्मयोग द्वारा परमात्मदेव का चिन्तन करने लगे। चन्द्रशेखर शिव समाधि स्थिति में अत्यन्त शोभित हो रहे थे। उन्होंने शेषनाग का व्यवहार योगपट्टरूपेण किया। सर्पराज वासुकि उनके कटिबन्धन बने। वे वेदान्तवेद्य विश्वरूपी आत्मा का ही आत्मरूप से स्तव करने लगे। समस्त भुवनों के एकमात्र स्वामी शिव एक होकर भी अनेक, दुरधिगम, तर्क से परे तथा निजबोधरूप स्थिति में स्थित होकर परात्पर परमात्मदर्शन में निमग्न हो गये।।१४६-१५३।।

॥चतुस्त्रिंश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

पार्वती का शबरी रूप से गन्धमादन पर्वत गमन, उनको वापस लाना, बृहस्पति कृत शिवराज्याभिषेक, नारद द्वारा स्त्री संग के विरुद्ध कथन

लोमश उवाच

वनं गते महादेवे गिरिजा विरहातुरा। सुखं न लेभे तन्वंगी हर्म्येष्वायतनेषु वा॥१॥
चिन्तयन्ती शिवंतन्वी सर्वभावेनशोभना। चिंतमानांशिवांज्ञात्वाह्युवाचविजयासखी॥२॥

विजयोवाच

तपसा महता चैव शिवं प्राप्ताऽसि शोभने। मृषा द्यूतं कृतं तेन शंकरेण तपस्विना॥३॥
द्यूते हि बहवो दोषा न श्रुताः किं त्वयाऽनघे। क्षमापय शिवंतन्वित्वरेणैवविचक्षणे॥४॥
अस्माभिः सहिता देवि गच्छ गच्छ वरानने!॥५॥
यावच्छम्भुर्दूरतो नाभिगच्छेत्तावद्गत्वा शङ्करं क्षामयस्व।
नो चेत्तन्वि क्षामयेथाः शिवं त्वं दुःखं पश्चात्ते भविष्यत्यवश्यम्॥६॥

लोमश कहते हैं—महादेव के वनगमन करने पर विरह से आतुर तन्वंगी गिरिजा गृह में तथा अन्य कहीं भी रम्य स्थल में, कहीं पर सुख नहीं पा रही थीं। शोभना सती तब केवल सर्वभाव से शिव की ही भावना करने लगी। सखी विजया ने शिवा को चिन्तामग्न देखकर कहा—"हे शोभने! तुमने महान् तप से शिव को पाया था।

तपस्वी शंकर के साथ तुमने व्यर्थ में द्यूत क्रीड़ा किया! हे निष्पाप! क्या तुमने सुना नहीं था कि द्यूत में नाना दोष विद्यमान रहते हैं? हे विचक्षणे! तुम हम लोगों के साथ शीघ्र शिव के पास जाकर क्षमा मांगो। जब तक वे अति दूर न चले जायें, उसके पहले ही वहां जाकर क्षमा याचना करो। हे देवी! यदि तुम शिव के पास जाकर क्षमा प्रार्थना शीघ्र नहीं करती, तब बाद में तुमको अत्यन्त दुःख होना अवश्यम्भावी है''।।१-६।।

निशम्य वाक्यं विजयाप्रयुक्तं प्रहस्यमाना समधीरचेताः।
उवाच वाक्यं विजयां सखीं च आश्चर्यभूतं परमार्थयुक्तम्।।७।।
मया जितोऽसौ निरपत्रपश्च पुरा वृतो वै परया विभूत्या।
किञ्चित्य कृत्यं मम नास्ति सद्यो मया विनाऽसौ च विरूपआस्थितः।।८।।
रूपकृतो मया देवो महेशो नान्यथा वद। मया तेन वियोगश्च संयोगो नैव जायते।।९।।
साकारो हि निराकारो महेशो हि मया कृतः।।१०।।

गिरिजा ने विजया की बात सुनकर धीर चित्त से हंसते हुये उससे एक आश्चर्यमय परमार्थपूर्ण वाक्य कहा। गिरिजा ने कहा—''इन निर्लज्ज महादेव का वरण पूर्व काल में परम विभूति योग के साथ मैंने किया था। मैंने ही इनको जीता था। अब मेरा कोई कर्त्तव्य नहीं है। मुझसे भिन्न रह कर ये सदा विरूप होकर ही अवस्थित रहेंगे। मैंने ही देवदेव महेश को सुरूप किया था, अतः अब कुछ भी न कहना। मेरे साथ शिव का संयोग-वियोग कदापि नहीं होता। देव समन्वित होकर इस सचराचर विश्व को मैंने ही क्रीड़ार्थ रचा था। मैंने ही महेश्वर को साकार तथा निराकार किया है।।७-१०।।

कृतं मया विश्वमिदं समग्रं चराचरं देववरैः समेतम्।
क्रीडार्थमस्योद्भववृत्तिहेतुभिश्चिक्रीडितं मे विजये प्रपश्य।।११।।
एवमुक्त्वा तदा देवी गिरिजा सर्वमङ्गला। शबरीरूपमास्थाय गन्तुकामा महेश्वरम्।।१२।।
श्यामा तन्वी शिखरदशना बिंबबिंबाधरोष्ठीसुग्रीवाढ्याकुचभरनतावर्द्धितस्निग्धकेशी।
मध्ये क्षामा पृथुकटितटा हेमरम्भोरुगौरी पल्लीयुक्ता वरवलयिनीबर्हिबर्हावतंसा।।१३।।
पाणौ मृणालसदृशं दधती च चापं पृष्ठे लसत्कृतककेतकिबाणकोशम्।
सा तं निरीशमवलोकयति स्म तत्र संसेविता सुवदना बहुभिःसखीभिः।।१४।।

यह समस्त विश्व मैंने ही क्रीड़ार्थ सृष्ट किया है। इस जगदुत्पत्ति प्रभृति का यही हेतु है। हे विजये! तुम मेरी क्रीड़ा को देखो।'' सर्वमंगला गिरिजा देवी ने यह कहकर तत्काल एक शबरी का रूप धारण किया तथा महेश्वर की ओर गमनोद्यत हो गयीं। वे श्यामा, शिखरवदना, बिम्बोष्ठि, सुन्दर ग्रीवा वाली, कुच (स्तन) भार से अवनता, स्निग्धकेशी, क्षीण मध्या, पृथु कटितटा, हेमरम्भोरु, गौरी पल्लीयुक्ता, वर वलयधारी, वर्हिवतंसिता होकर विराजित थीं। उनके हाथ में मृणाल के समान धनुष तथा पीठ पर केतकी के समान तरकश था। ये सुवदना अनेक सखीगण से सेवित होकर तब प्रभु महेश का अवलोकन करने लगीं।।११-१४।।

भृङ्गीनादेन महता नादयन्ती जगत्त्रयम्। गिरिजा मन्मथं सद्यो जीवयन्ती पुनः पुनः।।१५।।
सकामना राजहंसा बभूवुस्तत्क्षणादपि। द्विरेफा बर्हिणश्चैव सर्वे ते हृच्छयान्विताः।।१६।।

एकाकी संस्थितो यत्र समाधिस्थोमहेश्वरः। दृष्टस्ततस्तयादेव्याभृङ्गीनादेनमोहितः॥१७॥
प्रबुद्धो हि महादेवो निरीक्ष्य शबरीं तदा। समाधैरुत्थितः। सद्यो महेशो मदनान्वितः॥१८॥
यावत्करे गृह्यमाणो गिरिजां स समीपगः। तावत्तस्य पुरःसद्यस्तिरोधानंगतासती॥१९॥
तद्दृष्ट्वा तत्क्षणादेव देवोभ्रांतिविनाशनः। भ्रममाणस्तदाशंभुर्नापश्यदसितेक्षणाम्॥२०॥
विरहेण समायुक्तो हृच्छयेन समन्वितः। मदनारिस्तदा शंभुर्ज्ञानरूपो निरन्तरम्॥२१॥
निर्मोहो मोहमापन्नो ददर्श गिरिजां पुनः। उवाच वाक्यं शबरीं प्रस्तावसदृशं महत्॥२२॥

उनके द्वारा कृत भृंगी नाद से तीनों लोक नादित हो गया। मानों गिरिजा ने अभी-अभी कामदेव को पुनर्जीवित कर दिया हो। जहां महेश्वर एकाकी समाधिस्थ थे, वहां राजहंस, द्विरेफ (भौंरे) तथा मयूर आदि भी मदनान्वित हो उठे। भृंगीनाद से मोहित महादेव को तब देवी ने देखा। शबरी को देखकर महादेव प्रबुद्ध होकर उठे। महेश मदनान्वित होकर तत्काल समाधि से उठ कर गिरिजा के पास आये। तथा जैसे ही उनका हाथ पकड़ना चाहा, गिरिजा अन्तर्हित हो गयीं। जो देवदेव स्वयं भ्रान्ति का हरण करने वाले थे, वे यह दृश्य देखते ही तत्क्षण भ्रान्तचित्त हो घूमने लगे। कैसे उस सुन्दरी असितेक्षणा का साक्षात्कार मिले! तब ज्ञानरूप शम्भु मदन शत्रु होकर भी मदन के वशीभूत हो गये। वे अब निर्मोही होकर भी मोहग्रस्त थे। तदनन्तर शिव ने पुनः उस शबरीरूपा गिरिजा को देखा तथा तत्कालोचित वाक्य कहने लगे।।१५-२२।।

शिव उवाच

वाक्यं मे शृणुतन्वंगि! श्रुत्वातत्कर्तुमर्हसि। कासिकस्यास्रितन्वंगिकिमर्थमटनंवने।
तत्कथ्यतां महाभागे! याथातथ्यं सुमध्यमे!॥२३॥

शिव कहते हैं—"हे तन्वङ्गी! मेरी बात सुनकर तदनुरूप कार्य करो। हे सुमध्यमे! तुम कौन हो? तुम किसकी हो? किसलिए इस वन में आई हो? हे महाभागे! यह सब मुझसे यथायथ कहो"।।२३।।

शिवोवाच

पतिमन्येषयिष्यामि सर्वज्ञं सकलार्थदम्। स्वतंत्रं निविरकारं च जगतामीश्वरं वरम्॥२४॥
इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं गिरिजां वृषभध्वजः। अहं तवोचितो भद्रेपतिर्नान्योहिभामिनि॥२५॥
विमृश्यतां वरारोहे तत्त्वतो हि वरानने। वचो निशम्य रुद्रस्य स्मितपूर्वमभाषत॥२६॥
मयार्थितो महाभाग पतिस्त्वं नान्यथावद। किंतुवक्ष्यामिभद्रंतेनिर्गुणोऽसिपरन्तपः॥२७॥
यया पुरा वृतोऽसि त्वं तपसा च परेण हि। परित्यक्तात्वयारण्येक्षणमात्रेणभामिनी॥२८॥

शिवा ने कहा—"मैं एक सर्वज्ञ, सकलार्थप्रद, स्वतन्त्र, निर्विकार, जगदीश, वरेण्य पति की खोज में घूम रही हूं।" वृषध्वज ने गिरिजा का कथन सुनकर प्रत्युत्तर दिया—"हे भद्रे! मैं ही तुम्हारा उपयुक्त पति हूं। हे भामिनि! मेरे सिवाय अन्य पति है ही नहीं। हे वरारोहे! यह यथार्थतः विचार करो।" तब पार्वती ने रुद्र का वाक्य सुनकर कहा—"जो इच्छा हो, आप कहिये, तथापि हे महाभाग! आप मेरे योग्य पति नहीं हैं। हे महाभाग! पक्षान्तरेण आप मेरे प्रार्थित पति हैं, ऐसी अन्यथा बात न कहें। आपका मंगल हो। परन्तु एक बात पूछती हूं। आप निर्गुण तथा

परन्तप हैं। आपके लिए परम तपस्या करके जिस भामिनी ने आपका पतिरूप से वरण किया था, उसे आपने क्षण में त्याग दिया''।।२४-२८।।

दुराराध्योऽसि सततं सर्वेषां प्राणिनामपि। तस्मान्नं वाच्यं हि पुनर्यदुक्तंतेममाग्रतः॥२९॥
शबर्या वचनं श्रुत्वाप्रत्युवाचवृषध्वजः। मैवं वद विशालाक्षि नत्यक्ता सा तपस्विनी।
यदि त्यक्ता मया तन्वि किं वक्तुमिह पार्यते॥३०॥
एवं ज्ञात्वा विशालाक्षि कृपणं कृपणप्रियम्।
तस्मात्त्वया हि कर्तव्यंवचनंमेसुमध्यमे॥३१॥

''अतः यह समझती हूं कि आप सभी के लिए दुराराध्य हैं। अतः आप जो कह रहे हैं, वह मुझसे न कहें''। शबरी का वचन सुनकर वृषध्वज ने प्रत्युत्तर दिया—''हे विशालाक्षी! ऐसा न कहो। मैंने तपस्विनी का त्याग नहीं किया है। हे देवी! यदि मैंने उसका त्याग किया, तब क्या ऐसी बात कह सकता था? हे विशालाक्षी! मुझे ऐसा कृपणेन्द्रिय कृपण जानकर तुम्हारा जो कर्त्तव्य हो करो। हे सुमध्यमे! मुझे यही कहना है''।।२९-३१।।

एवमभ्यर्थिता तेन बहुधा शूलपाणिना। प्रहस्य गिरिजा प्राह उपहासपरं वचः॥३२॥
तपोधनोऽसियोगीश विरक्तोऽसिनिरञ्जनः। आत्मारामोहिनिर्द्वन्द्वोमदनोयेनघातितः॥३३॥
स त्वं साक्षाद्विरूपाक्षो मया दृष्टोऽसिचाद्यवै। अशक्योहिमयाप्राप्तुंसर्वेषांदुरतिक्रमः।
तस्मात्त्वया न वक्तव्यं यदुक्तं च पुरा मम॥३४॥

शूलपाणि द्वारा इस तरह से अनेक बार अभ्यर्थना किये जाने पर गिरिजा ने हंसते हुये कहा—''हे योगीश! आप तपोधन हैं। आप संसार से विरक्त हैं। आप निरंजन, आत्माराम, द्वन्द्वातीत हैं। आपने मदन का हनन किया है। आप साक्षात् विरूपाक्ष मेरे नेत्रों के समक्ष स्थित हैं। आप सबको प्राप्त नहीं हो सकते। मैं आपको किसी प्रकार नहीं प्राप्त कर सकूंगी। अतः आपने जो पहले मुझसे कहा, वह अब न कहें''।।३२-३४।।

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रोवाच मदनान्तकः। मम भार्या भव त्वं हिनान्यथाकर्तुमर्हसि॥३५॥
इत्युक्त्वा तां करेऽगृह्णाच्छबरींमदनातुरः। उवाच तं स्मयंतीसामुञ्चमुञ्चेतिसादरम्॥३६॥
नोचितं भगवन्कर्तुं तापसेनबलादिदम्। याचयस्य पितुर्मे त्वंनान्यथाऽभिभविष्यसि॥३७॥

शबरीरूपा भगवती की यह बात सुनकर स्मरहर शंकर ने कहा—''तुम मेरी पत्नी बनो। इसके विपरीत न करो।'' यह कहकर मदनातुर मदन के शत्रु शिव ने शबरी का हाथ पकड़ लिया। तब शबरी ने हंसते हुये कहा—''मेरा हाथ छोड़ दीजिये। आप तापस हैं। बलपूर्वक ऐसा करना आपके लिए उचित नहीं है। मेरे पिता हैं। आप जाकर मेरे लिए उनसे प्रार्थना करिये। अन्यथा ऐसा न करें''।।३५-३७।।

महादेव उवाच

पितरं कथयाऽऽशु त्वंस्थितःकुवशुभानने। द्रक्ष्यामितंविशालाक्षिप्रणिपातपुरःसरम्॥३८॥
एतदुक्तं तदा तेन निशम्याऽसितनेत्रया। आनीतो हि तया तन्व्या पितरं वृषभध्वजः॥३९॥
स्थितं कैलासशिखरे हिमवन्तं नगोत्तर्मम्। अहिभिर्बहुभिश्चैव संवृत्तं च महाप्रभम्॥४०॥

द्वारि स्थितं तया देव्या दर्शितंशंकरस्य च। असौ मम पिता देव याचस्वविगतत्रपः।
ददाति मां न संदेहस्तपस्विन्मा विलम्बितम्॥४१॥
तथेति मत्वा सहसा प्रणम्य हिमालयं वाक्यमिदं बभाषे।
प्रयच्छ तां चाद्य गिरिशवर्य! ह्यार्ताय कन्यां सुभगां महामते!॥४२॥

महादेव कहते हैं—"हे शुभानने! तुम्हारे पिता कहां हैं, यह शीघ्र कहो? हे विशालाक्षी! मैं उनका दर्शन प्रणाम के साथ करूंगा।" महादेव का यह कथन सुनकर असितनयना शबरी वृषध्वज को साथ लेकर आईं तथा कैलासशिखरस्थ बहुत से पर्वतों से घिरे महाप्रभावान् नगर हिमालय को दिखलाया तथा कहा—"हे देव! यही मेरे पिता हैं। आप लज्जा त्याग करके इनसे मेरे लिए प्रार्थना करिये। हे तपस्वी! ये निश्चय ही मेरा हाथ आपके हाथों में प्रदान करेंगे।" शिव ने कहा ऐसा ही हो तथा हिमालय को प्रणाम करके कहने लगे—"हे गिरीशप्रवर, महामति! मेरे हाथों में आप अपनी सौभाग्यवती कन्या को प्रदान करिये"।।३८-४२।।

कृपणं वाक्यमाकर्ण्य समुत्थाय हिमालयः। महेशंचसमादायह्युवाचगिरिराट्स्वयम्॥४३॥
किं जल्पसि हि भोदेवतवायुक्तंचसांप्रतम्। त्वंदातात्रिषुलोकेषुत्वंस्वामीजगतांविभो॥४४॥
त्वया ततमिदं विश्वं जगदेतच्चराचरम्। एवं स्तुतिपरोऽभूच्च हिमालयगिरिर्महान्।
आगतो नारदस्तत्र ऋषिभिः परिवारितः॥४५॥
उवाच प्रहसन्वाक्यं शूलपाणे नमः प्रभो।
हे शंभो शृणु मे वाक्यंतत्त्वसारमयंपरम्॥४६॥
योषिद्भिः संगतिःपुसां विडम्बायोपकल्पते। त्वं स्वामीजगतांनाथःपराणांपरमःपरः।
विमृस्य सर्वं देवेश यथावद्वक्तुमर्हसि॥४७॥
एवं प्रबोधितस्तेन नारदेन महात्मना। प्रबोधमगमच्छम्भुर्जहास परमेश्वरः॥४८॥

गिरिराज हिमालय ने यह कृपण वाक्य सुनकर महेश्वर को अपने हाथों को उठाकर कहा—"हे देव! आप यह कैसी बात कर रहे हैं? हे विभो! इस त्रैलोक्य में आप ही दाता तथा जगत्स्वामी भी हैं। यह चराचर विश्व आप से ही व्याप्त है।" तब गिरिराज हिमालय भगवान् शंकर की स्तुति करने लगे। तभी वहां नारद आ गये। उन्होंने आकर प्रभु शिवशंकर से कहा—हे शूलपाणि प्रभो! आपको मेरा प्रणाम! हे शम्भु! मेरा तत्वसारात्मक परम वाक्य सुनें। देखें! नारी संग पुरुषों के लिए विडम्बना का कारण होता है। आप जगत्पति, परात्पर जगन्नाथ हैं। हे देवेश! आप विवेचना द्वारा जो उचित हो वही कहिये। महात्मा नारद द्वारा इस प्रकार प्रबोधित किये जाने पर शम्भु प्रबोधित हो गये तथा उनको अपना प्रकृत ज्ञान प्राप्त हो गया।।४३-४८।।

शिव उवाच

सत्यमुक्तं त्वया चात्र नान्यथा नारद क्वचित्। योषित्सङ्गतिमात्रेम नृणांपतनमेवच॥४९॥
भविष्यति न संदेहो नान्यथा वचनं तव। अनया मोहितोऽद्याहमनीतोगन्धमादनम्॥५०॥
पिशाचवत्कृतमिदं चरितं परमाद्भुतम्॥५१॥

तस्मान्न तिष्ठामि गिरेः समीपे व्रजामि चाद्यैव वनान्तरं पुनः।
इत्येवमुक्त्वा स जगाम मार्गं दुरत्ययं योगिनामप्यगम्यम्॥५२॥
निरालम्बं स विज्ञाय नारदो वाक्यमब्रवीत्। गिरिजांचगिरीन्द्रंचपार्षदान्प्रतिसत्वरम्॥५३॥
वन्दनीयश्च स्तुत्यश्च क्षाम्यतां परमार्थतः। महेशोऽयं जगन्नाथस्त्रिपुरारिर्महायशाः॥५४॥
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं नारदस्य मुखोद्गतम्। गिरिजां पुरतः कृत्वागिरयोहिमहाप्रभाः॥५५॥
दण्डवत्पतिताः सर्वे शङ्करं लोकशङ्करम्। तुष्टुवुः प्रणताः सर्वे प्रमथा गुह्यकादयः॥५६॥
स्तूयमानो हि भगवानागतोगन्धमादनम्। अङ्गिरसाहिसर्वेशोह्यभिषिक्तोमहात्मभिः॥५७॥

तब परमेश्वर ने हास्य किया तथा नारद से कहने लगे—"हे नारद! तुम सत्य कहते हो। तुम्हारी बात कभी अन्यथा नहीं है। नारी संगति मात्र ही नरगण के पतन का कारण है। तुम्हारी यह बात अन्यथा नहीं है। नारी मोह में पड़कर ही मैं गन्धमादन से यहां आया। यह अद्भुद् कार्य पिशाचवत् आचरित हुआ है। अतः मैं और पर्वत के समीप नहीं रहूंगा। मैं पुनः वनान्तर में जा रहा हूं।" महादेव ने यह कहकर एक दुर्गम पथ पर गमन किया। यह पथ योगीगण के लिए भी अगम्य था। नारद ने इन निरालम्ब देव का तत्व जान कर गिरिजा, गिरीन्द्र हिमालय तथा पार्षदों से कहा—ये महायशस्वी त्रिपुरारि जगन्नाथ सर्वदा सबके वन्दनीय तथा स्तवनीय हैं। अतः इनसे क्षमा प्रार्थना करना ही कर्त्तव्य है। नारद के द्वारा उच्चरित इस वाक्य को सुनकर सभी महान् गिरिगण गिरिजा को आगे करके दण्डवत् भूपतित होकर शंकर की स्तुति करने लगे। सभी प्रमथ तथा गुह्यक गण भी प्रणत होकर स्तव कर रहे थे। भगवान् महादेव तब गन्धमादन से पुनः वापस लौट आये। अंगिरा एवं अन्य महात्मा महर्षिगण ने उनको सर्वेश पद पर अभिषिक्त किया।।४९-५७।।

तदा दुन्दुभयो नेदुर्वादित्राणि बहूनि च। इन्द्रादयः सुराः सर्वे पुष्पवर्षं ववर्षिरे॥५८॥
ब्रह्मादिभिः सुरगणैर्बहुभिः परीतो योगीश्वरो गिरिजया सह विश्ववन्द्यः।
अभ्यर्थितः परमङ्गल मङ्गलैश्च दिव्यासनोपरि रराज महाविभूत्या॥५९॥
एवंविधान्यनेकानि चरितानि महात्मनः। महेशस्यचभोविप्राःपापहारीणिशृण्वताम्॥६०॥
यानियानीह रुद्रस्य चरितानि महान्त्यपि। श्रुतानि परमाण्येवभूयः किं कथयामिवः॥६१॥

उस समय दुन्दुभि तथा अन्य वाद्य गूंज उठे। इन्द्रादि देवता पुष्पवर्षण करने लगे। विश्ववन्द्य गिरिजा तथा योगीश्वर शिव अनेक देवताओं तथा ब्रह्मादि से घिर कर स्थित थे। भगवान् ने मंगलमय वाक्यों से उनकी अभ्यर्थना की। वे भगवान् शिव दिव्य आसन पर महाविभूति योग में विराजमान हो गये। हे विप्रगण! महात्मा महेश्वर के ऐसे असंख्य चरित्र हैं। आपने जिन रुद्र चरितों को सुना है, उनमें यह सर्वोत्तम है। अब आप लोगों से और क्या कहना है?।।५८-६१।।

ऋषय ऊचुः

एवमुक्तं त्वया सूत चरितं शङ्करस्य च। अनेन चरितेनैव सन्तृप्ताः स्मो न संशयः॥६२॥

ऋषिगण कहते हैं—शंकर का इस प्रकार का चरित आपने सुनाया। यह चरित सुनकर हम अत्यन्त तृप्त हैं। इसमें संशय नहीं है।।६२।।

सूत उवाच

व्यासप्रसादाच्छ्रुतमस्ति सर्वं मया ततं शंकररूपमद्भुतम्।
सुविस्तृतं चाद्भुतवेदगर्भं ज्ञानात्मकं परमं चेदमुक्तम्॥६३॥
श्रद्धया परयोपेताःश्रावयन्तिशिवप्रियम्। शृण्वन्तिचैवयेभक्त्याशम्भोर्माहात्म्यमद्भुतम्।
शिवशास्त्रमिदं प्रीत्या ते यान्ति परमां गतिम्॥६४॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे शिवशास्त्रे पार्वत्या शबरीरूपेण शिवस्य गन्धमादनपर्वतं प्रत्यानयनपूर्वकं बृहस्पतिकृत-शिवराज्याभिषेकवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥३५॥

इति श्रीस्कान्दमहापुराणे प्रथमे माहेश्वरखण्डे प्रथमः केदारखण्डः समाप्तः॥१॥

***

सूत कहते हैं—व्यासदेव की कृपा से मैंने जो कुछ सुना था, वह सब मैंने कहा। शंकर रूप अद्भुत, अति विस्तृत, वेदवादित, ज्ञानात्मक तथा परमोत्तम है। जो परम श्रद्धान्वित होकर भक्ति के साथ श्रोतागण को शंभु के इस अद्भुद् महिमायुक्त शिवशास्त्र को सुनाते हैं अथवा सुनते हैं, उनको परम गति मिलती है॥६३-६४॥

॥पञ्चत्रिंश अध्याय समाप्त॥

कौमारिकाखण्डम्

* श्रीगणेशाय नमः *

।। ॐ नमो बृहस्पतये। नमस्तस्मै ब्रह्मणे। विष्णवे नमः ।।

अथ स्कन्दपुराणस्थमाहेश्वरखण्डे

द्वितीयं कौमारिकाखण्डम्

प्रथमोऽध्यायः

पञ्चतीर्थ वर्णन, पार्थ द्वारा तीर्थोद्धार, अर्जुन द्वारा अप्सरा का उद्धार

श्रीमुनय ऊचुः

दक्षिणार्णवतीरेषु यानितीर्थानि पञ्च च। तानि ब्रूहि विशालाक्ष वर्णयंत्यति तानिच।।१।।
सर्वतीर्थफलं येषु नारदाद्या वदन्ति च। तेषां चरितमाहात्म्यं श्रोतुमिच्छामहे वयम्।।२।।

मुनिगण कहते हैं—हे विशालाक्ष! दक्षिण सागर के तट पर जो ५ तीर्थ हैं, जिसकी सभी अतीव प्रशंसा करते हैं, आप उन तीर्थों का वर्णन करिये। नारदादि महर्षियों द्वारा इन तीर्थों को सर्वतीर्थफलप्रद कहा गया है। हम इन सभी तीर्थों की चरित्र महिमा सुनना चाहते हैं।।१-२।।

उग्रश्रवा उवाच

शृणुध्वमत्यद्भुतपुण्यसत्कथं कुमारनाथस्य महाप्रभावम्।
द्वैपायनो यन्मम चाह पूर्वं हर्षाम्बुरोमोद्गमचर्चिताङ्गः।।३।।
कुमारगीता गाथाऽत्र श्रूयतां मुनिसत्तमाः। या सर्वदेवैर्मुनिभिः पितृभिश्च प्रपूजिता।।४।।
मध्वाचारस्तम्भतीर्थं यो निषेवेत मानवः। नियतं तस्य वासःस्याद्ब्रह्मलोकेयथाममम।।५।।
ब्रह्मलोकाद्विष्णुलोकस्तस्मादपिशिवस्य च। पुत्रप्रियत्वात्तस्यापिगुहलोकोमहत्तमः।।६।।

उग्रश्रवा सूत कहते हैं—पूर्व में द्वैपायन व्यासदेव द्वारा जब इनका वर्णन किया जा रहा था, तब हर्षावेश के कारण रोमाञ्च स्थिति तथा आनन्दाश्रुपात व्यासदेव में देखा गया था। अतः उन कुमारनाथ के प्रभावशाली साधु की अत्यद्भुद् कथा आप सब सुनें। हे मुनिप्रवरगण! आप सर्वदेव पूजित कुमार गाथा सुनिये। जो मानव सदाचार पूर्वक स्तुत तीर्थों का सेवन करता है, वह मेरे ही समान नित्य ब्रह्मलोक में निवास करता है। तत्पश्चात् वह ब्रह्मलोक से विष्णुलोक, वहां से शिवलोक तथा वहां से अत्युत्तम गुहलोक जाता है। शिव अत्यन्त पुत्रप्रिय हैं। अतः उसे अपने लोक से गुहलोक (गुह = स्कन्द कुमार) भेज देते हैं।।३-६।।

अत्राऽऽश्चर्यकथायाचफाल्गुनस्यपुरेरिता। नारदेनमुनिश्रेष्ठास्तांवोवक्ष्यामिविस्तरात्।।७।।
पुरानिमित्तेकस्मिंश्चित्किरीटीमणिकूटतः। समुद्रेदक्षिणेऽभ्यागात्स्नातुंतीर्थानिपञ्चच।।८।।

वर्जयंति सदा यानि भयात्तीर्थानि तापसाः। कुमारेशस्य पूर्वंचतीर्थमस्तिमुनेःप्रियम्॥९॥

हे मुनिगण! इस विषय में देवर्षि नारद ने पूर्वकाल में अर्जुन से जो आश्चर्यमयी कथा कही थी, मैं आप लोगों को उसे विस्तार से सुनाता हूं। पूर्वकाल में किसी कारण अर्जुन मणिकूट से दक्षिण सागर तट पर स्थित पञ्चतीर्थ स्नानार्थ आये थे। तपस्वी लोग भय के कारण इन सब तीर्थों का वर्जन करते हैं। प्रथम कुमारेश तीर्थ मुनिजन को अति प्रिय है।।७-९।।

स्तम्भेशस्य द्वितीयं च सौभद्रस्य मुनेःप्रियम्। बर्करेश्वरमन्यच्च पौलोमीप्रियमुत्तमम्॥१०॥
चतुर्थं च महाकालं करंधमनृपप्रियम्। भरद्वाजस्य तीर्थं च सिद्धेशाख्यं हि पंचमम्॥११॥
एतानि पञ्च तीर्थानि ददर्श कुरुपुङ्गवः। तपस्विभिर्वर्जितानि महापुण्यानि तानि च॥१२॥
दृष्ट्वा पार्श्वे नारदीयानपृच्छत महामुनीन्। तीर्थानीमानि रम्याणि प्रभावाद्भुतवन्तिच।
किमर्थं बूत वर्ज्यंते सदैव ब्रह्मवादिभिः॥१३॥

द्वितीय है स्तम्भेश तीर्थ, यह सौभद्र मुनि को अत्यन्त प्रिय है। तृतीय उत्तम बकरेश्वर तीर्थ है। यह पौलोमी का प्रिय है। चतुर्थ महाकाल तीर्थ राजा करन्धम को प्रिय था। पंचमतीर्थ भरद्वाज का सिद्धेश तीर्थ है। कुरुश्रेष्ठ अर्जुन ने तपस्वी जन वर्जित इन पांचों तीर्थों का दर्शन करके पार्श्वस्थ नारदीय महामुनिगण से पूछा—"हे महर्षिगण! ये सभी अद्भुद् प्रभावशाली रम्य तीर्थ हैं। ब्रह्मवादी तपस्वीगण ने इनका वर्जन क्यों किया? कृपया कहिये?"।।१०-१३।।

तापसा ऊचुः

ग्राहाः पञ्च वसन्त्येषु हरन्ति च तपोधनान्॥१४॥
अत एतानि वर्ज्यंते तीर्थानि कुरुनंदन। इति श्रुत्वा महाबाहुर्गमनाय मनो दधे॥१५॥
ततस्तं तापसाः प्रोचुर्गंतुं नार्हसि फाल्गुन।
बहवो भक्षिता ग्राहैराजानोमुनयस्तथा॥१६॥
तत्त्वं द्वादश वर्षाणि तीर्थानामर्बुदेष्वपि। स्नातः किमेतैस्तीर्थैस्ते मा पतङ्गव्रतोभव॥१७॥
अत एतानि वर्ज्यंते तीर्थानि कुरुनंदन। इति श्रुत्वा महाबाहुर्गमनाय मनो दधे॥१५॥
ततस्तं तापसाः प्रोचुर्गंतुं नार्हसि फाल्गुन। बहवो भक्षिता ग्राहैराजानोमुनयस्तथा॥१६॥
तत्त्वं द्वादश वर्षाणि तीर्थानामर्बुदेष्वपि। स्नातः किमेतैस्तीर्थैस्ते मा पतङ्गव्रतोभव॥१७॥

तापस कहते हैं—"हे कुरुनन्दन! इन पंचतीर्थ में ५ ग्राहों का निवास है। वे जलमग्न तपस्वीगण का नाश कर देते हैं। तभी इन ५ तीर्थों का वर्जन किया गया है।" महाबाहु अर्जुन ने यह सुनकर इन तीर्थों में जाने का अभिप्राय व्यक्त किया, तब तपस्वीगण ने उनसे कहा—"हे फाल्गुन! इन ग्राहों ने अनेक राजाओं तथा मुनिगण का भक्षण किया है। अतः आप इन तीर्थों में न जायें। आपने १२ वर्ष असंख्य तीर्थों में स्नान किया है। अतः यदि आप इन ५ तीर्थों में नहीं भी जाते, तब आपको क्या हानि है। जैसे पतंग दीपक के पास स्वेच्छा से जाकर मृत हो जाता है, आप स्वेच्छा से मृत्युमुख में न जायें"।।१४-१७।।

अर्जुन उवाच

यदुक्तं करुणासारैः सारंकिं तदिहोच्यताम्। धर्मार्थीमनुजोयश्चनस वार्योमहात्मभिः॥१८॥
धर्मकामं हि मनुजं यो वारयति मंदधीः। तदाश्रितस्य जगतोनिःश्वासैर्भस्मसाद्भवेत्॥१९॥
यज्जीवितं चाचिरांशुसमानक्षणभंगुरम्। तच्चेद्धर्मकृते याति यातु दोषोऽस्तिकोननु॥२०॥
जीवितं च धनं दाराः पुत्राः क्षेत्रगृहाणि च। यान्ति येषां धर्मकृतेतएवभुविमानवाः॥२१॥

अर्जुन कहते हैं—हे करुणापरायण महर्षिगण! आपने जो कहा, वह आपकी दया तथा सौहार्द्र का परिचायक है। तथापि जगत् का साररूप क्या है? महात्मा जन का यह कर्त्तव्य नहीं है कि वे धर्मार्थी मानव को धर्मकार्य से रोकें। जो मन्दबुद्धि मनुष्य धर्माचरण के इच्छुक व्यक्ति को रोकता है, उसके निःश्वास से जनगण भस्मीभूत हो जाते हैं। यह आकाशीय विद्युत् की चमक जैसा क्षणस्थायी है। यदि यह धर्मकार्य में नष्ट हो जाये, उससे क्या क्षति होगी? जिसके स्त्री, पुत्र, गृह, खेत, जीवन, धन आदि सब धर्मार्थ व्ययित हो जायें, संसार में उसका जीवन ही यथार्थ जीवन है तथा वही यथार्थ मानव है''॥१८-२१॥

तापसा ऊचुः

एवं ते ब्रुवतः पार्थ दीर्घमायुः प्रवर्धताम्।
सदाधर्मे रतिर्भूयाद्याहि स्वं कुरुवाञ्छितम्॥२२॥
एवमुक्तः प्रणम्यैतानाशीर्भिरभिसंस्तुतः। जगाम तानि तीर्थानि द्रष्टुं भरतसत्तमः॥२३॥
ततः सौभद्रमासाद्य महर्षेस्तीर्थमुत्तमम्। विगाह्य तरसा वीरः स्नानं चक्रे परंतपः॥२४॥
अथ तं पुरुषव्याघ्रमन्तर्जलचरो महान्। निजग्राह जले ग्राहः कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम्॥२५॥
तमादायैव कौन्तेयो विस्फुरन्तं जलेचरम्। उदतिष्ठन्महाबाहुर्बलेन बलिनां वरः॥२६॥
उद्धृतश्चैव तु ग्राहः सोऽर्जुनेन यशस्विना। बभूव नारी कल्याणी सर्वाभरणभूषिता॥२७॥

तपस्वीगण ने कहा—''हे पार्थ! तुमने जो यह सब कहा है, इससे तुम्हारी आयु दीर्घ हो तथा तुम और अधिक धर्मानुरागी बनो। अब तुम जाकर अपने लक्ष्य का साधन करो।'' तब भरतश्रेष्ठ अर्जुन ने यह आदेश पाकर मुनियों को प्रणाम किया तथा उनके आशीर्वाद से अभिनन्दित होकर सर्वतीर्थाटनार्थ प्रस्थान किया। तब परन्तप वीर अर्जुन ने सौभद्र महर्षि के उत्तम तीर्थ में जाकर जल में उत्साहपूर्वक जाकर स्नान किया। तब जल के भीतर रहने वाले महान् ग्राह ने कुन्तिनन्दन धनञ्जय को आकर पकड़ लिया। लेकिन बलवानों में प्रधान महाबाहु कुन्तिनन्दन ने बलपूर्वक उस जलचर को घसीटा तथा तट पर ले आये। हे विप्रगण! यशस्वी पुरुषव्याघ्र कुन्तिनन्दन अर्जुन द्वारा जल के बाहर लाये जाते ही वह ग्राह सहसा दिव्यरूपा मनोरमा अत्यन्त दीप्तिमती सर्वाभरणभूषिता कल्याणी नारी मूर्त्ति में परिणत हो गया॥२२-२७॥

दीप्यमानशिखा विप्रा दिव्यरूपा मनोरमा। तदद्भुतं महद्दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः॥२८॥
तां स्त्रियं परमप्रीत इदं वचनमब्रवीत्। का वै त्वमसि कल्याणिकुतोवाजलचारिणी।
किमर्थं च महत्पापमिदं कृतवती ह्यसि॥२९॥

कुन्तिनन्दन धनञ्जय ने इस अत्यद्भुत् व्यापार को देखकर प्रीतिपूर्वक उस नारी से पुछा—"हे कल्याणी! तुम कौन हो, तुमने क्या पाप किया था, जिसके कारण तुमको यह दुर्गति मिली?"।।२८-२९।।

नार्युवाच

अप्सरा ह्यस्मि कौन्तेय देवारण्यनिवासिनी।।३०।।
इष्टा धनपतेर्नित्यं वर्चानाम महाबल। मम सख्यश्चतस्त्रोऽन्याः सर्वाःकामगमाःशुभाः।।३१।।
ताभिः सार्धंप्रयाताऽस्मिदेवराजनिवेशनात्। ततः पश्यामहे सर्वाब्राह्मणंचनिकेतनम्।।३२।।
रूपवन्तमधीयानमेकमेकांतचारिणम्। तस्य वै तपसा वीर तद्वनं तेजसावृतम्।।३३।।
आदित्य इव तं देशं कृत्स्नमेवान्वभासयत्। तस्यदृष्ट्वातपस्तादृग्रूपंचाद्भुतदर्शनम्।।३४।।
अवतीर्णास्मि तं देशं तपोविघ्नचिकीर्षया। अहं च सौरभेयी च सामेयीबुद्बुदालता।।३५।।
यौगपद्येन तं विप्रमभ्यगच्छाम भारत। गायंत्यो ललमानाश्च लोभयंत्यश्चतं द्विजम्।।३६।।
स च नास्मासु कृतवान्मनो वीरः कथंचन। नाकम्पतमहातेजाः स्थितस्तपसिनिर्मले।।३७।।

स्त्री ने कहा—"हे कौन्तेय! मैं देवारण्यवासिनी अप्सरा हूं। हे महाबली! मेरा नाम वर्चा है। मैं धनपति कुबेर की प्रिया हूं। एक बार मैं अपनी इच्छानुरूप सर्वत्र जाने में सक्षम, शुभदर्शना अन्य ४ सखियों के साथ देवराज के यहां से आ रही थी, तभी एक गृहहीन, रूपवान, एकाकी विचरणरत, अध्ययनतत्पर ब्राह्मण को हमने देखा। वह अपने सूर्य के समान तेज से उस वन को समुद्भासित करता वहां विराजित था। हम उसका तपःप्रभाव तथा रूप देखकर उसके तप में विघ्न करने की कामना से उस वन में (आकाश से) उतरीं।

मैं वर्चा, सौरभेयी, सामेयी, बुद्बुदा तथा लता—ये ५ सखियां मिलकर गायन करते-करते विविध हाव-भाव व्यक्त करते उस ब्राह्मण में मोह का उदय करने के लिए उसके निकट आईं। हे वीर! लेकिन वे महातेजस्वी ऋषि अपनी निर्मल तपस्या में ही निविष्ट रह गये। न तो विचलित हुये, न तो उनमें अणुमात्र आसक्ति ही उदित हो सकी।।३०-३७।।

सोऽशपत्कुपितोऽस्मासु ब्राह्मणः क्षत्रियर्षभ। ग्राहभूताजले यूयं भविष्यथशतंसमाः।।३८।।
ततो वयं प्रव्यथिताः सर्वा भरतसत्तम। आयाताः शरणं विप्रं तपोधनमकल्मषम्।।३९।।
रूपेण वयसा चैव कन्दर्पेण च दर्पिताः। अयुक्तं कृतवत्यः स्म क्षन्तुमर्हसि नो द्विज।।४०।।
एष एव वधोऽस्माकं स पर्याप्तस्तपोधन। यद्वयं शंसितात्मानंप्रलोब्धुंत्वामुपागताः।।४१।।
अवध्याश्च स्त्रियःसृष्टा मन्यन्तेधर्मचिन्तकाः।
तस्माद्धर्मेण धर्मज्ञएषवादोमनीषिणाम्।।४२।।
शरणं च प्रपन्नानां शिष्टाःकुर्वंतिपालनम्। शरण्यंत्वांप्रपन्नाःस्मस्तस्मात्त्वंक्षंतुमर्हसि।।४३।।
एवमुक्तस्तु धर्मात्मा ब्राह्मणः शुभकर्मकृत्। प्रसादं कृतवाञ्छूर रविसोमसमप्रभः।।४४।।

तदनन्तर उन ब्राह्मण ने क्रोधित होकर हमें अभिशाप दिया कि तुम सब १०० वर्ष पर्यन्त ग्राह बनकर जल में निवास करो। हे भरतसत्तम! हम इससे व्यथित चित्त होकर अकल्मष तपोधन ब्राह्मण के शरणागत हो गये,

तब उनसे प्रार्थना किया—"हे तपोधन ब्राह्मण! हमने रूप, आयु तथा कामदेव से दर्पित होकर यह अन्याय का आचरण किया है। आप क्षमा करिये। हमने आप जैसे विशुद्ध व्यक्ति को प्रलोभित करने हेतु यहां आगमन किया, यही हमारे लिए मृत्यु के समान है। हे धर्मज्ञ! मनीषीगण में यह उक्ति प्रचलित है कि धर्मानुसार स्त्री अवध्य होती है और देखिये कि साधु लोग शरणागत का पालन करते हैं। हम आपके शरणागत हैं, आप शरणागत पालक हैं। अतएव हमें क्षमा करिये। हे वीर! हमारे इस निवेदन पर रवि-शशि के समान कान्तिवाले धर्मात्मा, सुकर्मी विप्र हमारे प्रति प्रसन्न हो गये"।।३८-४४।।

ब्राह्मण उवाच

भवतीनां चरित्रेण परिमुह्यामि चेतसि। अहो धाष्ट्र्यमहो मोहो यत्पापायप्रवर्तनम्।।४५।।
मस्तकस्थायिनं मृत्युं यदि पश्येदयंजनः। आहारोऽपिनरोचेतकिमुताकार्यकारिता।।४६।।
आहो मानुष्यकं जन्म सर्वजन्मसु दुर्लभम्। तृणवत्क्रियते कैश्चिद्योषिन्मूढैर्दुराधरैः।।४७।।
तान्वयंसमपृच्छामोजनिर्वःकिंनिमित्ततः। कोवालाभोविचार्यैतन्मनसासहप्रोच्यताम्।।४८।।
न चैताः परिनिन्दामो जनिर्याभ्यः प्रवर्तते। केवलं तान्दिनिंदामो येचतासुनिरर्गलाः।।४९।।
यतः पद्मभुवा सृष्टं मिथुनं विश्ववृद्धये। तत्तथा परिपाल्यं वै नात्रदोषोऽस्तिकश्चन।।५०।।

ब्राह्मण कहते हैं—"तुम लोगों के चरित्र से मैं मन ही मन विस्मयान्वित हो गया। यह क्या धृष्टता है, मोह का क्या प्रभाव है? इसके फल से अधःपतन होता है। मृत्यु तो सबके शिर पर सवार रहती है। यदि मनुष्य को यह याद रहे, तब उसे भोजन की भी रुचि नहीं होगी! अकार्य की तो बात ही क्या? और क्या कहूं! अहा! सर्वजन्मदुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर ऐसा कौन मूर्ख दुर्बुद्धि होगा, जो स्त्रियों में आसक्त होकर मनुष्य जन्म को तृणवत् नष्ट करेगा? इन सभी मूढ़ों से मैं यह पूछता हूं कि तुम्हारा जन्म क्यों हुआ? जन्म का लाभ क्या है? स्त्रियों से ही जीव-जगत् उत्पन्न होता है। इसलिए मैं स्त्री निन्दा नहीं करूंगा। परन्तु जो लोग स्त्री में निर्लज्जता से आसक्त होते हैं, केवल उनकी निन्दा करता हूं। पद्मसम्भव ब्रह्मा ने जगत् वृद्धि हेतु मिथुन (स्त्री-पुरुष) की रचना की थी। अतः इस मिथुन का कर्त्तव्य है यथायोग्य आचार पालन। इसमें कोई दोष नहीं है।।४५-५०।।

या बांधवैः प्रदत्ता स्याद्वह्निद्विजसमागमे। गार्हस्थ्यपालनं धन्यं तयासाकंहिसर्वदम्।।५१।।
यथाप्रकृति पुंयोगो यत्नेनापिपरस्परम्। साध्यमानोगुणायस्यादगुणायाप्यसाधितः।।५२।।
एवंयत्नात्साध्यमानं स्वकंगार्हस्थ्यमुत्तमम्। गुणायमहतेभूयादगुणायाप्यसाधितम्।।५३।।
पुरे पंचमुखे द्वाःस्थ एकादशभटैर्युतः। साकं नार्या बह्वपत्यः स कथं स्यादचेतनः।।५४।।
यश्च स्त्रिया समायोगः पंचयज्ञादिकर्मभिः। विश्वोपकृतये सृष्टामूढैर्हासाध्यतेऽन्यथा।।५५।।
अहो शृणुध्वं नो चेद्वः शुश्रूषा जायतेशुभा। तथापिबाहुमुद्धत्यरोरूयामःशृणोतिकः।।५६।।
षड्धातुसारं तद्वीर्यं समानं परिहाय च। विनिक्षेपे कुयोनौ तु तस्येदं प्रोक्तवान्यमः।।५७।।

प्रथमं चौषधीद्रोग्धा आत्मद्रोग्धा ततः पुनः।
पितृद्रोग्धा विश्वद्रोग्धा यात्यन्धं शाश्वतीः समाः।।५८।।

अग्नि तथा ब्राह्मण की उपस्थिति में जो नारी बान्धवों द्वारा प्रदान की जाती है, उसी के साथ गृहस्थ धर्म पालन प्रशंसनीय है तथा सर्वसुख प्रदाता है। प्रकृति-पुरुष के संयोग से परस्पर का यत्नपूर्वक धर्मपालन ही सर्वसुख प्रदाता है। अन्यथा अनिष्ट होता है। उत्तम गृहस्थ धर्म अपने प्रयत्न से सम्पादित होने से ही उत्तम फल प्रदान करता है, अन्यथा अहितकारी हो जाता है। इस पञ्चमुख पुर में जो द्वारपाल अनेक सन्तति तथा स्त्री के साथ तथा ११ अनुचरों के साथ रहता है, वह असावधान क्यों होगा? जगत् के उपकार के लिए पञ्चयज्ञ कर्म द्वारा जो स्त्री संयोग का विधान वर्णित है, मूढ़जन उसका विरोधी आचरण कर रहे हैं! हे जनगण! तुम सुनो! यद्यपि तुम सबको यह सब सुनने की अभिलाषा नहीं है, तथापि मैं बाहु उठाकर चीत्कार द्वारा यह कहने से नहीं रुक सकता! हाय! किससे कहूं तथा कौन सुनेगा? जो रस-रक्तादि धातु का सार है, उस वीर्य को जो मूर्ख योग्य योनि को छोड़कर कुयोनि में छोड़ता है, उनके लिए भगवान् यमदेव ने कहा है कि वे औषधिद्रोही, आत्मद्रोही, पितृद्रोही तथा विश्वद्रोही हैं। सुदीर्घ काल पर्यन्त वे अधोगति में रहेंगे।।५१-५८।।

मनुष्यं पितरो देवा मुनयो मानवा स्तथा। भूतानि चोपजीवन्ति तदर्थं नियतोभवेत्।।५९।।
वचसा मनसा चैव जिह्वया करश्रोत्रकैः। दांतमाहुर्हिसत्तीर्थं काकतीर्थमतः परम्।।६०।।

पितर, देव, मुनि, मानव तथा अन्य प्राणीगण मनुष्य को ही उपजीव्य करके विद्यमान रहते हैं। अतः सन्तानोत्पादनार्थ सभी वैध यत्न करें। जो वाक्य, मन, जिह्वा, हाथ तथा कर्णेन्द्रिय को वश में करते हैं, वे ही सत् तीर्थ हैं। अन्य सभी काकतीर्थ कहे जाते हैं।।५९-६०।।

काकप्रायेनरेयस्मिन्नमंतेतामसाजनाः। हंसोऽयमितिदेवानांकोऽर्थस्तेनविचिंत्यताम्।।६१।।
एवंविधं हि विश्वस्य निर्माणं स्मरतो हृदि। अपि कृतेत्रिलोक्याश्चकथंपापेरमेन्मनः।।६२।।
तदिदं चान्यामर्त्यानां शास्त्रदृष्टमहो स्त्रियः। यमलोके मया दृष्टं मुह्यो प्रत्यक्षतःकथम्।।६३।।
भवतीषु च कः कोपो ये यदर्थे हि निर्मिताः। ते तमर्थं प्रकुर्वंति सत्यमस्तुभमेव च।।६४।।
शतं सहस्त्रं विश्वं च सर्वमक्षयवाचकम्। परिमाणं शतं त्वेव नैतदक्षय्यवाचकम्।।६५।।
यदा च वो ग्राहभूता गह्वतीः पुरुषाञ्जले। उत्कर्षति जलात्कश्चित्स्थले पुरुषसत्तमः।।६६।।
तदा यूयं पुनः सर्वाः स्वं रूपं प्रतिपत्स्यथ। अनृतं नोक्तपूर्वं मे हसताऽपि कदाचन।
कल्याणस्य सुपृक्तस्य शुद्धिस्तद्वद्वरा हि वः।।६७।।

जो काक के समान मनुष्य तामसिक हैं तथा स्वयं को हंस मानते हैं, ऐसे लोगों से देवगण का क्या उपकार होगा? इसका विचार करना चाहिये। विश्व निर्माण सम्बन्धित इस विशेषता का हृदय में स्मरण करने से तब त्रैलोक्य प्राप्ति हेतु अनुरक्ति कैसे हो सकेगी? हे रमणीगण! मैंने यमलोक में अन्य लोगों की शास्त्रों में निर्दिष्ट दुर्गति को देखा है। तब इस काम आदि के प्रति मेरे मन में लोभ कैसे हो सकता है? और तुम सबके प्रति क्रोध क्यों होगा? जो जिसके लिए विश्व में बना है, वह वही करता है, भले वह शुभ हो किंवा अशुभ हो! शत-सहस्त्र आदि-आदि जितने भी परिमाणवाची शब्द हैं, वास्तव में वे अनन्त परिमाण वाचक नहीं हैं। वे सब केवल परिमाण वाचक ही हैं। अतः मैंने जो १०० वर्ष ग्राह होने का अभिशाप दिया है, वह अनन्त काल हेतु नहीं है। केवल दीर्घकाल के ही लिये है। तुम सब जल में ग्राह रूप से रहकर सब लोगों को पकड़ना तथा ऐसे

करते-करते जब कोई पुरुषश्रेष्ठ तुम लोगों को जल से बाहर खींचेगा, तब तुम सबको अपना स्वरूप मिल जायेगा। मैंने पहले कभी मजाक में भी झूठ नहीं बोला है। अतः इस प्रकार (दण्डभोग) से तुम सबका परम कल्याण साधित होगा।।६१-६७।।

नार्युवाच

ततोऽभिवाद्य तं विप्रं कृत्वा चैव प्रदक्षिणम्।।६८।।
अचिन्तयामापसृत्य तस्माद्देशात्सुदुःखिताः। क्व नु नाम वयंसर्वाःकालेनाल्पेनतंनरम्।।६९।।
समागच्छेम यो नः स्वं रूपमापादयेत्पुनः। ता वयं चिंतयित्वेह मुहूर्तादिव भारत।।७०।।
दृष्टवत्यो महाभागं देवर्षिमथ नारदम्। सर्वा हृष्टाः स्म तं दृष्ट्वादेवर्षिममितद्युतिम्।।७१।।
अभिवाद्यचतंपार्थस्थिताःस्मोव्यथिताननाः। सनोऽपृच्छददुःखमूलमुक्तवत्योवयंचतम्।।७२।।

वह रमणी कहने लगी—"तदनन्तर हमने उस ब्राह्मण की प्रदक्षिणा करके उनको प्रणाम किया तथा दुःखित होकर हम सब सोचने लगीं कि कहां रहने पर हमारा शीघ्र मानव समागम होगा, जो हमें स्त्रीरूप प्राप्त करा देगा। हे भारत! हम मुहूर्त्तपर्यन्त यह सोच रहीं थीं कि तभी देवर्षि महाभाग नारद को आते देखा। हे पार्थ! उन अमित द्युति देवर्षि को देखकर हमने प्रसन्नता से उनका अभिवादन किया तथा दुःख से म्लानमुख स्थिति में हम उनके सामने खड़ी हो गयीं। जब उन्होंने हमारे दुःख का कारण पूछा, तब हमने यथार्थतः अपना दुःख कारण उनसे कहा।।६८-७२।।

श्रुत्वा तच्च यथातत्त्वमिदं वचनमब्रवीत्। दक्षिणे सागरेऽनूपे पंच तीर्थानि संति वै।।७३।।
पुण्यानिरमणीयानितानिगच्छतमाचिरम्। तत्रस्थाःपुरुषव्याघ्रःपांडवो वो धनञ्जयः।।७४।।
मोक्षयिष्यतिशुद्धात्मादुःखादस्मान्नसंशयः। तस्यसर्वावयंवीरश्रुत्वावाक्यमिहागताः।।७५।।
त्वमिदं सत्यवचनं कर्तुमर्हसिपाण्डव। त्वद्विधानांहि साधूनां जन्म दीनोपकारकम्।।७६।।

यह सुनकर देवर्षि ने कहा—"दक्षिण सागर के तीर पर ५ पुण्यतीर्थ हैं। तुम सब अविलम्ब वहां जाओ। वहां रहने पर शुद्धात्मा पुरुषसिंह पाण्डुपुत्र धनंजय तुम सबका वहां से उद्धार करेंगे।" हे वीर! हम सब यहां नारद के ही आदेशानुरूप यहां रहने लगीं। हे पाण्डव! आप उस महर्षि वाक्य को सत्य करें। आप जैसे साधु व्यक्ति का जन्म ही दीनों के उपकारार्थ होता है।।७३-७६।।

श्रुत्वेतिवचनं तस्याः सस्नौ तीर्थेष्वनुक्रमात्। ग्राहभूताश्चोज्जहारयथापूर्वाःसपांडवः।।७७।।
ततः प्रणम्य ता वीरं प्रोच्यमाना जयाशिषः। गंतुं कृताभिलाषाश्चप्राहपार्थोधनञ्जयः।।७८।।
एष मे हृदि संदेहः सुदृढ़ः परिवर्तते। कस्माद्वो नारदमुनिरनुजज्ञे प्रवासितुम्।।७९।।
सर्वः कोऽप्यतिहीनोऽपि स्वपूज्यस्याऽर्थसाधकः।
स्वपूज्यतीर्थेष्वावासंप्रोक्तवान्नारदः कथम्।।८०।।
तथैव नवदुर्गासुसतीष्वतिबलासु च। सिद्धेशेसिद्धगणपेःचापिवोऽत्रस्थितिः कथम्।।८१।।
एकैक एषां शक्तोहिअपिदेवान्निवारितुम्। तीर्थसंरोधकारिण्यःसर्वानावारयत्कथम्।।८२।।

इति चिन्तयते मह्यं भृशं दोलायते मनः।
महन्मे कौतुकं जातं सत्यं वा वक्तुमर्हथ॥८३॥

पाण्डुनन्दन अर्जुन ने यह विनीत वाक्य सुनकर क्रमशः अन्य चारों तीर्थों में स्नान करके अन्य ४ ग्राहरूपा नारीगण का उद्धार किया। तदनन्तर वे पांचों अप्सरायें अर्जुन को प्रणाम करके उनकी विजय का आशीर्वाद देकर जा रही थीं, तभी पाण्डुपुत्र धनंजय ने उनसे कहा—"हे नारीगण! मेरे हृदय में एक सन्देह है कि नारद ऋषि ने तुम सबको इस तीर्थ में निवास की अनुमति क्यों प्रदान किया? उच्च व्यक्ति हो या निम्न व्यक्ति हो—ये सभी अपने-अपने पूज्य की उन्नति ही चाहते हैं। तथापि ऋषि नारद ने इस पूज्य तीर्थ में तुम लोगों को रहने के लिए क्यों कहा? विशेष बात यह है कि यहां पर अतीव प्रभावशाली नवदुर्गा विराजित हैं। यहां सिद्धेश नामक गणेश भी विराजमान हैं। अतः तुम सब यहां कैसे रह गयीं? जबकि यहां के देवगण तो अन्य सभी देवगण का निवारण कर सकने में समर्थ हैं। अतः जब तुम लोगों ने यहां ग्राहरूप में रहकर तीर्थ को सबके लिए अवरुद्ध कर दिया, तब उन नवदुर्गा तथा सिद्धेश गणपति ने तुम लोगों को रोका क्यों नहीं? इस चिन्ता से मेरा मन अत्यन्त आन्दोलित है। इसका कारण सत्यता से कहो। मुझे अतीव कौतुक हो रहा है!।।७७-८३।।

अप्सरस ऊचुः

योग्यं पृच्छसि कौन्तेय पुनः पश्योत्तरां दिशम्॥८४॥
एषस्वविप्रैरभिसंवृतोऽर्च्यो मुनिः समायाति तथेति नारदः।
सर्वं हि पृष्टं तव वै स वक्ता प्रोच्यैवमाकाशतलं गतास्ताः॥८५॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे पार्थेन पञ्चाप्सरः समुद्धरणं नाम प्रथमोऽध्यायः॥१॥

अप्सरागण कहती हैं—"हे कौन्तेय! आप उत्तम प्रश्न तो कर रहे हैं, लेकिन आप उत्तर दिशा पर तो दृष्टिपात करें। देखिये, उधर अपने अनुचरों, विप्रगण से समावृत पूज्य नारद ऋषि का आगमन हो रहा है। आप द्वारा पूछा समस्त वृत्तान्त इनसे आपको ज्ञात होगा।" यह कहकर अप्सराओं ने गगनपथ से प्रस्थान किया।।८४-८५।।

॥प्रथम अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

द्वितीयोऽध्यायः

नारद द्वारा तीर्थ प्रशंसा, कात्यायन-सारस्वत संवाद, दान महिमा, शौचादि नियम प्रशंसा

सूत उवाच

ततो द्विजैः परिवृतं नारदं देवपूजितम्। अभिगम्योपजग्राह सर्वानथ स पाण्डवः॥१॥
ततस्तं नारदः प्राह जयारातिधनञ्जय। धर्मे भवतु ते बुद्धिर्देवेषु ब्राह्मणेषु च॥२॥
कच्चिदेतां महायात्रां वीर द्वादशवार्षिकीम्। आचरन्खिद्यसे नैवमथ वा कुप्यसेनच॥३॥
मुनिनामपि चेतांसि तीर्थयात्रासु पाण्डव। खिद्यन्ति परिकुप्यंतिश्रेयसां विघ्नमूलतः॥४॥
कच्चिन्नैतेनदोषेणसमाश्लिष्टोऽसिपांडव। अत्रचांगिरसा गीतां गाथामेतांहिशुश्रुम्॥५॥

सूतजी कहते हैं—पाण्डुपुत्र अर्जुन ने तब द्विजगण से घिरे देवपूजित नारद ऋषि को तथा उनके सहचर अन्य मुनियों को देखकर उनके निकट उनकी अभ्यर्थना सम्पन्न किया। तब नारद ने कहा—हे रिपुधन पर विजयी अर्जुन! तुम्हारी जय हो। तुम्हारी मति पूर्ववत् धर्म, देवता तथा ब्राह्मण में लगी तो है? हे वीर! तुम इस बारह वर्षीय तीर्थयात्रा का आचरण करके खेदयुक्त तथा क्षुब्ध तो नहीं हो रहे हो! हे पाण्डव! तीर्थयात्रा में श्रेयस्कर कर्म में विघ्नों की अधिकता देखकर मुनियों का भी मन खिन्न तथा क्षुब्ध हो जाता है। हे पाण्डव! तुम्हारे मन में ऐसे दोषों ने प्रवेश तो नहीं किया? इस सम्बन्ध में बृहस्पति द्वारा कही एक गाथा सुनी गई है।।१-५।।

यस्य हस्तौ च पादौचमनश्चैवसुसंयतम्। निर्विकाराःक्रियाःसर्वाःसतीर्थफलमश्नुते॥६॥
तदिदं हृदि धार्यं ते किंवात्वंतातमन्यसे। भ्रातायुधिष्ठिरोयस्यसखायस्यस केशवः॥७॥
पुनरेतत्समुचितं यद्विप्रैः शिक्षणं नृणाम्। वयं हि धर्मगुरवःस्थापितास्तेन विष्णुना॥८॥
विष्णुना चाऽत्र शृणुमो गीतां गाथां द्विजान्प्रति॥९॥

वह यह है—"जिसके दोनों हाथ, दोनों पैर तथा मन संयत रहते हैं तथा जिसकी समस्त क्रिया भी निर्विकार रूप से अनुष्ठित होती है, उसे ही तीर्थफल मिलता है। इसे तुमको हृदय में धारण किये रहना चाहिये। हे तात! तुम्हारे भाई युधिष्ठिर हैं। केशव तुम्हारे सखा हैं। तुम्हारा इस सम्बन्ध में क्या मत है? विप्रगण मनुष्यों को जो शिक्षा देते हैं, यही उनका समुचित कर्म है। मुझे विष्णु द्वारा धर्मगुरु रूप में स्थापित किया गया है। तीनों लोकों के सम्बन्ध में विष्णु द्वारा कही एक गाथा कही गयी है, जिसे मैंने सुना है। यह द्विजों के लिए कही गयी है।।६-९।।

यस्यामलामृतयशःश्रवणावगाहः सद्यः पुनाति जगदाश्वपचाद्विकुण्ठः।
सोऽहं भवद्भिरुपलब्धसुतीर्थकीर्तिश्छिन्द्यां स्वबाहुमपि यः प्रतिकूलवर्तीं॥१०॥

जिसकी विमल यशोगाथा का श्रवणरूप अमृतावगाहन (यशोगाथारूप अमृत को कानों द्वारा सुनना) चाण्डाल तक को पवित्र कर देता है, वह मैं भी आप लोगों के द्वारा सुतीर्थ की कीर्त्ति को सुनकर यह कहता हूं कि यदि मेरी बाहु भी उसके प्रतिकूल हो जाये, तब मैं उसका भी छेदन कर दूंगा।।१०।।

प्रियं च पार्थ ते ब्रूमो येषा कुशलकामुकः। सर्वे कुशलिनस्ते च यादवाःपांडवास्तथा॥११॥
अधुना भीमसेनेन कुरूणामुपतापकः। शासनाद्धतराष्ट्रस्य वीरवर्मा नृपो हतः॥१२॥
स हि राज्ञामजेयोऽभूद्यथापूर्वं बलिर्बली। कण्टकं कण्टकेनैव धृतराष्ट्रो जिगाय तम्॥१३॥

हे पार्थ! तुमको एक प्रिय संवाद देता हूं। तुम जिनके कुशल की कामना करते हो, वे यादव तथा पाण्डव प्रभृति सभी सुखी हैं। सम्प्रति धृतराष्ट्र के आदेश से भीमसेन ने कुरुवर्ग के प्रति उत्पात करने वाले वीरवर्मा का वध कर दिया। यह बलवान् वीरवर्मा पूर्वकालीन बलिराज की ही तरह राजाओं के लिए अजेय था। परन्तु राजा धृतराष्ट्र ने कांटे से कांटा निकालने वाली नीति से उसे जीत लिया।।११-१३।।

इत्यादिनारदप्रोक्तां वाचमाकर्ण्य फाल्गुनः। अतीव मुदितः प्राह तेषामकुशलं कुतः॥१४॥
ये ब्राह्मणमते नित्यं ये च ब्राह्मणपूजकाः। अहं च शक्त्या नियतस्तीर्थानि विचरन्ननु॥१५॥
आगतस्तीर्थमेतद्धि प्रमोदोऽतीव मे हृदि। तीर्थानां दर्शनं धन्यमवगाहस्ततोऽधिकः॥१६॥
माहात्म्यश्रवणंतस्मादौर्वोऽपिमुनिरब्रवीत्। तदहंश्रोतुमिच्छामितीर्थस्यास्यगुणान्मुने॥१७॥
एतेनैव श्राव्यमेतद्यत्त्वयांगीकृतं मुने। त्वं हि त्रिलोकीं विचरन्वेत्सिसर्वांहिसारताम्॥१८॥
तदेतत्सर्वतीर्थेभ्योऽधिकं मन्ये त्वदाहृतम्॥१९॥

देवर्षि के इस वाक्य को सुनकर अर्जुन अत्यन्त आनन्दित हो गये। उन्होंने कहा—"जो नित्य ब्राह्मणों की अर्चना करते हैं तथा ब्राह्मणों के मत का पालन करते हैं, उनका अकुशल कैसे हो सकता है? मैं भी नाना तीर्थाटन करता इस तीर्थ में आया। इससे मेरे अन्तःकरण में अतीव प्रसन्नता जन्मी है। तीर्थदर्शन धन्य करता है। तीर्थ जल में अवगाहन तो और भी अधिक तीर्थ फल देता है। इससे भी अधिक फल है तीर्थ माहात्म्य श्रवण। यह और्व ऋषि का कथन है। हे मुनिवर! तभी मैं तीर्थों की महिमा सुनने के प्रति उत्सुक रहता हूं। आपने तो त्रैलोक्य विचरण किया है। आपने इस तीर्थ का अन्वेषण किया, अतः इसका गुण सुनना मेरे लिए अतीव आवश्यक है। आपको तो सर्वतीर्थ सार भी ज्ञात है। यह तीर्थ आप द्वारा ही लोगों में प्रकाशित किया गया है।।१४-१९।।

नारद उवाच

उचितं तव पार्थैतद्यत्पृच्छसिगुणिन्गुणान्। गुणिनामेवयुज्यनतेश्रोतुंधर्मोद्भवागुणाः।
साधूनां धर्मश्रवणैः कीर्तनैर्याति चान्वहम्॥२०॥
पापानामदालापैरायुर्याति यथान्वहम्। तदहंकीर्तयिष्यामितीर्थस्यास्यगुणान्बहून्॥२१॥
यथा श्रुत्वा विजानासि युक्तमंगीकृतंमया। पुराऽहं विचरन्पार्थत्रिलोकींकपिलानुगः॥२२॥
गतवान्ब्रह्मणो लोकं तत्राऽपश्यं पितामहम्। स हि राजर्षिदेवर्षिमूर्तामूर्तैः सुसंवृतः॥२३॥
विभाति विमलो ब्रह्मा नक्षत्रैरुडुराडिव। तमहं प्रणिपत्याऽथ चक्षुषा कृतस्वागतः॥२४॥

नारद कहते हैं—हे गुणवान् पार्थ! तुमने जो तीर्थगण की जिज्ञासा किया है, वह उचित ही है। धर्म सम्बन्धित कथा गुणियों के ही योग्य है। जैसे असत् आलाप से प्रतिदिन पापीगण की आयु का क्षय होता है, उसी प्रकार से प्रतिदिन धर्मकथा श्रवण कीर्त्तन से भी साधुजन का पाप क्षयीभूत होता है। अतः मैं इस तीर्थ के विशेष

गुण को कहता हूं, जिसे सुनकर इसे तीर्थरूप में अंगीकार के पीछे जो सत्य है, उसे तुम जान लोगे। हे पृथानंदन! मैं पुराकाल में कपिल मुनि के साथ त्रैलोक्य में विचरण करते-करते एक बार ब्रह्मलोक पहुंचा। वहां देखा कि ब्रह्मा वहां मूर्त्तरूप तथा अमूर्त्तरूप राजर्षि तथा देवर्षि आदि द्वारा परिवेष्टित होकर नक्षत्र पुंजों से शोभित विमल चन्द्र के समान शोभित हो रहे हैं। कपिल के साथ मैंने उनको प्रणाम किया। उन्होंने नेत्रों के संकेत से हमारा स्वागत किया।।२०-२४।।

उपविष्टः प्रमुदितः कपिलेन सहैव च। एतस्मिन्नन्तरे तत्र वार्तिकाः समुपागताः॥२५॥
प्रहीयंते हि ते नित्यं जगद्द्रष्टुंहि ब्रह्मणा। कृतप्रणामानथ तान्समानीनान्यितामहः॥२६॥
चक्षुषामृतकल्पेन प्लावयन्निव चाब्रवीत्। कुत्र कुत्र विचीर्णं वो दृष्टं श्रुतमथापि वा॥२७॥
किंचिदेवाद्भुतं ब्रूत श्रवणाद्येन पुण्यता। एवमुक्ते भगवता तेषां यः प्रवरो मतः॥२८॥
सुश्रवानाम ब्रह्माणं प्रणिपत्येदमूचिवान्। प्रभोरग्रे च विज्ञप्तिर्यथा दीपो रवेस्तथा॥२९॥
तथापि खलु वाच्यं मे परार्थं प्रेरितेन ते। मुनिः कात्यायनोनामश्रुत्वाधर्मान्पुनर्बहून्॥३०॥

तब मैं मुनिवर कपिल के साथ वहां आनन्दित रूप से बैठ गया। इस अवसर पर वहां वार्त्ताहरगण भी आ गये। ब्रह्मा उनको नित्य जगत् में जाकर सब देखने हेतु भेजते थे। वे प्रणाम करके समासीन हो गये, तब ब्रह्मा ने उनको अपनी अमृतकल्प दृष्टि से उनको आप्लावित किया। मानों उनसे ब्रह्मदेव ने कहा हो कि "तुम कहां-कहां होकर आ रहे हो? जो देखा तथा सुना हो, जो अद्भुद् वृत्तान्त हो, जिसे सुनकर पुण्यलाभ हो, वह सब कहो।" ब्रह्मा द्वारा (सांकेतिक रूप से) यह कहे जाने पर सुश्रवा नामक प्रधान वार्त्ताहर बोला—हे प्रभो! यद्यपि आपके आगे कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखलाने जैसा ही है, तथापि जब आपका आदेश है, तब तो मुझे कहना ही होगा! हे भगवान्! कात्यायन मुनि ने धर्म के सम्बन्ध में बहुत कुछ श्रवण किया था।।२५-३०।।

सारजिज्ञासया तस्थावेकांगुष्ठः शतंसमाः। ततःप्रोवाचतंदिव्यावाणीकात्यायनशृणु॥३१॥
पुण्ये सरस्वतीतीरे पृच्छ सारस्वतं मुनिम्। सतेसारंधर्मसाध्यंधर्मज्ञोऽभिवदिष्यति॥३२॥
इति श्रुत्वा मुनिवरो मुनिश्रेष्ठमुपेत्य तम्। प्रणम्यशिरसाभूमौ पप्रच्छेदंहृदि स्थितम्॥३३॥

उन्होंने धर्म का सार तत्त्व जानने के लिए एक अंगूठे पर खड़े होकर १०० वर्ष पर्यन्त तपःश्चरण किया। तब उनके लिए यह दैवीवाणी हुई कि "हे कात्यायन! सुनो! तुम सरस्वती तट पर जाकर वहां सारस्वत मुनि से प्रश्न पूछो। वे धर्मज्ञ ऋषि तुमको साधन योग्य सार धर्म का उपदेश प्रदान करेंगे।" मुनिप्रवर कात्यायन ने यह सुनकर उन मुनिप्रवर सारस्वत के पास जाकर उनको नतशिर हो भूतल पर झुक कर प्रणाम किया तथा अपनी जिज्ञासा को प्रकट किया।।३१-३३।।

सत्यं केचित्प्रशंसंतितपःशौचंतथापरे। सांख्यकेचित्प्रशंसंति योगमन्येप्रचक्षते॥३४॥
क्षमां केचित्प्रशंसंति तथैव भृशमार्ज्जवम्। केचिन्म नं प्रशंसंतिकेचिदाहुः परंश्रुतम्॥३५॥
सम्यग्ज्ञानं प्रसंसंति केचिद्वैराग्यमुत्तमम्। अग्निष्टोमादिकर्माणितथाकेचित्परं विदुः।
आत्मज्ञानं परं केचित्समलोष्टाश्मकांचनम्॥३६॥
इत्थंव्यवस्थितेलोकेकृत्याकृत्यविधौजनाः ॥३७॥

व्यामोहमेव गच्छंति किं श्रेय इति वादितः। यदेतेषु परं कृत्यमनुष्ठेयं महात्मभिः॥३८॥
वक्तुमर्हसि धर्मज्ञ मम सर्वार्थसाधकम्॥३९॥

सारस्वत ऋषि से कात्यायन ने कहा—"हे मुनिप्रवर! कोई सत्य को, कोई तपः को, कोई शौच को, कोई सांख्य को, कोई योग को, कोई क्षमा को, कोई सारल्य को, कोई मौन को, कोई शास्त्राभ्यास को, कोई ज्ञान को, कोई वैराग्य को, कोई अग्निष्टोमादि यज्ञ कर्म को, कोई मिट्टी के ढेले, स्वर्ण-पत्थर में सम बुद्धिरूप आत्मज्ञान को ही प्रशंसित करते हैं। इस प्रकार के विभिन्न मतवाद प्रचलित रहने के कारण मनुष्य कार्य-अकार्य निर्णय में असमर्थ हो जाते हैं कि क्या श्रेयस्कर है तथा क्या सर्वार्थसाधक है। अतः इन सबमें से जो परम श्रेय साधन तथा सर्वार्थ सिद्धिप्रद है, उस सार धर्म को कहिये।।३४-३९।।

सारस्वत उवाच

यन्मां सरस्वती प्राह सारं वक्ष्यामि तच्छृणु। छायाकारंजगत्सर्वमुत्पत्तिक्षयधर्मिच।
वारांगनानेत्रभंगस्वद्वद्भंगुरमेव तत्॥४०॥
धनायुर्यौवनंभोगाञ्जलचंद्रवदस्थिरान्। बुद्ध्यासम्यक्परामृश्यस्थाणुदानंसमाश्रयेत्॥४१॥
दानवान्पुरुषःपापंनालंकर्तुमितिश्रुतिः। स्थाणुभक्तोजन्ममृत्यू नाप्नोतीतिश्रुतिस्तथा॥४२॥
सावर्णिना च गाथेद्वेकीर्तितेश्रुणुयेपुरा। वृषो हि भगवान्धर्मो वृषभो यस्य वाहनम्॥४३॥
पूज्यते स महादेवः स धर्मःपरउच्यते। दुखावर्ते तमोघोरे धर्माधर्मजले तथा॥४४॥
क्रोधपंके मदग्राहे लोभबुद्धदसंकटे। मानगंभीरपाताले सत्त्वयानविभूषिते॥४५॥
मज्जंतं तारयत्येको हरः संसारसागरात्। दानं वृत्तं व्रतं वाचः कीर्तिधर्मौतथायुषः॥४६॥
परोपकरणं कायादसारत्सारमुद्धरेत्। धर्मे रागः श्रुतौ चिन्ता दाने व्यसनमुत्तमम्॥४७॥
इन्द्रियार्थेषुवैराग्यंसंप्राप्तंजन्मनःफलम्। देशेऽस्मिन्भारते जन्म प्राप्य मानुष्यमध्रुवम्॥४८॥
नकुर्यादात्मनः श्रेयस्तेनात्मा वञ्चितश्चिरम्। देवासुराणांसर्वेषां मानुष्यमतिदुर्लभम्॥४९॥

सारस्वत कहते हैं—"हे मुनिवर! इस सम्बन्ध में भगवती सरस्वती ने जो मुझसे कहा था, मैं वही सारवार्त्ता कहता हूं, सुनें। यह समग्र जगत् छायावत् उत्पत्ति-क्षयात्मक है। धन, आयु, यौवन, वारांगना के भ्रूविलास की तरह ही क्षणभंगुर हैं। भोगसमूह तो वैसा ही अस्थायी है, जैसे जल में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा। बुद्धि द्वारा इसका विचार करके शिवसेवा तथा दान करे। दानी पापलिप्त नहीं होता। ऐसी श्रुति है। शिवभक्त मानव पुनः जन्म-मृत्यु का भागी नहीं होता। यह भी श्रुति सम्मत है। इस विषय में पहले सावर्णि मनु द्वारा जो दो गाथा कही गयी है, उसे सुनें। भगवान् धर्म ही वृष हैं। वे जिसके वाहन हैं, वे शिव ही परमधर्म हैं। अतएव वे परम पूज्य हैं। दुःख जिसका आवर्त्त है, अज्ञान जिसका प्रवेशपथ है, धर्म-अधर्म जिसका जल है, क्रोध जिसका कीचड़ रूप है, मद जहां ग्राहरूप है, लोभ जिसका बुद्बुद् है, अभिमान जिसकी पातालवत् गम्भीरता है, प्राणिवर्ग जिसके शोभा सम्पादक हैं, यान श्रेणी है, ऐसे संसार सागर में मग्न जनगण को एकमात्र शिव ही बचा सकते हैं। वित्त, वाणी, आयु तथा देह चारों असार वस्तु हैं। इन सभी असार वस्तु से अर्थात् वित्तैषणा का उद्धार दान से, वाणी का सत्य से, आयु का कीर्त्ति से तथा धर्म तथा परोपकार से देह का उद्धार होता है। ये ही

सार चतुष्टय हैं। धर्म में अनुराग, शास्त्र का चिन्तन, दान देने में अत्यन्त अनुराग (दान देते रहना) इन्द्रिय भोगों से वैराग्य—ये सब जन्म लेने के लाभ हैं। जो देशों में से भारत में मनुष्य जन्म लेकर आत्मश्रेयार्थ नरक से बचाने वाला कर्म नहीं करता, वह शोचनीय है। देव-असुर तथा सभी योनियों में से मनुष्य जन्म अतीव दुर्लभ है।।४०-४९।।

तत्संप्राप्य तथा कुर्यान्न गच्छेन्नरकं यथा। सर्वस्यमूलं मानुष्यंतथासर्वार्थसाधकम्।।५०।।
यदि लाभे न यत्नस्ते मूलं रक्ष प्रयत्नतः। महता पुण्यमूल्येन क्रीयते कायनौस्त्वया।।५१।।
गंतुंदुःखोदधेः पारं तर यावन्न भिद्यते। अविकारिशरीरत्वं दुष्प्राप्यं प्राप्य वै ततः।।५२।।
नापक्रामति संसारादात्महा स नराधमः। तपस्तप्यन्ति यततो जुह्वते चात्रयज्विनः।
दानानि चात्र दीयन्ते परलोकार्थमादरात्।।५३।।

वह पाकर ऐसा कर्म करे, जिससे नरक न जाना पड़े। मनुष्य जन्म सब प्रकार की स्वार्थसिद्धि का मूलधन रूप है। इससे यदि उस मूलधन को बढ़ाना न भी चाहे, तब कम से कम मूलधन की तो रक्षा करता रहे। आपने दुःखसागर को पार करने हेतु महान् पुण्यरूप मूल्य चुकाकर देहरूपी नौका खरीदा है। इससे पहले कि यह देहरूपी नौका भग्न हो जाये, इसके द्वारा इस दुःखसागर को पार कर लेना चाहिये। दुर्लभ मानव जन्म तथा शरीर का अवैकल्य पा करके भी जो नराधम संसार को पार नहीं करता, वह नराधम संसार से उत्तीर्ण नहीं होगा। वह तो साक्षात् आत्मघाती है। इस संसार में परलोक प्राप्ति हेतु यतीगण तप करते हैं, याज्ञिक यज्ञ करते हैं। दाता दान करते हैं।।५०-५३।।

कात्यायन उवाच

दानस्य तपसो वाऽपिभगवन्किंच दुष्करम्। किंवामहत्फलंप्रेत्यसारस्वतब्रवीहितत्।।५४।।

कात्यायन कहते हैं—"हे सारस्वत मुनिवर! दान तथा तप में से कौन दुष्कर है? इनमें से किसके अनुसरण से परलोक में अधिक फल मिलता है। हे भगवान्! यह बतलाने की कृपा करिये"।।५४।।

सारस्वत उवाच

न दानाद्दुष्करतरं पृथिव्यामस्ति किञ्चन। मुने प्रत्यक्षमेवैतद्दृश्यते लोकसाक्षिकम्।।५५।।
परित्यज्य प्रियान्प्राणान्धनार्थेहिमहाभयम्। प्रविशंतिमहालोभात्समुद्रमटवींगिरिम्।।५६।।
सेवामन्ये प्रपद्यन्ते श्ववृत्तिरिति या स्मृता। हिंसाप्रायां बहुक्लेशां कृषिं चैव तथापरे।।५७।।
तस्य दुःखार्जितस्येह प्राणेभ्योपिगरीयसः। आयासशतलब्धस्यपरित्यागःसुदुष्करः।।५८।।
यद्ददाति यदश्नाति तदेव धनिनो धनम्। अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति दारैरपि धनैरपि।।५९।।
अहन्यहनियाचंतमहं मन्ये गुरुं यथा। मार्जनं दर्पणस्येव यः करोति दिनेदिने।।६०।।

मुनिप्रवर सारस्वत कहते हैं—"इस पृथिवी पर दान की तुलना में कोई भी दुष्कर अन्य कार्य नहीं है। हे मुनिवर! लोक के समक्ष यह प्रत्यक्ष देखा गया है। मनुष्य धन हेतु प्रिय प्राण की भी ममता त्याग कर सागर, वन, पर्वत पर जाता है। जिसे श्ववृत्ति कहते हैं, कोई-कोई उसका भी आश्रय लेता है, अर्थात् सेवावृत्ति में लग जाता है।

कुछ हिंसा बहुल अनेक क्लेशयुक्त कृषिवृत्ति को अपनाते हैं। इस प्रकार दुःख से उपार्जित प्राणों से भी प्रिय, सैकड़ों-हजारों प्रयास से प्राप्त धन त्याग दुष्कर है। जिसे दान करते हैं तथा जिसका उपभोग करते हैं, धनी के लिए वही धन है। धनी की मृत्यु के अनन्तर उसके धनादि तथा पत्नी से अन्य क्रीड़ा करते हैं। जो नित्य याचना करता है, मैं उसे गुरु मानता हूं। वह नित्य दर्शन देकर पापी के कलुष का नाश करता है।।५५-६०।।

दीयमानं हि नापैति भूय एवाभिवर्धते। कूप उत्सिच्यमानो हि भवेच्छुद्धो बहूदकः॥६१॥
एकजन्मसुखस्यार्थे सहस्राणि विलापयेत्। प्राज्ञो जन्मसहस्रेषुसंचिनोत्येकजन्मनि॥६२॥
मूर्खो हि न ददात्यत्यर्थानिहदारिद्र्यशंकया। प्राज्ञस्तुविसृजत्यर्थानमुत्र तस्यशंकया॥६३॥
किं धनेन करिष्यंति देहिने भंगुराश्रयाः। यदर्थं धनमिच्छन्ति तच्छरीरमशाश्वातम्॥६४॥
अक्षरद्वयमभ्यस्तं नास्तिनास्तीति यत्पुरा। तदिदं देहिदेहीति विपरीतमुपस्थितम्॥६५॥
बोधयन्ति च यावन्तो देहीति कृपणंजनाः। अवस्थेयमदानस्य मा भूदेवं भवानपि॥६६॥
दातुरेवोपकाराय वदत्यर्थीति देहि मे। यस्माद्दाता प्रयात्यूर्ध्वमधस्तिष्ठेत्प्रतिग्रही॥६७॥
दरिद्रा व्याधिता मूर्खाः परप्रेष्यकराःसदा। अदत्तदानाज्जायंतेदुःखस्यैवहिभाजनाः॥६८॥

दान द्वारा धन नहीं घटता। कूप से जल निकालने पर वह प्रचुर निर्मल जल से पूर्ण हो जाता है। एक जन्म में सुख की लालसा से (पाप करके) हजारों जन्म व्यर्थ हो जाते हैं। मूर्ख मानव इस जन्म में दरिद्रता की आशंका से दान नहीं देता। लेकिन प्राज्ञ व्यक्ति आगे दरिद्रता न हो, इसलिए दान देता है। क्षणस्थायी आशा के वशीभूत देहीगण धन द्वारा क्या करेंगे? जिसके लिये धन की कामना की जाती है, वह शरीर ही अस्थायी है। जो इस जन्म में दान देने के लिए नहीं कह देते हैं, वे ही अगले जन्म में "दो-दो" यह कहकर मांगते हैं। उनके लिए याचना ही एकमात्र मार्ग बचता है, क्योंकि पूर्वजन्म में उन्होंने कुछ नहीं दिया था। इसलिए आप लोग ऐसी अवस्था में न पड़ें। दाता व्यक्ति दाता के उपकार के ही लिये कहता है "हमें दो।" इसलिए दाता का हाथ ऊर्ध्व में रहता है। लेने वाले का नीचे रहता है। जो दान नहीं देता, वही जन्मान्तर में दरिद्र होता है। वह व्याधिग्रस्त, मूर्ख तथा पराधीन होकर विविध दुःख सहता जन्म लेता है।।६१-६८।।

धनवंतमंदातारं दरिद्रंवाऽतपस्विनम्। उभावम्भसि मोक्तव्यौकंठेबद्ध्वामहाशिलाम्॥६९॥
शतेषु जायते शूरः सहस्त्रेषु च पण्डितः। वक्ता शतसहस्त्रेषु दाता जायेत वा न वा॥७०॥
गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः। अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही॥७१॥
शिविरौशीनरोऽङ्गानि सुतं च प्रियमौरसम्। ब्राह्मणार्थमुपाकृत्य नाकपृष्ठमितो गतः॥७२॥
प्रतर्द्दनः काशिपतिः प्रदाय नयने स्वके। ब्राह्मणायातुलां कीर्तिमिह चामुत्र चाश्नुते॥७३॥

जो धनी होकर भी दान नहीं देता तथा दरिद्र होकर भी जो तप नहीं करता, ऐसे के गले में महाशिला (पत्थर) बांध कर जल में फेंक देना चाहिये! १०० व्यक्तियों में से एक शूर होता है। सहस्त्र में से एक पण्डित होता है। सौ सहस्त्र में से एक वक्ता जन्म लेता है, परन्तु दाता का जन्म होता भी है, यह संदिग्ध है। (अर्थात् दाता अत्यल्प होते हैं)। गौ, विप्र, वेद, सती, सत्यवादी, लोभहीन तथा दानशील, इन सात से पृथिवी की रक्षा होती है। राजा उशीनर के पुत्र शिवि ने ब्राह्मण के लिये अपने पुत्र को तथा अपने अंग तक को काट दिया था। इस पुण्यफल

से उन्होंने इहलोक से स्वर्गगमन किया। काशीपति राजा प्रर्दन ने ब्राह्मण को अपने दोनों नेत्र दान कर दिये थे। उसी के फल से उन्होंने इहलोक तथा परलोक में अतुलनीय कीर्त्ति प्राप्त किया।।६९-७३।।

निमी राष्ट्रंचवैदेहो जामदग्न्योवसुंधराम्। ब्राह्मणेभ्योददौचापिगयश्चोर्वींसपत्तनाम्।।७४।।
अवर्षति च पर्जन्ये सर्वभूतनिवासकृत्। वसिष्ठो जीवयामास प्रजापतिरिव प्रजाः।।७५।।
ब्रह्मदत्तश्चपांचाल्योराजाबुद्धिमतांवरः। निधिंशंखंद्विजाग्र्येभ्योदत्त्वास्वर्गमवाप्तवान्।।७६।।
सहस्त्रजिच्चराजर्षिः प्राणानिष्टान्महायशाः। ब्राह्मणार्थेपरित्यज्यगतो लोकाननुत्तमान्।।७७।।
एतेचान्येचबहवःस्थाणोर्दानेनभक्तितः। रुद्रलोकंगतानित्यंशान्तात्मानोजितेन्द्रियाः।।७८।।

वैदेहराज निमि ने अपना राज्य, जमदग्नि पुत्र परशुराम ने समग्र पृथिवी, राजा गय ने पुर आदि युक्त समस्त पृथिवी का दान ब्राह्मण को किया था। प्रजावर्ग जब अनावृष्टि से मृत हो रहा था, तब प्रजापति की ही तरह महर्षि वसिष्ठ ने उनको सुखनिवास प्रदान करके उनका जीवन बचाया! धीमान्राजगण में अग्रणी पाञ्चाल्य ब्रह्मदत्त राजा ने ब्राह्मणों को निधि प्रदान करके स्वर्गलाभ किया था। महायशस्वी राजर्षि सहस्त्रजित् ने ब्राह्मणों के लिए प्रिय प्राण का त्याग करके अत्युत्तम लोकों को प्राप्त किया था। ये सभी तथा अन्य अनेक शान्तात्मा इन्द्रियजित् व्यक्तियों ने शिवभक्ति तथा दानतत्पर रहकर रुद्रलोक में स्थान पाया था।।७४-७८।।

एषांप्रतिष्ठिताकीर्तिर्यावत्स्थास्यतिमेदिनी। इतिसंचिंत्य सारार्थीस्थाणुदानपरोभव।।७९।।
सोऽपि मोहं परित्यज्य तथा कात्यायनोऽभवत्।।८०।।

पृथिवी की जब तक स्थिति रहेगी, तब तक इनकी कीर्त्ति प्रतिष्ठित रहेगी। हे कात्यायन! आप शिव सेवा तथा दान कार्य में अनुरक्त हो जायें। सारस्वत मुनि का उपदेश सुनकर कात्यायन भी मोहहीन स्थिति में दान तथा ईशान शिव की सेवा में तत्पर हो गये।।७९-८०।।

नारद उवाच

एवं सुश्रवसा प्रोक्तां कथामाकर्ण्य पद्मभूः। हर्षाश्रुसंयुतोऽतीव प्रशशंस मुहुर्मुहुः।।८१।।
साधु ते व्याहृतं वत्स एवमेतन्न चान्यथा। सत्यं सारस्वतः प्राहसत्याचैवंतथाश्रुतिः।।८२।।

दानं यज्ञानां वरूथं दक्षिणा लोके दातारंसर्वभतान्युपजीवन्ति
दानेनारातीरँपानुदंत दानेन द्विषंतो मित्रा भवंति दाने सर्वं
प्रतिष्ठितं तस्माद्दानं परं वदन्तीति।।८३।।

संसारसागरे घोरे धर्माधर्मोर्मसंकुले। दानं तत्र निषेवेत तच्च नौरिव निर्मितम्।।८४।।

नारद कहते हैं—"सुश्रुवा द्वारा कहे गये इस वृत्तान्त को सुनकर ब्रह्मा आनन्दाश्रु प्लावित नेत्र से बारम्बार अतिशय प्रणाम करने लगे।" ब्रह्मा कहते हैं—"वत्स! तुमने अति उत्तम संवाद कहा है, यह सत्य अवश्य है। सारस्वत मुनि ने सत्य ही कहा है तथा यह सत्य श्रुति में भी है। वह श्रुति इस प्रकार हैं "दान ही यज्ञ समूह का प्रतिष्ठाक्षेत्र है, क्योंकि दक्षिणादान बिना यज्ञ निष्फल हो जाता है। यहां तक कि दान से सभी कामना प्रतिष्ठित हो जाती है। सभी प्राणी ही जीविका के लिए दाता के अनुगत हो जाते हैं। दान द्वारा सभी शत्रु निराकृत हो जाते हैं। दान

के फल से विद्वेषी भी मित्र हो जाते हैं। यहां तक कि दान से सभी कामना प्रतिष्ठित हो जाती है। धर्माधर्मरूप तरंग समाकुल घोर संसार सागर में दान ही नौकारूप निश्चित है। अतएव दान की ही सेवा करे।।८१-८४।।

इति संचित्यचमयापुष्करेस्थापिताद्विजाः। गङ्गायमुनयोर्मध्ये मध्यदेशे द्विजाः कृते।।८५।।
स्थापिताः श्रीहरिभ्यांतुश्रीगौर्यांवेदवित्तमाः। रुद्रेणनागराश्चैवपार्वत्याशक्तिपूर्भवाः।।८६।।
श्रीमाले च तथालक्ष्म्याह्येवमादिसुरोत्तमैः। नानाग्रहाराःसंदत्तालोकोद्धरणकांक्षया।।८७।।
नहिदानफलेकांक्षाकाचित्रोऽस्तिसुरोत्तमाः। साधुसंरक्षणार्थंहिदानंनःपरिकीर्तितम्।।८८।।
ब्राह्मणाश्च कृतस्थानानानाधर्मोपदेशनैः। समुद्धरंतिवर्णांस्त्रींस्ततः पूज्यतमाद्विजाः।।८९।।

यही विचार करके मैंने पुष्कर क्षेत्र में द्विजगण को स्थापित किया है। श्री तथा हरि ने सत्ययुग में गंगा तथा यमुना के मध्य वाले भूभाग में भारत के मध्यदेश में द्विजगण को स्थापित किया था। गौरी तथा रुद्रदेव ने नागर ब्राह्मणगण की प्रतिष्ठा की थी। पार्वती द्वारा शक्तिपुर वासी ब्राह्मण प्रतिष्ठित किये गये। इस प्रकार अनेक श्रेष्ठ देवगण ने मनुष्य वर्ग के उद्धार की कामना को लेकर नानाविध अग्रहार जीविका का विधान करके नाना देश में द्विजगण को प्रतिष्ठित किया। हे नरोत्तमगण! इन सब ब्राह्मण को दान करके फल की कामना न करे, क्योंकि मैंने साधु-साधकों के लिए ही दान का विधान किया है। ये सभी ब्राह्मण उन-उन स्थानों पर रहकर विविध धर्मोपदेशों को प्रदान करके तीनों वर्णों का उद्धार साधन करते हैं। तभी ब्राह्मण पूज्यतम हैं।।८५-८९।।

दानं चतुर्विधं दानमुत्सर्गः कल्पितंतथा। संश्रुतंचेति विविधंतत्क्रमात्परिकीर्तितम्।।९०।।
वापीकूपतडागानां वृक्षविद्यासुरौकसाम्। मठप्रपागृहक्षेत्रदानमुत्सर्गइत्यसौ।।९१।।
उपजीवन्निमान्यश्च पुण्यं कोऽपि चरेन्नरः। षष्ठमंशं स लभते यावद्यो विसृजेद्द्विजः।।९२।।
तदेषामेव सर्वेषां विप्रसंस्थापनं परम्। देवसंस्थापनं चैव धर्मस्तन्मूल एव यत्।।९३।।
देवतायतनं यावद्यावच्च ब्राह्मणगृहम्। तावद्दातुः पूर्वजानांपुण्यांशश्चोपतिष्ठति।।९४।।

दान चतुर्विध है। यथा—दान, उत्सर्ग, कल्पित तथा संश्रुत। इनके लक्षण सुनिये। वापी-कूप-तड़ाग-वृक्ष-खेत का दान उत्सर्ग दान है। विद्या-देवालय-पौसरा-मठ का दान भी उत्सर्ग कहलाता है। उपजीविका करके जो कोई मनुष्य पुण्य का आचरण करता है, वह दाता द्विज मनुष्य के अधिकार काल पर्यन्त वहां लोगों द्वारा आचरित कर्म कर $\frac{१}{६}$ भाग प्राप्त कर लेता है। इन सबमें भी विप्र स्थापन तथा देव स्थापना सर्वोत्तम है। वही धर्म का मूल है। देवतायतन तथा ब्राह्मण का गृह जब तक विद्यमान रहता है, तब तक उस दाता के पूर्व पुरुषगण में पुण्यांश संचित होता रहता है (अर्थात् उसका दान किया ब्राह्मण का घर तथा बनवाया देव मन्दिर जब तक स्थित रहेगा, तब तक)।।९०-९४।।

एतत्स्वल्पं हि वाणिज्यं पुनर्बहुफलप्रदम्। जीर्णोद्धारे च द्विगुणमेतदेव प्रकीर्तितम्।।९५।।
तस्मादिदं त्वहमपि ब्रवीमि सुरसत्तमाः। नास्तिदानसमंकिंचित्सत्यंसारस्वतोजगौ।।९६।।

इस सत्कार्य में अल्प व्यय है, तथापि फल अत्यधिक है। अर्थात् इस सत्कार्य में जितना व्यय होता है, उसकी तुलना में जो फल होता है, वह बहुत ही अधिक है। मंदिर बनवाने से दूना फल होता है, उसके जीर्णोद्धार का। तभी मैं कहता हूं कि सारस्वत मुनि का कथन यथार्थ है। दान के समान कोई पुण्य नहीं है।।९५-९६।।

नारद उवाच

इति सारस्वतप्रोक्तां तथापद्मभुवेरिताम्। साधुसाध्वित्यमोदंतसुराश्चाहंसुविस्मिताः॥९७॥
ततः सभाविसर्गांते सुरम्ये मेरुमूर्धनि। उपविश्य शिलापृष्ठेअहमेतदचिन्तयम्॥९८॥
सत्यमाह विरञ्चिस्तु स किमर्थं तु जीवति। येनैकमपि तद्वृत्तं नैव येन कृतार्थता॥९९॥
तदहं दानपुण्यं हि करिष्यामिकथंस्फुटम्। कौपीनदण्डात्मधनोधनंस्वल्पंहिनास्तिमे॥१००॥
अनर्हते यद्ददाति न ददाति तथार्हते। अर्हानर्हपरिज्ञानाद्दानधर्मो हि दुष्करः॥१०१॥
देशे काले च पात्रे च शुद्धेन मनसा तथा। न्यायार्जितं च यो दद्याद्यौवने सतदश्नुते॥१०२॥

नारद कहते हैं—सारस्वत मुनि द्वारा कथित तथा (पुनः) ब्रह्मा के द्वारा उच्चरित कथन को सुनते ही देवताओं ने साधुवाद दिया। मैं भी यह सब सुनकर अत्यन्त विस्मित हो गया। तदनन्तर सभा समाप्त होने पर मैं सुरम्य सुमेरु शिखर पर एक शिला पर आसीन होकर इस विषय में चिन्तन करने लगा। मैंने विचार किया कि ब्रह्मा ने सत्य ही कहा है। जो व्यक्ति उक्त सदाचारों में से एक का भी पालन तथा अनुष्ठान नहीं करता, उसने जीवन क्यों धारण किया है? ऐसे जीवन की कोई भी सार्थकता नहीं है। तथापि मैं इस दान-पुण्य हेतु कैसे उपार्जन करूंगा? मेरे पास तो इस कौपीन तथा दण्ड के अतिरिक्त तनिक भी धन नहीं है। अयोग्य लोग दान नहीं देते। योग्य को दान न करना भी एक दूषण स्वरूप है। साथ ही योग्य-अयोग्य की विवेचना करके दान रूपी धर्म कर सकना भी अतीव कठिन है। योग्य देश में, योग्य काल में, योग्य पात्र को विशुद्ध अन्तःकरण से न्यायोपार्जित धन जो व्यक्ति दान करता है, वही यौवन काल में उस धनोपभोग में समर्थ होता है।।९७-१०२।।

तमोवृतस्तु यो दद्याद्भयात्क्रोधात्तथैव च। भुङ्क्ते दानफलं तद्धिगर्भस्थो नात्रसंशयः॥१०३॥
बालत्वेऽपिचसोऽश्नातियद्दत्तंदम्भकारणात्। दत्तमन्यायतोवित्तंतथावैचार्थकारणम्॥१०४॥
वृद्धत्वे हि समश्नाति नरो वै नात्र संशयः। तस्माद्देशे च कालेचसुपात्रेविधिनानरः।
शुभार्जितं प्रयुञ्जीत श्रद्धया शाठ्यवर्जितः॥१०५॥
तदेतन्निर्धनत्वाच्च कथं नाम भविष्यति। सत्यमाहुः पुरा वाक्यं पुराणमुनयोऽमलाः॥१०६॥
नाधनस्यास्त्ययं लोको न परश्च कथञ्चन। अभिशस्तंप्रपश्यंतिदरिद्रंपार्श्वतःस्थितम्॥१०७॥
दारिद्र्यं पातकं लोके कस्तच्छंसितुमर्हति।
पतितः शोच्यतेसर्वैर्निर्धनश्चापिशोच्यते॥१०८॥

जो तमःयुक्त भावना से, भय से, किंवा क्रोध से दान देते हैं, वे उस दान का फल गर्भ में रहकर भोग करते हैं(?)। इसलिए मानव योग्य देश-काल-पात्र का विचार करके शुभकर्मार्जित धन दुष्टतारहित चित्त से श्रद्धापूर्वक यथाविधान दान करे। तथापि मैं तो निर्धन हूं, मैं कैसे यह दानधर्म करूंगा? पूर्वकाल में विमल आत्मा वाले मुनियों ने सत्य ही कहा है कि धनहीन के लिए न तो यह लोक सुखद है, न परलोक ही सुखद होता है! बगल में स्थित दरिद्र को लोग अभिशाप ग्रस्त मानते हैं। दरिद्रता एक कैसा पातक है, लोग इसे सम्यक्तः नहीं बतला पाते। पतित तथा निर्धन, ये दोनों शोचनीय होते हैं।।१०३-१०८।।

यः कृशाश्वः कृशधनः कृशभृत्यः कृशातिथिः।
स वै प्रोक्तःकृशोनामनशरीरकृशःकृशः॥१०९॥
अर्थवान्दुष्कुलीनोऽपि लोके पूज्यतमो नरः।
शशिनस्तुल्यवंशोऽपि निर्धनःपरिभूयते॥११०॥
ज्ञानवृद्धास्तपोवृद्धा ये च वृद्धाबहुश्रुताः। ते सर्वे धनवृद्धस्य द्वारि तिष्ठन्ति किंकराः॥१११॥
यद्यप्ययं त्रिभुवने अर्थोऽस्माकं परागृहि। तथाप्यन्यप्रार्थितो हितस्यैवफलदोभवेत्॥११२॥
अथवैतत्पुरासर्वंचिंतयिष्यामिसुस्फुटम्। विलोकयामिपूर्वंतुकिंचिद्योग्यंहिस्थानकम्॥११३॥
स चिंतयित्वेति बहुप्रकारं देशांश्च ग्रामान्नगराणि चाऽऽश्रमान्।
बहूनहं पर्यटन्नाप्तवान्हि स्थानं हितं स्थापये यत्र विप्रान्॥११४॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
कौमारिकाखण्डे नारदार्जुनसंवादे दानप्रशंसावर्णनं
नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

जिसका अश्व कृश, दुर्बल है, धन स्थिति भी दुर्बल है, अतिथि भी कृश है (सम्यक्तः अतिथि सत्कार नहीं होता), वही यथार्थ कृश है। जिसका मात्र शरीर कृश है, उसे कृश कहना संगत नहीं है। अतः यदि कुलीन व्यक्ति धनी है, तब वह पूज्य हैं। परन्तु चन्द्रमा के समान निर्मल वंशोत्पन्न व्यक्ति यदि निर्धन है, तब उसे सर्वत्र पराजय ही मिलती है। ज्ञानवृद्ध, तपोवृद्ध, किंवा जो वास्तविक शास्त्रज्ञ सम्पन्न ज्ञानवृद्ध हैं, ये सभी धनवृद्ध (धनी) के द्वार पर किंकर के समान खड़े रहते हैं। यद्यपि मेरे लिए त्रिभुवन का धन दुर्लभ नहीं है, तथापि दूसरे से मांगा धन तो देने वाले को ही फल प्रदान करेगा! अथवा यह सब चिन्तन बाद में विशेष रूप से करूंगा। अभी किसी योग्य जगह को देखूं। इस प्रकार से मैंने नाना प्रकार की चिन्तना के पश्चात् नाना देश, नगर, ग्राम, आश्रमादि का पर्यटन किया, तथापि ऐसा कोई योग्य स्थान नहीं मिला, जहां ब्राह्मणों की स्थापना की जाये॥१०९-११४॥

॥द्वितीय अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

तृतीयोऽध्यायः

महीसागर संगम महिमा वर्णन, स्तम्भतीर्थ वर्णन, देवशर्मा नारद संवाद

सूत उवाच

एवं स्थानानि पुण्यानि यानियानीह वै भुवि। निरीक्षंस्तत्र तत्राहं नारदोवीरसत्तमः॥१॥
विचरन्मेदिनीं सर्वां प्राप्तोऽहमाश्रमं भृगोः। यत्र रेवानदी पुण्या सप्तकल्पस्मरा वरा॥२॥
महापुण्या पवित्रा च सर्वतीर्थमयी शुभा। पुनाति कीर्तनेनैवदर्शनेन विशेषतः॥३॥
तत्रावगाहनात्पार्थ मुच्यते जंतुरंहसा। यथा सा पिङ्गला नाडी देहमध्येव्यवस्थिता॥४॥
इयं ब्रह्माण्डपिण्डस्यस्थानेतस्मिन्प्रकीर्तिता। तत्रास्तेशुक्लतीर्थाख्यरेवायांपापनाशनम्॥५॥

सूतजी कहते हैं—तब नारद ने अर्जुन से कहा—हे वीरप्रवर! भूतल में ऐसे जितने पुण्यस्थल हैं, उनका दर्शन करते-करते मैं भृगु ऋषि के आश्रम में पहुंचा। वहां सात कल्पों से पुण्यफलप्रदा महापुण्या पवित्रा सर्वतीर्थमयी शुभा रेवा नदी विराजमान थी। इस नदी के दर्शन से, किंवा मात्र नाम लेने से ही मनुष्य पवित्र हो जाता है। हे पार्थ! वहां स्नान करके प्राणीजन पापरूपी कीचड़ से रहित हो जाते हैं। हे पार्थ! जैसे देह में पिंगला नाड़ी है, वैसे ही ब्रह्माण्ड में रेवा नदी प्रतिष्ठिता है। इसी रेवा में पापनाशक शुक्ल तीर्थ स्थित है।।१-५।।

यत्र वै स्नानमात्रेण ब्रह्महत्या प्रणश्यति। तस्यापि सन्निधौ पार्थ रेवाया उत्तरे तटे॥६॥
नानावृक्षसमाकीर्णं लतागुल्मोपशोभितम्। नानापुष्पफलोपेतं कदलीखंडमंडितम्॥७॥
अनेकश्वापदाकीर्णं विहगैरनुनादितम्। सुगंधपुष्पशोभाढ्यं मयूररवनादितम्॥८॥
भ्रमरैः सर्वमुत्सृज्य निलीनं रावसंयुतम्। यथा संसारमुत्सृज्य भक्तेन हरपादयोः॥९॥

इस तीर्थ में मात्र स्नान भी ब्रह्महत्या पाप का नाश कर देता है। हे पृथापुत्र! रेवा के उत्तरी तट के कुछ आगे नाना वृक्ष-लता-गुल्मों से भरा विविध फल-पुष्पों से शोभित, केलों के वृक्षों से पूर्ण, अनेक श्वापदों से व्याप्त, पक्षियों के स्वर से निनादित, सुगन्धित पुष्पों से शोभायुक्त, मयूरों के स्वर से कूजित भृगु के आश्रम में भ्रमणगण भ्रमण न करके वहां पुष्पों पर बैठे गुंजन करते हैं। यह देखकर प्रतीत होता है मानों भक्तों ने संसार को त्याग दिया तथा अब श्रीशिव के चरणों में लीन है।।६-९।।

कोकिलामधुरैःस्वानैर्नादयंतितथामुनीन्। यथाकथामृताख्यानैर्ब्राह्मणाभवभीरुकान्॥१०॥
यत्र वृक्षा ह्लादयंति फलैः पुष्पैश्च पत्रकैः। छायाभिरपिकाष्ठैश्च लोकानिव हरव्रताः॥११॥
पुत्रपुत्रेति वाशन्ते यत्र पुत्रप्रियाः खगाः। यथा शिवप्रियाःशैवानित्यंशिवशिवेति च॥१२॥
एवंविधं मुनेस्तस्य भृगोराश्रममण्डलम्। विप्रैस्त्रैविद्यसंयुक्तैः सर्वतः समलङ्कृतम्॥१३॥
ऋग्यजुःसामनिर्घोषैरापूरितदिगन्तरम्। रुद्रभक्तेन धीरेण यथैव भुवनत्रयम्॥१४॥

जैसे ब्राह्मण लोग कथामृत का कथन करके भवभीरु भक्तों को तृप्त करते हैं, वैसे ही कोकिल पक्षीगण अपने मधुर कुंजन द्वारा मुनिगण को सन्तुष्ट करते हैं। यहां के वृक्ष, फल, पुष्प, पत्तों, छाया तथा अपने काष्ठ द्वारा शिवभक्तों को आह्लादित करते हैं। जैसे शिवप्रिय शैवगण सदा शिव-शिव शब्द को उच्चरित करते रहते हैं, वैसे ही पुत्रप्रिय पक्षी यहां पुत्र-पुत्र की ध्वनि करते रहते हैं। यह आश्रम विद्या से वृद्ध विप्रों से मण्डित है तथा यह रुद्र के भक्त धीरजनों द्वारा भुवनत्रय में परिपूजित है। यहां के ऋक्-यजुः-साम मन्त्रों के निर्घोष से यह दशों दिशाओं को आपूरित कर रहा है।।१०-१४।।

तत्राहं पार्थ सम्प्राप्तो यत्रास्ते मुनिसत्तमः। भृगुः परमधर्मात्मातपसा द्योतितप्रभः॥१५॥
आगच्छन्तं तु मां दृष्ट्वा दीनं च मुदितंतथा। अभ्युत्थानं कृतं सर्वैर्विप्रैर्भृगुपुरोगमैः॥१६॥
कृत्वा सुस्वागतं दत्त्वा अर्घाद्यं भृगुणा सह। आसनेषूपविष्टास्ते मुनीन्द्रा ग्राहिता मया॥१७॥

हे पृथानन्दन! इस आश्रम में जहां तपः से समुज्ज्वल कान्तियुक्त परम धर्मात्मा मुनिप्रवर भृगु ऋषि रहते हैं, मैं वहां उपस्थित हुआ। वहां पर भृगु आदि प्रमुख ब्राह्मणगण मुझे दीन वेश में तथापि मुदित चित्त से आया देखकर उठे तथा स्वागत प्रश्न तथा अर्घ्य आदि प्रदान करके मुझे आग्रहपूर्वक आसनासीन कराया, तब मुनीन्द्र भृगु मुझसे कहने लगे।।१५-१७।।

विश्रान्तं तु ततो ज्ञात्वा भृगुर्मामप्युवाचह। क्व गन्तव्यं मुनिश्रेष्ठकस्मादिहसमागतः॥१८॥
आगमनकारणं सर्वं समाचक्ष्व परिस्फुटम्। ततस्तं चिंतयाविष्टोभृगुंपार्थाहमब्रुवम्॥१९॥
श्रूयतामभिधास्यामि यदर्थमहमागतः। मया पर्यटिता सर्वा समुद्रान्ता च मेदिनी॥२०॥
द्विजानां भूमिदानार्थंमार्गमाणः पदे पदे। निर्दोषांचपवित्रां च तीर्थेष्वपिसमन्विताम्।
रम्यां मनोरमां भूमिं न पश्यामि कथञ्चन॥२१॥

मुझे इस प्रकार विभ्रान्त स्थिति में देखकर भृगु ने कहा—"हे मुनिप्रवर! कहां जा रहे हैं? यहां कैसे आगमन हुआ? उसका कारण मुझसे यथावत् कहें।" हे पार्थ! तत्पश्चात् मैंने चिन्तायुक्त होकर भृगु से कहा—हे मुनिप्रवर! मैं अपने आगमन का कारण कहता हूं, सुनिये! मैंने ब्राह्मणों को भूमि देने के लिए योग्य भूमि का निर्द्धारण करने हेतु समुद्र पर्यन्त भ्रमण किया। परन्तु निर्दोष पवित्र तीर्थयुक्त, रम्य भूमि कहीं नहीं पा सका!।।१८-२१।।

भृगुरुवाच

विप्राणां स्थापनार्थाय मयाऽपि भ्रमता पुरा॥२२॥
पृथ्वीसागरपर्यन्ता दृष्ट्वा सर्वा तदानघ। महीनाम नदी पुण्या सर्वतीर्थमयी शुभा॥२३॥
दिव्या मनोरमा सौम्या महापापप्रणाशिनी। नदीरूपेण तत्रैव पृथ्वीसानात्र संशयः॥२४॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि दृष्टादृष्टानि नारद। तानि सर्वाणि तत्रैव निवसन्तिमहीजले॥२५॥
सा समुद्रेण सम्प्राप्ता पुण्यतोया महानदी। सञ्जातस्तत्र देवर्षे महीसागरसंगमः॥२६॥
स्तंभाख्यं तत्र तीर्थं तु त्रिषु लोकेषुविश्रुतम्। तत्र ये मनुजाः स्नानंप्रकुर्वन्तिविपश्चितः॥२७॥
सर्वपापविनिर्मुक्ता नोपसर्पंति वै यमम्। तत्राद्भुतं हि दृष्टं मे पुरा स्नातुं गतेन वै॥२८॥

तदहं कीर्तयिष्यामि मुने शृणु महाद्भुतम्। यावत्स्नातुं व्रजाम्यस्मिन्महीसागरसंगमे॥२९॥

भृगु कहते हैं—हे निष्पाप! पूर्वकाल में मैंने भी विप्रस्थापनार्थ सागर पर्यन्त महीमण्डल का भ्रमण किया। इस प्रकार से देखा कि मही नामक पुण्या-शुभा सर्वतीर्थमयी सौम्या मनोरमा महापापनाशिनी एक दिव्य नदी है। पृथिवी ने ही यहां नदी रूप धारण किया है। हे नारद! पृथिवी पर दृष्ट-अदृष्ट जितने भी तीर्थ हैं, वे सभी इस महानदी में स्थित रहते हैं। यह पुण्य जलवाली महीनदी सागर तक जाती है। जहां उसका सागर के साथ मिलन होता है, हे देवर्षि! वहां त्रिलोकविख्यात स्तम्भाख्य तीर्थ स्तम्भ तीर्थ विराजमान है। जो सव धीमान् मनुष्य वहां स्नान करते हैं, वे सर्वपापरहित हो जाते हैं। वे कभी यम के पास नहीं जाते। हे मुनिवर! पूर्वकाल में मैंने वहां स्नान के लिए जाकर एक विस्मयजनक घटना को देखा था। उसे कहता हूं। सुनें। जब मैं महीसागर संगम स्थल पर स्नानार्थ गया, यह तब की घटना है।।२२-२९।।

तीरे स्थितं प्रपश्यामि मुनीन्द्रं पावकोपमम्।
प्रांशुं वृद्धं चाऽस्थिशेषं तपोलक्ष्म्या विभूषितम्॥३०॥
भुजावूर्ध्वौ ततः कृत्वा प्ररुदन्तं मुहुर्मुहुः। तं तथा दुःखितंदृष्ट्वादुःखितोऽहमथाभवम्॥३१॥
सतां लक्षणमेतद्धि यद्दृष्ट्वा दुःखितं जनम्। शतसंख्यं तस्य भवेत्तथाऽहं विललाप ह।
अहिंसा सत्यमस्तेयं मानुष्ये सति दुर्लभम्॥३२॥
ततस्तमुपसंगम्य पर्यपृच्छमहं तदा॥३३॥

वहां मैंने देखा कि उसके तट पर तप की ज्योति से विभूषित अग्निवत् तेजस्वी दीर्घकाय अस्थिचर्मसार (अत्यन्त दुर्बल) वृद्ध महर्षि अपनी दोनों भुजायें उठाकर धीरे-धीरे रो रहे हैं। उन मुनि को ऐसे रुदन करते देखकर मैं भी दुःखी हो गया। साधु का यही लक्षण है कि वे किसी का दुःख देखकर उसकी ~~अपेक्षा~~ सौ गुना दुःख बोध करते हैं। इस दुःख से मैं विलाप करने लगा। अहिंसा, सत्य, अस्तेय गुण तो मनुष्य जन्म में दुर्लभ है। तब मैं उनके पास जाकर पूछने लगा।।३०-३३।।

किमर्थं रोदिषि मुने शोके किं कारणंतव। सुगुह्यमपि चेद्ब्रूहि जिज्ञासा महतीहि मे॥३४॥
मुनिस्ततो मामवदद्भृगोनिर्भाग्यवानहम्। तेनरोदिमि मा पृच्छदुर्भाग्यंचालपेद्धिकः॥३५॥
तमहं विस्मयाविष्टः पुनरेवेदमब्रुवम्। दुर्लभं भारते जन्म तत्रापि च मनुष्यता॥३६॥
मनुष्यत्वे ब्राह्मणत्वं मुनित्वं तत्र दुर्लभम्। तत्रापिचतपःसिद्धिःप्राप्यैतत्पञ्चकं परम्॥३७॥
किमर्थं रोदिषि मुने विस्मयोऽत्र महान्मम। एवं संपृच्छते मह्यमेतस्मिन्नेव चान्तरे।
सुभद्रोनाम नाम्ना च मुनिस्तत्राभ्युपाययौ॥३८॥
स हि मेरुं परित्यज्य ज्ञात्वा तीर्थस्य सारताम्॥३९॥
कृताश्रमः पूजयति सदास्तम्भेश्वरंमुनिः। सोऽप्येवं मामिवापृच्छन्मुनिंरोदनकारणम्॥४०॥

मैंने पूछा—"हे मुनिवर! आप रोदन क्यों कर रहे हैं? आपके दुःख का कारण क्या है? यदि वह अत्यन्त गुप्त हो, तब भी आप कहिये। मुझे अत्यन्त कुतूहल हो रहा है।" मेरा वचन सुनकर मुनि ने कहा "हे मुनिवर भृगु! मैं अत्यन्त हतभाग्य होने के कारण रो रहा हूं। आप उसका कारण न पूछें। दुर्भाग्यशाली से कौन बात करता है?"

यह सुनकर मैंने विस्मय के साथ उनसे पूछा "हे मुनिवर! भारतभूमि में जन्म ही दुर्लभ है। उसमें भी मनुष्यत्व, उसमें ब्राह्मणत्व तथा उसमें भी मुनित्व तो और भी दुर्लभ है। उसमें तो तपःसिद्धि तो दुर्लभतर कही गयी है। आपको तो ये पांचों परमधन हस्तगत हैं। तब क्यों रो रहे हैं? यह देख मुझे अत्यन्त आश्चर्य हो रहा है।" मैं इस प्रकार प्रश्न पूछ ही रहा था, तभी सुभद्र नामक एक मुनि वहां पहुंचे। ये मुनि स्तम्भेश्वर तीर्थ की सारवत्ता जानने मेरु पर्वत से यहां आये तथा यहीं आश्रम निर्माण करके स्तम्भेश्वर की अर्चना में निरत थे। उन्होंने भी यहां आकर मेरी तरह ही मुनि के रुदन का कारण पूछा।।३४-४०।।

अथाऽऽहाचम्य स मुनिः श्रूयतांकारणं मुनी। अहंहिदेवशर्माख्योमुनिः संयतवाङ्मनाः।।४१।।
निवसामि कृतस्थानो गंगासागरसंगमे। तत्र दर्शे तर्पयामि सदैव च पितॄनहम्।।४२।।
श्राद्धान्ते ते च प्रत्यक्षाह्याशिषोमेवदन्तिच। ततः कदाचित्पितरःप्रहृष्टा मामथाऽब्रुवन्।।४३।।
वयं सदाऽत्रचायामोदेवशर्मंस्तवान्तिके। स्थानेऽस्माकंकदाचित्त्वंनचायासिकुतःसुत।।४४।।
स्थानं दिदृक्षुस्तच्चाहंनशक्तोऽस्मिनिवेदितुम्। ततः परममित्युक्त्वागतवान्पितृभिःसह।।४५।।
पितॄणांमन्दिरंपुण्यंभौमलोकसमास्थितम्। तत्रतत्र स्थितश्चाहं तेजोमण्डलदुर्दृशान्।।४६।।
दृष्ट्वाग्रतः पूजयाढ्यानपृच्छं स्वान्पितॄनिति। केह्यमीसमुपायान्ति भृशंतृप्ताभृशार्चिताः।
भृशं प्रमुदिता नैव तथा यूयं यथा ह्यमी।।४७।।

तब उन मुनि ने आचमन करके कहा—"आप सब मेरे रुदन का कारण श्रवण करें। मैं वाक्य मन संयमी देवशर्मा ऋषि हूं। मैं गंगासागर संगम स्थल पर आश्रम में रहता हूं। वहां मैं प्रति अमावस्या के दिन श्रद्धानुष्ठान करके पितरों का तर्पण करता हूं। वहां पितृगण प्रत्यक्ष होकर मुझे आशीर्वाद प्रदान करते हैं। एक बार पितरों ने मुझसे कहा—"हे देवशर्मा! हम यहां बराबर आते हैं, लेकिन तुम कभी हमारे स्थान पर नहीं आते। हे वत्स! इसका कारण क्या है?" तब मैंने कहा—"मैं भी उस स्थान का दर्शन करना चाहता हूं, तथापि यह कहने का साहस न कर सका!" जब पितृगण ने मेरी बात का अनुमोदन किया, तब मैं उनके साथ भौमलोकस्थ पुण्यतम पितृलोक में पहुंचा। उसके पुरोभाग में तेजःपुञ्ज शरीरवाले विविध उपचारों से भूषित लोगों का दर्शन करके अपने पितरों से मैंने प्रश्न किया—"हे पितृगण! ये जो अतीव तृप्त, सम्यक् रूप से विभूषित, अत्यन्त मुदित लोग परिलक्षित हो रहे हैं, ये तो आप लोगों के समान नहीं हैं। ये कौन हैं"?।।४१-४७।।

पितर ऊचुः

भद्रं ते पितरः पुण्याः सुभद्रस्य महामुनेः। तर्पितास्तेन मुनिना महीसागरसंगमे।।४८।।
सर्वतीर्थमयी यत्र निलीना ह्युदधौ मही। तत्र दर्शे तर्पयति सुभद्रस्तानमून्सुत।।४९।।
इत्याकर्ण्य वचस्तेषां लज्जितोऽहं भृशं तदा।
विस्मितश्च प्रणम्यैतान्पितॄन्स्वं स्थानमागतः।।५०।।
यथातथा चिन्तितंचतत्रयास्याभ्यहंस्फुटम्। पुण्योयत्रापिविख्यातोमहीसागरसंगमः।।५१।।
कृताश्रमश्च तत्रैव तर्पयिष्ये निजान्पितॄन्। दर्शेदर्शे यथा चासौ स्तुत्यनामासुभद्रकः।।५२।।

किं तेन ननु जातेनकुलांगारेणपापिना। यस्मिञ्जीवत्यपिनिजाःपितरोऽन्यस्पृहाकराः॥५३॥

पितृगण कहते हैं—तुम्हारा मंगल हो। ये सुभद्र महामुनि के पितृगण हैं। ये महीसागर संगम स्थल में उन मुनि द्वारा तर्पित हैं। हे पुत्र! सर्वतीर्थमयी मही नदी जहां सागर से मिल रही है, सुभद्र मुनि वहीं प्रति अमावस्या में इनका तर्पण करते हैं। यह सुनकर मैं अतिशय तथा विस्मित हो गया तथा पितृगण को प्रणाम करके स्वस्थान चला आया। आकर यही विचार करने लगा कि मैं उस प्रसिद्ध पुण्यप्रद महीसागर संगम स्थल पर अवश्य जाऊंगा। वहीं आश्रम बनाकर रहूंगा तथा प्रति अमावस्या को सुभद्र मुनि की ही तरह अपने पितरों का तर्पण करूंगा। जिस वंशज के जीवित रहते भी पितृगण अन्य वंशज की कामना करते हैं, उस पापी कुलागार संतान के जन्म का क्या लाभ?।।४८-५३।।

इति सञ्चिन्त्य मुदितो रुचिं भार्यामथाब्रुवम्। रुचेत्वयासमायुक्तोमहीसागरसंगमम्॥५४॥

गत्वा स्थास्यामि तत्रैव शीघ्रं त्वं सम्मुखीभव।
पतिव्रताऽसि शुद्धाऽसि कुलीनाऽसि यशस्विनि।
तस्मादेतन्मम शुभे! कर्तुमर्हसि चिन्तितम्॥५५॥

मैंने इस प्रकार चिन्तन करते हुये अपनी पत्नी रुचि से कहा—"हे रुचि! मैं तुम्हारे साथ महीसागर संगम जाकर निवास करूंगा। अतः तुम चलने की व्यवस्था शीघ्रता से करो। हे यशस्विनी! तुम पतिव्रता, शुद्धा तथा कुलीन हो। हे शुभे! हम इस अभिप्राय से व्यवस्था करें।।५४-५५।।

रुचिरुवाच

हता तस्य जनिर्नाभृत्कथं पाप दुरात्मना॥५६॥
श्मशानस्तंभ येनाऽहं दत्ता तुभ्यं कृतं त्वया। इहकंदफलाहारैर्यत्किंतेन न पूर्यते॥५७॥
नेतुमिच्छसि मां तत्र यत्र क्षारोदकं सदा। त्वमेवतत्र संयाहि नन्दन्तु तव पूर्वजाः॥५८॥
गच्छ वा तिष्ठ वा वृद्ध वस वा काकवच्चिरम्। तथाब्रुवन्त्यांतुकर्णावस्मिपिधायच।
विपुलं शिष्यमादिश्य गृह एकोऽत्र आगतः॥५९॥
सोऽहं स्नात्वाऽत्र सन्तर्प्य पितॄञ्छ्रद्धापरायणः॥६०॥
चिन्तां सुविपुलां प्राप्तो नरके दुष्कृती यथा। यदि तिष्ठामि चात्रैवअर्धदेहधरोह्यहम्॥६१॥
नरो हि गृहिणीहीनो अर्धदेह इति स्मृतः। यथात्मनाविनादेहेकार्यंकिंचिन्नसिध्यति॥६२॥

रुचि कहती है—"हाय! मैं तो मर गई। हे श्मशानस्तम्भ, पापी! जिस दुरात्मा ने मुझे तुमको प्रदान किया है, उसने जन्म ही क्यों लिया? मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं है। जहां सर्वदा नमकीन जल है, वहां तुम मुझे ले जाना चाहते हो? यहां कन्द-मूल-फल उपलब्ध है, क्या उससे तुम्हारा पेट नहीं भर जाता? तुम ही वहां जाओ। तुम्हारे पितर आनन्दित हों! हे वृद्ध! तुम जाओ, वहां ठहरो, अथवा कौए की तरह वहां चिरकाल निवास करो। जो इच्छा हो करो।" जब रुचि ऐसा कहने लगी, तब मैंने अपने कान ढांक लिये तथा अपने विपुल नामक शिष्य को गृहरक्षा का भार देकर एकाकी चल पड़ा। यहां आकर श्रद्धापरायण मन से स्नान तथा पितृगण का तर्पण कर पुनः-पुनः नरकगामी दुष्टकर्मा की तरह पुनः-पुनः चिन्तित हो रहा हूं। सोचता हूं, यदि यहां हूं तब आधे शरीर से ही हूं।

क्योंकि गृहणी तो पुरुष की आधी देह होती है। यह स्मृति वचन है। यह वैसा ही है, जैसे आत्मा बिना देह से कोई कार्य नहीं होता।।५६-६२।।

एवंगृहिण्या हीनो हि न स कर्मसु शस्यते । यो नरः स्त्रीषु देहेषुअनुरक्तस्त्वसौपशुः।।६३।।
अनयोर्हि फलं ग्राह्यं सारता नाऽत्र काचन। अर्धदेहीच मनुजस्त्वसंस्पृश्यःसतांमतः।।६४।।
औत्तानपादिरस्पृश्य उत्तमो हि सुरैः कृतः। अथ चेत्तत्र संयामि न महीसागरस्ततः।।६५।।
यामि वा तत्कथं पादौ चलतो मे कथञ्चन। एतस्मिन्मेमनोविद्धंखिद्यतेऽज्ञानसंकटे।।६६।।
अतोऽहमतिमुह्यामि भृशं शोचामि रोदिमि। इति श्रूत्वावचस्तस्यभृशंरोमाञ्चपूरितम्।।६७।।

तथापि जो मनुष्य स्त्री तथा देह में अनुरक्त होते हैं, वे पशु के समान हैं। तब इस स्थिति में कोई भी सार नहीं है। अर्द्धदेही व्यक्ति तो अस्पृश्य कहा गया है। यही साधुगण का मत है। उत्तानपाद के पुत्र को देवगण ने ऐसे ही अस्पृश्य बनाया था। अब यदि मैं अपने पुराने निवास स्थान जाता हूं, तब महीसागर संगम त्याग देना होगा। और यहां छोड़ कर जाऊंगा भी कैसे? मेरा मन तथा दोनों पैर यहां से कहीं जाने के लिए तैयार ही नहीं हैं। यहीं मेरा मन आबद्ध है। इस अज्ञानसंकट के कारण मेरा मन खिन्न हो रहा है। तभी मैं अतिशय मोहग्रस्त, शोक से आच्छन्न तथा रोदन करने वाला हो गया''। देवशर्मा का यह वाक्य सुनकर मैं तथा सुभद्र दोनों ही रोमाञ्चित हो गये।।६३-६७।।

साधुसाध्वित्यथोवाच तं सुभद्रोऽप्यहं तथा। दण्डवच्च प्रणमितोमहीसागरसङ्गमम्।।६८।।
चिन्तयावश्च मनसि प्रतीकारं मुनेरुभौ। यो हि मानुष्यमासाद्य जलबुद्बुदभंगुरम्।।६९।।
परार्थाय भवत्येषपुरुषोऽन्ये पुरीषकाः। ततः संचिंत्यप्राहेदं सुभद्रो मुनिसत्तमम्।।७०।।
मा मुने परिरवद्यस्व देवशर्मन्स्थिरो भव। अहं ते नाशयिष्यामिशोकंसूर्यस्तमोयथा।।७१।।
गमिष्याम्याश्रमं त्वं च नात्रापिपरिहास्यते। श्रृणु तत्कारणंतुभ्यंतर्पयिष्येपितृनहम्।।७२।।

मैंने तथा सुभद्र ने साधु-साधु कहकर उसकी प्रशंसा किया। तब मैं महीसागर संगम क्षेत्र को दण्डवत् प्रणाम करके उन मुनि का उपकार कैसे हो, यही चिन्तन करने लगा। तब मैंने सोचा कि जल के बुलबुले के समान क्षणस्थायी मनुष्य जन्म पाकर जो परोपकारी है, वही यथार्थ पुरुष है। बाकी सब पुरीष (मल) पदवाच्य हैं। तदनन्तर सुभद्र ऋषि ने कुछ विचारोपरान्त उन मुनिप्रवर से कहा—''हे मुनिवर! देवशर्मा! आप दुःख न करें। स्थिर हो जायें। जैसे सूर्य अन्धकार को दूर करता है। मैं उसी प्रकार आपके शोक का निवारण करूंगा। मैं अपने आश्रम जा रहा हूं। आप भी अपने आश्रम जायें। आपकी सिद्धि का व्याघात नहीं होगा। उसका कारण यह है कि मैं ही आपके पितृगण का तर्पण करूंगा''।।६८-७२।।

देवशर्मोवाच

एवं ते वदमानस्य आयुरस्तु शतं समाः। यदशक्यं महत्कर्म कर्तुमिच्छसि मत्कृते।।७३।।
हर्षस्थाने विषादश्च पुनर्मां बाधते श्रृणु। अपि वाक्यं शुभं सन्तो न गृह्णन्तिमुधामुने।।७४।।
कथमेतन्महत्कर्मकारयामि मुधा वद। पुनः किंचित्प्रवक्ष्यामियथा मे निष्कृतिर्भवेत्।।७५।।
शापितोऽसिमयाप्राणैर्यथावच्मितथाकुरु। अहं सदा करिष्यामिदर्शेचोद्दिश्यतेपितृन्।।७६।।

श्राद्धं गंगार्णवे चाऽत्र मत्पितॄणांत्वमाचर। अहं चैवापि तपसःसंचितस्यापिजन्मना।
चतुर्भागं प्रदास्यामि एवमेवैतदाचर॥७७॥

देवशर्मा कहते हैं—हे सुभद्र! आपने जो कुछ कहा, उसके कारण आपकी आयु १०० वर्ष हो जाये। आप मेरे कारण महान् दुष्कर कर्म के लिए उद्यत हैं। तथापि इस प्रकार का हर्ष का कारण हो जाने पर भी मेरे मन में विषाद जन्म लेकर सन्ताप का उत्पादन कर रहा है। हे मुनिवर! साधु जन एक भी शुभ वाक्य बिना विनिमय ग्रहण नहीं करते। अतः मैं आपसे वृथा इतना महान् कार्य कैसे करा सकता हूं? तब भी मैं एक उपाय कहता हूं। उससे मेरी निष्कृति हो जायेगी। मैं अपने प्राणों की शपथ लेता हूं कि जैसा मैं कहता हूं, वैसा आप करें। मैं प्रति अमावस्या के दिन गंगासागर संगम पर आपके पितृगण का तर्पण करूंगा। इसके बदले आप यहां मेरे पितृगण का तर्पण करें। मैंने जीवन पर्यन्त जो तप किया है, उसके ४ भाग का एक भाग ($\frac{१}{४}$) आपको प्रदान करता हूं। इससे यह कार्य सम्पन्न होगा।।७३-७७।।

सुभद्र उवाच

यद्येवं तव संतोषस्त्वेवमस्तु मुनीश्वर!। साधूनां च यथा हर्षस्तथा कार्यं विजानता॥७८॥

सुभद्र कहते हैं—हे मुनिवर! यदि इससे आपको सन्तोष मिलता है, तब यही करें। ज्ञानवान् व्यक्ति द्वारा जैसे भी साधुगण आनन्दित हों, वही ज्ञानवान् का कर्त्तव्य है।।७८।।

भृगुरुवाच

देवशर्मा ततोहृष्टोदत्त्वापुण्यंत्रिवाचिकम्। चतुर्थांशंययौधामस्वंसुभद्रोऽपिचस्थितः॥७९॥
एवंविधो नारदाऽसौ महीसागररसंगमः। यमनुस्मरतो मह्यं रोमाञ्चोऽद्यापिवर्तते॥८०॥

भृगु कहते हैं—तदनन्तर देवशर्मा ने प्रसन्नचित्त से तीन बार वचन देकर अपने पुण्य का $\frac{१}{४}$ सुधर्मा को दान कर दिया। सुभद्र वहीं रह गये। हे नारद! महीसागर संगम की ऐसी महिमा कही गयी है। उसका स्मरण करके आज भी मुझे रोमांच हो जाता है।।७९-८०।।

नारद उवाच

इति श्रुत्वा फाल्गुनाहं हर्षगद्गदयागिरा। मृतोमृत इवावोचं साधुसाध्विति तं भृगुम्॥८१॥
यूयं वयं गमिष्यामो महीतीरं सुशोभनम्। आवामीक्षावहे सर्वं स्थानकंतदनुत्तमम्॥८२॥
मम चैवं वचःश्रुत्वा भृगुः सह मयाययौ। समस्तं तु महापुण्यं महीकूलं निरीक्षितम्॥८३॥
तद्दृष्ट्वा चातिहृष्टोऽहमासं रोमांचकंचुकः। अब्रवं मुनिशार्दूलं हर्षगद्गदयागिरा॥८४॥
त्वत्प्रसादात्करिष्यामिभृगोस्थानमनुत्तमम्। स्वस्थानंगम्यतांब्रह्मन्नतःकृत्यंविचिंतये।
एवं भृगुं चास्मि विसर्जयित्वा कल्लोलकोलाहलकौतुकीतटे॥८५॥
अथोपविश्येदमचिन्तयं तदा किं कृत्यमात्मानमिवैकयोगी॥८६॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे नारदार्जुनसम्वादे महीसागरसङ्गमतीर्थमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः॥३॥

नारद कहते हैं! हे फाल्गुन (अर्जुन के लिए सम्बोधन)! मैंने यह सुनकर मानों मृतदेह में नवजीवन लाभ किया। मैंने हर्षगद्गद् स्वर से भृगु को साधुवाद देकर उनको प्रशंसित किया। मैंने उनसे कहा—"आप तथा हम सभी सुशोभन महीतीर जाकर उस अनुपम स्थान का दर्शन करें।" भृगु मेरी बात सुनकर मेरे ही साथ मही नदी तट पर गये। हमने वहां जाकर उस महापुण्यमय समग्र महीकुल का दर्शन किया। मैं वह देखकर अतीव प्रसन्नचित्त से रोमांचित होकर हर्ष से गद्गद् वाक्य से मुनिशार्दूल भृगु से कहने लगा—"हे मुनिवर! आपकी कृपा से मैं यह उत्तम स्नान करूंगा। तदनन्तर आप अपने स्थान जायें। मैं भी अपना कर्त्तव्य चिन्तन करूं।" इस प्रकार मैंने भृगु की प्रशंसा करके नदी तट पर उस नदी के कल्लोल कोलाहल का उपभोग किया तथा वहां आत्मस्थ योगी की तरह बैठ कर यह चिन्तन करने लगा कि अब कर्त्तव्य क्या है।।८१-८६।।

।।तृतीय अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

चतुर्थोऽध्यायः

दानभेद प्रशंसा, वैदिक दान मार्ग वर्णन

नारद उवाच

ततस्त्वहं चिन्तयामि कथं स्थानमिदं भवेत्। ममायत्तं यतो राज्ञांभूमिरेषासदा वशे।।१।।
यत्त्वहं धर्मवर्माणं गत्त्वा याचे ह मेदिनीम्। अर्पयत्येव सच मे याचितो न पुनः परः।।२।।
तथा हि मुनिभिः प्रोक्तं द्रव्यं त्रिविधमुत्तमम्। शुक्लंमध्यंचशबलमधमंकृष्णमुच्यते।।३।।
श्रुतेः संपादनाच्छिष्यात्प्राप्तंशुक्लंचकन्यया। तथाकुसीदवाणिज्यकृषियाचितमेवच।।४।।
शबलं प्रोच्यते सद्भिर्द्यूतचौर्येण साहसैः। व्याजेनोपार्जितं यच्च तत्कृष्णंसमुदाहृतम्।।५।।
शुक्लवित्तेन यो धर्मं प्रकुर्याच्छ्रद्धयान्वितः। तीर्थपात्रं समासाद्य देवत्वे तत्समश्नुते।।६।।
राजसेन च भावेन वित्तेन शबलेन च। प्रदद्याद्दानमर्थिभ्यो मानुष्यत्वे तदश्नुते।।७।।

नारद कहते हैं—यह भूभाग राजागण द्वारा अधीकृत है। अतः मैं किस प्रकार से यहां कुछ स्थान पा सकूंगा? यदि मैं राजा धर्मवर्मा से प्रार्थना करूंगा, तब वे मेरी प्रार्थना अवश्य पूर्ण करेंगे। लेकिन मैंने आजतक कभी किसी से प्रार्थना नहीं किया। विशेषतः मुनिगण ने प्राप्तद्रव्य त्रिविध कहा है। यथा शुक्ला, शवल, कृष्णा कृष्ण से शवल उत्तम है। शवल से शुक्ल उत्तम है। श्रुति में कहे कार्य को सम्पन्न करके शिष्य से जो धन ब्राह्मण प्राप्त करता है, वह शुक्ल धन है। कन्या-शुल्क, कुसीद (महाजनी से), वाणिज्य तथा कृषि एवं याचना द्वारा जो धन मिलता है, वह शवल धन है। याचना द्वारा मिलने वाला धन भी शबल है। साधुजन द्वारा द्यूत, चौर्य तथा अन्य साहस के कार्य किंवा शठता द्वारा उपार्जित धन कृष्ण अथवा तामस कहा गया है। मानव तीर्थयोग्य पात्र (याचक) को खोजकर उसे श्रद्धा के साथ शुक्लधन दान द्वारा जो धर्मोपार्जन करता है, उसका फल (मरणोपरान्त)

देवत्व प्राप्त करके उपभोग करता है। शबल धन दान करने से उस दाता को मनुष्य जन्म प्राप्त होता है, जहां वह उस पुण्य फल का भोग करता है।।१-७।।

तमोवृतस्तु यो दद्यात्कृष्णवित्तेनमानवः। तिर्यक्तत्त्वेतत्फलं प्रेत्यसमश्नातिनराधमः॥८॥
तत्तु याचितद्रव्यं मे राजसं हि स्फुटं भवेत्। अथ ब्राह्मणभावेन नृपं याचेप्रतिग्रहम्॥९॥
तदप्यहो चातिकष्टं हेतुना तेन मे मतम्। अयं प्रतिग्रहो घोरोमध्वास्वादोविषोपमः॥१०॥

जो तमोगुण से आच्छन्न मानव कृष्ण वित्त द्वारा दानकर्म करता है, वह नराधम जन्मान्तर में तिर्यक् योनि में इस दान का फल प्राप्त करता है। अतः यदि मैं स्वयं के ब्राह्मण होने के कारण राजा से दान-प्रतिग्रह की याचना करता हूं, तब यह मेरे लिए अतीव कष्टकर ही होगा। यदि प्रतिग्रह लेते समय मधु ऐसा लगता है, लेकिन उसका परिणाम विष ही है।।८-१०।।

प्रतिग्रहेण संयुक्तं ह्यमीवमाविशेद्द्विजम्। तस्मादहं निवृत्तश्चपापादस्मात्प्रतिग्रहात्॥११॥
ततः केनाप्युपायेन द्वयोरन्यतरेण तु। स्वायत्तं स्थानकं कुर्म एतत्सञ्चिंतये मुहुः॥१२॥
यथा कुभार्यःपुरुषश्चिन्तान्तं न प्रपद्यते। तथैव विमृशंश्चाहंचिन्तान्तं न लभाम्यणु॥१३॥
एतस्मिन्नन्तरे पार्थ स्नातुं तत्र समागताः। बहवो मुनयः पुण्ये महीसागरसंगमे॥१४॥
अहं तानब्रवं सर्वान्कुतो यूयं समागताः। ते मामूचुः प्रणम्याथ सौराष्ट्रविषयेमुने॥१५॥
धर्मवर्मेति नृपतिर्योऽस्य देशस्य भूपतिः। स तु दानस्य तत्त्वार्थीतेपेवर्षगणान्बहून्॥१६॥
ततस्तं प्राह खे वाणी श्लोकमेकंनृप शृणु। द्विहेतु षडधिष्ठानं षडंगं चद्विपाकयुक्॥१७॥
चतुः प्रकारं त्रिविधं त्रिनाशं दानमुच्यते। इत्येकं श्लोकमाभाष्यखेवाणीविररामह॥१८॥

प्रतिग्रह लेने वाले ब्राह्मण के शरीर में पाप प्रविष्ट हो जाता है। तभी मैं पापकारी प्रतिग्रह लेने से दूर रहता हूं। परन्तु मैं प्रथमोक्त किस उपाय (शुक्ल) द्वारा एक स्थान प्राप्त करूंगा। यही पुनः-पुनः सोचता रहता हूं। कुपत्नी वाले पुरुष की तरह मेरी इस चिन्ता का अन्त होता नहीं दीखता! हे पृथानन्दन अर्जुन! मैं ऐसी चिन्ता कर ही रहा था, तभी उस पुण्यप्रद महीसागर संगम पर अनेक मुनिगण आये। मैंने उनसे प्रश्न किया "आप कहां से आ रहे हैं?" उन्होंने मुझे प्रणामोपरान्त कहा "हे मुनिवर! सौराष्ट्र देश में धर्मवर्मा नामक राजा हैं। वे दान-तत्त्वज्ञानार्थ तपःरत रहते हैं। तदनन्तर उन्होंने एक आकाशवाणी सुनी। वह यह थी—"हे राजन्! एक श्लोक सुनो। दान के दो हेतु हैं।" छः अधिष्ठान हैं, छः अंग हैं, द्विविध पाक हैं, ४ प्रकार हैं। त्रिविध तथा नाश त्रितययुक्त उसे कहा गया है। आकाशवाणी यही कहकर शान्त हो गयी।।११-१८।।

श्लोकस्यार्थं नावभाषे पृच्छमानाऽपि नारद। ततो राजाधर्मवर्मा पटहेनान्वघोषयत्॥१९॥
यस्तुश्लोकस्यचैवास्यलब्धस्यतपसामया। करोतिसम्यग्व्याख्यानंतस्यचैतद्ददाम्यहम्॥२०॥
गवां च सप्त नियुतं सुवर्णंतावदेवतु। सप्तग्रामान्प्रयच्छामिश्लोकव्याख्यांकरोतियः॥२१॥
पटहेनेति नृपतेः श्रुत्वा राज्ञो वचो महत्। आजामुर्बहुदेशीयाब्राह्मणाःकोटिशो मुने॥२२॥
पुनर्दुर्बोधविन्यासः श्लोकस्तैर्विप्रपुङ्गवैः। आख्यातुं शक्यते नैव गुडो मूकैर्यथा मुने॥२३॥

हे नारद! राजा ने श्लोक का अर्थ पूछा, लेकिन आकाशवाणी ने कुछ नहीं कहा। तब राजा ने पटह द्वारा यह घोषणा कराया कि "मैंने तपःश्चरण से जिस श्लोक का लाभ किया है, जो व्यक्ति इसकी यथाश्रुत व्याख्या करेगा, मैं उसे ७ नियुत गौ, सप्त नियुत स्वर्ण तथा सात ग्राम प्रदान करूंगा।" हे मुनिवर! इस प्रकार राजा की पटह (डुग्गी पिटवाकर की गई) घोषणा सुनकर नाना देशों के करोड़ों ब्राह्मण आये, लेकिन जैसे सुस्पष्ट स्वरविन्यास समन्वित शब्दोच्चारण मूक नहीं कर सकता, उसी प्रकार इस दुर्बोध पदविन्यासमय श्लोक की व्याख्या कोई न कर सका! जैसे मूक गुड़ का स्वाद नहीं बता सकता, यह भी उसी प्रकार की स्थिति थी।।१९-२३।।

वयं च तत्र याताः स्मो धनलोभेननारद। दुर्बोधत्वान्नमस्कृत्यश्लोकंचात्रसमागताः॥२४॥
दुर्व्याख्येयस्त्वयंश्लोकोधनंलभ्यंनचैवनः। तीर्थयात्रांकथंयामीत्येवाचिंत्यात्रचागताः॥२५॥
एवंफाल्गुनतेषांतुवचःश्रुत्वामहात्मनाम्। अतीवसंप्रहृष्टोऽहं तान्विसृज्येत्यचिन्तयम्॥२६॥
अहोप्राप्तउपायोमेस्थानप्राप्तौनसंशयः। श्लोकंव्याख्यायनृपतेर्लप्स्येस्थानंधनं तथा॥२७॥
विद्यामूल्येन नैवं च याचितःस्यात्प्रतिग्रहः। सत्यमाह पुराणर्षिवासुदेवो जगद्गुरुः॥२८॥
धर्मस्य यस्यश्रद्धास्यान्न च सा नैव पूर्यते। पापस्ययस्यश्रद्धास्यान्न च सापिनपूर्यते॥२९॥
एवं विचिन्त्यविद्वांसः प्रकुर्वन्तियथारुचि। सत्यमेतद्विभोर्वाक्यंदुर्लभोऽपियथाहिमे॥३०॥
मनोरथोऽयंसफलःसंभूतोंऽकुरितःस्फुटम्। एनं च दुर्विदंश्लोकमहंजानामिसुस्फटम्॥३१॥
अमूर्तैः पितृभिः पूर्वमेष ख्यातो हि मे पुरा। एवंहर्षान्वितःपार्थसंचित्याऽहंततो मुहुः॥३२॥
प्रणम्य तीर्थं चलितो महीसागरसंगमम्। वृद्धब्राह्मणरूपेण ततोऽहं यातवान्नृपम्॥३३॥

"हे नारद! हम लोग भी धनलोभ से वहां गये थे। परन्तु उस दुर्बोध श्लोक को नमस्कार करके यहां चले आये। श्लोक दुर्बोध है, अतः हम धन नहीं पा सके। अब यह तीर्थयात्रा कैसे कर सकेंगे? इस चिन्ता से हम दुःखी होकर यहां चले आये।" हे फाल्गुन! उन महात्मा द्विजगण की यह बात सुनकर मैं विचार करने लगा। "अहो! मुझे स्थान प्राप्ति हेतु यह उपाय मिला। मैं उन राजा से श्लोक की व्याख्या करके स्थान तथा धन लाभ कर लूंगा। इस प्रकार मुझे विद्यामूल्य प्राप्त होगा। अतः उसमें प्रार्थना प्रतिग्रह दोष नहीं होगा। (अर्थात् प्रार्थना करके दान मांगने का दोष नहीं होगा)। ऋषि पुराणपुरुष वासुदेव जगद्गुरु हैं। उन्होंने सत्य ही कहा है कि "यदि किसी की श्रद्धा धर्म में होती है, तब वह अपूर्ण रहेगा ऐसा नहीं है। विद्वान् लोग इस प्रकार से विचार करके यथारुचि आचरण करते हैं।" यह विष्णुवाक्य सत्य है। क्योंकि मेरी इच्छा दुर्लभ है। यह मुझे स्पष्टतः ज्ञात है। पूर्व में अमूर्त्त पितरों ने इसकी व्याख्या मुझसे कहा था। हे पार्थ! मैं बारम्बार यही चिन्तन करता हर्षोत्फुल्ल चित्त से महीसागर संगम तीर्थ को प्रणाम करके वृद्ध ब्राह्मण के वेष में उस राजा के यहां गया।।२४-३३।।

इदं भणितवानस्मि श्लोकव्याख्यां नृप शृणु। यत्ते पटहविख्यातं दानंच प्रगुणीकुरु॥३४॥
एवमुक्ते नृपः प्राह प्रोचुरेवं हि कोटिशः। द्विजोत्तमाः पुनर्नास्य प्रोक्तुमर्थो हिशक्यते॥३५॥
के द्विहेतूषडाख्यातान्यधिष्ठानानिकानिच। कानिचैवषडंगानिकौद्वौपाकौतथास्मृतौ॥३६॥
केचप्रकाराश्चत्वारःकिंस्वित्तत्त्रिविधंद्विज। त्रयोनाशाश्चकेप्रोक्तादानस्यैतत्स्फुटंवद॥३७॥
स्फुटान्प्रश्नानिमान्सप्त यदि वक्ष्यसि ब्राह्मण। ततो गवां सप्तनियुतं सुवर्णंतावदेवतु॥३८॥

सप्तग्रामांश्चदास्यामिनोचेद्यास्यसिस्वंगृहम्। इत्युक्तवचनंपार्थसौराष्ट्रस्वामिनंनृपम्॥३९॥
धर्मवर्माणमस्त्वेवं प्रावोचमवधारय। श्लोकव्याख्यां स्फुटां वक्ष्ये दानहेतूचतौशृणु॥४०॥

मैंने राजा से जाकर कहा—"हे महाराज! श्लोक की व्याख्या सुनिये। तथापि आप देय द्रव्य को द्विगुणित करिये।" मेरी बात सुनकर राजा ने कहा—"अन्य कोटि-कोटि द्विजोत्तम ने भी ऐसी उक्ति कहा था। तथापि कोई भी उस श्लोक की व्याख्या नहीं कर सका। दो का हेतु क्या है? छः अधिष्ठान किसका नाम है? चार प्रकार किसका नाम है? हे द्विज! त्रिविध किसे कहते हैं? नाशत्रय क्या है? दान सम्बन्धित इन सभी तत्व को स्पष्टतः कहिये। यदि आपने इन सात प्रश्नों की स्पष्ट व्याख्या कर दिया, तब ७ नियुत गौ, सात नियुत स्वर्ण तथा ७ ग्राम प्रदान करूंगा। यदि उत्तर नहीं दे सके, तब स्वस्थान वापस चले जायें।" हे पार्थ! सौराष्ट्रराज धर्मवर्मा के कहने पर मैंने कहा कि यही हो। तथा मैंने यह भी कहा मैं दानार्थ स्पष्ट कहूंगा। आप पहले दान के हेतु द्वय को सुनें।।३४-४०।।

अल्पत्वं वा बहुत्वंवादानस्याभ्युदयावहम्। श्रद्धाशक्तिश्चदानानांवृद्ध्यक्षयकरेहिते॥४१॥
तत्र श्रद्धाविषये श्लोका भवन्ति। कायक्लेशैश्च बहुभिर्न चैवाऽर्थस्य राशभिः॥४२॥
धमः संप्राप्यते सूक्ष्मः श्रद्धा धर्मोऽद्भुतं तपः। श्रद्धा स्वर्गश्च मोक्षश्च श्रद्धा सर्वमिदं जगत्॥४३॥
सर्वस्वं जीवितं चापि दद्यादश्रद्धयायदि। नाप्नुयात्सफलंकिंचिच्छ्रद्दधानस्ततोभवेत्॥४४॥
श्रद्धया साध्यते धर्मो महद्भिर्नार्थराशिभिः। अकिंचना हिमुनयः श्रद्धावन्तोदिवंगताः॥४५॥
त्रिविधा भवतिश्रद्धादेहिनांसास्वभावजा। सात्त्विकीराजसीचैवतामसीचेतितांशृणु॥४६॥

श्रद्धा तथा शक्ति, दान के सम्बन्ध में ये दो ही वृद्धि तथा अक्षयत्व साधक हैं। ये दोनों अल्प हों अथवा अधिक हों, दानार्थ ये ही अभ्युदयकारी होते हैं। श्रद्धा के सम्बन्ध में एक श्लोक कहा गया है। अनेक कायक्लेश किंवा राशि-राशि अर्थ द्वारा भी अणुमात्र धर्मलाभ नहीं हो सकता। श्रद्धात्मक तप ही अद्भुद् धर्म है। श्रद्धा ही स्वर्ग-मोक्ष रूप है। श्रद्धा ही समस्त जगत् है। श्रद्धाहीन यदि प्राण भी दान करे, तब भी उसे कोई फल नहीं मिलेगा। इसलिए श्रद्धावान् होना चाहिये। श्रद्धा से ही धर्म उपार्जित होता है। तथापि राशि-राशि धनदान से ऐसा नहीं होता। यदि श्रद्धा नहीं है। मुनिगण निर्धन होकर भी स्वर्ग गमन में समर्थ हो जाते हैं। देहीगण की श्रद्धा स्वभाव जात है। यह सात्विकी, राजसी तथा तामसी रूपेण त्रिविध है। अब इसका विवरण सुनें।।४१-४६।।

यजन्ते सात्त्विकादेवान्यक्षरक्षांसिराजसाः। प्रेतान्भूतपिशाचांश्चयजन्तेतामसाजनाः॥४७॥
तस्माच्छ्रद्धावता पात्रे दत्तंन्यायार्जितंहियत्। तेनैवभगवान्रुद्रःस्वल्पकेनापितुष्यति।
शक्तिविषये च श्लोका भवन्ति॥४८॥

सात्विकी श्रद्धालु लोग देवगण की, राजस श्रद्धालु यक्ष-राक्षसों की, तामस श्रद्धावाले लोग भूत-प्रेत-पिशाचों का यजन करते हैं। अतः श्रद्धा के साथ न्याय से अर्जित वित्त अल्प भले ही हो, यदि योग्य पात्र व्यक्ति को प्रदान किया जाता है, तब उससे भगवान् रुद्र प्रसन्न हो जाते हैं। शक्ति विषयक भी श्लोक है।।४७-४८।।

कुटुंबभुक्तवसनाद्देयं यदतिरिच्यते। मध्वास्वादो विषं पश्चाद्दातुर्धर्मोऽन्यथा भवेत॥४९॥
शक्ते परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि। मध्वापानविषादः स धर्माणां प्रतिरूपकः॥५०॥
भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौर्ध्वदैहिकम्। तद्भवत्यसुखोदर्कं जीवतोऽस्यमृतस्य च॥५१॥

सामान्यं याचितंन्यासमाधिर्दाराश्चदर्शनम्। अन्वाहितंचनिक्षेपःसर्वस्वंचान्वयेसति॥५२॥
आपत्स्वपि न देयानि नववस्तूनि पण्डितैः। यो ददातिसमूढात्माप्रायश्चित्तीयतेनरः॥५३॥

यथा—पोष्य वर्ग के भरण-पोषण के अतिरिक्त जो धन बचे वही दानार्थ मधुरूप है। उसके द्वारा ही धर्मलाभ होता है। अन्यथा दान विषवत् कुफलप्रद होता है। जिसके स्वजन दुःख से जीवन निर्वाह करते हैं, अथच वह स्वयं समर्थ अन्य लोगों को दान देता है, वह विषाक्त मधुपान के समान विपरीत फल का भागी होता है। पोष्यवर्ग के भरण-पोषण में व्याघात करके यदि श्राद्धादि कार्य किया जाता है, तब उसका परिणाम भावित काल में, मरणान्त में कभी भी सुखकर नहीं होता। प्रार्थना से प्राप्त, गच्छित, बन्धक रख कर पाया गया तथा जो द्रव्य अस्वामिक (जिसका कोई स्वामी न हो) हो, ऐसे द्रव्य पर सभी परिजनों का अधिकार रहता है। तथा यदि वंशधर हैं, तब उस पर वंशधरों का भी स्वत्व ज्ञातव्य है। उक्त द्रव्य तथा भार्या को पण्डितजन आपात्काल में भी दान न करें। जो मूढ़ात्मा यह दान देता है, उसे प्रायश्चित्त करना होगा।।४९-५३।।

इति ते गदितौ राजन्द्वौ हतू श्रूयतामतः। अधिष्ठानानि वक्ष्यामि षडेवशृणुतान्यपि॥५४॥
धर्ममर्थं च कामं च व्रीडाहर्षभयानि च। अधिष्ठानानि दानानां षडेतानि प्रचक्षते॥५५॥
पात्रेभ्यो दीयते नित्यमनपेक्ष्य प्रयोजनम्। केवलं धर्मबुद्ध्या यद्धर्मदानं तदुच्यते॥५६॥
धनिनं धनलोभेन लोभयित्वाऽर्थमाहरेत्। तदर्थदानमित्याहुः कामदानमतः शृणु॥५७॥
प्रयोजनमपेक्ष्यैव प्रसंगाद्यत्प्रदीयते। अनर्हेषु सरागेण कामदानं तदुच्यते॥५८॥
संसदिव्रीडयाऽऽश्रुत्यअर्थिभ्यःप्रददाति च। प्रतिदीयतेचयद्दानंव्रीडादानमितिश्रुतम्॥५९॥
दृष्ट्वाप्रियाणि श्रुत्वा वा हर्षवद्यत्प्रदीयते। हर्षदानमिति प्रोक्तं दानं तद्धर्मचिंतकैः॥६०॥
आक्रोशानर्थहिंसानां प्रतीकाराय यद्भवेत्। दीयतेऽनुपकर्तृभ्यो भयदानं तदुच्यते॥६१॥

अब छः अधिष्ठानों को कहता हूं। धर्म, अर्थ, काम, लज्जा, हर्ष, भय—ये दान के छः अधिष्ठान हैं। प्रयोजन की अपेक्षा किये बिना जो दान सत्पात्र को प्रतिदिन दिया जाता है, वह धर्मदान है। धनलाभ के लिए धनी को ललचा कर उससे जो दान लिया जाता है, वह अर्थदान है। अब कामदान को सुनिये। किसी प्रयोजन साधनार्थ प्रसंग क्रम में अनुराग के कारण अयोग्य पात्र को किया दान कामदान है। सभा में "ये बहुत बड़े दाता हैं" इत्यादि प्रशंसा वाक्य से लज्जित होकर जो दान करते हैं, वह लज्जादान है। प्रिय विषय का दर्शन होने पर तथा अच्छी सूचना मिलने पर हर्ष द्वारा जो दान करते हैं, वह धर्मज्ञों द्वारा हर्षदान कहा गया है। आक्रोश, अनर्थ तथा हिंसा को रोकने हेतु जो दान किया जाता है, वही भयदान है।।५४-६१।।

प्रोक्तानि षडधिष्ठानान्यंगान्यपि च षट्च्छृणु। दाताप्रतिग्रहीताचशुद्धिर्देयं चधर्मयुक्॥६२॥
देशकालौच दानानामंगान्येतानिषड्विदुः। अपरोगीचधर्मात्मादित्सुरव्यसनःशुचिः॥६३॥
अनिंद्याजीवकर्मा चषड्भिर्दाताप्रशस्यते। अनृजुश्चाश्रद्दधानोऽशान्तात्माधृष्टभीरुकः॥६४॥
असत्यसंधो निद्रालुर्दाताऽयंतामसोऽधमः। त्रिशुक्लःकृशवृत्तिश्चघृणालुःसकलेन्द्रियः।
विमुक्तो योनिदोषेभ्यो ब्राह्मणः पात्रमुच्यते॥६५॥

सौमुख्यादभिसंप्रीतिरर्थिनां दर्शने सदा। सत्कृतिश्चानसूया च तदा शुद्धिरितिस्मृता॥६६॥
अपराबाधमक्लेशं स्वयत्नेनार्जितं धनम्। स्वल्पं वा विपुलंवापिदेयमित्यभिधीयते॥६७॥
तेनापि किल धर्मेण उद्दिश्य किल किञ्चन। देयं तद्धर्मयुगिति शून्येशून्यं फलं मतम्॥६८॥

यह मैंने षड्विध अधिष्ठान का वर्णन किया। अब अंगों का वर्णन सुनें। दाता, प्रतिग्रहीता, शुद्धता, धर्मानुमत देय द्रव्य, देश तथा काल, ये छः दान के अंग हैं। रोगहीन, धर्मात्मा, दान देने को उत्सुक, व्यसनरहित, पवित्र तथा अनिन्दित जीविका वाले, ऐसे छः दाता प्रशस्त हैं। सरलतारहित, श्रद्धारहित, अशान्तात्मा, निर्लज्ज, भीरु, सत्यपालन से विमुख, निद्रालु को तामस तथा अधमदाता कहा गया है। जो बाह्य तथा आभ्यन्तरिक रूप से तथा कर्म से शुद्ध हैं, दरिद्र, दयावान्, संयतेन्द्रिय युक्त, योनिदोषरहित हैं, ऐसा ब्राह्मण उत्तम पात्र है। जो याचक को देखकर प्रसन्न होते हैं, उसका सत्कार करते हैं, असूया नहीं करते, दान में वे सभी शुद्धिरूप कहे गये हैं। स्वल्प हो अथवा अधिक हो, जिसे देने में अन्य को क्लेश न हो, इस प्रकार से अपने परिश्रम से अर्जित धन को ही देयधन कहा जाता है। कामना किये बिना कोई फल नहीं होता। उत्तम तथा पूर्वोक्त लक्षण वाले धन का तथा धर्मानुसार की गई कामना करके जो दान किया जाता है, उससे धर्मलाभ होता है। कामना न करने से कोई फल नहीं होता।।६२-६८।।

न्यायेन दुर्लभं द्रव्यं देशे कालेऽपिवापुनः। दानार्हौदिशकालौतौस्यातांश्रेष्ठौनचान्यथा॥६९॥
षडंगानीतिचोक्तानिद्वौ चपाकावतःशृणु। द्वौपाकौदानजौप्राहुःपरत्राऽथत्विहोच्यते॥७०॥
सद्भ्यो यद्दीयते किंचित्तत्परत्रोपतिष्ठति। असत्सु दीयते किंचित्तद्दानमिह भुज्यते॥७१॥

न्यायानुसार जो द्रव्य जिस देश में तथा काल में दुर्लभ है, उस देश तथा उस काल में वह दान देना योग्य तथा प्रशस्त है। इसके विपरीत देना प्रशस्त नहीं है। इन छः अंगों का मैंने वर्णन कर दिया। अब पाकद्वय का वर्णन सुनिये। दान से दो प्रकार का पाक अथवा फल होता है। एक इहकाल का होता है। अन्य परकाल (बाद में परलोक में) में मिलता है। साधु जन को जो कुछ भी दिया जाता है, वह परकाल में फलदायक है। जो असज्जन को दिया जाता है, उसका फलभोग इहकाल में ही मिलता है।।६९-७१।।

द्वौपाकाविातिनिर्दिष्टौप्रकारांश्चतुरःशृणु। ध्रुवमाहुस्त्रिकंकाम्यंनैमित्तिकमितिक्रमात्॥७२॥
वैदिको दानमार्गोऽयं चतुर्धा वर्ण्यते द्विजैः। प्रपारामतडागादिसर्वकामफलं ध्रुवम्॥७३॥
तदाहुस्त्रिकमित्याहुर्दीयते यद्दिनेदिने। अपत्यविजयैश्वर्यस्त्रीबालार्थं प्रदीयते॥७४॥
इच्छासंस्थं च यद्दानंकाम्यमित्यभिधीयते। कालापेक्षंक्रियापेक्षंगुणापेक्षमितिस्मृतौ॥७५॥
त्रिधानैमित्तिकंप्रोक्तंसदाहोमविवर्जितम्। इति प्रोक्ताःप्रकारास्तेत्रैविध्यमभिधीयते॥७६॥

दो पाक का यही रूप है। अब ४ प्रकारों को कहता हूं। ध्रुव, त्रिक्, काम्य तथा नैमित्तिक—ये दान के चार प्रकार हैं। इनमें पौसरा, उपवन, कूप, तालाब आदि का साधारणों की कामना से जो (जन साधारण के लिये) दान करते हैं, वह ध्रुवदान है। सन्तान, विजय, ऐश्वर्य, स्त्री तथा बालक आदि के निमित्त दिया दान त्रिक् है। स्वेच्छा से जो दान देते हैं, वह काम्यदान है। काल-क्रिया-गुण के उद्देश्य से जो दान किया जाता है (काल अर्थात् ग्रहण, संक्रान्ति, पर्व, किसी श्राद्धादि काल में) होमादि रहित उस दान को नैमित्तिक कहते हैं। इस प्रकार मैंने प्रकार

चतुष्टय का वर्णन किया। अब त्रिविधत्व सुनें। उत्तम आठ प्रकार के, मध्यम ४ प्रकार के दानों को छोड़ कर बाकी समस्त दान अधम दान हैं। यही दान का त्रिविधत्व है।।७२-७६।।

अष्टोत्तमानि चत्वारि मध्यमाधिविधानतः। कानीयसानि शेषाणि त्रिविधत्वमिदं विदुः।।७७।।
गृहप्रासादविद्याभूगोकूपप्राणहाटकम्। एतान्युत्तमदानानि उत्तमद्रव्यदानतः।।७८।।
अन्नारामं च वासांसिहयप्रभृतिवाहनम्। दानानि मध्यमानीति मध्यमद्रव्यदानतः।।७९।।
उपानच्छत्रपात्रादिददधिमध्वासनानि च।।८०।।
दीपकाष्ठोपलादीनि चरमं बहुवार्षिकम्। इति कानीयसान्यहुर्दाननाशत्रयं शृणु।।८१।।

गृह, प्रासाद, विद्या, भूमि, गौ, कूप, प्राण, स्वर्ण, ये सभी उत्तम दान हैं। अन्न, गृह, वस्त्र तथा वाहन दान मध्यम दान हैं। पादुका, छत्र, पात्र, दधि, मधु, आसन, दीप, काष्ठ, प्रस्तर आदि तथा ऐसी वस्तु जो दीर्घकालीन उपयोग में आये, उनका दान अधम दान है। अब दान सम्बन्धित नाशत्रय का श्रवण करिये।।७७-८१।।

यद्दत्त्वा तप्यते पश्चादासुरं तद्वथा मतम्। अश्रद्धया यद्ददाति राक्षसं स्याद्वृथैवतत्।।८२।।
यच्चाऽऽक्रुश्यददात्यंगदत्त्वाचक्रोशतिद्विजम्। पैशाचंतद्वथा दानंदानानाशास्त्रयस्त्वमी।।८३।।
इति सप्तपदैर्बद्धं दानमाहात्म्यमुत्तमम्। शक्त्या ते कीर्तितंराजन्साधुवाऽसाधु वा वद।।८४।।

जिस वस्तु को दान करके बाद में अनुताप मन में हो, वह आसुरी दान है। यह व्यर्थ जाता है। जिसे अश्रद्धापूर्वक दिया जाये, वह राक्षस दान है। वह भी वृथा है। हे राजन्! जो आक्रोश से दिया जाये, किम्वा जिस ब्राह्मण को दान दिया गया, उससे आक्रोश प्रकट किया जाये, तब वह पैशाचदान है। वह भी वृथा है। इस प्रकार नाशत्रय का मैंने वर्णन कर दिया। हे राजन्! सप्तपद् निबद्ध उत्तम दान महिमा का मैंने अपनी शक्ति के अनुसार वर्णन कर दिया। यह उत्तम था अथवा नहीं, यह कहें।।८२-८४।।

धर्मवर्मोवाच

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः।
अद्य ते कृतकृत्योऽस्मि कृतः कृतिमतां वर।।८५।।
पठित्वासकलंजन्मब्रह्मचारीयथा वृथा। बहुक्लेशात्प्राप्तभार्यःसावृथाऽप्रियवादिनी।।८६।।
क्लेशेनकृत्वा कूपं वा सच क्षारोदकोवृथा। बहुक्लैशैर्जन्म नीतं विनाधर्मं तथावृथा।।८७।।
एवं मे यद्वथा नाम जातं तत्सफलं त्वया। कृतं तस्मान्नमस्तुभ्यंद्विजेभ्यश्चनमोनमः।।८८।।
सत्यमाह पुरा विष्णुः कुमारान्विष्णुसद्मनि।।८९।।
नाहं तथाद्मि यजमानहविर्वितानश्च्योतद्घृतप्लुतमदन्हुतभुङ्मुखेन।
यद्ब्राह्मणस्य मुखतश्चरतोऽनुघासं तुष्टस्य मय्यपहितैर्निजकर्मवाकैः।।९०।।
तन्मयाऽशर्मणा वापि यद्विप्रेष्वप्रियं कृतम्। सर्वस्य प्रभवो विप्रास्तत्क्षमंतांप्रसादये।।९१।।
त्वं च कोऽसिनसामान्यःप्रणम्याहं प्रसादये। आत्मानंख्यापयमुनेप्रोक्तश्चेत्यबवंतदा।।९२।।

धर्मवर्मा कहते हैं—हे प्रभो! आज मेरा जन्म सफल हो गया। मेरी तपस्या सफल हो गयी। हे ज्ञानियों में

अग्रगण्य! आपने आज मुझे कृतार्थ कर दिया। ब्रह्मचारी आजन्म वेदाध्ययन करके अन्त में अनेक क्लेशपूर्वक भार्या लाभ करता है, उसका वह अध्ययन तथा ब्रह्मचर्य जिस प्रकार से व्यर्थ है, अप्रिय बोलने वाली भार्या जैसे वृथा है, क्लेश से खोदा गया लवण जलयुक्त कूप जैसे वृथा है, जैसे धर्मरहित मानव जीवन वृथा है, उसी प्रकार मेरा जन्म भी विषफल जैसा ही था! लेकिन वह आपकी कृपा से सफल हो गया। आपको प्रणाम तथा द्विजगण को भी प्रणाम! पूर्वकाल में वैकुण्ठ में विष्णुदेव ने सनत्कुमार से सत्य ही कहा था कि मुझमें निवेशित चित्त तथा स्वकर्मफलानुरूप सुख-दुःख से सन्तुष्ट ब्राह्मण के मुख द्वारा मैं जितनी तृप्ति से भोजन करता हूं, यजमान की यज्ञभूमि में अग्निमुख द्वारा प्रदान की गयी हवि से मैं उतना तृप्त नहीं हो पाता! अतः यदि मैंने दुर्भाग्य से विप्रगण का कुछ अप्रिय किया हो, तब हे सर्वप्रभु विप्रगण! आप सब को मैं प्रसन्न करता हूं। आप उसे क्षमा करें! आप कौन हैं? आप सामान्य व्यक्ति कदापि नहीं हैं। मैं आपको भी प्रसन्न करता हूं। हे मुनिवर! आप अपना परिचय दीजिये।।८५-९२।।

नारद उवाच

नारदोऽस्मि नृपश्रेष्ठ स्थानकार्थी समागतः। प्रोक्तं च देहि मे द्रव्यंभूमिंचस्थानहेतवे॥९३॥
यद्यपीयं देवतानांभूमिर्द्रव्यंचपार्थिव!। तथापियस्मिन्यःकाले राजाप्रार्थ्यःसनिश्चितम्॥९४॥
स हीश्वरस्यावतारो भर्त्ता दाताऽभयस्य सः। तथैव त्वामहं याचेद्रव्यशुद्धिपरीप्सया॥९५॥
पूर्वं समाऽऽलयं देहि देयार्थे प्रार्थनापरः॥९६॥

राजा का वचन सुनकर मैंने उनसे कहा—"हे राजन्! मैं नारद हूं। मैं स्थान चाहता था, तभी यहां आ गया। तथा आपके प्रश्नों का उत्तर भी दिया। इसलिए मुझे कथित धन तथा स्थानार्थ भूमि प्रदान करें। हे राजन्! यद्यपि सभी भूमि तथा द्रव्य देवगण का ही है, तथापि जिस समय जो राजा होता है, उसी से यह सब मांगना चाहिये। इसमें सन्देह नहीं है। वह राजा ही ईश्वर का अवतार है। वही भरण-पोषण करने वाला तथा अभय देने वाला कहा गया है। तभी द्रव्यशुद्धि की कामना से आपसे प्रार्थना करता हूं। देय वस्तु में से पहले मुझे एक गृह प्रदान करें। यही प्रार्थना है।।९३-९६।।

राजोवाच

यदि त्वं नारदो विप्र राज्यमस्त्वखिलं तव। अहंहि ब्राह्मणानांतेदास्यंकर्तानसंशयः॥९७॥

राजा कहते हैं—यदि आप नारद हैं, तब हे विप्र! यह राज्य आपका ही हो। मैं ब्राह्मणों की तथा आपकी दासता करके जीवन यापन करूंगा, इसमें सन्देह नहीं है।।९७।।

नारद उवाच

यद्यस्माकं भवान्भक्तस्तत्ते कार्यं च नो वचः॥९८॥
सर्वं यत्तद्देहि मे द्रव्यंमुक्तं भुवं च मे सप्तगव्यूतिमात्राम्।
भूयात्त्वत्तोऽप्यस्य रक्षेति सोऽपि मेने त्वहं चिन्तये चाऽर्थशेषम्॥९९॥

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे नारदार्जुनसम्वादे दानभेदप्रशंसावर्णनंनाम चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

नारद कहते हैं—"हे राजन्! यदि आप मेरे भक्त हैं, तब मेरे वाक्य का पालन आपका कर्त्तव्य हैं। आप मुझे अपने द्वारा कहा द्रव्य तथा ७ गव्यूति भूमि प्रदान करिये। इससे आपके बाकी वाक्यों का भी पालन हो जायेगा।" इस बात पर राजा ने सम्मति जताया। तब मैं आगे के अपने कर्त्तव्य का चिन्तन करने लगा।।९८-९९।।

।।चतुर्थ अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

पञ्चमोऽध्यायः

सुतनु-ब्राह्मण संवाद, स्वर-व्यंजन विशेषता वर्णन, तिथि निरूपण

नारद उवाच

ततोऽहं धर्मवर्माणंप्रोच्य तिष्ठेद्धनंत्वयि। कृत्यकालेग्रहीष्यामीत्यागमंरैवतं गिरिम्।।१।।
आसं प्रमुदितश्चाहं पश्यंस्तंगिरिसत्तमम्। आह्वायानंनरान्साधून्भूमेर्भुजमिवोच्छ्रितम्।।२।।
यस्मिन्नानाविधा वृक्षाः प्रकाशंते समंततः। साधुं गृहपतिं प्राप्य पुत्रभार्यादयोयथा।।३।।
मुदिता यत्र संतृप्ता वाशंते कोकिलादयः। सद्गुरोर्ज्ञानसंपन्नायथाशिष्यगणाभुवि।।४।।

नारद कहते हैं—तब मैंने धर्मवर्मा से यह कहा कि अभी मेरा धन आपके ही पास रहे। काम होने पर ले लूंगा। यह कहकर मैं रैवत पर्वत पहुंचा। वहां साधुगण को बुलाकर भूमि से उठी बाहु के समान प्रतीत हो रहे गिरिराज की शोभा को देखकर मुझे अतिशय प्रसन्नता मिली। वह पर्वत पुत्र-भार्यादि से घिरे साधु गृहस्थ की तरह विविध वृक्षों से घिरा था। वहां कोकिल वैसे ही शोभित हो रहे थे, मानों सद्गुरु के पास ज्ञानसम्पन्न शिष्यगण मुदित तथा तृप्त होकर निरन्तर विविध शब्द कर रहे हों।।१-४।।

यत्र तप्त्वा तपो मर्त्यायथेप्सितमवाप्नुयुः। श्रीमहादेवमासाद्य भक्तोयद्वन्मनोरथम्।।५।।
तस्याहं च गिरेः पार्थ समासाद्यमहाशिलाम्। शीतसौरभ्यमंदेनप्रीणितोऽचिंतयंहृदि।।६।।
तावन्मया स्थानमाप्तं यदतीव सुदुर्लभम्। इदानीं ब्राह्मणार्थेऽहं कुर्वे तावदुपक्रमम्।।७।।
ब्राह्मणाश्चविलोक्यामेयेहिपात्रतमामताः। तथा हिचात्रश्रूयंतेवचांसिश्रुतिवादिनाम्।।८।।
न जलोत्तरणे शक्तायद्वन्नौः कर्णवर्जिता। तद्वच्छ्रेष्ठोऽप्यनाचारो विप्रो नोद्धरणक्षमः।।९।।
ब्राह्मणोह्यनधीयान स्तृणाग्निरिव शाम्यति। तस्मै हव्यं न दातव्यंनहिभस्मनिहूयते।।१०।।

वहां मनुष्य तपस्या करके उसी प्रकार यथेच्छ फल प्राप्त करता है, जैसे महादेव की सेवा से भक्त की कामनाये पूर्ण होती हैं। हे अर्जुन! मैं उस पर्वत की एक महान् शिला पर बैठ गया तथा वहां भी शीतल-सुरभियुक्त धीमी वायु का आनन्द लेता हुआ विचार करने लगा कि मुझे तो दुर्लभ भूमि मिल गयी, तथापि अब वहां बसाने के लिए सद् ब्राह्मण की प्राप्ति का प्रयत्न करना ही चाहिये। ऐसे ब्राह्मण को प्राप्त करना होगा, जो उत्तम दान योग्य पात्र

हो। श्रुतिवादी लोगों से यह सुना है कि जैसे कर्णविहीन नौका जलावतरण में समर्थ नहीं होती, वैसे ही यदि श्रेष्ठ ब्राह्मण आचारहीन हो, तब वह लोगों का उद्धार नहीं कर सकेगा। ऐसे ब्राह्मण को हव्यदान न करे। जैसे भस्म में (बुझी अग्नि में) होम नहीं होता, वैसे ही यह दान निष्फल होगा।।५-१०।।

दानपात्रमतिक्रम्य यदपात्रे प्रदीयते। तद्दत्तंगामतिक्रम्य गर्दभस्यगवाह्निकम्।।११।।
ऊषरे वापितं बीजं भिन्नभाण्डे च गोदुहम्। भस्मनीव हुतंहव्यं मूर्खे दानमशाश्वतम्।।१२।।
विधिहीने तथाऽपात्रे यो ददाति प्रतिग्रहम्। न केवलं हि तद्यातिशेषंपुण्यं प्रणश्यति।।१३।।
भूराप्ता गौस्तथा भोगाःसुवर्णदेहमेवच। अश्वश्चक्षुस्तथावासोघृतंतेजस्तिलाःप्रजाः।।१४।।
घ्नन्तितस्मादविद्वांस्तुबिभियाच्चप्रतिग्रहात्। स्वल्पकेनाप्यविद्वांस्तुपङ्केगौरिवसीदति।।१५।।
तस्माद्ये गूढतपसोगूढस्वाध्यायसाधकाः। स्वदारनिरताः शान्तास्तेषु दत्तं सदाऽक्षयम्।।१६।।

योग्य पात्र को छोड़कर अपात्र को दान, गौ को छोड़कर गर्दभ को घास देने के समान है! मरुस्थल में बीज बोना, टूटे बर्त्तन में गौ दुहना, भस्म में होम करना जैसे व्यर्थ है, तदनुरूप मूर्ख को दान भी फलहीन है। शास्त्राचार रहित अपात्र को दान करने से वह दत्तद्रव्य व्यर्थ हो जाता है। यही नहीं, दाता का बचाखुचा पुण्य भी नाश को प्राप्त होता है। बिना उपद्रव की भूमि, गौ, भोग्य वस्तु, स्वर्ण, देह, अश्व, (ज्ञान) चक्षु, वस्त्र, घृत, तेजः, तिल, सन्तान का दान अविद्वान् को न प्रदान करे। अविद्वान् व्यक्ति इन सबको ग्रहण करके कुफल ही पाता है। इसलिए अविद्वान् प्रतिग्रह न करे। अविद्वान् व्यक्ति अल्पमात्र भी दान लेकर वैसे ही अवसन्न हो जाता है, जैसे दलदल में फंसी गौ। इसलिए जो गुप्त रूप से तपस्यारत हैं, स्वाध्याय तत्पर हैं तथा स्वपत्नी में ही अनुरक्त रहते हैं, तथापि शान्तात्मा हैं, उनको ही सतत् दान देना अक्षय फलदायक है।।११-१६।।

देशेकालउपायेन द्रव्यं श्रद्धासमन्वितम्। पात्रे प्रदीयते यत्तत्सकलं धर्मलक्षणम्।।१७।।
न विद्यया केवलया तपसा वाऽपि पात्रता। यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्धि पात्रम्प्रचक्षते।।१८।।
तेषां त्रयाणां मध्येचविद्यामुख्योमहागुणः। विद्यांविनान्धवद्विप्राश्चक्षुष्मंतोहितेमताः।।१९।।
तस्माच्चक्षुष्मतो विद्वान्देशे देशे परीक्षयेत्। प्रश्नान्ये ममवक्ष्यंतितेभ्योदास्याम्यहंततः।।२०।।
इति संचिंत्य मनसातस्माद्देशात्समुत्थितः। आश्रमेषुमहर्षीणांविचराम्यस्मिफाल्गुन।।२१।।

योग्य (उचित) देश-काल में तथा पात्र को सदुपाय से अर्जित जो दान किया जाता है, उसी से वास्तविक धर्म की सिद्धि होती है। केवल विद्या तथा तपस्या ही पात्रता कारक नहीं है। जिसमें विद्या तथा तपस्या की स्थिति है तथा सदाचार भी जिसमें है, वही दान देने हेतु उचित पात्र है। इन तीन गुण में विद्या ही मुख्य महागुण है। जो विप्र विद्यारहित है, वह अन्धे के समान ही है। विप्र का नेत्र है विद्या। अतः विप्र के लिये विद्यारूपी नेत्र होना आवश्यक है। इसलिए चक्षुष्मान् (विद्यावान्) ब्राह्मण को पाने के लिए देश-देश में परीक्षा करता घूमने लगूं। जो मेरे प्रश्न का उत्तर दे सकेगा, मैं उसे ही दान करूंगा, यह मेरा मत था। इस निश्चय के साथ मैं वहां से उठ गया। हे फाल्गुन! इस प्रकार से मैं ऋषिगण के आश्रमों में विचरण करने लगा।।१७-२१।।

इमाञ्छ्लोकान्गायमानः प्रश्नरूपाञ्छृणुष्व तान्।
मातृकां को विजानाति कतिधा कीदृशाक्षराम्।।२२।।

पंचपंचाद्भुतं गेहं को विजानाति वा द्विजः। बहुरूपां स्त्रियं कर्तुमेकरूपाञ्च वेत्ति कः॥२३॥
को वा चित्रकथाबन्धं वेत्ति संसारगोचरः। कोवार्णवमाहाग्राहंवेत्तिविद्यापरायणः॥२४॥
कोवाऽष्टविधंब्राह्मण्यंवेत्तिब्राह्मणसत्तमः। युगानांचचतुर्णाम्वा कोमूलदिवसान्वदेत्॥२५॥
चतुर्दशमनूनां वा मूलवासरं वेत्ति कः। कस्मिंश्चैव दिने प्राप पूर्वं वा भास्करोरथम्॥२६॥
उद्वेजयति भूतानिकृष्णाहिरिव वेत्तिकः। को वाऽस्मिन्घोरसंसारे दक्षदक्षतमोभवेत्॥२७॥
पंथानावपि द्वौ कश्चिद्वेत्ति वक्ति च ब्राह्मणः। इतिमेद्वादशप्रश्नान्येविदुर्ब्राह्मणोत्तमाः॥२८॥
ते ये पूज्यतमास्तेषामहमाराधकश्चिरम्। इत्यहं गायमानो वै भ्रमितः सकलांमहीम्॥२९॥

मैं प्रश्नों का श्लोक गाते-गाते आश्रमों में जाता था। उन श्लोकों को तुम भी सुनो। यथा—मातृका कितने प्रकार की होती है, उसके अक्षर कैसे हैं, उनको कौन जानता है, किस द्विज को पञ्च-पञ्चात्मक अद्भुद् गृह का ज्ञान है? बहुरूपा रमणी को कौन एकरूपा करना जानता है? संसार में कौन विचित्र कथाबन्ध को जानता है? कौन विद्यापरायण मानव अर्णवगत महाग्राह को जानता है? किस ब्राह्मण को अष्टविध ब्राह्मण्य का ज्ञान है? कौन युगचतुष्टय के मूल दिवस को जानता है? भास्कर ने सर्वाग्र में किस दिन रथ प्राप्त किया? कौन कृष्णवर्णमय भूतगण को उद्विग्न करता है? इन तत्वों को कौन जानता है, इस घोर संसार में दक्ष से भी दक्षतम कौन है? कौन ब्राह्मण पथद्वय को जानता तथा उसका वर्णन कर सकता है? हे द्विजसत्तमों! मेरे इन १२ प्रश्नों का उत्तर जो जानता है, वही मेरा पूज्य है। मैं चिरकाल तक उसकी आराधना करता रहूंगा। मैं यही गान गाता समस्त पृथिवी पर घूम रहा था।।२२-२९।।

ते चाहुर्दुःखदाःख्याताःप्रश्नास्तेकुर्महे नमः। इत्यहंसकलांपृथ्वीविचिंत्यालब्धब्राह्मणः॥३०॥

परन्तु मेरे प्रश्न का उत्तर कोई ब्राह्मण नहीं दे सका। सभी कहते—आपका यह प्रश्न दुःखप्रद है। आपको प्रणाम! मैंने समग्र पृथिवी का इस प्रकार परिभ्रमण किया, तब कहीं योग्य ब्राह्मण नहीं मिले।।३०।।

हिमाद्रिशिखरासीनो भूयश्चिंतामवाप्तवान्। सर्वेविलोकिताविप्राःकिमतःकर्तुमुत्सहे॥३१॥
ततो मे चिन्तयानस्य पुनर्जातामतिस्त्वियम्। अद्यापि न गतश्चाहंकलापग्राममुत्तमम्॥३२॥
यस्मिन्विप्राः संवसन्तिमूर्तानीवतपांसि च। चतुराशीतिसाहस्राःश्रुताध्ययनशालिनः॥३३॥
स्थाने तस्मिन्गमिष्यामीत्युक्त्वाहंचलितस्तदा। खेचरोहिममाक्रम्यपरंपारं गतस्ततः॥३४॥
अद्राक्षं पुण्यभूमिस्थं ग्रामरत्नमहं महत्। शतयोजनविस्तीर्णं नानावृक्षसमाकुलम्॥३५॥
यत्र पुण्यवतां सन्ति शतशः प्रवराश्रमाः। सर्वेषामपिजीवानां यत्रान्योन्यं न दुष्टता॥३६॥
यज्ञभाजां मुनीनां यदुपकारकरं सदा। सतां धर्मवतां यद्वदुपकारो न शाम्यति॥३७॥
मुनीनां यत्र परमंस्थानंचाप्यविनाशकृत्। स्वाहास्वधावषट्कारहन्तकारोननश्यति॥३८॥

तब मैं हिमालय पर्वत जाकर वहां बैठा तथा सोचने लगा कि मैंने तो इतने ब्राह्मणों को देख लिया, अब क्या किया जाये? तब सोचते-सोचते मुझे यह बुद्धि आई कि अभी तो मैं सर्वोत्तम कलाप ग्राम गया ही नहीं, वहां तो मूर्त्तिमान तपस्या की तरह ज्ञान-अध्ययन तत्पर ८४००० ब्राह्मण निवास करते हैं, अब मैं वहीं चलता हूं। ऐसा

सोचकर मैंने आकाशमार्ग से हिमराशि की परिक्रमा किया तथा क्रमशः पुण्यभूमि में स्थित उस ग्रामरत्न कलाप को देखा। यह १०० योजन विस्तृत तथा विविध वृक्षश्रेणी से भरा हुआ था। वहां पुण्यवानों के सैकड़ों प्रधान आश्रम स्थित थे। वहां सभी जीव हिंसा रहित होकर निवास करते थे। जैसे धर्मात्मा साधुगण कभी उपकार रहित नहीं होते, वैसे ही वहां सतत् यज्ञानुष्ठान करते रहने वाले साधुगण सज्जनों के प्रति उपकार करते रहते थे। वहां के मुनिगण का अविनश्वर स्थान विराजित था। वहां का वातावरण कभी भी स्वधा-वषट्कार तथा हन्तकारादि उत्तम स्वररहित नहीं होता था।।३१-३८।।

यत्र कृतयुगस्याऽर्थं बीजं पार्थाऽवशिष्यते। सूर्यस्य सोमवंशस्य ब्राह्मणानांतथैव च॥३९॥
स्थानकंतत्समासाद्यप्रविष्टोऽहंद्विजाश्रमान्। तत्रतेविविधान्वादान्विवदंतेद्विजोत्तमाः॥४०॥
परस्परं चिंतयाना वेदा मूर्तिधरा यथा। तत्र मेधाविनः केचिदर्थमन्यैः प्रपूरितम्॥४१॥
विचिक्षिपुर्महात्मानो नभोगतामिवामिषम्। तत्राऽहं करमुद्यम्य प्रावोचंपूर्यतांद्विजाः॥४२॥
काकारावैःकिमेतैर्वोयद्यस्तिज्ञानशालिता। व्याकुरुध्वं ततः प्रश्नान्ममदुर्विषहान्बहून्॥४३॥

हे पार्थ! वहां पर आगामी सत्ययुग के लिए सूर्य, सोम तथा ब्राह्मण वंश का बीज विद्यमान था। मैंने वहां जाकर उन द्विजों के आश्रम में प्रवेश किया। देखता हूं कि मूर्त्त वेदों के समान द्विजगण परस्पर चिन्तन के साथ विभिन्न (ज्ञानात्मक) वाद-विवाद कर रहे हैं। कोई-कोई महात्मा धीमान् विप्रगण अन्य की व्याख्या का निराकरण उसी प्रकार कर रहे हैं, मानों आकाश से गिरा मांसखण्ड हो (?)। मैंने वहां हाथों को उठाकर कहा—"हे विप्रगण! मेरी समस्या का समाधान करिये। इस "का का" शब्द का क्या फल है। यदि ज्ञानगर्व हो तब आप मेरे अन्य दुरुह प्रश्नों की व्याख्या करिये"।।३९-४३।।

ब्राह्मणा ऊचुः

वद ब्राह्मण प्रश्नान्स्वाञ्छुत्वाऽऽधास्यामहे वयम्।
परमो ह्येष नो लाभः प्रश्नान्पृच्छति यद्भवान्॥४४॥
अहं पूर्विकया ते वै न्यषेधन्त परस्परम्। अहं पूर्वमहं पूर्वमिति वीरा यथा रणे॥४५॥
ततस्तानब्रवं प्रश्नानहं द्वादश पूर्वकान्। श्रुत्वा ते मामवोचन्त लीलायन्तोमुनीश्वराः।
किं ते द्विज बालप्रश्नैरमीभिः स्वल्पकैरपि॥४६॥
अस्माकं यन्निहीनं त्वं मन्यसे स ब्रवीत्वमून्॥४७॥

ब्राह्मणगण कहने लगे—"हे ब्राह्मण! आप अपने सभी प्रश्न कहिये। हम सुनकर समाधान प्रस्तुत करेंगे। आप प्रश्न कर रहे हैं, इसमें हमारा परम लाभ है।" तब रणक्षेत्र में पहुंचे वीरों की तरह वे परस्परतः "मैं पहले, मैं पहले" कहकर स्वयं आगे आने हेतु अन्य को रोकने लगे। तब मैंने उनसे अपने पूर्वोक्त १२ प्रश्नों को कहा। उन मुनीन्द्रगण ने मेरे प्रश्न सुनकर लीलापूर्वक कहा—"हे विप्र! ये सब आपके बालकोचित प्रश्न हैं। हम सबमें जो अल्पज्ञ है, वही इस प्रश्न का उत्तर दे सकता है"।।४४-४७।।

ततोऽतिविस्मितश्चाऽहंमन्यमानःकृतार्थताम्। तेषांनिहीनंसञ्चिन्त्यप्रावोचंप्रब्रवीत्वयम्।
ततः सुतनुनामा स बालोऽबालोऽभ्युवाच माम्॥४८॥

मम मन्दायते वाणी प्रश्नैः स्वल्पैस्तव द्विज!।
तथापि वच्मि मां यस्मान्निहीनं मन्यते भवान्॥४९॥

उनकी इस उक्ति को सुनकर मैं विस्मित तथा कृतार्थ हो गया तथा उनमें से जिसे सबसे अल्पज्ञ मैंने समझा, उसे ही इंगित करके मैंने कहा कि ये ही उत्तर प्रदान करें। मैंने जिसे इंगित किया था, वह आयु में बालक होकर भी ज्ञान में बालक नहीं निकला! उसका नाम था सुतनु। वह कहने लगा—हे द्विज! आपके सामान्य प्रश्न को सुनकर मेरी वाणी में उतनी स्फूर्त्ति नहीं हो पा रही है। तथापि मैं आपके प्रश्न की व्याख्या करता हूं। इसका कारण यह है कि आपने सबके बीच मुझे अल्पज्ञान वाला समझा!।।४८-४९।।

सुतनुरुवाच

अक्षरास्तु द्विपंचाशन्मातृकायाः प्रकीर्तिताः॥५०॥
ॐकारः प्रथमस्तत्र चतुर्दश स्वरास्तथा। स्पर्साश्चैव त्रयस्त्रिंशदनुस्वारस्तथैव च॥५१॥
विसर्जनीयश्च परो जिह्वामूलीय एव च। उपध्मानीय एवापि द्विपञ्चाशदमी स्मृताः॥५२॥

सुतनु कहता है—मातृका के अक्षर ५२ हैं। इनमें प्रथम है ॐकार, तदनन्तर १४ स्वर हैं। ३३ स्पर्श वर्ण, अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय, सब मिलाकर ५२ अक्षर हैं।।५०-५२।।

इति ते कथितासंख्याअर्थं चैषां शृणु द्विज।
अस्मिन्नर्थे चेतिहासंतववक्ष्यामियःपुरा॥५३॥
मिथिलायांप्रवृत्तोऽभूद्ब्राह्मणस्यनिवेशने। मिथिलायांपुरापुर्याब्राह्मणःकौथुमाभिधः॥५४॥
येन विद्याः प्रपठितावर्तन्ते भुवि या द्विज!। एकत्रिंशत्सहस्त्राणि वर्षाणां स कृतादरः॥५५॥
क्षणमप्यनवच्छिन्नं पठित्वागेहवानभूत्। ततः केनाऽपि कालेनकौथुमस्याऽभवत्सुतः॥५६॥
जडवद्वर्त्तमानः स मातृकां प्रत्यपद्यत। पठित्वा मातृकामन्यन्नांध्येति स कथञ्चन॥५७॥
ततः पिता खिन्नरूपी जडं तं समभाषत। अधीष्वपुत्रकाधीष्वतवदास्यामिमोदकान्॥५८॥
अथाऽन्यस्मै प्रदास्यामि कर्णावुत्पाटयामि ते॥५९॥

हे द्विज! अब इनका अर्थ सुनें। इस विषय में पूर्वकाल में मिथिला नगर के एक ब्राह्मण के घर जो घटना घटी थी, उसे सुनें। प्राचीन काल में मिथिला में कौथुम नामक ब्राह्मण रहता था। उसने एकत्रिंशत सहस्त्र वर्ष पर्यन्त अत्यन्त यत्नपूर्वक क्षणमात्र विश्राम किये बिना पृथिवी पर जितनी विद्या है, उन सबका अध्ययन किया था। उन्होंने पाठ समाप्त करके गृहस्थ धर्म का आश्रय लिया। कुछ काल के उपरान्त उनका एक पुत्र जन्मा। वह बालक जड़वत् था, तथापि उसने मातृका का अभ्यास किया। वह मातृका अभ्यास करके अन्य कुछ का भी अध्ययन नहीं करना चाहता था। तब उसके पिता कौथुम ने उस जड़वत् बालक से दुःखी होकर कहा—"हे पुत्र! पढ़ो। पढ़ने से तुमको मोदक दूंगा। अन्यथा अन्य किसी को मोदक देकर तुम्हारे कान उखाड़ूंगा"।।५३-५९।।

पुत्र उवाच

तात किं मोदकार्थाय पठ्यते लोभहेतवे। पठनं नाम यत्पुंसां परमार्थं हि तत्स्मृतम्॥६०॥

पुत्र कहता है—"हे तात! क्या लोभवशात् मोदक के लिए पढ़ा जाता है? लोग तो पढ़ते हैं परमार्थ हेतु"।।६०।।

कौथुम उवाच

एवं ते वदमानस्य आयुर्भवतुब्रह्मणः। साध्वी बुद्धिरियं तेऽस्तु कुतोनाध्येष्यतःपरम्।।६१।।

कौथुम कहते हैं—हे पुत्र! जैसा वाक्य तुमने कहा है, तब तुमको ब्रह्मा के समान आयु प्राप्त हो। तथापि तुमने तो अध्ययन किया नहीं, तब तुमको ऐसी साध्वी बुद्धि कहां से प्राप्त हो गई?।।६१।।

पुत्र उवाच

तात सर्वं परिज्ञेयं ज्ञातमत्रैव वै यतः। ततः परं कण्ठशोषः किमर्थं क्रियते वद।।६२।।

पितोवाच

विचित्रंभाषसेबालज्ञातोऽत्रार्थश्चकस्त्वया। बूहिबूहिपुनर्वत्सश्रोतुमिच्छामितेगिरम्।।६३।।

पुत्र कहता है—हे तात! जो कुछ ज्ञेय है, वह सब इस मातृका से मैंने जाना है। तब बेकार पढ़कर गले में कंठशोथ (सूजन) से क्या लाभ? पिता ने कहा—"हे बालक! तुम तो विचित्र बात कह रहे हो! बोलो-बोलो, तुम जो कहना चाहते हो, मैं उसे सुनना चाहता हूं"।।६२-६३।।

पुत्र उवाच

एकत्रिंशत्सहस्राणि पठित्वापित्वयापितः। नानातर्कान्भ्रान्तिरेवसंधितामनसिस्वके।।६४।।
अयमयं चायमिति धर्मो यो दर्शनोदितः। तेषु वातायते चेतस्तव तन्नाशयामि ते।।६५।।
उपदेशं पठस्येव नैवार्थज्ञोऽसितत्त्वतः। पाठमात्रा हि ये विप्रा द्विपदाः पशवो हि ते।।६६।।
तत्ते ब्रवीमि तद्वाक्यं मोहमार्तण्डमद्भुतम्।।६७।।
अकारः कथितोब्रह्मा उकारोविष्णुरुच्यते। मकारश्चस्मृतोरुद्रस्त्रयश्चैते गुणाःस्मृताः।।६८।।
अर्धमात्रा च या मूर्ध्नि परमः स सदाशिवः। एवमोंकारमाहात्म्यंश्रुतिरेषा सनातनी।।६९।।
ॐकारस्य च माहात्म्यं याथात्म्येननशक्यते। वर्षाणामयुतेनाऽपिग्रन्थकोटिभिरेववा।।७०।।

पुत्र कहता है—"हे पिता! आपने ३१ हजार वर्ष नाना तर्कशास्त्र का अध्ययन करके अपने मन में मात्र भ्रान्ति स्थापित किया है। दर्शन शास्त्र में "यह-यह-यह" इत्यादि रूप से धर्म निर्देश हैं। आपके चित्त में उसके कारण वायुवत् चंचलता आई है। मैं आपके इस चित्तचाञ्चल्य का निवारण करता हूं। आपने मात्र शास्त्रोपदेश पढ़ा है, किन्तु उसके अर्थ तत्वज्ञ नहीं हैं। जो केवल शास्त्र ही पढ़ते हैं, वे तत्व नहीं जानते। वे तो दो पैर के पशु ही हैं। अतएव मैं आपको मोहान्धकार के कारण सूर्यवत् यह अद्भुद् वाक्य कहता हूं। ॐ कार में 'अ' ब्रह्मा है, 'ऊ' विष्णु है। 'म्' रुद्र है। ये प्रकृति के गुणत्रय हैं। मस्तकस्थ अर्द्धमात्रा परमशिव है। अतः ॐकार ही ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र तथा परम शिव का समन्वय बोधक है। नित्य श्रुतियों के वाक्य में ॐकार की ही महिमा कही गयी है। अयुत-अयुत वर्ष करोड़ों ग्रन्थों द्वारा भी ओंकार की महिमा को यथावत् नहीं जाना जा सकता।।६४-७०।।

पुनर्यत्सारसर्वस्वं प्रोक्तं तच्छ्रूयतां परम्। अःकारांता अकाराद्या मनवस्ते चतुर्दश।।७१।।

स्वायम्भुवश्च स्वारोचिरौत्तमोरैवतस्तथा। तामसश्चाक्षुषःषष्ठस्तथा वैवस्वतोऽधुना॥७२॥
सावर्णिर्ब्रह्मसावर्णी रुद्रसावर्णिरिव च। दक्षसावर्णिरिवाऽपि धर्मसावर्णिरिव च॥७३॥
रौच्यो भौत्यस्तथा चापि मनवोऽमी चतुर्दश।
श्वेतः पाण्डुस्तथा रक्तस्ताम्रः पीतश्च कापिलः॥७४॥
कृष्णः श्यामस्तथा धूम्रः सुपिशङ्गःपिशङ्गकः।
त्रिवर्णःशबलोवर्णैःकर्कन्धुरइतिक्रमात् ॥७५॥
चैवस्वतः क्षकारश्च तात कृष्णः प्रदृश्यते। ककाराद्या हकारान्तास्त्रयस्त्रिंशच्च देवताः॥७६॥
ककाराद्याष्ठकारान्ताआदित्याद्वादशस्मृताः। धातामित्रोऽर्यमाशक्रोवरुणश्चांशुरेवच॥७७॥
भगो विवस्वान्पूषाच सवितादशमस्तथा। एकादशस्तथा त्वष्टा विष्णुर्द्वादशउच्यते॥७८॥

अतएव जो सर्वभूतसार है, वही आप सुनें। अकार से लेकर १४ अक्षर ही १४ मनु हैं। (अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ) इनके नाम हैं स्वायम्भुव, स्वारोचिष, औत्तम, रैवत, तामस, चाक्षुष तथा वर्त्तमान वैवस्वत मनु तथा भविष्य के सावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, दक्षसावर्णि, धर्मसावर्णि, रौच्य तथा भौत्य। इनका वर्ण है श्वेत, पाण्डु, रक्त, ताम्र, पीत, कपिल, कृष्ण, श्याम, धूम्र, सुपिशङ्ग, पिशङ्ग, त्रिवर्ण, शबल तथा कर्पूर। यथाक्रमेण ये वर्णशाली हैं। हे तात! ऋकार रूपी वैवस्वत मनु कृष्णवर्ण हैं। 'क' से लेकर 'ह' तक के ३३ वर्ण ही ३३ देवता हैं। इनमें क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ—ये १२ वर्ण बारह आदित्य हैं। इनके नाम हैं धाता, मित्र, अर्यमा, शक्र, वरुण, अंशु, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा तथा विष्णु।।७१-७८।।

जघन्यजः स सर्वेषामादित्यानां गुणाधिकः। डकाराद्याबकारान्ता रुद्राश्चैकादशैवतु।
कपाली पिङ्गलो भीमो विरूपाक्षो विलोहितः॥७९॥
अजकः शासनः शास्ता शम्भुश्चण्डो भवस्तथा॥८०॥
भकाराद्याः षकारान्ताअष्टौहिवसवोमताः। ध्रुवो घोरश्चसोमश्चआपश्चैवनलोऽनिलः॥८१॥
प्रत्यूषश्चप्रभासश्चअष्टौतेवसवःस्मृताः। सौ हश्चेत्यश्विनौख्यातौ त्रयस्त्रिंशदिमेस्मृताः॥८२॥
अनुस्वारो विसर्गश्च जिह्वामूलीयएव च। उपध्मानीयइत्येते जरायुजास्तथाऽण्डजाः॥८३॥
स्वेदजाश्चोद्भिजाश्चेतिततजीवाःप्रकीर्तिताः। भावार्थःकथितश्चायंतत्त्वार्थंशृणुसांप्रतम्॥८४॥

इनमें विष्णु सर्वकनिष्ठ होकर भी सर्वापेक्षा अधिक गुणी हैं। ड ढ ण त थ द ध न प फ ब—ये ११ वर्ण ही ११ रुद्र हैं। इनके नाम हैं कपाली, पिंगल, भीम, विरूपाक्ष, लोहित, अजक, शासन, शास्ता, शंभु, चण्ड तथा भव।

भ म य र ल व श ष, ये ही आठ वर्ण अष्ट वसु हैं। इनके नाम हैं ध्रुव, घोर, सोम, आप, नल, अनिल, प्रत्यूष, प्रभास। 'स' तथा 'ह' ही अश्विनीकुमार द्वय हैं। समष्टि में ये ३३ देवता ही ३३ वर्ण हैं। अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानी, ये ही ४ क्रमशः जरायुज, अण्डज, स्वेदज तथा उद्भिद प्राणी हैं। मैंने मातृका का भावार्थ कहा। अब तत्त्वार्थ सुनें।।७९-८४।।

ये पुमांसस्त्वमून्देवान्समाश्रित्य क्रियापराः। अर्धमात्रात्मकेनित्येपदेलीनास्तएवहि॥८५॥
चतुर्णां जीवयोनीनां तदैव परिमुच्यते। यदाभून्मनसा वाचा कर्मणा च यजेत्सुरान्।
यस्मिञ्छास्त्रे त्वमी देवा मानिता नैव पापिभिः॥८६॥
तच्छास्त्रं हि न मन्तव्यं यदि ब्रह्मा स्वयं वदेत्॥८७॥
अमीचदेवाःसर्वत्र श्रौते मार्गे प्रतिष्ठिताः। पाषण्डशास्त्रे सर्वत्र निषिद्धाःपापकर्मभिः॥८८॥
तदमून्ये व्यतिक्रम्य तपो दानमथो जपम्। प्रकुर्वन्ति दुरात्मानो वेपन्ते मरुतः पथि॥८९॥
अहोमोहस्यमाहात्म्यंपश्यताऽविजितात्मनाम्। पठन्तिमातृकांपापामन्यन्तेनसुरानिह॥९०॥

जो मनुष्य इन सब देवताओं का आश्रय लेकर क्रियानुष्ठान करते हैं, वे अर्द्धमात्रक परमपद में लीन हो जाते हैं। चतुर्विध प्राणी जब मन-कर्म-वचन से इन देवगण की आराधना करते हैं, तब वे मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। जो पापीगण द्वारा रचित शास्त्र इन देवगण को नहीं मानता, भले ही ऐसे शास्त्र को ब्रह्मा जैसे ने क्यों न कहा हो, तथापि उस शास्त्र का पालन न करे। ये देवता श्रौत पथ पर सदा स्थित रहते हैं। तथापि पापी पाखण्ड शास्त्र में इनको निषिद्ध मानते हैं। इसलिए जो इन देवगण का अतिक्रम करके जप-तप तथा दानादि अनुष्ठान करते हैं, वे सभी दुरात्मा वायुमार्गावलम्बन में कम्पित होते हैं। अहो! मोह की अनिर्वचनीय महिमा देखें! अजितात्मा पापीजन मातृका तो बोलते हैं (शब्द बोलते हैं) तथापि देवगण को नहीं मानते!।।८५-९०।।

सुतनुरुवाच

इति तस्यवचःश्रुत्वा पिताऽभूदतिविस्मितः। पप्रच्छचबहून्प्रश्नान्सोप्यवादीत्तथातथा॥९१॥
मयापि तव प्रोक्तोऽयं मातृकाप्रश्न उत्तमः। द्वितीयं शृणु तं प्रश्नं पञ्चपञ्चाद्भुतं गृहम्॥९२॥
पञ्चभूतानि पञ्चैव कर्मज्ञानेन्द्रियाणि च। पञ्च पञ्चाऽपि विषया मनोबुद्ध्यहमेव च॥९३॥
प्रकृतिः पुरुषश्चैव पञ्चविंशः सदाशिवः। पञ्चपञ्चभिरेतैस्तु निष्पन्नं गृहमुच्यते॥९४॥
देहमेतदिदं वेद तत्त्वतो यात्यसौशिवम्। बहुरूपां स्त्रियं प्राहुर्बुद्धिं वेदान्तवादिनः॥९५॥

सुतनु कहते हैं—पुत्र का यह वचन सुनकर पिता अत्यन्त विस्मित हो गये तथा उन्होंने अनेक प्रश्न किया। हे मुनिवर! मैंने भी आपसे उत्तम मातृका के प्रश्नोत्तर में वही कहा। अब आप द्वितीय प्रश्न 'पञ्च-पञ्च' 'अद्भुद्' गृह की कथा सुनें। पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय, ५ विषय, पंचभूत, ये २० हो गये तथा मन-बुद्धि-अहंकार-प्रकृति-परमपुरुष सदाशिव, इन ५ को मिलाने से = २५ तत्त्व से युक्त देह ही गृह है। जो इस देहरूपी गृह को यथायथ जान पाते हैं, वे ही शिव में लयीभूत होते हैं। वेदान्त वादीगण बुद्धि को ही बहुरूपा रमणी कहते हैं।।९१-९५।।

सा हि नानार्थभजनान्नानारूपं प्रपद्यते। धर्मस्यैकस्य संयोगाद्बहुधाऽप्येकिकैव सा॥९६॥
इति यो वेद तत्त्वार्थंनाऽसौ नरकमाप्नुयात्। मुनिभिर्यच्च न प्रोक्तंयन्न मन्येतदैवतान्॥९७॥
वचनं तद्बुधाः प्राहुर्बन्धंचित्रकथं त्विति। यच्चकामान्वितंवाक्यंपञ्चमंवाप्यतःशृणु॥९८॥
एको लोभो महान्ग्राहोलोभात्पापंप्रवर्त्तते। लोभात्क्रोधःप्रभवतिलोभात्कामःप्रवर्त्तते॥९९॥

लोभान्मोहश्च माया च मानः स्तम्भः परेप्सुता।
अविद्याऽप्रज्ञता चैव सर्वं लोभात्प्रवर्त्तते॥१००॥
हरणं परवित्तानां परदाराभिमर्शनम्। साहसानां च सर्वेषामकार्याणां क्रियास्तथा॥१०१॥
स लोभः सह मोहेन विजेतव्योजितात्मना। दम्भोद्रोहश्चनिन्दाचपैशुन्यंमत्सरस्तथा॥१०२॥
भवन्त्येतानि सर्वाणि लुब्धानामकृतात्मनाम्।
सुमहान्त्यपि शास्त्राणि धारयन्ति बहुश्रुताः॥१०३॥
छेत्तारः संशयानांच लोभग्रस्ताव्रजन्त्यधः। लोभक्रोधप्रसक्ताश्च शिष्टाचारबहिष्कृताः॥१०४॥
अन्तःक्षुरावाङ्मधुराःकृपाश्छन्नास्तृणैरिव। कुर्वतेयेबहून्मार्गांस्तांस्तान्हेतुबलान्विताः॥१०५॥

इसका कारण है कि यह बुद्धि नाना विषयों में घूमती हुई नानारूपी होती है, परन्तु केवल धर्म के संयोग से ही वह बहु प्रकार की न होकर भी एकरूपा प्रतीत होती है। जो इस तत्त्व को जानते हैं, वे नरक नहीं जाते। जो वाक्य मुनिगण द्वारा नहीं कहे गये हैं, जिसमें देवगण की प्रधानता नहीं है, उसे बुद्धिमान लोग चित्रकथाबद्ध (कृत्रिम) कहते हैं। अब आपके कामान्वित पंचम प्रश्न का उत्तर देता हूं। एकमात्र लोभ ही महाग्राह है। लोभ से पाप, क्रोध, मोह, काम, शठता, अभिमान, स्तब्धता, परधनस्पृहा, अविद्या, अबुद्धि इत्यादि दोषों का जन्म होता है। लोभ से ही पराये धन का अपहरण, परस्त्री समागम आदि साहसिक अकार्य किये जाते हैं। जितात्मा व्यक्ति मोह के साथ ही लोभ होने पर भी विजय प्राप्त करे। दम्भ, द्रोह, निन्दा, खलत्व, परस्त्री कातरता आदि अजितात्मा मोहाच्छन्न मनुष्य में जन्मे दोष हैं। जो अनेक शास्त्रों को पढ़कर उसके अर्थ का सम्यक् अभ्यास करते हैं तथा संशयों का निवारण करने में समर्थ हैं, ऐसे विज्ञ विद्वान् भी लोभग्रस्तता से अधःपतित होते हैं। जो लाभ तथा क्रोधग्रस्त हैं, शिष्टाचार से बहिर्भूत, अन्तर में तो क्रूर हैं तथापि बाहर से मधुर बोलते हैं। ऐसे व्यक्ति इस प्रकार के कूप के समान हैं, जो ऊपर से तृण से ढंका है (जिसमें लोग गिर जाते हैं)। ऐसे ही लोगों ने तर्कजालपूर्ण विभिन्न धर्ममार्ग की सृष्टि की है॥९६-१०५॥

सर्वमार्गं विलुम्पन्ति लोभाज्जातिषु निष्ठुराः।
धर्मावतंसकाः क्षुद्रा मुष्णन्ति ध्वजिनो जगत्॥१०६॥
एतेऽतिपापिनोज्ञेया नित्यं लोभसमन्विताः। जनको युवनाश्वश्चबृषादर्भिःप्रसेनजित्॥१०७॥
लोभक्षयाद्दिवंप्राप्तास्तथैवान्येजनाधिपाः। तस्मात्त्यजंतियेलोभंतेऽतिक्रामंतिसागरम्॥१०८॥
संसाराख्यमतोऽन्ये ये ग्राहग्रस्ता न संशयः। अथ ब्राह्मणभेदांस्त्वमष्टौ विप्रावधारय॥१०९॥

क्रोध के कारण ही धर्मध्वजी, छुद्रबुद्धि, निष्ठुर व्यक्ति समस्त धर्मपथ का नाश कर देते हैं। ये धर्म को लोक वंचनार्थ ही शिरोभूषण रूप से व्यक्त करते हैं। ऐसे सभी लोभी व्यक्ति लोगों को ठगने वाले अतिशय पापानुष्ठान में लगे रहते हैं। ये तो धर्म का अपहरण ही करते हैं। जनक, युवनाश्व, वृषादर्भि, प्रसेनजित् तथा अनेक राजा लोभ वर्जन करके ही स्वर्ग पा सके थे। जो लोभ का त्याग करते हैं, वे ही संसार सागर को पार कर पाते हैं। जो इसके विपरीत करते हैं, वे ग्राहग्रस्त हैं। हे विप्र! अब ब्राह्मण के अष्टविध भेद को सुनें॥१०६-१०९॥

मात्रश्च ब्राह्मणश्चैव श्रोत्रियश्च ततःपरम्। अनूचानस्तथा भ्रूण ऋषिकल्प ऋषिर्मुनिः॥११०॥
एते ह्यष्टौ समुद्दिष्टा ब्राह्मणाः प्रथमं श्रुतौ। तेषां परः परः श्रेष्ठो विद्यावृत्तविशेषतः॥१११॥
ब्राह्मणानां कुले जातो जातिमात्रोयदाभवेत्। अनुपेतःक्रियाहीनोमात्र इत्यभिधीयते॥११२॥

एकोद्देश्यमतिक्रम्य वेदस्याऽऽचारवानृजुः।
स ब्राह्मणइतिप्रोक्तोनिभृतः सत्यवाग्घृणी॥११३॥

एकां शाखां सकल्पांचषड्भिरंगैरधीत्यच। षट्कर्मनिरतो विप्र श्रोत्रियोनामधर्मवित्॥११४॥
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः शुद्धात्मा पापवर्जितः। श्रेष्ठः श्रोत्रियवान्प्राज्ञः सोऽनूचानइतिस्मृतः॥११५॥
अनूचानगुणोपेतोयज्ञस्वाध्याययन्त्रितः। भ्रूण इत्युच्यते शिष्टैःशेषभोजीजितेन्द्रियः॥११६॥
वैदिकंलौकिकं चैव सर्वज्ञानमवाप्य यः। आश्रमस्थो वशीनित्यमृषिकल्पं इतिस्मृतः॥११७॥
ऊर्ध्वरिता भवत्यग्र्यो नियताशी न संशयी। शापानुग्रहयोःशक्तः सत्यसंधो भवेदृषिः।

निवृत्तः सर्वतत्त्वज्ञः कामक्रोधविवर्जितः॥११८॥
ध्यानस्थो निष्क्रियो दान्तस्तुल्यमृत्काञ्चनो मुनिः॥११९॥

एवमन्वयविद्याभ्यां वृत्तेन च समुच्छ्रिताः। त्रिशुक्लानामविप्रेन्द्राःपूज्यन्ते सवनादिषु॥१२०॥

मात्र, ब्राह्मण, श्रोत्रिय, अनुचान, भ्रूण, ऋषिकल्प, ऋषि तथा मुनि। श्रुतियों में इन अष्टविध ब्राह्मणों का वर्णन है। विद्या तथा चरित्र के आकलनानुसार पहले वाले से बाद वाले श्रेष्ठ हैं। जैसे मात्र से ब्राह्मण, ब्राह्मण से श्रोत्रिय, श्रोत्रिय से अनुचान, अनुचान से भ्रूण, भ्रूण से ऋषिकल्प, ऋषिकल्प से ऋषि तथा ऋषि से मुनि श्रेष्ठ है। जिन्होंने मात्र ब्राह्मण कुल में जन्म ही लिया है, तथापि विप्रकर्त्तव्य के आचार पालन को नहीं करते, वे '**मात्र**' ब्राह्मण हैं। जो विविध कामना के कारण वेदाचार पालन करते हैं, सरल, सत्यवक्ता, दयालु, एकान्तवासी हैं, वे '**ब्राह्मण**' हैं। जो षडङ्ग तथा कल्पमात्र के साथ वेद की किसी एक शाखा का अध्ययन करके षट्कर्माचरण में निरत हैं, वे धर्मज्ञ विप्र '**श्रोत्रिय**' हैं। जो वेद-वेदाङ्ग के तत्वज्ञ, शुद्धात्मा, निष्पाप, ज्ञानी तथा श्रोत्रिय छात्रों से युक्त हैं, ऐसे श्रेष्ठ ब्राह्मण '**अनुचान**' होते हैं। अनुचान गुणयुक्त, इन्द्रियजित्, स्वाध्याययुक्त, यज्ञ से बचे हविष्यान्न का भोजन करने वाले द्विज को शिष्ट लोग '**भ्रूण**' कहते हैं। जो लौकिक, वैदिक, समग्र ज्ञानयुक्त तथा इंद्रियसंयमी होकर आश्रमस्थ रहते हैं, वे '**ऋषिकल्प**' होते हैं। जो ऊर्ध्वरिता, संशयरहित, भोजन में संयमी, सत्यवक्ता, शाप तथा अनुग्रह में समर्थ होते हैं, उनको शिष्ट जन '**ऋषि**' कहते हैं। सर्वतत्त्वज्ञ, काम-क्रोधरहित, संसारविरक्त, ध्यानी, निष्क्रिय, दयामुक्त, मिट्टी तथा स्वर्ण में तुल्यद्रष्टा को '**मुनि**' कहा गया है। वंश, विद्या, चरित्र से समुन्नत द्विजगण को '**त्रिशुक्ल**' कहते हैं। ये ही यज्ञादि में पूज्य हैं।।११०-१२०।।

इत्येवंविधविप्रत्वमुक्तं शृणु युगादयः। नवमी कार्तिके शुक्ला कृतादिः परिकीर्तिता॥१२१॥
वैशाखस्य तृतीया या शुक्ला त्रेतादिरुच्यते। माघे पञ्चदशीनाम द्वापरादिःस्मृताबुधैः॥१२२॥
त्रयोदशी नभस्येच कृष्णासाहिकलेःस्मृता। युगादयःस्मृताह्येतादत्तस्याक्षयकारकाः॥१२३॥

यह विप्रों का विवरण कहा। अब युगादि को सुनें। कार्त्तिकमासीय शुक्ला नवमी सत्ययुग का प्रारम्भ है।

वैशाखमासीय शुक्ला तृतीया त्रेतायुग की आदि तिथि है। माघी पूर्णिमा द्वापर युग की आदि तिथि है। भाद्रपद की कृष्णा त्रयोदशी कलियुग की आदि तिथि है।[१] इन सबमें दान का अक्षय फल मिलता है।।१२१-१२३।।

एताश्चतस्त्रस्तिथयो युगाद्या दत्तं हुतं चाऽक्षयमाशु विद्यात्।
युगे युगे वर्षशतेन दानं युगादिकाले दिवसेन तत्फलम्।।१२४।।
युगाद्याः कथिता ह्येता मन्वाद्याः शृणु साम्प्रतम्।
अश्वयुक्छुक्लनवमी द्वादशी कार्तिके तथा।।१२५।।
तृतीया चैत्रमासस्य तथाभाद्रपदस्य च। फाल्गुनस्यत्वमावास्यापौषस्यैकादशीतथा।।१२६।।
आषाढस्याऽपिदशमीमाघमासस्य सप्तमी। श्रावणस्याष्टमीकृष्णातथाषाढीचपूर्णिमा।।१२७।।
कार्तिकी फाल्गुनीचैत्री ज्येष्ठेपञ्चदशीसिता। मन्वन्तरादयश्चैतादत्तस्याक्षयकारकाः।।१२८।।
यस्यां तिथौ रथं पूर्वं प्राप देवो दिवाकरः।
सा तिथिः कथिता विप्रैर्माघेयारथसप्तमी।।१२९।।

इन ४ युगादि तिथियों में दान तथा होम अक्षय फल प्रदान करता है। इन युगों में १०० वर्ष दान का जो फल है, युगादि तिथि काल में वह एक दिन दान द्वारा प्राप्त होता है। युगाद्या तिथि कहा। अब मन्वादि का उल्लेख करता हूं। आश्विन शुक्ला नवमी, कार्तिकी द्वादशी, चैत्र-भाद्रमासीय तृतीया, फाल्गुनी अमावस्या, पौषी एकादशी, आषाढ़ी दशमी, माघी सप्तमी, श्रावणमासीय कृष्णपक्षीय अष्टमी, आषाढ़ी पूर्णिमा, कार्त्तिक-फाल्गुन-चैत्र-ज्येष्ठी पूर्णिमा। तिथि मन्वन्तर की आदि तिथि है। इस पर दान करने से अक्षय फल मिलता है। पूर्वकाल में सूर्यदेव ने जब अपना दिव्य रथ प्राप्त किया था, विप्रगण माघी सप्तमी को वह दिन कहते हैं। यही रथसप्तमी है।।१२४-१२९।।

तस्यां दत्तं हुतं चेष्टं सर्वमेवाऽक्षयं मतम्। सर्वदारिद्र्यशमनं भास्करप्रीतये मतम्।।१३०।।
नित्योद्वेजकमाहुर्यं बुधास्तंशृणुतत्त्वतः। यश्चयाचनिकोनित्यंन स स्वर्गस्य भाजनम्।।१३१।।

इस तिथि पर स्नान-होम-पूजादि करने से उन सब का अक्षय फल होता है। इससे सभी दरिद्रता का नाश होकर भार्गव की प्रसन्नता प्राप्त होती है। बुद्धिमान लोग जिसे नित्योद्वेजक कहते हैं, उसका यथार्थ वर्णन सुनें। जो नित्य याचना करते हैं, उनको स्वर्ग नहीं मिलता। चोर की ही तरह उससे लोगों को उद्वेग होता है।।१३०-१३१।।

उद्वेजयति भूतानि यथा चौरास्तथैव सः। नरकंयातिपापात्मानित्योद्वेगकरस्त्वसौ।।१३२।।
इहोपपत्तिर्मम केन कर्मणा क्व च प्रयातव्यमितो मयेति।
विचार्य चैवं प्रतिकारकारी बुधैः स चोक्तो द्विज! दक्षदक्षः।।१३३।।
मासैरष्टभिरह्ना च पूर्वेण वयसाऽऽयुषा। तत्कर्म पुरुषः कुर्याद्येनान्तेसुखमेधते।।१३४।।
अर्चिर्धूमश्च मार्गौ द्वावाहुर्वेदान्तवादिनः। अर्चिषा याति मोक्षश्च धूमेनाऽऽवर्ततेपुनः।।१३५।।
यज्ञैरासाद्यते धूमो नैष्कर्म्येणाचिंराप्यते। एतयोरपरो मार्गः पाखंड इति कीर्त्यते।।१३६।।

---

१. मतान्तर से भाद्री कृष्णा त्रयोदशी द्वापर की युगाद्य तिथि है। माघीपूर्णिमा कलियुग की युगाद्य तिथि है। मुहूर्त चिन्तामणि में माघी पूर्णिमा की जगह अमावस्या लिखा है।

यो देवान्मन्यतेनैवधर्मांश्चमनुसूचितान्। नैतौ सयातिपंथानौतत्त्वार्थोऽयं निरूपितः॥१३७॥

इतितेकीर्तिताःप्रश्नाःशक्त्याब्राह्मणसत्तम।

साधुवाऽसाधुवाबूहिख्यापयाऽऽत्मनमेवच॥१३८॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कलापग्रामवासिसुतनुब्राह्मणेन नारदप्रश्नोत्तरकथनंनाम पञ्चमोऽध्यायः॥५॥

ऐसा नित्य उद्वेग प्रदाता पापी नरकवासी होता है। हे द्विज! "इहलोक में किस कर्म से अभ्युदय प्राप्त होगा तथा मरणान्त में कहां जाना होगा?" यह विचार करके जो व्यक्ति भावी क्लेश से रक्षार्थ (शुभ) कर्म करता है, धीमान् उसे ही दक्षदक्ष कहते हैं। पुरुष आठ मास की आयु से लेकर आजीवन वह कार्य करे, जिससे अन्तकाल में सुख की प्राप्ति हो। पथ दो प्रकार के होते हैं। अर्चिः तथा धूम। वेदान्तविद् ऐसा ही कहते हैं। अर्चि पथ से मोक्ष मिलता है। धूम पथ से पुनरावृत्ति पुनर्जन्म होता है। यज्ञानुष्ठान से धूम पथ तथा निष्काम कर्म से अर्चिः पथ मिलता है। इन दो पथ के अतिरिक्त जो पथ कहे जाते हैं, वह पाखण्ड मात्र हैं। जो देवता को नहीं मानते, किंवा मनु द्वारा कहे धर्माचरण को नहीं करते, वे इस पथ को नहीं पा सकते। हे ब्राह्मणप्रवर! यह मैंने आपके प्रश्न का यथाशक्ति उत्तर दिया। यह उचित है अथवा अनुचित है, वह कहें। साथ ही अपना परिचय भी प्रदान करिये॥१३२-१३८॥

॥पञ्चम अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

षष्ठोऽध्यायः

नारद द्वारा महीसागर संगम पर ब्राह्मणों को स्थापित करना, स्थान प्रतिष्ठा, चिरकारी प्रसंग

श्री नारद उवाच

इतिश्रुत्वा फाल्गुनाऽहं रोमाञ्चपुलकीकृतः। स्वरूपं प्रकटीकृत्य ब्राह्मणानिदमब्रवम्॥१॥

अहोधन्यः पिताऽस्माकंयस्यसृष्टस्यपालकाः। युष्मद्विधाब्राह्मणेन्द्राःसत्यमाहपुराहरिः॥२॥

मत्तोऽप्यनंतात्परतः परस्मात्समस्तभूताधिपतेर्न किञ्चित्।

तेषां किमु स्यादितरेण येषां द्विजेश्वराणां मम मार्गवादिनाम्॥३॥

तत्सर्वथाऽद्य धन्योऽस्मिसंप्राप्तंजन्मनःफलम्। यद्भवन्तोमयादृष्टाःपापोपद्रववर्जिताः॥४॥

नारद कहते हैं—हे फाल्गुन! मैं यह कथा सुनकर रोमाञ्चित हो गया तथा मैंने अपना यथार्थ स्वरूप प्रकट

करके ब्राह्मण से कहा—"अहो! मेरे पिता धन्य हैं, जिनकी सृष्टि के पालकरूपी आप ऐसे विप्र विद्यमान हैं। पूर्व में श्रीहरि ने सत्य ही कहा था—"मैं पर से भी परवर्त्ती, सर्वभूताधिपति अनन्त हूं। मुझसे परे कुछ भी नहीं है। जो द्विजवर मेरी सेवा में तत्पर हैं, उनको अन्य धर्म के अनुष्ठान का क्या तात्पर्य!" अतः मैं अब धन्य हो गया। जन्म ग्रहण का फल मिल गया! क्योंकि मैंने पापरूपी उपद्रवों से रहित आप लोगों का दर्शन पा लिया।।१-४।।

ततस्ते सहसोत्थाय शातातपपुरोगमाः। अर्घ्यपाद्यादिसत्कारैःपूजयामासुर्माद्विजाः॥५॥
प्रोक्तवन्तश्चमांपार्थवचःसाधुजनोचितम्। धन्या वयं हि देवर्षे त्वमस्मान्यदिहागतः॥६॥
कुतो वाऽऽगमनंतुभ्यं गन्तव्यंवा क्व साम्प्रतम्। अत्राप्यागमनेकार्यमुच्यतांमुनिसत्तम॥७॥
श्रुत्वाप्रीतिकरंवाक्यंद्विजानामितिपाण्डव। प्रत्यवोचंमुनीन्द्रांस्ताञ्छ्रूयतांद्विजसत्तमाः॥८॥
अहंहिब्रह्मणोवाक्याद्विप्राणांस्थानकं शुभम्। दातुकामो महातीर्थे महीसागरसंगमे॥९॥
परीक्षन्ब्राह्मणानत्रप्राप्तो यूयंपरीक्षिताः। अहंवःस्थापयिष्यामिचानुजानीततद्द्विजाः॥१०॥

तदनन्तर शातातप आदि द्विज तत्काल उठे तथा पाद्य एवं अर्घ्यादि से मेरा सत्कार किया। हे पार्थ! उन्होंने मुझसे साधु जनोचित वाक्य कहा—"हे देवर्षि! आज हम धन्य हैं। क्योंकि आप यहां आये। आपका आगमन कहां से हो रहा है? अब कहां जाना है? यहां आने का प्रयोजन क्या है? हे मुनिप्रवर! उसे कहें।" हे पाण्डुनन्दन! ब्राह्मणों का यह आनन्दप्रद वचन सुनकर मैंने मुनीन्द्रगण को उत्तर दिया—"हे द्विजश्रेष्ठगण! ब्रह्मा के आज्ञानुसार मैं ब्राह्मणगण को शुभस्थान दानार्थ ब्राह्मणों की परीक्षा करने यहां आया था तथा आप सब की परीक्षा लिया। मैं आप लोगों को वहां स्थापित करना चाहता हूं। हे द्विजगण! आप इस विषय में अनुमति प्रदान करें।।५-१०।।

एवमुक्तो विलोक्यैव द्विजाञ्छातातपोऽब्रवीत्। देवानामपिदुष्प्राप्यंसत्यंनारदभारत॥११॥
किं पुनश्चापि तत्रैव महीसागरसङ्गमः। यत्र स्नातो महातीर्थफलं सर्वमुपाश्नुते॥१२॥
पुनरेको महान्दोषो विभीमो नितरां यतः। तत्रचौराःसुबहवोनिर्घृणाःप्रियसाहसाः॥१३॥
स्पर्शेषु षोडशं चैकविंशं गृह्णन्ति नोधनम्। धनेन तेन हीनानां कीदृशं जन्म नोभवेत्।
वरं बुभुक्षया वासो मा चौर करगा (वशगाः) वयम्॥१४॥

मेरे यह कहने पर शातातप मुनि ने द्विजगण की ओर दृष्टि निःक्षेप करके कहने लगे—"हे नारद! भारतभूमि सत्य रूप से देवगण के लिए भी दुष्प्राप्य है। उनमें भी महीसागर संगम के सम्बन्ध में क्या कहा जाये? वहां स्नान द्वारा सर्व महातीर्थ स्नान फल मिलता है। तथापि वहां एक महादोष भी है। इसीसे हमें अत्यन्त भय हो रहा है। वहां अनेक निर्दयी चोर हैं। वे वहां स्पर्शवर्ण के अन्तर्गत १६वां (त) तथा एकविंश (प)—यह उभयात्मक 'तप' नामक धन का अपहरण कर लेते हैं। हम यदि उस धन से रहित हो जायें, तब हमारा जन्म कैसा होगा? क्षुधातुर होकर निवास करना उत्तम है, तथापि उन चोरगण के हस्तगत न हो जायें!"।।११-१४।।

अर्जुन उवाच

अद्भुतं वर्ण्यते विप्र! के हि चौराः प्रकीर्तिताः।
किं धनं च हरन्त्येते येभ्यो बिभ्यति ब्राह्मणाः॥१५॥

अर्जुन कहते हैं—"ये चोर कौन हैं? आपने तो अद्‌भुद् कथा कही है। वे किस धन का हरण करते हैं? वे कौन हैं, जिनके भय से ब्राह्मणगण त्रस्त है?।।१५।।

नारद उवाच

कामक्रोधादयश्चौरास्तप एव धनं तथा॥१६॥
तस्यापहारभीतास्ते मामूचुरिति ब्राह्मणाः। तानहंप्राब्रवंपश्चाद्विजानीत द्विजोत्तमाः॥१७॥
जाग्रतां तु मनुष्याणां चौराःकुर्वंतिकिं खलाः।
भयभीतश्चालसश्चतथाचाऽशुचिरवयः ॥१८॥
तेन किं नाम संसाध्यं भूमिस्तं ग्रसते नरम्॥१९॥

नारद कहते हैं—काम, क्रोध ही वे चोर हैं। धन है तपस्या, जिसे ये दोनों चुरा लेते हैं। इस तपरूपी धन के हरण से भयभीत होकर ब्राह्मणों ने इनका उल्लेख मुझसे किया था। तब मैंने उन ब्राह्मणों से कहा—"हे द्विजश्रेष्ठगण! सुनें! चौरगण खल होते हैं, तथापि वे जाग्रत मनुष्य का क्या बिगाड़ सकेंगे? जो व्यक्ति भीत, आलसी तथा अशुद्ध है, वह क्या कर सकेगा? आप उसका ग्रास करें।।१६-१९।।

शातातप उवाच

वयं चौरभयाद्भीतास्ते हरंति धनं महत्। कर्तुं तदा कथं शक्यमङ्ग! जागरणं तथा॥२०॥
खलाश्चौरागताः क्वापिततोनत्वाऽऽगतावयम्। तस्मात्सर्वंसंत्यजामोभयभीतावयंमुने॥२१॥
प्रतिग्रहश्च वै घोरः षष्ठांशफलदस्तथा। एवं ब्रुवति तस्मिंश्च हारीतोनाम चाब्रवीत्॥२२॥
मूढबुद्ध्या हि कोनाममहीसागरसङ्गमम्। त्यजेच्च यत्र मोक्षश्च स्वर्गश्चकरगोऽथवा॥२३॥
कलापादिषु ग्रामेषु को वसेत विचक्षणः। यदि वासः स्तम्भतीर्थेक्षणार्धमपिलभ्यते॥२४॥
भयं च चौरजं सर्वं किंकरिष्यति तत्र नः। कुमारनाथं मनसि पालकं कुर्वतां दृढम्॥२५॥
साहसं च विना भूतिर्नकथञ्चनप्राप्यते। तस्मान्नारदतत्राहमायास्ये तव वाक्यतः॥२६॥
षड्विंशतिसहस्त्राणि ब्राह्मणामेपरिग्रहे। षट्कर्मनिरताः शुद्धा लोभदम्भविवर्जिताः॥२७॥

शातातप कहते हैं—"चौरगण महत् धन का हरण करते हैं, इसी कारण हम भीत हो गये। हे नारद! नित्य जागरण कैसे हो? वहां से खल-चोरगण कहां चले गये? इसीलिए हम भीत हैं। हम उस देश को नमस्कार करके यहां चले आये। हे मुनिवर! प्रतिग्रह भी भयानक होता है। इससे षष्टांश तपफल नष्ट हो जाता है।" जब शातातप यह कह चुके तभी हारीत मुनि ने कहा—"जहां स्वर्ग तथा मोक्ष करतलगत है, उस महीसागर संगम क्षेत्र का कौन त्याग करेगा? यदि स्तम्भतीर्थ में क्षणार्द्ध काल भी निवास का भाग्य हो, तब कौन व्यक्ति कलापग्राम में रहना चाहेगा? वहां हम कुमारनाथ का पालक रूप में आश्रय ग्रहण कर लेंगे, तब चौरभय क्या कर सकेगा? साहस के बिना कोई विभूति नहीं मिल सकती। हे नारद! आपकी बात मानकर मैं वहां जाऊंगा। मेरे साथ २६००० ब्राह्मण हैं, जो मेरे अधीन हैं। सभी षट्कर्मरत, शुद्ध तथा लोभरहित एवं दम्भ रहित हैं"।।२०-२७।।

तैः सार्धमागमिष्यामिममेदंमतमुत्तमम्। इत्युक्ते वचने तांश्च कृत्वाऽहं दण्डमूर्धनि॥२८॥

निवृत्तः सहसा पार्थ खेचरोऽतिमुदान्वितः। शतयोजनमात्रं तु हिममार्गमतीत्य च॥२९॥
केदारं समुपायातो युक्तस्तैर्द्विजसत्तमैः। आकाशेन सुशक्यश्च विलेनाऽथ स देशकः॥३०॥
अतिक्रान्तुं नान्यथा च तथा स्कन्दप्रसादतः॥३१॥

"उनको भी मैं महीसागर क्षेत्र ले जाऊंगा, यह मेरा निश्चय है।" हे पार्थ! मैंने हारीत की यह बात सुनी तथा उन ब्राह्मणों को अपने दण्डाग्र पर स्थापित करके अत्यन्त प्रसन्न चित्त से आकाश पथ से वहां लौटा। मैंने क्षणमात्र में १०० योजन हिमपथ पार किया तथा केदार तीर्थ पहुंचा। स्कन्ददेव की कृपा से आकाशमार्ग किंवा बिल मार्ग से ही वह प्रदेश पार होता है। अन्यथा और कोई उपाय ही नहीं है।।२८-३१।।

अर्जुन उवाच

क्व कलापं च तद्ग्रामं कथं शक्यं बिलेनच। कथंस्कंदप्रसादः स्यादेतन्मे बूहि नारद॥३२॥

अर्जुन कहते हैं—वह कलाप ग्राम कहां है? बिल मार्ग से वहां कैसे जाते हैं? अथवा स्कन्द देव की कृपा से कैसे वहां पहुंचा जाता है? हे नारद! वह कहिये।।३२।।

नारद उवाच

केदाराद्धिमसंयुक्तं योजनानां शतं स्मृतम्। तदन्ते योजनशतं विस्तृतं तत्कलापकम्॥३३॥
तदन्ते योजनशतं वालुकार्णवमुच्यते। शतयोजनमात्रः स भूमिस्वर्गस्ततः स्मृतः॥३४॥
बिलेन च यथा शक्यं गन्तुंतत्र शृणुष्व तत्। निरन्नं वै निरुदकं देवमाराधयेद्गुहम्॥३५॥
दक्षिणायां दिशि ततोनिष्पापंमन्यतेयदा। तदागुहोऽस्यदिशतिस्वप्नेगच्छेति भारत॥३६॥
ततो गुहात्पश्चिमतो बिलमस्ति बृहत्तरम्। तत्र प्रविश्य गन्तव्यं क्रमाणां शतसप्तकम्॥३७॥
तत्र मारकतं लिंगमस्ति सूर्यसमप्रभम्। तदग्रे मृत्तिकाचाऽस्ति स्वर्णवर्णा सुनिर्मला॥३८॥
नमस्कृत्यचतल्लिङ्गंगृहीत्वामृत्तिकांचताम्। आगन्तव्यंस्तंभतीर्थेसमाराध्यकुमारकम्॥३९॥
कोलं वा कूपतोग्राह्यंभूतायांनिशितज्जलम्। तेनोदकेन मृत्तिकयाकृत्वानेत्रद्वयाञ्जनम्॥४०॥
उद्वर्तनं च देहस्य कदाचित्षष्टिमे पदे। नेत्राञ्जनप्रभावाच्च बिलं पश्यति शोभनम्॥४१॥
तन्मध्येन ततो याति गात्रोद्वर्त्तप्रभावतः। कारीषैर्नाम चात्युग्रैर्भक्ष्यते नैव कीटकैः॥४२॥
बिलमध्ये च संपश्यन्सिद्धान्भास्करसन्निभान्।
यात्येवं यात्यसौ पार्थ कलापं ग्राममुत्तमम्॥४३॥

नारद कहते हैं—केदार से हिमाक्रान्त १०० योजन पार करके १०० योजन कलाप कहलाता है। कलाप के आगे १०० योजन का बालुकार्णव है। यही १००० योजन स्थान भूस्वर्ग है। वहां बिल मार्ग से कैसे जाते हैं, वह सुनें। पहले दक्षिण दिशा में रहकर अन्नपान त्याग करके कार्त्तिकेय देव की आराधना करे। जब कार्त्तिकेय साधक को निष्पाप हो गया देखते हैं, तब स्वप्न द्वारा जाने का आदेश देते हैं। तत्पश्चात् कार्त्तिकेय के पश्चिम एक विशाल गर्त्त है। उसमें प्रवेश करके ७०० पैर जाये। वहां सूर्य समप्रभ मरकत मणि की लिंग है। वहां स्वर्णवर्णा सुनिर्मला मृत्तिका है। मरकत लिंग को प्रणामोपरान्त वहां से कुछ मिट्टी लेकर स्तम्भतीर्थ आये।

वहां कुमारदेव की आराधना करके कालदेव की उपासना करे। तदनन्तर वहां कूप से रात्रि में कुछ जल लेकर पूर्वोक्त मृत्तिका को शरीर पर लगाये तथा उससे नेत्रों में अंजन लगाये। इस अंजन के फल से वहां मनोहर गर्त्त दृष्टिगोचर होगा। उसमें उतर जाना चाहिये। उक्त शरीरलेप के फलस्वरूप उस गर्त्त में रहने वाले अत्युग्रकारीय कीट उस व्यक्ति का भक्षण नहीं करेंगे। हे पार्थ! उस गर्त्त में सूर्य के समान तेजस्वी सिद्धों को देखते-देखते उत्तम कलाप ग्राम में पहुंचते हैं।।३३-४३।।

तत्रवर्षसहस्राणित्यक्त्वार्यायुःप्रकीर्तितम्। फलानांभोजनंचस्यात्पुनःपुण्यंचनार्ज्जयेत्।।४४।।
इत्येकथितंतुभ्यमतश्चाभूच्छृणुष्वतत्। तपःसामर्थ्यतःसूक्ष्मान्दण्डस्याग्रेनिधायतान्।।४५।।
द्विजानहं समायातो महीसागरसङ्गमम्।।४६।।
तदोत्तार्य मया मुक्तास्तीरे पुण्यजलाशये। ततोमया कृतं स्नानं सह तैर्द्विजसत्तमैः।।४७।।
निःशेषदोषदावाग्नौ महीसागरसङ्गमे। पितृणां देवतानां च कृत्वा तर्पणसत्क्रियाः।।४८।।
जपमानाः परं जप्यं निविष्टाः संगमेवयम्। भास्करं समवेक्षन्तश्चिन्तयन्तो हरिं हृदि।।४९।।
तस्मिंश्चैवान्तरेपार्थ देवाःशक्रपुरोगमाः। आदित्याद्या ग्रहाः सर्वेलोकपालाश्चसंगताः।।५०।।
देवानां योजनो ह्यष्टौ गंधर्वाप्सरसां गणाः। महोत्सवे ततस्तस्मिन्गीतवादित्रउत्तमे।।५१।।
पादप्रक्षालनं कर्तुं विप्राणामुद्यतस्त्वहम्। तस्मिन्कालेचाशृणवमहमातिथ्यवाक्यताम्।।५२।।
सामध्वनिसमायुक्तांतृतीयस्वरनादिताम्। अतीवमनसो रम्यां शिवभक्तिमिवोत्तमाम्।।५३।।
विप्रैरुत्थायसंपृष्टः कस्त्वंविप्र क्व चाऽऽगतः। किंवा प्रार्थयसेब्रूहियत्ते मनसिरोचते।।५४।।

वहां के मानव की आयु ४००० वर्ष होती है। सभी फल भक्षण करके जीवन धारण करते हैं। वहां अन्य पुण्यार्जन की आवश्यकता नहीं है। मैंने तुमसे कलाप ग्राम का वृत्तान्त कह दिया। अब पूर्व वृत्तान्त सुनो। मैं तपः प्रभाव से उन द्विजों को सूक्ष्माकृति करके सबको अपने दण्ड के अग्रभाग पर स्थित करके आकाशमार्ग से महीसागर संगम पहुंचा। उस पुण्य जलाशय के तीर पर उन द्विजों को दण्ड पर से उतार कर उनके साथ समस्त दोषों का दहन करने वाले दावाग्नि रूप महीसागर संगम में स्नान किया। तदनन्तर पितृतर्पणादि करके सभी को उस संगम तीर्थ पर आसीन कराया। मैं सूर्यदेव का दर्शन करके हरिदेव का चिन्तन करते हुये जप करने लगा। हे पार्थ! इस अवसर पर वहां इन्द्रादि लोकपाल, आदित्यादिग्रह, गन्धर्व, अप्सरा आदि आठ देवयोनि गीतवाद्य के साथ महोत्सव मनाने के लिए उपस्थित हो गये। जब मैं उन ब्राह्मणों का चरण धोने के लिए उद्यत हो गया, तभी एक अतिथि द्वारा शिवभक्ति युक्त अतीव मनोरम स्वरित स्वर में सामध्वनियुक्त वाक्य सुनाया गया। मैंने विप्रगण के साथ उठ कर उन विप्र से प्रश्न किया—"हे विप्र! आप कौन हैं? कहां से आये हैं? आपकी क्या इच्छा है? अपने मन का भाव कहिये।।४४-५४।।

विप्र उवाच

मुनिः कपिलनामाऽहं नारदाय निवेद्यताम्। आगतःप्रार्थनायैव तच्छ्रुत्वाहमथाऽब्रवम्।
धन्योऽहं यदिहाऽऽयातः कपिलत्वंमहामुने!।।५५।।
नास्त्यदेयंतवाऽस्माभिः पात्रं नास्ति तवाऽधिकम्।।५६।।

कपिल उवाच

ब्रह्मपुत्र त्वया देयं यदि मे त्वं शृणुष्व तत्। अष्टौ विप्रसहस्राणि मम देहीति नारद॥५७॥
भूमिदानं करिष्यामिकलापग्रामवासिनाम्। ब्राह्मणानामहं चैषां तदिदंक्रियतांविभो॥५८॥
ततो मया प्रतिज्ञातमेवमस्तुमहामुने। त्वयाऽपि क्रियतांस्थानंकापिलं कपिलोत्तमम्॥५९॥
श्राद्धेवा प्राप्तकालेवा ह्यतिथिर्विमुखीभवेत्। यस्याश्रममुपायातस्तस्यसर्वंहिनिष्फलं॥६०॥
स गच्छेद्रौरवाँल्लोकान्योऽतिथिंनाभिपूजयेत्। अतिथिःपूजितो येन सदेवैरपिपूज्यते॥६१॥
दानैर्यज्ञैस्ततस्तस्मिन्भोजितःकपिलोमुनिः। ततोमहामुनिःश्रीमान्हारीतोह्वयितस्तदा॥६२॥

वे विप्र कहते हैं—"मैं कपिल मुनि हूं। नारद से मेरी बात कहो। मैं प्रार्थना हेतु आया हूं।" यह सुनते ही मैंने कहा—"आप कपिल मुनि यहां आये हैं, मैं इससे धन्य हो गया। आपको अदेय कुछ नहीं है। आपसे अधिक उत्तम पात्र कोई भी नहीं है।"

तब कपिल ने कहा—"हे ब्रह्मपुत्र नारद! आप यदि दान देना ही चाहते हैं, तब सुनें। मुझे ८००० ब्राह्मण दीजिये! मैं उनको भूमिदान करूंगा।" उनकी बात सुनकर मैंने उत्तर दिया—"हे महामुनि! यही हो। हे कपिल! आप भी कापिल नामक उत्तम स्थान का निर्माण करिये। अतिथि श्राद्ध अथवा अन्य कोई भी सत्कर्म करते समय जो आश्रम आकर विमुख हो जाये (उसे दान न मिले), तब सभी सत्कर्म विफल हैं। जो व्यक्ति अतिथिगण का सत्कार नहीं करता, उसे रौरव नरक प्राप्त होता है। जो अतिथि का सत्कार करता है, उसने मानों देवगण का ही सत्कार किया।" ऐसा कहकर मैंने दान तथा होम के पश्चात् कपिल ऋषि को भोजन कराया। तदनन्तर मैंने हारीत मुनि को वुलाया।।५५-६२।।

पादप्रक्षालनार्थाय सिद्धदेवसमागमे। हारीतश्च पुरस्कृत्य वामपादं तदा स्थितः॥६३॥
ततोहासोमहाञ्जज्ञेसिद्धाप्सरःसुपर्वणाम्। विचिन्त्यबहुधापृथ्वींसाधुसाधुकृताद्विजाः॥६४॥

मैंने हारीत मुनि को पादप्रक्षालनार्थ बैठाया। सिद्ध-देव समागम में हारीत ने पादप्रक्षालनार्थ पहले वाम पद आगे फैलाया। तब देव-सिद्ध तथा अप्सरागण ने महान् हास्य किया। सबने कहा—"साधु-साधु! आप अनेक विवेचना करके समग्र पृथिवी का भ्रमण करके उत्तम ब्राह्मणों को ले आये!"।।६३-६४।।

ततो ममाऽपि मनसि शोकवेगो महानभूत्। सत्यांचैवतथा मेने गाथांपूर्वबुधेरिताम्॥६५॥
सर्वेष्वपि च कार्षेषु हेतिशब्दो विगर्हितः। कुर्वतामतिकार्याणि शिलापातोध्रुवंभवेत्॥६६॥
ततोऽहमब्रवं विप्रान्यूयं मूर्खा भविष्यथ। धनधान्याल्पसंयुक्तादारिद्र्यकलिलावृताः॥६७॥
एवमुक्ते प्रहस्यैव हारीतः प्राब्रवीदिदम्। तवैवेयं मुने हानिर्यदस्माञ्छपते भवान्॥६८॥
कः शापो दीयते तुभ्यं शापोऽयमयमेव ते। ततो विमृश्य भूयोऽहमब्रवं किमहं द्विज!॥६९॥
तथाविधस्य भवतो वामपादप्रदानतः॥७०॥

मेरा अन्तःकरण भी महान् शोक के आवेग से भर गया। पूर्व में पण्डितों द्वारा कही गाथा हमें सत्य लगने लगी। यथा—"सभी कार्य में 'हा' शब्द निन्दित है। इससे कोई कार्य अत्यन्त प्रयत्न करने पर भी उसमें पत्थर

पड़ने जैसा विघ्न निश्चित घटित होता है।'' तब मैंने उन ब्राह्मणों से कहा—'आप सब मूर्ख, अल्प धनधान्य वाले तथा दरिद्रता से ग्रस्त होंगे।' मेरे यह कहने पर हारीत मुनि ने हंसते हुये कहा—''हे मुनि! आपने जो शाप हमें दिया है, इससे आपकी ही हानि है। आप को कौन शाप देगा। अतः यह शाप आपका ही हो जाये!'' तब मैंने कुछ चिन्तन करके उनसे कहा—''हे द्विज! क्या मैंने भी आपकी तरह (दाहिने पैर के स्थान पर) बायां पैर आगे किया था, जो आपने वही शाप मुझे दे दिया? यह सुनकर हारीत कहने लगे।।६५-७०।।

हारीत उवाच

शृणु तत्कारणं धीमञ्छून्यता मे यतोऽभवत्।।७१।।
इति चिंतयतश्चित्ते हा दुःखोऽयं प्रतिग्रहः। प्रतिग्रहेणविप्राणांब्राह्मंतेजोहिशाम्यति।।७२।।
महादानं हि गृह्णानो ब्राह्मणःस्वंशुभंहियत्। ददातिदातुर्दाताचअशुभंयच्छतिस्वकम्।।७३।।
दाता प्रतिग्रहिता च वचनं हि परस्परम्। मन्यतेऽधःकरो यस्य सोऽल्पबुद्धिःप्रहीयते।।७४।।
इतिचिंतयतो मह्यं शून्यताऽभूद्धि नारद। निद्रार्तश्चभयार्तश्च कामार्तः शोकपीडितः।।७५।।
हृतस्वश्चाऽन्यचित्तश्च शून्या ह्येते भवन्तिच। तदेषु मतिमान्कोपं न कुर्वीतयदित्वया।।७६।।

हारीत कहते हैं—हे धीमान् विप्र! मैंने जो वामपद पहले आगे किया था, उसका कारण सुनें। उस समय मुझमें शून्यता आ गई थी। मैं आत्महारा हो गया था। क्योंकि तब मैं मन ही मन यही चिन्तन कर रहा था कि हाय! प्रतिग्रह अत्यन्त क्लेशप्रद है। प्रतिग्रह के फल से ब्राह्मण का ब्रह्मतेज लुप्त हो जाता है। विशेषतः महादान ग्रहण करने से प्रतिग्रहीता ब्राह्मण का शुभकर्म दाता में आ जाता है तथा दाता का अशुभ कर्म समूह दान लेने वाले प्रतिग्रहीता ब्राह्मण में संक्रमित हो जाता है। दाता तथा प्रतिग्रहीता का पारस्परिक जो करस्थान दान क्रिया के समय होता है, उसकी गति का अनुमान करें। जिसके हाथ में दान दिया जाता है, वह अल्पज्ञ प्रतिग्रहीता अधःपतित होता है। हे नारद! इस प्रकार की चिन्ता से मेरा चित्त शून्यता पूर्ण हो गया था। मैं आत्महारा हो गया! निद्रार्त्त, भयार्त्त, शोकार्त्त, धनहरण तथा अन्य में आसक्त व्यक्ति में शून्यता आ जाती है। अतः मतिमान् व्यक्ति को इस सब शून्य किंवा आत्महारा व्यक्ति के प्रति कोप नहीं करना चाहिये।।७१-७६।।

कृतः कोपस्ततस्तुभ्यमेवं हानिरियं मुने। ततस्तापान्वितश्चाऽहं तान्विप्रानब्रवं पुनः।।७७।।
धिङ्मामस्तुचदुर्बुद्धिमविमृश्यार्थकारिणम्। कुर्वतामविमृश्यैवतत्किमस्तिनयद्भवेत्।।७८।।
सहसा न क्रियां कुर्यात्पदमेतन्महापदाम्। विमृश्यकारिणं धीरं वृणतेसर्वसंपदः।।७९।।

तथापि हे मुनिवर! आपने जिस प्रकार कोप किया है, वैसे ही इस कार्य से आपकी ही हानि होगी। तभी मैं सन्तप्त चित्त से इन विप्रगण से पुनः कहता हूं कि मैं अविमृश्यकारी दुर्बुद्धि हूं। मुझे धिक्कार है! जो बिना विवेचना किये कार्य करता है, उसकी क्या हानि नहीं हो जाती! सहसा कोई भी कार्य न करे। ऐसा करना विपत्ति का घर हो जाता है। जो विवेचना करके कार्य करता है, वह सर्वसम्पत्ति प्राप्त कर लेता है।।७७-७९।।

सत्यमाह महाबुद्धिश्चिरकारीपुराहि सः। पुराहिब्राह्मणःकश्चित्प्रख्यातोऽङ्गिरसांकुले।।८०।।
चिरकारी महाप्राज्ञो गौतमस्याऽभवत्सुतः। चिरेण सर्वकार्याणि यो विमृश्यप्रपद्यते।।८१।।
चिरकार्याभिसम्पत्तेश्चिरकारी तथोच्यते। अलसग्रहणं प्राप्तो दुर्मेधावी तथोच्यते।।८२।।

बुद्धिलाघवयुक्तेन जनेनाऽदीर्घदर्शिना। व्यभिचारेण कस्मिन्सव्यतिक्रम्यापरान्सुतान्॥८३॥
पित्रोक्तः कुपितेनाऽथजहीमांजननीमिति। स तथेति चिरेणोक्तःस्वभावाच्चिरकारकः॥८४॥
विमृश्य चिरकारित्वाच्चिन्तयामास वै चिरम्। पितुराज्ञांकथंकुर्यांनहन्यांमातरंकथम्॥८५॥
कथं धर्मच्छलेनाऽस्मिन्निमज्जेयमसाधुवत्। पितुराज्ञा परोधर्मो ह्यधर्मोमातृरक्षणम्॥८६॥

पूर्व काल में महाबुद्धिमान् चिरकारी ने सत्य ही कहा था। प्राचीन काल में गौतम मेधातिथि का पुत्र चिरकारी नामक प्रसिद्ध महाबुद्धिमान् ब्राह्मण था। वह सभी कार्य दीर्घकालीन विवेचना करके करता था। तभी उसे लोग चिरकारी कहते थे। अल्प बुद्धिमान अदीर्घदर्शी लोग उसे आलसी तथा निर्बोध कहा करते थे। एक बार उसकी जननी ने व्यभिचार किया था, अतएव मेधातिथि ने कुपित होकर चिरकारी से कहा—"तुम अपनी माता का अविलम्ब वध करो।" स्वभावतः वह चिरकारी था। उसने कहा ऐसा ही करता हूं। तब वह अपने स्वभावानुरूप दीर्घकाल तक चिन्तन करने लगा। उसने विचार किया—पितृ आज्ञा का कैसे पालन करूं? मातृहत्या कैसे कर सकूंगा? इस दुष्कर्म कृत्य में मैं कैसे लिप्त हो सकूंगा? दूसरी ओर पिता की आज्ञा परम धर्म है। अतः तदनुसार मातृहत्या न करना भी अधर्म होगा।।८०-८६।।

अस्वंतत्रंचपुत्रत्वंकिं तु मां नाऽत्रपीडयेत्। स्त्रियंहत्वामातरंचकोहिजातुसुखीभवेत्॥८७॥
पितरं चाऽप्यवज्ञाय कः प्रतिष्ठामवाप्नुयात्। अनवज्ञा पितुर्युक्ता युक्तंमातुश्चरक्षणम्॥८८॥
क्षमायोग्यावुभावेतौनाऽतिवर्तेत वैकथम्। पिताह्यात्मानमाधत्तेजायायांजज्ञिवानिति॥८९॥
शीलचारित्रगोत्रस्य धारणार्थंकुलस्यच। सोऽहमात्मास्वयंपित्रापुत्रत्वेपरिकल्पितः॥९०॥

पुत्रत्व में स्वतन्त्रता नहीं होती! अतः क्या करने से इस क्लेश से छुटकारा होगा? स्त्री हत्या, विशेषतः मातृहत्या करके कौन सुखी हो सकेगा? दूसरी ओर पिता की अवहेलना करके कौन व्यक्ति प्रतिष्ठा प्राप्त कर सका है? पिता की अवज्ञा न करना भी युक्तिसंगत है। दूसरी ओर मातृरक्षा भी संगत है। इसलिए मां की रक्षा करने का जो दोष होगा, वह भी क्षमायोग्य होगा। इनका अतिक्रमण (अवहेलना) कदापि न करे। पिता ही शील, चरित्र तथा वंश रक्षा हेतु पत्नी में अपनी आत्मा को आधान करते हैं। उससे वे ही पुत्ररूपेण उत्पन्न होते हैं। इसलिए मैं पिता की ही पुत्ररूपेण परिकल्पित आत्मा हूं।।८७-९०।।

जातकर्मणि यत्प्राह पिता यच्चोपकर्मणि। पर्याप्तः स दृढीकारः पितुर्गौरवलिप्सया॥९१॥
शरीरादीनि देयानि पिता त्वेकः प्रयच्छति। तस्मात्पितुर्वचः कार्यं न विचार्यं कथञ्चन॥९२॥
पातकान्यपि चूर्यन्ते पितुर्वचनकारिणः। पिता स्वर्गः पिता धर्मः पिता परमकंतपः॥९३॥
पितरि प्रीतिमापन्ने सर्वाः प्रीणन्ति देवताः। आशिषस्ताभजंत्येनंपुरुषंप्राह याःपिता॥९४॥
निष्कृतिः सर्वपापानां पिता यदभिनन्दति। मुच्यतेबन्धनात्पुष्पंफलंवृन्तात्प्रमुच्यते॥९५॥
क्लिश्यन्नपि सुतःस्नेहं पिता स्नेहं न मुंचति। एतद्विचिन्त्यतंतावत्पुत्रस्यपितृगौरवम्॥९६॥

जातकर्म तथा उपाकर्म हेतु पिता कहता है कि पुत्र मेरी ही आत्मा है। यह कहकर इस बात को दृढ़ता प्रदान करता है कि वही पुत्ररूप है। एकमात्र पिता ही शरीर-इन्द्रियादि प्रदान करते हैं, अतः पिता की सभी आज्ञा का पालन बिना विचार किये करना चाहिये। जो पिता के आदेश का पालन करता है, उसके सभी पाप दूरीभूत हो जाते

हैं। पिता ही स्वर्ग, धर्म, परम तप है। पिता के प्रसन्न होने पर समस्त देवता प्रसन्न हो जाते हैं। पिता जो आशीर्वाद प्रदान करते हैं, वह तत्काल पुत्र में फलित हो जाता है। पिता जब पुत्र का अभिनन्दन करते हैं, तब पुत्र सभी पापों से निष्कृति पा जाता है। भले ही बन्धन से पुष्प खिसक जाये, डाली से फल च्युत होकर गिर जाये, क्लेश पा कर पुत्र भले ही पितृत्याग कर दे, तथापि पिता कभी भी पुत्रस्नेह को नहीं छोड़ते! इसलिये विचार करने से विदित होता है कि पुत्र हेतु पिता का गौरव अधिक है। वे महत् स्थान के अधिकारी हैं।।९१-९६।।

पितानाल्पतरंस्थानंचिंतयिष्यामिमातरम्। योह्ययंमयिसंघातोमर्त्यत्वेपाञ्चभौतिकः॥९७॥
अस्यमेजननी हेतुः पावकस्य यथाऽरणिः। मातादेहारणिःपुंसःसर्वस्याऽर्थस्यनिर्वृति॥९८॥
मातृलाभे सनाथत्वमनाथत्वं विपर्यये। न स शोचति नाप्येनं स्थावर्यमपि कर्षति॥९९॥
श्रिया हीनोऽपि यो गेहे अम्बेति प्रतिपद्यते। पुत्रपौत्रसमापन्नो जननीं यः समाश्रितः॥१००॥
अपि वर्षशतस्याऽन्ते स द्विहायनवच्चरेत्। समर्थं वाऽसमर्थं वा कृशं वाऽप्यकृशं तथा॥१०१॥
रक्षयेच्च सुतं मातानान्यः पोष्यविधानतः। तदासवृद्धो भवति तदा भवति दुःखितः॥१०२॥

तथापि माता के विषय में भी अधिक चिन्ता हो रही है। जैसे यज्ञ में अरणि मंथन से अग्नि उत्पन्न होती है, उसी प्रकार मनुष्य की देहोत्पत्ति का प्रधान आश्रय है माता। वही सभी विषयों में बालक को शान्ति प्रदान करती है। माता रहने पर ही सन्तान सनाथ है, अन्यथा मानव अनाथ है। भले ही व्यक्ति श्रीभ्रष्ट हो जाये, यदि वह गृह आकर मां को पाकर उसे पुकारता है, तब उसे शोक नहीं करना चाहिये। मां के रहते उसका वार्द्धक्य भी नहीं होता। जिसकी मां विद्यमान हैं, वह पुत्र-पौत्र युक्त तथा १०० वर्ष का होकर भी २ वर्ष के बालक की तरह माता को पुकारता विहार करता है। पुत्र समर्थ हो अथवा असमर्थ, दुर्बल हो अथवा सबल, माता सर्वावस्था में पुत्ररक्षण करती है। माता की तरह पोष्य की रक्षा कोई नहीं करता। जब व्यक्ति को मातृवियोग हो जाता है, तभी वह वृद्ध है। तभी वह दुःखित है।।९७-१०२।।

तदाशून्यंजगत्तस्ययदामात्रावियुज्यते। नास्तिमातृसमाच्छायानास्तिमातृसमागतिः॥१०३॥
नास्तिमातृसमंत्राणंनास्ति मातृसमाप्रपा। कुक्षिसंधारणाद्धात्रीजननाज्जननी तथा॥१०४॥
अंगानांवर्धनादम्बावीरसूत्वेचवीरसूः। शिशोःशुश्रूषणाच्छ्वश्रूर्मातास्यान्माननात्तथा॥१०५॥
देवतानां समावापमेकत्वं पितरं विदुः। मर्त्यानां देवतानाञ्च पूगोनात्येति मातरम्॥१०६॥
पतिता गुरवस्त्याज्या माताच न कथञ्चन। गर्भधारणपोषाभ्यां तेन माता गरीयसी॥१०७॥

उसके लिये तब समस्त जगत् शून्य हो जाता है। माता के समान कोई शोभा नहीं है, उसके समान गति, रक्षक तथा तृप्ति देने वाला कोई नहीं है। वह सन्तान को अपनी कोख में धारण करने के कारण धात्री, जन्म देने के कारण जननी, अंगों की वृद्धि कराने के कारण अम्बा, वीर के समान दुःख सहकर प्रसव करने के कारण वीरसु, शिशु की सुश्रूषा करने के कारण श्वश्रु, मानन करने के कारण माता है। इत्यादि माता के नाम कहे गये हैं। पिता तो सर्वदेवतुल्य है, तथापि मर्त्य एवं देवता मिलकर भी माता की बराबरी नहीं कर सकते। पतित गुरु तक को त्यागा जा सकता है, तथापि माता चाहे जैसी हो, उसका त्याग नहीं हो सकता। गर्भ में धारण तथा पोषण करने के कारण माता सबसे गरीयसी है।।१०३-१०७।।

एवंसकौशकीतीरेबलिंराजानमीक्षतीम्। स्त्रीवृत्तिंचिरकालत्वाद्धन्तुं दिष्टःस्वमातरम्॥१०८॥
विमृश्य चिरकालंहि चिन्तान्तंनाभ्यपद्यत। एतस्मिन्नन्तरेशक्रोब्राह्मणं रूपमास्थितः॥१०९॥

गायन्गाथामुपायातः पितुस्तस्याऽऽश्रमान्तिके।
अनृता हि स्त्रियः सर्वाः सूत्रकारो यदब्रवीत्॥११०॥

अतस्ताभ्यः फलं ग्राह्यं नस्याद्दोषेक्षणःसुधीः। इतिश्रुत्वातमानर्चमेधातिथिरुदारधीः॥१११॥
दुःखितश्चिंतयन्प्राप्तो भृशमश्रूणि वर्तयन्। अहोऽहमीर्ष्ययाक्षिप्तो मग्नोऽहंदुःखसागरे॥११२॥
हत्वा नारींचसाध्वींच को नु मां तारयिष्यति। सत्वरेणमयाज्ञप्तश्चिरकारीह्युदारधीः॥११३॥
यद्ययं चिरकारी स्यात्स मां त्रायेत पातकात्। चिरकारिक भद्रंतेभद्रंतेचिरकारिक॥११४॥

कौशीतकी तीर पर चिरकारी जिसे जननी के वधार्थ पिता ने आदेश दिया था, इसी प्रकार विचार करता रहा तथा क्या करना चाहिये इस निश्चय पर नहीं पहुंच सका। इस अवसर पर इन्द्र एक गाथा को गाते हुये ब्राह्मण वेश में चिरकारी के पिता मेधातिथि के आश्रम आये। गाथा यह थी—"सूत्रकारों का कहना है कि स्त्री मात्र ही असति होती है। अतः धीमान् व्यक्ति उनका फल ही ग्रहण करे। उनको दोष न दे।" उदारवृत्ति मेधातिथि मुनि यह गाथा सुनकर उन द्विज की सम्यक् अर्चना करके दुःखी मन से प्रबल अश्रुवर्षण करते चिन्ता करने लगे कि मैंने ईर्ष्यावशात् ज्ञानहीन होकर उस साध्वी स्त्री की हत्या का आदेश किया और दुःख में मग्न हो गया। कौन मेरा त्राण करेगा। मैंने उदार बुद्धि चिरकारी को उसकी जननी की अविलम्ब हत्या का आदेश तो दे दिया। तथापि यदि वह चिरकारी कार्य में भी चिरकारी निकल जाये, तब मैं इस पाप से छुटकारा पा सकूंगा। हे चिरकारिक! तुम्हारा मंगल हो!।।१०८-११४।।

यदद्यचिरकारी त्वं ततोऽसि चिरकारिकः। त्राहि मां मातरंचैव तपोयच्चाऽर्जितंमया॥११५॥
आत्मानं पातके विष्टं शुभाह्व चिरकारिक। एवंसःदुखितःप्राप्तोगौतमोऽचिन्तयत्तदा॥११६॥
चिरकारिकं ददर्शाऽथ पुत्रं मातुरुपान्तिके। चिरकारी तु पितरं दृष्ट्वा परमदुःखितः॥११७॥

शस्त्रं त्यक्त्वा स्थितो मूर्ध्ना प्रसादायोपचक्रमे।
मेधातिथिः सुतं दृष्ट्वा शिरसा पतितं भुवि॥११८॥

पत्नीं चैव तु जीवन्तींपरामभ्यगमन्मुदम्। हन्यादिति न सा वेदशास्त्रपाणौस्थितेसुते॥११९॥
बुद्धिरासीत्सुतं दृष्ट्वा पितुश्चरणयोर्नतम्। शस्त्रग्रहणचापल्यं सम्वृणोति भयादिति॥१२०॥

अब तुम यथार्थतः चिरकारी (देर तक विचार करने वाले) हो जाओ। हे शुभ नाम वाले चिरकारी! तब तो तुम मेरे यथार्थ हितकारी होगे! अब तुम मेरा, मेरी माता का, मेरी अर्जित तपस्या का तथा पातक पतनोन्मुख आत्मा का परित्राण करो! गौतम मेधातिथि ऋषि इसी प्रकार मन ही मन दुश्चिन्ता करते चिरकारी के पास गये तथा उसकी माता को उसके पास जीवित देखा। चिरकारी भी पिता को आते देखकर अत्यन्त दुःख से अस्त्र को वहीं छोड़कर पिता को प्रसन्न करने हेतु उनको भूमि पर मस्तक नत करके उनको प्रणाम करने लगे। मेधातिथि ने पुत्र को भूमि पर प्रणत होते देखा तथा पत्नी को भी जीवित देखा। इससे उनको परम सन्तोष प्राप्त हो गया। यद्यपि चिरकारी की माता ने पुत्र को सशस्त्र आते भले ही देखा था, तथापि वे यह नहीं जान सकीं कि वह उनके वधार्थ आया था। माता ने

जब पुत्र को पिता के चरणों पर लोटते देखा, तब उन्होंने सोचा कि अस्त्र धारण की चपलता करने के कारण यह भयवश पिता से क्षमा प्रार्थना कर रहा है!।।११५-१२०।।

ततः पित्राचिरंस्मृत्वाचिरंचाऽऽघ्रायमूर्धनि। चिरंदोर्भ्यांपरिष्वज्यचिरञ्जीवेत्युदाहृतः॥१२१॥
चिरं मुदान्वितः पुत्रं मेधातिथिरथाऽब्रवीत्। चिरकारिकभद्रन्तेचिरकारीभवेच्चिरम्॥१२२॥
चिराययत्कृतंसौम्यचिरमस्मिन्नदुःखितः। गाथाश्चाप्यब्रवीद्विद्वान्गौतमोमुनिसत्तमः॥१२३॥
चिरेण मन्त्रं सन्धीयाच्चिरेण च कृतं त्यजेत्। चिरेण विहितं मित्रं चिरंधारणमर्हति॥१२४॥

तदनन्तर पिता मेधातिथि ने कुछ काल अभिध्यान करके पुत्र का मस्तक देर तक वात्सल्य के कारण सूंघा तथा चिरकारी का गाढ़ आलिंगन करके कहा—"तुम चिरंजीवी हो जाओ।" इस प्रकार उसे आशीर्वाद दिया। तदनन्तर उन्होंने अत्यधिक आनन्द के साथ कहा—"हे चिरकालिक! तुम्हारा मंगल हो। सभी लोक चिरकारी के समान चिरकालिक विचार करें। हे सौम्य! चिरकाल में जो किया जाता है, उसे बाद में चिरकाल तक पश्चाताप नहीं करना पड़ता।" विद्वान् मुनिवर ने इस सभी गाथा का उल्लेख किया था। चिरकाल में विचार स्थिर करे। चिरकाल विचार करके तब किसी कर्म का करना बंद करे। जिसके साथ चिरकाल मित्रता की जाती है, वही मित्र चिरकाल तक मित्र रहता है।।१२१-१२४।।

रोगे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च कर्मणि। अप्रिये चैव कर्तव्ये चिरकारी प्रशस्यते॥१२५॥
बन्धूनां सुहृदां चैव भृत्यानां स्त्रीजनस्य च। अव्यक्तेष्वपराधेषु चिरकारी प्रशस्यते॥१२६॥
चिरं धर्मान्निषेवेत कुर्याच्चाऽन्वेषणंचिरम्। चिरमन्वास्य विदुषश्चिरमिष्टानुपास्य च॥१२७॥
चिरं विनीय चात्मानं चिरं यात्यनवज्ञताम्। ब्रुवतश्चपरस्यापिवाक्यंधर्मोपसंहितम्॥१२८॥
चिरं पृच्छेच्च शृणुयाच्चिरं न परिभूयते। धर्मे शत्रौ शस्त्रहस्ते पात्रे च निकटस्थिते॥१२९॥
भये च साधुपूजायां चिरकारी न शस्यते। एवमुक्त्वापुत्रभार्यासहितःप्राप्यचाश्रमम्॥१३०॥
ततश्चिरमुपास्याऽथ दिवं यातश्चिरं मुनिः। वयं त्वेवंब्रुवन्तोऽपिमोहेनैवं प्रतारिता॥१३१॥
कलौ च भवतां विप्रा मच्छापो निपतिष्यति।
केचित्सदा भविष्यन्ति विप्राः सर्वगुणैर्युताः॥१३२॥

रोग, दर्प, अभिमान, द्रोह, पाप तथा अप्रिय कर्मानुष्ठान में चिरकारी ही प्रशंसित है। चिरकाल धर्म सेवा करे, चिरकाल अन्वेषणरत रहे। विद्वानों के साथ चिरकाल तक एक स्थान में रहे। आत्मीय लोगों की उपासना चिरकाल तक करे। स्वयं को चिरकाल शिक्षित करे। ऐसा करने से चिरकाल तक आदर मिलता है। जब कोई किसी अन्य से धर्मकथा कहता है, तब उससे चिरकाल तक जिज्ञासा करे तथा चिरकाल तक उसे सुने। ऐसा करने वाला कभी परिभूत नहीं होता। धर्म, शत्रु, सम्पन्न व्यक्ति तथा सत् व्यक्ति, जब इनके समीप होना पड़े तब कर्त्तव्य के विषय में चिरकारी होना उचित नहीं है। हे द्विजगण! मैं यह कहता तो हूं, तथापि उस समय मैंने प्रवंचित होकर आप सबको अभिशाप दे दिया। आप लोगों को यह पापफल कलिकाल में होगा। परन्तु तब भी कोई-कोई विप्र सद्गुणी होंगे।।१२५-१३२।।

पादप्रक्षालनं कृत्वा ततोऽहं धर्मवर्मणः। समीपेसाक्षिणोदेवान्कृत्वा संकल्पमाचरम्॥१३३॥

काञ्चनैर्गोप्रदानैश्च गृहदानैर्धनादिभिः। भार्याभूषणवस्त्रैश्च कृतार्था ब्राह्मणाः कृताः॥१३४॥
ततःकरं समुद्यम्य प्राहेन्द्रो देवसङ्गमे। हराङ्गरुद्धवामार्द्धा यावद्देवी गिरेः सुता॥१३५॥
गणाधीशो वयं यावद्यावत्त्रिभुवनं त्विदम्। तावन्नन्द्यादिदंस्थानंनारदस्थापितंसुराः॥१३६॥
ब्रह्मशापो रुद्रशापो विष्णुशापस्तथैव च। द्विजशापस्तथा भूयादिदंस्थानं विलुम्पतः॥१३७॥

तदनन्तर मैंने उन ब्राह्मणगण का चरण धोकर राजा धर्मवर्मा के समीप देवगण को साक्षी माना तथा संकल्प करके स्वर्ण, गौ, गृह, धन, भार्या, भूषणादि तथा वस्त्रादि से ब्राह्मणों को सन्तोष प्रदान किया। तदनन्तर देवताओं में से इन्द्र ने भुजा उठाकर कहा—"हे देवताओं! हरार्द्धसंहारिणी गिरिनन्दिनी! हम देवता, गणेश्वरगण तथा त्रिभुवन जब तक विद्यमान हैं, तब तक नारद द्वारा स्थापित यह स्थान भी अभिनन्दित होता रहेगा। इस स्थान का नाश करने के लिये जो यहां चौर्यादि कार्य करेगा, उसे रुद्र का, ब्रह्मा का, विष्णु का तथा ब्राह्मणों का शाप लगेगा"॥१३३-१३७॥

ततस्थेति तैः सर्वैर्हृष्टैस्तत्र तथोदितम्।
एवं मया स्थापिते स्थानकेऽस्मिन्संस्थापयामास च कापिलं मुनिः।
स्थाने उभे देवकृते प्रसन्नास्ततो ययुर्देवता देवसद्म॥१३८॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे नारदीयस्थानप्रतिष्ठावर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥

तब देवगण ने प्रसन्न होकर कहा—"ऐसा ही हो।" तथा इन्द्र के वाक्य का अभिनन्दन भी किया। तत्पश्चात् मेरे प्रतिष्ठित उसी स्थान पर कपिल मुनि ने एक अन्य स्थान की भी प्रतिष्ठा की। ये दोनों स्थान देवताओं द्वारा स्वीकृत हैं। तब सभी देवगण अपने-अपने स्थान पर लौट गये॥१३८॥

॥षष्ठ अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

सप्तमोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्न प्रसंग, पृथिवी प्रादुर्भाव वर्णन, गालव मुनि की भार्या के प्रति शिवगण का मोह, कम्बल का पूर्वजन्म वृत्तान्त

अर्जुन उवाच

महीसागरमाहात्म्यमद्भुतं कीर्तितं त्वया। विस्मयः परमो मह्यं प्रहर्षश्चोपजायते॥१॥
तदहं विस्तराच्छ्रोतुमिदमिच्छामि नारद!। कस्य यज्ञे महीग्लानावह्नितापाभितापिता॥२॥

अर्जुन कहते हैं—आपने महीसागर संगम की अद्भुद् महिमा कही है। इससे मुझे अत्यन्त विस्मय तथा हर्ष हो गया। हे नारद! इसलिए मैं इस वृत्तान्त को विस्तार से सुनना चाहता हूं। किसके यज्ञ के अग्नि ताप के कारण सन्तप्त होकर ग्लानियुक्त हो गयी?।।१-२।।

नारद उवाच

महदाख्यानमाख्यास्येयथाजातामहीनदी। शृण्वन्नेतांकथांपुण्यांपुण्यमाप्स्यसिपाण्डव॥३॥
पुराऽभूद्भूपतिर्भूमाविन्द्रद्युम्न इति श्रुतः। वदान्यः सर्वधर्मज्ञो मान्यो मानयिता प्रभुः॥४॥
उचितज्ञो विवेकस्य निवासोगुणसागरः। न तदस्ति धरापृष्ठे नगरं ग्रामपत्तनम्॥५॥
तदीयपूर्तधर्मस्य चिह्नेन न यदङ्कितम्। कन्यादानानि बहुधा ब्राह्मेणविधिनाव्यधात्॥६॥
भूपालोऽसौददौ दानमासहस्त्राद्धनार्थिनाम्। दशमीदिवसे रात्रौ गजपृष्ठेन दुन्दुभिः॥७॥
ताड्यते तत्पुरे प्रातः कार्यमेकादशीव्रतम्। यज्वनातेनभूपेनविच्छिन्नंसोमपायिनाम्॥८॥
स्वरणैरास्तृता दर्भैद्व्यंगुलोत्सेधिता मही। गङ्गायांसिकताधारावर्षतोदिवितारकाः॥९॥
शक्या गणयितुं प्राज्ञैस्तदीयं सुकृतं न तु। ईदृशैः सुकृतैरेष तेनैव वपुषा नृपः॥१०॥
धाम प्रजापतेः प्राप्तो विमानेन कुरूद्वह!। बुभुजे स तदा भोगान्दुर्लभानमरैरपि॥११॥

नारद कहते हैं—मही नदी की जैसे उत्पत्ति हुई थी, उस महान् उपाख्यान को कहता हूं। हे पाण्डुनन्दन! तुम इस पुण्यकथा को सुनकर पुण्यलाभ करोगे। पूर्वकाल में भूमण्डल में वदान्य, सर्वधर्मज्ञ, सर्वजनमान्य, सबका सम्मान करने वाले, निग्रह-अनुग्रह में समर्थ, कर्त्तव्य ज्ञानी, विवेक के आधार, गुणसागर, इन्द्रद्युम्न नामक एक विख्यात राजा थे। पृथिवी पर ऐसा कोई नगर, ग्राम, पत्तन नहीं था, जहां राजा के पूर्त्तकार्य का चिह्न अंकित न हो। उस राजा ने ब्राह्मविधि से अनेक कन्यादान किया था। वे याचकों को एक सहस्त्र मुद्रा से कम का दान कदापि नहीं देते थे। वे राजा दशमी के दिन रात्रि में हाथी पर दुन्दुभि बजवा कर घोषणा कराते थे कि सभी को कल प्रातः एकादशी व्रत करना होगा। उन्होंने इतने यज्ञ किये थे कि पृथिवी सोमपायी लोगों के निवास से अविच्छिन्न रूपेण समाच्छादित हो गयी तथा समस्त पृथिवी कुशा बिछने के कारण २ अंगुल ऊंची भी हो गयी! विद्वान् लोग गंगा की

बालू, आकाशीय वृष्टि की धारा किंवा आकाश के तारे भले ही गिन लें, तथापि इन्द्रद्युम्न की सुकृति की कोई गणना नहीं कर सकता। उस राजा का ऐसा सुकृत था। हे कुरुकुल प्रवर! उनकी इस सुकृति के कारण उन्होंने इसी शरीर से विमान पर बैठकर प्रजापतिलोक में जाकर अमर दुर्लभ भोगों का अनुभव किया।।३-११।।

अथ कल्पशतस्याऽन्ते व्यतीते तं महीपतिम्। प्राह प्रजापतिःसेवावसरायातमात्मनः॥१२॥

ब्रह्मोवाच

इन्द्रद्युम्न! द्रुतं गच्छ धरापृष्ठं नृपोत्तम!। न स्थातव्यं मदीयेऽद्य लोकेक्षणमपि त्वया॥१३॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

कस्माद्ब्रह्मन्नितो भूमौ मां प्रेषयसिसम्प्रति। सति पुण्ये मदीयेतु बहुले वद कारणम्॥१४॥

ब्रह्मोवाच

नपुण्यंकेवलंराजन्गुप्तंस्वर्गस्यसाधकम्। विनानिष्कल्मषांकीर्तिंत्रिलोकीतलविस्तृताम्॥१५॥
तव कीर्तिसमुच्छेदः साम्प्रतं वसुधातले। सञ्जातश्चिरकालेन गत्वा तां कुरु नूतनाम्॥१६॥
यदि वाञ्छा महीपाल! मम धामनि संस्थितौ॥१७॥

तदनन्तर शत कल्पान्त में प्रजापति ब्रह्मा ने अपनी उपासना हेतु आये राजा से कहा—"हे राजन्! तुम अविलम्ब पृथिवी पर जाओ। मेरे इस लोक में तुम एक क्षण भी न रुको।" इन्द्रद्युम्न ने कहा—हे ब्रह्मन्! मेरे अनेक पुण्य रहने पर भी मुझे यहां से पृथिवी पर क्यों भेज रहे हैं? ब्रह्मा ने कहा—"राजन्! त्रिलोक में विस्तृत निर्मल कीर्त्ति के विना केवल पुण्य से ही स्वर्ग में निवास नहीं मिलता। चिरकाल के उपरान्त पृथिवी में तुम्हारी कीर्त्ति का क्षय हो गया। हे महीपाल! तुम यदि मेरे लोक में निवास करना चाहो, तब मर्त्यलोक में जाकर पुनः नयी कीर्त्ति की प्रतिष्ठा करो।।१२-१७।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

मदीयं सुकृतं ब्रह्मन्कथं भूमौ भवेदिति। किं कर्तव्यं मयानैतन्मम चेतसि तिष्ठति॥१८॥

ब्रह्मोवाच

बलवानेष भूपाल! कालः कलयति स्वयम्।
ब्रह्माण्डान्यपि मां चैव गणनाकाभवदृशाम्। तदेतदेव मन्येऽहं तव भूपाल साम्प्रतम्॥१९॥
यत्कीर्तिमात्मनोव्यक्तिंनीत्वाऽभ्येहिपुनर्दिवम्। शुश्रुवानितिवाचंसब्रह्मणःपृथिवीपतिः॥२०॥
पश्यतिस्मतथाऽऽत्मानंमहीतलमुपागतम्। काम्पिल्यनगरेभूयःपप्रच्छाऽऽत्मानमात्मना॥२१॥
नगरं स तदा देशमप्राक्षीदिति विस्मितः॥२२॥

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—"हे ब्रह्मन्! भूतल पर जाकर मेरी सुकृत प्रतिष्ठा कैसे होगी? मै वहां क्या करूंगा? यह चिन्ता मेरे अन्तःकरण में विद्यमान है।" ब्रह्मा कहते हैं—"हे भूपाल! यह परिदृश्यमान काल महाबली है। ये ही स्वेच्छा से समस्त ब्रह्माण्ड का तथा मेरा भी परिणाम साधन करते हैं। तब तुम्हारी तरह सामान्य लोगों की बात

ही क्या? हे भूपाल! तुम भूतल जाकर अपनी कीर्त्ति का विस्तार करके पुनः यहां आओ। यही मेरे विचार से उचित होगा।'' राजा ने यह बात सुनते-सुनते स्वयं को पृथिवी पर खड़े देखा। वे वहां लोगों से विस्मित चित्त से अपने सम्बन्ध में पूछने लगे!।।१८-२२।।

जना ऊचुः

न जानीमो वयं भूपमिन्द्रद्युम्नं न तत्पुरम्। यत्त्वं पृच्छसि भो भद्र कञ्चित्पृच्छ चिरायुषम्।।२३।।

इसके उत्तर में वहां के लोगों ने कहा—हे भद्र! हम इन्द्रद्युम्न राजा को नहीं जानते, उनकी नगरी को भी नहीं जानते। आप इस सम्बन्ध में किसी दीर्घायु वृद्ध से पूछें।।२३।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

कः सम्प्रति धरापृष्ठे चिरायुः प्रथितो जनाः!।
पृथिवीजयराज्येऽस्मिन्यत्र प्रब्रूत मा चिरम्।।२४।।

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—धरातल में इस काल में कौन व्यक्ति दीर्घायु है। इस राजा तथा अन्य राजा की बात जाने दें। अब दीर्घायु का पता बतायें। विलम्ब न करें।।२४।।

जना ऊचुः

श्रूयते नैमिषारण्ये सप्तकल्पस्मरो मुनिः।।२५।।
मार्कण्डेय इति ख्यातस्तं गत्वापृच्छ संशयम्। तथोपदिष्टस्तैर्गत्वातत्रतंमुनिपुङ्गवम्।
निशम्य प्रणिपत्याऽऽह नृपः स्वहृदयस्थितम्।।२६।।

लोग कहते हैं—''सुना गया है कि नैमिषारण्य में सात कल्प की स्मृति वाले मार्कण्डेय नामक ऋषि रहते हैं। उनसे इस सन्दिग्ध विषय की जिज्ञासा करें।'' तब राजा लोगों की बात के अनुसार नैमिषारण्य गये तथा उन मुनिवर को देखकर हृद्गत विषय के सम्बन्ध में उनको प्रणाम करके पूछा।।२५-२६।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

चिरायुर्भगवान्भूमौ विश्रुतः साम्प्रतं ततः।।२७।।
पृच्छाम्यहं भवान्वेत्ति इन्द्रद्युम्नं नृपं न वा।।२८।।

श्रीमार्कण्डेय उवाच

सप्तकल्पान्तरेनाभूत्कोपीन्द्रद्युम्नसञ्ज्ञितः। भूपालकिमहंवच्मितवाऽन्यत्पृच्छसंशयम्।।२९।।
स निराशस्तदाकर्ण्य वचोभूपोऽग्निसाधने। समुद्योगंतदा चक्रे तं दृष्ट्वाऽऽहतदामुनिः।।३०।।

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—''हे भगवान्! भूतल में आप ही चिरायु हैं। तभी मैं आपसे पूछता हूं कि क्या आप इन्द्रद्युम्न राजा को जानते हैं?'' मार्कण्डेय ने कहा ''इधर सात कल्पों में इस नाम का कोई राजा नहीं था। आपको और कुछ जानना हो, तब कहें।'' यह सुनकर इन्द्रद्युम्न निराश हो गये तथा अग्नि में प्रवेश करने का उपाय करने लगे। यह देखकर मार्कण्डेय ऋषि ने उनको रोकते हुये कहा।।२७-३०।।

मार्कण्डेय उवाच

मा साहसमिदं कार्षीर्भद्र वाचं शृणुष्व मे। एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि॥३१॥
तत्करोमि प्रतीकारं तव दुःखोपशान्तये। शृणु भद्र ममाऽस्तीह बकोमित्रं चिरन्तनः॥३२॥
नाडीजङ्घइतिख्यातःस त्वा ज्ञास्यत्यसंशयम्। तस्मादेहि द्रुतं यावदावांतत्र व्रजावहे॥३३॥
परोपकारैकफलं जीवितं हि महात्मनाम्। यदिज्ञास्यत्यसन्दिग्धमिन्द्रद्युम्नंसवक्ष्यति॥३४॥

मार्कण्डेय कहते हैं—हे भद्र! मेरी बात सुनो। ऐसा दुःसाहस न करो। जीवित व्यक्ति को १०० वर्षान्त तक आनन्द मिल सकता है। अतः मैं तुम्हारे दुःख के प्रतिकार का मार्ग बतलाता हूं। हे भद्र! सुनो। भूतल पर मेरा पुराना मित्र नाड़ीजंघ नामक एक बकुला है। वह तुम्हारे जिज्ञास्य विषय को निश्चित जानता है। आओ! हम अविलम्ब वहीं चलें। परोपकार ही महात्मागण के जीवन का एकमात्र फल है। वे यदि इन्द्रद्युम्न को जानते हैं, तब अवश्य कहेंगे।।३१-३४।।

तौ प्रस्थिताविति तदा विप्रेन्द्रनृपपुङ्गवौ। हिमाचलं प्रति प्रीतौ नाडीजङ्घालयं प्रति॥३५॥
बकोऽथ मित्रं स्वं वीक्ष्य चिरकालादुपागतम्।
मार्कण्डेयं ययौ प्रीत्युत्कंठितः सम्मुखं द्विजैः॥३६॥
कृतसंविदभूत्पूर्वं कुशलस्वागतादिना। पप्रच्छाऽनन्तरं कार्यं वदागमनकारणम्॥३७॥
मार्कण्डेयोऽथतं प्राह बकं प्रस्तुतमीप्सितम्। इन्द्रद्युम्नं भवान्वेत्ति भूपालंपृथिवीतले॥३८॥
एतस्य मम मित्रस्य तेन ज्ञातेनकारणम्। नो वाऽयं त्यजतिप्राणान्पुरावह्निप्रवेशनात्॥३९॥
एतस्य प्राणरक्षार्थं ब्रूहि जानासि चेन्नृपम्॥४०॥

तदनन्तर वे द्विज तथा राजा, दोनों ही नाड़ीजंघ के आश्रयस्थल हिमालय की ओर चल पड़े। वहां उस बकुले ने चिरकाल के पश्चात् समागत अपने बन्धु मार्कण्डेय मुनि को देखकर अन्य पक्षियों के आगे होकर प्रीति से उत्कण्ठित स्थिति में आया तथा इनकी अभ्यर्थना किया। प्रथमतः स्वागत प्रश्नादि के उपरान्त बक ने पूछा "अपने आगमन का कारण कहिये।" तब मार्कण्डेय ने उससे अपने जिज्ञासित प्रश्न को पूछा—"क्या आपने भूतल पर इन्द्रद्युम्न राजा को देखा है? अथवा उनके सम्बन्ध में कुछ ज्ञात है। मेरे इन बन्धु को उसके विषय में जानना है। अन्यथा ये अग्नि में प्रवेश करके प्राणत्याग कर रहे थे। यदि आप उसे जानते हैं, तब इनको बतला कर इनकी प्राणरक्षा करिये।।३५-४०।।

नाडीजङ्घ उवाच

चतुर्दशस्मराम्यस्मिकल्पान्विप्रेन्द्रसाम्प्रतम्। आस्तांतद्दर्शनंवार्तामपिवानस्मराम्यहम्॥४१॥
इन्द्रद्युम्नो महीपालः कोऽपि नासीन्महीतले। एतावन्मात्रमेवाऽहं जानामिद्विजपुङ्गव॥४२॥

नाड़ीजंघ कहता है—हे विप्रेन्द्र! मैं १४ कल्पों का वृत्तान्त जानता हूं। उसका दर्शन तो दूर की बात है, मैंने उसकी चर्चा तक नहीं सुना। हे द्विजपुंगव! मैं यही जानता हूं कि पृथिवी पर इस नाम का कोई राजा नहीं था।।४१-४२।।

नारद उवाच

ततः स विस्मयाविष्टस्तस्याऽऽयुरिति शुश्रुवान्। पप्रच्छ राजा को हेतुर्दानस्य तपसोऽथ वा।
यदायुरीदृशं दीर्घसंजातमितिविस्मितः॥४३॥

नारद कहते हैं—तदनन्तर राजा इन्द्रद्युम्न इस बक की आयु जान कर विस्मय में पड़ गये। उन्होंने सोचा तथा पूछा कि "किस दान अथवा तप के फलस्वरूप आपको ऐसी दीर्घायु प्राप्त है?" नाड़ीजंघ ने यह सुनकर कहने लगा॥४३॥

नाडीजङ्घ उवाच

घृतकम्बलमाहात्म्यान्मम देवस्य शूलिनः। दीर्घमायुरिदं विप्र शापाद्बकवपुःशृणु॥४४॥
पुरा जन्मन्यहंबालोब्राह्मणस्याऽऽभवं भुवि। पाराशर्यसगोत्रस्य विश्वरूपस्यसन्मुनेः॥४५॥
बालको बक इत्येवं प्रतीतोऽतिप्रियः पितुः। चपलोऽतीव बालत्वे निसर्गादेवभद्रक॥४६॥
अथ मारकतं लिङ्गं देवतावसरात्पितुः। चापल्याद्बालभावाच्चाऽपहृत्य निहितं मया॥४७॥
घृतस्यकुम्भे सङ्क्रान्तौमकरस्योत्तरायणे। अथ प्रातर्व्यतीतायांनिशियावत्पितामम्॥४८॥
निर्माल्यापनयंचक्रेतावच्छून्यं शिवालयम्। निशम्यकांदिशीकोमांप्रपच्छमधुरस्वरम्॥४९॥
वत्स क्व नु त्वयालिंगंनूनंविनिहितंवद। दास्यामिवाञ्छितंयत्तेभक्ष्यमन्यत्तत्वेप्सितम्॥५०॥

नाड़ीजंघ कहता है—घृतकम्बल माहात्म्य से शंकर की कृपा से मेरी यह दीर्घायु हो सकी है, तथापि शाप के कारण यह बक शरीर मिला है। मैं यह वृत्तान्त कहता हूं, सुनो। पूर्वजन्म में मैं ब्राह्मण बालक था। पराशरवंश के विश्वरूप मुनि के पुत्र रूप में मैं जन्मा था। मेरा नाम बक था। मैं पिता का प्रियतम पुत्र था। हे भद्र! बाल्यावस्था में मैं स्वभावतः अतीव चंचल था। एक बार उत्तरायण में मकर संक्रान्ति पर मैंने चापल्यवशात् पिता के देवमन्दिर से मरकत का शिवलिंग चुराकर घृतकुम्भ में स्थापित किया। रात्रि व्यतीत होने पर जब प्रातः पिता निर्माल्य हटाने लगे, तब लिंग को न पाकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर मुझसे मधुर स्वर में पूछने लगे—"हे वत्स! तुमने लिंग कहां रख दिया। निश्चित कहो। यह बताओगे तब तुमको खाने की अथवा अन्य जो वस्तु चाहिये, वह तुमको दूंगा"॥४४-५०॥

ततो मया बालभावाद्भक्ष्यलुब्धेन तत्पितुः। घृतकुम्भान्तराकृष्य भद्रलिङ्गं समर्पितम्॥५१॥
अथ कालेतुसम्प्राप्ते प्रमीतोऽहं नृपालये। जातोजातिस्मरस्तावदानर्ताधिपतेःसुतः॥५२॥
घृतकम्बलमाहात्मायान्मकरस्थे दिवाकरे। अपिबाल्यादवज्ञानात्संयोगाद्घृतलिङ्गयोः॥५३॥
ततः संस्थापितंलिंगंप्राग्जन्मस्मरतामया। ततः प्रभृतिलिङ्गानिघृतेनाच्छादयाम्यहम्॥५४॥
पितृपैतामहं प्राप्य राज्यं शक्त्यनुरूपतः। ततः प्रसन्नो भगवान्पार्वतीपतिराह माम्॥५५॥

तब मैंने बाल्यभाव के कारण खाने की वस्तु की लालच में घृतकुम्भ से निकाल कर वह उत्तम लिंग पिता को दे दिया। कुछ काल पश्चात् मैं मृत्यु पाकर आनर्त्त देश के राजपुत्र के रूप में जन्मा। मैंने जो मकर संक्रान्ति के दिन घृतकुम्भ में लिंग रखा था, बालक स्वभाव के कारण अज्ञानवशात् अनुष्ठित होने पर भी उस घृत तथा लिंग के

संयोग के कारण घृतकम्बल महिमा से मुझे ऐसा फल मिला। इस जन्म में भी मैंने पूर्वजन्मार्जित स्मृति के कारण लिंग स्थापित किया तथा पिता-पितामह का राज्य पाकर राज्य के सभी लिंगों को घृत से आप्लुत कर दिया। तब भगवान् पार्वतीपति ने प्रसन्न होकर मुझसे कहा।।५१-५५।।

पूर्वजन्मनि तुष्टोऽहं घृतकम्बलपूजया।
प्रयच्छाम्यस्मि ते राज्यमधुनाऽभिमतं वृणु।।५६।।
ततो मया वृतः प्रादाद्गाणपत्यं मदीप्सितम्। कैलासेमांशिवोनित्यंसन्तुष्टःप्राहचेतिच।।५७।।
तेनैव हि शरीरेण प्रणतंपुरतःस्थितम्। अद्यप्रभृति सङ्क्रान्तौ मकरस्याऽपरोऽपियः।।५८।।
घृतेनपूजांकर्त्तासौभावीममगणःस्फुटम्। इत्युक्त्वामांशिवोभद्रगणकोटीश्वरंव्यधात्।।५९।।
प्रतीपपालकंनामसंस्थितंशिवशासनम्। ततःकामादिभिः षड्भिःपदैश्चंक्रमणात्मिकाम्।।६०।।
निसर्गचपलां प्राप्य भ्रमरीमिव तां श्रियम्। नैवालमभवं तस्या धारणे दैवयोगतः।।६१।।
विचचार तदा मत्तःकिलाऽहंवारणोयथा। कृत्याकृत्यविचारेणविमुक्तोऽतीव गर्वितः।।६२।।
विद्यामभिजनं लक्ष्मीं प्राप्य नीचनरो यथा। आपदां पात्रतामेतिसिन्धूनामिवसागरः।।६३।।

भगवान् ने प्रसन्नतापूर्वक यह कहा—"मैंने पूर्वजन्म में तुम्हारे द्वारा घृतकम्बल पूजाफल के कारण प्रसन्न होकर तुमको इस जन्म में राज्य प्रदान किया है। अब तुम इच्छित वर मांगो।" मेरी प्रार्थना के अनुरूप महादेव ने मुझे गाणपत्य प्रदान किया तथा उसी शरीर से मुझे कैलास ले आये। मैं प्रणाम पूर्वक उनके आगे बैठ गया। तब प्रभु ने मुझसे कहा—"आज से यदि अन्य कोई भी व्यक्ति मकर संक्रान्ति के दिन मुझे घृत अर्पित करके पूजा करेगा, वह भी निःसंशय मेरा ही गण होगा।" हे भद्र! शिव ने मुझसे यह कहकर १ करोड़ गणों का मुझे अधिनायक नियुक्त किया। तब मैं प्रतीपपालक नाम से प्रख्यात था तथा शिवाज्ञा का पालन करता रहता था। तदनन्तर कामादिरूप षट्पद (भ्रमर) द्वारा भ्रमणशीला स्वभाव से चपल भ्रमरी की तरह उस श्री (गाणपत्य) को पाकर मैं दैवात् उस पद की रक्षा कर सकने में समर्थ नहीं हो सका। मैं मत्त हाथी की तरह कार्य-अकार्य में विचार रहित होकर विचरण करने लगा। विद्या, कुलगौरव तथा लक्ष्मी लाभ द्वारा जिस प्रकार से निम्न लोग मदमत्त हो जाते हैं, जैसे नदीसमूह से युक्त सागर उत्ताल तरंग भरने लगता है, उसी प्रकार मैं सभी आपत्तियों का पात्र हो गया।।५६-६३।।

अथ काले व्यतिक्रान्ते कियन्मात्रेयदृच्छया। विचरन्नगमं शैलं हिमानीरुद्धकन्दरम्।।६४।।
तपस्यति मुनिस्तत्र गालवो भार्यया सह। सदैव तीव्रतपसा कृशोधमनिसन्ततः।।६५।।
ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं नैवैहिकफलप्रियः। कृच्छ्राय तपसे चेह प्रेत्याऽनन्तसुखाय च।।६६।।

कुछ समय व्यतीत होने पर एक बार मैं स्वेच्छापूर्वक विचरण करते-करते हिमालय पर्वत पर गालव ऋषि के आश्रम पर पहुंचा। वहां वे ऋषि सपत्नीक तपस्या कर रहे थे। नित्य तप करने के कारण वो अत्यन्त कृश थे। उनकी देह की सभी नसें उभर आई थीं। वास्तव में ब्राह्मण का शरीर ऐहिक सुखों के लिए नहीं बना है। वह कष्टसाध्य तप इस जगत् में करने हेतु बना है। तदनन्तर परकाल में अनन्त सुखसम्भोग की उसे परलोक में प्राप्ति होती है।।६४-६६।।

तस्य भार्याऽतिरूपेण विजिग्ये विश्ववर्णिनी।
तन्वी श्यामा मृगाक्षी सा पीनोन्नतपयोधरा॥६७॥
हंसगद्गदसम्भाषा मत्तमातङ्गगामिनी। विस्तीर्णजघना मध्ये क्षामा दीर्घशिरोरुहा॥६८॥
निम्ननाभिर्विधात्रैषानिर्मितासन्निदृक्षुणा। विकीर्णमिवसौन्दर्यमेकपात्रमिवस्थितम्।
ततोऽविनीतस्ताम्वीक्ष्य भद्र! गालववल्लभाम्॥६९॥

जो भी हो, उन गालव ऋषि की पत्नी संसार में परम रूपवती थीं। वे क्षीण अंगों वाली, श्यामा, मृगलोचना, पीनोन्नतस्तनी, मध्यक्षीण, मत्त हाथी की तरह चलने वाली, हंस की तरह गद्गद् वाणी से बोलने वाली, विस्तीर्ण जघनों वाली, दीर्घ केश से युक्त तथा गहरी नाभि वाली थी। उसे देखकर प्रतीत होता था कि मानों विधाता ने इधर-उधर बिखरी सौन्दर्यराशि एकत्र करके इसका निर्माण किया है। हे भद्रे! तदनन्तर मैं अब गालव की पत्नी को देखकर मन में राजस भावोद्वेग से ताड़ित होने लगा।।६७-६९।।

अहमासं शरव्रातैस्ताडितः पुष्पधन्विना। विवेकिनोऽपि मुनयस्तावदेव विवेकिनः॥७०॥
यावन्न हरिणाक्षीणामपाङ्गविवरेक्षिताः। मया व्यवसितंचित्तेतदानींतांजिहीर्षुणा॥७१॥
इति चेति हरिष्यामि तपसा रक्षितां मुनेः। अस्याःकृते यदिशपेन्मुनिस्तत्रपराभवः॥७२॥
ममभावीभवेदेषा भार्यामृत्युरुताऽपिमे। तस्माच्छिष्योभवाम्यस्यशुश्रूषानिरतो मुनेः॥७३॥
प्राप्यांतरं हरिष्यामिनास्ययोग्येयमङ्गना। इतिव्यवस्यविद्यार्थिमूर्तिमास्थायगालवम्॥७४॥
नमस्कृत्यवचोऽवोचमितिभाव्यर्थनोदितः। तथामतिस्तथामित्रंव्यवसायस्तथानृणाम्॥७५॥
भवेदवश्यं तद्भावि यथापुम्भिः पुरा कृतम्। विवेकवैराग्ययुतो भगवंस्त्वामुपस्थितः॥७६॥

परिणामस्वरूप विवेकशील मुनिगण भी तब तक विवेकी रहते हैं, जब तक मृगाक्षी रमणियों के अपाङ्गवीक्षण से (कटाक्ष से) वीक्षित नहीं होते (देखे नहीं जाते) तब मैं मन ही मन उस मुनिपत्नी का हरण करने की अभिलाषा करने लगा। तब मैंने सोचा कि मुनि के तपःप्रभाव से उनकी पत्नी रक्षिता है। तब अपहरण करने पर मुनि अभिशाप देंगे। वह भी मुझे स्वीकार्य है। चाहे जो हो, मैं इसे पत्नी बनाऊंगा। अन्यथा मेरे प्राण जा रहे हैं। अतः मैं इन मुनि का शिष्यत्व ग्रहण करके शुश्रूषा करूंगा। मौका मिलने पर ऋषिपत्नी का हरण करूंगा। यह रमणी मुनि के योग्य नहीं है। भवितव्यता के वशीभूत होकर मैंने यह तय किया तथा विद्यार्थी वेश में गालव को प्रणाम करके उनसे अपना अभिप्राय कहने लगा। वास्तव में मनुष्य पूर्व में जैसा कर्म करता है, इहकाल में उसे तदनुरूप बन्धु, बुद्धि तथा व्यवसाय (कर्म) मिलता है।।७०-७६।।

शिष्योऽहंभवतापाठ्यं कर्णधारं महामुनिम्। अपारपारदं विष्णुंविप्रमूर्तिमुपाश्रितम्॥७७॥
नमस्ये चेतनं ब्रह्म प्रत्यक्षं गालवाख्यया। अविद्याकृष्णसर्पेण दष्टं तद्विषपीडितम्॥७८॥
उपदेशमहामन्त्रैर्माजाङ्गुलिक जीवय। महामोहमहावृक्षो हृद्याचापसमुत्थितः॥७९॥
त्वद्वाक्यतीक्ष्णधारेण कुठारेण क्षयं व्रजेत्। अपवर्गपथव्यापी मूढसंसर्गसेचनः॥८०॥
छिद्यतां सूत्रधारेण विद्यापरशुनाऽधुना। भजामि तव शिष्योऽहं वरिबस्यापरश्चिरम्॥८१॥

समिद्दर्भान्मूलफलं दारूणि जलमेव च। आहरिष्येऽनुगृह्णीष्व विनीतं मामुपस्थितम्॥८२॥

मैंने महर्षि से कहा—"हे भगवान्! मैं विवेक-वैराग्य युक्त होकर शरणागत हूं। आप मुझे अध्ययन करायें। मैं आपका शिष्यत्व ग्रहण करता हूं। आप अपार भवरूप नदी के कर्णधार हैं। आप विप्ररूप धारण करके प्रत्यक्ष सचेतन ब्रह्ममूर्त्ति हैं। मैं गालव्य नामक विष्णुमूर्त्ति को प्रणाम करता हूं। मैं अविद्यारूप काले सर्प के दंश से पीड़ित होकर दुःख पा रहा हूं। हे विष के वैद्य! आप सदुपदेश रूपी महामन्त्र से संजीवित करिये। मेरे हृदयरूपी गर्त्त में महामोहरूपी महावृक्ष उग आया है। यह आपके वाक्यरूपी महाकुठार से छिन्न होगा। वह मोक्षवृक्ष अपवर्ग पथ तक व्याप्त है। वह हीनसंसर्ग रूप जल से सींचा जाकर बढ़ रहा है। हे सूत्रधर! आप विद्यारूपी परशु द्वारा उसे काट दीजिये। मैं आपका शिष्य होकर सेवा करूंगा। समिध्, काष्ठ, कुश, मूल, फल तथा जल आदि ले आऊंगा। मुझे आज्ञा दीजिये। मैं विनीत होकर आपकी शरण में आ गया।।७७-८२।।

इत्थं पुरा बकाभिख्यं बकवृत्तिमुपाश्रितम्। तदाऽऽर्जवे कृतमतिरनुजग्राह मां मुनिः॥८३॥
ततोऽतीव विनीतोऽहं भूत्वा तं ब्राह्मणीयुतम्! विश्वासनायसुदृढंतोषयामिदिनेदिने॥८४॥
स च जानन्मुनिः पत्नींपात्रभूतामविश्वसन्। स्त्रीचरित्रविदङ्केतांविधायस्वपितिद्विजः॥८५॥

अथाऽन्यस्मिन्दिने साऽभूद्ब्राह्मण्यथरजस्वला।
तद्दूरशायिनीरात्रौविश्वासान्मेतपस्विनी ॥८६॥

इदमन्तरमित्यंतर्विचिन्त्याऽहं प्रहर्षितः। मलिम्लुचाकृतिर्भूत्वा निशिथे तामथाऽहरम्॥८७॥
विललाप तदाबालाह्रियमाणामयोच्चकैः। मैवंमैवमितिज्ञात्वामांस्वरेणाऽब्रवीन्मुनिम्॥८८॥
बकवृत्तिरयं दुष्टो धर्मकञ्चुकमाश्रितः। हरते मांदुराचारस्तस्मात्त्वं त्राहि गालव!॥८९॥
तव शिष्यःपुराभूत्वा कोऽप्येषोऽद्यमलिम्लुचः। मां जिहीर्षति दद्रक्ष शरण्यशरणंभव॥९०॥

मैंने इस प्रकार से बक की तरह बाहर से साधुता का प्रदर्शन करके शिष्यत्व की प्रार्थना किया। तब उन सरलचित्त मुनि ने मुझ पर अनुग्रह किया। मैं भी उनके मन में दृढ़ विश्वास उत्पादनार्थ नित्य मुनि दम्पत्ति को सेवा से सन्तुष्ट करता था। तथापि स्त्री चरित्र के ज्ञाता मुनि पत्नी के सच्चरित्र होने पर भी स्त्री के प्रति अविश्वास के कारण उसे गोद में रखकर शयन करते थे। तदनन्तर एक बार वह स्त्री रजस्वला हो गयी। इसलिए रात्रिकाल में मेरे प्रति विश्वास करके वे मुनिवर कुछ दूर सो गये। मैंने तब उसे अच्छा अवसर जाना तथा अत्यन्त हर्षित हो गया। मैं वीभत्स आकृति धारण करके उस स्त्री को उठाकर ले चला। इससे वह बाला उच्च स्वर से रुदन करने लगी। मैंने उसे विलाप करने से पुनः-पुनः रोका। तब मुनिपत्नी ने मेरे स्वर से मुझे पहचान कर मुनिवर को पुकार कर कहा—"हे गालव! न जाने कौन दस्यु व्यक्ति आपका शिष्य बनकर मेरा हरण कर रहा है। मेरी रक्षा करें। हे शरण्य! मेरा त्राण करें।।८३-९०।।

तद्वाक्यसमकालं स प्रबुद्धो गालवो मुनिः।
तिष्ठ तिष्ठेति मामुक्त्वा गतिस्तम्भं व्यधान्मम॥९१॥
ततश्चित्राकृतिरहंस्तम्भितोमुनिनाऽभवम्। व्रीडितंप्रविशामीवस्वाङ्गानिकिललज्जया॥९२॥
ततः प्रकुपितः प्राह मामभ्येत्याऽथ गालवः। तद्वज्रदुःसहं वाक्यं येनाऽहमभवं बकः॥९३॥

गालव उवाच

बकवृत्तिमुपाश्रित्य वञ्चितोऽहंयतस्त्वया। तस्माद्बकस्त्वंभविताचिरकालंनराधम॥९४॥
इति शप्तोऽहमभवं मुनिनाऽधर्ममाश्रितः। परदारोपसेवार्थमनर्थमिममागतः॥९५॥
न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते। यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम्॥९६॥
ततः सती सा मत्स्पर्शदूषिताङ्गीतपस्विनी। मया विमुक्ता स्नात्वामांतथैवानुशशापह॥९७॥
एवं ताभ्यामहं शप्तो ह्यश्वत्थपर्णवद्भयात्। कम्पमानः प्रणम्योभाववोचं तत्र दम्पती॥९८॥
गणोऽहमीश्वरस्यैवदुर्विनीततरो युवाम्। निरोधमेवं कुरुतं भगवन्तावनुग्रहम्॥९९॥
वाचि क्षुरो नावनीतंहृदयंहिद्विजन्मनाम्। प्रकुप्यन्तिप्रसीदन्तिक्षणेनाऽपिप्रसादिताः।
त्वयि विप्रतिपन्नस्य त्वमेव शरणं मम॥१००॥

उस रमणी के यह कहने से गालव मुनि प्रबुद्ध हो गये तथा "रुको-रुको" कहते उन्होंने तपबल से मेरी गति स्तम्भित कर दिया। तब मैं विचित्र वेशधारी मुनि द्वारा स्तम्भित किये जाने से मानों लज्जावश अपने ही शरीर में विलीन होने लगा। तब गालव ऋषि ने क्रोधित होकर वज्र के समान दुःसह शाप प्रदान किया। उसके कारण मुझे यह बक योनि मिली है। गालव ने कहा—"तुमने बकवृत्ति का आश्रय लेकर मुझे धोखा दिया। हे नराधन! तुम चिरकाल तक बक होकर रहेगा।" मैंने अधर्म का आश्रय लेकर इस दारुण शाप को पाया। परस्त्री लोलुपता के कारण यह अनर्थ हुआ है। पुरुषों के लिये परदार लोलुपता से बढ़कर आयुष्य क्षयप्रद कोई कर्म नहीं है। जो भी हो, मेरे स्पर्श से दूषितांगी उस तपस्विनी साध्वी ने भी मेरे द्वारा मुक्त किये जाने पर मुझे स्नानान्त में वही शाप दिया। उनके अभिशाप से मैं कांपते-कांपते उन द्विजदम्पत्ति को प्रणाम करके कहने लगा—"मैं शिवगण हूं। परन्तु दुर्विनीत हूं। आपने जैसे मुझे शापित किया है, उसी प्रकार कृपा भी करिये। द्विजों का वाक्य भले ही छूरे जैसा तीक्ष्ण होता है, तथापि उनका हृदय नवनीत जैसा होता है। अतः जैसे वे समान कारण से प्रकुपित होते हैं, उसी तरह प्रसन्न होकर क्षण में सन्तुष्ट हो जाते हैं"॥९१-१००॥

भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवाऽवलम्बनम्॥१०१॥
गणाधिपत्यमपि मे जातं परिभवास्पदम्। विपदन्ता हि जायन्तेदुर्विनीतस्य सम्पदः॥१०२॥
विदुरेष्यद्धियाऽपायं परतोऽन्ये विवेकिनः। नैवोभयं विदुर्नीचाविनाऽनुभवमात्मनः॥१०३॥
दुर्विनीतः श्रियं प्राप्यं विद्यामैश्वर्यमेव वा। न तिष्ठति चिरं स्थानेयथाऽहंमदगर्वितः॥१०४॥

हे मुनिवर! आपसे ही मुझे विपत्तिरूप शाप मिला है, आप ही मेरे एकमात्र अवलम्बन हैं। भूमि पर ही पैर फिसलता है, तब भी व्यक्ति भूमि का ही सहारा लेता है। यह गणाधिपत्य पद भी मेरे लिए परिभव रूप ही है। जो दुर्विनीत है, उसकी सम्पदा भी अन्त में उसके लिए विपत्ति हो जाती है। विवेकी लोग बुद्धि द्वारा आने वाली विपत्ति को भी पहले जान लेते हैं, लेकिन नीच लोग आत्मानुभूति के अभाव में सम्भाव्य (भविष्य की) तथा सामने आई विपत्ति को भी समझ नहीं पाते। दुर्विनीत व्यक्ति विद्या किंवा ऐश्वर्य लाभ करने पर मदगर्व में मेरे समान दीर्घकाल तक अपने पद पर बना नहीं रह सका॥१०१-१०४॥

विद्यामदो धनमदस्तृतीयोऽभिजनो मदः। एते मदा मदान्धानामेत एव सतां दमाः॥१०५॥

नोदर्कशालिनी बुद्धिर्येषामविजितात्मनाम्। तैः श्रियश्चपलावाच्यंनीयन्तेमादृशैर्जनैः॥१०६॥
तत्प्रसीद मुनिश्रेष्ठ शापान्तं मेऽधुना कुरु। दुर्विनीतेष्वपि सदा क्षमाचाराहिसाधवः॥१०७॥
इत्थं वचसिविज्ञप्ते विनीतेनाऽपिवैमया। प्रसादप्रवणोभूत्वाशापान्तं मे तदा व्यधात्॥१०८॥

विद्यामद, धनमद, अभिजात्य कुलोत्पन्न होने का मद, ये सभी मदान्ध के मद हैं। साधुगण इनका दमन कर देते हैं। अविजितात्मा की बुद्धि परिणाम का विचार नहीं करती। मेरे जैसे लोगों के लिये ही 'श्री' चपला है। हे मुनिप्रवर! अब आप शापान्त करें। साधुगण तो दुर्विनीत को भी क्षमा कर देते हैं। मेरी सविनय प्रार्थना सुनकर मुनि ने प्रसन्न होकर शापान्त करते हुये कहा।।१०५-१०८।।

गालव उवाच

छन्नकीर्तिसमुद्धारसहायस्त्वं भविष्यसि। यदेन्द्रद्युम्नभूपस्य तदा मोक्षमवाप्स्यसि॥१०९॥
इत्यहं मुनिशापेन तदाप्रभृति पर्वते। हिमाचले बको भूत्वा काश्यपेयोवसामि च॥११०॥
राज्यं चिरायुरिति मे घृतकम्बलस्य जातिस्मरत्वमधुनाऽपि तथानुभावान्।
शापाद्बकत्वमभवन्मुनिगालवस्यतद्भद्र! सर्वमुदितं भवताऽद्य पृष्टम्॥१११॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे महीप्रादुर्भावे बकपूर्वजन्मवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥

गालव कहते हैं—"तुम जब इन्द्रद्युम्न राजा की लुप्त कीर्त्ति का उद्धार करने में सहायक होगे, तब तुम्हारा शापान्त होगा।" तभी से मैं मुनिशाप के प्रभाव से कश्यपवंश का बक होकर हिमालय पर रहता हूं। हे भद्र! घृतकम्बल दान महिमा से मुझे राज्य, चिरआयु तथा अभी भी पूर्वजन्म स्मृति तथा गालवमुनि के शाप से बकत्व प्राप्ति हुई है। मैंने जिज्ञासित प्रश्न का उत्तर आपको दे दिया।।१०९-१११।।

॥सप्तम अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

अष्टमोऽध्यायः

नाड़ीजंघ के प्रयास से इन्द्रद्युम्न की शंका निवृत्ति, उलूकत्व प्राप्ति वर्णन, बिल्व महिमा

नारद उवाच

नाडीजंघबकेनोक्तां वाचमाकर्ण्यभूपतिः। मार्कण्डेयेन संयुक्तो बभूवाऽतीवदुःखितः॥१॥
तं निशम्य मुनिर्भूपं दुःखितं साश्रुलोचनम्। समानव्यसनःप्राह तदर्थं स पुनर्बकम्॥२॥

विधायाशांमहाभागत्वदन्तिकमुपागतौ। आवांचिरायुर्ज्ञातांशाविन्द्रद्युम्नमितिद्विज॥३॥
निष्पन्नं नाऽस्य तत्कार्यं प्राणानेष मुमुक्षति। वह्निप्रवेशेन परं वैराग्यं समुपागतः॥४॥
तन्मामुपागतोऽहं च त्वांसिद्धंनास्यवाञ्छितम्। तदेनमनुयास्यामि मरणेनत्वयाशपे॥५॥
आशांकृत्वाभ्युपायातंनिराशंनेक्षितुंक्षमाः। भवन्तिसाधवस्तस्माज्जीवितान्मरणंवरम्॥६॥
प्रार्थितंचामुनाहृत्स्थंमयाचास्मैप्रतिश्रुतम्। त्वांमित्रंतत्परिज्ञानेधृत्वाहृदिचिरायुषम्॥७॥

नारद कहते हैं—नाड़ीजंघ बक का वाक्य सुनकर भूपति इन्द्रद्युम्न मार्कण्डेय के साथ अत्यन्त दुःखी हो गये। तब मार्कण्डेय मुनि राजा को दुःखित तथा अश्रुपूर्ण नेत्र देखकर स्वयं भी दुःखी हो गये। उन्होंने पुनः बक से कहा—"हे महाभाग! मैं आपको चिरायु जानकर आपके पास आया था, तथापि इनका कार्य नहीं हुआ। अब ये नितान्त वैराग्यभाव में होकर अग्निप्रवेश करके प्राण त्याग करेंगे। ये इन्द्रद्युम्न का वृत्तान्त जानने के लिये हमारे पास आये थे। मैं इनको लेकर आपके पास आया। तथापि इनका अभिप्राय सिद्ध नहीं हुआ। अतः मैं भी शपथ लेता हूं। इस राजा के साथ मैं भी प्राणत्याग करूंगा। कोई आशा करके आये, उसे निराश करना साधुगण नहीं देख सकते। अतः मेरा जीवित रहने से मृत हो जाना ही उत्तम है। इन्होंने अपने हृदगत विषय हेतु प्रार्थना किया है। आप मेरे चिरायु बन्धु हैं। आप अवश्य यह वृत्तान्त जानते हैं। यह विचार करके इस विषय में मैंने वचन दिया था॥१-७॥

असम्पादयतो नार्थं प्रतिज्ञातं ममाऽऽयुषा। कलुषेणाऽर्थिनामाशापूरकेण सखेऽधुना॥८॥
प्रतिश्रुतं कृतं श्लाध्यादासतान्त्यजपक्वणे। हरिश्चन्द्रस्येवनृणांनश्लाघ्यासत्यसन्धता॥९॥
मित्रस्नेहस्य पर्यायस्तच्चसाप्तपदंस्मृतम्। स्नेहः स कीदृशोमित्रेदुःखिते यो न दृश्यते॥१०॥

मैंने अपने आयुकाल में कभी भी वचन दिये गये कार्य के सम्बन्ध में प्रार्थी के साथ कपटता नहीं किया है। अब मुझे कपट करना होगा। मनुष्य वचन पालनार्थ हरिश्चन्द्र के समान चाण्डाल का भी दासत्व करे। असत्यवादिता सदा निन्दनीय है। मित्र स्नेहसूचक है। मित्रता सप्तपादात्मक वाक्यालाप से ही हो जाती है (सात पग बात करते चलने पर भी व्यक्ति मित्र हो जाता है)। तथापि मित्र के दुःखी होने पर उसे न देखा जाये, ऐसा स्नेह कैसा!॥८-१०॥

तदवश्यमहंसाकमधुनावह्निसाधनम्। करिष्ये कीर्तिवपुषः कृते सत्यमिदं सखे॥११॥
अनुजानीहि मामेतद्दर्शनंतव पश्चिमम्। त्वया सह महाभाग नाडीजङ्घ द्विजोत्तम!॥१२॥

हे सखे! मैं अपकीर्ति रक्षणार्थ इनके साथ ही अग्निप्रवेश करूंगा। यह मैं सत्यवचन कहता हूं। हे पक्षीन्द्र नाड़ीजंघ! मुझे अनुमति प्रदान करो। आपके साथ यह अन्तिम मिलन है॥११-१२॥

नारद उवाच

वज्रवद्दुःसहांवाचंमार्कण्डेयसमीरिताम्। शुश्रुवान्सक्षणंध्यात्वाप्रतीतःप्राह तावुभौ॥१३॥

नाडीजङ्घ उवाच

यद्येवं तदिदं मित्रं विशन्तं ज्वलनेऽधुना। निवारव मुनिश्रेष्ठ मत्तोऽस्तिचिरजीवितः॥१४॥
प्राकारकर्णनामासावुलूकः शिवपर्वते। स ज्ञास्यति महीपालमिन्द्रद्युम्नं न संशयः॥१५॥

तस्मादहं त्वया सार्धममुना च शिवालयम्। व्रजामि तं शिखरिणंमित्रकार्यप्रसिद्धये॥१६॥
इत्येवमुक्त्वा ते जग्मुस्त्रयोऽपि द्विजपुङ्गवाः। कैलासं ददृशुस्तत्र तमुलूकं स्वनीडगम्॥१७॥
कृतसम्विदसौ तेन बकः स्वागतपूजया। पृष्टश्च तावुभौ प्राह तत्सर्वमभियाञ्छितम्॥१८॥
चिरायुरसि जानीषे यदीन्द्रद्युम्नभूपतिम्। तद्ब्रूहि तेन ज्ञानेन कार्यं जीवामहे वयम्॥१९॥

नारद कहते हैं—वह बक पक्षी मार्कण्डेय का यह वचन सुनकर क्षण पर्यन्त विचार करने के पश्चात् प्रसन्न होकर उन लोगों से कहने लगा—"यदि ऐसी बात है, तब आप अपने मित्र को अग्निप्रवेश से रोकिये। मुझसे भी दीर्घजीवी एक उल्लू है। उसका नाम प्राकारकर्ण। वह शिवपर्वत पर रहता है। मैं निश्चित ही मित्रकार्य साधनार्थ आपके साथ तथा इनके साथ अभी शिवपर्वत चलता हूं।" यह कहकर वे द्विजश्रेष्ठत्रय कैलास पर्वत (शिवपर्वत) गये तथा वह अपने कुल के साथ रहने वाले उस उलूक को देखा। उलूक ने बक को देखकर स्वागत प्रश्न आदि स्वागत के साथ उन दो आगन्तुकों के सम्बन्ध में पूछा। बक पक्षी ने मार्कण्डेय तथा इन्द्रद्युम्न का किंचित परिचय प्रदान करके कहा—"यदि आप इस तथ्य को जानते हैं, कि इन्द्रद्युम्न कौन थे, तब कहिये। हमें उसका ही प्रयोजन है। तभी हमारा जीवन बचेगा"॥१३-१९॥

इति पृष्टः स विमनामित्रकार्यप्रसाधनात्। कौशिकः प्राह जानामिनेन्द्रद्युम्नमहंनृपम्॥२०॥
अष्टाविंशत्प्रमाणा मे कल्पाजातस्यभूतले। न दृष्टो नश्रुतोवासाविन्द्रद्युम्नोनृपःक्षितौ॥२१॥
तच्छ्रुत्वाविस्मितोभूपस्तस्यायुरतिमात्रतः। दुःखितोऽपितदाहेतुंपप्रच्छाऽसौतदायुषः॥२२॥
एवमायुर्यदि तव कथं प्राप्तं ब्रवीहि तत्। उलूकत्वं कथमिदं जुगुप्सितमतीव च॥२३॥

यह सुनकर उस उलूक ने मित्रकार्य में अपने को असमर्थ पाकर विमना होकर कहा—"मैं इन्द्रद्युम्न राजा को नहीं जानता। मैंने पृथिवी पर जन्म लेकर २८ कल्प व्यतीत कर दिया, लेकिन न तो इन्द्रद्युम्न को देखा, न उनकी चर्चा ही सुनी।" यह सुनकर राजा दुःखी हो गये तथा उस उलूक की इतनी दीर्घायु की बात सुनकर उससे पूछने लगे। राजा ने पूछा—"आपको इतनी दीर्घायु किस प्रकार से प्राप्त हो गयी। हे भद्र! आपको यह निन्दनीय उलूक योनि कैसे मिली? कृपया कहें॥२०-२३॥

प्राकारकर्ण उवाच

शृणु भद्र! यथा दीर्घमायुर्मेशिवपूजनात्। जुगुप्सितमुलूकत्वं शापेन च महामुनेः॥२४॥
वसिष्ठकुलसंभूतः पुराऽहमभवं द्विजः। घण्ट इत्यभिविख्यातो वाराणस्यां शिवे रतः॥२५॥
धर्मश्रवणनिष्ठस्य साधूनां संसदिस्वयम्। श्रुत्वाऽस्मिपूजयामीशंबिल्वपत्रैरखण्डितैः॥२६॥
न मालती न मन्दारः शतपत्रंन मल्लिका। तथा प्रियाणि श्रीवृक्षो यथा मदनविद्विषः॥२७॥
अखण्डबिल्वपत्रेण एकेन शिवमूर्धनि। निहितेन नरैः पुण्यं प्राप्यते लक्षपुष्पजम्॥२८॥
अखण्डितैर्बिल्वपत्रैः श्रद्धया स्वयमाहतैः। लिङ्गप्रपूजनं कृत्वा वर्षलक्षं वसेद्दिवि॥२९॥
सच्छास्त्रेभ्य इति श्रुत्वा पूजयाम्यहमीश्वरम्।
त्रिकालं श्रद्धया पत्रैः श्रीवृक्षस्य त्रिभिस्त्रिभिः॥३०॥

प्राकारकर्ण उलूक कहता है—हे भद्र! शिवपूजन के फल से मुझे यह दीर्घ आयु मिली है। महामुनि के शाप के कारण मुझे यह उलूक योनि प्राप्त हुई है। वह वृत्तान्त सुनें। पूर्वकाल में मैं वाराणसी में वसिष्ठ वंशोत्पन्न शिवभक्त ब्राह्मण था। धर्मकथा श्रवणनिष्ठ साधु सभा में मैंने शिवमहिमा सुनकर अखण्डित बिल्वपत्रों से शिवपूजा सम्पन्न किया। मालती, मन्दार, पद्म, मल्लिका उन मदनरिपु शंकर को उतना प्रिय नहीं है, जितना उन्हें बिल्ववृक्ष प्रिय है। मनुष्यगण शिव मस्तक पर एक अखण्डित बिल्वपत्र प्रदान करके जो पुण्यलाभ करते हैं, लाखों पुष्प प्रदान से भी उतना पुण्य नहीं मिलता। श्रद्धा के साथ स्वयं लाकर अखण्डित बिल्वपत्र से शिवपूजा (लिंगपूजा) करने से एक लाख वर्ष पर्यन्त स्वर्ग में निवास मिलता है। मैंने सत् शास्त्र से यह सुनकर तीनों सन्ध्याकाल में तीन-तीन बिल्वपत्र से शिवलिंग पूजन किया।।२४-३०।।

ततो वर्षशतस्याऽन्ते तुतोष शशिशेखरः। प्रत्यक्षीभूय मामाह मेघगम्भीरया गिरा॥३१॥

ईश्वर उवाच

तुष्टोऽस्मितवविप्रेन्द्राखण्डबिल्वदलार्चनात्। वृणीष्वाभिमतंयत्तेदास्याम्यपिचदुर्लभम्॥३२॥
अखण्डबिल्वपत्रेण महातुष्टिःप्रजायते। एकेनाऽपियथाऽन्येषां तथा न मम कोटिभिः॥३३॥

तत्पश्चात् १००० वर्ष पश्चात् शशिशेखर ने सन्तुष्ट होकर मुझे दर्शन दिया तथा मेघगंभीर स्वर में कहा—"हे विप्रवर! तुमने अखण्ड बिल्वपत्र द्वारा मेरी अर्चना किया है। मैं उससे तृप्त हो गया। तुमको जो वांछित है, वह वर मांगो। यदि तुम पर्वत इतनी वस्तु मांगोगे, मैं वह भी प्रदान करूंगा। एक भी अखण्ड बिल्वपत्र से पूजा करने से मेरी जो प्रसन्नता तथा तृप्ति होती है, वह अन्य कोटि-कोटि उपचार द्वारा पूजन से भी नहीं होती"।।३१-३३।।

इत्युक्तोऽहं भगवता शम्भुनास्वमनःस्थितम्। वृणोमि स्म वरं देवकुरुमामजरामरम्॥३४॥
अथ लीलाविलासो मां तथेत्युक्त्वाऽविचारितम्।
ययावदर्शनं प्रीतिमहं च महतीं गतः॥३५॥
कृतकृत्यं तदात्मानमज्ञासिषमहं क्षितौ। एतस्मिन्नेव काले तु भृगुवंश्योऽभवद्द्विजः॥३६॥
अवदातत्रिजन्मासवक्षविच्चाऽक्षरार्थवित्। सुदर्शनेतिप्रथिता प्रिया तस्याभवत्सती॥३७॥
अतीव मुदिता पत्युर्मुखं प्रेक्ष्याऽस्य दर्शनात्। तनयादेवलस्यैषा रूपेणाऽप्रतिमा भुवि॥३८॥
तस्यांतस्मादभूत्कन्यानिर्विशेषानिजारणेः। निवृत्तबालभावाऽभूत्कुमारीयौवनोन्मुखी॥३९॥
नाऽलं बभूव तां दातुं तनयांगुणशालिनीम्। कस्यापिजनकःसाचवयःसन्धौमयेक्षिता॥४०॥

भगवान् शिव के यह कहने पर मैंने अपने मनोगत वर को मांगा। मैंने कहा—"हे देव! आप मुझे अजर-अमर करें।" लीलाविहारी शंकर ने कुछ भी विचार नहीं किया तथा तथास्तु कहकर अन्तर्हित हो गये। मैंने अतीव प्रसन्न होकर इस पृथिवी पर स्वयं को कृतकृत्य माना। इसी समय भृगुवंश में अक्षरतत्वज्ञ तथा अक्षर का अर्थ जानने वाले द्विज थे। वे पितृकुल, मातृकुल, गुरुकुल की विशुद्धि के कारण महातेजस्वी ब्राह्मण थे। उनकी पत्नी देवलतनया भूतल पर अतीव रूपवती थी। वह साध्वी थी तथा सुदर्शना नाम से प्रसिद्ध थी। वह सदा प्रसन्न मन से पति का मुखावलोकन करती काल अतिवाहित कर रही थी। उसके गर्भ से एक कन्या का जन्म हुआ। वह कन्या भी माता जैसी रूपवती थी। वह रूपवती कुमारी बाल्यावस्था अतिक्रम करके जब यौवन सम्पन्ना हो गयी, तब पिता

उसके योग्य वर का अन्वेषण करने लगे। तथापि योग्य वर को कन्या समर्पित नहीं कर सके। उसके वयःसन्धि काल में मैंने उसे देखा।।३४-४०।।

प्रविशद्यौवनाभोगभावैरतिमनोहरा। निर्वास्यमानैरपरैस्तिलतन्दुलिताकृतिः।।४१।।
क्रीडमाना वयस्याभिर्लावण्यप्रतिमेव सा। व्यचिन्तयमहंविप्रतांनिरीक्ष्यसुमध्यमाम्।।४२।।
अनन्याकृतिमन्योऽसौ विधिर्येनेति निर्मिता।
ततः सात्त्विकभावानां तत्क्षणादस्मि गोचरम्।।४३।।

देखा कि यौवनारंभ के कारण उसके अंग-प्रत्यङ्ग तनिक पुष्ट हो उठे थे। वह कुमारी तात्कालिक भावविशेष द्वारा अतीव मनोहर आकार धारण कर चुकी थी। मानों उसके यौवन भाव ने उसके बाल्यभाव समूह को निर्वासित करके अपने अधिकार को स्थापित कर दिया था। वह कुमारी लावण्यमयी प्रतिमा रूप थी तथा अन्य सखियों के साथ क्रीड़ा कर रही थी। हे विप्र! मैंने उस असामान्य रूपशालिनी सुमध्यमा को देखकर मन ही मन सोचना प्रारम्भ किया।।४१-४२।।

प्रापितोलीलयाऽऽहत्यबाणैःकुसुमधन्विना। ततोमयास्खलद्वाचंपृष्टाकस्येतितत्सखी।।४४।।
प्राहेति भृगुवंश्यस्य कन्येयंद्विजजन्मनः। अनूढाऽद्यापिकेनापिसमायाताऽत्रखेलितुम्।।४५।।
ततः कुसुमबाणेन शरव्रातैर्भृशं हतः। पितरं प्रणतो गत्वा ययाचे तां भृगूद्वहम्।।४६।।
स च मां सदृशं ज्ञात्वा शीलेनचकुलेनच। अतीववचार्थिनंमह्यंददौ वाचा पुरः क्रमात्।।४७।।

मैंने मन ही मन विचार किया कि प्रतीत होता है कि इसे अन्य किसी विधाता ने निर्मित किया है। यह चिन्तन कर ही रहा था कि तभी पुष्पधन्वा (कामदेव) ने लीला के अन्तर्गत कामबाण प्रहार से मुझे सात्त्विक भावों के अधीन कर दिया। तब मैंने अटपटी वाणी में उसकी सखी से पूछा—"यह किसकी कन्या है?" ऐसा पूछने पर सखी ने कहा—"यह भृगुवंशीय किसी ब्राह्मण की कन्या है, जो अभी भी अविवाहित है। यहां खेलने आई है। तब तक मैं पुष्पायुध के बाणाघात से अत्यन्त आहत हो गया। तथा उसके पिता को प्रणाम करके इस कन्या हेतु प्रार्थना किया। उन्होंने मेरे कुल शील को योग्य देखा तथा अकेला कन्या प्रार्थी होने के कारण कन्या के साथ मेरा वाग्दान कर दिया।।४३-४७।।

ततःसातनयातस्यभार्गवस्याऽशृणोदिति। दत्ताऽस्मितस्मैविप्रायविरूपायेतिजल्पताम्।।४८।।
रोरूयमाणा जननीमाह पश्य यथा कृतम्। अतीवाऽनुचितं दत्त्वा जनकेन तथा वरे।।४।।
विषमालोड्य पास्यामि प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्। वरंनतु विरूपस्योद्वोढुर्भार्याकथञ्चन।।५०।।

तदनन्तर भार्गवपुत्री ने जब लोगों के मुख से यह सुना कि उसके पिता ने उसका वाग्दान विरूप वर से कर दिया, तब वह इस कारण रोते-रोते अपनी माता के पास जाकर कहने लगी—"देखो मां! पिता ने अत्यन्त अन्याय किया है। मुझे कुरूप वर को प्रदान किया है। मैं विष खाकर प्राण दे दूंगी। अन्यथा अग्नि में प्रविष्ट हो जाऊंगी। तथापि कुत्सित पति की पत्नी नहीं बनूंगी।।४८-५०।।

ततः सम्बोध्य जननी तां सुतामाह भार्गवम्।
न देया स्मै त्वया कन्या विरूपायेति चाऽऽग्रहात्।।५१।।

स वल्लभावचः श्रुत्वा धर्मशास्त्राण्यवेक्ष्य च। दत्तामपि हरेत्पूर्वां श्रेयांश्चेद्वरआव्रजेत्॥५२॥
अर्वाक्छिलाक्रमणतो निष्ठा स्यात्सप्तमे पदे। इतिव्यवस्यप्रददावन्यस्मैतांद्विजःसुताम्॥५३॥
श्वोभाविनिविवाहेतु तच्चसर्वं मया श्रुतम्। ततोऽतीवविलक्ष्योऽहंवयस्यानांपुरस्तदा॥५४॥
नाऽशकं वदनंभद्र तथादर्शयितुं निजम्। कामार्तोऽतीव तां सुप्तामर्वाग्निशि तदाहरम्॥५५॥

नीत्वा दुर्गतमैकान्तेऽकार्षमौद्वाहिकं विधिम्।
गान्धर्वेण विवाहेन ततोऽकार्षं हृदीप्सितम्॥५६॥
अनिच्छन्ती तदा बालां बलात्सुरतसेवनम्। अथाऽनुपदमागत्यतत्पिता प्रातरेवमाम्॥५७॥
निश्वस्य सम्वृतो विप्रैस्तां वीक्ष्योद्वाहितां सुताम्।
शशाप कुपितो भद्र मां तदानीं स भार्गवः॥५८॥

तब माता ने पुत्री को आश्वस्त करके अपने पति से कहा—"आप कन्या को कुत्सित वर को प्रदान नहीं कर पायेंगे।" तब भार्गव ने पत्नी का आग्रहयुक्त वाक्य सुनकर धर्मशास्त्र का विचार किया और तब धर्मानुरूप यह निर्णय लिया कि श्रेष्ठ वर मिल जाने पर वाग्दत्ता कन्या को पूर्व वर को त्याग कर दान करूंगा। शिलाक्रमण करने पर सप्तपदी गमन कराने से विवाहकार्य सिद्ध हो जाता है। भार्गव ने यह निर्णय लेकर उस कन्या का विवाह अन्य वर से किया। जिस दिन यह विवाह हुआ, तब मैं उसके एक दिन पूर्व यह समाचार जान गया था। इससे मैं अत्यन्त लज्जित होकर अपने समवयस्कों को मुंह न दिखा सका। तदनन्तर रात्रि में अत्यन्त कामासक्त होकर निद्रितावस्था में मैंने उस कन्या का हरण किया तथा उसे दुर्गम निर्जनस्थल में ले जाकर उससे गांधर्व विवाह सम्पन्न करके उसकी अनिच्छा होने पर भी बलप्रयोग द्वारा उससे इच्छित समागम किया। हे भद्र! अगले दिन प्रातः पिता भार्गव अन्य ब्राह्मणों के साथ वहां पहुंचे तथा कन्या को विवाहिता देखकर कुपित हो गये। उन्होंने मुझे अभिशाप दिया।।५१-५८।।

भार्गव उवाच

निशाचरस्य धर्मेण यत्त्वयोद्वाहिता सुता। तस्मान्निशाचरः पापभवत्वमविलम्बितम्॥५९॥
इति शप्तः प्रणम्यैनं पादोपग्रहपूर्वकम्। हाहेति च ब्रुवन्गाढं साश्रुनेत्रं सगद्गदम्॥६०॥
ततोऽहमब्रवं कस्माददोषं मां भवानिति। शपते भवता दत्ता मम वाचा पुरा सुता॥६१॥

सोद्वाहितामयाकन्यादानंसकृदितिस्मृतिः ।
सकृज्जल्पन्तिराजानःसकृज्जल्पन्तिपण्डिताः॥६२॥

भार्गव ने कहा—"हे पापी! तुमने निशाचर धर्म का अवलम्बन लेकर मेरी कन्या से विवाह किया। अतः तुम अविलम्ब निशाचर हो जा।" तब मैंने इस प्रकार अभिशप्त होकर हाहाकार किया तथा प्रणाम करके उनके चरणद्वय को पकड़कर अश्रुपूर्ण नेत्रों से गद्गद् स्वर में कहने लगा—"मैं निरपराध हूं। आपने मुझे किस कारण से श्राप दिया? पूर्व में आपने कन्या का वाग्दान मेरे साथ किया था। मैंने इस कन्या से विवाह किया, इसमें मेरा क्या दोष? दान एक बार ही होता है। यही तो स्मृतिशास्त्र का मत है। राजा एक ही बार बात कहता है। पण्डितगण भी एक बार ही एक बात कहते हैं"।।५९-६२।।

सकृत्कन्याःप्रदीयन्तेत्रीण्येतानिसकृत्सकृत्। किंचप्रतिश्रुतार्थस्यनिर्वाहस्तत्सतांव्रतम्॥६३॥
भवादृशानां साधूनां तस्य त्यागोविगर्हितः। प्रतिश्रूतात्वयालब्धातदाकालमियं मया॥६४॥
उद्वोढा चाऽधुनानाहमुचितः शापभाजनम्। वृथाशपन्तिमह्यं च भवन्तस्तद्विचार्यताम्॥६५॥
यो दत्त्वा कन्यकां वाचा पश्चाद्धरतिदुर्मतिः। सयातिनरकंचेतिधर्मशास्त्रेषुनिश्चितम्॥६६॥

कन्या भी एक ही बार प्रदान होती है। विशेषतः वचन दिया गया विषय उसी प्रकार से सम्पादित करना साधुगण का व्रत होता है। साधु के लिए वचन भंग करना अत्यन्त गर्हित है। आप जब मुझे वचन दे चुके थे, तभी मैंने कन्या को पा लिया था। अब मैंने इससे विवाह किया, अतः शाप योग्य नहीं हूं। आप विचार करके देखें। आपने व्यर्थ शाप दिया। कन्या प्रदान करके जो उसका प्रत्याहार इस प्रकार करता है, वह दुर्मति नरकगामी होता है। यही धर्मशास्त्र का विधान है।।६३-६६।।

तदाकर्ण्यव्यवस्याऽसौ तथ्यंमद्वचनंहृदा। पश्चात्तापसमोपेतोमुनिर्मामित्यथाऽब्रवीत्॥६७॥
न मे स्यादन्यथावाणीउलूकस्त्वंभविष्यति। निशाचरोह्युलूकोऽपिप्रोच्यतेद्विजसत्तम॥६८॥
यदेन्द्रद्युम्नविज्ञाने सहायस्त्वं भविष्यसि। सदा त्वं प्रकृतिं विप्र प्राप्स्यसीत्यब्रवीत्स माम्॥६९॥
तद्वाक्यसमकालं च कौशिकत्वमिदं मम। एतावन्ति दिनान्यासीदष्टाविंशद्दिनंविधेः॥७०॥
बिल्वीदलैरितिपुरा शशिशेखरस्य सम्पूजनेन मम दीर्घतरं किलाऽऽयुः।
सञ्जातमत्र च जुगुप्सितमस्य शापात्कैलासरोधसि निशाचररूपमासीत्॥७१॥

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे महीनदीप्रादुर्भावे उलूकोपाख्याने बिल्वदलमाहात्म्यवर्णनंनामाऽष्टमोऽध्यायः।।८।।

मेरा सब कथन सुनकर उन भार्गव ने मन ही मन विचार करके मेरे कथन की सच्चाई को जाना तथा अनुताप युक्त होकर मुझसे कहने लगे—हे द्विजप्रवर! मेरा वाक्य अन्यथा नहीं होगा। निशाचर शब्द उल्लू के लिए भी प्रयुक्त होता है। अतः तुम उलूक होगे। हे विप्र! जब तुम इन्द्रद्युम्न राजा को उनके वृत्तान्त ज्ञानार्थ सहायक होगे, तब तुमको स्वाभाविक रूप प्राप्त हो जायेगा।" उनके यह कहते-कहते मैंने उलूक रूप प्राप्त किया। इस उलूक योनि में मैं विधाता के २८ दिन (मनुष्यों हेतु २८ कल्प) व्यतीत कर चुका। मैंने पूर्वकाल में बिल्वपत्र से भगवान् शशिशेखर की पूजा किया था। तभी यह दीर्घायु प्राप्त हो सकी है। कैलास पर्वत पर ब्राह्मण के अभिशाप से पंचक रूप में (उलूक) रहता हूं।।६७-७१।।

।।अष्टम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

नवमोऽध्यायः

गृध्र का पूर्वजन्म वृत्तान्त, दमनक महोत्सव, बलात्कार से गृध्र योनि प्राप्ति, पुनः पश्चाताप से ऋषि का अनुग्रह

उलूक उवाच

इतीदमुक्तमखिलं पूर्वजन्मसमुद्भवम्। स्वरूपमायुषो हेतुः कौशिकत्वस्य चेति मे॥१॥
इत्युक्त्वा विरते तस्मिन्पुरुहूतसनामनि। नाडीजङ्घो बको मित्रमाह तं दुःखितोवचः॥२॥

उलूक कहता है—"मैंने पूर्वजन्म कृत फल के कारण दीर्घायु का तथा उलूकत्व लाभ का आख्यान कहा। उलूक इन्द्र के समान नाम वाले होते हैं, क्योंकि इन्द्र का एक नाम है कौशिक तथा उलूक को भी कौशिक कहा जाता है। जब उलूक यह कहकर विरत हो गया, तब नाड़ीजंघ ने दुःखित होकर मित्र से कहा—।।१-२।।

नाडीजङ्घ उवाच

यदर्थं वयमायातास्तन्न सिद्धं महामते! कार्यं तन्मरणं नूनं त्रयाणामप्युपागतम्॥३॥
इन्द्रद्युम्नापरिज्ञाने भद्र कोऽयं मुमूर्षति। तस्याऽनु मित्रंमार्कण्डस्तंचान्वहमपिस्फुटम्॥४॥

"हे महामति! मैं जिस लिये आया हूं, वह सिद्ध नहीं हो सका। अब देखता हूं कि हमतीनों का मरण आसन्न है। यह भद्र व्यक्ति इन्द्रद्युम्न का वृत्तान्त न जानने पर मरण की अभिलाषा व्यक्त कर चुके हैं। इनके लिए मार्कण्डेय तथा मार्कण्डेय के लिए मेरा भी मरण निश्चित है, इसमें सन्देह नहीं है।।३-४।।

मित्रकार्ये विनिर्वृत्ते म्रियमाणं निरीक्षते। यो मित्रंजीवितंतस्यधिगस्निग्धं दुरात्मनः॥५॥
तदेतावनुयास्यामि म्रियमाणावहं द्विज। आपृच्छेत्वांनमस्कारआश्लेषश्चाथपश्चिमः॥६॥
प्रतिज्ञातमनिष्पाद्यमित्रस्याऽऽभ्यागतस्यच। कथङ्कारं न लज्जन्ते हताशा जीवितेप्सवः॥७॥
तस्माद्वह्निं प्रवेक्ष्यामि सार्धमाभ्यामसंशयम्।
आपृष्टोऽस्यधुना स्नेहान्मम देहि जलाञ्जलिम्॥८॥
इत्युक्तवत्युलूकोऽसौ नाडीजङ्घे सगद्गदम्। साश्रुनेत्रं स्थिरीभूय प्राहवाचंसुधामुचम्॥९॥

मित्रकार्य उपस्थित होने पर जो मित्र अपने मित्र को मृत देखता है, उस दुरात्मा के कठोर जीवन को धिक्कार है। हे द्विज! मैं इनका अनुसरण करूंगा। आपकी अनुमति ले रहा हूं तथा अन्तिम नमस्कार तथा आलिंगन भी कर लेता हूं। अभ्यागत मित्र के लिए प्रतिज्ञा किया कार्य सम्पादन न करने से हतभाग्य जीवितेच्छु लज्जित कैसे नहीं होंगे? अतः मैं भी इन दो लोगों के साथ अग्निप्रवेश करूंगा। आपसे यही कहता हूं कि आपका मेरे प्रति जो प्रेम है, उसे जलाञ्जलि दीजिये। नाड़ीजंघ द्वारा यह कहे जाने पर वह उलूक स्थिर होकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से तथा भर्राई वाणी से कहने लगा।।५-९।।

उलूक उवाच

मयि जीवति मित्रे मे भवान्मरणमेति च। अद्यप्रभृति कस्तर्हि हृदा मम लभिष्यति॥१०॥

अस्त्युपायो महानत्र गन्धमादनपर्वते। मत्तश्चिरायुर्मित्रोऽस्ति गृध्रःप्राणसमः सुहृत्॥११॥
स विज्ञास्यतिवोऽभीष्टमिन्द्रद्युम्नंमहीपतिम्। इत्युक्त्वापुरतस्तस्थावुलूकःसचभूपतिः॥१२॥
मार्कण्डेयो बकश्चैव प्रययुर्गन्धमादनम्। तमायान्तमथालोक्य वयस्यं पुरतःस्थितम्॥१३॥
स्वकुलायात्प्रहृष्टोऽसौ गृध्रः सम्मुखमाययौ। कृतसंविदसौ पूर्वं स्वागतासनभोजनैः॥१४॥
उलूकं गृध्रराजश्चकार्यं पप्रच्छ तंतथा। स चाऽऽचख्यावयंमित्रंबकोमेऽस्यमुनिःकिल॥१५॥

उलूक ने कहा—"यदि मेरे बचे तथा जीवित रहते मेरे मित्र आप मरणासन्न होते हैं, तब अब मुझे कौन अपने मन में स्थान देगा? इस सम्बन्ध में एक महान् उपाय है। गन्धमादन पर्वत पर मेरी अपेक्षा दीर्घायु मेरे मित्र एक गृध्र हैं। वे मेरे प्राणों के समान सुहृद हैं। उनको आप लोगों का इच्छित विषय इन्द्रद्युम्न राजा का वृत्तान्त अवश्य ज्ञात होगा।" यह कहकर उलूक, बक, मार्कण्डेय तथा राजा, इन चारों ने गन्धमादन प्रस्थान किया। वह गृध्र उलूक मित्र को सामने आते देखकर अपने घोंसले से बाहर निकला तथा आगे आकर सबकी अभ्यर्थना किया। तदनन्तर स्वागत प्रश्न, आसनदान एवं भोजनादि से स्वागत करके उलूक से आगमन प्रयोजन जानना चाहा। तब उलूक ने कहा कि ये बक मेरे मित्र हैं। बक के मित्र ये मुनि हैं।।१०-१५।।

मुनेरपि तृतीयोऽयं मित्रं चार्थोऽयमुद्यतः। इन्द्रद्युम्नपरिज्ञाने स्वयं जीवति नान्यथा॥१६॥
वह्निं प्रवेक्ष्यते व्यक्तमयं तदनु वै वयम्। मया निषिद्धोऽयंज्ञात्वात्वांचिरन्तनमात्मना॥१७॥
तच्चेज्जानासितंब्रूहिचतुर्णांदेहिजीवितम्। संरक्ष्याऽऽप्नुहिसत्कीर्तिंक्षयंचाखिलपाप्मनः॥१८॥

ये जो तृतीय हैं, ये मुनि के मित्र हैं। इनके लिये ही मेरा यह उद्यम है। ये इन्द्रद्युम्न राजा का वृत्तान्त जानना चाहते हैं। अन्यथा निश्चय ही प्राण त्याग कर देंगे। इनके प्राणत्याग करते ही हम सब प्राण त्याग निश्चय करेंगे। यदि आप इन राजा इन्द्रद्युम्न का वृत्तान्त जानते हों, तब उसे बतला कर ४ लोगों का प्राण बचायें। हमारी रक्षा करके समस्त पापक्षयपूर्वक सत्कीर्त्ति लाभ करें।।१६-१८।।

गृध्र उवाच

षट्पञ्चाशद्व्यतीतामेकल्पाजातस्यकौशिक!। नदृष्टोनश्रुतोऽस्माभिरिन्द्रद्युम्नोमहीपतिः॥१९॥
तच्छ्रुत्वा विस्मयाविष्ट इन्द्रद्युम्नोऽपि दुःखितः। पप्रच्छ जीविते हेतुमतिमात्रे विहङ्गमम्॥२०॥

गृध्र कहता है—हे उलूक! मुझे जन्म लिये कुछ कल्प व्यतीत हो गये, परन्तु न तो इन्द्रद्युम्न राजा को देखा, न उनका कभी नाम सुना! यह सुनकर राजा इन्द्रद्युम्न दुःखी होकर विस्मयाविष्ट चित्त से गृध्र के इस दीर्घ जीवन लाभ के कारण की जिज्ञासा करने लगे।।१९-२०।।

गृध्र उवाच

श्रृणु भद्र! पुराजातोमर्कटोऽहंचचापलः। आसं कदाचिदभवद्वसन्तोऽथऋतुःक्रमात्॥२१॥
तत्राऽग्रे देवदेवस्य वनमध्ये शिवालये। भवोद्भवस्य पुरतो जगद्योगेश्वराभिधे॥२२॥
चतुर्दशीदिने हस्तनक्षत्रे हर्षणाभिधे। योगे चैत्रे सिते पक्ष आसीद्दमनकोत्सवः॥२३॥
अत्र सौवर्ण्यदोलायांलिङ्गआरोपितेजनैः। निशायामधिरुह्याऽहंदोलांतांचव्यचालयम्॥२४॥

निसर्गाज्जातिचापल्याच्चिरकालं पुनःपुनः।
अथ प्रभात आयाता जनाःपूजाकृतेकपिम्॥२५॥
दोलाधिरूढमालोक्य लकुटैर्मां व्यताडयन्। दोलासंस्थितएवाहंप्रमीतः शिवमन्दिरे॥२६॥
तेषां प्रहारैः सुदृढैर्बहुभिर्वज्रदुःसहैः। शिवान्दोलनमाहात्म्याज्जातोऽहं नृपमन्दिरे॥२७॥

गृध्र कहता है—हे भद्र! सुनें! पूर्वकाल में मैं अत्यन्त चपल वानर था। मैं जिस वन में रहता था, उसके आगे के भाग में एक शिवालय था। उन शिव का नाम था जगद्योगेश्वर! चैत्र शुक्ला चतुर्दशी तिथि पर हस्त नक्षत्र तथा हर्षणयोग में उन भवोद्भव देव का एक उत्सव हुआ। उस दिन लोग सुवर्ण के झूले में उस लिंग को बैठा कर झुलाते थे। इस दिन रात में जब अन्य कोई नहीं था, मैं जाति चापल्यवशात् वहां झूले पर चढ़कर उसे पुनः-पुनः चलाने लगा। इस प्रकार रात्रि व्यतीत होने पर अगले दिन लोग वहां देवदेवेश्वर की पूजा के लिए आये तथा मुझे झूले पर बैठा देखकर लाठी से पुनः-पुनः प्रहार करने लगे। उनके वज्रसम दुःसह प्रहार के कारण मैं उस शिवमन्दिर में झूले में रहते ही मर गया।।२१-२७।।

काशीश्वरस्य तनयः प्रतीतोऽस्मि कुशध्वजः।
जातिस्मरस्ततो राज्ये क्रमात्प्राप्याऽहमैश्वरम्॥२८॥
कारयामि धरापृष्ठे चैत्रे दमनकोत्सवम्। यथा यथा दोलयतिशिवंदोलास्थितं नरः॥२९॥
तथातथाऽशुभंयातिपुण्यमायायातिभद्रक!।
शिवदीक्षामुपागम्याऽखिलसंस्कारसंस्कृतः॥३०॥
शिवाचार्यैर्विमुक्तोऽहंपशुपाशैस्तदागमात्। निर्वाहदीक्षापर्यन्तान्संस्कारान्प्राप्यसर्वतः॥३१॥
आराधयामि देवेशं प्रत्यक्चित्तमुमापतिम्। समस्तक्लेशविच्छेदकारणंजगतां गुरुम्॥३२॥
चित्तवृत्तिनिरोधेन वैराग्याभ्यासयोगतः। जपन्नुद्गीतमस्यार्थं भावयन्नष्टमं रसम्॥३३॥
ततो मां प्रणिधानेनाभ्यासेन दृढभूमिना। अन्तरायानुपहतं ज्ञात्वा तुष्टोऽब्रवीद्धरः॥३४॥

मैंने जो शिव को झूला झुलाया था (अनजाने में) उसके फल से राजा के यहां मेरा जन्म हुआ। मैं काशीराज के पुत्ररूप में जन्म लेकर कुशध्वज कहलाया। जब मुझे राजत्व प्राप्त हुआ, तब मैंने अपने राज्य में दमनकोत्सव प्रवर्त्तित किया, क्योंकि मुझे पूर्वजन्म की स्मृति थी। हे भद्र! मनुष्यगण झूले पर बैठे शिव को जैसे-जैसे झुलाते, उनके अशुभ भी उसी प्रकार उनसे दूर होते जाते! उनका पुण्य संचित होता जाता। मैं शैवागम के वर्णित विधान से दीक्षा लेकर शैवाचार्यों द्वारा समस्त संस्कार से संस्कृत होकर पशुपाश से मुक्त हो गया। मैं निर्वाह दीक्षा पर्यन्त समस्त संस्कार से संस्कृत हो गया। चित्तवृत्ति निरोध द्वारा वैराग्य अभ्यास पूर्वक उद्गीथ जप तथा उसके अर्थ द्वारा समस्त क्लेशों का उच्छेद करके प्रजावर्ग की हितचिन्तना में रत हो, समस्त क्लेशनाशक, जगद्गुरु, अष्टम रसरसिक देवदेवेश, उमापति रुद्र की आराधना करने लगा। मैं प्रणिधान तथा अभ्यास द्वारा साधनमार्ग में दृढ़भूमिका लाभ करके जब विघ्नों द्वारा भी विचलित नहीं किया गया, तब शंभुदेव मेरे ऐसे साधनोत्कर्ष को जानकर मेरे ऊपर प्रसन्न हो गये। उन्होंने दर्शन देकर मुझसे कहा।।२८-३४।।

ईश्वर उवाच

कुशध्वजाहं तुष्टोऽद्य वरं वरयवाञ्छितम्। न हीदृशमनुष्ठानं कस्याऽप्यस्ति महीतले॥३५॥

श्रुत्वेत्युक्तो मया शंभुर्भूयासं ते गणो ह्यहम्। अनेनैवशरीरेण तथेत्येवाऽऽहगांप्रभुः॥३६॥
ततः कैलासमानीय विमानं मम चाऽऽदिशत्। सर्वरत्नमयंदिव्यंदिव्याश्चर्यसमावृतम्॥३७॥
विचरामि प्रतीतोऽहं तदारूढो यदृच्छया। अथ काले कियन्मात्रे व्यतीतेऽत्रैवपर्वते॥३८॥

भगवान् कहते हैं—"हे कुशध्वज! मैं तुम्हारे प्रति सन्तुष्ट हो गया। तुम वांछित वर ग्रहण करो। भूतल पर तुम्हारे अतिरिक्त ऐसा कठोर अनुष्ठान अन्य किसी ने नहीं किया है।" तब मैंने भगवान् शिव से कहा—"हे शम्भु! मैं इसी शरीर से आपका गण बनना चाहता हूं।" प्रभु शम्भु ने कहा 'ऐसा ही हो।' तदनन्तर शंकर मुझे कैलास ले गये तथा मुझे उन्होंने एक सर्वरत्नमय, सर्वाश्चर्ययुक्त दिव्य विमान प्रदान किया। मैंने उस पर आरोहण किया तथा प्रसन्नचित्त होकर विचरण करने लगा।।३५-३८।।

गवाक्षाधिष्ठितोऽपश्यं वसन्ते मुनिकन्यकाम्।
प्रवाति दक्षिणे वायौ मदनाग्निप्रदीपितः॥३९॥
अग्निवेश्यसुतांभद्र! विवस्त्रांजलमध्यगाम्। उद्भिन्नयौवनांश्यामांमध्यक्षामांमृगेक्षणाम्॥४०॥
विस्तीर्णजघनाभोगां रम्भोरुं संहतस्तनीम्। तामङ्कुरितलावण्यां जलसेकादिवाग्रतः॥४१॥
प्रोन्निद्रपङ्कजमुखीं वर्णनीयतमाकृतिम्। यथाप्रज्ञानयाथात्म्याद्विद्वद्भिरपि वर्णिनीम्॥४२॥
प्रोद्यत्कटाक्षविक्षेपैः शरव्रातैरिव स्मरः। स्वयं तदङ्गमास्थाय ताडयामास मां दृढम्॥४३॥
वयस्यासम्वृतामेवं खेलमानां यदृच्छया। अवतीर्याहमहरं विमानान्मदनातुरः॥४४॥
सा गृहीता मया दीर्घं प्रकुर्वाणा महास्वनम्। तातेतिचविमानस्था रुरोदातीवभद्रक॥४५॥

हे भद्र! तदनन्तर कुछ काल के उपरान्त एक बार वसन्त के समय पर्वत के गवाक्ष में बैठा जल में स्नान के लिए आई विवस्त्रा अग्निवेश ऋषि की कन्या को देखा। तब मलयवायु प्रवाहित हो रही थी। उस उद्गत् यौवना, श्यामा, क्षीणमध्या, मृगनयनी, विस्तीर्ण स्थूल जघना, संहत स्तनों वाली, केले के तने के समान जघनयुक्त रमणी को देखकर मेरे मन में कामाग्नि जल उठी। उस वर्णनीयतम सौन्दर्यशालिनी, विद्वानों के द्वारा भी यथाशक्ति वर्णन योग्या, विकसित कमल के समान मुख वाली बालिका को देखकर विदित हुआ कि मानों जलसिंचन के कारण उसके लावण्य का अंकुर फूट उठा है! कामदेव उसके अंगों में अवस्थित हो गया तथा वह उस रमणी के कुटिल कटाक्ष विक्षेपरूप कामबाणों के माध्यम से मुझे दृढ़ रूप से विद्ध करने लगा। तब मैं भी कामातुर होकर अपने विमान से उतरा तथा सखियों से घिरी, स्वेच्छापूर्वक क्रीड़ा तत्पर उस बालिका का मैंने हरण कर लिया। हे भद्र! वह मेरे विमान पर पड़ी उच्च स्वर से हा तात, हा तात! कहकर अत्यन्त रोदन करने लगी।।३९-४५।।

ततो वयस्यास्ता दीना मुनिमाहुः प्रधाविताः। वैमानिकेन केनापिहियतेतव पुत्रिका॥४६॥
रुदन्तीं भगवन्नेतां त्राह्युत्तिष्ठेति सर्वतः। तासां तदाकर्ण्य वचो मुनिर्भद्रतपोनिधिः॥४७॥
अग्निवेश्योऽभ्यगात्तस्या व्योमन्युपपदं त्वरन्।
तिष्ठतिष्ठेति मामुक्त्वा संस्तभ्य तपसा गतिम्।
ततः प्रकुपितः प्राह मुनिर्मामतिदुःसहम्॥४८॥

अग्निवेश्य उवाच

यस्मान्मदीया तनया मांसपेशीव ते हृता॥४९॥
गृध्रेणेवाऽधुनाव्योम्नितस्माद्गृध्रोभवद्भुतम्। अनिच्छन्तीमदीयेयंसुताबालातपस्विनी॥५०॥
त्वया हृताऽधुनास्यैतत्फलमाप्नुहि दुर्मते। इत्याकर्ण्यभयाविष्टोलज्जयाऽधोमुखोमुनेः॥५१॥

तब उसकी समवयस्का सखियों दीनतापूर्वक शीघ्रता से मुनि के पास जाकर कहने लगीं—"भगवन्! किसी विमान पर विचरण करने वाले व्यक्ति ने आपकी कन्या का हरण किया है। वह रो रही है। आप उठिये तथा उसकी रक्षा करिये।" यह सुनकर श्रेष्ठ तपोनिधि अग्निवेश्य मुनि आकाश पथ में विमान का पीछा करते बोले, रुको! रुको! तथा तपोबल से विमान की गति रुद्ध करके क्रुद्ध होकर मुझसे कहने लगे "हे दुर्मति! जैसे गृध्र मांसपेशी का अपहरण करता है, वैसे ही तुमने मेरी कन्या का आकाशमार्ग से आकर अपहरण किया है। अतएव तुम गृध्र हो जाओ। मेरी तपःशीला बालिका की इच्छा न होने पर तुमने उसका अपहरण किया है, उसका फल भोगो।" मैं यह शाप सुनकर लज्जापूर्वक अधोमुख हो गया।।४६-५१।।

पादौ प्रगृह्य न्यपतं रुदन्नतितरां तदा। न मयेयं परिज्ञाय हृता नाऽद्योऽपि धर्षिता॥५२॥
प्रसादं कुरु ते शापं व्यावर्तय तपोनिधे। प्रणतेषु क्षमावन्तो निसर्गेण तपोधनाः॥५३॥
भवन्ति सन्तस्तद्गृध्रो मा भवेयं प्रसीद मे। इति प्रपन्नेनमया प्रणतोऽसौ महामुनिः॥५४॥
प्रसन्नः प्राहनोमिथ्याममवाक्यंभवेत्क्वचित्। किन्त्विन्द्रद्युम्नभूपालपरिज्ञानेसहायताम्॥५५॥
यदा यास्यसि शापस्य तदा मुक्तिमवाप्स्यसि॥५६॥
इत्युक्त्वा स मुनिः प्रायाद्गृहीत्वा निजकन्यकाम्। अखण्डशीलां स्वावासमहं गृध्रोऽभवं तदा॥५७॥
एवं तदा दमनकोत्सव ईश्वरस्य आन्दोलनेन नृपवेश्मनि मेऽवतारः।
शम्भोर्गणत्वमभवच्च तथाग्निवेश्यशापेन गृध्र इह भद्र! तवेदमुक्तम्॥५८॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे महीप्रादुर्भावे गृध्रोपाख्याने दमनकमाहात्म्यंनाम नवमोऽध्यायः॥९॥

तब मैंने रोदन करते हुये मुनि के चरण पकड़े तथा कहा—हे तपोधन! ये आपकी कन्या है, यह जानकर मैंने अपहरण नहीं किया। अभी तक मैंने इससे समागम भी नहीं किया। अतः प्रसन्न होकर अभिशाप को वापस लीजिये, जिससे मैं गृध्र न बनूं। साधु तपोधनगण प्रणत व्यक्ति को क्षमा करते हैं। मेरी प्रार्थना सुनकर उन्होंने मुझ पर प्रसन्न होकर कहा—"मेरी वाणी कभी मिथ्या नहीं होती। तब भी जब तुम इन्द्रद्युम्न राजा का वृत्तान्त जानने में सहायक होगे, तब इस पाप से मुक्ति मिल जायेगी।" मुनि ने मुझे यह कहा तथा अपनी अदूषित चरित्र वाली कन्या को लेकर अपने निवास लौट गये। तभी मैं भी गृध्र हो गया। हे भद्र! पूर्व में इस प्रकार दमनकोत्सव में झूले में बैठे झुलाने के फलस्वरूप मेरा राजा के यहां जन्म हुआ। शिवाराधना से शम्भु की गणत्व प्राप्ति भी हुई थी। साथ ही अग्निवेश्य के शाप से मुझे गृध्रत्व मिला। मैंने इस समस्त वृत्तान्त को आपसे कह दिया।।५२-५८।।

॥नवम अध्याय समाप्त॥

दशमोऽध्यायः

कूर्म का दीर्घायु प्राप्त करना

नारद उवाच

गृध्रस्यैतद्वचः श्रुत्वा दुःखविस्मयसंयुतः। इन्द्रद्युम्नस्तमापृच्छ्य मरणायोपचक्रमे॥१॥
ततस्तमालोक्यतथामुमूर्षुं कौशिकादिभिः। ससंहितंविञ्चिन्त्याहदीर्घायुषमथात्मनः॥२॥
मैवंकार्षीःशृणुगिरंभद्र त्वं चिरन्तनः। मत्तोऽप्यस्तिस्फुटंचैवज्ञास्यतित्वदभीप्सितम्॥३॥
मानसे सरसि ख्यातः कूर्मोमन्थरकाख्यया। तस्य नाविदितं किञ्चिदेहितत्रब्रजामहे॥४॥
ततः प्रतीतास्ते भूपमुनिगृध्रबकास्तथा। उलूकसहिता जग्मुः सर्वेकूर्मदिदृक्षवः॥५॥

नारद कहते हैं—महाराज इन्द्रद्युम्न ने गृध्र का यह आख्यान सुना तथा वह विस्मित होकर दुःख से आक्रान्त चित्त की स्थित में गृध्र से विदा सम्भाषण करके मरणार्थ उद्यत हो गया। जब उस गृध्र ने उनको उलूकादि के साथ मुमूर्षु देखा, तब उसने कुछ क्षण अपने दीर्घ जीवन का चिन्तन किया और कहा—"हे भद्र! तुम मरने का उपक्रम न करो। मेरी अपेक्षा भी अधिक आयु वाले चिरजीवी विद्यमान हैं। वे अवश्य ही तुम्हारी जिज्ञासा का उत्तर जानते हैं। मानसरोवर में मन्थरक नामक एक कच्छप है, वह सब कुछ जानता है। आईये, हम वहां चलें।" तदनन्तर राजा, मुनि, बक तथा उलूक सभी गृध्र के साथ कूर्म को देखने चल पड़े।।१-५।।

सरस्तीरेस्थितःकूर्मस्तान्निरीक्ष्यविदूरगान्। कान्दिशीकोविवेशासौजलंशीघ्रतरंतदा॥६॥
कौशिकोऽथ तमाहेदंप्रहस्यवचनंस्वयम्। कस्मात्कूर्मप्रनष्टोऽद्यविमुखोऽभ्यागतेष्वपि॥७॥
अग्निर्द्विजानांविप्रश्चवर्णानांरमणःस्त्रियाम्। गुरुःपिताचपुत्राणांसर्वस्याऽभ्यागतोगुरुः॥८॥
विहाय तमिमंधर्ममातिथ्यविमुखः कथम्। गृह्णासि पापं सर्वेषां ब्रूहि कूर्माधुनोत्तरम्॥९॥

मन्थरक तब सरस्वती तट पर बैठा था, किन्तु इन समागत लोगों को देखकर भय से किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर जल में प्रविष्ट हो गया। तब उलूक ने कूर्म को पुकार कर कहा—"हे कूर्म! क्यों छिपे हो! अभ्यागतों से क्यों विमुख हो रहे हो। विप्रों का गुरु अग्नि है, सभावर्ण के ब्राह्मण गुरु है, नारीगण के गुरु पति हैं, सर्वसाधारण के अतिथि गुरु हैं। ऐसे गुरु परिचर्यारूप धर्म से, अतिथि सेवा से क्यों विमुख हो? इस प्रकार तुम साधारण लोगों से पापभाजन हो जाओगे। हे कूर्म! तुम सदुत्तर प्रदान करो।।६-९।।

कूर्म उवाच

चिरन्तयो हि जानामि कर्त्तुमातिथ्यसत्क्रियाम्।
अभ्यागतेष्वप्रचितिं धर्मशास्त्रेषु निश्चितम्॥१०॥
सुमहत्कारणं चाऽत्र श्रूयतां तद्वदामिवः। नाऽहं पराङ्मुखोजातएतावन्तिदिनान्यपि॥११॥
अभ्यागतस्य कस्याऽपि सर्वसत्कारसद्व्रती। किंत्वेषपञ्चमोयोवोदृश्यतेसरलाकृतिः॥१२॥
इन्द्रद्युम्नो महीपालो बिभेभ्यस्मादलन्तराम्। अमुनायजमानेन रौचकाख्येपुरापुरे॥१३॥

यज्ञपावकदग्धा मे पृष्ठिर्नाद्याऽपि निर्व्रणा। तन्मे भयं पुनर्जातं किमयं पुनरेव माम्॥१४॥

कूर्म कहता है—"मैं अत्यन्त पुरातन प्राणी हूं। आतिथ्य-सत्कार भी जानता हूं। यह भी मुझे अज्ञात नहीं है कि अभ्यागत का सत्कार करना धर्मशास्त्र में निर्दिष्ट है। तथापि इस विषय में एक कारण है। उसे आप लोग सुनें। मैं अब तक सर्वसत्कार व्रत में लगा था। कभी किसी अभ्यागत से विमुख नहीं हुआ। तथापि आप लोगों के साथ जो पांचवें व्यक्ति राजा इन्द्रद्युम्न हैं, इनसे मैं अत्यन्त भयभीत हूं। इन्होंने प्राचीन काल में रौचक पुरी में यज्ञ किया था। उसकी यज्ञाग्नि से मेरा पृष्ठदेश दग्ध हो गया था। वह दाह जनित घाव अभी तक बना है। अतएव इसीलिए मुझे भय है। वह यह भय है कि ये पुनः भूतल पर वैसा यज्ञ करके मुझे दग्ध तो नहीं करेंगे?॥१०-१४॥

आसुतीवलमाधाय भुवि धक्ष्यति सम्प्रति। इति वाक्यावसाने तु कूर्मस्यकुरुसत्तम॥१५॥
पपात पुष्पवृष्टिः खाद्विमुक्ताप्सरसां गणैः। सस्वनुर्देववाद्यानि कीर्त्युद्धारेमहीपतेः॥१६॥
विस्मितास्ते च ददृशुर्विमानं पुरतः स्थितम्। इन्द्रद्युम्नकृते देवदूतेनाऽधिष्ठितं तदा॥१७॥
अयातयामाः प्रददुराशिषोऽस्मैसुरद्विजाः। साधुवादो दिवि महानासीत्तस्यमहीपतेः॥१८॥
ततो विमानमालम्ब्य देवदूतस्तमुच्चकैः। इन्द्रद्युम्नमुवाचेदं शृण्वतां नाकवासिनाम्॥१९॥

देवदूत उवाच

नवीकृताऽधुना कीर्तिस्तव भूपालनिर्मला। त्रिलोक्यामपि तच्छीघ्रं विमानमिदमारुह॥२०॥
गम्यतां ब्रह्मणो लोकमाकल्पं तपसोर्जितम्। प्रेषितोऽहमनेनैव तवानयनकारणात्॥२१॥
यावत्कीर्तिर्मनुष्यस्यपृथिव्यां प्रथिताभवेत्। तावानेवभवेत्स्वर्गी सति पुण्येह्यनन्तके॥२२॥
सुरालयसरोवापीकूपारामादिकल्पना। एतदर्थं हि पूर्ताख्या धर्मशास्त्रेषु निश्चिता॥२३॥

हे कुरुश्रेष्ठ! कूर्म का यह वाक्य समाप्त होने पर इन्द्रद्युम्न की लुप्त कीर्ति का उद्धार हो गया। तब आकाश से अप्सरागण विपुल पुष्पवर्षण करने लगीं, साथ ही देव वाद्यों की भी ध्वनि निनादित हो उठी। सबने विस्मय से देखा कि उधर देवदूतों से युक्त विमान इन्द्रद्युम्न के लिए उपस्थित है। तब आकाश मण्डल से पुरातन महर्षिगण तथा देववृन्द विविध आशीर्वाद तथा साधुवाद दे रहे थे। तदनन्तर विमानस्थ देवदूत देवताओं को सुनाते हुये इन्द्रद्युम्न से कहने लगे—"हे भूपाल! त्रैलोक्य में आपकी कीर्त्ति ने अब नवभाव प्राप्त किया। अब आप अविलम्ब विमान पर बैठकर अपनी तपस्या से अर्जित ब्रह्मलोक में कल्पपर्यन्त निवास करिये। आपको ले आने के लिए ब्रह्मा ने हमें भेजा है। अनन्त पुण्य रहने पर भी जब तक भूमण्डल में कीर्त्ति विस्तृत रहती है, मानव तब तक ही स्वर्ग में रहता है। इसलिए धर्मशास्त्रों में देवालय, सरोवर, वापी-कूप, उद्यानादि पूर्त्त कार्यों का विधान है"॥१५-२३॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

अमी ममैव सुहृदो मार्कण्डबककौशिकाः। गृध्रकूर्मौ प्रभावोऽयममीषां मम वृद्धये॥२४॥
तच्चेदमी मयासाकंब्रह्मलोकंप्रयान्त्युत। पुरःस्थितास्तदायास्येब्रह्मलोकंचनान्यथा॥२५॥
परेषामनपेक्ष्यैवकृतप्रतिकृतं हि यः। प्रवर्तते हितायैव स सुहृत्प्रोच्यते बुधैः॥२६॥

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—"ये मार्कण्डेय, बक, उलूक, गृध्र तथा कूर्म मेरे सुहृद हैं। मेरे उत्कर्ष साधक इन लोगों ने मेरी कीर्त्ति के विस्तार व्यापार को अपने प्रभाव से सिद्ध किया है। अतः मेरे साथ यदि ये लोग भी मेरे साथ ब्रह्मलोक जा सकें, तब मैं भी साथ में जा सकूंगा। अन्यथा इन लोगों को छोड़ कर मैं अकेला ब्रह्मलोक नहीं जा सकता। उपकार की प्रत्याशा न करके अन्य के हितसाधनार्थ जो उपकार में प्रवृत्त हो गये हों, बुधगण उनको ही सुहृद कहते हैं"।।२४-२६।।

स्वार्थोद्युक्तधियो ये स्युरन्वर्थास्तेऽप्यसुन्धराः। मरणं प्रकृतिश्चैवजीवितंविकृतिर्यदा॥२७॥
प्राणिनां परमो लाभः केवलंप्राणिसौ हृदम्। दरिद्रारागिणोऽसत्यप्रतिज्ञातागुरुद्रुहः॥२८॥
मित्रावसानिनः पापाः प्रायो नरकमण्डनाः। परार्थनष्टास्तदमी पंच सम्प्रतिसाधवः॥२९॥
मम कीर्तिसमद्धारः स प्रभावो महात्मनाम्। अमीषां यदितेस्वर्गंप्रयास्यन्तिमयासह।
तदाऽहमपि यास्यामि देवदूताऽन्यथा न हि॥३०॥

जो सदा स्वार्थसाधना का ही उद्यम करते हैं, वे वृथा जीवनधारी हैं। जीवन ही विकृति है तथा मरण ही प्रकृति है। अतः प्राण धारण का यही लाभ है कि प्राणीगण का हित किया जाय। दरिद्र, रोगी, प्रत्युपकार रहित, गुरुद्रोही, असत् प्रतिज्ञ, ये पंचविध लोग प्रायः नरक की ही शोभावृद्धि करते हैं, तथापि ये पांच साधु परोपकारार्थ ही नष्ट हुये हैं। (पांच साधु हैं—मार्कण्डेय, बक, उल्लू, गृध्र, कूर्म)। इन महात्माओं के प्रभाव से ही मेरी कीर्त्ति का उद्धार हुआ है। हे देवदूतगण! यदि आप इन ५ लोगों के साथ मुझे स्वर्ग ले जायें, तभी मैं स्वर्ग जा सकूंगा, अन्यथा मुझे स्वर्ग नहीं जाना है।।२७-३०।।

देवदूत उवाच

एते हरगणाः सर्वे शापभ्रष्टाः क्षितिं गताः॥३१॥
शापान्ते हरपार्श्वे तु यास्यन्तिपृथिवीपते!। विहायेमानतो भूप त्वमागच्छमयासह॥३२॥
न चैषां रोचते स्वर्गो हित्वा देवं महेश्वरम्॥३३॥

देवदूत कहते हैं—ये सभी महेश्वर के गण हैं! तथापि शाप के कारण मृत्युलोक इनको प्राप्त हुआ। हे राजन्! ये सभी शाप का अन्त हो जाने पर महेश्वर के पास जायेंगे। अतः हे राजन्! आप इनको छोड़ कर मेरे साथ आयें। महेश्वर का सान्निध्य ही इनकी गति है। इनको स्वर्ग में कोई रुचि नहीं है।।३१-३३।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

यद्येवं गच्छ तद्दूतनायास्येहंत्रिविष्टपम्। तथातथायतिष्यामिभविष्यामियथागणः।
अविशुद्धिक्षयाधिक्यदूषणैरेष निन्दितः॥३४॥
स्वर्गः सदानुश्रविकस्तस्मादेनं न कामये। तत्रस्थस्यपुनःपातोभयंनव्येतिमानसात्॥३५॥
पुनः पातो यतःपुंसस्तस्मात्स्वर्गं न कामये। सतिपुण्येस्वयंतेनपातितोनिजलोकतः॥३६॥
चतुर्मुखेनवैलक्ष्यंगतोऽस्मिकथमेमितम्। इतीदमुक्त्वादूतंतंशृण्वतोऽस्यैवविस्मयात्॥३७॥
अप्राक्षीद्भूपतिःकूर्मंतदायुः कारणं तदा। इदमायुः कथं जातं कूर्म! दीर्घतमं तव॥३८॥

सुहन्मित्रं गुरुस्त्वं मे येन कीर्तिर्ममोद्धृता॥३९॥

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—"हे दूत! यदि यही बात है तब आप जायें, मैं स्वर्ग नहीं जाऊंगा। मैं अब ऐसा यत्न करूंगा कि जिससे भगवान् शिव का गण हो सकूं। स्वर्ग तो पापक्षय रूप पुण्य से ही मिलता है। पुण्यक्षय होने पर वहां से पतन तो अनिवार्य है। इसलिए स्वर्गसुख चिरस्थायी नहीं है। वह तो पतन भयरूपी दोष से युक्त है। स्वर्गवासी आत्माओं में अन्तःकरण से यह पतनभय कभी नहीं जाता। एक न एक दिन पतन निश्चित है। तभी मैं ऐसे स्वर्ग की कामना नहीं करता। और भी देखिये, मेरा पुण्य बाकी रहने पर भी पद्मजन्मा ब्रह्मा ने अपने लोक से मुझे पतित कर दिया, जिससे मैं नितान्त लज्जित हो गया! अब मैं क्यों वहां जाऊंगा?" राजा इन्द्रद्युम्न ने विस्मय विमुग्ध देवदूत से यह कहकर उस कूर्म से उसकी दीर्घ आयु का रहस्य पूछा। राजा ने पूछा कि "हे कूर्म! आप मेरे सुहृद् मित्र तथा गुरु हैं, क्योंकि आपने ही मेरी नष्ट कीर्त्ति का उद्धार किया है। आपको यह दीर्घायु कैसे प्राप्त हो सकी"?।।३४-३९।।

कूर्म उवाच

शृणुभूप! कथांदिव्यांश्रवणात्पापनाशिनीम्। कथांसुमधुरामेतां शिवमाहात्म्यसंयुताम्॥४०॥
शृण्वन्निमामपि कथां नृपते! मनुष्यः सुश्रद्धया भवति पापविमुक्तदेहः।
शम्भोः प्रसादमभिगम्य यथायुरेवमासीत्प्रसादत इयं मम कूर्मता च॥४१॥

।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे महीप्रादुर्भावे कूर्मदीर्घायुष्यप्राप्तिवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः।।१०।।

कूर्म कहता है—हे राजन्! यह दिव्य कथा श्रवण करिये। यह शिवमहिमायुक्त आख्यान है। इसके श्रवणफल से पाप का ढेर भी नष्ट हो जाता है। हे नृपति! शम्भु की कृपा से ही मुझे दीर्घ आयु मिली तथा कूर्मत्व प्राप्ति का भी वर्णन श्रद्धा के साथ सुनें। इससे मनुष्य पापरहित हो जाता है।।४०-४१।।

॥दशम अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

एकादशोऽध्यायः

कूर्म का पूर्वजन्म वृत्तान्त, ईश्वर का शाप

कूर्म उवाच

शाण्डिल्य इति विख्यातः पुराहमभवं द्विजः। बालभावेमयाभूपक्रीडमानेनमिमितम्॥१॥
पुरा प्रावृषिपांशूत्थंशिवायतनमुच्छ्रितम्। जलार्द्रवालुकाप्रायंप्रांशुप्राकारशोभितम्॥२॥

पञ्चायतनविन्यासमनोहरतरं नृप!। विनायकशिवासूर्यमधुसूदनमूर्तिमत्॥३॥
पीतमृत्स्वर्णकलशं ध्वजमालाविभूषितम्। काष्ठतोरणविन्यस्तं दोलकेनविभूषितम्॥४॥
दृढ़प्रांशुसमुद्भूतसोपानश्रेणिभासुरम्। सर्वाश्चर्यमयं दिव्यं वयस्यैः सम्वृतेन मे॥५॥
तत्र जागेश्वरं लिङ्गं कृत्वाऽथ विनिवेशितम्। बाल्यादुपलरूपंतद्वर्षावारि विशुद्धिमत्॥६॥
बकपुष्पैस्तथाऽन्यैश्च केदारोत्थैः समाहृतैः। कोमलैरपरैः पुष्पैर्वृतिवल्लीसमुद्भवैः॥७॥
कूष्माण्डैश्चैव वर्णाद्यैरुन्मत्तकुसुमायुतैः। मन्दारैर्बिल्वपत्रैश्चदूर्वाद्यैश्च नवाङ्कुरैः॥८॥
पूजा विरचिता रम्या शम्भोरिति मया नृप!। ततस्ताण्डवमारब्धमनपेक्षितसत्क्रियम्॥९॥
शिवस्य पुरतो बाल्याद्गीतं च स्वरवर्जितम्। अकार्षं सकृदेवाऽहं बाल्येशिशुगणावृतः॥१०॥

कूर्म कहते हैं—हे भूपाल! मैं पूर्वकाल में शाण्डिल्य नामक ब्राह्मण था। मैंने बाल्यावस्था में जब वर्षा ऋतु थी, तब समवयस्क बालकों के साथ जल से भींगी बालुका के कीचड़ से खेल-खेल में एक उन्नत दिव्य शिवमन्दिर का निर्माण किया। वह मन्दिर उन्नत प्राकार से शोभित था। उसे पंचायतन निर्माण से मनोहर बनाकर उसमें गणेश, बिष्णु, देवी, सूर्य तथा विष्णु मूर्त्ति से मण्डित किया। वह स्वर्णिम कलस युक्त, ध्वजमण्डित, कोष्ठ-तोरण से विन्यस्त, झूले से युक्त, कड़ी गाढ़ी मृत्तिका से बनी सोपान श्रेणी से युक्त तथा आश्चर्यमय था। मैंने वर्षाजल से धुला शिलाखण्ड लाकर उसे जागेश्वर नामक लिंग रूप में स्थापित किया। उसे बक, धतूरा, मदार, कूष्माण्ड तथा नाना वृत्तिलता से उत्पन्न तथा केदारोत्पन्न कोमल विचित्र वर्ण कुसुमयुक्त किया तथा बिल्वपत्र तथा नवदूर्वा के अंकुर से शिव का मनोहर पूजन कृत्य सम्पन्न किया। तदनन्तर शिव के समक्ष बालकपन के कारण यथेच्छ रूप से मनमाना ताण्डव नृत्य तथा स्वरलय रहित गीत गायन किया। मैंने बाल्यावस्था में अन्य बालकों के साथ मात्र एक दिन ही यह कार्य किया था॥१-१०॥

ततो मृतोऽहं जातश्च विप्रो जातिस्मरो नृप। वैदिशे नगरेऽकार्षंशिवपूजांविशेषतः॥११॥
शिवदीक्षामुपागम्याऽनुगृहीतःशिवागमैः। शिवप्रासाद आधाय लिङ्गंश्रद्धासमन्वितः॥१२॥

तदनन्तर मेरी मृत्यु हो गई। हे राजन्! तदनन्तर मैंने शिव की कृपा से वैदिश नगर में पूर्वजन्म की स्मृति के साथ विप्रकुल में जन्म लिया। उस जन्म में मैंने शिवदीक्षा लेकर शैवागम तत्वज्ञ लोगों की कृपा से श्रद्धापूर्वक शिवलिङ्गार्चन व्रत किया॥११-१२॥

कल्पकोटिं वसेत्स्वर्गे यः करोति शिवालयम्। यावन्ति परमाणूनि शिवस्यायतनेनृप॥१३॥
भवन्ति तावद्वर्षाणि कारकः शिवसद्मनि। इति पौराणवाक्यानिस्मरञ्छैलंशिवालयम्॥१४॥
अकारिषमहं रम्यं विश्वकर्मविधानतः। मृन्मयं काष्ठनिष्पन्नं पाक्वेष्टंशैलमेव वा॥१५॥
कृतमायतनं दद्यात्क्रमाद्दशगुणं फलम्। भस्मशायी त्रिषवणो भिक्षान्नकृतभोजनः॥१६॥
जटाधरस्तपस्यंश्च शिवाराधनतत्परः। इत्थं मे कुर्वतो जातं पुनर्भूपप्रमापणम्॥१७॥

हे नृप! जो व्यक्ति शिवालय निर्माण करता है, वह करोड़ों कल्प स्वर्ग में निवास करता है। शिवमन्दिर में जितने परमाणु हैं, वह व्यक्ति उतने वर्ष शिवलोक में स्थित रहता है। मैंने यह वाक्य स्मरण करके विश्वकर्मा प्रणीत शिल्पशास्त्र के अनुसार एक शिलामय मनोरम शिवालय का निर्माण कराया। मृण्मय, काष्ठ के, पक्के ईंट तथा

शिला निर्मित—ये ४ प्रकार के आयतन दान करने का विधान है। परन्तु इनमें क्रमशः पहले वाले से बाद वाला उत्तरोत्तर १०-१० गुना अधिक फलप्रद होता है। मैं भस्म पर शयन, त्रिसन्ध्या स्नान, भिक्षान्न भोजन तथा जटाधारी होकर शिव की आराधना करने लगा। इस प्रकार कालक्रम से मैंने मृत होकर पुनः जन्म लिया। अब मैंने राजकुल में जन्म लिया।।१३-१७।।

जातो जातिस्मरस्तत्र तृतीयेऽहं भवान्तरे। सार्वभौमो महीपालः प्रतिष्ठाने पुरोत्तमे॥१८॥
जयदत्त इति ख्यातः सूर्यवंशसमुद्भवः। ततो मया बहुविधाः प्रासादाः कारितानृप॥१९॥
तस्मिन्भवान्तरे शम्भोराराधनपरेण च। ततो निरूपिता जाता बकपुष्पपुरस्सराः॥२०॥
सौवर्णै राजतैरत्ननिर्मितैः कुसुमैर्नृप। तथाविधेऽन्नदानादि करोमि नृपसत्तम॥२१॥
केवलं शिवलिङ्गानां पूजां पुष्पैः करोम्यहम्।
ततो मे भगवाञ्छंभुःसन्तुष्टोऽथवरंददौ॥२२॥

इस तृतीय जन्म में भी मुझे पूर्व जन्म की स्मृति अक्षुण्ण थी। मैं प्रतिष्ठानपुर के सूर्यवंशी राजकुल में जन्मा। तब मेरा नाम जयदेव था। तब मैं सार्वभौम राजा हो गया। हे नृप! मैं उस जन्म में भी शिवाराधन तत्पर रहता था। मैंने इस तृतीय जन्म में अनेक शिवालयों का निर्माण कराया। मैंने स्वर्ण-चांदी-रत्नों से रचित तथा बक प्रभृति नाना पुष्पों से केवल शिवलिंग समूह का ही पूजन किया था। हे नृपश्रेष्ठ! सविधि स्वर्णपात्र तथा अन्नादि का भी मैंने प्रचुर दान किया। इससे भगवान् त्रिलोचन प्रसन्न हो गये तथा उन्होंने मुझे वर प्रदान किया।।१८-२२।।

अजरामरतां राजंस्तेनैववपुषा वृतः। ततस्तथाविधं प्राप्याऽनन्यसाधारणं वरम्॥२३॥
विचरामिमहीमेतां मदान्ध इव वारणः। शिवभक्तिं विहायाऽथ नृपोऽहं मदनातुरः॥२४॥
प्रधर्षयितुमारब्धः स्त्रियः परपरिग्रहाः। आयुषस्तपसः कीर्तेस्तेजसो यशसः श्रियः॥२५॥
विनाशकारणं मुख्यं परदारप्रधर्षणम्। सकर्णः श्रुतिहीनोऽसौ पश्यन्नन्धोवदञ्जडः॥२६॥
अचेतनश्चेतनावान्मूर्खो विद्वानपि स्फुटम्। तदा भवति भूपाल! पुरुषः क्षणमात्रतः॥२७॥
यदैव हरिणाक्षीणां गोचरं याति चक्षुषाम्। मृतस्य निरयेवासोजीवतश्चेश्वराद्भयम्॥२८॥
एवं लोकद्वयं हन्त्री परदारप्रधर्षणा। जरामरणहीनोऽहमितिनिश्चयमास्थितः॥२९॥
ऐहिकामुष्मिकभयं विहायाऽहं ततः परम्। प्रधर्षयितुमारब्धस्तदा भूप परस्त्रियः॥३०॥

मैंने उसी शरीर से अजर-अमर होने का वर प्राप्त किया। तदनन्तर भगवान् से ऐसे ही असाधारण वर प्राप्त किया। इससे मैं मदान्ध हाथी जैसा इस धरती पर विचरण करने लगा। हे नृप! इससे अब मेरी शिवभक्ति भी तिरोहित हो गयी। मैं कामातुर मन से परनारी वर्ग से समागम करने लगा। परनारी समागम से आयुः, कीर्त्ति, तप, तेज, यश तथा श्री का नितान्त नाश होता है। हे भूपाल! जब व्यक्ति मृगनयनी स्त्रियों को देखता है, तब वह कान रहते भी बहरा, नेत्र रहते अन्धा, सचेतन होकर भी अचेतन तथा विद्वान् होकर भी स्पष्ट मूर्खवत् हो जाता है। उसे मरणान्त पर नरकवास होता है। जीवित काल में उसके लिए राजभय तो निश्चित ही है। अतः परनारी समागम इहलोक तथा परलोक दोनों का विनाशक है। तथापि हे राजन्! मैं जरा-मरण भयरहित था। इसी कारण मैंने इहलोक तथा परलोक का भय त्याग दिया था और परनारी समागम में प्रवृत्त रहता था।।२३-३०।।

अथ मां सम्परिज्ञाय मर्यादारहितं यमः। वरप्रदानादीशस्य तदन्तिकमुपाययौ।
व्यजिज्ञपन्मदीयं च शम्भोर्धर्मव्यतिक्रमम्॥३१॥

यम उवाच

नाऽहं तवाऽनुभावेन गुप्तस्याऽस्य विनिग्रहम्॥३२॥
शक्नोमि पापीनो देव मन्नियोगेऽन्यमादिश। जगदाधाररूपाहित्वयेशोक्ताःपतिव्रताः॥३३॥
गावोविप्राःसनिगमाअलुब्धादानशीलिनः। सत्यनिष्ठाइतिस्वामिंस्तेषांमुख्यतमासती॥३४॥
तास्तेन धर्षिता लुप्तं मदीयं धर्मशासनम्। वरदानप्रमत्तेन तवैव परिभूय माम्॥३५॥
जयदत्तेनदेवेश प्रतिष्ठानाधिवासिना। इमां धर्मस्य भगवान्निगरमाकर्ण्य कोपितः।
शशाप मां समानीय वेपमानं कृताञ्जलिम्॥३६॥

ईश्वर उवाच

यस्माद्दुष्टसमाचार धर्षितास्ते पतिव्रताः॥३७॥
कामार्तेन मया शप्तस्तस्मात्कूर्मः क्षणाद्भव। ततः प्रणम्य विज्ञप्तः शापतापहरोमया॥३८॥
प्राह षष्टितमे कल्पे विशापो भविता गणः। मदीय इति सम्प्रोच्यजगामाऽदर्शनंशिवः॥३९॥

तदनन्तर यमराज ने शिववर के प्रभाव से मुझे मर्यादा लंघनकारी जानकर इस धर्ममर्यादा उल्लंघन का वर्णन भगवान् शिव के पास जाकर करते हुये कहा—"हे ईश्वर! आपके प्रभाव से रक्षित इस पापी का निग्रह मैं कदापि नहीं कर सकता। हे देवेश! अतः मेरे पद पर आप किसी अन्य को नियुक्त करिये। आपने ही कहा है कि पतिव्रता, गौ, विप्र, निगम, अलुब्ध, दाता तथा सत्यवक्ता ही जगत् के आधार रूप हैं। इनमें भी पतिव्रता (सती) मुख्य हैं। हे देवेश! आपके वर प्रभाव से प्रमत्त प्रतिष्ठानपुरवासी जयदत्त मेरी अवज्ञा करके सती नारियों से समागम कर रहा है। अतः मेरा धर्मशासन लुप्त होने को है।" धर्म का यह वचन सुनकर क्रुद्ध होकर भगवान् मुझे अपने पास लाये। यद्यपि मैं अञ्जलिबद्ध होकर उनके समक्ष कांपता खड़ा था तथापि उन्होंने मुझे यह शाप दिया—"हे दुराचारी! तुमने कामार्त्त होकर पतिव्रताओं से समागम किया है, अतः मेरे शाप से तुम कूर्म हो जाओ।" तदनन्तर मैंने भगवान् शापताप हारी को प्रणाम करते हुये इस शाप से मुक्त करने के लिए अनुनय-विनय किया, तब भगवान् ने कहा—"तुम साठवें कल्प में पापरहित होकर मेरा गणत्व प्राप्त करोगे।" शिव मुझसे यह कहकर अन्तर्हित हो गये॥३१-३९॥

अहं कूर्मस्तदाजातो दशयोजनविस्तृतः। समुद्रसलिले नीतस्त्वयाऽहंयज्ञसाधने॥४०॥
पुरस्ताद्यायजूकेनस्मरंस्तच्च बिभेमि ते। दग्धस्त्वयाऽहं पृष्ठेऽत्रव्रणान्येतानि पश्यमे॥४१॥
चयनानिबहून्यत्र कल्पसूत्रविधानतः। पृष्ठोपरि कृतान्यासन्निन्द्रद्युम्न तदा त्वया॥४२॥
भूयः सन्तापिता यज्ञैः पृथिवी पृथिवीपते। सुस्राव सर्वतीर्थानांसारंसाऽभून्महीनदी॥४३॥
तस्यां च स्नानमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते। ततो नैमित्तिके कस्मिन्नपि प्रलय आगतः॥४४॥
प्लवमानमिदं राजन्मानसं शतयोजनम्। षट्पञ्चाशत्प्रमाणेन कल्पा मम पुरा नृप॥४५॥

व्यतीता इह चत्वारः शेषे मोक्षस्ततः परम्। एवमायुरिदं दीर्घमेवं शापाच्चकूर्मता॥४६॥
ममाऽभूदीश्वरस्यैव सतीधर्मद्रुहो नृप!। ब्रूहि किं क्रियतां शत्रोरपि ते गृहगामिनः॥४७॥

मैंने तभी १० योजन विस्तृत कूर्माकृति प्राप्त किया तथा सागर जल में रहने लगा। तदनन्तर जब आपने अनेक यज्ञों का अनुष्ठान किया, तब आपने यज्ञ साधनार्थ मुझे ग्रहण किया। इस वृत्तान्त के स्मरण से भी मुझे भय लगता है। आपने मेरी पीठ पर कल्पसूत्र विधानानुरूप अनेक चयन स्थापित किया था। उससे मेरी पीठ पर अग्नि दाह से अनेक घाव हो गये। यह देखें, वे अब भी विद्यमान हैं। हे राजन्! आप द्वारा अनुष्ठित अनेक यज्ञों के ताप से जब पृथिवी अतीव तप्त हो गयी, तब समस्त तीर्थसार से जो स्राव हुआ, वही मही नामक नदी है। इसमें स्नान करने से सभी पापसमूह से मुक्ति प्राप्त होती है। हे राजन्! तदनन्तर किसी नैमित्तिक प्रलय के घटित होने पर जब शतयोजन विस्तृत मानसरोवर तक जल प्लावन हो गया, तब मैं यहां चला आया। यहां मैंने ५६ कल्प व्यतीत किया है। ४ कल्प और व्यतीत होने पर मेरी मुक्ति होगी। हे राजन्! ईश्वर के वर के कारण मेरी यह दीर्घायु मिली तथा सतीधर्म से द्रोह के कारण कच्छप देह मिली। आप मेरे शत्रु हैं (पीठ दग्ध करने के कारण), तथापि जब शत्रु भी घर आ जाये, तब अलग बात है। अब आपका क्या कार्य करूं, बतायें।।४०-४७।।

ममपृष्ठिश्चिरंभूप त्वयादग्धाऽग्निनापुरा। अहंज्वलन्तीमिवतांपश्याम्यद्याऽपिसत्रिणा॥४८॥
इदं विमानमायातंत्वयाकस्मान्निराकृतम्। देवदूतसमायुक्तंभुङ्क्ष्वभोगान्निजार्जितान्॥४९॥

हे राजन्! आपने पूर्व काल में यज्ञ करके दीर्घकाल तक मेरी पीठ को जलाया है। वह व्रण आज भी जलता अनुभूत होता है। यह जो देवदूत विमान लेकर आया था, आपने उसे लौटा क्यों दिया? अपने कर्म का भोग तो सभी ग्रहण करते हैं?।।४८-४९।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

चतुर्मुखेनतेनाऽहंस्वर्गान्निर्वासितःस्वयम्। विलक्ष्योनप्रयास्यामिपाताधिक्यादिदूषिते॥५०॥
तस्माद्विवेकवैराग्यमविद्यापापनाशनम्। आलिङ्ग्याऽहंयतिष्यामिप्राप्यबोधंविमुक्तये॥५१॥
तन्मेगृहागतस्याऽद्य यथाऽऽतिथ्यकरोभवान्। तदादिशयथाऽपारपारदःकोऽपिमेगुरुः॥५२॥

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—ब्रह्मा ने स्वयं ही अपने लोक से मुझे निकाल दिया। इससे मैं नितान्त लज्जित बोध कर रहा हूं। अतः उस पतन आशंका युक्त स्थान में अब मुझे जाने की इच्छा नहीं है। मैं अविद्यापाप नाशक विवेक-वैराग्य का आचरण करके उसके बल से मुक्तिसाधक ज्ञानार्जन का प्रयत्न करूंगा। मैं आपके यहां अतिथि रूप से आया हूं। आप मेरा आतिथ्य अवश्य करेंगे। अब मैं जिस विधि से इस अपार संसार को पार कर सकूं। तद्रूप आदेश दीजिये।।५०-५२।।

कूर्म उवाच

लोमशोनाम दीर्घायुर्मत्तोऽप्यस्तिमहामुनिः। मयाकलापग्रामे स पूर्वं दृष्टः क्वचिन्नृप!॥५३॥

कूर्म कहता है—मेरी अपेक्षा भी दीर्घायु एक लोमश मुनि हैं। हे नृप! पूर्व में कभी उनको मैंने कलाप ग्राम में देखा था।।५३।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

तस्मादागच्छ गच्छामस्तमेवसहिता वयम्। प्राहुः पूततमां तीर्थादपिसत्सङ्गतिंबुधाः॥५४॥

इत्थं निशम्य नृपतेर्वचनं तदानीं सर्वेऽपि ते षडथ तं मुनिमुख्यमाशु।
चित्ते विधाय मुदिताः प्रयुर्द्विजेन्द्रं जिज्ञासवः सुचिरजीवितहेतुमस्य॥५५॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे महीप्रादुर्भावे कूर्माख्यानं नामैकादशोऽध्यायः॥११॥

—:※:—

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—"तब आइये। हम सब एक साथ उनके यहां चलें। बुधगण साधुसंग को तीर्थ की अपेक्षा भी पूज्यतम कहते हैं।" इन्द्रद्युम्न के वाक्य को सुनकर वे छः लोग उन मुनिप्रवर लोमश के विषय में हृदय में चिन्तन करते-करते उनके दीर्घ जीवन के अनुभव का लाभ उठाने के लिये चल पड़े॥५४-५५॥

॥एकादश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

द्वादशोऽध्यायः

लोमश आख्यान, शिवपूजा महिमा, महेश्वर से वर प्राप्ति

नारद उवाच

अथ ते ददृशुः पार्थ संयमस्थं महामुनिम्। क्रियायोगसमायुक्तं तपोमूर्तिधरं यथा॥१॥
जटास्त्रिषवणस्नानकपिलाः शिरसातदा। धारयन्तंलोमशाख्यमाज्यसिक्तमिवाऽनलम्॥२॥
सव्यहस्ते तृणौघं चच्छायार्थे विप्रसत्तमम्। दक्षिणे चाक्षमालां च बिभ्रतं मैत्रमार्गगम्॥३॥
अहिंसयन्दुरुक्ताद्यैः प्राणिनो भूमिचारिणः। यः सिद्धिमेति जप्येनसमैत्रोमुनिरुच्यते॥४॥
बकभूपद्विजोलूकगृध्रकूर्मा विलोक्य च। नेमुः कलापग्रामे तं चिरन्तनतपोनिधिम्॥५॥
स्वागतासनसत्कारेणामुनातेऽतिसत्कृताः। यथोचितंप्रतीतास्तमाहुःकार्यंहृदिस्थितम्॥६॥

नारद कहते हैं—हे पार्थ! तदनन्तर उन्होंने संयत, क्रियायोगरत, मूर्त्त तपस्या के समान लोमश ऋषि का उनके आश्रम जाकर दर्शन किया। वे त्रिकाल स्नान के कारण कपिलवर्ण हो गई जटा धारण करने के कारण घृत से दीप्त हो रहे अग्नितुल्य प्रतीत हो रहे थे। छाया विधानार्थ उन्होंने वाम हाथ में तृणमुष्टि धारण किया था तथा उनके दाहिने हाथ में जपमाला थी। ये विप्रप्रवर मैत्र मार्ग का अनुसरण करने वाले थे। इन्होंने दुर्वाक्य को कहना छोड़ दिया था। वे प्राणीगण की हिंसा से विरत रहते थे। उनको जप से सिद्धि मिली थी। ऐसे मुनि को मैत्र कहा जाता है। कलापग्रामस्थ इन चिरन्तन तपोनिधि मुनि को देखकर राजा इन्द्रद्युम्न, मार्कण्डेय मुनि, बक, उलूक, गृध्र तथा कूर्म

ने उनको प्रणाम किया। लोमश ऋषि ने इनको देखकर यथायोग्य उपचार द्वारा इनका स्वागत किया तथा प्रसन्न होकर मनोगत भावों को व्यक्त किया।।१-६।।

कूर्म उवाच

इन्द्रद्युम्नोऽयमवनीपतिः सत्रिजनाग्रणीः। कीर्तिलोपान्निरस्तोऽयं वेधसानाकपृष्ठतः॥७॥
मार्कण्डेयादिभिः प्राप्यकीर्त्युद्धारं च सत्तम। नायंकामयतेस्वर्गंपुनःपातादिभीषणम्॥८॥
भवताऽनुगृहीतोऽयमिहेच्छति महोदयम्। प्रणोद्यस्तदयं भूपः शिष्यस्ते भगवन्मया॥९॥
त्वत्सकाशमिहाऽऽनीतो ब्रूहि साध्वस्य वाञ्छितम्॥१०॥
परोपकरणं नाम साधूनां व्रतमाहितम्। विशेषतः प्रणोद्यानां शिष्यवृत्तिमुपेयुषाम्॥११॥
अप्रणोद्येषु पापेषु साधु प्रोक्तमसंशयम्। विद्वेषं मरणं चाऽपि कुरुतेऽन्यतरस्य च॥१२॥
अप्रमत्तः प्रणोद्येषु मुनिरेष प्रयच्छति। तदेवेति भवानेवं धर्मं वेत्ति कुतो वयम्॥१३॥

कूर्म कहता है—हे सत्तम! ये योगशीलों में अग्रणी राजा इन्द्रद्युम्न हैं। कीर्त्तिलोप हो जाने के कारण ब्रह्मा ने इनको स्वर्ग से निर्वासित कर दिया था। तदनन्तर इन्होंने मार्कण्डेय प्रभृति की सहायता से लुप्त कीर्त्ति का उद्धार किया, तथापि ये अब पुनः पतनदोष तथा पतनभय युक्त स्वर्ग की कामना नहीं करते। ये आपकी कृपा से यहां रहकर आत्मा की उन्नति की कामना तथा साधना करना चाहते हैं। हे भगवन्! मैं इनको आपकी शरण में लाया हूं। इनका अभिप्राय उत्तम है। ये आपका शिष्य होना चाहते हैं। अतएव इन राजा को सदुपदेश प्रदान करे। साधु लोगों के लिए शिष्यभावापन्न शिक्षाप्रार्थी का उपकार करना ही नियमित व्रत होता है। जो शिक्षा के लिए अयोग्य है, ऐसे पापी को उपदेश करने से परस्पर विद्वेष किंवा अन्ततः मृत्युरूप परिणाम होता है। आप शिष्यों को शिक्षा प्रदान करते हैं। आप धर्मत्वविद् भी हैं। परन्तु मैं उसे कैसे जान सकता हूं?।।७-१३।।

लोमश उवाच

कूर्म! युक्तमिदं सर्वं त्वयाऽभिहितमद्य नः। धर्मशास्त्रोपनतंतत्स्मारिताःस्मपुरातनम्॥१४॥
ब्रूहि राजन्सुविश्रब्धं सन्देहं हृदयस्थितम्। कस्ते किमब्रवीच्छेषं वक्ष्याम्यहंनसंशयः॥१५॥

लोमश कहते हैं—हे कूर्म! तुम्हारा समस्त कथन युक्तिसंगत है। तुमने पुरातन धर्मशास्त्र के तत्व को मुझे स्मरण करा दिया। हे राजन्! तुम विश्वस्त चित्त से अपने हृदय के सन्देह को व्यक्त करो। किसने क्या कहा, वह भी बतलाओ। बाकी बचा मैं कहूंगा, इसमें सन्देह नहीं है।।१४-१५।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

भगवन्प्रथमः प्रश्नस्तावदेव ममोच्यताम्। ग्रीष्मकालेऽपि मध्यस्थेरवौकिंनतवाश्रमः।
कुटीमात्रोऽपि यच्छाया तृणैः शिरसि पाणिगैः॥१६॥

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—हे भगवन्! मेरा प्रथम प्रश्न यह है कि ग्रीष्मकाल में भी मध्याह्न सूर्य के ताप में आप खुले गगन के नीचे बैठे हैं। आपने आश्रम क्यों नहीं बनाया? पहले यही कहिये। आपने एक सामान्य कुटिया भी नहीं बनाई, अपितु आप एक मुट्ठी तृण बायें हाथ में लिये बैठे हैं। उसी से मस्तक ढांकते हैं?।।१६।।

लोमश उवाच

मर्तव्यमस्त्यवश्यं च काय एष पतिष्यति। कस्याऽर्थे क्रियते गेहमनित्यभवमध्यगैः॥१७॥
यस्य मृत्युर्भवेन्मित्रं पीतं वाऽमृतमुत्तमम्। तस्यैतदुचितं वक्तुमिदंमेश्वोभविष्यति॥१८॥
इदं युगसहस्त्रेषु भविष्यमभवद्दिनम्। तदप्यद्यत्वमापन्नं का कथा मरणावधेः॥१९॥
कारणानुगतं कार्यमिदं शुक्रादभूद्वपुः। कथं विशुद्धिमायाति क्षालिताङ्गारवद्वद॥२०॥
तदस्याऽपि कृते पापं शत्रुषड्वर्गनिर्जिताः। कथङ्कारं न लज्जन्ते कुर्वाणा नृपसत्तम!॥२१॥
तद्ब्रह्मण इहोत्पन्नः सिकताद्वयसम्भवः। निगमोक्तं पठञ्छृण्वन्निदं जीविष्यतेकथम्॥२२॥
तथापि वैष्णवी माया मोहयत्यविवेकिनम्। हृदयस्थं न जानन्तिह्यपिमृत्युंशतायुषः॥२३॥
दन्ताश्चलाश्चला लक्ष्मीर्यौवनं जीवितं नृप। चलाचलमतीवेदं दानमेवं गृहं नृणाम्॥२४॥
इति विज्ञाय संसारमसारं च चलाचलम्। कस्याऽर्थे क्रियते राजन्कुटजादिपरिग्रहः॥२५॥

लोमश कहते हैं—अवश्य ही मरना है। इस शरीर का नाश अवश्य होता है, अतः अल्प काल के लिए इस अनित्य संसार में गृह निर्माण किस प्रयोजन से? जो १००० युग का व्यवधान था, वह भी देखते-देखते व्यतीत हो गया। मरण की कोई निश्चित सीमा नहीं होती। कार्यमात्र ही कारण के अधीन होता है। यह देह शुक्र से उत्पन्न है। अतः प्रक्षालित अंगार की तरह इस शरीर की शुद्धि कैसे होगी? हे राजन्! इस अशुद्ध शरीर के लिये षड्वर्ग से जीते गये मनुष्य पापाचरण करने में लज्जित क्यों नहीं होते? दो बालू के संयोग की तरह ब्रह्मा से उत्पन्न संसारगत मनुष्य निगमों (शास्त्रों) का वचन पढ़ कर भी क्यों जीवित रहना चाहते हैं? फलतः विष्णुमाया अविवेकियों को मोहित कर लेती है।

तभी १०० वर्ष का वृद्ध भी अपने मन में मृत्यु की चिन्ता नहीं करता। मनुष्य के दांत, लक्ष्मी, यौवन, जीवन, दान, गृह सभी चंचल हैं। स्थायी नहीं हैं। हे राजन्! यह संसार सारहीन, अस्थिरता से भरा है। यह जानकर गृहनिर्माण किसके लिए हो?।।१७-२५।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

चिरायुर्भगवानेव श्रूयते भुवनत्रये। तदर्थमहमायातस्तत्किमेव वचस्तव॥२६॥

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—हे भगवान्! सुना है कि तीनों लोकों में आप सबसे दीर्घायु हैं। तभी मैं आपके पास आया। लेकिन आप ऐसा क्यों कह रहे हैं?।।२६।।

लोमश उवाच

प्रतिकल्पं मच्छरीरादेकरोमपरिक्षयः। जायते सर्वनाशे च मम भावि प्रमापणम्॥२७॥
पश्य जानुप्रदेशं मे द्व्यङ्गुलं रोमवर्जितम्। जातं वपुस्तद्बिभेमिमर्तव्येसति किं गृहैः॥२८॥

लोमश कहते हैं—प्रति कल्प में मेरे शरीर से एक रोम गिरता है। जब सभी रोम गिर जायेंगे, तब मेरी मृत्यु होगी। देखो! अभी मेरे जानु के केवल दो अंगुल मात्र ही रोम गिरे हैं। तभी मैं सोचता हूं कि जब मरना ही है, तब गृह निर्माण का क्या प्रयोजन!।।२७-२८।।

नारद उवाच

इत्थं निशम्यतद्वाक्यंसप्रहस्याऽतिविस्मितः। भूपालस्तस्य पप्रच्छकारणंतादृशायुषः॥२९॥

नारद कहते हैं—राजा इन्द्रद्युम्न महर्षि लोमश का यह कथन सुनकर हंसते हुये तथा विस्मित चित्त से लोमश मुनि की यह आयु प्राप्ति के विषय में जिज्ञासा करने लगे।।२९।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

पृच्छामि त्वामहं ब्रह्मन्यदायुरिदमीदृशम्। तव दीर्घं प्रभावोऽसौदानस्यतपसोऽथवा॥३०॥

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—"हे ब्रह्मन्! आपको जो यह दीर्घायु प्राप्त है, क्या यह दान फल है अथवा तपः फल है? मुझे यह जिज्ञासा हो रही है।।३०।।

लोमश उवाच

शृणु भूप! प्रवक्ष्यामि पूर्वजन्मसमुद्भवाम्। शिवधर्मयुतां पुण्यांकथां पापप्रणाशनीम्॥३१॥
अहमासं पुरा शूद्रो दरिद्रोऽतीवभूतले। भ्रमामि वसुधापृष्ठे ह्यशनापीडितो भृशम्॥३२॥
ततो मया महल्लिङ्गं जालिमध्यगतं तदा। मध्याह्नेऽस्य जलाधारो दृष्टश्चैवाऽविदूरतः॥३३॥
ततः प्रविश्य तद्वारि पीत्वा स्नात्वा च शाम्भवम्।
तल्लिङ्गं स्नापितं पूजा विहिता कमलैः शुभैः॥३४॥
अथ क्षुत्क्षामकण्ठोऽहं श्रीकण्ठं तं नमस्य च। पुनःप्रचलितो मार्गे प्रमीतोनृपसत्तम॥३५॥

लोमश कहते हैं—हे राजन्! सुनो! मैं अपने पूर्वजन्म का आख्यान कहता हूं। वह शिवधर्मान्वित है, अतः पुण्यप्रद तथा पापनाशक है। मैं पूर्वकाल में पृथिवी पर एक अत्यन्त दरिद्र मनुष्य था। इसलिए पेट की ज्वाला से पृथिवी पर भ्रमण करता घूमता रहता था। एक बार मध्याह्न में कहीं पर एक शिवलिङ्ग देखा। उसके निकट बृहद् जलाशय था। मैंने उसमें उतर कर स्नान किया तथा स्नानादि के अनन्तर उस शिवलिंग को भी स्नान कराया तथा खिले कमलों से शिवलिंग का पूजन किया। मैं तब आकण्ठ क्षुधा पीड़ित था, अतः भगवान् श्रीकण्ठ शिव को प्रणाम करके पुनः आगे बढ़ा। मार्ग में चलते-चलते मेरी मृत्यु हो गयी।।३१-३५।।

ततोऽहं ब्राह्मणगृहे जातो जातिस्मरःसुतः। स्नापनाच्छिवलिङ्गस्यसकृत्कमलपूजनात्।
स्मरन्विलसितं मिथ्या सत्याभासमिदं जगत्॥३६॥
अविद्यामयमित्येवं ज्ञात्वा मूकत्वमास्थितः॥३७॥
तेन विप्रेण वार्धक्ये समाराध्य महेश्वरम्। प्राप्तोऽहमिति मे नामईशानइतिकल्पितम्॥३८॥
ततः स विप्रो वात्सल्यादगदान्सुबहून्मम। चकार व्यपनेष्यामि मूकत्वमितिनिश्चयः॥३९॥

हे राजन्! तदनन्तर मैंने ब्राह्मण गृह में जनम लिया तथा मुझे पूर्वजन्मों की स्मृति भी प्राप्त थी, क्योंकि मैंने मात्र एक बार शिवलिंग को स्नान करा कर कमल द्वारा उनका पूजन किया था। यह उसी पुण्य का फल था। इस जन्म में मैं सत्यवत प्रतीत होने वाले जगत् का मिथ्यात्व याद करके यह देखा कि यह अविद्या का विलास मात्र है। इस बोध के कारण मैंने मूकत्व का वरण कर लिया।।३६-३९।।

मन्त्रवादान्बहून्वैद्यानुपायानपरानपि। पित्रोस्तथा महामायासम्बद्धमनसोस्तथा॥४०॥
निरीक्ष्य मूढतां हास्यमासीन्मनसिमेतदा। तथा यौवनमासाद्यनिशिहित्वानिजंगृहम्॥४१॥
सम्पूज्य कमलैः शम्भुं ततः शयनमभ्यगाम्। ततः प्रमीते पितरि मूढइत्यहमुज्झितः॥४२॥
सम्बन्धिभिः प्रतीतोऽथ फलाहारमवस्थितः। प्रतीतः पूजयामीशमब्जैर्बहुविधैस्तथा॥४३॥
अथ वर्षशतस्याऽन्ते वरदः शशिशेखरः। प्रत्यक्षो याचितो देहि जरामरणसंक्षयम्॥४४॥

मेरे ब्राह्मण पिता ने अपनी वृद्धावस्था में महेश्वर ईशानदेव की आराधना करके मुझे पाया था। इसलिए उन्होंने मेरा नाम रक्खा ईशान। तदनन्तर उन पिता विप्र ने मेरे मूकत्व के निवारणार्थ नाना औषधि का प्रयोग चिकित्सक की मन्त्रणा से किया तथा मन्त्रादि उपाय का भी अवलम्बन लिया। तब महामाया बन्धन से युक्त मन वाले पिता-माता का यह मूढ़त्व देखकर मुझे हंसी आती थी। क्रमशः मैं यौवनावस्था को प्राप्त हो गया। मैं रात में गृह से बाहर जाकर पद्म पुष्प से शम्भु पूजन करके लौटता तथा पुनः शय्या पर सो जाता। कालक्रमेण मेरे पिता मृत हो गये तथा बन्धुगण ने मुझे जड़ मानकर मेरा त्याग कर दिया। मैं प्रसन्न चित्त से फलाहार द्वारा जीवन धारण करके विविध पद्मपुष्पों से शिवपूजन करता रहता। तदनन्तर १००वें वर्ष के अन्त में शशिशेखर प्रभु शम्भु ने मुझे वरदान देने के लिए उद्यत होकर दर्शन दिया, तब मैंने उनसे वर मांगा कि मुझे जरा-मरण रहित कर दें।।४०-४४।।

ईश्वर उवाच

अजरामरता नास्ति नामरूपभृतो यतः। ममाऽपि देहपातः स्यादवधिं कुरु जीविते॥४५॥
इति शम्भोर्वचः श्रुत्वा मया वृतमिदंतदा। कल्पान्ते रोमपातोऽस्तु मरणं सर्वसंक्षये।
ततस्तव गणो भूयामिति मेऽभीप्सितो वरः॥४६॥
तथेत्युक्त्वा स भगवान्हरश्चाऽदर्शनं गतः॥४७॥

ईश्वर कहते हैं—जो नाम तथा रूप धारी है, वह अजर-अमर नहीं हो सकता। मेरा भी देहपात होता है। अतः अपने जीवन की एक सीमा का निर्धारण कर लो।" भगवान् त्रिलोचन का यह वाक्य सुनकर मैंने कहा—"हे प्रभु! प्रति कल्प में मेरा एक रोम गिरे। समस्त रोम गिर जाने पर मैं आपका गण हो जाऊं। मुझे यही वर दीजिये।" भगवान् रुद्र ने कहा, "ऐसा ही हो" तथा अन्तर्हित हो गये।।४५-४७।।

अहं तपसिनिष्ठश्च ततः प्रभृति चाऽभवम्। ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते शिवपूजनात्॥४८॥
ब्रध्नाब्जैरितरैर्वाऽपिकमलैर्नाऽत्रसंशयः। एवंकुरु महाराजत्वमप्याप्स्यसिवाञ्छितम्॥४९॥
हरभक्तस्य लोकस्य त्रिलोक्यां नास्ति दुर्लभम्।
बहिःप्रवृत्तिं स गृह्य ज्ञानकर्मेन्द्रियाणि च॥५०॥
लयः सदाशिवे नित्यमन्तर्योगोऽयमुच्यते। दुष्करत्वाद्बहिर्योगंशिव एव स्वयंजगौ॥५१॥
पञ्चभिश्चाऽर्चनं भूतैर्विशिष्टफलदं ध्रुवम्। क्लेशकर्मविपाकाद्यैराशयैश्चाऽप्यसंयुतम्॥५२॥
ईशानमाराध्य जपन्प्रणवं मुक्तिमाप्नुयात्। सर्वपापक्षये जाते शिवे भवति भावना॥५३॥

पापोपहतबुद्धीनां शिवे वार्ताऽपि दुर्लभा। दुर्लभं भारते जन्म दुर्लभं शिवपूजनम्॥५४॥
दुर्लभं जाह्नवीस्नानं शिवे भक्तिः सुदुर्लभा। दुर्लभं ब्राह्मणे दानं दुर्लभं वह्निपूजनम्॥५५॥
अल्पपुण्यैश्च दुष्प्रापं पुरुषोत्तमपूजनम्॥५६॥

तब मैं भी हर्षित होकर तपस्या में लग गया। सूर्यकिरण से खिलने वाले कमल से तथा अन्य कमल से शम्भुपूजन करने से ब्रह्महत्यादि पातक से मानव मुक्त हो जाता है। इसमें तनिक संशय नहीं है। हे महाराज! तुम भी यही करो। इससे इच्छित वस्तु की प्राप्ति कर सकोगे। हर के भक्त व्यक्ति के लिये त्रैलोक्य में कुछ भी दुर्लभ नहीं है। ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय का संयम करके मन की बहिर्मुखता समाप्त करे। सदाशिव में चित्त का लय करे। यही अन्तर्योग कहा जाता है। यह दुष्कर है, तभी शिव ने स्वयं पञ्चभूतों द्वारा बहिर्याग के अनुष्ठान का उपदेश दिया है। यह योगानुष्ठान विशेष फलप्रद है। प्रणवरूपी सहायता से क्लेश-कर्म-विपाकाश्रय धर्मयुक्त ईशान की आराधना से मनुष्य को मुक्ति मिलती है। जब समस्त पापों का क्षय हो जाता है, तब शिवभावना का जन्म होता है। पाप से अपहृत बुद्धि वालों के लिये शिवविषयक वार्त्ता भी दुर्लभ है। भारत में जन्म दुर्लभ है। शिवपूजा दुर्लभ है। गंगा स्नान भी दुर्लभ है। केवल शिवभक्ति सुदुर्लभ है। ब्राह्मण को दान देना दुर्लभ है। अग्नि पूजा भी दुर्लभ है। अल्पपुण्यात्मा के लिए पुरुषोत्तम पूजन भी दुर्लभ है।।४८-५६।।

लक्षेण धनुषां योगस्तदर्धेन हुताशनः। पात्रं शतसहस्रेण रेवा रुद्रश्च षष्टिभिः॥५७॥
इतीदमुक्तमखिलं मया तव महीपते!। यथायुरभवद्दीर्घं समाराध्य महेश्वरम्॥५८॥
न दुर्लभं न दुष्प्रापं न चाऽसाध्यंमहात्मनाम्।
शिवभक्तिकृतांपुंसां त्रिलोक्यामितिनिश्चितम्॥५९॥
नन्दीश्वरस्य तेनैव वपुषा शिवपूजनात्। सिद्धिमालोक्यको राजञ्छङ्करं न नमस्यति॥६०॥

१ लाख जन्मों में योग आयत्त होता है। ५०००० जन्मों में अग्नि सन्तुष्ट होते हैं। सौ सहस्र जन्मों में एक सत्पात्र प्राप्त होता है। रेवा तथा रुद्र ६० जन्मों में प्रसन्न हो जाते हैं। हे राजन्! मैंने महेश्वराराधन से जो दीर्घायु प्राप्त किया है, उस वृत्तान्त को आपसे सम्यक्तः कह दिया। शिवभक्ति तत्पर महात्मा के लिये त्रैलोक्य में अलभ्य तथा दुर्लभ कुछ नहीं है। यह निश्चित है। हे राजन्! शिवपूजन के कारण नदीश्वर ने इसी शरीर से उस सिद्धि को प्राप्त किया। यह देखकर कौन शिव सेवा नहीं करेगा?।।५७-६०।।

श्वेतस्य च महीपस्य श्रीकण्ठंच नमस्यतः। कालोऽपिप्रलयंयातः कस्तमीशं नपूजयेत्॥६१॥
यदिच्छया विश्वमिदं जायते व्यवतिष्ठते। तथा सल्लीयतेचान्ते कस्तं न शरणं व्रजेत्॥६२॥
एतद्रहस्यमिदमेव नृणां प्रधानं कर्तव्यमत्र शिवपूजनमेव भूप!।
यस्याऽन्तरायपदवीमुयान्ति लोकाः सद्यो नरः शिवनतः शिवमेति सत्यम्॥६३॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे महीप्रादुर्भावे लोमशवृत्तान्ते शिवपूजनमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥१३॥

—※※※※—

राजा श्वेत ने इन श्रीकण्ठ को नमस्कार करने के फलस्वरूप काल को जय किया था। उन महेश्वर की सेवा कौन नहीं करेगा? जिनकी इच्छामात्र से इस विश्व का सृष्टि-स्थिति-प्रलय साधित होता है, कौन व्यक्ति उन महेश्वर की शरण में नहीं जायेगा? हे राजन्! इस संसार में मानव के लिए शिवपूजा प्रधान कर्त्तव्य रूप है। आपसे यह रहस्य कथा मैंने कहा। सत्यादि लोक की कामना इस शिवोपासना के लिये विघ्नस्वरूप है, क्योंकि उन लोकों के अस्थायी सुख पाने के लिए लोग शिवोपासना त्याग करते हैं तथा मानव ने उनके लिये अन्य धर्माचरण प्रवर्त्तित किया है। शिव प्रणाम के फल से मानव सद्यः शिवलोक प्राप्त करता है।।६१-६३।।

॥द्वादश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

त्रयोदशोऽध्यायः

शापभ्रष्टों के लिए वाराणसी जाकर उद्धार कथन, शतरुद्रीय लिंग महिमा, नकुल-याज्ञवल्क्य संवाद, संवर्त्त संवाद, महीसागर संगम महिमा, शतरुद्रीय, इन्द्रद्युम्नेश्वर माहात्म्य, सब की शिवसारूप्य प्राप्ति

नारद उवाच

इतितस्य मुनीन्द्रस्य भूपतिः शुश्रुवान्वचः। प्राह नाहंगमिष्यामित्वांविहायनरंक्वचित्॥१॥
लिङ्गमाराधयिष्येऽद्यसर्वसिद्धिप्रदंनृणाम्। त्वयैवाऽनुगृहीतोऽद्ययान्तु सर्वेयथागतम्॥२॥
तद्भूपतिवचः श्रुत्वाबकोगृध्रोऽथ कच्छपः। उलूकश्चतथैवोचुः प्रणतालोमशं मुनिम्॥३॥
स च सर्वसुहद्विप्रस्तथेत्येवाऽऽहतान्स्तदा। प्रणोद्यान्प्रणतान्सर्वाननुजग्राहशिष्यवत्॥४॥
शिवदीक्षाविधानेन लिङ्गपूजां समादिशत्। तेषामनुग्रहपरो मुनिः प्रणतवत्सलः।
तीर्थादप्यधिकं स्थाने सतां साधुसमागमः॥५॥

नारद कहते हैं—राजा इन्द्रद्युम्न ने लोमश मुनि का कथन सुनकर कहा—मैं आपको छोड़कर अन्य कहीं नहीं जाऊंगा। आपके द्वारा अनुगृहीत होकर मैं यहीं रहकर सर्वसिद्धिदायक लिंगाराधन करूंगा। ये सब लोग जहां इच्छा हो जायें। यह सुनकर बक, गृध्र, कच्छप तथा उलूक ने लोमश मुनि को प्रणाम करके तद्रूप ही कहा। सर्वसुहृद लोमश मुनि ने कहा ऐसा ही हो। तथा इन उपदेश प्रार्थीगण पर उन्होंने शिष्यवत् अनुग्रह किया। प्रणतवत्सल लोमश मुनि ने उनके प्रति कृपा परवश होकर उन्हें शिवदीक्षा विधानानुरूप लिंग पूजा का उपदेश प्रदान किया। साधुसमागम तीर्थ से भी अधिक फलप्रद होता है।।१-५।।

पचेलिमफलः सद्यो दुरन्तकलुषापहः। अपूर्वः कोऽपि सद्गोष्ठीसहस्रकिरणोदयः॥६॥

य एकान्ततयाऽत्यन्तमन्तर्गततमोपहः। साधुगोष्ठीसमुद्भूतसुखामृतरसोर्मयः॥७॥
सर्वे वराः सुधाकाराः शर्करामधुषड्रसाः। ततस्तेसाधुसंसर्गसम्प्राप्ताःशिवशासनात्॥८॥

उसक फल परिपक्व होता है, जैसे पका फल तत्काल आस्वाद प्रदायक है, वैसा ही वह दुस्तर पापनाशक त्वरित फल साधु समागम से मिलता है। सज्जन समागम रूप सूर्योदय का अपूर्व प्रभाव है। उसके द्वारा समस्त तमः एक साथ ही दूरीभूत हो जाता है। साधुसभा से उत्पन्न तृप्तिदायक अमृत रसधारा जो मिलती है, वह सुधा, शर्करा, मधु आदि षड्विध मधुर रस की ही तरह तृप्तिप्रद होती है। इन्द्रद्युम्न तथा मार्कण्डेयादि इन छः लोगों को साधु सत्संग फल द्वारा शिवदीक्षा विधान प्राप्त हुआ।।६-८।।

आरेभिरेक्रियायोगं मार्कण्डनृपपूर्वकाः। तेषां तपस्यतामेवंसमाजग्मे कदाचन।
तीर्थयात्रानुषङ्गेन लोमशालोकनोत्सुकः॥९॥
मुख्या पुरुषयात्रा हि तीर्थयात्रानुषङ्गतः। सद्भिः समाश्रितोभूपभूमिभागस्तथोच्यते॥१०॥

तदनुसार इन्होंने क्रियायोग साधना प्रारम्भ कर दिया। ये लोग इस प्रकार वहां तप कर रहे थे, तभी मैं कदाचित् कहीं से तीर्थयात्रा करता लोमश मुनि के दर्शनार्थ उत्सुक चित्त से वहां पहुंचा। सज्जनगण तीर्थयात्रा प्रसंग में सत्पुरुष दर्शन ही मुख्य है। इस सूत्र में नाना राजाओं द्वारा परिगृहीत पुण्य भूभागों का भी दर्शन मिल जाता है।।९-१०।।

कृतार्हणातिथ्यविधिंविश्रान्तंमांचफाल्गुन!। प्रणम्यतेऽथपप्रच्छुर्नाडीजङ्घपुरःसराः॥११॥

त उचुः

शापभ्रष्टावयंब्रह्मंश्चत्वारोऽपिस्वकर्मणा। तन्मुक्तिसाधनार्थायस्थानंकिञ्चित्समादिश॥१२॥
इयं हि निष्फलाः भूमिः सफलं भारतं मुने!॥१३॥
तत्राऽपि क्वचिदेकत्रं सर्वतीर्थफलं वद। इति पृष्टस्त्वहं तैश्च तानब्रवमिदं तदा॥१४॥
सम्वर्तं परिपृच्छध्वं स वो वक्ष्यति तत्त्वतः। सर्वतीर्थफलावाप्तिकारकंभूप्रदेशकम्॥१५॥

त उचुः

कुत्राऽसौविद्यतेयोगी नाज्ञासिष्मवयंचतम्। सम्वर्तदर्शनान्मुक्तिरितिचाऽस्मदनुग्रहः॥१६॥
यदि जानासि तं ब्रूहि सुहृत्सङ्गो न निष्फलः। ततोऽहमब्रवंतांश्चविचार्येदंपुनःपुनः॥१७॥

जो भी हो, हे अर्जुन! वहां उन लोगों ने यथायोग्य आतिथ्य विधि द्वारा मेरा सत्कार किया। तदनन्तर किंचित स्वस्थ होने पर बक, उलूक, गृध्र एवं कूर्म मुझसे कहने लगे—"हे ब्रह्मन्! हम चारों स्वल्प कर्मदोष के कारण अपने-अपने पद से भ्रष्ट हुये हैं। आप हमें कोई ऐसा स्थान बतायें, जहां हम शापमुक्त हो सकें। हे मुनिवर! यह भूमि निष्फला है। भारतभूमि ही सफला है। तथापि वहां कोई ऐसा स्थान बतायें, जहां एक ही स्थान पर सर्वतीर्थफल लाभ हो सके।" मुझसे इस प्रकार पूछे जाने पर मैंने उनसे कहा—"आप जाकर संवर्त्त मुनि से पूछें। वे आपको सर्वतीर्थ फलदायक भूप्रदेश का संधान देंगे।" तब उन चारों ने कहा—"आपने तो हमें संवर्त्त मुनि के दर्शन से मुक्ति लाभ की बात कही, परन्तु ये योगी कहां हैं? हम तो उनको जानते ही नहीं तथा उनका स्थान भी नहीं जानते। यदि यह आपको ज्ञात हो, तब बतलायें। इससे सुहृद्संग निष्फल नहीं होगा।" तब मैंने पुनः-पुनः विचारोपरान्त उनसे कहा।।११-१७।।

वाराणस्यामसावास्ते सम्वर्तो गुप्तलिङ्गभृत्। मलदिग्धोविवसनोभिक्षाशीकुतपादनु॥१८॥
करपात्रकृताहारः सर्वथा निष्परिग्रहः। भावयन्ब्रह्म परमं प्रणवाभिधमीश्वरम्॥१९॥
भुक्त्वानिर्यातिसायाह्नेवनंनज्ञायतेजनैः। योगीश्वरोऽसौतद्रूपाःसन्त्यन्येलिङ्गधारिणः॥२०॥
वक्ष्यामिलक्षणंतस्ययथाज्ञास्यथतंमुनिम्। प्रतोल्या राजमार्गे तु निशि भूमौशवंजनैः॥२१॥
अविज्ञातंस्थापनीयं स्थेयं तदविदूरतः। यस्तां भूमिमुपागम्य अकस्माद्विनिवर्तते॥२२॥
ससम्वर्तोनचाक्रामत्येषशल्यमसंशयम्। प्रष्टव्योऽभिमतंचासावुपाश्रित्य विनीतवत्॥२३॥
यदिपृच्छतिकेनाऽहमाख्यातइतिमांततः। निवेद्यचैतद्वक्तव्यंत्वामाख्यायाऽग्निमाविशत्॥२४॥

मैंने उनसे संवर्त्त के स्थान के बारे में बतलाया—"वे सर्वदा वाराणसी धाम में गुप्त रूप से रहते हैं। वे देह में मैल लपेटे, नग्न तथा परिग्रह रहित रहते हैं। वे सन्ध्या के प्राक्काल में भिक्षा से प्राप्त अन्न हाथ पर लेकर भोजन करते हैं। भोजनार्थ कोई पात्र नहीं रखते। भोजनान्त में सायं वन में चले जाते हैं। वे सतत् प्रणव पद से वाच्य परब्रह्म की भावना करते हैं। कोई उनको पहचान ही नहीं सकता। वे योगीश्वर हैं, तथापि उनके समान वेषधारी वहां और भी हैं। अतः आप उनको सम्यक्तः जान सकें, इसलिए उनके विशेष लक्षण को सुनें। आप वहां रात में जायें तथा अन्य कोई जान न सके, ऐसे राजपथ के बगल में पृथिवी पर एक शव रखें। तब वहीं रुकें। जो वहां आकर सहसा लौट पड़ें, वे ही संवर्त्त हैं। वे कभी भी ऐसी दूषित भूमि पार नहीं करते। आप सब विनीतभाव से संहत होकर उनसे अभिमत विषय के सम्बन्ध में जिज्ञासा करिये। यदि वे यह पूछें कि मेरे सम्बन्ध में तुम लोगों को किसने बतलाया था, तब कहना कि उन्होंने आपका वृत्तान्त कहकर अग्नि में प्रवेश कर लिया।।१८-२४।।

तच्छ्रुत्वा ते तथा चक्रुः सर्वेऽपि वचनंमम। प्राप्य वाराणसीं दृष्ट्वा सम्वर्ततेतथाव्यधुः॥२५॥
शवं दृष्ट्वा च तैर्न्यस्तं सम्वर्तो वै न्यवर्तत। क्षुत्परीतोऽपि तं ज्ञात्वा ययुस्तमनु शीघ्रगम्॥२६॥
तिष्ठब्रह्मन्क्षणमितिजल्पन्तो राजमार्गगम्। यातिनिर्भर्त्सयत्येष निवर्तध्वमिति ब्रुवन्॥२७॥
समया मामरे भोऽद्य नागन्तव्यं न वो हितम्। पलायनमसौ कृत्वा गत्वादूरतरंसरः।
कुपितः प्राह तान्सर्वान्केनाख्यातोऽहमित्युत॥२८॥
निवेदयति शीघ्रं मे यथाभस्मकरोमि तम्। शापाग्निनाथवायुष्मान्यदिसत्यंनवक्ष्यथ॥२९॥
अथ प्रकम्पिताः प्राहुर्नादेनेति तं मुनिम्। स तानाहपुनर्यातः पिशुनः क्व नु सम्प्रति॥३०॥
लोकानां येन शापाग्नौ भस्मशेषं करोमि तम्। ब्रह्मबन्धुमहंप्राहुर्भीतास्तेतंपुनर्मुनिम्॥३१॥

त ऊचुः

त्वां निवेद्यस चाऽस्माकंप्रविष्टोहव्यवाहनम्। तत्कालमेवविप्रेन्द्रनविद्मस्तत्रकारणम्॥३२॥

सम्वर्त उवाच

अहमप्येवमेवाऽस्य कर्तातेनस्वयं कृतम्। तद्भूतकार्यं नैवात्रचिरंस्थास्यामि वः कृते॥३३॥

मेरा यह कथन सुनकर वे चारों मेरे बतलाये तथ्य के अनुसार वाराणसी गये तथा मेरे वचनानुरूप कार्य किया। उन चारों ने संवर्त्त को पहचान लिया तथा उनका अनुसरण करने लगे। वे चारों "ब्रह्मन्! क्षणकाल

रुकिये।'' यह कहते उनका पीछा कर रहे थे। तथापि महर्षि कुपित चित्त से उन चारों की भर्त्सना करके कह रहे थे ''अरे पीछा छोड़! मेरे पीछे मत आना। अच्छा नहीं होगा।'' यह कहते-कहते वे वहां से भागकर दूरस्थ एक सरोवर के किनारे बैठ गये। वहीं से उन्होंने कहा—''मेरा सन्धान किसने दिया है। शीघ्र बोलो। मैं शाप से उसे भस्म करूंगा। यदि सत्य नहीं कहते तब मैं तुम लोगों को भस्म कर दूंगा।'' तब उन चारों ने भय से कंपित होते कहा कि नारद ने बताया था। तब संवर्त्त ने पूछा ''वह चुगलखोर ब्राह्मण किस लोक में गया है? उसे मैं भस्म करूंगा?'' तब उन चारों ने कांपते हुये कहा ''उन्होंने आपके सम्बन्ध में बताकर अग्नि प्रवेश किया। इसका कारण क्या है, हम नहीं जानते।'' तब संवर्त्त ऋषि ने कहा ''मैं भी उसकी यही व्यवस्था करता। किन्तु उसने स्वयं ही यह कर लिया। जो भी हो, तुम लोग अपना प्रयोजन कहो। तुम लोगों के लिए मैं देर तक यहां रुक नहीं सकता''।।२५-३३।।

अर्जुन उवाच

यदि नारद देवर्षे प्रविष्टोऽसि हुताशनम्। जीवितस्तत्कतं भूय आश्चर्यमिति मे वद।।३४।।

अर्जुन कहते हैं—''हे देवर्षि नारद! यदि आपने अग्नि में प्रवेश किया था, तब जीवित कैसे हैं? यह आश्चर्य वृत्तान्त कहिये''।।३४।।

नारद उवाच

न हुताशःसमुद्रो वा वायुर्वा वृक्षपर्वतः। आयुधं वा न मे शक्ता देहपाताय भारत।।३५।।
पुनरेतत्कृतं चापि सम्वर्तो मन्यते यथा। अहं सन्मानितश्चेति वह्निंप्राप्याप्यगामहम्।।३६।।
यथा पुष्यगृहे कश्चित्प्रविशत्यङ्गफाल्गुन!। तथाहमग्निंसम्विश्य यातवानुत्तरंशृणु।।३७।।

नारद कहते हैं—हे भारत! समुद्र, वायु, वृक्ष, पर्वत, अस्त्र इत्यादि कुछ भी मेरा देह नाश नहीं कर सकता, तथापि संवर्त्त यह समझें कि ''वे सम्मानित हो गये,'' इसलिए मैंने अग्निप्रवेश किया। हे अर्जुन! जैसे सामान्य लोग पुण्यगृह में प्रवेश करके निकल आते हैं, तदनुरूप मैं अग्नि में प्रविष्ट होकर निकल आया। अब आगे का विवरण सुनो।।३५-३७।।

सम्वर्तस्तान्पुनः प्राह मार्कण्डेयमुखानिति।
विशल्यः क्रियतां पन्थाः क्षुधितोऽहं पुनः पुरीम्।।
भिक्षार्थं पर्यटिष्यामि प्रश्नं प्रब्रूत चैव मे।।३८।।

तब संवर्त्त ने मार्कण्डेय से कहा—मार्ग को कंटक रहित (शव रहित) करें, जिससे मैं क्षुधित व्यक्ति पुनः पुरी में भिक्षार्थ जा सकूं। अब अपना प्रश्न कहो।।३८।।

त ऊचुः

शापभ्रष्टा वयं मोक्षं प्राप्स्यामस्त्वदनुग्रहात्। प्रतिकारंतदाख्याहि प्रणतानां महामुने।।३९।।
यत्र तीर्थे सर्वतीर्थफलं प्राप्नोति मानवः। तत्तीर्थं ब्रूहि सम्वर्त तिष्ठामो यत्र वै वयम्।।४०।।

उन चारों ने कहा—''हे महामुनि! हम सब शापभ्रष्ट हैं। हम आपके अनुग्रह से शाप से छुटकारा पाकर

मुक्ति पा सकें, हम प्रणत जन के प्रति उस उपाय को कहें। हे संवर्त्त! जिस तीर्थ को पाकर मानव सर्वतीर्थफल पा लेता है, वैसे तीर्थ का उपदेश करें। हम वहीं निवास करेंगे''।।३९-४०।।

सम्वर्त उवाच

नमस्कृत्यकुमाराय दुर्गाभ्यश्च नरोत्तमाः। तीर्थंचसम्प्रवक्ष्यामि महीसागरसङ्गमम्।।४१।।
अमुना राजसिंहेन इन्द्रद्युम्नेन धीमता। यजनाद्व्यङ्गुलोत्सेधा कृतेयं वसुधायदा।।४२।।
तदा सन्ताप्यमानायाभुवःकाष्ठस्य वै यथा। सुस्राव यो जलौघश्चसर्वदेवनमस्कृतः।।४३।।
महीनाम नदीसाचपृथिव्यांयानिकानिचित्। तीर्थानितेषांसलिलसम्भवंतज्जलं विदुः।।४४।।
महीनाम समुत्पन्ना देशे मालवकाभिधे। दक्षिणं सागरं प्राप्ता पुण्योभयतटाशिवा।।४५।।
सर्वतीर्थमयी पूर्वं महीनाममहानदी। किं पुनर्यः समायोगस्तस्याश्च सरितां पतेः।।४६।।
वाराणसीकुरुक्षेत्रं गङ्गा रेवासरस्वती। तापीययोष्णी निर्विन्ध्याचन्द्रभागाइरावती।।४७।।
कावेरी शरयूश्चैव गण्डकी नैमिषन्तथा।।४८।।
गयागोदावरीचैवअरुणावरुणातथा। एताःपुण्याःशतशोन्या याःकाश्चित्सरितोभुवि।।४९।।
सहस्त्रविंशतिश्चैव षट्शतानि तथैव च। तासां सारसमुद्भूतं महीतोयंप्रकीर्तितम्।।५०।।

संवर्त्त कहते हैं—हे नरोत्तमगण! मैं कुमारदेव को तथा दुर्गा प्रभृति को प्रणाम करके महीसागर संगम तीर्थ का उल्लेख करता हूं। राजश्रेष्ठ धीमान् इन्द्रद्युम्न ने इतने यज्ञ किये थे, जिससे पृथिवी २ अंगुल (उनकी भस्मों से) उच्च हो गयी। तब यज्ञार्थ जो काष्ठ दग्ध किये गये, उसके ताप से पृथिवी सन्तप्त हो गयी तथा उसका रसभाग का स्राव मही नामक नदी के रूप में परिणत हो गया। यह सर्वदेव नमस्कृता नदी है। पृथिवी में जितने भी तीर्थ हैं, उन सबका जल मिलित रूपेण इस नदी रूप में परिणत हो गया है। वह नदी मालवा देश में स्थित है। उसके उभय तट पुण्यप्रद हैं। वह दक्षिण सागर में मिल जाती है। वह नदी सर्वतीर्थमयी है। परन्तु जहां उसका सागर संगम हो गया है, उसकी महिमा क्या कहूं! वाराणसी, कुरुक्षेत्र, निर्विन्ध्य, चन्द्रभागा, इरावती, कावेरी, सरयू, गंडकी, नैमिष, गया, गोदावरी, अरुणा, वरुणा समस्त नदियां तथा २०६०० पवित्र विख्यात नदी तथा भूतल में जितनी शतसहस्र पुण्यनदियां हैं, उन सबका सारभाग इस मही नदी में स्थित है।।४१-५०।।

पृथिव्यां सर्वतीर्थेषु स्नात्वा यत्फलमाप्यते। तन्महीसागरे प्रोक्तं कुमारस्यवचोयथा।।५१।।
एकत्र सर्वतीर्थानां यदि संयोगमिच्छथ। तद्गच्छथ महापुण्यं महीसागरसङ्गमम्।।५२।।
अहं चापि च तत्रैव बहून्वर्षगणान्पुरा। अवसं चागतश्चाऽत्रनारदस्य भयात्तथा।।५३।।
स हि तत्र समीपस्थः पिशुनश्च विशेषतः। मरुत्तःकुरुतेयत्नं तस्मै ब्रूयादिदंभयम्।।५४।।
अत्रदिग्वाससांमध्ये बहूनांतत्समस्त्वहम्। निवसाम्यतिप्रच्छन्नोमरुत्तादतिभीतवत्।।५५।।
पुनरत्रापि मां नूनंकथयिष्यति नारदः। तथाविधा हि चेष्टाऽस्य पिशुनस्यप्रदृश्यते।।५६।।
भवद्भिश्चन चाप्यत्र वक्तव्यंकस्यचित्क्वचित्। मरुत्तः कुरुते यत्नं भूपालो यज्ञसिद्धये।।५७।।
देवाचार्येण संयुक्तो भ्रात्रा मे कारणान्तरे। गुरुपुत्रं च मां ज्ञात्वा यज्ञार्त्विज्यस्यकारणात्।।५८।।

अविद्यान्तर्गतैर्यज्ञकर्मभिर्न प्रयोजनम्। मम हिंसात्मकैरस्तिगिमोक्तैरचेतनैः॥५९॥
समित्पुष्पकुशप्रायैः साधनैर्यद्यचेतनैः। क्रियते तत्तथा भावि कार्यंकारणवन्नृणाम्॥६०॥

पृथिवी के सभी तीर्थों में स्नान का जो फल है, महीसागर संगम में वह मिल जाता है। यह सनत्कुमार देव का कथन है। यदि एक ही स्थान में समस्त तीर्थों का फल लाभ करने की इच्छा हो, तब महीसागर संगम जाये। मैंने भी वहां पूर्वकाल में अनेक वर्ष अवस्थान किया है। तथापि नारद के भय से यहां चला आया। वह चुगलखोर वहां मेरे निकट ही रहता था तथा मरुत्त ने भी मुझे प्राप्त करने का विशेष यत्न किया। मुझे नारद से यह भय था कि कहीं वह मरुत्त को मेरा सन्धान न प्रदान कर दे। मरुत्त के भय से मैंने अनेक दिन दिगम्बरों के मध्य निवास किया था। तथापि यह देखा कि मैं जहां रहता हूं, वह भी मरुत्त को बता देगा। वह अत्यन्त चुगलखोर है। उस नारद का स्वभाव ही यही है। आप सब भी कभी किसी को मेरा सन्धान न दें। मरुत्त राजा यज्ञार्थ हमारे लिए विशेष यत्न परायण है। किसी कारण से मेरे भाई बृहस्पति ने मरुत्त का त्याग कर दिया है। मैं मरुत्त का गुरुपुत्र हूं। अतः उसका यत्न है कि वह अपने यज्ञ का ऋत्विक मुझे बना दे। लेकिन निगमोक्त अविद्याविजृम्भित हिंसात्मक अचेतन यज्ञार्थ मेरी प्रवृत्ति नहीं है। अचेतन समिध्-पुष्प-कुशादि द्वारा यज्ञ सम्पन्न होता है। अतः यह यज्ञकार्य कारण के द्वारा ही गुणसम्पन्न होगा?॥५१-६०॥

तद्यूयंतत्रगच्छध्वंशीघ्रमेव नृपानुगाः। अस्ति विप्रः स्वयं ब्रह्मा याज्ञवल्क्यश्च तत्र वै॥६१॥
स हिपूर्वंमिथेःपुर्यावसन्नाश्रममुत्तमम्। आगच्छमानं नकुलं दृष्ट्वा गार्गीं वचोऽब्रवीत्॥६२॥
गार्गि रक्ष पयो भद्रे नकुलोऽयमुपेति च। पयः पातुंकृतिमतिं नकुलं तं निराकुरु॥६३॥
इत्युक्तो नकुलः क्रुद्धः स हि क्रुद्धः पुराऽभवत्। जमदग्नेःपूर्वजैश्चशप्तःप्रोवाचतंमुनिम्॥६४॥
अहो वा धिग्धिगित्येव भूयो धिगिति चैव हि। निर्लज्जता मनुष्याणां दृश्यते पापकारिणाम्॥६५॥
कथं ते नाम पापानि प्रकुर्वन्ति नराधमाः। मरणान्तरिता येषां नरके तीव्रवेदना॥६६॥
निमेषोऽपि नशक्येतजीवितेयस्यनिश्चितम्। तन्मात्रपरमायुर्यःपापंकुर्यात्कथं स च॥६७॥
त्वंमुनेमन्यसेचेदंकुलीनोऽस्मीतिबुद्धिमान्। ततःक्षिपसिमांमूढनकुलोऽयमितिस्मयन्॥६८॥
किमधीतं याज्ञवल्क्यकायोगेश्वरता तव। निरपराधं क्षिपसि धिगधीतं हि तत्तव॥६९॥
कस्मिन्वेदेस्मृतौकस्यौंप्रोक्तमेतद्ब्रवीहिमे। परुषैरिति वाक्यैर्मांनकुलेतिब्रवीषियत्॥७०॥
किमिदं नैव जानासि यावत्यःपरुषागिरः। परःसंश्राव्यतेतावच्छङ्कवःश्रोत्रतः पुराः॥७१॥
कण्ठे यमानुगाःपादं कृत्वा तस्यसुदुर्मतेः। अतीवरुदतोलोहशङ्कून्क्षेप्यस्यन्तिकर्णयोः॥७२॥

अतएव आप सभी लोग इन्द्रद्युम्न राजा के साथ वहां तत्काल जायें। स्वयं ब्रह्मा तथा विप्रवर याज्ञवल्क्य वहां हैं। पूर्व में विप्रवर मिथिला नगर में रहते थे। एक बार एक नेवले को आते देखकर उन्होंने पत्नी गार्गी से कहा—"भद्रे! एक नेवला आ रहा है। तुम दुग्ध की रक्षा करो। दुग्धपानार्थ समागत नकुल को भगा दो।" इससे नकुल अत्यन्त क्रोधित हो गया। वह जमदग्नि के पूर्व पुरुषगण द्वारा अभिशाप पाकर क्रोधित था। उसने याज्ञवल्क्य से कहा—"अहो! तुमको धिक्कार है। पापी मनुष्य की निर्लज्जता देखो। ये मरणान्त में नरक में तीव्र यातना भोगने हेतु बाध्य होते हैं, अथच ये नराधम पाप करने से क्यों कुण्ठित नहीं होते? इस जीवन के

स्थायित्व का क्षण भर भी विश्वास नहीं है। ऐसे परमायु वाले मनुष्य पाप कैसे करते हैं? हे मुनि! तुम स्वयं को बुद्धिमान कुलीन समझते हो। हे मूढ़! इसीलिए तुम (नकुल = बिना कुल का) गर्व के कारण हमें नकुल कहकर उपहास कर रहे हो। हे याज्ञवल्क्य! तुम क्या अध्ययन कर रहे हो? तुम्हारा योगैश्वर्य कैसा है? निरपराध व्यक्ति का उपहास कर रहे हो! तुम्हारे अध्ययन को भी धिक्कार! तुम 'नकुल' जैसे कठोर शब्द से मेरा उपहास कर रहे हो, यह किस वेद में, किस स्मृति में लिखा है? तुम क्या नहीं जानते कि जो अन्य व्यक्ति किसी के द्वारा कहे जितने परुषवाक्य (कठोर वाक्य) को सुनता है, उस परुष वाक्य को जिसने कहा है, उस दुर्मति को रोने पर भी यमदूतगण अपने पैरों से उसके कण्ठ पर प्रहार करते हैं, उसके कानों में उतनी ही तीखी कील ठोंकते हैं, जितने परुष वाक्य उसने कहे थे।।६१-७२।।

वावदूकाश्च ध्वजिनो मुष्णन्ति कृपणाञ्जनान्। स्वयंहस्तसहस्त्रेणधर्मस्यैवंभवद्विधाः।।७३।।
वज्रस्यदिग्धशस्त्रस्य कालकूटस्यचाप्युत। समेन वचसा तुल्यं मृत्योरितिममाभवत्।।७४।।
कर्णनासिकनाराचान्निर्हरन्तिशरीरतः। वाक्छल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्योहृदिशयोहिसः।।७५।।
यन्त्रपीडैः समाक्रम्य वरमेष हतो नरः। न तु तं परुषैर्वाक्यैर्जिघांसेत कथञ्चन।।७६।।
त्वया त्वहं याज्ञवल्क्यनित्यंपण्डितमानिना। नकुलोऽसीतितीव्रेणवचसाताडितःकुतः।।७७।।

आपके समान वाचाल धर्मध्वजी व्यक्ति अन्य जन गण को तो धर्म का भान कराकर ठगते हैं, किन्तु स्वयं धर्म से हजारों हाथ दूर रहते हैं। आपका दुर्वाक्य मेरे लिये वज्रवत् है। तेज धार वाले अस्त्र के समान है। वह दुर्वाक्य मुझे कालकूट तथा मृत्यु के समान प्रतीत हो रहा है। कर्णी, नालिक, नाराच आदि का आघात होने पर उसे शरीर से निकाल कर फेंक दिया जाता है, लेकिन वाक् रूपी शल्य को देह से निकाला ही नहीं जा सकता। वह हृदय को वेध कर उसी में रह जाता है। मनुष्य को पीड़नयन्त्र में कष्ट देकर मार देना वरन् उत्तम है, किन्तु कठोर वचन से हिंसा करना कदापि कर्त्तव्य नहीं है। हे सर्वदा पाण्डित्य के अभिमानी याज्ञवल्क्य! आपने मुझे नकुल (कुलरहित) कह कर वाक् ताड़न क्यों किया?।।७३-७७।।

सम्वर्त उवाच

इतिश्रुत्वा वचस्तस्य भृशंविस्मितमानसः। याज्ञवल्क्योऽब्रवीदेतत्प्रबद्धकरसंपुटः।।७८।।
नमोऽधर्माय महतेन विद्मो यस्य वैभवम्।
परमाणुमपिव्यक्तंकोऽत्रविद्यामदः सताम्।।७९।।
विरञ्चिविष्णुप्रमुखाःसोमेन्द्रप्रमुखास्तथा। सर्वज्ञास्तेऽपिमुह्यन्तिगणनास्मादृशांचका।।८०।।
धर्मज्ञोऽस्मीति यो मोहादात्मानं प्रतिपद्यते। स वायुंमुष्टिना बद्धुमीहतेकृपणोनरः।।८१।।
केचिदज्ञानतो नष्टाः केचिज्ज्ञानमदादपि। ज्ञानंप्राप्यापिनष्टाश्चकेचिदालस्यतोऽधमाः।।८२।।

संवर्त्त कहते हैं—नकुल का यह वाक्य सुनकर याज्ञवल्क्य ने अतीव विस्मित होकर हाथ जोड़ कर कहा—महान् धर्म को प्रणाम! आपकी महिमा का एक परमाणु भी हम नहीं जान सकते। अतः संसार में सुधीजन को विद्या का गर्व क्यों? ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, चन्द्रादि जो सर्वज्ञ हैं, वे भी धर्म तत्त्व में विमुग्ध हो जाते हैं। मेरे जैसे सामान्य की तो बात ही क्या? जो व्यक्ति मोहवशात् "मैं धर्मज्ञ हूं" इस प्रकार का अभिमान करते हैं, वे मानों वायु को मुट्ठी

में बन्द करना चाहते हैं। कोई तो अज्ञान के कारण नष्ट हो जाता है, कोई ज्ञानमद में विनष्ट होता है। कोई-कोई अधम मनुष्य तो ज्ञान पाकर भी आलस्य से नष्ट हो जाता है।।७८-८२।।

वेदस्मृतीतिहासेषु पुराणेषु प्रकल्पितम्। चतुः पादं तथा धर्मं नाऽऽचरत्यधमःपशुः॥८३॥
स पुरा शोचते व्यक्तं प्राप्य तच्चान्तकं गृहम्। तथाहि गृह्यकारेणश्रुतौप्रोक्तमिदंवचः॥८४॥
नकुलं सकुलं ब्रूयान्न कञ्चिन्मर्मणिस्पृशेत्। प्रपठन्निपिचैवाहमिदं सर्वं तथा शुकः॥८५॥
आलस्येनाऽप्यनाचाराद्वृथाकार्ये कमङ्ग तत्॥८६॥
केवलं पाठमात्रेण यश्चसन्तुष्यते नरः। तथा पण्डितमानी च कोऽन्यस्तस्मात्पशुर्मतः॥८७॥
न च्छन्दांसि वृजिनात्तारयन्ति मायाविनं माययाऽऽवर्तमानम्।
नीडं शकुन्ता वि जातपक्षाञ्छंदास्येनं प्रजहत्यन्तकाले॥८८॥
स्वर्गायबद्धकक्षो यःपाठमात्रेण ब्राह्मणः। स बालो मातुरङ्कस्थो ग्रहीतुंसोममिच्छति॥८९॥
तद्भवान्सर्वथा मह्यमनयंसोढुमर्हसि। सर्वः कोऽपि वदत्येवं तन्मयैवमुदा हृतम्॥९०॥

पशुसम अधम लोग वेद, स्मृति, इतिहास-पुराणादि शास्त्रोक्त चतुष्पाद धर्म का आचरण नहीं करते। वे परकाल में यमलोक जाकर निश्चित रूप से शोक करते हैं। गृह्यकार भी कहते हैं—"किसी के मर्मस्थल में (वाक्य द्वारा) आघात न पहुंचाओ। नकुल को भी सकुल कहो। मैं तोते के समान सब पढ़ कर भी आलस्य तथा अनाचार के कारण विफल हो गया। जो मनुष्य केवल शास्त्र को पढ़ने मात्र से सन्तुष्ट होता है तथा स्वयं को पण्डित मानता है, उसकी अपेक्षा पशु कौन है? शठतापूर्ण व्यवहार परायण मायावी व्यक्ति को समस्त वेद भी पाप से छुटकारा नहीं दिला सकते। जैसे पंख उग आने पर पक्षी घोंसला छोड़ देता है, तदनुरूप वेदसमूह भी अन्तकाल में ऐसे व्यक्ति का त्याग कर देते हैं। जो ब्राह्मण केवल वेद-शास्त्र पढ़ने मात्र से स्वर्ग पाने के लिए उद्यत होता है, वह वैसा ही है, जैसे बालक माता की गोद में रहते चन्द्र को पकड़ना चाहे! इसलिये आप मेरे दुर्व्यवहार को क्षमा करें। सभी आपको इस प्रकार (नकुल) कहते हैं, तभी मैंने भी वही कहा था।।८३-९०।।

नकुल उवाच

वृथेदं भाषितं तुभ्यं सर्वलोकेन यत्समम्। आत्मानंमन्यसेनैतद्वक्तुंयोग्यंमहात्मनाम्॥९१॥
वाजिवारणलोहानां काष्ठपाषाणवाससाम्। नारीपुरुषतोयानामन्तरं महदन्तरम्॥९२॥
अन्ये चेत्प्राकृता लोका बहुपापानि कुर्वते। प्रधानपुरुषेणापि कार्यं तत्पृष्ठतोनुकिम्॥९३॥
सर्वार्थं निर्मितं शास्त्रं मनोबुद्धी तथैव च। दत्ते विधात्रा सर्वेषांतथापियदिपापिनः॥९४॥
ततो विधातुः को दोषस्त एव खलुदुर्भगाः। ब्राह्मणेनविशेषेण किं भाव्यंलोकवद्यतः॥९५॥
यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥९६॥
तस्मात्तदामहद्भिश्चआत्मार्थंचपरार्थतः। सतांधर्मोनसन्त्याज्योन्याय्यंतच्छिक्षणं तव॥९७॥
यस्मात्त्वया पीड़ितोऽहं घोरेण वचसा मुने!।
तस्माच्छीघ्रं त्वां शप्स्यामि शापयोग्यो हि मे मतः॥९८॥

नकुलोऽसीतिमामाहभवांस्तस्मात्कुलाधमः। शीघ्रमुत्पत्स्यसेमोहात्त्वमेवनकुलोमुने॥९९॥

नकुल कहता है—आपने जो अपने को सबकी तरह (समान) समझा, यह मिथ्या है। महात्माओं के लिये यह कथन अनुचित है। हाथी, घोड़ा, लौह, काष्ठ, पाषाण, वस्त्र, स्त्री-पुरुष, जल इन सबका जो पारस्परिक तारतम्य है, वह अतीव सत्य है। यदि साधारण व्यक्ति नाना पापकृत्य करते हैं, तब यह कहकर क्या प्रधान तथा श्रेष्ठ लोग उसको रोकने तथा वर्जन करने का कार्य नहीं कर सकते? विधाता ने सर्वसाधारण हेतु ही शास्त्र निर्माण किया है तथा मनुष्य को मन-बुद्धि-इन्द्रिय भी प्रदान किया है, तथापि यदि जनसाधारण पापाचरण तब भी करता है, उसमें विधाता का क्या दोष? यह तो जनसाधारण का ही दुर्भाग्य है। क्या ब्राह्मण को भी साधारण लोगों जैसा ही हो जाना चाहिये? श्रेष्ठजन जैसा आचरण करते हैं, अन्य साधारण भी उसी का अनुकरण करते हैं। इसी कारण से महाजनगण को आत्मार्थ तथा परार्थ भी सत्य से अनुमोदित धर्म का त्याग कदापि नहीं करना चाहिये। तथापि आपको अभी इसकी शिक्षा प्रदान करना आवश्यक है। हे मुनिवर! आपने मुझे दुर्वाक्य द्वारा पीड़ा पहुंचाई है, इसी कारण मैं भी आपको शाप दूंगा। आप मेरे शापयोग्य हो गये हैं। आपने मुझे मोहवश (नकुल) कुलहीन कहा है। अतएव आप निम्न कुल में जन्म लेकर नकुल कहे जायेंगे।।९१-९९।।

सम्वर्त उवाच

इति वाचंसमाकर्ण्य भाव्यर्थकृतनिश्चयः। याज्ञवल्क्योमरौदेशेविप्रस्याजायतात्मजः॥१००॥
दुराचारस्यपापस्यनिर्घृणस्यातिवादिनः। दुष्कुलीनस्यजातोऽसौतदाजातिस्मरःसुतः॥१०१॥
सोऽथज्ञानात्समालोक्य भर्तृयज्ञ इति द्विजः। गुप्तक्षेत्रंसमापन्नो महीसागरसङ्गमम्॥१०२॥

संवर्त्त कहते हैं—नकुल का वाक्य सुनकर याज्ञवल्क्य ऋषि ने भवितव्यता की बलवत्ता को समझ लिया। तब उन्होंने मरुदेश में किसी दुराचारी, पापी, निर्दय, वाचाल, हीन कुल के ब्राह्मण के यहां जन्म लिया। उनका इस जन्म का नाम था भर्तृयज्ञ, तथापि वे पूर्वजन्म की स्मृति से युक्त थे। उन्होंने ज्ञानबल से आत्मदशा का विचार करके गुप्त क्षेत्र महीसागर संगम गमन किया।।१००-१०२।।

तत्र पाशुपतो भूत्वाशिवाराधनतत्परः। स्वायंभुवंमहाकालं पूजयन्वर्ततेऽधुना॥१०३॥
योहिनित्यंमहाकालंश्रद्धयापूजयेत्पुमान्। सदौष्कुलीनदोषेभ्योमुच्यतेऽहिरिवत्वचः॥१०४॥
यथायथा श्रद्धयाऽसौतल्लिंगंपरिपश्यति। तथा तथा विमुच्येतदौषेर्जन्मशतोद्भवैः॥१०५॥
भर्तृयज्ञस्तु तत्रैव लिङ्गस्याराधनात्क्रमात्। बीजदोषाद्विनिर्मुक्तस्तल्लिङ्गमहिमात्वसौ॥१०६॥
बभ्रुंच नकुलं प्राहविमुक्तोदुष्टजन्मतः। यस्मात्तस्मादिदं तीर्थं ख्यातंवै बभ्रु पावनम्॥१०७॥

वहां जाकर वे पाशुपत विधान द्वारा शिवाराधना तत्पर हो गये। इस समय भी वे स्वायम्भुव महाकाल की ही आराधना कर रहे थे। जो व्यक्ति नित्य श्रद्धा के साथ महाकालार्चन करता है, वह दुष्कुल में भी जन्म लेने पर सर्प के केंचुल के समान दोषों का त्याग करके निर्दोष हो जाता है। जो जैसी श्रद्धा के साथ लिंगार्चन करता है, उसी अनुपात में वह शत जन्मार्जित दोषराशि से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। ब्राह्मण भर्तृयज्ञ भी लिंगाराधन द्वारा दोषरहित हो गये थे। यह लिंग महिमा है। तदनन्तर उन्होंने जन्मदोष रहित होकर यह संवाद नकुल से भी कहा। तभी से वह तीर्थ वभ्रुपावन कहलाया।।१०३-१०७।।

तस्माद्व्रजध्वं तत्रैव महीसागरसङ्गमम्।
पञ्च तीर्थानि सेवन्तो मुक्तिमाप्स्यथ निश्चितम्॥१०८॥
इत्येवमुक्त्वा सम्वर्तोयययावभिमतंद्विजः। भर्तृयज्ञंमुनिंप्राप्य ते च तत्र स्थिताभवन्॥१०९॥
ततस्तानाह स ज्ञात्वागणाञ्ज्ञानेनशाम्भवान्। महद्वो विमलं पुण्यंगुप्तक्षेत्रेयदत्र वै॥११०॥
भवन्तोऽभ्यागता यत्र महीसागरसङ्गमः। स्नानं दानं जपोहोमःपिण्डदानं विशेषतः॥१११॥
अक्षयं जायते सर्वं महीसागरसङ्गमे। कृतं तथाऽक्षयं सवरं स्नानदानक्रियादिकम्॥११२॥

इसलिए आप सभी महीसागर संगम तीर्थ जायें। वहां जो पञ्चतीर्थ हैं, उनकी सेवा द्वारा आप सब मुक्त हो जायेंगे। द्विजप्रवर संवर्त्त ने यह उपदेश देकर वहां से प्रस्थान किया। ये सभी लोग महीसागर संगम जाकर भर्तृयज्ञ मुनि का दर्शन पाकर वहीं स्थित हो गये। भर्तृयज्ञ ऋषि ने अपने ज्ञान प्रभाव से जान लिया कि ये शिवगण हैं। तब वे कहने लगे—"आप लोग महान् पुण्यवान् हैं, जो आप लोग इस गुप्त क्षेत्र महीसागर संगम आ गये। स्नान, दान, जप, तप तथा विशेषतया यहां पिण्डदान करना–यह सब अक्षय हो जाता है।।१०८-११२।।

यदाऽत्र स्थानकं चक्रे देवर्षिर्नारदःपुरा। तदा ग्रहैर्वरा दत्ताः शनिना च वरस्त्वसौ॥११३॥
शनैश्चरेण संयुक्ता त्वमावास्या यदाभवेत्। श्राद्धं तत्र प्रकुर्वीत स्नानदानपुरःसरम्॥११४॥
यदि श्रावणमासस्य शनैश्चरदिनेशुभा। कुहूर्भवति तस्यांतु संक्रान्तिंकुरुते रविः॥११५॥
तस्यामेव तिथौ योगो व्यतीपातो भवेद्यदि। पुष्करं नाम तत्पर्व सूर्यपर्वशताधिकम्॥११६॥
सर्वयोगसमावापः कथञ्चिदपि लभ्यते।
तस्मिन्दिने शनिं लोहं काञ्चनंभास्करंतथा॥११७॥
महीसागरसंसर्गे पूजयीत यथाविधि। शनिमन्त्रैः शनिं ध्यात्वा सूर्यमन्त्रैर्दिवाकरम्॥११८॥
अर्घ्यं दद्याद्भास्करस्य सर्वपापप्रशान्तये। प्रयागादधिकं स्नानं दानं क्षेत्रात्कुरोरपि॥११९॥
पिण्डदानं गयाक्षेत्रादधिकं पाण्डुनन्दन। इदं सम्प्राप्यते पर्व महद्भिः पुण्यराशिभिः॥१२०॥

जब महर्षि नारद ने इस स्थान को स्थापित किया था, तब ग्रहों ने यह वर दिया था कि जब शनिवारी अमावस्या हो, उस समय यदि कोई यहां स्नान-दान-श्राद्ध करेगा, तब उसे महान् पुण्य होगा। श्रावण मास में शनिवार, अमावस्या, संक्रान्ति तथा व्यतिपात योग में पुष्कर नामक योग हो जाता है। यह १०० सूर्यग्रहण से भी अधिक पुण्यप्रद है। यह योग सभी योगों की समष्टि है। यह महायोग कभी, कदाचित् ही मिलता है। इस दिन लौह की शनिमूर्त्ति तथा स्वर्ण की हरिमूर्त्ति बनवाकर यथाविधान शनिमन्त्र द्वारा शनि की तथा हरिमन्त्र से श्रीहरि की पूजा करे। इस दिन सूर्यदेव को अर्घ्य भी देना चाहिये। इससे सर्वपाप शान्त हो जाते हैं। हे पाण्डुनन्दन! यहां स्नान प्रयाग से अधिक पुण्यप्रद है। यहां दान कुरुक्षेत्र से भी अधिक फलप्रद है। यहां का पिण्डदान कृत्य तो गया से भी अत्यधिक फलदायक है। महान् पुण्यराशि हुये बिना कोई भी इस योग की प्राप्ति नहीं कर सकता।।११३-१२०।।

पितृणामक्षया तृप्तिर्जायते दिवि निश्चितम्। तथा गयाशिरःपुण्यं पितृणांतृप्तिदंपरम्॥१२१॥
तथा समधिकः पुण्यो महीसागरसङ्गमः॥१२२॥

अग्निश्च रेतो मृडया च देहे रेतोधा विष्णुरमृतस्य नाभिः।
एवं ब्रुवञ्छ्रद्धया सत्यवाक्यं ततोऽवगाहेत महीसमुद्रम्॥१२३॥
मुखं च यः सर्वनदीषु पुण्यः पाथोधिरम्बा प्रवरा मही च।
समस्ततीर्थाकृतिरेतयोश्च ददामि चार्घ्यं प्रणमामि नौमि॥१२४॥
ताम्रारस्याःपयोवाहाःपितृप्रीतिप्रदाःशुभाः। शस्यमालामहासिन्धुर्दातुर्दात्रीपृथुस्तुता।
इन्द्रद्युम्नस्य कन्या च क्षितिजन्मा इरावती॥१२५॥
महीपर्णा महीशृङ्गा गङ्गा पश्चिमवाहिनी। नदी राजनदी चेति नामाष्टादशमालिकाम्॥१२६॥
स्नानकाले च सर्वत्र श्राद्धकाले पठेन्नरः। पृथुनोक्तानि नामानि यज्ञमूर्तिपदं व्रजेत्॥१२७॥

यहां श्राद्धादि कर्म करने से पितरों की अक्षय तृप्ति सम्पन्न होती है। यह निःसदिग्ध है। जैसे गयाशिर पुण्यक्षेत्र पितरों के लिए तृप्तिप्रद है, यह महापुण्यप्रद महीसागर संगम भी तद्रूप है। श्रद्धा के साथ "अग्निश्च रेतो मृड़या च" इत्यादि मन्त्रोच्चार द्वारा महीसागर क्षेत्र संगम में स्नान करे। ताम्रा, रस्या, पयोवहा, पितृप्रीतिप्रदा, शुभा, शस्यमाला, महासिन्धु, दातुर्दात्री, महीपर्णा, महीशृङ्ग, गंगा, पश्चिमवाहिनी नदी, राजनदी, पृथुस्तथा, इन्द्रद्युम्न कन्या, क्षितिजन्मा, इरावती इन १८ नामों को जो पृथु द्वारा कहे गये हैं, स्नान तथा श्राद्ध के अवसर पर पढ़ने से व्यक्ति यज्ञेश्वर पद लाभ करता है।।१२१-१२७।।

महीदोहे महानन्दसन्दोहे विश्वमोहिनि। जाताऽसि सरितां राज्ञि पापं हर महीद्रवे॥१२८॥

इत्यर्घ्यमन्त्रः

कङ्कणं रजतस्यापि योऽत्र निक्षिपते नरः। स जायते महीपृष्ठे धनधान्ययुते कुले॥१२९॥
महीं च सागरं चैव रौप्यकङ्कणपूजया। पूजयामि भवेन्मा मे द्रव्यनाशो दरिद्रता॥१३०॥

इति कङ्कणक्षेपणम्

यत्फलं सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञैश्च यत्फलम्। तत्फलं स्नानदानेन महीसागरसङ्गमे।
विवादे च समुत्पन्ने अपराधी च यो मतः। जलहस्तः सदा वाच्योमहीसागरसङ्गमे॥१३१॥
संस्नाप्याघोरमन्त्रेण स्थाप्यनाभिप्रमाणके। जले करं समुद्धृत्यदक्षिणंवाचयेद्द्रुतम्॥१३२॥
यदि धर्मोऽत्र सत्योऽस्ति सत्यश्चेत्सङ्गमस्त्वसौ।
सत्याश्चेत्क्रतुद्रष्टारः सत्यं स्यान्मे शुभाशुभम्॥१३३॥
एवमुक्त्वाकरं क्षिप्य दक्षिणंसकलंततः। निःसृतः पापकारीचेज्ज्वरेणापीड्यतेक्षणात्॥१३४॥
सप्ताहाद्दृश्यते चापि तावन्निर्दोषवान्मतः। अत्र स्नात्वाचजप्त्वाचतपस्तप्त्वातथैवच॥१३५॥
रुद्रलोकं सुबहवो गताः पुण्येन कर्मणा।
सोमवारे विशेषेण स्नात्वायोऽत्रसुभक्तितः॥१३६॥
पञ्च तीर्थानि कुरुते मुच्यते पञ्चपातकैः। इत्याद्युक्तं बहुविधं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम्॥१३७॥

तदनन्तर 'मुखञ्च' इत्यादि से लेकर 'महीद्रवे' पर्यन्त पढ़ते हुये अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। जो 'महीञ्च' इत्यादि से 'दरिद्रता' पर्यन्त का पाठ करके वहां चांदी का कंकण छोड़ता है, वह पृथिवी पर धन-धान्य युक्त कुल में जन्म लेता है। सभी तीर्थ तथा सभी यज्ञ का जो फल है, महीसागर संगम में स्नान-दानादि का वही फल है। जहां कोई विवाद उत्पन्न हो जाये, वहां सत्य क्या है अथवा असत्य क्या है, दोषी है–अथवा निर्दोष है, यह जानने के लिए संदिग्ध व्यक्ति को अघोर मन्त्र से स्नान कराकर नाभिपर्यन्त जल में खड़ा करे। उसके दाहिने हाथ में जल देकर श्लोक १३४ का पाठ कराये। यदि १ सप्ताह में उस व्यक्ति को ज्वर हो जाये, तब वह पापी तथा दोषी है। जो निष्पाप होगा, उसे ज्वर नहीं होगा। यहां पर स्नान-दान-जप-तप सम्पन्न करके अनेक लोग पुण्यक्षेत्र रुद्रलोक को प्राप्त कर चुके हैं। विशेषतः सोमवार को भक्तिपूर्वक पञ्चतीर्थ स्नान करने से पञ्च पातकों से छुटकारा मिलता है। इस तीर्थ का माहात्म्य इस प्रकार से बहुधा वर्णित है।।१२८-१३७।।

भर्तृयज्ञः शिवस्योचे तेषामाराधने क्रमम्। शिवागमोक्तमादिश्यपूजायोगंयथाविधि।।१३८।।
शिवभक्तिसमुद्रैकपूरितः प्राह तान्मुनिः। न शिवात्परमो देवः सत्यमेतच्छिवव्रताः।।१३९।।
शिवं विहाय यो ह्यन्यदसत्किञ्चिदुपासते। करस्थंसोऽमृतंत्यक्त्वामृगतृष्णांप्रधावति।।१४०।।
शिवशक्तिमयं ह्येतत्प्रत्यक्षं दृश्यते जगत्। लिङ्गाङ्कं च भगाङ्कंच नान्यदेवाङ्कितंक्वचित्।।१४१।।
यश्च तं पितरं रुद्रं त्यक्त्वामातरमम्बिकाम्। वर्ततेऽसौस्वपितरंत्यक्त्वोदपितृपिण्डकः।।१४२।।
यस्य रुद्रस्य माहात्म्यं शतरुद्रीयमुत्तमम्।।१४३।।
शृणुध्वं यदि पापानामिच्छध्वं क्षालनंपरम्। ब्रह्मा हाटकलिङ्गंचसमाराध्य कपर्दिनः।।१४४।।

यहां भर्तृयज्ञ मुनि ने शिवव्रती मनुष्यों को शैवागमोक्त विधान के अनुसार शिवाराधन-पद्धति का उपदेश किया है। ये शिवभक्ति से परिपूर्ण मुनि उन लोगों से कहने लगे—हे शिवव्रत तत्पर साधुगण! शिव से बढ़कर कोई भी देवता नहीं है। यह मैं सत्य कहता हूं। जो व्यक्ति शिव को छोड़कर अन्य देवोपासना में प्रवृत्त होता है, वह हाथों में रखे अमृत पात्र को त्याग कर मृगमरीचिका के पीछे भागता है। यह संसार शिवभक्तिमय है। यह प्रत्यक्ष ज्ञात हो रहा है, क्योंकि समस्त जगत् लिंग (शिव) तथा योनि (शक्ति) द्वारा चिह्नित है। इनके अतिरिक्त अन्य किसी देवता के चिह्न से जगत् चिह्नित नहीं है। इन पिता रुद्र तथा धाता अम्बिका को छोड़कर जो अन्य का आश्रय ग्रहण करता है, वह अपने पिता-माता को छोड़कर मानों अन्य के पिता-माता को पिण्ड प्रदान कर रहा है। इन रुद्रदेव की महिमा शतरुद्रीय स्तोत्र में व्यक्त है। यदि आप लोग पाशों से मुक्त होना चाहते हैं, तब मेरी बातों को सुनें। ब्रह्मा ने इन कपर्दी महादेव के हाटक लिंग की आराधना किया था।।१३८-१४४।।

जगत्प्रधानमिति च नाम जप्त्वा विराजते। कृष्णमूले कृष्णलिङ्गं नामचार्जितमेवच।।१४५।।
सनकाद्यैश्च तल्लिङ्गं पूज्याजयुर्जगद्गतिम्। दर्भाङ्कुरमयं सप्त मुनयो विश्वयोनिकम्।।१४६।।
नारदस्त्वन्तरिक्षे च जगद्बीजमिदं गृणन्। वज्रमिन्द्रो लिङ्गमेवंविश्वात्मानंचनामच।।१४७।।
सूर्यस्ताम्रं तथा लिङ्गं नाम विश्वसृजंजपन्। चन्द्रश्च मौक्तिकंलिङ्गंजपन्नामजगत्पतिम्।।१४८।।
इन्द्रनीलमयं वह्निर्नाम विश्वेश्वरं जपन्। पुष्परागं गुरुर्लिङ्गं विश्वयोनिं जपन्हरम्।।१४९।।
पद्मरागमयं शुक्रो विश्वकर्मेति नाम च। हेमलिङ्गं च धनदो जपन्नाम्ना तथेश्वरम्।।१५०।।

रौप्यजं विश्वदेवाश्च नामाऽपि जगताम्पतिम्।
वायवो रीतिजं लिङ्गं शम्भुमित्येव नाम च॥१५१॥
काशजं वसवो लिङ्गं स्वयम्भुमिति नाम च। त्रिलोहं मातरो लिङ्गं नाम भूतेशमेवच॥१५२॥
लौहं च रक्षसां नाम भूतभव्यभवोद्भवम्। गुह्यकाः सीसजं लिङ्गं नामयोगंजपन्तिच॥१५३॥
जैगीषव्यो ब्रह्मरन्ध्रं नाम योगेश्वरं जपन्। निमिर्नयनोयोर्लिङ्गे जपञ्शर्वेति नाम च॥१५४॥
धन्वन्तरिर्गोमयं च सर्वलोकेश्वरेश्वरम्। गन्धर्वा दारुजं लिङ्गं सर्वश्रेष्ठेति नाम च॥१५५॥

इस आराधना से उन्होंने जगत् में प्रधानता लाभ किया था। कृष्णमूल क्षेत्र में जो लिंग स्थित है, वह कृष्णलिंग नाम से विख्यात है। सनकादि मुनिगण उसकी ही आराधना करके समस्त लोकों पर विजय कर सके थे। सप्तर्षिगण ने विश्वयोनि नामक दर्भाङ्कुरमय लिंग की, नारद ने जगदीश नामक लिंग की, इन्द्र ने विश्वात्मा नामक वज्र लिंग की, सूर्य ने विश्वसृक् नामक ताम्र लिंग की, चन्द्र ने जगत्पति नामक मौक्तिक लिंग की, अग्नि ने विश्वेश्वर नामक इन्द्रनीलमय लिङ्ग की, बृहस्पति ने विश्वयोनि नामक पुष्पराग (पोखराज) मय लिंग की, शुक्र ने विश्वकर्मा नामक पद्मरागमय लिंग की, कुबेर ने ईश्वर नामक हैम लिंग की, विश्वेदेवगण ने जगद्योनि नामक रौप्य लिंग की, वायुगण् (मरुद्गण) ने शंभु नामक पीतल के लिंग की, वसुओं ने स्वयम्भु नामक काशज लिंग की, मातृगण ने भूतेश नामक त्रिलौह लिंग की, राक्षसों ने भूतभव्यनवोद्भव नामक लौह लिंग की, गुह्यकगण ने योग नामक सीसे के लिंग की, जैगीषव्य ने ब्रह्मरन्ध्रात्मक योगेश्वर लिंग की, धन्वन्तरी ने सर्वलोकेश्वरेश्वर नामक गोमेद लिंग की, निमि ने शर्व नामक नयनमय लिंग की, गन्धर्वों ने सर्वश्रेष्ठ नामक काष्ठमय लिंग की पूजा सम्पन्न किया था।।१४५-१५५।।

वैडूर्यं राघवो लिङ्गं जगज्ज्येष्ठेति नाम च। बाणो मारकतलिङ्गं वसिष्ठमितिनामच॥१५६॥
वरुणः स्फाटिकं लिङ्गं नाम्ना च परमेश्वरम्। नागाविद्रुमलिङ्गंचनामलोकत्रयङ्करम्॥१५७॥
भारती तारलिङ्गं च नाम लोकत्रयाश्रितम्। शनिश्च सङ्गमावर्ते जगन्नाथेति नाम च॥१५८॥
शनिदेशे मध्यरात्रौ महीसागरसङ्गमे। जातीजं रावणो लिङ्गं जपन्नाम सुदुर्जयम्॥१५९॥
सिद्धाश्च मानसं नाम काममृत्युजरातिगम्।
उञ्छजं च बलिर्लिङ्गं ज्ञानात्मेत्यस्य नाम च॥१६०॥

राम ने जगज्ज्येष्ठ नामक वैदूर्य लिंग की, बाण राजा ने वसिष्ठ नामक मरकत लिंग की, वरुण ने परमेश्वर नामक स्फटिक लिंग की, नागगण ने लोकत्रयङ्कर नामक विद्रुम लिंग की, भारती देवी ने लोकत्रयाश्रित नामक तार लिंग की (प्रणवात्मक लिंग की), शनि ने शनिदेश में महीसागर संगम में मध्यरात्रि में जगन्नाथ नामक लिंग पूजा करके अभीष्ट लाभ किया। रावण जातीज लिङ्ग का नाम जपकर सुदुर्जय हो गया। सिंहगण ने मानस लिङ्ग की अर्चना द्वारा मृत्यु तथा जरा से रहित स्थान लाभ किया।।१५६-१६०।।

मरीचिपाः पुष्पजं च ज्ञानगम्येति नाम च। शकृताः शकृतं लिङ्गं ज्ञानज्ञेयेति नाम च॥१६१॥
फेनपाः फेनजं लिङ्गं नाम चापि सुदुर्वितम्। कपिलो वालुकालिङ्गं वरदंचजपन्हरम्॥१६२॥
सारस्वतो वाचिलिङ्गं नाम वागीश्वरेति च। गणा मूर्तिमयं लिङ्गंनामरुद्रेतिचाब्रुवन्॥१६३॥

जाम्बूनदमयं देवाः शितिकण्ठेति नाम च। शङ्खलिङ्गं बुधो नाम कनिष्ठमितिसञ्जपन्॥१६४।

अश्विनौ मृन्मयं लिङ्गं नाम्ना चैव सुवेधसम्।
विनायकः पिष्टलिङ्गं नाम्ना चाऽपि कपर्दिनम्॥१६५॥

नावनीतं कुजो लिङ्गं नाम चाऽपि करालकम्। तार्क्ष्यओदनलिङ्गंचहर्यक्षेतिहिनाम च॥१६६॥
गौडं कामस्तथा लिङ्गं रतिदं चेति नाम च। शची लवणलिङ्गंतु बभ्रुकेशेति नाम च॥१६७॥
विश्वकर्मा च प्रासादलिङ्गं याम्येति नाम च। विभीषणश्च पांसूत्यं सुहत्तमेतिनामच।

वंशाङ्कुरोत्थं सगरो नाम सङ्गतमेव च॥१६८॥

राहुश्च रामठं लिङ्गं नाम गम्येति कीर्तयन्। लेप्यलिङ्गं तथा लक्ष्मीर्हरिनेत्रेति नामच॥१६९॥

मरीचिय मुनियों ने ज्ञानगम्य नामक, शकृतों ने शकृतमय ज्ञानज्ञेय नामक, फेनपों ने सुदुर्विद् नामक फेनज लिंग की अर्चना किया। कपिल ने वरद नामक बालुका लिंग की, सारस्वत मुनि ने वागीश्वर नामक वांगमय लिंग की, गणों ने मूर्त्तिमय रुद्रलिंग की, देवगण ने शितिकण्ठ नामक जम्बूनद स्वर्णमय लिंग की, बुध ने कनिष्ठ नामक शंख लिंग की, अश्विनी कुमार द्वय ने सुवेधस नामक मिट्टी के लिंग की, विनायक ने कपर्दी नामक पिष्ट लिंग की, मंगल ने करालक नामक नवनीत लिंग की, गरुड़ ने हर्यश्व नामक ओदनमय लिंग की, कामदेव ने रतिद नामक गुड़लिंग की, शची देवी ने वज्रकेश नामक लवण लिंग की, विश्वकर्मा ने याम्य नामक प्रासाद लिंग की, विभीषण ने सुहत्तम नामक धूलिमय लिंग की, सगर राजा ने संगत नामक वंशांकुर के लिंग की, राहु ने हिंगुज गम्य नामक लिंग की, लक्ष्मी देवी ने हरिनेत्र नामक लेप्य लिंग की पूजा सम्पन्न किया था।।१६१-१६९।।

योगिनः सर्वभूतस्थं स्थाणुरित्येव नाम च। नानाविधंमनुष्याश्च पुरुषंनाम नाम च॥१७०॥
तेजोमयं ऋक्षाणि भगं नाम च भास्वरम्। किन्नराधातुलिङ्गं च सुदीप्तमितिनाम च॥१७१॥
देवदेवेति नामाऽस्ति लिङ्गं च ब्रह्मराक्षसाः। दन्तजं वारणा लिङ्गं नाम रंहसमेवच॥१७२॥
सप्तलोकमयं साध्या बहुरूपेति नाम च। दूर्वाङ्कुरमयं लिङ्गमृतवः सर्वनाम च॥१७३॥
कौङ्कुममप्सरसो लिङ्गं नामशम्भोःप्रियेतिच। सिन्दूरजं चोर्वशीचनामचप्रियवासनम्॥१७४॥
ब्रह्मचारिगुरुर्लिङ्गं नामचोष्णीषिणंविदुः। अलक्तकंचयोगिन्योनामचास्यसुबभ्रुकम्॥१७५॥

श्रीखण्डं सिद्धयोगिन्यः सहस्त्राक्षेति नाम च।
डाकिन्यो मांसलिङ्गं च नाम चाऽस्य च मीढुषम्॥१७६॥

अप्यन्नजं च मनवो गिरिशेति च नाम च। अगस्त्योव्रीहिजंवापिसुशान्तमितिनामच॥१७७॥

यवजं देवलो लिङ्गं पतिमित्येव नाम च। वल्मीकजं च वाल्मीकिश्चिरवासीतिनामच॥१७८॥

योगीराज ने सर्वभूतस्थ स्थाणु लिंग की, मनुष्यों ने पुरुष नामक नानाविध लिंग की, नक्षत्रों ने भग नामक तेजोमय उज्वलतामय लिंग की, किन्नरगण ने सुदीप्त नामक धातुमय लिंग की, ब्रह्मराक्षसों ने देवदेव नामक लिंग की, हाथियों ने रंहस नामक दांतों के लिंग की, साध्यगण ने सप्तलोकात्मक बहुरूप नामक लिंग की, ऋतुओं ने दूर्वांकुरमय सर्व नामक लिंग की, अप्सराओं ने कुंकुममय प्रिय नामक लिंग की, उर्वशी ने प्रियवासन नामक सिन्दूर

के लिंग की, ब्रह्मचारियों ने गुरु रूपी लिङ्ग की, योगिनियों ने अलक्तकमय सुवभ्रुक् नामक लिंग की, सिद्ध योगिनियों ने चन्दनमय सहस्राक्ष नामक लिंग की, डाकिनियों ने मांसमय मीढूष नामक लिंग की, मनुओं ने अन्नमय गिरीश नामक लिंग की, अगस्त्य ने ब्रीहियुक्त सुशान्त नामक लिंग की, देवल ने यवमय पति नामक लिंग की, वाल्मीकि ने वल्मीकिमय चिरवासी नामक लिंग की अर्चना किया था।।१७०-१७८।।

प्रतर्दनो बाणलिङ्गं हिरण्यभुजनाम च। राजिकं च तथा दैत्या नाम उग्रेतिकीर्तितम्।।१७९॥
निष्पावजं दानवाश्च लिङ्गनाम च दिक्पतिम्। मेघा नीरमयं लिङ्गं पजर्यन्यपतिनाम च॥१८०॥
राजमाषमयं यक्षा नाम भूतपतिं स्मृतम्। तिलान्नजं च पितरो नाम वृषपतिस्तथा॥१८१॥
गौतमो गोरजमयं नाम गोपतिरेव च। वानप्रस्थाः फलमयं नाम वृक्षावृतेति च॥१८२॥
स्कन्दः पाषाणलिङ्गं च नाम सेनान्यएवच। नागश्चाश्वतरोधान्यंमध्यमेत्यस्यनामच॥१८३॥
पुरोडाशमयं यज्वा स्रुवहस्तेति नाम च। यमः कालायसमयं नाम प्राह च धन्विनम्॥१८४॥
यवाङ्कुरं जामदग्न्यो भर्गदैत्येति नाम च। पुरूरवाश्चान्नमयं बहुरूपेति नाम च॥१८५॥
मान्धाता शर्करालिङ्गं नाम बाहुयुगेति च। गावः पयोमयं लिङ्गं नाम नेत्रसहस्रकम्॥१८६॥
साध्या भर्तृमयं लिङ्गं नाम विश्वपतिःस्मृतम्। नारायणोनरोमौञ्जंसहस्रशिरनामच॥१८७॥
तार्क्ष्यं पृथुस्तथा लिङ्गं सहस्रचरणाभिधम्। पक्षिणोव्योमलिङ्गंचनामसर्वात्मकेतिच॥१८८॥

प्रतर्दन ने हिरण्यभुज नामक बाणलिंग की, दैत्यों ने सर्वमय उग्र नामक लिंग की, दानवों ने निष्पावमय दिक्पति नामक लिंग की, मेघगण ने जलमय पर्जन्यपति नामक लिंग की, यक्षों ने राजमाषमय भूतपति नामक लिंग की, पितरों ने तिलान्नमय वृषपति नामक लिंग की, गौतम ऋषि ने गोधूलिमयी गोपति नामक लिंग की, वानप्रस्थगण ने फलमय वृक्षयुत नामक लिंग की, स्कन्ददेव ने पाषाणमय सेनान्य नामक लिंग की, अश्वतर नाग ने धान्यमय मध्यम नामक लिंग की, याज्ञिकों ने पुरोडाशमय स्रुवहस्त नामक लिंग की, यमदेव ने कृष्णलौहमयी धन्वी नामक लिंग की, परशुराम ने यवाङ्कुरमय भर्गादत्त नामक लिंग की, पुरुरवा ने अन्नमय बहुरूप नामक लिंग की, मान्धाता ने शर्करामय बाहुयुग नामक लिंग की, गोपगण ने दुग्धमय सहस्रनेत्र नामक लिंग की, साध्वी नारीगण ने भर्तृमय (पतिमय) विश्वपति नामक लिंग की, नर-नारायण ने मुञ्जमय सहस्रशिरा नामक लिंग की, पृथुराजा ने तार्क्ष्यमय सहस्रचरण नामक लिंग की तथा पक्षीगण ने व्योमात्मक सर्वात्मक नामक लिंग की पूजा किया।।१७९-१८८।।

पृथिवी मेरुलिङ्गंच द्वितनुश्चाऽस्य नामच। भस्मलिङ्गं पशुपतिर्नाम चाऽस्य महेश्वरः॥१८९॥
ऋषयो ज्ञानलिङ्गं च चिरस्थानेति नाम च। ब्राह्मणा ब्रह्मलिङ्गंचनामज्येष्ठेतितंविदुः॥१९०॥
गोरोचनमयं शेषो नाम पशुपतिः स्मृतम्। वासुकिर्विषलिङ्गं च नामावै शङ्करेति च॥१९१॥
तक्षकः कालकूटाख्यं बहुरूपेति नाम च। हालाहलं च कर्कोट एकाक्ष इति नाम च॥१९२॥
शृङ्गी विषमयं पद्मो नाम धूर्जटिरेव च। पुत्रः पितृमयं लिङ्गं विश्वरूपेति नाम च॥१९३॥
पारदं च शिवा देवी नाम त्र्यम्बक एव च।
मत्स्याद्याः शास्त्रलिङ्गं च नाम चाऽपि वृषाकपिः॥१९४॥

एवं किं बहुनोक्तेन यद्यत्सत्त्वं विभूतिमत्। जगत्यामस्ति तज्जातंशिवाराधनयोगतः॥१९५॥
भस्मनो यदि वृक्षत्वं ज्ञायते नीरसेवनात्। शिवभक्तिविहीनस्य ततोऽस्यफलमुच्यते॥१९६॥

पृथिवी ने मेरुमय द्वितनु नामक लिंग का, पशुराज ने भस्ममय महेश्वर नामक लिंग का, ऋषियों ने ज्ञानमय चिरस्थान नामक लिंग का, ब्राह्मणों ने ज्येष्ठ नामक ब्रह्मलिंग का, शेषनाग ने पशुपति नामक गोरोचनात्मक लिंग का, वासुकि ने शंकर नामक विषमय लिंग का, कर्कोटक नाग ने एकाक्ष नामक हालाहलमय लिंग का, पद्मनाग ने धूर्जटि नामक विषमय लिंग का, पुत्रों ने विश्वरूप नामक पितृमय लिंग का पूजन किया। शिवा देवी ने त्र्यम्बक नामक पारद लिंग का तथा मत्स्य आदि जलजन्तुओं ने वृषाकपि नामक शास्त्र लिंग का पूजन किया। और अधिक क्या कहें! जगत् में जो भी प्राणी विभूतिसम्पन्न दृष्टिगत हों, उस-उस प्राणी को वह विभूति शिवाराधन के फल से ही मिल सकी है। भस्म में जल सिंचन से भले ही वृक्ष उग आये, तथापि शिवभक्ति विहीन को विभूति लाभ कदापि संभव नहीं है।।१८९-१९६।।

धर्मार्थकाममोक्षाणां यदि प्राप्तौभवेन्मतिः। ततोहरःसमाराध्यस्त्रिजगत्याःप्रदो मतः॥१९७॥
य इदं शतरुद्रीयं प्रातःप्रातः पठिष्यति। तस्य प्रीतः शिवोदेवःप्रदास्यत्यखिलान्वरान्॥१९८॥
नातः परं पुण्यतमं किञ्चिदस्ति महाफलम्। सर्ववेदरहस्यं च सूर्येणोक्तमिदं मम॥१९९॥
वाचा च यत्कृतंपापं मनसा वाऽप्युपार्जितम्। पापं तन्नाशमायाति कीर्तितेशतरुद्रिये॥२००॥

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्राप्ति की कामना होने पर शिव की ही आराधना करनी चाहिये। इससे ही प्रसाद रूप में तीनों लोकों का आधिपत्य प्राप्त होता है। जो नित्यप्रति प्रातः शतरुद्रीय का पाठ करते हैं, भगवान् शंकर प्रसन्न होकर उसे समस्त वर प्रदान करते हैं। इस शतरुद्रीय की अपेक्षा पुण्यतम महाफलप्रद कुछ भी नहीं है। यह सर्वजगत् का रहस्य है। इस बात को सूर्यदेव ने मुझसे कहा था। शतरुद्रीय के पाठ से वाणी तथा मन से कृत सर्वपापसमूह नष्ट हो जाते हैं।।१९७-२००।।

रोगार्तो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात्।
भयान्मुच्येत भीतश्च जपेद्यः शतरुद्रियम्॥२०१॥
नाम्नां शतेन यः कुम्भैः पुष्पैस्तावद्भिरीश्वरम्। प्रणामानांशतेनापिमुच्यतेसर्वपातकैः॥२०२॥
लिङ्गानां शतमेतच्च शतमाराधकास्तथा। नामानि च शतं सर्वदोषसंनाशकंस्मृतम्॥२०३॥
विशेषादेषु लिङ्गेषु यः पठिष्यति पञ्चसु। पञ्चभिर्विषयोद्भूतैः स दोषैः परिमुच्यते॥२०४॥

इसका पाठ करने से रोगी रोग से, बद्ध बन्धन से, भीतव्यक्ति भय से मुक्त हो जाता है। महेश्वर के इन १०० नामों द्वारा १०० कुम्भ से शंकर का अभिषेक कराने तथा १०० पुष्प प्रदान करके १०० प्रणाम करने से मनुष्य सर्व पातक मुक्त होता है। ये शतलिंग, शत आराधक कर्म तथा १०० नाम, सर्व पातकदोष नष्ट कर देते हैं। विशेष करके पञ्चपर्व में इस लिंगाख्यान का पाठ करने से पञ्चविषयजनित (पंच ज्ञानेन्द्रिय जनित) दोषों का नाश होकर मुक्तिलाभ होता है।।२०१-२०४।।

नारद उवाच

निशम्यैवं प्रार्थ्यतेऽपि गुप्तक्षेत्रे मुदान्विताः। पञ्चलिङ्गान्यर्चयन्तःशिवध्यानपराभवन्॥२०५॥

ततो बहुतिथे काले प्रत्यक्षीभूय शङ्करः। प्राह तान्मुदितो देवस्तेषां भक्तिविशेषतः॥२०६॥

शिव उवाच

बलोलूकगृध्रकूर्मा इन्द्रद्युम्न च पार्थिव!। सारूप्यां मुक्तिमापन्ना मल्लोके निवसिष्यथ॥२०७॥
लोमशश्चापि माकण्डो जीवन्मुक्तौ भविष्यतः। इत्युक्तेदेवदेवेनलिङ्गंस्थापितवान्नृपः॥२०८॥

इन्द्रद्युम्नेश्वरं नाम महाकालाख्यमित्युत।
ज्ञात्वा तीर्थगुणान्राजा कीर्तिमिच्छंश्चिरन्तनीम्॥२०९॥

नारद कहते हैं—"उन ५ लोगों ने यह वृत्तान्त सुनकर उस गुप्त क्षेत्र में सहर्ष चित्त से अभिमत सिद्धि की कामना से पंचलिंग की आराधना द्वारा शिवध्यान तत्परता का वरण किया। तदनन्तर दीर्घकालोपरान्त उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर शंकर ने उनको दर्शन प्रदान किया तथा उनसे कहा, "हे बक, उलूक, गृध्र, कूर्म तथा इन्द्रद्युम्न! तुम सारूप्य मुक्ति पाकर मेरे लोक में वास करोगे। लोमश तथा मार्कण्डेय जीवन्मुक्त होंगे।" देवाधिदेव द्वारा यह वर प्राप्त करके वहां राजा इन्द्रद्युम्न ने एक लिंग प्रतिष्ठित किया, जिसका नाम था इन्द्रद्युम्नेश्वर, नामान्तर था महाकाल। राजा इन्द्रद्युम्न ने तीर्थमाहात्म्य को जानकर चिरन्तनी कीर्त्ति की कामना से महत् कार्य किया।।२०५-२०९।।

त्रिरम्यमतुलं लिङ्गं संस्थाप्येदमुवाच ह। यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत्तिष्ठति मेदिनी॥२१०॥
इन्द्रद्युम्नेश्वरंलिङ्गंनन्दताच्छाश्वतीःसमाः। ततस्तथेतिभगवाञ्छिवःप्रोच्याऽब्रवीत्पुनः॥२११॥
अत्र यो नियतं लिङ्गमैन्द्रद्युम्नंप्रपूजयेत्। स गणो जायते नूनं मम लोके निवत्स्यति॥२१२॥

राजा इन्द्रद्युम्न ने वहां तीन अतुलनीय रम्य लिंग स्थापित करके शिव से यह प्रार्थना किया कि जब तक चन्द्र-सूर्य-पृथिवी विद्यमान है, तब तक यह इन्द्रद्युम्नेश्वर लिंग अभिनन्दित होता रहे। शिव ने तथास्तु कहकर उनकी प्रार्थना का अनुमोदन करके कहा कि—"जो यहां नित्य इन्द्रद्युम्नेश्वर लिंग का पूजन करेगा, वह निश्चित रूपेण मेरा गणत्वलाभ करके मेरे लोक में निवास करेगा"।।२१०-२१२।।

इत्युक्त्वा सह तैश्चैव पञ्चभिः शशिशेखरः।
रुद्रलोकमगाद्देवस्तेऽपिजाता गणाः पुनः॥२१३॥

एवं प्रभावो राजाऽभूदिन्द्रद्युम्नौ महीपतिः। यजता येन वीरेण निर्मितेयं महीनदी॥२१४॥
एवंविधः स पुण्योऽयं महीसागरसङ्गमः। अभूत्ततोऽपि संक्षेपात्तव पार्थ प्रकीर्तितः॥२१५॥
स्नात्वाऽत्र सङ्गमे यश्च इन्द्रद्युम्नेश्वरं नरः। पूजयेत्तस्य वासः स्याद्यत्रेशःपार्वतीपतिः॥२१६॥
सर्वबन्धहरं लिङ्गं गाणपत्यप्रदं त्विदम्। यतो बन्धान्विहायैवस्थापितंतेन फाल्गुन॥२१७॥
इतीदमुक्तं तव पुण्यकारि माहात्म्यमस्योत्तमसङ्गमस्य।
माहात्म्यमत्यद्भुतपुण्यमिन्द्रद्युम्नेश्वरस्याऽपि च पुण्यकारि॥२१८॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे महीसागरसङ्गममाहात्म्ये शतरुद्रियलिङ्गमाहात्म्येन्द्रद्युम्नेश्वरलिङ्गमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥

भगवान् शशिशेखर यह कहकर उपरोक्त पांचों लोगों को लेकर रुद्रलोक चले गये। वे पांचों वहां गणत्व प्राप्त करके सुख के साथ निवास करने लगे। इन्द्रद्युम्न राजा का यह प्रभाव था कि उनके यज्ञफल से इस मही नदी का प्रादुर्भाव हो गया। यह महीसागर संगम तीर्थ भी इस प्रकार पुण्यप्रद है। हे पार्थ! मैंने उसका माहात्म्य संक्षेप में कहा। इस महीसागर संगम तीर्थ में जो स्नानोपरान्त इन्द्रद्युम्नेश्वर की पूजा करेगा, उसे वहीं निवास प्राप्त होगा, जहां पार्वतीपति निवास करते हैं। राजा इन्द्रद्युम्न ने बन्धनमुक्त होकर इस लिंग की स्थापना किया था, इसीलिए यह लिंग सभी बन्धनों का नाश करने वाला तथा गाणपत्य प्रदायक है। मैंने तुमसे इस उत्तम महीसागर संगम का तथा इन्द्रद्युम्नेश्वर का अतीव अद्‌भुद् माहात्म्य कह दिया।।२१३-२१८।।

।।त्रयोदश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

चतुर्दशोऽध्यायः

कुमारेश्वर लिंग माहात्म्य, दक्षपुत्रियों को नाना पुत्रलाभ, वज्राङ्ग तपप्रभाव वर्णन, वज्राङ्ग-स्त्री संवाद

अर्जुन उवाच

कुमारनाथमाहात्म्यं यत्त्वयोक्तं कथान्तरे। तदहं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण महामुने।।१।।

अर्जुन कहते हैं—हे महामुनि! आपने प्रसंगतः जो कुमारनाथ महिमा कही थी, उसे मैं सविस्तार श्रवण करना चाहता हूं। कृपया कहें।।१।।

नारद उवाच

तारकं विनिहत्यैव वज्राङ्गतनयं प्रभुः। गुहः संस्थापयामास लिङ्गमेतच्च फाल्गुन।।२।।
दर्शनाच्छ्रवणाद्ध्यानात्पूजया श्रुतिवन्दनैः। सर्वपापापहः पार्थ कुमारेशो न संशयः।।३।।

नारद कहते हैं—हे फाल्गुन! पूर्वकाल में कार्त्तिकेय ने वज्राङ्गासुर के पुत्र तारकासुर का वध किया था तथा लिंग स्थापित किया था। हे पृथानन्दन! कुमारेश देव का दर्शन, नामश्रवण, ध्यान, पूजा तथा वन्दना करने से सभी पापों का निःसंदिग्ध रूपेण नाश हो जाता है।।२-३।।

अर्जुन उवाच

अत्याश्चर्यमयी रम्या कथेयं पापनाशिनी। विस्तरेण च मे ब्रूहि याथातथ्येन नारद।।४।।
वज्राङ्कः कोऽप्यसौ दैत्यः किम्प्रभावश्चतारकः। कथं स निहतश्चैवजातश्चैवकथं गुहः।।५।।
कथं संस्थापितं लिङ्गं कुमारेश्वरसञ्ज्ञितम्। किंफलंचास्यलिङ्गस्यब्रूहितद्विस्तरान्मम।।६।।

अर्जुन कहते हैं—हे नारद! यह पापनाशक रमणीय कथा अतिशय आश्चर्यजनक है। इसे विस्तार से

यथायथ कहिये। वज्राङ्ग दैत्य कौन था, तारकासुर का क्या प्रभाव था? उसका वध कैसे हुआ? कार्तिकेय के जन्म को भी बताये। उन्होंने कुमारेश्वर लिंग की स्थापना कैसे की? उस लिंग की अर्चना का फल क्या है?।।४-६।।

नारद उवाच

प्रणिपत्य कुमाराय सेनान्ये चेश्वराय च। शृणु चैकमनाः पार्थ कुमारचरितं महत्॥७॥
मानसो ब्रह्मणः पुत्रो दक्षो नाम प्रजापतिः।
षष्टिं सोऽजनयत्कन्या वीरिण्यां नाम फाल्गुन!॥८॥
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश। सप्तविंशति सोमाय चतस्त्रोऽरिष्टनेमिने॥९॥
भूताङ्गिरःकृशाश्वेभ्यो द्वे द्वे चैव ददौ प्रभुः। नामधेयान्यमूषांच सपत्नीनां च मे शृणु॥१०॥
यासां प्रसूतिप्रभवालोकाआपूरितास्त्रयः। भानुर्लम्बाककुद्भूमिर्विश्वासाध्यामरुत्वती॥११॥
वसुर्मुहूर्ता सङ्कल्पा धर्मपत्न्यः सुताञ्छृणु। भानोस्तु देवऋषभ इन्द्रसेनः सुतोऽभवत्॥१२॥
विद्योत आसील्लम्बायां ततश्च स्तनयित्नवः। ककुदः शकटः पुत्रः कीकटस्तनयोयतः॥१३॥
भुवो दुर्गस्तथास्वर्गोनन्दश्चैवततोऽभवत्। विश्वेदेवाश्चविश्वायाअप्रजांस्तान्प्रचक्षते॥१४॥
साध्या द्वादश साध्याया अर्थसिद्धिस्तु तत्सुतः। मरुत्वान्सुजयन्तश्च मरुत्वत्या बभूवतुः॥१५॥
नरनारायणौ प्राहुर्यौ तौ ज्ञानविदो जनाः। वसोश्च वसवश्चाष्टौ मुहूर्तायां मुहूर्तकाः॥१६॥
ये वै फलं प्रयच्छन्ति भूतानां स्वं स्वकालजम्।
सङ्कल्पायाश्च सङ्कल्पः कामः सङ्कल्पजः सुतः॥१७॥

नारद कहते हैं—हे पार्थ! सेनापति कुमार तथा ईश्वर को प्रणाम करके एकाग्रता पूर्वक महत् कुमार चरित्र सुनो। ब्रह्मा के मानस पुत्र दक्ष प्रजापति की पत्नी वीरिणी के गर्भ से ६० कन्याओं का जन्म हुआ। उसमें से दक्ष ने १० धर्म को, १३ कश्यप को, २७ चन्द्रमा को, ४ अरिष्टनेमि को प्रदान किया। दक्ष ने दो-दो कन्या भूतेश्वर, अंगिरा तथा कृशाश्व को प्रदान किया। इनकी सन्तति से तीनों लोक व्याप्त हो गया। इनके नाम सुनो। धर्म की पत्नीगण के नाम हैं—भानु, लम्बा, ककुदा, भूमि, विश्वा, साध्या, मरुद्वती, वसु, मुहूर्त्ता, संकल्पा। इनकी सन्तानों को सुनो। भानु का पुत्र है देवश्रेष्ठ इन्द्रसेन, लम्बा का पुत्र है विद्योत। इसकी ही सन्ताने हैं मेघगण। ककुदा का पुत्र था शकट, उसका पुत्र था कीकट। भूमि का पुत्र है दुर्ग तथा स्वर्ग। स्वर्ग का पुत्र है नन्द। विश्वा के पुत्र हैं विश्वेदेवागण। ये निःसन्तान हैं। साध्या के पुत्र हैं १२ साध्यदेवता। इनका पुत्र है अर्थसिद्धि। मरुद्वती का पुत्र है मरुद्वान् तथा सुजयश्व। इनको ही ज्ञानी लोग नर-नारायण कहते हैं। वसु के पुत्र हैं अष्टवसु। मुहूर्त्त के पुत्र हैं मुहूर्त्तगण। ये प्राणियों को अपने-अपने काल का फल देते हैं। संकल्पा के पुत्र हैं सत्कल्प। उसका पुत्र है काम।।७-१७।।

सुरूपाऽसूततनयान्रुद्रानेकादशैव तु। कपाली पिङ्गलो भीमो विरूपाक्षो विलोहितः।
अजकः शासनः शास्ता शम्भुश्चान्त्यो भवस्तथा॥१८॥
रुद्रस्य पार्षदाश्चाऽन्ये विरूपायाः सुताः स्मृताः॥१९॥

प्रजापतेरङ्गिरसः स्वधा पत्नी पितृनथ। जज्ञे सनी(ची?) तथा पुत्रमथर्वाङ्गिरसं प्रभुम्॥२०॥
कृशाश्वस्य च द्वे भार्ये अर्चिश्चधिषणातथा। अस्त्रग्रामो ययोःपुत्रःससंहारःप्रकीर्तितः॥२१॥
पतङ्गी यामिनी ताम्रा तिमिश्चाऽरिष्टनेमिनः। पतङ्ग्यसूत पतगान्यामिनीशलभानथ॥२२॥

सुपुत्र के पुत्र हैं, ११ रुद्रगण। उनके नाम हैं कपाली, पिङ्गल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित, अजक, शासन, शास्ता, शम्भु तथा भव। विरूपा के पुत्र रुद्रों के पार्षद हैं। अंगीरा प्रजापति की प्रथामा पत्नी स्वधा ही पितरों की जननी है। इनकी द्वितीया पत्नी सनी के पुत्र का नाम है अथर्वाङ्गिरस। कृशाश्व की दो पत्नी हैं, अर्चि तथा धिषणा। संहार क्रम के साथ समस्त अस्त्र समूह इनकी ही संतानें हैं। अरिष्टनेमि की पत्नियां हैं पतङ्गी, यामिनी, ताम्रा तथा तिमि। पतंगी की सन्तानें हैं पतंगगण। यामिनी की सन्तान है शलभगण।।१८-२२।।

ताम्रायाः श्येनगृध्राद्यास्तिमेर्यादोगणास्तथा। अथ कश्यपपत्नीनां यत्प्रसूतमिदंजगत्॥२३॥
शृणु नमानिलोकानांमातृणांशङ्कराणिच। अदितिर्दितिर्दनुःसिंहीदनायुःसुरभिस्तथा॥२४॥
अरिष्टा विनता ग्रावा दया क्रोधवशा इरा। कर्द्रुर्मुनिश्च ते चोभेमातरस्ताःप्रकीर्तिताः॥२५॥
आदित्याश्चाऽदितेःपुत्रादितेर्दैत्याःप्रकीर्तिताः। दनोश्चदानवाःप्रोक्ताराहुःसिंहीसुतोग्रहः॥२६॥
दनायुषस्तथा जातो दनायुश्च गणो बली। गावश्च सुरभेर्जातारिष्टापुत्रा युगन्धराः॥२७॥
विनतासूत अरुणं गरुडञ्च महाबलम्। ग्रावायाः श्वापदाः पुत्रा गणः क्रोधवशस्तथा॥२८॥
जातः क्रोधवशायाश्च इरायाभूरुहाःस्मृताः। कद्रूसुताःस्मृतानागामुनेरप्सरसांगणाः॥२९॥
तत्र द्वौतनयौ यौचदितेस्तौविष्णुनाहतौ। हिरण्यकशिपुर्वीरो हिरण्याक्षस्तथापरः॥३०॥

ताम्रा की सन्तानें हैं श्येन (बाज) तथा गृध्रादि पक्षी। तिमि की सन्तानें हैं जलजन्तु गण। कश्यप की पत्नियों की संतानों से तो समस्त जगत् पूर्ण हो गया। इन लोकमाताओं का मंगलकारी सन्तान वृत्तान्त सुनो। अदिति, दिति, दनु, सिंही, दनायु, सुरभि, अरिष्टा, विनता, ग्रावा, क्रोधवशा, इरा, कद्रु तथा मुनि, ये ही हैं मातृगण। अदिति के पुत्र हैं आदित्यगण। दिति के पुत्र हैं दैत्यगण, दनु के पुत्र हैं दानव, सुरभि की सन्तान हैं गौगण, दनायु की सन्तानें हैं दनायुगण, सिंही का पुत्र है राहु। अरिष्टा की सन्तान हैं युगन्धरगण। विनता के पुत्र हैं अरुण तथा गरुड़। ग्रावा के सन्तान हैं श्वापदगण। क्रोधवशा के पुत्र हैं क्रोधवशगण। कद्रु के पुत्र हैं नागगण तथा मुनि की सन्तानें हैं अप्सरायें। इरा की सन्तानें हैं वृक्षगण। इनमें से दिति के पुत्रों का विनाश विष्णु ने किया। इनके नाम हैं हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष।।२३-३०।।

ततो निहतपुत्रा सा दितिराराध्य कश्यपम्। अयाचत वरं देवी पुत्रमन्यं महाबलम्॥३१॥
समरे शक्रहन्तारं स तस्याअददात्प्रभुः। नियमे चाऽपि वर्तस्व वर्षाणां च सहस्त्रकम्॥३२॥

तदनन्तर मृत हो गये पुत्रों की माता दिति ने प्रजापति कश्यप की आराधना द्वारा इन्द्रहन्ता अन्य महाबली पुत्र की कामना किया। प्रभु कश्यप ने उसे यह वर भी दे दिया, तथापि कश्यप ने कहा था कि तुम १००० वर्ष तक नियम से रहना तभी तुमको वांछित पुत्र प्राप्त होगा।।३१-३२।।

इत्युक्ता सा तथा चक्रे पुष्करस्था समाहिता।
वर्तन्त्या नियमे तस्याः सहस्त्राक्षः समाहितः॥३३॥

उपासामाचरद्भक्त्या सा चैनमन्वमन्यत। दशवत्सरशेषस्य सहस्त्रस्य तदा दितिः।
उवाच शक्रं सुप्रीता भक्त्या शक्रस्य तोषिता॥३४॥

दितिरुवाच

अत्रोत्तीर्णव्रतप्रायां विद्धि मां देवसत्तम!॥३५॥
भविष्यतितवभ्रातातेनसार्धमिमांश्रियम्। भोक्ष्यसेत्वंयथान्यायंत्रैलोक्यंहतकण्टकम्॥३६॥
इत्युक्त्वा निद्रयाविष्टा चरणाक्रान्तमूर्धजा। दिवा सुप्ता दितिर्देवीभाव्यर्थबलनोदिता॥३७॥
तत्तु रन्ध्रमवेक्ष्यैव योगमूर्तिस्तदा विशत्। जठरस्थं दितेर्गर्भं चक्रे वज्रेण सप्तधा॥३८॥

दिति भी पति का आदेश पाकर पुष्कर तीर्थ में समाहित होकर निवास करने लगी। जब वे नियम पालन कर रहीं थीं, तब सहस्राक्ष इन्द्र उनकी सेवार्थ आये। दिति ने उनको इसकी सहमति दे दिया। इन्द्र भी भक्ति के साथ उनकी सेवा में लग गये। जब ९९० वर्ष व्यतीत हो गये, तब इन्द्र की सेवा से प्रसन्न होकर दिति ने प्रेमपूर्वक कहा—"हे देवराज! मेरा व्रतकाल प्रायः समाप्त होने जा रहा है। इसके अनन्तर तुम्हारे भाई का जन्म होगा। उसके साथ तुम निष्कण्टकरूपेण त्रैलोक्य राज्यभोग करोगे।" यह कहकर दिति निद्रित हो गयीं। भवितव्यता के कारण दितिदेवी दिन में ही सो गईं! उनके केश उनके चरण पर्यन्त बिखरे थे। इन्द्र ने व्रत का यही छिद्र पाया तथा सूक्ष्मरूपेण दिति के गर्भ में प्रविष्ट हो गये। उन्होंने गर्भ के वहां पर ७ खण्ड कर दिये!।।३३-३८।।

एकैकंच पुनः खण्डं चकार मघवाततः। सप्तधा सप्तधा कोपादुद्बुध्य च ततोदितिः॥३९॥
न हन्तव्यो न हन्तव्य इति सा शकमब्रवीत्। वज्रेण कृत्त्यमानानां बुद्धा सा रोदनेनच॥४०॥
ततः शक्रश्च मा रोदीरिति तांस्तान्यथाऽवदत्। निर्गत्यजठरात्तस्मात्ततःप्राञ्जलिरग्रतः॥४१॥
उवाच वाक्यंचात्रस्तोमातरंरोषपूरिताम्। दिवास्वापं कृथामातःपादाक्रान्तशिरोरुहा॥४२॥
सुप्ताऽथ सुचिरं वाते छिन्नो गर्भोमयातव। कृता एकोनपञ्चाशद्भागा वज्रेण ते सुताः॥४३॥
सत्यं भवतु ते वाक्यं सार्धं भोक्ष्यामि तैः श्रियम्।
दास्यामि तेषां स्थानानि दिवि यावदहं दिते!॥४४॥

तदनन्तर इन्द्र ने उस सप्तधा खण्डित गर्भ के और भी ७ खण्ड कर दिये। (७ × ७ = ४९ टुकड़े कर दिये)। गर्भ के रोदन स्वर से जागकर दिति ने इन्द्र से कहा—"हत्या न करो-हत्या न करो" उधर इन्द्र भी उन गर्भ खण्डों से कहते जा रहे थे "रुदन न करो" यह कहकर इन्द्र उनको सान्त्वना दिये जा रहे थे। तदनन्तर इन्द्र दिति के उदर से बाहर आये तथा अत्यन्त भयत्रस्त भाव से कृतांजलिबद्ध होकर कहा—माता! आपने पैरों से अपने केश का स्पर्श कराते हुये दिन में शयन किया था। आपके व्रताचरण का यह दुर्बल छिद्र देखकर मैंने वज्र द्वारा गर्भ को ४९ भागों में विभक्त कर दिया। आपका वाक्य सत्य हो। आपके पुत्रों के साथ मैं ऐश्वर्य भोग करूंगा। मैं उनको स्वर्ग में स्थान प्रदान करूंगा।।३९-४४।।

मा रोदीरिति मे प्रोक्ताः ख्याताश्च मरुतस्त्विति।
इत्युक्ता सा च सव्रीडा दितिर्जाता निरुत्तरा॥४५॥

सार्धं तैर्गतवानिन्द्रो दिगन्ते वायवःस्मृताः। ततः पुनश्चभर्तारं दितिःप्रोवाचदुःखिता॥४६॥
पुत्रं मे भगवन्देहि शक्रहन्तारमूर्जितम्। योनास्त्रशस्त्रैर्वध्यत्वं गच्छेत्त्रिदिववासिनाम्॥४७॥
न ददास्युत्तरं विद्धि मृतामेव प्रजापते!। इत्युक्तः स तदोवाच तां पत्नीमतिदुःखिताम्॥४८॥
दशवर्षसहस्राणि तपोनिष्ठा तु तप्स्यसे। वज्र सारमयैरङ्गैरच्छेद्यैरायसैर्दृढैः॥४९॥
वज्राङ्गोनाम पुत्रस्ते भविता धर्मवत्सलः। सा तु लब्धवरा देवी जगाम तपसे वनम्॥५०॥

जब मैं गर्भ खण्डित कर रहा था, तब मैंने उनसे "मा रो दी" (मत रोओ) शब्द कहा था। इसलिए ये लोग मरुत् नाम से विख्यात रहेंगे।" यह सुनकर देवी दिति लज्जा के कारण निरुत्तर हो गयीं। इन्द्र ने उन ४९ सन्तानगण के साथ स्वर्ग प्रस्थान किया। ये सभी ४९ दितिपुत्र वायु नाम से भी प्रसिद्ध हो गये। तब दिति ने दुःखित चित्त से पति से पुनः कहा—"हे भगवान्! आप एक बली पुत्र प्रदान करें, जिसका अंगछेदन देवता भी अस्त्र-शस्त्र से न कर सकें। तथापि वह संग्राम में शत्रु वध कर सके। हे प्रजापति! यदि आप मेरी प्रार्थना का सदुत्तर नहीं देते, तब आप मुझे मृत मानें।" कश्यप ने यह सुनकर अपनी अतीव दुःखग्रस्त पत्नी से कहा—"तुम यदि १०००० वर्ष सम्यक्तः तप कर सको, तब तुमको वज्राङ्ग नामक एक धार्मिक पुत्र की प्राप्ति होगी। यह पुत्र अस्त्र-शस्त्र के प्रहार से छिन्न नहीं होगा। यह वज्रसार के समान अंग-प्रत्यङ्ग से युक्त होगा। यह वर पाकर देवी दिति तपःश्चरणार्थ वन चली गयीं।।४५-५०।।

दशवर्षसहस्राणि तपो घोरं समाचरत्। तपसोऽन्ते भगवती जनयामास दुर्जयम्।
पुत्रमप्रतिकर्माणमजेयं वज्रदुश्छिदम्॥५१॥
स जातमात्र एवाभूत्सर्वशास्त्रार्थपारगः॥५२॥
उवाच मातरं भक्त्या मातःकिंकरवाण्यहम्। तमुवाच ततोहृष्टा दितिर्दैत्याधिपंसुतम्॥५३॥
बहवो मे हताः पुत्राः सहस्राक्षेण पुत्रक!। तेषामपचितिं कर्तुमिच्छे शक्रवधादहम्॥५४॥

वहां उन्होंने १०००० वर्ष पर्यन्त घोर तप किया। तपस्या शेष होने पर देवी ने एक पुत्र को जन्म दिया। वह जन्म लेते ही वज्र से भी अच्छेद्य, दुर्जय, अप्रतिम कर्मा, अजेय तथा सर्वशास्त्र पारंगत था। उसने भक्ति के साथ माता से कहा—"हे माता! मैं क्या करूं?" तब देवी ने हर्षित होकर उस दैत्यप्रवर पुत्र से कहा— "हे पुत्र! सहस्राक्ष इन्द्र ने मेरे अनेक पुत्रों की हत्या की है। अतएव उसके वधसाधन द्वारा मृत पुत्रों को प्रसन्न करो।।५१-५४।।

बाढमित्येव स प्रोच्य जगाम त्रिदिवं बली। ससैन्यंसमरेशक्रं सचबाह्वायुधोऽजयत्॥५५॥
पादेनाकृष्य देवेन्द्रं सिंहः क्षुद्रमृगं यथा। मातुरन्तिकमागच्छद्याचमानं भयातुरम्॥५६॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा कश्यपश्च महातपाः। आगतौ तत्र सन्त्रस्तावथोब्रह्माजगाद तम्॥५७॥
मुञ्चाऽमुं पुत्र याचन्तं किमनेनप्रयोजनम्। अवमानो वधः प्रोक्तो वीरसम्भावितस्यच॥५८॥
अस्मद्वाक्येन यो मुक्तो जीवन्नपिमृतोहि सः। शत्रुं ये घ्नन्तिसमरेनतेवीराःप्रकीर्तिताः॥५९॥
कृत्वा मानपरिग्लानिं ये मुञ्चन्ति वरा हि ते। यथा मान्यतमं मत्वा त्वया मातुर्वचः कृतम्॥६०॥
तथा पितुर्वचःकार्यं मुञ्चाऽमुं पुत्र! वासवम्। एतच्छ्रुत्वातुवज्राङ्गःप्रणतोवाक्यमब्रवीत्॥६१॥

तब बलवान् वज्राङ्ग ने कहा—"वही करूंगा।" तथा उसने केवल बाहु के द्वारा ही स्वर्ग में समस्त देव सैन्य को पराजित किया। तब सिंह जिस प्रकार क्षुद्र मृग को घसीट लेता है, उसी प्रकार इन्द्र को पैरों से खींचा। इन्द्र के भयवश कातर प्रार्थना करने पर भी वज्राङ्ग इन्द्र को माता दिति के पास लेकर आया। तभी ब्रह्मा एवं महातपस्वी प्रजापति कश्यप त्रस्तभाव से वहां पहुंचे। ब्रह्मा ने वज्राङ्ग से कहा—"हे वत्स! जब इन्द्र क्षमा मांग रहा है, तब इसे छोड़ दो। इससे तुम्हें क्या प्रयोजन? हे वीर! सम्भ्रान्त व्यक्ति का अपमान कर देना भी उसके वध के समान है। जब इन्द्र हम लोगों के अनुरोध से बचा है, तब इसका जीवित रहना भी मृतक्वत ही है। जो समय पर शत्रु की हत्या कर देता है, वह वीर नहीं है। परन्तु जो उसे अपमानित करके छोड़ देता है, वही वीरश्रेष्ठ है। तुमने जैसे मान्यतम मानकर माता की आज्ञा का पालन किया है, उसी प्रकार पितृवाक्य का पालन करना भी तुम्हारा कर्त्तव्य है। हे पुत्र! इन्द्र को छोड़ दो।" यह सुनकर वज्राङ्ग प्रणाम करके कहने लगे।।५५-६१।।

न मे कृत्यमनेनाऽस्ति मातुराज्ञा कृता मया। त्वं सुरासुरनाथो वै मम च प्रपितामहः।।६२।।
करिष्ये त्वद्वचो देव एषमुक्तःशतक्रतुः। नच काङ्क्षे शक्रभुक्तामिमां त्रैलोक्यराजताम्।।६३।।
परभुक्तायथा नारी परभुक्तामिव स्त्रजम्। यच्च त्रिभुवनेष्वस्ति सारंतन्मम कथ्यताम्।।६४।।

ब्रह्मा को प्रणाम करके वज्राङ्ग कहता है—"इस इन्द्र का मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। मैं तो मात्र मातृ आज्ञापालन कर रहा था। हे देव! आप तो असुर वर्ग तथा सुरवर्ग—इन दोनों के स्वामी तथा मेरे प्रपितामह हैं। इसलिए आपका वाक्य पालन करके मैंने शतक्रतु इन्द्र को छोड़ दिया। दूसरे के उपभोग में आई स्त्री तथा माला के समान मैं इस शक्र (इन्द्र) द्वारा भोग किया त्रैलोक्य राज्य भी नहीं चाहता। तथापि त्रिभुवन का जो सार तत्त्व है, वही आप मुझे बतायें"।।६२-६४।।

ब्रह्मोवाच

तपसो न परं किञ्चित्तपो हि महतांधनम्। तपसा प्राप्यतेसर्वं तपोयोग्योऽसिपुत्रक।।६५।।

ब्रह्मा कहते हैं—तपस्या जैसा अन्य कोई भी उत्तम तत्त्व नहीं है। तपस्या ही महाजनों का धन है। तपस्या से सब कुछ इच्छित प्राप्त होता है। हे पुत्र! तुम तपस्या के योग्य हो।।६५।।

वज्राङ्ग उवाच

तपसे मे रतिर्देव न विघ्नं तत्र मे भवेत्। त्वत्प्रसादेन भगवन्नित्युक्त्वा विरराम सः।।६६।।

वज्राङ्ग कहता है—हे देव! मुझे तो तप के प्रति अनुराग है। हे भगवान्! तपस्या में मुझे विघ्न न हो, यह कृपा करिये।" यह कहकर वज्रांग मौन हो गया।।६६।।

ब्रह्मोवाच

क्रूरभावं परित्यज्ययदीच्छसितपः सुत!। अनयाचित्तबुद्ध्यातत्त्वयाऽऽप्तंजन्मनःफलम्।।६७।।
इत्युक्त्वापद्मजःकन्यां ससर्ज्जाऽऽयतलोचनाम्। तामस्मैप्रददौ देवःपत्न्यर्थंपद्मसम्भवः।।६८।।
वराङ्गीति च नामाऽस्याः कृतवांश्चपितामहः। जगाम च ततोब्रह्माकश्यपेनसमंदिवम्।।६९।।
वज्राङ्गोऽपि तया सार्धं जगाम तपसे वनम्। ऊर्द्ध्वबाहुःसदैत्येन्द्रोऽतिष्ठदब्दसहस्त्रकम्।।७०।।

कालं कमलपत्राक्षः शुद्धबुद्धिर्महातपाः। तावानधोमुखः कालं तावत्पञ्चाग्निसाधकः॥७१॥
निराहारो घोरतपास्तपोराशिरजायत। ततः सोऽन्तर्जले चक्रे कालं वर्षसहस्रकम्॥७२॥
जलान्तरप्रविष्टस्य तस्य पत्नी महाव्रता। तस्यैव तीरे सरसस्तत्परा मौनमाश्रिता॥७३॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे पुत्र! यदि तुम क्रूरता त्याग कर तप करते हो, तब तुममें जो शक्ति होगी, उससे तुमको जन्म की सफलता मिलेगी।'' पद्मजन्मा ब्रह्मा ने यह कहकर एक आयतनेत्रा कन्या की सृष्टि करके वज्राङ्ग को भार्या के रूप में प्रदान किया। ब्रह्मा ने इस कन्या का नामकरण किया ''वराङ्गी''। तदनन्तर ब्रह्मा ने कश्यप के साथ स्वर्ग गमन किया। इस शुद्धबुद्धि पद्मनेत्र दैत्यपति ने १००० वर्ष उर्ध्वबाहु होकर, १००० वर्ष अधोमुखी होकर, १००० वर्ष पञ्चाग्नि के बीच बैठ कर निराहारी रहते घोर तप किया। इससे वह साक्षात् तपःराशि प्रतीत हो रहा था। तदनन्तर वह १००० वर्ष तक जल में प्रविष्ट होकर तप करने लगा।।६७-७३।।

निराहारं पतिं मत्वा तपस्तेपेपतिव्रता। तस्यास्तपसिवर्तन्त्याइन्द्रश्चक्रेविभीषिकाम्॥७४॥
भूत्वा तु मर्कटाकारस्तस्याअभ्याशमागतः। अपविध्य दृशं तस्या मूत्रविष्ठे चकार सः॥७५॥
तथा विलोलवसनां विलोलवदनांतथा। विलोलकेशांतांचक्रे विधित्सुस्तपसःक्षतिम्॥७६॥
ततश्च मेषरूपेण क्लेशं तस्याश्चकार सः। ततो भुजङ्गरूपेण बद्ध्वा चरणयोर्द्वयोः॥७७॥
अपाकर्षत दूरं स तस्माद्देवभृतस्तथा। तपोबलाच्च सा तस्य न वध्यत्वं जगाम ह॥७८॥

उसकी पतिव्रता स्त्री उस सरोवर के तट पर मौनी, पति के निराहार के कारण निराहारी रहकर स्वयं भी तपःश्चरण रत हो गयी। इन्द्र उसे नाना विभीषिका का प्रदर्शन करने लगे। वे वानरमूर्त्ति धारण करके वहां आते तथा नेत्रों को बन्द करके मलमूत्र त्याग करते। वे उसके केशों को खींचते, वस्त्र को फाड़ देते तथा शरीर को क्षत पहुंचा कर नाना प्रकार से पीड़ित करते। कभी मेष रूपी होकर शृंग के आघात से पीड़ा पहुंचाते। उन्होंने सर्प का रूप धारण किया तथा उसके दोनों पैरों में लिपट कर उसे दूर खींचने लगे। तथापि इन्द्र के इस उत्पीड़न से भी उस महाभागा नारी ने स्वयं को तप से विरत नहीं किया। उसने क्षमागुण की अधिकता के कारण क्रोध प्रकट नहीं किया।।७४-७८।।

क्षमया च महाभागा क्रोधमण्वपि नाऽकरोत्। ततो गोमायुरूपेण तमदूषयदाश्रमम्॥७९॥
अग्निरूपेण तस्याश्च स ददाह महाश्रमम्। चकर्ष वायुरूपेण महोग्रेण च तां शुभाम्।
एवं सिंहवृकाद्याभिर्भीषिकाभिः पुनः पुनः॥८०॥

उस महाभागा नारी ने क्षमाशीलता के कारण कभी भी क्रोध नहीं किया। तब इन्द्र ने शृगाल रूप धारण करके उसके आश्रम को दूषित तथा भ्रष्ट करना प्रारम्भ किया। कभी वे अग्नि रूप से आश्रम दग्ध करते, कभी वायु रूप से बहकर उस पतिव्रता को वहां से उड़ाकर फेंकने का प्रयत्न करते। इन्द्र इसी प्रकार सिंह-व्याघ्रादि नाना रूप से भय प्रदर्शन करते जाते!।।७९-८०।।

विरराम यदा नैव वज्राङ्गमहिषो तदा। शैलस्य दुष्टतां मत्वा शापं दातुं व्यवस्यत॥८१॥
तां शापाभिमुखींदृष्ट्वा शैलः पुरुषविग्रहः।
उवाच तां वरारोहां त्वरयाऽथसुलोचनाम्॥८२॥

शैल उवाच

नाहं महाव्रते दुष्टः सेव्योऽहं सर्वदेहिनाम्। अतिखेदं करोत्येष ततः क्रुद्धस्तु वृत्रहा॥८३॥
एतस्मिन्नन्तरे जातः कालो वर्षसहस्त्रिकः। तस्मिन्याते स भगवान्कालेकमलसम्भवः॥८४॥
तुष्टः प्रोवाच वज्राङ्गं तमागम्य जलाशये॥८५॥

जब इन्द्र इस प्रकार की विभीषिका दिखलाने से नहीं रुके, तब वज्राङ्ग की रानी ने पर्वत का ही दोष मानकर उसे शाप देना चाहा। तब पर्वत ने रानी को शापोद्यत जानकर मनुष्य मूर्त्ति धारण करके वहां आकर उस वरारोहा सुलोचना से कहा—"हे महाव्रते! मैं दुष्ट नहीं हूं। मैं तो सभी प्राणियों द्वारा सेवित हूं। तुम्हारी तपस्या से क्रोधित इन्द्र ही तुम्हारे ऊपर अत्याचार कर रहा है।" इस प्रकार से पुनः १००० वर्ष व्यतीत होने पर कमलयोनि ब्रह्मा उस जलाशय के पास प्रसन्नता पूर्वक आये। उन्होंने वज्राङ्ग से कहा।।८१-८५।।

ब्रह्मोवाच

ददामिसर्वकामांस्ते उत्तिष्ठ दितिनन्दन। एवमुक्तस्तदोत्थाय दैत्येन्द्रस्तपसो निधिः।
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं सर्वलोकपितामहम्॥८६॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे दितिनन्दन! तुम तप छोड़ कर उठो। मैं तुम्हारी समस्त कामना सफल करूंगा।।८६।।

वज्राङ्ग उवाच

आसुरोभेऽस्तुमाभावःशक्रराज्येच मा रतिः। तपोधर्मरतिश्चाऽस्तुवृणोम्येतत्पितामह॥८७॥

वज्राङ्ग कहता है—हे प्रभो! मुझे आसुरी भाव का उन्मेष न हो। इन्द्र के राज्यैश्वर्य के प्रति मुझमें तनिक भी लालच न हो। तप तथा धर्म में ही मेरी अनुरक्ति बनी रहे। हे पितामह! मैं यही वर चाहता हूं।।८७।।

एवमस्त्विति तं ब्रह्मा प्राह विस्मितमानसः। उपेक्षतेचशक्रं स भाव्यर्थं कोऽतिवर्तते॥८८॥
ऋषयो मनुजा देवाः शिवब्रह्मुखा अपि। भाव्यर्थं नाऽतिवर्तन्ते वेलामिवमहोदधिः॥८९॥
इतिचिन्त्यविरिञ्चोऽपितत्रैवाऽन्तरधीयत। वज्राङ्गोऽपिसमाप्ते तु तपसि स्थिरसंयमः॥९०॥
आहारमिच्छन्स्वांभार्यांनददर्शाऽऽश्रमेस्वके। भार्याहीनोऽफलश्चेतिससञ्चिन्त्यइतस्ततः॥९१॥

ब्रह्मा यह सुनकर विस्मित हो गये। उन्होंने कहा "यही हो" वज्राङ्ग ने वास्तव में शत्रु की उपेक्षा किया था। भवितव्यता का अतिक्रमण कौन कर सकता है? जैसे महासागर अपनी तटभूमि का अतिक्रमण नहीं कर पाता, वैसे ही मनुष्य, ऋषि, देवता, ब्रह्मा तथा शिव भी भावी का अतिक्रमण नहीं ही कर सकते हैं। विधाता ब्रह्मा यह जानकर वहां से अन्तर्हित हो गये। इस प्रकार दृढ़ संयमी वज्राङ्ग भी तप समाप्त करके आहारार्थ आश्रम आया, परन्तु वहां अपनी पत्नी को नहीं पाया। तब उसने सोचा कि भार्या रहित सब कुछ विफल है।।८८-९१।।

विलोकयन्स्वकां भार्यां विधित्सुःकर्म नैत्यकम्।
विलोकयन्ददर्शाऽथ इहाऽमुत्रसहायिनीम्॥९२॥
रुंदन्तीं स्वां प्रियां दीनां तरुप्रच्छादिताननाम्।
तां विलोक्य ततो दैत्यः प्रोवाच परिसान्त्वयन्॥९३॥

वज्राङ्ग उवाच

केनतेऽपकृतं भीरु! वर्तन्त्यास्तपसिस्वके। कथं रोदिषि वा बाले मयिजीवति भर्तरि।
कं वा कामं प्रयच्छामि शीघ्रं प्रब्रूहि भामिनि!॥९४॥
गृहेश्वरीं सद्गुणभूषितां शुभां पङ्गुग्वन्धयोगेन पतिं समेताम्।
न लालयेत्पूरयेन्नैव कामं स किम्पुमान्न पुमान्मे मतोऽस्ति॥९५॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कुमारेश्वरमहात्म्ये वज्राङ्गेतिहासवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥

तब वह अपनी इहकालीन तथा परकालीन सहायिका पत्नी को देखने इतःस्ततः खोजने लगा, तदनन्तर उसने तरु गुल्मों से आच्छादित स्थान पर दीन तथा रोदन करती पत्नी को देखकर कहा—"हे बाले! क्यों रो रही हो। मेरे जीवित रहते क्यों रुदन कर रही हो? हे भामिनी! मैं तुम्हारी कौन सी कामना पूर्ण करूं? शीघ्र कहो! अन्धे तथा लंगड़े के मिलन की तरह पत्नी-पति का मिलन ही संसार यात्रा का सुख है (अन्धा लंगड़े को चलने में सहारा देता है, लंगड़ा अन्धे को मार्ग दिखलाता है। दोनों एक-दूसरे में जो कमी है, उसके पूरक होते हैं, वैसे ही पति-पत्नी आपस में एक-दूसरे के पूरक हैं)। अतः सद्गुण भूषिता पतिगत्प्राणा शुभा गृहेश्वरी का जो आदर यत्न नहीं करता तथा उसकी इच्छा पूर्त्ति नहीं करता, मेरे मत से वह पुरुष ही नहीं है"॥९२-९५॥

॥चतुर्दश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

पञ्चदशोऽध्यायः

कुमारेश महिमा, तारक उत्पत्ति, तारक दैत्य का युद्धार्थ सैन्य आवाहन

वराङ्ग्युवाच

नाशितास्म्यपविद्धाऽस्मित्रासितापीडिताऽस्मिच। रौद्रेणदेवनाथेननष्टनाथेवभूरिशः॥१॥
दुःखपारमपश्यन्तीप्राणांस्त्यक्तुंव्यवस्थिता। पुत्रं मे घोरदुःखस्य तारकंदेहि चेत्कृपा॥२॥
एवमुक्तस्तुदैत्येन्द्रो दुःखितोऽचिन्तयद्धृदि। आसुरेष्वपिभावेषुस्पृहायद्यपिनास्तिमे॥३॥
तथापि मन्ये शास्त्रेभ्यस्त्वनुकम्प्या प्रियेति यत्। सर्वाश्रमानुपादाय स्वाश्रमेण कलत्रवान्॥४॥
व्यसनार्णवमत्येति जलयानैरिवार्णवम्। यामाश्रित्येन्द्रियारातीन्दुर्जयानितराश्रयैः॥५॥

गेहिनो हेलयाजिग्युर्दस्यून्दुर्गपतिर्यथा। न केऽपिप्रभवस्तां चाऽप्यनुकर्तुं गृहेश्वरीम्॥६॥

वरांगी रानी कहती है—मैं अनाथा जैसी दुरन्त देवेन्द्र द्वारा अनेक बार त्रस्त की गयी, मैं पीड़िता, आहता होकर फेंकी (वायु प्रवाह से) भी गयी। तदनन्तर क्लेश सागर पार कर सकने में अक्षम होकर प्राणों के त्याग का भी प्रयास किया। अब यदि आपकी कृपा हो जाये, तब जो मुझे इस घोर दुःख से पार कराये, ऐसा पुत्र प्रदान करिये। दैत्येन्द्र वज्राङ्ग ने पत्नी की यह बात सुनकर दुःखित चित्त से चिन्तन किया कि यद्यपि मेरी आसुर भाव में रुचि नहीं है, तथापि शास्त्र की आलोचना से यह विदित होता है कि अपनी पत्नी पर अनुग्रह करना कर्त्तव्य है। जैसे जलयान से समुद्र पार कर लिया जाता है, उसी प्रकार पत्नीवान् गृहस्थ अन्य आश्रमों को प्राप्त करके वासना रूपी समुद्र को पार कर लेता है। गृहस्थ व्यक्ति दुर्गपति के समान अन्य की सहायता से दस्युवर्ग जैसी इन्द्रियों को अनायास जीत लेते हैं। धर्म सम्बन्ध में कोई भी गृहेश्वरी की बराबरी समस्त जीवन में नहीं कर सकता!।।१-६।।

अथाऽऽयुषावाकात्स्न्र्येनधर्मे दित्सुर्यथैवच। यस्यांभवतिचात्मैवततोजाया निगद्यते॥७॥
भर्तव्याएव यस्माच्च तस्माद्भार्येति सा स्मृता। सा एवगृहमुक्तंचगृहिणीसाततःस्मृता॥८॥
संसारकल्मषात्त्रात्रीकलत्रमितिसा ततः। एवंविधां प्रियां को वै नाऽनुकम्पितुमर्हति॥९॥

पत्नी द्वारा आत्मा ही पुत्ररूपेण जन्म लेती है। तभी उसे 'जाया' कहते हैं। वह जाया (पत्नी) सर्वदा भरण-पोषण योग्य होती है। तभी उसे भार्या कहा गया। भार्या से ही गृहाश्रम सिद्ध होता है। तभी उसे गृहिणी कहा गया है। वह संसार के कल्मषों से पार कराती है, तभी उसे कलत्र कहते हैं। ऐसी प्रिया के प्रति कौन कृपा नहीं करेगा?।।७-९।।

त्रीणि ज्योतींषिपुरुषइति वै देवलोऽब्रवीत्। भार्याकर्मचविद्याचसंसाध्यंयत्नतस्त्रयम्॥१०॥
तदेनांपीडितां चेद्यः पतिर्भूत्वा न पालये। ततो यास्ये शास्त्रवादान्नरकान्तं न संशयः॥११॥
अहमप्येनमिन्द्रं वै शक्तोजेतुंयथानृणाम्। पुनःकामंकरिष्येऽस्यादास्येपुत्रंमहाबलम्॥१२॥
इति सञ्चिन्त्यवज्राङ्गः कोपव्याकुललोचनः। प्रतिकर्तुं महेन्द्राय तपोभूयो व्यवस्यत॥१३॥
ज्ञात्वातु तस्यसङ्कल्पं ब्रह्मा क्रूरतरम्पुनः। आजगाम त्वरायुक्तो यत्राऽसौदितिनन्दनः॥१४॥
उवाचैनं स भगवान्प्रभुर्मधुरया गिरा॥१५॥

देवल मुनि ने पूर्वकाल में कहा है कि पुरुष की पत्नी, पुत्र तथा विद्या, ये तीनों ज्योतिःरूप हैं। इन तीनों की रक्षा यत्नतः करे। पत्नी पीड़ित हुई है, यदि मैं पति होकर उसका पालन नहीं करता, तब शास्त्रानुसार मैं निःसंदिग्ध रूप से नरकगामी हो जाऊंगा। मैं भी इन्द्र को जीत कर पत्नी को सन्तुष्ट कर सकता हूं, तथापि स्वयं वह न करके इसे एक पुत्र प्रदान करता हूं। वज्राङ्ग ने कोप से चंचल हो गये नेत्रों से यह चिन्तन किया तथा महेन्द्र से बदला लेने हेतु पुनः तपःश्चरण में लग गया। तब ब्रह्मा उसके क्रूर संकल्प को जानकर दितिपुत्र वज्राङ्ग के पास त्वरित रूप से आये तथा प्रेमपूर्वक मधुर वाक्य कहने लगे।।१०-१५।।

ब्रह्मोवाच

किमर्थं भूय एव त्वं नियमंक्रूरमिच्छसि। आहाराभिमुखोदैत्यतन्मेब्रूहि महाव्रतः॥१६॥
यावनब्दसहस्त्रेणनिराहारेण वै फलम्। त्यजता प्राप्तमाहारं लब्धं ते क्षममात्रतः॥१७॥

त्यागो ह्यप्राप्तकामानांन तथा च गुरुःस्मृतः। यथाप्राप्तंपरित्यज्यकामं कमललोचन।
श्रुत्वैतद्ब्रह्मणो वाक्यं दैत्यःप्राञ्जलिरब्रवीत्॥१८॥

दैत्य उवाच

पत्न्यर्थेऽहं करिष्यामि तपोघोरं पितामह! पुत्रार्थमुद्यतश्चाऽहं यःस्याद्वीर्वाणदर्पहा॥१९॥
एतच्छ्रुत्वावचोदेवः पद्मगर्भोद्भवस्तदा। उवाच दैत्यराजानं प्रसन्नश्चतुराननः॥२०॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे महाव्रत दैत्य! तुम आहारार्थी होकर नियम का व्यतिक्रम करके सहसा नियम पालन में संलग्न होकर कठोर तपःश्चरण कर रहे हो? मुझसे कहो। १००० वर्ष आहार त्याग का जो फल है, तुम प्राप्त आहार का परिहार करके क्षणमात्र में उसका फल पा जाओगे। हे कमललोचन! अप्राप्त काम्य विषय भोग में ऐसा फल नहीं होता। ब्रह्मा का यह वचन सुनकर वज्राङ्ग ने कहा—"हे पितामह! मैंने पत्नी के कार्य के लिए पुनः तप प्रारम्भ किया है। मैं देवताओं के दर्प का हरण करने वाला पुत्र चाहता हूं।" पद्मजन्मा चतुरानन ने दैत्य का वचन सुनकर कहना प्रारम्भ किया।।१६-२०।।

ब्रह्मोवाच

अलन्ते तपसा वत्से मा क्लेशे विस्तरे विश। पुत्रस्ते तारकोनामभविष्यतिमहाबलः॥२१॥
देवसीमन्तिनीकाम्यधम्मिल्लक विमोक्षणः। इत्युक्तो दैत्यराजस्तु प्रणम्य प्रपितामहम्॥२२॥
विसृज्यगत्वा महिषींनन्दयामासतांमुदा। तौ दम्पती कृतार्थौंचजग्मतुश्चाऽऽश्रमंतदा॥२३॥
आहितं च ततो गर्भं वराङ्गी वरवर्णिनी। पूर्णं वर्षसहस्रं तु दधारोदर एव हि॥२४॥
ततो वर्षसहस्त्रान्ते वराङ्गी समसूयत। जायमाने तु दैत्येन्द्रे तस्मिंल्लोकभयङ्करे॥२५॥
चचोल सकलापृथ्वी प्रोद्धूताश्च महार्णवः। चेलुर्धराधराश्चापिववुर्वाताविभीषणाः॥२६॥

ब्रह्मा कहते हैं—"हे दितिनन्दन! तुम और तप मत करो। अब और क्लेश सहने का कोई प्रयोजन नहीं है। तुम्हारा एक महाबली पुत्र तारक उत्पन्न होगा। वह पुत्र देवपत्नीगण के संयत केशपाश का विमोक्षण करेगा। (उनके पतिगण का संहार करेगा)।" दैत्यराज यह वर पाकर प्रपितामह को प्रणाम करके तथा तपस्या छोड़कर गये तथा अपनी रानी का अभिनन्दन किया। तब दैत्य दम्पति कृतार्थ मन से अपने आश्रम वापस आ गये। तदनन्तर वरवर्णिनी रानी वराङ्गी ने गर्भ धारण किया। १००० वर्ष गर्भ धारण करने पर तब वह पुत्र जन्मा। उस लोकभयंकर पुत्र का जन्म होने पर समस्त पृथिवी कम्पित होने लगी। महासमुद्र उद्वेलित हो उठे। समस्त प्राणी विचलित हो गये। अत्यन्त कठोर वायु भीषणरूपेण प्रवाहित होने लगी।।२१-२६।

जेपुर्जव्यं मुनिवरा व्याधविद्धा मृगा इव। जहुःकान्तिंचसूर्याद्यानीहाराश्छादयन्दिशः॥२७॥
जाते महासुरेतस्मिन्सर्वएव महासुराः। आजग्मुर्हर्षितास्तत्र तथाचाऽसुरयोषितः॥२८॥
जगुर्हर्षसमाविष्टा ननृतुश्चाऽसुराङ्गनाः। ततो महोत्सवे जाते दानवानां पृथासुत!॥२९॥
विषण्णमनसोदेवाः समहेन्द्रास्तदाऽभवन्। जातमात्रस्तुदैत्येंद्रस्तारकश्चण्डविक्रमः॥३०॥
अभिषिक्तोऽसुरो दैत्यैः कुरङ्गमहिषादिभिः। सर्वासुरमहाराज्ये युतः सर्वैर्महासुरैः॥३१॥

उस समय मुनिगण की हालत व्याधविद्ध मृग के समान हो गयी। वे भयभीत स्थिति में अपने-अपने इष्टमन्त्र का जप करने लगे। सूर्यादि ग्रहगण कान्तिहीन हो गये। नीहार से दशों दिक् आच्छन्न हो गये। उस महासुर के जन्म होने पर तब समस्त महासुरगण हर्षित होकर आ गये। असुराङ्गनायें आकर हर्षपूर्वक नृत्यगीत करने लगीं। हे पृथानन्दन! असुरगण के महोत्सव के आरम्भ होने पर इन्द्रादि देवता तब विषन्न हो पड़े। उस चण्डविक्रम तारक के जन्म होते ही कुरंग-महिषादि दैत्यों ने उसका समस्त असुरों के राज्यपद पर अभिषेक किया।।२७-३१।।

स तु प्राप्तमहाराज्यस्तारकः पाण्डुसत्तम!। उवाचदानवश्रेष्ठान्युक्तियुक्तमिदं वचः॥३२॥
शृणुध्वमसुराः सर्वे वाक्यं मम महाबलाः।श्रुत्वा वःस्थेयसीबुद्धिः क्रियतांवचनेमम॥३३॥
अस्माकं जातिधर्मेण विरूढंवैरमक्षयम्। करिष्याम्यहं तद्वैरं तेषां च विजयाय च॥३४॥
किं तु तत्तपसासाध्यं मन्येऽहंसुरसङ्गमम्। तस्मादादौकरिष्यामितपोघोरंदनोःसुताः॥३५॥
ततःसुरान्विजेष्यामोभोक्ष्यामोऽथजगत्त्रयम्। युक्तोपायोऽहिपुरुषःस्थिरश्रीरेवजायते॥३६॥
अयुक्तश्चपलः प्राप्तामपि रक्षितुमक्षमः। तच्छुत्वा दानवाः सर्वे वाक्यंतस्याऽसुरस्य तु॥३७॥
साधुसाध्वित्यथोचुस्ते वचनं तस्य विस्मिताः। सोऽगच्छत्पारियात्रस्य गिरेःकन्दरमुत्तमम्॥३८॥

हे पाण्डवप्रवर! उस तारक ने महाराज्य पर अभिषिक्त होकर प्रधान दानवों से यह वाक्य कहा—"हे महाबली असुरगण! आप सभी मेरा वाक्य सुनें। मेरे कथन के अनुसार बुद्धि स्थिर करें। जातिधर्मानुरूप हमारा देवगण के साथ वैरभाव दृढ़ है। इनका क्षय होना सम्भव नहीं है। मैं भी विजयलाभार्थ उनके साथ वैर करूंगा, तथापि देवगण के साथ विग्रह करना तपस्या साध्य कृत्य ही है। अतएव हे दानवों! पहले मैं कठोर तप करूंगा। तत्पश्चात् देवगण को पराजित करके तीनों लोकों का उपभोग करूंगा। युक्तियुक्त उपाय का अवलम्बन करके पुरुष स्थिर श्रीलाभ कर लेता है। परन्तु बुद्धिरहित चपल व्यक्ति द्वारा प्राप्य श्री की भी रक्षा नहीं कर सकता।" सभी दानवगण ने तारकासुर का यह वाक्य सुनकर विस्मित चित्त से उसे साधुवाद दिया तथा प्रशंसा करने लगे। तब दैत्यराज तारक तपस्या हेतु—पारियात्रा पर्वत की उत्तम कन्दरा में चला गया।।३२-३८।।

सर्वर्तुकुसुमाकीर्णनानौषधिविदीपितम्। नानाधातुरसस्त्राविचित्रनानागृहाश्रयम्॥३९॥
अनेकाकारबहुलं पृथक्पक्षिकुलाकुलम्। नानाप्रस्त्रवणोपेतं नानाविधजलाशयम्॥४०॥
प्राप्य तत्कन्दरं दैत्यश्चकारविपुलं तपः। वहन्पाशुपतीं दीक्षां पञ्चमन्त्राञ्जजाप सः॥४१॥

यह कन्दरा सभी ऋतुओं वाले पुष्पों से समाकीर्ण, नाना औषधि से समुज्वल, नाना धातु रसस्राव से युक्त, चित्र-विचित्र गृह समूह से समन्वित, अनेक प्रकार के आकार से सम्पन्न, अनेक पक्षियों से युक्त, नाना प्रस्रवण से समुपेत तथा नाना जलाशय से शोभित थी। दैत्यराज तारक ने इस कन्दरा को प्राप्त करके पाशुपत दीक्षा ग्रहण करके पञ्चमन्त्र जप में तत्पर होकर विपुल तप प्रारम्भ कर दिया।।३९-४१।।

निराहारःपञ्चतपा वर्षायुतमभूत्किलः। ततः स्वदेहादुत्कृत्त्य कर्षंकर्षं दिनेदिने॥४२॥
मांसस्याऽग्नौ जुहावैव ततो निर्मांसतां गतः। ततो निर्मांसदेहःस तपोराशिरजायत॥४३॥
जज्वलुः सर्वभूतानि तेजसा तस्य सर्वतः। उद्विग्नाश्चसुराः सर्वे तपसा तस्यभीषिताः॥४४॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा परमंतोषमागतः। तारकस्य वरं दातुं जगाम शिखरं गिरेः॥४५॥

प्राप्य तं सैलराजानं हंसस्यन्दनमास्थितः। उवाच तारकं देवो गिरा मधुरया तदा॥४६॥

उसने पहले निराहार रहकर चारों ओर ५ अग्नि जलाकर उसके मध्य में बैठे हुये १०००० वर्ष तप किया। तत्पश्चात् अपनी देह से नित्य एक-एक कर्ष वजन का मांस काटकर उससे अग्नि में आहुति देने लगा। इस प्रकार से वह क्रमशः मांसहीन होकर तपः की राशिवत् प्रतीत होने लगा। उसके तपःतेज से सभी प्राणीगण संतप्त हो उठे। देवता उसकी तपस्या से भयभीत तथा उद्विग्न हो गये। तब ब्रह्मा ने अत्यन्त सन्तुष्ट होकर उस गिरिशिखर पर आगमन किया। देवदेव ब्रह्मा हंस पर आरोहण करके उस गिरिवर पर उतरे तथा तारकासुर से मधुर वाक्य में कहने लगे।।४२-४६।।

ब्रह्मोवाच

उत्तिष्ठ पुत्र तपसोनास्त्यसाध्यंतवाऽधुना। वरं वृणीष्वाऽभिमतं यत्ते मनसि वर्तते॥४७॥
इत्युक्तस्तारको दैत्यः प्राञ्जलिः प्राह तं विभुम्॥४८॥

ब्रह्मदेव कहते हैं—वत्स! उठो! अब तुम्हारी तपस्या द्वारा कुछ भी अगम्य नहीं है। अपना अभिमत वर ग्रहण करो। तारक ने ब्रह्मा का यह वाक्य सुनकर कृताञ्जलि होकर प्रभु ब्रह्मा से कहा।।४७-४८।।

तारक उवाच

वयं प्रभो! जातिधर्माःकृतवैराःसहामरैः। तैश्च निःशेषितादैत्याः कृताः क्रूरैर्नृशंसवत्॥४९॥
तेषामहं समुद्धर्ता भवेयमिति मे मतिः। अवध्यः सर्वभूतानामस्त्राणां च महौजसाम्॥५०॥
स्यामहं चामरैश्चैष वरो मम हृदि स्थितः। एतन्मे देहि देवेश! नान्यं वै रोचये वरम्॥५१॥

तारक कहता है—"हे प्रभो! मैं अपनी जाति के धर्मानुसार देवगण के साथ वैरभाव का पोषण करूंगा। क्रूर देवगण ने नृशंसता के साथ दैत्यों का नाश किया है। मैं उन देवताओं को उखाड़ फेंकूंगा। यही मेरी कामना है। मैं सभी प्राणीगण तथा सभी अस्त्रों से अवध्य हो जाऊं। देवगण भी मुझे विजित न कर सकें। यही मेरी कामना है। महावीर्य प्राणी भी मुझे न जीत सकें। यही वर मुझे चाहिये। मुझे अन्य वर नहीं चाहिये"।।४९-५१।।

तमुवाचततो दैत्यं विरञ्चोऽमरनायकः। न युज्यते विना मृत्युं देहिनो देहधारणम्।
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः सत्यमेतच्छ्रुतीरितम्॥५२॥
इति सञ्चिन्त्य वरय वरं यस्मान्न शङ्कसे। ततः सञ्चिन्त्यदैत्येन्द्रःशिशुतःसप्तवासरात्॥५३॥

तारक उवाच

वासराणां च सप्तानां वर्जयित्वातुबालकम्। देवानामप्यवध्योऽहंभूयासंतेनयाचितः॥५४॥

अमरनायक विभु ब्रह्मा ने तब तारक से कहा—"देही मृत्यु रहित होकर देह धारण किये रहें, यह संभव नहीं है। जिसका जन्म हुआ, उसकी मृत्यु निश्चित होगी। यही सत्य श्रुति में कहा गया है। तुम इसकी विवेचना करके ऐसा वर मांगो, जिससे तुम निःशंक हो सको।" ब्रह्मदेव का यह वाक्य सुनकर दैत्यपति तारक ने किंचित् विचार करके कहा।" तारक कहता है—"मात्र सात दिन आयु का बालक ही मेरा वध कर सके। अन्य देवगण से मैं अवध्य रहूं। देवता भी मेरा वध न कर सकें। यही वर मुझे चाहिये"।।५२-५४।।

वव्रेमहासुरोमृत्युंब्रह्माणं मानमोहितः। ब्रह्मा प्रोचे ततस्तं च तथेति हरवाक्यतः॥५५॥
जगाम त्रिदिवं देवो दैत्योऽपिस्वकमालयम्। उत्तीर्णं तपसस्तंचदैत्यंदैत्येश्वरास्तदा॥५६॥
परिवव्रुः फलाकीर्णं वृक्षं शकुनयोयथा। तस्मिन्महति राजस्थे तारके दितिनन्दने॥५७॥
ब्रह्मणाऽभिहितस्थाने महार्णवतटोत्तरे। तरवो जज्ञिरे पार्थ तत्र सर्वर्तवः शुभाः॥५८॥

महासुर तारक ने गर्व के मोह में भरकर ब्रह्मा से यही वर मांगा। ब्रह्मा ने भी शिव के वाक्यानुसार उससे 'तथास्तु' कहा तथा अपने धाम चले गये। तारक भी अपने भवन वापस लौट आया। तब वहां प्रधान-प्रधान दैत्यों ने तारक को तपस्या में सफल होकर आया जान कर उसे ऐसे घेर लिया, जैसे फल से भरे वृक्ष को पक्षी घेर लेते हैं। दैत्यराज तारक असुर राज्य का पालन करने में प्रवृत्त हो गया। हे पार्थ! ब्रह्मा ने उसे महासागर के उत्तर तट पर राजधानी स्थापित करने का उपदेश दिया। उसने भी ब्रह्मदेव के आदेशानुसार वहीं शुभ राजधानी स्थापित कर दिया।।५५-५८।।

कान्तिर्द्युतिर्धृतिर्मेधा श्रीरखण्डा च दानवम्। परिवव्रुर्गुणाकीर्णनिश्छिद्राःसर्वएवहि॥५९॥
कालागरुविलिप्ताङ्गं महामुकुटमण्डितम्। रुचिराङ्गदसन्नद्धं महासिंहासने स्थितम्॥६०॥
नृत्यन्त्यप्सरसः श्रेष्ठागन्धर्वागाययन्ति च। चन्द्रार्कौदीपमार्गेषुव्यजनेषु च मारुतः।
ग्रहा अग्रेसरास्तस्य जीवादेशप्रभाषिणः॥६१॥
एवं स्वकाद्बहुबलात्स दैत्यः सम्प्राप्य राज्यं परिमोदमानः।
कदाचिदाभाष्य जगाद मन्त्रिणः प्रोद्धत्तसर्वाङ्गबलेन दर्पितः॥६२॥

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कुमारेशमाहात्म्ये तारकासुरोत्पत्तिवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः।।१५।।

वहां सभी ऋतुओं के वृक्ष जो सुखदायक रूप थे, उत्पन्न हो गये। अखण्डिता कीर्त्ति, द्युति, धृति, मेधा तथा श्री ने उसे परिवेष्ठित कर लिया। वह सर्वदा दोष सम्पर्क रहित तथा सर्वगुण से परिपूर्ण था। वह सर्वदा कृष्ण अगुरु का विलेपन देह में लगाता तथा महामुकुट मण्डित एवं मनोहर बाजूबन्द आभूषण से भूषित रहता था। वह महान् सिंहासनासीन होकर अप्सराओं के नृत्य तथा गन्धर्वगण के गायन से आमोदित रहता था। चन्द्र-सूर्य उसके दीप का कार्य करते थे। वायुदेव उसे पंखा झलते थे। ग्रहगण उसके आगे खड़े होकर "आप जीवित रहें, आदेश दीजिये" इत्यादि शब्दोच्चार से उसका अभिनन्दन करते रहते। वह दैत्य इस प्रकार अपने बाहुबल से समुपार्जित राज्य प्राप्त करके सुखभोग करने लगा। तदनन्तर एक बार अपने बाहुबल से दर्पित होकर अपने मन्त्रियों से कहा।।५९-६२।।

॥पञ्चदश अध्याय समाप्त॥

षोडशोऽध्यायः

तारक-इन्द्र युद्ध उपक्रम, युद्धवर्णन, इन्द्र-बृहस्पति विमर्श

तारक उवाच

राज्येनबुद्बुदाभेन स्त्रीभिरक्षैश्च पानकैः। मोहितो जन्म लब्ध्वाऽत्र त्यजतेपौरुषंनरः॥१॥
जन्म तस्य वृथा सर्वमाकल्पान्तं न संशयः॥२॥
मातापितृभ्यां न करोति कामान्वन्धूनशोकान्न करोति यो वा।
कीर्तिं हि वा नाऽर्जयते न मानं नरः स जातोऽपि मृतोऽत्र लोके॥३॥
तस्माज्जयायाऽमरपुङ्गवानां त्रैलोक्यलक्ष्मीहरणाय शीघ्रम्।
संयोज्यतां मे रथमष्टचक्रं बलं च मे दुर्जयदैत्यचक्रम्॥४॥
ध्वजं च मे काञ्चनपट्टबन्धं छत्रं च मे मौक्तिकजालबद्धम्।
अद्याऽहमासां सुरकामिनीनां धम्मिल्लकांश्चाऽग्रथितान्करिष्ये॥५॥
यथा पुरा मकटको जनन्यास्तस्याश्च सत्येन तु तारकः स्याम्॥६॥

तारक (मन्त्रीगण से) कहता है—मनुष्य इस लोक में जन्म लेकर बुदबुद समान (अस्थायी क्षणभंगुर) राज्य, श्री, पेय, द्यूत से मोहित होकर पुरुषत्वहीन हो जाता है। ऐसा व्यक्ति यदि कल्पान्त पर्यन्त जीवित रहता भी है, तब भी उसका जन्म व्यर्थ है। इसमें संशय नहीं है। जो इहलोक में जन्म लेकर पिता-माता की कामना पूर्ण नहीं करता, बन्धुगण के शोक का नाश नहीं करता, कीर्त्ति तथा सम्मान का अर्जन नहीं करता, वह मृतक के समान है। इसलिए देवगण की पराजय का साधन करने हेतु एवं त्रैलोक्य लक्ष्मी का हरण करने के लिए मेरा अष्टचक्र रथ जोतना आवश्यक है। दुर्जय दैत्यगण युद्धार्थ सज्जित हो जायें। मेरा काञ्चन पट्टबद्ध ध्वज उत्तोलित किया जाये। मुक्ताजाल से मण्डित छत्र बाहर लाया जाये। अब मैं देवांगनाओं के संयत केशों को उन्मुक्त करूंगा (उनको विधवा बनाऊंगा)। पूर्वकाल में इन्द्र ने जो वानररूप धर कर मेरी जननी को उत्पीड़ित किया था, मैं सत्य रूप से माता के उस दुःख को तारने वाला बनूंगा।।१-६।।

नारद उवाच

तारकस्य वचःश्रुत्वाग्रसनोनामदानवः। सेनानीर्दैत्यराजस्य तथा चक्रेऽविलम्बितम्॥७॥
आहत्य भेरीं गम्भीरां दैत्यानाहूय सत्वरः। सज्जंचक्रे रथं दैत्योदैत्यराजस्यधीमतः॥८॥

नारद कहते हैं—हे अर्जुन! तारक के आदेशानुसार उसके ग्रसन नामक सेनापति ने समस्त व्यवस्था सम्पन्न किया। उसने गंभीर भेरीवादन कराकर दैत्यों का आह्वान किया तथा उसने सबको युद्धार्थ सज्जित होने का आदेश प्रदान किया। तत्पश्चात् धीमान् दैत्यपति तारक का रथ सजाया गया।।७-८।।

गरुडानां सहस्त्रेण गरुडोपमितत्विषा। ते हि पुत्राः स्ववर्णस्य संस्थिता मेरुकन्दरे॥९॥
विजित्य दैत्यराजेन वाहनत्वे प्रकल्पिताः। अष्टाष्टचक्रः सरथश्चतुर्योजनविस्तृतः॥१०॥

नानाक्रीडागृहयुतो गीतवाद्यमनोहरः। गन्धर्वनगराकारः संयुक्तः प्रत्यदृश्यत॥११॥
आजग्मुस्तत्रदैत्याश्चदशचण्डपराक्रमाः। कोटिकोटिपरीवारा अन्ये च बहवो रणे॥१२॥
तेषामग्रेसरो जम्भः कुजम्भोऽनन्तरस्तथा। महिषः कुञ्जरो मेषः कालनेमिर्निमिस्तथा॥१३॥
मथनोजम्भकःशुम्भोदैत्येन्द्रादशनायकाः। दैत्येन्द्रागिरिवर्ष्माणःसन्तिचण्डपराक्रमाः॥१४॥
नानाविधप्रहरणा नानाशस्त्रास्त्रपारगाः। तारकस्याभवत्केतुर्बहुरूपो महाभयः॥१५॥

क्वचिच्च राक्षसोघोरः पिशाचध्वाङ्क्षगृध्रकः।
एवं बहुविधाकारः सकेतुः प्रत्यदृश्यत॥१६॥

केतुना मकरेणाऽपि सेनानीर्ग्रसनो बभौ। पैशाचंयत्र वदनंजम्भस्याऽऽसीदयस्मयम्॥१७॥
खरोविधुतलाङ्गूलःकुजम्भस्याऽभवद्ध्वजे। महिषस्यचगोमायुःकान्तोहैमस्तथाबभौ॥१८॥
गृध्रोवैकुञ्जरस्याऽऽसीन्मेषस्याऽभूच्चराक्षसः। कालनेमेर्महाकालोनिमेरासीन्महातिमिः॥१९॥

राक्षसीमथनस्याऽपि ध्वाङ्क्षोऽभूज्जम्भकस्य च।
महावृकश्च शुम्भस्य ध्वजाएवम्विधावभुः॥२०॥

मेरु पर्वत की कन्दरा में गरुड़ के १००० पुत्र निवास करते थे। दैत्यराज ने उनको पराजित किया तथा उनको अपना रथ चलाने हेतु ले आया। उन १००० गरुड़ों को उसमें योजित किया गया। उस रथ का विस्तार था ४ योजन। वह ६४ चक्रयुक्त था वह विविध क्रीड़ागृह समन्वित तथा विविध मनोहर गीत वाद्य से निनादित था। वह गन्धर्व नगराकार में दृष्ट हो रहा था। क्रमशः जम्भ, कुजम्भ, महिष, कुञ्जर, मेष कालनेमि, मथन, जम्भक तथा शुंभ, ये १० पर्वत के समान शरीरधारी चण्डपराक्रम दैत्यनायक आकर उपस्थित हो गये। उनके साथ अन्य करोड़ों-करोड़ों दैत्य आये। ये सभी नाना अस्त्र-शस्त्र में पारंगत तथा सभी नाना अस्त्र-शस्त्र से भूषित थे। तारकासुर का रथध्वज बहुरूपी तथा महान् भयप्रद था। वे कभी राक्षस का, तो कभी पिशाच का, कभी काक का, कभी गृध्र का रूप धारण कर लेते थे। सेनापति प्रसेन का रथध्वज मकराकार था। जंभासुर का रथध्वज लौहमय तथा पिशाचमुखयुक्त था। कुंजर का रथध्वज लांगूल क्षेपकारी गर्दभयुक्त था। महिष का रथध्वज मनोरम हैम गोमायु (शृगाल) युक्त था। कुंजरासुर का रथध्वज गृध्रयुक्त था। मेषासुर का ध्वज राक्षससमन्वित, कालनेमि का ध्वज महाकाल मूर्त्तियुक्त, निमि का ध्वज महान् तिमियुक्त, मंथन का ध्वज राक्षसीमूर्त्ति युक्त, जम्भक का ध्वज काक चिह्न से चिह्नित था। शुंभ का रथध्वज महान् भेड़िया चिह्न से समन्वित था। अन्य दैत्यों का ध्वज नाना चिह्न विन्यास से शोभित था।।९-२०।।

अनेकाकारविन्यासादन्येषां च ध्वजा भवन्। शतेन शीघ्रवेगानां व्याघ्राणां हेममालिनाम्॥२१॥
ग्रसनस्य रथो युक्तो महामेघरवो बभौ। शतेन चाऽपिसिंहानां रथोजम्भस्ययोजितः॥२२॥
कुजम्भस्य रथो युक्तः पिशाचवदनैः खरैः। तावद्भिर्महिषस्योष्ट्रैर्गजस्य च हयैर्युतः॥२३॥
मेषस्य द्वीपिभिर्भीमैः कुञ्जरैः कालनेमिनः। पर्वतं वै समारूढो निश्चित्यविधृतं गजैः॥२४॥
चतुर्दष्ट्रैर्गन्धवद्भिश्चतुर्भिर्मेघसन्निभैः। शतहस्तायते कृष्णे तुरङ्गे हेमभूषणे॥२५॥

सितचामरजालेन शोभिते पुष्पदामनि। मथनोनाम दैत्येन्द्रः पाशहस्तो व्यराजत॥२६॥
किङ्किणीमालिनं चोष्ट्रमारूढोऽभूच्च जम्भकः। कालमुञ्चं महामेघमारूढःशुम्भदानवः॥२७॥
अन्ये च दानवा वीरा नानावाहनहेतयः। प्रचण्डचित्रवर्माणः कुण्डलोष्णीषभूषिताः॥२८॥
नानाविधोत्तरासङ्गा नानामाल्यविभूषणाः। नानासुगन्धगन्धाढ्या नानाबन्दिशतस्तुताः॥२९॥
नानावाद्यपरिस्यन्दसाग्रेसरमहारथाः। नानाशौर्यकथासक्तास्तस्मिन्सैन्ये महारथाः॥३०॥

प्रसेन दैत्य सेनापति का रथ महामेघ के समान शब्द करने वाला था तथा शीघ्रगामी स्वर्णमालाधारी १०० व्याघ्रों से जुता था। जम्भ के रथ में १०० सिंह, कुंजर के रथ में १०० ऊंट, गजासुर के रथ में १०० अश्व, मेघासुर के रथ में १०० भयंकर हाथी, कालनेमि के रथ गें मेघ के समान चार दांतों वाले मदगंध युक्त गज जुते थे। ये गजगण कालनेमि को ढोते हुये यह सोच रहे थे मानों वे एक पर्वत ढो रहे हैं! मंथन दैत्य का रथ १०० हाथ दीर्घ था। वह पुष्पमालाधारी कृष्णवर्ण हैमभूषणभूषित श्वेत चामर जालयुक्त घोड़ों से जुता था। उसके हाथ में पाश विराजित था। जम्भकासुर किंकिणी जालधारी ऊंट पर तथा शुम्भासुर अतीव कृष्णवर्ण महामेघ पर आरूढ़ था। अन्य दानवगण विचित्र देहधारी थे तथा नाना वाहन, अस्त्र-शस्त्र, कुण्डल, उष्णीष, उत्तरीय, माला तथा गन्धद्रव्य भूषित तथा विविध बन्दीजन से स्तुत होकर नाना वाद्यों की ध्वनि के तथा अनुचरों के साथ आपस में अपनी शूरवीरता का वर्णन करते हुये सैन्य मध्य में आ पहुंचे।।२१-३०।।

तद्बलं दैत्यसिंहस्य भीमरूपं व्यदृश्यत। भूमिरेणुसमालिङ्गत्तुरङ्गरथपत्तिकम्॥३१॥
स च दैत्येश्वरः क्रुद्धः समारूढो महारथम्। दशभिः शुशुभे दैत्यैर्दशबाहुरिवेश्वरः।
जगद्धन्तुं प्रवृत्तो वा प्रतस्थेऽसौ सुरान्प्रति॥३२॥
एतस्मिन्नन्तरे वायुर्देवदूतः सुरालयम्। दृष्ट्वा तद्दानवबलं जगामेन्द्रस्य शंसितुम्॥३३॥

तारकासुर की वह सेना अश्व, गज, पैदल सैनिकों से युक्त, भूमि पर रेणु के समान फैली तथा भीमाकृति परिलक्षित हो रही थी। दैत्याधिपति तारक क्रुद्ध चित्त से अपने महारथ पर बैठकर दशों दिशाओं में फैले प्रधान दैत्यों के बीच दशबाहु महेश्वर की तरह प्रतीत हो रहा था। उसने देवगण के प्रति जो अभियान प्रारम्भ किया था, उसे देखकर यह प्रतीत हो रहा था, मानों वह जगत् का संहार कर देने के लिए उद्यत है। उस अवसर पर देवदूत वायु इस दानव बल को देखकर इन्द्र को यह सूचना देने स्वर्गलोक चले गये।।३१-३३।।

स गत्वातु सभां दिव्यां महेन्द्रस्यमहात्मनः। शशंसमध्येदेवानामिदंकार्यमुपस्थितम्॥३४॥
तच्छ्रुत्वा देवराजः स निमीलितविलोचनः। बृहस्पतिमुवाचेदं वाक्यंकाले महामतिः॥३५॥

वायुदेव ने महेन्द्र की दिव्य सभा में जाकर सभी देवगण के समक्ष इन्द्र से उस संवाद का निवेदन किया। महामति देवराज ने उस संवाद को सुनकर निमीलित नेत्र से योग्य समय विवेचनार्थ महामति बृहस्पति से कहा।।३४-३५।।

इन्द्र उवाच

सम्प्राप्तोऽतिविमर्दोऽयं देवानांदानवैःसह। कार्यं किमत्रतद्बूहि नीत्युपायोपबृंहितम्॥३६॥
एतच्छ्रुत्वा च वचनं महेन्द्रस्य गिराम्पतिः। प्रत्युवाच महाभागो वृहस्पतिरुदारधीः॥३७॥

इन्द्र कहते हैं—"दानवों के साथ देवताओं का विवाद आसन्न है। अतएव नीति के अनुसार क्या करना कर्त्तव्य है, उसका उपदेश दीजिये।" महेन्द्र का यह वचन सुनकर उदारबुद्धि महातेजस्वी बृहस्पति कहने लगे।।३६-३७।।

बृहस्पतिरुवाच

सामपूर्वं स्मृता नीतिश्चतुरङ्गामनीकिनीम्। जिगीषतां सुरश्रेष्ठ! स्थितिरेषा सनातनी॥३८॥
साम दानं च भेदश्य चतुर्थो दण्ड एव च। नीतौ क्रमात्प्रयोज्याश्च देशकालविशेषतः॥३९॥
तत्र साम प्रयोक्तव्यमार्येषु गुणवत्सु च। दानं लुब्धेषु भेदश्च शङ्कितेष्विति निश्चयः॥४०॥
दण्डश्चाऽपि प्रयोक्तव्यो नित्यकालं दुरात्मसु।
साम दैत्येषु नैवाऽस्ति निर्गुणत्वाद्दुरात्मसु॥४१॥
श्रिया तेषांच किंकार्यंसमृद्धानांतथापि यत्। जातिधर्मेणचाऽभेद्याविधातुरपितेमताः॥४२॥
एको ह्युपायो दण्डोऽत्र भवतां यदि रोचते। दुर्जनः सुजनत्वाय कल्पते न कदाचन॥४३॥

बृहस्पति कहते हैं—हे सुरप्रवर! चतुरंगिणी शत्रु सेना पर विजय पाने हेतु पहले सामनीति का प्रयोग कर्त्तव्य है। यही सनातनी नीति है। साम-दाम-दण्ड-भेद, यही चतुर्विध नीति देश-काल का विचार करके यथाक्रम से प्रयुक्त करे। इसमें गुणवान् भद्र लोग साम का ही प्रयोग करें। लोभी के प्रति दाम (धन) का तथा पण्डितजन के प्रति भेद का प्रयोग करे। जो दुरात्मा हैं, उनके प्रति सदैव दण्ड का प्रयोग ही करना चाहिये। तथापि दैत्यों के प्रति साम प्रयोज्य नहीं है। क्योंकि दैत्य गुणरहित तथा दुरात्मा हैं। वे समृद्ध हैं। इसलिए उनके प्रति दाम (अर्थलोभ) का कोई प्रयोजन ही नहीं है। जातिधर्म के अनुसार वे विधाता के लिए भी अभेद्य हैं। इसलिए भेदनीति उनके लिए काम नहीं आ सकती। अतः यदि आप चाहें तब उनके प्रति एकमात्र दण्ड प्रयोग ही विहित है। दुर्जन व्यक्ति कदापि सुजन नहीं होता।।३८-४३।।

लालितः पालितो वाऽपिस्वस्वभावंनमुञ्चति। एवंमेमन्यतेबुद्धिर्भवन्तोयद्व्यवस्यताम्॥४४॥
एवमुक्तः सहस्त्राक्ष एवमेवेत्युवाच ह। कर्तव्यतां च सञ्चिन्त्य प्रोवाचाऽमरसंसदि॥४५॥
बहुमानेन मे वाचं शृणुध्वं नाकवासिनः॥४६॥
भवन्तो यज्ञभोक्तारः सतामिष्टाश्चसात्त्विकाः। स्वेस्वेपदेस्थितानित्यंजगतःपालनेरताः॥४७॥
भवतां च निमित्तेन बाधन्ते दानवेश्वराः। तेषांसामादि नैवास्तिदण्डएवविधीयताम्॥४८॥

दुर्जन लालित-पालित होने पर भी स्वभावत्याग कदापि नहीं करता। मुझे तो यही उचित लगता है। आप जो चाहें, वही करें।" यह सुनकर इन्द्र ने "यही उचित है" कहकर अपना अभिमत कह दिया। तत्पश्चात् कर्त्तव्य विषय के प्रति किंचित चिन्तन करके देवताओं से कहा—"हे स्वर्ग निवासीगण! मैं अत्यन्त सम्मान पूर्वक आपसे कहता हूं कि उसे आप सभी सुनें। आप लोग यज्ञभोजी, सात्विक तथा साधु लोगों द्वारा अभिमत युक्त हैं। (अर्थात् साधुजनों द्वारा मान्य हैं)। आप अपने-अपने पद पर नियुक्त होकर जगत् का पालन करते रहते हैं। आप लोगों के लिये असुरों ने विवाद उपस्थित किया है। उन सबके प्रति साम-दाम-भेद नीति प्रयोज्य नहीं है। अपितु दण्डनीति ही प्रयोजनीय है"।।४४-४८।।

क्रियतां समरेबुद्धिःसैन्यंसंयोज्यतामिति। आवाह्यन्तांचशस्त्राणिपूज्यन्तांशस्त्रदेवताः॥४९॥
इत्युक्ताः समनह्यन्त देवानां ये प्रधानतः। वाजिनामयुतेनाऽजौ हेमपट्टपरिष्कृताः॥५०॥

वाहनानि विमानानि योजयन्तुममाऽमराः। यमं सेनापतिं कृत्वा शीघ्रं निर्यातदेवताः॥५१॥
नानाश्चर्यगुणोपेता दुर्जया देवदानवैः। रथो मातलिना युक्तो महेन्द्रस्याऽप्यदृश्यत॥५२॥
यमो महिषमास्थाय सेनाग्रे समवर्तत। चण्डकिङ्किणिवृन्देन सर्वतः परिवारितः॥५३॥
कल्पकालोज्ज्वलज्वालापूरिताम्बरगोचरः। हुताश उरणारूढःशक्तिहस्तोव्यवस्थितः॥५४॥
पवनोऽङ्कुशपाणिस्तु विस्तारितमहाजवः। महाऋक्षं समारूढः सेनाग्रे समदृश्यत॥५५॥
भुजगेन्द्रं समारूढो जलेशो भगवान्स्वयम्। महापाशधरो वीरः सेनायां समवर्तत॥५६॥

"आप लोग दण्डनीति की व्यवस्था हेतु युद्ध की युक्ति करिये। सैन्य योजित करिये। शस्त्र-अस्त्र को एकत्र करिये तथा शस्त्रों के देवताओं की अर्चना करिये। हे अमरगण! वाहन एवं विमानों को तैयार करें। आप सभी यमराज को सेनापति बनाकर शीघ्रता पूर्वक रणयात्रा करिये।"

देवेन्द्र का यह कथन सुनकर प्रधान देवगण ने युद्धसज्जा व्यवस्थित किया। महेन्द्र का अतीव गुण तथा आश्चर्य सम्पन्न, देव-दानवों के लिये दुर्लभ हेमपट्ट से परिष्कृत (भूषित) रथ सारथी मातलि द्वारा १०००० अश्वों से जोतकर लाया गया। यहां यमराज महिष पर आसीन होकर सैन्यदल के अग्रभाग में स्थित थे। अग्निदेव प्रचण्ड किंकिणी जाल से वेष्ठित मेष पर आरूढ़ होकर कल्पान्त काल के कालानल के समान समुज्वल ज्वालामाला से आकाश तक को व्याप्त करके हाथ में शक्ति लेकर वहां आये। पवनदेव अपने महावेग के साथ हाथ में अंकुश लिये हुये महान् भालू पर आरूढ़ होकर सेना के अग्रभाग में दृष्टिगोचर हो रहे थे। भगवान् महावीर वरुण भुजगेन्द्र पर बैठ कर तथा हाथों में महापाश धारण किये हुये सेना के बीच पहुंच गये।।४९-५६।।

नरयुक्ते रथे दिव्ये धनाध्यक्षो व्यचीचरत्। महासिंहरवो युद्धे गदाहस्तोव्यवस्थितः॥५७॥
राक्षसेशोऽथ निर्ऋती रथे रक्षोमुखैर्हयैः। धन्वी रक्षोगणवृतो महारावो व्यदृश्यता॥५८॥
चन्द्रादित्यावश्विनौ च वसवः साध्यदेवताः। विश्वेदेवाश्चरुद्राश्च सन्नद्धारतस्थुराहवे॥५९॥
हेमपीठोत्तरासङ्गाश्चित्रवर्मायुधध्वजाः। गन्धर्वाः प्रत्यदृश्यन्त कृत्वा विश्वावसुं मुखे॥६०॥
तथा रक्तोत्तरासङ्गा निर्मलायोविभूषणाः। गृध्रध्वजा अदृश्यन्त राक्षसा रक्तमूर्धजाः॥६१॥

तथा भीमाशनिकराः कृष्णवस्त्रा महारथाः।
यक्षास्तत्र व्यदृश्यन्त मणिभद्रादिकोटिशः॥६२॥

ताम्रोलूकध्वजा रौद्रा द्वीपिचर्माम्बरास्तथा। पिशाचास्तत्रराजन्ते महावेगपुरःसराः॥६३॥

कुबेर मनुष्यों से जुते दिव्य रथ पर आरूढ़ होकर हाथों में गदा लिये हुये महान् सिंहनाद के साथ सैन्य के बीच विचरण कर रहे थे। देवपक्षीय राक्षसराज निर्ऋति रक्षोमुख अश्वों से जुते रथ पर राक्षसों से घिरे तथा धनुष धारण किये सैन्यमध्य में सिंहनाद करते परिलक्षित हो रहे थे। एवंविध चन्द्र, सूर्य, अश्विनीकुमारद्वय, वसुगण, साध्यदेवता, विश्वेदेवगण, रुद्रगण आदि सभी युद्धसज्जा से सज्जित होकर सैन्य में सम्मिलित थे। गन्धर्वों ने गन्धर्वराज विश्वावसु को आगे किया। वे हैमपीठ, उत्तरीय, नाना वर्म, आयुध तथा ध्वज से शोभित होकर युद्धभूमि में उपस्थित हो गये। रक्तकेश, रक्तवर्ण उत्तरीय तथा निर्माल्यधारी, लौहभूषणभूषित, गृध्रध्वजी राक्षस भी आकर देवसैन्य में सम्मिलित थे। मणिभद्र आदि करोड़ों महाबली यक्षगण काले वस्त्र धारण करके तथा हाथों में अशनि

अस्त्र लिये हुये सैन्य में दिखलाई दे रहे थे। ताम्र उलूक चिह्नांकित ध्वजाधारी द्वीपिचर्मधारी उग्रमूर्त्ति पिशाच भी सेना में महावेगपूर्वक विचरण कर रहे थे।।५७-६३।।

तथैव श्वेतवसनाः सितपट्टपताकिनः। मत्तेभवाहनप्रायाः किन्नरास्तस्थुराहवे।।६४॥
मुक्ताजालपरिष्कारो हंसो हारसमप्रभः। केतुर्जलधिनाथस्य सौम्यरूपो व्यराजत।।६५॥
पद्मरागमहारत्नविटङ्को धनदस्य च। ध्वजः समुत्थितो भाति यातुकाम इवाऽम्बरम्।।६६॥
कार्ष्णलोहमयोध्वाङ्क्षोयमस्याऽभून्महाध्वजः। राक्षसेशस्यवदनंप्रेतस्यध्वजआबभौ।।६७॥
हेमसिंहध्वजौ देवौ चन्द्रार्कावमितद्युती। कुम्भेन चित्रवर्णेन केतुराश्विनयोरभूत्।।६८॥
मातङ्गा हेमरचितश्चित्ररत्नपरिष्कृतः। ध्वजः शतक्रतोरासीत्सितचामरसंस्थितः।।६९॥
अन्येषां चं ध्वजास्तत्र नानारूपा बभू रणे। सनागयक्षगन्धर्वमहोरगनिशाचरा।।७०॥
सेना सा देवराजस्य दुर्जया प्रत्यदृश्यत। कोटयस्तास्त्रयस्त्रिंशन्नानादेवनिकायिनाम्।।७१॥

हैमाचलाभे सितकर्णचामरे सुवर्णपद्मामलसुन्दरस्त्रजि।
कृताभिरामोज्ज्वलकुङ्कुमाङ्कुरे कपोललीलावि(धि)विमुक्तरावे।।७२॥
श्रितस्तदैरावणनामकुञ्जरे महाबलश्चित्रविशेषिताम्बरः।
विशालवज्राङ्गवितानभूषितः प्रकीर्णकेयूरभुजाग्रमण्डलः।।७३॥
सहस्रदृग्बन्दिसहस्रसंस्तुतस्त्रिविष्टपेऽशोभत पाकशासनः।।७४॥

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे तारकासुरदेवेन्द्रयुद्धोपक्रमवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः।।१६।।

श्वेतवस्त्र तथा श्वेतपताकाधारी किन्नरगण प्रायः मत्त हाथियों पर बैठे सैन्य में स्थित थे। रक्तध्वज, सौम्याकृति, मुक्ताजाल भूषित, हार के समान कान्ति वाले हंस भी वहां शोभित हो रहे थे। कुबेर का पद्मराग-महारत्नभूषित ध्वज मानों आकाशमण्डल को भी पार करने के लिए ऊर्ध्व में फहरा रहा था! यम का ध्वज काकचिह्न युक्त तथा कृष्णवर्ण था। चन्द्र-सूर्यदेव का ध्वज स्वर्णसिंह चिह्नयुक्त तथा निर्ऋति का ध्वज प्रेतमुख चिह्न वाला था। अश्विनीकुमारद्वय का ध्वज विचित्र कुंभ चिह्न वाला था। इन्द्रध्वज विचित्र रत्नयुक्त, श्वेत चामर एवं हैममातंग मण्डित था। अन्य देवगण के सभी ध्वज नाना प्रकार के परिलक्षित हो रहे थे। यह नाग-यक्ष-गन्धर्व-महासर्प-निशाचर युक्त विविधाकृति ३३ करोड़ इन्द्र सैन्य तब दुर्ज्जय लग रही थी। उस स्वर्गधाम में महाबली सहस्रनेत्र इन्द्र तब विचित्र वस्त्र पहन कर श्वेत कानों वाले, श्वेत चामर शोभित, अमलस्वर्ण, पद्ममालाधारी मनोरम, समुज्वल कुंकुम भूषित कपाल युक्त लीला में ही गर्जन करने वाले ऐरावत हाथी पर बैठे। तब सहस्रों बन्दीजन उनकी स्तुति करते जा रहे थे। वे विशाल वज्र धारण किये हुये थे। केयूर आदि आभूषणों से परावर्त्तित होती किरणों से वे अत्यधिक शोभायमान भी हो रहे थे।।६४-७४।।

।।षोडश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

सप्तदशोऽध्यायः

यम-उग्रसेन युद्ध, ग्रसन पराक्रम वर्णन

नारद उवाच

ततस्तयोः समायोगः सेनयोरुभयोरभूत्। युगान्ते समनुप्राप्ते यथा क्षुब्धसमुद्रयोः॥१॥
सुरासुराणां सम्मर्दे तस्मिन्परमदारुणे। तुमुलं सुमहत्क्रान्ते सेनयोरुभयोरपि॥२॥
गर्जतां देवदैत्यानां शंखभेरीरवेण च। तूर्याणां चैव निर्घोषैर्मातङ्गानां च वृंहितैः॥३॥
हेषितैर्यहयवृन्दानां रथनेमिस्वनेन च। घोषेण चैव तूर्याणां युगान्त इव चाऽभवत्॥४॥
रोषेणाऽभिपरीताङ्गास्त्यक्तजीवितचेतसः। समसज्जन्ततेऽन्योन्यंप्रक्रमेणाऽतिलोहिताः॥५॥
रथा रथैः समासक्ता गजाश्चाऽपिमहागजैः। पत्तयः पत्तिभिश्चैव हयाश्चाऽपिमहाहयैः॥६॥
ततः प्रासाशनिगदाभिण्डिपालपरश्वधैः। शक्तिभिः पट्टिशैः शूलैर्मुद्गरैः कणयैर्गुडैः॥७॥
चक्रैश्च शक्तिभिश्चैव तोमरैरङ्कुशैरपि। कर्णिनालीकनाराचवत्सदन्तार्द्धचन्द्रकैः॥८॥
भल्लैर्वेतसपत्रैश्च शुकतुण्डैश्च निर्मलैः। वृष्टिभिश्चाऽद्भुताकारैर्गगनं समपद्यत॥९॥
सम्प्रच्छाद्य दिशः सर्वास्तमोमयमिवाऽभवत्।
प्राज्ञायन्त न तेऽन्योन्यं तस्मिंस्तमसि सङ्कुले॥१०॥

नारद कहते हैं—उस युगान्तकालीन क्षुब्ध सागरवत् प्रतीत हो रहे युद्ध में दोनों पक्षों की सेना में संघर्ष होने लगा। सुर तथा असुर सैन्यदल में आपस में अतीव दारुण तुमुल युद्धारम्भ हो गया। दोनों पक्षों की सेना में से सिंहनाद, शंख-भेरी-तूर्यध्वनि उठ रही थी। कविगण से बृंहित, अश्वों द्वारा की जा रही हिनहिनाहट से तथा रथों के नेमिशब्द से प्रतीत होता था, मानों युग का अन्तिम समय उपस्थित हो गया! वे सभी क्रोध में लाल आंखें किये बहादुरी पूर्वक जीवन की आशा त्याग कर परस्पर लड़ने लगे। रथ से रथ का, गजों से गजों का, पैदलों से पैदलों का, अश्वारोही से अश्वारोही का प्रास, अशनि, गदा, भिन्दिपाल, परष्वध, शक्ति, पट्टिश, शूल, मुद्गर, कणय, चक्र, शक्ति, तोमर, अंकुश, कर्णि, नालीक, नाराच, वत्सदन्त, अर्द्धचन्द्र, भल्ल, वेतसपत्र, शुकतुण्ड तथा निर्मल ऋष्टि प्रभृति से परस्परतः प्रहार करते हुये युद्ध होने लगा, जिससे गगनतल समाच्छादित सा हो गया। इनसे आकाश व्याप्त हो गया तथा फलस्वरूप इतना अन्धकार छा गया कि उस भीड़ भरे युद्ध में योद्धागण का शत्रु-मित्र का कुछ भेद परिलक्षित ही नहीं हो रहा था। वे अन्धकार में ही जो मिलता, उसी का छेदन कर रहे थे।।१-१०।।

अदृश्यभूतास्तमसि न्यकृन्तत परस्परम्। ततो भुजैर्ध्वजैश्छत्रैः शिरोभिश्चसकुण्डलैः॥११॥
गजैस्तुरङ्गैः पादातैः पतद्भिः पतितैरपि। आकाशशिरसो भ्रष्टैः पङ्कजैरिव भूश्चिता॥१२॥
भग्नदन्ता भिन्नकुम्भाश्छिन्नदीर्घमहाकराः। गजाः शैलनिभाः पेतुर्धरण्यां रुधिरस्रवाः॥१३॥
भग्नैषाश्च रथाः पेतुर्भग्नाक्षाः शकलीकृताः। पत्तयः कोटिशःपेतुस्तुरङ्गाश्च सहस्रशः॥१४॥

ततः शोणितनद्यश्च हर्षदाः पिशिताशिनाम्। वैतालानन्ददायिन्योव्यजायन्तसहस्त्रशः॥१५॥
तस्मिंस्तथाविधे युद्धे सेनानीर्ग्रसनोऽरिहा। बाणवर्षेण महता देवसैन्यमकम्पयत्॥१६॥

वे उस अन्धकार में पक्ष-विपक्ष का भान न हो सकने के कारण जो मिलता उसी का वध किये जा रहे थे। तदनन्तर आकाश से गिर रहे कमल के समान कटी-फटी भुजायें, ध्वज, छत्र, कुण्डलयुक्त शिर, गज, अश्व, पैदलों के कटे अंगों से सारी युद्धभूमि पट गई! कितने दांत टूटे हाथी, जिनका मस्तक फट गया था तथा सूंड़ कट गई थी, रक्त बहते-बहते भूपतित हो गये। ईषा तथा अक्ष टूट जाने से अनगिनत टूटे रथ तथा अन्य टुकड़े हो गये रथ, करोड़ों-करोड़ों पैदल सैनिक और हजारों अश्व भूपतित पड़े थे। तदनन्तर रक्त-मांसभोजी बेताल आदि को सन्तुष्ट करने वाली हजारों रक्तनदी वहां बहने लगी। दैत्य सेनापति शत्रुमर्दक ग्रसनासुर ने अपने महान् बाणों की वर्षा से देवसेना को कम्पायित कर दिया!।।११-१६।।

ततो ग्रसनमालोक्य यमः क्रोधविमूर्छितः। ववर्ष शरवर्षेण विशेषादग्निवर्चसा॥१७॥
स विद्धो बहुभिर्बाणैर्ग्रसनोऽतिपराक्रमः। कृतप्रतिकृताकांक्षी धनुरानभ्य भैरवम्॥१८॥
शरैः सहस्त्रैश्च पञ्चलक्षैश्चैव व्यताडयत्। ग्रसनेन विमुक्तांस्ताञ्छरान्सोऽपिनिवार्यच॥१९॥
बाणवृष्टिभिरुग्राभिर्यमो ग्रसनमर्दयत्। कृतान्तशरवृष्टीनां सन्ततीः प्रतिसर्पतीः।
चिच्छेद शरवर्षेण ग्रसनो दानवेश्वरः॥२०॥

यह देखकर यमदेव क्रोधाधिक्य से मूर्च्छित से होकर अग्नि के समान कान्तिवाले करोड़ों बाणों की वर्षा ऐसे करने लगे, मानों जलधारा बरस रही हो! तब अमित पराक्रमी ग्रसनासुर ने अनेक बाणों से विद्ध हो जाने पर प्रतिकार के लिये भैरव धनुष उठाकर यमराज पर ५ लाख ५ हजार बाण चलाये, तथापि कृतान्तदेव यमराज ने ग्रसनासुर द्वारा छोड़े इन बाण समूह का निवारण कर दिया तथा अपनी उग्र बाणवर्षा से ग्रसनासुर को पीड़ित करने लगे। तथापि दानवेश्वर ग्रसनासुर ने उन बाणों को अपने पास पहुंचने से पहले ही काट दिया।।१७-२०।।

विफलां तां समालोक्य यमः स्वशरसन्ततिम्॥२१॥
प्राहिणोन्मुद्गरं दीप्तं ग्रसनस्य रथं प्रति। स तं मुद्गरमायान्तमुत्पत्य रथसत्तमात्॥२२॥
जग्राह वामहस्तेन लीलया ग्रसनोऽरिहा। तेनैव मुद्गरेणाऽथ यमस्य महिषं रुषा॥२३॥
ताडयामास वेगेन स पपात महीतले। उत्पत्याऽथ यमस्तस्मान्महिषान्निपातिप्यतः॥२४॥
प्रासेन ताडयामास ग्रसनं वदने दृढम्। स तु प्राप्तप्रहारेण मूर्छितो न्यपतद्भुवि॥२५॥
ग्रसनं पतितं दृष्ट्वा जम्भो भीमपराक्रमः। यमस्य भिण्डिपालेन प्रहारमकरोद्धृदि॥२६॥
यमस्तेन प्रहारेण सुस्त्राव रुधिरं मुखात्। अतिगाढप्रहारार्त्तः कृतान्तोमूर्छितोऽभवत्॥२७॥

यमराज ने अपनी बाणवर्षा को विफल देखकर ग्रसन के रथ पर एक मुद्गर का प्रहार किया। लेकिन शत्रुमर्दन ग्रसनासुर ने उसे अपने ऊपर आते देखकर ऊर्ध्व में उछल कर उस मुद्गर को पकड़ लिया तथा बायें हाथ से उसे क्रोधपूर्वक अत्यन्त वेग से यमराज के महिष पर फेंका तथा महिष को आघात पहुंचाया, जिससे यमवाहन महिष पृथिवी पर पतित हो गया। यमराज पतनशील महिष से उछल कर उतर गये तथा अपने प्रासास्त्र से ग्रसनासुर के मुख पर प्रचण्ड प्रहार किया। इस प्रहार से ग्रसन मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। ग्रसन को भूपतित देखकर

भीमपराक्रमी जम्भासुर ने भिन्दिपाल से यमराज के वक्ष पर प्रहार किया। जनगण को मृत्यु प्रदान करने वाले यमराज इस प्रहार से अत्यन्त आर्त्त हो गये तथा मुख से रुधिर वमन करते मूर्च्छित होकर गिर पड़े।।२१-२७।।

वृत्तान्तमर्दितं दृष्ट्वा गदापाणिर्धनाधिपः। वृतो यक्षायुतगणैर्जम्भं प्रत्युद्ययौ रुषा॥२८॥
जम्भो रुषा तमायान्तं दानवानीकसम्वृतः। जग्राहवाक्यंराज्ञस्तुयथास्निग्धेनभाषितम्॥२९॥
ग्रसनो लब्धसञ्ज्ञोऽथयमस्यप्राहिणोद्गदाम्। मणिहेमपरिष्कारांगुर्वीपरिघमर्दिनीम्॥३०॥
तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य गदां महिषवाहनः। गदायाः प्रतिघातार्थं जगज्ज्वलनभैरवम्॥३१॥
दण्डं मुमोचकोपेनज्वालामालासमाकुलम्। सगदांवियतिप्राप्यररासाऽग्बुधरोद्धतम्॥३२॥
सङ्घट्टश्चाऽभवत्ताभ्यां शैलाभ्यामिवदुःसहः। ताभ्यां निष्पेषनिर्ह्रादजडीकृतदिगम्तरम्॥३३॥
जगद्व्याकुलतां यातं प्रलयागमशङ्कया। क्षणात्प्रशान्तनिर्ह्रादं ज्वलदुल्कासमाचितम्॥३४॥
निष्पेषणं तयोर्भीमभूद्गगनगोचरम्। निहत्याऽथ गदां दण्डस्ततो ग्रसनमूर्धनि॥३५॥
पपात पौरुषं हत्वा यथा दैवं पुराऽर्जितम्। स तु तेन प्रहारेण दृष्ट्वा सतिमिरादिशः॥३६॥
पपात भूमौ निःसञ्ज्ञो भूमिरेणुविभूषितः। ततो हाहारवो घोरः सेनयोरुभयोरभूत्॥३७॥
ततो मुहूर्तमात्रेणग्रसनःप्राप्य चेतनाम्। अपश्यत्स्वांतनुंध्वस्तांविलोलाभरणाम्बराम्॥३८॥
स चाऽपिचिन्तयामास कृतप्रतिकृतक्रियाम्। धिगस्तु पौरुषं मह्यं प्रभोरग्रेसरःकथम्॥३९॥
मय्याश्रितानि सैन्यानि जिते मयि जितानि च।
असम्भावितरूपो हि सज्जनो मोदते सुखम्॥४०॥

कृत्तान्त यम को भूपतित देख कुबेर ने क्रोधित होकर १०००० यक्षों से परिवृत्त स्थिति में हाथ में गदा धारण किया तथा जम्भ पर आक्रमण किया। जैसे राजा के प्रिय वाक्य को उसके बन्धु ग्रहण करते हैं, तदनुरूप जम्भासुर ने भी दानवों से घिरे रहकर कुबेर से वही व्यवहार किया। इसी बीच ग्रसनासुर की मूर्च्छा भंग हो गयी। तभी उसने यम के ऊपर स्वर्ण-मणि-भूषिता परिघ को चूर करने वाली महती गदा फेंकी। महिषवाहन यम ने उस गदा को अपनी ओर आते देखकर उसके प्रतिघातार्थ ज्वलित अग्नि की ज्वाला से समाकुल अपना दण्ड गदा पर फेंका। वह दण्ड मध्य आकाश में ही उक्त गदा से टकराया, जिससे महामेघतुल्य महाघोर ध्वनि उत्थित हो गयी। जैसे आपस में दो पर्वतों की टक्कर हुई हो, दोनों अस्त्रों के आपस में टकराने से वज्र शब्द ऐसी महाघोर मेघध्वनि दिक्-दिगन्त में व्याप्त हो गयी। इससे समस्त जगत् के निवासीगण प्रलय आने की शंका से व्याकुल हो गये। गगनतल में इन दोनों अस्त्रों का भीम संघर्ष होने से क्षणकाल हेतु ज्वलन्त चिनगारियां उनमें से निकलीं। तब विकराल दण्ड ने उसी प्रकार से उस गदा को नष्ट किया, जैसे पूर्वार्जित दैव व्यक्ति के समस्त पौरुष का नाश कर देता है। उस गदा का नाश करके वह दण्ड ग्रसनासुर के मस्तक पर गिरा। उसके आघात से ग्रसनासुर के लिये दशों दिशाओं में अंधकार सा छा गया तथा वह संज्ञाहीन होकर धरती पर गिर गया। तब दोनों सेनाओं में घोर हाहाकार व्याप्त हो गया, तथापि क्षण काल के ही उपरान्त ग्रसनासुर तुरन्त उठ खड़ा हो गया। उसने अपने शरीर को ध्वस्त, आभूषणादि को भी ध्वस्त देखा, तब प्रतिकार की कामना का चिन्तन करने लगा। उसने सोचा कि "मेरे पौरुष को धिक्कार है। मैं अपने स्वामी का कैसा सेनापति हूं? समस्त सेना मुझ पर

आश्रित है, तथापि मेरी पराजय के साथ समस्त सेना पराजित सी हो रही है! यद्यपि असंभ्रान्त व्यक्ति उच्चपद पाकर भले ही आनन्दित हो जाये, तथापि यदि संभ्रान्त व्यक्ति असमर्थ हो जाता है, तब उसका यह काल तथा भविष्य काल, दोनों ही नष्ट ही हैं।।२८-४०।।

सम्भावितस्त्वशक्तश्चेत्तस्यनाऽयम्परोऽपिवा। एवंसञ्चिन्त्यवेगेनसमुत्तस्थौमहाबलः॥४१॥
मुद्गरं कालदण्डाभं गृहीत्वा गिरिसन्निभम्। ग्रसनो घोरसङ्कल्पः सन्दष्टौष्ठपुटच्छदः॥४२॥
रथेन त्वरितोऽगच्छदाससादाऽन्तकं रणे। समासाद्य यमं युद्धे ग्रसनो भ्राम्यमुद्गरम्॥४३॥
वेगेन महता रौद्रं चिक्षेप यममूर्धनि। विलोक्य मुद्गरं दीप्तं यमः सम्भ्रान्तलोचनः॥४४॥
पञ्चयामास दुर्द्धर्षं मुद्गरं तं महाबलः। तस्मिन्नपसृते दूरं चण्डानां भीमकर्मणाम्॥४५॥
याम्यानां किङ्कराणां च अयुतं निष्पिपेष ह। ततस्तदयुतं दृष्ट्वा हतं किङ्करवाहिनी॥४६॥
दशार्बुदमिता क्रुद्धा ग्रसनायाऽन्वधावत। ग्रसनस्तुसमालोक्य तां किङ्करमयां शुभाम्॥४७॥
मेने यमसहस्त्राणि तादृग्रूपबला हि सा। बिगाह्य ग्रसनं सेना ववर्ष शरवृष्टिभिः॥४८॥

महाबली ग्रसन ने यह सोचकर पर्वत के समान मोटा तथा कालदण्ड जैसा भीषण मुद्गर उठाया तथा वेग से उठ कर घोर संकल्प के साथ चला। उसके ओष्ठपुट क्रोध के कारण दांतों से दबे थे। वह रथ पर बैठकर तीव्र गति से यमराज के समक्ष उपस्थित हो गया। उसने यम को सामने देखकर वह महान् मुद्गर घुमाते हुये यमराज के मस्तक की ओर फेंका। महाबली यम ने उस घोर दीप्त मुद्गर को अपनी ओर आते देखकर उस स्थान को शीघ्रता से छोड़कर मुद्गर को विफल तो कर दिया, तथापि उनके चण्डाकृति भीमकर्मा १०००० यमकिंकर उस मुद्गर से मृत हो गये। इन यमकिंकरों को मृत होते देखकर १० अरब यमकिंकरगण क्रोधित होकर ग्रसनासुर की ओर दौड़ पड़े। ग्रसनासुर ने इस यमकिंकर वाहिनी को देखा, तब उसे लगा मानों प्रत्येक किंकर ही एक-एक यम ही है! वास्तव में वे रूप एवं बल में यमतुल्य ही थे। वे किंकर ग्रसनासुर के रथ को घेर कर उस पर बाणों की वर्षा करने लगे।।४१-४८।।

कल्पान्तघोरसङ्काशो बभूव स महारणः। केच्छैलेन विभिदुः केचिद्बाणैरजिह्मगैः॥४९॥
पिपिषुर्गदया केचित्केचिन्मुद्गरवृष्टिभिः। केचित्प्रासप्रहारैश्च ताडयामासुरुद्धताः॥५०॥

व्रह असुर युग कल्पान्तकारी काल के समान प्रतीत होने लगा। उनमें से कोई शूल से, कोई बाण से, कोई गदा से, कोई मुद्गर वृष्टि से, कोई प्रास द्वारा उद्धत भाव से छेदन, भेदन, ताड़न किये जा रहा था।।४९-५०।।

अपरे किङ्करास्तस्य ललम्बुर्बाहुमण्डले। शिलाभिरपरे जघ्नुर्द्रमैरन्ये महोच्छ्रयैः॥५१॥
नस्याऽपरेच गात्रेषु दशनांश्चन्यपातयन्। अपरे मुष्टिभिः पृष्ठं किङ्करास्ताडयन्ति च॥५२॥
एवं चाभिद्रुतस्तैस्सग्रसनः क्रोधमूर्छितः। उत्साद्यगात्रं भूपृष्ठे निष्पिपेष सहस्त्रशः॥५३॥
कांश्चिदुत्थायजघ्नेऽसौमुष्टिभिःकिङ्करान्रणे। कांश्चित्पादप्रहारेणधावन्नन्यानचूर्णयत्॥५४॥
क्षणैकेन स तान्निन्ये यमलोकाय भारत!। स च किङ्करयुद्धेन ववृधेऽग्निरिवैधसा॥५५॥

तमालोक्य यमोऽश्रान्तं श्रान्तांस्तांश्च हतान्स्वकान्।
आजगाम समुद्यस्य दण्डं महिषवाहनः॥५६॥

ग्रसनस्तु तमायान्तमाजघ्ने गदयोरसि। अचिन्तयित्वा तत्कर्मग्रसनस्यान्तकोऽरिहा॥५७॥
व्याघ्रान्दण्डेनसञ्जघ्ने स रथान्न्यपतद्भुवि। ततःक्षणेनचोत्थायसञ्चिन्त्यात्मानमुद्धतः॥५८॥
वायुवेगेन सहसा ययौ यमरथं प्रति। पदातिः स रथं तं च समारुह्य यमं तदा॥५९॥
योधयामासबाहुभ्यामाकृष्यबलिनांवरः। यमोऽपि शस्त्राण्युत्सृज्य बाहुयुद्धे प्रवर्तते॥६०॥

कोई उसकी बाहुओं को खींच रहा था, कोई शिला तथा ऊंचे वृक्ष से आघात कर रहा था। कोई दांतों से उसके अंगों को क्षत-विक्षत कर रहा था। कोई उसकी पीठ पर मुष्टि प्रहार किये जा रहा था। तब ग्रसनासुर इस प्रकार से यमकिंकरों से आक्रान्त होकर अतीव क्रोधित होकर भूतल पर लोटने लगा, जिससे उसने हजारों-हजार किंकरों का वध कर दिया। हे भारत! तदनन्तर उसने उठ कर कितनों को मुक्के से, कितनों को पैर के आघात से, कितनों को दौड़कर चूर्ण करके क्षणमात्र में यमलोक भेज़ दिया। वह उस किंकर युद्ध में उसी तरह बढ़त पाने लगा, जैसे काष्ठ से अग्नि बढ़ती जाती है। जब यम ने ग्रसनासुर को अश्रान्त तथा किंकरों को श्रान्त देखा तब वे महिष पर सवार होकर तथा हाथों में दण्ड लेकर वहां उपस्थित हो गये। ग्रसन ने जब यम को आते देखा, तब उसने अपनी गदा से यम के वक्षःस्थल पर प्रहार किया। शत्रुघाती यम उस प्रहार की अवहेलना करके दण्ड द्वारा ग्रसन के रथ को खींचने वाले व्याघ्रों का वध करने लगे। तब वह प्रधान दैत्य ग्रसन रथ से पृथिवी पर गिर गया, तथापि वह क्षणमात्र में उठा तथा किंचित सोचकर सहसा पैदल ही वायुवेग से उद्यत होकर यम के रथ की ओर दौड़ पड़ा। तब वह यम के रथ पर चढ़ गया और बाहु द्वारा यम को खींचता हुआ उनसे बाहुयुद्ध करने लगा॥५१-६०॥

ग्रसनं कटिवस्त्रे तु यमं गृह्य बलोत्कटः। भ्रामयामास वेगेन सम्भ्रमाविष्टचेतसम्॥६१॥
विमोच्याऽथ यमः कष्टात्कण्ठेऽवष्टभ्य चाऽसुरम्।
बाहुभ्यां भ्रामयामास सोऽप्यात्माननमोचयत्॥६२॥
ततो जघ्नतुरन्योन्यं मुष्टिभिर्निर्दयौचतौ। दैत्येन्द्रस्याऽतिवीर्यत्वात्परिश्रान्ततरीयमः।
स्कन्धे निधाय दैत्यस्य मुखं विश्रान्तिमैच्छत॥६३॥
तमालक्ष्य ततो दैत्यः श्रान्तमुत्पाट्य चौजसा॥६४॥
निष्पिपेष महीपृष्ठे विनिघ्नन्पार्ष्णिपाणिभिः। ततो यमस्य वदनात्सुस्राव रुधिरम्बहु॥६५॥
निर्जीवमितितंदृष्ट्वाततःसन्त्यज्यदानवः। जयंप्राप्योद्धतं नादं मुक्त्वासन्त्रास्यदेवताः॥६६॥
स्वकं सैन्यं समासाद्य तस्थौ गिरिरिवाऽचलः॥६७॥
नादेन तस्य ग्रसनस्य संख्ये महायुधैश्चाऽर्दितसर्वगात्राः।
गते कृतान्ते वसुधां च निष्प्रभे चकम्पिरे कान्दिशिकाः सुरास्ते॥६८॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे तारकसैन्यदेवसैन्ययोर्मध्ये यमग्रसनंयोर्युद्धंवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥

महाबली ग्रसनासुर सहसा यम के कमर के बंधे वस्त्र से उनको पकड़कर जोरों से घुमाने लगा। तब यम

भी उससे भ्रान्तचित्त हो गये तथा उन्होंने अपने को किसी प्रकार से संयत किया तथा ग्रसनासुर का गला पकड़कर उसे बाहुद्वय द्वारा घुमाने लगे। लेकिन उसने किसी प्रकार से अपने को छुटा लिया। वे दोनों निर्दयी होकर आपस में मुष्टिप्रहार करने लगे, परन्तु अतिवीर्य असुर के प्रहार से यम किंचित थक गये तथा अपने कंधे पर मस्तक टिकाकर तनिक विश्राम करने लगे। तब असुर ने यम को भ्रान्त समझकर उनको महावेगपूर्वक उठाया तथा पृथिवी पर फेंक दिया और उन पर बाहु तथा केहुनी से प्रहार करने लगा। इससे यम के मुख से धाराप्रवाह रक्त निकलने लगा। ग्रसनासुर ने तब यम को मृत समझ कर वहीं छोड़ दिया तथा वह जय के उल्लास से सिंहनाद करता देवगण के मन को त्रसित किये जा रहा था। तदनन्तर अपनी सैन्य में प्रवेश करके गिरिराज जैसा विराजित हो गया। रणभूमि में ग्रसनासुर के सिंहनाद के उत्थित होने पर महास्त्रों के प्रहार से पीड़ित अंगों वाले देवताओं ने यमराज को प्रभारहित तथा पृथिवी पर पड़े देखा, तब वे भयवश दिशाज्ञान से रहित होकर यत्र-तत्र भागने लगे।।६१-६८।।

॥सप्तदश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

अष्टादशोऽध्यायः

नारद-अर्जुन संवाद, देव-तारक युद्ध वर्णन, निर्ऋत्-जम्भ युद्ध

नारद उवाच

धनाधिपस्य जम्भेनसायकैर्मर्मभेदिभिः। दिशोपरुद्धाः क्रुद्धेन सैन्यंचाऽभ्यर्दितं भृशम्॥१॥
तद्दृष्ट्वा कर्मदैत्यस्यधनाध्यक्षःप्रतापवान्। आकर्णाकृष्टचापस्तु जम्भमाजौमहाबलम्॥२॥
हृदिविव्याधवाणानांसहस्त्रेणाऽग्निवर्चसाम्। स प्रहस्य ततोवीरोवाणानामयुतत्रयम्॥३॥
नियुतं च तथा कोटिमर्बुदंचाऽक्षिपत्क्षणात्। तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वाक्रुद्धोगृह्यमहागदाम्॥४॥
धनाध्यक्षःप्रचिक्षेप स्वर्गेप्सुः स्वधनं यथा। मुक्तायांचगदायांवैनादोऽभूत्प्रलये यथा॥५॥
भूतानां बहुधा रावा जज्ञिरे खे महाभयाः। वायुश्च सुमहाञ्जज्ञे खमायान्मेघसङ्कुलम्॥६॥
सा हि वैश्रवणस्याऽऽस्ते त्रैलोक्याभ्यर्चिता गदा।
आयान्तीं तां समालोक्य तडित्सङ्घातदुर्दृशाम्॥७॥
दैत्यो गदाविघातार्थंशस्त्रवृष्टिंमुमोच ह। चक्राणिकुणपान्प्रासाञ्छतघ्नीःपट्टिशांस्तथा॥८॥
परिघान्मुशलान्वृक्षान्गिरींश्चाऽतुलविक्रमः। कदर्थीकृत्यशस्त्राणितानिसर्वाणिसागदा॥९॥

नारद कहते हैं—उधर क्रुद्ध चित्त जम्भासुर ने मर्मभेदी बाणजाल द्वारा कुबेर को दिक्-विदिक् पर्यन्त आच्छन्न करके अनेक देव सैन्य को विनष्ट कर दिया। प्रतापी कुबेर ने रणभूमि में जम्भ का यह पराक्रम देखकर

कान तक प्रत्यंचा खींचकर अग्नि के समान उज्वल १००० बाणों से जम्भ के हृदय पर आघात किया। वीर जम्भासुर ने हंसते हुये क्षणमात्र में तीन अयुत एक करोड़ तथा एक अर्बुद बाणों को छोड़ा। उसकी यह तेजी देखकर धनाध्यक्ष कुबेर क्रुद्ध हो गये तथा उन्होंने गदा इस प्रकार से उस पर फेंका, मानों स्वर्गकामी व्यक्ति दानार्थ धन दे रहा हो। उनके गदा छोड़ने से प्राणीगण में महान् हाहाकार उत्थित होने लगा। वायु अतिवेग से प्रवाहित होने लगा। मेघमाला ने समस्त नभमण्डल को आच्छादित कर लिया। कुबेर की यह गदा त्रैलोक्यविश्रुत है। वह तड़ित् माला की तरह अत्यन्त दुदृश्य गदा है। यह गदा गिरते देखकर अतुल विक्रमी जम्भासुर उसके प्रतिघातार्थ नाना अस्त्र वर्षा करने लगा। तथापि युगान्तकारी उस गदा ने जम्भासुर द्वारा छोड़े चक्र, कुणप, प्रास, शतघ्नी, पट्टिश, परिघ, मूषल, वृक्ष, पर्वतादि समस्त को व्यर्थ कर दिया।।१-९।।

कल्पान्तभास्करो यद्वन्न्यपतद्दैत्यवक्षसि। स तया गाढभिन्नः सन्सफेनरुधिरं वमन्।।१०।।
निपपातरथाज्जम्भो वसुधां गतचेतनः। जम्भं निपतितं दृष्ट्वा कुजम्भो घोरनिश्चयः।।११।।
धनाधिपस्य सङ्क्रुद्धो नादेनापूरयन्दिशः। चक्रे बाणमयं जालं शकुन्तस्येव पञ्जरम्।।१२।।
विच्छिद्यबाणजालंचमायाजालमिवोत्कटम्। मुमोचबाणानपरांस्तस्ययक्षाधिपोबली।।१३।।

वह गदा सभी शस्त्रास्त्रों को व्यर्थ करती जम्भ के वक्षःस्थल पर गिरी। जम्भासुर उस गदाघात से फेनयुक्त रक्त वमन करते हुये पृथिवी पर गिर कर अचेत हो गया। जम्भ को गिरा देखकर घोरकर्म करने को इच्छुक कुजम्भ अत्यन्त क्रोध में भरकर सिंहनाद से दिक्मण्डल को आपूरित करता ऐसे बाण समूह का वर्षण करने लगा कि उससे कुबेर के चतुर्दिक् बाणों का पिंजड़ा जैसा जाल बन गया तथा कुबेर उसमें स्थित पक्षीवत् प्रतीत होने लगे। यक्षराज बलवान् कुबेर ने उत्कट मायाजालवत् उस बाणजाल का छेदन करके कुजम्भ की ओर बाणजाल का विस्तार किया, तथापि जैसे क्रोधी व्यक्ति सद्वाक्य की अवहेलना करता है, तदनुरूप कुजम्भ ने अनायास उन बाणों को छिन्न-भिन्न कर दिया।।१०-१३।।

चिच्छेद लीलया तांश्च दैत्यः क्रोधीव सद्वचः।
निष्फलांस्तांस्ततो दृष्ट्वा बाणान्क्रुद्धो धनाधिपः।।१४।।
शक्तिं जग्राहदुर्धर्षां शतघण्टामहास्वनाम्। प्रेषिता सा तदा शक्तिर्दारयामास तं हृदि।।१५।।
यथाऽल्पबोवंपुरुषं दुःखं संसारसम्भवम्। तथाऽस्य हृदयं भित्त्वा जगामधरणीतलम्।।१६।।
निमेषात्सोऽभिसंस्तम्भ्यदानवोदारुणाकृतिः। जग्राहपट्टिशंदैत्योगिरीणामपिभेदनम्।।१७।।
स तेन पट्टिशेनाऽऽजौ धनदस्यस्तनान्तरम्। वाक्येनतीक्ष्णरूपेण मर्माक्षरविसर्पिणा।।१८।।
निर्बिभेदाऽभिजातस्य हृदयं दुर्जनो यथा। तेन पट्टिशघातेन धनेशः परिमूर्छितः।।१९।।

धनपति कुबेर ने जब यह देखा कि उनका बाणजाल व्यर्थ हो गया, तब यह देखकर वे क्रोधित हो गये तथा उन्होंने १०० घण्टों से युक्त महाशब्दशालिनी एक शक्ति को लेकर उसके हृदय को लक्ष्य बनाकर छोड़ा। जैसे अल्पबुद्धि वाला व्यक्ति संसारसागर में निमग्न हो जाता है, वैसे ही वह शक्ति कुजम्भ का हृदय भेदन करके धरणी पर गिर गयी। तथापि वह दारुण दानव क्षणमात्र में ही अपने पर नियन्त्रण करके उठा तथा एक पर्वतभेदी पट्टिश को उठाया। जैसे दुर्जन व्यक्ति मर्मभेदी तीक्ष्ण वाक्य द्वारा संभ्रान्त व्यक्ति का हृदय भेदन करता है, उसी

प्रकार कुजम्भ ने वह पट्टिश फेंक कर धनपति कुबेर के हृदय को विद्ध कर दिया। धनेश्वर इस पट्टिश के प्रहार से उसी प्रकार आहत तथा मूर्च्छित होकर रथ पर गिर गये, जैसे दुर्वाक्य विद्ध सज्जन की स्थिति हो जाती है।।१४-१९।।

निषसाद रथोपस्थे दुर्वाचा सुजनो यथा। तथागतं तु तं दृष्ट्वा धनेशं वै मृतं यथा॥२०॥
राक्षसो निर्ऋतिर्देवो निशाचरबलानुगः। अभिदुद्राव वेगेन कुजम्भं भीमविक्रमम्॥२१॥
अथ दृष्ट्वाऽतिदुर्धर्षं कुजम्भोराक्षसेश्वरम्। नोदयामास दैत्यान्स राक्षसेशरथं प्रति॥२२॥
स दृष्ट्वानोदितांसेनांप्रबलास्त्रांसुभीषणाम्। रथादाप्लुत्य वेगेन निर्ऋतीराक्षसेश्वरम्॥२३॥
खड्गेन तीक्ष्णधारेण चर्मपाणिरधावत। प्रविश्य दानवानीकं गजः पद्मसरो यथा॥२४॥
लोडयामास बहुधा विनिष्कृत्य सहस्त्रशः।
चिच्छेद कांश्चिच्छतशो बिभेदाऽन्यान्वरासिना॥२५॥
सन्दष्टौष्ठमुखैः पृथ्वीं दैत्यानां सोऽभ्यपूरयत्।
ततो निःशेषितप्रायां विलोक्य स्वां चमूं तदा॥२६॥
मुक्त्वा धनपतिं दैत्यः कुजम्भो निर्ऋतिं ययौ।
लब्धसञ्ज्ञस्तु जम्भोऽपि धनाध्यक्षपदानुगान्॥२७॥
जीवग्राहं स जग्राह बद्ध्वापाशैःसहस्त्रधा। मूर्तिमन्तिचरत्नानि पद्मादींश्चनिधींस्तथा॥२८॥
वाहनानिचदिव्यानिविमानानिचसर्वशः। धनेशोलब्धसञ्ज्ञस्तुतामवस्थांविलोक्यसः॥२९॥

जब राक्षस देवता निर्ऋति ने धनपति कुबेर को इस अवस्था में मृतवत् देखा, तब निशाचरगणों के साथ वे भीमविक्रम कुजम्भ के प्रति अत्यन्त तीव्र गति से दौड़े। जब कुजम्भ ने अति दुर्द्धष राक्षसेश्वर को आते देखा, तब उसने उनके रथ की ओर दैत्यों को भेजा। राक्षसपति निर्ऋति दीर्घ अस्त्रधारी सुभीषण दैत्य सैन्य को आते देख रथ से पृथिवी पर उतर पड़े तथा तीक्ष्ण धार खड्ग तथा ढाल धारण करके दैत्यों की ओर दौड़े। जैसे पद्मवन में मातङ्ग प्रवेश करता है, उसी प्रकार निर्ऋति ने दैत्य सैन्य में प्रवेश करके दैत्य सेना को आलोड़ित कर दिया। उन्होंने किसी का खड्ग से छेदन तो किसी का भेदन प्रारम्भ कर दिया। तब मृत्युग्रस्त दैत्यों के शरीर से रणक्षेत्र भर उठा। कुजम्भ दैत्य अपनी सेना को निःशेष प्रायः देख कुबेर को छोड़कर निर्ऋति के पास पहुंचा। तभी जम्भासुर भी चेतना प्राप्त करके हजारों देवसैनिकों को बन्दी बनाकर उन पर बन्धन कसकर उनको मृतप्रायः कर रहा था। उस दैत्य ने शत्रुपक्ष की (देवपक्ष की) मूर्त्तिमान पद्मादि निधि, रत्नसमूह, दिव्य वाहन तथा विमानों को आत्मसात् कर लिया। तभी धनेश कुबेर की मूर्च्छा टूट गई तथा उन्होंने यह सब देखा।।२०-२९।।

निःश्वसन्दीर्घमुष्णंचरोषात्ताम्रविलोचनः। ध्यात्वास्त्रंगारुडंदिव्यंबाणंसन्धायकार्मुके॥३०॥

यह देखकर वे दीर्घ निःश्वास छोड़ने लगे तथा क्रोध से नेत्र रक्तवर्ण हो गये। ध्यान करके उन्होंने धनुष पर शत्रु विदारण करने में सक्षम दिव्य गरुड़ बाण सन्धान करके दैत्य सैन्य पर छोड़ा।।३०।।

मुमोच दानवानीके तं बाणं शत्रुदारणम्। प्रथमं कार्मुकं तस्य वह्निज्वालमदृस्यत॥३१॥

निश्चेरुर्विस्फुलिङ्गानांकोटयोधनुषस्तथा। ततोज्वालाकुलंव्योमचक्रेचाऽस्त्रंसमन्ततः॥३२॥
तदस्त्रं सहसा दृष्ट्वा जम्भो भीमपराक्रमः। सम्वर्तं मुमुचे तेन प्रशान्तं गारुडं तदा॥३३॥
ततस्तं दानवो दृष्ट्वा कुबेरं रोषविह्वलः। अभिदुद्राव वेगेन पदातिर्धनदं नदन्॥३४॥
अथाऽभिमुखमायान्तं दैत्यं दृष्ट्वा धनाधिपः। बभूव सम्भ्रमाविष्टः पलायनपरायणः॥३५॥
ततः पलायतस्तस्यमुकुटोरत्नमण्डितः। पपात भूतले दीप्तो रविबिम्बमिवाऽम्बरात्॥३६॥
यक्षाणामभिजातानां भग्नं प्रववृते रणात्। मर्तुं संग्राम शिरसि युक्तं नोभूषणायतत्॥३७॥

जब कुबेर दानवों की ओर उस दिव्य गरुड़ बाण को छोड़ रहे थे, तब पहले उनका धनुष बाण छोड़ते समय वह्निज्वालामय हो गया। तदनन्तर बाण से करोड़ों विद्युत् स्फुलिंग उठने लगी। आकाश तल ज्वालामाला समाकुल हो गया। जब भीमपराक्रम जम्भासुर ने यह अस्त्र देखा, तब उसने भी सहसा संवर्त्तास्त्र निक्षेप किया। इससे वह गरुड़ास्त्र शान्त हो गया। तदनन्तर जम्भासुर रोषाक्रान्त चित्त से कुबेर को लक्ष्य करके सिंहनाद के साथ पैदल ही दौड़ पड़ा। जब कुबेर ने जम्भ को इस प्रकार अपने ऊपर आक्रमणार्थ आते देखा, तब वे भयभीत होकर भाग खड़े हुये। उनके पलायन वेग से उनका रत्नमण्डित दीप्त मुकुट आकाश से रविबिम्ब के समान धरती पर आ गिरा। तब उनके अनुचरों ने यह कहा कि "महायुद्ध में मरण श्रेयस्कर है, तथापि राजमुकुट को शत्रु के हाथ जाने का अपमान असह्य है"।।३१-३७।।

इति व्यवस्य दुर्धर्षा नानाशस्त्रास्त्रपाणयः। युयुत्सवस्तथा यक्षा मुकुटं परिवार्य ते॥३८॥
अभिमानधना वीरा धनदस्य पदानुगाः। तानमर्षाच्च सम्प्रेक्ष्य दानवश्चण्डपौरुषः।
भुशुण्डीं भीषणाकारां गृहीत्वा शैलगौरवाम्॥३९॥
रक्षिणो मुकुटस्याऽथ निष्पिपेष निशाचरान्॥४०॥
तान्प्रमथ्याऽथ नियुतं मुकुटं तं स्वके रथे। समारोप्याऽमररिपुर्जित्वा धनदमाहवे॥४१॥
धनानि च निधीन्गृह्यस्वसैन्येन समावृतः। नादेन महता देवान्द्रावयामास सर्वशः॥४२॥

यह निश्चय करके उन्होंने नाना शस्त्रास्त्र उठाया तथा युद्धाभिलाषी होकर उस मुकुट को चारों ओर से घेर लिया। तब प्रचण्ड पौरुषवान् जम्भासुर रोषपूर्ण नेत्र के साथ उन लोगों को देखकर पर्वत के समान गुरुतर तथा भीषण भुशुण्डि लेकर मुकुट के रक्षकों का वध करने लगा। अमरगण (देवगण) के शत्रु जम्भ ने प्रायः १०००० रक्षकों को मथित करके मुकुट को अपने रथ पर उठा लिया तथा धनपति की पराजय द्वारा उनके धन तथा निधियों को हस्तगत करके अपनी सेना से घिर कर दारुण सिंहनाद द्वारा देवगण को मारने तथा त्रस्त करने लगा।।३८-४२।।

धनदोऽपि धनं सर्वं गृहीतो मुक्तमूर्धजः। पदातिरेकः सन्त्रस्तःप्राप्यैवंदीनवत्स्थितः॥४३॥
कुञ्जभेनाऽथ संसक्तो रजनीचरनन्दनः। मायाममोघामाश्रित्य तामसीं राक्षसेश्वरः॥४४॥
मोहयामासदैत्येन्द्रोजगत्कृत्वा तमोमयम्। ततो विफलनेत्राणि दानवानांबलानि च॥४५॥
न शेकुश्चलितुं तत्र पदादपि पदं तदा। ततो नानास्त्रवर्षेण दानवानां महाचमूः॥४६॥

जघान निर्ऋतिर्देवस्तमसा सम्वृता भृशम्। हन्यमानेषु दैत्येषु कुजम्भे मूढचेतसि॥४७॥
महिषोदानवेन्द्रस्तुकल्पान्ताम्भोदसन्निभः। अस्त्रंचकारसावित्रमुल्कासंघातमण्डितम्॥४८॥
विजम्भत्यथ सावित्रे परमास्त्रे प्रतापिनि। प्रणाशमगमत्तीव्रं तमो घोरमनन्तरम्॥४९॥

तब धनपति कुबेर (मुकुटहीनावस्था में) खुले केश से पैदल ही देवदल के बीच आये तथा शत्रु द्वारा सब कुछ हर लिये जाने के कारण दीनतापूर्वक स्थित हो गये। उधर राक्षसेश्वर निर्ऋतिदेव का कुजम्भ के साथ युद्ध होने लगा। निर्ऋति ने अमोघा तामसी माया का प्रसार किया तथा रणस्थल को तमोमय कर दिया। इससे तब दानवों की दृष्टि रुद्ध हो गयी। दानवदल एक पैर भी नहीं चल पा रहा था। तब निर्ऋतिदेव ने अस्त्र-शस्त्र की वर्षा करके अन्धकाराच्छन्न उस दानव सेना को छिन्न-भिन्न करना प्रारम्भ कर दिया। कुजम्भ को मोहाच्छन्न तथा दानवसेना को मारे जाते देखकर महिष दानवेन्द्र ने उल्कासमूह से मण्डित कल्पान्तकालीन मेघ के समान सावित्र्यास्त्र को छोड़ा। इस सावित्र अस्त्र के उत्तम प्रकाश द्वारा अविलम्ब वह घोर अन्धकारमयी तमःराशि नष्ट हो गयी।।४३-४९।।

ततोऽस्त्रविस्फुलिङ्गाङ्कं तमः शुक्लं व्यजायत।
प्रोत्फुल्लारुणपद्मौघं शरदीवाऽमलं सरः॥५०॥
ततस्तमसिसंशान्ते दैत्येन्द्राः प्राप्तचक्षुषः। चक्रुः क्रूरेण तमसा देवानीकं महाद्भुतम्॥५१॥
अथादाय धनुर्घोरमिषुंचाऽऽशीविषोपमम्। कुजम्भोऽधावत क्षिप्रं रक्षोदेवबलं प्रति॥५२॥
राक्षसेन्द्रस्तथाऽऽयान्तंदृष्ट्वातंसपदानुगः। विव्याधनिशितैर्बाणैःकालाशनिसमस्वनैः॥५३॥
नादागंनचसन्धानंनमोक्षोवास्यलक्ष्यते। चिच्छेदोग्रैःशरव्रातैस्ताञ्छरानतिलाघवात्॥५४॥
ध्वजं शरेण तीक्ष्णेन निचकर्ताऽमरद्विषः। सारथिं चाऽस्यभल्लेन रथनीडादपाहरत्॥५५॥
कालकल्पेन बाणेन तं च वक्षस्यताडयत्। स तु तेन प्रहारेण चकम्पे पीडितो भृशम्॥५६॥
दैत्येन्द्रो राक्षसेन्द्रेण क्षितिकम्पे नगोयथा। स मुहुर्तात्समाश्वास्य नत्वातं दुर्जयंरणे॥५७॥
पदातिरासाद्य रथं रक्षो वामकरेण च। केशेषु निर्ऋतिंगृह्य जानुनाऽऽक्रम्यचस्थितः॥५८॥
ततः खड्गेन च शिरश्छेत्तुमैच्छदमर्षणः। ततः कलकलो जज्ञे देवानां सुमहांस्तदा।
कुजम्भस्य वशं प्राप्तं दृष्ट्वा निर्ऋतिमाहवे॥५९॥
एतस्मिन्नन्तरे देवो वरुणः पाशभृद्वृतः। पाशेनदानवेन्द्रस्य बबन्धाऽऽशु भुजद्वयम्॥६०॥
ततो बद्धभुजं दैत्यं विफलीकृतपौरुषम्। ताडयामास गदया दयामुत्सृज्य पाशभृत्॥६१॥

उस अस्त्र से निकली चिनगारियों से गगनमण्डल मानों उत्फुल्ल रक्तवर्ण पद्ममण्डित शरत्कालीन स्वच्छ सरोवर की तरह शुभ्र लक्षित होने लगा। तमः से घिरे दानवेन्द्रगण अन्धकार के हट जाने के कारण देखने लायक हो गये तथा उन्होंने अतीव क्रूरता के साथ अद्भुद्रूपेण देवताओं पर आक्रमण किया। तब कुजम्भ दैत्य भी घोर धनुष धारण करके सर्प के समान बाणों द्वारा युक्त होकर निर्ऋतिदेव के सैन्यदल की ओर द्रुतगति से दौड़ा। राक्षसेन्द्र निर्ऋति ने उसे उस प्रकार आते देखकर अपने अनुचरों के साथ काल की अशनि के समान शब्दकारी बाणजाल से उसको विद्ध करना प्रारम्भ किया। वह कब बाण लेते, कब छोड़ते, कोई देख ही नहीं पा रहा था।

उन्होने अत्यन्त तीव्र गति से दैत्यों द्वारा छोड़े जा रहे बाणसमूह का छेदन किया तथा कुजम्भ का ध्वज काट दिया। साथ ही भाले के प्रहार से उसके सारथि को रथ के पिछले भाग में गिरा दिया। तब राक्षसेन्द्र ने एक काल के समान बाण छोड़ा, उससे कुजम्भ का वक्षःस्थल आहत कर दिया। दैत्यपति कुजम्भ इस प्रहार से अत्यन्त कातर होकर जैसे भूकम्प में वृक्ष कम्पित होता है, वैसे ही कांपने लगा। तत्पश्चात् कुछ क्षण में पुनः स्वस्थ होकर क्रोधी दैत्यपति कुजम्भ राक्षसपति निर्ऋति को दुर्जय जानकर द्रुत वेग से निर्ऋति के रथ पर चढ़ गया तथा उनका केश खींचते हुये जानुद्वारा उन पर प्रहार करके खड्ग से उनका शिर काटने हेतु उद्यत हो गया। रण में निर्ऋति देव को कुजम्भ के वश में देखकर देवताओं में महान् कोलाहल होने लगा। तभी पाशधारी वरुणदेव ने अपने पाश से कुजम्भ दानव के दोनों बाहु को बांध दिया। तदनन्तर विफल पराक्रम बंधे बाहु वाले दैत्य पर निर्दयता से वरुण गदा का प्रहार करने लगे।।५०-६१।।

स तु तेन प्रहारेण स्त्रोतोभिः क्षतजं स्त्रवन्। दधार कालमेघस्य रूपं विद्युल्लताभृतम्।।६२।।
तदवस्थागतं दृष्ट्वा कुजम्भं महिषासुरः। व्यावृत्तवदनारावो भोक्तुमैच्छत्सुरावुभौ।।६३।।
निर्ऋतिं वरुणं चैव तीक्ष्णदंष्ट्रोत्कटाननः। तावभिप्रायमालोक्यतस्यदैत्यस्यदूषितम्।।६४।।
त्यक्त्वा रथावुभौभीतौ पदाती प्रद्रुतौद्रुतम्। जग्मतुर्महिषाद्भीतौशरणंपाकशासनम्।।६५।।

इस प्रहार से कुजम्भ के मुख-नासिकादि छिद्रों से रक्त बहने लगा। वह रक्तवमन करने लगा। उस समय रक्त प्रवाह से काले मेघों पर चमक रही तड़ित् माला का आभास होने लगा। उसके काले शरीर पर रक्तप्रवाह तड़ित् मालावत् आभासित हो रहा था। कुजम्भ की यह स्थिति देखकर महिषासुर ने उत्कट रूप दांतों से युक्त अपने मुख को फैलाया तथा निर्ऋतिदेव तथा वरुण का ग्रास करने की इच्छा से आगे बढ़ा। लेकिन दोनों देवगण ने उस दानव की दुरभिसन्धि को समझ लिया तथा भयभीत मन से रणक्षेत्र का त्याग करके पैदल भागते इन्द्र की शरण में चले गये। लेकिन महिष दैत्य तब भी वरुण का पीछा किये जा रहा था।।६२-६५।।

क्रुद्धोऽथ महिषो दैत्यो वरुणं समुपाद्रवत्। तमन्तकमुखासन्नमालोक्यहिमदीधितिः।६६।।
चक्रे शस्त्रं विसृष्टंहिहिमसंघातमुल्बणम्। वायव्यंचाऽस्त्रमतुलंचन्द्रश्चक्रेद्वितीयकम्।।६७।।
वायुना तेन चण्डेन संशुष्केण हिमेन च। महाहिमनिपातेन शस्त्रैश्चन्द्रप्रणोदितैः।।६८।।
गात्राण्यसुरसैन्यानामदह्यन्त समन्ततः। व्यथिता दानवाः सर्वे शीतच्छादितपौरुषाः।।६९।।
न शेकुश्चलितुं तत्र नाऽस्त्राण्यादातुमेव च। महिषो निष्प्रयत्नश्च शीतेनाकम्पितानन।।७०।।
अंसमालिङ्ग्यपाणिभ्यामुपविष्ठोह्यधोमुखः। सर्वेतेनिष्प्रतीकारादैत्याश्चन्द्रमसाजिताः।।७१।।

लेकिन महिष दैत्य अभी भी मुंह खोले वरुण का अनुगमन कर रहा था। हिमवत् किरण वाले चन्द्र ने वरुण को दैत्य के मुख में ग्रसित होने वाला जानकर हिमसंघातमय अतुलनीय अस्त्र महिष के प्रति छोड़ा तथा वायव्यास्त्र नामक अनुपम अस्त्र का भी उस पर सन्धान किया। चन्द्र द्वारा निःक्षिप्त अस्त्रों द्वारा प्रचण्ड वायु तथा दारुण हिमपात से असुरगण के सभी अंग शीत से दग्ध होने लगे। पुनः दानवगण और पराक्रम नहीं दिखा सके। सभी के अंग शीत से जड़ हो रहे थे। अस्त्र ग्रहण तो दूर की बात है, वे चलने-फिरने में भी अक्षम थे। महिषासुर ने शीतकम्पित मुख को हाथों का आंशिक सहारा दिया तथा अधोमुख होकर बैठ गया। असुरगण ने जब चन्द्र द्वारा

प्रक्षिप्त अस्त्र के प्रतिकार का कोई मार्ग नहीं पाया, वे पराजित रूप से युद्धेच्छा त्याग पूर्वक जीवित रहने की इच्छा से स्थित हो गये।।६६-७१।।

रणेच्छां दूरतस्त्यक्त्वा तस्थुस्ते जीवितार्थिनः। तत्राऽब्रवीत्कालनेमिर्दैत्यान्क्रोधविदीपितः॥७२॥
भोभोः शृङ्गारिणः क्रूराः सर्वशस्त्रास्त्रपारगाः। एकैकोऽपिजगत्कृस्नंशक्तस्तुलयितुंभुजैः॥७३॥
एकैकोऽपिक्षमोग्रस्तुंजगत्सर्वं चराचरम्। एकैकस्याऽपिपर्याप्तानसर्वेऽपिदिवौकसः॥७४॥
किं त्रस्तनयनाश्चैव समरे परिनिर्जिताः। न युक्तमेतच्छूराणां विशेषाद्दैत्यजन्मनाम्॥७५॥
राज्ञश्च तारकस्याऽपि दर्शयिष्यथ किं मुखम्।
विरतानां रणाच्चाऽसौ क्रुद्धः प्राणान्हरिष्यति॥७६॥

दैत्यसैन्य की यह दुर्दशा देखकर कालनेमि दैत्य क्रोध से भरकर दैत्यों से कहने लगा—"हे वेशभूषाधारी सर्वशस्त्रास्त्र पारंगत क्रूर असुरों! तुममें से तो एक-एक व्यक्ति ही बाहुबल से समस्त जगत् को उठाने में समर्थ है। एक-एक असुर ही समस्त जगत् का ग्रास कर सकता है। ये समस्त देवता मिलकर भी तुम्हारे मात्र एक दैत्य के बराबर प्रतिद्वन्द्वी नहीं ठहरते। तब तुम किसलिये पराजित होकर आंखों में अश्रु भरे स्थित हो? यह वीरों के लिये, विशेषतः दैत्यगण के लिये कदापि उचित नहीं है। तुम्हारे राजा हैं तारकासुर। उनको अब तुम सब कैसे मुख प्रदर्शित कर सकोगे! तुम लोगों को युद्ध से विमुख देखकर राजा तारकासुर तुम सबको प्राणदण्ड प्रदान करेंगे"।।७२-७६।।

इति ते प्रोच्यमानापि नोचुः किञ्चिन्महासुराः। शीतेननष्टश्रुतयोभ्रष्टवाक्याश्चतेतथा॥७७॥
मूकास्तथाऽभवन्दैत्यामृतकल्पामहारणे। तान्दृष्ट्वानष्टचेतस्कान्दैत्याञ्छीतेनपीडितान्।
मत्वा कालक्षमं कार्यंकालनेमिर्महासुरः। आश्रित्य मानवीं मायां वितत्यचमहावपुः॥७८॥
पूरयामास गगनं दिशो विदिश एव च। निर्ममे दानवेन्द्रोऽसौ शरीरेभास्करायुतम्॥७९॥
दिशश्च विदिशश्चैव पूरयामास पावकैः। ततो ज्वालाकुलं सर्वं त्रैलोक्यमभवत्क्षणात्॥८०॥
तेन ज्वालासमूहेन हिमांशुरगमद्भुतम्। ततः क्रमेण विभ्रष्टं शीतदुर्दिनमाबभौ॥८१॥

कालनेमि द्वारा यह भय दिखलाने पर भी किसी असुर ने कोई उत्तर नहीं दिया। शीत से उनकी श्रवण शक्ति तथा वाक्शक्ति नष्ट हो गयी थी। वे रणभूमि में मूक तथा मृतवत् हो गये थे। तब महासुर कालनेमि ने दैत्यों को शीतपीड़न द्वारा नष्ट चेतना वाला जानकर तत्कालोचित कार्य का चिन्तन करके उसने दानवी माया का आश्रय लिया। उसने अपनी देह को इतना विस्तृत किया कि दिग-विदिक् सभी आच्छन्न हो गया। इससे तत्काल समस्त जगत् क्षणकाल में ज्वालामाला से आकुल हो उठा।।७७-८१।।

तद्बलं दानवेन्द्राणां मायया कालनेमिनः। तद्दृष्ट्वा दानवानीकं लब्धसञ्ज्ञंदिवाकरः॥८२॥
उवाचाऽरुणमत्यर्थं कोपरक्तान्तलोचनः॥८३॥

दिवाकर उवाच

नयाऽरुण! रथं शीघ्रं कालनेमिरथो यतः॥८४॥

विमर्दे तत्र विषमे भविता भूतसंक्षयः। जित एष शशाङ्कोऽथ वयं यद्बलमाश्रिताः॥८५॥
इत्युक्तश्चोदयामास रथं गरुडपूर्वजः। रथे स्थितोऽपि तैरश्वैः सितचामरधारिभिः॥८६॥
जगद्दीपोऽथ भगवाञ्जग्राह विततं धनुः। शरौघो वै पाण्डुपुत्र! क्षिप्रमासीद्विषद्युतिः॥८७॥
शम्बरास्त्रेण सन्धाय बाणमेकं ससर्ज ह। द्वितीयं चेन्द्रजालेनाऽऽयोजितं प्रमुमोचह॥८८॥
शम्बरास्त्रं क्षणाच्चक्रे तेषां रूपविपर्ययम्। देवानां दानवं रूपं दानवानां च दैविकम्॥८९॥

इस ज्वाला से पीड़ित होकर चन्द्रदेव वहां से भाग खड़े हुये। कालनेमि की माया के प्रभाव से दानव सैन्य क्रमशः शीतपीड़ा से मुक्त होकर पूर्ववत् स्थित हो गयी। तब सूर्यदेव इस दानवसेना को चेतनायुक्त होते देखकर कोपपूर्वक सारथि अरुण से कहने लगे—"हे अरुण! तुम शीघ्र कालनेमि के रथ के निकट मेरा रथ ले चलो। यहां का विषम युद्ध प्राणीगण का महान् संक्षय करेगा। जिनका सामर्थ्य हम लोगों के आश्रय स्वरूप था, वे शशांक भी पराजित हो गये।" गरुड़ के बड़े भाई अरुण ने यह आदेश सुनकर श्वेतचामरधारी अश्वयुत रथ को उसी दिशा में दौड़ाया। जगत् के दीपक भगवान् सूर्य ने इस रथ पर आरूढ़ स्थिति में धनुष खींचा तथा उसमें बाण योजित किया। उनके सभी बाण विष के समान तीव्र प्रभाव वाले थे। उन्होंने शम्बरास्त्र मन्त्र से अभिमन्त्रित करके एक बाण छोड़ा। तदनन्तर एक बाण इन्द्रजाल मन्त्र से अभिमन्त्रित करके छोड़ा। शम्बरास्त्र से दैत्यों का क्षण में रूप विपर्यय हो गया। देवता सभी दानवरूप तथा दानवगण देवरूप हो गये!॥८२-८९॥

मत्वा सुरान्स्वकानेव जघ्ने घोरास्त्रलाघवात्। कालनेमी रुषाविष्टःकृतान्तइवसंक्षये॥९०॥
कांश्चित्खड्गेन तीक्ष्णेन कांश्चिन्नाराचवृष्टिभिः।
कांश्चिद्गदाभिर्घोराभिः कांश्चिद्घोरैः परश्वधैः॥९१॥
शिरांसि केषांचिदपातयद्रथाद्भुजांस्तथा सारथींश्चोग्रवेगान्।
कांश्चित्पिपेषाऽथ रथस्य वेगात्कांश्चित्तथाऽत्यंद्भुतमुष्टिपातैः॥९२॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे तारकसैन्यदेवसैन्ययोर्युद्धवर्णनं नामाऽष्टादशोऽध्यायः॥१८॥

तब क्रोधयुक्त कालनेमि तीव्र वेग से घोर अनुताप द्वारा दानवों को देवता ही मानकर अपनी ही सेना का नाश करने लगा। उसने कई को खड्ग से, कुछ को नाराच प्रहार से, कुछ को घोर गदापात से, कुछ को दारुण परश्वध द्वारा मारने लगा। उसके अस्त्राघात से किसी का मस्तक कट कर रथ से गिरता, किसी की बाहु कट कर गिर जाती, किसी के द्रुतगामी रथ का सारथि मर जाता, कोई उसकी उग्रगति से, कोई उसके मुक्के से मरता जा रहा था॥९०-९२॥

॥अष्टादश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

उनविंशोऽध्यायः

विष्णु-कालनेमि युद्ध,विष्णु कृत कालनेमि पराजय

नारद उवाच

कालनेमी रुषाविष्टस्तेषां रूपं न बुद्धवान्। ततो निमञ्च दैत्येन्द्रं मत्वा देवंमहाजवः॥१॥
केशेषु गृह्य तं वीरं नकर्ष च ननाद च। ततो निमिरुवाचेदं कालनेमिं महाबलम्॥२॥
अहं निमिःकालनेमे सुतंमत्वा वधस्व मा। भवतामोहितेनाजौदवान्मत्वासुराःस्वकाः॥३॥
सुरैः सुदुर्जयाः कोट्यो निहता दश विद्धि तत्। सर्वास्त्रवारणं मुञ्च ब्राह्ममस्त्रं त्वरान्वितः॥४॥
स तेन बोधितोदैत्योमुक्त्वातंसम्भ्रमाकुलः। बाणं ब्रह्मास्त्र विहितंमुमोचत्वरयान्वितः॥५॥
ब्रह्मास्त्रं तत्प्रजज्वाल ततः खे सुमहाद्भुतम्। देवानां चाभवत्सैन्यंसर्वमेव भयाकुलम्॥६॥
शम्बरास्त्रं ततः शान्तं ब्राह्मप्रतिहतं तदा। तस्मिन्प्रतिहतेह्यस्त्रे संक्रुद्धोभास्करःप्रभुः॥७॥
महेन्द्रजालमास्थाय चक्रे स्वां भीषणांतनुम्। विस्फूर्जत्करसङ्घातसमाक्रान्तजगत्त्रयः॥८॥

नारद कहते हैं—रोषाक्रान्त कालनेमि इस विपर्यय को समझ नहीं सका। उसने दैत्यप्रवर निमि को देवता समझा तथा उसका बाल खींचते सिंहनाद करने लगा। निमि ने उस महाबली दैत्य से कहा—"हे कालनेमि, मैं निमि हूं। मैं आपका पुत्र हूं। मेरा वध न करें। आपने युद्ध में मोहित होकर देवता समझ कर अपनी १० करोड़ सैन्य का वध किया है। यह समस्त असुर सेना देवगण के लिए अजेय थी। आप तत्काल सर्वास्त्र निवारक ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करिये।" निमि के यह कहने पर कालनेमि ने उसे छोड़ कर ब्रह्मास्त्र मन्त्र से मंत्रित एक बाण छोड़ा। वह महान् विस्मयकारी ब्रह्मास्त्र आकाश में प्रज्ज्वलित हो उठा। इससे देवसैन्य भयग्रस्त हो गयी। ब्रह्मास्त्र के प्रभाव से शम्बरास्त्र का निवारण हो गया। यह देखकर प्रभु भास्कर देव ने ज्वाला का अवलम्बन लेकर अपने शरीर को भीषणाकृति बनाया। उनकी उज्वल किरणों की प्रभा से तीनों लोक आक्रान्त हो उठे।।१-८।।

तत्तापदानवानीकंगलन्मज्जाङ्घ्रिशोणितम्। चक्षूंषिदानवेन्द्राणांचकाराऽन्धानिसप्रभुः॥९॥
गजानामगलन्मेदः पेतुश्चाऽपि रथा भुवि। तुरङ्गमाः श्वसन्तश्चघर्मार्ता रथिनोऽपि च॥१०॥
इतश्चेतश्च सलिलं प्रार्थयन्तस्तृषातुराः। गिरिद्रोणीश्च पादांश्च गिरीणां गहनानि च॥११॥
तेषां प्रार्थयतां शीघ्रमन्योन्यं च विसर्पिणाम्। दावाग्निरज्वलत्तीव्रो घोरो निर्दग्धपादपः॥१२॥
तोयार्थिनः पुरो दृष्ट्वा तोयं कल्लोलमालितम्। पुरःस्थितमपिप्राप्तुं न शेकुरुपसादितुम्॥१३॥
अप्राप्य सलिलं भूमावभ्याशे द्रुतमेव ते। तत्र तत्र व्यदृश्यन्त मृता दैत्येश्वरा भुवि॥१४॥

इस प्रभा से दानवों के नेत्र अन्धवत् हो गये। उनकी मज्जा, रक्त, अस्थि पर्यन्त खिसकने लगी। गजसमूह के शरीर से मेद चूने लगा। सभी रथ भूपतित होने लगे। घोड़े तथा रथीगण पसीने से तर-बतर होकर दीर्घ श्वास छोड़ते हुये जल खोजने लगे। अश्वगण भी कातर होकर इतःस्ततः पानी खोजने हेतु छटपटाने लगे। वे सभी पर्वत की घाटी में द्रोणी अथवा गुहा आदि में आश्रय पाने हेतु छटपटाने लगे। उन सबने पर्वत की घाटी, द्रोणी तथा गुहा

आदि में आश्रय लेने हेतु परस्परतः तीव्र वेग से जाते समय आपस में एक दूसरे को आहत किया तथा भागने लगे। घोर दावाग्नि जब प्रज्वलित होती है, पादपादि लकड़ी को दग्ध करने लगती है। जलार्थी दैत्यगण सामने जलकल्लोलमय जलाशय को देखकर भी उसके निकट जाने में सक्षम नहीं थे। अल्पकाल में ही बहुत से दैत्य जलाभाव में जगह-जगह मृत्युमुख में चले गये।।९-१४।।

रथा गजाश्चपतितास्तुरङ्गाश्चश्रमान्विताः। स्थिता वमन्तोधावन्तोगलद्रुतवसास्रजः॥१५॥
दानवानां कोटिकोटि व्यदृश्यत मृतं तदा। एवं क्षयो दानवानां तस्मिन्महति वर्तिते॥१६॥
प्रकोपोद्भूतताम्राक्षः कालनेमी रुषातुरः। बभूव कालमेघाभः स्फुरद्रोमशतह्रदः॥१७॥
गम्भीरास्फोटनिर्ह्रादजगद्धृदयकम्पनः। प्रच्छाद्य गगनं सूर्यप्रभां सर्वां व्यनाशयत्॥१८॥
ववर्ष शीतं च जलं दानवेन्द्रबलं प्रति। दैत्यास्तांवृष्टिमासाद्यसमाश्वस्तास्ततःक्रमात्॥१९॥
बीजाङ्कुरा इव म्लानाः प्राप्य वृष्टिं धरातले। ततः स मेघरूपेण कालनेमिर्महासुरः॥२०॥

अनेक रथ, गज, अश्व गिर पड़े। करोड़ों दानव श्रम के कारण विगलित हो रही वसा से लिपटे अंगों के साथ वमन करते, दौड़ते तथा स्थित होते हुये भी मृत्युग्रस्त हो गये। दानवगण जब इस महाक्षय में पड़े थे, तब वह कालनेमि दानव रोष में भरकर कालमेघ के आकार का हो गया। उसके रोमकूप से मानों विद्युत् स्फुरण हो रहा था। गंभीर आस्फोटन शब्द तथा निर्घात शब्दों से जगत् कम्पित हो उठा। उस कालनेमि की कालमेघाकृति ने समस्त गगनमण्डल को आच्छादित कर लिया, जिससे सूर्य की प्रभा ढंक गयी तथा दैत्य सेना के ऊपर शीतल जल की वर्षा होने लगी। उस शीतल जल की प्राप्ति द्वारा दैत्यगण क्रमशः आश्वस्त हो उठे। प्रतीत हुआ मानों पृथिवी में पड़े म्लान बीज शीतल जल वर्षा से पुनः अंकुरित हो उठे। तब मेघरूपी कालनेमि महासुर देवताओं पर अन्य प्रकार की वृष्टि करने लगा।।१५-२०।।

शस्त्रवृष्टिं ववर्षोग्रां देवानीकेषु दुर्जयः। तया वृष्ट्या पीड्यमाना दैत्यैरन्यैश्च देवताः॥२१॥
गतिं काञ्चिन्न पश्यन्ति गावः शीतार्दिता इव। परस्परं व्यलीयन्त गजेषु तुरगेषु च।
रथेषु च भयत्रस्तास्तत्रतत्र निलिल्यिरे॥२२॥
एवं ते लीयमानाश्च निहताः कालनेमिना। दृश्यन्तेपतिता देवाः शस्त्रभिन्नाङ्गसन्धयः॥२३॥
विभिन्ना भिन्नमूर्धानस्तथा भिन्नोरुजानवः। विपर्यस्तं रथाङ्गैश्च पतितं ध्वजशक्तिभिः॥२४॥
तुरङ्गानां सहस्राणि गजानामयुतानि च। रक्तेन तेषां घोरेण दुस्तराचाऽभवन्मही॥२५॥
एवमाजौ महादैत्यः कालनेमिर्महासुरः। जघ्ने मुहूर्तमात्रेण गन्धर्वाणां दशायुतम्॥२६॥
यक्षाणां पञ्चलक्षाणि किन्नराणां तथैव च।
जघ्ने पिशाचमुख्यानां सप्तलक्षाणि निर्भयः॥२७॥
इतरेषांनसंख्याऽस्तिसुरजातिनिकायिनाम्। जघ्नेसकोटिशःक्रुद्धःकालनेमिर्मदोत्कटः॥२८॥

अब कालनेमि जो दुर्जय महासुर था, वह मेघरूपेण देवसेना पर उग्र शस्त्र वर्षा कर रहा था। देवगण इस अस्त्रवर्षा से तथा अन्य दैत्यों के प्रहार से पीड़ित हो गये तथा शीत से सतायी गौओं के समान निरुपाय होकर रथादि के नीचे छिप गये। इस शस्त्रवर्षा से देवगण के मस्तक, उरु, जानु, अंगसन्धि छिन्न-भिन्न होने लगी। शक्ति तथा

चक्र आदि के प्रहार से हजारों अश्व तथा दसों हजार हाथी गिरने लगे। रक्तप्रवाह की घोर दुस्तर नदी प्रादुर्भूत हो गयी। महादैत्य कालनेमि ने मुहूर्त्त मात्र समय में १० अयुत गन्धर्वों का संहार कर दिया। इस प्रकार इस मदमत्त निर्भय दानव ने ५ लाख यक्ष, ५ लाख किन्नर, सात लाख पिशाच का तथा अन्य देवसैन्य में कितने कोटि लोगों का वध किया, उसे गिन सकना सम्भव नहीं है।।२१-२८।।

एवं प्रतिभये भीमे तदाऽमरमहाक्षये। संक्रुद्धावश्विनौ वीरौ चित्रास्त्रकवचोज्ज्वलौ।।२९।।
जघ्नतुस्तौ रणे दैत्यमेकैकं षष्टिभिः शरैः। निर्भिद्य ते महादैत्यं सुपुङ्खाविविशुर्महीम्।।३०।।
ताभ्यांबाणप्रहारैस्तुकिञ्चित्सोऽवाप्तचेतनः। जग्राह चक्रं लक्षारंतैलधौतंरणेऽधिकम्।।३१।।
तेनचक्रेणसोऽश्विभ्यांचिच्छेदरथकूबरम्। जग्राहाऽथधनुर्दैत्यःशरांश्चाशीविषोपमान्।।३२।।

क्रमशः अमर (देवगण) सैन्य का महाभयानक क्षय प्रारम्भ हो गया। तब अश्विनीकुमार द्वय ने क्रोधित होकर विचित्र अस्त्रों एवं कवच से सजकर युद्ध का आरम्भ किया। इन दोनों में से प्रत्येक ने कालनेमि को ६०-६० बाणों से विद्ध कर दिया। इन पुच्छयुक्त बाणों ने महादैत्य का भेदन करके पृथिवी में प्रवेश किया। इन दोनों देवों के बाण प्रहार से चेतनाहीन कालनेमि पुनः कुछ काल के उपरान्त चैतन्य हो गया तथा एक युद्ध में जय प्रदान करने वाले १ लाख अर वाले तेल से धुले महाचक्र से अश्विनीकुमारों के रथ कूबर को तोड़ कर तदनन्तर धनुष उठाया तथा सर्पमय विषाक्त बाणों की वर्षा करने लगा।।२९-३२।।

ववर्ष भिषजोर्मूर्ध्नि संच्छाद्याकाशगोचरम्।
तावप्यस्त्रैः स्मृतैः सर्वाश्छेदतुर्दैत्यसायकान्।।३३।।
तच्च कर्म तयोर्दृष्ट्वा विस्मितः कोपमाविशत्। जग्राह मुद्गरंभीमंकालदण्डविभीषणम्।।३४।।
स तमुद्भ्राम्य वेगेन चिक्षेपाऽस्य रथं प्रति। तं तु मुद्गरमायान्तमालोक्याम्बरगोचरे।।३५।।
मुक्त्वा रथावुभौ वेगादाप्लुतौ तरसाऽश्विनौ।
तौ रथौ स तु निष्पिष्य मुद्गरोऽचलसन्निभः।।३६।।
दारयामास धरणीं हेमजालपरिष्कृतः। तस्यकर्माऽथ तद्दृष्ट्वा भिषजौ चित्रयोधिनौ।।३७।।
वज्रास्त्रं च प्रकुर्वाणौ दानवेन्द्रमयुध्यताम्। घोरवज्रप्रहारैस्तु दानवः स परिक्षतः।।३८।।
रथो ध्वजो धनुश्चैव छत्रं च कवचं तथा। क्षणेन शतधा भूतं सर्वसैन्यस्य पश्यतः।।३९।।
तद्दृष्ट्वा दुष्करंकर्म सोऽश्विभ्यां भीमविक्रमः। नारायणास्त्रंबलवान्मुमोचरणमूर्धनि।।४०।।
ततः शशाम वज्रास्त्रं कालनेमिस्ततो रुषा। जीवग्राहं ग्राहयितुमश्विनौ तौ प्रचक्रमे।।४१।।
तावभिप्रायमालक्ष्य सन्त्यज्य समराङ्गणम्। पदाती वेपमानाङ्गौ प्रद्रुतौ वासवो यतः।।४२।।

इस बाण वर्षण से आकाश मण्डल आच्छादित हो गया तथापि अश्विनीकुमारों की अस्त्रवृष्टि से वे सभी बाण छिन्न-भिन्न हो गये। उनके इस कर्म को देखकर कालनेमि अतीव क्रोधित हो गया। उसने एक कालदण्डवत् मुद्गर उठाकर वेगपूर्वक घुमाकर अश्विनीकुमार द्वय के रथ पर फेंका। अश्विनीकुमारों ने आकाश से इस मुद्गर को आते देख भयभीत होकर रथ से उछाल मारकर अपनी आत्मरक्षा किया। यह अनल के समान प्रभावान् हेमजालमण्डित मुद्गर ने इनके रथ पर गिर कर उसे पीस दिया तथा धरणी को भी विदीर्ण कर दिया! तब विचित्र

योद्धा अश्विनीकुमारद्वय ने कालनेमि के इस कार्य से क्रोधित होकर वज्रास्त्र से युद्धारम्भ किया। इस वज्राघात से कालनेमि क्षत-विक्षत हो गया। समस्त सैन्य के सामने उसका रथ, ध्वज, धनु, छत्र, कवच आदि सैकड़ों टुकड़े हो गया। तब बलवान् भीमविक्रम कालनेमि ने अश्विनीकुमारों के इस दुरुह कार्य को देखकर रोष के साथ नारायणास्त्र से वज्रास्त्र को निवारित कर दिया। तथा उसने इन दोनों अश्विनीकुमारों को जीवित पकड़ने का उपक्रम किया। तब इन अश्विनीकुमारद्वय ने कालनेमि के इस अभिप्राय को जानकर कम्पित शरीर से पैदल ही रणस्थल छोड़कर द्रुतवेग से भागते हुये इन्द्र के पास आ गये।।३३-४२।।

तयोरनुगतो दैत्यः कालनेमिर्नदन्मुहुः। प्राप्येन्द्रस्य बलं क्रूरो दैत्यानीकपदानुगः॥४३॥
स काल इव कल्पान्ते यदा वासवमाद्रुतः। तं दृष्ट्वा सर्वभूतानि विविशुर्विह्वलानि तु॥४४॥
हाहारावं प्रकुर्वाणास्तदा देवाश्च मेनिरे। पराजयं महेन्द्रस्य सर्वलोकक्षयावहम्॥४५॥
चेलुः शिखरिणो मुख्याः पेतुरुल्का नभस्तलात्। जगर्जुर्जलदादिक्षुसम्भूतश्च महारवः॥४६॥
तां भूतविकृतिं दृष्ट्वा देवाः सेन्द्रा भयावहाः। मनसा शरणं जग्मुर्वासुदेवं जगत्पतिम्॥४७॥

तब क्रोधित कालनेमि दानव पुनः-पुनः सिंहनाद करता-करता अनेक दानवों के साथ इन अश्विनीकुमारों का पीछा करता, इन्द्र की सेना में पहुंचा। जब वह इन्द्र के निकट जाने लगा, तब इस सर्वलोक भयंकर दानव को देखकर समस्त प्राणीगण विह्वल हो उठे। देवगण तब इन्द्र के पराजय की संभावना से हाहाकार करने लगे। प्रधान-प्रधान पर्वत विचलित होने लगे। आकाश से उल्कापात होने लगा। बादलों के गर्जन से दसों दिशाओं में महान् शब्द उठा। इस स्थिति में इन्द्रादि देवता प्राणीवर्ग तथा भूतसमूह का यह विकार देखकर महाभीत हो गये तथा वे मन ही मन जगत्पति वासुदेव की शरण में आये।।४३-४७।।

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च। जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमोनमः॥४८॥
सनोरक्षतु गोविन्दोभयार्तास्तेजगुःसुराः। सुराणांचिन्तितंज्ञात्वाभगवान्गरुडध्वजः॥४९॥
विबुध्यैव च पर्यङ्काद्योगनिद्रांविहाय सः। लक्ष्मीकरयुगाम्भोजलालितांङ्घ्रिसरोरुहः॥५०॥
शारदाम्बरनीलाब्जकान्तिदेहच्छविः प्रभुः। कौस्तुभोद्भासिहृदयःकान्तकेयूरभास्करः॥५१॥
विमृश्य सुरसंक्षोभं वैनतेयमथाऽऽह्वयत्। आहूतेऽवस्थितेतस्मिन्गरुडेदुःखिते भृशम्॥५२॥
दिव्यनानास्त्रतीक्ष्णार्चिरारुह्याऽगात्सुराहवम्। तत्राऽपश्यत देवेन्द्रंभयभीतमभिद्रुतम्॥५३॥
दानवेन्द्रैर्नवाम्भोदसच्छायैः सर्वथोत्कटैः। यथा हि पुरुषं घोरैरभाग्यैरर्थकाङ्क्षिभिः॥५४॥
तत्त्राणायाऽव्रजद्विष्णुः स्तूयमानो मुहुः सुरैः। अभाग्येभ्यः परित्रातुं सुकृतं निर्मलं यथा॥५५॥

भयार्त्त देवता मन ही मन प्रार्थना करने लगे। हे गौ-ब्राह्मणों के हितकारी, आप ब्रह्मण्यदेव को प्रणाम! जगत् का हित करने वाले कृष्ण विधाता को प्रणाम! गोविन्द को प्रणाम! हे प्रभु गोविन्द हमारी रक्षा करें।" प्रभु भगवान् गरुड़ध्वज ने देवगण का अभिप्राय जानकर योगनिद्रा त्यागा तथा पर्यङ्क पर बैठ गये। उनके पादपद्म की सेवा भगवती लक्ष्मी कर रही थीं। वे शरत्कालीन आकाश तथा नीलपद्म के समान कान्तिमान थे। उनका वक्ष कौस्तुभमणि से शोभित था। वे मनोरम केयूर धारण से समुज्वल थे। ऐसे रूप वाले प्रभु नारायण ने देवगण का ऐसा संक्षोभ जानकर गरुड़ को स्मरण किया। इस आह्वान मात्र से गरुड़ वहां आये तथा दुःखित भाव से भगवान् के

समक्ष स्थित हो गये। तब नाना अस्त्र-शस्त्र से उज्वलकान्ति भगवान् गरुड़ पर आरूढ़ होकर समरक्षेत्र में पहुंचे। वहां जाकर देखते हैं कि जैसे कोई पुरुष दुर्भाग्य रूपी अर्थगृध्र से आक्रान्त हो गया है, वैसे ही देवेन्द्र भी नवमेधकान्ति अतीव उत्कट दानवेन्द्रों द्वारा आक्रान्त हो गये हैं। भगवान् विष्णु को वहां देखकर देवगण पुनः-पुनः उनका स्तव करने लगे। कृपालु प्रभु विष्णु दुर्जन के हाथों से सज्जनवत् इन्द्र का परित्राण करने के लिए वहां उपस्थित हो गये।।४८-५५।।

अथाऽपश्यतदैत्येन्द्रो वियति द्युतिमण्डलम्। स्फुरन्तमुदयाच्छीघ्रंकान्तंसूर्यशतंयथा॥५६॥
प्रभवं ज्ञातुमिच्छन्तो दानवास्तस्य तेजसः। गरुडं तमथापश्यन्कल्पान्तानलभैरवम्॥५७॥
तत्र स्थितं चतुर्बाहुं हरिं चानुपमद्युतिम्। तमालोक्यासुरेन्द्रास्तुहर्षसम्पूर्णमानसाः॥५८॥
अयं स देवः सर्वेषां शरणं केशवोऽरिहा। अस्मिञ्जिते जिताःसर्वादेवता नाऽत्रसंशयः॥५९॥
एनमाश्रित्य लोकेशा यज्ञभागभुजोऽमराः। इत्युक्त्वा ते समागम्य सर्वएव ततस्ततः॥६०॥
तं जघ्नुर्विविधैः शस्त्रैः परिवार्य समन्ततः। कालनेमिप्रभृतयो दश दैत्यमहारथाः॥६१॥
षष्ट्या विव्याध बाणानां कालनेमिर्जनार्दनम्।
निमिः शतेन बाणानां मथनोऽशीतिभिः शरैः॥६२॥
जम्भकश्चैव सप्तत्या शुम्भो दशभिरेव च। शेषा दैत्येश्वराः सर्वे विष्णुमेकैकशः शरैः॥६३॥
दशभिर्दशभिः शल्यैर्जघ्नुः सगरुडं रणे। तेषाममृष्यत्तत्कर्म विष्णुर्दानवसूदनः॥६४॥
एकैकं दानवं जघ्ने षड्भिः षड्भिरजिह्मगैः। आकर्णकृष्टैर्भूयश्चकालनेमिस्त्रिभिःशरैः॥६५॥

दैत्यों आकाश में कमनीय शतसूर्यसम द्युतिमण्डल का आविर्भाव देखकर उसके कारण को जानने हेतु गर्दन उठाकर देखने लगे। वहां कल्पान्त की अग्नि के समान भीषण गरुड़ के ऊपर अनुपमकान्ति श्रीहरि विराजित थे। असुरेन्द्रगण उनको देखकर हर्षोत्फुल्ल होकर कहने लगे—"यही वे देवताओं के आश्रय शत्रुघाती केशव हैं। इनको पराजित करते ही समस्त देवताओं की पराजय हो जायेगी। इसमें सन्देह नहीं है। इनका आश्रय पाकर ही लोकपाल देवता यज्ञभाग के अधिकारी हो गये।" कालनेमि आदि प्रमुख दानवों ने यह कहकर सभी ने चारों ओर से विष्णु को घेर लिया तथा उन पर नाना अस्त्र-शस्त्र का प्रहार करने लगे। तब कालनेमि ने ६० बाणों से, मंथन ने ८० बाणों से, जम्भ ने ७० बाणों से, शुम्भ ने १० बाण से तथा अन्य सभी ने प्रति व्यक्ति १०-१० बाणों से जनार्दन विष्णु को गरुड़ के साथ विद्ध किया। दानवहन्ता विष्णु उनके इस आक्रमण से असहिष्णु हो गये तथा उन्होंने प्रत्येक दानव को छः-छः बाणों से आहत किया। तब कालनेमि क्रोध में भर गया। उसने धनुष की प्रत्यंचा को कानों तक खींच कर पुनः ३ बाणों से विष्णु को विद्ध किया।।५६-६५।।

विष्णुं विव्याध हृदये रोषाद्रक्तविलोचनः। तस्याऽशोभन्तते बाणाहृदयेतप्तकाञ्चनाः॥६६॥
मयूखा इव सन्दीप्ताःकौस्तुभस्यस्फुरत्त्विषः। तैर्बाणैःकिञ्चिदायस्तोहरिर्जग्राहमुद्गरम्॥६७॥
स तमुद्ग्राह्य वेगेन दानवाय मुमोच वै। दानवेन्द्रस्तमप्राप्तं वियत्येव शतैः शरैः॥६८॥
चिच्छेद तिलशः क्रुद्धो दर्शयन्पाणिलाघवम्। ततो विष्णुःप्रकुपितःप्रासंजग्राहभैरवम्॥६९॥

वे काञ्चन कान्ति वाले बाणों जनार्दन का हृदय विद्ध होकर कौस्तुभ मणि की किरण जैसे लगने लगे। हरि

ने इस बाणाघात से किंचित व्यथित होकर मुद्गर उठाया तथा उसे घुमा कर कालनेमि पर फेंका। दानवेन्द्र कालनेमि ने उस मुद्गर के पहुंचने के पूर्व ही हाथों की तेजी से आकाश में उसका छेदन कर दिया। तब विष्णु ने क्रोधित होकर भीषण प्रासास्त्र से वेगपूर्वक कालनेमि के हृदय पर आघात किया।।६६-६९।।

तेन दैत्यस्य हृदयं ताडयामास वेगतः। क्षणेन लब्धसञ्ज्ञस्तु कालनेमिर्महासुरः॥७०॥
शक्तिं जग्राह तीक्ष्णाग्रां हेमघण्टाट्टहासिनीम्। तया वामं भुजं विष्णोर्बिभेद दितिनन्दनः॥७१॥
भिन्नं शक्त्या भुजं तस्य स्रुतशोणितमाबभौ। नीलेबलाहकेविद्युद्विद्योतन्तीयथामुहुः॥७२॥
ततो विष्णुः प्रकुपितोजग्राहविपुलं धनुः। सप्तदश च नराचांस्तीक्ष्णाग्रान्मर्मभेदिनः॥७३॥
दैत्यस्य हृदयं षड्भिर्विव्याधचशरैस्त्रिभिः। चतुर्भिः सारथिंचास्यध्वजंचैकेनपत्रिणा॥७४॥

द्वाभ्यां धनुर्ज्यांधनुषी भुजं चैकेन पत्रिणा।
स विद्धो हृदये गाढं दोषैर्मूढोयथा नरः॥७५॥

स्रुतरक्तारुणः प्रांशुः पीडाचलितमानसः। चकम्पे मारुतेनेव चोदितः किंशुकद्रुमः॥७६॥

महासुर दितिपुत्र कालनेमि इस आघात से अचेतन हो गया, परन्तु क्षणमात्र में ही चेतना लाभ करके उसने एक स्वर्णघण्टा युक्त तीक्ष्णाग्र भाग वाली शक्ति का प्रहार विष्णु के बायें हाथ पर किया। इस आघात से विष्णु की बाहु विद्ध हो गयी तथा उससे शोणित बहने लगा। प्रतीत हुआ मानों नीलमेघ (विष्णु की देह) से पुनः-पुनः बिजली चमक रही है। तब विष्णु अत्यन्त क्रोधित हो उठे। उन्होंने विशाल धनुष उठाया तथा तीक्ष्ण नोंक वाले १७ नाराच द्वारा उस दैत्य का हृदय विद्ध करके छः बाणों से, पुनः तीन बाण से उसे भेदा। ४ बाण से उसके सारथि को, १ बाण से ध्वज को, दो बाण से उसके धनुष को तथा प्रत्यंचा को और एक बाण से उसकी बाहु को विद्ध किया। जैसे दोषों से मूढ़ नर विद्ध हो जाता है, उसी प्रकार से वह विशाल दानव हृदय में गहरा क्षत हो जाने के कारण रक्तक्षरण करते-करते वैसा प्रतीत होने लगा, जैसे वायु के झोकों से हिलते पलाश वृक्ष जैसा हिल रहा हो।।७०-७६।।

ततः कम्पितमालक्ष्य गदां जग्राह केशवः। तां च वेगेन चिक्षेप कालनेमिवधं प्रति॥७७॥
सा पपात शिरस्युग्रा सहसा कालनेमिनः। सञ्चूर्णितोत्तमाङ्गस्तु निष्पिष्टमुकुटोसुरः॥७८॥
स्रुतरक्तौघरन्ध्रस्च स्रुतधातुरिवाऽचलः। पपात स्वे रथे भग्नो विसञ्ज्ञः शिष्टजीवनः॥७९॥
पतितस्य रथोपस्थेदानवस्याऽच्तुयोऽरिहा। स्मितपूर्वमुवाचेदं वाक्यं चक्रायुधःप्रभुः॥८०॥
गच्छाऽसुर! विमुक्तोऽसिसाम्प्रतंजीवनिर्वृतः। ततःस्वल्पेनकालेनअहमेवतवाऽन्तकः॥८१॥

एवं वचस्तस्य निशम्य विष्णोः सर्वेश्वरस्याऽथ रथं निमेषात्।
निनाय दूरं किल कालनेमिनो भीतस्तदा सारथिर्लोकनाथात्॥८२॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे देवासुरसङ्ग्रामे कालनेमिकृतयुद्धसम्मर्दे विष्णुना सह कालनेमियुद्धवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥

तब भगवान् केशव ने उसे इस प्रकार कम्पित होते देखकर गदा लेकर उसे कालनेमि पर उसके वध की इच्छा से फेंका। वह उग्र गदा कालनेमि के मस्तक पर जा गिरी। उससे उसका मस्तक चूर्ण हो गया तथा मुकुट भी चूर हो गया। उसके देह के सभी रन्ध्रों से रक्तस्राव होने लगा, जैसे मानों पर्वत से धातुरस का क्षरण हो रहा हो। वह संज्ञाशून्य तथा मृतप्रायः होकर अपने रथ पर गिर पड़ा। उसके रथ पर गिरते ही प्रभु शत्रुघाती अच्युत चक्रधारी देव ने तनिक हंसी के साथ उससे कहा—"हे असुर! जाओ, तुमको छोड़ दिया। सम्प्रति निर्भय होकर जीओ। तदनन्तर शीघ्र ही मैं तुम्हारा संहार करूंगा।" कालनेमि के सारथि ने सर्वेश्वर विष्णु का यह वाक्य सुनकर भयवशात् निमेषमात्र में रथ को हांकता दूर भाग गया।।७७-८२।।

।।उनविंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

विंशोऽध्यायः

दैत्यगण से विष्णु का युद्ध, दैत्यसंहार, विष्णु-शुंभ युद्ध वर्णन

नारद उवाच

तं दृष्ट्वा दानवाः सर्वे क्रुद्धाःस्वैःस्वैर्बलैर्वृताः। सरघा इव माध्वीकं रुरुधुःसर्वतस्ततः॥१॥
पर्वताभे गजे भीमे मदस्त्राविणि दुर्दमे। सितचित्रपताके तु प्रभिन्नकरटामुखे॥२॥
स्वर्णवर्णाञ्चितेयद्वन्नगेदावाग्निसम्वृते। आरुह्याऽऽजौ निमिर्दैत्यो हरिं प्रत्युद्ययौबली॥३॥
तस्यासन्दानवारौद्रा गजस्यपरिरक्षिणः। सप्तविंशतिकोट्यश्चकिरीटकवचोज्ज्वलाः॥४॥

नारद कहते हैं—जैसे मधुमक्खी मधु के छत्ते को घेरे रहती हैं, उसी प्रकार कालनेमि की वह अवस्था देखकर दानवों ने क्रोधित होकर अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर विष्णु को घेर लिया। बली निमि दैत्य भयानक हाथी पर बैठकर हरि के ऊपर आक्रामक हो गया। उसका जो वाहनरूप हाथी था, वह दावाग्नि समावृत पर्वताभ था तथा स्वर्णालंकार से सज्जित था। वह विचित्र श्वेत पताकायुक्त, दीर्घ दांतों वाला दुर्दमनीय था। उसके गजरक्षक किरीट कुण्डल-कवच भूषित २७ कोटि दानव उसका अनुसरण कर रहे थे।।१-४।।

अश्वमारूह्य शैलाभं मथनो हरिमाद्रवत्। पञ्चयोजनप्रग्रीवमुष्ट्रमास्थाय जम्भकः॥५॥
शुम्भो मेषं समारूह्याऽव्रजद्द्वादशयोजनम्। अपरे दानवेन्द्राश्चयत्तानानास्त्रपाणयः॥६॥
आजग्मु समरे क्रुद्धाविष्णुमक्लिष्टकारिणम् । परिघेणनिमिर्दैत्यो मयनो मुद्गरेण च॥७॥
शुम्भः शूलेन तक्ष्णेन प्रासेन ग्रसनस्तथा। चक्रेण क्रथनः क्रुद्धो जम्भः शक्त्यामहारणे॥८॥
जघ्नुर्नारायणं शेषा विशिखैर्मर्मभेदिभिः। तान्यस्त्राणिप्रयुक्तानिविविशुःपुरुषोत्तमम्॥९॥
उपदेशा गुरोर्यद्वत्सच्छिष्यंबहुधेरिताः। ततः क्रुद्धो हरि र्गृह्यधनुर्वाणांश्च पुष्कलान्॥१०॥
ममर्द दैत्यसेनां तद्धर्ममर्थवचो यथा। निमिं विव्याध विंशत्या बाणैरनलवर्चसैः॥११॥

मथनंदशभिश्चैव शुम्भं पञ्चभिरेव च। शतेन महिषं क्रुद्धो विव्याधोरसि माधवः॥१२॥
जम्भंद्वादशभिस्तीक्ष्णैःसर्वांश्चैकैकशोऽष्टभिः।
तस्यतल्लाघवंदृष्ट्वादानवाःक्रोधमूर्छिताः ॥१३॥

मथनासुर पर्वत के समान उन्नत अश्व पर आरूढ़ था। जम्भ दानव पांच योजन ग्रीवाशाली उष्ट्र पर तथा शुंभ दानव १२ योजन व्यापी मेष पर आरोहण करके हरि पर आक्रमण करने लगा। अन्य दानवगण क्रोधान्वित होकर नाना यानों पर विविध अस्त्र-शस्त्र लेकर अक्लिष्टकर्मा विष्णु के प्रति आक्रमण करने लगे। निमि ने परिध से, मंथन ने मुद्गर से, शुम्भ ने तीव्र शूल से, ग्रसन ने प्रास से, क्रथन ने चक्र से, जम्भ ने शक्ति से तथा अन्य दानवों ने मर्मभेदी बाण जाल से उस महायुद्ध में नारायण पर प्रहार प्रारम्भ किया। जैसे सत्शिष्य में गुरु द्वारा बहुधा कहे उपदेश प्रविष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार से ये समस्त अस्त्र पुरुषोत्तम में प्रविष्ट हो गये, तब उन्होंने क्रोधपूर्वक धनुष उठाकर अनेक बाणों द्वारा दैत्यसेना का उसी प्रकार मर्दन करने लगे, जैसे दांभिक व्यक्ति के वाक्य से धर्म का मर्दन होने लगता है। प्रभु माधव ने क्रोधपूर्वक अग्नि के समान तीक्ष्ण २० बाणों से निमि का, १० बाण से मंथन का, ५ बाणों से शुम्भ का, १०० बाणों से महिष का, १२ बाणों से जम्भ का तथा ८-८ बाणों से अन्य सबका वक्षःस्थल विद्ध किया। दानवगण विष्णु के इस क्षिप्र बाणवर्षण के कारण क्रोध से मूर्छितप्रायः हो गये।५-१३।।

चक्रुर्गाढतरंयत्नमावृण्वानाहरिंशरैः। चिच्छेदाऽथ धनुर्ज्यां च निमिर्भल्लेनदानवः॥१४॥
हस्ताच्चापं च संरम्भाच्चिच्छेद महिषासुरः। पीडयामास गरुडंजम्भोबाणायुतैस्त्रिभिः॥१५॥
भुजावस्य च विव्याध शुम्भो बाणायुतेन वै। ततो विस्मितचित्तस्तु गदां जग्राह माधवः॥१६॥
तां प्राहिणोत्स वेगेन मथनाय महाहवे। तामप्राप्तां निमिर्बाणैर्मुशलाभैः सहस्त्रशः॥१७॥
आहत्य पातयामास विनदन्कालमेघवत्। ततोऽन्तरिक्षे हाहेति भूतानां जज्ञिरे कथाः॥१८॥
नैतदस्ति बलं व्यक्तं यत्राऽशीर्यतसा गदा। तां हरिः पतितांदृष्ट्वा अस्थानेप्रार्थनामिव॥१९॥
जग्राह मुद्गरं घोरं दिव्यरत्नपरिष्कृतम्। तं मुमोचाऽतिवेगेन निमिमुद्दिश्य दानवम्॥२०॥
तमायान्तं वियत्येव त्रयो दैत्या ह्यवारयन्। गदया जम्भदैत्यस्तु ग्रसनः पट्टिशेन तु॥२१॥
शक्त्या च महिषोदैत्योविनदन्तोमहाररवम्। निराकृतंतमालोक्य दुर्जनैः सुजनं यथा॥२२॥
जग्राह शक्तिमुग्रोग्रां शतघण्टामहास्वनाम्। जम्भाय तां समुद्दिश्य प्राहिणोद्भीषणेरणे॥२३॥

तब उन्होंने यत्नपूर्वक बाणवर्षा से हरि को आच्छन्न कर दिया। निमिदानव ने भल्ल प्रहार से हरि के धनुष की प्रत्यंचा को तथा महिषासुर ने क्रोधपूर्वक हरि के हस्तावरण (दस्ताने) का छेदन कर दिया। जम्भ ने तीन अयुत बाणों से गरुड़ को पीड़ित किया। शुंभ ने एक अयुत (१००००) बाणों से हरि के बाहुद्वय को विद्ध किया। तब माधव ने विक्षिप्त चित्त से उस महायुद्ध में एक गदा लेकर वेगपूर्वक मंथन पर फेंका। तथापि निमि दानव ने मध्य मार्ग में ही कालमेघवत् गर्जन करते-करते मूसल जैसे हजारों बाणों द्वारा उस गदा को मार गिराया। अन्तरिक्ष में वहां के प्राणी हाहाकार के साथ यह कहने लगे कि "ऐसा शक्तिमान् तो कोई नहीं है, जिस पर यह गदा व्यर्थ हो जाये।" हरि ने इस गदा को उस प्रकार से विफल देखा, जैसे उचित स्थान न होने पर वहां की गयी प्रार्थना व्यर्थ हो जाती है। तब श्रीहरि ने दिव्य रत्नभूषित मुद्गर उठाया तथा निमि दानव के ऊपर उसे फेंका। उस मुद्गर को आते

देखकर जम्भ, ग्रसन तथा महिष ने महानाद करते हुये यथाक्रमेण गदा, पट्टिश तथा शक्ति प्रहार से उस मुद्गर का निवारण कर दिया। जब श्रीहरि ने उस भीषण रणभूमि में इस मुद्गर को व्यर्थ जाते देखा, जैसे दुर्जन द्वारा सुजन व्यर्थ हो जाते हैं, तब विष्णु ने शतघण्टा मण्डिता अत्युग्र शक्ति जम्भ पर छोड़ा।।१४-२३।।

तामायन्तीमथालोक्य जम्भोऽन्यस्य रथात्त्वरात्।
आप्लुत्य लीलया गृह्णन्कामिनीं कामुको यथा॥२४॥
तयैवगरुडं मूर्ध्नि जघ्ने स प्रहसन्बली। ततो भूयो रथं प्राप्य धनुर्गृह्याऽभ्ययोजयत्॥२५॥
विचेताश्चाऽभवद्युद्धे गरुडः शक्तिपीडितः। ततःप्रहस्यतं विष्णुः साधुसाध्वितिभारत॥२६॥
करस्पर्शेनकृतवान्विमोहंविनतात्मजम्। समाश्वास्यचतंवाग्भिःशक्तिंदृष्ट्वाचनिष्फलाम्॥२७॥
कुभार्यस्य यथा पुंसः सर्वं स्याच्चिन्तितं वृथा। दृढसारमहामौर्वीमन्यांसंयोजयत्ततः॥२८॥
कृत्वा च तलनिर्घोषंरौद्रमस्त्रं मुमोच सः। ततोऽस्त्रतेजसा सर्वमाकाशं नैव दृश्यते॥२९॥

बलवान् जम्भ दानव ने शत्रुत्यक्त शक्ति को अपनी ओर आते देखा, तब वह वेगपूर्वक उछल कर रथ से नीचे आया तथा खेल-खेल में उस शक्ति को ऐसे पकड़ लिया, जैसे कामी व्यक्ति कामिनी को पकड़ लेता है। उसने हंसते हुये उस शक्ति के द्वारा गरुड़ के मस्तक पर प्रहार कर दिया। पुनः जम्भ अपने रथ पर आ बैठा तथा धनुष उठाकर युद्धरत हो गया। गरुड़ उस शक्ति प्रहार के कारण उस रणभूमि में ही अचेत हो गये। विष्णु उस दानव के प्रति साधु-साधु कहकर उसकी प्रशंसा करने लगे तथा उन्होंने करस्पर्श से गरुड़ को सचेत कर दिया। हरि ने वाक्य द्वारा गरुड़ को आश्वस्त किया तथा शक्ति को उस प्रकार निष्फल देखकर जैसे कि कुभार्या युक्त पुरुष व्यर्थ तथा सबके द्वारा चिन्तित होता है, हरि ने अपने धनुष पर एक अत्यन्त मजबूत प्रत्यंचा चढ़ाकर तल निर्घोष करते हुये मन्त्र के साथ एक रौद्र अस्त्र को छोड़ा। उस अस्त्र के तेज से समस्त आकाश ही दिखलाई पड़ना बन्द हो गया। वहां केवल अस्त्र से निकला तेज ही तेज व्याप्त हो गया।।२४-२९।।

भूमिर्दिशश्च विदिशो बाणजालमया बभुः। दृष्ट्वा तदस्त्रमाहात्म्यं सेनानीर्ग्रसनोऽसुरः॥३०॥
ब्राह्ममस्त्रं चकाराऽऽशुसर्वास्त्रविनिवारणम्। तेनततत्प्रशमंयातंरौद्रास्त्रंलोकभीषणम्॥३१॥
अस्त्रे प्रतिहते तस्मिन्विष्णुर्दानवसूदनः। कालदण्डास्त्रमकरोत्सर्वलोकभयङ्करम्॥३२॥
सन्धीयमानेऽस्त्रेतस्मिन्मारुतःपरुषोववौ। चकम्पेचमहीदेवीभिन्नाश्चाम्बुधयोऽभवन्॥३३॥
तदस्त्रमुग्रं दृष्ट्वा तु दानवा युद्धदुर्मदाः। चक्रुरस्त्राणिदिव्यानि नानारूपाणि संयुगे॥३४॥
नारायणास्त्रं ग्रसनस्तु चक्रे त्वाष्ट्रं निमिश्चाऽस्त्रवरं मुमोच।
ऐषीकमस्त्रं च चकार जम्भो युद्धस्य दण्डास्त्रनिवारणाय॥३५॥
यावच्च सन्धानवशं प्रयान्ति नारायणादीनि निवारणाय।
तावत्क्षणेनैव जघान कोटीं दैत्येश्वराणां किल कालदण्डः॥३६॥

उसके तेज से भूमि-दिशायें-विदिशायें सभी बाणों से आच्छन्न हो गईं। सेनापति ग्रसनासुर ने उस अस्त्र का प्रभाव देखकर सर्वास्त्र निवारक ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। इस प्रयोग से वह लोकभयंकर रौद्रास्त्र भी प्रशान्त हो

गया। उस रौद्रास्त्र के शान्त हो जाने पर दानवों का नाश करने वाले विष्णु ने सर्वलोक भयंकर कालदण्ड नामक अस्त्र का सन्धान किया। उसके संधान करते ही वायु अत्यन्त कठोर रूप से प्रवाहित होने लगी। पृथिवी में कम्पन होने लगा। सगस्त सागर उद्वेलित हो उठे। युद्धदुर्मद दानवगण युद्धभूमि में उस उग्र अस्त्र को प्रक्षिप्त किया गया देखकर कालदण्ड के प्रतिकार हेतु अनेक दिव्यास्त्र छोड़ने लगे। ग्रसन ने नारायणास्त्र, निमि ने त्वाष्टास्त्र तथा जम्भ ने ऐषिकास्त्र का प्रयोग किया। तथापि इन दिव्यास्त्रों का सन्धान होते-होते उस कालदण्डास्त्र ने क्षणमात्र में १ कोटि दानवों का संहार कर दिया।।३०-३६।।

अनन्तरं शान्तमयं तदस्त्रं दैत्यास्त्रयोगेन च कालदण्डम्।
शान्तं तदालोक्य हरिः स्वमस्त्रं कोपेन कालानलतुल्यमूर्तिः॥३७॥
जग्राह चक्रं तपनायुतप्रभमुग्रारमात्मानमिव द्वितीयम्।
चिक्षेप सेनापतये ज्वलन्तं चतुर्भुजः संयति सम्प्रगृह्य॥३८॥
तदाव्रजच्चक्रमथो विलोक्य सर्वात्मना दैत्यवराः स्ववीर्यात्।
नाशक्नुवन्वारयितुं प्रचण्डं दैवं यथा पूर्वमिवोपपन्नम्॥३९॥
तदप्रतर्क्यं नवहेतितुल्यं चक्रं पपात ग्रसनस्य कण्ठे।
तद्रक्तधारारुणघोरनाभि जगाम भूयोऽपि करं मुरारेः॥४०॥
चक्राहतः संयति दानवश्च पपात भूमौ प्रममार चाऽपि।
दैत्याश्च शेषा भृशशोकमापुः क्रोधं च केचित्पिपिषुर्भुजांश्च॥४१॥

अन्त में वह दैत्यास्त्र से शान्त हो गया। अब चतुर्भुज हरि ने अपने इस अस्त्र को भी नष्ट हुआ देखकर क्रोध के कारण कालानल के समान रूप धारण किया। वह रूप १०००० सूर्य के समान प्रभायुक्त, उग्र अरयुक्त था। वह उनकी आत्मा के समान अत्युज्वल था। अब विष्णु ने वह चक्र लेकर सेनापति ग्रसनासुर पर चलाया। उस चक्र को आते देखकर दैत्यपतिगण अपने-अपने बलवीर्य के अनुसार नाना अस्त्र-शस्त्र द्वारा उसे निवारित करने का प्रयत्न करने लगे। किन्तु पूर्वार्जित दैव की तरह किसी प्रकार से भी उस चक्र का निवारण नहीं कर सके। वह अचिन्त्य अभिनव अस्त्र ग्रसन के कण्ठ पर गिरा तथा उसे रक्तधारा से रंजित करके पुनः श्रीहरि के हाथों में लौट आया। ग्रसन दानव भी चक्राघात से रणभूमि में गिरा तथा मृत हो गया। बाकी बचे दानवगण अतिशय शोकमग्न तथा क्रोधित होकर अपनी बाहु का ही निस्पेषण करने लगे।।३७-४१।।

ततो विनिहते दैत्ये ग्रसने बलनायके। निर्मर्यादमयुध्यन्त हरिणा सह दानवाः॥४२॥
पट्टिशैर्मुशलैः प्रासैर्गदाभिःकणपैरपि। तीक्ष्णाननैश्च नाराचैश्चक्रैः शक्तिभिरेव च॥४३॥
तदस्त्रजालं तैर्मुक्तं लब्धलक्षो जनार्दनः। एकैकं शतधा चक्रे बाणैरग्निशिखोपमैः॥४४॥
जघान तेषां संक्रुद्धः कोटिकोटिं जनार्दनः। ततस्ते सहसा भूत्वा न्यपतन्केशवोपरि॥४५॥
गरुडं जगृहुः केचित्पादयोःशतशोऽसुराः। ललम्बिरे च पक्षाभ्यां मुखे चान्ये ललम्बिरे॥४६॥
केशवस्याऽपिधनुषि भुजयोः शीर्ष एव च। ललम्बिरे महादैत्या निनदन्तो मुहुर्मुहुः॥४७॥

तदद्भुतं महद्दृष्ट्वा सिद्धचारणवार्त्तिकाः। हाहेति मुमुचुर्नादमम्बरे चाऽस्तुवन्हरिम्॥४८॥

तब वे अपने सेनापति ग्रसनासुर के मृत हो जाने पर दानव श्रीहरि के साथ विशृङ्खल रूप से युद्ध करने लगे। वे पट्टिश, मूसल, प्रास, गदा, कणप, तीक्ष्ण नाराच, चक्र, शक्ति प्रभृति नाना अस्त्र विष्णु पर छोड़ने लगे। परन्तु स्थिरलक्ष्य जनार्दन ने क्रोधपूर्वक अग्नि शिखा के समान बाणों से उन सब अस्त्रों को सैकड़ों खण्ड में काट कर कोटि-कोटि दानवों का संहार प्रारम्भ कर दिया। तब वे सब एक साथ मिलकर एकबारगी केशव पर टूट पड़े। सैकड़ों असुरों ने गरुड़ के दोनों पैरों को पकड़ लिया। अनेक उन गरुड़ के दोनों पंख तथा चोंच से लटक गये। इस प्रकार से महादैत्यगण दीर्घ निनाद करते हुये केशव के धनुष, बाहुद्वय तथा मुख से लटक गये। नभमण्डल से सिद्ध-चारणादि इस अद्भुद् दृश्य को देखकर हाहाकार करने लगे तथा हरि की बलवृद्धि हेतु स्वस्तिवाचन करने लगे।।४२-४८।।

ततो हरिर्विनिर्धूयपातयामासतान्भुवि। यथा प्रबुद्धःपुरुषो दोषान्संसारसम्भवान्॥४९॥
विकोशञ्च ततः कृत्वा नन्दकंखड्गमुत्तमम्। चर्मचाप्यमलंविष्णुःपदातिस्तानधावत॥५०॥
ततो मुहूर्तमात्रेण पद्मानि दश केशवः। चकर्त्त मार्गे बहुभिर्विचरन्दैत्यसत्तमान्॥५१॥
ततो निमिप्रभृतयो विनद्याऽसुरसत्तमाः। अधावन्त महेष्वासाः केशवंपादचारिणम्॥५२॥
गरुत्मांश्चाऽभ्ययात्तूर्णमारुरोह च तं हरिः। उवाच च गरुत्मन्तं तस्मिंश्च तुमुले रणे॥५३॥
अश्रान्तो यदि तार्क्ष्यासिमथनंप्रति तद्व्रज। श्रान्तश्चेच्च मुहूर्तं त्वं रणादपसृतो भव॥५४॥

जैसे आत्मज्ञानी पुरुष सांसारिक दोषों को छोड़ देता है, उसी प्रकार श्रीहरि ने अपना अंग कम्पित करके दानवों को नीचे गिरा दिया तथा म्यान से तत्काल नन्दक नामक श्रेष्ठ खड्ग निकाल कर तथा हाथ में निर्मल ढाल लेकर पैदल ही उन दानवों का वध करने के लिए दौड़ पड़े। देवदेव केशव ने नाना प्रकार से खड्ग परिचालित करके दश पद्म संख्यक दैत्यगण का संहार कर दिया। तब निमि आदि प्रमुख महाधनुर्धर असुरश्रेष्ठ योद्धा सिंहनाद करते हुये पैदल आ रहे केशव के प्रति दौड़ पड़े। इतने में ही तीव्र गति से गरुड़ केशव के पास आये तथा उनके पृष्ठ पर आरोहणोपरान्त श्रीहरि ने कहा—"यदि तुमुल युद्ध में तुम थके न हो, तब मथनासुर के पास चलो। यदि थकान लगती हो, तब क्षण काल हेतु युद्ध क्षेत्र से दूर चले जाओ"।।४९-५४।।

तार्क्ष्य उवाच

न मे श्रमोऽस्ति लोकेशकिञ्चित्संस्मरतश्चमे। यन्मेसुतान्वाहनत्वेकल्पयामासतारकः॥५५॥
इति ब्रुवव्रणे दैत्यं मथनं प्रति सोऽगमत्। दैत्यस्त्वभिमुखं दृष्ट्वा शङ्खचक्रगदाधरम्॥५६॥
जघान भिण्डिपालेन शितधारेण वक्षसि। तं प्रहारमचिन्त्यैव विष्णुस्तस्मिन्महाहवे॥५७॥
जघान पञ्चभिर्बाणैर्गिरीन्द्रस्याऽपि भेदकैः। आकर्णकृष्टैर्दशभिः पुनर्विद्धः स्तनान्तरे॥५८॥

गरुड़ कहते हैं—"हे लोकेश! तारकासुर ने मेरे पुत्रों को पकड़ कर अपना वाहन बना लिया है। यह स्मरण करके मुझे थकान नहीं हो रही है।" यह कहते-कहते गरुड़ मथनासुर के पास पहुंच गये। जब दैत्य ने शंख-चक्र-गदाधारी विष्णु को सामने आया देखा, तब उसने तीक्ष्ण धार वाला भिन्दिपाल लेकर श्रीहरि के वक्ष पर आघात किया। विष्णु ने इस महायुद्ध में उस आघात पर ध्यान न देकर पर्वत तक का भेदन करने वाले ५

बाणों से मथन दैत्य को आघात पहुंचाया। तदनन्तर उसके स्तन प्रदेश के मध्य में १० बाणों का प्रहार किया।।५५-५८।।

विचेतनो मुहूर्तात्स संस्तभ्य मथनः पुनः। गृहीत्वा परिघं मूर्ध्नि जनार्दनमताडयत्।।५९।।
विष्णुस्तेनप्रहारेणकिञ्चिदाघूर्णितोऽभवत्। ततःकोपविवृत्ताक्षो गदां जग्राह माधवः।।६०।।
तया सन्ताडयामास मथनं हृदये दृढम्। स पपात तथा भूमौ चूर्णिताङ्गो ममार च।।६१।।
तस्मिन्निपतिते भूमौ मथने मथिते भृशम्। अवसादं ययुर्दैत्याः सर्वे ते युद्धमण्डले।।६२।।
ततस्तेषु विषण्णेषुदानवेष्वतिमानिषु। चुकोप रक्तनयनो महिषो दानवेश्वरः।।६३।।
प्रत्युद्ययौ हरिं रौद्रः स्वबाहुबलमाश्रितः। तीक्ष्णधारेण शूलेन महिषो हरिमर्दयन्।।६४।।

इस प्रहार से मथन दैत्य कुछ क्षणों के लिए अचेत हो गया, तथापि पुनः आत्मसंवरण करके उसने एक परिघ से जनार्दन का मस्तक आहत किया। लक्ष्मीपति श्रीविष्णु ने इस आघात से किंचित घूर्णन का अनुभव किया। तत्पश्चात् विष्णु ने गदा लेकर क्रोध के साथ उस गदा से मथन दैत्य के हृदय पर दृढ़ प्रहार किया। इस आघात से चूर्णित होकर मथन दैत्य भूपतित होकर मृत्युग्रस्त हो गया। युद्धभूमि में मथनासुर की यह हालत देखकर दैत्यगण अत्यन्त विषण्ण से हो गये। अति अभिमानी दानवों को इस प्रकार से विषण्ण देखकर दानवराज महिष क्रोध से आंखें लाल किये हुये अपने बाहुबल के तथा भीषणाकृति के गर्व से चूर होकर श्रीहरि की ओर आक्रमणार्थ दौड़ पड़ा। वीर महिष ने तीक्ष्ण धार वाले शूल से हरि के वक्षःस्थल पर आघात पहुंचाया।।५९-६४।।

शक्त्या च गरुडं वीरो हृदयेऽभ्यहनद्दृढम्। ततो विवृत्य वदनं महाचलगुहानिभम्।।६५।।
ग्रस्तुमैच्छद्रणेदैत्यःसगरुत्मन्तमच्युतम्। अथाच्युतोऽपिविज्ञायदानवस्यचिकीर्षितम्।।६६।।
वदनं पूरयामास दिव्यैरस्त्रैर्महाबलः। स तैर्बाणैरभिहतो महिषोऽचलसन्निभः।।६७।।
परिवर्तितकायार्धः पपाताऽथ ममार च। महिषं पतितं दृष्ट्वा जीवयित्वा पुनर्हरिः।।६८।।

तदनन्तर महिष ने एक शक्ति द्वारा गरुड़ के हृदय पर दारुण आघात किया। इसके अनन्तर महिष गरुड़ के साथ ही विष्णु को निगल जाने के लिए महागिरि गुफा के समान अपना मुख फाड़ कर आगे बढ़ने लगा! महाबली अच्युत देव ने उस दानव का विचार जान कर दिव्यास्त्र द्वारा उसका मुंह भर दिया। तब अग्निवत् उग्र आकृति वाला महिष दानव इन बाणों से आहत हो गया। उसने अपने आधे शरीर का रूप परिवर्त्तित किया और भूपतित होकर मृत हो गया। हरि ने महिषासुर को भूपतित देखकर पुनर्जीवित करके उससे कहने लगे।।६५-६८।।

महिषंप्राहमत्तस्त्वं वधंनाऽर्हसि दानव!। योषिद्वध्यःपुरोक्तस्त्वंसाक्षात्कमलयोनिना।।६९।।
उत्तिष्ठ गच्छमन्मुक्तो द्रुतमस्मान्महारणात्। इत्युक्तोहरिणा तस्माद्देशादपगतोऽसुरः।।७०।।

श्रीहरि कहते हैं—हे दानव! मेरे द्वारा तुम्हारी मृत्यु होना उचित नहीं है। कमलयोनि ब्रह्मा ने तुमको साक्षात् वर दिया है कि तुम्हारा वध स्त्री द्वारा होगा। उठो! मैं तुमको छोड़ता हूं। शीघ्रता से रणभूमि से भाग जाओ। हरि के इस वाक्य को सुनकर वह दानव रणभूमि से हट गया।।६९-७०।।

तस्मिन्पराङ्मुखे दैत्ये महिषे शुम्भदानवः। सन्दष्टौष्ठपुटाटोपो भृकुटीकुटिलाननः।।७१।।
निर्मथ्य पाणिनापाणिं धनुरादाय भैरवम्। सज्जीकृत्यमहाघोरान्मुमोचशतशःशरान्।।७२।।

स चित्रयोधी दृढमुष्टिपातस्ततश्च विष्णुं गरुडं च दैत्यः।
बाणैर्ज्वलद्वह्निशिखानिकाशैः क्षिप्तैरसंख्यैः प्रतिघातहीनैः॥७३॥
विष्णुश्च दैत्येन्द्रशरार्दितो भृशं भुशुण्डिमादाय कृतान्ततुल्याम्।
तथा मुखं चाऽस्य पिपेष संख्ये शुम्भस्य जश्रुं च धराधराधराभम्॥७४॥
ततस्त्रिभिःशुम्भभुजं द्विषष्ट्या सूतस्य शीर्षं दशभिश्च केतुम्।
विष्णुर्विकृष्टैः श्रवणावसानं दैत्यस्य बाणैर्ज्वलनार्कवर्णैः॥७५॥

महिष के युद्ध से विरत हो जाने पर शुम्भ दानव भृकुटी को टेढ़ा किये तथा ओठ को दांतों से चबाते (महा क्रोध के ये सब लक्षण हैं) हाथों से हाथों को मलते हुये भयानक धनुष लेकर वहां आया। धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर महा भयानक सैकड़ों-सैकड़ों बाणों की वर्षा करने लगा। उस दृढ़ मुष्टि बन्धन से धनुष को पकड़ने वाले दानव ने जलती अग्निशिखा के समान असंख्य बाणों के आघात से विष्णु एवं गरुड़ को ढ़क दिया। इससे विष्णुदेव रणस्थल में शुम्भ के बाणाघात से अत्यन्त पीड़ित हो गये और साक्षात् उन्होंने यम के समान भयंकर एक भुशुण्डि लेकर उस दानव शुम्भ के जत्रुदेश तथा मुख पर प्रहार किया और प्रत्यंचा को कानों तक खींचकर सूर्य तथा अग्नि के समान उज्वल तीन बाणों से क्रमशः उसकी बाहु, ६२ बाणों से सारथि का मस्तक तथा १० बाणों से रथ की ध्वजा का भेदन कर दिया।।७१-७५।।

स तैश्च विद्धो व्यथितो बभूव दैत्येश्वरो विस्रुतशोणितार्क्तः।
ततोऽस्य किञ्चिच्चलितस्य धैर्यादुवाच शङ्खाम्बुजशार्ङ्गपाणिः॥७६॥
योषित्सुवध्योऽसि रणं विमुञ्च शुम्भाऽशुभ स्वल्पतरैरहोभिः।
मत्तोऽर्हसि त्वं न वृथैव मूढ! ततोऽपयातः स च शुम्भदानवः॥७७॥

दैत्यराज शुम्भ इस बाणाघात से व्यथित हो गया। उसके शरीर से रक्त बहता जा रहा था। वह अधीर हो गया। तब शंख, पद्म, शार्ङ्गधनुषधारी विष्णुदेव ने उससे कहा—"हे असुर, मूढ़ शुम्भ! विधानतः मेरे हाथों तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी। तथापि तुम शीघ्र ही नारी के द्वारा मारे जाओगे। क्यों व्यर्थ मत्त होकर युद्ध कर रहे हो। युद्ध त्याग कर चले जाओ।" यह सुनकर शुम्भ रणभूमि से चला गया।।७६-७७।।

जम्भोऽथ तद्विष्णुमुखान्निशम्य जगर्ज चोच्चैः कृतसिंहनादः।
प्रोवाच वाक्यं च सलीलमाजौ महाट्टहासेन जगद्विकम्प्य॥७८॥
किमेभिस्ते जलावास दैत्यैर्हीनपराक्रमैः। मामासादययुद्धेस्मिन्यदि ते पौरुषं क्वचित्॥७९॥
यत्ते पूर्वं हता दैत्या हिरण्याक्षमुखाः किल। जम्भस्तदाभवन्नैवपश्यमामद्य संस्थितम्॥८०॥
पश्य तालप्रतीकाशौभुजावेतौ हरे! मम। वक्षो वा वज्रकठिनं मयि प्रहर तत्सुखम्॥८१॥

विष्णु मुखोच्चारित यह वाक्य सुनकर जम्भ दानव सिंहनाद करता तथा गर्जन करता हुआ युद्ध क्षेत्र में आया। वह अपने महान् अट्टहास से जगत् को कंपित करता हुआ लीला के साथ कहने लगा—"हे जल में रहने वाले! इन सब पराक्रमहीन दैत्यों के साथ युद्ध करने में तुम्हारा पौरुष क्या है? यदि तुम्हारे अन्दर पौरुष है, तब मुझ पर आक्रमण करो। जब तुमने हिरण्याक्ष आदि प्रमुख दैत्यों का वध किया, तब मैं जम्भा था ही नहीं। आज मैं

तुम्हारे सामने उपस्थित हूं। देखो, हे हरि! मेरा तालवृक्ष के दोनों भुजदण्ड तथा वज्र के समान वक्षःस्थल देखो। मुझ पर यथेच्छ प्रहार करो''।।७८-८१।।

इत्युक्तः केशवस्तेन सृक्कि (क्क) णी सल्लिहन्रुषा। मुमोचपरिघंघोरंगिरीणामपिदारणम्।।८२।।
ततस्तस्याऽप्यनुपदं कालायसमयं दृढम्। मुमोच मुद्गरं विष्णुर्द्वितीयं पर्वतं यथा।।८३।।
तदायुधद्वयं दृष्ट्वा जम्भो न्यस रथे धनुः। आप्लुत्य परिघं गृह्य गरुडं तेन जघ्निवान्।।८४।।
द्वितीयं मुद्गरं चाऽनु गृहीत्वा विनदन्रणे। सर्वप्राणेन गोविन्दं तेन मूर्ध्नि जघान सः।।८५।।
ताभ्यांचाऽतिप्रहाराभ्यामुभौगरुडकेशवौ। मोहाविष्टौविचेतस्कौमृतकल्पाविवासताम्।।८६।।

उसके यह कहने पर भगवान् केशव ने क्रोध के कारण अपने ओठों पर जिह्वा फिराकर एक पर्वत भेदन करने में सक्षम परिघ को जम्भ दानव पर फेंक कर तत्काल एक काले लौह युक्त अत्यन्त दृढ़ मुद्गर का भी उस पर प्रहार किया। अपनी ओर इन दो-दो आयुधों को आते देखकर जम्भ रथ पर ही अपना धनुष छोड़कर उछला तथा विष्णु द्वारा छोड़ी उस परिघ को पकड़कर उससे गरुड़ पर आघात किया। उसने सिंहनाद करके तत्काल विष्णु द्वारा चलाया मुद्गर भी पकड़ लिया और उससे गोविन्द का मस्तक आहत कर दिया। जम्भ दानव के इस दो प्रहार से क्रमशः विष्णु तथा गरुड़ दोनों ही मोहग्रस्त तथा मृतवत् चेष्टारहित पड़ गये।।८२-८६।।

तदद्भुतं महद्दृष्ट्वा जगर्जुर्दैत्यसत्तमाः। नैतान्हर्षमदोद्धूतानिदं सेहे जगत्तदा।।८७।।
सिंहनादैस्तलोन्नादैर्धनुर्नादैश्चबाणजैः। जम्भन्ते हर्षयामासुर्वासांस्यादुधुवुश्च ते।।८८।।
शङ्खांश्चपूरयामासुश्चिक्षिपुर्देवताभृशम् ।।८९।।
सञ्ज्ञामवाप्याऽथ महारणे हरिः सवैनतेयः परिरभ्य जम्भम्।
पराङ्मुखः संयुगादप्रधृष्यात्पलायनं वेगपरश्चकार।।९०।।

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे दैत्यैः सह विष्णोर्युद्धवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः।।२०।।

इस अद्भुत् दृश्य को देखकर दैत्य गर्जन करने लगे। उनका यह हर्षोल्लास संसार के लिए असह्य हो गया। दैत्य सिंहनाद, तलवाद्य, धनुष टंकार, बाण शब्द, वस्त्र संचालन, शंख वादन तथा देवगण के लिए नाना कटुक्तियों का प्रयोग किये जा रहे थे। तदनन्तर हरि ने तथा गरुड़ ने उस महासंग्राम में चैतन्य प्राप्त किया और जंभासुर का आलिंगन करके उस दुर्जय संग्राम से विमुख होकर वहां से चले गये।।८०-९०।।

।।विंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

एकविंशोऽध्यायः

(तारक विजय) निमि द्वारा देवसैन्य पीड़न, जम्भ-इन्द्रयुद्ध, युद्ध-क्षेत्र का वीभत्स दृश्य वर्णन, तारक-विष्णु युद्ध, तारक राज्याभिषेक, दिव्य स्त्री साक्षात्कार, विष्णु हरि एकरूपता, तारक का ब्राह्मण के पास गमन

नारद उवाच

तमालोक्य पलायन्तं विध्वस्तध्वजकार्मुकम्। दैत्यांश्च मुदितानिन्द्रः कर्तव्यं नाऽध्यगच्छत॥१॥
अथाऽऽयान्निकटंविष्णोः सुरेशस्त्वरयान्वितः। उवाचचैनंमधुरमुत्साहपरिवृंहितम्॥२॥

नारद कहते हैं—जब सुरेन्द्र इन्द्र ने विष्णु को धनुष बाण रहित, पलायमान देखा तथा दैत्यों को आनन्दित देखा, तब वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर शीघ्रता से विष्णु के निकट पहुंचकर उत्साह बढ़ाने वाला-मधुर वाक्य कहने लगे।।१-२।।

किमेभिः क्रीडसे देव दानवैर्दुष्टमानसैः। दुर्जनैर्लब्धरन्ध्रस्य पुरुषस्य कुतः क्रियाः॥३॥
शक्तेनोपेक्षितो नीचो मन्यते बलमात्मनः। तस्मान्न नीचं मतिमानुपेक्षेत कथञ्चन॥४॥
अथाग्रेसरसम्पत्त्या रथिनो जयमाययुः। कस्तेसखाऽभवत्पूर्वं हिरण्याक्षवधे विभो!॥५॥
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वीर्यशालीमदोद्धतः। प्राप्य त्वां तृणवन्नष्टस्तत्र कोऽग्रेसरस्तव॥६॥
पूर्वं प्रतिबला दैत्यामधुकैटभसन्निभाः। निविष्टास्त्वान्तु सम्प्राप्य शलभाइवपावकम्॥७॥
युगेयुगे च दैत्यानांत्वत्तोनाशोऽवद्धरे!। तथैवाऽद्येहभीतानांत्वंहिविष्णोसुराश्रयः॥८॥
एवं सन्नोदितो विष्णुर्व्यवर्धत महाभुजः। बलेन तेजसा ऋद्ध्या सर्वभूताश्रयोऽरिहा॥९॥

इन्द्र कहते हैं—हे देव! आप इन दुष्ट मन वाले दैत्यों के साथ क्रीड़ा क्यों कर रहे हैं? दुर्जन जब छिद्र (कमी) देख लेते हैं, तब व्यक्ति की कार्यसिद्धि कैसे होगी? समर्थ व्यक्ति जब कार्य की उपेक्षा करता है, तब निम्न लोग स्वयं को बली मानने लगते हैं। यदि यह कहें कि अग्रगामी सैन्य सामन्त के बल से रथी जय प्राप्त करते हैं, यह आपके सम्बन्ध में सत्य नहीं है। जब आपने हिरण्याक्ष वध किया था, तब आपकी सहायता में कौन था? वीर्यवान् मदोद्धत हिरण्यकशिपु दैत्य आपके समक्ष तृणवत् नष्ट हो गया। तब कौन आपका अग्रगामी था? पूर्वकाल में आपने मधु-कैटभ के समान न जाने कितने दानव आपके पास आकर उसी प्रकार से नष्ट हो गये, जैसे अग्नि में पतंगे नष्ट हो जाते हैं। हे हरि! युग-युगान्तर में दैत्यगण आपके हाथों मारे गये हैं। हे विष्णु! आज भी आप भयभीत देवताओं के आश्रय रूप हो जायें।'' शत्रुघाती सर्वभूत समूह के आश्रयरूप महाभुज विष्णु इस प्रकार अभिनन्दित होकर बल-शोभा एवं तेज की वृद्धि प्राप्त करने लगे।।३-९।।

अथोवाच सहस्त्राक्षं केशवः प्रहसन्निव। एतमेतद्यथा प्राह भगवानस्मद्गतं वचः॥१०॥

त्रैलोक्यदानवान्सर्वान्दग्धुं शक्तःक्षणादहम्। दुर्जयस्तारकःकिंतुमुक्त्वासप्तदिनंशिशुम्॥११॥
महिषश्चैव शुम्भश्च उभौ वध्यौ च योषिता। जम्भो दुर्वाससा शप्तः शक्रवध्यो भवानिति।
तस्मात्त्वं दिव्यवीर्येण जहि जम्भं मदोत्कटम्॥१२॥
अवध्यः सर्वभूतानां त्वामृते स तु दानवः॥१३॥
मया गुप्तो रणे जम्भं जगत्कण्टकमुद्धर। तद्वैकुण्ठवचः श्रुत्वा सहस्त्राक्षोऽमरारिहा॥१४॥
समादिशत्सुराध्यक्षान्सैन्यस्यरचनांप्रति। ततश्चाऽभ्यर्थितोदेवैर्विष्णुःसैन्यमकल्पयत्॥१५॥

तब केशव ने हंसते हुये इन्द्र से कहा—"तुमने मेरे विषय में जो कहा, वह अवश्य सत्य तो है, तथापि तारक दैत्य सात दिन के बालक के अतिरिक्त अन्य से दुर्जय है। महिष तथा शुम्भ दानव नारी द्वारा मारे जायेंगे। जम्भ दानव के लिए दुर्वासा ने शाप दिया है कि "इन्द्र द्वारा वध्य होगे।" अतएव तुम दिव्य बल-वीर्य का आश्रय लेकर जम्भ दैत्य का वध करो। तुम्हारे बिना वह सभी प्राणीगण हेतु अवध्य है। मेरे द्वारा रक्षित होकर तुम जगत् के लिए कण्टक रूपी जम्भ का वध करो।" अमरगण के वैरी का नाश करने वाले सहस्त्राक्ष इन्द्र ने विष्णु का यह कथन सुना तथा उन्होंने देवताध्यक्षगण को सैन्य सज्जार्थ आदेश दिया। तब देवताओं की प्रार्थना के अनुसार विष्णु सैन्य सज्जा करने लगे।।१०-१५।।

यत्सारं सर्वलोकस्य वीर्यस्य तपसोऽपि च। तदैकादश रुद्रांश्च चकाराऽग्रेसरान्हरिः॥१६॥
व्यालीढांगामहादेवाबलिनोनीलकन्धराः। चन्द्रखण्डत्रिपुण्ड्राश्चपिङ्गाक्षाःशूलपाणयः॥१७॥
पिङ्गोत्तुङ्गजटाजूटाः सिंहचर्मावसायिनः। भस्मोद्धूलितगात्राश्च भुजमण्डलभैरवाः॥१८॥
कपालीशादयो रुद्राविद्रावितमहासुराः। कपालीपिङ्गलोभीमोविरूपाक्षोविलोहितः॥१९॥
अजकः शासनः शास्ता शम्भुश्चन्द्रो भवस्तथा। एतएकादशानन्तबलारुद्राःप्रभाविनः॥२०॥

समस्त लोकसमूह में जिनका वीर्य तथा बल सबसे सारयुक्त है, हरि ने उन ११वें रुद्र को सबसे आगे किया। उत्तुंगपिंगल जटाधारी, सिंहचर्म धारण करने वाले, भस्म से लिप्त अंगों वाले, भीषण बाहु, नीलकण्ठ, चन्द्रशेखर, त्रिपुण्ड्रधारी, पिंगलनेत्र, शूलपाणि, बलवान, शिव के समान आकृति वाले, कपालि आदि रुद्रगण महासुरों को त्रस्त करने लगे। कपाली, पिंगल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित, अजक, शासन, शास्ता, शंभु, चन्द्र तथा भव, ये ११ रुद्र अपरिमित बली तथा प्रतापी थे। ये मेघ के समान गर्जन करते-करते सैन्य के अग्रभाग में स्थित होकर देवगण का रक्षण करने लगे।।१६-२०।।

अपालयन्त त्रिदशान्विगर्जन्त इवाम्बुदाः। हिमाचलाभे महति काञ्चनाम्बुरुहस्त्रजि॥२१॥
प्रचञ्चलमहाहेमघण्टासंहतिमण्डिते। ऐरावते चतुर्दन्ते मत्तमातङ्ग आस्थितः॥२२॥
महामदजलस्त्रावे कामरूपे शतक्रतुः। तस्थौ हिमगिरेः शृङ्गे भानुमानिव दीप्तिमान्।
तस्यारक्षत्पदं सव्यं मारुतोऽमितविक्रमः॥२३॥
जुगोपाऽपरमग्निश्च ज्वालापूरितदिङ्मुखः। पृष्ठरक्षोऽभवद्विष्णुः समरेशः शतक्रतोः॥२४॥
आदित्या वसवो विश्वेमरुतश्चाऽश्विनावपि। गन्धर्वाराक्षसायक्षाःसकिन्नरमहोरगाः॥२५॥

कोटिशः कोटिशः कृत्वा वृन्दं चिह्नोपलक्षितम्।
विश्रावयन्तः स्वां कीर्तिं बन्दिवृन्दैः पुरःसरैः॥२६॥
चेलुर्दैत्यवधे दृप्ता नानावर्णायुधध्वजाः॥२७॥

दीप्तिमान इन्द्र ने चञ्चल-विशाल, स्वर्णघण्टा से भूषित, काञ्चनवर्ण के पद्मों की माला धारण करने वाले, महामद जल का स्राव करने वाले, कामरूपी, चार दांतों से युक्त, हिमालय के समान महाकाय ऐरावत नामक महागज पर आरुढ़ होकर हिमगिरि के ऊपर स्थित सूर्य के समान शोभायमान हो गये। अमितविक्रम मारुत उनके वामपद तथा ज्वाला द्वारा समस्त दिशाओं को व्याप्त कर देने वाले अग्नि दक्षिण पद के रक्षार्थ नियुक्त हुये। समरेश्वर विष्णु इन्द्र के पृष्ठरक्षक बने। आदित्य, वसु, विश्वेदेव, मरुत्, अश्विनीकुमार, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, किन्नर, महासर्पगण विविध चिह्नांकित करोड़ों दलों में विभक्त थे। वे सभी नाना आयुधसमूह से शोभित तथा ध्वज मंडित हो पुरोगामी बन्दीवृन्द द्वारा संस्तुत होकर गर्व पूर्वक अपनी-अपनी कीर्त्ति की घोषणा करते-करते दैत्य संहारार्थ चल पड़े।।२१-२७।।

शतक्रतोरमरनिकायपालिता पताकिनी याननिनादनादिता।
सितोन्नतध्वजपटकोटिमण्डिता बभूव सा दितिसुतशोकवर्द्धिनी॥२८॥
आयान्तींतांविलोक्याऽथसुरसेनांगजासुरः। गजरूपी महांश्चैव संहाराम्भोधिविक्रमः॥२९॥
परश्वधायुधो दैत्यो दशनौष्ठकसम्पुटः। ममर्द चरणे देवांश्चिक्षेपाऽन्यान्करेण च॥३०॥
परान्परशुना जघ्ने दैत्येन्द्रो रौद्रविक्रमः। तस्यैवं निघ्नतः क्रुद्धा देवगन्धर्वकिन्नराः॥३१॥
मुमुचुः संहताःसर्वेचित्रशस्त्रास्त्रसंहतिम्। परश्वधांश्चचक्राणिभिण्डिपालान्तसमुद्गरान्॥३२॥
कुन्तान्प्रासाञ्छरांस्तीक्ष्णान्मुद्गरांश्चाऽपि दुःसहान्।
तान्सर्वान्सोऽग्रसद्दैत्यो यूथपः कवलानिव॥३३॥
कोपस्फुरितदंष्ट्राग्रः करस्फोटेननादयन्। सुरान्निघ्नंश्चचाराऽऽजौदुष्प्रेक्ष्यःसोऽथदानवः॥३४॥
यस्मिन्यस्मिन्निपततिसुरवृन्देगजासुरः। तस्मिंस्तस्मिन्महाशब्दोहाहाकारोव्यजायत॥३५॥

इन्द्र की वह अमरगण (देवगण) पालित, सितवर्ण तथा समुन्नत ध्वजकोटि मण्डिता, यान समूह से निनादित, पताकिनी सैन्य दितिपुत्र असुरगण के लिए शोकवर्द्धिनी हो गयी। रौद्रविक्रम गजासुर ने सुरसैन्य को आते देखकर आठ दांतों वाले प्रलयजल के समान महागजमूर्त्ति धारण किया तथा परश्वधास्त्र लेकर देवताओं का मर्दन करने लगा। वह किसी को सूंड से फेकता, किसी को परशु से, किसी को पैरों से, ओठों से आहत करता। उस दानव को इस प्रकार देवताओं को पीड़ित करते हुये देखकर देव, गन्धर्व, किन्नर सभी एक साथ मिलकर उसके ऊपर विचित्र अस्त्र छोड़ने लगे। देवगण उसपर परश्वध, चक्र, भिन्दिपाल, मुद्गर, कुम्भ, प्रास, तीक्ष्णबाण, मूषल प्रभृति अस्त्र-शस्त्र छोड़ते वह यूथपति उन सबको निगल लेता। तदनन्तर क्रोधित होकर दन्ताग्र से तथा सूंड़ से देवगण की दुर्दशा करता तथा निनाद करता रणभूमि में विचरण करता रहता। गजासुर देवसैन्य में जहां-जहां आक्रमण करता था, वहां महान् हाहाकार ध्वनि उत्थित हो जाती थी।।२८-३५।।

अथ विद्रवमानं तद्बलं प्रेक्ष्य समन्ततः। रुद्राः परस्परं प्रोचुरहंकारोत्थितार्चिषः॥३६॥

भोभो गृह्णत दैत्येन्द्रं भिन्दतैनं महाबलाः। कर्षतैनं शितैः शूलैर्भञ्जतैनं हि मर्मसु॥३७॥
कपाली वाक्यमाकर्ण्यशूलं सितशितं मुखे। सम्मार्ज्यवामहस्तेनसंरम्भाद्विवृतेक्षणः॥३८॥
प्रोत्फुल्लारुणनीलाब्जसंहतिः सर्वतो दिशः। अथागादभ्रुकुटीवक्रोदैत्येन्द्राभिमुखोरणे॥३९॥
दृढेन मुष्टिबन्धेन शूलं विष्टभ्य निर्मलः। जघान कुम्भदेशे तु कपाली गजदानवम्॥४०॥
ततो दशाऽपि ते रुद्रा निर्मलायोमयै रणे। जघ्नुः शूलैस्तु दैत्येन्द्रं शैलवर्ष्माणमाहवे॥४१॥
सुस्राव शोणितं पश्चात्सर्वस्त्रोतस्सु तस्य वै। शूलरक्तेन रुद्रस्य शुशुभे गजदानवः॥४२॥
प्रोत्फुल्लामलनीलाब्जं शरदीवाऽमलं सरः। भस्मशुभ्रतनुच्छायै रुद्रैर्हंसैरिवाऽऽवृतम्॥४३॥
क्रुद्धं कपालिनं दैत्यः प्रचलत्कर्णपल्लवः। भवं च दन्तैर्बिभिदे नाभिदेशे गजासुरः॥४४॥

तत्पश्चात् सुरसैन्य को चतुर्दिक् भागते देखकर रुद्रगण अहंकार से ज्वलिताकृति होकर परस्पर बातें करने लगे। यथा—"हे महाबली! इस दैत्येन्द्र को पकड़ो। भेदन करो। खींचकर तीक्ष्ण शूल से इसके मर्मस्थल को वेध दो।" इसके अनन्तर कपाली रुद्र बायें हाथ में तीक्ष्णाग्र धार वाला शूल लेकर क्रोधित हो भौहें टेढ़ी करके दानव की ओर बढ़े। उनके क्रोधपूर्वक नेत्र घुमाने से मानों दिशाओं में प्रफुल्ल रक्तनील कमलमाला विस्तृत हो गयी हो! उन कपाली रुद्र ने अपनी दृढ़ मुट्ठी में शूल धारण करके उसके द्वारा गजासुर के कुंभस्थल पर आघात किया। बाकी दसों रुद्र भी निर्मल लौहमय शूल से पर्वताकार दैत्येन्द्र के ऊपर इस युद्ध में आघात करने लगे। तब गजासुर के सभी अंगों से रक्त की धारा बहने लगी। तब भस्मलेपन से शुभ्र शरीर लगने वाले रुद्रों से घिरा यह दानव मानों शरत्कालीन उत्फुल्ल निर्मल कमलमय तथा हंसों से घिरे सरोवर जैसा प्रतीत होने लगा। तब गजासुर ने क्रोधित होकर कानों को हिलाते हुये अपने दांतों से कपाली रुद्र तथा भवरुद्र पर आघात किया।।३६-४४।।

दृष्ट्वाऽनुरक्तं रुद्राभ्यां नवरुद्रास्ततो द्रुतम्। विव्यधुर्विशिखैः शूलैः शरीरममरद्विषः॥४५॥
ततः कपालिनं त्यक्त्वा भवं चासुरपुङ्गवः। वेगेन कुपितो दैत्यो नव रुदानुपाद्रवत्।
ममर्द चरणाघातैर्दन्तैश्चाऽपि करेण च॥४६॥
ततोऽसौ शूलयुद्धेन श्रममासादितो यदा। तदा कपाली जग्राह करमस्याऽमरद्विषः॥४७॥
भ्रामयामास चाऽतीव वेगेन च गजासुरम्।
दृष्ट्वा श्रमातुरं दैत्यं किञ्चिच्च्यावितजीवितम्॥४८॥
निरुत्साहं रणे तस्मिन्गतयुद्धोत्सवोऽभवत्। ततो भ्रमतएवाऽस्यचर्मउत्कृत्त्यभैरवम्॥४९॥
स्रवत्सर्वाङ्गरक्तौघं चकाराऽम्बरमात्मनः। तुष्टुवुस्तं तदा देवा बहुधा बहुभिः स्तवैः॥५०॥
ऊचुश्चैनं च यो हन्यात्स म्रियेत् ततस्त्वसौ। दृष्ट्वा कपालिनोरूपं गजचर्माम्बरावृतम्॥५१॥

बाकी ९ रुद्र ने गजासुर को दो रुद्रों को पीड़ित करते देखकर आगे तीव्रता से बढ़े तथा अपने तीक्ष्ण शूल से उसे विद्ध करने लगे। तब उस दैत्य ने कपाली तथा भव नामक रुद्र को छोड़ दिया तथा इन ९ रुद्रों के प्रति दौड़कर दांत, पैर तथा सूंड़ के आघात से उनको पीड़ित करने लगा। जब वह रुद्रगण के शूलाघात से किंचित श्रान्त हो गया, तब कपाली रुद्र उस गजासुर की सूंड़ पकड़ कर उसे वेगपूर्वक घुमाने लगे। इससे वह गजासुर श्रम से

आतुर, उद्यमरहित, युद्ध के उत्साह से रहित तथा मृतप्रायः हो गया, तब कपाली रुद्र ने उसे छोड़ दिया, तथापि छोड़ देने पर भी वह उसी तरह गोल-गोल चकराता जा रहा था। कपाली ने उसी अवस्था में उसका शरीर का भीषण चर्म उखाड़ कर उसे अपना वस्त्र बना लिया। देवता नाना स्तुतिवाक्य से कपाली रुद्र की स्तुति करने लगे तथा उन्होंने कहा—कि जो इसका वध करेगा, वह मृत्युंजय होगा। कपाली को गजासुर का चर्म पहने देखकर हजारों-हजार दैत्यगण त्रस्त, धावित तथा हताहत एवं भूपतित होने लगे।।४५-५१।।

वित्रेसुर्दुद्रुवुर्जघ्नुर्निपेतुश्च सहस्त्रशः। एवं विलुलिते तस्मिन्दानवेन्द्रे महाबले॥५२॥
गजं मत्तमथाऽरुह्य शतदुन्दुभिनादितम्। निमिरभ्यपतत्तूर्णं सुरसैन्यानि लोडयन्॥५३॥
यां यां निमिगजो यातिदिशं तां तां सवाहनाः। दुद्रुवुश्चुक्रुशुर्देवा भयेनाकम्पितामुहुः॥५४॥

जब वह महाबली दानवेन्द्र इस प्रकार से देवताओं द्वारा निगृहीत हो गया, तब निमि दानव सैकड़ों दुन्दुभिनाद के साथ एक मत्त गजराज पर बैठकर वेगपूर्वक देवसैन्य को तितर-बितर करता युद्धस्थल पर आया। निमि का हाथी जिधर जाता, वहीं-वहीं की देवसैन्य भयकम्पित हो जाती तथा चीत्कार के साथ पलायित हो जाती।।५२-५४।।

गन्धेन सुरमातङ्गा दुद्रुवुस्तस्य हस्तिनः। पलायितेषु सैन्येषु सुराणां पाकशासनः॥५५॥
तस्थौ दिक्पालकैः सार्धमष्टभिःकेशवेनच। सम्प्राप्तस्तस्यमातङ्गोयावञ्छक्रगजम्प्रति॥५६॥
तावच्छक्रगजो भीतो मुक्त्वा नादं सुभैरवम्। धियमाणोऽपि यत्नेनचकोरइवतिष्ठति॥५७॥
पलायति गजे तस्मिन्नारूढः पाकशासनः। विपरीतमुखं युद्धं दानवेन्द्रेण सोऽकरोत्॥५८॥
शतक्रतुस्तु शूलेन निमिं वक्षस्यताडयत्। गदया दन्तिनं तस्य गल्लदेशेऽहनद्भृशम्॥५९॥
तं प्रहारमचिन्त्यैव निमिर्निर्भयपौरुषः। ऐरावतं कटीदेशे मुद्गरेणाऽभ्यताडयत्॥६०॥
स हतो मुद्गरेणाऽथ शक्रकुञ्जर आहवे। जगाम पश्चात्पद्भ्यां च पृथिवीं भूधराकृतिः॥६१॥
लाघवात्क्षिप्रमुत्थाय ततोऽमरमहागजः। रणादपससर्पाऽथ भीषितो निमिहस्तिना॥६२॥

उस हाथी की गन्धमात्र से देवसेना के हाथी भाग उठते। जब समस्त देवसेना भागने लगी, तब पाकशासन इन्द्र आठ दिक्पाल तथा भगवान् विष्णु के साथ रण में आये। लेकिन जैसे ही निमि का हाथी इन्द्र के ऐरावत गज के पास पहुंचा, इन्द्र का हाथी भागने लगा। रोकने का अतिशय यत्न करने पर भी उसे रोका नहीं जा सका। हाथी को भागते देखकर इन्द्र उस पर विपरीत मुंह करके (पूंछ की ओर मुंह करके) बैठ गये तथा दानवेन्द्र से युद्ध करने लगे। शतक्रतु इन्द्र ने शूल से निमि के वक्ष पर आघात किया तथा गदा से उसके हाथी के कण्ठ पर तीव्र प्रहार किया। तब भयहीन पौरुषसम्पन्न निमि दानव ने उस प्रहार पर बिना ध्यान दिये सह लिया तथा मुद्गर से ऐरावत के कटि प्रदेश पर प्रहार किया। तब पर्वत के समान इन्द्र का हाथी ऐरावत पिछले दो पैरों को मोड़ कर भूतल पर बैठ गया। अगले क्षण वह पुनः उठा तथा वह ऐरावत हाथी निमि दानव के हाथी के भय से रणस्थल से वेगपूर्वक भाग गया।।५५-६२।।

ततो वायुर्ववौ रूक्षो बहुशर्करपांशुलः। सम्मुखो निमिमातङ्गोऽकम्पनोऽचलकम्पनः।
स्रुतरक्तो बभौ शैलो धनधातुह्रदो यथा॥६३॥

धनेशोऽपि गदां गुर्वीं तस्य दानवहस्तिनः। मुमोच वेगान्न्यपतत्सागदातस्यमूर्धनि॥६४॥
गजो गदानिपातेन स तेन परिमूर्छितः। दन्तैर्भित्वा धरांवेगात्पपाताऽचलसन्निभः॥६५॥
पतिते च गजे तस्मिन्सिंहनादो महानभूत्। सर्वतः सुरसैन्यानां गज बृंहितबृंहितः॥६६॥
हेषारवेणचाऽश्वानांरणास्फोटैश्चधन्विनाम्। गजंतंनिहतंदृष्ट्वानिमिंचाऽपिपराङ्मुखम्॥६७॥
सुराणां सिंहनादं च सन्नादितदिगन्तरम्। जम्भो जज्वाल कोपेन सन्दीप्तइवपावकः॥६८॥

तब वायुदेव भी रुक्षाकार तथा बालुकायुक्त रूप से वेग से बहने लगे, तथापि वह अचल तथा कम्पन को सह लेने वाला निमि दानव का हाथी तनिक भी कम्पित नहीं हो सका। उसके सर्वाङ्ग से रक्तस्राव हो रहा था, जो पर्वत से हो रहे धातुस्राव जैसा लगने लगा। तब कुबेर ने अत्यन्त भारी अपनी गदा का प्रहार वेगपूर्वक उस हाथी पर किया। वह गदाघात हाथी के मस्तक पर लगा। उससे वह अचलतम हाथी दांतों के बल पृथिवी पर गिर पड़ा। उस हाथी के गिरते ही देवताओं की सेना में सर्वत्र महान् सिंहनाद होने लगा। तब गजगण के चिघ्घाड़ने की ध्वनि, अश्वों की हिनहिनाहट तथा धनुर्धरों की प्रत्यंचा की टंकार ध्वनि चारों ओर फैल गई। जंभासुर ने जब गजराज को मृत तथा निमि को युद्ध से विमुख देखा, तब वह सुरगण के दिगन्तव्यापी सिंहनाद को सुनकर क्रोधवत् प्रदीप्त पावक जैसा जल उठा।।६३-६८।।

ततःसकोपरक्ताक्षोधनुष्यारोप्य सायकम्। तिष्ठेतिचाब्रवीत्तारंसारथिंचाप्यनन्दयत्॥६९॥
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य धनुष्याहितसायकम्। शतक्रतुरदीनात्मा दृढमादत्त कार्मुकम्॥७०॥
बाणं च तैलधौताग्रमर्धचन्द्रमजिह्मगम्॥७१॥
तेनाऽस्य सशरं चापं चिच्छेद बलवृत्रहा। अपास्य तद्धनुश्छिन्नं जम्भो दानवनन्दनः॥७२॥
अन्यत्कार्मुकमादायवेगवद्भारसाधनम्। शरांश्चाशीविषाकारांस्तैलधौतानजिह्मगान्॥७३॥
शक्रं विव्याध दशभिर्जत्रुदेशे च पत्रिभिः। हृदयेच त्रिभिश्चैवद्वाभ्यांचस्कन्धयोर्द्वयोः॥७४॥
शक्रोऽपि दानवेन्द्राय बाणजालमभीरयन्। अप्राप्तान्दानवेन्द्रस्तुशरांश्छक्रभुजेरितान्॥७५॥
चिच्छेद शतधाऽऽकाशे शरैरग्निशिखोपमैः। ततश्च शरजालेन देवेन्द्रो दानवेश्वरम्॥७६॥
आच्छादयत यत्नेन वर्षास्विव धनैर्नभः। दैत्योऽपि बाणजालेन विव्याध सायकैः शितैः॥७७॥
यथा वायुर्घनाटोपं यदवार्यं दिशां मुखे। शक्रोऽथ क्रोधसंरम्भान्न विशेषयते यदा॥७८॥

उसके नेत्र क्रोध से रक्तवर्ण के हो गये थे। उसने धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाया तथा उस पर बाण योजित किया। तदनन्तर सारथि से कहा 'बैठो' (रथ पर बैठो) कह कर उसका अभिनन्दन करके रथ चलाने का आदेश प्रदान किया। बली वृत्रासुर का वध करने वाले, दीनता से रहित मन वाले इन्द्र ने जंभासुर को आते देखकर मजबूती से धनुष उठाया तथा तेल से धुले तीक्ष्ण अग्रभाग वाले अर्द्धचन्द्रबाण को उस पर योजित करके जम्भासुर का बाण योजित किया धनुष काट दिया। तब दानवों के आनन्द का वर्द्धन करने वाले जम्भ ने उस टूटे धनुष को फेंककर एक वेग से चलने वाला भारी धनुष उठाया। उस पर तेल से धुले सीधे चलने वाले, पत्रयुक्त, सर्प के आकार का बाणों सन्धान करके (इन्द्र) शक्र के जत्रुस्थान में (गले की हड्डी, हंसुली) १० बाण, हृदय में ३ बाण तथा दोनों कन्धों में दो-दो बाणों का प्रहार किया। इन्द्र ने भी जम्भ पर बाणों का समूह छोड़ा। तथापि इन्द्र द्वारा छोड़े गये सभी बाणों को जम्भ ने बीच मार्ग

में अपने अग्निशिखाकार बाणों की वर्षा से सैकड़ों टुकड़ों में बांट दिया। देवेन्द्र ने पुनः शरजाल छोड़ते हुये दानव को बाणों से आच्छादित कर दिया। जैसे वर्षा काल में मेघ आकाश को आच्छादित कर देता है, यह वैसा ही दृश्य था, तथापि जैसे वायु घनघटा को उड़ा ले जाता है, उसी प्रकार से जम्भ दैत्य ने इस बाण वर्षा का निवारण अपने बाणों से करके सभी दिशाओं में उन्हें छितरा दिया।।६९-७८।।

दानवेन्द्रं तदा चक्रे गन्धर्वास्त्रं महाद्भुतम्। ततोऽस्य तेजसा व्याप्तमभूद्गगनगोचरम्।।७९॥
गन्धर्वनगरैश्चापि नानाप्राकारतोरणैः। मुञ्चद्भिरद्भुताकारैरस्त्रवृष्टिं समन्ततः।।८०॥

इस प्रकार जब युद्ध में जम्भासुर के विरुद्ध क्रोधित होकर भी कोई विशेषत्व प्रकट नहीं कर सके, तब उन्होंने अत्यन्त अद्भुद् गान्धर्वास्त्र का प्रयोग किया। इस अस्त्र के प्रभाव से गगनमण्डल में अनेक प्रकार के तोरणयुक्त गन्धर्वनगर प्रकटित हो गये। इस अस्त्र के प्रभाव से उस गन्धर्वनगरों से विचित्ररूपी अस्त्रों की वर्षा होने लगी।।७९-८०।।

तयाऽस्त्रवृष्ट्या दैत्यानां हन्यमानामहाचमूः। जम्भं शरणामागच्छत्राहित्राहीतिभारत।।८१॥
ततो जम्भो महावीर्योविनद्य प्रहसन्मुहुः। स्मरन्साधुसमाचारंदैत्यानामभयं ददौ।।८२॥
ततोऽस्त्रं मौशलंनाम मुमोच सुमहाभयम्। अथोग्रमुसलैः सर्वमभवत्पूरितं जगत्।।८३॥
तैश्च भग्नानि सर्वाणि गन्धर्वनगराणि च। अथोग्रैकप्रहारेण रथमश्वं गजं सुरम्।।८४॥
चूर्णयामास तत्क्षिप्रं शतशोऽथ सहस्त्रशः। ततः सुराधिपः शक्रस्त्वाष्ट्रमस्त्रमुदैरयत्।।८५॥
सन्ध्यमाने ततश्चास्त्रेनिश्चेरुःपावकार्चिषः। ततो यन्त्रमया विद्याः प्रादुरान्सन्सहस्त्रशः।।८६॥
तैर्यन्त्रैरभवद्युद्धमन्तरिक्षं वितारकम्। तैर्यन्त्रैर्मौशलं भग्नंहन्यन्तेचासुरास्तदा।।८७॥

इस अस्त्रवर्षा से दानव सैन्य आहत तथा मृत होने लगी। सभी दानव त्राहि-त्राहि रव करते जम्भासुर की शरण में आये। तब महावीर जम्भासुर ने सज्जनों के आचार का स्मरण करके पुनः-पुनः हंसते हुये सिंहनाद किया। इस प्रकार से दैत्यों को अभय प्रदान किया। तत्पश्चात् उसने मौषल नामक एक भयानक अस्त्र इन्द्र की ओर छोड़ा। उस उत्कट मौषलास्त्र से समस्त जगत् आपूरित हो उठा। उसके प्रचण्ड आघात से सभी गन्धर्वनगर चूर्ण-विचूर्ण हो गये। एकाकी मूषलास्त्र के आघात से हजारों-हजार रथ, अश्व, गज तथा देवता चूर्णित होने लगे। तब देवराज इन्द्र ने त्वाष्ट्र अस्त्र का प्रयोग किया। इसका सन्धान करते ही उसमें से हजारों यन्त्र उद्भूत हो गये। उन यन्त्रों ने आकाशमण्डल को ऐसा व्याप्त कर लिया कि तारागण का प्रकाश भी नहीं रह गया। इन यन्त्रों के प्रभाव से जम्भासुर का मौषलास्त्र निवारित हो गया तथा असुर मृत होने लगे।।८१-८७।।

शैलास्त्रं मुमुचे जम्भो यन्त्रसंघातचूर्णनम्। व्यामप्रमाणैरुपलैस्ततो वर्षःप्रवर्तत।।८८॥
त्वाष्ट्रेण निर्मितान्याशु यानि यन्त्राणि भारत। तेनोपलनिपातेनगतानितिलशस्ततः।।८९॥
ततः शिरस्सु देवानां शिलाः पेतुर्महाजवाः। दारयन्तश्च वसुधां चतुरङ्गबलं च तत्।।९०॥

तब जम्भ ने इन यन्त्रों को चूर्ण करने हेतु शैलास्त्र का सन्धान किया। इससे प्रस्तर वृष्टि प्रारम्भ हो गई। हे भारत! इस प्रस्तराघात से त्वाष्टास्त्र से रचित यन्त्र तिल-तिल करके चूर्ण हो गये। ये सब शिलायें महान् वेगपूर्वक देवसैन्य पर गिरने लगीं। इस प्रकार देवताओं की चतुरंग सैन्य का विनाश होने लगा।।८८-९०।।

ततोवज्रास्त्रमकरोत्सहस्त्राक्षः पुरन्दरः। ततः शिलामहावर्षंव्यशीर्यतसमन्ततः॥९१॥
ततः प्रशान्तैः शैलास्त्रैर्जम्भो भूधरसन्निभः। ऐषीकमस्त्रमकरोच्चूर्णितान्यपराक्रमः॥९२॥
ऐषीकेणाऽगमन्नाशंवज्रास्त्रं गिरिदारणम्। विजृम्भत्यथ चैषीकेपरमास्त्रेऽतिदारुणे॥९३॥
जज्वलुर्देवसैन्यानि सस्यंदनगजानि च। दह्यमानेष्वनीकेषु तेजसाऽस्त्रस्य सर्वतः॥९४॥
आग्नेयमस्त्रमकरोद्बलहा पाकशासनः। तेनाऽस्त्रेण च तन्नाशमैषीकमगमत्तदा॥९५॥
तस्मिन्प्रतिहते चास्त्रे पावकास्त्रं व्यजृम्भत। जज्वाल सेना जम्भस्य रथः सारथिरेव च॥९६॥
ततः प्रतिहतास्त्रोऽसौदैत्येन्द्रः प्रतिभानवान्। बाणास्त्रंमुमोचाथशमनंपावकार्चिषाम्॥९७॥

तब सहस्राक्ष पुरन्दर इन्द्र ने वज्रास्त्र का प्रयोग किया। इसके द्वारा शिलावृष्टि का निवारण हो गया। शैलास्त्र को शान्त देखकर भूधराकार जम्भ ने परपराक्रम को नष्ट करने वाला ऐषिकास्त्र छोड़ा। अतिदारुण ऐषिक महास्त्र ने गगन में प्रकाशित होकर गिरिविदारक वज्रास्त्र को निवारित कर दिया। इससे अश्व-हाथी आदि के साथ समस्त देवसेना जल उठी। इस अस्त्र के तेज से देववाहिनी सभी ओर से जलने लगी। तब बल दैत्य विनाशक इन्द्र ने आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया, जिससे ऐशिकास्त्र का निवारण हो गया। अब आग्नेयास्त्र के प्रभाव से जम्भ का रथ, सारथि तथा उसकी सेना जलने लगी। तब प्रतिभाशाली जम्भासुर ने अपने ऐषिकास्त्र को शान्त हो गया देखकर तथा अपनी सैन्य को जलते देखा, तब उसने आग्नेयास्त्र के निवारणार्थ वारुणास्त्र का सन्धान किया।।९१-९७।।

ततो जलधरैर्व्योम स्फुरद्विद्युल्लताकुलैः। गम्भीराक्षसमाधारैश्चाभ्यपूर्वत मेदिनी॥९८॥
करीन्द्रकरतुल्याभिर्धाराभिः पूरितं जगत्। शान्तमाग्नेयमस्त्रंच विलोक्येन्द्रश्चकारह॥९९॥
चायव्यमस्त्रमतुलं तेन मेघा ययुःक्षयम्। वायव्यास्त्रबलेनाऽथ निर्धूते मेघमण्डले॥१००॥
बभूवाऽनाविलंव्योम नीलोत्पलदलप्रभम्। वायुनाचाऽतिरूपेण कम्पिताश्चैवदानवाः॥१०१॥
नशेकुस्तत्रतेस्थातुंरणेऽपिबलिनोऽपि ये। जम्भस्ततोऽभवच्छैलोदशयोजनविस्तृतः॥१०२॥
मारुतप्रतिघातार्थंदानवानां बलाधिपः। नानाश्चर्यसमायुक्तो नानाद्रुमलतावृतः॥१०३॥

इससे विद्युत्-विलास समन्वित जलधरमाला से आकाश समावृत हो गया तथा हाथी के समान स्थूल ओले गिरने लगे तथा हाथी की सूंड़ के समान जलधारा से जगत् परिपूरित हो गया। इस प्रकार आग्नेयास्त्र शान्त हो गया। इन्द्र ने यह देखकर अतुलनीय वायव्यास्त्र का प्रयोग किया। इससे सभी मेघ हट गये। नीलकमलदल की कान्ति के समान आकाशमण्डल निर्मल रूप से प्रकाशित हो गया। तथापि प्रबल वायुवेग से बली दानव भी प्रकम्पित होने लगे। वे और रणस्थल में रुक ही नहीं सके। तब दानव सेनापति जम्भ ने उस वायुवेग के प्रतिकारार्थ नानाश्चर्य युक्त, नाना तरुलता समावृत, १० योजन विस्तृत, स्वयं को पर्वतरूप निर्मित किया।।९८-१०३।।

ततः प्रशमिते वायौ दैत्येन्द्रे पर्वताकृतौ। महाशनिं वज्रमयीं मुमोचाऽऽशु शतक्रतुः॥१०४॥
तयाशन्या पतितया दैत्यस्याचलरूपिणः।
कन्दराणि व्यशीर्यन्त समन्तान्निर्झराणि च॥१०५॥
ततः सा दानवेन्द्रस्य शैलमाया न्यवर्तत। निवृत्तशैलमायोऽथ दानवेन्द्रो महोत्कटः॥१०६॥

बभूव कुञ्जरो भीमो महाशैलमयाकृतिः। ममर्द च सुरानीकंदन्तैश्चाऽभ्यहनत्सुरान्॥१०७॥
बभञ्ज पृष्ठतः कश्चित्करेणाऽऽकृष्य दानवः। ततः क्षपयतस्तस्य सुरसैन्यानि वृत्रहा॥१०८॥
अस्त्रं त्रैलोक्यदुर्धषंनारसिंहं मुमोच ह। ततः सिंहसहस्राणि निश्चेरुर्मन्त्रतेजसा॥१०९॥
हृष्टदंष्ट्राट्टहासानि क्रकचाभनखानि च। तैर्विपाटितगात्रोऽसौ गजमायां व्यपोहयत्॥११०॥

इससे वायु प्रशान्त हो गई देखकर इन्द्र ने पर्वताकृति दैत्यपति के प्रति अत्यन्त शीघ्रता से वज्रमयी महा अशनि का प्रहार किया। इससे दानव का कन्दरा-निर्झरादि सब विदीर्ण हो गया। अतः यह शैलमाया निवृत्त हो गयी। दानवेन्द्र ने तब शैलमाया को छोड़कर स्वयं को पर्वताकृति भीषण गजमूर्त्तिरूप बनाया, जो घोर कृष्णवर्ण था। उस रूप से जम्भासुर सुरसैन्यमर्दन करता तथा दांतों से देवताओं को विदारित करता घूमने लगा। वह दानव किसी को शुण्ड से खींचता। किसी का मध्यभाग भग्न करता। वृत्रहन्ता इन्द्र ने उसको इस प्रकार सैन्यनाश करते देखकर त्रैलोक्य में दुर्धर्ष नारसिंहास्त्र का प्रयोग किया। तब मन्त्र तेज से तीक्ष्ण दांतों वाले, अट्टहास्य युक्त, भयानक नखवाले हजारों-हजार सिंह प्रादुर्भूत हो गये। उन सिंहों ने माया से निर्मित हाथियों को फाड़ डाला। अतः गजमाया विनष्ट हो गयी।।१०४-११०।।

ततश्चाशीविषो घोरोऽभवत्फणसमाकुलः। विषनिःश्वासनिर्दग्धसुरसैन्यमहारथः॥१११॥
ततोऽस्त्रं गारुडं चक्रे शक्रः सम्प्रहरन्रणे। ततस्तस्माद्गरुत्मन्तः सहस्राणिविनिर्ययुः॥११२॥
तैर्गरुत्मद्भिरासाद्य जम्भं भुजगरूपिणम्।
कृतस्तु खण्डशो दैत्यः साऽस्य माया व्यनश्यत॥११३॥
मायायां च प्रनष्टायां ततो जम्भो महासुरः। चकार रूपमतुलं चन्द्रादित्यपदानुगम्॥११४॥

तदनन्तर जम्भासुर ने फणयुक्त घोराकृति सर्पमूर्त्ति धारण किया तथा वह सर्प अपनी फूत्कार से देवसैन्य के रथादि को दग्धप्राय करने लगा। यह देखकर इन्द्र ने वैरी को पराजित करने की कामना से गारुड़ास्त्र का प्रयोग किया। इससे हजारों हजार गरुड़ प्रादुर्भूत हो गये। उन्होंने सर्परूप जम्भ को टुकड़ों में काट दिया। अतः सर्पमाया नष्ट हो गयी। सर्पमाया नष्ट होते ही जम्भासुर ने इतना विशाल रूप धारण किया, जिससे चन्द्र-सूर्य की ऊंचाई भी उसके पदतल तक ही पहुंचती थी। वह अपने भीषण नेत्रों को घूर्णित करता सभी श्रेष्ठ देवगण को निगलने की इच्छा से आगे बढ़ा।।१११-११४।।

विवृत्तनयनो ग्रस्तुमियेष सुरपुङ्गवान्। ततोऽस्य प्राविशद्वक्त्रंसमहारथकुञ्जरा॥११५॥
सुरसेनाऽभवद्भीमं पातालोत्तालतालुकम्। सैन्येषु ग्रस्यमानेषु दानवेन बलीयसा॥११६॥
शक्रो दीनत्वमापन्नः श्रान्तवाहनवाहनः। कर्तव्यतां नाध्यगच्छत्प्रोवाचेदंजनार्दनम्॥११७॥
किमनन्तरमेवाऽस्ति कर्तव्यं नो विशेषतः। तदादिश घटामोऽस्यदानवस्य युयुत्सतः॥११८॥
ततोहरिरुवाचेदं वज्रायुधमुदारधीः। न साम्प्रतं रणं त्याज्यं शत्रुकातरभैरवम्॥११९॥
मा गच्छ मोहं मागच्छ क्षिप्रमस्त्रं स्मर प्रभो। नारायणास्त्रंप्रयतःश्रुत्वेतिमुमुचेसच॥१२०॥

उसके पाताल ऐसे गम्भीर मुख में रथ-हाथी सहित समस्त सुरसैन्य समाहित होने लगी। तब बली जम्भ दानव के उस प्रकार के ग्रासकार्य से व्यथित होकर भ्रान्तचित्त हो गजारूढ़ इन्द्र "क्या कर्त्तव्य करूं", यह जानने में

असमर्थ होकर विष्णु से कहने लगे—"इस युद्धरत दानव के प्रति अब हम लोगों का कर्त्तव्य क्या होना चाहिये? कृपया आदेश दीजिये, वही मैं करूंगा।" तब महाबुद्धिमान् हरि ने वज्रधारी इन्द्र से कहा—"हे प्रभो! सम्प्रति युद्ध त्याग करना कर्त्तव्य नहीं है। इससे तो शत्रु हम लोगों को कातर जानकर और भी भीषण रूप धारण करेंगे। तुम मुग्ध न हो जाओ। त्वरित रूप से नारायणास्त्र का स्मरण करो।" यह सुनकर इन्द्र ने संयत होकर नारायणास्त्र का प्रयोग किया।।११५-१२०।।

एतस्मिन्नन्तरे दैत्यो विवृतास्योऽग्रसत्क्षणात्।
त्रीणि त्रीणि च लक्षाणि किन्नरोरगरक्षसाम्।।१२१।।
ततो नारायणास्त्रं च निपपाताऽस्य वक्षसि।
महास्त्रभिन्नहृदयःसुस्राव रुधिरं चसः।।१२२।।
ततःस्वतेजसा रूपंतस्य दैत्यस्यनाशितम्। ततश्चाऽन्तर्दधेदैत्यःकृत्वाहासंमहोत्कटम्।।१२३।।
गगनस्थः स दैत्येन्द्रः शस्त्राशनिमतीन्द्रियः। मुमोच सुरसैन्यानांसंहारकरणींपराम्।।१२४।।
तथापरश्वधांश्चक्रवज्रबाणान्समुद्गरान्। कुन्तान्खड्गान्भिण्डिपालानयोमुखगुडांस्तथा।।१२५।।

इसी बीच वह दानव तीन लाख किन्नर, तीन लाख सर्प तथा तीन लाख राक्षसों का भक्षण कर गया! तभी उसके वक्षःस्थल पर नारायणास्त्र आकर लगा। इस महाशस्त्र के आघात से उसका हृदय भेदन हो गया। तब जम्भ दानव के हृदय से रुधिर धारा बहने लगी। इस अस्त्रतेज से आहत होकर उसने अपना विकराल बृहद् रूप त्याग दिया तथा अट्टहास के साथ गनन में विलीन होकर वज्रास्त्र समूह से सुरसेना का संहार करने लगा। तत्पश्चात् वह रोष में भर गया तथा परशु, चक्र, वज्र, बाण, मुद्गर, कुम्भ, खड्ग, भिन्दिपाल तथा लौहमुख तथा गुड़ास्त्र (?) का वर्षण करने लगा।।१२१-१२५।।

ववर्ष दानवो रोषादवध्यानक्षयानपि। तैरस्त्रैर्दानवोन्मुक्तैर्देवानीकेषु भीषणैः।।१२६।।
बाहुभिर्धरणी पूर्णा शिरोभिश्च सकुण्डलैः। ऊरुभिर्गजहस्ताभैः करीन्द्रैश्चाचलोपमैः।।१२७।।
भग्नेषा दण्डचक्राक्षै रथैश्च रथिभिः सह। दुःसंचाराऽभवत्पृथ्वीमांसशोणितकर्दमा।।१२८।।
रुधिरौघह्रादावर्त्ता गजदेहशिलोच्चया। कबन्धनृत्यबहुला महासुरप्रवाहिणी।।१२९।।
शृगालगृध्रध्वांक्षांणां परमानन्दकारिणी।
पिशाचजातिभिः कीर्णं पीत्वाऽऽभिषं सशोणितम्।।१३०।।

वह दानव इन सब भीषण शस्त्राघात से कटे देवसैनिकों की बाहु, कुण्डलयुक्त मस्तक, हाथी की सूंड़ के समान उनके जानु, भूधराकार हाथी, रथ के इषादण्ड, चक्र, अक्ष, रथ आदि का ढेर भूमण्डल पर लग गया। मांस-रक्त के कीचड़ से पृथिवी ऐसी हो गयी कि उस पर चलना कठिन था। रणभूमि में पड़े पर्वताकार गजराजों की मृत देह के मध्य में एकत्र रुधिर का ढेर ह्रद जैसा लग रहा था। अनेक शिररहित कबन्ध नृत्य कर रहे थे। देवताओं के शरीर इधर-उधर पड़े भासित हो रहे थे। तब रणभूमि शृगाल तथा गृध्र आदि के लिए परम आनन्दप्रद हो गयी। पिशाचगण वहां रथयुक्त मांस का भक्षण करके अपनी-अपनी भार्या के साथ नाच रहे थे। इससे रणभूमि और भी भीषणाकृति हो उठी।।१२६-१३०।।

असंभ्रमाभिर्भार्याभिःसह नृत्यद्भिरुद्धता।
काचित्पत्नीप्रकुपितागजकुम्भान्तमौक्तिकैः।।१३१।।
पिशाचोयत्रचाश्वानांखुरानेकत्रचाऽकरोत्। कर्णपूरेषु मोदन्ते पश्यन्त्यन्याःसरोषतः।।१३२।।
प्रसादयन्ति बहुधा महाकर्णार्थकोविदाः। केचिद्वदन्ति भो देवा भोदैत्याःप्रार्थयामहे।।१३३।।
आकल्पमेवं योद्धव्यमस्माकं तृप्तिहेतवे। केचिदूचुरयं दैत्यो देवोऽयमतिमांसलः।।१३४।।
म्रियते यदि सङ्ग्रामेधातुर्दद्योऽपयाचितम्। केचिद्युध्यत्सुवीरेषुसृक्किणीसंलिहन्तिच।।१३५।।
एतेन पयसा विद्यो दुर्जनः सुजनो यथा। केचिद्रक्तनदीनां च तीरेष्वास्तिक्यबुद्धयः।।१३६।।
पितॄन्देवांस्तर्पयन्तिशोणितैश्चाऽऽमिषैःशुभैः ।
केचिदामिषराशिस्था दृष्ट्वाऽन्यस्यकरामिषम्।।१३७।।
देहिदेहीति वाशन्तो धनिनः कृपणायथा।
केचित्स्वयं प्रतृप्ताश्च दृष्ट्वा वै खादतःपरान्।।१३८।।
सरोषमोष्ठौ निर्भुज्यपश्यन्त्येवात्यसूयया। केचित्स्वमुदरंक्रुद्ध्वानिंदन्तिताडयन्तिच।।१३९।।
सर्वभक्षमभीप्संतस्तृप्ताः परधनं यथा। केचिदाहुरद्य एव श्लाघ्यासृष्टिस्तु वेधसः।।१४०।।
सुप्रभातं सुनक्षत्रं पूर्वमासीद्वृथैव तत्। एवं बहुविधालापे पलादानां ततस्ततः।।१४१।।

कोई पिशाचपत्नी गजकुम्भस्थ गजमुक्ता पाने के लिए प्रकुपिता हो गयी। तब वह वहां गई, जहां उसका पिशाचपति अलंकार हेतु अश्वगण के खुर एकत्र कर रहा था। उसने खुरों का ढेर लगा दिया था। वहां पहुंचकर पिशाचिनी गजमुक्ता हेतु पिशाच पति से क्रोधित होकर मुक्ता हेतु कह रही थी। अन्य पिशाचिनी कान की बाली के लिए पति से रोषपूर्वक मांग कर रही थी। उसक पति कर्णालंकार निर्माण करने में निपुण था, वह चापलूसी वाले वाक्यों से पत्नी को सान्त्वना देता जा रहा था। कोई पिशाच कह रहा था—"हे देवगण! हे दैत्यों! मैं प्रार्थना करता हूं। हमारी तृप्ति के लिए तुम सब आजन्म युद्ध करो।" कोई कह रहा था "ये दैत्य तथा देवता अत्यन्त मांसल हैं। यदि ये दोनों युद्ध में मृत होते हैं, तब तो हम विधाता की पूजा करेंगे।" कुछ पिशाच कह रहा था। कुछ पिशाच इस बात का निर्णय करने के लिए कि "वीरगण युद्ध कर रहे हैं। यह योद्धा सुन्दर रस देहवाला है" किंवा "दुष्टरस देहवाला है।" उस शव के मुख से निर्गत रस को ओठ के प्रान्तभाग से चाटने लगे। कोई आस्तिक्य बुद्धि वाला पिशाच उस रक्तनदी के किनारे बैठा शुभ-मांस-शोणित से पितरों का तर्पण कर रहा था। कृपण (कंजूस) धनपति के समान कोई पिशाच मांसराशि के बीच में रहकर भी अन्य के हाथ में रखे मांस को देखकर "मुझे भी प्रदान करो" कहता चीत्कार कर रहा था। कोई पिशाच स्वयं भोजन से तृप्त होकर भी असूया दोषग्रस्त होकर उसके दोनों ओष्ठद्वय का दंशन करने लगा था। कोई-कोई पिशाच तृप्त होकर भी "पराये धन पर लोभ करना" इस उक्ति के अनुसार समस्त मांस को अकेले खा जाने की इच्छा से व्याकुल होकर क्रोधपूर्वक अपने पेट को ही पीट रहा था। कोई कह रहा था—"आज ही विधाता की सृष्टि प्रशंसित है। आज ही सुप्रभात है तथा यही पुण्यक्षेत्र भी हैं। इससे पूर्व वाला समस्त समय व्यर्थ था।" मांसभोजी पिशाच इस प्रकार से परस्परतः वार्त्ता कर रहे थे।।१३१-१४१।।

अदृश्यः समरे जम्भो देवाञ्छस्त्रैरचूर्णयत्। ततः शक्रो धनेशश्चवरुणः पवनोऽनलः।
यमोऽथ निर्ऋनिश्चाऽपि दिव्यास्त्राणि महाबलाः॥१४२॥
आकाशे मुमुचुः सर्वे दानवायाऽभिसन्ध्य तु॥१४३॥
व्यर्थतां जग्मुरस्त्राणि देवानां दानवम्प्रति। यथातिक्रूरचित्तानामार्ये कृत्यशतान्यपि॥१४४॥
गतिंनविविदुश्चाऽपि श्रान्तांदैत्याश्चदेवताः। दैत्यास्त्रभिन्नसर्वांगागावःशीतार्दिताइव॥१४५॥

उधर जम्भासुर अदृश्य रहकर शस्त्रों की वृष्टि करके शस्त्रवर्षा द्वारा देवसैन्य को चूर्णित कर रहा था। महाबली इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, पवन, कुबेर सभी जम्भासुर पर आकाश से दिव्यास्त्र प्रयोग करने लगे, तथापि जैसे आर्यजन के प्रति क्रूर बुद्धि का दुर्व्यवहार व्यर्थ हो जाता है, उसी प्रकार से इस दानव के उद्देश्य से छोड़े गये समस्त अस्त्र व्यर्थ हो गये। जंभासुर की गति किसी को भी ज्ञात नहीं हो पा रही थी। देव एवं दैत्य, ये दोनों पक्ष अतिशय भ्रान्त हो गये। उस समय सभी देवता दैत्यों के अस्त्र-प्रहार के कारण छिन्न-भिन्न होकर वैसे ही प्रतीत हो रहे थे, जैसे शीत से आक्रान्त गौयें व्याकुल रहती हैं।।१४२-१४५।।

परस्परं व्यलीयन्तहाहाकिम्भाविवादिनः। तामवस्थां हरिर्दृष्ट्वा देवाञ्छक्रमुवाच ह॥१४६॥
अघोरमन्त्रं स्मरन्देवराज! अस्त्रं हि यत्पाशुपतप्रभावम्।
रुद्रेण तुष्टेन तव प्रदत्तमव्याहतं वीरवराभिघाति॥१४७॥

तब सभी परस्पर मिलकर हाय-हाय? क्या उपाय होगा? कहते-कहते भागने लगे। हरि ने देवताओं की यह अवस्था देखकर इन्द्र से कहा—"हे देवराज! तुम अघोर मन्त्र का जप करो। पूर्व में रुद्रदेव ने जिस प्रकार से तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होकर वीरघाती पाशुपत नामक महान् अस्त्र प्रदान किया था, अब तुम उसी का प्रयोग करो।।१४६-१४७।।

एवं स शक्रो हरिबोधितस्तदा प्रणम्य देवं वृषकेतुमीश्वरम्।
समाददे ाणममित्रघातनं सम्पूजितं दैवरणेऽर्द्धचन्द्रम्॥१४८॥
धनुष्यजय्ये विनियोज्य बुद्धिमान्ययोजयत्तत्र अघोरमन्त्रम्॥१४९॥
ततो वधायाऽऽशु मुमोच तस्य वा आकृष्य कर्णान्तमकुण्ठदीधितिम्।
अथाऽसुरः प्रेक्ष्य महास्त्रमापतद्विसृज्य मायां सहसा व्यवस्थितः॥१५०॥
प्रवेपमानेन मुखेन युज्यताचलेन गात्रेण च सम्भ्रमाकुलः।
ततस्तु तस्याऽस्त्रवराभिमन्त्रितः शरोऽर्धचन्द्रः प्रसभं महारणे॥१५१॥
पुरन्दरस्येष्वसनप्रमुक्तो मध्यार्कबिम्बं वपुषा विडम्बयन्।
किरीटकूटस्फुरकान्तिसङ्कुलं सुगन्धिनानाकुसुमाधिवासितम्॥१५२॥
प्रकीर्णधूमज्वलनाभमूर्धजं न्यपातयज्जम्भशिरः सकुण्डलम्॥१५३॥
तस्मिन्निन्द्रहते जम्भे प्रशशंसुः सुरा बहु।
वासुदेवोऽपि बगवान्साधुसाध्विति चाऽब्रवीत्॥१५४॥

हरि द्वारा इस प्रकार प्रबोधित होकर इन्द्र ने वृषध्वज देवता को प्रणाम किया तथा इस युद्ध में अत्यन्त प्रसन्नार्ह वैरीनाशक एक अर्द्धचन्द्र बाण धनुष पर संयोजित करके उस पर अघोर मन्त्र योजित किया। धीमान् इन्द्र ने धनुष की प्रत्यञ्चा कानों तक खींचकर उस अतीव समुज्वल बाण को छोड़ा। जब महासुर जंभ ने इस महान् अस्त्र को छोड़े जाते देखा, तब उसने माया त्याग दिया। वह भयाकुल होकर कम्पित देह तथा शुष्कमुख से अवसादग्रस्त हो गया। अघोर मन्त्र से अभिमन्त्रित अर्द्धचन्द्र बाण इन्द्र के धनुष से छूट कर मध्याह्न सूर्य के समान समुज्वल रूप धारण करने के पश्चात् सवेग से जम्भ के पास पहुंचा। उसने जम्भ दैत्य के मुकुटभूषित, नाना सुगन्धि पुष्पयुक्त, धूमयुक्त अग्नि के समान समुज्वल केशयुक्त, कुण्डल से अलंकृत मस्तक को काट कर पृथिवी पर गिरा दिया। इन्द्र द्वारा जम्भ का वध होने पर देवता इन्द्र की प्रभूत प्रशंसा करने लगे। विष्णु ने भी साधुवाद देकर इन्द्र को अभिनन्दित किया।।१४८-१५४।।

ततो जम्भं हतं दृष्ट्वा दानवेन्द्राः पराङ्मुखाः। सर्वे ते भग्नसङ्कल्पा दुद्रुवस्तारकम्प्रति॥१५५॥
तांश्च त्रस्तान्समालोक्यश्रुत्वा स चतुरो हतान्। सारथिंप्रेरयामासयाहीन्द्रंलघुसङ्गरे॥१५६॥

जंभासुर को मृत देखकर अन्य दानवेन्द्रगण हताश हो गये। वे सभी युद्ध से विमुख होकर तारकासुर के पास भागने लगे। तारकासुर ने इन दानवों की ऐसी त्रस्त हालत देखकर तथा चार महावीरों के वध का संवाद पाकर सारथि को आदेश दिया कि शीघ्रता से रथ (रणभूमि में) ले चलो।।१५५-१५६।।

तथेत्युक्त्वा स च प्रायात्तारके रथमास्थिते। सावलेपं च सक्रोधं सगर्वंसपराक्रमम्॥१५७॥
साविष्कारं सधिक्कारं प्रयातो दानवेश्वरः। स युक्तं रथमास्थायसहस्त्रेणगरुत्मताम्॥१५८॥
सर्वायुधपरिष्कारं सर्वास्त्रपरिरक्षितम्। त्रैलोक्यऋद्धिसम्पन्नंकल्पान्तकनादितम्॥१५९॥
सैन्येन महता युक्तो नादयन्विदिशो दिशः।
सहस्त्राक्षश्च तं दृष्ट्वा त्यक्त्वा वाहनदन्तिनम्॥१६०॥
रथं मातलिना युक्तं तप्तहेमपरिष्कृतम्। चतुर्योजनविस्तीर्णं सिद्धसङ्घपरिष्कृतम्॥१६१॥
गन्धर्वकिन्नरोद्गीतमप्सरोनृत्यसङ्कुलम् ॥१६२॥
सर्वायुधमहाबाधं महारत्नसमाचितम्। अध्यतिष्ठत्तं रथं च परिवार्य समन्ततः॥१६३॥
दंशिता लोकपालाश्च तस्थुः सगरुडध्वजाः। ततश्चाल वसुधा ववौ रूक्षौ मरुद्गणैः॥१६४॥
चेलुश्च सागराः सप्त तथाऽनश्यद्रवेः प्रभा।
ततोजज्वलुरस्त्राणिततोऽकम्पन्तवाहनाः॥१६५॥
ततः समस्तमुद्वृत्तं ततोऽदृश्यत तारकः। एकतस्तारको दैत्यः सुरसङ्घास्तथैकतः॥१६६॥
लोकवसादमेकत्र लोकोद्धरणमेकतः। चराचराणि भूतानि भयविस्मयवन्ति च॥१६७॥

सारथि ने भी "वही करता हूं" कहा तथा रथ को तदनुरूप स्थान की ओर ले चला। दानवेश्वर तारक का रथ १००० गरुड़युक्त, सभी अस्त्रों से रक्षित, सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र से युक्त, त्रैलोक्य ऋद्धिसम्पन्न, कल्पान्त के काल के समान, नाना निनाद से युक्त था। तारक ऐसे रथ पर क्रोधपूर्वक, गर्व के साथ और उत्साह तथा पराक्रम के साथ धिक्कारते हुये बैठा तथा वह महान् सैन्य से घिरकर दिक्-विदिक् को निनादित करता जाने

लगा। उधर सहस्त्राक्ष इन्द्र ने भी तारक को आते देखा तब वे ऐरावत हाथी से नीचे उतरे तथा मातलि सारथि द्वारा जोते गये तप्तसुवर्ण मण्डित, चार योजन विस्तीर्ण, सिद्धों से शोभित, गन्धर्व-किन्नरगण के गायन से युक्त, अप्सरावर्ग के नृत्यादि से आनन्दित, महारत्नजटित, सर्वाभूषण सम्पन्न महारथ पर बैठ गये। विष्णु तथा दिक्पालगण सज्जित तथा सशस्त्र होकर उस रथ को घेरे हुये थे। तत्पश्चात् क्रमशः धरती भूकम्पवत् प्रतीत होने लगी। रूखी वायु बहने लगी, सातों महासागर उद्वेलित हो उठे। सूर्य प्रभाहीन हो गये। सभी शस्त्रास्त्र ज्वलित से हो गये। सभी वाहन प्रकम्पित हो रहे थे। सब कुछ मानों विपर्यस्त हो उठा। तभी तारकासुर देवगण के द्वारा देखा गया। एक ओर तारकासुर का स्थान था तो दूसरी ओर देवगण का। एक पक्ष संसार के लिए अवसादपूर्ण था, जबकि दूसरा पक्ष लोकसमूह का परित्राण करने वाला प्रतीयमान हो रहा था। हे अर्जुन! इससे समस्त जगत् के प्राणीवर्ग भयाभिभूत होकर विस्मित हो रहे थे।।१५७-१६७।।

प्रशशंसुः सुराः पार्थ! तदा तस्मिन्समागमे॥१६८॥
अस्त्राणि तेजांसि धनानि योधा यशो बलं वीरपराक्रमाश्च।
सत्त्वौजसान्यङ्ग बभूवुरेषां देवासुराणां तपसः परन्तु नः॥१६९॥
अथाभिमुखमायान्तं देवा विनतपर्वभिः। बाणैरनलकल्पाग्रैर्विभ्यधुस्तारकं प्रति॥१७०॥
स तानचिन्त्य दैत्येन्द्रो देवबाणक्षतान्हृदि।
बाणैर्व्योम दिशःपृथ्वींपूरयामासदानवः॥१७१॥
नारायणं च सप्तत्या नवत्या च हुताशनम्। दशभिर्मारुतं मूर्ध्नि यमं दशभिरेव च॥१७२॥
धनदं चैव सप्तत्या वरुणं च तथाऽष्टभिः। विंशत्या निर्ऋतिं दैत्यःपुनश्चाऽष्टभिरेवच॥१७३॥
विव्याध पुनरेकैकं दशभिर्मर्मभेदिभिः। तथा च मातलिं दैत्यो विव्याधत्रिभिराशुगैः॥१७४॥

तब देवता आत्मश्लाघा की बात करने लगे। देवता तथा असुर अपने प्रभाव, अस्त्र, तेज, ऐश्वर्य, सैन्य, यश, बल, वीरता, पराक्रम, धैर्य, उत्साह तथा ऐश्वर्य वर्णन करते जा रहे थे। इसके अनन्तर देवगण अपनी ओर आये तारकासुर को अग्नि के समान स्पर्श वाला बाण छोड़कर उसको विद्ध करने लगे। लेकिन दैत्येन्द्र तारक हृदय में बाणों के प्रहार से आहत होने पर भी इन क्षतों की परवाह न करके अपने बाणों के समूह से भूमण्डल को तथा दिशाओं को समाच्छन्न किये जा रहा था। उसने ७ बाण से भगवान् नारायण को, ९० बाणों से अग्नि को तथा १० बाणों से वायुदेव को आहत किया। तदनन्तर १० बाणों से यम के मस्तक पर आघात किया। इसके पश्चात् उसने ७० बाणों से कुबेर को, आठ बाणों से वरुण को, बीस बाणों से निर्ऋति को विद्ध करके पुनः आठ बाणों का आघात निर्ऋति पर किया। तत्पश्चात् उसने पुनः १०-१० बाणों का प्रहार इनमें से प्रत्येक पर किया। इसके अनन्तर उसने मातलि को ३ बाणों से आहत किया।।१६८-१७४।।

गरुडं दशभिश्चैव महिषं नवभिस्तथा। पुनर्दैत्योऽथ देवानां तिलशो नतपर्वभिः॥१७५॥
चकार वर्मजालानि चिच्छेद च धनूंषि च। ततो विकवचादेवाविधनुष्काःप्रपीडिताः॥१७६॥
चापान्यन्यानि संगृह्य यावन्मुञ्चन्ति सायकान्।
तावद्बाणं समाधाय कालानलसमप्रभम्॥१७७॥

ताडयामासशक्रं स हृदि सोऽपि मुमोच ह।
ततोऽन्तरिक्षमालोक्यदृष्ट्वा सूर्यशताकृती॥१७८॥
तार्क्ष्यविष्णू समाजघ्ने शराभ्यां तावमुह्यताम्। प्रेतनाथस्य वह्नेश्चवरुणस्यशितैःशरैः॥१७९॥
निर्ऋतेश्चाऽकरोत्कार्यं भीतभीतं विमोहयन्।
निरुच्छवासं समाहृत्य चक्रे बाणैः समीरणम्॥१८०॥

तत्पश्चात् उसने १० बाणों से गरुड़ को तथा यम के वाहन महिष को ९ बाण के प्रहार से आघात पहुंचाया। इसके अनन्तर दैत्यराज ने नुकीले बाणों का प्रहार करके देवगण के कवचों को छिन्न-भिन्न कर दिया। उसने देवगण के धनुषों को भी बाण प्रहार से भग्न कर दिया। तदनन्तर कवच तथा धनुष रहित देवताओं ने जो बाणों के प्रंहार से भी पीड़ित थे, अन्य धनुष लेकर बाण छोड़ने का उपक्रम कर ही रहे थे, इतने में तारक ने कालाग्नि के समान भीषण बाण का सन्धान करके इन्द्र के हृदय को आघात पहुंचाया। इस प्रहार से देवराज मूर्च्छित हो गये। तब इस दैत्यराज ने अन्तरिक्ष में सैकड़ों सूर्य के समान दीप्तिमान विष्णु तथा गरुड़ को देखकर दो बाणों से उन पर आघात किया, इससे वे दोनों भी मूर्च्छित हो गये। दैत्यराज के तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से यम, अग्नि तथा वरुण अत्यन्त भयभीत होकर क्रमशः मूर्च्छित हो गये। दैत्यराज की बाणवर्षा के कारण वायुदेव भी उच्छ्वास छोड़ रहे थे॥१७५-१८०॥

ततः प्राप्य हरिः सञ्ज्ञां प्रोत्साह्य च दिशां पतीन्।
बाणेन सारथेः कायाच्छिरोऽहार्षीत्सकुण्डलम्॥१८१॥
धूमकेतोर्ज्वलत्क्रुद्धस्तस्य च्छित्त्वान्यपातयत्। दैत्यराजकिरीटंचचिच्छेदवासवस्ततः॥१८२॥
धनेशश्च धनुः क्रुद्धो विभेद बहुधा शरैः।
वायुश्चक्रे च तिलशो रथम्वा क्षोणिकूबरम्॥१८३॥
निर्ऋतिस्तिलशो वर्म चक्रे बाणैस्ततो रणे। कृत्वैतदतुलं कर्मतिष्ठतिष्ठेति चाऽब्रुवन्॥१८४॥
लिहन्तः सृक्किणीं देवा वासुदेवादयस्तदा।
दृष्ट्वा तत्कर्म देवानां तारकोऽतुलविक्रमः॥१८५॥
मुमोच मुद्गरं भीमं सहस्त्राक्षाय सङ्गरे। दृष्ट्वा मुद्गरमायान्तमनिवार्यं रणाजिरे॥१८६॥
रथादाप्लुत्य धरणीमगमत्पाकशासनः। मुद्गरोऽपि रथोपस्थे पपात परुषस्वनः॥१८७॥
स रथं चूर्णयामास न ममार च मातलिः। गृहीत्वापट्टिशंदैत्यो जघानोरसिकेशवम्॥१८८॥

इसके पश्चात् हरि ने चैतन्य होकर दिक्पालों को उत्साहित किया तथा उन्होंने क्रोधपूर्वक बाणों का आघात करके तारक के धूमकेतु नामक सारथि के शरीर से उसके कुण्डलयुक्त उज्वल मस्तक को काट कर विच्छिन्नदेह कर दिया। इन्द्र ने बाणों से उसके मुकुट को तथा कुबेर ने धनुष को भग्न कर दिया। वायुदेव ने अनेक बाणों के आघात से दैत्यपति के रथ को तिल-तिल करके तोड़ दिया। निर्ऋति देव ने भी दैत्यराज के कवच के टुकड़े-टुकड़े बाण प्रहार से कर दिये। वासुदेवादि देवगण यह कृत्य रणस्थल में करके दैत्यराज का 'रुको-रुको' कहकर त्रस्त करने लगे। अतुलित पराक्रमी तारकासुर ने रणभूमि में देवगण का यह कृत्य देखकर एक भयानक मुद्गर उठाया

तथा उसे सहस्रलोचन इन्द्र पर फेंका। उस मुद्गर को अपनी ओर आते देखकर इन्द्र रथ से छलांग मार कर भूमि पर कूद पड़े। मुद्गर तीव्र वेग से इन्द्र के रथ पर आ गिरा तथा उसके आघात से रथ चकनाचूर हो गया। लेकिन इससे इन्द्र के सारथि मातलि जीवित बच गये। इसके पश्चात् दैत्यराज तारक ने एक पट्टिश से भगवान् केशव के वक्षःस्थल पर आघात किया।।१८१-१८८।।

स्कन्धे गरुत्मतः सोऽपि निषसादविचेतनः। खड्गेनराक्षसेन्द्रञ्चभित्वाभूमावपातयत्॥१८९॥

यमं च पातयामास भूमौ दैत्यो मुखे हतम्।
वह्निं च भिण्डिपालेन चक्रे हत्वा विचेतनम्॥१९०॥
वायुं पदा तदाऽऽक्षिप्य पातयामासभूतले। धनेशं तद्धनुष्कोट्या कुट्टयामासकोपनः॥१९१॥
ततो देवनिकायानामेकैकं क्षणमात्रतः। तेषामेव जघानाऽसौ शस्त्रैर्बालान्यथा गुरुः॥१९२॥
लब्धसञ्ज्ञस्ततोविष्णुश्चक्रं जग्राह दुर्धरम्। दानवेन्द्रवसामेदोरुधिरेणाऽभिरञ्जितम्॥१९३॥
मुमोच दानवेन्द्रस्य दृढं वक्षसि केशवः। पपात चक्रं दैत्यस्य पतितं भास्करद्युति॥१९४॥
व्यशीर्यताऽथकायेऽस्यनीलोत्पलमिवाश्मनि। ततोवज्रंमहेन्द्रोऽपिप्रमुमोचार्चितंचिरम्॥१९५॥

विष्णुदेव इस पट्टिश आघात से गरुड़ के स्कन्ध पर अचेतन होकर गिर गये। तब दैत्य ने खड्गप्रहार से निर्ऋति को भी अवसन्न करके भूपतित कर दिया। उसने यम के मुख पर भिन्दिपाल का आघात करके उनको भी पृथिवी पर गिराकर भिन्दिपाल के ही प्रहार से अग्नि को भी चेतनारहित कर दिया। महाक्रोधी तारक ने पदाघात से वायु को पृथिवी पर गिरा दिया और धनुष के सिरे से मार कर कुबेर के शरीर को भी क्षत-विक्षत कर दिया। जैसे बालक पर गुरु प्रहार करते हैं, उसने उसी प्रकार से एक-एक पर अस्त्र प्रहार प्रारम्भ भी कर दिया। उधर विष्णु ने चेतना प्राप्त होने पर उस दानवेन्द्र तारक पर अपना रुधिर-वसा-मेद लिपटा दुःसह चक्र वेगपूर्वक दैत्य के वक्षःस्थल पर छोड़ा, परन्तु जैसे पत्थर पर जोर से फेंका नीलकमल खण्ड-खण्ड हो जाता है, उसी प्रकार वह सूर्य समप्रभ चक्र भी दैत्यराज के वक्ष पर पड़ते ही विशीर्ण हो गया। तब इन्द्र ने भी अपना चिरपूजित वज्र दैत्य तारकासुर पर छोड़ा।।१८९-१९५।।

तस्मिञ्जयाशा शक्रस्य दानवेन्द्रायसंयुगे। तारकस्य च सम्प्राप्य शरीरं शौर्यशालिनः॥१९६॥
व्यशीर्यत विकीर्णार्चिः शतधा खण्डशो गतम्। ततोवायुरदीनात्मावेगेनमहता नदन्॥१९७॥
ज्वलितज्वलनाभासमङ्कुशं प्रमुमोच ह। विशीर्णं तस्य तच्चाऽङ्गे दृष्ट्वा वायुर्महारुषा॥१९८॥
ततः शैलेन्द्रमुत्पाट्य पुष्पितद्रुमकन्दरम्। चिक्षेप दानवेन्द्राय दशयोजनविस्मृतम्॥१९९॥
महीधरं तमायान्तं सस्मितं दैत्यपुङ्गवः। जग्राह वामहस्तेन बालः कन्दुकलीलया॥२००॥

ततस्तेनैव चाऽऽहत्य पातयामास चाऽन्तकम्।
दण्डं ततः समुद्यम्य कृतान्तः क्रोधमूर्च्छितः॥२०१॥

दैत्येन्द्रमूर्ध्निचिक्षेप भ्राम्यवेगेनदुर्जयम्। सोऽसुरस्याऽपतन्मूर्ध्निदैत्यस्तंजगृहेस्मयन्॥२०२॥

दैत्य-युद्धरत इन्द्र ने इसी वज्रास्त्र से ही जय पाने की आशा कर रखी थी, परन्तु शौर्यवान् तारक के शरीर

पर गिरते ही वह वज्र चिनगारी बिखेरता खण्ड-खण्ड में बंट गया। मानों पत्थर से टकराया हो! इसके पश्चात् अदीनात्मा वायुदेव ने ज्वलित ज्वालायुक्त अंकुश उठाया और सिंहनाद करते हुये महावेगपूर्वक तारक पर छोड़ा। लेकिन वह तारक के अंग पर लगते ही भग्न हो गया। यह देखकर वायुदेव ने एक १० योजन विस्तृत, पुष्पित, वृक्ष, तरुलता युक्त एक पर्वत उखाड़ा और उसे दानवेन्द्र पर फेंका, किन्तु दैत्यराज तारक पर जैसे ही पर्वत गिरा, तब जैसे बालक खेल में ही गेंद लोक लेता है, उसी प्रकार से तारक ने खेल-खेल में ही उस पर्वत को बायीं हथेली में लोक लिया और उससे उलटे यमराज पर दारुण आघात किया। इससे यमराज क्रोध से मूर्च्छितप्रायः हो गये और उन्होंने हाथ में अपना दुर्जय यमदण्ड उठाकर दैत्यराज तारक के मस्तक को लक्ष्य बना कर वेग से फेंका, लेकिन दैत्य तारक ने मस्तक पर आते-आते उस दण्ड को हंसते हुये मुख से पकड़ लिया।।१९६-२०२।।

कल्पान्तलोकदहनो ज्वलनो रोषसंज्वलन्। शक्तिं चिक्षेप दुर्धर्षां दानवेन्द्राय संयुगे॥२०३॥
ततः शिरीषमालेवसाऽस्यवक्षस्यराजत। ततः खड्गं समाकृष्यकोशादाकाशनिर्मलम्॥२०४॥
द्युतिभासितत्रैलोक्यं लोकपालोऽपिनिर्ऋतिः। चिक्षेप दानवेन्द्रायतस्यमूर्ध्निपपातह॥२०५॥
पतितश्चागमत्खड्गः स शीघ्रं शतखण्डताम्। जलेशश्च ततः क्रुद्धो महाभैरवरूपिणम्॥२०६॥

यह देखकर अग्निदेव क्रोध से ज्वलित हो गये। उन्होंने कल्पान्तकालीन भीषण रूप धारण किया तथा रणस्थल में दानवेन्द्र तारक पर एक दुर्द्धर्ष शक्ति का प्रहार किया। वह शक्ति दैत्यपति के वक्षःस्थल पर शिरीष की माला जैसी विराजित हो गयी। (उसका तनिक भी आघात दैत्य को नहीं लगा)। निर्ऋति देव ने भी क्रोधित होकर निर्मल खड्ग म्यान से निकाल कर दानवराज तारक पर सन्धान किया। यद्यपि वह खड्ग अपनी चमक से त्रैलोक्यमण्डल को उद्भासित करता दैत्यराज के मस्तक से टकराया, तथापि टकराते ही सैकड़ों टुकड़ों में बंटकर गिर गया। तब वरुण ने क्रोधपूर्वक महाभैरव रूप धारण किया।।२०३-२०६।।

मुमोच पाशं दैत्येन्द्रभुजबन्धाभिलाषुकः। स दैत्यभुजमासाद्य पाशः सद्यो व्यपद्यत॥२०७॥
स्फुटितः क्रकचक्रूरदशनालिरहीश्वरः। ततोऽश्विनौ सचन्द्रार्कौ साध्याश्चवसवश्च ये॥२०८॥
यक्षराक्षसगन्धर्वाः सर्पाश्चास्त्रैः पृथग्विधैः। जघ्नुर्दैत्येश्वरं सर्वे भूयशस्ते महाबलाः॥२०९॥
न चास्त्राण्यस्यासज्जन्त गात्रे वज्राचलोपमे।
ततो देवानवप्लुत्यतारकोदानवाधिपः॥२१०॥
जघान कोटिशः क्रुद्धोमुष्टिपार्ष्णिभिरेव च। तथाविधंतस्यवीर्यमालोक्यभगवान्हरिः॥२११॥
पलायध्वमहो देवा वदन्नन्तर्हितोऽभवत्। शक्रादयस्ततो देवाः पलायनकृतादराः॥२१२॥

अब जलपति वरुण देव ने दैत्येन्द्र तारक की बांहों को बद्ध करने के लिए महाभीषण पाशास्त्र छोड़ा। यद्यपि वह पाश दैत्यराज की बाहु पर गिरा, लेकिन तत्क्षण वह भग्न हो गया। उस पाशस्थ सर्पराज के क्रकचाकृति दांतों की पंक्ति भग्न हो गयी। तब महाबली अश्विनीकुमारों, चन्द्र-सूर्य, साध्य, वसुगण, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, सर्पादि देवपक्ष के लोगों ने एक साथ भांति-भांति के अस्त्र-शस्त्र से दैत्यराज पर आघात किया, लेकिन वज्रपर्वत जैसे उसके देह पर उन सबका किंचित असर भी नहीं हो सका! तारकासुर उछाल मार कर देवताओं की सेना में कूदा और क्रोधित होकर पैरों की तथा मुक्के की मार से करोड़ों-करोड़ों देवगण को आहत करने लगा। उसके इस पराक्रम

को देखकर भगवान् नारायण ने कहा—"भागो, यहां से भाग चलो।" यह कहकर देवदेव विष्णु अन्तर्हित हो गये! यह देखकर इन्द्रादि देवता भी भागने लगे।।२०७-२१२।।

कालनेमिमुखैर्दैत्यैरुपरुद्धा महोत्कटैः। मुष्टिभिः पादघातैश्च केशेष्वाकृष्य तैर्मुदा॥२१३॥
तारिताः शुष्कसरितं देवमार्गाश्च दंशिताः। बहुधा चाऽपकृष्यन्तलोकपालामहासुरैः॥२१४॥

यह देखकर कालनेमि आदि प्रमुख मदोद्धत दानव पलायन मार्ग पर आये तथा मार्ग को रोक कर मुक्के तथा पैर के प्रहार करते हुये उनको नाना मार्ग में तथा शुष्क नदी में खींचने लगे। कवचधारी लोकपालगण भी इन महा असुर सैन्य द्वारा नाना प्रकार से खींचे जा रहे थे!।।२१३-२१४।।

ततो निनादः सञ्जज्ञे दैत्यानांबलशालिनाम्। कम्पयन्पृथिवींद्यांचपातालानि च भारत॥२१५॥
जयेति मुदिता दैत्यास्तुष्टुवुस्तारकं तदा। शङ्खाश्च पूरयामासुः कुन्देन्दुसदृशप्रभान्॥२१६॥
धनुर्बाणरवांश्चोग्रान्कराघातांश्च चक्रिरे। भृशं हर्षान्विता दैत्यानेदुश्च ननृतुर्मुहुः॥२१७॥
ततो देवान्पुरस्कृत्य पशुपालः पशूनिव। दैत्येन्द्रोरथमास्थाय जगाम सहितोऽसुरैः॥२१८॥

हे अर्जुन, हे भारत! तब बली दैत्यसैन्य में ऐसा कोलाहल होने लगा, जिससे पृथिवी से लेकर पाताल पर्यन्त के लोक कम्पित हो उठे! उस समय दैत्यगण सानन्द चित्त से जयध्वनि द्वारा तारकासुर का अभिनन्दन करके कुन्द एवं इन्दु के समान वर्ण वाले श्वेत शंख का वादन कर रहे थे। वे अत्यन्त प्रहर्षित होकर पुनः-पुनः सिंहनाद, बाणध्वनि, धनुष की टंकार, तालियां बजाते नृत्यरत हो गये। तत्पश्चात् तारक समस्त देवों को उस प्रकार ले जाने लगा, जैसे पशुपालक पशुओं को ले जाते हैं। इस प्रकार उसने बंदी देवगण तथा अपने दैत्यदल के साथ अपनी राजधानी में प्रवेश किया।।२१५-२१८।।

महीसागरकूलस्थं तारकः स पुरं बली। योजनद्वादशायामं ताम्रप्राकारशोभितम्॥२१९॥
प्रासादैर्बहुभिःकीर्णं दिव्याश्चर्योपशोभितम्। यत्र शब्दास्त्रयोनैव जीर्यते चानिशं पुरे॥२२०॥
गीतघोषश्चव्याघोषोभुज्यन्तांविषयास्त्विति। तत्प्रविश्यपुरंराजाजगामस्वकमालयम्॥२२१॥
महोत्सवेन महता पुत्रस्त्रीप्रतिनन्दितः। तत्र दिव्यां सभां राजाप्राप्यसिंहासनस्थितः॥२२२॥
स्तूयमानोदितिसुतैरप्सरोभिर्विनोदितः। दिव्यासनस्थैर्दैत्येन्द्रैर्वृतः सिंहैरिव प्रभुः॥२२३॥

तारक का नगर पृथिवी पर सागर के किनारे स्थित था। वह १२ योजन विस्तृत था। वह तांबे की चाहारदीवारी से घिरा था। उसमें बहुत से महल बने थे। वह दिव्यरूप नाना आश्चर्य से सुशोभित था। वहां संगीत के शब्द, धनुष की प्रत्यंचा के शब्द तथा विषयभोग करो, ये तीन शब्द कभी भी शान्त नहीं होते थे। राजा तारकासुर तब महामहोत्सव में पुरनारीगण से अभिनन्दित होते नगरी में प्रवेशोपरान्त अपने भवन में गया। वहां तारक दिव्य सभा के बीच दिव्य सिंहासन पर बैठा। असुरगण उसकी स्तुति कर रहे थे। अप्सराओं से विनिन्दित तथा दिव्य सेना से युक्त तथा असुरगण से घिरा वह पशुराज सिंह के समान शोभायमान हो रहा था।।२१९-२२३।।

एतस्मिन्नन्तरेकाचिद्दिव्यस्त्रीतत्पुरेऽभवत्। विस्मितस्तैर्वृतो दैत्यैः प्रोवाचचेदंस्मयन्निव॥२२४॥
रूपेणानुपमा पार्थ! नानाभरणभूषिता। तां दृष्ट्वा तारको राजाभृशंवै विस्मितोऽभवत्॥२२५॥
काऽसि देवि मम ब्रूहि किं मायारूपसुन्दरि। त्वत्समां योषितंनैवदृष्टवन्तःपुरावयम्॥२२६॥

हे पार्थ! इस अवसर पर पुर में नाना दिव्याभरणभूषण भूषिता एक अनुपम रूपवती स्त्री पहुंची। राजा तारक उसे देखकर अत्यन्त विस्मय में पड़ गये। दैत्यगण से घिरे तारकासुर ने तब हास्यपूर्ण मुद्रा में उससे प्रश्न किया—"हे देवी! तुम कौन हो? हे अत्यन्त रूपवती! तुम्हारा यहां आने का क्या प्रयोजन है? वह मुझसे कहो। इससे पहले मैंने तुम्हारी तरह किसी रमणीरत्न को नहीं देखा है"।।२२४-२२६।।

स्त्र्युवाच

अहं त्रैलोक्यलक्ष्मीतिविद्धिमांदैत्यसत्तम!। अर्जितातपसाचास्मित्वयावीर्येणबाविभो॥२२७॥
वीर्यवन्तं त्वनलसं तपस्विनमकातरम्। दातारं चाऽपिभोक्तारं युक्त्यासेवामितंनरम्॥२२८॥
भीरुं निर्विण्णमत्यर्थंसाध्वीपीडाकरंनरम्। सर्वातिशंकिनंसद्यस्त्यजामि!दितिनन्दन॥२२९॥
महेन्द्रेण च माता ते यदासा व्यपमानिता। तदैवत्यक्तप्रायोऽसाविदानीं तव सम्वशे॥२३०॥

वह स्त्री कहती है—हे दैत्यश्रेष्ठ! मैं तो त्रैलोक्यलक्ष्मी हूं। यह आप जान लीजिये। हे विभु! मैं आपकी तपस्या तथा वीर्य से वशीभूत हो गयी हूं। जो मानव वीर्यवान्, आलस्यरहित, तपःशील, कातरतारहित दाता एवं भोक्ता होता है, मैं मन से उसकी सेवा करती हूं। हे दैत्यराज! भीरु, निर्वेदयुक्त, साध्वी नारी का अपमान करने वाला, सर्वत्र शंका करने वाला जो व्यक्ति होता है, उसका मैं त्याग कर देती हूं। महेन्द्र ने जब आपकी माता का अपमान किया था, मैंने तभी प्रायः उनका त्याग कर दिया था। अब मैं आपकी वशवर्त्तिनी हो गयी हूं"।।२२७-२३०।।

तारकश्च ततः प्राह परमं चेति तांतदा। सा चाऽऽविवेश तं देवी त्रिजगत्पूजितारमा॥२३१॥
ततो दैत्याधिपं नार्यो दानवानां विभूषिताः। वीरकांस्यमुपादाय वर्धयांचक्रिरेमुदा॥२३२॥

तब तारकासुर ने "अच्छा, बहुत अच्छा" कह कर लक्ष्मी का अभिनन्दन किया। तब वे त्रैलोक्यपूज्या रमादेवी दैत्यराज की देह में आविष्ट हो गयीं। तदनन्तर दानवनारीगण ने नाना भूषण से भूषित होकर वीरकांस्य (?) लेकर आनन्दित चित्त से उस दैत्यपति को अभिनन्दित करना प्रारम्भ किया।।२३१-२३२।।

देवाश्च द्वारि तिष्ठन्ति बद्धा दैत्यैर्भृशातुराः। उपहस्यमानानारीभिर्दैत्यैरन्यैश्चनागरैः॥२३३॥
एतस्मिन्नन्तरे विष्णुर्दैत्यरूपंसमास्थितः। उपहासकमध्यस्थो गाथे द्वे प्राहबुद्धिमान्॥२३४॥
इदमल्पतरंनाम यदमीषां च दृश्यते। मातृक्रोधं स्मरन्राजा किं किं यन्न करिष्यति॥२३५॥
बलीयांसं समासाद्य न नमेद्योचचास्तिसः। मर्कवच्छ्वेतबाकीयैरुपायैःस्थीयतांसुराः॥२३६॥

उस समय देवगण बन्दी भाव में द्वार पर पड़े थे। वहां नागरिक, दैत्य स्त्री-पुरुष उनका उपहास किये जा रहे थे। वे अत्यन्त क्लेशपूर्वक वहां निवास कर रहे थे। तभी धीमान् विष्णु ने दैत्यरूपी होकर वहां प्रवेश किया तथा दैत्यों के प्रति दो प्राचीन गाथा कहने लगे। यथा—इनकी यह लांछना तो अत्यन्त अल्प है। क्यों राजा इनको अपनी माता के प्रति पीड़ा पहुंचाने का दण्ड नहीं देंगे? जो बलवान् के समक्ष प्रणत नहीं होता, उसका अस्तित्व नहीं रह जाता। हे देवगण! मर्कट के समान उपाय का अवलम्बन लेकर यहां अवस्थित रहो।।२३३-२३६।।

उपहासमुखेनाऽमी उपदेशं हरेर्मुखात्। समाकर्ण्य ततो देवा मर्क्करूपेण संस्थिताः॥२३७॥
नृत्यन्तस्ते च बहुधा दैत्याश्चासुरयोषितः। भृशं च नोदयामासुर्मुदाभोज्यानितेददुः॥२३८॥

विष्णुर्दैत्यप्रतीहारं ततः प्रोवाच बुद्धिमान्। विनोदाय महाराज्ञो मर्कानेतान्प्रकीर्तय॥२३९॥
प्रतीहारस्ततो हृष्टः सभामध्येविवेश सः। जानुभ्यांधरणींगत्वाबद्ध्वाचकरसम्पुटम्॥२४०॥

देवगण ने श्रीहरि का यह वाक्य सुना तथा यह जाना कि प्रभु उपहास की आड़ में यह उपाय कह रहे हैं, देवगण ने मर्कटाकृति बनाकर विविध नृत्य द्वारा दैत्य एवं दैत्यनारियों का मनोरंजन करने लगे। वे भी इन पर संतुष्ट होकर इन्हें नाना प्रकार के खाद्यद्रव्य देते थे। तदनन्तर विष्णु ने दैत्य प्रतिहारी से कहा "तुम महाराज के मनोविनोदार्थ इन सब वानरों की सूचना उनको प्रदान करो।" प्रतिहारीगण यह सुनकर प्रसन्न हो गये। तथा उन्होंने सभा में प्रवेश किया। वहां प्रवेश करने के उपरान्त जानुद्वय का स्पर्श पृथिवी से कराने के पश्चात् कृतांजलिबद्ध होकर तथा धरणी का स्पर्श करके स्पष्ट अक्षरों में अल्प वाक्य द्वारा कहने लगे।।२३७-२४०।।

उवाचाऽनाविलंवाक्यमल्पाक्षरपरिस्फुटम्। दैत्येन्द्रंमर्कवृन्दानि द्वारि तिष्ठंतितेप्रभो॥२४१॥
भृशं विनोदकारीणिस्पृहा चेद्द्रष्टुमर्हसि। तन्निशम्याऽब्रवीद्राजाकिंचिरंक्रियतेत्वया॥२४२॥
क्षत्ताचेतिवचः श्रुत्वाकालेमिंतदाब्रवीत्। मर्कानेतान्महाराजो द्रष्टुमिच्छतिशीघ्रतः॥२४३॥
रक्षपाल सहैभिस्त्वं राजानमनुकूलय। कालनेमिरुपादाय मर्कान्यौंतो नृपं ततः॥२४४॥

द्वारपाल कहते हैं—"हे महाराज! ये सब मर्कट वृन्द आपके द्वार पर विद्यमान हैं। हे प्रभो! वे अतीव विनोद करने वाले हैं। यदि इच्छा हो, तब आप देखें।" यह सुनकर राजा तारकासुर ने कहा—"तुम विलम्ब क्यों करते हो?" यह सुनकर उसने कालनेमि से कहा "महाराज इन सभी मर्कटों को देखना चाहते हैं। हे पालक! आप इन सबको ले जाकर राजा का विनोद करें।" यह सुनकर कालनेमि उन मर्कटगण को लेकर राजा के पास पहुंचा।।२४१-२४४।।

मर्कमध्ये विष्णुमर्को यतस्त्यक्त्वाचदैत्यताम्। ततस्तारकदैत्यस्यपुरतोननृतुमर्भृशम्॥२४५॥
मर्कादैत्यकरोत्तालैर्हर्षनादविनोदितैः। ततोऽतिमुदितोराजातेषांनृत्येनसोऽब्रवीत्॥२४६॥
अभयं वो मर्कदेवास्तुष्टो यच्छाम्यहं त्विदम्। मद्गृहे स्थीयतामेव न च कार्यं भयं हृदि॥२४७॥
इतिश्रुत्वाविष्णुर्कःप्रनृत्यन्निदमब्रवीत्। राजन्विज्ञातुमिच्छामस्तवगेहाबधिं वयम्॥२४८॥
एवमुक्तो प्रहस्याऽऽह तारको दैत्यसत्तमः। त्रिभूमिकं हि मे गेहमिदं यद्भुवनत्रयम्॥२४९॥
हरिमर्कस्ततः प्राह यद्येवं स्वं वचः स्मर। त्रैलोक्ये विचरन्त्वेतेमर्काराजन्सुनिर्भयाः॥२५०॥
अश्वमेधशतस्यापिसत्यंराजन्विशिष्यते। धर्ममेनं स्मरन्सत्यं वचनं कुरु दैत्यप॥२५१॥
ततः सुविस्मितोदैत्यःप्राहेदंवचनंतदा। मर्कटाऽहोप्रबुद्धोऽसिसत्यंब्रूहि च को भवान्॥२५२॥

उस समय विष्णु भी अपना दैत्यरूप छोड़कर मर्कट रूप धारण करके उन मर्कटों के बीच स्थित हो गये। तदनन्तर तारकासुर के समक्ष दैत्यों की ताली तथा हर्षनाद से अभिनन्दित होकर मर्कटगण अतीव नृत्य करने लगे। उनके इस नृत्यदर्शन से राजा तारक ने आनन्दित होकर कहा—"मैं प्रसन्न होकर तुम सबको अभय प्रदान करता हूं। हृदय में कोई भय न करके मेरे भवन में ही स्थित हो जाओ। विष्णु ने (मर्कट रूप में) यह सुनकर कहा—"हे राजन! हम आपके भवन की सीमा जानना चाहते हैं।" तब हंसते हुये दैत्यप्रवर तारक ने कहा—"यह त्रिभुवन ही मेरा भवन है।" विष्णु मर्कट ने कहा—"राजन्! यदि यही है, तब आप अपने कहे वाक्य को याद करिये। हम

मर्कटगण त्रैलोक्य में विचरण करें। हे राजन्! १०० अश्वमेध की अपेक्षा सत्य ही विशेष होता है। हे दैत्यनाथ! आप यह स्मरण करके अपने वाक्य को सत्य करें।" तब दैत्यराज ने अत्यन्त विस्मित होकर कहा—"हे मर्कट! तुम तो ज्ञानी प्रतीत हो रहे हो! सत्य कहो, तुम कौन हो?"।।२४५-२५२।।

श्रीभगवानुवाच

अहं नारायणोनाम यदि श्रोत्रमुपागतः। देवानां रक्षणार्थाय मर्करूपमुपाश्रितः॥२५३॥
तच्चेन्मान्यतमोधर्मस्तव तद्वचनं स्वकम्। परिपालय ते गेहं विचरन्तु सुरास्त्वमी॥२५४॥
अवलेपश्च राजेन्द्र न कर्तव्यंस्त्वयाहृदि। वीरोऽहमितिसञ्चिन्त्यपश्यतां कालजंबलम्॥२५५॥
पर्यायैर्हन्यमानामभिहन्ता न विद्यते। मौढ्यमेतत्तुयद्द्वेष्टाकर्ताहमितिमन्यते॥२५६॥
ऋषींश्च देवांश्च महासुरांश्च त्रैविद्यवृद्धांश्च वने मुनींश्च।
कं वाऽऽपदो नोपनमन्ति काले कालस्य वीर्यं न तु कर्तुरितत्॥२५७॥
न मन्त्रबलवीर्येण प्रज्ञया पौरुषेणवा। अलभ्यं लभ्यते काले काले सुप्तोऽपि विन्दति॥२५८॥
न मातृपितृशुश्रूषा न च दैवतपूजनम्। नान्यो गुणसमाचारः पुरुषस्य सुखावहः॥२५९॥
न विद्या न तपोदानंनमित्राणिनबान्धवाः। शक्नुवन्तिपरित्रानुंनरं कालेन पीडितम्॥२६०॥

इसके उत्तर में विष्णु कहते हैं—हे राजन्! बोध होता है आपने सुना होगा, मेरा नाम नारायण है। मैं देवगण की रक्षा के लिए मर्कटरूप में यहां हूं। जो हो, यदि आपको धर्म मान्य है, तब आप अपने वाक्य का पालन करिये। आपके भवन में देवगण विचरण करें। हे राजेन्द्र! "मैं वीर हूं" यह कहकर आप हृदय में घमण्ड न करें। आप काल के बल की विवेचना करके देखिये। सभी लोग काल द्वारा ही पर्यायक्रमेण अभिहत होते हैं और कोई भी अभिहन्ता नहीं है। शत्रुगण जो यह सोचते हैं कि मैं ही कर्त्ता हूं, यह मूर्खता ही है। देवता, ऋषि, असुर, त्रैविद्यविद्या सम्पन्न वृद्ध, वनवासी मुनि आदि में से कौन है जो काल के अनुसार आपदाग्रस्त नहीं होता? फलतः समस्त दुःख तथा सुख काल प्रभाव से ही घटित होता है। यह सब कर्त्ता (कर्म करने वाले) का सामर्थ्य है ही नहीं। कोई भी कदापि अकाल में मन्त्र, बल, वीर्य, बुद्धि, पौरुष द्वारा भी अप्राप्य विषय नहीं पा सकता, परन्तु काल तो तब भी वांछित है, जब प्राणी सोया रहे। पिता-माता की सेवा, देवपूजा किंवा अन्य गुण भी पुरुष के लिए सुखप्रद नहीं होते। कालपीड़ित की रक्षा पिता-माता, बन्धु-बान्धव, विद्या, तप, दान, मित्र कोई भी नहीं कर सकता।।२५३-२६०।।

नागामिगमनार्थं हि प्रतिघातशतैरपि। शक्नुवन्ति प्रतिव्योढुमृतेकालबलं नराः॥२६१॥
देहवत्पुण्यकर्माणि जीववत्कालउच्यते। द्वयोःसमागमेदैत्य! कार्याणां सिद्धिरिष्यते॥२६२॥
अहो दैत्य त्वद्विशिष्टादैत्यानांकोटयःपुरा। शाल्मलेस्तूलवत्क्षिप्ताःकालवातेनदुर्दशाः॥२६३॥
इदं तु लब्ध्वा त्वं स्थानमत्मनंबहु मन्यसे। सर्वभूतभवं देवं ब्रह्माणमिव शाश्वतम्॥२६४॥
न चेदमचलं स्थानमनन्तंचाऽपि कस्यचित्। त्वंतुबालिशयावुद्ध्याममेदमितिमन्यसे॥२६५॥
अविश्वास्ये विश्वसिषि मन्यसे चाऽध्रुवं ध्रुवम्। ममेदमिति मोहात्त्वं त्रिलोकीश्रियमीप्ससि॥२६६॥

नेयं तवनचास्माकंनचान्येषांस्थिरामता। अतिक्रम्य बहूनन्यांस्त्वयितावदियंस्थिता॥२६७॥
कञ्चित्कालमियंस्थित्वात्वयितारकचञ्चला। पुंश्चलीवाऽतिचपलापुनरन्यं गमिष्यति॥२६८॥

मनुष्यगण काल बल के बिना आगामिक अनेक-अनेक अनर्थक सैकड़ों उपायों द्वारा भी काल को हटा नहीं सकते। हे दैत्य! सभी पुण्यकर्म देहाधीन हैं। काल जीव का (जीवात्मा का) अनुगामी है। इन दोनों का अनुकूल मिलन साधित होने पर ही कार्यसिद्धि होती है। हे दैत्य! इस कालरूपी वायु द्वारा तुमसे भी विशिष्ट कोटि-कोटि दैत्य सेमल की रुई की तरह फेंके जाकर दुर्दशाग्रस्त हो गये हैं। तुम इस स्थान को पाकर स्वयं को शाश्वत तथा ब्रह्मा की तरह उत्कर्षशाली समझ रहे हो, परन्तु यह स्थान भी चंचल ही है। कोई भी, वह ब्रह्मत्व अनन्त काल के लिये नहीं पाता। तुम केवल बुद्धिहीनता के वशीभूत होकर 'यह सब मेरा है', यह सोचते हो। तुम अविश्वसनीय विषय में विश्वास कर रहे हो। जो अस्थिर है, उसे स्थिर मान रहे हो। तुमने मोह के कारण त्रैलोक्य लक्ष्मी को अपनी मान लिया है। तथापि वह तुम्हारी भी नहीं है। मेरी भी नहीं है, किंवा किसी अन्य के लिए भी चिरस्थायी नहीं है। यह अपरापर रूप से अनेक के पास से होती तुम्हारे भीतर प्रतिष्ठित हो गयी है। हे तारक! यह अतीव चपला-चञ्चला है। कुछ काल तुम्हारे पास प्रतिष्ठित रहकर पुंश्चली स्त्री की तरह पुनः किसी अन्य व्यक्ति का आश्रय ग्रहण कर लेगी।।२६१-२६८।।

सरत्नौषधिसम्पन्नं ससरित्पर्वताकरम्। तानिदानीं न पश्यामि यैर्भुक्तं भुवनत्रयम्॥२६९॥
हिरण्यकशिपुर्वीरो हिरण्याक्षश्च दुर्जयः। प्रह्लादोनमुचिर्वीरो विप्रचित्तिर्विरोचनः॥२७०॥
कीर्तिः शूरश्च वीरश्च वातापिरिल्वलस्तथा। अश्वग्रीवः शम्बरश्च पुलोमा मधुकैटभौ॥२७१॥
विश्वजितत्प्रमुखाश्चाऽन्येदानवेन्द्रामहाबलाः। कालेन निहताःसर्वे कालोहिबलवत्तरः॥२७२॥
सर्वैर्वर्षायुतं तप्तं न त्वमेको महातपाः। सर्वे सत्यव्रतपराः सर्वे चाऽऽसन्बहुश्रुताः॥२७३॥
सर्वे यथार्हदातारः सर्वे दाक्षायणीसुताः। ज्वलन्तः प्रजयन्तश्च कालेन प्रतिसंहताः॥२७४॥
मुञ्चेच्छांकामभोगेषु मुञ्चेमं श्रीभवंमदम्। एतदैश्वर्यनाशेत्वांशोकःसम्पीडयिष्यति।
शोककाले शुचो मा त्वं हर्षकाले च मा हृषः॥२७५॥
अतीतानागते हि त्वा प्रत्युत्पन्नेन वर्तय॥२७६॥
इन्द्रं चेदागतः कालः सदायुक्तमतन्द्रितम्। क्षमस्वनचिराद्दैत्यत्वामप्युपगमिष्यति॥२७७॥

पूर्वकाल में भी जिन्होंने रत्न-औषधियुक्त सरिता, शैल आदि युक्त भुवनत्रय का भोग किया है, आज उनको कोई भी नहीं देख पा रहा है! वीर हिरण्यकशिपु, दुर्जय हिरण्याक्ष, प्रह्लाद, नमुचि, वीर विप्रचित्ति, विरोचन, कीर्त्ति, शूरवीर वातापि, ईल्वल, अश्वग्रीव, शम्बर, पुलोमा, मधु-कैटभ, विश्वजित् प्रमुख अन्य दानवराज सभी काल में डूब गये। काल द्वारा निहत हो गये। काल सबसे बली है। इन सबने दसों हजार वर्ष पर्यन्त तप किया था। केवल तुम ही महातपस्वी हो, ऐसा नहीं है। ये सभी सत्यव्रती, नाना शास्त्रज्ञान सम्पन्न तथा यथायोग्य दाता थे। सभी दाक्षायणी दिति आदि की सन्तान थे। वे तेज के प्रभाव से समुज्वल तथा विजयी होकर भी काल द्वारा मृत्यु को प्राप्त हो गये। यह ऐश्वर्य जब नष्ट होगा, तब तुमको शोक से पीड़ा होगी। इसलिए कामभोगादि अभिलाषा का त्याग करके ऐश्वर्य गर्व का त्याग करो। तुम दुःख आने पर शोक न करो। हर्षकाल में हृष्ट न हो। अतीत-अनागत का परित्याग

करके वर्त्तमान में सन्तुष्ट रहो। यद्यपि आलस्य रहित इन्द्र का काल इस समय प्रतिकूल है, तथापि अत्यल्प काल के उपरान्त वह तुम्हारे प्रति भी प्रतिकूल हो जायेगा।।२६९-२७७।।

को हि स्थातुमलं लोके ममक्रुद्धस्य संयुगे। कालस्तुबलवान्प्राप्तस्तेनतिष्ठामितारक!॥२७८॥
त्वमेववेत्सिमांदैत्ययोऽहंयादृक्पराक्रमः। कल्पेकल्पेमहादैत्याःकोटिशोऽर्बुदशोहताः॥२७९॥

मेरे क्रोधित हो जाने पर ऐसा कौन है, जो युद्ध में मेरे सामने ठहर सके। परन्तु तारक! काल की बलवत्ता के कारण मेरी यह अवस्था हो गई। हे दैत्य! तुम मुझे तथा मेरा जो पराक्रम है, उसे जान लो। कल्प-कल्प में कोटि-कोटि, अर्बुद-अर्बुद दैत्यों का मैंने वध किया है।।२७८-२७९।।

येषां त्वं कोटिभागेऽपिपरिपूर्णो न तारक!। कल्पेकल्पे सृजामीदंब्रह्मादिसकलंजगत्॥२८०॥
इच्छन्सञ्जीवयम्येतदनिच्छन्नाशये क्षणात्। न हि त्वां नोत्सहे हन्तुं सर्वदैत्यसमायुतम्॥२८१॥
अङ्गुल्यग्रेण दैत्येन्द्र पुनर्धर्मं न लोपये। यद्यहं प्रवरो भूत्वा धर्मं ब्रह्मवरात्मकम्॥२८२॥
लोपयामि ततः कं च धर्मोऽयं शरणंव्रजेत्। अंकर्तेतिमा मंस्थाःकर्तायस्तुसदाप्रभुः॥२८३॥
सोऽयं कालः पचेद्विश्वंवृक्षेफलमिवागतम्। यैरेव कर्मभिः सौख्यंदुःखं तैरेवकर्मभिः॥२८४॥
प्राप्नोति पुरुषो दैत्य पश्य कालस्य चित्रताम्। सर्वं कालवशादेवबोद्धव्यंधीयुतैर्नरैः॥२८५॥
स्वकर्मपरिपाकस्यफलदं वै विदुर्बुधाः। तस्मात्कर्मशुभं कार्यंपुण्यात्पुण्यात्कंचयत्॥२८६॥
पुण्येनतत्रसौख्यं स्याद्दुःखं पापेननिश्चितम्। इतिसञ्चिन्त्यदैत्येन्द्रस्वंवचःपरिपालय।
मदुक्तं वचनंसर्वं यदि मन्तुमिहाऽर्हसि॥२८७॥

हे तारक! तुम उन दैत्यों के करोड़ों भाग का एक भाग भी नहीं हो। मैंने कल्प-कल्प में ब्रह्मा तथा समस्त जगत् का सृजन किया है। मैं इच्छामात्र से क्षणमात्र में समस्त जगत् को संजीवित करता हूं। मेरी अनिच्छा से समस्त जगत् नष्ट हो जाता है। हे दैत्यराज! मैं अंगुलि के अग्रभाग से तुम्हारे साथ समस्त दैत्यों का संहार कर सकता हूं, तथापि मैं धर्मलोप नहीं करना चाहता, क्योंकि यदि मैं सबका प्रधान होकर भी ब्रह्मा के वरदान धर्म का पालन नहीं करता, तब यह धर्म किसकी शरण लेगा? तुम 'मैं कर्त्ता हूं' यह विचार मन में नहीं रखो। जो समस्त जगत् के कार्यकर्त्ता हैं, वे समस्त समग्र जगत् का परिपाक साधन करते हैं। हे दैत्य! काल वैचित्र्य देखो! पुरुष जिस कर्म से सुख पाता है, उसी कर्म से उसे दुःख भी होता है। तभी धीमान् लोगों को यह जानना आवश्यक है कि यह समस्त जगत् काल से ही संघटित होता है। बुद्धिमान् लोग अपने-अपने कर्म को ही सुखप्रद तथा दुःखप्रदरूपेण जानते हैं। तभी शुभकर्म ही करे। पाप से दुःख तथा पुण्य से सुख घटित होता है। इसमें क्या सन्देह! हे दैत्यराज! यदि इस विषय-विवेचना से यदि मेरी बात संगत लगे, तब अपने वचन का पालन करो।।२८०-२८७।।

तारक उवाच

मामत्र संस्थितं दृष्ट्वा कालनेमि मुखैर्युतम्॥२८८॥
कस्येह न व्यथेद्बुद्धिर्मृत्योरपिजिघांसतः। सा तेन व्यथतेबुद्धिरचला तत्त्वदर्शिनी॥२८९॥
ब्रवीषि वाक्यंयद्यत्त्वंतत्तथैव न संशयः। को हि विश्वासमर्थेषु शरीरे वा शरीरभृत्॥२९०॥

कर्तुमुत्सहते लोके दृष्ट्वा संप्रस्थितं जगत्। अहमप्येवमेवैनं लोकं जानाम्यशाश्वतम्॥२९१॥
कालाग्नावाहितं घोरे गुह्येसततगत्वरे। इदमद्यकरिष्यामि श्वः कर्ताऽस्मीतिवादिनः॥२९२॥
कालो हरति संप्राप्ते नदीवेग इवोन्मुखान्। इदानीं तावदेवासौमया दृष्टोनविस्मृतः॥२९३॥

तारक कहता है—मैं यहां कालनेमि आदि प्रमुख दैत्यों से परिवेष्ठित होकर स्थित हूं। इस स्थिति में मुझे देखकर किसे बुद्धि वैकल्य नहीं होगा? वस्तुतः हननाभिलाषी मृत्यु को भी बुद्धिविकलता होती है। तुम्हारे अन्दर कोई भय नहीं है। तुम्हारी तत्त्वदर्शिनी बुद्धि में भी तनिक चंचलता नहीं है। तुमने जो कुछ कहा वैसा ही सत्य रूप से घटित होता है। इसमें तनिक संशय नहीं है। समस्त जगत् परिवर्त्तनात्मक है। यह देखकर लोग जो शरीरधारी हैं, वे विषयों के प्रति आस्थावान् क्यों होंगे? मैं भी संसार को क्षणभंगुर ही मानता हूं। यह सतत् चलायमान, घोर-गुह्य तथा कालाग्नि से प्रभावित रहता है। इसमें जो 'यह मैं आज करूंगा, यह कल करूंगा,' यह जल्पना करता है, काल नदीवेग के समान सामने आये सभी व्यक्ति का अपहरण कर लेता है, मैंने यह प्रत्यक्ष किया है। इसे कभी नहीं भूलता।।२८८-२९३।।

कालेनह्रियमाणानां प्रलापः श्रूयते नृणाम्। ईर्ष्याभिमानलोभेषु कामक्रोधभयेषु च॥२९४॥
स्पृहामोहातिवादेषुलोकः सक्तो न बुध्यते। गुरुग्वाऽप्यगुरुम्वापिकृत्वाकृत्यंचकेशव॥२९५॥
जानामित्वामहंविष्णोसर्वभूतवरं प्रभुम्। किंकुर्मःस्वस्वभावेनबलिनात्वांनमन्महे॥२९६॥
केचिद्भजन्ति त्वां भक्त्या वैरेण हेलया परे।
सर्वेऽनुकम्प्यास्तेतुभ्यमन्तरात्माऽसि देहिनाम्॥२९७॥
पुराणः शाश्वतोधर्मः सर्वप्राणभृतांसमः। मामालम्ब्यमयामुक्ता यान्तुसर्वेदिवौकसः॥२९८॥
पुनर्मर्कस्वरूपेण भ्रान्तव्यंभुवनत्रयम्। स्पृहाऽपि यज्ञभागानां न कार्यासमयस्त्वयम्॥२९९॥
एवमुक्ते तारकेण देवा हर्षंप्रपेदिरे। मुच्यते हतलोमाऽपि मेषो लाभो हि सौनिकात्॥३००॥

"काल द्वारा जिनका हरण होगा ऐसे व्यक्तिगण का प्रलाप सुनाई देता है। जनगण ईर्ष्या, अभिमान, लोभ, काम, क्रोध, भय, कामना, मोह तथा वाचालता में आसक्त होकर काल प्रवाह का स्मरण नहीं करते। हे केशव! गुरु-अगुरु, कर्म-अकर्म को तथा तुम जो सर्वभूत प्रधान प्रभु हो, इसे मैं जानता हूं। तथापि हे विष्णु! अपने बली स्वभाव के कारण मैं तुमको ग्राह्य नहीं कर पाता। कोई तुम्हारा भजन भक्ति से करता है, कोई वैरभाव से तुम्हारी अवज्ञा करता है, तथापि तुम समस्त जीवों की अन्तरात्मा हो। अतः सभी तुम्हारे कृपापात्र ही हैं। पुरातन धर्म चिरस्थायी है। वह सभी प्राणीगण के लिये समान है। अतः देवगण तुम्हारा आश्रय लेकर अब मेरे द्वारा मुक्त होकर यहां से प्रस्थान करें, तथापि मेरी इच्छा है कि ये मर्कटरूपेण त्रिभुवन में विचरण करें। इनकी स्पृहा यज्ञभाग पाने हेतु न हो। इस नियम का पालन हो।" तारक के यह कहने पर देवगण हृष्ट-हो गये, मानों कसाई ने मेष पशु को मात्र रोयें काटकर छोड़ दिया। यह मेष के लिए तो विशेष लाभ है।।२९४-३००।।

श्रीभगवानुवाच

दैत्येन्द्र भव तत्त्वज्ञो विद्याज्ञानतपोन्वितः। कालंपश्यसिसुव्यक्तंपाणावामलकंयथा॥३०१॥

कालचारित्रतत्त्वज्ञशिवं भक्तमहामते। वज्राङ्गसुतधन्योऽसि स्पृहणीयोऽसिधीमताम्॥३०२॥
यावत्ते तपसो वीर्यंतावद्भुङ्क्ष्वजगत्त्रयम्। एतेन समयेनैते चरिष्यन्ति सुरा जगत्॥३०३॥
इत्युक्त्वामर्कयूथेनवृतो नारायणः प्रभुः। स्थानादस्मादपाक्रम्य मेरुम्प्रतिययौतदा॥३०४॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे दैत्येन्द्र! तुमने करतल पर स्थित आमलकी की ही तरह कालतत्त्व का भी सम्यक् अवलोकन किया है। अतः तुम विद्या-ज्ञान तथा तपः में समृद्धि प्राप्त करके तत्त्वज्ञ हो जाओ। हे कालचरित्र तत्ववेत्ता, शिवभक्त, महामति, वज्राङ्गनन्दन! तुम धन्य हो तथा ज्ञानीजन के लिए भी स्पृहणीय हो। जब तक तुम्हारी तपस्या का प्रभाव रहता है, तुम तीनों लोकों का उपभोग करो। देवगण इसी नियमानुरूप जगत् में विचरण करते रहेंगे।" प्रभु नारायण यह कहकर उन मर्कटगण के साथ वहां से मेरु पर्वत की ओर चल पड़े॥३०१-३०४॥

ततो मेरुं समागम्य प्रोवाच वचनंहरिः। भवन्तोयान्तुब्रह्माणंसधास्यतिचवोहितम्॥३०५॥
अप्रमत्तैःसदाभाव्यंपाल्यश्चसमयस्तथा। इत्युक्त्वाभगवान्विष्णुस्तत्रैवाऽन्तरधीयत॥३०६॥
प्रणतः संस्तुतो देवैर्ब्रह्माणं च सुरा ययुः॥३०७॥
दिव्योत्तमैस्तत्रगतैरभिष्टुतो विदीप्ततेजा भुवनत्रयेऽपि।
वज्राङ्गपुत्रोऽपि मुमोद वीरः शिवप्रसादेन महर्द्धिमाप्य॥३०८॥
स्वयमिन्द्रोनिमिर्वह्निःकालनेमिर्यमोऽपिच। स्तम्भश्चनिर्ऋतिस्थानेमहिषोवरुणस्तथा॥३०९॥
मेषो वाताधिकारी च कुजम्भो धनदोऽभवत्।
अन्येषां चाऽधिकारांश्च दैत्यानां तारको ददौ॥३१०॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे देवासुरसङ्ग्रामे तारकविजयवर्णनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः॥२१॥

मेरु पर्वत पहुंच कर हरि ने देवगण से कहा—"तुम सब ब्रह्मा के पास जाओ। वे तुम लोगों का हित करेंगे। तुम सब सतत् सावधानी से तारक द्वारा कहे नियम का पालन करो।" यह कहकर तथा देवगण से नमस्कृत एवं स्तुत होकर विष्णुदेव वहीं अन्तर्हित हो गये। देवगण ने भी ब्रह्मा के पास प्रस्थान किया। वज्राङ्गनन्दन वीर तारक ने भी शिव की कृपा से महान् समृद्धि लाभ करके समीप आये प्रधान-प्रधान लोगों के दिव्य स्तवों से स्तुत होकर त्रिभुवन में अत्यन्त तेजस्वी रूपेण विराजित हो गया। उस तारक ने स्वयं इन्द्रपद लिया, निमि दैत्य को अग्निपद, कालनेमि को यमपद, महिष को वरुणपद, मेष को वायुपद, कुञ्जर को कुबेर पद तथा अन्य दैत्यों को अन्य देवगण के पद पर नियुक्त करके राज्य करने लगा॥३०५-३१०॥

॥एकविंश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

द्वाविंशतितमोऽध्यायः

कुमारेश महिमा, पार्वती जन्म, देवगण-ब्राह्मण संवाद

नारद उवाच

एवं विप्रकृता देवा महेन्द्रसहितास्तदा। ययुः स्वायम्भुवं धाम मर्करूपमुपाश्रिताः॥१॥
ततश्च विस्मितो ब्रह्मा प्राह तान्सुरपुङ्गवान्। स्वरूपेणेह तिष्ठध्वं नात्रवस्तारकाद्भयम्॥२॥
ततोदेवाः स्वरूपस्थाः प्रम्लानवदनाम्बुजाः। तुष्टुवुः प्रणताःसर्वे पितरं पुत्रका यथा॥३॥

नारद कहते हैं—इस प्रकार से लांछित देवता इन्द्र के साथ वानररूप में ब्रह्मलोक गये। ब्रह्मा ने देवगण को इस अवस्था में देखा, तब विस्मयपूर्वक कहा कि तुम यहां अपने ही स्वरूप में रहो। यहां तारक का भय नहीं है। तब देवताओं ने अपना वास्तविक रूप धारण किया तथा म्लानमुख से ब्रह्मा को प्रणाम किया। तथा जैसे पिता की स्तुति पुत्र करता है, उसी प्रकार ब्रह्मा की स्तुति करने लगे॥१-३॥

नमो जगत्प्रसूत्यै ते हेतवे पालकाय च। संहर्त्रे च नमस्तुभ्यं तिस्त्रोऽवस्थास्तवप्रभो॥४॥
त्वमपः प्रथमं सृष्ट्वा तासु वीर्यमवासृजः। तदण्डमभवद्धैमं यस्मिँल्लोकाश्चराचराः॥५॥
वेदेष्वाहुर्विराड्रूपं त्वामेकरूपमीदृशम्। पातालं पादमूलं च पार्ष्णिपादे रसातलम्॥६॥
महातलं चाऽस्य गुल्फौ जंघेचाऽपितलातलम्। सुतलं जानुनीचास्यऊरूचवितलातले॥७॥
महीतलं च जघनं नाभिश्चास्यनभस्तलम्। ज्योतिःपदमुरःस्थानंस्वर्लोकोबाहुरुच्यते॥८॥
ग्रीवा महश्चवदनं जनलोकः प्रकीर्त्यते। ललाटं च तपोलोकः शीर्ष सत्यमुदाहृतम्॥९॥
चन्द्रसूर्यौ च नयने दिशः श्रोत्रे नासिकाश्विनौ।
आत्मानं ब्रह्मरन्ध्रस्थमाहुस्त्वां वेदवादिनः॥१०॥

देवगण कहते हैं—हे प्रभो! आप जगत् के प्रसवकर्त्ता हैं, आप ही त्रिविध अवस्था धारण करके जगत् का सृजन, पालन, संहार करते हैं। आपको प्रणाम! आपने प्रथमतः जल सृष्ट करके उसमें वीर्याधान किया। वही हैम अण्डाकृति हो गया। उसी अण्ड से चराचर लोक जन्मा है। आप इस दृश्य जगत् में एकरूप हैं, तथापि वेद ने आपको विराट रूपी कहा है। उस विराट मूर्त्ति के पादमूल में पाताल, एड़ी में रसातल, गुल्फ में महातल, जंघा में तलातल, जानु में सुतल, उरु में वितल, जघन में महीतल, नाभि में नभस्तल, ज्योतिष्कमण्डल वक्ष में, बाहु में स्वर्ग, ग्रीवा में महर्लोक, मुख में जनलोक, ललाट में तपोलोक, मस्तक में सत्यलोक है। चन्द्र-सूर्य आपके नेत्र हैं, दिक् कर्णद्वय है। अश्विनीकुमारद्वय नासिका हैं। परमात्मा ही आपका ब्रह्मरन्ध्र है। वेदवादिगण आपका वर्णन इस प्रकार करते हैं॥४-१०॥

एवं ये ते विराड्रूपं संस्मरन्त उपासते। जन्मबन्धविनिर्मुक्ता यान्तित्वांपरमं पदम्॥११॥
एवं स्थूलं प्राणिमध्यं च सूक्ष्मं भावेभावे भावितं त्वां गृणन्ति।
सर्वत्रस्थं त्वामतः प्राहुर्वेदास्तस्मै तुभ्यं पद्मज! इद्विधेम॥१२॥

जो आपके इस विराट रूप का ध्यान करके उपासना करते हैं, वे जन्मबन्धन रहित होकर आपका परमपद प्राप्त करते हैं। हे पद्मज! आप इस प्रकार से स्थूल में तथा भावपदार्थ में सूक्ष्मरूपेण विराजमान होकर स्थित हैं। यह ज्ञानीगण व्याख्या कर गये हैं। तभी वेदगण आपको सर्वत्र व्याप्त कहते हैं। आप इसी प्रकार के हैं। आपको प्रणाम।।११-१२।।

एवं स्तुतो विरञ्चिस्तु कृपयाऽभिपरिप्लुतः। जानन्नपि तदा प्राह तेषामाश्वासहेतवे॥१३॥
सर्वेभवन्तोदुःखार्ताःपरिम्लानमुखाम्बुजाः।
भ्रष्टायुधास्तथाऽकस्माद्भ्रष्टाभरणवाससः॥१४॥
ममैवेयं कृतिर्देवा भवतां यद्विडम्बना। यद्वैराजशरीरे मे भवन्तो बाहुसञ्ज्ञकाः॥१५॥
यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं धार्मिकं चोर्जितं महत्। तत्रासीद्बाहुनाशो मे बाहुस्थाने च ते मम॥१६॥
तन्नूनं मम भग्नौ च बाहू तेन दुरात्मना। येन चोपहृतं देवास्तन्ममाख्यातुमर्हथ॥१७॥

इस प्रकार से देवगण से स्तुत होकर करुणा से परिप्लुत चित्त ब्रह्मा ने सर्वज्ञ होने पर भी उन देवगण को आश्वस्त करने हेतु कहा—"देवताओं! तुम लोगों का मुखमण्डल म्लानरूप है। सभी दुःखी, आर्त्त लग रहे हों। सब अस्त्र-वस्त्र, आभरण रहित हो। हे देवगण! तुम लोगों के साथ जो विडम्बना घटित है, वह प्रकारान्तर से मेरी ही विडम्बना है। मेरे विराट शरीर में तुम लोग मेरे बाहु कहे गये हो। जगत् में जो कुछ विभूतिमय, उर्जित, महत्, धार्मिक है, वह सब मेरी बाहु ही है। यह सब बाहु स्थानीय होने के कारण मेरा बाहु नाश ही घटित हुआ है। जिस दुरात्मा ने तुम लोगों के ऐश्वर्य का हरण किया है, उस दुरात्मा ने तो मेरी बाहु का ही नाश किया है। इसमें सन्देह नहीं है। जो भी हो, वह दुरात्मा कौन है? वह मुझसे कहो।।१३-१७।।

देवा ऊचुः

योऽसौ वज्राङ्गतनयस्त्वया दत्तवरः प्रभो। भृशं विप्रकृतास्तेन तत्त्वं जानासितत्त्वतः॥१८॥
यत्तन्महीसमुद्रस्य तटं शार्विकतीर्थकम्। तदाक्रम्य कृतं तेन मरुभूमिसमं प्रभो॥१९॥
ऋद्धयः सर्वदेवानां गृहीतास्तेन सर्वतः। महाभूतस्वरूपेण स एव च जगत्पतिः॥२०॥
चन्द्रसूर्यौ ग्रहास्तारा यच्चान्यद्देवपक्षतः। तच्च सर्वं निराकृत्य स्थापितो दैत्यपक्षकः॥२१॥
वयं च विधृतास्तेन बहूपहसितास्तथा। विष्णोः प्रसादान्मुक्ताश्च कथञ्चिदिवकष्टतः॥२२॥
तद्वयं शरणं प्राप्ताः पीडिताः क्षुत्तृषार्दिताः। धर्मरक्षाकराश्चेति सञ्चिन्त्यत्रातुमर्हसि॥२३॥
इत्युक्तः स्वात्मभूर्देवः सुरैर्दैत्यविचेष्टितम्। सुरानुवाच भगवानतः सञ्चिन्त्य तत्त्वतः॥२४॥

देवगण कहते हैं—हे विभु! आपने जिस वज्राङ्गनन्दन तारकासुर को वरदान दिया था, उसने ही हमें इस प्रकार से लांछित किया है। आपको तो सब ज्ञात है। हे प्रभो! महीसागर संगम तटभाग में जो शिवतीर्थ प्रतिष्ठित है, उसने उस प्रदेश पर आक्रमण करके उसे मरुभूमि बना दिया है। उसने सभी देवताओं की समस्त ऋद्धि को सम्पूर्णतः हड़प लिया है। उसने महाभूताकार रूप बनाकर जगत्पति पद ग्रहण कर लिया। देवपक्षीय चन्द्र-सूर्य-ग्रह-तारादि को ताड़ित करके उनके स्थान पर दैत्यों को स्थापित कर दिया। उसने हमें बन्दी बनाकर हमारा प्रभूत उपहास किया, तथापि अन्त में विष्णुदेव की कृपा से किसी प्रकार अत्यन्त क्लेशपूर्वक हमें वहां से छुटकारा मिल पाया। हम

अब क्षुधा-तृषा से अत्यन्त पीड़ित होकर आपकी शरण में आ गये हैं। हम धर्म के रक्षक हैं। यह विवेचना करके हमारी रक्षा करें। आत्मजन्मा ब्रह्मा ने सुर-असुरगण का यह विवरण सुनकर किंचित चिन्तनोपरान्त देवताओं से कहा।।१८-२४।।

अवध्यस्तारको दैत्यः सर्वैरपि सुरासुरैः। यस्य वध्यश्चनाद्यापिसजातोभगवान्पुनः॥२५॥
मया च वरदानेन च्छन्दयित्वा निवारितः॥२६॥
तपसा सहि दीप्तोऽभूत्त्रैलोक्यदहनात्मकः। सच वव्रे वधं दैत्यःशिशुतःसप्तवासरात्॥२७॥
स च सप्तदिनो बालः शङ्कराद्यो भविष्यति। तारकस्य च वीरस्यवधकर्ताभविष्यति॥२८॥
सतीनामा तु या देवो विनष्टा दक्षहेलंया। सा भविष्यति कल्याणीहिमाचलशरीरजा॥२९॥
शङ्करस्य च तस्याश्च यत्नः कार्यः समागमे। अहमप्यस्य कार्यस्य शेषंकर्ता न संशयः॥३०॥

ब्रह्मा कहते हैं—तारकासुर सभी सुर-असुरवर्ग से अवध्य है, परन्तु जिससे वह वध्य है, उन महात्मा ने अभी तक जन्म नहीं लिया। इस तारक असुर ने तपः द्वारा प्रदीप्त होकर त्रैलोक्य दहनरूप क्षमता प्राप्त की थी, यह देखकर मैंने उससे विनय करके तपस्या से विरत किया। वही दैत्य ७ दिन के बालक से मृत होगा, यही वर उसने मांगा था। वह बालक शंकर से ही जन्म लेगा। ७ दिन की आयु में वह वीर तारकासुर का वध करेगा। दक्ष से अपमानित सती ने देहत्याग किया था। उन्होंने हिमालय की कल्याणी कन्या के रूप में जन्म लेंगी। शंकर के साथ जिस विधि से उनका समागम हो सके, तुम लोग वह प्रयत्न करो। मैं भी निःसंदेह इस कार्य के बचे अंश को करूगा।।२५-३०।।

इत्युक्तास्त्रिदशास्तेन साक्षात्कमलयोनिना। जग्मुर्मेरुं प्रणम्येशं मर्करूपेण सम्वृताः॥३१॥
ततो गतेषु देवेषु ब्रह्मा लोकपितामहः। निशां सस्मार भगवान्स्वां तनुंपूर्वसम्भवाम्॥३२॥
ततो भगवती रात्रिरुपतस्थे पितामहम्। तां विविक्ते समालोक्य तथोवाच विभावरीम्॥३३॥
विभावरि महत्कार्यं विबुधानामुपस्थितम्। तत्कर्तव्यंत्वयादेविशृणुकार्यस्यनिश्चयम्॥३४॥
तारकोनाम दैत्येन्द्रः सुरकेतुरनिर्ज्जितः। तस्याभावाय भगवाञ्जनयिष्यति यं शिवः॥३५॥
सुतः स भविता तस्यतारकस्यान्तकारकः। अहंत्वादौयदाजातस्तदापश्यंपुरःस्थितम्॥३६॥
अर्धनारीश्वरं देवं व्याप्य विश्वमवस्थितम्। दृष्ट्वा तमब्रुवं देवं भजस्वेति च भक्तितः॥३७॥
ततो नारी पृथग्जाता पुरुषश्चतथापृथक्। तस्याश्चैवांशजाःसर्वाःस्त्रियस्त्रिभुवनेस्मृताः॥३८॥
एकादश च रुद्राश्च पुरुषास्तस्य चांशजाः। तां नारीमहमालोक्य पुत्रं दक्षमथाब्रवम्॥३९॥

कमलयोनि के मुख से यह प्रसंग सुनकर देवताओं ने उनको प्रणाम किया तथा वानररूप में सभी मेरुपर्वत चले गये। देवगण के चले जाने पर लोक पितामह ब्रह्मा ने अपनी पूर्वसम्भूता निशा-मूर्त्ति का स्मरण किया। स्मरण करते ही भगवती रात्रिदेवी का वहां आविर्भाव हो गया। पितामह ने उन विभावरी को उपस्थित देखकर कहा "हे विभावरी! सम्प्रति देवताओं का महत् कार्य आ गया है। उसका विवरण सुनो। दैत्यपति तारक को देवता जीत नहीं सकते, वह केतुग्रह के समान पीड़ा देने वाला है। उसके नाश हेतु यत्न करना है। भगवान् शिव का जो पुत्र होगा, वही तारक का अन्त करेगा। आदिकाल में जब मैंने जन्म लिया था, तब सामने विश्वव्यापी अर्द्धनारीश्वर देव का

दर्शन पाकर उनसे भक्तिभाव से यह कहा था कि आप विभक्त हो जायें। यह कहने पर वे नारीमूर्त्ति तथा पुरुष मूर्त्ति में विभक्त हो गये। उस नारी अंश से ही त्रैलोक्य में नारीगण का जन्म हुआ। उस पुरुष के एकादश रुद्र तथा जगत् के सभी पुरुष अंशरूप ही हैं। मैंने उस नारी को देखकर पुत्र दक्ष से यह कहा''।।३१-३९।।

भजस्व पुत्रीं जगती ममापि च तवापि च। पुंदुःखनरकात्त्रात्रीपुत्रीतेभाविनीत्वियम्।।४०।।

मैंने दक्ष से कहा कि तुम इसे पुत्रीरूपेण ग्रहण करो। इस प्रकार यह जगत् मेरी तथा तुम्हारी सृष्टि कहलायेगा। ये भी पुरुष की तरह दुःख से छुटकारा प्रदान करने वाली पुत्री होकर तुम्हारा हित करेंगी।।४०।।

एवमुक्तो मया दक्षःपुत्रीत्वेपरिकल्पिताम्। रुद्राय मत्तवान्भक्त्यानामदत्त्वासतीतियत्।।४१।।
ततः काले च कस्मिंश्चिदवमेने च तां पिता। मुमूर्षुः पापसङ्कल्पो दुरात्माकुलकज्जलः।।४२।।
ये रुद्रं नैव मन्यन्ते ते स्फुटंकुलकज्जलाः। पिशाचास्तेदुरात्मानोभवन्तिब्रह्मराक्षसाः।।४३।।

अवमानेन तस्याऽपि यथा देवी जहौ तनुम्।
यथा यज्ञः स च ध्वस्तो भवेन विदितं हि ते।।४४।।

मेरा कथन सुनकर दक्ष ने उस नारी को सती नामक पुत्री रूप में माना तथा भक्तियुक्त होकर रुद्रदेव को प्रदान किया। तदनन्तर कुछ काल के उपरान्त कुलकलंक पापी मन वाले दुरात्मा मुमूर्षु दक्ष पिता ने पुत्री सती देवी की अवमानना किया। वास्तव में दक्ष रुद्रदेव का सम्मान नहीं करता था। वह वास्तव में कुलकलंक था। उस दुरात्मा पिशाच को ब्रह्मराक्षसत्व मिला। दक्ष के द्वारा अपमानित सती ने जिस प्रकार से देहत्याग किया तथा भव शिवदेव ने उस यज्ञ को जैसे विध्वंस किया, वह सब तुमको ज्ञात ही है।।४१-४४।।

अधुना हिमशैलस्य भवित्रीदुहिता च सा। महेश्वरंपतिं साचपुनःप्राप्स्यतिनिश्चितम्।।४५।।
तदिदं च त्वया कार्यं मेनागर्भेप्रविश्यच। तस्याश्छविं कुरुकृष्णांयथाकालीभवेत्तुसा।।४६।।
यदा रुद्रोपहसिता तपस्तप्स्यति सा महत्। समाप्तनियमा देवी यदाचोग्राभविष्यति।।४७।।
स्वयमेव यदा रूपं सुगौरं प्रतिपत्स्यते। विरहेण हरश्चास्या मत्वा शून्यं जगत्त्रयम्।।४८।।
तस्यैव हिमशैलस्य कन्दरे सिद्धसेविते। प्रतीक्षमाणस्तां देवीमुग्रं सन्तप्स्यते तपः।।४९।।
तयोः सुतप्ततपसोर्भविता यो महान्सुतः। भविष्यति स दैत्यस्य तारकस्यनिवारकः।।५०।।

अब वे देवी हिमालय की कन्या रूप में जन्म लेंगी। इस विषय में तुम सब का कर्त्तव्य यह है कि तुम मेनका के गर्भ में प्रवेश करके उनकी कान्ति जिस प्रकार से कृष्णवर्ण हो जाये, वह करो। इससे वे कृष्णवर्णा होने के कारण रुद्र द्वारा उपहास प्राप्त करके गौरवर्ण होने के लिए घोर तप करें, यह प्रयत्न करना। वे देवी तब नियम समाप्ति के अनन्तर उग्र तपःप्रभाव प्राप्त करेंगी, उनका रूप स्वतः गौरवर्ण हो जायेगा। उन सतीदेवी के विरह में कातर होकर शिवदेव को तीनों लोक सूना लगा। वे देवी की पुनः प्राप्ति की कामना को लेकर हिमालय की सिद्धगणों द्वारा सेवित कन्दरा में उग्र तप कर रहे हैं। ये दोनों अतिशय तप करके जिस महान् पुत्र को उत्पन्न करेंगे, वही पुत्र तारकासुर के दमनार्थ समर्थ होगा।।४५-५०।।

तपसो हि विना नास्ति सिद्धिः कुत्राऽपि शोभने!।
सर्वासां कर्मसिद्धीनां मूलं हि तप उच्यते।।५१।।

त्वयाऽपि दानवो देवि देहनिर्गतया तदा। चण्डमुण्डपुरोगाश्च हन्तव्या लोकदुर्जयाः॥५२॥
यस्माच्चण्डञ्चमुण्डंचत्वंदेविनिहनिष्यसि। चामुण्डेतिततोलोकेख्यातादेविभविष्यसि॥५३॥
ततस्त्वां वरदे देवि लोकः सम्पूजयिष्यति। भेदैर्बहुविधाकारैःसर्वगां कामसाधनीम्॥५४॥
ॐकारवक्त्रां गायत्रीं त्वामर्चन्ति द्विजोत्तमाः।
ऊर्जितां बलदां वाऽपि राजानः सुमहाबलाः॥५५॥
वैश्याश्च भूतिमित्येवशिवांशूद्रास्तथाशुभे!। क्षान्तिमुनीनामक्षोभ्यादयानियमिनामपि।
त्वं महोपायसन्दोहा नातिर्नयविसर्पिणाम्॥५६॥
परिस्थितिस्त्वमर्थानां त्वमहो प्राणिका मता॥५७॥
त्वंयुक्तिःसर्वभूतानांत्वंगतिःसर्वदेहिनाम्। रतिस्त्वंरतिचित्तानांप्रीतिस्त्वंहृद्यदर्शिनाम्।
त्वं कान्तिः शुभरूपाणां त्वं शान्तिः शुभकर्मिणाम्॥५८॥
त्वं भ्रान्तिर्मूढचित्तानां त्वं फलं क्रतुयाजिनाम्॥५९॥
जलधीनां महावेला त्वं च लीलाविलासिनाम्।
सम्भूतिस्त्वं पदार्थानां स्थितिस्त्वं लोकपालिनी॥६०॥
त्वंकालरात्रिर्निःशेषभुवनावलिनाशिनी। प्रियकण्ठग्रहानन्ददायिनी त्वं विभावरी॥६१॥
प्रसीद प्रणतानस्मान्सौम्यदृष्ट्या विलोकय॥६२॥
इति स्तुवन्तो ये देविपूजयिष्यन्तित्वांशुभे!। तेसर्वकामानाप्स्यन्तिनियतानात्रसंशयः॥६३॥
इत्युक्तातु निशा देवी तथेत्युक्त्वा कृताञ्जलिः। जगाम त्वरितापूर्वं गृहं हिमगिरेर्महत्॥६४॥

हे रात्रि! हे शोभने! तपस्या के बिना कभी सिद्धि नहीं मिलती। तपस्या को ही सर्वसिद्धि का मूल कहते हैं। तप ही समस्त साधन सम्पन्न करता है। तुम भी उन देवी के शरीर से निर्गत होकर चण्ड-मुण्ड का नाश करोगी। तुम्हारा चामुण्डा नाम जगत् में प्रसिद्ध होगा। हे वरप्रदा देवी! तभी से लोग तुम्हारी सर्वत्रगामिनी, कार्यसाधिनी विविध मूर्त्तियों की पूजा करेंगे। द्विजोत्तमगम तुमको ॐकारमुखी गायत्रीरूपेण, महाबली ऋषिगण बलप्रदा उर्जितारूपेण, वैश्यगण भूतिरूपेण अर्चित करेंगे। हे शुभे! शूद्र तुम्हारी अर्चना शिवरूप से करेंगे। तुम मुनिगण की अक्षोभ्य कान्ति, नियमपालकों की दया, नीति पथ का अनुसरण करने वाली की महा उपाय समूहरूपा, अर्थसमूह की परिस्थिति तथा प्राणशक्ति हो। तुम सर्वभूतगण की मुक्ति, सर्वदेही की गति, रतिसमुत्सुकों की रति, प्रीतिपरायणों की प्रीति, शुभमूर्त्तिगण की शान्ति, मूढ़ों की भ्रान्ति, क्रतुयोगकारी (यज्ञकारी) गण का यज्ञफल, जलधिसमूह की महातरंग, विलासीगण की लीला हो। तुम पदार्थ समूह की संभूति, लोकपालन की स्थिति तथा निःशेषरूप से भुवनश्रेणी विनाशिनी कालरात्रि हो। तुम ही प्रियजन को कण्ठग्रहानन्द (गले लगाने का आनन्द) देने वाली विभावरी हो। तुम प्रसन्न होकर इन प्रणत जनगण का स्निग्ध दृष्टि से अवलोकन करो। हे शुभे देवी! जो तुम्हारा यह स्तव पढ़ कर पूजा करेंगे, उनकी समस्त इच्छा पूर्ण होगी। इसमें सन्देह नहीं है। निशादेवी ने ब्रह्मा की स्तुति सुनकर अंजलिबद्ध होकर कहा—"जैसा आपने कहा, वही करती हूं" तथा त्वरित गति से महान् हिमगिरी भवन चली गयीं॥५१-६४॥

तत्राऽऽसीनां महाहर्म्ये रत्नभित्तिसमाश्रये। ददर्श मेनामापाण्डुच्छविवक्त्रसरोरुहाम्॥६५॥
किञ्चिच्छ्याममुखोदग्रस्तनभागावनामिताम्। महौषधिगणाबद्धमन्त्रराजनिषेविताम्॥६६॥
ततः किञ्चित्प्रमिलिते मेनानेत्राम्बुजद्वये। आविवेश मुखं रात्रिर्ब्रह्मणो वचनात्तदा॥६७॥
जन्मदाया जगन्मातुः क्रमेणजठरान्तरम्। अरञ्जयच्छविं देव्या गुहमातुर्विभावरी॥६८॥
ततो जगन्मङ्गलदा मेना हिमगिरेः प्रिया। बाह्ये मुहूर्ते सुभगे प्रासूयत शुभाननाम्॥६९॥
तस्यां तु जायमानायां जन्तवःस्थाणुजङ्गमाः। अभवन्सुखिनःसर्वेसर्वलोकनिवासिनः॥७०॥

वहां रत्नभित्ति से शोभित महान् हर्म्य में उन्होंने आपाण्डुरवदन पंकजा मेना को समासीना देखा। रात्रिदेवी देखती हैं कि मेना के स्तनाग्र भाग में किंचित श्यामलता आ गई है। साथ ही स्फीत स्तनभाग किंचित झुक गया है। मन्त्रपूत महौषधियों से उनकी देह आबद्ध है। तदनन्तर मेना के द्वारा नेत्रद्वय किंचित बन्द करने पर विभावरी देवी ने ब्रह्मा के आदेशानुरूप जगन्माता की जननी के जठर में क्रमशः प्रवेश किया। साथ ही गर्भ में स्थित भावी स्कन्द जननी की शरीरकान्ति को अपने तेज से रंजित कर दिया। तदनन्तर शुभ ब्राह्ममुहूर्त में हिमगिरि पुत्री जगत् को मंगल प्रदान करने वाली उन मेना की शुभानना कन्या का जन्म हुआ। उनके जन्म लेते ही चराचर जगत् के प्राणी प्रसन्न हो गये।।।६५-७०।।

अभवत्क्रूरसत्त्वानां चेतः शान्तं च देहिनाम्। ज्योतिषामपितेजस्त्वमभवत्सुतरांतदा॥७१॥
वनाश्रिताश्चौषधयःस्वादुवन्तिफलानिच। गन्धवन्तिचमाल्यानिविमलंचनभोऽभवत्॥७२॥
मारुतश्च सुखस्पर्शो दिशश्च सुमनोहराः। विस्मृतानि च शास्त्राणिप्रादुर्भावं प्रपेदिरे॥७३॥

तब क्रूर प्राणियों ने भी शान्तभाव धारण किया। ज्योतिष्क मंडली भी उज्वला हो उठी। वन्यौषधियां तथा कन्दमूल स्वादु हो उठे। मालायें अधिकतम गन्धयुक्त हो गयीं। नभमण्डल विमल हो गया। सभी दिशाओं ने मनोहर आकृति को धारण कर लिया। वायु भी सुखस्पर्शयुक्त होकर प्रवाहित होने लगा। लोगों को उनके अन्तःकरण से विस्मृत शास्त्रों का उनमें पुनः प्रादुर्भाव होने लगा।।७१-७३।।

प्रभावस्तीर्थमुख्यानांतदा पुण्यतमोऽभवत्। सत्येधर्मे चाऽध्ययने यज्ञे दाने तपस्यपि॥७४॥
सर्वेषामभवच्छ्रद्धा जन्मकाले गुहारणेः। अन्तरिक्षेऽमराश्चापि प्रहर्षोत्फुल्ललोचनाः॥७५॥
हरिब्रह्ममहेन्द्रार्कवायुवह्निपुरोगमाः। पुष्पवृष्टिं प्रमुमुचुस्तस्मिन्मेनागृहे शुभे॥७६॥
मेरुप्रभृतयश्चाऽपि मूर्तिमन्तोमहानगाः। तस्मिन्महोत्सवेप्राप्तावीरकांस्योपशोभिताः॥७७॥
सागराः सरितश्चैव समाजग्मुश्च सर्वशः॥७८॥
हिमशैलोऽभवल्लोके तदा सर्वैश्चराचरैः। सेव्यश्चाप्यभिगम्यश्च पूजनीयश्च भारत!॥७९॥
अनुभूयोत्सवं ते च जग्मुः स्वानालयांस्तदा॥८०॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कुमारेशमाहात्म्ये पार्वतीजन्मवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥२२॥

देवी उमा का जन्म होते ही तीर्थसमूह की प्रभाव वृद्धि हो गयी। स्कन्दजननी उमा का जन्म होने से सभी सत्य, धर्म, अध्ययन, यज्ञ, दान, तपस्यादि सत्कार्य के प्रति श्रद्धालु हो गये। तब हरि-ब्रह्मा-महेन्द्र-सूर्य-वायु-अग्नि प्रभृति प्रधान देवता हर्षोत्फुल्ल नेत्रों से अन्तरिक्षतल में स्थित होकर मेना के उस पुण्यभवन पर पुष्पवर्षा करने लगे। मेरु आदि महागिरिगण भी मूर्त्त होकर वीरकांस्य लेकर इस जन्मोत्सव में आकर भाग ले रहे थे। सागर तथा सरितायें भी वहां आ गईं। हे भारत! तब हिमाचल सचराचर जगत् हेतु अभिनन्दनीय, पूज्य तथा सेव्य हो गये। तदनन्तर सभी उत्सव में भाग लेकर उत्सव की समाप्ति होने पर अपने-अपने भवन चले गये।।७४-८०।।

।।द्वाविंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

त्रयोविंशोऽध्यायः

नारद द्वारा पार्वती का सामुद्रिक शास्त्र से फलादेश, पार्वती द्वारा दक्षिण हाथ ऊपर उठाने का रहस्यवर्णन

नारद उवाच

ततश्च शैलजा देवी चिक्रीड सुभगा तदा। देवगन्धर्वकन्याभिर्नगकिन्नरसम्भवाः।
मुनीनां चापि याः कन्यास्ताभिः सार्धं च शोभना।।१।।
कदाचिदथ मेरुस्थो वासवः पाण्डुनन्दन!। सस्मार मां ययौचाहंसंस्मृतोवासवंतदा।।२।।
मां दृष्ट्वाच सहस्त्राक्षःसमुत्थायाऽतिहर्षितः। पूजयामास तां पूजां प्रतिगृह्याऽहमबुवम्।।३।।
महासुरमहोन्मादकालानल दिवस्पते!। कुशलं विद्यते कच्चित्तव कच्चिच्च नन्दसि।।४।।
पृष्टस्तेवं मया शक्रः प्रोवाच वचनंस्मयन्। कुशलस्याङ्कुरस्तावत्सम्भूतो भुवनत्रये।।५।।
तत्फलोदयसम्पत्तौ तद्भावान्संस्मृतोमुने!। वेत्सि सर्वमतं त्वं वै तथापि परिनोदकः।।६।।
निर्वृतिं परमां याति निवेद्यार्थं सुहृज्जने।।७।।
तद्भवाञ्छैलजां देवीं शैलेन्द्रं शैलवल्लभाम्। हरं सम्भावय वरं यन्नान्यं रोचयन्ति ते।।८।।

नारद कहते हैं—तदनन्तर शुभगा सुन्दरी शैलकन्या क्रमशः वृद्धि प्राप्त करती देव-गन्धर्व-किन्नर-पर्वत मुनि प्रभृति की कन्याओं के साथ क्रीड़ा करती रहतीं। हे पाण्डुनन्दन! तदनन्तर एक बार मेरुगिरि स्थित इन्द्र ने मेरा स्मरण किया। मैं उनके स्मरण करते ही वहां उपस्थित हो गया। सहस्त्राक्ष इन्द्र ने मुझे देखकर हर्षपूर्वक उठकर यथायोग्य रूप से मेरा सत्कार किया। मैंने उनकी पूजा ग्रहण करके उनसे कहा—"हे महासुरगण के महागर्व हेतु कालानल देवराज! आप कुशल तो हैं? आप सुख से तो हैं?" मेरा यह प्रश्न सुनकर इन्द्र ने तनिक हास्य के साथ कहा—"हे मुनिवर!! त्रिभुवन में सम्प्रति कुशल का अंकुर तो निकल आया है। उसके फलोदय के लिए ही आपका स्मरण किया है। आपको तो सब ज्ञात है। तथापि आपसे कहता हूं। सुहृत्जन से अभीष्ट विषय कहने से व्यक्ति को परम तृप्ति मिलती है। अतः आप जाकर शैलवल्लभा शैलनन्दिनी को यह परामर्श प्रदान करें, जिससे वे शिव को ही पतिरूप में स्वीकार करें"।।१-८।।

ततस्तद्वाक्यमाकर्ण्य गतोऽहंशैलसत्तमम्। ओषधिप्रस्थनिलयंसाक्षादिवदिवस्पतिम्॥९॥
तत्र हैमे स्वयं तेन महाभक्त्या निवेदिते। महासने पूजितोऽहमुपविष्टो महासुखम्॥१०॥
गृहीतार्घ्यं ततो मां च पप्रच्छ श्लक्ष्णया गिरा। कुशलंतपसःशैलःशनैःफुल्लाननाम्बुजः।
अहमप्यस्य तत्प्रोच्य प्रत्यवोचं गिरीश्वरम्॥११॥

मैं यह सुनकर औषधिप्रस्थवासी साक्षात् सुरपति इन्द्र के समान शैलप्रवर हिमालय के यहां पहुंचा। वहां हिमालय ने स्वयं महान् भक्ति के साथ महान् हैम आसन मुझे प्रदान किया। मैं वहां पूजित होकर अत्यन्त सुख के साथ आसनासीन हो गया। जब मैं अर्घ्यादि ग्रहण करके स्वस्थ हो गया, तब शैलराज ने प्रफुल्ल होकर मुझसे धीरे-धीरे मधुर वाक्यों द्वारा तपस्या आदि की कुशलता का प्रश्न किया।।९-११।।

त्वया शैलेन्द्र पूर्वां वाऽप्यपरां च दिशं तथा॥१२॥
अवगाह्यस्थितवता क्रियते प्राणिपालना। अहोधन्योऽसिविप्रेन्द्राःसाहाय्येनतवाचल॥१३॥
तपोजपव्रतस्नानैः साधयन्त्यात्मनः परम्। यज्ञाङ्गसाधनैः कांश्चित्कन्दादिफलदानतः॥१४॥
त्वं समुद्धरसि विप्रान्किमतः प्रोच्यते तव। अन्येऽपिजीवा बहुधात्वामुपाश्रित्यभूधर॥१५॥
मुदिताः प्रतिवर्तन्ते गृहस्थमिव प्राणिनः। शीतमातपवर्षांश्चक्लेशान्नानाविधान्सहन्॥१६॥
उपाकरोषि जन्तूनामेवंरूपाहि साधवः। किमतः प्रोच्यते तुभ्यं धन्यस्त्वं पृथिवीधर॥१७॥
कन्दरं यस्य चाऽध्यास्ते स्वयंतव महेश्वरः। इत्युक्तवतिवाक्यंच यथार्थंमयिफाल्गुन॥१८॥

मैंने भी गिरिराज की कुशलता के विषय में पूछ कर कहा—"हे शैलराज! आप पूर्व से लेकर पश्चिम पर्यन्त फैल कर प्राणीवर्ग का पालन करते हैं। हे अचल! आप धन्य हैं। आपका ही आश्रय लेकर विप्रप्रवरगण जप-तप-व्रत-स्नान आदि आत्महितप्रद साधन करते हैं। आप किसी को यज्ञ के उपकरण, किसी को कन्द-मूल-फल आदि प्रदान करके नित्य उनका पालन भी करते हैं। अतः आपकी महिमा कहां तक कही जाये! हे भूधर! जैसे ब्रह्मचारी आदि गृहस्थ का ही आश्रय लेकर जीवित रहते हैं, उसी प्रकार अन्य प्राणीवर्ग भी आपका आश्रय लेकर सुखपूर्वक काल व्यतीत करते हैं। आप स्वयं शीत-वायु-ग्रीष्म आदि को सहन करके भी प्राणियों के दुःख का निवारण करते हैं। साधुवर्ग का यही स्वभाव जो होता है। हे भूधर! आपके महत्व के सम्बन्ध में और क्या कहा जाये? आप धन्य हैं। महेश्वर तक आपकी कन्दरा में निवास जो करते हैं! हे फाल्गुन (अर्जुन)! इस प्रकार मैंने गिरिराज से सत्यपूर्ण वाक्य कहा।।१२-१८।।

हिमशैलस्य महिषीमेना आगाद्दिदृक्षया। अनुयातादुहित्री च स्वल्पाश्च परिचारिकाः॥१९॥
लज्जयानतसर्वाङ्गी प्रविवेश सदो महत्। ततो मां शैलमहिषी ववन्दे प्रणिपत्य सा॥२०॥
वस्त्रनिर्गूढवदना पाणिपद्मकृताञ्जलिः। तामहं सत्यरूपाभिराशीर्भिः समवर्धयम्॥२१॥
पतिव्रता शुभाचारा सुभगा वीरसूः शुभे!। सदा वीरवती चाऽपि भव वंशोन्नतिप्रदे!।
ततोऽहं विस्मिताक्षीं च हिमवद्गिरिपुत्रिकाम्॥२२॥

मैं गिरिराज से यह सब कह रहा था, इतने में हिमशैलराज की पत्नी मेना अपनी कन्या तथा कुछ

परिचारिकागण के साथ मेरे दर्शनार्थ वहां आईं। उन्होंने लज्जावश अंगों को सिकोड़े हुये इस महान् सभा में प्रवेश किया। शैलपत्नी ने वस्त्र से चेहरा ढंके हुये तथा अपने करकमलों को अंजलिबद्ध किये हुये मुझे प्रणाम किया। मैंने भी उनकी आशीर्वाद द्वारा संवर्द्धना करते कहा—"हे शुभे! आप कुल की उन्नति करने वाली, पतियुक्त सौभाग्यशाली तथा शुभ आचारवान् रहें"।।१९-२२।।

मृदुवाण्या प्रत्यवोचमेहि बाले! ममाऽन्तिकम्॥२३॥
ततोदेवी जगन्माता बालभावं स्वकं मयि। दर्शयन्तीस्वपितरं कण्ठे गृह्याङ्कमाविशत्॥२४॥
उवाच वाचं तां मन्दं मुनिं वन्दयपुत्रिके!। मुनेः प्रसादतोऽवश्यंपतिमाप्स्यसिसम्मतम्॥२५॥
इत्युक्तासाततोबालावस्त्रान्तपिहिताननना। किञ्चित्सहुंकृतोत्कम्पंप्रोच्यनोवाचकिञ्चन॥२६॥
ततो विस्मितचित्तोऽमुपचारविदाम्वरः। प्रत्यवोचं पुनर्देवीमेहि दास्यामि ते शुभे॥२७॥
रत्नक्रीडनकं रम्यं स्थापितं सुचिरं मया। इत्युक्ता सा तदोत्थाय पितुरङ्कात्सवेगतः॥२८॥

इसके पश्चात् मैंने उन विस्मित नेत्रा हिमाचल पुत्री पार्वती से मधुर वाक्य कहा—"हे बालिके! मेरे पास आओ।" मेरी बात सुनकर जगन्माता देवी ने अपना बचपना मुझे प्रदर्शित करने के लिए अपने पिता के गले में बांह करके उनकी गोद में बैठ गईं। पिता ने उनसे मृदु स्वर में कहा—"हे पुत्री! मुनि की वन्दना करो। मुनि की कृपा से तुमको अपने योग्य तथा इच्छित पति की प्राप्ति होगी।" बालिका गिरिजा ने यह सुनकर वस्त्र से मुख ढंककर अत्यन्त धीमे स्वर में हुंकार शब्द किया। वे और कुछ भी नहीं बोलीं। तब मैंने भी विस्मित होकर विशेष अभिज्ञता के कारण उपचारवशात् भगवती से कहा—"हे शुभे! आओ, मैं तुमको एक रत्नमय खेल की वस्तु प्रदान करूंगा। उसे मैंने बहुत दिनों से संचित किया है।" मेरे यह कहने पर गिरिजा पिता की गोद से उतरीं।।२३-२८।।

वन्दमाना चमे पादौमया नीताङ्कमात्मनः। मन्यता तांजगत्पूज्यामुक्तंबालेतवोचितम्॥२९॥
न तत्पश्यामि यत्तुभ्यं दद्याशीः का तवोचिता। इत्युक्ते मातृवात्सल्याच्छैलेन्द्रमहिषी तदा॥३०॥
नोदयामास मां मन्दमनाशीः शङ्किता तदा। भगवन्वेत्सि सर्वं त्वमतीतानागतंप्रभो॥३१॥
तदहं ज्ञातुमिच्छामि कीदृशोऽस्याःपतिर्भवेत्। श्रुत्वेतिसस्मितमुखःप्रावोचंनर्मवल्लभः॥३२॥

वे पिता की गोद से उतर कर मेरी चरणवन्दना करने लगीं। तब मैंने उनको अपनी गोद में बैठाया। उनको जगत्पूज्य जानकर मैंने कहा—"हे बालिके! तुम्हारे लायक कोई आशीर्वाद मैं नहीं देख पा रहा हूं, जो तुमको प्रदान कर सकूं। तुमको क्या आशीर्वाद प्रदान करूं?" मेरे यह कहने पर शैलराज की पत्नी मेना ने मातृवात्सल्य के कारण यह विचारा—"यदि मैं आशीर्वाद नहीं देता, तब!" और यह मृदु वाक्य कहा "हे भगवान्! आपको अतीत-अनागत सब ज्ञात है। हे प्रभो! मैं यह जानना चाहती हूं कि इसे कैसा पति प्राप्त होगा?" हे अर्जुन! मैं तो परिहास प्रिय हूं। मेना का वचन सुनकर मैंने कहा।।२९-३२।।

न जातोऽस्याः पतिर्भद्रे वर्ततेच कुलक्षणः। नग्नोऽतिनिर्धनः क्रोधी वृतःक्रूरैश्चसर्वदा॥३३॥
श्रुत्वेति सम्भ्रमाविष्टो ध्वस्तवीर्यो हिमाचलः। मां तदा प्रत्युवाचेदं साश्रुकण्ठो महागिरिः॥३४॥
अहो विचित्रः संसारो दुर्वेद्यो महतामपि। प्रवरस्त्वपि शक्त्या यो नरेषु न कृपायते॥३५॥
यत्नेन महता तावत्पुण्यैर्बहुविधैरपि। साधयत्यात्मनो लोको मानुष्यमतिदुर्लभम्॥३६॥
अधुवं तद्धुवत्वे च कथञ्चित्परिकल्प्यते। तत्राऽपि दुर्लभानाम समानव्रतचारिणी॥३७॥

साध्वी महाकुलोत्पन्ना भार्या या स्यात्पतिव्रता। तत्रापिदुर्लभंयच्चतयाधर्मनिषेवणम्॥३८॥
सह वेदपुराणोक्तं जगत्त्रयहितावहम्। एतत्सुदुर्लभं यच्च तस्यां चैव प्रजायते॥३९॥
तदपत्यमपत्यार्थं संसारेकिल नारद। एतेषां दुर्लभानां हि किञ्चित्प्राप्नोतिपुण्यवान्॥४०॥
सर्वमेतदवाप्नोतिसकोऽपि यदि वा न वा। किञ्चित्केनाऽपिहिन्यूनंसंसारःकुरुतेनरम्॥४१॥
अथ सांसारिको दोषःस्वकृतं यत्र भुज्यते। गार्हस्थ्यंचप्रशंसन्ति वेदाःसर्वेऽपिनारद॥४२॥

"हे भद्रे! इसके पति का जन्म नहीं है (अजन्मा है) वह कुलक्षण, अति निर्धन, क्रोधी, क्रूर लोगों से घिरा तथा सब कुछ देने वाला है।" महापर्वत हिमालय ने जब यह सुना, तब वे व्याकुल होकर अवसन्न हो गये। वे अश्रुपूर्ण विचलित वाणी में कहने लगे—"अहो! यह विचित्र जगत् महात्मागण के लिये भी दुर्बोध है। यह जगत् प्रधान-प्रधान लोगों के प्रति भी कृपादृष्टि नहीं रखता। प्राणीगण महान् यत्न द्वारा अनेक पुण्यों से अतीव दुर्लभ मनुष्यत्व प्राप्त करते हैं। तथापि वह भी स्थायी नहीं होता। यदि स्थायी हो भी जाये, तब भी उस जीवन को अत्यन्त कष्ट के साथ व्यतीत करना पड़ता है। उसमें भी समान भाव से नियमानुवर्त्तिता का आचरण करने वाली साध्वी, सत्कुलोत्पन्न पतिव्रता पत्नी दुर्लभ है। उसमें भी पत्नी के साथ वेदपुराणोक्त त्रैलोक्य हितकारी धर्मानुष्ठान और भी दुर्लभ है। उसमें भी पत्नी से सन्तानोत्पत्ति दुर्लभ है। हे नारद! यह पुत्र सन्तान भी संसार में वंशपातित्य निवारणार्थ ही प्रार्थित होते हैं। इन सब दुर्लभ स्थिति में पुण्यवान लोग उपरोक्त दुर्लभ वस्तु में से कतिपय ही प्राप्त कर पाते हैं। जो यह सब प्राप्त कर सके, ऐसा कोई व्यक्ति जन्मा भी है, इसमें मुझे सन्देह है। संसार में सभी में कुछ न कुछ कमी रह ही जाती है। यही संसार का दोष है। फलस्वरूप संसार में तो स्वकृत कर्मफल ही भोगना पड़ता है। हे नारद! सभी वेदों में गृहस्थाश्रम की प्रशंसा कही गयी है।।३३-४२।।

नेति केचित्तत्र पुनः कथन्ते यदि नोगृही। अतो धात्राचशास्त्रेषु सुतलाभंःप्रशंसितः॥४३॥
पुनश्च सृष्टिवृद्ध्यर्थं नरकत्राणनाय च। तत्र स्त्रीणां समुत्पत्तिं विना सृष्टिर्न जायते॥४४॥
सा च जातिप्रकृत्यैवकृपणा दैन्यभागिनी। तासामुपरि माऽवज्ञा भवेदिति च वेधसा।
शास्त्रेषूक्तमसन्दिग्धं वाक्यमेतन्महत्फलम्॥४५॥
दशपुत्रसमा कन्या दशपुत्रान्प्रवर्द्धयन्। यत्फलं लभते मर्त्यस्तल्लभ्यं कन्ययैकया॥४६॥
तस्मात्कन्या पितुः शोच्या सदा दुःखविवर्धिनी॥४७॥
याऽपि स्यात्पूर्णसर्वार्था पतिपुत्रधनान्विता। त्वयोक्तं च कृते ह्यस्यास्तद्वाक्यं मम शोकदम्॥४८॥
केन दोषेणमे पुत्री नयोग्याआशिषामता। नजातोऽस्याःपतिःकस्माद्वर्ततेवाकुलक्षणः॥४९॥
निर्धनश्च मुने कस्मात्सर्वेषां सर्वदः कुतः। इति दुर्घटवाक्यं ते मनो मोहयतीव मे॥५०॥

लेकिन कोई-कोई इसकी प्रशंसा नहीं भी करते हैं। जो यह मत रखते हैं, वे गृहस्थाश्रम के बिना जन्मे कैसे? तभी विधाता ने शास्त्रों में पुत्र प्राप्ति को प्रशंसित किया है। फलतः पुत्र द्वारा सृष्टि की वृद्धि होती है तथा नरक से छुटकारा मिलता है। तथापि स्त्री जाति की उत्पत्ति के अभाव में तो आगे सृष्टि भी नहीं हो सकती! तथापि वह स्त्री प्रकृति के वश में रहती है। वह दैन्यभागिनी तथा करुणा पाने वाली रहती है। तभी विधाता ने स्त्री की अवज्ञा करने से शास्त्रों द्वारा निषेध किया है। यह बात सन्देहरहित तथा महाफलप्रद है। एक कन्या दस पुत्र के समान होती है। १० पुत्रों के लालन, पालन, वर्द्धन का जो फल है, वही फल मानव को एक कन्या पालन से मिल जाता है। यदि कन्या सभी काम्य विषयों से परिपूर्ण है, वह पति-पुत्र-धन-समृद्धि से पूर्ण है, तथापि वह पिता का दुःख बढ़ाने वाली

तथा उसे शोकप्रदात्री हो जाती है। आपने मेरी कन्या के पति के विषय में जो कुछ कहा, वह मेरे लिए परम शोकप्रद है। मेरी यह कन्या अपने किस दोष के कारण आशीर्वाद योग्य नहीं है? इसके पति का जन्म क्यों नहीं है? वह सबके लिए सबका दाता कैसे हो सकता है? आपके दुर्घट वाक्य से मेरा मन भ्रमित हो रहा है।।४३-५०।।

इति तं पुत्रवात्सल्यात्सभार्यं शोकसम्प्लुतम्। अहमाश्वासयं वाग्भिः सत्याभिः पाण्डुनन्दन!॥५१॥
माशुचःशैलराज त्वं हर्षस्थानेऽतिपुण्यभाक्। शृणुतद्वचनं मह्यं यन्मयोक्तंच ह्यर्थवत्॥५२॥
जगन्माता त्वियं बाला पुत्री ते सर्वसिद्धिदा। पुराभवेऽभवद्भार्यासतीनाम्नाभवस्ययाः॥५३॥
तदस्याःकिमहं दद्मिरवेदीपमिवाऽल्पकः। सञ्चिन्त्येतिमहादेव्यानाऽऽशिषंदत्तवानहम्॥५४॥
न जातोऽस्याः पतिश्चेतिवर्ततेचभवो हि सः। न स जातोमहादेवो भूतभव्यभवोद्भवः॥५५॥
शरण्यः शाश्वतः शास्ता शङ्करः परमेश्वरः॥५६॥
सर्वे देवा यत्पदमामनन्ति वेदैश्च सर्वैरपि यो न लभ्यः।
ब्रह्मादिविश्वं ननु यस्य शैल! बालस्य वा क्रीडनकं वदन्ति॥५७॥
स चामङ्गल्यशीलोऽपि मङ्गलायतनोहरः। निर्धनः सर्वदश्चाऽसौ वेद स्वं स्वयमेवसः॥५८॥

हे पाण्डुनन्दन! वे हिमालय सन्तान प्रेम के कारण सपत्नीक शोकग्रस्त हो गये, यह देखकर मैंने उनको सच्चाई से अवगत कराकर आश्वस्त किया। मैंने उनसे कहा— "हे शैलराज! आप इस प्रसन्नता के विषय में शोक न करिये। आप अत्यन्त पुण्यभाजन हैं। मैंने जो कुछ आपसे कहा है, वह अत्यन्त उत्तम अर्थयुक्त है। आप उसे सुनिये। आपकी यह कन्या सर्वसिद्धिप्रदा जगन्माता हैं। ये पूर्वजन्म में सती नाम से प्रसिद्धा तथा भगवान् भव शंकर की पत्नी थीं। इनको मैं (आशीर्वाद आदि) क्या दे सकता हूं? इनके सामने तो मैं अत्यन्त तुच्छ व्यक्ति हूं। यही विचार कर मैंने इनको आशीर्वाद नहीं दिया। इनके पति का जन्म नहीं है। इसका कारण है कि इनके पति हैं भवदेव शिव! ये महादेव समस्त भूत-भविष्य-वर्त्तमान के उत्पादक हैं। उनका जन्म नहीं है। वे सबके आश्रय, शान्तिदाता, मंगलविधायक, चिरस्थायी परमेश्वर हैं। हे शैल! समस्त देवता जिनके चरणों का ध्यान करते हैं, समस्त वेदों को भी जिनका तत्त्व ज्ञात नहीं है, ब्रह्मादि समग्र जगत् जिनके समक्ष बालकोचित् क्रीड़ा के समान अत्यन्त तुच्छ प्रतीत होते हैं, वे भगवान् शिव स्वयं अमंगलरूप होकर भी समस्त मंगल के मूल तथा स्वयं निर्धन होकर भी सबको सब कुछ देने वाले हैं"।।५१-५८।।

सचदेवोऽचलःस्थाणुर्महादेवोऽजरोहरः। भविष्यतिपतिःसोऽस्यास्तत्किमर्थंतुशोचसि॥५९॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कुमारेशमाहात्म्ये हिमवदाश्वासनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥

—❀—

वे तो स्वयं को स्वयं ही जानते हैं। वे स्थाणु, अजर, अमर भगवान् हर इसके पति होंगे। अतः आप शोक क्यों कर रहे हैं?।।५९।।

॥त्रयोविंश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

चतुर्विंशोऽध्यायः

कामदहन

नारद उवाच

एवं श्रुत्वा सभार्यः स प्रमोदप्लुतमानसः। प्रणम्य मामिति प्राह यद्येवं पुण्यवानहम्॥१॥
पुनः किञ्चित्प्रवक्ष्यामिपुत्र्यामेदक्षिणःकरः। उत्तानःकारणंकिंतच्छ्रोतुमिच्छामिनारद॥२॥
इतिपृष्टोऽस्मि शैलेन प्रावोचं कारणं तदा। सर्वदैव करो ह्यस्याःसर्वेषांप्राणिनांप्रति॥३॥
अभयस्य प्रदाताऽसावुत्तानस्तु करस्ततः। एषा भार्या जगद्धर्तुर्वृषाङ्कस्य महीधर!॥४॥
जननी सर्वलोकस्य भाविनी भूतभाविनी। तद्यथाशीघ्रमेवैषा योगं यातु पिनाकिना॥५॥
त्वया विधेयं विधिवत्तथा शैलेन्द्रसत्तम!। अस्त्यत्र सुमहत्कार्यं देवानां हिमभूधर!॥६॥
इति प्रोच्य तमापृच्छ्य प्रावोचं वासवायतत्। मम भूयस्तु कर्तव्यं तन्मयाकृतमेवहि॥७॥
किं तु पञ्चशरः प्रेर्यः कार्यशेषेऽत्र वासव। इत्यादिश्य गतश्चाऽहं तारकं प्रतिफाल्गुन॥८॥
कलिप्रियत्वात्तस्यैनमर्थं कथयितुं स्फुटम्। हिमाद्रिरपि मे वाक्यप्रेरितः पार्वतीम्प्रति॥९॥

नारद कहते हैं—यह बात सुनकर शैलराज अपनी पत्नी के साथ आनंद से परिप्लुत होकर मुझे प्रणाम करके कहने लगे—"यदि ऐसा हो सके, तब तो मैं अत्यन्त पुण्यवान हूं। हे नारद! मैं और भी जिज्ञासा करता हूं। मेरी कन्या की दाहिनी बाहु है, इसका कारण क्या है?" शैलराज का प्रश्न सुनकर मैंने इसका कारण वर्णित करते हुये कहा—"यह सभी प्राणियों को अभय प्रदान करता है, इसलिये यह हाथ उत्तान हो गया है। हे महीधर! ये जगद्धर्त्ता वृषाङ्क शिव की भार्या हैं। ये सभी लोकों की माता तथा सर्व प्राणीसमूह की भाविनी हैं। हे शैलश्रेष्ठ! आप विधिवत् अब वह करिये, जिससे ये शीघ्र ही पिनाकी शम्भु से युक्त हो जायें। हे हिमपर्वत! इसमें देवताओं का एक महान् कार्य सम्बन्धित है।" मैंने हिमाचल से यह कहा और आकर इन्द्र को भी समस्त वृत्तान्त बतलाया। मैंने यह भी कहा कि मेरा जो कर्त्तव्य था, उसे मैंने सम्पन्न किया। हे इन्द्र! इस कार्य को समाप्त करने के लिए पञ्चबाण धारी कामदेव को भेजना होगा। हे फाल्गुन, अर्जुन! मैंने इन्द्र से यह कहकर अपने विवाद प्रिय स्वभाव के कारण यह वृत्तान्त तारकासुर को बतलाने वहां से चला गया। इधर हिमालय ने भी मेरे कथनानुसार पार्वती से कहा।।१-९।।

भवस्याऽऽराधनांकर्तुंससखीमादिशत्तदा। सा तं परिचचारेशं तस्यादृष्ट्वासुशीलताम्॥१०॥
पुष्पतोयफलाद्यानिनियुक्तापार्वतीव्यधात्। महेन्द्रोऽपिचमद्वाक्यात्स्मरंसस्मारभारत॥११॥
स च तत्स्मरणं ज्ञात्वा वसन्तरिसंयुतः। चूताङ्कुरास्त्रः सहसा प्रादुरासीन्मनोभवः॥१२॥
तमाह च वचो धीमान्स्मयन्निवच तं स्पृशन्। उपदेशेन बहुनाकिं त्वां प्रति रतिप्रिय!॥१३॥
चित्तेवससितेन त्वं वेत्सि भूतमनोगतम्। तथापित्वांवदिष्यामिस्वकार्यपरतांस्मरन्॥१४॥
ममैकं सुमहत्कार्यं कर्तुमर्हसि मन्मथ!। महेश्वरं कृपानाथं सतीभार्यावियोजितम्॥१५॥

संयोजय पुनर्देव्या हिमाद्रिगृहजातया। देवी देवश्च तुष्टौ ते करिष्यत इहेप्सितम्॥१६॥

"तुम कुछ सखियों को लेकर जाओ तथा शिव की आराधना करो।" शैलपुत्री भी महेश्वर की आराधना करने लगीं। उनकी सुशीलता को देखकर वे सखियां उनके लिये फल, जल, पुष्प आदि का संग्रह करतीं। हे भारत! तदनन्तर इन्द्र ने मेरे कथन के अनुसार कामदेव का आवाहन किया। मनोभव कामदेव इन्द्र के द्वारा स्मरण किये जाते ही पत्नी रति तथा वसन्त के साथ आम्रमंजरी रूप अस्त्र लेकर इन्द्र के समक्ष आविर्भूत हो गये। धीमान् इन्द्र ने तनिक मुस्कान के साथ उनका स्पर्श करके कहा—"हे रतिनाथ! तुमको अधिक बतलाने की क्या आवश्यकता! तुम तो मन में निवास करते हो। प्राणीगण के समस्त मनोगत भाव को जान जाते हो, तथापि अपने कार्य के गुरुत्व का अनुभव करके तुमसे कहता हूं। हे मन्मथ! मेरा एक महत्वपूर्ण कार्य करना है। सती वियोगी हैं। वे करुणाकर महेश्वर की प्राप्ति हेतु पुनः हिमवान् की पुत्री के रूप में उत्पन्न हो गई हैं। तुम उनको महेश्वर से युक्त कर दो। इससे वे देवी तथा देवता दोनों ही प्रसन्न होकर तुम्हारा हित विधान करेंगे।।१०-१६।।

मदन उवाच

अलीकमेतद्देवेन्द्र स हि देवस्तपोरतिः। नन्यासादयितव्यानि तेजांसि मनुरब्रवीत्॥१७॥
वेदान्तेषु च मां विप्रा गर्हयन्ति पुनःपुनः। महाशनो महापाप्माकामोऽयमनलोमहान्॥१८॥
आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनां नित्यवैरिणा। तस्मादयं सदा त्याज्यः कामोऽहिरिव सत्तमैः॥१९॥
एवं शीलस्य मे कस्मात्प्रतुष्यति महेश्वरः। मद्यपस्येव पापस्य वासुदेवो जगद्गुरुः॥२०॥

कामदेव कहते हैं—हे देवेन्द्र! आपकी यह व्यर्थ इच्छा है। वे देव इस समय तपस्या कर रहे हैं। मेरा मन यह कह रहा है कि उनका तेज अन्य के लिए असह्य है! और यह भी देखिये कि वेदान्त शास्त्रों में विप्रगण ने पुनः-पुनः मेरी निन्दा की है। वे कहते हैं कि यह काम महान् अग्नि के समान है। इसे अग्नि की ही तरह सब कुछ से भी तृप्ति नहीं होती। वे मुझे अतीव पापी तथा ज्ञानीगण का सदा का वैरी कहते हैं। कहते हैं कि काम के द्वारा ज्ञानसमूह आवृत हो जाता है। इसलिए वेदान्त के अनुसार व्यक्ति इस काम को उसी प्रकार दूर से त्यागे मानों वह सर्प है। मेरा यही स्वभाव है। जैसे जगत्गुरु वासुदेव मद्यप से प्रसन्न नहीं होते, वैसे ही महेश्वर मेरे प्रति कैसे सन्तुष्ट होंगे?"।।१७-२०।।

इन्द्र उवाच

मैवंब्रूहि महाभाग! त्वां विना कः पुमान्भुवि। धर्ममर्थंतथाकामं मोक्षम्वाप्राप्तुमीश्वरः।
यत्किञ्चित्साध्यते लोके मूलं तस्य च कामना॥२१॥
कथं कामं विनिन्दन्ति तस्मात्ते मोक्षसाधकाः॥२२॥
सत्यं चाऽपि श्रुतेर्वाक्यं तवरूपंत्रिधागतम्। तामसंराजसंचैवसात्त्विकंचापिमन्मथ!॥२३॥
अमुक्तिकः कामनया रूपं तत्तामसं तव। सुखबुद्ध्या स्पृहा या च रूपं तद्राजसं तव॥२४॥
केवलं यावदर्थार्थं तद्रूपं सात्त्विकं तव। तत्ते रूपत्रयमिदं ब्रूहि नोपासते हि के॥२५॥
त्वंसाक्षात्परमःपूज्यःकुरुकार्यमिदंहिनः। अथवापीडितान्दृष्ट्वासामान्यानपिपण्डिताः।
स्वप्राणैरपि त्रायन्ति परमेतन्महाफलम्॥२६॥

इति सञ्चिन्त्य कार्यं त्वं सर्वथा कुरु तत्स्फुटम्॥२७॥

इन्द्र कहते हैं—हे महाभाग! ऐसा न कहो। भूतल पर तुम्हारे बिना कोई भी मानव धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्ष प्राप्ति नहीं कर सकता। लोक में जो कुछ किया जाता है, कामना ही उस सब का मूल है। अतः मोक्षसाधक व्यक्ति काम की निन्दा कैसे कर सकते हैं? हे मन्मथ! सती वाक्य सत्य हो। तुम्हारा रूप तीन भाग में विभक्त है। तामस-राजस तथा सात्त्विक। मुक्ति से रहित अन्य जो भी कामना है, वह सब तुम्हारा तामसरूप है। सुख-बुद्धिपूर्वक जो विषय-भोग वासना है, वह तुम्हारा राजस रूप है। केवल सामने उपस्थित प्रयोजन साधन की जो कामना है, वह है तुम्हारा सात्विक रूप। अब देखो, कौन तुम्हारे इन रूपत्रय में से एक की भी उपासना नहीं करता? तुम ही साक्षात् सम्मान योग्य हो। तुम हमारे एक ही इस कर्म को सम्पन्न करो। देखें, धीमान् व्यक्ति किसी सामान्य व्यक्ति को भी पीड़ित जानकर अपना प्राण देकर भी उसे बचाता है। आर्त्त व्यक्ति को बचाना महान् फलप्रद कार्य है। तुम इस बात की विवेचना करके सर्वदा इस कार्य का साधन करो।।२१-२७।।

इत्याकर्ण्य तथेत्युक्त्वा वसन्तरतिसंयुतः। पिकादिसैन्यसम्पन्नोहिमाद्रिंप्रययौ स्मरः॥२८॥
तत्राऽपश्यतशम्भोःसपुण्यमाश्रममण्डलम्। नानावृक्षसमाकीर्णंशान्तसत्त्वसमाकुलम्॥२९॥
तत्राऽपश्यत्त्रिनेत्रस्यवीरकंनाम द्वारपम्। यथासाक्षान्महेशानंगणांश्चायुतशोऽस्यच॥३०॥

कामदेव ने देवराज का यह कथन सुनकर वसन्त तथा रति के साथ अपनी कोकिलादि (कोयल आदि) सेना से घिर कर नीलगिरि प्रस्थान किया। वहां जाकर पौधों से भरे, नाना वृक्षों से परिपूर्ण पुण्यतम शंकराश्रम को देखा। कामदेव ने देखा कि वहां महेश्वर के दसों हजार गण तथा वीरक नामक द्वारपाल स्थित हैं। यह वीरक साक्षात् महेश्वर जैसी शोभा वाला है।।२८-३०।।

ददर्श च महेशानं नासाग्रकृतलोचनम्। देवदारुद्रुमच्छायावेदिकामध्यमाश्रितम्।
समकायं सुखासीनं समाधिस्थं महेश्वरम्॥३१॥
निस्तरङ्गंविनिर्गृह्यस्थितमिन्द्रियगोचरान्। आत्मानमात्मनादेवप्रविष्टंतपसोनिधिम्॥३२॥
तं तथाविधमालोक्य सोऽन्तर्भेदाय यत्नवान्। भ्रमरध्वनिव्याजेन विवेश मदनो मनः॥३३॥
एतस्मिन्नन्तरे देवो विकासितविलोचनः। सस्मार नगराजस्य तनयां रक्तमानसः॥३४॥
निवेदिता वीरकेण विवेश च गिरेः सुता। तस्मिन्काले महाभागा सदा यद्वदुपैतिसा॥३५॥
ततस्तस्यां मनः स्वीयमनुरक्तमवेक्ष्य च। निगृह्य लीलया देवः स्वकं पृष्ठमवैक्षत।
तावदापूर्णधनुषमपश्यत रतिप्रियम्॥३६॥

वहां देवदारु वृक्ष की छाया में वेदिका के ऊपर देवदेव महेश्वर सुखासन से समासीन थे। उनके नेत्र नासाग्र पर एकाग्र थे। वे तपोनिधि महेश्वर सरल काय स्थित हो (सीधे बैठे) इन्द्रियों का निग्रह करके चाञ्चल्य रहित होकर आत्मा द्वारा आत्मा में प्रवेश करके समाधिस्थ थे। मदन ने इस प्रकार से देवाधिदेव शंकर को देखा तथा उनके अन्तर का भेदन करने की इच्छा से यत्नतत्पर होकर भ्रमरगुंजन की पृष्ठभूमि के बहाने उनके मन में प्रवेश किया। देवदेव महेश्वर ने किंचित अनुरक्त चित्त से नेत्रों को खोला तथा पर्वतनन्दिनी को स्मरण किया। तब वीरक द्वारपाल के निवेदन करने पर महाभागा पर्वतपुत्री पार्वती जैसी थीं, उसी भाव में आ गईं! तदनन्तर देवदेव शंकर ने अपने

चित्त को भगवती गिरिजा में समासक्त देखकर अनायास चित्त को संयमित किया तथा अपने पीछे देखा। वहां उन्होंने धनुष के साथ रति पति कामदेव को देखा।।३१-३६।।

तन्नाशकृपया देवो नानास्थानेषु सोऽगमत्। तावत्पश्यति पृष्ठस्थमाकृष्यधनुषःशरम्।।३७।।
स नदीः पर्वतांश्चैव आश्रमान्सरसीस्तथा। परिभ्रमन्महादेवः पृष्ठस्थं तमवैक्षत।।३८।।
जगत्त्रयं परिभ्रम्य पुनरागात्स्वमाश्रमम्। पृष्ठस्थमेव तं वीक्ष्य निःश्वासं मुमुचे हरः।।३९।।
ततस्तृतीयनेत्रोत्थवह्निना नाकवासिनाम्। क्रोशतांगमितःकामोभस्मत्वंपाण्डुनन्दन।।४०।।

उनके पीछे स्थित मदन अपने आप विनष्ट हो जाये (भाग जाये) इसलिए कृपापरवश होकर वे नाना स्थान में गये, तथापि उन्होंने सर्वत्र अपने पीछे धनुष पर बाण चढ़ाये मदन को ही देखा। महादेव ने न जाने कितने नद-नदी-पर्वत-आश्रम-सरोवर का भ्रमण किया, परन्तु सर्वत्र उनके पीछे उसी प्रकार से स्थित मदन दिखलाई दे रहा था। प्रभु ने इसी प्रकार लोकत्रय में परिभ्रमण किया, लेकिन मदन पीछा नहीं छोड़ रहा था, वह यथावत् उसी भाव में स्थित था। प्रभु शिवशंकर अपने आश्रम लौट आये, तब भी वह कामदेव उनके पीठ पीछे स्थित था। तदनन्तर उन्होंने दीर्घ निःश्वास लिया और उनके तृतीय नेत्र से सहसा अग्निशिखा निर्गत हो गयी। हे पाण्डुनन्दन! तब देवता हाय-हाय करके चीत्कार करने लगे। क्षणमात्र में इस अग्निशिखा से मदन भस्म हो गया।।३७-४०।।

स तु तं भस्मसात्कृत्वाहरनेत्रोद्भवोऽनलः। व्यजम्भतजगद्दग्धुं ज्वालापूरितदिङ्मुखः।।४१।।
ततो भवो जगद्धेतोर्व्यभजज्जातवेदसम्। साहङ्कारे जने चन्द्रे सुमनस्सु च गीतके।।४२।।
भृङ्गेषु कोकिलास्येषु विहारेषु स्मरानलम्। तत्प्राप्तौ स्नेहसंयुक्तं कामिनां हृदयं किल।।४३।।
ज्वालयत्यनिशं सोऽग्निर्दुश्चिकित्स्योऽसुखावहः।
विलोक्य हरनिःश्वासज्वालाभस्मीकृतं स्मरम्।।४४।।
विललाप रतिर्दीना मधुना बन्धुना सह। विलपन्ती सुबहुशो मधुना परिसान्त्विता।।४५।।
रत्याः प्रलापमाकर्ण्य देवदेवो वृषध्वजः। कृपया परया प्राह कामपत्नीं निरीक्ष्य च।।४६।।
अमूर्तोऽपि ह्ययं भद्रे! कार्यं सर्वं पतिस्तव। रतिकाले ध्रुवं बाले करिष्यति न संशयः।।४७।।
यदा विष्णुश्च भविता वासुदेवात्मजो विभुः।
तदा तस्य सुतो यः स्यात्स पतिस्ते भविष्यति।।४८।।
सा प्रणम्यततोरुद्रमितिप्रोक्तारतिस्ततः। जगाम स्वेच्छयागत्यावसन्तादिभिरन्विता।।४९।।

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कुमारेश्वरमाहात्म्ये कामदहनो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः।।२४।।

हरि के नेत्र से उत्पन्न यह अग्नि मदन को भस्मसात् करके अपनी ज्वाला से दिशाओं को आपूरित करके मानों जगत् का दहन करने के लिए विकसित हो रही थी। तदनन्तर भवदेव ने जगत् रक्षणार्थ इस अग्नि को बांट दिया। एक भाग अहंकारी लोगों में, अन्य भाग चन्द्र में, पुष्प में, संगीत में तथा भृंग एवं विहार में स्थापित कर

दिया। तबसे इन सबके संसर्ग से कामीजन का हृदय प्रीतिरस से द्रवीभूत हो जाता है। यह अग्नि चिकित्सा योग्य भी नहीं है। यह अशान्तिकारक अग्नि अनवरत कामीजन के हृदय को सन्तापित करती रहती है। रतिदेवी भगवान् की निःश्वासाग्नि से कामदेव को भस्मीकृत देखकर अपने बन्धु वसन्त के साथ रुदनरत हो गयीं। जब वे नाना प्रकार से विलाप करने लगीं, तब वसन्त ने उनको सान्त्वना प्रदान किया। देवदेव वृषध्वज शिव ने भी रति का वह विलाप देखकर परम कृपापूर्वक मदन की पत्नी रति से कहा—"हे भद्रे! तुम्हारा पति देहरहित होकर भी रतिकाल में अपना कर्त्तव्य सम्पादित कर सकेगा। हे बालिके! इसमें सन्देह नहीं है। जब विभु विष्णु वसुदेव के पुत्ररूपेण जन्म लेंगे, तब ये तुम्हारे पुत्ररूपेण जन्म लेकर मूर्त्तिमान पति हो जायेंगे।" रति ने प्रभु का यह आदेश सुना तथा रुद्रदेव को प्रणाम करके वसन्तादि के साथ स्वेच्छापूर्वक वहां से चली गयी।।४१-४९।।

॥चतुर्विंश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

पञ्चविंशोऽध्यायः

पार्वती का तप, शंकर विरोधी वचन का निषेध करना, इस प्रकार पार्वती परीक्षा, ब्राह्मणरूपी शिव की सन्तुष्टि, शिव-पार्वती विवाह

अर्जुन उवाच

देवर्षे! वर्ण्यते चेयं कथा पीयूषसोदरा। पुनरेतन्मुने! ब्रूहि यदा वेत्ति महेश्वरः॥१॥
भगवान्स्वांसतींभार्यांवधार्थंचापितारकम्। सत्याश्चविरहात्तप्यन्ददाहकिमसौस्मरम्॥२॥
त्वयैवोक्तंसविरहात्सत्यास्तप्यतिवैतपः। हिमाद्रिमास्थितोदेवस्तस्याःसङ्गमवाञ्छया॥३॥

अर्जुन कहते हैं—हे देवर्षि! आपने तो इस अमृत के समान मधुर उपाख्यान का वर्णन तो किया, तथापि हे मुनिवर! भगवान् तो सती वियोग के कारण तप कर रहे थे। उन सती ने ही पार्वती रूप से जन्म लिया तथा तारकासुर का वध भी नितान्त आवश्यक है, यह सब तो प्रभु को ज्ञात ही था। तभी उन्होंने काम को भस्म क्यों कर दिया? आपने तो यह भी बतलाया था कि भगवान् सतीविरह से कातर होकर उन सती के साथ पुनर्सङ्गमेच्छा को लेकर हिमालय पर तप कर रहे थे। मुझे यह सब स्पष्टतः कहिये।।१-३।।

नारद उवाच

सत्यमेतत्पुरा पार्थ भवस्येदं मनीषितम्। अतप्ततपसा योगो न कर्तव्यो मयाऽनया॥४॥
तपो विना शुद्धदेहो न कथञ्चन जायते। अशुद्धदेहेन समं संयोगो नैव दैहिकः॥५॥
महत्कर्माणि यानीह तेषां मूलं सदा तपः। नातप्ततपसां सिद्धिर्महत्कर्माणियान्ति वै॥६॥

एतस्मात्कारणाद्देवो दर्पितंतं ददाह तु। ततोदग्धे स्मरे चाऽपिपार्वतीमपिव्रीडिताम्॥७॥

नारद कहते हैं—हे पृथानन्दन! तुमने जो कहा, वह सब सत्य तो अवश्य है, तथापि भवदेव शिव का यह मन्तव्य था कि तप के बिना शरीरशुद्धि नहीं होती। अतएव गिरिनन्दिनी का तपःश्चरण द्वारा शुद्ध हुये उनका बिना मेरे विशुद्ध देह से संयोग नहीं हो सकता। उचित भी नहीं है, अतः मैं अभी इसके साथ संगत नहीं हो सकता। संसार के सभी महत् कृत्य के मूल में तपस्या है। जो तपाचरण नहीं करते, उनको कर्म सिद्ध नहीं होते। तभी महादेव ने समस्त विचार करके दर्पवश काम द्वारा किये गये आक्रमण के कारण उसे भस्म कर दिया। काम को जलाकर महादेव लज्जावती पार्वती को छोड़कर गणों के साथ कैलास चले गये। तब देवी भी उद्वेगपूर्वक लड़खड़ाते वहां से चली गयीं।।४-७।।

विहाय सगणो देवः कैलासं समपद्यत। देवी च परमोद्विग्ना प्रस्खलन्ती पदेपदे॥८॥
जीवितं स्वं विनिन्दन्ती बभ्रामेतस्ततश्च सा। हिमाद्रिरपि स्वे शृङ्गे रुदन्ती पृष्टवान्रतिम्॥९॥
क्काऽसिकस्याऽसिकल्याणिकिमर्थंचापिरोदिषि। पृष्टासाचरतिःसर्वंयथावृत्तंन्यवेदयत्॥१०॥
निवेदितेतथारत्याशैलःसम्भ्रान्तमानसः। प्राप्यस्वांतनयांपाणावादायागात्स्वकंपुरम्॥११॥

वे एक-एक कदम चलती अपने जीवन को धिक्कारती इधर-उधर घूमने-भटकने लगीं। उधर हिमालय ने अपने शृङ्ग पर रति को रोदन करते देखा। उन्होंने पूछा—"हे कल्याणी! तुम कौन हो तथा किसकी पत्नी हो? क्यों रुदन कर रही हो?" रति ने इस प्रकार पूछे जाने पर समस्त वृत्तान्त यथायथ वर्णन किया। शैलराज ने रति से समस्त घटनाक्रम सुनकर सन्तापित होकर अपनी कन्या को खोजा तथा उसका हाथ पकड़कर उसे अपने गृह ले आये।।८-११।।

सा तत्र पितरौ प्राह सखीनां वदनेन च। दुर्भगेन शरीरेण किमनेन हि कारणम्॥१२॥
देहवासंपरित्यक्ष्ये प्राप्स्येवाभिमतंपतिम्। असाध्यंचाप्यभीष्टंचकथंप्राप्यंतपोविना॥१३॥
नियमैर्विविधैस्तस्माच्छोषयिष्येकलेवरम्। अनुजानीत मां तत्र यदि वः करुणामयि॥१४॥
श्रुत्वेति वचनं मातापिता च प्राहतांशुभाम्। उमेतिचपले पुत्रि! न क्षमं तावकं वपुः॥१५॥
सोढुं क्लेशात्मरूपस्य तपसः सौम्यदर्शने। भावीन्यप्यनिवार्याणि वस्तूनिचसदैवतु॥१६॥
भाविनोऽर्था भवन्त्येव नरस्याऽनिच्छतोऽपि हि।
तस्मान्न तपसा तेऽस्ति बाले! किञ्चित्प्रयोजनम्॥१७॥

बाद में देवी पार्वती ने अपनी सखियों द्वारा माता-पिता को अपनी इच्छा से अवगत कराया कि इस दुर्भाग्यपूर्ण शरीर का क्या प्रयोजन? मैं अपने अभिमत पति का लाभ नहीं कर पाई, अतः इस देह का त्याग करूंगी। मेरे अभिलषित पति तपस्या बिना इन साधारण उपायों से प्राप्त नहीं हो सकते। अतः मैं विविध नियमों का पालन करते हुये अपने कलेवर को सुखा देती हूं। यदि मेरे प्रति आपलोगों के मन में करुणा हो, तब मुझे इस लक्ष्यपालन की अनुमति प्रदान करें। यह सुनकर पार्वती के माता-पिता उनसे कहने लगे—"हे चपला उमा, हे पुत्री! तुम देह को कष्ट देकर तप करने योग्य नहीं हो। जो होनी है, वह होकर रहेगी। इसलिए मनुष्य भावी के लिये इच्छा न रहने पर भी उसे प्राप्त कर लेता है। अतः बालिके! तपस्या की कोई जरूरत नहीं है"।।१२-१७।।

श्रीदेव्युवाच

यदिदं भवतो वाक्यं न सम्यगिति मे मतिः। केवलं न हि दैवेनप्राप्तुमर्थोहि शक्यते॥१८॥
किञ्चिद्दैवाद्धठात्किञ्चित्किञ्चिदेव स्वभावतः। पुरुषःफलमाप्नोतिचतुर्थंनाऽत्रकारणम्।
ब्रह्मणा चाऽपि ब्रह्मत्वं प्राप्तं किल तपोबलात्॥१९॥
अन्यैरपि च यल्लब्धं तन्न संख्यातुमुत्सहे॥२०॥
अध्रुवेण शरीरेण यद्यभीष्टं न साध्यते। पश्चात्स शोच्यते मन्दःपतितेऽस्मिञ्छरीरके॥२१॥
यस्य देहस्य धर्मोऽयं क्वचिज्जायेत्क्वचिन्म्रियेत्।
क्वचिद्गर्भगतंनश्येज्जातमात्रं क्वचित्तथा॥२२॥
बाल्ये च यौवनेचाऽपिवार्धक्येऽपिविनश्यति। तेनचञ्चलदेहेनकोऽर्थःस्वार्थोनचेद्भवेत्॥२३॥

श्रीदेवी कहती हैं—आपने जो कहा है, वह मेरे विचार से सत्य नहीं है। केवल दैव बल से कोई कार्य सिद्ध नहीं होता। पुरुष कुछ तो दैव बल से, कुछ उपाय से, कुछ स्वभाव के प्रभाव से प्राप्त करता है। फलसिद्धि हेतु इसके अतिरिक्त और कोई चौथा कारण नहीं है। ब्रह्माण्ड में तपःबल से ही ब्रह्मत्व मिलता है। अन्य सभी ने तपःबल से ही वांछित फल लाभ किया है। मैं उसका उल्लेख नहीं करना चाहती। जो मूर्ख इस अस्थायी शरीर से अभीष्ट साधन नहीं करता, वह इस शरीर के नष्ट हो जाने पर अवश्य शोक के लिये बाध्य हो जाता है। इस देह का धर्म यही है। यह जन्म लेता है, मृत होता है, गर्भ में रहता है, इसका बाल्य है, यौवन है, अन्ततः वार्द्धक्य में विनष्ट होगा। ऐसे अस्थिर शरीर से यदि स्वार्थ साधन न किया जाय, तब इस शरीर का फल ही क्या?॥१८-२३॥

इत्युक्त्वा स्वसखीयुक्तापितृभ्यांसाश्रुवीक्षिता। शृङ्गंहिमवतःपुण्यंनानास्चर्यंजगामसा॥२४॥
तत्राम्बराणि सन्त्यज्यभूषणानिचशैलजा। सम्वीतावल्कलैर्दिव्यैस्तपोऽतप्यतसंयता॥२५॥
ईश्वरं हृदि संस्थाप्य प्रणवाभ्यसनादृता। मुनीनामप्यभून्मान्या तदानीं पार्थ पार्वती॥२६॥
त्रिस्नाता पाटलापत्रभक्षकाऽभूच्छतं समाः। शतं च बिल्वपत्रेण शीर्णेन कृतभोजना॥२७॥
जलभक्षाशतं चाभूच्छतं वै वायुभोजना। ततो नियममादाय पादाङ्गुष्ठस्थिताऽभवत्॥२८॥
निराहारा ततस्तापं प्रापुस्तत्तपसो जनाः। ततो जगत्समालोक्य तदीयतपसोर्जितम्॥२९॥

देवी की यह उक्ति सुनकर उनके पिता-माता देवी को अश्रुपूर्ण नेत्रों से देखने लगे। देवी भी अपनी सखियों से परिवृता होकर हिमालय के एक नाना आश्चर्यपूर्ण स्वर्ण शृङ्ग पर चली गयीं। वहां शैलनन्दिनी ने उत्तम वस्त्र तथा आभूषण आदि को त्याग दिया। उन्होंने वल्कल पहना तथा संयमित होकर तप करने लगीं। हे पृथानन्दन! अब पार्वती त्रिसन्ध्या स्नान करतीं तथा हृदय में ईश्वर को स्थापित करके प्रणवाभ्यास करने लगीं। इस प्रकार वे मुनियों द्वारा भी सम्मानित होने योग्य हो गईं। उन्होंने पहले १०० वर्ष तक पाटलापत्र, अगले १०० वर्ष तक अपने आप गिरा बिल्वपत्र, १०० वर्ष वायु भक्षण करके स्थित थीं। तदनन्तर वे नियम ग्रहण करके अपने शरीर का भार पैर के अंगूठे पर देकर स्थित हो गयीं तथा निराहार स्थिति में ही घोर तप करने लगीं। इससे जगत् इनके तप से सन्तप्त हो उठा॥२४-२९॥

हरस्तत्राऽऽययौसाक्षाद्ब्रह्मचारिवपुर्द्धरः। वसानोवल्कलं दिव्यं रौरवाजिनसम्वृतः॥३०॥
सुलक्षणाषाडधरः सद्वत्तः प्रतिभानवान्। ततस्तं पूजयामासुस्तत्सख्यो बहुमानतः॥३१॥
वक्तुमिच्छुः शैलपुत्रीं सखीभिरितिचोदितः। ब्रह्मन्नियं महाभागा गृहीतनियमा शुभा॥३२॥
मुहूर्तपञ्चमात्रेण नियमोऽस्याः समाप्यते। तत्प्रतीक्षस्व तं कालं पश्चादस्मत्सखीसमम्॥३३॥
नानाविधा धर्मवार्ताःप्रकरिष्यसि ब्राह्मण!। इत्युक्त्वाविजयाद्यास्तादेवीचरितवर्णनैः॥३४॥
अश्रुमुख्योद्विजस्याऽग्रेनिन्युः कालंचतंतदा। ततः काले किञ्चिदूनेब्रह्मचारीमहामतिः॥३५॥

इसके पश्चात् तो गिरिजा की तपस्या के प्रभाव से समस्त जगत् को उद्भासित होते देखकर भगवान् हर (शिव) वल्कलधारी होकर, रौरव मृग के चर्म के उत्तरीय को धारण करके तथा सलक्षण दण्ड हाथ में लेकर ब्रह्मचारी वेश में सच्चरित्रता तथा प्रतिभा का द्योतन कराते वहां प्रत्यक्ष रूप में आ गये। पार्वती की सखियों ने उनका अत्यन्त सम्मानपूर्वक यथायोग्य स्वागत पूजन किया। उन्होंने शैलनन्दिनी से किंचित् वार्त्तालाप का अभिप्राय प्रकट किया, तब सखियों ने ब्रह्मचारी से कहा—"हे ब्रह्मन्! इन शुभा, महाभागा ने एक विशेष नियम लिया है। ये ५ मुहूर्त्त पर्यन्त ऐसे ही रहेंगी। तब इनका नियम सम्पन्न होगा। अतः आप कुछ समय प्रतीक्षा करें। तत्पश्चात् आप हमलोगों की सखी के साथ नाना धर्मवार्त्ता कीजिये।" विजयादि सखीगण ने उन द्विज से अश्रुपूर्ण नेत्रों से देवी का चरित्र वर्णित किया। इस प्रकार वे काल व्यतीत करने लगीं। तब कुछ काल के उपरान्त वे ब्रह्मचारी वहां आये।।३०-३५।।

विलोकनमिषेणाऽगादाश्रमोपस्थितं ह्रदम। निपपातचतत्राऽसौचुक्रोशाऽतितरांततः॥३६॥
अहमत्र निमज्जामि कोऽपि मामुद्धरेत भोः। इतितारेणक्रोशन्तंश्रुत्वातंविजयादिकाः॥३७॥
आजग्मुस्त्वरया युक्ता ददुस्तस्मै करं च ताः। स चुक्रोश ततो गाढं दूरेदूरे पुनःपुनः॥३८॥
नाहं स्पृशाम्यसंसिद्धां म्रियेवा नानृतंत्विदम्। ततःसमाप्तनियमापार्वतीस्वयमाययौ॥३९॥
सव्यं करं ददावस्यतंचाऽसौनाभ्यनन्दत। भद्रे यच्छुचिनैवस्याद्यच्चैवाऽवज्ञयाकृतम्॥४०॥
सदोषेणकृतंयच्च तदा दद्यान्नकर्हिचित्। सव्यं चाऽशुचिते हस्तंनावलम्बामिकर्हिचित्॥४१॥

वे वहां आश्रम देखने के बहाने घूमने लगे। घूमते-घूमते एक निकटवर्त्ती ह्रद में जा गिरे। वहां जाकर जोरों से चीत्कार करने लगे कि "कौन है? मैं कूप में गिर पड़ा। कौन मेरा उद्धार करेगा?" विजयादि सखियां इस प्रकार चीत्कार सुनकर शीघ्र वहां आईं तथा उन्होंने ब्रह्मचारी के उद्धारार्थ हाथ फैलाया। लेकिन वह ब्रह्मचारी दूर चला जाता तथा पुनः गंभीर स्वर से चीत्कार करने लगता कि "मैं असिद्धा स्त्री का स्पर्श नहीं करूंगा। मुझे मर जाना स्वीकार है। यह सत्य कहता हूं।" इतने में पार्वती देवी अपना नियम सम्पन्न करके वहां गईं तथा ब्रह्मचारी को बचाने हेतु अपना हाथ प्रसारित किया। लेकिन उस ब्रह्मचारी ने उनका हाथ नहीं पकड़ा। उसने कहा "भद्रे! जो पवित्र नहीं है, जो अवज्ञाकृत है, दोष के साथ अनुष्ठित है, वह कभी ग्रहण नहीं करता। तुम्हारा वाम हस्त अपवित्र है। अतः मैं उसे कदापि नहीं पकड़ सकता।।३५-४१।।

इत्युक्ता पार्वती प्राह नाहं दत्तं च दक्षिणम्। ददामि कस्यचिद्विप्र! देवदेवाय कल्पितम्॥४२॥
दक्षिणं मे करं देवो ग्रहीता भव एव च। शीर्यते चोग्रतपसा सत्यमेतन्मयोदितम्॥४३॥

ब्रह्मचारी का वचन सुनकर पार्वती ने कहा—"हे विप्र! मैंने देवदेव शंभु को अपना दाहिना हाथ प्रदान किया है। वह अन्य किसी को नहीं दे सकती। वह तो देवदेव के लिए ही है। मेरा दाहिना हाथ केवल भगवान् भव ही ग्रहण कर सकते हैं। मैंने उनके ही लिये उग्र तप से स्वयं को दुर्बल कर लिया है। यह सत्य वचन है"।।४२-४३।।

विप्र उवाच

यद्येवमवलेपस्ते गमनं केन वार्यते। यथा तव प्रतिज्ञेयं ममाऽपीयं तथाऽचला।।४४।।
रुद्रस्यापि वयं मान्याः कीदृशं ते तपो वद। विषमस्थं यत्र विप्रं म्रियमाणमुपेक्षसि।।४५।।
अवजानासिविप्रांस्त्वंतच्छीघ्रंव्रजदर्शनात्। यदिवामन्यसेपूज्यांस्ततोऽभ्युद्धरनान्यथा।।४६।।

ब्रह्मचारी विप्र कहता है—यदि तुम्हारा यही घमण्ड है, तब तुम जाओ न! तुमको कौन रोकता है? जैसे तुम्हारी अटल प्रतिज्ञा है, उसी प्रकार मेरी भी प्रतिज्ञा है। यह देखो, हम लोग तो रुद्र को भी मान्य हैं। तुम्हारा कैसा तपबल है, देखा जाये! हे देवी! तुम तो विषम मरणासन्न ब्राह्मण की भी उपेक्षा कर रही हो! तुमने ब्राह्मण की अवज्ञा किया है, अतः बिना देर किये मेरी आंखों के आगे से हट जाओ। यदि तुम ब्राह्मणों को मान्य मानती हो, तभी मेरा उद्धार करो। अन्यथा उद्धार मत करो।।४४-४६।।

ततो विचार्य बहुधाइतिचेतिचताशुभा। विप्रस्योद्धरणं सर्वधर्मेभ्योऽमन्यताऽधिकम्।।४७।।
ततः सा दक्षिणं दत्त्वा करं तं प्रोज्जहार च। नरं नारी प्रोद्धरतिमज्जन्तंभववारिधौ।
एतत्सन्दर्शनार्थाय तथा चक्रे भवोद्भवः।।४८।।
प्रोद्धृत्य च ततः स्नात्वा बद्ध्वा योगासनं स्थिता।।४९।।
ब्रह्मचारी ततः प्राह प्रहसन्किमिदं शुभे!। कर्तुकामाऽसि तन्वङ्गि दृढयोगासनस्थिता।।५०।।
देवी प्राह ज्वालयिष्ये शरीरं योगवह्निना। महादेवकृतमतिरुच्छिष्टाऽहं यतोऽभवम्।।५१।।

अन्ततः गिरिजा ने नाना प्रकार से विचार-वितर्क करके अन्त में ब्राह्मण का उद्धार करना ही सभी धर्मों की अपेक्षा आवश्यक कर्त्तव्य माना तथा निश्चय करके अपना दाहिना हाथ फैलाकर ब्राह्मण का उद्धार किया। भवसमुद्र में मग्न मनुष्य का नारी उद्धार करती है, इसीलिये महादेव ने यह (लीलारूपी) आचरण किया था। गिरिजा ने इस प्रकार ब्रह्मचारी का उद्धार किया तथा योगासन बांध कर बैठ गयीं। तदनन्तर ब्रह्मचारी ने उनसे सहास्य मुद्रा में कहा—"हे शुभे! तन्वङ्गी! तुम दृढ़ योगासन पर स्थित होकर क्या अभिलाषा कर रही हो?" देवी ने उत्तर दिया—"मैं योगाग्नि से देह दग्ध करूंगी। मैं महादेव के लिये कृतसंकल्प हूं। परन्तु इस समय अशुद्ध हो गई"।।४७-५१।।

ब्रह्मचारी ततःप्राहकाश्चिद्ब्राह्मणकाम्यया। कृत्वावार्तास्ततःस्वीयमभीष्टंकुरुपार्वति!।।५२।।
नोपहन्या कदाचिद्धि साधुभिर्विप्रकामना। धर्ममेनं मन्यसे चेन्मुहूर्तं ब्रूहि पार्वति।।५३।।
देवी प्राह ब्रूहि विप्र! मुहूर्तसंस्थिता त्वहम्। ततःस्वयंव्रतीप्राहदेवींतांस्वसखीयुताम्।।५४।।
किमर्थमिति रम्भोरु नवे वयसिदुश्चरम्। तपस्त्वया समारब्धं नाऽनुरूपं विभाति मे।।५५।।
दुर्लभंप्राप्य मानुष्यं गिरिराजगृहेऽधुना। भोगांश्चदुर्लभान्देवित्यक्त्वाकिंक्लिश्यतेवपुः।।५६।।

अतीव दूये वीक्ष्य त्वां सुकुमारतराकृतिम्। अत्युग्रतपसा क्लिष्टा पद्मिनीवहिमार्दिता॥५७॥
इदं चान्यत्तव शुभे! शिरसो रोगदं मम। यद्देहं त्यक्तुकामा त्वं प्रबुद्धा नासिबालिके॥५८॥

तदनन्तर ब्रह्मचारी ने कहा—"हे पार्वती! ब्राह्मण की कामना है कि कुछ समय कथावार्त्ता के उपरान्त तुम्हारी जो इच्छा हो, वह करना। साधुजन कभी भी ब्राह्मण की कामना को भंग नहीं करते। हे पार्वती! यदि तुम यही धर्म मानों, तब कुछ समय बातचीत करो" देवी ने कहा "ठीक है। हे विप्र! मैं कुछ समय जीवित रह जाती हूं।" तत्पश्चात् ब्रह्मचारी ने सखियों के साथ स्थित देवी से कहा "हे कदली स्तम्भ के समान उरूवाली! तुम इस नयी उम्र में किस निमित्त यह दुष्कर तप कर रही हो? मैं इसे तुम्हारे अनुरूप नहीं समझता। हे देवी! तुमने गिरिराज के गृह में दुर्लभ मनुष्य शरीर पाया है। तुम सर्वसाधारण के लिये दुर्लभ भोगों को त्याग कर किसलिये शरीर को कष्ट दे रही हो? तुम्हारी आकृति तो सुकुमार है। तथापि अत्युग्र तप द्वारा तुम तुषार से पीड़ित पद्मिनी के समान हो रही हो। इसलिये तुमको देखकर मुझे अत्यन्त क्लेश हो रहा है। हे शुभे! तुम जो देहत्याग की इच्छा कर रही हो, इससे तो मुझे शिर पीड़ा हो रही है। तुम अभी भी बालिका हो। इसलिए तुमको अच्छे-बुरे का बोध नहीं है। हे बालिके! यह सत्य है कि तुमने इस देह से कामना त्याग दिया है"।।५२-५८।।

वामः कामो मनुष्येषु सत्यमेतद्वचो यतः। स्पृहणीयाऽसि सर्वेषामेवं पीडयसे वपुः॥५९॥
अविज्ञातान्वयो नग्नः शूली भूतगणाधिपः। श्मशाननिलयोभस्मोद्धूलनो वृषवाहनः॥६०॥
गजाननो द्विजिह्वाद्यलङ्कृताङ्गो जटाधरः।
विरूपाक्षः कथङ्कारं निर्गुणः स्यात्तवोचितः॥६१॥
गुणा येकुलशीलाद्यावराणामुदिताबुधैः। तेषामेकोऽपिनैवास्तितस्मिंस्तन्नोचितःसते॥६२॥
शोचनीयतमा पूर्वमासीत्पार्वतिकौमुदी। त्वंसम्वृत्ताद्वितीयासितस्यास्तत्सङ्गमाशया॥६३॥
तपोधनाः सर्वसमा वयं यद्यपि पार्वति!। दुनोत्येव तवारम्भः शूलायां यूपसत्क्रिया॥६४॥

यह सत्य है कि काम मनुष्य के लिए प्रतिकूल होता है। क्योंकि तुम सब के लिए स्पृहणीय हो। तथापि इस प्रकार शरीर को पीड़ा दे रही हो। वह अज्ञात कुल, नग्न, शूलपाणि, भूतों का अधिपति, श्मशानवासी, भस्मलेपी, वृषवाहन, गजाननधारी, सर्पभूषणधारी, जटाधारी, विरुपाक्ष, निर्गुण शंकर तुम्हारे योग्य नहीं हैं। बुद्धिमानों ने वर का जो भी लक्षण वर्णित किया है, उनमें से एक भी इन शम्भुदेव में नहीं है। तभी वह तुम्हारे योग्य वर नहीं है। हे पार्वती! केवल चन्द्रकला ही पूर्व में इन विरुपाक्ष के संग के कारण शोकार्ह थी, लेकिन अब तो तुम भी उसके संग की आशा लेकर शोकार्ह हो रही हो। हे पार्वती! यद्यपि मैं सर्वत्र समदर्शी तपस्वी हूं, तथापि पशुवध स्थान में यूप स्थापना के समान तुम्हारा यह उद्यम मेरे लिये पीड़ाप्रद हो रहा है।।५९-६४।।

वृषभारोहणंवासःश्मशाने पाणिसङ्ग्रहः। सव्यालपाणिनाक्षौमगजत्वग्बन्धनःकथम्॥६५॥
जनहास्यकरंसर्वंत्वयाऽऽरब्धमसाम्प्रतम्। स्त्रीभावाद्भूतिसम्पर्क्कःकथंचाभिमतस्तव॥६६॥
निवर्तय मनस्तस्मादस्मात्सर्वविरोधिनः। मृगाक्षि मदनारातेर्मर्कटाक्षस्य प्रार्थनात्॥६७॥
विरुद्धवादिनं चैवं ब्रहमचारिणमीश्वरम्। निशम्य कुपिता देवी प्राह वाचा सगद्गदम्॥६८॥
मा मा ब्राह्मण! भाषिष्ठा विरुद्धमिति शङ्करे। महत्तमो याति पुमान्देवदेवस्य निन्दया॥६९॥

न सम्यगभिजानासितस्यदेवस्य चेष्टितम्। शृणुब्राह्मणत्वंपापाद्यथास्मात्परिमुच्यसे॥७०॥

वृषभ पर आरोहण, श्मशानवास, हाथ में सर्पाभूषण, गजचर्म के साथ क्षौम वस्त्र बांधना, इन ऐसे लोकहास्यकारी अयोग्य के लिए उद्यम क्यों कर रही हो? तुम स्त्री हो, परन्तु ऐसी स्थिति में सभी विभूति कैसे प्राप्त होगी? अतः हे मृगाक्षी! इस सर्वविरोधी मदनारति मर्कटाक्ष को पाने की कामना चित्त से निकाल दो।'' शिव ब्रह्मचारी वेष में ऐसी विरुद्ध बातें कहने लगे, तब देवी ने सुनकर भर्राये स्वर में कहा—हे ब्राह्मण! आप शंकर के सम्बन्ध में ऐसे विरुद्ध वाक्य न कहें। कदापि न कहें। जिन देवदेव की निन्दा करने वाले महान् नरक में जाते हैं, आप उन महादेव के आचरण धर्म से सम्यक् रूप से अवगत नहीं हैं। हे ब्राह्मण! सुनें, जिससे आपको पाप से मुक्ति मिलेगी।।६५-७०।।

स आदिः सर्वजगतां कोऽस्य वेदान्वयंततः। सर्वं जगद्यस्यरूपंदिग्वासाःकीर्त्यतेततः॥७१॥
गुणत्रयमयं शूलं शूली यस्माद्बिभर्तिसः। अबद्धाः सर्वतो मुक्ता भूता एवचतत्पतिः॥७२॥
श्मशानंचापिसंसारस्तद्वासीकृपयार्थिनाम्। भूतयःकथिताभूतिस्तांबिभर्तिसभूतिभृत्॥७३॥
वृषो धर्म इति प्रोक्तस्तमारूढस्ततोवृषी। सर्पाश्चदोषाःक्रोधाद्यास्तान्यिभर्तिजगन्मयः॥७४॥

वे सर्व जगत् के आदि हैं। अतः उनका वंश वृत्तान्त कौन जान सकता है? समस्त जगत् उनका रूप है। तभी वे नग्न हैं। वे गुणत्रयात्मक शूलधारी हैं। तभी उनको शूली कहा जाता है। भूत सर्वदा संसार में बद्ध नहीं होते। वे सदा मुक्त होते हैं। वे ऐसे मुक्त भूतगण (प्राणीगण) के पति हैं। यह संसार श्मशान क्षेत्र है। वे प्रार्थीगण के प्रति कृपालु होकर श्मशान में वास करते हैं। उनकी विभूति समस्त प्रकृत विभूति दायक हैं। तभी वे विभूति का भक्षण करते हैं। धर्म ही वृष है। वे ऐसे धर्म वृष पर आरूढ़ हैं। इसलिए वे वृषवाहन हैं। क्रोधादि दोष समूह ही सर्प हैं। जगन्मय महेश्वर इस क्रोधरूपी सर्प को वशीभूत करके भूषण बनाकर धारण करते हैं।।७१-७४।।

नानाविधाःकर्मयोगा जटारूपा विभर्ति सः। वेदत्रयी त्रिनेत्राणि त्रिपुरं त्रिगुणंवपुः॥७५॥
भस्मीकरोति तद्देवस्त्रिपुरघ्नस्ततः स्मृतः। एवम्विधं महादेवं विदुर्ये सूक्ष्मदर्शिनः॥७६॥
कथङ्कारं हि ते नाम भजन्ते नैव तं हरम्। अथवा भीतसंसाराःसर्वे विप्र यतोजनाः॥७७।
विमृश्य कुर्वते सर्वं विमृश्यैतन्मया कृतम्। शुभं वाऽप्यशुभं वाऽस्तु त्वमप्येनंप्रपूजय॥७८॥

विविध कर्म ही जटा रूप हैं। वे समस्त कर्म को धारण करते हैं। वेदत्रयी उनके तीन नेत्र हैं। त्रिगुणमय शरीर ही त्रिपुर है। वे इस त्रिगुण को भस्म करके त्रिपुरघ्न कहे जाते हैं। जो सूक्ष्मदर्शी व्यक्ति इस प्रकार से महादेव को जानते हैं, वे उन हर का भजन क्यों नहीं करेंगे। हे विप्र! और भी देखें! संसार में सभी व्यक्ति भयभीत हैं। इसलिए सबको सभी कार्य विवेचना करके करना चाहिये। कल शुभ हो अथवा अशुभ हो, मैं विवेचना करके यह कार्य कर रही हूं।।७५-७८।।

इति ब्रुवन्त्यां तस्यां तु किञ्चित्प्रस्फुरिताधरम्।
विज्ञाय तां सखीमाह किमप्येष विवक्षुकः॥७९॥
वार्यतामितिविप्रोऽयं महद्दूषणभाषकः। न केवलं पापभागी श्रोता वै स्यान्नसंशयः॥८०॥

देवी के यह कहने पर वे ब्राह्मण कुछ कहने ही जा रहे थे, तभी जैसे ही बोलने हेतु ब्राह्मण के ओष्ठ कांपे,

तभी गिरिजा ने यह देखकर ब्राह्मण को बोलने में बाधा देकर सखी से कहा—"हे सखी! यह ब्राह्मण और क्या कहना चाहते हैं, इनको रोको। जो महात्माओं की निन्दा करे, केवल वही पापी नहीं है, परन्तु श्रोता भी पापभागी होता है। इसमें सन्देह नहीं है।।७९-८०।।

अथवाकिञ्चनःकार्यंवादेनसहब्राह्मणैः। कर्णौंपिधाययास्यामोयथायःस्यात्तथाऽस्तुसः।।८१।।
इत्युक्त्वोत्थाय गच्छन्त्यां पिधाय श्रवणावुभौ। स्वरूपं समुपाश्रित्यजगृहेवसनंहरः।।८२।।
ततो निरीक्ष्य तं देवं सम्भ्रान्ता परमेश्वरी। प्रणिपत्य महेशानं तुष्टावाऽवनता उमा।।८३।।
प्राह तां च महादेवो दासोऽस्मितवशोभने। तपोद्रव्येणक्रोतश्च समादिशयथेप्सितम्।।८४।।

अथवा ब्राह्मण से विवाद करने की हमें क्या आवश्यकता? कानों को ढ़क कर अब यहां से चलें। यह जिस किसी प्रकार कहकर भगवती ने अपने कानों को ढ़क लिया। वे उठने जा ही रही थीं कि भगवान् हर ने अपना स्वरूप धारण कर लिया। परमेश्वरी पार्वती ने उन महेश्वर को देखकर ससंभ्रम प्रणाम करके अवनत शिर करके स्तव करना प्रारम्भ किया। तभी महादेव ने उनसे कहना प्रारम्भ किया कि "हे शोभने! मैं तुम्हारा दास हो गया। तुमने मुझे अपने तपस्या रूपी मूल्य से खरीद लिया। अब जो इच्छा हो, आदेश प्रदान करो"।।८१-८४।।

देव्युवाच

मनसस्त्वं प्रभुः शम्भो! दत्तं तच्च मया तव। वपुषः पितरावीशौतौसम्मानयितुमर्हसि।।८५।।

देवी कहती हैं—"हे शम्भु! आप ही मेरे मन के प्रभु हैं। वह मन मैं आपको प्रदान करती हूं। तथापि शरीर के अधीश्वर तो माता-पिता हैं। इसलिए उनका सम्मान आवश्यक है।" यह सुनकर ईश्वर कहने लगे।।८५।।

महादेव उवाच

पित्राहिते परिज्ञातं दृष्ट्वात्वांरूपशालिनीम्। बालांस्वयम्वरंपुत्रीमहंदास्यामिनान्यथा।।८६।।
तत्तस्य सर्वमेवाऽस्तु वचनं त्वं हिमाचलम्। स्वयम्वरार्थं सुश्रोणि प्रेरयत्वांवृणेततः।।८७।।
इत्युक्त्वा तां महादेवः शुचिः शुचिपदो विभुः। जगामेष्टंतदादेशंस्वपुरंप्रययौ च सा।।८८।।
दृष्ट्वा देवीं तदा हृष्टो मेनया सहितोऽचलः।।८९।।
आलिङ्ग्याऽऽघ्राय पप्रच्छ सर्वं साच न्यवेदयत्। दुहितुर्देवदेवेनआज्ञप्तंतु हिमाचलः।।९०।।
स्वयम्वरं प्रमुदितः सर्वलोकेष्वघोषयत्। अश्विनौ द्वादशादित्या गन्धर्वगरुडोरगाः।।९१।।
यक्षाः सिद्धास्तथा साध्या दैत्याः किम्पुरुषा नगाः।
समुद्राद्याश्च ये केचित्त्रैलोक्यप्रवराश्च ये।।९२।।
त्रयस्त्रिंशत्सहस्त्राणि त्रयस्त्रिंशच्छतानि च। त्रयस्त्रिंशच्च ये देवास्त्रयस्त्रिंशच्च कोटयः।।९३।।
जग्मुर्गिरीन्द्रपुत्र्यास्तु स्वयम्वरमनुत्तमम्। आमन्त्रितस्तथा विष्णुर्मेरुमाह हसन्निव।।९४।।
तातास्माकंच सा देवी मेरो गच्छ नमामिताम्। अथशैलसुतादेवीहैममारुह्यशोभनम्।।९५।।

भगवान् हर कहते हैं—"तुम्हारे पिता ने तुमको रूपवती देखकर यह तय किया था कि "मैं इस बालिका को शंकर को ही प्रदान करूंगा।" उनका यह सब वाक्य सत्य हो। हे सुश्रोणी! तुम हिमवान् को स्वयंवर हेतु प्रेरित

करो। तब मैं तुम्हारा वरण करूंगा।'' तदनन्तर पवित्र शुचिपद विभु महादेव अपने अभीष्ट स्थान पर चले गये। इधर भगवती उमा भी अपने पिता के यहां गयीं। उनको देखकर हिमालय तथा मेना प्रसन्न हो गये। उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक भगवती का आलिंगन किया तथा उनका मस्तक वात्सल्य के अतिरेक के कारण सूंघकर समस्त विवरण पूछा। देवी उमा ने पिता-माता को समस्त वृत्तान्त से यथायथरूपेण अवगत कराया। तब प्रमुदित चित्त वाले हिमवान् ने देवदेव के आदेशानुसार अपनी कन्या का स्वयंवर समाचार सर्वलोक समूह में घोषित कराया। तत्पश्चात् अश्विनीकुमारद्वय, द्वादश आदित्य, गन्धर्व, गरुड़, सर्प, यक्ष, सिद्ध, साध्य, दैत्य, किम्पुरुष, पर्वतगण, समुद्र आदि त्रैलोक्यवासी प्रधान लोग, ३३ कोटि देवता सभी गिरीन्द्रनन्दिनी के अत्युत्तम स्वयंवर क्षेत्र में आये। विष्णु को भी निमन्त्रण भेजा गया था। उन्होंने हंसते हुये मेरुपर्वत से कहा—''हे गिरिवर! ये देवी हम लोगों की मान्य हैं। अतः तुम वहां जाओ। मैं उनको प्रणाम करता हूं।'' अब वे पर्वतनन्दिनी स्वर्ण के शोभन विमान पर बैठीं।।८६-९५।।

विमानं सर्वतोभद्रं सर्वरत्नैरलङ्कृतम्। अप्सरोभिः प्रनृत्यद्भिः सर्वाभरणभूषिता॥९६॥
गन्धर्वसंघैर्विविधैःकिन्नरैश्चसुशोभनैः। बन्दिभिःस्तूयमाना च वीरकांस्यधरास्थिता॥९७॥
सितातपत्ररत्नांशुमिश्रितं चाऽवहत्तदा। शालिनीनामपार्वत्याः संध्यापूर्णेन्दुमण्डला॥९८॥
चामरासक्तहस्ताभिर्दिव्यस्त्रीभिश्चसम्वृता। मालां प्रगृह्य सा तस्थौसुरद्रुमसमुद्भवाम्॥९९॥

देवी सर्वाभरणभूषिता थीं तथा विविध गन्धर्व-किन्नर बन्दीजन द्वारा उनकी स्तुति की जा रही थी। वे वीरकांस्य धारण किये, अप्सरागण के नृत्य से संकुलित, सर्व रत्नों से अलंकृत, चन्द्रकिरण से समुद्भासित, सितातपत्रयुक्त मनोहर हैम विमान पर बैठी थीं। सन्ध्याकालीन पूर्ण चन्द्र के समान आनन वाली उनकी शालिनी नामक सखी ने पारिजात पुष्परचित माला लिये श्वेतचामरधारिणी दिव्यरमणीगण से घिरी देवी को वहां पहुंचाया।।९६-९९।।

एवं तस्यां स्थितायां तु स्थितेलोकत्रयेतदा। शिशुर्भूत्वामहादेवःक्रीडार्थंवृषभध्वजः॥१००॥
उत्सङ्गतलसंगुप्तो बभूव भगवान्भवः। जयेति यत्पदं ख्यातं तस्य सत्यार्थमीश्वरम्॥१०१॥
अथ दृष्ट्वा शिशुं देवास्तस्य उत्सङ्गवर्त्तिनः। कोऽयमत्रेति सम्मन्त्र्य चक्रुशुर्भृशरोषिताः॥१०२॥
वज्रमाहारयत्तस्य बाहुमुद्यम्य वृत्रहा। स बाहुरुद्यतस्तस्य तथैव समतिष्ठत॥१०३॥
स्तम्भितः शिशुरूपेण देवदेवन लीलया। वज्रं क्षेप्तुं न शक्नोति बाहुं चालयितुं तदा॥१०४॥
वह्निःशक्तिं तदाक्षेप्तुं न शशाक तथोत्थितः। यमोऽपिदण्डंखड्गंचनिर्ऋतिस्तंशिशुंप्रति॥१०५॥
पाशं च वरुणो राजाध्वजयष्टिं समीरणः। सोमो गुडं धनेशश्चगदां सुमहतीं दृढाम्॥१०६॥
नानायुधानि चादित्यामुसलंवसवस्तथा। महाघोराणिशस्त्राणितारकाद्याश्चदानवाः॥१०७॥
स्तम्भिता देवदेवेन तथाऽन्ये भुवनेषु ये। पूषां दन्तान्दशन्दन्तैर्बालमैक्षत मोहितः॥१०८॥
तस्याऽपिदशनाः पेतुर्दृष्टमात्रस्यशम्भुना। भगश्चनेत्रे विकृते चकार स्फुटिते च ते॥१०९॥
बलं तेजश्च योगांश्च सर्वेषां जगृहे प्रभुः। अथ तेषु स्थितेष्वेव मन्युमत्सु सुरेष्वपि॥११०॥

जब देवी इस प्रकार स्थित हो गयीं तब वृषध्वज भगवान् भव महादेव महेश्वर ने अपने जय नामक नाम की सार्थकता प्रकट करने हेतु एक शिशु मूर्त्ति धारण करके देवी की गोद में बैठ गये। तब सभी देवगण ने देवी की गोद

में एक बालक देखकर आपस में "यह कौन है, यह कौन है?" कहते हुये उच्च कोलाहल तथा रोष भरा आक्रोश प्रकट करना प्रारम्भ किया। वृत्रासुरहन्ता इन्द्र ने इस शिशु पर वज्र प्रहारार्थ अपनी भुजायें उठायीं, तथापि शिशुरूपी देवदेव ने लीलावश उनकी भुजायें स्तम्भित कर दिया। अतएव उनकी भुजा उसी प्रकार से उठी रह गयी। इन्द्र वज्र प्रहार करने अथवा बाहु हिलाने तक में असमर्थ हो गये। अग्नि ने भी उस शिशु पर अपने शक्ति अस्त्र से प्रहार करना चाहा, तथापि उनकी बाहु भी स्तम्भित हो गयी। यम का दण्ड, निर्ऋति का खड्ग, वरुण का पाश, वायु की यष्टि, चन्द्र का गुड़ास्त्र, कुबेर की महान् दृढ़ गदा, आदित्यों के विविध अस्त्र, वसुगण का मूसल तथा तारकादि प्रधान दानवों के नाना अस्त्र उनके-उनके धारण कर्त्ताओं द्वारा शिशु पर छोड़ने के लिए उद्यत होते ही उनकी-उनकी बाहु के साथ ही वे भी स्तम्भित हो गये। देवदेव ने सबकी बाहु के साथ ही उनके अस्त्रों को भी स्तम्भित कर दिया। इसके अतिरिक्त और भी जिस त्रिलोकवासी ने शिशु पर प्रहार करने का उद्यम किया, उन सबको देवाधिदेव ने स्तम्भित कर दिया। पूषा ने इस बालक को डंसने के लिए अपना मुख जैसे ही खोला, उनके दांत ही गिर गये। भगदेवता ने इस शिशु को देखकर जैसे ही नेत्र विकृत किये, उनके नेत्रद्वय ही फूट गये। प्रभु ने सभी के बल, तेज तथा योग को खींच लिया था।।१००-११०।।

ब्रह्माध्यानमुपाश्रित्यबुबोध हरचेष्टितम्। सोऽभिगम्य महादेवं तुष्टाव प्रयतो विधिः॥१११॥

तदनन्तर जब सभा के लोग क्रोध के कारण इस प्रकार से (स्तम्भित होकर) स्थित हो गये, ब्रह्मा ने ध्यानयोग द्वारा शिव के इस आचरण के रहस्य को जान लिया, तब विधाता इस बालरूपी शिव को प्रसन्न करने का उपक्रम करने लगे।।१११।।

पौराणैः सामसङ्गीतैर्वैदिकैर्गुह्यनामभिः। नमस्तुभ्यं महादेव महादेव्यै नमोनमः॥११२॥
प्रसादात्तव बुद्ध्यादिर्जगतदेतत्प्रवर्तते। मूढाश्च देवताः सर्वा नैनं बुध्यत शङ्करम्॥११३॥
महादेवमिहायातं सर्वदेवनमस्कृतम्। गच्छध्वं शरणं शीघ्रं यदि जीवितुमिच्छत॥११४॥
ततः सम्भ्रमसम्पन्नास्तुष्टुवुःप्रणताः सुराः। नमोनमोमहादेव पाहिपाहि जगत्पते!॥११५॥
दुराचारन्भवानस्मानात्मद्रोहपरायणान्। अहोपश्यतनोमौड्यंजानन्तस्तवभाविनीम्॥११६॥
भार्यामुमां महादेवीं तथाऽप्यत्र समागताः। युक्तमेतद्यदस्माकं राज्यं गृह्येत चासुरैः॥११७॥
येषामेवंविधाबुद्धिरस्माभिः किंकृतं त्विदम्। अथवानोनदोषोऽस्तिपशवोहिवयंयतः॥११८॥

विधाता ब्रह्मा उस बालक रूपी महादेव के पास प्रणत होकर उनसे पुराणोक्त सामगीत तथा वैदिक गुह्य नामों का उल्लेख करते हुये स्तव करने लगे। ब्रह्मा ने कहा—"हे महादेव! आपको नमस्कार! महादेवी को भी नमस्कार! आपकी कृपा से बुद्धि आदि वृत्ति प्रवृत्त होती हैं। आपको प्रणाम!

तब ब्रह्मा देवताओं से कहने लगे—"हे मूढ़ देवताओं! क्या तुमको यह ज्ञान नहीं हो रहा है कि यहां सर्वदेव नमस्कृत महादेव शंकर ही इस प्रकार से आये हैं? यदि जीवन की अभिलाषा हो, तब शीघ्र इनकी शरण में आओ।" ब्रह्मा का यह वचन सुनकर सभी देवता अपने कृत्य से लज्जित होकर शंकर को प्रणाम करके स्तुति करने लगे। देवगण कहते हैं—हे महादेव! आपको प्रणाम! हे जगत्पति! हम सभी आत्मद्रोह परायण दुराचारी हैं। आप हमारी रक्षा करें। आपको प्रणाम! अहा! हमारी मूढ़ता देखिये, हमें यह ज्ञात है कि उमादेवी आपकी पत्नी होंगी, तब भी हम इस स्वयंवर में उपस्थित हैं! हमारी जब ऐसी बुद्धि है, तभी असुरगण ने हमारा

राज्य छीना है, वही उचित है। यह हमने क्या किया? हे विभो! इस सम्बन्ध में हमारा दोष नहीं है, क्योंकि हम पशु हैं।।११२-११८।।

त्वयैव पतिना सर्वे प्रेरिताः कुर्महे विभो। ईश्वरः सर्वभूतानां पतिस्त्वं परमेश्वरः॥११९॥
भ्रामयस्यखिलंविश्वंयन्त्रारूढंस्वमायया। येनविभ्रामितामूढाःसमायाताःस्वयम्वरम्॥१२०॥
तस्मै पशूनां पतये नमस्तुभ्यं प्रसीद नः। अथ तेषां प्रसन्नोऽभूद्देवदेवस्त्रियम्बकः॥१२१॥

इस सम्बन्ध में यह कहना है कि आप सर्वभूत समूह के पति-स्वामी हैं। आपकी ही प्रेरणा से यह सब हमने किया है। हे परमेश्वर! आप सर्वभूतपति हैं। आप महान् ऐश्वर्यवान् हैं तथा आपने मायारूपी संसारयन्त्र स्थापित किया है, जो समस्त विश्व ब्रह्माण्ड को घुमाता रहता है। जिनकी माया से विभ्रमित होकर हमने ज्ञान खो दिया और इस स्वयम्वर में आये, आप ही वे पशुपति हैं। आपको प्रणाम! आप हम पर प्रसन्न हो जाइये। तदनन्तर प्रभु महादेव देवगण पर प्रसन्न हो गये तथा ब्रह्मा की प्रार्थना सुनकर उन देवगण को पूर्ववत् स्वस्थ किया (जैसे पूषा को पुनः दांत प्रदान किया, भगदेव को पुनः नेत्रयुक्त कर दिया)।।११९-१२१।।

यथापूर्वं चकारैतान्संस्तवाद्ब्रह्मणः प्रभुः। तारकप्रमुखा दैत्याः संक्रुद्धास्तत्रप्रोचिरे॥१२२॥
कोऽयमङ्ग महादेवो न मन्यामो वयं च तम्।
ततः प्रहस्य बालोऽसौ हुङ्कारं लीलया व्यधात्॥१२३॥
हुङ्कारेणैव ते दैत्याः स्वमेव नगरं गताः। विस्मृतं सकलं तेषां स्वयम्वरमुखं च तत्॥१२४॥
महादेवप्रभावेण दैत्यानां घोरकर्मणाम्। एवं यस्य प्रभावो हि देवदैत्येषु फाल्गुन॥१२५॥
कथमीश्वरवाक्यार्थस्तस्मादन्यत्रमुच्यते। असंशयं विमूढास्तेपश्चात्तापः पुरा महान्॥१२६॥

सभा स्थित तारकादि प्रमुख दैत्यों ने यह देखकर कहा—"यह महादेव कौन है? हम इसे नहीं मानते।" यह सुनकर बालक ने हंसते हुये हुंकार शब्द किया, इससे स्वतः वे सभी दैत्यगण अपने नगर में फेंक दिये गये तथा स्वयंवर की बात सभी दैत्य भूल गये। महादेव के प्रभाव से घोरकर्मा दैत्यों की यह अवस्था हो गयी। हे फाल्गुन अर्जुन! जिसका सुर-असुर वर्ग पर ऐसा प्रभाव है, उनके अतिरिक्त यह ईश्वर शब्द का प्रयोग कैसे किया जाये? अतएव जो इस भुवन मण्डल के ईश्वर त्रिलोचन का भजन नहीं करते, वे अवश्य विमूढ़ हैं। उनको परिणाम में अनुताप ही करना होगा।।१२२-१२६।।

ईश्वरं भुवनस्याऽस्य ये भजन्ते न त्र्यम्बकम्। ततःसंस्तूयमानःस सुरैःपद्मभुवादिभिः॥१२७॥
वपुश्चकार देवेशस्त्र्यम्बकःपरमाद्भुतम्। तेजसा तस्य देवास्ते सेन्द्रचन्द्रदिवाकराः॥१२८॥
सब्रह्मकाः ससाध्याश्च वसुर्विश्वेच देवताः। सयमाश्च सरुद्राश्चचक्षुरप्रार्थयन्प्रभुम्॥१२९॥
तेभ्यः परतमं चक्षुः स्ववपुर्द्रष्टुमुत्तमम्। ददावम्बापतिः शर्वो भवान्याश्चाऽचलस्यच॥१३०॥
लब्ध्वा रुद्रप्रसादेन दिव्यं चक्षुरनुत्तमम्। सब्रह्मकास्तदा देवास्तमपश्यन्महेश्वरम्॥१३१॥
ततो जगुश्च मुनयः पुष्पवृष्टिं च खेचराः। मुमुचुश्च तदा नेदुर्देवदुन्दुभयो भृशम्॥१३२॥
जगुर्गन्धर्वमुख्याश्च ननृतुश्चाऽप्सरोगणाः। मुमुदुर्गणपाः सर्वे मुमोदाऽम्बा च पार्वती॥१३३॥

ब्रह्माद्यामेनिरे पूर्णां भवानीं च निरीश्वरम्। तस्य देवीततोहृष्टासमक्षंत्रिदिवौकसाम्।
पादयोः स्थापयामास मालां दिव्यां सुगन्धिनीम्॥१३४॥
साधुसाध्विति सम्प्रोच्य तया तं तत्र चर्चितम्॥१३५॥
सह देव्या नमश्चक्रुः शिरोभिर्भूतलाश्रितैः। सर्वे सब्रह्मका देवा जयेतिचमुदा जगुः॥१३६॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कुमारेश्वरमाहात्म्ये श्रीमहादेववैवाहिकोत्साहवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥२५॥

—✻❀✻—

जो इस भुवनमण्डल के ईश्वर त्रिलोचन का भजन नहीं करते, वे निश्चित ही मूढ़ हैं तथा उनको परिणाम में अनुताप करना पड़ जाता है। इसके अनन्तर देवगण से स्तुत होकर देवेश त्र्यम्बक ने परम अद्भुद् शरीर धारण किया। उनके शरीर के तेज से प्रतिहत होकर ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, साध्य, वसु, विश्वेदेव, यम, रुद्रादि सभी ने प्रभु से उनको देखने हेतु नेत्र की प्रार्थना किया। अम्बिकापति शर्वदेव ने उनको, पार्वती को तथा हिमालय को अपने शरीर को देखने हेतु उत्तम चक्षु प्रदान किया। उन लोगों ने दिव्य चक्षु प्राप्त करके महेश्वर के इस रूप का अवलोकन किया। उस समय मुनिगण सामादि का गान तथा आकाशचारी प्राणी पुष्पवर्षा करने लगे। देवदुन्दुभियों का महाशब्द गुंजायमान होने लगा। गन्धर्वप्रधानगण गायन तथा अप्सरायें नृत्य करने लगीं। इससे शंकर के गणपतियों को तथा जगदम्बा पार्वती को अत्यन्त आनन्द होने लगा। अब ब्रह्मादि देवताओं ने देवी पार्वती तथा गिरिराज को कृतार्थ मान लिया। तत्पश्चात् देवी गिरिनन्दिनी ने देवगण के समक्ष देवदेव त्रिलोचन के चरणों पर दिव्य सुगन्धित माला का अर्पण किया। उस समय ब्रह्मादि देवता साधुवाद शब्द द्वारा वहां विराजमान महेश्वर को भूतल पर नतशिर होकर प्रणामोपरान्त सानन्द मन से जयजयकार करने लगे॥१२७-१३६॥

॥पञ्चविंश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

षड्विंशोऽध्यायः

शिवगौरी विवाह वर्णन

नारद उवाच

अथ ब्रह्मा महादेवमभिवाद्य कृताञ्जलिः। उद्वाहः क्रियतां देव इत्युवाच महेश्वरम्॥१॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्राहेदं भगवान्हरः। पराधीनावयं ब्रह्मन्हिमाद्रेस्तव चाऽपि यत्॥२॥
यद्युक्तं क्रियतां तद्धि वयं युष्मद्वशेऽधुना। ततो ब्रह्मा स्वयं दिव्यं पुरं रत्नमयंशुभम्॥३॥
उद्वाहार्थं महेशस्य तत्क्षणात्समकल्पयत्। शतयोजनविस्तीर्णं प्रासादशतशोभितम्॥४॥

पुरेतस्मिन्महादेवः स्वयमेव व्यतिष्ठत। ततः सप्तमुनीन्देवश्चिन्तिताभ्यागतान्पुरः॥५॥
प्राहिणोदम्बिकायाश्चस्थिरपत्रार्थमीश्वरः। सारुन्धतीकास्तेतत्रह्लादयन्तोहिमाचलम्॥६॥
सभार्यमीश्वरगुणैः स्थिरपत्राणि चादधुः। ततः स्पूजितास्तेनपुनरागम्य तेऽचलात्॥७॥
न्यवेदयंस्त्र्यम्बकाय स च तानभ्यनन्दत। उद्वाहार्थं ततो देवो विश्वं सर्वं न्यमन्त्रयत्॥८॥

नारद कहते हैं—इसके पश्चात् ब्रह्मा ने अंजलिबद्ध होकर महादेव का अभिवादन करके कहा—"हे देव! अब विवाह क्रिया का समाधान समापन करिये।" यह सुनकर भगवान् हर ने कहा—"हे ब्रह्मन्! इस समय मैं पराधीन हूं। अतः हिमवान् तथा आपलोगों को जो उचित प्रतीत हो, वह करिये। मैं इस समय आपही लोगों की आज्ञा का अनुवर्त्ती हूं।" यह सुनकर ब्रह्मा ने स्वयं तत्क्षण एक शतयोजन विस्तीर्ण सैकड़ों भवनों से शोभित रत्नमय दिव्य नगर की कल्पना शिव के विवाहार्थ किया। महादेव स्वयं ही उस पुर में अधिष्ठित हो गये। तदनन्तर महेश्वर ने सप्तर्षियों का स्मरण किया। वे तत्काल स्मरण किये जाते ही देवी अरुन्धती के साथ उस पुरी में महादेव के समक्ष आविर्भूत हो गये। महेश्वर ने उनको यह अधिकार प्रदान किया कि वे विवाह के लिये सभी जगह स्थिरपत्र प्रेषित करें। (स्थिरपत्र अर्थात् निमन्त्रण पत्र प्रतीत होता है)। उन सप्तर्षिगण ने देवी अरुन्धती के साथ भगवान् भवदेव की गुणावली का उल्लेख करते हुये स्थिरपत्र सम्पादित किया। तदनन्तर उन्होंने हिमाचल से यथायोग्य पूजित होकर वहां से लौटकर समस्त वृत्तान्त भगवान् त्रिलोचन को बतलाया। तत्पश्चात् सप्तर्षिगण ने महादेव के विवाहार्थ समस्त जगत् को आमन्त्रित किया।।१-८।।

समागतं च यत्सर्वं विना दैत्यैर्दुरात्मभिः। स्थावरं जङ्गमंयच्चविस्वंविष्णुपुरोगमम्॥९॥
सब्रह्मकं पुरारातेर्महिमानमवर्धयत्। ततस्तं विधिराहेदं गन्धमादनपर्वते॥१०॥
पुरे स्थितं विवाहस्य देव कालः प्रवर्तते। ततस्तस्य जटाजूटेचन्द्रखण्डं पितामहः॥११॥
बबन्ध प्रणयोदारविस्फारितविलोचनः। कपर्दं शोभनं विष्णुः स्वयंचक्रेऽस्यहर्षतः॥१२॥
कपालमालां विपुलां चामुण्डा मूर्ध्न्यबन्धत। उवाच चाऽपि गिरिशंपुत्रं जनय शङ्कर॥१३॥
योदैत्येन्द्रकुलंहत्वा मांरक्तैस्तर्पयिष्यति। सूर्योज्वलच्छिखारक्तंभाभासितजगत्त्रयम्॥१४॥
बबन्ध देवदेवस्यस्वयमेवप्रमोदतः। शेषवासुकिमुख्याश्चज्वलन्तस्तेजसा शुभाः॥१५॥
आत्मानं भूषणस्थाने स्वयं ते चक्रुरीश्वरे। वायवश्च ततस्तीक्ष्णशृङ्गं हिमगिरिप्रभम्॥१६॥
वृषं विभूषयामासुर्नानारत्नोपपत्तिभिः। शक्रो गजाजिनं गृह्य स्वयमग्रे व्यवस्थितः॥१७॥

तब वहां दुरात्मा दैत्यों को छोड़ कर ब्रह्मा तथा विष्णु आदि प्रमुख देवगण तथा स्थावर-जंगम समस्त जगत् वासी ने उपस्थित होकर भगवान् त्रिपुरारि की महिमा का वर्द्धन किया। महादेव गन्धमादन पर्वतस्थ दिव्यपुर में स्थित होकर विवाह का उद्योग कर रहे थे। ब्रह्मा ने उनसे कहा—"हे देव! विवाह का समय आ रहा है। आप विवाह सज्जा से सज्जित हो जाइये।" यह कहकर ब्रह्मा ने प्रेमपूरित होकर अपने उदार नेत्रों को विस्फारित करते हुये शंकर की जटा में चन्द्रखण्ड को आबद्ध कर दिया। विष्णु ने उनके जटाजूट को सहर्ष सज्जित किया। चामुण्डा देवी ने विपुल कपालमाला गिरिवर के मस्तक पर बांध दिया तथा कहा—"हे शंकर! आप एक पुत्र का उत्पादन करिये। वह पुत्र दैत्यदल का वध करके उसके रक्त से हमारा तर्पण करे।" तब सूर्य ने आनन्दित होकर त्रिजगत् को

उद्भासित करने वाली एक उज्वल मणि को देवदेव की शिखा पर बांध दिया। शेष, वासुकि आदि प्रमुख सर्प तेज से उज्वल अपने शरीर के साथ भूषण की जगह स्वयं भूषणाकृति होकर महेश्वर के शरीर पर लिपट गये। वायुगण ने महेश्वर के वाहन तीक्ष्णशृङ्ग हिमगिरि जैसे विशाल वृष को नाना रत्नों से सजा दिया। इन्द्र ने गजचर्म लाकर स्वयं उसे व्यवस्थित किया।।९-१७।।

विना भस्म समाधाय कपाले रजतप्रभम्। मनुजास्थिमयीं मालां प्रेतनाथश्चवन्दनम्।।१८।।
वह्निस्तेजोमयं दिव्यमजिनं प्रददौ स्थितः। एवं विभूषितःसर्वैर्भृत्यैरीशोबभौभृशम्।।१९।।
ततो हिमाद्रेः पुरुषा वीरकंप्रोचिरेवचः। मा भूत्कालात्ययः शीघ्रंभवस्यैतन्निवेद्यताम्।।२०।।

यमराज कपालपात्र में भस्म से रहित रजतकान्तिमयी मनुष्यास्थि की माला लाये तथा महेश्वर की चरण वन्दना द्वारा उनको प्रदान किया। अग्निदेव ने दिव्य तेजयुक्त अंजन प्रदान किया। ईश्वर भी अनुगत भक्तों द्वारा इस प्रकार से सज्जित किये जाकर अतीव शोभायुक्त हो गये। तदनन्तर हिमालय के लोगों ने वीरक नामक शंकर के द्वारपाल से कहा "विवाह का लग्न व्यतीत न हो जाये, तुम जाकर यह बात भगवान् भवदेव से निवेदित करो"।।१८-२०।।

ततो देवं प्रणम्याऽऽह वीरकः करसम्पुटी। त्वरयन्ति महेशानं हिमाद्रेःपुरुषास्त्वमी।।२१।।
इति श्रुत्वा वचो देवः शीघ्रमित्येवचाऽब्रवीत्। सप्त वारिधयस्तस्य चक्रुर्दर्पणदर्शनम्।।२२।।
तत्रैक्षत महादेवः स्वरूपं स जगन्मयम्। ततो बद्धाञ्जलिर्धीमान्स्थाणुं प्रोवाच केशवः।।२३।।
देवदेवमहादेव त्रिपुरान्तक शङ्कर!। शोभसेऽनेन रूपेण जगदानन्ददायिना।।२४।।
महेश्वर यथा साक्षादपरस्त्वं महेश्वरः। ततः स्मयन्महादेवो जयेति भुवने श्रुतः।।२५।।

वीरक ने हाथ जोड़कर भगवान् को प्रणाम करके कहा—"हे महेश्वर! हिमालय के लोग आपसे शीघ्रता करने हेतु निवेदन कर रहे हैं।" महेश्वर ने यह बात सुनकर 'जल्दी करो' यह कहा। सप्तसमुद्र भगवान् शिव के लिये दर्पण रूप हो गये। महादेव ने उन सप्तसमुद्र में अपने जगन्मय रूप को देखा। तब धीमान् केशव ने हाथ जोड़कर स्थाणुदेव शंकर से कहा—"हे देवदेव! महादेव! त्रिपुरान्तक शंकर महेश्वर! इस जगत् को आनन्द देने वाले रूप द्वारा आप तो अन्य महेश्वर प्रतीत हो रहे हैं।" तब महादेव ने त्रिभुवनवासीगण द्वारा उच्चरित जय शब्द सुना।।२१-२५।।

करमालम्ब्य विष्णोश्च वृषभं रुरुहे शनैः। ततश्च वसवो देवाः शूलं तस्य न्यवेदयन्।।२६।।
धनदोनिधिभिर्युक्तःसमीपस्थस्ततोऽभवत्। सशूलपाणिर्विश्वात्मासञ्चचालततोहरः।।२७।।
देवदुन्दुभिनादैश्च पुष्पासारैश्च गीतकैः। नृत्यद्भिरप्सरोभिश्च जयेति च महास्वनैः।।२८।।
सव्यदक्षिणसंस्थानौ ब्रह्मविष्णू तु जग्मतुः। हंसं च गरुडं चैव समारुह्यमहाप्रभौ।।२९।।

यह जयजयकार सुनते तथा विष्णु का हाथ पकड़े हुये शंभु ने धीरे-धीरे वृष के ऊपर आरोहण किया। तब वसुगण ने प्रभु को शूल अर्पित किया। धनपति कुबेर निधियों के साथ उनके निकट आये। तत्पश्चात् विश्वात्मा ने शूल लेकर गमन किया। अब देवदुन्दुभि वादन होने लगा। आकाश से पुष्पवर्षा होने लगी तथा संगीत, अप्सराओं का नृत्य तथा उच्च स्वर से जय-जयकार होने लगी। भगवान् के बायीं ओर महातेजस्वी ब्रह्मा हंस पर तथा दाहिनी ओर विष्णु गरुड़ारूढ़ होकर चल रहे थे।।२६-२९।।

अथादितिर्दितिः सा च दनुःकद्रूःसुपर्णजा। पौलोमीसुरसाचैव सिंहिका सुरभिर्मुनिः॥३०॥
सिद्धिर्माया क्षमा दुर्गा देवी स्वाहा स्वधा सुधा।
सावित्री चैव गायत्री लक्ष्मीः सा दक्षिणा द्युतिः॥३१॥
स्पृहा मतिर्धृतिर्बुद्धिर्मन्थिर्ऋद्धिःसरस्वती। राकाकुहूः सिनीवालीदेवीभानुमतीतथा॥३२॥
धरणीधारणी वेला राज्ञी चाऽपिचरोहिणी। इत्येताश्चान्यदेवानांमातरःपत्न्यस्तथा॥३३॥
उद्वाहं देवदेवस्य जग्मुः सर्वा मुदान्विताः। उरगा गरुडा यक्षा गन्धर्वाःकिन्नरानराः॥३४॥
सागरा गिरयो मेघा मासाः सम्वत्सरास्तथा। वेदा मन्त्रास्तथा यज्ञाः श्रौता धर्माश्च सर्वशः॥३५॥
हुङ्काराः प्रणवाश्चैव इतिहासाः सहस्त्रशः। कोटिशश्चतदा देवा महेन्द्राद्याःसवाहनाः॥३६॥
अनुजग्मुर्महादेवं कोटिशोऽर्बुदशश्च हि। गणाश्च पृष्ठतो जग्मुः शङ्खवर्णाश्च कोटिशः॥३७॥

तत्पश्चात् अदिति, दिति, दनु, कद्रु, शची, सुरसा, सिंहिका, सुरभि, मुनि, सिद्धि, माया, क्षमा, दुर्गा, स्वाहा, स्वधा, सुधा, सावित्री, गायत्री, लक्ष्मी, दक्षिणा, द्युति, स्पृहा, मति, धृति, बुद्धि, मन्थि, ऋद्धि, सरस्वती, राका, क्रतु, सिनिवाली, देवी भानुमती, धरणी, धारिणी, बेला, रात्रि, रोहिणी, अन्य वेदमातायें तथा सभी देवपत्नियां मुदित होकर देवेश्वर शम्भु के विवाह में आईं। सर्प, गरुड़, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, मनुष्य, सागर, पर्वत, मास, वर्ष, वेद, मन्त्र, यज्ञ, सर्व वैदिक धर्म, हुंकार, प्रणव, हजारों-हजार इतिहास, इन्द्रादि समस्त सवाहन देवता, कोटि-कोटि, अर्बुद-अर्बुद गण इस महोत्सव में आये। उनके पीछे शंख के समान वर्ण वाले करोड़ों गण चल रहे थे।।३०-३७।।

दशभिःकेकराख्याश्चविद्युतोऽष्टाभिरेवच। चतुःषष्ठ्याविशाखाश्च नवभिःपरियात्रिकाः॥३८॥
षड्भिः सर्वान्तकः श्रीमांस्तथैव विकृताननः।
ज्वालाकेशो द्वादशभिः कोटिभिः सम्वृतो ययौ॥३९॥
सप्तभिः समदःश्रीमान्दुन्दुभोऽष्टाभिरेव च। पञ्चभिश्चकपालीशःषड्भिः संह्रदकःशुभः॥४०॥
कोटिकोटिभिरेवैकः कुण्डकः कुम्भकस्तथा। विष्टम्भोऽष्टाभिरेवेहगणपः सर्वसत्तमः॥४१॥
पिप्पलश्चसहस्त्रेण सन्नादश्च तथा बली। आवेशनस्तथाऽष्टाभिः सप्तभिश्चन्द्रतापनः॥४२॥
महाकेशः सहस्त्रेण नन्दिर्द्वादशभिस्तथा। नगः कालः करालश्च महाकालः शतेन च॥४३॥
अग्निकःशतकोट्यावैकोट्याऽग्निमुखएवच। आदित्यमूर्धाकोट्याचकोट्याचैवधनावहः॥४४॥
सन्नागश्च शतेनैव कुमुदः कोटिभिस्त्रिभिः। अमोघः कोकिलश्चैव कोटिकोट्या सुमन्त्रकः॥४५॥
काकपादस्तथा षष्ट्या षष्ट्यासन्तानको गणः। महाबलश्च नवभिर्मधुपिङ्गश्च पिङ्गलः।
नीलो नवत्या सप्तत्या चतुर्वक्त्रश्च पूर्वपात्॥४६॥
वीरभद्रश्चतुः षष्ट्या करणो बालकस्तथा॥४७॥
पञ्चाक्षः शतमन्युश्च मेघम्युश्च विंशतिः। काष्ठकोटिश्चतुः षष्ट्यासुकोशोवृषभस्तथा॥४८॥
विश्वरूपस्तालकेतुः पञ्चाशच्चसिताननः। ईशानोवृद्धदेवश्चदीप्तात्मा मृत्युहा तथा॥४९॥

विषादो यमहा चैव गणो भृङ्गरिटिस्तथा। अशनी हासकश्चैवचतुःषष्ट्यासहस्त्रपात्॥५०॥

केकर नेत्र वाले १० कोटि, विद्युत्कान्ति आठ कोटि, विशाखगण ६४ कोटि तथा पारियात्रिकगण ९ कोटि सख्यकगण बरात के पीछे चले। श्रीमान् सर्वान्तक ६ कोटि, विकृतानन ६ कोटि, ज्वालाकेश गणनायक १२ कोटि गण ने शंभु का अनुगमन किया। श्रीमान् सनद सात कोटि, दुन्दुभ आठ कोटि, कपालीश ५ कोटि, शुभ कर्मा शुभ संह्रदक छः कोटि, कुण्डक १ कोटि, कुंभक १ कोटि, सर्वप्रधान विष्टम्भ गणपति आठ कोटि, पिप्पल सहस्त्र कोटि, बलवान सन्नद सहस्त्रकोटि, आवेशन आठ कोटि, चन्द्रतापन सात कोटि, महकेश सहस्त्र कोटि, महाकेश सहस्त्र कोटि, नन्दी १२ कोटि, नग-काल-कराल तथा महाकाल प्रत्येक सौ कोटि, अग्निक शत कोटि, अग्निमुख एक कोटि, आदित्य मूर्द्धा एक कोटि, धनावह एक कोटि, सन्नाग शत कोटि, कुमुद तीन कोटि, अमोघ-केकिल तथा सुमन्त्रक प्रत्येक ६० कोटि, महाबल-मधुपिङ्ग तथा पिंगल प्रत्येक-प्रत्येक नव कोटि, नील नवकोटि, चतुर्वक्त्र-पूर्वनाद प्रत्येक ७० कोटि, वीरभद्र-करण-बालक प्रत्येक ६४ कोटि, पञ्चाक्ष-शतमन्यु तथा मेघमन्यु—प्रत्येक २० कोटि, काष्ठ १ कोटि, सुकोश तथा वृषभ प्रत्येक ६४ कोटि, विश्वरूप-तालकेतु-सितानन प्रत्येक ५० कोटि, ईशान-वृद्धदेव-दीप्तात्मा-मृत्युहा-विषाद-यमहा-भृङ्गरीटि-अशनी-हासक-सहस्त्रपाद—ये प्रत्येक ६४ कोटिगण महेश्वर देव के अनुगामी थे।।३८-५०।।

एते चाऽन्ये स गणपा असंख्याताम्हाबलाः। सर्वे सहस्त्रहस्ताश्च जटामुकुटधारिणः॥५१॥
चन्द्रलेखावतंसाश्च नीलकण्ठास्त्रिलोचनाः। हारकुण्डलकेयूरमुकुटाद्यैरलङ्कृताः॥५२॥
अणिमादिगुणैर्युक्ताःशक्ताःशापप्रसादयोः। सूर्यकोटिप्रतीकाशास्तत्राऽऽजग्मुर्गणेश्वराः॥५३॥
पातालाम्बरभूमिस्थाः सर्वलोकनिवासिनः। तुम्बुरुर्नारदो हाहाहूहूश्चैव तु सामगाः॥५४॥
तन्त्रीमादाय वाद्यांश्चाऽवादयञ्छङ्करोत्सवे। ऋषयः कृत्स्नशश्चैव वेदगीतांस्तपोधनाः॥५५॥
पुण्यान्वैवाहिकान्मन्त्राञ्जेपुः संहृष्टमानसाः। एवंप्रतस्थेगिरिशोचीज्यमानश्चगङ्गया॥५६॥
तथा यमुनयाचापाम्पतिनाधृतच्छत्रया। स्त्रीभिर्नानाविधालापैर्लाजाभिश्चानुमोदितः॥५७॥

इसके अतिरिक्त और भी असंख्य, महाबली, हजारों हाथ वाले, जटामुकुटधारी, चन्द्रकलावतंस, नीलकण्ठ, त्रिलोचन, हार-केयूर-मुकुट आदि आभूषणों से सज्जित, अणिमादि ऐश्वर्य से सम्पन्न, शाप तथा अनुग्रह कर सकने में समर्थ, करोड़ों सूर्य के समान उज्ज्वल, पाताल-भूमि-नभवासी गणाधीश्वर भी शंभु का अनुगमन कर रहे थे। फलस्वरूप सर्वलोक निवासी प्रायः सभी तब बारात के बाराती होकर शिव के साथ चले। शंकर के इस विवाहोत्सव में तुम्बुरु, नारद, हाहा-हूहू तथा सामगान करने वाले सामगगण भी वाद्यों के द्वारा संगीत तथा वाद्यों का वादन कर रहे थे। तपस्वी ऋषि लोग अत्यन्त हर्ष के साथ वेदोक्त वैवाहिक मन्त्रों का पाठ करते जा रहे थे। इस प्रकार भगवान् की बारात चली। गंगा तथा यमुना प्रभु का वीजन कर रही थीं। जलपति वरुण ने भगवान् के ऊपर छत्र लगा रखा था। नारीगण नाना प्रकार के आलाप करते-करते धान का लावा फेंक कर भगवान् शंभु का अभिनन्दन कर रही थीं।।५१-५७।।

महोत्सवेन देवेशो गिरिस्थानं विवेश सः। प्रभासत्स्वर्णकलशं तोरणानां शतैर्युतम्॥५८॥
वैडूर्यबद्धभूमिस्थं रत्नजैश्च गृहैर्युतम्। तत्प्रविश्य स्तूयमानो द्वारमभ्याससाद ह॥५९॥

ततो हिमाचलस्तत्र दृश्यते व्याकुलाकुलः। आदिशदात्मभृत्यानां महादेव उपस्थिते॥६०॥

प्रभु गिरीशदेव ने इस प्रकार से महोत्सव के साथ गिरिनगरी में प्रवेश किया। यह गिरिपुर उज्ज्वल स्वर्ण कलश युक्त तथा सैकड़ों तोरणों से युक्त था। उसकी दीवारें वैदूर्य रचित तथा गृह रत्न से निर्मित थीं। गिरिजा यहां गृह में प्रवेश करके गिरिभवन के द्वार पर पहुंचीं। वहां हिमालय व्यग्रता के साथ पहले से खड़े थे। उन्होंने अनुचरों को अनेक आदेश भी दिया।।५८-६०।।

ततो ब्रह्माणमचलो गुरुत्वे प्रार्थयत्तदा। कृत्यानां सर्वभारेषु वासुदेवं च बुद्धिमान्॥६१॥
प्रत्याह च विवाहेऽस्मिन्कुमारीभ्रातरम्विना। भविष्यति कथं विष्णो! लाजहोमादिकर्मसु॥६२॥
सुतोहिममMैनाकः स प्रविष्टोऽर्णवेस्थितः। इति चिन्ताविषण्णंतंविष्णुराहमहामतिः॥६३॥
अत्र चिन्ता न कर्तव्या गिरिराज! कथञ्चन। अहं भ्राता जगन्मातुरेतदेवं च नान्यथा॥६४॥
ततः प्रमुदितःशैलःपार्वतींचस्वलङ्कृताम्। सखभिःकोटिसंख्याभिर्वृतांप्रावेशयत्सदः॥६५॥

इसके पश्चात् हिमालय ने धीमान् ब्रह्मा से गुरुत्व हेतु तथा विष्णु से समस्त कार्य के कर्तृत्व का भार लेने के लिये निवेदन किया। साथ ही उन्होंने विष्णु से कहा—"हे विष्णु! इस विवाह कार्य में कुमारी का भाई नहीं है। इसलिए लाज (लावा) तथा होमादि कर्म कैसे सम्पन्न होगा। मेरा पुत्र मैनाक तो समुद्र में निवास कर रहा है!" महामति ने गिरिराज की चिन्ता का समाधान करते हुये उनसे कहा—"हे गिरिराज! आप इसकी तनिक चिन्ता न करें। इन जगन्माता का तो मैं ही भ्राता हूं। इसमें संशय नहीं है।" हरि का यह वचन सुनकर हिमाचल आनन्दित हो गये। उन्होंने नाना भूषणभूषिता कोटि सखीगण समावृता पार्वती को सभा में प्रविष्ट कराया। तदनन्तर शंकर ने अनुचरों को साथ लेकर १०० योजन विस्तृत विवाहमण्डप में प्रवेश किया।।६१-६५।।

ततो नीलमयस्तम्भंज्वलत्काञ्चनकुट्टिमम्। मुक्ताजालपरिष्कारंज्वलितौषधिदीपितम्॥६६॥
रत्नासनसहस्राढ्यं शतयोजनविस्तृतम्। विवाहमण्डपं शर्वो विवेशाऽनुचरावृतः॥६७॥
ततः शैलः सपत्नीकः पादौ प्रक्षाल्यहर्षितः। भवस्य तेन तोयेनसिषिचे स्वं जगत्तथा॥६८॥
पाद्यमाचमनं दत्त्वा मधुपर्कं च गां तथा। प्रदानस्य प्रयोगं च सञ्चिन्तयन्तिब्राह्मणाः॥६९॥

उस विवाह मण्डप के स्तम्भ नीलम से मण्डित थे। दीवारें जगमगाते स्वर्ण से बनी थीं। सहस्रों रत्नजटित आसन लगे थे, जो रत्न तथा औषधियों की प्रभा से समुद्भासित हो रहे थे। इसके पश्चात् गिरिराज ने सपत्नीक उठकर भगवान् भव शिव के पदद्वय को धोकर उस चरणजल से अपने को और समस्त जगत् को अभिषिक्त किया। क्रमशः पाद्य, आचमनीय, मधुपर्क, गोदान सम्प्रदानार्थ संकल्प आरम्भ करे ब्राह्मण महाचिन्ता से आक्रान्त हो गये।।६६-६९।।

दौहित्रीं कव्यवाहानां दद्मि पुत्रीं स्वकामहम्।
इत्युक्त्वा तस्थिवाञ्छैलो न जानाति हरस्य सः॥७०॥
ततःसर्वानपृच्छत्सकुलं कोऽपिनवेद तत्। ततोविष्णुरिदंप्राहपृच्छ्यन्तेऽन्येकिमर्थतः॥७१॥
अज्ञातकुलतां तस्य पृच्छ्यतामयमेव च। अहिरेव अहेः पादान्वेत्ति नान्यो हिमाचल!॥७२॥
स्वगोत्रं यदि न ब्रूते न देया भगिनी मम। ततो हासस्तदा जज्ञे सर्वेषां सुमहास्वनः॥७३॥

शैलराज तब संकल्प में 'कव्यवाहनों की दौहित्री, मेरी पुत्री' इत्यादि वाक्य के अनन्तर वरपक्षीय पितृ-मातृ के सम्बन्ध में कुछ न जानने के कारण आगे नहीं बोल सके। तब हिमालय ने सभा के सभी लोगों से यह पूछा, तथापि कोई भी त्रिलोचन देव के कुल के सम्बन्ध में कुछ भी न बता सका। अतः विष्णु ने कहा—"आप अन्य लोगों से क्यों पूछ रहे हैं? इनके अज्ञात कुल के सम्बन्ध में इनसे ही प्रश्न करिये। हे हिमालय! सर्प ही सर्प के पैर को जानता है। अन्य नहीं जान सकते। ये यदि अपना गोत्र न बता सकें, तब मेरी बहन पार्वती को प्रदान नहीं किया जा सकेगा।" यह वाक्य सुनकर सभा के सभी लोग उच्च स्वर में हंसने लगे।।७०-७३।।

निवृत्तश्च क्षणाद्भूयः किंवक्ष्यतिहरस्त्विति। ततोविमृश्यबहुधाकिञ्चिद्धीताननोयथा।।७४।।
लज्जाजडः स्मितं चक्रे ततः पार्थ! सवैहरः। ततो विशिष्टा ब्रुवतिशीघ्रं कालोऽतिवर्तते।।७५।।
हरिः प्राह महेशानं विभ्यदावेडयहं तव। मातामहं च पितरं प्रयोगं शृणु भूधर!।।७६।।
आत्मपुत्रायतेशम्भोआत्मदौहित्रकाय ते। इत्युक्ते विष्णुनासर्वेसाधुसाध्वितितेजगुः।।७७।।

देवोऽव्युदाहरेद्बुद्धिं सर्वेभ्योऽप्यधिकां वराम्।
ततः सैलस्तथा चोक्त्वा दत्त्वा देवीं च सोदकम्।।७८।।

आत्मानं चापि देवाय प्रददौ सोदकंनगः। ततःसर्वेतुष्टुवुस्तं विवाहंविस्मयान्विताः।।७९।।
दाता महीभृतां नाथोहोतादेवश्चतुर्मुखः। वरः पशुपतिःसाक्षात्कन्याविश्वारणिस्तथा।।८०।।
ततः स्तुवत्सु मुनिषु पुष्पवर्षे महत्यपि। नदत्सुदेवतूर्येषु करं जग्राह त्र्यम्बकः।।८१।।

एक क्षण पश्चात् हर कुछ कहने लगे। उनकी ओर सब एकाग्र हो गये। हे पृथानन्दन! हरदेव ने नाना चिन्तन करके कुछ भय एवं लज्जा के साथ जड़ होकर पुनः हास्य किया। तदनन्तर वहां लोगों ने कहा कि अब विलम्ब न करें। लग्न बीत रहा है। तब विष्णु ने इन भीत महादेव से कहा—"मैं आपके मातामह तथा पिता को जानता हूं। आप उसका प्रयोग करें। हे शम्भु! "आत्मपुत्राय-आत्मदौहित्राय" यही वाक्य तो होगा?" विष्णु का यह वचन सुनकर सभी साधुवाद देने लगे। सबने कहा—"विष्णुदेव ने सर्वोत्तम तथा सर्वश्रेष्ठ बुद्धि को उद्भासित किया है।" तदनन्तर गिरिराज ने इसी वाक्य के साथ ही हाथ में जल लेकर देवी गिरिजा को प्रदान करके जल के साथ आत्मदान भी किया। तब सभी लोग सन्तुष्ट होकर विस्मयान्वित चित्त से इस विवाह की प्रशंसा कर रहे थे। कह रहे थे "अहा! गिरिराज दाता हैं। चतुरानन ब्रह्मा होता हैं। पशुपतिदेव वर हैं, जगन्माता कन्या हैं। यह विवाह अत्यन्त आश्चर्य है।" मुनिगण तब अनेक प्रशंसा करने लगे। पुष्पवर्षा होने लगी। देवगण दुन्दुभि वादन करने लगे। तब त्रिलोचन ने देवी का हाथ ग्रहण किया।।७४-८१।।

देवो देवीं समालोक्य सहज्जां हिमशैलजाम्। न तृप्यतिनचाह्लादत्साचदेवंवृषध्वजम्।।८२।।
तत्र ब्रह्मादिमुनयो देवीमद्भुतरूपिणीम्। पश्यन्तः शरणं जग्मुर्मनसा परमेश्वरम्।।८३।।
मा मुह्याम पार्वतीं च यथा नारदपर्वतौ। तत्रस्तथैव तच्चक्रे सर्वेषामीप्सितं वचः।।८४।।
ततो देवैश्च मुनिभिः संस्तुतः परमेश्वरः। प्रविवेश शुभां वेदिं मूर्तिमज्ज्वलनाश्रिताम्।।८५।।
वेधाः श्रुतीरितैर्मन्त्रैर्मूर्तिमाद्भिरुपस्थितैः। मूर्तमग्निं जुहाव त्रिः परिक्रम्य च तं हरः।।८६।।

लज्जावती शैलपुत्री को देखकर भगवान् की तृप्तिसीमा नहीं रही। देवी ने भी वृषध्वज को देखकर लज्जा

के कारण अपनी प्रसन्नता नहीं प्रकट कर पा रही थीं। ब्रह्मा आदि देवता एवं मुनिगण अद्भुद् रूपा देवी को देखकर मन ही मन परमेश्वर के शरणागत हो गये। उनके मन में यह विचार आया कि हम कहीं इनको देखकर मोहग्रस्त न हो जायें। महादेव ने उनके इस अभिप्राय का साधन किया। तदनन्तर परमेश्वर शिव, देवता तथा मुनिगण द्वारा स्तुत होकर मूर्त्तिमान अग्नियुक्त शुभ वेदी पर आसीन हो गये। (अर्थात् उस वेदी के पास अग्निवेदी भी बनी थी)। तब विधाता ने श्रुति में कहे गये मन्त्रों से अग्निस्थापन आदि कार्य सम्पादित किया। वहां अग्नि तथा मन्त्रसमूह मूर्त्तिमान होकर विराजित थे। महेश्वर ने इस अग्नि की ३ परिक्रमा करके यथाविधान आहुति दिया।।८२-८६।।

लाजाहोम उमाभ्राता प्राहतंसस्मितंहरिः। बहवो मिलिताःसन्तिलोकाःसम्मर्द ईश्वर॥८७॥
सावधानेन रक्ष्याणि भूषणानि त्वया हर। ततो हरश्च तं प्राह स्वजने माऽतिगोपय॥८८॥
किञ्चित्प्रार्थय दास्यामि प्राह विष्णुस्ततो वरम्।
त्वयि भक्तिर्दृढा मेऽस्तु स च तद्दुर्लभं ददौ॥८९॥
ददतुः सृष्टिसंरक्षां ब्रह्मणे दक्षिणामुभौ। अग्नये यज्ञभागांश्च प्रीतौ हरजनार्दनौ॥९०॥
भृग्वादीनां ततो दत्त्वा श्रुतिरक्षणदक्षिणाम्। ततोगीतैश्चनृत्यैश्चभोजनैश्चयथेप्सितैः॥९१॥
महोत्सवैरनेकैश्च विस्मयं समपद्यत। विसृज्य लोकं तं सर्वं किमिच्छादानकैर्भवः॥९२॥

लाजाहोम के समय उमा के भाई विष्णु ने सस्मित होकर कहा—"हे ईश्वर! यहां अनेक लोग आये हैं। अधिक भीड़ हो गयी है। आप अपने आभूषण (सर्पगण) की रक्षा करें।" प्रभु शंकर ने भी कहा—"आत्मीयों से कुछ भी (आभूषणादि) नहीं छिपाया जाता। विष्णु प्रार्थना करें। मैं उन्हें वह प्रदान करूंगा।" तब विष्णु ने यह वर मांगा कि आपमें मेरी दृढ़ भक्ति बनी रहे। शंकर ने भी यह दुर्लभ वर प्रदान कर दिया। हरि तथा हर, दोनों ने प्रसन्नतापूर्वक ब्रह्मा को दक्षिणा स्वरूप सृष्टि रक्षा का भार प्रदान किया। यज्ञभाग अग्नि को देकर भृगु आदि प्रधान ऋषिगण को सृष्टिरक्षण का भार प्रदान किया। तदनन्तर इच्छित भोजन, नृत्य-गीतादि प्रभृति नाना महोत्सव से सभी समागत लोग अत्यन्त तृप्त तथा विस्मित हो गये। महेश्वर ने उनमें से प्रत्येक को इच्छानुरूप दान द्वारा सन्तुष्ट करके विदा किया।।८७-९२।।

सरस्वत्या च पितरौ देव्याश्चाऽऽश्वास्य दुःखितौ।
आमन्त्र्य हिमशैलेन्द्रं ब्रह्माणं च सकेशवम्॥९३॥
जगाम मन्दरगिरिं गिरिणा सानुगोऽर्चितः॥९४॥
ततो गते भगवति नीललोहिते सहोमया गिरिममलं हि भूधरः।
सबान्धवो रुदिति हि कस्य नो मनो विसंष्ठुलं जगति हि कन्यकापितुः॥९५॥
इमं विवाहं गिरिराजपुत्र्याः शृणोति चाऽध्येति च यो नरः शुचिः।
विशेषतश्चाऽपि विवाहमङ्गले स मङ्गलं वृद्धिमवाप्नुते चिरम्॥९६॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कुमारेशमाहात्म्ये हरगौरीविवाहवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः।।२६।।

तत्पश्चात् मधुर वाक्यों से भगवती गिरिजा के माता-पिता को आश्वस्त करके उनकी आज्ञा लेकर तथा विष्णु एवं ब्रह्मा से सादर विदा लेकर भगवान् शिव पिता हिमालय द्वारा समर्पित पार्वती को तथा अपने अनुचरों को साथ लेकर मन्दराचल पर्वत पहुंचे। भगवान् नीललोहित के शैलतनया गिरिजा के साथ प्रस्थान करने के अनन्तर शैलराज हिमालय बान्धवों के साथ रुदन करने लगे। जगत् में किस कन्या के पिता का मन विह्वल नहीं होता? जो मानव पवित्र होकर गिरिकन्या के इस विवाह वृत्तान्त को कभी भी, विशेषतः मांगलिक विवाह काल में सुनता है, उसे चिरकाल पर्यन्त मंगल की प्राप्ति होती है तथा उसकी वृद्धि होती है।।९३-९६।।

॥षड्विंश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

सप्तविंशोऽध्यायः

पार्वती प्रकोप, शंकर गण वर्णन, पार्वती के कृष्ण वर्ण के प्रति शिव का व्यंग

नारद उवाच

ततो निरुपमं दिव्यं सर्वरत्नयंशुभम्। ईशाननिर्मितंसाक्षात्सह देव्याऽऽविशद्गृहम्॥१॥
तत्राऽसौ मन्दरगिरौ सह देव्या भगाक्षहा। प्रासादे तत्र चोद्याने रेमे संहृष्टमानसः॥२॥
एतस्मिन्नन्तरेदेवास्तारकेणाऽतिपीडिताः। प्रोत्साहितेनचात्यर्थमयाकलिचिकीर्षुणा॥३॥
आसाद्य ते भवं देवं तुष्टुवुर्बहुधा स्तवैः। एतस्मिन्नन्तरे देवी प्रोद्वर्तयत गात्रकम्॥४॥
उद्वर्तनमलेनाऽथ नरं चक्रे गजाननम्। देवनां संस्तवैः पुण्यैः कृपयाऽमिपरिप्लुता॥५॥
पुत्रेत्युवाच तं देवी ततः संहृष्टमानसा। एतस्मिन्नन्तरे शर्वस्तत्रागत्य वचोऽब्रवीत्॥६॥

नारद कहते हैं—तदनन्तर भगवान् शिव ने मन्दराचल जाकर साक्षात् ईश्वर निर्मित सर्वरत्नमय दिव्य निरुपम भवन में देवी के साथ प्रवेश किया। भग के नेत्रों का नाश करने वाले शिव वहां प्रसन्नतापूर्वक देवी के साथ उस प्रासाद तथा उद्यान में विहार करने लगे। तब विवाद उत्थित करने के लिये मैंने तारक असुर से पीड़ित देवगण को अत्यन्त उत्साह प्रदान किया। वे शिव के पास जाकर विविध स्तुति वाक्यों से स्तव करने लगे। इस समय देवी देह में उपटन लगा रही थीं। उन्होंने उस उपटन के मैल से एक गजमुख मनुष्यमूर्त्ति का निर्माण किया। देवगण की पुण्य स्तुति सुनकर भगवती करुणाप्लुत चित्त से उसे ही पुत्र कहकर उसका आदर करने लगीं। तभी वहां भगवान् शंभु आये तथा उन्होंने देवी से कहा।।१-६।।

पुत्रस्तवाऽयं गिरिजे शृणु यादृग्भविष्यति। विक्रमेण च वीर्येण कृपया सदृशो मया॥७॥
यथाऽहं तादृशश्चाऽसौ पुत्रस्तेभवितागुणैः। येच पापादुराचारा वेदान्धर्मंद्विषन्तिच।
तेषामामरणान्तानि विघ्नान्येष करिष्यति॥८॥

ये च मां नैव मन्यन्ते विष्णुं वाऽपि जगद्गुरुम्॥९॥
विघ्निता विघ्नराजेन ते यास्यन्ति महत्तमः। तेषां गृहेषु कलहः सदा नैवोपशाम्यति॥१०॥

भगवान् शिव कहते हैं—"हे गिरिजे! तुम्हारा यह पुत्र जैसा होगा, उसे सुनो! यह मेरे समान गुणी होगा। यह विक्रम, वीर्य तथा दया में मेरे ही तुल्य होगा। जो पापी, दुराचारी तथा जो वेद-धर्म के प्रति द्वेष परायण होंगे, यह पुत्र उनके प्रति उनकी मृत्यु तक विघ्न उत्पन्न करेगा। जो मुझे तथा जगद्गुरु विष्णु को नहीं मानते, वे इन विघ्नराज द्वारा विघ्नों से अभिभूत होकर महत् तम से आच्छन्न नरकों में गमन करेंगे। तुम्हारे इस पुत्र द्वारा उत्पन्न विघ्नों से उनके गृह को कभी भी छुटकारा नहीं होगा। उनका समूल नाश होगा"।।७-१०।।

पुत्रस्य तव विघ्नेन समूलं तस्य नश्यति। येषां न पूज्याःपूज्यन्तेक्रोधासत्यपराश्रये॥११॥
रौद्रसाहसिका ये च तेषांविघ्नंकरिष्यति। श्रुतिधर्माञ्ज्ञातिधर्मान्पालयन्तिगुरूंश्चये॥१२॥
कृपालवो गतक्रोधास्तेषां विघ्नं हरिष्यति। सर्वेधर्माश्चकर्माणितथानानाविधानिच॥१३॥
सविघ्नानि भविष्यन्तिपूजयाऽस्यविना शुभे!। एवं श्रुत्वाउमाप्राहएवमस्त्वितिशङ्करम्॥१४॥

"जो पूज्य की पूजा नहीं करते, जो क्रोधी तथा असत्यपरायण तथा दुःसाहसी हैं, यह पुत्र उनके प्रति विघ्नोत्पादन करेगा। जो गुरुवर्ग की यथोचित पूजा करते हैं, वैदिक धर्म, ज्ञातिधर्म का पालन करते हैं, जो दयालु तथा क्रोधरहित हैं, उनके विघ्नों को तुम्हारा पुत्र नष्ट करेगा। हे शुभे! इनकी पूजा के बिना समस्त धर्म-कर्म विविध विघ्न से आक्रान्त रहेंगे।" यह सुनकर भगवती उमा ने शंकर से कहा—'यही हो'।।११-१४।।

ततो बृहत्तनुः सोऽभूत्तेजसा द्योतयन्दिशः। ततो गणैःसमं शर्वःसुराणांप्रददौ च तम्।
यावत्तारकहन्ता वो भवेत्तावदयं प्रभुः॥१५॥
ततो विघ्नपतिर्देवैः संस्तुतःप्रणतार्तिहा। चकार तेषां कृत्यानिविघ्नानिदितिजन्मनाम्॥१६॥
पार्वती च पुनर्देवी पुत्रत्वे परिकल्प्य च। अशोकस्याऽङ्कुरं वार्भिरवर्द्धयतस्वाहृतैः॥१७॥
सप्तर्षीनथ चाऽऽहूय संस्कारमङ्गलं तरोः। कारयामास तन्वङ्गी ततस्तांमुनयोऽब्रुवन्॥१८॥
त्वयैव दर्शिते मार्गे मर्यादां कर्तुमर्हसि।
किं फलं भविता देवि कल्पितैस्तरुपुत्रकैः॥१९॥

तदनन्तर वह बालक बृहद् आकृति का हो गया तथा अपने तेज से समस्त दिशाओं को उद्भासित करने लगा। तत्पश्चात् शंकर ने देवगण से कहा—"जब तक तारकहन्ता मेरे पुत्र का जन्म नहीं हो जाता, तब तक मेरा यही पुत्र तुम सबका पालन करेगा।" यह कहकर भगवान् त्रिलोचन ने उनको गणों के साथ यह पुत्र प्रदान किया। प्रणतजनों की आर्त्ति का नाश करने वाले विघ्नेश्वर देवगण द्वारा स्तुत होकर देवताओं का विघ्न नाश तथा दैत्यों हेतु विघ्न का संघटन करने लगे। देवी तदनन्तर कुछ काल के पश्चात् एक अशोक वृक्ष के अंकुर की पुत्ररूपेण कल्पना करके उसे जल सिंचित करके बढ़ाने लगी। क्षीणाङ्गी देवी गिरिजा ने सप्तर्षिगण को बुलाया तथा उस अशोक वृक्ष का मंगल संस्कार उनसे करवाया। तब सप्तर्षिगण ने उनसे कहा—हे देवी! आपने यह पुत्रप्राप्ति की प्रक्रिया का प्रवर्त्तन किया है। अतः इसकी एक मर्यादा स्थापित करना आपका कर्त्तव्य है। इस प्रकार वृक्षपुत्र की कल्पना का क्या फल होगा?।।१५-१९।।

देव्युवाच

यो वै निरुदके ग्रामे कूपं कारयते बुधः। यावत्तोयं भवेत्कूपे तावत्स्वर्गे स मोदते॥२०॥
दशकूपैसमा वापी दशवापीसमं सरः। दशसरःसमा कन्या दशकन्यासमः क्रतुः॥२१॥
दशक्रतुसमः पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः॥२२॥
एषैव मम मर्यादा नियता लोकभाविनी। जीर्णोद्धारे कृते वापि फलंतद्द्विगुणंमतम्॥२३॥

इतिश्री गणेशोत्पत्तिः

देवी कहती हैं—जो बुद्धिमान् व्यक्ति जलहीन ग्राम में एक कूप खुदवाता है, जब तक उस कूप में जल है, तब तक उसे स्वर्ग में निवास मिलता है। एक दीर्घिका का फल १० कूप इतना है। १० दीर्घिका इतना फल एक सरोवर निर्माण में है। एक कन्या १० सरोवर के तुल्य है। एक यज्ञ १० कन्या के तुल्य है। १ पुत्र १० यज्ञ के तुल्य है। तथा १ वृक्ष १० पुत्र के समान है। मैंने यह लोकहितसाधक मर्यादा की स्थापना किया है। जीर्णोद्धार (मंदिर का) भी उक्त फल का द्विगुण फल देता है। यह मेरा मत है। यह गणेशोत्पत्ति वृत्तान्त कहा गया।।२०-२३।।

ततः कदाचिद्भगवानुमया सह मन्दरे। मन्दिरे हर्षजनने कलधौतमये शुभे॥२४॥
प्रकीर्णकुसुमामोदमहालिकुलकूजिते। किन्नरोद्गीतसङ्गीत प्रतिशब्दितमध्यके॥२५॥
क्रीडामयूरैर्हंसैश्च श्रुतैश्चैवाऽभिनादिते। मौक्तिकैर्विविधै रत्नैर्विनिर्मितगवाक्षके॥२६॥
तत्र पुण्यकथाभिश्च क्रीडतोरुभयोस्तयोः। प्रादुरभून्महाञ्छब्दः पूरिताम्बरगोचरः॥२७॥
तं श्रुत्वा कौतुकाद्देवी किमेतदिति शङ्करम्। पर्यपृच्छच्छुभतनुर्हरं विस्मयपूर्वकम्॥२८॥

तदनन्तर एक बार भगवान् शंकर उमा के साथ मन्दराचल स्थित स्वर्णमय सुन्दर हर्षप्रद गृह में विराजमान थे। यह गृह यत्र-तत्र कुसुम समूह की गन्ध से सुवासित, भ्रमरों से गुंजरित था। किन्नरों के गीत-संगीत से उसका मध्यभाग प्रतिध्वनित हो रहा था। वह क्रीड़ारत मयूर तथा हंसगण के शब्द से निनादित था। उसके गवाक्ष समूह विविध मुक्ता-रत्नादि से बने थे। उस मन्दिर में उमा-महेश्वर मनोरम कथा-वार्त्ता का आनन्द ले रहे थे। तभी एक गगनव्यापी महाशब्द सुनाई पड़ा। शुभांगी देवी ने उस शब्द को सुनकर विस्मित होकर कौतूहलयुक्त चित्त से कहा—यह क्या? इस प्रकार पति शंकर से इसका कारण पूछा।।२४-२८।।

तामाह देवीं गिरिशो दृष्टपूर्वास्तु ते त्वया।
एते गणा मे क्रीडन्ति शैलेऽस्मिंस्त्वत्प्रियाः शुभे!॥२९॥
तपसा ब्रह्मचर्येण क्लेशेन क्षेत्रसाधनैः। यैरहं तोषितः पृथ्व्यां त एते मनुजोत्तमाः॥३०॥
मत्समीपमनुप्राप्ता मम लोकं वरानने!। चराचरस्य जगतः सृष्टिसंहारणक्षमाः॥३१॥
विनैतान्नैव मे प्रीतिर्नैभिर्विरहितो रमे। एते अहमदं चैते तानेतान्पश्य पार्वति॥३२॥

उसके उत्तर में महादेव ने कहा—ये मेरे गण हैं। तुमने पहले इनको देखा था। ये तुम्हारा प्रिय करने वाले हैं। सम्प्रति ये क्रीड़ारत हैं। जिन्होंने पृथिवी पर तप, ब्रह्मचर्य, कायशोधन प्रभृति नाना क्लेशों के साथ मुझे प्रसन्न

किया है, वे पुरुषश्रेष्ठ ही मेरे गण होकर मेरे लोक में मेरे साथ रहते हैं। हे वरानने! ये चराचर जगत् की सृष्टि तथा संहार कार्य में सक्षम हैं। हे पार्वती! मैं इन गणों के बिना सन्तुष्ट नहीं होता। इनके बिना विहार भी नहीं करता। ये मेरे हैं। मैं इनका हूं। तुम इन सबका अवलोकन करो।।२९-३२।।

इत्युक्ता विस्मिता देवी ददृशे तान्गवाक्षके। स्थिता पद्मपलाशाक्षीमहादेवेनभाषिता।।३३॥
केचित्कृशाह्रस्वदीर्घाःकेचित्स्थूलमहोदराः। व्याघ्रेभमेषाजमुखानानाप्राणिमहामुखाः।।३४॥
व्याघ्रचर्मपरीधानां नग्ना ज्वालामुखाः परे। गोकर्णा गजकर्णाश्च बहुपादमुखेक्षणाः।।३५॥
विचित्रवाहनाश्चैव नानायुधधरास्तथा। गीतवादित्रतत्त्वज्ञाः सत्त्वगीतरसप्रियाः।।३६॥
तान्दृष्ट्वा पार्वती प्राह कतिसंख्याभिधास्त्वमी।।३७॥

महादेव के यह कहने पर पद्मपलाशलोचना पार्वती गवाक्ष पर आकर उन गणों को देखने लगीं। देखा कि उनमें कोई कृश, कोई नाटा, कोई लम्बा, कोई स्थूल, कोई महोदर, कोई-कोई व्याघ्र तथा हाथी जैसा, कोई-कोई नाना प्राणी के समान मुख वाला, कोई व्याघ्रचर्म धारण करने वाला, कोई नग्न, कोई ज्वाला को मुख से छोड़ने वाला, कोई गोकर्ण, कोई गजकर्ण, कोई अनेक पैरों वाला, कोई कई मुखों वाला, कोई अनेक नेत्रों वाला था। वे नाना प्रकार के वाहनों पर बैठे थे। वे नाना आयुधधारी, गीत-वाद्य कुशल, अतीव उत्साही तथा संगीत रसप्रिय थे। पार्वती ने उनको देखकर शंकर से पूछा—"इनकी संख्या कितनी है? इनके नाम क्या हैं"?।।३३-३७।।

श्रीशङ्कर उवाच

असंख्येयास्त्वमी देवि असंख्येयाभिस्तथा। जगदापूरितं सर्वमेतैर्भीमैर्महाबलैः।।३८॥
सिद्धक्षेत्रेषु रथ्यासु जीर्णोद्यानेषु वेश्मसु। दानवानां शरीरेषु बालेषून्मत्तकेषु च।।३९॥
एते विशन्ति मुदिता नानाहारविहारिणः। ऊष्मपाः फेनपाश्चैव धूम्रपा मधुपायिनः।
मदाहाराः सर्वभक्ष्यास्तथाऽन्ये चाऽप्यभोजनाः।।४०॥
गीतनृत्योपहाराश्च नानावाद्यरवप्रियाः। अनन्तत्वादमीशां च वक्तुं शक्या न वै गुणाः।।४१॥

शंकर कहते हैं—हे देवी! ये असंख्य हैं। इनके नाम भी असंख्य हैं। इन भीषणाकृति महाबली गणों से तो समस्त संसार भरा है। सिद्धक्षेत्र, पथ, जीर्ण भवन, जीर्ण उद्यान, दानवों के शरीर, बालकों के शरीर तथा उन्मत्तों के शरीर का आश्रय लेकर ये गण आनन्द मन से विविध आहार-विहार करते हैं। इनमें से कोई ऊष्मा, कोई फेन, कोई धूम्र, कोई मधु, कोई मद्य तथा कोई सभी आहार करते हैं। कोई तो तनिक भी भोजन नहीं करते। ये नृत्य-गीतोपहार से प्रसन्न होते हैं। नाना वाद्य-वादन से भी सन्तुष्ट हो जाते हैं। ये अनन्त संख्यक हैं, अतः इनका सम्यक् वर्णन नहीं हो सकता।।३८-४१।।

श्रीदेव्युवाच

मनःशिलेन कल्केन य एष च्छुरिताननः। तेजसा भास्कराकारो रूपेण सदृशस्तव।।४२॥
आकर्ण्याऽऽकर्ण्यते देव गणैर्गीतान्महागुणान्। मुहुर्नृत्यतिहास्यञ्चविदधातिमुहुर्मुहुः।।४३॥
सदाशिवशिवेत्येवंविह्वलो वक्ति यो मुहुः। धन्योऽयमीदृशीयस्यभक्तिस्त्वयिमहेश्वरे।
एनं विज्ञातुमिच्छामि किन्नामाऽसौ गणस्तव।।४४॥

देवी कहती हैं—हे देव! जिनका मुखमण्डल मनःशिला के घोल से लिप्त हैं, जो तेज में सूर्य के समान हैं, रूप में आपके समान हैं तथा जो गण गीत तथा उत्तम संगीत श्रवण करके पुनः-पुनः नृत्य करते हैं, क्षण-क्षण में हास्य करते हैं, विह्वलता पूर्वक एक-एक बार सदाशिव-शिव कहते हैं, हे महेश्वर! जिनकी आपके प्रति ऐसी भक्ति है, वे धन्य हैं। मैं इनको जानना चाहती हूं, इन गण का क्या नाम है?।।४२-४४।।

श्रीशङ्कर उवाच

स एष वीरको देवि सदा मेऽद्रिसुते! प्रिय। नानाश्चर्यगुणाधारः प्रतीहारो मतोऽम्बिके!॥४५॥

देव्युवाच

ईदृशस्य सुतस्याऽपि ममोत्कण्ठा पुरान्तक!॥४६॥
कदाऽहमीदृशं पुत्रं लप्स्याम्यानन्ददायकम्।

शर्व उवाच

एष एव सुतस्तेऽस्तु यावदीदृक्परो भवेत्॥४७॥
इत्युक्ता विजयां प्राह शीघ्रमानय वीरकम्। विजयाच ततोगत्वावीरकंवाक्यमब्रवीत्॥४८॥
एहि वीरक! ते देवीगिरिजातोषिताशुभा। त्वामाह्वयति सादेवीभवस्याऽनुमतेस्वयम्॥४९॥

श्री शंकर कहते हैं—"हे गिरिनन्दिनी! इनका नाम वीरक है। ये मेरे सतत् प्रियपात्र हैं। ये नाना आश्चर्य गुण के आधार तथा मेरे अभिमत द्वारपाल हैं।" देवी कहती हैं—"हे त्रिपुरान्तक! मुझे एक ऐसे ही पुत्र की इच्छा हो रही है। कब मैं एक और आनन्दप्रद पुत्र को प्राप्त करूंगी?" शंकर कहते हैं—"देवी! जब तक तुमको पुत्र नहीं हो जाता, तब तक वीरक ही तुम्हारा पुत्र रहेगा।" यह कहकर प्रभु ने विजया से कहा—"तत्काल वीरक को यहां ले आओ।" तब विजया ने तत्काल वीरक के पास जाकर कहा—"आओ वीरक! तुम्हारे ऊपर शुभा गिरिजा प्रसन्न हैं। प्रभु भवदेव के मतानुसार उन देवी ने स्वयं तुमको बुलाया है"।।४५-४९।।

इत्युक्तः सम्भ्रमयुतो मुखंसम्मार्ज्यपाणिना। देव्याःसमीपमागच्छज्जयायाऽनुगतःशनैः॥५०॥
तं दृष्ट्वा गिरिजा प्राह गिरा मधुरवर्णया। एह्येहि पुत्र दत्तस्त्वं भवेन मम पुत्रकः॥५१॥
इत्युक्तोदण्डवद्देवींप्रणम्याऽवस्थितःपुरः। मातातत्तस्तमालिङ्ग्यकृत्वोत्सङ्गेचवीरकम्॥५२॥
चुचुम्ब च कपोले तं गात्राणिच प्रमार्जयत्। भूषयामासदिव्यस्तंस्वयंनानाविभूषणैः॥५३॥
एवं सङ्कल्प्यतं पुत्रंलालयित्वा उमा चिरम्। उवाच पुत्रक्रीडेति गच्छसार्धंगणैरिति॥५४॥
ततश्चिक्रीड मध्ये सगणानां पार्वतीसुतः। मुहुर्मुहुःस्वमनसिस्तुवन्भक्तिं सशाङ्करीम्॥५५॥
प्रणम्यसर्वभूतानिप्रार्थयाम्यस्मिदुष्करम्। भक्त्याभजध्वमीशानंयस्याभक्तेरिदंफलम्॥५६॥

वीरक यह सुनकर संभ्रमित हो गये तथा हाथों से मुंह पोंछकर विजया के पीछे-पीछे धीरे-धीरे चल कर आये। गिरिजा ने उनको देखकर मधुर वाणी से कहा—"हे पुत्र! आओ! शंकर ने पुत्र रूप से तुमको मुझे प्रदान किया है।" वीरक ने यह सुनकर देवी को दण्डवत् होकर प्रणाम किया तथा उनके सामने खड़े हो गये। माता ने तब उनका आलिंगन करके गोद में बैठाया तथा उनका मुख चूमा। देवी ने स्वयं ही दिव्य भूषणों से वीरक को सजाया।

उमा ने इस प्रकार उनकी पुत्ररूपेण कल्पना करके अनेक क्षण लालन करके कहा—"वत्स! जाओ! गणों के साथ क्रीड़ा करो।" तदनन्तर वीरक ने मन ही मन क्षणपर्यन्त शिवभक्ति की प्रशंसा किया तथा गणों के साथ विहार रत हो गये। वे मन ही मन कहने लगे कि मैं सभी प्राणियों को प्रणाम करके यह कहता हूं कि जिनकी भक्ति का यह फल है, सभी भक्तिपूर्वक उन ईशान का भजन करें।।५०-५६।।

क्रीडितुं वीरके याते ततो देवी च पार्वती। नानाकथाभिश्चिक्रीड पुनरेव जटाभृता।।५७॥
ततो गिरिसुताकण्ठे क्षिप्तबाहुर्महेश्वरः। तपसस्तु विशेषार्थं नर्म देवीं किलाऽब्रवीत्।।५८॥
स हि गौरतनुःशर्वोविशेषाच्छशिशोभितः। रञ्जिताचविभावर्यादेवीनीलोत्पलच्छविः।।५९॥

शर्व उवाच

शरीरे ममतन्वङ्गीसितेभास्यसितद्युतिः। भुजङ्गीवासिता शुभ्रे संश्लिष्टा चन्दने तरौ।।६०॥
चन्द्रज्योत्स्नाभिसम्पृक्तातामसी रजनी यथा। रजनी वा सिते पक्षेदृष्टिदोषंददासि मे।।६१॥

जब वीरक क्रीड़ार्थ चले गये, तब महेश्वर गिरिजा के कण्ठ में बाहु स्थापित करके इस उद्देश्य से उनसे कहने लगे, जिससे देवी को और भी तप करना पड़े। उन्होंने व्यंग्य रूप में भगवती उमा से कहा—"हे देवी! तुम कृशांगी तथा अश्वेत कान्ति वाली हो, जब मेरे श्वेत शरीर से लिपटती हो, तब लगता है कि श्वेत चन्दन के वृक्ष से कृष्णवर्णा सर्पिणी लिपटी हो। मेरे शिरस्थ चन्द्रमा की ज्योत्स्ना से युक्त होकर तामसी रात्रि के समान लगती हो। तुम कृष्णपक्ष की रजनी के समान दृष्टि का व्याघात उत्पन्न करती हो"।।५७-६१।।

इत्युक्ता गिरिजा तेन कण्ठं शर्वाद्विमुच्यसा। उवाच कोपरक्ताक्षीभृकुटीविकृताननना।।६२॥
स्वकृतेन जनः सर्वो जनेन परिभूयते। अवश्यमर्थी प्राप्नोति खण्डनां शशिखण्डभृत्।।६३॥
तपोभिर्दीप्तचरितैर्यत्त्वां प्रार्थितवत्यहम्। तस्य मे नियमस्यैवमवमानः पदेपदे।।६४॥
नैवाऽहं कुटिला शर्वविषमा नचधूर्जटे!। स्वदोषैस्त्वंगतः क्षान्तिं तथा दोषाकरश्रियः।।६५॥
नाहं मुष्णामि नयने नेत्रहन्ताभवान्भव!। भगस्तत्ते विजानाति तथैवेदं जगत्त्रयम्।।६६॥
मूर्ध्निशूलं जनयसे स्वैर्दोषैर्मामधिक्षिपन्। यत्त्वंममाहकृष्णेति महाकालोऽसिविश्रुतः।।६७॥
यास्याम्यहंपरित्यक्तुमात्मानं तपसागिरिम्। जीवन्त्यानास्तिमेकृत्यंधूर्तेनपरिभूतया।।६८॥
निशम्य तस्या वचनं कोपतीक्ष्णाक्षरं भवः। उवाचाऽथ च सम्भ्रान्तो दर्ज्ञेयचरितो हरः।।६९॥

शंकर का वचन सुनकर गिरिजा ने शंकर की अपने गले से लिपटी बाहु से स्वयं को मुक्त किया। इस वचन को सुनकर उनकी भ्रुकुटी कुटिल हो गयीं। उन्होंने क्रोध से आरक्त नेत्र हो कहा—"हे चन्द्रशेखर! सभी स्वकृत कर्मफल से ही अपमानित होते हैं। विशेषतः प्रार्थी व्यक्ति भी अवश्य लांछित होते हैं। मैंने अतीव कठोर तप करके आपके लिये प्रार्थना किया, मेरे इस दुश्चर नियम में पुनः बारम्बार पग-पग पर अपमान हो रहा है। हे शर्व! मैं कुटिला नहीं हूं। हे धूर्जटे! मैं विषमा भी नहीं हूं। आप स्वयं मुझे दोषी कहकर शान्ति से रहिये। दोष के आकर (दोष के भंडार) ही आपकी शोभा हैं। हे भव! मैं आपकी दृष्टि का व्याघात नहीं करूंगी। तथापि आप ही नेत्रविनाशक हैं। (भग देवता के नेत्र का नाश किया था)। इस सत्य से भगदेवता तथा समस्त संसार अवगत है।

आप स्वयं दोषी होकर मेरी निन्दा कर रहे हैं। मेरे शिर में पीड़ा उत्पन्न कर रहे हैं। आप मुझे उपहासपूर्वक कृष्णा कह रहे हैं, जबकि आप स्वयं महाकाल नाम से प्रसिद्ध हैं। मैं धूर्त्त से अपमानित हो गईं। अतः मेरे जीवन धारण का कोई तात्पर्य नहीं है।'' भवदेव ने गिरिजा का यह कोप से युक्त तीक्ष्ण वचन सुना, तब वे सम्भ्रान्त भाव से देखने लगे। वास्तव में शंकर का चरित्र अत्यन्त दुर्ज्ञेय है। समझ में ही नहीं आता।।६२-६९।।

नतत्त्वज्ञाऽसिगिरिजे नाऽहंनिन्दापरस्तव। चाटूक्तिबुद्ध्याकृतवान्स्तवाहंनर्मकीर्तनम्।।७०।।
विकल्पःस्वच्छचित्तेतिगिरिजैषाममप्रिया। प्रायेणभूतिलिप्तानामन्यथाचिन्तिताहृदि।।७१।।
अस्मादृशानांकृष्णाङ्गिप्रवर्तन्तेऽन्यथा गिरः। यद्येवं कुपिता भीरु नतेवक्ष्याम्यहंपुनः।।७२।।
नर्मवादीभविष्यामि जहिकोपंशुचिस्मिते!। शिरसाप्रणतस्तेऽहंरचितस्तेमयाऽञ्जलिः।।७३।।
दीनेनाऽप्यपमानेन निन्दितोनैमिविक्रियाम्। वरमस्मिविनम्रोऽपिनत्वंदेविगुणान्विता।।७४।।

शंकर कहते हैं—''हे गिरिनन्दिनी! तुम बात का तत्वार्थ बिना समझे मेरे प्रति क्रोधित हो। मैंने तुम्हारी निन्दा के लिए यह नहीं कहा था। मैंने परिहास में ऐसा कहा था। हे कृष्णाङ्गी! मेरा अभिप्राय था कि मेरी प्रिया गिरिजा स्वच्छ चित्त वाली हैं, मेरे जैसे भस्मलिप्त मनुष्य के अन्तःकरण में एक प्रकार का चिन्तन रहने पर भी वाक्य अन्य प्रकार का मुख से निकल आता है। हे भीरु! यदि तुम इससे कुपित हो गई, तब मैं ऐसा वाक्य कभी नहीं कहूंगा। केवल चाटु वाक्य (मधुर वाक्य) का ही प्रयोग करूंगा। हे सुस्मिते! तुम कोप त्यागो! मैं तुमको शिर झुकाकर प्रणाम करता हूं। यह हाथ जोड़कर तुमसे कहता हूं—''यदि दीन व्यक्ति भी मेरी निन्दा अथवा अपमान करेगा, तब भी मैं कभी विकारग्रस्त नहीं रहूंगा। सदा नम्र रहूंगा। तथापि तुम गुणान्विता होकर भी शान्त क्यों नहीं हो रही हो?''।।७०-७४।।

इत्येनेकैश्चाटुवाक्यैः सूक्तैर्देवेनबोधिता। कोपं तीव्रं न तत्याज सतीमर्मणि घट्टिता।।७५।।
अवष्टब्धावथ क्षिप्त्वा पादौशङ्करपाणिना। विपर्यस्तालका वेगाद्गन्तुमैच्छत शैलजा।।७६।।
तस्यां व्रजन्त्यां कोपेन पुनराह पुरान्तकः। सत्यंसर्वैरवयवैः सुतेति सदृशी पितुः।।७७।।
हिमाचलस्यशृङ्गैस्तैर्मेघमालाकुलैर्मनः। तथा दुरवगाह्योऽसौ हृदयेभ्यस्तवाऽऽशयः।।७८।।
काठिन्यं कष्टमस्मिंस्तेवनेभ्योबहुधा गतम्। कुटिलत्वंनदीभ्यस्तेदुःसेव्यत्वंहिमादपि।।७९।।
सङ्क्रान्तं सर्वमेवैतत्तव देवि! हिमाचलात्। इत्युक्ता सा पुनः प्राह गिरिशंशैलजातदा।।८०।।
कोपकम्पितधूम्रास्या प्रस्फुरद्दशनच्छदा। माशर्वात्मोपमानेन निन्दत्वं गुणिनोजनान्।।८१।।
तवापिदुष्टसम्पर्कात्सङ्क्रान्तंसर्वमेवहि। व्यालेभ्योऽनेकजिह्वत्वंभस्मनःस्नेहवन्ध्यता।।८२।।
हत्कालुष्यं शशाङ्कात्ते दुर्बोधत्वं वृषादपि। अथवा बहुनोक्तेन अलं वाचा श्रमेण मे।।८३।।
श्मशानवास आसीस्तवं नग्नत्वान्नतव त्रपा। निर्घृणत्वंकपालित्वादेवंकःशक्नुयात्तव।।८४।।

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कुमारेश्वरमाहात्म्ये पार्वतीप्रकोपवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः।।२७।।

महादेव ने विविध वाक्य से भगवती को शान्त करना चाहा, तथापि पार्वती के मर्म पर आघात पहुंचा था, अतः उन्होंने कोप त्याग नहीं किया। उन्होंने शंकर द्वारा पकड़े गये अपने चरणों को झटक कर उनकी पकड़ से छुड़ा लिया। वे द्रुत वेग से आलुलायित (लहराते) केशों की स्थिति में ही वहां से चल पड़ीं। उनको क्रोधपूर्वक जाते देखकर त्रिपुरारि ने पुनः कहा—"तुम सर्वदा अपने पिता के ही समान कन्या हो। हिमालय के समस्त गुण तुममें आ गये हैं। हे देवी! हिमालय के मेघमाला समाकुल शृङ्ग जैसा तुम्हारा मन है। उस शृङ्ग के दुरवगाह (दुरधिगम्य) हृदय जैसा तुम्हारा हृदय है। उस पर्वत की कठोरता जैसा ही तुम्हारी कठोरता है। उसकी विचित्र वनराजि जैसा ही तुम्हारा व्यवहार है। हिमालय की नदियां कुटिल (टेढ़ी-मेढ़ी) बहती हैं, वैसी ही कुटिल हो तथा उसके हिम ऐसा दुःसेव्यत्व (जिसका उपयोग न हो सके) तुम्हारे अन्दर संक्रान्त है।" गिरिजा ने यह सुनकर कोप से कम्पित धुयें जैसे हो गये मुख से अपने चञ्चल अधरों का दांतों से दंशन करके शंकर से कहा—"हे शर्व! आप अपनी तुलना से लोगों की निन्दा न करें। यह तो आपके दुष्ट संसर्ग से ही सभी दोष मुझमें संक्रमित हो गये हैं। आपने सर्पों से अनेक जिह्वत्व (जिह्वा दोहरे वचन बोलना), भस्म से स्नेहशून्यता, चन्द्रमा से हृदय की कलुषता तथा वृष से दुर्बोधत्व पाया है, अथवा अधिक बोलकर व्यर्थ श्रम से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? आप तो श्मशान वासी हैं। नग्नत्व की आपको कोई लज्जा नहीं है। आपके इन दोषों का कहां तक उल्लेख करूं?"।।७५-८४।।

॥सप्तविंश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

अष्टाविंशोऽध्यायः

पार्वती का तप हेतु हिमालय गमन

नारद उवाच

इत्युक्त्वा मदिरात्तस्मान्निर्जगाम हिमाद्रिजा।
तस्यां व्रजन्त्यां चक्रुश्च गणाः किलकिलध्वनिम्॥१॥
क्व मातर्गच्छसीत्युक्त्वारुदन्तो धाविता पुरः। विष्टभ्यचरणौदेव्यावीरकोवाष्पगद्गदम्॥२॥
प्रोवाचमातःकिंन्वेतत्क्वयासिकुपितत्वरा। अहंत्वामनुयास्यामिमातरंस्नेहवत्सलाम्॥३॥
नाहंसहिष्ये परुषं गिरीशस्य त्वयोज्झितः। पुत्रःपारुष्यपात्रंहिभवेन्मात्राविनापितुः॥४॥
उन्नाम्यवदनं पश्चाद्दक्षिणेन तु पाणिना। उवाच वीरकं माता मा शोकम्पुत्र भावय॥५॥
सैलाग्रात्पतितुं नैव न्याय्यं गन्तुंमयासह। वक्ष्यामिपुत्रतेयोग्यंतत्तु कार्यं त्वया शृणु॥६॥
कृष्णेत्युक्ताहरेणाहंनिन्दिताचतृणायिता। साहंतपःकरिष्यामियथागौरीत्वमाप्नुयाम्॥७॥
गौराङ्गीलम्पटोह्येषयातायांमय्यनन्तरम्। द्वाररक्षात्वयाकार्यानित्यं रन्ध्रान्यवेक्षिणा॥८॥

नारद कहते हैं—"गिरिपुत्री ने यह कहा तथा उस गृह से बाहर हो गयीं। उन्हें जाते देखकर गणों ने

किलकिल शब्द से कहा—"मां! कहां जा रही हैं? यह कहकर वे भी रुदन करते-करते उनके पीछे भागे। वीरक ने देवी के चरणद्वय पकड़कर भरे कण्ठ से कहा—"मां! यह क्या? आप कम्पायमान होते हुये शीघ्रता से कहां जा रही हैं? आप स्नेह वत्सला माता हैं। मैं आपके साथ चलूंगा। आपके त्याग कर देने पर मैं भगवान् शिव के कठोर वाक्यों को सहन नहीं कर सकूंगा। माता बिना पुत्र तो पिता के कठोर व्यवहार का पात्र हो जाता है।" गिरिजा ने अपना दाहिना हाथ वीरक के शिर पर फेर कर कहा—"पुत्र! शोक न करो। मेरे साथ गिरिशृङ्ग पर जाने से तुम वहां से गिर सकते हो। अतः तुम्हारा जाना उचित नहीं है। हे पुत्र! मैं तुम्हारे लिये जो कर्त्तव्य है, वह कहती हूं। तुम वहीं करना। सुनो! शिव ने मुझे कृष्णा (काली) कह कर मेरी निन्दा किया है। उन्होंने मेरी तिनके जैसी अवज्ञा की है। इसलिए मैं गौर वर्ण प्राप्ति के लिए तपस्या करूंगी। ये गौराङ्गी के प्रति लम्पट हैं। इसलिये तुम बराबर छिद्रान्वेषण करते हुये द्वार रक्षा करना"।।१-८।।

यथा न काचित्प्रविशेद्योषिदत्र हरान्तिके। दृष्ट्वा परां स्त्रियं चात्र वदेथा मम पुत्रक!॥९॥
शीघ्रमेव करिष्यामिततो युक्तमनन्तरम्। एवमस्त्विति तां देवीं वीरकःप्राहसाम्प्रतम्॥१०॥
मातुराज्ञा सुतो ह्लादप्लाविताङ्गोगतज्वरः। जगाम त्र्यक्षं सन्द्रष्टुं प्रणिपत्य न मातरम्॥११॥

"यह सतत् निगाह रखना कि कोई रमणी भगवान् हर के पास न जा सके। हे पुत्र! यदि किसी रमणी को उनके पास जाते देखना, तब मुझसे कहना। मैं अविलम्ब उचित उपाय करूंगी।" यह सुनकर वीरक दुःखरहित तथा आनन्द से आप्लुत होकर बोले—"माता की जो आज्ञा है, वही करूंगा।" तदनन्तर उन्होंने माता को प्रणाम किया तथा भगवान् त्रिलोचन के दर्शनार्थ चल पड़े।।९-११।।

गजवक्त्रं ततः प्राहप्रणम्यसमवस्थितम्। साश्रुकण्ठं प्रयाचन्तं नय मामपि पार्वति॥१२॥
गजवक्त्रं हि त्वां बाल मामिवोपहसिष्यति। तदागच्छमयासार्धंयागतिर्मेतवापिसा॥१३॥
पराभवाद्धि धूर्तानां मरणं साधु पुत्रक!। एवमुक्त्वा समादाय हिमाद्रिं प्रतिसा ययौ॥१४॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कुमारेश्वरमाहात्म्ये पार्वत्यास्तपोर्थं गमनवर्णनं नामाऽष्टाविंशोध्यायः॥२८॥

गजानन ने माता को प्रणाम किया तथा नेत्रों में अश्रु भरकर कहा—"मुझे भी साथ ले चलें।" तब पार्वती ने गजानन से कहा—"वत्स! शंकर मेरी ही तरह गजानन कहकर तुम्हारा उपहास करेंगे। तुम मेरे साथ ही चलो।" पुत्र! धूर्त्त के पास पराभव होने से तो मरण ही उचित है।।१२-१४।।

॥अष्टाविंश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

कुमार का सर्वदेव सेनापति पद पर अभिषेक, पार्वती के मुख से सिंहोत्पत्ति, वीरक को शाप तथा वर प्रदान, तप के पश्चात् पार्वती का पुनः महेश गृह आगमन, स्कन्द प्रहर वर्णन, शिव-पार्वती संवाद

नारद उवाच

व्रजन्तीगिरिजाऽपस्यत्सखींमातुर्महाप्रभाम्। कुसुमानोदिनींनामतस्यशैलस्यदेवताम्॥१॥
साऽपि दृष्ट्वागिरिसुतां स्नेहविक्लवमानसा। क्वपुनर्गच्छसीत्युच्चैरालिङ्ग्योवाचदेवता॥२॥
साचास्यैसर्वमाचक्यौशङ्करात्कोपकारणम्। पुनश्चोवाचगिरिजादेवतांमातृसम्मताम्॥३॥
नित्यं शैलाधिराजस्य देवतात्वमनिन्दिते!। सर्वंचसन्निधानंचमयि चातीव वत्सला॥४॥
तदहं सम्प्रवक्ष्यामि यद्विधेयं तवाऽधुना। अथाऽन्यस्त्रीप्रवेशेतु समीपे तु पिनाकिनः॥५॥
त्वयाऽऽख्येयं मम शुभे! युक्तं पश्चात्करोम्यहम्।
तथेत्युक्ते तया देव्या ययौ देवी गिरिं प्रति॥६॥

नारद कहते हैं—गिरिजा ने जाते-जाते मन्दर पर्वत की अधिष्ठात्री देवी महप्रभावसम्पत्रा कुसुमामोदिनी माता की सखी को देखा। वे पर्वत की अधिष्ठात्री देवी ने भी पार्वती को देखकर उनका स्नेहपूर्वक आलिंगन करके पूछा—"कहां जा रही हो? यह कहकर उच्च स्वर में प्रश्न किया। शंकर के व्यवहार से देवी उमा को कोप हो गया था। उन्होंने वह सब इन देवी से कहा। गिरिजा ने इन मातृतुल्य देवी से यह भी कहा "हे अनिन्दिते! आप गिरिराज की नित्य प्रतिष्ठिता देवी हैं। मेरे प्रति भी आपका यथेष्ट वात्सल्य है। यहां सभी आपके समीपस्थ (निकटस्थ) हैं। अतः मैं जो कहती हूं, आप वह करें। शुभे! पिनाकपाणि के समीप अन्य रमणी को जाते देखने पर आप मुझे तत्काल सूचित करियेगा। तब मुझे जो करना है, वह करूंगी।" उन गिरि देवी ने कहा "यही करूंगी।" तदनन्तर गिरिजा पर्वत की ओर चली गयीं।।१-६।।

रम्ये तत्र महाशृङ्गे नानाश्चर्योपशोभिते। विभूषणादि संन्यस्य वृक्षवल्कलधारिणी॥७॥
तपस्तेपे गिरिसुता पुत्रेण परिपालिता। ग्रीष्मे पञ्चाग्निसन्तप्ता वर्षासु च जलोषिता॥८॥
स्थण्डिलस्था च हेमन्ते निराहाराततापसा। एतस्मिन्नन्तरेदैत्योह्यन्धकस्यसुतोबली॥९॥

तदनन्तर गिरिजा किसी एक रम्य नाना आश्चर्यसमन्वित एक महान् शृङ्ग पर गयीं तथा अपने भूषणादि त्याग कर वृक्ष के वल्कल धारण करने के अनन्तर तप करने लगीं। पुत्र गजानन भगवती का रक्षण आदि सेवाकार्य करने लगे। वे ग्रीष्म में पंचाग्नि के बीच बैठकर तप करतीं। वर्षाकाल में जल के भीतर तथा हेमन्त में पृथिवी पर बैठकर निराहार रहते कठोर तप कर रही थीं।।७-९।।

ज्ञात्वा गतां गिरिसुतां पितुवैररमनुस्मरन्। आडिर्नाम बकभ्राता रहस्यान्तप्रेक्षकः॥१०॥
जिते किलान्धके दैत्ये गिरिशेनाऽमरद्विषि। आडिश्चकार विपुलं तपो हरजिगीषया॥११॥
तमागत्याऽब्रवीद्ब्रह्मातपसापरितोषितः। ब्रूहि किं वाऽसुरश्रेष्ठ! तपसा प्राप्तुमिच्छसि।
ब्रह्माणमाह दैत्यस्तु निर्मृत्युत्वमहं वृणे॥१२॥

ब्रह्मोवाच

न कश्चिच्च विना मृत्युं जन्तुरासुर! विद्यते॥१३॥
यतस्ततोऽपि दैत्येन्द्र! मृत्युः प्राप्यः शरीरिणा। इत्युक्तो दैत्यसिंहस्तु प्रोवाचाऽम्बुजसम्भवम्॥१४॥
रूपस्य परिवर्तो मे यदा स्यात्पद्मसम्भव! तदा मृत्युर्मम भवेदन्यथा त्वमरो ह्यहम्॥१५॥
इत्युक्तस्तं तथेत्याह तुष्टः कमलसम्भवः। इत्युक्तोऽमरतांमेने दैत्यराज्यस्थितोऽसुरः॥१६॥

इस समय अन्धकासुर का पुत्र, बकासुर का भाई आड़ि नामक दैत्य गिरिनन्दिनी उमा को तप करते देख पिता के वैर का स्मरण करके (अन्धक का वध शिव ने किया था) मौका खोजने लगा। जब भगवान् त्रयम्बक ने सुरशत्रु अन्धक का वध किया था, तब आड़ि दानव ने शिव को पराजित करने के उद्देश्य को लेकर कठोर तप किया था। ब्रह्मा ने उसके तप से प्रसन्न होकर उससे कहा—"हे असुरश्रेष्ठ! तुम तपस्या से किस फल की कामना कर रहे हो?" आड़ि दानव ने कहा—"मुझे अमरत्व का वर प्रदान करिये।" ब्रह्मा ने कहा—"हे असुर! मृत्यु रहित कोई भी प्राणी नहीं है। हे दैत्येन्द्र! जितने देहधारी हैं, उन सबकी मृत्यु निश्चित है।" यह सुनकर उस दैत्येन्द्र ने पद्मजन्मा ब्रह्मा से कहा—"हे पद्मसंभव! जब मेरे रूप का परिवर्त्तन हो, तभी मेरी मृत्यु हो, अन्यथा मेरी मृत्यु न हो।" यह सुनकर पद्मसंभव ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर कहा 'ऐसा ही हो!' यह वर पाकर वह दैत्य स्वयं को अमर मानकर दैत्य राज्य पर शासन करने लगा॥१०-१६॥

आजगाम स च स्थानं तदा त्रिपुरघातिनः। आगतो ददृशेतंच वीरकं द्वार्यवस्थितम्॥१७॥
तं चासौ वञ्चयित्वा च आडिःसर्पशरीरभृत्। अवारितो वीरकेणप्रविवेशहरान्तिकम्॥१८॥
भुजङ्गरूपं सन्त्यज्य बभूवाऽथ महासुरः। उमारूपी छलयितुं गिरिसं मूढचेतनः॥१९॥
कृत्वोमायास्ततो रूपमप्रतर्क्यमनोहरम्। सर्वावयवसम्पूर्णं सर्वाभिज्ञानसम्वृतम्॥२०॥
चक्रे भगान्तरेदैत्यो दन्तान्वज्रोपमान्दृढान्। तीक्ष्णाग्रान्बुद्धिमोहेनगिरिशंहन्तुमुद्यतः॥२१॥
कृत्वोमारूपमेवंस स्थितोदैत्योहरान्तिके। तां दृष्ट्वा गिरिशस्तुष्टःसमालिंग्यमहासुरम्॥२२॥
मन्यमानो गिरिसुतां सर्वैरवयवान्तरैः। अपृच्छत्साधु ते भावो गिरिपुत्री ह्यकृत्रिमा॥२३॥
या त्वं मदाशयं ज्ञात्वा प्राप्तेह वरवर्णिनि!। त्वया विरहितःशून्यंमन्येऽस्मिन्भुवनत्रये॥२४॥

यही दैत्य तब भगवान् त्रिपुरारि के निवास स्थान पर आया। उसने द्वार पर वीरक को स्थित देखा, तब सर्पदेह धारण करके वीरक को प्रवंचित करके पुर में प्रवेश कर गया। वीरक ने उसे सर्पाकार देखकर उसके पुर प्रवेश में कोई बाधा नहीं पहुंचायी। नष्टबुद्धि दानव ने तब अपनी सर्पदेह का त्याग करके छलनावृत्ति से प्रभु शिवशंकर का वध करने की इच्छा लेकर वैसे अंगों से सम्पन्न, सर्वाभिज्ञान समन्वित, अचिन्त्य मनोहारी उमा मूर्त्ति

धारण किया। उसने बुद्धिमोह के कारण अपनी योनि में कुछ सुतीक्ष्ण दांतों का निर्माण भी किया। वे अत्यन्त दृढ़ दांत थे। वह दैत्य इस प्रकार उमारूप धारण करके शिव के पास आया। प्रभु शंकर ने वह देवोपम आकार-प्रकार देखकर उसे उमा समझा तथा सन्तुष्ट होकर आलिंगन करते कहा—"हे गिरिपुत्री! तुम्हारे मन के भाव ठीक हो गये न! कहीं मन का भाव गुप्त रखकर कृत्रिमता तो नहीं कर रही हो? हे वरवर्णिनी! तुम मेरे कथन का वास्तविक अभिप्राय समझ कर वापस आ गई। तुम्हारे विरह में मुझे समस्त त्रिभुवन शून्य प्रतीत हो रहा था। तुम प्रसन्न होकर मेरे पास आ गई हो, यह आचरण तुम्हारे ही योग्य है।।१७-२४।।

प्राप्ता प्रसन्ना या त्वं मां युक्तमेवम्विधं त्वयि। इत्युक्ते गूहयंश्चेष्टामुमारूप्यसुरोऽब्रवीत्।।२५।।
याताऽस्मितपसश्चर्तुंकालोवाक्यात्तवाऽतुलम्। रतिस्चतत्रमेनाभूत्ततःप्राप्तातवान्तिकम्।।२६।।
इत्युक्तः शङ्करः शङ्कां किचित्प्राप्यावधारयत्। कुपिता मयितन्वङ्गीप्रत्यक्षाच दृढव्रता।।२७।।
अप्राप्तकामासम्प्राप्ताकिमेतत्संशयोमम। रहसीति विचिन्त्याऽथअभिज्ञानाद्विचारयन्।।२८।।
नापश्यद्वामपार्श्वे तु तस्याऽङ्कं पद्मलक्षणम्। लोम्नामावर्तचरितं ततोदेवःपिनाकधृक्।।२९।।
बुद्ध्वातां दानवीं मायां किञ्चित्प्रहसिताननः। मेढ्रे रौद्रास्त्रमाधायचक्रेदैत्यमनोरथम्।।३०।।
स रुदन्भैरवान्नावानवसादं गतोऽसुरः। अबुध्यद्वीरको नैतदसुरेन्द्रनिषूदनम्।।३१।।

महेश्वर की यह बात सुनकर उमारूपी असुर ने आत्मगोपन करते हुये कहा—"आपने जो मुझे काली कह कर विद्रूप किया था, मैं उसी लिये तप करने गई। किन्तु उससे मेरे मन में अशान्ति हो गई। अतः मैं आपके पास आई हूं।" इस बात से शंकर के मन में कुछ शंका हो गई। शंकर ने सोचा कि देवी दृढ़व्रता हैं। यह मैंने स्वयं देखा है। ये कृशांगी मेरे प्रति कुपित होकर तप करने गईं, तथापि अभीष्ट प्राप्त किये बिना ही लौट आईं, इसी से सन्देह हो रहा है। इस सन्देह के निवारणार्थ भगवान् ने यह देखा कि भगवती के वामपार्श्व में रोमों के आवर्त्त से बना एक पद्मचिह्न था, जो इनमें परिलक्षित नहीं हो रहा है, तब पिनाकपाणि दानवी माया को समझ गये। उन्होंने तनिक मुस्कान के साथ अपने लिंग पर ही रौद्रास्त्र योजित किया (भावना तथा मन्त्र द्वारा) तथा उस गिरिजा रूपी दानव (समागम द्वारा) की इच्छा पूर्ण किया, जो योनि में दृढ़ दांत लगाकर आया था। वह दानव लिंगरूपी रुद्रास्त्र के प्रवेश द्वारा भीषण चीत्कार करता अवसन्न हो गया। वीरक इस असुर के संहार वृत्तान्त को समझ ही नहीं सके!।।२५-३१।।

हते च मारुतेनाऽऽशुगामिना नगदेवता। अपरिच्छिन्नतत्त्वार्था शैलपुत्र्यां न्यवेदयत्।।३२।।
श्रुत्वा वायुमुखाद्देवी क्रोधरक्ताऽतिलोचना। अपश्यद्वीरकं पुत्रं हृदयेन विदूयता।।३३।।
मातरं मां परित्यज्य यस्मात्त्वं स्नेहविह्वलाम्। विहितावसरः स्त्रीणां शङ्करस्य रहोविधौ।।३४।।
तस्मात्ते परुषा रूक्षा जडा हृदयवर्जिता। गणेशाक्षरसदृशा शिला माता भविष्यति।।३५।।
एवमुत्सृष्टशापाया गिरिपुत्र्यास्त्वनन्तरम्। निर्जगाम मुखात्क्रोधःसिंहरूपीमहाबलः।।३६।।
पश्चात्तापं समाश्रित्य तयादेव्याविसर्जितः। स तु सिंहःकरालास्योमहाकेसरकन्धरः।।३७।।
प्रोद्धूतबललांगूलदंष्ट्रोत्कटगुहामुखः। व्यावृतास्यो ललज्जिह्वः क्षामकुक्षिश्चिखादिषुः।।३८।।
तस्याऽऽस्ये वर्तितुदेवीव्यवस्यत सती तदा। ज्ञात्वा मनोगतंतस्याभगवांश्चतुराननः।।३९।।

इधर नारी वेशधारी असुर के मृत होने पर वायुदेव से वीरक को उन पर्वताधिष्ठात्री गिरी देवी को यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ कि शिव के यहां एक अन्य नारी का प्रवेश हुआ था। उन्होंने यथार्थ वस्तुस्थिति जाने बिना शीघ्रगामी वायुदेव के द्वारा यह वृत्तान्त गिरिजा तक पहुंचवा दिया। देवी उमा ने वायु से यह घटना सुनकर क्रोधारक्त नयनों से उद्विग्नतापूर्वक तथा दुःखित हृदय से पुत्र वीरक को शाप दिया "मैं तुम्हारी स्नेहविह्वला माता हूं। तथापि तुमने मेरा त्याग करके शंकर को अन्य नारी से समागम का अवसर दिया। इस कारण कठोर, रुक्ष, जड़, हृदयवर्जिता, गणेशाक्षर के समान (?) शिला ही तुम्हारी माता हो।" गिरिजा ने जब यह शाप दे दिया तब उनके मुख से महाबली सिंहवत् क्रोध निर्गत हो गया। देवी ने अनुताप करते-करते उस सिंह को विदा किया। यह सिंह घोर मुख था, उसके कंधे तथा गले के रोम विशाल थे। गुहा के समान विशाल मुख में भयानक दाढ़ स्थित थी। उसकी पूंछ बलपूर्वक हिल रही थी। मुख खुला था तथा जिह्वा लपलपा रही थी। उसका उदर क्षीण था। वह भोजन की इच्छायुक्त था। तब देवी ने ही (उसकी क्षुधा शान्त करने हेतु तथा अवसाद ग्रस्त होने के कारण) उस सिंह के मुख में प्रवेश करना चाहा। देवी का अभिप्राय (अपने योगबल से) चतुरानन ब्रह्मा को विदित हो गया।।३२-३९।।

आजगामाऽऽश्रमपदं सम्पदामाश्रयंततः। आगम्योवाचतांब्रह्मागिरिजां मृष्टया गिरा॥४०॥
किंदेवि प्राप्तुकामाऽसि किमलभ्यंददामिते। तच्छुत्वोवाचगिरिजागुरुगौरवगर्भितम्॥४१॥
तपसा दुष्करेणाऽऽप्तःपतित्वेशङ्करो मया। स मां स्यामलवर्णेति बहुशःप्रोक्तवान्भवः॥४२॥
स्यामहं काञ्चनाकारा वाल्लभ्येन च संयुता। भर्तुर्भूतपतेरङ्गे ह्येकतो निर्विशङ्किता॥४३॥

तदनन्तर ब्रह्मा समस्त सम्पदा के आश्रयभूत उस आश्रम में आये तथा गिरिजा से मधुर वाक्य कहने लगे—"हे देवि! तुम क्या प्राप्त करना चाहती हो। मैं तुमको क्या प्रदान करूं?" देवी भगवती गिरिजा ने यह सुनकर गुरु-गौरव-गर्वित वचन कहा—"मैंने दुष्कर तप करके शंकर को पतिरूपेण प्राप्त किया, तथापि उन्होंने मुझे श्यामवर्णा कहकर बारम्बार मेरा उपहास ही किया। अतः मैं काञ्चनवर्णा तथा पति को प्रिय हो सकूं, जिससे उन भूतपति के साथ निःशंक होकर एकीभाव मुझे प्राप्त हो सके, इस प्रकार का वर प्रदान करिये"।।४०-४३।।

तस्यास्तद्भाषितं श्रुत्वा प्रोवाच जलजासनः। एवं भवतु भूयस्त्वं भर्तुर्देहार्धधारिणी॥४४॥
ततस्तस्याःशरीरात्तुस्त्रीसुनीलाम्बुजत्विषा। निर्गतासाभवद्भीमाघण्टाहस्तात्रिलोचना॥४५॥
नानाभरणपूर्णाङ्गी पीतकौशेयवासिनी। तामब्रवीत्ततो ब्रह्मा देवीं नीलाम्बुजत्विषम्॥४६॥
अस्माद्भूधरजादेहसम्पर्कात्त्वं ममाऽऽज्ञया। सम्प्राप्ता कृतकृत्यत्वमेकानंशापुराकृतिः॥४७॥
य एष सिंहः प्रोद्भूतोदेव्याःक्रोधाद्वरानने। स तेऽस्तुवाहनोदेविकेतौचास्तुमहाबलः॥४८॥
गच्छ विन्ध्याचले तत्र सुरकार्यं करिष्यति। अत्र शुम्भनिशुम्भौचहत्वातारकसैन्यपौ॥४९॥
पाञ्चालोनाम यक्षोऽयं यक्षलक्षपदानुगः। दत्तस्ते किङ्करो देवि महामायाशतैर्युतः॥५०॥

भगवती जगदम्बा का यह वाक्य सुनकर कमलासन ब्रह्मा ने कहा—"तथास्तु! तुम पति के आधे शरीर में स्थित रहोगी।" तदनन्तर देवी के शरीर से सुनील कमलकान्ति, भीषणाकृति, घण्टाधारिणी, त्रिनेत्रा, नाना भरणभूषित अंगों वाली, पीत-कौषेय वस्त्र पहने रमणी मूर्त्ति आविर्भूत हो गयी। ब्रह्मा ने इस नीलाम्बुज (नीलकमलवत्) कान्ति सम्पन्ना देवी से कहा—"मेरे आदेश से तुमने गिरिजा के देह से इस आकृति को प्राप्त किया है। इसलिए तुम

आज से एकानंशा नाम से प्रसिद्ध होगी। हे वरानने! देवी भगवती के क्रोध से जिस सिंह का जन्म हुआ है, यह महाबली सिंह तुम्हारा वाहन होगा। यही तुम्हारे ध्वज का चिह्न होगा। तुम यहां शुम्भ तथा निशुम्भ नामक तारकासुर के सेनापतियों का वध करके विन्ध्याचल पर जाकर स्थित रहना तथा सुरकार्य सम्पन्न करना। हे देवी! इस महामाया समन्वित लाखों अनुचरों वाले पाञ्चाल नामक यक्ष को तुम्हारा अनुचर बनाता हूं''।।४३-५०।।

इत्युक्ता कौशिकी देवी तथेत्याह पितामहम्।
निर्गतायां च कौशिक्यां जाता स्वैराश्रिता गुणैः।।५१।।
सर्वैः पूर्वभवोपात्तैस्तदा स्वयमुपस्थितैः। उमाऽपि प्राप्तसङ्कल्पा पश्चात्तापपरायणा।।५२।।
मुहुःस्वं परिनिन्दन्तीजगामगिरिशान्तिकम्। सम्प्रयान्तींचतांद्वारिअपवार्यसमाहितः।।५३।।
रुरोध वीरको देवीं हेमवेत्रलताधरः। तामुवाच च कोपेन तिष्ठ तिष्ठ क्व यासि च।।५४।।
प्रयोजनं न तेऽस्तीह गच्छ यावन्न भर्त्स्यसे। देव्या रूपधरोदैत्योदेवंवञ्चयितुं त्विह।।५५।।
प्रविष्टोनच दृष्टोऽसौ स च देवेनघातितः। घातिते चाऽहमाक्षिप्तो नीलकण्ठेनधीमता।।५६।।
काऽपि स्त्री नाऽपि भोक्तव्या त्वया पुत्रेति सादरम्। तस्मात्त्वमत्र द्वारिस्था वर्षपूगान्यनेकशः।।५७।।
भविष्यसि न चाऽप्यत्र प्रवेशं लप्स्यसेव्रज। एकामेप्रविशेदत्र माताया स्नेहवत्सला।।५८।।
नगाधिराजतनया पार्वती रुद्रवल्लभा। इत्युक्ता तु ततो देवी चिन्तयामास चेतसा।।५९।।

पितामह ब्रह्मदेव के यह कहने पर उन कौशिकी देवी ने ब्रह्मा को अपनी स्वीकृति देकर कहा—''ऐसा ही हो।'' कौशिकी देवी के भगवती उमा के शरीर से निर्गत होने पर उनकी जन्मान्तरणीण गुणराशि उनमें स्वयं प्रकाशित होने लगीं। तब उमादेवी ने अपनी इच्छा सिद्ध हो जाने पर अपनी निन्दा करते-करते भगवान् शिव के पास प्रस्थान किया। जब वे शंकरपुरी के द्वार पर पहुंचीं तब हाथों में स्वर्ण की बेंत लिये सावधानी से द्वाररक्षा कर रहे वीरक ने उनको रोकते हुये कहा—''रुको! कहां जा रही हो? यहां तुम्हारा कोई कार्य नहीं है! जाओ! अपमानित होने के पहले ही यहां से चली जाओ। एक दैत्य ने यहां देवी का रूप धारण करके प्रवेश किया था। मैं उसे देख नहीं सका। परन्तु भगवान् शंकर ने उसका वध कर दिया। तदनन्तर भगवान् धीमान् नीलकण्ठ ने मेरी भर्त्सना की। तब भगवान् ने सादर कहा—''हे पुत्र! तुम किसी रमणी को अन्दर नहीं आने देना। अतः तुम अनेक वर्ष पर्यन्त इस द्वार पर भले ही खड़ी रहो, तथापि पुर में प्रवेश नहीं करने दिया जायेगा। भलाई इसी में है कि यहां से चली जाओ। इस समय केवल मात्र मेरी स्नेहवत्सला माता गिरिकन्या रुद्र की प्रिय पत्नी उमादेवी ही प्रवेश कर सकेंगी।'' देवी यह सुनकर मन ही मन विचाररत हो गयीं।।५१-५९।।

न सा नारी तु दैत्योऽसौ वायोर्नैवाऽवभासत। वृथैव वीरकःशप्तोमयाक्रोधपरीतया।।६०।।
अकार्यंक्रियतेमूढैःप्राप्यक्रोधसमन्वितैः। क्रोधेननश्यतेकीर्तिःक्रोधोहन्तिस्थिरांश्रियम्।।६१।।
अपिरिच्छिन्नसर्वार्था पुत्रं शापितवत्यहम्। विपरीतार्थबोद्धृणां सुलभा विपदो यतः।।६२।।

इधर देवी ने विचार किया कि वह नारी नहीं दैत्य था। वायु ने उसे ठीक से नहीं पहचाना। मैंने क्रोधपूर्वक वीरक को वृथा शाप दिया। मूढ़ लोग क्रोध के कारण प्रायः अकार्य कर बैठते हैं। क्रोध से कीर्ति का नाश होता है। क्रोध तो स्थिर ऐश्वर्य को भी नष्ट कर देता है। मैंने यथार्थ घटना को जाने बिना पुत्र वीरक को

शापित कर दिया! जो वास्तविकता को विपरीत रूप से समझते हैं, उनको तो विपत्ति अत्यन्त आसानी से आक्रान्त करती है।।६०-६२।।

सञ्चिन्त्यैवमुवाचेदं वीरकं प्रति शैलजा। अधो लज्जाविकारेण वदनेनाम्बुजत्विषा।।६३।।
अहं वीरक ते माता मा तेऽस्तु मनसोभ्रमः। शङ्करस्याऽस्मिदयितासुतातुहिमभूभृतः।।६४।।
मम गात्रस्थितिभ्रान्त्या मा शङ्कां पुत्रभावय। तुष्टेन गौरतादत्ता मयेयं पद्मयोनिना।।६५।।
मया शप्तोऽस्यविदिते वृत्तान्ते दैत्यनिर्मिते। ज्ञात्वा नारीप्रवेशं तु शङ्करेरहसिस्थिते।।६६।।
न निवर्तयितुं शक्यः शापः किं तु ब्रवीमि ते। मानुष्यां तु शिलायां त्वं शिलादात्सम्भविष्यसि।।६७।।
पुण्ये चाऽप्यर्बुदारण्ये स्वर्गमोक्षप्रदेनृणाम्। अचलेश्वरलिङ्गं तु वर्तते यत्र वीरक!।।६८।।
वाराणस्यां विश्वनाथसमंतत्फलदंनृणाम्। प्रभासस्यचयात्राभिर्दशभिर्यत्फलंनृणाम्।।६९।।
तदैकयात्रयाप्रोक्तमर्बुदस्य महागिरेः। यत्र तप्त्वा तपो मर्त्या देहधातून्विहाय च।।७०।।
संसारी न पुनर्भूयान्महेश्वरवचो यथा। अर्बुदो यदि लभ्येत सेवितुं जन्मदुःखितैः।।७१।।
वाराणसीं च केदारं किं स्मरन्ति वृथैव ते। तत्राराध्यभवंदेवं भवान्नन्दीतिनामभृत्।।७२।।
शीघ्रमेष्यसि चाऽत्रैवप्रतीहारत्वमाप्स्यसि। एवमुक्ते हृष्टरोमा वीरकः प्रणिपत्यताम्।।७३।।

गिरिनन्दिनी ने इस प्रकार से चिन्तना करके लज्जा से कुछ अवनतमुखी होकर वीरक से कहा—"वीरक! मैं ही तुम्हारी माता हूं। इस विषय में भ्रम में न पड़ो! मैं ही शंकर की पत्नी तथा हिमवान् की पुत्री हूं। हे पुत्र! मेरे शरीर के वर्ण का परिवर्त्तन तथा भावान्तर देखकर तुम कोई आशंका न करो। पद्मजन्मा ब्रह्मा ने मुझसे प्रसन्न होकर मुझे गौरवर्ण प्रदान किया है। मैं दैत्य की माया का वृत्तान्त नहीं जानती थी। केवल मैंने यह सुना था कि एकान्त में शंकर के निकट किसी स्त्री का आना हुआ था। इसी भ्रम में तुमको शाप दे दिया। इस शाप की निवृत्ति का कोई उपाय नहीं है। तब भी मैं यह विधान करती हूं कि तुम शिला नामक मानुषी से स्वर्ग मोक्षप्रद पुण्यप्रद अर्बुदारण्य में जहां अचलेश्वर शिव विराजित हैं, वहां जन्म लोगे। हे वीरक! यह अचलेश्वर लिंग काशीधामस्थ विश्वनाथ देव के समान ही मनुष्यों को फल देने वाला है। मानवगण प्रभास तीर्थ की १० बार यात्रा करके जो फल पाते हैं, वही अर्बुद महाचल में मात्र एक बार जाने से प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य वहां तप करके स्थित रहता है, वह देहपात के पश्चात् पुनः संसार में जन्म नहीं लेता। यह प्रभु महेश्वर का वाक्य है। जन्मक्लेश से सन्तप्त मानव को यदि अर्बुदारण्य का समागम मिल जाये, तब वाराणसी-केदार आदि तीर्थ स्मरण से क्या तात्पर्य! तुम वहां भगवान् भव की आराधना करके नन्दी नाम पाकर अल्पकाल में ही यहां आकर यही प्रतिहार का पद प्राप्त करोगे।" देवी का यह वचन सुनकर वीरक रोमांचित होकर भगवती जगन्माता को प्रणाम करने लगे।।६३-७३।।

संस्तूय विविधैर्वाक्यैर्मातरं समभाषत। ध्योऽहं देवि यो लप्स्येमानुष्यमतिदुर्लभम्।।७४।।
शापोऽनुग्रहरूपोऽयं विशेषादर्बुदाचले। समीपे यस्य पुण्योऽस्ति महीसागरसङ्गमः।।७५।।
ऊधः पृथिव्या देशोऽयं यो गिरेश्चार्णवान्तरे। तत्रगत्वा महत्पुण्यमवाप्यभवभक्तितः।।७६।।
पुनरेष्यामिमोमातरित्युक्त्वाऽभूच्छिलासुतः। देवीच प्रविवेशाऽथभवनंशशिमौलिनः।।७७।।

इत्यर्बुदाख्यानम्

वीरक ने भगवती की विविध वाक्यों से स्तुति करके कहा—"हे देवी! मैं धन्य हूं। आपका यह शाप तो मेरे लिए कृपास्वरूप है। क्योंकि इससे मैं अतीव दुर्लभ मनुष्य जन्म लाभ करूंगा। वह भी जन्म होगा अर्बुदाचल में, जिसके निकट पुण्यमय महीसागर संगम स्थित है। अर्बुदाचल तथा सागर के अन्तराल वाला क्षेत्र तो पृथिवी का 'ऊधः' (मुख्य) प्रदेश है। हे माता! आपकी कृपा से मैं वहां से शीघ्र ही यहां लौट आऊंगा।" यह कहकर वीरक ने शिला मानुषी के पुत्ररूपेण जन्म लेने हेतु वहां से प्रस्थान किया। तदनन्तर देवी ने भी चन्द्रशेखर के भवन में प्रवेश किया।।७४-७७।।

ततो दृष्ट्वा च तां प्राह धिग्नार्य इति त्रयम्बकः॥७८॥
सा च प्रणम्यं तं प्राहसत्यमेतन्नमिथ्यया। जडःप्रकृतिभागोऽयंनार्यश्चार्हन्तिनिन्दनाम्॥७९॥
पुरुषाणां प्रसादेन मुच्यन्ते भवसागरात्। ततः प्रहृष्टस्तामाह हरां योग्याऽधुना शुभे॥८०॥
पुत्रं दास्यामि येन त्वं ख्यातिमाप्स्यसि शोभने!।
ततो रेमे हि देव्या स नानास्चर्यालयो हरः॥८१॥

वहां त्रिलोचन देव ने भगवती देवी को आया देखकर कहा—"नारियों को धिक्कार है।" देवी ने भी उनको प्रणाम करके कहा—"यह आपने सत्य वचन कहा है। यह मिथ्या नहीं है। नारीगण जड़, प्रकृति रूप हैं। अतः वे निन्दा योग्य ही हैं। वे पुरुष की कृपा से ही भवसागर से पार होती हैं।" शंकर इस उत्तर से प्रसन्न होकर कहने लगे—"हे शुभे! अब तुम योग्य हो गई। हे शोभने! तुमको ऐसा पुत्र प्रदान करूंगा, जिससे तुम ख्याति प्राप्त करोगी।" नाना विस्मय के आधार प्रभु शंकर अन्ततः देवी के साथ रमण में प्रवृत्त हो गये।।७८-८१।।

ततो वर्षसहस्त्रेषु देवास्त्वरितमानसाः। ज्वलनं नोदयामासुर्ज्ञातुं शङ्करचेष्टितम्॥८२॥
द्वारि स्थितं प्रतीहारं वञ्चयित्वा च पावकः। पारावतस्य रूपेण प्रविवेशहरान्तिकम्॥८३॥
ददृशे तं च देवेशो विनतां प्रेक्ष्यपार्वतीम्। ततस्तं ज्वलनंप्राह नैतद्योग्यं त्वयाकृतम्॥८४॥
यदिदं क्षुभितं स्थानान्मम तेजोह्यनुत्तमम्। गृहाण त्वंसुदुर्बुद्धेनोवाधक्ष्यामित्वांरुषा॥८५॥

इस रमण में अनेक हजार वर्ष बीत गये। यह देखकर व्याकुल चित्त देवगण ने शंकर का क्रियाकलाप पता लगाने अग्निदेव को भेजा। अग्निदेव कपोत का रूप धारण करके द्वारपाल को धोखा देकर शिव के निकट पहुंच गये। शंकर ने अग्नि को देख लिया। पार्वती भी अग्नि को देखकर क्षुब्ध हो गयीं। तब शंकर ने कुपित होकर पावक से कहा—हे दुर्बुद्धि! तुमने यह उचित कार्य नहीं किया है। मेरा उत्तम तेज (वीर्य) अपने स्थान से उतर चुका है। तुम इसे ग्रहण करो, अन्यथा अपने रोषरूपी तेज से तुमको दग्ध कर दूंगा"।।८२-८५।।

भीतस्ततोऽसौ जग्राह सर्वदेवमुखं च सः। तेन ते वह्निसहिता विह्वलाश्च सुराःकृताः॥८६॥
विपाट्य जठराण्येषां वीर्यं माहेश्वरंततः। निष्क्रान्तं तत्सरो जातं पारदं शतयोजनम्॥८७॥
वह्निश्च व्याकुलीभूतो गङ्गायां मुमुचे सकृत्। दह्यमाना च सा देवी तरङ्गैर्बहिरुत्सृजत्॥८८॥

प्रभु की इस बात से अग्नि भयभीत हो गये। उन्होंने तत्काल उस शिवतेज को ग्रहण किया। अग्नि सभी देवगण के मुख हैं। इसलिए उस तेजग्रहण से अग्नि के कारण सभी देवगण व्याकुल हो उठे। तदनन्तर वह महेश्वर वीर्य देवताओं के उदर का भेद करता बाहर निकला तथा १०० योजन के सरोवर के रूप में परिणत हो गया!

अग्नि ने व्याकुल होकर उस तेज को गंगा में छोड़ दिया। गंगादेवी ने भी उस तेज से दह्यमान होने के कारण अपनी तरंगों द्वारा उस तेज को बाहर उछाल दिया। उसी से श्वेत पर्वत की उत्पत्ति कही जाती है।।८६-८८।।

जातास्त्रिभुवनख्यातस्तेन च श्वेतपर्वतः। एतस्मिन्नन्तरे वह्निराहूतश्च हिमालये॥८९॥
सप्तर्षिभिर्वह्निहोमं कुर्वद्भिर्मन्त्रवीर्यतः। आगत्य तत्र जग्राह वह्निर्भागं च तं हुतम्॥९०॥
गतेऽह्नयत्वस्मिंश्चतत्रस्थःपत्नीस्तेषामपश्यत। सुवर्णकदलीस्तम्भनिभारताश्चन्द्रलेखया॥९१॥
पश्यमानः प्रफुल्लाक्षो वह्निः कामवशं गतः।
स भूयश्चिन्तयामास न न्याय्यं क्षुभितोऽस्मि यत्॥९२॥
साध्वीः पत्नीर्द्विजेन्द्राणामकामाः कामयाम्यहम्।
पापमेतत्कर्म चोग्रं नश्यामि तृणवत्स्फुटम्॥९३॥
कृत्वैतन्नश्यतेकीर्तिर्यावदाचन्द्रतारकम्। एवं सञ्चिन्त्य बहुधा गत्वा चैव वनान्तरम्॥९४॥

उस काल में सप्तर्षिगण हिमालय पर होम कर रहे थे। उन्होंने होमसम्पादन हेतु मन्त्रों से अग्नि का आह्वान किया। वह्नि ने मन्त्र के प्रभाव से वहां आकृष्ट होकर होमभाग ग्रहण किया। अग्निदेव ने वहां वेला व्यतीत हो जाने पर स्वर्ण के केले के तने के समान जघनों वाली, किंवा चन्द्रकला के समान प्रतीत होने वाली सप्तर्षिगण की पत्नियों को देखा। उन्हें विस्फारित नेत्रों से (आंखें फाड़-फाड़ कर) देखने के कारण अग्नि काम के वशीभूत हो गये। तब उन्होंने विचार किया—"मेरा क्षुब्ध होना उचित नहीं है, जो मैंने साध्वी तथा निष्काम द्विजेन्द्रों की पत्नियों की कामना किया है। यह कर्म उत्कट पाप है, जो मुझे तृणवत् नष्ट कर देगा। ऐसा कर्म करने पर तो जब तक चन्द्र-तारक की स्थिति है, तब तक के लिए कीर्त्तिहीन होना पड़ेगा।" इस प्रकार से नाना प्रकार का विचार करते-करते अग्निदेव अन्य वन में चले गये।।८९-९४।।

संयन्तुं नाऽवच्छक्त उपायैर्बहुभिर्मनः। ततः स कामसन्तप्तो मूर्छितः समपद्यत॥९५॥
ततःस्वाहाचभार्याऽस्यबुबुधे तद्विचेष्टितम्। ज्ञात्वाचचिन्तयामासप्रहृष्टामनसिस्वयम्॥९६॥
स्वां भार्यामथमांत्यक्त्वाबहुवासादवज्ञया। भार्याः कामयतेनूनंसप्तर्षीणांमहात्मनाम्॥९७॥
तदासां रूपमाश्रित्य रमिष्यैतेनचाप्यहम्। ततस्त्वङ्गिरसोभार्या शिवामेतिशोभना॥९८॥
तस्या रूपं समाधाय पावकंप्राप्यसाऽब्रवीत्। मामग्नेकामसन्तप्तांत्वंकामयितुमर्हसि॥९९॥
न चेत्करिष्यसे देव मृतां मामुपधारय। अहमङ्गिरसो भार्या शिवानाम हुताशन!॥१००॥
सर्वाभिः सहिता प्राप्ता ताश्च यास्यन्त्यनुक्रमात्।
अस्माकं त्वं प्रियो नित्यं त्वच्चित्ताश्च वयं तथा॥१०१॥

तथापि वनान्तर में जाने पर भी वे अपना मन संयत नहीं कर सके। वे काम सन्ताप से मूर्छित हो गये। उनकी पत्नी स्वाहादेवी उनके इस आचरण का मर्म जान कर मन ही मन सन्तुष्ट होकर विचार करने लगीं—"मैं इनकी पत्नी हूं। परन्तु ये मुझे छोड़ कर वस्तुतः सप्तर्षिगण की पत्नी की कामना कर रहे हैं। अतएव मैं भी सप्तर्षिगण की पत्नियों का रूप धारण करके इनके साथ रमण करूंगी।" स्वाहा देवी ने यह विचार करके सर्वप्रथम

अंगिरा की परम सुन्दरी पत्नी शिवा का रूप धारण किया तथा अग्निदेव से कहा—"हे पावक! मैं काम सन्तप्त हूं। मैं आपकी कामना करती हूं। आप यदि इसे स्वीकार नहीं करते, तब मुझे मृत जानें। हे अग्निदेव! मैं शिवा नामक अंगिरा की भार्या हूं। अन्य महर्षियों की पत्नियां भी मेरे साथ आई हैं। वे क्रमशः एक-एक करके आपके पास आयेंगी। आप हमारे अतीव प्रिय हैं। हम सब आपके प्रति आसक्त हैं।।९५-१०१।।

ततः स कामसन्तप्तः सम्बभूव तया सह। प्रीते प्रीताच सा देवी निर्जगामवनान्तरात्।।१०२।।
चिन्तयन्ती ममेदं चेद्रूपं द्रक्ष्यन्ति कानने। ते ब्राह्मणीनामनृतंदोषंवक्ष्यन्ति पावकात्।।१०३।।
तस्मादेतद्रक्षमाणा गरुडी सम्भवाम्यहम्। सुपर्णा सा ततो भूत्वा ददृशे श्वेतपर्वतम्।।१०४।।
शरस्तम्बैः सुसम्पृक्तं रक्षोभिश्च पिशाचकैः। सा तत्र सहसागत्वाशैलपृष्ठंसुदुर्गमम्।।१०५।।
प्राक्षिपत्काञ्चनेकुण्डे शुक्रं तद्धारणेऽक्षमा। शिष्टानमपिदेवीनां सप्तर्षीणांमहात्मनाम्।।१०६।।

इस बात को सुनकर कामतप्त पावकदेव ने उसके साथ समागम किया। इससे पावकदेव प्रसन्न हो गये। उन देवी ने भी प्रसन्न चित्त से वनान्तर में गमन किया। तथापि वे स्वाहा देवी अग्नि के उस वीर्य को धारण करने में असमर्थ हो गयीं। वे उसे कहीं फेंकने के लिए जाने पर सोचने लगीं कि "यदि वन में कोई इस रूप में मुझे देखेगा, तब सप्तर्षि पत्नी के प्रति पावक के साथ संगम का दोष उस पर आरोपित होगा। अतः इस रूप को त्याग कर गारुड़ी पक्षी का रूप ग्रहण करती हूं।" यह विचार करके उन्होंने गारुड़ी का रूप धारण किया तथा श्वेत पर्वत पहुंचीं। वह पर्वत् शरस्तम्ब से समावृत (श्वेत सरकण्डे तृण से भरा) था तथा राक्षस-पिशाचों से परिपूर्ण था। वहां देवी स्वाहा ने शीघ्रतापूर्वक जाकर उस दुर्गम शैल पृष्ठ पर स्थित कांचन कुण्ड में उस वीर्य को छोड़ दिया। तत्पश्चात् उन्होंने दूसरे सप्तर्षि की पत्नी का रूप धारण किया।।१०२-१०६।।

पत्नीसरूपतां कृत्वा कामयामास पावकम्। दिव्यं रूपमरुन्धत्याःकर्तुं न शकितं तया।।१०७।।
तस्यास्तपःप्रभावेण भर्तुः शुश्रूषणेन च। षट्कृत्वस्तत्तु निक्षिप्तमग्निरेतः कुरुद्वह।।१०८।।
कुण्डेऽस्मिंश्चैत्रबहुले प्रतिपद्येव स्वाहया। ततश्च पावको दुःखाच्छुशोचचमुमोह च।।१०९।।
आः पापं कृतमित्येव देहन्यासेऽकरोन्मतिम्। ततस्तं खेचरी वाणी प्राह मा मरणं कुरु।।११०।।
भाव्यमेतश्च भाव्यर्थात्को हि पावक मुच्यते। भाव्यर्थेनापियत्ते च परदारोपसेवनम्।।१११।।
कृतं तच्चेतसा तेन त्वामजीर्णं प्रवेक्ष्यति। श्वेतकेतोर्महायज्ञे घृतधाराभितर्पितम्।।११२।।
शोकं च त्यज नैतास्ताः स्वाहैवेयं तव प्रिया। श्वेतपर्वतकुण्डस्थंपुत्रंत्वं द्रष्टुमर्हसि।
ततो वह्निस्तत्र गत्वा ददृशे तनयं प्रभुम्।।११३।।

तदनन्तर पुनः पावकदेव के साथ रतिक्रिया करके पुनः उस स्वर्णकुण्ड में वीर्य निक्षेप किया। इस प्रकार से उन्होंने छः महर्षि पत्नी का रूप धारण करके अग्निदेव के साथ रतिक्रिया करके उस स्वर्णकुण्ड में वीर्य निक्षिप्त किया। स्वाहा देवी किसी भी प्रकार से वसिष्ठ पत्नी अरुन्धती का रूप धारण नहीं कर सकीं। वे अतिशय तेजस्विनी तथा तपः प्रभाव एवं पातिव्रत्य के प्रभाव से प्रभायुक्त थी। स्वाहा देवी उनका रूप धारण नहीं कर सकीं। हे कुरुवंश के धुरन्धर अर्जुन! स्वाहा देवी ने चैत्रमास की प्रतिपदा के दिन कांचनकुण्ड में छः बार अग्निवीर्य को छोड़ा था। तदनन्तर अग्निदेव परनारी संगम पाप करने के सम्बन्ध में सोचकर शोकग्रस्त हो गये। वे यह सोचकर कि "हाय!

मैंने क्या पाप कर दिया'' देहत्याग के इच्छुक हो गये। तब आकाशवाणी हुई—''हे पावक! मरणेच्छा का त्याग करो। ऐसी ही भवितव्यता थी। भवितव्य को कोई अतिक्रमण नहीं कर सकता। यद्यपि तुमने भवितव्यता के कारण परदारा सेवन किया है, तथापि तुम्हारी इस सम्बन्ध में अभिलाषा हो गई। अतः तुम श्वेतकेतु के यज्ञ में घृतधारा पान करोगे, जिससे तुमको अजीर्ण रोग होगा। तुम शोक त्याग करो। तुमने जिन स्त्रियों के साथ संगम किया है, वे वस्तुतः ऋषिपत्नियां नहीं हैं। तुम्हारी ही पत्नी स्वाहा देवी ने उन-उन रूप को धारण किया था। अब तुम उस स्वर्णकुण्ड में जाकर अपने पुत्र को देखो।'' अग्निदेव ने वह आकाशवाणी सुनी तथा संकेतित स्थान पर जाकर अपने प्रभावशाली पुत्र को देखा।।१०७-११३।।

अर्जुन उवाच

कस्मात्स्वाहाऽकरोद्रूपं षण्णां तासां महामुने!॥११४॥
यत्ता भर्तृपराः साध्व्यस्तपस्विन्योऽग्निसन्निभाः।
न विभेति च किं ताभ्यः षड्भ्यः स्वाहाऽपराधिनी।
भर्तृभक्त्या जगद्दग्धुं यतः शक्ताश्च ता मुने!॥११५॥

अर्जुन कहते हैं—हे महामुनि नारद! स्वाहा देवी ने उन अग्निसन्निभा तेजस्वी पतिपरायणा साध्वी महर्षिपत्नियों का रूप क्यों धारण किया! मुनिपत्नियां तो पातिव्रत धर्म के बल से जगत् को दग्ध कर सकने में समर्थ हैं। क्या उनका रूपधारण करने में स्वाहादेवी को भय नहीं लगा? स्वाहा देवी तो उनका रूप धारण करने की अपराधिनी हो गयीं।।११४-११५।।

नारद उवाच

सत्यमेतत्कुरुश्रेष्ठ! शृणु तच्चाऽपि कारणम्। येन तासांकृतं रूपं न वा शापंददुश्चताः॥११६॥
यत्र तद्वह्निनाक्षिप्तं रुद्रतेजः सकृत्पुरा। गङ्गायां तत्रसस्नुस्ताः षट्पत्न्योऽज्ञानभावतः॥११७॥
ततस्ता विह्वलीभूतास्तेजसा तेन मोहिताः। लज्जयाचस्वभर्तृणां गङ्गातीरस्थितारहः॥११८॥
एतदन्तरमालोक्य चिकीर्षन्ती मनीषितम्। स्वाहा शरीरमाविश्यतासांतेजोमहारतत्॥११९॥
चिक्रीड वह्निजायाऽपि यथा ते कथितं मया॥१२०॥
उपकारमिमं ताभिः स्मरन्तीभिश्च भारत। न शप्ता सा यतःशापोनदेयश्चोपकारिणि॥१२१॥
ततः सप्तर्षयो ज्ञात्वा ज्ञानेनाऽशुचितांगताः। तत्यजुःषट्तदापत्नीर्विनादेवीमरुन्धतीम्॥१२२॥
विश्वामित्रस्तु भगवान्कुमारं शरणं गतः। स्तवं दिव्यंसम्प्रचक्रे महासेनस्यचापिसः॥१२३॥
अष्टोत्तरशतं नाम्नां शृणुत्वंतानिफाल्गुन। जपेन येषां पापानियान्तिज्ञानमवाप्नुयात्॥१२४॥

नारद कहते हैं—हे कुरुप्रवर! इसका कारण सुनो। स्वाहा ने जिस कारण से उनका रूप धारण किया था तथा जिस कारण से मुनिपत्नियों ने स्वाहा देवी को शाप नहीं दिया, उसे कहता हूं। अग्नि ने गंगा में जहां रुद्रतेज छोड़ा था, छः मुनिपत्नीगण ने अज्ञानता से मोहित होकर उसी जगह स्नान किया था। वे उस तेज प्रभाव से विह्वल हो गयीं तथा अपने-अपने पति के पास बिना गये गंगातट पर एकान्त में रुक गयीं। तब स्वाहा देवी ने मौका देखकर

उनके शरीर में आविष्ट होकर उनके तेज का हरण कर लिया। तदनन्तर अग्निपत्नी ने जिस भाव से अग्निदेव के साथ रमण किया था, वह मैं पहले ही कह चुका हूं। हे तारक! मुनि पत्नीगण ने स्वाहा के इस उपकार के कारण (उनके देह से अग्नितेज हरण के कारण) स्वाहा को शाप नहीं दिया। क्योंकि नियम यह है कि जो उपकारी है, उसे शाप नहीं दिया जाता। इसके पश्चात् सप्तर्षिगण ने अरुन्धती को छोड़ कर बाकी छः पत्नियों की अपवित्रता जानकर उनका त्याग कर दिया। इधर भगवान् विश्वामित्र ने इन महासेन कुमार के शरणागत होकर उनके १०८ नामात्मक दिव्य स्तोत्र से उनकी स्तुति सम्पन्न किया। हे फाल्गुन! तुम उसे सुनो। इस स्तव का पाठ करने से पाप नाश होकर ज्ञानप्राप्ति होती है।।११६-१२४।।

त्वं ब्रह्मवादी त्वं ब्रह्मा ब्रह्म ब्राह्मणवत्सलः। ब्रह्मण्यो ब्रह्मदेवश्च ब्रह्मदो ब्रह्मसंग्रहः॥१२५॥
त्वं परं परमं तेजो मङ्गलानां च मङ्गलम्। अप्रमेयगुणश्चैव मन्त्राणां मन्त्रगो भवान्॥१२६॥
त्वं सावित्रीमयो देव! सर्वत्रैवाऽपराजितः। मन्त्रः शर्वात्मको देवः षडक्षरवतां वरः॥१२७॥
माली मौली पताकी च जटी मुण्डी शिखण्ड्यपि।
कुण्डली लाङ्गली बालः कुमारः प्रवरो वरः॥१२८॥
गवाम्पुत्रः सुरारिघ्नः सम्भवोभवभावनः। पिनाकी शत्रुहाश्वेतोगूढःस्कन्दःकराग्रणीः॥१२९॥
द्वादशो भूर्भुवो भावी भुवः पुत्रो नमस्कृतः। नागराजः सुधर्मात्मा नाकपृष्ठःसनातनः॥१३०॥
त्वं भर्ता सर्वभूतात्मा त्वंत्रातात्वंसुखावहः। शरदक्षःशिखीजेताषड्वक्त्रोभयनाशनः॥१३१॥
हेमगर्भो महागर्भो जयश्च विजयेश्वरः। त्वं कर्ता त्वं विधाताचनित्योनित्यारिमर्दनः॥१३२॥
महासेनो महातेजा वीरसेनश्च भूपतिः। सिद्धासनः सुराध्यक्षो भीमसेनो निरामयः॥१३३॥
शौरिर्यदुर्महातेजा वीर्यवान्सत्यविक्रमः। तेजोगर्भोऽसुररिपुः सुरमूर्तिः सुरोर्ज्जितः॥१३४॥
कृतज्ञो वरदः सत्यः शरण्यः साधुवत्सलः। सुव्रतः सूर्यसङ्काशो वह्निगर्भः कणो भुवः॥१३५॥
पिप्पली शीघ्रगो रौद्री गाङ्गेयो रिपुदारणः। कार्त्तिकेयःप्रभुःक्षन्तानीलदंष्ट्रोमहामनाः॥१३६॥
निग्रहो निग्रहाणां च नेता त्वं सुरनन्दनः। प्रग्रहः परमानन्दः क्रोधघ्नस्तार उच्छ्रितः॥१३७॥
कुक्कुटी बहुली दिव्यः कामदो भूरिवर्धनः।
अमोघोऽमृतदो ह्यग्निः शत्रुघ्नः सर्वमोदनः॥१३८॥

स्तव इस प्रकार से है—हे देव! आप ब्रह्मवादी, ब्रह्मा, ब्रह्म, ब्राह्मणवत्सल, ब्रह्मण्य, ब्रह्मदेव, ब्रह्मद, ब्रहसंग्रह, पर, परमेश्वर परमतेज, मंगल का भी मंगल करने वाले, अप्रमेयगुण, मन्त्रों की उपासना के तत्ववेत्ता, सावित्रीमय, अपराजित, सर्वात्मक देव तथा षडक्षर मन्त्र में सर्वप्रधान मन्त्ररूपी हैं। आप माली, मौली, पताकी, जटी, मुण्डी, शिखण्डी, कुण्डली, लांगली, बाल, कुमार, प्रवर, वर हैं।

आप गवांपुत्र, सुररिपुहन्ता, संभव, भव, भावन, पिनाकी, शत्रुहा, श्वेत, गूढ, स्कन्द तथा कराग्रणी हैं। आप ही द्वादश (आदित्य), भू, भुवः, भावी, भूमिपुत्र नमस्कृत, नागराज, सुधर्मात्मा, नाकपृष्ठ तथा सनातन हैं। आप ही भर्त्ता, सर्वभूतात्मा, त्राता, सुखावह, शरदक्ष, शिखी, जेता, षडानन, भयनाशक, हेमगर्भ, महागर्भ, जय,

विजयेश्वर हैं। आप कर्त्ता, विधाता, नित्य, अरिमर्दना, महासेन, महातेजा, वीरसेन, भूपति, सिद्धासन, सुराध्यक्ष, भीमसेन, निरामय, शौरि, यदु, महातेजा, वीर्यवान्, सत्यविक्रम, तेजोगर्भ, असुररिपु, सुरमूर्त्ति, सुरोर्जित, कृतज्ञ, वरद, सत्य, शरण्य, साधुवत्सल, सुव्रत, सूर्यसंकाश, वह्निगर्भ, कण, भुव, पिप्पली, शीघ्रग, रौद्री, गाङ्गेय, रिपुदारण, कार्त्तिकेय, प्रभु, क्षन्ता, नीलदंष्ट्र, महामना, निग्रह-निग्रह, नेता, सुरनन्दन, प्रग्रह, परमानन्द, क्रोधघ्न, तार, उच्छ्रित, कुक्कुटी, बहुली, दिव्य, कामद, भूरिवर्द्धन, अमोघ, अमृतद, अग्नि, शत्रुघ्न, सर्वमोदन हैं।।१२५-१३८।।

अव्ययो ह्यमरः श्रीमानुन्नतो ह्यग्निसम्भवः। पिशाचराजःसूर्याभःशिवात्माशिवनन्दनः॥१३९॥
अपारपारो दुर्ज्ञेयः सर्वभूतहिते रतः। अग्राह्यः कारणं कर्ता परमेष्ठी परं पदम्॥१४०॥
अचिन्त्यः सर्वभूतात्मा सर्वात्मा त्वं सनातनः। एवंससर्वभूतानांसंस्तुतः परमेश्वरः॥१४१॥
नाम्नामष्टशतेनाऽयं विश्वामित्रमहर्षिणा। प्रसन्नमूतिरराहेदं मुनीन्द्रं व्रियतामिति॥१४२॥
मम त्वया द्विजश्रेष्ठ स्तुतिरेषा निरूपिता। भविष्यति मनोऽभीष्टप्राप्तयेप्राणिनांभुवि॥१४३॥
विवर्धते कुले लक्ष्मीस्तस्ययःप्रपठेदिदम्। न राक्षसाःपिशाचावा न भूतानि नचापदः॥१४४॥
विघ्नकारीणि तद्गेहेयत्रैवसंस्तुवन्तिमाम्। दुःस्वप्नंचनपश्येतत्सबद्धोमुच्येतबन्धनात्॥१४५॥
स्तवस्याऽस्य प्रभावेण दिव्यभावः पुमान्भवेत्।
त्वं च मां श्रुतिसंस्कारैः सर्वैः संस्कर्तुमर्हसि॥१४६॥
संस्काररहितं जन्म यतश्च पशुवत्स्मृतम्। त्वं च मद्वरदानेन ब्रह्मर्षिश्च भविष्यसि॥१४७॥

आप अव्यय, अमर, श्रीमान्, उन्नत, अग्निसंभव, पिशाचराज, सूर्याभ, शिवात्मा, शिवनन्दन, अपारपार, दुर्ज्ञेय, सर्वभूहितरत, अग्राह्य, कारण, कर्त्ता, परमेष्ठि, परमपद हैं। आप सर्वभूत समूह से अचिन्त्य, सर्वभूतात्मा, सर्वात्मा, सनातन हैं। इस स्तोत्र को सुनकर सर्वभूतसमूह के परमेश्वर कुमारदेव ने प्रसन्नतापूर्वक विश्वामित्र से कहा— "वर मांगो! हे द्विजप्रवर! तुमने इस स्तुति द्वारा जो स्तव कहा है, यह प्राणीगण की मनोकामना पूर्ण करेगा। जो व्यक्ति इसका पाठ करेंगे, उनके वंश में सतत् लक्ष्मीवृद्धि होगी। इस स्तव से मेरी स्तुति करने से वहां राक्षस, पिशाच, भूत तथा अन्य प्राणी विघ्न नहीं कर सकेंगे। इसे पाठ करने वाला दुःस्वप्न नहीं देखेगा। वृद्ध व्यक्ति बन्धन मुक्त होगा। इसके पाठ से व्यक्ति दिव्यभाव प्राप्त करेगा। हे मुनिवर! मैं तुमको वर देता हूं। इसके फल से तुम ब्रह्मर्षित्व प्राप्त करो। संस्कार रहित जन्म पशुजन्म होता है। अतः तुम श्रुतिविहित संस्कार से मुझे संस्कृत करो"।।१३९-१४७।।

ततोमुनिस्तस्यचक्रेजातकर्मादिकाःक्रियाः। पौरोहित्यंतथाभेजेस्कन्दस्यैवाऽऽज्ञयाप्रभुः॥१४८॥
ततस्तं वह्निरभ्यागाद्ददर्श च सुतं गहम्। षट्छीर्षं द्विगुणश्रोत्रं द्वादसाक्षिभुजक्रमम्॥१४९॥
एकग्रीवं चैककायं कुमारं सव्यलोकयत्। कलिलं प्रथमे चाह्नि द्वितीयेव्यक्तितांगतम्॥१५०॥
तृतीयायां शिशुर्जातश्चतुर्थ्यां पूर्ण एवच। पञ्चम्यां संस्कृतःसोऽभूत्पावकंचाप्यपश्यत॥१५१॥
ततस्तंपावकःपार्थआलिलिङ्गचुचुम्ब च। पुत्रेति चोक्त्वातस्मैसशक्त्यस्त्रमददात्स्वयम्॥१५२॥

स च शक्तिं समादाय नमस्कृत्य च पावकम्।
श्वेतशृङ्गं समारूढो मुखैः पश्यन्दिशो दश॥१५३॥
व्यनदद्भैरवं नादं त्रासयन्सासुरं जगत्। ततः श्वेतगिरेः शृङ्गं रक्षः पद्मदशावृतम्॥१५४॥
विभेद तरसा शक्त्या शरयोजनविस्तृतम्। तदेकेन प्रहारेण खण्डशः पतितं भुवि॥१५५॥
चूर्णीकृता राक्षसास्ते सततं धर्मशत्रवः। ततः प्रव्यथिता भूमिर्व्यशीर्यत समन्ततः॥१५६॥
भीताश्च पर्वताः सर्वे चुक्रुशुः प्रलयाद्यथा। भूतानि तत्र सुभृशं त्राहित्राहीतिचोज्जगुः॥१५७॥

भगवान् कुमार का यह आदेश पाकर विश्वामित्र ऋषि ने उनकी जातकर्म आदि क्रिया को सम्पन्न किया। प्रभु विश्वामित्र ने प्रभु स्कन्दकुमार की आज्ञानुरूप उनका पौरोहित्य ग्रहण किया। तदनन्तर वहां अग्निदेव ने आकर अपने पुत्र गुह (स्कन्द) का अवलोकन किया। वे देखते हैं कि कुमारदेव के छः मस्तक हैं। १२ कान, १२ नेत्र, १२ बाहु, एक ग्रीवा तथा एक मात्र देह है। स्कन्द के जन्म में वीर्य छोड़ने पर प्रथम दिन कलल, द्वितीय दिन किंचित् व्यक्त होकर, तृतीय दिन शिशु की उत्पत्ति हो गई। चतुर्थ दिन सभी अवयव गठित हो गये। पंचम दिन ही स्कन्द का दर्शन अग्नि ने किया। हे पृथानन्दन! तदनन्तर अग्निदेव ने उनका आलिंगन तथा चुम्बन किया। उन्हें पुत्र कहकर शक्ति नामक अस्त्र प्रदान किया। वे कुमार शक्ति ग्रहण के पश्चात् पावकदेव को प्रणाम करके अपने छः मुखों से दसों दिशाओं का अवलोकन करते हुये श्वेत पर्वत के गिरिशृंग पर चढ़े। वहां से उन्होंने एकाकी भीषण निनाद किया, जिससे असुरों के साथ समस्त जगत् त्रस्त हो गया। उस श्वेत गिरि शिखर पर १० पद्म संख्यक राक्षसों का वास था। प्रभु स्कन्द कुमार ने सवेग शक्ति से इस १०० योजन विस्तृत गिरिशृङ्ग पर प्रहार किया। इसके भीषण एकमात्र प्रहार से ही वह खण्ड-खण्ड होकर भूमि पर गिर गया। उससे धर्मद्वेषी राक्षस चूर्ण-विचूर्ण हो गये। इस भीषण शब्द से पर्वत समूह चीत्कार कर उठे। प्राणीगण भी त्राहि-त्राहि करने लगे।।१४८-१५७।।

एवं श्रुत्वा ततो देवा वासवं सह तेऽब्रुवन्। येनैकेन प्रहारेण त्रैलोक्यंव्याकुलीकृतम्॥१५८॥
स सङ्क्रुद्धः क्षणाद्विश्वं संहरिष्यति वासव!। वयंच पालनार्थायसृष्टा देवेन वेधसा॥१५९॥
तच्च त्राणं सदा कार्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि। अस्माकंपश्यतामेवंयदिसंक्षोभ्यते जगत्।
धिक्ततो जन्म वीराणां श्लाघ्यं हि मरणं क्षणात्॥१६०॥
तदस्माभिः सहैनं त्वं क्षन्तुमर्हसि वासव!॥१६१॥
एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा देवैः सार्धं तमभ्ययात्। विधित्सुस्तस्यवीर्यंस शक्रस्तूर्णतरंतदा॥१६२॥
उग्रं तच्च महावेगं देवानीकं दुरासदम्। नर्दमानं गुहः प्रेक्ष्य ननाद जलधिर्यथा॥१६३॥
तस्य नादेन महता समुद्भूतोदधिप्रभम्। बभ्राम तत्रतत्रैव देवसैन्यमचेतनम्॥१६४॥
जिघांसूनुपसम्प्राप्तान्देवान्दृष्ट्वा स पावकिः। विससर्ज्ज मुखात्तत्रप्रवृद्धाःपावकार्चिषः॥१६५।
अदहद्देवसैन्यानि चेष्टमानानि भूतले। ते प्रदप्तशिरोदेहाः प्रदीप्तायुधवाहनाः॥१६६॥
प्रच्युताः सहसा भान्ति दिवस्तारागणाइव। दह्यमानाः प्रपन्नास्तेशरणंपावकात्मजम्॥१६७॥

इस शब्द को सुनते ही देवताओं ने इन्द्र से कहा—"हे वासव! जिसके एक आघात से त्रैलोक्य व्याकुल

हो गया, वे तो क्रोधित होने पर क्षणमात्र में जगत् का संहार कर देंगे। हे वासव! विधाता ने हमारा सृजन तो जगत्पालनार्थ किया है। अतः हमारा कर्त्तव्य है कि कण्ठ तक भी प्राण आ जायें, तब भी पालन कार्य करना होगा। यदि हमारे देखते हुये ही जगत् इतना क्षुब्ध हो जाये, तब हमारे वीर-जीवन को धिक्कार है। तब हमारा मरण ही उत्तम है। हे वासव! आप हमारे साथ मिलकर इसका वध करें।'' इन्द्र ने देवगण का निवेदन सुनकर कहा—''यही हो।'' तदनन्तर देवगण के साथ इन्द्र कुमार को रोकने हेतु द्रुतवेग से दौड़ पड़े। कुमार ने इस निनादकारी उग्र दुराधर्ष देवसेना को आते देखकर सागर के समान भीषण गर्जन किया। उनके इस उद्वेलित सागर के समान महान् निनाद से देवसेना अचेतन सी होकर इधर-उधर भागने लगी। पावकनन्दन गुह कुमार ने देवगण को हिंसा की भावना से आते देखकर मुख से अग्निशिखा समूह छोड़ना प्रारम्भ किया। इससे देवगण दग्ध होते इधर-उधर भागने लगे। उनके आयुध, वाहन, मस्तक, देहादि प्रज्वलित होने के कारण लगता था, मानों वे देवता आकाश से च्युत हो रहे तारक हों! उन देवगण में से अनेक तो पावकनन्दन स्कन्द की शरण में आ गये।।१५८-१६७।।

देवा वज्रधरं प्रोचुत्यज वज्रं शतक्रतो!। उक्तो देवैस्तदाशक्रः स्कन्दे वज्रमवासृजत्॥१६८॥
तद्विसृष्टं जघानाऽऽशु पार्श्वं स्कन्दस्य दक्षिणम्। विभेद च कुरुश्रेष्ठ! तदा तस्य महात्मनः॥१६९॥
वज्रप्रहारात्स्कन्दस्य सञ्जातः पुरुषोऽपरः। युवाकाञ्चनसन्नाहः शक्तिधृग्दिव्यकुण्डलः॥१७०॥
शाख इत्यभिविख्यातः सोऽपिव्यनददद्भुतम्। ततश्चेन्द्रःपुनःक्रुद्धोहृदिस्कन्दं व्यदारयत्॥१७१॥
तत्रापि तादृशो जज्ञे नैगमेय इति श्रुतः। ततो विनद्य स्कन्दाद्याश्चत्वारस्तंतदाभ्ययुः॥१७२॥
तदेन्द्रो वज्रमुत्सृज्य प्राञ्जलिः शरणं ययौ। तस्याभयंददौस्कन्दःसहसैन्यस्य सत्तमः॥१७३॥
ततः प्रहृष्टास्त्रिदशा वादित्राण्यभ्यवादयन्। वज्रप्रहारात्कन्याश्चजज्ञिरेऽस्यमहाबलाः॥१७४॥

बाकी देवताओं ने तब वज्रपाणि इन्द्र से कहा—''हे शतक्रतु महेन्द्र! आप वज्र प्रहार करें।'' देवताओं के यह कहने पर इन्द्र ने स्कन्द पर वज्र का प्रहार किया। हे कुरुश्रेष्ठ! उस वज्र ने कुमार के दक्षिण पार्श्व का भेदन किया। उनके उस भिद्य पार्श्वभाग से कांचनकान्ति, दिव्यभूषण भूषित शक्तिधर एक अन्य युवा पुरुष प्रादुर्भूत हो गया। उसका नाम था शाख। उसने भी प्रचण्ड सिंहनाद किया। तदनन्तर इन्द्र ने वज्राघात से स्कन्द का वामपार्श्व भेदन किया। उससे भी पूर्ववत् एक पुरुष निकला। उसका नाम था विशाख। तब इन्द्र ने क्रोधित होकर पुनः स्कन्द के हृदय पर वज्राघात किया। तब विदीर्ण हृदय से पुनः पूर्ववत् एक पुरुष निकला। उसका नाम था नैगमेय। तब शाख-विशाख-नैगमेय तथा स्कन्द इन्द्र पर दौड़ पड़े। यह देखकर इन्द्र ने वज्र त्याग दिया तथा हाथ जोड़कर उनकी शरण में आ गये। साधुतम स्कन्द ने ससैन्य देवराज को अभय दान दिया। तब देवता प्रसन्न होकर नाना वाद्यों का वादन करने लगे। इन्द्र के वज्रप्रहार से स्कन्द के शरीर से महाबल सम्पन्न ७ कन्यायें भी जन्मी थीं।।१६८-१७४।।

या हरन्ति शिशूञ्जातान्गर्भस्थांश्चैव दारुणाः। काकी च हिलिमा चैव रुद्रा च वृषभा तथा॥१७५॥
आया पलाला मित्राचसप्तैताःशिशुमातरः। एतासांवीर्यसम्पन्नःशिशुश्चाऽभूत्सुदारुणः॥१७६॥
स्कन्दप्रसादजः पुत्रो लोहिताक्षो भयङ्करः। एषवीराष्टकःप्रोक्तःस्कन्दमातृगणोऽद्भुतः॥१७७॥
पूजनीयः सदा भक्त्या सर्वापस्मारशान्तिदः। उपातिष्ठत्ततःस्कन्दंहिरण्यकवचस्त्रजम्॥१७८॥

लोहितांबरसम्वीतंत्रैलोक्यस्याऽपिसुप्रभम्। युवानं श्रीःस्वयम्भेजेतंप्रणम्यशरीरिणी॥१७९॥
श्रिया जुष्टञ्च तम्प्राहुः सर्वेदेवाःप्रणम्य वै। हिरण्यवर्ण! भद्रं ते लोकानां शङ्करो भव॥१८०॥
भवानिन्द्रोऽस्तु नो नाथ त्रैलोक्यस्य हिताय वै॥१८१॥

ये सभी अत्यन्त दारुण स्वभाव की थीं। इनका काम था गर्भगत तथा उत्पन्न शिशुओं का हरण। इनके नाम थे काकी, हिलिमा, रुद्रा, वृषभा, आया, पलाला तथा मित्रा। ये सातों शिशुमाता हैं। स्कन्द की कृपा से एक पुत्र भी अत्यन्त दारुण जन्मा, जो भयंकराकृति तथा लोहिताक्ष नाम से विख्यात था। ये अद्भुद् वीराष्टक (सात कन्या तथा एक पुत्र) स्कन्दमातृगण के नाम से प्रख्यात हैं। ये सब प्रकार के अपस्मार में शान्ति देते हैं। भक्ति के साथ इनका पूजन करना चाहिये। तदनन्तर स्वर्णकवच, मालाधारी, लोहित वस्त्र पहने, त्रैलोक्य में एकमात्र सुपुरुष युवा स्कन्द का भजन श्रीदेवी ने मूर्त्तिमती होकर स्वयं प्रणाम करके किया। तब श्रीदेवी द्वारा पूजित स्कन्द को सभी देवताओं ने प्रणाम करके कहा—"हे हिरण्यवर्ण! आपका मंगल हो। आप लोकों का मंगल विधान करें। हे नाथ! आप त्रिलोक के हितार्थ हमारे इन्द्र हो जायें"।।१७५-१८१।।

स्कन्द उवाच

किमिन्द्रः सर्वलोकानां करोतीह सुरोत्तमाः। कथं देवगणांश्चैवपाति नित्यं सुरेश्वरः॥१८२॥

स्कन्ददेव कहते हैं—"हे सुरश्रेष्ठगण! इन्द्र सभी लोग का क्या कार्य साधन करते हैं, ये सुरेश्वर देवगण का किस प्रकार पालन करते हैं?"।।१८२।।

देवा ऊचुः

इन्द्रो दिशति भूतानां बलंतेजःप्रजाःसुखम्। प्रज्ञांप्रयच्छतितथा सर्वान्दायान्सुरेश्वरः॥१८३॥
दुर्वृत्तानां स हरति वृत्तस्थानं प्रयच्छति। अनुशास्ति च भूतानि कार्येषु बलवत्तरः॥१८४॥
असूर्येच भवेत्सूर्यस्तथाऽचन्द्रे च चन्द्रमाः। भवत्यग्निश्चवायुश्च पृथिव्यांजीवकारणम्॥१८५॥
एतदिन्द्रेण कर्तव्यमिन्द्रो हि विपुलं बलम्। त्वं चेन्द्रोभवनोवीर तारकंजहि ते नमः॥१८६॥

देवगण कहते हैं—देवश्रेष्ठ इन्द्र! प्राणीगण को बल, तेज, पुत्र, सुख, प्रज्ञा तथा अन्य वांछित द्रव्य देते हैं। वे दुर्वृत्त लोगों का उपरोक्त सब हरण कर लेते हैं। साथ ही सद्वृत्तलोगों को यह सब प्रदान करते हैं। वे सर्वापेक्षा शक्तिमान् होने के कारण प्राणियों के विविध कार्यों का अनुपालन भी करते रहते हैं। वे सूर्य के अभाव में सूर्य, चन्द्र के अभाव में चन्द्र, अग्नि के अभाव में अग्नि, वायु के अभाव में वायु होकर पृथिवी के प्राणीगण का हितसाधन करते हैं। इन्द्र का यही कार्य है। इन्द्र ही प्राणीगण के परम बल हैं। आप हमारे इन्द्र हो जायें। तारकासुर का वध करें। आपको प्रणाम।।१८३-१८६।।

इन्द्र उवाच

त्वं भवेन्द्रोमहाबाहो सर्वेषां नः सुखावहः। प्रणम्य प्रार्थयेस्कन्द! तारकंजहि रक्ष नः॥१८७॥

इन्द्र कहते हैं—"हे महाबाहु स्कन्द! आप हम सबके सुखसाधक इन्द्र हो जायें। आपको प्रणाम करके प्रार्थना करता हूं। आप तारकासुर का विनाश करके हमारी रक्षा कीजिये"।।१८७।।

स्कन्द उवाच

शाधि त्वमेव त्रैलोक्यं भवानिन्द्रोऽस्तु सर्वदा। करिष्ये चेन्द्रकर्माणि न ममेन्द्रत्वमीप्सितम्॥१८८॥
त्वमेव राजा भद्रन्ते त्रैलोक्यस्य ममैव च। करोमि किंच ते शक्र! शासनं ब्रूहितन्मम॥१८९॥

स्कन्ददेव कहते हैं—"हे इन्द्र! आप ही इन्द्ररूपेण सदा त्रैलोक्य का शासन करिये। मैं इन्द्र का समस्त कार्य सम्पन्न करूंगा। मुझे इन्द्रत्व की तनिक भी इच्छा नहीं है। इस त्रैलोक्य के तथा मेरे आप ही राजा हों। आपका मंगल हो। हे शक्र! मैं आपका क्या कार्य करूं?"॥१८८-१८९॥

इन्द्र उवाच

यदि सत्यमिदं वाक्यं निश्चयाद्भाषितंत्वया। अभिषिच्यस्य देवानांसैनापत्येमहाबल।
अहमिन्द्रो भविष्यामि तव वाक्याद्यशोऽस्तु ते॥१९०॥

इन्द्र कहते हैं—हे महाभाग! यदि आप यह बात निश्चित रूपेण कह रहे हैं, तब आप देवताओं के सेनापति पद पर अभिषिक्त हो जायें। मैं इन्द्रत्व करता रहूंगा। आपका यश चतुर्दिक् प्रख्यात हो॥१९०॥

स्कन्द उवाच

दानवानां विनाशाय देवानामर्थसिद्धये। गोब्राह्मणस्य चार्थाय एवमस्तु वचस्तव॥१९१॥
इत्युक्ते सुमहानादः सुराणामभ्यजायत। भूतानां चापि सर्वेषां त्रैलोक्याकम्पकारकः॥१९२॥
जयेति तुष्टुवुश्चैनं वादित्राण्यभ्यवादयन्। ननृतुस्तुष्टुवुश्चैनं कराघातांश्च चक्रिरे॥१९३॥
तेन शब्देन महता विस्मिता नगनन्दिनी। शङ्करं प्राह को देव! नादोऽयमतिवर्तते॥१९४॥

स्कन्द कहते हैं—"दानवों का विनाश, देवताओं की अभीष्ट सिद्धि तथा गौ-ब्राह्मण के हित साधन के लिए आप जो कहते हैं, वही हो!" स्कन्ददेव के यह कहते ही देवगण तथा अन्य प्राणियों ने महान् सिंहनाद किया, जिससे त्रैलोक्य कम्पित हो उठा। सभी स्कन्ददेव की जय घोषणा के साथ नाना वाद्य वादन, ताली बजाना, नाचना तथा स्तवन करने लगे। इस महान् शब्द से पर्वतनन्दिनी देवी भगवती जगज्जननी उमा विस्मित होकर शंकर से पूछने लगीं—"हे देव! यह घोर निनाद क्यों हो रहा है?"॥१९१-१९४॥

रुद्र उवाच

अद्य नूनं प्रहृष्टानां सुराणां विविधा गिरः। श्रूयन्तेचतथादेवि! यथा जातः सुतस्तव।
गवां च ब्राह्मणानां च साध्वीनां च दिवौकसाम्॥१९५॥
मार्जयिष्यति चाऽश्रूणि पुत्रस्ते पुण्यवत्यपि॥१९६॥
एवं वदति सा देवी द्रष्टुं तमुत्सुकाऽभवत्॥ शङ्करश्च महातेजाः पुत्रस्नेहाधिकोयतः॥१९७॥
वृषभं तत आरुह्य देव्या सह समुत्सुकः। सगणो भव आगच्छत्पुत्रदर्शनलालसः॥१९८॥
ततो ब्रह्मा महासेनं प्रजापतिरथाऽब्रवीत्। अभिगच्छ महादेवं पितरं मातरं प्रभो!॥१९९॥
अनयोर्वीर्यसंयोगात्तवोत्पत्तिस्तु प्राथमी। एवमस्त्वितिचाप्युक्त्वामहासेनोमहेश्वरम्॥२००॥

अपूजयदमेयात्मा पितरं मातरं च ताम्। ततस्तमालिङ्ग्य सुतं चिरंसंयोज्यचाशिषः॥२०१॥

रुद्रदेव कहते हैं—"हे देवी! यह हर्षित देवताओं के नाना वाक्य सुनाई दे रहे हैं। हे पुण्यवती! निश्चय ही तुम्हारा पुत्र उत्पन्न हो गया है। वह गौ, ब्राह्मण, साध्वी स्त्रियों तथा देवगण के आंसू पोंछेगा।" देवी यह सुनकर देवी पुत्र को देखने के लिए उत्सुक हो गयीं। महात्मा शिव भी पुत्र स्नेह से उत्सुक हो गये। तब देवी के साथ भगवान् वृष पर आरूढ़ होकर गण के साथ पुत्रदर्शनार्थ चल पड़े। उधर ब्रह्मा ने महादेव कुमार स्कन्द से कहा—"प्रभो! तुम महादेव से मिलो। यही तुम्हारे पिता-माता हैं। इनके ही योग से तुमको प्रथम जन्म मिला है।" अमेयात्मा कुमार ने "वही करता हूं" कहकर महादेव के निकट आये तथा पिता-माता का यथोचित पूजन सम्पन्न किया। तब गौरी-महेश्वर ने पुत्र का प्रगाढ़ आलिंगन करके हर्षपूरित चित्त द्वारा उनको विविध आशीर्वाद प्रदान किया।।१९५-२०१।।

चिरं जहृषतुश्चोभौ पार्वतीपरमेश्वरौ। सिद्धसारस्य तत्त्वं च ददौ तुष्टोऽस्य शङ्करः॥२०२॥
देवी प्रकृतिमोक्षं च तुष्टा हर्षपरिप्लुता। एतस्मिन्नेव काले तु षड्देव्यस्तं समागमन्॥२०३॥
ऋषिभिस्ताः परित्यक्तास्तं पुत्रेति जगुस्तदा।
पार्वती च ततः प्राह मम पुत्रो न वस्त्वयम्॥२०४॥
स्वाहा ममेति च प्राह पावकश्च ममेति च। रुद्रो ममेति च प्राह मम देवनदीति च॥२०५॥
चक्रुस्ते कलहं घोरं विवदन्तः परस्परम्।
पुत्रस्नेहो हि बलवान्पार्थकिंकिंन कारयेत्॥२०६॥
ततस्तान्प्रहसन्नाह विवादो युज्यते न च। सर्वेषां वो गुहः पुत्रो मत्तोवै व्रियतां वरः॥२०७॥
ततः प्राहुश्च षड्देव्यः स्वर्गोनोह्यक्षयोभवेत्। तथेतिताःगुहःप्राहशक्रस्तत्रान्तरेऽब्रवीत्॥२०८॥
रोहिण्याश्चानुजा स्कन्दः स्पर्धमानाभिजित्खला।
इच्छन्ती ज्येष्ठतां देवी पृथक्त्वं च तपोरता॥२०९॥
ततःप्रभृति मूढोऽस्मितत्स्थानेस्थापयप्रभो। ततस्तथेतिचप्रोक्तेकृत्तिकास्तादिवंगताः॥२१०॥
नक्षत्रं सप्तशीर्षाभं भाति तद्वह्निदैवतम्। अथैनमब्रवीत्स्वाहा प्रिया नाहं महार्चिषः।
तदग्रे प्रियतां देहि सहवासं सदैव च॥२११॥

सन्तुष्ट शंकर ने स्कन्ददेव को सिद्धसारतत्व तथा हर्ष से आप्लुत देवी जगदम्बा ने प्रकृति मोक्ष प्रदान किया। इस अवसर पर सप्तऋषियों द्वारा परित्यक्ता छः महर्षि पत्नियां वहां आईं तथा कुमार स्कन्द को 'पुत्र' कहकर सम्बोधित किया। पार्वती कहने लगीं—"यह तो मेरा पुत्र है।" तब स्वाहा, अग्नि, रुद्र, गंगा में से प्रत्येक ने उनको अपना पुत्र कहकर वाद-प्रतिवादात्मक कलह प्रारम्भ किया। हे पृथापुत्र! पुत्रस्नेह अतीव बलवान है, वह क्या नहीं घटित कर देता! गुहदेव (स्कन्द) ने कहा—"मैं आप सबका पुत्र हूं।" तब छः ऋषिपत्नियों ने कहा "हमें अक्षय स्वर्ग प्राप्त हो।" गुहदेव ने कहा "यही हो।" इस समय इन्द्र ने कहा "हे स्कन्द! रोहिणी की कनिष्ठा बहन खलस्वभावा अभिजित् पृथक् भाव से प्रधानता पाने हेतु तप कर रही है। इसलिए मैं इस सम्बन्ध में किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया हूं। हे प्रभो! इन छः मुनिपत्नियों को उसके स्थान पर स्थापित करें।" तब गुहदेव ने कहा "यही हो" तब

ये छः मुनिपत्नियां स्वर्ग जाकर छः कृत्तिका कहलाईं। तभी वह्निदेवता, सप्तशीर्षाभ नक्षत्राकार में प्रकाशित होते हैं। तदनन्तर स्वाहादेवी ने भगवान् स्कन्द से कहा—"मैं अग्नि की प्रियपात्री नहीं हूं। जिस प्रकार से मैं अग्नि की प्रिया होकर सतत् उनका सहवास प्राप्त कर सकूं, वह वर दीजिये"।।२०२-२११।।

स्कन्द उवाच

हव्यं कव्यं च यत्किञ्चिद्द्विजा होष्यन्ति पावके॥२१२॥
तत्ते नाम्ना प्रदास्यन्तिवासःसार्धंभवेत्तव। पावकः प्रार्थयामासयज्ञभागान्पुनःसुतान्॥२१३॥
स चाप्याहाऽद्यप्रभृति यज्ञभागानवाप्नुहि। इतरे प्रार्थयामासुःख्यातोनस्त्वं सुतोभव॥२१४॥
एवमेवेति तानाह स्कन्दस्तद्धि सुदुर्लभम्। ततस्तं योगिनः सर्वे सम्भूय सनकादयः।
अभ्यषिञ्चन्गिरौ तस्मिन्योगिनामाधिपत्यके॥२१५॥
योगीश्वरमिति प्राहुस्ततस्तं योगिनस्तथा। जहृषुर्देवताश्चैव नानावाद्यान्यवादयन्॥२१६॥
अभिषिक्तेन तेनाऽसौ शुशुभे श्वेतपर्वतः। आदित्येनेवांशुमता सुरम्य उदयाचलः॥२१७॥

स्कन्ददेव कहते हैं—"ब्राह्मणगण! अग्नि में जो भी होमीय द्रव्य हव्य-कव्यादि है, आपके ही नाम से प्रदान करेंगे। अग्नि भी सतत् आपके ही साथ में निवास करेंगे।" तत्पश्चात् अग्नि ने कुमार से यज्ञ प्रदत्त भाग हेतु प्रार्थना किया। तब कुमार ने कहा—"आज से आपको यज्ञभाग मिलेगा।" अन्य लोगों ने कुमार से प्रार्थना किया "आप हमारे पुत्ररूपेण प्रसिद्ध हों।" स्कन्द कुमार ने "ऐसा ही हो।" कहकर उनको यह अत्यन्त दुर्लभ वर प्रदान किया। योगीगण के आधिपत्य वाले उस श्रेष्ठ पर्वत पर सनकादि योगीगण ने मिलकर उनका अभिषेक किया तथा प्रभु स्कन्दकुमार को 'योगीश्वर' नाम से पुकारा। तब देवता भी प्रसन्न होकर नाना देव वाद्यों का वादन करने लगे। वह श्वेत पर्वत इन अभिषेक युक्त कुमार के द्वारा ऐसा शोभित हो गया, जैसे किरणमाला सूर्यदेव के द्वारा उदयगिरि पर्वत सुषमा सम्पन्न प्रतीत होता है।२१२-२१७।।

ततो देवाः सगन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसस्तथा। हृष्टानां सर्वभूतानां श्रूयतेनिनदोमहान्॥२१८॥
एवं सेन्द्रं जगत्सर्वं श्वेतपर्वतसंस्थितम्। प्रहृष्टं प्रेक्ष्यतं स्कन्दं न च तृप्यतिदर्शनात्॥२१९॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कुमारेश्वरमाहात्म्ये स्कन्दकुमारस्य सर्वदेवसैनाधिपत्याभिषेकोत्सववर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥

उसी समय अप्सरागण के साथ देव-गन्धर्व भी नृत्यरत हो गये। सभी प्राणीगण हर्षित होकर निनाद कर रहे थे। श्वेत पर्वत पर महेन्द्र के साथ स्कन्ददेव को देखकर प्राणीगण की तृप्ति का अन्त नहीं था। सभी उनका दर्शन किये जा रहे थे। तृप्ति ही नहीं हो रही थी।।२१८-२१९।।

॥एकोनत्रिंश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

त्रिंशोऽध्यायः

कार्त्तिकेय का सेनापति पद पर अभिषेक, नाना अस्त्र प्रदान किया जाना

नारद उवाच

ततःस्कन्दःसुरैः सार्धं श्वेतपर्वतमस्तकात्। उत्तीर्य तारकंहन्तुंदक्षिणां स दिशं ययौ॥१॥
ततः सरस्वतीतीरे यानि भूतानि नारद!। ग्रहाश्चोपग्रहाश्चैव वेतालाः शाकिनीगणाः॥२॥
उन्मादा ये ह्यपस्माराः पलादाश्च पिशाचकाः। देवैस्तेषामाधिपत्ये सोऽभ्यषिच्यत पावकिः॥३॥
यथा तेनैवमर्यादांसन्त्यजन्तिदुराशयाः। एतैस्तस्मात्समाक्रान्तःशरण्यंपावकिंव्रजेत्॥४॥
अप्रकीर्णेन्द्रियंदान्तंशुचिंनित्यमतन्द्रितम्। आस्तिकंस्कन्दभक्तंचवर्जयन्ति ग्रहादिकाः॥५॥
महेश्वरं च ये भक्ता भक्ता नारायणं च ये। तेषां दर्शनमात्रेण नश्यन्ते ते विदूरतः॥६॥
ततः सर्वैः सुरैः सार्धं महीतीरं ययौ गुहः। तत्र देवैः प्रकथितं महीमाहात्म्यमुत्तमम्॥७॥
शृण्वन्विसिष्मिये स्कन्दः प्रणनाम च तां नदीम्।
ततो महीदक्षिणतस्तीरमाश्रित्य धिष्ठितम्॥८॥
प्रणम्य शक्रप्रमुखा गुहं वचनमब्रुवन्। अभिषिक्तं विना स्कन्द! सेनापतिमकल्मषम्॥९॥
न शर्म लभते सेना तस्मात्त्वमभिषेचय।
महीसागरसम्भूतैः पुण्यैश्चाऽपि शिवैर्जलैः॥१०॥
अभिषेक्ष्यामहे त्वां च तत्र नो द्रष्टुमर्हसि। यथा हस्तिपदे सर्वपदान्तर्भाव इष्यते॥११॥
सर्वतीर्थान्तरस्थानं तथार्णवमहीजले। सर्वभूतमयो यद्वत्त्र्यम्बकः परिकीर्त्यते॥१२॥

नारद कहते हैं—इसके पश्चात् स्कन्ददेव ने देवता के साथ श्वेतपर्वत के शिखर पर आकर तारक वधार्थ दक्षिणाभिमुख प्रस्थान किया। तदनन्तर सरस्वती तीर पर ग्रह, उपग्रह, बेताल, शाकिनी, उन्मादरोग, अपस्मार रोग, मांसभोजी पिशाच आदि के आधिपत्य के लिए देवताओं ने स्कन्द का अभिषेक किया। ये सभी दुष्ट जीव जब अत्याचार करने लगें, तब स्कन्ददेव का शरणापन्न होना चाहिये। ये सब जितेन्द्रिय, दमयुक्त, पवित्र, सावधान, आस्तिक तथा स्कन्ददेव के भक्तों को छोड़ देते हैं। जो महेश्वर अथवा नारायण के भक्तगण हैं, उनको देखते ही ये सभी दूर से भाग जाते हैं। इसके अनन्तर गुहदेव ने सभी देवताओं के साथ देवगण के साथ महीनदी के पास आये। देवताओं ने उनसे उत्तम महीनदी की महिमा का वर्णन किया। उन्होंने विस्मित होकर उस नदी को प्रणाम किया। वे सभी महीनदी के दक्षिण तट पर स्थित हो गये। तब इन्द्र आदि प्रमुख देवताओं ने कुमार को प्रणाम करके कहा—"हे स्कन्द! सेनापति पद पर अभिषिक्त होकर निष्पाप हुये बिना सेना को शान्ति नहीं मिलती। इसलिए आप अभिषिक्त हों। हम महीसागर संगम के पुण्य उत्तम जल से आपका अभिषेक करेंगे। जैसे हाथी के पैर के गड्ढे में सभी के पैर का चिह्न विलीन हो जाता है, महीसागर संगम के जल में भी अन्य तीर्थ का ऐसा ही अन्तर्भाव कहा गया है।

जैसे महाप्रभु त्रिलोचन सर्वभूतमय हैं, उसी प्रकार महीसागर संगम सर्वतीर्थमय है।।१-१२।।

सर्वतीर्थमयस्तद्वन्महीसागरसङ्गमः। अर्धनारीश्वरं रूपं यथा रुद्रस्य सर्वदम्॥१३॥
तथा महीसमुद्रस्य स्नानं सर्वफलप्रदम्। येनाऽत्र पितरः स्कन्द तर्पिता भक्तिभावतः॥१४॥
तेन सर्वेषु तीर्थेषु तर्पिता नाऽत्र संशयः। न चैतद्धदि मन्तव्यं क्षारमेतज्जलं हि यत्॥१५॥
यथा हि कटुतिक्तादि गवा ग्रस्तं हि क्षीरदम्। एवमेतत्त्विदंतोयंपितृणांतृप्तिदायकम्॥१६॥

रुद्रदेव की अर्द्धनारीश्वर मूर्त्ति के समान ही महीसागरसंगम तीर्थ भी मानव को सर्व अभीष्ट प्रदान करता है। हे स्कन्द! यहां भक्तिपूर्वक पितरों का तर्पण करने से सभी तीर्थ तर्पण का फल प्राप्त हो जाता है। ऐसा सन्देह करना समीचीन नहीं है कि यह जल क्षार की बहुलता वाला है, अतः यह पितरों को कैसे तृप्त कर सकेगा! जैसे गौ कटु-तिक्त आदि आहार करके भी मधुर दुग्ध प्रदान करती है, वैसे ही मन्त्रयोग के कारण यह जल भी अति मधुर रूप ग्रहण करके पितृगण की तृप्ति करने वाला रूप ग्रहण कर लेता है।।१३-१६।।

एवं ब्रुवत्सु देवेषु कपिलोऽपि मुनिर्जगौ। सत्यमेतदुमापुत्र! सर्वतीर्थमयी मही॥१७॥
कर्दमो यस्त्वहमपि ज्ञात्वा तीर्थमहागुणान्।
सर्वां भुवं परित्यज्य कृत्वा ह्याश्रममास्थितः॥१८॥
ततो महेश्वरः प्राह सत्यमेतत्सुरोदितम्। ब्रह्माद्यास्तं तथा प्राहुरत्र भूयोऽप्यथोगुरुः॥१९॥
अत्राभिषेकंतेवीर! करिष्यामःसमादिश। ततःसुविस्मितस्तत्रस्नात्वास्कन्दोमहामनाः॥२०॥
अभिषिञ्चन्तु मां देवाइतितानब्रवीद्वचः। ततोऽभिषेकसम्भारान्सर्वान्सम्भृत्यशास्त्रतः॥२१॥
जुहुवुर्मन्त्रपूतेऽग्नौ चत्वारो मुख्यऋत्विजः। ब्रह्माच कपिलोजीवोविश्वामित्रश्चतुर्थकः॥२२॥

देवगण को इस प्रकार से कहते सुनकर कपिल मुनि ने भी कहा—"हे उमापुत्र! महीनदी सर्वतीर्थमयी है। यह कथन परम सत्य है। मैं तथा कर्दम ऋषि इस तीर्थ की महिमा जानकर ही समस्त भूमण्डल का त्याग करके यहां आश्रम बनाकर निवास कर रहे हैं। तदनन्तर महेश्वर ने भी कहा—"देवगण जो कह रहे हैं, वह तो नितान्त सत्यरूप है। ब्रह्मा आदि अन्य लोगों ने भी यही कहा है।" तदनन्तर गुरु बृहस्पति ने भी कहा—"हे वीर! तुम अनुमति प्रदान करो, यही तुम्हारा अभिषेक होगा।" महामति स्कन्द उन लोगों के इस वक्तव्य से अत्यन्त विस्मित हो गये। उन्होंने वहां स्नान करके कहा—"हे देवगण! आप सब मुझे यहां अभिषिक्त करें।" स्कन्ददेव की अनुमति मिलने पर शास्त्र के अनुसार समस्त अभिषेक सामग्री एकत्रित की गयी। ब्रह्मा, कपिल, बृहस्पति तथा विश्वामित्र ने ऋत्विक होकर यथाविधि मन्त्रपूत अग्नि में होम किया।।१७-२२।।

अन्ये च शतशस्तत्र मुनयो वेदपारगाः। तत्राऽद्भुतं महादेवो दर्शयामास भारत!॥२३॥
यदग्निकुण्डमध्यस्थो लिङ्गमूर्तिर्व्यदृश्यत। अहमेवाऽग्निमध्यस्थो हविर्गृह्णामिनित्यशः॥२४॥
एतत्संदर्शनार्थाय लिङ्गमूर्तिरभूद्विभुः। तल्लिंगमतुलं देवा नमश्चक्रुमुदान्विताः॥२५॥
सर्वपापापहं पार्थ! सर्वकामफलप्रदम्। तत्र होमावसाने च दत्ते हिमवताशुभे!॥२६॥
दिव्यरत्नान्विते स्कन्दो निषण्णःपरमासने। सर्वमङ्गलसम्भारैर्विधिमन्त्रपुरस्कृतम्॥२७॥

और भी सैकड़ों वेदज्ञ मुनिगण इस अभिषेक कार्य में व्रती होकर कार्य सम्पादन कराने लगे। हे भारत! तब महादेव ने एक अद्‌भुद् विस्मयजनक कार्य का प्रदर्शन किया। वे लिंगमूर्त्ति धारण करके अग्निकुण्ड में स्थित हो गये। विभु महेश्वर ने "मैं अग्निमध्य में हवि ग्रहण करता हूं," यही बतलाने के लिए उन्होंने यह कार्य किया। हे पार्थ! देवगण ने सहर्ष इस अतुलनीय लिंग को नमस्कार किया। यह लिंग सर्वपापहारी तथा समस्त कामनाओं को सफल करने वाला है। तदनन्तर देवगण ने शंकरनन्दन कुमार का यथाविधि मन्त्रोच्चार के साथ समस्त मंगलद्रव्य द्वारा अभिषेक किया।।२३-२७।।

अभ्यषिंचंस्ततो देवा! कुमारं शङ्करात्मजम्। इन्द्रो विष्णुर्महावीर्यो ब्रह्मरुद्रौ च फाल्गुन!॥२८॥
आदित्याद्याग्रहाःसर्वेतथोभावनिलानलौ। आदित्यावसवोरुद्राःसाध्याश्चैवाश्विनावुभौ॥२९॥
विश्वेदेवाश्च मरुतो गन्धर्वाप्सरससस्तथा। देवब्रह्मर्षयश्चैव बालखिल्या मरोचिपाः॥३०॥
विद्याधरा योगसिद्धाः पुलस्त्यपुलहादयः। पितरः कश्यपोऽत्रिश्चमरीचिर्भृगुरङ्गिराः॥३१॥
दक्षोऽथ मनवो ये च ज्योतींषिऋतवस्तथा। मूर्तिमत्यश्चसरितो महीप्रभृतिकास्तथा॥३२॥
लवणाद्याः समुद्राश्च प्रभासाद्याश्च तीर्थकाः। पृथिवीद्यौर्दिशश्चैवपादपाःपार्वतास्तथा॥३३॥
आदित्याद्या मातरश्च कुर्वन्त्यो गुहमङ्गलम्। वासुकिप्रमुखा नागास्तथोभौ गरुडारुणौ॥३४॥
वरुणो धनदश्चैव यमः सानुचरस्तथा। राक्षसो निर्ऋतिश्चैव भूतानि च पलाशनाः॥३५॥
धर्मो वृहस्पतिश्चैव कपिलो गाधिनन्दनः।
बहुलत्वाच्च ये नोक्ताविविधादेवतागणाः॥३६॥
ते च सर्वे महीकूले ह्यभ्यषिञ्चन्मुदागुहम्। ततो महास्वनामुग्रां देवदैत्यादिदर्पहाम्॥३७॥
ददौ पशुपतिस्तस्मै सर्वभूतमहाचमूम्। विष्णुर्ददौ वैजयन्तीं मालां बलविवर्धिनीम्॥३८॥
उमा ददौ चारजसी वाससी सूर्यसप्रभा। गङ्गा कमण्डलुं दिव्यममृतोद्भवमुत्तमम्॥३९॥
मही महानदी तस्य चाऽक्षमालां ससागरा। ददौ मुदा कुमाराय दण्डंचैव बृहस्पतिः॥४०॥
गरुडो दयितं पुत्रं मयूरं चित्रबर्हिणम्। अरुणस्ताम्रचूडं च प्रददौ चरणायुधम्॥४१॥
छागं च वरुणो राजा बलवीर्यसमन्वितम्। कृष्णाजिनं तथाब्रह्माब्रह्मण्यायददौजयम्॥४२॥
चतुरोऽनुचरांश्चैव महावीर्यान्बलोत्कटान्। नन्दिसेनंलोहिताक्षंघण्टाकर्णंचमानसान्॥४३॥

हे फाल्गुन! इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, आदित्यादि ग्रह, वायु, अग्नि, द्वादश आदित्य, अष्टवसु, ११ रुद्र, अश्विनीकुमारद्वय, साध्यगण, विश्वेदेव, मरुत्, गन्धर्व, अप्सरा, देवर्षि, ब्रह्मर्षि, बालखिल्य, मरीचिप, विद्याधर, योगसिद्धगण, पुलस्त्य, पुलहादि ऋषि, पितृगण, कश्यप, अत्रि, मरीचि, भृगु, अंगिरा, दक्ष, मनुगण, मूर्त्तिमान ज्योतिः पदार्थ समूह, ऋतु, पृथिवी, अन्तरिक्ष, दिक्, पादप, पर्वत, अदिति प्रभृति मातृगण, वासुकि आदि प्रमुख नाग, अरुण, अनुचरों के साथ वरुण, कुबेर, यम तथा निर्ऋति, भूत, मांसाद, धर्म, बृहस्पति, कपिल, विश्वामित्र तथा अन्य विविध देवतागण गुहदेव की मंगल कामना के लिए इस महीनदी के तट पर आये तथा आनन्दित होकर गुहदेव का अभिषेक किया। तदनन्तर पशुपति महेश्वर ने उनको सर्वभूतपालिकी, देव दैत्यादि

दर्पहारिणी, महानिनादकारिणी, उग्रा, महाचमू प्रदान किया। (चमू अर्थात् ऐसी सेना, जिसमें ७२९ हाथी, ७२९ रथ, २१८७ घुड़सवार तथा ३६४५ सैनिक पैदल हों) विष्णु ने बलवर्द्धिनी वैजयन्ती माला, उमादेवी ने सूर्य समप्रभ विमल वसनयुगल (दो वस्त्र), गंगा ने अमृतपूर्ण दिव्य उत्तम कमण्डलु, सागर सहिता महीनदी ने सानन्द मन से अक्षमाला प्रदान किया। बृहस्पति ने दण्ड, गरुड़ ने अपना प्रिय पुत्र मयूर तथा अरुण ने चरणायुध ताम्रचूड़ नामक कुक्कुट प्रदान किया। राजा वरुण ने एक बलवीर्य समन्वित बकरा प्रदान किया। ब्रह्मा ने उन ब्रह्मण्यदेव कुमार को विजयप्रद, महावीर्य, महाबली ४ अनुचर प्रदान किये। उनके नाम थे नन्दिसेन, लोहिताक्ष, घण्टाकर्ण तथा कुसुममाली। ब्रह्मा ने कृष्ण मृगचर्म भी दिया।।२८-४३।।

चतुर्थं चाप्यतिबलं ख्यातं कुसुममालिनम्। ततः स्थाणुर्ददौदेवो महापारिषदं क्रतुम्।।४४।।
स हि देवासुरे युद्धे दैत्यानां भीमकर्मणाम्। जघान दोर्भ्यां सङ्क्रुद्धः प्रयुतानि चतुर्दश।।४५।।
यमः प्रादादनुचरौ यमकालोपमौ तदा। उन्माथं च प्रमाथं च महावीर्यौ महाद्युति।।४६।।
सुभ्राजौ भास्करस्यैव यौ सदाचानुयायिनौ। तौसूर्यःकार्तिकेयायददौपार्थमुदान्वितः।।४७।।
कैलासशृङ्गसङ्काशौ श्वेतमाल्यानुलेपनौ। सोमोऽप्यनुचरौ प्रादान्मणिं सुमणिमेवच।।४८।।
ज्वालाजिह्वं ज्योतिषं च ददावग्निर्महाबलौ। परिघं च बलंचैव भीमं च सुमहाबलम्।।४९।।
स्कन्दाय त्रीननुचरान्ददौ विष्णुरुरुक्रमः। उत्क्रोशं पञ्चजं चैव वज्रदण्डधरावुभौ।।५०।।
ददौ महेशपुत्राय वासवः परवीरहा। तौ हि शत्रून्महेन्द्रस्य जघ्नतुः समरे बहून्।।५१।।

इनमें कुसुममाली अतीव बली के रूप में विख्यात था। तदनन्तर स्थाणुदेव शिव ने क्रतु नामक महापारिषद प्रदान किया। इस क्रतु ने पूर्वकालीन देवासुर युद्ध में क्रुद्ध होकर दोनों बाहु से दबाकर १४ प्रयुत दानवों का वध किया था। यमराज ने उन्माथ तथा प्रमाथ नामक दो महावीर तथा महातेजस्वी अनुचरों को प्रदान किया, जो यम तथा काल के समान बली थे। हे पार्थ! सूर्यदेव ने आनन्दित होकर अपने सुभ्राज नामक अनुचरद्वय को स्कन्ददेव को प्रदान किया। चन्द्रदेव ने मणि तथा सुमणि नामक कैलास शृङ्ग के समान श्वेतमाला तथा अनुलेपनधारी दो अनुचर प्रदान किये। अग्निदेव ने लीलाजिह्व तथा ज्योतिष नामक महाबली दो अनुचर प्रदान किये। अतिविजयी विष्णु ने परिघ, बल तथा भीम नामक महाबली तीन अनुचर प्रदान किये। परवीरघातक इन्द्र ने महेश्वरतनय कुमार को वज्र दिया तथा दण्डधारी उत्कोश तथा पंकज नामक दो अनुचर प्रदान किया। इन दोनों अनुचरों ने रणक्षेत्र में महेन्द्र के अनेक शत्रुओं का वध किया था।।४४-५१।।

वर्धनं बन्धनं चैव आयुर्वेदविशारदौ। स्कन्दाय ददतुः प्रीतावश्विनौ भरतर्षभ।।५२।।
बलं चाऽतिबलं चैव महावक्त्रौ महाबलौ। प्रददौ कार्तिकेयाय वायुश्चानुचरावुभौ।।५३।।
घसं चाऽतिघसं वीरौ वरुणश्च ददौ प्रभुः। सुवर्चसं महात्मानं तथैवाप्यतिवर्चसम्।।५४।।
हिमवान्प्रददौ पार्थ साक्षाद्दौहित्रकाय वै। काञ्चनं च ददौ मेरुर्मेघमालिनमेव च।।५५।।

हे मरुतवंशावतंस! आयुर्वेदज्ञ अश्विनीकुमारद्वय ने प्रसन्न होकर स्कन्ददेव को वर्द्धन तथा वन्धन नामक दो अनुचर प्रदान किये थे। वायुदेव ने कार्त्तिकेय को महामुख तथा महाबली बल एवं अतिबल नामक दो अनुचर प्रदान किये थे। प्रभु वरुण ने घस तथा अतिघस नामक दो वीर प्रदान किये थे। हिमवान् ने अपने दौहित्र कुमार को महात्मा

सुवर्चस तथा अतिवर्चस नामक दो अनुचर थे। मेरुगिरि ने काञ्चन तथा मेघमाली नामक दो अनुचर प्रदान किया।।५२-५५।।

उच्छ्रितं चातिशृङ्गंचमहापाषाणयोधिनौ। स्वाहेयाययददौप्रीतः सविन्ध्यःपार्षदौशुभौ।।५६।।
संग्रहं विग्रहं चैव समुद्रोऽपि गदाधरौ। प्रददौ पार्षदौ वीरौ महीनद्या समन्वितः।।५७।।
उन्मादं पुष्पदन्तं च शङ्कुकर्णं तथैव च। प्रददावग्निपुत्राय पार्वती शुभदर्शना।।५८।।
जयं महाजयं चैव नागौ ज्वलनसूनवे। प्रददुर्बलिनां श्रेष्ठौ सुपर्णः पार्षदावुभौ।।५९।।
एवं साध्याश्च रुद्राश्च वसवः पितरस्तथा। सर्वेजगति ये मुख्याददुःस्कन्दायपार्षदान्।।६०।।
नानावीर्यान्महावीर्यान्नानायुधविभूषणान्। बहुलत्वान्न शक्यन्तेसंख्यातुंतेचफाल्गुन।।६१।।
मातरश्च ददुस्तस्मै तदा मातृगणान्प्रभो!। याभिर्व्याप्तास्त्रयो लोकाः कल्याणीभिश्चराचराः।।६२।।

विन्ध्यगिरि ने प्रीतिपूर्वक स्वाहानन्दन गुह को महापाषाणयोधी उच्छ्रित तथा अतिशृंग नामक दो शुभ अनुचर प्रदान किया। महीनदी तथा समुद्र ने मिलकर संग्रह तथा विग्रह नामक दो अनुचर स्कन्ददेव को प्रदान किया था। शुभदर्शना पार्वती ने इन अग्निपुत्र को उन्माद, पुष्पदन्त तथा शंकुकर्ण नामक तीन अनुचर प्रदान किया। गरुड़ ने जय तथा महाजय नामक दो अतिबली अनुचर अग्निनन्दन को दिया। इस प्रकार से रुद्र, साध्य, वसु, पितृगण आदि प्रमुख देवों ने स्कन्ददेव को विशेष प्रभाव वाले, वीर्यवान, नाना आयुधधारी अनुचर प्रदान किया। हे फाल्गुन! इनकी संख्या का वर्णन नहीं किया जा सकता। मातृगण ने भी स्कन्ददेव को नाना मातृगण प्रदान किया। इन समस्त कल्याणप्रदा मातृगण से यह चराचर लोकत्रय परिव्याप्त है।।५६-६२।।

प्रभावती विशालाक्षी गोपालागोनसातथा। अप्सुजाताबृहद्दण्डीकालिकाबहुपुत्रका।।६३।।
भयङ्करी च चक्राङ्गी तीर्थनेमिश्च माधवी। गीतप्रिया अलाताक्षी चटुला शलभामुखी।।६४।।
विद्युज्जिह्वा रुद्रकाली शतोलूखलमेखला। शतघण्टाकिङ्किणिकाचक्राक्षी चत्वरालया।।६५।।
पूतना रोदना त्वामा कोटरामेघवाहिनी। ऊर्ध्ववेणीधरा चैव जरायुर्जर्जराानना।।६६।।
खटखेटी दहदहा तथा धमधमाजया। बहुवेणी बहुशिरा बहुपादा बहुस्तनी।।६७।।
शतोलूकमुखीकृष्णा कर्णप्रावरणातथा। सून्यालयाधान्यवासापशुदाधान्यदाससदा।।६८।।
एताश्चान्याश्च बह्व्यश्चमातरो भरतर्षभ!। बहुलत्वादहं तासां न संख्यातुमिहोत्सहे।।६९।।
वृक्षचत्वरवासिन्यश्चतुष्पथनिवेशनाः। गुहास्मशानवासिन्यः शैलप्रस्त्रवणालयाः।।७०।।
नानाभरणवेषास्ता नानामूर्तिधरास्तथा। नानाभाषायुधधराः परिवव्रुस्तदा गुहम्।।७१।।
ततः स शुशुभे श्रीमान्गुहो गुह इवा इवाऽपरः। सैनापत्ये चाभिषिक्तो देवैर्नानामुनीश्वरैः।।७२।।
ततः प्रणम्य सर्वांस्तानेकैकत्वेन पावकिः। व्रियतां वर इत्याह भवब्रह्मपुरोगमान्।।७३।।

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कुमारेश्वरमाहात्म्ये कार्तिकेयस्य सेनानीत्वेऽभिषेकवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः।।३०।।

प्रभावती, विशालाक्षी, गोपाला, गोनसा, अप्सुजाता, बृहद्दण्डी, कालिका, बहुपुत्रका, भयंकरी, चक्रांगी, तीर्थनेमि, माधवी, गीतप्रिया, अलाताक्षी, चटुला, शलभामुखी, विद्युजिह्वा, रुद्रकाली, शतोलूखलमेखला, शतघण्टा, किंकिंणिका, चक्राक्षी, चत्वरालय, पूतना, रोदना, आमा, कोटरा, मेघवाहिनी, ऊर्ध्ववेणिधरा, जरायु, जर्जरानना, षट्षष्ठी, दहदहा, धमधमा, जया, बहुवेणी, बहुजिह्वा, बहुपादा, बहुस्तनी, शतोलूकमुखी, कृष्णा, कर्णप्रावरणा, शून्यालया, धान्यवासा, पशुप्रदा, धान्यदा, मदा आदि नाम से प्रसिद्ध इन मातृगण की संख्या अनेक है। इन सब का उल्लेख मैं नहीं कर सकता। ये मातृकायें वृक्ष, चौराहा, चतुष्पथ, गुहा, श्मशान, शैल, प्रस्त्रवण आदि नाना स्थानों में निवास करती हैं। इनका वेश तथा आभरण भी नाना प्रकार का है। इनकी मूर्त्ति, भाषा तथा आयुध भी नाना प्रकार के हैं। तब कुमार के पास जाकर उनको इन लोगों ने घेर लिया। तब श्रीमान् गुह ने देव, मुनि आदि को देख लिया, तब उन्होंने मूर्त्ति, भाषा तथा आयुध का नानात्व स्पष्ट हो गया। उस समय श्रीमान् गुह ने देव-मुनिगण से अभिषिक्त होकर ऐसी शोभा धारण किया। प्रतीत होता था कि उनकी जो शोभा है, उसकी तुलना मानों वे स्वयं ही हैं। अन्य किसी से भी उनकी तुलना नहीं है। तदनन्तर अग्निपुत्र ने शिव-ब्रह्मादि सभी को प्रणाम किया। तब सबने उनसे वर मांगने हेतु कहा।।६३-७३।।

।।त्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

एकत्रिंशोऽध्यायः

स्कन्द का तारक-विजय अभियान वर्णन

नारद उवाच

ते चैनं योज्य चाशीर्भिरयाचन्तं वरं गुहम्। एष एव वरोऽस्माकंयत्पापंतारकंजाहि।।१।।
एवमस्त्विति तानुक्त्वा योगायोग इतिब्रुवन्। ताकारिर्महातेजा मयूरं चाध्यरोहत।।२।।
शक्तिहस्तो विनद्याऽथ गुहो देवान्स्तदाऽब्रवीत्। यद्यद्यतारकंपापंनाहंहन्मिसुरोत्तमाः।।३।।
गोब्राह्मणावमन्तृणां ततो यामि गतिं स्फुटम्। एवं तेनप्रतिज्ञातेशब्दोऽतिसुमहानभूत्।।४।।
योगोयोग इति प्राहुराज्ञया शरजन्मनः। अरजोवाससी रक्ते वसानः पार्वतीसुतः।।५।।
अथाऽग्रे सर्वदेवानांस्थितो वीरो ययौ मुदा। तस्य केतुरलं भातिचरणायुधशोभितः।।६।।
चरणाभ्यांगिरीञ्छक्तो यो विदारयितुं रणे। या चेष्टासर्वभूतानांप्रभाशान्तिर्बलंयथा।।७।।
तन्मया गुहशक्तिः सा भृशं हस्ते व्यरोचत। यद्दार्ढ्यं सर्वलोकेषु तन्मयं कवचं तथा।।८।।
योत्स्यमानस्यवीरस्य देहेप्रादुरभूत्स्वयम्। धर्मः सत्यमसंमोहस्तेजः कान्तत्वमक्षतिः।।९।।
बलमोजः कृपाचैव बद्ध्वा करयुगं तथा। आदेशकारीण्यग्रेऽस्य स्वयंतस्थुर्महात्मनः।।१०।।

नारद कहते हैं—उन देवगण ने भी गुह को आशीर्वाद देकर वर मांगा कि आप हमें यह वर दीजिये कि

आप पापी तारकासुर का वध करेंगे। महातेजा कुमार ने भी उन सबसे कहा 'यही हो' तदनन्तर उन्होंने अपने मयूर को आवाज देकर बुलाया तथा मयूर पर आसीन हो गये। तब शक्ति अस्त्रधारी गुह ने सिंहनाद करके देवगण से कहा—"हे श्रेष्ठ देवगण! यदि मैं तारकासुर का वध नहीं करता, तब गो-ब्राह्मण के अपमान करने वाले की जो गति होती है, वह (दुर्गति) मुझे मिले।" शरजन्मा (सरकण्डों में जन्मे) कुमार ने जब यह प्रतिज्ञा कर लिया तब देवगण में "तैयार हो जाओ, युद्धार्थ चलो' यह महान् शब्द उत्थित हो गया। विशुद्ध-लाल वर्ण के वस्त्र को धारण करने वाले वीर पार्वती पुत्र ने आनन्दित होकर समस्त देवताओं से आगे रहकर युद्धयात्रा किया। पैर ही जिसके शस्त्रास्त्र हैं तथा जो अपने चरणद्वय से ही पर्वतभेदन में भी सक्षम हैं, ऐसा एक शोभायुक्त मुर्गा कुमार के ध्वज पर स्थित हो गया। सभी प्राणीगण में जो चेष्टा-प्रभा-शक्ति तथा बल है, वह कुमार के हाथ में स्थित शक्ति अस्त्र के रूप में अतिशय शोभित थी। समस्त लोकों में जो दृढ़ता है, ऐसा कवच कुमारदेव के देह पर स्वयं प्रादुर्भूत हो गया। धर्म, सत्य, असम्मोह, तेज, सौन्दर्य, अनपाय, बल, ओजः तथा कृपा स्वयं आगे आकर हाथ जोड़कर महात्मा कुमारदेव के आदेश पालनार्थ स्थित हो गये।।१-१०।।

तमग्रे चापि गच्छन्तंपृष्ठतोऽनुययौ हरः। यथेनादित्यवर्णेनपार्वत्या सहितः प्रभुः॥११॥
निर्मितेन हरेणैव स्वयमीशेनलीलया। सहस्रं तस्य सिंहानां तस्मिन्युक्तंरथोत्तमे॥१२॥
अभीषून्पुरुगव्याघ्र ब्रह्मा च जगृहे स्वयम्। ते पिबन्त इवाकाशं त्रासयन्तश्चराचरम्॥१३॥
सिंहा रथस्य गच्छन्तोनदन्तश्चारुकेसराः। तस्मिन्रथे पशुपतिः स्थितो भात्युमयासह॥१४॥
विद्युता मण्डितः सूर्यः सेन्द्रचापघनो यथा। अग्रतस्तस्य भगवान्धनेशो गुह्यकैः सह॥१५॥
आस्थाय रुचिरं याति पुष्पकं नरवाहनः। ऐरावणं समास्थाय शक्रश्चापि सुरैःसह॥१६॥
पृष्ठतोऽनुययौ यान्तं वरदं वृषभध्वजम्। तस्य दक्षिणतो देवा मरुतश्चित्रयोधिनः॥१७॥
गच्छन्तिवसुभिःसार्धंरुद्रैश्च सह सङ्गताः। यमश्च मृत्युना सार्धं सर्वतःपरिवारितः॥१८॥
घोरैर्व्याधिशतैश्चापिसव्यतोयातिकोपितः। यमस्यपृष्ठतश्चापिघोरस्त्रिशिखरः सितः॥१९॥
विजयोनाम रुद्रस्य याति शूलः स्वयं कृतः। तमुग्रपाशो भगवान्वरुणः सलिलेश्वरः॥२०॥

जब कुमार सैन्यदल के आगे-आगे जाने लगे, तब प्रभु महेश्वर भी पार्वती के साथ सूर्य के समान उज्ज्वल रथ पर बैठकर उनके पीछे चल रहे थे। स्वयं महेश्वरदेव की लीला से निर्मित १००० सिंह इस महेश्वर रथ को खींच रहे थे। ब्रह्मा उस रथ के सारथि थे। विचित्र केशर (अयाल) युक्त सिंहगण अपने घोर नाद से त्रैलोक्य को त्रस्त करके मानों आकाश का ग्रास करते आगे बढ़ते जा रहे थे। इस रथ पर स्थित पशुपति शिव तब विद्युत् एवं इन्द्रधनुष तथा मेघयुक्त सूर्य के समान असाधारण रूप से शोभायमान थे। भगवान् के अग्रभाग में नरवाहन कुबेर गुह्यकों से घिर कर उत्तम पुष्पक विमान पर बैठे जा रहे थे। इन्द्र भी ऐरावत हाथी पर बैठकर देवताओं के साथ वृषध्वज के पीछे-पीछे चल रहे थे। उनके दाहिनी ओर चित्रयोधी मरुद्गण, रुद्रगण, वसुगण चल रहे थे। वाम भाग में यमराज, मृत्यु भी सैकड़ों-सैकड़ों घोर व्याधियों से घिरे कोपपूर्वक चल रहे थे। यम के पीछे-पीछे रुद्रदेव द्वारा स्वयं निर्मित तीन शिखरों वाला घोराकार श्वेतवर्ण विजय नामक श्वेतवर्ण त्रिशूल स्वयं जाने लगा। उसके साथ ही जलेश्वर वरुण अपने उग्र पाशास्त्र को लिये जा रहे थे।।११-२०।।

परिवार्य शतैर्याति यादोभिर्विविधैर्वृतः। पृष्ठतोविजयस्यापि याऽति रुद्रस्य पट्टिशः॥२१॥
गदामुशलक्त्याद्यैर्वरप्रहरणैर्वृतः। पट्टिशंचान्वगात्पार्थ अस्त्रं पाशुपतं महत्॥२२॥
बहुशीर्षं महाघोरमेकपादं बहूदरम्। कमण्डलुश्चाऽस्य पश्चान्महर्षिगणसेवितः॥२३॥
तस्यदक्षिणतोभातिदण्डोगच्छञ्छ्रियावृतः। भृग्वंगिरोभिःसहितोदेवैरप्यभिपूजितः॥२४॥
राक्षसाश्चान्यदेवाश्च गन्धर्वा भुजगास्तदा। नद्योनदाःसमुद्राश्चमुनयोऽप्सरसांगणाः॥२५॥
नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव जङ्गमं स्थावरं तथा। मातरश्च महादेवमनुजग्मुः क्षुधान्विताः॥२६॥
सर्वेषां पृष्ठतश्चासीत्ताक्ष्यस्थोबुद्धिमान्हरिः। पालयन्पृतनां सर्वांस्वपरिवारसम्वृतः॥२७॥
एवं सैन्यसमोपेत उत्तरं तटमागतः। ताम्रप्राकारमाश्रित्य तस्थौ त्र्यम्बकनन्दनः॥२८॥

वे वरुणदेव सैकड़ों जल जन्तुओं से घिरे थे। विजय त्रिशूल के पीछे रुद्रदेव का पट्टिश अस्त्र चला जा रहा था। एकपाद, महान् उदर वाला पाशुपत नामक महाघोर अस्त्र जो अनेक शिर वाला था तथा गदा-मूषल-शक्ति आदि प्रधान-प्रधान अस्त्र भी जा रहे थे। इसके पीछे महर्षियों से घिरा कमण्डलु जाने लगा। इसके दक्षिण भाग में श्रीमान् दण्ड भी भृगु, अंगिरा आदि महर्षियों से घिरा जा रहा था। उसके पीछे देवपक्षीय राक्षस, अन्य देवयोनि-गन्धर्व-सर्प-नद-नदी-समुद्र-मुनि-अप्सरागण-नक्षत्र-ग्रह-भूखी मातृकागण तथा विविध स्थावर-जंगम महादेव के साथ चल पड़े। बुद्धिमान् हरि अपने परिवार से घिरकर गरुड़ पर बैठे सबके पीछे चल रहे थे, जो इस विशाल सेना को व्यवस्थित भी कर रहे थे। इस प्रकार से त्रिलोचन नन्दन सेना से घिरे होकर उत्तर तट पर गये तथा ताम्र-धातु की दीवार से परिवेष्टित होकर स्थित हो गये।।२१-२८।।

स तारकपुरस्यापि पश्यनृद्धिमनुत्तमाम्। विसिष्मिये महासेनः प्रशशन्स तपोऽस्यच॥२९॥
स्थितः पश्यन्स शुशुभे मयूरस्थोगुहस्तदा। छत्रेणाधियमाणेन स्वयंसोमसमस्त्विषा॥३०॥
वीज्यमानश्चामराभ्यां वाय्वग्निभ्यां महाद्युतिः। मातृभिश्च सुरैर्दत्तैः स्वैर्गणैरपि सम्वृतः॥३१॥

तब कुमारदेव ने तारकपुर की अनुपम समृद्धि को देखकर विस्मित चित्त से उसकी प्रशंसा करने लगे। मयूर पर बैठे गुह्यदेव के मस्तक पर तब चन्द्रकान्ति युक्त छत्र लगा था। वायु एवं अग्नि चामर द्वारा व्यजन किये जा रहे थे। देवताओं तथा मातृगण द्वारा प्रदत्त पारिषद् वर्ग से घिरे गुह्यदेव स्कन्द अत्यन्त शोभित हो रहे थे।।२९-३१।।

ततः प्रणम्य तं शक्रो देवमध्ये वचोऽब्रवीत्। पश्यपश्यमहासेनदैत्यानांबलशालिनाम्॥३२॥
ये त्वां कालंनजानन्ति मर्त्या गृहरताइव। एतेषां च गृहे दूतोयस्त्वांशंसतुतारकम्॥३३॥
वीराणामुचितं त्वेतत्कीर्तिदं च महाजने। अनुज्ञया ततः स्कन्दभक्तं शक्रो धनञ्जय!॥३४॥
ममादिश्यासुरेन्द्रायप्राहिणोद्दौत्ययोग्यकम्। अहं स्वयं गन्तुकामःशक्रेणापिचप्रेषितः॥३५॥
प्रासादे स्त्रीसहस्राणां प्रावोचंमध्यतोऽप्यहम्। असुराधमदुर्बुद्धेशक्रस्त्वामाहतच्छ्रणु॥३६॥
यज्जगद्दलनादाप्तं किल्विषं दानव त्वया। तस्याऽहं नाशकस्तेऽद्यपुरुषश्रेद्भविष्यसि॥३७॥
शीघ्रं निःसर पापिष्ठः निःसरिष्यसिचेन्नहि। क्षणात्तवपुरं क्षेप्स्ये पावित्र्यायैवसागरे॥३८॥

तब इन्द्र ने देवगण के सामने उनसे कहा—"हे महासेन! जैसे गृह में आसक्त मृत्युधर्मा मनुष्य अपनी आसन्न मृत्यु को नहीं देखता, उसी प्रकार दैत्यगण उपस्थित काल स्वरूप आपको नहीं पहचान रहे हैं। आप इनके यहां एक दूत भेजिये। यह वीरों के योग्य परम्परा है तथा यह महाजनों के समाज में कीर्त्तिजनक कार्य कहा गया है।" हे धनञ्जय! तदनन्तर इन्द्र ने मुझे स्कन्दभक्त जानकर स्कन्द के आदेश से मुझे ही असुरेन्द्र के पास दूतरूपेण भेजा। मैं भी दूतकार्य के लिए सर्वथा उपयुक्त था, साथ ही मैं स्वयं भी जाने का इच्छुक भी था। इस पर इन्द्र का आदेश भी मिल गया। अतः मैं अविलम्ब तारकासुर के यहां पहुंचा। वहां महल में हजारों स्त्रियों से घिरे तारकासुर से मैंने कहा—"हे दुर्बुद्धि! असुराधम! इन्द्र ने जो कहा है, उसे सुनो। उन्होंने कहा है कि हे दानव! तुमने जगत् का दलन करके तथा सबको पीड़ित करके जो पाप संचित किया है, मैं उसका समुचित दण्ड प्रदान करूंगा। हे पापी! यदि तुम वास्तव में पुरुष हो, तब शीघ्र घर से बाहर निकलो। यदि नहीं निकलते, तब क्षणमात्र में तुम्हारी पुरी को पवित्रता विधानार्थ समुद्र में फेंक दूंगा"।।३२-३८।।

इति श्रुत्वा रूक्षवाचं क्रुद्धः स्त्रीगणसंवृतः। मुष्टिमुद्यम्यमाऽधावद्भीतश्चाहं पलायितः॥३९॥
व्याकुलस्तत्र वृत्तान्तं कुमारायन्यवेदयम्। मयि चाप्यागतेदैत्यश्चिन्तयामासचेतसि॥४०॥
नालब्धसंश्रयः शक्रो वक्तुमेतदिहार्हति। निमित्तानि च घोराणि सन्त्रासं जनयंतिमे॥४१॥
एवं विचिन्त्य चोत्थायगवाक्षंसोऽध्यरोहत। सहस्त्रभौमिकावासशृङ्गवातायनस्थितः॥४२॥
अपश्यद्देवसैन्यं स दिवं भूमिं च सम्वृतम्। रथैर्गजैर्हयैश्चापि नादिताश्च दिशो दश॥४३॥
विमानैश्चाद्भुताकारैःकिन्नरोद्गीतनादितैः। दुन्दुभिभिर्गोविषाणैस्तालैः शंखैश्चनादितैः॥४४॥
अक्षोभ्यामिव तां सेनां दृष्ट्वा सोऽचिन्तयत्तदा।
एते मया जिताः पूर्वं कस्माद्भूयः समागताः॥४५॥
इति चिन्तापरो दैत्यः शुश्राव कटुकाक्षरम्। देवबन्दिभिरूद्घुष्टं घोरं हृदयदारुणम्॥४६॥

स्त्रियों से घिरे तारकासुर ने यह रुक्ष (कठोर) वाक्य सुना, तब मुक्का तान कर मुझे मारने दौड़ा। यह देखकर मैं वहां से द्रुतवेग से भाग कर स्कन्ददेव के पास आया तथा उनसे समस्त वृत्तान्त निवेदित किया। मेरे भाग आने पर वह दानवराज मन ही मन चिन्तन करने लगा कि शत्रु बिना अतिरिक्त बल प्राप्त किये कदापि ऐसा नहीं कह सकता। उसे ऐसा कहने का साहस ही नहीं होगा। वास्तव में दुर्लक्षण (अपशकुन) देखकर मेरे मन में त्रास हो रहा है। वह दानव यह सोचते हुये उठा तथा अपने १००० मंजिल ऊंचे भवन के गवाक्ष में से देखा कि देवसेना भूतल, आकाश को मानों ढंके हुये है। रथ, गज, अश्व, किन्नर आदि के गीत से निनादित, अद्भुदाकृति विमानों से युक्त, दुन्दुभि, गोशृङ्ग, ताल, शंख आदि के नाद से दिग्-दिगन्त को गुंजरित करती वह सेना सामने खड़ी है। तारक इस सैन्य को दुर्जय जानकर सोचने लगा कि इनको पहले पराजित किया ही था, अब ये क्यों आ गये? दैत्यराज यह सोच ही रहा था कि इतने में उसने हृदयविदारक अतीव कठोर देवताओं के बन्दीगण का गायन सुना।।३९-४६।।

जयाऽतुलशक्तिदीधितिपिञ्जररुचारुणमण्डलभुजोद्भासितदेवसैन्य पुरवदनकुमुदकानन विकासनेन्दो कुमारनाथ जय दितिकुलमहोदधिवडवानल मधुररवमयूररवासुर मुकुटकूटकुट्टित-

चरणनखाङ्कुर महासेन तारकवंशशुष्कतृणदावानल योगीश्वर योगिजन हृदयगगनविततचिन्ता-सन्तानसन्तमसनोदनखरकिरणकल्पनखनिकर विराजितचरणकमल स्कन्द जय बाल सप्तवासर भुवनावलिशोकसन्दहन!॥४७॥

नमो नमस्तेऽस्तु मनोरमाय नमोऽस्तु ते साधुभयापहाय।
नमोऽस्तु ते बालकृताचलाय नमोनमो नाशय देवशत्रून्॥४८॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कुमारेश्वरमाहात्म्ये कुमारस्य तारकासुरनगरं प्रति गमनवर्णनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः॥३१॥

यथा—हे कुमारनाथ! आपके हाथों में स्थित अतुल शक्ति वाला शक्त्यास्त्र अपनी प्रभा से सूर्य को भी विवर्ण करके देवसेना को उद्भासित कर रहा है। आप देवताओं के कुमुदवन रूपी मुख को प्रकाशित करने वाले चन्द्रस्वरूप हैं। आपकी जय हो। हे स्कन्द! आप दितिवंश स्वरूप (दैत्यों को) सागर को शुष्क करने वाले बड़वानल हैं। आपके वाहन मयूर के मधुर शब्द से भयभीत असुरों के मुकुटों द्वारा आपके चरणों के नखाग्रभाग स्पर्शित हों। हे महासेन! आप तारकवंशरूप शुष्क तृण के लिए दावानल के समान हैं। हे योगीश्वर! आपके चरणकमल के नख योगीगण के हृदयाकाश में विस्तृत चिन्तासमूहरूप घोर अन्धकार का विनाश करने में सूर्य के समान हैं। आपकी जय हो। हे सात दिन आयु वाले बालक! भुवनों के शोक का नाश करने वाले! आपको प्रणाम! आप मनोरम हैं। आपको प्रणाम! हे सत्यसंस्थापक बालक! आपको प्रणाम! आप देवशत्रुओं का नाश करें। आपको प्रणाम!॥४७-४८॥

॥एकत्रिंश अध्याय समाप्त॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

तारकस्कन्द संवाद, तारक का पराक्रम, लिंगस्थापना से ब्रह्महत्या नाश, तारक वध

नारद उवाच

श्रुत्वैतं संस्तवं दैत्यः संघुष्टं देवबन्दिभिः। सस्मार ब्रह्मणो वाक्यं वधं बालादुपस्थितम्॥१॥
श्रुत्वा स क्लिन्नसर्वाङ्गो द्वाःस्थं राजा वचोऽब्रवीत्।
आमात्यान्द्रष्टुमिच्छामि शीघ्रमानय मा चिरम्॥२॥
ततस्तेराजवचनात्कालनेमिमुखागताः। प्राह तांस्तारको दैत्यःकिमिदंवोविचेष्टितम्॥३॥

यैःशत्रुसंभवावार्ताकाऽपिनश्रावितस्त्वहम्। मदिराकाममत्तानांमन्त्रित्वंवोन युज्यते।
हितं मन्त्रयते राज्ञस्तेन मन्त्री निगद्यते॥४॥

नारद कहते हैं—"दैत्यराज तारक ने देवबन्दीगण की स्तुति वाणी सुनकर ब्रह्मा का वाक्य स्मरण किया कि उसकी मृत्यु बालक से होगी।" तब उसने पसीने से भींगी स्थिति में द्वारपाल से कहा—"मैं मन्त्रियों से मिलना चाहता हूं। उनको शीघ्र ले आओ। विलम्ब न करो।" तत्पश्चात् राजा की आज्ञा के अनुसार कालनेमि आदि मुख्य दानवगण आये। तब तारक ने उनसे कहा—"यह तुम लोगों का कैसा व्यवहार है? तुमने शत्रुभय की कोई बात ही मुझसे नहीं बतलाई। तुम सब मदिरा तथा कामवासना में मत्त हो। तुम सब मन्त्रित्व योग्य नहीं हो। जो राजा के हित की मन्त्रणा करता है, वही मन्त्री कहा जाता है"।।१-४।।

अमात्या ऊचुः

को जानाति सुरान्दीनान्दैत्यानामिति नो मतिः॥५॥
मा विषीदमहाराजवयंजेष्यामहेसुरान्। बालादपि भयंकिम्वालज्जायैचिन्तितंत्विदम्॥६॥
सर्वमेतत्सुसाध्यं च भेरी सन्ताड्यतां दृढम्। ततो दैत्येन्द्रवचनात्संनाहजननी तदा॥७॥
भृशं संताडिता भेरी कम्पयामास साजगत्। स्मरणाद्दैत्यराजस्यपर्वतेभ्योमहासुराः॥८॥
निम्नगाभ्यः समुद्रेभ्यःपातालेभ्योऽम्बरादपि। सहसासमनुप्राप्ता युगान्तानलसप्रभाः॥९॥
कोटिकोटिसहस्त्रैस्तु परार्धैर्दशभिः शतैः। सेनापतिः कालनेमिः शीघ्रं देवानुपाययौ॥१०॥
चतुर्योजनविस्तीर्णे नानाश्चर्यसमन्विते। रथे स्थितो मनाग्दीनस्तारकः समदृश्यत॥११॥

आमात्य कहते हैं—"देवता अतीव दीन दशा में थे। उनका सन्धान कौन रखे? जो भी हो! महाराज! आप विषन्न न हों। हम देवगण को परास्त करेंगे। बालक होने से क्या भय? आपकी यह चिन्ता ही लज्जाजनक है। ये समस्त सुर आसानी से नष्ट करने योग्य हैं। आप दृढ़ रूप से रणभेरी वादन का आदेश प्रदान करिये।" तदनन्तर दैत्यराज के आदेश से युद्धसज्जा विधायिका भेरी इतनी जोरों से बजाई गई कि जगत् कांप उठा। इस भेरी शब्द को सुनकर इस दैत्यराज के पास आने का आवाहन मानकर दैत्यगण, पर्वत-नदी-समुद्र-आकाश-पातालादि स्थानों से युगान्तकालिक अग्नि के समान सहसा आ गये। कालनेमि दानव के सेनापतित्व में शीघ्र कोटि-कोटि, सहस्त्र-सहस्त्र परार्द्ध संख्यक सैन्य एकत्र हो गई तथा वे देवसैन्य की ओर दौड़ पड़े। तारक असुर चार योजन विस्तृत विविध आश्चर्य यन्त्रादि तथा अस्त्रों से युक्त रथ पर बैठकर चल पड़ा, तथापि उस समय उसे किंचित अनमना देखा गया।।५-११।।

एतस्मिन्नन्तरे पार्थ क्रुद्धैः स्कन्दस्य पार्षदैः। प्राकारःपातितः सर्वो भग्नान्युपवनानिच॥१२॥
ततश्चचाल वसुधा देवी सवनकानना। जज्वाल खं सनक्षत्रं प्रमूढं भुवनं भृशम्॥१३॥
तमोभूतं जगच्चाऽऽसीद्गृध्रैर्व्याप्तं नभोऽभवत्। ततो नानाप्रहरणंप्रलयाम्बुदसन्निभम्॥१४॥
कालनेमिमुखं पार्थ अदृश्यत महद्बलम्। तद्धिघोरमसंख्येयं जगर्ज विविधा गिरः॥१५॥
अभ्यद्रवद्रणे देवान्भगवन्तं च शङ्करम्। विनदद्भिस्ततो दैत्यैर्देवानीकं महायुधैः॥१६॥

पर्वतैश्च शतघ्नीभिरायसैः परिघैरपि। क्षणेन द्रावितं सर्वं विमुखं चाऽप्यदृश्यत॥१७॥
असुरैर्वध्यमाने तु पावकैरिव काननम्। अपतद्दावभूमिष्ठं महाद्रुमवनं यथा॥१८॥

हे पार्थ! तभी स्कन्ददेव के अनुचरगण ने क्रोधित होकर उस नगरी की दीवार को विध्वस्त किया तथा उपवनों को बुरी तरह उजाड़ दिया। पृथिवी देवी सशैलवनकानन विचलित हो उठीं। नक्षत्रमण्डल ज्वलित होने लगे, त्रिभुवनस्थ प्राणीगण मोहाच्छन्न हो उठे। मानों समस्त जगत् अन्धकार से ढंक गया। गृद्धगण ने मृतकों के मांस भक्षण हेतु उड़कर समस्त आकाश को आवरित सा कर दिया। हे पार्थ! तत्पश्चात् नाना आयुध सम्पन्न, प्रलयसमुद्र सदृश कालनेमि आदि प्रधान दैत्यों वाला महान् असुरसैन्य देवगण को दिखलाई पड़ा। वह असंख्य सैन्य गर्जन किये जा रहा था। तत्पश्चात् वह सेना सिंहनाद करती भगवान् शंकर तथा देवगण की ओर दौड़ पड़ी। उनके द्वारा चलाई शतघ्नी, लौहपरिघ, पर्वत् तथा अन्य अस्त्रों के आघात के कारण क्षणमात्र में समस्त देवसेना तहस-नहस होकर युद्धविमुख होने लगी। जैसे अग्नि महान् वन को दग्ध करके नष्ट करता है, उसी प्रकार देवसेना भी दानवों द्वारा नष्ट की जाने लगी।।१२-१८।।

ते भिन्नास्थिशिरोदेहाः प्राद्रवन्त दिवौकसः। न नाथमध्यगच्छन्तवध्यमानामहासुरैः॥१९॥
अथ तद्विद्रुतं सैन्यं दृष्ट्वा देवः पुरन्दरः। आश्वासयन्नुवाचेदं बलवद्दानवार्दितम्॥२०॥
भयं त्यजतभद्रंवःशूराःशस्त्राणि गृह्णत। कुरुध्वंविक्रमे बुद्धिं माच काचिद्व्यथाऽस्तुवः॥२१॥
एष कालसनलप्रख्यो मयूरं समुपस्थितः। रक्षिता वो महासेनः कथं भीतिस्तथापि वः॥२२॥
शक्रस्य वचनं श्रुत्वा समाश्वस्ता दिवौकसः। दानवान्प्रत्ययुध्यन्त शक्रं कृत्वा व्यपाश्रयम्॥२३॥
कालनेमिर्महेन्द्रेण संयुगे समयुज्यत। सहस्राक्षौहिणीयुक्तो जम्भकः शङ्करेण च॥२४॥
कुजम्भो विष्णुना चैव तावत्यक्षौहिणीवृतः। अन्ये च त्रिदशाः सर्वेमरुतश्चमहाबलाः॥२५॥
प्रत्ययुध्यन्तदैत्येन्द्रैः साध्याश्चवसुभिः सह। ततो बहुविधं युद्धं कालनेमिर्विधाय च॥२६॥

देवता लोग असुरों के आघात से प्रहत हो रहे थे। किसी की अस्थि भग्न हो गई, कोई मस्तक रहित हो गया। कोई विध्वस्त सा होकर पड़ गया। वे रक्षक के अभाव में पलायन करने लगे। तब सुरराज इन्द्र ने दानवों द्वारा गाढ़तर आहत सैन्य को इस प्रकार भागते देखकर आश्वासन देते हुये देवराज से कहा—"हे सुरगण! तुम भय न करो। तुम्हारा मंगल हो। तुम अस्त्र लेकर पराक्रम दिखलाओ। तुम्हारे अन्दर कोई व्यथा (निराशा) न जन्मे। ये मयूरारूढ़ कालानल समान महासेन देव तुम्हारे रक्षक हैं। तब तुम सबको भय क्यों?" इन्द्र के वाक्य से आश्वस्त देवता इन्द्र का आश्रय लेकर पुनः दैत्यों से युद्ध करने लगे। कालनेमि महेन्द्र के साथ हजारों अक्षौहिणी सेना लेकर, जम्भकासुर शंकर के साथ, हजारों अक्षौहिणी सेना लेकर, कुजम्भ विष्णु के साथ युद्धरत हो गया। कालनेमि ने इन्द्र के साथ युद्ध किया। महाबली मरुत, साध्य, वसु आदि समस्त देवता दानवों के विरुद्ध युद्धरत हो गये। तब कालनेमि इन्द्र के साथ नाना प्रकार से युद्धरत हो गया।।१९-२६।।

उत्सृज्य सहसा पार्थऐरावणशिरःस्थितः। स तु पादप्रहारेण मुष्टिना चैव वं गजम्॥२७॥
शक्रं च जघ्ने विनदन्पेततुस्तावुभौ भुवि। ततः शक्रं समादाय कालनेमिर्विचेतसम्॥२८॥
रथमाश्रित्य भूयोऽपि तारकाभिमुखो ययौ। अथ क्रुष्टं तदा देवैः सहसा चान्तकादिभिः॥२९॥

ह्रियते ह्रियते राजा त्राता कोऽपि न विद्यते। एतस्मिन्नन्तरे शर्वः पिनाकधनुषश्च्युतैः॥३०॥

उसने सहसा छलांग मार कर ऐरावत के मस्तक पर चढ़ कर सिंहनाद किया और मुक्के के तथा पैर के आघात से ऐरावत को तथा इन्द्र को आहत किया। इस आघात से इन्द्र तथा ऐरावत भूपतित हो गये। इस स्थिति में कालनेमि ने मूर्च्छित इन्द्र को उठाया तथा तारकासुर के यहां जाने लगा। यह देखकर यम प्रभृति देवता "राजा को ले जा रहा है, कोई रक्षक नहीं है।" कहने लगे यह देखकर शंकर ने पिनाक धनुष से बाण छोड़ा।।२७-३०।।

बाणैः ससैन्यंकृत्वाचजम्भकंगृध्रमोदनम्। कालनेमिं समागम्यरथस्थोवाक्यमब्रवीत्॥३१॥
किमेतेन महेन्द्रेण मया युध्यस्व दानव!। वीरंमन्य सुदुर्बुद्धे ततो ज्ञास्यसि वीरताम्॥३२॥

इस बाण से भगवान् शिव ने जम्भकासुर को मारकर उसे गृध्रों का भोंजन बना दिया। प्रभु शंकर रथ से कालनेमि के पास गये तथा कहा—"हे वीरमानी, दुर्बुद्धि दानव! महेन्द्र को ले जाकर क्या करेगा? मेरे साथ युद्ध कर। इससे तेरा वीरत्व प्रकट होगा"।।३१-३२।।

कालनेमिरुवाच

नग्नेन सह को युध्येद्धतेनाऽपिच येन वा। शंसत्सु दैत्यवीराणामुपहासः प्रजायते।
आत्मतस्तु समं किञ्चिद्विलोकय सुदुर्मते!॥३३॥
तदाकर्ण्यच सावज्ञं वचः शर्वो विसिष्मिये॥३४॥
ततः कुमारः सहसा मयूरस्थोऽभ्यधावत। कुजम्भं सानुगं हत्वावासुदेवोऽप्यधावत॥३५॥
ततो हरिः स्कन्दमाह किमेतेन तव प्रभो। दैत्याधमेन पापेन मुहूर्तं पश्य मे बलम्॥३६॥
एवमुक्त्वा निवार्यैनं केशवो गरुडस्थितः। शार्ङ्गको दण्डनिर्मुक्तैर्बाणैर्दैत्यमवाकिरत्॥३७॥
स तैर्बाणैस्ताड्यमानो वज्रैरिव महासुरः। विमुच्य वासवं क्रुद्धो बाणांस्तान्व्यधमच्छरैः॥३८॥
यान्यान्बाणान्हरिर्दिव्यानस्त्राणि च मुमोचह। निवारयतिदैत्यस्तान्प्रहसँल्लीलयैवच॥३९॥

कालनेमि कहता है—"नग्न से कौन लड़े? नग्न की हत्या करने पर भी दैत्यवीरगण सभा में उपहास करेंगे। हे दुर्मति शिव! तुम अपने समान किसी व्यक्ति का अन्वेषण करो।" शंकर ऐसा अवज्ञावचन सुनकर विस्मित हो गये। तभी मयूरवाहन कुमार ने कालनेमि पर आक्रमण किया। वासुदेव ने भी अनुचरों के साथ कुजम्भ का विनाश करके कालनेमि पर आक्रमण किया।

वासुदेव (विष्णु) ने कुमार से कहा—"हे प्रभो! इस पापी दैत्य दैत्याधम से आपको क्या प्रयोजन! क्षणकाल मेरा भी सामर्थ्य देखिये।" गरुड़वाहन केशव ने यह कहकर कुमार को रोका तथा अपने छोड़े बाणसमूह से कालनेमि को आच्छन्न कर दिया। महासुर कालनेमि ने इन समस्त वज्रसम बाणों से ताड़ित होकर क्रुद्धचित्त से शत्रु के द्वारा छोड़े इन बाणों का निवारण अपने बाणों से करने लगा। श्रीहरि जितने भी बाण छोड़ते जाते, यह दैत्य हंसते हुये उनका निवारण करता जाता।।३३-३९।।

ततः कौमोदकीं गृह्य क्षिप्रकारी जनार्दनः। मुमोचसैन्यनाथायसारथिं च व्यचूर्णयत्॥४०॥
ततो रथादवप्लुत्य विवृत्य वदनंमहत्। गरुडंचञ्चुनाऽऽदाय स विष्णुंक्षिप्तवान्मुखे॥४१॥

ततोऽभूत्सर्वदेवानां विमोहो जगतामपि। चचाल वसुधा चेलुः पर्वताःसप्तचाऽर्णवाः॥४२॥
कालनेमिर्नदंश्चैव प्रानृत्यत महारणे। असंमूढस्ततो विष्णुस्त्वराकाल उपस्थिते॥४३॥
कुक्षिं विदार्य चक्रेण भास्करऽभादिवोदितः। बहिर्भूतो हरिश्चैनं मोहयित्वा स्वनिन्दया॥४४॥
पातालस्य नलं निन्येतत्र शिश्ये सकाष्ठवत्। ततश्चक्रेण दैत्यानां निहतादशकोटयः॥४५॥
प्रमोदितास्तथा देवाविमोहास्तत्क्षणाद्बभुः। ततः शर्वस्तमालिंग्यसाधुसाधु जनार्दन॥४६॥

जब क्षिप्रकारी जनार्दन ने कौमोदकी गदा के प्रहार से दैत्यसेनानी कालनेमि के सारथि को चूर्ण कर दिया, तब कालनेमि रथ से उतरा तथा अपने मुख को अत्यन्त विस्तृत करके उसने गरुड़ की चोंच पकड़ कर गरुड़ के साथ विष्णु को अपने मुख में डाल लिया। इस कृत्य को देखकर देवगण के साथ ही समस्त जगत् मोहित हो उठा। पृथिवी कांपने लगी। पर्वत विचलित हो उठे तथा सागर समूह भी उद्वेलित हो गये। कालनेमि सिंहनाद करते हुये इस महारणक्षेत्र में नृत्य करने लगा, लेकिन विष्णु मोहहीन थे। उन्होंने अपने चक्र द्वारा कालनेमि का उदर विदीर्ण किया। जैसे राहु के मुख से सूर्य ग्रहण समाप्ति पर निकल आते हैं, तदनुरूप विष्णु उस कालनेमि दानव के उदर से गरुड़ के साथ बहिर्गत हो गये। हरि को बाहर आते देखकर वह दानव अत्यन्त ग्लानि से भर गया। हरि ने कालनेमि को अपनी माया से मोहित करके उसे पातालतल में ले गये। वह दानव वहां काष्ठवत् सो गया। तब विष्णु ने चक्राघात से १० कोटि दानव सेना का वध किया। यह देखकर देवता मोहरहित हो गये तथा आनन्द व्यक्त करने लगे। तब भगवान् शर्व ने जनार्दन का आलिंगन करते हुये उनको साधुवाद दिया।।४०-४६।।

त्वयायद्विहितंकर्म तत्कर्ताऽन्योन विद्यते। महिषाद्याःसुदुर्जेया देव्या ये विनिपातिताः॥४७॥
तेषामतिबलो ह्येष त्वया विष्णोविनिर्जितः। तारकामयङ्ग्रामे वध्यस्तेऽसौ जनार्दन॥४८॥
कंसरूपः पुनस्तेऽयं हन्तव्योऽष्टमजन्मनि। एवं प्रशंसमानास्तेवासुदेवं जगद्गुरुम्॥४९॥

शंकर ने कहा कि आपने जो कार्य किया है, यह कोई नहीं कर सकता। देवी ने महिषादि जिन दानवों का वध किया था, कालनेमि उनसे भी कहीं अधिक बली था। तथापि आपने उसे परास्त कर दिया। हे जनार्दन! तारकासुर संग्राम में यह दानव आपका वध्य होगा। इसके पश्चात् यही दानव कंस रूप में जन्म लेगा, जहां आप देवकी के अष्टम गर्भ से प्रादुर्भूत होकर इसका वध करेंगे। देवगण भी जगद्गुरु वासुदेव की प्रशंसा करने लगे।।४७-४९।।

शस्त्रजालैर्लब्धसंज्ञान्दैत्यसैन्याननाशयत्। तानि दैत्यशरीराणि जर्जराणि महायुधैः॥५०॥
अपतन्भूतले पार्थ च्छिन्नाभ्राणीव सर्वशः। ततस्तद्दानवं सैन्यं हतनाथमभूत्तदा॥५१॥
देवैः स्कन्दानुगैश्चैव कृतं शस्त्रैः पराङ्मुखम्। अथो क्रुष्टं तदा हृष्टैः सर्वैर्दिवैर्मुदायुतैः॥५२॥
संहतानि च सर्वाणि तदा तूर्याण्यवादयन्। अथ भग्नं बलं प्रेक्ष्य हतवीरं महारणे॥५३॥
देवानां च महामोदं तारकः प्राह सारथिम्। सारथे पश्यसैन्यानिद्राव्यमाणानिमेसुरैः॥५४॥
येऽस्माभिस्तृणवद्दृष्टाः पश्य कालस्य चित्रताम्। तन्मे वाहय शीघ्रं त्वं रथमेनं सुरान्प्रति॥५५॥
पश्यन्तु मे बलं बाह्वोर्द्रवन्तु च सुराधमाः। ब्रुवन्नेवं सारथिं स विधुन्वन्सुमहद्धनुः।
क्रोधरक्तेक्षणो राजा देवसैन्यं समाविशत्॥५६॥

आगच्छमानं तं दृष्ट्वा हरिः स्कन्दमथाऽब्रवीत्॥५७॥

इधर दानवगण संज्ञालाभ करके पुनः युद्धरत हो गये। देवगण भी शस्त्रजाल द्वारा दैत्यों का वध कर रहे थे। हे पार्थ! देवताओं के महान् तथा सटीक प्रहार से दैत्यशरीर विच्छिन्न मेघ के समान पृथिवी पर गिरने लगे। क्रमशः नायक रहित दैत्येन्द्रगण स्कन्द आदि देवगण के शस्त्र-अस्त्र प्रहार के कारण भागने लगे। तब देवता भी आनन्दमन से आक्रोश प्रकट करते जा रहे थे। देवगण के पक्ष से तूर्यवादन संहतरूपेण होने लगा। तब तारका असुर ने नायकरहित सेना को भग्न होते तथा देवगण को प्रमुदित देखकर सारथि से कहा—"हे सारथि! जिसकी मैं तृणवत् अवज्ञा कर रहा था, उन देवताओं द्वारा हमारे सैन्यदल विद्रावित हो रहे हैं। देखो! काल की क्या विचित्रता है! अतः तुम सुरगण के विरुद्ध मेरा रथ ले चलो। ये मेरा बाहुबल देखें तथा देवता विदारित हों।" यह कहते-कहते दैत्यों के राजा तारकासुर ने अपना धनुष प्रत्यंचा चढ़ा कर खींचा तथा क्रोधित नेत्रों से देवसेना के बीच प्रविष्ट हो गया। उसे आते देखकर श्रीहरि ने स्कन्ददेव से कहा।।५०-५७।।

कुमार! पश्य दैत्येन्द्रं कालंयद्वद्युगात्यये। अयं स येन तपसाघोरेणाऽऽराधितः शिवः।
अयं स येन शक्राद्याः कृता मर्काः समार्बुदम्॥५८॥
अयं स सर्वशस्त्रौघैर्योऽस्माभिर्न जितो रणे॥५९॥
नावज्ञया प्रद्रष्टव्यस्तारकोऽयं महासुरः। सप्तमं हि दिनं तेऽद्य मध्याह्नोऽयं च वर्तते॥६०॥
अर्वागस्तमनादेनं जहिवध्योऽन्यथानहि। एवमुक्त्वासशक्रादींस्त्वरितःकेशवोऽब्रवीत्॥६१॥
आयासयत दैत्येन्द्रं सुखवध्यो यथा भवेत्। ततस्ते विष्णुवचनाद्विनदन्तोदिवौकसः॥६२॥
तमासाद्यः शरव्रातैर्मुदिताः समवाकिरन्। प्रहसन्निव देवांस्तान्द्रावयामास तारकः॥६३॥
यथा नास्तिकदुर्वृत्तो नानाशास्त्रोपदेशकान्। सोढुं शक्ता न ते वीरं महति स्यन्दने स्थितम्॥६४॥
महापस्मारसङ्क्रान्तं यथैवाऽप्रियवादिनम्। विधूयसकलान्देवान्क्षणमात्रेण तारकः॥६५॥

श्रीहरि कहते हैं—"हे कुमार! इस युगान्तकालीन काल के समान दैत्यराज का अवलोकन करिये। यह वही दैत्य है। जिसने देवताओं को एक अरब वर्ष पर्यन्त मर्कट (वानर) बना दिया था, यह वही है जिसे मैं समस्त अस्त्र-शस्त्र से पराजित नहीं कर सका। इस तारक असुर को आप अवहेलना से न देखें। आज आपकी सात दिन की आयु है। उसमें भी मध्याह्न काल है। सूर्यास्त के पूर्व ही आप इसका वध करिये। अन्यथा इसका वध नहीं हो सकेगा!" केशव ने यह कहकर देवताओं से कहा कि तुमलोग वह करो, जिससे यह दैत्यराज को थकान हो। तब इसका वध सुखपूर्वक हो सकेगा। विष्णु के वचनानुरूप इन्द्रादि देवता सिंहनाद के साथ एकत्र होकर बाणों से तारकासुर को आच्छादित करने लगे। लेकिन तारकासुर उनकी बाणवर्षा को व्यर्थ करके देवगण को विदीर्ण करने लगा। जैसे नास्तिकगण शास्त्रोपदेष्टा को व्यर्थ कर देते हैं, उसी प्रकार से तारक ने देवगण के समस्त बाणप्रहार को व्यर्थ कर दिया। जैसे कटुभाषी पागल रोगी के सामने कोई नहीं जाता, उसी प्रकार से देवगण तारकासुर के समक्ष ठहर नहीं पाये। उसने क्षणमात्र में देवगण को विद्रावित कर दिया।।५८-६५।।

आजगाम कुमाराय विधुवन्समहाधनुः। आगच्छमानं तं दृष्ट्वा स्कन्दः प्रत्युद्ययौततः॥६६॥
तस्यारक्षद्भवः पार्श्वं दक्षिणंचैव तं हरिः। पृष्ठे च पार्षदास्तस्यकोटिशोऽर्बुदशस्तथा॥६७॥

ततस्तौ सुमहायुद्धे संसक्तौ देवदैत्ययोः। धर्माधर्माविवोदग्रौ जगदाश्चर्यकारकौ।
ततः कुमारमासाद्य लीलया तारकोऽब्रवीत्॥६८॥

तदनन्तर वह अपने महान् धनुष को विस्फारित करता हुआ कुमारदेव स्कन्द के सामने आ पहुंचा। कुमार भी उसे आते देखकर उसकी ओर बढ़े। हरि तथा शंकर कुमार के दोनों पार्श्व की रक्षा करने लगे। उनके पीछे की ओर करोड़ों-अरबों पार्षद भी आये। तदनन्तर देवता तथा दैत्य मण्डली के मध्य उग्रवीर्य तारक का कुमार से ऐसे युद्ध होने लगा मानों धर्म-अधर्म आपस में युद्धरत हों। तारकासुर ने कुमार के पास आकर लीलापूर्वक कहा—॥६६-६८॥

अहो बालातिबालस्त्वं यत्त्वं गीर्वाणवाक्यतः॥६९॥
आसादयसिमां युद्धे पतङ्ग इव पावकम्। वधेन तव को लाभोमम मुक्तोऽसिबालक!॥७०॥
पिब क्षीरं गृहाणेमं कन्दुकं क्रीड लीलया। एवमुक्तःप्रहस्याऽऽहतारकं योगिनां गुरुः॥७१॥
शिशुत्वं माऽवमंस्था मे शिशुः कष्टो भुजङ्गमः।
दुष्प्रेक्ष्यो भास्करो बालो दुःस्पर्शोऽल्पोऽपि पावकः॥७२॥
अल्पाक्षरो न मन्त्रः किं सस्फुरो दैत्य दृश्यते।
एवमुक्त्वा दैत्यमुक्तं गृहीत्वा कन्दुकं च तम्॥७३॥
तस्मिञ्छक्त्यस्त्रमादाय दैत्याय प्रमुमोच ह। तस्य तेन प्रहारेणरथश्चूर्णीकृतोऽभवत्॥७४॥
चतुर्योजनमात्रो यो नानाश्चर्यसमन्वितः। गरुडस्य सुता ये च शीर्यमाणे रथोत्तमे॥७५॥

"हे बालक! तुम अत्यन्त बालक हो। क्योंकि तुम पतंग के समान हो। मुझ अग्नि के समान के साथ कैसे युद्ध करोगे? तुम्हारा वध करने से मेरा क्या लाभ होगा? मैं तुमको छोड़ता हूं। जाओ, दूध पीयो। यह गेंद लेकर यथेच्छ क्रीड़ा करो।" यह कहते हुये तारकासुर ने एक गेंद कुमार की ओर फेंका। यह सुनकर योगीगण के गुरु स्कन्द ने तारकासुर से कहा—"तुम मुझे शिशु जानकर मेरी अवहेलना न करो। सर्प का संपोला भी अतीव कष्टप्रद होता है। बालसूर्य को भी नहीं देखा जा सकता। अल्प अग्नि का स्पर्श भी दुःस्पर्श होता है। हे दैत्य! अल्प अक्षरों वाला मन्त्र भी महान् फलदायक है। क्या तुम नहीं जानते।" कुमार ने यह कहकर तारक का गेंद ग्रहण किया तथा शक्ति अस्त्र को तारक पर फेंका। उस शक्ति प्रहार से तारक का ४ योजन का नाना विस्मययुक्त वह महारथ चूर्ण हो गया। इस उत्तम रथ के भग्न होते ही उसमें बलपूर्वक जोते गये गरुड़ के १००० पुत्र किसी प्रकार से मुक्त होकर अन्य सागर में प्रविष्ट हो गये॥६९-७५॥

मुक्ताः कथंचिदुत्पत्य सागरान्तरमाविशन्। ततः क्रुद्धस्तारकश्च मुद्गरं क्षिप्तवान्गुहे॥७६॥
विन्ध्याद्रिमिव तं स्कन्दो गृहीत्वा तं व्यताडयत्।
स्थिरे तस्योरसि व्यूढे मुद्गरः शतधाऽगमत्॥७७॥
मेने च दुर्जयं दैत्यस्तदा षड्वदनं रणे। चिन्तयामासबुद्ध्या च प्राप्तं तद्ब्रह्मणोवचः॥७८॥
तंभीतमिवचाऽऽलक्ष्यदैत्यवीराश्चकोटिशः। नदन्तोऽतिमहासेनंनानाशस्त्रैरवाकिरन्॥७९॥

क्रुद्धस्तेषु ततः स्कन्दः शक्तिं घोरामथाऽऽददे।
अभ्यस्यमाने शक्त्यस्त्रे स्कन्देनाऽमिततेजसा॥८०॥

इससे क्रोधित होकर तारक ने अपना मुद्गर कुमार पर छोड़ा। कुमार ने आते हुये उस मुद्गर को हाथ से पकड़ा और उसी को दैत्य पर फेंका। तथापि दैत्यराज के वक्ष पर वह मुद्गर पड़ते ही सैकड़ों टुकड़ों में खण्डित हो गया। इस प्रकार दानवराज ने उन षडानन को रण में दुर्जय जाना तथा सोचने लगा कि "वह ब्रह्मवाक्य आज सफल हो रहा है।" दैत्यराज को भयभीत देखकर करोड़ों दैत्यवीर भीषण सिंहनाद के साथ महासेन को घेरकर नाना अस्त्र-शस्त्र से आच्छादित करने लगे। इससे स्कन्ददेव उन पर शक्ति अस्त्र से प्रहार करने लगे। अमित तेजस्वी स्कन्द ने क्रोधित होकर घोर शक्ति अस्त्र के प्रहार से महाघोर दैत्यों को भूपतित करना प्रारम्भ किया।।७६-८०।।

उल्काजालं महाघोरं पपात वसुधातले। चाल्यमाना तथा शक्तिः सुघोरा भवसूनुना॥८१॥
ततः कोट्यो विनिष्पेतुःशक्तीनांभरतर्षभ! स शक्त्यस्त्रेण बलवान्करस्थेनाऽहनत्प्रभुः॥८२॥
अष्टौ पद्मानि दैत्यानां दशकोटि शतानि च। तथा नियुतसाहस्रं वाहनं कोटिरेवच॥८३॥
हृदोदरं च दैत्येन्द्रं निखवैर्दशभिर्वृतम्। तत्राऽकुर्वन्सुतुमुलं नादं वध्येषु शत्रुषु॥८४॥
कुमारानुचराः पार्थ! पूरयन्तो दिशो दश।
शक्त्यस्त्रस्यार्चिः सम्भूतशक्तिभिः केऽपि सूदिताः॥८५॥
पताकयाऽवधूताश्च हताःकेचित्सहस्त्रशः। केचिद्घण्टारवत्रस्ताश्छिन्नभिन्नहृदोऽपतन्॥८६॥
केचिन्मयूरपक्षाभ्यांचरणाभ्यां च सूदिताः। कोटिशस्ताम्रचूडेनविदार्यैव च भक्षिताः॥८७॥
पार्षदैर्मातृभिः सार्धं पद्मशो निहताः परे। एवं निहन्यमानेषु दानवेषु गुहादिभिः॥८८॥
अभाग्यैरिव लोकेषु तारकःस्कन्दमाययौ। जग्राह च गदां दिव्यांलक्षघण्टादुरासदाम्॥८९॥
तया मयूरमाजघ्ने मयूरो विमुखोऽभवत्। दृष्ट्वा पराङ्मुखं स्कन्दं वासुदेवोऽब्रवीत्त्वरन्॥९०॥
देवसेनापते! शीघ्रं शक्तिं मुञ्च महासुरे। प्रतिज्ञामात्मनः पाहि लम्बते रविमण्डलम्॥९१॥

तब महाघोर उल्कापात पृथिवी पर होने लगा। हे भरतर्षभ! भगवान् भव के पुत्र जिस शक्ति का प्रयोग दानवों पर कर रहे थे, उससे अन्य अनेक कोटि शक्तियां प्रादुर्भूत हो रही थीं। मूल (प्रधान) शक्ति उनके ही हाथों में रहती थी। बलवान् प्रभु कुमार ने उस शक्ति से आठ पद्म दशशत कोटि सहस्त्र नियुत दैत्यसैन्य का, एक कोटि वाहनों का, दश नियुत सेना के साथ हृदोदर दानव का वध किया। हे पार्थ! तब कुमार के अनुचरगण भी इन वध्य शत्रुओं को दसों दिशाओं से घेरकर तुमुल निनाद करने लगे। तब असुरसैन्य के दैत्यों में से कोई-कोई शक्त्यास्त्र से, कोई पताकाघात से, कोई घन्टाजनित ध्वनि के त्रास से, कोई मयूर के पंखों के आघात से, कोई मयूर के चरणाघात से छिन्न-भिन्न हो गये, कितने मरणापन्न हो गये। इस प्रकार हजारों-हजार असुर मृत होने लगे। कुमार के ध्वज पर बैठा मुर्गा भी कोटि-कोटि दानवों को विदीर्ण करता उनका भक्षण कर रहा था। कुमार के पार्षद जो मातृगण थे, उन्होंने भी पद्म द्वारा दानवों का हनन किया। संसार को जिस प्रकार दुर्भाग्य नष्ट करता है, उसी प्रकार कुमार आदि द्वारा रणस्थल में दैत्यों की सेना को नष्ट होते देखकर तारकासुर स्कन्द के पास आया तथा उसने १ लाख घण्टायुक्त दुःसह भीषण गदा लेकर कुमार के वाहन मयूर पर आघात किया। इससे मयूर विमुख हो गया। तब

वासुदेव ने स्कन्द को युद्ध से विरत देखकर उनसे कहा—"हे देवसेनापति! कुमार! आप अविलम्ब इस असुर पर शक्ति का प्रहार करके प्रतिज्ञा पालन करिये। सूर्य पश्चिमाकाश में डूबने जा रहे हैं।।८१-९१।।

स्कन्द उवाच

त्वयैव रुद्रभक्तोऽयं जनार्दन! ममेरितम्। वधार्थं रुद्रभक्तस्य बाहुः शक्तिं न मुञ्चति।।९२।।
नारुद्रः पूजयेद्रुद्रं भक्तरूपस्य यो हरः। रुद्ररूपममुं हत्वा कीदृशं जन्मनो भवेत्।।९३।।
तिरस्कृता विप्रलब्धाःशप्ताःक्षिप्ताःप्रपीडिताः। रुद्रभक्ताः कुलं सर्वंनिर्दहन्तिहताःकिमु।।९४।।
एष चेद्धन्ति तद्भद्रं हन्यतामेष मां रणे। रुद्रभक्ते पुनर्विष्णो! नाऽहं शस्त्रमुपाददे।।९५।।

स्कन्द कहते हैं—हे जनार्दन! आपने ही मुझसे कहा था कि यह दानव रुद्रदेव का भक्त है। मेरे बाहु रुद्रभक्त पर यथार्थ शक्ति का प्रहार नहीं कर पा रहे हैं। देखिये, जो रुद्रभावान्वित नहीं है, वह रुद्रपूजा नहीं कर सकता। यह दैत्य रुद्रभक्त है, अतः रुद्ररूपी है। मैं इस रुद्ररूपी दानव का वध करके किस दुर्गति को प्राप्त करूंगा? यदि रुद्रभक्त तिरस्कृत, प्रवञ्चित, शापित होता है, किंवा उस पर आक्षेप किया जाता है, अथवा पीड़ित किया जाता है, तब ऐसा करने वाले का समस्त वंश ही ध्वंस हो जायेगा। यदि यह युद्ध में मेरी हत्या करे तो करे। हे केशव! मैं रुद्रभक्त पर अस्त्राघात नहीं करूंगा।।९२-९५।।

श्रीभगवानुवाच

नैतत्त्वयोचितं स्कन्द! रुद्रभक्तो यथा शृणु। द्वे तनू गिरिजाभर्तुर्वेदज्ञा मुनयो विदुः।।९६।।
एका जीवात्मिका तत्र प्रत्यक्षा च तथापरा। द्रोग्धा भूतेषुभक्तश्चरुद्रभक्तोनसस्मृतः।।९७।।
भक्तो रुद्रे कृपावांश्च जन्तुष्वेव हरव्रतः। तदेनं भूतमर्त्येषु द्रोग्धारं त्वं पिनाकिनः।।९८।।
जहि नैवाऽत्र पश्यामि दोषंकञ्चनतेप्रभो। श्रुत्वेतिवाचंगोविन्दात्सत्यार्थामपिभारत।।९९।।
हन्तुं न कुरुते बुद्धिं रुद्रभक्त इति स्मरन्। तारकस्तु ततः क्रुद्धो ययौ वेगेन केशवम्।।१००।।
प्राह चैव सुदुर्बुद्धे! हन्मि त्वां पश्यमेबलम्। देवानां चापिधर्माणांमूलंमतिमतां तथा।
हत्वा त्वामद्य सर्वांस्तांश्छेत्स्ये पश्याऽद्य मे बलम्।।१०१।।

श्रीभगवान् कहते हैं—"हे स्कन्द! यह आपकी उचित उक्ति नहीं है। आपने जो रुद्रभक्त का प्रसंग कहा, उसके लिए मेरा वचन सुनें। वेदज्ञ मुनिगण को गिरिजापति की मूर्त्तिद्वय की कथा ज्ञात है। एक जीवात्मिका है, जबकि अन्य मूर्त्ति प्रत्यक्ष दृश्य है। रुद्रभक्त होकर भी जो प्राणियों के प्रति द्रोह करता है, वह रुद्रभक्त नहीं है। रुद्र के प्रति भक्तिमान तथा प्राणीगण के प्रति दयार्द्र व्यक्ति को ही रुद्रभक्त कहा जाता है। इसलिए आप मर्त्यप्राणीगण में अवस्थित पिनाकपाणि के प्रति द्रोह करने वाले इस असुर का वध करिये। हे प्रभु! इस कार्य को करने में आपको कोई दोष होते मैं नहीं देखता हूं।" कुमार ने गोविन्द का यह सत्य वाक्य सुनकर भी उस असुर को मारने का मन नहीं बनाया। इधर तारकासुर क्रोधित होकर वेगपूर्वक केशव के निकट आकर कहने लगा—हे दुर्बुद्धि केशव! तुम्हारा वध करूंगा। तुम मेरा बल देखो! तुम ही देवता, धर्म तथा अच्छी बुद्धि के मानने वालों के मूलभूत हो। अब तुम्हारा हनन करके उन सभी का उच्छेद करूंगा।।९६-१०१।।

विष्णुरुवाच

दैत्येन्द्र! तव चाऽऽस्माभिः किमहो शृणु सत्यताम्॥१०२॥
रथे य एष शर्वोऽयं हतेऽस्मिन्सकलं हतम्। श्रुत्वेति तारकः क्रुद्धस्तूर्णं रुद्ररथं ययौ॥१०३॥
अभिसृत्य स जग्राह रुद्रस्य रथकूबरम्। यदा स कूबरं क्रुद्धस्तारकः सहसाऽग्रहीत्॥१०४॥

विष्णु कहते हैं—"हे दैत्येन्द्र! तुम हम सबको मार कर क्या करोगे। मैं सत्य कहता हूं। सुनो! ये जो रथ पर शर्वदेव शंकर विराजित हैं, इनका वध करते ही समस्त मृत हो जायेंगे।" तारक ने यह सुना तथा वह क्रोधित होकर अविलम्ब भगवान् चन्द्रशेखर की ओर दौड़ पड़ा। उसने जाकर रथ का कूबर पकड़ लिया।।१०२-१०४।।

रेसतू रोदसी तूर्णं मुमुहुश्च महर्षयः। व्यनदंश्च महाकाया दैत्या जलधरोपमाः॥१०५॥
आसीच्चनिश्चितंतेषांजितमस्माभिरित्युत। तारकस्याऽप्यभिप्रायंभगवान्वीक्ष्यशङ्करः॥१०६॥
उमया सह सन्त्यक्त्वा रथं वृषभमावहत्। ओमित्यथ जपन्ब्रह्माआकाशंसहसाश्रितः॥१०७॥
ततस्तं शतसिंहं च रथंरुद्रेणनिर्मितम्। उत्क्षिप्यपृथ्व्यामास्फोट्यचूर्णयामासतारकः॥१०८॥
शूलपाशुपतादीनि सहसोपस्थितानि च। वारयामासगिरिशोभवः साध्य इति ब्रुवन्।
ततः स्ववञ्चितं ज्ञात्वा रुद्रेणाऽऽत्मानमीर्ष्यया॥१०९॥
विदन्सहसाऽधावद्वृषभस्थं महेश्वरम्॥११०॥

जब तारकासुर ने रथ का कूबर पकड़ा, तब स्वर्ग-मृत्युलोक में महान् चीत्कार ध्वनि उत्थित होने लगी। महर्षिगण भी मोहाच्छन्न हो गये। तब मेघ के समान महाकाय दैत्यगण "हमारी जय निश्चित है" कहते हुये सिंहनाद कर रहे थे। भगवान् शंकर ने तारकासुर का मन्तव्य जान लिया तथा उमा के साथ रथ से कूदकर वृष पर आसीन हो गये। ब्रह्मा भी ओंकार का उच्चारण करते हुये आकाश में चले गये। तब तारकासुर ने भगवान् शंकर के १०० सिंहों से जुते रथ को फेंककर भूतल पर पटका तथा उसे चूर्ण कर दिया। तभी शूल-पाशुपतास्त्र आदि महान् अस्त्र आ गये। परन्तु शंकर ने उनसे कहा "प्रतीक्षा करो" कहकर उनका निवारण किया। इधर तारकासुर रुद्र द्वारा अपने को प्रवंचित हुआ देखकर महाक्रोधपूर्वक पुनः सिंहनाद के साथ सहसा वृष पर बैठे महादेव के प्रति दौड़ पड़ा।।१०५-११०।।

ततो जनार्दनोऽधावच्चक्रमुद्यम्य वेमतः। वज्रमिन्द्रस्तथोद्यम्य दण्डं चापि यमो नदन्॥१११॥
गदां धनेश्वरः क्रुद्धः पाशं च वरुणोनदन्। वायुर्महाङ्कुशं घोरं शक्तिं वह्निर्महाप्रभाम्॥११२॥
निर्ऋतिर्निशितंखड्गंरुद्राःशूलानिकोपिताः। धनूंषिसाध्यादेवाश्चपरिघान्वसवस्तथा॥११३॥
विश्वेदेवाश्चमुसलंचन्द्रार्कौस्वप्रभामपि। ओषधीश्चाश्विनौदेवौनागाश्चज्वलितंविषम्॥११४॥
हिमाद्रिप्रमुखाश्चाऽपि समुद्यम्य महीधरान्। भृशमुन्नदतोदेवान्धावतो वीक्ष्य तारकः॥११५॥

तब विष्णु चक्र लेकर उसकी ओर वेगपूर्वक दौड़ पड़े। इन्द्र ने वज्र निकाला, यम ने सिंहनाद के साथ दण्ड उठाया, कुबेर ने क्रोधित होकर गदा धारण किया, वरुण ने निनाद करते हुये पाश उठाया, वायु ने महान् अंकुश धारण किया, निर्ऋति ने निशित खड्ग लिया, रुद्रगण ने कोपपूर्वक शूल धारण किया, साध्य देवगण ने

धनुष सज्जित किया, वायुगण ने परिघ उठाया, विश्वेदेवगण ने मूषल धारण किया, चन्द्र-सूर्य ने अपनी-अपनी किरणों का विस्तार किया, अश्विनीकुमारद्वय ने विशेष-विशेष औषधि धारण किया, नागगण उज्ज्वल विष के साथ आये तथा हिमालय आदि प्रमुख पर्वत महानिनाद के साथ वहां आये। इन सभी ने एक साथ तारकासुर पर आक्रमण किया।।१११-११५।।

निवृत्तः सहसा पार्थ महागज इवोन्नदन्। स वज्रमुष्टिनाहत्य भुजे शक्रमपातयत्।।११६।।
दण्डं यमादुपादाय मूर्ध्न्याहत्य न्यपातयत्। उरसाहत्यसगदं धनदं भुव्यपातयत्।।११७।।
वरुणात्पाशमादाय तेन बद्ध्वा न्यपातयत्। महाङ्कुशेन वायुञ्च चिरंमूर्ध्नि जघानसः।।११८।।
फूत्कारैरुद्धतं वह्निं शमयामास तारकः। निर्ऋतिं खड्गमादाय हत्वा तेन न्यपातयत्।।११९।।
शूलैरेव तथा रुद्राः साध्याश्च धनुषार्दिताः। परिघैरेव वसवो मुशलैरेव विश्वकाः।।१२०।।

रेणुनाऽऽच्छाद्य चन्द्रार्कौ वल्मीकस्थाविवेक्षितौ।
महोग्राश्चौषधीस्तालैरश्विभ्यां सोऽभ्यवर्तयत्।।१२१।।

सविषाश्च कृता नागानिर्विषाः पादकुट्टनैः। पार्वताः पर्वतैरेवनिरुच्छ्वासाभृशंकृताः।।१२२।।

हे पार्थ! तारक ने यह देखकर महागजवत् घोर निनाद किया। साथ ही उसने इन्द्र को कठोर मुष्टिप्रहार द्वारा गिरा दिया। उसने यम से उनका दण्ड छीन कर उसी से उनके मस्तक पर प्रहार करके उनको भूपतित कर दिया। गदाधारी कुबेर के वक्षःस्थल पर प्रहार करके उनको भूमि पर गिराया। वरुण का पाश छीनकर उसी से उनको बांध कर गिरा दिया। वायु का अंकुश छीनकर उससे उनके मस्तक पर प्रहार किया। प्रज्ज्वलित अग्नि को फूंक कर बुझा दिया। निर्ऋति पर उनके ही खड्ग का प्रहार करके उनको भूपतित किया। रुद्रगण को शूलाघात से, साध्यों को उनके ही धनुःप्रहार से, वायुगण को उनके ही परिघ प्रहार से, विश्वेदेवगण को उनके ही मूषलाघात से भूतलशायी कर दिया। तदनन्तर तारकासुर ने धूल से सूर्य-चन्द्र को दीमक की बांबी ऐसा आवरित कर दिया। उसने तालवृक्ष के प्रहार से अश्विनीकुमारद्वय द्वारा लायी गई प्राणविनाशक महोग्र औषधियों को व्यर्थ किया। पैर के प्रहार से महोग्र विषधर नागगण को निर्विष कर दिया। पर्वतगण को उनके द्वारा लाये गये पर्वत प्रहार से ही रुद्धश्वास कर दिया।।११६-१२२।।

एवं तद्देवसैन्यं च हाहाभूतमचेतनम्। कृत्वा मुहूर्तादाधावच्चक्रपाणि तमुन्नदन्।।१२३।।
ततश्चाऽन्तर्दधे सद्यः प्रहसन्निव केशवः। कुयोगिन इव स्वामी सदा बुद्धिमताम्वरः।।१२४।।
अपस्यंस्तारको विष्णुं पुनर्वृषभवाहनम्। अधावत्कुपितो दैत्यो मुष्टिमुद्यम्य वेगतः।।१२५।।
अचिरांशुरिवाऽलक्ष्योलक्ष्योऽथभगवान्हरिः। आबभाषेततोदेवान्बाहुमुद्यम्यचोच्चकैः।।१२६।।
पलायध्वमहो देवाः शक्तिश्चेद्वः पलायितुम्। विमूढा हि वयं सर्वे येबालवचसागताः।।१२७।।

किं न श्रुतः पुरा गीतः श्लोकः स्वायम्भुवेन यः।
यथा बालेषु निक्षिप्ताः स्त्रीषु पण्डितकेषु च।
अपस्मारिषु चैवाऽपि सर्वे ते संशयं गताः।।१२८।।

प्रत्यक्षं तदिदं सर्वमधुना चाऽत्र दृश्यते॥१२९॥
अज्ञासिष्म पुरैवैतद्रुद्रभक्तं न हन्त्यसौ। यत्प्रतिज्ञां नाऽकरिष्यन्नस्यान्नः कदनं महत्॥१३०॥

इस प्रकार से वह देवसेना आहत होकर अपनी सुध-बुध खोकर हाहाकार करने लगी। तारकासुर सिंहनाद करता केशव पर आक्रमण करने के लिये दौड़ा। बुद्धिमानों में अग्रगण्य केशव वहां से उसी प्रकार अन्तर्हित हो गये, जैसे कुयोगीगण अभीष्ट देवता का सन्धान नहीं पाते। तब तारकासुर विष्णु का सन्धान न पाकर क्रोध में वेगपूर्वक वृषारूढ़ शंकर की ओर दौड़ा। तब भगवान् केशव लाखों रूप धारण करके बाहु उठाकर उच्च स्वर से कहने लगे—"हे देवगण! यदि तुममें भागने का सामर्थ्य हो, तब यहां से भाग लो! तुम सभी वास्तव में मूढ़ हो, जो बालक की बात पर आधारित होकर युद्ध करने आ गये। क्या तुमने पूर्वकाल में ब्रह्मा द्वारा गाये इस श्लोक को नहीं सुना, कि बालक, स्त्री, पण्डितमानी तथा अपस्मारी व्यक्ति के पास जाना सभी संशय जनक है। इस गीत की सार्थकता को हमने प्रत्यक्ष देखा। मैंने इसे पहले ही समझ लिया था। ये रुद्रभक्त को नहीं मारेंगे। यदि ये उसे मारने की पहले प्रतिज्ञा न करते, तब हम लोग इतना लांछित नहीं होते"।।१२३-१३०।।

अथैष यदि दैत्येन्द्रंन निहन्तिकुबुद्धिमान्। मा भयंवोमहाभागानिहनिष्यामिवोरिषून्॥१३१॥
अद्य मे विपुलं बाह्वोर्बलं पश्यत देवताः। दैत्याधमं नाशयामि मुष्टिनैकेन पश्यत॥१३२॥
मया हि दक्षिणो बाहुर्दत्तश्च भवतां सदा। रिपून्वा निहनिष्यामिसत्यं तत्परिपालये॥१३३॥

"हे महाभाग! यदि ये कुबुद्धि के कारण दैत्य तारक का वध नहीं करते, तब मैं ही तुम्हारे शत्रुओं का नाश करूंगा। हे देवगण! अब तुम सब मेरे महान् बाहुबल को देखो। देखो! मैं इस एक मुक्के के आघात से दैत्याधम का विनाश करूंगा। मैंने तुम लोगों का शत्रुनाश करने हेतु दक्षिण बाहु उठाया है। अब उस सत्य का पालन करूंगा"।।१३१-१३३।।

येऽम्बरे ये च पाताले भुवि येच महासुराः। क्षणात्तान्नाशयिष्यामिहावातोघनानिव॥१३४॥
एवमुक्त्वा जगन्नाथोमुष्टिमुद्यम्यदक्षिणम्। निरायुधस्तार्क्ष्यपृष्ठादवप्लुत्याऽभ्यधावत॥१३५॥
तस्मिन्धावति गोविन्दे चचाल भुवनत्रयम्। विमूर्च्छितमभूद्विश्वंदेवाभीतिं परांययुः।
धावतश्चाऽपि कल्पान्तं रुद्रकल्पस्य तस्य याः॥१३६॥
मुखात्समुद्ययुर्ज्वालास्ताभिः खर्वशतं हतम्॥१३७॥

"पाताल-भूतल-गगनतल, जहां भी महासुर हैं, मैं क्षणमात्र में उनका वध ऐसे कर दूंगा, जैसे महावायु मेघमाला का नाश करता है।" जगन्नाथ ने यह कहकर दाहिने हाथ को मुष्टिबद्ध किया तथा बिना कोई अस्त्र धारण किये गरुड़ पर उछल कर बैठे तथा चल पड़े। गोविन्द के धावित होने पर त्रिभुवन कांपने लगा, जगत् मूर्च्छित हो गया तथा देवगण भयभीत हो गये। वे कल्पान्तकालीन रुद्र की तरह उग्रमूर्त्ति से दौड़े। उनके मुख से जो अग्निशिखा निर्गत होती थी, उसी से अनेक खर्व संख्यक दैत्य मृत हो गये।।१३४-१३७।।

ततोऽन्तरिक्षे वाचश्च प्रोचुःसिद्धाःस्वयंतदा। जहिकोपंवासुदेवत्वयिक्रुद्धे क्व वै जगत्॥१३८॥
अनादृत्येव तद्वाक्यं बुवन्नान्यत्करोम्यहम्। आह्वयंश्च महादैत्यं क्रुद्धो हरिरधावत॥१३९॥
उवाच वाचं साधूंश्च यत्नात्पालयतांफलम्। दुष्टान्विनिघ्नतांचैवतत्फलंमम जायताम्॥१४०॥

यह देखकर अन्तरिक्षस्थ सिद्धगण प्रभु नारायण से कहने लगे—"हे प्रभो! हे गोविन्द! अपना क्रोध शान्त करिये। आप यदि कोप करेंगे, तब जगत् का क्या होगा?" लेकिन क्रुद्ध वासुदेव ने इस कथन की अवहेलना करके कहा—"ना मैं कुछ नहीं करूंगा।" यह कहकर वे दैत्यराज को पुकारते आगे धावित हुये। वे कहते जा रहे थे—"मैंने अब तक साधुगण का यत्नतः पालन किया है, दुष्टों का विनाश किया है। उसका फल मुझे मिले।।१३८-१४०।।

अथापश्यन्महासेनो रुद्रं यान्तं च तारकम्। तारकं चान्वधावन्तं पुराणपुरुषं हरिम्।
जगच्च क्षुब्धमत्यर्थं स्वां प्रतिज्ञां पुरा कृताम्।।१४१।।
पश्चिमां प्रतिलम्बन्तं भास्करं चाऽपि लोहितम्।।१४२।।
आकाशवाणीं शृण्वंश्च किं स्कन्द! त्वं विषीदसि।
पश्चात्तापो यदि भवेत्कृत्वा ब्रह्मवधं त्वयि।।१४३।।
स्थापयेर्ल्लिङ्गमीशस्य मोक्षोहत्याशतैरपि। आविवेश महाक्रोधं दिधक्षुरिव मेदिनीम्।।१४४।।
अथोप्लुत्य मयूरात्स प्रहसन्निव केशवम्। बाहुभ्यामप्युपादाय प्रोवाच भवनन्दनः।।१४५।।
जानामि त्वामहंविष्णोमहाबुद्धिपराक्रमम्। भूतभव्यभविष्यांश्चदैत्यान्हंस्यपिहंकृतैः।।१४६।।
त्वमेव हन्ता दैत्यानांदेवानां परिपालकः। धर्मसंस्थापकश्च त्वमेष ते रचितोऽञ्जलिः।।१४७।।
क्षणार्धं पश्य मे वीर्यं भास्करो लोहितायते। एवंप्रणम्यस्कन्देनवासुदेवः प्रसादितः।।१४८।।

महासेन कुमार ने तब देखा कि रुद्र देव की ओर तारकासुर आक्रमणार्थ दौड़ा है। पुराणपुरुष हरि तारक की ओर धावित हो रहे हैं। जगत् अत्यन्त क्षुब्ध है। भास्कर भी पश्चिम गगन में लोहिताकार होकर अस्तोन्मुख हैं। तथापि अभी तक मैंने प्रतिज्ञापालन नहीं किया। उन्होंने आकाशवाणी भी सुनी—"हे स्कन्द! तुम विषण्ण क्यों होते हो? यदि ब्रह्मवध से तुमको अनुताप हो, तब तुम महेश्वर लिंग की स्थापना करना। इससे सैकड़ों (ब्रह्महत्या) हत्या करने पर भी ब्रह्महत्या से मुक्ति मिलेगी।" तब स्कन्द को महान् क्रोध उत्पन्न हो गया। मानों भवनन्दन स्कन्द क्रोध से धरती को दग्ध कर देंगे! वे मयूर से उछल कर नीचे आये तथा उन्होंने हंसते हुये बाहुद्वय से केशव को लिपटा कर कहा—"हे केशव! मैं आपको जानता हूं। आप महाबुद्धिमान् तथा महापराक्रमी हैं! आप तो मात्र हुंकार से भूत-भविष्यत् तथा वर्त्तमान के सभी दानवों का विनाश कर सकते हैं। आप दैत्यहन्ता, देवपरिपालक, धर्म संस्थापक हैं। मैं आपको हाथ जोड़ता हूं। आप भास्कर रक्तवर्ण हो रहे हैं। आप आधेक्षण मेरी वीरता देखें"।।१४१-१४८।।

विरोषोऽभूत्तमालिङ्ग्यवचनं केशवोऽब्रवीत्। सनाथस्त्वद्यधर्मोऽयंसुराश्चैवत्वयागुह।।१४९।।
स्मरात्मानं यदर्थं त्वमुत्पन्नोऽसि महेश्वरात्। साधूनां पालनार्थाय दुष्टसंहरणाय च।
सुरविप्रकृते जन्म जीवितं च महात्मनाम्।।१५०।।
रुद्रस्य देव्या गङ्गायाः कृत्तिकानांचतेजसा। स्वाहावह्नेश्चदातस्त्वं तत्तेजःसफलीकुरु।
साधूनां च कृते यस्य धनं वीर्यं च सम्पदः।।१५१।।
सफलं तस्य तत्सर्वं नान्यथा रुद्रनन्दन!।।१५२।।
अद्य धर्मश्च देवाश्च गावःसाध्याश्चब्राह्मणाः। नन्दन्तु तव वीर्येण प्रदर्शय निजं बलम्।।१५३।।

स्कन्द ने प्रणाम के साथ वासुदेव से इस प्रकार से अनुनय-विनय किया तब उन्होंने स्कन्द से कहा—"हे गुह! आप द्वारा अब धर्म तथा देवता सनाथ हो रहे हैं। आपने महादेव से जिस कारण जन्म लिया है, उस कार्य का स्मरण करें। महात्माओं का जन्म तथा जीवन साधुजन पालनार्थ होता है। दुष्टों पर नियन्त्रण, देवब्राह्मणादि का हितविधान ही उनके जीवन का कारण होता है। आपने रुद्र, गंगा, कृत्तिका, स्वाहा तथा अग्नि के तेज से जन्म लिया है। अब उस तेज को सफल करें। हे रुद्रनन्दन! धन, वीर्य, सम्पदा यदि साधुगण के हितार्थ नियोजित होती है, तब वह सफल है। अन्यथा वह विफल है। अब आपके वीरत्व से धर्म, देवता, गौ, साध्यगण तथा ब्राह्मणगण आनन्द लाभ करें। अब आप अपने बल-वीर्य का प्रदर्शन करें"।।१४९-१५३।।

स्कन्द उवाच

या गतिः शिवत्यागेन त्वत्त्यागेन च केशव। तांगतिंप्राप्नुयांक्षिप्रंहन्मिचेन्नहितारकम्।।१५४॥

या गतिः श्रुतित्यागेन साध्वीभार्यातिपीडनात्।
साधूनां च परित्यागाद्वृथा जीवितसाधनात्।
निष्ठुरस्य गतिर्या च तां गतिं यामि केशव!।।१५५।।

इत्युक्ते सुमहान्नादः सम्प्रजज्ञे दिवौकसाम्। प्रशशंसुर्गुहं केचित्केचिन्नारायणं प्रभुम्।।१५६॥
ततस्ताक्ष्यं समारुह्य हरिस्तस्मिन्महारणे। ताम्रचूडं महासेनस्तारकं चाप्यधावताम्।।१५७॥
लोहिताम्बरसम्वीतो लोहितस्त्रग्विभूषणः। लोहिताक्षो महाबाहुर्हिण्यकवचः प्रभुः।।१५८॥
भुजेन तोलयञ्छक्तिं सर्वभूतानि कम्पयन्। प्राप्य तं तारकं प्राह महासेनो हसन्निव।।१५९॥
तिष्ठतिष्ठ सुदुर्बुद्धे! जीवितन्तेमयि स्थितम्। सुहृष्टः क्रियतांलोकोदुर्लभःसर्वसिद्धिदः।।१६०॥
यत्ते सुनिष्ठुरत्वं च धर्मेदेवेषु गोषु च। तस्य ते प्रहराम्यद्य स्मर शस्त्रं सुशिक्षितम्।।१६१॥

स्कन्ददेव कहते हैं—"हे केशव! यदि अभी मैं तारक का वध न करूं, तब आपका त्याग तथा शिव का त्याग करने से जो गति होती है, वह गति (दुर्गति) मुझे प्राप्त हो।" स्कन्ददेव ने यह कहकर देवगण के मध्य में स्थित होकर महान् सिंहनाद करना प्रारम्भ किया। कोई-कोई गुहदेव की प्रशंसा भी कर रहे थे। कोई केशव की स्तुति करने लगे। तब हरि ने गरुड़ पर तथा कुमार ने कुक्कुट पर आसीन होकर तारक पर आक्रमण किया। लोहित वस्त्र, लोहित माल्याभूषण धारी, लोहिताक्ष, स्वर्ण कवचधारी, प्रभु महासेन ने बाहु से शक्ति उठाकर हंसते हुये कहा—हे दुर्बुद्धि दानव! रुको! तुम्हारा जीवन मेरे अधिकार में है। इस दुर्लभ, सर्वसिद्धिप्रद लोक को अच्छी तरह देखो। तुमने धर्म, गौ, देवता के प्रति जो निष्ठुर व्यवहार किया है, उसके बदले मैं तुम्हारे ऊपर प्रहार करता हूं। तुम अपने सभी शिक्षा प्राप्त अस्त्रों का स्मरण करो।।१५४-१६१।।

एवमुक्ते गुहेनाऽथनिवृत्तस्याऽस्यभारत!। तारकस्यशिरोदेशात्काऽपिनारीविनिर्ययौ।।१६२॥
तेजसा भासयन्ती तमधऊर्ध्वंदिशोदश। दृष्ट्वा नारींगुहःप्राह काऽसिकस्माच्च निर्गता।।१६३॥

नार्युवाच

अहं शक्तिगुहाख्याता भूतलेषुसदास्थिता। अनेन दैत्यराजेन महता तपसार्ज्जिता।।१६४॥

सुरेषु सर्वेषु वसामि चाऽहं विप्रेषु शास्त्रार्थरतेषु चाऽहम्।
साध्वीषु नारीषु तथा वसामि विना गुणान्नाऽस्मि वसामि कुत्रचित्॥१६५॥
तदस्य पुण्यसंघस्य सम्प्राप्तोऽद्यावधिर्गुह!। तदेनं त्यज्य यास्यामि जह्येनं विश्वहेतवे॥१६६॥
तस्यांततोनिर्गतायांदैत्यशीर्षंव्यकम्पयत्। कम्पितंचाऽस्यतद्देहंगतवीर्योऽभवत्क्षणात्॥१६७॥

हे भारत! गुह ने यह कहकर बोलना बन्द किया ही था कि तारक के शिरःप्रदेश से एक रमणी निर्गत हो गयीं। उस रमणी की कान्ति से दशों दिशायें उद्भासित हो उठीं। गुह ने उसे देखकर पूछा—"आप कौन हैं? आप तारक की देह से क्यों निर्गत हो गयीं?" नारी ने उत्तर दिया—"हे गुह! मेरा नाम शक्ति है। मैं सदा भूतल पर रहती हूं। इस दैत्यराज ने महान् तप द्वारा मुझे अर्जित किया था। मैं समस्त देवताओं, शास्त्रार्थज्ञ विप्रों तथा साध्वी नारीगण में निवास करती हूं। जहां गुण नहीं होता, वहां नहीं रहती। हे कुमार! अब इस दानवराज के पुण्यों का क्षय हो गया। तभी मैं इसका त्याग करके जा रही हूं। अब आप जगत् के हितार्थ इसका वध करिये।" उस रमणी के जाते ही दैत्यराज का मस्तक तथा उसकी देह कम्पित हो गई। वह वीर्यहीन हो गया।।१६२-१६७।।

एतस्मिन्नन्तरे शक्तिं सोऽक्षिपद्गिरिजात्मजः।
उल्काज्वालाविमुञ्चन्तीमतिसूर्याग्निसप्रभाम्॥१६८॥
कल्पाम्भोधिसमुन्नादां दिधक्षन्तींजगद्यथा। तारकस्यान्तकालायअभाग्यस्यदशामिव॥१६९॥
दारणीं पर्वतानाञ्चसर्वसत्त्वबलाधिकाम्। उत्क्षिप्यतांविनद्योच्चैरमुञ्चत्कुपितोगुहः॥१७०॥
धर्मश्चेद्बलवाँल्लोके धर्मो जयति चेत्सदा। तेन सत्येन दैत्योऽयं प्रलयंयात्वितीरयन्॥१७१॥

इसी समय गिरिजानन्दन गुह ने तारक का अन्त करने हेतु जाज्ज्वल्यमान उल्काओं को अपने अन्दर से छोड़ने वाली, सूर्याग्निसमप्रभ, पर्वतों को भी चूर्ण करने में सक्षम, सब कुछ से दृढ़, कल्पान्त समुद्र के समान गंभीर शब्दकारिणी महती शक्ति को लिया तथा उच्च सिंहनाद के साथ तारक पर छोड़ा। वह शक्ति मानों जगत् को उसी प्रकार दग्ध कर रही थी, जैसे अभागे की दशा उसे (चिन्ता से) दग्ध करती है। गुहदेव ने शक्ति निःक्षेप के समय कहा था कि यदि लोक में धर्म सबसे बली है, धर्म की ही जय होती है, तब उस सत्य की महिमा से इस शक्ति द्वारा दैत्यराज मृत हो जाये।।१६८-१७१।।

सा कुमारभुजोत्सृष्टा दुर्निवार्या दुरासदा। बिभेद हृदयंचाऽस्यभित्त्वाच धरणिंगता॥१७२॥
निःसृत्य जलकल्लोलपूर्विकास्कन्दमाययौ। सचसन्ताडितःशक्त्याविभिन्नहृदयोऽसुरः।
नादयन्वसुधां सर्वां पपाताऽधोमुखो मृतः॥७३॥

कुमार की भुजा से छोड़ी गयी यह अनिवार्य दुर्द्धर्ष शक्तिरूपी अस्त्र तब तारकासुर का हृदय भेदन करता तथा धरती का विदारण करता पुनः गुह के हाथों में लौट आया। उस विदीर्ण धरती से जलकल्लोल उत्थित होने लगा। वह दैत्य भी शक्तिप्रहार द्वारा हृदय भेदन हो जाने के कारण दारुण चीत्कार करता तथा समग्र पृथिवी को निनादित करता मृत हो अधोमुख जा गिरा।।१७२-१७३।।

एवं प्रताप्य त्रैलोक्यं निर्जित्यबहुशः सुरान्। महारणे कुमारेण निहतः पार्थ तारकः॥१७४॥
एतस्मिन्निहते दैत्ये प्रहर्षं विश्वमाययौ॥१७५॥

ववुर्वातास्तथापुण्याः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः।
जज्वलुश्चाऽग्नयःशान्ताः शान्तादिग्जनितस्वनाः॥१७६॥
ततः पुनः स्कन्दमाह प्रहृष्टकेशवोऽरिहा। स्कन्दस्कन्दमहाबाहोबाणोनामबलात्मजः॥१७७॥
क्रौञ्चपर्वतमादाय देवसङ्घान्प्रबाधते। सोऽधुना ते भयाद्वीर पलायित्वा नगं गतः।
जहि तं पापसङ्कल्पं क्रौञ्चस्थं शक्तिवेगतः॥१७८॥

हे पार्थ! इस प्रकार वह तारकासुर त्रिलोक को सन्तापित करता और देवगण को अनेक बार परास्त करता महाबली कुमार द्वारा निहत हो गया। उसके मृत होते ही समस्त जगत् में हर्ष व्याप्त हो गया। तृप्तिकारी वायु बहने लगी। दिवाकर प्रकाशित हो उठे। अग्नि प्रशान्तभावेन जलने लगी। दिशाओं में जो उद्वेगजनित शब्द उत्थित हो रहे थे, वे सभी शान्त हो गये। तब शत्रुनाशी केशव ने स्कन्द से कहा—"हे स्कन्द! बलासुर का पुत्र बाणासुर क्रौञ्च पर्वत पर रहकर देवताओं को उत्पीड़ित करता रहा है। अभी वह आपके भय से भागकर उस पर्वत पर चला गया है। आप उस क्रौञ्चपर्वत निवासी पापी महासुर का शक्तिप्रहार से संहार करें"।।१७४-१७८।।

ततः क्रौञ्चं महातेजा नानाव्यालविनादितम्। शक्त्याबिभेदबहुभिर्वृक्षैर्जीवैश्चसङ्कुलम्॥१७९॥
तत्र व्यालसहस्राणि दैत्यकोट्ययुतं तथा। ददाह बाणंचगिरिं भित्त्वा शक्तिर्महारवा॥१८०॥
अद्याऽपि छिद्रं तत्पार्थ! क्रौञ्चस्य परिवर्तते॥१८१॥
येन हंसाश्च क्रौञ्चाश्च मानसायप्रयान्तिच। हत्वाबाणंमहाशक्तिःपुनःस्कन्दंसमागता।
प्रत्यायाति मनः साधोराहतं प्रहितं तथा॥१८२॥
ततो हरीन्द्रप्रमुखाः प्रतुष्टुवुर्ननृतुश्च रम्भाप्रमुखा वराङ्गनाः।
वाद्यानि सर्वाणि च वादयन्तस्तं साधुसाध्वित्यमरा जगुर्भृशम्॥१८३॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कुमारेशमाहात्म्ये कुमारकृततारकवधवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥३२॥

यह सुनकर महातेजस्वी स्कन्द ने उस नाना वृक्षों से आच्छन्न, नाना प्राणिगण संकुल, विविध हिंस्र जीवों से पूर्ण क्रौञ्चपर्वत को शक्ति द्वारा भेद दिया। कुमार द्वारा प्रक्षिप्त उस शक्ति ने महान् शब्दों से उस पर्वत को भेदा तथा सहस्रों हिंस्र जन्तुगण एवं अयुत कोटि राक्षसों के साथ उस बाणासुर को दग्ध कर दिया। हे पार्थ! क्रौञ्च पर्वत में आज भी उस शक्तिप्रहार जनित छिद्र को देखा जा सकता है। इस छिद्रमार्ग से हंस-क्रौञ्च आदि मानस सरोवर जाते हैं। वह शक्ति बाणासुर वधोपरान्त पुनः स्कन्ददेव के पास वापस आ गयी। यह साधुजन के मन की तरह एक बार विक्षिप्त होने पर भी पुनः लौट आती है। तदनन्तर विष्णु-इन्द्र आदि देवता कुमार की प्रशंसा करने लगे। रम्भा आदि प्रमुख अप्सरागण नृत्यरत हो गयीं। सभी अमरगण वाद्य-वादन के साथ उच्च स्वर से स्कन्ददेव को साधुवाद देने लगे।।१७९-१८३।।

।।द्वात्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

तारक वध से दुःखी कार्त्तिकेय द्वारा प्रायश्चित्त, शिवलिंग स्थापना

नारद उवाच

ततस्तं गिरिवर्ष्माणं पतितं वसुधोपरि। अलिङ्गितमिवपृथ्व्या गुणिन्यागुणिनंयथा॥१॥
दृष्ट्वा देवा विस्मितास्तेजयंजगुस्तथामुहुः। केचित्समीपमागन्तुंबिभ्यतित्रिदिवौकसः॥२॥
उत्थाय तारको दैत्यः कदाचिन्नोनिहन्ति चेत्। तं तथापतितंदृष्ट्वा वसुधामण्डलेगुहः॥३॥
आसीद्दीनमनाः पार्थ शुशोचचमहामतिः। स्तवनंचापिदेवानांवारयित्वावचोऽब्रवीत्॥४॥
शोच्यं पातकिनंमांच संस्तुवध्वंकथंसुराः। पञ्चानामपियोभर्ताप्राकृतोऽसौनकीर्त्यते॥५॥
स तु रुद्रांशजःप्रोक्तस्तस्य द्रुह्यन्न रुद्रवत्। स्वायम्भुवेन गीतश्च श्लोकःसंश्रूयते तथा॥६॥
वीरं हि पुरुषं हत्वा गोसहस्त्रेण मुच्यते। यथाकथञ्चित्पुरुषो न हन्तव्यस्ततो बुधैः॥७॥

नारद कहते हैं—तब देवगण ने उस पर्वत के समान शरीर वाले, भूपतित, रूपवती रमणी जैसे गुणी व्यक्ति का आलिंगन करती है, तदनुरूप धरती को आलिंगित किये हुये (अर्थात् धरती पर पड़े) तारकासुर को देखा तथा वे पुनः-पुनः जयगान करने लगे। तभी कोई-कोई देवता भय के कारण तारकासुर के शरीर के निकट नहीं जा रहे थे, मानों अचानक उठकर प्रहार न कर बैठे! हे पार्थ! तारकासुर को इस प्रकार भूपतित देखकर महामति कुमार विषण्ण मन से शोक करने लगे। तब उन्होंने देवगण को अपनी स्तुति करने से रोक दिया तथा कहा—"हे देवताओं! मैं पापी तथा शोक करने लायक हूं। अतः आप मेरी स्तुति क्यों कर रहे हैं? जो व्यक्ति ५ लोगों का भी भरण-पोषण करता है, उसे साधारण व्यक्ति नहीं कहना चाहिये। यह दैत्य तो रुद्रांश था। इसका वध करके तो मैं रुद्रद्वेषी हो गया! स्वायंभुव द्वारा गाया एक श्लोक है कि एक वीर पुरुष का वध करने पर उस पाप से छुटकारा पाने के लिए १००० गोदान करना चाहिये। इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति का यह कर्त्तव्य नहीं है कि किसी की हत्या करे।।१-७।।

पापशीलस्य हनने दोषो यद्यपिनास्तिच। तथापि रुद्रभक्तोऽयं संस्मरन्नितिशोचिभि॥८॥
तदहं श्रोतुमिच्छामि प्रायश्चित्तं न किञ्चन। प्रायश्चित्तैरपैत्येनो यतोऽपि महदर्जितम्॥९॥

यद्यपि पापी का वध करने में दोष नहीं है, तथापि यह दानव तो रुद्रभक्त था। इसे याद करके ही मुझे शोक हो रहा है। इसलिए अब मैं इसका कोई प्रायश्चित्त जानना चाहता हूं। प्रायश्चित्त से महान् पाप का भी नाश हो जाता है।।८-९।।

इति संशोचतस्तस्य शिवपुत्रस्य धीमतः। वासुदेवो गुरुः पुंसांदेवमध्ये वचोऽब्रवीत्॥१०॥
श्रुतिःस्मृतिश्चेतिहासाःपुराणं च शिवात्मज। प्रमाणं चेत्ततो दुष्टवधे दोषो न विद्यते॥११॥
स्वप्रणान्यः परप्राणैः प्रपुष्णात्वघृणः पुमान्। तद्वधस्तस्य हि श्रेयो यद्दोषाद्यात्यधः पुमान्॥१२॥

अन्नादे भ्रूणहा मार्ष्टि पत्यौ भार्याऽपचारिणी।
गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किल्विषम्॥१३॥
पापिनं पुरुषंयो हि समर्थो न निहन्ति च। तस्यतावन्ति पापानितदर्धंसोऽप्यवाश्नुते॥१४॥
पापिनो यदि वध्यन्ते नैव पालनसंस्थितैः। ततोऽयमक्षमो लोकः कं यातिशरणंगुह॥१५॥
कथं यज्ञाश्च वेदाश्च वर्तन्ते विश्वधारकाः। तस्मात्त्वया पुण्यमाप्तं न च पापं कथञ्चन॥१६॥

जब धीमान् शिवपुत्र स्कन्द देवगण से इस प्रकार शोक प्रकट करने लगे, तब लोगों की अज्ञान राशि के विनाशक वासुदेव ने कहा—"हे शिवनन्दन! यदि श्रुति-स्मृति-इतिहास-पुराणादि को प्रमाण माना जाये, तब दुष्टवध का कोई दोष नहीं होता। जो निर्दयी अन्य का प्राण लेकर अपने प्राण का पालन करता है, उसका वध करना ही आपके लिए श्रेयप्रद है। वह जीवित रहकर अपने दोषों से और भी अपना अधःपतन करेगा। तब तो उसकी कहीं से निवृत्ति नहीं होगी। गर्भ का नाश करने वाले का अन्नदाता के प्राति, उपचार करने वाली स्त्री का पति के प्रति, शिष्य तथा यजमान का गुरु के प्रति तथा चोर का राजा के प्रति प्रायश्चित्त होता है, जिसे करके वे पवित्र हो जाते हैं। जो समर्थ होकर पापी की हत्या नहीं करता, वह पापी व्यक्ति के आधे पाप को भोगता है। हे गुह! यदि पालकगण द्वारा पापी शासित नहीं होता, तब असमर्थ लोग किसका आश्रय लेंगे? तब विश्वधारक यज्ञ तथा वेद कैसे स्थित रह सकेंगे? इसलिए आपने तारकासुर की हत्या करके पुण्य ही पाया है। पाप नहीं पाया है।।१०-१६।।

अथ चेद्रुद्रभक्तेषु बहुमानस्तव प्रभो। तत्र ते कीर्तयिष्यामि प्रायश्चित्तं महोत्तमम्॥१७॥
आजन्मसम्भवैः पापैः पुमान्येन विमुच्यते। आकल्पान्तं च वा येन रुद्रलोके प्रमोदते॥१८॥
कृते पापेऽनुतापो वै यस्य स्कन्द प्रजापते। रुद्राराधनतोऽन्यच्च प्रायश्चित्तं परं न हि॥१९॥
न यस्याऽलमपि ब्रह्मा महिमानं विवर्णितुम्।
श्रुतिश्च भीता यं वक्ति किं तस्मात्परमं भवेत्॥२०॥
अकाण्डेयच्चब्रह्माण्डक्षयोद्युक्तं हलाहलम्। कण्ठे दधारश्रीकण्टःकस्तस्मात्परमोभवेत्॥२१॥
दुःखताण्डवदीनोऽभूदण्डसङ्कीर्णमानसः। मारमारश्च यो देवःकस्तस्मात्परमोभवेत्॥२२॥
वियद्व्यापी सुरसरित्प्रवाहोविप्रुषाकृतिः। बभूव यस्यशिरसिकस्तस्मात्परमोभवेत्॥२३॥
यज्ञादिकाश्च ये धर्मा विना यस्याऽर्चनं वृथा। दक्षोऽत्र सत्यदृष्टान्तः कस्तस्मात्परमो भवेत्॥२४॥

हे प्रभो! यदि रुद्र का भक्त आपके लिए विशेष सम्मान पात्र हो, तब इस विषय में मैं अत्यन्त उत्तम प्रायश्चित्त कहता हूं। इस प्रायश्चित्त का अनुष्ठान करने वाला आजन्म कृतपाप से मुक्त हो जाता है। वह कल्पान्त तक रुद्रलोक में निवास करता है। हे स्कन्द! जिसे पाप का अनुष्ठान करने के उपरान्त मन में अनुताप आता है, उसके लिए रुद्र की आराधना से उत्तम कोई तीर्थ नहीं है। ब्रह्मा जिनकी महिमा का सम्यक् दर्शन नहीं कर पाते, श्रुति भी जिनका सम्यक् वर्णन नहीं कर पाती, क्योंकि सामर्थ्य का अभाव जो होता है, इसी प्रकार श्रुति सम्यक्तः सामर्थ्यवान् रूप से जिसका वर्णन नहीं कर पाती, ब्रह्मा भी सामर्थ्यपूर्ण होकर भी भय से जिसका वर्णन नहीं कर सकते, उसके अपेक्षा और कौन कार्य उत्तम है। जो जगत् का दुःख देखकर दीनवेश में ताण्डव नृत्य करते हैं, ब्रह्माण्ड की हित चिन्तार्थ जिनका चित्त सदा व्याकुल है तथा जिन्होंने दुर्जय काम को भी नष्ट किया है, उनकी अपेक्षा और कौन श्रेष्ठ

है? जिनके मस्तक पर गगनव्यापी गंगाप्रवाह सामान्य जलबिन्दुवत् प्रतीत होता है, उनकी तुलना में और कौन श्रेष्ठ है? जिनका कण्ठ सहसा ब्रह्माण्ड का विनाश करने वाला हलाहल धारण करके नीलकण्ठ हो गया, उनसे अधिक श्रेष्ठ कौन है? जिनकी अर्चना के बिना यज्ञादि सर्वकार्य ही विफल हैं। इस विषय में दक्षयज्ञ साक्षात् दृष्टान्त है, उनसे बढ़कर और कौन है?।।१७-२४।।

क्षोणी रथो विधिर्यन्ता शरोऽहंमन्दरो धनुः। रथाङ्गे चापिचन्द्रार्कौयुद्धेयस्यचत्रैपुरे॥२५॥
आराधनं तस्यकेचिद्योगमार्गेण कुर्वते। दुःखसाध्यं हि तत्तेषां नित्यंशून्यमुपासताम्॥२६॥
तस्मात्तस्यार्चयेल्लिंगंभुक्तिमुक्ती य इच्छति। सृष्ट्यादौ लिङ्गरूपीसविवादोममब्रह्मणः॥२७॥
अभूद्यस्य परिच्छेदे नालमावां बभूविव। चराचरं जगत्सर्वं यतो लीनं सदाऽत्र च॥२८॥
तस्माल्लिङ्गमितिप्रोक्तं देवै रुद्रस्यधीमतः। तोयेन स्नापयेल्लिङ्गं श्रद्धया शुचिना च यः॥२९॥
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं तेनेदं तर्पितं जगत्। पञ्चामृतेन तल्लिगं स्नापयेद्यश्च बुद्धिमान्॥३०॥
तर्पितं तेन विश्वंस्यात्सुधया पितृभिः समम्। पुष्पैरभ्यर्चयेल्लिङ्गंयथाकालोद्भवैश्चयः॥३१॥
तेन सम्पूजितं विश्वं सकलं नात्र संशयः। नैवेद्यं तत्र यो दद्याल्लिङ्गस्याग्रे विचक्षणः॥३२॥
भोजितं तेन विश्वं स्याल्लिङ्गस्यैवंफलंमहत्। किमत्र बहुनोक्तेन स्वल्पंवायदिवावहु॥३३॥
लिङ्गस्य क्रियते यच्चतत्सर्वंविश्वप्रीतिदम्। तच्च लिङ्गं स्थापयेद्यःशुचौ देशे सुभक्तितः॥३४॥

त्रिपुरासुर से युद्ध करते समय पृथिवी जिनकी रथ थी, विधाता सारथि थे, मन्दराचल पर्वत धनुष रूप था, चन्द्र-सूर्य रथ के पहिये थे, कोई-कोई ही उन महादेव की आराधना योगमार्ग द्वारा करता है। लेकिन उन सबकी आराधना दुःखप्रद है। उसमें नित्य शून्यभावोपासना करनी पड़ती है। जिसे भुक्ति-मुक्ति की कामना हो, वह उनकी लिङ्गार्चना ही करे। सृष्टि के आदिकाल में वे लिंगरूपी थे। तब उस लिंग की सीमा के सम्बन्ध में मुझमें तथा ब्रह्मा में महान् विवाद उपस्थित था। लेकिन हम दोनों ही उसकी सीमा नहीं जान सके। इसी में चराचर जगत् सदा लीन हो जाता है। इसी कारण इस रुद्रमूर्त्ति को देवता लिंग शब्द से अभिहित करते हैं। जो व्यक्ति पवित्र भाव से जल से लिंग को स्नान कराता है, उससे ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त समस्त जगत् हर्षित हो जाता है। जो बुद्धिमान् व्यक्ति पञ्चामृत से लिंग को स्नान कराता है, उसके पितृगण तथा समस्त जगत् भी मानों अमृत से तृप्त हो जाते हैं। जो ऋतुकालोत्पन्न पुष्पों से लिंगार्चन करता है, उसके द्वारा समस्त जगत् की पूजा सम्पन्न हो जाती है। जो बुद्धिमान व्यक्ति लिंग के आगे नैवेद्य अर्पित करता है, मानों उसने समस्त विश्व को भोजन करा दिया। इस प्रकार से लिंग का महान् फल है। इस सम्बन्ध में और अधिक क्या कहूं! लिंग की जो भी परिचर्या की जाती है, वही जगत् के लिए प्रसन्नता प्रदातृ होती है। इसलिए भक्तिपूर्वक पवित्र स्थल पर लिंग स्थापित करे।।२५-३४।।

स सर्वपापनिर्मुक्तो रुद्रलोके प्रमोदते। यन्नित्यं यजतो यज्ञैः फलमाहुर्मनीषिणः॥३५॥
तच्च स्थापयतोलिङ्गं शिवस्यशुभलक्षणम्। यथाग्निःसर्वदेवानांमुखं स्कन्द! प्रकीर्त्यते॥३६॥
तथैव सर्वजगतां मुखं लिङ्गं न संशयः। प्रारम्भान्मुच्यते पापैः सर्वजन्मकृतैरपि॥३७॥
अतीतंच तथाऽऽगामि कुलानां तारयेच्छतम्। मृण्मयं काष्ठनिष्पन्नंपक्वेष्टंशैलमेवच॥३८॥
कृतमायतनं दद्यात्क्रमाच्छतगुणं फलम्। कलशं तत्र चारोप्य एकविंशत्कुलैर्युतः॥३९॥

आकल्पान्तं रुद्रलोके मोदते रुद्रवत्सुखी। एवंविधफलं लिङ्गमतोभूयोऽप्यधो न हि॥४०॥

वह व्यक्ति सर्वपापरहित होकर रुद्रलोक में आनन्दपूर्वक निवास करता है। मनीषीगण नित्य योगानुष्ठान का जो फल कहते हैं, वही फल शुभलक्षण लिंग स्थापना से भी प्राप्त हो जाता है। हे स्कन्द! जैसे अग्नि सभी देवगण का मुख है, उसी प्रकार से लिंग भी समस्त जगत् का मुख है। इसमें संशय नहीं है। मृण्मय शिवमन्दिर बनाकर दान करने से १०० जन्मों का प्रारब्ध नष्ट हो जाता है। उसकी पूर्व की १०० पीढ़ी तथा भविष्य की १०० पीढ़ी नरक से छुटकारा पा जाती है। काष्ठ, ईंटों किंवा पत्थर से मन्दिर बनाकर दान करने वाले को उत्तरोत्तर शतगुण अधिक फल की प्राप्ति होती है। यदि वह मन्दिर कलश लगाकर बने तब मानव अपनी २१ पीढ़ी के साथ रुद्रलोक में निवास कल्पान्त पर्यन्त आनन्दपूर्वक निवास करता है। लिंग की ऐसी महिमा है, अथवा इससे भी कहीं अधिक है। इससे कम कदापि नहीं है।।३५-४०।।

तस्मादत्र महासेन! लिङ्गं स्थापितुमर्हसि। यदुक्तमेतदश्लीलं यदि किञ्चन चाऽत्र चेत्॥४१॥
तद्ब्रवीतु महासेन स्वयं साक्षी महेश्वरः। एवं वदति गोविन्दे साधुवादो महानभूत्॥४२॥
महादेवो ह्यथालिङ्ग्य स्कन्दं वचनमब्रवीत्। यद्भवान्मम भक्तेषु प्रकरोति कृपां पराम्॥४३॥
तेनाऽपि परमा प्रीतिर्मम जाता तवोपरि। किन्तु यद्भगवानाह वासुदेवो जगद्गुरुः॥४४॥
तत्तथा नान्यथा किञ्चिदत्र प्रोक्तं हि विष्णुना। यो ह्यहं स हरिर्ज्ञेयो यो हरिः सोऽहमित्युत॥४५॥
नावयोरन्तरं किञ्चिद्दीपयोरिव सुव्रत!। एनंद्वेष्टि स मां द्वेष्टि योऽन्वेत्येनंसमाऽनुगः॥४६॥
इति स्कन्द! विजानाति स मद्भक्तोऽन्यथा न हि॥४७॥

हे महासेन स्कन्द! आप यहां एक लिंग स्थापना करिये। मैंने जो कुछ कहा है, उसमें तनिक भी अनुचित नहीं है। इसके साक्षी महेश्वर यह स्वयं कहें। वासुदेव के यह कहते ही वहां महान् साधुवाद का शब्द होने लगा। तत्पश्चात् स्वयं महेश्वर ने स्कन्द का आलिंगन करके कहा—"तुमने जो मेरे भक्त के लिए यथेष्ट कृपा प्रदर्शन किया है, इससे मैं तुम्हारे प्रति अत्यन्त प्रसन्न हो गया। तथापि भगवान् जगद्गुरु वासुदेव ने जो कुछ कहा वह सत्य है। मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूं। विष्णु ने कोई भी विरुद्ध बात नहीं कहा। जो मैं हूं, वे ही हरि हैं। जो हरि हैं, वही मैं हूं। जैसे प्रत्येक दीप की ज्वाला एक अग्नि ही है, उसी प्रकार हममें कोई भेद नहीं है! जो हम दोनों में भेददर्शन करता है, जो इनसे द्वेष करता है, वह मानों मुझसे द्वेष कर रहा है। जो विष्णु का अनुगत (भक्त सेवक) है, वह मेरा भी अनुगत है। हे स्कन्द! तुम यह स्मरण रखो कि ऐसा व्यक्ति ही मेरा भक्त है। अन्यथा वह मेरा भक्त कदापि नहीं है"।।४१-४७।।

स्कन्द उवाच

एवमेवाऽस्मि जानामि त्वां च विष्णुं च शङ्कर!॥४८॥
यच्च लिङ्गकृते प्राह हरिर्मा धर्मवत्सलः। खे वाणी तारकवधे एवमेव पुराऽऽह माम्॥४९॥
लिङ्गं संस्थापयिष्यामि सर्वपापापहं ततः। एकं यत्र प्रतिज्ञा मे गृहीताऽस्यवधायच॥५०॥
द्वितीयं यत्र निःसत्त्वस्त्यक्तः शक्त्याऽसुरोऽभवत्।
तृतीयं यत्र निहतो हत्यापापोपशान्तिदम्॥५१॥

स्कन्ददेव कहते हैं—हे शंकर! मैं आपको तथा विष्णु को इसी प्रकार जानता हूं। धर्मवत्सल हरि ने जो लिंग प्रतिष्ठार्थ उपदेश दिया है, वही पहले आकाशवाणी ने भी तारकवध के प्रसंग में कहा था। इसलिए मैं सर्वपापनाशक शिव प्रतिष्ठा करूंगा। जहां मैंने तारकवधार्थ प्रतिज्ञा किया था, वहां पर एक लिंग की प्रतिष्ठा करूंगा। जहां असुर पर शक्ति प्रहार किया था, वहां एक अन्य लिंग प्रतिष्ठित करूंगा तथा जहां तारकासुर ने प्राण त्याग किया था, वहां तृतीय शिवलिंग स्थापित करूंगा, जो हत्या पापनाशक होगा।।४८-५१।।

इत्युक्त्वाविश्वकर्माणमाहूय प्राह पावकिः। त्रीणि लिङ्गानिशुद्धानिशीघ्रंत्वंकर्तुमर्हसि।।५२।।
वचनाद्बाहुलेयस्य निर्ममे देववर्द्धकिः। त्रीणि लिङ्गानि शुद्धानि न्यवेदयत तानि च।।५३।।
ततो ब्रह्मादिभिः सार्धं विष्णुना शङ्करेण च। पूर्वं संस्थापयामास पश्चिमायामदूरतः।।५४।।
प्रतिज्ञेश्वरमित्येव लिङ्गं परमशोभनम्। अष्टम्यां बहुले चात्र चैत्रे स्नात्वा उपोष्य च।।५५।।
पूजां च जागरं कृत्वा मुच्येत्पारुष्यपापतः। इत्याहस्कन्दप्रीत्यर्थं स्वयं तत्र महेश्वरः।।५६।।
ततो द्वितीयं लिङ्गं तु वह्निकोणाश्रितं तथा। स्थापयामाससरसो यत्रशक्तिर्विनिर्ययौ।।५७।।
कपालेश्वरमित्येव लिङ्गं पापापहं शुभम्। शक्तिं च तामभिष्टूय स्थापयामास तत्र च।।५८।।
कपालेश्वरसान्निध्यंदेवीं कापालिकेश्वरीम्। तत्र चोत्तरदिग्भागे शक्तिच्छिद्रंप्रचक्षते।।५९।।
पातालगङ्गा यत्राऽस्ति सर्वपापहरा शिवा।
तत्र स्नात्वा ददौ स्कन्दः कृपयाऽभिपरिप्लुतः।।६०।।
तदा तोयं तारकाय सहितः सर्वदैवतैः।।६१।।

पावकनन्दन कुमार ने यह कहकर देवशिल्पी विश्वकर्मा को बुलाकर कहा—"आप शीघ्र तीन शुद्ध लिंगों का निर्माण करें।" कुमार का आदेश पाकर देवशिल्पी ने तीन विशुद्ध लिंग बनाकर कुमार को प्रदान किया। तदनन्तर कुमार ने ब्रह्मा, विष्णु, शंकर तथा सभी देवताओं के साथ प्रथमतः सरोवर के पश्चिम में सरोवर से तनिक दूरी पर प्रतिज्ञेश्वर नामक परम मनोहर लिंग को स्थापित किया। इसके अनन्तर जहां तारक के मस्तक से शक्ति बहिर्गत हुई थी, वहां सरोवर के अग्निकोण पर कपालेश्वर नामक पापहारी द्वितीय लिंग स्थापित किया। उस कपालेश्वर के ही निकटस्थ कपालिकेश्वरि नामक उस शक्ति की भी स्तुति तथा प्रणाम करके स्थापित किया। उसके उत्तर की ओर जहां शक्तिछिद्र विराजमान था, वहां सर्वपापहरा मंगलकारिणी पापगंगा स्थित हैं। स्कन्ददेव ने वहां स्नानोपरान्त सभी देवताओं के साथ कृपापूर्वक तारकासुर का तर्पण किया।।५२-६१।।

काश्यपेयाय वज्राङ्गतनयाय महात्मने। रुद्रभक्ताय सतिलमक्षय्योदकमस्त्विति।।६२।।
ततो महेश्वरःप्रीतः प्राह स्कन्दस्यशृण्वतः। चतुर्दश्यांकृष्णपक्षे मधौ चैवाऽत्रयो नरः।
स्नात्वोपोष्य समभ्यर्च्य कपालेश्वरमीश्वरीम्।।६३।।
तेजोवधसमुद्भूतपातकेन स मुच्यते।।६४।।
अस्यामेवतिथौसोमःशिवयोगश्चतैतिलम्। षड्योगः शक्तिच्छिद्रेयोदिनंरुद्रंजपन्निशि।
स्नात्वाऽत्र सशरीरो वै रुद्रलोकं व्रजिष्यति।।६५।।

वहां स्कन्ददेव ने तर्पण करते हुये कहा—"यह जल अक्षय जल है। काश्यपेय वज्राङ्ग के पुत्र रुद्रभक्त महात्मा तारक को यह तृप्ति प्रदान करे।" इस मन्त्र से स्कन्ददेव ने तारक को जलांजलि दिया। तदनन्तर महेश्वर ने स्कन्ददेव को सुनाते हुये कहा—"जो मानव चैत्र कृष्णचतुर्दशी के दिन स्नानोपरान्त उपवासी रहकर कपालेश्वर तथा कपालेश्वरी का पूजन करेंगे, वे अन्य के तेजोहानिजनित पाप से मुक्त हो जायेंगे। यदि उक्त तिथि के दिन सोमवार तथा तैतिलकरण हो, तब उस षड्योगारब्य तिथि के दिन जो मानव शक्तिछिद्र में दिन के समय रुद्रमन्त्र जपता रात्रि में स्नान करेगा, वह सशरीर ब्रह्मलोक गमन करेगा"।।६२-६५।।

कपालेशस्यसान्निध्येशक्तिच्छिद्रं हि कीर्त्यते। तस्य तुल्यंपरं तीर्थंपृथिव्यांनैवविद्यते।
इति श्रुत्वा रुद्रवाक्यं स्कन्दः प्रीतोऽभवद्भृशम्।।६६।।
देवाश्च मुदिताः सर्वे साधुसाध्विति ते जगुः।।६७।।

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कुमारस्थापित-प्रतिज्ञेश्वरशक्तिच्छिद्रेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः।।३३।।

"कपालेश्वर के पास में ही शक्तिछिद्र स्थित है। भूतल में उससे उत्तम तीर्थ है ही नहीं।" रुद्रदेव का वचन सुनकर स्कन्ददेव अत्यन्त प्रसन्न हो गये। सभी देवता आनन्दपूर्वक साधुवाद देते उल्लास प्रकट करने लगे।।६६-६७।।

।।त्रयस्त्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

स्कन्दकृत शिवस्तुति, शिवलिंग माहात्म्य, कुमारेश अर्चना का फल वर्णन

नारद उवाच

ततस्तृतीयलिङ्गस्य चिकीर्षुं स्थापनं गुहम्। ब्रह्माप्राहास्य प्रीत्यर्थंस्वयमन्यं प्रकुर्महे।।१।।
यद्यप्येतच्छुभं लिङ्गं सर्वदोषविवर्जितम्। तथाप्यन्यत्करिष्येऽहं सर्वश्रेष्ठतमं हि यत्।।२।।
ततो ब्रह्मा सर्वदोषविमुक्तं निर्ममे स्वयम्। दृष्टिकान्तंमनःकान्तंफलकान्तंसुलिङ्गकम्।।३।।
तत्र स्कन्दस्य प्रीत्यर्थं सर्वदेवैर्विनिर्मितम्। सरःसुरम्यं तीर्थानि तत्र ते निदधुस्तथा।।४।।
गंगादिकानि तीर्थानि यानिप्रोचुर्दिवौकसः। इदं यावत्सरस्तावत्सर्वैरत्रसमुष्यताम्।।५।।

एवमस्त्विति तान्यूचुः प्रीत्यर्थं शरजन्मनः। ततो ब्रह्मा स्वयं तत्र रौद्रैर्मंत्रैर्हुताशनम्।
गाधिपुत्रादिभिर्विप्रैस्तर्पयामास संयुतः॥६॥

नारद कहते हैं—तदनन्तर तृतीय लिंग स्थापना की व्यवस्था हेतु कुमार से ब्रह्मदेव ने कहा—"शिव की विशेष प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये मैं स्वयं एक अन्य लिंग निर्माण करूंगा। यद्यपि यह लिंग सर्वपाप रहित तथा शुभाकृति है (जिसे विश्वकर्मा ने अन्य २ लिंगों के साथ बनाया था), तथापि मैं एक सर्वदोषमुक्त सर्वोत्तम लिंग निर्माण करूंगा।" ब्रह्मा ने यह कहकर एक सर्वोत्तम तथा सर्वदोषमुक्त लिंग का निर्माण किया। यह देखने में अत्यन्त सुन्दर, मन को प्रसन्नता देने वाला, सर्व कामफलप्रद तथा सुलक्षण सम्पन्न था। देवताओं ने स्कन्द की सन्तुष्टि हेतु एक मनोहर सरोवर का निर्माण किया। उसमें देवगण ने समस्त तीर्थों को सन्निहित कर दिया। उन्होंने गंगा आदि तीर्थों का आवाहन करके उनसे प्रार्थना किया कि "हे तीर्थों! जब तक यह सरोवर स्थित रहे, तब तक आपलोग भी इसमें अवस्थित रहें। तीर्थों ने भी शरजन्मा कुमार की सन्तुष्टि के लिए अपनी सहमति व्यक्त की। तत्पश्चात् ब्रह्मा ने स्वयं तथा विश्वामित्र प्रभृति ऋषिगण के साथ रुद्र मन्त्रों से अग्नि में होम किया।।१-६।।

ततो वैशाखमासस्य चतुर्द्दश्यां शुभे दिने। प्रतिष्ठां चक्रिरे लिङ्गे चिरंविप्रमुखाद्विजाः॥७॥
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः। ततः स्कन्दः प्रीतियुक्तः स्नात्वासरसिशोभने॥८॥
सर्वतीर्थोदकैः स्नाप्य तल्लिङ्गं भक्तिसंयुतः। विविधैः पूजयामासपुष्पैर्मन्त्रैश्च पञ्चभिः॥९॥
पूजाकाले स्वयं तत्र लिङ्गमध्ये स्थितो हरः। जङ्गमाजङ्गमैः सार्धं स्वयं जग्राह पूजनम्॥१०॥
ततस्तं पूजयन्प्राह स्कन्दो भक्तिपरिप्लुतः। केन केनोपहारेण त्वयिदत्तेन किम्फलम्॥११॥

इसके अनन्तर वैशाख मास की शुभ चतुर्दशी के दिन लिंग प्रतिष्ठा सम्पन्न की गयी। तब गन्धर्वप्रवरगण गायन तथा अप्सरागण नृत्यरत हो गये। इसके अनन्तर स्कन्ददेव ने सर्व सरोवरमय तीर्थ में स्नान करके भक्तियुक्त चित्त के साथ विविध उपचारों से पंचविध मन्त्र तथा ५ प्रकार के पुष्पों द्वारा लिंगार्चन सम्पन्न किया। पूजन काल में महेश्वर ने सचराचर जगत् के साथ लिंग में अधिष्ठित होकर पूजा को स्वीकार किया। उस समय भक्ति से सराबोर होकर स्कन्ददेव ने महादेव से पूछा—"प्रभो! किस-किस उपहार को अर्पित करने का क्या-क्या फल मिलता है"?।।७-११।।

श्रीमहादेव उवाच

मम यः स्थापयेल्लिङ्गंशुभं सद्म च कारयेत्।
मल्लोकेवसतेऽसौच यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥१२॥
मम सद्म सुधाशुभ्रंयावत्संख्यंकरोति यः। तावन्त्येवच जन्मानियशसाऽसौविराजते॥१३॥
ध्वजभूतो ध्वजं दत्त्वा विपापः स्यात्पताकया। विधाय चित्रविन्यासगन्धवैः सह मोदते॥१४॥
रजःसंशोधनं कृत्वा नरो रोगैः प्रमुच्यते। प्राप्नोति देहं हार्दं च सुरसद्मानुलेपनात्॥१५॥
पुष्पक्षीरादिभिर्दत्तैस्तिलाम्भोऽक्षतदर्भकैः। शम्भोःशिरसिदत्त्वार्घ्यंदिविवर्षायुतंवसेत्॥१६॥
घृतेन हतपापः स्यान्मधुना सुभगो भवेत्। विरोगो दधिदुग्धाभ्यां लिङ्गं संस्नाप्य जायते॥१७॥

पानीयदधिदुग्धाद्यैःक्रमाद्दशगुणंफलम्। मासं संस्नाप्य वै भक्त्यापिष्टाद्यैश्चविरूक्षयेत्॥१८॥
कपिलापञ्चगव्येन सुरसिन्धुजलेन वा। मां च संस्नाप्य चाभ्यर्च्यमल्लोकमधिगच्छति॥१९॥
कुशोदकाद्गन्धजलं तस्मात्तीर्थोदकं वरम्।
तीर्थेभ्यश्च जलं दर्शे महीसागरसम्भवम्॥२०॥
कपिलांदत्त्वायदाप्नोतितत्फलंकलशेपृथक्। मृत्ताम्ररौप्यसौवर्णैःक्रमाच्छतगुणंफलम्॥२१॥

श्रीमहादेव कहते हैं—जो व्यक्ति मेरा लिंग स्थापित करके मन्दिर बनवाता है, वह सूर्य-चन्द्र के स्थितिकाल तक मेरे लोक में निवास करता है। जो मेरे उद्देश्य से जितने भी सुधा के समान धवल मन्दिर निर्माण करता है, वह उतने जन्म पर्यन्त महायशस्वी होता है। ध्वज प्रदान करने वाला मनुष्य संसार में ध्वज के समान ही (मूर्द्धन्य रूप से) विराजित रहता है। मेरे भवन को चित्रित करने वाला मनुष्य गन्धर्वों के साथ प्रमुदित रहता है। वहां की धूल हटाने (झाड़ू आदि देने) वाला रोगहीन होता है। मेरे मन्दिर में अनुलेपन करने वाला मनोरम देह की प्राप्ति करता है। पुष्प, अक्षत, तिल, दुग्ध आदि से लिंग पर जो व्यक्ति अर्घ्य देता है, वह १०००० वर्ष पर्यन्त स्वर्ग में आदरपूर्वक विहार करता है। मुझे घृतार्पण से स्नान कराने वाला पापहीन, मधु अर्पण से सुभग, दधि तथा दुग्ध से स्नान कराने वाला रोगहीन हो जाता है। पानीय, दधि तथा दुग्ध से स्नान कराने पर उत्तरोत्तर एक-दूसरे से १० गुणित फल की प्राप्ति होती है। एक मास पर्यन्त पिष्ठादि द्रव्य से लिंग का मार्जन करे। कपिला गौ के दूध अथवा गंगाजल से शिवलिंग को स्नानोपरान्त पूजन कराने से मानव को मेरा लोक प्राप्त होता है। कुशजल की अपेक्षा गंगाजल, उसकी अपेक्षा तीर्थजल तथा उसकी अपेक्षा महीसागर संगम के जल से मुझे स्नान कराये। यह अधिक फलप्रद है। कलश से स्नान कराने पर कपिला दानफल मिलता है। मृत्तिका कलश की अपेक्षा तांम्रकलश, उसकी अपेक्षा चांदी का कलश, उसकी अपेक्षा स्वर्णकलश क्रमशः शतगुण फल प्रदान करता है।।१२-२१।।

श्रीखण्डागरुकाश्मीरशशिनः क्रमशोऽधिकाः।
मां च तैश्च समालभ्य स्याच्छ्रीमान्सुभगः सुखी॥२२॥
प्रशस्तोगुग्गुलोधूपस्तस्माच्चन्द्रोऽगरुर्वरः। धूपानेतान्नरोदत्त्वासुखंस्वर्गमवाप्नुयात्॥२३॥
दीपदः कीर्तिमाप्नोति चक्षुरुत्तममेव च। नैवेद्यस्य प्रदानेन नरोमृष्टाशनो भवेत्॥२४॥
पुष्पेण हेमकर्णस्य प्रबद्धेन द्विसंगुणम्। फलमाप्नोति पुरुषः सत्यसंधश्च जायते॥२५॥

लेपनार्थ चन्दन, अगुरु, कुंकुम तथा कर्पूर यथाक्रमेण अधिक फलप्रद है। इन द्रव्यों का लिंग पर लेपन करने वाला मनुष्य श्रीमान्, सुभग तथा सुखी होता है। गुग्गुलु धूप प्रशस्त है, उसकी अपेक्षा कर्पूर धूप तथा उसकी अपेक्षा अगुरु धूप प्रशस्त है। मनुष्य इन धूपों को (लिंग को) प्रदान करके स्वर्गसुख प्राप्त करता है। दीपदाता उत्तम कीर्त्ति तथा उत्तम नेत्र तथा नैवेद्यदाता मधुर भोजन प्राप्त करता है। मानव स्वर्णवर्ण का पुष्प लिंग पर अर्पित करे। उसे पूर्वोक्त फलों से दूना फललाभ होगा। वह सत्यसन्ध हो जायेगा।।२२-२५।।

अखण्डैर्बिल्वपत्रैश्च पुष्पैर्वा विविधैरपि। लिङ्गं प्रपूरणं कृत्वा लक्षमेकं वसेद्दिवि॥२६॥
यस्तु पुष्पगृहं कुर्यान्नरः शुद्धाशयो भवेत्। पुष्पकेण विमानेन दिवि संक्रीडते चिरम्॥२७॥

अखण्डित बेलपत्र किंवा नाना पुष्पों द्वारा लिंग को पूर्णतः आच्छादित करने से १०००० वर्ष पर्यन्त स्वर्ग

में निवास मिलता है। जो मनुष्य पुष्पों से सज्जित (अथवा पुष्पों से बना) भवन निर्मित करके प्रदान करता है, वह शुद्धचित्त वाला होकर स्वर्ग में पुष्पक विमान पर बैठ कर घूमता रहेगा।।२६-२७।।

भूषणाम्बरदानेन नरो भवति भोगभाक्। सच्चामरप्रदानेन जायते पार्थिवो नरः॥२८॥
रम्यं वितानं यो दद्याच्छत्रुभिर्नाऽभिभूयते। गीतंवाद्यंप्रनृत्यंचकृत्वाशुद्धोव्रजेत्समाम्॥२९॥
शङ्खघण्टाप्रदानेन विद्वान्भवति शब्दवान्। विधाय रथयात्रां च चिरं शोकैः प्रमुच्यते॥३०॥

(लिंग पर) वस्त्र, आभूषण प्रदान करने वाला भोग प्राप्त करेगा। उत्तम चामर प्रदाता राजा होगा तथा मनोरम चन्द्रातप (चन्दोवा) दान करने वाला कभी पराजित नहीं होगा। लिंग के पास नृत्य-गीत-वाद्यवादन करने वाला मुझे प्राप्त होता है। शंख तथा घंटा दान करने वाला विद्वान् तथा वक्ता हो जाता है। जिसने मेरे निमित्त रथयात्रा का उत्सव किया, वह चिरकाल तक शोकाकुल नहीं होता।।२८-३०।।

नमस्कारं प्रणामं च कृत्वा जायेन्महाकुले। वाचयंश्चाग्रतः शास्त्रं मम ज्ञानी प्रजायते॥३१॥
विमुच्यते मनोमोहैर्भक्त्या स्तुत्वा च मां नरः। गोदानफलमाप्नोति निर्माल्यस्फेटनान्मम॥३२॥
आरार्तिकं भ्रामयित्वाआर्तिहीनःप्रजायते। कृत्वा शीतलिकां तापैर्मुच्यतेदोषसम्भवैः॥३३॥
नत्वा दत्त्वाऽथ शक्त्याच दानं लिङ्गस्य सन्निधौ। फलं शतगुणंप्राप्यइहचामुत्रमोदते॥३४॥

मेरे लिंग के समक्ष शास्त्र पाठ करने वाला ज्ञानी होगा तथा नमस्कार-प्रणाम करने वाला महान् कुल में जन्म लेगा। भक्तियुक्त स्तुति करने वाला मनुष्य मन जनित मोह से रहित होगा। जो लिंग पर से निर्माल्य हटाता है, उसे गोदान फल प्राप्त होता है। आरती करने वाला दुःखरहित होता है। वहां शीतलिका प्रदान करने वाला पापताप रहित होता है (शीतलिका = श्वेत कपूर, चन्दन, एक पर्वत से मिलने वाला गन्धद्रव्य, देखें आप्टे शब्दकोष)। लिंग के पास अपनी वित्तशक्ति के अनुसार दान देने वाला तथा प्रणाम करने वाला इन सबसे शतगुणित फललाभ करेगा। वह इस लोक में तथा परलोक में उत्तम रूप से प्रमुदित रहेगा।।३१-३४।।

प्रणामात्पञ्चदश च स्नानाद्विंशतिं पूजया। शतं यथाप्रोक्तविधेरपराधानहं क्षमे॥३५॥
एतत्सर्वं यथोद्दिष्टंकुमाराऽत्रभविष्यति। ये मां प्रपूजयिष्यन्ति कुमारेश्वरसंस्थितम्॥३६॥
वाराणस्यां यथा वत्स! विश्वनाथोऽस्मि संस्थितः॥३७॥
गुप्तक्षेत्रे तथा स्थास्ये कुमारेश्वरमध्यतः॥३८॥
श्रुत्वेति वचनं रुद्राद्देवानां शृण्वतांगुहः। विस्मितःप्रणिपत्यैनं तुष्टाव गिरिजापतिम्॥३९॥

"यथाविधि प्रणाम द्वारा १५, स्नान से २० तथा पूजा से १०० अपराधों में क्षमा मिल जाती है। हे वत्स कुमार! इस कुमारेश्वर लिंग का जो कोई पूजन करेगा, अर्थात् जो इस लिंग द्वारा मेरी अर्चना करेगा, उसे मेरे द्वारा कहे फलों की प्राप्ति होकर रहेगी। हे वत्स! जैसे मैं वाराणसी में विश्वनाथ रूप से विद्यमान रहता हूं, इस गुप्त क्षेत्रस्थ कुमारेश्वर लिंग में वैसे ही विराजमान हूं।" गुहदेव ने देवगण के समक्ष रुद्र का यह कथन सुनकर विस्मित होते हुये गिरिजापति को प्रणाम किया तथा उनकी स्तुति करने लगे।।३५-३९।।

नमः शिवायाऽस्तु निरामयाय नमः शिवायाऽस्तु मनोमयाय।
नमः शिवायाऽस्तु सुरार्चिताय तुभ्यं सदा भक्तकृपापराय॥४०॥

नमो भवायाऽस्तु भवोद्भवाय नमोऽस्तु ते ध्वस्तमनोभवाय।
नमोऽस्तु ते गूढमहाव्रताय नमोऽस्तु मायागहनाश्रयाय॥४१॥
नमोऽस्तु शर्वाय नमः शिवाय नमोऽस्तु सिद्धाय पुरातनाय।
नमोऽस्तु कालाय नमः कलाय नमोऽस्तु ते कालकलातिगाय॥४२॥
नमो निसर्गात्मकभूतिकाय नमोऽस्त्वमेयोक्षमहर्द्धिकाय।
नमः शरण्याय नमोऽगुणाय नमोऽस्तु ते भीमगुणानुगाय॥४३॥
नमोऽस्तु नानाभुवनाधिकर्त्रे नमोऽस्तु भक्ताभिमतप्रदात्रे।
नमोऽस्तु कर्मप्रसवाय धात्रे नमः सदा ते भगवन्सुकर्त्रे॥४४॥
अनन्तरूपाय सदैव तुभ्यमसह्यकोपाय सदैव तुभ्यम्।
अमेयमानाय नमोऽस्तु तुभ्यं वृषेन्द्रयानाय नमोऽस्तु तुभ्यम्॥४५॥
नमः प्रसिद्धाय महौषधाय नमोऽस्तु ते व्याधिगणापहाय।
चराचरायाऽथ विचारदाय कुमारनाथाय नमः शिवाय॥४६॥

कुमार कहते हैं—निरामय शिव को प्रणाम! मनोमय शिव को, सुरार्चित शिव को, भक्तकृपामय आपको प्रणाम! भव, भवोभव, मनोभव विनाशक आपको प्रणाम! गूढ़महाव्रत, मायागहनाश्रय, शर्व, शिव, पुरातन सिद्ध, काल, कलारूपी आपको प्रणाम! आप कालकला से परे, स्वभावात्मक विभूति सम्पन्न, अपरिमेय वृषभारोही महाऋद्धियुक्त हैं। आपको प्रणाम! शरण्य को प्रणाम! गुणातीत को प्रणाम! आप भीषण गुण के अनुगत हैं, आपको प्रणाम! आप विविध भुवनाधिकारी, भक्त को अभिमत फल देने वाले हैं। आपको प्रणाम! कर्मप्रसव करने वाले विधाता को प्रणाम! आप ही जगत् में सभी श्रेष्ठ कर्म करने वाले अनन्तरूप हैं। आपको सदा प्रणाम! आप ही असह्य कोपरूपी हैं। आपको सतत् प्रणाम! आपका असीम परिमाण है, वृषेन्द्र आपके वाहन हैं, आपको प्रणाम! आप ही प्रसिद्ध तथा महौषधिरूप हैं, आप व्याधिविनाशक हैं, आप सचराचर रूपी विचार तथा बुद्धिदाता कुमारनाथ शिव हैं। आपको प्रणाम!।।४०-४६।।

ममेश भूतेश! महेश्वरोऽऽसि कामेश वागीश बलेश धीश।
क्रोधेश महेश परापरेश नमोऽस्तु मोक्षेश गुहाशयेश!॥४७॥

हे महेश्वर! आप ही महेश, भूतेश, कामेश, वागीश, बलेश, धीश, क्रोधेश, महेश, परापरेश, मोक्षेश तथा गुहाशयेश हैं। आपको प्रणाम!।।४७।।

इति संस्तूय वरदं शूलपाणिमुमापतिम्। प्रणिपत्य उमापुत्रो नमोनम उवाच ह॥४८॥
एवं भक्तिपराक्रान्तमात्मयोग्यं स्तवं शिवः अभिनन्द्य चिरंकालमिदं वचनमब्रवीत्॥४९॥
त्वयादुःखंनसञ्चिन्त्यंममभक्तवधात्मकम्। कर्मणाऽनेनश्लाघ्योऽसिमुनीनामपिपुत्रक॥५०॥
येच सायंतथाप्रातस्त्वत्कृतेनस्तवेनमाम्। स्तोष्यन्तिपरयाभक्त्याश्रणुतेषांचयत्फलम्॥५१॥

उमापुत्र कुमार स्कन्द ने शूलपाणि भगवान् शंकर की इस प्रकार स्तुति करके उनको प्रणामोपरान्त

'नमोनमः' शब्द का उच्चारण किया। महादेव इस भक्तिरसपूर्ण अपने योग्य स्तव से प्रसन्न हो गये। उन्होंने अनेक क्षण स्कन्द का अभिनन्दन करके कहा—"हे पुत्र! तुमने मेरे भक्त का जो वध किया उसका दुःख न मानो। फलतः यह कार्य करके तुम तो मुनिगण के भी आदरणीय हो गये। जो तुम्हारे द्वारा कहे इस स्तोत्र के द्वारा प्रातः तथा सायं मेरी स्तुति करेंगे, उसका फल श्रवण करो।।४८-५१।।

न व्याधिर्नच दारिद्र्यं नचैवेष्टवियोजनम्। भुक्त्वाभोगान्दुर्लभांश्चममयास्यन्तिसद्गते।।५२।।
तथान्यानपि दास्यामि वरान्परमदुर्लभान्। भक्त्या तवाऽतितुष्टोऽहंप्रीत्यर्थंतवपुत्रक।।५३।।
महीसागरकूले तु ये मां स्तोष्यन्ति पूजया। तेषां तदक्षयं सर्वं वैशाख्यांदानपूजनम्।।५४।।
सरस्यत्र च ये स्नानं प्रकरिष्यन्ति मानवाः। सर्वतीर्थफलावाप्तिर्वैशाख्यांप्रभविष्यति।।५५।।
कुमारेशं तु मां भक्त्या महीसागरसङ्गमे। स्नात्वासम्पूजयेन्नित्यंतस्यजातिस्मृतिर्भवेत्।।५६।।
जातिस्मृतिरियं पुत्र! यस्यां जातौ प्रजायते। स्मरतेऽस्याः प्रकर्तव्यं श्रेयोरूपं सुदुर्लभम्।।५७।।
यस्मिन्काले ह्यनावृष्टिर्जायते कृत्तिकासुत। स्नापयेद्विधिवन्मां च कलशैविरविधैःशुभैः।।५८।।
एकरात्रं त्रिरात्रं वा पञ्चरात्रं च सप्त वा। स्नापयेद्गन्धतोयेन कुङ्कुमेन विलेपयेत्।।५९।।
करवीरै रक्तपुष्पैर्जपापुष्पैस्तथैव च। अर्चयेत्पुष्पमालाभिः परिधायाऽरुणवाससी।।६०।।
भोजयेद्ब्राह्मणांश्चैव तापसाञ्छंसितव्रतान्। लक्षहोमं प्रकुर्वीत शिवहोमं ग्रहादिकम्।।६१।।

शिव कहते हैं—इसके पाठकर्त्ता को कभी व्याधि, दरिद्रता अथवा इष्टवियोग नहीं होगा। वह व्यक्ति दुर्लभ भोगों को भोगकर अन्त में मेरे स्थान को प्राप्त करेगा। हे पुत्र! मैंने तुम्हारी भक्ति द्वारा अतीव सन्तोष पाया है। इसलिए मैं तुम्हारी प्रसन्नता हेतु अन्य कई वर और प्रदान करता हूं। जो वैशाखी पूर्णिमा के दिन महीसागर संगम तट पर मेरी पूजा करके स्तुति करेंगे, उनको वहां किये दान-पूजादि का अक्षय फल मिलेगा। जो मानव उस दिन वहां सरोवर में स्नान करेंगे, वे सर्वतीर्थ स्नान का फल प्राप्त करेंगे। मैं यहां कुमारेश रूपेण स्थित रहता हूं। जो मानव नित्यप्रति भक्ति के साथ कुमारेश का पूजन सम्पन्न करेंगे, उनको सभी अतीत जन्मों की स्मृति प्राप्त होगी। हे पुत्र! मानव पूर्वजन्म वृत्तान्त स्मरण हो जाने पर इस जन्म में उचित कर्त्तव्य निर्धारणार्थ उद्योगी तथा कर्त्तव्यपरायण हो जाता है। जातिस्मरणरूप पूर्वस्मृति का यही फल है। हे कृत्तिकानन्दन! जब अनावृष्टि हो, तब यहां मुझे स्नान कराये। १ रात, तीन रात, ५ रात अथवा ७ रात यथावत् मुझे रक्तवस्त्र धारण करके कलस भरकर गंगाजल से मुझे स्नान कराये। कुंकुम का लेप लगाये। करवीर तथा जवा जैसे रक्तपुष्प से पूजा करे। पुष्पमाला भी धारण कराये। तीव्र व्रत का अनुष्ठान करने वाला व्रती ब्राह्मणों को भोजन कराये। लक्षसंख्यक शिव होम करके नवग्रह होम करे।।५१-६१।।

भूमिदानं ततःकुर्यात्ततोदद्याद्गवाह्निकम्। आघोषयेच्छिवांशान्तिंरुद्रजाप्यंहि कारयेत्।।६२।।
अनेनैव विधानेन कृतेन तु द्विजोत्तमैः। अगर्भितास्तदा मेघा वर्षन्ते नाऽत्र संशयः।।६३।।
विविधैः पूर्यते धान्यैः सालद्वैश्च वसुन्धरा। आरोग्यं हि भवेच्चैवजने गोपकुलेतथा।।६४।।
धर्मयुक्तो भवेद्राजा परचक्रैर्न पीड्यते। घृतेन स्नापयेन्मां च अर्कक्रान्तौ नरोऽत्र यः।।६५।।
कन्यादानफलं तस्य नाऽत्र कार्या विचारणा। क्षीरेण स्नापयेद्देवं तथा पञ्चामृतेन यः।।६६।।

अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं तस्योपजायते। कुमारेश्वरतीर्थे यः प्राणत्यागं करोति हि॥६७॥
रुद्रलोके वसेत्तावद्यावदाभूतसंप्लवम्। अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः॥६८॥
पौर्णमास्याममावास्यां सङ्क्रान्तौ वैधृते तथा। कुमारेशंनरःस्नात्वामहीसागरसङ्गमे॥६९॥
भक्त्या योऽभ्यर्चयेन्मांचतस्यपुण्यफलंशृणु। यन्महीतलतीर्थेषु स्नानेस्यात्तुमहत्फलम्।
यच्चार्चितेषु लिङ्गेषु सर्वेषु स्यात्फलं च तत्॥७०॥
आरोग्यं पुत्रलाभं च धनलाभं सुखं सुतम्॥७१॥

तदनन्तर भूमिदान करना चाहिये। गोग्रास देकर शैवी शान्ति घोषणा के उपरान्त शतरुद्रीय पाठ करे। द्विजोत्तमों द्वारा यह कार्य यथाविधि कराने से शून्य मेघ भी जलवर्षण करते हैं। तब वसुन्धरा भी नाना धान्य-शस्यादि से पूर्णत्व प्राप्त करती है। इससे गौओं की अभिवृद्धि तथा लोगों में रोगाभाव होगा। राजा धर्मात्मा हो जायेगा। उसे पराये राज्य से भय नहीं रहेगा। जो व्यक्ति यहां संक्रान्ति के समय मुझे घृत से स्नान करायेगा, उसे कन्यादान फल मिलेगा। इसमें कोई विचार न करे। जो व्यक्ति दुग्ध, किंवा पंचामृत से मुझे स्नान करायेगा, उसे अग्निष्टोम फल की प्राप्ति होगी। यहां जो प्राणत्याग करेगा, वह प्रलयकाल पर्यन्त ब्रह्मलोक में स्थित रहेगा। अयन संक्रान्ति, विषुव संक्रान्ति, सामान्य संक्रान्ति, पूर्णिमा, अमावस्या, वैधृति योग में मानव महीसागर संगम में स्नानोपरान्त भक्ति के साथ कुमारेश्वर लिंगार्चन द्वारा जो पुण्य प्राप्त करता है, उसे सुनो। पृथिवी पर समस्त तीर्थ तथा समस्त लिंगार्चन का जो फल है, वह मानव यहां प्राप्त कर लेता है। फलतः कुमारेश्वर की सेवा से मनुष्य को आरोग्य, पुत्र, धन, सुख आदि समस्त काम्य विषयों की प्राप्ति निःसन्दिग्ध रूप से होती है।।६२-७१।।

निश्चितं लभते मर्त्यः कुमारेश्वरसेवया। ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा यस्तिष्ठेदत्र तापसः॥७२॥
परं पाशुपतं योगं प्राप्य याति लयं मयि। पापात्मनांचमर्त्यानांसद्योऽस्मिफलदर्शकः।
दिव्येनाऽष्टविधेनाऽत्र कोशः साधारणोऽत्र च॥७३॥
अघोराद्यैः पञ्चमन्त्रैः स्नाप्य लिङ्गं महोज्ज्वलम्॥७४॥
अघोरेणैव तत्तोयं दद्याद्दिव्यस्य कारणे। पिबेदेतदुदीर्यादौ प्रसृतित्रयमेव च॥७५॥
यदिधर्मस्तथासत्यमीश्वरोऽत्रजगत्त्रये। कोशपानात्फलंसद्योद्रक्ष्याम्यस्मिशुभाशुभम्॥७६॥
यास्ये चेति कुलं हन्याद्गमने च कुटुम्बकम्। दर्शने च शुभं पाने हन्याद्देहं च मिथ्यया॥७७॥
त्रिभिर्दिनैस्त्रिभिःपक्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिरिभिःसमैः। अत्युग्रपुण्यपापानां मानेन फलमश्नुते॥७८॥
एते वरा मया लिङ्गे दत्ताऽत्रस्थापितेत्वया। तवप्रीत्यभिवृद्ध्यर्थबूहिभूयोऽप्युमात्मज॥७९॥

कुमारेश्वर देव की सेवा द्वारा यह सब सुनिश्चित है। यदि कोई यहां ब्रह्मचारी होकर तपस्या करता पवित्रतापूर्वक निवास करता है, उसे पाशुपत योग की प्राप्ति होती है। उसका मुझमें लय हो जाता है। यहां साधारण नियम से जो अष्टविध दिव्य (?) ग्रहण करता है, तब मैं पापी लोगों को भी पाप का सद्यः फल देता हूं। यथा— अघोरादि ५ मन्त्रों से महोज्ज्वल कुमारेश लिङ्ग को स्नान कराये। इस जल को अघोर मन्त्र से अभिमंत्रित करके दिव्यकारी को प्रदान करे। दिव्यकारी इस मन्त्र को पढ़कर तीन अंजलि जल पीये। मन्त्र श्लोक (मूलोक्त) ७६ में अंकित है। यदि पापी व्यक्ति यह जल पान न करके व्याकुल हो जाये तथा भाग जाये तब उसका कुल तथा कुटुम्ब

विनष्ट होगा। यदि पापी एकटक देखता रहे तब वह शुभहीन होगा। यदि पापी वह जल पी ले, तब उसका देहनाश होगा। तीन दिन, तीन पक्ष, तीन मास, तीन वर्ष में अत्युग्र पुण्य-पाप का फल मिलता है। हे उमापुत्र! मैंने तुम्हारी प्रसन्नता के लिए ये वर प्रदान किये! अब और क्या करूं? वह कहो।।७२-७९।।

स्कन्द उवाच

कृतकृत्यो वरैर्दत्तैस्त्वया चैतैर्महेश्वर!। नमोनमोनमस्तेऽस्तु नात्रत्याज्यं त्वयाविभो।।८०।।
एवं प्रणम्य देवं स मातरं प्रणतोऽब्रवीत्। त्वयापिमातर्नैवात्रत्याज्यंमम प्रियेप्सया।।८१।।
त्वामप्यत्र स्थापयिष्ये वरदा भव पार्वति!।।८२।।

स्कन्द कहते हैं—"हे महेश्वर! आपके द्वारा प्रदत्त वरों से मैं कृतार्थ हो गया। आपको प्रणाम, प्रणाम, पुनः प्रणाम! हे विभो! आप इस स्थान का त्याग न करें।" कुमार ने पिता से यह कह कर माता से भी कहा—"हे माता! आप भी मेरी प्रसन्नता के लिए यहीं स्थित रहें। आप वरप्रदा हो जायें।।८०-८२।।

श्रीदेव्युवाच

यत्र शर्वः स्वभावेन तत्र तिष्ठाम्यहं सुत!।।८३।।
तव भक्त्या विशेषेण स्थास्ये स्त्रीणां वरप्रदा। युद्धेषु तव कर्माणिरुद्रभक्तेषुतेकृपाम्।।८४।।
पश्यन्ती पुत्रिणांमुख्याप्रीणिताचभृशंत्वया। गर्भक्लेशःस्त्रियोमन्येसाफलंभजतेतदा।।८५।।
सुतो यदा रुद्रभक्तः सानन्दं सद्भिरीर्यते। भव तस्मात्प्रियार्थाय तिष्ठाम्यत्र षडानन।।८६।।
स्त्रीभिराराधिता दास्ये सौभाग्यं सुपतिं सुतान्।
चैत्रे चाऽपि तृतीयायां स्नात्वा शीतेन वारिणा।।८७।।
अर्चयिष्यन्तिमांयाश्चपुष्पैर्धूपैर्विलेपनैः। दास्यामिचाष्टसौभाग्यं या नारीभक्तितत्परा।।८८।।
पितरौ श्वशुरौ पुत्रान्पतिं सौभाग्यसम्पदः। कुङ्कुमं पुष्पश्रीखण्डं ताम्बूलाञ्जनभिक्षवः।।८९।।
सप्तमं लवणं प्रोक्तमष्टमं च सुजीरकम्। तोलयेत्तुलया वापि साङ्घ्रिश्च तुलिताभवेत्।।९०।।
सुवर्णेनाऽथसौगन्ध्यद्रव्यैःशुभफलैरपि। भुङ्क्ते वा लवणं पश्चान्नासौवैविधवाभवेत्।।९१।।
माघे वा कार्तिके वाऽपि चैत्रे स्नात्वाऽर्चयेत माम्।
दौर्भाग्यदुःखदारिद्र्य र्न सा संयोगमाप्नुयात्।।९२।।

देवी कहती हैं—हे पुत्र! जहां शंकर की अवस्थिति है, मैं वहां स्वभावतः रहती हूं। विशेष रूप से तुम्हारी भक्ति के कारण मैं यहां रहकर स्त्रियों को इच्छित वर प्रदान करूंगी। युद्ध में तुम्हारे असाधारण कर्म तथा रुद्रभक्त जन के प्रति तुम्हारी असामान्य करुणा को देखते हुये मैं स्वयं को पुत्रवती स्त्रियों में प्रधान मान रही हूं। तुमने मुझे विशेष प्रसन्नता प्रदान किया है। मुझे लगता है कि नारी का गर्भकष्ट उठाना तभी सफलीभूत होता है, जब वह रुद्रभक्त पुत्र आनन्द से साधु समाज में प्रशंसित होता है। हे षडानन! तुम्हारे प्रिय उद्देश्य के अनुरूप मैं यहां स्थित रहकर स्त्रियों द्वारा आराधना होने पर उनको विशिष्ट पुत्र, उत्तम पति, सौभाग्य प्रदान करूंगी। जो चैत्रमासीय तृतीया के दिन शीतल जल से स्नानोपरान्त पुष्प-धूप-अनुलेपनादि से मेरी पूजा भक्तिपूर्वक करेंगी, मैं उनके लिए पिता-

माता-श्वसुर-सास-पति-पुत्र-सौभाग्य तथा सम्पत्ति के सम्बन्ध में उत्कर्ष प्रदान करूंगी। जो रमणी कुंकुम, पुष्प, चन्दन, ताम्बूल, अंजन, ईंख, लवण, जीरा—इन आठ द्रव्यों से, किंवा स्वर्ण, सुगन्ध द्रव्य अथवा शुभफल से अपना तुलादान ब्राह्मण को करेगी तथा उसके पश्चात् नमक रहित भोजन करेगी, वह कभी विधवा नहीं होगी। जो रमणी माघ, कार्त्तिक किंवा चैत्रमास में यहां स्नानोपरान्त मेरी अर्चना करेगी, वह कभी दुर्भाग्य तथा दरिद्रता से ग्रस्त नहीं होगी।।८३-९२।।

श्रुत्वेति गिरिजावाचं सानन्दः पार्वतीसुतः। स्थापयित्वा गिरिसुतां कपर्दिरनमथाऽब्रवीत्।।९३।।
पुष्पैर्धूपैर्मोदकैश्च पूर्वमभ्यर्च्य त्वां प्रभो। पूजयन्ति कुमारेशं तेषां विघ्नहरो भव।।९४।।

कपर्द्युवाच

भ्रातस्त्वया स्थापितेऽस्मिँल्लिङ्गे भक्ताश्च ये नराः। न तेषां मम विघ्नानि मम वागनुगामिनी।।९५।।
एवमुक्ते विघ्नराज्ञाप्रतीतेऽस्थापयच्चतम्। तस्मादसौसदाभ्यर्च्यश्चतुर्थ्यां च विशेषतः।।९६।।
एवं स्थाप्य कुमारेशं लब्ध्वा चैतान्वराञ्छिवात्। मनसा कृतकृत्यं चाऽऽत्मानं मेने षडाननः।।९७।।
तस्थावंशेन तत्रैवकुमारेश्वरसन्निधौ। अत्र स्थितं कुमारं ये पश्यन्तिस्वामियात्रिणः।।९८।।
सफलास्वामियात्रा च तेषांभवतिभारत। कार्तिक्यां च विशेषेणकार्तिकेयंसमर्चयेत्।।९९।।
यत्फलं स्वामियात्रायांतत्फलं समवाप्नुयात्। एवंविधमिदंपार्थमहीसागरसंगमम्।।१००।।

स्कन्द कुमारदेव ने गिरिजा का यह वचन सुनकर सानन्द मन से वहां गिरिजा की प्रतिष्ठा करके कपर्दी गणेश से कहा—"हे भ्राता! प्रभो! जो पुष्प-धूप-जल-मोदक आदि से पहले आपकी पूजा करके तब कुमारेश्वर की अर्चना करेंगे, आप उनके विघ्न का नाश करिये।" कपर्दी गणेश ने कहा—"हे भ्राता! तुम्हारे द्वारा स्थापित इस लिंग के प्रति जो भक्तिमान हैं, मेरे आदेश पालक विघ्नगण उनका कोई अनिष्ट नहीं करेंगे।" कपर्दी गणेश का यह आश्वासन सुनकर कुमार ने उनकी भी स्थापना वहां किया। सर्वकाल में, विशेषतः चतुर्थी के दिन उनकी अर्चना अवश्य करनी चाहिये। इस प्रकार स्कन्द ने कुमारेश आदि की स्थापना करके शिव-गिरिजा-गणेश से वर पाकर स्वयं को आनन्दपूर्वक कृतकृत्य माना। वे भी अपने अंशरूप से कुमारेश्वर के पास ही अधिष्ठित हो गये। हे भारत! अपने विशेष कार्य साधनार्थ जो यहां आते हैं, वे कुमारेश्वर का दर्शन करके अभीष्ट प्राप्त करते हैं, यह प्रभु भव का आदेश है। हे भारत! कार्त्तिकी पूर्णिमा के दिन कार्त्तिकेय की विशेषतः अर्चना सम्पन्न करे। इस अर्चना के प्रभाव से मनुष्य सर्वत्र प्रभुकार्य सम्पादनार्थ समर्थ हो जाता है। हे पार्थ! महीसागरसंगम ऐसा पुण्यतीर्थ है।।९३-१००।।

निमित्तीकृत्यचात्मानंसाध्वर्थेलिङ्गमर्चितम्। रोगाभिभूतो रोगैर्वानाम्नामष्टोत्तरंशतम्।।१०१।।
जप्त्वा शुचिर्ब्रह्मचारी मासं मुच्येत पातकात्। एतदाराध्यसञ्जातारजिरामादयःपुरा।।१०२।।
शतसंख्याबलंराज्यंरुद्रलोकं च भेजिरे। जामदग्न्यस्त्विदंलिङ्गमाराध्य च समायुतम्।।१०३।।
लेभे कुठारमुज्जह्रे येनार्जुनभुजान्युधि। अग्रतो देवदेवस्य ज्ञात्वा तीर्थे महागुणान्।।१०४।।
रामेश्वरमिति ख्यातं स्थापितं लिङ्गमुत्तमम्।
तच्च योऽभ्यर्चयेद्भक्त्या रुद्रलोकं स गच्छति।।१०५।।

किसी भी उद्देश्य से कुमारेश्वर की अर्चना मंगलप्रद होती है। यदि पापरोगाक्रान्त मानव एक मास नित्य प्रतिदिन ब्रह्मचर्यपूर्वक कुमारेश्वर की अर्चना के पश्चात् उनके शतनाम का पाठ करता है, वह पाप तथा रोग से मुक्त हो जायेगा। पूर्वकाल में रजि तथा रामादि सैकड़ों राजा इस लिंग की आराधना करके बल-वाहन समृद्ध राज्यभोग करके अन्त में रुद्रलोक गये। जमदग्निपुत्र परशुराम ने १०००० वर्ष इस लिंग की आराधना करके कुठारास्त्र प्राप्त किया था। इसी कुठार से उन्होंने रणभूमि में कार्त्तवीर्य अर्जुन की सहस्त्र बाहु का उच्छेद किया था। उन्होंने शिव से इस तीर्थ का गुण तथा गरिमा जानकर यहां रामेश्वर नामक उत्तम लिंग को प्रतिष्ठित किया। जो उसकी अर्चना भक्तिभाव से करता है, उसे रुद्रलोक की प्राप्ति हो जाती है।।१०१-१०५।।

प्रीतः स्यात्तस्य रामश्च कुमारेशश्च फाल्गुन। इति संक्षेपतःप्रोक्तं कुमारेशस्यवर्णनम्।।१०६।।
कुमारेशस्य माहात्म्यं कीर्तयेद्यस्तदग्रतः। ये च शृण्वन्त्यनुदिनं रुद्रलोके वसन्ति ते।।१०७।।

अस्य लिङ्गस्यमाहात्म्यंश्राद्धकाले तु यः पठेत्।
पितृणामक्षयंश्राद्धंजायतेनाऽत्रसंशयः ।।१०८।।
अस्य लिङ्गस्य माहात्म्यं गुर्विणीं श्रावयेद्यदि।
गुणवाञ्जायते पुत्रः कन्या चाऽपि पतिव्रता।।१०९।।

एतत्पुण्यं पापहरं धर्म्यं चाह्लादकारकम्। पठतां शृण्वतां चापि सर्वाभीष्टफलप्रदम्।।११०।।

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कुमारेशस्थापनपूर्वकमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः।।३४।।

हे फाल्गुन! उसके प्रति रामेश्वर तथा कुमारेश्वर, ये दोनों प्रसन्न हो जाते हैं। मैंने संक्षेप में कुमारेश्वर का माहात्म्य वर्णित कर दिया। जो भी कुमारेश्वर के सामने उनका माहात्म्य पढ़ता है अथवा सुनता है, उसे दीर्घकाल पर्यन्त रुद्रलोक की प्राप्ति होती है। श्राद्धकाल में कुमारेश्वर लिंग माहात्म्य पाठ से पितृगण को अक्षय तृप्ति मिलती है। इसमें सन्देह नहीं है। जो गर्भिणी स्त्री को यह माहात्म्य सुनाता है, उसे गुणवान् पुत्र किंवा पतिव्रता कन्या प्राप्त होती है। कुमारेश्वर महिमा पुण्यप्रद है। पापहारी, धर्मवर्द्धक तथा आनन्दप्रदा है। इसे पाठ करने से पाठक का सभी अभीष्ट सिद्ध होता है।।१०६-११०।।

।।चतुस्त्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

रत्नम्भेश्वर माहात्म्य

नारद उवाच

कुमारेण स्थापितोऽत्र कुमारेशस्ततः सुराः। प्रणम्य गुहमूचुश्च प्रबद्धकरसम्पुटाः॥१॥
किञ्चिद्विज्ञापयिष्यामो वयंत्वां शृणुतत्त्वतः। पूर्वप्रसिद्धआचारःप्रोच्यतेजयिनामयम्॥२॥
जयन्ति ये रणे शत्रूंस्तैः कार्यः स्तम्भचिह्नकः। तस्मात्तव जयोद्द्यौतनिमित्तं स्तम्भमुत्तमम्॥३॥
निक्षिपाम वयं यावत्त्वमनुज्ञातुमर्हसि। विश्वकर्मकृतं यच्च तृतीयं लिङ्गमुत्तमम्॥४॥
तस्यस्तम्भाग्रतस्तं च संस्थापयशिवात्मज। एवमुक्ते सुरैःस्कन्दस्तथेत्याहमहामनाः॥५॥
ततो दृष्टाः सुरगणाःशक्राद्याःस्तम्भमुत्तमम्। जाम्बूनदमयं शुभ्रं रणभूमौविनिक्षिपुः॥६॥
परितः स्थण्डिलं दिक्षु सर्वरत्नमयन्तु ते। तत्र हृष्टाश्चाप्सरसो ननृतुर्दशधा शुभाः॥७॥

नारद कहते हैं—तदनन्तर देवगण ने कुमार द्वारा स्थापित कुमारेश्वर लिंग को प्रणाम करके हाथ जोड़ कर (कुमार) गुह से कहा—"हे कुमार! हम कुछ कहना चाहते हैं, श्रवण करें। पूर्व में प्रसिद्ध एक आचार है कि जो युद्ध में विजयी होता है, वह एक जयसूचक स्तम्भ प्रतिष्ठित करता है। हम आपके विजय का सूचक एक स्तम्भ स्थापित करना चाहते हैं। आप अनुमोदन करिये। हे शिवनन्दन! विश्वकर्मा ने जिन तीन लिङ्गों का निर्माण किया था, उसमें से तीसरे लिंग को स्तम्भ के ऊपर स्थापित करिये। महात्मा स्कन्द ने देवगण के इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। तब इन्द्रादि देवता ने रणभूमि में प्रसन्नतापूर्वक स्वर्णरचित उत्तम स्तम्भ शोभित किया। उसके चतुर्दिक् का स्थान मणि-मुक्ता से भूषित किया गया। तब वहां अप्सरागण ने दशविध उत्तम नृत्य भी किया।।१-७।।

मातरोमङ्गलान्यस्यजगुःस्कन्दस्यनन्दिताः। इन्द्राद्या ननृतुस्तत्रस्वयंविष्णुश्चवादकः॥८॥
पेतुः खात्पुष्पवर्षाणिदेववाद्यानिसस्वनुः। एवं स्तम्भंसमाररोप्यजयाख्यंविश्वनन्दकः॥९॥
स्तम्भेश्वरस्ततो देवः स्थापितस्त्र्यक्षसूनुना। विरिञ्चिप्रमुखैर्देवैर्जातानन्दैः समं तदा॥१०॥

वहां मातृगण भी आनन्दित होकर मंगल गायन करने लगीं। इन्द्र प्रभृति देवता हर्षातिरेक से नृत्य करने लगे। विष्णु वहां वाद्यवादन कर रहे थे। आकाश से पुष्पवर्षा होने लगी तथा देवता दुन्दुभि वादन करने लगे। त्रिलोचन नन्दन गुह ने वहां विजयस्तम्भ की स्थापना की। तदनन्तर उस पर हर-हरि-ब्रह्मा-सूर्य-इन्द्र-चन्द्र-मुनिगण आदि के साथ विश्व को आनन्द देने वाले स्तम्भेश्वर लिंग को प्रतिष्ठित किया।।८-१०।।

हरिहरादित्ययुक्तैस्तैः सेन्द्रैर्मुनिगणैरपि। तस्यैव पश्चिमे भागे शक्त्यग्रेण महात्मना॥११॥
गुहेन निर्मितः कूपो गङ्गा तत्रतलोद्भवा। माघस्य च चतुर्दश्यां कृष्णायांपितृतर्पणम्॥१२॥
कूपे स्नानं नरः कृत्वा भक्त्या यः पाण्डुनन्दन!। गयाश्राद्धेन यत्पुण्यं तत्फलं लभते स्फुटम्॥१३॥
स्तम्भेश्वरं ततो देवं गन्धपुष्पैः प्रपूजयेत्। वाजपेयफलं प्राप्य मोदते रुद्रसद्मनि॥१४॥
पौर्णमास्याममावास्यांमहीसागरसङ्गमे। श्राद्धं कृत्वा च योऽभ्यर्च्चेत्स्तम्भेश्वरमकल्मषः॥१५॥

पितरस्तस्यतृप्यन्तितृप्तायच्छन्ति चाऽऽशिषः। सभित्त्वासर्वपापानिरुद्रलोकेमहीयते॥१६॥

महात्मा स्कन्द ने स्तम्भ के पश्चिम भाग में शक्ति का प्रहार करके एक कूप रचित किया। इस कूप में पाताल से गंगा ने प्रवेश किया। हे पाण्डुनन्दन! माघ कृष्ण चतुर्दशी को यदि मानव भक्तिपूर्वक इस कूपजल से स्नान करके पितृतर्पण करें, तब गया श्राद्ध का फल होता है। इसमें सन्देह न करें। तब स्तम्भेश्वर देव की अर्चना गन्ध-पुष्पादि द्वारा करनी चाहिये। इससे पूजकगण वाजपेय यज्ञफल लाभ करते हैं। तदनन्तर उनकी स्थिति रुद्रलोक में होती है। जो मनुष्य पूर्णिमा अथवा अमावस्या के दिन महीसागर संगम में स्नानोपरान्त निष्पाप देह से श्राद्धानुष्ठान करता है तथा इससे स्तम्भेश्वर की अर्चना करता है, उसके पितृगण परम तृप्त होकर उसे नाना आशीर्वाद प्रदान करते हैं। वह व्यक्ति सभी पापों से रहित होकर रुद्रलोक में ससम्मान निवास करता है।।११-१६।।

इत्याह भगवान्रुद्रः स्कन्दस्य प्रीतये पुरा। एवमेव चतुर्थं च स्थापितं लिङ्गमुत्तमम्॥१७॥

प्रणेमुर्देवताः सर्वे साधुसाध्विति ते जगुः॥१८॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे स्तम्भेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥३५॥

पूजाकाल में स्कन्ददेव की प्रसन्नता हेतु भगवान् रुद्र ने यह कहा था। इस प्रकार वहां यह चौथा लिङ्ग स्थापित हुआ। तब सभी देवता इस उत्तम लिंग के समक्ष प्रणत होकर साधुवाद देने लगे।।१७-१८।।

॥पञ्चस्त्रिंश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

षट्त्रिंशोऽध्यायः

सिद्धेश्वर लिंग स्थापना, माहात्म्य

नारद उवाच

एवं दृष्ट्वा क्षितौ तानिलिङ्गानि हरसूनुना। हरिब्रह्मेन्द्रप्रमुखा देवाः प्रोचुः परस्परम्॥१॥
अहो धन्यः कुमारोऽयं महीसागरसङ्गमे। येन चत्वारिलिङ्गानिस्थापितानिसुदुर्लभे॥२॥
वयमप्यत्र शुद्ध्यर्थंतोषार्थंस्कन्दरुद्रयोः। साध्वर्थेचात्मलाभायकुर्मोलिङ्गपरम्पराम्॥३॥
अथवा कोटिशोदेवा मुनयो नैवसंख्यया। सर्वे चेत्स्थापयिष्यन्तिलिङ्गान्यत्रमहीतटे॥४॥
पूजा तेषां कथं भावि बहुत्वाच्चाऽत्र पठ्यते। यस्य राष्ट्रे रुद्रलिङ्गं पूज्यते नैवशक्तितः॥५॥
तस्यसीदतितद्राष्ट्रंदुर्भिक्षव्याधितस्करैः। सम्भूयस्थापयिष्यामोलिङ्गमेकंततःशुभम्॥६॥

नारद कहते हैं—हरनन्दन स्कन्द द्वारा प्रतिष्ठित लिंगों का अवलोकन करके ब्रह्मा तथा इन्द्रादि देवता

कहने लगे कि अहो! जिन्होंने दुर्लभ महीसागर संगम पर ४ लिंगों की प्रतिष्ठा किया है, वे कुमार स्कन्द धन्य हैं। हम सब भी आत्मशुद्धि, श्रेय प्राप्ति तथा कुमार एवं रुद्र के सन्तोषार्थ यहां लिंग प्रतिष्ठा करें। अथवा हम अनेक कोटि देवता तथा मुनिगण एक-एक लिंग स्थापित करें, तब उनकी पूजा कौन करेगा? कैसे उनकी पूजा का निर्वाह होगा? यह शास्त्रों में पढ़ा गया है कि जिस राज्य में प्रतिष्ठित शिवलिंग की यथाशक्ति पूजा नहीं होती, अकाल, व्याधि तथा तस्करों के प्रकोप से वह राज्य अवसन्न हो जाता है। अतः हम सब मिलकर एक उत्तम लिंग स्थापित करें।।१-६।।

इति कृत्वा मतिं सर्वेप्राप्यानुज्ञां महेश्वरात्। प्रहर्षिता गुहश्चैव हरिब्रह्ममुखाः सुराः॥७॥
भूमिभागं शुभं वीक्ष्य विजने लिङ्गमुत्तमम्। स्थापयामासुरथ ते स्वयं ब्रह्मविनिर्मितम्॥८॥
सिद्धार्थैःस्थापितं यस्माद्देवैर्ब्रह्मादिभिःस्वयम्। सिद्धेश्वरमितिप्राहनामलिङ्गस्यवैगुहः॥९॥
सर्वैर्देवैस्तत्र लिङ्गे खानितं सर उत्तमम्। सर्वतीर्थोदकैः शुभ्रैः पूरितं च महात्मभिः॥१०॥

इस प्रकार से ब्रह्मा-विष्णु आदि प्रमुख देवगण ने तय करके महेश्वर की अनुमति लिया। तब उन्होंने कुमार के साथ एक मनोरम विजन स्थान तय करके एक अत्युत्तम लिंग की वहां स्थापना किया। इस लिंग को स्वयं ब्रह्मा ने निर्मित किया था। सफल मनोरथ (सिद्ध) होकर देवगण ने इस मनोहर लिंग को स्थापित किया था। अतएव कुमार ने इसका नामकरण किया सिद्धेश्वर। वहां महात्मा देवताओं ने एक उत्तम सरोवर खोदा तथा उसे सरस्वती तीर्थ जल से भर दिया।।७-१०।।

एतस्मिन्नन्तरे पार्थ पातालाच्छेषनन्दनः। कुमुदोनाम आगत्य प्राह शेषाहिपन्नगान्॥११॥
अस्मिंस्तारकयुद्धे तु प्रलम्बो नाम दानवः। पलायित्वा स्कन्दभीत्या पापः पातालमाविशत्॥१२॥
स वो वसूनि पुत्ररांश्च भार्याः कन्या गृहाणि च। विध्वंसयति नागेन्द्राः शीघ्रं धावत धावत॥१३॥
शेषात्मजस्य तद्वाक्यं कुमदस्य निशम्यते। औत्सुक्यमापुर्नागेन्द्रायामयामेतिवादिनः॥१४॥
तान्निवार्यततःस्कन्दःक्रुद्धःशक्तिमथाददे। पातालायमुमोचाथप्रोच्यदैत्योनिहन्यताम्॥१५॥
ततः स्कन्दभुजोत्सृष्टा भुवं निर्भिद्य वेगतः। प्रविष्टा सहसा शक्तिर्यथा दैवं नरं प्रति॥१६॥
सा तं हत्वा प्रलम्बंचकोटिभिर्दशभिर्वृतम्। नन्दयित्वागता नागाञ्जलकल्लोलपूर्विका॥१७॥
यान्त्या शक्त्या तया पार्थ तत्कृतं विवरं भुवि। पातालगङ्गातोयेन पूरितंपापहारिणा॥१८॥
तस्य नामददौस्कन्दः सिद्धकूपइतिस्मृतः। कृष्णाष्टम्यांचतुर्दश्यामुपवासीनरःस्वयम्॥१९॥
स्नात्वा कूपेऽर्चयेदीशं सिद्धेश्वरमनन्यधीः। प्रभूतभवसम्भूतपापं तस्य विलीयते॥२०॥

हे पार्थ! उसी समय वासुकि नाग के पुत्र कुमुद नाग ने आकर शेष आदि प्रमुख सर्पों से कहा कि प्रलम्ब नामक पापी दानव स्कन्द के भय से पाताल चला गया था। हे नागेन्द्रगण! उस दानव ने हमारा धन-भार्या-पुत्र-कन्या-गृह सब कुछ ध्वस्त कर दिया। अतः आप शीघ्र चलें। वासुकिनन्दन कुमुद का यह वाक्य सुनकर नागेन्द्रगण तुरन्त जाने के लिए उद्यत हो गये, तब स्कन्द ने उनको रोक कर क्रोधित होकर शक्ति उठाया। उन्होंने संकल्प किया—"प्रलम्ब दानव मृत हो जाये" और शक्ति को पाताल की ओर छोड़ा। जैसे दैव मनुष्य की ओर धावित होता है, उसी प्रकार से स्कन्ददेव की भुजा से छोड़ी गई वह शक्ति पृथिवी भेदन करती पाताल गयी तथा

१० कोटि सैन्ययुक्त प्रलम्ब दानव का वध करके नागेन्द्रगण का आनन्दविधान करते जलकल्लोल के साथ पुनः स्कन्ददेव के हाथों में आ गई। हे पार्थ! इस शक्ति ने धरती में जो छिद्र किया था, उसे पाताल गंगा जल ने पूर्णतः पूरित कर दिया। स्कन्ददेव ने इस छिद्र का नाम रखा सिन्धुकूप। जो मनुष्य कृष्णपक्ष की चतुर्दशी अथवा अष्टमी को उपवासी रहता हुआ उक्त कूप में स्नान के उपरान्त अनन्यचित्तता पूर्वक सिद्धेश्वर लिंग की अर्चना करता है, उसके सभी संसार तापों का निवारण हो जाता है।।११-२०।।

सिद्धकुण्डे च यः स्नात्वा श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः।
सर्वकल्मषनिर्मुक्तो भक्तियोग्यो भवे भवे॥२१॥
वटश्चाऽप्यक्षयस्तस्य तुष्टो रुद्रो वरं ददौ। प्रयागवटतुल्योऽयमेतत्सत्यं न संशयः॥२२॥
अत्राऽऽगत्यमहाभागः श्राद्धंकुर्यात्सुभक्तितः। पितॄणामक्षयं तच्चसर्वेषांपिण्डपातनम्॥२३॥
ततोब्रह्मादयोदेवाःस्कन्देनसहितास्तदा। सिद्धाम्बिकांमहाशक्तिंप्रार्थयामासुरीश्वरीम्॥२४॥
त्वयाविष्टो हि भगवान्मत्स्यरूपी जनार्दनः। जगदुद्धारणार्थाय चक्रे कमाण्यनेकशः॥२५॥
इति तां प्रार्थयामासुरत्रत्याज्यं न ते शुभे! अत्र स्थिताः सर्वइमेक्षेत्रपालामहाबलाः॥२६॥
अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां बलिपुष्पैश्चत्वांशुभे!। ये पूजयन्तितेपाल्याःसर्वापत्सुचयासदा॥२७॥
एवमुक्ता सिद्धमाता तथेति प्रत्यपद्यत। स्थापयामासुरथ तां लिङ्गादुत्तरभागतः॥२८॥
ततः क्षेत्रपतीन्देवाश्चतुः षष्टिं महेश्वरम्। सिद्धेयं नामक्षेत्रस्य रक्षार्थं निदधुः स्वयम्॥२९॥
त्वां च ये पूजयिष्यन्ति कार्यारम्भेषु सर्वदा। वर्षेवर्षे राजमाषबलिना च विशेषतः॥३०॥

जो विद्वान् व्यक्ति सिन्धुकूप में स्नानोपरान्त श्राद्ध कृत्य करता है, वह सर्वपापरहित होकर महेश्वर का परम भक्त हो जाता है। वहां के वटवृक्ष को भी महादेव ने प्रसन्न होकर वर दिया है कि यह वटवृक्ष भी प्रयाग के वटवृक्ष जैसा अक्षय होगा। इसमें सन्देह नहीं है। जो महाभाग मानव यहां पर भक्ति के साथ श्राद्ध करेगा, उसके प्रदत्त पिण्ड से पितृगण को अक्षय तृप्ति होगी। तत्पश्चात् ब्रह्मादि देवता ने कुमार के साथ महाशक्ति ईश्वरी सिद्धाम्बिका से प्रार्थना किया—"हे शुभे! जनार्दन ने आपके आदेश से जगत् के उद्धार के लिए मत्स्यादि नाना रूप धारण किया था। आप यह स्थान कदापि त्याग न करें। यहां समस्त महाबली क्षेत्रपाल सतत् अवस्थित रहेंगे। हे शुभे! "जो अष्टमी, चतुर्दशी को बलि-पुष्पादि से आपका पूजन करेंगे। आप उनकी सतत् रक्षा करेंगी।" यह सुनकर सिद्धाम्बिका ने तथास्तु कहकर इस बात का अनुमोदन किया। तदनन्तर देवगण ने उनको लिंग के उत्तर में स्थापित किया। तब देवताओं ने सिद्धेय नामक शिवप्रतिष्ठा भी सम्पन्न किया। हे अर्जुन! जो उनकी प्रतिवर्ष पूजा करता है, वे शिव उन पूजकों का वैसे ही प्रतिपालन करते हैं, जैसे पिता-पुत्र का पालन करता है।।२१-३०।।

तानसौ पालयेत्तुष्टः पितालोकानिवस्वकान्। ततःसिद्धकृतोदेवास्तत्रसिद्धिविनायकम्॥३१॥
कपर्दितनयं प्रार्थ्यस्थापयाञ्चक्रिरे मुदा। तं च ये पूजयन्त्यत्र कार्यारम्भेषु सर्वदा॥३२॥
तेषां सिद्धिं ददात्येष प्रबलो विघ्नराड्भवः। यद्यत्र पूजयेद्यस्तु सततं सिद्धसप्तकम्॥३३॥
पश्येद्वा स्मरते वाऽपि सर्वदोषैर्विमुच्यते॥३४॥

सिद्धेश्वरः सिद्धवटश्च साक्षात्सिद्धाम्बिका सिद्धाविनायकश्च।
सिद्धेयक्षेत्राधिपतिश्च सिद्धसरस्तथा सिद्धकूपश्च सप्त॥३५॥
अत्र तुष्टो ददौरुद्रः सुराणांदुर्लभान्वरान्। वैशाखमासस्याष्टम्यां कृष्णायांसिद्धकूपके।
स्नात्वापिण्डान्वटे कृत्वा पूजयन्मां च सिद्धभाक्॥३६॥
सदा योऽभ्यर्चयेन्मां च ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः॥३७॥
अष्टाविष्टकरा नित्यं भवेयुस्तस्य सिद्धयः। मन्त्रजाप्यं बलिं होममत्र यः कुरुते नरः।
एकचित्तः शुचिर्भूत्वा सोऽभीष्टां सिद्धिमाप्नुयात्॥३८॥

तत्पश्चात् देवगण ने अभीष्ट कार्य की निर्विघ्न सिद्धि हेतु शिवनन्दन गणेश की भी प्रार्थना करके उनकी प्रतिष्ठा सिद्धिविनायक नाम से किया। जो व्यक्ति कार्यारम्भ में उनकी पूजा करते हैं, प्रबल विघ्नों के नाशक विनायक उनको सिद्धि प्रदान करते हैं। यहां सिद्धेश्वर, सिद्धवट, सिद्धाम्बिका, सिद्धिविनायक, क्षेत्रपति सिद्धेय तथा सिद्धसरोवर एवं सिद्धकूप—इन सात की अर्चना, स्मरण तथा दर्शन करने से मनुष्य सर्वदोष रहित हो जाता है। रुद्रदेव ने सन्तुष्ट होकर यह वरदान दिया कि जो वैशाख मास में कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि के दिन सिन्धुकूप में स्नान करके सिद्धवट मूल में पिण्डप्रदान करके सिद्धेश्वर का पूजन करेगा, वह सिद्धि भाजन (सिद्धि का अधिकारी) होगा। जितेन्द्रिय तथा ब्रह्मचारी होकर जो सदैव मेरी पूजा करता है, अष्टसिद्धि सदा उसके इष्ट का साधन करती हैं। जो वहां मन्त्र, जाप, बलि तथा होम करता है तथा एकाग्र एवं पवित्र रहता है, उसे सिद्धि मिलती है।।३१-३८।।

समाहितमनाश्चाऽथ सिद्धेशं यस्तु पश्यति॥३९॥
तस्य सिद्धिर्भवत्येवविघ्नैर्यदि नहन्यते। सिद्धाम्बिकामहादेवीह्यत्रसंनिहिताऽस्तिया॥४०॥
सिद्धिदासाधकेन्द्राणांमहाविद्यांजपन्ति ये। धीरेभ्योब्रह्मचारिभ्यःसत्यचित्तेभ्यएवच॥४१॥
मन्त्रजाप्याद्ददात्येषासर्वंसिद्धीर्यथेप्सिताः। पातालस्य बिलंचैतद्गुहशक्त्याकृतमहत्॥४२॥
सिद्धाम्बिकाप्रसादेन विघ्नक्षेत्रपयोर्मम। प्रत्यक्षं भविता यत्र नानाश्चर्याणि भूरिशः॥४३॥
अत्रसिद्धिं प्रयास्यन्ति कोटिशःपुरुषाःसुराः। विद्याधरत्वंदेवत्वंगन्धर्वत्वंचनागता॥४४॥
यक्षत्वंचामरत्वंचप्राप्स्यन्त्यत्रचसाधकाः। अत्र वै विजयोनामस्थण्डिलस्यप्रभावतः॥४५॥
सिद्धाम्बिकां समाराध्य सिद्धिमाप्स्यति दुर्लभाम्।
यो मां द्रक्ष्यति चाऽत्रस्थं यच्च मां पूजयिष्यति।
वादप्रचारतो वाऽपि पुण्यावाप्तिर्भविष्यति॥४६॥

जो व्यक्ति समाहित होकर सिद्धेश्वर का दर्शन करता है, उसे अवश्य सिद्धि प्राप्त होती है, यदि वह विघ्न से अभिभूत न हो! यहां सिद्धाम्बिका देवी सदा सन्निहित रहती हैं। उनके सामने बैठकर जो कोई महाविद्या का जाप करते हैं, वे उन श्रेष्ठ साधकगण को अभिमत सिद्धिदान करती हैं। वे धीर-ब्रह्मचारी, सत्य में आसक्त मानव को मन्त्रजप द्वारा वांछित सिद्धि प्रदान करती हैं। शंकर ने कहा है कि "हे देवगण! कुमार के शक्ति प्रहार से जो पाताल तक का गहरा गड्ढा हुआ है, वहां विविधाकार अनेक आश्चर्य प्रत्यक्ष होता है। यहां सिद्धविद्या, विघ्नपति, क्षेत्रपति

तथा मुझ सिद्धेश्वर की कृपा से कोटि-कोटि पुरुषों को सिद्धि मिलेगी। यहां साधक विद्याधरत्व, देवत्व, गंधर्वत्व, नागत्व, यक्षत्व तथा अमरत्व प्राप्त करेंगे। यहां विजय नामक साधक सिद्धाम्बिका की आराधना द्वारा दुर्लभ सिद्धि प्राप्त करेगा। यहां आकर यदि कोई मेरा दर्शन करेगा, अथवा पूजन करेगा अथवा मेरे सम्बन्ध में चर्चा करेगा, उससे वह व्यक्ति पुण्यभाजन होगा''।।३९-४६।।

नारद उवाच

त्र्यम्बकेण वरेष्वेवं दत्तेष्वपि सुरोत्तमाः॥४७॥
प्रहृष्टाः समपद्यन्त गाथां चेमां जगुस्तदा। तेनयज्ञैर्जपैःस्तोत्रैस्तपोभिस्तोषितावयम्॥४८॥
सर्वेदेवाः सिद्धलिङ्गं यो नरः पूजयिष्यति। सर्वकामफलावाप्तिरित्येवंशङ्करोऽब्रवीत्॥४९॥

नारद कहते हैं—त्रिलोचन द्वारा यह वर दिये जाने पर सभी देवता अत्यन्त प्रसन्न हो गये तथा उन्होंने इस गाथा का गान किया कि जो मानव इस सिद्ध लिंग की पूजा करेगा, उसके द्वारा की गई पूजा, यज्ञ, जप, स्तुति तथा तपस्या की तरह सम्बोधित की जायेगी तथा मानी जायेगी। इस लिंग की अर्चना द्वारा सभी अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है।।४७-४९।।

इत्युक्त्वातेजयंप्राप्ताःस्कन्देनसहिताःसुराः। काराख्यरम्यप्रासादाव्रम्यैस्तारकसम्भवैः॥५०॥
चतुर्वर्गफलावाप्तिं दत्त्वा क्षेत्रस्य संययुः। केचित्स्कन्दं प्रशंसन्तस्तीर्थमन्ये हरिं परे॥५१॥
केचिल्लिङ्गानिपञ्चाऽपियुद्धंकेचिद्दिवंययुः। ततोऽन्तरिक्षेचालिङ्ग्यमहासेनंहरोऽब्रवीत्॥५२॥
सप्तमे मारुतस्कन्धे वस नित्यं प्रियात्मज। कार्येष्वहं त्वयापुत्रसम्प्रष्टव्यः सदैव हि॥५३॥
दर्शनान्ममभक्त्याचश्रेयःपरमवाप्स्यसि। स्तम्भतीर्थेचवत्स्येऽहंनविमोक्ष्यामिकर्हिचित्॥५४॥
इत्युक्त्वा विससर्जैनं परिष्वज्य महेश्वरः। ब्रह्मविष्णुमुखांश्चैव भक्त्यातैरभिनन्दितः॥५५॥
विसर्जिताःसुराजग्मुःस्वानिस्वान्यालयानि च। शर्वोजगामकैलासंस्कन्धंवैसप्तमंगुहः॥५६॥
इत्येत्कथितं पार्थ लिङ्गपञ्चकसम्भवाम्। यः पठेत्स्कन्दसम्बद्धां कथां मर्त्यो महामतिः॥५७॥
शृणुयाच्छ्रावयेद्वाऽपिसभवेत्कीर्तिमान्नरः। बह्वायुःसुभगःश्रीमान्कान्तिमाञ्छुभदर्शनः॥५८॥
भूतेभ्यो निर्भयश्चाऽपि सर्वदुःखविवर्जितः। शुचिर्भूत्वा पुमान्यश्च कुमारेश्वरसन्निधौ॥५९॥
शृणुयात्स्कन्दचरितंमहाधनपतिर्भवेत्। बालानां व्यादिदुष्टानांराजद्वारोपसेविनाम्॥६०॥
इदं तत्परमं धन्यं सर्वदोषहरं सदा। तनुक्षये च सायुज्यं षण्मुखस्य व्रजेन्नरः।
वरमेनं ददुर्देवाः स्कन्दस्याऽथ गता दिवम्॥६१॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे पञ्चलिङ्गोपाख्यानसमाप्तिवर्णनंनाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥३६॥

विजयी देवताओं ने यह कहकर स्कन्द के साथ वहां तारकासुर द्वारा एकत्रित विविध रम्य द्रव्यों का संचय

करके सुरम्य-रमणीक अनेक प्रासादों का निर्माण कराया। तदनन्तर देवगण ने उस क्षेत्र को वर दिया कि यह अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष रूपी चतुर्वर्ग फल प्रदान करेगा। तत्पश्चात् वे वहां से चले गये। उनमें से कोई-कोई स्कन्द की, कोई उस तीर्थ की, कोई पांचों लिंग की, कोई युद्ध की, तो कोई विष्णु की प्रशंसा करते-करते स्वर्ग चले गये। तदनन्तर शंकर ने अन्तरिक्ष पथ पर जाते-जाते प्रिय पुत्र कुमार का आलिंगन करके कहा—"हे पुत्र! तुम सप्तम वायुस्कन्ध में नित्य निवास करो। कार्य के सम्बन्ध में तुम सदैव मुझसे ज्ञातव्य विषय जानते रहना। तुम मेरे दर्शन तथा भक्ति के कारण परम मंगल लाभ करोगे। मैं सदा स्तम्भ तीर्थ में निवास करूंगा। कभी उसका त्याग नहीं करूंगा।" शम्भुदेव ने यह कहकर गुह का आलिंगन करके विदा लिया। तदनन्तर भगवान् शिव ने प्रजापति विष्णु प्रभृति प्रमुख देवगण का अनुराग पूर्वक अभिनन्दन करके सबको विदा दिया तथा स्वयं कैलास गये। देवता भी अपने-अपने स्थानों में तथा स्कन्द भी सप्तम वायु स्कन्ध में चले गये। हे पार्थ! मैंने तुमसे इस प्रकार पञ्चलिंग का वर्णन कर दिया। जो मनुष्य स्कन्द की इस पुण्य कथा का श्रवण, पाठ करता है अथवा अन्य को सुनाता है, वह महामति कीर्त्तिवान्, कान्तिमान्, रूपवान् तथा शुभदर्शन होता है। उसे भूतगण का कोई भय नहीं रहता। वह कोई दुःख नहीं भोगता। जो कुमारेश्वर लिंग के पास पवित्र होकर स्कन्दचरित श्रवण करता है, वह अतीव धनी होगा। इसके पाठ से रोग से आर्त्त बालक तथा राजद्वाराभियुक्त जनगण परम शान्ति लाभ करते हैं। इसकी कृपा से मानव धन्य हो जाता है। उसे मरणोपरान्त स्कन्द सायुज्य मिलेगा। देवगण ने स्कन्द को यह वर देकर स्वर्ग गमन किया।।५०-६१।।

।।षट्त्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

बर्बरीक तीर्थ, सप्तद्वीप वर्णन, द्वीपाधिपति वर्णन

श्रीनारद उवाच

बर्बरीतीर्थमाहात्म्यमथो वक्ष्यामितेऽर्जुन!। यथा बर्बरिका जाताशतशृङ्गानृपात्मजा।।१।।
कुमारिकेति विख्याता तस्या नाम्नाप्रकथ्यते। इदं कौमारिकाखण्डं चतुर्वर्गफलप्रदम्।।२।।
यया कृता पृथिव्यांच नानाग्रामादिकल्पना। इदं भरतखण्डं चययासम्यक्प्रकल्पितम्।।३।।

नारद कहते हैं—हे अर्जुन! अब मैं बर्बरीक तीर्थ की महिमा का वर्णन करता हूं। यह नृपकन्या बर्बरिका शतशृङ्गा नाम से विख्यात थीं। इसी नाम से उन्होंने भूखण्ड कुमारिका खण्ड में ख्याति पाई। यह कौमारिका खण्ड चतुर्वर्ग फलदायक है। उन्होंने पृथिवी पर नाना पुरग्रामादि की कल्पना की थी। यह भरतखण्ड भी उनके द्वारा कल्पित है।।१-३।।

धनञ्जय उवाच

महदेतन्ममाश्चर्यं श्रोतव्यं परमं मुने!। कुमारचरितं सर्वं बूहि मह्यं सविस्तरम्।।४।।

कथं विश्वमिदं जातं कर्मजातिप्रकल्पितम्। कथं वा भारतं खण्डं शुश्रूषेय सदाऽमम॥५॥

अर्जुन कहते हैं—हे मुनिवर! यह आश्चर्य उपाख्यान मैं सुनना ही चाहता हूं। आप मुझसे समग्र कुमारी चरित कहिये। इस जगत् की सृष्टि कैसे हो गई, कैसे यह भरतखण्ड कहलाया? इस भूतल पर जाति-कर्मादि की कैसे कल्पना की गई? यह सब श्रवण करने की अतीव अभिलाषा है।।४-५।।

नारद उवाच

अव्यक्तेऽस्मिन्निरालोके प्रधानपुरुषावुभौ। अजौसमागतावेकौ केवलंशृणुमो वयम्॥६॥
ततः स्वभावकालाभ्यां स्वरूपाभ्यां समीरितम्। ईक्षणेनैव प्रकृतेर्महत्तत्त्वमजायत॥७॥
महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणादहन्तत्त्वं व्यजायत। त्रिधा तन्मुनिभिःप्रोक्तंसत्त्वराजसतामसम्॥८॥
तामसात्पञ्चजातानि तन्मात्राणिविदुर्बुधाः। तन्मात्रेभ्यस्चभूतानिविशेषाःपञ्चतद्भवाः॥९॥
सात्त्विकाच्चाप्यहङ्काराद्विद्धिकर्मेन्द्रियाणि च। एकादशंमनश्चैव राजसंच द्वयोर्विदुः॥१०॥
चतुर्शितितत्त्वानि जातानीति पुरा विदुः। सदाशिवेन वै पुंसा तानि दृष्टानि भारत॥११॥

नारद कहते हैं—मैंने सुना है कि पूर्वकाल में सब कुछ अव्यक्त तथा अन्धकारमय था। केवल स्वभाव कालरूप एकात्मक प्रकृतिपुरुष विद्यमान थे। तब प्रकृति की दृष्टि के कारण महत्तत्व उत्पन्न हुआ। महत्तत्व विकार प्राप्त होने पर सात्त्विक, राजस तथा तामसरूप त्रिविध अहंकार का जन्म हुआ। मुनिगण यही कहते हैं। तामस अहंकार से पञ्चतन्मात्र तथा पञ्चतन्मात्र से पंचविशेष भूतों का आविर्भाव हो गया। सुधीगण को यह ज्ञात है। सात्विक अहंकार से पञ्चज्ञानेन्द्रिय तथा राजस अहंकार से पञ्चकर्मेन्द्रिय उत्पन्न हो गयीं। मन की उत्पत्ति सात्त्विक-राजस रूप उभय अहंकार के सम्मिलन से हुई है। हे भरत! एकमात्र सदाशिव ने ही २४ तत्त्वों की उत्पत्ति को देखा है।।६-११।।

बुद्बुदाकारतां जग्मुरण्डं जातं ततः शुभम्। शतकोटिप्रमाणं च ब्रह्माण्डमिदमुच्यते॥१२॥
आत्माऽस्य कथितो ब्रह्मा व्यभजत्स त्रिधा त्विदम्।
ऊर्ध्वं तत्र स्थिता देवा मध्ये चैव च मानवाः॥१३॥
नागादैत्याश्च पाताले त्रिधैतत्परिकल्पितम्। एकैकं सप्तधाभूयततस्तेनप्रकल्पितम्॥१४॥
पातालानिचद्वीपानिस्वर्लोकाःसप्तसप्तच ।
सप्त द्वीपानि वक्ष्यामिशृणुतेषांप्रकल्पनाम्॥१५॥
लक्षयोजनविस्तारं जम्बूद्वीपं प्रकीर्त्यते। सूर्यबिम्बसमाकारं तावत्क्षारार्णवावृतम्॥१६॥
शाकद्वीपं द्विगुणतो जम्बूद्वीपात्ततः परम्। तावता क्षीरतोयेन समुद्रेण परीवृतम्॥१७॥
सुरातोयेन दैत्यानां मोहकायरर्णवेन हि। पुष्करं तु ततो द्वीपं द्विवगुणंतावता वृतम्॥१८॥
कुशद्वीपंद्विगुणतस्ततस्तत्परतः स्मृतम्। दधितोयेन परितस्तावदर्णवसम्वृतम्॥१९॥
ततः परं क्रौञ्चसञ्ज्ञंद्विगुणं हि घृताब्धिना। ततः शाल्मलिद्वीपं च द्विगुणंतावतैव च॥२०॥
इक्षुसारस्वरूपेण समुद्रेण परीवृतम्। गोमेदं तस्य परितो द्विगुणं तावता वृतम्॥२१॥

पहले वे बुद्बुदाकृति होकर तब अण्डाकृति होते हैं। उनका परिमाण १०० कोटि योजन होता है। वही ब्रह्माण्ड कहा गया है। उसकी आत्मा है ब्रह्मा। (शिव) वे उन ब्रह्मा को भागत्रय में बांट देते हैं। इसका ऊर्ध्वभाग है देवता निवास। मध्यभाग है मानव निवास तथा निम्न भाग है नाग तथा दैत्यों का निवास। इन तीनों भाग में पुनः प्रत्येक भाग में ७-७ भाग की कल्पना की गई। यथा सप्तपाताल, सप्तद्वीप तथा सप्त स्वर्ग। अब सप्तद्वीप का वर्णन सुनो। जम्बूद्वीप एक लाख योजन विस्तीर्ण है। यह सूर्यमण्डलवत् तथा क्षारसमुद्रों से घिरा है। तब है शाक द्वीप। यह २ लाख योजन विस्तीर्ण है। यह क्षीरसागर से घिरा है। यह क्षीरसागर क्षारसमुद्र से दूना है। तब पुष्कर द्वीप है जो शाकद्वीप से दूना है। यह सुरा समुद्र से घिरा है। यह सुरा सागर क्षार सागर से दूना है। इस सुराजल में दैत्यों का मोह उत्पन्न होता है। तब है कुश द्वीप, जो पुष्कर द्वीप से दूना है। यह सुरा सागर से दूने विस्तार वाले दधि समुद्र से घिरा है। तब है क्रौञ्चद्वीप, जो विस्तार में कुश द्वीप से द्विगुण है तथा दधिसागर से दूने विस्तार वाले घृत सागर से घिरा है। तदनन्तर है शाल्मलि द्वीप, जो क्रौञ्चद्वीप से दूने विस्तार वाला है तथा घृत सागर से दूने ईख के रस के सागर से घिरा है। तदनन्तर है गोमेद द्वीप। यह स्वादिष्ट जल वाले सागर से घिरा है। यह सागर अतीव मनोरम है तथा ईख के रस वाले सागर से दूने विस्तार वाला है।।१२-२१।।

स्वादुतोयेन रम्येण समुद्रेण समन्ततः। एवं कोटिद्वयं पार्थ लक्षपञ्चाशतत्रयम्॥२२॥
पञ्चाशच्च सहस्राणि सप्तद्वीपाः ससागराः। दशोत्तराणि पञ्चैवअङ्गुलानां शतानि च॥२३॥
अपांवृद्धिक्षयो दृष्टः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः। ततो हेममयी भूमिर्दशकोट्यःकुरूद्वह!॥२४॥
देवानां क्रीडनस्थानं लोकालोकस्ततः परम्। पर्वतो वलयाकारोयोजनायुतविस्तृतः॥२५॥
अस्य बाह्ये तमो घोरं दुष्प्रेक्ष्यं जीववर्जितम्। पञ्चत्रिंशत्स्मृताः कोट्यो लक्षाण्येकोनविंशतिः॥२६॥
चत्वारिंशत्सहस्राणि योजनानां च फाल्गुन। सप्तसागरमानस्तु गर्भोदस्तदनन्तरम्॥२७॥
कोटियोजनविस्तारः कटाहः सम्व्यवस्थितः। ब्रह्मणोऽण्डं कटाहेनसंयुक्तंमेरुमध्यतः॥२८॥
पञ्चाशत्कोटयो ज्ञेया दशदिक्षु समन्ततः। जम्बूद्वीपस्य मध्ये तु मेरुनामाऽस्तिपर्वतः॥२९॥
स लक्षयोजनो ज्ञेयोह्यधश्चोर्ध्वं प्रमाणतः। षोडशैव सहस्राणि योजनानामधःस्थितः॥३०॥
उच्छ्रयश्चतुराशीतिर्द्वात्रिंशन्मूर्ध्निविस्तृतः। त्रिभिःशृङ्गैःसमायुक्तःशरावाकृतिमस्तकः॥३१॥
मध्यशृङ्गेब्रह्मवास ऐशान्यां त्र्यम्बकस्य च। नैर्ऋत्ये वासुदेवस्य हेमशृङ्गं च ब्रह्मणः॥३२॥
रत्नजं शङ्करस्याऽपि राजतं केशवस्य च। मेरुदिक्षु चतसृषु विष्कम्भा गिरयः स्मृताः॥३३॥

हे पार्थ! सप्तद्वीपा ससागरा पृथिवी का समष्टि परिमाण २ करोड़, पचास लाख, पचास सहस्र योजन है। शुक्ल तथा कृष्णपक्ष में सागर जल में १५ अंगुल ह्रास-वृद्धि होती है। हे कुरुश्रेष्ठ! उस गोमेद द्वीप वाले स्वादिष्ट जल वाले सागर के आगे (पार) हिरण्मयी भूमि है। यह १० कोटि योजन है, जो देवताओं की क्रीड़ा-स्थली है। उसके अनन्तर लोकालोक पर्वत है, जो वलयाकार तथा १० हजार योजन विस्तार वाला है। तदनन्तर अति घोर दुर्द्धर्ष अन्धकार है। यहां कोई प्राणी नहीं है। हे अर्जुन! सातों सागरों का परिमाण ३५ कोटि १९ लाख चालीस हजार योजन है। इसके अनन्तर गर्भोद सागर है। वह दसों दिशाओं में ५० कोटि योजन विस्तार

वाला है। समग्र ब्रह्माण्ड कटाह कोटि योजनात्मक है। इस ब्रह्माण्ड के मध्यभागस्थ जम्बूद्वीप के मध्य में मेरुपर्वत स्थित है। उसका ऊर्ध्व-अधः परिमाण एक लाख योजन है। उसका ऊर्ध्वभाग ८४ योजन तथा अधः भाग १६ योजन है। उसका शिरोभाग ३२ योजन है। इसके शिर पर तीन शृङ्गयुक्त शराबाकृति (मिट्टी के कसोरे जैसी) हैं। उसके स्वर्णमय मध्य शृङ्ग पर ब्रह्मा, ईशान कोणीय रत्न शृङ्ग पर शंकर का तथा रजत शृङ्ग पर विष्णु का वास है। मेरु के चतुर्दिक् ४ विष्कम्भ पर्वत हैं। (विष्कम्भ = अवरोध रूप, जो उसे चतुर्दिक् घेरकर अवरुद्ध किये हुये हैं।।२२-३३।।

पूर्वेण मन्दरोनाम दक्षिणे गन्धमादनः। विपुलः पश्चिमो ज्ञेयः सुपार्श्वस्तु तथोत्तरे॥३४॥
कदम्बो मन्दरे ज्ञेयो जम्बुर्वै गन्धमादने। अश्वत्थो विपुले चैव सुपार्श्वे च वटो मतः॥३५॥
एकादशशतायामाश्चत्वारो गिरिकेतवः। एतेषां सन्ति चत्वारि वनानि जयमूर्धसु॥३६॥
पूर्वं चैत्ररथं नाम दक्षिणे गन्धमादनम्। वैभ्राजं पश्चिमे ज्ञेयमुदक्चित्ररथं वनम्॥३७॥
सरांसिचापि चत्वारिचतुर्दिक्षु निबोधमे। प्राच्येऽरुणोदसञ्ज्ञन्तु मानसंदक्षिणेसरः॥३८॥
प्रत्यक्छीतोदकंनाम उत्तरे च महाह्रदः। विष्कंभगिरयो ह्येत उच्छ्रितः पञ्चविंशतिः॥३९॥
योजनानां सहस्त्राणि सहस्त्रं पिण्डतः स्मृतम्। अन्ये च सन्ति बहुशस्तत्र वै केसराचलाः॥४०॥

पूर्व पर्वत (विष्कम्भ) मंदर, दक्षिण वाला गन्धमादन, पश्चिम वाला विपुल तथा उत्तर वाला सुपार्श्व है। मन्दर पर कदम्ब, गन्धमादन पर जम्बु (जामुन), विपुल पर पीपल तथा सुपार्श्व पर ध्वजरूप वटवृक्ष है। ये सभी वृक्ष उन-उन द्वीप के ध्वजरूप हैं। ये एकादश शत योजन दीर्घ हैं। उक्त ४ पर्वतों में से प्रत्येक में एक-एक उपवन हैं। पूर्व में चैत्ररथ वन, दक्षिण में गन्धमादन वन, पश्चिम में विभ्राज वन, उत्तर में चित्ररथ वन विराजित है। चारों ओर ४ सरोवर हैं। पूर्व में अरुणोदय सरोवर, दक्षिण में मानस सरोवर, पश्चिम में पीतोद सरोवर तथा उत्तर में महाह्रद है। यह विष्कम्भ गिरिराज २५ हजार योजन उन्नत तथा १००० योजन विस्तृत हैं। इसके अतिरिक्त और भी अनेक छोटे-छोटे पर्वत इस मेरु के पार्श्व में विराजित हैं। उनको केशराचल कहते हैं।।३४-४०।।

मेरोर्दक्षिणतस्चैव त्रयो मर्यादपर्वताः। निषधो हेमकूटश्च हिमवानिति ते त्रयः॥४१॥
लक्षयोजनदीर्घाश्च विस्तीर्णाद्विसहस्त्रकम्। त्रयश्चोत्तरतोमेरोर्नीलःश्वेतोऽथशृङ्गवान्॥४२॥
माल्यवान्पूर्वतो मेरोर्गन्धाख्यः पश्चिमे तथा। इत्येते गिरयःप्रोक्ताजम्बुद्वीपे समन्ततः॥४३॥
गन्धमादनसंस्थाया महागजप्रमाणतः। फलानिजम्ब्वास्तन्नाम्नाजम्बूद्वीपमितिस्मृतम्॥४४॥
आसीत्स्वायम्भुवोनाममनुराद्यःप्रजापतिः। आसीत्स्त्री शतरूपा तामुदुवोडप्रजापतिः।
प्रियव्रतोत्तानपादौ तस्याऽऽस्तां तनयावुभौ॥४५॥
ध्रुवश्चोत्तानपादस्यपुत्रःपरमधार्मिकः। भक्त्या स विष्णुमाराध्यस्थानंचैवाऽक्षयंगतः॥४६॥
प्रियव्रतस्य राजर्षेरुत्पन्ना दश सूनवः। त्रयः प्रव्रजितास्तत्र परम्ब्रह्म समाश्रिताः॥४७॥
सप्त सप्तसु द्वीपेषु तेन पुत्राः प्रतिष्ठिताः। जम्बूद्वीपाधिपो ज्येष्ठआग्नीघ्र इति विश्रुतः॥४८॥

मेरु के दक्षिण तीन मर्यादा पर्वत हैं। निषध, हेमकूट, हिमवान्। इनमें से प्रत्येक १ लाख योजन दीर्घ

तथा २ हजार योजन विस्तार वाला है। मेरु के उत्तर में नील, श्वेत तथा शृङ्गवान नामक ३ मर्यादा पर्वत हैं। मेरु के पूर्व में माल्यवान् तथा पश्चिम में गन्धगिरि विराजमान है। जम्बूद्वीप के चतुर्दिक् ये प्रधान पर्वत स्थित हैं। गन्धमादन पर्वत पर जो जम्बू वृक्ष है, उसके सभी फल एक-एक हाथी के बराबर हैं। इसी के नाम के अनुसार यह द्वीप जम्बूद्वीप कहा गया है। स्वायम्भुव नामक प्रजापति मनु ने शतरूपा नामक नारी से विवाह किया था। शतरूपा के गर्भ से प्रियव्रत तथा उत्तानपाद नामक दो पुत्र जन्मे। उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव अत्यन्त धार्मिक थे। उन्होंने भक्तिपूर्वक विष्णु को सन्तुष्ट किया तथा अक्षय स्थान लाभ किया। राजर्षि प्रियव्रत के १० पुत्र जन्मे। उनमें से ३ पुत्रों ने संन्यास लेकर ब्रह्मभाव प्राप्त किया। बाकी ७ पुत्र सात द्वीपों के अधिपति बने। ज्येष्ठ पुत्र आग्नीध्र जम्बूद्वीपाधिपति थे।।४१-४८।।

तस्यासन्नव सुताः पार्थ नववर्षेश्वराः स्मृताः।
तेषां नाम्ना च ते वर्षास्तिष्ठन्त्यद्याऽपि चाङ्किताः।।४९।।

योजनानां सहस्राणि नव प्रत्येकशःस्मृताः। मेरोश्चतुर्दशं खण्डं गन्धमाल्यवतोर्द्वयोः।।५०।।
अन्तरे हेमभूमिष्ठमिलावृतमिहोच्यते। माल्यवत्सागरान्तस्य भद्राश्वमिति प्रोच्यते।।५१।।
गन्धवत्सागरान्तस्य केतुमालमिति स्मृतम्।।५२।।
शृङ्गवज्जलधेरन्त कुरुखण्डमितिस्मृतम्। शृङ्गवच्छ्वेतमध्ये च खण्डंप्रोक्तंहिरण्मयम्।।५३।।
सुनीलश्वेतयोर्मध्ये खण्डमाहुश्च रम्यकम्। निषधो हेमकूटश्च हरिखण्डं तदन्तरा।।५४।।
हिमवद्धिमकूटान्तः खण्डं किंपुरुषंस्मृतम्। हिमाद्रिजलधेरन्तर्नाभिखण्डमितिस्मृतम्।।५५।।
नाभिखण्डं च कुरवो द्वे वर्षेधनुषाकृती। हिमवांश्चगिरिश्शृङ्गीज्यास्थानेपरिकीर्तितौ।।५६।।
नाभेः पुत्रश्च ऋषभ ऋषभाद्भरतोऽभवत्। तस्य नाम्ना त्विदं वर्षं भारतं चेति कीर्त्यते।।५७।।
अत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च उपार्जनम्। अन्यत्र भोगभूमिश्च सर्वत्र कुरुनन्दन।।५८।।

हे अर्जुन! उनके ९ पुत्र जम्बूद्वीप के ९ वर्षों (देश) के अधिपति हुये। उनके नाम के अनुरूप ही उन वर्षों का नाम निर्दिष्ट है। प्रत्येक वर्ष ९ हजार योजन का कहा गया। मेरुपर्वत् के चतुर्दिक् माल्यवान् तथा गन्धमादन के मध्य में जो भूखण्ड है, वह इलावृत वर्ष है। उसमें प्रचुर स्वर्ण विद्यमान है। माल्यवान से लेकर सागर पर्यन्त भद्राश्व वर्ष है। गन्धमादन से सागर तक केतुमाल वर्ष है। शृङ्गवान से सागर के अन्त तक का भूभाग कुरुवर्ष है। शृङ्गवान् से श्वेत पर्वत तक का भूभाग हिरण्मय वर्ष है। नील से लेकर निषध पर्वत तक रम्यक् वर्ष है। निषध से हेमकूट पर्वत तक हरि वर्ष है। हिमवान् से हेमकूट तक किम्पुरुष वर्ष है। हिमालय से सागरान्त तक का भूभाग नाभिखण्ड है। यही कुरुवर्ष है। पहले भी एक कुरुवर्ष यहां कहा है। फलतः कुरुवर्ष दो हैं। पूर्वोक्त वर्षद्वय धनुषाकृति हैं। हिमवान् तथा शृङ्गवान् उसके प्रत्यंचारूपेण विराजित हैं। नाभि के पुत्र थे ऋषभ, उनके पुत्र थे भरत। इन भरत के नाम से ही भारत प्रसिद्ध है। यहीं धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का उपार्जन हो सकता है। हे कुरुनन्दन! अन्य सभी भूखण्ड मात्र भोगभूमि ही हैं।।४९-५८।।

शाकद्वीपे चशाकोऽस्तियोजनानांसहस्रकः। तस्यनाम्नाचतद्वर्णशाकद्वीपमितिस्मृतम्।।५९।।
तस्य च प्रियव्रत एवाधिपतिर्नाम्ना मेधातिथिरिति।।६०।।

तस्य पुरोजवमनोजववेपमानधूम्रानीकचित्ररेफबहुरूपविश्वचारसञ्ज्ञानि पुत्रनामानि सप्त वर्षाणि॥६१॥
शाकद्वीपे च वर्ष ऋतव्रतसत्यव्रतानुव्रतनामानो वाय्वात्मकं भगवन्तं जपन्ति॥६२॥
अन्तःप्रविश्यभूतानियोविभज्यात्मकेतुभिः। अन्तर्यामीश्वरःसाक्षात्पातुनोयद्वशेजगत्॥६३॥

॥इति जपः॥

शाकद्वीप में सहस्र योजन व्याप्त शाकवृक्ष विराजित है। उसी के नाम के अनुसार इसे शाकद्वीप कहते हैं। प्रियव्रतनन्दन मेधातिथि इसके अधिपति थे। उनके सात पुत्र थे। यथा—पुरोजव, मनोजव, वेपमान, धूम्रानीका, चित्ररक्ष, बहुरूप तथा विश्वचर। इन सात के नाम से ७ द्वीप की प्रसिद्धि हुई। वहां चार वर्ण हैं। वह ४ वर्ण इस प्रकार हैं—ऋतव्रत, सत्यव्रत, अनुव्रत तथा उपव्रत। वहां वायुमय भगवान् की उपासना की जाती है। वे इस प्रकार प्रार्थना करते हैं—"जो निज महिमा से सभी भूतसमूह के अन्तर में प्रवेश करके विभाग साधन करते हैं, यह जगत् जिनके वशीभूत है, वे अन्तर्यामी प्रभु हमारी रक्षा करें।।५९-६३।।

कुशद्वीपे कुशस्तम्बो योजनानां सहस्रकः। तच्चिह्नचिह्नितं तस्मात्कुशद्वीपंततःस्मृतम्॥६४॥
तद्द्वीपपतिश्चप्रैयव्रतो हिरण्यरोमा तत्पुत्रवसुवसुदानदृढ-
कविनाभिगुप्तसत्यव्रतावाम देवानामङ्कितानि सप्तवर्षाणि।
वर्णाश्चकुलिशकोविदाभियुक्तकुलकसंज्ञाजातवेदसं भगवन्तं स्तुवन्ति॥६५॥
परस्य ब्रह्मः साक्षाज्जातवेदासि हव्यवाट्। देवानां पुरुषांगानांयज्ञेन पुरुषं यजः॥६६॥

॥इति स्तुतिः॥

कुशद्वीप में १ हजार योजन विस्तृत कुशस्तम्ब स्थित है। यह विशेष चिह्न है। अतएव यह द्वीप कुशद्वीप कहा गया है। प्रियव्रत के पुत्र हिरण्यरोमा उसके अधिपति कहे गये हैं। उनके पुत्र हैं वसु, वसुदान, दृढ़, कवि, नाभिगुप्त, सत्यव्रत तथा रामदेव। इनके नाम के अनुसार ये ७ वर्ष (देश) हैं। इन ७ पुत्रों के नाम से ये वर्ष प्रसिद्ध हो गये। वहां कुलिश, कोविद्, अभियुक्त तथा कुलक नामक वर्णचतुष्टय द्वारा अग्निरूपी भगवान् की आराधना की जाती है। वे यह प्रार्थना करते हैं—"हे हव्यवाहन्! आप परब्रह्म की साक्षात् मूर्त्ति हैं। आप जातवेदा को मनुष्यादि समस्त तत्व का सम्यक् ज्ञान है। आप यज्ञ साधन द्वारा हमारा कल्याण करें"।।६४-६६।।

क्रौञ्चद्वीपेक्रौञ्चनामापर्वतोयोजनायुतः। योऽसौगुहेननिर्भिन्नस्तच्चिह्नंक्रौञ्चद्वीपकम्॥६७॥
तत्र च प्रैयव्रतो घृतपृष्टिनामा तत्पुत्रामधुरुहमेघपृष्ठस्वधामऋताश्व-
लोहितार्णववनस्पतिइति सप्तपुत्रनामाङ्कितानि सप्त वर्षाणि॥६८॥
वर्णाश्चगुरुऋषभद्रविणदेवकसञ्ज्ञाः॥६९॥
आपोमयं भगवन्तं स्तुवन्ति॥७०॥
आपाः पुरुषवीर्याश्च पुनन्तीर्भूर्भुवः स्वश्च। तैः पुनरमोवघ्नाःसंस्पृशेतात्मना भुवः॥७१॥

॥इति जपः॥

क्रौञ्चद्वीप में १०००० योजन विस्तार वाला क्रौञ्च पर्वत है। कुमारदेव ने इस पर्वत का भेदन किया था।

यह पर्वत ही इस द्वीप का विशेष चिह्न रूप है। प्रियव्रत के पुत्र घृतपुष्टि इस द्वीप के अधिपति थे। उनके पुत्र मधुरुह, मेधपृष्ठ, स्वधाम, ऋताश्व, आम, लोहितार्णव तथा वनस्पति के नाम के अनुसार यहां के ७ वर्ष प्रसिद्ध हैं। यहां वर्णचतुष्टय हैं गुरु, ऋषभ, द्रविद तथा देवक। ये जलमय प्रभु की उपासना करते हैं। उनकी प्रार्थना यह है—"जल ही परम पुरुष का वीर्य है। जल ही भूः-भुवः-स्वः लोकत्रय में पवित्रता सम्पन्न करता है। यह जलराशि हमारी निवासभूमि का स्पर्श करके पापनाशन करे"।।६७-७१।।

शाल्मलेर्नाम वृक्षस्य तत्रवासः सहस्रं योजनानां तच्चिह्नं शाल्मलिद्वीपमुच्यते।।७२।।

तस्याधिपतिः प्रैयव्रतो यज्ञबाहुस्तत्पुत्रसुरोचनसौमनस्यरमणक-
देवबर्हिपारिभद्राप्यायनाभिज्ञाननामामि सप्तवर्षाणि।।७३।।

वर्णाश्च श्रुतधरवीर्यवसुन्धरइषन्धरसञ्ज्ञाभगवन्तं सोमं यजन्ति।।७४।।

स्वयोनिः पितृदेवेभ्योविभजञ्छुक्लकृष्णयोः। अधःप्रजानां सर्वासांराजानःसोमोऽस्तु।।७५।।

।।इति जपः।।

शाल्मलि द्वीप में सहस्र योजन वाला एक शाल्मलि वृक्ष है, जो इस द्वीप का चिह्न है। उस वृक्ष के नाम के अनुसार ही इस द्वीप का नाम शाल्मलि पड़ा। प्रियव्रत पुत्र यज्ञवाह द्वीपाधिपति थे। उनके सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्हि, पारिभद्र, आप्यायन तथा अभिज्ञान नामक सात पुत्रों के ही नाम पर इस द्वीप के ७ वर्ष प्रसिद्ध हैं। यहां के ४ वर्ण हैं ऋतधर, वीर्यधर, वसुन्धर तथा इषन्धर। ये भगवान् सोम की आराधना करते हैं। उनकी प्रार्थना इस प्रकार से है—"आपने अपने शरीर का शुक्ल-कृष्ण रूप विभाग करके देवता तथा पितृगण को (शुक्लपक्ष देवगण को, कृष्णपक्ष पितृगण को) प्रदान किया है। जो अधोवर्त्ती प्रजा का भी अमृतदान द्वारा नित्य पालन करते हैं। वे राजा सोम हमारा मंगल करें"।।७२-७५।।

गोमेदनामा प्लक्षोऽस्तिसुरभ्यो यस्यच्छायया। मेदोवृद्धिगतं लौल्याद्गोमेदं द्वीपमुच्यते।।७६।।

तत्र प्रैयव्रत इध्मजिह्वः पतिस्तत्पुत्रशिवसुरम्यसु-
भद्रशान्त्यशप्तामृताभयनामाङ्कितानि सप्त वर्षाणि।।७७।।

वर्णाश्च हंसपङ्गोर्ध्वांचनसत्याङ्गसंज्ञाश्चत्वारो भगवन्तं सूर्य यजन्ते।।७८।।

प्रश्नस्य विष्णुरूपं यत्तत्रोत्थस्यब्रह्मणोऽमृतस्यच। मृत्योश्च सूर्यमात्मानं धीमहि।।७९।।

।।इति जपः।।

गोमेद द्वीप में गोमेद नामक सुरम्य वृक्ष है, जिसकी छाया में प्राणीगण की मेदवृद्धि होती है। इसी वृक्ष के नाम के अनुसार इस द्वीप का नाम गोमेद द्वीप पड़ा है। यहां प्रियव्रतनन्दन ईध्मजिह्व इस द्वीप के राजा थे। उनके पुत्र शिव, सुरम्य, सुभद्र, शान्त्य, शप्त, अमृत तथा भय के नाम से यहां सात वर्ष (देश) हैं। यहां के चार वर्ण इस प्रकार हैं—हंस, पङ्ग, ऊर्द्धाञ्चन तथा सत्याङ्ग। ये सूर्यरूपी भगवान् की अर्चना करते हैं। इनकी प्रार्थना है—"विष्णु ही समस्त ज्ञेय विषयों की आत्मा हैं। ब्रह्मा का प्रादुर्भाव इन विष्णु से ही है। सूर्य ही ब्रह्मा, अमृत तथा मृत्यु की आत्मा हैं। हम सूर्य का ध्यान करते हैं।।७६-७९।।

स्वर्णपत्राणि नियुतं योजनानां सहस्रकम्। पुष्करं ज्वलदाभातिताश्चिह्नंद्वीपपुष्करम्॥८०॥
तस्याधिपतिः प्रैयव्रतो वीतहोत्रनामा तत्पुत्रौ रमणकघातकौ॥८१॥
तन्नामचिह्नितं खण्डद्वयम्॥८२॥
तयोरन्तरालेमानसाचलो नाम वलयाकारः पर्वतो यस्मिन्भ्रमतिभगवान्भास्करइति॥८३॥
तत्र वर्णाश्च न सन्ति केवलं समानास्ते ब्रह्म ध्यायन्ति॥८४॥
यद्यत्कर्ममयं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गं जनोऽर्चयन्। भेदेनैकान्तमद्वैतं तस्मै भगवते नमः॥८५॥
॥इति जपः॥
नैषु क्रोधो न मात्सर्यं पुण्यपापार्जनेन च। अयुतं द्विगुणंचापिक्रमादायुःप्रकीर्तितम्॥८६॥
जपन्तःकामिनीयुक्ताविहरन्त्यमराइव। अथतेसम्प्रवक्ष्यामिऊर्ध्वलोकस्य संस्थितिम्॥८७॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कुमारिकाख्याने भूसंस्थितिवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥३७॥

पुष्कर द्वीप में एक विशाल पद्म है। यह नियुत संख्यक स्वर्णमय पत्र वाला स्वर्णमय पद्म है, जो १००० योजन विस्तार वाला है। यही जाज्वल्यमान कमल उस द्वीप का विशेष चिह्न कहा गया है। इसी के नाम से इसे पुष्कर द्वीप कहते हैं। यहां के राजा थे प्रियव्रत पुत्र वीतिहोत्र। उनके दो ही पुत्र थे—रमणक तथा घातक। इन पुत्रद्वय के नाम से इस द्वीप के दो खण्ड विख्यात हैं। इन दोनों खण्डों के मध्य एक वलयाकार पर्वत प्रसिद्ध है, जिसे मानसाचल कहते हैं। भगवान् भास्कर इस पर्वत के ऊपर ही भ्रमणरत रहते हैं। यहां वर्ण चतुष्ट्य रूपी वर्गभेद नहीं है। सभी एक ही वर्ण हैं तथा एकमात्र ब्रह्म का ही ध्यान करते रहते हैं। उनकी प्रार्थना यह है—"जनगण भेदबुद्धि से भगवान् के जिन-जिन कर्ममय चिह्न की अर्चना करते हैं, वह सभी वास्तव में एक परम ब्रह्मरूप ही है। यह ब्रह्म अद्वैत है। हम उन भगवान् को प्रणाम करते हैं।" इन निवासियों में क्रोध, मात्सर्य, पुण्य-पाप नहीं हैं, ये १०००० किंवा २०००० वर्ष जीवित रहते हैं। ये ब्रह्मजपयुक्त रहकर स्त्रीयुक्त होने पर भी देवगण के समान रहते हैं तथा समय व्यतीत करते हैं। अब मैं तुमको ऊर्ध्वलोकों का प्रसंग सुनाता हूं।।८०-८७।।

॥सप्तत्रिंश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

ऊर्ध्वलोक वर्णन

नारद उवाच

भूमेर्योजनलक्षे च कौरव रविमण्डलम्। योजनानां सहस्राणि भास्करस्य रथो नव॥१॥
ईषादण्डस्तथैवाऽस्यद्विगुणः परिकीर्तितः। सार्धकोटिस्तथासप्तनियुतानिविवस्वतः॥२॥
योजनानां तु तस्याक्षस्तत्रचक्रंप्रतिष्ठितम्। त्रिनाभितच्च पञ्चारंषण्नेमिपरिकीर्तितम्॥३॥
चत्वारिंशत्सहस्राणि द्वितीयोऽक्षोऽपि विस्तृतः।
पञ्च चाऽन्यानि सार्द्धानि स्यन्दनस्य तु पाण्डव!॥४॥
अक्षप्रमाणमुभयोः प्रमाणं तद्युगार्द्धयोः। ह्रस्वोऽक्षस्तद्युगार्द्धंच ध्रुवाधारं रथस्य वै॥५॥
द्वितीयोऽक्षस्तथा सव्ये चक्रं तन्मानसे स्थितम्।
हयाश्च सप्त च्छन्दांसि तेषां नामानि मे शृणु॥६॥
गायत्रीचबृहत्युष्णिग्जगतीत्रिष्टुबेव च। अनुष्टुप्पङ्क्तिरित्युक्ताश्छन्दांसिहरयोरवेः॥७॥

नारद कहते हैं—हे कुरुपुत्र! भूतल से १ लाख योजन ऊपर सूर्यरथ विचरण करता है। उस रथ का विस्तार है ९ हजार योजन। ईषादण्ड १८ हजार योजन का है। उसका अक्ष आधा करोड़ सप्त नियुत योजन व्यापी है। उसी में चक्र निविष्ट है। इस चक्र की तीन नाभि, ५ अर, ६ नेमि हैं। रथ का द्वितीय अक्ष ४० हजार योजन विस्तृत है। हे पाण्डव! अपेक्षाकृत ह्रस्व अक्ष सबकी समष्टि के परिमाण से युगार्द्ध परिमाण का हो सकता है। ध्रुव ही इस रथ का आधार है। एक अक्ष दाहिनी ओर तथा दूसरा अक्ष बायीं ओर स्थित है। रथचक्र मानसाचल पर्वत पर प्रतिष्ठित है। छन्दोरूप सप्त अश्व इस रथ का वहन करते हैं। उन रथ के अश्वों का नाम सुनो। यथा—गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् तथा पंक्ति। ये सात छन्द ही सात अश्व की मूर्त्ति धारण करके इस रथ को चलाते हैं।।१-७।।

नैवास्तमनमर्कस्य नोदयः सर्वदा सतः। उदयास्तमनाख्यं हि दर्शनादर्शनं रवेः॥८॥
शक्रादीनां पुरे तिष्ठन्स्पृशत्येषपुरत्रयम्। विकीर्णोऽतोविकर्णस्थस्त्रिकोणार्धपुरेतथा॥९॥
अयनस्योत्तरस्यादौ मकरं याति भास्करः। ततः कुम्भं च मीनंचराशेराश्यन्तरं तथा॥१०॥
त्रिष्वेतेष्वथ भुक्तेषु ततो वैषुवतीं गतिम्। प्रयाति सविता कुर्वन्नहोरात्रं चतत्समम्॥११॥

सूर्य सदैव विद्यमान रहते हैं। वास्तव में उनका कभी उदयास्त होता ही नहीं। उनके दर्शन तथा अदर्शन को ही उदयास्त कहते हैं। सूर्यदेव इन्द्रादि के पुर में स्थित रहकर तीन पुरियों को प्रकाशित करते हैं। जब वे पुरी के प्रान्त भाग में अथवा पुरीद्वय के संयोग स्थल में स्थित होते हैं, तब अन्य पुरियों में भी असम्पूर्ण रूप से कुछ प्रकाश कर ही देते हैं। वास्तव में तीन पुरी व्यापी स्थान सूर्यद्वेव द्वारा सदा प्रकाशित होता है। उत्तरायणस्थ सूर्य मकर राशि में गमन करते हैं, तब वे क्रमशः कुम्भ-मीन इत्यादि राशियों में जाते हुये विषुवरेखा पर पहुंचते हैं। उस समय रात-दिन समान होता है।।८-११।।

ततो रात्रिः क्षयंयातिवर्धते तु दिनं दिनम्। ततश्च मिथुनस्यान्ते परां काष्ठामुपागतः॥१२॥
राशिं कर्कटकं प्राप्यकुरुते दक्षिणायनम्। कुलालचक्रपर्यन्तोयथा शीघ्रं निवर्तते॥१३॥
दक्षिणायक्रमे सूर्यस्तथा शीघ्रं निवर्तते। अतिवेगितया कालं वायुमार्गबलाच्चरन्॥१४॥
तस्मात्प्रकृष्टां भूमिं स कालेनाऽल्पेन गच्छति। कुलालचक्रमध्यस्थो यथा मन्दं प्रसर्पति॥१५॥
तथोदगयने सूर्यः सर्पते मन्दविक्रमः। तस्माद्दीर्घेण कालेन भूमिमल्पं निगच्छति॥१६॥
सन्ध्याकाले च मन्देहाः सूर्यमिच्छन्ति खादितुम्।
प्रजापतिकृतः शापस्तेषां फाल्गुन! रक्षसाम्॥१७॥
अक्षयत्वं शरीराणां मरणं च दिनेदिने। ततः सूर्यस्य तैर्युद्धं भवत्यन्यन्तदारुणम्॥१८॥
ततो गायत्रिपूतंयद्द्विजास्तोयंक्षिपन्ति च। तेनदह्यन्तितेपापाःसन्ध्योपासनतःसदा॥१९॥

तदनन्तर क्रमशः रात्रि का समय कम होता है तथा दिन बड़ा होता है। इस प्रकार विषुव रेखा के शेष भाग में मिथुन राशि में रहकर जब सूर्य कर्क राशि में जाते हैं, तब वे दक्षिणायन हो जाते हैं। जैसे कुलाल चक्र का प्रान्तभाग अन्त्यभाग की अपेक्षा शीघ्र घूमता प्रतीत होता है, सूर्य भी उत्तरायण की तुलना में दक्षिणायन में धीमी गति से भ्रमण करते हैं। तब वे वायुमार्ग में वेगपूर्वक भ्रमण करते हुये अल्प काल में अधिक पथ का अतिक्रमण करते जाते हैं। जैसे कुलाल (कुम्हार) का चक्र प्रान्त भाग की अपेक्षा मध्यभाग में मन्द गति से घूमता प्रतीत होता है, वैसे ही उत्तरायण में सूर्यदेव मृदु गति से भ्रमणरत रहते हैं। तब वे दीर्घकाल में अल्पपथ को पार करते हैं। सन्ध्या काल में मन्देह नामक राक्षस सूर्य के भक्षणार्थ उद्यम करते हैं। हे अर्जुन! प्रजापति के शाप से उनकी प्रतिदिन मृत्यु होकर भी शरीर का अक्षयत्व बना रहता है (पुनः जीवित हो जाते हैं)। तब उनके साथ सूर्य का भीषण युद्ध होता है। तथापि द्विजों की सन्ध्योपासना काल में गायत्री द्वारा अभिमन्त्रित जल छिड़का जाता है, जिससे मन्देह नामक राक्षस दग्ध हो जाते हैं।।१२-१९।।

ये सन्ध्यां नाप्युपासन्ते कृतघ्ना यान्ति रौरवम्। प्रतिमासं पृथक्सूर्यं ऋषिगन्धर्वराक्षसैः॥२०॥
अप्सरोग्रामणीसर्पैरथो यातिच सप्तभिः। धाताऽर्यमा मित्रवरुणौविवस्वानिन्द्रएवच॥२१॥
पूषा च सविता सोऽथ भगस्त्वष्टा च कीर्तितः।
विष्णुश्चैत्रादिमासेषु आदित्या द्वादश स्मृताः॥२२॥

अतः जो सन्ध्योपासना नहीं करते, वे कृतघ्न रौरवनरकगामी होते हैं। सूर्यदेव द्वादश मास में प्रति मास में पृथक्-पृथक् मूर्त्ति धारण करके ७ अश्वों वाले रथ पर आसीन रहते आवागमन करते रहते हैं। प्रत्येक मास में पृथक्-पृथक् ऋषि, गन्धर्व, राक्षस, अप्सरा, ग्रामणी तथा सर्पगण उनके रक्षक रूप में उनके रथ में उनके साथ विचरण करते रहते हैं। सूर्य चैत्रादि द्वादश मास में जिन द्वादश मूर्त्तियों को धारण करते हैं उनके नाम हैं—धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, विवस्वान्, इन्द्र, पूषा, सविता, भग, त्वष्टा, विष्णु तथा आदित्य। ये ही द्वादश आदित्यगण का नाम है।।२०-२२।।

ततोदिवाकरस्थानान्मण्डलंशशिनःस्थितम्। लक्षमात्रेण तस्यापित्रिचक्रोरथउच्यते॥२३॥
कुन्दाभा दश चैवाश्वा वामदक्षिणतो युताः। पूर्णे शतसहस्त्रेचयोजनानांनिशाकरात्॥२४॥

नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नमुपरिष्टात्प्रकाशते। चतुर्दश चार्बुदान्यप्यशीतिः सरिताम्पतिः॥२५॥
विंशतिश्चतथाकोट्योनक्षत्राणांप्रकीर्तिताः। द्वेलक्षेचोत्तरेतस्माद्बुधोनक्षत्रमण्डलात्॥२६॥
वाय्वग्निद्रव्यसम्भूतो रथश्चन्द्रसुतस्य च। पिशङ्गैस्तुरगैर्युक्तः सोष्टाभिर्वायुवेगिभिः॥२७॥
द्विलक्षश्चोत्तरे तस्माद्बुधाच्चाप्युशना स्मृतः।
शुक्रस्यापि रथोऽष्टाभिर्युक्तोऽभूत्सम्भवैर्हयैः॥२८॥
लक्षद्वयेन भौमस्य स्मृतो देवपुरोहितः। अष्टाभिः पाण्डुरैश्चैर्युक्तोऽस्यकाञ्चनोरथः॥२९॥
सौरिर्बृहस्पतेश्चोर्ध्वं द्विलक्षे समुपस्थितः। आकाशसम्भवैरश्वैरष्टाभिः शबलै रथः॥३०॥
स्वर्भानोस्तुरगाश्चाष्टौ भृङ्गाभा धूसरारथम्।
वहन्ति च सकृद्युक्ता आदित्याधः स्थितास्तथा॥३१॥
सौरेर्लक्षंस्मृतंचोर्ध्वंततः सप्तर्षिमण्डलम्। ऋषिभ्यश्चापिलक्षेणध्रुवश्चोर्ध्वंव्यवस्थितः॥३२॥
मेढीभूतः समस्तस्यज्योतिश्चक्रस्यवैध्रुवः। ध्रुवोऽपिशिंशुमारस्यपुच्छाधारेव्यवस्थितः॥३३॥
यमाहुर्वासुदेवस्य रूपमात्मानमव्यम्। वायुपाशैर्ध्रुवे बद्धं सर्वमेतच्च फाल्गुन॥३४॥

सूर्यलोक से चन्द्रलोक एक लाख योजन दूरी पर स्थित है। चन्द्र के रथ में ३ पहिये हैं। उसके वामभाग में ५ तथा दक्षिणभाग में ५ इस प्रकार से १० कुन्दपुष्प ऐसे श्वेत अश्व जुते हैं। चन्द्रलोक से एक लाख योजन ऊर्ध्व में नक्षत्र मण्डल की स्थिति है। नक्षत्रों की संख्या है अस्सी सागर (?) चतुर्दश अर्बुद २० कोटि। नक्षत्र मण्डल से दो लाख योजन के अन्तर पर बुधग्रह की स्थिति है। वायवीय तथा आग्नेय द्रव्यों से उसका रथ निर्मित है। इसमें वायु के समान वेगवान् आठ अश्व जुते हैं। बुध से दो लाख योजन के अन्तराल पर शुक्र स्थित हैं। उसके रथ में भी आठ भौम अश्व योजित हैं। शुक्र से दो लाख योजन के अन्तराल पर मंगल हैं। मंगल से दो लाख योजन दूरी पर बृहस्पति विराजित हैं। उनका रथ स्वर्णमय तथा आठ पाण्डुवर्ण के अश्वों से युक्त है। बृहस्पति से दो लाख योजन के अन्तराल पर शनि विद्यमान हैं। उनका रथ आकाशमय विचित्र वर्ण वाले अश्वों से युक्त है। राहु सूर्य के निम्न भाग में स्थित हैं। उसका रथ भृंगवर्ण वाले आठ अश्वों द्वारा खींचा जाता है। शनि से एक लाख योजन ऊर्ध्व में सप्तर्षि मण्डल है। उनसे भी एक लाख योजन ऊर्ध्व में ध्रुव तारा स्थित है। यह ध्रुव ही समस्त ज्योतिष्चक्र में मेढ़ी काष्ठ के समान सब का अवलम्बन रूप है। ध्रुव को सुधीगण अव्यय वासुदेव की मूर्त्ति कहते हैं। नभमण्डलस्थ शिशुभार के पुच्छभाग का अवलम्बन लेकर ध्रुव स्थित है। हे अर्जुन! ये सभी नक्षत्रादि वायुमय पाश द्वारा ध्रुव से बंधे हैं।।२३-३४।।

नवयोजनसाहस्रंमण्डलंसवितुःस्मृतम्। द्विगुणंसूर्यविस्तारान्मण्डलंशशिनःस्मृतम्॥३५॥
तुल्यस्तयोस्तु स्वर्भानुर्भूत्वाऽधस्तात्प्रसर्पति।
उद्धृत्य पृथिवीच्छायां निर्मलां मण्डलाकृतिः॥३६॥
चन्द्रस्य षोडशो भागोभार्गवश्चविधीयते। भार्गवात्पादहीनस्तुविज्ञेयोऽथबृहस्पतिः॥३७॥
बृहस्पतेःपादहीनौ वक्रसौरी बुधस्तथा। शतानिपञ्चचत्वारि त्रीणि द्वे चैकयोजनम्॥३८॥

योजनार्धप्रमाणानि भानि ह्रस्वं न विद्यते। भूमिलोकश्च भूर्लोकःपादगम्यःप्रकीर्तितः॥३९॥

सूर्य का मण्डल परिमाण ९००० योजनात्मक है। चन्द्रमण्डल १८००० योजनात्मक है। राहु इन दोनों के समान आकार वाला होकर अधोभागस्थ विचरणशील रहता है। राहु पृथिवी की निर्मल छाया ग्रहण करके स्वयं मण्डलाकृति दृष्टिगोचर होता है। शुक्र चन्द्र के षोडशांश के समान है। बृहस्पति का परिमाण शुक्र से कुछ न्यून है। यह शुक्र से चतुर्थ भाग छोटा है। मंगल-शनि तथा बुध शुक्र की अपेक्षा चतुर्थ भाग न्यून हैं। नक्षत्रों का परिमाण ५००, ४००, ३००, २००, १०० योजन है। यहां तक कि आधा तथा एक योजन वाले भी नक्षत्र हैं। तथापि कोई भी आधा योजन से छोटे नहीं हैं। जहां पैदल आवागमन हो सके, वही भूलोक है।।३५-३९।।

भूमिसूर्यान्तरं तच्च भुवर्लोकः प्रकीर्तितः। ध्रुवसूर्यान्तरं तच्च नियुतानि चतुर्दश॥४०॥
स्वर्लोकःसोऽपिगदितोलोकसंस्थानचिन्तकैः। ध्रुवादूर्ध्वंतथाकोटिर्महर्लोकःप्रकीर्तित॥४१॥

भूमि तथा सूर्य के मध्य भाग को भुवर्लोक कहते हैं। यहां सूर्य से ध्रुव तक १४ नियुत योजन स्थान को स्वर्लोक कहते हैं। लोक संस्थान तत्वज्ञों का यह कथन है कि ध्रुव के ऊर्ध्व से लेकर कोटि योजन तक महर्लोक है।।४०-४१।।

द्वे कोट्यौचजनोयत्रनिवसन्तिचतुःसना। चतुर्भिश्चापिकोटिभिस्तपोलोकस्ततःस्मृतः॥४२॥
वैराजा यत्र ते देवाः स्थिता दाहविवर्जिताः। षड्गुणेन तपोलोकात्सत्यलोको विराजते॥४३॥
अपुनर्मरका यत्र ब्रह्मलोको हि स स्मृतः। अष्टादश तथाकोट्योलक्षाण्यशीतिपञ्च च॥४४॥
शुभं निरुपमं स्थानं तदूर्ध्वं सम्प्रकाशते। भूर्भुवःस्वरिति प्रोक्तं त्रैलोक्यंकृतकंत्विदम्॥४५॥
जनस्तपस्तथा सत्यमिति चाकृतकं त्रयम्। कृतकाकृतयोर्मध्ये महर्लोक इति स्मृतः॥४६॥
शून्यो भवति कल्पान्ते योऽत्यन्तं न विनश्यति।
एते सप्त समाख्याता लोकाः पुण्यैरुपार्जिताः॥४७॥
यज्ञैर्दानैर्जपैर्होमैस्तीर्थैर्व्रतसमुच्चयैः। वेदादिप्रोक्तैरन्यैश्च साध्यान्ल्लोकानिमान्विदुः॥४८॥
ततश्चाण्डस्य शिरसो धारा नीरमयी शिवा। सर्वलोकान्समाप्लाव्यगङ्गामेरावुपागता॥४९॥
ततो महीतलं सर्वं पातालं प्रविवेश सा। अण्डमूर्ध्निं स्थिता देवीसततंद्वारवासिनी॥५०॥
देवीनांकोटिकोटीभिःसम्वृतापिङ्गलेन च। तत्र स्थितासदारक्षांकुरुतेऽण्डस्यसाशुभा॥५१॥

इसके ऊर्ध्व में २ कोटि योजन तक जनलोक है, जहां सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनत्कुमार स्थित हैं। उससे ऊर्ध्व ४ कोटि योजन तक तपःलोक है। यह तपःलोक महाप्रलयादि में भी दग्ध नहीं होता। उससे भी ऊर्ध्व में सत्यलोक है। उसका परिमाण तपोलोक से छः गुणित है, जहां मरण भय तो है ही नहीं। यही ब्रह्मलोक भी है। उसके ऊर्ध्व में १८ कोटि पचासी लाख योजन स्थान अतीव मनोहारी प्रकाशमय तथा ऐसा है, जिसकी उपमा ही नहीं दे सकते। भूः-भुवः-स्वः लोक को कृतक कहते हैं। जन-तपः तथा सत्यलोकों को अकृतक कहा गया है। कृतक तथा अकृतक के बीच में मृत्युलोक की अवस्थिति है। यद्यपि कल्पान्त में यह शून्य हो जाता है, तथापि पूर्णतः विनष्ट नहीं होता। ये सप्तलोक साध्य कहे जाते हैं। क्योंकि वेदादि-धर्मशास्त्रोक्त विधान से यज्ञ-दान-जप-होम-व्रताचरण-तीर्थाटन आदि सत्कर्म द्वारा इनकी प्राप्ति की जाती है। तत्पश्चात् है ब्रह्माण्डकटाह। इस अण्ड के ऊपरी

भाग से शान्तिप्रदा जलमयी गंगा सभी लोकों को आप्लावित करके मेरु पर्वत पर अवतरण करती है। मेरुपर्वत से यह महीतल को प्लावित करके पाताल तक जाती है। ये ब्रह्माण्ड के मस्तकभागस्थ छिद्रपथ में प्रवेश करके वहां सदैव स्थित रहती है। तभी इनको द्वारवासिनी कहते हैं। करोड़ों देवियों तथा पिंगल नामक रुद्र से परिवृत होकर गंगा देवी अण्डद्वार की रक्षा करती रहती हैं।।।४२-५१।।

निहन्तिदुष्टसङ्घातान्महाबलपराक्रमा। वायुस्कन्धानि सप्ताऽपिशृणुयद्वत्स्थितान्यपि।।५२।।
पृथिवीं समभिक्रम्य संस्थितोमेघमण्डले। प्रवाहोनाम यो मेघान्प्रवहत्यतिशक्तिमान्।।५३।।
धूमजाश्चोष्मजा मेघाः सामुद्रैर्येन पूरिताः। तोयैर्भवन्ति नीलाङ्गा वर्षिष्ठाश्चैव भारत।।५४।।
द्वितीयश्चावहो नाम निबद्धः सूर्यमण्डले। तेन बद्धं ध्रुवेणेदं भ्राम्यते सूर्यमण्डलम्।।५५।।
तृतीयश्चोद्वहो नाम चन्द्रस्कन्धे प्रतिष्ठितः। बद्धं ध्रुवेण येनेदं भ्राम्यते चन्द्रमण्डलम्।।५६।।
चतुर्थः सम्वहो नाम स्थितो नक्षत्रमण्डले। वातरश्मिभिराबद्धं ध्रुवेण सह भ्राम्यते।।५७।।
ग्रहेषुः पञ्चमः सोऽपि विवहो नाम मारुतः। ग्रहचक्रमिदं येन भ्राम्यते ध्रुवसन्धितम्।।५८।।
षष्ठः परिवहो नाम स्थितः सप्तर्षिमण्डले। भ्रमन्ति ध्रुवसम्बद्धा येन सप्तर्षयो दिवि।।५९।।
सप्तमश्च ध्रुवे बद्धो वायुर्नाम्ना परावहः। येन संस्थापितं ध्रौव्यं चक्रं चाऽन्यानि भारत!।।६०।।

महाबली पराक्रमी गंगा देवी वहां आकर दुष्टों का संहार कार्य करती हैं। अब सभी वायुस्तम्भ जहां—जिस प्रकार स्थित हैं, वह सुनो। पृथिवी से मेघमण्डल पर्यन्त की वायु को जो **प्रथम वायु** है, प्रवह कहते हैं, जो अतीव बली है। यही मेघों को चालित करता है। हे भरतर्षभ! मेघ धूम तथा समुद्र की ऊष्मा से प्रादुर्भूत होते हैं। तभी वे जलपूर्ण होने पर नीलवर्ण रहते हैं तथा वर्षण करते हैं। सूर्यमण्डलस्थ **द्वितीय वायु** का नाम है आवह। इसी के द्वारा सूर्यमण्डल ध्रुव तारे में निबद्ध रहकर परिभ्रमण करता रहता है। चन्द्रलोकस्थ **तृतीय वायु** है उद्वह। इसी से बद्ध होकर चन्द्रमा सदा भ्रमणरत रहता है। संवह नामक **चतुर्थ वायु** नक्षत्रों में रहकर नक्षत्रों को ध्रुव से बद्ध रखता है। विवह नाम्नी **पंचम वायु** ग्रहमण्डलों में स्थित रहकर ग्रहों को ध्रुव से बद्ध रखता है। यही ग्रहों को भ्रामित करता रहता है। परिवह नामक **षष्ट वायु** सप्तर्षिमण्डलस्थ है। इसी के द्वारा सप्तर्षिगण बद्ध होकर गगनतल में परिभ्रमण करते हैं। परावह नामक **सप्तम वायु** ध्रुवलोक में स्थित है। इसी के द्वारा ध्रुवचक्र अन्तरिक्ष में स्थिरता से स्थित रहता है।।५२-६०।।

यं समासाद्य वेगेन दिशामन्तं प्रपेदिरे। दक्षस्य दश पुत्राणां सहस्राणि प्रजापतेः।।६१।।
एवमेते दितेः पुत्राः सप्तसप्त व्यवस्थिताः। अनारमन्तःसम्वान्ति सर्वगाःसर्वधारिणः।।६२।।
ध्रुवादूर्ध्वभसूर्यंचाप्यनक्षत्रमतारकम्। स्वतेजसास्वशक्त्या चाधिष्ठितास्तेहिनित्यदा।।६३।।
इत्यूर्ध्वन्ते समाख्यातं पातालान्यथ मे शृणु।।६४।।

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कुमारिकाख्याने लोकव्यवस्थितिवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः।।३८।।

दक्ष प्रजापति के १०००० पुत्रगण ध्रुव के पास जाकर इस **सप्तम परावह** वायुजनित विषम वेग के कारण दिगन्त में खो गये। सात भागों में विभक्त दितिपुत्र वायुगण समस्त जगत् को व्याप्त करके पुनः स्वयं ७-७ भागों में विभक्त हैं। ये सब कुछ को धारण करके अविश्रान्त गति से प्रवाहित होते हैं तथा समस्त में व्याप्त होकर स्थित हैं। ध्रुव के ऊर्ध्व में सूर्य तथा नक्षत्रादि कुछ नहीं हैं। वे अपने तेज से समुज्ज्वल तथा अपनी शक्ति से ही समस्त जगत् में व्याप्त हैं। अब पाताल वर्णन सुनो।।६१-६४।।

॥अष्टत्रिंश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

उनचत्वारिंशोऽध्यायः

सप्तलोक व्यवस्था, चतुर्युगवर्णन, बर्करिकाख्यान, नवखण्ड ग्रामसंख्या, बर्करेश्वर माहात्म्य

नारद उवाच

सहस्त्रसप्तत्युच्छ्राये पातालानि परस्परम्। अतलं वितलं चैव नितलं च रसातलम्॥१॥
तलातलं च सुतलं पातालंचापि सप्तमम्। कृष्णशुक्लारुणाः पीताःशर्कराशैलकाञ्चनः॥२॥
भूमयो यत्र कौरव्य वरप्रासादशोभिताः। तेषु दानवदैतेयनागाश्चैव सहस्त्रशः॥३॥
स्वर्लोकादपि रम्याणि दृष्टानि बहुशो मया। आह्लादकारिणोनानामणयोयत्रपन्नगाः॥४॥
दैत्यदानवकन्याभिर्महारूपाभिरन्विते। पाताले कस्य न प्रीतिर्विमुक्तस्याऽपि जायते॥५॥
यत्र नोष्णं न वा शीतं न वर्षंदुःखमेवच। भक्ष्यभोज्यमाहाभोगकालोयत्राऽपि जायते॥६॥
पाताले सप्तमे चाऽस्ति लिङ्गं श्रीहाटकेश्वरम्। ब्रह्मणा स्थापितं पार्थ! सहस्त्रयोजनोच्छ्रितम्॥७॥

पाताल की एक दूसरे से व्यवधान (बीच की दूरी) रूप दूरी ७० हजार योजन है। पाताल ७ हैं। अतल, वितल, नितल, रसातल, तलातल, सुतल तथा पाताल। अतल कृष्णवर्ण, वितल शुक्ल, नितल रक्त, रसातल पीत, तलातल शर्करावर्ण, सुतल शिलावर्ण तथा पाताल कांचन वर्ण भूभाग से शोभित है। यह उत्तमोत्तम भवनों से शोभित है। वहां सौ हजार दानव, दैत्य, नागों का वास है। मैंने उसे अनेक बार देखा है। वह स्वर्ग से भी मनोरम है। मन को प्रसन्नता देने वाले नाना मणियुक्त नाग वहां सञ्चरण करते रहते हैं। अति रूपवती दैत्य-दानवों की कन्या से युक्त पाताल को देखकर मुक्त व्यक्ति को भी वहां प्रीति हो जाती है। वहां शीत-ग्रीष्म-वर्षा जनित दुःख नहीं है। वहां सदा उपभोग युक्त भक्ष्य-भोज्य प्रचुरता से मिलता है। सप्तम पाताल में श्री हाटकेश्वर शिव विद्यमान हैं। हे पार्थ! यह लिंग ब्रह्मदेव द्वारा प्रतिष्ठित है। यह एक हजार योजन उच्च लिंग है।।१-७।।

हाटकस्य तु लिङ्गस्य प्रासादो योजनायुतः। सर्वरत्नमयो दिव्यो नानाश्चर्यविभूषितः॥८॥

तच्चार्चयन्ति तल्लिङ्गं नानानागेन्द्रसत्तमाः। तदधस्ताज्जलं भूरितस्याधोनरकाःस्मृताः॥९॥
पापिनो येषु पात्यन्ते ताञ्छृणुष्व महामते!। कोटयः पञ्चपञ्चाशद्राजानश्चैकविंशतिः॥१०॥
रौरवः शूकरो रोधस्तालोविशसनस्तथा। महाज्वालस्तप्तकुम्भोलवणोऽथविमोहकः॥११॥
रुधिरान्धो वैतरणी कृमिशःकृमिभोजनः। असिपत्रवनं कृष्णोलालाभक्ष्यश्चदारुणः॥१२॥
तथा पूयवहः पापोवह्निज्वालोऽप्यधःशिराः। सन्दंशः कृष्णसूत्रश्चतमश्चावीचिरेव च॥१३॥
स्वभोजनो विसूचिश्चाप्यवीचिश्चतथाऽपरः। कूटसाक्षीरौरवं च रोदं गोविप्ररोधकः॥१४॥
सुरापः सूकरं याति तालं मिथ्यामनुष्यहा। गुरुतल्पी तप्तकुम्भं तप्तलोहं च भक्तहा॥१५॥
गुरूणामवमन्ता यो महाज्वाले निपात्यते। लवणं शास्त्रहन्ता च निर्मर्यादा विमोहके॥१६॥
कृमिभक्ष्ये देवद्वेष्टा कृमिशे तु दुरिष्टकृत्। पितृदेवात्पूर्वमश्नल्लाँलाभक्ष्ये प्रयाति च॥१७॥
मिथ्याजीवविरोधी विशसने कूटशस्त्रकृत्। अधोमुखे ह्यसद्ग्राही एकाशी पूयवाहके॥१८॥
माज्जारकुक्कुटश्वानपक्षिपोष्टा प्रयाति च। बधिरान्धगृहक्षेत्रतृणधायादिज्वालकः॥१९॥
नक्षत्ररंगजीवी च याति वैतरणीं नरः। धनयौवनमत्तो यो धनहा कृष्णमेति सः॥२०॥
असिपत्रवनं याति वृक्षच्छेदी वृथैव यत्। कुहकाजीविनः सर्वे वह्निज्वाले पतन्ति ते॥२१॥
परस्त्रीं च परान्नं च गच्छन्सन्दंशमेति च। दिवास्वप्नपरा ये च व्रतलोपपराश्च ये॥२२॥
शरीरमदमत्ताश्च यान्ति चेते श्वभोजनम्। शिवं हरिं न मन्यन्तेयान्त्यवीचिनमेव च॥२३॥

इस लिंग का मन्दिर १० योजन ऊंचा तथा सर्वरत्नमय है। यह दिव्य प्रासाद (मन्दिर) देखकर चित्त विस्मयाभिभूत हो जाता है। साधु नागपतिगण सदा इस लिंग की अर्चना करते रहते हैं। सप्तम पाताल के नीचे अगाध जल है। उसके नीचे नरकों की विद्यमानता है। नरक ५५ करोड़ हैं। इनमें से प्रधान नरकों की संख्या है २१। उनमें से कुछ के नाम कहता हूं। यथा—रौरव, शूकर, रोध, ताल, विशसन, महाज्वाल, तप्तकुण्ड, लवण, विमोहक, रुधिरान्ध, वैतरणी, कृमिश, कृमिभोजन, असिपत्रवन, कृष्ण, लालाभक्ष्य, दारुण, पूयवह, पाप, वन्हिज्वाल, अधःशिरा, सन्दंश, कृष्णसूत्र, तमः, अवीचि, स्वभोजन, विसूचि तथा अवीचि। झूठी गवाही देने वाला रौरव में, गौ-ब्राह्मण रोधकारी रोध में, शराबी शूकर में, बिना कारण मनुष्य हत्या करने वाला ताल नरक में, गुरुपत्नी गामी तप्तकुण्ड में, लोगों के भोजन में रुकावट करने वाला तप्तलौह में, गुरुजन का अपमान करने वाला महाज्वाल में, शास्त्रदूषक लवण में, मर्यादा का लंघनकारी विमोहक में, देवद्वेषी कृमिभोजन में, यज्ञ व्याघातकारी कृमिश में, देव-पितृगण का भाग खाने वाला लालाभक्ष्य में, वृथा जीवहिंसक विशसन में, कपट शासन बनाने वाला अधोमुख में, असत् प्रतिग्रहकारी तथा एकाकी उत्तम वस्तु खाने वाला पूयवाहक में, बिड़ाल-कुक्कुट-कुत्ता-पक्षियों को पालने वाला, अन्ध-बधिर जन को पीड़ा पहुंचने वाला, नक्षत्रजीवी, रङ्गजीवी, (रङ्गमञ्च का कार्य करने वाले) वैतरणी में पतित होते हैं। धन-यौवन के मद में मत्त होकर अन्य का धन हरण करते हैं, वे कृष्ण नरक में जाते हैं। वृथा वृक्ष काटने वाला असिपत्रवन में तथा जादूगरी से जीविका चलाने वाला वन्हिज्वाल नरक में जाता है। परनारीगामी तथा अन्य का अन्न हरण करने वाला संदंश नरक प्राप्त करता है। जो दिन में सोते हैं, व्रत लोप करते हैं, शरीर बलगर्व से मत्त हैं, वे सभी स्वभोजन नरक प्राप्त करते हैं। शिव तथा विष्णु के अवज्ञाकारी अवीचि नरक में गिराये जाते हैं।।८-२३।।

इत्येवमादिभिः पापैरशास्त्रौघस्य सेवनैः। पतन्त्येव महाघोरनरकेषु सहस्त्रशः॥२४॥
तस्माद्य इच्छेदेतेभ्यो विमोक्षं बुद्धिमान्नरः। श्रुतिमार्गेण तेनार्चौ देवी हरिहरावुभौ॥२५॥
नरकाणामधोभागे स्थितः कालाग्निसञ्ज्ञकः। तदधो हट्टकश्चैव अनन्तस्तदधः स्मृतः॥२६॥
यस्यैतत्सकलं विश्वं मूर्धाग्रे सर्षपायते। इत्यनन्तप्रभावात्स ह्यनन्त इति कीर्त्यते॥२७॥
दिशां गजास्तत्र पद्मकुमुदाञ्जनवामनाः। तदर्धोऽण्डकटाहश्च एकविरास्ति तत्र च॥२८॥
चतुर्लक्षसहस्त्राणि नवतिश्च शतानि च। एतेनैव प्रमाणेन उदकं च ततः स्मृतम्॥२९॥

जो शास्त्र के आदेश का उल्लंघन करके पापाचरण रत है, वह हजारों-हजार नरक में निमज्जित होता है। इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति इन सब नरकों से छुटकारा पाने हेतु वेद-विधान द्वारा हरि-हर की अर्चना करे। नरकों के नीचे कालाग्नि है। उसके नीचे हट्टक हैं। उसके नीचे अनन्तदेव स्थित हैं। उनके ही मस्तक पर समस्त विश्व की स्थिति है। असाधारण सामर्थ्यवान् होने के कारण वे अनन्त हैं। पद्म, कुमुद, अंजन तथा वामन नामक दिग्गज वहां विद्यमान रहते हैं। उसके नीचे अण्डकटाह है। वहां एकवीरा देवी की स्थिति है। पातालतल से यहां तक का समष्टि परिमाण ४ लाख नब्बे हजार योजन है। तदनन्तर विशाल जलराशि है।।२४-२९।।

तदधो नरकाः कोट्यो द्विकोट्यऽग्रिस्ततो महान्। चत्वारिंशत्सहस्त्रैश्च तदधस्तम उच्यते॥३०॥
चत्वारिंशच्च कोट्यस्तु चतस्त्रश्च ततः पराः। एकोननवतिर्लक्षाः सहस्त्राशीतिरेव च॥३१॥
तदधोऽण्डकटाहोऽथकोटिमात्रस्तथापरः। देवी युक्ताकपालीशादण्डहस्तेनचापिसा॥३२॥
देवीनां कोटिकोटीभिः सम्वृता तत्र पालिनी। सङ्कर्षणस्य निःश्वासप्रेरितो दाहकोऽनलः॥३३॥
कालाग्निं प्रेरयत्येव कल्पान्ते दह्यते जगत्। एवं विधमधःसूत्रं निर्मितं चाऽत्र भारत॥३४॥

यहां से नीचे उसके नीचे करोड़ों योजन स्थान में व्याप्त नरक समूह है। उसके नीचे ४० सहस्त्र योजन तक तमःराशि है। उसके ४४ शत कोटि, ८९ लाख, ८० सहस्त्र योजन नीचे अण्डकटाह है। अण्डकटाह के एक लाख योजन के पश्चात् गभीर तमः प्रदेश में एकवीरा देवी विराजित हैं। इनका नामान्तर है कपालीशा। ये दण्ड धारण करके तथा कोटि-कोटि देवियों से घिरी रहकर उस प्रदेश का पालन करती हैं। कल्पान्त काल में संकर्षण देव की निःश्वास वायु से कालाग्नि संवर्धित होकर इस समस्त जगत् को दग्ध कर देता है। हे भारत! अधोभाग इसी प्रकार का है।।३०-३४।।

मध्यसूत्रे कटाहे च पालकान्स्ताञ्छृणुष्व मे। वसुधामास्थितः पूर्वे शङ्खपालश्चदक्षिणे॥३५॥
तक्षकेशः स्थितः पश्चादुत्तरे केतुमानिति। हरसिद्धिः सुपर्णाक्षीभास्करायोगनन्दिनी॥३६॥
कोटिकोटी युता देवी देवीनां पालयत्यदः। एवमेतन्महाश्चर्यंब्रह्माण्डं स्थापितं च यैः॥३७॥
नमामि तानहं नित्यं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्। विष्णुलोको रुद्रलोको बहिश्चाऽस्मात्प्रकीर्त्यते॥३८॥

अब अण्डकटाह के मध्यभाग के जो पालक हैं उनका विवरण सुनो। पूर्व में वसुधामा, दक्षिण में शंखपाल, पश्चिम में तक्षकेश, उत्तर में केतुमान् वर्त्तमान हैं। वसुधामा की शक्ति है हयसिद्धि। शंखपाल की शक्ति हैं सुपर्णाक्षि, तक्षकेश की शक्ति हैं भास्करा तथा केतुमान् की शक्ति हैं देवी योगनन्दिनी। ये अन्य करोड़ों देवियों के साथ मिलित होकर मध्यभाग का पालन करते हैं। जिन्होंने एवंविध महाश्चर्य रूप ब्रह्माण्ड की स्थापना की है, मैं उन

ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर को नित्य प्रणाम करता हूं। विष्णुलोक तथा रुद्रलोक अण्डकटाह के बाहर स्थित कहा गया है।।३५-३८।।

तं च वर्णयितुं ब्रह्मा शक्तोनैवाऽस्मदादयः। विमुक्तायत्र संयान्ति नित्यंहरिहरव्रताः॥३९॥
ब्रह्माण्डं सम्वृतं ह्येतत्कटाहेन समन्ततः। कपित्थस्य यथा बीजं कटाहेन सुसम्वृतम्॥४०॥
दशोत्तरेण पयसा वृतं तच्चाऽपितेजसा। तेजश्च वायुना वायुर्नभसाऽहन्तया च तत्॥४१॥
अहङ्कारश्च महता तं चापि प्रकृतिः परा। दशोत्तराणि सर्वाणिषडाहुः सप्तमं च तत्॥४२॥
प्राकृतं चरणं पार्थ तदनन्तं प्रकीर्तितम्। अण्डानां तु सहस्राणांसहस्राण्ययुतानि च॥४३॥
ईदृशानां तथाचात्रकोटिकोटिशतानि च। सर्वाण्येवम्विधान्येवयादृशंकीर्तितंत्विदम्॥४४॥
यस्यैवं वैभवं पार्थ! तं नमामि सदाशिवम्। अहो मन्दः स पापात्मा को वा तस्मादचेतनः॥४५॥

नित्य हर तथा हरिभक्तिपरायण जनगण मुक्तिलाभ करके विष्णुलोक तथा रुद्रलोक प्राप्त करते हैं। ब्रह्मा ही इन लोकद्वय का वर्णन कर सकने में समर्थ हैं। हमलोगों द्वारा उसका वर्णन कर सकना साध्य ही नहीं है। जैसे कैंथा के आवरण खोल में उसके बीज रहते हैं, उसी प्रकार से अण्डकटाह द्वारा समस्त ब्रह्माण्ड आवरित है। यह अण्डकटाह दसगुने जल से, जल दसगुणित तेज से, तेज दस गुणित वायु से, वायु दसगुण आकाश से, आकाश, दसगुणित अहंकार तत्व से तथा अहंकार तत्व दसगुणित महत्तत्त्व द्वारा तथा यह महत्तत्त्व पराप्रकृति से समावृत है। हे पार्थ! यह प्रकृति अनन्त है। हे अर्जुन! ब्रह्माण्ड में इसी प्रकार से स्थूल-सूक्ष्म कितने सैकड़ों, सहस्रों अयुत-अयुत कोटि-कोटि आवरण हैं, तथापि मैंने जैसे वर्णन किया है, समस्त आवरण को तदनुरूप ही जानो। हे पार्थ! जिनका ऐसा वैभव है, मैं उन सदाशिव को प्रणाम करता हूं। जो ऐसे जगत् सम्मोह से त्राण प्रदान करते हैं, उन शिव का भजन जो नहीं करता, वैसे मूढ़ की अपेक्षा कौन अधिक अज्ञानी होगा?।।३९-४५।।

य एवंविधसम्मोहतारकं न शिवं भजेत्। अथ ते कीर्तयिष्यामिकालमानंनिबोधतत्॥४६॥

काष्ठा निमेषा दश पञ्च चाहुस्त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत्कला हि।
त्रिंशत्कलाश्चापि भवेन्मुहूर्तं तत्त्रिंशता रात्र्यहनी उभे च॥४७॥

दिवसेपञ्च कालाःस्युस्त्रिमुहूर्ताः शृणुष्वतान्। प्रातस्ततः सङ्गवश्चमध्याह्नश्चापराह्णकः॥४८॥
सायाह्नः पञ्चपञ्चापि मुहूर्ता दश पञ्च च। अहोरात्राः पञ्चदश पक्ष इत्यभिधीयते॥४९॥
मासः पक्षद्वयेनोक्तो द्वौ मासौ चार्कजावृतुः। ऋतुत्रयं चाप्ययनं द्वेऽयने वर्षमुच्यते॥५०॥
चतुर्भेदं मासमाहुः पञ्चभेदं च वत्सरम्। सम्वत्सरस्तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः॥५१॥
इद्वत्सरस्तृतीयोऽसौ चतुर्थश्चानुवत्सरः। पञ्चमश्च युगोनाम गणनानिश्चयो हि सः॥५२॥
मासेन च मनुष्याणामहोरात्रं च पैतृकम्। कृष्णपक्षस्त्वहः प्रोक्तः शुक्लपक्षश्च शर्वरी॥५३॥
मानुषेण च वर्षेण दैविको दिवसः स्मृतः। अहस्यत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम्॥५४॥
वर्षेण चैव देवानां मतः सप्तर्षिवासरः। सप्तर्षीणां च वर्षेण ध्रौवश्च दिवसः स्मृतः॥५५॥

अब कालमान का वर्णन सावधान होकर श्रवण करो। पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा, ३० काष्ठा की एक

कला, ३० कला का एक मुहूर्त्त, ३० मुहूर्त्त का दिन-रात होता है। दिन के १५ मुहूर्त्त में ३-३ मुहूर्त्त करके ५ कालविभाग होता है। यथा—प्रातः, सङ्गव, मध्याह्न, अपराह्न, सायाह्न। १५ दिन रात का एक पक्ष, दो पक्ष का एक मास माना गया है। दो सौर मास की एक ऋतु, तीन ऋतु का एक अयन तथा दो अयन का एक वर्ष होता है। मास ४ प्रकार का तथा वर्ष ५ प्रकार का कहते हैं। प्रथम संवत्सर, द्वितीय परिवत्सर, तृतीय इद्वत्सर, चतुर्थ अनुवत्सर तथा पंचम वत्सर का नाम है युग। मनुष्यों की काल गणना में युग ही अंतिम है। मनुष्यगण का १ मास पितरों का एक अहोरात्र (रात-दिन) होता है। कृष्णपक्ष उनका दिन है। शुक्लपक्ष उनकी रात्रि है। मनुष्यों का १ वर्ष देवगण का एक अहोरात्र है। उत्तरायण उनका दिन है, दक्षिणायन रात। देवगण का एक वर्ष सप्तर्षियों का एक अहोरात्र है। सप्तर्षिगण का १ वर्ष ध्रुव का एक अहोरात्र कहा गया है।।४६-५५।।

मनुष्याणां च वर्षाणि लक्षसप्तदशैव तु। अष्टाविंशतिसहस्त्राणि कृतं त्रेतायुगं ततः॥५६॥
लक्षद्वादशसाहस्त्रषण्णवत्यधिकाः पराः। अष्टौ लक्षश्चतुःषष्टिसहस्त्राणि च द्वापरः॥५७॥
चतुर्लक्षन्तु द्वात्रिंशत्सहस्त्राणि कलिः स्मृतः। चतुर्भिरैतैर्देवानां युगमित्यभिधीयते॥५८॥
आयुर्मनोर्युगानाञ्च साधिका ह्येकसप्ततिः। चतुर्दशमनूनाञ्च कालेन ब्रह्मणो दिनम्॥५९॥
युगानाञ्च सहस्त्रेण स च कल्पः शृणुष्व तान्। भवोद्भवस्तपोभव्य ऋतुर्वह्निर्वराहकः॥६०॥
सावित्र आसिकश्चापि गान्धारः कुशिकस्तथा।
ऋषभश्च तथा खड्गो गान्धारीयश्च मध्यमः॥६१॥
वैराजश्च निषादश्च मेघवाहनपञ्चमौ। चित्रको ज्ञान आकृतिर्मीनो दंशश्चबृंहकः॥६२॥
श्वेतो लोहितरक्तौ च पीतवासाः शिवः प्रभुः। सर्वरूपश्च मासोऽयमेवंवर्षशतावधिः॥६३॥
पूर्वार्धमपरार्धं च ब्रह्ममानमिदं स्मृतम्। विष्णोश्च शङ्करस्याऽपि नाहं शक्तश्च वर्णने॥६४॥
क्वाऽहमल्पमतिः पार्थ क्वाऽपरौ हरित्र्यम्बकौ।
दैविकेनैव मानेन पातालेष्वपि गण्यते॥६५॥
इति ते सूचितं बुद्ध्या शृणु तत्प्राकृतं पुनः॥६६॥

॥इति वैधात्रव्यवस्थितिः॥

मनुष्यों के १७ लाख २८ हजार वर्ष का सत्ययुग होता है। बारह लाख ९६ हजार वर्ष का त्रेतायुग, आठ लाख ६४ हजार वर्ष का द्वापर तथा ४ लाख ३२ हजार वर्ष का कलियुग होता है। ये चारों युग मिलाकर देवगण का एक युग होगा। एक-एक मन्वन्तर का परिमाण ७२ युग होता है। १४ मन्वन्तर काल ब्रह्मा का १ दिन है। इसका परिमाण है देवगण का १००० युग। इसे ही कल्प कहते हैं (१४ मन्वन्तर काल ही कल्प है)। कल्पों का नाम सुनो—भवोद्भव, तपोद्भव, ऋतु, वह्नि, वराह, सावित्र, आंसिक, गान्धार, कुशिक, ऋषभ, खड्ग, गान्धारीय, मध्यम, वैराज, निषाद, मेघवाहन, पञ्चम, चित्रक, ज्ञान, अकूति, मीन, दंश, बृंहक, श्वेत, लोहित, रक्त, पीतवासा, शिव, प्रभु, सर्वरूप। ये ३० कल्प ब्रह्मा का एक मास हैं। ऐसे १२ मास ब्रह्मा का एक वर्ष हैं। ऐसे १०० वर्ष तक ब्रह्मा का स्थिति काल कहते हैं। यह स्थितिकाल भी परार्द्ध तथा पूर्वार्द्ध रूप भागद्वयमय है। विष्णु तथा शंकर की आयु मैं वर्णन कर सकने में अक्षम हूं। हे पार्थ! कहां मैं क्षुद्रबुद्धि, कहां जगत्-पारवर्त्ती हरि-

हर! पाताल का वर्षमान भी देवताओं के वर्षमान के अनुरूप होता है। मैंने स्वबुद्धि के अनुसार कालपरिमाण कहा। अब प्राभृत विवरण सुनो।।५६-६६।।

(इति वैधात्र व्यवस्थितिः)

श्रीनारद उवाच

ऋषभोनाम यन्नाम्ना नानापाषण्डकल्पनाः।
कलौ पार्थ! भविष्यन्ति लोकानां मोहनात्मिकाः।।६७।।
तस्य पुत्रस्तु भरतः शतशृङ्गस्तु तत्सुतः। तस्य पुत्राष्टकं जातं तथैका च कुमारिका।।६८।।
इन्द्रदीपः कसेरुश्च ताम्रद्वीपोगभस्तिमान्। नागःसौम्यश्चगान्धर्वोवरुणश्चकुमारिका।।६९।।
वदनं चापि कन्यायाः पार्थ बर्करिकाकृति। शृणु तत्कारणं सर्वं महाश्चर्यसमन्वितम्।।७०।।

श्री नारद कहते हैं—हे पार्थ! कलिकाल में जिसके नाम से नाना प्रकार के लोकमोहकारी पाखण्ड धर्म प्रवर्त्तित हुये हैं, उन ऋषभ का पुत्र था भरत। भरत का पुत्र था शतशृङ्ग। उसके आठ पुत्र तथा एक कन्या थी। पुत्रों के नाम थे—इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रद्वीप, गभस्तिमान, नाग, सौम्या, गन्धर्व तथा वरुण। कन्या का नाम था कुमारिका। हे पार्थ! उस कन्या का मुख बकरे जैसा था। उसका कारण सुनो। वह अतीव आश्चर्यात्मक वृत्तान्त है।।६७-७०।।

महीसागरपर्यन्तं वृक्षराजि विराजिते। जालीगुल्मलताकीर्णे स्तम्भतीर्थस्यसन्निधौ।।७१।।
अजासमजतो मध्यात्काचिदेका न बर्करी। भ्रान्तासती समायाता प्रदेशे तत्र दुश्चरे।।७२।।
इतस्ततो भ्रमन्ती सा जालिमध्येसमन्ततः। निर्गन्तुंनैवशक्नोति क्षुत्पिपासार्दिताशुभा।।७३।।
विलग्ना जालिमध्ये तु ततः पञ्चत्वमागता। कालेनकियतातस्य त्रुटित्वाशिरसोह्यधः।।७४।।
पपात शनिदर्शे च महीसागरसङ्गमे। सर्वतीर्थमये तत्र सर्वपापप्रमोचने।।७५।।
शिरस्तु तदवस्थं हि समग्रं तत्र संस्थितम्। जालिगुल्मावलग्नं च तस्यानैवापतज्जले।।७६।।
शेषकायप्रपातेन महीसागरसङ्गमे। त्तीर्थस्य प्रभावेण बर्करी सा कुरूद्वह!।।७७।।
शतशृङ्गस्य वै राज्ञः सिहलेष्वभवत्सुता। मुखं बर्करिकातुल्यं व्यक्तं तस्या व्यजायत।।७८।।
दिव्यनारी शुभाकारा शेषकाये बभौ शुभा। पूर्वं तस्याप्यपुत्रस्य राज्ञः पुत्रशतोपमा।।७९।।
पुत्री जाता प्रमोदेन स्वजनानन्दवर्धिनी। ततस्तस्याविलोक्याऽथ मुखंबर्करिकाकृति।।८०।।
विस्मयं समनुप्राप्ताः सर्वे ते राजपूरुषाः। विषादं परमापन्नो राजा सान्तःपुरस्तदा।।८१।।
खिन्नाःप्रकृतयःसर्वास्तादृग्रूपविलोकनात्। तत्किमित्येतदाश्चर्यमूचुःपौराःसुविस्मिताः।।८२।।

महीसागर से लगाकर स्तम्भतीर्थ पर्यन्त गुल्म-लता से आवृत तरुलतामण्डित एक वन है। एक बार कोई बकरी का झुण्ड विचरण करते हुये उस वन में आया। वह झुण्ड इधर-उधर चरते हुये क्रमशः वहां गुल्म-लताओं से घिरे उस वन में भटकते एक बकरी गुल्मलताजाल से ढंके प्रदेश में आ पहुंची। वह नाना प्रयास करके भी लताजाल से छूटकर बाहर नहीं आ सकी। तदनन्तर क्षुधा-पिपासा से पीड़ित तथा लता-जाल में फंसी वहीं मृत हो

गयी। कुछ काल पश्चात् उसके शरीर का अधोभाग सड़कर निम्नस्थ सर्वपापहारी सर्वतीर्थमय महीसागर संगम में गिर गया तथापि उसका मस्तक पूर्ववत् लतागुल्म में ही फंसा पड़ा था। हे कुरुनन्दन! शतशृङ्ग सिंहल देश का राजा था। उस बकरी का आधा नीचे का अंग महीसागर संगम में गिरने के कारण उसने शतशृङ्ग राजा की कन्या के रूप में जन्म लिया, तथापि उसका मस्तक महीसागर संगम तीर्थ में नहीं गिरा था, तभी कन्या का मुख बकरी जैसा ही रहा। बाकी शरीर अत्यन्त सुन्दर तथा सुलक्षण सम्पन्न था। तब शतशृङ्ग के आठ पुत्र अभी नहीं जन्मे थे। तभी यह कन्या ही १०० पुत्रों के समान उनके लिए आनंदप्रदा थी। इस जन्म से सभी आनंदित थे। लेकिन जब कन्या का मुख सबने बकरी जैसा देखा तब वे नितान्त दुःखी तथा विस्मित हो गये। ऐसा अभूतपूर्व रूप देखकर राजा-प्रजा, अन्तःपुरवासी आदि सभी दुःखपूर्वक कहने लगे, "यह क्या आश्चर्य!"।।७१-८२।।

ततः सा यौवनं प्राप्तासाक्षाद्देवसुतोपमा। स्वमुखं दर्पणे वीक्ष्य स्मृतः पूर्वोभवस्तया।।८३।।
तत्तीर्थस्य प्रभावेण मातृपित्रोर्निवेदितम्। विषादो नैव कर्तव्योमदर्थेतात निश्चितम्।।८४।।
मा शोकं कुरु मे मातः! पूर्वजन्मार्जितं फलम्।
ततः पूर्वं स्ववृत्तान्तमुक्त्वा सा च कुमारिका।।८५।।

तत्पश्चात् देवकन्या जैसी उस शतशृंग की कन्या ने एक दिन दर्पण में अपना मुख देखा, तब तीर्थ की महिमा से उसे अपना पूर्व जन्म याद आ गया। तब उसने जाकर माता-पिता से कहा—"हे माता! आप मेरे कारण शोक न करें। हे पिता! आप भी शोक न करें। यह मेरे पूर्व जन्म का फल है" तब उसने अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त उनसे कहा।।८३-८५।।

पूर्वजन्मोद्भवः कायस्तस्या यत्रापतत्तथा। गमनाय तमुद्देशं विज्ञप्तौ पितरौ तया।।८६।।
अहं तात गमिष्यामि महीसागरसङ्गमम्। भवामि तत्र सम्प्राप्ता यथा कुरु तथा नृप।।८७।।
ततः पित्रा प्रतिज्ञातं शतशृङ्गेण तत्तथा। तस्या सम्वाहनं चक्रे राजापोतैः सरत्नकैः।।८८।।
स्तम्भतीर्थं ततः साऽपि प्राप्यपोतार्थसंयुता। भूरिदानं ततश्चक्रे दानं सर्वस्वलक्षणम्।।८९।।
जालिगुल्मान्तरेऽन्विष्य ततो दृष्टंनिजंशिरः। अस्थिचर्मावशेषं च तदादाय प्रयत्नतः।।९०।।
दग्ध्वा सङ्गमसान्निध्ये क्षिप्तान्यस्थीनि सङ्गमे। ततस्तीर्थप्रभावेणमुखंजातंशशिप्रभम्।।९१।।
न तादृग्देवकन्यानां न तादृङ्नागयोषिताम्।
न तादृङ्मन्तर्यनारीणां तस्या यादृङ्मुखं मुखम्।।९२।।

तदनन्तर पूर्वजन्म में जहां से उसका शरीर गिरा था, वहां जाने का मन्तव्य माता-पिता से उसने कहा। कन्या ने कहा—"हे तात! मैं वहीं महीसागरसंगम क्षेत्र में जाऊंगी। मैं वहां जा सकूं, ऐसी व्यवस्था करिये।" पिता ने कहा—"वही करता हूं।" तब उन्होंने धन-रत्न समन्वित उत्तम जहाज सज्जित कराया। कन्या ने वहां आकर अनेक धन-रत्न दान किया। इतना दान किया कि सब कुछ प्रदान कर दिया। खोज करने पर गुल्मजाल में उसे अपना पूर्व जन्म का अस्थिचर्मावसिष्ट मस्तक मिला। उसने उसे संगमतीर्थ के पास दग्ध करके अस्थियों को तत्काल तीर्थ में छोड़ा। तत्काल तीर्थ की महिमा से उसका मुख चन्द्रमा के समान सुदृश्य हो गया। देवकन्या, नागकन्या अथवा मानव स्त्रियों में ऐसा सुदृश्य मुख किसी का भी नहीं देखा गया था।।८६-९२।।

सुरासुरनराः सर्वे तस्यारूपेण मोहिताः। बहुधा प्रार्थयन्त्येनां न सा वरमभीप्सति॥९३॥
कष्टं तथा मुदा तत्र प्रारब्धं दुश्चरं तपः। ततः सम्वत्सरे पूर्णे देवदेवो महेश्वरः॥९४॥
प्रत्यक्षतां गतस्तस्यैवरदोऽस्मीतिचाब्रवीत्। ततस्तं पूजयित्वाचकुमारीवाक्यमब्रवीत्॥९५॥
यदि तुष्टोऽसि देवेश! यदि देयो वरो मम। सान्निध्यं क्रियातमत्र सर्वकालं हि शङ्कर॥९६॥
एवमस्त्विति शर्वेण प्रोक्ते हृष्टा कुमारिका। यत्र दग्धं शिरस्तस्याबर्कर्याःकुरुसत्तम॥९७॥
बर्करेशः शिवस्तत्र तथा संस्थापितस्तदा। मन्मुखान्महदाश्चर्यं श्रुत्वेदं च तलातलात्॥९८॥
स्वस्तिकोनाम नागेन्द्रःकुमारींद्रष्टुमागतः। शिरसा गच्छतातेनयत्रोत्क्षिप्ताचभूरभूत्॥९९॥
ईशाने बर्करेशस्य कृपोऽभूत्स्वस्तिकाभिधः। पूरितो गङ्गया पार्थ सर्वतीर्थफलप्रदः॥१००॥

तब उसके रूप से मुग्ध होकर न जाने कितने सुर-असुर-मनुष्य आकर उसकी प्रार्थना करने लगे, तथापि उसने किसी का भी पतिरूपेण वरण नहीं किया। वह उसी तीर्थ में आनन्दित होकर कठोर तप करने लगी। तत्पश्चात् वर्षान्त में देवदेव महेश्वर ने उसे दर्शन देकर कहा—"मैं वरदान देने आया हूं।" कन्या ने उनकी अर्चना करके कहा—"हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं तथा मुझे वर देना चाहते हैं, तब मेरी प्रार्थना यह है कि आप यहां सदा सन्निहित रहिये।" भगवान् 'तथास्तु' कहकर अन्तर्हित हो गये। तब कन्या ने प्रसन्न मन से जहां उसने पूर्वजन्म वाला बकरी का मुख दग्ध किया था, वहीं बर्करेश नामक शिवलिंग प्रतिष्ठित किया। हे अर्जुन! मुझसे यह वृत्तान्त सुनकर तलातल लोक से स्वास्तिक नामक नागराज उस कन्या को देखने वहां आया। वह नागेन्द्र बर्करेश के ईशान कोण में जहां मिट्टी का भेदन करके पाताल से निकला था, वहां स्वस्तिक नामक कूप हो गया, क्योंकि गंगादेवी ने अपने जल से उस गर्त्त को भर दिया। हे पार्थ! वह तीर्थरूप कूप समस्त तीर्थों का फल देने वाला है॥९३-१००॥

दृष्ट्वा च स्थापितं लिङ्गं शिवस्तुष्टो वरं ददौ। येषां मृतशरीराणामत्र दाहः प्रजायते॥१०१॥
क्षिप्यन्तेऽब्धौ तथाऽस्थीनि तेषां स्यादक्षया गतिः।
ते स्वर्गे सुचिरं कालं वसित्वाऽत्र समागताः॥१०२॥
राजानः सर्वसम्पूर्णाः सप्रतापा भवन्ति ते। बर्करेशं च यो भक्त्यासम्पूजयतिमानवः॥१०३॥
स्नात्वाऽर्णवमहीतोये तस्य स्यान्मनसेप्सितम्।
कार्तिके च चतुर्दश्यां कृष्णायां श्रद्धयान्वितः॥१०४॥
कूपे स्नानंनरःकृत्वा सन्तर्प्यच पितॄन्निजान्। पूजयेद्बर्करेशं यः सर्वपापैः स मुच्यते॥१०५॥
एवं लब्ध्वा वरान्सर्वान्सापुनः सिंहलं ययौ। शतशृङ्गाय पित्रेचवृत्तान्तंस्वंन्यवेदयत्॥१०६॥

बर्करेश लिंग स्थापित देखकर शंकर ने प्रसन्नतापूर्वक कन्या को यह वर दिया "जो लोग यहां मृत शरीर का दाह करके अस्थि को सागर में प्रवाहित करेंगे, उनको अक्षय गति प्राप्त होगी। वे दीर्घकाल स्वर्ग में आनन्दित होकर धन-जन-समृद्ध राजा के रूप में इस पृथिवी पर जन्म लेकर प्रतापी रूप से राज्य करेंगे। जो व्यक्ति महीसागर संगम तीर्थ में स्नानोपरान्त बर्करेश लिंग की अर्चना करेंगे, उनकी कामना पूर्ण होगी। कार्त्तिक कृष्णा चतुर्दशी के दिन जो मानव श्रद्धा के साथ स्वस्तिक कूप में स्नान करके पितरों का तर्पण करके बर्करेश लिंग की अर्चना करेंगे,

उनको सभी पापों से मुक्ति मिलेगी।'' उस कन्या ने यह वरदान पाकर अपनी नगरी प्रस्थान किया तथा वहां पिता से समस्त वृत्तान्त निवेदित किया।।१०१-१०६।।

तच्छ्रुत्वा विस्मितोराजा लोकाःसर्वेचफाल्गुन। प्रशशंसुर्महीतीर्थमाजग्मुश्चकृतादराः॥१०७॥
स्नात्वा दत्त्वाच दानानि विविधानिचतेततः। सिंहलंचययुर्भूयस्तीर्थमाहात्म्यहर्षिताः॥१०८॥
अनिच्छन्त्यांकुमार्यांचवरंद्रव्यंचपार्थिवः। तथाऽन्यदपि प्रीत्याऽसौयद्ददौनृपतिःशृणु॥१०९॥
इदं भारतखण्डं च नवधैव विभज्य सः। ददावष्टौ स्वपुत्राणां कुमार्यै नवमं तथा॥११०॥
तेषां विभेदान्वक्ष्यामि पर्वतैरुपशोभितान्। पुत्रनामानि वर्षाणि पर्वतांश्च शृणुष्व मे॥१११॥
महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः। विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्ताऽत्र कुलपर्वताः॥११२॥
महेन्द्रपरतश्चैव इन्द्रद्वीपो निगद्यते। पारियात्रस्य चैवार्वाक्खण्डं कौमारिकं स्मृतम्॥११३॥
सहस्त्रमेकमेकं च सर्वखण्डान्यमूनि च। नदीनां सम्भवं चापि संक्षेपाच्छ्रृणु फाल्गुन॥११४॥
वेदस्मृतिमुखा नद्यः पारियात्रोद्भवा मताः। नर्मदासरसाद्याश्चनद्योविन्ध्याद्विनिर्गताः॥११५॥
शतद्रूचन्द्रभागाद्या ऋक्षपर्वतसम्भवाः। ऋषिकुल्याकुमार्याद्याः शुक्तिमत्पादसम्भवाः॥११६॥

तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या कावेरी च महीनदी।
कृष्णा वेणी भीमरथी सह्यपादोद्भवाः स्मृताः॥११७॥

कृतमालाताम्रपर्णीप्रमुखा मलयोद्भवाः। त्रिसामऋष्यकुल्याद्या महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः॥११८॥
एवं विभज्य पुत्रेभ्यः कुमार्यै च महीपतिः। शतशृङ्गोगिरिंगत्वा उदीच्यतांतप्तवांस्तपः॥११९॥
तत्र तप्त्वा तपोघोरं ब्रह्मलोकं जगाम सः। शतशृङ्गो नृपश्रेष्ठः शतशृङ्गे नगोत्तमे॥१२०॥

यत्र जातोऽसि कौन्तेय! पाण्डोस्त्वं सोदरैः सह।
कुमारी च महाभागा स्तम्भतीर्थस्थिता सती॥१२१॥

हे फाल्गुन, अर्जुन! यह वृत्तान्त सुनकर राजा तथा सभी विस्मित होकर उस महातीर्थ की प्रशंसा करने लगे। वे आग्रहपूर्वक वहां आये तथा स्नानान्त में विविध दान करके सहर्ष उस तीर्थ की महिमा के सम्बन्ध में परस्परतः वार्त्तालाप करते हुये सिंहल लौटे। राजा उस कन्या के प्रति अत्यन्त प्रसन्न हो गये। उन्होंने उसे वर तथा अन्य द्रव्य दिया, उसे सुनें। यद्यपि कन्या की इच्छा नहीं थी कि वह कुछ ग्रहण करे, तथापि राजा ने भारतभूखण्ड का ९ भाग किया। ८ भाग ८ पुत्रों को देकर एक भाग कन्या को प्रदान किया। पर्वतमाला से शोभित समस्त भूभाग के भेद को कहता हूं। वे भूभाग वर्ष कहलाते हैं। उनका नाम राजा के पुत्रों के ही नाम से पड़ा है। अब वहां के पर्वतों का वर्णन श्रवण करो। महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान, ऋक्षपर्वत, विन्ध्य तथा पारियात्र। ये ७ कुल पर्वत हैं। महेन्द्र पर्वत के पश्चात् भाग का जो अंश है, उसे इन्द्रदीप कहा गया। पारियात्र के पश्चात् भाग के अंश को कौमारिक कहते हैं। उक्त ९ भागों में प्रत्येक भाग १००० योजन का है। वेद-स्मृति वर्णित प्रमुख नदियां पारियात्र से निकली हैं। नर्मदा-सरसादि नदियां विन्ध्य से प्रादुर्भूता हैं। शतद्रु-चन्द्रभागा प्रभृति नदियां ऋक्ष पर्वत से निर्गत हैं। ऋषिकुल्या, कुमारी प्रभृति नदियां शुक्तिमान पर्वत की घाटी से निर्गत हैं। ताप्ती, पयोष्णि, निर्विन्ध्या, कावेरी,

महीनदी, कृष्णा, वेणी, भीमरथी, सह्य पर्वत की घाटी से निर्गत हैं। कृतमाला, ताम्रपर्णी प्रभृति मलय पर्वत से निकली हैं। त्रिसामा, ऋष्यकुल्या आदि नदी महेन्द्र पर्वत से उत्पन्न हैं। महाराज शतशृङ्ग ने इस प्रकार भारतभूमि का विभाग करके पुत्रों तथा कन्या को प्रदान किया तथा उत्तर दिशा में राजा शतशृङ्ग पर्वत पर जाकर घोर तप करने लगे। इस प्रकार राजा ने शतशृङ्ग पर्वत पर कठोर तप किया तथा उनको ब्रह्मलोक प्राप्त हुआ। हे कुन्तिपुत्र! तुम्हारा भी भाईयों के साथ इसी शतशृङ्ग पर्वत पर जन्म हुआ था। वह महाभागा कुमारी भी स्तम्भ तीर्थ में स्थित हो गयी।।१०७-१२१।।

खण्डोद्भवेन द्रव्येण तेपे दानानि यच्छती।
ततःकेनाऽपि कालेन भ्रातृभ्योऽष्टभ्यएवच॥१२२॥
महावीर्यबलोत्साहा जाता नव नवात्मजाः। ते समेत्य समागम्य कुमारींप्रोचिरेततः॥१२३॥
कुलदेवीत्वमस्माकंप्रसादं कुरु नः शुभे!। अष्टौखण्डानिचास्माकं विभज्यस्वयमेवच।
देहि द्वासप्ततीनां नो विभेदः स्याद्यथा न नः॥१२४॥
इत्युक्ता सर्वधर्मज्ञा विज्ञाने ब्रह्मणा समा। द्वासप्ततिविभेदैःसा नवखण्डान्यचीकरत्॥१२५॥
तेषां नामानि ग्रामांश्चपत्तनानिचफाल्गुन। वेलाकूलानि संख्यांचवक्ष्यामितवतत्त्वतः॥१२६॥

वह महाभागा कुमारी अपने कौमारिक खण्ड के राज्य से जो द्रव्य अर्जित होता, वह सब दानादि सत्कर्म में व्यय करती तथा सर्वदा तपःश्चरण रत रहती थी। कालान्तर में उसके भाईयों में से प्रत्येक के ९-९ पुत्र उत्पन्न हुये। वे सब जब बड़े हो गये, तब सब मिलकर कुमारी के पास आये और कहा—"हे शुभे! आप तो हमारी कुल देवी हैं। आप कृपा करके हम लोगों के पिता को मिली आठ खण्ड भूमि के ७२ भाग कर दीजिये, ताकि हम लोगों के बीच पारस्परिक विवाद न हो।" तब ब्रह्मा की ही तरह कुमारी ने अपनी भी भूमि मिलाकर ९ खण्ड भूमि के ७२ भाग कर दिये। हे अर्जुन! मैं उन सब खण्डों के नाम, ग्राम, पत्तन, बेला, कूल तथा परिणाम आदि का यथायथ वर्णन करता हूं।।१२२-१२६।।

कोटिश्चतस्त्रो ग्रामाणां नीवृदासीच्च मण्डले। सार्धकोटिद्वयग्रामैर्देशोबालाकउच्यते॥१२७॥
सपादकोटिर्ग्रामाणां पुरसाहणकेविदुः। लक्षाश्चत्वारएवाऽपि ग्रामाणामन्धलेस्मृताः॥१२८॥
एकोलक्षश्च नेपाले ग्रामाणां परिकीर्तिताः।
षट्त्रिंशल्लक्षमानं तुकान्यकुब्जेप्रकीर्तितम्॥१२९॥
द्वासप्ततिस्तथा लक्षा ग्रामागाजणके स्मृताः। अष्टादशतथालक्षाग्रामाणां गौडदेशके॥१३०॥
कामरूपे च ग्रामाणां नवलक्षाः प्रकीर्तिताः। डालहे वेदसञ्ज्ञेतु ग्रामाणांनवलक्षकम्॥१३१॥
नवैव लक्षा ग्रामाणां कान्तपुरेप्रकीर्तिताः। नवलक्षास्तथाचैव माचिपूरे प्रकीर्तिताः॥१३२॥
ओड्डियाणे तथा देशे नवलक्षाः प्रकीर्तिताः। जालन्धरेतथा देशे नवलक्षाःप्रकीर्तिताः॥१३३॥
लोहपूरे तथा देशे लक्षाः प्रोक्ता नवैव च। ग्रामाणां सप्तलक्षं च पाम्बीपुरेप्रकीर्तितम्॥१३४॥
ग्रामाणां सप्तलक्षं च रटराजे प्रकीर्तितम्। हरीआले च ग्रामाणां लक्षपञ्चकसम्मितम्॥१३५॥

सार्धलक्षत्रयं प्रोक्तं द्रडस्य विषये तथा। सार्धलक्षत्रयं प्रोक्तं तथावम्भणवाहके॥१३६॥
एकविंशतिसाहस्त्रं ग्रामाणां नीलपूरके। तथामलविषये पार्थ ग्रामाणामेकलक्षकम्॥१३७॥
नरेन्दुनामदेशे तु लक्षमेकं सपादकम्। अतिलाङ्गलदेशे च लक्षः प्रोक्तः सपादकः॥१३८॥
लक्षाष्टादशसाहस्त्रं नवती द्वे च मालवे। सयम्भरे तथा देशे लक्षः प्रोक्तः सपादकः॥१३९॥
मेवाडे च तथा प्रोक्तो लक्षश्चैकःसपादकः। अशीतिश्च सहस्त्राणिवागुरिःपरिकीर्तितः॥१४०॥
ग्रामसप्ततिसाहस्त्रो गुर्जरात्रः प्रकीर्तितः। तथा सप्ततिसाहस्त्रः पाण्डोर्विषयः एव च॥१४१॥
जहाहुतिसहस्त्राणि द्वाचत्वारिंशदेव च। अष्टषष्टिसहस्त्राणि प्रोक्तं काश्मीरमण्डलम्॥१४२॥
षष्टित्रिंशत्सहस्त्राणि ग्रामाणां कौङ्कणेविदुः। चतुर्दशशतं द्वे च विंशतोलघुकौङ्कणम्॥१४३॥
सिन्धुः सहस्त्रदशके ग्रामाणां परिकीर्तितः॥१४४॥
चतुर्दशशते द्वे च विंशतिः कच्छमण्डलम्। पञ्चपञ्चाशत्सहस्त्रं ग्रामाः सौराष्ट्रमुच्यते॥१४५॥
एकविंशतिसाहस्त्रो लाडदेशः प्रकीर्तितः। अतिसिन्धुश्च ग्रामाणां दशसाहस्त्र उच्यते।
तथा चाश्वमुखं पार्थ! दुशसाहस्त्रमुच्यते॥१४६॥
सहस्त्रदशकं चाऽपि एकपादः प्रकीर्तितः॥१४७॥
तथैव दशसाहस्त्रो देशः सूर्यमुखः स्मृतः। एकबाहुस्तथा देशो दशसाहस्त्रमुच्यते॥१४८॥
सहस्त्रदशकं चैव सञ्ज्ञायुरिति देशकः। शिवनामा तथा देशः सहस्त्रदशकः स्मृतः।
सहस्त्राणि दश ख्यातं तथा काहलयंजयः॥१४९॥
लिङ्गोद्भवस्तथा देशः सहस्त्राणि दशैव च। भद्रश्च देवभद्रश्च प्रत्येकं दशकौ स्मृतौ॥१५०॥
षट्त्रिंशच्च सहस्त्राणि स्मृतौ चटविराटकौ। षट्त्रिंशच्चसहस्त्राणियमकोटिःप्रकीर्तिता॥१५१॥
अष्टादश तथा कोट्यो रामको देश उच्यते। तोमरश्चापिकर्णाटो युगलश्चत्रयस्त्विमे॥१५२॥
सपादलक्षग्रामाणां प्रत्येकं परिकीर्तितः। पञ्चलक्षाश्च ग्रामाणांस्त्रीराज्यंपरिकीर्तितम्॥१५३॥
पुलस्त्यविषयश्चापि दशलक्षक उच्यते। प्रत्येकं लक्षदशकौ देशौ काम्बोजकोशलौ॥१५४॥
ग्रामाणां च चतुर्लक्षोबाल्हिकःपरिकीर्त्यते। षट्त्रिशच्चसहस्त्राणि लङ्कादेशःप्रकीर्तितः॥१५५॥
चतुःषष्टिसहस्त्राणि कुरुदेशः प्रकीर्तितः। सार्धलक्षस्तथा प्रोक्तः किरातविजयो जयः॥१५६॥
पञ्च प्राहुस्तथा लक्षान्विदर्भायां च ग्रामकान्। चतुर्दशसहस्त्राणि वर्धमानंप्रकीर्तितः॥१५७॥
सहस्त्रदशकं चापि सिंहलद्वीपमुच्यते। षट्त्रिंशच्च सहस्त्राणि ग्रामाणां पाण्डुदेशकः॥१५८॥
लक्षैकं च तथा प्रोक्तं ग्रामाणां तु भयाणकम्। षट्षष्टिंचसहस्त्राणिदेशोमागधउच्यते॥१५९॥
षष्टिसहस्त्राणि तथा ग्रामाणां पाङ्गुदेशकः। त्रिंसत्साहस्त्र उक्तश्च ग्रामाणांचचरेन्दुकः॥१६०॥
पञ्चविंशतिसाहस्त्रं मूलस्थानं प्रकीर्तितम्। चत्वारिंशत्सहस्त्राणि ग्रामाणां यावनः स्मृतः॥१६१॥
चत्वार्येव सहस्त्राणि पक्षबाहुरुदीर्यते। द्वासप्ततिरमी देशाः ग्रामसंख्याः प्रकीर्तिताः॥१६२॥

नीवृत प्रदेश में ४ करोड़ ग्राम थे। बालक देश में २ $\frac{१}{२}$ कोटि, साहन देश में १ $\frac{१}{२}$ कोटि, अन्धल देश में ४ लाख, नेपाल देश में एक लाख, कान्यकुब्ज देश में ३६ लाख, गोजन देश में ७२ लाख, गौड़ देश में १८ लाख, कामरूप देश में ९ लाख, वेद नामक प्रसिद्ध ताहल देश में ९ लाख, कान्ति देश में ९ लाख, माचि देश में ९ लाख, ओड्डीयान देश में ९ लाख, जालन्धर देश में ९ लाख, लोह देश में ९ लाख, पाम्बी देश में ७ लाख, रटराज देश में ७ लाख, हरिआल देश में ५ लाख, द्रड देश में ३ $\frac{१}{२}$ लाख, वम्भणवाहक देश में ३ $\frac{१}{२}$ लाख, नील देश में २१ हजार, अम्ल देश में १ लाख, नरेन्दु देश में १ $\frac{१}{४}$ लाख, अतिलांगल देश में ७० हजार, पाण्डु देश में ७० हजार, जहाहूत देश में ४२ हजार, काश्मीर में ६८ हजार, कोंकण देश में ६३ हजार, लघुकौशल में चतुर्दशशत् चत्वारिंशत्, सिन्धुदेश में १० हजार, कच्छ देश में १४२२, सौराष्ट्र में ५५ हजार, लाड देश में २१ हजार, अतिसिन्धु देश में १० हजार, अश्वमुख देश में १० हजार, एकपाद देश में १० हजार, सूर्यमुख देश में १० हजार, एकबाहु देश में १० हजार, शिव देश में १० हजार, कालहयञ्जय देश में १० हजार, लिंगोद्भव देश में १० हजार, भद्र देश में १० हजार, देवभद्र देश में १० हजार, चट् देश में ३६ हजार, विराट देश में ३६ हजार, यमकोटि में ३६ हजार, रामक देश में १८ करोड़, तोमर देश में ४ $\frac{१}{४}$ लाख, कर्णाटदेश में १ $\frac{१}{४}$ लाख, युगल देश में सवा लाख, स्त्री राज्य में ५ लाख, पुलस्त्य देश में १० लाख, काम्बोज देश में १० लाख, कोशल देश में १० लाख, वाल्हीक देश में ४ लाख, लंका देश में ३६ हजार, कुरु देश में ६४ हजार, विजय नामक किरात देश में ५० हजार, विदर्भ देश में ५ लाख, वर्द्धमान देश में १४ हजार, सिंहल द्वीप में १० हजार, पाण्डु देश में ३६ हजार, भयानक देश में १ लाख, मागध देश में ६६ हजार, पाङ्गु देश में साठ हजार, वरेन्दुक देश में ३० हजार, मूल स्थान देश में २५ हजार, यवन देश में ४४ हजार तथा पंचबाहु देश में ४०४० ग्राम हैं। इन ७२ देशों में ग्राम तथा देश का नाम कहा।।१२७-१६२।।

एवं भरतखण्डेऽस्मिन्षण्णवत्येव कोटयः। द्वासप्ततिस्तथा लक्षाःपत्तनानांप्रकीर्तिताः॥१६३॥
षट्त्रिंशच्च सहस्राणि वेलाकूलानि भारत। एवंविभज्य खण्डानिभ्रातृव्याणांददौनव॥१६४॥
आत्मीयमपि सा देवी अनिच्छुष्वपितेषुच। यतोमान्येतिभगिनीप्रतिक्रुध्यन्तिभ्रातरः॥१६५॥
भ्रातॄन्प्रति भगिनीच विचार्यैवददौशुभा। तत्कृत्वा सानुमान्यैतान्स्तम्भतीर्थमुपागता॥१६६॥
तदा तेषु च देशेषु चतुर्वर्गस्य साधनम्। सर्वेषां प्रवरं प्रोक्तं कुमारीश्वरमेव च॥१६७॥
तत्राऽपि गुप्तक्षेत्रं च वेदैतत्सा कुमारिका। गुप्तक्षेत्रे कुमारेशं पूजयन्ती महाव्रता॥१६८॥
तस्थौ ह्रदेषु स्नायन्ती षट्सुचैवाऽपिसङ्गमे। ततः कालप्रकर्षाच्चप्रासादेस्कन्दनिर्मिते॥१६९॥
जीर्णेनव्यंस्वर्णमयंप्रासादंसाऽप्यकारयत्। ततस्तुष्टोमहादेवस्तस्याभक्त्यातितोषितः॥१७०॥
कुमारलिङ्गादुत्थाय प्रत्यक्षस्तामवोचत। भद्रे तवाहं भक्त्या च विज्ञानेन च तोषितः॥१७१॥
जीर्णः पुनरुद्धृतोऽयंप्रासादस्तेनतोषितः। तवनाम्नाचविख्यातोभविष्यामिकुमारिके॥१७२॥
कर्ताचापितथोद्धर्ता द्वौ वै समफलौ स्मृतौ। कुमारेशःकुमारीश इतिवक्ष्यन्तिमांततः॥१७३॥

समष्टि में भारत में ९६ करोड़ ७२ लाख ग्राम हैं। हे भारत! बेलाकूल की संख्या है ६३०००। इस

प्रकार से उस कुमारी ने भाई के पुत्रों को इस प्रकार भारतभूमि का विभाग किया। उस कुमारी का राज्य लेने के लिए उन भातृ पुत्रों ने अनिच्छा प्रकट की, तथापि कुमारी ने अपना राज्य भी उन सब को ही प्रदान कर दिया। बहन के सम्मानार्ह होने के कारण भातृगण साक्षात् रूप से विपक्षता भले ही न करें, तथापि मन ही मन वे क्रुद्ध हो सकते हैं। अतः इस कारण भाई-बहन के बीच विद्वेष हो सकता है, इसी विचार के कारण कुमारी ने अपना राज्य भी भातृपुत्रगण को बांट दिया। इस प्रकार वह कुमारी सब भातृपुत्रों की प्रीतिभाजन होकर स्तम्भ तीर्थ चली गयी। उसने देश का विभाग करके चतुर्वर्गसाधक देशसमूह में से कुमारीखण्ड को ही सर्वोत्तम माना। वह महाव्रती होकर वहां के छः ह्रद तथा महीसागर संगम में स्नान करती तथा कुमारेश की अर्चना में लगी रहती। तब उसने कुछ समय के उपरान्त स्कन्ददेव द्वारा निर्मित प्रासाद को जीर्ण देखा तथा एक स्वर्णमय नूतन प्रासाद (मन्दिर) का निर्माण कराया। इससे सन्तुष्ट होकर भगवान् उसी कुमारेश लिंग से प्रादुर्भूत हो गये तथा कुमारी से कहा—"हे भद्रे! तुम्हारी भक्ति तथा विज्ञान से, तुम्हारे इस जीर्णोद्धार कार्य से मैं अत्यन्त प्रसन्न हो गया। हे कुमारी! अब मैं तुम्हारे नाम से ही प्रख्यात हो जाऊंगा। मन्दिर निर्माता तथा जीर्णोद्धार करने वाला, इन दोनों को समान फलभागी माना जाता है। अब मुझे कुमारेश न कहकर सभी लोग कुमारीश कहें"।।१६३-१७३।।

बर्करेशे च ये दत्ता वरा दत्ताः सदैव ते। तवाऽपि प्राप्तः कालश्च समीपे वरवर्णिनि॥१७४॥
अभर्तृकाया नार्याश्च न स्वर्गो मोक्ष एव च। यथैव वृद्धकन्यायाःसरस्वत्यास्तटेशुभे॥१७५॥
तस्मात्त्वमत्र तीर्थे च महाकालमितिस्मृतम्। सिद्धिं गतं वृणु भद्रे पतित्वेवरवर्णिनि॥१७६॥
ततः सा रुद्रवाक्येन वरयामास तं पतिम्। रुद्रलोकं ययौ चापि महाकालसमन्विता॥१७७॥
तत्र तां पार्वती प्राह समालिङ्ग्यप्रहर्षिता। यस्मात्त्वया चित्रवच्चलिखितापृथिवीशुभे॥१७८॥
चित्रलेखेतिनाम्ना त्वं तस्माद्भव सखी मम। ततः सखी समभवच्चित्रलेखेतिसा शुभा॥१७९॥

"इससे पूर्व बर्करेश्वर ने तुमको जो वर दिया था, वह सदा सत्य होगा। हे वरवर्णिनी! तुम्हारा मृत्युकाल आसन्न है। हे शुभे! सरस्वतीतटवासिनी वृद्ध कन्या की तरह तुम भी अविवाहित हो। तुमको स्वर्ग अथवा मोक्ष मिलने की सम्भावना नहीं है। तुम यहीं पर महाकाल नामक वृद्ध की पत्नी हो जाओ।" शंकर का यह आदेश पाकर कुमारी ने महाकाल का वरण पतिरूपेण किया तथा उनके साथ रुद्रलोक गईं। वहां पार्वती ने उनका सहर्ष आलिंगन करके कहा—"शुभे! तुमने पृथिवी के विभाग का चित्रवत् लेखन (भातृपुत्रों हेतु) किया, अतः तुम चित्रलेखा नामक मेरी सखी हो जाओगी।" तदनन्तर वह कुमारी चित्रलेखा नामक पार्वती की सखी हो गई।।१७४-१७९।।

ययाऽनिरुद्धः कथित उषायाः पतिरुत्तमः। योगिनीनांवरिष्ठा या महाकालस्यवल्लभा॥१८०॥
अप्सु सा वार्षिकं बिन्दुंपूर्णेवर्षशते पपौ। तपश्चरन्तीतस्मात्साप्रोच्यतेचाप्सरादिवि॥१८१॥
एवम्विधा कुमारी सा लिङ्गमेतद्धिफाल्गुन। स्थापयामासशिवदं बर्करेश्वरसञ्ज्ञितम्॥१८२॥
तस्मादत्र नृणां दाहश्चास्थिक्षेपश्चभारत। प्रयागादधिकौ प्रोक्तौमहेशस्य वचो यथा॥१८३॥

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे बर्करेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः।।३९।।

महाकाल पत्नी चित्रलेखा योगिनियों में प्रधान हैं। इन्होंने ही ऊषा के साथ अनिरुद्ध का विवाह सम्पन्न कराया था। ये जल में रहकर प्रत्येक वर्ष के अन्त में मात्र १ बूँद जल पान करती थीं। इसलिए देवलोक में इनको अप्सरा कहा गया। हे अर्जुन! इस प्रकार की प्रभाववती कुमारी ने मंगलप्रद बर्करेश लिंग स्थापित किया। हे अर्जुन! इसी कारण मनुष्यों के शवदाहन तथा अस्थिक्षेपण के लिए यह प्रयाग से भी अधिक फलप्रद स्थल है। यह महेश्वर का वचन है।।१८०-१८३।।

।।उनचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

चत्वारिंशोऽध्यायः

चतुर्युग व्यवस्था, शिवानन्द वर्णन, कालभीतिकृत शिवस्तुति, पितृतर्पणादि विचार, धर्मशास्त्र निरूपण, कलियुग में शूद्रराज्य वर्णन

अर्जुन उवाच

महाकालस्त्वसौ कश्च कथं सिद्धिमुपागतः। अस्मिंस्तीर्थे मुनिश्रेष्ठ महदाश्चर्यमत्रमे॥१॥
सर्वमेतत्समाख्याहि श्रद्दधानाय पृच्छते॥२॥

अर्जुन कहते हैं—हे मुनिवर! यह महाकाल कौन हैं? उसने इस तीर्थ में किस प्रकार सिद्धि प्राप्त किया? मैं श्रद्धापूर्वक आपसे पूछता हूं। इस सम्बन्ध में मेरे मन में विशेष कुतूहल हो रहा है। अतः सभी वृत्तान्त कहिये।।१-२।।

नारद उवाच

नमस्कृत्य महाकालं वरदं स्थाणुमव्ययम्। शक्तितश्चरितं तस्य वक्ष्ये पाण्डुकुलोद्वह॥३॥
वाराणस्यां पुरि पुरा बभूव जपतां वरः। रुद्रजापी महाभागो माण्टिर्नाम महायशाः॥४॥
तस्यापुत्रस्य पुत्रार्थे रुद्रान्सञ्जपतः किल। गतं वर्षशतं तुष्टस्ततस्तं प्राह शङ्करः॥५॥
माण्टे तव सुतो धीमान्मत्प्रभावपराक्रमः। वंशस्य तव सर्वस्य समुद्धर्ता भविष्यति॥६॥
इति श्रुत्वा रुद्रवचो माण्टिर्हर्षं परंगतः। ततः काले कियन्मात्रे पत्नी माण्टेर्महात्मनः॥७॥
दधार गर्भं चटिका तपोमूर्तिधरायथा। तस्य गर्भस्य वर्षाणि चत्वारि किल संययुः॥८॥
न पुनर्मातुरुदरं त्यक्त्वा निर्गच्छते बहिः। ततो माण्टिरुपामन्त्र्य सामभिस्तमवोचत॥९॥

नारद कहते हैं—हे पाण्डवप्रवर! वरदाता स्थाणु को प्रणामोपरान्त यथाशक्ति उनके चरित्र का कीर्त्तन करता

हूं। पूर्वकाल में वाराणसी पुरी में माण्टि नामक एक महायशस्वी रुद्रपरायण जापक प्रवर महाभाग मानव का जन्म हुआ था। वह अपुत्रक था। उसने पुत्रलाभ की कामना से रुद्रमन्त्र जप किया। इस प्रकार १०० वर्ष व्यतीत होने पर शंकर उसके प्रति प्रसन्न हो गये। उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—"हे माण्टि! तुमको मेरे समान प्रभाव तथा विक्रमी धीमान् पुत्र जन्म लेगा। तुम्हारा वह पुत्र समग्र वंश का उद्धारक होगा।" रुद्रदेव का यह वचन सुनकर माण्टि हर्षित हो गया। कुछ समय के उपरान्त मूर्त्तिमान तपस्यारूपी चटिका नामक ब्राह्मण पत्नी ने गर्भ धारण किया। ४ वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी गर्भ नहीं जन्मा। तब माण्टि ने मधुर वचन के साथ गर्भस्थ पुत्र से कहा।।३-९।।

वत्स! सामान्यपुत्रोऽपि पित्रोः सुखकरः सदा।
शुद्धायां मातरि भवो मत्तः किं पीडयस्यलम्॥१०॥
वत्स! मानुष्यवासस्य स्पृहा तुभ्यं कथं न हि। यत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्याऽपि च सन्ततिः॥११॥
कदा मनुष्या जायेम पूजा यत्र महाफला। पितृणांदेवतानां च नानाधर्माश्च यत्र हि॥१२॥
इति भूतानिशोचन्तिनानायोनिगतान्यपि। तत्त्वं मानुष्यमतुलंस्पृहणीयंदिवौकसाम्।
अनादृत्य कथं ब्रूहि स्थितश्चोदर एव च॥१३॥

गर्भ उवाच

माण्टि कहता है—हे वत्स! सामान्य पुत्र भी माता-पिता हेतु सुखप्रद होता है। तुम तो परिशुद्धा माता की कोख में मेरे द्वारा उत्पन्न हो रहे हो। हे वत्स! मनुष्य लोक ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का साधक है। क्या तुम इस मनुष्य लोक में रहने की कामना नहीं कर रहे हो? अन्य योनिगत प्राणी यह कहकर शोक करते हैं कि "अहो! जहां नाना प्रकार का धर्मार्जन होता है, वहां तो पितृदेव की अर्चना का महाफल प्राप्त होता है। हम कब इस मनुष्य लोक में जन्म प्राप्त करेंगे!" अतः तुम इस देव वांछित अतुलनीय मानव जन्म पाकर भी उसका अनादर करके किसलिए गर्भ में ही बैठे हो? यह कहो"।।१०-१३।।

तात जानाभ्यहंसर्वमेतत्परमदुर्लभम्। किन्तु बिभेमिचातिमात्रंकालमार्गस्यनित्यशः॥१४॥
द्वौ मार्गौ किल वेदेषु प्रोक्तौ कालोऽर्चिरेव च। अर्चिषा मोक्षमायान्ति कालमार्गेण कर्मणि॥१५॥
स्वर्गे वा नरके वापि कालमार्गगतो ह्ययम्।
न शर्म लभते क्वापिव्याधविद्धमृगोयथा॥१६॥
तस्यैव हेतोः प्रयतेत्कोविदो यत्न दुःखवित्।
कालेन घोररूपेण गम्भीरेम समाहितः॥१७॥
तच्चेन्मम मतस्तात नानादोषैर्न मोह्यते। ततोऽहं दुर्लभं जन्ममानुष्यंशीघ्रमाप्नुयाम्॥१८॥
ततस्तस्य पिता पार्थ कान्दिशीको महेश्वरम्। जगाक शरणं देवं त्राहित्राहिमहेश्वर॥१९॥

गर्भ कहता है—हे तात! आपने जो कुछ कहा, वह सब मुझे ज्ञात है। इस भूमि पर जो कुछ परम प्रार्थनीय है, उसे भी मैं जानता हूं, तथापि कालमार्ग से भयभीत होकर सदा त्रस्त रहता हूं। वेद में कालमार्ग तथा अर्चिमार्ग रूपी मार्गद्वय निर्दिष्ट है। कालमार्ग से कर्म तथा अर्चिमार्ग से मोक्षलाभ होता है। कालमार्गगत जीवगण व्याध से बिंधे

मृग की तरह चाहे स्वर्ग जायें अथवा नरक जायें, कहीं भी शान्ति नहीं पाते। अतः दुःख से अभिज्ञ बुद्धिमान व्यक्ति जिससे घोररूप गंभीर कालमार्ग में पतित न हो, इस सम्बन्ध में सतत् यत्नतत्पर होना चाहिये। यदि मेरा मन मनुष्य लोक में जन्म लेकर संसार दोषों में लिप्त न हो, तब यह दुर्लभ जन्म ले सकता हूं।'' हे अर्जुन! तदनन्तर उस गर्भ का पिता मांटि किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर त्राहि-त्राहि करते महेश्वर के शरणागत हो गया।।१४-१९।।

त्वां विना कोऽपरो देव! पुत्रस्याभीष्टदोऽस्ति मे।
त्वयैव दत्तस्त्वं चाऽमुं जन्म प्रापय मे सुतम्॥२०॥

माण्टि कहता है—हे महेश्वर! आपके अतिरिक्त कौन मुझे पुत्र का प्रार्थित दान देने में सक्षम है? आपने ही इसे प्रदान किया है। आप ही इसे जन्म प्रदान करें।।२०।।

ततस्तस्यातिभक्त्याऽसौ प्राह तुष्टो महेश्वरः। विभूतीः स्वधर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्यमेव च॥२१॥
विपरीतश्च शीघ्रं भो माण्टिपुत्रःप्रबोध्यताम्। ततस्ताद्योतयन्त्यश्चविभूत्योगर्भमूचिरे॥२२॥
महामते माण्टिपुत्र न धार्यन्ते भयं हृदि। चत्वारस्त्वांहि धर्माद्यामनस्त्यक्ष्यामहेनते॥२३॥
ततोऽपरास्त्वधर्माद्याः प्रोचुर्नैव तथावयम्। भविष्यामो मनस्तुभ्यमस्मत्तव भयंनहि॥२४॥
इत्युक्ते स विभूतिभिः शीघ्रमेव कुमारकः। निःससार बहिर्जातश्चकम्पेतिरुरोद च॥२५॥

माण्टि के स्तुतिवाक्य से प्रसन्न होकर महेश्वर ने अपने ज्ञान-वैराग्य-धर्म तथा ऐश्वर्य से कहा कि ''माण्टि के पुत्र ने तुम सबको विपरीत समझा है। अतः तुम सब जाकर उसे प्रबोधित करो।'' तब महेश्वर के आदेश से ये सभी विभूतिसमूह जाकर गर्भ से कहने लगे—''हे महामति माण्टिपुत्र! तुम भय न करो। हम धर्म-ज्ञान-वैराग्य-ऐश्वर्य हैं। हम कदापि तुम्हारे मन का त्याग न करेंगे।'' तदनन्तर अधर्म-अज्ञान-अवैराग्य तथा अनैश्वर्य ने कहा ''हम तुम्हारे मन में कभी प्रवेश नहीं करेंगे।'' यह आश्वासन सुनकर वह बालक अविलम्ब पैदा हो गया तथा कम्पित होकर रुदन करने लगा।।२१-२५।।

ततो विभूतयःप्राहुर्माण्टे तव सुतस्त्वसौ। अद्यापि कालमार्गस्यभीतःकम्पतिरोदिति॥२६॥
कालभीतिरिति ख्यातस्तस्मादेषभविष्यति। इति दत्त्वा वरं ताश्चमहादेवान्तिकं ययुः॥२७॥
सोऽपि बालः प्रववृधे शुक्लपक्ष इवोडुपः। संस्कृतः स च संस्कारैर्धीमान्पशुपतिव्रती॥२८॥
पञ्चमन्त्राञ्जपञ्छुद्धस्तीर्थयात्रापरोऽभवत्। रुद्रक्षेत्रेषु सस्नौ स जपन्मन्त्रांश्चभारत॥२९॥
कालभीतिगुप्तक्षेत्रगुणाञ्छुत्वाऽभ्युपाययौ ।
स्नात्वा ततो महीतोये जप्त्वा मन्त्रांश्च कोटिशः॥३०॥
निवृत्तो नातिदूरेऽथ बिल्ववृक्षं ददर्श सः। दृष्ट्वा तं तस्य चाधस्ताल्लक्षमेकं जजाप सः॥३१॥

यह देखकर विभूतिगण ने कहा—''हे माण्टि! तुम्हारा यह पुत्र कालमार्ग के भय से कांप रहा है तथा भयग्रस्त हो रहा है। अतः इसका नाम होगा कालभीति!'' विभूतिगण ने यह कहकर महादेव के यहां प्रस्थान किया। वह बालक शुक्लपक्षीय चन्द्र के समान क्रमशः वर्द्धित होने लगा। उस धीमान् बालक ने क्रमशः उपनयनादि संस्कार हो जाने के पश्चात् पाशुपत व्रतावलम्बन करके पञ्चमन्त्र जप करना प्रारम्भ किया तथा तीर्थयात्रा पर चला गया। हे भारत! कालभीति ने विभिन्न रुद्रक्षेत्र की तीर्थयात्रा किया। वहां यथायोग्य स्नानादि करने पर कहीं यह सुना

कि महीसागर संगम तीर्थ अत्यन्त महिमान्वित है। तब वह इस तीर्थ में आया तथा महीनदी जल में स्नानोपरान्त उसने वहां रहकर कई करोड़ जप सम्पन्न किया। वह इससे निवृत्त हो रहा था, तभी उसने निकट में एक बिल्ववृक्ष देखा। उसने उस वृक्ष के मूल में बैठ कर एक लाख जप किया।।२६-३१।।

जपतस्तस्य विप्रस्य इन्द्रियाणि लयं ययुः। केवलं परमानन्दस्वरूपोऽसावभूत्क्षणात्॥३२॥
तस्यानन्दस्य नौपम्यंस्वर्गादीनांभवेत्क्वचित्। गङ्गोदकस्येवमानंकेवलंसोऽप्यसावपि॥३३॥
तत्र लीनो मुहूर्तेन पुनश्चाभूद्यथा पुरा। ततो विसिष्मये पार्थ कालभीतिरुवाच ह॥३४॥
नायं मम महानन्दो वाराणस्यां न नैमिषे। न प्रभासे न केदारे न चाप्यमरकण्टके॥३५॥
श्रीपर्वते न चान्यत्रयादृशोऽद्यप्रवर्त्तते। निर्विकाराणिस्वच्छानिगङ्गांभांसीवखानिमे॥३६॥
भूतेषु परमा प्रीतिस्त्रिजगद्द्योतते स्फुटम्। धर्ममेकं परं मह्यं चेतश्चाप्यवगच्छति॥३७॥
अहो स्थानप्रभावोऽयं स्फुटं चाऽप्यत्र प्रोच्यते।
निर्दोषं यच्छुचि स्थानं सर्वोपद्रववर्जितम्॥३८॥
तत्र स्थितस्य धर्मार्थस्तद्वद्भूयात्सहस्त्रधा। तदस्माच्चप्रभावाद्धिजानामीतःस्वचेतसि।
विशिष्टं काशिमुख्येभ्यस्तीर्थेभ्यः स्थानकं त्विदम्॥३९॥
तस्मादत्रैव संस्थोऽहं तपस्तप्स्यामि पुष्कलम्॥४०॥
इदं चेदं तीर्थमिति सदा यस्तृषितश्चरेत्। न स सिद्धिमवाप्नोतिक्लेशेनैवम्रियेत सः॥४१॥

वह विप्र जब जप कर रहा था, तभी उसकी इन्द्रियां लयीभूत हो गईं। वह केवल परमानन्द रूप हो गया। स्वर्गादि कहीं भी इस आनन्द की उपमा नहीं दी जा सकती। गंगाजलवत् यह अपनी उपमा स्वयं ही है! कुछ काल के पश्चात् कालभीति को पुनः स्वाभाविक अवस्था प्राप्त हो गयी। वह विस्मित होकर मन ही मन कहने लगे— "अहो! मैंने यहां इस आनन्द को प्राप्त किया। इसके पूर्व वाराणसी, नैमिषारण्य, प्रभास, केदार, अमरकंटक, श्रीपर्वत अथवा अन्य कहीं यह आनन्द नहीं मिला। यहां मेरा चित्त नित्तान्त निर्विकार है तथा इन्द्रियां गंगाजलवत् स्वच्छ हैं। सभी जीवों के प्रति परम प्रीति उत्पन्न हो रही है। तीनों लोक अब प्रीतिकर लग रहे हैं। मेरा मन यह समझ गया है कि धर्म ही एकमात्र सार है। अहा! इस स्थान का क्या अपूर्व प्रभाव है। लोग सत्य कहते हैं कि यह स्थान दोष रहित है। पवित्र तथा उपद्रव रहित है। यहां रहकर धर्मकार्य करने से, वह सब सहस्त्रगुणित फलदायक होता है। इस स्थान का यह प्रभाव देखकर मैं जान गया कि यह काशी प्रभृति से भी उत्कृष्ट है। इसलिए मैं यहीं तप करूंगा। जो व्यक्ति इसी ऊहापोह में पड़ा रहता है कि इस तीर्थ की तुलना में यह तीर्थ उत्तम है, वह व्याकुल होकर पर्यटन ही करता रह जायेगा। उसे कदापि सिद्धि प्राप्त नहीं होगी। वह क्लेश सहकर प्राण गंवा देगा"।।३२-४१।।

इति संचिंत्य बिल्वस्य वृक्षस्याऽधो व्यवस्थितः। जजापमन्त्रान्रुद्रस्य अङ्गुष्ठाग्रेण धिष्ठितः॥४२॥
गृहीत्वा नियमं तोयविन्दुं वर्षशतेऽग्निवत्। ततो वर्षशते याते जपतस्तस्य भारत॥४३॥
कश्चित्तोयभृतं कुम्भं गृहीत्वा नर आव्रजत्। स तं प्रणम्य प्राहेदं कालभीतिंप्रहर्षतः॥४४॥
अद्य ते नियमः पूर्णस्तोयमेतन्महामते!। गृहाण सफलं मह्यं श्रमं कर्तुमिहार्हसि॥४५॥

कालभीतिरुवाच

को भवान्वर्णतो ब्रूहि किमाचारश्च तत्त्वतः।
जन्माचारौ विदित्वा ते ग्रहीष्याम्यन्यथा न हि॥४६॥

कालभीति ने यह दृढ़ निश्चय किया तथा वहां बिल्व वृक्ष के नीचे अंगूठे के बल खड़ा होकर यह निश्चय किया कि १०० वर्ष के अन्त में मात्र एक बूंद जल का पान करूंगा और जप करने लगा। इसके पश्चात् १०० वर्ष व्यतीत हो जाने पर एक व्यक्ति एक जलपूर्ण घट लेकर आया तथा जप में निरत कालभीति को प्रमाम करके उसने हर्षपूर्वक कहा—"हे महामति कालभीति! आज तुम्हारा नियम पूर्ण हो गया। अतएव यह जल ग्रहण करो। इस प्रकार मेरा श्रम सफल हो।" कालभीति ने पूछा—"आप कौन हैं? क्या जाति है? आपका आचार क्या है? आपकी जाति तथा आचार जानकर तब आपका जल ग्रहण करूंगा"।।४२-४६।।

नर उवाच

न जाने पितरौस्वीयौ नष्टौ वा सर्वथा न हि। एवमेवापि पश्यामिसर्वदाऽहंसएवच॥४७॥
आचारैश्चापि धर्मैश्चन कार्यं मम किञ्चन। तस्माद्वक्ष्यामिनाप्येतन्नचाप्यस्मिसमाचरे॥४८॥

उस पुरुष ने उत्तर दिया—"मेरे माता-पिता हैं अथवा मर गये, इस सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं है। मैं इसी प्रकार से रहता हूं। इतना ही देखा है। आचार तथा धर्म का मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। अतः अपने सम्बन्ध में और क्या कहूं? मैं किसी आचार का पालन नहीं करता"।।४७-४८।।

कालभीतिरुवाच

यद्येवं नोदकं तुभ्यंग्रहीष्याम्यस्मिकर्हिचित्। शृणुष्वाऽत्र वचोयन्मेगुरुराहश्रुतीरितम्॥४९॥
न ज्ञायते कुलंयस्यबीजशुद्धिंविनाततः। तस्य खादन्पिबन्वापिसाधुःसीदतितत्क्षणात्॥५०॥
यश्च रुद्रं न जानाति रुद्रभक्तश्च यो नहि। अन्नोदकं तस्य भुञ्जन्पातकी स्यान्नसंशयः॥५१॥
अज्ञात्वा यः शिवं भुङ्क्ते कथ्यते सोऽत्र ब्रह्महा।
मार्ष्टि च ब्रह्महान्नादे तस्मात्तस्य न भक्षयेत्॥५२॥
गङ्गोदकुम्भःस्याद्यद्वत्तन्मध्येमद्यबिन्दुना। अशिवज्ञस्य यो भुक्ते शिवज्ञोऽपितथैवसः॥५३॥
हीनवर्णाश्रयः स्याद्धिशिवभक्तोऽपिनैवसः। प्रतिगृह्यौगुणौतस्माद्विलोक्यौद्वौप्रतिग्रहे॥५४॥

कालभीति कहता है—"यदि यह बात है, तब मैं आपका जल ग्रहण नहीं कर सकता। इस सम्बन्ध में मेरे गुरु का उपदेश सुनें। जिसका कुल वृत्तान्त तथा बीजशुद्धि ज्ञात न हो, साधु व्यक्ति उसका अन्न-जल, भक्षण-पान करके तत्क्षण अवसन्न हो जाते हैं। जो रुद्र को नहीं जानता, किंवा रुद्रभक्त नहीं है, उसका अन्न-जल ग्रहण करके पातकी होना पड़ेगा, इसमें संशय नहीं है। जो व्यक्ति शिव को जाने बिना भोजन करता है, वह ब्रह्मघाती है। ऐसा ब्रह्मघाती व्यक्ति यदि साधु को अन्न-भोजन करा सके, तब उसका पाप नष्ट होता है, तथापि यह पाप अन्न भोजन करने वाले का आश्रय लेकर स्थित भी हो जाता है, इसलिए ऐसे ब्रह्मघाती का अन्न कदापि भक्षण न करे। जैसे गंग्गजल से पूर्ण घट, एक बूंद मात्र मद्य मिल जाने से अपवित्र होता है, उसी प्रकार से

शिवज्ञानहीन व्यक्ति के अन्नभोजन से शिवज्ञ मानव अपवित्र हो जाता है। यदि कोई हीन जाति व्यक्ति शिवभक्त है, तब उसका भी अन्न भोजन नहीं करे। इस प्रकार प्रतिग्रह (दान लेना) कार्य में यह दोनों गुण (नियम) आधार हेतु रखे"।।४९-५४।।

नर उवाच

एतेन तववाक्येनहास्यंसञ्जायते मम। अहोमुग्धोऽसिमिथ्यात्वमपस्मारीजडोऽपिच।।५५।।
सदा सर्वेषु भूतेषु शिवोवसतिनित्यशः। साध्वसाधु ततो वाक्यंनैवनिन्दाशिवस्यसा।।५६।।
आत्मनश्च परस्यापि यः करोत्यन्तरोहरम्। तस्य भिन्नदृशोमृत्युर्विदधेभयमुल्वणम्।।५७।।
अथवा का हि पानीये भवेदशुचिता वद। मृत्तिकोद्भवकुम्भोऽयं पावकेनापि पाचितः।।५८।।
पूर्णश्च पयसा कस्मिन्नेषामशुचिता कुतः।।५९।।
अथ चेन्मम संसर्गादशुचित्वं च मीयते। तदस्यां संस्तितःपृथ्व्यामहंत्वं च कुतोवद।।६०।।
कुतः पृथिव्यां चरसि खे त्वं नैव चरस्युत। एवं विचार्यमाणेते भाषितं मुग्धवद्भवेत्।।६१।।

तब उस व्यक्ति ने कहा—"हे ब्राह्मण! तुम नितान्त मूर्ख अथवा अपस्मार रोग से आक्रान्त अथवा निर्बोध हो। तुम्हारी इन बातों से मुझे हंसी आ रही है। शिवदेव सद्य सर्वभूतसमूह में निवास करते हैं। इसलिए हठात् किसी को साधु अथवा असाधु कहना अनुचित-सा है। क्योंकि इससे तो उस व्यक्ति में स्थित भगवान् शिव की ही निन्दा होती है। जो व्यक्ति स्वयं में तथा दूसरों में शिव की स्थिति के विषय में संदेह करता है, मृत्यु उस भेदज्ञानी व्यक्ति को विशेष भय प्रदान करती है। अथवा तुम कहो कि जल में अशुद्धि कैसे होती है? देखो! यह घट तो मिट्टी से बना है। इसे अग्नि में पकाया गया है, तत्पश्चात् इसमें जल भरा गया है। यह मिट्टी तथा जल, कोई भी स्वभावतः अशुद्ध नहीं होता! यदि यह कहो कि यह दोनों मेरे संसर्ग से अशुद्ध हो गये, यह कथन भी उचित नहीं ठहरेगा, क्योंकि मैं तथा तुम दोनों ही तो इसी मृत्तिका में ही स्थित रहते हैं। इस स्थिति में तुम भी तो अशुद्ध ही हो गये! मैं मृत्तिका पर खड़ा हूं, तब तुम भी तो मृत्तिका छोड़कर आकाश में विचरण नहीं कर रहे हो! तुम ऐसा क्यों नहीं करते? इस प्रकार विचार द्वारा तुम्हारा कथन तो पूर्णतः मूर्खता ही लग रहा है।।५५-६१।।

कालभीतिरुवाच

सर्वभूतेषु चेदेवं शिवएवेति चोच्यते। नास्तिका मृत्तिकां कस्माद्भक्षयन्ति नभस्यके।।६२।।
शुद्ध्यर्थं तेन विश्वस्य स्थापिता संस्थितिर्यथा।
फलेन पालिता सा च नाऽन्यथा तां शृणुष्व च।।६३।।
ससर्जेति पुरा धाता रूपात्मकमिदं जगत्। तच्च नामप्रपञ्चेन बद्धं दाम्नाचगौर्यथा।।६४।।
सच नामप्रपञ्चस्तु चतुर्द्धा भिद्यते किल। ध्वनिर्वर्णाः पदं वाक्यमितस्पदचतुष्टयम्।।६५।।
तत्र ध्वनिर्नादमयो वर्णाश्चाकारपूर्वकाः।
पदं 'श वमि' ति प्रोक्तं वाक्यं चेति 'शिवं' भजेत्।।६६।।
तच्चापि वाक्यं त्रिविधं भवेदिति श्रुतेर्मतम्। प्रभुसम्मतमेकं च सुहृत्संमतमेव च।।६७।।

कान्तासम्मतमेवापिवाक्यंहित्रिविधं विदुः। प्रभुः स्वामीयथाभृत्यमादिशत्येतदाचर॥६८॥
तथा श्रुतिस्मृती चोभे प्राहतुः प्रभुसम्मतम्। इतिहासपुराणादि सुहृत्सम्मतमुच्यते॥६९॥
सुहृद्वत्प्रतिबोध्यैनं प्रवर्तयति तत्त्वतः। काव्यालापा़दिकं यच्च कान्तासम्मतमुच्यते॥७०॥

कालभीति कहता है—"सभी में शिव हैं। जो ऐसा कहता है, वह नास्तिकों का खाद्य छोड़ कर मिट्टी किंवा भस्म भक्षण क्यों नहीं करता। ऐसे व्यक्ति के अनुसार क्या मिट्टी क्या भस्म सभी तो शिव ही है! वास्तव में यह कहना उचित नहीं लगता। तभी तो जगत् में अनेक शुद्धिविधान कहे गये हैं। साथ ही उनका फल भी वर्णित है। इनकी अवहेलना तथा इनके विपरीत आचरण न करे। इस बात का विशेष कारण सुनो। पूर्व में विधाता ने इस रूपात्मक जगत् की सृष्टि किया है। जैसे रस्सी में गाय बंधी रहती है, उसी प्रकार से नाम द्वारा सभी वस्तुयें आबद्ध हैं। वह नाम प्रपंच चतुर्विध है। यथा—ध्वनि, वर्ण, पद, वाक्य। इनमें ध्वनि नादमय है। वर्ण हैं अकार इत्यादि (अक्षर तथा व्यञ्जन)। श-व इत्यादि को पद कहते हैं और इस पद की समष्टि 'शिव' को वाक्य कहा जाता है। यह वाक्य भी त्रिविध है। यह श्रुति का मत है। ये वाक्य हैं प्रभुसम्मत, सुहृत्सम्मत तथा कान्तासम्मत। इस प्रकार से ये तीन प्रकार के हैं। आधिपत्ययुक्त स्वामी जब भृत्य से कहता है—'यह करो' इस प्रकार से आदेश देता है, इसी प्रकार जो श्रुति स्मृति का आदेश है—वही है **प्रभुसम्मत**। इतिहास-पुराणादि के वाक्य हैं **सुहृत्सम्मत**। ये सभी सुहृद के समान प्रबोधित करके सत् कार्य में प्रवर्त्तित करते हैं। काव्यादि वाक्य को **कान्तासम्मत** कहा गया है।।६२-७०।।

प्रभुवाक्यंस्मृतंयच्चसबाह्याभ्यन्तरं शुचि। सुहृद्वाक्यंतथाशौचंपालयेत्स्वर्गकाङ्क्षया॥७१॥
तदेतत्पालनीयं स्याद्भूमिजानां श्रुतिर्वदेत्। त्वयानास्तिक्यवाक्येनचेदेतदभिधीयते॥७२॥
एतेन श्रुतिसास्त्राणिपुराणं च वृथैव किम्। अग्रेसप्तर्षिपूर्वा ये ब्राह्मणाःक्षत्रियाभवन्॥७३॥
मुग्धाः सर्वेऽभवन्दक्षा ये हि वेदंगता ह्यनु। तथावेदान्तवचनंसत्त्वस्थाह्यूर्ध्वंगामिनः॥७४॥
तिष्ठन्ति राजसामध्ये ह्यधो गच्छन्ति तामसाः। सत्त्वाहारैः सत्त्वधृत्त्या स्वर्गगामी भवेत्ततः॥७५॥
न चेतदप्यसूयामो यद्भूतेषु शिवो न हि। अस्त्येव सर्वभूतेषु शृण्वत्राप्युपमानकम्॥७६॥

प्रभुवाक्य इस प्रकार का है—"बाहर तथा आभ्यन्तर शुचि रहे।" सुहृद्वाक्य है "स्वर्ग कामनार्थ शौच का पालन करो।" श्रुति का कथन है—"पृथिवी पर उत्पन्न व्यक्ति के लिए शौचाचार पालन अनिवार्य है।" यदि तुम नास्तिक भाव से "सभी शिवमय" कहते हो तब तो श्रुति-पुराणादि क्या व्यर्थ नहीं हैं? तब तो तुम्हारे मतानुसार सप्तर्षि आदि जितने क्रियाकुशल सप्तर्षि, ब्राह्मण-क्षत्रियादि जन्म लेकर वेदों के अनुरूप आचरण कर गये हैं, क्या सभी मूर्ख थे? तब जो यह वेदान्त वाक्य है कि "सत्व गुणाधिक्य से व्यक्ति ऊर्ध्व में, राजोगुणाधिक्य से मध्य में तथा तामस व्यक्ति अधोभाग में गमन करता है, इसलिए सात्विक आहार करके व्यक्ति सत्वगुण वर्द्धन द्वारा स्वर्ग जाता है।" क्या झूठा वाक्य है? और जो तुम यह कहते हो कि "सर्वत्र शिव हैं" इसके प्रति मैं विरोध करता हूं, ऐसा नहीं। यह सत्य है कि सर्वत्र शिव हैं। तब भी यहां विशेषत्व है, यह सुनो। इसे एक उपमा देकर स्पष्ट कर रहा हूं।।७१-७६।।

यथा सुवर्णजातानिभूषणानिबहूनि च। कानिचिच्छुद्धरूपाणिहीनरूपाणिकानिचित्॥७७॥

स्वर्णं सर्वेषु चाऽस्त्येवतथैवस सदाशिवः। हीनरूपं शोधितंसच्छुद्धिमेतिनचैकताम्॥७८॥
तथेदं शोधितं देहं शुद्धं दिवि व्रजेत्स्फुटम्। तस्मात्सर्वात्मनाहीनान्नग्राह्यंबतधीमता॥७९॥
चेदिदं शोधयेद्देहं नैव ग्राह्यं समन्ततः। सर्वतो यः प्रतिग्राही निहाराहारयोर्न च॥८०॥
शुचिः स्यादल्पदिवसात्पाषाणोऽसौ भवेत्स्फुटम्।
तस्मात्सर्वात्मना नैव ग्रहीष्येऽहं जलं स्फुटम्॥८१॥
साधुवाप्यथवाऽसाधु प्रमाणं नः श्रुतिः परा। एवमुक्ते स च नरः प्रहसन्दक्षिणेन च॥८२॥

जैसे स्वर्ण निर्मित अनेक अलंकार रहने पर भी सबमें समान स्वर्ण नहीं रहता, कुछ में स्वर्णपूर्ण शुद्ध होता है, कुछ में स्वर्ण उसकी अपेक्षा हीन रहता है, तथापि यह माना गया है कि सबमें स्वर्ण है, तथापि सबमें समान स्वर्ण नहीं है। इसी प्रकार यह सत्य है कि शिव सबमें हैं। तथापि वे कहीं शुद्ध रूप में हैं। कहीं वे शुद्धतर हैं। इत्यादि तारतम्यानुरूप वे स्थित हैं। इस कारण सभी पदार्थ में समत्व ज्ञान कदापि कर्त्तव्य नहीं है। जैसे अशुद्ध (मिलावटी) स्वर्ण को दाह आदि से शोधित करते हैं तथा वह क्रमिक रूप से उत्कर्ष द्वारा शुद्ध होता है, उसी प्रकार से जीव समूह भी शौचादि से शुद्ध होकर शिवत्व का अधिकारी हो जाता है। तथापि सामान्य शौचादि प्रक्रिया से सहसा शुद्ध शिवत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसीलिए देहशुद्धि आवश्यक है। देहशुद्धि से ही देही स्वर्गगामी होता है। इसलिए बुद्धिमान मानव देहशोधन की अभिलाषा वाला व्यक्ति कदापि हीन लोगों से किसी प्रकार का प्रतिग्रह ग्रहण न करे। जो सबसे दान लेते हैं, आहार-विहार में शौच विचार नहीं करते, वे पवित्र होकर भी अल्पकाल में पाषाणवत् तमोगुणाच्छन्न तथा जड़ हो जाते हैं।।७७-८२।।

अङ्गुष्ठेन लिखन्भूमिं चक्रे गर्तं महोत्तमम्। तत्र चिक्षेप तत्तोयं तेन गर्तः स्म पूरितः॥८३॥
अत्यरिच्यत तोयं च चक्रे पादेन सँल्लिखन्। चक्रे सरः पूरितं चाप्यतिरिक्तजलेनतत्॥८४॥
तदद्भुतं महद्दृष्ट्वा नैव विप्रो विसिष्मिये। यतो बहुविधं चित्रं भवेद्भूताद्युपासिषु॥८५॥
तच्चित्रेण न जह्याच्च श्रुतिमार्गं सनातनम्॥८६॥

यह सुनकर उस व्यक्ति ने अंगूठे के अग्रभाग से एक महान् गड्ढा खोदा तथा उसमें उस घट का जल छोड़ दिया। वह गड्ढा जल से भर दिये जाने पर भी घट में जल बच गया, तब उस व्यक्ति ने अंगूठे से चालित करके वहां स्थित सरोवर को भी भर दिया। तथापि इस अद्भुत व्यापार को देखकर भी कालभीति तनिक विस्मित नहीं था। उसने सोचा कि भूतादि देवयोनि के उपासक भी ऐसी विविध घटना संघटित करते रहते हैं। इसलिए यह सब देखकर सनातन श्रुतिपथ कभी भी छोड़ा नहीं जा सकता।।८३-८६।।

नर उवाच

अतिमूर्खोऽसि विप्रत्वंप्रज्ञावादांश्चभाषसे। किंन श्रुतस्त्वयाश्लोकःपुराविद्भिरुदीरितः।
कूपोऽन्यस्य घटोऽन्यस्य रज्जुरन्यस्य भारत!॥८७॥
पायन्त्यन्ये पिबन्त्यन्येसर्वे ते समभागिनः। तज्जलंममकस्मात्त्वंधर्मज्ञो न पिबस्यसि॥८८॥

वह मनुष्य कहता है—हे विप्र! तुम नितान्त मूर्ख हो, तथापि ज्ञानी की तरह बकबक कर रहे हो! क्या तुमने पुरातन ज्ञानयुक्त यह श्लोक नहीं सुना कि एक का कूप, एक का घट, एक की रज्जु है तथा एक अन्य व्यक्ति जल

पिला रहा है, अन्य व्यक्ति जल पी रहा है। यह सभी समान फलप्रदायक तो है! तब तुमने धर्मज्ञ होकर भी मेरे जल का पान क्यों नहीं किया?।।८७-८८।।

नारद उवाच

ततो विममृशेश्लोकोबहुधासमभागिनाम्। अनिश्चयाद्विचार्यासौघटाद्यैःसमभागिता।।८९।।
बहुपोतद्रव्यक्षेपः सर्वैः सा समभागिता। एवं कर्तुः फलैः सर्वैः समंस्याच्चपुनःपुनः।।९०।।
यः शुचिश्च शिवं ध्यायन्प्रासादकूपकर्तरि। जलप्रतिग्रहाभावात्पिबतोऽस्यसमंफलम्।।९१।।

नारद कहते हैं—हे अर्जुन! कालभीति ने उस श्लोक के सम्बन्ध में विशेष चिन्तन किया, तथापि वह यह स्थिर नहीं कर सका कि सभी समान फलभागी क्यों होंगे? अनेक चिन्तन के उपरान्त उसने यह स्थिर किया कि जिस कार्य में जो-जो लोग सहायक होते हैं, वे समान फल भागी होंगे। जैसे विभिन्न व्यक्ति विभिन्न सामग्री से एक नौका बनाते हैं। वह सबको समानतः फलप्रदान करती है (अर्थात् सभी नदी पार कर लेते हैं)। इसी प्रकार यदि कोई शिवध्यान के साथ प्रासाद, मन्दिर किंवा कूप निर्माण करता है, तथापि यदि कोई उसका व्यवहार न भी करे, तब उक्त व्यक्ति को फल में आंशिक न्यूनता होगी। यदि कोई व्यक्ति जो शिव का उपासक हो, उस प्रासाद में निवास करेगा, किंवा कूप जल का पान करेगा, तब उस व्यक्ति को जो उसका निर्माता है, अत्यन्त फल की प्राप्ति होगी।।८९-९१।।

इति निश्चित्य प्रोवाच कालभीतिर्नरं च तम्। सत्यमेतत्किन्तु कुम्भपयसा गर्तपूरणे।।९२।।
दृष्ट्वा प्रत्यक्षतो मादृक्कथं पिबति भो वद। साधु वाप्यथवाऽसाधु न पिबेयं कथञ्चन।।९३।।
एवं विनिश्चयं दृष्ट्वाऽस्यस्थिरं कुरुनन्दन। पुरुषोऽसौ प्रहस्यैव क्षणादन्तर्दधे ततः।।९४।।
सालभीतिश्च परमं विस्मयं समुपागतः। वृत्तान्तः कोऽयमित्येवचिन्तयामासभूयसा।।९५।।

कालभीति ने इस प्रकार से विचार करके उस मनुष्य से कहा—"तुम्हारा कथन सत्य तो है, किन्तु मैंने साक्षात् देखा कि तुमने कलस (घट) के जल से इस गड्ढे को भर दिया। अतः मेरे जैसा ज्ञानी उस जल का पान कैसे करे? फलतः अच्छा हो अथवा बुरा हो, मैं तुम्हारे जल का कदापि पान नहीं करूंगा।" हे कुरुनन्दन! उस पुरुष ने जब कालभीति का यह दृढ़ निश्चय देखा, तब वह हंसता हुआ वहां से अन्तर्हित हो गया। कालभीति विस्मयपूर्वक चिन्तन करने लगा कि यह कैसी घटना है!।।९२-९५।।

ततश्चिन्तयतस्तस्य बिल्वाधस्तात्सुशोभनम्। उच्छ्रितं सुमहालिङ्गं पृथिव्या द्योतयद्दिशः।।९६।।
प्रादुर्भावे ततस्तस्य महालिङ्गस्य भारत। ननर्त खेऽप्सरोवृन्दं गन्धर्वा ललितं जगुः।।९७।।
पारिजातमयीं पुष्पवृष्टिमिन्द्रो मुमोच ह। जयेति देवा मुनयस्तुष्टुवुर्विविधैः स्तवैः।।९८।।
तस्मिन्महति कौरव्य! वर्तमाने महोत्सवे। कालभीतिः प्रमुदितःप्रणम्य स्तोत्रमैरयत्।।९९।।

कालभीति यही सोच ही रहा था, तभी उसने देखा कि सहसा बिल्ववृक्ष के नीचे एक सुमहान् लिंग प्रादुर्भूत हो गया। उसके तेज से दसों दिशायें भी उद्भासित हो उठीं। हे भारत! तब आकाश में गन्धर्वगण सुललित गान करने लगे। अप्सरायें नृत्यरत हो गईं। इन्द्रदेव पारिजात पुष्पों की वर्षा करने लगे। अप्सरा, देवगण तथा मुनिगण जयजयकार द्वारा उस लिंग की सम्वर्द्धना कर रहे थे। वे तदनन्तर नाना प्रकार के स्तव कहने लगे। हे कुरुनन्दन!

इस प्रकार वहां महान् उत्सव प्रारम्भ हो गया। तब कालभीति भी उस लिंग को प्रणाम करके स्तव करने लगा।।९६-९९।।

पापस्य कालं भवपङ्ककालं कलाकलं कालमार्गस्य कालम्।
देवं महाकालमहं प्रपद्ये श्रीकालकण्ठं भवकालरूपम्॥१००॥
ईशानवक्त्रं प्रणमामि त्वाहं स्तौति श्रुतिः सर्वविद्येश्वरस्त्वम्।
भूतेश्वरस्त्वं प्रपितामहस्त्वं तस्मै नमस्तेऽस्तु महेश्वराय॥१०१॥
यं स्तौति वेदस्तमहं प्रपद्ये तत्पुरुषसञ्ज्ञं शरणं द्वितीयम्।
त्वां विद्महे तच्च नस्त्वं प्रदेहि श्रीरुद्र! देवेश नमो नमस्ते॥१०२॥
अघोरवक्त्रं त्रितयं प्रपद्ये अर्थजुष्टं तव रूपकाणि।
अघोरघोराणि च घोरघोराण्यहं सदा नौमि भूतानि तुभ्यम्॥१०३॥
चतुर्थवक्त्रं च सदा प्रपद्ये सद्योभिजाताय नमोनमस्ते।
भवे भवेनाऽऽदिभवो भवस्व भवोद्भवो मां शिव तत्र तत्र॥१०४॥

कालभीति कहता है—जो पापराशि के काल, संसार रूपी कीचड़ (पंक) के काल, कालमार्ग के काल तथा संसार के भी कालरूप हैं, मैं उन कलाधर, कालकण्ठ, महाकाल का आश्रय ग्रहण करता हूं। आप ईशान वक्त्र, सर्वविद्या के ईश्वर हैं, आपको प्रणाम! श्रुतियां भी आपकी ही स्तुति करती हैं। आप भूतेश्वर, महेश्वर, प्रपितामह हैं। आपको प्रणाम! वेदगण जिनकी तत्पुरुषसंज्ञक द्वितीय मूर्त्ति का स्तव करते हैं, आप वही रुद्रदेव हैं। आपको प्रणाम! हे देवेश! आपका तत्व जानकर मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूं। आपको प्रणाम! आपकी अघोर नामक तृतीय मूर्त्ति अथर्ववेद में प्रशंसित है! मैं अघोर, घोर, घोराघोर रूपी आपकी मूर्त्तियों को प्रणाम करता हूं। मैं आपकी सद्योजात नामक चतुर्थ मूर्त्ति को सतत् प्रणाम करता हूं। हे शिव! आपसे ही संसार उद्भूत होता है। आप अनादिभव हैं। मैं जन्म-जन्म में जहां भी रहूं, आप मेरे प्रति करुणा वर्षा करें।।१००-१०४।।

नमोऽस्तु ते वामदेवाय ज्येष्ठरुद्राय कालाय कलविकारिणे।
बलङ्करायाऽपि बलप्रमाथिने भूतानि हन्त्रे च मनोन्मताय॥१०५॥
त्रियम्बकं त्वां च यजामहे वयं सुपुण्यगन्धैः शिवपुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकं पक्वमिवोग्रबन्धनाद्रक्षस्व मां त्र्यम्बक! मृत्युमार्गात्॥१०६॥
षडक्षरं मन्त्रवरं तवेश! जपन्ति ये मुनयो वीतरागाः।
तेषां प्रसन्नोऽसि जपामहे तं त्वोङ्कारपूर्वं च नमः शिवाय॥१०७॥

आप वामदेव, ज्येष्ठ रुद्र, काल, कालविकारी, बलद्भव, बलप्रमाथी, मनोन्मन तथा भूतहन्ता हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं। आप सर्वविध मंगल, पुष्टिवर्द्धक त्र्यम्बक हैं। मैं आपकी पुण्यमय गन्धादि से अर्चना करता हूं। जैसे पका कूष्माण्ड फल वृन्त बन्धन से पकने पर गिर जाता है, हे त्रिलोचन! उसी प्रकार आप मृत्युबन्धन से मुझे मुक्त करिये। हे ईश! जो संसार विरागी होकर आपके षडक्षर मन्त्र का जप करते हैं, आप उन सभी मुनिगण के प्रति प्रसन्न रहते हैं। मैं सदा "ॐ नमः शिवाय" मन्त्र का जप करता हूं।।१०५-१०७।।

एवं स्तुतो महादेवो लिङ्गान्निःसृत्य भारत। त्रिजगद्द्योतयन्भासा प्रत्यक्षः प्राह च द्विजम्॥१०८॥
यत्त्वयाऽत्र महातीर्थे भृशमाराधितोद्विज। तेनाति तुष्टस्ते वत्स नेशः कालः कथञ्चन॥१०९॥
अहं च नररूपी यो दृष्ट्वा ते धर्मसंस्थितम्। धन्यस्तद्धर्ममार्गोऽयं पाल्यतेयद्भवद्विधैः॥११०॥
सर्वतीर्थोदकैर्गर्तः पूरितो मे सरस्तथा। जलमेतन्महापुण्यं त्वदर्थं मे समाहृतम्॥१११॥
सप्तमन्त्ररहस्यं च यत्कृतं स्तवनं मम। अनेन पठ्यमानेन सप्तमन्त्रफलं भवेत्॥११२॥
अभीष्टं च वरं मत्तो वृणीष्वमनसेप्सितम्। त्वयाऽतितोषितोह्यस्मिनादेयंविद्यतेतव॥११३॥

हे भरतश्रेष्ठ! महादेव इस प्रकार से स्तुत होकर उस लिंग से निकले तथा उन्होंने अपने तेज से तीनों लोकों को उद्भासित करके कालभीति को दर्शन देकर ब्राह्मण से कहा—"हे द्विज! तुमने जो इस महातीर्थ में कठोर तप करके मेरी आराधना की है, उससे मैं तुम पर अतीव सन्तुष्ट हो गया। इसीलिये मैंने तुम पर कोई बल प्रयोग नहीं किया। मैंने ही मनुष्य रूप धारण करके तुम्हारा जो धर्म पर विश्वास देखा, उससे विदित हुआ कि तुम्हारे समान व्यक्ति जिसका पालन करता है, वह धर्ममार्ग धन्य है। तुम्हारे लिये जिस जल को लेकर आया था, वह सर्वतीर्थमय तथा अत्यन्त पुण्यप्रद है। मैंने उससे ही यह गर्त्त तथा सरोवर को भरा। तुमने सात मन्त्र रहस्य व्यञ्जक जो स्तव अभी किया, उसका पाठकर्त्ता मनुष्य उक्त सातों मन्त्रों का फललाभ करेगा। तुम मुझसे वांछित वर की प्रार्थना करो। मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूं। तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है।।१०८-११३।।

कालभीतिरुवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यत्त्वं तुष्टोऽसि शङ्कर!।
त्वत्तोषात्सफला धर्माः श्रमायैवाऽन्यथा मताः॥११४॥
यदि तुष्टोऽसिसान्निध्यंलिङ्गेऽत्रक्रियतां सदा। अक्षयंतत्कृतंचास्तुयल्लिङ्गेक्रियतेऽत्रच॥११५॥
जपतो यत्फलं देव! पञ्चमन्त्रायुतेन च। तत्फलं जायतां नृणामस्य लिङ्गस्य दर्शने॥११६॥
कालमार्गादहं यस्मान्मोहितोऽहं महेश्वर!। महाकालमिति ख्यातं लिङ्गंतस्माद्भवत्विदम्॥११७॥
अस्मिंश्च कूपे यो मर्त्यः स्नात्वा तर्पयते पितॄन्।
सर्वतीर्थफलं चाऽस्तु पितॄणामक्षया गतिः॥११८॥

कालभीति कहता है—हे शंकर! आप मुझ पर प्रसन्न हैं, इससे मैं धन्य तथा अनुगृहीत हो गया। जिस धर्म से आप सन्तुष्ट न हों, वह धर्म ही नहीं है। व्यर्थ श्रममात्र है। यदि आप प्रसन्न हैं, तब आप इस लिंग में सदा स्थित रहें। इस लिंग के प्रति (ध्यान-पूजन-जपादि) जो कुछ भी किया जाये, वह अक्षय फलप्रद हो जाये। हे देव! आपके ५ मन्त्रों के १०००० जप का जो फल है, इस लिंग के दर्शन मात्र से मनुष्य उसे प्राप्त करे। हे महेश्वर! मैं जिसके द्वारा कालमार्ग से मुक्त हो सका, वह लिंग 'महाकाल' कहलाये। इस कूप में जो व्यक्ति स्नानोपरान्त पितृ तर्पण करे, उसे सर्वतीर्थफल लाभ हो जाये। उसके पितृगण अक्षय गति प्राप्त करें।।११४-११८।।

इति तस्यवचः श्रुत्वाप्रीतस्तंशङ्करोऽब्रवीत्। स्वायम्भुवं यत्रलिङ्गंतत्रनित्यंवसाम्यहम्॥११९॥
स्वयम्भुबाणरत्नोत्थधातुपाषाणलोहजम्। लिङ्गं क्रमेण फलदमन्त्यात्पूर्वंदशोत्तरम्॥१२०॥

आकाशे तारकालिङ्गं पाताले हाटकेश्वरम्। स्वायम्भुवं धरापृष्ठे तदेत्त्रितयं समम्॥१२१॥
विशेषात्प्रार्थितं यच्च तच्चसर्वं भविष्यति। अत्र पुष्पं फलं पूजानैवेद्यंस्तवनक्रिया॥१२२॥
दानं वाऽन्यच्च यत्किञ्चिदक्षयं तद्भविष्यति। माघासितचतुर्दश्यां शिवयोगेच पुत्रक॥१२३॥
लिङ्गाच्च पूर्वतःकूपेस्नात्वायस्तर्पयेत्पितॄन्। सर्वतीर्थफलावाप्तिःपितॄणांचाक्षयागतिः॥१२४॥

भगवान् शिव ने कालभीति का कथन सुनकर प्रीतिपूर्वक कहा—जहां स्वयम्भू लिंग प्रतिष्ठित है, वहां मैं नियत निवास करता हूं। स्वयम्भू लिंग, बाण लिंग, रत्नज, धातुज तथा पाषाण निर्मित एवं लौह लिंग में बाद वाले लिंग से पहले वाला लिंग दस-दस गुना अधिक फलद है। जैसे लौह से उत्तम पाषाण लिंग है। इत्यादि। आकाशस्थ तारकलिंग, पातालस्थ हाटकेश्वर लिंग तथा मर्त्यलोकस्थ यह स्वयम्भू लिंग—ये समान गुण वाले हैं। ये तीनों साधक को इच्छित फल देते हैं। इन लिंग पर पुष्प-फल-नैवेद्य-पूजा-स्तुति-दानादि जो कुछ सत्क्रिया सम्पन्न होती है, वह सब अक्षय हो जाती है। हे पुत्र! माघ मास की कृष्ण चतुर्दशी के दिन शिवयोग में जो मानव इस लिंग के पूर्वदिक् में स्थित कूप जल से स्नानोपरान्त पितृतर्पण करता है, उसे सर्वतीर्थमय फललाभ होता है। उसके पितरों को अक्षयगति मिलती है।११९-१२४।।

तस्यां रात्रौ महाकालं यामेयामेप्रपूजयेत्। यः क्षिपेत्सर्वलिङ्गेषु स जागरफलंलभेत्॥१२५॥
जितेन्द्रियश्च यो नित्यं मां लिङ्गेषु प्रपूजयेत्। भुक्तिमुक्तीनदूरस्थेतस्यनित्यंद्विजोत्तम॥१२६॥
माघे चतुर्दश्यष्टम्यां सोमवारे च पर्वणि। स्नात्वा सरसि योऽभ्यर्च्य लिङ्गमेतच्छिवं व्रजेत्॥१२७॥
दानं तपो रुद्रजापः सर्वमक्षयमेव च। त्वं च नन्दी द्वितीयो मे प्रतिहारो भविष्यसि॥१२८॥
कालमार्गजयाद्वत्स महाकालाभिधश्चिरम। करन्धमोऽत्रराजर्षिरचिरादागमिष्यति॥१२९॥
तस्य प्रोच्य भवान्धर्मांस्ततोमल्लोकमाव्रज। इत्युक्त्वाभगवान्रुद्रोलिङ्गमध्येन्यलीयत॥१३०॥
महाकालोऽपि मुदितस्तत्र तेपे महत्तपः॥१३१॥

॥इति महाकालप्रादुर्भावः॥

जो व्यक्ति उक्त तिथिकाल में रात्रि के समय प्रति प्रहर में महाकाल लिंगार्चन करके रात्रि जागरण करते हैं, उनको जगत् के समस्त लिंगार्चन का तथा सर्वत्र रात्रि जागरण जनित फल मिलता है। हे द्विजोत्तम! जो व्यक्ति इन्द्रियजित् होकर नित्य इस लिंग की पूजा सम्पन्न करता है, भुक्ति तथा मुक्ति उसके करतलगत हो जाती है। यदि कोई माघमासीय शुक्लपक्ष की सोमवार से युक्त चतुर्दशी किंवा अष्टमी के दिन इस सरोवर में स्नान करके महाकाल लिंगार्चन करेगा, उसे शिवलोक प्राप्त होगा। फलस्वरूप महाकाल लिंग के पास दान-तप-रुद्रमन्त्र जप जो कुछ भी आराधन कृत्य सम्पन्न किया जायेगा, वह सब अक्षय होगा। हे वत्स! तुमने कालमार्ग को जीत लिया है। तुम अब महाकाल नाम से नन्दी की ही तरह मेरे द्वितीय अनुचर होकर सुख के साथ मेरे ही लोक में निवास करोगे। शीघ्र ही यहां पर करन्दमराजऋषि का आगमन होगा। तुम उनको धर्मोपदेश देकर तब मेरे लोक जाओगे।

भगवान् यह कहकर उसी लिंग में लीन हो गये। तदनन्तर महाकाल (कालभीति) भी सानन्द मन से वहां महान् तप करने लगा।।१२५-१३१।।

॥इति महाकाल प्रादुर्भाव॥

नारद उवाच

अथ केनापि कालेन पार्थ राजा करन्धमः। विशेषमिच्छुर्धर्मेषु श्रुत्वातीर्थमहागुणान्॥१३२॥
महाकालचरित्रं च तत्रैव समुपाययौ। महीसागरतोयेऽसौ स्नात्वालिङ्गान्यथार्चयत्॥१३३॥
महाकालमनुप्राप्य परमां प्रीतिमागतः। स पश्यन्सुमहालिङ्गं नाऽतृप्यत जनेश्वरः॥१३४॥
यथा दरिद्रः कृपणो निधिकुम्भमवाप्य च।
सफलं जीवितं मेने महाकालं निरीक्ष्य सः॥१३५॥
पञ्चमन्त्रायुतजपफलं यस्येह दर्शनात्। ततः सपर्ययाऽभ्यर्च्य महत्याऽसौ प्रणम्य च॥१३६॥
श्रुत्वा च लिङ्गप्रवरं महाकालमुपासदत्। ततो रुद्रवचः स्मृत्वा महाकालःस्मयन्निव॥१३७॥
प्रत्युद्गम्य नृपं पूजामर्घं च प्रत्यपादयत्। ततः कुशलप्रश्नादि कृत्वा शान्तमुखं नृपः॥१३८॥

नारद कहते हैं—हे पृथानन्दन! तदनन्तर कुछ काल के उपरान्त राजा करन्धम महाकाल तीर्थ की महिमा तथा महाकाल कालभीति का प्रसंग सुनकर धर्म के सम्बन्ध में विशेष तत्व जानने हेतु वहां आये। उन्होंने महीसागर संगम तीर्थ में स्नान करके वहां के सभी लिंगों की अर्चना की तथा महाकाल के पास पहुंचकर अत्यन्त प्रसन्न हो गये। जिसके दर्शन से पञ्चमन्त्र के १०००० जप का फल मिलता है, उनके दर्शन पाकर करन्धम को वैसी ही प्रसन्नता हो रही थी, मानों विशाल खजाना मिला हो। उसके आनन्द की सीमा ही न रही! उन्होंने माना कि आज मेरा यह जीवन सफल हो गया। तब उन्होंने महान् महोपचार से उस लिंग की अर्चना करके प्रणाम किया तथा महाकाल कालभीति के पास आये। महाकाल ने जब राजा को आते देखा, तब उनको भगवान् रुद्र का कथन स्मरण हो आया। उन्होंने हास्यपूर्ण मुद्रा के साथ आगे आकर राजा का सत्कार अर्घ्य-पाद्य आदि से किया। तब राजा करन्धम ने भी शान्तिमूर्त्ति महाकाल से यथायोग्य कुशल प्रश्न किया।।१३२-१३८।।

महाकालमुपामन्त्र्य कथान्ते वाक्यमब्रवीत्। भगवन्संशयो मह्यं सदाऽयं परिवर्तते॥१३९॥
यदिदं तर्पणंनाम पितृणां क्रियते नृभिः। जलमध्ये जलं याति कथं तृप्यन्ति पूर्वजाः॥१४०॥
एवं पिण्डादिपूजा च सर्वमत्रैव दृश्यते। कथमेवं स्म मन्यामः पित्रादैरुपभुज्यते॥१४१॥
न चैतदस्ति यत्तेषां नोपतिष्ठति किञ्चन। स्वप्ने यथाक्रम्य नरं दृश्यन्तेयाचकाश्चते॥१४२॥
देवानां चापि दृश्यन्ते प्रत्यक्षाःप्रत्ययाः सदा। तत्कथंप्रतिगृह्णन्तिमनोमेऽत्र प्रमुह्यति॥१४३॥

तदनन्तर नाना वार्त्ता के पश्चात् करन्धम ने प्रश्न किया—"हे भगवान्! मेरे अन्तःकरण में सदा यह प्रश्न रहता है कि जो मनुष्य पितृतर्पण करते हैं, वे सदा जल में ही जल छोड़ देते हैं। उससे पूर्व पुरुषों की तृप्ति कैसे होती होगी? इसी प्रकार श्राद्धादि कृत्य में पिण्ड आदि से पूजा तो दिखलाई देती है, तथापि वह पितरों को तृप्ति देगा यह कैसे समझा जाये? उनके उद्देश्य से श्राद्धादि करने से वह उनको प्राप्त होता है, ऐसा भी नहीं कह सकते। यह भी देखा गया है कि किसी-किसी मनुष्य को उसके पितर स्वप्नावस्था में श्राद्धादि विविध विषय हेतु प्रार्थना भी करते हैं। इसी प्रकार से देवताओं का भी विविध विश्वासोत्पादक घटनाक्रम भी सतत् प्रत्यक्ष होता रहता है। तथापि वे कैसे इन श्राद्ध-पूजादि को ग्रहण करते हैं। इस विषय में मेरा मन भ्रमित है।।१३९-१४३।।

महाकाल उवाच

योनिरेवंविधा तेषां पितृणां च दिवौकसाम्। दूरोक्तं दूरपूजा च दूरस्तुतिरथापियत्॥१४४॥
भव्यं भूतं भविष्यच्च सर्वं जानन्ति यान्ति च। पञ्चतन्मात्ररूपं च मनोबुद्धिरहंजडाः॥१४५॥
नवतत्त्वमयं देहं दशमः पुरुषो मतः। तस्माद्गन्धेन तृप्यन्ति रसतत्त्वेन ते तथा॥१४६॥
शब्दतत्त्वेन तुष्यन्ति स्पर्शतत्त्वं च गृह्णते। शुचि दृष्ट्वा च तुष्यन्तिनात्रराजन्भवेन्मृषा॥१४७॥
यथा तृणं पशूनां च नराणामन्नमुच्यते। एवं दैवतयोनीनामन्नसारस्य भोजनम्॥१४८॥
शक्तयः सर्वभावानामचित्या ज्ञानगोचराः। तस्मात्तत्त्वं प्रगृह्णन्ति शेषमत्रैवदृश्यते॥१४९॥

महाकाल कालभीति कहता है—इन देवगण तथा पितरों की उत्पत्ति ऐसे उपादान से है कि वे दूर से ही अनुष्ठित पूजा, स्तुति तथा भाषणादि भूत-भविष्यत्-वर्त्तमान को जान लेते हैं। पञ्चतन्मात्र, मन, बुद्धि, अहंकार तथा जड़ा प्रकृति से उनकी देह गठित रहती है। इन ९ के अतिरिक्त (५+१+१+१+१=९) पुरुष १०वां है। इस दस से गठित वे गन्धतत्व से आनन्दित, रसतत्व से तृप्त, शब्दतत्व से तुष्ट होते हैं तथा वे स्पर्श तत्व से ग्रहण करते हैं। वे सुन्दर रूपतत्व देखकर परितृप्त होते हैं। हे राजन्! इससे अन्यथा नहीं होता। जैसे तृणादि उद्भिद् मनुष्य तथा पशु आदि का अन्न है, वैसे अन्नादि का सारतत्व ही देवयोनियों का अन्न है। ज्ञान द्वारा जहां तक जाना जा सकता है, उसके आधार पर यह कहना है कि पदार्थ समूह की शक्ति अचिन्त्य है। उसके कारण का चिन्तन ही नहीं हो सकता। उस अचिन्त्य शक्ति के प्रभाव से, उनके उद्देश्य से यथाविधि प्रदत्त द्रव्य का सूक्ष्म तत्वांश वे ग्रहण करते हैं। अवशिष्ट अंश यहीं पड़ा रह जाता है।।१४४-१४९।।

करन्धम उवाच

पितृभ्यो दीयते श्राद्धं स्वकर्मवशगाश्च ते। स्वर्गस्था नरकस्था वा कथं तैरुपभुज्यते॥१५०॥
अथ स्वर्गेऽथ नरके स्थिताः कर्माभियन्त्रिताः।
शक्नुवन्ति वरानेतान्दातुं ते चेश्वराः कथम्॥१५१॥
आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च।
प्रयच्छन्तु यथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः॥१५२॥

करन्धम कहते हैं—पितृगण तो स्व-स्व कर्मानुसार कोई स्वर्ग तो कोई नरक आदि नाना स्थान में रहते हैं, तब उनके लिये जो श्राद्ध सम्पन्न होता है, उसका उपभोग करने में वे किस प्रकार से समर्थ हो पाते हैं? वे अपने कर्मानुसार जब स्वर्ग अथवा नरक में आबद्ध रहते हैं, तब वे वरदान आदि कैसे दे पाते हैं? कहा गया है कि पितृगण प्रसन्न होकर मनुष्यों का आयु, सन्तान, धन, विद्या, राजत्व, स्वर्ग यहां तक कि मोक्ष तक प्रदान कर देते हैं।।१५०-१५२।।

महाकाल उवाच

सत्यमेतत्स्वकर्मस्थाः पितरो यन्नृपोत्तम!। किन्तु देवासुराणाञ्च यक्षादीनाममूर्तकाः॥१५३॥
मूर्ताश्चतुर्णां वर्णानांपितरःसप्तधा स्मृताः। ते हि सर्वेप्रयच्छन्तिदातुंसर्वंयथेप्सितम्॥१५४॥

एकत्रिंशद्गणा येषां पितृणां प्रबला नृप!। कृतं च तदिदं श्राद्धं तर्पयेत्तान्परान्पितॄन्॥१५५॥
ते दृप्तास्तर्पयन्त्यस्य पूर्वजान्यत्र संस्थितान्।
एवं स्वानां चोपनितष्ठेच्छ्राद्धं यच्छन्ति ते वरान्॥१५६॥

महाकाल कहते हैं—हे नृपोत्तम! आपने यह सत्य कहा कि पितृगण अपने-अपने कर्म के वशीभूत होते हैं, तथापि पितृगण समष्टि में ३१ हैं। उनमें देवपितृ, असुरपितृ तथा यक्षादि देवयोनि के पितृ अमूर्त्त हैं। तदनन्तर ४ वर्णों के ४ पितृगण और हैं। ये प्रत्येक ७-७ करके समष्टि में २८ हैं। ये मूर्त्तिमान पितर हैं। ये ३१ पितर अतीव शक्तिशाली हैं। (ये २८ तथा + देवपितृ + असुरपितृ + यक्ष पितृ = ३१)। ये प्रत्येक समस्त वांछित फल प्रदान करते हैं। श्राद्ध किये जाने पर ये पितृगण (३१ पितर) अत्यन्त तृप्त होते हैं। ये तृप्त होकर श्राद्धकर्त्ता के पूर्वपुरुष जहां भी होते हैं, वहीं उनकी तृप्ति का विधान कर देते हैं। इस प्रकार श्राद्ध किये जाने पर व्यक्ति अपने पूर्व पुरुषों को तृप्त करता है। तभी उसे वर प्राप्त होता है।।१५३-१५६।।

राजोवाच

भूतादिभ्यो यथा विप्र नाम्ना वोद्दिश्य दीयते। सुरादीनां कथं चैव संक्षेपेणनदीयते॥१५७॥
इदं पितृभ्योदेवेभ्योद्विजेभ्यःपावकाय च। एवं कस्माद्विस्तराःस्युर्मनःकायादिकष्टदाः॥१५८॥

राजा करन्धम कहते हैं—हे विप्र! साधारण प्राणीगण को केवल नाम का उच्चारण करके दान किया जाता है। इस प्रकार पितर एवं देवगण को "यह पितरों का, यह देवगण का, यह द्विजगण का, यह अग्नि का" इस प्रकार से कहने पर यथोक्त फल क्यों नहीं मिलता? काया-मन को कष्ट देने वाला कार्य क्यों करना पड़ता है?।।१५७-१५८।।

महाकाल उवाच

उचिता प्रतिपत्तिश्च कार्या सर्वेषु नित्यशः। प्रतिपत्तिं चोचितान्तेविनागृह्णन्तिनैवच॥१५९॥
यथा श्वा गृहद्वारस्थो बलिं गृह्णाति किं तथा। प्रधानपुरुषोराजन्गृह्णातिचशुनासमः॥१६०॥
एवं ते भूतवद्देवा न हि गृह्णन्ति कर्हिचित्। शुचि कामं जुषन्ते न हविरश्रद्दधानतः॥१६१॥
विना मन्त्रैश्च यद्दत्तं न तद्गृह्णन्ति तेऽमलाः। श्रुतिरप्यत्र प्राहेदं मन्त्राणांविषये नृप॥१६२॥

"मन्त्रा दैवता यद्यद्विद्वान्मन्त्रवत्करोति देवताभिरेव तत्करोतियद्ददाति देवताभिरेव तद्ददाति यत्प्रतिगृह्णाति देवताभिरेव तत्प्रतिगृह्णाति तस्मान्नामन्त्रवत्प्रतिगृह्णीयात् नाममन्त्र-वत्प्रतिपद्यते" इति॥१६३॥

तस्मान्मन्त्रैः सदा देयं पौराणैर्वैदिकैरपि। अन्यथा ते न गृह्णन्ति भूतानामुपतिष्ठति॥१६४॥

महाकाल कहते हैं—सबके प्रति यथायोग्य गौरव प्रदर्शन करना आवश्यक है। विशेषतः पितृगण-देवगण समुचित सम्मान पाये बिना कुछ भी ग्रहण नहीं करते। हे राजन्! गृहद्वार पर बलि देने से उसे एक कुत्ता अवश्य ग्रहण करेगा, तथापि क्या एक सम्भ्रान्त व्यक्ति उसे ग्रहण कर पायेगा? इसी प्रकार से देवता भी यथायोग्य सत्कार के बिना प्रदत्त वस्तु कदापि ग्रहण नहीं करते। यदि विशुद्ध भोज्य भी उनको प्रदान करें, तब

वे उसे अश्रद्धा से देने पर कभी भी सन्तोषपूर्वक ग्रहण नहीं करते। वे अमल स्वभाव हैं। इसलिए वे मन्त्ररहित प्रदत्त वस्तु कदापि ग्रहण नहीं करते। मन्त्र के सम्बन्ध में (शतपथ ब्राह्मण में) श्रुति का यह उपदेश है "मन्त्र तो देवता की मूर्त्ति है। विद्वान् व्यक्ति जो-जो मन्त्रपूत करके सम्पादित करता है, वह सब देवता द्वारा अधिष्ठित होता है। जो दान करते हैं, वह देवता ने ही हमें दिया है। जो दान लेते हैं, वह देवता द्वारा ही लिया गया है। अतः मन्त्र के बिना दान न करे। जो मन्त्ररहित दान है, उससे प्रतिष्ठा नहीं मिलती। तभी समस्त कार्य वैदिक किंवा पौराणिक मन्त्र से ही करें। अन्यथा पितृगण वह ग्रहण नहीं करते। उसका व्यवहार वे लौकिक प्राणी के समान करते हैं।।१५९-१६४।।

राजोवाच

दर्भांस्तिलानक्षतांश्चतोयंचैतैःसुसंयुतम्। कस्मात्प्रदीयतेदानंज्ञातुमिच्छामिकारणम्।।१६५।।

राजा कहते हैं—दान करने पर कुश-तिल-अक्षत तथा जल मिलाकर दान क्यों करते हैं? इसका कारण कहिये।।१६५।।

महाकाल उवाच

पुरा किल प्रदत्तानि भूमेर्दानानि भूरिशः। प्रत्यगृह्णन्त दैत्याश्च प्रविश्याभ्यन्तरं बलात्।।१६६।।

ततो देवाश्च पितरः प्रत्यूचुः पद्मसम्भवम्।।१६७।।

स्वामिन्नःपश्यतामेवसर्वं दैत्यैःप्रगृह्यते। ,विधेहि रक्षां तेषां त्वंननष्टाः स्मोयथावयम्।।१६८।।

ततो विमृश्यैव विधि रक्षो पापमचीकरत्। तिलैर्युक्तं पितृणां च देवानामक्षतैः सह।।१६९।।

तोयं दर्भांश्च सर्वत्र एवं गृह्णन्ति नासुराः। एतान्विना प्रदत्तं यत्फलंदैत्यैः प्रगृह्यते।।१७०।।

निःश्वस्य पितरो देवा यान्तिदातुःफलं नहि। तस्माद्युगेषु सर्वेषु दानमेव प्रदीयते।।१७१।।

महाकाल कहते हैं—यह इतिहास है कि पूर्वकाल में देवगण के लिये जब पृथिवी पर द्रव्य प्रदत्त होता था, तब असुरगण पाताल से उठते तथा उसे बलात् ग्रहण कर लेते। यह घटित होने पर देवता तथा पितरों ने जाकर ब्रह्मा से कहा—"हे स्वामिन्! देखिये! असुरगण हमारा भाग ले जाते हैं। देखें! जिससे हमारा भाग रक्षित रहे, ऐसी व्यवस्था करिये, जिससे हम नष्ट न हों।" तब ब्रह्मा ने मन ही मन विचार करके यह व्यवस्था की कि देवता तथा पितृगण का सभी भाग जल तथा कुश युक्त हो। देवगण के भाग में अक्षत हो, पितरों के भाग में तिल हो। जो ऐसे चिह्नित होगा, उसे दैत्य नहीं ले सकेंगे। जो ऐसे चिह्नित नहीं हैं, उसे दैत्य ग्रहण कर लेंगे। जो तिलयुक्त द्रव्य पितृगण को नहीं प्रदान करता, पितर दुःखित होकर दीर्घ निःश्वास छोड़ते वहां से चले जाते हैं, क्योंकि वह दैत्यों से गृहीत होगा। हे राजन्! इसी कारण चारों युग में दान का यही विधान निश्चित है।।१६६-१७१।।

करन्धम उवाच

चतुर्युगव्यवस्थानां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः। महतीयं विवित्सा मे सदैव परिवर्तते।।१७२।।

करन्धम कहते हैं—मैं चतुर्युग की यथायथ व्यवस्था जानना चाहता हूं। इस सम्बन्ध में मेरी महान् उत्सुकता है।।१७२।।

महाकाल उवाच

आद्यं कृतयुगं विद्धिततस्त्रेतायुगं स्मृतम्। द्वापरं च कलिश्चेति चत्वारश्च समासतः॥१७३॥
सत्त्वं कृतं रजस्त्रेता द्वापरं च रजस्तमः। कलिस्तमस्तु विज्ञेयं युगवृत्तं युगेषु च॥१७४॥
ध्यानं परं कृतयुगे त्रेतायां यज्ञ उच्यते। वृत्तं च द्वापरे सत्यं दानमेव कलौ युगे॥१७५॥
कृतेतुमानसीसृष्टिर्वृत्तिःसाक्षाद्रसोल्लसा। तेजोमय्यःप्रजास्तृप्ताःसदानन्दाश्चभोगिनः॥१७६॥
अधमोत्तमानतासांतानिर्विशेषाःप्रजाःशुभाः। तुल्यमायुःसुखंरूपंतासांतस्मिन्कृतेयुगे॥१७७॥
न चाप्रीतिर्न च द्वन्द्वो नद्वेषोनापिचक्लमः। पर्वतोदधिवासिन्योह्यनुक्रोशप्रियास्तुताः॥१७८॥
वर्णाश्रमव्यवस्थाचतदासीन्न हि शङ्करः। एकमन्यं न ध्यायन्ति परमं ते सदाशिवम्॥१७९॥
चतुर्थे च ततः पादे नष्टा साऽभूद्रसोल्लसा। प्रादुरासंस्ततस्तासां वृक्षाश्चगृहसञ्ज्ञिताः॥१८०॥
वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलान्याभरणानिच। तेष्वेवजायतेतासां गन्धवर्णरसान्वितम्॥१८१॥

महाकाल कहते हैं—पहला कृतयुग, द्वितीय त्रेतायुग, तृतीय द्वापर युग तथा चतुर्थ कलियुग है। संक्षेपतः ये ही चार युग हैं। कृतयुग में सत्वगुण, त्रेता में राजस गुण, द्वापर में रजोगुण तथा तमोगुण मिश्रित रूप से तथा कलिकाल में तमोगुण प्रधान रहता है। गुणानुसार ही युगभाव को जानना चाहिये। कृतयुग में ध्यान, त्रेता में यज्ञ, द्वापर में सदाचरण तथा कलिकाल में केवल दान ही श्रेयस्कर है। कृतयुग में मानव संकल्प से ही सब विषय सृष्ट होते हैं। प्रजागण तेजोमय, सदा तृप्त एवं सानन्द चित्त से भोग-विलास में काल व्यतीत करते हैं। सभी सरस सुखसाध्य वृत्ति से जीवन निर्वाह करते हैं। शुभाचार सम्पन्न प्रजागण में कुछ भी अन्य विषय नहीं रहता। सभी समान होते हैं। सबकी आयु-रूप-सुखादि भी परस्परतः समान होते हैं। उनमें पारस्परिक अप्रीति, क्लान्ति, द्वेष, विवादादि नहीं रहता। सभी प्रजाजन दयालु रहते हैं। वे पर्वत तथा सागर तट पर निवास करते हैं। तब वर्णाश्रम व्यवस्था दृढ़ता से रहती है। सभी एकमात्र परमेश्वर रूपेण सदाशिव का ध्यान करते हैं। अन्य कोई उपासना नहीं करते।।१७३-१८१।।

सुमाक्षिकं महावीर्यं पुटके पुटके मधु। तेन ता वर्तयन्ति स्म कृतस्याऽन्ते प्रजास्तदा॥१८२॥
हृष्टपुष्टास्तथा वृद्धाः प्रजा वै विगतज्वराः। ततःकालेन केनाऽपि तासांवृद्धेरसेन्द्रिये॥१८३॥
युगभावात्तथाध्यानेस्वल्पीभूतेशिवस्य च। वृक्षांस्तान्पर्यगृह्णन्तमधुवामाक्षिकंबलात्॥१८४॥

जब सत्ययुग का चतुर्थ अंश लगता है, तब प्रजावर्ग की रसवती तृप्ति का नाश हो जाता है। तब प्रजावर्ग वृक्षों का दृढ़ आश्रय ग्रहण करते हैं। वृक्ष से ही वस्त्र-आभूषण तथा मनोरम फल उत्पन्न होते हैं। गन्ध वर्ण से समृद्ध महाबलपूर्ण शहद तब पत्तों के सम्पुट से प्रचुरता से मिलता है। प्रजागण कृतयुग के अन्तिम चरण में इसी से जीवन निर्वाह करते हैं। प्रजावर्ग वृद्ध होने पर भी हृष्टपुष्टरूपेण बिना कष्ट के समय व्यतीत करते रहते हैं। कालक्रमेण उनका शिवध्यान क्षीण होने लगता है। उनमें रसनेन्द्रिय (लोलुपता) वृद्धि होती है। वे मधु तथा मधुस्रवा वृक्षों पर बलपूर्वक अधिकार करने लगते हैं।।१८२-१८४।।

तासां तेनोपचारेण लोभदोषकृतेन वै। प्रनष्टा मधुना सार्धं कल्पवृक्षाः क्वचित्क्वचित्॥१८५॥

तस्यां चाप्यल्पशिष्टायां द्वन्द्वान्यभ्युत्थितानि वै।
शीतातपैर्मनोदुःखैस्ततस्ता दुःखिता भृशम्॥१८६॥
चक्रुरावरणार्थं हि केतनानि ततस्ततः। ततः प्रादुर्बभौ तासां सिद्धिस्त्रेतायुगे पुनः॥१८७॥
वृष्ट्याबभूवुरौषध्यो ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश। अकृष्टपच्याश्चानूप्तास्तोयभूमिसमागमात्॥१८८॥
ऋतु पुष्पफलैश्चैव वृक्षगुल्माश्च जज्ञिरे। तैश्च वृत्तिरबूत्तासांधान्यैःपुष्पैः फलैस्तथा॥१८९॥

इनके इस गलत कृत्य के कारण वे मधुस्त्रवा कल्पवृक्ष क्रमशः नष्ट होने लगते हैं। इस युगसन्धिकाल में शीत-ग्रीष्मादि दुःख क्रमशः प्रकटित होने लगते हैं। तब प्रजावर्ग दुःख के कारण वस्त्र एवं रहने के लिये गृहादि का निर्माण करके उनके द्वारा द्वन्द्वक्लेश निवारण की कुछ चेष्टा करते हैं। क्रमशः त्रेतायुग लगता है। तब सभी धर्म प्रादुर्भूत होते हैं। वृष्टि के कारण ग्राम्य तथा आरण्य चतुर्विध औषधि की उत्पत्ति होती है। तब खेती तथा हल जोते बिना तथा बीज बोये बिना केवल जल के कारण स्वतः नाना शस्य उगने लगते हैं। ऋतु के अनुरूप विविध पुष्प तथा फलयुक्त वृक्ष तथा लतायें उग आते हैं। प्रजावर्ग इन सब धान्य, फल, पुष्प से जीवन निर्वाह करते हैं।।१८५-१८९।।

ततः पुनरभूत्तासां रागो लोभश्च सर्वतः। कालवीर्येण वा गृह्य नदीक्षेत्राणि पर्वतान्॥१९०॥
वृक्षगुल्मौषधींश्चैव प्रसह्याऽऽशु यथाबलम्। विपर्ययेण चौषध्यः प्रनष्टाश्च चतुर्दश॥१९१॥
नत्वाधरांप्रविष्टास्ताओषध्यःपीडिताःप्रजाः। दुदोह गां पृथुर्वैन्यः सर्वभूतहिताय वै॥१९२॥
तदा प्रभृतिचौषध्यःफालकृष्टाः प्रजास्ततः। वार्त्तयावर्तयन्ति स्मपाल्यमानाश्चक्षत्रियैः॥१९३॥
वर्णाश्रमप्रतिष्ठा च यज्ञस्त्रेतासु चोच्यते। सदाशिवध्यानमयं त्यक्त्वा मोक्षमचेतनाः॥१९४॥

तदनन्तर काल कर्म से उनमें आसक्ति तथा लोभ उत्पन्न होकर बढ़ने लगता है। तब नदी, क्षेत्र, पर्वत, औषधि, वृक्ष, गुल्मादि पर लोग बलात अधिकार करने लगते हैं। इस अपचार के कारण वे १४ औषधियां लुप्त हो गयीं। वे पृथिवी को प्रणाम करके उसमें प्रवेश कर गयीं, जिससे प्रजावर्ग अतीव पीड़ित हो उठा, तब वेण के पुत्र पृथु ने पृथिवी का दोहन किया था। इस कारण से तभी से प्रजागण क्षत्रियों द्वारा पालित होने लगे तथा समय पर उगे औषधि (अन्न) समूह से जीवन निर्वाह करने लगे। इस त्रेतायुग में वर्णाश्रम धर्म सम्यक्तः प्रतिष्ठित था। प्रजागण ने यज्ञप्रशंसासूचक वाग्जाल से मुग्ध होकर स्वर्गभोगार्थ, ही मोक्षसाधक शिवध्यान त्याग कर यज्ञानुष्ठान प्रारम्भ किया।।१९०-१९४।।

पुष्पितां वाचमाश्रित्यरागात्स्वर्गमसाधयन्। द्वापरे च प्रवर्तन्तेमतिभेदास्ततोनृणाम्॥१९५॥
मनसा कर्मणा वाचा कृच्छ्राद्वार्ता प्रसिद्धयति।
लोभोऽधृतिः शिवं त्यक्त्वा धर्माणां शङ्करस्तथा॥१९६॥
वर्णाश्रमपरिध्वंसाः प्रवर्तन्ते च द्वापरे। तदा व्यासैश्चतुर्द्धा च व्यस्यते द्वापरात्ततः॥१९७॥
एको वेदश्चतुष्पादैः क्रियते द्विजहेतवे। इतिहासपुराणानि भिद्यन्ते लोकगौरवात्॥१९८॥
ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा। तथान्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम्॥१९९॥

आग्नेयमष्टमं प्रोक्तं भविष्यं नवमं स्मृतम्। दशमं ब्रह्मवैवर्तंलैङ्गमेकादशं तथा॥२००॥
वाराहं द्वादशं चैव स्कान्दं चैव त्रयोदशम्। चतुर्दशं वामनं च कौर्मंपञ्चदशं स्मृतम्॥२०१॥
मात्स्यंषोडषकं प्रोक्तं गारुडं च ततः परम्। अतः परं तु ब्रह्माण्डमेवञ्चाष्टादशानिहि॥२०२॥

तदनन्तर द्वापर युग प्रवृत्त होने पर मनुष्यों की बुद्धि में पार्थक्य घटित हो गया। तब काया-मन-वाक्य से अति कष्टपूर्वक जीविका निर्वाह होने लगा। जनगण ने शिव का त्याग करके लोभ से वशीभूत होकर अधैर्य को अपनाया। क्रमशः वर्णसंकरता के कारण वर्णाश्रमधर्म ध्वस्त हो गया। तब व्यासगण ने द्विजों के लिए सुगम करने हेतु वेद को चतुर्धा विभक्त कर दिया। जनता की रुचि के अनुरूप इतिहासात्मक पुराणों की रचना की गयी। ब्राह्म, पाद्म, वैष्णव, शैव, भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, आग्नेय, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त्त, लैङ्ग, वाराह, स्कान्द, वामन, कौर्म, मात्स्य, गारुड़ तथा ब्रह्माण्ड—ये १८ महापुराण रचे गये।।१९५-२०२।।

अस्मिन्वाराहकल्पेचव्यासानाकर्णयस्वच। ऋतुः सत्योभार्गवश्चअङ्गिराःसवितातथा॥२०३॥
मृत्युः शतक्रतुर्धीमान्वसिष्ठोभविताऽधुना। सारस्वतस्त्रिधामाचवेदावित्त्रिवृतोमुनिः॥२०४॥
शततेजाः स्वयं विष्णुर्नारायण इति स्मृतः। करकश्चारुणिर्धीमांस्तथादेव ऋतञ्जयः॥२०५॥
कृतञ्जयो भरद्वाजो गौतमः कविसत्तमः। वाजश्रवा मुनिश्चैव तथा युष्मायणो मुनिः॥२०६॥
तृणबिन्दुस्तथाऋक्षःशक्तिःपाराशरस्तथा। जातूकर्ण्योऽथविष्णुश्चस्वयंद्वैपायनोमुनिः॥२०७॥
अश्वत्थाममुखाश्चैतेभविष्याःसूचितास्तव। धर्मशास्त्राणिलोकार्थंभिद्यन्तेचापिद्वापरे॥२०८॥
मन्त्रात्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोऽङ्गिराः। यमापस्तम्बसम्बर्ताःकात्यायनबृहस्पती॥२०९॥
पराशरव्यासशंखलिखिता दक्षगौतमौ। शातातपो वसिष्ठश्चधर्मशास्त्रप्रयोजकाः॥२१०॥

इस वाराह कल्पीय व्यासगण का नाम सुनो। ये हैं ऋतु, सत्य, भार्गव, अंगीरा, सविता, मृत्यु, शतक्रतु तथा धीमान् वसिष्ठ। अब भविष्य के व्यासों के नाम सुनो। यथा—सारस्वत, त्रिधामा, वेदवित्, त्रिवृत मुनि, शततेजा, विष्णुमूर्त्ति स्वयं नारायण, करक, आरुणि, देवऋतञ्जय, कृतञ्जय, भरद्वाज, कविसत्तम, गौतम, राजश्रवा, युष्मायण मुनि, तृणविन्दु, ऋक्ष, शक्ति, पराशर, जातुकर्ण, विष्णु के अवतार द्वैपायन एवं अश्वत्थामा आदि मुनिगण भविष्य के व्यास होंगे। समाज की सुशृङ्खला के विधानार्थ धर्मशास्त्रों की रचना नाना प्रकार से होगी। मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अंगीरा, यम, आपस्तम्ब, संवर्त्त, कात्यायन, वृहस्पति, पराशर, व्यास, शंख, लिखित, दक्ष, गौतम, शाततप तथा वसिष्ठ नाना शास्त्रों का प्रणयन करेंगे।।२०३-२१०।।

ततो द्वापरसन्ध्यायां प्रवर्तति कलौ युगे। नश्यमाने शैवयोगे जायन्ते योगनन्दनाः॥२११॥
आद्येश्वेतकलौरुद्रः सुतारस्तारणस्तथा। सुहोत्रः कङ्कणश्चैव लोकाख्यश्च महामुनिः॥२१२॥
जैगीषव्यश्च भाव्यो वै भगवान्दधिवाहनः। ऋषभश्चमुनिर्धर्म उग्रश्चाऽत्रिःसबालकः॥२१३॥
गौतमो वेदशीर्णश्चगोकर्णश्च शिखण्डभृत्। गुहावासी जटामालीअट्टहासश्चदारुणः॥२१४॥
लाङ्गली संयमी शूली डिण्डी जुण्डीश्वरः स्वयम्।
सहिष्णुः सोमशर्मा च लकुलीशश्च पार्थिवः॥२१५॥

कायावरोहणोभावीत्याद्यायोगेश्वराःक्रमात्। एते संक्षिप्यवक्ष्यन्तिशिवधर्मकलौयुगे॥२१६॥
एवंकलियुगेराजञ्छास्त्रसंक्षेप उच्यते। शृणु तिष्यप्रवृत्तिं च हर्षोद्विगकरीं किल॥२१७॥

तदनन्तर द्वापर के सन्ध्याकाल में शैवयोग विनष्ट हो जायेगा। क्रमशः कलियुग प्रवृत्त होने पर कतिपय योगी प्रादुर्भूत होंगे। यथा—श्वेतकल्पीय कलि के आदि में रुद्र, तदनन्तर सुतार, तारण, सुहोत्र, कंकण, लोकारण्य, महर्षि जैगिषण्य, भगवान् दधिवाहन, ऋषभ, धर्म, उग्र, अत्रि, बालक, गौतम, वेदशीर्ण, गोकर्ण, शिखण्डी, गुहावासी, जटामाली, अट्टहास, दारुण, लाङ्गली, संयमी, शूली, डिण्डि, जुण्डीश्वर, सहिष्णु, सोमशर्मा, नकुलीश तथा कायावरोहण। हे राजन्! ये सब क्रमशः प्रादुर्भूत होंगे। ये कलिकाल में संक्षिप्तरूपेण शिवधर्मोपदेश प्रदान करेंगे। महाराज! कलियुग में इस प्रकार सभी शास्त्र संक्षिप्त होंगे। अब कलिकाल का विवरण सुनें। इसे सुनकर एक साथ हर्ष-विषाद उत्पन्न होता है।।२११-२१७।।

तिष्येमायामसूयांच वधं चैवतपस्विनाम्। साधयन्तिनरास्तत्रतमसाव्याकुलेन्द्रियाः॥२१८॥
कलौ प्रमाथको रागः सततं क्षुद्भयानि च। अनावृष्टिभयं घोरं देशानां च विपर्ययः॥२१९॥
न प्रमाणंश्रुतेरस्तिनृणांचाधर्मसेवनात्। अधार्मिकास्त्वनाचारामहाकोपाल्पतेजसः॥२२०॥
अनृतंब्रुवते लुब्धा नारीप्रायाश्च दुष्प्रजाः। दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः॥२२१॥
विप्राणां कर्मदोषैश्च प्रजानां जायते क्षयः। उत्सीदन्ति क्षत्रविशो वर्धन्ते शूद्रविप्रकाः॥२२२॥
शूद्राविप्रैः सहाऽऽसन्तेशयनासमभोजनैः। शूद्राश्च ब्राह्मणाचाराःशूद्राचाराश्चब्राह्मणाः॥२२३॥
राजवृत्यांस्थिताश्चौराश्चौराचाराश्चपार्थिवाः ।
एकपत्न्यो न शिष्यन्ति वर्धयन्त्यभिसारिकाः॥२२४॥
तदाह्यल्पफलाभूमिःक्वचिच्चाऽपि महाफला। अरक्षितारो हर्तारोराजानः पापनिर्भयाः॥२२५॥

कलिकाल में मनुष्य अज्ञानान्ध होकर नितान्त व्याकुलेन्द्रिय, असुरपरवश तथा कपटी होते हैं। वे तपप्रयुक्त तापसादि लोगों का वध करके अपने-अपने अभीष्ट का साधन करने में कुण्ठित नहीं होते। कलियुग में आसक्ति अत्यन्त बढ़ती है तथा सदा क्षुधा-तृष्णा का भय विराजित रहता है। घोर अनावृष्टि का भय विद्यमान रहता है। देश विपर्यय भी होता है। मनुष्य अधर्म में आसक्त होने के कारण वेद प्रमाण्य नहीं मानते। जनगण अधार्मिक, अनाचारी, अति क्रोधी, क्षीणतेजा, लुब्ध, मिथ्यावादी, अल्प सन्तान वाले तथा नारीप्रायः हो जाते हैं। ब्राह्मण दुरभिसन्धिमूलक यागयज्ञ आचार, व्यवहार, शिक्षा, दीक्षादि प्रदान करते हैं। उनके दुष्कर्म के कारण प्रजा क्षय होने लगता है। तब क्षत्रिय तथा वैश्य उत्सन्न (क्षीण) होने लगते हैं। शूद्र तथा ब्राह्मणों की वृद्धि होती है। शूद्रगण ब्राह्मणों के साथ एक आसन पर शयन, बैठना, भोजनादि करते हैं। ब्राह्मण शूद्रोचित आचार ग्रहण करते हैं तथा शूद्र ब्राह्मणोचित आचार ग्रहण करते हैं। चोर राजा का तथा राजा चोर का व्यवहार करते हैं। साध्वी नारी नितान्त विरल होती हैं। परन्तु व्यभिचारिणी स्त्रियों की संख्या नित्य वर्द्धित होती है। भूमि अल्प फल तथा अन्न उत्पन्न करती है। कहीं-कहीं ही कुछ अधिक फलोत्पत्ति होती है। राजा पाप भय न करके प्रजावर्ग का यथोचित् पालन नहीं करते, तथापि प्रजा की धन सम्पत्ति का हरण करते रहते हैं।।२१८-२२५।।

अक्षत्रियास्तुराजानोंविप्राःशूद्रोपजीविनः। शूद्राविवादिनः सर्वे ब्राह्मणैरभिनन्दिताः॥२२६॥

आसनस्थान्द्विजान्दृष्ट्वानचलन्त्यल्पबुद्धयः। आस्येनिधायवैहस्तंकर्णेशूद्रस्यचद्विजाः॥२२७॥
नीचस्यापितदावाक्यंवक्ष्यन्तिविनयेनतम्। उच्चासनस्थाञ्छूद्रांश्चद्विजानांपश्यतामपि॥२२८॥
ज्ञात्वा न हिंसते राजा पश्य कालबलं नृप। पुष्पैः सुभसितैश्चैव तथान्यैर्मण्डनैर्द्विजाः॥२२९॥
शूद्रानभ्यर्चयन्त्यल्पश्रुतभाग्यबलान्विताः। पाषण्डिनां च गृह्णन्तिब्राह्मणाःकुप्रतिग्रहम्॥२३०॥
येन ते रौरवं यान्ति सुदुस्तारं द्विजाधमाः। तपोयज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजास्तथा॥२३१॥
यतयश्च भविष्यन्ति बहवः कोटिशःकलौ। पुरुषाल्पबहुस्त्रीको नृणांचापत्यसम्भवः॥२३२॥
निन्दन्ति वेदवाक्यानि वेदार्थांश्च कलौयुगे। शूद्रैः स्वयंनिर्मितंयत्प्रमाणंशास्त्रमेवतत्॥२३३॥

क्षत्रिय राजा नहीं होता। ब्राह्मणगण शूद्रों को जीविका देने वाला बनाते हैं। वे शूद्र ब्राह्मणों द्वारा अभिनन्दित होकर ब्राह्मणों के साथ विवाद करते हैं। अल्पबुद्धि शूद्र आसनासीन होकर यदि ब्राह्मण को सामने देखते भी हैं, तब भी आसन त्याग नहीं करते। ब्राह्मणगण सामान्य शूद्र के कानों में बातें करने पर विनयपूर्वक हाथों से मुख को ढंक कर बात करते हैं। हे राजन्! कालजनित विपर्यय देखिये। ब्राह्मणों के सामने शूद्र उच्च आसन पर बैठते हैं। राजा यह जानकर भी कोई शासन नहीं करता। अल्पज्ञान, अल्पभोग्य तथा अल्पशक्ति ब्राह्मण शुभ-श्वेतपुष्प तथा अन्य अलंकार से शूद्रों को सत्कृत करते हैं। ब्राह्मण भी पाखण्डी के पास से असत् दान लेने से विमुख नहीं होते। इसके फलस्वरूप वे अधम ब्राह्मण दुस्तर रौरव नरक में पतित होते हैं। ब्राह्मणगण यज्ञ-तप का फल भी विक्रय करते हैं। इस कलिकाल में करोड़ों-करोड़ व्यक्ति यति बनते हैं। मनुष्य सन्तान में बालक के स्थान पर बालिकाओं का अधिक जन्म होता है। प्रायः सभी वेदवाक्य एवं वेदार्थ निन्दक होते हैं। शूद्रों ने जो शास्त्र स्वयं निर्मित किया है, वही प्रमाण माना जाता है।।२२६-२३३॥

श्वापदप्रबलत्वं च गवां चापि परिक्षयः। कस्यचिद्दानप्रभृतिधर्मस्याऽस्ति न शुद्धता॥२३४॥
साधूनांबहवो नाशाःपार्थिवाश्चाप्यरक्षिणः। अट्ट शूलाजनपदाःशिवशूलाश्चतुष्पथाः॥२३५॥

तब श्वापदों की वृद्धि तथा गौओं का क्षय होता है। दानादि कोई भी कार्य परिशुद्ध रूपेण अनुष्ठित नहीं होता। प्रायः साधुगण का विनाश घटित होता है। राजा प्रजावर्ग की यथोचित रक्षा नहीं करते। कलिकाल में प्रत्येक नगर में अन्न विक्रय होता है। चौराहे पर वेद विक्रय होगा।।२३४-२३५।।

प्रमदाः केशशूलिन्योभविष्यन्तिकलौयुगे। स्त्रीप्रधानानिगेहानिकुचैलास्ताश्चकर्कशाः॥२३६॥
बहुभक्ष्यावलिप्ताश्च कृत्या इव भवन्ति च। सर्वेवणिग्जनाश्चापिचित्रवर्षीचवासवः॥२३७॥
कुशीलचर्यापाषण्डैर्वृथारूपः समावृतः। बहुयाचनको लोको भविष्यति परस्परी॥२३८॥
अशङ्कश्चैव पापेषु तदा लोको भविष्यति। हर्तारः पररत्नानां परदारप्रधर्षकाः॥२३९॥
ऊनषोडशवर्षाश्च प्राजयन्ते युगक्षये। तथा द्वादशवर्षाश्च प्रसवन्ति स्त्रियस्तदा॥२४०॥

रमणीगण अपना सम्भोग बेचेंगी। सभी घरों में नारियों का प्रभुत्व होगा। नारीगण कृत्या के समान कर्कश स्वभाव, मलिन वस्त्रधारिणी, प्रचुर भोजन करने वाली गर्व भरी होंगी। तब सभी जाति वाले वाणिज्य-व्यवसायी होंगे। मेघगण भी विचित्र रूप से कहीं अधिक तो कहीं अल्प वर्षा करेंगे। सभी दुःशील, दुराचारी, पाखण्डी, वृथा वेषधारी तथा याचना करने वाले होंगे। किसी को पापभय नहीं होगा। वे परधनहारी तथा परदारागामी होंगे।

कलिकाल में १६ वर्ष होते न होते पुरुष द्वारा सन्तान उत्पादन होगा तथा नारीगण भी १२ वर्ष की होते न होते सन्तान उत्पन्न करेंगी।।२३६-२४०।।

चौराश्चौरस्य हर्तारो हर्तुर्हर्त्ता तथापरः। ज्ञानकर्मण्युपरते लोके निष्क्रियतां गते॥२४१॥
कीटमूषकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानवान्। वर्णाश्रमाणां ये चान्ये पाषण्डाः परिपन्थिनः॥२४२॥
ते तदा प्रोद्भविष्यन्ति तेषां वृद्धिश्च पार्थिवः!। दुःखं पुत्रकलत्राद्यंदेहोत्सादःसरोगता॥२४३॥
अधर्माभिनिवेशत्वात्तमसो जायते कलौ। कलेर्दोषनिधेश्चैव शृणुष्वैवं महागुणम्॥२४४॥
तदाल्पेनैव काले न सिद्धिंगच्छन्तिमानवाः। त्रियुगीनां वदन्त्येवंधन्याधर्मंचरिन्तिये॥२४५॥
श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तंकलौश्रद्धापरायणाः। त्रेतायांवार्षिकोधर्मोद्वापरेमासिकःस्मृतः॥२४६॥
यथा क्लेशं चरन्प्राज्ञस्तदह्ना प्राप्यतेकलौ। युगत्रयेणतावन्तः सिद्धिंगच्छन्तिपार्थिव!॥२४७॥
यावन्तः सिद्धिमायान्ति कलौ हरिहरव्रताः। अष्टाविंशेकलौयच्चभावितत्त्वंनिबोध मे॥२४८॥
त्रिषु वर्षसहस्त्रेषु कलेर्यातेषु पार्थिव!। त्रिशतेषु दशन्यूनेष्वस्यां भुवि भविष्यति॥२४९॥
शूद्रकोनाम वीराणामधिपः सिद्धिमत्र सः। चर्चितायां समाराध्य लप्स्यतेभूभरापहः॥२५०॥
ततस्त्रिषु सहस्त्रेषु दशाधिकशतत्रये। भविष्यं नन्दराज्यं च चाणक्यो यान्हनिष्यति॥२५१॥
शुक्लतीर्थे सर्वपापनिर्मुक्तिं योऽभिलप्स्यति।
ततस्त्रिषु सहस्त्रेषुविंशत्या चाऽधिकेषु च॥२५२॥
भविष्यंविक्रमादित्यराज्यंसोऽथप्रलप्स्यते। सिद्धिप्रादाद्दुर्गाणांदीनान्योह्युद्धरिष्यति॥२५३॥
ततः शतसहस्त्रेषु शतेनाप्यधिकेषु च। शकोनाम भविष्यश्च सोऽतिदारिद्र्यहारकः॥२५४॥
ततस्त्रिषु सहस्त्रेषुषट्शतैरधिकेषु च। मागधेहेमसदनादञ्जन्यां प्रभविष्यति॥२५५॥
विष्णोरंशोधर्मपाताबुधःसाक्षात्स्वयंप्रभुः। तस्यकर्माणिभूरीणिभविष्यन्तिमहात्मनः॥२५६॥
ज्योतिर्विन्दुमुखानुग्रान्सहनिष्यतिकोटिशः। चतुःषष्टिंसवर्षाणिभुक्त्वाद्वीपानिसप्तच॥२५७॥
भक्तेभ्यः स्वयशो मुक्त्वादिवंपश्चाद्गमिष्यति। सर्वेषांचावताराणांगुणैःसमधिकोयतः॥२५८॥
ततो वक्ष्यन्ति तं भक्त्या सर्वपापहरं बुधम्। चतुर्षु च सहस्त्रेषु शतेष्वपि चतुर्षु च॥२५९॥
साधिकेषु महान्राजा प्रमितिः प्रभविष्यति। गोत्रेषु वै चन्द्रमसो बहुसेनापतिर्बली॥२६०॥
म्लेच्छान्स कोटिशो हत्वा पाषण्डानि च सर्वशः।
वैदिकं केवलं शुद्धं सद्धर्मं वर्तयिष्यति॥२६१॥

तब चोर का धन दूसरा चोर तथा डाकू का धन दूसरा डाकू अपहृत करेगा। ज्ञान तथा सत्कर्म लुप्त होगा। लोग एक प्रकार से (धर्म हेतु) निष्क्रिय रहेंगे। कीट, चूहे तथा सर्प वर्द्धित होंगे। वे मानवों की हिंसा करेंगे। हे राजन्! इस कलिकाल में वर्णाश्रम विरोधी पाखण्ड प्रादुर्भूत होंगे तथा क्रमशः वृद्धिगत होंगे। कलिकाल में तमोगुण के प्रभाव से अधर्म का अभिनिवेश होने के कारण पुत्र-स्त्री आदि विविध दुःख तथा क्लेश से ग्रसित होते हैं, तथापि कलिकाल दोष का आधार होने पर भी एक सुमहत् गुण से युक्त है। उसे सुनिये। कलि में लोगों को अत्यल्प काल

में ही सिद्धि मिल जाती है। अन्य युगत्रय में यह सब कहते आये हैं कि कलिकाल में जो श्रद्धायुक्त होकर श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त धर्माचरण करते हैं, वे सदा धन्य हैं। त्रेतायुग में यश स्थापित करके स्वर्गारोहण करेंगे। सभी अवतारों में से वे सर्वाधिक गुणी होंगे, जिसके कारण भक्ति के वशीभूत जनगण उनका कीर्त्तन सर्वपापहारी के रूप में करेंगे। इसके पश्चात् ४४०० वर्ष व्यतीत हो जाने पर चन्द्रवंश में प्रमिति नामक राजा का जन्म होगा। ये विशाल सेना के अधिपति होकर करोड़ों म्लेच्छों का तथा समस्त पाखण्डीगण का नाश करेंगे। इनके द्वारा एकमात्र वैदिक सत् धर्म की प्रतिष्ठा की जायेगी।।२४१-२६१।।

गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठां यास्यति पार्थिवः। ततः प्रजाश्चकालेनकेनापि भृशपीडिताः॥२६२॥
घोरं वा धर्ममाश्रित्य शाठ्येनचभवन्तिताः। अग्रहास्ततस्ता वै लोभाविष्टाश्चवृन्दशः॥२६३॥
उपहिंसन्ति चान्योन्यं व्याकुलाःश्रमपीडिताः। नष्टे श्रौतेतथास्मार्तेपरस्परहतास्तदा॥२६४॥
निर्मर्यादा निष्करुणा निस्नेहानिरपत्रपाः। गृहदारादिसन्त्यज्यह्रस्वकाःपञ्चविंशतिः॥२६५॥
हाहाभूताश्चरिष्यन्तिविषादव्याकुलेन्द्रियाः। अनावृष्टिहताश्चैववार्तामुत्सृज्यदुःखिताः॥२६६॥
प्रत्यंतांस्ता निषेवन्ति हित्वा जनपदान्स्वकान्। सरित्सागरकूलांश्च सेवन्ते पर्वतांस्तथा॥२६७॥
मांसैर्मूलफलैश्चैव वर्तयन्ति सुदुःखिताः। चीरपत्राजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहाः॥२६८॥

गंगा तथा यमुना के मध्य ये देहत्याग करेंगे। तदनन्तर कालक्रम से प्रजावर्ग लोभयुक्त होकर शठता तथा घोर अधर्म का आश्रय लेगा। लोग नानारूपेण पीड़ित होकर दलबद्ध होंगे तथा उशृङ्खलतापूर्वक पारस्परिक हिंसा करेंगे। तब प्रजावर्ग क्लान्त तथा व्याकुल हो जायेगा। श्रौत एवं स्मार्त्त धर्म सम्यक्तः लुप्त होगें। प्रजागण उशृङ्खल, निर्दय, स्नेहहीन तथा निर्लज्जतापूर्वक एक दूसरे की हिंसा करेंगे। तब वे गृहद्वारादि त्यागकर हाहाकार करते-करते विषादपूर्वक इतःस्ततः विचरण करेंगे। लोग नाटे होंगे। उनकी परमायु २५ वर्ष की रहेगी। वे अनावृष्टि से व्याकुल होकर अपने-अपने गृह तथा जनपद का त्याग करके अन्य देश में, सरिता सागर तट पर तथा पर्वत पर रहने लगेंगे। वे मांस-फल-मूलादि द्वारा क्लेशपूर्वक जीवन-यापन करेंगे। वे निष्क्रिय, सभी संचय तथा सामग्री से रहित, चीर-पत्ते तथा चर्म का परिधान धारण करके जीवन यापन करेंगे।।२६२-२६८।।

धर्मस्य वासमात्रंचशाल्वोम्लेच्छोहनिष्यति। उत्तमाधममध्यत्वंसर्वमुच्छिद्यघोरकृत्॥२६९॥
ततस्तस्य वधार्थायविष्णुःसाक्षाज्जगत्पतिः। शम्भले विष्णुयशसोभूत्वापुत्रोनृपोत्तम॥२७०॥
द्विजोत्तमै परिवृतः शाल्वं तं संहरिष्यति। कोटिशोऽर्बुदशःपापान्निहत्यचनिखर्वशः॥२७१॥
पालयिष्यति तं धर्मं यो धर्मः श्रुतिपूर्वकः॥२७२॥

उस समय घोरकर्मा शाल्व नामक म्लेच्छ धर्म का चिह्न भी नष्ट कर देगा। उस समय तो उत्तम-मध्यम-अधम का तारतम्य ही नहीं होगा। हे राजन्! तदनन्तर शाल्व के वध विधानार्थ जगत्पति विष्णु शम्भल देश में विष्णुयशा के पुत्ररूपेण प्रादुर्भूत होकर ब्राह्मणों के साथ जाकर शाल्व का वध करेंगे। वे कोटि-कोटि, अर्बुद-अर्बुद, निखर्व-निखर्व पाषण्डियों का संहार करके श्रुतिमूलक धर्म पालन करेंगे।।२६९-२७२।।

कृत्वा पोतं धर्मरूपं साधूनां परमेश्वरः। गमिष्यति परं लोकं कृत्वा कर्माणिभूरिशः॥२७३॥
ततः कृतयुगं भूयः प्रवर्तिष्यति पार्थिव!। आद्यं कृतयुगं चान्यं तदन्येभ्यो विशिष्यते॥२७४॥

अष्टाविंशकलिश्चैव शेषः प्रावर्त्त अन्यतः। ततः कृते सूर्यवंशः सोमवंशः प्रवत्स्यति॥२७५॥
मरुराजाच्च देवापेः स्रुतदेवाच्च ब्राह्मणाः। इति चातुर्युगी राजन्व्यवस्था परिवर्तते।
चतुर्युगे च ते धन्या ये भजन्ति हराच्युतौ॥२७६॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे महाकालकरन्धम-सम्वादे चतुर्युगव्यवस्थावर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥४०॥

—❀❀❀—

ये परमेश्वर विविध सत्कार्य करके साधुगण के त्राणार्थ धर्मरूप पोत की प्रतिष्ठा करके परलोक प्रस्थान करेंगे। हे महाराज! तदनन्तर पुनः सत्ययुग प्रवर्त्तित होगा। आदिम सत्ययुग से अन्य सत्ययुग की कुछ विशेषता है। अठाईसवां कलियुग समस्त कलियुग का शेष है। तदनन्तर मरुराज देवापि तथा श्रुतदेव से सूर्यवंश-चन्द्रवंश तथा ब्राह्मणों का विस्तार होगा। हे महाराज! चतुर्युग की यही व्यवस्था है। इन चारों युग में वे धन्य हैं, जो हरि तथा हर का भजन करते हैं॥२७३-२७६॥

॥चत्वारिंश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

शिवपूजाविधान वर्णन, नारकीय गति वर्णन, सदाचार प्रतिपादन

करन्धम उवाच

केचिच्छिवंसमाश्रित्यविष्णुमाश्रित्यवेधसम्। वर्णयन्तिपरेमोक्षंत्वंतुकस्मात्तुमन्यसे॥१॥

करन्धम कहते हैं—कोई शिव का, कोई विष्णु का तो कोई ब्रह्मा का आश्रय लेकर मोक्षलाभ करते हैं। यह कहा जाता है, तथापि आपका क्या मत है?॥१॥

महाकाल उवाच

अपारवैभवा देवास्त्रयोऽप्येते नरर्षभ!। योगीन्द्राणामपि त्वत्र चेतो मुह्यति किं मम॥२॥
पुरा किलैवं मुनयो नैमिषारण्यवासिनः। सन्दिह्याऽन्तः श्रेष्ठतायांब्रह्मलोकमुपागमन्॥३॥
तस्मिन्क्षणे विरिञ्चोऽपि श्लोकं प्रह्वोऽब्रवीत्किल।
अनन्ताय नमस्तस्मै यस्याऽन्तो नोपलभ्यते॥४॥
महेशाय च भक्ते द्वौ कृपायेतां सदा मयि। ततः श्रेष्ठं च तं मत्वाक्षीरोदंमुनयोययुः॥५॥

तत्र योगेश्वरः श्लोकं प्रबुध्यन्नमुमब्रवीत्। ब्रह्मामं सर्वभूतेषु परमं ब्रह्मरूपिणम्॥६॥
सदाशिवं च वन्दे तौ भवेतां मङ्गलाय मे। ततस्ते विस्मिता विप्रा अपसृत्यययुःपुनः॥७॥
कैलासे ददृशुः स्थाणुं वदन्तं गिरिजांप्रति। एकादश्यां प्रनृत्यानिजागरेविष्णुसद्मनि॥८॥
सदा तपस्यां चरामि प्रीत्यर्थंहरिवेधसोः। श्रुत्वेतिचापसृत्यैव खिन्नास्तेमुनयोऽब्रुवन्॥९॥
यद्वा देवा न संयान्ति पारं ये च परस्परम्। तत्सृष्टसृष्टसृष्टेषु गणनाकाऽस्मदादिषु॥१०॥
उत्तमाधममध्यत्वममीषां वर्णयन्ति ये। असत्यवादिनः पापास्तेयान्ति निरयं ध्रुवम्॥११॥

महाकाल कालभीति कहते हैं—हे नरश्रेष्ठ! इन तीनों देवताओं का वैभव (महिमा) अपार है। इनका तत्व निर्णय करने में योगीगण का भी मन भ्रमित हो जाता है। मेरी तो बात ही क्या? पूर्वकाल में नैमिष निवासी मुनियों के मन में इन देवत्रय की श्रेष्ठता तारतम्य के सम्बन्ध में सन्देह हो गया था। वे इसके निर्णय के लिए ब्रह्मलोक गये। ब्रह्मा ने तब विनत होकर उनसे एक श्लोक कहा। यथा—"जिनका अन्त नहीं, उन अनन्त को प्रणाम। महेश्वर को भी प्रणाम। ये दोनों इस भक्त के प्रति सदा कृपा करें।" मुनियों ने ब्रह्मा द्वारा उच्चारित इस श्लोक के आधार पर अनन्त देव को ही प्रधान देवता समझ कर उनके दर्शनार्थ क्षीरसागर प्रस्थान किया। वहां प्रभु योगेश्वर विष्णु ने जागकर यह श्लोक पाठ किया कि "जो सर्वभूतसमूह में विद्यमान हैं, मैं उन ब्रह्मरूपी ब्रह्मा तथा सदाशिव को प्रणाम करता हूं।" मुनिगण ने यह सुनकर विस्मित मन से वहां से कैलास प्रस्थान किया। वहां ऋषियों ने यह सुना कि शंकर भगवती गिरिजा से कह रहे हैं कि "मैं एकादशी के दिन हरि तथा ब्रह्मा की प्रसन्नता के लिए सतत् विष्णु मन्दिर जाकर तप तथा नृत्य करता हूं। साथ ही रात्रि जागरण भी करता हूं।" मुनिगण यह सुनकर खिन्न मन से वहां से चल पड़े। मार्ग में वे परस्पर बातें कर रहे थे कि ये देवता भी आपस में एक-दूसरे के प्राधान्य का निरूपण नहीं कर पा रहे हैं। उन्होंने जिसकी सृष्टि किया है, उससे सृष्ट हम लोग उससे उत्पन्न हैं। अतः इस तत्वनिर्णय करने में हमारी क्या गिनती? इसलिए जो इन देवगण के सम्बन्ध में कौन बड़ा, कौन छोटा, यह वर्णन करते हैं, वे असत्यवादी, पापी निश्चय नरक प्राप्त करेंगे।।२-११।।

एवं ते निश्चयामासुर्नैमिषेयास्तपस्विनः। सत्यमेतच्च राजेन्द्र! ममापीदं मतं स्फुटम्॥१२॥
जापकानां सहस्राणि वैष्णवानां तथैव च।
शैवानां च विधिं विष्णुं स्थाणुं चाप्यन्वमूमुचन्॥१३॥
तस्माद्यस्य मनोरागो यस्मिन्देवे भवेत्स्फुटम्। सतंभजेद्विपापःस्यान्ममेदंमतमुत्तमम्॥१४॥

हे राजेन्द्र! मेरे मत से यह सिद्धान्त सदा सत्य लगता है। शैव, वैष्णव तथा ब्राह्म मन्त्र के हजारों-हजार जपकर्त्ता इनकी कृपा से संसार बन्धन से मुक्त होते हैं। अतः इनमें से जिस देवता के प्रति मन में अनुराग हो, उसकी ही उपासना द्वारा व्यक्ति निष्पाप हो सकेगा। यही मेरा मत है। यही उत्तम सिद्धान्त है।।१२-१४।।

करन्धम उवाच

कानि पापानि विप्रेन्द्र! यैस्तु सम्मूढचेतसः। न वेदेषु न धर्मेषु रतिमापद्यते मनः॥१५॥

करन्धम कहते हैं—हे विप्रेन्द्र! जिसके द्वारा आक्रान्त अन्तःकरण द्वारा मूढ़ मानव के मन में वेद अथवा धर्म में तृप्ति नहीं मिलती, वह पाप क्या है?।।१५।।

महाकाल उवाच

अधर्मभेदा विज्ञेयाश्चित्तवृत्तिप्रभेदतः। स्थूलाः सूक्ष्मा असूक्ष्माश्च कोटिभेदैरनेकशः॥१६॥
तत्र ये पापनिचयाः स्थूला नरकहेतवः। ते समासेन कथ्यन्ते मनोवाक्कायसाधनाः॥१७॥
परस्त्रीद्रव्यसङ्कल्पश्चेतसानिष्टचिन्तन्। अकार्याभिनिवेशश्च चतुर्द्धा कर्म मानसम्॥१८॥
अनिबद्धप्रलापित्वमसत्यं चाऽप्रियं च यत्। परापवादपैशुन्यं चतुर्धा कर्म वाचिकम्॥१९॥
अभक्ष्यभक्षणं हिंसा मिथ्या कामस्य सेवनम्। परस्वानामुपादानं चतुर्धा कर्म कायिकम्॥२०॥
इत्येतद्द्वादशविधं कर्म प्रोक्तं त्रिसम्भवम्। अस्य भेदान्पुनर्वक्ष्ये येषां फलमनन्तकम्॥२१॥

महाकाल कहते हैं—चित्तवृत्ति के भेद से ही अधर्म में भेद होता है। वह स्थूल-मध्यम-सूक्ष्म भेद से करोड़ों प्रकार का है। इनमें से जो वाक्य मन तथा काया का स्थूल पाप नरक का कारण होता है, संक्षेप में उसका उल्लेख करता हूं। परस्त्री संभोग, परद्रव्य ग्रहण, अन्य का अनिष्ट साधन, अकार्य करने का संकल्प—ये ४ मानस पाप हैं। वृथा बोलना, झूठ बोलना, अप्रिय बोलना, दूसरे की निन्दा, ये ४ वाचिक पाप हैं। अभक्ष्य-भक्षण, हिंसा साधन, वृथा कामकृत्य सेवन तथा पराया धन लेना, ये ४ कायिक पाप हैं। यह १२ प्रकार के मन-वाणी तथा शरीर के पापों को कहा। इनके अवान्तर भेद कहता हूं। वास्तव में यह भेद अनन्त है।।१६-२१।।

ये द्विषन्ति महादेवं संसारार्णवतारकम्। सुमहत्पातकोपेतास्ते यान्ति नरकाग्निषु॥२२॥
महान्ति पातकान्याहुर्निरन्तरफलानि षट्। नाभिनन्दन्ति ये दृष्ट्वा शङ्करंनस्तुवन्ति ये॥२३॥
यथेष्टचेष्टा निःशङ्काः सन्तिष्ठन्ति रमन्ति च। उपचारविनिर्मुक्ताः शिवस्यगुरुसन्निधौ॥२४॥
शिवाचारं न मन्यन्ते सिवभक्तान्द्विषन्ति षट्। गुरुमार्त्तमशक्तंवा विदेशप्रस्थितं तथा॥२५॥
अरिभिः परिभूतं वा यस्त्यजतिसपापकृत्। तद्भार्यापुत्रमित्रेषु यश्चावज्ञां करोति वा॥२६॥
इत्येतत्पातकं ज्ञेयं गुरुनिन्दासमं महत्। ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः॥२७॥
महापातकिनस्त्वेते तत्संसर्गीच पञ्चमः। क्रोधाद्द्वेषाद्भयाल्लोभाद्ब्राह्मणस्यवदन्तिये॥२८॥
मर्मान्तिकं महादोषं ब्रह्मघ्नः स प्रकीर्तितः। ब्राह्मणं यः समाहूय याचमानमकिञ्चनम्॥२९॥
पश्चान्नास्तीति यो ब्रूयात्स च वै ब्रह्महा स्मृतः। यश्च विद्याभिमानेन निस्तेजयति सद्द्विजम्॥३०॥

जो संसार सागर से त्राण दिलाने वाले महेश्वर से द्वेष करता है, वह महापापी नरकाग्नि में दग्ध होता है। तदनन्तर जिसका फल निरन्तर भोगना पड़ता है, उन छः महापातकों को कहता हूं। जो शंकर को देखकर भी अभिनन्दन नहीं करता, उनकी स्तुति नहीं करता, किंवा शिव सन्निधान में निःशंक रूप से मनमाना कार्य करके प्रसन्न होता है, जो शिव तथा गुरु के पास बिना कुछ लिये जाते हैं—खाली हाथ जाते हैं, जो शैव आचार नहीं मानते तथा शिव भक्तगण से द्वेष करते हैं, वे महापातकी हैं। गुरु, आर्त्त, अशक्त, विदेश यात्री, किंवा शत्रु द्वारा पकड़े व्यक्ति को जो आश्रय नहीं देता, वह भी महापातकी है। जो गुरुपत्नी, गुरुपुत्र तथा मित्रों के प्रति अवज्ञा करते हैं, जो गुरुनिन्दा करते हैं, वे सभी महापापी हैं। ब्रह्महत्यारे, सुरापायी, स्वर्णचोर तथा गुरुपत्नीगामी व्यक्ति तथा इनके सम्पर्क में दीर्घकाल रहने वाले—वे सभी महापातकी ही हैं। जो क्रोध, लोभ तथा भय के कारण ब्राह्मण के दोषों

का उल्लेख करके उसे मर्मान्तक पीड़ा पहुंचाते हैं, वे भी ब्रह्महत्यारे हैं। जो याचक ब्राह्मणों को बाद में 'नहीं है' कह देते हैं, वे भी ब्रह्मघाती ही हैं। जो विद्याभिमान के कारण सद्विप्र को निस्तेज कर देते हैं (वे भी ब्रह्मघाती ही हैं)।।२२-३०।।

उदासीनः सभामध्येब्रह्महासप्रकीर्तितः। मिथ्यागुणैःस्वमात्मानं नयत्युत्कर्षतांबलात्।।३१।।
विरुद्धं गुरुभिः सार्धंब्रह्मघ्नःसप्रकीर्तितः। क्षुत्तृष्णातप्तदेहानां द्विजानामभोक्तुमिच्छताम्।।३२।।
यः समाचरते विघ्नं तमाहुर्ब्रह्मघातकम्। पिशुनः सर्वलोकानां छिद्रान्वेषणतत्परः।।३३।।
उद्वेगजननः क्रूरः स च वै ब्रह्महा स्मृतः। गवां तृषाभिभूतानां जलार्थमुपसर्पताम्।।३४।।
समाचरते विघ्नं तमाहुर्ब्रह्मघातकम्। परदोषं परिज्ञाय नृपकर्णे जपेत यः।।३५।।
पापीयान्पिशुनः क्रूरस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम्। न्यायेनोपार्जितं विप्रैस्तद्द्रव्यहरणं च यत्।।३६।।
छद्मना वा क्लाद्वापि ब्रह्महत्यासमं मतम्। अधीत्य यश्चशास्त्राणिपरित्यजतिमूढधीः।।३७।।
सुरापानसमं ज्ञेयं जीवनायैव वा पठेत्। अग्निहोत्रपरित्यागः पञ्चयज्ञोपकर्मणाम्।।३८।।
मातृपितृपरित्यागः कूटसाक्षी सुहृद्वधः। अभक्ष्यभक्षणं वन्यजन्तूनां काम्यया वधः।।३९।।
ग्रामं वनं गवावासं यश्च क्रोधेन दीपयेत्। इतिघोराणि पापानिसुरापानसमानि च।।४०।।

अर्थात् जो व्यक्ति सभा में उदासीन रहते हुये वाद-प्रतिवाद का कोई कारण न होने पर भी किसी सद्ब्राह्मण को नीचा दिखलाता है, वह ब्रह्मघाती ही है। जो अपने झूठे गुण का वर्णन करके अपनी महत्ता प्रदर्शित करता है, किंवा गुरुजन के विरुद्ध विवाद में प्रवृत्त होता है, वह भी ब्रह्मघाती ही है। जो खल स्वभाव, क्रूर प्रकृति, सब में उद्वेग उत्पन्न करने वाला तथा सबकी त्रुटि निकालने में तत्पर है, वह भी ब्रह्मघाती है। जब गौ तृष्णाकातर होकर जल पीने का प्रयास करती है, तब उसे जो रोकता है, वह भी ब्रह्मघाती ही है। जो व्यक्ति दुष्ट स्वभाव से अन्य के दोष को जानकर शासक राजा तक वह बात पहुंचाता है, वह क्रूर पापी भी ब्रह्मघाती है। विप्रों ने जिसे न्यायतः उपार्जित किया है, यदि कोई छलपूर्वक उसका हरण करता है, वह भी ब्रह्महत्या का दोषी है। जो मूढ़ व्यक्ति शास्त्र का अध्ययन करके भी शास्त्र के आदेश को अग्राह्य करके रहता है अथवा जीवन यापनार्थ शास्त्र का अध्ययन करता है, उसका यह कार्य सुरापानवत् ही है। अग्निहोत्र तथा पञ्चयज्ञ कर्म का त्याग, पिता-माता का त्याग, झूठी गवाही, सुहृद की हत्या, अभक्ष्य-भोजन, वृथा वन्य पशु का वध, क्रोध के कारण ग्राम-वन अथवा गोशाला जलाना—ये सब घोर पातक सुरापान जैसे हैं।।३१-४०।।

दीनसर्वस्वहरणं नरस्त्रीगजवाजिनाम्। गोभूरत्नसुवर्णानामौषधीनां रसस्य च।।४१।।
चन्दनागरुकर्पूरकस्तूरीपट्टवाससाम्। हस्तन्यासापहरणं रुक्मस्तेयसमं स्मृतम्।।४२।।
कन्यानां वरयोग्यानामदानं सदृशे वरे। पुत्रमित्रकलत्रेषु गमनं भगिनीषु च।।४३।।
कुमारीसाहसं घोरमन्त्यजस्त्रीनिषेवणम्। सवर्णायाश्च गमनं गुरुतल्पसमं स्मृतम्।।४४।।
द्विजायार्थं प्रतिश्रुत्य न प्रयच्छति यः पुनः। न च स्मारयते विप्रं तुल्यं तदुपपातकम्।।४५।।
अभिमानोऽतिकोपश्च दम्भिकत्वं कृतघ्नता। अत्यन्तविषयासक्तिः कार्पण्यं शाठ्यमत्सरम्।।४६।।

भृत्यानाञ्च परित्यागः साधुबन्धुतपस्विनाम्।
गवां क्षत्रियवैश्यानां स्त्रीशूद्राणाञ्च ताडनम्॥४७॥
शिवाश्रमतरूणाञ्चपुष्पारामविनाशनम्। अयाज्यानांयाजनंचाप्ययाच्यानाञ्चयाचनम्॥४८॥
यज्ञारामतडागादिदारापत्यस्यविक्रयः। तीर्थयात्रोपवासानां व्रतायतनकर्मणाम्॥४९॥
स्त्रीधनान्युपजीवन्ति स्त्रीभिरत्यन्तनिर्जिताः। अरक्षणञ्च नारीणांमद्यपस्त्रीनिषेवणम्॥५०॥
ऋणानामप्रदानञ्च मिथ्यावृद्ध्युपजीवनम्। निन्दितानां धनादानं साध्वीकन्योक्तिदूषणम्॥५१॥
विषमारणयन्त्राणां प्रयोगो मूलकर्मणाम्। उच्चाटनाभिचाराश्च रागविद्वेषणक्रिया॥५२॥
जिह्वाकामोपभोगार्थं यस्यारम्भः स्वकर्मसु। मूल्येनाध्यापयेद्यस्तु मूल्येनाऽधीयतेचये॥५३॥
व्रात्यता व्रतसन्त्यागः सर्वाहारनिषेवणम्। असच्छास्त्राभिगमनं शुष्कतर्कावलम्बनम्॥५४॥
देवाग्निगुरुसाधूनां निन्दा गोब्राह्मणस्य च। प्रत्यक्षंवापरोक्षं वा राज्ञांमण्डलिनामपि॥५५॥
उत्सन्नपितृदेवेज्याः स्वकर्मत्यागिनश्च ये। दुःशीला नास्तिकाः पापा न सदा सत्यवादिनः॥५६॥
पर्वकाले दिवा चाप्सुवियोनौपशुयोनिषु। रजस्वलास्वयोनौच मैथुनं यः समाचरेत्॥५७॥
स्त्रीपुत्रमित्रसुहृदामाशाच्छेदकराश्च ये। जनस्याऽग्रियवक्तारः क्रूराः समयभेदिनः॥५८॥
भेत्ता तडागकूपानांसङ्क्रमाणांरसस्यच। एकपङ्क्तिस्थितानाञ्चपाकभेदं करोतियः॥५९॥
इत्येतैश्च नराः पापैरुपपातकिनः स्मृताः। युक्तास्तदूनकैः पापैः पापिनस्तान्निबोधमे॥६०॥

दीनों का सर्वस्व हरण, मनुष्य-स्त्री-गज-अश्व-गौ-भूमि-रत्न-स्वर्ण-औषधि-रस-चन्दन-अगुरु-कर्पूर-कस्तूरी-रेशमी वस्त्र तथा न्यस्त (चढ़ाये) द्रव्य का हरण, यह सब सोने की चोरी जैसा पाप है। विवाह योग्य कन्या को समान वर न प्रदान करना, पुत्रवधू, मित्रपत्नी तथा बहन के साथ समागम, अन्त्यजा से समागम तथा अपने से ऊंचे वर्ण की स्त्री से समागम भी गुरुपत्नी गमनवत् ही है। ब्राह्मण को वचन दिये गये द्रव्यादि को न देना, न देने के कारण उनसे विनय न करना—उपपातक है। अभिमान, अति क्रोध, दम्भ, कृतघ्नता, विषयों में अतीव आसक्ति, कृपणता, शठता, परस्त्री कातरता, पोष्य व्यक्ति का त्याग, साधु-बन्धु-तपस्वी-गौ-स्त्री-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र पर प्रहार करना, शैवाश्रम के वृक्ष अथवा उपवन का विनाश, अयाज्य याजन, अयाच्य के यहां याचना करना, उपवन-तड़ाग-स्त्री-पुत्र-देवालय-यज्ञ-तीर्थयात्रा-उपवास-व्रत आदि पुण्यकार्य का विक्रय, स्त्रीधन का उपयोग करना, नितान्त स्त्री के वश में होना, नारीगण की रक्षा न करना, मद्य पीने वाली नारी से सहवास, ऋण लेकर न चुकाना, मिथ्या वाक्य अथवा मिथ्या बुद्धि द्वारा जीवन निर्वाह करना, हीन लोगों से धन लेना, साध्वी रमणी अथवा विधवा के प्रति, कुमारी के प्रति मिथ्या आरोप (व्यभिचार का) लगाना, विष, मारण किंवा वशीकरण का प्रयोग करना, विद्वेषण-उच्चाटन तथा अभिचार करना, अपनी जिह्वा के लिए तृप्तिदायक तथा कामभोगार्थ कार्य करना, मूल्य देकर पढ़ना किंवा मूल्य लेकर अध्यापन करना, व्रात्यभाव रखना, व्रतत्याग, भक्ष्य-अभक्ष्य विचार रहित होना, असत् शास्त्रों का अनुशीलन, शुष्कतर्क करना, प्रत्यक्षतः अथवा पीठ पीछे देवता-अग्नि-गुरु-गौ-ब्राह्मण-राजा किंवा मण्डली की निन्दा करना—ये सभी उपपातक हैं। जो पितृगण तथा देवगण की अर्चना नहीं करता, जो कुलोचित कर्म का त्यागी है, जो दुःशील, नास्तिक, पाषण्डी, असत्यवादी है, जो पर्वकाल में, जल में, निषिद्ध योनि में, पशु योनि में किंवा

रजस्वला योनि में संभोग करता है, जो सुहृद मित्र-स्त्री-पुत्र आदि की अभिलाषा भंग करता है, जो साधारण जन से अप्रिय बोलता है, क्रूर है किंवा शपथ भंग करता है, कूप-तड़ाग का जल दूषित करता है अथवा उसमें उतरने वाले मार्ग का नाश करता है, जो एक पंक्ति में बैठे लोगों को अलग-अलग भोजन देता है, वह उपपातकी है। जो इससे कम पातक वाले हैं, उनका विवरण सुनो।।४१-६०।।

ये गोब्राह्मणकन्यानां स्वामिमित्रतपस्विनाम्। अन्तरं यान्ति कार्येषु ते स्मृताः पापिनो नराः।।६१॥
परश्रियाऽभितप्यन्तेहीनांसेवन्तियेस्त्रियाम्। पङ्क्त्यर्थंयेनकुर्वन्तिदानयज्ञादिकाःक्रियाः।।६२॥
गोष्ठाग्निजलरथ्यासु तरुच्छायानगेषु च। त्यजन्ति ये पुरीषाद्यमारामायतनेषु च।।६३॥
गीतवाद्यरता नित्या मत्ताः किलकिलापराः कूटवेषक्रियाचाराःकूटसस्व्यवहारिणः।।६४॥
कूटशासनकर्तारः कूटयुद्धकराश्च ये। निर्दयोऽतीव भृत्येषु पशूनां दमनश्च यः।।६५॥
मिथ्याप्रसादितो वाक्यमाकर्णयति यः शनैः।
चपलश्चाऽपि मायावी शठो मिथ्याविनीतकः।।६६॥
यो भार्यापुत्रमित्राणि बालवृद्धकृशातुरान्।
भृत्यानतिथिबन्धूंश्च त्यक्त्वाऽश्नाति बुभुक्षितान्।।६७॥
यः स्वयं मृष्टमश्नातिविप्रायान्यत्प्रयच्छति। वृथापाकः स विज्ञेयोब्रह्मवादिविगर्हितः।।६८॥
नियमान्स्वयमादाययेत्यजन्त्यजितेन्द्रियाः। ते ताडयन्तिगात्रित्यंवाहयन्ति मुहुर्मुहुः।।६९॥
दुर्बलान्नैव पुष्णन्ति प्रणष्टार्था द्विषन्ति च। पीडयन्त्यभिचारेण सक्षतान्वाहयन्ति च।।७०॥
तेषामदत्त्वा चाऽश्नन्ति चिकित्सन्ति न रोगिणः।
अजाविको माहिषिकः समुद्री वृषलीपतिः।।७१॥
हीनवर्णात्मवृत्तिश्च वैद्यो धर्मध्वजी च यः। यश्च शास्त्रमतिक्रम्यस्वेच्छयैवाहरेत्करम्।।७२॥
सदा दण्डरुचिर्यश्च यो वा दण्डरुचिर्न हि। उत्कोचकैरधिकृतैस्तस्करैश्च प्रपीड्यते।।७३॥
यस्य राज्ञःप्रजा राष्ट्रे पच्यते नरकेषु सः। अचौरंचौरवत्पश्येच्चौरंवाऽचौररूपिणम्।।७४॥
आलस्योपहतो राजाअव्यसनीनरकंव्रजेत्। एवमादीनिचान्यानिपापान्याहुःपुराविदः।।७५॥

जो व्यक्ति गौ-ब्राह्मण-कन्या-बन्धु-प्रभु-तपस्वी के प्रति असमान व्यवहार करता है, जो परस्त्री कातर (परस्त्री के प्रति रुचि वाला) अथवा हीन नारी का साथी है, जो शक्ति रहने पर भी दान-यज्ञादि नहीं करता, जो गोष्ठ-अग्नि-जल-पर्वत-पथ-उपवन-देवालय अथवा पेड़ के नीचे मल-मूत्र त्याग करता है, जो व्यर्थ गीतवाद्यादि में अथवा मादक द्रव्य सेवन द्वारा कालयापन करता है, जो कपट-वेश-कपट कर्म अथवा कपट व्यवस्थाकारी है, जो कूट (फर्जी) शासन आदेश बनाता है अथवा कूट युद्ध करता है, जो पशु-भृत्यादि के प्रति निर्मम व्यवहार करता है, जो असन्तुष्ट होने पर भी बाहर से स्वयं को सन्तुष्ट दिखलाता है, जो चपल-मायावी-शठ-मिथ्या विनयी है, जो भूखे पत्नी-पुत्र-मित्र-बालक-वृद्ध-दुर्बल-रोगी-भृत्य-अतिथि-बांधवगण की उपेक्षा करके स्वयं उत्तम भोजन करता है, जो ब्रह्मज्ञगण द्वारा निन्दित वृथापाकी व्यक्ति है तथा जो अजितेन्द्रिय व्यक्ति किसी नियम का संकल्प लेकर बाद

में उसे छोड़ देता है, जो नित्य गौओं को मारता तथा गोगण द्वारा भार ढुलवाता है, जो दुर्बल का पोषण नहीं करता, जो चोटहिल पशु द्वारा बोझा ढुलवाता है, जो किसी के द्वारा हानि हो जाने पर उससे सतत् द्वेष करता है तथा अभिचार से उसे पीड़ा पहुंचाता है। पोष्यवर्ग को भोजन दिये बिना स्वयं भोजन करता है, किंवा पोष्य रोगी की उचित चिकित्सा नहीं करता, जो बकरी, मेष, भैंस पाल कर जीविका चलाता है, तपे मोहर का निशान लगाता है, जो वृषली स्त्री का पति है, जो हीन वर्ण वाले के आश्रय में जीवन व्यतीत करता है, जो चिकित्साजीवी है, जो शास्त्र निर्देश की अवहेलना करके कर ग्रहण करता है, जो सतत् दण्ड देने की रुचि रखने वाला अथवा दण्ड देने का पूर्ण विरोधी है, जो राजा के राज्य में घूस लेने वाला राजकर्मचारी है, जो तस्कर द्वारा उत्पीड़ित करता है, ये सभी पातकी हैं तथा नरकभोगी होते हैं। जो राजा चोर को साधु तथा साधु को चोर मानता है, किंवा जो आलसी तथा वासनासक्त राजा है, वह भी नरक जाता है। पुराने विद्वानों ने इसी प्रकार नाना पापों का वर्णन किया है।।६१-७५।।

यद्वा तद्वा परद्रव्यमपि सर्षपमात्रकम्। अपहृत्य नरः पापो नारकी नाऽत्र संशयः॥७६॥
एवमाद्यैर्नरः पापैरुत्क्रान्तैः समनन्तरम्। शरीरं यातनार्थाय पूर्वाकारमवाप्नुयात्॥७७॥
तस्मात्त्रिविधमप्येतन्नारकीयं विवर्जयेत्। सदाशिवं च शरणं व्रजेत्सच्छ्रद्धया युतः॥७८॥
नमस्कारः स्तुतिःपूजानामसङ्कीर्तनंतथा। सम्पर्कात्कौतुकाल्लोभान्नतस्यविफलंभवेत्॥७९॥

पराया द्रव्य चाहे जिस रूप में क्यों न हो, सरसों के बराबर भी द्रव्य अपहरण करने पर मानव उस पाप से नरक प्राप्त करता है। इसमें संशय नहीं है। मनुष्य इन सब पापों को करने पर मृत्यु के अनन्तर यातनाभोगार्थ पूर्वदेह के ही समान अन्य एक देह प्राप्त करता है। इसलिए मनुष्य को चाहिये कि त्रिविध (दैहिक-मानसिक-वाचिक) पापों के कर्म का त्याग करके श्रद्धापूर्वक सदाशिव की शरण लेकर रहे। यही उसका सतत् कर्त्तव्य रहे। यदि प्रसंगक्रम में कौतुकवशात् अथवा लोभ से भी सदाशिव को प्रणाम करना, स्तुति करना, पूजा किंवा नाम संकीर्त्तन करना विफल नहीं होता।।७६-७९।।

करन्धम उवाच

संक्षेपाच्छिवपूजाया विधानं वक्तुमर्हसि। कृतेन येन मनुजः शिवपूजाफलं लभेत्॥८०॥

राजा करन्धम कहते हैं—आप अब संक्षेप में ऐसा शिवपूजा विधान कहिये, जिसका अनुष्ठान करके मानव सम्यक् शिवपूजा का फल प्राप्त करता है।।८०।।

महाकाल उवाच

प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने शङ्करं सर्वदाभजेत्। दर्शनात्स्पर्शनान्मर्त्यः कृतकृत्यो भवेत्स्फुटम्॥८१॥
आदौ स्नानं प्रकुर्वीत भस्मस्नानमतापि वा। आपद्गतः कण्ठस्नानंमन्त्रस्नानमथापिवा॥८२॥
आविकं परिदध्याच्च ततो वासः सितञ्च वा। धातुरक्तमथो नव्यं मलिनंसन्धितंनच॥८३॥
उत्तरोयं च सन्दध्याद्विनातन्निष्फलार्चनम्। भस्मत्रिपुण्ड्रधारीचललाटेहृदिचांसयोः॥८४॥
पूजयेद्यो महादेवं प्रीतः पश्यति तं मुहुः। सर्वदोषान्बहिः क्षिप्य शिवायतनमाविशेत्॥८५॥
प्रविश्य च प्रणम्येशं ततो गर्भगृहं विशेत्। पाणी प्रक्षाल्य तच्चित्तो निर्माल्यमवरोपयेत्॥८६॥

येन रुद्रायने भक्त्या कुरुते मार्जनक्रियाम्। तस्मान्मार्जयते त्वेवं स्थाणुनैतत्परस्परम्॥८७॥
रुद्रभक्त्या च सन्तिष्ठेन्मालिन्यंमार्जयेत्ततः। भक्तिर्देवस्यतिष्टेन्नमालिन्यंमार्जतःसदा॥८८॥
गडुकान्पूरयेत्पश्चान्निर्मलेन जलेन वै। गडुकास्तु समाः सर्वे सर्वे च शुभदर्शनाः॥८९॥
निर्व्रणाः सौम्यरूपाश्च सर्वे चोदकपूरिताः। वस्त्रपूतजलैः पूर्णा गन्धधूपैश्च वासिताः॥९०॥
क्षालिताः पूरिता नीताः षञ्जक्षरजपेन च। गडुकाष्ठशतं कुर्यादथवाप्यष्टविंशतिः॥९१॥
अष्टादशाऽपि चतुरस्ततो न्यूनं न कारयेत्। पयो दधि घृतं चैव क्षौद्रमिक्षुरसं तथा॥९२॥
एवं सर्वं च तद्द्रव्यं वामतः संन्यसेद्धवात्। ततो बहिर्विनिष्क्रम्य पूजयेत्प्रतिहारकान्॥९३॥
सर्वेषां वाचका मन्त्राः कथ्यन्तेऽतः परं क्रमात्॥९४॥

महाकाल कहते हैं—मानव प्रातः-मध्याह्न-सायाह्न तीनों काल में शंकर का भजन करे। शंकर के दर्शन तथा स्पर्शन से मानव सदा कृतार्थ हो जाता है। प्रथमतः दान करे। तथा आपदा-विपदा के कारण जब सर्वाङ्ग स्नान न कर सके तब कण्ठ पर्यन्त जल में ही स्नान करे (शिर न भिगाये), किंवा भस्म स्नान अथवा मन्त्र स्नान करे। भेड़ के रोम का बना नया श्वेत किंवा गेरुये वर्ण का वस्त्र पहने। मलिन अथवा सिला वस्त्र न पहने। उत्तरीय धारण करे। उत्तरीय धारण किये बिना अर्चनादि कार्य विफल होता है। जो व्यक्ति प्रसन्न मन से ललाट-हृदय तथा अंसद्वय पर (कन्धों पर) भस्म त्रिपुण्ड्र लगाता है तथा शंकर की अर्चना करता है, उसे शीघ्र ही भगवान् त्रिलोचन का दर्शन मिलता है। उसको सभी बाह्य एवं आन्तरिक दोषों का परिहार करके तब शिवमन्दिर में प्रवेश करना चाहिये। तदनन्तर शंकर को प्रणाम करके तब गर्भगृह में जाये। तदनन्तर दोनों हाथों को धोकर तब निर्माल्य हटाये। जो व्यक्ति भक्तिभाव के साथ शिवमंदिर की सफाई (मार्जन) करते हैं, बाद में शंकर भी उसकी पापराशि का मार्जन कर देते हैं। अतएव भक्तिपूर्वक शिवमन्दिर का मार्जन करे। इसके द्वारा मनुष्य शंकर की चिरस्थायिनी भक्ति प्राप्त करता है तथा उसकी पापराशि नष्ट हो जाती है। इससे मानव में शंकर की चिरस्थायी भक्ति जाग्रत होती है। तदनन्तर कमण्डलु का प्रक्षालन करके उसमें निर्मल जल को मन्त्रपूत करके भरे, तदनन्तर षडक्षर मन्त्रोच्चारण के साथ पूजन करे। सभी कमण्डलु को देखने में सुन्दर, एकाकार तथा व्रणरहित हो। उसे गन्ध तथा धूप द्वारा सुवासित करे। कमण्डलु १०८ अथवा २८, अथवा १८, अथवा कम से कम ४ होना आवश्यक है। इससे कम संख्या में कमण्डलु न हों। दुग्ध-दधि-घृत-मधु-गन्ने के रस से भरकर इनको शिव के वाम ओर स्थापित करे। तदनन्तर बहिर्भाग में प्रतिहारीगण की अर्चना करे। इन सबका मन्त्र कहा जाता है॥८१-९४॥

ॐ गं गणपतये नमः। ॐक्षां क्षेत्रपालाय नमः। ॐगं गुरुभ्यो नमः। इति आकाशे ॐकौं कुलदेव्यै नमः ॐनन्दिने नमः। ॐ महाकालाय नमः। ॐधात्रे विधात्रे नमः।

ततः प्रविश्य लिङ्गाच्च किञ्चिद्दक्षिणतः शुचिः।
उदङ्मुखः क्षणं ध्यायेत्समकायासनस्थितः॥९५॥
दर्भादिभिः परिवृतं मध्यपद्मार्कमण्डलम्। सोममण्डलमध्यस्थं ध्यायेद्वै वह्निमण्डलम्॥९६॥
तन्मध्ये विश्वरूपं च वामाद्यष्टादिशक्तिकम्। पञ्चवक्त्रं दशभुजं त्रिनेत्रं चन्द्रभूषितम्॥९७॥
वामाङ्कगिरिजं देवं ध्यायेत्सिद्धैः स्तुतं मुहुः। ततः पूर्वं प्रदद्याच्च पाद्यार्घं शम्भवे नृप॥९८॥

पानीयमक्षता दर्भा गन्धपुष्पं ससर्पिषम्। क्षीरं दधि मधु पुनर्नवाङ्गोऽर्घः प्रकीर्तितः॥९९॥

ततः श्रद्धार्द्रचित्तस्य स्नानं लिङ्गस्य चाचरेत्।
गृहीत्वा गडुकंपूर्वंमलस्नानंसमाचरेत्॥१००॥

अर्द्धेन स्नापयेत्पूर्वं कुर्याच्च मलघर्षणम्। सर्वेण स्नापयेत्पश्चात्पूजयेत्स्नापयेत्ततः॥१०१॥

प्रणम्य च ततो भक्त्या स्नापयेन्मूलमन्त्रतः।
ॐहूं विश्वमूर्तये शिवाय नमः॥ इति द्वादशाक्षरो मूलमन्त्रः॥१०२॥

वारिक्षीरदधिक्षौद्रघृतेनेक्षुरसेन च। स्नापयेन्मूलमन्त्रेण जलधूपार्चनात्पृथक्॥१०३॥

ॐ गं गणपतये नमः, ॐ क्षां क्षेत्रपालाय नमः।

ॐ गं गुरुभ्यो नमः—आकाश में पूजन करे।

ॐ कौं कुलदेव्यै नमः—से कुलदेवी की।

ॐ नन्दिने नमः—से नंदी की।

ॐ महाकालाय नमः—से महाकाल की।

ॐ धात्रे-विधात्रे नमः—से विधाता की पूजा करे।

तदनन्तर गर्भगृह में प्रवेश करके किंचित् लिंग के दक्षिण की ओर उत्तरमुख सीधे होकर आसन पर बैठे। तदनन्तर ध्यान करे। यथा—पहले दर्भादि समाकीर्ण पद्म में अर्क (सूर्यमण्डल) है। उसमें सोममण्डल है, उसमें अग्निमण्डल है। उसमें भी वामादि आठ शक्तियां समावृत हैं। प्रभु पांच मुखों वाले, त्रिनेत्र, १० बाहु वाले, चन्द्रशेखर विश्वरूप हैं। इनका ध्यान करे। उनकी बायीं ओर गिरिजादेवी विराजिता हैं। भगवान् की सिद्धगण द्वारा स्तुति की जा रही है। इस प्रकार ध्यान करके सबसे पहले पाद्यदान करे। हे राजन्! तदनन्तर पानीय, अक्षत, कुश, गन्ध, पुष्प, घृत, दुग्ध, दधि तथा मधु द्वारा अर्घ्य बनाकर भगवान् को प्रदान करे। इसके पश्चात् श्रद्धापूर्ण चित्त द्वारा कमण्डलु जल द्वारा मल हटाने के लिए स्नान कराये। सबसे पहले कमण्डलु का आधा जल लेकर मल को हटाने हेतु मले। तदनन्तर जल छोड़े। इसके पश्चात् भक्तिपूर्वक प्रणाम करे। तत्पश्चात् द्वादशाक्षर मूल मन्त्र "ॐ हुं विश्वमूर्त्तये शिवाय नमः" से क्रमशः जल, दूध, दही, शहद तथा घृत तथा ईख के रस से स्नान कराये। इस समय धूप देना चाहिये। सर्वान्त में एक बार जल से भी स्नान कराये।।९५-१०३।।

गडुकैः स्नापयेत्सर्वैः स्नातं गन्धैर्विरूक्षयेत्॥१०४॥

विरूक्षितं ततः स्नाप्य श्रीखण्डेन विलेपयेत्। पूजयेद्विविधैः पुष्पैर्विधिनायेनतच्छृणु। आग्नेयपादे। ॐधर्माय नमः। नैर्ऋतके। ॐज्ञानाय नमः। वायवे। ॐवैराग्याय नमः। ईशानपादे। ॐऐश्वर्याय नमः। पूर्वपादे। ॐअधर्माय नमः। दक्षिणे। ॐअज्ञानाय नमः। पश्चिमे। ॐअवैराग्याय नमः। उत्तरे। ॐअनैश्वर्याय नमः। ॐअनन्ताय नमः। ॐपद्माय नमः। ॐअर्कमण्डलाय नमः। ॐसोममण्डलाय नमः। ॐवह्निमण्डलाय नमः। ॐवामाज्येष्ठादि-पञ्चमन्त्रशक्तिभ्यो नमः। स्वपरमप्रकृत्यै दैव्यै नमः॥१०५॥

ॐईशानतत्पुरुषाघोरवामदेवसद्योजातपञ्चवक्त्राय रुद्रसाध्यवस्वादित्यविश्वेदेवादि देव-विश्वरूपाय अण्डजस्वेदजोद्भिज्जजरायुजरूपस्थावरजङ्गममूर्तये परमेश्वराय॥१०६॥

ॐ हूं विश्वमूर्तये शिवाय नमस्त्रिशूलधनुःखड्गकपालदण्डकुठारेभ्यः।

ततो जलाधारमुखे चण्डीश्वराय नमः।

एवं सम्पूज्य विधिवत्ततोऽर्घं सन्निवेशयेत्॥१०७॥

पानीयमक्षताः पुष्पमेतैर्युक्तं फलोत्तमैः। गृहाणार्घ्यं महादेव पूजासम्पूर्तिहेतवे॥१०८॥

जितने कमण्डलु हैं, उन सबसे स्नान कराये। तदनन्तर गन्ध लगाये। गन्ध लेपन के उपरान्त पुनः स्नान कराकर श्रीखण्ड चन्दन का लेप करके पुष्प द्वारा इन मन्त्रों से पूजा करे, जो मूल में लिखे श्लोक १०५ से १०७ के अनुसार मन्त्रों द्वारा उनका पूजन करके तब विधिवत् अर्घ्य देना चाहिये। अर्घ्य हेतु यह मन्त्र है—हे महादेव! जल, अक्षत, पुष्प, फल समन्वित अर्घ्य आप ग्रहण करें। आप वह करिये, जिससे मेरी पूजा सफल हो जाये॥१०४-१०८॥

अर्घ्यादनन्तरं शक्तः पूजयेद्वसुपूजया। धूपं दीपं च नैवेद्यं क्रमात्पश्चान्निवेदयेत्॥१०९॥
घण्टाञ्च वादयेत्तत्र ततो नीराजनं चरेत्। भ्रामयेद्देवदेवस्य शङ्खवादित्रनिःस्वनैः॥११०॥
नीराजनं च यः पश्येद्देवदेवस्य शूलिनः। स मुच्येत्पातकैः सर्वैः किं पुनर्यः करिष्यति॥१११॥
नृत्यं गीतं च वाद्यं च अलीकमपि यश्चरेत्। तस्य तुष्येदनन्तं हि गीतवाद्यफलं यतः॥११२॥
स्तोत्रैस्ततश्च संस्तूय दण्डवत्प्रणमेद्भुवि। क्षमापयेच्च देवेशं सुकृतं कुकृतं क्षम॥११३॥

इसके अनन्तर यदि सामर्थ्य हो तब अन्य उपचारों द्वारा भी पूजा करे। उपचारों को निवेदित करे। इसके पश्चात् यथाक्रमेण धूप-दीप-नैवेद्य प्रदान करके घण्टा बजाये। आरती को सभी द्रव्यों पर घुमाकर आरती सम्पन्न करे। इसी समय शंख तथा अन्य वाद्य भी बजाये। जो शंकर की आरती करता है, उसकी तो बात ही क्या? यहां तक कि जो आरती देखता है, उसके भी सभी पातक नष्ट हो जाते हैं। इस समय नृत्य-गीत-वाद्य द्वारा भी शंकर अत्यधिक प्रसन्न होते हैं। तभी गीत-वाद्यादि का फल अनन्त है। तत्पश्चात् नाना स्तुति वचन से स्तव करे तथा भूतल पर नत होकर प्रणामोपरान्त क्षमा याचना करनी चाहिये। यथा—"हे प्रभो! मेरे सुकृत तथा कुकृत्य सबको क्षमा करिये"॥१०९-११३॥

य एवं यजते रुद्रमस्मिंल्लिङ्गे विशेषतः। पितरं पितामहं चैव तथैव प्रपितामहम्॥११४॥
सर्वात्पापात्समुत्तार्य रुद्रलोके वसेच्चिरम्। एवं माहेश्वरो भूत्वा सदाचारव्रतस्थितः॥११५॥
पशुपाशविमोक्षार्थं पूजयेत्तन्मना यदि। य एवं यजते रुद्रं तेनैतत्तर्पितं जगत्॥११६॥
किं त्वेतत्सफलं राजन्नाचारं य न लङ्घयेत्। आचारात्फलते धर्मो ह्याचारात्स्वर्गमश्नुते॥११७॥
आचाराल्लभते ह्यायुराचारो हन्त्यलक्षणम्। यज्ञदानतपांसीह पुरुषस्य न भूतये॥११८॥
भवन्ति यः सदाचारं समुल्लङ्घ्य प्रवर्तते। तस्यकिञ्चित्समुद्देशंवक्ष्ये तं शृणु पार्थिव॥११९॥

जो मनुष्य इस विधान द्वारा अन्य लिंग की अथवा इस लिंग में भगवान् शंकर की अर्चना करते हैं, वे

अपने पिता-पितामह तथा प्रपितामह को सभी पापों से मुक्त करके चिरकाल रुद्रलोक में निवास करते हैं। मानव पशुपाश-मोचनार्थ माहेश्वर व्रतावलम्बन तथा सदाचारी रहकर भगवान् में ही चित्त लगाये तथा इस विधि से उनकी अर्चना करे। उसकी इस अर्चना से समस्त जगत् का तर्पण हो जाता है। हे राजन्! जो व्यक्ति आचार का पालन करके इस विधि से अर्चना करेगा, उसे उक्त फललाभ अवश्य होगा। आचार पालन से ही धर्मफल मिलता है। उसी से स्वर्ग में निवास प्राप्त होता है। आचार से आयु मिलती है। आचार द्वारा दुर्लक्षण का नाश होता है। सदाचार छोड़ कर जो कुछ भी यज्ञ, दान, तप—कुछ क्यों न किया जाये, वह मनुष्य के लिये फलप्रद नहीं होता। हे राजन्! सदाचार का कुछ वर्णन करता हूं। उसे सुनें।।११४-११९।।

त्रिवर्गसाधने यत्नः कर्तव्यो गृहमेधिना। तत्संसिद्धौ गृहस्थस्य सिद्धिरत्र परत्र च॥१२०॥

ब्राह्म मुहूर्ते बुध्येतधर्मार्थौचाऽपिचिन्तयेत्। समुत्थायतथाऽऽचम्यदन्तधावनपूर्वकम्॥१२१॥

सन्ध्यामुपासीत बुधः संशान्तः प्रयतः शुचिः।
पूर्वां सन्ध्यां सनक्षत्रां पश्चिमां सदिवाकराम्॥१२२॥

उपासीत यथान्यायं नैनां जह्यादनापदि। वर्जयेदनृतं चासत्प्रलापं परुषं तथा॥१२३॥

असत्सेवां ह्यसद्वादंह्यसच्छास्त्रं च पार्थिव। आदर्शदर्शनं दन्तधावनं केशसाधनम्॥१२४॥

देवार्चनं च पूर्वाह्णे कार्याण्याहुर्महर्षयः। पालाशमासनं चैव पादुके दन्तधावनम्।
वर्जयेदासनं चैव पदा नाऽऽकर्षयेद्बुधः॥१२५॥

जलमग्निं च निनयेद्युगपन्न विचक्षणः॥१२६॥

पादौ प्रसारयेन्नैव गुरुदेवाग्निसम्मुखौ। चतुष्पथं चैत्यतरुं देवागारं तथा यतिम्॥१२७॥

विद्याधिकं गुरुं वृद्धं कुर्यादेतान्प्रदक्षिणान्॥१२८॥

आहारनीहारविहारयोगाः सुसम्वृता धर्मविदानुकार्याः।
वाग्बुद्धिवीर्याणि तपस्तथैव वार्तायुषी गुप्ततमे च कार्ये॥१२९॥

उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्यादुदङ्मुखः। दक्षिणाभिमुखो रात्रौ ह्येवमायुर्न रिष्यते॥१३०॥

सभी गृहस्थों को धर्म-अर्थ-काम साधन सयत्न करना चाहिये। त्रिवर्ग सिद्धि से ही गृहस्थ को इस काल में तथा परकाल में सिद्धि प्राप्त होगी। ब्राह्म मुहूर्त्त में जाग्रत होकर धर्म तथा अर्थ का चिन्तन करे। तदनन्तर उठ कर आचमन-दन्तधावनादि शुद्धि करके संयत चित्त तथा पवित्र भाव के साथ विधिवत् सन्ध्योपासना करनी चाहिये। प्रातः संध्या के समय तारक डूबे न हों तथा सायं सन्ध्या सूर्य रहते ही कर लेनी चाहिये। आपत्ति काल के बिना कभी भी संध्या को न छोड़े। उसमें व्याघात न करे। मिथ्या वाक्य बोलना, असत् चर्चा करना, कठोर वाक्य, असत् लोगों की सेवा, असत् तर्क तथा असत् शास्त्रों का अनुशीलन वर्जित है। हे राजन्! मनीषीगण का कथन है कि आदर्श दर्शन (शीशा देखना), दन्तधावन, केशप्रसाधन तथा देवार्चन पूर्वाह्न में ही करना चाहिये। पलाश की लकड़ी का आसन, पादुका तथा दातौन सर्वथा वर्जित है। विद्वान् व्यक्ति एक साथ अग्नि तथा जल लेकर न चले। गुरु अथवा देवता के समक्ष पैर न फैलाये। चौराहा, चैत्यवृक्ष, देवगृह, यति, अधिक विद्वान्, गुरु तथा वृद्ध की यथोचित प्रदक्षिणा करे। धर्मज्ञ व्यक्ति को चाहिये कि वह आहार-विहार-मैथुन गोपनीयता से करे। अपनी आय, तपस्या, वाक्य, बुद्धि,

सामर्थ्य, जीविका को सदा गुप्त रखे। मल-मूत्र त्याग दिन में उत्तरमुख तथा रात्रि में दक्षिणमुख होकर करे। इससे आयुक्षय नहीं होता।।१२०-१३०।।

प्रत्यग्निं प्रति सूर्यं च प्रति गां व्रतिनं प्रति। प्रतिसोमोदकंसन्ध्यां प्रज्ञा नश्यतिमेहतः॥१३१॥
भोजने शयने स्थाने उत्सर्गे मलमूत्रयोः। रथ्याचङ्क्रमणे चार्द्रपञ्चकश्चाचमेत्सदा॥१३२॥
न नद्यां मेहनं कुर्यान्न श्मशाने न भस्मनि। न गोमये न कृष्टे च नैवालूने न शाड्वले॥१३३॥
उद्धृताभिस्तथाद्भिस्तु शौचं कुर्याद्विचक्षणः। अन्तर्जलाद्देवकुलाद्वल्मीकान्मूषकस्थलात्॥१३४॥
अपविद्धापशौचाश्च वर्जयेत्पञ्च मृत्तिकाः। गन्धलेपापहरणं शौचं कुर्यात्तथा बुधः॥१३५॥
नात्मानं ताडयेन्नैव दद्याद्दुःखेभ्य एव च।
उभाभ्यामपि पाणिभ्यां कण्डूयेन्नात्मनः शिरः॥१३६॥
रक्षेद्दारांस्त्यजेदीर्ष्यांतासुनिष्कारणंबुधः। सूर्यास्तंनविनाकाश्चित्क्रियानैवाचरेत्तथा॥१३७॥
अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः। शिवचित्तोऽर्जयेद्वित्तं न चातिकृपणोभवेत्॥१३८॥
नेर्ष्युःस्यान्न कृतघ्नः स्यान्न परद्रोहकर्मधीः। न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलोऽनृजुः॥१३९॥
न च वागङ्गचपलो न चाशिष्टस्य गोचरः। न शुष्कवादं कुर्वीत शुष्कवैरं तथैव च॥१४०॥

अग्नि-सूर्य-गौ-तपस्वी-चन्द्र तथा जल की ओर मुख करने से किंवा सन्ध्या के समय मल-मूत्र त्याग द्वारा बुद्धिनाश होता है। भोजन, शयन, मल-मूत्र त्याग तथा मार्गभ्रमण के पश्चात् तथा बैठने के पूर्व दोनों हाथ, पैर तथा मुख, इन पांच अंगों को आर्द्र करके आचमन करना आवश्यक है। नदी-श्मशान, भस्म, गोबर, खेती हेतु हल चलाये स्थान, जहां से घास काटी जायेगी तथा शाडवल (चरागाह, जहां ताजी घास उगी हो) ऐसे स्थान पर मल-मूत्र त्याग न करे। विचक्षण मानव निकाले गये (कहीं से पात्र भरकर लाये गये) जल से ही शौच करे। शौचार्थ देवस्थल, दीमक की बांबी, जल में से निकाली अथवा चूहे द्वारा बिल हेतु खोदी गई मिट्टी को कदापि ग्रहण न करे। शौच से बची पहले की मिट्टी तथा किसी दोष के कारण त्यागी मिट्टी भी कदापि ग्रहण न करे। बुद्धिमान व्यक्ति हाथ से दुर्गन्ध दूर होने तक उसे मिट्टी से धोये। आत्मा को न धिक्कारे तथा बिना कारण क्लेश न प्रदान करे। दोनों हाथों से कदापि मस्तक न खुजलाये। पत्नी की सदा रक्षा करे। अकारण उसके प्रति ईर्ष्या न करे।

सूर्यास्त के समय सन्ध्योपासना के अतिरिक्त कोई कार्य नहीं करना चाहिये। अपने चित्त को सदा शिव के प्रति अनुरक्त रखे। प्राणीगण से द्रोह न करे। अथवा अल्पमात्र द्रोह करके धन न कमाये। कभी भी कंजूस न बने। ईर्ष्यावान्, कृतघ्न, परद्रोही न बने। हाथ-पैर तथा नेत्र की चपलता न करे। वाक्य तथा अंग संचालन द्वारा कभी चपलता प्रकट न करे। अशिष्ट लोगों के सानिध्य में न रहे। व्यर्थ तर्क किंवा विवाद न करे।।१३१-१४०।।

उपायैः साधयेदर्थान्दण्डस्त्वगतिका गतिः। भिन्नाशनं भिन्नशय्यांवर्जयेद्भिन्नभाजनम्॥१४१॥
अन्तरेण न गच्छेत द्वयोर्ज्वलनलिङ्गयोः। नाग्न्योर्न विप्रयोश्चैव न दम्पत्योर्नृपोत्तम॥१४२॥
न सूर्यव्योमयोर्नैव हरस्य वृषभस्य च। एतेषामन्तरं कुर्वन्यतः पापमवाप्नुयात्॥१४३॥
नैकवस्त्रश्च भुञ्जीत नाग्नौ होममथाचरेत्। न चार्चयेद्द्विजान्नैव कुर्याद्देवार्चनं बुधः॥१४४॥
खण्डनं पेषणं मार्ष्टिं जलसंशोधनं तथा। रन्धनं भोजनं स्वाप उत्थानं गमनं क्षुतम्॥१४५॥

कार्यारम्भं समाप्तिं च वचः प्रोच्य तथाप्रियम्।
पिबञ्जिघ्रन्स्पृशञ्छृण्वन्विवक्षुर्मैथुनं तथा॥१४६॥
शुचित्वं च जपंस्थाणुं यःकुर्याद्विंशतिंतथा। माहेश्वरःसविज्ञेयःशेषोऽन्योनामधारकः॥१४७॥

साम, दाम तथा भेद द्वारा अर्थ साधन करे। जब कोई मार्ग न बचे, तब ही दण्डनीति अपनानी चाहिये। अन्यथा दण्डनीति का उपयोग उचित नहीं है। भग्न आसन, टूटी शय्या, टूटा पात्र प्रयोग न करे। हे नृपोत्तम! दो अग्नि जब दो ओर जलती हो, उसके मध्य से, दो ब्राह्मणों के बीच से, पति-पत्नी के बीच से न निकले। लेकिन सूर्य तथा आकाश, शिव तथा वृष के बीच से न निकले, अन्यथा पाप होगा। एक वस्त्र पहने ही भोजन, अग्नि में होम, ब्राह्मणपूजा तथा देवार्चन नहीं करना चाहिये। खण्डन, पीसना, धोना, पकाना, भोजन करना, निद्रा, उठना, जाना, कार्यारम्भ, कार्यसमाप्ति, पान, आघ्राण, स्पर्श, श्रवण, मैथुन तथा पवित्रता साधन आदि कार्य के समय अथवा हिचकी के समय अथवा अप्रिय वाक्य बोलकर अथवा कोई बात प्रारम्भ करते समय जो व्यक्ति महेश्वर का स्मरण करना नहीं भूलता, वही यथार्थ माहेश्वर है। जो इन क्रियाकलाप के समय महेश्वर को याद नहीं कर पाता, वह केवल नाम का ही पाशुपत है।।१४१-१४७।।

स वै रुद्रमयो भूत्वा ततश्चाऽन्ते शिवंव्रजेत्। परस्त्रियंनाभिभाषेत्तथा सम्भाषयेद्यदि॥१४८॥
मातःस्वसरथोपुत्रिआर्येतिचवदेद्बुधः। उच्छिष्टोनालभेत्किञ्चिन्न च सूर्यंविलोकयेत्॥१४९॥
नेन्दुं न तारकाश्चैव नादयेन्नात्मनः शिरः। स्वस्त्रा दुहित्रा मात्रा वा नैकान्तासनमाचरेत्॥१५०॥
दुर्जयो हीन्द्रियग्रामो मुह्यते पण्डितोऽपि सन्। गुरुमभ्यागतं गेहेस्वयमुत्थाययत्नजः॥१५१॥
आसनंकल्पयेत्तस्यकुर्यात्पादाभिवन्दनम्। नोदक्छिराःस्वपेज्जातुनचप्रत्यक्छिराबुधः॥१५२॥
शिरस्यगस्त्यमाधाय तथैव च पुरन्दरम्। उदक्यादर्शनं स्पर्शं वर्ज्यं सम्भाषणं तथा॥१५३॥

यथार्थ पाशुपत व्यक्ति रुद्रमय होकर अन्तकाल में शिवसायुज्य प्राप्त करता है। परस्त्री के साथ वार्त्ता न करे। यदि करना ही पड़े, तब वह बुद्धिमान व्यक्ति माता, बहन, कन्या किंवा किसी मान्य सम्बोधन से सम्बोधित करके बातें करे। अशुद्ध स्थिति में कोई वस्तु स्पर्श न करे। तब सूर्य-चन्द्र-तारकों को भी न देखे। अपनी (बुद्धि का तथा) मस्तक का वही व्यवहार करे, जिससे कोई पीड़ा न हो। एकान्त में एक ही आसन पर बहन, कन्या, माता के साथ भी न बैठे, क्योंकि इन्द्रियां अत्यन्त दुर्जय हैं। पण्डित व्यक्ति भी अनेक काल में मुग्ध हो जाता है। यदि गुरु स्वयं गृह में आ जाते हैं, तब सयत्नतः उठकर उनको बैठने का आसन प्रदान करके उनका चरण स्पर्श करे। बुद्धिमान मानव कभी भी उत्तर अथवा पश्चिम की ओर शिर करके न सोये। रजस्वला का स्पर्श, उससे वार्त्ता तथा उसे देखना भी वर्जित है।।१४८-१५३।।

नाप्सु मूत्रं पुरीषां वा मैथुनं वा समाचरेत्। कृत्वा विभवतोदेवमनुष्यर्षिसमर्चनाम्॥१५४॥
पितॄणां च ततः शेषं भोक्तुं माहेश्वरोऽर्हति।
वाग्यतः शुचिराचान्तः प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा॥१५५॥
अन्तर्जानुश्च तच्चित्तो भुञ्जीतान्नमकुत्सयन्। नोपघातं विना दोषान्नतस्योदाहरेद्बुधः॥१५६॥
नग्नस्नानं न कुर्वीत न शयीत व्रजेत वा। दुष्कृतं न गुरोर्ब्रूयात्क्रुद्धं चैनं प्रसादयेत्॥१५७॥

परिवादंनशृणुयादन्येषामपिजल्पताम्। सदा चाकर्णयेद्धर्मांस्त्यत्यत्त्वाकृत्यशतान्यपि॥१५८॥
नित्यं नित्यं हि सम्मार्ष्टि गेहदर्पणयोरिव। शुक्लायाञ्च चतुर्दश्यां नक्तभोजीसदाभवेत्॥१५९॥
तिस्त्रो रात्रीर्न शक्तश्चदेवं माहेश्वरो भवेत्। संयावकृशरामांसं नात्मानमुपसाधयेत्॥१६०॥

जल में कभी भी मलमूत्र त्याग अथवा मैथुन नहीं करना चाहिये। माहेश्वर व्यक्ति अपनी अर्थशक्ति के अनुरूप देवता, मनुष्य, ऋषि तथा पितरों की अर्चना करके तब बाकी बचे अन्न का भोजन करे। पवित्रता पूर्वक पूर्वमुख अथवा उत्तरमुख बैठकर वाक्संयम के साथ तद्गत् चित्त हो भोजन करे। भोजन काल में जानुद्वय को हस्तद्वय के भीतर रखकर बैठना चाहिये तथा अन्न की निन्दा नहीं करनी चाहिये। बुद्धिमान मानव को चाहिये कि किसी प्रकार अन्न दूषित होने पर मात्र यह कहे कि अन्न दूषित है। उसके अन्य किसी दोष का उल्लेख न करे। नंगा होकर स्नान अथवा आना-जाना वर्जित है। नग्न होकर निद्राग्रस्त भी न हो। यदि गुरु कोई कुकार्य करते हैं, तब भी उसे न कहे। जब गुरु क्रोधित हो जायें, तब उनको प्रसन्न करने का उपाय करे। अन्य द्वारा की गई अपने गुरु की निन्दा नहीं सुननी चाहिये। सैकड़ों कार्य छोड़ कर भी धर्मकथा श्रवण करे। जैसे गृह तथा दर्पण की नित्य सफाई की जाती है, तद्रूप नित्यकर्म के अनुष्ठान से व्यक्ति निष्पाप रहता है। माहेश्वर व्यक्ति त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा तथा अमावस्या को मात्र रात्रि भोजन करे। यदि यह नियम पालन न हो सके, तब मात्र शुक्ला चतुर्दशी के दिन ही रात्रि भोजन करे। इससे भी माहेश्वर व्रत रक्षित हो जाता है। खिचड़ी (तिल की बनी), मांस, संयाव (गेहूं के आटे का मिष्टान्न, हलुआ आदि) कभी भी जिह्वा की तृप्ति हेतु न खाये॥१५४-१६०॥

सायंप्रातश्च भोक्तव्यं कृत्वा ह्यतिथिभोजनम्।
स्वप्नाध्ययनभोज्यानि सन्ध्ययोश्च विवर्जयेत्॥१६१॥
भुञ्जानंसन्ध्ययोर्मोहादसुरावसथोभवेत्। स्नातो न धूनयेत्केशान्क्षुतेनिष्ठीविते ऽध्वनि॥१६२॥
आलभेद्दक्षिणंकर्णंसर्वभूतानिक्षामयेत्। न चापि नीलीवासाःस्यान्नविपर्यस्तवस्त्रधृक्॥१६३॥
वर्ज्यं च मलिनंवस्त्रंदशाभिस्चविवर्जितम्। प्रक्षाल्यमुखहस्तौ च पादौचाप्युपविश्यच॥१६४॥
अन्तर्जानुस्त्रिराचामेद्द्विर्मुखं परिमार्जयेत्। तोयेन स्पर्शयेत्खानि स्वमूर्धानं तथैव च॥१६५॥
आचम्य पुनराचम्य क्रियाः कुर्वीत सर्वशः। क्षुते निष्ठीविते चैव दन्तलग्ने तथैव च॥१६६॥
पतितानाञ्च सम्भाषे कुर्यादाचमनक्रियाम्। अध्येतव्यात्रयी नित्यंभवितव्यंविपश्चिता॥१६७॥
धर्मतो धनमाहार्यं यष्टव्यं चापि यत्नतः। हीनेभ्योऽपिन युञ्जीत त्वङ्कारंकर्हिचिद्बुधः॥१६८॥
सत्यं वाच्यं नित्यमैत्रेण भाव्यं कार्यं त्याज्यं नित्यमायासकारि।
लोकेऽमुष्मिन्यद्दिनं स्यात्तथाऽऽस्मिन्नात्मा योगे योजनीयो गभीरैः॥१६९॥
तीर्थस्नानैः सोपवासैर्व्रतैश्च पात्रे दानैर्होमजप्यैश्च यज्ञैः।
भवार्चनैर्दैवपूजाविशेषैरात्मा नित्यं शोधनीयो मलाक्तः॥१७०॥

प्रातः-सायं अतिथि को भोजन कराने के उपरान्त तब स्वयं भोजन करना चाहिये। सन्ध्या के समय निद्रा-अध्ययन-भोजन न करे। मोहवशात् सन्ध्याकाल में भोजन करने पर असुर उसका आश्रय लेते हैं। स्नानान्त में केश संचालन न करे। रास्ते में यदि हिचकी किंवा खांसी आये, तब आचमन न होने से भी क्षति नहीं है। तथापि तब

दाहिना कान स्पर्श करके सर्वभूत समूह से क्षमा याचना करे। नीला वस्त्र न पहने। उत्तरीय (दुपट्टा) को कमर में पहनना किंवा अधोवस्त्र से उत्तरीय का काम लेना वर्जित है। मलिन तथा जर्जर वस्त्र न धारण करे। मुख-हाथ-पैर धोने के पश्चात् आसन पर जब बैठे, तब दोनों जानु दोनों बाहु के अन्दर हों। तब ३ बार आचमन करना चाहिये। तब २ बार मुख पोंछ कर जल द्वारा इन्द्रियों तथा मस्तक का स्पर्श करे। एक बार आचमन के पश्चात् पुनः आचमन करके, तब वैध कार्य प्रारम्भ करे। हिचकी होने पर, थूकने पर, दांतों में कुछ फंसा निकालने तथा उसे फेंकने पर, पतितों से वार्त्ता करने पर आचमन करना चाहिये। नित्य ही वेदत्रय का अध्ययन करे (अनध्याय के दिन छोड़कर)। सदा विद्वान् होने के लिए यत्न करे। धर्मतः धन उपार्जन करके यत्नतः यज्ञ करे। धीमान् व्यक्ति हीन जन से भी 'तू' अथवा 'तुम' का प्रयोग करके बातें न करे। गुरुजन के प्रति तो 'तुम' का प्रयोग उनके वध के तुल्य है। सदैव सत्य बोले। सबके प्रति मैत्रीपूर्ण भावना रखनी चाहिये। गम्भीर बुद्धि मानव इस लोक में जितने दिन रहता है, उसे भविष्य के लिए—परलोकार्थ योग करना चाहिये। आत्मा नित्य विषय संसर्ग के कारण मलिन हो जाती है। इसलिए तीर्थ स्नान, उपवास, व्रत, सत्पात्र को दान, होम, जप, यज्ञ, शिवपूजा, देवार्चना आदि सत्कार्य से सतत् आत्मा का शोधन करता रहे।।१६१-१७०।।

यत्राऽपि कुर्वतो नात्मा जुगुप्सामेति पार्थिव!। तत्कर्तव्यमसङ्गेन यत्र गोप्यं महाजने॥१७१॥
इति ते वै समुद्देशः कीर्तितः किञ्चदेव च। शेषः स्मृतिपुराणेभ्यस्त्वयाश्रोतव्यएवच॥१७२॥
एवमाचरतो धर्मं महेशस्य गृहे सतः। धर्मार्थकामसम्प्राप्तौ परत्रेह च शोभनम्॥१७३॥

हे राजन्! जिसके अनुष्ठान के समय हृदय में घृणा न हो तथा साधुजन से जिसे गुप्त रखना आवश्यक न हो, वही कार्य अनासक्ति पूर्वक करना चाहिये। हे महाराज! मैंने आपसे संक्षेप में कुछ धर्मतत्त्व को कहा। स्मृति पुराणादि द्वारा और भी आप ज्ञात करें। गृहस्थ स्थिति में इहकालीन धर्म-काम-अर्थ प्राप्ति हेतु तथा परकाल में मंगल प्राप्ति हेतु इस माहेश्वर धर्म का पालन करते रहना चाहिये।।१७१-१७३।।

एवं नानाविधान्धर्मान्महाकालस्य फाल्गुन। वदतो ध्वनिराकाशे सुमहानभ्यजायत॥१७४॥
यावत्पश्यन्ति ये तत्र समाजग्मुःशृणुष्व तान्। ब्रह्मा विष्णुः स्वयं रुद्रो देवी रुद्रगणस्तथा॥१७५॥
इन्द्रादयस्तथा देवा वसिष्ठाद्या मुनीश्वराः। तुम्बरुप्रवराश्चापि गन्धर्वाप्सरसां गणाः॥१७६॥
तान्महेशमुखान्सर्वान्महाकालो महामतिः। अर्चयामास बहुधा भक्त्युद्रेकातिपूरितः॥१७७॥
ततो ब्रह्मादिभिर्देवैर्वरि रत्नमयासने। उपविष्टोऽभिषिक्तश्च महीसागरसङ्गमे॥१७८॥
ततो देव्या समालिङ्ग्य नीत्वोत्सङ्गं स्वकं मुदा।
पुत्रत्वे कल्पितः पार्थ! महाकालो महामतिः॥१७९॥
उक्तञ्च यावद्ब्रह्माण्डमिदमास्ते शिवव्रत!। तावत्तिष्ठ शिवस्थानेशिववच्छिवभक्तितः॥१८०॥

नारद कहते हैं—हे अर्जुन! महाकाल इसी प्रकार से नाना धर्मोपदेश कर रहे थे, तभी सहसा आकाश से सुमहान् ध्वनि सुनी गई। महाकाल ने उधर देखा कि वहां ब्रह्मा-विष्णु-रुद्रानुचरों के साथ स्वयं शंकर देवी के साथ आये हैं। उनके साथ इन्द्रादि देवता, वसिष्ठादि मुनिगण, तुम्बुरु आदि गन्धर्व तथा सभी अप्सरायें भी आई हैं। महामति महाकाल ने भक्तिभाव से सराबोर चित्त से उनकी विविध प्रकार से अर्चना की। ब्रह्मादि देवता ने उन

महाकाल को उत्तम रत्नासन पर आसीन कराया तथा उनका अभिषेक उस महीसागर संगम क्षेत्र में किया। हे अर्जुन! तत्पश्चात् देवी ने इस महामति महाकाल का आलिंगन करके उसे गोद में पुत्ररूपेण बैठाकर कहा—"हे शिवव्रत परायण! जब तक ब्रह्माण्ड की स्थिति रहेगी, तब तक तुम शिवलोक में निवास करो"।।१७४-१८०।।

देवेन च वरोदत्तस्त्वल्लिङ्गं योऽर्चयिष्यति। जितेन्द्रियःशुचिर्भूत्वाऊर्ध्वंमल्लोकमेष्यति॥१८१॥
दर्शनं स्तवनं पूजा प्रणामश्च ततो जपः। दानं चात्र कृतं लिङ्गे ममाऽतितृप्तिकारणम्॥१८२॥
इत्युक्ते विस्मितादेवाः साधुसाध्वितितेजगुः। ब्रह्मविष्णुमुखाश्चैव महाकालंप्रतुष्टुवुः॥१८३॥
ततः सुरैः स्तूयमानो वन्द्यमानश्च चारणैः। नृत्यद्भिरप्सरोभिश्च गीतैर्गन्धर्वजैःशुभैः॥१८४॥
कोटिकोटिगणैश्चैव स्तुवद्भिः सर्वतो वृतः॥१८५॥
महाकालोरुद्रभवनं गतो भवपुरस्सरः। एवमेतन्महालिङ्गमुत्पन्नं कुरुनन्दन!॥१८६॥
कूपश्चापि सरः पुण्यं महाकालस्यसिद्धिदम्। अत्रयेमनुजाःपार्थलिङ्गस्याराधनेरताः॥१८७॥
महाकालः समालिङ्ग्य ताञ्छिवाय निवेदयेत्। एतदत्यद्भुतंलिङ्गंत्रिषुलोकेषुविश्रुतम्॥१८८॥
दृष्टं स्पृष्टं पूजितं च गतास्तेभवसद्मतत्। एवमेतानि लिङ्गानि सप्तजातानिफाल्गुन॥१८९॥
ये शृण्वन्ति गृणन्त्येतत्तेऽपि धन्या नरोत्तमाः॥१९०॥

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे श्रीमहाकालमाहात्म्ये महाकालकरन्धमसम्वादे शिवपूजनविधिनित्यकर्तव्यधर्मनिरूपणपूर्वक-महाकालशिवलोकप्राप्तिवर्णनंनामैकचत्वारिंशोऽध्यायः।।४१।।

देव महेश्वर ने यह वर दिया कि "जो व्यक्ति संयमित तथा पवित्र होकर तुम्हारे द्वारा प्रतिष्ठित लिंग की अर्चना करेगा, वह मृत्यु के अनन्तर मेरे लोक में निवास करेगा। इस लिंग का दर्शन, स्तुति, पूजन, प्रणति किंवा यहां दानादि करने से, वह सब मुझे अपूर्व तृप्ति प्रदान करेगा।" तब ब्रह्मा आदि देवता साधुवाद के साथ महाकाल कालभीति का स्तव करने लगे। चारण उनका गुण वर्णन कर रहे थे। गन्धर्व मनोहर गायन कर रहे थे। कोटि-कोटि शिव अनुचरगण ने उनकी स्तुति करते-करते उनको घेर लिया। महाकाल ने शिव के साथ इस प्रकार शिवलोक प्रस्थान किया। हे कुरुनन्दन! महाकाल की सिद्धिप्रद लिंग तथा पुण्यप्रद कूप एवं सरोवर की यही उत्पत्ति कथा है। हे पृथापुत्र! जो मनुष्य इस लिंगाराधन में तत्पर रहते हैं, महाकाल उनका आलिंगन करके शिव के पास उसके तपः वृत्तान्त का वर्णन करते हैं। त्रैलोक प्रसिद्ध यह लिंग अत्यद्भुत है। इसके दर्शन, स्पर्श तथा पूजन से मानव शिवलोक गमन करता है। हे फाल्गुन! एवंविध सात लिंगों की स्थापना हुई है। जो यह उपाख्यान सुनते अथवा पढ़ते हैं, वे नरश्रेष्ठ धन्य हैं।।१८१-१९०।।

।।एकचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

ऐतरेय चरित्र वर्णन, मातृपुत्र संवाद में संसार की असारता, कष्ट बहुलता वर्णन, परमार्थ प्रतिपादन, ऐतरेय कृत् भगवत् स्तुति, वरप्राप्ति

नारद उवाच

ततो मया स्थापिते च स्थानेकालान्तरेण ह। चिन्तितंहृदयेभूयोद्विजानुग्रहकाम्यया॥१॥
वासुदेवविहीनं हि तीर्थमेतन्न रोचते। असूर्यं हि जगद्यद्वत्स हि भूषणभूषणम्॥२॥
यत्र नैव हरिः स्वामीतीर्थेगेहेऽथमानसे। शास्त्रेवा तदसत्सर्वं हांसं तीर्थन वायसम्॥३॥
तस्मात्प्रसाद्यवरदंतीर्थेस्मिन्पुरुषोत्तमम्। आनेष्येकलयासाक्षाद्विश्वानुग्रहकाम्यया॥४॥
इतिसञ्चिन्त्य कौरव्य ततोऽहंचात्रसंस्थितः। ज्ञानयोगेनयोगीन्द्रंशतंवर्षाण्यतोषयम्॥५॥
अष्टाक्षरं जपन्मन्त्रं संनिगृह्येन्द्रियाणि च। वासुदेवमयो भूत्वा सर्वभूतकृपापरः॥६॥

नारद कहते हैं—मैं उस स्थान की प्रतिष्ठा करके कालान्तर में द्विजगण के उपकारार्थ यह सोचने लगा कि जैसे सूर्य रहित जगत् शोभा नहीं देता, उसी प्रकार वासुदेव से रहित यह तीर्थ शोभा नहीं दे रहा है। विष्णु ही आभूषण के भी भूषणरूप हैं। जिस तीर्थ, गृह, शास्त्र अथवा अन्तःकरण में श्रीहरि स्वामीरूप से विराजित नहीं हैं, वह सब असत् रूप है। मेरा यह तीर्थ हंससेव्य तीर्थ नहीं है। यह तो वायस (काक) तीर्थ है। इसलिए जगत् के हितार्थ मैं वरदाता पुरुषोत्तम को यहां अंशरूपेण स्थापित करूंगा। हे कौरव्य अर्जुन! मैंने यह निश्चित किया तथा इन्द्रियों को संयमित करके अपने में वासुदेवमयी भावना किया। तब सर्वप्राणीगण के प्रति कृपालु होकर उन योगीन्द्र को ज्ञान-योग के द्वारा अष्टाक्षर मन्त्र जप से प्रसन्न करना प्रारम्भ किया।।१-६।।

एवं मयाऽऽराध्यमानो गरुडं हरिरास्थितः। गणकोटिपरिवृतः प्रत्यक्षः समजायत॥७॥
तमहं प्राञ्जलिर्भूत्वा दत्त्वार्घ्यं विधिवद्धरेः। प्रत्यवोचं प्रणम्याऽथ प्रबद्धकरसम्पुटः॥८॥
श्वेतद्वीपे पुरा दृष्टं मया रूपं तव प्रभो। अजं सनातनं विष्णो नरनारायणात्मकम्॥९॥
तद्रूपस्य कलामेकांस्थापयाऽत्र जनार्दन। यदि तुष्टोऽसिमेविष्णोतदिदंक्रियतांत्वया॥१०॥

मैंने इस प्रकार १०० वर्षों तक जप किया, तब भगवान् हरि ने गरुड़ पर बैठकर तथा करोड़ों पार्षदों से समावृत होकर मुझे दर्शन दिया। मैंने उनको यथाविधि अर्घ्य प्रदान किया तथा उनको प्रणाम करके उनसे अंजलिबद्ध होकर कहा—हे प्रभो! मैंने पूर्व में श्वेतद्वीप में आपका यह रूप देखा था। हे विष्णु! आपका यह सनातन रूप अजन्मा तथा नर-नारायणात्मक है। हे जनार्दन! आप अपने इस रूप की एक कला की स्थापना इस तीर्थ में भी करें। हे विष्णु! यदि आप प्रसन्न हैं, तब यह कार्य करें"।।७-१०।।

एवं मया प्रार्थितोऽथ प्रोवाच गरुडध्वजः। एवमस्तु ब्रह्मपुत्र यत्त्वयाऽभीप्सितं हृदि॥११॥

तत्तथा भविता सर्वमप्यत्रस्थंसदैवहि। एवमुक्त्वागतेविष्णौ निवेश्य स्वकलांप्रभो॥१२॥
मया संस्थापितो विष्णुर्लोकानुग्रहकाम्यया।
यस्मात्स्वयं श्वेतद्वीपनिवास्यत्र हरिः स्थितः॥१३॥
वृद्धोविश्वस्यविश्वाख्योवासुदेवस्ततःस्मृतः। कार्तिके शुक्लपक्षे या भवत्येकादशीशुभा॥१४॥
स्नानं कृत्वा विधानेन तोयप्रस्त्रवणादिषु। योऽर्चयेदच्युतं भक्त्या पञ्चोपचारपूजया॥१५॥
उपोष्य जागरं कुर्याद्गीतवाद्यं हरेः पुरः। कथां वा वैष्णवीं कुर्याद्दम्भक्रोधविवर्जितः॥१६॥
दानं दद्याद्यथाशक्त्यानियतो हृष्टमानसः। अनेकभवसम्भूतात्कल्मषादखिलादपि॥१७॥
मुच्यतेऽसौ न सन्देहो यद्यपि ब्रह्मघातकः। गारुडेन विमानेन वैकुण्ठं पदमाप्नुयात्॥१८॥

भगवान् गरुड़वाहन ने यह प्रार्थना सुनकर कहा—"हे ब्रह्मापुत्र! 'तथास्तु' तुमने मन ही मन जो कामना की है, वही हो। मैं सर्वदा यहां रहूंगा।" हे प्रभो, अर्जुन! विष्णु ने यह कहकर अपनी कला स्थापित करके वहां से प्रस्थान किया। मैंने लोकहितार्थ इस प्रकार विष्णुदेव को यहां स्थापित किया है। श्वेतद्वीपवासी हरि स्वयं यहां स्थित हैं। वे विश्व के विश्वारूप तथा वृद्ध हैं। तभी उनका नाम वासुदेव (वृद्ध अर्थात् पुरातन)। कार्त्तिक शुक्ल एकादशी के दिन यहां झरने अथवा स्रोत के जल में स्नान करके पञ्चोपचार से भक्तियुक्त केशवार्चन करे। यहां उपवासी रहकर रात्रि जागरण करे। हरि के निकट गीत-वाद्य ध्वनि करे। अथवा विष्णु का गुणानुवाद सुने। उस दिन द्वन्द्व तथा क्रोध त्यागे। ऐसा करने वाला यदि ब्रह्मघाती भी हो, तथापि वह जन्म-जन्मांतर के पापों से रहित हो जाता है। वह गरुड़योजित विमान पर बैठ कर विष्णुलोक गमन करता है॥११-१८॥

कुलानां तारयेत्पार्थ! शतमेकोत्तरं नरः। श्रद्धायुक्तं मुदा युक्तं सोत्साहं सस्पृहंतथा॥१९॥
अहङ्कारविहीनं च स्नानं धूपानुलेपनम्। पुष्पनैवेद्यसंयुक्तमर्घ्यदानसमन्वितम्॥२०॥
यामे यामे महाभक्त्या कृतारार्तिकसंयुतम्। चामराह्लादसंयुक्तं भेरीनादपुरस्कृतम्॥२१॥
पुराणश्रुतिसम्पन्नं भक्तिनृत्यसमन्वितम्। विनिद्रंक्षुत्तृषास्वादस्पृहाहीनं च भारत॥२२॥
तत्पादसौरभघ्राणसंयुतं विष्णुवल्लभम्। सगीतं सार्चनकरं तत्क्षेत्रगमनान्वितम्॥२३॥
पायुरोधेन संयुक्तं ब्रह्मचर्यसमन्वितम्। स्तुतिपाठेन संयुक्तं पादोदकविभूषितम्॥२४॥
सत्यान्वितं सत्ययोगसंयुतं पुण्यवार्त्तया। पञ्चविंशतिभिर्युक्तं गुणैर्यो जागरं नरः।
एकादश्यां प्रकुर्वीत पुनर्न जायते भुवि॥२५॥

वह व्यक्ति अपनी १०१ पीढ़ी को इस प्रकार तार देता है। श्रद्धा, आनन्द, उत्साह, आकांक्षा, अहंकारशून्यता के साथ स्नानीय, धूप, अनुलेपन, पुष्प, नैवेद्य, अर्घ्य, प्रत्येक प्रहर में आरती, चामर डुलाना, भेरीवादन, पुराण श्रवण, भक्तिपूर्ण नृत्य, ब्रह्मचर्य, स्तुतिपाठ, पादोदक सेवन, सत्य कथन, पुण्यमयी सत्यवार्त्ता, पायुरोध—इन २५ गुणों से गुणान्वित होकर रात्रि जागरण करे। मानव यह सब सम्पन्न करके पुनः पृथिवी पर जन्म नहीं लेता॥१९-२५॥

अत्र तीर्थवरे पूर्वमैतरेय इति द्विजः। सिद्धिं प्राप्तो महाभागो वासुदेवप्रसादतः॥२६॥

अर्जुन उवाच

ऐतरेयः कस्य पुत्रो निवासः क्वाऽस्यवामुने!। कथं सिद्धिमगाद्धीमान्वासुदेवप्रसादतः॥२७॥

"पूर्व में यहां एक ऐतरेय ब्राह्मण ने वासुदेव की कृपा पाकर सिद्धिलाभ किया था।" अर्जुन कहते हैं—"हे मुनिप्रवर! ऐतरेय किसका पुत्र था? उसका निवास कहां था? इस धीमान् मुनि ने किस प्रकार से सिद्धि लाभ किया?।।२६-२७।।

नारद उवाच

अस्मिन्नेव मम स्थाने हारीतस्याऽन्वयेऽभवत्॥२८॥
माण्डूकिरिति विप्रात्र्यो वेदवेदाङ्गपारगः॥२९॥
तस्याऽऽसीदितरानामभार्यासाध्वीगुणैर्युता। तस्यामुत्पद्यतसुतस्त्वैतरेय इतिस्मृतः॥३०॥
सच बाल्यात्प्रभृत्येवप्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम्। जजापमन्त्रंत्वनिशंद्वादशाक्षरसञ्ज्ञितम्॥३१॥
न शृणोति न वक्त्येव मनसाऽपि च किञ्चन। एवंप्रभावःसोऽभूच्चबाल्येविप्रसुतस्तदा॥३२॥
ततो मूकोऽयमित्येव नानोपायैः प्रबोधितः। पित्रा यदान कुरुते व्यवहारायमानसम्॥३३॥
ततो निश्चित्य मनसा जडोऽयमिति भारत!। अन्यां विवाहयामास दारान्पुत्रांस्तथादधे॥३४॥
पिङ्गानाम च सा भार्या तस्याः पुत्राश्च जज्ञिरे। चत्वारःकर्मकुशलावेदवेदाङ्गवादिनः॥३५॥
यज्ञेषु शान्तिहोमेषु द्विजैः सर्वत्रपूजिताः। ऐतरेयोऽपि नित्यं च त्रिकालं हरिमन्दिरे॥३६॥

नारद कहते हैं—मेरे इसी क्षेत्र में हारीत मुनि के वंश में वेद-वेदान्तज्ञ माण्डुकि नामक ब्राह्मण ने जन्म लिया। उसकी पत्नी थी इतरा। वह साध्वी तथा नाना गुणयुता थी। उसके गर्भ से ऐतरेय नामक पुत्र ने जन्म लिया। वह बाल्यकाल से ही पूर्वजन्म के प्रभाव से द्वादशाक्षर मन्त्र निरन्तर जपता रहता था। वह न तो किसी से कुछ बोलता न किसी की बातों को सुनता ही था। वह ब्राह्मण सन्तान बाल्यकाल से ही ऐसा प्रभावशाली था। उसके पिता उसे नाना प्रकार से प्रबोधित करते, उसे किसी कार्य में लगाते अथवा कोई बात कहते, वह कुछ नहीं सुनता था। तब पिता ने उसे जड़ माना तथा पुत्र के लिए एक और विवाह किया। इस पत्नी का नाम था पिङ्गा। उसके गर्भ से ४ पुत्र जन्मे। कालक्रम से वे वेदवेदांगपारग हो गये तथा वे विप्रोचित कार्य में दक्ष भी थे। उन्होंने नाना यज्ञ, शान्ति कार्य तथा होमादि करके सर्वत्र प्रशंसा प्राप्त किया। ऐतरेय नित्य तीनों काल में हरिमन्दिर जाता था।।२८-३६।।

जजाप परमं जाप्यं नान्यत्र कुरुते श्रमम्। ततो माता निरीक्ष्यैव सपत्नी तनयांस्तथा॥३७॥
दार्यमाणेनमनसातनयंवाक्यमब्रवीत्। क्लेशायैवचजातोऽसि धिङ्मे जन्मचजीवितम्॥३८॥
नार्यास्तस्या नृलोकेऽत्र वरैवाऽजननिः स्फुटम्।
विमानिता या भर्त्रा स्यान्न पुत्रः स्याद्गुणैयुतः॥३९॥
पिङ्गेयं कृतपुण्या वै यस्याःपुत्रा महागुणाः। वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञाः सर्वाऽभ्यर्चितागुणैः॥४०॥
तदहं पुत्र! दुर्भाग्या महीसागरसङ्गमे। निमज्जिष्ये वरं मृत्युर्जीविते किं फलं मम।
त्वमप्येवं महामौनी नन्द भक्तो हरेश्चिरम्॥४१॥

वहां बैठकर वह उस परम मन्त्र का जप करता। अन्य किसी कार्य में उसका मनोनिवेश नहीं था। उसकी माता ने अपनी सौत के पुत्रों की वह उन्नति देखकर भग्न मन से एक बार अपने पुत्र से कहा—हे पुत्र! तुम केवल मुझे कष्ट पहुंचाने हेतु ही जन्मे थे। मेरे जन्म तथा जीवन को धिक्कार! जिसका पुत्र पृथिवी पर गुणी नहीं है तथा जो पति से अवहेलना प्राप्त स्त्री है, उस नारी का जन्म न होना ही अच्छा था। इस पिङ्गा ने न जाने कितने पुण्य किये थे, तभी इसके पुत्र अतीव गुणी, वेद-वेदांगपारग तथा सर्वत्र प्रशंसित हैं। हे पुत्र! मैं दुर्भागा हूं। मुझे जीवन धारण का क्या प्रयोजन! मैं महीसागर संगम में डूबकर प्राण त्याग करूंगी। मृत्यु ही मेरे लिये श्रेयप्रद है। हे पुत्र! तुम तो हरिभक्त होकर चिरकाल से मौन ही हो!।।३७-४१।।

नारद उवाच

इति मातुर्वचः श्रुवा प्रहसन्नैतरैयकः।।४२।।
ध्यात्वा मुहूर्तंधर्मज्ञोमातरंप्रणतोऽब्रवीत्। मातर्मिथ्याभिभूताऽसिअज्ञानेज्ञानवत्यसि।।४३।।
अशोच्ये शोचसि शुभे! शोच्ये नैवाऽपि शोचसि।
देहस्याऽस्य कृते मिथ्या संसारे किं विमुह्यसि।।४४।।
मूर्खाचरितमेतद्धि मन्मातुरुचितं न हि। अन्यत्संसारसारं च सारमन्यच्चमोहिताः।।४५।।
प्रपश्यन्तियथारात्रौखद्योतंदीपवत्स्थितम्। यदिदंमन्यसेसारंशृणुतस्याऽप्यसारताम्।।४६।।
एवंविधं हि मानुष्यमागर्भादिति कष्टदम्। अस्थिपट्टतुलास्तम्भेस्नायुबन्धेनयन्त्रिते।।४७।।
रक्तमांसमदालिप्ते विण्मूत्रद्रव्यभाजने। केशरोमतृणच्छन्ने सुवर्णत्वक्सुधूतके।।४८।।
वदनैकमहाद्वारे षड्गवाक्षविभूषिते। ओष्ठद्वयकपाटे च तथा दन्तर्गलान्विते।।४९।।
नाडीस्वेदप्रवाहेच कालवक्त्रानलस्थिे। एवम्विधे गृहे गेहीजीवो नामाऽस्तिशोभने।।५०।।
गुणत्रयमयी भार्या प्रकृतिस्तस्य तत्र च। बोधाहङ्कारकामाश्च क्रोधलोभादयोऽपिच।।५१।।
अपत्यान्यस्य हा कष्टमेवं मूढः प्रवर्तते। तस्य यो यो यथा मोहस्तथा तं शृणुतत्त्वतः।।५२।।
स्त्रोतांसि यस्य सततं प्रस्त्रवन्ति गिरेरिव। कफमूत्रादिकान्यस्य कृते देहस्य मुह्यति।।५३।।
सर्वाशुचिनिधानस्य शरीरस्य न विद्यते। शुचिरेकत्रदेशोऽपि विण्मूत्रस्य दृतेरिव।।५४।।
स्पृष्ट्वास्वदेहस्त्रोतांसिमृत्तोयैःशोध्यतेकरः। तथाप्यसुचिभाण्डस्यनविरज्यतिकिंनरः।।५५।।

नारद कहते हैं—धार्मिक ऐतरेय ने माता का यह दुःख सुना तथा हास्य पूर्वक माता को प्रणाम करके कहने लगा—"हे माता! आप ज्ञानी होकर भी अज्ञानाभिभूत होकर अशोचनीय विषय का शोक कर रही हैं। लेकिन जो वास्तविक शोक का विषय है, उसके प्रति शोकग्रस्त नहीं हैं। इस वृथा संसार में नश्वर देह हेतु मुग्ध क्यों हैं? यह ज्ञानरहित का कार्य है। मेरी माता के लिए यह शोक करना उचित नहीं है। मोहाच्छन्न लोग इस संसार का जो सार समझते हैं, वह तो वास्तव में असार है। इस सम्बन्ध में मेरा कथन सुनें। मनुष्य का जन्म तो गर्भवास काल से ही कष्ट देने वाला है। हे शुभशीले! देहरूपी गृह में जीव ही गृहपति रूप से स्थित रहता है। इस देहगृह में वह स्नायुपाश से बंधा है। मांस, मेद, रक्त से आलिप्त अस्थि ही उसके स्तम्भ हैं। वह देह मल-मूत्रादि से भरा है। तृण

के समान रोम-केश से यह ढंका रहता है। यह उत्तम वर्णों से रंगा है। मुख ही इसका महाद्वार है। चक्षु-कर्ण-नासिका रूपी छः छिद्र इसके झरोखे हैं। ओष्ठद्वय इसके कपाट हैं। दात इसकी अर्गला है। नाड़ी तथा पसीना इसकी जल प्रणाली है। इसके मध्य में कालमुखरूप अग्नि ही स्तम्भरूप है। इस देह रूपी गृह में जीव ही गृहपति है। यह देह मल-मूत्रादि से भरा रहता है। इस गृह में त्रिगुणमयी प्रकृति ही जीव की भार्या है। बुद्धि, अहंकार, काम, क्रोध, लोभादि इसके पुत्र हैं। जीव इसी गृह में माया से मोहितावस्था में कितने क्लेश नहीं सहता। उसका इस भाव द्वारा जिन-जिन विषयों में मोह उत्पन्न होता है, मैं उसे यथायथ कहता हूं। सुनें।।४२-५५।।

कायःसुगन्धतोयाद्यैर्यत्नेनापिसुसंस्कृतः। न जहाति स्वकंभावंश्चपुच्छमिवनामितम्।।५६।।
स्वदेहाशुचिगन्धेन न विरज्यति यो नरः। विरागे कारणं तस्य किमन्यदुपदिश्यते।।५७।।
गन्धलेपापनोदार्थं शौचंदेहस्यकीर्तितम्। द्वयस्यापगमात्पश्चाद्भावशुद्ध्याविशुध्यति।।५८।।
गङ्गातोयेन सर्वेण मृद्भारैः पर्वतोपमैः। आमृत्योराचरञ्छौचं भावदुष्टो न शुध्यति।।५९।।
तीर्थस्नानैस्तपोभिर्वा दुष्टात्मा नैव शुध्यति।
स्वेदितः क्षालितस्तीर्थे किं शुद्धिमधिगच्छति।।६०।।
अन्तर्भावप्रदुष्टस्य विशतोऽपि हुताशनम्। न स्वर्गो नाऽपवर्गश्च देहनिर्दहनं परम्।।६१।।

जैसे पर्वत से झरने बहते हैं, तदनुरूप इस देह से भी कफ-मूत्रादि का क्षरण होता है। यह भिश्ती की तरह समस्त अपवित्र पदार्थ का आधार है। इसके किसी कोने में पवित्रता नहीं है। अपने ही शरीर के सभी स्रोतों का स्पर्श करने पर मृत्तिका तथा जल से शरीर का शोधन करना पड़ता है। इस अपवित्रता के ढेर रूप शरीर के प्रति मनुष्य विरक्त क्यों नहीं होता। इससे बढ़कर विराग का कारण और क्या होगा? पहले दुर्गन्ध समाप्त करने हेतु इसकी शुद्धि करनी पड़ती है। तदनन्तर भाव शुद्धि से ही यह पवित्र होता है। अन्यथा यह अपवित्र ही रह जाता है। समस्त गंगाजल तथा पर्वत के इतनी मृत्तिका से यावज्जीवन शुद्ध करने पर भी बिना भावशुद्धि किये देह की शुद्धि नहीं होती। दूषित आत्मा तीर्थस्नान अथवा तप से भी शुद्ध नहीं होता। स्वेदादि से लिप्त अशुद्ध देह तीर्थ में लाख धोने पर भी शुद्ध नहीं हो पाता। जिनके अन्तःकरण का भाव दुष्ट है, वे अग्नि में प्रवेश करके भी शुद्ध नहीं हो पाते। उसका स्वर्ग तथा अपवर्ग, कुछ भी सिद्ध नहीं होता। केवल देह ही जलती है।।५३-६१।।

भावशुद्धिः परंशौचं प्रमाणं सर्वकर्मसु। अन्यथालिङ्ग्यतेकान्ताभावेनदुहिताऽन्यथा।।६२।।
अन्यथैवस्तनं पुत्रश्चिंतयत्यन्यथा पतिः। चित्तं विशोधयेत्तस्मात्किमन्यैर्बाह्यशोधनैः।।६३।।
भावतःसम्विशुद्दात्मास्वर्गंमोक्षंचविन्दति। ज्ञानामलाम्भसापुंसः सद्वैराग्यमृदा पुनः।।६४।।
अविद्यारागविण्मूत्रेलपगन्धविशोधनम्। एवमेतच्छरीरं हि निसर्गादशुचि विदुः।।६५।।
त्वङ्मात्ररसारनिःसारं कदलीसारसंनिभम्। ज्ञात्वैवंदोषवद्देहंयःप्राज्ञः शिथिलीभवेत्।।६६।।
स निष्क्रामति संसारे दृढग्राही स तिष्ठति। एवमेतन्महाकष्टं जन्मदुःखं प्रकीर्तितम्।।६७।।
पुंसामज्ञातदोषेण नानाकर्मवशेन च। यथा गिरिवराक्रान्तः कश्चिद्दुःखेन तिष्ठति।।६८।।
यथा जरायुणा देही दुखं तिष्ठति वेष्टितः। पतितः सागरे यद्वद्दुःखमास्ते समाकुलः।।६९।।

गर्भोदकेन सिक्ताङ्गस्तथाऽऽस्ते व्याकुलः पुमान्।
लोहकुम्भे यथा न्यस्तः पच्यते कश्चिदग्निना॥७०॥
गर्भकुम्भे तथा क्षिप्तः पच्यते जठराग्निना। सूचीभिरग्निवर्णाभिर्विभिन्नस्यनिरन्तरम्॥७१॥
यद्दुखंजायते तस्य तद्गर्भेऽष्टगुणं भवेत्। इत्येतद्गर्भदुखं हिं प्राणिनां परिकीर्तितम्॥७२॥

भावशुद्धि ही प्रधान शौच है। भावशुद्धि होने से ही सर्व कर्माधिकार जन्म लेता है। पत्नी तथा पुत्री को पृथक् रूपेण आलिंगित किया जाता है। एक ही स्तन का चिन्तन पति अलग भावना से करता है, जबकि पुत्र अलग प्रकार से करता है। तभी हर प्रकार से सर्वदा चित्त को ही शुद्ध करे। अन्य बाह्यशोधन का क्या फल? जिसकी आत्मा का भाव शुद्ध है, वही स्वर्गलाभ तथा मोक्षलाभ कर पाता है। वैराग्य रूपी मिट्टी तथा शुद्ध ज्ञानरूप जल द्वारा जीव का अविद्याजनित विषयानुराग रूपी मलमूत्रग दुर्गन्धि का शोधन सम्भव है। यह शरीर त्वचारूपी सार मात्र है। बाकी केले के खम्भे की तरह सम्पूर्ण निःसार तथा स्वभावतः अशुद्ध है। (जैसे केले के स्तम्भ की त्वचा निकालते जायें, त्वचा के नीचे त्वचा की पर्त निकलती जायेगी। अन्त में कुछ नहीं रहेगा)। साधुगण इस तथ्य को जानते हैं। जो प्राज्ञ मानव देह को इस तरह से दोषयुक्त जानकर इसकी ममता त्याग देता है, वही मुक्त है। जो इसमें ममत्वयुक्त है, वही चिरकाल पर्यन्त संसार में जन्म लेता रहता है। व्यक्ति अज्ञान के कारण नाना कर्मदोष से इस महाक्लेशपूर्ण जन्म को ग्रहण करता है। पर्वत से आक्रान्त तथा सागर में पतित व्यक्ति की तरह देही भी जरायु से वेष्ठित तथा गर्भजल से भींगा व्याकुलतापूर्वक तथा क्लेशपूर्वक समय व्यतीत करता है। वह अग्नि में पड़े लौह घट की तरह जठराग्नि द्वारा पकता रहता है। वह अग्निवर्ण (अग्नितप्त) लौह सुई द्वारा निरन्तर विद्ध होता है। गर्भावस्था का यह अतिशय क्लेश है। अर्थात् इस सूची विद्धता से भी आठ गुणा क्लेश उस गर्भस्थ जीव को अनुभूत होता है। सभी स्थावर-जंगम प्राणीगण गर्भवास में यही दुःख भोगते रहते हैं।।६२-७२।।

चरस्थिराणां सर्वेषामात्मगर्भानुरूपतः। तत्रस्थस्य च सर्वेषां जन्मनां स्मरणंभवेत्॥७३॥
मृतश्चाऽहं पुनर्जातो जातश्चाऽहं पुनर्मृतः। नानायोनिसहस्त्राणि मया दृष्टान्यनेकधा॥७४॥
अधुनाजातमात्रोऽहं प्राप्तसंस्कार एव च। ततः श्रेयः करिष्यामियेन गर्भोनसम्भवेत्॥७५॥

तब भी अपनी-अपनी योनि के अनुसार इस दुःख में अल्पता अथवा अधिकता का तारतम्य भी रहता है। सभी जन्म में गर्भकाल में अतीत जन्म-जन्मान्तरीण स्मृति हो जाती है। "मैं मरा था, पुनः जन्मा, अब पुनः मरूंगा। इस प्रकार से मैंने कई-कई बार हजारों-हजार योनि में जन्म लिया। अब मैं जन्म लेकर यथोक्त संस्कार प्राप्त करके ऐसी स्थिति प्राप्त करूंगा कि पुनः गर्भवास न करना पड़े। ऐसी उत्तम श्रेयः साधना करूंगा"।।७३-७५।।

अध्येष्यामिहरेर्ज्ञानं संसारविनिवर्तनम्। एवं सञ्चितयन्नास्ते मोक्षोपायंविचिन्तयन्॥७६॥
गर्भात्कोटिगुणंदुःखंजायमानस्यजायते। गर्भवासेस्मृतिर्याऽऽसीत्साजातस्यप्रणश्यति॥७७॥
स्पृष्टमात्रस्य बाह्येन वायुनामूढताभवेत्। सम्मूढस्य स्मृतिभ्रंशः शीघ्रं सञ्जायते पुनः॥७८॥
स्मृतिभ्रंशात्ततस्तस्य पूर्वकर्मवशेन च। रतिः सञ्जायते तूर्णं जन्तोस्तत्रैव जन्मनि॥७९॥
रक्तोमूढश्च लोकोऽयमकार्येसम्प्रवर्तते। तत्राऽऽत्मानं न जानाति न परं नच दैवतम्॥८०॥
न शृणोति परं श्रेयः सति चक्षुषि नेक्षते। समे पथि समैर्गच्छन्स्खलतीव पदे पदे॥८१॥

सत्यां बुद्धौ न जानाति बोध्यमानो बुधैरपि। संसारे क्लिश्यते तेन रागमोहवशानुगः॥८२॥

"अब मैं संसार निवारक हरिज्ञानदायक शास्त्राध्ययन करूंगा।" जीव गर्भस्थ स्थिति में मोक्षोपाय चिन्ता में कालातिपात करता है। जन्मकाल तो गर्भवास की तुलना से करोड़ों गुना क्लेशदायक है। गर्भवासकाल में जो पूर्वजन्म स्मृति रहती है, वह जन्म के साथ ही लुप्त हो जाती है। बाह्य वायु का स्पर्श होते ही जीव में मूढ़त्व आ जाता है। मोहाच्छन्नत्वरूप मूढ़त्व का संचार होने के कारण स्मृतिभ्रंशता आ जाती है। इस भ्रंशता के कारण पूर्वकर्म प्रभाववशात् जीव को इस जन्म में अनुराग होने लगता है। वह अनुरक्त मूढ़ व्यक्ति अकार्य में प्रवृत्त होता है। तब उसे आत्मपर ज्ञान अथवा देवता ज्ञान भी नहीं रहता। वह सत्कथा (अच्छी बात) नहीं सुनता। नेत्रों के रहते भी अपने परम श्रेय को नहीं देख पाता। वह जीवन के सरल पथ पर सरल सहयात्रीगण के सहित चलते रहने पर भी पद-पद पर स्खलित होता जाता है। बुद्धि रहते भी बुद्धिमानों द्वारा कहे गये प्रबोध वाक्य से उसका बोधोदय होता है नहीं। इसीलिये वह राग-द्वेष के कारण संसार में क्लेशग्रस्त होता है।।७६-८२।।

गर्भस्मृतेरभावेन शास्त्रमुक्तं महर्षिभिः। तद्दुःखकथनार्थाय स्वर्गमोक्षप्रसाधकम्॥८३॥
ये शास्त्रज्ञाने सत्यस्मिन्सर्वकर्मार्थसाधके। न कुर्वन्त्यात्मनः श्रेयस्तदत्र परमद्भुतम्॥८४॥

गर्भवास कालीन पूर्वजन्म की स्मृति जन्म लेते ही नहीं रह जाती। तभी जनगण को यह गर्भकालीन दुःख बतलाना आवश्यक है। तभी यह आकांक्षा होती है कि पुनः गर्भ में न जाना हो। महर्षियों ने इसी उद्देश्य से शास्त्र प्रणयन किया है। सर्वकामार्थसाधक शास्त्रज्ञान रहते भी लोग आत्ममंगल साधन नहीं करते, यह अत्याश्चर्य है।।८३-८४।।

अव्यक्तेन्द्रियवृत्तित्वाद्बाल्येदुःखं महत्पुनः। इच्छन्नपिनशक्नोति वक्तुं कर्तुं च किञ्चन॥८५॥
दन्तोत्थाने महद्दुखं मौलेन व्याधिना तथा। बालरोगैश्चविविधैःपीडा बालग्रहैरति॥८६॥
तृड्बुभुक्षापरीताङ्गः क्वचित्तिष्ठति रारटन्। विण्मूत्रभक्षमाद्यंचमोहाद्बालःसमाचरेत्॥८७॥
कौमारे कर्णवेधेन भ्रातापित्रोर्विताडनैः। अक्षराध्ययनाद्यैश्चदुःखं स्याद्गुरुशासनात्॥८८॥
प्रमत्तेन्द्रियवृत्तैश्च कामरागप्रपीडनात्। रागोद्वृत्तस्य सततं कुतः सौख्यं हि यौवने॥८९॥
ईर्ष्यया सुमहद्दुखं मोहाद्रक्तस्य जायते। मत्तस्य कुपितस्यैव रागो दोषाय केवलम्॥९०॥

बाल्यावस्था में इन्द्रिय वृत्तियां अव्यक्त रहती हैं। अतः महाक्लेश रहता है। तब वह इच्छा रहते भी बोल नहीं पाता, यह महान् दुःख है। तदनन्तर दांतों को निकलने का महान् दुःख है। मौलरोग, बालरोग, बालग्रह, क्षुधा, तृष्णा से निपीड़ित होकर वह अनेक बार चीत्कार करता है। बालक मोहवशात् मलमूत्र का ही भोजन कर लेता है। कौमारावस्था में कर्णवेध जनित दुःख, माता-पिता की ताड़ना, गुरु का शासन तथा अक्षर का अभ्यास अनेक कष्ट प्रदान करता है। यौवन काल में सांसारिक अनुराग अत्यन्त वर्द्धित हो जाता है। इन्द्रिय वृत्तियां उच्छृङ्खल हो जाती हैं। तथा काम भावना तथा अनुराग से वह जकड़ जाता है। उसे सुखानुभव कैसे होगा? वह मोहाक्रान्त रहता है। उसमें ईर्ष्या के कारण महादुःख उत्पन्न हो जाता है। ऐसे मत्त तथा कुपित व्यक्ति में जो अनुराग है, वह केवल दोष जनक ही होता है।।८५-९०।।

न रात्रौ विन्दते निद्रा कामाग्निपरिखेदितः। दिवाऽपि हि कुतः सौख्यमर्थोपार्जनचिन्तया॥९१॥

नारीषु त्वनुभूतासु सर्वदोषाश्रयासु च। विण्मूत्रोत्सर्गसदृसं सौख्यं मैथुनजंस्मृतम्॥९२॥
सन्मानमपमानेन वियोगेनेष्टसङ्गमः। यौवनं जरया ग्रस्तं क्व सौख्यमनुपद्रवम्॥९३॥
वलीपलितकायेन शिथिलीकृतविग्रहः। सर्वक्रियास्वशक्तश्च जरया जर्ज्जरीकृतः॥९४॥
स्त्रीपुंसोर्यौवनं रूपं यदन्योन्याश्रयं पुरा। तदेवं जरया ग्रस्तमुभयोरपि न प्रियम्॥९५॥
जराभिभूतःपुरुषः पत्नीपुत्रादिबान्धवैः। अशक्तत्वाद्दुराचारैर्भृत्यैश्च परिभूयते॥९६॥
धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च नातुरो यतः। शक्तः साधयितुंतस्माद्युवाधर्मं समाचरेत्॥९७॥
वातपित्तकफादीनां वैषम्यं व्याधिरुच्यते। वातादीनां समूहश्च देहोऽयं परिकीर्तितः॥९८॥
तस्माद्व्याधिमयं ज्ञेयं शरीरमिदमात्मनः। रोगैर्नानाविधैर्यान्ति देहे दुःखान्यनेकशः॥९९॥
तानि न स्वात्मवेद्यानिकिमन्यत्कथयाम्यहम्। एकोत्तरंमृत्युशतमस्मिन्देहेप्रतिष्ठतम्॥१००॥

तत्रैकःकालसंयुक्तःशेषास्त्वागन्तवःस्मृताः।
येत्विहागन्तवःप्रोक्तास्तेप्रशाम्यन्तिभेषजैः॥१०१॥

जपहोमप्रदानैस्चकालमृत्युर्नशाम्यति। विविधाव्याधयःशस्ताःसर्पाद्याःप्राणिनस्तथा॥१०२॥

विषाणि चाऽभिराचाराश्च मृत्योर्द्वाराणि देहिनाम्।
पीडितं सर्परोगाद्यैरपि धन्वन्तरिःस्वयम्॥१०३॥

वह कामानल जनित सन्ताप के कारण रात्रि में ठीक से सो नहीं पाता। साथ ही अर्थोपार्जन चिन्ता में सुख कहां? नारी समस्त दोषों का आधार है, यह जानकर भी वह मलमूत्र त्याग के समान मैथुनजनित सुखानुभव करता है। अपमान द्वारा मान, वियोग द्वारा प्रियसंयोग तथा जरा द्वारा उसका यौवन ग्रस्त हो जाता है। अतएव निरूपद्रव सुख कहां है? यौवनकालीन स्त्री-पुरुष का परस्पर प्रीतिदायक जो रूप है, जराग्रस्त होने पर, वह दोनों के ही लिए अप्रिय हो जाता है। तब शरीर में झुर्रियां आती हैं। देह शिथिल हो जाता है। वह जरा से जर्जरित हो जाता है। तब देह सभी कार्य में अशक्त हो जाता है। जराभिभूत मानव को स्त्री-पुरुष-बन्धु आदि अशक्त मानकर विविध रूपेण लांछित करते हैं। जब तक वह अशक्त न हो जाते, तब तक उसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष साधन करना चाहिये। तभी यौवन काल में ही धर्माचरण कर्त्तव्य है। वात-पित्त-कफ की समष्टि ही देह कहलाता है। वात-पित्त-कफ की विषमता ही व्याधि है। अतएव देह को व्याधिमय कहते हैं। नाना रोगों के कारण देह में नाना दुःखों का प्रादुर्भाव होता है। लेकिन विशुद्धात्मा ज्ञानी लोग इसे अलीक संस्कार विशेष कहकर इसका दुःखरूपेण अनुभव नहीं करते। इस देह में १०१ जो मृत्यु है। इनमें १ ही है कालजनित। बाकी हैं आगन्तुक। आगन्तुक मृत्यु तो औषधि, सेवा, जप, होमादि से निवारित हो जाती है। इसे अकाल मृत्यु भी कहते हैं। लेकिन कालजनित मृत्यु का निवारण नहीं हो सकता। विविध व्याधि, अभिशाप, सर्पादि हिंस्र जन्तु, विष, अभिचार, ये देहीगण की मृत्यु के द्वार हैं। जो कालजनित मृत्यु है, उसमें सर्प-रोगादि से पीड़ित होने पर स्वयं धन्वन्तरि भी उसे स्वस्थ करके बचा नहीं सकते॥९१-१०३॥

स्वस्थीकर्तुं नशक्नोतिकालप्राप्तंहिदेहिनम्। नौषधंनतपोमन्त्रानमित्राणिनबान्धवा॥१०४॥
शक्नुवन्ति परित्रातुं नरं कालेन पीडितम्। रसायनतपोजप्यैर्योगसिद्धैर्महात्मभिः॥१०५॥

कालमृत्युरपि प्राज्ञैर्नीयते नापि संयुतैः। नास्तिमृत्युसमंदुःखंनास्तिमृत्युसमंभयम्॥१०६॥
नास्तिमृत्युसमस्त्रासःसर्वेषामपिदेहिनाम्। सद्भार्यापुत्रमित्राणिराज्यैश्वर्यसुखानिच॥१०७॥
आबद्धानिस्नेहपाशैर्मृत्युःसर्वाणिकृन्तति। किंनपश्यसिमातस्त्वंसहस्रस्याऽपिमध्यतः॥१०८॥
जनाः शतायुषः पञ्च भवन्ति न भवन्ति वा।
अशीतिका विपद्यन्तेकेचित्सप्ततिकानरा॥१०९॥
परमायुःस्थिता षष्टिस्तदप्यस्ति न निष्ठितम्। तस्य यावद्भवेदायुर्देहिनःपूर्वकर्मभिः॥११०॥
तस्यार्धमायुषो रात्रिर्हरते मृत्युरूपिणी। बालभावेन मोहेन वार्धके जरया तथा॥१११॥
वर्षाणां विंशतिर्याति धर्मकामार्थवर्जितः। आगन्तुकैर्भयैः पुंसां व्याधिशोकैरनेकधा॥११२॥
ह्रियतेऽर्द्धं हि तत्राऽपि यच्छेषंतद्धिजीवितम्। जीवितान्तेचमरणंमहाघोरमवाप्नुयात्॥११३॥

औषधि, तप, मन्त्र, बन्धु-बान्धव, कोई भी कालग्रस्त को नहीं बचा सकते। रसायन, योग, जप, तपःसिद्ध महात्मा, प्राज्ञसन्त भी कालमृत्यु निवारण में सक्षम नहीं हैं। सभी जीवों के लिए मृत्युवत् कोई दुःख है ही नहीं। मृत्युतुल्य कोई भय तथा त्रास कहीं भी नहीं है। भार्या, पुत्र, मित्र, राज्य, ऐश्वर्य, सुख—सभी स्नेहपाश में आबद्ध हैं, किन्तु मृत्यु उस पाश का छेदन कर देती है। हे माता! क्या आप देखती नहीं हैं कि सहस्रों में से ५ लोग भी १०० वर्ष जीवित नहीं रहते। कोई मानव ८० वर्ष में, कोई ७० वर्ष में ही मृत हो जाता है। सामान्य आयु परिमाण है ६० वर्ष। वह भी निश्चित नहीं है। फलतः पूर्व कर्मानुसार देही की जो भी आयु हो, मृत्युरूपा रात्रि (रात में सोकर) उसका आधा समय हर लेती है। बाल्यावस्था का १० वर्ष तथा वृद्धावस्था का १० वर्ष व्यर्थ व्यतीत होता है। इनमें कोई धर्म-काम-अर्थ साधित नहीं होता। आगन्तुक व्याधि-शोक-भयादि से बाकी आयु का आधा भाग भी बाधित हो जाता है। इस सबसे जो बच गया, उस काल को ही जीवन कहते हैं। जीवित काल के अन्त में मरण का अत्यन्त क्लेशपूर्ण आक्रमण होता है॥१०४-११३॥

जायते योनिकोटीषु मृतः कर्मवशात्पुनः। देहभेदेन यः पुंसां वियोगः कर्मसंख्यया॥११४॥
मरणं तद्विनिर्द्दिष्टं न नाशः परमार्थतः। महातमः प्रविष्टस्य च्छिद्यमानेषु मर्मसु॥११५॥
यद्दुःखं मरणं जन्तोर्न तस्येहोपमा क्वचित्। हातातमातर्हाकान्तेक्रन्दत्येवंसुदुःखितः॥११६॥
मण्डूक इव सर्पेण गीर्यते मृत्युना जनः। बान्धवैः संपरित्यक्तः प्रियैश्च परिवारितः॥११७॥
निःश्वसन्दीर्घमुष्णं च मुखेन परिशुष्यता। चतुरन्तेषु खट्वायाः परिवर्तन्मुहुर्मुहुः॥११८॥
सम्मूढः क्षिपतेऽत्यर्थंहस्तपादावितस्ततः। खट्वातोवाञ्छतेभूमिंभूमेःखट्वांपुनर्महीम्॥११९॥
विवस्त्रो मुक्तकलज्जश्च विष्ठामूत्रानुलेपितः। याचमानश्च सलिलं सुष्ककण्ठोष्ठतालुकः॥१२०॥
चिन्तयानः स्ववित्तानिकस्यैतानि मृते मयि। पञ्चावटान्खनमानःकालपाशेन कर्षितः॥१२१॥
म्रियतेपश्यतामेव गले घुर्घुरावकृत्। जीवस्तृणजलूकेव देहाद्देहंविशेत्क्रमात्॥१२२॥
सम्प्राप्योत्तरमंशेन देहं त्यजति पूर्वकम्। मरणात्प्रार्थना दुःखमधिकं हि विवेकिनः॥१२३॥

मरणान्त में पुनः कर्मानुरूप कोटि-कोटि योनि में जन्म होता है। जीव के कर्मानुसार एक-एक देह का जो

वियोग होता है, वही मृत्यु है। मृत्यु का अर्थ यथार्थतः नाश नहीं है। मरणकाल में जीव महत् अज्ञान से आच्छादित हो जाता है। उसके सभी मर्मस्थल छिन्न होते हैं, तब उसे जो दुःख बोध होता है, जगत् में उसकी कहीं तुलना ही नहीं है। जैसे सर्प द्वारा पकड़े जाने पर मेढक चिल्लाता है, वैसे ही वह रोदन-परायण हा तात! हा माता! इत्यादि कहता वह प्राणी मरण से भक्षित होता है। मृत्युकाल में जब बान्धवगण छोड़ जाते हैं, तब केवल प्रियजन ही लपेटे रहते हैं। तब मुख शुष्क होता है, दीर्घ उष्ण श्वास चलने लगती है। वह खाट पर पुनः-पुनः चतुर्दिक् उलटने-पलटने लगता है। अज्ञानावस्था में प्रबलता से इधर-उधर हाथ-पैर चलाने लगता है, कभी खाट से नीचे तो कभी खाट पर लेटना चाहता है। वह वस्त्ररहित, लज्जाहीन, मलमूत्र में लिप्त होता है। उसके कण्ठ-ओष्ठ-तालु शुष्क हो जाते हैं। वह जल मांगने लगता है। वह मन ही मन सोचता है कि मेरा मरण हो जाने पर समस्त वैभव क्या होगा? ऐसे चिन्ता करते-करते काल पाश द्वारा खींचे जाने पर उसके कण्ठ से घर-घराहट का शब्द होने लगता है। वह सबके समक्ष मृत हो जाता है। जैसे जोंक तृण पर आश्रय लिये रहती है, तब अन्य तृण को पकड़ कर उस पर आती है, वैसे ही प्राणी देह से देहान्तर में जाता रहता है। ज्ञानवान व्यक्ति को मरण से अधिक दुःख किसी से मांगने में अनुभूत होता है।।११४-१२३।।

क्षणिकं मरणे दुःखमनन्तं प्रार्थनाकृतम्। ज्ञातं मयैतदधुना मृतो भवति यद्गुरुः॥१२४॥
न परः प्रार्थयेद्भूयस्तृष्णालाघवकारणम्। आदौदुःखंतथामध्येह्यन्त्येदुःखंचदारुणम्॥१२५॥
निसर्गात्सर्वभूतानामिति दुःखपरम्परा। क्षुधा च सर्वरोगाणां व्याधिः श्रेष्टतमः स्मृतः॥१२६॥
स चान्नौषधिलेपेन क्षणमात्रं प्रशाम्यति। क्षुद्व्याधेर्वेदनातीव्रानिःशेषबलकृन्तनी॥१२७॥
तयाऽभिभूतो म्रियतेयथान्यैर्व्याधिभिर्नरः। राज्ञोऽभिमानमात्रं हि ममैव विद्यतेगृहे॥१२८॥
सर्वमाभरणं भारं सर्वमालेपनं मम। सर्वं प्रलपितं गीतं नित्यमुन्मत्तचेष्टितम्॥१२९॥
इत्येवंराज्यसम्भोगैःकुतःसौख्यं विचारतः। नृपाणांव्यग्रचित्तानामन्योन्यविजिगीषया॥१३०॥

मरण का दुःख तो ज्ञानवान् हेतु क्षणिक है, परन्तु याचना का दुःख उसके लिये अनन्त है। यह मैंने मरण काल में जाना है कि तृष्णा ही लघुता का कारण है, क्योंकि मरणान्त में अब याचना नहीं करनी होगी। (मरने वाले हेतु) क्योंकि तब देह ही पूर्वापेक्षा गुरुतर भारी हो जाती है! सभी तृष्णा के कारण प्राणी को आदि में, मध्य में तथा अन्त में दुःख ही दुःख होता है। इस प्रकार की दुःख-परम्परा स्वभावतः रहती है। क्षुधा ही सर्वरोग कारण है। अन्नरूप औषधि के व्यवहार द्वारा वह कुछ ही समय हेतु प्रशमित हो जाती है। भूखे व्यक्ति की यातना अतीव तीव्र होती है। वह बल की पूर्णतः विनाशक है। अन्य व्याधि की तरह उस क्षुधा व्याधि से अभिभूत व्यक्ति भी मृत हो जाता है। राजा सुखी है, यह नहीं कह सकते। "मेरे घर में समस्त आभरण-धन रत्न तथा आलेपन आदि हैं, यही तो राजत्व है।" इस प्रकार से गाता वह व्यग्रचित्त नित्य उन्मत्तवत चेष्टा करता रहता है। इसलिए राजत्व में भी सुख नहीं है। यह सूक्ष्म विचार से ज्ञात होता है।।१२४-१३०।।

प्रायेण श्रीमदालेपान्नहुषाद्यामहानृपाः। स्वर्गंप्राप्यापिपतिताःकः श्रियोविन्दतेसुखम्॥१३१॥
उपर्युपरि दवानामन्योन्यातिशये स्थितम्। नरैः पुण्यफलं स्वर्गे मूलच्छेदेन भुज्यते॥१३२॥
न चान्यत्क्रियते कर्म सोऽत्र दोषः सुदारुणः। छिन्नमूलतरुर्यद्वदवशः पतते क्षितौ॥१३३॥

पुण्यमूलक्षयेतद्वत्पातयन्ति दिवौकसः। इति स्वर्गेऽपिदेवानांनास्तिसौख्यंविचारतः॥१३४॥
तथा नारकिणां दुःखं प्रसिद्धं किं च वर्ण्यते। स्थावरेष्वपि दुःखानि दावाग्निहिमशोषणम्॥१३५॥
कुठारैश्छेदनंतीव्रं वल्कलानां च तक्षणम्। पर्णशाखाफलानां च पातनं चण्डवायुना॥१३६॥
अपमर्दश्च सततंगजैर्वन्यैश्च देहिभिः। तृड्बुभुक्षा च सर्पामांक्रोधोदुःखं च दारुणम्॥१३७॥
दुष्टानां घातनं लोके पाशेन च निबन्धनम्। एवं सरीसृपाणां च दुःखं मातर्मुहुर्मुहुः॥१३८॥
अकस्माज्जन्ममरणं कीटादीनांतथाविधम्। वर्षाशीतातपैर्दुःखंसुकष्टं मृगपक्षिणाम्॥१३९॥
क्षुत्तृट्क्लेशेनमहतासन्त्रस्ताश्चसदामृगाः। पशुनागनिकायानांशृणुदुःखानि यानि च॥१४०॥

लक्ष्मी से सुखलाभ कहां? राजा लोग प्रायः परस्पर जयेच्छा से व्याकुल होकर क्लेशभोग करते हैं। नहुष आदि राजा स्वर्ग प्राप्त करके भी ऐश्वर्यमद दोष के कारण पुनः स्थानभ्रष्ट हो गये। स्वर्ग में भी सुख नहीं है। पुण्यफल के तारतम्य से वहां भी श्रेष्ठ निकृष्ट का भेद है। देवता भी समान नहीं हैं। उनमें उत्तमाधम का भाव है। वहां केवल पुण्यफल भोग ही हो सकता है। नूतन पुण्यार्जन नहीं हो सकता। इसलिए पुण्यफल क्षय होते ही जड़ कटे वृक्ष की तरह वह अवश होकर मृत्युलोक में पतित हो जाता है। पुण्यक्षय होकर देव स्वर्ग से च्युत हो जाते हैं। अतः विचार से ज्ञात होता है कि स्वर्गवास भी सुखदायक नहीं है। नरकवासीगण का जो दुःख है, वह तो प्रसिद्ध है। उसकी वर्णना क्या करूं? स्थावर जन्म में भी सुख नहीं है। दावाग्नितात, हिमभोग, कुठाराघात से छेदन, वल्कल छीला जाना, प्रचण्ड वायुवेग से शाखा, पत्र-फलादि का गिरना, वन्य हाथी द्वारा वृक्षों का मर्दन, कुठाराघात आदि नाना कष्ट स्थावरों को भोगना पड़ता है। हे माता! सरीसृप जन्म में भी तृष्णा, क्षुधा, क्रोधजनित क्लेश, दुष्टों द्वारा प्रहार, संपेरों द्वारा बन्धन तथा अनेक कष्ट बराबर भोगने पड़ते हैं। कीटों को भी अचानक जन्म, अचानक मरण तथा पूर्ववत् नाना कष्टों का सामना करना पड़ता है। मृग तथा पक्षीगण शीत-ग्रीष्म-वर्षादि प्रचुर कष्ट भोगते हैं। वे क्षुधा-तृषा को लेकर सर्वदा पीड़ित रहते हैं। पशु तथा नागादि का जो कष्ट है, वह सुनें।।१३१-१४०।।

क्षुत्तृट्छीतादिदमनं वधबन्धनताडनम्। नासाप्रवेधनं त्रासः प्रतोदाङ्कुशताडनम्॥१४१॥
वेणुकुन्तादिनिगडमुद्गराऽङ्कुशताडनम्। भारोद्वहनसंक्लेशं शिक्षायुद्धादिपीडनम्॥१४२॥
आत्मयूथवियोगश्च वने च नयनादिकम्। दुर्भिक्षं दुर्भगत्वं च मूर्खत्वं च दरिद्रता॥१४३॥
अधरोत्तरभावश्च मरणं राष्ट्रविभ्रमः। अन्योन्याभिभवाद्दुःखमन्योन्यातिशयात्पुनः॥१४४॥
अनित्यता प्रभावाणामुच्छ्रयाणां च पातनम्। इत्येवमादिभिर्दुखैर्यस्माद्व्याप्तं चराचरम्॥१४५॥
निरयादिमनुष्यान्तंतस्मात्सर्वंत्यजेद्बुधः। स्कन्धात्स्कन्धंनयेद्वारंविश्रामंमन्यतेऽन्यथा॥१४६॥
तद्वत्सर्वमिदंलोके दुःखं दुःखेन शाम्यति। एवमेतज्जगत्सर्वमन्योन्यातिशयोच्छ्रितम्॥१४७॥
दुःखैराकुलितंज्ञात्वानिर्वेदंपरमाप्नुयात्। निर्वेदाच्चविरागःस्याद्विरागाज्ज्ञानसम्भवः॥१४८॥

क्षुधा, तृषा, शीतादि जनित पीड़ा, वध, बन्धन, ताड़न, नाक छिदना, कई प्रकार के त्रास, चाबुक-अंकुश-छड़ी-मुद्गरादि का प्रहार, सिक्कड़ से बांधा जाना, भार वहन, शिक्षा दिया जाना, युद्ध, अपने दल से विछोह, स्थानान्तर आदि कितने ही कष्ट से पशु पीड़ित होते हैं। दुर्भिक्ष, दुर्भाग्य, मूर्खता, दरिद्रता, उत्तम अधम श्रेणीबद्धता, राष्ट्रविप्लव, पारस्परिक अभिभव (स्पर्द्धा), जिगीषा, प्रभाव का अस्थायित्व, मरण, उन्नत का पतन

आदि पीड़ा समस्त चराचर में व्याप्त है। अतः नारकीय से से लेकर बुद्धिमान मनुष्य तक यह सब परित्याज्य हो। जैसे बोझ ढोने वाला मनुष्य एक कन्धे से दूसरे कन्धे पर भार रखकर कुछ आराम का अनुभव करता है, वैसे सभी लोग एक दुःख से आक्रान्त होने पर जब दूसरा दुःख आता है, तब पूर्व दुःख से कुछ शान्ति का बोध करते हैं। यह समग्र जगत् इस प्रकार के उत्तम-अधम तारतम्य वाले दुःख से सम्यक्तः आक्रान्त है। यह जानकर धीमान् व्यक्ति निर्वेदरूप वैराग्य का अवलम्बन लेता है। निर्वेद से वैराग्य तथा वैराग्य से ज्ञानोत्पत्ति होती है।।१४१-१४८।।

ज्ञानेन तं परं ज्ञात्वाविष्णुं मुक्तिमवाप्नुयात्। नाहमेतादृशेलोके रमेयं जननि! क्वचित्॥१४९॥
राजहंसो यथा शुद्धः काकामेध्यप्रदर्शकः। शृणु मातर्यत्र संस्थो रमेयं निरुपद्रवः॥१५०॥
अविद्यायनमत्युग्रं नानाकमारतिशाखिनम्। सङ्कल्पदंशमकरं शोकहर्षहिमातपम्॥१५१॥
मोहान्धकारतिमिरं लोभव्यालसरीसृपम्। विषयानन्यथाध्वानं कामक्रोधविमोक्षकम्॥१५२॥
तदतीत्यमहादुर्गंप्रविष्टोऽस्मि महद्वनम्। नतत्प्रविश्य शोचन्ति न प्रदुष्यन्ति तद्विदः॥१५३॥
न च बिभ्यति केषाञ्चिन्नाऽस्य बिभ्यति केचन॥१५४॥
तस्मिन्वने सप्तमहाद्रुमास्तु सप्तैव नद्यश्च फलानि सप्त।
सप्ताश्रमाः सप्त समाधयश्च दीक्षाश्च सप्तैतदरण्यरूपम्॥१५५॥

मानव ज्ञान द्वारा परम पुरुष विष्णु को जानकर मानव मुक्त हो जाते हैं। हे माता! जैसे राजहंस काक के भोजन रूप अमेध्य (दूषित) पदार्थ को देखकर तृप्त नहीं होता, उसी प्रकार में इस लोक के किसी भी विषय से तृप्त नहीं होता। हे माता! मैं जिस प्रकार से रहकर निरुपद्रव आनन्द का अनुभव करता हूं, वह सुनें। जो अविद्या का आवास स्थल है, जो नाना कर्मरूप पादपपुंज से व्याप्त है, जो संकल्प रूप डसने वाले मच्छरों से व्याप्त है, जो शोक तथा हर्षरूप हिम तथा ताप से अन्वित है, जो मोहरूपी अन्धकार से आच्छन्न रहता है, जो लोभरूपी हिंसक सर्पों से व्याप्त है, जिसका विषयरूपी मात्र एक ही मार्ग है, जहां काम-क्रोधरूपी दस्यु रहते हैं, उस अतिघोर दुर्ग का अतिक्रम करके मैं एक ऐसे महावन में प्रवेश करता हूं, जहां प्रवेश करने पर पुनः शोक नहीं करना पड़ता। उस वन का तत्त्व ज्ञात हो जाने पर कोई क्लेश भोग नहीं करना पड़ता। इस वन में जो प्रवेश करता है, उसे कोई भय नहीं रह जाता। साथ ही उससे भी कोई भय नहीं करता! उस वन में ७ महावृक्ष, ७ नदियां, सात फल, सात आश्रम, सात समाधि तथा सात ही दीक्षा है।।१४९-१५५।।

पञ्चवर्णानि दिव्यानि चतुर्वर्णानि कानिचित्। त्रिद्विवर्णैकवर्णानि पुष्पाणि च फलानि च॥१५६॥
सृजन्तः पादपास्तत्र वाप्य तिष्ठन्ति तद्वनम्॥१५७॥
सप्त स्त्रियस्तत्र वसन्ति सत्यस्त्ववाङ्मुख्यो भानुमतो भवन्ति।
ऊर्ध्वं रसानाददते प्रजाभ्यः सर्वाश्च तास्तत्त्वतः कोऽपि वेद॥१५८॥
सप्तैव गिरयश्चाऽत्र धृतं यैर्भुवनत्रयम्। नद्यश्च सरितः सप्त ब्रह्मवारिवहाः सदा॥१५९॥

वनव्यापी उन महावृक्षों से पञ्चवर्ण, चतुर्वर्ण, त्रिवर्ण, द्विवर्ण तथा एकवर्ण रूप विविध पुष्प-फल प्राप्त होते हैं। वहां अधोमुख किये सात सती स्त्रियां निवास करती हैं। वे सभी सूर्य के ऊर्ध्व में निवास करके प्रजावर्ग का

रसपोषण करती हैं। उनके तत्त्व को यथार्थतः कोई-कोई ही जान पाता है। वहां सात पर्वत हैं। उन्होंने इस त्रिभुवन को धारण किया है। वहां जो सात स्रोतस्विनी नदियां हैं, वे निरन्तर ब्रह्म जल प्रवाहित करती हैं।।१५६-१५९।।

तेजश्चाऽभयदानत्वमद्रोहः कौशलं तथा। आचापल्यमथाऽक्रोधः प्रियवादश्च सप्तमः॥१६०॥

इत्येते गिरयो ज्ञेयास्तस्मिन्विद्यावने स्थिताः।
दृढनिश्चयस्तथा भासा समता निग्रहो गुणः॥१६१॥

निर्ममत्वं तपश्चाऽत्रसन्तोषः सप्तमो ह्रदः। भगवद्गुणविज्ञानाद्भक्तिःस्यात्प्रथमानदी॥१६२॥
पुष्पादिपूजा द्वितीया तृतीया च प्रदक्षिणा। चतुर्थी स्तुतिवाग्रूपा पञ्चमीईश्वरार्पणा॥१६३॥
षष्ठी ब्रह्मैकता प्रोक्ता सप्तमी सिद्धिरेव च। सप्त नद्योऽत्र कथिता ब्रह्मणा परमेष्ठिना॥१६४॥

ब्रह्मा धर्मो यमश्चाऽग्निरिन्द्रो वरुण एव च॥१६५॥
धनदश्च ध्रुवादीनां सप्तकानर्चयन्त्यमी। नदीनां सङ्गमस्तत्र वैकुण्ठसमुपह्वरे॥१६६॥

आत्मतृप्ता यतो यान्ति शान्ता दान्ताः परात्परम्।
केचिद्द्रुमाः स्त्रियः केचित्केचित्तत्त्वविदोऽपरे॥१६७॥
सरितः केचिदाहुः स्म सप्तैव ज्ञानवित्तमाः। अनपेतव्रतकामोऽत्र ब्रह्मचर्यं चरामि च॥१६८॥
ब्रह्मैव समिधस्तत्र ब्रह्माग्निर्ब्रह्मसंस्तरः। आपो ब्रह्म गुरुर्ब्रह्म ब्रह्मचर्यमिदं मम॥१६९॥

तेज, अभयदान, अद्रोह, कर्मकुशलता, चपलतारहित होना, अक्रोध तथा प्रियवाक्य रूप सात पर्वत उस विद्यारूपी महावन में हैं। दृढ़ निश्चय, इन्द्रियसंयम, सरलता, निर्ममता, तप, समभाव, सन्तोष—ये सात ह्रद वहां स्थित हैं। भगवद्गुणश्रवण रूपी भक्ति ही वहां की पहली नदी है। पुष्पादि द्वारा अर्चना द्वितीय नदी है। प्रदक्षिणा करना तीसरी नदी है। स्तुति करना चौथी नदी है। ईश्वर के प्रति आत्मनिवेदन पंचम नदी है। ब्रह्मैकत्व छठीं नदी है। सिद्धि ही सातवीं नदी है। ब्रह्मा, धर्म, इन्द्र, अग्नि, यम, कुबेर, वरुण उक्त सातों नदियों की अर्चना करते हैं। वह सातों नदी वैकुण्ठ में जा मिलती हैं। शान्त-दान्त-आत्मतृप्त व्यक्ति ही उस परात्पर स्थान में जा सकते हैं। कोई व्यक्ति वहां वृक्षों की, कोई नारीगण की, कोई नदीगण का उल्लेख करते हैं। परन्तु जो उत्तम ज्ञानीजन हैं, वे पूर्वोक्त सप्तगण का ही वर्णन करते हैं। मैं अस्खलित ब्रह्मचारी हूं। यह ब्रह्म ही समिध्, ब्रह्म ही अग्नि, ब्रह्म ही गुरु, ब्रह्म ही आस्तरण, ब्रह्म ही जल है।।१६०-१६९।।

एतदेवेदृशं सूक्ष्मं ब्रह्मचर्यं विदुर्बुधाः। गुरुं च शृणु मे मातर्यो मे विद्याप्रदोऽभवत्॥१७०॥

एकः शास्ता न द्वितीयोऽस्ति शास्ता ह्यद्येव तिष्ठन्पुरुषं प्रशास्ति।
तेनाभियुक्तः प्रणवादिवोदकं यथा नियुक्तोऽस्मि तथाऽऽचरामि॥१७१॥
एकोगुरुर्नास्ति तथा द्वितीयो हृदि स्थितस्तमहं नु ब्रवीमि।
यं चावमान्यैव गुरुं मुकुन्दं पराभूता दानवाः सर्व एव॥१७२॥
एको बन्धुर्नास्ति ततो द्वितीयो हृदि स्थितं तमहमनुब्रवीमि।
तेनानुशिष्टा बान्धवा बन्धुमन्तः सप्तर्षयः सप्त दिवि प्रभान्ति॥१७३॥

ब्रह्मचर्यं च संसेव्यं गार्हस्थ्यं शृणु यादृशम्।
पत्नी प्रकृतिरूपा मे तच्चितो नाऽस्मि कर्हिचित्॥१७४॥
मच्चित्ता सा सदा मातर्मम सर्वार्थसाधनी। घ्राणं जिह्वा च चक्षुश्च त्वक्च श्रोत्रं च पञ्चमम्॥१७५॥
मनो बुद्धिश्च सप्तैते दीप्यन्ते पावका मम। गन्धो रसश्च रूपं च शब्दः स्पर्शश्च पञ्चमम्॥१७६॥
मन्तव्यमथ बोद्धव्यंसप्तैताःसमिधो मम। हुतंनारायणध्यानाद्भुङ्क्तेनारायणःस्वयम्॥१७७॥

पण्डितगण इसे ही सूक्ष्म ब्रह्मचर्य कहते हैं। हे माता! जिन्होंने मुझे विद्यादान किया, उन गुरु का भी विवरण सुनें। जगत् के एक ही शास्ता हैं। दूसरा शास्ता है ही नहीं। वे हृदयस्थ रहकर आत्मपुरुष का अनुशासन करते हैं। मैं उनके द्वारा उसी प्रकार नियुक्त होकर कार्य करता हूं, जैसे जल नीचे ही जाता है। अर्थात् नियमतः आचरण करता हूं। गुरु एक ही है। दूसरा गुरु है ही नहीं। वे गुरु हृदय में निवास करते हैं। मैं उनके ही आदेशानुसार समस्त कर्म करता हूं। दानवगण उन गुरु मुकुन्द की अवज्ञा करके ही पराभूत हुये हैं। एकमात्र वे ही बन्धु हैं। अन्य दूसरा कोई बन्धु नहीं है। मैं उनके मत के अनुसार ही चलता हूं। उनके परामर्श से ही मनुष्य बन्धुमान होते हैं। उनके परामर्श से ही सप्तर्षिगण बन्धुमान हो सके हैं तथा नभोमण्डल में प्रकाश पा रहे हैं। मैंने पालनीय ब्रह्मचर्य का प्रसंग तो कहा, अब मेरा गार्हस्थ्य जिस प्रकार का है उसे श्रवण करें। प्रकृति ही मेरी पत्नी हैं। मैं कभी भी उसके मतानुसार नहीं चलता। वही सदा मेरी मतानुवर्त्तिनी होकर मेरी सेवा का साधन करती रहती है। मेरी नासिका, जिह्वा, चक्षु, त्वक्, कर्ण, मन, बुद्धिरूपी सात अग्नि सदा प्रदीप्त रहती है। गन्ध, रूप, रस, शब्द, स्पर्श, मन्तव्य, बोद्धव्य—ये सात मेरे समिध् हैं। 'नारायण' शब्दोच्चार ही होम है तथा स्वयं नारायण उसका भोजन करते हैं। मैं इस प्रकार के यज्ञ से ईश्वर की आराधना करता हूं।।१७०-१७७।।

एवम्विधेन यज्ञेन यजाम्यस्मि तमीश्वरम्।
अकामयानस्य च सर्वकामो भवेद्विषाणस्य च सर्वदोषः॥१७८॥
न मे स्वभावेषु भवन्ति लेपास्तोयस्य बिन्दोरिव पुष्करेषु।
नित्यस्य मे नैव भवन्त्यनित्या निरीक्षमाणस्य बहुस्वभावात्॥१७९॥
न सज्जते कर्मसु भोगजालं दिवीव सूर्यस्य मयूखजालम्॥१८०॥

मैं कामना नहीं करता। अतः मेरी समस्त कामना सिद्ध होगी। मैं संसार से द्वेष करता हूं। अतः मेरा कोई दोष ही नहीं है। जैसे पद्मपत्र पर जलबिन्दु का प्रभाव नहीं होता, वैसे ही मेरा स्वभाव किसी सांसारिक विषय से लिप्त नहीं होता। मैं नित्य हूं। कोई भी अनित्य विषय मुझमें प्रविष्ट नहीं होता, जैसे जगत् का अवलोकन करने वाले सूर्य की रश्मियां आकाश में संलिप्त नहीं होतीं, उसी प्रकार मैं अनेक स्वभाव का निरीक्षण करता हूं, लेकिन मेरे कर्म का भोग-जाल उनसे लिप्त नहीं होता।।१७८-१८०।।

एवम्विधेन पुत्रेण मा मातर्दुःखिनी भव। तत्पदं त्वाञ्च नेष्यामि न यत्क्रतुशतैरपि॥१८१॥
इति पुत्रवचःश्रुत्वा विस्मिता इतराऽभवत्। चिन्तयामास यद्येवं विद्वान्ममसुतोदृढम्॥१८२॥
लोकेषुख्यातिमायातिततोमेस्याद्यशःपरम्। इत्यादिचिन्तयन्त्यांचरजन्यांभगवान्हरिः॥१८३॥
प्रहृष्टस्तस्य तैर्वाक्यैर्विस्मितः प्रादुरास च। मूर्तेः स्वयं विनिष्क्रम्य शङ्खचक्रगदाधरः॥१८४॥

जगदुद्भासयन्भासा सूर्यकोटिसमप्रभः। ततो निष्पत्य धरणीं हृष्टरोमाऽऽश्रुगद्गदः॥१८५॥
मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिं दीमानैतरेयोऽथ तुष्टुवे॥१८६॥

"मां! पुत्र के इस प्रकार के कथन से आप क्रुद्ध न हों। मैं आपको ऐसे परमपद तक ले जाऊंगा, जिसे सैकड़ों यज्ञानुष्ठान से भी नहीं पाया जा सकता।" माता इतरा पुत्र का यह सब कथन सुनकर विस्मित मन से सोचने लगी कि जब मेरा पुत्र इस प्रकार का विद्वान् है, तब यदि यह लोक में प्रसिद्ध होगा, जिससे मुझे भी परम यश प्राप्त होगा। इतरा रात्रिकाल में इस प्रकार की नाना चिन्तना करने लगीं। भगवान् हरि ऐतरेय का यह सब वाक्य सुनकर विस्मित हो गये। वे प्रसन्नचित्त हो वासुदेव मूर्ति में शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज रूप से सूर्यकोटि समप्रभ देहकान्ति द्वारा जगत् को उद्भासित करते प्रकट हो गये। यह देखकर धीमान् ऐतरेय मुनि रोमाञ्चित हो गये। वे अश्रुप्लावित नेत्रों से मस्तक पर अंजलि बांध कर (हाथ जोड़ कर) श्रीहरि की स्तुति करने लगे।।१८१-१८६।।

नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि। प्रद्युम्नायाऽनिरुद्धाय नमः सकर्षणाय च॥१८७॥
नमो विज्ञानमात्राय परमानन्दमूर्तये। आत्मारामाय शान्ताय निवृत्तद्वैतदृष्टये॥१८८॥
आत्मानन्दानुभूत्यैव सम्यक्त्यक्तोर्मये नमः। हृषीकेशाय महते नमस्तेऽनन्तशक्तये॥१८९॥
वचस्युपरते प्राप्यो य एको मनसा सह। अनामरूपचिन्मात्रः सोऽव्यान्नःसदसत्परः॥१९०॥
यस्मिन्निदं यतश्चेदं तिष्ठत्यपैति जायते। मृण्मयेष्विव मृज्जातिस्तस्मै ते ब्रह्मणे नमो॥१९१॥
यन्नस्पृशन्ति न विदुर्मनोबुद्धीन्द्रियासवः। अन्तर्बहिश्चवितंव्योमवत्प्रणतोऽस्म्यहम्॥१९२॥
देहेन्द्रियप्राणमनोधियोऽमी यदंशबद्धाः प्रचरन्ति कर्मसु।
नैवाऽन्यदालोहमिव प्रतप्तं स्थानेषु तद्दृष्टपदेन एते॥१९३॥

ऐतरेय कहते हैं—मैं जिनका सतत् ध्यान करता हूं, आप वे वासुदेव हैं। आपको प्रणाम! आप प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, संकर्षण, विज्ञानमात्र परमानन्द मूर्त्ति हैं, आपको प्रणाम! आप आत्माराम, शान्त, अद्वैत मूर्त्ति हैं। आपको प्रणाम! निरन्तर आत्मानन्दानुभव के कारण आप अविद्यारूपी उर्मि से सम्यक्तः परे हैं। आपको प्रणाम! आप महान् हृषीकेश, अनन्तशक्ति हैं। आपको प्रणाम! वाक्य तथा मन के निर्विकल्प होने पर जिनकी प्राप्ति होती है, जो नाम रूप से रहित एकमात्र चित्स्वरूप तथा सत्-असत् से परे हैं, वे मेरी रक्षा करें। जैसे मिट्टी से कुम्हार नाना पात्र बनाता है, उसी प्रकार जिनमें यह जगत् स्थित है, जिनसे उत्पन्न तथा विनष्ट होता है, उन आप ब्रह्म को प्रणाम! जिनको मन-बुद्धि-इन्द्रिय तथा प्राण न तो स्पर्श ही कर पाते हैं, न जान पाते हैं, अथच जो अन्तः-बाह्य सभी जगह आकाश की तरह स्थित रहते हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूं। जिनके अंश विशेष से बद्ध होकर देह-इन्द्रिय-प्राण-मन कर्मसमूह में विचरते रहते हैं, जिनमें निविष्ट होकर देह-इन्द्रियादि उसी प्रकार पृथक्तः उपलब्ध नहीं हो पाते। जैसे अग्नि में प्रतप्त लौह भी अग्निवत् हो जाता है, और अग्नि से तदाकार हो जाता है, उन परम सत्य अमल परमपुरुष की मैं उपासना करता हूं।।१८७-१९३।।

चतुर्भिश्च त्रिभिर्द्वाभ्यामेकधा प्रममामि तम्। पूर्वापरापरयुगे शास्तारं परमीश्वरम्॥१९४॥
हित्वा गतीर्मोक्षकामा यं भजन्ति दशात्मकम्। तं परं सत्यममलंत्वांवयंपर्युपास्महे॥१९५॥

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय विभूतिपतये सकलसात्वत-परिवृढनिकरकरकमलोत्पलकुड्मलोपलालितचरणारविन्दयुगल परमपरमेष्ठिन्नमस्ते॥१९६॥

तवाग्निरास्यं वसुधाङ्घ्रियुग्मं नभःशिरश्चन्द्ररवी च नेत्रे।
समस्तलोका जठरं भुजाश्च दिशश्चतस्त्रो भगवन्नमस्ते!॥१९७॥
जन्मानि तावन्ति न सन्ति देव! निष्पीड्य सर्वाणि च सर्वकालम्।
भूतानि यावन्ति मयाऽत्र भीमे पीतानि संसारमहासमुद्रे॥१९८॥
सम्पच्छिलानां हिमवन्महेन्द्रकैलासमेर्वादिषु नैव तादृक्।
देहाननेकाननुगृह्णतो मे प्राप्ताऽस्ति सम्पन्महती यथेश!॥१९९॥
न सन्ति ते देव भुवि प्रदेशा न येषु जातोऽस्मि तथा विनष्टः।
भूत्वा मया येषु न जन्तवश्च सम्भक्षितो वा न च भूतसङ्घैः॥२००॥

जो ४, ३, २ तथा एक हैं, मैं उनको प्रणाम करता हूं। आप पूर्वापर युग के शास्ता तथा परमेश्वर हैं। जो मोक्षकामी आप दशात्मक (४+३+२+१=१०) का भजन करते हैं, उन सत्य, अमल रूप आपकी मैं उपासना करता हूं। हे ॐकार रूप परम परमेष्ठि! आप भगवान, महापुरुष महानुभव तथा विभूतिपति हैं। सात्वत श्रेष्ठ महानुभावों के करकमल मुकुल से आपके चरणारविन्द द्वय की सेवा की जाती है। आपको प्रणाम! हे भगवन्! अग्नि आपका मुख है, धरती पाददय है, गगनमण्डल आपका मस्तक है, चन्द्र-सूर्य नेत्र हैं, समस्त लोक उदर हैं, चारों दिशायें आपकी बाहु हैं, आपको प्रणाम। हे देव! इस घोर संसारसागर में ऐसी कोई योनि नहीं है, जिसमें मैंने जन्म न लिया हो। वास्तव में चिरकाल तक जितने प्राणी हैं, उन सब योनियों के भोग्य सुख-दुःख का मैंने अनुभव किया है। मैंने नाना देह धारण करके आप की कृपा से जितनी महती सम्पत्ति का लाभ किया है, वैसी सम्पदा हिमालय, इन्द्र, कैलास तथा मेरु आदि पर्वतों में भी नहीं है। हे देव! भूतल में ऐसा प्रदेश नहीं है, जहां मेरा जन्म न हुआ हो, अथवा विनष्ट न हो सका हूं। मैंने नाना योनियों में किस जन्तु का भक्षण नहीं किया! अथवा जन्तुगण ने मेरा भक्षण नहीं किया!॥१९४-२००॥

शोकाभिभूतस्य ममाऽश्रु देव! यावत्प्रमाणं पतितं भवेषु।
तावत्प्रमाणं न जलं पयोदा मुञ्चन्ति दिव्यैरपि वर्षलक्षैः॥२०१॥
मन्ये धरित्रीपरमाणुसंख्यामुपैति पित्रोर्गणना न मह्यम्।
मित्राण्यमित्राण्यनुजीव्यबन्धून्संख्यातुमीशोऽस्मि न देवदेव!॥२०२॥
त्वय्यर्पितं नाथ पुनः पुनर्मे मनः समाक्षिप्य सुदुर्द्धरारि।
कामो वशं क्रोधमुखैः सहायैः करोति किं तद्भगवन्करोमि॥२०३॥
सोऽहं भृशार्तः करुणाकरस्त्वं संसारगत पतितस्य विष्णो!।
महात्मनां संश्रयमभ्युपेतो नैवाऽवसीदत्यपि दुर्गतोऽपि॥२०४॥
परायणं रोगवतो हि वैद्यो महाब्धिमग्नस्य च नौर्नरस्य।
बालस्य मातापितरौ सुघोरसंसारखिन्नस्य हरे! त्वमेव॥२०५॥

प्रसीद सर्वेश्वर! सर्वभूत! सर्वस्य हेतो! परमार्थसार!।
मामुद्धराऽस्मादुरुदुःखसंघात्संसार-गर्तात्स्वपरिग्रहेण ॥२०६॥
क्षुत्तृट्त्रिधातुभिरिमं मुहुरर्द्यमानं शीतोष्णवातसलिलैरितरेतराच्च।
कामाग्निनाऽच्युत! रुषा च सुदुर्भरेण सम्पश्यतो मम उरुक्रम सीदतो हि॥२०७॥
भवन्तु भद्राणि समस्तदोषाः प्रयान्तु नाशं जगतोऽखिलस्य।
मयाऽद्य भक्त्या परमेश्वरे प्रभौ स्तुते जगद्धातरि वासुदेवे॥२०८॥
ये भूतले ये दिवि चाऽन्तरिक्षे रसातले प्राणिगणाश्च केचित्।
भवन्तु ते सिद्धियुजो मयाऽद्य स्तुते जगद्धातरि वासुदेवे॥२०९॥
अज्ञानिनो ज्ञानविदो भवन्तु प्रशान्तिभाजः सततोग्रचित्ताः।
मया च विश्वम्भरणे ह्यनन्ते स्तुते जगद्धातरि वासुदेवे॥२१०॥
शृण्वन्ति ये मे स्तुवतस्तथाऽन्ये पश्यन्ति ये मामिदमीरयन्तम्।
देवासुराद्या मनुजास्तिरश्चो भवन्तु तेऽप्यच्युतयोगभाजः॥२११॥

हे देव! मैं शोकाभिभूत होकर जिस मात्रा में अश्रुबिन्दु भूपतित करता हूं, अथवा किया है, उतना जल तो १ लाख वर्ष में भी मेघ ने नहीं बरसाया! हे देवदेव! प्रतीत होता है कि धरती के परमाणुओं की गिनती हो सकती है, परन्तु मेरे भूतकालीन माता-पिता, शत्रु-मित्र, बन्धु-बान्धव, अनुजीवी आदि की संख्या नहीं हो सकती। हे नाथ! मैं आपमें मनोनिवेश करके भी अपने दुर्लभ बली रिपु काम-क्रोधादि द्वारा वशीभूत कर लिया जाता हूं। अब मैं क्या करूं? हे विष्णु! मैं संसारगर्त्त में पतित होकर अतीव कष्ट पा रहा हूं। आप मेरे प्रति करुणा वितरण करिये। महात्माओं का आश्रय लेकर अत्यन्त दीन भी अवसाद ग्रस्त नहीं होते। वैद्य ही रोगी का रक्षक होता है। नौका ही महासागर में डूबते लोगों का सहारा है। माता-पिता ही बालक के आश्रय हैं। हे हरि! संसार से बद्ध के आपही रक्षक हैं। हे सर्वेश्वर सर्वभूतसमूह के सर्वहेतुरूप! हरि! मुझे आश्रय देकर मेरी रक्षा करिये। हे अच्युत! धातुत्रय, क्षुधा, तृष्णा, शीत, आतप, जल, वायु, अन्य द्वन्द्वज दुःख, कामाग्नि, दुर्जय क्रोध द्वारा सदा पीड़ित होकर मैं नितान्त अवसन्न होकर पड़ा हूं। हे अमितविक्रम! आप इस क्लेशराशि से मुझे बचाइये। मैंने अभी जिस स्तव से जगत्पाता प्रभु परमेश्वर वासुदेव की स्तुति की है, इसके फल से मेरे सभी दोषों का नाश हो। इसके फल से भूतल-रसातल-नभ-स्वर्ग में जितने प्राणी हैं, सभी अपनी इच्छित सिद्धि प्रदान करें। मैंने जो जगत्पाता विश्वम्भर वासुदेव की स्तुति की है, उसके फल से अज्ञानीजन ज्ञानी हो जायें तथा सदा उग्र रहने वाले प्राणीगण प्रशान्तचित्तता प्राप्त करें। जिन देवता-असुर-मनुष्य-तिर्यक् जाति वालों ने मुझे यह स्तव करते सुना है, अथवा जिन्होंने मुझे इस भाव से स्तव करते देखा है, वे भी अच्युत देव के प्रति भक्तिमान् हो जायें।।२०१-२११।।

ये चाऽपि मूका विकलेन्द्रियत्वात्पठन्ति नो चैव विलोकयन्ति।
पश्वादयः कीटपिपीलिकाद्या भवन्तु तेऽप्यच्युतयोगभाजः॥२१२॥
नश्यन्तु दुःखानि जगत्यपेतु लोभादिको दोषगणः प्रजाभ्यः।
यथाऽऽत्मनि भ्रातरि चाऽऽत्मजे वा तथा नरस्याऽस्तु जनेऽपि भावः॥२१३॥

संसारवैद्येऽखिलदोषहानिविचक्षणे निर्वृतिहेतुभूते।
संसारबन्धाः शिथिलीभवन्तु हृदि स्थिते सर्वजनस्य विष्णौ॥२१४॥
पापं प्रणाशं मम च प्रयातु यन्मानसं यच्च करोमि वाचा।
शारीरमप्याचरितं च यन्मे स्मृते जगद्धातरि वासुदेवे॥२१५॥

जिन्होंने मूढ़ता किंवा इन्द्रियविकलता के चलते मुझे स्तव करते नहीं सुना अथवा नहीं देखा, वे सभी तथा पशु-पक्षी-कीट-पिपीलिकादि सभी प्राणीगण अच्युत के प्रति भक्तियुक्त हो जायें। जगतस्थ समस्त प्रजा का दुःख नाश हो जाये तथा लोभादि दोष भी नष्ट हो जायें। मनुष्य का स्वयं के प्रति (आत्मा) भाई, पुत्र के प्रति जो भाव है, साधारण प्रजावर्ग के प्रति भी वैसा भाव उत्पन्न हो जाये। सर्वदोषनाशक शान्ति के लिये संसार वैद्य श्रीहरि सर्वजनसमूह के हृदय में विराजित हो जायें। इससे उनके संसारी बन्धन में शिथिलता आये। मेरे समस्त शारीरिक, मानसिक, वाचिक, कर्मज पाप समूह जगत् के त्राता श्रीहरि के स्मरण से समूल नष्ट हो जायें।।२१२-२१५।।

यथा हि वा वासुदेवेति प्रोक्ते सङ्कीर्त्तने विष्णुभक्तस्य वाऽपि।
मृते हरौ वाऽपि प्रयाति पापं सत्येन मे नश्यतां तेन पापम्॥२१६॥
मूढोऽयमल्पमतिरल्पविचेष्टितोऽयं क्लिष्टं मनोऽपि विषयैर्मयि न प्रसङ्गि॥२१७॥
इत्थं कृपां कुरु मयि प्रणतेऽखिलेश! त्वां स्तोतुमम्बुजभवोऽपिहि देव! नेशः।
स त्वं प्रसीद भगवन्कुरु मय्यनाथे विष्णो! कृपांपरमकारुणिकः किल त्वम्।
संसारसागरनिमग्नमनन्तदीनमुद्धर्तुमर्हसि हरे! पुरुषोत्तमोऽसि॥२१८॥

यह जो सत्यरूप शास्त्रवाक्य है कि "वासुदेवाय नमः का उच्चारण, विष्णुभक्त द्वारा कृत संकीर्त्तन तथा श्रीहरि स्मरण सर्वपाप नाशक है।" इस शास्त्रोक्त सत्य वाक्य की महिमा से मेरे सभी पापों का नाश हो जाये। हे अखिलेश्वर देव! ब्रह्मा भी अपने चार मुखों से आपका स्तव करने में समर्थ नहीं हैं। आप यह विचार करें कि "इसका आचरण अत्यन्त हीन है, इसका मन विषयासक्त है, यह प्रसंगक्रमेण भी मुझमें मन नहीं लगाता, तथापि यह नितान्त मूढ़ है" मेरे प्रति करुणा प्रदान करें। हे प्रभु! प्रसन्न हों। हे विष्णु! आप परम दयालु हैं। मुझ पर कृपा करिये! आप दयालुरूपेण प्रख्यात हैं। मैं अनाथ हूं। मुझ पर कृपा करिये! आप पुरुषोत्तम हैं। हे अनंत! इस संसार सागर में डूबते दीन प्राणी का उद्धार करिये।।२१६-२१८।।

इत्थं स्तुतः स भगवानैतरेयेण भारत! वासुदेवो विशालात्मा सानन्दमिदमाह तम्॥२१९॥
वत्सैतरेय! तुष्टोऽस्मि भक्त्याऽनेन स्तवेन ते। वरंवृणुष्वमत्तस्त्वं दुर्लभंयदभीप्सितम्॥२२०॥

नारद कहते हैं—हे भारत! ऐतरेय द्वारा इस प्रकार से स्तुत होकर विशालात्मा वासुदेव ने आनन्दित होकर ऐतरेय से कहा—"वत्स ऐतरेय! मैं तुम्हारी भक्तिपूर्ण स्तुति से प्रसन्न हो गया। अतः इच्छित दुर्लभ वर मांगों"।।२१९-२२०।।

ऐतरेय उवाच

एष एव वरो नाथ! मम नित्यमभीप्सितः। मज्जतो घोरसंसारे कर्णधारो हरे! भव॥२२१॥

ऐतरेय कहते हैं—हे नाथ! मैं इस घोर संसार सागर में डूब रहा हूं। आप मेरे उद्धारक कर्णधार हो जायें। हे हरि! यही मेरा वर है।।२२१।।

श्रीभगवानुवाच

मुक्त एवाऽसि संसाराद्यस्य ते भक्तिरीदृशी। ग्रहैर्महाग्रहैर्बद्धो नैव ते द्वित्रयोदशी।।२२२।।
यश्च स्तोत्रेण सततं गुप्तक्षेत्रसमीहितम्। स्तोष्यते वासुदेवं मां स पापक्षयमाप्स्यति।।२२३।।
यस्मादेतेन स्तोत्रेणपापं नाशमवाप्स्यति। अघनाशनमित्येवतस्मात्ख्यातिमवाप्स्यति।।२२४।।
एकादश्यामुपोष्यैव ममाऽग्रे यःपठिष्यति। स्तवमेनंस पूतात्मा मम लोकमवाप्स्यति।।२२५।।
सर्वेषामेव क्षेत्राणां गुप्तक्षेत्रं प्रियं यथा। तथा सर्वस्तवानाञ्च स्तवोऽयं सुप्रियो मम।।२२६।।
यानि चोद्दिश्य भूतानि जप्यतेऽसौ महात्मभिः।
तानि शान्तिं भगं प्रज्ञां प्राप्स्यन्ति कृपया मम।।२२७।।
त्वंचवत्सश्रौतधर्मान्सम्यगाचर श्रद्धया। नतैर्बन्धं मयिन्यस्तैराप्स्यस्यनभिसन्धितैः।।२२८।।
यज यज्ञैरवाप्यैव दारान्नन्दय मातरम्। मयि ध्यानेन तीव्रेणमामवाप्स्यस्यसंशयम्।।२२९।।

श्रीभगवान् कहते हैं—तुम्हारी जब ऐसी भक्ति है, तब तुम तो संसार से मुक्त हो। १३ ग्रह तथा १३ नक्षत्रों से भी तुम्हारा बन्धन नहीं होगा। (मन, बुद्धि, भूत, ज्ञानेन्द्रियां ५ तथा कर्मेन्द्रियां ५ = ये १३ ग्रह हैं) इस गुप्त स्थल पर जो व्यक्ति नित्य तुम्हारे द्वारा रचित इस स्तुति द्वारा मेरी वासुदेव मूर्त्ति की स्तुति करेगा, उसके सभी पाप क्षयीभूत हो जायेंगे। इस स्तोत्र से पापनाश होने के कारण यह अघनाशनस्तव कहा जायेगा। जो व्यक्ति एकादशी को उपवासी रहकर मेरे समक्ष यह स्तवपाठ करेगा, वह निष्पाप होकर मेरे लोक को प्राप्त करेगा। जैसे यह गुप्त क्षेत्र मुझे अपने सभी क्षेत्रों में से प्रिय है, उसी प्रकार यह स्तव मुझे अपने सभी स्तवों से अधिक प्रिय है। महात्मा व्यक्ति जिस-जिस के उद्देश्य से इसका पाठ करेगा, वह-वह प्राणी मेरी कृपा से ऐश्वर्य तथा बुद्धि प्राप्त करेगा। हे वत्स! तुम अब श्रद्धापूर्वक वैदिक धर्माचरण करो। तुम फलकामना किये बिना समस्त कर्मफल मुझे प्रदान करो। इससे किसी भी कर्म द्वारा बन्धन नहीं होगा। यज्ञोपकरण प्राप्त होने पर यज्ञ करना। माता तथा पत्नियों को आनन्दित रखना। मेरा ध्यान तीव्रता से करना। इसके फलस्वरूप तुमको मेरी प्राप्ति अवश्य होगी।।२२२-२२९।।

बुद्धिर्मनोऽथ भूतानि बुद्धिकर्मेन्द्रियाणि च। त्रयोदशग्रहैर्ये स्युस्त्रयोदश महाग्रहाः।।२३०।।
बोद्धव्यमथ मन्तव्यमहन्ता शब्द एव च। स्पर्शो रसो रूपगन्धौ वचनादानमेव च।।२३१।।
विहृत्युत्सर्ग आनन्दस्त्रयोदश महाग्रहाः। एतान्महाग्रहान्पुत्र शुद्धाञ्छुद्धैः स्वकैर्ग्रहैः।।२३२।।
गृहाण ध्यानयोगेन ममैवंमोक्षमाप्स्यसि। एवं त्वं कर्मभिर्वीरनैष्कर्म्यंसमवाप्स्यसि।।२३३।।
शुल्बं रसेन सम्विद्धं दक्षो हेम यथाऽश्नुते। वर्णाश्रमाचारव्रता मयि सन्यस्तकर्मणा।।२३४।।
मदनुध्यानयुक्तेन मोक्षो नास्तीह दुर्लभः। तस्मादेवं वर्तमानो नन्द व्रतपरायणः।।२३५।।
उद्धृत्य सप्तपुरुषांल्लयं मयि गमिष्यसि। साम्प्रतं प्रतिभास्यन्ति वेदश्चापठिताअपि।।२३६।।
ततस्त्वं कोटितीर्थे च यज्ञे वै हरिमेधसः। याहि तत्र भविष्यं ते सर्वं मातुरभीप्सितम्।।२३७।।

इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुर्मूर्तिमध्ये विवेश ह। विलोक्यमानो निमिषंमात्राचैवसुतेनच॥२३८॥

"बुद्धि-मन, भूतपञ्चक, पञ्च ज्ञानेन्द्रियां, पञ्च कर्मेन्द्रिय ये १३ ग्रह हैं। इन १३ ग्रहगण से अन्य १३ महाग्रहों का जन्म होता है। वे हैं बोद्धव्य, मन्तव्य, अहंकार, शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध, वचन, आदान-विहार-उत्सर्ग-आनन्द। ये १३ महाग्रह हैं। तुम अपने शुद्ध ग्रहों द्वारा इन १३ महाग्रहों का शोधन करो। ध्यानयोग से मेरा आश्रय ग्रहण करो। इससे तुमको मुक्ति प्राप्ति होगी। हे वीर! जैसे दक्ष व्यक्ति रसमिश्रित शुद्ध स्वर्ण भक्षण कर पाता है, उसी प्रकार इस प्रकार से कर्मानुष्ठान करके नैष्कर्म्य स्थिति प्राप्त करोगे। मेरे ध्यान के साथ ही वर्णाश्रम आचार का पालन करके मुझे सर्वकर्म समर्पित करो। तब मुक्ति दुर्लभ नहीं होगी। हे पुत्र! तुम इस प्रकार व्रतपालन द्वारा जब ऐसा आचरण करोगे, तब अपनी ७ पीढ़ी का परित्राण करके अन्त में मुझमें लीन हो जाओगे। तुम वेदपाठ न करके भी वेदज्ञानी हो जाओगे। तुम्हारे अन्दर वेदस्फुरण होगा। अब तुम कोटितीर्थ जाओ, जहां हरिमेघा यज्ञ कर रहे हैं। वहां तुम्हारी माता का अभीष्ट सिद्ध होगा।" इस समय ऐतरेय तथा उनकी माता निर्निमेष नेत्रों से भगवान् का अवलोकन किये जा रहे थे। भगवान् विष्णु ने यह कहकर उस वासुदेव मूर्ति में प्रवेश किया।।२३०-२३८।।

ततो मूर्तिं नमस्कृत्य वासुदेवस्य विस्मितः। ऐतरेयः स्वजननीं मुदितोवाक्यमब्रवीत्॥२३९॥
पुराऽहमभवं शूद्रो भीतः संसारदोषतः। परिनिष्ठागतं धर्मं ब्राह्मणं शरणं गतः॥२४०॥
स कृपालुर्मम प्राह मन्त्रं वै द्वादशाक्षरम्। सदेमं जपचेत्युक्त्वा तमहं जप्तवान्सदा॥२४१॥
तेन जाप्यप्रभावेण ममोत्पत्तिस्तवोदरात्। जातस्मृतिर्विष्णुभक्तिः स्थितिरत्र च सर्वदा॥२४२॥
इदानीञ्च प्रयाम्येष यज्ञं तं हरिमेधसः। त्वद्रूपं विष्णुप्रीत्यर्थं प्रणम्य त्वां प्रसादये॥२४३॥
ततोमहीनगरकाख्येकोटितीर्थतलस्थितम्। यजन्तं सम्वृतं विप्रैःकोटिशस्तमुपागमत्॥२४४॥
गेहाय मातरं प्रोच्य स यज्ञे प्रोक्तवान्द्विजः। नमस्तस्मै भगवते विष्णवेऽकुण्ठमेधसे॥२४५॥
यान्मायामोहितधियो भ्रमामः कर्मसागरे। इति श्लोकं महार्थं ते हरिमेधमुखाद्विजाः॥२४६॥
आकर्ण्याऽऽसनपूजाद्यैः पूजयामा पुरङ्ग! तम्। ततोवेदार्थनैपुण्यैस्तेनते तोषिताद्विजाः॥२४७॥
प्रददुर्दक्षिणां सर्वां हरिमेधाः सुतामपि। द्रव्यं कन्याञ्च संगृह्य स्वगृहं समुपागमत्॥२४८॥

तब ऐतरेय ने विस्मित भाव से वासुदेव मूर्त्ति को प्रणाम करके आनन्दित नेत्रों से माता से कहा—"हे माता! मैं पूर्वजन्म में शूद्र वंश में जन्मा था। मैंने सांसारिक क्लेश से भयभीत होकर एक निष्ठावान् धार्मिक की शरण लिया। उन्होंने कृपा करके मुझे द्वादशाक्षर मन्त्रोपदेश देकर सर्वदा जप करने का आदेश दिया। मैंने तब से ही इसका जप प्रारम्भ कर दिया। इसके फलस्वरूप मैं आपके गर्भ से पूर्वजन्मस्मृति तथा विष्णुभक्तिपूर्ण होकर जन्मा। इस वासुदेव क्षेत्र में मैं सर्वदा रहता आया। अब मैं विष्णु की प्रसन्नता हेतु हरिमेघा के यज्ञ में जा रहा हूं। इसके लिए आपको प्रणाम करके आदेश मांगता हूं।" ऐतरेय यह कहकर कोटितीर्थ तलस्थ महीनगर स्थित हरिमेघा के यज्ञ मण्डप पर पहुंचे। वहां ऐतरेय ने कोटि-कोटि ब्राह्मणों से घिरे हरिमेघा को वहां यज्ञ करते देखा। तब उन्होंने माता को घर भेजकर उस यज्ञ में कहना प्रारम्भ किया "जिनकी माया से मोहित होकर मैं कर्मसागर में भटकता रहा हूं, उन अकुंठित बुद्धि भगवान् विष्णु को प्रणाम।" हे अर्जुन! हरिमेघा प्रभृति ब्राह्मणगण ने ऐतरेय के इस महार्थ सम्पन्न

श्लोक को सुनकर उनको आसनादि प्रदान किया। उनकी यथोचित अभ्यर्थना भी किया। ऐतरेय ने भी वहां पर वेदार्थ भाषण करके वहां के ब्राह्मणों को प्रसन्न किया। उन्होंने ऐतरेय को नाना दक्षिणा भी प्रदान किया। हरिमेधा ने ऐतरेय को अपनी कन्या भी प्रदान किया। तब ऐतरेय भी द्रव्य तथा कन्या के साथ स्वगृह पहुंचे।।२३९-२४८।।

वन्दयित्वा स्वजननीं पुत्रानुत्पाद्य चाऽमलान्। इष्ट्वा यज्ञैरैतरेयो द्वादशीव्रततत्परः॥२४९॥
वासुदेवानुध्यानेन मोक्षं पश्चादुपागतः। एवं विधो वासुदेवः स्वयमत्राऽस्ति भारत॥२५०॥
योऽर्चयेत्पूजयेत्स्तौति सर्वं तस्याऽक्षयं विदुः। शिवधर्मेषु यत्प्रोक्तं फलंपूर्वंमया तव॥२५१॥
तादृशं लभते मर्त्यो वासुदेवप्रसादतः॥२५२॥

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे श्रीवृद्धवासुदेवमाहात्म्य-वर्णन ऐतरेयब्राह्मणचरित्रवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः।।४२।।

घर आकर उन्होंने माता की चरणवन्दना किया। तदनन्तर कालक्रमेण उन्होंने निर्मल पुत्रों को उत्पन्न किया तथा नाना यज्ञ उनके द्वारा सम्पन्न किये गये। इन द्वादशी व्रतपरायण ऐतरेय मुनि ने वासुदेव ध्यान फल से अन्त में मुक्तिलाभ किया। हे भारत! स्वयं वासुदेव यहां इस प्रभावशाली वासुदेव मूर्त्ति में विराजित हैं। उनकी पूजा, स्तवपाठ आदि यहां जो कुछ भी अनुष्ठित किया जाता है, वह अक्षय फलप्रद हो जाता है। यह तत्व सुधीगण जानते हैं। हे अर्जुन! इससे पूर्व मैंने जिस शिवधर्म का वर्णन किया था, मनुष्य वासुदेव की कृपा से वही फल प्राप्त कर लेता है।।२४९-२५२।।

।।द्विचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

भट्टादित्य स्थापना, सूर्यपूजा वर्णन, सूर्यार्घ्य महिमा वर्णन

श्रीनारद उवाच

ततोऽहं पार्थ भूयोऽपि जनानुग्रहकाम्यया। प्रत्यक्षदेवं मार्तण्डमत्राऽऽनेतुमियेष ह॥१॥
सर्वेषां प्राणिनां यस्मादुडुपो भगवान्रविः। इहामुत्र च कौन्तेयविश्वोद्धारी रविर्मतः॥२॥
ये स्मरन्ति रविं भक्त्या कीर्तयन्ति च ये नराः। पूजयन्ति च ये नित्यं कृतार्थास्ते न संशयः॥३॥
सूर्यभक्तिपरा ये च नित्यं तद्गतमानसाः। ये स्मरन्ति सदा सूर्यं न ते दुःखस्यभाजिनः॥४॥
भवनानि मनोज्ञानि विविधाभरणाःस्त्रियः। धनं चाऽदृष्टपर्यन्तं सूर्यपूजाविधेः फलम्॥५॥

नारद कहते हैं—हे पार्थ! अब मैंने जनगण के उपकार साधन की इच्छा से पुनः यहीं प्रत्यक्ष देवता

मार्त्तण्ड को लाने की इच्छा की। हे कुन्तीपुत्र! भगवान् समस्त प्राणीगण के उद्रुप (पार कराने वाले) तुल्य हैं। तभी रवि को विश्व का उद्धारक कहा गया है। जो मानव सूर्य का भक्तिपूर्वक स्मरण करता है, किंवा उनकी पूजा अथवा नाम कीर्त्तन करता है, उसे वे निश्चित रूप से कृतार्थ कर देते हैं। जो सूर्यभक्ति परायण होकर नित्य तद्गत् चित्ततापूर्वक सूर्यस्मरण करता है, वह कभी दुःखी नहीं होता। सूर्यपूजा फल से मनोहर भवन, नाना आभरण, उत्तम स्त्री तथा अगणित धनलाभ होता है।।१-५।।

दुर्लभा भक्तिः सूर्ये वा दुर्लभं तस्य चाऽर्चनम्। दानं च दुर्लभं तस्मै ततो होमश्च दुर्लभः॥६॥
नमस्कारादिसंयुक्तं रविरित्यक्षरद्वयम्। जिह्वाग्रे वर्तते यस्य सफलं तस्य जीवितम्॥७॥
इत्यहं हृदि सञ्चिन्त्य माहात्म्यंरविजं महत्। पूर्णं वर्षशतं पार्थ! रविंभक्त्याह्यतोषयम्॥८॥
जपेन सुविशुद्धेन च्छन्दसां वायुभोजनः। ततः खाद्द्वितीयांमूर्तिंतंकृत्वायोगबलाद्विभुः॥९॥
तेजसा दुर्दृशो भास्वान्प्रत्यक्षः समजायत॥१०॥

सूर्यभक्ति दुर्लभ है, उससे भी दुर्लभ है उनकी अर्चना। उससे दुर्लभ है उनके निमित्त दान। सबसे दुर्लभ है उनके लिए होम आदि का अनुष्ठान। नमस्कार से युक्त 'रवि' यह दो शब्द जिसकी जिह्वा पर रहता है, उसी का जीवन सफलीभूत है। हे पार्थ! मैंने मन ही मन रवि के महान् माहात्म्य का चिन्तन करके पूर्ण १०० वर्ष पर्यन्त भक्तियुक्त हो मात्र वायु का आहार करके सुविमल मन्त्र जप द्वारा उनको सन्तुष्ट किया। तब प्रभु रवि ने योगबल से अन्य एक मूर्त्ति का परिग्रह किया, जिसका मैंने दर्शन किया। उनकी वह मूर्त्ति देखकर आंखें चमक गयीं।।६-१०।।

तमहं प्राञ्जलिर्भूत्वा नमस्कृत्य रविं प्रभुम्। सामभिर्विविधैर्देवं पर्यतोषयमीश्वरम्॥११॥
तुष्टो मामाह वरदो देवर्षे! सुचिरंत्वया। तपसाऽऽराधितोऽस्मीतिवरं वृणुयथेप्सितम्॥१२॥
इत्युक्तोऽहं लोकनाथं प्राञ्जलिः प्रास्तुवं वचः। यदि तुष्टो भवान्मह्यंयदिदेयोवरोमम॥१३॥
ततस्ते कामरूपे या कला नाथ! प्रवर्तते। राजवर्धनराज्ञा याऽऽराधिता च जनैः पुरा॥१४॥
तया च कलया भानो! सदाऽत्र स्थातुमर्हसि। ततस्तथेति देवेन प्रोक्ते तुष्टेन भारत॥१५॥
अस्थापयमहं सूर्यं भट्टादित्याभिधानकम्। भट्टेन स्थापितंयस्मान्मयातस्माद्रविर्जगौ॥१६॥

ततः सम्पूज्य तं पुष्पैः कृतावेशमहं रविम्।
भक्त्युद्रेकाप्लुताङ्गोऽथ स्तुतिमेतामथाऽऽचरम्॥१७॥

सर्ववेदरहस्यैश्च नामभिश्च शताष्टभिः। सप्तसप्तिरचिन्त्यात्मा महाकारुणिकोत्तमः॥१८॥
सञ्जीवनो जयो जीवो जीवनाथोजगत्पतिः। कालाश्रयःकालकर्त्तामहायोगीमहामतिः॥१९॥
भूतान्तकरणो देवः कमलानन्दनन्दनः। सहस्त्रपाञ्च वरदो दिव्यकुण्डलमण्डितः॥२०॥

धर्मप्रियो चितात्मा च सविता वायुवाहनः।
आदित्योऽक्रोधनः सूर्यो रश्मिमाली विभावसुः॥२१॥

तब मैंने अंजलिबद्ध होकर विभु रवि से विविध मधुर वाक्य से वार्त्ता किया। इससे वरदाता सूर्यदेव ने

प्रसन्न होकर मुझसे कहा—"हे देवर्षि! आपने मुझे दीर्घ तप द्वारा आराधित किया है। अतएव इच्छित वर ग्रहण करें।" यह सुनकर मैंने उन लोकनाथ से हाथ जोड़कर कहा—"यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तथा मुझे वर देना चाहते हैं। तब हे नाथ! आपकी जो कामरूपी एक कला है तथा जिस कला की आराधना पूर्व में राजा राजवर्द्धन ने प्रजावर्ग के साथ किया था, हे भानुदेव! आप उस कला के साथ यहां सदा स्थित हो जाइये।" हे भारत! तब सूर्यदेव ने 'तथास्तु' कहकर मेरी प्रार्थना पर सहमति प्रदान किया। मैंने उनकी प्रतिष्ठा भट्टादित्य के नाम से सम्पन्न किया था। मैं भट्ट हूं। मैंने उनकी स्थापना किया है। तभी उन देव का नाम हो गया भट्टादित्य। सूर्यदेव ने स्वयं यह नाम निर्दिष्ट किया था। भगवान् सूर्य मेरी प्रतिष्ठित मूर्त्ति में आविष्ट हो गये। मैंने भक्तिरसाप्लुत मन से उनकी यथाविधि पूजा करके इस प्रकार से स्तव किया—"जिनका १०८ नाम सर्व वेद का रहस्य रूप हैं, जो सात अश्वों के रथ पर विचरण करते हैं, जिनका आत्मतत्त्व सामान्य व्यक्तियों के लिए अचिन्त्य है, जो महा कारुणिक, सञ्जीवन, जय, जीव, जीवनाथ, जगत्पति, कालाश्रय, कालकर्त्ता, महायोगी, महामति तथा भूतान्तकारी हैं, जो देव कमलों का विकास करके स्वयं आनन्दित होते हैं, जो सहस्रपाद, वरद, दिव्य कुण्डलों से मण्डित, धर्मप्रिय, चितात्मा, सविता, वायुवाहन, आदित्य, अक्रोधन, सूर्य, रश्मिमाली, विभावसु हैं।।११-२१।।

दिनकृद्दिनहन्मौनी सुरथो रथिनाम्बरः। राज्ञीपतिः स्वर्णरिताः पूषा त्वष्टा दिवाकरः॥२२॥
आकाशतिलकोधातासम्विभागीमनोहरः। प्राज्ञःप्रजापतिर्धन्योविष्णुःश्रीशोभिषग्वरः॥२३॥
आलोककृल्लोकनाथो लोकपालनमस्कृतः। विदिताशयश्चसुनयो महात्मा भक्तवत्सलः॥२४॥
कीर्तिकीर्तिकरो नित्यो रोचिष्णुः कल्मषापहः। जितानन्दो महावीर्यो हंसः संहारकारकः॥२५॥
कृतकृत्यः सुसङ्गश्च बहुज्ञो वचसाम्पतिः। विश्वपूज्यो मृत्युहारीघृणीधर्मस्यकारणम्॥२६॥
प्रणतार्तिहरोऽरोग आयुष्मान्सुखदः सुखी। मङ्गलं पुण्डरीकाक्षो व्रती व्रतफलप्रदः॥२७॥
शुचिः पूर्णो मोक्षमार्गदाता भोक्ता महेश्वरः। धन्वन्तरिः प्रियाभाषीधनुर्वेदविदेकराट्॥२८॥
जगत्पिता धूमकेतुर्विधूतो ध्वान्तहा गुरुः। गोपतिश्च कृतातिथ्यः शुभाचारः शुचिप्रियः॥२९॥
सामप्रियो लोकबन्धुर्नैकरूपो युगादिकृत्। धर्मसेतुर्लोकसाक्षी खेटकः सर्वदः प्रभुः॥३०॥
मयैवं संस्तुतो भानुर्नाम्नामष्टशतेन च। तुष्यतां सर्वलोकानां सर्वलोकप्रियो विभुः॥३१॥

जो दिनकर, दिनहारी, मौनी, सुरथ, रथियों में श्रेष्ठ, राज्ञी के पति, स्वर्णरिता, पूषा, त्वष्टा, दिवाकर, आकाशतिलक, धाता, संविभागी, मनोहर, प्राज्ञ, प्रजापति, धन्य, विष्णु, श्रीश, भिषग्वर, आलोककृत्, लोकनाथ, लोकपालनमस्कृत, विदिताशय, सुनय, महात्मा, भक्तवत्सल, कीर्त्ति, कीर्त्तिकर, नित्यरोचिष्णु, क्लेशापहं, जितानन्द, महावीर्य, हंस, संहारकारक, कृतकृत्य, सुसङ्ग, धर्मकारण, प्रणतार्तिहर, अरोग, आयुष्मान, सुखद, सुखी, मंगल, पुण्डरीकाक्ष, व्रती, व्रतफलप्रद, शुचि, पूर्ण, मोक्षमार्गदाता, भोक्ता, महेश्वर, धन्वन्तरि, प्रियभाषी, धनुर्वेदज्ञ, एकराष्ट्र, जगलिता, धूमकेतु, विधूत, ध्वान्तहा, गुरु, गोपति, कृतातिथ्य, शुभाचार, शुचिप्रिय, सामप्रिय, लोकबन्धु, नैकरूप, युगादिकृत्, धर्म सेतु, लोक साक्षी, खेटक, सर्वद, युगादिकृत् प्रभु हैं। मैं उनके १०८ नाम से उनकी स्तुति करता हूं। सर्वलोकपति विभु भानु सर्वलोक के प्रति सन्तुष्ट हो जायें।।२२-३१।।

इत्येवं संस्तवात्प्रीतो भास्करो मामवोचत। सदाऽत्र कलया स्थास्ये देवर्षे! त्वत्प्रियेप्सया॥३२॥

योमामत्रमहाभक्त्याभट्टादित्यंप्रपूजयेत्। सहस्त्रशःकामरूपेसम्पूज्याऽऽप्नोतितत्फलम्॥३३॥
मामुद्दिश्यच यो विप्रःस्वल्पं वा यदिवा बहु। दास्यतेऽत्राऽक्षयं तच्चग्रहीष्येकरजंयथा॥३४॥
रक्तोत्पलैश्च कह्लारैः केसरैः करवीरकैः। शतत्रयैर्महापद्मै रविवारेण मानवः॥३५॥
सप्तम्यामथ षष्ठ्यां वा येऽर्चयिष्यन्ति मामिह।
यान्यान्प्रार्थयते कामांस्तास्तांन्प्राप्स्यति निश्चितम्॥३६॥
दर्शनान्मम भक्त्या च नाशो व्याधिदरिद्रयोः।
प्रणामात्स्वर्गमाप्नोति श्रुत्वा मोक्षं च नित्यशः॥३७॥
अभक्तिं यश्च कर्त्ता मे स गच्छेन्निस्चितंक्षयम्। अष्टोत्तरशतंनाम ममाऽग्रेयत्त्वयेरितम्॥३८॥
त्रिकालमेककालं वा पठतः शृणुयत्फलम्। कीर्तिमान्सुभगोविद्वान्सुसुखीप्रियदर्शनः॥३९॥

भगवान् भास्कर इस स्तुति से सन्तुष्ट होकर मुझसे कहने लगे—हे देवर्षि! मैं आपके प्रिय हेतु अपनी कला द्वारा यहां स्थित रहूंगा। जो व्यक्ति यहां मेरी भट्टादित्यरूपेण अर्चना करेगा, वह कामरूप से मेरी हजारों बार अर्चना के समान फल को प्राप्त करेगा। जो ब्राह्मण मेरे उद्देश्य से यहां अल्प किंवा अधिक दान करेगा, मैं उस दान को ऐसे ग्रहण करूंगा, मानों हाथों में लिया हो। यह दानकर्त्ता हेतु अक्षय फलप्रद होगा। जो मानव रविवार, षष्टी किंवा सप्तमी को ३०० लाल कमल, कल्हार, नागकेशर, कनेर अथवा महापद्म से मेरी अर्चना करेगा, उसकी जो भी कामना होगी, वह सब पूर्ण होगी। इसमें सन्देह नहीं है। मेरी भक्ति तथा दर्शन करने से व्याधि एवं दरिद्रता का नाश होता है। प्रणाम से स्वर्गलाभ होता है। नित्य महामाहात्म्य श्रवण से मुक्ति मिलती है। जो मूढ़ मेरी भक्ति नहीं करता, उसका निश्चय क्षय होता है। वह फल श्रवण करिये, जो मेरे शतनाम स्तव को त्रिकाल, एककाल पाठ करने से होता है। वह कीर्त्तिशाली, विद्वान्, सुभग, प्रियदर्शन तथा अतीव सुखी होता है॥३२-३९॥

भवेद्वर्षशतायुश्च सर्वरोगविवर्जितः। यस्त्विदं शृणुयान्नित्यं पठेद्वा प्रयतः शुचिः॥४०॥
अक्षयं स्वल्पमप्यन्नंभवेत्तस्योपसाधितम्। विजयी च भवन्नित्यंतथाजातिस्मरोभवेत्॥४१॥

वह सभी रोगों से रहित देह के साथ १०० वर्ष जीवित रहता है। जो पवित्र तथा संयत मन से प्रतिदिन इस स्तुति का पाठ अथवा श्रवण करेगा, उसके गृह में अक्षय भक्ष्य भोज्य सामग्री भरी रहेगी। वह पूर्वजन्म की स्मृति से युक्त तथा सतत् विजयी होगा॥४०-४१॥

तस्मादेतत्त्वयाजाप्यं परं स्वस्त्ययनंमहत्। यथाममाग्रे कुण्डंच कुरु स्नानार्थमुत्तमम्॥४२॥
कामरूपकला यत्र तत्र कुण्डं वने भवेत्। एवं दत्त्वा वरान्भानुस्तत्रैवाऽन्तरधीयत॥४३॥
ततो भास्करवाक्येन सिद्धेशस्य च सव्यतः। वनमध्ये मया कुण्डं कृतं दर्भशलाकया॥४४॥
कामरूपभवं कुण्डं वृक्षास्ते चाऽपिभारत!। संलीनास्तन्महाश्चर्यं ममाऽजायतचेतसि॥४५॥
माघमासस्य शुक्लायां सप्तम्यां स्त्री नरोऽपि वा।
स्नानं कुण्डे शुभं कृत्वा भट्टादित्यं प्रपश्यति॥४६॥
तस्याऽनन्तं भवेत्पुण्यं रथं यश्च प्रपूजयेत्। रथयात्राञ्च कुरुते यस्मिन्यस्मिन्नसौपथि॥४७॥

ये च पश्यन्तिलोकास्तेधन्याःसर्वेनसंशयः। पुत्रधान्यधनैर्युक्तानीरुजस्तेजसाऽन्विताः॥४८॥

"यह परम स्वस्त्यायन है। अतः इसका पाठ करते रहिये। जहां मेरी कामरूप कला प्रतिष्ठित हो, वहां एक कुण्ड अवश्य होना चाहिये। अतः मेरे लिए एक कुण्ड का निर्माण करिये। वहां स्नान की सुविधा होगी।" भगवान् सूर्य ने मुझे यह वरदान दिया तथा वहीं अन्तर्हित हो गये। तब मैंने भास्करदेव के आदेशानुसार सिद्धेश के वामभाग के वन में दर्भशलाका से एक कुण्ड निर्मित किया। हे अर्जुन! उस कुण्ड को देखकर मेरे मन में विचार आया कि कामरूप का वह कुण्ड तथा वे सब वृक्ष यहीं आयें। फलतः यह सब वहां आया देखकर मुझे विस्मय होने लगा। माघशुक्ला सप्तमी को जो व्यक्ति अथवा नारी इस कुण्ड में स्नान के पश्चात् भट्टादित्य का दर्शन करेगा तथा सूर्य रथार्चन करेगा, उसे अनन्त पुण्यलाभ होगा। तदनन्तर यहां जो रथयात्रा करायेंगे तथा जो कोई मार्ग में इस रथयात्रा का दर्शन करेंगे, वे सभी पुत्र-पौत्र युक्त, रोगरहित तथा तेजस्वी रहेंगे।।४२-४८।।

भविष्यन्ति नरास्ते ये कारयन्तिरथोत्सवम्। गङ्गादिसर्वतीर्थेषु यत्फलंकीर्तितंबुधैः॥४९॥
भट्टादित्यस्यकुण्डे च तत्फलंसप्तमीदिने। तत्रकुम्डेचयःस्नात्वासूर्यायाऽर्घ्यंप्रयच्छति।
कपिलागोशतस्याऽसौ दत्तस्य फलमश्नुते॥५०॥

गंगा आदि सभी तीर्थ स्नान का जो फल है, वह सप्तमी के दिन भट्टादित्य कुण्ड में स्नान से प्राप्त होता है। जो व्यक्ति इस कुण्ड में स्नान करके सूर्य को अर्घ्य प्रदान करेंगे, उनको १०० कपिला गोदान फल मिलेगा।।४९-५०।।

अर्जुन उवाच

वासुदेवादयः सर्वे वदन्त्येवं महामुने!॥५१॥
भास्करार्घंविनाप्रातःकृतंसर्वंचनिष्फलम्। तस्याऽहंश्रोतुमिच्छामिविधिंविधिविदाम्बर!॥५२॥

अर्जुन कहते हैं—हे मुनिवर! वासुदेवादि सभी ने कहा कि जो प्रातः सूर्य को अर्घ्य नहीं देता, उसकी समस्त क्रिया निष्फल हो जाती है। हे विधान विद्गण में श्रेष्ठ! मैं उसका विशेष विधान सुनने की इच्छा रखता हूं।।५१-५२।।

नारद उवाच

यथा ब्रह्मादयो देवायच्छन्त्यर्घंमहात्मने। भास्कराय शृणु त्वं तंविधिसर्वाघनाशनम्॥५३॥

प्रथमं तावत्प्रत्यूषे उदिते सूर्ये शुचिर्भूत्वा गोमयकृतमण्डलस्योपरि रक्तचन्दनेन मण्डलकं कृत्वा ततस्ताम्रपात्रे रक्तचन्दनोदकश्वेतचन्दनादिद्रव्यैः प्रपूरणं कृत्वा तन्मध्ये हेमाक्षतदूर्वादधिसर्पींषि परिक्षिप्य स्थापयेत्॥५४॥

स्वशरीरमालभेत् अनेन मन्त्रेण। ॐ खखोल्काय नमः। सप्तवारानुच्चार्यस्थातप्यम् तेन शुद्धिरुपसञ्जायते देहस्याऽर्चार्हता भवति।

पश्चादासनस्थं देवं सवितारं मण्डलमध्ये द्वादशात्मकं सुरादिभिः सम्पूज्यमानं ध्यात्वा पूर्वोक्तमर्घपात्रं शिरसि कृत्वा भूमौ जानुनी निपात्य सूर्याभिमुखस्तद्गतमना भूत्वाऽर्घ-मन्त्रमुदाहरेत्।

तदुच्यते सूर्यवक्त्राद्विनिर्गतमिति॥५५॥

यस्योच्चारणशब्देन रतं संस्थाप्य भास्करः। प्रतिगृह्णातिचैवार्घ्यंवरमिष्टं च यच्छति॥५६॥

ॐयस्याऽऽहुः सप्त च्छन्दांसि रथे तिष्ठन्ति वाजिनः।
अरुणः सारथिर्यस्य रथवावोऽग्रतः स्थितः॥५७॥

जया च विजया चैव जयन्ती पापनाशनी। इडा च पिङ्गलाचैववहन्तोऽश्वमुखास्तथा॥५८॥
डिण्डिश्च शेषनागश्चगणाध्यक्षस्तथैव च। स्कन्दरेवन्तताक्ष्यार्श्चतथाकल्माषपक्षिणौ॥५९॥
राज्ञी च निक्षुभादेवीललिताचैव सञ्ज्ञिका। तथायज्ञभुजोदेवा येचाऽन्येपरिकीर्तिताः॥६०॥
एभिः परिवृतो योऽसावधरोत्तरवासिभिः। तमहं लोककर्तारमाह्वयामि तमोपहम्॥६१॥
अम्मयो भगवान्भानुरमुं यज्ञं प्रवर्तयन्। इदमर्घ्यं च पाद्यं च प्रगृहाण नमोनमः॥६२॥

॥आवाहनम्॥

नारद कहते हैं—ब्रह्मादि देवता महात्मा दिवाकर को जिस विधान से अर्घ्य देते हैं, मैं वह कहता हूं। तुम सुनो। यह सर्वपापनाशक विधि है। प्रथमतः प्रत्यूष काल में सूर्योदय होते ही पवित्र होकर गोमयरचित मण्डल पर रक्तचन्दन से एक मण्डल बनाये। तदनन्तर रक्तचन्दन, जल, श्वेतचन्दनादि से एक ताम्रपात्र भरे। उसमें स्वर्ण, अक्षत, दूर्वा, दधि तथा घृत रखकर पात्र की स्थापना की जाये। तदनन्तर "ॐ खखोल्काय नमः" मन्त्र द्वारा ७ बार अपनी देह का मार्जन करने से देह विशुद्ध होकर पूजनोपयोगी होता है। तदनन्तर मण्डल में सूर्यदेव का ध्यान करे कि वे आसनस्थ द्वादशात्मक हैं। वे देवगणों द्वारा पूजित हैं। यह ध्यान करके पूर्वोक्त अर्घ्य को सिर से ऊपर उठाकर अपना जानुद्वय भूतल पर रखे। अब सूर्य की ओर मुख करके तद्गतचित्त होकर अर्घ्यमन्त्र को पढ़ना चाहिये। "यह सूर्यमुख से निर्गत है।" यही अर्घ्यमन्त्र है। इसका उच्चारण शब्द सुनकर भगवान् भास्कर रथ रोक कर अर्घ्य ग्रहण करते हैं तथा अभीष्ट वर प्रदान करते हैं। तब "ॐ यस्याहु" से लगाकर "प्रगृहाण नमो नमः" पर्यन्त मूलोक्त श्लोक ५७ से ६२ तक पढ़कर भगवान् भास्कर का आवाहन करे॥५३-६२॥

सहस्त्रकिरणवरद जीवनरूप ते नमः। इति सान्निध्यकरणम्। ॐवषट् इत्युच्चार्य सूर्यस्य चरणयुगलं पश्यन् भुवि पद्भ्यां पात्रीं निवारपयेत् पाद्यं तदुच्यते। एवं पाद्यं दत्त्वा बद्धाञ्जलिः सुस्वागतमिति कुर्यात्। स्वागतं भगवन्नेहि मम प्रसादं विधाय आस्यताम्। इह गृहाण पूजाश्च प्रसादञ्च धिया कुरु। तिष्ठ त्वं तावदत्रैव यावत्पूजां करोम्यहम्॥६३॥

एवं विज्ञापनं दद्यादनेन मन्त्रेण कमलासनम्। तत्कमलासनं कमलनन्दनउपाविशति।

आसन उपविष्टस्य शेषां पूजां नियोजयेत् अनेन विधानेन ॐ सोममूर्तिक्षीरोदपतये नमः। इति क्षीरादिस्नपनम्। ॐभास्कराय नीरवासिने नमः। इति जलस्नानम्। ततो वासोयुगं शुभ्रं दद्यात् अनेन मन्त्रेण। इदं वासोयुगं सूर्य! गृहाण कृपया मम।
कटिभूषणमेकं ते द्वितीयं चाङ्गप्रावरणम्॥६४॥
ततो यज्ञोपवीतं दद्यात् अनेन मन्त्रेण। सूत्रतन्तुमयं शुद्धं पवित्रमिदमुत्तमम्
यज्ञोपवीतं देवेश! प्रगृहाण नमोऽस्तु ते॥६५॥

"ॐ सहस्रकिरण वरद जीवनरूप ते नमः" से सन्निधापन करके "ॐ वषट्" द्वारा सूर्य के पदद्वय का मन में अवलोकन करके उसके ऊपर अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। यह अर्घ्य भूतल पर ही देना चाहिये। यह पाद्यदान है। पाद्यदानोपरान्त प्रभु से स्वागत प्रश्न करके उत्तर में 'सुस्वागत' कहे। तदनन्तर मूलोक्त "स्वागतं भगवन्नेहि मम प्रसादं विधाय आस्यताम्। इह गृहाण पूजाञ्च प्रसादञ्च धिया कुरु। तिष्ठ त्वं तावदत्रैव यावत्पूजा करोम्यहम्" पर्यन्त विज्ञापन मन्त्र पढ़कर आसन मन्त्र द्वारा आसन दान करे। मन्त्र है—"एतत् कमलासनं कमलनन्दन उपाविश।" तदनन्तर यह चिन्तन करे कि सूर्यदेव आसनासीन हैं। तदनन्तर सूर्यदेव की अर्चना करे। पहले स्नानमन्त्र "ॐ सोममूर्त्तिक्षीरोदपतये नमः" से दुग्ध स्नान कराये। तदनन्तर जल स्नान "ॐ भास्कराय नीरवासिने नमः" मन्त्र से कराये। तदनन्तर दो शुभ्र वस्त्र "इदं वासोयुगं सूर्य! गृहाण कृपयामम। करिभूषणमेकं ते द्वितीयं चाङ्ग प्रावरणम्" तदनन्तर यज्ञोपवीत का मन्त्र श्लोक ६५ में "सूत्रतन्तुमयं" से "प्रगृहाण नमोऽस्तुते" पर्यन्त है। इस मन्त्र से यज्ञोपवीत देना चाहिये।।६३-६५।।

ततो यथाशक्ति श्वेतमुकुटमुद्रिकादिबूषणानि दद्यात् अनेन मन्त्रेण॥६६॥
मुकुटो रत्ननद्धोऽयं मुद्रिकां भूषणानि च। अलङ्कारं गृहाणेमं मया भक्त्या समर्पितम्॥६७॥
एवमलङ्कारं निवेद्य पश्चात्केसरकुङ्कुमकर्पूररक्तचन्दनमिश्रमनुलेपनं दद्यात्॥६८॥
ॐतवातिप्रियवृक्षाणांरसोऽयंतिग्मदीधिते!। स तवैवोचितःस्वामिन्गृहाणकृपयामम
ततश्चम्पकजपाकरवीरकर्णककेसरकोकनदादिभिः पूजां कुर्यात्॥६९॥

तदनन्तर अपनी धनशक्ति के अनुसार श्वेत मुकुट, अंगूठी आदि आभूषण "ॐ मुकुटो" से लेकर "भक्त्या समर्पितम्" पर्यन्त मूलोक्त मन्त्र द्वारा प्रदान करे। यह अलंकार प्रदानोपरान्त मन्त्र द्वारा—केशर, कुंकुम, कर्पूर, रक्तचन्दन मिला अनुलेपन प्रदान करे। मन्त्र मूल में "ॐ तवातिप्रिय" से लेकर "गृहाण कृपया मम पर्यन्त है। तदनन्तर चम्पा, जवा, कनेर, कर्णक, केसर, कोकनद आदि पुष्पों से पूजा करनी चाहिये।।६६-६९।।

ॐ वनस्पतिरसो दिव्योगन्धाढ्योगन्धउत्तमः।
आहारः(आघ्रेयः) सर्वदेवानांधूपोऽयंप्रतिगृह्यताम्॥७०॥
॥ शल्लकीधूपमन्त्रः ॥

ततः पायसादिनिष्पन्नं नैवेद्यं निवेदयेदनेनमन्त्रेण। नैवेद्यममृतंसर्वभूतानांप्राणवर्धनम्।
पूर्णपात्रे मया दत्तं प्रतिगृह्ण प्रसीद मे॥७१॥
ततः शौचोदकताम्बूलदीपार्तिकशीतलिकापुनःपूजादि निवेद्य यथाशक्त्या स्तुत्वा सुकृतं दुष्कृतं वा क्षमस्वेति प्रोच्य विसर्जयेत्। ततो भूयो नमस्य हेमवस्त्रोपवीतालङ्कारान् ब्राह्मणाय निवेद्य निर्माल्यं संहृत्याऽम्भसि निक्षिपेत्॥७२॥

॥इत्यर्घ्यदानविधिः॥

अब शल्लकी धूपमन्त्र कहते हैं—"ॐ वनस्पति" से लेकर "प्रतिगृह्यताम्" पर्यन्त पढ़ते हुये धूप प्रदान करे। तत्पश्चात् "ॐ नैवेद्य" से "प्रतिगृह्य प्रसीद मे" पर्यन्त मूलोक्त मन्त्र पढ़ते हुये पायस प्रभृति नैवेद्य देना चाहिये। इसके अनन्तर आचमनीय, ताम्बूल, दीप, आरती तथा शीतलिका प्रदान करके यथाशक्ति स्तुति करे।

"सुकृतं दुष्कृतं वा क्षमस्व" से विसर्जन करे। तदनन्तर प्रणामोपरान्त ब्राह्मण को स्वर्ण, वस्त्र, उपवीत तथा अलंकार प्रदान करके निर्माल्यादि हटाकर सब जल में प्रवाहित करे।।७०-७२।।

यएवंभास्करायाऽर्घ्यंमूर्तौमण्डलकेऽपिवा। नित्यं निवेदयेत्प्रातःस्याद्रवेरात्मवत्प्रियः॥७३॥
अनेन विधिना कर्णो भास्करार्घ्यं प्रयच्छति। ततःसूर्यस्यपार्थासावात्मवद्वल्लभोमतः॥७४॥
अशक्तश्चेन्नित्यमेकमर्घ्यं दद्याद्दिवाकृते। ततोऽत्र रथसप्तम्यां कुण्डे देयः प्रयत्नतः॥७५॥
अश्वमेधफलं प्राप्य सूर्यलोकमवाप्नुयात्। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दातव्योऽर्घोऽत्रभारत॥७६॥
एवं विधस्त्वसौ देवो भट्टादित्योऽत्र तिष्ठति। भूयानतोऽपि बहुशः पापहा धर्मवर्धनः॥७७॥
दिव्यमष्टविधं चात्र सद्यः प्रत्ययकारकम्। पापानां चोपभुक्तंहि यथा पार्थ! हलाहलम्॥७८॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे सागरसङ्गमे भट्टादित्यमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥४३॥

अब अर्घ्यदान विधान कहते हैं। जो नित्य प्रातः इस विधान से मूर्त्ति किंवा मण्डल में सूर्यदेव हेतु अर्घ्य प्रदान करता है, वह सूर्यदेव को आत्मवत् प्रिय होता है। हे पार्थ! कर्ण इसी विधान से नित्य सूर्यदेव को अर्घ्य प्रदान करता था। तभी वह सूर्य को आत्मवत् प्रिय था। यदि व्यक्ति नित्य अर्घ्यदान न दे सके, तब रथसप्तमी के दिन सयत्न इस कुण्ड में एक अर्घ्य अवश्य प्रदान करे। इससे मानव को अश्वमेध फल लाभ होता है। वह अन्त में सूर्यलोक गमन करता है। हे अर्जुन! इसी कारण सर्व प्रयत्न से यहां अर्घ्य प्रदान करे। यहां जो भट्टादित्य हैं, वे महाप्रभावशाली पापनाशक हैं। हे अर्जुन! यहां अष्टविध दिव्य आचरण करने से सद्यः प्रत्यक्ष फल मिलता है। पापी व्यक्ति यहां पाप करके किसी प्रकार छुटकारा नहीं पा सकते, जैसे हलाहल विषपायी नहीं बचता।।७३-७८।।

॥त्रिचत्वारिंश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

भट्टादित्य महिमा, दिव्यकरण विधि वर्णन, फालशुद्धिवर्णन

अर्जुन उवाच

दिव्यप्राकारमिच्छामि श्रोतुं चाऽहं मुनीश्वर!। कथं कार्याणि कानीह स्फुटं यैः पुण्यपापकम्॥१॥

अर्जुन कहते हैं—हे मुनिवर! मैं आपसे अब दिव्य प्रकरण जानना चाहता हूं, जिससे पाप तथा पुण्य सुस्पष्ट व्यक्त होता है। वह दिव्य क्या है? उसे किस प्रकार से करना होता है?।।१।।

नारद उवाच

शपथाः कोशघटकौ विषाग्नी तप्तमाषकौ। फलंच तन्दुलं चैव दिव्यानष्टौ विदुर्बुधाः॥२॥
असाक्षिकेषु चाऽर्थेषु मिथो विवदमानयोः। राजद्रोहाभिशापेषु साहसेषु तथैव च॥३॥
अविदस्तत्त्वतः सत्यं शपथेनाभिलङ्घयेत्। महर्षिभिश्च देवैश्च सत्यार्थाः शपथाःकृताः॥४॥
जवनो नृपतिः क्षीणो मिथ्याशपथमाचरेत्। वसिष्ठाग्रे वर्षमध्ये सान्वयःकिल भारत॥५॥
अन्धः शत्रुगृहं गच्छेद्यो मिथ्याशपथांश्चरेत्। रौरवस्य स्वयंद्वारमुद्घाटयति दुर्मतिः॥६॥
मन्यन्ते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः। तांश्च देवाः प्रपस्यन्ति स्वस्यैवान्तरपौरुषाः॥७॥
आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च।
अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मो हि जानाति नरस्य वृत्तम्॥८॥
एवं तसमादभिज्ञाय सत्यार्थशपथांश्चरेत्। वृथा हि शपथान्कुर्वन्प्रेत्य चेह विनश्यति॥९॥

नारद कहते हैं—कोष, तुला, विष, अग्नि, तप्त उर्द तथा फाल एवं (फाल = लौह का पिण्ड) तण्डुल, इन आठ को सुधीगण दिव्य रूप से निर्णीत करते हैं। राजद्रोह, अभिशाप, साहस, कार्य तथा अन्य असाक्षिक व्यवहार में परस्पर विवादोत्पत्ति में यदि निर्णय लेने में असमर्थता प्रतीत हो, तब शपथ से तत्वनिर्णय करना पड़ता है। महर्षिगण तथा देवगण सत्यनिर्णयार्थ इस सब शपथ का निर्वाचन करते हैं। पूर्व में जवन राजा ने वसिष्ठ के समक्ष मिथ्या शपथ लिया था। वह एक वर्ष में ही अन्धा तथा वंशहीन हो गया। जो दुर्मति मानव मिथ्या शपथ लेता है, वह शत्रुग्रस्त होता है तथा वह अपने लिये रौरव नरक का द्वार उद्घाटित कर लेता है। पापीगण यह सोचते हैं कि कोई उनको पापाचरण करते देख नहीं सका, परन्तु पितृगण तथा देवता उसके इस दुष्कृत्य का अवलोकन करते हैं। आदित्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, स्वर्ग, भूमि, जल, हृदय, यम, दिवा, रात्रि, उभय सन्ध्या तथा धर्म मनुष्य के समस्त कार्यों को जान लेते हैं। इसलिए सत्य शपथ लेनी चाहिये। मिथ्या शपथ लेने से इहलोक तथा परलोक में कालजनित दुर्गति मिलती है।।२-९।।

इदं सत्यं वदामीति ब्रुवन्साक्षीभवान्यतः। शुभाशुभफलं देहि शुचिःपादौरवेःस्पृशेत्॥१०॥
अथ शास्त्रस्य विप्रोऽपि शस्त्रस्याऽपि च क्षत्रियः।
मां संस्पृशंस्तथा वैश्यः शूद्रः स्वगुरुमेव च॥११॥
मातरं पितरं पूज्यं स्पृशेत्साधारणंत्विदम्। कोशस्यरूपंपूर्वन्तेव्याख्यातंपाण्डुनन्दन!॥१२॥
विप्रवर्ज्यं तथा कोशं वर्णिनां दापयेन्नृपः। यो यो यद्देवताभक्तः पाययेत्तस्य तं नरम्॥१३॥
समभक्तं च देवानामादित्यस्यैव पाययेत्। सर्वेषां चोग्रदेवानां स्नापयेदायुधास्त्रकम्॥१४॥
स्नानोदकं वा सङ्कल्पं गृहीत्वापाययेन्नवम्। त्रिसप्तरात्रमध्येच फलं कोशस्यनिर्दिशेत्॥१५॥

शुद्ध होकर सूर्य के चरणों में प्रणाम करके "मैं यह सत्य कहता हूं, क्योंकि आप साक्षी हैं। अतः आप शुभाशुभ फल प्रदान करे।" यह प्रार्थना करनी चाहिये। तदनन्तर ब्राह्मण शास्त्रग्रन्थ, क्षत्रिय कोई अस्त्र, वैश्य उर्द आदि कोई पण्य द्रव्य (विक्रय वाला द्रव्य) तथा शूद्र अपने गुरु-माता-पिता अथवा किसी अन्य गुरुजन का स्पर्श

करके दिव्य ग्रहण करे। (शपथ ले)। यही है साधारण विधि। हे पाण्डुनन्दन! मैंने इससे पूर्व तुमको कोष का स्वरूप कहा है। वह साधारण ब्राह्मण को नहीं देना चाहिये। तथापि ब्रह्मचारीगण को दे सकते हैं। जो जिन देवता का भक्त है, उस देवता के मन्त्र से अभिमन्त्रित जल का पान कराये। यदि कोई सभी देवता में समान भक्ति रखता है, तब उसे सूर्य मन्त्र से पूत जल पिलाये। उसे उग्र देवतागण के अस्त्र-शस्त्र (के जल से) स्नान कराये। किंवा देवता का स्नानोदक अथवा संकल्प जल पिलाये। २१ दिनों में ही कोष का फल प्रत्यक्ष होगा। (कोष = अपराधी की अग्निपरीक्षा। देखें याज्ञवल्क्य स्मृति २/११४)।।१०-१५।।

अतः परं महादिव्यविधानं शृणु यद्भवेत्। संशयच्छेदि सर्वेषां दार्ष्ट्यात्तद्दिव्यमेवच॥१६॥
सशिरस्कंप्रदातव्यमिति ब्रह्मा पुराऽब्रवीत्। महोग्राणांच दातव्यमसिरस्कमपिस्फुटम्॥१७॥
साधूनां वर्णिनां राजा न शिरस्कं प्रदापयेत्। न प्रवाते घटं देयं नोष्णकाले हुताशनम्॥१८॥
वर्णिनां च तथा कालं तन्दुलं मुखरोगिणाम्॥१९॥
कुष्ठपित्तार्दितानांच ब्राह्मणानाञ्च नो विषम्। तप्तमाषकर्महन्ति सर्वे धर्म्यं निरत्ययम्॥२०॥

तत्पश्चात् महाविधान सुनो। साधारण दिव्य के प्रति यदि कोई धृष्टता के कारण अविश्वास करता है, तब महादिव्य विधान उसके सर्वसंशय का छेदन कर देता है। ब्रह्मा ने पूर्वकाल में कहा था कि महादिव्य तो सशिरस्क देना चाहिये, लेकिन महोग्र दिव्य तो अशिरस्क भी दे सकते हैं। राजा, साधु तथा ब्रह्मचारी को सशिरस्क प्रदान न करे। प्रवात स्थल में (जहां तेज वायु बहती हो) तुला का प्रयोग न करे (क्योंकि वायु के कारण सम्यक् रूप से तुला का प्रयोग नहीं हो सकेगा)। ग्रीष्म में अग्नि, ब्रह्मचारी को कृष्ण तण्डुल तथा मुखरोगी-कुष्ठ-पिण्डरोगी तथा ब्राह्मण को विष न प्रदान करे। तप्त यावक धर्मानुरूप सबको दिया जा सकता है। इस विषय में कोई बाधा नहीं है।।१६-२०।।

न व्याधिमरके देशे शपथान्कोशमेव च। दिव्यान्यासुरकैर्मन्त्रैः स्तम्भयन्तीह केचन॥२१॥
प्रतिघातविदस्तेषां योजयेद्धर्मवत्सलान्। दिव्यानां स्तम्भकाञ्ज्ञात्वा पापान्नित्यं महीपतिः॥२२॥
विवासयेत्स्वकाद्राष्ट्रात्तेहिलोकस्य कण्टकाः। तेषामन्वेषणेयत्नंराजानित्यंसमाचरेत्॥२३॥
ते हि पापसमाचारास्तस्करेभ्योऽपि तस्कराः। प्राग्दृष्टदोषान्स्वल्पेषु दिव्येषु विनियोजयेत्॥२४॥
महत्स्वपि न चार्थेषु धर्मज्ञान्धर्मवत्सलान्। न मिथ्यावचनं येषां जन्मप्रभृति विद्यते॥२५॥
श्रद्दध्यात्पार्थिवस्तेषां वचनादेव भारत। ज्ञात्वा धर्मिष्ठतां राजा पुरुषस्य विचक्षणः॥२६॥
क्रोधाल्लोभात्कारयंश्च स्वयमेवप्रयच्छति। तस्मात्पापिषुदिव्यंस्यात्तत्रादौप्रोच्यतेघटे॥२७॥

व्याधि-महामारी पीड़ित देश में दिव्य शपथ कोष दिव्य शपथ न ले। कोई-कोई दुष्ट व्यक्ति आसुरी मन्त्र से दिव्य शपथों को स्तम्भित कर देते हैं। उनका प्रतिघात करने के लिए धर्मवत्सल पुरुषगण को परीक्षा कार्य में लगाना पड़ता है। राजा सदा ऐसे दिव्य शपथ को स्तम्भित करने वालों की खोज कराये तथा अपने देश से उनको निकाल दे। ये जनता के लिए कण्टक हैं। राजा नित्य इनके अन्वेषणार्थ तत्पर रहे। ऐसे पापी चोर तो सामान्य तस्करों की अपेक्षा भी भयानक हैं। पहले जो लोग दोषी ठहराये गये हैं, उनको चोरी आदि की घटना घटित होने पर उनको दिव्य विधान द्वारा जांचें। लेकिन जो धर्मात्मा, धर्मवत्सल हैं, उनका दिव्य व्यापार द्वारा परीक्षण करना उचित

नहीं है। हे अर्जुन! जिन्होंने जन्म से ही आज तक कभी झूठ नहीं बोला है, राजा उनकी बात का भरोसा करे। यदि विद्वान् राजा व्यक्ति की धर्मनिष्ठता जान कर भी उनका दिव्य परीक्षण लेता है, क्रोध-लोभादि के वश में आकर राजा दिव्य शपथादि से उनको कष्ट देता है, तब राजा निश्चित रूप से पापभागी होगा। केवल पापी होने पर ही व्यक्ति को ही दिव्य शपथ आदि में प्रयुक्त करे। प्रथमतः मैं तुला दिव्य कहता हूं।।२१-२७।।

सुसमायां पृथिव्यांचदिग्भागेपूर्वदक्षिणे। यज्ञियस्यतुवृक्षस्यस्थाप्यंस्यान्मुण्डकद्वयम्।।२८।।
स्तम्भकस्यप्रमाणंचसप्तहस्तंप्रकीर्तितम्। द्वौहस्तौनिखनेत्काष्ठंदृश्यंस्याद्धस्तपञ्चकम्।।२९।।
अन्तरं तु तयोः कार्यं तथा हस्तचतुष्टयम्। मुण्डकोपरिकाष्ठं च दृढं कुर्याद्विचक्षणः।।३०।।
चतुर्हस्तं तुलाकाष्ठमव्रणं कारयेत्स्थिरम्। खदिरार्जुनवृक्षाणां शिंशपाशालजं त्वथ।।३१।।
तुलाकाष्ठेतुकर्तव्यं तथावैशिक्यकद्वयम्। प्राङ्मुखोनिश्चलःकार्यःशुचौदेशेघटस्तथा।।३२।।
पाषाणस्यापिजायेत स्तम्भेषुचधटस्तथा। वाणिक्सुवर्णकारोवाकुशलःकांस्यकारकः।।३३।।
तुलाधारधरः कार्यो रिपौ मित्रे च यः समः। श्रावयेत्प्राड्विवाकोऽपि तुलाधारं विचक्षणः।।३४।।
बह्मघ्ने येस्मृता लोका ये च स्त्रीबालघातके। तुलाधारस्यतेलोकास्तुलांधारयतोमृषा।।३५।।
एकस्मिंस्तोलयेच्छिक्येज्ञातंसूपोषितं नरम्। द्वितीये मृत्तिकांशुभ्रांगौरांतुतुलयेद्बुधः।।३६।।
इष्टिकाभस्मपाषाणकपालास्थीनि वर्जयेत्। तोलयित्वा ततः पूर्वं तस्मात्तमवतारयेत्।।३७।।
मूर्ध्नि पत्रं ततोन्यस्यन्यस्तपत्रंनिवेशयेत्। पत्रे मन्त्रस्त्वयंलेख्योयःपुरोक्तःस्वयम्भुवा।।३८।।
"ब्रह्मणस्त्वं सुता देवि तुलानाम्नेतिकथ्यते। तुकारोगौरवेनित्यंलकारोलघुनिस्मृतः।।३९।।
गुरुलाघवसंयोगात्तुला तेन निगद्यसे। संशयान्मोचयस्वैनमभिशस्तं नरं शुभे!"।।४०।।
भूय आरोपयेत्तं तु नरं तस्मिन्सपत्रकम्। तुलितो यदि वर्धेत शुद्धो भवति धर्मतः।।४१।।
हीयमानो न शुद्धः स्यादिति धर्मविदो विदुः। शिक्यच्छेदे तुलाभङ्गे पुनरारोपयेन्नरम्।।४२।।

मनुष्य को चाहिये कि यज्ञीय वृक्ष के २ काष्ठस्तम्भ को लेकर सुसम (समतल) भूभाग पर पूर्व दक्षिण दिशा में गाड़े, जो दो हाथ जमीन में गड़ा हो। इसमें से प्रत्येक को ७ हाथ होना चाहिये। दो हाथ मिट्टी में हो, ५ हाथ बाहर हो। दोनों स्तम्भ के मध्य का अन्तर ४ हाथ हो। बुद्धिमान व्यक्ति ऊपर में दोनों स्तम्भों को मिलाते हुये एक काष्ठ रखे। यह तुला काष्ठ छिद्र रहित, दृढ़ तथा ४ हाथ का हो। वह खदिर, अर्जुन, शिंशपा अथवा शालवृक्ष का हो। इसके दोनों ओर पलड़े लगाये। यह पवित्र प्रदेश में स्थापित की जाये। पाषाण आदि के स्तम्भ पर भी तुला निर्मित की जा सकती है। वणिक्, स्वर्णकार अथवा कुशल कांस्यकार तुलाधारधारी हों। शत्रु-मित्र समान भाव से इस पर परीक्षित किये जायें। विद्वान् विचारक तब उनसे यह कहे—"ब्रह्मघाती, स्त्रीघाती, बालघाती की जो गति हो, मिथ्या तुलाधार की इस लोक में गति हो।" जिसका परीक्षण करना हो, वह उपवासी रहे। एक ओर पलड़े पर उस व्यक्ति को बैठाये तथा दूसरी ओर मिट्टी (गौर मिट्टी) से उसे तौले। तौल करने में ईंट, भस्म, पत्थर, कपाल तथा अस्थि प्रयोग न करे। तौल कर उस व्यक्ति को पलड़े से उतार लेना चाहिये। तब एक भोजपत्र पर 'ब्रह्मणत्व' से लेकर 'नरं शुभे' पर्यन्त श्लोक (मूलोक्त) ३४ तथा ४० अंकित करे। तदनन्तर अब पुनः उस व्यक्ति को तौलना चाहिये। यह मन्त्र पूर्वकाल में ब्रह्मा ने कहा था। तौलते समय मन्त्र लिखा पत्र उस व्यक्ति के शिर पर रखकर पत्र के

साथ वजन करना चाहिये। यदि अब पहले से उस व्यक्ति की भारवृद्धि हो जाती है, तब वह शुद्ध है। यदि उस व्यक्ति का भार अब कम होता है, तब वह दोषी है। यह धर्मतत्वज्ञगण का कथन है। यदि तौलते समय पलड़े टूट जायें अथवा डोर वगैरह भग्न हो जाये, तब पुनः तौला जाये।।२८-४२।।

एवं निःसंशयं ज्ञानं यच्चान्यायंनलोपयेत्। एतत्सर्वंरवौ वारे कार्यंसम्पूज्यभास्करम्।।४३।।

इस प्रकार से निःसन्दिग्ध रूप से दोषी तथा निर्दोष का ज्ञान होता है। कोई भी अन्याय आचरण करके उसे गुप्त नहीं रख सकता। यह सभी कार्य रविवार को सूर्यार्चन के उपरान्त ही करना चाहिये।।४३।।

अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि विषदिव्यं शृणुष्व मे।।४४।।
द्विप्रकारं च तत्प्रोक्तं घटसर्पविषं तथा। शृङ्गिणो वत्सनाभस्य हिमशैलभवस्य वा।।४५।।
यवाः सप्त प्रदातव्या अथवा षड्घृतप्लुताः। मूर्ध्निविन्यस्तपत्रस्य पत्रे चैवंनिवेशयेत्।।४६।।
त्वं विष! ब्रह्मणः पुत्र सत्यधर्मेव्यवस्थितः। त्रायस्वैनंनरं पापात्सत्येनास्यभवामृतम्।।४७।।
येन वेगैर्विना जीर्णं छर्दिमूर्च्छाविवर्जितम्। तं तु शुद्धंविजानीयादितिधर्मविदोविदुः।।४८।।
क्षुधितं क्षुधितः सर्पं घटस्थंप्रोच्यपूर्ववत्। संस्पृशेत्तालिकाःसप्तनदशेच्छुध्यतीतिसः।।४९।।

अब मैं विष दिव्य-विधान कहता हूं। इसमें घटसर्प तथा विष रूप से द्विविध विधान है। पहले जिस व्यक्ति की परीक्षा लेनी हो उसके मस्तक पर एक पत्र में (मूलोक्त श्लोक ४७) 'त्वं विष' से लगाकर 'भवामृतम्' पर्यन्त लिखकर स्थापित करे। तदनन्तर 3 से ६ अथवा ७ यव के बराबर घृत में सना शृङ्गीविष अथवा वत्सनाग विष अथवा हिमालयज विष भक्षण कराये। यदि वह बिना कष्ट पच जाये, तब यदि वमन अथवा मूर्च्छा न हो, ऐसी स्थिति में वह निर्दोष है। धर्मज्ञ लोग कहते हैं कि एक घट में भूखा सर्प रखे। परीक्षक पूर्वोक्त मन्त्र पढ़कर परीक्षित व्यक्ति का हाथ उस घट में रखे। उस सर्प से व्यक्ति का हाथ स्पर्श कराते हुये सात ताली बजवाये। यदि सर्प उस व्यक्ति को नहीं डसता, तब वह निर्दोष व्यक्ति है।।४४-४९।।

अग्निदिव्यं यथा प्राह विरञ्चिस्तच्छृणुष्व मे। सप्तमण्डलकान्कुर्याद्देवस्याग्रेरवेस्तथा।।५०।।
मण्डलान्मण्डलं कार्यं पूर्वेणेति विनिश्चयः। षोडशाङ्गुलकंकार्यं मण्डलात्तावदन्तरम्।।५१।।
आर्द्रवाससमाहूय तथा चैवाप्युपोषितम्। कारयेत्सर्वदिव्यानि देवब्राह्मणसन्निधौ।।५२।।
प्रत्यक्षं कारयेद्दिव्यं राज्ञो वाऽधिकृतस्य वा। ब्राह्मणानां श्रुतवतां प्रकृतीनां तथैव च।।५३।।
पश्चिमे दिनकाले हि प्राङ्मुखः प्राञ्जलिः शुचिः।
चतुरस्त्रे मण्डलेऽन्ये कृत्वा चैव समौ करौ।।५४।।
लक्षयेयुः कृतादीनि हस्तयोस्तस्यहारिणः। सप्ताश्वत्थस्यपत्राणिबध्नीयुःकरयोस्ततः।।५५।।

ब्रह्मदेव ने अग्नि दिव्य का विधान जिस प्रकार से कहा है, वह सुनो। सूर्य के समक्ष एक-एक करके ७ मण्डल निर्माण करे। प्रत्येक मण्डल की दूसरे मण्डल से १६ अंगुल की दूरी हो। सर्वप्रथम एक चौकोर मण्डल बनाये। प्रत्येक दिव्य परीक्षण में परीक्षित व्यक्ति उपवासी रहे। यह सब परीक्षण देवता, ब्राह्मण तथा राजा किंवा राज कर्मचारी (राज प्रतिनिधि) के समक्ष होना चाहिये। विद्वान् ब्राह्मण तथा जप परायण प्रजावर्ग की उपस्थिति आवश्यक है। तदनन्तर अपराह्न के समय परीक्षणीय मानव आर्द्र वस्त्र पहने तथा पवित्र होकर अंजलिबद्ध स्थिति में पूर्वाभिमुख

खड़ा रहे। प्रतिहारी उसके हाथ की सम्यक् रूप से जांच करे कि कोई लेप अथवा कोई वस्तु तो हाथ में नहीं है। तब ७ पीपल के पत्ते उसके हाथों में बांध दे।।५०-५५।।

नवेन कृतसूत्रेण कार्पासेन दृढं यथा। ततस्तु सुसमं कृत्वा अष्टाङ्गुलमथायसम्।।५६।।
पिण्डं हुताशसन्तप्तंपञ्चाशत्पलिकं दृढम्। आदौपूजांरवेःकृत्वाहुताशस्याऽथकारयेत्।।५७।।
रक्तचन्दनधूपाभ्यां रक्तपुष्पैस्तथैव च। अभिशस्तस्य पत्रं च बध्नीयाच्चैव मूर्धनि।।५८।।
मन्त्रेणाऽनेन संयुक्तं ब्राह्मणाभिहितेन च। त्वमग्ने! वेदाश्चत्वारस्त्वं च यज्ञेषु हूयसे।।५९।।
पापं पुनासि वै यस्मात्तस्मात्पावक उच्यसे। त्वंमुखंसर्वदेवानांत्वंमुखंब्रह्मवादिनाम्।।६०।।
जठरस्थोऽसिभूतानां ततो वेत्सि शुभाशुभम्। पापेषुदर्शयात्मानमर्चिष्मान्भवपावक।।६१।।
अथवा शुद्धभावेषु शीतो भव महाबल!। ततोऽभिशस्तः शनकैर्मण्डलानि परिक्रमेत्।।६२।।
परिक्रम्य शनैर्जह्याल्लोहपिण्डं ततः क्षितौ। विपत्रहस्तं तं पश्चात्कारयेद्ब्रीहिमर्दनम्।।६३।।
निर्विकारौ करौ दृष्ट्वा शुद्धो भवति धर्मतः। भयाद्वा पातयेद्यस्तु तदधो वा विभाव्यते।।६४।।
पुनस्त्वाहारयेल्लोहं विधिरेष प्रकीर्तितः। अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि तप्तमाषविधिं शृणु।।६५।।

नये ९ कपास के सूत्र से उसकी हथेली में दृढ़तापूर्वक ये पत्ते बांधने चाहिये। एक आठ अंगुल का लौह का तप्त पिण्ड (अग्नि में लौहपिण्ड को लाल करके) लाये। यह लौहपिण्ड ५० पल वजन का तथा दृढ़ हो। पहले रक्तचन्दन, रक्तपुष्प तथा धूपादि से इसकी पूजा करके तब अग्नि पूजन करे। तब एक पत्र (भोजपत्र आदि) पर मूलोक्त "त्वमग्ने" से लेकर "महाबल" पर्यन्त श्लोक लिखे। इसे उस व्यक्ति के मस्तक पर स्थापित करना चाहिये। तब इसी मन्त्र का कोई ब्राह्मण पाठ भी करे। वह परीक्षित व्यक्ति हाथ में लौहपिण्ड लिये हुये यथाक्रम पहले बने उन मण्डलों की परिक्रमा करे। सबकी परिक्रमा के उपरान्त लौहपिण्ड को भूमि पर धीरे से रख देना चाहिये। हाथ के पीपल के पत्ते फेंक कर हाथों को ब्रीहिधान्य से मले। इससे यदि उस व्यक्ति को कोई कष्ट न हो, तब वह व्यक्ति धर्मतः निर्दोष तथा शुद्ध है। यदि कोई भयवश लौहपिण्ड को बीच में ही फेंक देता है, तब यही कार्य पुनः दुहराना चाहिये। यही विधि है। अब तप्त माष विधि कहता हूं। सुनो।।५६-६५।।

कारयेदायसं पात्रं ताम्रं वा षोडशाङ्गुलम्। चतुरङ्गुलखातं तु मृण्मयं वापि कारयेत्।।६६।।
पूरयेद्घृततैलाभ्यां पलैर्विंशतिभिस्ततः। सुतप्ते निक्षिपेत्तत्र सुवर्णस्य तु माषकम्।।६७।।
वह्नयुक्तं विन्यसेन्मन्त्रमभिशस्तस्य मूर्धनि। अङ्गुष्ठाङ्गुलियोगेन तप्तमाषं समुद्धरेत्।।६८।।
शुद्धं ज्ञेयमसन्दिग्धं विस्फोटादिविवर्जितम्। फालशुद्धिं प्रवक्ष्यामि तां शृणु त्वं धनञ्जय!।।६९।।

पहले लौह-ताम्र किंवा मृत्तिका से १६ अंगुल लम्बाई-चौड़ाई का तथा ४ अंगुल गहरा पात्र बनाये। उसे २० पल घृत तथा तैल से भरे। तदनन्तर उसे खौलाकर उसमें १ मासे का स्वर्ण छोड़े। जिसकी परीक्षा करनी हो उसके मस्तक पर इससे पहले वाले प्रयोग में कहा गया अग्निमन्त्र लिखा पत्र स्थापित करे। अब परीक्षणीय व्यक्ति उस तप्त तैल में से उस स्वर्ण को निकाले। यदि इससे उसे छाले न पड़ें, तब वह निर्दोष है। हे धनंजय! अब फालशुद्धि सुनो।।६६-६९।।

आयसं द्वादशपलं घटितं फालमुच्यते। अष्टाङ्गुलमदीर्घं च चतुरङ्गुलविस्तृतम्।।७०।।

वह्नयुक्तं विन्यसेन्मन्त्रमभिशस्तस्यमूर्धनि। त्रिःपरावर्तयेज्जिह्वांलिहन्नस्मात्षडङ्गुलम्।।७१।।
गवां क्षीरं प्रदातव्यं जिह्वासोधनमुत्तमम्। जिह्वापरीक्षणं कुर्याद्दग्धा चेन्न विमोच्यते।।७२।।
तं विशुद्धंविजानीयाद्विशुद्धा चेत्तु जायते। तन्दुलस्याऽथवक्ष्यामिविधिधर्मंसनातनम्।।७३।।

१२ पल लौह का एक आठ अंगुल दीर्घ तथा ४ अंगुल विस्तृत एक फाल (हल के फाल जैसा) बनाये। परीक्षणीय व्यक्ति के शिर पर पूर्वोक्त अग्निमन्त्र लिखा पत्रक रखे। अब उस लौह फाल को तपाकर उस व्यक्ति के सामने रखा जाये। इस तप्त फाल को वह परीक्षणीय व्यक्ति ३ बार जिह्वा से चाटे। यदि जिह्वा दग्ध हो, तब वह फाल जिह्वा से जुंट जायेगा। उसे जिह्वाशोधनार्थ गो दुग्ध देना चाहिये। यदि जिह्वा दग्ध नहीं होती, तब वह व्यक्ति निर्दोष है। अब मैं तण्डुलदिव्य का सनातन विधान कहता हूं।।७०-७३।।

चौर्ये तु तन्दुलादेया न चाऽन्यत्रकथञ्चन।
तन्दुलानुदकेसिक्तवारात्रौतत्रैव स्थापयेत्।।७४।।
प्रभाते कारिणे देया भक्षणाय न संशयः। त्रिःकृत्वःप्राङ्मुखश्चैव पत्रे निष्ठीवयेत्ततः।।७५।।
पिप्पलस्याऽथ भूर्जस्य न त्वन्यस्य कथञ्चन।
तांस्तु वै कारयेच्छुद्धांस्तन्दुलाञ्छालिसम्भवान्।।७६।।
मृण्मये भाजने कृत्वा सवितुःपुरतःस्थितः। तन्दुलान्मत्रयेच्छुद्धान्मन्त्रेणाऽनेनधर्मतः।।७७।।
दीयसे धर्मतत्त्वज्ञैर्मानुषाणां विशोधनम्। स्तुतस्तन्दुल! सत्येनधर्मतस्त्रातुमर्हसि।।७८।।
निष्ठीवने कृते तेषां सवितुःपुरतःस्थिते। शोणितं दृश्यते यस्य तमशुद्धं विनिर्दिशेत्।।७९।।
एवमष्टविधं दिव्यं पापसंशयच्छेदनम्। भट्टादित्यस्य पुरतो जायते कुरुनन्दन!।।८०।।

चौर्य परीक्षण में ही तण्डुल दिव्य का विधान है। अन्य विषय के परीक्षणार्थ इसका विधान नहीं है। रात में भिगाया गया यह तण्डुल प्रातः परीक्षणीय व्यक्ति को खिलाये। वह व्यक्ति पूर्वाभिमुख होकर उसे चबाकर पीपल के पत्ते में अथवा भोजपत्र के पत्ते में उसे थूके। इससे पहले शालि मिट्टी के पात्र में तण्डुल लेकर भिंगाये। प्रातः उसे धोकर शुद्ध करके सूर्य के आगे रखकर धर्मानुसार मूलोक्त "दीयसे" से लगाकर "त्रातुमर्हसि" तक का मन्त्र पढ़े। (श्लोक ७८ पढ़े)। तत्पश्चात् सूर्य के समक्ष उन तण्डुल को चबा कर कहीं थूके। यदि उस थूक में रक्त दिखलाये, तब वह दोषी है। हे कुरुपुत्र! भट्टादित्य के सामने यह पापसंशय नाशक दिव्य परीक्षण सफल होता है।।७४-८०।।

जलदिव्यं तथा प्राहुर्द्विप्रकारं पुराविदः। जलहस्तं स्मृतं चैकं मज्जनं चाऽपरं विदुः।।८१।।
बाणक्षेपस्तथादानं यावद्वीर्यवता कृतम्। तावत्तं मज्जयेज्जीवेत्तथा तच्छुद्धिमादिशेत्।।८२।।
एवम्विधमिदं स्थानं भट्टादित्यस्य भारत!। ममैव कृपया भानोर्जातमेतन्महीतले।।८३।।

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे भट्टादित्यमाहात्म्ये दिव्यवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः।।४४।।

पुराविद् विद्वान् दो प्रकार का जलदिव्य भी कह गये हैं। एक में हाथ में जल लेना होता है, दूसरे में जल के बीच स्नान। परीक्षणीय मानव जल में स्नान करता हो, तब कोई बली व्यक्ति एक बाण छोड़े तथा उस बाण को पुनः ले आये। बाण आने पर उस व्यक्ति को जल से बाहर निकाले। यदि वह तब तक मर जाये, तो वह दोषी है। अथवा निर्दोष है। हे भारत! सूर्यदेव की कृपा से मेरे द्वारा पृथिवी पर प्रतिष्ठित यह भट्टादित्य क्षेत्र इतना प्रभावयुक्त है।।८१-८३।।

।।चतुश्चत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

नन्दभद्र प्रसंग, सत्यव्रत-योगादि विषय वर्णन

नारद उवाच

तथा बहूदकस्थाने कथामाकर्णयाऽद्भुताम्। यस्माद्बहूदकं कुण्डं कामरूपे यदस्तिच।।१।।
तदस्ति चाऽत्र सङ्क्रान्तं तस्मात्प्रोक्तं बहूदकम्।
कपिलेनाऽत्र तप्त्वा च वर्षाणि सुबहून्यपि।।२।।
स्थापितं शोभनं लिङ्गं कपिलेश्वरसञ्ज्ञितम्। तच्चलिङ्गं सदा पार्थ! नन्दभद्रइतिस्मृतः।।३।।
वाणिक्सम्पूजयामास त्रिकालं च कृतादरः। सर्वधर्मविशेषज्ञः साक्षाद्धर्म इवाऽपरः।।४।।
नाऽज्ञातं तस्य किञ्चिच्च यद्धर्मेषु प्रकीर्त्यते। सर्वेषां च सुहृन्नित्यं सर्वेषां च हितेरतः।।५।।
कर्मणा मनसा वाचा धर्ममेनमुपाश्रितः। न भूतो न भविष्यश्चनसधर्मोऽस्ति किञ्चन।।६।।
विदोषो यो हि सर्वत्र निश्चित्यैवंव्यवस्थितः। अस्यधर्मसमुद्रस्यसम्प्रवृद्धस्य सर्वतः।।७।।
निर्मथ्य नन्दभद्रेण आहृतंतन्निशामय। वाणिज्यं मन्यते श्रेष्ठं जीवनाय तदा स्थितः।।८।।

नारद कहते हैं—अब बहूदक स्थल की अद्भुद् कथा सुनो। यह कामरूप स्थित कुण्ड आज भी यहां प्रतिष्ठित है। इसका बहूदक नाम क्यों पड़ा, वह कहता हूं। यहां कपिल मुनि ने अनेक वर्ष पर्यन्त तपश्चरण किया था। उन्होंने यहीं पर कपिलेश्वर नामक एक मनोहर शिवलिंग प्रतिष्ठित किया। हे पार्थ! पूर्व में नन्दभद्र नामक एक वणिक् प्रतिदिन त्रिकाल में सादर इस लिंग की पूजा करता था। वह साक्षात् धर्म के समान समस्त धर्मतत्व को जानता था। धर्म का ऐसा कोई तत्व नहीं था, जो उसे ज्ञात न हो। वह सबका हित सुहृद के समान करने वाला व्यक्ति था। वह मन-कर्म-वचन से सदा धर्म में निरत रहता था। उसने मन ही मन एक बार चिन्तन किया कि ऐसा कोई धर्म कर्म नहीं है तथा होगा भी नहीं, जिसमें कोई न कोई दोष न हो! जीविका के लिए कोई न कोई वृत्ति अपनानी ही होगी, परन्तु ऐसी कोई वृत्ति नहीं है, जो पापस्पर्श रहित हो। हे अर्जुन! नन्दभद्र ने इस चिन्तन द्वारा धर्म समुद्र का मन्थन करके जिस सार का आहरण किया, उसे सुनें। उसने अन्य वृत्तियों की तुलना में वाणिज्य को ही श्रेष्ठ वृत्ति माना।।१-८।।

परिच्छिन्नैः काष्ठतृणैः शरणं तेन कारितम्। मद्यवर्जं भेदवर्जं कूटवर्जं समं तथा॥९॥
सर्वभूतेषु वाणिज्यमल्पलाभेन सोऽचरत्। अमाययापरेभ्योऽसौगृहीत्वैवक्रयाणकम्॥१०॥

उसने सामान्य तृण-काष्ठादि का एक गृह बनाया तथा उसमें रहने लगा। वह सभी लोगों के साथ अल्पलाभ युक्त व्यवसाय करने लगा, तथापि वह मद्यविक्रय एवं कपट भाव नहीं करता था। वह अकपट रूप से अन्य से द्रव्य खरीद कर लाता तथा अकपट भाव से ही सबको बेचता। उसने इसे सद्व्रत माना तथा यही नियम पालन करने लगा।।९-१०।।

आमाययैव भूतेभ्यो विक्रीणात्यस्य सद्व्रतम्। केचिद्यज्ञं प्रशंसन्ति नन्दभद्रोन मन्यते॥११॥
दोषमेनंविनिश्चित्य शृणु तं पाण्डुनन्दन! लुब्धोऽनृतोदाम्भिकश्चस्वप्रशंसापरायणः॥१२॥
यजन्यज्ञैर्जगद्धन्ति स्वं चाऽन्धतमसं नयेत्। अग्नौ प्रास्ताहुतिःसम्यगादित्यमुपतिष्ठते॥१३॥
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः। यद्यदा यजमानस्य ऋत्विजो द्रव्यमेव च॥१४॥
चौरप्रायस्य कलुषाज्जन्म जायेज्जनस्य हि। अदक्षिणे वृथा यज्ञे कृते चाऽप्यविधानतः॥१५॥
पशवो लकुटैर्हन्युर्यजमानं मृतं हताः। तस्माच्छुद्धैर्यवद्रव्यैर्यजमानः शुभः स्मृतः॥१६॥

हे पाण्डुनन्दन! लोक में यज्ञ की प्रशंसा की जाती है, तथापि नन्दभद्र उसमें दोष विवेचित करके यज्ञ की प्रमुखता नहीं मानता था। उसकी मान्यता थी कि लोभी, मिथ्यावादी, दम्भ करने वाले, आत्मप्रशंसापरायण मानव यज्ञ द्वारा संसार का अनिष्ट करते हैं तथा स्वयं को अन्धतमस् में फेंक देते हैं। अग्नि में यथाविधान आहुति देने पर वह आदित्य को मिलती है। आदित्य से वर्षा होती है। वृष्टि से फल-अन्नादि का उत्पादन होता है। अन्न से प्रजावृद्धि होती है। तथापि चौरतुल्य यजमान लोग असत् मार्ग से उपार्जित द्रव्य से यज्ञ में प्रवृत्त होते हैं तथा ऋत्विक् लोग विधि-रहित यज्ञ में प्रवृत्त हो जाते हैं। वे वृथा द्रव्य हरण करते हैं तथा यजमान भी यथोचित् दक्षिणा प्रदान नहीं करते। अतः ऐसे यज्ञों से पापों की निवृत्ति नहीं हो पाती। प्रत्युत जनगण और भी पापाक्रान्त हो जाते हैं। हतभाग्य ऋत्विक् उनमें व्यर्थ पशुहिंसा लकुट आदि से करते हैं। उसके फल से यजमान भी हत प्रायः होता है। इसलिए यव आदि विशुद्ध द्रव्यों से याग करना ही यजमान के लिए शुभप्रद है।।११-१६।।

यज्ञ एवं विचार्याऽसौ यज्ञसारंसमास्थितः। श्रद्धयादेवपूजायानमस्कारःस्तुतिःशुभा॥१७॥
नैवेद्यं हविषश्चैव यज्ञोऽयं हि विकल्मषः। स एव यज्ञःप्रोक्तो वै येन तुष्यन्ति देवताः॥१८॥
केचिच्छंसन्तिसंन्यासं नन्दभद्रो न मन्यते। योहि संन्यस्यविषयान्मनसा गृह्यतेपुनः॥१९॥
उभयभ्रष्ट एवाऽसौ भिन्ना भूमिर्विनश्यति। संन्यासस्य तु यत्सारं तत्तेनावृतमुत्तमम्॥२०॥

नन्दभद्र ने यह विचार करके सार यज्ञ का अवलम्बन किया। श्रद्धा के साथ देवपूजा, नमस्कार, स्तवपाठ, हवि द्वारा नैवेद्यदान। यह सब पापसंस्पर्श रहित था। जिस-जिस पदार्थ से देवता सन्तुष्ट होते हैं, वही यज्ञपदवाच्य है। अनेक सन्यास प्रशंसा करते हैं, तथापि नन्दभद्र इसके विरोधी थे। उनके मन से जो व्यक्ति सन्यासी होकर मन ही मन विषयों का ध्यान करता है, वह भूतग्रस्त व्यक्ति की तरह विदीर्ण होकर इस लोक का तथा परलोक का, इन दोनों का नाश करता है। उसमें दोनों लोकों की प्राप्ति भ्रष्ट हो जाती है। उसने सन्यास के सार को ग्रहण किया।।१७-२०।।

कस्यचिन्नैवकर्माणि शपते वा प्रशंसति। नानामार्गास्थिताँल्लोकांश्चन्द्रवल्लीयते क्षितौ॥२१॥
न द्वेष्टि नो कामयते न विरुद्धोऽनुरुध्यते। समाश्मकाञ्चनो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥२२॥
अभयःसर्वभूतेभ्योयथाऽन्दबधिराकृतिः। नकर्ममांफलाकांक्षाशिवस्याऽऽराधनंहितम्॥२३॥
कारणाद्धर्ममन्विच्छन्न लोभं च ततश्चरन्॥२४॥
विविच्य नन्दभद्रस्तत्सारं मोक्षेषु जगृहे। कृषिं केचित्प्रशंसन्ति नन्दभद्रो न मन्यते॥२५॥
यस्यांछिन्दन्तिवृषणावृषाणांचैवनासिकान्। कर्षयन्तिमहाभारान्बध्नन्तिदमयन्तिच॥२६॥
बहुदंशमयान्देशान्नयन्ति बहुकर्दमान्। वाहसम्पीडिता धुर्याः सीदन्त्यविधिनापरे॥२७॥
मन्यन्तेभ्रूणहत्यापिविशिष्टानास्यकर्मणः। अघ्न्याइतिगवांनामश्रुतौताःपीडयेत्कथम्॥२८॥

किसी की प्रशंसा अथवा निन्दा न करे। आक्रोश न करे। भूतल पर चन्द्र की तरह विभिन्न पथ वालों से मिले। द्वेष-अनुराग-विरोध-अनुरोध का त्याग करके स्थिरचित्त से पाषाण तथा स्वर्ण में समज्ञान रखे। अन्ध तथा बधिर की तरह स्तुति तथा निन्दा में समान रहे। सभी प्राणीगण को अभय प्रदान करे। कर्मफल त्याग ही शिवाराधन है। अतः धर्म कामना से सर्वत्र लोभ त्यागे। नन्दभद्र ने यह जानकर लोकसाधन के सारभूत निष्काम कर्म का अवलम्बन किया। लोग कृषि की प्रशंसा करते हैं, परन्तु नन्दभद्र को कृषि कार्य स्वीकार ही नहीं था। उनके मत से वृषगण को बधिया बनाया जाना, नाक छेदना, बांधना, उनका दमन करना तथा उनके द्वारा हल चलवाना, भारी बोझ ढुलवाना पड़ता है। इससे बैलों को कितना कष्ट होता है, वे मच्छरों से भरे स्थानों पर तथा कीचड़ को पार करने हेतु बाध्य किये जाते हैं। वे अनुचित रूप से लादे गये भारी भार से श्रान्त तथा अवसन्न हो जाते हैं। इसलिए भ्रूणहत्या भी इसकी तुलना में निन्दनीय नहीं है। गोगण पर प्रहार न करे, यह वेद में प्रसिद्ध है। इसलिए उनको पीड़ित करना कहां से धर्मसंगत है?॥२१-२८॥

भूमिं बूमिशयांश्चैव हन्ति काष्ठमयोमुखम्। पञ्चेन्द्रियेषु जीवेषु सर्वं वसति दैवतम्॥२९॥
आदित्यश्चन्द्रमावायुःप्रभूत्यैवचतांस्तुयः। विक्रीणातिसुमूढस्यतस्यकानुविचारणा॥३०॥

लोहे के अग्रभाग वाले हल से भूमि पर रहने वाले तथा भूमिगत जीवों का वध हो जाता है। पंच इन्द्रियों वाले जीव में आदित्य, चन्द्र, वायु आदि देवता निवास करते हैं। जो इन जीवों को बेचता है, उस मूढ़ में विचार बुद्धि कैसी है?॥२९-३०॥

अजोऽग्निर्वरुणो मेषः सूर्यश्च पृथ्वी विराट्। धेनुर्वत्सश्चसोमोवैविक्रीयैतान्नसिध्यति॥३१॥
एवंविधसहस्रैश्च युता दोषैः कृषिःसदा। अष्टागवं स्याद्धि हलं त्रिंशद्भागंत्यजेत्कृषेः॥३२॥
धर्मे दद्यात्पशून्वृद्धान्पुष्यादेषा कृषिः कुतः। सारमेतत्कृषेस्तेन नन्दभद्रेण चाऽऽदृतम्॥३३॥
विसाधितव्यान्यन्नानि स्वशक्त्त्यादेवपितृषु। मनुष्यद्विजभूतेषु नियुज्याऽश्नीतसर्वदा॥३४॥
केचिच्छंसन्ति चैश्वर्यं नन्दभद्रो न मन्यते। मानुषा मानुषानेव दासभावेन भुञ्जते॥३५॥

अग्नि अजरूप, वरुण मेषरूप, सूर्य पृथिवीरूप, विराट धेनुरूप तथा सोम उसके वत्सरूप हैं। अतः जो इनका विक्रय करता है, उसे सिद्धिलाभ कैसे होगा? एवंविध कृषिकार्य में हजारों हजार दोष हैं। एक हल में आठ बैलों की आवश्यकता होती है। कृषि से प्राप्त ३० भाग में से एक भाग धर्मार्थ परित्याग करे। वृद्ध पशु आदि का

पोषण करे। इसके अतिरिक्त आचरण करना पाप है। अतः कौन ऐसा कृषिकार्य कहां अनुष्ठित करेगा? इसीलिए नन्दभद्र ने मात्र कृषिकार्य के सार को ही ग्रहण किया। उनका मत था कि अपनी अर्थशक्ति के अनुरूप पितरों, मनुष्यों तथा प्राणीगण को खाद्य देकर तब स्वयं खाद्य ग्रहण करे। अनेक लोग ऐश्वर्य की प्रशंसा करते हैं, लेकिन नन्दभद्र का मत इससे पृथक् था। ऐश्वर्य के कारण मनुष्य अन्य मनुष्य को दास बनाता है।।३१-३५।।

वधबन्धनिरोधेन पीडयन्ति दिवानिशम्। देहं किमेतद्धातुः स्वं मातुर्वा जनकस्य वा॥३६॥
मातुः पितुर्वा बलिनः क्रेतुरग्नेः शुनोऽपि वा। इति सञ्चिन्त्य व्यहरन्नमराइवईश्वराः॥३७॥
ऐश्वर्यमदपापिष्ठा महामद्यमदादयः। ऐश्वर्यमदमत्तो हि ना पतित्वा हि माद्यति॥३८॥
आत्मवत्सर्वभृत्येषु श्रिया नैव च माद्यति॥३९॥
आत्मप्रत्ययवान्देही क्वेश्वरश्चेदृशोऽस्ति हि। ऐश्वर्यस्यापिसारं स जग्राहैतन्निशामय॥४०॥

उसे वध, बन्धन तथा निरोधादि से सदैव पीड़ा देता रहता है। वास्तव में दास का यह देह क्या माता, पिता, प्रतिपालक, मातामह का अथवा बलवान का है? क्या वह खरीदने वाले का, अग्नि का अथवा कुक्कर का है? ऐश्वर्यवान् यह विचार न करके साधारण दास तथा प्राणीगण से दुर्व्यवहार करते हैं। वे ऐश्वर्यमदमत्त हो पापाचरण करते हैं। ऐश्वर्य मदमत्त व्यक्ति भूपतित न होकर भी उसी प्रकार व्यवहार करता है, मानों मदमत्त हो। इसलिए ऐश्वर्य मत्त नहीं होना चाहिये। उसे अनुजीवीगणों के साथ भी आत्मवत् ही व्यवहार करना चाहिये। लेकिन ऐसे ऐश्वर्यवान् हैं कहां? यह विचार करके नन्दभद्र ने केवल ऐश्वर्य का सार मात्र ग्रहण किया। उसे मुझसे सुनो।।३६-४०।।

स्वशक्त्या सर्वभूतेषु यदसौ न पराङ्मुखः। तीर्था ये के प्रशंसन्ति नन्दभद्रो न मन्यते॥४१॥
श्रमेण संकरात्तापशीतवातक्षुधा तृषा। क्रोधेन धर्मगेहस्य नाऽपि नाशमवाप्नुयात्॥४२॥
सौख्येनवाधनस्यापिश्रद्धयास्वल्पगोऽर्थवान् ।
समर्थोहिमहत्पुण्यंशक्तआप्तुंक्ववास्तिसः ॥४३॥
सदा शुचिर्देवयाजी तीर्थसारंगृहेगृहे। नाऽऽपःपुनन्ति पापानि न शैला न महाश्रमाः॥४४॥
आत्मा पुनाति पापानि यदि पापान्निवर्तते। एवमेष समाचारं प्रादुर्भूतं ततस्ततः॥४५॥
एकीकृत्य सदा धीमान्नन्दभद्रःसमास्थितः। तस्यैवं वर्ततःसाधोःस्पृहयन्त्यपिदेवताः॥४६॥
वासवप्रमुखाःसर्वे विस्मयं च परं ययुः। अत्रैव स्थानके चापि शूद्रोऽभूत्प्रतिवेश्मकः॥४७॥

स्वशक्ति के अनुसार सभी प्राणीगण के प्रति सदय व्यवहार करता रहे। यदि शक्ति है, तब कदापि परोपकार से विमुख न हो। लोग तीर्थों की प्रशंसा करते हैं, तथापि नन्दभद्र यह नहीं मानते थे। परिश्रम, शीत, वात, क्षुधा, तृष्णा, क्रोधादि से मानव का संचित धर्म भी नष्ट हो जाता है। धनी व्यक्ति घर में रहते हुये ही श्रद्धा से (सत्कर्म में) धन व्यय करके अनायास महत् पुण्यार्जन कर लेता है। तथापि ऐसे मानव हैं कहां? सतत् पवित्र तथा देवपूजक व्यक्ति घर में ही सार धर्म प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेता है। जल, शैल, अथवा आश्रम समूह भी पापशोधन नहीं कर पाते। लेकिन पाप से निवर्त्तित आत्मा ही समस्त पापों से पवित्रता का विधान कर देता है। इस प्रकार नन्दभद्र ने समस्त धर्मों का सार एकत्रित करके उनका पालन करते हुये समय व्यतीत करने लगे। साधु नन्दलाल के इस

आचरण से इन्द्रादि देवताओं को भी विस्मय हो गया, वे भी इसी का अनुकरण करने की अभिलाषा करने लगे। पास में वहीं एक शूद्र निवास करता था।।४१-४७।।

स नन्दभद्रं धर्मिष्ठं पुनः पुनरसूयत। नास्तिकः स दुराचारः सत्यव्रत इति श्रुतः॥४८॥
स सदा नन्दभद्रस्य विलोकयतिचान्तरम्। छिद्रंचेदस्य पश्यामि ततो धर्मान्निवर्तये॥४९॥
स्वभावएवक्रूराणांनास्तिकानांदुरात्मनाम्। आत्मानंपातयन्त्येवपातयन्त्यपरंचयत्॥५०॥

उसका नाम था सत्यव्रत। वह नास्तिक, दुराचारी तथा सतत् नन्दभद्र का विद्वेषी था। वह यह सोचा करता था कि कोई छिद्र पाते ही नन्दभद्र को धर्म से निवृत्त करूंगा। वह सर्वदा ही नन्दभद्र के छिद्रान्वेषण में लगा रहता था। नास्तिकों, क्रूरों का तथा दुरात्मागण का स्वभाव ही ऐसा होता है। वे स्वयं को तथा अन्य को अधोगामी करते हैं।।४८-५०।।

ततस्त्वेवं वर्ततोऽस्य नन्दभद्रस्य धीमतः। एकोऽभूत्तनयःकष्टाद्वार्धिकेसोऽप्यनश्यत॥५१॥
तच्च दैवकृतं मत्वा न शुशोच महामतिः। देवो वा मानवोवाऽपिकोहिदैवाद्विमुच्यते॥५२॥
ततोऽस्य सुप्रिया भार्या सर्वैःसाध्वीगुणैर्युता। गृहधर्मस्यमूर्तिर्यासाक्षादिवअरुन्धती॥५३॥
विनाशमागता पार्थ कनकानाम नामतः। ततो यतेन्द्रियोऽप्येष गृहधर्मविनाशतः॥५४॥
शुशोचहाकष्टमितिपापोऽहमितिचाऽसकृत्। तत्तस्यचान्तरंदृष्ट्वाऽहृष्यत्सत्यव्रतश्चिरात्॥५५॥
उपाव्रज्य च हा कष्टं ब्रुवंस्तं नन्दभद्रकम्। दधिकर्ण इवाऽऽसाद्य नन्दभद्रमुवाच सः॥५६॥

धीमान् नन्दभद्र ने इस प्रकार दीर्घकाल व्यतीत किया, तब उनको वृद्धावस्था में एक पुत्र जन्मा। तथापि वह अल्पकाल में ही मृत हो गया। नन्दभद्र ने यह विचार किया कि "देवता हो अथवा मनुष्य, कोई भी अदृष्ट का खण्डन नहीं कर सकता।" अतः उसने शोक नहीं किया। हे अर्जुन! उसकी पत्नी का नाम था कनक। वह अरुन्धती की तरह ही साध्वीगुण वाली, पति की प्रियपात्री तथा गृहस्थ धर्म की आश्रय स्वरूप थी। कुछ काल के उपरान्त वह भी मृत हो गयी। इस प्रकार गृहस्थ धर्म का उच्छेद हो जाने पर भी नन्दभद्र जितेन्द्रिय होकर भी "हाय क्या कष्ट है? मैं कितना पापी हूं", इस प्रकार शोक करने लगे। तब सत्यव्रत दीर्घकाल के उपरान्त नन्दभद्र की यह हालत देखकर दधिकर्ण के समान प्रसन्नतापूर्वक आया तथा नन्दभद्र से कहने लगा।।५१-५६।।

हा नन्दभद्र यद्येवं तवाऽप्येवम्बिधंफलम्। एतेन मन्ये मनसि धर्मोऽप्येष वृथैव यत्॥५७॥
इत्यादि बहुधा प्रोच्य तत्तद्वाक्यं ततस्ततः। सत्यव्रतस्ततः प्राह नन्दभद्रं कृपान्वितः॥५८॥
नन्दभद्रसदातुब्यंवक्तुकामोऽस्मिकिञ्चन। प्रस्तावस्याप्यभावाच्चनोदितंचमयाक्वचित्॥५९॥
अप्रस्तावं ब्रुवन्वाक्यं वृहस्पतिरपि ध्रुवम्। लभते बुद्ध्यवज्ञानमवमानं च हीनवत्॥६०॥

"हे नन्दभद्र! मैं तुम्हारी भी यह दशा घटित होते देखकर सोचता हूं कि धर्म-कर्म करना नितान्त व्यर्थ है।" उसने यह सब कहकर बाद में नन्दभद्र से कहा—"हे नन्दभद्र! मैं तुमसे एक बात कहने हेतु उत्सुक हूं। तथापि प्रसंग न होने के कारण नहीं कह पाया, क्योंकि बिना प्रसंग आये बात कहने पर बृहस्पति को भी हीन के समान अवज्ञा का पात्र बनना पड़ता है"।।५७-६०।।

नन्दभद्र उवाच

बूहिबूहिनमे किञ्चित्साधुगोप्यं प्रियंपरम्। वचोभिःशुद्धसत्त्वानांनमोक्षोऽप्युपमीयते।।६१।।

तब नन्दभद्र ने कहा—"बोलो! मेरे समक्ष कोई भी साधु वाक्य तथा प्रिय वाक्य गोपित रखने की आवश्यकता नहीं है। शुद्ध सत्व लोगों के वाक्यों के साथ मोक्ष की भी तुलना नहीं होती"।।६१।।

सत्यव्रत उवाच

नवभिर्नवभिश्चैव विमुक्तं वाग्विदूषणैः। नवभिर्बुद्धिदोषैश्च वाक्यंवक्ष्याम्यदोषवत्।।६२।।
सौक्ष्म्यंसंख्याक्रमश्चाऽपिनिर्णयःसप्रयोजनः। पञ्चैतान्यर्थजातानियत्रतद्वाक्यमुच्यते।।६३।।
धर्ममर्थं च कामं च मोक्षंचोद्दिश्यचोच्यते। प्रयोजनमितिप्रोक्तंप्रथमं वाक्यलक्षणम्।।६४।।
धर्मार्थकामामोक्षेषु प्रतिज्ञाय विशेषतः। इदं तदिति वाक्यान्ते प्रोच्यतेसविनिर्णयः।।६५।।
इदं पूर्वमिदं पश्चाद्वक्तव्यंयत्क्रमेणहि। क्रमयोगंतमप्याहुर्वाक्यतत्त्वविदोबुधाः।।६६।।
दोषाणाञ्च गुणानाञ्च प्रमाणंप्रविभागतः। उभयार्थमपि प्रेक्ष्यसासंख्येत्युपर्धार्यताम्।।६७।।
वाक्ययज्ञेषु भिन्नेषु यत्राऽभेदः प्रदृश्यते। तत्राऽतिशयहेतुत्वं तत्सौक्ष्म्यमिति निर्दिशेत्।।६८।।
इतिवाक्यगुणानां च वाग्दोषान्द्विनव शृणु। अपेतार्थमभिन्नार्थमपवृत्तं तथाऽधिकम्।।६९।।
अश्लक्ष्णंचापिसन्दिग्धंपदान्तेगुरुचाऽक्षरम्। पराङ्मुखमुखंयच्चअनृतंचाप्यसंस्कृतम्।।७०।।
विरुद्धंयत्त्रिवर्गेण न्यूनं कष्टातिशब्दकम्। व्युत्क्रमाभिहृतंयच्च सशेषं चाऽप्यहेतुकम्।।७१।।

सत्यव्रत कहता है—नौ वाक्यदोष तथा नौ बुद्धिदोष को छोड़कर मैं निर्दोष वाक्य कहता हूं। जिसमें सूक्ष्मता, संख्या, क्रम, प्रयोजन तथा सिद्धान्त रूप पांच अर्थ विद्यमान हैं, वही वाक्य कहा जाता है। इस वाक्य द्वारा धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष सम्बन्धित साधन ही करना चाहिये। यह वाक्य का पहला लक्षण है। धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के सम्बन्ध में प्रतिज्ञा करके तब "यह यह है" यह वाक्य का उपसंहार है। यही है निर्णय। यही प्रथम तथा अन्तिम कहा गया है। इस प्रकार क्रमानुसार उस विषय का वर्णन तथा निराकरण होता है। यही वाक्य तत्वज्ञों के मतानुसार क्रमयोग है। दोष तथा गुण का यथायथ विचार करके उनका जो प्रमाणानुरूप विभाग करते हैं, वही संख्या है। वाक्य तथा ज्ञेय विषय में पारस्परिक भेद रहने पर भी प्रमाण द्वारा दोनों का जो ऐक्य स्थापन है, वही सूक्ष्मतापद वाच्य है। यह होने पर वाक्य गुणयुक्त होता है। अब वाक्य के ९ दोषों को सुनो। अपेतार्थ, अभिन्नार्थ, अपवृत्त, अधिक, अश्लक्ष्ण, संदिग्ध, पदान्त में अक्षर का गुरुत्व, पराङ्मुख, अनृत तथा असंस्कृत, त्रिवर्ग के विरुद्ध, न्यून, कष्ट शब्द, अति शब्द, बृहत् क्रमाभिहित, सशेष, अहेतुक, निष्कारण—ये सभी वाक्दोष हैं। अब बुद्धिदोष सुनो।।६२-७१।।

निष्कारणं च वाग्दोषान्बुद्धिजाञ्छृणु त्वं च यान्।
कामात्क्रोधाद्भयाच्चैव लोभाद्दैन्यादनार्यकात्।।७२।।
हीनानुक्रोशतोमानान्नचवक्ष्यामिकिञ्चन। वक्ता श्रोताचवाक्यंचयदा त्वविकलंभवेत्।।७३।।
सममेति विवक्षायां तदा सोऽर्थः प्रकाशते। वक्तव्ये तु यदा वक्ता श्रोतारमवमन्यते।।७४।।

श्रोताचाप्यथवक्तारंतदावाक्यंनरोहति। अथ यः स्वप्रियं ब्रूयाच्छ्रोतुर्वोत्सृज्ययदृतम्॥७५॥

विशङ्का जायते तस्मिन्वाक्यं तदपि दोषवत्।
तस्माद्यः स्वप्रियं त्यक्त्वा श्रोतुश्चाऽप्यथ यत्प्रियम्॥७६॥

सत्यमेव प्रभाषेत स वक्ता नेतरो भुवि। मिथ्यावादाञ्छास्त्रजालसम्भवान्यद्विहाय च॥७७॥
सत्यमेव व्रतं यस्मात्तस्मात्सत्यव्रतस्त्वहम्। सत्यंते सम्प्रवक्ष्याममन्तुमर्हसितत्तथा॥७८॥

यदाप्रभृति भद्र त्वं पाषाणस्यार्चनेरतः।
तदाप्रभृति किञ्चिच्चन हि पश्यामिशोभनम्॥७९॥
एकःसोऽपिसुतोनष्टोभार्याचार्याऽप्यनश्यत। कूटानांकर्मणांसादोफलमेवंविधंभवेत्॥८०॥

काम-क्रोध-भय-लोभ-दीनता-अनार्य्यता, हीनता तथा अभिमान के कारण मैं कुछ नहीं कहता, तथापि इन सब बुद्धिदोष का वर्णन करके कह रहा हूं। जब वक्ता, श्रोता तथा वाक्य ये तीनों अविकल होते हैं। तथा बोलने की इच्छा भी रहती है, तभी वांछित अर्थ प्रकट होता है। जब वक्तव्य विषय में वक्ता ही श्रोता की अवमानना करता है, किंवा श्रोता ही वक्ता की अवज्ञा करता है, तब वाक्य फलप्रद नहीं होता। यदि सत्य की अवहेलना करके स्वयं के अथवा श्रोता के मन के अनुसार वाक्य कहा जाता है, उससे श्रोता में सन्देह का जन्म हो जाता है। इसलिए ऐसे वाक्य भी दोषयुक्त होते हैं। इसलिए व्यक्ति अपना तथा श्रोता का कल्याण करने हेतु केवल सत्य ही कहे। वही भूतल पर यथार्थ वक्ता कहलाता है। अन्य को वक्ता नहीं कहा जाता। मिथ्या वाक्य पूर्ण शास्त्रजाल का परिहार करते हुये सत्यभाषण ही मेरा व्रत है। तभी मेरा नाम सत्यव्रत है। मैं तुमसे सत्यवाक्य ही कहूंगा। तुम भी उसे सत्य मानकर उसकी अवधारणा करना। हे भद्र! जब से तुम पत्थर की (मूर्त्ति) की अर्चना में रत रहे हो, तभी से मैंने तुम्हारा कोई मंगल नहीं देखा। एकमात्र पुत्र भी मृत हो गया। हे साधु! कूट कर्म का यही फल देखा गया है।।७२-८०।।

क्व देवाःसन्ति मिथ्यैतद्दृस्यन्तेचेद्भवन्त्यपि। सर्वाचकूटविप्राणांद्रव्यायैषाविकल्पना॥८१॥
पितृनुद्दिश्य यच्छन्ति मम हासः प्रजायते। अन्नस्योपद्रवं यच्च मृतोहि किमशिष्यत॥८२॥
यत्त्विदं बहुधा मूढा वर्णयन्तिद्विजाधमाः। विश्वनिर्माणमखिलंतथापिशृणुसत्यतः॥८३॥
उत्पत्तिश्चापिभङ्गश्चविश्वस्यैतद्द्वयंमृषा। एवमेव हि सर्वं च सदिदं वर्ततेजगत्॥८४॥

स्वभावतो विश्वमिदं हि वर्तते स्वभावतः सूर्यमुखा भ्रमन्त्यमी।
स्वभावतो वायवो वान्ति नित्यं स्वभावतो वर्षति चाम्बुदोऽयम्॥८५॥
स्वभावतो रोहति धान्यजातं स्वभावतोवर्षशीतातपत्वम्।
स्वभावतः संस्थिता मेदिनी च स्वभावतः सरितः संस्रवन्ति॥८६॥

सभी देवता कहां हैं? यदि होते तब अवश्यमेव प्रत्यक्षीभूत होते देवता आदि कल्पना मात्र हैं। वे कपटी ब्राह्मणों के द्रव्यलोभार्थ ही कल्पित हैं। पितृ-पितामह के उद्देश्य से श्राद्धादि किया जाता देख मुझे हंसी आती है। तदनन्तर यह अन्नदान का उपद्रव! क्या मृत खा सकता है? जो मूढ़ द्विजाधम हैं, वे इस विश्वनिर्माण के सम्बन्ध में नाना वर्णन करते हैं। विश्व की उत्पत्ति तथा नाश—यह दोनों मिथ्या धारणा है। यह जगत् सर्वदा से इसी प्रकार से स्थित है। सूर्यादि ग्रह सर्वदा स्वभावतः इसी प्रकार से भ्रमण करते हैं। वायु स्वभावतः ऐसे ही प्रवहमान रहता है।

मेघ भी स्वभावतः वर्षा करते ही रहते हैं। धान्यादि शस्य भी स्वभावतः ही अंकुरित होते हैं। शीत, ग्रीष्म, वर्षा भी स्वभावतः होते हैं। पृथिवी में यह भाव रहता है। नदियां स्वभावतः प्रवाहित होती हैं।।८१-८६।।

स्वभावतः पर्वता भान्ति नित्यं स्वभावतो वारिधिरेष संस्थितः।
स्वभावतो गर्भिणी सम्प्रसूते स्वभावतोऽमी बहवश्च जीवाः॥८७॥
यथा स्वभावेन भवन्ति वक्रा ऋतुस्वभावाद्बदरीषु कण्टकाः।
तथा स्वभावेन हि सर्वमेतत्प्रकाशते कोऽपि कर्त्ता न दृश्यः॥८८॥
तदेवं संस्थिते लोके मूढे मुह्यतिमत्तवत्। मानुष्यमपियद्धूर्ता वदन्त्यग्र्यं शृणुष्वतत्॥८९॥
मानुष्यान्नापरंकष्टं वैरिणांनोभवेद्धितत्। शोकस्थानसहस्राणि मनुष्यस्य क्षणेक्षणे॥९०॥

पर्वत भी स्वभावतः स्थित रहते हैं। समुद्र भी स्वभावतः विद्यमान हैं। गर्भिणी रमणी स्वभावतः प्रसव करती है। स्वभावतः नाना प्राणीगण विविध कार्य करते हैं। जैसे ऋतु के प्रभाव से बेर के वृक्ष में कांटे वक्र होते हैं, वैसे ही स्वभावतः यह सब प्रकाशित-लक्षित होते रहते हैं। इसमें किसी कर्त्ता की आवश्यकता नहीं है। समस्त लोक स्वभाव में प्रतिष्ठित रहते हैं तथापि मूढ़ जन मत्तवत् इस विषय में मोहित बने रहते हैं! जो धूर्त्त मनुष्य जन्म को श्रेष्ठ कहते हैं, इस सम्बन्ध में जो सारतत्व है, वह श्रवण करो। मनुष्य जैसा कोई दुःखप्रद जन्म नहीं है। शत्रु भी मनुष्य जन्म न पाये! मनुष्य के लिए प्रतिक्षण सैकड़ों शोकों की स्थिति बनी रहती है।।८७-९०।।

मानुष्यं हि स्मृताकारं सभाग्योऽस्माद्विमुच्यते। पशवः पक्षिणः कीटाः कृमयश्च यथासुखम्।
अबद्धा विहरन्त्येते योनिरेषां सुदुर्लभा। निश्चिन्ताःस्थावराह्येतेसौख्यमेषांमहद्भुवि॥९१॥
बहुनाकिंमनुष्येभ्यःसर्वोधन्योऽन्ययोनिजः। स्वभावमेवजानीहिपुण्यापुण्यादिकल्पना॥९२॥
यदेकेस्थावराःकीटाःपतङ्गामानुषादिकाः। तस्मान्मिथ्यापरित्यज्यनन्दभद्रयथासुखम्॥९३॥
पिब क्रीडनकैः सार्धं भोगान्सत्यमिदं भुवि॥९४॥

मनुष्य हेतु पूर्वस्मृति अतीव दुःखदायी है। भाग्यवान् ही इस मनुष्यत्व से छुटकारा पाता है। पशु-पक्षी-कृमि-कीटादि प्राणी अबाधित रूप से विहार करते रहते हैं। यह सब योनि अतीव दुर्लभ है। स्थावर समूह सदा निश्चिन्त रहते हैं। भूतल पर उनको महासुख है। किम्बहुना, मनुष्य को छोड़कर सभी जीव-प्राणी अतीव सुखी हैं। फलस्वरूप जो पाप-पुण्य कल्पना है तथा जो कोई जंगम, कोई पतंग, कोई मनुष्यरूपेण जन्म लेता है—यह सब स्वाभाविक रूप से ही घटित होता है। हे नन्दभद्र! तुम इन मिथ्या विषयों में से आस्था त्यागो। यथा सुख पान तथा आहार करके जीवनयापन करो। यही पृथिवी का सार तथा सत्य है।।९१-९४।।

नारद उवाच

इत्येतैरसुखैर्वाक्यैरयुक्तैरसमञ्जसैः॥९५॥
सत्यव्रतस्य नाकम्पन्नन्दभद्रो महामनाः। प्रहसन्निव तं प्राह स्वक्षोभ्यः सागरो यथा॥९६॥
यद्भवानाहधर्मिष्ठाः सदादुखस्यभागिनः। तन्मिथ्यादुःखजालानिपश्यामः पापिनामपि॥९७॥
वधबन्धपरिक्लेशाः पुत्रदारादि पञ्चता। पापिनामपि दृश्यन्ते तस्माद्धर्मो गुरुर्मतः॥९८॥

अयं साधुरहो कष्टं कष्टमस्य महाजनाः। साधोर्वदन्त्येतदपि पापिनांदुर्लभंत्विदम्॥९९॥
दारादिद्रव्यलोभार्थं विशतः पापिनो गृहे। भवानपिबिभेत्यस्माद्द्वेष्टिकुप्यतितद्वृथा॥१००॥

नारद कहते हैं—महामना नन्दभद्र सत्यव्रत की इन सब असाधुजनोचित असंगत बातों से तनिक भी विचलित नहीं हो सके। तथापि उन्होंने अक्षुब्ध सागर की तरह सहास्य कहा—"हे सत्यव्रत! तुमने जो कहा कि धार्मिक जन सदा दुःखभागी होते हैं, यह मिथ्या है। पापीगण को ही नाना दुःख होते हैं। देखता हूं कि पापी ही वध बन्धनादि का क्लेशभोग करते हैं तथा स्त्री-पुत्रादि विनाशजन्य दुःख प्राप्त करते हैं। अतः धर्म ही श्रेष्ठ है। साधुजन को कोई क्लेश होने पर महाजन कहते हैं—"अहो! यह साधु है। इसे ऐसा क्लेश हो गया।" पापीगण के लिए ऐसी उक्ति दुर्लभ है। किसी पापी के गृह में प्रवेश करते ही यह भय तुम्हारे मन में भी होगा कि यह व्यक्ति धन-पत्नी आदि का हरण न कर ले! परन्तु एक साधु व्यक्ति के प्रवेश पर ऐसा भय नहीं होगा। इसलिए तुम्हारा जो द्वेष साधुगण के प्रति है तथा उनके प्रति तुम जो कोप कर रहे हो, वह सब व्यर्थ है।।९५-१००।।

यथाऽस्यजगतोबूषे नास्तिहेतुर्महेश्वरः। तद्बालभाषितं तुभ्यं किं राजानंविनाप्रजाः॥१०१॥
यच्चब्रवीषि पाषाणंमिथ्यालिङ्गंसमर्चसि। तद्भवाँल्लिङ्गमाहात्म्यंवेत्तिनान्धोयथारविम्॥१०२॥
ब्रह्मादयः सुराः सर्वे राजानश्च महर्धिकाः। मानवा मुनयश्चैव सर्वे लिङ्गं यजन्ति च॥१०३॥
स्वनामकानिचिह्नानितेषांलिङ्गानिसन्तिच। एतेकिंत्वभवन्मूर्खास्त्वंतुसत्यव्रतःसुधीः॥१०४॥
प्रतिष्ठाप्य पुरा ब्रह्मा पुष्करे नीललोहितम्। प्राप्तवान्परमां सिद्धिं संसर्जेमाः प्रजाः प्रभुः॥१०५॥
विष्णुनाऽपि निहत्याऽजौ रावणं पयसांनिधेः। तीरे रामेश्वरं लिङ्गं स्थापिताऽस्ति किं मुधा॥१०६॥
वृत्रं हत्वा पुरा शक्रोमहेन्द्रेस्थाप्यशङ्करम्। लिङ्गंविमुक्तपापोऽथत्रिदिवेऽद्यापिमोदते॥१०७॥

तुमने जो यह कहा कि जगत् के लिए कोई महेश्वर नहीं है, यह तो बालकों की भाषा है। क्या राजा बिना प्रजा रहती है? और जो तुमने यह कहा कि मैं वृथा पाषाण लिंग की अर्चना करता हूं, इस कथन का कारण यह है कि जैसे अन्धा सूर्य को नहीं जानता, वैसे ही तुम लिंग महिमा नहीं जानते। ब्रह्मादि देवता, महान् ऐश्वर्य वाले राजा, मुनि तथा मानव सभी लिंगार्चन करते हैं। उनके अपने-अपने नामों के अनुसार चिह्नित विभिन्न लिंग भी हैं। तब क्या वे सभी मूर्ख थे और केवल तुम सत्यव्रत ही बुद्धिमान जन्मे हो! प्रभु ब्रह्मा ने पहले पुष्कर क्षेत्र में नीललोहित लिंग की प्रतिष्ठा की थी। उसके फल से उन्होंने परम सिद्धि प्राप्त किया। तदनन्तर वे प्रजा सृष्टि कर सके। विष्णु ने भी रणक्षेत्र में रावण वध करके सागर तट पर रामेश्वर लिंग प्रतिष्ठित किया था। वह लिंग है, क्या यह बात भी मिथ्या है? इन्द्र ने वृत्रवध के उपरान्त महेन्द्र पर्वत पर शंकर के लिंग को प्रतिष्ठित किया था, इससे वे ब्रह्महत्या दोष से निवृत्त हो गये तथा आज भी स्वर्ग में विहार कर रहे हैं।।१०१-१०७।।

स्थापयित्वा शिवंसूर्योगङ्गासागरसङ्गमे। निरामयोऽभूत्सोमश्च प्रभासेपश्चिमोदधौ॥१०८॥
काश्यां यमश्च धनदः सह्ये गरुडकश्यपौ। नैमिषेवायुवरुणौस्थाप्यलिङ्गं प्रमोदिताः॥१०९॥
अस्मिन्नेव स्तम्भतीर्थेकुमारेशं गुहो विभुः। लिङ्गंसंस्थापयामाससर्वपापहरं न किम्॥११०॥

सूर्य ने गंगासागर संगम पर लिंग स्थापना किया तथा निरामय हो गये। चन्द्र ने भी पश्चिम सागर तट पर प्रभास क्षेत्र में लिंग प्रतिष्ठित किया। इससे वे रोगहीन हो गये। यम तथा कुबेर ने काशी में, गरुड़ तथा केशव ने

सह्य पर्वत पर तथा वायु एवं वरुण ने नैमिष क्षेत्र में लिंग स्थापना किया तथा सुखी हो गये। विभु स्कन्द कुमार ने स्तम्ब तीर्थ में कुमारेश नामक लिंग प्रतिष्ठा की थी। यह सर्वपापहारी लिंग है।।१०८-११०।।

एवमन्यैः सुरैर्यानि पार्थिवैर्मुनिभिस्तथा। संस्थापितानिलिङ्गानितन्नसंख्यातुमुत्सहे।।१११।।
पृथिवीवासिनः सर्वे ये च स्वर्ग निवासिनः। पातालवासिनस्तृप्ताजायन्तेलिङ्गपूजया।।११२।।
यच्च ब्रवीषि गीर्वाणा न सन्ति सन्ति चेत्कुतः।
कुत्राऽपि नैव दृश्यते तेन मे विस्मयो महान्।।११३।।
रङ्कवत्किंस्मतेदेवायाचतांत्वांकुलत्थवत्। यमिच्छसि महाप्राज्ञ! साधकोहिगुरुस्तव।।११४।।
स्वभावान्नैवसर्वार्थाः संसिद्धा यदि ते मते। भोजनादिकथंसिध्येद्बदकर्तारमन्तरा।।११५।।
बदरीमन्तरेणाऽपिदृस्यन्तेकण्टकानहि। तस्मात्कस्यास्ति निर्माणंयस्ययावत्तथैवतत्।।११६।।

इसी प्रकार अन्य देवता, राजा तथा मुनिगण ने जो सब लिंग प्रतिष्ठित किया, उसकी संख्या नहीं की जा सकती। पृथिवीवासी, स्वर्गवासी तथा पातालवासी—सभी ने लिंगपूजा द्वारा सन्तोष लाभ किया। तुम जो यह कहते हो कि "देवता नहीं हैं, यदि होते हैं तब वे दिखलाई क्यों नहीं पड़ते?" इससे मुझे अत्यन्त विस्मय हो रहा है। जैसे दरिद्र कुलत्थ फल आकर मांगता है, क्या वैसे देवता आकर यहां याचना करेंगे? हे महाप्राज्ञ! तुम जो प्रार्थना करोगे, तुम्हारे गुरु उसका साधन तुम्हारे लिये कर देंगे। अन्यथा स्वभावतः ही सब प्रयोजन सिद्ध होता हो, ऐसा नहीं है। तथापि यदि यह कहो कि स्वभाव से ही सर्वार्थ सिद्ध होता है, तब विचार करो कि यदि कोई बनाने वाला नहीं होता, तब भोजनादि कैसे पाक होता? बदरी वृक्ष के कांटे उसी पर होते हैं। अतः उसका निर्माण अवश्य किसी ने किया है। अतः जिसकी जैसे निर्माण की रीति है, वह वैसे ही निर्मित होता है।।१११-११६।।

यच्च ब्रवीषि पश्वाद्याः सुखिनो धन्यकास्त्वमी।
त्वदृते नेदमुक्तंच केनापि श्रुतमेव वा।।११७।।
तामसाविकलायेचकष्टंतेषांचश्लाघ्यताम्। सर्वेन्द्रिययुताःश्रेष्ठाःकुतोधन्यानमानुषाः।।११८।।
सत्यं तव व्रतं मन्येनरकायत्वयाऽऽदृतम्। अत्यनर्थेनभीःकार्याकामोऽयंभविताचिरात्।।११९।।
आदावाडम्बरेणैव ध्रुवतोऽज्ञानमेव मे।
इत्थं निःसारता व्यक्तमादावाडम्बरात्तु यत्।।१२०।।
मायाविनां हि ब्रुवतां वाक्यं चाडम्बरावृतम्। कुनाणकमिवोद्दीप्तंपरीक्षेयंसदासताम्।।१२१।।
आदौ मध्ये तथा चाऽन्ते येषां वाक्यमदोषवत्।
कषदाहैः स्वर्णमिव च्छेदेऽपि स्याच्छुभं शुभम्।।१२२।।

और जो तुमने यह कहा कि पशु-पक्षी आदि सुखी हैं तथा वे ही धन्य हैं, ऐसा तुम्हारे अतिरिक्त किसी ने ीं कहा। ऐसा सुना भी नहीं गया। जो तामस एवं विकल हैं, उन पशु-पक्षी आदि के जीवन में जो दुःख है, यदि ' श्लाघनीय (प्रशंसनीय) है, तब सर्वेन्द्रियधारी मनुष्य क्यों धन्य नहीं है? मुझे तो यह लगता है कि तुमने नरक ्त के लिए इस व्रत का अवलम्बन किया है। जो भी हो, तुम तो महान् अनर्थ का कोई भय नहीं कर रहे हो।

तुम्हारी (नरक गमन की) अभिलाषा शीघ्र सिद्ध होगी। तुमने महान् आडम्बर के साथ मेरी (तथाकथित) अज्ञानता का उल्लेख किया। अब तुम्हारा समस्त कथन निःसार लग रहा है। विशेष आडम्बर के कारण तुम्हारा जो परिणाम होना है, वह मुझे ज्ञात हो रहा है। मायावी व्यक्ति प्रारम्भ में आडम्बर द्वारा जो वाक् विन्यास करते हैं, साधु को चाहिये कि उसे विचार की कसौटी पर कस के परीक्षा करें, जैसे स्वर्णकार कसौटी पर स्वर्ण परीक्षण करता है। वही शुभ कार्य है।।११७-१२२।।

त्वयाऽन्यथाप्रतिज्ञातमुक्तंचैवाऽन्यथापुनः। त्वद्दोषोनाऽयमस्माकंतद्वचःशृणुमो हिये॥१२३॥
नास्तिकानाञ्चसर्पाणांविषस्य च गुणस्त्वयम्। मोहयन्ति परंयच्चदोषोनैषपरस्यतु॥१२४॥
आपो वस्त्रं तिलास्तैलं गन्धो वा स यथा तथा।
पुष्पाणामधिवासेन तथा संसर्गजा गुणाः॥१२५॥

तुमने जो यह कहा तथा प्रतिज्ञा किया, इसमें तुम्हारा दोष नहीं है। परन्तु मैंने जो वह सब सुना, इसमें मेरा दोष है। नास्तिक, सर्प तथा विष का गुण यह है कि ये जनगण को मोहित करते हैं। इसलिए वे दोषी नहीं हैं।-सुनने वाले दोषी हैं। जल, वस्त्र, तिल, तैल भी गन्धद्रव्य पुष्पादि के संसर्ग से वह सुगन्धिगुण धारण करते हैं। फलतः संसर्ग ही गुणोत्पत्ति का कारण है। इहलोक में दिन प्रतिदिन मूढ़ों का संसर्ग करने पर मूढ़ता का अवश्य जन्म होता है। साधु-संग करने पर अवश्य धर्मलाभ होगा, तभी प्राज्ञ वृद्ध का, शुद्ध भाव वाले तपस्वी का तथा सज्जन के साथ संसर्ग करना शमयुक्त व्यक्ति का कर्त्तव्य है।।१२३-१२५।।

मोहजालस्य यो योनिर्मूढैरिह समागमः। अहन्यहनि धर्मस्य योनिः साधुसमागमः॥१२६॥
तस्मात्प्राज्ञैश्च वृद्धैश्च शुद्धभावैस्तपस्विभिः। सद्भिश्च सह संसर्गः कार्यः शमपरायणैः॥१२७॥
न नीचैर्नाप्यविद्वद्भिर्नानात्मज्ञैर्विशेषतः। येषां त्रीण्यवदातानि योनिर्विद्या च कर्म च॥१२८॥
तांश्चसेवेद्विशेषेण शास्त्रं येषां हि विद्यते। असतां दर्शनस्पर्शसञ्जल्पासनभोजनैः॥१२९॥
धर्माचारात्प्रहीयन्ते नच सिध्यन्ति मानवाः। बुद्धिश्चहीयते पुंसांनीचैःसहसमागमात्॥१३०॥
मध्यैश्च मध्यतां याति श्रेष्ठतां याति चोत्तमैः। इति धर्मं स्मरन्नाहं सङ्गमार्थीपुनस्तव।
यन्निन्दसि द्विजानेव यैरपेयोऽर्णवः कृतः॥१३१॥

विशेषतः जिनकी विद्या-योनि तथा कर्म विशुद्ध है, वे सभी शास्त्रतत्ववेत्ता इस लोक में संसर्ग हेतु श्रेयस्कर हैं। नीच, अनायज्ञ, अथवा अविद्वान् के साथ संसर्ग कर्त्तव्य नहीं है। असज्जन के साथ दर्शन, स्पर्शन, वार्त्तालाप, एक पात्र में भोजन अथवा एक साथ भोजन करने पर मानव का धर्माचार भ्रष्ट हो जाता है। उसे कोई सिद्धिलाभ नहीं होता। वह कदापि सिद्धिलाभ नहीं कर सकता। बुद्धि में हीन जनों के साथ संसर्ग से हीनता आती है। मध्यम श्रेणी के लोगों के साथ संसर्ग करने पर मध्यम भाव लाभ होता है। श्रेष्ठ जनों के साथ संसर्ग के कारण उत्कर्ष होता है। मैं यह सब धर्मविधान जानकर अब तुम्हारे साथ संसर्ग की इच्छा नहीं कर रहा हूं। जो सागर तक को सोख जाते हैं, तुम ऐसे ब्राह्मणों की निन्दा करते हो?।।१२६-१३१।।

वेदाः प्रमाणं स्मृतयः प्रमाणं धर्मार्थयुक्तं वचनं प्रमाणम्।
नैत्त्रवयं यस्य भवेत्प्रमाणं कस्तस्य कुर्याद्वचनं प्रमाणम्॥१३२॥

इतीरयित्वा वचनं महात्मा स नन्दभद्रः सहसा तदैव।
गृहाद्विनिःसृत्य जगाम पुण्यं बहूदकं भट्टरवेस्तु कुण्डम्॥१३३॥

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कपिलेश्वरतीर्थमाहात्म्ये नन्दभद्रवणिग्वृत्तान्तवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः।।४५।।

"वेद प्रमाण हैं, श्रुति एवं धर्मार्थ युक्त वाक्य प्रमाण हैं, परन्तु जो इन तीनों को प्रमाण नहीं मानता, उसके वाक्य को कौन प्रमाण मानेगा?" महात्मा नन्दभद्र ने यह कहा तथा सहसा घर से बाहर निकले और उन्होंने भट्टादित्य के बहूदक नामक कुण्ड की यात्रा किया।।१३२-१३३।।

।।पञ्चचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

नन्दभद्र संशय समाधान, बाल-नन्दभद्र संवाद, बाल का पूर्वजन्म वृत्तान्त, बहूदक तीर्थ महिमा

नारद उवाच

बहूदकस्य कुण्डस्य तीरस्थं लिङ्गमुत्तमम्। कपिलेश्वरमभ्यर्च्य नन्दभद्रस्ततः सुधीः॥१॥
प्रणम्य चाऽग्रतस्तस्थौ प्रबद्धकरसम्पुटः। संसारचरितैःकिञ्चिद्दुःखी गाथांव्यगायत॥२॥
स्त्रष्टारमस्य जगतश्चेत्पश्यामिसदाशिवम्। नानापृच्छाभिरथ तं कुर्यान्नाथंविलज्जितम्॥३॥
अपूर्यमाणं तव किं जगत्संसृजनंविना। निरीह बहुधा यत्ते सृष्टं भार्गववज्जगत्॥४॥
सचेतनेन शुद्धेन रागादिरहितेन च। अथ कस्मादात्मसदृसं न सृष्टं निर्मितं जडम्॥५॥
निवैरेण समेनाऽथ सुखदुःखभवाभवैः। ब्रह्मादिकीटपर्यन्तं किमेवं क्लिश्यते जगत्॥६॥
कांश्चित्स्वर्गेऽथ नरके पातयंस्त्वं सदाशिव!। किं फलं समवाप्नोषि किमेवं कुरुषे वद॥७॥

नारद कहते हैं—तदनन्तर धीमान् नन्दभद्र ने बहूदक कुण्ड के तीर पर कपिलेश्वर नामक उत्तम लिंग की अर्चना किया तथा वहां प्रणाम करके कृताञ्जलिबद्ध होकर खड़े हो गये तथा किंचित दुःखित होकर वहां गाथा का गान करने लगे—मैं यदि जगत् के स्त्रष्टा सदाशिव का दर्शन पा सकूं, तब मेरे नाना प्रश्न प्रभु को अवश्य लज्जित करेंगे। हे विभु! यदि आप सृष्टि न करते, तब क्या यह जगत् पूर्ण रहता? आपने तो भार्गव की तरह निरीह होकर भी नाना आकार की सृष्टि किया है। आप तो वैररहित तथा सबके प्रति सम हैं। तब ब्रह्मा से कीट पर्यन्त प्राणी सुख-

दुःख स्थिति संहारादि द्वारा क्यों कष्ट पा रहे हैं? आप सचेतन, शुद्ध, रागादिरहित हैं, तब आपने अपने जैसा जगत् क्यों नहीं सृष्ट किया? आपने इसे जड़ जगत् क्यों बनाया? हे सदाशिव! आप किसी को स्वर्ग में तो किसी को नरक में भेजते हैं। इससे आपको क्या मिल जाता है? ऐसा क्यों करते हैं? कहें!।।१-७।।

इष्टैः पुत्रादिभिर्नाथवियुक्तामानवा ह्यमी। क्रन्दन्ति करुणासार किं घृणाऽपिभवेन्नते॥८॥
अतीव नोचितं सर्वमेतदीश्वर! सर्वथा। यत्ते भक्ताः समं पापैर्मज्जन्ते दुःखसागरे॥९॥
एवम्विधेन संसारचारित्रेण विमोहिताः। स्थानान्तरं न यास्यामि भोक्ष्ये पास्यामि नोदकम्॥१०॥
मरणान्तमेव यास्यामिस्थास्येसञ्चिन्तयन्नदः। सएवं विमृशन्नेवनन्दभद्रःस्वयंस्थितः॥११॥

हे करुणासार! मानव कितना क्रन्दन करता है, क्या यह देखकर आपमें दया नहीं होती? हे ईश्वर! आपके भक्तगण जो पापीगण को देखकर उनकी ही तरह तुल्यभाव से इस प्रकार का संसार-व्यवहार देखते हुये मोहित होते तथा दुःखी होते हैं, यह तो नितान्त अनुचित है। जो भी हो, मैं अन्यत्र न जाकर पान-भोजन किये बिना यहीं मरूंगा। नन्दभद्र ने यही निश्चय किया तथा वहीं स्थित हो गये।।८-११।।

ततश्चतुर्थे दिवसे बहूदकतटे शुभे। कश्चिद्बालः सप्तवर्षः पीडापीडित आययौ॥१२॥
कृशोऽतीव गलत्कुष्ठी प्रमुह्यंश्च पदे पदे। नन्दभद्रमुवाचेदं कृच्छ्रात्संस्तभ्य बालकः॥१३॥
अहो सुरूपसर्वाङ्ग! कस्माद्दुःखी भवानपि। ततोऽस्य कारणं सर्वंव्याचष्टनन्दभद्रकः॥१४॥
श्रुत्वा तत्कारणं सर्वे बालो दीनमनाब्रवीत्। अहो हा कष्टमत्युग्रंबुधानांयदबुद्धिता॥१५॥
सम्पूर्णेन्द्रियगात्रायन्मर्तुमिच्छन्तिवै वृथा। मुहूर्तादध्यत्रखट्वाङ्गोमोक्षमार्गमुपागतः॥१६॥
तदहो भारतं खण्डं सत्यायुषि त्यजेद्धि कः। अहमेव दृढोमन्येपितृभ्यां यो विवर्जितः॥१७॥
अशक्तश्चलितुंवाऽपि मर्तुमिच्छामिनापिच। सर्वेलाभाःसातिमानाइतिसत्याबतश्रुतिः॥१८॥
सन्तोषोऽप्युचितस्तुभ्यं देहं यस्य दृढन्त्विदम्। शरीरं नीरुजं चेन्मे भवेदपिकथञ्चन॥१९॥
क्षणे क्षणे च तत्कुर्यां भुज्यते यद्युगेयुगे। इन्द्रियाणि वशे यस्य शरीरञ्च दृढं भवेत्॥२०॥
सोऽप्यन्यदिच्छते चेच्च कोऽन्यस्तस्मादचेतनः। शोकस्थानसहस्राणि हर्षस्थानशतानि च॥२१॥

इसके चौथे दिन उस बहूदक के शुभ तट पर एक सप्तवर्षीय अतीव कृश बालक आया। जो अनेक पीड़ा से पीड़ित था। वह गलित् कुष्ठ से पीड़ित था। प्रत्येक पग पर चलते हुये लड़खड़ाता जा रहा था। उसने अत्यन्त कष्टपूर्वक अपने को संभालते हुये नन्दभद्र से कहा—"हे सर्वाङ्गसुन्दर! आपको दुःखी क्यों देख रहा हूं?" तब नन्दभद्र ने उसके प्रश्न करने पर अपना समस्त आत्मवृत्तान्त वर्णन किया। बालक ने यह सुनकर दीनता पूर्वक कहा—"अहा! बुद्धिमान की भी यह निर्बुद्धिता देखकर कष्ट हो रहा है। यह अत्यन्त दुःख की बात है कि सम्पूर्ण इन्द्रिययुक्त तथा सभी अंगों से भूषित लोग भी निरर्थक प्राण त्याग रहे हैं। इस भारत भूमि में खट्वाङ्ग राजा ने तो मुहूर्त्त मात्र में मोक्ष प्राप्त किया। अतः आयु रहते इस भारतभूमि का त्याग कौन करना चाहेगा? मैं तो पिता-माता रहित तथा चलने में भी अशक्त हूं। तथापि मैं दृढ़ता से स्थित हूं, मरना नहीं चाहता। श्रुति का वाक्य है कि अतिमान युक्त सब लाभ होते हैं। यह अत्यन्त सत्य वाक्य है। जब आपकी देह अत्यन्त दृढ़ है, तब आपके लिए सन्तोष का अवलम्बन नितान्त उचित है। यदि मेरा शरीर निरोग होता, तब मैं क्षण-क्षण ऐसे कार्य करता, जिससे

युग-युगान्त तक भोग प्राप्त होता। जिसकी सभी इन्द्रियां वश में हैं तथा शरीर भी दृढ़ है, यदि वह देहान्तर की कामना करे (मृत्यु कामना करे) तब उसकी अपेक्षा अचेतन कौन है? शोक स्थान हजारों हैं, हर्ष स्थान तो सैकड़ों हैं''।।१२-२१।।

दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्। न हि ज्ञानविरुद्धेषु बह्वपायेषु कर्मसु॥२२॥
मूलघातिषु सज्जन्तेबुद्धिमन्तोभवद्विधाः। अष्टाङ्गां बुद्धिमाहुर्यांसर्वाश्रेयोविघातिनीम्॥२३॥
श्रुतिस्मृत्यविरुद्धासाबुद्धिस्त्वय्यस्तिनिर्मला। अथकृच्छ्रेषुदुर्गेषुव्यापत्सुस्वजनस्यच॥२४॥
शरीरमानसैर्दुःखैर्नसीदन्तिभवद्विधाः। नाप्राप्यमभिवाञ्छन्तिनष्टंनेच्छन्तिशोचितुम्॥२५॥
आपत्सुच न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः। मनोदेहसमुत्थाभ्यांदुःखाभ्यामर्पितंजगत्॥२६॥
तयोर्व्यासससमासाभ्यांशमोपायमिमं शृणु। व्याधेरनिष्टसंस्पर्शाच्छ्रमादिष्टविसर्जनात्॥२७॥
चतुर्भिः कारणैर्दुःखं शरीरंमानसञ्च यत्। मानसं चाऽप्यप्रियस्य संयोगःप्रियवर्जनम्॥२८॥
द्विप्रकारं महाकष्टं द्वयोरेतदुदाहृतम्। मानसेन हि दुःखेन शरीरमुपतप्यते॥२९॥
अयःपिण्डेन तप्तेन कुम्भसंस्थमिवोदकम्। तदाशु प्रतिकाराच्च सततञ्च विवर्जनात्॥३०॥
व्याधेराधेश्च प्रशमः क्रियायोगद्वयेन तु। मानसंशमयेत्तस्माज्ज्ञानेनाग्निमिवाऽम्बुना॥३१॥

ये सभी मूढ़ को ही आक्रान्त करते हैं, परन्तु पण्डित इनके द्वारा आक्रान्त नहीं होता। आपके समान बुद्धिमान् व्यक्ति ज्ञान विरोधी अनेक विपदाकुल मूलच्छेदी कर्मों से कभी आसक्त नहीं होता। जिसे समस्त अशुभघातिनी कहा जाता है, आपके पास वही अष्टांगवती श्रुति-स्मृति सम्मता निर्मल बुद्धि है। आपके समान व्यक्ति कष्टप्रद स्वजन वियोगादि कठोर मानस-व्यापी दुःखों से अभिभूत नहीं होते। पण्डित बुद्धि मनुष्य अप्राप्य की कामना किंवा नष्ट का शोक नहीं करते। वे आपदा से भी मोहग्रस्त नहीं होते। यह जगत् मानसिक तथा दैहिक दुःखों से समाक्रान्त है। इस दुःख को प्रशमित करने (शान्त करने) हेतु कुछ संक्षेप में तथा कुछ विस्तार में कहता हूं। आप सुनें। व्याधि, अनिष्ट-संसर्ग, श्रम, इष्टवियोग से दैहिक दुःख की उत्पत्ति होती है। अप्रिय संयोग, प्रिय वियोग मानसिक दुःख है। जैसे उत्तप्त लौह पिण्ड घट में छोड़ने से वह जल तप्त हो जाता है, उसी प्रकार से मानस दुःख से शरीर उत्तप्त होता है। आधि-व्याधि का प्रतिकार तथा उनकी चिन्ता से मुक्त होने के लिये क्रियायोग ही उचित है। जैसे जल से अग्नि शान्त होती है, उसी प्रकार ज्ञान से मानस विकार का प्रशमन होता है।।२२-३१।।

प्रशान्ते मानसे ह्यस्य शारीरमुपशाम्यति। मनसो दुःखमूलन्तु स्नेह इत्युपलभ्यते॥३२॥
स्नेहाच्च सज्जनो नित्यं जन्तुर्दुःखमुपैतिच। स्नेहमूलानि दुःखानिस्नेहजानिभयानिच॥३३॥
शोकहर्षौ तथाऽऽयासः सर्वं स्नेहात्प्रवर्तते॥३४॥

मानस प्रशान्त होते ही शारीर दुःख स्वयं प्रशान्त हो जाता है। स्नेह ही मानसिक दुःख का मूल है। साधुजन स्नेह के ही कारण नियत क्लेशभोग करते हैं। दुःखमात्र ही स्नेहमूलक है। भय भी स्नेह से उत्पन्न होता है। शोकाहर्ष, प्रयास आदि सभी का जन्म स्नेहजनित ही है।।३२-३४।।

स्नेहात्करणरागश्च प्रजज्ञे वैषयस्तथा। अश्रेयस्कावुभावेतौ पूर्वस्तत्र गुरुः स्मृतः॥३५॥
त्यागी तस्मान्न दुःखी स्यान्निर्वैरोनिरवग्रहः। अत्यागी जन्ममरणेप्राप्नोतीहपुनःपुनः॥३६॥

तस्मात्स्नेहं न लिप्सेत मित्रेभ्यो धनसञ्चयात्। स्वशरीरसमुत्थञ्चज्ञानेनविनिवर्तयेत्।।३७।।
ज्ञानान्वितेषु सिद्धेषु शास्त्रज्ञेषु कृतात्मसु। न तेषु सज्जते स्नेहः पद्मपत्रेष्विवोदकम्।।३८।।
रागाभिभूतः पुरुषः कामेन परिकृष्यते। इच्छा सञ्जायते चाऽस्य ततस्तृष्णा प्रवर्धते।।३९।।

स्नेह के ही कारण इन्द्रियभोग्य विषयों में अनुराग की उत्पत्ति होती है। यह दोनों अत्यन्त अश्रेयस्कर हैं। इनमें भी स्नेह ही प्रधान है। अतः त्यागी व्यक्ति वैरहीन होता है तथा कभी दुःख नहीं पाता। अत्यागी मानव पुनः-पुनः जन्ममरण को प्राप्त होता है। इसलिए मित्र से भी स्नेह कामना न करे, किंवा धन-सम्पत्ति से भी स्नेह न करे। अपने शरीर के प्रति जो स्नेह है, उसे भी ज्ञान से निवारित करे। पद्मपत्र जैसे जल से लिप्त नहीं होता, ज्ञानवान् सिद्ध शास्त्रज्ञ संयतात्मा व्यक्ति भी स्नेह लिप्त नहीं होते। अनुराग से अभिभूत व्यक्ति काम द्वारा आकृष्ट होते हैं। तब उनकी विषयभोगार्थ इच्छा होती है। तदनन्तर कालान्तर में यह इच्छा और भी वर्द्धित होती है।।३५-३९।।

तृष्णा हि सर्वपापिष्ठा नित्योद्वेगकरी मता। अधर्मबहुला चैव घोररूपानुबन्धिनी।।४०।।
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः।
याऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम्।।४१।।
अनाद्यन्ता तु सा तृष्णाऽह्यन्तर्देहगतानृणाम्। विनाशयतिसम्भूतालोहंलोहमलोयथा।।४२।।
यतैवैधः समुत्थेन वह्निनानाशमृच्छति। तथाऽकृतात्मा लोभेन स्वोत्पन्नेनविनश्यति।।४३।।
तस्माल्लोभोन कर्तव्यः शरीरेचात्मबन्धुषु। प्राप्तेषुवा न हृष्येतनाशेवाऽपिन शोचयेत्।।४४।।

तृष्णा ही सर्वपाप का घर है। यह उद्वेगकारी, अधर्म साधन करने वाली तथा घोर रूप से संसार में आबद्ध करने वाली है। दुर्मति वाले लोगों के लिए जिसका त्याग अतीव कठिन है, देह जीर्ण होने पर भी जो जीर्ण नहीं होती, जो रोग प्राणान्त में भी विद्यमान रहता है, उस तृष्णा का त्याग करने से सुखलाभ होता है। तृष्णा का आदि-अन्त नहीं है। वह मनुष्य देह में स्थित रहती है। जैसे लोहे की मुर्चा लोहे का नाश करती है, उसी प्रकार से तृष्णा मनुष्य में प्रादुर्भूत होकर उसका नाश कर देती है। इस तृष्णा का न तो आदि है, न अन्त ही है। जैसे काठ अपने ही उत्पन्न अग्नि द्वारा दग्ध होता है, वैसे ही अजितेन्द्रिय मनुष्य अपने में ही उत्पन्न लोभ से नष्ट हो जाता है। इसलिए शरीर किंवा बन्धु-बान्धवों से स्नेह कर्त्तव्य नहीं है। इष्ट प्राप्ति से हर्षित तथा इष्टनाश से दुःखित भी नहीं होना चाहिये।।४०-४४।।

नन्दभद्र उवाच

अहो बाल! न बालस्त्वं मतो मे त्वां नमाम्यहम्।
त्वद्वाक्यैरतितृप्तोऽहं त्वां तु प्रक्ष्यामि किञ्चन।।४५।।
कामक्रोधावहङ्कारमिन्द्रियाणि च मानवाः। निन्दन्ति तत्र में नित्यं विवक्षेयंप्रजायते।।४६।।
अहमेष ममेदश्च कार्यमीदृशकस्त्वहम्। इत्यादि चात्मविज्ञानमहङ्कार इति स्मृतः।।४७।।
परिहार्यः स चेत्तञ्च विनोन्मत्तःप्रकीर्त्यते। कामोऽभिलाषइत्युक्तःसचेत्पुंसाविवर्ज्यते।।४८।।
कथं स्वर्गोमुमुक्षा वासाध्यतेदृषदायथा। क्रोधोवायदिसन्त्याज्यस्ततःशत्रुक्षयःकथम्।।४९।।

बाह्यानामान्तराणांवा विना तं तृणवद्विदुः। इन्द्रियाणिनिगृह्यैवदुष्टानीतिनिपीडयेत्॥५०॥
कथं स्यांद्धर्मश्रवणं कथं वा जीवनं भवेत्। एतस्मिन्मेमनो विद्धंखिद्यतेऽज्ञानसङ्कटे॥५१॥
तथा कस्मादिदं सृष्टं जडं विश्वं चिदात्मना। एवं यद्बहुधा क्लेशैः पीड्यते हा कुतस्त्विदम्॥५२॥

नन्दभद्र कहते हैं—हे बालक! मैं नमस्कार करता हूं। मेरे मत से तुम बालक नहीं हो। मैं तुम्हारे वाक्य से अत्यन्त तृप्त हो गया। अब तुमसे कुछ प्रश्न करता हूं। मानव काम-क्रोध-अहंकार तथा इन्द्रियों की निन्दा करते हैं। तथापि इस सम्बन्ध में मेरा कथन यह है कि मैं यह, यह मेरा इस प्रकार के आत्मभाव को ही अहंकार कहते हैं। अतः क्या यह मैं-मेरा का ज्ञान परिहार्य हो सकता है? काम को ही इच्छा भी कहते हैं। इच्छा का त्याग करके तो मनुष्य पाषाण होता है। अतः स्वर्ग एवं मोक्ष साधना कैसे हो? बाह्य अथवा आभ्यन्तर समस्त रिपुगण भी क्रोध न रहने पर मानव को तुच्छवत् तृणवत् कर देते हैं। यदि दुष्ट इन्द्रियों को निग्रह करके धर्मकार्य करना हो, तब धर्म साधन अथवा जीवन यापन अत्यन्त क्लेशकारी हो जाता है। इस अज्ञान संकट में पड़कर मेरा मन अतीव खिन्न हो रहा है। चिदात्मा ने इस जड़ जगत् की सृष्टि क्यों किया, ये सभी लोग जो ऐसे क्लेश से पीड़ित हो रहे हैं, ऐसा किसलिए हो रहा है?॥४५-५२॥

बाल उवाच

सम्यगेतद्यथा पृष्टं यत्र मुह्यन्ति जन्तवः। शृण्वेकाग्रमना भूत्वा ज्ञातं द्वैपायनान्मया॥५३॥
प्रकृतिः पुरुषश्चैव अनादी शृणुमः पुरा। साधर्म्येणाऽवतिष्ठेते सृष्टेः प्रागजरामरौ॥५४॥
ततः कालस्वभावाभ्यां प्रेरिता प्रकृतिः पुरा। पुंसः संयोगमैच्छत्सातदभावात्प्रकुप्यत॥५५॥
ततस्तमोमयी सा च लीलया देववीक्षिता। राजसीसमभूद्दुष्टासात्त्विकी समजायत॥५६॥
एवं त्रिगुणतां याता प्रकृतिर्देवदर्शनात्। तां समास्थाय परमस्त्रिमूर्तिः समजायत॥५७॥
तस्याः प्रोच्चारणार्थञ्च प्रवृत्तः स्वांशतस्ततः। असूयत महत्तत्त्वं त्रिगुणं तद्विदुर्बुधाः॥५८॥

बालक कहता है—यह सत्य है, आपने जो पूछा इस सम्बन्ध में प्राणी मुग्ध हो जाता है। मैंने यह तत्व कृष्ण द्वैपायन से जाना है। आप एकाग्रतापूर्वक श्रवण करें। मैंने सुना था कि प्रकृति तथा पुरुष अनादि हैं। सृष्टि के आदिकाल से वे साधर्म्य में स्थित हैं। वे अजर तथा अमर हैं। तदनन्तर काल तथा स्वभाव द्वारा प्रेरित होकर प्रकृति पुरुष के संयोग की कामना करती है। परन्तु तब तक पुरुष संयोग के अभाव के कारण वह क्रोधित हो जाती है। वह पुरुष के दर्शन मात्र से सत्वमयी, तमःमयी तथा रजोमयी रूप से त्रिविधात्मिका हो जाती है। पुरुष के वीक्षण के ही कारण प्रकृति देवी त्रिगुणमयी मूर्त्तित्रय धारण करती हैं। तब परमपुरुष भी उक्त प्रकृति के साथ ही त्रिगुणात्मक त्रयमूर्त्ति रूप हो जाते हैं। अब पुरुष के संसर्ग के कारण यह देवी प्रकृति अपने ही अंश से महत्तत्व को जन्म देती हैं। बुद्धिमान् तत्त्वविद् इसे त्रिगुणात्मक कहते हैं॥५३-५८॥

अहङ्कारस्ततो जातः सत्त्वराजसतामसः। तमो रजस्त्वमापद्य रजः सत्त्वगुणं नयेत्॥५९॥
शुद्धसत्त्वे ततो मोक्षं प्रवदन्ति मनीषिणः। तमसो रजसस्तस्मात्संशुद्ध्यर्थञ्च सर्वशः॥६०॥
जीवात्मसंज्ञान्स्वीयांशान्व्यभजत्परमेश्वरः। तावन्तस्ते च क्षेत्रज्ञा देवायावन्तएवहि॥६१॥
निःसरन्तियथालोहात्तप्तलिंगात्स्फुल्लिङ्गकाः। तन्मात्रभूतसर्गोऽयमहङ्कारात्तुतामसात्॥६२॥

इन्द्रियाणां सात्त्विकाच्च त्रिगुणानि च तान्यपि।
एतैः संसिद्धयन्त्रेण सच्चिदानन्दवीक्षणात्॥६३॥

महत्तत्व से सात्विक, राजस, तामस अहंकार का जन्म होता है। जब तमोगुण रजोगुण में स्थित होता है तथा रजोगुण सत्वस्थ हो जाता है, तब सत्वगुण की विशुद्धता हो जाने पर मोक्ष प्राप्ति होती है। यही मनीषीगण का कथन है। परमेश्वर ने उक्त तमोगुण तथा रजोगुण की शुद्धि हेतु जीवात्मा नामक अपने अंश की सृष्टि की है। जितने देह हैं, क्षेत्रज्ञ भी उतने ही हैं। जैसे तपे लोहे को पीटने पर उससे उसके ही समान चिनगारी निकलती है, क्षेत्रज्ञ भी तद्रूप जानना चाहिये। तामस अहंकार से पंचतन्मात्र तथा पञ्चमहाभूत प्रादुर्भूत होते हैं। सात्विक अहंकार से इन्द्रियों का जन्म होता है। यह भी त्रिगुणात्मक है।।५९-६३।।

रजस्तमश्च शोध्यन्ते सत्त्वेनैवमुमुक्षुभिः। तस्मात्कामञ्च क्रोधञ्चइन्द्रियाणांप्रवर्तनम्॥६४॥
अहङ्कारञ्च संसेव्य सात्त्विकीं सिद्धिमश्नुते। राजसास्तामसाश्चैव त्याज्याः कामादयस्त्वमी॥६५॥
सात्त्विकाःसर्वदासेव्याःसंसारविजिगीषुभिः। गुणत्रयस्यवक्ष्यामिसंक्षेपाल्लक्षणंतव॥६६॥
शास्त्राभ्यासस्ततो ज्ञानं शौचान्द्रियनिग्रहः। धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्त्विकं गुणलक्षणम्॥६७॥
अन्यायेन धनादानं तन्द्रीनास्तिक्यमेव च। क्रौर्यंच याचकाद्यं च तामसंगुणलक्षणम्॥६८॥
तस्माद्बुद्धिमुखैस्त्वेतैःसात्त्विकैर्देवतां भजेत्। राजसैर्मानवत्वं च तामसैः स्थाणुयोनिता॥६९॥
बुद्ध्याद्यैरेव मुक्तिः स्यादेतैरेव च यातना॥७०॥
अमीषां चाप्यभावे वै न किञ्चिदुपपद्यते। कलादो हि कलादीनां सुवर्णंशोधयेद्यथा॥७१॥
तथा रजस्तमश्चैवसंशोध्ये सात्त्विकैर्गुणैः। अस्मादेव गुणानाञ्चसमवायदनादिजात्॥७२॥
सुखिनो दुःखिनश्चैव प्राणिनः शास्त्रदर्शिनः। अष्टाविंशतिलक्षैश्च गुणमेकैकमीश्वरः॥७३॥

मुमुक्षुगण सच्चिदानन्द का साक्षात्कार करके रजः-तमः का शोधन सम्पादित करते हैं। इसीलिए सात्विक काम-क्रोध तथा इन्द्रिय व्यापार का अवलम्बन लेकर सात्विकी सिद्धि प्राप्त करते हैं। परन्तु संसार को जीतने की इच्छा करने के लिए राजस तथा तामस काम आदि सर्वथा त्याज्य है। अब आपसे संक्षेप में गुणत्रय का लक्षण कहता हूं। शास्त्र का अभ्यास, ज्ञानार्जन, पवित्रता, इन्द्रिय संयम, धर्मक्रिया तथा आत्मचिन्ता सभी सात्विक गुणों का लक्षण है। अन्यायपूर्वक धनार्जन, आलस्य, नास्तिकता, क्रूरता, याचकत्व तामस गुण हैं। बुद्धि तथा इन्द्रियों के सात्विक होने पर देवत्व, राजस होने पर मनुष्यत्व तथा तामस होने पर स्थावरत्व की प्राप्ति होती है। बुद्धि से मुक्ति भी प्राप्त होती है तथा नरक प्राप्ति भी होती है। इसके अभाव में कुछ भी नहीं हो सकता। जैसे सोनार स्वर्णशोधन करता है, उसी तरह से सात्विक गुण द्वारा रजः तथा तमः का शोधन करे। प्राणीगण अनादि पुरुष-प्रकृति द्वारा उत्पन्न इन-इन गुणों के समवाय से ही सुखी-दुःखी, मूर्ख-शास्त्रज्ञ होते हैं। ईश्वर ने इन तीन गुणों में से प्रत्येक को २८ लाख में विभक्त करके २८००००० × ३ = ८४००००० जीवयोनि का सृजन किया है।।६४-७३।।

व्यभजच्चतुराशीतिलक्षास्ता जीवयोनयः। सकाशान्मनसस्तद्वदात्मनः प्रभवन्ति हि॥७४॥
ईश्वरांशाश्च ते सर्वे मोहिताः प्राकृतैर्गुणैः। क्लेशानासादयन्त्येवयथैवाधिकृताविभोः॥७५॥
अन्नानांपयसांचापिजीवानांचाऽथश्रेयसे। मानुष्यमाहुस्तत्त्वज्ञाः शिवभावेनभावितम्॥७६॥

ये सभी जीव उन ईश्वर के अंश से ही सम्भूत हैं तथा ईश्वर के मन से ही प्रादुर्भूत हैं। तथापि वे सभी प्रकृत गुणों से मोहाच्छन्न हैं। तभी ईश्वर कृत अधिकार के अनुसार अन्न-पानादि विषयों में नाना क्लेश-भोग करना पड़ता है। तत्वज्ञों का कथन है कि उन सभी प्राणीगण में मनुष्य ही श्रेयसाधक है। वह तो शिवभाव से अनुप्राणित जो है।।७४-७६।।

नन्दभद्र उवाच

एवमेतत्किन्तु भूयः प्रक्ष्याम्येतन्महामते!। ईश्वराः सर्वदातारः पूज्यन्ते यैश्च देवताः।।७७।।
स्वभक्तांस्तान्न दुःखेभ्यः कस्माद्रक्षन्ति मानवान्।
विशेषात्केऽपि दृश्यन्ते दुःखमग्नाः सुरान्वताः।।७८।।
इति मे मुह्यते बुद्धिस्त्वं वा किं बाल! मन्यसे।।७९।।

नन्दभद्र कहते हैं—हे महामति! तुमने जो कहा, वह सत्य तो है, तथापि मैं एक बात पूछता हूं कि ऐश्वर्यवान् देवता सर्वाभीष्ट साधन करते हैं तथा लोग उनकी पूजा भी करते हैं, तब वे अपने-अपने भक्तों का दुःख से त्राण क्यों नहीं करते? विशेषतः देखा जाता है कि कोई-कोई व्यक्ति देवतारत है, तथापि वह दुःख में डूबा है। हे बालक! इस सम्बन्ध में तुम्हारा क्या मत है?।।७७-७९।।

बाल उवाच

अशुचिश्च शुचिश्चाऽपि देवभक्तोद्विधास्मृतः। कर्मणा मनसा वाचातद्रतोभक्तउच्यते।।८०।।
अशुचिर्देवताश्चैव यदा पूजयते नरः। तदा भूतान्याविशन्ति स च मुह्यति तत्क्षणात्।।८१।।
विमूढश्चाऽप्यकार्याणि तानि तानि निषेवते। ततोविनश्यतिक्षिप्रंनाशुचिः पूजयेत्ततः।
शुचिर्वाऽभ्यर्चयेद्यश्च तस्य चेदशुभं भवेत्।।८२।।
तस्य पूर्वकृतं व्यक्तं कर्मणां कोटि मुच्यते। महेश्वरो ब्रह्महत्याभवाद्यत्र ततस्ततः।।८३।।
सस्नौतीर्थेषु कस्माच्च इतरो मुच्यते कथम्। अम्बरीषसुतां हत्वा पर्वतान्नारदात्तथा।।८४।।
सीतापहारमापेदे रामोऽन्यो मुच्यते कथम्।
ब्रह्माऽपि शिरसश्छेदं कामयित्वा सुतामगात्।।८५।।

बालक कहता है—देवभक्त दो प्रकार के होते हैं। यथा—पवित्र एवं अपवित्र। कर्म-मन तथा वाक्य द्वारा देवासक्त व्यक्ति ही भक्त कहा जाता है। जब मानव अशुचि स्थिति में पूजा करता है, तब उसमें भूतावेश होता है। उससे वह तत्क्षण मुग्ध हो जाता है। विमूढ़ होते ही वह नाना अकार्य करता है। इस प्रकार उसका अविलम्ब नाश होता है। इसलिए अपवित्र अवस्था में देवपूजा नहीं की जाती। यदि शुद्ध व्यक्ति के देवपूजादि करने पर अशुभ घटित हो, तब वह पूर्वकृत दुष्कर्म का ही फलरूप है। इससे उसके दुष्कर्मों का क्षय होता है। महेश्वर को भी ब्रह्महत्या के कारण नाना तीर्थों में स्नान करने से ही त्राण मिल सका था। तब साधारण व्यक्ति कैसे कृतकर्म भोग किये बिना बच सकते हैं? भगवान् विष्णु ने नारद तथा पर्वत मुनि को धोखा देकर अम्बरीष राजा की कन्या का हरण किया था, तभी रामचन्द्रावतार में उनकी पत्नी सीता का अपहरण हुआ। ब्रह्मा ने अपनी ही कन्या की कामना किया था, तभी उनका पंचम शिर कटा।।८०-८५।।

इन्द्रचन्द्रविविष्णुप्रमुखाः प्राप्नुयुः कृतम्। तस्मादवश्यं च कृतं भोज्यमेव नरैः सदा॥८६॥
मुच्यते कोऽपि स्वकृतान्नैवेति श्रुतिनिर्णयः। किं तु देवप्रसादेन लभ्यमेकं सुरव्रतैः॥८७॥
बहुभिर्जन्मभिर्भोज्यं भुज्येतैकेनजन्मना। तच्च भुक्त्वा ततस्त्वर्थो भवेदितिविनिश्चयः॥८८॥
ये तप्यन्ते गतैः पापैः शुचयो देवताव्रताः। इह ते पुत्रपौत्रैश्च मोदन्तेऽमुत्र चेह च॥८९॥

इसी प्रकार इन्द्र-चन्द्र-सूर्य-विष्णु प्रभृति देवगण को भी कृतकर्म का फलभोग करने हेतु बाध्य होना पड़ा, इसलिए मनुष्यों को तो अपने कृतकर्म का फलभोग तो करना ही होगा। कोई भी स्वकृत कर्मों से मुक्त नहीं होता। यही श्रुति का सिद्धान्त है। तथापि देवगण की कृपा से यही एक फल मिलता है कि जो अनेक जन्म में जो कर्म फलभोग करना है, वह एक जन्म में ही भोग लिया जाता है। तथा समस्त कर्मभोग शेष हो जाने पर वांछित लाभ होता है। यही सिद्धान्त है। जिनका पूर्वकृत दुष्कर्म नहीं है, यदि वे पवित्र होकर देवाराधना करें, तब वे इहलोक में पुत्र-पौत्रादि परिजन के साथ आनन्दपूर्वक काल व्यतीत करते हैं तथा आगे जन्म में भी सुखभोग करते हैं।।८६-८९।।

तस्माद्देवाः सदा पूज्याः शुचिभिः श्रद्धयाऽन्वितैः।
प्रकृतिः शोधनीया च स्ववर्णोदितकर्मभिः॥९०॥
स्वनुष्ठितोऽपि धर्मः स्यात्क्लेशायैव विना शिवम्। दुराचारस्य देवोऽपि प्राहेति भगवान्हरः॥९१॥
भोक्तव्यं स्वकृतं तस्मात्पूजनीयःसदाशिवः। स्वाचारेणपरित्याज्यौरागद्वेषाविदंपरम्॥९२॥

तभी पवित्र होकर श्रद्धा के साथ सतत् देवाराधना करें तथा प्रकृति के शोधनार्थ अपने वर्णाश्रमोक्त कर्मानुष्ठान सर्वदा करें। दुराचारी व्यक्ति कितने भी उत्तम रूप से धर्माचरण क्यों न करे, वह उसके लिए मंगलप्रद नहीं होता, उससे उसे क्लेश ही होगा, यह देवदेव महेश्वर का वचन है। तथापि सभी सदाचारी रहकर सदाशिव की आराधना करें तथा राग-द्वेष को छोड़ दें। यही उत्तम विधान है।।९०-९२।।

नन्दभद्र उवाच

शुद्धप्रज्ञ! किमेतच्च पापिनोऽपि नरा यदा। मोदमानाः प्रदृश्यन्ते दारैरपि धनैरपि॥९३॥

बाल उवाच

व्यक्तं तैस्तमसा दत्तं दानं पूर्वेषु जन्मसु। रजसा पूजितः शम्भुस्तत्प्राप्तं स्वकृतंचतैः॥९४॥
किं तु यत्तमसा कर्म कृतं तस्य प्रभावतः। धर्माय न रतिर्भूयात्ततस्तेषां विदाम्वर!॥९५॥
भुक्त्वा पुण्यफलं याति नरकं नाऽत्रसंशयः। अस्मिंश्चसंशयेप्रोक्तंमार्कण्डेयेन श्रूयते॥९६॥
इहैवैकस्य नाऽमुत्र अमुत्रैकस्य नो इह। इह चाऽमुत्र चैकस्य नाऽमुत्रैकस्य नो इह॥९७॥
पूर्वोपात्तं भवेत्पुण्यं भुक्तिर्नैवाऽर्जयन्त्यपि। इहभोगःस वै प्रोक्तोदुर्भगस्याऽल्पमेधसः॥९८॥
पूर्वोपात्तं यस्यनास्तितपोभिश्चार्जयत्यपि। परलोकेतस्यभोगोधीमतःसक्रियात्स्फुटम्॥९९॥

नन्दभद्र कहते हैं—हे शुद्धप्रज्ञ! देखा जाता है कि पापी भी सतत् स्त्री-पुत्रों के साथ आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करते हैं। उसका कारण क्या है? बालक कहता है—निश्चय ही उन्होंने पूर्व जन्म में तामस तथा राजस भाव

से दान तथा शिवपूजादि किया था। इस जन्म में वे स्वकृत कर्म का ही फल भोग कर रहे हैं। हे ज्ञानीप्रवर! तामस कर्म उन्होंने पूर्वजन्म में किया था, इसीलिए इस जन्म में उनकी धर्म में रति नहीं हो रही है। वे पूर्वकृत कर्म का फल भोगकर निश्चय नरकगामी होंगे। इस संशयित विषय के सम्बन्ध में मार्कण्डेय ने जो कहा था, वह इस प्रकार है। यथा—एक व्यक्ति केवल इहकाल में, एक व्यक्ति परकाल में तथा एक व्यक्ति इहकाल तथा परकाल दोनों में पुण्यफल भोग करता है। एक को इहकाल तथा परकाल, दोनों में कोई फल नहीं मिलता। जो दुर्भाग्यवाला व्यक्ति है, जो निर्बोध है, पूर्वजन्म में पुण्य करके इहकाल में उसका फल भोग करता है, तथापि इस जन्म में कोई पुण्यकार्य नहीं करता, वह केवल इहकाल में ही सुख भोग कर सकेगा। परकाल में सुख भोग नहीं कर सकेगा। जिनका पूर्वकृत पुण्य नहीं है, तथापि उन्होंने इस जन्म में तप से पुण्यार्जन किया है, उसका क्रिया फल अगले जन्म में ही प्राप्त होगा।।९३-९९।।

पूर्वोपात्तं यस्य नास्ति पुण्यं चेहाऽपि नार्जयेत्।
ततश्चेहाऽमुत्र वाऽपि भो धिक्तं च नराधमम्॥१००॥
इति ज्ञात्वामहाभाग! त्यक्त्वाशल्यानिकृत्स्नशः। भजरुद्रंवर्णधर्मंपालयाऽस्मात्परंनहि॥१०१॥
यो हिनष्टेष्वभीष्टेषुप्राप्तेष्वपिचशोचति। तृप्येतवाभवेद्बन्धोनिश्चितंसोऽन्यजन्मनः॥१०२॥

जिसका पूर्वकृत पुण्य नहीं है तथा इस जन्म में भी जिसने पुण्यार्जन नहीं किया, वह इहकाल किंवा परकाल में कोई सुख नहीं पाता। उस नराधम को धिक्कार है। हे महाभाग! आप यह जाकर समस्त क्लेशों की उपेक्षा करके रुद्रदेव का भजन तथा वर्णधर्म का पालन करें। इससे बढ़कर कोई सत् उपाय नहीं है। जो जन इष्ट के नाश का दुःख नहीं करते, किंवा प्राप्ति से हर्षित नहीं होते, उनका जन्मान्तर जनित कर्म प्रतिबद्ध नहीं होता।।१००-१०२।।

नन्दभद्र उवाच

नमस्तुभ्यमबालायबालरूपायधीमते। कोभवांस्तत्त्वतोवेत्तुमिच्छामित्वांशुचिस्मितम्॥१०३॥
बहवोऽपि मया वृद्धा दृष्टाश्चोपासिताःसदा। तेषामीदृशकाबुद्धिर्न दृष्टा न श्रुता मया॥१०४॥
येन मे जन्मसन्देहा नाशिता लीलयैवच।
तस्मात्सामान्यरूपस्त्वं निश्चितंन मतं मम॥१०५॥

नन्दभद्र कहता है—हे बालक! तुम वास्तव में बालक न होकर बालकाकार कोई अन्य हो। तुम अतीव धीमान् तथा हास्ययुक्त आनन्दमय हो। तुमको प्रणाम! तुम वास्तव में कौन हो? यह मैं यथार्थतः जानना चाहता हूं। मैंने अनेक-अनेक वृद्धों को देखा है। सतत् उनकी भक्ति भी करता हूं, तथापि उनकी ऐसी बुद्धि नहीं देखी। न तो सुनी! तुमने तो जन्म विषयक मेरे सन्देहों का अनायास विनाश कर दिया। अतएव मुझे प्रतीत होता है कि तुम सामान्य प्रतीत होने पर भी सामान्य नहीं हो।।१०३-१०५।।

बाल उवाच

महदेतत्समाख्येयमेकाग्रः शृणु तत्त्वतः। इतः सप्ताधिके चाऽपि सप्तमे जन्मनित्वहम्॥१०६॥
वैदिशे नगरे विप्रो नाम्नाऽऽसं धर्मजालिकः। वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञःस्मृतिशास्त्रार्थविद्वरः॥१०७॥

व्याख्याता धर्मशास्त्राणां यथा साक्षाद्बृहस्पतिः।
किं त्वहं विविधान्धर्मांल्लोकानां वर्णये भृशम्॥१०८॥
स्वयं चाऽतिदुराचारः पापिनामपि पापराट्। मांसाशी मद्यसेवी च परदाररतःसदा॥१०९॥
असत्यभाषीदम्भीचसदाधर्मध्वजीखलः। लोभीदुरात्माकथकोनकर्ताकर्हिचित्क्वचित्॥११०॥

बालक कहता है—मेरा उपाख्यान अत्यन्त विस्तृत है। आप एकाग्रतापूर्वक उसे सुनें। इस जन्म के ७ जन्म पूर्व मैं विदिशा नगरी में धर्मजालिक नामक ब्राह्मण था। मैं वेद-वेदाङ्ग तत्वज्ञ तथा स्मृतिशास्त्र का सविशेष ज्ञाता था। मैं साक्षात् बृहस्पति की तरह न्याय तथा धर्मशास्त्र की व्याख्या करता था। लोगों को सदा विविध धर्मोपदेश देता था, तथापि स्वयं दुराचारी तथा पापीगण में अग्रगण्य था। मैं मद्यपायी तथा मांसभोजी, परस्त्रीगामी, झूठा, दम्भी, लोभी, दुष्ट स्वभाव तथा धर्मध्वजी था। लोगों से तो धर्मकथा कहता था, लेकिन स्वयं कोई भी धर्मकार्य नहीं करता था।।१०६-११०।।

यस्माज्जालिकवज्जालं लोकेभ्योऽहं क्षिपामिच।
तत्त्वज्ञामांततःप्राहुर्धर्मजालिकइत्युत ॥१११॥
सोऽहं तैर्बहुभिश्चीर्णैः पातकैरन्त आगते। मृतोगतोयमस्थानं पातितःकूटशाल्मलीम्॥११२॥
यमदूतैस्ततःकृष्टःस्मार्यमाणःस्वचेष्टितम्। खड्गैश्चकृत्यमानोऽहंजीवामिप्रामियामिच॥११३॥
आत्मानं बहुधा निन्दञ्छाश्वतीर्न्यवसं समाः। नरके या मतिर्भूयाद्धर्मं प्रति प्रपीडतः॥११४॥
सा चेन्मुहूर्तमात्रं स्यादपि धन्यस्ततः पुमान्। नमोनमः कर्मभूम्यै सुकृतं दुष्कृतं च वा॥११५॥
यस्यां मुहूर्तमात्रेण युगैरपि न नश्यति। ततो विपश्चिज्जनको मोक्षयामासनारकात्॥११६॥

मैं लोगों में अपना पापजाल प्रसारित करके अपना स्वार्थ पूरा करता था। तभी तत्वज्ञ लोग मुझे धर्मजालिक कहते थे। मैंने इस प्रकार अनेक पापाचार किया। इसलिए मरणान्त में यमलोक ले जाकर यमदूतों ने मुझे कूटशाल्मलि नरक में फेंक दिया। वहां वे लोग मेरे पापों को मुझे याद कराते तथा मुझ पर खड्ग आदि से प्रहार करते रहते थे। मैं उससे छिन्न-भिन्न होकर भी मरता नहीं था, केवल मृतप्रायः होकर आत्मनिन्दा करता। इस प्रकार अनेक वर्ष मैंने व्यतीत किये। नरक यातना भोग के समय जो बुद्धि उदित होती है, वही अन्यत्र मुहूर्त्तमात्र भी हो तब मनुष्य धन्य हो जायेगा। उस कर्मभूमि को प्रणाम (भारतवर्ष को) जहां पर सुकृत अथवा दुष्कृत मुहूर्त्तमात्र भी करने पर अनेक युग पर्यन्त नष्ट नहीं होता। तदनन्तर कुछ काल के उपरान्त धर्मराज ने मुझे अन्य पापीगण के साथ नरक से मुक्त किया।।१११-११६।।

तैः सहाऽहं प्रमुक्तश्चकथञ्चिदवपीडितः। स्थाणुत्वमनुभूयाऽथ क्लेशानासाद्यभूरिशः॥११७॥
कोटोऽहमभवं पश्चात्तीरे सारस्वते शुभे। तत्र मार्गे सुखमिव संसुप्तोऽहं यदृच्छया॥११८॥
आगच्छतोरथस्याऽस्यशब्दमश्रौषमुन्नतम्। तं मेघनिनदंश्रुत्वाभीतोऽहंसहसाजवात्॥११९॥
मार्गमुत्सृज्य दूरेण प्रपलायनमाचरम्। एतस्मिन्नन्तरे व्यासस्तत्र प्राप्तो यदृच्छया॥१२०॥

इसके अनन्तर कुछ पीड़ा भोगने के पश्चात् मुझे स्थावर जन्म प्राप्त हुआ। उस जन्म में नाना कष्ट भोग कर पुनः शुभ सरस्वती तट पर मैंने कीट योनि में जन्म लिया। एक बार मैं मार्ग में सो रहा था तभी रथ आने के गंभीर

शब्द से मेरी निद्रा भंग हो गयी। मैं मेघध्वनिवत् उस महान् ध्वनि से भीत होकर उस पथ को छोड़कर दूर भागने लगा। तभी वहां महर्षि व्यास स्वेच्छा से आ गये। उन्होंने जब मुझे त्रस्त भाव से भागते देखा, तब वे दयापूर्ण हो गये।।११७-१२०।।

स मामपश्यत्त्रस्तं च कृपया संयुतो मुनिः। यन्मया सर्वलोकानां नानाधर्माः प्रकीर्तिताः॥१२१॥
विप्रजन्मनि तस्यैव प्रभावाद्व्याससङ्गमः। ततः सर्वरुतज्ञोमां प्राहाऽर्च्यः कीटभाषया॥१२२॥
किमेवं नश्यसे कीट! कस्मान्मृत्योर्विभेषिच। अहो समुचिता भीतिर्मनुष्यस्यकुतस्तव॥१२३॥
इत्युक्तो मतिमान्पूर्वपुण्याद्व्यासंतदोचिवान्। न मे भयं जगद्वन्द्यमृत्योरस्मात्कथञ्चन॥१२४॥
एतदेवभयंमान्यगच्छेयमधमांगतिम्। अस्याअपिकुयोनेश्चसन्त्यन्याःकोटिशोऽधमाः॥१२५॥
तासु गर्भादिकक्लेशभीतस्त्रस्तोऽस्मि नान्यथा॥१२६॥

मैंने जो पूर्व में अपने ब्राह्मण जन्म में लोगों को नाना धर्मोपदेश दिया था, उसी के फलस्वरूप महर्षि व्यास का साक्षात् दर्शन मिला। सर्वभाषाविद् पूज्य व्यास ऋषि ने तब मुझसे कीट वाणी में कहा—"हे कीट! तुम ऐसे क्यों भाग रहे हो। क्यों मृत्यु से भयभीत हो? मनुष्यमात्र के लिए मृत्युभय उचित है। लेकिन तुमको मृत्युभय क्यों?" व्यासदेव के इस कथन से पूर्व पुण्यफल के कारण मेरे मन में किंचित ज्ञानोदय हुआ। मैंने कहा—"हे जगत्वन्द्य! मृत्यु से मुझे कोई भय नहीं है। हे मान्य! यही भय हो रहा है कि कहीं और भी अधम गति न मिल जाये। इस कुयोनि से भी करोड़ों और अधम योनियां हैं। पता नहीं उन सब योनियों में मुझे और न जाने कितने गर्भादि क्लेश को भोगना हो! इसलिए मैं भीत हो गया, अन्य कारण नहीं है"।।१२१-१२६।।

व्यास उवाच

मा भयं कुरु सर्वाभ्यो योनिभ्यश्च चिरादिव।
मोक्षयिष्यामि ब्राह्मण्यं प्रापयिष्यामि निश्चितम्॥१२७॥
इत्युक्तोऽहं कालियेन तंप्रणम्यजगद्गुरुम्। मार्गमागत्यचक्रेण पीडितोमृत्युमागमम्॥१२८॥
ततः काकशृगालादियोनिष्वस्मि यदाऽभवम्।
तदा तदा समागम्य व्यासो मां स्मारयच्च तत्॥१२९॥
ततो बहुविधा योनीः परिक्रम्याऽस्मि कर्षितः।
ब्राह्मणस्य च गेहे स्यां योनौ जातोऽतिदुःखितः॥१३०॥
ततो जन्मप्रभृत्यस्मि पितृभ्यां परिवर्जितः। गलत्कुष्ठीमहापीडामेतांयोऽनुभवामिच॥१३१॥

व्यासजी कहते हैं—"तुम हीन योनियों से भय न करो। मैं कुछ काल पश्चात् तुमको इससे मुक्त करूंगा। तुमको निश्चित रूप से ब्राह्मणत्व प्राप्त करा दूंगा।" व्यासदेव के यह कहने पर मैंने उन जगद्गुरु को प्रणाम किया तथा मार्ग पर आ गया, जहां एक रथ के पहिये से दब कर मैंने प्राण त्याग किया। तदनन्तर मैं काक-शृगालादि जिस योनि में भी जन्म लेता, उन-उन योनियों में व्यास मुझे दर्शन देते तथा यह सब स्मरण करा देते। इस प्रकार अनेक योनियों में जन्म लेता रहा। अनेक कष्ट भोग कर अन्त में मैंने ब्राह्मण गृह में जन्म लिया। मैंने इस जन्म में भी

अनेक कष्ट भोग किया। जन्म से ही माता-पिता द्वारा परित्यक्त होकर गलित कुष्ठ रोगाक्रान्त स्थिति में दारुण क्लेश पा रहा हूं।।१२७-१३१।।

ततो मां पञ्चमे वर्षे व्यासगत्यजप्तवान्। कर्णे सारस्वतं मन्त्रंतेनाऽहंसंस्मरामिच।।१३२।।
अनधीतानि शास्त्राणि वेदाधर्मांश्चकृत्स्नशः। उक्तंव्यासेन चेदंमे गच्छ क्षेत्रं गुहस्यच।
तत्र त्वं नन्दभद्रञ्च आश्वासय महामतिम्।।१३३।।
त्यक्त्वा बहूदके प्राणानस्थिक्षेपंमहीजले। काराय्य त्वं ततो भावीमैत्रेयइतिसन्मुनिः।।१३४।।
गमिष्यसिततोमोक्षमितिमांव्यासउक्तवान्। आगतश्चततश्चात्रवाहीकेभ्योऽतिक्लेशतः।।१३५।।
इति ते कथितं सर्वमात्मनश्चरितं मया। पापमेवंविधं कष्टं नन्दभद्र! सदा त्यज।।१३६।।

जब मेरी ५ वर्ष की आयु थी, तब व्यासदेव ने आकर मेरे कानों में सारस्वत मन्त्र का उपदेश प्रदान किया। उसी के फल से बिना अध्ययन समस्त वेद-धर्म-शास्त्र मेरे स्मृतिपथ में आ गये। व्यासदेव ने मुझसे कहा कि "कुमार क्षेत्र में जाकर महामति नन्दभद्र को आश्वासित करो। वहां बहूदक तीर्थ में प्राण त्याग के उपरान्त मही नदी में तुम्हारी अस्थि छोड़ी जाये। इस प्रकार अगले जन्म में तुम मैत्रेय नामक साधु मुनि हो जाओगे। तब तुमको मुक्ति प्राप्त होगी।" यह व्यासदेव ने मुझसे कहा। यह आदेश सुनकर मैं वाह्लीक देश से यहां तक अत्यन्त क्लेश से आया। हे नन्दभद्र! मैंने आपसे समस्त आत्मचरित कहा। आप पापकारी परिताप का सर्वथा त्याग करिये।।१३२-१३६।।

नन्दभद्र उवाच

अहो महाद्भुतं तुभ्यं चरितं येन मे हृदि। भूयः शतगुणं जातं धर्माय दृढमानसम्।।१३७।।
किन्तु त्वयोक्तधर्मस्य कर्तुकामोऽस्मि निष्कृतिम्।
धर्मं स्मर भवांस्तस्मात्किञ्चिदादिश निश्चितम्।।१३८।।

नन्दभद्र कहता है—अहो! तुम्हारा चरित्र अतीव अद्भुद् है। यह सुनकर मुझे शतगुणित धर्माचरण की इच्छा वृद्धि पा रही है। तुमने जो आदेश दिया है, मैं उसी यत्न से सम्यक् आचरण करूंगा। अतः तुम विवेचना द्वारा मुझे आदेश प्रदान करो।।१३७-१३८।।

बाल उवाच

अत्र तीर्थे च सप्ताहं निराहारस्त्वहं स्थितः। सूर्यमन्त्राञ्जपिष्यामि त्यक्ष्यामि च ततस्त्वसून्।।१३९।।
ततो बर्करिकातीर्थे दग्धव्योऽहंत्वयातटे। अस्थीनि सागरेचापिममक्षेप्याणिचात्रहि।।१४०।।
यदिसापह्नवंचित्तंमय्यतीवतवाऽस्तिचेत्। ततस्त्वांगुरुकार्यार्थमादेक्ष्यामिशृणुष्वतत्।।१४१।।
अस्मिन्बहूदके तीर्थे यत्र प्राणांस्त्यजाम्यहम्।
तत्र मन्नामचिह्नस्ते संस्थाप्यो भास्करो विभुः।।१४२।।
आरोग्यं धनधान्यं च पुत्रदारादिसम्पदः। भास्करो भगवांस्तुष्टो दद्यादेतच्छुतेर्वचः।।१४३।।
सविता परमो देवः सर्वस्वं वा द्विजन्मनाम्। वेदवेदाङ्गीतश्च त्वमप्येनं सदा भज।।१४४।।

बहूदकमिदंकुण्डंसंसेव्यंचसदा त्वया। माहात्म्यमस्यवक्ष्यामि संक्षेपाद्व्यासमूचितम्॥१४५॥
बहूदके कुण्डवरे स्नाति यो विविधन्नरः। आरोग्यंधनधान्याद्यं तस्य स्यात्सर्वजन्मसु॥१४६॥

बालक कहता है—मैं इस तीर्थ में सप्ताह पर्यन्त निराहार रहकर सूर्यमन्त्र जपते हुये प्राण त्याग करूंगा। तब आप मुझे बर्करिका तट पर दग्ध करके मेरी अस्थि महीसागर संगम में फेंक देना। यदि आपकी मेरे प्रति अकपट श्रद्धा हो, तब मैं आपको एक गुरुतर कार्य सौंपता हूं। वह आप सुनें। बहूदक तीर्थ में जहां मेरा प्राणत्याग हो, आप वहां मेरे नाम से चिह्नित विभु भगवान् भास्कर की मूर्त्ति प्रतिष्ठित करें। श्रुति में कहा गया है कि आरोग्य, धन-धान्य, पुत्र-स्त्री समस्त सम्पत्ति भगवान् सन्तुष्ट होकर प्रदान करते हैं। वेद-वेदाङ्ग में भगवान् सविता परमदेव तथा ब्राह्मणों के सर्वस्वरूप से वर्जित हैं। आप सतत् उनका भजन करिये। आप इस बहूदक कुण्ड का भी सदा सेवन करिये। उसकी महिमा के सम्बन्ध में व्यासदेव ने जैसा आभास दिया है, मैं आपसे वही कहता हूं। जो मनुष्य उत्तम बहूदक कुण्ड में यथाविधि स्नान करता है, वह जन्म-जन्म में आरोग्य-धनधान्यादि सम्पत्ति प्राप्त कर लेता है।।१३९-१४६।।

बहूदके च यः स्नात्वासप्तम्यांमाघमासके। दद्यात्पिण्डंपितृणाञ्चतेऽक्षयांतृप्तिमाप्नुयुः॥१४७॥
बहूदकस्य तीरे यः शुचिर्यजति वै क्रतुम्। शतक्रतुफलं तस्यनास्ति काचिद्विचारणा॥१४८॥
अत्र यस्त्यजति प्राणान्बहूदकतटे नरः। मोदते सूर्यलोकेऽसौ धर्मिणाञ्च सुतो भवेत्॥१४९॥
बहूदकस्य तीरे च यः कुर्य्याज्जपसाधनम्। सर्वं लक्षगुणं प्रोक्तं जपो होमश्च पूजनम्॥१५०॥

माघशुक्ला सप्तमी तिथि पर जो बहूदक तीर्थ में पितृगण को पिण्ड प्रदान करता है, उसके पितर अक्षयरूपेण तृप्त हो जाते हैं। जो कोई बहूदक तीर्थ में शुद्ध भाव से यज्ञानुष्ठान करते हैं, उसे १०० यज्ञों का फल निःसंदिग्ध रूप से मिलता है। जो इस तीर्थ में प्राण त्याग करते हैं, वे सूर्यलोक में दीर्घकाल वास करके परम धार्मिक व्यक्ति के पुत्ररूप में जन्म लेते हैं। इस तीर्थ में जप-होम-पूजादि का लक्षगुण फल मिलता है।।१४७-१५०।।

बहूदकस्य तीरे च द्विजमेकञ्चभोजयेत्। यो मिष्टान्नेन तस्यस्याद्विप्रकोटिश्चभोजिता॥१५१॥
बहूदकस्यतीरेयानारीगौरिणिकाः शुभाः। सम्भोजयतितस्याश्चकुर्यात्सुस्वागतंह्युमा॥१५२॥
बहूदकस्य तीरे च यः कुर्याद्योगसाधनम्। षण्मासाभ्यन्तरेसिद्धिर्भवेत्तस्य न संशयः॥१५३॥
बहूदकस्य तीरे च प्रेतानुद्दिश्य दीयते। यत्किञ्चिदक्षयन्तेषामुपतिष्ठेन्न चान्यथा॥१५४॥
स्नानं दानं जपो होमःस्वाध्यायःपितृतर्पणम्। कृतं बहूदकतटे सर्वं स्यात्सुमहत्फलम्॥१५५॥
त्वयैतद्धृदि सन्धार्यं फलं व्यासेन सूचितम्। बहूदकस्य कुण्डस्य नन्दभद्र महामते!॥१५६॥
इत्युक्त्वा सोऽभवन्मौनी स्नात्वा कुण्डे ततः शुचिः।
तीरे प्रस्तरमाश्रित्य स्वयं मन्त्राञ्जजाप ह॥१५७॥

इस तीर्थ में एक भी ब्राह्मण को मिष्टान्न भक्षण कराने से एक करोड़ ब्राह्मण भोजन का फल लाभ होता है। जो स्त्री बहूदक तीर्थ में कुमारीगण को भोजन कराती है, उमादेवी उसको वांछित फल प्रदान करती हैं। बहूदक तीर पर योगसाधन करने से उस साधक को छः मास में ही सिद्धि मिल जाती है। इसमें सन्देह नहीं है। बहूदक तीर्थ में मृतात्मा

के लिए जो कुछ दान किया जाता है, वह सब उस व्यक्ति के पास उपस्थित होकर उसे अक्षय तृप्ति विधान करता है। स्नान-दान-जप-होम-स्वाध्याय-पितृतर्पण, जो कुछ भी बहूदक तीर्थ में करते हैं, उस सब का महत् फल मिल जाता है। हे महामति नन्दभद्र! व्यासोक्त यह बहूदक कुण्ड माहात्म्य आप सदा स्मरण रखें। यह कहकर मौनी स्थिति में बहूदक कुण्ड में स्नान करके वह बालक भूमि पर पड़े एक प्रस्तर पर बैठकर मन्त्र जप करने लगा।।१५१-१५७।।

श्रीनारद उवाच

ततःस सप्तरात्रान्ते जहौ बालो निजानसून्। संस्कारितोयथोक्तंच नन्दभद्रेणब्राह्मणैः॥१५८॥
यत्र बालः स च प्राणाञ्जहौ जपपरायणः। बालादित्यमितिख्यातंतत्रास्थापयतप्रभुम्॥१५९॥
बहूदके च यः स्नात्वा बालादित्यं प्रपूजयेत्।
तस्य स्याद्भास्करस्तुष्टो मोक्षोपायञ्च विन्दति॥१६०॥
नन्दभद्रोऽप्यथाऽन्यस्यां भार्यायामपरान्सुतान्।
उत्पाद्याऽऽत्मसमान्धीमाञ्छिवसूर्यपरायणः ॥१६१॥
रुद्रदेहं ययौ पार्थ पुनरावृत्तिदुर्लभम्। एवमेतन्महाकुण्डं बहूदकमिति स्मृतम्॥१६२॥

श्रीनारद कहते हैं—तदनन्तर ७ रात्रि बीत जाने पर उस बालक ने प्राण त्याग किया। नन्दभद्र ने कतिपय ब्राह्मणों को बुलाकर उसे यथोक्त संस्कार से संस्कृत किया। जहां उस बालक ने जप करते प्राण त्याग किया, नन्दभद्र ने कतिपय ब्राह्मणों को बुलाकर उसे यथोक्त संस्कार से संस्कृत किया। जहां उस बालक ने जप करते प्राण त्याग किया था, वहां बालादित्य नामक एक सूर्य प्रतिमा स्थापित किया। जो बहूदक तीर्थ में स्नान करके बालादित्य की पूजा करता है, बालादित्य उसके प्रति सन्तुष्ट हो जाते हैं। उसे मोक्ष के उपाय की प्राप्ति हो जाती है। हे पार्थ! तदनन्तर नन्दभद्र ने पुनः विवाह किया तथा उस भार्या से अपने समान कतिपय पुत्रों को उत्पन्न किया। उन्होंने शिव तथा सूर्य की आराधना करके प्राणत्यागोपरान्त उस रुद्रत्व को प्राप्त किया, जिसके पश्चात् पुनः संसार में जन्म नहीं लेना पड़ता। बहूदक कुण्ड की ऐसी महिमा है।।१५८-१६२।।

अस्य तीरे स्वमंशं च वल्लीनाथःप्रमोक्ष्यति। दत्तात्रेयस्ययोयोगीह्यवतारोभविष्यति॥१६३॥
अर्चयित्वाचतन्देवंयोगसिद्धिमवाप्नुयात्। पशूनामृद्धिमाप्नोतिगोशरण्योह्यसौप्रभुः॥१६४॥
पश्चिमायां बुधसुतस्तथा क्षेत्रं स भारत। पुरूरवादित्यमिति स्थापयामास पार्थिवः॥१६५॥
सर्वकामप्रदश्चाऽसौ भट्टादित्यसमो रविः। बहूदकक्षेत्रसमं तस्य क्षेत्रञ्च भारत!॥१६६॥
अस्य तीर्थस्यमाहात्म्यंजप्तव्यं कर्णमूलके।
पुत्रस्य वापि शिष्यस्यनकथञ्चननास्तिकः॥१६७॥
शृणोतीदं श्रद्धया यस्तस्य तुष्येच्च भास्करः। धारयन्हृदये मोक्षं मुच्यतेभवसागरात्॥१६८॥

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे बहूदकमाहात्म्ये बालादित्यवृत्तान्तवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः।।४६।।

भविष्य में इस बहूदक के तट पर दत्तात्रेय के अंशावतार वल्लीनाथ नामक कोई योगी मुक्तिलाभ करेंगे। वे बालादित्य की अर्चना करके योगसिद्ध होंगे। बालादित्य का पूजक पशु रूपी सम्पत्ति प्राप्त करता है। ये प्रभु गौ समूह के पालक हैं। हे भारत! बहूदक के पश्चिम तट पर बुधपुत्र राजा पुरुरवा ने पुरुरवादित्य नामक आदित्य मूर्त्ति की स्थापना की है। ये भी भट्टादित्यवत् सर्वकामना प्रदान करते हैं। हे भारत! यह क्षेत्र में भी बहूदक क्षेत्रवत् महापुण्यप्रद है। इस तीर्थ महिमा का उपदेश शिष्य अथवा पुत्र के कानों में अवश्य करे। जो मानव इस प्रसंग को सश्रद्ध होकर सुनता है, सूर्यदेव उस पर प्रसन्न होते हैं। जो इसे हृदय में धारण करता है, उसे भवसागर से मुक्ति मिल जाती है।।१६३-१६८।।

।।षट्चत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

नानादेवी पीठ वर्णन, देवी-स्कन्द संवाद

नारद उवाच

ततोमयाऽस्यतीर्थस्यरक्षणायपुनर्जय!। समाराध्ययथादेव्यःस्थापितास्तच्छृणुष्वभोः।।१।।
यथाऽऽत्मा सर्वभूतेषु व्यापकः परमेश्वरः। तथैव प्रकृतिर्नित्या व्यापका परमेश्वरी।।२।।
शक्तिप्रसादादाप्नोति वीर्यं सर्वाश्चसम्पदः। ईश्वरीसर्वभूतेषु सा चैवं पार्थ संस्थिता।।३।।
बुद्धिह्रीपुष्टिलज्जेतितुष्टिःशान्तिःक्षमा स्पृहा। श्रद्धा च चेतनाशक्तिर्मन्त्रोत्साहप्रभृद्भवा।।४।।
इयमेव च बन्धाय मोक्षायेयं च सर्वदा। एनामाराध्य चैश्वर्यमिन्द्राद्याः समवाप्नुयुः।।५।।
येचशक्तिंनमन्यंन्तेतिरस्कुर्वन्तिचाधमाः। योगीन्द्राअपिते व्यक्तंभ्रश्यन्तेकाशिजायथा।।६।।
वाराणस्यां किल पुरा सिद्धयोगीश्वराः पुनः। अवमन्य च ते शक्तिपुनर्भ्रंशमुपागताः।।७।।

नारद कहते हैं—हे अर्जुन! अब मैंने पुनः उस तीर्थ के रक्षाविधानार्थ देवीगण की आराधना तथा आवाहन करके उनको जिस प्रकार से वहां स्थापित किया, वह सुनो। परमेश्वर परमात्मा जैसे सर्वभूतसमूह में व्याप्त हैं, परमेश्वरी नित्या प्रकृति भी तद्रूप से सर्वभूतसमूह में व्याप्त होकर विराजमाना हैं। इस ईश्वरी की कृपा से ही बलवीर्य तथा सम्पत्ति मिलती है। हे अर्जुन! यह प्रकृति देवी ही प्राणीगण में बुद्धि, लज्जा, पुष्टि, श्री, शान्ति, क्षमा, स्पृहा, श्रद्धा, चेतना, मन्त्रणाशक्ति, प्रभुत्वशक्ति रूप से विराजमाना हैं। ये सतत् प्राणीगण को बन्धन तथा मोक्ष प्रदान करती है। इन्द्र आदि देवताओं ने इनकी आराधना करके ऐश्वर्य लाभ किया है। जो अधम व्यक्ति शक्ति को नहीं मानते, वे योगीन्द्र होकर भी काशीधामस्थ सिद्ध-योगीगण की तरह निश्चित रूप से भ्रष्ट हो जाते हैं।।१-७।।

तस्मात्सदा देहिनेयंशक्तिः पूज्यैवनित्यदा। तुष्टाददाति सा कामान्रुष्टासंहरतेक्षणात्।।८।।
परमा प्रकृतिः सा च बहुभेदैर्व्यवस्थिता। तासांमध्ये महादेव्योह्यत्रसंस्थापिताःशृणु।।९।।

पूर्वकाल में वाराणसी में सिद्ध-योगीगण ने शक्ति की अवमानना किया और योगभ्रष्ट हो गये। इसीलिए समस्त स्थावर-जंगम-देहधारीगण को चिरकाल तक नित्य शक्तिपूजा करनी चाहिये। वे प्रसन्न होकर कामना पूर्त्ति करती हैं। रुष्ट होने पर क्षणमात्र में संहार कर देती हैं। वे परमा प्रकृति अनेक आकार में स्थित रहती हैं। उनमें से जो-जो महादेवी यहां स्थापित हैं, उनका वर्णन सुनो।।८-९।।

चतस्त्रस्तु महाशक्त्यश्चतुर्दिक्षु व्यवस्थिताः।
सिद्धाम्बिका तु पूर्वस्यां स्थापिता सा गुहेन च॥१०॥
जगदादौ मूलप्रकृतेरुत्पन्ना सा प्रकीर्त्यते।
आराधिता यतः सिद्धैस्तस्मात्सिद्धाम्बिका च सा॥११॥
दक्षिणस्यां तथा तारा संस्थिता स्थापिता मया। तारणार्थाय देवानां यस्मात्कूर्मं समाश्रिता॥१२॥
ययाविष्टः समुज्जह्रेवेदान्कूर्मो जगद्गुरुः। अनयाऽऽविष्टदेहश्च बुधो बौद्धान्हनिष्यति॥१३॥
कोटिशो वेदमार्गस्यध्वंसकान्पापकर्मिणः। इयंमयासमाराध्यसमानीतागिरेः सुता॥१४॥

इस क्षेत्र में चतुर्दिक् ४ महाशक्ति विराजित हैं। पूर्व की ओर कुमार स्कन्द द्वारा स्थापित सिद्धाम्बिका हैं। ये जगत् के आदिकाल में मूला प्रकृति से उत्पन्न हैं। ऐसा शास्त्र वचन है। सर्वप्रथम सिद्धों ने उनकी आराधना किया है, अतएव उनका सिद्धाम्बिका नाम ही प्रसिद्ध हो गया। दक्षिण में तारा स्थित हैं। मैंने ही उनकी स्थापना किया था। उन्होंने वेदों के रक्षणार्थ कूर्मावतार में कूर्मदेव का आश्रय लिया था। जगद्गुरु कूर्मदेव ने ताराशक्ति से आविष्ट होकर ही वेदों का उद्धार किया था। बुद्ध ने इसी शक्ति से आविष्ट होकर कोटि-कोटि पापी बौद्धों का उच्छेद कार्य किया था। मैंने आराधना करके इनको कैलास से लाकर यहां स्थापित किया।।१०-१४।।

कोटिसंख्याभिरत्युग्रदेवीभिः सम्वृता च सा। दक्षिणां दिशमाश्रित्य संस्थिता मम गौरवात्॥१५॥
पश्चिमायांतथादेवीसंस्थिताभास्कराशुभा। ययाविष्टानिभासन्तेभास्करप्रमुखानिच॥१६॥
बिम्बानिसर्वताराणांगच्छन्त्यायान्तिचद्रुतम्। सैषामहाबलाशक्तिर्भास्वराकुरुनन्दन॥१७॥
मयाराध्यसमानीताकटाहादत्रसंस्थिता। कोटिकोटिवृता नित्यंत्रायतेपश्चिमांदिशम्॥१८॥
उत्तरस्यां तथा देवी संस्थिता योगनन्दिनी। परमप्रकृतेर्देहात्पूर्वं निःसृतया यया॥१९॥

करोड़ों देवियां जो अत्युग्र हैं, इनको घेर कर स्थित रहती हैं। इन्होंने इस प्रकार क्षेत्र के दक्षिण की ओर अवस्थित होकर मेरा गौरव बढ़ाया है। पश्चिम की ओर भास्वरा नाम्नी शुभा देवी विराजिता हैं। इनसे ही आविष्ट होकर सूर्य-चन्द्र-तारकादि प्रभा युक्त होकर विश्व में प्रकाशित होते हैं तथा तीव्र वेग से घूमते रहते हैं। हे कुरुनन्दन! मैंने आराधना के बल से ब्रह्माण्ड कटाह से इनको यहां लाकर स्थापित किया। ये कोटि-कोटि सहचरी देवीगण से परिवेष्ठित होकर यहां विराजित रहती हैं तथा पश्चिम दिशा की रक्षा करती रहती हैं। उत्तर की ओर योगनन्दिनी स्थित हैं। ये पूर्वकाल में परमा प्रकृति की देह से निःसृता हैं।।१५-१९।।

दृष्ट्या दृष्टा निर्मलया योगमापुश्चतुःसनाः। योगीश्वरीचसादेवीसनकाद्यैःसुतोषिता॥२०॥
सैव चाऽण्डकटाहान्मै समाराध्याऽत्र प्रापिता।
योगिनीभिः परिवृता संस्थिता चोत्तरां दिशम्॥२१॥

एवमेता महाशक्त्यश्चतस्रः संस्थिताः सदा। पूजिताःकामदानित्यंरुष्टाःसंहरणक्षमाः॥२२॥

ये उस समय ब्रह्मपुत्र सनकादि ऋषियों की आराधना से प्रसन्न होकर आविर्भूत हुई थीं। उन्होंने अपने निर्मल नेत्रों से उन ऋषियों का निरीक्षण किया था, जिससे उन ऋषिगण को योगप्राप्ति हो गयी। मैंने भी आराधना करके इनको अण्ड कटाह से यहां लाकर स्थापित किया है। ये योगिनियों से घिरी उत्तर दिशा में अवस्थित रहती हैं। [illegible]४ महाशक्तियां स्थित रहती हैं। ये पूजित होने पर इच्छित कामनाओं को पूर्ण करती हैं। रुष्ट होने पर संहार कर देती हैं।।२०-२२।।

ततश्च नव मे दुर्गाः समानीताः शृणुष्व ताः॥२३॥
त्रिपुरानाम परमा देवी स्थाणुर्यया पुरा। आविष्टस्त्रिपुरं निन्ये भस्मत्वं जगदीश्वरः॥२४॥
त्रिपुरेति ततस्तां तु प्रोक्तवान्भगवान्हरः। तुष्टाव च स्वयंतस्मात्पूज्यासाजगतामपि॥२५॥
साचाराध्यसमानीतामयामरेश्वरपर्वतात्। भक्तानांकामदासास्तिभट्टादित्यसमीपतः॥२६॥
अपरा चापि कोलम्बा महाशक्तिःसनातनी। कोलरूपीययाविष्टःकेशवश्चोज्जहार गाम्॥२७॥
तस्मात्सा विष्णुना चोक्ता कोलम्बेति स्तुताऽर्चिता।
सा च देवी मया पार्थ! भक्तियोगेन तोषिता॥२८॥
वाराहगिरिसंस्थामांसमानीताचसाऽब्रवीत्। यत्राऽहंनारदसदातिष्ठामिकृपयार्थिनाम्॥२९॥
तत्र कूपेन संस्थेयं रुद्राणीसंस्थितेन वै। तं हि कूपं विना मह्यं न रतिर्जायतेक्वचित्॥३०॥
तस्माद्भवान्कूपवरं स्वयमत्र खन द्विज। एवमुक्ते पार्थ! देव्या दर्भमूलेन मे तदा॥३१॥
कूपोऽखनि यत्र साक्षाद्रुद्राणीकूपआबभौ। ततोमयातत्रदेवाःस्नात्वाजप्त्वाचतर्पिताः॥३२॥
पूजिता च ततो देवी कोलम्बा जगदीश्वरी। परितुष्टातदादेवीप्रणतं मां ततोऽब्रवीत्॥३३॥

तदनन्तर मैंने यहां नवदुर्गा की प्रतिष्ठा की है। उसका विवरण श्रवण करो। त्रिपुरा नाम्नी एक प्रसिद्धा परमा देवी हैं। पुराकाल में जगदीश्वर त्रिपुरारि शिव ने उनसे आविष्ट होकर ही त्रिपुरासुर के त्रिपुर को भस्म किया था। भगवान् हर ने इसी कारण से उन देवी को त्रिपुरा नाम प्रदान किया था। उन्होंने इन देवी का स्तव भी किया था। मैंने आराधना द्वारा उनको अमरेश्वर पर्वत से यहां लाकर स्थापित किया। ये कामदायिनी देवी भट्टादित्य के निकट अवस्थित हैं। कोलम्बा नामक और एक सनातनी महाशक्ति हैं। कोल (शूकर) रूपी विष्णु इन शक्ति से ही आविष्ट होकर धरती का समुद्र (रसातल) से उद्धार कर सके थे। विष्णु ने इनकी अर्चना तथा स्तुति कोलम्बा नाम से सम्बोधित करके किया था। हे अर्जुन! ये वराह पर्वत पर निवास करती थीं। मैंने उनको भक्तियोग से प्रसन्न किया तथा यहां स्थापित किया। उन्होंने आते समय मुझसे कहा—हे नारद! मैं याचकों पर कृपा करके जहां स्थित रहूंगी, वहां एक रुद्राणीकूप रहना अतीव आवश्यक है। इस कूप के न रहने पर मेरी तृप्ति कहीं नहीं होगी। हे द्विज! इस कारण यहां पर तुम स्वयं एक कूप खनन करो। देवी का यह आदेश सुनकर मैंने उनकी आज्ञा के अनुसार कुशमूल द्वारा वहां एक कूप खोदा। इस कूप में रुद्राणी देवी स्वयं प्रकाशित हो गयीं। मैंने वहां स्नानोपरान्त जप करके देवगण को तृप्त किया। तदनन्तर इन कोलम्बा देवी की अर्चना करके उनको प्रणाम किया। इससे सन्तुष्ट होकर देवी ने कहा।।२३-३३।।

सदाऽत्रचाहंस्थास्यामिप्रसादंप्रापितात्वया। येचकूपेऽत्रसंस्नात्वामाघाष्टम्यांविशेषतः॥३४॥
पूजयिष्यन्ति मां मर्त्यास्तेषां छेत्स्यामि दुष्कृतम्। सर्वतीर्थमयो यच्च सर्वर्तुकवने स्थितः॥३५॥
मेरोः समीपे रुद्राण्याः कूप एष स एव च॥३६॥
प्रयागादपि गङ्गाया गयायाश्चविशेषतः। कूपेऽस्मिन्नधिकं स्नानं मया नारद कीर्तितम्॥३७॥
तदहं तव वाक्येन संस्थिताऽत्रतपोधन। गुहेनाऽथ सरः पुण्यंपालयिष्याम्यतन्द्रिता॥३८॥
कुमारेशं पूजयित्वापूजयिष्यन्ति येच माम्। देवीभिः षष्टिकोटीभिर्युतातेषामभीष्टदा॥३९॥

देवी कहती हैं—तुमने मुझे अत्यन्त सन्तुष्ट किया है। अतः मैं यहां सदा स्थित रहूंगी। जो विशेषतः माघी अष्टमी तिथि पर इस कूप जल से स्नान करके मेरी पूजा करेगा, उस मनुष्य के समस्त दुष्कर्म का मैं उच्छेद करके उसे शुद्ध करूंगी। सुमेरु पर्वत के पास सर्व ऋतु में उत्पन्न होने वाले फल-फूलों से शोभित रुद्राणी देवी का जो सर्वतीर्थात्मक कूप है, उस कूप को यही कूप समझना। हे नारद! प्रयाग, गंगा, गया क्षेत्र में स्नान से भी फलद है इस कूप जल द्वारा स्नान करना। हे तपोधन! मैं तुम्हारी प्रार्थनानुरूप यहां स्थित हो गयी। कुमारेश का ध्यान करके यहां पुण्य सरोवर का सेवन करो। जो कुमारेश की पूजा करके तदनन्तर मेरी अर्चना करेंगे, मैं ६० कोटि देवीगण के साथ उसका अभीष्ट सिद्ध करूंगी।।३४-३९।।

नारद उवाच

इत्युक्तोऽहं पार्थं देव्या तदानीं प्रीयमाणया। प्रत्यब्रवंप्रमुदितःकोलम्बांविश्वमातरम्॥४०॥
अत्राऽस्यमातात्वंदेवि गुप्तक्षेत्रस्यकारणम्। तीर्थयात्रावृथातेषांनार्च्चयन्तीहत्वांचये॥४१॥
इदंचयत्सरःपुण्यंत्वन्नाम्नाख्यातिमेष्यति। ईश्वरीसरसोऽस्यत्वंतीर्थस्यास्यतथेश्वरी॥४२॥
एवं दीर्घं तपस्तप्त्वा स्थापितामयकाशुभा। महादुर्गानरैस्तस्मात्पूज्येयं सततं बुधैः॥४३॥
तृतीयाचदिशितस्यांस्थितासंस्थापितामया। गुहेनचकपालेश्याःप्रभावोऽस्याःपुरेरितः॥४४॥
धन्यास्ते ये प्रपश्यन्ति नित्यमेनां नरोत्तमाः। कपालेश्वरमभ्यर्च्य विश्वशक्तिरियंयतः॥४५॥
एवमेतास्तिस्त्रो दुर्गाः पूर्वस्यां दिशि संस्थिताः।
पश्चिमायां प्रवक्ष्यामि तिस्त्रो दुर्गा महोत्तमाः॥४६॥
सुवर्णाक्षी तु यादेवीब्रह्माण्डपरिपालिनी। सा मयाऽत्र समाराध्यतीर्थेदेवीनिवेशिता॥४७॥
येचैनांप्रणमिष्यन्तिपूजयिष्यन्तिभक्तितः। त्रयस्त्रिंशद्भिःकोटीभिर्देवीभिःपूजिताच तैः॥४८॥

नारद कहते हैं—हे अर्जुन! उन कोलम्बा देवी के प्रसन्न होकर यह कहने पर मैंने मुदित मन से उन जगन्माता से कहा—"हे देवी! आप ही इस गुप्त क्षेत्र की माता हैं। अतः जो यहां तीर्थयात्रा करके आपकी अर्चना नहीं करेगा, उसकी समस्त तीर्थयात्रा वृथा होगी। यह सरोवर भी आपके नाम से प्रसिद्ध होगा। यह सरोवर तथा इस तीर्थ की भूमि ईश्वरी है। मैंने दीर्घ तप करके इन शुभा महादुर्गा की प्रतिष्ठा किया है। अतः बुद्धिमान मनुष्य सदा इनकी अर्चना करें। तृतीया देवी हैं कपालेशी। उन्हें मैंने तथा स्कन्दकुमार ने यहां स्थापित किया था। उनके प्रभाव का वर्णन तो पहले ही कर चुका हूं। ये उन कोलम्बा देवी के पास ही प्रतिष्ठित हैं। जो नरश्रेष्ठ व्यक्ति कपालेश्वर का

दर्शन करके कपालेशी का दर्शन करेगा, वह धन्य होगा। ये तो विश्वशक्ति हैं। ये तीन दुर्गा पूर्व दिशा में विराजित हैं। पश्चिम दिशा में जो अत्युत्तम तीन दुर्गा विराजित हैं, अब उनका वर्णन करता हूं। ब्रह्माण्डपालिका जो सुवर्णाक्षी देवी प्रख्याता हैं, मैंने आराधना करके उनको यहां स्थापित किया था। ये देवी ३३ करोड़ देवियों द्वारा परिवेष्ठिता हैं। जो इनकी भक्तिपूर्वक पूजा तथा प्रणाम करते हैं, ये देवीगण उसका मंगल विधान करती हैं।।४०-४८।।

अपरा च महादुर्गा चर्चिताचेतिसंस्थिता। रसातलतलात्तत्र! मयानीतासुभक्तितः॥४९॥
इयमर्च्या च चिन्त्या च वीरत्वं समभीप्सुभिः। बहुभिर्देवदैतेयैर्ददौतेभ्यस्च वीरताम्॥५०॥
इयमेव महादुर्गा शूद्रकं वीरसत्तमम्। चौरैर्बद्धं कलौ चाऽग्रे मोक्षयिष्यति विक्रमात्॥५१॥
ततस्त्वेतांस चाराध्यवीरेन्द्रत्वमवाप्स्यति। निहनिष्यतिचाक्रम्यकालसेनमुखान्रिपून्॥५२॥
तस्मादियंसमाराध्या वीर्यकामैर्नरैःसदा। चर्चितायामहादुर्गापश्चिमायांदिशिस्थिता॥५३॥

तथा त्रैलोक्यविजया तृतीयस्यां दिशि स्थिता।
यामाराध्य जयं प्राप्तस्त्रिलोक्यां रोहिणीपतिः।
सोमलोकान्मयाऽऽनीता पूजिता जयदा सदा॥५४॥

अन्य जो महादुर्गा वहां हैं, उनका नाम है चर्चिता। मैंने अत्यन्त भक्तियोग द्वारा उनको रसातल से लाकर यहां स्थापित किया है। जो वीरत्व की कामना करते हैं, उनके लिये इन देवी का ध्यान तथा अर्चना करनी आवश्यक है। अनेक देवता तथा दैत्यों ने इनकी आराधना करके इन देवी चर्चिता से वीरत्व प्राप्त किया था। ये महादुर्गा ही भविष्यत् काल में वीरश्रेष्ठ शूद्रक को चोरों द्वारा बन्दी बनाये जाने पर अपने विक्रम द्वारा उसे मुक्त करायेंगी। तब वह शूद्रक इनकी उपासना द्वारा वीरेन्द्रत्व लाभ करेगा तथा अपने विक्रम से कालसेन आदि प्रमुख शत्रुओं का विनाश करेगा। इसलिए वीर्यकामी मनुष्य इनकी सदा आराधना करें। पश्चिम में जो चर्चिका देवी हैं, उनके ही बगल में तृतीया दुर्गा त्रैलोक्यविजया विराजमान हैं। रोहिणीपति चन्द्रमा ने इनकी आराधना करके त्रैलोक्य विजय लाभ किया था। मैंने सोमलोक से उनको लाकर स्थापित किया था। ये पूजक को सदा जय प्रदान करती हैं। ये इसी भाव से पश्चिम दिशा में विराजित हैं।।४९-५४।।

एवमेताः पश्चिमायामुत्तरस्यामतःशृणु। तिस्त्रोदेव्याश्चोत्तरस्यामेकवीरामुखाःस्थिताः॥५५॥
एकवीरेति या देवी साक्षात्सा शिवपूजिता। ययाविष्टो जगत्सर्वं संहरत्येषभूतराट्॥५६॥

वीर्येणाऽऽद्येकवीरायाः कृत्वा लोकांश्च भस्मसात्।
युगैकादशपूर्णत्वे विलक्षोऽभूत्स भस्मनि॥५७॥
एवम्विधात्वेकवीराशक्तिरेषासनातनी। पूजिताऽऽराधिताचैवसर्वाभीप्सितदानृणाम्॥५८॥
ब्रह्मलोकात्समानीतामयाऽऽराध्याऽत्रभारत। नामकीर्तनमप्यस्यादुष्टानांघातनंविदुः॥५९॥

अब जो इनके उत्तर में स्थित हैं, उनका वर्णन सुनो। उत्तर दिशा में एकवीरा प्रभृति तीन देवी विराजमान हैं। एकवीरा साक्षात् भगवान् शिव से पूजिता हैं। वे भूतनाथ इन देवी से ही आविष्ट होकर समस्त जगत् का संहार करते हैं। वे इन एकवीरा देवी के ही प्रभाव से समस्त लोकों को भस्म करके उस भस्म पर एकादश युगांत पर्यन्त प्रकट रहते हैं। ऐसी प्रभावशालिनी एकवीरा देवी की अर्चना करने वाला इनसे सभी वांछित वस्तु प्राप्त करता है।

हे भारत! मैंने अपनी आराधना के प्रभाव से इनको ब्रह्मलोक से लाकर यहां स्थापित किया। इनके नाम कीर्त्तन से दुष्टदलन होता है। यह सुधीजन जानते हैं।।५५-५९।।

द्वितीया हरिसिद्ध्याख्या देवी दुर्गा महाबला।
शीकोत्तरात्समाराध्य मयाऽऽनीताऽत्र पाण्डव!।।६०।।
यदा शीकोत्तरस्थेनपार्वत्याप्रार्थितेनच। रुद्रेणडाकिनीमन्त्रः प्रोक्तोदेव्याः कृपालुना।।६१।।
तदा मन्त्रप्रभावेण मोहिता गिरिजासती। तमेवाऽऽक्रम्य मांसंच शोणितंचभवंपपौ।।६२।।
ततो रुद्रशरीरात्तुविनिष्क्रान्तार्तिनाशिनी। हरसिद्धिर्महादुर्गा महामन्त्रविशारदा।।६३।।
सा सहस्त्रभुजादेवी समाक्रम्याऽभिपीड्य च। मोक्षयामास गिरिशमशापयततान्तथा।।६४।।
ततः प्रभृति सा लोके हरसिद्धिः प्रकीर्त्यते। देवीनां षष्टिकोटीभिरावृतापूज्यते सुरैः।।६५।।
एतामाराध्य सुग्रीवप्रमुखादोषनाशिनीम्। अभूवन्त्सुमहावीर्या डाकिनीसंघनाशनाः।।६६।।
तस्मादेतां पूजयेत्तु मनोवाक्कायकर्मभिः। डाकिन्याद्या न सर्पन्ति हरसिद्धेरनन्तरम्।।६७।।

द्वितीय दुर्गा का नाम है हरसिद्धा। ये देवी महा बलशाली हैं। हे अर्जुन! मैं इनकी ही आराधना के द्वारा शीकोत्तर पर्वत से यहां पहुंच सका। जब शिव-पार्वती शीकोत्तर पर्वत पर निवास कर रहे थे, तब एक बार पार्वती देवी ने रुद्रदेव से डाकिनी मन्त्र हेतु प्रार्थना किया। कृपालु रुद्रदेव ने पार्वती को डाकिनी मन्त्र प्रदान किया। इस मन्त्र के प्रभाव से सती गिरिजा मोहित होकर तत्क्षण रुद्रदेव पर आक्रमण करके उनकी देह से मांस-शोणित का भक्षण करने लगीं। तब रुद्रदेव के शरीर से सहस्त्रभुजा, क्लेशनाश करने वाली महामन्त्र विशारदा हरसिद्धि का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने पार्वती पर आक्रमण करके उनको दबाया तथा उनको गाली देकर रुद्रदेव का उनके हाथों परित्राण किया। तभी से उनका नाम हरसिद्धि पड़ा। ये ६० करोड़ देवीगण से घिरी रहती हैं। देवता इनकी सदा अर्चना करते रहते हैं। इन दोषहारी हरसिद्धि देवी की आराधना करके सुग्रीवादि अनेक लोग महान् वीर्यशाली हो गये तथा डाकिनीसमूह का नाश कर सकने में समर्थ हुये। इसलिए मन-वचन-कर्म से इनकी उपासना करे। इससे डाकिनियां कभी उस व्यक्ति के निकट नहीं आतीं।।६०-६७।।

तृतीयेशानकोणस्थाचण्डिकानवमीस्थिता। वागीशोऽपिलभेत्पारंनैवयस्याःप्रवर्णने।।६८।।
या पुरा पार्वतीदेहाद्विनिःसृत्य महासुरौ। चण्डमुण्डौनिहत्यैवभक्षयामासक्रोधतः।।६९।।
अक्षौहिणीशतं त्वेकं चण्डमुण्डौ च तावुभौ।
नापूर्यतैकग्रासोऽस्याः किंलक्ष्या या त्वियं हि सा।।७०।।
इयमेवाऽन्धकानां च तृषिता शोणितं पुनः। पपौ ततो निजग्राहचान्धकंभगवान्भवः।।७१।।
इयं च रक्तबीजानांकृत्वा पानञ्च रक्तजम्। अर्पयामासतंदेव्याश्चामुण्डापीतशोणितम्।।७२।।
एषातृप्यतिभक्तानांप्रणामेनाऽपि भारत!। अर्बुदानांचकोटीभिर्दैत्यानांपापकर्मिणाम्।।७३।।
कुण्डञ्चास्यामयादेव्याःपुण्यंनिष्पादितंशुभम्। यत्र वै स्पर्शमात्रेणसर्वतीर्थफलंलभेत्।।७४।।
हरसिद्धिर्देवसिद्धिर्धर्मसिद्धिश्च भारत!। विविधा प्राप्यते सिद्धिस्तीर्थेऽस्मिंश्चण्डिकारतैः।।७५।।

यच्च पूजयते देवीं स्वल्पेन बहुनाऽपि वा। कात्यायनी कोटिशतैर्वृता तस्यविभूतिदा॥७६॥

तदनन्तर ईशानकोण में तृतीया देवी चण्डिका विराजिता हैं। ये नवम दुर्गा हैं। इनकी महिमा का वर्णन बृहस्पति भी नहीं जानते। पूर्वकाल में इन्होंने पार्वती की देह से निकल कर चण्ड-मुण्ड नामक असुरद्वय का क्रोधपूर्वक भक्षण किया था। चण्ड-मुण्ड दैत्य तथा उनकी १०० अक्षौहिणी सेना देवी चण्डिका का एक ग्रास भी नहीं था। इसी से यह विचार करो कि यह कैसी प्रभावशालिनी हैं। इन्होंने तृषित होकर करोड़ों-अरबों दैत्यों का रक्तपान करके उनको हतवीर्य कर दिया था। तदनन्तर भगवती दुर्गा उनका संहार करने में समर्थ हो सकीं। ये देवी भक्तों के प्रणाम से ही प्रसन्न हो जाती हैं। मैंने इन महादेवी का एक शुभ कुण्ड निर्माण किया था। इसके जल का स्पर्श करने मात्र से सर्वतीर्थफल प्राप्त हो जाता है। चण्डिका के भक्तों को इस तीर्थ में हरसिद्धि, देवसिद्धि तथा धर्मसिद्धि प्राप्त होती है। चाहे सामान्य उपचार से अथवा विशेष उपचार से चाहे जैसे हो, इनकी अर्चना द्वारा शतकोटि परिवारयुता कात्यायनी देवी मानव को विभूति प्रदान करती हैं।।६८-७६।।

एवमेतामहादुर्गानवतीर्थेऽत्रसंस्थिताः। चतस्त्रश्चापिदिग्देव्योनित्यमर्च्याःशुभेप्सिभिः॥७७॥
आश्विनस्य च मासस्य नवरात्रे विशेषतः। उपोष्यचैकभक्तैर्वादेवीस्त्वेताः प्रपूजयेत्॥७८॥
बलिपूपकनैवेद्यैस्तर्पणैर्धूपगन्धिभिः। तस्य रक्षां चरन्त्येता रथ्यासु त्रिकचत्वरे॥७९॥
भूतप्रेतपिशाचाद्या नोपकुर्युः प्रपीडनम्। आपदोविद्रवन्त्याशुयोगिन्योनन्दयन्तितम्॥८०॥
पुत्रार्थीलभतेपुत्रान्धनार्थीधनमाप्नुयात्। रोगार्तोमुच्यतेरोगाद्बद्धोमुच्येतबन्धनात्॥८१॥
आसां यःकुरुते भक्तिं नरो नारी च श्रद्धया। सर्वान्मानकमानवाप्नोति यांश्चिन्तयति चेतसि॥८२॥
कामगव्य इमा देव्यश्चिन्तामणिनिभास्तथा।
कल्पवल्ल्योऽऽथ भक्तानां प्रतिच्छन्दोऽत्र नैव हि॥८३॥

इस प्रकार से इस तीर्थ में नवदुर्गा तथा चारों दिक्देवी प्रतिष्ठिता हैं। शुभकामी जनगण नित्य इनकी अर्चना करे। विशेषतः आश्विन मासीय नवरात्रि में उपवास अथवा एकाहार करके देवीगण की बलि पिष्टक नैवेद्य, तर्पण तथा धूपादि से पूजा करना आवश्यक है। ऐसा करने से देवी उसकी रक्षा मार्ग में, तिराहे पर, चौराहा आदि स्थानों पर सदा करती हैं। भूत-प्रेत-पिशाचादि उस व्यक्ति को कभी पीड़ित ही नहीं कर पाते। उसकी सभी आपत्तियां दूर हो जाती हैं। योगिनियां उसका सतत् आनन्दवर्द्धन करती हैं। पुत्रार्थी पुत्र तथा धनार्थी धनलाभ करता है। रोगी व्यक्ति रोगमुक्त होता है। बद्ध व्यक्ति बन्धन से रहित हो जाता है। इन देवीगण की भक्ति जो भी नर अथवा नारी करते हैं, वे मन ही मन जो भी कामना करेंगे, वह सब उनको प्राप्त होगा। ये देवीगण भक्तों हेतु कामधेनु, चिन्तामणि तथा कल्पलता के समान फलप्रदा हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।।७७-८३।।

तथाऽत्र भूतमाताऽस्ति हरसिद्धेस्तुदक्षिणे। तस्या माहात्म्यमतुलंसंक्षेपात्प्रब्रवीमिते॥८४॥
पूर्वं किल गुहो विद्वान्पुण्ये सारस्वते तटे। भूतप्रेतपिशाचानामाधिराज्येऽभ्यषिच्यत॥८५॥
सचसर्वाणि भूतानि मर्यादायामधारयत्। एतदन्नं प्रदायैव कृपया भगवान्गुहः॥८६॥
यदमन्त्रहुतं किंचिद्वेदबाह्यं च यत्कृतम्। अश्रद्धया च क्रोधेनतद्वस्तृप्त्यैभविष्यति॥८७॥
ततस्त्वनेनभोगेन तानि नन्दन्ति कृत्स्नशः। ततःकेनापि कालेन श्रद्धयाऽश्रद्धयाकृतम्॥८८॥

पुण्यं तान्येव भूतानिग्रसन्त्याक्रम्यदेवताः। ततोदेवाःक्षुधार्त्तास्ते गुहायैतन्न्यवेदयन्॥८९॥
स वै तदाकर्ण्यक्रुद्धोगुहःकालइवाऽभवत्। तस्यक्रुद्धस्य भ्रूपद्ममध्यात्काचिद्विनिर्गता॥९०॥
ज्वालामाला सुदुर्दर्शा नारी द्वादशलोचना। स च प्रणम्य तं प्राह तव शक्तिरहंप्रभो।
शीघ्रमादिश मां कृत्ये किं करोमि तवेप्सितम्॥९१॥

हरसिद्धि के दक्षिण की ओर भूतमाता विराजित हैं। इनकी अतुलित महिमा है। मैं तुमसे संक्षिप्त रूप से कुछ कहता हूं। पुराकाल में कुमारेश देव को पुण्यप्रदा सरस्वती के तट पर भूत-प्रेत-पिशाचों के राजा रूप में अभिषिक्त किया गया। अभिषेक के उपरान्त कुमारेश देव ने इन समस्त प्राणीवर्ग के लिये अस्त्रादि की कल्पना करके उनकी मर्यादा की स्थापना किया था। "जो मन्त्र रहित होम होता है, जो वेदविधि के बिना किया जाता है, वह तुम लोगों के लिए तृप्तिप्रदाता हो।" भगवान् स्कन्द गुहदेव ने यह कहकर इनकी मर्यादा की स्थापना किया था। तब से इस सब भोग द्वारा ये सदा तृप्ति का अनुभव करने लगे। तदनन्तर कालक्रम से ये श्रद्धा-अश्रद्धा पूर्वक जो भी पुण्य अनुष्ठित होता, सबका ग्रास करने लगे। इससे क्षुधार्त्त देवताओं ने कुमारदेव के पास आकर उनसे निवेदन किया। कुमार ने यह सुनकर क्रोध से काल के समान भीषण मूर्त्ति धारण किया। उनके भ्रूमध्य से ज्वालामाला समन्वित दुर्द्धर्शा १२ नेत्रों वाली एक नारी प्रादुर्भूत हो गयी। उस स्त्री ने कुमार को प्रणाम करके उनसे कहा—"प्रभो! मैं आपकी शक्ति हूं। शीघ्र मुझे कार्य प्रदान करें। मैं आपका क्या कार्य करूं"?॥८४-९१॥

स्कन्द उवाच

एतैर्भूतगणैः पापैरुल्लङ्घ्य मम शासनम्॥९२॥
मनुष्यदत्तं सकलं भुज्यते स्वेच्छयाऽधमैः। शीघ्रमेतानित्वंतस्मान्मर्यादायामुपानय॥९३॥
एतास्त्वानुव्रजिष्यन्तिदेव्यःकोटिशतंशुभे!। ततस्तथेतिसाचोक्त्वादेवीभिःसम्वृतातदा॥९४॥
मयूरं समुपास्थाय गुहशक्तिः समागता। सरोजवनमासाद्य भूतसङ्घानपश्यत॥९५॥
जघान च समासाद्य देवी नानाविधायुधैः। ततः प्रेतपिशाचाद्या हन्यमानामहारणे॥९६॥
प्रसादयन्ति तां देवीं नानावेषैःसुदीनवत्। केचिद्ब्राह्मणवेषैश्चतापसानांतथोक्तिभिः॥९७॥
नृत्यन्ति देविपद्माक्षिप्रसीदेतिपुनःपुनः। ततःप्रसन्नासादेवीव्रियतांस्वेच्छयाऽऽहतान्॥९८॥
तांतेप्रोचुस्त्राहिनस्त्वंभूतमाताभवेश्वरि। मर्यादांनैवत्यक्ष्यामोवयंस्कन्दवनिर्मिताम्॥९९॥
ये चैवं त्वां तोषयन्ति तेषां देहि वरान्सदा॥१००॥

कुमार ने कहा—"ये पापी भूतगण मेरे आदेश का उल्लंघन करके मनुष्यों द्वारा प्रदत्त सब कुछ का भक्षण कर रहे हैं। इसलिए तुम इन पापीगण में अविलम्ब मर्यादा स्थापित करो। हे शुभे! ये कोटिशत देवियां तुम्हारा अनुगमन करेंगी।" तब यह कुमारशक्ति देवी कोटि-कोटि देवियों से आवेष्टित होकर तथा मयूर पर सवार होकर पद्मवन में गयीं तथा उन भूतों को देखकर विविध आयुधों से उन पर प्रहार करने लगीं। इस महायुद्ध में प्रेत-पिशाचादि मार खाकर विविध-वेश धारण करके दीन भाव में देवी के पास आये तथा उनको प्रसन्न करने लगे। कोई ब्राह्मण वेश में, कोई तपस्वी वेश में उनके निकट आकर "देवी, पद्माक्षि! प्रसन्न होइये" इस प्रकार बारम्बार प्रार्थना करने लगे। इससे देवी ने सन्तुष्ट होकर कहा—"तुम सब क्या वर चाहते हो कहो।" उन सबने कहा—हे देवी!

हमारी रक्षा करें। हे ईश्वरी! आप भूतों की माता हैं। हम कभी स्कन्द निर्मित मर्यादा का लंघन नहीं करेंगे। जो इस प्रकार से आपको सन्तुष्ट करें, आप उनके लिए सदा वरप्रदा रहिये।।९२-१००।।

श्रीदेव्युवाच

वैशाखे दर्शदिवसे ये चैवं तोषयन्ति माम्। अरिष्टाभरणैः पुष्पैर्दधिभक्तैश्च पूजनैः।।१०१।।
तेषां सर्वोपसर्गा वै यास्यन्ति विलयं स्फुटम्।
एवं दत्त्वा वरं देवी मुमुदे भूतसम्वृता। एवम्प्रभावा सा देवी मयानीताऽत्र भारत।।१०२।।
य एनाम्प्रणमेन्मर्त्यः सर्वारिष्टैर्विमुच्यते।।१०३।।
एवम्प्रभावा परिकीर्तिता मया समासतस्तीर्थवरेऽत्र देव्यः।
चतुर्दशैवाऽर्जुन! पूजिता याश्चतुर्दशस्थानवरैर्नृमुख्यैः।।१०४।।

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे श्रीदेव्याख्यानवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।।४७।।

देवी कहती हैं—"जो वैशाखी अमावस्या को शुभ आभरण पुष्प-दधि भोज्यादि से मेरी पूजा करके मुझे सन्तुष्ट करते हैं, उनका मैं सभी उपसर्ग नाश कर देती हूं, इसमें सन्देह नहीं है।" वे देवी यह वर देकर भूतगण के साथ विचरण करने लगीं। हे भारत! इन देवी का ऐसा प्रभाव है। मैंने इनको यहां लाकर प्रतिष्ठित किया। जो मानव इनको प्रणाम करता है, उसको समस्त अरिष्टों से ये मुक्त कर देती हैं। हे अर्जुन! मैंने इस तीर्थ में प्रतिष्ठित सभी चतुर्दश देवी गण का प्रभाव संक्षेप में कहा। ये इन १४ स्थानों में १४ प्रधान लोगों से पूजिता हैं।।१०१-१०४।।

।।सप्तचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

सोमनाथ माहात्म्य, हाटकेश्वर वर्णन

नारद उवाच

अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि सोमनाथमहिं(माहात्म्यमत्यर्थः)स्फुटम्।
शृण्वन्यां कीर्तयिष्यामि पापमोक्षमवाप्नुयात्।।१।।
पुरा त्रेतायुगे पार्थ चौडदेशसमुद्भवौ। ऊर्जयन्तश्च प्रालेयो विप्रावास्तां महाद्युती।।२।।
तावेकदा पुराणार्थे श्लोकमेकमपश्यताम्। तं दृष्ट्वासर्वशास्त्रज्ञावास्तांकण्टकितत्वचौ।।३।।

प्रभासाद्यानितीर्थानिपुलस्त्यायाऽऽहपद्मभूः। नयैस्तत्राप्लुतंचैवकिन्तैस्तीर्थमुपासितम्।।४।।
इति श्लोकं पठित्वातौ पुनःपुनरभिष्टुतम्। तर्ह्येवच प्रभासाय निःसृतौ स्नातुमुत्तमौ।।५।।
तौ वनानि नदीश्चैव व्यतिक्रम्य शनैःशनैः। महर्षिगणसङ्कीर्णामुत्तीर्णौ नर्मदांशिवम्।।६।।
गुप्तक्षेत्रस्य माहात्म्यं महीसागरसङ्गमम्। तत्र स्नात्वा प्रभासाय तन्मध्येन प्रतस्थतुः।।७।।
ततो मार्गस्य सून्यत्वात्तट्क्षुधापीडितौ भृशम्। आस्तां विचेतनौ विप्रौ सिद्धलिङ्गसमीपतः।।८।।
सिद्धनाथं नमस्कृत्य सम्प्रयातौ सुधैर्यतः। क्षुधावेगेन तीव्रेण तृषा मध्यार्कतापितौ।।९।।

नारद कहते हैं—हे अर्जुन! अब सोमनाथ महिमा कहता हूं। इसे सुनकर मनुष्य पापरहित हो जाता है। हे पार्थ! पूर्व त्रेतायुग में चोल देश के निवासी उर्जयन्त तथा प्रालेय नामक महाप्रभावशाली दो ब्राह्मण थे। एक बार उन्होंने एक श्लोक पुराणान्तर्गत देखा। यद्यपि वे सर्वशास्त्रविद् थे, तथापि यह श्लोक देखकर वे रोमांचित हो गये। श्लोक यह था—"पद्मजन्मा ब्रह्मा ने पुलस्त्य आदि (ऋषिगण) से प्रभास आदि तीर्थ का वर्णन किया था। जिन्होंने प्रभासतीर्थ का सेवन नहीं किया क्या उन्होंने तीर्थ सेवन किया है?" वे इस श्लोक को पढ़कर पुनः-पुनः प्रभास की प्रशंसा करके तभी प्रभास स्नानार्थ चल पड़े। उन्होंने नाना नदी, कानन आदि पार किया तथा क्रमशः महर्षिगण से व्याप्त नर्मदा तट को भी पार किया। वहां उन्होंने गुप्तक्षेत्र महीसागरसंगम का माहात्म्य सुना तथा गुप्तक्षेत्र होकर प्रभास जाना प्रारम्भ किया। वह मार्ग जनशून्य था। अतः जाते-जाते वे ब्राह्मणद्वय क्षुधा-तृष्णा से नितान्त क्लान्त हो गये। उनकी चेतना विलुप्त प्रायः थी। वह स्थान सिद्ध शिवलिंग के निकट ही था। क्रमशः वे सिद्धनाथ को प्रणाम करके क्लेशपूर्वक आगे बढ़े। अतिरिक्त मार्ग पर्यटन के कारण उनके पगद्वय फूल गये। चलने की शक्ति नहीं थी। क्षुधा-तृष्णा तथा मध्याह्नकालीन सूर्यताप से वे तप्त हो गये।।१-९।।

सहसा पतितौ भूमौ स्थूणपादौ विमूर्च्छितौ।
ततो मुहूर्तात्प्रालेय ऊर्जयन्तमभाषत।।१०।।
किञ्चिद्विश्वस्य धैर्याच्च सखे! किन्न श्रुतंत्वया। यथायथाविवर्णाङ्गोजायतेतीर्थयात्रया।।११।।
तथातथा भवेद्दानैर्दीनः सोमेश्वरोहरः। तथाऽऽस्तां लुण्ठमानौतावेवमुक्तेश्रुतेऽपि च।।१२।।
लुण्ठमानो जगामैव प्रालेयः किञ्चिदन्तरे। उत्थितंसहसालिङ्गंभूमिंभित्त्वासुदुर्दृशम्।।१३।।
खे वाणी चाऽभवत्तत्र पुष्पवर्षपुरःसरा। प्रालेय तव हेतोस्तु सोमनाथसमं फलम्।
उत्थितं सागरतटे लिङ्गं तिष्ठाऽत्र सुव्रत!।।१४।।

इस प्रकार क्लान्त होनेपर वे एक जगह मूर्च्छित होकर गिर गये। तदनन्तर कुछ समय के उपरान्त प्रालेय ने धैर्यपूर्वक किंचित चेतना आने पर आश्वस्त होकर उर्जयन्त से कहा—"हे सखे! क्या तुमने नहीं सुना था कि तीर्थयात्री व्यक्ति जैसे-जैसे मार्गक्लेश से विवर्ण अंगों वाला होता जाता है, उसी परिमाण में सोमेश्वर शंकर भी उसे सुकृत दानार्थ स्वयं भी दीन हो जाते हैं।" यह कह-सुन कर दोनों घिसटते-घिसटते जाने लगे। उर्जयन्त कुछ आगे जा रहे थे। प्रालेय उनके पीछे चलता जा रहा था। सहसा वहां भूमि का भेदन करके एक समुज्ज्वल लिंग प्रादुर्भूत हो गया। तभी पुष्पवृष्टि के साथ एक आकाशवाणी सुनी गयी। यथा—"हे प्रालेय! तुम्हारे लिये सागरतट पर सोमनाथ के समान फलप्रद लिंग प्रादुर्भूत हुआ है। हे सुव्रत! तुम यहीं पर अवस्थान करो।।१०-१४।।

प्रालेय उवाच

यद्येवं सत्यमेतच्च तथाप्यात्मा प्रकल्पितः॥१५॥
प्रभासाय प्रयातव्यं यदाऽऽमृत्योर्मया स्फुटम्।
ततस्चैवोर्ज्जयन्तोऽपि मूर्च्छाभावाल्लुठन्पुरः॥१६॥
अपश्यदुत्थितं लिङ्गं स चैवं प्रत्यपद्यत। ततः प्रत्यक्षतां प्राप्तो भवश्चक्रे तयोर्दृढे॥१७॥
दृष्ट्या तनू ततो यातौ प्रभासंशिवसद्म च। तावेतौ सोमनाथौद्वौसिद्धेश्वरसमीपतः॥१८॥
ऊर्जयन्तःप्रतीच्याञ्चप्रालेयस्येश्वरोऽपरः। सोमकुण्डाम्भसिशनैःस्नात्वाऽर्णमहीजले॥१९॥
सोमनाथद्वयंपश्येज्जन्मपापात्प्रमुच्यते। ब्रह्माऽत्र स्थापयित्वा तु हाटकेश्वरसञ्ज्ञितम्॥२०॥
महीनगरके लिङ्गं पातालात्सुमनोहरम्। तुष्टाव देवं प्रयतः स्तुतिन्तां शृणु पाण्डव!॥२१॥

प्रालेय कहते हैं—"यद्यपि यह सत्य तो है, तथापि मैंने प्रभास गमनार्थ संकल्प किया। जबतक मृत्यु न हो जाये, तबतक प्रभास जाने का उपक्रम करूंगा।" तभी उर्जयन्त ने भी किसी प्रकार से आगे जाते-जाते पूर्ववत् अपने सामने उत्थित एक लिंग देखा। उनकी भी यह दृढ़ता देखकर शंकर ने उनको प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उन्होंने अपने विमल दृष्टिपात द्वारा उनकी देह को दृढ़ कर दिया। तदनन्तर वे प्रभास में शिवनिवास (मन्दिर) जाने के लिए सुदृढ़ तथा सक्षम हो गये। वे दोनों सोमनाथलिंग सिद्धेश्वर के समीप विराजमान थे। उर्जयन्त के सोमनाथ पश्चिम की ओर तथा प्रालेय के सोमनाथ पूर्व की ओर प्रतिष्ठित थे। मानव सोमकुण्ड का तथा महीसागर के जल में स्नान करके तथा इन दोनों सोमनाथ का दर्शन करके आजन्मकृत पापों से मुक्त हो जाता है। पूर्व में ब्रह्मा ने पाताल से लाकर अति सुन्दर हाटकेश्वर लिंग को इसी क्षेत्र में प्रतिष्ठित किया था। उन्होंने उस लिंग प्रतिष्ठा के उपरान्त जो स्तव किया था, हे पाण्डुनन्दन! उसे सुनो॥१५-२१॥

नमस्ते भगवन्रुद्र भास्कराऽमिततेजसे। नमो भवाय रुद्राय रसायाम्बुमयाय ते॥२२॥
शर्वाय क्षितिरूपाय सदा सुरभिणे नमः। ईशाय वायवे तुभ्यं संस्पर्शायनमोनमः॥२३॥
पशूनां पतये चाऽपि पावकायाऽतितेजसे। भीमाय व्योमरूपाय शब्दमात्राय ते नमः॥२४॥
महादेवाय सोमाय अमृताय नमोऽस्तु ते। उग्राय यजमानाय नमस्ते कर्मयोगिने॥२५॥
इत्येवं नामभिर्दिव्यैःस्तवः एष उदीरितः। यः पठेच्छ्रणुयाद्वाऽपि पितामहकृतंस्तवम्॥२६॥
हाटकेश्वरलिङ्गस्य नित्यञ्च प्रयतो नरः। अष्टमूर्तेः स सायुज्यं लभते नाऽत्र संशयः॥२७॥
हाटकेश्वरलिङ्गं च प्रयतो यः स्मरेदपि। तस्य स्याद्वरदो ब्रह्मा तेनेदं स्थापितं जय॥२८॥
एवम्विधानि तीर्थानि महीसागरसङ्गमे। बहूनि सन्ति पुण्यानिसंक्षेपाद्वर्णितानि मे॥२९॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे स्तम्भतीर्थमाहात्म्ये सोमनाथवृत्तान्तवर्णनं नामाऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥४८॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे भगवान्! आपको प्रणाम! हे रुद्र! आप भास्कर के समान तेज वाले हैं। आपको प्रणाम! आप भव, रुद्र, रस, अम्बुमय, शर्व, सुरभि हैं। आपको प्रणाम! आप क्षितिरूपी हैं, आपको प्रणाम! आप ईश्वर तथा वायु हैं, आपको प्रणाम! आप ही संस्पर्श हैं, आपको प्रणाम! आप पशुपति हैं, अति तेजस्वी पावक हैं, भीम-शब्दमात्र तथा व्योमरूपी हैं। आपको प्रणाम! आप महादेव, सोम तथा अमृत हैं। आपको प्रणाम! आप उग्र, यजमान तथा कर्मयोगी हैं, आपको प्रणाम! हे अर्जुन! पितामह कृत इस स्तव का मैंने कीर्त्तन किया। यह शंकर के कतिपय नामों से युक्त है। जो मानव नित्य भक्तिभाव से पितामह कृत हाटकेश्वर स्तोत्र का पाठ करता है अथवा श्रवण करता है, वह अष्टमूर्त्ति शिव के सायुज्य को प्राप्त कर लेता है। हे अर्जुन! यदि कोई हाटकेश्वर लिंग का पवित्र भाव से स्मरण भी करे, तब ब्रह्मा उसे वर देते हैं। तभी वे यहां प्रतिष्ठित हैं। महीसागरसंगम में ऐसे अनेक प्रभावशाली पुण्यतीर्थ विद्यमान हैं। मैंने संक्षेप में उनका वर्णन किया।।२२-२९।।

।।अष्टचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

आदित्य-कमठ संवाद, गर्भ से बाह्यावस्था वर्णन

अर्जुन उवाच

अत्यद्भुतानि तीर्थानिलिङ्गानि च महामुने। श्रुत्वा तव मुखाम्भोजाद्भृशंमेहृष्यतेमनः।।१।।
महीनगरकस्याऽपिस्थापितस्यत्वया मुने!। यानि तीर्थानिमुख्यानितानिवर्णयमेप्रभो।।२।।

हे महामुनि नारद! आपके मुख से अत्यन्त अद्भुद् लिंग तथा तीर्थों का विवरण सुन कर मेरे मन में अतीव तृप्ति हो रही है। हे प्रभो! अब आपके द्वारा प्रतिष्ठित महीसागर के प्रधान-प्रधान तीर्थों का वृत्तान्त मुझे बताने की कृपा करें।।१-२।।

नारद उवाच

स्त्रीमन्महीनगरकेयानितीर्थानिफाल्गुन। तानिवक्ष्यामियत्राऽऽस्तेजयादित्योरविःप्रभुः।।३।।
जयादित्यस्ययोनामकीर्तयेदिहमानवः। सर्वरोगविनिर्मुक्तोलभेत्सोऽपि हृदीप्सितम्।।४।।
यस्य सन्दर्शनादेव कल्याणैरपिपूर्यते। मुच्यते चाप्यकल्याणैः श्रद्धावान्पार्थ! मानवः।।५।।
तस्यदेवस्यचोत्पत्तिंशृणुपार्थवदामिते। शृण्वन्वाकीर्तयन्वाऽपिप्रसादंभास्कराल्लभेत्।।६।।
अहं संस्थाप्य संस्थानमेतत्कालेन केनचित्। प्रयातो भास्करं लोकं दर्शनार्थी यदृच्छया।।७।।
स मां प्रणतमासीनमभ्यर्च्याऽर्घेण भास्करः। प्रहसन्निव प्राहेदं देवो मधुरया गिरा।।८।।
कुत आगम्यते विप्र! क्व च वा प्रतिगम्यते। क्व चाऽयं नारदमुने! कालस्तेविहतोऽभवत्।।९।।

नारद कहते हैं—हे अर्जुन! जहां जयादित्य नामक प्रतापी आदित्यदेव विराजमान हैं, मैं उस श्रीमान्

महीसागर तीर्थ का वर्णन करता हूं। जो मानव जयादित्य के नाम का कीर्त्तन करता है, वह इस लोक में समस्त रोगों से मुक्त होता है तथा समस्त वांछित की प्राप्ति भी करता है। हे पार्थ! जयादित्य के दर्शन मात्र से श्रद्धालु व्यक्ति समस्त कल्याणयुक्त होता है तथा अकल्याणों से सर्वथा रहित होता है। हे अर्जुन! अब जयादित्य देव की उत्पत्ति का वृत्तान्त सुनो! मैं तुमसे उसका यथायथ वर्णन करता हूं। इसे सुनने अथवा पाठ करने से वह व्यक्ति भास्कर देव की कृपा का अधिकारी होता है। मैंने पूर्वकाल में इस स्थान की प्रतिष्ठा करके कुछ काल पश्चात् एक बार उत्सुकतावशात् सूर्यलोक गमन किया था। वहां भास्करदेव को प्रणाम करके जब आसन पर बैठा, तब उन्होंने अर्घ्य आदि से मेरा सत्कार करके सहास्य मुद्रा में मधुर वाक्य कहा—"हे नारद विप्र! आप कहां से आये हैं, कहां जायेंगे, हे नारद! अबतक कहां घूम रहे थे"?।।३-९।।

नारद उवाच

एवमुक्तो भास्करेण तं तदा प्राब्रवम्वचः। भारते विहृतः खण्डे महीनगरकादपि।
दर्शनार्थं तव विभो! समायातोऽस्मि भास्कर!॥१०॥

नारद कहते हैं—मैंने भास्करदेव का वचन सुनकर उनसे कहा—"हे विभो! मैं अभीतक भारतभूमि में घूम रहा था। हे भास्कर! सम्प्रति मैं महीसागर से आपके दर्शनार्थ यहां आया हूं।।१०।।

रविरुवाच

यत्त्वयास्थापितंस्थानंतत्रयेसन्ति ब्राह्मणाः। तेषांगुणान्ममब्रूहिकिंगुणाननुते द्विजाः॥११॥

भगवान् रवि कहते हैं—हे नारद! आपने जिस स्थान की प्रतिष्ठा की है, वहां जितने ब्राह्मण हैं, उनमें क्या गुण है? आप मुझसे वह वर्णन करिये।।११।।

नारद उवाच

एवं पृष्टो भगवता पुनरेवाऽब्रवम्वचः॥१२॥
यदि तान्भोः प्रशंसामि स्वीयान्स्तौतीति वाच्यता।
निन्दाम्यनर्हान्कस्माद्वा कष्टमेवोभयत्र च॥१३॥
अथवाऽपारमाहात्म्ये सति तेषां महात्मनाम्। अल्पे कृते वर्णने स्याद्दोषएवमहान्मम॥१४॥
मदर्चितद्विजेन्द्राणां यदि स्याच्छ्रवणेप्सुता। ततः स्वयं विलोक्यास्तेगत्वेदंमेमतंरवे॥१५॥
इति श्रुत्वा मम वचो रविरासीत्सुविस्मितः। स्वयं द्रक्ष्यामि चोवाचपुनःपुनरहर्पतिः॥१६॥

नारद कहते हैं—भगवान् भास्कर के यह कहने पर मैंने पुनः उनसे कहा—"हे सूर्य! यदि मैं उनकी प्रशंसा करूंगा, तब यह बात उठ सकती है कि मैं अपने आत्मीयगण की प्रशंसा कर रहा हूं। वे निन्दनीय नहीं हैं। इसलिए उनकी निन्दा क्यों करूंगा? दोनों बातों में ही कष्ट है। यदि वे महात्मा अपार गुणवान् हों तथा यदि मैं उनकी अल्प प्रशंसा करता हूं, तब यह भी तो महान् दोष मुझे लगेगा। अतः मेरे द्वारा पूजित लोगों के गुणगण के जानने की यदि आपको इच्छा है, तब आप स्वयं उसे देखें। हे भास्कर! मेरा यही अभिमत है। मेरी यह बात सुनकर सूर्यदेव अत्यन्त विस्मित हो गये तथा "मैं स्वयं जाकर देखता हूं" यही उन्होंने बारम्बार कहा।।१२-१६।।

सोऽथ विप्रतनुंकृत्वामांविसर्ज्यैव भास्करः। प्रतपन्दिवि योगाच्चप्रयातोऽर्णवरोधसि॥१७॥
जटां त्रिषवणस्नानपिङ्गलां धारयन्नथ। वृद्धद्विजो महातेजा ददृशे ब्राह्मणैर्मम॥१८॥

तब भास्कर ने मुझे विदा किया तथा योग प्रभाव से अपनी तापदायक मूर्त्ति गगनतल में रखकर अन्य एक ब्राह्मणमूर्त्ति उन्होंने धारण करके सागर तीरस्थ भूमि पर इस हेतु यात्रा किया। त्रिकाल स्नान से जिस प्रकार से जटा पिंगलवर्ण होती है, तद्रूप पिंगल जटाधारी तेजस्वी वृद्ध ब्राह्मण मूर्त्ति में वे ब्राह्मणों को दिखलाई पड़े।।१७-१८।।

ततो हारीतप्रमुखाः प्रहर्षोत्फुल्ललोचनाः। उत्थाय ब्रह्मशालायास्तेद्विजाद्विजमाद्रवन्॥१९॥
नमस्कृत्य द्विजाग्र्यन्ते प्रहर्षादिदमब्रुवन्॥२०॥
अद्य नो दिवसः पुण्यः स्थानमद्योत्तमं त्विदम्। यत्त्वयाविप्रप्रवरस्वयमागमनंकृतम्॥२१॥
धन्यस्यहिगृहस्थस्यकृपयैवद्विजोत्तमाः। आतिथ्यवेषेणाऽऽयान्तिपावनार्थंनसंशयः॥२२॥
तत्त्वं गाहनि चास्माकंपादचङ्क्रमणेनच। दर्शनाद्भोजनात्स्थानादस्माभिःसह पावय॥२३॥

तब हारीत आदि द्विजगण ने हर्षोत्फुल्ल नेत्र से ब्रह्मशाला से सहसा उठकर द्रुतगति से उनके पास आकर प्रणाम किया तथा सहर्ष यह कहा कि यह दिवस हमलोगों के लिए पुण्यप्रद है। यह स्थान भी उत्तम निश्चित हो गया। क्योंकि हे विप्रवर! आपका स्वयं यहां आगमन हुआ है। श्रेष्ठ द्विजगण कृपा करके गृहस्थगण के गृह को धन्य करने तथा वहां पवित्रता विधान करने हेतु अतिथिवेश में आते हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अतः आप दर्शन-भोजन तथा पादचारण द्वारा हमारे साथ चलकर हमारे घरों को पवित्र करें।।१९-२३।।

अतिथिरुवाच

भोजनं द्विविधं विप्रा प्राकृतं परमं तथा। तदहं सम्यगिच्छामि दत्तं परमभोजनम्॥२४॥
इत्येतदतिथेः श्रुत्वा हारीतः पुत्रमब्रवीत्। अष्टवर्षन्तु कमठं वेत्सि पुत्र! द्विजोदितम्॥२५॥

अतिथि कहते हैं—"हे विप्रगण! भोजन दो प्रकार का होता है। प्राकृत तथा परम। इसमें मैं आपलोगों द्वारा प्रदत्त परम भोजन की ही इच्छा करता हूं।" यह सुन कर हारीत मुनि ने अपने अष्टवर्षीय पुत्र से कहा—"हे पुत्र! इन विप्र ने जो कहा, क्या उसे तुमने समझा"?।।२४-२५।।

कमठ उवाच

तात! प्रणम्य त्वां वक्ष्ये तादृक्परमभोजनम्। द्विजञ्चतर्पयिष्यामिदत्त्वापरमभोजनम्॥२६॥
सुतेन किल जातेन जायते चाऽनृणः पिता। सत्यं करिष्ये तद्वाक्यं सन्तर्प्याऽतिथिमुत्तमम्॥२७॥
भोजनं द्विप्रकारञ्च प्रविभागस्तयोरयम्। प्राकृतं प्रोच्यते त्वेवमन्यत्परमभोजनम्॥२८॥
तत्र यत्प्राकृतं नाम प्रकृतिप्रमुखस्य तत्। चतुर्विंसतितत्त्वानांगणस्योक्तं हि तर्पणम्॥२९॥
षड्रसं भोजनं तच्च पञ्चभेदं वदन्ति च। येन भुक्तेन तृप्तं स्यात्क्षेत्रं यद्देहलक्षणम्॥३०॥
यथापरंपरंनाम प्रोक्तं परमभोजनम्। परमः प्रोच्यते चात्मा तस्य तद्भोजनं भवेत्॥३१॥
ततो नानाप्रकारस्य धर्मस्य श्रवणं हि यत्। तदन्नं प्रोच्यते भोक्ताः क्षेत्रज्ञः श्रवणौ मुखम्॥३२॥

तद्दास्यामिद्विजाग्र्यायपृच्छविप्रयदिच्छसि। शक्तितस्तर्पयिष्यामित्वामहंविप्रसंसदि॥३३॥

कमठ ने उत्तर दिया—"हे तात! आपको प्रणाम करके कहता हूं। परम भोजन मैं जानता हूं। उसके द्वारा आप विप्र को तृप्त कर सकेंगे। पुत्र का जन्म होनेपर पिता पितृऋण से मुक्त हो जाता है। मैं इस उत्तम अतिथि की तृप्ति करके इस वाक्य को सत्य करूंगा। भोजन द्विविध है। प्राकृत तथा परम। साधारण भोजन ही प्राकृत भोजन है। इसके द्वारा प्रकृति प्रभृति चतुर्विध २४ तत्वों की तृप्ति होती है। यह षड्रस भोजन से निष्पन्न होता है। यह सुधीगण के अनुसार ५ प्रकार का है, ऐसा वे कहते हैं। इस प्राकृत भोजन से देह नामक क्षेत्र की तृप्ति होती है और जो परम भोजन की बात कही गयी है, वह परमपदवाच्य आत्मा का ही भोजन है। विविध धर्मकथा श्रवण ही इसका अन्न है। क्षेत्रज्ञ ही इसका भोक्ता तथा कर्मयुगल इसका मुख है। इन द्विजप्रवर को मैं वही प्रदान करूंगा। हे विप्र! आप जो भोजन चाहें, वह कहें। मैं इस विप्रसभा में उससे ही आपको तृप्त करूंगा"।।२६-३३।।

नारद उवाच

कमठस्यैतदाकर्ण्य सोऽतिथिर्वचनं महत्। मनसैव प्रशस्याऽमुंप्रश्नमेनमथाऽकरोत्॥३४॥
कथं सञ्जायते जन्तुः कथं चाऽपि प्रलीयते। भस्मतामथ संप्राप्य क्व चाऽयंप्रतिपद्यते॥३५॥

नारद कहते हैं—वे अतिथि कमठ का ऐसा उर्जित वाक्य सुनकर मन ही मन उसकी प्रशंस करने लगे तथा उन्होंने यह प्रश्न किया कि देही कैसे जन्म लेता है, कैसे मृत होता है, भस्मीभूत होकर कहां जाता है?।।३४-३५।।

कमठ उवाच

गुरवे प्राङ्नमस्कृत्य धर्माय तदनन्तरम्। छन्दोगीतममुं प्रश्नंशक्त्या वक्ष्यामिते द्विज॥३६॥
जनने त्रिविधं कर्म हेतुर्जन्तोर्भवेत्किल। पुण्यं पापञ्च मिश्रञ्च सत्त्वराजसतामसम्॥३७॥
तत्रयःसात्त्विको नाम स स्वर्गंप्रतिपद्यते। स्वर्गात्कालपरिभ्रष्टो धनीधर्मीसुखीभवेत्॥३८॥
तथा यस्तामसोनाम नरकं प्रतिपद्यते। भुक्त्वा बह्वीर्यातनाश्च स्थावरत्वं प्रपद्यते॥३९॥
महतां दर्शनस्पर्शैरुपभोगसहासनैः। महता कालयोगेन संसरन्मानवो भवेत्॥४०॥
सोऽपि दुःखदरिद्राद्यैर्वेष्टितो विकलेन्द्रियः। प्रत्यक्षः सर्वलोकानां पापस्यैतद्धि लक्षणम्॥४१॥

कमठ ने कहा—हे द्विज! सर्वप्रथम गुरु को तथा तदनन्तर धर्म को प्रणाम करके आपके वेदोक्त इस प्रश्न का अपनी शक्ति के अनुसार उत्तर देता हूं। प्राणीगण के जन्म में कर्म ही हेतु है। ये कर्म त्रिविध हैं—सत्व, रजः, तमः। ये गुणत्रयात्मक हैं। इनमें सात्विक कर्म करने वाला पहले स्वर्ग जाता है। तदनन्तर कालक्रम से स्वर्गभ्रष्ट होकर इस लोक में धनी, धर्मी तथा सुखी होकर जन्म लेता है। तामस कर्म करने वाला प्राणी प्रथमतः नरकगामी होता है। वहां अनेक यातना भोगकर स्थावर योनि में जन्म लेता है। वहां महाजनगण के दर्शन-स्पर्शन-उपभोग एवं एकत्र अवस्थित होने के फल से दीर्घकाल के उपरान्त मनुष्यत्व प्राप्त कर पाता है, तथापि मनुष्य जन्म में भी वह विकलेन्द्रिय तथा दरिद्रता आदि विविध दुःखाक्रान्त होता है। पाप का यह फल लोक में प्रत्यक्ष है।।३६-४१।।

अथ यो मिश्रकर्मा स्यात्तिर्यक्त्वंप्रतिपद्यते। महतामेव संसर्गात्संसरन्मानवो भवेत्॥४२॥
यस्यपुण्यंपृथुतरंपापमल्पंहिजायते। स पूर्वं दुःखितोभूत्वापश्चात्सौख्यान्वितोभवेत्॥४३॥

पापं पृथुतरं यस्य पुण्यमल्पतरं भवेत्। पूर्वं सुखी ततो दुःखी मिश्रस्यैतद्धि लक्षणम्॥४४॥
तत्र मानुषसम्भूतिं शृणु यादृगसौ भवेत्। पुरुषस्य स्त्रियाश्चैव शुक्रशोणितसङ्गमे॥४५॥
सर्वदोषविनिर्मुक्तो जीवः संसरते स्फुटम्। गुणान्वितमनोबुद्धिशुभाशुभसमन्वितः॥४६॥
जीवः प्रविष्टो गर्भन्तु कलले प्रतितिष्ठति। मूढश्च कलले तत्र मासमात्रञ्च तिष्ठति॥४७॥
द्वितीयन्तु तथा मासं घनीभूतःस तिष्ठति। तस्याऽवयवनिर्माणं तृतीये मासिजायते॥४८॥
अस्थीनि च तथा मासि जायन्ते च चतुर्थके। त्वग्जन्म पञ्चमे मासि षष्ठे रोम्णां समुद्भवः॥४९॥
सप्तमे च तथा मासि प्रबोधश्चाऽस्य जायते। मातुराहारपीतञ्च सप्तमे मास्युपाश्नुते॥५०॥
अष्टमे नवमे मासि भृशमुद्विजते ततः। जरायुणा वेष्टिताङ्गो मुखे बद्धकराङ्गुलिः॥५१॥
मध्ये क्लीबस्तु वामे स्त्री दक्षिणे पुरुषस्तथा। तिष्ठत्युदरभागे च पृष्ठेरग्निमुखः किलः॥५२॥

जो प्राणी मिश्र कर्म करता है, वह तिर्यक् योनि पाकर महाजनगण के संसर्ग के कारण कालक्रमेण मनुष्यत्व की प्राप्ति करता है। जिसका पुण्य अधिक है, तथा पाप अल्प है, वह पहले दुःखभोग करके तब प्रभूत सुखभोग की प्राप्ति करता है। जिसके पाप अधिक हैं तथा पुण्य अल्प हैं, वह पहले सुखभोग करके तदनन्तर अनेक दुःख भोग करता है। मिश्र कर्म का लक्षण यही है। स्त्री-पुरुष का शुक्र-शोणित मिलित होनेपर सर्वदोषहीन जीव व्यक्त रूप से उसमें प्रविष्ट होता है। शुभा-शुभ कर्म तथा तदनुयायी गुणगान युक्त होकर जीव मन-बुद्धि आदि के साथ उस शुक्र-शोणित कलल में गर्भरूपेण स्थित होता है। १ मास तक इस कलल में वह मूढ़ता से रहता है। द्वितीय मास में किंचित घनीभूत होता है। तृतीय मास में उसके अवयव निर्मित होते हैं। चतुर्थ मास में उसकी अस्थियां बनती हैं। पंचम मास में उसे चर्मोत्पत्ति होती है। षष्ठ मास में रोम उगते हैं। सप्तम मास में उसे चैतन्य लाभ होता है। तब वह मातृ आहार रस ग्रहण करके परिपुष्ट होता है। अष्टम तथा नवम मास में माता की कोख में जरायु द्वारा उसके सभी अंग परिवेष्ठित हो जाते हैं। वह मुख में हाथों की उंगली डाल कर अत्यन्त उद्विग्नता से समय व्यतीत करता है। सुना है कि नपुंसक सन्तान उदर मध्य में, पुरुष सन्तान दक्षिण भाग में तथा कन्या सन्तान वाम भाग में रहते हैं। ये सब माता की पीठ की ओर अधोमुख होकर अवस्थित रहते हैं।।४२-५२।।

यस्यां तिष्ठत्यसौ योनौ ताञ्च वेत्ति न संशयः। सर्वं स्मरति वृत्तान्तं बहूनां जन्मनामपि॥५३॥
अन्धे तमसिकिंदृश्योगन्धान्मोहं दृढं लभेत्। शीतेमात्राजलेपीतेशीतमुष्णंतथोष्णके।
व्यायामे लभते मातुः क्लेशं व्याधेश्च वेदनाम्॥५४॥
अलक्ष्याः पितृमातृभ्यां जायन्ते व्याधयः पराः॥५५॥
सौकुमार्याद्बुजं तीव्रां जनयन्ति च तस्य ते। स्वल्पमप्यथ तं कालं वेत्तिवर्षशतोपमम्॥५६॥

तब वे जिस योनि में रहते हैं (जैसे पशुयोनि, मानवयोनि इत्यादि) उसका उन्हें भान रहता है। पूर्व-पूर्व जन्मों के सभी वृत्तान्त उनकी स्मृति में आ जाते हैं। वे कुक्षि में स्थित गाढ़ अन्धकार में कुछ भी नहीं देख पाते। दुर्गन्ध से क्षण-क्षण में त्रस्त होते रहते हैं। जब माता शीतल जल पीती है, तब उसे शीतलता का तथा जब उष्ण जल पीती है, तब उसे गर्भ में उष्णताजनित दुःखबोध होता है। जब माता परिश्रम करती है, तब परिश्रम जनित कष्ट होता है। वह जब व्याधि-पीड़ित होती है, तब गर्भस्थ जीव को व्याधि की विविध यातना मिलती है। पिता-

माता जो लक्ष्य नहीं कर पाते, ऐसी व्याधियां उस सुकुमार जीव को नाना तीव्र पीड़ा प्रदान करती हैं। तब वह सामान्य गर्भकाल उसे सैकड़ों वर्ष ऐसा प्रतीत होने लगता है।।५३-५६।।

सन्तप्यते भृशं गर्भे कर्मभिश्च पुरातनैः। मनोरथांश्च कुरुते सुकृतार्थं पुनः पुनः।।५७।।
जन्म चेदहमाप्स्यामि मानुष्ये जीवितं तथा। ततस्तत्प्रकरिष्यामि येन मोक्षो भवेत्स्फुटम्।।५८।।
एवं तु चिन्तयानस्य सीमन्तोन्नयनादनु। मासद्वयं तद्व्रजति पीडतस्त्रियुगाकृति।।५९।।
ततः स्वकाले सम्पूर्णे सूतिमारुतचालितः। भवत्यवाङ्मुखोजन्तुःपीडामनुभवन्पराम्।।६०।।
अधोमुखः सङ्कटेन योनिद्वारेण निःसरेत्। पीडया पीड्यमानोऽपिचर्मोत्कर्तनतुल्यया।।६१।।
करपत्रसमस्पर्शं करसंस्पर्शनादिकम्। असौ जातो विजानातिमासमात्रं विमोहितः।।६२।।
प्राक्कर्मवशगस्याऽस्य गर्भज्ञानञ्च नश्यति। ततः करोति कर्माणि श्वेतरक्तासिनाति च।।६३।।

पूर्वकृत कर्म ही तब गर्भ में उसे विविध सन्ताप देने लगते हैं। तभी वह सुकृत अर्जनार्थ बारम्बार कामना करता है कि यदि मुझे मनुष्य जन्म मिले तथा जीवित रहूं तब ऐसा कार्य करूंगा जिससे मुक्ति प्राप्त हो। सीमतान्नयन संस्कार काल से इस प्रकार चिन्ता करते-करते उसे दो माह व्यतीत करना तीन युग जैसा लगता है। उस दो माह को वह अत्यन्त क्लेश के साथ व्यतीत करता है। तदनन्तर प्रसवकाल सन्निकट आते ही सूति मारुत के चालित होनेपर वह जीव अत्यन्त कष्ट से अधोमुख होता है तथा अप्रशस्त योनिमुख के मार्ग से भयानक पीड़ा सहते हुए जन्म लेता है। उसके चर्म मानों कटते जैसे प्रतीत होते हैं। करस्पर्श भी पीड़ादायक प्रतीत होता है। जन्म लेकर वह एक मास तक अतीव कष्ट भोग करता है। तब उसे मोह होता है। पूर्वकर्म के फलस्वरूप गर्भावस्था में जो ज्ञान था, वह नष्ट हो जाता है। इसलिए अब उसे सात्विक, राजस तथा तामस कर्मभोग करना पड़ता है।।५७-६३।।

अस्थिपट्टतुलास्तम्भस्नायुबन्धेन यन्त्रितम्। रक्तमांसमृदालिप्तं विम्मूत्रद्रव्यभाजनम्।।६४।।
सप्तभित्तिसुसम्बद्धं छन्नं रोमतृणैरपि। वदनैकमहाद्वारं गवाक्षाष्टविभूषितम्।।६५।।
ओष्ठद्वयकपाटं च दन्तार्गलविमुद्रितम्। नाडीस्वेदप्रवाहं च कफपित्तपरिप्लुतम्।।६६।।
जराशोकसमाविष्टं कालवक्त्रानलस्थितम्। रागद्वेषादिभिर्ध्वस्तं षट्कौशिकसमुद्भवम्।।६७।।
एवं सञ्जायते पुंसो देहगेहमिदं द्विज!। यस्मिन्वसति क्षेत्रज्ञो गृहस्थो बुद्धिगोहिनी।।६८।।
मोक्षं स्वर्गं च नरकमास्ते संसाधयन्नपि।।६९।।

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कमठसूर्यसम्वादे जीवस्य देहोत्पत्तिवर्णनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।४९।।

मनुष्यों की देह गृह स्वरूप है। अस्थियां पट्ट तथा तुला के समान हैं। यह स्नायुरूप सूत्र से बद्ध (अस्थियां) होकर स्तम्भतुल्य हो जाती हैं। यह रक्त तथा मांस रूपी मृत्तिका द्वारा सम्यक् रूप से प्रलिप्त हैं। यह गृह सप्त तल वाला तथा मलमूत्र का भंडार है। यह रोमरूपी तृण से आच्छन्न है। मुख ही एकमात्र महाद्वार है।

यह आठ गवाक्ष (खिड़की) से भूषित है। ओष्ठद्वय इसके कपाट हैं। इसे दांत रूपी अर्गला से बद्ध किया जाता है। नाड़ी तथा स्वेद इसका जलप्रवाह है। कफ-पित्त से यह आप्लुत है। जरा तथा शोक इसमें आविष्ट रहते हैं। राग-द्वेष आदि इसे ध्वस्त करते हैं। यह काल के कराल अनल में अवस्थित है। हे द्विज! मनुष्य के षट्कौशिक देवगृह में वह इस प्रकार से जन्म लेता है। इसमें क्षेत्रज्ञ (आत्मा) ही गृहस्थ है। वह बुद्धिरूपा गृहिणी के साथ निवास करता है। मोक्ष-स्वर्ग-नरकादि यहां फलोत्पादन रूप हैं।।६४-६९।।

।।उनपञ्चास अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

जीव की पारलौकिक गति, देहसन्धारकारण, पापियों को यमयातना

अतिथिरुवाच

साध्वबालमते बाल कमठैतत्त्वयोज्यते। शरीरलक्षणं श्रोतुं पुनरिच्छामि तद्वद।।१।।

अतिथि कहते हैं—हे कमठ! साधु-साधु! यद्यपि तुम बालक हो, तथापि तुम्हारी बुद्धि तो बालकवत् नहीं है। तुमने उत्तम बात कही है। अब मैं पुनः शरीरलक्षण सुनना चाहता हूं। वह कहो।।१।।

कमठ उवाच

यथैतद्वेद ब्रह्माण्डं शरीरं च तथा शृणु। पादमूलं च पातालं प्रपदं च रसातलम्।।२।।
तलातलंतथागुल्फौजङ्घे चाऽस्य महातलम्। जानुनी सुतलंचोरूपितलंचातलंकटिम्।।३।।
नाभिं महीतलं प्राहुर्भुवर्लोकमथोदरम्। उरःस्थलं च स्वर्लोकं महग्रींवा मुखं जनम्।।४।।
नेत्रेः तपः सत्यलोकं शीर्षदेशं वदन्ति च। तद्यथासप्तद्वीपानि पृथिव्यां संस्थितानि च।।५।।
तथाऽत्र धातवःसप्तनामतस्तान्निबोध मे। त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणिधातवः।।६।।
अस्थ्नामत्र शतानि स्युस्त्रीणि षष्ट्यधिकानि च।
त्रिंशच्छतसहस्त्राणि नाडीनां कथितानि च।।७।।
षट्पञ्चाशत्सहस्त्राणि तथाऽन्यानि नवैव तु। ता वहन्ति रसं देहे जलंनद्यो यथाभुवि।।८।।

कमठ कहता है—यह ब्रह्माण्ड जैसा दिखलाई दे रहा है; शरीर भी तद्रूप है। वह श्रवण करें। पादमूल पाताल है। पदाग्र रसातल है, गुल्फें तलातल हैं। जंघा महातल है। जानु सुतल है। उरु वितल हैं, कटि स्वतल है। नाभि महीतल है। उदर भुवलोक है। वक्ष स्वर्लोक है। ग्रीवा महर्लोक है। मुख जनलोक है, नेत्र तपोलोक हैं तथा मस्तक सत्यलोक कहा गया है। जैसे पृथिवी पर सप्त द्वीप हैं, वैसे ही देह में सात धातु विद्यमान हैं। आप

उनके नामों को सुनें। त्वक्, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र। इस देह में ३६० अस्थियां हैं। नाड़ियां तीन प्रकार की हैं। इनमें एक प्रकार की तीस लाख हैं। अन्य प्रकार की ५६००० हैं तथा तीसरे प्रकार की मात्र ९ नाड़ियां ही हैं। भूतल में जैसे नदी जल प्रवाह करती है, तदनुरूप ही नाड़ियां रस वहन करती हैं।।२-८।।

साधार्धाभिस्तिसृभिश्छन्नं समन्ताद्रोमकोटिभिः।
शरीरं स्थूलसूक्ष्माभिर्दृश्यादृश्या हि ताः स्मृताः॥९॥

षडङ्गानि प्रधानानि कथ्यमानामिमेशृणु। द्वौ बाहू सक्थिनी द्वे च मूर्धा जठरमेव च॥१०॥
अन्त्राण्यत्र तथा त्रीणि सार्धव्यामत्रयाणि च। त्रिव्यामानि तथा स्त्रीणामाहुर्वेदविदो द्विजाः॥११॥
ऊर्ध्वनालमधोवक्त्रं हृदि पद्मं प्रकीर्त्यते। हृत्पद्मवामतः प्लीहो दक्षिणे स्यात्तथायकृत्॥१२॥
मज्जातो मेदसश्चैव वसायाश्च तथा द्विज!। मूत्रस्य चैव पित्तस्यश्लेष्मणःशकृतस्तथा॥१३॥

रक्तस्य चरमस्याऽत्र गर्ता द्वयञ्जलयःस्मृताः।
तेभ्यः प्रवर्तमानास्ते देहंसंधारयन्त्युत॥१४॥

सीवन्यश्च तथा सप्त पञ्च मूर्धानमास्थिताः। एका मेढ्रं गताचैकातथाजिह्वांगता द्विज॥१५॥
नाड्यःसर्वाःप्रवर्तन्तेनाभिपद्मात्तथाऽत्रच। यासांश्रेष्ठाशिरोयातासुषुम्नेडाऽथपिङ्गला॥१६॥
नासिकाद्वारमासाद्य संस्थिते देहवर्धने। वायुरग्निश्चन्द्रमाश्च पञ्चधा पञ्चधाऽत्र च॥१७॥

स्थूल-सूक्ष्म भेद से शरीर की रोमसंख्या है—साढ़े तीन करोड़। इनमें से कुछ दृश्य हैं। कुछ दृश्य नहीं हैं। यहां छः अस्थियों का नाम सुनें। वे हैं—दो बाहु, २ उरु, मस्तक तथा उदर। इस देह में साढ़े तीन व्याम के तीन आंत हैं। स्त्रीलोक में इसका परिमाण मात्र ३ व्याम है। ऐसा वेदज्ञ ब्राह्मण कहते हैं। हृदय में एक पद्म प्रकाशमान है। उसकी नाल उर्द्धदिक् है। यह अधोमुखी है। इस हृत्पद्म के बायें प्लीहा है। दाहिने यकृत है। हे द्विज! मज्जा, मेद, वसा, मूत्र, पित्त, श्लेष्मा, मल, रक्त, रस के गर्त्त २ अंजुली के हैं। ये सब इसी गर्त्त से संचालित होकर देह का, रक्षण तथा पोषण करते रहते हैं। हे द्विज! देह में सात सीवनी है। ५ मस्तक में, एक लिंग में तथा एक जिह्वा में स्थित है। नाभिकमल से ही सभी नाड़ियां प्रवृत्त होती हैं। इन सबमें इड़ा, पिंगला नाड़ी नासिकाद्वार में स्थित हैं। ये ही देह की पुष्टि करती हैं। वायु-अग्नि-चन्द्रमा ५-५ भाग में विभक्त होकर देहयात्रा सम्पादित करते हैं।।१०-१७।।

प्राणापानसमानाश्च उदानो व्यान एवच। पञ्च भेदाःस्मृतावायोःकर्माण्येषांवदन्तिच॥१८॥

उच्छ्वासश्चैव निःश्वासो ह्यन्नपानप्रवेशनम्।
आकण्ठाच्छीर्षसंस्थाऽस्य प्राणकर्म प्रकीर्तितम्॥१९॥

त्यागो विण्मूत्रशुक्राणां गर्भविस्त्रणं तथा। अपानकर्म निर्दिष्टं स्थानमस्य गुदोपरि॥२०॥

प्राण-अपान-समान-उदान-व्यान ये ५ वायु हैं। उच्छ्वास, प्रश्वास तथा अन्न-पान प्रवेशन ये तीन प्राणवायु के कर्म हैं। इस प्राण का वासस्थान कण्ठ से शिर पर्यन्त है। मलमूत्र त्याग तथा गर्भ को बाहर करना, यह सब **अपान वायु** का कर्म है। इसका वास स्थान है गुह्य प्रदेश (गुदा प्रदेश)।।१८-२०।।

समानो धारयत्यन्नं विवेचयति चाऽप्यथ। रसयश्चैव चरति सर्वश्रोणिष्ववारितः॥२१॥

खाये हुए अन्न को धारण करना तथा उसका परिपाक करना **समान वायु** का कार्य है। यह समान वायु ही समस्त शरीर में विचरण करके सूक्ष्म अन्न-रस से समस्त शरीर की सरसता का साधन करता है।।२१।।

वाक्प्रवृत्तिप्रदोद्गारे प्रयत्ने सर्वकर्मणाम्। आकण्ठसुरसंस्थानमुदानस्य प्रकीर्त्यते।।२२।।
व्यानो हृदि स्थितो नित्यंतथादेहचरोऽपिच। धातुवृद्धिप्रदःस्वेदलालोन्मेषनिमेषकृत्।।२३।।

वाक् प्रकृति, उद्गार तथा सभी कर्म प्रयत्न **उदान वायु** का कार्य है। यह मुख तथा कण्ठ के मध्य में निवास करता है। **व्यान वायु** वैसे तो हृदय वासी है, तथापि समस्त देह में विचरण करता है। यह धातुपुष्टि, स्वेद, लार तथा उन्मेष-निमेषादि कार्य का निर्वाह करता है।।२२-२३।।

पाचको रजकश्चैव साधकालोचकौ तथा। भ्राजकश्च तथा देहे पञ्चधा पावकःस्थितः।।२४।।
पाचकस्तु पचत्यन्नंनित्यं पक्वाशये स्थितः। आमाशयस्थोऽपिरसंरञ्जकःकुरुतेत्वसृक्।।२५।।
साधको हृदिसंस्थश्चबुद्ध्याद्युत्साहकारकः। आलोचकश्चदृक्संस्थोरूपदर्शनशक्तिकृत्।।२६।।
त्वक्संस्थोभ्राजकोदेहं भ्राजयेन्निर्मलीकृतः। क्लेदकोबोधकश्चैवतर्पणःश्लेष्मणस्तथा।।२७।।
आलम्बकस्तथा देहे पञ्चधा सोम उच्यते। क्लेदकःक्लेदयत्यन्नं नित्यंपक्वाशये स्थिता।।२८।।
बोधको रसनास्थश्च रसानामवबोधकः। शिरःस्थश्चक्षुरादीनां तर्पणात्तर्पणः स्मृतः।।२९।।
सर्वसन्धिगतश्चैवश्लेष्मणःश्लेष्मकृत्तथा। उरःस्थःसर्वगात्राणिसवै ह्यालम्बकःस्थितः।।३०।।

इस देह में पाचक, रञ्जक, साधक, आलोचक तथा भ्राजक नामक ५ अग्नि विद्यमान है। पाचक अग्नि पक्वाशय में रहता तथा अन्नपाक करता है। रञ्जक अग्नि आमाशय में स्थित होकर रस का रंजन करके उसे रक्ताकार करता है। साधक अग्नि हृदय में रहकर बुद्धि तथा उत्साहवर्द्धन करता है। आलोचक अग्नि नेत्र में रहकर रूपदर्शन सम्पन्न करता है। भ्राजक अग्नि त्वचा में रहता हुआ देह को निर्मल तथा ज्योतिमान करता है। चन्द्रमा देह में क्लेदक, बोधक, तर्पण, श्लेषण तथा आलम्बक रूप ५ भाग में विभक्त होकर विराजित रहता है। क्लेदक चन्द्र पक्वाशय में रहता हुआ खाये अन्न का क्लेदन करता है। बोधक चन्द्रमा रसना में स्थित रहकर रसों के स्वाद का बोध कराता है। तर्पण चन्द्रमा मस्तक में रहकर चक्षु आदि इन्द्रियों का पोषण कार्य करता है। श्लेष्मण चन्द्र सर्वसन्धिगत है। यह श्लेष्मा उत्पादक है। आलम्बक चन्द्र हृदयस्थ है। इसी के कारण अंग-प्रत्यंग परस्परतः एक-दूसरे का अवलम्बन करके स्थित रहते हैं।।२४-३०।।

एवं वाय्वग्निसोमैश्च देहः सन्धारितस्त्वसौ। आकाशजानि स्त्रोतांसि तथा कोष्ठविविक्तता।।३१।।
पार्थिवानीह जानीहि घ्राणकेशनखानिच। अस्थीनि धैर्यं गुरुता त्वङ्मांसं हृदयं गुदम्।।३२।।
नाभिर्मेदो यकृन्मज्जा अन्त्रमामाशयःशिरा। स्नायुः पक्वाशयश्चैव प्राहुर्वेदविदो द्विजाः।।३३।।
नेत्रयोर्मण्डलं शुक्लं कफाद्भवति पैतृकम्। कृष्णं च मण्डलंवातात्तथाभवतिमातृकम्।।३४।।
पक्ष्यममण्डलमेकं तु द्वितीयं चर्ममण्डलम्। शुक्लं तृतीयं कथितं चतुर्थंकृष्णमण्डलम्।।३५।।
दृङ्मण्डलं पंचमं तु नेत्रं स्यात्पञ्चमण्डलम्। अपरे नेत्रभागे द्वे उपाङ्गोऽपाङ्ग एव च।।३६।।
उपाङ्गो नेत्रपर्यन्तो नासामूलमपाङ्गकः। वृषणौ च तथा प्रोक्तौ मेदोसृक्ककफमांसकौ।।३७।।

वायु, अग्नि तथा चन्द्र द्वारा इस विधि से देह रक्षा होती है। श्रोत्र समूह तथा कुक्षि का जो अवकाश है,

वह आकाश के कारण है। नासिका, केश, नख, अस्थि, धैर्य, गुरुत्व, त्वक्, मांस, हृदय, गुह्य, नाभि, मेदः, यकृत्, अन्त्र, आमाशय, शिरा, स्नायु, पक्वाशय—इनको वेदवादीगण पार्थिव कहते हैं। नेत्रगोलक का जो श्वेत भाग है, वह कफ से उत्पन्न होता है। यह पैतृक गुण है। नेत्रगोलक का कृष्ण अंश वायु से उत्पन्न है। यह मातृक गुण है। नेत्रमण्डल ५ हैं। प्रथम है पक्ष्ममण्डल, द्वितीय है चर्ममण्डल, तृतीय है शुक्लमण्डल, चतुर्थ है कृष्णमण्डल। पंचम को दृङ्गमण्डल कहा गया है। नेत्र के शेष भाग को (दो भाग को) उपाङ्ग तथा अपाङ्ग कहा गया है। नासिका की ओर जो अंश है, वह है अपाङ्ग। बाकी भाग को उपाङ्ग कहा गया है। मेद, रक्त, कफ तथा मांस के सम्मिलन से मुष्कद्वय उत्पन्न हुआ है। (मुष्कद्वय = वृषणद्वय)।।३१-३७।।

असृङ्मांसमयी जिह्वा सर्वेषामेवदेहिनाम्। हस्तयोरोष्ठयोर्मेढ्रेग्रीवायांषट् च कूर्चकाः॥३८॥
एवमत्रस्थिते जीवो देहेऽस्मिन्सप्तसप्तके। पंचविंशतिको व्याप्य देहंवासोऽस्य मूर्धनि॥३९॥

त्वगसृङ्मांसमित्याहुस्त्रिकं मातृसमुद्भवम्।
मेदोमज्जास्थिकं प्रोक्तं पितृजं षट् च कौशिकम्॥४०॥

एवं भूतमयं देहं पञ्चभूतसमुद्भवैः अन्नैर्यथा वृद्धिमेति तदहं वर्णयामि ते॥४१॥

जिह्वा रक्त-मांसमय है। दोनों हाथ, दोनों ओंठ, लिंग तथा ग्रीवा इन छः स्थल में कूर्चक है। इस सप्त-सप्तक देह में पंचविंशतिक जीव इस प्रकार से रहता है, तथापि वह इस देह के मस्तक में ही अवस्थान करता है। त्वक्, रक्त तथा मांस—ये तीन माता से उत्पन्न होते हैं तथा मेदः, मज्जा एवं अस्थि, पिता से उत्पन्न होते हैं। इन छः उपादन से देहकोष का संगठन होता है। इस प्रकार से देह की वृद्धि पञ्चभूतज अन्न से जैसे होती है, वह वर्णन आपसे कर रहा हूं।।३८-४१।।

तदन्नं पिण्डकवलैर्ग्रासैर्भुक्तं च देहिभिः। पूर्वं स्थूलाशये वायुः प्राणः प्रकुरुते द्विधा॥४२॥
सन्प्रविश्याऽन्नमध्येतु पृथगन्नं पृथग्जलम्। अग्नेरूर्ध्वं जलं स्थाप्य तदन्नं तज्जलोपरि॥४३॥

जलस्याऽधः स्वयं प्राणः स्थित्वाऽग्निं धमते शनैः।
वायुना धम्यमानोऽग्निरत्युष्णं कुरुते जलम्॥४४॥

तदन्नमुष्णतोयेन समन्तात्पच्यते पुनः। द्विधा भवति तत्पक्वं पृथक्किट्टं पृथग्रसम्॥४५॥
मलैर्द्वादशभिः किट्टं भिन्नं देहाद्बहिर्व्रजेत्। कर्णाक्षिनासिकाजिह्वादन्ताः शिश्नं गुदं नखाः॥४६॥
रोमकूपाणि चैव स्युर्द्वादशैते मलाश्रयाः। हृत्पद्मप्रतिबद्धाश्च सर्वानाड्यः समन्ततः॥४७॥
तासां मुखेषु तं सूक्ष्मं व्यानः स्थापयतेरसम्। रसेन तेन तानाडीःसमानःपूरयेत्पुनः॥४८॥

देही लोग ग्रास-पिण्डाकृति जिस अन्न का भोजन करते हैं, वह पक्वाशय में जाता है। प्राणवायु उसमें प्रवेश करके उसे विभक्त करता है। वह वायु उसके कठोर अंश को तथा तरल अंश को पृथक्-पृथक् कर देता है। जठराग्नि के ऊर्ध्व में जलीयांश की तथा उसके ऊर्ध्व में कठिन अंश की स्थापना करके वह स्वयं जलीयांश के नीचे रहकर धीरे-धीरे जलीयांश की तप्त करता है। यह अग्नि द्वारा तप्त होता है। कठिनांश इस अग्नि द्वारा तप्त होकर क्रमशः गलने लगता है। इस प्रकार उसका परिपाक होता है। वह पकने के बाद पुनः दो भागों में विभक्त हो जाता है। वह एक भाग मल तथा दूसरा भाग रस कहा गया है। दो कान, दो नासिका, दो नेत्र, जिह्वा, दांत,

लिंग, शुक्र, नख, रोमकूप—इन १२ छिद्रों से यह मल देह से बाहर निर्गत होता है। शरीरगत नाड़ियां हृदयकमल से जुड़ी रहती हैं। व्यान वायु इन समस्त नाड़ीगण के मुख में उक्त सूक्ष्म रस को स्थापित करता है। समान वायु इस रस से नाड़ियों को सम्यक्तः भर देता है।।४२-४८।।

ततः प्रयान्ति सम्पूर्णास्ताश्च देहं समन्ततः। ततःसनाडिमध्यस्थोरञ्जकेनोष्मणारसः॥४९॥
पच्यते पच्यमानस्तु रुधिरत्वंभजेत्पुनः। ततस्त्वग्लोमकेशाश्चमांसंस्नायुशिरास्थिच॥५०॥
नखा मज्जाखवैमल्यं शुक्रवृद्धिः क्रमाद्भवेत्। एवं द्वादशधाऽन्नस्य परिणामःप्रकीर्त्यते॥५१॥

इसी प्रकार उक्त नाड़ी पथ से सर्वशरीर में रस पहुंचता है। नाड़ी मध्यस्थ यह रस पुनः रञ्जक पित्त की ऊष्मा से पककर रुधिर बनता है। तदनन्तर क्रमशः त्वचा, रोम, केश, मांस, स्नायु, शिरा, अस्थि, नख, मज्जा, इन्द्रियप्रसाद तथा शुक्रवृद्धि होती है। अन्न का यह १२ परिणाम कहा गया है।।४९-५१।।

एवमेतद्विनिष्पन्नं शरीरं पुण्यहेतवे। यथैव स्यन्दनः शुभ्रो भारसम्वाहनाय च॥५२॥
तैलाभ्यङ्गादिभिर्यत्नैर्बहुभिःपाल्यतेनचेत्। किं कृत्यं साध्यते तेन यदि भारं वहेन्नहि॥५३॥
एवमेतेन देहेन किं कृत्यं भोजनोत्तमैः। वर्धितेन न चेत्पुण्यं कुरुते पशुवच्च तत्॥५४॥

॥भवन्ति चाऽत्र श्लोकाः॥

यस्मिन्काले च देशे च वयसा यादृशेन च। कृतं शुभाशुभं कर्म तत्तथा तेन भुज्यते॥५५॥
तस्मात्सदा शुभं कार्यमविच्छिन्नसुखार्थिभिः।
विच्छिद्यन्तेऽन्यथा भोगा ग्रीष्मे कुसरितो यथा॥५६॥

यह शरीर इस प्रकार पुण्य साधनार्थ निष्पन्न होता है। यह शरीर भार वहन करने वाले शुभ रथ के समान है। जैसे तैल लेपनादि का यत्न न करने पर (पहिया में तेल आदि न देने पर) रथ द्वारा सम्यक् रूपेण भारवाहन कार्य सम्पन्न नहीं होता, उसी प्रकार यदि इस देह से पुण्यार्जन नहीं हो, तब उत्तम भोजनादि से इसके उत्कर्ष साधन का क्या फल! फलस्वरूप पशुदेहवत् ऐसा मानव देह व्यर्थ है। इस सम्बन्ध में कतिपय प्राचीन श्लोक है। यथा—जिस काल, देश तथा आयु में शुभाशुभ कर्म सम्पन्न होता है, वह प्राणी उसका भोग उसी भाव में करता है। इसलिए जो निरतिशय सुखभोग की कामना करते हैं, वे सदा शुभकर्म का अनुष्ठान करें। अन्यथा जैसे ग्रीष्म काल में नदियां अल्पजल वाली हो जाती हैं, तदनुरूप सुखभोग में व्याघात उत्पन्न हो जाता है।।५२-५६।।

यस्म त्यापेन दुःखानि तीव्राणि सुबहून्यपि। तस्मात्पापं न कर्तव्यमात्मपीडाकरं हि तत्॥५७॥
एवं ते वर्णितः साधो प्रश्नोऽयं शक्तितो मया। यथा सञ्जायतेप्राणीयथाशृणुप्रलीयते॥५८॥
आयुष्ये कर्मणि क्षीणे सम्प्राप्ते मरणेनृणाम्। स्वकर्मवशगो देही कृष्यते यमकिङ्करैः॥५९॥
पञ्चतन्मात्रहितः समनोबुद्ध्यहङ्कृतिः। पुण्यपापमयैः पाशैर्बद्धो जीवस्त्यजेद्वपुः॥६०॥

पाप करने पर प्राणी को अनेक यातना भोग करना पड़ता है। इसलिए पाप नहीं करना चाहिये। सभी पाप आत्मा को पीड़ा पहुंचाते हैं। हे साधु द्विजवर! इस प्रकार मैंने यथाशक्ति आपके प्रश्न का उत्तर दे दिया। अब प्राणी जिस प्रकार जन्म लेकर मृत्युग्रस्त होता है, वह सुनें। जब जीवन स्थापक कर्म क्षीण हो जाते हैं, तब मरणकाल उपस्थित होता है। देही सर्वदा अपने कृत कर्म के अधीन रहता है। उसके कर्मानुसार यमकिंकरगण

उसे खींचते हैं। पञ्चतन्मात्र, मन, बुद्धि, अहंकार समन्वित जीव पाप-पुण्यात्मक पाश द्वारा बद्ध होकर देहत्याग करता है।।५७-६०।।

शीर्ष्णश्च सप्तभिश्छिद्रैर्निर्गच्छेत्पुण्यकर्मणाम्। अधश्च पापिनां यान्ति योगिनां ब्रह्मरन्ध्रतः।।६१।।
तत्क्षणात्सोऽथगृह्णातिशारीरंचातिवाहिकम्। अङ्गुष्ठपर्वमात्रं तु स्वप्राणैरेवनिर्मितम्।।६२।।
ततस्तस्मिंस्थितं जीवं देहेयमभटास्तदा। बद्ध्वानयन्ति मार्गेणयाम्येनातियथाबलम्।।६३।।
तप्ताम्बरीषतुल्येन अयोगुडनिभेन च। प्रतप्तसिकतेनाऽपि ताम्रपात्रनिभेन च।।६४।।
षडशीतिसहस्त्राणि योजनानां महीतलात्। कृष्यमाणो यमपुरीं नीयते पापकृद्भटैः।।६५।।
क्वचिच्छीतं महादुर्गमन्धकारं क्वचिन्महत्। अग्निसंस्पर्शवदनैः काककाकोलजम्बुकैः।।६६।।
मक्षिकादंशमशकैर्भक्ष्यते सर्पवृश्चिकैः। भक्ष्यमाणोऽपि तैर्जन्तुः क्रन्दते म्रियते न हि।।६७।।
क्वचिच्च भक्ष्यते घोरै राक्षसैः कृष्यतेऽस्यते। दह्यमानोऽतिघोरेण सैकतेन च नीयते।।६८।।
मुहूर्तैर्दशभिर्याति तं मार्गमतिदुस्तरम्। तं कालं सुमहद्वेत्ति पुरुषो वर्षसम्मितम्।।६९।।
तार्यते च नदीं घोरां पूयशोणितवाहिनीम्। नदीं वैतरणीं नाम केशशैवलशाद्वलाम्।।७०।।

पुण्यकर्मीगण का ऊर्ध्व अंग के ७ छिद्रों द्वारा तथा पापियों का निम्नांगस्थ छिद्रों द्वारा तथा योगीगण का ब्रह्मरन्ध्र द्वारा जीव (जीवात्मा) बाहर निकलता है। वह बाहर निकलते ही अपने प्राणों से निर्मित अंगुष्ठमात्र का आतिवाहिक देह परिग्रह (धारण) करता है। जब जीव उस आतिवाहिक देह में प्रविष्ट होता है, तब यमदूतगण उसे बांध कर सवेग (वेग के साथ) याम्य पथ पर ले जाते हैं। महीतल से यमपुरी की दूरी ८६००० योजन है। यह मार्ग कहीं उत्तप्त पात्र के समान है, कहीं उत्तप्त लोहे के पिण्ड की तरह है। कहीं तपती बालू की तरह है। कहीं-कहीं तो इतना ताप है कि भूमि ताम्रपत्र ऐसी लगती है। यमदूत पापी को इस मार्ग पर घसीटते वेगपूर्वक ले जाते हैं। इस मार्ग पर कहीं तो अत्यन्त शीत है, कहीं यह अत्यन्त दुर्गम है, कहीं तो प्रगाढ़ अन्धेरा है। वहां अग्निस्पर्श के समान दंशन करने वाले, दारुण क्लेश पहुंचाने वाले भीषण काक, काकोल, शृगाल, मक्खी, दंश, मशक, सर्प, बिच्छू आदि जन्तु उस पापी का पुनः-पुनः दंशन करके उसे पीड़ित करते हैं। उनके द्वारा जीव भक्षित होकर मरता तो नहीं, तथापि दारुण यातना का भोग करता है। कहीं-कहीं घोर राक्षस उसे खींच कर पीड़ित करते हैं अथवा भक्षण करते हैं। इस प्रकार के मार्ग की उत्तप्त बालू वाले मार्ग पर उसे वेगपूर्वक खींचते हुए लाया जाता है। वह अत्यन्त दुस्तर मार्ग केवल १२ मुहूर्त्त में यमदूत गण पार करते हैं। उस पर जीव को अतीव क्लेशानुभव होता है। इसलिए उसे वह मात्र १२ मुहूर्त्त का समय भी अनेक वर्ष जैसा लगता है।।६१-७०।।

ततो यमस्य पुरतः स्थाप्यते यमकिङ्करैः। पापी महाभयं पश्येत्कालान्तकमुखैर्वृतम्।।७१।।
पुण्यकर्मा सौम्यरूपं धर्मराजं तदाकिल। मनुष्या एव गच्छन्ति यमलोकं न चाऽपरे।।७२।।
मरणानन्तरं तेषां जन्तूनां योनिपूरणम्। तथाहि प्रेता मनुजाः श्रूयन्ते नान्यजन्तवः।।७३।।
धार्मिकः पूज्यते तत्र पापः पाशगलो भवेत्। धार्मिकश्चयथायातितंमार्गंशृणुवच्मिते।।७४।।
आरामद्रुमदातारः फलपुष्पवता पथा। छायया च सुखं यान्ति तथा येच्छत्रदा नराः।।७५।।
उपानहप्रदा यानैर्वितृषाः पूर्तधर्मिणः। विमनैर्यानदा यान्ति तथा शय्यासनप्रदाः।।७६।।

भक्ष्यभोज्यैस्तथातृप्तायान्तिभोजनदायिनः। दीपप्रदाःप्रकाशेन गोप्रदास्तांनदींसुखम्॥७७॥
श्रीसूर्यं श्रीमहादेवं भक्ता ये पुरुषोत्तमम्। जन्मप्रभृति ते यान्ति पूज्यमानायमानुगैः॥७८॥
महीं गां काञ्चनंलोहं तिलान्कार्पासमेवच। लवणं सप्तधान्यंच दत्वा याति सुखंनरः॥७९॥
तेषां तत्र गतानाञ्च पापिनां पुण्यकर्मिणाम्। चित्रगुप्तः प्रेतपाय निरूपयति वै ततः॥८०॥

तत्पश्चात् उस जीव को यमकिंकरगण यमराज के पास लाते हैं। तब पापीगण उन धर्मराज यम को अत्यन्त घोराकृति तथा कालान्तक आदि से घिरे देखते हैं, जबकि पुण्यात्मा उनको अतीव सौम्यरूपी देखते हैं। केवल मनुष्य ही मरने पर यमपुरी ले जाये जाते हैं। अन्य जन्तु यमलोक नहीं ले जाये जाते। मरने पर धार्मिक लोग सम्मानपूर्वक तथा अन्य पापीगण पाप बन्धन में बांधे जाकर यमलोक ले जाये जाते हैं। धार्मिकों को जिस मार्ग से यमपुरी ले जाते हैं, वह सुनें। उद्यान प्रदान करने वाले लोग फल, पुष्प शोभित पथ से, छत्र प्रदाता छाया समन्वित पथ से, पादुकादाता यान द्वारा, बावली-सरोवर प्रदाता तृष्णा विहीन होकर यान-शय्या-आसनादि प्रदाता विमान पर तथा भक्ष्य-भोज्य दाता उत्तम भोजन से तृप्त होकर यमलोक जाते हैं। दीपदाता सुप्रशस्त मार्ग से जाते हैं। गौदाता सुखपूर्वक वैतरणी पार करते हैं। जो सूर्य, महादेव, पुरुषोत्तम के प्रति आजन्म भक्तिमान् हैं, यमदूत उनको ससम्मान ले जाते हैं। जो भूमि-गौ-स्वर्ण-लौह-तिल-कपास-लवण तथा सप्तविध धान्य दान करते हैं, वे सुखपूर्वक उस पथ को पार करते हैं। पापी-पुण्यात्मा जो भी वहां जाता है, चित्रगुप्त उसके विषय में यमराज से निवेदन करते हैं।।७१-८०।।

प्रेतलोके स वसति ततः सम्वत्सरं नरः। वत्सरेण च तेनाऽस्य शरीरमभिजायते॥८१॥
सोदकुम्भमथाऽन्नाद्यं बान्धवैर्यत्प्रदीयते। दिने दिने स तद्भुक्त्वा तेन वृद्धिं प्रयाति च॥८२॥
पूर्वदत्तमथाऽन्नाद्यं प्राप्नोति स्वयमेव च। स्वयं येन न दत्तञ्च तथा दाता न विद्यते॥८३॥
न चाऽप्युदकदाताऽसौक्षुत्तृड्भ्यामतिपीड्यते। बान्धवैस्तूदकंदत्तंनदीभूत्वोपतिष्ठति॥८४॥
मासि मासि न यच्छ्राद्धं षोडशश्राद्धपूर्वकम्। अत्र न क्रियते यस्य प्रेतत्वात्स न मुच्यते॥८५॥
मानुषेण दिनेनैव प्रेतलोकं दिनं स्मृतम्। तस्माद्दिने दिने देयं प्रेतायाऽन्नंच वत्सरम्॥८६॥
तं च स्माशानिकानाम गणायाम्याभयावहाः शीतवातातपोपेतंतत्ररक्षन्तिपापिनम्॥८७॥
यथेह बन्धने कश्चिद्रक्ष्यते विषमैर्नरैः। प्रेतपिण्डा न दीयन्ते षोडशश्राद्धपूर्वकाः॥८८॥
यस्य तस्य न मोक्षोऽस्ति प्रेतत्वाद्वैयुगैरपि। ततः सपिडीकरणे बान्धवैःसुकृते नरः॥८९॥
पूर्णे सम्वत्सरे देहं सम्पूर्णं प्रतिपद्यते। पापात्मा घोररूपं तु धार्मिको दिव्यमुत्तमम्॥९०॥

वह मानव १ वर्ष उक्त प्रेतलोक में निवास करता है। इस १ वर्ष में उसका देह सम्यक्पूर्ण हो जाता है। बान्धवगण जो सजल कुम्भ-अन्नादि का दान करते हैं, जीव इहलोक में जो दानादि करता है, प्रेतलोक में वह उन सब का भोग करता है। वह भोजन करके उसे पुष्टि प्राप्त होती है। जिन्होंने इहलोक में दान नहीं किया, किंवा जिसे उसके बान्धवगण अन्नजल दान नहीं करते, वह उक्त प्रेतलोक में क्षुधा-तृष्णा से नित्य पीड़ित होता है। बान्धव जो जलदान करते हैं, वह नदीरूपेण उस व्यक्ति के पास पहुंच जाता है। इहलोक में जिसके उद्देश्य से मासिक श्राद्धादि का अनुष्ठान नहीं किया जाता, वह प्रेतत्व से मुक्त नहीं होता। मनुष्य लोक का दिन तथा प्रेतलोक का

दिन समान होता है। अतः संवत्सर पर्यन्त प्रतिदिन प्रेत के (मृत के) उद्देश्य से अन्न-जल देना चाहिये। यम के जो श्मशानिक नामक भयंकर असुर हैं, वे पापी को शीत-वात से युक्त स्थान पर रखते हैं। जैसे इहलोक में बंदी व्यक्ति रक्षकों द्वारा रक्षित होता है, प्रेतलोक में जीव उसी प्रकार प्रेतत्वबंधन में आबद्ध रहता है। जिसके उद्देश्य से षोडशश्राद्ध तथा प्रेतपिण्ड नहीं दिया जाता, उसकी अनेक युगों तक प्रेतत्व से मुक्ति नहीं होती। परन्तु सम्वत्सरान्त में बान्धवगण द्वारा सपिण्डीकरण अनुष्ठान करने पर वह जीव सम्पूर्ण देह लाभ करता है। पापात्मा घोराकार तथा पुण्यात्मा सुन्दर दिव्य देह लाभ करता है।।८१-९०।।

ततः सनरकं याति स्वर्गंवा स्वेनकर्मणा। रौरवाद्याश्च नरकाः पातालतलसंस्थिताः॥९१॥
सुराद्याः सत्यपर्यन्ताः स्वर्लोकस्योर्ध्वमाश्रिताः। इतिहासपुराणेषु वेदस्मृतिषु यच्छ्रुतम्॥९२॥
पुण्यं तेन भवेत्स्वर्गो नरकस्तद्विपर्ययात्। तत्रापि कालवसतिकर्मणामनुरूपतः॥९३॥
अर्वाक्सपिण्डीकरणंयस्यवर्षाच्चवाकृतम्। प्रेतत्वमपितस्याऽपिप्रोक्तंसम्वत्सरंध्रुवम्॥९४॥
यैरिष्टं च त्रिभिर्मेधैरर्चितं वा सुरत्रयम्। प्रेतलोकं न ते यान्ति तथा ये समरे हताः॥९५॥

शुद्धेन पुण्येन दिवञ्च शुद्धां पापेन शुद्धेन तथा तमोऽन्धम्।
मिश्रेण स्वर्गं नरकञ्च याति देहस्तथैवाऽस्य भवेच्च तादृक्॥९६॥
प्रश्नत्रयं चेति तव प्रणीतमुत्पत्तिमृत्यू परलोकवासः।
यथा गुरुर्मे समुदाजहार किं भूय इच्छस्युत तद्वदामि॥९७॥

।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे आदित्यकमठसम्वादे जीवस्य पारलौकिकगत्यादिवर्णनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५०।।

अन्ततः वह जीव स्वकर्मानुरूप स्वर्ग अथवा नरक जाता है। रौरवादि सभी नरक पातालतल में स्थित हैं। भूमि से लेकर सत्यलोक पर्यन्त सभी लोक ऊर्ध्व में स्थित रहते हैं। इतिहास-पुराण-वेद-स्मृति आदि शास्त्रों में सुना जाता है कि पुण्यकर्म से स्वर्ग तथा पापकर्म से नरक मिलता है। देशकाल के अनुरूप कर्मानुरूप सुख-दुःख भोग प्राणी सर्वत्र करता है। एक वर्ष के बीच यदि सपिण्डीकरण कर दिया जाये, तब भी जीव एक वर्ष पर्यन्त प्रेतयोनि में ही रहता है। यह निश्चित है। जो अश्वमेधादि तीन यज्ञ करते हैं, जो शिव आदि त्रिदेवार्चन करते हैं, जो आमने-सामने युद्ध करते मृत होते हैं, वे प्रेतलोक नहीं जाते। विशुद्ध पुण्य द्वारा विशुद्ध स्वर्ग प्राप्त होता है। विशुद्ध पाप से वैसा घोर अन्धतमस् युक्त नरक प्राप्त होता है। मिश्रित कर्म से स्वर्ग तथा नरक, दोनों की प्राप्ति होती है। उस समय उस-उस फल भोगार्थ उसका देह भी उन-उन भोग के योग्य (नरक अथवा स्वर्ग भोग) हो जाता है। हे द्विज! आपने जो जीवोत्पत्ति, मृत्यु तथा परलोक सम्बन्धित तीन प्रश्न किये थे, उस सम्बन्ध में मैंने अपने गुरु के उपदेशानुरूप आपको बतलाया। अब आप कौन सा विषय सुनना चाहते हैं, कहें? मैं उसका उत्तर प्रदान करूंगा।।९१-९७।।

।।पञ्चाश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

जयादित्य स्तुति, उनकी महिमा का वर्णन, हारीत आदि द्वारा बालक की प्रशंसा, कमठ को सूर्य वरदान प्राप्ति

अतिथिरुवाच

यदेतत्परलोकस्य स्वरूपं व्याहृतं त्वया। आगमं समुपाश्रित्य तत्तथैव न संशयः॥१॥
किन्त्वत्र नास्तिकाः पापाः सन्दिह्यन्तेऽल्पचेतनाः।
तेषां निःसंशयकृते वद कर्मफलं हि यत्॥२॥
इहैव कस्य कस्यैव कर्मणः पापकस्यच। प्रभावात्कीदृशो जायेत्कमठैतद्वदाऽस्तिचेत्॥३॥

अतिथि कहते हैं—हे कमठ! तुमने जो शास्त्रानुसार परलोक का वर्णन किया है, वह निःसंदिग्धरूपेण सत्य है, तथापि इस सम्बन्ध में अल्पबुद्धि नास्तिक पाखण्डी सन्देह करते हैं। उनके सन्देह निवारणार्थ कर्म का जैसा-जैसा फल होता है, उसका वर्णन करो। हे कमठ! जिन-जिन पाप-पुण्य के फल से जीव इहलोक में जिस-जिस भाव से जन्म लेते हैं, यदि वह तुमको ज्ञात है, तब उसका वर्णन करो।।१-३।।

कमठ उवाच

सर्वमेतत्प्रवक्ष्यामि स्थिरो भूत्वा शृणुष्व तत्।
यथा मम गुरुः प्राह यन्मे चेतसि संस्थितम्॥४॥
ब्रह्महा क्षययोगी स्यात्सुरापः श्यावदन्तकः। सुवर्णचौरः कुनखी दुश्चर्मा गुरुतल्पगः॥५॥
संसर्गीसर्वरोगीस्यात्पञ्चपातकिनस्त्वमी। निन्दामाकर्ण्य साधूनांबधिरःसम्प्रजायते॥६॥
स्वयं प्रकीर्तयेच्चाऽपि मूकः पापोऽभिजायते। आज्ञालोपीगुरूणाञ्चअपस्मारीभवेन्नरः॥७॥
अवज्ञाकारकस्तेषां कृमिरेवाऽभिजायते। उपेक्षतः पूज्यकार्यं दुष्प्रज्ञत्वं च जायते॥८॥
चौर्याय साधुद्रव्याणांदद्याद्यावत्पदानि च। तावद्वर्षाणि पङ्गुत्वं सप्राप्नोतिनराधमः॥९॥
दत्त्वा हरति तद्भूयोजायतेकृकलासकः। कुपितानप्रसाद्यैवपूज्यान्स्याच्छीर्षरोगवान्॥१०॥

कमठ कहते हैं—मैं यह सब कहता हूं। आप स्थिरतापूर्वक सुनिये। इस प्रसंग में मेरे गुरु ने मुझे जो उपदेश दिया है तथा मेरे चित्त की जो धारणा है, मैं उसी के अनुरूप कहता हूं।

(पापी) ब्रह्मघाती क्षयरोगी हो जाता है। सुरापायी काले दांतों वाला होता है। स्वर्णचोर के नख विकृत होते हैं। गुरुपत्नीहरण दुष्कर्म है तथा उस व्यक्ति का संसर्ग करने वाला उक्त सर्वरोगों से आक्रान्त रहता है। ये पांचों महापातकी हैं। जो साधुजन की निन्दा सुनता है, वह बधिर होता है। स्वयं साधु निन्दा करने वाला मूक हो जाता है। गुरुजन की आज्ञा का उल्लंघन करने वाला अपस्मार रोगी होता है। गुरुगण की अवज्ञा से कृमियोनि मिलती है। जो पूज्यों की उपेक्षा करके उनका सम्मान नहीं करता, वह दुर्बुद्धि होता है। व्यक्ति साधुजन का धन हरण करने के लिये जितने पग चलता है, वह नराधम उतने वर्ष पर्यन्त पंगु होता है। दान करके पुनः जो उसे

हर लेता है, वह गिरगिट होता है। जो कुपित गुरुगण को विनम्रता प्रदर्शन द्वारा शान्त नहीं करता, उसे शिर रोग होता है।।४-१०।।

रजस्वलामभिगच्छंश्च चण्डालः सम्प्रजायते।
वस्त्रापहारी चित्री स्यात्कृष्णकुष्ठी तथाऽग्निदः॥११॥
दर्दुरो रूप्यहारी स्यात्कूटसाक्षी मुखारुजः। परदारांश्च कामेनद्रष्टास्यादक्षिरोगवान्॥१२॥
प्रतिज्ञायाप्रयच्छन्यो ह्यल्पायुर्जायते नरः। विप्रवृत्त्यपहारी स्यादजीर्णी सर्वदाऽधमः॥१३॥
नैष्ठिकान्नाशनाद्भूयोनिवृत्तोरोगवान्सदा। पत्नीबहुत्वेत्वेकस्यांरेतोमोक्षःक्षयीभवेत्॥१४॥
स्वामिना धर्मयुक्तो यस्त्वन्यायेन समाचरेत्। स्वयं वा भक्षयेद्द्रव्यं स मूढः स्याज्जलोदरी॥१५॥
दुर्बलं पीड्यमानं यो बलवान्समुपेक्षते। अङ्गहीनः स च भवेदन्नहृत्क्षुधितो भवेत्॥१६॥
व्यवहारे पक्षपाती जिह्वारोगी भवेन्नरः। धर्मप्रवृत्तिं सञ्चार्य पत्न्यादीष्टवियोगकृत्॥१७॥
स्वयंपाकाग्रभोजी यो गलरोगमवाप्नुयात्। पञ्चयज्ञानकृत्वैव भुञ्जानो ग्रामशूकरः॥१८॥
पर्वमैथुनकृन्मेही परित्यज्य स्वगेहिनीम्। वेश्यादिरक्तो मूढात्माखल्वाटो जायते नरः॥१९॥
परिक्षीणान्मित्रबन्धून्स्वामिनं दयितानुगान्। अवमन्य निवृत्तात्मा क्लिष्टवृत्तिः सदा भवेत्॥२०॥

रजस्वला से गमन करने वाला चाण्डाल होता है। वस्त्र हरण करने वाला श्वेत दाग वाले कुष्ठ का रोगी होकर जन्म लेता है। अग्नि से गृहादि जलाने वाला कृष्ण कुष्ठ रोगी होता है। झूठी गवाही देने वाला मुखरोगी, चांदी हरण करने वाला मेंढक, परदारा को (परनारी को) प्राप्त करने की इच्छा से देखने वाला आंख का रोगी, देने की प्रतिज्ञा करके उसे न देने वाला अल्पायु होता है। जो अधम व्यक्ति ब्राह्मण की वृत्ति का हरण करता है, वह सर्वदा अजीर्ण रोग से कष्ट पाता है। ब्रह्मचारी द्वारा भोग्य हविष्य का त्याग करने से वह सर्वदा रोगी रहेगा। अनेक पत्नी रहते यदि वह व्यक्ति मात्र एक पत्नी से संगम करे, तब वह क्षयरोगी होगा। स्वामी द्वारा किसी धर्मकार्य में नियुक्त किये जानेपर जो जिस क्षेत्र में अधर्माचरण करे, किंवा स्वामी के द्रव्य को आत्मसात् कर ले, वह जलोदर रोग का रोगी होता है। दुर्बल को अन्य द्वारा पीड़ित किया जाता देखकर यदि बलवान व्यक्ति उसकी उपेक्षा कर देता है, तब वह बलवान् अंगहीन होगा। अन्न का हरण करने वाला क्षुधा से पीड़ित रहेगा। विचार कार्य (निर्णय) में पक्षपात करने वाला जिह्वारोगी हो जाता है। किसी की भी धर्मप्रवृत्ति में व्याघात पहुंचाने वाला अपनी भार्या आदि प्रियजन वियोग का दुःख भोगता है। स्वयं पाक करके उसका अग्रभाग स्वयं ही खाने वाला कण्ठ रोग से पीड़ित होता है। पर्व काल में मैथुन करने वाला मेहरोगी (प्रमेह) होता है। पञ्चयज्ञ बिना भोजन करने वाला मानव ग्रामशूकर होता है। अपनी पत्नी को छोड़कर अन्य वेश्या आदि में आसक्त पुरुष खालित्य रोग लेकर जन्म लेता है। बुरी स्थिति से ग्रसित बन्धु-बान्धव-स्वामी-प्रियजन-किंवा अनुगत को छोड़कर जो स्वयं संतुष्ट रहता है, उसे सदा क्लेश से जीविका निर्वाह करना होगा।।११-२०।।

छद्मनोपचरेद्यस्तु पितरौस्वामिनंगुरून्। प्राप्तव्यार्थस्यातिकष्टात्परिभ्रंशोऽर्थजोभवेत्॥२१॥
विश्रब्धत्याऽपहारी तु दुःखानांभाजनं भवेत्। धार्मिकेक्षुद्रकारीयोनरःसवामनोभवेत्॥२२॥
दुर्बलवृषवाही यः कटिलूती भवेत्स च॥२३॥

जात्यन्धश्चाऽपि यो गोघ्नो निःपशुदुःखकृद्गवाम्।
निर्दयो गोषु घाताद्यैः सदा सोऽध्वसु कष्टगः॥२४॥
निस्तेजकः सभार्यां यो गलगण्डी स जायते। सदा क्रोधी च चण्डालः पूतिवक्त्रश्च सूचकः॥२५॥
अजविक्रयकृद्व्याधः कुण्डासी भृतको भवेत्।
नास्तिकस्तिलपिण्डी स्यादश्रद्धो गीतजीवनः॥२६॥
अभक्ष्यादो गण्डमाली स्त्रीखादी चाऽऽसुतस्य कृत्।
अन्यायतो ज्ञानग्राही मूर्खो भवति मानवः॥२७॥
शास्त्रचौरःकेकराक्षःकथाम्पुण्याञ्चद्वेष्टियः। कृमिवक्त्रः स च भवेद्विभ्रष्टोनरकात्कुधीः॥२८॥
देवद्विजगवां वृत्तिहारको वान्तभक्षकृत्। तडागारामभेत्ता यो भवेद्विकलपाणिकः॥२९॥

पिता-माता-प्रभु तथा गुरुजन के साथ कपटाचारी व्यक्ति को अपनी कामना प्राप्ति हेतु अतिशय क्लेश का सामना करना पड़ता है तथा उसका बराबर अर्थनाश होता है। विश्वासघाती व्यक्ति दुःखभागी होता है। जो मनुष्य धार्मिकों के साथ दुर्व्यवहार करता है, वह वामन होता है। दुर्बल-निर्बल वृष द्वारा बोझ ढुलवाने वाला कटिलूती रोग से आक्रान्त हो जाता है। गोहत्यारा जन्मान्ध होता है। गौओं को पीड़ित करने वाला व्यक्ति पशुहीन हो जाता है। विशेषतः गौओं को प्रहारादि से सतत् उत्पीड़ित करने वाला मार्ग में क्लेश पाता है। सभा में किसी का अपदस्थ करने से गलगण्ड रोग होता है। सदा क्रोधी चाण्डाल होता है। जो गोपनीय रूप से पीठ पीछे दूसरे को बदनाम करता है, उसका मुख दुर्गन्ध करता है। बकरी बेचने वाला व्याध होता है। कुण्डाशी व्यक्ति (भड़ुआ, विट कार्य से जीविका चलाने वाला) वेतनजीवी हो जाता है। नास्तिक व्यक्ति तिलपिण्डी होता है। वेदविधि में अश्रद्धा रखने वाला गीतजीवी होता है। अभक्ष्य-भक्षण करने वाल गण्डमाला रोगग्रस्त होता है। मद्यनिर्माता स्त्रीवियोग सहता है। अन्याय से ज्ञान ग्रहण करने वाला मूर्ख होता है। शास्त्र चोर केकरनेत्र (भेंगा) होता है। पुण्यकथा का विरोधी दुर्बुद्धि व्यक्ति नरक भोगने के अन्तर कृमियुक्त मुख लेकर जन्म लेता है। देवता-द्विज तथा गौओं की वृत्ति को हरने वाला वान्तभक्षक होता है (वान्त = वमन)। तड़ाग तथा उद्यान के नाशक का हाथ विकलांग होता है।।२१-२९।।

व्यवहारे च्छलग्राही भृत्यग्रस्तो भवेन्नरः। सदा पुरुषरोगी स्यात्परदाररतो नरः॥३०॥
वातरोगी कुवैद्यः स्याद्दुश्चर्मा गुरुतल्पगः। मधुमेहीखरीगामीगोत्रस्त्रीमैथुनोऽप्रसूः॥३१॥
स्वसारं मातरं पुत्रवधूं गच्छन्नबीजवान्। कृतघ्नः सर्वकार्याणां वैफल्यं समुपाश्नुते॥३२॥
इत्येष लक्षमोद्देशः पापिनां परिकीर्तितः। चित्रगुप्तोऽपि मुह्येत सकलस्याऽनुवर्णने॥३३॥
एते नरकविभ्रष्टा भुक्त्वा योनीः सहस्त्रशः। एवंविधैश्चिह्निताश्च जायन्ते लक्षणैर्नराः॥३४॥
ये हि धर्मं न मन्यन्ते तथा ये व्यसनैर्जिताः। अनुमानेन बोद्धव्यं यदेते शेषपापिनः॥३५॥
येषां त्वन्तगतं पापं स्वर्गाद्वा ये समागताः। सर्वव्यसननिर्मुक्ता धर्ममेकं भजन्ति ते॥३६॥

।।भवन्ति चाऽत्र श्लोकाः।।

विचार कार्य में (निर्णय) छल करके उपेक्षा करने वाला भृत्यों से आक्रान्त होता है। परनारी निरत मनुष्य को ध्वजभङ्ग रोग होता है। चिकित्सा शास्त्र में अनभिज्ञ होकर चिकित्सा कार्यरत होने वाला व्यक्ति रोगाक्रान्त हो जाता है। गुरुपत्नीगामी दुश्चर्मा होता है। गर्दभी गमनकारी मधुमेह रोगाक्रान्त होता है। सगोत्रगामी निर्वंश हो जाता है। भगिनी, माता तथा पुत्रवधू गमन से सन्तानोत्पादन शक्ति का नाश हो जाता है। कृतघ्न मानव सभी कामों में विफल प्रयत्न होता है। यह पापीगण का लक्षण मैंने संक्षेपतः कहा। इसका सम्यक् वर्णन चित्रगुप्त भी नहीं कर सकते। जो सब पापी नरकभोगान्त में उसी लक्षण से युक्त होकर जन्म लेते हैं, जो धर्म नहीं मानते, जो व्यसनासक्त हैं, वे कैसे पापी हैं तथा कैसा फल भोग करेंगे, यह अनुमान से ही जाना जाता है। हे द्विज! जिनमें पाप नहीं है, किंवा जो स्वर्ग से समागत हैं, वे सर्वव्यसन रहित तथा धार्मिक होते हैं।।३०-३६।।

धर्मादनवमं सौख्यमधर्माद्दुःखसम्भवः। तस्माद्धर्मं सुखार्थाय कुर्यात्पापं विवर्जयेत्॥३७॥
लोकद्वयेऽपि यत्सौख्यं तद्धर्मात्प्रोच्यते यतः। धर्ममेकमतः कुर्यात्सर्वकार्यार्थसिद्धये॥३८॥
मुहूर्तमपि जीवेत नरः शुक्लेन कर्मणा। न कल्पमपि जीवेत लोकद्वयविरोधिना॥३९॥
इति पृष्टं त्वया विप्र! यथाशक्त्यामयेरितम्। असूक्तंसूक्तमथवा क्षन्तव्यं किं वदामिच॥४०॥

इस सम्बन्ध में कतिपय श्लोक हैं—धर्म में परम सुख है। अधर्म से दुःख उत्पन्न होता है। अतएव सुख लाभार्थ धर्माचरण करे तथा पापकार्य से विरत रहे। धर्म से इह-पर-उभय लोक में प्रभूत सुख मिलता है। यह सुधीगण कहते हैं। अतः सर्वकर्मसाधनार्थ धर्मानुष्ठान करे। यही एकमात्र कर्त्तव्य है। शुभ कर्म करते मुहूर्त्तमात्र भी जीवित रहना उचित है, लेकिन इह लोक तथा परलोक विरोधी पापकर्म करके कल्प पर्यन्त भी जीवित रहना उचित नहीं है। हे द्विज! मैंने आपके प्रश्न का यथाशक्ति उत्तर प्रदान किया। इसमें जो कुछ उत्तम अथवा त्रुटिपूर्ण कहा हो, उसके लिए आप क्षमा करें। अब मुझे क्या कहना है?।।३७-४०।।

नारद उवाच

कमठस्यैतदाकर्ण्य अष्टवर्षस्यभाषितम्। भगवान्भास्करः प्रीतोबभूवाऽतीव विस्मितः॥४१॥
प्रशशंस च तान्विप्रान्हारीतप्रमुखांस्तदा। अहो वसुमतीधन्या द्विजैरेवंविधोत्तमैः॥४२॥
अथ प्रजापतिर्धन्वो यन्मर्यादाऽभिपाल्यते। अमीभिर्ब्राह्मणवरैर्धन्या वेदाश्च सम्प्रति॥४३॥
येषां मध्ये बालबुद्धिरियमेतादृशीस्फुटा। हारीतप्रमुखानांहि का वै बुद्धिर्भविष्यति॥४४॥
असंशयं त्रिलोकस्थमेषामविदितं न हि। यथैतान्नारदः प्राह भूयस्तस्मादमी बहु॥४५॥

नारद कहते हैं—भगवान् भास्कर ने इस आठ वर्ष के बालक कमठ का यह वचन सुनकर अतीव प्रसन्न होकर तथा विस्मयपूर्वक हारीत आदि प्रमुख मुनियों से कहा—"अहा! इस प्रकार के उत्तम द्विजों को धारण करके आज धरती धन्य है तथा ये सब जिसके विधान का पालन करते हैं, वे प्रजापति भी धन्य हैं। इन विप्रप्रवरगण द्वारा सम्प्रति सभी वेद धन्य हो गये। जिनके बीच बालकों की बुद्धि ऐसी निर्मल है, उस समाज के हारीत आदि प्रमुख वृद्धों की बुद्धि कैसी समुज्ज्वल होगी वह तो अनुमानगम्य है। निश्चय ही इनको तीनों लोक में कुछ भी अज्ञात नहीं है। नारद ने इनके विषय में जो कुछ कहा था, मैं देखता हूं कि ये उसकी अपेक्षा भी अधिक प्रशंसनीय हैं।।४१-४५।।

इति प्रशस्य तान्विप्रान्प्रहृष्टो रविरब्रवीत्। अहं सूर्यो विप्रमुख्यायुष्माकं दर्शनात्कृते॥४६॥
समागतः सूर्यलोकात्प्राप्तं नेत्रफलञ्च मे। भवद्विधैर्विप्रमुख्यैः सञ्जल्पनसहासनात्॥४७॥

अन्त्यजा अपि पूयन्ते किं पुनर्मादृशा द्विजाः।
सर्वथा नारदो धन्यो योऽसौ त्रैलोक्यतत्त्ववित्॥४८॥

युष्माभिर्बध्यतेश्रेयोयस्यवैधूतकिल्विषैः। प्रणमामिच वः सर्वान्मनोबुद्धिसमाधिभिः।

तपो विद्या च वृत्तं च यतो वार्द्धक्यकारणम्॥४९॥

वरं मत्तो वृणीध्वञ्चदुर्लभं यं हृदीच्छत। यूयं स्वयंहि वरदामत्सङ्गोमास्तु निष्फलः॥५०॥
देवतानांहि संसर्गो निष्फलो नोपजायते। तस्मान्मत्तोवरं किञ्चिद्वृणुध्वं प्रददामि वः॥५१॥

भगवान् रवि ने हृष्टचित्त से इस प्रकार से उनकी अनेक प्रशंसा करके कहा—"हे विप्रगण! मैं सूर्य हूं। आपलोगों के दर्शनार्थ मैं सूर्यलोक से यहां आया हूं, तथापि हे द्विजगण! इससे मेरे नेत्र सफल हो गये। आप जैसे श्रेष्ठ विप्रगण के पास आकर एक स्थान पर कथावार्त्ता द्वारा तो अन्त्यज भी पवित्र हो जाते हैं। मेरे जैसे की तो बात ही क्या? त्रैलोक्य तत्वज्ञ नारद मुनि सर्वथा धन्य हैं, क्योंकि ऐसे निष्पाप साधुगण ने उनका श्रेयसाधन किया है। तपस्या, विद्या, सदाचार—ये तीनों विप्रों की प्रशंसा के योग्य हैं। अतएव मैं आप सब को बुद्धि-मन के साथ प्रणाम करता हूं। आप जो कुछ कामना करते हैं, मुझसे दुर्लभ वर ग्रहण करिये। यद्यपि आप सब स्वयं वरदान दे सकने में सक्षम हैं, तथापि मेरा संग निःष्फल न हो। देवगण का संसर्ग कभी विफल नहीं होता। आप सब मुझसे कोई भी वर मांगें। मैं वह प्रदान करूंगा"।।४६-५१।।

श्रीनारद उवाच

इति सूर्यवचः श्रुत्वा प्रहृष्टास्ते द्विजोत्तमाः॥५२॥
सम्पूज्यपरयाभक्त्यापाद्यार्घ्यस्तुतिवन्दनैः। मण्डलादीन्महाजप्यान्गृणन्तःप्रोचिरेरविम्॥५३॥
जयादित्य जय स्वामिञ्जय भानो जयाऽमल। जय वेदपदे शश्वत्तारयाऽस्मानहर्षते!॥५४॥
विप्राणां त्वं परोदेवोविप्रसर्गाऽपि त्वन्मयः। नितरां पूतमेतन्नःस्थानंदेवत्वयेक्षितम्॥५५॥
अद्य नः सफला वेदाअद्यनःसफलाः क्रियाः। अद्य नः सफलंगेहं त्वया सङ्गम्यगोपते॥५६॥
वरं यदि प्रदाताऽसि तदेनं प्रवृणीमहे। आस्माकीनमिदं स्थानंन हि त्याज्यंकथञ्चन॥५७॥

श्रीनारद कहते हैं—भगवान् सूर्य का यह वचन सुनकर द्विजवरगण ने सहर्ष परमभक्ति के साथ पद्य-अर्घ्य-स्तुति वन्दना तथा मण्डलादि महाजप्य पाठ द्वारा सूर्यदेव की अर्चना करके कहा—"हे आदित्य! आपकी जय हो! हे स्वामिन्! आपकी जय हो। हे भानु! आपकी जय हो! हे वेदपति! आपकी जय हो! हे अर्हपति! आप हमारा त्राण करिये। आप विप्रगण के परम देवता हैं। विप्र सृष्टि त्वन्मय है। हे देव! आपके द्वारा देखे जाने से हमलोगों का यह स्थान अत्यन्त पवित्र हो गया। अब हम सबका वेदाध्ययन सफल है। हे किरणराज! आपके समागम से आज हमारे गृह भी सफल (फलयुक्त) हो गये। आप यदि हमें वर देना चाहते हैं, तब हम यह वरदान मांगते हैं कि आप हमारा स्थान कभी न त्यागें।।५२-५७।।

श्रीसूर्य उवाच

यस्माद्भवद्भिः पूर्वं हि जयादित्येति चोदितम्।
जयादित्य इति ख्यातस्तस्मात्स्थास्येऽत्र सर्वदा॥५८॥
यावन्महीसमुद्राश्चपर्वतानगराणि च। तावत्स्थानमिदं विप्रानहित्यक्ष्यामिकर्हिचित्॥५९॥
दारिद्र्यरोगसंघातान्दद्रवो मण्डलानिच। कुष्ठादीन्नाशयिष्यामिभजतामत्र संस्थितः॥६०॥
यो मामत्र स्थितंचापिपूजयिष्यति मानवः। सूर्यलोकमिवागम्यपूजांतस्यभजाम्यहम्॥६१॥

श्रीसूर्य कहते हैं—आप सबने मुझे जयादित्य कह कर सम्बोधित करके अभिनन्दित किया था, अतः मैं यहां सतत् जयादित्य नाम से ही स्थित रहूंगा। हे विप्रगण! मही पर्वत, समुद्र तथा नगर जबतक रहेगा, तबतक इस स्थान का कभी त्याग नहीं करूंगा। यहां रहकर मैं भक्तों की दरिद्रता तथा दद्रु-कुष्ठादि-मण्डल आदि सभी रोगों का विनाश करूंगा। जो मानव यहां मेरी पूजा करेगा, सूर्यलोक जाकर मेरी अर्चना करने से जो प्रसन्नता मुझे होती है, वही यहां की पूजा से भी होगी।।५८-६१।।

श्रीनारद उवाच

एवमुक्ते भगवता हारीताद्या द्विजोत्तमा। मूर्तिं संस्थापयामासुर्वेदोदितविधानतः॥६२॥
ततोद्विजाःप्राहुरेवंकमठंत्वत्कृतेरविः। अत्र स्वामीस्थितस्तस्मात्प्रथमंस्तुहित्वंरविम्॥६३॥
इत्युक्तो ब्राह्मणैः सर्वैः कमठोवाग्गिममनाम्वरः। प्रणिपत्यजयादित्यंमहास्तोत्रमिदंजगौ॥६४॥

नारद कहते हैं—भगवान् आदित्य के यह कहने पर हारीत आदि मुनिगण ने वेदोक्त विधि से वहां सूर्यप्रतिमा स्थापित किया। तब द्विजों ने कमठ से कहा कि तुम्हारे ही कारण देवदेव सूर्य यहां स्थित हुये हैं। अतः पहले तुम ही इनका स्तव करो। वाग्मियों में श्रेष्ठ कमठ ने ब्राह्मणों से इस प्रकार अभिहित होकर जयादित्य को प्रणाम किया तथा इस महास्तोत्र का पाठ करने लगे।।६२-६४।।

न त्वं कृतः केवलसंश्रुतश्च यजुष्येवं व्याहरत्यादिदेव!।
चतुर्विधा भारती दूरदूरं धृष्टः स्तौमि स्वार्थकामः क्षमैतत्॥६५॥
मार्तण्डसूर्यांशुरविस्तथेन्द्रो भानुर्भगश्चाऽर्यमा स्वर्णरिताः॥६६॥
दिवाकरो मित्रविष्णुश्च देव! ख्यातस्त्वं वै द्वादशात्मा नमस्ते।
लोकत्रयं वै तव गर्भगेहं जलाधारः प्रोच्यसे खं समग्रम्॥६७॥
नक्षत्रमाला कुसुमाभिमाला तस्मै नमो व्योमलिङ्गाय तुभ्यम्॥६८॥
त्वं देवदेवस्त्वमनाथनाथस्त्वं प्राप्यपालः कृपणे कृपालुः।
त्वं नेत्रनेत्रं जनबुद्धिबुद्धिराकाशकाशो जय जीवजीवः॥६९॥
दारिद्र्यदारिद्र्य निधे निधीनाममङ्गलामङ्गल शर्मशर्म।
रोगप्ररोगः प्रथितः पृथिव्यां चिरं जयाऽऽदित्य! जयाऽऽप्रमेय!॥७०॥

हे आदिदेव! आप किसी द्वारा निर्मित नहीं हैं। आप केवल श्रुत ही हैं। यजुर्वेद में यह उक्ति है। वास्तव

में चतुर्विध वाणी आपके तत्वनिर्णयार्थ दूर-दूर से ही कुछ वर्णन कर पाती है। वह वाणी तत्व निर्णय के निकट भी नहीं पहुंच पाती। मैं धृष्ट हूं, तथापि स्वार्थसाधनार्थ आपका स्तव कर रहा हूं। आप अपराध क्षमा करिये। मार्त्तण्ड, सूर्य, अंशु, रवि, इन्द्र, भानु, भर्ग, अर्यमा, स्वर्णरिता, दिवाकर, मित्र, विष्णु तथा द्वादशात्मा नाम से आप प्रसिद्ध हैं। हे देव! आपको प्रणाम। इस लोकत्रय में आप गर्भगेह स्वरूप हैं। समस्त नभोमण्डल आपका जलाधार स्वरूप है। नक्षत्रमाला पुष्पमाला की तरह आपकी शोभा वृद्धि कर रही है। आप स्वयं व्योमविहारी हंस रूपी हैं। आपको प्रणाम। आप देवदेव, अनाथनाथ हैं। आप शरणागतपालक तथा दीनों पर दयालु हैं। आप नयनों के नयन, बुद्धि की बुद्धि, आकाश के प्रकाशक, जीवों के जीवन स्वरूप हैं। आपकी जय हो। आप दरिद्रता की दरिद्रता, निधियों की निधि, अमंगल के अमंगल, रोग के भी रोगरूप हैं। हे अप्रमेय जयादित्य! आप चिरकाल पृथिवी पर प्रख्यात होकर जययुक्त हो जायें।।६५-७०।।

व्याधिग्रस्तं कुष्ठरोगाभिभूतं भग्नघ्राणं शीर्णदेहं विसञ्ज्ञम्।
माता पिता बान्धवाः सन्त्यजन्ति सर्वैस्त्यक्तं पासि कोऽस्ति त्वदन्यः।।७१।।
त्वं मे पिता त्वं जननी त्वमेव त्वं मे गुरुर्बान्धवाश्च त्वमेव।
त्वं मे धर्मस्त्वञ्च मे मोक्षमार्गो दासस्तुभ्यं त्यज वा रक्ष देव!।।७२।।
पापोऽस्मि मूढोऽस्मि महोग्रकर्मा रौद्रोऽस्मि नाऽऽचारनिधानमस्मि।
तथापि तुभ्यं प्रणिपत्य पादयोर्जयं भक्तानामर्षय श्रीजयार्क!।।७३।।

व्याधिग्रस्त, कुष्ठरोगी, भग्न नासिका वाले, शीर्णदेह, संज्ञाहीन मानव का त्याग तो माता-पिता-बान्धवादि तक सभी कर देते हैं, परन्तु एकमात्र आप ही ऐसे हैं, जो सर्वजन त्यक्त व्यक्ति का भी रक्षण करते हैं। आपके समान दयालु कौन है? आप चाहे मेरी रक्षा करें अथवा परित्याग करें, परन्तु आप ही हमारे माता, आप ही पिता, आप ही गुरु, आप ही बान्धव, आप ही हमारे धर्म, आप ही हमारे मोक्षमार्ग हैं। हम आपके दास हैं। आपके समान दयालु कौन है? हम पापी, मूढ़, महोग्रकर्मा तथा रौद्रस्वभाव हैं। हम सदाचारी भी नहीं हैं। हे श्री जयादित्य! तथापि हम आपके चरणों में प्रणत होकर आपका ही जय कीर्तन कर रहे हैं। आप भक्तों का जयविधान करें।।७०-७३।।

नारद उवाच

एवं स्तुतो जयादित्यः कमठेन महात्मना।
स्निग्धगम्भीरयावाचा प्राह तं प्रहसन्निव।।७४।।
जयादित्याष्टकमिदं यत्त्वया परिकीर्तितम्। अनेनस्तोष्यते योमांभुवितस्यनदुर्लभम्।।७५।।
रविवारेविशेषेण मां समभ्यर्च्य यः पठेत्। तस्यरोगानशिष्यन्तिदारिद्र्यञ्चनसंशयः।।७६।।
त्वया च तोषितोवत्सतवदद्मिवरंत्वमुम्। सर्वज्ञोभुविभूत्वात्वंततोमुक्तिमवाप्स्यसि।।७७।।
त्वत्पिता स्मृतिकारश्च भविष्यति द्विजार्चितः।
स्थानस्याऽस्य न नाशश्च कदाचित्प्रभविष्यति।।७८।।

न चैतस्थानकंवत्सपरित्यक्ष्यामिकर्हिचित्। एवमुक्त्वासभगवान्ब्राह्मणैरर्चितःस्तुतः॥७९॥
अनुज्ञाप्य द्विजेद्रांस्तांस्तत्रैवाऽन्तर्दधे प्रभुः। एवं पार्थ समुत्पन्नोजयादित्योऽत्रभूतले॥८०॥

नारद कहते हैं—महात्मा कमठ के इस प्रकार से स्तव करने पर भगवान् जयादित्य ने हंसते हुए स्निग्ध तथा गम्भीर वाणी में कमठ से कहा—"हे कमठ! तुम्हारे द्वारा कीर्त्तित इस जयादित्याष्टक से जो मानव मेरा स्तव करेगा, पृथिवी पर उसके लिये कुछ भी अप्राप्त नहीं होगा। विशेषतः रविवार को मेरी अर्चना करके जो इसे पढ़ता है, उसके रोग तथा दरिद्रता का नाश हो जायेगा, यह निश्चित है। हे वत्स! तुमने मुझे प्रसन्न कर दिया। इसलिए मैं तुमको यह वर देता हूं कि तुम पृथिवी पर सर्वज्ञाता रहोगे तथा मरणान्त में तुमको मुक्ति प्राप्त होगी। तुम्हारे पिता प्रसिद्ध स्मृतिशास्त्रकार होंगे। इस स्थान का कभी नाश नहीं होगा।

हे वत्स! "मैं भी इस स्थान को कदापि नहीं त्यागूंगा।" भगवान् सूर्य ने यह कहकर तथा द्विजगण से पूजित एवं अर्चित होकर उनका अभिमत लिया तथा वहां से अन्तर्ध्यान हो गये। हे अर्जुन! इस भूतल पर इसी प्रकार से जयादित्य का आविर्भाव हुआ।।७४-८०।।

आश्विने मासि सम्प्राप्तेरविवारेच सुव्रत!। आश्विने भानुवारेणयो जयादित्यमर्चयेत्॥८१॥
कोटितीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्महत्यां व्यपोहति। पूजनाद्रक्तमाल्यैश्च रक्तचन्दनकुङ्कुमैः॥८२॥
लेपनाद्गन्धधूपाद्यैर्नैवेद्यैर्घृतपायसैः। ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः॥८३॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यः सूर्यलोकञ्च गच्छति। पुत्रदारधनान्यायुःप्राप्यसांसारिकंसुखम्॥८४॥
इष्टकामैः समायुक्तः सूर्यलोके चिरं वसेत्॥८५॥
सर्वेषु रविवारेषु जयादित्यस्य दर्शनम्। कीर्तनं स्मरणं वापिसर्वरोगोपशान्तिदम्॥८६॥
अनादिनिधनं देवमव्यक्तं तेजसांनिधिम्। ये भक्तास्ते च लीयन्तेसौरस्थानेनिरामये॥८७॥
सूर्योपरागे सम्प्राप्ते रविकूपे समाहितः।
स्नानं यः कुरुते पार्थ! होमं कुर्यात्प्रयत्नतः॥८८॥
दानं चैवयथाशक्त्याजयादित्याग्रतःस्थितः। तस्यपुण्यस्यमाहात्म्यंशृणुष्वैकमनाजय॥८९॥
कुरुक्षेत्रेषु यत्पुण्यं प्रभासे पुष्करेषुच। वाराणस्याञ्च यत्पुण्यं प्रयागे नैमिषेऽपि वा।
तत्पुण्यं लभते मर्त्यो जयादित्यप्रसादतः॥९०॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे जयादित्यमाहात्म्यवर्णनंनामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५१॥

हे सुव्रत! आश्विन मास रविवार को अश्विनी नक्षत्र का सुयोग होनेपर यदि कोई कोटितीर्थ में स्नानोपरान्त जयादित्य की अर्चना करेगा, तब वह ब्रह्महत्या पातक से विमुक्त होगा। रक्तवर्ण माला, रक्तचन्दन, कुंकुम-गन्धादि-अंगलेपन, धूप, घृत-पायस-नैवेद्यादि उपचार से जयादित्य की अर्चना करने पर ब्रह्मघाती, सुरापायी, गुरुपत्नीगामी, चोर भी सर्वपाप रहित होकर सूर्यलोक प्राप्त करते हैं। वे दीर्घायु होकर पुत्र-स्त्री-धनादि जनित सांसारिक सुख भोग

कर अन्त में सूर्यलोक में जाकर अभिमत कामभोग के साथ चिरकाल वास करते हैं। समस्त रविवार को जयादित्य का दर्शन-कीर्त्तन-स्मरण करने से सभी पापों की शान्ति होती है। उन अनादिनिधन अव्यक्त तेजनिधि सूर्य के जो भक्त हैं, वे निरामय सूर्यलोक प्राप्त करते हैं। हे पार्थ! जो सूर्यग्रहण के समय समाहित चित्त के साथ रविकूप में स्नान करके जयादित्य के समक्ष यत्नतः होम तथा यथाशक्ति दान देते हैं, उनका पुण्य माहात्म्य एकाग्रता से सुनो। हे अर्जुन! कुरुक्षेत्र, प्रभास, पुष्कर, वाराणसी, प्रयाग तथा नैमिषारण्य में जो पुण्यलाभ होता है, वही पुण्य मानव जयादित्य की अर्चना से प्राप्त करते हैं।।८१-९०।।

।।एकपञ्चाश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कोटितीर्थ महिमा

अर्जुन उवाच

कोटितीर्थं कथं जातं केन वा निर्मितं मुने। कस्माद्वाकोटितीर्थानांफलमत्रोच्यतेमुने॥१॥

अर्जुन कहते हैं—हे मुनिवर! कोटितीर्थ का जन्म कैसे हुआ? उसका निर्माण किसने किया? किस कारण से उसे करोड़ों तीर्थवत् फलद कहा गया?।।१।।

नारद उवाच

यदामेस्थापितंस्थानंप्रसाद्याऽथमयाप्रभुः। ब्रह्मलोकात्समानीतःसाक्षाद्ब्रह्मापितामहः॥२॥
ततो मध्याह्नसमयेस्नानार्थेभगवान्विधिः। सस्मारकोटितीर्थानांस्मृतान्यत्रागतानिच॥३॥
स्वर्गात्त्रिदशलक्षाणि सप्ततिश्च महीतलात्। पातालाद्विंशलक्षाणि स्मृतान्यभ्यागतानि च॥४॥
अनेन प्रविभागेन लिङ्गान्यपि कुरुद्वह!। आयातानि यथा पूजां विदधाति पितामहः॥५॥
ततोऽभिषेचनं कृत्वा लिङ्गान्यभ्यर्च्य पद्मभूः। मध्याह्नकृत्यं संसाध्यममप्रेम्णावरंददौ॥६॥

नारद कहते हैं—मैंने जब उक्त तीर्थ की स्थापना करने के उपरान्त वहां प्रभु पितामह ब्रह्मा को लाने हेतु उनकी आराधना किया, तब विधाता ने मध्याह्नकाल में स्नानार्थ इस स्थान में कोटितीर्थों का आवाहन किया था। उनके स्मरण मात्र से यहां कोटितीर्थ उपस्थित हो गये। स्वर्ग से १० लाख, पृथिवी से ७० लाख तथा पाताल से ३० लाख तीर्थ ब्रह्मा के स्मरण मात्र से यहां आ गये। हे कुरुकुलश्रेष्ठ! पितामह की पूजा हेतु यहां एक कोटि लिंग भी उपस्थित हो गये। पद्मजन्मा ब्रह्मा ने इन समस्त लिंगों का अभिषेक किया तथा उनका पूजन करके अपना मध्याह्नकृत्य सम्पन्न किया। तभी उन्होंने प्रेमपूर्वक मुझे वर प्रदान दिया।।२-६।।

ततो भगवता ह्यत्र मनसा निर्मितं सरः। भगवानर्चितस्तीर्थैरिदमूचे प्रजापतिः॥७॥
किं कुर्म भगवन्धातरादेशं देहि नः प्रभो!। तेषां तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा प्राह प्रजापतिः॥८॥

एतस्मिन्सरसि स्थेयं तीर्थैःसर्वैरथाऽत्रच। एकस्मिंश्च तथालिङ्गेसर्वलिङ्गैर्ममार्चनात्॥९॥
कोटीनामेव तीर्थानां लिङ्गानां स्नानपूजया। दानेन च फलं त्वत्र यदि सत्यंवचोमम्॥१०॥

तत्पश्चात् भगवान् ब्रह्मा ने मन की कल्पनामात्र से वहां एक सरोवर का निर्माण किया। तब वहीं पर समस्त तीर्थों ने उन प्रजापति ब्रह्मा का अभिनन्दन करके कहा—"हे विधाता! हम क्या करें? हे प्रभो! हमें आदेश दीजिये।" ब्रह्मा ने उनका कथन सुन कर कहा—"हे तीर्थगण! तुम सब मिलकर इस सरोवर में स्थित रहो तथा हे लिंगगण! तुम सब भी मेरे द्वारा पूजित एक लिंग में स्थित रहो। यदि मेरी वाणी सत्य है, तब इस सरोवर में स्नान द्वारा कोटितीर्थ स्नान फल प्राप्त हो तथा इस एक लिंग की ही पूजा द्वारा कोटिलिंगार्चना रूप फल मिले"।।७-१०।।

यः श्राद्धं कुरुते चाऽत्र पिण्डदानंयथाविधि। पितृणामक्षयातृप्तिर्जायतेनाऽत्रसंशयः॥११॥
स्नात्वा योऽभ्यर्चयेद्देवंकोटीश्वरमनन्यधीः। कोटिलिङ्गार्चनफलंव्यक्तंतस्योपजायते॥१२॥
त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा। तेषां स फलमाप्नोति कोटितीर्थावगाहनात्॥१३॥
एवं दत्त्वा वरं ब्रह्मा ब्रह्मलोकं ययौ प्रभुः। कोटितीर्थञ्च सञ्जातं ततःप्रभृति विश्रुतम्॥१४॥
अस्य तीरे पुरा पार्थ! ब्रह्माद्यैर्देवसत्तमैः। यज्ञान्बहुविधान्कृत्वा ततः सिद्धिं परांययुः॥१५॥
वसिष्ठाद्यैर्मुनिवरैस्तपश्चीर्णं पुराऽनघ। मनसोऽभीप्सितान्कामान्प्रापुरन्ये तपोधनाः॥१६॥
अत्र तीर्थे पुरा पार्थअत्रिणाविहितं तपः। कोटितीर्थाद्दक्षिणतःस्थापितंलिङ्गमुत्तमम्॥१७॥
अत्रीश्वराभिसञ्ज्ञं तु महापापहरं परम्। स्थापयित्वा च तल्लिङ्गमग्रे चक्रे सरोवरम्॥१८॥

"इस स्थान में जो कोई मनुष्य यथाविधान श्राद्ध एवं पिण्ड प्रदान करे, उसके पितृगण अक्षय तृप्ति प्राप्त करें। इसमें संशय नहीं है। जो मानव स्नानान्त में अनन्यमन से कोटीश्वर की अर्चना करेंगे, वे निश्चितरूप से कोटिलिंगार्चन फल लाभ करेंगे। त्रैलोक्य में जो गंगा आदि तीर्थ तथा नदियां हैं, कोटितीर्थ जल में अवगाहन करने से मानव उन सबका फल प्राप्त करेंगे।" प्रभु ब्रह्मा यह सब वर प्रदान करने के अनन्तर ब्रह्मलोक चले गये। तभी से यह कोटितीर्थ जगविख्यात हो गया। हे अर्जुन! पूर्व में ब्रह्मा आदि देवताओं ने इसके तट पर नाना यज्ञानुष्ठान सम्पन्न करके परमासिद्धिलाभ किया था। हे अनघ! पूर्व में वसिष्ठादि मुनियों ने इसके तट पर तपस्या किया था तथा अन्य अनेक तपोधनों ने यहां तप करके अभीष्टफल लाभ किया था। हे अर्जुन! पूर्व में मुनिप्रवर अत्रि ने इस तीर्थ में तपस्याचरण भी किया था। उन्होंने कोटितीर्थ के दक्षिण की ओर अत्रीश्वर नाम से उत्तम लिंग प्रतिष्ठापित किया था। वह महाफलप्रद लिंग है। यह महापापहारी लिंग है। इस लिंग की प्रतिष्ठा के उपरान्त महर्षि ने इसी के अग्रभाग में एक सरोवर भी निर्मित किया।।११-१८।।

तत्र स्नात्वाच यो मर्त्यः श्राद्धं कुर्यात्प्रयत्नतः। अत्रीश्वरं समभ्यर्च्यरुद्रलोकेवसेच्चिरम्॥१९॥

उस सरोवर में स्नान करके जो मनुष्य प्रयत्नतः अत्रीश्वर का पूजन करके पितरों के लिये श्राद्ध करता है, वह चिरकाल रुद्रलोक में निवास करता है।।१९।।

भरद्वाजेन मुनिना कोटितीर्थे सरोवरे। तपश्चीर्णं महाबाहो! यज्ञाश्च विहिताः किल॥२०॥
भरद्वाजेश्वरं लिङ्गं स्थापितं सुमनोहरम्। तत्र कृत्वा सरो रम्यं परां मुदमवाप्तवान्॥२१॥

तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या श्राद्धंकुर्याद्विधानतः। भरद्वाजेश्वरं पूज्य शिवलोकेमहीयते॥२२॥
ततश्च कोटितीर्थेऽस्मिन्गौतमो भगवानृषिः। अतप्यत तपो घोरमहल्यासङ्गमाशया॥२३॥
तं कामं प्राप्तवान्धीमान्परां मुदमुपागतः। अहल्यया समायोगमेतत्तीर्थप्रभावतः॥२४॥
अस्मिन्क्षेत्रे महालिङ्गं गौतमेश्वरसञ्ज्ञितम्। स्थापयामास भगवानहल्यासरसस्तटे॥२५॥

हे महाबाहो! मुनिप्रवर भरद्वाज ने कोटितीर्थ सरोवर तट पर तपःश्चरण तथा नाना अनुष्ठान किया था। उन्होंने यहां एक सरोवर निर्मित करके वहां भरद्वाजेश्वर नामक अति मनोरम लिंग स्थापित किया था। इससे उनको परमानन्द का अनुभव हुआ था। मनुष्यगण यहां स्नान करके श्रद्धाभक्ति समन्वित होकर भारद्वाजेश्वर का पूजन करें तथा श्राद्धानुष्ठान करें। इससे उनको ससम्मान शिवलोक निवासरूपी फल प्राप्त होता है। भगवान् गौतम ऋषि ने अहल्या संगम की कामना लेकर कोटितीर्थ तट पर घोर तपःश्चरण किया था। तपःप्रभाव से उन धीमान् ऋषि की कामना पूर्ण हो गयी। वे इस तीर्थ के प्रभाव से अहल्या की प्राप्ति से परमानन्दित हो गये। उन्होंने अहल्या सरोवर तट पर गौतमेश्वर नामक एक महत् लिंग स्थापित किया।।२०-२५।।

अर्जुन उवाच

अहल्यया कदा ब्रह्मन्खानितं वै महत्सरः। तन्मम ब्रूहि सकलमहल्यासरःकारणम्॥२६॥

अर्जुन कहते हैं—हे ब्रह्मन्! अहल्या ने किस समय उस महत् सरोवर का निर्माण कराया था? मुझे कृपापूर्वक उस अहल्या सरोवर का समस्त वृत्तान्त बतायें।।२६।।

नारद उवाच

अहल्या शापमापन्ना गौतमात्किल फाल्गुन!। पुरा चेन्द्रसमायोगे परं दुःखमुपागता॥२७॥
ततो दुःखार्तः स मुनिःकोटितीर्थेऽकरोत्तपः। तपसा तेन वै पार्थाऽहल्ययासहसंगतः॥२८॥
ततः साध्वी परं हृष्टा अत्र क्षेत्रे सरोवरम्। चकार सुमहत्पुण्यं तीर्थोदैःपरिपूरितम्॥२९॥
अहल्यासरसि स्नानं पिण्डदानं समाचरेत्। गौतमेशञ्च सम्पूज्यब्रह्मलोकंसगच्छति॥३०॥
कोटितीर्थे नरश्रेष्ठ! अनेके मुनयोऽमलाः। तपस्तप्त्वा सुघोरञ्च परां सिद्धिमुपागताः॥३१॥

नारद कहते हैं—हे फाल्गुन! सुना है कि जब पूर्वकाल में गौतमपत्नी अहल्या इन्द्र संसर्ग से दूषित हो गयीं, तब महर्षि गौतम ने उसे शाप दिया था। इस प्रकार अहल्या अत्यन्त दुःखपूर्ण अवस्था को प्राप्त हो गयीं। उस समय मुनिवर गौतम ने भी अति क्लेशपूर्वक कोटितीर्थ जाकर तप प्रारम्भ किया। हे पार्थ! उन्होंने उस तपःप्रभाव से पुनः अहल्या का संगम प्राप्त किया। तब साध्वी अहल्या ने प्रसन्न होकर इस क्षेत्र में एक पुण्य सरोवर का निर्माण कराया तथा उसे तीर्थ जल से भर दिया। अहल्या सरोवर में स्नान के पश्चात् गौतमेश्वर की पूजा तथा पितरों के उद्देश्य से पिण्डदान करने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। हे नरश्रेष्ठ! अनेक मलहीन चित्त वाले मुनिगण ने कोटितीर्थ में तप करके परमसिद्धि लाभ किया है।।२७-३१।।

राजभिर्बहुभिः पूर्वं तपोदानं तथाऽध्वराः। अस्मिंस्तीर्थेसुविहिताः परां सिद्धिमुपागताः॥३२॥
अस्य तीरे द्विजं चैकं मृष्टान्नैर्यश्च तर्पयेत्। तेन श्रद्धासहायेन कोटिर्भवतितर्पिता॥३३॥

अस्य तीरे नरः पार्थ! रत्नानि विविधानि च।
गोभूमितिलधान्यानि वासांसि विविधानि च॥३४॥
श्रद्धया परया पार्थ! द्विजेभ्यः सम्प्रयच्छति। शतकोटिगुणं पुण्यं कोटितीर्थप्रभावतः।
कोटितीर्थे प्रतिश्रुत्य द्विजेभ्यो न प्रयच्छति॥३५॥
नरके पातयित्वा च कुलमेकोत्तरं शतम्। आत्मानं पातयेत्पश्चाद्दारुणं रौरवं महत्॥३६॥
माघमासे तु सम्प्राप्ते प्रातःकालेतथाऽमले। यः स्नातिमकरादित्येतस्यपुण्यंशृणुष्वमे॥३७॥

हे नरश्रेष्ठ! पूर्व में अनेक राजाओं ने इस तीर्थ में विधिवत् तप-दान-यज्ञादि करके परमार्थिक लाभ प्राप्त किया था। यहां पर मात्र एक ब्राह्मण को भी श्रद्धापूर्वक मिष्ठान्न भोजन कराने से कोटि ब्राह्मण भोजन का फललाभ मिलता है। हे पार्थ! इस कोटितीर्थ के तट पर मानव यदि श्रद्धापूर्ण मन से ब्राह्मणों को गौ, भूमि, तिल, धान्य, वस्त्रादि द्रव्य प्रदान करता है, तब उस कोटितीर्थ के प्रभाव से अन्य तीर्थ की अपेक्षा शतकोटिगुणित पुण्य मिलता है। यदि कोई कोटितीर्थ में ब्राह्मणों को कहकर भी दान नहीं देता, तब वह अपने १०१ पूर्व पीढ़ी के पितरों के साथ दारुण रौरव नरक में पतित होता है। सौर माघमास के विमल प्रातःकाल में जो नित्य कोटितीर्थ में स्नान करता है, उसको जो फललाभ होगा, वह मुझसे सुनो।।३२-३७।।

सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम्। सर्वदानव्रतैर्यच्च कोटितीर्थे दिने दिने॥३८॥
तत्पुण्यं लभते मर्त्यो नाऽत्र कार्याविचारणा। कन्यांगते सवितरि यः श्राद्धंकुरुतेनरः॥३९॥
पितरस्तस्य तुष्यन्ति गयाश्राद्धशतैर्न तु। कार्तिके मासि सम्प्राप्तेस्नानादिकुरुतेयदि॥४०॥
तदक्षयफलं सर्वं ब्रह्मणो वचनं यथा। इष्ट्वाऽत्र यज्ञमेकं तु कोटियज्ञफलं लभेत्॥४१॥
कन्या ब्राह्मेण विधिनादत्त्वा कोटिगुणंफलम्। सर्वदानंकोटिगुणंकोटितीर्थेभवेद्यतः॥४२॥
कोटितीर्थेत्यजेत्प्राणान्हृदिकृत्वातुमाधवम्। तस्यपार्थचिरंस्वर्गेह्यक्षयाशाश्वतीगतिः॥४३॥
कोटितीर्थे तीर्थवरे देहत्यागं करोति यः।
तस्य पूजां प्रकुर्वन्ति ब्रह्माद्या देवतागणाः॥४४॥
अस्य तीरे देहदाहो यस्य कस्य प्रजायते। अस्थिक्षेपो यस्य भवेन्महीसागरसङ्गमे॥४५॥
तत्फलं गदितुं पार्थ! वागीशोऽपि न वै क्षमः। एतज्ज्ञात्वा परं पार्थकोटितीर्थंप्रसेवते॥४६॥
दिनेदिने फलं तस्य कापिलंगोसहस्त्रकम्। स्वर्गे मर्त्येच पाताले तस्मादेतत्सुदुर्लभम्॥४७॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कोटितीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५२॥

समस्त तीर्थों के सेवन का जो पुण्य है, सर्वयज्ञानुष्ठान का जो फल है तथा समस्त दान एवं समस्त व्रताचरण का जो सुकृत उत्पन्न होता है, मानव इस तीर्थ में प्रतिदिन उतना फल प्राप्त करता है। इसमें किसी विचार का प्रयोजन नहीं है। सूर्य के कन्याराशि में जानेपर जो यहां श्राद्ध सम्पन्न करता है, उसके पितृगण को

जैसी तृप्ति मिलती है, सौ-सौ गयाश्राद्ध से भी वैसी तृप्ति नहीं होती। यहां कार्त्तिक मास में स्नान द्वारा समस्त अक्षयफल प्राप्त होता है। यह ब्रह्मवाक्य है। यहां एक यज्ञ करने पर भी कोटि यज्ञ फल मिलता है। यहां ब्राह्म विधान से एक कन्यादान करने पर भी कोटि कन्यादान फल मिलता है। वास्तव में कोटितीर्थ में किया समस्त दान कोटिगुणित फल प्रदान करता है। हे पार्थ! यदि कोई हृदय में माधव का ध्यान करते हुए यहां प्राणत्याग करता है, तब उसे चिरकाल हेतु स्वर्ग प्राप्ति होती है। जो कोटितीर्थ में प्राणत्याग करता है, ब्रह्मादि देवता भी उसकी अर्चना करते हैं। कोटितीर्थ के तट पर जिसका प्राण वियोग होता है तथा जिसकी अस्थि महीसागरसंगम में छोड़ी जाती है, उसका फल कहने में बृहस्पति भी समर्थ नहीं हैं। हे अर्जुन! यह जानकर कोटितीर्थ की सेवा करे। उस व्यक्ति को नित्य १००० कपिला गोदान फल मिलता है। यह कोटितीर्थ स्वर्ग, मृत्युलोक, पाताललोक में भी दुर्लभ है।।३८-४७।।

।।द्विपञ्चाश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कोटितीर्थ माहात्म्य

नारद उवाच

अथाऽन्यत्सम्प्रवक्ष्यामि शालामाहात्म्यमुत्तमम्। संस्थापिते पुरा स्थाने प्रोक्तोऽहं द्विजपुङ्गवैः।।१।।
स्थानस्य रक्षणार्थाय उपायं कुरु सुव्रत!। ततो मया प्रतिज्ञातं करिष्येस्थानरक्षणम्।।२।।
आराधिता मया पश्चाद्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। त्रयस्त्वेकाग्रचित्तेनततस्तुष्टाःसुरोत्तमाः।।३।।
समागम्याऽथमांप्रोचनुर्नारदव्रियताम्वरः। प्रोक्तंतानार्च्यच मया क्रियतांस्थानरक्षणम्।।४।।
अयमेव वरो मह्यं देयो देवैः सुतोषितैः। स्थानलोपो यथा न स्याद्यथाकीर्तिर्भवेन्मम।।५।।
एवमस्त्विति देवेशैः प्रतिज्ञातं तदा मुने!। स्वांशेन प्रकरिष्याम द्विजानांतवरक्षणम्।।६।।
एवमुक्त्वा कला मुक्ता देवैस्त्रिपुरुषैः स्वयम्। अन्तर्धानं ततःप्राप्तःसर्वेऽपिसुरसत्तमाः।।७।।
ततो मया द्विजैःसार्धंशालाग्रेस्थानरक्षणम्। स्थापिताश्च पृथग्देवास्त्रयस्त्रिभुवनेश्वराः।।८।।

नारद कहते हैं—तदनन्तर तुमसे उत्तम शालामाहात्म्य कहता हूं। पूर्व में जब मैंने इस स्थान की प्रतिष्ठा किया था, तब द्विजश्रेष्ठों ने मुझसे कहा—"हे सुव्रत! आप इस स्थान के रक्षणार्थ उपाय कीजिये।" उनकी बात सुनकर मैंने प्रतिज्ञा किया कि यहां का रक्षा विधान करूंगा। मैंने एकाग्रतापूर्वक ब्रह्मा-विष्णु-शिव की आराधना किया। इससे वे तीनों देवता प्रसन्न होकर आये तथा कहा कि नारद वर मांगो। मैंने उनकी यथायोग्य पूजा करके कहा—"हे सुरश्रेष्ठगण! आप यदि सन्तुष्ट हैं, तब यह करिये कि मेरे द्वारा प्रतिष्ठित स्थान लुप्त न हो, जिससे मेरी कीर्त्ति बनी रहे।" उन देवगण ने कहा—"मुनिवर! ऐसा ही हो। हम अपने-अपने अंश से तुम्हारे द्वारा स्थापित

द्विजों की रक्षा करूंगा।'' उन तीनों देवों ने वहां अपनी कला को स्थापित किया तथा अन्तर्हित हो गये। तब मैंने द्विजों के साथ वहां शाला के अग्रभाग में स्थान कल्पना किया। तदनन्तर वहां तीनों देवों की पृथक्तः प्रतिष्ठा किया।।१-८।।

पीड्यमाना यदा विप्राः केनाऽपि च भवन्ति हि। पूर्वाह्ने चाऽपि ऋग्वेदं मध्याह्ने च यजूंष्यथ॥९॥
यामे तृतीये सामानि तारस्वरमधीत्यच। शापं यस्यप्रदास्यन्तिशालाग्रे भृशरोषिताः॥१०॥
सप्ताहाद्वर्षमध्याद्वात्रिवर्षाद्भस्मतां व्रजेत्। प्रतिज्ञाता स्थानरक्षा यदि वो नारदाग्रतः॥११॥
सत्येन तेन नो वैरी भस्मीभवतुह क्षणात्। अनेन शापमन्त्रेणभस्मीभवतिनिश्चितम्॥१२॥
शालां त्रिपुरुषां तत्र यः पश्यति दिनेदिने। अर्चयेत्तोषयेच्चाऽसौ स्वर्गलोके महीयते॥१३॥

॥इति त्रिपुरुषशालामाहात्म्यम्॥

यदि विप्रगण किसी व्यक्ति द्वारा पीड़ित किये जाकर क्रोधित मन से वहां पूर्वाह्न में ऋग्वेद, मध्याह्न में यजुर्वेद तथा तृतीय प्रहर में तारस्वर में सामवेद पाठ करके शाला में ही स्थित होकर अभिसम्पात (अभिशाप) करें, तब वह व्यक्ति सप्ताह में अथवा एक वर्ष में किंवा वर्षत्रय में भस्मसात् होगा। यह अभिशाप मूलोक्त मन्त्र है—''प्रतिज्ञाता स्थानरक्षा यदि वो नारदाग्रतः, सत्येन तेन नो वैरी भस्मीभवतुह क्षणात्।'' इस शापमन्त्र से वह निश्चित भस्म होगा। उस तीन देवताओं से अधिष्ठित शाला का प्रतिदिन अर्चन-दर्शन करने से तथा उक्त देवत्रय को सन्तुष्ट करने से मानव स्वर्गलोक जाता है। त्रिपुरुष शाला का माहात्म्य सम्पन्न हुआ।।९-१३।।

नारद उवाच

अथाऽन्यत्सम्प्रवक्ष्यामि मदीयसरसो महत्॥१४॥
माहात्म्यमतुलं पार्थ! देवानामपि दुर्लभम्। मया पूर्वं सरः खातं दर्भाङ्कुरशलाकया॥१५॥
मृत्तिका ताम्रपात्रेणत्यक्तावाह्ये ततः स्वयम्। सर्वेषामेवतीर्थानामाहृत्योदकमुत्तमम्॥१६॥
तत्तत्र सरसि क्षिप्तं तेन सम्पूरितं सरः। आश्विने मासि सम्प्राप्ते भानुवारेनरःशुचिः॥१७॥
श्राद्धं यः कुरुते तत्र स्नात्वा दानं विशेषतः। पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावदाभूतसम्प्लवम्॥१८॥
नारदीयं सरो ह्येतद्विख्यातं जगतीतले। महता पुण्ययोगेन देवैरपि हि लभ्यते॥१९॥
यदत्र दीयते दानं हूयते यच्च पावके। सर्वं तदक्षयं विद्याज्जपानशनसाधनात्॥२०॥

नारद कहते हैं—हे अर्जुन! मैं अब अपने सरोवर के महान् माहात्म्य कथा को कहता हूं। यह देवगण के लिए भी दुर्लभ है। पूर्व में मैंने कुश की शलाका से सरोवर का खनन किया। एक ताम्रपात्र से खनन की गई उस मृत्तिका को कुछ बाहर फेंका था। तदनन्तर सभी तीर्थों के उत्तम जल से उस सरोवर को भरा था। जो मानव अश्विन मास के रविवार को पवित्र होकर वहां स्नानोपरान्त श्राद्धानुष्ठान तथा विशेषतः दान देगा, उसके पितृगण महाप्रलय तक के लिये तृप्त हो जायेंगे। जगत् विख्यात इस नारदीय सरोवर की प्राप्ति महान् पुण्ययोग से होती है। अन्यथा यह देवदुर्लभ स्थल है। यहां जो दान किया जाता है, अथवा अग्नि में होम किया जाता है, वह सब अक्षय फलप्रद हो जाता है।।१४-२०।।

नारदीये सरःश्रेष्ठे स्नात्वा यो नारदेश्वरम्। पूजयेच्छ्रद्धया मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥२१॥
अत्र तीर्थे पुरा पार्थ सर्वनागैस्तपः कृतम्। कद्रूशापस्यमोक्षार्थमात्मनोहितकाम्यया॥२२॥
ततः सिद्धिं परां प्राप्ता एतत्तीर्थप्रभावतः। ततो नागेश्वरं लिङ्गंस्थापयामासुरूर्जितम्॥२३॥

जो पुरुषप्रवर नारदीय सरोवर में श्रद्धापूर्वक स्नान करके नारदेश्वर लिंग की अर्चना करता है, वह सर्वपापरहित हो जाता है। हे अर्जुन! पूर्वकाल में कद्रु के शाप से मुक्त होने तथा अपना हित करने के लिए सर्पगण ने यहां तप किया था। इस प्रकार इस तीर्थ के प्रभाव से उनको परम सिद्धि की प्राप्ति हो सकी थी। तब उन्होंने नारदेश्वर के उत्तर की ओर नागेश्वर नामक उर्जित लिंग स्थापित किया था।।२१-२३।।

नारदादुत्तरे भागे सर्वे नागाः प्रहर्षिताः। नारदीये सरःश्रेष्ठे यः स्नात्वा पूजयेद्धरम्॥२४॥
नागेश्वरं महाभक्त्या तस्य पुण्यमनन्तकम्। तेषां सर्पभयं नास्ति नागानांवचनं यथा॥२५॥

॥इति नारदीयसरोमाहात्म्यम्॥

जो मानव नारदीय सरोवर में स्नानोपरान्त भक्तिपूर्वक नागेश्वर लिंगार्चन करता है, उसे अनन्त पुण्यप्राप्ति होती है। उसे कदापि सर्पभय नहीं होता। यह नागगण की उक्ति है।।२४-२५।।

नारदीय सरोवर महिमा समाप्त

नारद उवाच

अपरद्वारकानाम देवी चात्राऽस्ति पाण्डव!॥२६॥
सा च ब्रह्माण्डद्वारे वै सदैव विहितालया। चतुर्विंशतिकोटीभिर्देवीभिःपरिरक्षिता॥२७॥
ततो दीर्घं तपस्तप्त्वा मया नीताऽत्रतोषिता। अपरस्मिंस्ततोद्वारेस्थापितापरमेश्वरी॥२८॥
पूर्वस्मिन्नगरद्वारे स्थापिता द्वारवासिनीं। नवमी चैत्रमासस्य कृष्णपक्षे भवेत्तु या॥२९॥
कुण्डे स्नानं नरः कृत्वा ताञ्च देवीं प्रपूजयेत्। बलिबाकुलनैवेद्यैर्गन्धधूपादिपूजनैः॥३०॥
सप्तजन्मकृतं पापं नाशमायाति तत्क्षणात्। यान्यान्प्रार्थयते कामास्तांस्तानाप्नोति मानवः॥३१॥
वन्ध्या च लभते पुत्रं स्नानमात्रेण तत्र वै। नवम्यां चैत्रमासस्य पुष्पधूपार्घ्यपूजया॥३२॥
विघ्नानि नाशयेद्देवी सर्वसिद्धिं प्रयच्छति। भक्तानां तत्क्षणादेव सत्यमेतन्न संशयः॥३३॥
उत्तरद्वारकाञ्चापि पूज्यैवं विधिवन्नरः। एतदेव फलं सोऽपि प्राप्नुयान्मानवोत्तमः॥३४॥
पूर्वद्वारेतुवै देवी या स्थिताद्वारवासिनी। तस्याःपूजनमात्रेणप्राप्नुयाद्वाञ्छितंफलम्॥३५॥
आश्विने मासि सम्प्राप्ते नवरात्रेविशेषतः। उपोष्यनवरात्रञ्चस्नात्वा कुण्डेसमाहितः॥३६॥
पूजयेद्देवतां भक्त्या पुष्पधूपान्नतर्पणैः। अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्धनो लभते धनम्॥३७॥
वन्ध्या प्रसूयते पार्थ! नाऽत्र कार्या विचारणा॥३८॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कोटितीर्थादि-माहात्म्य वर्णनं नाम त्रिपञ्चाशोऽध्यायः॥५३॥

नारद कहते हैं—हे पाण्डव! यहां पर अपरद्वारका नामक एक देवी भी स्थापित हैं। वे २४ करोड़ देवीगण से परिवृता तथा रक्षिता होकर सतत् ब्रह्माण्डद्वार पर विराजमान रहती हैं। तभी मैंने दीर्घकाल तप करके उन परमेश्वरी द्वारवासिनी की प्रतिष्ठा नगर के पूर्व द्वारपर करके उनको सन्तुष्ट किया था। चैत्र कृष्ण नवमी के दिन मानव वहां कुण्ड में स्नानोपरान्त बलि, बकुल पुष्प, नैवेद्य, गन्ध-धूपादि से देवी की पूजा करें। इससे उनका ७ जन्मों का पाप तत्क्षण नष्ट होता है। वह मानव जो-जो कामना करता है, वह तत्काल उसे प्राप्त हो जाती है। वहां स्नान करके वन्ध्या नारी शीघ्र पुत्रलाभ करती है। चैत्रमासीय नवमी तिथि पर वहां अर्घ्य-गन्ध-धूपादि से अर्चना करने से देवी भक्तों के विघ्न का नाश करती हैं। देवी की कृपा से साधक सर्वसिद्धिलाभ करता है। हे अर्जुन! इसमें तनिक सन्देह न करे। इस नियम से उत्तरद्वारिका देवी की अर्चना से भी वही फल मिलता है। वह पूजक जनसमाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। पूर्व द्वार पर जो द्वारवासिनी देवी हैं, उनकी पूजा से भी मानव को अभिमत फल प्राप्ति होती है। आश्विन मास में विशेष रूप से नवरात्रि में नित्य-प्रति उपवासी रहकर समाहित मन से कुण्ड में स्नानोपरान्त भक्तिपूर्वक पुष्प-धूप-तर्पण तथा अन्नादि से देवी की पूजा करके अपुत्र को अनेक पुत्र, निर्धन को प्रभूत धन तथा वन्ध्या को सन्तान प्राप्ति होती है। हे अर्जुन! इसमें विचार-वितर्क न करे''।।२६-३८।।

।।त्रिपञ्चाश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नारद महात्म्य, कृष्ण कृत नारदस्तव

नारद उवाच

ममाऽपिपार्थ! तत्राऽस्तिमूर्तिर्ब्राह्मणकाम्यया। तत्रनाहंत्यजाम्यङ्ग!च्छत्रदण्डविभूषिताम्।।१।।
कार्तिकस्य तु या शुक्ला भवत्येकादशीशुभा। तस्यांमदर्चनंकृत्वा कलिदोषैर्विमुच्यते।।२।।

नारद कहते हैं—हे पार्थ! अर्जुन! वहां मेरी भी एक मूर्त्ति है। मैंने किसी ब्राह्मण के अनुरोध पर अपनी मूर्त्ति की कल्पना किया था। हे अर्जुन! मैंने वहां छत्र-दण्ड आदि ब्राह्मणोचित भूषणों को नहीं त्यागा था। कार्त्तिक शुक्ला एकादशी को वहां मेरी अर्चना द्वारा मानव कलिदोष से आक्रान्त नहीं होता।।१-२।।

अर्जुन उवाच

बाल्यात्प्रभृति सन्देहो ममाऽयं हृदि वर्तते। पृच्छतस्तञ्च मे विप्र न क्रोधंकर्तुमर्हसि।।३।।
सदा त्वं मोक्षधर्मेषु परिनिष्ठां परां गतः। सर्वभूतसमो दान्तो रागद्वेषविवर्जितः।।४।।
त्यक्तनिन्दास्तुतिर्मौनी मोक्षस्थः परिकीर्त्यसे। त्वं च नारदलोकेषुवायुवच्चपलोमुने!।।५।।
सौदामिनीव विचरन्दृश्यसे प्राज्ञसम्मतः। सदा कलिकरो लोके निर्दयः सर्वप्राणिषु।।६।।
बहूनां हि सहस्त्राणि देवगन्धर्वरक्षसाम्। राज्ञां मुनीन्द्रदैत्यानां कलेर्नष्टानि तेऽभवन्।।७।।

कस्मात्तदेषा चेष्टा ते सन्देहं मे हर द्विज!। सन्देहान्न सुखं शेते बाणविद्धो मृगो यथा॥८॥

अर्जुन कहते हैं—हे द्विजप्रवर! बाल्यकाल से ही मेरे मन में यह सन्देह था। मैं उसी सन्देह को पूछता हूं। आप तनिक भी क्रोध न करें। आप सदा मोक्षधर्मतत्पर, अतीव निष्ठावान्, सर्वभूत के प्रति सम व्यवहार वाले, दमयुक्त, रागद्वेष रहित, निन्दा-स्तुतिहीन, मौनी तथा मोक्षमार्गी रूप से कीर्त्तित हैं। हे नारद! तथापि आप लोकों में वायुवत् चंचल, प्राज्ञजनों द्वारा प्रशंसित होकर भी सौदामिनी की तरह विचरते रहते हैं। हे मुनिवर! यह देखा जाता है कि आप लोकों में सदैव विवादपरायण रहे हैं तथा सर्वप्राणीगण के प्रति निर्दयी हैं। आप से विवाद करके देवता, गंधर्व, राक्षस, राजा, मुनि, दैत्यादि हजारों व्यक्ति विनाश को प्राप्त हो गये। आपकी ऐसी चेष्टा क्यों रहती है? हे द्विज! मेरे इस सन्देह का समाधान करें। मन में संदेह रहने पर मानव मृग की तरह सुख से सो नहीं पाता।।३-८।।

सूत उवाच

शौनकेदं वचःश्रुत्वा फाल्गुनान्नारदोमुनिः। प्रहसन्निव बाभ्रव्यवदनं स निरैक्षत॥९॥
स च बाभ्रव्यनामा वै हारीतस्याऽन्वयोद्भवः। ब्राह्मणो नारदमुनेः समीपे वर्तते सदा॥१०॥
स च ज्ञात्वा महाबुद्धिर्नारदस्य मनीषितम्। प्रहसन्निवप्रोवाचफाल्गुनंस्निग्धयागिरा॥११॥

सूत जी कहते हैं—हे शौनकादि मुनिवर! अर्जुन की यह शंका सुनकर नारद मुनि ने हंसते हुये पार्श्व में स्थित वाभ्रव्य की ओर देखा। वे वाभ्रव्य मुनि हारीत मुनि के वंशज थे तथा वे सदा नारद के निकट रहते थे। महाबुद्धिमान् वाभ्रव्य ने नारद का अभिप्राय जानकर हास्यमुद्रा में स्निग्ध गंभीर वाक्यों से अर्जुन से कहना प्रारम्भ किया।।९-११।।

बाभ्रव्य उवाच

सत्यमेतद्यथाऽऽत्थत्वंनारदंप्रतिपाण्डव!। सर्वोऽपि चात्रवृत्तान्तेसंशयं यानि मानवः॥१२॥
तदहं ते प्रवक्ष्यामि यथा कृष्णान्मया श्रुतम्। स्तोककालान्तरे पूर्वं सर्वं यादवनन्दनः॥१३॥
महीसागरयात्रायां कृष्णस्तत्राऽऽययौ प्रभुः। उग्रसेनेन सहितो वसुदेवेन बभ्रुणा॥१४॥
रामेण रौक्मिणेयेन युयुधानादिभिस्तदा। स च ज्ञात्वा ज्ञातिसमं महीसागरसङ्गमे॥१५॥
पिण्डदानादिकं कृत्वादत्त्वा दानानि भूरिशः। गुहेश्वरादिलिङ्गानि यत्नतःप्रतिपूज्यच॥१६॥
स्नानं कृत्वा कोटितीर्थे जयादित्यंसमर्च्यच। पूजयन्नारदमुनिं युक्तः कृष्णोमहामनाः॥१७॥
उग्रसेनेन राज्ञा वै पूर्वजेन जटायुना। मदादिविप्रमुख्यानां बहूनां चोपशृण्वताम्।
उग्रसेनो महाराजः कृष्णं प्रोवाच संसदि॥१८॥

वाभ्रव्य कहते हैं—हे पाण्डव! तुमने नारदऋषि के सम्बन्ध में जो प्रश्न किया है, वह सत्य तो हैं। केवल तुम ही नहीं, सभी लोग इस सम्बन्ध में ऐसा ही सन्देह करते हैं। अतः मैंने इस विषय में श्रीकृष्ण से जो सुना था, वही कहता हूं। कुछ काल पूर्व एक बार यादवानन्द प्रभु श्रीकृष्ण महीसागरसंगम यात्रा पर आये। उनके साथ उग्रसेन, वसुदेव, वभ्रु, बलराम, प्रद्युम्न, सात्यकि आदि अनेक लोग आये। उन्होंने जटाधर उग्रसेन तथा भाई राम के साथ महीसागरसंगम पर अपने ज्ञातिजन के उद्देश्य से पिण्डदानादि कार्य तथा अन्य विविध दान कार्य करके

यत्नपूर्वक यहां स्थित गुह्येश्वरादि लिंगों का पूजन भी किया। उन्होंने कोटितीर्थ में स्नान, जयादित्यार्चन तथा नारदार्चन भी किया। तदनन्तर महाराज उग्रसेन ने मुझ जैसे ब्राह्मणों की सभा में श्रीकृष्ण से कहना प्रारम्भ किया।।१२-१८।।

उग्रसेन उवाच

कृष्ण! प्रक्ष्यामि त्वामेकं संशयं वद तं मम॥१९॥
योऽयं नाम महाबुद्धिर्नारदोविश्ववन्दितः। कस्मादेषोऽतिचपलो वायुवद्भ्रमतेजगत्।
कलिप्रियश्च कस्माद्वा कस्मात्त्वय्यतिप्रीतिमान्॥२०॥

उग्रसेन कहते हैं—हे कृष्ण! मैं तुमसे एक विषय जानना चाहता हूं। तुम मेरा संशय भंग करो। ये जो विश्ववन्दित महाबुद्धिमान् नारद ऋषि हैं, ये वायुवत् अति चपलतापूर्वक जगत् का भ्रमण क्यों करते हैं? ये विवादप्रिय क्यों हैं? ये तुम्हारे प्रति अत्यधिक प्रीतियुक्त क्यों हैं?।।१९-२०।।

श्रीकृष्ण उवाच

सत्यं राजंस्त्वया पृष्टमेतत्सर्वं वदामि ते। दक्षेण तु पुरा शप्तो नारदो मुनिसत्तमः॥२१॥
सृष्टिमार्गात्सुतान्वीक्ष्यनारदेनविचालितान्। नावस्थानंचलोकेषु भ्रमतस्तेभविष्यति॥२२॥
पैशुन्यवक्ताचतथाद्वितीयानां प्रचालनात्। इतिशापद्वयंप्राप्यद्विविधाऽऽत्मजचालनात्॥२३॥
निराकर्तुं समर्थोऽपिमुनिर्मेने तथैव तत्। एतावान्साधुवादो हि यतश्च क्षमते स्वयम्॥२४॥
विनाशकालंचाऽवेक्ष्य कलिं वर्धयते यतः। सत्यं च वक्तितस्मात्सनचपापेनलिप्यते॥२५॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे राजन्! आपने तो सत्य ही कहा। आप द्वारा पूछे गये विषय का मैं यथायथ उत्तर देता हूं। पूर्व में दक्ष प्रजापति ने सृष्टिकार्य में प्रवृत्त होकर कतिपय पुत्रों की उत्पत्ति किया। तब नारद ने उनको उल्टा परामर्श देकर उनको निवृत्तिमार्ग पर भेज दिया। इससे दक्ष प्रजापति ने कुपित होकर नारद को शाप दिया कि "तुमको सदा जगत् का परिभ्रमण ही करते रहना होगा। तुम कदापि एक स्थान पर अधिक समय रुक नहीं सकोगे।" इस अभिशाप के उपरान्त भी दक्ष ने अन्य कतिपय सृष्टि किया। नारद ने उन सबको भी निवृत्तिमार्गगामी बनाकर भेज दिया। तब दक्ष प्रजापति ने नारद को पुनः द्वितीय शाप दिया। कि "तुम सदा खलस्वभाव रहोगे।" तथापि नारद मुनि ने दोनों शापों को व्यर्थ करने की शक्ति होनेपर भी उसे स्वीकार कर लिया। फलतः नारद स्वयं क्षमाशील हैं। यह साधुवाद उनके साथ है। वे विनाश उपस्थित देखकर विवाद बढ़ाते हैं। वे सत्यवादी हैं। तभी पाप उनका स्पर्श नहीं कर पाते।।२१-२५।।

भ्रमतोऽपिच सर्वत्र नास्ययस्मात्पृथङ्मनः। ध्येयाद्भवति नैवस्याद्भ्रमदोषस्ततोऽस्यच।
यच्च प्रीतिर्मयि तस्य परमा तच्छृणुष्व च॥२६॥
अहं हि सर्वदा स्तौमि नारदं देवदर्शनम्। महेन्द्रगादितेनैव स्तोत्रेण शृणु तन्नृप॥२७॥
श्रुतचारित्रयोर्जाता यस्याऽहन्ता न विद्यते। अगुप्तश्रुतचारित्रं नारदं तं नमाम्यहम्॥२८॥
अरतिक्रोधचापल्ये भयं नैतानि यस्य च। अदीर्घसूत्रं धीरं च नारदं तं नमाम्यहम्॥२९॥

कामाद्वा यदि वा लोभाद्वाचं यो नान्यथा वदेत्। उपास्यं सर्वजन्तूनां नारदं तं नमाम्यहम्॥३०॥

यद्यपि ये महर्षि सदैव भ्रमण करते रहते हैं, तथापि ध्येय वस्तु से इनका मन विलग नहीं होता। तभी इनका भ्रमण दोषयुक्त नहीं रहता। मेरे प्रति जो इनकी अतीव प्रीति है, उसका कारण सुनिये। मैं देवदर्शन नारद की स्तुति सर्वदा इन्द्र द्वारा कहे स्तव से करता हूं। हे राजन्! आप उस स्तव को सुनें। यथा—जिनको शास्त्रज अथवा चरित्रज अहंकार नहीं है, अथच जिनका शास्त्रज्ञान तथा विमल चरित्र गुप्त नहीं है, मैं उन नारद को नमस्कार करता हूं। अप्रीति, क्रोध, चापल्य, भय उनमें नहीं है। जो धीर होकर भी दीर्घसूत्री नहीं हैं, मैं उन नारद को नमस्कार करता हूं। जो काम किंवा लोभ के वशीभूत होकर असत्य नहीं बोलते, मैं उन सर्वलोक उपास्य नारद को नमस्कार करता हूं।।२६-३०।।

अध्यात्मगतितत्त्वज्ञं क्षान्तंशक्तंजितेन्द्रियम्। ऋजुं यथार्थवक्तारं नारदं तं नमाम्यहम्॥३१॥
तेजसा यशसा बुद्ध्या नयेन विनयेन च। जन्मना तपसा वृद्धं नारदं तं नमाम्यहम्॥३२॥
सुखशीलं सुखं वेषं सुभोजं स्वाचरंशुभम्। सुचक्षुषंसुवाक्यञ्च नारदं तं नमाम्यहम्॥३३॥
कल्याणं कुरुते गाढं पापं यस्य न विद्यते। न प्रीयते परानर्थे योऽसौतंनौमिनारदम्॥३४॥
वेदस्मृतिपुराणोक्तधर्मे यो नित्यमास्थितः। प्रियाप्रियविमुक्तं तं नारदं प्रणमाम्यहम्॥३५॥
अशनादिष्वलिप्तं च पण्डितं नालसं द्विजम्। बहुश्रुतं चित्रकथं नारदं प्रणमाम्यहम्॥३६॥
नार्थे क्रोधे च कामे च भूतपूर्वोऽस्य विभ्रमः। येनैते नाशिता दोषा नारदं तं नमाम्यहम्॥३७॥
चीतसम्मोहदोषो यो दृढभक्तिश्च श्रेयसि। सुनयं सत्रपं तं च नारदं प्रणमाम्यहम्॥३८॥
असक्तः सर्वसङ्गेषु यः सक्तात्मेतिलक्ष्यते। अदीर्घसंशयो वाग्मी नारदं तं नमाम्यहम्॥३९॥

जो अध्यात्मतत्व के ज्ञाता हैं, क्षमावान्, कर्मठ, जितेन्द्रिय, सरलप्रकृति, यथार्थवक्ता हैं, मैं उन नारद को नमस्कार करता हूं। जो तेज, यश, बुद्धि, नीति, ज्ञान, विनय तथा जन्म एवं तपः द्वारा सर्वलोक प्रवीणरूपेण ज्ञात हैं, मैं उन नारद को नमस्कार करता हूं। जो सुशील, सुवेश, सुभोजी, सुमूर्त्ति, सुलोचन, सुभाषी, सदाचारी हैं, मैं उन नारद को नमस्कार करता हूं। जो सबका परमकल्याण साधन करते हैं, जो पापहीन हैं तथा जो कभी अन्य के अनर्थ से प्रसन्न नहीं होते, मैं उन नारद को नमस्कार करता हूं। जो वेद, स्मृति, पुराण के प्रति सदा आस्थावान् हैं, जो प्रिय-अप्रिय विचार से मुक्त हैं, मैं उन नारद को प्रणाम करता हूं। जो पान-भोजनादि से अनासक्त हैं, जो पण्डित, आलस्यरहित, द्विज, नाना शास्त्रज्ञ, विचित्रभाषी हैं, मैं उन नारद को प्रणाम करता हूं। अर्थ-काम-क्रोध से जो विभ्रमित नहीं होते, जो इन सब दोष का नाश कर देते हैं, मैं उन नारद को नमस्कार करता हूं। जिनका सम्मोह दोष सम्यक्तः निवृत्त है, जो श्रेय साधनार्थ दृढ़ भक्तिमान् हैं, मैं उन नारद को नमस्कार करता हूं। जो सभी विषयों के प्रति अनासक्त होकर भी आसक्तवत् प्रतीत हो रहे हैं, मैं उन नारद को नमस्कार करता हूं। जिनके चित्त में कोई संशय दीर्घकाल तक नहीं ठहरता, जो वाग्मी हैं, मैं उन नारद को नमस्कार करता हूं।।३१-३९।।

न त्यजत्यागमंकिञ्चिद्यस्तपोनोपजीवति। अवन्ध्यकालोयस्यात्मातमहंनौमिनारदम्॥४०॥
कृतश्रमं कृतप्रज्ञं न च तृप्तं समाधितः। नित्यं यत्नात्प्रमत्तं च नारदं तं नमाम्यहम्॥४१॥
न हृष्यत्यर्थलाभेन योऽलाभे न व्यथत्यपि। स्थिरबुद्धिरसक्तात्मा तमहंनौमिनारदम्॥४२॥

तं सर्वगुणसम्पन्नं दक्षं शुचिमकातरम्। कालज्ञं च नयज्ञं च शरणं यामि नारदम्॥४३॥

जो कभी भी शास्त्रों का लंघन नहीं करते, जिनका अन्तःकरण कभी भी व्यर्थ कालक्षेप नहीं करता, मैं उन नारद को नमस्कार करता हूं। जो कृतश्रम तथा कृतप्रयत्न हैं, जो नित्य समाधि से सन्तुष्ट रहते हैं, जो सतत् यत्नपरायण हैं, मैं उन नारद को नमस्कार करता हूं। जो लाभ से प्रसन्न और हानि से दुःखित नहीं होते, जो सदा स्थिरबुद्धि तथा सर्वत्र आसक्तिरहित हैं, मैं उन नारद को नमस्कार करता हूं। जो सर्वगुणसम्पन्न, सर्वत्र अकातर, कालज्ञ तथा नीतिज्ञ हैं, मैं उन नारद को नमस्कार करता हूं।।४०-४३।।

इमं स्तवं नारदस्य नित्यं राजन्यठाम्यहम्। तेन मे परमां प्रीतिं करोति मुनिसत्तमः॥४४॥
अन्योऽपियः शुचिर्भूत्वा नित्यमेतांस्तुतिंजपेत्। अचिरात्तस्यदेवर्षिःप्रसादंकुरुतेपरम्॥४५॥
एतान्गुणान्नारदस्यत्वमथाऽऽकर्ण्यपार्थिव!। जपनित्यंस्तवंपुण्यंप्रीतस्तेभवितामुनिः॥४६॥

बाभ्रव्य उवाच

हे राजन्! मैं प्रतिदिन नारद के इस स्तव का पाठ करता हूं। इसीलिये मुनिश्रेष्ठ नारद मेरे प्रति विशेष रूप से सन्तुष्ट रहते हैं। यदि कोई भी मानव पवित्रतापूर्वक नित्य यह स्तुति पाठ करेगा, तब देवर्षि उसके प्रति शीघ्र ही प्रसन्न होंगे। हे राजन्! आपने तो नारद के सभी गुणों को सुन लिया। अतः इस स्तव का आप नित्य पाठ करिये। इससे मुनिवर नारद आपके प्रति शीघ्र प्रसन्न होंगे।।४४-४६।।

इति कृष्णमुखाच्छ्रुत्वा नारदस्य गुणान्नृपः। बभूव परमप्रीतश्चक्रे तच्च तथा वचः॥४७॥
ततो नारदमानर्च दत्त्वा दानं च पुष्कलम्। नारदीयद्विजाग्र्याणां नारदःप्रीयतामिति॥४८॥
ययौ द्वारवतींकृष्णःसभ्रातृज्ञातिबान्धवः। तीर्थयात्रामिमां कृत्वा विधिवत्पुरुषोत्तमः॥४९॥
तथा त्वमपि कौरव्य! नारदस्य गुणानिमान्। श्रुत्वाश्रद्दामयोभूत्वाशृणुकृत्यंयदत्रच॥५०॥
कार्तिके शुक्लद्वादश्यां प्रबोधिन्यामसौ मुनिः। विष्णोर्ध्यानसमाधेश्च प्रबुद्धो जायते सदा॥५१॥
तस्मिन्दिने नारदेन निर्मितेऽत्रैव कूपके। स्नानं कृत्वा प्रयत्नेन श्राद्धंकुर्यात्समाहितः॥५२॥
तपो दानं जपश्चाऽत्र कूपे भवति चाऽक्षयम्॥५३॥
इदं विष्णिवतिमन्त्रेण ततो विष्णुंप्रबोधयेत्। नारदं च मुनिं पश्चान्मन्त्रेणानेन पाण्डव॥५४॥
योगनिद्रा यथा त्यक्ता हरिणा मुनिसत्तम!। तथा लोकोपकाराय भवानपिपरित्यज॥५५॥
इति मन्त्रेणचोत्थाप्य नारदम्परिपूजयेत्। कृष्णप्रोदितया स्तुत्याछत्रधोत्रार्चनैःशुभैः॥५६॥
शक्त्या द्विजानां देयं च छत्रं धोत्रं कमण्डलुम्।
प्रणम्य ब्राह्मणान्भक्त्या नारदः प्रीयतामिति॥५७॥
एवं कृते प्रसादात्स मुनेः पापेनमुच्यते। जायते न कलिस्तस्य न चाऽसौख्यंभवेदिह॥५८॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे नारदमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुःपञ्चाशोऽध्यायः॥५४॥

वाभ्रव्य कहते हैं—राजा उग्रसेन ने कृष्ण द्वारा नारद के इन सब गुणों को सुना तथा अत्यन्त प्रसन्न हो गये। उन्होंने नारदार्चन करके नारदीय विप्रों को नारद की प्रसन्नता के लिए यथेष्ट दान द्वारा प्रसन्न किया। पुरुषोत्तम कृष्ण ने इस प्रकार भाई, ज्ञाति तथा बन्धुगण के साथ तीर्थयात्रा करके द्वारिकापुरी गमन किया। हे कौरव्य! तुम भी नारद का गुण सुनकर उनके प्रति सश्रद्ध होकर कर्मानुष्ठान करो। उस सम्बन्ध में कर्त्तव्य सुनो। वे मुनि कार्त्तिक शुक्ल द्वादशी के दिन प्रबोधिनी एकादशी तिथि पर विष्णु ध्यान से प्रबुद्ध होते हैं। उस दिन नारद द्वारा स्थापित कूप में स्नान करके समाहित चित्त से यत्नतः श्राद्ध करें। इस कूप पर तप, दान, जप, अक्षय होता है। तदनन्तर 'इदं विष्णु' इत्यादि मन्त्र से विष्णु को प्रबोधित करे। तब इस मन्त्र से नारद को प्रबोधित करे, जो मूलोक्त श्लोक ५४ तथा ५५ में अंकित है। इस मन्त्र से नारद को जगाकर पूजा करे। छत्र-वस्त्र तथा कृष्ण के कहे स्तोत्र तथा अन्य शुभ उपचार से उनको भूषित करे। उनकी प्रसन्नतार्थ द्विजगण को उनके उद्देश्य से दान दे तथा भक्तियुक्त हो ब्राह्मणों को प्रणाम करे। इस प्रकार के विधान-पालन से व्यक्ति सर्वपाप मुक्त होता है। उसका कभी किसी से विवाद नहीं होगा। उसे इस लोक में कदापि क्लेश भोगना नहीं पड़ेगा।।४७-५८।।

।।चतुःपञ्चाश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

गौतमेश्वर महिमा, अष्टांग योग विस्तार वर्णन, योगसिद्धि प्राप्ति वर्णन, योगप्रवृत्ति लक्षण वर्णन

सूत उवाच

इति बाभ्रव्यवचनमाकर्ण्य कुरुनन्दनः। प्राणमन्नारदं भक्त्या विस्मितः पुलकान्वितः॥१॥
प्रशस्य च चिरं कालं पुनर्नारदमब्रवीत्॥२॥

सूत जी कहते हैं—ऋषि वाभ्रव्य का यह वचन सुनकर कुरुनन्दन अर्जुन ने सविस्मय रोमांचित होकर भक्ति के साथ नारद को प्रणाम किया। तत्पश्चात् नारद की अतीव प्रशंसा करके अर्जुन कहने लगे—।।१-२।।

गुप्तक्षेत्रस्यमाहात्म्यंशृण्वानस्त्वन्मुखान्मुने। तृप्तिं नैवाधिगच्छामिभूयस्तद्वक्तुमर्हसि॥३॥

नारद उवाच

महालिङ्गस्य वक्ष्यामि महिमानं कुरूद्वह। गौतमेश्वरलिङ्गस्य सावधानः शृणुष्व तत्॥४॥
अक्षपादो महायोगीगौतमाख्योऽभवन्मुनिः। गोदावरीसमानेता अहल्यायाःपतिःप्रभुः॥५॥
गुप्तक्षेत्रस्यमाहात्म्यं स च ज्ञात्वा महोत्तमम्। योगसंसाधनंकुर्वन्नत्र तेपे तपो महत्॥६॥
योगसिद्धिं ततः प्राप्य गौतमेन महात्मना। अत्र संस्थापितंलिङ्गं गौतमेश्वरसञ्ज्ञया॥७॥

संस्नाप्यैतन्महालिङ्गं चन्दनेन विलिप्य च। सम्पूज्य पुष्पैर्विविधैर्गुग्गुलं दाहयेत्पुरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोके महीयते॥८॥

हे मुनिवर नारद! गुप्त क्षेत्र की महिमा आपसे सुनकर मेरी तृप्ति की सीमा नहीं है। अतः पुनः उसका वर्णन करें। नारद कहते हैं—हे कुरुनन्दन! अब मैं गौतमेश्वर महालिंग की माहात्म्य कथा कहता हूं। तुम सावधानी से सुनो। अक्षपाद गौतम नामक एक मुनि थे। उन्होंने ही गोदावरी नदी को प्रवर्त्तित किया था। वे अहल्या के पति तथा प्रभुत्व सम्पन्न मुनि थे। उन्होंने गुप्तक्षेत्र का अत्युत्तम माहात्म्य जानकर योगसाधन हेतु यहां आगमन किया। यहां आकर वे महान् तप करने लगे। तत्पश्चात् महात्मा गौतम ने योगसिद्धि प्राप्त हो जाने के पश्चात् गौतमेश्वर नामक लिंग स्थापित किये। इस महालिंग को स्नान कराकर चन्दन द्वारा लेपन करके विविध पुष्पों से अर्चना करनी चाहिये। उनके समक्ष गुग्गुल जलाकर धूप प्रदान करे। इससे मानव सर्वपापरहित होकर ससम्मान रुद्रलोक निवास करता है।।३-८।।

अर्जुन उवाच

योगस्वरूपमिच्छामि श्रोतुं नारद! तत्त्वतः। योगंसर्वेप्रशंसन्ति यतः सर्वोत्तमोत्तमम्॥९॥

अर्जुन कहते हैं—हे नारद! आपसे मैं यथायथ रूप से योगतत्व जानना चाहता हूं। सभी लोगों ने योग को सर्वोत्तमोत्तम कहकर प्रशंसित किया है।।९।।

नारद उवाच

समासात्तव वक्ष्यामि योगतत्त्वं कुरूद्वह। श्रवणादपिनैर्मल्यं यस्यस्यात्सेवनात्किमु॥१०॥
चित्तवृत्तिनिरोधाख्यं योगतत्त्वं प्रकीर्त्यते। तदष्टाङ्गप्रकारेण साधयन्तोह योगिनः॥११॥
यमश्च नियमश्चैव प्राणायामस्तृतीयकः। प्रत्याहारो धारणाचध्येयंध्यानं च सप्तमम्॥१२॥
समाधिरिति चाऽष्टाङ्गो योगःसम्परिकीर्तितः। प्रत्येकंलक्षणंतेषामष्टानांशृणुपाण्डव॥१३॥
अनुक्रमान्नरो येषां साधनाद्योगमश्नुते। अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ॥१४॥
एते पञ्चयमाः प्रोक्ताः शृण्वेषामपि लक्षणम्। आत्मवत्सर्वभूतेषु यो हिताय प्रवर्तते॥१५॥
अहिंसैषा समाख्याता वेदसम्विहिता च या। दृष्टंश्रुतंचानुमितं स्वानुभूतं यथार्थतः॥१६॥
कथनं सत्यमित्युक्तं परपीडाविवर्जितम्। अनादानं परस्वानामापद्यपि कथञ्चन॥१७॥
मनसा कर्मणा वाचा तदस्तेयं प्रकीर्तितम्। अमैथुनं यतीनां च मनोवाक्कायकर्मभिः॥१८॥
ऋतौ स्वदारगमनं गेहिनां ब्रह्मचर्यता। यतीनां सर्वसंन्यासो मनोवाक्कायकर्मणा॥१९॥
गृहस्थानां च मनसा स्मृत एषोऽपरिग्रहः। एते यमास्तवप्रोक्ताः पञ्चैवनियमाञ्छृणु॥२०॥

नारद कहते हैं—हे कुरुकुल धुरन्धर! मैं तुमसे संक्षेप में योगतत्व कहता हूं। इसके श्रवण से भी निर्मलता प्राप्त होती है। अनुष्ठान की तो बात ही क्या! चित्तवृत्ति का निरोध ही योग है। योगीगण उसका आठ अंगों में विभाग करके साधन करते हैं। यथा—यम, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान (ध्येय) तथा समाधि। योग को इसी प्रकार अष्टांगमय कहा गया है। हे पाण्डव! इन अष्टांग का पृथक्-पृथक् लक्षण श्रवण करो। मनुष्यगण

यथाक्रमेण अष्टांग साधन से योगसिद्धि प्राप्त करते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, ये पांच यम कहे गये हैं। इनका भी लक्षण सुनो। सर्वभूत से आत्मवत् व्यवहार करना तथा वेदविहित हिंसा को ही अहिंसा कहा गया है। देखा गया, सुना गया तथा अनुभव किया गया जो विषय है, उसे यथायथ प्रकट करना ही सत्य है। यह परपीड़ा वर्जित रहे। आपदा के समय भी मन-कर्म-वाक्य से भी परस्व ग्रहण न करना ही अस्तेय पदवाच्य है। यतीगण के लिये मन-वाणी-कर्म से मैथुन वर्जन करना तथा गृहस्थों के लिये ऋतुकाल मात्र में स्वपत्नीगमन ही ब्रह्मचर्यपदवाच्य है। अपरिग्रह शब्द का यतीगण हेतु तात्पर्य है, काया-मन तथा वाणी से सर्वत्याग तथा गृहीगण के लिए अपरिग्रह का तात्पर्य है परद्रव्य का परिहार। यह पांचों यम का वर्णन किया। अब ५ नियम श्रवण करो।।१०-२०।।

शौचं तुष्टिस्तपश्चैव जपो भक्तिर्गुरोस्तथा। एतेषामपि पञ्चानां पृथक्संशृणु लक्षणम्।।२१।।
बाह्यमाभ्यन्तरं चैव द्विविधं शौचमुच्यते। बाह्यं तु मृज्जलैः प्रोक्तमान्तरंशुद्धमानसम्।।२२।।
न्यायेनाऽऽगतयावृत्त्याभिक्षयावार्तयाऽपिच। सन्तोषोयस्यसततंसातुष्टिरितिचोच्यते।।२३।।
चान्द्रायणादीनि पुनस्तपांसि विहितानि च। आहारलाघवपरः कुर्यात्तत्तप उच्यते।।२४।।
स्वाध्यायस्तु जपः प्रोक्तः प्रणवाभ्यसनादिकः। शिवे ज्ञाने गुरौ भक्तिर्गुरुभक्तिरिति स्मृता।।२५।।
एवंसंसाध्यनियमान्संयमांश्चविचक्षणः। प्राणायामायसन्दध्यान्नान्यथायोगसाधकः।।२६।।

पांच नियम हैं—शौच, तुष्टि, तप, जप, गुरुभक्ति। इन पंचनियमों का पृथक्तः लक्षण सुनो। बाह्य तथा आभ्यन्तर भेद से शौच द्विविध है। मृत्तिका, जल आदि से जो किया जाता है, वह बाह्य शौच है तथा मनःशोधन ही आन्तर शौच है। न्यायगत् वृत्ति अथवा भिक्षावृत्ति द्वारा जीवननिर्वाह कार्य में जो सन्तोष है, वही तुष्टि है। आहार लाघव के साथ अनुष्ठित चान्द्रायण आदि कर्मपालन ही तपः है। वेदाध्ययन तथा प्रणवादि का पुनः-पुनः उच्चारण ही जप है। शैवविधि से अपने गुरु के प्रति की गई भक्ति को ही गुरुभक्ति कहा गया है। बुद्धिमान व्यक्ति इन समस्त नियमों का पालन करके प्राणायाम का अभ्यास करे।।२१-२६।।

यतोऽशुचिशरीरस्य वायुकोपो महान्भवेत्। वायुकोपात्कुष्ठताचजडत्वादीनुपाश्नुते।।२७।।
तस्माद्विचक्षणः शुद्धं कृत्वा देहं यतेत्परम्। प्राणायामस्यवक्ष्यामिलक्षणंशृणुपाण्डव।।२८।।
प्राणापाननिरोधश्च प्राणायामःप्रकीर्तितः। लघुमध्योत्तरीयाख्यःसचधीरैस्त्रिधोदितः।।२९।।
लघुर्द्वादशमात्रस्तु मात्रानिमिषउन्मिषः। द्विगुणो मध्यमश्चोक्तस्त्रिगुणश्चोत्तमःस्मृतः।।३०।।

अन्यथा वह योगसाधक नहीं हो सकेगा। अशुचि देह से योगाभ्यास आरम्भ करने पर प्रबलवायु का प्रकोप होता है। इससे कुष्ठरोग तथा जड़तादि का प्रकोप हो जाता है। तभी विचक्षण व्यक्ति देहशोधनोपरान्त ही योगाभ्यास में प्रवृत्त हो। हे अर्जुन! प्राणायाम का लक्षण श्रवण करो। प्राण-अपान वायु का रोध करना ही प्राणायाम है। वीरगण इसे भी लघु-मध्य तथा उत्तम भेद से त्रिविध कहते हैं। द्वादश मात्रात्मक प्राणायाम लघु एक निमिष मात्र को एक मात्रा कहते हैं। इसका दूना होनेपर (२४ मात्रा) मध्यम तथा त्रिगुण हो जानेपर उसे उत्तम (३६ मात्रा) कहते हैं।।२७-३०।।

प्रथमेन जयेत्स्वेदं मध्यमेन तु वेपथुम्। विषादं च तृतीयेन जयेद्दोषाननुक्रमात्।।३१।।

पद्माख्यमासनंकृत्वा रेचकं पूरकंतथा। कुम्भकंचसुखासीनःप्राणायामंत्रिधाऽभ्यसेत्॥३२॥
प्राणानामुपसंरोधात्प्राणायाम इतिस्मृतः। यथा पर्वतधातूनां ध्मातानां दह्यते मलः॥३३॥
तथेन्द्रियवृतो दोषः प्राणायामेन दह्यते। गोशतं कापिलं दत्त्वा यत्फलं तत्फलंभवेत्॥३४॥
प्राणायामेन योगज्ञस्तस्मात्प्राणं सदा यमेत्।
प्राणायामेन सिद्ध्यन्ति दिव्याः शान्त्यादयः क्रमात्॥३५॥

प्रथम प्राणायाम से स्वेदजय, द्वितीय प्राणायाम से कम्प तथा तृतीय प्राणायाम से विषादजय करे। इस प्रकार यथाक्रमेण दोषजय करे। पद्मासन पर सुखपूर्वक बैठकर रेचक-पूरक-कुम्भक करे। एकक्रम में (एक बार में) इन तीनों को तीन-तीन बार करे। इसको एक पूर्ण प्राणायाम कहते हैं। प्राणों का रोध होने के कारण यह प्राणायाम है। जैसे पर्वतोत्पन्न (खानों से उत्पन्न) धातुओं को तपाने से उनका मल दग्ध होता है, वैसे ही इन्द्रियावृत दोष समूह प्राणायाम से दूरीभूत हो जाते हैं। १०० कपिला गौदान का जो फल होता है, एक प्राणायाम का वही फल है। अतएव योगस्थ व्यक्ति सदा प्राणसंयम करे।।३१-३५।।

शान्तिः प्रशान्तिर्दीप्तिश्च प्रसादश्चयथाक्रमम्। सहजागन्तुकामानांपापानांचप्रवर्तताम् ॥३६॥
वासनाशान्तिरित्याख्यः प्रथमो जायते गुणः। लोभमोहात्मकान्दोषान्निराकृत्यैव कृत्स्नशः॥३७॥
तपसां च यदा प्राप्तिः सा शान्तिरितिचोच्यते। सर्वेन्द्रियप्रसादश्च बुद्धेर्वै मरुतामपि॥३८॥
प्रसाद इति स प्रोक्तः प्राप्यमेवं चतुष्टयम्। एवम्फलं सदायोगीप्राणायामंसमभ्यसेत्॥३९॥
मृदुत्वं सेव्यमानस्तु सिंहशार्दूलकुञ्जराः। यथा यान्ति तथा प्राणो वश्यो भवति साधितः॥४०॥

प्राणायाम से शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति तथा प्रसाद नामक ४ विभूतियां प्राप्त होती हैं। सहज तथा आगन्तुक दोषों के उपशम का नाम शान्ति है। लोभ-मोहादि दोषों का नाश करके तपोवैभव लाभ को प्रशान्ति कहा गया है। यह योग का प्रथम गुण है। सभी इन्द्रियों, बुद्धि तथा वायु की प्रसन्नता ही प्रसाद कहा गया है। यह गुण चतुष्टय इस प्रकार यथाविधि प्राप्त होते हैं। योग का यह फल है। इसलिए योगलाभार्थ सदा प्राणायामरत रहे। जैसे सिंह-व्याघ्र-हाथी ऐसे दुर्द्धष प्राणी भी पालित होकर क्रमशः मृदु हो जाते हैं, प्राणायाम से वायु भी इसी प्रकार वशीभूत हो जाता है।।३६-४०।।

प्राणायामस्त्वयं प्रोक्तः प्रत्याहारं ततः शृणु। विषयेषु प्रवृत्तस्य चेतसोविनिवर्तनम्॥४१॥
प्रत्याहारं विनिर्दिष्टं तस्य संयमनं हि यत्। प्रत्याहारस्त्वयंप्रोक्तोधारणालक्षणंशृणु॥४२॥
यथा तोयार्थिनस्तोयंपत्रनालादिभिः शनैः। आपिबेयुस्तथावायुंयोगीनयतिसाधितम्॥४३॥
प्राग्राभ्यां हृदये वायुरथ तालौ भ्रवोऽन्तरे। चतुर्दले षड्दशे च द्वादशे षोडशद्विके॥४४॥
आकुञ्चनेनैवमूद्ध्वमुन्नीय पवनं शनैः। मूर्धनि ब्रह्मरन्ध्रे तं प्राणं सन्धारयेत्कृती॥४५॥
प्राणायामा दशं द्वौ च धारणैषा प्रकीर्त्यते। दशैता धारणाः स्थाप्य प्राप्नोत्यक्षरसाम्यताम्॥४६॥
धारणास्थस्य यद्ध्येयं तस्य त्वं शृणु लक्षणम्। ध्येयं बहुविधं पार्थ! यस्याऽन्तो नोपलभ्यते॥४७॥

मैंने प्राणायाम का यह वर्णन किया है। अब प्रत्याहार का वर्णन श्रवण करो। विषयों में प्रवृत्त चित्त को उस विषय से हटाना प्रत्याहार है। फलतः चित्त को इस प्रकार से विषयों से हटा कर प्रत्याहार करे। अब प्रत्याहार

के उपरान्त धारणा का लक्षण सुनो। जैसे प्यासा व्यक्ति पत्रादि विरचित् नल द्वारा धीरे-धीरे जल पीता है, योगी भी अल्प-अल्प वायु पीये। कृती व्यक्ति शनैः-शनैः वायु को खींचता यथाक्रमेण नाभि, हृदय, तालु, भ्रूमध्य, चतुर्दल, षट्दल, द्वादशदल, षोडशदल तथा द्विदल एवं मस्तकस्थ ब्रह्मरन्ध्र में निरुद्ध करे। द्वादश प्राणायाम से (एक प्राणायाम ३ पूरक, ३ कुंभक तथा ३ रेचक में होता है) धारणा उत्पन्न होती हैं, ऐसा कहा जाता है। इन १० स्थानों में प्राणवायु को धारण करने से योगी अक्षर ब्रह्म से साम्य प्राप्त करता है। धारणा में स्थित व्यक्ति के ध्येय विषय का लक्षण कहता हूं। तुम उसे श्रवण करो। ध्येय तो अनेक प्रकार का होता है। हे पार्थ! उनका अन्त नहीं है।।४१-४७।।

केचिच्छिवं हरिं केचित्केचित्सूर्यं विधिम्परे। केचिद्देवीं महद्भूतामुतध्यायन्ति केचन।।४८।।
तत्र यो यच्च ध्यायेत स च तत्र प्रलीयते। तस्मात्सदा शिवं देवं पञ्चवक्त्रंहरंस्मरेत्।।४९।।
पद्मासनस्थं तं गौरं बीजपूरकरं स्थितम्। दशहस्तं सुप्रसन्नवदनं ध्यानमास्थितम्।।५०।।

कोई शिव का, कोई हरि का, कोई सूर्य का, कोई ब्रह्मा का तथा कोई महामहिमान्विता देवी का ध्यान करते हैं। इनमें जो जिसका ध्यान करता है, वह उसी में लीन हो जाता है। तभी पञ्चानन, दशभुज, पद्मासीन गौरकान्ति, सुप्रसन्नवदन, ध्यानासक्त, वीजपुर फलधारी, सदाशिव शंकर का ध्यान करना चाहिये।।४८-५०।।

ध्येयमेतत्तव प्रोक्तं तस्माद्ध्यानं समाचरेत्। ध्यानस्य लक्षणंचैतन्निमेषार्धमपिस्फुटम्।।५१।।
न पृथग्जायते ध्येयाद्धारणांयःसमास्थितः। एवमेतां दुरारोहांभूमिमास्थाययोगवित्।।५२।।
न किञ्चिच्चिन्तयेत्पश्चात्समाधिरिति कीर्त्यते। समाधेर्लक्षणं सम्यम्ब्रुवतोमेनिशामय।।५३।।
शब्दस्पर्शरसैर्हीनं गन्धरूपविवर्जितम्। परं पुरुषं सम्प्राप्तः समाधिस्थः प्रकीर्तितः।।५४।।

मैंने तुमसे ध्येय का वर्णन किया। ऐसी ध्येय वस्तु का ध्यान करना कर्त्तव्य है। ध्येय वस्तु को चित्त में स्थापित करना ही ध्यान है। निमेषार्द्ध काल भी ध्येय पदार्थ की चित्त में धारणा करना ही ध्यान कहा जाता है। योगज्ञ व्यक्ति दुरारोह योग भूमि में आरोहण करके ऐसे ध्यान में निविष्ट होकर जब दीर्घकाल तक विषयान्तर में मनोनिवेश नहीं करते, वही समाधि कही जाती है। अब समाधि लक्षण यथायथ कहता हूं, सुनो। शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध रहित पुरुष जिसके चित्त में निर्विच्छिन्नभावेन अवस्थित है, उसे ही समाधिस्थ कहा गया है।।५१-५४।।

तांतुप्राप्यनरोविघ्नैर्नाऽभिभूयेतकर्हिचित्। समाधिस्थश्चदुःखेन गुरुणाऽपिनचाल्यते।।५५।।
शङ्खाद्याः शतशस्तस्य वाद्यन्ते यदिकर्णयोः। भेर्यश्च यदि हन्यन्ते शब्दंबाह्यंनविन्दति।।५६।।
कशाप्रहाराभिहतो वह्निदग्धतनुस्तथा। शीताढ्येवस्थितो घोरेस्पर्शं बाह्यं न विन्दति।।५७।।

मानव यह स्थिति प्राप्त करके कदापि विघ्नों से प्रभावित नहीं होता। गुरुतर दुःख में भी उसका मन विचलित नहीं होता। यदि उसके कानों के पास सैकड़ों भेरी-वाद्यादि बजे, तब भी उस शब्द को अथवा बाह्य शब्दों को वह सुन ही नहीं पाता। यदि उस पर प्रहार भी किया जाये, अग्निदग्ध किया जाये, किंवा अत्यन्त शीतयुक्त स्थान पर रखा जाये, तब भी उसे किसी भी घोर बाह्य स्पर्श का बोध नहीं होता।।५५-५७।।

रूपे गन्धे रसे बाह्ये तादृशस्यतुकाकथा। दृष्टा य आत्मनाऽऽत्मानंसमाधिंलभतेपुनः।।५८।।
तृष्णा वाऽथ बुभुक्षा वा बाधेते तं न कर्हिचित्।।५९।।

न स्वर्गेनचपातालेमानुष्ये क्व च तत्सुखम्। समाधिं निश्चलंप्राप्ययत्सुखंविन्दतेनरः॥६०॥

इस प्रकार वह व्यक्ति आत्मा से ही आत्मा के दर्शन में निविष्ट चित्त होकर जिस समाधि को प्राप्त कर चुका है, उसे बाह्य रूप, रस, गन्धादि की तनिक भी अनुभूति नहीं रहती। उसे क्षुधा-तृष्णा कदापि पीड़ा नहीं देते। मानव निश्चलतापूर्वक समाधिस्थ होकर जिस सुख को प्राप्त करता है, स्वर्ग, मृत्युलोक, पाताल में ऐसा सुख है कहां?॥५८-६०॥

एवमारूढयोगस्य तस्याऽपि कुरुनन्दन!। पञ्चोपसर्गाः कटुकाः प्रवर्तन्ते यथा शृणु॥६१॥
प्रातिभः श्रावणो दैवो भ्रमावर्तोऽथ भीषणः।
प्रतिभा सर्वशास्त्राणां प्रातिभोऽयं च सात्त्विकः॥६२॥
तेन यो मदमादद्याद्योगी शीघ्रं च चेतसः। योजनानां सहस्रेभ्यः श्रवणं श्रावणस्तुसः॥६३॥
द्वितीयः सात्त्विकश्चाऽयमस्मान्मत्तोविनश्यति। अष्टौपश्यतियोनीश्चदेवानांदैवइत्यसौ॥६४॥
अयञ्च सात्त्विको दोषो मदादस्माद्विनश्यति। आवर्त इव तोयस्य जनावर्तेयदाकुलः॥६५॥
आवर्ताख्यस्त्वयं दोषो राजसः स महाभयः। भ्राम्यतेयन्निरालम्बंमनोदोषैश्चयोगिनः॥६६॥
समस्ताधारविभ्रंशाद्भ्रमाख्यस्तामसो गुणः। एतैर्नाशितयोगाश्चसकलादेवयोनयः॥६७॥

हे कुरुन्दन! इस प्रकार से योगारूढ़ होकर भी योगी में पीड़ादायक ५ उपसर्ग घटित होते हैं। उनका वर्णन श्रवण करो। ये हैं प्रातिभ, श्रावण, दैव, भ्रम तथा आवर्त्त। इसमें **आवर्त्त** दोष अतीव भीषण है। सर्वशास्त्र में असाधारण प्रतिभा **प्रातिभ** दोष है, जो सात्विक दोष है। इससे व्यक्ति शीघ्र गर्वित हो जाता है। हंजारों योजन दूरी तक के श्रवण सामर्थ्य को **श्रावण** नामक द्वितीय उपसर्ग कहते हैं। इससे योगी मत्त होकर नष्ट हो जाता है। यह भी सात्विक उपसर्ग है। आठों देवयोनियों को देखने की दर्शन-शक्ति को **दैव** उपसर्ग कहते हैं। यह भी सात्विक उपसर्ग है। इससे भी मत्त होकर योगी का विनाश हो जाता है। जल के आवर्त्त (भंवर) के समान जनसमाज रूप आवर्त्त से चित्त के आकुल भाव को **आवर्त्त** उपसर्ग कहा गया है। यह राजस तथा अतीव भयानक उपसर्ग है। योगी का अवलम्बनीय मन जिस दोष के कारण आधार से भ्रष्ट होकर यत्र-तत्र भ्रमण करने लगता है, वह **भ्रम उपसर्ग** है। यह तामस है। इन सब घोर उपसर्गों से योगी योगभ्रष्ट हो जाता है। उसके योग को देवयोनियां नष्ट कर देती हैं॥६१-६७॥

उपसर्गैर्महाघोरैरावर्त्यन्ते पुनःपुनः। प्रावृत्य कम्बलं शुक्लं योगी तस्मान्मनोमयम्॥६८॥
चिन्तयेत्परमं ब्रह्म कृत्वा तत्प्रवणं मनः। आहाराः सात्त्विकाश्चैव संसेव्याः सिद्धिमिच्छता॥६९॥
राजसैस्तामसैश्चैवयोगी सिद्ध्येन्न कर्हिचित्। श्रद्दधानेषु दान्तेषुश्रोत्रियेषुमहात्मसु॥७०॥
स्वधर्मादनपेतेषु भिक्षा याच्या च योगिना। भैक्षं यवान्नं तक्रं वा पयो यावकमेववा॥७१॥
फलमूलंविपक्वंवा कणपिण्याकसक्तवः। श्रुता इत्येतआहारायोगिनांसिद्धिकारकाः॥७२॥
मृत्युकालंविदित्वा च निमित्तैर्योगसाधकः। योगं युञ्जीतकालस्यवञ्चनार्थंसमाहितः॥७३॥
निमित्तानि च वक्ष्यामि मृत्युं यो वेत्ति योगवित्।
रक्तकृष्णाम्बरधरा गायन्तीह सती च यम्॥७४॥

दक्षिणाशां नयेन्नारी स्वप्ने सोऽपि न जीवति। नग्नं क्षपणकंस्वप्नेहसमानंप्रदृश्यच॥७५॥

इसलिए योगी यह धारणा करे कि मनोमय श्वेत कम्बल से वह आवरित है तथा परब्रह्म में मन लगाकर उनका ही चिन्तन करे। जो योगसिद्धि कामी है, वह सात्विक आहार करे। राजस-तामस आहार करने वाला कदापि योगसिद्धि प्राप्त नहीं करता। योगी व्यक्ति श्रद्धालु, दान्त, स्वधर्मस्थ श्रोत्रिय के यहां से भिक्षा ले। भिक्षा में प्राप्त यवान्न, तक्र (मट्ठा), दूध, यावक, पके अथवा कच्चे फल-मूल, चावल तथा पिण्याक आहार योगसिद्धिप्रद है। ऐसा सुना है। लक्षण द्वारा जब मृत्युकाल प्रतीत हो, तब कालवञ्चना हेतु समाहित मन से योगानुष्ठान करना चाहिये। योगीगण जिस निमित्त दर्शन से मृत्युकाल जान पाते हैं, उसे कहता हूं। स्वप्न में रक्तवर्ण अथवा काले कपड़े पहने स्त्री जब दक्षिण की ओर ले जाये, वह जीवित नहीं रहता। स्वप्न में नग्न संन्यासी को हंसते देखने पर मृत्यु को निकट जाने।।६८-७५।।

एनंचवीक्ष्यवल्गन्ततंतंविद्यान्मृत्युमागतम्। ऋक्षवानरयुग्यस्थोगायन्योदक्षिणांदिशम्॥७६॥
याति मज्जेदधो पङ्के गोमये वा न जीवति। केशाङ्गारैस्तथा भस्मभुजगैर्निर्जलांनदीम्॥७७॥
एषामन्यतमैः पूर्णां दृष्ट्वा स्वप्ने न जीवति। करालैर्विकटै रूक्षैः पुरुषैरुद्यतायुधैः॥७८॥
पाषाणैस्ताडितः स्वप्ने सद्यो मृत्युं भजेन्नरः। सूर्योदये यस्य शिवा क्रोशन्ती याति सम्मुखम्॥७९॥
विपरीतं परीतम्वा स सद्यो मृत्युमृच्छति। दीपाधिगन्धंनोवेत्तिवमत्यग्निंतथानिशि॥८०॥
नाऽऽत्मानंपरनेत्रस्थं वीक्षते न स जीवति। शक्रायुधंचाऽर्धरात्रेदिवा वा ग्रहणंतथा॥८१॥
दृष्ट्वा मन्येत स क्षीणमात्मजीवितमाप्तवान्। नासिकावक्रतामेति कर्णयोर्न्नमनोन्नती॥८२॥
नेत्रञ्च वामंस्त्रवति यस्यतस्याऽऽयुरुद्गतम्। आरक्ततामेति मुखंजिह्वा चाप्यसितायदा॥८३॥
तदा प्राज्ञोविजानीयादासन्नंमृत्युमात्मनः। उष्ट्रखरसभयानेनस्वप्नेयोयातिदक्षिणाम्॥८४॥

स्वप्न में भालू अथवा वानर द्वारा खींचे जाते रथ पर बैठकर गाते हुए यदि स्वयं को दक्षिण की ओर जाता देखे और सागर के कीचड़ अथवा गोबर में डूब जाये, तब वह जीवित नहीं रहेगा। स्वप्न में निर्जल नदी को बाल, अंगार, भस्म अथवा सर्पों से भरी देखने पर जीवन नहीं रहता। मानव जब स्वप्न में भयानक, रुक्ष, विकटाकृति, अद्यत आयुध वाले लोगों से अपने ऊपर पाषाण प्रहार किया जाता देखे, तब वह मृत्युग्रस्त होगा। यदि सूर्योदय के समय शृगाल चीत्कार करते हुए जिसकी ओर अथवा विपरीत दिशा की ओर जाये, उसकी भी मृत्यु सद्यः होगी। यदि दीप बुझने पर बुझने की गन्ध न ज्ञात हो, किंवा रात्रि में रक्त वमन हो, तब वह शीघ्र ही मृत्युग्रस्त होगा। दूसरे के नेत्र में जब स्वयं का प्रतिबिम्ब न देख सकें, तब उसकी मृत्यु शीघ्र होगी। शास्त्रज्ञ व्यक्ति जब अर्धरात्रि में इन्द्रधनुष किंवा ग्रहण लगा अनुभव करे, तब उसे अपना जीवन समाप्त होता जान लेना चाहिये। जब नासिका टेढ़ी हो जाये अथवा कर्णद्वय लटकने लगें, वामनेत्र से स्राव होने लगे, मुख आरक्त तथा जिह्वा कृष्ण वर्ण हो जाये, तब प्राज्ञ व्यक्ति अपनी मृत्यु आसन्न मान ले। स्वप्न में ऊंट, गर्दभ जुते रथ पर स्वयं को दक्षिण दिशा जाता देखे, तब उसकी मृत्यु निकट है।।७६-८४।।

दिशं कर्णौ पिधायाऽपिनिर्घोषंशृणुयान्नच। न स जीवेत्तथास्वप्नेपतितस्यपिधीयते॥८५॥
द्वारं न चोत्तिष्ठति च शुभ्रादृष्टिश्चलोहिता। स्वप्नेऽग्निम्प्रविशेद्यश्चनच निष्क्रमतेपुनः॥८६॥

जलप्रवेशादपि वा तदन्तं तस्य जीवितम्। यश्चाऽभिहन्यते दुष्टैर्भूतै रात्रावथोदिवा॥८७॥

दोनों कानों को हथेली से ढंक लेने पर यदि गुड़-गुड़ (अथवा घनगर्जन) शब्द सुनाई पड़े, तब उसकी मृत्यु निकट है। जो व्यक्ति स्वप्न में गिर जाये, उठने का प्रयत्न करने पर भी उठ न सके, द्वार रुद्ध हो जाये, किंवा अग्नि में प्रवेश करके बाहर न आ सके, अथवा जल में जानेपर उससे बहिर्गत न हो सके, अथवा स्वभावतः शुद्ध नयनद्वय (जाग्रतावस्था में, स्वप्न में नहीं) रक्तवर्ण हो जायें, उसकी अल्पकाल में मृत्यु होगी। दिन में अथवा रात्रि में।।८५-८७।।

प्रकृतैर्विकृतैर्वाऽपि तस्याऽऽसन्नौयमान्तकौ। देवतानां गुरूणाञ्चपित्रोर्ज्ञानविदांतथा॥८८॥
निन्दामवज्ञांकुरुते भक्तोभूत्वा न जीवति। एवं दृष्ट्वा निमित्तानिविपरीतानियोगवित्॥८९॥
धारणांसम्यगास्थायसमाधावचलो भवेत्। यदि नेच्छन्ति ते मृत्युंततोनासौप्रपद्यते॥९०॥
विमुक्तिमथवा वाञ्छेद्विसृजेद्ब्रह्ममूर्धनि। सन्ति देहे विमुक्ते च उपसर्गाश्च ये पुनः॥९१॥

प्रकृत अथवा अप्रकृत भूतगण जिस पर अभिघात (आघात) करें, उसकी मृत्यु आसन्न है। जो व्यक्ति देवता, गुरु, माता-पिता, किंवा किसी व्यक्ति का भक्त होकर भी उसकी निन्दा करे अथवा किसी ज्ञानी का भक्त होकर भी उसकी निन्दा करे अथवा अवज्ञा करे, वह भी जीवित नहीं रहता। योगज्ञ व्यक्ति इस प्रकार स्वभाव से विपरीतता देखकर यदि वास्तव में अभी मरण नहीं चाहता, वह सम्यक्तः धारणा के बल से समाधि में अचल हो जाये। यदि मुक्ति की कामना हो, तब ब्रह्मरन्ध्र में स्थित रहे। हे अर्जुन! इसी को मुक्तावस्था कहते हैं। परन्तु इस अवस्था में योगी में जो उपसर्ग उत्पन्न होते हैं, उसे श्रवण करो।।८८-९१।।

योगिनं समुपायान्ति शृणु तानपि पाण्डव!। ऐशान्ये राक्षसपुरे यक्षोगन्धर्व एव च॥९२॥
ऐन्द्रे सौम्ये प्रजापत्ये ब्राह्मे चाऽष्टसु सिद्धयः।
भवन्ति चाऽष्टौ शृणु ताः पार्थिवी या च तैजसी॥९३॥
वायवी व्योमात्मिका चैव मानसाऽहम्भवा मतिः।
प्रत्येकमष्टधाभिन्ना द्विगुणा द्विगुणा क्रमात्॥९४॥
पूर्वे चाऽष्टौ चतुःषष्टिरन्ते शृणुष्वतद्यथा। स्थूलता ह्रस्वताबाल्यंवार्धक्यं यौवनंतथा॥९५॥
नानाजातिस्वरूपञ्च चतुर्भिर्देहधारणम्। पार्थिवांशं विना नित्यमष्टौपार्थिवसिद्धयः॥९६॥
विजिते पृथिवीतत्त्वे यदैशान्ये भवन्ति च। भूमाविव जलेवासोनातुरोऽर्णवमापिबेत्॥९७॥
सर्वत्र जलप्राप्तिश्च अपि शुष्कं द्रवं फलम्। त्रिभिर्देहस्य धरणं नदीर्वा स्थापयेत्करे॥९८॥

अष्टविध सिद्धियां ये हैं—ऐशानी, राक्षसी, याक्षी, गान्धर्वी, ऐन्द्री, सौम्या, प्रजापत्या तथा ब्राह्मी। इनमें से प्रत्येक के ८-८ भेद इस प्रकार हैं—पार्थिवा, जलीया, तैजसी, वायवी, व्योमात्मिका, मानसी, अहंकारात्मिका, बुद्धिजा। इस प्रकार ये ८ × ८ = ६४ प्रकार की हैं। अब पार्थिवा के भेद कहता हूं।

यह स्थूलता, ह्रस्वता, बाल्य, वार्द्धक्य, यौवन रूपी नाना आकार धारण करने वाली अष्टविध होती है। पार्थिव सिद्धि होनेपर पृथिवी के अतिरिक्त अन्य ४ भूतसमूह द्वारा भी देह धारण कर सकते हैं। यह ऐशानी सिद्धि के अन्तर्गत है। जलतत्व सिद्ध व्यक्ति जल में भी पृथिवी जैसे घूम-फिर लेता है। समुद्र पान से भी क्लिष्ट नहीं

होता। उसे सर्वत्र जल प्राप्त होता है। वह सूखे फल को रसीला बना सकता है। वह हाथों पर नदी धारण कर सकता है।।९२-९८।।

अव्रणत्वंशरीरस्यकान्तिश्चाथाऽष्टकंस्मृतम्। अष्टौपूर्वाइमाचाष्टौराक्षसानांपुरेस्मृता।।९९।।
देहादग्निविनिर्माणं तत्तापभयवर्जनम्। शक्तिदत्वं च लोकानांजलमध्येऽग्निज्वालनम्।।१००।।
अग्निग्रहश्च हस्तेन स्मृतिमात्रेण पावनम्। भस्मीभूतस्य निर्माणंद्वाभ्यांदेहस्यधारणम्।।१०१।।
पूर्वाः षोडश चाऽप्यष्टौ तेजसो यक्षसद्मनि। मनोगतित्वं भूतानामन्तर्निवेशनं तथा।।१०२।।
पर्वतादिमहाभारवहनं लीलयैव च। लघुत्वं गौरवत्वं च पाणिभ्यां वायुवारणम्।।१०३।।
अङ्गुल्यग्रनिपातेन भूमेः सर्वत्र कम्पनम्। एकेन देहनिष्पत्तिर्गान्धर्वे वान्ति सिद्धयः।।१०४।।
चतुर्विंशतिः पूर्वाश्चाप्यष्टावेताश्च सिद्धयः। गन्धर्वलोके द्वात्रिंशदत ऊर्ध्वं निशामय।।१०५।।

उसका देह व्रणरहित तथा अतीव कान्तिसम्पन्न हो जाता है। यह सब राक्षसी सिद्धि है। यह सिद्धि मिलने पर व्यक्ति तेजः वायु तथा आकाश द्वारा भी देह धारण कर सकेगा। देह से अग्नि उत्पादन, अग्निताप से भी पीड़ित न होना, शक्तिमत्ता, जल में भी अग्नि जला देना, हाथ में अग्निधारण, भस्मीभूत द्रव्य का पुनः उत्पादन, वायु एवं आकाश तत्व से देह धारण, ये सब पूर्वोक्त १६ हैं तथा समस्त मिलाकर २४ सिद्धियां याक्षी हैं। यह अग्नितत्व विजय फल है। मनोगति, भूत समूह (प्राणीगण) में प्रवेश, पर्वतादि महाभार वहन, लघुत्व, गुरुत्व, हाथों से वायुधारण, अंगुलि के आघात से समस्त पृथिवी में कम्पन उत्पादन, केवल आकाश तत्व से देह धारण, यह सब गान्धर्वलोक सिद्धि हैं। पूर्वोक्त २४ तथा यह ८ = ३२ सिद्धि वायुतत्व से प्राप्त होती हैं। अब आगे सुनो।।९९-१०५।।

छायाविहीननिष्पत्तिरिन्द्रियाणामदर्शनम्। आकाशगमनंनित्यमिन्द्रियादिशमःस्वयम्।।१०६।।
दूरे च शब्दग्रहणं सर्वशब्दावगाहनम्। तन्मात्रलिङ्गग्रहणं सर्वप्राणिनिदर्शनम्।।१०७।।
अष्टौ वातात्मिकाश्चैन्द्रेद्वात्रिंशदपिपूर्वकाः। यथाकामोपलब्धिश्चयथाकामविनिर्गमः।।१०८।।
सर्वत्राऽभिभवश्चैव सर्वगुह्यनिदर्शनम्। संसारदर्शनं चाऽपि मानस्योऽष्टौच सिद्धयः।।१०९।।
चत्वारिंशच्च पूर्वाश्च सोमलोके स्मृतास्त्विमाः। छेदनं तापनं बन्धः संसारपरिवर्तनम्।।११०।।
सर्वभूतप्रसादत्वं मृत्युकालजयस्तथा। अहङ्कारोद्भवश्चाऽष्टौ प्राजापत्ये च पूर्विकाः।।१११।।
आकारेण जगत्सृष्टिस्तथाऽनुग्रह एवच। प्रलयस्याऽधिकारञ्च लोकचित्रप्रवर्तनम्।।११२।।
असादृश्यमिदं व्यक्तंनिर्वाणं च पृथक्पृथक्। शुभेतरस्यकर्तृत्वमष्टौबुद्धिभवास्त्वमी।।११३।।
षटंचाशत्तथा पूर्वाश्चतुःषष्टिरिमे गुणाः। ब्राह्मये पदे प्रवर्तन्ते गुह्यमेतत्तवेरितम्।।११४।।

छायाहीन होना, इन्द्रियों का गोपन, आकाशगमन, इन्द्रियसंयम, दूर का शब्द श्रवण, सर्व शब्दबोध, तन्मात्राओं का प्रत्यक्षीकरण, सर्व प्राणिदर्शन, समस्त ऐन्द्री सिद्धि। पूर्वोक्त ३२ तथा वातात्मिका आठ प्रकार। यहां सब मिलाकर ४० प्रकार की सिद्धियां कही गयीं। कामानुरूप कामप्राप्ति, कामानुरूप गमन, सर्वत्र विजय, समस्त गुप्त विषय दर्शन, संसार ज्ञान प्रभृति ८ मानस सिद्धियां हैं। पूर्वोक्त ४० + ये ८ = ४८ सिद्धियां सौम्या हैं। छेदन, तापन, बन्धन, संसार परिवर्द्धन, सर्वभूत प्रसादन, कालजय, मृत्यु विजय प्रभृति ८ सिद्धियां अहंकार से

उत्पन्न हैं! पूर्वोक्त ४८ + ये ८ = ५६ सिद्धियां प्राजपत्यजा हैं। इंगित मात्र से जगत् सृष्टि तथा अनुग्रह, प्रलयाधिकार, परचित्त प्रवेश, असादृश्य प्रकटन, अशुभों का पृथक्तः विनाश, सर्वत्र कर्तृत्व, ये आठ सिद्धियां बुद्धिजा हैं। पूर्वोक्त ५६ + ये ८ = ६४ सिद्धियां ब्राह्मी हैं। यह गुप्त कथा तुमसे कही।।१०६-११४।।

जीवतो देहभेदे वा सिद्ध्यश्चैतास्तु योगिनाम्।
सङ्गो नैव विधातव्यो भयात्पतनसम्भवात्।।११५।।

एतान्गुणान्निराकृत्य युञ्जतोयोगिनस्तदा। सिद्धयोऽष्टौप्रवर्तन्तेयोगसंसिद्धिकारकाः।।११६।।
अणिमा लघिमा चैव महिमा प्राप्तिरेव च। प्राकाम्यञ्च तथेशित्वं वशित्वञ्च तथापरे।।११७।।
यत्र कामावसायित्वं माहेश्वरपदस्थिताः। सूक्ष्मात्सूक्ष्मत्वमणिमा शीघ्रत्वाल्लघिमा स्मृता।।११८।।

महिमा शेषपूज्यत्वात्प्राप्तिर्नाऽप्राप्यमस्य यत्।
प्राकाम्यमस्य व्यापित्वादीशित्वं चेश्वरो यतः।।११९।।

वशित्वाद्वशितानामसप्तमीसिद्धिरुत्तमा। यत्रेच्छा तत्र च स्थानंतत्रकामावसायिता।।१२०।।
ऐश्वरं पदमाप्तस्य भवन्त्येताश्च सिद्धयः। ततो न जायते नैव वर्धते न विनश्यति।।१२१।।
एष मुक्त इति प्रोक्तो य एवं मुक्तिमाप्नुयात्। यथा जलंजलेनैक्यंनिक्षिप्तमुपगच्छति।।१२२।।

तथैवं सात्म्यमभ्येति योगेनाऽऽत्मा परात्मना।
एवं ज्ञात्वा फलं योगी सदा योगं समभ्यसेत्।।१२३।।

योगियों में जीवित रहते अथवा जीवन के अनन्तर ये सभी गुण प्रकाशित होते हैं। ये संब प्राप्त होनेपर भी पतन भय के कारण इनमें आसक्त न हो। इन सभी गुणों की उपेक्षा करके तभी योगसिद्धिप्रद आठ सिद्धियां प्रादुर्भूत होती हैं। अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व तथा कामवसायित्व। ये आठ ऐश्वर्य हैं, जिनकी सिद्धि से योगी माहेश्वरपद पर स्थित होता है। अणिमा अति सूक्ष्मता, लघिमा-शीघ्रता, महिमा-पूज्यत्व, प्राप्ति-इच्छा से वह वस्तु लाभ, प्राकाम्य-व्यापित्व, ईशित्व-ऐश्वर्य, वशित्व-वशीकरण सिद्धि, कामवसायित्व-इच्छा से ही जहां चाहे प्रकट होना। ऐश्वर पद मिलते ही ये सब सिद्धियां प्रादुर्भूत होती हैं। तब इन सिद्धियों के मिलने से वह और वृद्धि नहीं पाता। न तो जन्मता है न मरता है। यही मुक्तावस्था है। इसे ही मुक्त कहते हैं। जैसे— जल में जल छोड़ने से वह उसी में विलीन हो जाता है, इसी प्रकार मुक्त की आत्मा परमात्मा में ही विलीन हो जाता है। योग का यह फल जानकर सदैव योगाभ्यास तत्पर रहे।।११५-१२३।।

अत्रोपमांव्याहरन्तियोगार्थेयोगिनोऽमलाः। शशाङ्करश्मिसंयोगादर्ककान्तोहुताशनम्।।१२४।।
समुत्सृजतिनैकः सन्नुपमासाऽस्तियोगिनः। कपिञ्जलाखुनकुला वसन्तिस्वामिवद्गृहे।।१२५।।
ध्वस्ते यान्त्यन्यतो दुःखं न तेषांसोपमा यतेः। मृद्देहकल्पदेहोऽपिमुखाग्रेणकनीयसा।।१२६।।
करोति मृद्भागचयमुपदेशः स योगिनः। पशुपक्षिमनुष्याद्यैः पत्रपुष्पफलान्वितम्।।१२७।।

वृक्षं विलुप्यमानञ्च लब्ध्वा सिध्यन्ति योगिनः।
रुरुगात्रविषाणाग्रमालक्ष्य तिलकाकृतिम्।।१२८।।

इस संदर्भ में योगीगण इस उपमा का प्रयोग करते हैं कि चन्द्रकान्त मणि जिस प्रकार चन्द्रकिरण संयोग द्वारा तथा सूर्यकान्त मणि सूर्यकिरण संयोग द्वारा क्रमशः जल तथा अग्नि उत्पन्न करती है, तथापि बिना चन्द्रकिरण अथवा सूर्यकिरण संयोग के वह ऐसा नहीं कर सकती, उसी प्रकार योगीगण इन्द्रियादि के सहयोग से विशेष गुणों को आयत्त करते हैं। यही योगी का उपमास्थल है। जैसे मूषिक तथा नकुल प्रभुवत् गृह में रहते हैं, गृह ध्वस्त होते ही अन्यत्र चले जाते हैं, इससे उनको दुःखबोध नहीं होता। इसी प्रकार योगी में देहादि के प्रति ममत्व नहीं रहता। यह भी योगी का उपमास्थल है। जैसे दीमक मुख से मृत्तिका उत्पादन करते-करते दीर्घकाल में प्रभूत मृत्तिका का उत्पादन करता है, योगी भी साधन बल से क्रमशः प्रभूत शक्ति उत्पादित करते हैं। योगी का यह भी उपदेश है। जैसे पत्र-पुष्पयुक्त वृक्ष-पशु-पक्षी-मनुष्यादि द्वारा ध्वस्त किया जाता है, उसी प्रकार देहादि भी काल आदि द्वारा ध्वस्तीभूत कर दिया जाता है। यह ज्ञान उत्पन्न होते ही योगी सिद्धि प्राप्त करते हैं। रुरुहरिण की बाल्यावस्था में उसके सींग तिलकवत् रहते हैं।।१२४-१२८।।

सह तेन विवर्धेत योगी सिद्धिमुपाश्नुते। द्रव्यं पूर्णमुपादाय पात्रमारोहते भुवः॥१२९॥
तुङ्गमार्गं विलोक्यैवं विज्ञातं किं न योगिनाम्। तद्गेहंयत्रवसति तद्भोज्यंयेनजीवति॥१३०॥
येन निष्पाद्यतेचार्थः स्वयंस्याद्योगसिद्धये। तथा ज्ञानमुपासीतयोगीयत्कार्यसाधकम्॥१३१॥
ज्ञानानां बहुता येयं योगविघ्नकरी हि सा। इदं ज्ञेयमिदं ज्ञेयमिति यस्तृषितश्चरेत्॥१३२॥

क्रमशः आयुवृद्धि के साथ ही उनकी क्रमिक वृद्धि होती है। योगी भी इस दृष्टान्त के अनुसार क्रमशः योगमार्ग पर अग्रसर हो। तैल आदि द्रव से भरा पात्र लेकर मनुष्य जैसे एकाग्र होकर ऊंचे स्थान पर चढ़ता है, योगी भी इस दृष्टान्त के अनुरूप अत्युच्च योगमार्ग पर आरोहण करे। क्या इन दृष्टान्तों से यह अवगत नहीं होता कि योगी को किस प्रकार से योगमार्ग पर बढ़ना होगा? योगसिद्धि की कामना रहने पर वह व्यक्ति जहां रहे, वहीं गृह है तथा जो खाकर जीवन निर्वाह करे, वही भोज्य है। सन्तुष्ट मन से जैसे योगसिद्धि हो सके, वैसा आचरण करना चाहिये। योगी वही ज्ञानार्जन करे, जो योगसाधना के लिए आवश्यक है। अधिक ज्ञानार्जन योग में विघ्नकारी है। "यह जानने योग्य है, यह जानने योग्य है" जो व्यक्ति इसी में पड़ा रहेगा।।१२९-१३२।।

अपिकल्पसहस्त्रायुर्नैव ज्ञेयमवाप्नुयात्। त्यक्तसङ्गो जितक्रोधोलब्धाहारोजितेन्द्रियः॥१३३॥
पिधाय बुद्ध्या द्वाराणि मनो ध्याने निवेशयेत्। आहारंसात्त्विकंसेवेन्नतंयेनविचेतनः॥१३४॥
स्यादयं तञ्च भुञ्जानो रौरवस्यप्रियातिथिः। वाग्दण्डःकर्मदण्डश्च मनोदण्डश्च तेत्रयः॥१३५॥
यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिदण्डी यतिः स्मृतः। अनुरागं जनो याति परोक्षे गुणकीर्तनम्॥१३६॥
न बिभ्यति च सत्त्वानि सिद्धेर्लक्षणमुच्यते॥१३७॥
अलौल्यमारोग्यमनिष्ठुरत्वं गन्धः शुभो मूत्रपुरीषयोश्च।
कान्तिः प्रसादः स्वरसौम्यता च योगप्रवृत्तेः प्रथमं हि चिह्नम्॥१३८॥
समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादी शुचिस्तथैकान्तरतिर्जितेन्द्रियः।
समाप्नुयाद्योगमिमं महामना विमुक्तिमाप्नोति ततश्च योगतः॥१३९॥
कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा भाग्यवती च तेन।
अबाह्यमार्गे सुखसिन्धुमग्नं लग्नं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः॥१४०॥

वह सहस्रों काल में भी वास्तविक जानने योग्य को प्राप्त नहीं कर सकेगा। संगहीन, क्रोधरहित, यथालब्ध आहार से तृप्त योगी बुद्धि द्वारा सभी इन्द्रियों का निग्रह करे तथा ध्यान में मन संयुक्त करे। सात्विक आहार करे। राजस-तामस आहार वर्जन करे। राजस-तामस आहार वाला व्यक्ति रौरव नरक का प्रिय अतिथि होता है। वागदण्ड, कर्मदण्ड तथा मनोदण्ड से जो संयत है, वही यति त्रिदण्डी है। सिद्ध व्यक्ति के प्रति मनुष्य अनुराग प्रकट करते हैं। वे परोक्ष में भी उसका गुणगान करते हैं। वह योगी किसी जन्तु से नहीं डरता। यही सिद्धिलक्षण है। चापल्यरहित होना, आरोग्ययुक्त होना, निष्ठुर न होना, मल-मूत्र तक में सद्गंध होना, कान्ति, प्रसन्नता तथा स्वर में मधुरता—ये सभी योग निरत व्यक्ति के प्राथमिक सिद्धिचिह्न हैं। ब्रह्मपरायणता, समाहित चित्तता, अप्रमादित्व, पवित्रता, निर्जनप्रियता, इन्द्रियों पर वशित्व, उन्नतमना होना—ये सब गुण जिसमें हैं, वही योग प्राप्त कर सकता है। वही योग के फल से विमुक्त हो सकेगा। जिसका मन परब्रह्म में लगा है, वही ब्रह्मानन्दसुख में निमग्न हो सकेगा। वह बाह्यविषयासक्त नहीं होता। वह अपने कुल को पवित्र करता है। उसी के कारण पृथिवी भाग्यवती होती है। उसी की जननी कृतार्था है।।१३३-१४०।।

विशुद्धबुद्धिः समलोष्टकाञ्चनः समस्तभूतेषु वसन्समो हि यः।
स्थानं परं शाश्वतमव्ययं च यतिर्हि गत्वा न पुनः प्रजायते॥१४१॥
इदं मया योगरहस्यमुक्तमेवम्विधं गौतमः प्राप योगम्।
तेनैतच्च स्थापितं पार्थ! लिङ्गं सन्दर्शनादर्चनात्मकल्मषघ्नम्॥१४२॥
यश्चाऽऽश्विने कृष्णचतुर्दशीदिने रात्रौ समभ्यर्चति लिङ्गमेतत्।
स्नात्वा अहल्यासरसि प्रधाने श्रद्धाय सर्वं प्रविधाय भक्तितः॥१४३॥
महोपकारेण विमुक्तपापः स याति यत्राऽस्ति स गौतमो मुनिः॥१४४॥
इदं मया पार्थ! तव प्रणीतं गुप्तस्य क्षेत्रस्य समासयोगात्।
माहात्म्यमेतत्सकलं शृणोति यः स्याद्विशुद्धः किमु वच्मि भूयः॥१४५॥
य इदं शृणुयाद्भक्त्या गौतमाख्यानमुत्तमम्। पुत्रपौत्रप्रियं प्राप्य स याति पदमव्ययम्॥१४६॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे गौतमेश्वरमाहात्म्ये सविस्तरंयोगलक्षणवर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः॥५५॥

विशुद्ध बुद्धि, मिट्टी-स्वर्ण में समज्ञान होना, सर्वभूतसमूह के प्रति समदृष्टियुक्त रहना, ऐसे यती व्यक्ति शाश्वत अव्यय पद प्राप्त करते हैं। उसे पुनः संसार में जन्म नहीं लेना पड़ता। हे अर्जुन! मैंने योग रहस्य वर्णन कर दिया। महात्मा गौतम ने यही योग प्राप्त किया था। यह लिंग उनके द्वारा प्रतिष्ठित है। इसके दर्शन तथा अर्चन से महापापों का विनाश होता है। वे मुनि यहां निवास करते हैं। हे पार्थ! मैंने तुमसे इस गुप्त क्षेत्र की महामहिमा का वर्णन कर दिया। जो व्यक्ति इसका श्रवण करता है, वह सर्वथा पवित्र हो जाता है। मैं अब आगे और कौन प्रसंग कहूं? जो व्यक्ति इस गौतमोपाख्यान को भक्तिपूर्वक सुनता है, वह पुत्र-पौत्रादि का सुख भोगकर अव्यय पद की प्राप्ति करता है।।१४१-१४६।।

।।पञ्चपञ्चाश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्मेश्वर, मोक्षेश्वर, गर्भेश्वर माहात्म्य

नारद उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मेशं लिङ्गमुत्तमम्। यस्य स्मरणमात्रेण वाजपेयफलं भवेत्॥१॥
एकदा तु पुरा पार्थ! सृष्टिकामेन ब्रह्मणा। तपः सुचरितं घोरं सार्धवर्षसहस्त्रकम्॥२॥
तपसा तेन सन्तुष्टः पार्वतीपतिशङ्करः। वरमस्मै ततः प्रादाल्लोककर्त्रे स्ववाञ्छितम्॥३॥
ततो हृष्टः प्रमुदितः कृतकृत्यःपितामहः। ज्ञात्वा क्षेत्रस्य माहात्म्यं स्वयंलिङ्गंचकारह॥४॥
चखान च सरः पुण्यं नाम्ना ब्रह्मसरः शुभम्। महीनगरकात्पूर्वे महापातकनाशनम्॥५॥
अस्य तीरे महालिङ्गं स्थापयामास वै विभुः। तत्र देवः स्वयं साक्षाद्विद्यते किल शङ्करः॥६॥
पुष्करादधिकंतीर्थं ब्रह्मेशं नाम फाल्गुन!। तत्र स्नात्वानरोभक्त्यापिण्डदानंसमाचरेत्॥७॥
दानं चैव यथाशक्त्या कार्तिक्यां च विशेषतः। देवं प्रपूजयेद्भक्त्या ब्रह्मेशं हृष्टमानसः॥८॥

नारद कहते हैं—हे अर्जुन! अब जिनके स्मरणमात्र से मनुष्य वाजपेय यज्ञफल प्राप्त करते हैं, मैं उस उत्तम ब्रह्मेश लिंग का माहात्म्य कहता हूं। हे अर्जुन! पूर्व में ब्रह्मा ने किस समय सृष्टिकामना से अर्द्धसहस्त्र वर्ष सुनियम ग्रहणपूर्वक कठोर तप किया। इससे पार्वतीपति प्रसन्न हो गये तथा उन लोककर्त्ता को इच्छित वर प्रदान किया। तब पितामह ने प्रसन्न होकर आनन्दित मन से क्षेत्र की महिमा जानकर एक लिंग प्रतिष्ठित किया और एक पुण्यदायक सरोवर भी खनन किया। वह शुभ सरोवर ब्रह्मसर कहलाया। वह महीनगर के पूर्व में स्थित तथा महापातक नाशक है। विभु ब्रह्मा ने उसके तट पर महालिंग की प्रतिष्ठा किया। वहां साक्षात् शंकर विद्यमान हैं। हे अर्जुन! पुष्कर तीर्थ की अपेक्षा उस ब्रह्मेश लिंग का फल अधिक पुण्यप्रद है। हे फाल्गुन! मनुष्य कभी भी अथवा विशेषतः कार्त्तिकी पूर्णिमा काल में वहां स्नान करे तथा पिण्डदान करे। वहां प्रसन्न मन से ब्रह्मेश लिंग की पूजा करे।।१-८।।

पितरस्तस्य तुष्यन्ति यावदाभूतसम्प्लवम्। पुष्करेषु च यत्पुण्यं कुरुक्षेत्रे रविग्रहे॥९॥
गङ्गादिपुण्यतीर्थेषुयत्फलंप्राप्यतेनरैः। तत्फलंसमवाप्नोतितीर्थस्याऽस्याऽवगाहनात्॥१०॥
मोक्षलिङ्गस्यमाहात्म्यं शृणुपार्थ! महाद्भुतम्। मया स्थानहितार्थंचसमाराध्यमहेश्वरम्॥११॥
स्थापितं प्रवरं लिङ्गं नाम्ना मोक्षेश्वरं हरम्। दर्भाग्रेण ततः पार्थ कूपं खनितवानहम्॥१२॥
प्रसाद्य लोककर्तारं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्। कमण्डलोर्ब्रह्मणश्च समानीता सरस्वती॥१३॥

कूपेऽस्मिन्मोक्षनाथस्य लोकानां प्रेतमुक्तये।
कार्तिकस्य तु मासस्य शुक्लपक्षे चतुर्दशी॥१४॥

कूपे स्नात्वा नरस्तस्यां तिलपिण्डं समाचरेत्। प्रेतानुद्दिश्यनियतंमोक्षतीर्थफलंभवेत्॥१५॥
कुले न जायते तस्य प्रेतः पार्थ! नसंशयः। प्रेतामोक्षंप्रगच्छन्ति तीर्थस्याऽस्यप्रभावतः॥१६॥

जयादित्यकूपवरे नरः स्नात्वा प्रयत्नतः। गर्भेश्वरं नमस्कृत्य न स गर्भेषु मज्जति॥१७॥
इदं मया पार्थ! तव प्रणीतं गुप्तस्य क्षेत्रस्य समासयोगात्।
माहात्म्यमेतत्सकलं शृणोति यः स्याद्विशुद्धः किमु वच्मि भूयः॥१८॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे ब्रह्मेश्वरमोक्षेश्वरगर्भेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५६॥

ऐसा करने से कल्पान्त तक के लिये उसके पितर तृप्त हो जाते हैं। सूर्यग्रहण काल में पुष्कर तीर्थ में, कुरुक्षेत्र में किंवा गंगा आदि तीर्थों में स्नान करने से जो फल मिलता है, इस ब्रह्मसरोवर में स्नान का वही फल है। हे अर्जुन! अब इस मोक्ष लिंग की अद्भुद् महिमा सुनो। मैंने इस स्थान के हितविधानार्थ महादेव की आराधना करके मोक्षेश्वर नामक एक उत्तम लिंग वहां स्थापित किया। तदनन्तर मैंने कुशाग्र से एक कूप खनन करके लोकस्रष्टा परमेष्ठि ब्रह्मा की आराधना करके उनके कमण्डलु से सरस्वती को लाकर लोगों के प्रेतत्व के निवारणार्थ उस जल से इस कूप को स्थापित किया। कार्त्तिक शुक्ला चतुर्दशी के दिन उस कूपजल से नहाकर प्रेत के उद्देश्य से तिलपिण्ड प्रदान करे। इससे उस व्यक्ति को मोक्षतीर्थ के सम्यक् फल की प्राप्ति होती है। हे पार्थ! उसके वंश में कभी भी कोई प्रेत नहीं होता। इसमें कोई संशय नहीं है। इस तीर्थ के प्रभाव से प्रेतों की मुक्ति हो जाती है। जो मानव यहां जयादित्य कूप में स्नान करके गर्भेश्वर का दर्शन करता है, वह कभी गर्भ में प्रवेश नहीं करता। हे अर्जुन! मैंने तुमसे गुप्त क्षेत्र की महिमा संक्षेप में कुछ वर्णित कर दिया। जो व्यक्ति इन सब माहात्म्य का श्रवण करता है, वह पापों से रहित हो जाता है। अब तुमसे क्या कहूं॥९-१८॥

॥षट्पंचाश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नीलकण्ठ माहात्म्य

नारद उवाच

ततो विप्रा नारदश्च समाराध्य महेश्वरम्। महीनगरके पुण्ये स्थापयामास शङ्करम्॥१॥
लोकानां च हितार्थाय केदारं लिङ्गमुत्तमम्। अत्रीशादुत्तरे भागे महापातकनाशनम्॥२॥
अत्रिकुण्डे नरः स्नात्वा श्राद्धंकृत्वायथाविधि। अत्रीशंच नमस्कृत्यकेदारं यःप्रपश्यति॥३॥
मातुः स्तन्यं पुनर्नैव स पिबेन्मुक्तिभाग्भवेत्। ततो रुद्रो नीलकण्ठंनारदाय महात्मने॥४॥
स्वयं दत्त्वा स्वयं तस्थौ महीनगरके शुभे। कोटितीर्थे नरः स्नात्वानीलकण्ठंप्रपश्यति॥५॥

जयादित्यं नमस्कृत्य रुद्रलोकमवाप्नुयात्। जयादित्यंपूजयन्ति कूपेस्नात्वानरोत्तमाः॥६॥
न तेषां वंशनाशोऽस्ति जयादित्यप्रसादतः। इदं ते कथितं पार्थ! महीनगरकस्य च॥७॥
आख्यानं सकलं श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥८॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे नीलकण्ठमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तपञ्चाशोऽध्यायः॥५७॥

—❀❀❀—

नारद कहते हैं—हे अर्जुन! अब मैंने तथा अन्य मुनिगण ने महेश्वराराधन करके लोकहितार्थ पुण्य महीनगर में अत्रीश लिंग के उत्तरभाग में उत्तम केदार लिंग प्रतिष्ठापित किया, जो महापातकहारी है। जो व्यक्ति अत्रिकुण्ड में स्नान करके स्नानान्त में यथाविधि श्राद्ध करके अत्रीश्वर को प्रणाम करता है तथा केदार लिंग का दर्शन करता है, उसे पुनः मातृस्तनपान नहीं करना पड़ता। वह मुक्तिगामी हो जाता है। इस केदार लिंग की प्रतिष्ठा के उपरान्त शंकर ने मुझे नीलकण्ठ लिंग प्रदान किया। मेरे द्वारा उसकी प्रतिष्ठा कर देने पर शुभ महीनगरस्थ उस लिंग में प्रभु महादेव निवास करने लगे। जो कोटितीर्थ में स्नानोपरान्त नीलकण्ठ लिंग का दर्शन करके जयादित्य को प्रणाम करता है, उसे रुद्रलोक की प्राप्ति होती है।

जो नरश्रेष्ठ जयादित्य की पूजा करता है, उस पर जयादित्य की कृपा होती है और कदापि उसका वंश नाश नहीं होता। हे अर्जुन! मैंने तुमसे जिस महीनगर माहात्म्य का वर्णन किया है, इन सब उपाख्यानों को सुनने वाला सर्वपाप रहित हो जाता है।

॥सप्तपञ्चाश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

तीर्थ श्रेष्ठत्व, ब्रह्मा-धर्म का संवाद

अर्जुन उवाच

गुप्तक्षेत्रमिदं कस्मात्कस्माद्गुप्तञ्च नारद। यस्यप्रभावः सुमहान्नैवकस्यापिसंस्तुतः॥१॥

अर्जुन कहते हैं—हे नारद! गुप्तक्षेत्र का माहात्म्य तो अत्यन्त महान् है। तब यह गुप्त क्यों है? इसका माहात्म्य गुप्त क्यों रह गया?॥१॥

नारद उवाच

पुरातनीमत्र कथां गुप्तक्षेत्रस्य कारणे। शृणु पाण्डव! शापेन गुप्तमासीदिदं यथा॥२॥
पुरा निमित्ते कस्मिंश्चित्सर्वतीर्थाधिदेवताः। प्रणामायब्रह्मसदो ब्रह्माणं सहितायययुः॥३॥

पुष्करस्य प्रभासस्य निमिषस्याऽर्बुदस्यच। कुरुक्षेत्रस्य क्षेत्रस्य धर्मारण्यस्य देवताः॥४॥
वस्त्रापथस्य श्वेतस्य फल्गुतीर्थस्य चाऽपि याः।
केदारस्य तथाऽन्येषां क्षेत्राणां कोटिशोऽपि याः॥५॥
सिन्धुसागरयोगस्य महीसागरकस्य च। गङ्गासागरयोगस्य अधिपाः शूकरस्य च॥६॥
गङ्गारेवामुखीनां तु नदीनामधिदेवताः। शोणह्रदपुरोगाणां ह्रदानां चाधिदेवताः॥७॥
ते सर्वे सङ्घशो भूत्वा श्रेष्ठ्यज्ञानाय चाऽऽत्मनः।
समुपाजग्मुरमला महतीं ब्रह्मणः सभाम्॥८॥
तत्र तीर्थानिसर्वाणिसमायातानिवीक्ष्यसः। उत्तस्थौसहितः सर्वैः सभासद्भिःपितामहः॥९॥
प्रणम्य सर्वतीर्थेभ्यः प्रबद्धकरसम्पुटः। तीर्थानि भगवानाह विस्मयोत्फुल्ललोचनः॥१०॥
अद्य नः सद्म सकलं युष्माभिरतिपावितम्। वयंच पाविता भूयो युष्माकंदर्शनादपि॥११॥
तीर्थानां दर्शनं श्रेयः स्पर्शनं स्नानमेवच। कीर्तनं स्मरणं चापिनस्यात्पुण्यंविनापरम्॥१२॥
महापापान्वितारौद्रास्त्वपियेस्युः सुनिष्ठुराः। तेऽपितीर्थैः प्रपूयन्तेकिं पुनर्धर्मसंस्थिताः॥१३॥
एवमुक्त्वा पुलस्त्यं स पुत्रमभ्यादिदेश ह। शीघ्रमर्घ्यं तीर्थहेतोः समानय यथाऽर्चये॥१४॥

नारद कहते हैं—हे पाण्डव! इस गुप्त क्षेत्र के सम्बन्ध में प्राचीन कथा कहता हूं। शाप के कारण वह जैसे गुप्त है, उसे तुम सुनो। पुराकाल में किसी कारण से सभी तीर्थ तथा देवगण ब्रह्मा को प्रणाम करने देव सभा में गये। पुष्कर, प्रभास, नैमिषारण्य, अर्बुदाचल, कुरुक्षेत्र, धर्मारण्य, वस्त्रापथ, श्वेततीर्थ, फल्गुतीर्थ, पुष्कर, गंगा, रेवा, शोण, केदार, गंगासागर, महीसागर, सिन्धुसागर तथा अन्य करोड़ों तीर्थों के अधिदेवता आदि सभी अपनी-अपनी प्रधानता के निर्णयार्थ ब्रह्मसभा में आये। भगवान् पितामह ब्रह्मा ने सभी तीर्थों को समागत देखकर सभासदों के साथ उठकर अंजलिबद्ध होकर उनको प्रणाम करके विस्मयविमुग्ध होकर उनसे कहा—"आप सबके आने से मेरा गृह पवित्र हो गया। आप सबका दर्शन करके मैं भी पवित्र हो गया। तीर्थों के दर्शन, स्पर्शन, कीर्त्तन, स्मरण तथा उसमें स्नान करने से श्रेयः प्राप्त होता है। इसके समान पुण्यप्रद कुछ भी नहीं है। तीर्थस्नान द्वारा महापापी, क्रूर, निष्ठुर व्यक्ति भी पवित्र हो जाते हैं। जो धार्मिक हैं, उनकी बात क्या कहूं।" ब्रह्मा यह कहकर पुलस्त्य से कहने लगे—"शीघ्र अर्घ्य लाओ। इन तीर्थों की अर्चना करूंगा"।।२-१४।।

पुलस्त्य उवाच

असङ्ख्यानीह तीर्थानि दृश्यन्तेपद्मसम्भव!। यथा दिशसि मां तात! अर्घ्यमेकमुपानये॥१५॥
धर्मप्रवचने श्लोको यत एष प्रगीयते॥१६॥
भवेयुर्यद्यसंख्याता अर्घ्ययोग्याःसमर्चने। ततस्तेषां वरिष्ठाय दातव्योऽर्घ्यः किलैकतः॥१७॥

पुलस्त्य कहते हैं—हे पद्मसम्भव! देखता हूं कि तीर्थ तो असंख्य हैं। हे तात! मुझे जैसा आदेश आपने दिया है, तदनुसार मैं एक अर्घ्य लाता हूं। धर्म प्रवचन में एक श्लोक गाया गया है कि यदि अर्थयोग्य व्यक्ति असंख्य हों, तब उनमें मात्र एक श्रेष्ठ व्यक्ति को एक अर्घ्य देना चाहिये।।१५-१७।।

ब्रह्मोवाच

साभिप्रायं साधु वत्सत्वया प्रोक्तमिदं वचः। एवं कुरुष्वैकमर्घ्यमानय त्वं सुशीघ्रतः॥१८॥

ब्रह्मा कहते हैं—साधुवत्स! तुमने उचित कहा है। तुम्हारा अभिप्राय उत्तम है। तुम वही करो। एक अर्घ्य शीघ्र लाओ।।१८।।

नारद उवाच

ततः पुलस्त्यो वेगेनसमानिन्येऽर्घ्यमुत्तमम्। तञ्च ब्रह्मा करे गृह्यतीर्थान्याहेतिभारतीम्॥१९॥
सर्वैर्भवद्भिः संहत्य मुख्यस्त्वेकः प्रकीर्त्यताम्।
तस्मै चाऽर्घ्यं प्रयच्छामि नैवं मामनयः स्पृशेत्॥२०॥

नारद कहते हैं—तब पुलस्त्य द्रुतगति से जाकर उत्तम अर्घ्य लेकर आये। ब्रह्मा ने वह अर्घ्य हाथ में लेकर कहा—"हे तीर्थगण! आप आयें। आप सब आपस में मिलकर अपने में से मुख्य व्यक्ति को बतायें। मैं उसे ही यह अर्घ्य प्रदान करूंगा। ऐसा करने से मुझे कोई अन्याय व्यवहार वाला नहीं कहेगा"।।१९-२०।।

तीर्थान्यूचुः

न वयं श्रेष्ठतां विद्मः कथञ्चन परस्परम्। अस्माद्धेतोश्च सम्प्राप्ताज्ञात्वादेहित्वमेवतत्॥२१॥

तीर्थगण कहते हैं—हम आपस में मिलकर कौन श्रेष्ठ है, यह निर्णय नहीं कर पा रहे हैं। तभी हम आपके पास आये।।२१।।

ब्रह्मोवाच

नाऽहं वेद्मि श्रेष्ठताम्वःकथञ्चन नमोऽस्तुवः। सर्वे चाऽपारमाहात्म्यंस्वयम्मेवक्तुमर्हथ॥२२॥
यत्र गङ्गा गया काशी पुष्करं नैमिषं तथा। कुरुक्षेत्रं तथा रेवा महीसागरसङ्गमः॥२३॥
प्रभासाद्यानि शतशो यत्र नस्तत्र का मतिः॥२४॥

ब्रह्मा कहते हैं—मैं किसी भी प्रकार से यह निर्वाचन नहीं कर पा रहा हूं कि आपमें से कौन श्रेष्ठ है? आपलोगों को नमस्कार। आप सब अपने-अपने अपार माहात्म्य को स्वयं व्यक्त करें। गंगा, गया, काशी, पुष्कर, नैमिष, कुरुक्षेत्र, रेवा, महीसागरसंगम, प्रभासादि सैकड़ों तीर्थ जहां स्वयं विद्यमान हों, वहां मेरे समान व्यक्ति द्वारा विवेचना की क्या बात!।।२२-२४।।

नारद उवाच

एवमुक्ते पद्मभुवा कोऽपि नोवाच किञ्चन। चिरेणेदं ततः प्राह महीसागरसङ्गमः॥२५॥
ममैनमर्घ्यं त्वं यच्छ चतुरानन! शीघ्रतः। यतः कोटिकलायांवा मम कोऽपि न पूर्यते॥२६॥
यतश्चेन्द्रद्युम्नराज्ञा ताप्यमाना वसुन्धरा। सर्वतीर्थद्रवीभूता महीनामाऽभवन्नदी॥२७॥
सा च सर्वाणि तीर्थानि संयुक्तानि मया सह। सर्वतीर्थमयस्तस्मादस्मि ख्यातो जगत्त्रये॥२८॥
गुहेन च महालिङ्गं कुमारेश्वरमीश्वरम्। संस्थाप्य तीर्थमुख्यत्वं मम दत्तं महात्मना॥२९॥
नारदेनाऽपि मत्तीरेस्थानंसंस्थाप्यशोभनम्। सर्वेभ्यःपुण्यक्षेत्रेभ्योदत्तंश्रेष्ठ्यंपुराममम॥३०॥

एवं त्रिभिर्हेतुवरैर्ममैवाऽर्घ्यः प्रदीयताम्। गुणैकदेशेऽपि समं मम तीर्थं न वै परम्॥३१॥

नारद कहते हैं—ब्रह्मा के यह कहने पर और किसी ने कुछ भी नहीं कहा। कुछ समय उपरान्त महीसागरसंगम ने कहा—"हे चतुरानन! आप यह अर्घ्य अविलम्ब मुझे प्रदान करिये। इनमें से कोई भी मेरे करोड़वें अंश के तुल्य भी नहीं है। देखिये! इन्द्रद्युम्न राजा के यज्ञाग्नि के ताप से वसुंधरा संतप्त होकर सभी तीर्थों के साथ द्रवीभूत हो गई थी। वह बहुतीर्थ द्रवरूपिणी नदी ही मही नाम से प्रसिद्ध हो गई। वही सरस्वती युक्ता मही नदी मुझसे मिली है। तभी मैं जगत् में सर्वतीर्थमय रूप से ख्यातियुक्त हो गया। कार्त्तिकेय ने भी यहीं कुमारेश लिंग की प्रतिष्ठा करके मुझे तीर्थों में प्रधानता प्रदान किया था। नारद ऋषि ने मेरे ही तट पर मनोरम स्थलों की प्रतिष्ठा करके सभी पुण्यक्षेत्रों में मुझे प्रधानता दिया था। इन तीन कारणों से अन्य तीर्थों के साथ मेरी गुणगत समता रहने पर भी अन्य तीर्थ मेरे तुल्य गण्य नहीं हो सकते"।।२५-३१।।

इत्युक्ते वचने पार्थ तीर्थराजेनभारत!। सर्वे नोचुः किञ्चनाऽपि किं ब्रह्मावक्ष्यतीतियत्॥३२॥
ततो ब्रह्मसुतो ज्येष्ठः श्वेतमाल्यानुलेपनः। दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य धर्मो वचनमब्रवीत्॥३३॥
अहो कष्टमिदं कूत्कंतीर्थराजेनमोहतः। सन्तोऽपिन गुणावाच्याः स्वयं सद्भिःस्वकायतः॥३४॥
स्वीयान्गुणान्स्वयं यो हि सम्पत्सु प्रक्षिपन्परान्। ब्रवीति राजसस्त्वेष ह्यहङ्कारो जुगुप्सितः॥३५॥
तस्मादस्मादहङ्कारात्सत्स्वप्येषु गुणेषु च। अप्रख्यातं ध्वस्तरूपमिदंतीर्थं भविष्यति॥३६॥
स्तम्भतीर्थमितिख्यातं स्तम्भोगर्वःकृतोयतः। स्तम्भस्यहिफलंसद्योब्रह्मापिप्रापकिंपरः॥३७॥

हे अर्जुन! तीर्थराज महीसागरसंगम के यह कहने पर प्रतीक्षा करने लगे कि ब्रह्मा अब क्या कहते हैं? कोई कुछ भी नहीं कह रहा था। तत्पश्चात् ब्रह्मा के ज्येष्ठ पुत्र श्वेतमाला तथा श्वेत अनुलेपन धारी धर्म ने दक्षिण बाहु उठा कर कहा—"अहा! क्या कष्ट है! तीर्थराज ने मोह के कारण कैसी कुउक्ति कही है! गुण रहने पर भी उसका अपने मुंह से उल्लेख करना साधुजन का कर्त्तव्य नहीं माना गया है। यदि कोई सम्पदा से गर्वित होकर अन्य की अवज्ञा करके अपने माहात्म्य का कीर्त्तन करता है, उसका वह अहंकार राजस है। वह निन्दनीय है। इसलिए अनेक गुण रहने पर भी यह तीर्थ अप्रख्यात तथा विनष्टप्रायः होगा। यह स्तम्भ तीर्थ कहलायेगा, क्योंकि इसने स्तम्भ के समान गर्व किया है। अन्य की तो बात क्या, ब्रह्मा भी स्वयं स्तम्भ का तत्काल फल प्राप्त करेंगे"।।३२-३७।।

इत्युक्ते धर्मदेवेन हाहेति रव उत्थितः। ततः शीघ्रं समायातोयोगीशोऽहञ्च पाण्डव॥३८॥
गुहस्ततो वचः प्राह धर्मदेवसमागमे। अयुक्तमेतच्छापोऽयं दत्तो यद्धर्म! धार्ष्ट्यतः॥३९॥
ब्रवीतु कोऽपि सर्वेषां तीर्थानां तेषु वर्तताम्। यद्यैश्वर्यं नार्हतेऽसौ महीसागरसङ्गमः॥४०॥
तिष्ठत्वात्मगुणो यच्च तीर्थराजेनवर्णितः। तत्रको विगुणोनाममिथ्यावादोयतोगुणः॥४१॥

धर्मदेव के यह कहते ही सभा में हाहाकार होने लगा। हे पाण्डव! मैं भी योगीश हूं। मैं भी वहां तत्काल उपस्थित हो गया। तभी कार्त्तिकेय ने धर्मदेव से कहा—"हे धर्म! तुमने धृष्टता के कारण शाप दिया है, वह अतीव अन्याय है। यहां जो अन्य तीर्थ उपस्थित हैं, यदि महीसागर सर्वापेक्षा ऐश्वर्यशाली नहीं हैं, तब ये लोग ही बोलें। इन्होंने जिन आत्मगुणों का उल्लेख किया है, यदि वे सब वस्तुतः इनमें नहीं हों, तब तो इनकी उक्ति दोषपूर्ण हो जायेगी। नहीं तो यदि इन्होंने सत्य उक्ति कही है, तब वह इनका गुण माना जायेगा"।।३८-४१।।

अहो न युक्तं पालानां यदि तेऽप्यविमृश्य च। एवमर्थान्करिष्यन्ति कं यान्ति शरणं प्रजाः॥४२॥
एवमुक्ते गुहेनाऽथ धर्मो वचनमब्रवीत्। सत्यमेतद्यदर्होऽयं महीसागरसङ्गमः॥४३॥
मुख्यत्वं सर्वतीर्थानामर्घं चाऽपि पितामहात्।
किन्तु नाऽत्मगुणा वाच्याः सतामेतत्सदा व्रतम्।
परोक्षेऽपि स्वप्रशंसा ब्रह्माणमपि चालयेत्॥४४॥
स्वप्रशंसां प्रकुर्वाणः पराक्षेपसमन्विताम्। किं दिवः पृथिवीं पूर्वं ययातिर्न पपात ह।
यानि पूर्वं प्रमाणानि कृतानीशेन धीमता॥४५॥
तानिसम्पालनीयानितानिकोऽतिक्रमेद्बुधः। तवपित्रासमादिश्ययदर्थंस्थापितावयम्॥४६॥
पालयामास एतच्च त्वं पालयितुमर्हसि। ईश्वराः स्वप्रमाणेन भवन्तो यदि कुर्वते॥४७॥

"अहो! यह लोकपालों का कैसा अन्यायाचरण है! यदि ये लोग अविवेक के कारण इस प्रकार का दुर्व्यवहार करेंगे, तब प्रजा किसकी शरण लेगी?" स्कन्दकुमार का वचन सुनकर धर्म ने कहा—"हां! यह सत्य है कि महीसागरसंगम सर्वतीर्थसमूह में मुख्य है तथा पितामह के अर्घ्य का अधिकारी भी है। परन्तु साधुगण कदापि अपने गुणों को स्वयं नहीं कहते। यह उनका नियत व्रत है। परोक्ष में आत्मप्रशंसा करने से वह ब्रह्मा को भी विचलित कर देगी। क्या महाराज ययाति का पतन स्वर्ग से पुनः मृत्युलोक में हुआ था, क्या वह स्वप्रशंसा का फल तो नहीं था? पूर्व में बुद्धिमान प्रभु परमेश्वर ने जिन सभी नियमों का प्रवर्त्तन किया था, उन सबका सम्यक् पालन करना ही कर्त्तव्य होना चाहिये। कौन बुद्धिमान व्यक्ति उसका लंघन करेगा? आपके पिता (शिवशंकर) के आदेशानुसार हम सब जिस-जिस कार्य में नियुक्त किये गये हैं तथा आदेश का पालन करते हैं, वही आप भी करिये। आप सब प्रभु हैं। यदि आपलोग इस प्रकार स्वेच्छा से व्यवहार करेंगे, तब पहले हम सबको उस सम्बन्ध में आदेश करना चाहिये"।।४२-४७।।

तदस्माभिरिदं युक्तं शासनं दिश्यतां परम्। एवमुक्त्वा स्वीयमुद्रां मोक्तुकामंवृषंवदा॥४८॥
अहं प्रस्तावमन्वीक्ष्य वाक्यमेतदुदैरयम्। नमो धर्माय महते विश्वधात्रे महात्मने॥४९॥
ब्रह्मविष्णुशिवैर्नित्यंपूजितायाऽघनाशिने। यदिमुद्रांभवान्धर्म! परित्यक्ष्यतिकर्हिचित्॥५०॥
तदस्माकं कुतो भावो मा विश्वं नाशय प्रभो। योगीश्वरंगुहंचापिसम्मानयितुमर्हसि॥५१॥
शिववन्माननीयो हि यतः साक्षाच्छिवात्मजः। त्वां च देवो गुहः स्वामी सम्मानयितुमर्हति॥५२॥
युवयोरैक्यभावेन सुखं जीवेदिदं जगत्। त्वया प्रदत्तः शापोऽयंमाप्रत्याख्यातिलक्षणः॥५३॥
अनुग्रहश्च क्रियतां तीर्थराजस्य मानद!॥५४॥

धर्मदेव ने क्रोधित मन से यह कहा तथा अपना शासन कार्य त्याग देने का मन्तव्य प्रकट किया। हे अर्जुन! मैंने उनका मन्तव्य समझ लिया तथा प्रस्ताव के अनुसार उस सभा में उनसे कहा—"हे धर्म! आप महात्मा तथा विश्व को धारण करने वाले हैं। ब्रह्मा-विष्णु-शिव भी नियत रूप से आपकी पूजा करते हैं। आप पापहारी हैं। आपको प्रणाम! हे धर्म! आप यदि अपने कार्य का त्याग कर देते हैं, तब हमारी सत्ता कैसे स्थित रहेगी। हे प्रभो! आप विश्व-विनाश न करें। इन योगीश्वर कुमार देव का सम्मान करना भी आपके लिए उचित है। शिवपुत्र तो शिव के

समान माननीय हैं। इसलिए आपके लिये भी कुमार का सम्मान करना कर्त्तव्य रूप है। आप दोनों में एकता होनेपर ही यह जगत् सुखपूर्वक स्थित रह सकेगा और आपने जो अभिशाप दिया है, उसका कोई प्रत्याख्यान (निवारण) संभव नहीं है। परन्तु हे मानद! तीर्थराज के प्रति अनुग्रह करना तो आपका कर्त्तव्य होना चाहिये। क्योंकि आप ही लोगों को पदगौरव प्रदान करने वाले हैं।।४८-५४।।

एवमुच्चरमाणं मां प्रशस्याऽऽहाऽपि पद्मभूः। साध्वेतन्नारदेनोक्तं धर्मैतद्वचनं कुरु॥५५॥
सम्मानय गुहं चाऽपि गुहः स्वामी यतोहि नः। एवमुक्ते ब्रह्मणाचधर्मो वचनमब्रवीत्॥५६॥

मेरे इस प्रकार के कथन को सुनकर पद्मसंभव ब्रह्मा ने हंसते हुए कहा—"हे नारद! तुमने उचित ही कहा है। हे धर्म! तुम भी इनके मतानुरूप कार्य करो। कुमार स्कन्ददेव को सम्मानित करो। कुमार हमलोगों के स्वामी हैं।" ब्रह्मा के कथन को सुनकर धर्म कहने लगे।।५५-५६।।

नमो गुहाय सिद्धाय किङ्करायस्यतेवयम्। मदीयां स्कन्द! विज्ञप्तिं नाथैनामवधारय॥५९॥
स्तम्भादेतन्महातीर्थमप्रसिद्धं भविष्यति। स्तम्भतीर्थमिति ख्यातंसुप्रसिद्धंभविष्यति॥५८॥
स्तम्भतीर्थमिति ख्यातं सर्वतीर्थफलप्रदम्। यश्चाऽत्र स्नानदानादिप्रकरिष्यतिमानवः॥५९॥
यथोक्तञ्च फलं तस्य स्फुटं सर्वं भविष्यति।
शनिवारे ह्यमावास्या भवेत्तस्याः फलं च यत्॥६०॥
महीसागरयात्रायां भवेत्तच्चाऽधारय। प्रभासदशयात्राभिः सप्तभिः पुष्करस्य च॥६१॥
अष्टाभिश्च प्रयागस्य तत्फलं प्रभविष्यति। पञ्चभिः कुरुक्षेत्रस्यनकुलीशस्य च त्रिभिः॥६२॥
अर्बुदस्य च यत्षड्भिस्तत्फलं च भविष्यति। वस्त्रापथस्य तिसृभिर्गङ्गायाः पञ्चभिश्च यत्॥६३॥
कूपोदर्याश्चतुर्भिश्च तत्फलं प्रभविष्यति। काश्याः षड्भिस्तथा यस्त्याद्गोदावर्याश्च पञ्चभिः॥६४॥
तत्फलं स्तम्भतीर्थे वै शनिदर्शे भविष्यति। एवं दत्ते वरे स्कन्दस्तदा प्रीतमना भवत्॥६५॥

धर्म कहते हैं—"हम जिनके किंकर हैं, उन सिद्ध कुमार को प्रणाम! हे नाथ कुमार! मेरा कथन सुनें। स्तम्भ प्रकाशक (गर्व प्रकाशक) कृत्य करने के कारण यह तीर्थ अप्रसिद्ध भले ही हो, परन्तु यह स्तम्भतीर्थ के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त करेगा। यह सभी तीर्थों का फल प्रदाता होगा। मानव यहां स्नान-दानादि से पूर्ववत् कहे गये फलों के भागी होंगे और सुनें! प्रभास की १० यात्रा, प्रयाग की ८ यात्रा, पुष्कर की ७ यात्रा, कुरुक्षेत्र की ५ यात्रा, नकुलीश की ३ यात्रा, अर्बुद की ६ यात्रा, वस्त्रापथ की ३ यात्रा, गंगा की ५ यात्रा, काशी की ६ यात्रा, कूपोदरी की ४ यात्रा, गोदावरी की ५ यात्रा का जो फल है, शनिवासरी अमावस्या पर स्तम्भतीर्थ सेवन का वही फल होगा।" धर्म द्वारा इस प्रकार वर प्रदान किये जाने से स्कन्ददेव प्रसन्न हो गये।।५७-६५।।

ब्रह्माऽपि स्तम्भतीर्थाय ददावर्घं समाहितः। ददौ च सर्वतीर्थानां श्रेष्ठत्वममितद्युतिः॥६६॥
तीर्थानि च गुहं नाथं सम्मान्य विससर्ज सः। एवमेतत्पुरा वृत्तं गुप्तक्षेत्रस्यकारणम्॥६७॥

तदनन्तर अमित द्युति ब्रह्मा ने समाहित चित्त से स्तम्भतीर्थ को सर्वतीर्थ समूह में प्रधान मानकर उसे अर्घ्यदान किया। तदनन्तर समस्त तीर्थों को तथा कुमारदेव को ससम्मान विदा किया। पूर्वकाल में गुप्त क्षेत्र के सम्बन्ध में यही घटना घटी थी।।६६-६७।।

भूयश्चाऽपि प्रसिद्ध्यर्थं प्रेषिताप्सरसोऽत्रमे। विमोक्षिताग्राहरूपात्त्वया ताश्चकुरूद्वह॥६८॥
यतो धर्मस्य सर्वस्य नानारूपैः प्रवर्त्तते:। परित्राणाय भवतः कृष्णस्य च भवो भवे॥६९॥
तदिदं वर्णितं तुभ्यं सर्वतीर्थफलं महत्। श्रुत्वैतदादितः पूर्वं पुमान्पापैः प्रमुच्यते॥७०॥

हे कुरुपुत्र! तदनन्तर भावी काल में तीर्थ की प्रसिद्धि हेतु अप्सरा प्रेरित हुई। परन्तु तुमने उनको मगर की योनि से मुक्त किया। धर्मदेव सर्वत्र नामारूपेण प्रवृत्त होते रहते हैं। मैंने तुमसे सर्वतीर्थफलप्रद महातीर्थ का वृत्तान्त कहा। इसे आदि से अन्त तक सुनने वाला मानव पापों से मुक्त हो जाता है।।६८-७०।।

सूत उवाच

श्रुत्वेति विजयो धीमान्प्रशशंस सुविस्मितः। विसृष्टो नारदाद्यैश्च द्वारकां प्रति जग्मिवान्॥७१॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे महीसागर-माहात्म्यवर्णनेऽर्जुनतीर्थयात्रा परिसमाप्तिवर्णनंनामाष्टपञ्चाशोऽध्यायः॥५८॥

सूतजी कहते हैं—हे मुनिगण! नारद के द्वारा यह वृत्तान्त सुनकर धीमान् अर्जुन विस्मय के साथ बारम्बार (नारद की तथा तीर्थ की) प्रशंसा करने लगे। तदनन्तर नारदादि मुनिगण से अर्जुन ने विदा लेकर द्वारिका प्रस्थान किया।।७१।।

॥अष्टपञ्चाश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

घटोत्कच का प्राग्ज्योतिषपुर गमन, कृष्ण-कामाख्या वार्त्ता, घटोत्कच गमन

शौनक उवाच

अत्यद्भुतमिदं सूत! गुप्तक्षेत्रस्य पावनम्। महन्माहात्म्यमतुलं कीर्तितं हर्षवर्धनम्॥१॥
पुनर्यत्सिद्धलिङ्गस्य पूर्वं माहात्म्यकीर्तने। इत्युक्तं यत्प्रसादेन सिद्धमातुस्तुसेत्स्यति॥२॥
विजयोनाम पुण्यात्मा साहाय्याच्चण्डिलस्य च।
को न्वसौ चण्डिलोनाम विजयोनाम कस्तथा॥३॥
कथं च प्राप्तवान्सिद्धिंसिद्धमातुःप्रसादतः। एतदाचक्ष्व तत्त्वेन श्रोतुं कौतूहलं हि नः।
सतां चरित्रश्रवणे कौतुकं कस्य नो भवेत्॥४॥

शौनक कहते हैं—हे सूत! आपने गुप्त क्षेत्र का अतीव अद्भुत् पुण्यप्रद तथा आनन्द देने वाला अतुलनीय महान् माहात्म्य बतलाया, तथापि आपने पूर्व में सिद्धलिंगों का माहात्म्य कहते हुए कहा था कि धर्मात्मा विजय ने सिद्धमाता की कृपा से चण्डिल की सहायता से सिद्धिलाभ किया था, यह विजय कौन था? चण्डिल कौन था? सिद्धमाता की कृपा से सिद्धिलाभ कैसे हो सका? आप उस वृत्तान्त को कहिये। हमसे इस वृत्तान्त का वर्णन करें। यह सुनने के लिए कुतूहल हो रहा है। साधु चरित सुनने का कुतूहल किसको नहीं होता?।।१-४।।

उग्रश्रवा उवाच

साधु पृष्टमिदं विप्रा दूरान्तरितमप्युत।।५।।
श्रुतां द्वैपायनमुखात्कथांवक्ष्यामिचाऽत्र वः। पुरा द्रुपदराजस्यपुत्रीमासाद्यपाण्डवाः।।६।।
धृतराष्ट्रमते पश्चादिन्द्रप्रस्थं न्यवेशयन्। रक्षिता वासुदेवेन कदाचित्तत्र पाण्डवाः।।७।।

सूतजी कहते हैं—हे विप्रगण! आपने उत्तम प्रश्न किया। यद्यपि यह प्रस्ताव बहुत पहले कथा रूप में कहा गया था, तथापि मैंने इसे भगवान् द्वैपायन से जैसा सुना था, उसी प्रकार से आपलोगों से कह रहा हूं। पूर्वकाल में पाण्डव राजा द्रुपद की कन्या द्रौपदी को प्राप्त करके धृतराष्ट्र के मतानुरूप इन्द्रप्रस्थ में रहने लगे। वासुदेव उनलोगों का रक्षण पालन करते थे।।५-७।।

उपविष्टाः सभामध्ये कथाश्चक्रुः पृथग्विधाः। देवर्षिपितृभूतानां राज्ञाञ्चापि प्रकीर्त्तने।।८।।
क्रियमाणेऽथ तत्राऽगाद्भीमपुत्रो घटोत्कचः। तं दृष्ट्वा भ्रातरःपञ्च वासुदेवश्चवीर्यवान्।।९।।
उत्थाय सहसा पीठादालिलिङ्गुर्मुदा युताः। स च तान्प्रणतः प्रह्वो ववन्दे भीमनन्दनः।।१०।।
साशिषं च ततोराज्ञास्वोत्सङ्गउपवेशितः। आघ्राय स्नेहतो मूर्ध्निप्रोक्तश्च जनसंसदि।।११।।

एक बार पाण्डवगण सभा में बैठकर नाना प्रकार के देव-ऋषि-पितृ-राजा आदि के चरित्रों को कह-सुनकर समय व्यतीत कर रहे थे। तभी वहां भीमनन्दन घटोत्कच आया। उसे देखकर पांचों पाण्डव तथा वीर्यवान् वासुदेव सहसा आसन से उठकर उसका आनन्दपूर्वक आलिंगन करने लगे। भीमपुत्र घटोत्कच ने भी सविनय उनका अभिवादन किया। सबने घटोत्कच को आशीर्वाद प्रदान किया। राजा युधिष्ठिर ने उसे सबके साथ बैठाकर स्नेहपूर्वक उसका मस्तक सूंघते हुए कहा।।८-११।।

युधिष्ठिर उवाच

कुत आगभ्यतेपुत्र! क्व चाऽयंविहृतस्त्वया। कालःक्वचित्सुखं राज्यं कुरुषे मातुलंतव।।१२।।
कश्चिद्देवेषु विप्रेषु गोषु साधुषु सर्वदा। हैडम्बे नाऽपकुरुषे प्रियमेतद्धरेश्च नः।।१३।।
हिडम्बस्य वनंसर्वं तस्यये सैन्यराक्षसाः। पाल्यमानास्त्वयासाधोवर्धन्तेजनक्षेमकाः।।१४।।
कच्चिन्नन्दति ते माता भृशं नः प्रियकारिणी।
कन्यैव या पुरा भीमं त्यक्त्वा मानं पतिं श्रिता।।१५।।

युधिष्ठिर कहते हैं—हे पुत्र! तुम कहां से आये हो? इतने दिन कहां घूम रहे थे? तुम अपने मामा के राज्य का सुखपूर्वक पालन तो कर रहे हो? हे हिडिम्बानन्दन! तुम ब्राह्मण, गौ तथा साधुजन का अपकार तो नहीं

करते? वे हमें तथा श्रीहरि को अत्यन्त प्रिय हैं। हे साधु! हिडिम्ब का समस्त वन तथा राक्षस सैन्य समुदाय तुम्हारे द्वारा पालित होकर वृद्धिगत तो है? हमारी अतीव प्रियकारिणी तुम्हारी माता आनन्द से तो है न! उसने कन्यावस्था में ही अभिमान त्यागकर भीम का वरण पतिरूपेण किया था।।१२-१५।।

इतिपृष्टोधर्मराज्ञास्मयन्हैडम्बिरब्रवीत्। हते तस्मिन्दुराचारेमातुलेऽस्मिनियोजितः॥१६॥
तद्राज्यं शासनेस्थाप्यदुष्टान्निघ्नंश्चराम्यहम्। माताकुशलिनीदेवीतपोदिव्यमुपाश्रिता॥१७॥
मामुवाच सदा पुत्र! पितृणां भक्तिकृद्भव। सोऽहंमातुर्वचः श्रुत्वा मेरुपादात्समागतः॥१८॥
प्रणामायैव भवतां भक्तिप्रह्वेण चेतसा। आत्मानं च महत्यर्थे कस्मिंश्चित्तु नियोजितम्॥
भवद्भिरहमिच्छामि फलं यस्मादिदं महत्॥१९॥
यदाज्ञापालनंपुत्रः पितृणां सर्वदाचरेत्। अथोद्ध्वंलोकान्स जयेदिहजायेतकीर्तिमान्॥२०॥

धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा इस प्रकार से प्रश्न किये जानेपर हिडिम्बापुत्र घटोत्कच ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—उस दुराचारी मामा का वध होनेपर मैं उसके राज्य के शासन पर नियुक्त किया गया तथा राज्य को वश में करके दुष्टों का दमन करते हुए विचरण करता हूं। जननी देवी ने दिव्य तप आरम्भ किया है। वे कुशलपूर्वक हैं। वे मुझसे सदैव कहती हैं—"हे पुत्र! तुम पितृगण के प्रति भक्ति रखो।" मैं माता के कथनानुरूप मेरु गिरि की घाटी से भक्तियुक्त मन से आप सबको प्रणाम करने आया हूं। आप मुझे कोई महान् कार्य हेतु नियोजित करें। यही मेरी इच्छा है, क्योंकि आप सबके आदेश का पालन मेरे लिए महाफलप्रद है। पुत्र यदि पितृगण की आज्ञा का पालन करता है, तब वह इस लोक में कीर्त्तिमान तथा ऊर्ध्वलोक प्राप्ति तथा जय करने में सफल होता है।।१६-२०।।

सूत उवाच

इत्युक्तवन्तं तं राजा परिरभ्य पुनःपुनः। उवाच धर्मराट् पुत्रमानन्दाश्रुः सगद्गदम्॥२१॥
त्वमेव नो भक्तिकारी सहायश्चाऽपि वतंसे॥२२॥
एतदर्थं च हैडम्बे! पुत्रानिच्छन्ति साधवः। इहामुत्र तारयन्ते तादृशाश्चापि पुत्रकाः॥२३॥
अवश्यं यादृशी माता तादृशस्तनयो भवेत्। माताच ते भक्तिमती दृढंनस्त्वंचतादृशः॥२४॥
अहो सुदुष्करं देवी कुरुते मे प्रिया वधूः। या भर्तृश्रियमुल्लङ्घ्य तप एव समाश्रिता॥२५॥
नूनं कामेनभोगैर्वाकृत्यंवध्वा न मे मनाक्। या पुत्रसुखमन्वीक्ष्यपरलोकार्थमाश्रिता॥२६॥
दुष्कुलीनाऽपि या भक्ता सूतेऽपत्यञ्च भक्तिमत्।
कुलीनमेव तन्मन्येममेदं मतमुत्तमम्॥२७॥

पुत्र घटोत्कच का कथन सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर ने आनन्दाश्रु से पूर्ण हो उसका बारम्बार आलिंगन करते गद्गद् स्वर में कहा—"तुम तो हमलोगों के भक्तिमान् सहायक हो। हे हिडिम्बानन्दन! इसीलिए साधुजन पुत्र की कामना करते हैं। तुम्हारे समान पुत्र ही वर्तमान तथा भविष्यकाल में परित्राण कर सकता है। जैसी माता वैसा ही तो पुत्र भी होगा। तुम्हारी माता हमलोगों के प्रति अत्यन्त भक्तिमती हैं। तुम भी उसी प्रकार हो। हमारी वधुमाता देवी हिडिम्बा तो दुष्कर कार्य कर रही है। क्योंकि उसने पति का ऐसा ऐश्वर्य त्याग कर तप का आश्रय लिया है। वास्तव में उसे कामोपभोग की इच्छा नहीं है। तभी तो वह पुत्र का ऐसा ऐश्वर्य देखकर भी पारलौकिक

मंगलार्थ ऐसा यत्न क्यों करती? हीन कुल में जन्म लेकर भी जो गुरुजन के प्रति भक्तियुक्त है तथा जिसने ऐसी भक्तिमान् सन्तान को जन्म दिया, मैं तो उसे सत्कुलीना ही मानता हूं। यही मेरा उत्तम मत है।।२१-२७।।

एवं बहूनि वाक्यानि तानि तानि वदन्नृपः। धर्मराजः समाभाष्यकेशवंवाक्यमब्रवीत्॥२८॥
पुण्डरीकाक्ष जानासि यथाभीमादभूदयम्। जातमात्रस्तुयश्चासीद्यौवनस्थोमहाबलः॥२९॥
अष्टानांदेवयोनीनांयतोजन्मचयौवनम्। सद्य एव भवेत्तस्मात्सद्योऽस्यासीच्चयौवनम्॥३०॥
तदस्योचितदारार्थेसदाचिन्ताऽस्ति कृष्ण मे।
उचितंबतहैडम्बेः क्व कलत्रंकरोम्यहम्॥३१॥
तद्भवान्कृष्ण! सर्वज्ञ त्रिलोकीमपिवेत्सिच। हैडम्बे रुचितांदारान्वक्तुमर्हसि यादव!॥३२॥

धर्मराज युधिष्ठिर ने इस प्रकार से अनेक वाक्य कहकर केशव से कहा—हे पुण्डरीकाक्ष! क्या आप जानते हैं कि यह भीम से कैसे उत्पन्न हुआ? यह महाबली जन्म लेते ही युवा हो गया। इसका कारण यह है कि आठों देवयोनि में जन्म लेते ही सन्तान युवा हो जाती है। तभी यह जन्म लेते ही यौवनयुक्त हो गया। हे कृष्ण! इसके योग्य पत्नी के लिए मेरा मन सदा चिन्तित है। मैं इस हिडिम्बानन्दन हेतु योग्य पत्नी कहां तय करूं? हे कृष्ण! आप सर्वज्ञ हैं, त्रैलोक्य का समस्त संवाद आपको विदित है। हे यादव! इसलिए इसके योग्य कन्या के विषय में आपको ही बतलाना होगा।।२८-३२।।

सूत उवाच

एवमुक्तो धर्मराज्ञा क्षणं ध्यात्वा जनार्दनः। धर्मराजमिदं वाक्यं पदान्तरितमब्रवीत्॥३३॥
अस्ति राजन्प्रवक्ष्यामि दारानस्योचितां शुभाम्।
साम्प्रतं संस्थिता रम्ये प्राग्ज्योतिषपुरे वरे॥३४॥
सा च पुत्री मुरोः पार्थ! दैत्यस्याऽद्भुतकर्मणः।
योऽसौ नरकदैत्यस्य प्राणतुल्यः सखाऽभवत्॥३५॥
स च मे निहतो घोरः पाशदुर्गसमन्वितः। नरकश्च दुराचारस्त्वमेतद्वेत्सि सर्वशः॥३६॥
ततो हते मुरौ दैत्ये मया तस्य सुताव्रजत्। योद्धुंमामतिवीर्यत्वाद्घोराकामकटङ्कटा॥३७॥
तां ततोऽहं महायुद्धे खड्गखेटकधारिणीम्। अयोधयं महाबाणैः सुशार्ङ्गधनुषश्च्युतैः॥३८॥

सूत कहते हैं—धर्मराज के यह कहने पर भगवान् जनार्दन ने कुछ क्षण चिन्तनोपरान्त कहा—"हे राजन्! सुनिये। मैं इसकी पत्नी योग्य सुपात्री का वर्णन करता हूं। वह इस समय रमणीक प्राग्ज्योतिषपुरी में रह रही है। हे पृथापुत्र! वह अद्भुद्कर्मा मुरु दानव की पुत्री है। मुरुदैत्य नरक दैत्य का प्राणप्रिय सखा था। उस पाशदुर्ग युक्त मुरुदैत्य का तथा दुराचारी नरक का वध मैंने किया था। यह वृत्तान्त आप सभी लोग जानते हैं। जब मैंने मुरुदैत्य का वध कर दिया, तब उसकी अत्यन्त पराक्रमी कन्या कामकङ्कटा मुझसे युद्धार्थ आई। वह खड्ग तथा खेटकास्त्र से मुझसे महायुद्ध करने लगी। तब मैं भी शार्ङ्गधनुष से छोड़े गये महान् बाणों की दिव्य वर्षा के साथ उससे युद्ध करने लगा।।३३-३८।।

खड्गेनचिच्छेदवाणान्मम साच मुरोः सुता। समागम्यच खड्गेनगरुडंमूर्ध्न्यताडयत्॥३९॥

स च मोहसमाविष्टो गरुडोऽभूदचेतनः। ततस्तस्या वधार्थाय मया चक्रं समुद्यतम्॥४०॥
चक्र समुद्यतं दृष्ट्वा मया तस्मिन्रणाजिरे। कामाख्या नाम मां देवी पुरः स्थित्वा वचोऽब्रवीत्॥४१॥
नैनां हन्तुं भवानर्हो रक्षैतां पुरुषोत्तम!। अजेयत्वं मया ह्यस्य दत्तं खड्गं च खेटकम्॥४२॥
बुद्धिरप्रतिमाचापिशक्तिश्चपरमा रणे। ततस्त्वयात्रिरात्रेऽपिनजिताऽऽसीन्मुरोःसुता॥४३॥
एवमुक्ते तदा देवीं वचनं चाऽहमब्रवम्। अयमेष निवृत्तोऽस्मि वारयैनां च त्वं शुभे!॥४४॥

उसने खड्ग द्वारा मेरे छोड़े बाणों का छेदन करके सहसा आकर गरुड़ के मस्तक पर खड्ग का आघात किया। उससे गरुड़ अचेत जैसे हो गये। तब मैंने उसके वधार्थ चक्र उद्यत किया। तभी उस रणस्थली में कामाख्या देवी प्रकट होकर मुझसे कहने लगीं—"हे पुरुषोत्तम! इसका संहार करना आपके लिये उचित नहीं है। क्योंकि मैंने इसे युद्ध में अजेयत्व तथा खड्ग-खेटकास्त्र प्रदान किया है। मैंने इसे एक शक्ति तथा अतुलनीय बुद्धि भी दिया है। तभी आप तीन रात्रि पर्यन्त यत्न करके भी इस मुरुकन्या को पराजित नहीं कर सकेंगे।" कामाख्या देवी का यह वचन सुनकर मैंने उनसे कहा—"शुभे! यह मैं युद्ध से अलग हो गया, तथापि आप इसे भी रोकिये"।।३९-४४।।

ततश्चालिङ्ग्यतांभक्तां कामाख्यांवाक्यमब्रवीत्। भद्रे रणान्निवर्तस्वनायंहन्तुंकथञ्चन॥४५॥
शक्यः केनाऽपि समरेमाधवोरणदुर्जयः। नाऽभूदस्तिभविष्यो वा य एनंसंयुगेजयेत्॥४६॥
अपि वा त्र्यम्बकः पुत्रि! नैनं शक्तःकुतोऽन्यकः। तस्मादेनंनमस्कृत्यभाविनंश्वशुरंशुभे॥४७॥
रणादस्मान्निवर्तस्वतवोचितमिदंस्फुटम्। अस्यभ्रातुर्हिभीमस्यस्नुषात्वंचभविष्यसि॥४८॥
तस्मात्त्वं श्वशुरं भद्रे! सम्मानय जनार्दनम्। नच शोकस्त्वयाकार्यःपितरं प्रतिपण्डिते॥४९॥
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्ममृतस्यच। बहवश्चाऽस्य वेत्तारो वदकेनाऽपिवार्यते॥५०॥
ऋषींश्च देवांश्च महासुरांश्च त्रैविद्यविद्यान्पुरुषान्नृपांश्च।
कान्मृत्युरेको न पतेत काले परावरज्ञोऽऽत्र न मुह्यते क्वचित्॥५१॥
श्लाघ्यएवहितेमृत्युःपितुरस्माज्जनार्दनात्। सर्वपातकनिर्मुक्तोगतोऽसौधामवैष्णवम्।
एवं कामाख्यया प्रोक्ता सा च कामकटङ्कटा॥५२॥

तदनन्तर कामाख्या देवी ने उस भक्तिमती कामकटंकटा का आलिंगन करके कहा—हे भद्रे! तुम युद्ध से हट जाओ। ये माधव दुर्जेय हैं। युद्ध में कोई भी इनका संहार कर सकने में सक्षम नहीं है। युद्ध में कोई इनको जीत सके, ऐसा न तो विद्यमान है, न हुआ है, न कदापि जन्म ही लेगा। हे पुत्री! शंकर भी इन पर विजय नहीं पा सकते, अन्य की तो बात ही क्या? विशेषतः ये तुम्हारे भावी श्वसुर हैं। अतः इनको प्रणाम करके युद्ध से हट जाओ। यह सब तुम्हारे लिये उचित नहीं है। निश्चय ही तुम इनके भाई भीमसेन की पुत्रवधू होगी। अतः हे भद्रे! अपने श्वसुर जनार्दन को सम्मानित करो। हे पण्डिते! अपने पिता के लिए शोक मत करो। जन्म लेने वाले की मृत्यु तो निश्चित है। मृत का पुनः जन्म तो होना ही है। अनेक लोगों को यह तत्व ज्ञात है, परन्तु देखो, कौन इसके विपरीत कर सकेगा? ऋषि-देवता-महासुर-राजा किंवा विद्यात्रय के ज्ञाता, विहित काल आते ही किस पर मृत्यु आक्रमण नहीं करती? इस काल तथा भविष्य काल का तत्व जानने वाले व्यक्ति इस विषय के प्रति कदापि मुग्ध

नहीं होते। यह तो प्रशंसा की बात है कि तुम्हारे पिता की मृत्यु जनार्दन के हाथों हुई है। क्योंकि इससे तुम्हारे पिता सर्वपाप रहित होकर विष्णुलोक में स्थित हैं।।४५-५२।।

त्यक्त्वा क्रोधं च सम्वृत्य गात्राणि प्रणता च माम्।।५३।।
तामहं साशिषं चाऽपि प्रावोचं भरतर्षभ! अस्मिन्नेव पुरे तिष्ठ भगदत्तप्रपूजिता।।५४।।
मया देव्या पृथिव्या च भगदत्तः कृतोनृपः। स ते पूजांबहुविधांकरिष्यतिस्वसुर्यथा।।५५।।
वसन्ती चाऽत्र तंवीरं हैडिम्बं पतिमाप्स्यसि। एवमाश्वास्य तां देवीं मौर्वीचाहंव्यसर्जयम्।।५६।।
सा स्थिता च पुरे तत्र गतोऽहं शक्रसद्म च। ततो द्वारवतीं प्राप्यत्वयासहसमागतः।।५७।।
एवमेषोचिता दारा हैडम्बेर्विद्यते शुभा। कामाख्ये च रणे घोरा या विद्युदिव भासते।।५८।।

कामाख्या देवी का यह कथन सुनकर कामकटंकटा ने क्रोध त्याग दिया और वस्त्र से मुख तथा शरीर यथायोग्य ढांक कर आई तथा मुझे प्रणाम किया। हे भरतश्रेष्ठ! मैंने भी उसे आशीर्वाद देकर कहा कि "तुम नरकासुर की पुरी में ही रहो। नरकासुर का पुत्र भगदत्त तुम्हारा सम्मान तथा यत्न के साथ पालन करेगा। मैंने तथा पृथिवी देवी ने नरक राज्य के राजा के रूप में भगदत्त को ही प्रतिष्ठित किया था। वह तुम्हारा पालन अपनी बहन की तरह करेगा। तुम वहां निवास करके हिडिम्बानन्दन को पतिरूपेण प्राप्त करोगी।" इस प्रकार से मुरुपुत्री को आश्वासन देकर मैं सुरेन्द्र सदन चला गया। वहां से मैं द्वारिका गया। तदनन्तर द्वारिका होते आपके यहां इन्द्रप्रस्थ आया। यह सुलक्षण कन्या ही हिडिम्बानन्दन के योग्य पत्नी होगी। कामाख्या प्रदेश के रणस्थल में यह विद्युत् के समान विहार करती है।।५३-५८।।

न च रूपं वर्णितं मे श्वशुरस्योचितं यतः। साधोर्हि नैतदुचितं सर्वस्त्रीणांप्रवर्णनम्।।५९।।
पुनरेकश्च समयः कृतस्तं शृणु यस्तया। योमां निरुत्तरां प्रश्ने कृत्वैव विजयेत्पुमान्।।६०।।
यो मे प्रतिबलश्चाऽपि स मे भर्ता भविष्यति। एवञ्चसमयं श्रुत्वा बहवोदैत्यराक्षसाः।।६१।।
तस्या जयार्थमगमंस्तेऽपि जित्वा हतास्तया। यो न एनांगतः पूर्वं न स भूयोन्यवर्तत।।६२।।
वह्नेरिव प्रभां दीप्तां पतङ्गानां समुच्चयः। एवमेतादृशीं मौर्वीं जेतुमुत्सहते यदि।।६३।।
घटोत्कचो महावीर्यो भार्याऽस्य नियतं भवेत्।।६४।।

मैं उसका श्वसुर हूं। उसके रूप का वर्णन करना मेरे लिये अनुचित है। किसी साधु व्यक्ति के लिए स्त्रियों का रूप वर्णन करना उचित नहीं माना गया है। उस कन्या की एक और प्रतिज्ञा सुनें। उसने कहा है कि "जो पुरुष मुझे प्रश्नों द्वारा निरुत्तर करके विजयी होगा तथा मेरा प्रतिद्वन्द्वी वीर होगा, वही मेरा पति होगा।" इस प्रतिज्ञा को सुनकर अनेक दैत्य-राक्षस उसे पराजित करने आये, परन्तु वे सभी उसके द्वारा पराजित होकर मारे गये। पूर्व में जो कोई भी उसे जीतने गया, वह आजतक लौट कर नहीं आया। जैसे प्रदीप्त अग्निशिखा में पतंग दल विलीन हो जाता है, वैसी ही दशा उनके साथ घटित हुई है। महावीर घटोत्कच यदि ऐसी मुरुनन्दिनी को जीत सकने का उत्साह रखे, तब वह निश्चय ही इसकी पत्नी होगी।।५९-६४।।

युधिष्ठिर उवाच

अलं सर्वगुणैस्तस्या यस्यास्त्वेको गुणो महान्। क्रियते किं हि क्षीरेण यदि तद्विषमिश्रितम्।।६५।।

प्राणाधिकं भैमसेनिंकथंकेवलसाहसात्। क्षिपेयंतववाक्यानांशुद्धानांचाऽथकोविदम्॥६६॥
अन्याअपिस्त्रियः सन्ति देशेदेशे जनार्दन!। बह्व्यस्तासांवरां काञ्चिद्योषितंवक्तुमर्हसि॥६७॥

युधिष्ठिर कहते हैं—उसमें सभी गुण रहने पर भी उसका प्रयोजन नहीं है, क्योंकि उसमें एक महागुण जो है! ऐसा दुग्ध किस काम का, जिसमें विष मिला हो! घटोत्कच ने भी आपका यह साधु प्रस्ताव सुनकर समझ लिया है। मैं प्राणाधिक प्रिय इस भीमपुत्र को केवल साहस के बल पर ऐसे विपत्ति सागर में कैसे फेंक सकता हूं? हे जनार्दन! स्थान-स्थान पर देशों में तो और भी न जाने कितनी कन्या हैं, उनमें से ही किसी एक सत्पात्री का आप उल्लेख करिये।।६५-६७।।

भीम उवाच

सम्यगुक्तं केशवेन वाक्यं बह्वर्थमुत्तमम्। राज्ञा पुनः स्नेहवशाद्यदुक्तं तन्न भाति मे॥६८॥
कार्ये दुःसाध्य एव स्यात्क्षत्रियस्य पराक्रमः। करीन्द्रस्यैव यूथेषुगजानां न मृगेषुच॥६९॥
आत्माप्रख्यातिमानेयःसर्वथावीरपुङ्गवैः। साच ख्यातिःकथंजायेद्दुःसाध्यकरणादृते॥७०॥
न ह्यात्मवशगं पार्थ! हैडम्बेरस्य रक्षणम्। येन दत्तस्त्वं धात्रा स एनं पालयिष्यति॥७१॥
सर्वथोच्चपदारोहे यत्नः कार्यो विजानता। तन्न सिध्यति चेद्दैवान्नाऽसौदोषोविजानतः॥७२॥
यथा देवव्रतस्त्वेको जह्रे काशिसुताः पुरा। तथैक एवहैडम्बिमौर्वींप्राप्नोतुमाचिरम्॥७३॥

भीमसेन कहते हैं—केशव ने उचित कहा है। उनकी कही बात अत्युत्तम है। वह विशेष अभिप्राय युक्त भी है, तथापि महाराज स्नेहवश जो कह रहे हैं, वह मुझे उचित नहीं लगा। क्षत्रिय का पराक्रम दुःसाध्य कार्य से ही प्रकट होता है। हाथियों के झुण्ड में ही सिंह के विक्रम की परीक्षा होती है। हरिणों के झुण्ड में सिंह के विक्रम की परीक्षा क्या होगी? जो वीरत्व के अभिमानी हैं, उनके लिये वही कर्त्तव्य है, जिसमें वे प्रख्यात हो सकें, तथापि दुःसाध्य कार्य किये बिना ख्याति कैसे होगी? हे महाराज! इस घटोत्कच की रक्षा का काम हमारा नहीं है। इसको जिस विधाता ने प्रदान किया है, वे ही रक्षा भी करेंगे। बुद्धिमान व्यक्ति को सदैव उच्च पदवी प्राप्त करने का यत्न करना आवश्यक है। यदि वह दैववशात् सिद्ध नहीं होता, तब भी उसके प्रति शोक न करे। पूर्वकाल में जिस प्रकार देवव्रत भीष्म ने अकेले ही काशिराज की तीन कन्याओं का हरण किया था, यह घटोत्कच भी एकाकी जाकर उस मुरुनन्दिनी को प्राप्त करे। इसमें विलम्ब अनुचित है।।६८-७३।।

अर्जुन उवाच

केवलं पौरुषपरं भीमेनोक्तमिदं वचः। अबलं दैवहेतुत्वात्प्रबलं प्रतिभाति मे॥७४॥
न मृषा हि वचो ब्रूते कामाख्या या पुराऽब्रवीत्। भीमसेनसुतः पाणिं तव भद्रे! ग्रहीष्यति॥७५॥
अनेन हेतुना यातु शीघ्रं तत्र घटोत्कचः। इति मे रोचते कृष्ण! तव किं ब्रूहि रोचते॥७६॥

अर्जुन कहते हैं—भीमसेन ने जो कुछ कहा, वह पौरुषोचित है। देवता के कारण इस अबला को मैं प्रबला मानता हूं, तथापि कामाख्या देवी ने पूर्व में उनको जो वर दिया था कि भीमसेन का पुत्र तुम्हारा पाणिग्रहण करेगा, वह मिथ्या बात नहीं है। अतः घटोत्कच को शीघ्र वहां भेजें। हे कृष्ण! मुझे तो यही उचित लगता है। आप अपना अभिप्राय कहें।।७४-७६।।

कृष्ण उवाच

रोचते मे वचस्तुभ्यं भीमस्य च महात्मनः। न हि तुल्यो भैमसेनेर्बुद्धौ वीर्ये च कश्चन॥७७॥
अन्तरात्माचमे वेत्ति प्राप्तामेवमुरोःसुताम्। तच्छीघ्रंयातुहैडम्बिस्त्वंच किं पुत्रमन्यसे॥७८॥

कृष्ण कहते हैं—हे अर्जुन! तुमने जो कहा तथा महात्मा भीम का जो कथन है, वही मेरा मत है। बुद्धि में तथा विक्रम में घटोत्कच के तुल्य कोई नहीं है। मुझे भी यही लग रहा है कि घटोत्कच उस मुरुपुत्री को प्राप्त करेगा। अतः घटोत्कच तुम तत्काल वहां जाओ। तुम्हारा क्या विचार है?॥७७-७८॥

घटोत्कच उवाच

नहिन्याय्याःस्वकावक्तुंपूज्यानामग्रतोगुणाः। प्रवृत्ताएवभासन्तेसद्गुणाश्च रवेःकराः॥७९॥
सर्वथातत्करिष्यामिपितरोयेनमेऽमलाः। लज्जिष्यन्ति न संसत्सुमयापुत्रेणपाण्डवाः॥८०॥
एवमुक्त्वा महाबाहुरुत्थाय प्रणनाम तान्। जयाशीर्भिश्च पितृभिर्वर्द्धितो गन्तुमैच्छत॥८१॥
तं गन्तुकाममाहेदमभिनन्द्यः जनार्दनः। कथाकथनकाले मां स्मरेथास्त्वं जयावहम्॥८२॥
यथाबुद्धिंसुदुर्भेद्यांवर्धयामिबलंचते। इत्युक्त्वाऽऽलिङ्ग्यतंकृष्णोव्यससर्जतसाशिषम्॥८३॥
ततो हिडम्बातनयो महौजाः सूर्याक्षकालाक्षमहोदरानुगः।
वियत्पथं प्राप्य जगाम तत्पुरं प्राग्ज्यज्योतिषं नाम दिनव्यपाये॥८४॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे बर्बरिकोपाख्याने घटोत्कचस्य प्राग्ज्योतिषपुरं प्रति गमनवर्णनंनामैकोनषष्टितमोऽध्यायः॥५९॥

घटोत्कच कहता है—"पूज्यों के सामने अपने गुणों का वर्णन करना अनुचित है। सद्गुण तथा रविकिरण प्रयुक्त होनेपर अपनी महिमा का स्वयं विस्तार कर लेते हैं। मैं सर्वदा ऐसा ही करूंगा, जिससे मेरे अमल पितृगण पाण्डव मुझ जैसे पुत्र द्वारा सभा में लज्जित न हों।" महाबाहु घटोत्कच यह कह कर उठा तथा पितृगण का अभिवादन किया। उनलोगों ने भी उसे जय का आशीर्वाद प्रदान किया। तब घटोत्कच ने प्राग्ज्योतिष नगरी जाने की इच्छा प्रकट की। वासुदेव ने उससे अभिनन्दन के साथ कहा—"कन्या के साथ वार्त्ताकाल में तुम मेरा स्मरण करना। इससे मैं तुमको जय प्रदान करूंगा। मैं तुम्हारी बुद्धि दुर्दमनीय कर दूंगा। तुम्हारा बल भी वर्द्धित कर दूंगा।" कृष्ण ने यह कहकर उसका आलिंगन किया तथा विदा किया। तदनन्तर वह महाविक्रमी हिडिम्बानन्दन अपने सूर्याक्ष, कालाक्ष तथा महोदर नामक ३ असुरों के साथ अपराह्न काल में पूर्वाभिमुख प्राग्ज्योतिषपुर की ओर आकाश मार्ग से चल पड़ा॥७९-८४॥

॥उनषष्टितम अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

षष्टितमोऽध्यायः

मौर्वी का घटोत्कच से प्रश्न वर्णन, बर्बरीकोत्पत्ति वर्णन

सूत उवाच

सोऽथ प्राग्ज्योतिषाद्बाह्येमहोपवनसंस्थितम्। सहस्त्रभूमिकंगेहमपश्यतहिरण्मयम्॥१॥
वेणुवीणामृदङ्गानांनिःस्वनैः परिपूरितम्। दशसाहस्त्रसंख्याभिश्चेटीभिः परिपूरितम्॥२॥
आयाद्भिःप्रतियाद्भिश्चभगदत्तस्यकिङ्करैः। किमिच्छन्तीतिभगिनीपृच्छकैरभिपूरितम्॥३॥
तदासाद्य सा हैडम्बिर्मेरोःशिखरवद्गृहम्। द्वारिस्थितांसन्ददर्शकर्णप्रावरणांसखीम्॥४॥
तामाह ललितंवीरोभद्रेसा क्व मुरोः सुता। कामुकोद्रष्टुमिच्छामिदूरदेशागतोऽतिथिः॥५॥

सूतजी कहते हैं—घटोत्कच ने प्राग्ज्योतिषपुर के बाहरी भागस्थ सुमहान् उपवन से घिरी स्वर्णमयी सहस्त्रभूमिक अट्टालिका का अवलोकन किया। वह पुरी वेणु-वीणा-मृदंगादि की ध्वनि से मुखरित तथा १०००० परिचारिकागण से घिरी थी। भगदत्त के अनुचरगण वहां आ जा रहे थे। कोई "बहन! क्या चाहिये" इस प्रकार कह कर शब्द कर रहे थे। घटोत्कच ने वहां इस मेरुशिखरवत् भवन के द्वार पर जाकर कर्णप्रावरणा सखी को देखा। वीर घटोत्कच ने मधुर वाक्य में उससे पूछा—"हे भद्रे! वह मुरुपुत्री कहां है? मैं कामुक होकर दूर देश से उसके दर्शनार्थ अतिथि होकर आया हूं"।।१-५।।

कर्णप्रावरणोवाच

किंतवास्तिमहाबाहोतयामौर्व्याप्रयोजनम्। कोटिशोनिहताःपूर्वंतयाकामुककामुकाः॥६॥
तव रूपमहं दृष्ट्वा घटहासं सदोत्कचम्। प्रणम्य पादयोर्वीर स्थिता ते वचनङ्करी॥७॥
तन्मयासहमोदस्वभुङ्क्ष्वभोगाँश्चकामुक!। दास्याम्यनुचराणांतेत्रयाणांचप्रियात्रयम्॥८॥

कर्णप्रावरणा कहती है—हे महाबाहो! उस मुरुपुत्री से तुम्हारा क्या प्रयोजन? हे कामुक! तुम्हारे समान करोड़ों कामुक उसके हाथों मारे गये। मैं तुम्हारा रूप देख रही हूं, जो घट के समान, विकट हास्य युक्त है। तुम्हारे केश सदा खड़े रहते हैं। हे वीर! मैं तुम्हारे चरणों में प्रणत होकर तुम्हारी आज्ञाकारी हो गई! हे कामुक! तुम मेरे साथ यहां रहकर विहार करो। तुम विशेष भोगों का उपभोग करो। मैं तुमको तीन सपत्नीक अनुचर भी प्रदान करूगी।।६-८।।

घटोत्कच उवाच

कल्याणि किम्वदन्ती ते प्रमुक्ता स्वोचिता शुभे! पुनर्नैतद्वचस्तुभ्यंविशतेममचेतसि॥९॥
वामः कामो यतो भद्रे यस्मिन्नुपनिबद्ध्यते। सच्चाऽत्र नैव बध्नाति तद्वयं किं प्रकुर्महे॥१०॥
अद्य ते स्वामिनीदृष्टाजितावाक्रीडतेमया। तयावाविजितोयास्येपूर्वेषांकामिनांगतिम्॥११॥
कर्णप्रावरणे तस्माच्छीघ्रमेव निवेद्यताम्। यथादर्शनमात्रेण पूजयन्त्यतिथिं खलुं॥१२॥
इति भैमेर्वचः श्रुत्वा प्रस्खलन्तीनिशाचरी। प्रसादशिखरस्थांतांमौर्वीमेवंवचोऽवदत्॥१३॥

देवि! कोऽपियुवाश्रीमांस्त्रैलोक्येष्वमितप्रभः। कामातिथिस्तवद्वारिवर्ततेदिशतत्परम्॥१४॥

कामकटङ्कटोवाच

मुच्यतां शीघ्रमेवाऽसौ किमर्थं वा विलम्बसे। कदाचिद्दैवसङ्गत्यासमयो मेऽभिपूर्यते॥१५॥
इत्युक्तवचनाच्चेटीप्राप्यावोचद्घटोत्कचम्। व्रजशीघ्रंकामुकत्वंतस्यामृत्योश्चसन्निधौ॥१६॥

घटोत्कच कहता है—हे कल्याणी! मैंने तुमलोगों के सम्बन्ध में जो किंवदन्ती सुना था, तुमने तो वैसा ही प्रकट कर दिया, परन्तु तुम्हारी वे बातें मेरे चित्त में प्रवेश कर रही हैं। हे भद्रे! काम तो कुटिल प्रकृति होता है। वह एक जगह निबद्ध रहते अन्यत्र आबद्ध नहीं होता। अतः मैं क्या कर सकता हूं? मैं तो तुम्हारी स्वामिनी को पराजित करके उसके साथ क्रीड़ा करूंगा। अन्यथा उसके द्वारा जीता जाकर पहले वाले कामुकों की गति प्राप्त करूंगा। अतः हे कर्णप्रावरणे! तुम शीघ्र जाकर मेरा संवाद अपनी स्वामिनी को सूचित करो। वे कम से कम दर्शन देकर अतिथि सत्कार करें। यह सुन कर वह निशाचरी कर्णप्रावरणा लड़खड़ाती प्रासादशिखरस्थ कामकटंकटा से जाकर कहने लगी—"देवी! त्रिलोक में अत्यन्त कान्तिवाला श्रीमान् कोई युवा द्वार पर आपका कामातिथि होकर खड़ा है। अतएव कर्त्तव्य क्या है कहिये।" काकटंकटा ने कहा—"उसे शीघ्र लाओ। क्यों विलम्ब करती हो? अब इतने दिनों बाद बोध हो रहा है कि दैवयोग से मेरा समय पूर्ण हो गया।" कामकटंकटा से यह सुनकर कर्णप्रवरणा बाहर आई तथा उसने घटोत्कच से कहा—"हे कामुक! तुम अविलम्ब उस मृत्युस्वरूपा के पास जाओ"।।९-१६।।

इत्युक्तः स प्रहस्यैव तत्रोत्सृज्य स्वकानुगान्। प्रविवेश गृहं भैमिः सिंहोमेरुगुहामिव॥१७॥
स पश्यञ्छुकसङ्घातान्पारावतगणांस्तथा। सारिकाञ्च मदोन्मत्ताश्चेटीस्तां चाऽप्यपश्यत॥१८॥
रूपेण वयसा चैव रतेरपि रतिङ्करीम्। आन्दोलकसुखासीनां सर्वाभरणभूषिताम्॥१९॥
तां विद्युतमवोन्नद्धांदृष्ट्वा भैमिरचिन्तयत्। अहो कृष्णेन पित्रा मेनिर्दिष्टेयंममोचिता॥२०॥
न्याय्यमेतत्कृते पूर्वं नष्टायत्कामिनां गणाः। शरीरक्षयपर्याप्तं क्षीयतेयदिकामिनाम्॥२१॥
कामिनीनां कृते येषां क्षीयते गणनाऽत्रका। एवं बहुविधंकामी चिन्तयन्नाह भीमभूः॥२२॥
निष्ठुरेवज्रहृदये प्राप्तोऽहमतिथिस्तव। उचितां तत्सतां पूजां कुरु या ते स्थिता हृदि॥२३॥
इतिहैडम्बिवचनंश्रुत्वाकामकटङ्कटा। विस्मिताऽभूत्तस्य रूपात्स्वंनिनिन्दचबालिशम्॥२४॥
धिगहं यन्मया पूर्वं समयः स कृतोऽभवत्। न कृतोऽभूद्यदि पुरा अभविष्यदसौ पतिः॥२५॥

यह कहकर वह चली गयी। तब भीमनन्दन ने तीनों असुरों को वही छोड़ा तथा जैसे मेरुपर्वत की गुफा में सिंह प्रवेश करता है, उसी प्रकार उसने उस पुरी में प्रवेश किया। उसने देखा कि अनेक शुक-सारिका-कबूतर तथा मदोन्मत्त सेविकायें इधर-उधर विचर रही हैं। एक झूले पर कामकटंकटा सुखासीन थी। वह रूप तथा यौवन में रति से भी सुन्दर लग रही थी। वह सर्वाभरण भूषिता थी तथा विद्युत्वत् दीप्तिशाली थी। घटोत्कच उसे देखकर विचार करने लगा—"अरे! मेरे पिता कृष्ण ने जब इसके लिए निर्देश किया है, तब वास्तव में यह मेरे योग्य है। इसी के लिए पूर्वकाल में जो कामीगण विनष्ट हुए हैं, वह न्यायपूर्ण है। शरीर तो क्षयशील है। अतएव यदि कामुकों का ऐसा शरीर कामिनीगण के लिए क्षयीभूत हो जाता है, हो जाये। उसकी क्या गणना?" कामुक घटोत्कच

ने इस प्रकार चिन्तन करके कहा—"हे वज्र के समान निष्ठुर हृदयवाली! मैं तुम्हारे यहां अतिथि होकर आया हूं। अतः तुम मनोगत् सज्जनोचित सत्कार करो।" घटोत्कच का यह वाक्य सुन कर कामकटंकटा विस्मिता हो गयीं तथा उसे देखकर स्वयं को अज्ञ मानकर अपनी निन्दा करने लगी। उसने विचार किया—धिक्कार है। मैंने जो प्रतिज्ञा कर लिया था, यदि न किया होता, तब यही मेरा पति होता।।१७-२५।।

इति सञ्चिन्तयन्तीसा भैमिं वचनमब्रवीत्। वृथा त्वमागतो भद्र! जीवन्याहिपुनःसुखी॥२६॥
अथ कामयसे मां त्वं तत्कथां शीघ्रमुच्चर। कथामाभाष्ययदिमांसन्देहेपातयिष्यसि।
ततोऽहं वशगा जाता हतो वा स्वप्स्यसे मया॥२७॥

कामकटंकटा ने इस प्रकार विचारोपरान्त घटोत्कच से कहा—हे भद्र! तुम वृथा आ गये। तुम अपना जीवन बचाकर लौट जाओ और यदि मुझे प्राप्त करना चाहते हो, तब कोई प्रस्ताव कहो। तुम्हारी कोई बात मुझे सन्देह से वशीभूत कर ले, तभी मैं तुम्हारे वशीभूत हो सकूंगी। अन्यथा तुम मेरे द्वारा मारे जाकर भूमि पर शयन करोगे।।२६-२७।।

सूत उवाच

इत्युक्तवचनामेतां नेत्रोपान्तेन वीक्ष्य सः॥२८॥
स्मृत्वा चराचरगुरुं कृष्णमारब्धवान्कथाम्। कस्याञ्चिदभवत्पत्न्यां युवा कोऽप्यजितेन्द्रियः॥२९॥
तस्यचैकासुताजज्ञेभार्यातस्यमृताऽभवत्। ततोबालकिंकांपुत्रींररक्ष च पुपोष च॥३०॥
सा यदाभूद्यौवनगा व्यञ्जितावयवा शुभा।
प्रोल्लसत्कुचमध्याङ्गी प्रोल्लसन्मुखपङ्कजा॥३१॥
तदाऽस्य कामलुलितमालानंप्रजहौमनः। प्रोवाच तां च तनयां समालिङ्ग्यदुराशयः॥३२॥
प्रातिवेश्मकपुत्रीत्वंमयाऽऽनीयाऽत्रपोषिता। भार्यार्थंसुचिरं कालंतत्कार्यंसाधयप्रिये॥३३॥
इत्युक्ता सा च मेने च तत्तथैववचस्तदा। पतित्वेनच भेजे तं भार्यात्वेन स तां तथा॥३४॥
ततस्तस्यां सुता जज्ञे तस्मान्मदनरासभात्। वदसातस्यभवतिकिंदौहित्रीसुताऽथवा।
एनं प्रश्नं मम ब्रूहि शीघ्रं चेच्छक्तिरस्ति ते॥३५॥

सूतजी कहते हैं—कामकटंकटा के यह कहने पर घटोत्कच ने उसे देखा तथा चराचरगुरु कृष्ण का स्मरण करके कहना आरम्भ किया कि किसी अजितेन्द्रिय व्यक्ति ने अपनी पत्नी से एक कन्या को उत्पन्न किया, परन्तु तदनन्तर उसकी पत्नी मृत हो गयी। तब उसी ने उस बालिका का लालन-पालन किया। कालक्रमेण वह कन्या युवती हो गई। उसका सभी अंग परिपूर्ण था, तथा मध्यभाग स्तनद्वय से उल्लसित हो रहा था। मुखमण्डल कमलवत् कान्ति युक्त था। इससे उस कामुक का मन काम से विचलित हो उठा तथा उसने संयम का त्याग कर दिया। तब उस दुरात्मा ने उस कन्या का आलिंगन करके कहा—"हे प्रिये! तुम मेरी कन्या नहीं हो, मेरे साथी की कन्या हो। मैंने तुमको पत्नी बनाने हेतु लाकर पोषण किया था। अतः अब मेरी इच्छा पूरी करो।" यह सुनकर उस कन्या ने यही सत्य माना तथा उसका पतिरूपेण वरण किया। उस कामुक ने उसे पत्नी रूप में स्वीकार कर लिया। तदनन्तर मदन रूपी गर्दभ के नियमानुसार उस कन्या के गर्भ से उस कामुक पिता की कन्या का जन्म

हुआ। अब मैं पूछता हूं कि बतलाओ वह कन्या उस कामुक की दौहित्री कही जायेगी अथवा पुत्री कही जायेगी। यदि तुमको शक्ति हो, तब अविलम्ब इस प्रश्न का उत्तर प्रदान करो''।।२८-३५।।

सूत उवाच

इति प्रश्नं सा च श्रुत्वाऽचिन्तयद्बहुधा हृदि॥३६॥
न च पश्चतिनिर्द्धारं प्रश्नस्याऽस्यकथञ्चन। ततःप्रश्नेन विजिता स्वांशक्तिंसमुपाददे॥३७॥
अताडयद्रुक्मरज्जुंकराभ्यांदोलकस्यच। ततोरक्षांसिनिष्पेतुः कोटिशो भीषणान्यति॥३८॥
सिंहव्याघ्रवराहाश्चमहिषाश्चित्रकामृगाः। समीक्ष्यतानसंख्येयान्खादितुंधावतोरुषा॥३९॥
अवादयन्नखौ भैमिः कनिष्ठाङ्गुष्ठजौ हसन्। ततो विनिःसृतास्तत्रद्विगुणाराक्षसादयः॥४०॥
तैर्मौर्वीनिर्मिताः सर्वे क्षणादेव स्म भक्षिताः। विजितायांस्वशक्तौच बलशक्तिमथाददे॥४१॥
उत्थाय सहसा दोलात्खड्गमादातुमैच्छत। उत्तिष्ठन्तीं च तां भैमिरनुसृत्यजवादिव॥४२॥
केशेष्वादाय सव्येन पाणिनाऽपातयद्भुवि। ततः कण्ठे सव्यपादं दत्त्वाऽऽदाय च कर्तिकाम्॥४३॥
दक्षिणेन करेणाऽस्याश्छेत्तुमैच्छत नासिकाम्। विस्फुरन्ती ततो मौर्वी मन्दमाह घटोत्कचम्॥४४॥

प्रश्नेन शक्त्या च बलेन नाथ! त्रिधा त्वयाऽहं विजिता नमस्ते।
तन्मुञ्च मां कर्मकरी तवाऽस्मि समादिश त्वं प्रकरोमि तच्च॥४५॥

सूतजी कहते हैं—कामकटंकटा ने यह प्रश्न सुनकर अनेक क्षण नाना प्रकार से विचार किया, तथापि प्रश्न का कोई सदुत्तर विचार में नहीं आ सका। तब उसने प्रश्न द्वारा जीती जानेपर अपनी शक्ति का आश्रय लिया। उसने हाथों से झूले का स्वर्ण शृंखल खींचा। तत्क्षण कोटि-कोटि भीषणाकृति राक्षस, सिंह, व्याघ्र, वराह, महिष, चित्रव्याघ्र तथा मृगगण प्रादुर्भूत होकर घटोत्कच के भक्षणार्थ दौड़ पड़े। उसे देखकर भीमनन्दन घटोत्कच ने हंसते हुए कनिष्ठा उंगली एवं अंगूठे के नख को बजाया। तब उसी प्रकार के राक्षसादि दूनी संख्या में निकले तथा उन्होंने मुरुपुत्री के राक्षसों को समाप्त कर दिया। अपनी शक्ति को व्यर्थ जाते देखकर उस कामकटंकटा ने अपने बल का प्रयोग करने का उद्यम करना चाहा, परन्तु भीमनन्दन ने उसके मन्तव्य को जानकर इससे पहले कि कामकटंकटा खड्ग उठाती, घटोत्कच ने वेगपूर्वक बायें हाथों से उसके बालों को पकड़ा तथा खींचते हुए उसे पृथिवी पर पटक कर बायें पैरों से उसे दबा दिया तथा दाहिने हाथ में छूरी लेकर उसकी नाक काटने को उद्यत हो गये। जब उस मुरुपुत्री के पास कोई सामर्थ्य नहीं बचा, तब वह केवल अंग-प्रत्यंग ही हिलाने लायक रह गई थी। उस अवस्था में उसने घटोत्कच से कहा—''हे नाथ! प्रश्न, शक्ति, बल—इन तीनों द्वारा आपने मुझे जीत लिया है। अब मैं आपकी दासी हो गयी। आपको प्रणाम। मुझे मुक्त करिये। जो इच्छा हो, आदेश प्रदान करें। उसका मैं पालन करूंगी''।।३६-४५।।

घटोत्कच उवाच

यद्येवं तर्हि मुक्ताऽसि भूयोदर्शय यद्बलम्। एवमुक्त्वामुमोचैनांमुक्ताचाहप्रणम्यसा॥४६॥
जानामि त्वां महाबाहोवीरंशक्तिमतास्वरम्। सर्वराक्षसभर्तारं त्रैलोक्येऽमितविक्रमम्॥४७॥

गुह्यकाधिपतिस्त्वं हि कालनाभ इति स्मृतः। षष्टिकोटिपतिर्जातो यक्षरक्षाकृतेभुवि॥४८॥
इति मां प्राहकामाख्या सर्वं तत्संस्मराम्यहम्। इदं गेहं सानुगंमेदत्तंमयाऽऽत्मनातव।
समादिश प्राणनाथ! कमादेशं करोमि ते॥४९॥

घटोत्कच कहता है—यदि यह बात है, तब मैंने तुमको मुक्त किया। अब तुम पुनः बल दिखलाओ। यह कहकर घटोत्कच ने उसे छोड़ दिया। तब वह घटोत्कच को प्रणामोपरान्त कहने लगी—"हे महाबाहो! वीर! मैं आपको जानती हूं। आप शक्तिमानों में अग्रगण्य, समस्त राक्षसों के स्वामी, ६० करोड़ राक्षसों के स्वामी मुह्यकराज कालनाभ हैं। आप यक्षों की रक्षा हेतु पृथिवी पर जन्मे हैं। कामाख्या देवी ने मुझे यह सब बतलाया था। यह मुझे याद है। मैंने अपनी आत्मा तथा सभी परिचारकों के साथ इस भवन को आपको दिया। हे प्राणनाथ! आदेश करिये। आपके किस आदेश का पालन करूं?"।।४६-४९।।

घटोत्कच उवाच

प्रच्छन्नस्तस्य घटते न विवाहः कथञ्चन॥५०॥
मौर्वि! यस्य हि वर्तन्ते पितरौ बान्धवास्तथा। तन्मांशीघ्रंवहशुभेशक्रप्रस्थायसम्प्रति॥५१॥
अयंकुलक्रमोऽस्माकंयद्भार्यापतिमुद्वहेत्। तत्रानुज्ञांसमासाद्य परिणेष्यामि त्वामहम्॥५२॥

घटोत्कच कहता है—"हे मुरुपुत्री! जिसके माता-पिता, बन्धुगण विद्यमान हैं, उसके लिए गोपन रूप से विवाह करना कदापि संभव नहीं है। अतः शुभे! अब तुम मुझे इन्द्रप्रस्थ ले चलो। हमलोगों का यही कुलाचार है कि पत्नी ही पति को ले जाती है। वहां जाकर गुरुगण की अनुमति लेकर तुमसे विवाह करूंगा"।।५०-५२।।

भगदत्तमथो नाथं ततो मौर्वीन्यवेदयत्। समादाय बहुद्रव्यं विससर्जाऽथभ्रातरम्॥५३॥
ततः पृष्टिं समारोप्य घटोत्कचमनिन्दिता। नाना द्रव्यपरीवारा शक्रप्रस्थं समाव्रजत्॥५४॥
ततौऽसौ वासुदेवेन पाण्डवैश्चाऽभिनन्दितः। शुभेलग्नेपाणिमस्याजगृहेभीमनन्दनः॥५५॥
कुरूणां राक्षसानां च प्रोक्तोत्तमविधानतः। उद्वाह्य तां तद्धनैश्च तर्पयामास पाण्डवान्॥५६॥
कुन्ती च द्रौपदी चोभे मुमुदाते नितान्ततः। मङ्गलान्यस्यचक्राते मौर्व्याश्चधनतर्पिते॥५७॥
ततो विवाहे निर्वृत्तेप्रतिपूज्यघटोत्कचम्। भार्यायासहितंराजास्वराज्यायसमादिशत्॥५८॥
मौर्व्याऽऽज्ञांशिरसागृह्यहैडम्बिर्भार्ययाऽन्वितः। शुभंहिडम्बस्यवनेस्वराज्यंसमुपाव्रजत्॥५९॥
ततो राक्षसयोषाभिर्वीरकांस्यैः प्रवर्धितः। महोत्सवेन महता स्वराज्ये प्रमुमोद सः॥६०॥
ततो वनेषु चित्रेषु निम्नगापुलिनेषु च। रेमे सह तया भैमिर्मन्दोदर्येव रावणः॥६१॥

तदनन्तर मुरुपुत्री ने अपने अभिभावक भ्राता भगदत्त को समस्त वृत्तान्त बतलाया तथा भगदत्त ने उसको नाना द्रव्य तथा वस्तु देकर विदा किया। तब अनिन्दिता मुरुपुत्री उस विविध द्रव्य सम्भार के साथ घटोत्कच को पीठ पर बैठा कर इन्द्रप्रस्थ गयी। घटोत्कच वहां जाकर वासुदेव तथा पाण्डवगण से अभिनन्दित हुआ। तदनन्तर शुभ लग्न में कुरु तथा राक्षस वंश के विवाह विधान द्वारा मुरुकन्या का पाणिग्रहण हुआ। धन द्वारा पाण्डवों का तृप्ति विधान किया गया। इस सम्बन्ध से कुन्ती तथा द्रौपदी को अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। राजा युधिष्ठिर ने

विवाहकृत्य सम्पन्न होनेपर घटोत्कच को उसकी पत्नी के साथ अभिनन्दन करके राज्य में जाने की अनुमति प्रदान किया। घटोत्कच भी राजाज्ञा को शिरोधार्य करके पत्नी मुरुनन्दिनी के साथ अपने राज्य हिडिम्बवन गये। राज्य में उपस्थित होते ही राक्षसपत्नियों ने वीरकांस्य वादन करते हुए महामहोत्सव के साथ उनकी संवर्द्धना किया। वे अति प्रसन्नता के साथ वहां वैसे ही निवास करने लगे जैसे मन्दोदरी के साथ रावण निवास करता था। वह घटोत्कच विविध नदी-वन-पुलिनादि में मुरुनन्दिनी के साथ विहार करने लगा।।५३-६१।।

एवं विक्रीडतस्तस्य गर्भो जज्ञे महाद्युतेः। हेडम्बैराक्षसव्याघ्राद्बालसूर्यसमप्रभः॥६२॥
स जातमात्रो ववृधे क्षणाद्यौवनगोऽभवत्। नीलमेघचयप्रख्यो घटास्यो दीर्घलोचनः॥६३॥
ऊर्ध्वकेशश्चोर्ध्वरोमा पितरौप्रणतोऽब्रवीत्। प्रणमामि युवांचोभौजातस्यपितरौगुरू॥६४॥
भवतोर्हिप्रियंकृत्वाअनृणःस्यांसदाह्यहम्। भवद्भ्यांदत्तमिच्छामिअभिधानंयथात्मनः॥६५॥
अतः परं तु यच्छ्रेयः कर्तव्यंप्रोन्नतिप्रदम्। ततो भैमिस्तमालिङ्ग्य पुत्रं वचनमब्रवीत्॥६६॥

महाद्युति मुरुपुत्री कामकटंकटा इस प्रकार से राक्षसप्रवर घटोत्कच के साथ विहार करती थी। वह कालक्रमेण गर्भवती हो गयी। नवरविसमप्रभ वह गर्भ भूमिष्ट होते ही क्षणमात्र में वृद्धि प्राप्त करके यौवन को प्राप्त हो गया। नीलमेघवत् उस सन्तान का मुखमण्डल घट के समान था तथा दोनों नेत्र बड़े थे। वह खड़े बालों वाला तथा खड़े रोम वाला था। इस पुत्र ने माता-पिता को प्रणाम करके कहा—"मैं आपदोनों को प्रणाम करता हूं। सन्तान हेतु माता-पिता ही गुरु हैं। अतः मैं सदा आपका प्रिय करके ऋणमुक्त हो जाऊंगा। मेरी इच्छा है कि आपलोग मुझे कोई नाम प्रदान करिये। तदनन्तर जिससे उन्नति तथा प्रकृत मंगल साधित होगा, मैं वही करूंगा।" यह सुनकर घटोत्कच ने अपने पुत्र का आलिंगन करके कहा।।६२-६६।।

बर्बराकारकेशत्वाद्बर्बरीकाभिधोभवान्। भविष्यतिमहाबाहो! कुलस्याऽऽनन्दवर्धनः॥६७॥
श्रेयश्च ते यत्परमं दृढं च तत्कीर्यते बहुधा विप्रमुख्यैः।
प्रक्ष्यावहे तद्यदुवंशनाथं गत्वा पुरीं द्वारकां वासुदेवम्॥६८॥

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे बर्बरिकोपाख्याने घटोत्कचस्य मौर्वीसकाशाद्बर्बरीकोत्पत्ति वर्णनं नाम षष्टितमोऽध्यायः।।६०।।

घटोत्कच कहते हैं—हे पुत्र! तुम्हारे केश बर्बराकार हैं, अतः मैं तुम्हारा नाम बर्बरीक रखता हूं। हे महाबाहो! तुम कुलानन्दवर्द्धन करो। जो परम श्रेयः हैं ब्राह्मणगण। उत्तम रूप से उसका ही वर्णन करते हैं। मैं द्वारिकापुरी में जाकर यदुपति वासुदेव से इस सम्बन्ध में प्रश्न करूंगा।।६७-६८।।

।।षष्टितम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

एकषष्टितमोऽध्यायः

महाविद्या साधनार्थ गुप्त क्षेत्र में देव्याराधन का आदेश, गणेश्वर विधि

सूत उवाच

ततो घटोत्कचोमुक्त्वातत्रकामकटङ्कटाम्। पुत्रेणाऽनुगतोधीमान्वियताद्वारकांययौ॥१॥
आगच्छन्तं च तं दृष्ट्वा राक्षसंराक्षानुगम्। द्वारकावासिनो योधाश्चक्रुरत्युल्बणंरवम्॥२॥
ग्रामेग्रामेसुसन्नद्धा नवलक्षमिता रथाः। राक्षसौ द्वौ समायातौपात्येतांविशिखैरिति॥३॥
तान्गृहीतायुधान्दृष्ट्वायदुवीरान्घटोत्कचः। प्रगृह्य विपुलं बाहुं जगौ तारस्वरेण सः॥४॥
राक्षसं वित्त मां वीरा भीमपुत्रंघटोत्कचम्। सुप्रियंवासुदेवस्य प्रणामार्थमुपागतम्॥५॥
निवेदयत मां प्राप्तं यादवेन्द्रायसात्मजम्। इति तस्यवचःश्रुत्वाते कृष्णाय न्यवेदयन्॥६॥

सूतजी कहते हैं—अब धीमान् घटोत्कच ने वहां कामकटंकटा को रखा तथा पुत्र के साथ आकाशमार्ग से द्वारिका गये। द्वारिकावासी सेना ने एक राक्षस के साथ अन्य राक्षस को आते देख कर जोरों से चीत्कार करते हुए कहा कि "ग्राम-ग्राम में सभी सज्जित हो जाओ। दो राक्षस आ रहे हैं। उनको अस्त्राघात से मारो।" घटोत्कच ने यदुवीर लोगों को अस्त्र उठाते देख कर अपनी विशाल बाहु उठाकर ऊंचे स्वर में कहा—"हे वीरगण! मुझे भीमसेन का पुत्र घटोत्कच जानो। मैं वासुदेव का अति प्रिय हूं। उनको प्रणाम करने पुत्र के साथ आया हूं। तुमलोग यादवेन्द्र को इस समाचार से अवगत कराओ।" यह सुनकर उन वीरों ने कृष्ण से यह समाचार कहा।।१-६।।

आह देवः सभास्थश्चशीघ्रमत्राऽऽव्रजत्वसौ। ततः प्रवेशयामासुर्द्वारकांतेघटोत्कचम्॥७॥
सपुत्रः सोऽपिरम्याणिवनान्युपवनानिच। क्रीडाशैलांश्चहर्म्याणिसम्पश्यन्नागतःसभाम्॥८॥
स तत्र उग्रसेनं च वसुदेवं च सात्यकिम्। अक्रूररामप्रमुखान्ववन्दे कृष्णमेव च॥९॥
तं पादयोर्निपतितं समालिङ्ग्य सहाऽऽत्मजम्। साशिषं स्वसमीपस्थमुपवेश्येदमब्रवीत्॥१०॥
पुत्र! राक्षसशार्दूल! कुरूणां कुलवर्धन!। कुशलं सर्वतः कच्चित्किमर्थस्ते समागमः॥११॥

तब श्रीकृष्ण सभा में थे। उन्होंने वीरों से कहा—"शीघ्र उसे यहां लाओ।" वे वीर बाहर गये तथा घटोत्कच को द्वारिका में प्रवेश कराया। घटोत्कच ने पुत्र के साथ वहां के रम्य वन-उपवन, हर्म्य आदि का तथा क्रीड़ास्थल आदि का अवलोकन करते-करते सभा में प्रवेश किया। सभा में उसने उग्रसेन, वसुदेव, सात्यकि, अक्रूर, बलराम आदि का तथा श्रीकृष्ण का अभिवादन किया। तब श्रीकृष्ण ने अपने चरणों पर गिरे सपुत्र घटोत्कच को उठाया तथा आलिंगन करते हुए आशीर्वाद दिया। उसे अपने समीप बैठा कर श्रीकृष्ण कहने लगे—"हे पुत्र! राक्षसशार्दूल! तुम कुशल तो हो? तुम यहां किस कार्य से आये हो?।।७-११।।

घटोत्कच उवाच

देव युष्मत्प्रसादेन सर्वतः कुशलं मम। श्रूयतां कारणं स्वामिन्यदर्थमहमागतः॥१२॥

देवोपदिष्टभार्यायां जातोऽयं तनयो मम। सचप्रश्नंवक्ष्यति त्वां श्रूयतामागतस्त्वतः॥१३॥

घटोत्कच कहता है—हे देव! आपकी कृपा से मैं सर्व विषयों में कुशल हूं। मेरे आने का कारण सुनें। आप द्वारा प्रदत्त भार्या से मेरा यह पुत्र जन्मा है। यह पुत्र आपसे एक जिज्ञासा करना चाहता है। इसी कारण से हम यहां आये हैं।।१२-१३।।

श्रीकृष्ण उवाच

वत्स! मौर्वेय ब्रूहि त्वंसर्वंपृच्छयदिच्छसि। यथा घटोत्कचोमह्यंसुप्रियश्च तथाभवान्॥१४॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे पुत्र मौर्वेय! तुम्हारी जो इच्छा हो, सब पूछ सकते हो। घटोत्कच जैसे मुझे प्रिय है, उसी प्रकार तुम भी हो।।१४।।

बर्बरीक उवाच

प्रणम्यत्वामादिदेवंमनोबुद्धिसमाधिभिः। प्रक्ष्यामिकेनश्रेयःस्याज्जन्तोर्जातस्यमाधव!॥१५॥
केचिच्छ्रेयो धर्ममाहुरैश्वर्यंत्यागभोजनम्। केचिद्दमं तपो द्रव्यं भोगान्मुक्तिञ्च केचन॥१६॥
तदेवं शतसंख्येषु श्रेयस्सु पुरुषोत्तम!। मम चैव कुलस्याऽस्य श्रेयो यद्ब्रूहिनिश्चितम्॥१७॥

बर्बरीक कहता है—हे माधव! आप आदिदेव हैं। मैं आपको बुद्धिमान, समाहित करके प्रणाम करता हूं। मेरी यह जिज्ञासा है कि जीवगण को श्रेयः प्राप्ति हो! कोई धर्म को, कोई ऐश्वर्य, कोई दान को, कोई भोजन को, कोई दम को, कोई तप को, कोई द्रव्य को, कोई भोग को, कोई मुक्ति को श्रेयः कहता है। हे पुरुषोत्तम! श्रेयः के सम्बन्ध में ऐसे सैकड़ों मतभेद हैं, अतः मेरे तथा मेरे कुल हेतु जो श्रेयः साधन है, वह निश्चय करके कहें।।१५-१७।।

श्रीकृष्ण उवाच

वत्स पृथक्पृथक्प्रोक्तं वर्णानां श्रेय उत्तमम्। ब्राह्मणानां तपोमूलं दमोऽध्ययनमेवच॥१८॥
धर्मप्रकटनं चाऽपि श्रेय उक्तं मनीषिभिः। बलंसाध्यं पूर्वमेव क्षत्रियाणां प्रकीर्तितम्॥१९॥
दुष्टानां शासनं चाऽपि साधूनां परिपालनम्। पाशुपाल्यंचवैश्यानां कृषिर्विज्ञानमेवच॥२०॥
शूद्रस्यद्विजशुश्रूषातयाजीवन्वणिग्भवेत्। शिल्पैर्वा विविधैर्जीवेद्द्विजातिहितमाचरन्॥२१॥
भार्यारतिर्भृत्यपोष्टा शुचिः श्रद्धापरायणः। नमस्कारेण मन्त्रेण पञ्चयज्ञान्न हापयेत्॥२२॥
तद्भवान्क्षत्रियकुले जातोऽसि कुरु तच्छृणु। बलं साधय पूर्वं त्वमतुलं तेन शिक्षय॥२३॥
दुष्टान्पालय साधूंश्च स्वर्गमेवमवाप्स्यसि। बलं च लभ्यते पुत्र! देवीनां सुप्रसादतः॥२४॥
तद्भवान्बलप्राप्त्यर्थं देव्याराधनमाचर॥२५॥

श्रीकृष्णजी कहते हैं—हे भद्र! चारों वर्णों के श्रेयः का साधन पृथक् रूप से कहा गया है। ब्राह्मणों के लिये तप, दम, वेदाध्ययन तथा धर्मप्रचार ये सभी श्रेयःसाधन मनीषीगण ने कहे हैं। क्षत्रियों हेतु बलसाध्य कार्य, दुष्ट दमन तथा साधु प्रतिपालन को सुधीगण ने निर्दिष्ट किया है। वैश्यों हेतु पशुपालन, कृषि कर्म, विज्ञान का अभ्यास तथा शूद्रों हेतु द्विजों की सेवा, वाणिज्य तथा ऐसे विविध शिल्प, जिससे द्विजों का हित हो जीविका हेतु

कहा गया है। स्वपत्नी में रत, भृत्यपालक, पवित्र तथा श्रद्धालु होकर नमस्कार मन्त्र से पञ्चयज्ञ सम्पादित करे। परन्तु कभी भी इसमें बाधा न पहुंचाये। तुम क्षत्रिय कुल में जन्मे हो, अतः सर्वप्रथम अतुल बल प्राप्त करो। इस बल की सहायता से दुष्टों पर शासन तथा साधुपालन करो। इससे स्वर्ग प्राप्ति होगी। हे पुत्र! देवीगण की कृपा से ही अतुल बल मिलता है। अतः तुम बललाभार्थ देवी की आराधना करो।।१८-२५।।

बर्बरीक उवाच

कस्मिन्क्षेत्रे च कां देवीं कथमाराधयाम्यहम्। एतत्प्रसादप्रवणं मनः कृत्वा निवेदय॥२६॥

बर्बरीक कहता है—मैं कहां तथा किस विधान से देवी की आराधना करूं। आप यह उपदेश प्रसन्न चित्त से कहिये।।२६।।

सूत उवाच

इति पृष्टः क्षणं ध्यात्वाप्राहदामोदरोविभुः। वत्स! क्षेत्रंप्रवक्ष्यामियत्रतप्स्यसितत्तपः।
गुप्तक्षेत्रमिति ख्यातं महीसागरसङ्गमे॥२७॥
तत्र त्रिभुवने याश्च सन्ति देव्यः पृथग्विधाः। नारदेनसमानीतास्ताश्चैक्यंसुमहात्मना॥२८॥
चतस्रस्तस्य दिग्देव्यो नवदुर्गाश्च सन्ति याः। समाधाराय ता गत्वा तासामैक्यं हि दुर्लभम्॥२९॥
नित्यं पूजय ताः पुत्र! पुष्पधूपविलेपनैः। स्तुतिभिश्चोपहारैश्च यथा तुष्यन्ति तास्तव॥३०॥
तुष्टासु देवीषु बलं धनञ्च कीर्तिश्च पुत्राः सुभगाश्च दाराः।
स्वर्गस्तथा मुक्तिपदं च सत्सुखं न दुर्लभं सत्यमेतत्तवोक्तम्॥३१॥

सूतजी कहते हैं—विभु दामोदर प्रभु ने तब क्षणकाल ध्यानोपरान्त कहा—वत्स! जहां तुम तप करोगे, मैं वहां का वर्णन करता हूं। वह महीसागरसंगम तीर्थ गुप्तक्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध है। त्रिभुवन में पृथक्-पृथक् जितनी देवियां हैं, महात्मा देवर्षि नारद ने उन सबको वहां एकत्र किया है। वहां जो चार दिग्देवी तथा नवदुर्गा स्थित हैं, तुम जाकर उनकी आराधना करो। इनका एक जगह मिलना दुर्लभ है। हे पुत्र! तुम नित्य पुष्प-धूप-अनुलेपन से उनकी पूजा करो। वे उपहार प्रदान तथा स्वस्तिवाचन से सन्तुष्ट होती हैं। वे सन्तुष्ट होकर तुमको बल, धन, कीर्ति, पुत्र, अनुकूला पत्नी, स्वर्ग किंवा सदानन्दमयी मुक्ति प्रदान करेंगी। उनके द्वारा कुछ दिया जाना असंभव नहीं है। मैं तुमसे यथार्थ कहता हूं।।२७-३१।।

सूत उवाच

एवमुक्त्वा बर्बरीकं कृष्णः प्राह घटोत्कचम्। घटोत्कचार्य! पुत्रस्ते दृढं सुहृदयोह्यसौ॥३२॥
तस्मात्सुहृदयेत्येवंदत्तंनाम मया द्विकम्। एवमुक्त्वासमालिङ्ग्यसन्तर्प्यविविधैर्धनैः॥३३॥
गुप्तक्षेत्राय भगवान्बर्बरीकं समादिशत्। सोऽथ कृष्णं नमस्कृत्यपितरंयादवांश्चतान्॥३४॥
अनुज्ञाप्य च तान्सर्वान्गुप्तक्षेत्रं समाव्रजत्। घटोत्कचोऽपिकृष्णेनविसृष्टःस्ववनंययौ॥३५॥
स्मरन्पुत्रगुणान्पत्न्या स्वराज्यं समपालयत्। ततः सुहृदयो धीमान्दग्धस्थल्यां कृताश्रमः॥३६॥

सूतजी कहते हैं—श्रीकृष्ण ने बर्बरीक से यह कहकर घटोत्कच से कहा—"तुम्हारा यह पुत्र अत्यन्त साधु

चित्त वाला है। अतः मैं इसको सुहृद् नाम प्रदान करता हूं। यह इसका द्वितीय नाम होगा।'' भगवान् कृष्ण ने यह कहकर बर्बरीक का आलिंगन किया तथा उसे धनादि देकर सन्तुष्ट किया तथा गुप्तक्षेत्र में जाने की अनुमति भी प्रदान किया। बर्बरीक ने कृष्ण, अपने पिता तथा वहां उपस्थित यादवगण को प्रणाम किया तथा सबकी अनुमति लेकर उसने गुप्तक्षेत्र प्रस्थान किया। तब घटोत्कच ने भी कृष्ण से विदा लिया तथा अपने वन को प्रस्थान किया। वह वहां पुत्र के गुणों को स्मरण करता अपने राज्य का पालन करने लगा। तब उस सुहृद नामक बर्बरीक ने गुप्तक्षेत्र जाकर दग्धस्थली में आश्रम बनाया।।३२-३६।।

त्रिकालं पूजयामास देवीः कर्मसमाधिभिः। नित्यं पुष्पैश्च धूपैश्च उपहारैःपृथग्विधैः॥३७॥
तस्याऽऽराधयतो देव्यस्तुतुषुर्हायनैस्त्रिभिः। ततः प्रत्यक्षतो भूत्वाबलात्तस्यमहात्मनः॥३८॥
बलं यत्त्रिषुलोकेषु कस्यचिन्नास्तिदुर्लभम्। ऊचुश्चकञ्चित्कालंत्वंवसाऽत्रैवमहाद्युते॥३९॥
सङ्गत्या विजयस्व त्वं भूयः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि। इत्युक्तः सर्वदेवीभिः स तत्रैव व्यवस्थितः॥४०॥
आजगामाऽथविजयोनाम्नामागधब्राह्मणः। ससर्वांपृथिवींकृत्वापादाक्रान्तांद्विजोत्तमः॥४१॥
काश्यां विद्याबलं प्राप्य साधनार्थमुपाययौ। गुहेश्वरमुखान्येष सप्तलिङ्गान्यपूजयत्॥४२॥

वह वहां कर्मसमाधि द्वारा देवी की त्रिकाल पूजा करता था। वह पुष्प-धूप तथा विविध उपचारों द्वारा देवियों की आराधना करने लगा। इस प्रकार तीन वर्ष आराधना करने पर वे देवीगण उसके प्रति प्रसन्न हो गयीं तथा बर्बरीक को अपना दर्शन दिया। उन्होंने बर्बरीक को त्रिलोक दुर्लभ असामान्य बल प्रदान किया। देवीगण ने उससे यह भी कहा कि ''हे महाद्युति बर्बरीक! तुम कुछ समय यहीं प्रतीक्षा करो। तुम्हारा मिलन विजय से होगा, इससे तुम्हारा और भी मंगल होगा।'' देवीगण का कथन सुनकर बर्बरीक वहीं पर प्रतीक्षा करने लगा। तब वहां विजय नामक मगध निवासी ब्राह्मण पहुंचा। उस ब्राह्मण श्रेष्ठ ने पैदल ही समस्त महीमण्डल का भ्रमण किया था तथा काशी में उसने साधना सम्बन्धित विशेष विद्या भी प्राप्त किया था। सम्प्रति साधनार्थ गुप्त क्षेत्र आया था। उसने गुहेश्वरादि प्रमुख सात लिंगों की दीर्घकाल तक पूजा किया था।।३७-४२।।

आराधयामास चिरंदेवीविंद्याफलाप्तते। ततस्तुष्टास्तस्य देव्यः स्वप्ने प्रोचुरिदंवचः॥४३॥
विद्यांसाधय त्वंसाधोसिद्धमातुः पुरोऽङ्गणे। अयं भक्तः सुहृदयः साहाय्यंते करिष्यति॥४४॥
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा विजयः स्वप्नमध्यतः। उत्थाय गत्वा देव्यास्तं वव्रे भीमात्मजात्मजम्॥४५॥
सोऽपिदेवीवचःश्रुत्वामेनेसाहाय्यकारणम्। ततः कृष्णचतुर्दश्यामुपोष्यविजयःशुचिः॥४६॥
स्नात्वाऽभ्यर्च्यैव लिङ्गानि देवीश्चैवाऽर्चयत्पृथक्।
कृत्वा स्नानमुपोष्यैव बर्बरीकोऽन्तिकेऽभवत्॥४७॥

इधर उसने विद्यालाभार्थ दीर्घकाल तक देवीगण की आराधना किया था। इससे देवियों ने प्रसन्न होकर उसे स्वप्न में आदेश दिया कि ''हे साधु! तुम सिद्धमाता के सामने आंगन में रहकर विद्यासाधना करो। भक्त सुहृद् (बर्बरीक) तुम्हारे साधनकर्म में तुम्हारे सहायक होंगे।'' विजय यह सुनकर उसी साधनावस्था में ही उठा तथा देवी के समीप जाकर बर्बरीक का साधना में सहायतार्थ वरण किया। बर्बरीक ने विजय से देवी का यह आदेश सुना तथा सहायता हेतु उत्साह के साथ प्रवृत्त हो गया। तदनन्तर कृष्णपक्षीय चतुर्दशी तिथि के दिन विजय ने उपवासी

रहकर समस्त लिंगों की देवीगण की अर्चना किया। बर्बरीक भी उपवासी रहा तथा उसने स्नान करके विजय के साथ पूजा में भाग लिया।।४३-४७।।

प्रथमायां ततो रात्रौययौसिद्धाम्बिकापुरः। मण्डलं तत्र कृत्वाच भगाकारं करान्नव॥४८॥
अष्टदिक्ष्वष्टकीलांश्च निखन्यैव ससूत्रकान्। कृष्णाजिनधरो भूत्वा बर्बरीकसमन्वितः॥४९॥
शिखामाबद्ध्यदिःबन्धंकृत्वारेभेततोविधिम्। मध्येमण्डलस्याऽऽपिकुण्डेशुभ्रेत्रिमेखले॥५०॥
समर्प्यच ततः खड्गं खादिरंमन्त्रतेजितम्। संस्थाप्यकीलानभितोबर्बरीकमथाऽब्रवीत्॥५१॥
शुचिर्विनिद्रः सन्तिष्ठ स्तवं देव्याः समुद्गिरन्। यावत्कर्म करोम्येष यथा विघ्नं न जायते॥५२॥
इत्युक्ते संस्थिते तत्र बर्बरीके महाबले। विजयः शोषणं दाहं प्लावनं कृतवान्यमी॥५३॥
ततः सुखासनो भूत्वा गुङ्गुरुभ्यो नमः इति। मन्त्रमष्टोत्तरशतंजप्त्वागुरुभ्यःप्रणम्यच।
ततो गणेश्वरविधानमारब्धवान्॥५४॥

उन दोनों ने रात्रि में सिद्ध विद्या के समक्ष जाकर वहां ९ हाथ का भगकार एक मण्डल बनाया। वहां समसूत्र से आठों दिशाओं में अभिमन्त्रित आठ कीलक गाड़ा। दोनों ने कृष्ण मृगचर्म धारण किया तथा शिखा-बन्धन तथा दिग्बन्धन किया। तदनन्तर मण्डलान्तर्गत मेखलात्रय युक्त शुभ्रकुण्ड में मन्त्रपूत खड्ग को स्थापित करके उसके चारों ओर खदिर काष्ठ के कीलक गाड़कर विजय ने बर्बरीक से कहा—"मैं जबतक कर्मानुष्ठान करता हूं, तुम तबतक पवित्रभाव से देवी का पाठ करते जागते रहना, जिससे मेरे प्रति कोई विघ्न घटित न हो सके।" इस वाक्य के अनुसार महाबली बर्बरीक रक्षाकार्य में नियुक्त हो गया, तबतक संयतात्मा विजय ने भूतशुद्धि हेतु देह का शोधन, दहन (मन्त्र से भावनात्मक 'रं' बीज जाप से दहने), आप्लावनादि कर्म सम्पन्न किया। तदनन्तर उसने सुखासन में बैठकर "ॐ गुं गुरुभ्यो नमः" मन्त्र का १०८ बार जप करके गुरु प्रणाम किया। तदनन्तर उसने गणेश्वर विधान प्रारम्भ कर दिया।।४८-५४।।

अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रं गणपतेः परम्॥५५॥
सर्वकार्यकरं स्वल्पं महार्थं सर्वसिद्धिदम्॥५६॥

ॐ गांगींगूंगैंगौंगः सप्ताक्षरोऽयं महामन्त्रः। ॐगणपतिमन्त्रस्य गणको नाम ऋषिः विघ्नेश्वरो देवता गं बीजम् ॐशक्तिः पूजार्थे जपार्थे वा तिलकार्थे वा मनस ईप्सितार्थे होमार्थे वा विनियोग इति। साधकस्य पूर्वं तिलककरणम्।

ॐगां गणपतये नमः। इति तिलकस्योपरि अक्षतान्दद्यात् अनेन मन्त्रेण। ॐ गां गणपतये नमः। इति तिलकमन्त्रः। ॐगां गणपतये नमः। अनेन मन्त्रेण गणेशाय पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यात्। मूलमन्त्रेणाऽत्रचन्दनगन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यपूगीफल ताम्बूलादिकं दद्यात्। अत ऊर्ध्वं मूलमन्त्रेण जपं कुर्यात्। अष्टोत्तरशतं सहस्त्रं लक्षं कोटिं चेति यथाशक्ति जप्त्वा दशांशहोमार्थेगणेशाग्नये आवाहयामीति अग्निमावाह्य। ॐ गां गणपतये स्वाहेति मन्त्रेण गुग्गुलगुटिकाभिर्होमं विदध्याद्विनियोगं चेति गाणेश्वरो महाकल्पः।

य एवं सर्वविघ्नेषुसाधयेन्मन्त्रमुत्तमम्। सर्वविघ्नानिनश्यन्तिमनोऽभीष्टंच सिध्यति॥५७॥
डाकिन्यो यातुधानाश्च प्रेताद्याश्च भयङ्करः। शत्रूणां जायते नाशोवशीकरणमेव च॥५८॥

इमं गाणेश्वरं कल्पं विजानन्विजयोऽपि च।
तिलकं विधिना कृत्वा जप्त्वा चाऽष्टोत्तरं शतम्॥५९॥
दशांशं गुटिकाहुत्वा पूज्य सिद्धिविनायकम्।
सिद्धेयक्षेत्रपालस्य चक्रेपूजांततोनिशि॥६०॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे महाविद्यासाधने गणेश्वरकल्पवर्णनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः॥६१॥

अब मैं गणपति का सर्वकार्य साधक मन्त्र कहता हूं। "ॐ गां गीं गूं गैं गौं गः" यह सप्ताक्षर मन्त्र ही महामन्त्र है। इस गणपति मन्त्र के ऋषि हैं गणक, देवता हैं विघ्नेश्वर, बीज है गं, शक्ति है ॐ, पूजा, जप, तिलक, होम किंवा वांछित लाभार्थ इसका विनियोग (प्रयोग) विहित है। साधक सर्वाग्र में—

ॐ गां गणपतये नमः से तिलक लगाये।
ॐ गां गणपतये नमः से तिलक पर अक्षत लगाये।
ॐ गां गणपतये नमः से ही ३ पुष्पांजलि प्रदान करे।

पूर्वोक्त सप्ताक्षर मन्त्र ही मूल मन्त्र है। उससे चन्दन, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, सुपारी तथा ताम्बूलादि प्रदान करे। तत्पश्चात् मूलमन्त्र का यथाशक्ति १०८, १०००, एक लाख अथवा एक करोड़ जप करना चाहिये। तत्पश्चात् जप का $\frac{१}{१०}$ संख्यक होम करने के लिए "गणेशाग्नये आवाहयामि" कह कर गणेशाग्नि का आवाहन करे तथा "गां गणपतये स्वाहा" मन्त्र से गुग्गुलु गुटिका द्वारा होम करे। यही गणपति महाकल्प है। इस प्रणाली से मन्त्रसाधन द्वारा समस्त विघ्न दूरीभूत हो जाते हैं। साधक को समस्त वांछित प्राप्त हो जाता है। डाकिनी, राक्षस, प्रेतादि, भयंकर देवयोनि उसके पास नहीं आते। उसके शत्रु नष्ट हो जाते हैं। सभी उसके वशीभूत हो जाते हैं। विजय गणेश्वर कल्प का ज्ञाता था। उसने यथाविधि तिलक लगाकर १०८ जप के अन्त में दशांश गुटिका होम किया तथा उसने सिद्धिविनायक की पूजा करके तब रात में उस सिद्धेय क्षेत्र में क्षेत्रपाल पूजा भी किया॥५५-६०॥

॥एकषष्टितम अध्याय समाप्त॥

द्विषष्टितमोऽध्यायः

क्षेत्रपाल पूजा, महाविद्यासाधन, रुद्राविर्भाव, कालिकाविर्भाव वर्णन

शौनक उवाच

सूत! श्रुत्वा पुराऽस्माभिरुत्पत्तिर्गणपस्य च। क्षेत्रनाथः कथं जज्ञेवदैतच्छृण्वतांहिनः॥१॥

शौनक कहते हैं—हे सूतजी! पूर्व में हमने गणपति की उत्पत्ति वार्त्ता सुनी थी। परन्तु उन्होंने किस प्रकार से इस क्षेत्र का आधिपत्य लाभ किया, वह हमलोगों से कहिये।।१।।

सूत उवाच

यदा दारुकदैत्येन पीड्यमाना दिवौकसः। शिवं देव्या सहासीनंप्रणिपत्येदमब्रुवन्॥२॥
देव दैत्येन घोरेणदुर्जयेनसुरासुरैः। पीडिता दारुकेणस्मःस्वस्थानाच्चापिच्यावितः॥३॥
न विष्णुना न चन्द्रेण न चाऽन्येनाऽपि केनचित्।
शक्यो हन्तुं स दुष्टात्मा अर्धनारीश्वरं विना॥४॥
तेन सम्पीड्यमानानामस्माकं शरणं भव। इत्युक्त्वारुरुदुर्देवास्त्राहित्राहीतिचाऽब्रुवन्॥५॥

सूत जी कहते हैं—जब दारुक दैत्य देवगण को पीड़ित कर रहा था, तब एक बार देवगण ने देवी के साथ समासीन महेश्वर को प्रणाम करके कहा—हे देव! दारुक दैत्य हम सब को अत्यन्त पीड़ित कर रहा है। वह दुर्जय घोर दानव है। सुर-असुर से अजेय है। उसके द्वारा हमें अपने-अपने अधिकार से च्युत कर दिया गया है। उस दुष्टात्मा को आपकी अर्द्धनारीश्वर मूर्त्ति के अतिरिक्त विष्णु-इन्द्र आदि प्रमुख देवताओं में से कोई भी जीत सकने में समर्थ नहीं है। हम उसके द्वारा अत्यन्त पीड़ित हो रहे हैं। आप हमलोगों के आश्रय हो जायें। हमारी रक्षा करें! रक्षा करें! यह कहकर देवता रोने लगे।।२-५।।

ततोऽतिकृपयाविष्टहरकण्ठस्य कालिमाम्। गृहीत्वा पार्वतीचक्रेनारीमेकांमहाभयाम्॥६॥
आत्मशक्तिं तत्र मुक्त्वा प्रोवाचेदं वचः शुभा।
यस्मादतीव कालाऽसि नाम्नः त्वं कालिका भव॥७॥
देवारिं च दुरात्मानं शीघ्रं नाशय शोभने। एवमुक्ता महारावा कालिका प्राप्यतंतदा॥८॥
रवेणैव मृतं चक्रे सानुगं स्फुटितहृदम्। ततोवन्तीश्मशानस्था महारावानमुञ्चत॥९॥
यरासन्विकला लोकास्त्रयोऽपि प्रमृता यथा। ततो रुद्रोबालरूपंकृत्वाविश्वकृतेविभुः॥१०॥
रुदंस्तस्याः समीपे चाप्यागताःप्रेतसद्मनि। रुदन्तं च ततोबालंकृत्वोत्सङ्गेकृपान्विता॥११॥
कालिकाऽपाययत्स्तन्यं मा रुदेति प्रजल्पती। स्तन्यव्याजेन बालोऽपि पपौ क्रोधं तदङ्गजम्॥१२॥

तब भगवान् शंकर अमरगण के प्रति करुणापरवश हो गये। कल्याणकारिणी पार्वती देवी ने शंकर के

कण्ठ की कालिमा लेकर एक भयंकर नारी का निर्माण किया। उसमें देवी ने अपनी आत्मशक्ति स्थापित करके उससे कहा—"हे शोभने! तुम अतीव कृष्णवर्णा हो, अतः तुम्हारा नाम होगा कालिका। तुम उस दुरात्मा सुरवैरी का नाश करो।" जब कालिका ने यह सुना तब वह भयानक चीत्कार करते-करते दारुक दैत्य के समीप गईं और उन्होंने चीत्कार द्वारा ही उसे उसके अनुचरों के साथ निहत कर दिया। चीत्कार शब्द से उसका हृदय विदीर्ण हो गया। अब वे अवन्ती की श्मशानभूमि में जाकर महान् चीत्कार करने लगीं। इससे समस्त त्रैलोक्यवासी विकलेन्द्रिय तथा मृतप्राय हो गये। किन्तु रुद्र ने जगत् के हित साधनार्थ बालक रूप धारण करके रुदन प्रारम्भ कर दिया, तथा वे रोदन करते-करते उस श्मशान में कालिका देवी के समीप उपस्थित हो गये। कालिका देवी ने कृपापूर्वक उस बालक को गोद में लेकर कहा—"रुदन न करो" तथा वे उसे स्तनपान कराने लगीं। तब बालक रूपी शंकर ने स्तनपान के बहाने उनके देहगत कोप का पान कर लिया!।।६-१२।।

योऽसौहरकण्ठभवविषादासीत्सुदुर्धरः। पीतक्रोधस्वभावेचसौम्यासीत्कालिकातदा।।१३।।
बालोऽपि बालरूपं तत्त्यक्तुमैच्छत्कृतक्रियाः।।१४।।
ततो देवाः कालिकायाः शङ्कमानाःपुनर्भयम्। ऊचुर्मा बाल! बालत्वंपरित्यजकृपांकुरु।।१५।।

शंभू के कण्ठस्थ विष से कालिका देवी का यह दारुण क्रोध उत्पन्न हुआ था। शंकर द्वारा इस क्रोध को पी लिये जाने से कालिकादेवी तब सौम्यभावापन्न हो गयीं। बालकरूपी शिव भी कृतकार्य होकर बालरूप त्यागने की इच्छा करने लगे। देवगण ने यह देखकर कालिका देवी से पुनः भय प्राप्त होने की संभावना से आशंकित होकर कहा—"हे बालक! आप बालकत्व न छोड़ें। हमारे प्रति कृपा करें"।।१३-१५।।

बाल उवाच

न भेत्तव्यं कालिकायाः सौम्या देवी यतः कृता।
अस्ति चेद्भवतां भीतिरन्यान्स्त्रक्ष्यामि बालकान्।
चतुः षष्टिक्षेत्रपालानित्युक्त्वा सोऽसृजन्मुखात्।।१६।।
प्राह तान्बालरूपांश्च बालरूपी महेश्वरः। स्वर्गेषु पञ्चविंशानां पातालेषु च तावताम्।।१७।।
चतुर्दशानां भूर्लोके वासो वः पालनं तथा। अयमेव श्मशानस्थोभविताश्वाचवाहनम्।।१८।।
नैवेद्यं भवतांराजमाषतन्दुलमिश्रकाः। अनभ्यर्च्यचयोयुष्मान्किञ्चित्कृत्यंविधास्यति।।१९।।
तस्य तन्निष्फलं भावि भुक्तं प्रेतैश्चराक्षसैः। इत्युक्त्वाभगवान्रुद्रस्तत्रैवाऽन्तरधीयत।।२०।।
क्षेत्रपालाःस्थिताश्चैवयथास्थानेनिरूपिता। इतिवःक्षेत्रपालानांसृष्टिःप्रोक्ता समासतः।।२१।।
आराधनं प्रवक्ष्यामि येन प्रीता भवन्ति ते।।२२।।

बालक कहता है—"हे देवताओं! आप सब लोग कालिका से भयभीत न हों। मैंने इनको शान्त कर दिया, तथापि इतने पर भी आपको भय हो रहा हो, तब मैं कुछ और बालकों का सृजन करता हूं। वे बालकगण ६४ क्षेत्रों के पालक होंगे।" यह कहकर उन्होंने अपने मुख से ६४ बालकों का सृजन किया। बालक रूपी महेश्वर ने उन ६४ बालकों से कहा—"तुम २५ लोग स्वर्ग में, २५ पाताल में तथा १४ मर्त्यलोक में रहकर उन-उन क्षेत्र का पालन करो। सभी श्मशान में निवास करो। सबका वाहन श्वान होगा। राजमाष मिला तण्डुल तुम सबका

नैवेद्य निश्चित करता हूं। तुमलोगों की अर्चना किये बिना कोई भी जो पूजा कार्य करेगा, वह सब विफल होगा। उसे प्रेत-राक्षसादि देवयोनि वाले भक्षण करेंगे।'' भगवान् रुद्र यह कहकर वहां से अन्तर्हित हो गये। क्षेत्रपालगण भी यथा निरूपित स्थानों में निवास करने लगे। मैंने इस प्रकार से आपलोगों से क्षेत्रपालगण का उत्पत्ति वृत्तान्त संक्षेप में कहा। अब वह आराधना विधि कहता हूं, जिससे वे सब सन्तुष्ट होते हैं।।१६-२२।।

ॐक्षां क्षेत्रपालाय नमः। इति नवाक्षरो महामन्त्रः॥२३॥

अनेनाऽत्र चन्दनादिदत्त्वाराजमाषतण्डुलमिश्रकांश्च चतुः षष्टिकृतभागान्वटकान्निवेद्य।
तावत्यो दीपिकास्तावन्ति पत्राणि पूगानि निवेद्यदण्डवत्प्रणम्यमहास्तुतिमेतांजपेत्॥२४॥

ॐऊर्ध्वकेशा विरूपाक्षा नित्यं ये घोररूपिणः।
रक्तनेत्राश्च पिङ्गाक्षाः क्षेत्रपालान्नमामि तान्॥२५॥

अह्वरो ह्यापकुम्भश्च इडाचारस्तथैव यः। इन्द्रमूर्तिश्च कोलाक्ष उपपाद ऋतुंसनः॥२६॥
सिद्धेयश्चैव वलिको नीलपादेकदंष्ट्रिकः। इरापतिश्चाऽघहारी विघ्नहारी तथाऽन्तकः॥२७॥
ऊर्ध्वपादः कम्बलश्च खञ्जनः खर एव च। गोमुखश्चैव जङ्घालो गणनाथश्च वारणः॥२८॥
जटालोऽप्यजटालश्चनैमिस्वःक्षेत्रपालकान्। ऋकारोहठकारीचटंकपाणिःखणिस्तथा॥२९॥
ठंठंकणो जम्बरश्च स्फुलिङ्गास्यस्तडिद्रुचिः। दन्तुरो घननादश्च नन्दकश्च तथा परः॥३०॥
फेत्कारकारी पञ्चास्यो बर्बरी भीमरूपवान्। भग्नपक्षःकालमेघोयुवानोभास्करस्तथा॥३१॥
रौरवश्चाऽपि लम्बोष्ठो वणिजः सुजटालिकः। सुगन्धो हुहुकश्चैव नौमि पातालरक्षकान्॥३२॥

क्षेत्रपालगण का मूलमन्त्र है—''ॐ क्षां क्षेत्रपालाय नमः।'' यह ९ अक्षर वाला मन्त्र है। इस मन्त्र से चन्दनादि प्रदान करके तब राजमाष मिश्रित नैवेद्य ६४ भागों में बांट कर प्रदान करे। ६४ दीप तथा ६४ ताम्बूल तथा ६४ सुपाड़ी निवेदित करे। तदनन्तर दण्डवत् प्रणामोपरान्त यह स्तव पढ़े। यथा—जो ऊर्ध्वनेत्र, विरूपाक्ष, नित्य घोराकृति तथा रक्तपिंगललोचन हैं, मैं उन क्षेत्रपालगण को प्रणाम करता हूं। अह्वर, आपकुम्भ, इड़ाचार, इन्द्रमूर्त्ति, कोलाक्ष, उपपाद, ऋतुसेन, सिद्धेय, बालक, नीलपाद, एकदंष्ट्री, इड़ापति, अधहारी, विघ्नहारी, अन्तक, ऊर्ध्वपाद, कम्बल, खंजन, खर गोमुख। जज्वाल, गणनाथ, वारण, जटाल, अजटाल, ये स्वर्गीय क्षेत्रपाल हैं। मैं इनको प्रणाम करता हूं। ऋकार, हठकारी, टंकपाणि, खनि, ठंकंकण, जम्वर, स्फुलिंगास्य, तड़िद्रुचि, दन्तुर, घननाद, नन्दक, फेत्कारकारी, पञ्चास्य, बर्बरी, भीमरूप, भग्नपक्ष, कालमेघ, युवान, भास्कर, रौरव, लम्बोष्ठ, वणिज, सुजटालिक, सुगन्ध हुहुक, ये पाताल के क्षेत्रपाल हैं। मैं इनको प्रणाम करता हूं।।२३-३२।।

सर्वलिङ्गेषु हुङ्कारः स्मशानेषु भयावहः। महालक्षो वने घोरे ज्वालाक्षोवसतौस्थितः॥३३॥
एकवृक्षश्च वृक्षेषु करालवदनो निशि। घण्टारवो गुहावासी पद्मखञ्जो जले स्थितः॥३४॥
चत्वरेषु दुरारोहः पर्वते कुरवस्तथा। निर्झरेषु प्रवाहाख्यो माणिभद्रो निधिष्वपि॥३५॥
रसक्षेत्रे रसाध्यक्षो यज्ञवाटेषु कोटनः। चतुर्दश भुवं व्याप्य स्थिताश्चैवंनमामितान्॥३६॥
एवं चतुःषष्टिमिताञ्छरणं यामि क्षेत्रपान्। प्रसीदन्तु प्रसीदन्तु तृप्यन्तु मम पूजया॥३७॥

सर्वलिङ्ग, हुंकार, श्मशानस्थ, भयावह, घोरवनवासी, महालक्ष, वान्तवासी, ज्वालाक्ष, वृक्षवासी, एकवृक्ष, रात्रिविहारी, करालवदन, गुहावासी, घन्टारव, जलवासी, पद्मखड्ग, चत्वरस्थ, दुरारोह, पर्वतस्थ कुवर, निर्वरस्थ प्रवाह, निधिवासी मणिभद्र, रसक्षेत्रस्थ रसाध्यक्ष, कोटन—ये भूतलस्थ क्षेत्रपाल हैं। इनको प्रणाम करता हूं। इन ६४ क्षेत्रपालों की शरण लेता हूं, ये मुझ पर प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। मेरी पूजा से तृप्त हो जायें।।३३-३७।।

सर्वकार्येषु यश्चैवंक्षेत्रपानर्चयेच्छुचिः। क्षेत्रपास्तस्य तुष्यन्ति यच्छन्तिचसमीहितम्।।३८।।
इमं क्षेत्रपकल्पञ्च विजानन्विजयस्तथा। यथोक्तविधिनाऽभ्यर्च्य सिद्धेयं तुष्टुवेचतम्।।३९।।
प्रणम्य च ततो देवीमानर्च वटयक्षिणीम्। पुरा यदा नारदेन कलापग्रामतो द्विजाः।।४०।।
समानीतास्तैश्च साकं सुनन्दा नाम ब्राह्मणी। विधवाऽभ्यागता तत्र तपस्तप्तुंमहीतटे।।४१।।
सा कृच्छ्राणि पराकांश्च अतिकृच्छ्राणि कुर्वती। ज्येष्ठे भाद्रपदे चक्रे सावित्र्या द्वे त्रिरात्रिके।।४२।।

जो मानव पवित्र भाव से सभी कार्यों में विधानपूर्वक इन क्षेत्रपालों की अर्चना करता है, उससे क्षेत्रपाल सन्तुष्ट होते हैं तथा समस्त इच्छित कामना पूर्ण करते हैं। विजय इन क्षेत्रपालों को जानते थे। अतः उन्होंने यथोक्त विधान से वहां क्षेत्रपाल तथा सिद्धेय की अर्चना के पश्चात् उनकी स्तुति तथा प्रणाम किया। तदनन्तर उन्होंने वटयक्षिणी का पूजन किया। पूर्व में जब नारद मुनि कलाप ग्राम से ब्राह्मणों को यहां लाये थे, तब उन ब्राह्मणों के साथ ही सुनन्दा नामक विधवा भी महीतट पर तपस्यार्थ आयी थी। उसने कृच्छ्र, पराक तथा अतिकृच्छ्रादि व्रताचरण सम्पन्न किया था। वह ज्येष्ठ तथा भाद्रमास में सावित्री व्रत करती थीं तथा त्रिरात्रोपवास व्रताचार का भी पालन करती थीं।।३८-४२।।

मासोपवासञ्च तथा कार्तिके कुलनन्दिनी। सप्तलिङ्गानिसम्पूज्यदेवीपूजांसदाव्यधात्।।४३।।
दर्शे स्नानं यथा चक्रे महीसागरसङ्गमे। इत्यादिबहुभिस्तैस्तैर्नित्यं नियमपालनैः।।४४।।
धूतपापा ययौ लोकमुमायाः कृतस्वागता। अंशेन च तटे तस्मिन्सम्भूता वटयक्षिणी।।४५।।
तस्यास्तुष्टो वरंप्रादात्सिद्धलिङ्गस्थितो हरः। अनभ्यर्च्य य एनाञ्चमत्पूजांप्रकरिष्यति।
तस्य तन्निष्फलं सर्वमित्युक्तं पाल्यमेव मे।।४६।।

वह कार्त्तिक में मासोपवास करती तथा नित्य सप्तलिङ्गार्चन के पश्चात् देवी पूजा किया करती थी। वह अमावस्या तिथि पर महीसागरसंगम में स्नान भी करती थी। इस प्रकार विविध नियम पालनादि के द्वारा वह निष्पाप हो गयी। इस प्रकार वह निष्पाप देह द्वारा अंशरूपेण उमादेवी की अभ्यर्थना द्वारा उमालोक गई तथा वह अंशतः महीतट पर वटयक्षिणीरूप से भी रहने लगी। सिद्धलिंग वासी भगवान् शंकर ने प्रसन्नतापूर्वक उसे वर दिया कि जो व्यक्ति बिना वटयक्षिणी की पूजा किये मेरी पूजा करेगा, उसका समस्त पूजादि कार्य विफल हो जायेगा। अतः मेरा यह नियम सभी पालन करें।।४३-४६।।

तस्मात्प्रपूजयेन्नित्यं वटस्थां वटयक्षिणीम्। पुष्पैर्धूपैस्तु नैवेद्यैर्मन्त्रेणाऽनेन भक्तितः।।४७।।
सुनन्दे नन्दनीयाऽसि पूजामेतां गृहाण मे। प्रसीद सर्वकालेषु ममत्वं वटयक्षिणि!।।४८।।
एवं सम्पूज्य तां नत्वाक्षमाप्यवटयक्षिणीम्। सर्वान्कामानवाप्नोतिनरोनारीचसर्वदा।।४९।।

विजयश्चाऽपि माहात्म्यमिदं जानन्महामतिः। आनर्च वटवृक्षस्थां भक्तितो वटयक्षिणीम्॥५०॥
ततः सिद्धाम्बिकां स्तुत्वा जप्तवानपराजिताम्। महाविद्यां वैष्णवीं तु साधनेन समन्विताम्॥५१॥
यस्याः स्मरणमात्रेणसर्वदुःखक्षयोभवेत्। तां विद्यांकीर्तयिष्यामिशृणुध्वं विप्रपुङ्गवाः॥५२॥

इसलिए पुष्प, धूप, नैवेद्यादि उपचार द्वारा इस वटवृक्षस्था वटयक्षिणी की पूजा मूलोक्त श्लोक ४८ द्वारा करनी चाहिये। जो स्त्री अथवा पुरुष इस विधान द्वारा वटयक्षिणी की पूजा तथा प्रणाम करने के उपरान्त क्षमा प्रार्थना भी करेगा, उसे समस्त इच्छित कामना का फल प्राप्त होगा। महामति विजय इस माहात्म्य को जानते थे, अतः उन्होंने भक्ति के साथ वटवृक्षवासिनी इस यक्षिणी की अर्चना करके सिद्धाम्बिका की स्तुति भी किया। तत्पश्चात् उन्होंने स्मरणात्र से सर्वदुःखहारिणी वैष्णवी अपराजिता महाविद्या का जप सम्पन्न किया। हे विप्रश्रेष्ठगण! मैं इस विद्या को कहता हूं। आप सब सुनिये।।४७-५२।।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नमोऽनन्ताय सहस्त्रशीर्षाय क्षीरोर्दाणवशायिने शेषभोगपर्यङ्काय गरुडवाहनाय पीतवाससे वासुदेव सङ्कर्षण प्रद्युम्नानिरुद्ध हयशिरो वराह नरसिंह वामन त्रिविक्रम राम राम वरप्रद नमोऽस्तु ते नमोऽस्तु ते असुरदैत्यदानवयक्ष-राक्षसभूतप्रेतपिशाचकुम्भाण्डसिद्धयोगिनीडाकिनीस्कन्दपुरोगमान्ग्रहान्नक्षत्रग्रहांश्चान्यांश्च हन २ दह २ पच २ मथ २ विध्वंसय २ विद्रावय २ शङ्खेन चक्रेण वज्रेण गदया मुशलेन हलेन भस्मीकुरु सहस्त्रबाहवे सहस्त्रचरणायुध जय २ विजय २ अपराजित अप्रतिहत सहस्त्रनेत्र ज्वल २ प्रज्वल २ विश्वरूप बहुरूप मधुसूदन महावराह महापुरुष वैकुण्ठ नारायण पद्मनाभ गोविन्द दामोदर हृषीकेश सर्वासुरोत्सादन सर्वभूतवशङ्कर सर्वदुःखप्रभेदन सर्वयन्त्रप्रभञ्जन सर्वनागप्रमर्दन सर्वदेवमहेश्वर सर्वबन्धविमोक्षण सर्वाहितप्रमर्दन सर्वज्वरप्रणाशन सर्वग्रह-निवारण सर्वपापप्रशमन जनार्दन जनानन्दकर नमोऽस्तु ते स्वाहा॥५३॥

इमामपराजितां परमवैष्णवीं महाविद्यां जपति पठति शृणोति स्मरति धारयति कीर्तयति न च तस्य वाय्वग्निवज्रोपलाशनिवर्षभयं न समुद्रभयं न ग्रहभयं न च चौरभयं न च श्वापदभयं वा भवेत्॥५४॥

क्वचिद्रात्र्यन्धकारस्त्रीराजकुलविषोपविषगरदवशीकरणविद्वेषणोच्चाटनवधबन्धभयं वा न भवेदेतैर्मन्त्रपदैरुदाहृतैर्हृदा बद्धैः संसिद्धपूजितैः॥५५॥तद्यथा॥

मूलोक्त "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" से लगाकर "नमोऽस्तु ते स्वाहा" पर्यन्त मूलोक्त श्लोक ५३ पर्यन्त यह अपराजिता विद्या है। जो व्यक्ति परम वैष्णवी अपराजिता महाविद्या का जप, पाठ, स्मरण, धारण किंवा कीर्तन करेगा, उसे वायु, अग्नि, वज्र, प्रस्तर, अशनि अथवा वृष्टि जनित भय कदापि न होगा। उसे समुद्रभय, ग्रहभय, चौरभय अथवा श्वापदभय भी नहीं होगा। रात्रि, अन्धकार में, स्त्री जनित, राजकुल जनित, विष-उपविष-गरद, वशीकरण, विद्वेषण, उच्चाटन, वध, बन्धनभय भी उसे नहीं होगा। यदि सम्यक्तः पूजित तथा सुसिद्ध इस मन्त्रपद का सही उच्चारण तथा हृदय में धारण किया जायेगा, तब यह फल होगा।।५३-५५।।

नमो नमस्तेऽस्तु अभये अनघे अजिते अत्रसिते अमृते अपराजिते पठितसिद्धे स्मरितसिद्ध एकानंशे उमे ध्रुवे अरुन्धति सावित्रि गायत्रि जातवेदसि मानस्तोके सरसि सरस्वति धरणि धारिणि सौदामिनि अदिते विनते गौरि गान्धारि मातङ्गि कृष्णे यशोदे सत्यवादिनि ब्रह्मवादिनि कालि कपालिनि सद्योवयवचनकरि स्थलगतं जलगतमन्तरिक्षगतं वा रक्ष २ सर्वभूत-भयोपद्रवेभ्यो रक्ष २ स्वाहा॥५६॥

यस्याः प्रणश्यतेपुष्पंगर्भोवा पततेयदि। म्रियन्तेबालकायस्याःकाकवन्ध्याचयाभवेत्।
धारयेत इमां विद्यामेभिर्दोषैर्न लिप्यते॥५७॥
रणे राजकुले द्यूते नित्यं तस्य जयो भवेत्। शस्त्रं धारयतेह्येषां समरेकाण्डधारिणी॥५८॥
गुल्मशूलाक्षिरोगाणां नित्यं नाशकरी तथा।
शिरोरोगज्वराणां च नाशनी सर्वदेहिनाम्॥५९॥तद्यथा॥

हन २ कालि सर २ कालि सर २ गौरि धम २ गौरि धम २ विद्ये आले ताले माले गन्धे बन्धे पच २ विद्ये नाशय पापं हन दुःस्वप्नं विनाशय कष्टनाशिनि रजनि सन्ध्ये दुन्दुभिनादे मानसवेगे शङ्खिनि चक्रिणि वज्रिणि शूलिनि अपमृत्युविनाशिनि विश्वेश्वरि द्रविडि द्राविडि केशवदयिते पशुपतिमहिते दुर्द्दमदमिनि शर्वरि किराति मातङ्गि ॐ ह्रां ह्रूँ ह्रूँ ह्रूँ क्रां क्रूँ क्रूँ क्रूँ त्वर २ ये मां द्विषन्ति प्रत्यक्षं परोक्षं वा सर्वान्दम २ मर्द्द २ तापय २ पातय २ शोषय २ उत्सादय २ ब्रह्माणि माहेश्वरि वाराहि विनायकि ऐन्द्रि आग्नेयि चामुण्डे वारुणि प्रचण्डविद्योते इन्द्रोपेन्द्रभगिनि विजये शान्तिस्वस्तिपुष्टिविवर्धिनि कामाङ्कुशे कामदुघे सर्वकामवरप्रदे सर्वभूतेषु वासिनि प्रति विद्यां कुरु २ आकर्षिणि वेशिनि ज्वालामालिनि रमणि रामणि धरणि धारिणि मानोन्मानिनि रक्ष २ वायव्ये ज्वालामालिनि तापनि शोषणि नीलपताकिनि महागौरि महाश्रये महामयूरि आदित्यरश्मि जाह्नवि यमघण्टे किणि २ चिन्तामणि सुरभि सुरोत्पन्ने कामदुघे यथा मनीषितं कार्यं तन्मम सिध्यतु स्वाहा ॐस्वाहा ॐभूः स्वाहा ॐभुवः स्वाहा ॐस्वः स्वाहा ॐभूर्भुवः स्वः स्वाहा यत्रैवाऽऽगतं पापं तत्रैव प्रतिगच्छतु स्वाहा ॐ बले महाबले असिद्धसाधिनि स्वाहा॥६०॥

मूलोक्त "नमो नमस्ते" से लगाकर "सर्वभूतभयोपद्रवेभ्यो रक्ष-रक्ष स्वाहा" पर्यन्त श्लोक ५६ का पाठ करने से अथवा धारण करने से स्त्री का आर्त्तव नाश, गर्भपात, मृतवत्सा दोष किंवा काकवन्ध्या दोष नाश हो जाता है।

रणस्थल में सहायता पाने हेतु काण्डधारिणी देवी के अस्त्रमन्त्र को धारण करे। सभी शरीरधारीगण के गुल्म-शूल-नेत्ररोग, शिरोरोग तथा ज्वर आदि नाशार्थ यह मन्त्र विशेष फलद है, जो मूल में "हनहन कालि सरसर" से लेकर "असिद्धसाधिनी स्वाहा" पर्यन्त श्लोक ६० है॥५६-६०॥

इतीमां साधयामास वैष्णवीमपराजिताम्। विजयः संयतो भूत्वा मनोबुद्धिसमाधिभिः॥६१॥

य इमां पठतेनित्यं साधनेनविनाऽपिच। तस्याऽपि सर्वविघ्नानि नश्यन्तिद्विजपुङ्गवाः॥६२॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे बर्बरिकोपाख्याने महाविद्यासाधनवर्णनं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः॥६२॥

विजय ने संयत होकर बुद्धि-मन को समाहित करके वैष्णवी अपराजिता विद्यासाधन किया था। हे द्विजवरगण! साधन बिना भी जो नित्य इस विद्या का पाठ करता है, उसके सभी विघ्न दूरीभूत हो जाते हैं॥६१-६२॥

॥द्विषष्टितम अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

बर्बरीक (सुहृदय द्वारा) महाविद्या को प्रसन्न करने हेतु साधना, शेष स्थापित लिंग पूजन

सूत उवाच

अश्वत्थलाक्षावह्नौ च सर्षपान्केसरप्लुतान्। जुह्वतो मन्त्रमुख्यैश्च बलातिबलसञ्ज्ञकैः॥१॥
यामे तु प्रथमे याते काचिन्नारी समाययौ। शोणितात्तैकवसना महोच्चोर्ध्वशिरोरुहा॥२॥
दारुणाक्षी शुक्लदन्ती भयस्याऽपिभयङ्करी। सा रुरोद महारावंप्राप्यतांहोमभूमिकाम्॥३॥
तां दृष्ट्वा चुक्षुभे सद्यो विजयो भीतिमानिव। बर्बरीकश्च निर्भीतिस्तस्याः सम्मुखमाययौ॥४॥
ततः कण्ठं समाश्लिष्य तस्या मतिमताम्वरः। रुरोद द्विगुणं वीरो मेघवन्नादयन्बहु॥५॥
तं दृष्ट्वा विस्मिता सा च यावन्मुञ्चति कर्तिकाम्।
तावन्निष्पीडते कण्ठे मोक्तुं तस्मिन्न चाऽशकत्॥६॥
पीड्यमाने च बलिना कण्ठेतस्यामुहुर्मुहुः। मुमोचविविधाञ्छब्दान्वज्राहतइवाऽचलः॥७॥

सूतजी कहते हैं—अश्वत्थ की समिध तथा लाक्षा से प्रज्वलित अग्नि में बला तथा अतिबला मन्त्र से अभिमन्त्रित केशर लिपटी सरसों से होम करने पर रात्रि के प्रथम प्रहर में एक रमणी आविर्भूत हो गयी। वह एक वस्त्र पहने थी, जो रक्त से सराबोर था। उसके बाल ऊर्ध्व में खड़े थे तथा अत्यन्त उन्नत थे। दोनों नेत्र अत्यन्त भीषण थे तथा दांत श्वेत थे। यह नारी मूर्त्ति भय से भी भयंकरी थी। वह होमभूमि में आकर उच्चस्वर से रुदन करने लगी। यह देखकर विजय भय से स्तब्ध हो गये तथापि मतिमानों में अग्रगण्य बर्बरीक निर्भयता पूर्वक उसका आलिंगन करते हुए उसके स्वर से भी दूने उच्च स्वर में मेघवत् गंभीर रोदन करने लगे। इससे वह रमणी विस्मित हो गयी। वह खड्ग से बर्बरीक पर आघात के लिए उद्यत हो रही थी, परन्तु बर्बरीक ने उसके

गले को इतने जोर से लिपटा रखा था, जिससे वह बर्बरीक पर अस्त्राघात तो नहीं कर सकी, परन्तु बली बर्बरीक द्वारा गले को बलपूर्वक दबाये रखने के कारण वह वज्राहत पर्वत की तरह नाना प्रकार का निनाद करने लगी!।।१-७।।

क्षणंरावांस्ततोमुक्त्वात्राहिमुञ्चेतिवक्त्यणु। ततः कृपालुनामुक्तापादयोःपतिताऽब्रवीत्।।८।।
शरणं ते प्रपन्नाऽस्मिदासीकर्मकरी तव। महाजिह्वेतिमां विद्धिराक्षसींकामरूपिणीम्।।९।।
काशीश्मशाननिलयां देवदानवदर्पहाम्। ददासि यदि मे वीर! दुर्लभां प्राणदक्षिणाम्।।१०।।
ततस्तपश्चरिष्यामि सर्वभूताभयप्रदा। अस्मिन्नर्थे स्वदेवस्य शपथा मे तथाऽऽत्मनः।।११।।
यद्येतद्व्यत्ययं कुर्यां भस्मीभूयां ततःक्षणम्। एवं ब्रुवाणां तां वीरो निगृह्यशपथैर्दृढम्।।१२।।
मुमोच साऽपि संहृष्टा कृच्छ्रान्मुक्ता ययौ वनम्।
सोऽपि वीरः खड्धारी तत्रैवाऽवस्थितोऽभवत्।।१३।।

कुछ देर तक ऐसा निनाद करते रहने के अनन्तर वह "छोड़ दो-परित्राण करो" आदि मृदुभाव से कहने लगी। तब बर्बरीक ने कृपा करके उसे छोड़ दिया। बर्बरीक द्वारा मुक्त किये जाते ही वह उसके पदद्वय पर गिर कर कहने लगी—"मैं तुम्हारी शरण में हूं। तुम्हारी दासी हो गयी हूं। मैं कामरूपा महाजिह्वा नामक राक्षसी हूं। मैं देव-दानवों का दर्प हरण करने वाली तथा काशी श्मशान में निवास करने वाली हूं। यदि तुम मुझे दुर्लभ प्राण रक्षा रूपी दक्षिणा प्रदान करो, तब मैं सर्व प्राणीसमूह को अभयप्रदा होकर तपस्या करने चली जाऊंगी। इस विषय में मैं इष्टदेव तथा अपनी आत्मा की शपथ लेती हूं। यह भी शपथ लेती हूं कि यदि अपने कथन का उल्लंघन करूं, तब मैं क्षणमात्र में भस्म हो जाऊं।" तब वीर बर्बरीक ने उससे अनेक शपथ लेकर उसे छोड़ दिया। इस प्रकार से वह राक्षसी अतीव कष्टपूर्वक मुक्ति पाकर वहां से चली गयी। बर्बरीक भी खड्ग धारण करके वहां यथावत् बैठ गये।।८-१३।।

ततो मध्यमरात्रौ च गर्जितं श्रूयते महत्। अन्धकारश्च सञ्जज्ञे तमोऽन्धनरकप्रभम्।।१४।।
ददृशे च ततःशैलःशतशृङ्गोऽतिविस्तरः। नानाशिलाःप्रमुमुचेनानावृक्षांश्चसोच्छ्रयान्।।१५।।
नानानिर्झरसङ्घोषं ववृषे शोणितं बहु। तं तथा नगमालोक्य निर्भीतो भैमिनन्दनः।।१६।।
पर्वतो द्विगुणो भूत्वा पर्वतं सहसाप्लुतः। पदाऽभिजघ्ने संहृत्य पर्वतं स्वेन भूभृता।।१७।।
तदा विशीर्णः सोऽभूच्च पर्वतो भूमिमण्डले। ततो योजनदेहात्मा शतशीर्षः शतोदरः।।१८।।
वक्त्रैर्मुञ्चन्महाज्वालां रेपलेन्द्रोऽभ्यधावत। तं धावमानं दृष्ट्वैव बर्बरीको महाबलः।।१९।।
विधाय तादृशं रूपं नर्दन्तं चाऽप्यधावत। ततोमध्यमरात्रौ तौ लघु चित्रं च सुष्ठुच।।२०।।
युयुधाते बाणजालैर्यथा प्रावृषि तोयदौ। छिन्नचापौ च खड्गाभ्यां छिन्नषड्गौ च मुष्टिभिः।।२१।।

तत्पश्चात् मध्यरात्रि में भीषण गर्जन सुनाई पड़ने लगी। तमपूर्ण नरक जैसा अन्धकार हो गया। तदनन्तर एक महान् १०० शिखरों वाला पर्वत दृष्टिगोचर होने लगा। उस पर्वत से बड़े-बड़े वृक्ष तथा पत्थरों की वर्षा इनकी ओर होने लगी। नाना झरनों का भीषण शब्द होने लगा। प्रचुर रक्तवर्षण होने लगा। भीमनन्दन बर्बरीक इन सबसे अणुमात्र भी भयभीत नहीं हो रहा था। उसने उस पर्वत से भी दूना आकार धारण किया तथा उछल कर उस

शतशृङ्ग वाले पर्वत पर पैरों से ऐसा आघात किया कि उससे वह पर्वत भूपतित होकर चूर्ण-चूर्ण हो गया! तब शतशृङ्ग पर्वतरूपी रेपलेन्द्र ने शतशीर्ष, शतउदर तथा योजन व्यापी आकार धारण किया और मुख से भीषण अग्निशिखा उगलता घोर नाद के साथ बर्बरीक की ओर दौड़ पड़ा। यह देखकर बर्बरीक ने भी उतना बड़ा आकार धारण किया तथा उस रेपलेन्द्र की ओर धावमान हो गया। उस मध्यरात्रि में उन दोनों के बीच विचित्र युद्ध होने लगा। दोनों ही वर्षाकालीन मेघ के समान बाणों की वर्षा कर रहे थे। क्रमशः उनके धनुष, खड्गादि भी टूट गये। तब वे मुष्टियुद्धरत हो गये।।१४-२१।।

पर्वताविव सत्पक्षौ चिरंयुयुधतुःस्थिरम्। ततः कक्षेसमुत्पाट्यभ्रामयित्वामुहूर्तकम्॥२२॥
भूमौ प्रधर्षयामास प्रसृतं च मुमोच ह। चिक्षेप चाऽग्निकोणे तं महीसागररोधसि।२३॥
तद्दूरे रेपलेन्द्राख्यं ग्राममद्यापि वर्तते। एवं स रेपलोनाम वृत्रतुल्यपराक्रमः॥२४॥
नाथः श्मशानस्यावन्त्या विघ्नकृन्निहतोऽभवत्। तं निहत्य पुनर्वीरो बर्बरीकः स्थितोऽभवत्॥२५॥
ततस्तृतीययामे च प्रतीच्या दिश आययौ। पर्वताभा महानादा पादैः कम्पयतीवभूः॥२६॥
दुहद्दुहाख्याऽश्वतरी मेघभ्रष्टा तडिद्यथा। तमायान्तीं तथा दृष्ट्वा सूर्यवैश्वानरप्रभाम्॥२७॥
उपसृत्य जवाद्भैमी रुरोह प्रहसन्निव। वेगात्ततः प्रद्रवतीं तुण्डे प्राहत्य मुष्टिभिः॥२८॥
स्थापयामास तत्रैवतस्थौ साचाऽतिपीडिता। ततः क्रुद्धामहारावंकृत्वाप्लुत्यदुहद्दुहा॥२९॥
जगत्यामाशु चिक्षेप बर्बरीकं तथेच्छकम्। ततो नदित्वा चाऽतीव पादघातममुञ्चत॥३०॥

पादौ च वीरः संगृह्य चिक्षेपभुविलीलया।
ततः पुनः समुत्थाय धावन्तीं तां निगृह्यसः॥३१॥
मुष्टिना पातयित्वैवदन्तान्कण्ठमपीडयत्। क्लिन्नं वासइवापीड्यप्राणानत्याजयद्द्रुतम्॥३२॥

दोनों इस प्रकार देर तक युद्ध करते जा रहे थे, मानों दोनों पंख वाले पर्वत हों। तत्पश्चात् बर्बरीक ने सहसा रेपलेन्द्र को कमर पकड़ कर भूमि से उठाया तथा जोरों से मुहूर्त्त पर्यन्त घुमाकर धरती पर पटक दिया। जब बर्बरीक ने यह देखा कि उसने प्राण त्याग दिया, तब उसे उठाकर महीसागर तीर्थ के तट से दूरी पर फेंक दिया। आज भी जहां उसका शरीर गिरा था, उस स्थान पर रेपलेन्द्र नामक ग्राम है। अवन्ति के श्मशान का अधिपति, वृत्रासुर के समान पराक्रमी, साधकों को विघ्न पहुंचाने वाला, रेपलेन्द्र इस प्रकार से निहत हुआ। वीर बर्बरीक ने उसका वध कर दिया तथा पूर्ववत् वहीं स्थित हो गये। तत्पश्चात् रात्रि का तृतीय प्रहर होते ही वहां पर्वत टकराने जैसा भयंकर शब्द होने लगा। वहां की भूमि भी कुछ-कुछ कंपित हो उठी। तदनन्तर दुहद्रुहा नामक खच्चरी मेघों से निकली बिजली जैसे वेग से आती दिखलाई पड़ी। बर्बरीक ने जब सूर्यरश्मि के समान कान्तिमती उस दुहद्रुहा को वहां आते देखा, तब वह हंसते हुए उसकी पीठ पर जा बैठा और मुष्टिका से उसके नथुने पर आघात करने लगा, जिससे वह रुक जाये। लेकिन वह दुरुद्रुहा तब अत्यन्त क्रोधित होकर महानाद के साथ उछली और इससे बर्बरीक भूतल पर गिर पड़ा। अब वह दुहद्रुहा भीषण निनाद करती बर्बरीक पर अपने खुरों का आघात करने लगी। इस कृत्य को देखकर बर्बरीक ने सहसा उसके दोनों पैरों को पकड़कर उसे भूमि पर गिरा दिया, तथापि दुहद्रुहा पुनः उठकर दौड़ पड़ी। तब बर्बरीक ने अविलम्ब पकड़ कर ऐसा मुष्टिप्रहार

किया कि उसके दांत गिर गये। बर्बरीक उसे ऐसा दबाने लगा, जैसे भींगा कपड़ा निचोड़ते हैं। इससे उसके प्राण अविलम्ब निकल गये।।२२-३२।।

एवं सीकोत्तरस्थाने स्मशानैकपदोद्भवा। शाकिनीनामधीशा सा बर्बरीकेण सूदिता।।३३।।
हत्वा तां चाऽपिचिक्षेप प्रतीच्यामेव लीलया। दुहद्रुहाख्यमद्यापि तत्र ग्रामस्म वर्तते।।३४।।
ततस्तथैव सन्तस्थौ बर्बरीकोऽभिरक्षणे। ततश्चतुर्थे यामे च प्राप्तः क्षपणकोऽद्भुतः।।३५।।
मुण्डी नग्नो मयूराणां पिच्छधारीमहाव्रतः। प्रोवाच चेदं वचनं हाहा कष्टमतीवभोः।।३६।।
अहिंसा परमो धर्मस्तदग्निर्ज्वाल्यते कुतः। हूयमाने यतो वह्नौ सूक्ष्मजीववधोमहान्।।३७।।

वह सीकोत्तर स्थानस्थ श्मशान से उत्पन्न शाकिनीगण नायिका इस प्रकार से बर्बरीक द्वारा निहत की गयी। बर्बरीक ने उसका वध करके उसे पश्चिम की ओर फेंक दिया। जहां उसका मृत शरीर गिरा, वहां भी दुहद्रुहा नामक ग्राम स्थित है। तदनन्तर बर्बरीक पुनः पहले की तरह रक्षाकार्य करने लगे। क्रमशः रात्रि के चतुर्थ प्रहर में मुण्डितमस्तक नग्न तथा मयूरपुच्छ धारी एक सन्यासी आ पहुंचा, जिसे देखकर प्रतीत होता कि मानों वह किसी महाव्रत का पालन कर रहा है। उसने आते ही कहा—"आहा! अतीव दुःख की बात है! अहिंसा ही परम धर्म होता है, तब अग्नि जला कर होम करने से तो उसमें अनेक सूक्ष्म जीवों का वध जो होता है"!।।३३-३७।।

श्रुत्वेदं वचनं तस्य बर्बरीकोऽब्रवीत्स्मयन्। वदने सर्वदेवानां हूयमाने स्म पावके।।३८।।
अनृतं भाषसे पाप! शिक्षायोग्योऽसि दुर्मते!।
इत्युक्त्वा सहसोत्पत्य कक्षामध्ये स्थिरोऽस्य च।।३९।।
दन्तान्मुष्टिप्रहारैश्च समाहत्याऽभ्यपातयत्। रुधिराविलवक्त्रन्तं मुमोच पतितं भुवि।।४०।।
स क्षणाच्चेतनां प्राप्य घोरदैत्यवपुर्धरः। भयाद्भैमेः प्रदुद्राव गुहाविवरमाविशत्।।४१।।
बहुप्रभेति नगरी षष्टियोजनमायता। तस्यां विवेश सहसा तं चाऽनु बर्बरीकः।।४२।।
बर्बरीकं ततो दृष्ट्वा नादोऽभूच्च पलाशिनाम्। धावध्वं हन्यतामेष छिद्यतांभिद्यतामिति।।४३।।
तच्छ्रुत्वा दैत्यवीराणां कोटयो नव भीषणाः। नानायुधधरा वीरं बर्बरीकमुपाद्रवन्।।४४।।

उसका कथन सुनकर बर्बरीक ने सहास्य कहा—"अग्नि समस्त देवगण का मुख स्वरूप है। उसमें तो होम करना विधान है। हे पापी! तुम मिथ्या बोल रहे हो। हे दुर्मति! इसीलिए तुमको शिक्षा देना उचित है।" यह कहकर बर्बरीक ने उछल कर कमर से पकड़ा तथा उसके मुख पर अनेक मुष्टिका मारकर पृथिवी पर पटक दिया। इससे उसकी दंतपंक्ति टूटकर गिर पड़ी तथा रुधिर से सने मुख के साथ ही वह अचेतन हो गया। तत्पश्चात् क्षण कालोपरान्त वह चैतन्य होकर उठा तथा दैत्यमूर्त्ति धारण करके बर्बरीक के भय से तेजी से भागकर एक गुहा में प्रवेश कर गया। उस गुहा में ६० योजन वाली बहुप्रभा नगरी स्थित थी। संन्यासी वेशधारी दैत्य को उसमें प्रवेश करते देखकर बर्बरीक ने वहां उसका पीछा किया। बर्बरीक को भीतर प्रवेश करते देखकर वहां के मांसभक्षी (दैत्य) "दौड़ो-दौड़ो, इसे मारो, टुकड़े करो," कहते चीत्कार करने लगे। यह सुनकर ९ करोड़ भीषणाकार दैत्यवीर विविध अस्त्र-शस्त्र लेकर बर्बरीक की ओर धावित हो गये।।३८-४४।।

दृष्ट्वा तान्कोटिशो दैत्यान्क्रुद्धो भीमात्मजात्मजः। निमील्य सहसा नेत्रे तेषां मध्यमधावत।।४५।।

पादघातैस्ततः कांश्चिद्भुजाघातैस्तथापरान्। हृदयस्याऽभिघातैश्चक्षणान्निन्येयमक्षयम्॥४६॥
यथा नलवनं क्रुद्धः कुर्याद्भूमिसमं करी। नवकोटिस्तथा जघ्ने सह तेनपलाशिना॥४७॥
ततो नागाः समागम्य वासुकिप्रमुखास्तदा। तुष्टुवुर्विविधैर्वाक्यैरूचुः सुहृदयञ्च ते॥४८॥
नागानां परमं कृत्यं कृतं ते भैमिनन्दन!। पलाशीनामदैत्योऽयं नीतोयत्सानुगोयमम्॥४९॥
अनेन हि वयं वीर सानुगेन दुरात्मना। पीडिता विविधोपायैः पातालादप्यधःकृताः॥५०॥
वरं वृणीष्व त्वं तस्मान्नागेभ्योऽभिमतंपरम्। वरदाः सर्वएवस्मवयंतुभ्यंसुतोषिताः॥५१॥

भीमपौत्र बर्बरीक ने उनको आते देखकर क्रोधपूर्वक निमीलित आंखों के साथ उनकी ओर दौड़ा तथा उनकी सेना में प्रवेश कर गया। जैसे मत्त हाथी कमल के वन में घुसकर उनका दलन करता है, उसी तरह बर्बरीक ने कराघात, पदाघात तथा वक्षःस्थल की टक्कर से जो सन्यासी वेशधारी पलाशी नामक दैत्य पहले भागा था, उसी के साथ उन सभी दैत्यों का वध कर दिया। तब वासुकि आदि प्रमुख नागगण वहां आकर मधुर वाक्यों से सुहृदय बर्बरीक की स्तुति करने लगे। यथा—"हे भीम पौत्र! आपने इस पलाशी दैत्य को उसके अनुचरों के साथ नष्ट किया है, इससे तो हम नागों का पहला उपकार साधित हो गया। हे वीर! यह दुरात्मा अपने अनुचरों के साथ हमें नाना प्रकार से लांछित करता था। इसी के अत्याचार के कारण हम पाताल के अति निम्नभाग में जाने के लिए बाध्य हो गये थे। अब आप हम नागों से इच्छित वर ग्रहण करें। हमसभी सन्तुष्ट होकर आपको वर देना चाहते हैं"।।४५-५१।।

सुहृदय उवाच

यदि देयो वरो मह्यं तदेनं प्रवृणोम्यहम्। सर्वविघ्नविनिर्मुक्तोविजयःसिद्धिमाप्नुयात्॥५२॥
ततस्तथेति तं प्रोचुः प्रहृष्टावायुभोजनाः। स च तेभ्यः पुरींदत्त्वानिवृत्तोनागपूजितः॥५३॥
विवरस्य च मध्येन समागच्छन्महाप्रभम्। सर्वरत्नमयं लिङ्गं स्थितं कल्पतरोरधः॥५४॥
अर्च्यमानं सुबह्वीभिर्नागकन्याभिरैक्षत। ततोऽसौ विस्मयाविष्टोनागकन्याह्यपृच्छत॥५५॥
केनेदं स्थापितं लिङ्गं सूर्यवैश्वानरप्रभम्। लिङ्गादपि चतुर्दिक्षु मार्गाश्चेमे तु कीदृशाः॥५६॥

यह सुनकर सुहृदय बर्बरीक कहने लगा—"हे नागगण! यदि मुझे वर देना चाहते हैं तब यह वर मांगता हूं कि विजय सभी विघ्नों का अतिक्रमण करके सिद्धिलाभ करे।" नागों ने प्रसन्न चित्त से "ऐसा ही हो" कहकर उसे वर प्रदान किया। तब बर्बरीक ने उस पुरी को नागगण को प्रदान किया और नागों से सत्कृत होकर उसी गुहाविवर मार्ग से बाहर आने लगा। रास्ते में उसने देखा कि वहां कल्पतरु के नीचे एक सर्वरत्नमय लिंग विराजित है। नाना नागकन्या उसकी अर्चना कर रही हैं। बर्बरीक ने विस्मयपूर्वक उन नागकन्याओं से पूछा—"यह सूर्य-अग्नि के समान उज्ज्वल लिंग किसके द्वारा स्थापित की गयी है तथा इस लिंग के चतुर्दिक् जो पथ है, वह कहां गया है"।।५२-५६।।

इतिवीरवचः श्रुत्वा बृहत्कटिपयोधरा। सव्रीडं सस्मितापाङ्गनिर्मोक्षमिदमब्रवीत्॥५७॥
सर्वपन्नगराजेन शेषेण सुमहात्मना। तपस्तप्त्वा महालिङ्गमिदमत्र प्रतिष्ठितम्॥५८॥
दर्शनात्स्पर्शनाद्ध्यानादर्चनात्सर्वसिद्धिदम्। लिङ्गात्पूर्वेणमार्गोऽयंयातिश्रीपर्वतंभुवि॥५९॥

एलापत्रेण विहितो नागानां तत्र प्राप्तये।
दक्षिणेन च मार्गोऽयं याति शूर्पारकं भुवि॥६०॥
कर्कोटकेन नागेन कृतोऽयं तत्र प्राप्तये।
पश्चिमेन च मार्गोऽयं प्रभासं याति सुप्रभम्॥६१॥
ऐरावतेन विहितो नागानां गमनाय च। उत्तरेण च मार्गोऽयं येन यातुं भवान्स्थितः॥६२॥
गुप्तक्षेत्रे सिद्धलिङ्गं यातिशक्तिगुहाऽऽकृतः। विहितस्तक्षकेणाऽसौ यातुंतत्रमहात्मना॥६३॥

यह सुनकर किसी विशाल कटितटयुक्त पीनस्तनी रमणी ने सलज्ज तथा मन्द मुस्कान युक्त होकर कटाक्षपूर्वक कहा—"सर्वसर्पराज महात्मा शेषनाग ने महान् तप द्वारा इस महालिंग को स्थापित किया था। इसके दर्शन-स्पर्शन-ध्यान-अर्चन से सभी कामनायें सफल होती हैं। लिंग के पूर्व की ओर जो मार्ग है, इससे भूतलस्थ श्रीपर्वत जाते हैं। एलापत्र नाग ने नागों के आने-जाने हेतु इस पथ का निर्माण किया है। लिंग के दक्षिण की ओर जो पथ है, उसके द्वारा भूतलस्थ शूर्पारक तीर्थ जाते हैं। कर्कोटक नाग ने वहां जाने हेतु इस पथ का निर्माण किया है। लिंग के पश्चिम वाला मार्ग महाप्रभावशाली प्रभास तीर्थ तक जाता है। ऐरावत नाग ने नागगण के आवागमनार्थ इस मार्ग का निर्माण किया है। आप जिस पथ से जा रहे हैं, वह लिंग के उत्तर का मार्ग है। इस पथ से गुप्तक्षेत्र सिद्धलिंग के समीप जाते हैं। यह गुहापथ ही शक्तिगुहा के नाम से ख्यात है। महात्मा तक्षक नाग ने इसे यातायात हेतु निर्मित किया है"॥५७-६३॥

इतीदं वर्णितं वीर! विज्ञप्तिः श्रूयताम्मम। को भवानधुनैवेतो दैत्यपृष्ठ! गतोऽभवत्।
अधुनैव तथैकाकी समायातोऽत्र नो वद॥६४॥
वयञ्च सर्वास्तेदास्यस्त्वांपतिम्प्रवृणीमहे। अस्माभिःसहितःक्रीडविविधास्वत्रभूमिषु॥६५॥

"हे वीर! इस प्रकार से आपसे मार्गों का वर्णन कर दिया। अब हमारा कथन सुनें। आप तो पहले एक दैत्य के पीछे आये थे। अब एकाकी वापस जा रहे हैं। आप कौन हैं? हमसे बतायें। हम सभी आपकी दासी हैं। आपका वरण हमने पतिरूपेण किया है। आप हमारे साथ यहां विविध क्षेत्रों में विहार करिये"॥६४-६५॥

बर्बरीक उवाच

अहं कुरुकुलोत्पन्नः पाण्डुपुत्रस्य पौत्रकः। बर्बरीक इति ख्यातस्तं दैत्यं हन्तुमागतः।
स च दैत्यो हतः पापः पुनर्यास्ये महीतलम्॥६६॥
भवतीभिश्च मे नास्ति कृत्यं भोभोः कथञ्चन॥६७॥
ब्रह्मचारिव्रतं यस्मादहंसततमास्थितः। इत्युक्त्वाऽभ्यर्च्यतल्लिङ्गंप्रणिपत्यचदण्डवत्॥६८॥
ऊर्ध्वमाचक्रमे वीरः कातरं ताभिरीक्षितः। ततो बहिः समागत्य सप्रकाशं मुखं तदा॥६९॥
प्रहर्षेणैव पूर्वस्या विजयं ददृशे दिशः। तस्मिन्काले च विजयः कर्म सर्वं समाप्तवान्॥७०॥
कान्त्या सूर्यसमाभास ऊर्ध्वमाचक्रमे क्षणात्।
ततो वियद्गतं देवैः पुष्पवर्षमभून्महत्॥७१॥

जगुर्गन्धर्वमुख्याश्च ननृतुश्चाऽप्सरोगणाः। विजयो बर्बरीकञ्च ततो वचनमब्रवीत्॥७२॥

बर्बरीक कहता है—"मेरी उत्पत्ति कुरुकुल में हुई है। मैं पाण्डुपुत्र भीम का पौत्र हूं। मेरा नाम बर्बरीक है। मैं इस दैत्य का वध करने आया था तथा उसका वध कर दिया। अब पुनः भूतल जा रहा हूं। हे नारीगण! तुमलोगों से मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। मैंने नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का वरण किया है।" वीर बर्बरीक यह कहकर उस लिंग की अर्चना के पश्चात् प्रणाम करके उठकर जाने लगा। तब वे कन्यागण कातर होकर उसकी ओर देखने लगीं। बर्बरीक क्रमशः उस गुहाविवर से बाहर आया। वह देखता है कि पूर्व की ओर सुप्रकाश आलोकित है तथा विजय वहां हास्यमुद्रा में प्रसन्नता से बैठा है। विजय समस्त साधनकार्य सम्पन्न कर चुका था। वह सूर्यसमप्रभ उज्ज्वल देहधारी होकर क्षणमात्र में ऊर्ध्व में जाने लगा। वह कुछ ऊर्ध्व गया था कि देवगण सुमहत् पुष्पवर्षा करने लगे। अप्सरायें नृत्य से तथा गन्धर्वगण गायन से उसे आनन्दित कर रहे थे। अब विजय बर्बरीक से कहने लगा।।६६-७२।।

तव प्रसादाद्वीरेश सिद्धिः प्राप्ता मयाऽतुला। चिरञ्जीव चिरं नन्द चिरं वस चिरं जय॥७३॥
अत एवहिसाधूनां सङ्गमिच्छन्ति साधवः। औषधं सर्वदोषाणां भवेत्सत्सङ्गमोयतः॥७४॥
त्वञ्च होमस्थितं भस्म सिन्दूरसदृशप्रभम्। निःशल्यं सविववरकं पूर्यमाणं गृहाण च॥७५॥
अक्षय्यमेतत्संग्रामे प्रथमन्ते प्रमुञ्चतः। शत्रूणां स्थानकं मृत्योर्देहं ध्वस्तं करिष्यति॥७६॥
एवं सुखेन विजयः शत्रूणां ते भविष्यति॥७७॥

विजय आकाश में स्थित होकर कहने लगा—"हे वीरवर! मैंने तुम्हारी कृपा से अतुलित सिद्धि प्राप्त किया है। तुम चिरजीवी रहो। चिरकाल आनन्द लाभ करो, चिरकाल भूमण्डल पर सुखपूर्वक निवास करो, चिरकाल जपयुक्त रहो! साधुसंग सभी दोषों की औषधि है। इसीलिए साधुगण साधुसंग चाहते हैं। होमकुण्ड में सिन्दूर कान्तिवत् भस्म है। वह शल्यहीन है। जो विवरमुख में प्रविष्ट है, उसे ही ग्रहण करना। तुम संग्राम काल में यह भस्म शत्रुओं पर छोड़ना। इससे शत्रुगण की देह तथा गृह ध्वस्त हो जायेगा। शत्रुगण मृत हो जायेंगे। अनायास ही तुम्हारी विजय होगी"।।७३-७७।।

बर्बरीक उवाच

उपकुर्यान्निराकाङ्क्षोयःससाधुरितीर्यते। साकाङ्क्षमुपकुर्याद्यःसाधुत्वेतस्यकोगुणः॥७८॥
तद्देहि भस्म चाऽन्यस्मै केनाऽप्यर्थो न मेऽण्वपि।
प्रसादसुमुखां दृष्टिं विना नाऽन्यद्वृणोमि ते॥७९॥

बर्बरीक कहता है—जो निःस्वार्थ भाव से उपकार करते हैं, वे ही साधु कहलाते हैं, परन्तु स्वार्थ के कारण उपकार करने पर उसे कैसे साधु कहा जायेगा? अतः आप अन्य किसी को यह भस्म प्रदान करें। मुझे इसका कोई प्रयोजन नहीं है। मैं तो केवल आपको प्रसन्न देखना चाहता हूं। अन्य कुछ नहीं चाहता।।७८-७९।।

देवा ऊचुः

कुरूणां पाण्डवानाञ्च भविष्यति महान्रणः।
ततो भूमिस्थितं भस्म प्राप्स्यन्ति यदि कौरवाः॥८०॥

महाननर्थोभवितापाण्डवानांततःस्फुटम्। तस्माद्गृहाणत्वंभस्मसोऽपिचक्रेतथावचः॥८१॥
देवीभिः सहिता देवाः सम्मान्य विजयञ्च ते। सिद्धैश्वर्यंददुस्तस्मैसिद्धसेनेतिनामच॥८२॥
एवं स विजयो विप्रःसिद्धिं लेभे सुदुर्लभाम्। बर्बरीकश्चकृत्वैतद्देवीभक्तिरतोऽवसत्॥८३॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कार्यसिद्धिवर्णनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः॥६३॥

देवगण कहते हैं—"हे बर्बरीक! भविष्य में कौरवों के साथ पाण्डवों का तुमुल संग्राम होगा। यदि किसी प्रकार भूमिस्थित यह भस्म कौरवों को मिल गयी तब तो पाण्डवों का महान् अनर्थ होगा। अतः तुम इसे ग्रहण करो।" यह कहकर देवताओं ने देवीगण के साथ विजय को सिद्धैश्वर्य प्रदान किया। उधर देवगण की बात सुनकर बर्बरीक ने उस भस्म को ग्रहण किया। विजय नामक ब्राह्मण ने सुदुर्लभ सिद्धियां प्राप्त किया। बर्बरीक भी पूर्वोक्त कार्य सम्पन्न करके देवीगण की भक्ति करते हुए वहीं रहने लगा॥८०-८३॥

॥त्रिषष्टितम अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

भीम-बर्बरीक विवाद, भीमेश्वर लिंग प्रतिष्ठा, भीमेश्वर माहात्म्य

सूत उवाच

एवं तत्र स्थिते तीरे देव्याराधनतत्परे। सप्तलिङ्गार्चनरते भीमनन्दननन्दने॥१॥
ततः कालेनकेनाऽपिपाण्डवाद्यूतनिर्जिताः। तत्राऽऽजग्मुश्चक्रमतस्तीर्थस्नानकृतेभुवम्॥२॥
प्रागेव चण्डिकां देवीं क्षेत्रादीशानतः स्थिताम्। आसेदुर्मार्गखिन्नास्ते द्रौपदीपञ्चमास्तदा॥३॥
तत्रैव चोपविष्टोऽभूत्तदानीं चण्डिकागणः। बर्बरीकश्च तान्वीरान्समायातानपश्यत॥४॥
परंनासौवेदपाण्डून्पाण्डवास्तञ्चनोविदुः। आजन्मयस्मान्नैवाभूत्पाण्डूनांचास्यसङ्गमः॥५॥

सूतजी कहते हैं—भीमनन्दन बर्बरीक इस प्रकार सप्तलिंगों की अर्चना तथा देवी की आराधना में तत्पर हो गया। कुछ काल के उपरान्त पाण्डवगण द्यूतक्रीड़ा में पराजित हो गये तथा तीर्थाटन करते-करते वहां आये। वे द्रौपदी के साथ मार्गश्रम से व्याकुल थे, अतः पहले क्षेत्र के ईशान कोणस्थ चण्डिका मन्दिर पहुंचे। वहीं चण्डिका का परिचारक बर्बरीक भी था। उसने इन वीरों को आते अवश्य देखा। किन्तु ये पाण्डव हैं, इस प्रकार उनको नहीं पहचान सका। पाण्डव भी उसे नहीं पहचान सके कि यही बर्बरीक है। उसका जन्म से ही पाण्डवों से मिलन नहीं हो सका था॥१-५॥

ततः प्रविश्य वै तस्मिन्देवीमासाद्य पाण्डवाः।
पिण्डकाद्यं तत्र मुक्त्वा तृषा प्रैक्षि जलं तदा॥६॥
ततो भीमः कुण्डमध्यं जलं पातुं विवेश ह। प्रविशन्तं च तं प्राह युधिष्ठिरइदं वचः॥७॥
उद्धृत्य भीम! तोयं त्वं पादौ प्रक्षाल्य भो बहिः। ततः पिबाऽन्यथा दोषो महांस्त्वामुपपत्स्यते॥८॥
एतद्राज्ञो वचोभीमस्तृषाव्याकुललोचनः। अश्रुत्वैवविवेशाऽसौकुण्डमध्यंजलेच्छया॥९॥
स च दृष्ट्वा जलं पातुं तत्रैव कृतनिश्चयः। मुखं हस्तौ च चरणौ क्षालयामास शुद्धये॥१०॥
यतः पीतं जलं पुंसामप्रक्षाल्य च यद्भवेत्। प्रेताः पिशाचास्तद्रूपं संक्रम्यप्रपिबन्तितत्॥११॥

पाण्डवगण वहां देवी के पास गये तथा वहां अपना सामान रख कर प्यास के कारण इधर-उधर देखने लगे कि जल कहां है। तदनन्तर भीम जल पीने के लिए कुण्ड में प्रवेश करने के लिए उद्यत हो गये। तब युधिष्ठिर ने कहा—"हे भीम! तुम पहले कुण्ड से जल लेकर कुण्ड के बहिर्भाग में दोनों पैर धोकर तब जल पीना। अन्यथा महान् पाप दोष होगा।" लेकिन प्यास से उद्भ्रान्त नेत्रों वाले भीम ने यह नहीं सुना। वे जल पीने कुण्ड में उतर गये। जल देखकर उन्होंने जल पीने का निश्चय किया तथा देहशुद्धि हेतु मुख, दोनों हाथ तथा दोनों पैर धोया। क्योंकि इन ५ अंगों को धोये बिना जल पीने से प्रेत-पिशाचादि देवयोनियां उस मानव के शरीर में प्रवेश करके जल पी लेते हैं॥८-११॥

एवं प्रक्षालयाने च पादौ तत्र वृकोदरे। उपरिस्थस्तदा प्राह सत्यं सुहृदयो वचः॥१२॥
दुर्मते भोः किमेतत्त्वं कुरुषे पापनिश्चयः। देवीकुण्डेक्षालयसि मुखंपादौकरौचयत्॥१३॥
यतो देवी सदाऽनेन जलेन स्नाप्यते मया। तदत्र प्रक्षिपंस्तोयं मलपापान्न बिभ्यसि॥१४॥
मलाक्ततोयं यन्नाम अस्पृश्यं तन्नरैरपि। कुतो देवैश्च तत्पापं स्पृश्यते तत्त्वतो वद॥१५॥
शीघ्रं च त्वं निःसराऽस्मात्कुण्डाद्भूत्वा बहिः पिब।
यद्येवं पाप! मूढोऽसौ तीर्थेषु भ्रमसे कुतः॥१६॥

वृकोदर भीम ने पूर्वोक्त प्रकार से जल में पंचांग प्रक्षालन किया। यह देखकर कुण्ड के ऊपरी भाग में स्थित सुहृदय बर्बरीक ने उनको जल में पंचांग प्रक्षालन करते देख सत्य वाक्य कहा—"हे दुर्मति पापी! तुमने देवी कुण्ड में पांचों अंग धोया, यह क्या व्यवहार है? इस कुण्ड के जल से मैं नित्यप्रति देवी को स्नान कराता हूं। तुमने उसे गंदा किया! क्या तुमको पापभय नहीं है। मलाक्त जल तो मानवगण के लिये भी अस्पृश्य है। उस जल का स्पर्श देवगण से कैसे कराया जाये? तुम शीघ्र इस कुण्ड से बाहर आकर जलपान करो। हे पापी! यदि तुम इतने मूर्ख हो, तब तीर्थ भ्रमण क्यों कर रहे हो"?॥१२-१६॥

भीम उवाच

किमेतद्भाषसे क्रूर! परुषं राक्षसाधम!। यतस्तोयानि जन्तूनामुपभोगार्थमेव हि॥१७॥
तीर्थेषु कार्यं स्नानं चेत्युक्तं मुनिवरैरपि। अङ्गप्रक्षालनं स्नानमुक्तं मां निन्दसे कुतः॥१८॥
यदि न क्रियते पानमङ्गप्रक्षालनं तथा। तत्किमर्थं पूर्तधर्माः क्रियन्ते धर्मशालिभिः॥१९॥

भीम कहते हैं—हे क्रूर! राक्षसाधम! इतनी कटु बात क्यों कहते हो। समस्त जल प्राणीगण के उपभोग के लिए निश्चित है। तीर्थस्नान का विधान तो मुनियों ने किया है। स्नान शब्द का अर्थ ही है अंग धोना। तब मेरी निन्दा क्यों करते हो? यदि पान तथा अंग प्रक्षालन नहीं होगा, तब पूर्त्तकर्मों का अनुष्ठान कैसे होगा?।।१७-१९।।

सुहृदय उवाच

स्नातव्यं तीर्थमुख्येषु सत्यमेतन्न संशयः। चरेषु किन्तुसम्विश्यस्थावरेषु बहिःस्थितः॥२०॥
स्थावरेष्वपि सम्विश्य तत्र स्नानं विधीयते। न यत्र देवस्नानार्थं भक्तैः संगृह्यतेजलम्॥२१॥
यच्च हस्तशतादूर्ध्वं सरस्तत्र विधीयते। स वेशेऽपि क्रमश्चाऽयं पादौप्रक्षाल्ययद्बहिः॥२२॥
ततः स्नानं प्रकर्तव्यमन्यथा दोष उच्यते। किं न श्रुतस्त्वया प्रोक्तः श्लोकः पद्मभुवा पुरा॥२३॥
मलं मूत्रं पुरीषं च श्लेष्म निष्ठीवनाश्रुच। गण्डूषाश्चैव मुञ्चन्ति ये ते ब्रह्महणैः समाः॥२४॥
तस्मान्निःसर शीघ्रं त्वं यद्येवमजितेन्द्रियः। तत्किमर्थं दुराचार! तीर्थेष्वटसि बालिश॥२५॥

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
निर्विकाराः क्रियाः सर्वाः स हि तीर्थफलं लभेत्॥२६॥

सुहृदय (बर्बरीक) कहता है—श्रेष्ठतीर्थ में स्नान अवश्य करे। यह सत्य कहते हो तथा यह बात भी सन्देहरहित है, तथापि विशेष बात यह है कि बहते पानी में जल में जाकर स्नान करे, परन्तु जो स्थिर जलाशय है, उसमें बाहर स्नान करना चाहिये।

स्थिर जल में भी स्नान कर सकते हैं, जबकि उसमें से देव स्नानार्थ जल न लिया जाये। जो सरोवर १०० हाथ का होता है, उसमें बाहर पैरों को धोकर तब जल में उतरे। इस विधि का उल्लंघन करने वाला पापी होता है। इस सन्दर्भ में ब्रह्मा ने एक श्लोक पूर्वकाल में कहा है, क्या तुमने उसे नहीं सुना! यथा—"जो जल में मल, मूत्र, पुरीष, श्लेष्मा, थूक छोड़ते तथा कुल्ला करते हैं, वे ब्रह्महत्यारे हैं।" अतः तुम अविलम्ब कुण्ड से निकलो। हे दुराचारी, मूर्ख, यदि तुम ऐसे अजितेन्द्रिय हो, तब तीर्थपर्यटन क्यों कर रहे हो? जिसका हस्तद्वय, पदद्वय तथा मन सम्यक् संयत है, जिसकी समस्त क्रियायें निर्विकार हैं, उसे ही तीर्थफल मिलता है।।२०-२६।।

भीम उवाच

अधर्मो वाऽपि धर्मोऽस्तु निर्गन्तुं नैव शक्नुयाम्। क्षुधा तृषा मया नित्यं वारितुं नैव शक्यते॥२७॥

भीम कहते हैं—धर्म हो किंवा अधर्म, मैं बाहर नहीं निकल रहा हूं। मैं चिरकाल तक क्षुधा-तृष्णा नहीं सह सकता।।२७।।

सुहृदय उवाच

जीवितार्थेभवान्कस्मात्पापंप्रकुरुतेवद। किंनश्रुतस्त्वयाश्लोकः शिबिनायःसमीरितः॥२८॥
मुहूर्तमपि जीवेत नरः शुक्लेन कर्मणा। न कल्पमपि जीवेत लोकद्वयविरोधिना॥२९॥

सुहृदय बर्बरीक कहता है—तुम प्राण के लिये क्यों पापाचार कर रहे हो? शिवि ने एक श्लोक कहा है,

क्या उसे तुमने नहीं सुना? वह श्लोक है—विशुद्ध कर्म का आचरण करते हुए एक मुहूर्त्त मात्र का भी जीवन रहना उचित है, परन्तु इहकाल एवं परकाल विरोधी पाप कर्म करके कल्पान्त तक का भी जीवन अनुचित है।।२८-२९।।

भीम उवाच

काकारवेण ते मह्यं कर्णौ बधिरतां गतौ। पास्याम्येव जलं चात्रकामंविलप शुष्यवा।।३०।।

भीम कहते हैं—तुम्हारे कांव-कांव से मेरे कान बहरे हो रहे हैं। तुम यथेच्छ विलाप करो। सूख कर मरो। परन्तु मैं यहां जल पीकर रहूंगा।।३०।।

सुहृदय उवाच

क्षत्रियाणांकुलेजातस्त्वहंधर्माभिरक्षिणाम्। तस्मात्तेपातकंकर्तुं न दास्यामिकथञ्चन।।३१।।
तद्वराकाऽथ शीघ्रं त्वमस्मात्कुण्डाद्विनिःसर।।३२।।
इष्टकाशकलैः शीघ्रंचूर्णयिष्येऽन्यथा शिरः। इत्युक्त्वा चेष्टकांगृह्यमुमोचशिरसःप्रति।।३३।।
भीमश्चवञ्चयित्वातामुत्प्लुत्यबहिराव्रजत्। भर्त्सयन्तौततश्चोभावन्योन्यंभीमविक्रमौ।।३४।।
युयुधाते प्रलम्बाभ्यां बाहुभ्यां युद्धपारगौ। व्यूढोरस्कौदीर्घभुजौनियुद्धकुशलावुभौ।।३५।।
मुष्टिभिःपार्ष्णिघातैश्चजानुभिश्चाऽभिजघ्नतुः। ततो मुहूर्तात्कौरव्यःपर्यहीयतपाण्डवः।।३६।।
हीयमानस्ततो भीम उद्यतोऽभूत्पुनः पुनः। अहीयत ततोऽप्यङ्ग ववृधे बर्बरीकः।।३७।।
ततो भीमं समुत्पाट्य बर्बरीको बलादिव। निष्पिपेष ततः क्रुद्धस्तदद्भुतमिवाऽभवत्।।३८।।
मूर्च्छितं चैवमादाय विस्फुरन्तं पुनःपुनः। सागराय प्रचलितः क्षेप्तुं तत्र महाम्भसि।।३९।।
ददृशुः पाण्डवा नैतद्देव्या नयनयन्त्रिताः।।४०।।

सुहृदय (बर्बरीक) कहता है—मैंने धर्मपालक क्षत्रियकुल में जन्म लिया है, इसीलिये तुमको किसी प्रकार से भी पापाचार नहीं करने दूंगा। हे हतभाग्य! तुम शीघ्र इस कुण्ड से बाहर निकलो, अन्यथा ईंटों के टुकड़ों से तुम्हारा मस्तक चूर्ण कर दूंगा। बर्बरीक ने यह कहकर भीम के मस्तक को लक्ष्य करके ईंट का एक टुकड़ा फेंका, परन्तु भीम जरा किनारे हटे तथा उछल कर कुण्ड से बाहर आ गये। तदनन्तर दोनों एक दूसरे को भला-बुरा कहने लगे। क्रमशः ये दोनों भीमविक्रमी युद्धनिष्णात वीरद्वय परस्पर युद्ध करने लगे। वे अपनी विशाल बाहु से युद्ध कर रहे थे। दोनों उन्नत वक्षवाले, दीर्घबाहु तथा बाहुयुद्ध पारंगत थे। वे मुक्का, घुटने तथा पैर का प्रहार करके केहुनी तथा जानु द्वारा परस्पर आघात कर रहे थे। तदनन्तर कुछ काल के पश्चात् पाण्डुपुत्र भीम दुर्बल होने लगे। वे पुनः-पुनः उद्यम कर रहे थे, तथापि उनके अंगों में दुर्बलता छाती जा रही थी। उधर बर्बरीक का बल वर्द्धित होता प्रतीक को रहा था। सर्वान्त में बर्बरीक ने क्रोधित होकर भीम को उठाया तथा धरती पर पटक दिया, जिससे भीम मूर्छित हो गये तथा उनमें जीवन का अत्यल्प स्पन्दन मात्र बचा था। यह घटना विस्मयजनक प्रतीत हो रही थी। तदनन्तर बर्बरीक उनको उठाकर सागर में फेंकने ले जाने लगा। देवी ने अपनी शक्ति से पाण्डवों के नेत्र में अवरोध कर दिया था, तभी वे सभी इस घटना को नहीं देख पा रहे थे।।३१-४०।।

तथा गृहीते कुरुवीरमुख्ये वीरेण तेनाऽद्भुतविक्रमेण।
आश्चर्यमासीद्दिवि देवतानां देवीभिराकाशतले निरीक्ष्य तम्॥४१॥
सागरस्य ततस्तीरे बर्बरीकं गतं तदा। निरीक्ष्य भगवान्रुद्रो वियत्स्थः समभाषत॥४२॥
भोभो राक्षसशार्दूल बर्बरीक महाबल!। मुञ्चैनं भरतश्रेष्ठं भीमं तव पितामहम्॥४३॥
अयं हि तीर्थयात्रायांविचरन्भ्रातृभिर्युतः। कृष्णयाचाप्यदस्तीर्थंस्नातुमेवाऽभ्युपाययौ॥४४॥
सम्मानं सर्वथा तस्मादर्हः कौरवनन्दनः। अपापो वा सपापो वा पूज्य एवपितामहः॥४५॥

अद्भुत विक्रमी वीर बर्बरीक जब उन कुरुवीर श्रेष्ठ भीमसेन को इस प्रकार ले जाने लगा, यह देखकर आकाशस्थ देवी-देवता सभी विस्मित हो गये। जब बर्बरीक भीम को उठाकर सागर के किनारे पहुंचा, तब रुद्रदेव ने आकाश से कहा—"हे राक्षसशार्दूल, महाबली बर्बरीक! इन भरतवंश प्रधान भीमसेन को छोड़ो। ये तुम्हारे पितामह हैं। ये अपने अन्य भाईयों तथा द्रौपदी के साथ तीर्थाटन करते इस तीर्थ में स्नानार्थ आये हैं। ये कौरवनंदन चाहे पापयुक्त हों अथवा पापरहित, प्रत्येक स्थिति में पितामह तुम्हारे लिये सम्मान योग्य हैं"।।४१-४५।।

सूत उवाच

इति रुद्रवचः श्रुत्वा सहसा तं विमुच्य सः। न्यपतत्पादयोर्हा धिक्कष्टंकष्टंचप्राहसः॥४६॥
क्षम्यतां क्षम्यतां चेति पुनः पुनरवोचत। शिरश्च ताडयन्स्वीयं रुरोद च मुहुर्मुहुः॥४७॥
तं तथा परिशोचन्तं मुह्यमानंमुहुर्मुहुः। भीमसेनःसमालिङ्ग्य आघ्रायच वचोऽब्रवीत्॥४८॥
वयं त्वां नैव जानीमस्त्वं चाऽस्माञ्जन्मकालतः।
अत्र वासश्च ते पुत्र! भैमेः कृष्णाच्च संश्रुतः॥४९॥
परं नोविस्मृतंसर्वंनानादुःखैःप्रमुह्यताम्। दुःखितानांयतःसर्वास्मृतिर्लुप्ताभवेत्स्फुटम्॥५०॥

सूतजी कहते हैं—यह रुद्र वचन सुनकर बर्बरीक ने सहसा भीम को छोड़ दिया तथा "धिक्कार है, धिक्कार, कितने कष्ट की बात है" यह कहता भीम के पैरों पर गिर कर बारम्बार कहने लगा "क्षमा करिये-क्षमा करिये।" वह पुनः-पुनः अपने शिर पर आघात करता रुदन करने लगा। भीमसेन ने पुनः-पुनः रोदन करते बर्बरीक का आलिंगन करते उसका मस्तक सूंघते हुए कहा—"हे पुत्र! हमने तुमको कभी देखा नहीं था तथा तुमने भी हमसब को नहीं देखा था। कृष्ण तथा घटोत्कच से केवल यही सुना था कि तुम यहां निवास करते हो, तथापि हमलोग नाना दुःखों में पड़ कर यह विस्मृत कर गये। क्योंकि यह देखा जाता है कि जो अतीव दुःखी होते हैं, उनकी स्मृति का लोप हो जाता है"।।४६-५०।।

तदस्माकमिदंदुःखंसर्वकालविधानतः। मा शोचत्वंचतनय! न ते दोषोऽस्तिचाण्वपि॥५१॥
यतः सर्वःक्षत्रियस्यदण्ड्योविपथिसंस्थितः। आत्मापिदण्ड्यःसाधूनांप्रवृत्तःकुपथाद्यदि॥५२॥
पितृमातृसुहृद्भ्रातृपुत्रादीनां किमुच्यते। अतीव मम हर्षोऽयं धन्योऽहं पूर्वजाश्च मे॥५३॥
यस्य त्वीदृशकः पौत्रो धर्मज्ञो धर्मपालकः। वरार्हस्त्वं प्रशंसार्होभवान्येषांसतांतथा॥५४॥
तस्माच्छोकं विहायेमं स्वस्थो भवितुमर्हसि॥५५॥

"हमारा यह दुःख कालप्रभाव कृत है। हे वत्स! तुम अणुमात्र भी शोक न करो। इसमें तुम्हारा अणुमात्र

भी दोष नहीं है। जो विपथगामी व्यक्ति है, वह क्षत्रिय के दण्ड का पात्र है। इसमें पिता-माता, सुहृद-भ्राता की क्या बात? साधु के लिये यदि उसकी आत्मा ही कुपथगामी है, तब वह भी दण्डनीय है। यह अत्यन्त हर्ष की बात है कि तुम्हारे समान धर्मात्मा साधुपालक पौत्र मिला है। मैं अपने पूर्वजों के साथ स्वयं धन्य हो गया। तुम साधुगण द्वारा वर पाने लायक वरलाभ योग्य हो। तुम शोक त्याग कर स्वस्थ रहो''।।५१-५५।।

बर्बरीक उवाच

पापं मां तातताात त्वं ब्रह्मघ्नादपि कुत्सितम्। अप्रशस्यं नार्हसीहद्रष्टुंस्प्रष्टुमपिप्रभो।।५६।।
सर्वेषामेव पापानां निष्कृतिः प्रोच्यते बुधैः। पित्रोरभक्तस्य पुनर्निष्कृतिर्नैव विद्यते।।५७।।
तद्येन देहेन मया तातातोऽभिपीडितः। तत्स्वमेव समुत्स्रक्ष्ये महीसागरसङ्गमे।।५८।।
मैवं भवेयमन्येषु अपि जन्मसु पातकी। न मामस्मादभिप्रायादर्हः कोऽपिनिवर्तितुम्।।५९।।

बर्बरीक कहता है—हे प्रभो! पितामह! मैं पापी हूं। ब्रह्मघाती से भी निकृष्ट हूं। किसी प्रकार से भी प्रशंसनीय नहीं हूं। अतः आपको छूने तथा आपका दर्शन करने लायक भी नहीं हूं। पण्डितगण सभी पापों से छुटकारे का विधान कर गये हैं, परन्तु पिता-माता के अभक्त की निवृत्ति का कोई भी विधान नहीं है। मैंने इस शरीर से पितामह को पीड़ा प्रदान किया है, अतः निश्चित रूप से यह शरीर महीसागरसंगम में विसर्जन करूंगा। इससे मैं अगले जन्मों में ऐसा पातकी नहीं हो सकूंगा। इस निश्चय से कोई भी मुझे डिगा नहीं सकता। क्योंकि प्रायश्चित्त से रोकने वाला व्यक्ति मूल पापी के पाप का भागी हो जाता है।।५६-५९।।

यतोंऽशेनविलुप्येतप्रायश्चित्तान्निवारकः। एवमुक्त्वासमुत्प्लुत्यययौचैवाऽर्णवंबली।।६०।।
समुद्रोऽपि चकम्पे च कथमेनं निहन्म्यहम्। ततः सिद्धाम्बिकायाश्चदेव्यस्तत्रचतुर्दश।।६१।।
समालिङ्ग्यच संस्थाप्यरुद्रेणसहिता जगुः। अज्ञातविहितेपापेनास्तिवीरेन्द्रकल्मषम्।।६२।।
शास्त्रेषूक्तमिदं वाक्यं नाऽन्यथा कर्तुमर्हसि। अमुञ्च पृष्ठलग्नं त्वं पश्य भोः स्वं पितामहम्।।६३।।
पुत्रपुत्रेति भाषन्तमनुत्वा मरणोन्मुखम्। अधुना चेत्स्वकं देहं वीर त्वं परित्यक्ष्यसि।।६४।।
ततस्त्यक्ष्यति भीमोऽपि पातकं तन्महत्तव। एवं ज्ञात्वा धारय त्वं स्वशरीरं महामते।।६५।।

बलवान बर्बरीक यह कहकर उछला तथा समुद्र तट पर जा पहुंचा। तब समुद्र भी विचार करने लगा ''इसका मैं कैसे विनाश करूंगा।'' यह सोचकर वह कम्पित होने लगा। तभी वहां सिद्धाम्बिका देवी, अन्य १४ देवीगण एवं रुद्रदेव वहां आविर्भूत हो गये। उन्होंने बर्बरीक को सान्त्वना देते हुए कहा—''हे वीरेन्द्र! अज्ञानता के कारण जो किया जाता है, वह पाप नहीं होता। यह बात शास्त्रों में कही गयी है। अतः इस शास्त्र वाक्य के विपरीत आचरण करना उचित नहीं है। हे वीर! तुम्हारे पितामह तुम्हारे पीछे-पीछे ''पुत्र-पुत्र'' कहते मरणोन्मुख से आ रहे हैं। हे वीर! तुम यदि अभी देह त्याग करोगे, तब भीम भी प्राणत्याग कर देंगे। इससे तुमको महत् पाप होगा। हे महामति! तुम यह सोचकर अपनी जीवन रक्षा करो''।।६०-६५।।

अथ चेत्त्यक्तुकामस्त्वं तत्राऽपि वचनं शृणु। स्वल्पेनैवचकालेनकृष्णाद्देवकिनन्दनात्।।६६।।
देहपातस्तवप्रोक्तस्तं प्रतीक्ष यदीच्छसि। यतो विष्णुकराद्वत्स! देहपातो विशिष्यते।।६७।।
तस्मात्प्रतीक्ष तं कालमस्माकं प्रार्थितेन च। एवमुक्तो निववृते बर्बरीकोऽपिदुर्मनाः।।६८।।

रुद्रं देवीश्च चामुण्डां सोपालम्भं वचोऽब्रवीत्। त्वमेव देवि! जानासि रक्ष्यन्ते शार्ङ्गधन्विना॥६९॥
पाण्डवाभूमिलाभार्थेतत्तेकस्मादुपेक्षितम्। त्वया च समुपागत्य रक्षितोऽयं वृकोदरः॥७०॥

देव्युवाच

अहं च रक्षयिष्यामिस्वभक्तंकृष्णमृत्युतः। यस्माच्चचण्डिकाकृत्येकृतोऽनेनमहारणः।
तस्माच्चण्डिलनाम्नाऽयं विश्वपूज्यो भविष्यति॥७१॥
एवमुक्त्वा गताः सर्वे देवा देव्यस्त्वदृश्यताम्।
भीमोऽपि तं समादाय पाण्डुभ्यः सर्वमूचिवान्॥७२॥

"यदि तुम अपने देहत्याग की नितान्त इच्छा कर रहे हो, तब इस सम्बन्ध में हमारी बात सुनो। अत्यन्त अल्पकाल में ही देवकीनन्दन श्रीकृष्ण के हाथों तुम्हारा शरीरान्त विहित है। तुम उस काल की प्रतीक्षा करो। हे वत्स! विष्णु के हाथों देहपात अत्यन्त उत्कर्षकारक है। अतः तुम हमारे कथनानुरूप उस समय की प्रतीक्षा करो।" यह सुनकर बर्बरीक दुःखित चित्त से देह त्याग से विरत हो गया। उसने उपालम्भ देते हुए रुद्र, देवीगण तथा चामुण्डा से कहा—"हे देवी! आप तो यह सतत् जानती हैं कि पृथिवी के कार्य विशेष के कारण श्रीकृष्ण सदा पाण्डवों की रक्षा करते हैं, तब आपने इस बात की उपेक्षा क्यों किया? आपने ही तो आकर वृकोदर भीम को बचाया।" देवी ने तब भीम से कहा—"मैं कृष्ण के हाथों अपने भक्त की रक्षा करूंगी। चण्डिका के कार्य साधनार्थ यह बर्बरीक महायुद्ध करेगा। यह जगत् में तब चण्डिल नाम से सम्मानित होगा।" यह कहकर सभी देवी-देवता अन्तर्हित हो गये। तब भीम भी बर्बरीक को लेकर पाण्डवगण के पास आये तथा समस्त वृत्तान्त उनलोगों से कहा।।६६-७२।।

विस्मिताः पाण्डवास्तं च पूजयित्वा पुनः पुनः। यथोक्तविधिना चक्रुस्तीर्थस्नानमतन्द्रिताः॥७३॥
भीमोऽपियत्ररुद्रेणमोक्षितस्तत्रसुप्रभम्। लिङ्गं संस्थापयामास भीमेश्वरमिति श्रुतम्॥७४॥
ज्येष्ठमासेकृष्णपक्षे चतुर्दश्यामुपोषितः। रात्रौ सम्पूज्य भीमेशं जन्मपापाद्विमुच्यते॥७५॥
यथैव लिङ्गानि सुपूजितानि सप्ताऽत्र मुख्यानि महाफलानि।
भीमेश्वरं लिङ्गमिदं तथैव समस्तपापापहरं सुपूज्यम्॥७६॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे भीमेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः॥६४॥

पाण्डवों ने विस्मयपूर्वक बर्बरीक को साधुवाद प्रदान करके यथोक्त विधि से अतंद्रित होकर तीर्थ स्नान किया। भीम ने जहां वे रुद्र द्वारा बर्बरीक से छुड़ाये गये थे, वहां पर भीमेश्वर नामक एक लिंग स्थापित किया। ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी को उपवासी रहकर रात्रि में भीमेश्वर की अर्चना करने से आजन्म किये पापों से वह पूजक व्यक्ति मुक्त हो जाता है। जहां महाफलप्रद ये सातों लिंग हैं, वहीं भीमेश्वर लिंगार्चन से भी वैसा ही फल मिलता है तथा सभी पाप दूरीभूत हो जाते हैं।।७३-७६।।

।।चतुःषष्टितम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

युधिष्ठिर-भीम संवाद, भीम का देवीदर्शन वर्णन, गयत्राडा देवी वर्णन

सूत उवाच

उषित्वासप्तरात्राणितीर्थेऽस्मिन्भ्रातृभिःसह। युधिष्ठिरो महातेजा गमनायोपचक्रमे॥१॥
प्रभाते विमलेस्नात्वादेवीर्लिंगान्यथाऽर्च्यच। कृत्वाप्रदक्षिणंक्षेत्रदेवीस्तोत्रंजजाप सः।
प्रयाणकालेषु सदा जप्यं कृष्णेन कीर्तितम्॥२॥

सूतजी कहते हैं—महातेजस्वी युधिष्ठिर ने भाईयों के साथ उस तीर्थ में निवास करके वहां से प्रस्थान करने की इच्छा के साथ प्रातः विमल तीर्थ जल में स्नान करके देवीगण तथा सप्त लिंगार्चन पूजन सम्पन्न करने के पश्चात् क्षेत्र प्रदक्षिणा सम्पन्न किया। तत्पश्चात् वे देवी स्तुति का पाठ करने लगे। यह स्तुति कृष्ण द्वारा कही गयी है। यात्राकाल में इसका पाठ करना चाहिये।।१-२।।

युधिष्ठिर उवाच

देवि पूज्ये महाशक्ते कृष्णस्यभगिनिप्रिये। नत्वा त्वां शरणंयामिमनोवाक्वायकर्ममिः॥३॥
सङ्कर्षणाभयदाने कृष्णच्छविसमप्रभे। एकानंशे महादेवि पुत्रवत्त्राहि मां शिवे॥४॥
त्वयाततमिदंविश्वंजगदव्यक्तरूपया। इति मत्वा त्वां गतोऽस्मि शरणं त्राहिमांशुभे॥५॥
कार्यारम्भेषु सर्वेषु सानुगेनमयातव। स्व आत्माकल्पितोभद्रे ज्ञात्वैतदनुकम्प्यताम्॥६॥

युधिष्ठिर कहते हैं—हे कृष्ण की प्रिय भगिनी! पूज्या महाशक्ति देवी! मैं काया-मन-वाक्य से आपको प्रणाम करके आपका आश्रय लेता हूं। आपने संकर्षण को अभय प्रदान किया था। आप कृष्णवत् ही कान्ति वाली हैं। हे एकानंशा महादेवी! हे शिवे! आप मेरा पुत्रवत् पालन करिये। आप अव्यक्तरूपा हैं। आप ही जगत् का विस्तार करती हैं। मैं यह जानकर आपकी शरण लेता हूं। हे शुभे! मेरा त्राण करें। समस्त कार्यारम्भ में मैं अनुचरों के साथ अपनी आत्मा को आपमें न्यस्त करूं। हे शुभे! मेरा त्राण करिये। आप यह जानकर मेरे प्रति कृपा वितरण करें।।३-६।।

सूत उवाच

इति ब्रुवाणं राजानं शिरोबद्धाञ्जलिं तदा। वायुपुत्रः प्रहस्यैवसासूयमिदमब्रवीत्॥७॥
ये त्वांराजन्वदन्त्येवंसर्वज्ञोऽयंयुधिष्ठिरः। वृथैववचनंतेषांयतस्त्वंवेत्सिनाऽण्वपि॥८॥
कोहि प्रज्ञावतां मुख्यः सर्वशास्त्रविदाम्वरः। स्त्रीणांशरणमापद्येदृजुर्बुद्धिर्यथा भवान्॥९॥
यतस्त्वमेव वेत्सीदं सर्वशास्त्रेषु कीर्त्यते। जडेयं प्रकृतिर्मूढा यया सम्मोह्यते जगत्॥१०॥

सूतजी कहते हैं—राजा युधिष्ठिर मस्तक पर हाथ जोड़कर (मस्तक से अंजलि को स्पर्श कराकर) जब

यह प्रार्थना कर रहे थे, तब भीमसेन ने उनसे विरक्ति के साथ कहा—हे राजन्! लोग तो आपको सर्वज्ञ युधिष्ठिर कहते हैं, आपको सर्वज्ञ मानते हैं, लेकिन मैं देखता हूं कि उन सब की यह बात नितान्त मिथ्या है। क्योंकि आप तो कुछ भी नहीं जानते। बुद्धिमानों में अग्रगण्य सर्वशास्त्रज्ञ व्यक्ति क्या आपकी तरह सरलचित्त से स्त्रीगण के प्रति शरणापन्न होता? आप तो जानते हैं तथा सभी शास्त्रों में कहा गया है कि जो जगत् में मोह का विधान करती हैं, वे प्रकृति देवी जड़ तथा मूढ़ा हैं।।७-१०।।

सचेतनञ्च पुरुषं प्रकृतिञ्च विचेतनाम्। प्राहुर्बुधा नराध्यक्ष! पुंसश्च प्रकृतिःप्रिया।।११।।
तत्स्वयं पुरुषोभूत्वा युधिष्ठिर वृथामते!। प्रकृतिं नौषि नत्वातां हासोमेऽतीवजायते।।१२।।
आरोहयेच्छिरो नैव क्वचिद्धित्वा उपानहौ। यथा स मूढोभवति देवीभक्तिरतस्तथा।।१३।।
यदिते बन्दिवत्पार्थ! तिष्ठेद्वाणयनिवारिता। तत्किमर्थंमहादेवंनस्तौषि त्रिपुरान्तकम्।।१४।।
अलक्ष्यमिति वा मत्वा महेशानं महामते! ततः किमर्थं दाशार्हंनस्तौषिपुरुषोत्तमम्।।१५।।
यस्य प्रसादादस्माभिः प्राप्ता द्रुपदन्दिनी। इन्द्रप्रस्थे तथा राज्यं राजसूयस्त्वयाकृतः।।१६।।
विजयेन धनुर्लब्धं जरासन्धो मया हतः। प्रत्याहर्तुंतथेच्छामःकौरवेभ्यःस्वकांश्रियम्।।१७।।
यस्यप्रसादात्तंमुक्त्वाकृष्णंहास्तौषि यज्जयी। अथ स्वयंकौरवाणामुत्पन्नंकुलसत्तमे।।१८।।
जानन्नात्मानमल्पत्वादबुद्धेर्न स्तौषि यादवम्। तत्किमर्थं महावीर्यं न स्तौष्यर्जुनमुत्तमम्।।१९।।

हे नरनाथ! पण्डितगण प्रकृति को अचेतन तथा पुरुष को चेतन कहते हैं। प्रकृति पुरुष की पत्नी है। हे वृथाज्ञान महाराज युधिष्ठिर! आप स्वयं पुरुष होकर जो प्रकृति को प्रणाम कर रहे हैं, यह देखकर मुझे हंसी आ रही है। पादुका को कभी मस्तक पर नहीं रखते, परन्तु जो व्यक्ति पादुका को शिर पर रखता है, उसी प्रकार देवी भक्त भी मूढ़ ही है। हे पार्थ! यदि बन्दीजन की तरह आपका भी अनर्गल वाग्विलास करना ही है, तब त्रिपुरारि शंकर का स्तव क्यों नहीं करते? हे महामति! यदि महेश्वर को अलक्ष्य मानकर उनका स्तव नहीं करना हो, तब पुरुषोत्तम वासुदेव की स्तुति तो कर ही सकते हैं। जिनकी कृपा से हमने द्रौपदी को प्राप्त किया था। आपने इन्द्रप्रस्थ का राज्य किया था तथा राजसूय अनुष्ठान किया था, अर्जुन ने उत्तम धनुष लाभ किया था, मैंने जरासन्ध वध किया था, उनकी कृपा से ही हम लोग कौरवों द्वारा छीन ली गयी अपनी राज्यलक्ष्मी को पाने की अभिलाषा किये हुये हैं, उनकी कृपा से जययुक्त आप जैसा व्यक्ति अन्य की स्तुति कर रहा है, यह कितने कष्ट की बात है? और यदि आप यह सोचें कि मैं उत्तम कौरवकुल में जन्मा हूं, अतः अपने कुल से हीन कुल में जन्मे कृष्ण का स्तव कैसे करूं, तब आप अर्जुन का स्तव क्यों नहीं करते? वैसे कृष्ण का स्तव न करना आपकी निर्बुद्धिता ही होगी।।११-१९।।

येन विद्धं पुरा लक्ष्यं येन कर्णादयोजिताः। येन तत्खाण्डवं दग्धं यज्ञेयेननृपाजिताः।।२०।।
श्रूयतेयेनविक्रम्यमहेशानोऽपिनिर्जितः। स्वर्लोकसंस्थितस्यास्यशरणंयाहिस्तौषि च।।२१।।
अथवा तेन शक्रेण राज्यम्मे नाऽर्पितंकुतः। इतिमत्वा वृथैव त्वं न स्तौषिभ्रातरंमम।।२२।।
ततो मां वा कथं वीरं न स्तौषित्वंयुधिष्ठिर!। येनत्वंरक्षितःपूर्वंलाक्षागेहाग्निमध्यतः।।२३।।
वृक्षेणाहत्यमद्रेशो नदीं शुष्कां प्रसारितः। राजराजस्तथा येनजरासन्धोनिपातितः।।२४।।

पूर्वादिङ्निर्जितायेनयेनपूर्वंबको हतः। हिडम्बश्च महावीरः किर्मीरश्चाऽधुना वने॥२५॥
कालेकालेच रक्षामित्वामेवाऽहंसदानुगः। नताम्पश्यामिरक्षन्तींनत्वायांस्तौषिभारत॥२६॥

अर्जुन ने पूर्व में द्रौपदीस्वयंवर के समय लक्ष्यवेध किया था, कर्ण आदि प्रमुख वीरों पर विजय पाई, खाण्डव वन दहन किया, राजसूय यज्ञकाल में राजाओं को निष्क्रिय किया। सुना है कि अर्जुन ने महेश्वर को भी जय किया तथा अपने जीवन काल में ही स्वर्ग में भी निवास किया। अतः आप इसी का स्तव करके इसका ही आश्रय लीजिये। यदि यह सोचें कि "अर्जुन ने सक्षम होकर मुझे राज्य जीत कर नहीं दिया" तथा उसका स्तव न करना चाहें, तब हे वीर युधिष्ठिर! आप मेरा स्तव क्यों नहीं करते? जिसके कारण आप लाक्षागृह की अग्नि से बचे, जिसके वृक्षाघात से मद्रपति आहत होकर शुष्कनदी में मृत हुए थे, जिसके द्वारा राजराज जरासन्ध का वध हुआ, जिसने पूर्व दिशा को जीता तथा पूर्वकाल में महाबली बकासुर तथा महावीर हिडिम्ब का वध किया, अभी वन में किर्मिर दैत्य का वध किया, मैं वही भीम हूं। मै सदा आपका सतत् अनुगमन करके आपकी रक्षा करता हूं। अतः मेरा स्तव क्यों नहीं करते? आप जिसका स्तवन कर रहे हैं, उसे कभी आपकी रक्षा करते नहीं देखा!।।२०-२६।।

अथ क्षुधाबलं ज्ञात्वामामौदरिकसत्तमम्। क्रूरंसाहसिकंचैव न स्तौषि क्षमिणांवरः॥२७॥
ततः सुसंयतो भूत्वा प्रणवं समुदीरयन्। कथंनयासिमार्गेत्वंवृथालापोहिदोषभाक्॥२८॥
प्रेताः पिशाचा रक्षांसिवृथालापरतं नरम्। आविशन्ति तदाविष्टोवक्ताबद्धंपुनःपुनः॥२९॥
वृथालापी यदश्नातियत्करोति शुभं क्वचित्। प्रेतादितृप्तये सर्वमिति शास्त्रविनिश्चयः॥३०॥
नाऽयंतस्यास्तिवैलोकःकुतएवपरोऽभवेत्। तस्माद्विजानतायत्नात्त्याज्यमेववृथावचः॥३१॥
एवं संस्मारितोऽपित्वंयदिभूयःप्रवर्तसे। भूताविष्टश्चिकित्स्योनोविविधैरौषधैर्भवान्॥३२॥

यदि आप मुझे क्षुधाक्रान्त नितान्त पेटू (क्रूर तथा साहसी) जानकर मेरी स्तुति न करना चाहें, तब हे क्षमाशीलगणों के अग्रगण्य महाराज! आप संयत होकर प्रणव उच्चारण करते हुए पथ पर जा सकते हैं। वृथा आलाप करना दोषपूर्ण होता है। उसका शरीर प्रेत-पिशाचों से आविष्ट हो जाता है। तब वह व्यक्ति उलजलूल वाक्यालाप करता है। वृथा बात करने वाला जो भोजन, जो सत्कर्यादि करता है, वह सब प्रेतों को तृप्ति देता है। यही शास्त्र वचन है। वृथा आलाप करने वाला इस लोक में सुख नहीं पाता। परलोक की तो बात ही क्या? इसीलिए ज्ञानी हेतु वृथा आलाप परित्याज्य है। आपको यह स्मरण करा दिया, तथापि यदि वृथा आलाप करें, तब तो आप अवश्य भूतों से आविष्ट हैं। तब तो हमारा कर्त्तव्य बनेगा नाना औषधि आदि से आपकी चिकित्सा करना।।२७-३२।।

सूत उवाच

इति प्रवर्णितां श्रुत्वा भीमसेनेनभारतीम्। पटीमिव प्रविततां विहस्याऽऽहयुधिष्ठिरः॥३३॥
नूनं त्वमल्पविज्ञानो वेदाधीतास्त्वया वृथा। मातरं सर्वभूतानामम्बिकां यन्न मन्यसे॥३४॥
स्त्रीपक्ष इति मत्वा तामवजानासि भोः कथम्।
स्त्री सती न प्रणम्या किं त्वया कुन्ती वृकोदर!॥३५॥

यदि न स्यान्महामाया ब्रह्मविष्णुशिवार्चिता। तव देहोद्भवःपार्थकथंस्यात्तत्त्वतो वद॥३६॥
ईश्वरः परमात्मा तां त्यक्तुं शक्तः कथं न हि। पुनर्भेजे यतो देवीतेनमन्येमहोर्जिताम्॥३७॥
वासुदेवोऽपि नित्यं तां स्तौति शक्तिं परात्पराम्।
अहं यदि चिकित्स्यः स्यां चिकित्स्यः सोऽपि किं भवान्॥३८॥
नैवं भूयः प्रवक्तव्यंमौर्ख्यात्प्रति महेश्वरीम्। भूमौनिपत्यशरणंयाहिचेत्सुखमिच्छसि॥३९॥

सूतजी कहते हैं—भीमसेन का विशाल वस्त्र के समान विस्तृत एवंविध वाक्विलास सुनकर युधिष्ठिर ने हंसते हुए उनसे कहा—तुम निश्चित रूप से निर्बोध हो। तुमने वृथा वेदाध्ययन किया है, क्योंकि सर्व प्राणीसमूह की मातृरूपा अम्बिका का सम्मान नहीं करते हो। हे भीम! तुम स्त्री जाति कहकर उनकी अवज्ञा क्यों करते हो? माता कुन्ती भी तो स्त्री हैं। क्या वे भी प्रणाम योग्य नहीं हैं? यदि ब्रह्मा-विष्णु-शिवादि की अर्चिता महामाया न होतीं, तब तुम्हारी देहोत्पत्ति कैसे हो पाती? हे पार्थ! तुम उसका यथार्थतः उत्तर दो! परमात्मा महेश्वर भी उन माया को त्याग सकने में कदापि समर्थ नहीं हो सके। उन्होंने पुनः उसी माया का आश्रय ग्रहण जो किया! वासुदेव भी नित्य उन परात्परा शक्ति का ही स्तव करते हैं। यदि मैं चिकित्सायोग्य हो गया, तब तो वासुदेव भी चिकित्सा योग्य ही हैं। तुम मूर्खतावशात् पुनः उन महेश्वरी के प्रति ऐसे वचन न कहना। यदि सुख चाहो, तब भूपतित होकर उनकी शरण ग्रहण करो।।३३-३९।।

भीम उवाच

सर्वोपायैर्बोधयन्ति चाटा हस्तगतं नरम्। इदमेवौषधं तत्र तैः सार्धं जल्पनं न हि॥४०॥
मुण्डेमुण्डेमतिर्भिन्नासत्यमेतन्नृप! स्फुटम्। स्वाभीष्टंकुरुते सर्वःकुर्मोऽभीष्टंवयंतथा॥४१॥
नागायुतसमप्राणो वायुपुत्रो वृकोदरः। न स्त्रियं शरणं गच्छेद्वाङ्मात्रेण कथञ्चन॥४२॥
इत्युक्त्वा वचनं भीमोह्यनुवव्राजतं नृपम्। राजाऽपिसानुगोयातोनसाध्वितिमुहुर्ब्रुवन्॥४३॥
ततः क्षणेनविकलस्त्वितश्चेतश्चप्रस्खलत्। उवाच वचनं भीमः सुसम्भ्रान्तोनृपंप्रति॥४४॥
धर्मराज महाबुद्धे पश्य मां नृपसत्तम। चक्षुर्भ्यांनैव पश्यामि वैकल्यं किमिदं मम॥४५॥

भीम कहते हैं—"चाटुकार लोग समस्त उपाय द्वारा मनुष्य को वश में करके प्रबोध प्रदान करते हैं। अतः ऐसी स्थिति में उनके साथ वाक्यालाप न करना ही उपाय रूप है। हे राजन्! "मुण्डे-मुण्डे मति भिन्न होती है।" अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति का विचार अलग-अलग होता है। यह कहावत अत्यन्त सत्य है। सभी जीव अपना अभीष्ट सम्पन्न करना (प्राप्त करना) चाहते हैं। अतः मैं भी अपना अभीष्ट कार्य करूंगा। दस हजार हाथी के बलवाला बलवान वायुपुत्र भीमसेन कदापि किसी के कहने मात्र से किसी स्त्री का शरणापन्न नहीं होगा।" भीम कह कहते हुए युधिष्ठिर का अनुगमन करने लगे। राजा युधिष्ठिर भी "ऐसा कहना उचित नहीं है" कहते हुए अपने साथ के लोगों के साथ जाने लगे। तदनन्तर कुछ क्षणों के पश्चात् भीम इधर-उधर लड़खड़ाने लगे। उन्होंने विकलतापूर्वक तथा भ्रमित होकर राजा युधिष्ठिर से कहा—"हे नृपश्रेष्ठ! महाबुद्धि धर्मराज! मुझे देखिये। मैं आंखों से कुछ भी देख नहीं पा रहा हूं। यह क्या हो गया?।।४०-४५।।

राजोवाच

भीमभीम! ध्रुवं देवी कुपिता ते महेश्वरी। तेन नष्टे चक्षुषी ते महासाहसवल्लभ!॥४६॥

तत्साम्प्रतमभिप्रैहि शरणं परमेश्वरीम्। पुनः प्रसन्ना ते दद्यात्कदाचिन्नयने पुनः॥४७॥

राजा युधिष्ठिर कहते हैं—हे भीम! यह निश्चित रूप से भगवती महेश्वरी तुम्हारे ऊपर क्रुद्ध हो गयी हैं। अतः हे महासाहसप्रिय! तुम्हारे दोनों नेत्र नष्ट हो गये। इस कारण तुम मन ही मन भगवती की शरण ग्रहण करो। वे प्रसन्न होकर पुनः तुमको दृष्टि प्रदान करेंगी।।४६-४७।।

भीम उवाच

अहमप्यङ्ग जानामिसमोदेव्या न कश्चन। प्रभावप्रत्ययार्थंहिसदा निन्दामि तां पुनः॥४८॥
तस्मात्प्रभावं दृष्ट्वैवं निपत्य वसुधातले। मनोवाग्बुद्धिभिर्नत्वाशरणंस्तौमिमातरम्॥४९॥

भीम कहते हैं—हे महाराज! देवी के समान अन्य कोई नहीं है, यह मुझे ज्ञात है, परन्तु उनका प्रभाव देखने के लिये ही मैं सदा उनकी निन्दा करता हूं। अतएव मैंने इस समय उनका प्रभाव प्रत्यक्ष देख लिया। इसलिए भूमि पर गिरकर मन-वाणी-बुद्धि से उन माता की शरण लेकर उनकी स्तुति करता हूं''।।४८-४९।।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा भ्रातरं ज्येष्ठं साष्टाङ्गंप्रणिपत्यच। गत्वैवदेव्याःशरणंभीमस्तुष्टावमातरम्॥५०॥

सूतजी कहते हैं—भीम ने अपने ज्येष्ठ भ्राता से यह कहा और साष्टांग प्रणाम के साथ देवी की शरण लेकर स्तुति करने लगे।।५०।।

भीम उवाच

सर्वभूताम्बिके देवि! ब्रह्माण्डशतपूरके। बालिशं बालकं स्वीयं त्राहित्राहिनमोऽस्तु ते॥५१॥
त्वंब्राह्मीब्रह्मणःशक्तिर्वैष्णवीत्वंचशाम्भवी। त्रिमूर्तिः शक्तिरूपात्वंरक्षरक्षनमोऽस्तुते॥५२॥
त्वमैन्द्री च त्वमाग्नेयी त्वं याम्या त्वं च नैर्ऋती।
त्वं वारुणी त्वं वायव्या त्वं कौबेरी नमोऽस्तु ते॥५३॥
ऐशानि देवि वाराहि नारसिंहि जयप्रदे। कौमारि कुलकल्याणिकृपेश्वरिनमोऽस्तुते॥५४॥
त्वंसूर्येत्वंतथासोमेत्वंभौमेत्वंबुधेगुरौ। त्वंशुक्रेत्वंस्थिताराहौत्वंकेतुषुनमोऽस्तुते॥५५॥
वससिधुवचक्रे त्वं मुनिचक्रे च ते स्थितिः। भचक्रेषु खचक्रेषु भूचक्रेचनमोऽस्तु ते॥५६॥
सप्तद्वीपेषु त्वं देवि! समुद्रेषु च सप्तसु। सप्तस्वपि च पातालेष्ववसंस्थे नमोऽस्तु ते॥५७॥

भीम कहते हैं—हे सर्वभूतसमूह की माता! हे शतब्रह्माण्ड पूरणकारिणी देवी! आप इस निर्बोध सन्तान की रक्षा करिये। आपको नमस्कार! आप ही ब्रह्मशक्ति ब्राह्मी हैं, आप ही वैष्णवी तथा शाम्भवी हैं। आप ही त्रिमूर्त्तिधारिणी परमा शक्ति भी हैं। आप मेरी रक्षा करिये, रक्षा करिये! आप ऐन्द्री, आग्नेयी, याम्या, वारुणी, वायव्या, कौबेरी हैं। आपको नमस्कार! हे ऐशानी, वाराही, नारसिंही, जयप्रदे, कौमारी, कुलकल्याणी, कृपेश्वरी, आपको नमस्कार! आप ही सूर्य, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, राहु, केतु में नित्य स्थिता हैं। आपको प्रणाम! आप ध्रुवचक्र, मुनिचक्र, क्षेत्रचक्र, आकाशचक्र तथा भचक्र, भूचक्र में सदा स्थिता हैं। आपको प्रणाम। आप सप्तद्वीप, सप्तसमुद्र तथा सप्त पाताल से सतत् स्थित रहती हैं। आपको प्रणाम।।५१-५७।।

त्वं देवि चाऽवतारेषु विष्णोः साहाय्यकारिणी।
विष्णुनाऽभ्यर्थ्यसे तस्मात्त्राहि मातर्नमोऽस्तु ते॥५८॥

चतुर्भुजे चतुर्वक्त्रे फलदे चत्वरप्रिये। चराचरस्तुते देवि! चरणौ प्रणमामि ते॥५९॥
महाघोरे कालरात्रि घण्टालि विकटोज्ज्वले!। सततं सप्तमीपूज्ये! नेत्रदे शरणं भव॥६०॥
मेरुवासिनि पिङ्गाक्षि नेत्रत्राणैककारिणि। हुंहुङ्कारध्वस्तदैत्ये शरण्ये शरणं भव॥६१॥
महानादे महावीर्ये महामोहविनाशिनि। महाबन्धापहे देवि देहि नेत्रत्रयं मम॥६२॥
सर्वमङ्गलमङ्गल्या यदि त्वं सत्यतोऽम्बिके। ततो मे मङ्गलंदेहि नेत्रदानान्नमोऽस्तु ते॥६३॥
यदि सर्वकृपालुभ्यः सत्यतस्त्वं कृपावती। ततः कृपां कुरुमयि देहि नेत्रेनमोऽस्तु ते॥६४॥
पापोऽयमितियद्देविप्रकुप्यसिवृथैवतत्। त्वं मां मोहयसि त्वेवंनतेतत्किंनमोऽस्तु ते॥६५॥
स्वयमुत्पाद्य यो रेणुं वष्टितस्तेनकुप्यति। तथाकुप्यसि मे मातरनाथस्याऽस्यदर्शय॥६६॥

हे देवी! आप विष्णु के सभी अवतारों में उन विष्णु की प्रार्थना के कारण उनकी सदा सहायता करती हैं। हे माता! मेरी रक्षा करिये। आपको प्रणाम! हे चतुर्भुजे! हे चतुर्वक्त्र वाली, हे फलप्रदे, चत्वरप्रिये, चराचर द्वारा स्तुत देवी! आपके चरणों में प्रणाम। हे महाघोरे, कालरात्रि, धणृलि, विकटोज्वले, सतत् सप्तमी पूज्ये, नेत्रप्रदे! आप मेरी रक्षा करिये। हे मेरुवासिनी, पिङ्गाक्षी, एकमात्र आप ही नेत्ररक्षिणी हैं। हे हुहुङ्कार द्वारा दैत्यों का विनाश करने वाली, शरण्ये, आप मुझे आश्रय दीजिये। हे महानादे, महावीर्ये, महामोहनाशिनी, महाबन्धनहारिणी, हे देवी! मुझे नेत्रद्वय (दृष्टि) प्रदान करिये। हे अम्बिके! यदि आप वस्तुतः सर्वमंगलसमूह का भी मंगल करने वाली हैं, तब हे देवी! नेत्र प्रदान करके मेरा मंगलविधान करिये। आपको प्रणाम! यदि आप सभी दयालु लोगों की तुलना में दयावती हैं, तब मेरे प्रति कृपा करके मेरी नष्ट नेत्रद्वय ज्योति प्रदान करिये। आपको प्रणाम! हे देवी! "यह व्यक्ति पापी है" ऐसा मान कर जो आपने मुझ पर क्रोध किया है, वह सदा अनुचित क्रोध है। क्योंकि आपने ही मुझे मोहित किया है, यह दोष तो आपका ही है। आपको प्रणाम! मेरे ऊपर जो आपने कोप किया है, यह उसी प्रकार का कोप है, जैसे स्वयं धूल उत्पन्न करके उस धूल पर कोप करना! हे माता! मै सर्वथा अनाथ हूं, मुझे दर्शन दीजिये॥५८-६६॥

इति स्तुता पाण्डवेन देवी कृष्णच्छविच्छविः। रामा (रा)रमाभिवदना प्रत्यक्षा समजायत॥६७॥
विद्युत्कोटिसभाभासमुकुटेनाऽतिशोभिता। सूर्यबिम्बप्रभाभ्यांचकुण्डलाभ्यांविभूषिता॥६८॥
प्रवाहेनेव हारेण सुरनद्या विराजिता। कल्पद्रुमप्रसूनैश्च पूर्णावतंसमण्डिता॥६९॥
दन्तेन्दुकान्तिविध्वस्तभक्तमोहमहाभया। खड्गचर्मशूलपात्रचतुर्भुजविराजिता॥७०॥
वाससा तडिदाभेनमेघलेखेव वेष्टिता। मालया सुममालिन्या भ्राजितासालिमालया॥७१॥
सतां शरणदाभ्यां च पद्भ्यां नूपुरराजिता। जयेति पुष्पवर्षश्च शक्राद्यैरभिपूजिता॥७२॥

इस प्रकार स्तव से प्रसन्न होकर कृष्ण के समान कृष्णकान्तिवाली मनोरम मुखीदेवी भीमसेन के समक्ष प्रत्यक्ष हो गयीं। देवी की वह मूर्त्ति कोटि सौदामिनी के समान समप्रभ तथा मुकुट से शोभिता तथा सूर्यबिम्ब के समान कुण्डलद्वय युक्त थी। वे गंगा के प्रवाह के समान स्वच्छ हार से सज्जित थीं। कल्पतरु के पुष्पों से उनका

हार रूपी आभूषण शोभित था। उनकी कुन्द के समान श्वेत दन्तपंक्ति की कांति के दर्शन से भक्तों का महामोह विध्वस्त हो जाता था। उनके चारों हाथों में खड्ग, ढाल, शूल तथा पेयपात्र विराजित था। वे देवी मेघ के समान थीं। वे सौदामिनी की कान्ति के समान वस्त्रों से वेष्ठिता थीं। वे भौरों के झुण्ड से समाकुल कुसुममाला से शोभिता थीं। उनके चरणद्वय साधु पुरुषों के आश्रय रूप तथा नूपुर से सजे थे। इन्द्रादि देवता जयजय शब्दों के उच्चारण से उनका अभिनन्दन कर रहे थे तथा अम्लान कमलों की वर्षा से उनकी अर्चना करने में तत्पर थे।।६७-७२।।

गणैर्देवीभिराकीर्णाशतपद्मैर्महामलैः। तां तादृशींव्योम्निदृष्ट्वामातरं व्योमवाहिनीम्।।७३।।
भूमौ निपत्य राजेन्द्रो नमोनम इति स्थितः। भीमोऽपि मातरं दृष्ट्वा यथा बालोऽभिधावति।।७४।।
तथा सम्मुखमाधावज्जय मातरिति ब्रुवन्। दर्शनेनैव देव्याश्च शुभनेत्रत्रयस्तदा।।७५।।
प्रणिपत्यनमस्तुभ्यंनमस्तुभ्यंमुहुर्जगौ। प्रसीद देवि पद्माक्षि पुनर्मातः प्रसीद मे।।७६।।
पुनः प्रसीद पापस्य क्षमाशीले! प्रसीद मे।।७७।।
एवंस्तुता भगवती स्वयमुत्थाप्यपार्थिवम्। भीमञ्चोत्सङ्गमारोप्यकृपयेदंवचोऽब्रवीत्।।७८।।

बहुसंख्यक देवीगण तथा नाना देवियां भगवती को घेर कर खड़ी थीं। राजेन्द्र युधिष्ठिर ने इन आकाशवासिनी देवी को इस प्रकार आकाश में देखा और वे अपना मस्तक भूमि पर झुकाकर नमो नमः कहने लगे। भीम भी भगवती जगदम्बिका को देखते ही बालक सन्तान के भाव से "माता! आपकी जय हो!" कह कर उनकी ओर दौड़ पड़े। देवी का दर्शन होते ही भीमसेन के नेत्रद्वय निर्दोष रूप से सब कुछ देखने लगे। भीम ने तब प्रणाम के साथ "आपको प्रणाम! आपको प्रणाम! हे देवी! पद्माक्षि! हे माता! प्रसन्न हो जाइये। मैं पापी हूं, आप क्षमावान् हैं, मुझ पर प्रसन्न हो जायें।" कहने लगे। तब देवी ने इस स्तुति वाक्य से सन्तुष्ट होकर तथा कृपा परवश होकर राजा एवं भीम को भूमि पर से उठाया तथा गोद में लेकर कहा।।७३-७८।।

श्रीदेव्युवाच

यत्त्वयाऽभिहितं स्तोत्रं तेन तुष्टा तवोपरि। अतोनेत्रत्रयं दत्तं द्वे बाह्येचान्तरं परम्।।७९।।
नाऽहं कोपं यत्र तत्र दर्शयामि वृकोदर। त्वं तु प्रमाणपुरुषस्त्वत्तः क्रोधमदर्शयम्।।८०।।
नैतत्प्रियञ्च कृष्णस्यभ्रातुर्मेक्रोधमाचरम्। भवन्तो वासुदेवस्य यत्रप्राणा बहिश्चराः।।८१।।
त्वं च निन्दसि मां नित्यं तच्च जाने वृकोदर। मत्प्रभावपरिज्ञानहेतवे कीदृशस्त्विति।।८२।।
तदेवं नैवभूयस्ते प्रकर्तव्यं कथञ्चन। अक्षिक्षेपो हि पूज्यानामावहत्यधिकंरुजम्।।८३।।
तदिदानीं सर्वमेव क्षन्तव्यं च परस्परम्। यच्चब्रवीमि त्वां वीर तन्निशामय भारत।।८४।।

देवी कहती हैं—हे भीम! तुम्हारे स्तव में मैं तुम पर प्रसन्न हो गई तथा तुमको पुनः नेत्रद्वय की दृष्टि प्रदान करती हूं। तुम्हारे अन्तः में १ नेत्र तथा बाहर दोनों नेत्र प्रकाशित रहेंगे। हे वृकोदर! मैं यहां-वहां क्रोध नहीं करती। परन्तु तुम निष्ठावान् तथा वीर्यवान् हो, इसलिए कुछ क्रोध प्रदर्शन किया था। क्रोध करना मेरे भ्राता कृष्ण को भी प्रिय नहीं है। इससे कृष्ण में क्रोध उत्पन्न हो सकता है, क्योंकि तुमलोग कृष्ण के बाह्य प्राणस्वरूप हो। हे वृकोदर! तुम जो सदा मेरी निन्दा करते थे, उसका कारण यह था कि तुम मेरा प्रभाव जानना चाहते थे, यह मुझे ज्ञात है, तथापि अब कभी ऐसा कार्य नहीं करना। देखो हाथियों का जब नेत्र नष्ट हो जाता है, तब वे महान् कष्ट

पाते हैं। अतः इस समय परस्परतः सभी को इस सम्बन्ध में क्षमा कर देना ही कर्त्तव्य रूप है। हे भारत! अब जो मैं कहती हूं, उसे सुनो।।७९-८४।।

यदा यदाहि धर्मस्यग्लानिराविर्भवेद्धरिः। तदातदावतीर्याऽहं विष्णोरस्य सहायिनी।।८५।।
इदानीं च हरिर्जातो वसुदेवसुतो भुवि। अहं च गोपनन्दस्य एकानंशाभिधासुता।।८६।।
तद्यथाभगवान्कृष्णोममभ्राताऽभिपूजितः। भवन्तोऽपितथामह्यंभ्रातरःपाण्डवाःसदा।।८७।।
येभीमभगिनीत्येवंमांस्तोष्यन्तिनरोत्तमाः। आबाधानाशयिष्यामितेषांहर्षसमन्विता।।८८।।
त्वं च भ्रातुर्जयं वीर! प्रदास्यसि महारणे। भुजयोस्ते वसिष्यामि धार्तराष्ट्रनिपातने।।८९।।
कृत्वा राज्यंच वर्षाणि षट्त्रिंशत्तदनन्तरम्। महाप्रस्थानधर्मेणपृथिवीं परिचरिष्यथ।।९०।।

जब-जब धर्म की ग्लानि होती है, तब-तब भूतल पर श्रीहरि आविर्भूत होते हैं। मैं भी तब-तब आविर्भूत होकर उनकी सहायता करती हूं। इस समय पृथिवी पर श्रीहरि ने वसुदेव के पुत्र रूप में जन्म ग्रहण किया है। मैंने भी नन्दगोप की कन्या के रूप में एकानंशा नाम से जन्म लिया है। अतः पूजनीय भगवान् श्रीकृष्ण मेरे भ्राता हैं, हे पाण्डवों! तुम सब भी मेरे भाई ही हो! जो नरोत्तमगण मेरा स्तव भीम की भगिनी कह कर करेंगे। मैं सहर्ष उनकी सर्वपीड़ा का निवारण करूंगी। हे वीर! महायुद्ध में तुम्हारे भाई विजयी होंगे। तब मैं धृतराष्ट्र के पुत्रों के वधार्थ तुम्हारे बाहुद्वय में निवास करूंगी। तत्पश्चात् तुमलोग ३६ वर्ष राज्य करके धर्मानुसार महाप्रस्थान धर्म का अवलम्बन करके पृथिवी पर विचरण करोगे।।।८५-९०।।

अस्मिन्नेव ततो देशे लोहोनाम महासुरः। भवतां न्यस्तशस्त्राणां वधार्थं प्रक्रमिष्यति।।९१।।
ततस्तं सर्वभूतानामवध्यं भवतां कृते। अन्धं कृत्वा पातयिष्ये ततो यूयं प्रयास्यथ।।९२।।
निस्तीर्य च हिमं सर्वं निमग्ना वालुकार्णवे। स्वर्गंयास्यतिराजैकःसशरीरोगमिष्यति।।९३।।
अन्धो यत्र कृतो लोहो लोहाणाभिधया पुरम्।
भविष्यति च तत्रैव स्थास्येऽहं कलया सदा।।९४।।
ततः कलियुगेप्राप्ते केलो नाम भविष्यति। ममभक्तस्तस्यनाम्नाभाव्याकेलेश्वरीत्यहम्।।९५।।

उस महातीर्थ में लौह नामक कोई महासुर तुमलोगों को अस्त्ररहित देखकर तुमलोगों के वधार्थ तुमलोगों पर आक्रमण करेगा। तब मैं सभी प्राणियों से अवध्य उस दानव को तुमलोगों के रक्षार्थ अन्धा करके गिरा दूंगी। तब तुमलोग वहां से प्रस्थान करके समस्त हिम (हिमालय) का अतिक्रमण करोगे, परन्तु युधिष्ठिर को छोड़ कर सभी बालू के समुद्र में निमग्न हो जाओगे। एकमात्र राजा युधिष्ठिर ही सशरीर स्वर्ग जा सकेंगे। लोहासुर जहां अन्धा होगा, वह स्थान कालक्रम से लोहाणा नामक एक पुर हो जायेगा। मैं अपने एक अंश से वहां सदा स्थित रहूंगी। तत्पश्चात् कलिकाल प्रवृत्त होनेपर 'केल' नामक मेरा एक भक्त जन्म लेगा। उसके नाम के अनुसार मैं वहां केलेश्वरी कहलाऊंगी।।९१-९५।।

वैलाकश्चाऽपरोभक्तोभविष्यतिममोत्तमः। तस्याराधनतःख्यातिंप्रयास्यामिकलौयुगे।।९६।।
लोहाणासंस्थितांचैव येऽर्चयिष्यन्तिमां जनाः। श्रद्धयासितसप्तम्यांतैश्चसर्वत्रपूजिता।।९७।।
अन्धानाञ्चप्रदास्यामि भावीनिनयनान्यहम्। तस्मिन्दिनेतर्पिताऽहंभक्तिभावेनपाण्डव।।९८।।

पादाङ्गुष्ठेन च भवांस्तत्र कुण्डं विधास्यति। सर्वतीर्थस्नानतुल्यं तत्र स्नानश्च तद्दिने॥९९॥
मत्स्यानां नेत्रनेत्रस्थतेजस्तन्मात्रमुत्तमम्। उद्धृत्य योजयिष्यामिप्रत्यक्षंतद्भविष्यति॥१००॥
एवं मम महास्थानं कलौ ख्यातं भविष्यति॥१०१॥

"वैलाक" नामक मेरा एक अन्य भक्त भी जन्म लेगा। उसकी आराधना के कारण मैं कलिकाल में विशेष रूप से प्रसिद्ध हो जाऊंगी। उस लोहाणा पुरी में जो शुक्ला सप्तमी के दिन भक्तिपूर्वक मेरी अर्चना करेगा, वह सर्वत्र पूजित होगा। जो अन्धा उस दिन मेरी पूजा करेगा, मैं भविष्य में उसे नेत्र प्रदान करूंगी। उस दिन वहां स्नान करना सर्वतीर्थफल प्रदान करेगा। तुम उस दिन वहां पैर के अंगूठे से एक कूप खनन करना। मैं वहां मत्स्यों के नेत्र से नयनत्व सम्पादक तेज तन्मात्र को ग्रहण करके अन्धों के नेत्रों में योजित कर दूंगी। इससे वे कुछ काल के पश्चात् नेत्रवान् हो जायेंगे। यह असाधारण कृत्य मनुष्यों को प्रत्यक्षगोचर होगा, जिससे कलियुग में मेरा वह स्थान एक महातीर्थ रूप हो जायेगा।।।९६-१०१।।

लोहाणाख्यं महाबाहो नाम केलेश्वरीति च। दुर्गमाख्यंततोहत्वाअस्मिन्क्षेत्रेचभारत॥१०२॥
दुर्गानाम भविष्यामि महीसागरपूर्वतः। धर्मारण्ये वसिष्यामि भवतांत्राणकारणात्॥१०३॥
धर्मारण्ये स्थितां चैव येऽर्चयिष्यन्ति मानवाः। आश्विने मासि चैत्रे वा नवम्यां शुक्लपक्षके॥१०४॥
स्नात्वा महीसागरं च तेषां दास्यामि वाञ्छितम्। विधिना येऽर्चयिष्यन्ति माञ्च श्रद्धासमन्विताः॥१०५॥
पुत्रपौत्रान्प्रदास्यामि स्वर्गं मोक्षं न संशयः। प्रवेशे च कलेः कालेभवतांवंशसम्भवः॥१०६॥
वत्सराजः पाण्डवानां तोषयिष्यति यत्नतः॥१०७॥
यस्यनाम्नाततःख्याताभविष्यामिकलौयुगे। वत्सेश्वरीतिवत्सस्यराज्ञःसर्वार्थदायिनी॥१०८॥

वह स्थल लोहाणा तथा केलेश्वरी नाम से प्रख्यात हो जायेगा। हे भारत! मैं अपने उसी क्षेत्रस्थ दुर्गम नामक असुर का वध कुछ कालान्तर में करूंगी। इससे मेरा दुर्गा नाम प्रसिद्ध होगा। तुमलोगों के रक्षार्थ मैं महीसागर के पूर्व में धर्मारण्य में निवास करूंगी। आश्विन अथवा चैत्र शुक्ला नवमी तिथि पर जो महीसागरसंगम पर स्नान करके मेरी धर्मारण्यस्थिता मूर्त्ति की अर्चना करेगा, उसे मैं समस्त इच्छित फल प्रदान करूंगी। जो श्रद्धा के साथ सविधि मेरी अर्चना करेगा, मैं उसे पुत्र-पौत्र-स्वर्ग-मोक्षादि सब कुछ प्रदान करूंगी। इसमें संशय नहीं है। कलिकाल के प्रवेशकाल में तुमलोगों के ही वंश में उत्पन्न वत्सराज अत्यन्त यत्न से मुझे प्रसन्न करेगा। तब मैं वत्सराज के नाम से ही विख्यात हो जाऊंगी। वत्सराज का सर्वार्थसाधन करने के कारण मेरा नाम सवार्थप्रदा वत्सेश्वरी होगा।।१०२-१०८।।

मत्प्रसादात्सराजा वै भवनोत्तापकारिणीम्। अट्टालयांनामतदाराक्षसीं निहनिष्यति॥१०९॥
तस्याश्चाऽपिवधस्थानमट्टालजमितिस्थितम्। भविष्यतिपुरंतत्रमाञ्चसंस्थापयिष्यति॥११०॥
अट्टालयाजग्रामेमामर्चयिष्यन्ति ये जनाः। वत्सेश्वरींसिताष्टम्यामाश्विनेतैःसदार्चिता॥१११॥
वत्सेश्वरीञ्च ये देवीं पूजयिष्यन्ति मानवाः। तेषांसर्वफलावाप्तिर्भविष्यति न संशयः॥११२॥
इत्थमट्टालये वासो लोहाणे च भविष्यति। धर्मारण्ये महाक्षेत्रे महीसागरसन्निधौ॥११३॥
मम लोकहितार्थाय लोहस्यच निशम्यताम्। अधीकृतोमयालोहोबह्वीस्तप्तातपःसमाः॥११४॥
वृत्रासुर इवाऽजेयो लोकानुत्सादयिष्यति। तं च विश्वपतिर्धीमानवतीर्य बुधो हरिः॥११५॥

यत्र हन्ता तत्र ग्रामं लोहाटीति भविष्यति। गयोनाम महादैत्यो भवतां विघ्नकृत्तदा॥११६॥
प्रस्थाने लोहवद्भावी करिष्ये तं नपुंसकम्। गयत्राडेति मान्तत्रपूजयिष्यन्तिमानवाः॥११७॥
ग्रामं चापि गयत्राडं तत्रख्यातंभविष्यति। गयत्राडेगयत्राडांयेऽर्चयिष्यन्तिमानवाः॥११८॥

मेरी कृपा से ही वत्सराज भवनोत्तापकारिणी अट्टालया नामक महाराक्षसी का वध करेगा। जहां उसका वध होगा, उस स्थान पर अट्टालज नामक विख्यात नगरी की स्थापना की जायेगी। लोग वहां मेरी मूर्त्ति को स्थापित करेंगे। उस अट्टालज ग्राम में आश्विन शुक्ला अष्टमी के दिन जो मनुष्य वत्सेश्वरी प्रतिमा की अर्चना करेंगे, वे मुझसे सर्वार्थ साधक फल प्राप्त करेंगे। इसमें सन्देह नहीं है। इस प्रकार से लोकहितार्थ अट्टालय, लोहाण तथा महीसागर क्षेत्र के पूर्वदिक् वाले धर्मारण्य में मेरा निवास होगा। अब लौहासुर का वृत्तान्त सुनो। मेरे द्वारा अन्धा किये जानेपर वह दीर्घकालीन तपस्या द्वारा वृत्रासुर जैसा अजेय बली होगा। उसके अत्याचार से जब सभी लोक त्रस्त हो उठेंगे, तब विश्वपति विष्णु प्रादुर्भूत होकर उसका संहार करेंगे। जहां उसका वध होगा, वहां लोहाटी नामक एक ग्राम आबद्ध होगा। तुमलोगों का विघ्न करने वाला गया नामक महादैत्य प्रस्थान प्रदेश में ही लोहासुर के समान उपद्रव करने वाला उत्पन्न होगा, मैं उसे क्लीव कर दूंगी। वहां गयत्राड़ नामक ग्राम स्थापित होगा, जहां मेरी गयत्राड़ा नामक प्रतिमा की मनुष्यगण पूजा करेंगे।।१०९-११८।।

माघाष्टम्यां न शिष्यन्ति तस्य सर्वेऽप्युपद्रवाः। ये च मां कोपयिष्यन्ति पाण्डवाराधितां सदा॥११९॥
तेषां पुंस्त्वं हरिष्यामि महारौद्राधितिष्ठिति। परिवारश्चमेचाऽत्रषण्डःसर्वोभविष्यति॥१२०॥
तस्मिन्कलियुगे घोरे रौद्रेरुद्रेऽतिनिर्घृणे। एवं तृतीयं तन्मह्यं स्थानमत्र भविष्यति॥१२१॥
भवत्सु च स्वर्गतेषुगयोऽपिसुमहत्तपः। तप्त्वाप्राप्यपुनःपुंस्त्वंलोकान्सम्पीडयष्यति॥१२२॥
गयातीर्थं गतं तं च गयाध्वंसनकाम्यया। बुध एव जगत्स्वामी तत्र तं सूदयिष्यति॥१२३॥
इत्थं श्रीमान्पीतवासाअवतीर्यबुधः प्रभुः। बहूनि कृत्वा कर्माणिस्वस्थानंप्रतिपत्स्यते॥१२४॥

उस मूर्त्ति की अर्चना जो माघीय शुक्लाष्टमी तिथि को करेंगे, उनका सभी उपद्रव अविलम्ब दूर होगा। हे पाण्डव! पूजक लोगों की आराधना में (विघ्नादि से) जो लोग गयत्राड़ा मूर्त्ति में क्रोध का उत्पादन करेंगे, तब मैं महारुद्र द्वारा आविष्ट होकर क्रोध के कारण उनके पुरुषत्व का नाश कर दूंगी। कलियुग की अतिरौद्र तथा घोर अवस्था में, जब भगवान् रुद्र प्रजावर्ग के प्रति अत्यन्त रुष्ट हो जाते हैं, तब मेरा यह तृतीय स्थान स्थापित किया जायेगा। तुमलोगों के स्वर्गगमन के पश्चात् गयासुर महान् तप करके लोकसमूह को अत्यन्त पीड़ा पहुंचाने लगेगा। तब जगत्पति बुद्ध उसका वहीं विनाश करेंगे। श्रीमान् प्रभु विष्णु बुद्धरूपेण अवतार लेकर लोकरक्षार्थ अनेक कार्य सम्पन्न करके अपने लोक में गमन करेंगे।।११९-१२४।।

इति संक्षेपतः प्रोक्तं भविष्यं पाण्डवा मया। भवतां चित्तनिर्वृत्यै श्रूयतां भूय एव च॥१२५॥
इदं तीर्थवरं मह्यं संसेव्यं सर्वदा प्रियम्। कृतं यदत्राऽऽगमनं तेन प्रीतिः परा मम॥१२६॥
भीमस्य चाऽपि पौत्रेण दृढं सन्तोषिताऽस्मि च। देव्यः सर्वाश्च मद्रूपं नैतज्ज्ञेयमतोऽन्यथा॥१२७॥
व्रजध्वं चाऽपि तीर्थानि यानि वो न कृतानि च। आबाधास्वस्मि सर्वासु स्मरणीया स्वसेव च॥१२८॥
आपृच्छे चाऽपि वः सर्वान्यूयं कृष्णसमा मम॥१२९॥

हे पाण्डवगण! तुमलोग की मनःतृप्ति हेतु मैंने यह सब भविष्य वृत्तान्त संक्षेप में यत्किंचित् कह दिया। अब एक बात और सुनो। यह मेरा अतीव प्रिय तीर्थ है। तुमलोग सतत् इस तीर्थ का सेवन करना। इस तीर्थ में जो तुमलोग आये हो, इसी से मुझे विशेष प्रसन्नता हो गयी है। भीम के पौत्र ने भी मुझे अत्यन्त प्रसन्न किया हैं। यह तथ्य तुमलोग जान लो कि सभी देवियां मेरी ही रूपान्तर हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है। तुम जिन तीर्थों में अभी नहीं गये हो, उन सभी तीर्थों की यात्रा करो। यात्रा में कोई भी बाधा उत्पन्न होनेपर मेरा स्मरण करना। मुझे अपनी बहन ऐसा समझना। तुमलोग मुझे कृष्ण के समान ही प्रिय हो। अब मैं तुमसे विदा लेती हूं।।१२५-१२९।।

सूत उवाच

इति देव्यावचःश्रुत्वाविस्मयोत्फुल्ललोचनाः। पुनःपुनःप्रणम्यैनांनाऽपश्यन्दीपवद्गताम्।।१३०।।
ततस्तेबर्बरीकञ्चसंस्थाप्याऽत्रैवनिष्ठितम्।
आगच्छयोगेचोक्त्वेदंचक्रुस्तीर्थानिमुख्यशः।।१३१।।

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे बर्बरीकोपाख्याने केलेश्वरी-वत्सेश्वरी-दुर्गादेवी-गयत्राडामाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः।।६५।।

सूतजी कहते हैं—यह कहकर देवी वैसे ही अदृश्य हो गयीं, जैसे दीपक बुझने पर अग्नि अदृश्य हो जाती है। देवी का यह वचन सुनकर तदनन्तर पाण्डवगण उनको देख ही नहीं सके। उनलोगों ने बर्बरीक से कहा कि वनवास समाप्त होनेपर मिलने आना। तदनन्तर वे लोग प्रधान-प्रधान तीर्थों की यात्रा करने लगे।।१३०-१३१।।

।।पञ्चषष्टितम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

षट्षष्टितमोऽध्यायः

कुरुक्षेत्र में सैन्य-सज्जा, भीम-युधिष्ठिर संवाद, बर्बरीक द्वारा हस्तलाघव प्रदर्शन, कृष्ण द्वारा उसका शिरच्छेद, वर प्राप्ति, गुप्तक्षेत्र माहात्म्य समापन

सूत उवाच

ततस्त्रयोदशे वर्षे व्यतीते समये तदा। उपप्लवे सङ्गतेषु सर्वराजसु पाण्डवाः।।१।।
योद्धुमागत्य सन्तस्थुः कुरुक्षेत्रंमहारथाः। कौरवाश्चाऽपिसन्तस्थुर्दुर्योधनपुरोगमाः।।२।।
ततो भीष्मेणप्रोक्ताञ्चनरैःश्रुत्वायुधिष्ठिरः। रथातिरथसंख्यांतुराज्ञांमध्येवचोऽब्रवीत्।।३।।
भीष्मेण विहिताकृष्णरथातिरथवर्णना। ततो दुर्योधनोऽपृच्छदिदंस्वीयान्महारथान्।।४।।

ससैन्यान्पाण्डवानेतान्हन्यात्कालेन केन कः। मासेन तु प्रतिज्ञातंभीष्मेणच कृपेणच॥५॥
पक्षं द्रोणेन चाऽह्ना च दशभिर्द्रौणिना रणे। षड्भिः कर्णेन च तथा सदाममभयंकृता॥६॥
तदहं स्वांश्चपृच्छामिकेनकालेनहन्तिकः। एतच्छ्रुत्वावचोराज्ञःफाल्गुनोवाक्यमब्रवीत्॥७॥

सूतजी कहते हैं—तत्पश्चात् वनवास के १३ वर्ष व्यतीत हो जानेपर महारथी पाण्डवगण उपप्लव नगर में अन्य राजाओं से मिलकर कौरवों के साथ युद्धार्थ उद्योग करने हेतु सज्जित हुए तथा कुरुक्षेत्र में पहुंचे। तभी दुर्योधन के प्रभुत्व में कौरवगण भी वहां युद्धार्थ आ गये। भीष्म तब रथी, महारथी, अतिरथी को चुनने लगे। राजा युधिष्ठिर ने दूतों द्वारा यह समाचार जाना तथा कृष्ण से कहा—हे कृष्ण! भीष्म रथी-अतिरथी-महारथीगण की गणना कर रहे हैं। दुर्योधन ने अपने पक्ष के उन वीरों से पूछा कि कौन वीर कितने समय में पाण्डवों का (सैन्य सहित) संहार कर सकने में सक्षम है। भीष्म तथा कृपाचार्य ने एक मास में, द्रोण ने १५ दिनों में, अश्वत्थामा ने १० दिन में यह संहार सम्पन्न करने के लिए कहा। परन्तु मैं जिससे सदा भय करता हूं, उस कर्ण ने तो ६ दिन में पाण्डवों के विनाश का वचन दिया। अतएव अब मैं भी अपने सेनानीगण से यह पूछना चाहता हूं कि कौन कितने समय में कौरव दल का दलन कर सकने में समर्थ है?'' यह सुनकर फाल्गुन अर्जुन कहने लगे।।१-७।।

अयुक्तमेतद्भीष्माद्यैः प्रतिज्ञातं युधिष्ठिर! ततो जये च विजये निश्चयो हि मृषैव तत्॥८॥
तवाऽपियेसन्तिनृपाःसन्नद्धारणसंस्थिताः। पश्यैतान्पुरुषव्याघ्रान्कालकल्पान्दुरासदान्॥९॥
द्रुपदश्च विराटश्च धृष्टकेतुश्च कैकयम्। सहदेवं सात्यकिं च चेकितानं च दुर्जयम्॥१०॥
धृष्टद्युम्नं सपुत्रं च महावीर्यं घटोत्कचम्। भीमादींश्च महेष्वासान्केशवं चापराजितम्॥११॥
मन्येऽहमेकस्त्वेतेषांहन्यात्कौरववाहिनीम्। सन्नद्धाः प्रतिदृश्यन्तेभीष्माद्याबहवोरथाः॥१२॥
तेभ्यो भयं न कार्यं ते फल्गवोऽमी मृगा इव॥१३॥
अस्माकं धनुषां घोषैरिदानीमेव भारत। कौरवाविद्रविष्यन्ति सिंहत्रस्ता मृगा इव॥१४॥

अर्जुन कहते हैं—हे युधिष्ठिर! भीष्म आदि ने जो प्रतिज्ञा किया है, वह युक्तिसंगत नहीं है। युद्ध में जय-पराजय अनिश्चित रहती है। इस सम्बन्ध में पहले से कुछ भी निश्चित नहीं किया जा सकता। आपके पक्ष में जो राजा युद्धार्थ प्रस्तुत हैं, उनको आप क्यों नहीं देखते! ये सभी पुरुषव्याघ्र—काल के समान हैं। द्रुपद, सात्यकि, विराट, धृष्टद्युम्न, कैकेय, राजा सहदेव, दुर्जय, चेकितान, पुत्र के साथ महावीर घटोत्कच, भीम आदि प्रमुख वीरगण तथा रथारुढ़ अपराजित भगवान् केशव, इनमें से प्रत्येक वीर कौरव सेना का संहार करने योग्य है। आप जो भीष्मादि वीरगण को सज्जित देख रहे हैं, इनका तनिक भय न करें। ये सब संख्या में अधिक होकर भी मृगों के दल के समान अत्यन्त तुच्छ हैं। हे भारत! हमारे धनुर्घोष को सुनकर ये सभी कौरवगण सिंह से त्रस्त मृगों के समान विद्रावित हो जायेंगे।।८-१४।।

वृद्धाद्भीष्माद्द्विजाद्वृद्धाद्द्रोणादपिकृपादपि। बालिशात्किंभयंद्रौणेःसूतपुत्राच्चदुर्मतेः॥१५॥
अथवा चित्तनिर्वृत्त्यै ज्ञातुमिच्छसि भारत। शत्रूणां प्रत्यनीकेषु सन्धावच्छ्रूणुमेवचः॥१६॥
एकोऽहमेवसङ्ग्रामे सर्वेतिष्ठन्तु ते रथाः। एकाह्नाक्षपयेसर्वान्कौरवान्सैन्यसंयुतान्॥१७॥

भीष्म-द्रोण-कृप, तीनों वृद्ध हैं। अश्वत्थामा मूर्ख है। सूतपुत्र कर्ण दुर्मति है। इसलिए इनका क्या भय? अथवा

हे राजन्! आप यदि चित्तभ्रान्ति के कारण अपने पक्ष के वीरगण के बलवीर्य को जानना चाहें, तब सुनें। आपकी समस्त सेना के बिना भी मैं अकेले सैन्यसमन्वित कौरवों का एक दिन में संहार कर सकता हूं।।१५-१७।।

इत्यर्जुनवचः श्रुत्वा स्मयन्दामोदरोऽब्रवीत्। एवमेतद्यथा प्राहफाल्गुनोऽयंमृषानतत्॥१८॥
ततश्च शङ्खभेरीश्च शतशश्चैवपुष्करात्। निवार्यराजमध्यस्थो बर्बरीकोवचोऽब्रवीत्॥१९॥
येन तप्तं गुप्तक्षेत्रे येन देव्यः सुतोषिताः। यस्याऽतुलंबाहुबलं तेन चोक्तं निशम्यताम्॥२०॥
यद्ब्रवीमि वचः सत्यं शृणुध्वं तन्नराधिपाः। आत्मनो वीर्यसदृशंकेवलं न तु दर्पतः॥२१॥
यदार्येण प्रतिज्ञातमर्जुनेन महात्मना। न मर्षयामि तद्वाक्यं कालक्षेपो महानयम्॥२२॥
सर्वे भवन्तस्तिष्ठन्तु सार्जुनाःसहकेशवाः। एकोमुहूर्ताद्भीष्मादीन्सर्वान्नेष्ये यमक्षयम्॥२३॥
मयि तिष्ठतिकेनाऽपिशस्त्रं ग्राह्यंन क्षत्रियैः। स्वधर्मशपथो वोऽस्तु मृतेग्राह्यंततोमयि॥२४॥
पश्यध्वं मे बलं बाह्वोर्देव्याराधनसम्भवम्। माहात्म्यं गुप्तक्षेत्रस्य तथा भक्तिं च पाण्डुषु॥२५॥
पश्यध्वम्मे धनुर्घोरंतूणीरावक्षयौतथा। खड्गंच देव्या यद्दत्तंततोवच्मिवचस्त्विदम्॥२६॥

अर्जुन का यह वाक्य सुनकर दामोदर ने तनिक हास्य के साथ कहा—"यह उचित है। अर्जुन ने जो कहा, वह मिथ्या नहीं है।" तब सैकड़ों शंख, भेरी, पुष्करादि वाद्यों का निवारण करता उस राजमण्डल के बीच बर्बरीक कहने लगा—"जिसने सप्तक्षेत्र में तपस्या किया है, जिसका बाहुबल अतुलनीय है, जिसने देवियों को सन्तुष्ट किया है, अब उस वीर का वचन सुनें। हे राजागण! केवल दर्प के कारण यह नहीं कह रहा हूं। अपने बल-वीर्य के अनुसार यह कह रहा हूं। आप सब सुनें। पूज्य महात्मा अर्जुन ने जो कहा, उससे मुझे सन्तोष नहीं है। क्योंकि उसमें व्यर्थ समय बीतता लग रहा है। आप सब अर्जुन-केशव आदि के साथ रुकिये। मैं अकेले ही मुहूर्त्तमात्र में भीष्मादि प्रमुख वीरों के साथ समस्त कौरवों को यमलोक भेजता हूं। मेरे रहते अन्य किसी भी क्षत्रिय को अस्त्रादि उठाने की आवश्यकता नहीं है। हां, यदि मेरी मृत्यु हो जाये, तब अन्य लोग अस्त्र धारण करें। अब आप सब देवी की आराधना से प्राप्त मेरा बाहुबल देखिये। आप यह देखें कि गुप्तक्षेत्र की महिमा तथा पाण्डवों के प्रति मेरी भक्ति कैसी है, इससे सभी अवगत हो जायें। यह मेरा घोर धनुष, दो अक्षय तरकस तथा देवी प्रदत्त खड्ग देखें! इसी के कारण मैंने गर्वोक्ति प्रकट की है"।।१८-२६।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा क्षत्रिया विस्मयं ययुः। अर्जुनश्च कटाक्षेपे लज्जितःकृष्णमैक्षत॥२७॥
तमाह ललितं कृष्णः फाल्गुनं परमं वचः। आत्मौपयिकमेवेदंभैमिपुत्रोऽभ्यभाषत॥२८॥
नवकोटियुतोऽनेन पलाशी निहतः पुरा। क्षणादेव च पाताले श्रूयते महदद्भुतम्॥२९॥
पुनः प्रक्ष्यामहे त्वेनं केनोपायेनकौरवान्। मुहूर्ताद्धंसि ब्रूहीतिपृच्छ्यतांचाहतं जयः॥३०॥

बर्बरीक का कथन सुनकर सभी विस्मित हो गये। अर्जुन ने लज्जित होकर कटाक्षपूर्वक वासुदेव को देखा। कृष्ण ने तब अर्जुन से मधुर स्वर में यह परम सत्य कहा कि भीम के पौत्र ने तुम्हारे योग्य ही कहा है। पूर्वकाल में इसने पाताल जाकर ९ कोटि दानव के साथ पलाशी दानव को क्षणमात्र में विनष्ट कर दिया था। ऐसा अद्भुद् प्रसंग सुना गया है। परन्तु किस उपाय से मुहूर्त्तमात्र में यह कौरवों का वध करेगा, यह जानना है। अर्जुन ने कहा—"हां, यह पूछा जाये"।।२७-३०।।

ततः स्मयन्यादवेन्द्रो भैमिपुत्रमभाषत॥३१॥
भीष्मद्रोणकृपद्रौणिकर्णदुर्योधनादिभिः। गुप्तां त्र्यम्बकदुर्जेयां सेनां हंसि कथं क्षणात्॥३२॥
अयं महान्विस्मयस्ते वचसो भैमिनन्दन!। सम्भूतः सर्वराज्ञाञ्च फाल्गुनस्यचधीमतः॥३३॥
तद्बूहि केनोपायेन मुहूर्ताद्धंसि कौरवान्। उपायवीर्यन्ते ज्ञात्वा मंस्यामोवयमप्युत॥३४॥

तब यादवेन्द्र कृष्ण ने हंसते हुए भीमपौत्र बर्बरीक से कहा—हे बर्बरीक! भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, कर्ण, दुर्योधनादि द्वारा रक्षित कौरव सैन्य तो मृत्युञ्जय के लिए भी अजेय कही गयी है, तुम मुहूर्त्तमात्र में उसका संहार कैसे करोगे? हे भीमपौत्र! तुम्हारी बातों से समस्त राजाओं को तथा धीमान् अर्जुन को भी महान् विस्मय हो रहा है। अतएव तुम किस उपाय द्वारा कौरवों का संहार मुहूर्त्तमात्र में करोगे, वह कहो। हम उस उपाय को सुनकर तुम्हारी बात पर विश्वास कर सकेंगे।।३१-३४।।

सूत उवाच

इत्युक्तो वासुदेवेन सर्वभूतेश्वरेण च। सिंहवक्षाः पर्वताभो नानाभूषणभूषितः॥३५॥
घटास्योघटहासश्चऊर्ध्वकेशोऽतिदीप्तिमान्। विद्युदक्षोवायुजवोयश्चेच्छेन्नाशयेज्जगत्॥३६॥
देवीदत्तातुलबलो बर्बरीकोऽभ्यभाषत। यदि वो मानसं वीरा उपायस्य प्रदर्शने॥३७॥
तदहं दर्शयाम्येष पश्यध्वं सहकेशवाः। इत्युक्त्वा धनुरारोप्य सन्दधे विशिखं त्वरन्।
निःशल्यं चाऽपि सम्पूर्णं सिन्दूराभेण भस्मना॥३८॥
आकर्णमाकृष्य च तं मुमोच मुखादथोद्भूतमभूच्च भस्म॥३९॥
सेनाद्वये तच्च पपात शीघ्रं यस्यैव यत्राऽस्ति च मृत्युमर्म। सर्वरोमसु भीष्मस्य कण्ठे राधेयद्रोणयोः॥४०॥
ऊरौ दुर्योधनस्याऽपि शल्यस्याऽपिचवक्षसि। कण्ठेच शकुनेर्दीप्तंभगदत्तस्यचापतत्॥४१॥
कृष्णस्य पादतलके कण्ठे द्रुपदमत्स्ययोः। शिखण्डिनस्तथा कट्यां कण्ठे सेनापतेस्तथा॥४२॥
पपात रक्तं तद्भस्म यत्र येषां च मर्मच। केवलं चैव पाण्डूनां कृपद्रौण्योश्च नास्पृशत्॥४३॥

सूतजी कहते हैं—सर्वभूतपति वासुदेव के यह कहने पर सिंह के समान समुन्नत-वक्षःस्थल वाला, पर्वताकार, घटआस्य, ऊर्ध्वकेश, विद्युत् के समान नेत्रों वाला, वायु के समान वेग से चलने वाला, नाना भूषण भूषित, इच्छा मात्र से जगत् संहार में सक्षम तथा देवी प्रदत्त वर के कारण अतुल बल युक्त वीरवर बर्बरीक कहने लगा—हे वीरों! आप यदि उस उपाय को प्रत्यक्ष देखने के अभिलाषी हैं, तब मैं उसे प्रदर्शित कर रहा हूं। आप केशव के साथ उसे प्रत्यक्ष करिये। यह कहकर उसने त्वरित रूप से धनुष लाकर उस पर पूर्वोक्त (विजय साधक से प्राप्त) निःशल्य सिन्दूराभ भस्म को लिप्त किया। एक बाण योजित किया। तदनन्तर धनुष की प्रत्यंचा को कानों तक खींचकर बाण छोड़ा, उस बाण से भस्म उड़ने लगी। वह भस्म दोनों पक्ष की सेना के प्रत्येक व्यक्ति के मृत्यु मर्मस्थल पर गिरी। भीष्म के समस्त रोमों में, कर्ण तथा द्रोण के कंठ पर, दुर्योधन की जंघा पर, शल्य के वक्ष पर, शकुनि तथा भगदत्त के कण्ठ पर, कृष्ण के पैरों पर, शिखण्डी की कटि पर, द्रुपद तथा विराट एवं धृष्टद्युम्न के कण्ठ पर तथा अन्य वीरों का जो मृत्युमर्म था, वहां गिरी। केवल पांच पाण्डव, कृपाचार्य तथा अश्वत्थामा का स्पर्श इस भस्म ने नहीं किया।।३५-४३।।

इति कृत्वा ततो भूयो बर्बरीकोऽभ्यभाषत। दृष्टं भवद्भिरेवं यन्मया मर्म निरीक्षितम्॥४४॥
अधुना पातयिष्यामि मर्मस्वेषां शिताञ्छरान्। देवीदत्तानमोघाख्यान्यैर्मरिष्यन्त्यमी क्षणात्॥४५॥
शपथाव:स्वधर्मस्यशस्त्रंग्राह्यंन व:क्वचित्। मुहूर्तात्पातयिष्यामिशत्रूनेताञ्छितैः शरैः॥४६॥
ततो विस्मतचित्तानां युधिष्ठिरपुरोगिणाम्। आसीन्निनादः सुमहान्साधुसाध्विति शंसताम्॥४७॥

अब बर्बरीक कहने लगा—"मैंने इन सबके मृत्युमर्म का अवलोकन किया, यह तो आपने देखा। अब इन सबके उस मृत्युमर्म पर बाण प्रहार करूंगा। देवी प्रदत्त बाणों के आघात से ये सभी क्षणमात्र में मृत हो जायेंगे। आपलोगों को आपके धर्म की शपथ है, कोई भी शस्त्र संधान न करें। मैं मुहूर्त्तमात्र में शर प्रहार से इनका वध करूंगा।" यह सुनकर युधिष्ठिर आदि प्रमुख राजागण द्वारा महान् विस्मयपूर्वक साधुवाद दिया जाने लगा।।४४-४७।।

वासुदेवश्च संक्रुद्धश्चक्रेण निशितेन च। एवं ब्रुवत एवाऽस्य शिरश्छित्त्वा न्यपातयत्॥४८॥
ततःक्षणात्सर्वमासीदाविग्नंराजमण्डलम्। व्यलोकयन्केशवन्तेविस्मिताश्चाभवन्भृशम्॥४९॥
किमेतदिति प्राहुश्च बर्बरीकः कुतो हतः। पाण्डवाश्चापि मुमुचुरश्रूणि सहपार्थिवाः॥५०॥
हाहा पुत्रेति च गृणन्प्रस्खलंश्च पदे पदे। घटोत्कचोऽपतद्दीनः पुत्रोपरि विमूर्च्छितः॥५१॥

लेकिन बर्बरीक के इस कार्य से महात्मा वासुदेव ने तत्काल चक्राघात से बर्बरीक का शिर काटकर भूपतित कर दिया। इससे सभी राजमण्डल अत्यन्त उद्विग्न हो उठा। सभी विस्मयपूर्वक केशव को देखने लगे। सभी कहने लगे—"यह क्या? बर्बरीक का संहार क्यों कर दिया।" पाण्डवगण तथा अन्य राजागण रुदन करने लगे। तब घटोत्कच भी हा पुत्र-हा पुत्र! कहता लड़खड़ाता दीन भाव से पुत्र के ऊपर गिरा तथा मूर्च्छित हो गया।।४८-५१।।

एतस्मिन्नन्तरे देव्यश्चतुर्दश समाययः॥५२॥
सिद्धाम्बिका क्रोडमाता कपाली तारा सुवर्णा च त्रिलोकजेत्री।
भाणेश्वरी चर्चिका चैकवीरा योगेश्वरी चण्डिका त्रैपुरा च॥५३॥
भूताम्बिका हरसिद्धिस्तथाऽमूः सम्प्राप्य तस्थुर्नृपविस्मयङ्कराः।
श्रीचण्डिकाऽऽश्वास्य ततो घटोत्कचं प्रोवाच वाक्यं महता स्वरेण॥५४॥
शृणुध्वं पार्थिवाः सर्वे कृष्णेन विदितात्मना। हेतुना येन निहतो बर्बरीकोमहाबलः॥५५॥
मेरुमूर्ध्निपुरापृथ्वीसमवेतान्दिवौकसः। भाराक्रान्ता जग दैतान्भारोऽपह्नियतांहिमे॥५६॥
ततो ब्रह्मा प्राह विष्णुं भगवंस्त्वमिदं शृणु। देवास्त्वानुगमिष्यन्तिभारंहरभुवःप्रभो!॥५७॥
ततस्तथेति तन्मेने वचनं विष्णुरव्ययः। एतस्मिन्नन्तरे बाहुमुद्धृत्योच्चैरभाषत॥५८॥
सूर्यवर्चेति यक्षेन्द्रश्चतुराशीतिकोटिपः। किमर्थं मानुषे लोके भवद्भिर्जन्म कार्यते॥५९॥
मयि तिष्ठति दोषाणामनेकानां महास्पदे। सर्वे भवन्तो मोदन्तु स्वर्गेषु सहविष्णुना॥६०॥
अहमेकोऽवतीर्यैतान्हनिष्यामिभुवोभरान्। स्वधर्मशपथा वो वैसन्तिचेज्जन्मप्राप्स्यथ॥६१॥

तभी वहां पर सिद्धाम्बिका, क्रोड़माता, कपाला, तारा, सुवर्णा, त्रैलोक्यविजया, ताणेश्वरी, चर्चिका, एकवीरा, योगेश्वरी, चण्डिका, त्रिपुरा, भूताम्बिका तथा हरसिद्धि नामक चतुर्दश देवियां आविर्भूत हो गईं। उनका

दर्शन पाकर सभी राजा अत्यन्त विस्मित हो गये। श्री चण्डिका ने घटोत्कच को आश्वासित करके कहा—"हे राजागण! जिस कारण से आत्मज्ञ श्रीकृष्ण ने बर्बरीक का वध किया, वह सुनो। पूर्व में पृथिवी के भाराक्रान्त होनेपर पृथिवी मेरुपर्वत गईं तथा देवगण से अपना भार उतारने हेतु निवेदन किया। तब ब्रह्मा ने विष्णुदेव से कहा—हे प्रभो! मेरा निवेदन सुनें। हे भगवान्! आप जाकर भूभार का हरण करिये। इस कार्य के लिए देवता भी आपका अनुगमन करें। अव्यय विष्णु ने अपनी सहमति प्रदान किया। तभी ८४ करोड़ यक्षों का अधिपति सूर्यवर्चा बाहु उठाकर उच्च स्वर से कहने लगा—"हे देवगण! मैं अनेक दोषों से व्याप्त हूं। अतः मेरे रहते आपलोग मनुष्य लोक में क्यों जन्म लेंगे? आप सभी विष्णु के साथ स्वर्ग में रहिये। मैं एकाकी जाकर भूभार का हरण करता हूं। मैं धर्म की शपथ लेकर यह कहता हूं कि आपलोगों को जन्म लेने की कोई आवश्यकता नहीं है।।५२-६१।।

इत्युक्तवचने ब्रह्मा क्रुद्धस्तं समभाषत। दुर्मते सर्वदेवानामविषह्यं महाभरम्।।६२।।
स्वसाध्यं ब्रूषे मोहात्त्वं शापयोग्योऽसि बालिश!।
देशकालोचितं स्वीयं परस्य च बलं हृदा।।६३।।
अविचार्यैव प्रभुषु वक्ति सोऽर्हति दण्डनम्। तस्माद्भूभारहरणे युद्धस्योपक्रमे सति।।६४।।
शरीरनाशं कृष्णात्त्वमवाप्स्यसिन संशयः। एवं शप्तो ब्रह्मणाऽसौ विष्णुमेतदयाचत।।६५।।
यद्येवं भविता नाशस्तदेकं देव! प्रार्थये। जन्मप्रभृति मे देहि मतिं सर्वार्थसाधनीम्।।६६।।
ततस्तथेति तं प्राह केशवो देवसंसदि। शिरस्ते पूजयिष्यन्ति देव्याःपूज्योभविष्यसि।।६७।।

यह सुनकर ब्रह्मा ने क्रोधपूर्वक कहा—"हे दुर्मति यक्षेन्द्र! जो सभी देवताओं के लिए दुःसह है, तुमने मोहवशात् उसे अपने द्वारा साध्य कहा है! हे निर्बोध! तुम इस दुष्कार्य हेतु श्रापयोग्य हो गये हो। जो व्यक्ति देशकाल के अनुसार अपने तथा दूसरों के बलाबल का विचार किये बिना ही स्वामी के समीप बलाबल विषयक प्रस्ताव करता है, वह दण्ड का भागी है। इसलिए भूभारहरण काल में युद्ध के उपक्रम के समय कृष्ण द्वारा तुम्हारा शरीर नाश होगा। इसमें सन्देह नहीं है।" ब्रह्मा द्वारा इस प्रकार से अभिशप्त होकर यक्षराज ने विष्णु से प्रार्थना किया कि "हे देव! यदि मेरा देहनाश ही होना हो, तब मैं एक प्रार्थना करता हूं। जन्म से ही मेरी बुद्धि इष्टार्थ साधन की ओर उन्मुख रहे।" तब केशव ने उस देवसभा में "ऐसा ही हो" कहकर अपनी सम्मति प्रदान किया। केशव ने कहा—"देवी के पूजक तुम्हारे मस्तक की पूजा करेंगे। तुम जगत् में लोगों द्वारा पूज्य रहोगे"।।६२-६७।।

इत्युक्त्वाचाऽवतीर्णोऽसौसहदेवैर्हरिस्तदा। हरिर्नामसकृष्णोऽसौभवन्तस्तेतथासुराः।।६८।।
सूर्यवर्चाः स चाऽयंहि निहतोभैमिपुत्रकः। प्राक्छापंब्रह्मणःस्मृत्वाहतोऽनेनमहात्मना।
तस्माद्दोषो न कृष्णेऽस्मिन्द्रष्टव्यः सर्वभूमिपैः।।६९।।

यह कहकर भगवान् हरि देवताओं के साथ पृथिवी पर अवतीर्ण हो गये। ये हरि ही कृष्ण हैं। तुमलोग देवता हो। सूर्यवर्चा यक्ष ही बर्बरीक हैं। महात्मा कृष्ण ने ब्रह्मा का वचन स्मरण करके ही इसका वध किया है। अतः इस कार्य हेतु कृष्ण पर दोषारोपण करना राजाओं के लिये उचित नहीं है।।६८-६९।।

श्रीकृष्ण उवाच

यदुक्तं भूमिपा देव्या तत्तथैव न संशयः।।७०।।

यद्येनमधुना नैव हन्यां ब्रह्मवचोऽन्यथा। ततोभवेदिति स्मृत्वामयाऽसौविनिपातितः॥७१॥
गुप्तक्षेत्रे मयैवाऽसौ नियुक्तो देव्यनुस्मृतौ। पूर्वं दत्तं वरं स्वीयं स्मरता देवसंसदि॥७२॥
इत्युक्ते चण्डिकादेवीतदाभक्तशिरस्त्विदम्। अभ्युक्ष्यसुधयाशीघ्रमजरंचामरंव्यधात्॥७३॥
यथा राहुशिरस्तद्वत्तच्छिरः प्रणनाम तान्। उवाच च दिदृक्षामि युद्धं तदनुमन्यताम्॥७४॥
ततः कृष्णो वचः प्राह मेघगम्भीरवाक्प्रभुः। यावन्मही सनक्षत्रा यावच्चन्द्र दिवाकरौ॥७५॥
तावत्त्वं सर्वलोकानां वत्स! पूज्योभविष्यसि। देवीलोकेषुसर्वेषु देवीवद्विचरिष्यसि।
स्वभक्तानां च लोकेषु देवीनां दास्यसे स्थितिम्॥७६॥
बालानां ये भविष्यन्ति वातपित्तकफोद्भवाः। पिटकास्ताः सुखेनैव शामयिष्यसि पूजनात्॥७७॥
इदं च शृङ्गमारुह्य पश्य युद्धं यथा भवेत्॥७८॥
धावन्तःकौरवास्त्वस्मान्वयंयामस्त्वमूनिति। इत्युक्तेवासुदेवेनदेव्योऽथाम्बरमाविशन्॥७९॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—"हे भूपतिगण! देवी ने जो कहा, वह ऐसा ही है। इसमें कोई संशय नहीं है। यदि मैं इसका वध अभी न करता, तब ब्रह्मवाक्य मिथ्या हो जाता। यही कारण है कि मैंने इसका विनाश किया। मैंने ही इसे गुप्तक्षेत्र में जाकर वहां देवी की उपासना का उपदेश प्रदान किया था। क्योंकि उस देवसभा में इसको यही वर मिला था।" श्रीकृष्ण के यह कहने पर चण्डिका देवी ने भक्त के मस्तक पर अमृत को छिड़का। राहु के शिर की तरह बर्बरीक का मस्तक भी अमर-अजर हो गया। उस मस्तक ने तब सबको प्रणाम किया। उसने कहा कि "मैं इस युद्ध को देखना चाहता हूं। अतएव मुझे अनुमति प्रदान करें।" तब प्रभु कृष्ण ने मेघवत् गम्भीर वाणी में कहा—"जबतक पृथिवी पर सूर्य-नक्षत्र-चन्द्र विद्यमान हैं, तबतक वत्स! तुम सभी लोकों में पूज्य रहोगे। समस्त देवीलोकों में तुम देवी के समान विचरण कर सकोगे। तुम वहां सम्मानित रहोगे। तुम भक्तों को भी देवीलोक में निवास कराओगे। बालकों को वात-पित्त-कफज-पिड़का रोग होता है, तुम्हारा पूजन करने से तुम शीघ्र उसे प्रशमित कर दोगे। तुम इस गिरि शिखर पर अवस्थित रहो। इस स्थान से तुमको यह युद्ध लक्षित होता रहेगा। अब कौरवगण युद्धार्थ हमलोगों की ओर दौड़ रहे हैं, हमें भी उनके विरुद्ध अभियान करना है।" वासुदेव के यह कहने पर सभी देवियों ने आकाश पथ से प्रस्थान किया।।७०-७९।।

बर्बरीकशिरश्चैव गिरिशृङ्गमवाप्य तत्। देहस्य भूमिसंस्काराश्चाभवञ्छिरसो नहि।
ततो युद्धं महदभूत्कुरुपाण्डवसेनयोः॥८०॥
अष्टादशाहेन हता ये च द्रोणवृषादयः। दुर्योधने हते क्रूरे अष्टादशदिनात्यये॥८१॥
युधिष्ठिरो ज्ञातिमध्ये गोविन्दं समभाषत। पुरुषोत्तम संग्राममुं सन्तारिता वयम्॥८२॥
त्वयैव नाथेन हरे नमस्ते पुरुषोत्तम!। श्रुत्वातस्याऽपि सासूयमिदंभीमोवचोऽब्रवीत्॥८३॥
येन ध्वस्ता धार्तराष्ट्रास्तं निराकृत्यमांनृप। पुरुषोत्तमं कृष्णमितिब्रवीषिकिमुमूढवत्॥८४॥
धृष्टद्युम्नंफाल्गुनंच सात्यकिंमांच पाण्डव!। निराकृत्यब्रवीष्येव सूतंधिक्त्वांयुधिष्ठिर॥८५॥

बर्बरीक का मस्तक भी उस गिरिशिखर पर चला गया। उसका शरीर भूमि पर था, उसका संस्कार सविधि किया गया, तथापि मस्तक का संस्कार नहीं किया गया। तदनन्तर कुरु-पाण्डव सैन्य में तुमुल संग्राम छिड़ा। १८

दिन वह युद्ध हुआ। द्रोण-कर्ण आदि सभी वीर मृत हो गये। अठारहवें दिन के अन्त में क्रूरकर्मा दुर्योधन भी कालग्रस्त हो गया। तब ज्ञातिजन में बैठे युधिष्ठिर ने कृष्ण से कहा—"हे पुरुषोत्तम! आपने ही हमें इस महान् संग्रामसागर से पार उतारा है। हे हरि, हे नाथ, हे पुरुषश्रेष्ठ! आपको प्रणाम।" यह सुनकर भीम असहिष्णु होकर कहने लगे "राजन! जिसके द्वारा सभी धृतराष्ट्र पुत्रों का वध हुआ, वह भीम मैं हूं। आप मुझे तुच्छ मान कर मूर्ख की तरह पुरुषोत्तम-पुरुषोत्तम कर रहे हैं। उनका स्तव क्यों कर रहे हैं? हे पाण्डव! धृष्टद्युम्न, सात्यकि, अर्जुन तथा मुझे छोड़ कर आप सारथि की स्तुति कर रहे हैं? हे युधिष्ठिर! आपको धिक्कार है"।।८०-८५।।

अर्जुन उवाच

मैवं मैवं ब्रूहि भीम न त्वं वेत्सि जनार्दनम्। नमयानत्वयापार्थनान्येनाप्यरयो हताः॥८६॥
अहंहि सर्वदाऽग्रस्थं नरम्पश्यामिसंयुगे। निघ्नन्तं शात्रवांस्तत्रनजानेकोऽप्यसाविति॥८७॥

अर्जुन कहते हैं—हे भीम! ना! आप इस प्रकार न बोलें! आप जनार्दन की वास्तविकता को नहीं जानते। मैं, आप अथवा अन्य कोई भी वीर, किसी के द्वारा शत्रु निहत नहीं है। युद्धकाल में मैंने प्रत्यक्ष देखा कि मेरे आगे-आगे कोई पुरुष शत्रुवर्ग का वध करता आगे बढ़ता जा रहा है, वे कौन हैं, मैं नहीं जानता।।८६-८७।।

भीम उवाच

विभ्रान्तोऽसिध्रुवंपार्थ नात्रहन्तानरोऽपरः। अथचेदस्त्विवत्वत्पौत्रमुच्चस्थंवच्मिहन्तकः॥८८॥
उपसृत्य ततो भीमो बर्बरीकमपृच्छत। ब्रूह्येते केन निहता धार्तराष्ट्रा हि शत्रवः॥८९॥

भीम कहते हैं—हे पार्थ! तुम निश्चित रूपेण भ्रान्त हो गये हो। इस युद्ध में अन्य कोई शत्रुहन्ता नहीं है, तथापि यदि इस बात पर विश्वास न हो, यदि तुमको अन्य कोई व्यक्ति हन्ता प्रतीत होता है, तब चलो, तुम्हारे उस शृंगस्थ पौत्र से यह पूछा जाये कि कौन हन्ता है? भीम ने यह कहकर बर्बरीक से प्रश्न किया कि इन कौरवों का वध किसने किया, बतलाओ।।८८-८९।।

बर्बरीक उवाच

एको मया पुमान्दृष्टो युध्यमानः परैः सह। सव्यतः पञ्चवक्त्रःसदक्षिणे चैकववक्त्रतः॥९०॥
सव्यतो दशहस्तश्च धृतशूलाद्युदायुधः। दक्षिणे च चतुर्हस्तो धृतचक्राद्युदायुधः॥९१॥
सव्यतश्च जटाधारी दक्षिणे मुकुटोच्चयः। सव्यतो भस्मधारी च दक्षिणे धृतचन्दनः॥९२॥
सव्यतश्चन्द्रधारी च दक्षिणे कौस्तुभद्युतिः। ममाऽपि तद्दर्शनतो महद्भयमजायत॥९३॥
ईदृसो मे नरो दृष्टो न चान्यो यो जघान तान्। इत्युक्ते पुष्पवर्षं तु खादासीत्सुमहाप्रभम्॥९४॥

बर्बरीक कहता है—मैंने शत्रुओं के साथ केवल एक ही पुरुष को युद्ध करते देखा। वह बायीं ओर पंचमुख था तथा दक्षिण की (दाहिनी) ओर मात्र एक मुख वाला था। बायीं ओर उसके दस हाथ थे, जिनमें उसने शूल आदि अस्त्र धारण किये थे और दाहिनी ओर उसके ४ हाथ थे, जिसमें उसने चक्रादि अस्त्र-शस्त्र धारण किये थे। उसके शिर के बायीं ओर जटाजाल था, जबकि दाहिनी ओर उज्ज्वल मुकुट शोभित था। वामांग में चन्द्रकला धारी तथा दाहिने अंग में कौस्तुभधारी था। उसे देखकर मैं भयभीत हो उठा। जो उन कौरवों का संहार कर रहे थे, ऐसा पुरुष आजतक कभी नहीं देखा। उसने दाहिने ओर श्वेत चन्दन का लेप किया था, जबकि वाम भाग में भस्म भूषित था। बर्बरीक के यह कहते ही आकाश से पुष्पवर्षा होने लगी।।९०-९४।।

सस्वनुर्देववाद्यानिसाधुसाध्वितिवैजगुः। विस्मिताः पाण्डवाश्चासन्प्रणेमुःपुरुषोत्तमम्॥९५॥
विलक्षश्चाऽभवद्भीमो निश्वासांश्चाऽप्यमुञ्चत। तं ततः केशवःस्वामी समादायकरेदृढे॥९६॥
कुरुशार्दूल एहीतिप्रोच्य सस्मारकाश्यपिम्। आरुह्यगरुडंपश्चात्स्मृतमात्रमुपस्थितम्॥९७॥
भीमेन सहितो व्योम्नि प्रयातोदक्षिणांदिशम्। ततोऽर्णवमतीत्यैवसुवेलंचमहागिरिम्॥९८॥
लङ्कासमीपे दृष्ट्वैव सरः कृष्णोऽब्रवीद्वचः। कुरुशार्दूल पश्येदं सरो द्वादशयोजनम्॥९९॥
यदि शूरोऽसितच्छीघ्रमानयाऽस्यतलान्मृदम्। इत्युक्तोगरुडाच्छीघ्रंन्यपतत्तज्जलेबली॥१००॥
योजनं वायुजवाद्गच्छन्नधो नान्तमपश्यत। ततोभीमोविनिःसृत्यभग्नवीर्योऽभ्यभाषत॥१०१॥
अगाधमेतत्सुमहत्सरः कैश्चिन्महाबलैः। अहं खादितुमारब्धः कथञ्चिच्चाऽपि निर्गतः॥१०२॥
एवमुक्तो हसन्कृष्ण उच्चिक्षेप महत्सरः। स्वेनाङ्गुष्ठेन तेजस्वी तदर्धाऽर्धमजायत॥१०३॥
तद्दृष्ट्वा विस्मितः प्राह किमिदं कृष्ण! ब्रूहि मे॥१०४॥

आकाश में देव-दुन्दुभि वादित होने लगी तथा सर्वत्र साधु-साधु शब्द उत्थित होने लगा, तब पाण्डवों ने विस्मित होकर पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण को प्रणाम किया। भीम लज्जित होकर दीर्घ निःश्वास छोड़ने लगे। तब प्रभु केशव ने भीम का हाथ दृढ़तापूर्वक पकड़कर कहा—"हे कुरुशार्दूल! आईये।" यह कहकर उन्होंने गरुड़ का स्मरण किया। गरुड़ स्मरण करते ही वहां उपस्थित हो गये। श्रीकृष्ण भीम के साथ गरुड़ पर बैठे तथा आकाशमार्ग से दक्षिण की ओर जाने लगे। वे दक्षिण समुद्र तथा सुबेल पर्वत को पार करके लंका के समीप पहुंचे। लंका के समीप एक सरोवर देख कर कृष्ण ने भीम से कहा—"हे कुरुशार्दूल! देखो! यह सरोवर १२ योजन का है। यदि तुम शूरवीर हो, तब अविलम्ब जाकर इसके तल से मिट्टी लाओ।" यह सुनकर वीरवर भीम तत्काल गरुड़ से नीचे कूदे तथा वायुवेग से उस सरोवर में एक योजन पर्यन्त नीचे गये, परन्तु उसका तल नहीं मिला। तब वे भग्न मन से सरोवर से बाहर आकर कहने लगे—"हे कृष्ण! यह महान् सरोवर अगाध है। उसमें नाना महाबली जलजन्तु मुझे खाने का प्रयत्न करने लगे। मैं किसी प्रकार बाहर निकला हूं।" यह सुनकर तेजस्वी कृष्ण ने हंसते हुए मात्र अपने अंगुष्ठ से उस सरोवर को उलट दिया। तब उस सरोवर में पहले से मात्र आधा ही जल बच गया। यह देखकर भीम ने विस्मित होकर कृष्ण से कहा—"यह क्या? कृपया बतायें!"॥९५-१०४॥

श्रीकृष्ण उवाच

कुम्भकर्ण इति ख्यातः पूर्वमासीन्निशाचरः। रामबाणहतस्याभूच्छिरश्छिन्नं सुदुर्मतेः॥१०५॥
शिरसस्तस्यतालुक्यखण्डमेतद्वृकोदर। योजनद्वादशायामं मृदु क्षिप्तं विचूर्णितम्॥१०६॥
विधृतस्त्वं च यैस्ते तु सरोगेयाभिधाः सुराः।
त्रिकूटस्य शिलाभिश्च चूर्णिता ये च कोटिशः॥१०७॥
एते हि विश्वरिपवोनिहताःस्युरुपायतः। गच्छामः पाण्डवान्भीमद्रौणिर्हित्वरतेदृढम्॥१०८॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—पूर्व काल में कुम्भकर्ण नामक एक राक्षस था। रामचन्द्र के बाण के आघात से उस दुर्मति निशाचर का शिर छिन्न हुआ। उस छिन्न मस्तक का तालुखण्ड यह सरोवराकृति हो गया। हे वृकोदर! यह तालुखण्ड

अत्यन्त पुरातन था, अतः मेरे मृदु भाव से उलटते ही चूर्ण हो गया। इसमें प्रवेश करने पर जिन्होंने तुम्हारे ऊपर आक्रमण किया, वे सरोगेय नामक देवयोनि वाले थे। ये भी जगत् के वैरी थे, जिनका निहत होना आवश्यक था। जिनको निहत करने में कौशल आवश्यक था। त्रिकूट गिरि के शिलाघात से इनके कोटि-कोटि व्यक्ति चूर्णित हो गये। हे भीम! अब पाण्डवों के पास चलें। द्रोणनन्दन अश्वत्थामा ने उनको नितान्त कष्ट दिया है।।१०५-१०८।।

ततो भीमः प्रणम्याह मनोवाक्कायबुद्धिभिः। कृतमाजन्मतः सर्वं कुकृतं क्षम केशव!॥१०९॥
पुरुषोत्तम भवान्नाथ बालिशस्य प्रसीद मे। ततःक्षान्तमितिप्रोच्य भीमेनसहितोहरिः॥११०॥
रणाजिरं भूय एत्य बर्बरीकं वचोऽब्रवीत्। चरत्रेवं सुहृदय सवलोकेषु नित्यशः॥१११॥
पूजितः सर्वलोकैस्त्वं यच्छंस्तेषांवरान्वृतान्। गुप्तक्षेत्रंचनत्याज्यंसर्वक्षेत्रोमोत्तमम्॥११२॥
देहिस्थल्यां तथा वासी क्षमस्व दुष्कृतं च यत्। इत्युक्तस्तान्नमस्कृत्य भैमिः स्वैरं ययौ मुदा॥११३॥

भीम ने काय-मन-वाक्य से कृष्ण को प्रणाम किया तथा कहा—"हे केशव! मैंने आजन्म जो दुर्व्यवहार किया है, उसे क्षमा करिये। हे नाथ! पुरुषोत्तम! मैं अज्ञानी हूं, मुझ पर प्रसन्न हो जायें।" भगवान् श्रीकृष्ण ने तब 'क्षमा किया' यह कह कर भीम के साथ पुनः रणभूमि में आकर बर्बरीक से कहा—"हे सुहृदय! तुम इस प्रकार नित्य समस्त लोकों में विचरण करते हुए सबकी प्रार्थना पूर्ण करो। सभी तुम्हारी पूजा करेंगे। तुम कदापि इस गुप्त क्षेत्र का त्याग नहीं करना। यह सभी क्षेत्रों से उत्तम स्थल है। तुम देहस्थली में भी निवास करो। वहां रहकर प्रणत लोगों के दुष्कृतों का मार्जन करो।" बर्बरीक ने भगवान् का यह वाक्य सुन कर उनलोगों को प्रणाम करके सानन्द मन से वहां से प्रस्थान किया।।१०९-११३।।

वासुदेवोऽपिकार्याणिसर्वाण्यूध्वर्मकारयत्। इतिवोवर्णितोत्पत्तिर्बर्बरीकस्यवाडवाः।
स्तवं चाऽस्यप्रवक्ष्यामि येन तुष्यति यक्षराट्॥११४॥

वासुदेव ने उसके उद्देश्य से उसका और्ध्वदैहिक समस्त कार्य सम्पन्न किया। हे पाण्डवगण! मैंने तुमलोगों से बर्बरीक का उत्पत्ति वृत्तान्त कहा। अब उसका स्तव भी कहता हूं। वह स्तव सुनो। इस स्तवपाठ से वे यक्षराज प्रसन्न हो जाते हैं।।११४।।

जयजय चतुरशीतिकोटिपरिवार सूर्यवर्चाभिधान यक्षराज जय भूभारहरणप्रवृत्त लघुशापप्राप्तनैर्ऋतियोनिसम्भव जय कामकण्टकटाकुक्षिराजहंस जय घटोत्कचानन्दवर्धन बर्बरीकाभिधान जयकृष्णोपदिष्ट श्रीगुप्तक्षेत्र देवीसमाराधनप्राप्तातुलवीर्य जय विजय सिद्धिदायक जय पिङ्गलारेपलेन्द्रदुहद्रुहानवकोटीश्वरपलाशनदावानल जय भूपातालान्तराले नागकन्यापरिहारक जय भीममानमर्दन जय सकलकौरवसेनावधमुहूर्तप्रवृत्त जयश्रीकृष्णवर-लब्धसर्ववरप्रदानसामर्थ्यजयजयकलिकालवन्दित नमोनमस्ते पाहिपाहीति॥११५॥

यथा—हे ८४ कोटि परिवार युक्त सूर्यवर्चा नामक प्रसिद्ध यक्षराज, हे भूभारहरण प्रवृत्त! आपने सामान्य दोष के कारण शापवशात् राक्षस योनि प्राप्त किया। आपकी जय हो। आप माता कामकटंकटा के कोखरूपी सरोवर के राजहंस हैं। आपकी जय हो। आप घटोत्कच का आनन्दवर्द्धन करते हैं, आपकी जय हो. आपकी जय हो। आपने कृष्ण के उपदेश से गुप्तक्षेत्रवासिनी देवियों की आराधना द्वारा अतुलित वीर्यलाभ किया, आपकी जय हो। आपकी

जय हो। आप पिंगला दुहद्रुहा, रेपलेन्द्र तथा ९ कोटि राक्षसपति पलाशी राक्षसरूप वन के दावानल रूप हैं। आपकी जय हो। आपने भूमि तथा पाताल के अन्तराल भाग की उपयाचिका नागकन्याओं का प्रत्याख्यान किया था, आपकी जय हो। आपने भीमसेन के भी गर्व को खर्व किया। आप मुहूर्त्तमात्र में समस्त कौरवसैन्य संहारार्थ प्रवृत्त हो गये थे। आपकी जय हो। आपने कृष्ण से सबको वर देने की शक्ति का वरलाभ किया। आपकी जय हो। आप कलिकाल में सर्वसाधारण के वन्दनीय होंगे, आपकी जय हो। आपको प्रणाम! आपको प्रणाम! आप रक्षा करें, रक्षा करें।।११५।।

अनेन यः सुहृदयं श्रावणेऽभ्यर्च्य दर्शके। वैशाखेच त्रयोदश्यां कृष्णपक्षे द्विजोत्तमाः।
शतदीपैः पूरिकाभिः संस्तवेत्तस्य तुष्यति।।११६।।

हे द्विजोत्तमगण! श्रावणी अमावस्या के दिन अथवा वैशाख मास की कृष्ण त्रयोदशी तिथि के दिन १०० दीपक तथा पूरी निवेदन करके जो इस स्तव का जप करता है, उसके प्रति बर्बरीक प्रसन्न हो जाते हैं।।११६।।

ततो विप्रा नारदश्च समाराध्य महेश्वरम्। महीनगरकेपुण्ये स्थापयामास शङ्करम्।।११७।।
लोकानां च हितार्थाय केदारं लिङ्गमुत्तमम्। अत्रीशादुत्तरे भागे महापापप्रणाशनम्।।११८।।
अत्र कुण्डे नरः स्नात्वा श्राद्धं कृत्वा यथाविधि। अत्रीशंचनमस्कृत्यकेदारं चप्रपश्यति।।११९।।
मातुः स्तन्यं पुनर्नैव स पिबेन्मुक्तिभाग्भवेत्। ततो रुद्रो नीलकण्ठोनारदायमहात्मने।।१२०।।
वरं दत्त्वा स्वयं तस्थौ महीनगरके शुभे। कोटितीर्थे नरः स्नात्वानीलकण्ठंप्रपश्यति।।१२१।।
जयादित्यं नमस्कृत्य रुद्रलोकमवाप्नुयात्। जयादित्यं पूजयन्तिकूपे स्नात्वानरोत्तमाः।।१२२।।
नतेषांवंशनाशोऽस्तिजयादित्यप्रसादतः। तेषांकुलेनरोगःस्यान्नदारिद्र्यं नलाञ्छनम्।।१२३।।

हे विप्रगण! अब अन्य वृत्तान्त सुनें। नारद मुनि ने इस पुण्य महीसागरसंगम पर लोकहितार्थ शंकर की आराधना करके केदार नामक प्रसिद्ध श्रेष्ठ लिंग स्थापित किया था। यह अत्रीशलिंग के उत्तर में स्थित है। यह महा पापहारी है। मानव वहां कुण्ड में स्नान करके यथाविधि श्राद्ध करें तथा अत्रीश को प्रणाम करें। तदनन्तर केदार का दर्शन करना चाहिये। ऐसा करने वाला मानव कभी पुनः मातृस्तनपान नहीं करेगा। उसे मुक्ति मिलेगी। तदनन्तर नीलकण्ठ रुद्रदेव ने यहीं आकर नारद को वर प्रदान किया था। इसके पश्चात् वे नारद द्वारा प्रतिष्ठित होकर उस शुभ महीनगर में विद्यमान हैं। यदि मानव कोटितीर्थ में स्नान करके नीलकण्ठ के दर्शन के उपरान्त जयादित्य को प्रणाम करता है तथा पूजन करता है, उसे रुद्रलोक की प्राप्ति होती है। जो नरश्रेष्ठ कूप स्नान के पश्चात् जयादित्य का पूजन करते हैं, उनका कभी वंशनाश नहीं होता। उसके वंश में कभी रोग, दरिद्रता तथा लांछना की स्थिति नहीं होती।।११७-१२३।।

पुत्रपौत्रसमायुक्ता धनधान्यसमायुताः। भुक्त्वा भोगानिह बहून्सूर्यलोके वसन्ति ते।।१२४।।

वह इहलोक में पुत्र-पौत्र, धन-धान्यादि नाना भोग उपभोग करके अन्त में सूर्यलोक गमन करता है।।१२४।।

इति प्रोक्तं मया विप्रागुप्तक्षेत्रंसमासतः। सप्तक्रोशप्रमाणंचक्षेत्रस्याऽस्य पुरा द्विजाः।
स्वयम्भुवा प्रोक्तमिदं सर्वकामार्थसिद्धिदम्।।१२५।।
इति वो वर्णितः पुण्यो महीसागरसम्भवः। शृण्वन्सङ्कीर्तयंश्चैवं सर्वपापैः प्रमुच्यते।।१२६।।
य इदं श्रावयेद्विद्वान्महामाहात्म्यमुत्तमम्। सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकं स गच्छति।।१२७।।
गुप्तक्षेत्रस्य माहात्म्यं सकलं श्रावयेद्यदि। सर्वैश्वर्यमवाप्नोति ब्रह्महत्यां व्यपोहति।।१२८।।

हे विप्रगण! मैंने आपलोगों से गुप्तक्षेत्र का वर्णन संक्षेप में कहा है। पूर्व में ब्रह्मा ने कहा था कि इस क्षेत्र का परिमाण ७ क्रोश है। यह सर्वकामार्थीगण को सिद्धि देने वाला है। आपलोगों से मैंने इसका वर्णन किया है। इसका श्रवण किंवा कीर्त्तन करने से भी मनुष्य समस्त पापों से मुक्ति पा जाता है। यदि विद्वान् व्यक्ति इस तीर्थ की महिमा किसी को (मही नदी की महिमा) सुनाता है, वह भी (सुनाने वाला) रुद्रलोक प्राप्त करता है। यदि समग्र गुप्तक्षेत्र की महिमा सुनाता है, तब वह सर्वविध ऐश्वर्य प्राप्त करता है। वह ब्रह्महत्या के पाप से भी रहित हो जाता है।।१२५-१२८।।

कोटितीर्थस्य माहात्म्यं महीनगरकस्य च। शृणोति श्रावयेद्यस्तु ब्रह्मभूयाय कल्पते॥१२९॥
कोटितीर्थेनरःस्नात्वाश्राद्धं कृत्वाप्रयत्नतः। दानंदद्याद्यथाशक्त्याशृणुध्वंतत्फलं हिमे॥१३०॥
स्वर्गपातालमर्त्येषु यानि तीर्थानि सन्ति वै। तेषु दानेषु यत्पुण्यं तत्फलंप्राप्यतेनरैः॥१३१॥
अश्वमेधादिभिर्यज्ञैरिष्टैश्चैवाऽऽप्तदक्षिणैः। सर्वव्रततपोभिश्च कृतैर्यत्पुण्यमाप्यते॥१३२॥
तत्पुण्यं प्राप्यते विप्राः कोटितीर्थे न संशयः॥१३३॥
इदं पवित्रं खलु पुण्यदं सदा यशस्करं पापहरं परात्परम्।
शृणोति भक्त्या पुरुषः स पुण्यभागसुक्षये रुद्रसलोकतां व्रजेत्॥१३४॥
धन्यं यशस्यं नियतं सुपुण्यं स्वर्मोक्षदं पापहरं नराणाम्।
शृणोति नित्यं नियतः शुचिः पुमान्भित्त्वा रविं विष्णुपदं प्रयाति॥१३५॥

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे गुप्तक्षेत्रमाहात्म्यपरिसमाप्तिवर्णनं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः।।६६।।

।।इति श्रीस्कान्दपुराणीयप्रथममाहेश्वरखण्डान्तर्गतो द्वितीयः कौमारिकाखण्डः समाप्तः
मूलखण्डः (१) अन्तर्गतः खण्डः (२)।।

।।इति कौमारिकाखण्डः समाप्तः।।

शुभम्भूयात्

जो व्यक्ति कोटितीर्थ एवं महीसागर की महिमा सुनता किंवा सुनाता है, वह ब्रह्मपद प्राप्त करेगा। नवकोटि तीर्थ में स्नान का जो फल है तथा शक्ति के अनुसार सयत्न श्राद्ध तथा दान का जो फल है—वह सुनें। स्वर्ग, मर्त्य, पाताल में जितने तीर्थ हैं, उन सबमें दान का जो फल है, वह उसे मिलता है। यथेष्ट दक्षिणा से अश्वमेधादि यज्ञ, सर्वविध व्रत तथा तपस्या का जो फल है, वह सब कोटि तीर्थ के प्रभाव से वह व्यक्ति प्राप्त करता है। इसमें संदेह नहीं है। यह पवित्र उपाख्यान लोगों के लिये पुण्प्रद, सतत् यशप्रद तथा पापहारी है। यह परात्पर श्रेष्ठ पदार्थ है। जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक इसे सुनता है, वह पुण्यभागी होकर जीवनान्त में रुद्र के साथ निवास करता है। यह उपाख्यान स्वर्ग, मोक्ष देने वाला, यशप्रद, धन्य बनाने वाला है। जो मानव पवित्र होकर संयत चित्त से इसे सुनता है, वह सूर्यमण्डल भेद करके विष्णुपद में लीन हो जाता है।।१२९-१३५।।

।।षट्षष्टितम अध्याय समाप्त

।।कुमारिकाखण्ड समाप्त।।

❖❖❖

अरुणाचलमाहात्म्यम्

(पूर्वार्धः)

।।श्रीगणेशाय नमः।।

अथ स्कान्देमहापुराणे प्रथमे माहेश्वरखण्डे

तृतीयमरुणाचलमाहात्म्यम्

तत्र पूर्वार्धः प्रारभ्यते

प्रथमोऽध्यायः

लिंग प्रादुर्भाव, विष्णु ज्योतिस्वरूप, शिव प्रभाव

ललाटे त्रैपुण्ड्री निटिलकृतकस्तूरितिलकःस्फुरन्मालाधारःस्फुरितकटिकौपीनवसनः।
दधानो दुस्तारं शिरसि फणिराजं शशिकलां प्रदीपःसर्वेषामरुणगिरियोगीविजयते।।१।।

जिसके ललाट पर त्रिपुण्ड्र, भ्रूमध्य में कस्तूरी तिलक, गले में उज्ज्वल माला, कटि में कौपीन विराजित है, जिन्होंने अपने मस्तक पर नागराज तथा चन्द्रकला धारण किया है, जो समस्त जगत् के प्रदीपरूप हैं, उन अरुणाचलवासी योगिराज की जय हो।।१।।

व्यास उवाच

अथाऽऽहुर्मुनयः सूतं नैमिषारण्यवासिनः। अरुणाचलमाहात्म्यं त्वत्तःशुश्रूषवोवयम्।
तन्माहात्म्यं वदंत्युक्तः सूतः प्रोवाच तान्मुनीन्।।२।।

व्यासजी कहते हैं—तदनन्तर नैमिषारण्य निवासी ऋषिगण ने सूतजी से कहा—हम नैमिष में रहते हुए आपसे अरुणाचल का माहात्म्य सुनने की इच्छा रखते हैं।।२।।

श्रीसूत उवाच

एतदर्थं चतुर्वक्त्रं पप्रच्छ सनकः पुरा।।३।।
शृणुताऽवहितायूयंतद्वोवक्ष्यामिसाम्प्रतम्। यदाकर्णयतांभक्त्यानराणांपापनाशनम्।।४।।
सत्यलोके स्थितं पूर्वं ब्रह्माणं कमलासनम्। सनकः परिपप्रच्छप्रणतःप्राञ्जलिःस्थितः।।५।।

सूतजी कहते हैं—आपसे मैं उसका वर्णन करता हूं। पुराकाल में ब्रह्मा से सनक ऋषि ने अरुणाचल का माहात्म्य पूछा था। इस प्रसंग को भक्तिपूर्वक सुनने से मानवगण का पाप नष्ट होता है। सम्प्रति मैं अरुणाचल का माहात्म्य कहता हूं। आप सब एकाग्र होकर सुनें। पूर्वकाल में कमलासन ब्रह्मा सत्यलोक में स्थित थे। उस समय सनक ऋषि ने हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उनसे इस सम्बन्ध में पूछा।।३-५।।

सनक उवाच

भुवनाधार! देवेश! वेदवेद्य चतुर्मुख। आसीदशेषविज्ञानं प्रसादाद्भवतो मम।।६।।
भवद्भक्तिविभूत्या मे शोधिते चित्तदर्पणे। बिम्बते सकलं ज्ञानं सकृदेवोपदेशतः।।७।।

सारार्थं वेदवेदानां शिवज्ञानमनाकुलम्। लब्धवानहमत्यन्तं कटाक्षैस्ते जगद्गुरोः॥८॥
लिङ्गानि भुवि शैवानि दिव्यानिचकृपानिधे। मानुषाणिचसैद्धानिभौतानिसुरनायक॥९॥
यल्लिङ्गममलं दिव्यमरिच्छेदनवैभवम्। स्वयम्भु जाम्बवे द्वीपे तैजसं तद्वदस्व मे॥१०॥
नामस्मरणमात्रेण यत्पातकविनाशनम्। शिवसारूप्यदं नित्यं मह्यं वद दयानिधे!॥११॥

सनक कहते हैं—देवेश, वेदवेद्य, चतुर्मुख! आपकी कृपा से हममें अशेष विज्ञान का उदय हुआ है। आपकी भक्तिरूपी विभूति से हमारा चित्तदर्पण शोधित होता रहता है। आपके मात्र एक उपदेश से हममें समस्त ज्ञान का प्रतिफलन हो जाता है। हे जगद्गुरु! अनाकुल शिवज्ञान ही वेद का साररूप अर्थ है। आपके करुणाकटाक्ष से उसे भी मैंने विशेषरूपेण प्राप्त किया है। हे दयानिधि! इस भूमण्डल में जितने भी दिव्य, मानुष, सिद्ध, भौत सम्बन्धित लिङ्ग विराजित हैं, जो लिंग अमल, शत्रुनाश में समर्थ हैं, हे सुरनायक! जो लिंग जम्बूद्वीप में स्वयं उत्पन्न हैं तथा तैजस हैं, उन सबका वर्णन बतायें। हे दयानिधि! जिसके नामस्मरण मात्र से पातक विनष्ट हो जाते हैं तथा सम्यक् रूप से शिवसारूप्यपद की प्राप्ति होती है, वह भी मुझसे कहिये।।६-११।।

अनादिजगदाधारं यत्तेजः शैवमव्ययम्। यच्च दृष्ट्वा कृतार्थः स्यात्तन्मह्यमुपदिश्यताम्॥१२॥

जो अव्यय शैवतेज अनादि अनन्त जगत् का आधार है तथा जिसका दर्शन करके लोग कृतकृत्य हो जाते हैं, कृपया उसका उपदेश करिये।।१२।।

इति भक्तिमतस्तस्य कौतूहलसमन्वितम्। वाक्यमाकर्ण्यभगवान्प्रससादतपोनिधिः॥१३॥
दध्यौ च सुचिरं शम्भुं पङ्कजासनसंस्थितः। अन्तरङ्गसुखाम्भोधिमग्नचेताश्चतुर्मुखः॥१४॥
दृष्ट्वा यदापुरादृष्टं तेजःस्तम्भमयं शिवम्। उत्तीर्णसकलाधारं नकिञ्चित्यप्रत्यबुध्यत॥१५॥
पुनराज्ञां शिवाल्लब्धामनुपालयितुं प्रभुः। निर्वर्त्त्य हृदयं योगात्सस्मार सुतमानतम्॥१६॥
शिवदर्शनसञ्जातपुलकाङ्कितविग्रहः। आनन्दबाष्पवन्नेत्रः सगद्गदमभाषत॥१७॥

तदनन्तर तपोनिधि भगवान् ब्रह्मा भक्तिमान् ऋषि सनक का यह कौतूहल से भरा वाक्य सुनकर उनके प्रति प्रसन्न हो गये। तब सुखसागर में मग्न चित्त होकर चतुर्मुख ब्रह्मा तत्क्षण पद्मासनासीन होकर शम्भु का ध्यान करने लगे। प्रभु ब्रह्मा ने पूर्व में जिस तेजस्तम्भमय सर्वधारातिक्रान्त शिवलिंग का दर्शन किया तथा उसके सम्बन्ध में कुछ भी निर्णय नहीं कर सके थे, आज ध्यान द्वारा उन शिवलिंगरूप प्रभु का पुनः दर्शन करके उनकी आज्ञा पालनार्थ प्रवृत्त हो गये। उन्होंने अब योगबल से अपने हृदय को प्रकृतिस्थ करके अपने विनीत पुत्र सनक का स्मरण किया। शिव के दर्शन से उनके शरीर में पुलक का चिह्न द्योतित होने लगा। नयनों से आनन्दाश्रु दृष्टिगोचर होने लगा। ऐसी स्थिति में उन्होंने गद्गद् वाणी से कहना प्रारम्भ किया।।१३-१७।।

ब्रह्मोवाच

अन्तः संस्मारितःपुत्र भवताऽहं पुरातनम्। शिवयोगमनुध्यायन्नस्मार्षंतवचाऽऽदरात्॥१८॥
शिवभक्तिः परा जाता तपोभिर्बहुभिस्तव। तया मदीयं हृदयं व्यावर्त्तितमिवक्षणात्॥१९॥
पावयन्तिजगत्सर्वं चरितैस्ते निराकुले। येषां सदाशिवे भक्तिर्वर्द्धते सावकालिकी॥२०॥
सम्भाषणं सहावासः क्रीडा चैव विमिश्रणम्। दर्शनं शिवभक्तानांस्मरणंचाघनाशनम्॥२१॥

श्रूयतामद्भुतं शैवमाविर्भूतं यथा पुरा। अव्याजकरुणापूर्णमरुणाद्र्यभिधंमहः॥२२॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे पुत्र! तुमने आज मुझे पुरातन शिवयोग का स्मरण करा दिया है। अनेक तपःश्चरण से तुम्हारे अन्दर शिवभक्ति का उन्मेष हुआ है। तुमने उस शिवभक्ति के बल से ही क्षणमात्र में मेरे हृदय को सम्पूर्ण रूप से आप्लावित कर दिया। जिनकी भक्ति निराकुल सदाशिव के प्रति सतत् वर्द्धित होती है, वे ही अपने पावन चरित्र से समस्त जगत् को पावन कर देते हैं। शिवभक्तों के दर्शन, नामश्रवण, सम्भाषण, सहवास से तथा उनके संसर्ग से, उनके साथ क्रीड़ा से एवं उनका स्मरण करने से सभी पापों का नाश हो जाता है। जिन शिव की करुणा छलहीन है, जो अरुणादि सम्बोधन से सम्बोधित होते हैं, जो तेजस्वरूप हैं, उनका पूर्वकाल में जिस प्रकार से आविर्भाव हुआ था, उस अद्भुद् आविर्भाव का वर्णन करता हूं। तुम श्रवण करो।।१८-२२।।

अहं नारायणश्चोभौ जातौ विश्वाधिकोदयात्। बहुस्यामिति सङ्कल्पं वितन्वानात्सदाशिवात्॥२३॥
स्वभावेनसमुद्भूतौविवदन्तौ परस्परम्। नच श्रान्तौ नियुध्यन्तौ साहङ्कारौकदाचन॥२४॥
परस्परं रणोत्साहमावयोरतिभीषणम्। आलोक्य करुणामूर्तिरचिन्तयदथेश्वरः॥२५॥

जब सदाशिव ने यह संकल्प लिया कि "मैं बहुः (अनेक) हो जाऊं" तभी उस संकल्प करने वाले विश्वातिक्रमी शिव से मैं तथा नारायण उत्पन्न हो गये। हम दोनों के बीच एक बार विवाद हुआ। नारायण कहने लगे 'मैं बड़ा' तथा मैं कहने लगा 'मैं बड़ा'। यह विवाद उत्पन्न होनेपर हम दोनों अपने-अपने अहंकार के कारण युद्ध का उपक्रम करने लगे। हम दोनों किसी भी प्रकार से श्रान्त नहीं हो रहे थे। हममें भीषण रण का उत्साह एक-दूसरे के प्रति होने लगा। यह देख कर करुणामूर्त्ति ईश्वर सदाशिव चिन्तित हो गये।।२३-२५।।

किमर्थमनयोर्युद्धं जायते लोकनाशनम्। मया सृष्टमहं पातेति विवादमधितस्थुषोः॥२६॥
समयेऽस्मिन्स्वयंलक्ष्योमुग्धयोरनयोर्भृशम्। यदियुद्धंनरोत्स्यामितदास्याद्भुवनक्षयः॥२७॥
वेदेषु मममाहात्म्यं विश्वाधिकतया श्रुतम्। नजानातेइमौमुग्धौक्रोधतोगलितस्मृती॥२८॥

वे चिन्ता करने लगे कि "आज ये लोग किसलिये इस अनर्थपूर्ण लोकक्षयकारी समर के लिये उद्यत हो रहे हैं? मैं ही इस जगत् का सृष्टिकर्त्ता तथा पालनकर्त्ता हूं, तब ये इस प्रकार के विवाद की उत्पत्ति क्यों कर रहे हैं। इन निरतिशय मुग्ध ब्रह्मा तथा नारायण के समक्ष स्वयं मेरा जाना उचित प्रतीत हो रहा है। यदि मैं इस समर का प्रतिरोध नहीं करूंगा, तब यह त्रैलोक्य नष्ट हो जायेगा। वेदों में यह कहा गया है कि विश्व में मैं ही श्रेष्ठ हूं। ऐसा मेरा माहात्म्य वेदों में विश्रुत है, तथापि क्रोध से मोहित होकर इनकी स्मृति का लोप हो गया है"।।२६-२८।।

सर्वोऽपि जन्तुरात्मानमधिकंमन्यतेभृशम्। अमत्तान्यसमाधिक्यस्त्वधःपततिदुर्मति॥२९॥
यद्यहंक्वापिभुवनेदस्यामिमितिमात्मनः। तदातद्रूपविज्ञानात्सआत्मासोऽपिमामियात्॥३०॥
इति निश्चित्य मनसा स्वयमेव सदाशिवः। आवयोर्युध्यतोर्मध्ये वह्निस्तम्भःसमुद्यतः॥३१॥
अतीत्य सकलाँल्लोकान्सर्वतोऽग्निरिव ज्वलन्॥३२॥
अनाद्यन्ततयाचाथदृगारतौसम्व्यतिष्ठताम्। तेजःस्तम्भंज्वलन्तंतमालोक्य शिथिलाशयौ॥३३॥
आवयोः पुरतोजाता वाणीचाप्यशरीरिणी। किमर्थं बालकौयुद्धंकल्प्यतेमूढमानसौ॥३४॥
युवयोर्बलवैषम्यंशिव एव विवेक्ष्यते। तेजःस्तम्भमयं रूपमिदं शम्भोर्व्यवस्थितम्॥३५॥

आद्यन्तयोर्यदि युवामीक्षिषाथांबलाधिकौ। इतितांगिरमाकर्ण्यनियुद्धाद्विरतौतदा॥३६॥

"तभी ये दोनों इस बात को नहीं समझ पा रहे हैं। समस्त जीव अपनी आत्मा को ही महत्वपूर्ण मानते हैं, लेकिन जो दुर्मति असंगत रूप से (अहंकार के कारण) अपनी आत्मा को श्रेष्ठ मानता है, वह अधःपतित हो जाता है। यदि मैं कभी किसी लोक में परिमित आत्मा को भेजता हूं, तब भी वह आत्मा अपने स्वरूप ज्ञान को पाने के पश्चात् पुनः मेरा ही आश्रय लेता है।" सदाशिव मन ही मन यह निश्चय करके हम दोनों के बीच एक अग्निस्तम्भरूपेण समुद्भूत हो गये। वह स्तम्भ समस्त लोकों का अतिक्रमण करके चतुर्दिक् अग्निवत् प्रज्ज्वलित हो उठा। तदनन्तर उस आदि-अन्तरहित ज्वलन्त तेजस्तम्भ को देखकर हम शिथिल जैसे हो गये। तभी एक आकाशवाणी हम दोनों ने सुनी। यथा—तुम मूढबुद्धि बालकों की तरह क्यों युद्ध का उद्योग करते हो? तुम्हारे बल की विषमता का निर्णय शिव कर देंगे। यह जो तेजस्तम्भमय रूप देख रहे हो, इसकी व्यवस्था शिव द्वारा की गयी है। तुम दोनों में से जो कोई भी इस स्तम्भ के आदि-अन्त का पता लगा सकेगा, उसे ही अधिक बली तथा श्रेष्ठ कहा जायेगा।" तब हम दोनों इस आकाशवाणी को सुन कर युद्ध से हट गये।।२९-३६।।

अहं विष्णुश्चगतिमान्विचेतुंतद्व्यवस्थितौ। अग्निस्तम्भमयं रूपंशम्भोराद्यन्तवर्ज्जितम्॥३७॥
अलोकितुंव्यवसितावावामाद्यन्तभागतः। बिम्बितंव्योमगंचन्द्रंयथाबालौजिवृक्षतः॥३८॥
तथैवाऽऽवांसमुद्युक्तौपरिच्छेत्तुंचतन्महः। अथविष्णुमहोत्साहात्क्रोडोऽभूत्सुमहावपुः॥३९॥
तन्मूलविचयाऽयाच्चभूमिगर्भंव्यदारयत्। अहं च हंसतां प्राप्तो महावेगं समुत्पतन्॥४०॥
दिदृक्षुस्तच्छिरोभागं वियदूर्ध्वमगाहिषम्। अधोधो दारयन्क्षोणिमशेषामपि माधवः॥४१॥
आविर्भूतमिवाधस्तादग्निस्तम्भवैक्षत। अनेककोटिवर्षाणि विचिन्वन्नपि तेजसः॥४२॥
अपश्यन्नादिमक्षय्यमार्त्तरूपः स विह्वलः। विशीर्णदंष्ट्रवलयो विगलत्सन्धिबन्धनः॥४३॥

परम गतिमान मैंने तथा विष्णु ने इसका निश्चय करने हेतु कि कौन दोनों में श्रेष्ठ है, उस आदि-अन्तरहित अग्निस्तम्भात्मक शिवरूप के आदि तथा अन्तभाग का अवलोकन करने हेतु उद्यम किया। जैसे बालक आकाश में उदित चन्द्रमा को ग्रहण करने की चेष्टा करता है, उसी प्रकार में उस शिवतेज रूप (स्तम्भ) को जानने के लिए उद्यत हो गया। तब महामहोत्साह युक्त विष्णु विपुल शूकर देह धारण करके उस तेजस्तम्भ का मूल उद्गम जानने के लिए भूगर्भ खोदने लगे तथा मैं हंसत्व ग्रहण करके तेजस्तम्भ का शिरप्रदेश खोजने के लिए महावेगपूर्वक आकाश में जाने लगा। माधव क्रमशः पृथिवी तल का विदारण करते नीचे जाने लगे, परन्तु वे जितना ही नीचे जाते, उस तेजस्तम्भ को और भी नीचे तक पाते। उन्होंने अनेक कोटि वर्ष उस तेज के मूल का अन्वेषण किया, तथापि वे उसका अन्त नहीं जान सके, अपितु वे आर्त्त एवं विह्वल हो गये। उनकी दाढ़ विशीर्ण हो गयी तथा देह के सन्धिबन्धन तक शिथिल हो गये।।३७-४३।।

श्रमातुरस्तृषाक्रान्तो नो यातुमशकद्धरिः। वाराहं रूपमतुलं सन्धारयितुमक्षमः॥४४॥
विहन्तुमपि विश्रान्तो विषसाद रमापतिः। अचिन्तयदमेयात्मा परिश्रान्तशरीरवान्॥४५॥
गलितश्रीःक्रियाश्रान्तःशरण्यंशिवमाश्रयन्। धिङ्ममेदं महन्मौग्ध्यमहङ्कारसमुद्भवम्॥४६॥
येनाऽहमात्मनो नाथमात्मानं नावबुद्धवान्। अयं हि सर्ववेदानां देवानां जगतामपि॥४७॥

मूलभूतः शिवः साक्षान्मूलमस्य कथं भवेत्।
अस्मादेव समुद्भूतोऽस्म्यहमाद्यन्तवर्ज्जितात्॥४८॥
यन्मयाऽन्वेमारब्धं शिवं पशुवपुर्धृता। अव्याजकरुणाबन्धोःपितुःशम्भोःप्रसादतः॥४९॥
पुनरेवेदृशी लब्धा मतिर्मेस्वात्मबोधिना। स्वयमेव महादेवः शम्भुर्यं पातुमिच्छति॥५०॥
तस्य सद्यो भवेज्ज्ञानमनहङ्कारमात्मजम्। न शक्नोमि पुनः कर्तुं पूजामस्यजगद्गुरोः॥५१॥

तब वे थक कर और पिपासा से आतुर होने के कारण और आगे जाने में पूर्ण असमर्थ हो गये। रमापति हरि अतुलित शूकररूप धारण करके जब उसके आदि का पता नहीं पा सके, तब वे श्रान्त होकर अवसाद ग्रस्त हो गये। उस समय अमेयात्मा तथा थके देह वाले हरि ने श्रीभ्रष्ट होकर सर्वशरण्य शिव का आश्रय लिया तथा मन ही मन स्वयं को धिक्कारने लगे। वे चिन्तन करने लगे—"अहंकार ही मेरे इस महामोह का कारण है। मैं अपने स्वामी शिव को नहीं जान सका। ये शिव ही सभी वेद, देव तथा जगत् के साक्षात् मूलभूत हैं। अतः इनका मूल कैसे संभव हो सकता है? इन आदि-अन्तरहित शिव से ही मेरी उत्पत्ति हुई है और मैं जो पशु देह धारण करके इन शिव के अन्वेषण में लगा था, यह भी छलहीन रूप से करुणा का वितरण करने वाला पिता शम्भु का ही अनुग्रह है। अब जो पुनः मेरी आत्मबोधात्मक मति हो गयी है, यह भी निःसंदिग्ध रूप से उनकी ही कृपा है। महादेव शम्भु स्वयं जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसमें तत्काल अहंकाररहित आत्मज्ञान प्रादुर्भूत हो जाता है। मैं तो स्वयं शंकर की पूजा कर सकने में समर्थ नहीं हूं"।।४४-५१।।

निवेदयामिचात्मानंशरणंयामि शङ्करम्। इति दध्यौशिवंविष्णुःस्तुत्यामर्पितचेतनः॥५२॥
सत्प्रसादाद्भूतपतेः पुरनेवोद्धृतः क्षितौ। अहं च गगनेऽभ्राम्यमनेकानपिवत्सरान्॥५३॥
आघूर्णमाननयनः श्लथपक्षः श्रमं गतः। उपर्युपरि चाऽपश्यं ज्वलनं पुरतः स्थितम्॥५४॥
तेजः स्तम्भं स्थूललिङ्गाभं शैव तेजः सुरार्चितम्।
आहुः स्म केचिदालोक्य सिद्धास्तेजोऽशसंभवाः॥५५॥
नित्यांशम्भोःपरांकोटिंदिदृक्षुं मांकृतोद्यमम्। अहोऽयंसत्यंमुग्धत्वमद्यापिचचिकीर्षति॥५६॥
आसन्नदेहपातोऽपिनाहङ्कारोऽस्यवैगतः। विशीर्यमाणपक्षोऽयंश्रान्त्वाविभ्रान्तलोचनः॥५७॥
अपारतेजसि व्यर्थो विमोहोऽयं भविष्यति। एवंव्याकुलचित्तोऽयंक्रोडरूपीजनार्दनः॥५८॥
व्यावर्त्तितः शिवेनैव निर्व्याजकरणाजुषा। ईदृशां ब्रह्ममुख्यानां सुराणांकोटिसम्भवः॥५९॥

"अतएव मैं शंकर के समक्ष आत्मसमर्पण करके उनकी शरण ग्रहण कर लेता हूं।" विष्णु ने इस प्रकार की (मानसिक) स्तुति द्वारा आत्मनिवेदन किया तथा शिव का ध्यान करते हुए उन भूतपति की कृपा से भूगर्भ से पुनः पृथिवी पर आये। मैंने भी दीर्घकाल तक आकाश में परिभ्रमण करते लिंग का शिरोदेश खोजा, लेकिन घूर्णित नयन तथा अपनी हंस देह के पंखों के शिथिल हो जाने के कारण थक गया। मैं जितना भी ऊर्ध्व में उड़ता, देखता कि उससे भी ऊर्ध्व में वह सुरपूजित तेजोमय स्तम्भरूप लिंग प्रज्वलित अग्नि की तरह स्थित हैं। मैंने शम्भु के तेजोमय स्तम्भ के शिरोदेश के दर्शन का अतीव प्रयास किया। यह देखकर शिवांश से उत्पन्न सिद्धगण खेदपूर्वक कहने लगे—"क्या आश्चर्य है! यह व्यक्ति वास्तव में मुग्ध हो गया है। इसका देहपात अत्यन्त निकट है, तब भी

इसका अहंकार नहीं गया? इसके पंख विदीर्ण हैं, नयन विभ्रान्त हैं, शरीर अत्यन्त क्लान्त थका है, यह दीर्घकाल से अपार तेजदर्शन करता हुआ व्यर्थ मनोरथ होकर मोहग्रस्त हो गया। इसके समान व्याकुल चित्त को शंकर रूपी जनार्दन तथा शम्भु छलहीन करुणावर्षण करके तेजोमय स्तम्भ का अन्तिम भाग दर्शन करने के उद्यम से इसे बचायें। उनके तेज रूप परमाणु से ब्रह्मा-विष्णु के समान करोड़ों देवता उत्पन्न होते हैं''।।५२-५९।।

यत्तेजः परमाणुभ्यस्तस्य पारं दिदृक्षते। स्वात्मनोयोगतोध्यात्वासमयेभगवाञ्छिवः॥६०॥

यदि बुद्धिंददात्यस्मै तस्यनश्येदहंक्रिया।
इत्येवं वदतां तेषां सिद्धानां सदयं वचः॥६१॥

''जिनके तेजोमय परमाणु से करोड़ों देवगण की उत्पत्ति होती है, उनके शिरोभाग रूपी अन्त का पता लगाने के लिए मात्र अपनी गतिशक्ति से उद्यम करने वाले इस मोहग्रस्त ब्रह्मा को यदि वे प्रभु शिव हरि कृपापूर्वक सद्बुद्धि प्रदान करें, तभी इसका अहंकार नाश हो सकेगा।'' मैंने उन सिद्धगण का यह करुण वाक्य सुना, जो परस्पर यह कथनोपकथन कर रहे थे।।६०-६१।।

आकर्ण्यशीर्णाहङ्कारोह्यहमात्मन्यचिन्तयम्। नवेदराशिविज्ञानात्तपस्तीर्थनिषेवणात्॥६२॥
सञ्जायते शिवज्ञानमस्यैवानुग्रहादृते। शीर्णेऽपि पक्षयुगले सीदत्यङ्गे ह्यचञ्चले॥६३॥

पुनरुत्सहते चेतः स्वाहङ्कारस्य सङ्ग्रहे।
धिङ्मामहं क्रियाक्रान्तमनात्मबलवेदिनम्॥६४॥
शिवार्पितमनस्केभ्यः सिद्धेभ्यः सततं नमः। येषां संसर्गलब्धेन विभवेन समन्विताः॥६५॥
देवाःसर्वे भविष्यन्ति सततं शमितारयः। यस्य वेदा न जानन्ति परमार्थंमहागमैः॥६६॥

तमेव शरणं यामि शम्भुंविश्वविलक्षणम्।
अवादिषमथाभाष्यं विष्णुं कमललोचनम्॥६७॥
लब्धदेहः शिवंभक्त्यासंश्रितश्चन्द्रशेखरम्। अहोकिमिदमाश्चर्यमागतंशौर्यशालिनाम्॥६८॥
शम्भुनायत्समुद्भूतमहङ्कारमुपाश्रितौ। आवांपरस्परंयुद्धमाकर्ण्यविपुलं महत्॥६९॥
स एव शङ्करः सर्वमहङ्कारमथाऽऽवयोः। अपाहरदमेयात्मा स्वमाहात्म्यप्रकाशनात्॥७०॥

इममीश्वरमानतं सुरैरनलस्तम्भमयं सदाशिवम्।
अभिपूजयितुं प्रवर्तते स भवेद्वै भवसागरस्य नौः॥७१॥

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्ये पूर्वार्धे ब्रह्मसनकसम्वादे लिङ्गप्रादुर्भाववर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः।।१।।

उनका वाक्य सुनकर मेरा अहंकार नष्ट हो गया। मैं सोचने लगा कि शिव की कृपा के बिना केवल वेदज्ञान, तीर्थ सेवा अथवा तप द्वारा शिवविज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। मैंने देखा कि मेरे पंख शीर्ण हो गये, अंग थक गये, तब भी मेरा चित्त अहंकार एकत्र करने के लिए उत्सुक है। मैं अपना बलाबल नहीं देख रहा हूं। अतः

मुझ अहंकार समाक्रान्त को धिक्कार है। जिसका मन शिव को समर्पित है तथा जिनका संसर्ग पाकर मेरा मन आज शुद्ध हो गया, मैं अब उन सिद्धगण को सतत् नमस्कार करता हूं। जिनकी कृपा मात्र से विविध वैभव सम्पन्न देवता सदा शत्रुनाश में समर्थ होते हैं, वेद भी जिनके परम अर्थतत्व को नहीं जान पाते, जो आत्मज्ञान के एकमात्र उपाय रूप हैं, मैं अभी सम्मुखस्थ उन विश्वविलक्षण शंभु की शरण लेता हूं। मैंने कमलनेत्र विष्णु के प्रति न कहे जाने योग्य वाक्यों का प्रयोग किया है। अब मैं पुनः प्रबोध पाकर भक्ति के साथ चन्द्रशेखर शिव का आश्रय लेता हूं। अहो! शौर्यशाली के लिए यह एक विचित्र अद्‌भुद् घटना है। मैं शंभुप्रेरित होकर ही इस प्रकार से अहंकार के वश में हो गया। अशेषात्मा शंभुदेव ने ही हमें विपुल युद्धोद्यम में से हटा अपनी महिमा का प्रकाशन करके समस्त अहंकार का हरण कर लिया। इन अग्निस्तम्भमय ईश्वर को देवगण सदा प्रणाम करते हैं। ये सभी के पूज्य हैं। ये संसार सागर को पार करने हेतु नौकारूप हैं।।६२-७१।।

।।प्रथम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

द्वितीयोऽध्यायः

ब्रह्मा-विष्णुकृत शिवस्तुति, स्थावर लिंग महिमा, अरुणाचलेश्वर लिंग महिमा

ब्रह्मोवाच

अथाऽहमुच्चरन्वेदानशेषैर्वदनैः शिवम्। अस्तौषं भक्तिसम्पूर्णं कृत्वामानसमर्चनम्॥१॥
नमः शिवाय महते सर्वलोकैककहेतवे। येन प्रकाश्यते सर्वं धियते सततं नमः॥२॥
विश्वव्याप्तमिदं तेजः प्रकाशयतिसन्ततम्। नेक्षन्तेत्वद्दयाहीनाजात्यन्धाभास्करंयथा॥३॥
भूलिङ्गममलंह्येतद्दृश्यमध्यात्मचक्षुषा। अन्तःस्थं वा बहिःस्थं वा त्वद्भक्तैरनुभूयते॥४॥
अपरिच्छेदद्यमाकारमन्तरात्मनि योगिनः। तदेतत्तव देवेश ज्वलितं दर्पणो यथा॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब मैंने अपने चतुर्मुख से सभी वेदों का उच्चारण किया तथा मानसिक रूप से महादेव की पूजा करके अपनी समस्त भक्ति द्वारा उनका स्तव करने लगा। यथा—जो प्राणीगण के एकमात्र कारण हैं, जो सबको प्रकाशित करते तथा धारण करते हैं, उन महान् शिव को प्रणाम! हे शिव! आपके तेज से विश्व परिव्याप्त है। आप सतत् इस विश्व को प्रकाशित (व्यक्त) करते हैं। जैसे जन्मान्ध व्यक्ति सूर्य को नहीं देख पाता, उसी प्रकार जो आपका अनुगत नहीं है, वह आपका दर्शन नहीं कर पाता। हे देवेश! यह जो (अग्नितेजवत्) अमल स्वयम्भू लिंग परिलक्षित हो रहा है, यह अन्तःस्थ है, अथवा बहिस्थ है, आपके भक्त ही अध्यात्म नेत्रों से इसका अनुमान कर सकते हैं। जैसे दर्पण में अपना ही प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है, तदनुरूप योगीगण आत्मा में ही इस आपके ज्वलित अपरिच्छेद्य आकार को देख पाते हैं।।१-५।।

अथवाशाङ्करीशक्तिःसत्याऽणोरप्यणीयसी। मत्तोनान्यतरःकश्चिद्यन्मय्यपिविलीयते॥६॥
अणुस्तेकरुणापात्रंमहत्त्वंध्रुवमश्नुते। नाधिकोऽस्तिपरस्त्वत्तोनमत्तोऽपित्वदाश्रयात्॥७॥
त्वय्यर्पितं मनस्त्वत्तो न वियोगमपेक्षते। वाचः कथं प्रवृत्तिः स्यात्तववैभवकीर्त्तने॥८॥
स्वयमीशमहादेव प्रसीद भुवनाधिक। आदिश प्रयतं भक्तमपेक्षितनियुक्तिषु॥९॥

अथवा यह अणु से भी सूक्ष्म आपकी एक नित्य शांकरी शक्ति है। यह शक्ति विलीन होती है, अतः हमसे श्रेष्ठ कोई नहीं है। क्योंकि आपकी करुणा का पात्र होकर अणु भी बृहदाकृति हो जाता है। आपसे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। इसलिए हम आपके आश्रय में हैं। अतः हमसे श्रेष्ठ कोई भी नहीं है। जब आपके प्रति मन समर्पित होकर जुड़ जाता है, तब वह आपसे कभी भी पृथक् नहीं होता। इसलिए आपके ऐश्वर्य का वर्णन करने की वाणी में प्रवृत्ति कैसे होगी? हे महादेव! आप स्वयं ईश्वर हैं तथा तीनों लोक से भी बृहद् हैं। आप मुझ पर प्रसन्न हो जायें। मैं आपका एकान्त भक्त हूं। आपसे नियोग (अनुरक्त) की अपेक्षा करता हूं। मेरा क्या कर्त्तव्य है, आप आदेश करें।।६-९।।

इदं विज्ञाप्य विनयान्नमस्कृत्वा पुनः पुनः। प्राञ्जलिर्देवदेवेशं न्यषीदं सविधे विभोः॥१०॥
अथविष्णुर्नवाम्भोदगम्भीरध्वनिरभ्यधात्। वाचः कृतार्थयन्भूयः शुक्लाःशङ्करकीर्त्तनैः॥११॥

ब्रह्मा ने विनयपूर्वक देवदेव विभु सदाशिव का यह स्तव किया तथा पुनः-पुनः उनको प्रणाम करते हुए, उस स्वयम्भू लिंग के समीप हाथों को जोड़कर बैठ गये। तब विष्णु ने नवमेघ के समान गम्भीर एक शब्द का उच्चारण किया। उनकी निर्मल वाक्यावलि शिव कीर्त्तन में प्रवृत्त होकर कृतार्थ हो गयी।।१०-११।।

जय त्रिभुवनाधीश जय गङ्गाधर प्रभो!। जय नाथ विरूपाक्ष जय चन्द्रार्द्धशेखर!॥१२॥
अव्याजममितं शम्भो कारुण्यं तव वर्द्धते। येननिर्धूतमखिलं भक्तेषु ज्ञानमाहितम्॥१३॥
पालनं सर्वविद्यानां प्रापणं भूतिसञ्चयः। पुराणं च सुपुत्राणां पितुरेव प्रवर्धनम्॥१४॥
शतानामपि मूर्तीनामेकामपिनवैः स्तवैः। स्तोतुं न शक्नुमेशान समवायस्तुकिम्पुनः॥१५॥

विष्णु कहते हैं—हे प्रभो! गंगाधर! त्रिभुवनाधीश्वर! आपकी जय हो। हे नाथ! विरूपाक्ष! चन्द्रार्द्धशेखर! आपकी जय हो! हे प्रभो! आपकी करुणा छलहीन है। वह अमित है और नित्य बढ़ती जाती है। आप इसी करुणा के कारण समस्त अमल ज्ञान भक्तों को प्रदान करते हैं। आपकी करुणा द्वारा ही समस्त विद्या की पुष्टि होती है। आपकी करुणा से ही समस्त विद्या की प्राप्ति होती है तथा आपकी करुणा से ही मानव को नाना विभूति प्राप्त होती है। हे देवेश! जैसे पिता से पुत्रगण नित्य वर्द्धित होते हैं, आपकी करुणा द्वारा मनुष्य भी वृद्धि प्राप्त करते हैं। हे ईशान! आपकी मूर्त्ति सैकड़ों हैं। आपकी एक मूर्त्ति की भी स्तुति कर सकना संभव नहीं है। समस्त मूर्त्तियों का स्तव कैसे सम्भव हो सकेगा?।।१२-१५।।

त्वमेव त्वामलं वेत्तुं यदि वा त्वत्प्रसादतः। भ्रमरः कीटमाकृष्य स्वात्मानं किं न चाऽऽनयेत्॥१६॥
देवास्त्वदंशसम्भूतिप्रभवोनभवन्तिकिम्। अप्यायस्याग्निकीलस्यदाहशक्तिर्नकिंभवेत्॥१७॥
देशकालक्रियायोगाद्यथाऽग्नेर्भेदसम्भवः। तथाविषयभेदेनत्वमेकोऽपि विभिद्यसे॥१८॥
अनुग्रहपरो देव मूर्तिं दर्शय शङ्कर। आवयोरखिलाधार नयनानन्ददायिनीम्॥१९॥

हे देव! आप ही एकमात्र अपने आपको जान सकते हैं। यदि कोई अन्य आपको जान लेता है, वह आपका ही अनुग्रह कहा जायेगा। जैसे भ्रमर किसी कीट को अपने विवर में बन्द कर देता है, वह कीट भी उसी रूप का हो जाता है। उसी प्रकार आप भी अपने भक्त को अपना ही रूप प्रदान करते हैं। जैसे अग्नि में तपाई लोहे की कील भी अग्नि के समान ही दाहिका शक्ति युक्त हो जाती है, उसी प्रकार देवगण आपके अंश से उत्पन्न होने के कारण ही प्रभावयुक्त हो पाते हैं। हे देव! जैसे अग्नि में देश-काल तथा क्रिया से भिन्नता प्रतीत होती है, उसी प्रकार आप एक हैं तथापि विषयभेदानुसार विभिन्न से प्रतीत होते हैं। हे देवदेव! हे अखिलेश्वर शंकर! मेरे प्रति कृपा करिये। आप अपनी नयनानंददायिनी मूर्त्ति का मुझे दर्शन दीजिये।।१६-१९।।

एवं प्रणमतोर्देवः श्रद्धाभक्तिसमन्वितम्। प्रससाद परं शम्भुः स्तुवतोरावयोर्द्वयोः॥२०॥
तेजस्तम्भात्पुनस्तस्माद्देवश्चन्द्रार्द्धशेखरः। आविर्बभूवपुरुषःकपिलः कालकन्धरः॥२१॥
परशुं बालहरिणं करैरभयविश्रमौ। दधानः पुरुषोऽवादीत्पुत्रावाचामिति प्रभुः॥२२॥

ब्रह्मा कहते हैं—हम दोनों ने श्रद्धा-भक्तिपूर्वक शंकर का स्तव करके प्रणाम किया। इससे वे हमारे प्रति अत्यन्त प्रसन्न हो गये। तभी उस तेजस्तम्भ में स्थित एक स्तम्भ से चन्द्रशेखर शंकर आविर्भूत हो गये। वे परम पुरुष कपिल वर्णयुक्त थे। उनका कन्धर कृष्ण वर्ण था। उनके चार बाहुओं में यथाक्रमेण परशु, बाल हरिण, वर मुद्रा तथा अभय मुद्रा थी। उन परमपुरुष विभु ने आविर्भूत होकर हमें पुत्र कहकर सम्बोधित किया तथा कहने लगे।।२०-२२।।

परितुष्टोऽस्मि युवयोर्भक्त्या युक्तात्मनोर्मयि। भवतं सर्वलोकानां सृष्टिरक्षाधिपौ युवाम्॥२३॥
युवयोरिष्टसिद्ध्यर्थमाविर्भूतोऽस्म्यहं यतः। वरंवृणु तन्मयञ्च वरदोऽहमुपागतः॥२४॥
इति देवस्य वचनात्सुप्रीतौ च कृताञ्जली। विज्ञापयामासिवतौस्वंस्वमर्थंपृथक्पृथक्॥२५॥

भगवान् कहते हैं—"हे युक्तात्मा पुत्रद्वय! तुमलोगों की भक्ति देखकर मैं सन्तुष्ट हो गया। तुम दोनों निखिल लोक के क्रमशः सृष्टिकर्त्ता (ब्रह्मा) तथा पालनकर्त्ता (विष्णु) हो। मैं तुम दोनों की इष्टसिद्धि हेतु आविर्भूत हुआ हूं। मैं तुम दोनों को वर प्रदान करने आया हूं। अतएंव वर मांगो।" तदनन्तर देवदेव के वाक्य से हम दोनों अत्यन्त प्रसन्न हो गये तथा करबद्ध होकर अपना प्रयोजन भगवान् से अलग-अलग कहा।।२३-२५।।

अहं मन्त्रैः शिशुप्रायजगत्त्रयविधायकः। संस्तुवन्वैदिकैर्मन्त्रैरोशानमपराजितम्॥२६॥
नमस्येऽहमिदं रूपं शश्वद्वरदमीश्वरम्। तेजोमयं महादेवं योगिध्येयं निरञ्जनम्॥२७॥
आपूर्यमाणंभवता तेजसा गगनान्तरम्। परिपृच्छयः सुरावासः क्षणाद्देव भविष्यति॥२८॥
सिद्धचारणगन्धर्वा देवाश्च परमर्षयः। नावसन्दिवि सञ्चारं लभेरंस्तेजसा तव॥२९॥
पृथ्वी च सकला चैव तप्यमाना तवौजसा। चराचरसमुत्पत्तिक्षमा नैव भविष्यति॥३०॥
उपसंहृत्य तेजः स्वमरुणाचलसञ्ज्ञया। भवस्थावरलिङ्गं त्वं लोकानुग्रहकारणात्॥३१॥
ज्योतिर्म्मयमिदंरूपमरुणाचलसञ्ज्ञितम्। ये नमन्तिनरा भक्त्यातेभवन्त्यमराधिकाः॥३२॥
सेवन्तांसकलालोकाःसिद्धाश्चपरमर्षयः। गणाश्चविविधाभूमौमानुषं भावमास्थिताः॥३३॥

मैंने कहा—"मैं अभिनव त्रिलोक का स्रष्टा हूं। मैंने आप अपराजित ईशान का स्तव वैदिक मन्त्रों द्वारा

सम्यक् रूप से किया है। मैं आप वरद, ईश्वर, तेजोमय, योगीगण द्वारा ध्येय, निरंजन, महादेवरूप नित्यरूप को प्रणाम करता हूं। आप अपने तेज से गगनमण्डल को ऐसे परिपूरित करते हैं कि तब प्रश्न करके यह जानना पड़ता है कि सुरलोक कहां है? सिद्ध, चारण, गन्धर्व, देव तथा परमर्षिगण आपके तेज का स्पर्श करके तब स्वर्ग में विचरण ही नहीं कर पाते। हे देव! आपके तेज से समस्त पृथिवी तापिता होकर चराचर की उत्पत्ति में समर्थ नहीं है। हे देवाधिदेव! आप अरुणाचल नामक स्थावर लिंग हो जायें तथा समस्त लोकों के प्रति अनुग्रह करके अपने इस तेज को समेट लीजिये। जो मानव भक्ति-भाव से अरुणाचल नामक इस ज्योतिर्लिंग को प्रणाम करेगा, वह देवगण से भी श्रेष्ठ होगा। इस भूमितलस्थ समस्त लोग, यहां तक कि सिद्ध, परमर्षि, अन्य गणदेवता मनुष्यभाव प्राप्त करके आपकी सेवा करेंगे।।२६-३३।।

दिव्यारामसमुद्भूतकल्पकाद्याः सुरद्रुमाः। सेविनस्त्वांप्ररोहन्तुभरिता विविधैःफलैः।।३४।।
दिव्यौषधिगणास्सर्वे सिंहाद्यामृगजातयः। प्रशान्ताःपरिवर्त्तन्तां पापकल्मषनाशनम्।।३५।।
अयनद्वयभिन्नेन गमनेनाऽपि संयुतः। न लङ्घयिष्यति रविः शृङ्गं लिङ्गतनोस्तव।।३६।।
दिव्यदुन्दुभिशङ्खानां घोषैः पुष्पौघवृष्टिभिः। सेवितो भव देव! त्वमप्सरोनृत्यगीतिभिः।।३७।।
अमरत्वञ्चसिद्धत्वंरससिद्धीश्चनिर्वृतिम्। लभन्तांमानुषानित्यंत्वत्सन्निधिमुपागताः।।३८।।
ईशत्वञ्च वशित्वञ्चसौभाग्यंकालवञ्चनम्। त्वामाश्रित्यनरास्सर्वे लभन्तामरुणाचल।।३९।।
सर्वावयवदानेन सर्वव्याधिविनाशनात्। सर्वाभीष्टप्रदानेन दृश्यो भव महीतले।।४०।।

आपकी सेवा के लिए विविध फलों से झुकी शाखा वाला देववृक्ष कल्पतरु यहां के दिव्य उद्यान में उगें। सिंहादि समस्त पशु अपनी पापबुद्धि का त्याग करके दिव्यौषधि युक्त इस उद्यान भूमि में इधर-उधर प्रशान्त रूप से विचरण करें। आपके लिंगदेह अरुणाचल के शृंग का सूर्यदेव कभी दक्षिणायन तो कभी उत्तरायण गमन काल में कभी लंघन न करें। हे देव! वहां अप्सरायें दिव्य दुन्दुभिध्वनि, शंखध्वनि, पुष्पवर्षा तथा नृत्यादि से आपकी सदा सेवा करें। मनुष्य वहां आपके पास आकर अमरत्व, सिद्धत्व, रासायनिक सिद्धि तथा निर्वृत्ति लाभ करें। हे अरुणाचल! मानव आपका आश्रय लेकर ईशत्व, वशित्व, सौभाग्य तथा अमरत्व लाभ करें। हे सदाशिव! आप सर्वव्याधिनाशक सत्ता प्रदान करके पृथिवीतल पर दृश्य लिंग रूप में अवस्थान करिये। आप सब लोकों हेतु अभीष्ट प्रदायक हो जायें।।३४-४०।।

तथेति वरदं देवमरुणाद्रिपतिंशिवम्। प्रणम्य कमलानाथः प्रार्थयन्निदमब्रवीत्।।४१।।
प्रसीद करुणापूर्ण शोणशैलेश्वर प्रभो!। महेश सर्वलोकानां हिताय प्रकटोदय।।४२।।
यदाऽहं त्वामुपाश्रित्यजगद्रक्षणदक्षिणः। श्रीपतित्वमनुप्राप्तस्तदा भक्ता भवन्तु ते।।४३।।
नाल्पपुण्यैरुपास्येत त्वद्रूपं महदद्भुतम्। मया च ब्रह्मणा चैवमदृष्टपदशेखरः।।४४।।
प्रदक्षिणानमस्कारैर्नृत्यगीतैश्च पूजनैः। त्वामर्चयन्ति ये मर्त्याः कृतार्थास्तेगतांहसः।।४५।।
उपवासैर्व्रतैः सत्रैरुपहारैस्तथाऽर्चनैः। त्वामर्चयन्ति मनुजाः सार्वभौमा भवन्तु ते।।४६।।
आरामं मण्डपञ्चाऽपि कूपं विधिविशोधनम्। कुर्वतामरुणाद्रीशसन्निधाने पुनर्भव।।४७।।
अङ्गप्रदक्षिणं कुर्वन्नष्टैश्वर्यसमन्वितः। अशेषपातकैः सद्यो विमुक्तो निर्मलाशयः।।४८।।

तदनन्तर अरुणाचलपति शंकर ने तथास्तु कहकर ब्रह्मा के वाक्य को स्वीकार किया। तत्पश्चात् लक्ष्मीपति विष्णु ने उन वरदायक शिव को प्रणाम किया तथा प्रार्थना करने लगे—"हे शोण शैल के ईश्वर! आपका हृदय करुणापूर्ण है। हे प्रभो! आप प्रसन्न हो जायें। हे महेश! आप निखिल लोक का हित करने वाले हैं। इसीलिए आपका अभ्युदय हुआ है। जबतक मैं आपका आश्रय लेकर लक्ष्मीपति के रूप में त्रिलोक रक्षण कार्य में नियुक्त रहूंगा, तबतक आपके भक्त मेरे सहायक रहें। अल्प पुण्यवान् के लिए आपके महान् अद्भुद् रूप की तपस्या असंभव है। मैं तथा ब्रह्मा आपके अधः तथा ऊर्ध्व का अन्तर्दर्शन नहीं कर सके। उसमें असमर्थ रहे। जो मानव प्रदक्षिणा, सम्यक् नमस्कार, नृत्य, गीत, पूजा द्वारा आपकी अर्चना करेगा, वह विगत पाप तथा कृतार्थ होगा। जो मनुष्य उपवास, व्रत, यज्ञ, उपहार तथा पूजा द्रव्य द्वारा आपकी अर्चना करेगा, उसे सार्वभौमत्व प्राप्त होगा। हे अरुणाचलाधीश! आपके इस आवास के निकट मंदिर, गृह, मण्डप अथवा सविधि-शोधित कूप आदि जलाशय प्रतिष्ठित करने वाले का पुनर्जन्म नहीं होगा। मानव आपके शरीर (लिंग) की परिक्रमा करके अष्टैश्वर्य युक्त तथा अनन्त पातकों से रहित होगा।।४१-४८।।

आवामप्यविमुञ्चन्तौ सदा त्वत्पादपङ्कजम्। ध्यातव्यंमनुजैःसर्वैस्तव सन्निधिमागतैः॥४९॥
तथाऽस्त्विति वरं दत्त्वाविष्णवे चन्द्रशेखरः। अरुणाचलरूपेणप्राप्तःस्थावरलिङ्गताम्॥५०॥
तैजसं लिङ्गमेतद्धि सर्वलोकैककारणम्। अरुणाद्रिरिति ख्यातं दृश्यते वसुधातले॥५१॥
युगान्तसमये क्षुब्धैश्चतुर्भिरपि सागरैः। अपि निर्मग्नलोकान्तैरस्पृष्टान्तिकभूतलम्॥५२॥

"हे सदाशिव! मैं तथा ब्रह्मा, दोनों आपके चरणकमल के समीप अवस्थित हैं। हे देवेश! मनुष्य आपके पास आकर आपके चरणसरोज का सदा ध्यान करेंगे।" यह सुनकर चन्द्रशेखर ने 'तथास्तु' कहकर विष्णु को वर प्रदान किया तथा अरुणाचल के रूप में स्थावर लिंगत्व ग्रहण किया। पृथिवी पर जो यह तैजस अरुणाचल नामक लिंग परिलक्षित होता है, यह लिंग ही समस्त लोकों का कारण स्वरूप है। युगान्त के समय जब चारों सागर क्षुभित होते हैं, तब भी अरुणाचल से सन्निहित भूभाग जलमग्न नहीं होता।।४९-५२।।

गजप्रमाणैः पृषतैः पूरयन्तो जगत्त्रयम्। पुष्कराद्या महामेघा विश्रान्ता यस्यसानुनि॥५३॥
प्रवृत्ते भूतसंहारे प्रकृतौ प्रतिसञ्चरे। भविष्यत्सर्वबीजानि निषेदुर्यत्र निश्चयम्॥५४॥

जो पुष्करादि महामेघ हाथी के आकार के जलविन्दु की वर्षा करके तीनों लोक को भर देते हैं, वे भी अरुणाचल की घाटी में विश्राम करते हैं। जब प्रकृति समस्त प्राणीवर्ग का संहार करके उनको अपने गर्भ में धारण करती है, तब इस अरुणाचल पर पृथिवी के सभी भावी बीज स्थित रहते हैं।।५३-५४।।

मया चाहूयमानेभ्यः प्रलयानन्तरं पुनः। यत्पादसेविविप्रेभ्यो वेदाध्ययनसंग्रहः॥५५॥
सर्वासामपि विद्यानां कलानां शास्त्रसम्पदाम्। आगमानाञ्च वेदानां यत्र सत्यव्यवस्थितिः॥५६॥
यद्गुहागह्वरान्तस्था मुनयः शंसितव्रताः। जटिनः सम्प्रकाशन्ते कोटिसूर्याग्नितेजसः॥५७॥
पञ्चब्रह्ममयैर्मन्त्रैः पञ्चाक्षरवपुर्धरैः। अकारपीठिकारूढो नादात्मा यः सदाशिवः॥५८॥
अष्टभिश्च सदा लिङ्गैरष्टदिक्पालपूजितः। अष्टमूर्त्तितया योऽयमष्टसिद्धिप्रदायकः॥५९॥
यत्र सिद्धास्तथालोकान्स्वान्स्वान्मुक्त्वा सुरेश्वराः।
अपेक्षन्ते स्थिता मुक्तिं विहाय कनकाचलम्॥६०॥

प्रलय के उपरान्तप्तव पुनः मेरे द्वारा बुलाये गये अरुणाचल पादसेवी ब्राह्मणों से वेदाध्ययनादि संगृहीत हो गये। आगम तथा वेद आदि शास्त्र में जो कलाविद्यादि समस्त विद्या सम्पदा हैं, उन शास्त्रों का भी आश्रयस्थल अरुणाचल है। कोटि-कोटि सूर्य तथा अग्नि के समान तेजस्वी तथा व्रतपरायण जटाधारी मुनिगण यहां गुफा-गह्वरों में रहते हैं। पञ्चब्रह्ममय, पञ्चाक्षर शरीरधारी, मन्त्रमय अकार रूपी पीठ पर आरूढ़ नादात्मा सदाशिव ही अरुणाचल रूप से विराजमान हैं। ये सदा अष्टविधलिंगरूपेण प्रकाशमान हैं। आठों दिक्पाल सदा इनकी पूजा करते रहते हैं। ये शर्व आदि अष्टमूर्ति में विद्यमान रहकर अष्टसिद्धि प्रदान करते हैं। सिद्ध लोग अपना-अपना स्थान त्याग करके तथा सुरेश्वरगण सुमेरुपर्वत त्याग करके मुक्ति पाने हेतु अरुणाचल में निवास करते हैं।।५५-६०।।

एवं वसुन्धरापुण्यपरिपाकसमुच्चयः। अरुणाद्रिरिति ख्यातो भक्तभक्तिवरप्रदः॥६१॥
कैलासान्मेरुशिखरादागतैर्देवसञ्चयैः। पूज्यते शोणशैलात्मा शम्भुः सर्ववरप्रदः॥६२॥
इति कमलजवक्त्रपद्मजातं मुदितमनाः सनको निशम्य भक्त्या।
विरचितविनयः प्रणम्य पुत्रः पितरमपृच्छदशेषवेदसारम्॥६३॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्ये पूर्वार्धे ब्रह्मविष्णुस्तुतिपूर्वकं शङ्करस्य स्थावरलिङ्गमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

"इस प्रकार वसुन्धरा में जो कुछ पुण्यपरिपाक दृष्टिगत होता है, वह सभी अरुणाचल में समवेत रहता है तथा यह अरुणाचल भक्तगण को परमा भक्तिप्रद भी है। यहां तक कि परमपवित्र कैलास तथा मेरु स्थित देवता सर्वविध वर प्रदाता शोणशैलात्मा शम्भुपूजा करते हैं।" कमलयोनि ब्रह्मा का यह वाक्य सुनकर मुदित चित्त ब्रह्मपुत्र सनक भक्तिपूर्वक ब्रह्मा को प्रणाम करके पुनः वेदों के सार को पूछने लगे।।६१-६३।।

॥द्वितीय अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

तृतीयोऽध्यायः

अरुणाचल प्रतिष्ठा, गौरी का कैलास से आगमन, कम्पा नदी तथा आम्रतल महत्व वर्णन, शिव विरह

सनक उवाच

भगवन्नरुणाद्रीशमाहात्म्यमिदमद्भुतम्। श्रुतं शिवप्रसादेन दयया ते जगद्गुरोः॥१॥
आश्चर्यमेतन्माहात्म्यं सर्वपापविनाशनम्। आराधयन्पुनः के वा वरदं शोणपर्वतम्॥२॥
अनादिरन्तरहितः शिवः शोणाचलाकृतिः। योवयोस्तपसा देव वरदानाय संस्थितः॥३॥

सकृत्सङ्कीर्तितेनाग्निशोणाद्रिरिति मुक्तिदे। सन्निधिःसर्वकामानांजायतेचाघनाशनम्॥४॥
शिवशब्दामृतास्वादः शिवार्चनकथाक्रमः। इति तद्वचनं श्रुत्वा देवदेवः पितामहः।
उवाच करुणामूर्तिररुणाद्रीशमानमन्॥५॥

सनक कहते हैं—"हे जगद्गुरु प्रभो! शिव की कृपा तथा आपके अनुग्रह से उत्तम अरुणाचलपति भूतनाथ की महिमा सुना। समस्त पापनाशक अरुणगिरिपति का यह माहात्म्य अत्यन्त अद्भुद् है। ये शोणशैलशरीर भगवान् शिव आदि तथा अन्तहीन हैं। ये आपकी तपस्या से प्रसन्न होकर यहां वर देने हेतु स्थित हैं। मुक्तिप्रद "शेशाद्रि" शब्द का एक बार उच्चारण करने से विविध पापों का नाश हो जाता है तथा सभी काम्य वस्तु की प्राप्ति होती है। शिवपूजा का कथाक्रम एवं शिव शब्द सबके लिए अमृतवत् स्वादिष्ट है। हे देव! इस वरप्रद शोणपर्वत की आराधना किसने किया था, अब यह सुनने की इच्छा हो रही है।" अरुणाचल के एकान्त भक्त सनक का प्रश्न सुनकर करुणामूर्त्ति देवदेव पितामह ब्रह्मा कहने लगे।।१-५।।

ब्रह्मोवाच

श्रूयतां वत्स! पार्वत्याश्चरितं यत्पुरातनम्॥६॥
अरुणाद्रीशमाश्रित्ययथा सा निर्वृताऽभवत्। आससादमहादेवःकदाचित्पार्वतीपतिः॥७॥
रत्नसिंहासनं दिव्यं रत्नतोरणसंयुतम्। रत्नपुष्पफलोपेतकल्पद्रुममनोहरम्॥८॥
परार्ध्यदृषदास्तीर्णं बद्धमुक्ताविताकम्। विमुक्तपुष्पप्रकरदिव्यधूपोरुसौरभम्॥९॥
प्रलम्बमालिकाजालनिनदद्भृङ्गसङ्कुलम्। दिव्यतूर्यघनारावप्रनृत्यद्गुहवाहनम्॥१०॥
पार्वतींसिंहसंचारपरित्रस्तमहागजम्। अप्सरोभिः प्रनर्त्ताभिर्गायन्तीभिश्च केवलम्॥११॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे वत्स! पूर्वकाल में अरुणाधिपति महादेव का आश्रय लेकर पार्वती ने जिस प्रकार निवृत्ति प्राप्त किया था, अब पार्वती के उस प्राचीन चरित्र का श्रवण करो। किसी समय पार्वतीपति महादेव रत्नतोरण जड़ित दिव्य रत्नसिंहासन पर आसीन थे। वह रत्नासन रत्न पुष्पों से शोभित होकर मानों कल्पतरुवत् मनोहारी लग रहा था। इस आसन का आस्तरण महामूल्यवान् प्रस्तर से निर्मित था। आसन के ऊपरी भाग में विविध मुक्ता जड़ा चन्द्रातप (चंदोवा) शोभायमान था। वह विकसित पुष्पों तथा दिव्य धूपसौरभ से सदा आमोदित रहता था। उसके चारों ओर लटकते पुष्पमाला जाल में भौंरे गुन-गुन रव का नाद करते थे तथा गुहदेव के वाहन मयूरगण धन दिव्य तूर्यनाद से आमोदित होकर नाचते रहते थे। तब पार्वती वाहन सिंह के विचरण से सभी महागज त्रस्त होकर इतःस्ततः भाग रहे थे। उनके सम्मुख स्थित अप्सरायें केवल नृत्य तथा गीत-वाद्य द्वारा सेवा करती उन देवदेव के अनुराग का वर्द्धन कर रही थीं।।६-११।।

आसेवितपुरोरङ्गं दिक्पालकनिषेवितम्। ऋग्यजुःसामजैर्मन्त्रैः स्तुवद्भिर्मुनिपुङ्गवैः॥१२॥
ब्रह्मर्षिभिस्तथा देवैः सिद्धै राजर्षिभिर्वृतम्। गणैश्चविविधाकारैर्भस्मालङ्कृतविग्रहैः॥१३॥
रुद्राक्षधारसुभगैरापूर्णं शिवतत्परैः वीणावेणुमृदङ्गादितौर्यत्रिकजनस्विनैः॥१४॥
घण्टाटङ्कारसुभगैर्वेदध्वनिविमिश्रितैः। मनोहरं महादिव्यमासनं पार्वतीसखः॥१५॥
अलञ्चकार भगवान्भक्तानुग्रहकाम्यया। आस्थाय विमलं रूपं सर्वतेजोमयं शिवम्॥१६॥

समस्त दिक्पालगण उनकी सतत् सेवा करने लगे। मुनिपुंगवगण ऋक्-यजुः-साममय मन्त्रों से स्तव करने लगे। ब्रह्मर्षि, देव, सिद्ध, राजर्षि तथा भस्मभूषित रुद्राक्षधारी शिवतत्पर सुभग विविध गणदेवता द्वारा उनका वह आसन के पास का सभी स्थान भर गया था। यहां वेदों की ध्वनि से युक्त वीणा, वेणु, मृदङ्ग, तूर्य आदि, घन्टा तथा शोभन की टंकार से समस्त स्थल मुखरित हो रहा था। भगवान् पार्वतीपति वहां भक्तों की हितकामना से उस मनोहर महादिव्य आसन को अलंकृत किया था।।१२-१६।।

अम्बिका सहितः श्रीमान्विजहार दयानिधिः। सङ्गीतेन कथाभेदैर्द्यूतक्रीडाविकल्पनैः॥१७॥
गणानां विकटैर्नृत्यै रमयामास पार्वतीम्। विसृज्यसकलान्देवानृषींश्चापिसभासदः॥१८॥
वरान्प्रदाय विविधान्भक्तलोकाय वाञ्छितान्। आगमेषु विचित्रेषु सर्वर्तुकुसुमेषु च॥१९॥
विजहारोमया सार्द्धं रत्नप्रासादपङ्क्तिषु। वापिकासु मनोज्ञासु रत्नसोपानपङ्क्तिषु॥२०॥
केलिपर्वतशृङ्गेषु हेमरम्भावनान्तरे। गङ्गातरङ्गशीतेन फुल्लपङ्कजगन्धिना॥२१॥
वातेन मन्दगतिना विहारविहतश्रमः। स्वकामतः स्वयं देवः प्रेयसीमभ्यनन्दयत्॥२२॥
रतिरूपां शिवां देवीं सर्वसौभाग्यसुन्दरीम्। कदाचिद्रहसि प्रीता निजाज्ञावशवर्त्तिनम्॥२३॥
रमणंजानतीमुग्धापश्चादभ्येत्यसादरम्। कराभ्यांकमलाभाभ्यांत्रिनेत्राणिजगद्गुरोः॥२४॥
पिदधे लीलया शम्भोः किमेतदिति कौतुकात्। चन्द्रादित्याग्निरूपेण पिहितेष्वक्षिषु क्रमात्॥२५॥
अन्धकारोऽभवत्तत्र चिरकालं भयङ्करः। निमिषार्द्धेन देवस्य जग्मुर्वत्सरकोटयः॥२६॥

तब दयानिधि श्रीमान् महादेव तेजोमय विमल रूप धारण करके पार्वती के साथ विहार करने लगे। शिव ने समस्त देवता, ऋषि तथा सभासदों का त्याग कर दिया। वे कभी संगीत से, कभी विविध सरस वार्त्ता से, कभी द्यूतक्रीड़ा से, कभी गणदेवताओं के विकट नृत्य को देखकर निरन्तर पार्वती में प्रेम का उत्पादन करने लगे। वे उनके भक्तों को विविध इच्छित वर प्रदान करके विचित्र पुष्पों से शोभित सभी मनोज्ञ ऋतुओं में वहां के रत्नजटित प्रासादों में उमा के साथ विहार करने लगे। उस विहार गृह के निकट रत्न सोपानपंक्ति से शोभित मनोज्ञ वापी कूपादि विराजित था तथा केलिपर्वत के शिखर समूह स्वर्ण कदली वृक्षों से सदा शोभित रहते थे। गंगा की तरंग संसर्ग से मन्द-मन्द प्रवहमान सुशीतल पद्मगन्ध युक्त समीर उनके रतिश्रम का शमन कर रही थी। देवदेव शंकर अपनी कामना के कारण स्वयं ही सर्वसुभगसुन्दरी शुभप्रदा रतिरूपा प्रेयसी देवी में प्रेम की उत्पत्ति करने लगे। तदनन्तर एक बार मुग्धा पार्वती ने प्रीति के कारण जगद्गुरु शंकर के पृष्ठ की ओर आकर अपनी कमल के समान हथेलियों से उनके नेत्रों को बन्द कर दिया। देवी पार्वती ने अपनी इच्छा से वशीभूत होकर यह लीला इस उद्देश्य से किया कि यह तो एक कौतुक है! लेकिन जैसे ही पार्वती ने अपनी हथेलियों से शंकर के नेत्रत्रय को आवरित किया, तभी एक भयंकर अन्धकार सहसा आविर्भूत हो उठा। यह व्यापार संघटित होते ही आधे निमेष में ईशानदेव शिव के करोड़ों वर्ष व्यतीत हो गये।।१७-२६।।

देवीलीलासमुत्थेन तमसाऽभूज्जगत्क्षयः। तमसा पूरितं विश्वमपारेण समन्ततः॥२७॥
शून्यं ज्योतिःप्रचारेण विनाशं प्रत्यपद्यत। न व्यजृम्भन्त विबुधा न च वेदाश्चकाशिरे॥२८॥
नाऽपि जीवाः समभवन्नव्यक्तं केवलं स्थितम्। जगतामपिसर्वेषामकालेवीक्ष्यसंक्षयम्॥२९॥

तपसा लब्धस्फूर्तीनां विचारः समपद्यत। किमेतमत्तमसो जन्म भुवनक्षयकारणम्॥३०॥
भगवानपि सर्वात्मा न नूनं कालमाक्षिपत्। देवी विनोदरूपेण पिधत्ते पुरजिद्दृशः॥३१॥
तेनेदमखिलं जातं निस्तेजो भुवनत्रयम्। अकालतमसा व्याप्ते सकले भुवनत्रये॥३२॥
का गतिर्लब्धराज्यानां तपसा देवजन्मनाम्। न यज्ञाःसम्प्रवर्तन्ते न पूज्यन्तेसुराभुवि॥३३॥
इति निश्चित्य मनसा वीक्ष्य ते ज्ञानचक्षुषा। नित्यास्ते सूरयो भक्त्या शम्भुमानम्य तुष्टुवुः॥३४॥

देवी द्वारा लीला में किये गये इस कृत्य से जिस अन्धकार का आविर्भाव हुआ था, उससे जगत् क्षयीभूत हो गया। यह अन्धकार विश्व के चतुर्दिक् छा गया था, इसलिए ग्रहनक्षत्रादि ज्योति के अभाव में विनष्ट हो गये। देवता स्फूर्त्तिरहित हो गये। वेद की प्रतिभा लुप्त हो गयी। तब किसी जीव का अस्तित्व नहीं रह गया। सर्वत्र मानों केवल एकमात्र अव्यक्त ही स्थित था। अकाल में ही समस्त जगत् की क्षीणावस्था देखकर तपस्या द्वारा स्फूर्त्तिलब्ध मनुष्य यह सोचने लगे मानों कि एक भुवनक्षयकारक अन्धकार का आविर्भाव हो गया। वे इस प्रकार का विचार-वितर्क कर रहे थे। वे और भी तर्क किये जा रहे थे "निश्चय ही भगवान् सर्वात्मा कालक्षेप नहीं कर रहे हैं। देवी पार्वती ने जो कौतुक के कारण त्रिपुरारि के नयनत्रय आवरित कर दिया है, उसी कारण त्रिभुवन में अन्धकार का आविर्भाव हो गया है।" तब देवगण ने यह जाना कि "अकाल में भुवनत्रय परिव्याप्त हो गया। तप द्वारा राज्य पाने वाले देवगण का अब क्या होगा? भूलोक में अन्धकार के कारण कहीं यज्ञानुष्ठान नहीं हो रहा है। कहीं पूजा भी नहीं हो रही है।" ज्ञाननेत्र से इस प्रकार का अनर्थ देखकर देवगण ने भक्तिपूर्वक शम्भु को प्रणाम किया तथा उनकी स्तुति करने लगे।।२७-३४।।

नमः सर्वजगत्कर्त्रे शिवाय परमात्मने। मायया शक्तिरूपेण पृथग्भावमुपेयुषे॥३५॥
अविनाभाविनी शक्तिराद्यैका शिवरूपिणी। लीलया जगदुत्पत्तिरक्षासंहृतिकारिणी॥३६॥
अर्धाङ्गी सा तवदेवशिवशक्त्यात्मकं वपुः। एक एव महादेवो न परे त्वद्विना विभो॥३७॥
लीलया तव लोकोऽयमकाले प्रलयं गतः।
करुणा तव निर्व्याजा वर्द्धतां लोकवर्द्धनी॥३८॥
भवतो निमिषार्द्धेन तेजसामुपसंहृतेः। गतान्यनेकवर्षाणि जगतां नाशहेतवे॥३९॥
ततः प्रसीद करुणामूर्त्ते काल! सदाशिव। विरम प्रणयारब्धादमुष्माल्लोकसङ्क्षयात्॥४०॥

देवता कहते हैं—सर्वजगत्कर्त्ता परमात्मा शंभु को प्रणाम! जिन्होंने अपनी शक्तिरूपा माया द्वारा पृथक् भाग प्राप्त किया है, उनको प्रणाम! लीला के कारण आपकी अविशभाविनी शिवारूपा आद्याशक्ति ही इस जगत् की उत्पत्ति, पालन तथा संहार करती हैं। हे देव! वह शक्ति आपकी अर्द्धाङ्गिनी हैं। आपका शरीर शिवशक्तिमय है। हे विभु! महादेवरूपी एकमात्र आप ही विद्यमान रहते हैं। आपके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। हे देव! आपकी इस लीला के कारण तीनों लोक अकाल में विनष्ट हो रहा है। अब लोकवृद्धिकारिणी आपकी अकपट करुणा नित्य वृद्धि प्राप्त करे। हे देव! आपका यह तेज उपसंहृत होने के कारण (नेत्र बन्द किये जाने के कारण) आधे निमेष में ही जगत् विनाशक अनेक वर्ष बीत गये। हे करुणामूर्त्ति सर्वेश्वर! आप प्रसन्न हो जायें। हे सदाशिव, हे काल! यह प्रणयगत लोकक्षय करने वाला कार्य करने से निवृत्त हो जाइये।।३५-४०।।

इति तेषां वचः श्रुत्वा भक्तानां सिद्धिशालिनाम्।
विसृजाऽक्षीणि गौरीति करुणामूर्त्तिरब्रवीत्॥४१॥
विससर्ज च सा देवी पिधानं हरचक्षुषाम्।
सोमसूर्याग्निरूपाणां प्रकाशमभवज्जगत्॥४२॥
कियान्कालो गतश्चेतिपृष्टैः सिद्धैश्च वै नतैः। उक्तंत्वन्निमिषार्द्धेनजग्मुर्वत्सरकोटयः॥४३॥
अथ देवः कृपामूर्त्तिरालोक्य विहसन्प्रियाम्। अब्रवीत्परमोदारः परं धर्मार्थसंग्रहम्॥४४॥
अविचार्य कृतं मुग्धे भुवनक्षयकारणात्। अयुक्तमिह पस्यामि जगन्मातुस्तवैव हि॥४५॥
अहमप्यखिलाँल्लोकान्संहरिष्यामिसङ्क्षये। प्राप्तेकालेत्वयामौग्ध्यादकालेप्रलयंगताः॥४६॥
केयं वा त्वादृशी कुर्यादीदृशं सद्विगर्हितम्। कर्म नर्मण्यपि सदा कृपामूर्तिर्न बाधते॥४७॥

भक्तगण को सिद्धि देने वाले करुणामूर्त्ति शंकर देवताओं का यह स्तुतिवाक्य सुनकर कहने लगे—"हे गौरी! मेरे नेत्रों को छोड़ दो।" महादेव का वाक्य सुनकर भवानी ने सोम-सूर्य-अग्निरूपी हरदेव के नेत्रों को ढंकने वाली अपनी हथेलियों को हटा लिया। इससे पुनः समस्त जगत् प्रकाशित हो उठा। तब प्रणत सिद्धों ने प्रश्न किया—"हे देव! इस व्यापार को होते कितना काल व्यतीत हो गया?" भगवान् हर ने कहा—"मेरे निमेषार्द्ध काल में करोड़ों वर्ष व्यतीत हो गये।" तदनन्तर कृपामूर्त्ति परम उदार देव हर ने प्रिया पार्वती का अवलोकन करते हुए ईषत् हास्य पूर्वक परम अर्थनिहित वाक्य कहा—"हे मुग्धे! तुम जगत् की माता हो। इसलिए बिना विचार भुवनत्रय का क्षय करने वाला ऐसा कार्य क्यों किया? यह तुम्हारे लिये उचित नहीं है। समय आने पर मैं समस्त लोकों का संहार कर देता हूं, तथापि तुम्हारे द्वारा अकाल में यह संसार क्षयीभूत हो गया। तुम्हारे समान कौन ऐसा साधुविगर्हित कार्य करेगा? कृपामूर्त्ति व्यक्ति उपहास में भी मर्म को पीड़ा पहुंचाने वाले कार्य को नहीं करते!।।४१-४७।।

इति शम्भोर्वचःश्रुत्वा धर्मलोपभयाकुला। किं करिष्यामि तच्छान्त्या इत्यपृच्छत्स्म तं प्रिया॥४८॥
अथदेव प्रसन्नात्माव्याजहारदयानिधिः। देव्यास्तेनानुतापेनभक्त्याचतोषितः शिवः॥४९॥
मन्मूर्तेस्तव केयं वा प्रायश्चित्तिरिहोच्यते। अथाऽपि धर्ममार्गोऽयं त्वयैवपरिपाल्यते॥५०॥
श्रुतिस्मृतिक्रियाकल्पा विद्याश्च विबुधादयः। त्वद्रूपमेतदखिलं महदर्थोऽस्मि तन्मयः॥५१॥
मान्ययाभिन्नया देव्या भाव्यं लोकसिसृक्षया॥५२॥
तस्माल्लोकानुरूपन्ते प्रायश्चित्तंविधीयते। षड्विधो गदितोधर्मःश्रुतिस्मृतिविचारतः॥५३॥

तदनन्तर शंभु का वाक्य सुनकर धर्मलोप भय से आकुल होकर शंकरी पार्वती ने पूछा "इसकी शान्ति हेतु अब मैं क्या करूं?" तदनन्तर देवी का वाक्य सुनकर प्रसन्नात्मा शिव ने कहा—"हे प्रिये! तुम्हारा अनुताप तथा भक्ति देखकर मैं सन्तुष्ट हो गया! तुम तो मेरी अन्य मूर्त्ति (दूसरी मूर्त्ति) ही हो। तुम्हारे लिये क्या प्रायश्चित्त! तथापि तुम्हारे लिये धर्म से अनुमोदित मार्ग पर चलना उचित है। हे देवी! श्रुति, स्मृति, क्रिया, कल्प, विद्या तथा देव आदि सब तुम्हारे ही स्वरूप हैं। यहां तक कि मैंने भी तुममें तन्मयता होने के कारण ही श्रेष्ठत्व प्राप्त किया है, तथापि लोकसृष्टि के कारण तुम मुझसे भिन्न रूप से प्रतिभात होती हो। इस कारण साधारण लोगों की तरह तुम प्रायश्चित्त सम्पन्न करो। देखो! श्रुति-स्मृति के विचार से धर्म षड्विध वर्णित है।४८-५३।।

स्वामिना नाऽनुपाल्येत यदि त्याज्योऽनुजीविभिः।
न त्वां विहाय शक्नोमि क्षणमप्यासितुं क्वचित्॥५४॥
अहमेव तपः सर्वं करिष्याम्यात्मनि स्थितः।
पृथ्वी च सकलाभूयात्तपसासफलातव॥५५॥
त्वत्पादपद्मसंस्पर्शात्त्वत्तपोदर्शनादपि। निरस्यन्ति स्वसान्निध्याद्दुष्टजातमुपद्रवम्॥५६॥
कर्मभूमेस्त्वमाधिक्यहेतवेपुण्यमाचर। त्वत्तपश्चरणं लोके वीक्ष्य सर्वोऽपि सन्ततम्॥५७॥
धर्मे दृढतरां बुद्धिं निबध्नीयान्न संशयः। कृतार्थयिष्यति मही दया ते धर्मपालनैः॥५८॥

यदि स्वामी इन धर्मों का पालन नहीं करेगा, तब उसके अनुजीवी लोग उस धर्म का त्याग अवश्य करेंगे। देखो! तुमको त्याग कर मैं तो क्षणार्द्ध काल भी स्थित नहीं रह सकूंगा। इसलिए मैं ही अपनी आत्मा में स्थित होकर तुम्हारे प्रतिनिधि रूप में तपस्या कर सकता था, तथापि तुम्हारे तप में प्रवृत्त हो जानेपर तुम्हारी तपस्या द्वारा पृथिवी अपूर्वरूपेण फलवती हो सकेगी। तुम्हारे पादपद्म के स्पर्श से तथा तप को देखकर पृथिवी के सभी दुष्ट उपद्रव तिरोहित हो जायेंगे। इसलिए कर्मभूमि की गौरव वृद्धि हेतु तुम तपःश्चरण करो और भी देखो कि लोग तुम्हारी तपस्या को देखकर निःसंशय रूप से धर्म के प्रति दृढ़मति होंगे तथा धर्म पालन के द्वारा तुम्हारी दया से धरती कृतार्थ होगी।।५४-५८।।

त्वमेवैतत्सकलंप्रोक्तावेदैर्दिवि सनातनैः। अस्ति काञ्चीपुरीख्यातासर्वभूतिसमन्विता॥५९॥
या दिवं देवसम्पूर्णां प्रत्यक्षयति भूतले। यत्र क्लप्तं तपः किञ्चिदनन्तफलमुच्यते॥६०॥
देवाश्चमुनयःसर्वेवासंवाञ्छन्तिसन्ततम्। तत्र कम्पेतिविख्यातामहापातकनाशिनी॥६१॥
यत्र स्थितानां मर्त्यानां कम्पन्ते पापकोटयः।
तत्र चूतद्रुमश्चैको राजते नित्यपल्लवः॥६२॥
सम्पूर्णशीतलच्छायः प्रसूनफलपल्लवैः। तत्र जप्तं हुतं दत्तमनन्तफलदं भवेत्॥६३॥
गणाश्च विविधाकारा डाकिन्यो योगिनीगणाः।
परितस्त्वां निषेवन्तां विष्णुमुख्यास्तथा पराः॥६४॥
अहं च निष्कलोभूत्वातवमानसपङ्कजे।
सन्निधास्यामि मा भूस्त्वं देवि! मद्विरहाकुला॥६५॥

हे देवी! सनातन वेद में जो धर्म निर्दिष्ट है, वही तुम्हारे लिये कहता हूं। हे देवी! सर्वविभूति-विभूषिता काञ्ची नामक एक पुरी है। यह पुरी भूतल पर देवतापूर्ण स्वर्ग के समान परिलक्षित हो रही है। वहां अत्यल्प तप करके भी अनन्त फल प्राप्त होता है। देवता तथा मुनिगण वहां पर सदा निवास करने की अभिलाषा करते रहते हैं। काञ्चीपुरी में सर्वपापविनाशिनी विख्याता कम्पा नदी है। इस नदी के तट पर स्थित होने से मानव के करोड़ों पापों का नाश हो जाता है। वहां नित्य पल्लव युक्त एक आम्रवृक्ष भी है। इस आम्रवृक्ष की छाया सदा फल-पुष्प तथा पत्तों द्वारा अतीव सुशीतल है। वहां जो जप, होम, दान किया जाता है, वह अनन्त फलप्रद हो जाता है।

वहां नाना गणदेवता, डाकिनी, योगिनी तथा विष्णु आदि प्रधान-प्रधान देवता तथा इस आम्रवृक्ष के निकट स्थान की सदा सभी सेवा करते हैं। हे देवी! मैं निष्कल होकर तुम्हारे मनरूपी सरोवर में विराजमान रहूंगा। अतः तुम मेरे विरह से व्याकुल नहीं होना। मैं सदैव तुम्हारे पास ही इस प्रकार रहूंगा।।५९-६५।।

इत्युक्ता देवदेवेन देवी कम्पान्तिकं ययौ। तपः कर्तुं सखीयुक्ताविस्मयाक्रान्तलोचना।।६६।।
कम्पाञ्च विमलां सिन्धुमुनिसङ्घनिषेविताम्। आलोक्यकोमलदलमेकाम्रंदृष्टिवारणम्।।६७।।
फलपुष्पसमाकीर्णं कोकिलालापसङ्कुलम्।
प्रससाद पुनर्देवं सस्मार च महेश्वरम्।।६८।।
कामाग्निपरिवीताङ्गीतपःक्षामेवसाऽभवत्। अभ्यभाषतसागौरीविजयांपार्श्ववर्त्तिनीम्।।६९।।
कामशोकपरीताङ्गी पुरारिविरहाकुला।।७०।।
इममघहरमागतानिशं स्वयमपि पूजयितुं तपोभिरीशम्।
अयमभिनवपल्लवप्रसूनः स्मरयति मां स्मरबन्धुरेकचूतः।।७१।।
कथमिव विरहः शिवस्य सह्यः क्षुभितधियाऽत्र भृशं मनोभवेन्।
तदपि च तरुणेन्दुचूडपादस्मरणमहौषधमेकमेव दृष्टम्।।७२।।

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्ये पूर्वार्द्धे पार्वत्याः शिवनेत्रमीलनेन तमसा क्षुब्धलोकपापभयेन काञ्च्यां कम्पास्थितैकाम्र-तले तपश्चर्यार्थमागमनं नाम तृतीयोऽध्यायः।।३।।

महादेव द्वारा देवी से यह कहे जानेपर देवी के नेत्र विस्मयान्वित से हो गये। देवी अपनी सखियों के साथ कम्पा नदी के तट पर गयीं। देवी पार्वती ने वहां मुनिजन सेवित निर्मल कम्पा नदी का दर्शन किया। वहां घने, कोमल पत्तों तथा फलपुष्प से भरे तथा कोकिल पक्षी के रव से परिपूर्ण एक आम्र वृक्ष को देखा। उस आम्रवृक्ष को देखकर कामाग्नि से पीड़िता देवी पार्वती ने तपःक्षीणा रूप में होकर देवदेव महेश्वर का स्मरण किया। अनंग (कामदेव) से पीड़ित अंगों वाली त्रिपुरारि के विरह से कातरा गौरी अपने बगल में स्थित सखी विजया से निरन्तर कहने लगीं—"मैं स्वयं सतत् तपः द्वारा प्रभु हर की पूजा करने यहां आई थी। लेकिन क्या कहूं, इस अभिनव पल्लव-पुष्प-समन्वित मदनबन्धु आम्रतरु को देखने पर इस तरु ने मुझे मदनदेव का स्मरण करा दिया। यहां मनोभव (काम) ने मेरे मन को अत्यन्त क्षुब्ध कर दिया। मैं कैसे प्रभु शिव का विरह सहन कर सकूंगी? मैं देखती हूं कि चन्द्रशेखर के चरणों का स्मरण ही मेरी इस कामपीड़ा हेतु एकमात्र औषधि होगी"।।६६-७२।।

।।तृतीय अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

चतुर्थोऽध्यायः

विजया द्वारा पार्वती को सान्त्वना, कम्पा के किनारे पार्वती का तप, पार्वती का गौतमाश्रम गमन

ब्रह्मोवाच

अथाऽभ्यधत्त विजयाप्रणम्यजगदम्बिकाम्। सान्त्वयन्तीस्तुतिशतैरुपायैःशिवदर्शनैः॥१॥
देवि त्वमविनाभूता सदा देवेन शम्भुना। प्राणेश्वरीत्वमेकाऽसिशक्तिस्तस्यपरात्मनः॥२॥
तथा मायां त्वमात्मीयां सन्दर्शयितुमीहसे। पृथग्भावमिवेशानःप्रकाशयतिनस्वयम्॥३॥
आदेशं प्रतिगृह्यैव समुपेताऽसि पार्वति!। अलङ्घनीया सेवाज्ञा शाम्भवी सर्वदात्वया॥४॥
विधातव्यं तपः प्राप्तं स्थानेऽस्मिञ्छिवकल्पिते।
निवृत्त्य निखिलान्कामाञ्छम्भुमाश्रितया त्वया॥५॥
अन्यथाऽपि जगद्रक्षा त्वदधीना जगन्मयि!। धर्मसंरक्षणं भूयः शिवेन सहितं तव॥६॥

ब्रह्मदेव कहते हैं—तदनन्तर विजया गिरिजा को प्रणाम करके उनके समक्ष खड़ी हो गयीं तथा शिवदर्शन के उपायरूप विविध स्तुतिवाक्यों से भगवती पार्वती को सान्त्वना देते हुए कहा—हे देवी! आप देव शिव की अभिन्न हृदया शक्ति हैं। आप ही परमात्मा शिव की एकमात्र हृदयेश्वरी हैं। आप किस आत्ममाया का प्रदर्शन कर रही हैं? स्वयं ईशान शिव कब आपसे पृथक्रूपेण देखे गये? हे पार्वती! आप शिव के आदेश से ही यहां आई हैं तथा शम्भु की आज्ञा कदापि लंघनीय नहीं है। आप निखिल कामनाओं का त्याग करके शंभु का आश्रय लेकर इस पुण्यस्थल में तपःश्चरण करें। हे जगन्मयी! त्रिलोकरक्षा आपके ही अधीन है तथा आप शिव के साथ मिलित होकर धर्मरक्षा भी करती हैं।।१-६।।

निष्कलं शिवमत्यन्तं ध्यायन्त्यात्मन्यवस्थितम्।
वियोगदुःखं कच्चित्त्वं न स्मरिष्यसि पार्वति!॥७॥
भक्तानां तव मुख्यानां तवैवाऽऽचारसंग्रहः। उपदेशितया लोके प्रथतां धर्मवत्सले!॥८॥

हे पार्वती! आप अपनी आत्मा में अवस्थित निष्कल शिव का सतत् ध्यान करिये। इससे आपके मन में कदापि शिवविरह जनित दुःख नहीं होगा। हे धर्मवत्सले! आप उपदेशिका रूप से यह करेंगी, तब आपके प्रधान भक्तगण में आपका ही आचरण वरणीय होगा तथा उसका विस्तार होगा।।७-८।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा गौरी सुस्थिरमानसा। तपः कर्त्तुं समारेभेकम्पानद्यास्तटेशुभे॥९॥
विमुच्य विविधा भूषा रुद्राक्षगणभूषिता। विसृज्य दिव्यं वसनं पर्यधाद्वल्कलेशुभे॥१०॥
अलकैः सहसा शिल्पमनयच्च कपर्दताम्। अलिम्पत तनूं सर्वां भस्मना मुक्तकुङ्कुमा॥११॥
मृगेषु कृतसन्तोषा शिलोञ्छीकृतवृत्तिषु। जजाप नियमोपेता शिवपञ्चाक्षरं परम्॥१२॥

विजया के वाक्य को सुनकर गौरी ने मन को सुस्थिर किया तथा सुशोभन कम्पा नदी के तट पर तप

करने लगीं। तपःकाल में उन्होंने सभी आभरणों का परित्याग कर दिया था। वे केवल रुद्राक्षरूपी भूषण से आभूषिता रहती थीं तथा दिव्य वस्त्रों को त्याग कर दो मनोरम वल्कल पहनती थीं। वे केशविन्यास का त्याग करके जटा धारण करती थीं तथा कुंकुम त्याग करके भस्म का लेपन सर्वाङ्ग में करती थीं। मृगगण तृण धान्यादि के भक्षण से जब तृप्त हो जाते, तब उमके खाने से बचे तृणधान्य को लाकर उससे भोजन का कार्य सम्पन्न करती थीं। इस प्रकार के नियमों से युक्त होकर वे पंचाक्षर शिवमन्त्र का जप करती रहती थीं।।९-१२।।

कृत्वा त्रिषवणं स्नानं कम्पापयसि निर्मले। कृत्वा च सैकतं लिङ्गंपूजयामाससादरम्।।१३॥
वृक्षप्ररोपणैर्दानैरशेषातिथिपूजनैः। श्रान्तिं हरन्ती जीवानां देवी धर्ममपालयत्।।१४॥
ग्रीष्मेपञ्चाग्निमध्यस्थावर्षासुस्थण्डिलेशया। हेमन्तेजलमध्यस्थाशिशिरेचाऽकरोत्तपः।।१५॥
पुण्यात्मनां महर्षीणां दर्शनार्थमुपेयुषाम्। विस्मयं जनयामास पूजयामास सादरम्।।१६॥

वे कम्पा नदी के निर्मल जल में तीन बार स्नान करती थीं। तदनन्तर कम्पा की बालू से शिवलिंग निर्माण करके पूजा करती थीं। देवी पार्वती वृक्षारोपण, दान तथा अतिथिगण की पूजा करके जीवगण का भय दूर करती हुई धर्मपालन करने लगीं। ग्रीष्म में पञ्चाग्नि के बीच तप, वर्षाकाल में खुले चबूतरे पर शयन तथा हेमन्त एवं शिशिर में जलमध्य में स्थित रहकर भगवती तपस्या कर रही थीं। पुण्यात्मा महर्षिगण उनके दर्शनार्थ आकर विस्मित होकर उनकी पूजा करते थे।।१३-१६।।

कदाचित्स्वयमुच्चित्य वनान्तात्पल्लवान्वितम्। पुष्पोत्करं विशेषेण शोधितुं समुपाविशत्।।१७॥
कृत्वा च सैकतं लिङ्गं कम्पारोधसि पावने। सम्पूजयितुमारेभे न्यासावाहनपूर्वकम्।।१८॥
सूर्यमभ्यर्च्य विधिवद्रक्तैः पुष्पैश्च चन्दनैः। पञ्चावरणसंयुक्तं क्रमादानर्च शङ्करम्।।१९॥
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्भक्तिभावसमन्वितैः। अपरोक्षितमीशानमालुलोके पुरोहितम्।।२०॥

एक समय गौरी वन से स्वयं पल्लव युक्त विशुद्ध पुष्प प्रचुर मात्रा में लाईं तथा उन्होंने कम्पा की बालुका से शिवलिंग का निर्माण किया। न्यास तथा आवाहन के साथ कम्पातट पर ही सम्यक् रूपेण शिवपूजा प्रारम्भ किया। उन्होंने सविधि रक्तपुष्प एवं रक्तमाला से सूर्यदेव को अर्घ्य प्रदान करके पंचावरण युक्त शंकर की क्रम से पूजा सम्पन्न किया। तदनन्तर उन्होंने भक्तियुक्त होकर शिव के निमित्त धूप-दीप-नैवेद्य प्रदान करके देखा कि अपरोक्ष में देवदेव ईशान शिव उनके समक्ष खड़े हैं।।१७-२०।।

अथ देवः शिवः साक्षात्संशोधयितुमम्बिकाम्। कम्पानद्याःप्रवाहेणमहतापर्यवेष्टयत्।।२१॥
अतिवृद्धं प्रवाहं तं कम्पायाः समुपस्थितम्।
आलोक्य नियमासीनामाहुः सख्यस्तदाम्बिकाम्।।२२॥
उत्तिष्ठ देवि बहुलः प्रवाहोऽयंविजृम्भते। दिशां मुखानि सम्पूर्य तरसा प्लावयिष्यति।।२३॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा ध्यायन्ती मीलितेक्षणा। उन्मील्य वेगमतुलं नद्यास्तं समवैक्षत।।२४॥
अचिन्तयच्च सा देवी पूजाविघ्नसमाकुला। किं करोमि न शक्नोमिहातुमारब्धमर्चनम्।।२५॥
श्रेयः प्राप्तुमविघ्नेन प्रायः पुण्यात्मनाम्भुवि। घटते धर्मसंयोगोमनोरथफलप्रदः।।२६॥
सैकतं लिङ्गमतुलप्रवाहाल्लयमेष्यति। लिङ्गनाशे विमोक्तव्यः सद्भक्तैः प्राणसंग्रहः।।२७॥

तदनन्तर साक्षात् देवदेव शिव ने अम्बिका को पवित्र करने हेतु कम्पानदी के अत्यन्त वेगवान प्रवाह द्वारा उनको परिवेष्टित कर दिया। उनकी सखियों ने कम्पानदी के बढ़ते प्रवाह को देखकर नियम ग्रहण करके आसीना अम्बिका से कहा—"हे देवी! कम्पानदी का प्रवाह अत्यधिक बढ़ गया है। अतीव वेगवान प्रवाह सभी दिशाओं को परिप्लावित कर देगा। अतः आप यहां से उठिये।" सखी के वाक्य को सुनकर ध्यानावस्थित देवी भगवती ने आंखों को खोल कर कम्पानदी के अतुलित वेग को देखा। देवी पूजा में आये इस विघ्न को देख कर विचार करने लगीं कि "अब क्या करूं? आरम्भ की गयी पूजा को कैसे छोड़ दूं? यह निश्चित है कि इहलोक में फलप्रद तथा पुण्यात्मा लोगों के श्रेय लाभप्रद धर्मसंयोग रूप मनोरथ का अवसर आने पर ही विघ्न घटित होते हैं, अन्यथा विघ्न घटित नहीं होते। इस अतुलित जलप्रवाह से बालू का लिंग गल कर बह जायेगा। लिंग विनष्ट होनेपर मेरे भक्तगण प्राणत्याग कर देंगे"।।२१-२७।।

प्रवाहोऽयं समायाति शिवमायाविनिर्मितः। विशोधयितुमात्मनां भक्तियुक्तंनिजेपदे॥२८॥
आलिङ्ग्यसुदृढंदोर्भ्यामेतल्लिङ्गमनाकुलम्। अहंवत्स्यामियाताऽऽशुसख्योयूयंविदूरतः॥२९॥
इत्युक्ता सैकतंलिङ्गंगाढमालिङ्ग्यसाम्बिका। न मुमोचप्रवाहेणवेष्ट्यमानापिवेगतः॥३०॥
स्तनचूचुकनिर्मग्नमुग्रादर्शितलाञ्छनम्। महालिङ्गं स्वसंयुक्तं प्रणनाम तदादरात्॥३१॥
निमीलितेक्षणा ध्याननिष्ठैकहृदया स्थिता। पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी सा स्मरन्ती सदाशिवम्॥३२॥

"मुझे यह प्रतीत होता है कि शिव चरणों में भक्तियुक्त मेरी आत्मा को विशोधित करने के लिए यह शिवमाया विनिर्मित जलप्रवाह आया है। हे सखीगण! तुम सब यहां से चली जाओ। मैं हाथों द्वारा दृढ़ता से शिवलिंग का आलिंगन करके यहीं रहूंगी।" यह कहकर अम्बिका ने शिवलिंग को बांहों द्वारा घेर लिया और प्रबल जल प्रवाह से घिर जानेपर भी लिंग को नहीं छोड़ा। जब जलप्रवाह में उनके स्तनपर्यन्त शरीर डूब गया तब उन्होंने मुद्रालांछनादि प्रदर्शन पूर्वक अपने द्वारा आलिंगित लिंग को सादर प्रणाम किया। ध्यान में निविष्ट हृदय वाली प्रमुदित नेत्रों से युक्त पुलकितदेहा देवी अम्बिका निरन्तर सदाशिव का स्मरण कर रही थीं।।२८-३२।।

कम्पस्वेदपरित्राणलज्जाप्रणयकेलिदात्। क्षणमप्यचला लिङ्गान्न वियोगमपेक्षते॥३३॥
अथ तामब्रवीत्काऽपि दैवीवागशरीरिणी। विमुञ्चबालिके लिङ्गंप्रवाहोऽयंगतोमहान्॥३४॥
त्वयाऽर्चितमिदं लिङ्गं सैकतं स्थिरभैरवम्। भविष्यति महाभागे वरदं सुरपूजितम्॥३५॥
तपश्चर्यां तवाऽऽलोक्यरचितंधर्मपालनम्। लिङ्गं चैतन्नमस्कृत्य कृतार्थाःसन्तुमानवाः॥३६॥
अहं हि तैजसं रूपमास्थाय वसुधातले। वसामि चाऽत्र सिद्ध्यर्थमरुणाचलसञ्ज्ञया॥३७॥
रुणद्धि सर्वलोकेभ्यः परुषं पापसञ्चयम्। रुणो न विद्यते यस्मिन्दृष्टेतेनाऽरुणाचलः॥३८॥
ऋषयः सिद्धगन्धर्वा महात्मानश्च योगिनः। मुक्त्वा कैलासशिखरं मेरुञ्चैनमुपासते॥३९॥

भगवती में एक साथ कम्प, स्वेद, भीति, प्रणय, लज्जा तथा केलि लक्षण उपस्थित हो गये, तथापि उन्होंने क्षण काल के लिए भी स्वयं को चंचल नहीं होने दिया तथा शिवलिंग को अलग नहीं किया। तब एक अशरीरी दैववाणी (आकाशवाणी) उन्होंने सुनी "हे बालिके! महाप्रवाह समाप्त हो गया! तुम लिंग छोड़ दो। तुमने इस स्थिर वैभव बालुकालिंग का पूजन किया है। हे महाभागे! यह वरदलिंग सुरगण हेतु भी पूज्य हो जाये। तुम्हारा तप तथा

धर्मपालन देखकर तथा इस लिंग को प्रणाम करके मानव कृतार्थ होंगे। मैं तैजस रूप धारण करके पृथिवी तल पर प्राणीगणों को सिद्धि प्रदान करने के लिए अरुणाचल नामक इस लिंग में निवास करूंगा। यह लिंग निखिल लोगों के पापसंचय का रोध करेगा तथा इसका अचल दर्शन करने से पाप दूर होंगे। तभी इसका नाम अरुणाचल है। ऋषि-सिद्ध-गन्धर्व तथा महात्मा योगीगण मेरु पर्वत तथा कैलास का त्याग करके अरुणाचल की उपासना करेंगे''।।३३-३९।।

मदंशजातयोः पूर्वं युध्यतोर्ब्रह्मकृष्णयोः। अहं मोहमपाकर्त्तुन्तेजोरूपो व्यवस्थितः॥४०॥
ब्रह्मणा हंसरूपेण विष्णुना क्रोडरूपिणा। अदृष्टशेखरपदः प्रणतो भक्तियोगतः॥४१॥
ततः प्रसन्नः प्रत्यक्षस्ताभ्यां वरमभीप्सितम्। प्रादां जगत्त्रयस्याऽस्य संरक्षायान्तु कौशलम्॥४२॥
प्रार्थितश्च पुनस्ताभ्यामरुणाचलसञ्ज्ञया। अनैषि तैजसं रूपमहं स्थावरलिङ्गताम्॥४३॥
गत्वा पृच्छ महाभागं मद्भक्तिं गौतमं मुनिम्। अरुणाचलमाहात्म्यं श्रुत्वातत्रतपश्चर॥४४॥
तत्र ते दर्शयिष्यामि तैजसं रूपमात्मनः। सर्वपापनिवृत्त्यर्थं सर्वलोकहिताय च॥४५॥

मेरे अंश से उत्पन्न ब्रह्मा तथा विष्णु पूर्वकाल में युद्ध में प्रवृत्त हो रहे थे। उनका मोहनाश करने के लिए मैं तेजोरूप में अवस्थित हो गया। हंसरूपधारी ब्रह्मा तथा शूकर शरीरधारी विष्णु अनेक प्रयास करके भी मेरे आदि-अन्त का सन्धान नहीं पा सके। उन्होंने मुझे भक्तिपूर्वक प्रणाम से मुझे प्रसन्न किया था। तब मैंने उनको प्रत्यक्ष दर्शन देकर मनोवांछित वर प्रदान किया था। उस समय उनलोगों ने लोकहितार्थ मुझसे पुनः अरुणाचल रूप से प्रतिष्ठित होने की प्रार्थना किया। उनकी प्रार्थना के अनुसार मैं अपने तेजो रूप का परित्याग करके स्थावर (लिंग) रूप हो गया। अब तुम मेरे प्रति एकान्त भक्तिमान् महाभाग गौतम ऋषि के पास जाकर इस अरुणाचल माहात्म्य के सम्बन्ध में पूछो। उनसे अरुणाचल की महिमा सुनकर उनके आश्रम में तप करो। समस्त लोकों की हितकामना तथा समस्त पापों की निवृत्ति हेतु मैं तुमको पुनः अपने तेजोरूप का दर्शन दूंगा।।४०-४५।।

इति वाचं समाकर्ण्य निष्कलात्कथितां शिवात्। तथेति सहसादेवीगन्तुंसमुपचक्रमे॥४६॥
अथ देवानृषीन्सर्वान्पश्चात्सेवार्थमागतान्। अवादीदम्बिकालोक्यस्नेहपूर्णेन चक्षुषा॥४७॥
तिष्ठताऽत्रैव वै देवा मुनयश्च दृढव्रताः। नियमांश्चाऽधितिष्ठन्तः कम्पारोधसिपावने॥४८॥
सर्वपापक्षयकरं सर्वसौभाग्यवर्द्धनम्। पूज्यतां सैकतं लिङ्गं कुचकङ्कणलाञ्छनम्॥४९॥
अहं च निष्कलं रूपमास्थायैतद्दिवानिशम्। आराधयामि मन्त्रेण शोणेश्वरंवरप्रदम्॥५०॥
मत्तपश्चरणाल्लोके मद्धर्मपरिपालनात्। मल्लिङ्गदर्शनाच्चैव सिध्यन्त्विष्टविभूतयः॥५१॥
सर्वकामप्रदानेन कामाक्षीमितिकामतः। मां प्रणम्याऽत्रमद्भक्तकालभन्तांवाञ्छितंवरम्॥५२॥
अहं हि देवदेवस्य शम्भोरव्याहतो जनः। आदेशं पालयिष्यामिगत्वाऽरुणमहीधरम्॥५३॥
तत्र गत्वा तपस्तीव्रं कृत्वा शम्भुं प्रसाद्य च। मान्तु लब्धवरां यूयं पश्चाद्द्रक्ष्यथ सङ्गताः॥५४॥

निष्कल शिव का यह कथन सुनकर देवी अम्बिका ने कहा ''ऐसा ही हो'' तथा वे गौतमाश्रम तत्काल जाने का उपक्रम करने लगीं। जो सब देवता, ऋषि वहां तप करने आये थे, अम्बिका ने जाते समय स्नेहपूर्ण नेत्रों से उनसे कहा—''हे दृढ़व्रत देव तथा मुनिगण! आपलोग नियम पालन करते हुए इस पवित्र कम्पातट पर निवास

करिये। आप सभी सर्वपापक्षयकारी समस्त सौभाग्य वर्द्धन करने वाले मेरे कुचकङ्कण लांछित उस बालुका लिंग का पूजन करिये। मैं भी निष्कल रूप से यहां स्थित होकर सर्वदा मन्त्र के द्वारा इन शोणेश्वर वरद लिंग की आराधना करूंगी। मेरी तपश्चर्या, धर्मपालन तथा लिंगदर्शन द्वारा लोग वांछित ऐश्वर्य को प्राप्त करें। मैं सर्वकामना प्रदान करूंगी। मेरे भक्तजन मुझे कामाक्षी नाम से जानकर अपनी कामना निवेदन करके प्रणाम करें तथा अभिलषित वर प्राप्त करें। मैं देवाधिदेव शम्भु की अनुगत हूं। अतः मैं अरुणाचल जाकर उनके आदेश का पालन करूंगी। मैं वहां तीव्रतपस्या करके शम्भु की प्रसन्नता प्राप्त करूंगी। तब आपलोग सुसंगत रूप से मेरा दर्शन लाभ करेंगे''।।४६-५४।।

इति सर्वान्विसृज्याऽऽशु सद्भक्तान्पादसेविनः। अरुणाद्रिंगताबालातपसे शङ्कराज्ञया।।५५।।
नित्याभिसेविताऽकारि सखीभिरभियोगतः। आससादाऽरुणाद्रीशं दिव्यदुन्दुभिनादितम्।।५६।।
अन्तस्तेजोमयं शान्तमरुणाचलनायकम्। अप्सरोनृत्यगीतैश्च पूजितं पुष्पवृष्टिभिः।।५७।।
प्रणम्य स्थावरं लिङ्गंकौतूहलसमन्विता। सिद्धानां योगिनांसार्थमृषीणाञ्चान्ववैक्षत।।५८।।
अत्रिर्भृगुर्भरद्वाजः कश्यपश्चाङ्गिरास्तथा। कुत्सश्चगौतमश्चाऽन्ये सिद्धविद्याधरामराः।।५९।।
तपः कुर्वन्ति सततमपेक्षितवराप्तये। गङ्गाद्याः सरितश्चान्याः परितः पर्युपासते।।६०।।

बालिका अम्बिका ने इस प्रकार शंकर की आज्ञा से अपने चरणसेवक भक्त देवता तथा ऋषियों का त्याग किया, वे तपस्यार्थ अरुणाचल शीघ्रता से पहुंचीं। अम्बिका के अरुणाचल अवस्थान काल में उनकी सखियां उनके आदेशक्रम से उनकी सेवा करने लगीं। उनके वासस्थान अत्यन्त तेजपूर्ण, शान्त, अचल नामक अरुणाचल में दिव्य दुन्दुभि निनादित होती थी तथा अप्सरायें गीत, नृत्य तथा पुष्पवर्षा द्वारा उनके अचल प्रभु की सेवा करती थीं। कौतूहलान्विता अम्बिका उन स्थावर लिंग अरुणाचल को प्रणाम करके वहां सिद्धयोगीगण तथा ऋषियों का दर्शन करती थीं। उन्होंने देखा कि वहां अत्रि, भृगु, भरद्वाज, कश्यप, अंगिरा, कुत्स, गौतमादि ऋषि, सिद्धगण, विद्याधर तथा नागगण वर पाने के लिए तप कर रहे थे। वहां गंगा आदि नदियां चतुर्दिक् प्रवाहित होकर इनकी (शिव की) उपासना कर रही थीं।।५५-६०।।

दिव्यलिङ्गमिदं पूज्यमरुणाद्रिरिति स्मृतम्। वन्दस्वेति सुरैः प्रोक्ता प्रणनामपुनःपुनः।।६१।।
अभ्यर्थिता पुनः सर्वैरातिथ्यार्थे महर्षिभिः। शिवाज्ञयागौतमोमे द्रष्टव्यइतिसाऽवदत्।।६२।।
अयमत्रर्षिभिर्भक्तैर्निर्दिष्टं तमथाभ्यगात्। स मुनिः शिवभक्तानां प्रथमस्तपसांनिधिः।।६३।।
वनान्तरं गतः प्रातः समित्कुशलफलाहृतेः। अतिथीनाश्रमं प्राप्तानर्चथेति दृढव्रतान्।।६४।।

यहां वह पूज्य दिव्य लिंग अरुणाचल के रूप में विराजमान था। तब देवगण ने कहा ''वन्दना करें'', यह सुनकर देवी अरुणाचल की पुनः-पुनः वन्दना करने लगीं। महर्षियों ने देवी की अभ्यर्थन आतिथ्य ग्रहण हेतु किया। उन्होंने कहा (देवी ने कहा) ''मैं शिवाज्ञा के कारण गौतम ऋषि का दर्शन करूंगी।'' अम्बिका का कथन सुनकर गौतम के भक्त ऋषिगण ने अम्बिका को गौतम ऋषि के रहने के स्थान को बतलाया। शिवभक्तों में अग्रणी तपोनिधि गौतम ऋषि प्रातःकाल के समय समिध्, कुश, फलाहार लाने वन में गये थे। उन गौतम मुनि ने वन में जाते समय शिष्यों को आदेश दिया था कि मेरे आश्रम में जो भी दृढ़व्रती आयें, तुमलोग उनका सत्कार करना।।६१-६४।।

शिष्यानादिश्यधर्मात्मागतश्चविपिनान्तरम्। अथसागौतमंद्रष्टुमागतापर्णशालिकाम्।।६५।।
क्व गतो मुनिरित्युक्तैरित आयास्यति क्षणात्। शिष्यैरभ्यर्थितेत्युक्त्वा फलमूलैस्सुगन्धिभिः।।६६।।
अभ्युत्थानेनाऽऽसनेन पाद्येनाऽर्घ्येणसूनृतैः। वचनैःफलमूलेनसाऽर्चिताशिष्यसम्पदा।।६७।।
क्षणं क्षमस्वेत्यूचुस्तामन्ये जग्मुस्तदन्तिकम्। देव्यांप्रविष्टमात्रायांमहर्षेराश्रमोमहान्।।६८।।
अभवत्कल्पबहुलो मणिप्रासादसङ्कुलः। वनान्तरादुपावृत्त्य समित्कुशफलाहरः।।६९।।
अपश्यत्स्वाश्रमं दूरे विमानशतशोभितम्। किमेतदिति साश्चर्यं चिन्तयन्मुनिपुङ्गवः।।७०।।

तदनन्तर देवी अम्बिका गौतम के दर्शन हेतु उनकी छोटी सी पर्णकुटिया में आईं। उनके शिष्यों ने भगवती को बतलाया कि वे पास के ही किसी स्थान में गये हैं, शीघ्र ही आयेंगे। यह कहकर शिष्यगण ने गुरु गौतम के आदेशानुसार अम्बिका की अभ्यर्थना करके सुगन्धित फल-मूल, सुन्दर वाक्य, अभ्युत्थान, आसन, पाद्य तथा अर्घ्य से उनका सत्कार किया। उन शिष्यों ने मधुर वाक्य तथा फलमूलादि द्वारा देवी की अर्चना करके कहा "आप कुछ क्षण प्रतीक्षा करें।" तदनन्तर उनमें से कुछ शिष्य ऋषि गौतम के अन्वेषणार्थ गये। इधर भगवती गौतम के आश्रम में प्रवेश करते ही गौतम का बृहद् आश्रम अनेक कक्ष, पादप युक्त तथा अनेक मणिमय प्रासादों वाला हो गया। तदनन्तर समिध्, कुश तथा फल लेकर जब महर्षि गौतम आश्रम वापस आये, तब उन्होंने दूर से ही देखा कि उनके आश्रम में सैकड़ों-सैकड़ों विमान शोभित हो रहे हैं। मुनिपुंगव गौतम यह सब देख कर सोचने लगे कि यह कैसी विस्मयजनक घटना है!।।६५-७०।।

गौर्याः समागमं सर्वमपश्यज्ज्ञानचक्षुषा। शीघ्रं निवर्तमानोऽसौद्रष्टुंतांलोकमातरम्।।७१।।
शिष्यैः शीघ्रचरैर्वृत्तमावेदितमथाऽशृणोत्।।७२।।
अथ महर्षिरुपागतकौतुको निजतपःफलमेव तदागमम्।
शिवदयाकलितं परिचिन्तयन्नभजदाश्रममाश्रितवत्सलः।।७३।।

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्ये पूर्वार्धे पार्वत्याः कम्पाया अरुणाचले गौतमाश्रमागमनं नाम चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

उन्होंने ज्ञाननेत्रों द्वारा भगवती गौरी के आगमन का समाचार ज्ञात किया। वे लोकमाता गौरी के दर्शनार्थ तेजी से आश्रम पहुंचे। तभी उनके शीघ्रगामी शिष्यगण ने भी त्वरापूर्वक उनके निकट आकर यह संवाद उनसे कहा। आश्रितवत्सल महर्षि अपने तपफल रूप (भगवती को) स्वयं आया देखकर कौतुक में पड़ गये तथा यह विचार करते हुए कि यह सब प्रभु शंकर की कृपा है, अपने आश्रम में आ गये।।७१-७३।।

।।चतुर्थ अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

पञ्चमोऽध्यायः

पार्वती का गौतमाश्रम आने का कारण, अरुणाचल महत्व वर्णन, शिवाविर्भाव

ब्रह्मोवाच

अरण्याद्गौतमं शान्तमुटजद्वार आगतम्। प्रत्याधातुं प्रववृते शिवभक्तिर्जगन्मयी॥१॥
आलुलोके समायातं गौतमंशिष्यसेवितम्। लम्बमानशिरःश्मश्रूसम्पूर्णमुखमण्डलम्॥२॥
जटाभिरतिताम्राभिस्तीर्थस्नानविशुद्धिभिः। न्यस्तरुद्राक्षमणिभिर्ज्वालाभिरिव पावकम्॥३॥
भस्मत्रिपुण्ड्रकोपेतविशालनिटिलोज्ज्वलम्। शुक्लयज्ञोपवीतेन पूर्णं रुद्राक्षदामभिः॥४॥
दधानं वल्कले रक्तेः तपःकृशितविग्रहम्। जपन्तं वैदिकान्मन्त्रान्रुद्रप्रीतिकरान्बहून्॥५॥
शम्भुनावसितोदात्तसारूप्यमिव भाषितम्। तेजोनिधिं दयापूर्णंप्रत्यक्षमिवभास्करम्॥६॥
आलोक्य तं महात्मानं वृद्धं शम्भुपदाश्रयम्। कृताञ्जलिपुटा गौरी प्रणन्तुमुपचक्रमे॥७॥

ब्रह्मा कहते हैं—शान्तरूप महर्षि गौतम जैसे ही अरण्य से पर्णकुटीर के द्वार पर पहुंचे, तभी शिवपरायण जगन्मयी पार्वती ने वात्सल्यवशात् उनका आलिंगन करना चाहा। गौतम के आगमन के समय देवी ने देखा कि शिष्यगण उनके पीछे चले आ रहे हैं। उनका मुख दाढ़ी से लम्बित है। शिरस्थ जटायें ताम्रवर्ण हो रही हैं। रुद्राक्ष के दाने उनके गले में मालाकार लटके ज्वालामाला समाकुल अग्नि जैसे प्रतीत हो रहे हैं। उनके विशाल भ्रूमध्यस्थल पर भस्म का त्रिपुण्ड्र शोभित हो रहा है। यज्ञोपवीत का धारण स्थल शुक्लवर्ण यज्ञोपवीत तथा रुद्राक्षमाला से भूषित है। तपःक्लेशयुक्त देह वाले इन महर्षि ने लाल रंग का वल्कल पहना है तथा ये रुद्रदेव को प्रसन्नता प्रदान करने वाले वैदिक मन्त्रों का जप करते-करते आये हैं। ये शम्भु द्वारा समावेशित उत्तम सारूप्य के कारण शम्भु की ही तरह दिखलाई पड़ रहे हैं। शिवपदाश्रित वृद्ध तपोनिधान दयापूर्ण साक्षात् सूर्य समप्रभ महात्मा गौतम को देखकर पहले गौरी ने उनको हाथ जोड़कर प्रणाम करना चाहा।।१-७।।

कृताञ्जलिं मुनिर्वीक्ष्य समस्तजगदम्बिकाम्। किमेतदिति साश्चर्यं वारयन्प्रणनामसः॥८॥
स्वागतं गौरि सुभगे लोकमातर्दयानिधे!। व्याजेन भक्तसंरक्षां कर्तुमत्रागतास्यहो॥९॥
अहो मान्ये! मान्यमर्थं विज्ञायैव पुरा वयम्।
पृथग्भावमिवाऽऽलम्ब्य शिष्यादिभिः समागताः॥१०॥

निखिल लोकमाता अम्बिका को हाथ जोड़ते देख कर महर्षि गौतम ने कहा—"यह क्या विस्मयकारी दृश्य है!" कह कर देवी को हाथ जोड़ने से रोका तथा स्वयं उनके समक्ष प्रणत हो गये। गौतम कहने लगे—"हे सुभगे गौरी! आप सुखपूर्वक तो आई हैं?" "हे लोकजननी दयानिधि! अहा! आप तो भक्त की रक्षा करने छलपूर्वक यहां आई हैं। हे मान्ये! आप मेरे पीछे शिष्यों को देखकर उनको प्रणाम कर देंगी, इसी आशंका से मैं शिष्यों से अलग आया हूं"।।८-१०।।

यद्देवि ते न चेत्किञ्चिन्मायाविलसितन्निजम्। ततः प्रपञ्चसंसिद्धिःकथमेवभविष्यति॥११॥
तिष्ठत्वशेषं मे वक्तुं मायाविलसितं तव। न शक्यते यन्निर्णेतुं त्वदीयैश्च कदाचन॥१२॥

"इसका कारण यह है कि मैं आपको प्रणाम करता हूं, यह देखकर वे कदापि आपका प्रणाम ग्रहण नहीं करेंगे। हे देवी! आप जो मुझे प्रणाम के लिए उद्यत हो गयीं, यह आपको ही शोभा देता है, क्योंकि आपके ही मायाविलास द्वारा प्रपञ्च की सिद्धि होती है। यह भी आपका मायाविलास ही है। परन्तु हे देवी! मैं तत्वज्ञ होकर आपका प्रणाम कैसे ग्रहण कर सकता हूं? आपकी जो माया है, उसका निर्णय कर सकने में तो आपके गण भी समर्थ नहीं हैं, ऐसी स्थिति में उस मायाविलास के सम्बन्ध में मैं क्या कह सकूंगा"?।।११-१२।।

आस्यतां पावने शुद्ध आसने कुशनिर्मिते। गृह्यतां पाद्यमर्घ्यं च दत्तं च विधिवन्मया॥१३॥
इति शिष्यैः समानीते दर्भाङ्के परमासने। आसीनामम्बिकांवृद्धोमुनिरानर्चभक्तिमान्॥१४॥
निवेद्य सकलां पूजां भक्तिभावसमन्वितः। गौर्यासमभ्यनुज्ञातः स्वयमप्यासनेस्थितः॥१५॥
उवाच दशनज्योत्स्नापरिधौतदिशामुखः। पुलकाञ्चितसर्वाङ्गः सानन्दाश्रु सगद्गदम्॥१६॥

"हे परम पावने! अब वह सब प्रसंग यहीं छोड़ता हूं। इस पवित्र कुशासन पर आसीन होकर मेरे द्वारा प्रदत्त पाद एवं अर्घ्य ग्रहण करिये।" तदनन्तर भक्तिमान् वृद्ध मुनि ने शिष्यों द्वारा लाये गये परम पवित्र आसन पर भगवती को आसीन कराया तथा अम्बिका की पूजा भक्तिभाव से सम्पन्न करने के अनन्तर उनकी अनुमति लेकर तदनन्तर स्वयं भी एक आसन पर बैठ गये। जब महर्षि गौतम ने कुछ कहने हेतु मुख खोला, तब उनके दांतों की ज्योत्स्ना से समस्त दिक्मण्डल उद्भासित हो उठा। उनका समस्त शरीर पुलकित एवं रोमांचित होने लगा। उनके नेत्रों में आनन्दाश्रु भर गये। वे गद्गद् वाणी से कहने लगे।।१३-१६।।

अहो देवस्य माहात्म्यं शम्भोरमिततेजसः। सद्भक्तरक्षणाय त्वामादिशद्भक्तवत्सलः॥१७॥
असिद्धमन्यल्लब्धव्यं किं वाऽन्यत्त्व विद्यते। अम्बैतद्भक्तिमाहात्म्यं सन्दर्शयितुमीश्वरः॥१८॥
कैलासशैलवृत्तान्तः कम्पातटतपःस्थितः। अरुणाद्रिसमादेशः सर्वं ज्ञातमिदं मया॥१९॥
आगताऽसि महाभागे भक्ताश्रममिमंस्वयम्।
स्नेहेन करुणामूर्ते कर्त्तव्यमुपदिश्यताम्॥२०॥

ऋषि गौतम कहते हैं—"अहो! अमित तेजस्वी शम्भु की क्या महिमा है! भक्तवत्सल शम्भु ने अपने भक्तों की रक्षा के लिए आपको यहां भेजा है। हे देवी! आपके लिये ऐसा क्या अप्राप्त है, जिसे प्राप्त करने हेतु आप तप करेंगी? हे माता! ईश्वर सदाशिव ने आपकी भक्ति को समस्त जगत् के समक्ष प्रदर्शनार्थ ही ऐसा आदेश प्रदान किया है। आपका कैलास वृत्तान्त (भगवान् के नेत्रों को आच्छादित करना) कम्पातटस्थ तप तथा प्रभु द्वारा अरुणाचलेश्वर जाने का आदेश—यह सब मुझे ज्ञात है। हे महाभागे! आप स्नेहवशात् ही अपने भक्त के आश्रम में आई हैं। हे करुणामूर्त्ति भगवती! अब मुझे जो करना है, उस हेतु आदेश प्रदान करें"।।१७-२०।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा महर्षेः सर्ववेदिनः। अम्बिका प्राह कुतुकात्स्तुवन्ती तं महामुनिम्॥२१॥
महावैभवमेतत्ते देवदेवः स्वयं शिवः। मध्ये तपस्विनांत्वांतु द्रष्टव्य इति चाऽऽदिशत्॥२२॥
आगमानां शिवोक्तानां वेदानामपि पारगः। तपसा शम्भुभक्तानां त्वमेवशिवसम्मतः॥२३॥

अरुणाचलनाम्नाऽहं तिष्ठामीत्यब्रवीच्छिवः।
अस्याऽचलस्य माहात्म्यं श्रोतव्यं च भवन्मुखात्॥२४॥
प्राप्ताऽस्म्यहं तपः कर्त्तुमरुणाचलसन्निधौ। भवतां दर्शनादेव स्वयमीशः प्रसीदति॥२५॥

सर्वज्ञ महर्षि गौतम का यह वाक्य सुनकर अम्बिका ने कौतुक के कारण स्तव करते हुए महामुनि गौतम से कहा—"हे मुनिवर! स्वयं देवदेव शिव ने निर्देश दिया है कि तपस्वियों में से आप दर्शन योग्य हैं। यह आपकी एक महान् विभूति है। आप शिवोक्त आगम तथा वेद-शास्त्रादि में पारंगत हैं। तपस्या द्वारा आप ही शिवभक्तों में शिवसम्मत हैं। शिव ने जो यह अंगीकार किया है कि "मैं ही अरुणाचल नाम से अवस्थान करूंगा" उस अरुणाचल का माहात्म्य मैं आपसे सुनना चाहती हूं। इसीलिए मैं अरुणाचल में तपस्यार्थ आई हूं। आपके दर्शनमात्र से स्वयं सदाशिव मुझ पर प्रसन्न हो जायें"।।२१-२५।।

शिवभक्तेन सम्भाषा शिवसङ्कीर्त्तनश्रवः। शिवलिङ्गार्चनं लोके वपुर्ग्रहफलोदयः॥२६॥
तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं श्रोतव्यं भवतो मुखात्। सुव्यक्तमुपदेशेनज्ञानतोऽसिपिताम॥२७॥
इति तस्या वचः श्रुत्वा गौतमस्तपसां निधिः। आचख्यौ गिरिशं ध्यायन्नरुणाचलवैभवम्॥२८॥
अज्ञातमिव यत्किञ्चित्पृच्छ्यतेच पुनस्त्वया। अवैमिसर्वविद्यानांमायाशैवीत्वमेवसा॥२९॥
अथवा भक्तवक्त्रेण शिववैभवसंश्रवः। शिक्षणं शाम्भवं तेषां तव तुष्टेश्च कारणम्॥३०॥
पठितानाञ्च वेदानां यदावृत्तफलावहम्। वदतां शृण्वतां लोके शिवसङ्कीर्त्तनं तथा॥३१॥
सफलान्यद्य सर्वाणि तपांसिचरितानि मे। यदहं शम्भुनादिष्टंमाहात्म्यंकीर्त्तयेश्रुतम्॥३२॥
शिवाशिवप्रसादेन माहात्म्यमिदमद्भुतम्॥३३॥

"शिवभक्त के साथ वार्त्ता, शिवकीर्त्तन श्रवण तथा शिवलिंगार्चन—यह सब देहधारण का फल है। अतएव आपके मुख से मैं यह सब सुनूंगी। हे मुनिवर! सुव्यक्त उपदेश प्रदान करने के कारण ज्ञानतः आप मेरे पिता हैं।" देवी का यह वाक्य सुनकर तपोनिधि गौतम ने पहले भगवान् गिरीश शिव का ध्यान कुछ क्षण किया। तदनन्तर वे अरुणाचल की विभूति का वर्णन करने लगे कि "हे देवि! आप निखिल विद्या की शैवी माया हैं। यह मैं जानता हूं। आपका प्रश्न सुनकर मुझे अनुमान हो रहा है कि आप यह सब जानकर भी अनभिज्ञ के समान पुनः प्रश्न कर रही हैं। अथवा भक्त के मुख से शंभुविषयक प्रसंग तथा शिवविभूति सुनकर आपकी तुष्टि होगी। जैसे पूर्व में पढ़े गये वेद का पुनः-पुनः पाठ करने से फललाभ होता है, इहलोक में पुनः-पुनः शिव (गुण) कीर्त्तन तथा श्रवण भी वैसा ही फलप्रद है। मेरे द्वारा आचरित तप आज सफल होगा, क्योंकि शिव तथा शिव की कृपा से आज मैं शम्भु द्वारा आदेश पाकर इस अलौकिक माहात्म्य का कीर्त्तन कर रहा हूं"।।२६-३३।।

अरुणाचलमाहात्म्यं दुरितक्षयकारणम्। श्रूयतामनवद्याङ्गि पुरावृत्तमिदं महत्॥३४॥
अरुणाद्रिमयं लिङ्गमाविर्भूतं यथा पुरा। न शक्यते पुनर्वक्तुमशेषं वक्त्रकोटिभिः॥३५॥
अरुणाचलमाहात्म्यं ब्रह्मणामपिकोटिभिः। ब्रह्मणाविष्णुनापूर्वंसोमभास्करवह्निभिः॥३६॥
इन्द्रादिभिश्च दिक्पालैः पूजितश्चाऽष्टसिद्धये। सिद्धचारणगन्धर्वयक्षविद्याधरोरगैः॥३७॥
खगैश्च मुनिभिर्दिव्यैः सिद्धयोगिभिरर्चितः। तत्तत्पापनिवृत्त्यर्थं तत्तदीप्सितसिद्धये॥३८॥

आराधितोऽयं भगवानरुणाद्रिपतिः शिवः। दृष्टो हरति पापानिसेवितोवाञ्छितप्रदः॥३९॥

हे अनवद्य अंगों वाली! यह दुर्वृत्तक्षयकारक पहले कहे गये अरुणाचल माहात्म्य को सुनें। हे देवी! पूर्वकाल में अरुणाचल पर यह शिवलिंग जैसे आविर्भूत हुआ था, करोड़ों मुख से भी उस प्रसंग को कहकर समाप्त नहीं किया जा सकता। ब्रह्मा भी करोड़ों मुख द्वारा इस अरुणाचल की महिमा कह सकने में समर्थ नहीं हैं। पूर्वकाल में ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, अग्नि इत्यादि ने अष्टसिद्धिलाभार्थ इन अरुणाचल का पूजन किया था। सिद्ध, चारण, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर, सर्प, पक्षी तथा दिव्य मुनिगण एवं सिद्धयोगीगण ने अपने-अपने पाप की निवृत्ति तथा इष्ट सिद्धि के लिये भगवान् अरुणाचल पति की आराधना किया था। इनके दर्शन से पापनाश होता है तथा वांछितार्थ प्राप्ति होती है।।३४-३९।।

कीर्तितोऽपि जनैर्दूरैः शोणाद्रिरिति मुक्तिदः। तेजः स्तम्भमयंरूपमरुणाद्रिरितिश्रुतम्॥४०॥
ध्यायन्तो योगिनश्चित्ते शिवसायुज्यमाप्नुयुः।
दत्तं हुतञ्च यत्किञ्चिज्जप्तं चाऽन्यत्तपः कृतम्॥४१॥
अक्षय्यं भवति प्राप्तमरुणाचलसन्निधौ। पुरा ब्रह्मा च विष्णुश्चशिवतेजोऽशसम्भवौ॥४२॥
साहङ्कारौ युयुधतुः परस्परजिगीषया। तथा तयोर्गर्वशान्त्यै योगिध्येयः सदाशिवः॥४३॥
अग्नितेजोमयं रूपमादिमध्यान्तवर्ज्जितम्। सम्प्राप्यतस्थौतन्मध्येदिशोदशविभासयन्॥४४॥

यदि मनुष्य दूर से भी "शोणाद्रि" इस नाम का कीर्त्तन करता है, तब भगवान् शिवशंकर उसे मुक्ति प्रदान करते हैं। तेजस्तम्भमय विख्यात अरुणाचल का ध्यान करके योगीगण ने मोक्षलाभ किया है। यहां पर जो कुछ दान, होम तथा तप किया जाता है, वह सब अक्षय हो जाता है। पूर्वकाल में शिव के तेजांश से उत्पन्न ब्रह्मा-विष्णु ने अहंकार के कारण एक-दूसरे से जीतने की इच्छा की थी। उनके गर्व का नाश करने हेतु मैंने आदि-अन्त रहित अग्नितेजमय (स्तम्भ) रूप धारण किया था। मैं उसके द्वारा दसों दिशाओं को उद्भासित करता लिंग में स्थित था।।४०-४४।।

तेजःस्तम्भस्य तस्याऽथ द्रष्टुमाद्यन्तभागयोः। हंसक्रोडतनूकृत्वाजग्मतुर्द्यारसातलम्॥४५॥
तौ विषण्णमुखौदृष्ट्वाभगवान्करुणानिधिः। आविर्बभूव च तयोर्वरंप्रादादभीप्सितम्॥४६॥
तत्प्रार्थितश्च देवेशोयातःस्थावरलिङ्गताम्। अरुणाद्रिरितिख्यातःप्रशान्तःसम्प्रकाशते॥४७॥
दिव्यदुन्दुभिनिर्घोषैरप्सरोगीतनर्त्तनैः। पूज्यते तैजसं लिङ्गं पुष्पवृष्टिशतैः सदा॥४८॥

तदनन्तर ब्रह्मा ने हंसरूपेण एवं विष्णु ने शूकर देह द्वारा यथाक्रमेण ऊर्ध्व तथा अधोदिक् जाते हुए उसके आदि-अन्त को जानने का घोर उद्यम किया। अन्त में असफल होकर ब्रह्मा एवं विष्णु के म्लान मुख को देखकर करुणानिधान भूतपति मैंने आविर्भूत होकर उनको इच्छित वर प्रदान किया तथा उनकी प्रार्थना को सुनकर मैंने तेजस्तम्भरूपी होकर स्थावर लिंग का रूप ग्रहण किया। हे देवी! इस प्रकार से यह प्रशान्त अरुणाचल सम्यक्तः व्यक्त हो सका। यहां दिव्य दुन्दुभि निनाद से अप्सरागण के नृत्यगीत से तथा पुष्पवर्षा से यह तैजस लिंग सदा पूजित होता रहता है।।४५-४८।।

ब्रह्मणामप्यतीतानां पुरा षण्णवतेः प्रभुः। विष्णुनाभिसमुद्भूतोब्रह्मालोकान्ससर्जहि॥४९॥

स कदाचित्तपोविघ्नं कर्तुकामेनयोगिनाम्। इन्द्रेणप्रार्थितोब्रह्मासससर्जललितांस्त्रियम्॥५०॥
लावण्यगुणसम्पूर्णामालोक्य कमलेक्षणाम्। मुमोह कन्दर्पशरैःस विद्धहृदयो विधिः॥५१॥
स्प्रष्टुकामंतमालोक्यब्रह्माणंकमलासनम्। नत्वा प्रदक्षिणव्याजाद्गन्तुमैच्छद्वराप्सराः॥५२॥
अस्यां प्रदक्षिणां भक्त्या कुर्वाणायां प्रजापतेः। चतसृभ्योऽपि दिग्भ्योऽस्य मुखान्युदभवन्क्षणात्॥५३॥
साबालापक्षिणी भूत्वा गगनं समगाहत। पुनश्च खगरूपेण समायान्तं समीक्ष्य सा॥५४॥

पूर्वकालिन ९६ ब्रह्माओं के अतीत होनेपर कल्पक्षय के पश्चात् पुनः विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा उत्पन्न होकर लोकसृष्टि करते हैं। एक समय योगियों के योग में विघ्न उत्पन्न करने के लिए इन्द्र की प्रार्थना पर ब्रह्मदेव ने एक रमणीक रमणी की सृष्टि की। तदनन्तर ब्रह्मा उस नाना लावण्यगुण परिपूर्ण कमलनयना कामिनी को देखकर कामबाण से विद्ध हो गये। वे उस पर मोहित हो गये। तब कमलासन ब्रह्मा इस अप्सराओं में श्रेष्ठ ललना का स्पर्श करने के लिए उद्यत हो गये। लेकिन वह ललना ब्रह्मा को प्रणाम करके तथा उनकी प्रदक्षिणा के उपरान्त वहां से जाने लगी। तब प्रजापति उस भक्तिमति को प्रदक्षिणा की आड़ में वहां से जाने का उपक्रम करते देखकर चार मुख वाले हो गये।

वह बाला अप्सरा ब्रह्मा को चतुर्दिक् में चार मुख वाला होते देख कर वहां से पक्षीरूप धारण करके उड़ गई, तथापि इससे भी वह बच न सकी। ब्रह्मा भी पक्षीरूप धारण करके उसका पीछा करने लगे।।४९-५४।।

शरणं याचमाना सा शोणाद्रिमिममाश्रयत्। ब्रह्मणा विष्णुना च त्वमदृष्टपदशेखरः॥५५॥
रक्ष मामरुणाद्रीश शरण्यशरणागताम्। इति तस्यांभयार्त्तायांक्रोशन्त्यामरुणाचलात्॥५६॥
उदभूत्स्थावराल्लिङ्गाद्व्याधः कश्चिद्धनुर्द्धरः। सन्धाय सायकं चापे समेघगगनद्युतिः॥५७॥
निषादे पुरतो दृष्टे मोहस्तस्य ननाश हि। ततः प्रसन्नहृदयोऽतिनम्रः कमलोद्भवः॥५८॥

उस अप्सरा ने पक्षीरूपी ब्रह्मा को आते देख कर अरुणाचल की शरण लिया। उसने अरुणाचल को सम्बोधित करके कहा—"हे शरण्य! ब्रह्मा-विष्णु भी आपके अन्त को नहीं जान सके। हे अरुणाद्रीश! मेरी रक्षा करें।" रोदनपरायणा भीता कामिनी की ऐसी करुण वाणी सुनकर स्थावर लिंगरूपी अरुणाचल से सहसा एक धनुर्धारी व्याध का आविर्भाव हो गया।

जलधर के समान कृष्णवर्ण आकाशवत् दिप्तिमान् व्याध ने धनुष पर तीर चढ़ाया तथा ब्रह्मा के सामने आ गया। उस व्याध को देखकर ब्रह्मा का मोह नष्ट हो गया। तब प्रसन्न-हृदय कमलयोनि ब्रह्मा ने अतीव विनय के साथ शोणाद्रिपति को प्रणाम किया। वे कहने लगे।।५५-५८।।

नमश्चक्रे शरण्याय शोणाद्रिपतये तदा। सर्वपापक्षयकृते नमस्तुभ्यं पिनाकिने!॥५९॥
अरुणाचलरूपाय भक्तवश्याय शम्भवे!। अजानतां स्वभक्तानामकर्मविनिवर्त्तने॥६०॥
त्वदन्यः कः प्रभुः कर्तुमशक्यं चाऽपि देहिनाम्। उपसंहर मे देहं तेजसा पापनिश्चयम्॥६१॥
अन्यं वा सृज विश्वात्मन्ब्रह्माणंलोकसृष्टये। अथ तस्यवचःश्रुत्वाशिवोदीनस्यवेधसः॥६२॥
उवाच करुणामूर्तिर्भूत्वा चन्द्रार्द्धशेखरः। दत्तः कालस्तव मया पुरैव न निवर्त्त्यते॥६३॥
कं वा रागादयो दोषा न बाधेरन्प्रभुस्थितम्। तस्माद्दूरस्थितोऽप्येतदरुणाचलसञ्ज्ञितम्॥६४॥
भजस्व तैजसं लिङ्गं सर्वदोषनिवृत्तये। वाचिकं मानसं पापं कायिकं वा च यद्भवेत्॥६५॥

ब्रह्मा कहते हैं—"हे शरण्य! हे पिनाकिन्! आप समस्त पापों का नाश करते हैं। आपको प्रणाम। आप अरुणाचल रूप धारण करके भक्तजन के वशीभूत हो गये हैं। आप मंगल बांटते हैं। आपको प्रणाम! हे शम्भु! आप ज्ञानहीन अपने भक्तों को दुष्कर्म से दूर करते हैं। आपके अतिरिक्त और कौन प्रभु हो सकता है? देहीगण के लिए आपका कुछ भी अकर्त्तव्य नहीं है (अर्थात् आप सबकुछ कर सकते हैं)। हे विश्वात्मन्! आप अपने तेज द्वारा मेरे इस कलुषित शरीर का नाश करिये अथवा लोककार्य हेतु अन्य ब्रह्मा की सृष्टि करिये।" दीन कमलयोनि ब्रह्मा का वचन सुनकर चन्द्रार्द्धशेखर शिव ने करुणार्द्र होकर कहा—"हे ब्रह्मन्! पूर्वकाल में मैंने तुमको जो अधिकार दिया था, वह वापस होने लायक नहीं हैं। तुम क्रुद्ध न हो। प्रभुशक्तिसम्पन्न किस व्यक्ति पर राग आदि का आक्रमण नहीं होता? अतः तुम समस्त दोषों के उपशमार्थ दूर रहकर इन अरुणाचल नामक मेरे तैजस लिंग की आराधना करो। देखो! अरुणाचल का दर्शन करने मात्र से मानवगण के वाचिक, मानस एवं कायिक त्रिविध दोष नष्ट हो जाते हैं"।।५९-६५।।

विनश्यति क्षणात्सर्वमरुणाचलदर्शनात्। प्रदक्षिणानमस्कारैः स्मरणैरर्चनैः स्तवैः॥६६॥
अरुणाद्रिरयं नृणां सर्वकल्मषनाशनः। कैलासे मेरुशृङ्गे वा स्वस्थानेषु कलाद्रिषु॥६७॥
सन्दृश्यः कश्चिदेवाहमरुणाद्रिरयं स्वयम्। यच्छृङ्गदर्शनान्नृणां चक्षुर्लाभेनकेवलम्॥६८॥
भवेत्सर्वाघनाशश्च लाभश्च ज्ञानचक्षुषः। मदंशसम्भवो ब्रह्मा स्वनाम्ना ब्रह्मपुष्करे॥६९॥
अत्र स्नातःपुरा ब्रह्मन्मोहोऽगाज्जगतीपतेः। स्नात्वात्वंब्रह्मतीर्थेमांसमभ्यर्च्यकृताञ्जलिः॥७०॥
मौनी प्रदक्षिणं कृत्वा विश्वात्मन्भव विज्वरः॥७१॥
इति वचनमुदीर्य विश्वनाथं स्थितमरुणाचलरूपतो महेशम्।
अथ सरसि निमज्ज्य पद्मजन्मा दुरितहरं समपूजयत्क्रमेण॥७२॥
इममरुणगिरीशमेष वेधा यमनियमादिविशुद्धचित्तयोगः।
स्फुटतरमभिपूज्य सोपचारं गतदुरितोऽथ जगाम चाऽऽधिपत्यम्॥७३॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्ये पूर्वार्धे ब्रह्मपुष्करमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥५॥

प्रदक्षिणा, प्रणाम, स्मरण अथवा स्तव मात्र से यह अरुणाचल मानव के सभी पापों का नाश कर देते हैं। कैलास, मेरुशिखर, कलाद्रि सभी स्थानों में मैं दृश्यमान होता हूं, तथापि अरुणाचल मेरा शरीर है। इसका शृंग देखने से ही मानव के सर्व पाप विदूरित होते हैं। हे ब्रह्मन्! आप मेरे अंश से उद्भूत हैं। अपने नाम से प्रसिद्ध ब्रह्मपुष्कर में स्नान करके जगत्पति का मोह नष्ट हो गया था। हे विश्वात्मन्! अब आप मेरे ब्रह्मतीर्थ में स्नान करके हाथ जोड़कर मेरी पूजा करें तथा मौन धारण कर मेरी प्रदक्षिणा करे। तभी आपका मोहज्वर नष्ट होगा।" विश्वनाथ सदाशिव का यह वचन सुनकर पद्मजन्मा ब्रह्मा ने दुरितहारी ब्रह्मसरोवर में स्नान करके अरुणाचल रूप में स्थित महेश्वर का पूजन किया तथा क्रमशः यम-नियमादि से विशुद्ध देह होकर उपचारों द्वारा महेश्वर की पूजा सम्यक्तः सम्पन्न किया। तदनन्तर दुरितों को दूर करके अपना आधिपत्य प्राप्त किया।।६६-७३।।

।।पञ्चम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

षष्ठोऽध्यायः

अरुणाचल स्थित नाना तीर्थों का वर्णन, वहां सिद्धि प्राप्ति वर्णन, अरुणाद्रि महिमा

गौतम उवाच

पुरा नारायणः कल्पे शयानः सलिलार्णवे। शेषपर्यङ्कशयने कदाचिन्नैव बुध्यत॥१॥
तमसा पूरितं विश्वमप्रज्ञातमलक्षणम्। वीक्ष्य कल्पावसानेऽपि विषेदुर्नित्यसूरयः॥२॥
अहो कष्टमिदं रूपं तमसाविश्वमोहनम्। येन कल्पावसानेऽपि विष्णुर्नाद्याऽपिबुध्यते॥३॥
ज्योतिषः पुरुषं पूर्णमपश्यन्तं सुरा अपि। कथं वा तमसः शान्तिं लभेरन्परिभाविनः॥४॥
इति निश्चित्य मनसा देवदेवमुमापतिम्। चिन्तयामासुरात्मस्थं तेजोराशिंनिरञ्जनम्॥५॥
तत प्रसन्नो भगवांस्तेजोराशिर्महेश्वरः। विश्वावनाय विज्ञप्तः प्रणतैर्नित्यसूरिभिः॥६॥
ततस्तेजोमयाच्छम्भोः स्फुलिङ्गाशुसमुद्भवाः। उदस्तम्भन्त देवानांत्रयस्त्रिंशच्चकोटयः॥७॥
बोधितः सकलैर्देवैः समुत्थाय रमापतिः। प्रभातं वीक्ष्य सकलं मनस्येवमचिन्तयत्॥८॥

गौतम कहते हैं—पूर्वकाल में नारायण क्षीरसागर में शेषनाग की शय्या पर शयनरत थे। दीर्घकाल व्यतीत हो जानेपर भी उनका जागरण नहीं हुआ। तब जगत् अन्धकार से परिपूरित तथा अपरिज्ञात सा हो गया। उस समय विश्व अलक्षण (दृश्यमानता का न होना) से युक्त हो गया। कल्प समाप्त होनेपर भी विश्व की यह अवस्था देखकर देवता अत्यन्त खिन्न थे तथा इन्होंने इस वाक्य से अपनी मनोदशा को प्रकट किया। यथा—"अहा बड़ा कष्ट आ गया है। अन्धकार तो विश्व विमोहन रूप है। कल्प का अवसान हो गया, तथापि विष्णु अब तक प्रबुद्ध नहीं हुए। अब पराभूत सुरगण यह कहने लगे कि "ज्योतिर्मय पूर्ण पुरुष को देखे बिना यह अन्धकार शान्त नहीं होगा।" तदनन्तर उन्होंने तेजोराशि निरंजन देवदेव उमापति का स्मरण किया। सुरगण द्वारा विश्वरक्षणार्थ (आवाहन) विज्ञप्त होकर विश्वपति तेजःराशि भगवान् महेश्वर प्रसन्न हो गये तथा महेश्वर के अंशुरूप स्फुलिङ्ग से ३३ कोटि देवताओं का आविर्भाव हो गया। तब उन देवताओं द्वारा प्रबुद्ध करने पर रमापति नारायण उठे! वे प्रभातकाल देखकर मन ही मन विचार करने लगे।।१-८।।

मया तमसि उद्रेकादकाले शयनं कृतम्। प्रबोधाय परं ज्योतिःस्वयं दृष्टः सदाशिवः॥९॥
जगदुत्पत्तिकृत्यानिस्वयं कर्तुं व्यवस्यति। किं मयाऽत्र पुनःकार्यंब्रह्मणावास्वयम्भुवा॥१०॥
धिङ्मां स्थितमनात्मज्ञं निद्रया हृतचेतसम्। अथवा सर्वकर्तारं शरणं यामि शङ्करम्॥११॥
सर्वदोषप्रशमनं सर्वाभीष्टफलप्रदम्। पवित्रमल्पपुण्यानां दुर्लभं शम्भुदर्शनम्॥१२॥
चिन्तयन्नेवमात्मस्थं ज्योतिर्लिङ्गंसदाशिवम्। प्रणनाम हरिर्भक्त्या देवमष्टाङ्गतोमुहुः॥१३॥
विश्वस्त्रष्टारमोशानं तुष्टाव दुरितच्छिदम्। अथ तेजोमयःशम्भुः शरण्यः शरणागतम्॥१४॥
अनुगृह्य कटाक्षैस्तं समुत्तिष्ठेत्यभाषत। उत्थाय करुणापूर्णं शम्भुं चन्द्रार्द्धशेखरम्॥१५॥

भगवान् ने चिन्तन किया कि "तमोगुण के उद्रेक के कारण मैं अकाल में शयनरत था। मेरे प्रबोधार्थ स्वयं सदाशिवदेव ने परम तेजमय स्वरूप दिखलाया। प्रतीत होता है कि सृष्टि-स्थिति-प्रलय का कार्य सदाशिव स्वयं ही करेंगे। तब तो मेरा तथा स्वयंभु ब्रह्मा का कोई कार्य ही नहीं रह जायेगा। अतः निद्रा के वशीभूत होने से अनात्मज्ञ रूप मुझे धिक्कार है। अब दुःख करने से क्या लाभ? अब मैं सभी दोषों का शमन करने वाले सर्वाभीष्ट फलप्रद सबके कर्त्ता शंकर की शरण लेता हूं। अल्पपुण्य वाले के लिये शम्भु दर्शन दुर्लभ है।" यह विचार करने के पश्चात् श्रीहरि भक्ति के साथ आत्मस्थ ज्योतिर्मय देव सदाशिव को पुनः-पुनः साष्टाङ्ग प्रणाम करने लगे। साथ ही वे दुरितनाशन विश्वस्रष्टा ईशानदेव का स्तवन करने लगे। तदनन्तर शरणागतवत्सल तेजोमय शंभु ने शरणागत हरि को कृपाकटाक्ष से अनुगृहीत किया तथा करुणापूर्ण होकर चन्द्रार्द्धशेखर ने उनसे उठने के लिए कहा। तब हरि उठकर उनका स्तव करने लगे।।९-१५।।

नमस्त्रिभुवनेशाय त्रिमूर्तिगुणधारिणे। त्रिदेववपुषे तुभ्यं त्रिदृशे त्रिपुरद्रहे॥१६॥
त्वमेव जगतामीशो निजांशैर्देवतामयैः। कार्यकारणरूपेण करोपि स्वेच्छया क्रियाः॥१७॥
मां नियुज्य जगद्गुप्तौ परिमोह्य च मायया। न दोषमुत सङ्कल्पंविहातुमपिनेच्छसि॥१८॥
किं करोमि जगन्मूर्त्तौ न्यस्तभारोऽस्म्यहं त्वयि। न दोषमीहसे नूनमकालशयनेन माम्॥१९॥

विष्णु कहते हैं—हे त्रिभुवनेश! सत्त्व-रज-तमोमय त्रिगुणधारी ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मक त्रिदेववपु, त्रिपुरशत्रु, त्रिनयन! आपको नमस्कार! हे शंभु! आप ही जगत्कर्त्ता, आप ही अपने अंश से सम्भूत देवगण के देह में कार्यकारणरूप होकर स्वेच्छा से ही कर्म करते हैं। आपने ही मुझे जगत् रक्षणार्थ नियुक्त किया है तथा अपनी माया से मुझे विमोहित किया है। यह आपका दोष नहीं है। हे प्रभु! यदि आप यह संकल्प त्याग नहीं करते, तब मैं क्या कर सकता हूं? मैं आपकी जगन्मयी मूर्त्ति में अपना समस्त भार न्यस्त करता हूं। मैं इसमें आपको दोष नहीं दे सकता। मैं ही अकाल में सो गया था।।१६-१९।।

हर शम्भो हरेरार्तिमनुतापं समीक्ष्य सः। आदिदेश हरः श्रीमान्प्रायश्चित्तंहरेरिदम्॥२०॥
अरुणाचलरूपेण तिष्ठामि वसुधातले। तस्य दर्शनमात्रेण भविता ते तमःक्षयः॥२१॥
पूर्वस्मै विष्णवे तत्र वरो दत्तोमयापुरा। तदैव तैजसं लिङ्गमरुणाचलसञ्ज्ञितम्॥२२॥
तेजोमयमिदं रूपं प्रशान्तं लोकरक्षणात्। यदग्निमयमव्यक्तमपारगुणवैभवम्॥२३॥
नदीनां निर्झराणां च मेघमुक्ताम्भसामपि। अन्तर्ज्योतिर्मयत्वेन लयस्तत्रैव दृश्यते॥२४॥
अन्धानां दृष्टिलाभेनपङ्गूनांपादसञ्चरैः। अपुत्राणांचपुत्राप्त्यामूकानांवाक्प्रवृत्तिभिः॥२५॥
सर्वसिद्धिप्रदानेन सर्वव्याधिविमोचनैः। सर्वपापप्रशमनैर्यत्सर्ववरदं स्थितम्॥२६॥

श्रीमान् हर ने हरि की आर्त्ति तथा अनुताप को देखकर प्रायश्चित्त का आदेश दिया। हर कहते हैं—"हे हरि! मैं पृथिवी पर अरुणाचल रूप से विराजित हूं। उस अरुणाचल का दर्शन करने मात्र से आपका तमोगुण नष्ट होगा। पूर्वकल्प वाले विष्णु को भी मैंने यही वर प्रदान किया था। तभी से मेरा तैजस लिंग अरुणाचल के नाम से प्रसिद्ध चला आ रहा है। यह जो तेजोमय प्रशान्त रूप आप देखते हैं, यह लोकरक्षार्थ व्यवस्थित है। इस अपरिसीम गुण-वैभवयुक्त अव्यक्त अन्तर्ज्योतिर्मय अग्निवत् तेज में ही नदी, निर्झर, मेघयुक्त जल विलीन हो जाता

है। इसके दर्शन से अन्धे को दृष्टि, पंगु को पगसंचार, अपुत्र को पुत्र तथा मूक को वाक् प्रवृत्ति प्राप्त होती है। ये सर्वसिद्धि प्रदाता, समस्त रोग निवारक, समस्त पाप विनाशक तथा विविध वर प्रदाता हैं।।२०-२६।।

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे शम्भुर्हरिश्चैवारुणाचलम्। आगत्य तप आस्थायशोणाचलमुपास्तन॥२७॥
तमद्रिं परितो दृष्ट्वा सुरान्काननसंश्रयान्। ऋषीणामाश्रमान्पुण्यान्स्थापयामास वै हरिः।
वेदान्साङ्गोपनिषदान्समन्तान्मूर्तिधारिणः॥२८॥
ससर्ज दिव्यरूपाणांशतमप्सरसांकुलम्। नृत्यैर्गीतैश्च वादित्रैस्सेवध्वमितिचादिशत्॥२९॥
स्नात्वा ब्रह्मसरस्यस्मिन्विष्णुःकमललोचनः। प्रदक्षिणंचकारामुमरुणाद्रिं समर्चितम्॥३०॥
अपापः सर्वलोकानामाधिपत्यञ्च लब्धवान्। रमया सहितो नित्यमभिरूपसुरूपया॥३१॥
भास्करस्तेजसां राशिरसुरैरपि पीडितः। ब्रह्मोपदेशादानर्च भक्त्याऽरुणगिरीश्वरम्॥३२॥
निमज्ज्य विमले तीर्थे पावने ब्रह्मनिर्मिते। प्रदक्षिणं चकारैनमरुणाद्रिं स्वयम्प्रभुम्॥३३॥
अशेषदैत्यविजयं लब्ध्वा मेरुप्रदक्षिणम्। लेभे च परमं तेजः परतेजःप्रणाशनम्॥३४॥
दक्षशापानलाक्रान्तः सोमः शिववचोबलात्। अरुणाचलमभ्यर्च्यलब्धरूपोऽभवत्पुनः॥३५॥
अग्निर्ब्रह्मर्षिशापेन यक्ष्मरोगप्रपीडितः। अपूतोऽपि पवित्रोऽभूदरुणाचलसेवया॥३६॥

यह कहकर शंभुदेव अन्तर्हित हो गये। हरि भी अरुणाचल पहुंच कर शंभु की आराधना करने लगे। तदनन्तर हरि ने उस पर्वत को, चतुर्दिक् वन में स्थित सुरगण को देखा तथा वहां ऋषिगण के अनेक पुण्य आश्रमों को स्थापित किया। वहां उपनिषद आदि अंगों के साथ मूर्त्तिमान वेदों की प्रतिष्ठा करके हरि ने सैकड़ों अप्सराओं का सृजन करके उनको आदेश दिया कि तुमलोग नृत्य-गीत-वाद्यों से अरुणाचल की सेवा करो। कमलनयन हरि ब्रह्मसरोवर में स्नान, अरुणाचल का पूजन तथा प्रदक्षिणा करके पापरहित हो गये। तदनन्तर वे निखिल लोकों का आधिपत्य प्राप्त करके सुरूपा रमा के साथ सतत् विहार करने लगे। हे देवी! एक बार तेजराशि भास्कर ने असुरगण से पीड़ित होकर ब्रह्मा के आदेश से अरुणाचलेश्वर की उपासना किया था। उन्होंने भक्तिभाव से ब्रह्मनिर्मित पूततीर्थ में स्नान करके प्रभु अरुणाचल की प्रदक्षिणा करके अन्य के तेज को नष्ट करने वाला परमतेज प्राप्त किया। तदनन्तर मेरुपर्वत की प्रदक्षिणा करते हुए उन्होंने दैत्यों को पूर्णरूपेण जीत लिया। दक्ष शापरूपी अग्नि से आक्रान्त चन्द्र ने शिव के आदेश से अरुणाचल का पूजन करके पुनः अपना पहले वाला रूप प्राप्त किया। एक बार अग्नि ब्रह्मर्षि के शाप से पीड़ित हो गये। तदनन्तर उन्होंने अरुणाचल की सेवा द्वारा अपवित्र अग्निरूप को पवित्र किया।।२७-३६।।

शक्रो वृत्रं बलं पाकं नमुचिं जम्भमुद्धतम्। शिवलब्धवरान्दैत्यान्पुरा हत्वा जगत्पतीन्॥३७॥
पातकैश्च परिक्षीणस्तथा लोकान्तमाश्रितः। शम्भुं प्रसाद्य तपसा शिवेनपरिचोदितः॥३८॥
अरुणाद्रिं समभ्यर्च्य विपापोऽभूत्सुराधिपः। इष्ट्वा च हयमेधेन प्रीणयामासशङ्करम्॥३९॥
लब्ध्वा चेन्द्रपदं शक्रःशतमप्सरसांकुलम्। सेवार्थमादिशच्छ्रीमान्दिव्यन्दुदुभिसेवया॥४०॥
पुष्पमेघान्समादिश्य दिव्याभिः पुष्पवृष्टिभिः। समचयति शोणाद्रिं दिवि नित्यं च वन्दते॥४१॥
शेषोऽपि शोणशैलेशं समभ्यर्च्य शिवाज्ञया। अभजत्कामरूपत्वं महीमण्डलधारकः॥४२॥

अन्ये नागाश्च गन्धर्वाः सिद्धाश्चाऽप्सरसाङ्गणाः।
दिक्पालाश्च तमभ्यर्च्य लेभिरेऽपेक्षितान्वरान्॥४३॥

पूर्वकाल में देवराज इन्द्र ने शिव के वर से बल प्राप्त करके जगत्पति वृत्र, बलासुर, पाक, नमुचि, उद्धत जम्भ आदि असुरों को मारा। इससे वे पापलिप्त हो गये। इस पाप से परिक्षीण होकर उन्होंने अन्य लोकों का आश्रय लिया। इन देवराज ने तप द्वारा शिव को सन्तुष्ट किया तथा उनके आदेश से अरुणाचल की अर्चना करके निष्पाप हो गये। तदनन्तर श्रीमान् देवराज इन्द्र ने अश्वमेध यज्ञ द्वारा शंकर को प्रसन्न करके इन्द्रपद प्राप्त किया। उन्होंने सैकड़ों अप्सराओं को दिव्य दुन्दुभि द्वारा तथा पुष्कर नामक मेघ को दिव्य पुष्प वर्षण द्वारा अरुणाचल की सेवा करने का आदेश दिया तथा स्वयं स्वर्ग में रहकर अरुणाचल की अर्चना तथा वन्दना करने लगे। महीमण्डल (पृथिवीमण्डल) को धारण करने वाले सर्पराज शेष ने भी शिव की प्रसन्नता हेतु शोण शैलेश की उपासना करके कामरूपत्व प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त अन्य नाग, गन्धर्व, सिद्ध, अप्सरा तथा दिक्पालों ने भी अरुणाचल का पूजन करके अभीष्ट वरलाभ किया।।३७-४३।।

देवैरशेषैर्दैत्यादीञ्जेतुकामैः समुद्यतैः। प्रार्थितः सर्वतोऽऽभीष्टवरदोऽरणभूधरः॥४४॥
त्वष्ट्रा विरचिताकार आदित्यस्तेजसा तपन्। ग्रहनाथस्तुशोणाद्रिम्विलङ्घयितुमुद्यतः॥४५॥
रथवाहाः पुनस्तस्य शक्तिहीनाः श्रमं गताः। सोऽपि श्रिया विहीनश्च जातः शोणाद्रितेजसा॥४६॥
नाऽशक्नोच्च दिवं गन्तुं सर्वगत्यांशुमालिनः। स तु ब्रह्मोपदेशेनसमाराध्यारुणाचलम्॥४७॥
प्रीत्या तस्माद्विभोर्लेभे मार्गं व्योम्नो हयाञ्छुभान्।
ततः प्रभृति दिग्मांशुः स हि शोणाख्यपर्वतम्॥४८॥
न लङ्घयति किं त्वस्य प्रदक्षिणपरिक्रमैः। दक्षयागपरिध्वस्ता हीनाङ्गास्त्रिदशाः पुरा॥४९॥

दैत्यों की पराजय की कामना को लेकर महान् द्युतिमान सुरगण ने भी वरप्रद अरुणाचल के चतुर्दिक् अवस्थित होकर अरुणाचल को प्रसन्न करने की कामना किया था। एक बार विश्वकर्मा निर्मित ग्रहनाथ आदित्य अपने तेज से शोणाद्रि का लंघन करने लगे, तथापि शोणपर्वत के तेज से उनके वाहनगण श्रान्त तथा शक्तिहीन हो गये तथा आदित्य की श्री लुप्त हो गयी। अंशुमान् आदित्य के वाहनगण आगे आकाशगमन में समर्थ ही नहीं रह गये। तब सूर्य ने ब्रह्मा के उपदेशानुसार अरुणाचल की आराधना करके, उन विभु से अपनी आकाशगति तथा न थकने वाले अश्वगण को प्राप्त किया। तब से तिग्मतेजा सूर्य शोणाख्य अचल का कभी लंघन नहीं करते। वे केवल प्रदक्षिणाक्रमेण विचरण करते हैं। पूर्वकाल में दक्षयज्ञ में देवगण हीनांग हो गये थे, क्योंकि दक्षयज्ञ का विध्वंस हुआ था।।४४-४९।।

अरुणाचलमाराध्यनवान्यङ्गानिलेभेरे। पूषा दन्तं शिखीहस्तं भगो नेत्रं त्वखण्डितम्॥५०॥
घ्राणंवाणीचलेभेसाशोणाचलनिषेवणात्। भार्गवः क्षीणनेत्रस्सविष्णुहस्तकुशाग्रतः॥५१॥
बलिदत्तावनीदानजलधारानिरोधतः। स तु शोणाचलं गत्वा तपः कृत्वाऽतिदुष्करम्॥५२॥
लेभे नेत्रं च पूतात्माभास्कराख्येगिरौस्थितः। अरुणाचलनाथस्यसेवयासूर्यसारथिः॥५३॥
प्रतर्दनाख्यो नृपतिर्ग्रहीतुं देवकन्यकाम्। अरुणाद्रिपतेर्गानं कुर्वन्तीं सादरोऽभवत्॥५४॥

क्षणात्कपिमुखो जातोमन्त्रिभिश्चोदितोनृपः। प्रत्यर्प्यतांपुनश्चान्याःप्रादादरुणभूभृते॥५५॥
ततश्चारुमुखो जातः प्रसादादरुणेशितुः। सायुज्यमस्मै सकलं दत्तवान्भक्तिभावतः॥५६॥

उस यज्ञ में पूषा, शिखी, भग तथा वाणी प्रभृति देवता हीनाङ्ग होकर अरुणाचल की उपासना करने लगे। फलस्वरूप पूषा ने दांत, शिखी ने हाथ, भग ने अखण्डित नेत्र तथा वाणी ने घ्राण को नवीन रूप में प्राप्त किया। जब बलि वामन को धरती दानार्थ उद्यत था, तब शुक्र ने भृङ्ग में प्रविष्ट होकर दान की जलधारा का निरोध किया था, तब विष्णु ने हाथ में स्थित कुशाग्र से भृङ्गार की जलप्रणाली को मुक्त किया। उन्होंने उस भृङ्ग को एक आंख से विहीन कर दिया। क्षीण नेत्र भार्गव ने शोणाचल जाकर अत्यन्त दुष्कर तप किया तथा नेत्रलाभ किया। अरुणाचल नाथ की सेवा करके सूर्यसारथी ने पवित्र शरीर से भास्कर नामक पर्वत पर निवास किया था। प्रतर्दन नामक राजा ने अरुणार्द्रपति (अरुणाचल पति) की माहात्म्य गाथा का कीर्तन करने वाली देवकन्या को ग्रहण करके क्षणकाल में वानर का मुख प्राप्त किया था। तदनन्तर उन्होंने मन्त्रियों की मन्त्रणा से उस कन्या को वापस किया तथा अन्य अनेक कन्याओं को अरुणाचल की सेवा हेतु प्रदान करके उनकी कृपा से यथेच्छ सुख प्राप्त किया तथा उस राजा की भक्ति से आकृष्ट होकर अरुणाचलेश्वर ने उसे सायुज्य प्रदान किया।।५०-५६।।

अरुणाचलनाथस्य सन्निधौ ज्ञानदुर्बलः। गन्धर्वः पुष्पकाख्यस्तुभक्तिहीनोह्यगात्पुरा॥५७॥
ततो व्याघ्रमुखं दृष्ट्वा गन्धर्वपरिचारकाः। किमेतदिति साश्चर्यं पप्रच्छुस्ते परस्परम्॥५८॥
अथ नारदनिर्दिष्टमवज्ञाफलमात्मनः। बुद्ध्वारुणाद्रिं सम्पूज्य पुनश्च सुमुखोऽभवत्॥५९॥
शिवभूमिरियं ख्याता परितो योजनद्वयम्। मुक्तिस्तत्रप्रमीतानां कदापिविलयो नहि॥६०॥
सप्तर्षयः पुराभूमौशापदोषसमन्विताः। सिषेविरेऽरुणाद्रिम्वै नाथोज्ञात्वाविनिश्चयम्॥६१॥
शापमोक्षं ददौ श्रीमान्सप्तर्षीणां महात्मनाम्। सप्तर्षिभिः कृतं तीर्थं सर्वपापविनाशनम्॥६२॥

अरुणाचल के समीप पुष्कर नामक एक गन्धर्व का निवास था। उसे अरुणाचल के प्रति भक्तिहीन होने के कारण व्याघ्रमुख प्राप्त हो गया। उसके परिचारक विस्मयपूर्वक आपस में इस विषय के कारण विस्मित होकर विचार करने लगे। तब उनको यह ज्ञात हो सका कि यह अरुणाचल की अवज्ञा से घटित हुआ है, अतः उस गन्धर्व ने अरुणाचल के पूजन द्वारा पुनः उत्तम मुख प्राप्त किया। इन अरुणाचल के चतुर्दिक् स्थित २ योजन स्थान शिवभूमि कहलाता है। यहां मृत व्यक्ति मुक्त हो जाता है। पूर्वकाल में शाप दोषयुक्त सप्तर्षिगण ने अरुणाचल की सेवा संशयरहित होकर किया तदनन्तर श्रीमान् सदाशिव ने उन सप्तर्षिगण को मोक्ष प्रदान किया। वहां सप्तर्षिगण ने सर्वपापनाशक तीर्थ स्थापित किया।।५७-६२।।

शोणाचलस्य निकटे दृश्यते पावनं शुभम्। पङ्गुर्मुनिः शोणशैलात्पादौलब्धुंसमागतः॥६३॥
अन्तर्हितप्रार्थितार्थो दारुहस्तपुटे वहन्। जानुचङ्क्रमणव्यग्रः शोणनद्यास्तटं गतः॥६४॥
दारुहस्तपुटे तीर्थे निचिक्षेप पिपासतः। जानुचङ्क्रमणे तस्मिन्धूर्तस्तोयं पिपासति॥६५॥
अथ शोणाचलं प्राप्तःकथं वा दारुहस्तकः। किमेतदिति तं पृच्छन्नाधावत्कलितत्परः॥६६॥
लब्धपादश्च सहसा जगाम च निजालयम्। नाद्राक्षीत्पुरुषं तत्र दारुहस्तौ पुरोगमौ॥६७॥
स्वयं गृहीत्वा चालोक्य ववन्देऽरुणपर्वतम्। ननन्द लब्धचरणो लब्धरूपोमहामुनिः॥६८॥

विस्मयोत्फुल्लनयनैः शिवभक्तैर्महात्मभिः। पूजितो लब्धपादः सञ्जगाम च यथागतम्॥६९॥

यह तीर्थ इस शोणाचल के निकट परिदृश्यमान है। एक लंगड़े मुनि यहां दोनों चरण प्राप्ति हेतु आये थे। दोनों पैर रहित ये मुनि दो वैशाखी पर हाथ रखकर जानु की सहायता से किसी प्रकार चलते शोण नदी के तट तक आये। इन्होंने पिपासा के कारण नदी के तट पर वैशाखी के सहारे जाकर जलपान करना प्रारम्भ किया था। तभी एक धूर्त्त ने उनकी वैशाखी को जल में फेंक कर कहा कि आप शोणाचल आये हैं। यह शोण है जहां पंगु को भी पैरों का लाभ हो जाता है। अतः आपके हाथों में वैशाखी का क्या काम? विवाद में लगा यह धूर्त यह कहकर वहां से लुप्त हो गया। तभी उन मुनि ने अपने दोनों पैर प्राप्त किये तथा चलते-फिरते अपने गृह लौटे। उन्होंने वहां धूर्त्त व्यक्ति को पुनः कहीं नहीं पाया। उन्होंने उस वैशाखी (को जल से निकाल कर) को लेकर अरुणाचल पर्वत का वन्दन किया। वे मुनि पादद्वय की प्राप्ति करके प्रसन्नता से भर गये। वे रूपवान हो गये। शिवभक्त महात्माओं ने उनका पूजन किया। तब पैरों को पाकर मुनि चलते हुए यथास्थान गये।।६३-६९।।

वाली शक्रसुतः श्रीमाञ्छृङ्गादुदयभूभृतः। अस्ताचलस्य शिखरं प्रतिगन्तुं समुद्यतः॥७०॥
आलुलोकेऽरुणगिरिं मध्ये देवनमस्कृतम्। ऊर्ध्वं गन्तुं समुद्युक्तःक्षीणवीर्योऽपतद्भुवि॥७१॥
पित्रा शक्रेण संगम्यचोदितः शोणपर्वतम्। लिङ्गं तैजसमभ्यर्च्यलब्धवीर्योऽभवत्पुनः॥७२॥
नलः पूर्वं समभ्यर्च्य स्वसृष्टामानवप्रियाः। पालयामासधर्मात्मानीतिसारसमन्वितः॥७३॥
इलः प्रविश्य सहसा गौरीवनमखण्डितम्। स्त्रीभावंसमनुप्राप्तःपप्रच्छ स्वं पुरोधसम्॥७४॥
वशिष्ठेन समादिष्टः शोणाद्रिंसमपूजयत्। तपसाऽऽराध्य देवेशंपुनः पुंस्त्वमुपागतः॥७५॥
सोमोपदेशाद्भक्त्याऽथ सस्माराऽरुणपर्वतम्। ईशानुग्रहतोलेभे शापमोक्षंतपोऽधिकः॥७६॥
लेभेच परमं स्थानमप्राप्यममरैरपि। भरतो मृगशावस्यस्मरणादायुषोऽत्यये॥७७॥

इन्द्रपुत्र श्रीमान् बाली उदयगिरि के शृंग से अस्ताचल के शिखर पर जाने का उद्यम कर रहे थे। मार्ग में अरुणाचल को देख कर वे और भी ऊर्ध्वगति से उसको लांघने लगे! इससे वे बलहीन होकर भूपतित हो गये। तदनन्तर उन्होंने पिता इन्द्र की आज्ञा से इस तैजस लिंग रूप अरुणाचल की पूजा करके पुनः अपना बललाभ किया। नीतिसारयुक्त धर्मात्मा नल पूर्वकाल में इस अरुणाचल का पूजन करके प्रजापालन करते थे। राजा इल ने अखण्डित गौरीवन में प्रवेश करके सहसा नारीत्व प्राप्त किया था। उन्होंने पुरोहित वसिष्ठदेव से इसका कारण पूछा। तदनन्तर इल राजा ने वसिष्ठ के आदेश से शोणपर्वत का पूजन किया तथा देवदेव प्रभु शंकर की तप द्वारा आराधना करके पुनः पुरुषत्व प्राप्त किया। तदनन्तर इल ने सोम के उपदेश को पाकर सभक्ति अरुणगिरि का स्मरण करके ईशान शिव की कृपा से शाप से मुक्ति पाई। उनको मृत्यु के पश्चात् देवदुर्लभ परम स्थान प्राप्त हुआ। भरत राजा ने मृत्युकाल में मृगशावक का स्मरण किया था।।७०-७७।।

न मुक्तिं प्राप योगेन मृगजन्मनि सङ्गतः। पत्नीविरहजं दुःखं प्राप्तवानमितं हरिः॥७८॥
पुनर्भृगूपदेशेनशोणाद्रिमिममर्चयन्। अवतारेषु सर्वेषु सर्वदुःखान्यपाकरोत्॥७९॥

इसी कारण वे योग से मुक्ति नहीं पा सके। उनको मृगयोनि मिली। उन्होंने भी अरुणाचल की आराधना करके देवदुर्लभ स्थान प्राप्त किया। हरि ने विषम पत्नियोग (सीतावियोग) के दुःख से क्लिष्ट होकर भृगु ऋषि

के उपदेशानुसार अरुणाचल की अर्चना किया तथा अरुणाचल का स्मरण करके सभी अवतारों में समस्त दुःखों को विदूरित किया।।७८-७९।।

सरस्वती च सावित्री श्रीर्भूमिःसरितस्तथा। अभ्यर्च्यशोणशैलेशमापदो निरतारिषुः॥८०॥
भास्करः पूर्वदिग्भागेविश्वामित्रस्तु दक्षिणे। पश्चिमेवरुणोभागेत्रिशूलं चोत्तराश्रयम्॥८१॥
योजनद्वर्यपर्यन्तेसीमाः शैलेषु संस्थिताः। चतस्त्रो देवतास्त्वेताः सेवन्तेशोणपर्वतम्॥८२॥
स्थिताः सीमावसानेषु शोणाद्रीशमवस्थितम्। नमन्ति देवाश्चत्वारः शिवं शोणाचलाकृतिम्॥८३॥
अस्योत्तरस्मिञ्छिखरे दृश्यते वटभूरुहः। सिद्धवेषः सदैवाऽऽस्ते यस्य मूले महेश्वरः॥८४॥
यस्यच्छायातिमहती सर्वदा मण्डलाकृतिः। लक्ष्यते विस्मयोपेतैः सर्वदा देवमानवैः॥८५॥
अष्टभिः परितो लिङ्गैरष्टादिक्पालपूजितैः। अष्टासु संस्थितैर्दिक्षु शोभते ह्युपसेवितः॥८६॥

सरस्वती, सावित्री, श्री, भूमि तथा समस्त नदियों ने शोणशैलेश की पूजा द्वारा विविध आपत्तियों को निवारित किया था। इसके पूर्व में दिवाकर, दक्षिण में विश्वामित्र, पश्चिम में वरुण तथा उत्तर में त्रिशूल की स्थिति हैं। इस शैल की सीमा दो योजन तक कही जाती है। पूर्वोक्त देवता चतुष्टय (दिवाकर, विश्वामित्र, वरुण तथा त्रिशूल) सतत् यहां रहकर शोण पर्वत की उपासना करते रहते हैं। वे इसी पर्वत के सीमान्त में रहकर शोण शैलाकृति शोणेश्वर शिव को सतत् प्रणाम करते रहते हैं। इसके शिखर के उत्तर की ओर एक वटवृक्ष परिलक्षित होता है। महेश्वर इसके मूल में सिद्धवेश में सदा विराजित रहते हैं। इस वटवृक्ष की मण्डलाकृति महती छाया का दर्शन देवता तथा मानवगण विस्मित होकर करते रहते हैं। इस अरुणाचल के आठ ओर आठ शिवलिंग विद्यमान हैं। अष्टदिक्पाल इन आठ दिशाओं में रहते हुए इन लिंगों का पूजन करते रहते हैं।।८०-८६।।

नृपाणां शम्भुभक्तानां शङ्कराज्ञानुपालिनाम्। अत्रैवमहदास्थानमादिदेवेन निर्मितम्॥८७॥
बकुलश्च महांस्तत्र सदार्थितफलप्रदः। आगमार्थविदा मूले वामदेवेन सेव्यते॥८८॥
अगस्त्यश्च वशिष्ठश्च सम्पूज्याऽरुणभूधरम्। संस्थाप्य लिङ्गे विमले तेपातेतादृशंतपः॥८९॥
हिरण्यगर्भतनयः पुरा शोणनदः पुमान्। अत्र तीव्रं तपस्तप्त्वा गङ्गाभिमुखगोऽभवत्॥९०॥

शिवाज्ञा का पालन करने वाले भक्त राजाओं के लिये स्वयं आदिदेव शिव ने प्रधान-प्रधान सभी स्थानों का निर्माण किया है। यहां एक विशाल बकुलवृक्ष है। यह बकुलवृक्ष सदा प्रार्थित फल प्रदाता है। आगमार्थज्ञ वामदेव सदा इस बकुल मूल का सेवन करते रहते हैं। अगस्त्य तथा वसिष्ठ मुनिद्वय ने अरुणाचल का दर्शन करके यहां लिंगद्वय की प्रतिष्ठा किया तथा तप भी किया। हिरण्यगर्भ के पुत्र शोणनद तीव्र तप द्वारा गंगा में मिल गये।।८७-९०।।

अत्र शोणनदी पुण्या प्रवहत्यमलोदका। वेणा च पुण्यतटिनी परितः सेवतेऽचलम्॥९१॥
वायव्याश्चदिशोभागेवायुतीर्थं चशोभते। तत्र स्नात्वा मरुत्पूर्वंजगत्प्राणत्वमाप्तवान्॥९२॥
उत्तरेऽस्यगिरेस्तीर्थंसुवर्णकमलोज्ज्वलम्। दिव्यसौगन्धिका कीर्णंहंसभृङ्गमनोहरम्॥९३॥
कौबेरं तीर्थमैशान्यामैशान्यं तीर्थमुत्तमम्॥९४॥
तस्यैव पश्चिमे भागे विष्णुः कमललोचनः। स्नात्वा विष्णुत्वमभजत्कमलालालिताकृतिः॥९५॥

नवग्रहाः पुरा तत्र स्नात्वा ग्रहपदं गताः। नवग्रहप्रसादश्च जायते तत्र मज्जताम्॥९६॥
दुर्गा विनायकस्कन्दौ क्षेत्रपालः सरस्वती। रक्षन्ति परितस्तीर्थंबाह्यमेतदनन्तरम्॥९७॥
गङ्गा च यमुनाचैव गोदावरी सरस्वती। नर्मदासिन्धुकावेर्यः शोणः शोणनदी च सा॥९८॥
एता गूढा निषेवन्ते पूर्वाद्याशासु सन्ततम्। नश्यन्त्यः सकलंपापमात्मक्षेत्रसमुद्भवम्॥९९॥

यहां विमल सलिला शोण नदी है तथा अरुणाचल (शोण पर्वत) के चतुर्दिक् पवित्र वेणा नदी प्रवाहित होती रहती है। इस प्रकार वह शोणेश की सेवा करती है। अचल (अरुणाचल) के वायव्य देश में वायुतीर्थ स्थित है। इसमें स्नान करके मरुत्देव ने जगत्प्राणत्व लाभ किया था। पर्वत के उत्तर भाग में कौवेरतीर्थ है। यह स्वर्णकमलवत् उज्ज्वल दिव्य सुगन्धयुक्त तथा हंस एवं मृगगण के विचरण के कारण मनोरम लगता है। ईशान कोण में उत्तम ऐशान तीर्थ है। उसके पश्चिम में कमलनेत्र विष्णु विद्यमान हैं। यहां स्नान करने पर कमला ने ललिताकृति होकर विष्णु को पाया। नवग्रहों ने यहां स्नान करके ग्रहपद आयत्त किया था। यहां स्नान करने वाला ग्रहों की कृपा प्राप्त करता है। दुर्गा, विनायक, कार्त्तिकेय, क्षेत्रपाल तथा सरस्वती, इसके चतुर्दिक् स्थित होकर तीर्थरक्षा करते हैं। तदनन्तर ब्राह्मतीर्थ है। गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु, कावेरी, शोण, शोण नदी पूर्वादिक्रमेण (पूर्व से क्रमशः स्थित होकर) इस ब्राह्मतीर्थ की रक्षा करते हैं। ये निखिल पापों का नाश करते हैं।।९१-९९।।

अन्याश्चसरितोदिव्याः पार्थिव्यश्चशुभोदकाः। उदजृम्भन्तसहसाशोणाद्रीशप्रसादतः॥१००॥
आगस्त्यं दक्षिणे भागे तीर्थं महदुदाहृतम्। सर्वभाषार्थसंसिद्धिर्जायते तत्र मज्जताम्॥१०१॥
अत्रागस्त्यः समागत्य स्नात्वामुनिगणावृतः। अभ्यर्चयतिशोणाद्रिंमासिभाद्रपदेसदा॥१०२॥

शोणपर्वत की कृपा से यहां क्षण-क्षण में शुभ जल वाली दिव्या तथा पार्थिवी अनेक नदियां उद्भूत होती रहती हैं। शोणेश के दक्षिण भाग में महान् दुरितों का हरण करने वाला अगस्त्य तीर्थ है। यहां स्नान करने वाला सभी सिद्धियों को प्राप्त करता है। अगस्त्य अन्य मुनिगण से घिर कर यहां प्रतिमास आते हैं तथा शोण गिरि की पूजा करते हैं। वे भाद्रमास में सदा आते हैं।।१००-१०२।।

वाशिष्ठमुत्तरेभागेतीर्थं दिव्यं शुभोदयम्। सर्ववेदार्थसंसिद्धिर्जायते तत्र मज्जनात्॥१०३॥
अत्र मेरोः समागत्य वशिष्ठो भगवानृषिः। करोत्याश्वयुजे मासि शोणाद्रीशनिषेवणम्॥१०४॥
गङ्गानाम महत्तीर्थं पूर्वोत्तरदिशि स्थितम्। तत्र स्नानाद्धवेन्नृणां सर्वपातकनाशनम्॥१०५॥
गङ्गाद्याःसरितःसर्वाःकार्त्तिकेमासिसङ्गताः। अत्रारुणाद्रिनाथस्यसेवांकुर्वन्तिसादरम्॥१०६॥
ब्राह्मयं नाम महातीर्थमरुणाद्रीशसन्निधौ। तस्योपसङ्गमात्सद्यो ब्रह्महत्यादिनश्यति॥१०७॥
मार्गे मासिसमागत्य ब्रह्मलोकात्पितामहः। स्नात्वा तत्प्रत्यहंदेवमर्चयत्यरुणाचलम्॥१०८॥
पौषेमासि समागत्य स्नात्वा तीर्थे निजैःसुरैः। महेन्द्रःशोणशैलेशमभ्यर्चयतिशङ्करम्॥१०९॥

इसके उत्तरभाग में दिव्य शुभ जल वाला वासिष्ठ तीर्थ है। यहां स्नान करने से समस्त वेदार्थ सिद्ध होता है। भगवान् वसिष्ठ मुनि आश्विन मास में मेरु पर्वत से आकर शोणाद्रि की पूजा करते हैं। महातीर्थ गंगा इसके पूर्वोत्तर में विद्यमान हैं। इसमें स्नान करने से मनुष्य के समस्त पापों का नाश होता है। गंगा आदि नदियां कार्त्तिक

मास में इसके साथ संगत होकर आदरपूर्वक अरुणाचल की सेवा करती हैं। अरुणाचल के निकट जिस ब्राह्मतीर्थ का वर्णन किया गया है, वहां जाने से (स्नानादि से) ब्रह्महत्या पाप का नाश हो जाता है। अग्रहायण मास में पितामह ब्रह्मा ब्रह्मलोक से यहां आकर नित्य स्नान करते हैं तथा अरुणाचल की अर्चना करते हैं। देवराज इन्द्र भी अन्य देवगण के साथ यहां आकर स्नान करते हैं तथा पौषमास में यहां स्नान एवं शोणशैल की पूजा भी करते हैं।।१०३-१०९।।

शैवंनाम महातीर्थं सन्निधौ तत्र वंर्तते। रुद्रो ब्रह्मकपालेन सह तत्र न्यमज्जत।।११०।।
अत्र शम्भुर्गणैः सार्द्धंमाघेमासिप्रसीदति। प्रायश्चित्तानि सर्वाणिनृणां सफलयन्भुवि।।१११।।
आग्नेयमग्निदिग्भागेतीर्थंसौभाग्यदायकम्। अग्निरत्रपुरास्नात्वास्वाहयासङ्गतःसुखी।।११२।।
अनङ्गोऽपि स्मरः स्नात्वा फाल्गुने मासि सङ्गतः।
अभ्यर्च्य शोणशैलेशमभूत्सर्वसुखाधिपः।।११३।।

इस ब्राह्मतीर्थ के निकट ही शैव महातीर्थ है। ब्रह्मकपाल के साथ रुद्र ने यहां स्नान किया था। माघमास में अपने गणों के साथ शम्भुदेव यहां उपस्थित होकर भूतलस्थ मानवगण के पापक्षयकारक व्रतों को सफल कर देते हैं। आग्नेय कोण की ओर सौभाग्यप्रद आग्नेय तीर्थ स्थित है। पूर्वकाल में अग्निदेव ने यहीं स्नान सम्पन्न करके स्वाहा से मिलन किया तथा सुखी हो गये। फाल्गुन मास में यहां स्नान तथा शोणशैलेश का पूजन करके अंगरहित मानव भी अंगवान् हो जाता है तथा समस्त पृथिवी का अधिपति हो जाता है।।११०-११३।।

दिशि दक्षिणपूर्वस्यां वैष्णवं तीर्थमद्भुतम्। ब्रह्मर्षयःसदातत्रवसन्ति कृतकौतुकाः।।११४।।
चैत्रेमासिसमागत्यविष्णुस्तत्ररमापतिः। स्नात्वाऽभ्यर्च्यारुणाद्रीशमभवल्लोकनायकः।।११५।।
सौरंनाम महातीर्थं कौबेरदिशि जृम्भितम्। सर्वरोगोपशान्तिश्चजायते तत्रमज्जनात्।।११६।।
वैशाखेमासि दिनकृत्स्नात्वाऽत्रेशंनिषेवते। वालखिल्यैः समं श्रीमान्वेदैश्चसह सङ्गतः।।११७।।
आश्विनंपावनंतीर्थमीशब्रह्मोत्तरेस्थितम्। आप्लुतौभिषजौदस्त्रौपूजावत्रनिमज्जनात्।।११८।।
अत्राश्विनौसमागत्यस्नात्वाऽभ्यर्च्यचशङ्करम्। दक्षिणे शोणशैलस्यनिकटेवर्त्ततेशुभम्।।११९।।
कामदं मोक्षदं चैव तीर्थं पाण्डवसञ्ज्ञितम्। पुरा हि पाण्डवास्तत्र मज्जनात्क्षितिनायकाः।।१२०।।
अत्र धात्री समागत्यसर्वौषधिफलान्विता। ज्येष्ठेमासिसमं देवैरार्चयच्चारुणाचलम्।।१२१।।
आषाढेमासिसंत्यक्ताविश्वेदेवामहाबलाः। अभ्यर्च्यशोणशैलेशमागच्छन्मखराध्यताम्।।१२२।।
वैश्वदेवं महातीर्थं सोमसूर्योत्तराश्रयम्। विश्वाधिपत्यमतुलं लभ्यते तत्र मज्जनात्।।१२३।।

दक्षिण पूर्व की ओर अत्यद्भुत वैष्णव तीर्थ है। ब्रह्मर्षिगण प्रफुल्ल मन से यहां सतत् निवास करते हैं। रमापति विष्णु ने चैत्र मास में यहां आकर स्नान तथा अरुणाचलेश्वर की अर्चना करके लोकनायकत्व प्राप्त किया। कौवेर दिशा में सौरमहातीर्थ है। इस तीर्थ में स्नान करने वाले के समस्त रोग निर्मूल हो जाते हैं। श्रीमान् सूर्य वैशाख मास में यहां आकर अरुणाचलेश्वर की पूजा करते हैं तथा बालखिल्य और सभी वेदों से युक्त (मिलित) होते हैं। ईश ब्रह्म के (ब्रह्मतीर्थ?) उत्तर में पावन आश्विन तीर्थ स्थित है। वैद्यवर अश्विनीकुमारद्वय इस तीर्थ में स्नान द्वारा आप्लुत हो गये। ये दोनों यहां स्नान तथा शंकर की पूजा करते हैं। शोण पर्वत के दक्षिण में पाण्डवतीर्थ स्थित

है। यह कामद, मोक्षद तथा शुभद है। पूर्वकाल में पाण्डवगण इस तीर्थ में स्नान करके पृथिवी के नायक हो गये। सर्वौषधि-समन्वित धात्री यहां ज्येष्ठ मास में देवताओं के साथ आकर अरुणाचल की पूजा करती हैं। आषाढ़ मास में यहां महाबली विश्वेदेवगण अपनी यज्ञीय पूजा त्याग कर आते हैं तथा शोणेश्वर की पूजा करते हैं। सोम-सूर्य के आश्रयरूपी इस तीर्थ में स्नान करने से अतुलित विश्वपतित्व प्राप्त होता है।।११४-१२३।।

परितो लक्ष्यते तीर्थं पूर्वस्यां दिशि शोभने। अत्रलक्ष्मीः पुरास्नात्वालेभेपुरुषमुत्तमम्।।१२४।।

उत्तरस्यां दिशि पुरा पुण्या स्कन्दनदी स्थिता।
अत्र स्नात्वा पुरा स्कन्दः सम्प्राप्तो विपुलं बलम्।।१२५।।

इस शोणपर्वत के सभी ओर तीर्थ हैं। इनमें से पूर्व दिशा वाले तीर्थ अत्यधिक प्रशंसनीय हैं। इनमें स्नान करके लक्ष्मी ने उत्तम पुरुष विष्णु को प्राप्त किया था। पूर्वकाल में इसके उत्तर में एक पावन स्कन्द नदी स्थित थी। वहां स्नान करके स्कन्दकुमार ने विपुल बल प्राप्त किया था।।१२४-१२५।।

पश्चिमस्यां दिशि ख्याता परा कुम्भनदी शुभा।
अगस्त्यः कुम्भकः कुम्भस्तत्र नित्यं व्यवस्थितः।।१२६।।

गङ्गा च मूलभागस्था यमुना गगनेस्थिता। सोमोद्भवाशिरोभागेसेवन्तेशोणपर्वतम्।।१२७।।
बहून्यपि च तीर्थानि सम्भूतानि समन्ततः। तेषां भेदान्पुरावेत्तुंमार्कण्डेयस्तुनाशकत्।।१२८।।
तपोभिर्बहुभिस्सोऽयंशोणाद्रीशमतोषयत्। प्रार्थयामासचवरंप्रीतात्तस्मान्मुनीश्वरः।।१२९।।

पश्चिम दिशा में सुशोभना श्रेष्ठा विख्याता कुम्भ नदी है। कुम्भयोनि अगस्त्य इस स्थान में नित्य अवस्थान करते हैं। गंगा शोणशैल के मूल में, यमुना गमन देश में तथा सोमोद्भवा नदी शिखर देश में सेवा करती है। इस शैल के चारों ओर अनेक पावन तीर्थ हैं। पूर्वकाल में मार्कण्डेय भी उनकी गणना नहीं कर सके। उन्होंने अनेक तपदृश शोण पर्वताधीश्वर शंभु को सन्तुष्ट किया। उनके प्रसन्न होने पर मुनीश्वर मार्कण्डेय ने उनसे वर हेतु प्रार्थना किया।१२६-१२९।।

मार्कण्डेय उवाच

भगवन्नरुणाद्रीश तीर्थभेदाः सहस्त्रशः। प्रख्याताश्च प्रकाशन्ते दुर्बोधास्त्वल्पचेतसाम्।।१३०।।
कथमेकत्र सान्निध्यं लभेरन्भुवि मानवाः। अपर्याप्तश्च भवति पृथगेषांनिषेवणे।।१३१।।
अन्तर्निगूढतेजास्त्वं गत्वा यःसकलैःसुरैः। आराध्यसेकुरुतथाशोणाद्रिस्पर्शभीरुभिः।।१३२।।
अहं च शम्भुमभ्यर्च्य तपसारुणपर्वतम्।
सर्वलोकोपकारार्थं सूक्ष्मलिङ्गमपूजयम्।।१३३।।
विश्वकर्मकृतंदिव्यंविमानंविविधोत्सवम्। सङ्कल्प्यसकलान्भोगान्नित्यानजनयत्पुनः।।१३४।।
धर्मशास्त्राणिविविधान्यवः पुर्मुनिपुङ्गवाः। शिवकार्याणिसर्वाणि चक्रुर्भक्तिसमन्विताः।।१३५।।
मयाचशम्भुमभ्यर्च्यकृताग्न्याहुतिसम्भवाः। सप्तकन्यावरोरोहाःपूजार्थंविनियोजिताः।।१३६।।
हतशत्रुगणैर्भूपैर्लब्धराज्यैः पुरा नृपैः। प्रत्येकं विविधैर्भोगैः शोणशैलाधिपोऽर्चितः।।१३७।।

इदमनुभववैभवं विचित्रं दुरितहरं शिवलिङ्गमद्रिरूपम्।
अमलमनभिगम्यनामधेयं वरमरुणाद्रिनायकं भजस्व॥१३८॥
अवनतजनरक्षणोचितस्य स्मरणनिराकृतविश्वकल्मषस्य।
भजनममितपुण्यराशियोगादरुणगिरेः कृतिनः परं लभस्व॥१३९॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्ये पूर्वार्धेऽरुणाचलस्थविविधतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥

मार्कण्डेय कहते हैं—हे प्रभो! अरुणाधीश के चतुर्दिक् हजारों तीर्थभेद दृष्टिगोचर होते हैं। अल्पचित्त वालों के लिये ये तीर्थ दुर्बोध्य हैं। हे भगवान्! मानवगण वसुधातल में कैसे इन सब तीर्थों का एक साथ सान्निध्य प्राप्त कर सकेंगे? भूतलस्थ सभी तीर्थों की अलग-अलग सेवा कर सकना अत्यन्त दुरूह है। इसलिए शोणार्द्र स्पर्शभीरु देवताओं ने आपके अन्तर्निगूढ़ तेज की अवधारणा करके जिस प्रकार से आपकी आराधना किया है, उसका प्रतिविधान करिये। मैंने तप द्वारा अरुणाचल रूपी शंकर की आराधना तथा लोकहित की कामना से उनके सूक्ष्मलिंग की पूजा करके विश्वकर्मा निर्मित दिव्य विमान पाया। विविध उत्सव करके अपनी कामनापूर्त्ति की तथा निखिल भोग वस्तुओं को प्राप्त किया।

श्रेष्ठ मुनिगण ने भक्तिभाव से शिवार्चन कार्य सम्पादित करके विविध धर्मशास्त्रों की प्राप्ति की है। मैंने शम्भु-पूजन करके अग्नि में जो आहुति प्रदान किया, उससे सात कन्यायें उद्भूत हो गयीं। मैंने उन सातों कन्याओं को शिवपूजार्थ लगा दिया है। पूर्वकाल में शत्रुहनन करके राज़ाओं ने राज्यलाभ किया तथा उन सभी ने नाना भोगोपहार से शोणशैलेशदेव की पूजा किया। जिनकी विभूति का वर्णन नहीं हो सकता, ऐसे विचित्र, दुरितहारी, निर्मल, अनभिगम्य अरुणाचलेश्वर पर्वत रूप श्रेष्ठ शिवलिंग का भजन करो। जो सदा मनुष्यों की रक्षा में तत्पर रहते हैं, जिनके स्मरण मात्र से समस्त दुरित का निवारण होता है, जिनका भजन करने से अतुलित पुण्य राशि प्राप्त होती है, उन अरुणाचल का आश्रय लेना चाहिये॥१३०-१३९॥

॥षष्टम अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

सप्तमोऽध्यायः

अरुणाचलस्थ नानातीर्थ माहात्म्य, शिव-गौतम संवाद

पार्वत्युवाच

कथमग्निमयं लिङ्गमभिगम्यमभूद्भुवि। प्राणिनामपि सर्वेषामुपशान्तिं कथं गतः॥१॥
तीर्थानामुद्भवः पुण्यात्कथं चारुणपर्वतात्। उपसंहृतसर्वाङ्गः कथं वा वद मेऽचलः॥२॥

पार्वती कहती हैं—भूतलस्थ प्राणीगण किस प्रकार से अग्निमय लिंग लाभ करेंगे? कैसे उनको शान्ति मिलेगी? पुण्यमय अरुणाचल पर्वत से तीर्थों की उत्पत्ति कैसे हो गई? इन अचल (अरुणाचल) ने किस प्रकार से सर्वाङ्ग का उपसंहार किया? हे मुने! कृपया यह सब कहिये।।१-२।।

गौतम उवाच

कृते त्वग्निमयः शैलस्त्रेतायां मणिपर्वतः। द्वापरे हाटकगिरिः कलौ मरकताचलः॥३॥
बहुयोजनपर्यन्तं कृते वह्निमये स्थिते। बहिः प्रदक्षिणं चक्रुः प्रशाम्यति महर्षयः॥४॥
शनैःशान्तोऽरुणाद्रीशःश्रीमानभ्यर्थितःसुरैः। लोकगुप्त्यर्थमत्यर्थमुपशान्तोऽरुणाचलः॥५॥

महर्षि गौतम कहते हैं—समस्त पर्वत सत्ययुग में अग्निमय थे, वे त्रेता में मणिमय, द्वापर में स्वर्णमय तथा कलि में मरकतमय हो गये (मरकत = एक रत्न)। सत्ययुग में अग्निमय पर्वत अनेक योजन अंगविस्तार के साथ स्थित थे। महर्षियों को उनकी बाहर से परिक्रमा करने में अत्यन्त श्रम लगता था। तब देवताओं ने लोकहितार्थ अग्निमय अरुणाचलपति के पास जाकर उनसे शान्त भाव की कल्पना हेतु प्रार्थना किया। देवताओं की बारम्बार प्रार्थना सुनकर अरुणाचल पर्वत ने शान्तभाव धारण किया।।३-५।।

अथ गौरी मुनिं प्राह कथं शान्तोऽरुणाचलः। कथंवा प्रार्थयामासुर्देवेशंत्रिदशाइमम्॥६॥
इतितस्यावचः श्रुत्वागौतमस्त्वभ्यभाषत। प्रशस्यभक्तिमतुलांतस्यास्तत्त्वार्थवेदिनीम्॥७॥

तत्पश्चात् गौरी ने मुनि से पुनः प्रश्न किया—"देवगण ने उनसे शान्त भाव धारण करने हेतु क्यों कहा? अरुणाचल ने कैसे शान्त भाव धारण किया?" तत्वार्थभाषिणी देवी की अतुलित भक्ति देखकर ऋषि गौतम ने उनको प्रत्युत्तर प्रदान किया।।६-७।।

गौतम उवाच

अग्निरूपं पुरा शैलमासादयितुमक्षमाः। पुरा सुराः स्तुतिं चक्रुरभ्यर्च्य क्रतुसम्भवैः॥८॥
भगवन्नरुणाद्रीश सर्वलोकहितावह। अग्निरूपोऽपि संशान्तः प्रकाशस्व महीतले॥९॥

गौतम कहते हैं—पूर्वकाल में अग्निमय अरुणाचल पर जाने में असमर्थ होकर विभिन्न यज्ञों से अर्चना करके देवों में अरुणाचल का स्तव किया। यथा—"हे भगवान्! अरुणाचलाधीश! आप समस्त लोकों का हितसाधन करते हैं, अतएव आप अग्निरूप उपशमित करके शान्तभाव धारण करते हुए महीतल का कल्याण करिये"।।८-९।।

असौयस्ताम्रो अरुण उतबभ्रुः सुमङ्गलः। इतित्वांसकला वेदाःस्तुवन्तिशिवविग्रहम्॥१०॥
नमस्ताम्रायाऽरुणाय शिवाय परमात्मने। वेदवेद्यस्वरूपाय सोमायसुखरूपिणे॥११॥
त्वद्रूपमखिलं देव जगदेतच्चराचरम्। निधानमिव ते रूपं देवानामिदमीक्ष्यते॥१२॥
वर्षतां च पयोदानां निर्झराणां च भूयसाम्। सलिलोपायसंहारो युक्तस्ते युगसंक्षये॥१३॥
अग्नेरापः समुद्भूतास्त्वत्तो हि परमात्मनः। विश्वसृष्टिं वितन्वन्ति विचित्रगुणवैभवात्॥१४॥
शीतोभव महादेव शोणाचल कृपानिधे!। सर्वेषामपि जीवानामभिगम्यो भव प्रभो॥१५॥

"हे प्रभो! आप अपना अग्निवर्ण त्याग कर सुमङ्गल ताम्रवर्ण धारण करें। हे ईश! आप पर आश्रित देवता

आपके कल्याणमय शिवशरीर की आराधना करते हैं। ताम्रारुण रूप परमात्मा शिव को प्रणाम! वेद्यवेद्यरूप सुररूपी सोम को प्रणाम! हे देव! अखिल चराचर जगत् आपका ही रूप है। आपका रूप ही देवगण का निधानरूप परिलक्षित होता है। वर्षणशील समस्त मेघरूपी निर्झर तथा युगक्षय कालीन इनकी जलवृद्धि अथवा जो उपसंहृति होती है, वह सब आपमें ही युक्त है। परमात्मरूप आपसे ही सर्वप्रथम अग्नि उद्भूत होता है। तदनन्तर उसी से जल उद्भूत होकर विचित्ररूप विभूति समन्वित होकर विश्वसृष्टि विस्तार करता है। हे कृपानिधि महादेव! आप शीतल हो जायें। हे प्रभु शोणाचल! आप जीव निर्वाह योग्य हो जायें''।।१०-१५।।

इति स्तुतः सुरैः सर्वैरानतैर्भक्तवत्सलः। सद्यः शीतलतां गच्छन्नाभिगम्योऽभवत्प्रभुः॥१६॥
प्रावर्त्तन्त पुनर्नद्यो निर्झराश्च बहूदकाः। वर्षतामिव मेघानां न जग्राह जलं बहु॥१७॥
तथापि तरुणार्कोद्यत्कालाग्निशतकोटिभिः। समानदीप्तिरभजज्जीवानामभिगम्यताम्॥१८॥
विसृज्य विश्वसलिलं नदीश्च रसविक्षरैः। सम्पूर्यः सकलैर्देवः सर्वदा सम्प्रकाशते॥१९॥
तीर्थानि तानि तान्यासन्परितः प्रार्थनावशात्। दिक्पालानां सुराणां च महर्षीणां महात्मनाम्॥२०॥

भक्तवत्सल प्रभु शिव प्रणत सुरगण द्वारा इस प्रकार से स्तुत होकर वे लोकसमूह के योग्य हो गये। तब वर्षणशील मेघ से गिरते जल का पर्वताग्नि ने शोषण नहीं किया। सदाशिव ने इस प्रकार शीतलता प्राप्त होनेपर भी उदीयमान शतकोटि तरुण सूर्य तथा कालाग्नि के समान किरणों को धारण करके प्राणीगण को पास आने लायक स्वयं को बना लिया। देव शंकर ने भी विश्व का जल तथा नदियों का सृजन किया और उसे रसक्षरण द्वारा परिपूरित करके (पर्वतरूपेण) प्रकाशमान होने लगे। देवता, दिक्पाल तथा महर्षियों की प्रार्थना से समस्त जल पूर्वोक्त तीर्थरूप में परिणत होकर अरुणगिरि के चतुर्दिक् विराजमान हो गया।।१६-२०।।

ब्रह्मोवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा गौरी कुतुकसंयुता। तीर्थानामुद्भवं सर्वं श्रोतुं समुपचक्रमे॥२१॥

ब्रह्मा कहते हैं—गौतम का वाक्य सुनकर कौतुकान्विता देवी गौरी तीर्थों का उद्भव वृत्तान्त और सुनने की अभिलाषा करने लगीं।।२१।।

पार्वत्युवाच

कानि तीर्थानि जातानि शोणाद्रेर्लोकगुप्तये। भगवन्ब्रूहि सकलं तीर्थानामुद्भवं मम॥२२॥
इति तस्यावचःश्रृण्वन्गिरीशात्संश्रुतंपुरा। तीर्थानामुद्भवं सर्वं व्याख्यातुमुपचक्रमे॥२३॥

पार्वती कहती हैं—हे भगवान्! लोकरक्षार्थ शोण पर्वत के शरीर से कौन-कौन तीर्थ उद्भूत हुए? उन तीर्थों की उत्पत्ति कथा को कहिये। उस पुराकाल में गौतम ऋषि देवी का यह वाक्य सुनकर तीर्थों की उत्पत्ति विवरण का वर्णन करने लगे।।२२-२३।।

गौतम उवाच

ऐन्द्रंनाम महातीर्थमिन्द्रभागे समुत्थितम्। तत्रस्नात्वापुराशक्रोब्रह्महत्यांव्यपोहयत्॥२४॥
ब्रह्मतीर्थं पुनर्दिव्यं वह्निकोणेसमुत्थितम्। परस्त्रीसङ्गमात्पापंवह्निःस्नात्वात्रचात्यजत्॥२५॥

याम्यंनाममहातीर्थंयमभागेविजृम्भते। अत्र स्नात्वायमोऽत्याक्षीद्भयं ब्रह्मास्त्रसम्भवम्॥२६॥
नैर्ऋतन्तु महातीर्थं नैर्ऋत्यां दिशि शोभते। भूतवेतालविजयं तत्र स्नात्वर्षयो गताः॥२७॥
पश्चिमे वारुणं तीर्थंदिग्भागेच प्रकाशते। शल्यकोषं पुरालेभेस्नात्वाऽत्रवरुणो निजम्॥२८॥

गौतम ऋषि कहते हैं—इन्द्रभाग में (पूर्व दिशा में) ऐन्द्र नामक तीर्थ समुत्थित है। पूर्वकाल में इन्द्र ने यहां स्नानोपरान्त ब्रह्महत्या पाप से मुक्ति प्राप्त किया था। तदनन्तर अग्निकोण में दिव्य ब्रह्मतीर्थ है। वहां स्नानोपरान्त अग्नि ने परस्त्री संगम जनित पाप से मुक्ति पाई थी। यमभाग (दक्षिण दिशा) में याम्य महातीर्थ स्थित है। यम ने यहां स्नान करके ब्रह्मास्त्र से उत्पन्न भय से त्राण पाया था। नैर्ऋतकोण में नैर्ऋत महातीर्थ शोभित है। ऋषियों ने यहां स्नान करके भूत-बेतालादि पर जय प्राप्त किया था। पश्चिम भाग में वारुण तीर्थ सम्यक्तः प्रकाशमान है। पूर्वकाल में वरुणदेव ने यहां स्नान करके अपना शैल्यकोष प्राप्त किया था।।२४-२८।।

वायव्ये वायवीयं च तीर्थमत्र प्रकाशते। तत्र स्नात्वा ययौ वायुर्जगत्प्राणत्ववैभवम्॥२९॥
उत्तरेचाऽत्र दिग्भागे सोमतीर्थमितिस्मृतम्। तत्र स्नात्वापुरासोमोयक्ष्मरोगादमुञ्चत॥३०॥
ऐशानेचाऽत्रदिग्भागेविष्णुतीर्थमितिस्मृतम्। तत्रस्नात्वापुराविष्णुःश्रियाचसहसङ्गतः॥३१॥
मार्कण्डेयः पुरा देवि प्रार्थयामास शङ्करम्। सदाशिव महादेव देवदेव जगत्पते॥३२॥
बहूनामिह तीर्थानामेकत्र स्यात्समागमः। केनोपायेन भगवन्कृपया वद शङ्कर!॥३३॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा देवदेव उमापतिः। उपायं दर्शयामास मुनये प्रीतमानसः॥३४॥

महेश्वर उवाच

सदोपहारवेलायां सर्वतीर्थसमुच्चयः। सन्निधिं मम सम्प्राप्तः सेवते गूढरूपतः॥३५॥
नान्यदन्वेषणीयं ते तीर्थमत्र महामुने। ममोपहारवेलायांदृश्यते तीर्थसञ्चयः॥३६॥
तस्माद्भक्तियुतैर्नित्यं सर्वतीर्थसमागमः। मुनिभिश्च सुरैःसर्वैर्नैवेद्यान्तेविलोक्यताम्॥३७॥
इति देवि पुरा देवी मार्कण्डेयाय शङ्करः। उपादिशदमेयात्मा तीर्थसन्दर्शनक्रमम्॥३८॥

वायुकोण में वायवीय तीर्थ सम्यक्रूपेण स्थित है। यहां स्नान करने से वायु को जगत् प्राणत्व प्राप्त हो जाता है। उत्तर में सोमतीर्थ है। पूर्वकाल में सोम यहां स्नान करके यक्ष्मारोग से मुक्ति प्राप्त कर सके थे। ईशान दिक् भाग में विष्णुतीर्थ कहा गया है। यहां स्नान करके विष्णु लक्ष्मी के साथ मिलित हुए थे। हे देवी! पूर्वकाल में मार्कण्डेय ने शंकर से प्रार्थना किया था कि "सदाशिव देवदेव जगत्पति महादेव भगवान् शंकर! किस उपाय से यहां अनेक तीर्थों का समावेश हो सकता है?" मार्कण्डेय का प्रश्न सुनकर देवदेव उमापति ने प्रसन्न मन से उनको तीर्थ समावेश का उपाय कहा। भगवान् शिवने कहा कि "मेरी पूजा के समय तीर्थसमूह गूढ़रूप से मेरे सन्निधान में स्थित होकर मेरी सेवा करते हैं। हे महामुने! आप मेरी पूजा के समय भक्तिपूर्वक समस्त तीर्थों के समागम का सन्दर्शन करेंगे। आपको और कुछ नहीं करना है। यह सब तीर्थसमागम अन्य सुर-मुनिगण हेतु ज्ञातव्य नहीं है, तथापि आप इसका दर्शन करें। हे देवी! पूर्वकाल में अमेयात्मा शंकर ने इस प्रकार तीर्थदर्शन क्रम का उपदेश दिया था।।२९-३८।।

गौतम उवाच

सर्वाण्यपि च पुण्यानि तीर्थानिशिवसन्निधौ। सदोपहारवेलायांदृश्यानिकिलमानवैः॥३९॥
व्रतं तीर्थं तपो वेदा यज्ञाश्चनियमादयः। योगाश्च शोणशैलेशदर्शनादृष्टसञ्चराः॥४०॥

निशम्य वाक्यं मुनिपुङ्गवस्य प्रसेदुषी पर्वतराजपुत्री।
अवोचदत्यद्भुतमेतदत्र त्वयोपदिष्टं भुवि तीर्थजालम्॥४१॥
अहं कृतार्था तपतां वरिष्ठ! त्वत्सङ्गमात्सम्प्रति तीर्थजालम्।
प्राप्ता नमस्तेऽस्तु तपोविशेषं शिवोऽपिमेऽत्रादिशदेव कर्तुम्॥४२॥
कथं गिरीशः पुनरत्र देवः स्फुरन्महावह्निवपुर्धरोऽपि।
प्रशान्तरूपः परमेश्वरोऽयमभ्यर्चनीयो भुवि मर्त्यवर्गैः॥४३॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्ये पूर्वार्धेऽरुणाचलस्थविविधतीर्थवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥

गौतम कहते हैं—"हे देवी! मानवगण शिव की पूजा के समय उनके सन्निधान में समस्त पुण्यतीर्थ का दर्शन प्राप्त करते हैं। व्रत, तीर्थ, तप, वेद, यज्ञ, नियम तथा योग—ये सभी शोणशैलेश्वर के दर्शन मात्र से मानव के नेत्रों के समक्ष संचरित होते हैं।" मुनिश्रेष्ठ गौतम का यह वचन सुनकर पर्वतराजपुत्री प्रसन्न होकर कहने लगीं—"हे मुनिवर! तीर्थसमूह के सम्बन्ध में आपने अत्यन्त उत्तम उपदेश प्रदान किया। हे तपस्वीप्रवर! आपका संसर्ग पाकर तथा आपसे तीर्थों की महिमा सुनकर मैं कृतार्थ हो गयी। हे मुनिवर! शिव ने भी मुझको यही आदेश दिया था। अब आपको नमस्कार! हे मुनिवर! प्रदीप्त महा अग्नि के समान शरीर वाले देव परमेश्वर गिरीश किस प्रकार प्रशान्तरूप धारण करके संसार में मनुष्यों के पूज्य हुए थे, पुनः यह श्रवण करने की इच्छा है"॥३९-४३॥

॥सप्तम अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

अष्टमोऽध्यायः

अरुणेश्वर आराधन माहात्म्य, शिव वरदान वर्णन, शिवोपदेश

गौतम उवाच

शृणु देवि पुरावृत्तं कैलासे मेरुधन्विना। आदिष्टस्तीर्थयात्रार्थमहंलिङ्गानिवीक्षितुम्॥१॥
रुद्रक्षेत्रे च केदारे तथा बदरिकाश्रमे। काश्यां पुण्येषु देशेषु तथा श्रीपर्वते शिवे॥२॥
काञ्चीमुख्यासु पुण्यासु पुरीष्वप्यगमं तदा। ऋषिभिर्विबुधैःसार्थैर्गणैर्योगिभिरुत्तमैः॥३॥

स्थापितानि च लिङ्गानि स्वयम्भूनिचदृष्टवान्। तत्रतत्रमहाभागेतीर्थानिशिवसन्निधौ॥४॥
सेवमानः सशिष्योऽहंपर्यटन्पृथिवीमिमाम्। एवंतीर्थानिसर्वाणिगाहमानोव्रतान्वितः॥५॥
तपांसि यज्ञकर्माणिकुर्वन्भूमिं समाचरन्। शिवस्मरणसंयुक्तः शिवलिङ्गानिसन्नमन्॥६॥

गौतम कहते हैं—हे देवी! पूर्ववृत्तान्त सुनें। मेरुधन्वा शंकर द्वारा तीर्थयात्रा तथा लिंगदर्शन का आदेश पाकर मैं रुद्रक्षेत्र, कैलास, केदार, बदरिकाश्रम, पुण्यदेश काशी, श्रीपर्वत, काञ्ची आदि प्रमुख पुण्य पुरियों में गया। इन सब स्थानों में जाकर मैंने ऋषि, देवता, गणदेवता तथा श्रेष्ठ योगियों द्वारा प्रतिष्ठित लिंगों तथा अनेक स्वयम्भू लिङ्गों का दर्शन किया। हे महाभाग! मैंने शिष्यों के साथ समस्त पृथिवी का पर्यटन करके शिवसन्निहित सभी स्थान के तीर्थों का दर्शन तथा सेवन किया। हे देवी! मैंने व्रत धारण करके इन सब तीर्थों में स्नान, तप, यज्ञ करके पृथिवी पर विचरण किया था। उस समय मैंने शिवस्मरणयुक्त होकर सतत् शिव को प्रणाम करते हुए भूलोकस्थ सभी पुण्यस्थलों का दर्शन किया।।१-६।।

सर्वाणि भुवि पुण्यानि देशमेतमुपाश्रयम्। अत्र देवं महादेवमविकेशंत्रियम्बकम्॥७॥
अरुणाद्रिरितिख्यातं पर्वतं लिङ्गमैक्षिषि। अत्र सिद्धा महात्मानो मुनयश्च दृढव्रताः॥८॥
कन्दमूलफलाहारा दृष्टाः शोणाद्रिसेवकाः। अस्तौषमादिमं लिङ्गमरुणाद्रिमयं महत्॥९॥

पृथिवी के सभी पुण्य देशों का दर्शन करके मैं यहां आया। यहां पर मैंने प्रसिद्ध अरुणाचलरूपी साक्षात् लिंगविग्रह महादेव देवदेव अम्बिकापति त्र्यम्बक का दर्शन किया। यहां सिद्धगण तथा दृढ़व्रत महात्मा मुनिगण कन्द-मूल-फल भक्षण करते हुए सतत् शम्भु सेवा करते रहते हैं। यहां मैं इन अरुणाचलरूप आदि महालिंग का स्तव करता था।।७-९।।

आद्येन ब्रह्मणा पूर्वमर्चितं दिव्यचक्षुषा। असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः॥१०॥
इति वेदाः स्तुवन्ति त्वामरुणाद्रीश! सन्ततम्। नमस्ताम्राय चारुणाय शिवाय परमात्मने॥११॥
सर्ववेदस्वरूपाय नित्यायामृतमूर्त्तये। कालाय करुणार्द्राय दृष्टिपेयामृताब्धये॥१२॥
भक्तवात्सल्यपूर्णाय पुण्याय पुरभेदिने। दर्शनं तव देवेश सर्वधर्मफलप्रदम्॥१३॥
भुवि लब्धवतां भूयो नान्यत्कार्यं तपः क्वचित्। भवता कर्मभूरेषावर्ततेऽद्य निरोधिता॥१४॥
प्रार्थयन्ते स्वयं वासान्देवाश्चाऽत्रत्वदाश्रये। कालसंग्रहसञ्जातं फलं लब्धंमयाऽधुना॥१५॥
अन्यत्कृतं तपः सर्वं त्वद्दर्शनफलं मम। ईदृशं तव देवेश रूपमत्यद्भुतोदयम्॥१६॥

हे प्रभो! पूर्वकाल में सर्वप्रथम दिव्यचक्षु ब्रह्मा ने आपका पूजन किया था। आपने पूर्व में अग्निमय रूप में स्थित होकर सबकी पूजा ग्रहण किया था। तदनन्तर देवताओं के स्तव से प्रसन्न होकर आपने ताम्रारुण वर्ण का शरीर धारण किया। तब देवताओं ने आपका सम्यक् स्तव किया था यथा—ताम्र, अरुण परमात्मा शिव को प्रणाम! सर्ववेदस्वरूप, नित्यामृतमूर्त्ति, काल, करुणार्द्र हृदय, दृष्टिमात्र से समुद्रपान करने वाले, भक्तवात्सल्यपूर्ण, पुण्य, पुरभेत्ता शिव को प्रणाम! हे देवेश! आपके दर्शन से समस्त धर्मफल प्राप्त होता है। पृथिवी में जो आपकी कृपा प्राप्त करते हैं, उनको तपस्या आदि कुछ भी करणीय नहीं है। आप आज कर्मभूमि का निरोध करके यहां विराजमान हैं। (अर्थात् कृपा के कारण कर्म की आवश्यकता ही नहीं है) किम्बहुना, देवता स्वर्ग को छोड़कर यहां आपके

आश्रय में ही पड़े रहने की अभिलाषा करते रहते हैं। मैंने कालसंग्रह से उत्पन्न (कालजनित) सभी फलों को प्राप्त कर लिया है। आपके दर्शन मात्र से मेरी सभी तपस्या सफल हो गयी। हे ईश! आपका यह रूप अत्यन्त अद्‌भुद् है।।१०-१६।।

एकमद्रिमयं लिङ्गं न क्वचिद्दृष्टवान्भुवि। सूर्येन्द्वग्निसुसंयुक्तकोणत्रयमनोहरम्।।१७।।
त्रिमूर्तिरूप देवेश दृश्यते ते वपुर्महत्। शक्तित्रयस्वरूपेण कालत्रयविधानकम्।।१८।।
त्रिवेदात्मं त्रिकोणाङ्गं लिङ्गं ते दृष्टमद्‌भुतम्। त्रैलोक्यरक्षणार्थाय विततं रूपमास्थितः।।१९।।

ऐसा अद्‌भुत रूप वाला अरुणाचल लिंग भूतल पर कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। हे त्रिमूर्त्तिरूप देवेश! सूर्य-चन्द्र तथा अग्नि समन्वित त्रिकोणाकृति तथा मनोहर महाशरीर रूप (पर्वत रूप) आपके इस लिंग का मैंने दर्शन किया। हे ईश्वर! भूत-भविष्य-वर्त्तमान रूप कालत्रय विधान करने वाले, शक्तित्रयरूप, वेदत्रयवेद्य, त्रिकोणाकार आपका यह लिंग दृष्टि में आ रहा है। अपने रूप में अवस्थित होकर त्रैलोक्य रक्षणार्थ इसे आपने ही विस्तारित किया है।।१७-१९।।

दृश्यते वसुधाभागे शोणाद्रिरितिविश्रुतः। अजानताञ्च मर्त्यानां समालोकनमात्रतः।।२०।।
वितरत्यखिलान्भोगानव्याजकरुणानिधिः। अर्चया रहितं लिङ्गमन्यं शून्यमुदाहृतम्।।२१।।
इदन्तु पूजितं देवैः सदा सर्ववरप्रदम्। प्रसीद करुणापूर्ण शोणाचल महेश्वर।।२२।।
त्रायस्व भवभीतं मां प्रपन्नं भक्तवत्सलः। द्रष्टव्यं द्रष्टुमेतत्ते रूपमत्यद्‌भुतं महत्।।२३।।
कृतार्थय कृपासिन्धो शरण्य शरणागतम्। इति संस्तूयमानो मे देवः शोणाचलेश्वरः।।२४।।

"वसुधातल में यह जो आपका विख्यात करुणानिधिरूप शोण-शैलात्मक शरीर परिलक्षित हो रहा है, यह अज्ञानी मानवगण को केवल इसके दर्शनमात्र से अखिल भोग प्रदान करने का आपका एक उपक्रमरूप छल ही है। इस लिंग की अर्चना के बिना अन्य सब कार्य निष्फल हो जाते हैं। हे भक्तवत्सल, करुणापूर्ण महेश्वर शोणाचल! संसार भय से भीत मेरी रक्षा करिये। आपका यह महान् पर्वतरूप अत्यद्‌भुद् दृष्ट है तथा देखने योग्य भी है। हे कृपासिन्धु, शरण देने वाले! मुझ शरणागत को कृतार्थ करिये।" इस प्रकार से मैंने देवदेव शोणाचलेश्वर की स्तुति सम्पन्न किया।।२०-२४।।

अदर्शयत्परं रूपं दिव्यमेहीत्युवाच माम्। प्रीतोऽस्मि भवतः स्तोत्रैर्भक्त्या च परया भृशम्।।२५।।
अत्रैव भवतो वासोनित्यमस्तुममान्तिके। सम्पूजय च मां नित्यंभुविभोगैःसनातनैः।।२६।।
तपसा तप सर्वेषां महत्त्वमिह दर्शय। पूर्वं कैलासशिखरे वसन्तं त्वां तपोऽन्वितम्।।२७।।
आदिशं पृथिवीभागे शोणाद्रौपूजयेति माम्। सप्तर्षिपूजितापूजा दिविमे सम्प्रकाशते।।२८।।
तथा नित्यार्चनायुक्त प्रकाशय धरातले। सर्वेषामेव जन्तूनां हिताय त्वं तपोऽधिकः।।२९।।

मेरी इस स्तुति से सन्तुष्ट होकर प्रभु ने अपने दिव्य रूप का दर्शन प्रदान किया तथा मुझे सम्बोधित करके कहा—"मैं तुम्हारे स्तव तथा निरतिशय भक्ति से अत्यन्त प्रसन्न हो गया। तुम मेरे समीप आकर नित्य यहां निवास करके सनातन योग द्वारा पृथिवी पर मेरी नित्यप्रति पूजा करो। तुम तपस्या द्वारा अपना माहात्म्य प्रदर्शित करो। हे तपोनिधि! तुम जब तपस्यान्वित होकर कैलास शिखर पर निवास कर रहे थे, तब भी मैंने तुमको इस भूतलस्थ

शोणपर्वत पर अपनी पूजा का आदेश प्रदान किया था। जिस प्रकार सप्तर्षिगण ने मेरा पूजन करके स्वर्गलाभ किया था, तदनुरूप तुम भी मेरी पूजा करके पृथिवी पर प्रख्यात हो जाओ। तुम पृथिवी पर समस्त प्राणीगण के हितार्थ तप करके श्रेष्ठत्व प्राप्त करो।।२५-२९।।

भुवि मां पूजयाऽर्चाभिरागमोक्ताभिरादरात्। दिव्या मम महापूजा दृश्या हि दिवि दैवतैः॥३०॥
प्रकाशनीया भवता पार्थिवी वसुधातले। माहात्म्यं पूर्वमेवोक्तं यथाऽहमरुणाचलः॥३१॥
स्थितो वसुन्धराभागे मया प्रीतं तु ते भृशम्। ये वा सम्पूजयन्ति स्म पूर्वं मां सुकृताधिकाः॥३२॥
तेभ्यस्त्वमधिकोभूमौप्रकाशस्वशिवाचनम्। इत्यादिष्टो हि देवेशंप्रणम्यभवभक्तिमान्॥३३॥

"तुम पृथिवी पर आगमोक्त विधान से मेरी पूजा इस प्रकार से करो। स्वर्गस्थ देवता भी इस दिव्य महापूजा को आदरपूर्वक देखते हैं। तुम पृथिवी पर ऐसी पार्थिव पूजा का प्रचार करो। मैं वसुन्धरा पर इस पर्वतरूप से अवस्थान करता हूं। मैंने इस अरुणाचल रूप का माहात्म्य पहले ही कह दिया है। मैं तुम पर प्रसन्न होकर यह कहता हूं। अपनी सुकृति के कारण जिन मानवगण ने मेरी पूजा किया है, तुम भी उसी प्रकार पृथिवी पर शिवार्चन करके, उनसे भी श्रेष्ठ हो जाओ।" शंकर द्वारा यह आदेश पाकर मैंने पुनः देवदेव को भक्तिभाव से प्रणाम किया।।३०-३३।।

अन्वपृच्छं दयापूर्णमरुणाद्रीशमानमन्। अनासाद्यमिदं रूपमग्निरूपं महेश्वरम्॥३४॥
कथमद्यार्चयाम्येनं मर्त्यलोकोचितार्चनैः। आदेशमिममन्वर्थं कथं वा कल्पयाम्यहम्॥३५॥
उपायमादिश श्रीमन्नभिगम्योयथाभवान्। इति विज्ञापितोदेवःश्रीमाञ्छोणाचलेश्वरः॥३६॥
अन्वग्रहीदशेषात्मा प्रणतं मां दयानिधिः। अहन्तु सूक्ष्मलिङ्गानि प्रकाशिष्येमहीतले॥३७॥
आगमोक्तक्रियाभेदैः पूजां मे प्रतिपादय। पञ्चावरणसंयुक्तं लिङ्गं मे सूक्ष्ममद्भुतम्॥३८॥
अरुणाद्रीश्वराभिख्यं सम्पूजय तपोबलैः। इत्यादिश्य महादेवः स्वयम्भु विमलं महत्॥३९॥
रूपं मे दर्शयामास सूक्ष्मलिङ्गात्मना शिवः। आलोक्य विमलं लिङ्गं सूक्ष्मं तत्स्वयमुच्छ्रितम्॥४०॥
अशेषाऽऽवरणोपेतं कृतार्थहृदयोऽभवम्। पुनर्व्यज्ञापयं देवं शम्भुमाश्रितवत्सलम्॥४१॥

मैंने भगवान् से पूछा—"श्रीमान्! मैं किस प्रकार से आपके आदेश का पालन करूंगा तथा किस उपाय से आपका दर्शन लाभ करूंगा? उसे भी बतायें।" श्रीमान् देव शोणेश्वर से यह प्रार्थना करने पर अमेयात्मा दयानिधि ने मुझ प्रणत को आदेश दिया—"मैं वसुधातल पर अपना सूक्ष्मलिंग प्रदान करूंगा। तुम आगमोक्त विधि द्वारा मेरे उन सब लिंगों का पूजन करो।" जब सूक्ष्म लिंगात्मा महादेव ने मुझे यह आदेश प्रदान किया, तब उन्होंने अपना विमल श्रेष्ठ स्वयम्भू लिंग मुझे प्रदर्शित किया। मैं भी अशेष आवरणयुक्त उस विमल सूक्ष्म स्वयम्भू लिंग का दर्शन करके कृतकृत्य हृदय हो गया। तदनन्तर मैं उन आश्रितवत्सल शंभु से निवेदन करने लगा।।३४-४१।।

आगमोक्तप्रकाराणामनिरीक्ष्यत्वमागतम्। कथन्तुतवरूपाणांनामभेदान्वियोजितान्॥४२॥
जानीयां करुणामूर्त्तेस्वयमीश्वर मत्प्रभो। पूजकास्तवके वा स्युर्मन्दिरंवाऽत्रकीदृशम्॥४३॥
कथं स्तोत्रं कथं पूजाकेवात्रपरिचारकाः। स्थानरक्षाकथंवास्यात्केवात्मपरिरक्षकाः॥४४॥
कथं वा मानुषी पूजा नित्या सम्वर्धते तव। आगता बहवो देवाःश्रद्धेयंमनुजैःकथम्॥४५॥

प्रसीद परमेशान स्वयमाज्ञापयाखिलम्।
एवं विज्ञापितो देवः शोणाद्रीशः स्वयंप्रभुः॥४६॥

मैंने निवेदन किया—"हे करुणामूर्त्ति! आप स्वयं ईश्वर हैं तथा मेरे प्रभु हैं। हे देव! आगमोक्त विधि तो अनेक प्रकार की हैं। मैं उन सबको सम्यक् रूपेण नहीं जानता। मैं कैसे आप बहुरूपवान् के अनेक नामों से अवगत हो सकूंगा? आपका पूजक कौन है, मन्दिर कैसा है, कैसे पूजा तथा स्तव किया जाये? कौन परिचारक है, पूजास्थल की रक्षा कैसे की जायेगी? शरीररक्षी कौन हैं, कैसे मानुषी पूजा का प्रवर्त्तन होगा? हे परमेशान! अनेक देवगण यह सुनने यहां आये हैं। मानुषी श्रद्धा कैसे सम्पादित होगी? आप प्रसन्न होकर स्वयं समस्त आदेश दीजिये।" स्वयं प्रभु देवदेव ने मुझ मुनिद्वारा प्रार्थना की जानेपर आदेश दिया।।४२-४६।।

आज्ञापयत्तदा देवोविश्वकर्माणमागतम्। सृज त्वं नगरं दिव्यमरुणाख्यंगुणाधिकम्॥४७।
मन्दिरं मम दिव्यञ्च महामणिगणोज्ज्वलम्। तौर्यत्रिकं सपर्याङ्गं तन्मे सर्वं प्रकल्पय॥४८॥
आबभाषे शिवः श्रीमान्नामभेदार्चनक्रमम्। व्रतं च करुणामूर्त्तिररुणाद्रीश्वरःशिवः॥४९॥

प्रभु शोणाद्रिपति ने वहां आये विश्वकर्मा को आदेश दिया—"हे विश्वकर्मन्! विविध गुण से युक्त दिव्य आरण्य नगर का निर्माण करो। वहां महामणियों द्वारा उज्ज्वल मेरे एक दिव्य मन्दिर का निर्माण करो तथा उस मन्दिर के मध्य में मेरे परिचर्याङ्ग रूप तौर्य त्रिक् (?) सन्निवेशित करो।" तदनन्तर श्रीमान् शिव विविध अर्चना भेद तथा उनके क्रम कहने लगे। तत्पश्चात् करुणामूर्त्ति अरुणाचलपति ईश्वर शिवव्रत के विषय में कहने लगे।।४७-४९।।

शृणु तन्मे च ये सृष्टाः पूजार्थं परिचारकाः।
शृणु गौतम सर्वं मे मानुषं पूजनक्रमम्॥५०॥
य एष सर्वलोकानां क्षेमाय प्रथते भुवि। इदं तेजोमयं लिङ्गमतुलं दृश्यते महत्॥५१॥
अरुणाद्रीश्वराभिख्यं पूज्यतां सततं त्वया। शक्तिर्ममोत्तरे भागे पूज्यानित्योदयामुदा॥५२॥
दधती स्थानमाहात्म्यमपीतकुचनामिका। अरुणाचलराजोऽयमविभागः प्रियान्वितः॥५३॥

उस सम्बन्ध में कहते हुए भगवान् शंकर ने बतलाया कि किन परिचारकों की सृष्टि करनी होगी। तत्पश्चात् प्रभु शंकर कहने लगे—"हे गौतम! सर्व प्रकार की मानुषी पूजाक्रम को सुनो। जो निखिल लोकपाल के मंगलार्थ पृथिवी पर प्रख्यात है, तुम मेरे उस तेजोमय अरुणाद्रीश्वर नामक महालिंग का सदा पूजन करो। अपीतकुच नामक शक्ति मेरे उत्तर भाग में अवस्थित होकर मेरे माहात्म्य की वृद्धि कर रही हैं। ये नित्य अभ्युदयप्रदा तथा पूज्या हैं। ये अरुणाचलदेव से सदा प्रियान्वित होकर विराजित रहती हैं। मुझसे (अरुणाचलदेव से) कभी विच्छिन्न नहीं होतीं।।५०-५३।।

उत्सवार्थो महादेवः पूज्यो भोगसुतावृतः। बोधदो भक्तलोकस्यदत्ताभयकरःशिवः॥५४॥
सारङ्गं परशुं बिभ्रत्प्रसन्नवदनः सदा। उमास्कन्देश्वरः शम्भुर्दिव्यरत्नविभूषणः॥५५॥
आभया भासयँल्लोकानविकुण्ठश्रियान्वितः। शक्तेरुत्सवभद्रे च सम्पूज्यासुन्दरेश्वरी॥५६॥
सर्वभूषणसंयुक्ता शृङ्गाररसवर्द्धनी। बालो गणपतिः पूज्यः पुरस्ताद्भूतिनन्दनः॥५७॥

मदन्तिकमलङ्कुर्वन्भक्ष्यैर्भोज्यैर्बहूदयैः। मत्पार्श्वमतिमुञ्चन्ती शोणरेखाञ्चितेक्षणा॥५८॥
उत्सवार्था परा शक्तिरन्तिकस्थैव पूज्यताम्।
मुखराङ्घ्रिपतिः श्रीमान्नृत्यंस्ताण्डवपण्डितः॥५९॥
उत्सवार्थसमभ्यर्च्यश्चक्षुरग्रेऽमृतेश्वरः। शक्तिश्चान्यामहाभागासम्पूज्या भूविनायका॥६०॥

ये भोगसुख से आवृत, उत्सवार्थी, पूज्य महादेव भक्तों के लिए ज्ञानद, अभयदाता, कल्याणकारी शिव हैं। ये सारङ्ग (धनुष) तथा परशुधारी हैं। सर्वदा प्रसन्नमुख रहते हैं। इनके कन्धदेश में उमादेवी विराजित रहती हैं। ये ऐश्वर्य युक्त हैं। ये शम्भु सर्वरत्नभूषित, अकुंठित श्रीसम्पन्न हैं। ये अपनी आभा द्वारा समस्त लोकों को उद्भासित करते हैं। मेरी शक्ति सुन्दरेश्वरी उत्सव भद्रपीठ पर सम्यक्पूजिता होती हैं। ये सर्वभूषणभूषिता तथा शृङ्गारसंवर्द्धिनी हैं। सामने स्थित रहते हैं विभूतियों की वृद्धि करने वाले पूज्य बालक गणपति। ये भक्ष्य-भोज्यादि तथा विविध अभ्युदय द्वारा मेरे समीपवर्त्ती स्थान को शोभित करते हैं। हे गौतम! शोण रेखांकित नेत्रों वाली उत्सवार्था पराशक्ति सतत् मेरे पार्श्व में रहती हैं। ये कभी भी मेरा सान्निध्य त्याग नहीं करतीं। तुम इनका पूजन करो। श्रीमान् अमृतेश्वर मुखरों के अंघ्रिपति मेरे नेत्रों के सामने नृत्य करते हैं तथा ये सतत् पूजित होते हैं। ये ताण्डव पण्डित हैं। मेरी अनेक महामाया शक्तियां हैं, जो पृथिवी की नायिका के रूप में पूज्या हैं।।५४-६०।।

द्वारे नन्दी महाकालः पुरस्तात्सूर्यसन्निभः। भक्तानां ममसर्वेषांपूजनंचापिकल्प्यताम्॥६१॥
दक्षिणेमातरःपूज्याविघ्नशास्तृसमन्विताः। सम्पूज्योनैर्ऋतेकोणेविघ्ननाशोविनायकाः॥६२॥
स्कन्दःशक्तिधरश्चैवैशानकोणेसमर्च्यताम्। लिङ्गानि च मनोज्ञानिपूजनीयान्यनन्तरम्॥६३॥
मन्दिरं मम सम्पूज्य दक्षिणामूर्तिं दक्षिणम्। पश्चिमेविष्णुरूपाङ्कमग्निरूपान्वितंतथा॥६४॥
उत्तरे ब्रह्मरूपाङ्कं पूर्वे सारङ्गभूयुतम्। सर्वदेवगुणोपेतं सर्वशक्तिसमन्वितम्॥६५॥
अपीतकुचनाथायाः सर्वशक्तिसमन्वितम्।
मन्दिरं गुरु सम्पूज्य दिक्पालकवधूवृतम्॥६६॥
मन्दिरस्याऽवनार्थाय देवीर्वैभवनायकाः॥६७॥
क्षेत्रपालं तु सम्पूज्य सर्वावरणसंयुतम्। पुत्रस्य त्राणमायाता पूज्यारुणगिरीश्वरी॥६८॥
काली बहुविधाश्चान्या देवता विधिपालकाः। उत्सवा विविधाः कल्प्याः प्रतिमासमहोदयाः॥६९॥

द्वार के सामने सूर्यवत् प्रभायुक्त महाकाल तथा नन्दी रहें। हे मुने! इन सब मेरे भक्तों की भी पूजा करनी चाहिये। मेरे दाहिनी ओर विघ्नगण समन्वित पूज्या मातृगण हैं। नैर्ऋत कोण में विघ्ननाशन विनायकगण तथा ईशान कोण में शक्तिमान् शक्तिधारी कार्त्तिकेय हैं। इनकी भी सम्यक् पूजा करे। तदनन्तर मेरे मनोज्ञ सभी लिंग पूज्य हैं। तदनन्तर दक्षिण की ओर दक्षिणामूर्त्ति की, पश्चिम में अग्निरूप समन्वित क्रोड़ावस्थित विष्णुमूर्त्ति की, उत्तर में क्रोड़ावस्थित ब्रह्ममूर्त्ति की, पूर्व में सारंगयुक्त मुक्ति समन्वित सर्वदेवगुणयुक्त सर्वशक्ति समन्वित अपितकुचनाथ की पूजा करे। ये मन्दिर में स्थित हैं। यह मन्दिर बृहद् तथा दिक्पालवधुओं से घिरा है। मन्दिर की रक्षा के लिए वैभव नायिका देवता विराजित रहते हैं। तदनन्तर सर्वावरणसंयुक्त क्षेत्रपाल मन्दिर हैं। अरुणागिरीश्वरी क्षेत्रपाल पूजन द्वार

वे पुत्र का परित्राण साधन करती हैं। यहां अनेक प्रकार की काली हैं। ये सभी काली विधिपालिका हैं। इस समस्त देवालय में प्रति मास विविध मंगलमय उत्सव का अनुष्ठान करे।।६१-६९।।

सृजस्व कन्यका दिव्याः शिवदेवार्हणे रताः। नृत्तगीतकलाभिज्ञारूपसौभाग्यसंयुताः।।७०।।
चारुविभ्रमसंयुक्ताः कामदा नित्यपावनाः। शिष्यानादिश वेदज्ञान्सदाचारसमुज्ज्वलान्।।७१।।
दिव्योपचारसंसिद्ध्यैसुभगाञ्छुद्धचेतसः। दीक्षितान्विमलाञ्छुद्धाञ्छैवागमविशारदान्।।७२।।
शैलाचारप्रसिद्ध्यर्थमादिशाऽभ्यर्चने मम।
मार्दलाञ्छाङ्खिकान्वैणान्स्तालिकान्वेणुवादकान्।।७३।।
शौल्बिकान्सृज सद्विद्यांश्चतुर्विद्याविशारदान्।
क्षत्रियान्विविधान्वैश्याञ्छूद्रांश्च शिवसम्मतान्।।७४।।
चत्वारश्चमठाःकल्प्याश्चतुर्दिक्तीर्थवासिनाम्। मुनीनांशिवभक्तानांनिराशानां निवासतः।।७५।।

हे मुनिवर! तुम शिवपूजारता, नृत्यगीत कलाविद्, रूप सौभाग्य सम्पन्न, मनोज्ञविलास समन्विता, कामदा नित्यपावना कन्याओं का सृजन करो। वेदज्ञ, सदाचार से समुज्ज्वल, शुद्धचित्त, दिव्य उपचार, आहरण (लाने) वाले, सुभग, शुद्धचित्त, दीक्षित, विमल, शुद्धा, शिवागमविशारद लोगों को मेरी पूजा ग्रहणार्थ आदेश दो। मार्दल, शांखक, चैण, तालिका, वेणुवादक तथा शौलिकगणों का तथा अन्य चतुर्विद्याविशारदों का सृजन करो। इसके अतिरिक्त क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रगण का सृजन करो तथा तीर्थवासी निवासी शिवभक्तों के आश्रयार्थ चारों ओर चार मठों की प्रतिष्ठा करो।।७०-७५।।

तेषु स्थिता मुनीन्द्रा मे रक्षन्तुशिवपूजनम्। भिक्षमाणाःपुनःशैवाभक्ताःपाशुपताअपि।।७६।।
पालयन्तुसदाऽन्येचयुक्ताःकापालिकाअपि। सर्वेषांजायमानानांजातानांसंभविष्यताम्।।७७।।
अव्याहताज्ञमारक्ष्यमिदं स्थानं महीभृताम्। बकुलश्च महानत्रदृश्यतेदिव्यभूरुहः।।७८।।
अत्र भक्ता वितन्वन्तु शिवकार्यविनिश्चयम्।
अत्र मे दीयते द्रव्यमप्रेक्षितपराप्तये।।७९।।
यत्तदक्षय्यफलदमारक्ष्यं शिवसेवकैः। भक्तैर्विज्ञापितं चार्थं श्रोष्यामि पुरतः स्थितैः।।८०।।
सर्वंसम्पादयिष्यामि तेषांचित्तानुकूलकम्।
अपराधसहस्त्राणि क्षंस्येमांस्वर्चतामहम्।।८१।।

मुनीन्द्रगण इन मठों में स्थित रहकर मेरी पूजा आदि नियम पालन करेंगे। भिक्ष्यमाण (भिक्षाजीवी) शिवभक्त, पाशुपत, यहां तक कि कापालिक गण भी युक्त मन से मेरा पूजन करें। जिन सब का जन्म हो गया, जन्म ले रहे हैं अथवा जन्म लेंगे, वे सब राजा मेरे आदेश का अव्याहत रूपेण पालन करें। यहां जो एक महान् बकुल वृक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है, उस स्थान पर मेरे भक्त शिवकार्य विनिश्चय करें। फल की आकांक्षा से रहित होकर जो कुछ भी मेरे उद्देश्य से दान किया जायेगा, वह अक्षय होगा तथा वह शिवसेवकगण द्वारा रक्षित होगा। मेरे सम्मुख भक्तगण जो कुछ कहते हैं, उसे मैं सुनकर उनके मनोनुकूल फल देता हूं। मैं उनके हजारों अपराधों को क्षमा कर देता हूं।।७६-८१।।

आगमोक्ता च पूजेयं मानुषी निर्मिता यतः। ग्रहीष्ये तामहंसर्वागमर्चांसर्वागमोदिताम्॥८२॥
सङ्कल्पितंभवेत्कर्मप्रीतिकृन्ममसेवकैः। आगमार्थानशेषांस्त्वमालोक्यसमयोचितान्॥८३॥
विधायाभ्यर्चनाभेदाँल्लोकरक्षाकृते मुने। कर्तव्या महती पूजा पौर्णमास्यान्तुसादरम्॥८४॥

यह जो आगमोक्त मानुषी पूजा विहित है, वह सर्वागमसम्मता पूजा मैं ग्रहण कर लेता हूं। मेरे भक्तों द्वारा संकल्पित कर्म मेरे लिए प्रिय होता है। हे मुनिवर! समयोचित अनेक आगममार्ग को देखकर लोकविधि रक्षणार्थ विविध अर्चना भेद का पालन करते हुए पौर्णमासी के दिन आदर के साथ मेरी महती पूजा करनी चाहिये॥८२-८४॥

सत्राणि विविधान्यत्र कर्तव्यानि सहस्त्रशः।
विविधानि च दानानि शक्त्या चैवाऽस्य सन्निधौ॥८५॥
अव्युच्छिन्नप्रदीपस्य दातारो मम सन्निधौ। तेजोमयमिदं रूपं मम यान्ति न संशयः॥८६॥
जलजं तरुगं पुष्पं कक्षजं च लतोद्भवम्। ददते ये च भक्त्या मे ते भविष्यन्ति भूभृतः॥८७॥
तेषांपुरोगतः साक्षादहंजेष्यामिविद्विषः। यस्ययस्य तु देशस्य योयोराजातपोधिकः॥८८॥
तत्तत्समर्द्धितं रम्यं सम्भवं ददतेऽत्र मे। मत्सन्निधिमुपागत्यदुरात्मानोऽपिभूमिपाः॥८९॥
शिवभक्ता भृशं पूर्णा भविष्यन्ति न संशयः॥९०॥
इति शम्भुमुखोत्थितं वचः समुपश्रुत्य विधूतकल्मषः।
अहमानतवान्व्यजिज्ञपं कुतुकाच्छोणगिरीश्वरं शिवम्॥९१॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्ये पूर्वार्धेऽरुणेश्वराराधनामाहात्म्यवर्णनं नामाऽष्टमोऽध्यायः॥८॥

तुम इस अरुणाचल के पास विविध हजारों-हजार यज्ञ तथा शक्ति के अनुसार दान विधिवत् करो। मेरे सन्निधान में जो सतत् प्रज्वलित दीपक दान करते हैं, वे निःसन्दिग्ध रूप से मेरे इस तेजोमय रूप को प्राप्त होते हैं। जो भक्तिभाव से जलज, वृक्षज, पुष्प अथवा कक्षज, लता से उद्भूत् पुष्प प्रदान करते हैं, वे राजा होते हैं। मैं उनके सम्मुख आकर उनके शत्रुकुल का नाश करता हूं। जिस-जिस देश में, जो-जो राजा तपोबल से बली हो गया है, वह अपनी-अपनी समृद्धि के अनुसार रम्य वस्तुओं को मुझे प्रदान करे। नितान्त दुरात्मा राजा भी मेरे पास आने पर सम्पूर्णतः शिवभक्त हो जाता है। हे देवी! महादेव के मुख से निकले इन वाक्यों को सुनकर मैं निष्पाप हो गया। मैंने उनको प्रणाम करके पुनः उन शोणाद्रिपति से प्रश्न पूछा॥८५-९१॥

॥अष्टम अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

नवमोऽध्यायः

शिव के मुख्य नाम, अरुणाद्रि प्रदक्षिणा माहात्म्य, उपचार फल वर्णन

गौतम उवाच

भगवन्नरुणाद्रीशनामधेयानितेभृशम्। विशेषाच्छ्रोतुमिच्छामिस्थानेऽस्मिन्सुरपूजिते।।१।।

गौतम कहते हैं—हे भगवान् अरुणाधीश! आपके अनेक नाम हैं। मैं इस सुरपूजित स्थान पर अवस्थित होकर विशेष रूप से वह सब नाम सुनने की इच्छा रखता हूं।।१।।

महेश्वर उवाच

नमामि शृणु मे ब्रह्मन्मुख्यानिद्विजसत्तम। दुर्लभान्यल्पपुण्यानां कामदानिसदाभुवि।।२।।
शोणाद्रीशोऽरुणाद्रीशो देवाधीशो जनप्रियः। प्रपन्नरक्षको धीरः शिवसेवकवर्धकः।।३।।
अक्षिपेयामृतेशानः स्त्रीपुम्भावप्रदायकः। भक्तिविज्ञप्तिसन्धाता दीनबन्दिविमोचकः।।४।।
मुखराङ्घ्रिपतिः श्रीमान्मृडो मृगमदेश्वरः। भक्तप्रेक्षणकृत्साक्षी भक्तदोषनिवर्तकः।।५।।
ज्ञानसम्बन्धनाथश्च श्रीहलाहलसुन्दकः। आहवैश्वर्यदाता च स्मर्तृसर्वाघनाशनः।।६।।
व्यत्यस्तनृत्यद्ध्वजधृक्सकान्तिर्नटनेश्वरः। सामप्रियः कलिध्वंसी वेदमूर्तिर्निरञ्जनः।।७।।
जगन्नाथो महादेवस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तकः। भक्तापराधसोढा च योगीशो भोगनायकः।।८।।
बालमूर्त्तिः क्षमारूपी धर्मरक्षो वृषध्वजः। हरो गिरीश्वरो भर्गश्चन्द्ररेखावतंसकः।।९।।
स्मरान्तकोऽन्धकरिपुःसिद्धराजो दिगम्बरः। आगमप्रियईशानोभस्मरुद्राक्षलाञ्छनः।।१०।।
श्रीपतिः शङ्करः स्त्रष्टा सर्वविद्येश्वरोऽनघः। गङ्गाधरः क्रतुध्वंसो विमलो नागभूषणः।।११।।
अरुणो बहुरूपश्च विरूपाक्षोऽक्षराकृतिः। अनादिरन्तरहितः शिवकामः स्वयम्प्रभुः।।१२।।
सच्चिदानन्दरूपश्च सर्वात्मा जीवधारकः। स्त्रीसङ्गवामसुभगो विधिर्विहितसुन्दरः।।१३।।
ज्ञानप्रदो मुक्तिदश्च भक्तवाञ्छितदायकः। आश्चर्यवैभवः कामी निरवद्यो निधिप्रदः।।१४।।
शूली पशुपतिः शम्भुः स्वयम्भुर्गिरिशो मृडः। एतानि मम मुख्यानि नामान्यत्र महामुने।।१५।।

महेश्वर कहते हैं—"हे ब्रह्मन्, द्विजसत्तम! इस पृथिवी पर अल्प पुण्यात्माओं हेतु दुर्लभ मेरे कामप्रद नामों को सुनें। वे नाम ये हैं—शोणाद्रीश, अरुणाद्रीश, देवाधीश, जनप्रिय, प्रपन्न रक्षक, धीर, शिवसेवक वर्द्धक, अक्षिपेयामृतेशान, स्त्री-पुं भाव प्रदायक, भक्तिविज्ञप्ति संधाता, दीनबन्दीविमोचक, मुखरांघ्रिपति, श्रीमान्, मृड, मृगमदेश्वर, भक्तप्रेक्षणकृत्, साक्षी, भक्तदोष निवर्त्तक, ज्ञानसम्बन्धनाथ, श्रीहलाहल सुन्दक, आहवैश्वर्यदाता, स्मर्त्तृसर्वाघनाशन, व्यत्यस्तनुत्यध्वनधृक्, सकान्ति, र्नटनेश्वर, सामप्रिय, कलिध्वंसी, वेदमूर्त्ति, निरञ्जन, जगन्नाथ, महादेव, भक्तापराधसोढ़ा, योगीश, भोगनायक, बालमूर्त्ति, क्षमारूपी, धर्मरक्षक, वृषध्वज, हर, गिरीश्वर, भर्ग,

स्मरान्तक, अन्धकरिपु, सिद्धराज, दिगम्बर, आगमप्रिय, ईशान, भस्मरुद्राक्षमालक, श्रीपति, शंकर, स्रष्टा, सर्वविद्येश्वर, अनघ, गंगाधर, केतुध्वंसी, विमल, नागभूषण, अरुण, बहुरूप, विरूपाक्ष, अक्षराकृति, अनादि, अन्तरहित, शिवकाम, स्वयंप्रभु, सच्चिदानन्दरूप, सर्वात्मा, जीवधारक, स्त्रीसङ्गवाससुभग, विधि, विहितसुन्दर, ज्ञानप्रद, मुक्तिदाता, भक्तवांछितदायक, आश्चर्यवैभव, कामी, निरवद्य, निधिप्रद, शूली, पशुपति, शंभु, स्वयंभु, गिरीश, मृड। हे महामुने! ये सब मेरे मुख्य नाम हैं।।२-१५।।

अन्यानि दिव्यनामानि पुराणोक्तानि संस्मर। प्रदक्षिणेनमांनित्यंविशेषात्त्वं समर्चय।।१६।।
प्रदक्षिणप्रियो यस्मादहं शोणाचलाकृतिः। इत्याज्ञप्तो महादेवमर्चयन्नरुणाचलम्।
अविमुञ्चन्निहावासं कृतवानहमद्रिजे!।।१७।।

"अन्य दिव्य नामों को मैंने पहले कहा था। तुम उन सबका स्मरण करो तथा प्रदक्षिणा करके नित्य मेरी पूजा करो, क्योंकि मैं शोणाचलरूपी विग्रहधारी प्रदक्षिणा प्रिय हूं। हे गिरिकुमारी! मैं इस प्रकार से अभिहित होकर अरुणाचलरूपी महादेव की पूजा करते यहां नित्य निवास करता हूं। तब से मैंने इस स्थान का त्याग नहीं किया"।।१६-१७।।

गौर्युवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ गौतमार्य्य मुनीश्वर!। प्रदक्षिणस्य माहात्म्यं ब्रूहि मे शोणभूभृतः।।१८।।
कस्मिन्काले कथं कार्यं कैर्वा पूर्वं प्रदक्षिणम्। कृतं शोणाद्रिनाथस्य प्राप्तमिष्टं परं पदम्।।१९।।

तब गौरी ने यह बात सुनकर कहा—"आपने तो शोणपर्वतेश्वर का इष्ट परमपद प्राप्त कर लिया है। आप सर्वधर्मज्ञ गौतमार्य मुनीश्वर हैं। आप कृपया शोणपर्वत प्रदक्षिणा का माहात्म्य कहिये। किस समय कब यह प्रदक्षिणा करनी चाहिये"?।।१८-१९।।

ब्रह्मोवाच

इति पृष्टो मुनिःप्राह गौतमः शैलकन्यकाम्। श्रूयतां देविमाहात्म्यमादिशन्मे महेश्वरः।।२०।।

ब्रह्मा कहते हैं—महर्षि गौतम ने यह सुनकर शैलपुत्री गौरी से कहा—हे देवी! महेश्वर ने मुझसे जिस प्रकार अपना माहात्म्य कहा है, उसे सुनिये।।२०।।

महादेव उवाच

अहं हि शोणशैलात्मा प्रकाशो वसुधातले।।२१।।
परितो मां सुराः सर्वे वर्तन्ते मुनिभिः सह।।२२।।
यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च। तानि तानिविनश्यन्तिप्रदक्षिणपदेपदे।।२३।।
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयायुतानि च। सिद्ध्यन्ति सर्वतीर्थानि प्रदक्षिणपदे पदे।।२४।।
अपि प्रहीणस्य समस्तलक्षणैः क्रियाविहीनस्य निकृष्टजन्मनः।
प्रदक्षिणीकृत्य शशाङ्कशेखरं प्रयास्यतः कस्य न सिद्धिरग्रतः।।२५।।
समस्ततीर्थाभिगमेषु पुण्यं समस्तयज्ञागमधर्मजातम्।
अवाप्यते शोणमहीधरस्य प्रदक्षिणाप्रक्रमणेन सत्यम्।।२६।।

पदेनैकेन भूलोकं द्वितीयेनान्तरिक्षकम्। तृतीयेन दिवं मर्त्यो जयत्यस्य प्रदक्षिणे॥२७॥
एकेन मानसं पापं द्वितीयेन तु वाचिकम्। कायिकन्तु तृतीयेन पदेन क्षीयते नृणाम्॥२८॥
पातकानि च सर्वाणि पदेनैकेन मार्जयेत्। द्वितीयेन तपःसर्वंप्राप्नोत्यस्यप्रदक्षिणात्॥२९॥
पर्णशाला महर्षीणांसिद्धानाञ्चसहस्त्रशः। सुराणाञ्चतथाऽऽवासाविद्यन्तेऽत्रसहस्त्रशः॥३०॥
अत्र सिद्धः पुनर्नित्यंवसाम्यग्रेसुरार्चितः। ममान्तरे गुहा दिव्याध्यातव्याभोगसंयुता॥३१॥

महादेव कहते हैं—मैं वसुधातल में जबतक शोण पर्वतरूपेण प्रकाशित रहता हूं, मुनिगण के साथ सुरगण मेरे चतुर्दिक् विराजित रहते हैं। अतः इस शोणाचल की प्रदक्षिणा करने से प्रति पद पर जन्मान्तर कृत समस्त पापों का नाश हो जाता है। तब पद-पद पर सहस्त्र अश्वमेध, १०००० वाजपेय तथा निखिल तीर्थ की प्राप्ति होती है। समस्त शुभलक्षणरहित क्रियात्यागी तथा निकृष्ट जन्मा व्यक्ति भी शशांकशेखर की प्रदक्षिणा तथा उनका दर्शन पाकर कौन सी सिद्धि नहीं पा लेता? मैं सत्य कहता हूं। समस्त तीर्थाटन का जो पुण्य है, निखिल यज्ञ तथा आगमधर्म का जो पुण्य है, एकमात्र शोणपर्वत की प्रदक्षिणा तथा सम्यक् परिक्रमा से प्राप्त किया जा सकता है। इसकी प्रदक्षिणा करने से मानव प्रथम पद में भूलोक, द्वितीय पद में अन्तरिक्ष, तृतीय पद में स्वर्गलोक जय करता है। इस प्रदक्षिणा के एक पदक्षेप मात्र में मानस पाप, द्वितीय में वाचिक पाप तथा तृतीय में कायिक पाप का नाश हो जाता है। इसके अतिरिक्त इस प्रदक्षिणा व्यापार के प्रथम पादक्षेप में मानव का समस्त तप सिद्ध हो जाता है। यहां सिद्ध तथा महर्षिगण की सहस्त्रों पर्णशाला तथा देवताओं के निवास स्थान विद्यमान हैं। यहां सुरपूजित सिद्धगण में यह होड़ लगी रहती है कि मैं पहले रहूंगा, मैं पहले यहां निवास करूंगा। मेरे अरुणाचल रूप देह में भोग संयुक्त तथा ध्यान के योग्य दिव्यातिदिव्य गुफायें भी विद्यमान हैं।।२१-३१।।

अग्निस्तम्भमयं रूपमरुणादिरिति श्रुतम्। ध्यायल्लिङ्गं मम बृहत्मन्दंकुर्यात्प्रदक्षिणम्॥३२॥
अष्टमूर्तिमयं लिङ्गमिदं यैस्तैजसं भृशम्। ध्यात्वा प्रदक्षिणं कुर्वन्पातकानि विनिर्दहेत्॥३३॥
न पुनःसम्भवस्तस्य यःकरोतिप्रदक्षिणाम्। शोणाचलाकृतेर्नित्यंनित्यत्वंध्रुवमश्नुते॥३४॥

मेरे विख्यात अग्निस्तम्भ रूपी अरुणाचल पर्वत रूप बृहद् लिंग का ध्यान करते हुए इसकी प्रदक्षिणा की जानी चाहिये। मेरे अष्टमूर्त्तिमय इस तैजस महालिंग का ध्यान करके प्रदक्षिणा करने पर वह प्रदक्षिणा करने वाला पुनर्जन्म चक्र में पुनः नहीं पड़ता। उसका नित्यत्व अखण्डित हो जाता है।।३२-३४।।

अस्य पादरजःस्पर्शात्पूयते सकला मही। पदमेकन्तु धत्ते यः शोणाद्रीशप्रदक्षिणे॥३५॥
नमस्कुर्वन्प्रतिदिशंध्यायन्स्तौतिकृताञ्जलिः। असंसृष्टकरःकैश्चिन्मन्दंकुर्यात्प्रदक्षिणम्॥३६॥
आसन्नप्रसवा नारी यथा गच्छेदनाकुलम्। तथा प्रदक्षिणं कुर्यादशृण्वंश्च पदध्वनिम्॥३७॥
स्नातो विशुद्धवेषः सन्भस्मरुद्राक्षभूषितः। शिवस्मरणसंसृष्टो मन्दं दद्यात्पदं बुधः॥३८॥
मनूनां चरतामग्रे देवानाञ्च सहस्त्रशः। अदृश्यानाञ्च सिद्धानां नान्येषांवायुरूपिणाम्॥३९॥
संघट्टमतिसम्मर्दं मार्गरोधं विचिन्तयन्। अनुकूलेन भक्तः सञ्छनैर्दद्यात्पदं बुधः॥४०॥

जो व्यक्ति शोण पर्वत की प्रदक्षिणा हेतु एक पद भी आगे बढ़ता है, उसकी चरणरज से समग्र पृथिवी पवित्र हो जाती है। प्रतिदिन प्रणाम तथा अंजलिबद्ध होकर स्तव करते-करते धीरे-धीरे प्रदक्षिणा करे (लेकिन दोनों

हथेली अंजलि में जुड़ी न रहें। अलग-अलग अंजलि मुद्रा में पास रहें, लेकिन सटे नहीं)। प्रदक्षिणा के समय आसन्नप्रवसा अव्यग्र स्त्री की तरह मन्द-मन्द चलना चाहिये, जिससे तलवों की आवाज सुनाई न पड़े। पण्डित व्यक्ति स्नान करके विशुद्ध वेश धारण करे तथा भस्म एवं रुद्राक्ष भूषित होकर शिव का स्मरण करते-करते प्रदक्षिणा करे। विद्वान् भक्तगण प्रदक्षिणा के समय अग्रगामी हजारों देवता तथा अन्य वायुरूपी अदृश्य सिद्धों के संघट्ट तथा उनसे टकराने तथा उनका गतिरोध न होने देने के लिए धीरे-धीरे चले।।३५-४०।।

अथवा शिवनामानि सङ्कीर्त्य वरगीतिभिः। शिवनृत्यञ्च रचयन्भक्तैःसार्द्धं परिक्रमेत्।।४१।।
माहात्म्यं मम वा शृण्वन्ननन्यमतिरादरात्। शनैः प्रदक्षिणं कुर्यादानन्दरसनिर्भरः।।४२।।
दानैश्च विविधैःपुण्यैरुपकारैस्तथार्थिनाम्। यथामति दयापूर्णआस्तिकःपरितोव्रजेत्।।४३।।
कुते त्वग्निमयं लिङ्गं त्रेतायां मणिपर्वतम्। द्वापरे चिन्तयेद्धैमं कलौ मरकताचलम्।।४४।।

अथवा मनोज्ञ गीत द्वारा शिव के नामों का कीर्त्तन तथा शिवनृत्य की मुद्रा में भक्तगण के साथ परिक्रमा करनी चाहिये। किंवा अनन्यमति होकर आदरपूर्वक मेरे माहात्म्य का श्रवण करते हुए आनन्दरसपूर्ण स्थिति में मन्द-मन्द गति से प्रदक्षिणा करे। प्रदक्षिणा करने के पूर्व विविध पवित्र दान के द्वारा याचकों को सन्तुष्ट करके ज्ञानानुरूप, दयापूर्ण तथा आस्तिक बुद्धि युक्त होकर प्रदक्षिणा करे। सत्ययुग में अग्निमय, त्रेतायुग में मणिमय, द्वापर में स्वर्णमय तथा कलि में मरकतमय लिंग की भावना करनी चाहिये।।४१-४४।।

अथवा स्फाटिकं रूपमरुणं तु स्वयंप्रभुम्। ध्यायन्विमुक्तः सकलैःपापैःशिवपुरं व्रजेत्।।४५।।
अवाङ्मनसगम्यत्वादप्रमेयतया स्वयम्। अग्नित्वाच्च परं लिङ्गमनासाद्याचलाभिधम्।।४६।।
ध्यात्वा प्रदक्षिणं कर्तुरभिगम्योऽहमञ्जसा। तस्य पादरजो नृणामजरामरकारणाम्।।४७।।
रूपमेकन्तु धत्ते यः शोणाद्रीशप्रदक्षिणे। वाहनानि सुरौघाणां प्रार्थयन्ते परस्परम्।।४८।।
कुर्वतां चरणं वोढुमरुणाद्रिप्रदक्षिणाम्। छायाप्रदानं कुर्वन्ति कल्पकाद्याःसुरद्रुमाः।।४९।।
कुर्वतां भुवि मर्त्त्यानामरुणाद्रिप्रदक्षिणाम्। देवगन्धर्वकाद्यानां सहस्त्रेण समावृताः।।५०।।
सेवन्ते ते गणाकीर्णा विमानशतकोटयः। मम प्रदक्षिणं भूमौ कुर्वतां पादपांसुभिः।।५१।।
पाविता महती वीथी दृष्टा शिवपदप्रदा। अङ्गप्रदक्षिणं कुर्वन्क्षणात्स्वर्ग्यतनुर्भवेत्।।५२।।
प्राप्तो वज्रशरीरत्वं न धृष्येत महीतले। व्योमयानोत्सुका देवाः सिद्धाश्च परमर्षयः।।५३।।
अदृश्याः सञ्चरन्त्यत्र पश्यन्ते मम सन्निधम्। विनयं मम भक्तिञ्च प्रदक्षिणपरिक्रमे।।५४।।
दृष्ट्वा हर्षसमायुक्ता मर्त्त्येभ्यो ददते वरम्। अत्र देवास्त्रयस्त्रिंशत्पुराकृत्वा प्रदक्षिणाम्।।५५।।

अथवा इन स्वयम्भु अरुणाचल पर्वत के स्फटिकमय रूप की भावना करने से व्यक्ति सर्वपापविनिर्मुक्त होकर शिवधाम में गमन करता है। मेरा यह अरुणाचल रूपी श्रेष्ठ लिंग मन तथा वाक्य से अगोचर तथा अप्रमेय है। मैं अग्निमय रूपी होने के कारण मन के लिये अनधिगम हूं। किन्तु जो व्यक्ति ध्यानयुक्त हो मेरी प्रदक्षिणा करता है, मैं सत्य ही उसके अनुकूल हो जाता हूं। अरुणाचल की घाटी की बालुका (धूल) ही मनुष्यों के जरा-मरण रूपी दुःख को दूर कर देती है। जो व्यक्ति प्रदक्षिणा काल में अरुणाचल के रूप का एक बार भी ध्यान करता है, देवेन्द्रगण के वाहन उसे अपने ऊपर बैठाने हेतु परस्पर प्रार्थना करते हैं। उस प्रदक्षिणा करने वाले को कल्पवृक्ष

छाया प्रदान करते हैं। सहस्रो देवगन्धर्वादि अपने-अपने गणों के साथ उसे घेर कर तथा शतकोटि वाहनों से समावृत होकर उसकी सेवा करते हैं। पृथिवी पर मेरी प्रदक्षिणा करने वाले मनुष्यों के पैरों के चिह्न द्वारा जो महती पगदण्डी बन जाती है, उसके भी दर्शन से शिवपद प्राप्त होता है। मेरे अंग (पर्वत) की प्रदक्षिणा करने वाले क्षण काल में स्वर्ग जाते हैं। उनका शरीर वज्रवत् दृढ़ हो जाता है, वह पृथिवी पर कदापि घर्षित नहीं होता। व्योमयान पर उत्सुक सिद्ध तथा परमर्षिगण मेरे सन्निधान में अदृश्य रूप से संचरण करते रहते है। वे प्रदक्षिणा तथा परिक्रमा करने वाले मनुष्यों के विनय तथा भक्ति को देख कर उन्हें प्रसन्नतापूर्वक वर प्रदान करते हैं। पूर्वकाल में यहां ३३ देवताओं ने प्रदक्षिणा किया था।।४५-५५।।

प्रत्यहंमार्गमासीनाःप्रत्येकंकोटिताङ्गताः। आदित्याद्याग्रहाः सर्वेपुराकृत्वाप्रदक्षिणाम्।।५६।।
सम्पूर्णजगतीभागे सर्वे ग्रहपताङ्गताः। यः करोति नरो भूमौ सूर्यवारे प्रदक्षिणाम्।।५७।।
स सूर्यमण्डलं भित्त्वा मुक्तः शिवपुरं व्रजेत्। सोमवारे नरः कुर्वन्नरुणाद्रिप्रदक्षिणाम्।।५८।।
अजरामरतां प्राप्तो नाऽसौम्यो भवतिक्षितौ। भौमवारे नरः कुर्वन्नरुणाद्रिप्रदक्षिणाम्।।५९।।
आनृण्यमखिलं प्राप्य सार्वभौमो भवेद्ध्रुवम्। बुधवारे नरः कुर्वञ्छोणाद्रीशप्रदक्षिणाम्।।६०।।
सर्वज्ञतामनुप्राप्तः स वाचां पतितामियात्। गुरुवारे नरः कुर्वन्सर्वदेवनमस्कृतः।।६१।।
प्रदक्षिणेन शोणाद्रेः स तु लोकगुरुर्भवेत्। भृगुवारे नरः कुर्वन्नरुणाद्रिप्रदक्षिणाम्।।६२।।
सम्प्राप्य महतीं लक्ष्मींलभतेवैष्णवं पदम्। मन्दवारेनरःकृत्वाशोणाद्रीशप्रदक्षिणाम्।।६३।।
विमुक्तो ग्रहपीडाभिः स विश्वविजयी भवेत्। नक्षत्राणि च सर्वाणिपुरातद्दैवतैःसह।।६४।।
मम प्रदक्षिणां कर्तुः पुण्यानि सहसा व्रजेत्। तिथयः करणानीहयोगाश्चममसंमताः।।६५।।

अभीष्टफलदा जाताः कुर्वतां मत्प्रदक्षिणाम्।
मुहूर्ता विविधा होराः सौम्याश्च सततोदयाः।।६६।।

मत्प्रदक्षिणकर्तृणां जायन्तेसततंशुभाः। प्रच्छिनत्ति प्रकारोऽघं दकारो वाञ्छितप्रदः।
क्षिकारात्क्षीयते कर्म णकारो मुक्तिदायकः।।६७।।

प्रदक्षिणा तथा पथ में चलने के कारण उनमें से प्रत्येक १०००००० (एक कोटि) हो गया! इसी प्रकार पूर्व काल में आदित्यादि ग्रहों ने यहां प्रदक्षिणा करके समस्त ग्रहमण्डल का ग्रहपतित्व लाभ किया था। जो व्यक्ति यहां रविवार को प्रदक्षिणा करता है, वह सूर्यमण्डल भेद करके मुक्त होता है तथा शिवधाम गमन करता है। मानव सोमवार को अरुणाचल की प्रदक्षिणा द्वारा अजरत्व तथा अमरत्व की प्राप्ति करता है तथा वह व्यक्ति पृथिवी पर कभी भी सौम्यतारहित नहीं होता। जो व्यक्ति मंगलवार को अरुणाचल की प्रदक्षिणा करता है, वह सर्वविध आनृण्य (सब प्रकार के ऋण से रहित होकर, यथा देवऋण, पितृऋण, ऋषिऋण) स्थिति प्राप्त करके निःसंशय रूप से सार्वभौमत्व लाभ करता है। जो मानव बुधवार के दिन शोण पर्वत की प्रदक्षिणा करता है, वह सर्वज्ञता प्राप्त करके वाचस्पति हो जाता है। बृहस्पतिवार को शोणशैल की प्रदक्षिणा करने वाला मानव सर्वदेव नमस्कृत तथा लोकगुरु होता है। मानव शुक्रवार को अरुणाचल की प्रदक्षिणा द्वारा महती लक्ष्मी प्राप्त करता है। उसे विष्णुपद की प्राप्ति होती है। शनिवार को शोणपर्वत की प्रदक्षिणा करने वाले मानव को ग्रहजनित पीड़ा नहीं होती। वह सर्वत्र विजयी

होता है। जो उत्तमरूप से मेरी प्रदक्षिणा करता है, सभी नक्षत्रगण उसके लिए सहसा शुभ हो जाते हैं। समस्त तिथियां, करण तथा योग उसको अभीष्ट फल देते हैं। सौम्य तथा अभ्युदय देने वाले विविध मुहूर्त्त तथा होरा आदि भी मेरी प्रदक्षिणा करने वाले के लिए सदा शुभ होते हैं। प्रदक्षिणा शब्द के 'प्र' से प्रकृष्ट रूप से 'बन्धन छेदन' का तात्पर्य भासित होता है। 'द' कार का तात्पर्य है अभीष्ट प्रदान, 'क्षि' का अर्थ है कर्मों का क्षय, 'ण' का तात्पर्य है मुक्तिदान। अतः प्रदक्षिणा = उत्तम रूप से बन्धन छेदन, अभीष्ट प्राप्ति, कर्मक्षय तथा सर्वान्त में मुक्ति प्राप्ति।।५६-६७।।

दुर्बलाः कार्श्यसंयुक्ता आधिव्याधिविजृम्भिताः।।६८।।
मम प्रदक्षिणं कृत्वा मुच्यन्ते सर्वदुष्कृतैः। मम प्रदक्षिणं कर्तुर्भक्त्या पादेन सन्ततम्।।६९।।
क्षणेन साध्वां पश्यामि त्रैलोक्यस्य प्रदक्षिणाम्।
लोकेशाश्च दिगीशाश्च ये चाऽन्ये कारणेश्वराः।।७०।।
मम प्रदक्षिणां कृत्वा स्थिरा राज्ये पुराऽभवन्। अहञ्च गणसंयुक्तः सर्वदेवर्षिसंयुतः।।७१।।
उत्तरायणसंयोगे करोमि स्वप्रदक्षिणाम्। मद्रूपं तैजसं लिङ्गमरुणाद्रिरिति श्रुतम्।।७२।।
त्रैलोक्यस्यहितार्थायकरिष्यामिप्रदक्षिणाम्। आगता च परान्तेचगौरीतपइहातद्धुम्।।७३।।
कर्तुं प्रदक्षिणं कृत्वा मामेष्यत्यनघा पुनः। कार्तिके मासि नक्षत्रेकृत्तिकाख्येमहातपाः।।७४।।
मम प्रदक्षिणां गौरी प्रदोषे रचयिष्यति। नराणामल्पपुण्यानां दुर्लभं तत्प्रदक्षिणम्।।७५।।

दुर्बल, आधि-व्याधियुक्त मानव भी मेरी प्रदक्षिणा द्वारा समस्त दुष्कृत से मुक्त हो जाते हैं। भक्तिपूर्वक सतत् मेरी प्रदक्षिणा करने वाले मानव ने यहां एक पैर प्रदक्षिणा में आगे रखने से ही मानों त्रैलोक्य प्रदक्षिणा सम्पन्न कर लिया। पूर्वकाल में लोकेश, दिगीश तथा अन्य कारणेश्वरगण ने मेरी प्रदक्षिणा सम्पन्न करके राज्य में स्थिरत्व प्राप्त किया था। यहां तक कि मैंने भी लोकहित की कामना लेकर अपने गणों तथा देवताओं के साथ उत्तरायण के समय अपने तैजस रूप में प्रसिद्ध इस अरुणाचल की प्रदक्षिणा सम्पन्न किया था। अधिक क्या कहा जाये, निष्पाप गौरी भी अद्भुद् तपस्यार्थ इस पर्वत की प्रदक्षिणा करके मुझसे संगत हो सकी थीं। महातपा गौरी ने कार्त्तिक मास के कृत्तिका नक्षत्र के प्रदोष काल में मेरी प्रदक्षिणा (अरुणाचल की) किया था। यह प्रदक्षिणा करना अथवा देवी द्वारा प्रार्थित शिवलिंग का दर्शन कर सकना अल्पपुण्यात्मा मनुष्य के लिए अतीव दुर्लभ है।।६८-७५।।

ज्योतिर्लिङ्गस्य दृष्टस्य देवीप्रार्थनया तथा। मया समेतादेवीसाप्राप्ताऽपीतकुचाभिधा।।७६।।
आश्वास्यति सुरान्सर्वानुत्तरायणसङ्गमे। देवगन्धर्वयक्षाणां सिद्धानामपि रक्षसाम्।।७७।।
सर्वेषां देवयोनीनां भविता तत्र सङ्गमः। ये तदा मां समागत्य पूजयन्तितपोधिकाः।।७८।।
सर्वजन्मकृताघौघप्रायश्चित्तं व्रजन्ति ते। दुर्ल्लभं तद्दिनं पुंसामुत्तरायणसङ्गमे।।७९।।

ज्योतिर्लिङ्ग देखकर देवी ने प्रार्थना किया था। देवी पार्वती ने मेरे साथ मिलकर अपीतकुचाख्या नाम प्राप्त किया था। वे ही यहां उत्तरायण काल में यहां आकर देवगण को आश्वासन दे चुकी हैं। देवता, गन्धर्व, यक्ष, सिद्ध, रक्ष तथा अन्यान्य देवयोनियों का यहां समागम होता है। जो अधिक तपःयुक्त व्यक्ति यहां आकर मेरा पूजन करते हैं, उनके समस्त जन्मों की पापराशि नष्ट हो जाती है। उत्तरायण संगम का दिन मनुष्य हेतु सुदुर्लभ है।।७६-७९।।

तदा मद्रूपमभ्यर्च्य कृतार्थाःसन्तुमानवाः। प्रदक्षिणं तु मे दिव्यं कुर्वन्तिच महीभुजः॥८०॥
तेषां पुरोगतःसाक्षादहंजेष्यामिविद्विषः। राजायस्य तु देशस्य योयोराजातपोधिकः॥८१॥
स कारयेद्विप्रमुख्यैः श्रोत्रियैर्मेप्रदक्षिणाम्। मण्डलंमण्डलार्द्धम्वासङ्कल्पविधिपूर्वकम्॥८२॥
तस्य तस्य स्थिरंराज्यंशत्रूणाञ्च पराहतिम्। करिष्यामि मुनेनित्यमहमेवपुरःस्थितः॥८३॥

अतएव मानव उस दिन मेरे पूजन को सम्पन्न करके कृतार्थ हो जायें। जो राजा मेरे इस दिव्य रूप अरुणाचल की प्रदक्षिणा करते हैं, मैं उनके सम्मुख आकर स्वयं उसके शत्रु का विनाश करता हूं। जिस-जिस देश में जो-जो राजा अधिक तपस्या सम्पन्न हैं, वे ही राजा प्रधान-प्रधान वेदज्ञ ब्राह्मणों के साथ मेरी प्रदक्षिणा करते हैं। जो राजा सविधि संकल्प लेकर इस पर्वत के आधे मण्डल की किंवा सम्पूर्ण मण्डल की परिक्रमा करता है, मैं उसके आगे स्थित होकर उसके शत्रुकुल का नाश करता हूं तथा वे नित्य अपने राज्य पर सुस्थिर रहते हैं।।८०-८३।।

न वाहनेन कुर्वीत मम जातु प्रदक्षिणाम्। धर्मलुब्धमना जानञ्छिवाचारपरिप्लुतिम्॥८४॥
धर्मकेतुः पुरा राजा यमलोकादुपागतः। मम प्रदक्षिणां कर्त्तुं तुरगेणाऽभ्यरोचयत्॥८५॥
क्षणेन तुरगो जातो गणनाथः सुरार्चितः। प्रतिपेदे पदं शैवं विमुच्य धरणीपतिम्॥८६॥
वीक्ष्य तं वाहनं भूयो गणनाथवपुर्द्धरम्। पादप्रदक्षिणांकृत्वा स्वयञ्च गणपोऽभवत्॥८७॥
तदाप्रभृति शक्राद्याः सुराविष्णुसमन्विताः। पादाभ्यामेव कुर्वन्ति ममसर्वेप्रदक्षिणाम्॥८८॥

धर्मलोभी व्यक्ति में शैवाचार का लोप हो जाता है, यह जान कर कभी भी वाहन पर आरूढ़ होकर मेरी प्रदक्षिणा न करे। पूर्वकाल में धर्मकेतु नामक एक राजा था। पूर्वकाल में धर्मकेतु ने यमपुर से आकर अश्व पर बैठकर मेरी प्रदक्षिणा किया था। उस अश्व ने तत्काल सुरपूजित गणनाथत्व प्राप्त किया तथा उसने राजा को त्याग कर शैवपद लाभ किया। राजा ने गणनाथ शरीरधारी अपने वाहन को देखकर पैदल ही अरुणाचल की प्रदक्षिणा करके स्वयं भी गणपतित्व लाभ किया। तब से विष्णु से लेकर इन्द्रादि सभी देवता पैदल ही मेरी प्रदक्षिणा करते रहते हैं।।८४-८८।।

स्वर्गान्निपातितः कोऽपि सिद्धः काले तपःक्षयात्।
प्रदक्षिणां ततः कृत्वा पुनर्लब्धपदोऽभवत्॥८९॥
स्खलितं पादजं रक्तं मम कर्तुः प्रदक्षिणम्। मार्ज्यते तस्य देवेन्द्रमौलिमन्दारकेसरैः॥९०॥
प्रदक्षिणमहावीथी शिलाशकलघट्टितम्। पदं सन्धार्यते पुंसां श्रीपयोधरकुङ्कुमैः॥९१॥
मणिपर्वतशृङ्गेषु कल्पद्रुमवनान्तरे। सञ्चरन्ति सदा मर्त्या मम कृत्वा प्रदक्षिणम्॥९२॥

कोई सिद्ध एक समय तपःक्षय हो जाने के कारण स्वर्ग से च्युत हो गया। उसने अरुणाचल की प्रदक्षिणा करके पुनः अपना वही पद प्राप्त किया। मेरी प्रदक्षिणा करते समय उसके पद से रक्त निकलने लगा था। तब इन्द्र ने मौलि तथा मन्दार पुष्प के केसर से उसके पैरों के तलवों को परिमार्जित किया। प्रदक्षिणा करने वालों के चलने से बनी महावीथि के प्रस्तरों पर जो पदचिह्न बनते हैं, महालक्ष्मी उसे अपने कुचद्वय पर कुंकुम रूप से लगाती हैं। मेरी प्रदक्षिणा करके मनुष्य मणिपर्वत के शिखर पर स्थित कल्पवृक्ष के वन में रक्षित होते तथा संचरण करते हैं।।८९-९२।।

गौर्युवाच

उपचारप्रवृत्तानां फलं मे शंस सुव्रत। यैर्वै जनः कृतार्थः स्याद्यथाशक्ति कृता दरः॥९३॥

गौरी कहती हैं—अपनी शक्ति के अनुसार मनुष्य जिन उपचारों को सादर शिव को प्रदान करके कृतार्थ होता है, उन उपचारों के विषय में बतलाने की कृपा करें।।९३।।

मुनिरुवाच

उपचारफलं देवि! शृणु वक्ष्याम्यहं तव। यन्मह्यं कृपया पूर्वमुक्तवान्परमेश्वरः॥९४॥
लूतीतन्तुकजालानिसंसृज्यक्वचिदेवमे। जातिस्मरोमहीध्रेऽस्मिन्सोंऽशुकैर्मांव्यवेष्टयत्॥९५॥
गजः कश्चित्तृषाक्रान्तो विमुच्यच मधु क्वचित्। वनपल्लवमुत्कीर्यमुक्तोऽभूद्गणनायकः॥९६॥

महर्षि गौतम कहते हैं—हे देवी! इस सम्बन्ध में महेश्वर ने कृपापूर्वक मुझसे जो कहा था, उसे कहता हूं। श्रवण करें। शिव ने कहा था—एक मकड़ी ने मेरे लिये जाला बुना था। उसने मेरे चतुर्दिक् जाला बुन कर पूर्वजन्म की स्मृति को प्राप्त किया था। किसी एक तृष्णा से आर्त्त हाथी ने यहीं अपने मद का क्षरण करके तथा तोड़े गये पत्तों को यहीं छोड़ने से ही मुक्तिलाभ किया था। वह गणनायकत्व को प्राप्त हो गया।।९४-९६।।

कृमयो विलुठन्तो मे पार्श्वे दुरितवर्जिताः। सिद्धवेषाः पुनः सर्वे मम लोकंव्रजन्तिते॥९७॥
अव्युच्छिन्नप्रदीपार्चिः क्षणमप्यादधातियः। स्वयम्प्रकाशः स भवन्ममसारूप्यमश्नुते॥९८॥
हारीतः कोऽर्पिसंप्राप्तःशाखानीडोममान्तिके। खद्योतोदीपवन्नक्तंतावन्मुक्तिंसमागतः॥९९॥

यहां तक कि कीड़े भी मेरे पार्श्व में लोट कर दुरित रहित होते हैं तथा वे सिद्धवेश धारण करके मेरे लोक को प्राप्त करते हैं। जो मेरे इस स्थान में बिना बुझे दीपक प्रदान करते हैं, वे क्षणमात्र में ही स्वयं प्रकाशमान स्थिति प्राप्त करते हैं और सारूप्य मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। किसी एक हारीत पक्षी ने मेरे इस पर्वत पर अपना घोंसला बनाया था तथा उसमें जुगनू लाकर प्रकाश करता था। इससे मेरे स्थान को आलोकित करने के फलस्वरूप वह मुक्त हो गया।।९७-९९।।

गावः प्रस्त्रवणैः सिक्ता वत्सस्मरणसम्भवैः। मत्पार्श्वे मुक्तिमापुस्ता मम लोकं समाश्रयन्॥१००॥
काकः पक्षजवातेन बलिग्रहणलोलुपः। मार्जयन्मत्पुरोभागं मुक्तिं प्रापद्यत क्षणात्॥१०१॥
मूषको मद्गुहाभागं मणिसङ्घविकर्षणैः। प्रकाशयन्वितिमिरं मम रूपमपद्यत॥१०२॥

गौओं ने अपने बछड़े को याद करते हुए वात्सल्य के कारण मेरे पर्वत पार्श्व में दुग्ध क्षरण किया था। उन्होंने मेरे लोक को प्राप्त करके मुक्तिलाभ किया था। एक कौआ बलिद्रव्य खाने की इच्छा से मेरे पास उड़कर आया था। उसके पंखों की वायु से मेरे सामने का भाग कुछ मार्जित हो गया। इसके फलस्वरूप क्षणमात्र में उसे मुक्ति प्राप्त हो गयी! एक चूहे ने कहीं से मणियों को लाकर मेरी गुहा को उसके प्रकाश से आलोकित किया था। उसे मेरा सारूप्यलाभ हो गया।।१००-१०२।।

छायावृक्षत्वमास्थातुं मुनयस्त्रिदशा अपि। प्रार्थयन्त्येव मत्पार्श्वे नपुनःसम्भवेच्छया॥१०३॥
गोपुरं शिखरं शालां मण्डपं वापिकामपि। कुर्वतांमत्पुरोभागेसिध्यन्तीष्टार्थसम्पदः॥१०४॥
सदा मर्त्त्यैरनासाद्यमग्निलिङ्गमिदं मम। अनासाद्याचलेशाख्यं पूज्यतां वसुधातले॥१०५॥

देवता तथा मुनिगण मेरे पार्श्व में छाया वाले वृक्ष होना चाहते हैं, तथापि यह लाभ उनको नहीं मिल पाता। मेरे समक्ष गोपुर, शिखर, शाला, मण्डप अथवा बावली का निर्माता अपनी इच्छित सम्पदा की प्राप्ति कर लेता है। मेरा यह अग्निमय लिंग मानव के लिए सदा अर्चनीय है। हे मुनिवर! वसुधातल पर मेरे इस लिंग की सदा पूजा करे।।१०३-१०५।।

वीक्षणस्पर्शनध्यानैः स्वभूतं निखिलं जगत्।
पोषयन्ती परा शक्तिः पूज्याऽपीतकुचाभिधा॥१०६॥
सर्वलोकैकजननीसम्प्राप्तानित्ययौवनम्। यौवनप्रार्थिभिःसेव्यासदाऽपीतकुचाभिधा॥१०७॥
क्षणात्तस्य पुरोभागे वसतां प्राणिनामिह। परत्र वाऽत्र दुष्प्राप्यमिष्टवस्तु न विद्यते॥१०८॥
अप्रमेयगुणाधारमपेक्षितवरप्रदम्। अशेषभोगनिलयं शोणाद्रीशं समर्चय॥१०९॥
लब्धकामा पुनः शम्भुमाश्रयिष्यसि सुव्रते। तपश्चरणप्येतत्तव लोकहितावहम्॥११०॥
न केवलं तव तपःस्ववाञ्छितफलप्रदम्। तपस्यतामृषीणाञ्च क्षेमायैव भविष्यति॥१११॥
कारणान्तरमाशङ्क्य तपः कुर्वन्ति देवताः। रहस्यं देवतानान्तु फलेनैवाऽनुमीयते॥११२॥
वयञ्च सहसम्वासास्तवव्रतनिरीक्षणात्। कृतार्थाः स्याम देवेशितपसा नः कृतार्थता॥११३॥

मेरे इस अरुणाचल पर्वत रूप के दर्शन, स्पर्शन तथा ध्यान से ही यह जगत् समुद्भूत (उत्पन्न) हुआ है। मेरी अपीतकुचाख्या (जिसके स्तनों का पान नहीं हुआ है) पूज्या शक्ति (पराशक्ति) ही इस जगत् का सतत् पोषण करती हैं। जो मनुष्य स्थिर यौवन की कामना युक्त है, वह सदा इस शक्ति की सेवा करे। जो मनुष्य क्षणमात्र भी इस शक्ति के निकट निवास कर लेते हैं, उनके लिए इहलोक अथवा परलोक में कुछ भी दुष्प्राप्य नहीं रह जाता। हे सुव्रते! इन गुणाधार, अप्रमेय अभीष्टदाता, अशेष भोग के स्थान इन अरुणाचलपति की पूजा करें। इससे आप अपनी कामना पूर्त्ति के साथ पुनः शम्भु का आश्रय पा सकेंगी। यह तपस्या आपकी कामना तथा अपने अभीष्टलाभार्थ नहीं है। आपका यह तप लोकहितकारी है। आप द्वारा अनुष्ठित इस तप द्वारा तपस्याशील क्षत्रियों का कुशल साधित होगा। आपकी इस तपस्या से अन्य कारण की आशंका को लेकर देवता भी तप कर रहे हैं, तथापि उनकी तपस्या का रहस्य उसके फल द्वारा ही ज्ञात हो जाता है। हे देवेशी! आपके साथ रहकर तथा आपका व्रत देखकर मैं कृतार्थ हो गया। ऐसा तप से भी कृतार्थ नहीं हुआ था।।१०६-११३।।

इति तस्य मुनेर्वाक्यमर्थगर्भं निशम्य सा।
गौरी कौतुकसंयुक्ता प्रशशंस महामुनिम्॥११४॥
तपः किमन्यत्कर्तव्यं लब्धं तव तु दर्शनम्। अरुणाद्रिरयं दृष्टः श्रुतं माहात्म्यमस्य च॥११५॥
अहो भूमेस्तु वैचित्र्यं यतो दृष्टा दिवोऽधिका। यत्रैव तेजसं लिङ्गं देवतानां वरप्रदः॥११६॥
शिवः प्रसादसिद्धो मे दर्शितं स्थानमात्मनः। अत्रैवशिवमाराध्यवशीकुर्यांजगद्गुरुम्॥११७॥
अविनाभूतमैक्यं मे देवेन भवतात्सदा। त्वया कृतेन साह्येन भवेयं शिवनायिका॥११८॥
इति गौतमसन्निधौ तदानीं कृतसम्वित्तप आदरेण कर्तुम्।
अभजद्रुचिराञ्च पर्णशालां मुनिना चानुमता तथेति भक्त्या॥११९॥

सुकुमारतनुः सरोरुहाक्षी घनतुङ्गस्तनकल्पितोत्तरीया।
जटिला हरिनीलरत्नकान्तिर्गिरिजा राजति देहवत्तपःश्रीः॥१२०॥
नियमैर्बहुभिस्तपोविशेषैः क्रतुषु प्राप्तविचित्रयोगबन्धैः।
निगमागमदृष्टधर्ममार्गं सकलं सा तु कृतार्थतामनैषीत्॥१२१॥
तपसा विविधेन तप्यमाना न कदाचित्परिखेदमाप तन्वी।
हरिरत्नमयी च काऽपि वल्ली नितरां दीप्तिमती बभूव बाला॥१२२॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्ये पूर्वार्धेऽरुणेश्वरप्रदक्षिणामाहात्म्यवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥९॥

महर्षि गौतम का यह अर्थसंयुक्त वाक्य सुनकर देवी गौरी विस्मयान्विता होकर महामुनि गौतम की प्रशंसा करने लगीं तथा मुनि से कहने लगीं—"हे मुनिवर! आपके दर्शन लाभ से ही मुझे सब प्राप्त हो गया। अब तपस्या क्या करूं? जहां देवताओं को भी वर देने वाला तैजस लिंग स्थित है, वह भूमि कितनी विचित्र रूप है! यह तो स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है। मैंने इस उत्तम स्थल का दर्शन प्राप्त किया, अतः शिव मुझ पर प्रसन्न हो गये। मैं यहीं शिव की सेवा करके इन जगद्गुरु को वशीभूत करूंगी। शिव के साथ मेरी सतत् एकता सम्पादित होगी तथा उनकी सहायता से मैं शिवनायिका हो जाऊंगी।" तदनन्तर महर्षि ने पार्वती को तपस्या के लिए पर्णशाला में जाने की अनुमति प्रदान किया। तब ज्ञान प्राप्त देवी ने भक्तिपूर्वक "ऐसा ही हो" कहकर उस अनुमति को स्वीकार किया और उसी समय उस मनोहर पर्णकुटी में चली गयीं। तदनन्तर हरितनीलकान्ति सुकुमार देह वाली पार्वती अपने उन्नत स्तनों पर उत्तरीय धारण करके तथा मस्तक पर जटाजूट से सज्जित होकर साक्षात् मूर्त्तिमती लक्ष्मी की तरह शोभित होने लगीं तथा नियम पालन करते हुए अनेक श्रेष्ठ तप तथा यज्ञ से प्राप्त नाना योग द्वारा आगमनिगमोक्त धर्ममार्ग को कृतार्थ किया (पालन किया) उस समय विविध तपानुष्ठान से भी वे किंचित् मात्र भी दुर्बल नहीं हुईं। वरन् वे हरित् रत्नमयी वल्ली के समान अतिशय दीप्तिमान् हो गयीं॥११४-१२२॥

॥नवम अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

दशमोऽध्यायः

तपःकाल में महिषासुर युद्ध वर्णन, मायासुर-देवी संवाद

ब्रह्मोवाच

अथ देवा महीं हित्वामहिषासुरपीडिताः। नत्वा गौरींतपस्यन्तींजग्मुःशरणमाकुलाः॥१॥
अथ तानभयंदेहिदेवीतिभयविह्वलान्। अमरान्वीक्ष्यसादेवीकिंकार्यमितिचाभ्यधात्॥२॥

ततो विज्ञापयामासुर्दैत्येन्द्राद्धयमात्मनाम्। देव्यै बद्धाञ्जलिपुटा देवा इन्द्रपुरोगमाः॥३॥

ब्रह्मा कहते हैं—एक बार महिषासुर से पीड़ित देवता आकुल होकर पृथिवी त्याग कर तपस्विनी गौरी को प्रणाम करके उनकी शरण में आये। वे देवता भयभीत होकर देवी से कहने लगे—"हे देवी! आप हमें अभय प्रदान करिये।" वे देवता देवी का दर्शन करके यह चिन्ता करते-करते दौड़ पड़े कि अब हमारा क्या कर्त्तव्य है? तदनन्तर इन्द्रादि प्रधान देवता हाथ जोड़ कर देवी से यह निवेदन करने लगे कि उनको असुरराज महिष से इस प्रकार का भय आया है।।१-३।।

देवा ऊचुः

अप्सरोभिः परिवृतः सुखं क्रीडति नन्दने। ऐरावतमुखान्सर्वान्दिङ्नागान्निजमन्दिरे॥४॥
आवासयन्विनोदार्थमङ्गनाभिः सहागतान्। उच्चैःश्रवःपुरोगानामुपभोगंकरोत्यसौ॥५॥
मन्दुरास्वस्य रम्यासु दृश्यन्ते लक्षकोटयः। हुताशवाहनं मेषं पुत्रारोहार्थमीप्सति॥६॥
याम्यं महिषमानीय शकटे सोऽभ्यवाहयत्। सिद्धीराकृष्य सकला गृहकर्मणि चाऽऽदिशत्॥७॥
अप्सरःसङ्घमखिलमात्मसेवार्थमानयत्। अन्यत्किमपि यद्वस्तु रत्नभूतं जगत्त्रये॥८॥
अनाहृतं पुनर्हर्तुं न विश्राम्यति कोपवान्। वयञ्च सेवकाभूत्वानित्यभीतिसमन्विताः॥९॥

देवगण कहते हैं—महिषासुर स्वर्गीय अप्सराओं से घिरा हुआ स्वर्ग को नन्दनवन में सुखपूर्वक सतत् क्रीड़ारत है। उसने हथिनियों के साथ ऐरावतादि प्रमुख हाथियों पर अधिकार करके उनको आमोद-प्रमोदार्थ अपने महल में रखा है। उसने उच्चैःश्रवा आदि लक्षकोटि संख्यक अश्वों का हरण करके उनको अपने घुड़साल में बांध दिया है। वह उनका उपभोग कर रहा है। उसने अग्निवाहन मेष को अपने पुत्र का वाहन नियुक्त कर दिया। सिद्धों को पकड़ कर अपना गृहकार्य उनसे करवाता है। स्वर्ग की अप्सराओं को अपनी सेवार्थ नियुक्त किया है। वह कोपवान् महिषासुर तीनों लोक में स्थित अन्य जो कुछ रत्न थे, उन सब को हर लाया है। यहां तक कि जो हरण योग्य नहीं था, उनको भी अपहृत कर लाया है। तब भी वह शान्त नहीं है। हमसब अत्यन्त भययुक्त स्थिति में उसकी सेवा कर रहे हैं।।४-९।।

पूजयन्तश्च तस्याऽऽज्ञां नान्यांवीक्षामहेगतिम्। शरणागतसन्त्राणंतपःफलमुदाहृतम्॥१०॥
दुर्जयोऽयं वरो दैत्यः सर्वेषांबलिनामपि। सुराणामपि दैत्यानां शिवाल्लब्धवरोदयः॥११॥
अस्य शृङ्गाहतः सिन्धुर्व्यावर्जितमिति ब्रुवन्। रत्नोपहारदानेननित्यंतत्प्रीतिमिच्छति॥१२॥
पर्वतांश्च समुत्क्षिप्य शृङ्गाग्रेण महोद्धतः। क्रीडति क्षोदिताशेषधातुधूलिविलेपनैः॥१३॥

उसका आज्ञापालन तथा सेवा के अतिरिक्त हमारे पास अन्य गति नहीं है। शरणागत् का सम्यक् परित्राण ही तपस्या का फल कहा गया है। यह महिषासुर शिव से वरलाभ करके समस्त सुरों-असुरों के लिए अजेय हो गया है। समुद्र भी इसके शृङ्गों से आहत होकर "देता हूं-देता हूं" कहता हुआ रत्नोपहार प्रदान करके नित्य इसे सन्तुष्ट करता रहता है। महान् उद्धत महिषासुर ने सींगों से समस्त पर्वतों का उन्मूलन करके शृङ्ग के आघात से पर्वतों को चूर्णित कर दिया है। उन पर्वतों के धातुपूर्ण चूर्ण का वह विलेपन लगाता है।।१०-१३।।

न शक्यमतुलं तस्य बलमन्यदुरासदम्। स्वयमेव विजानीहि हत्वा ते निजतेजसा॥१४॥

शम्भुशक्तिः परा सेयंस्त्रीरूपेणाऽत्रदृश्यते। त्वयैवाऽयंनिहन्तव्यः शिवाल्लब्धवरोह्ययम्॥१५॥

न जानीमो वयं देवि! किञ्चिच्छम्भुविचेष्टितम्।
केवलं पालनीयाः स्म जगन्मात्रा सदा त्वया॥१६॥

इति तेषां भयार्तानामाकर्ण्य वचनंशुभम्। व्याजहार प्रसन्नात्मा देवी दत्त्वाऽभयंतदा॥१७॥

"हम उसके वल को सहन नहीं कर पा रहे हैं। हे देवी! आपके अतिरिक्त कोई भी उस दुर्दमनीय के वल को सहन नहीं कर सकता। यह आप ही जान सकती हैं। हे देवी! आप अव अपने तेज द्वारा उसके वध का साधन करिये। आप शंभु की पराशक्ति होकर उनकी पत्नी के रूप में परिलक्षित होती रहती हैं। आप ही शिव से वरदान प्राप्त इस महिषासुर का वध कर सकती हैं। हे देवी! हम शम्भु की चेष्टा को जान ही नहीं सकते। हे जगन्माता! हम केवल आप द्वारा ही पालित होते रहते हैं।" भयार्त्त देवगण का यह वाक्य सुनकर प्रसन्नात्मा देवी ने उनको अभयदान देते हुए कहा।।१४-१७।।

शरणागतसन्त्राणं तपसि स्थितया मया। कर्त्तव्यममराः कालात्क्षीणःशत्रुर्भविष्यति॥१८॥
उपायेन समाकृष्य हनिष्यामि महासुरम्। निरागसस्तु हननमद्य मे न हि युज्यते॥१९॥
धर्मगेधर्मभेत्तारः शलभत्वं व्रजन्ति हि। देवास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रणम्य गिरिकन्यकाम्॥२०॥

जग्मुर्यथागतं सर्वे निर्भया हृष्टचेतसः॥२१॥

गतेषु तेषु देवेषु गौरी कमललोचना। बभूव मोहिनी शक्तिः कान्तियुक्ता ततोदरी॥२२॥
सा देवी दिक्षु शैलेषु चतुर्ष्वरुणभूभृतः। रक्षार्थं स्थापितवती चतुरो बटुकान्वरान्॥२३॥
यदा कैलासशिखरादागता शैलकन्यका। अन्वगच्छन्सेवमानाश्चतस्त्रो मातरस्तदा॥२४॥
दुन्दुभिःसत्यवत्याख्यातथाचाऽनवमीपरा। सुन्दरीतिचतस्त्रस्तामन्वयुःपरिचारिकाः॥२५॥

देवी कहती हैं—"हे देवगण! मैं तपस्या में स्थित रहते शरणागत की रक्षा करूंगी। यथाकाल तुम्हारे शत्रु नष्ट होंगे। हे देवताओं! अभी मैं निरपराध शत्रुओं का हनन युक्तिसंगत नहीं मानती। अतः किसी उपाय को लेकर तब इन असुरों का नाश करूंगी। देखो! जो धर्मविधि का भेदन करता है, वह शलभत्व प्राप्त करता है।" देवी का यह वाक्य सुनकर अभयदान मिलने से निर्भय एवं प्रसन्न मन से देवी को नमन करके देवगण यथास्थान चले गये। देवताओं के जाने के पश्चात् गौरी ने विस्तृतोदरी कान्तिमयी मोहिनी शक्ति का रूप धारण किया। उन्होंने चतुर्दिक् स्थित ४ शैलों पर अरुणाचल की रक्षा के लिए श्रेष्ठ बटुक चतुष्टय को रक्षक रूप में प्रतिष्ठित किया। तदनन्तर जब शैलजा कैलास शिखर से आईं तब दुन्दुभि, सत्यवती, अनवमी तथा सुन्दरी मातृचतुष्टय उनकी सेवा के लिए परिचारिका रूपेण देवी का अनुगमन करने लगीं।।१८-२५।।

विमुञ्चताऽतिथिं श्रान्तं क्षुत्पिपासासमन्वितम्। अरुणाद्रिमिमं द्रष्टुं नान्यमित्यब्रवीच्च तान्॥२६॥
सीमाशैलस्थितान्वीरांस्तानादिश्य बलाधिकान्। तपश्चचाराऽद्रिकन्या गौतमाश्रमसन्निधौ॥२७॥
तस्यां तपन्त्यांतन्वङ्ग्यांनतापःकश्चिदप्यभूत्। ववर्षकालेजलदःसफलाश्चाभवन्द्रुमाः॥२८॥
विरोधीनि च सत्त्वानि मुमुचुः पूर्वमत्सरम्। आश्रमःसर्वजन्तूनांशरण्योऽभृद्भयापहः॥२९॥

तदनन्तर देवी ने सीमान्त रक्षक वलवान बटुक चतुष्टय को आदेश दिया कि "जो व्यक्ति अरुणाचल के

दर्शनार्थ आये, उस श्रान्त, क्षुधा-पिपासान्वित अतिथि का कदापि त्याग न करना।'' देवी यह आदेश देकर गौतम ऋषि के आश्रम में तप करने लगीं। उन तन्वंगी गौरी को तपःकाल में कोई पसीना नहीं हुआ। उस समय मेघ यथाकाल जलवर्षा करते थे। वृक्ष फलयुक्त रहते थे। परस्पर विरोधी प्राणी भी मत्सरता त्याग कर रहते थे। वह आश्रम समस्त प्राणीगण का शरणस्थल तथा भयहारी रूप हो गया था।।२६-२९।।

योजनद्वयपर्यन्तं सीमाशैलेषु संस्थितैः। चतुर्भिर्बटुकैः शूरै रक्षितश्चाऽरुणाचलः॥३०॥
नोदभूत्कश्चन त्रासो न च दृष्टोभयोदयः। न व्याधिपीडनंचासीत्तत्रनारिविजृम्भणम्॥३१॥
कृतार्था मुनयःसर्वेप्रशंसन्तोनगात्मजाम्। शिवलोकपदंकेचित्प्रत्यशंसंस्तथाश्रमम्॥३२॥
सा च गौरी तपोघोरं कुर्वतीचदिवानिशम्। न तृप्तिमाययौबालाशिवसन्तोषकारकम्॥३३॥
महिषश्च महावीर्यो मृगयां कर्तुमुद्यतः। चचार काननं सर्वं विदूरे शोणभूभृतः॥३४॥
दैत्यसैन्यसमायुक्तो मृगयूथान्यनेकशः। वनेषु निघ्नंस्तरसा विचचाराऽऽशु भक्षयन्॥३५॥
धन्विभिर्बलिभिर्वीरैर्मृगाः केचिदनुद्रुताः। भयार्त्ताः परिधावन्तःप्राविशंस्तंतथाश्रमम्॥३६॥
अनुव्रजन्तो दितिजा मृगांस्तान्हन्तुमुद्यताः। वारिताबटुकैर्वीरैर्मायाताऽत्रेतिसत्वरैः॥३७॥

सीमा शैल पर स्थित वीर बटुक चतुष्टय अरुणाचल की तीन योजन पर्यन्त रक्षा करने लगे। समस्त भय एवं त्रास एक साथ तिरोहित हो गया। वहां व्याधिपीड़ा अथवा शत्रुभय नहीं रहा था। कृतार्थ मुनियों ने इस कारण गिरिजा की सर्वदा प्रशंसा किया। यहां तक कि कोई-कोई उन आश्रमों को शिवलोक कहते थे। देवीबाला गौरी भी वहां शिव को सन्तुष्ट करने वाला तप निरन्तर कर रही थीं। वे इससे शम्भु को तृप्त नहीं पा रही थीं। उस समय महाबली महिष मृगया (शिकार) में रत होकर शोणपर्वत के निकट कानन भूमि में विचरण कर रहा था। महिषासुर अनुचरों से परिवृत होकर अतीव प्रचण्ड वेग से अनेक मृगयूथ का वध करता हुआ तथा उनका भक्षण करता विचरण कर रहा था। तदनन्तर उसके बली धनुषधारी सेनानियों के कारण आकुल वह मृगयूथ तीव्र वेग से आश्रम में प्रविष्ट हो गया। जब वे असुर उन मृगों का वध करने के लिए उद्यत हो गये, तब उन वीर बटुकों ने असुरों को तत्काल वहां प्रवेश करने से रोक दिया।।३०-३७।।

किमत्रेति तदा पृष्टा बटुका दुष्टदानवैः। तपस्यति वरारोहा कन्याऽत्रेत्याहुरञ्जसा॥३८॥
न केनचित्प्रवेष्टव्यं बलिना मुनिसेवितम्। तपःस्थानमिदं देव्याः शरणागतरक्षकम्॥३९॥

दुष्ट असुरों ने आश्रम में जाने से रोके जाने का कारण बटुकों से पूछा। तब बटुकगण ने उत्तर दिया— ''यहां वरारोहा गौरी तप कर रही हैं। इसलिए तपरूपी तेजयुक्त मुनिगण सेवित आश्रम में सहसा किसी के प्रवेश की आज्ञा नहीं है। यह देवी का तप स्थान है। यह स्थान शरणागतों की रक्षा करने वाला है''।।३८-३९।।

इति तेषां वचः श्रुत्वा बलिनो दुष्टदानवाः। तथेतिविनिवृत्त्याशुकर्त्तव्यंसमचिन्तयन्॥४०॥
मायया पक्षिरूपास्ते प्रविश्याऽऽश्रममादरात्। आरामवृक्षशाखासु निषेदुःखादिहेक्षितुम्॥४१॥
सा पुनर्ल्लसितारण्ये सर्वर्तुकुसुमान्विते। तपस्यन्ती तदा दृष्टा मायादैत्यस्यसैनिकैः॥४२॥
रूपलावण्यतेतस्यानिश्चयंतपसिस्थितम्। वीक्ष्य ते विस्मयोपेतागत्वातस्मैन्यवेदयन्॥४३॥

बलवान बटुकगण का यह वाक्य सुनकर उन दुष्ट दानवगण ने कहा ''ऐसा ही हो'' तथा अन्दर जाने

से रुक कर आगे क्या करना है, यह चिन्तन करने लगे। उन्होंने क्षण काल में पक्षीरूप धारण किया तथा आश्रम में जाकर देवी का रूपदर्शन वहां स्थित वृक्ष शाखा पर बैठ कर करने लगे। तदनन्तर मायामय दैत्य सैनिकों ने देखा कि वे देवी सर्वदा कुसुमित मनोरम कानन में तप कर रही हैं। उनका समस्त रूप-लावण्य मानों तपःश्चरण में ही दृढ़ता से नियोजित हो रहा है। दानवगण देवी के रूप को देखकर विस्मित हो गये। वे वहां से महिषासुर के पास गये तथा समस्त घटना को महिषासुर से कहा।।४०-४३।।

सस्मरार्त्तोवृद्धरूपःप्रविवेशाऽऽश्रमं तदा। पूजितोऽस्याः सखीभिश्चगतश्रान्तिरिवस्थतः।।४४।।
वृद्धोऽपृच्छत्किमर्थन्तुतपोऽस्याइतितास्तथा। बालाकान्तप्रसादार्थंचिरमत्रतपस्यति।।४५।।
परं स बलवान्कान्तो न कदापि प्रसीदति। कार्यं विवाहसमये मनोरथं यथोचितम्।।४६।।
अपूर्वप्रभुणा तेन नवोपकरणं महत्। सद्योजातकुलालेन सद्यःसृष्टैर्विपाचितैः।।४७।।
भाजनैरपि साद्यस्कैर्न्यस्तैः पक्वैश्च शालिभिः। तादृशैः साधनैः सर्वैस्तादृशैर्द्रव्यसञ्चयैः।।४८।।
अपूर्वदृष्टविभवैःकार्यस्यादुपकारणम्। सिद्धे तथोपकरणेऽस्याः सद्योऽस्तु स्वयम्वरः।।४९।।
इतितासांवचःश्रुत्वाविहसन्महिषोऽभ्यधात्। तपः फलमहंप्राप्तःसत्यमस्याइतिस्थितम्।
मदीयां सकलां मूर्तिं शृणु बाले तपस्विनि!।।५०।।

इस वृत्तान्त को सुनकर कामपीड़ित महिष ने वृद्ध रूप धारण किया तथा आश्रम में प्रविष्ट होकर परिचारिकाओं द्वारा सत्कृत भी हुआ। वहां इस प्रकार अवस्थित हो गया, जैसे वह श्रम को दूर कर रहा है। कपट वृद्धरूपी उस असुर ने परिचारिकाओं से पूछा—"ये क्यों तप कर रही हैं?" तब परिचारिकागण ने उत्तर दिया "यह बाला अपने स्वामी की कृपा पाने हेतु तप कर रही हैं, तथापि इनके बलवान् स्वामी किसी प्रकार से भी प्रसन्न नहीं हो रहे हैं। देवी द्वारा प्रार्थित वे अपूर्व प्रभु विविध नवीन उपकरणादि से विवाह काल में इनका यथोचित अभीष्ट पूरण करेंगे। सद्योजात कुम्भकार द्वारा सद्य बनाये मृत्तिका पात्र में पके शालिधान्य रख कर तथा ऐसे ही अपूर्व विभव युक्त द्रव्यों द्वारा महा-उपचार की व्यवस्था करके तब इनका स्वयंवर हो।" महिषासुर परिचारिकाओं का यह वाक्य सुनकर हास्यपूर्ण वाणी से कहने लगा "ऐसा फल प्राप्त करने के लिए ऐसा तप! हे बाले! तपस्विनी! अब मेरा ऐश्वर्य सुनो"।।४४-५०।।

महिषोऽहं महावीरो दैत्येन्द्रः सुरवन्दितः। जगत्त्रयमिदं सर्वं मयैव परिगृह्यते।।५१।।
अनन्यवीरसद्भावो मय्येव भुजशुष्मणा। कामरूपोऽस्म्यहं बाले सर्वभोगप्रदायकः।।५२।।
भज मां तव भर्त्तारं प्राणिनां तपसः फलम्। सर्वसम्पादयिष्यामिकल्पवृक्षैःसमाहृतैः।।५३।।
सृजामितपसा चाऽहं विश्वकर्माणमादितः। कामधेनुसहस्राणिसृजामितपसाक्षणात्।।५४।।
नवभिर्निधिभिः प्राप्तैः पार्श्वस्थैर्नित्यदा मम। अपेक्षितार्थसंसिद्धिः सहसैवोपपाद्यते।।५५।।

"मैं देवताओं द्वारा पूजित दैत्यराज महावीर महिषासुर हूं। मैं तीनों लोकों का अधीश्वर हूं। मेरे भुजबल विक्रम के कारण नाना वीरों ने वीरत्व ही त्याग दिया। हे बाले! मैं कामरूप (इच्छानुसार वेशधारी) तथा सर्वभोग प्रदाता हूं। अतः तुम्हारी तपस्या का फल तुम मुझे मानकर मेरी सेवा करो। मुझे पति मानो। मैं अपने द्वारा लाये कल्पवृक्ष द्वारा प्राणियों का तपःफल साधित करता हूं। मैं तपस्या द्वारा क्षणकाल में ही विश्वकर्मा तथा

हजारों कामधेनुओं का सृजन कर सकता हूं। नवनिधियां तो सदा मेरे बगल में खड़ी अभीष्ट प्राप्ति चाहती हैं''।।५१-५५।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा स्मृतदेवाभवत्क्रमात्। विसृज्यमौनंशनकैर्विहसन्तीतमब्रवींत्।।५६।।
अहं बलवतो भार्या भविष्यामि तपश्चिरम्। करोमि यद्यसि बली बलं दर्शय मे निजम्।।५७।।
विरच स्त्रीस्वभावंस्वंश्रुत्वातद्वाक्यमुत्थितम्। हतेकोऽयमितिक्रोधान्ननर्दमहिषासुरः।।५८।।

महिषासुर का यह कथन सुनकर देवी ने अपने अभीष्टदेव शंकर का स्मरण किया तथा मौन त्याग कर प्रसन्नवदन होकर उससे कहा—''मैं बलवान की पत्नी बनूंगी। इसी कारण दीर्घकाल से तप कर रही हूं। तुम यदि ऐसे बलवान हो, तब मुझे अपने बल का प्रदर्शन करके सन्तुष्ट करो, तथापि स्त्रीजनोचित स्वभाव का द्योतन न करो।'' तदनन्तर देवी का यह कथन सुनकर महिषासुर क्रोध में भर कर निनाद करने लगा तथा वह मन ही मन विचार भी करने लगा।।५६-५८।।

जिघृक्षन्तंसमायान्तंवीक्ष्य तं महिषासुरम्। अभूद्दुरासदादुर्गाकन्यासाज्वलनाकृतिः।।५९।।
महामायांसमालोक्य ज्वलन्तींपुरतःस्थिताम्। स्वयं समहिषाकारोववृधेमेरुसन्निभः।।६०।।
कुलभूधरशृङ्गाणि शृङ्गाभ्यां मुहुराक्षिपन्। आजुहाव निजां सेनामापूरितदिगन्तराम्।।६१।।

उसने विचार किया कि यह बाला कौन है? यह सोच कर वह देवी को पकड़ने चला। तब देवी ने ज्वलनाकृति दुःसह दुर्गा रूप धारण कर लिया। जब महिषासुर ने दीप्तिमान् महामाया को अपने सामने देखा तब उसने अपना मेरु पर्वत जैसा विशाल रूप धारण कर लिया। महिषासुर ने अपने सींगों से कुलाचल के सभी शिखर उखाड़ फेंके। उसने दिशाओं को आपूरित की हुई अपनी सेना को पुकारा।।५९-६१।।

अथ ब्रह्ममुखा देवाः प्रणम्यविविधायुधैः। पूजयामासुरात्मीयैर्दुर्गांकालाग्निरूपिणीम्।।६२।।
पञ्चहेतीर्हरिः प्रादाद्दश चाऽपिसदाशिवः। ब्रह्मा चतस्त्रश्च तदा तस्यै मायातिरोहिताः।।६३।।
दिक्पालाश्च सुराश्चान्ये पर्वताश्चपयोधयः। स्वीयैराभरणैःशस्त्रैरधृष्यास्तामपूजयन्।।६४।।
माया सा बहुभिर्हस्तैर्ज्वलदायुधसञ्चयैः। आबद्धकवचा तूर्णं दुर्गाऽभूत्सिंहवाहना।।६५।।
आपूरितदिशाभोगा तेजस्तत्सोढुमक्षमः। दुर्गाया घोरमालोक्य महिषस्तुपलायितः।।६६।।
अथ तेजो निजं घोरंप्रज्वलत्सोढुमक्षमम्। पलायमानमालोक्य महिषंसाव्यचिन्तयत्।।६७।।

ब्रह्मा आदि प्रमुख देवताओं ने अपने-अपने विविध आयुध प्रदान करके कालाग्निरूपा देवी की पूजा किया। हरि ने ५, सदाशिव ने १०, ब्रह्मा ने ४ हेति अस्त्र देवी को प्रदान किये। मायारहित दिक्पाल, अन्य देवगण, पर्वत, समुद्र इत्यादि ने भी अपने-अपने आयुध तथा आभरण से इन अदृश्या देवी का पूजन किया। तब माया दुर्गा देवी ने अपनी अनेक बाहु में उन प्रज्वलित से आयुधों को धारण करके तथा कवच से शरीर ढंक कर तत्काल सिंह पर आरोहण किया। उनके तेज से दिशायें भर गयीं। दुर्गा के उस भयंकर तेज को न सह सकने के कारण महिषासुर वहां से भाग गया।।६२-६७।।

उपायेन निहन्तव्यो दुष्टोऽयं महिषासुरः। मदपूर्वं निवृत्यन्ते मृगा मृगयुभिर्वने।।६८।।
दूतोक्तिभिःसमाकृष्यमृद्वीभिर्मर्मवृत्तिभिः। कोपमस्यसमुद्भाव्यकरिष्येऽभिमुखंक्षणात्।।६९।।

अधर्मवृत्तियुक्तानां धर्मवाक्यपरिश्रवात्। कोपः समुद्भवेत्सद्यः स्वजीवक्षयकारणम्॥७०॥
अथवा धर्मबुद्धिस्सन्यदि शान्तो भविष्यति। तदा हितोपदेशेन धर्मलोपो न सम्भवेत्॥७१॥
तपस्यद्भिःसदाकार्यःकोपत्यागःफलान्वितः। धर्महानिर्नसोढव्यातत्कोपोहितपःपरम्॥७२॥

उसे भागते देखकर भगवती चिन्तन करने लगीं कि ऐसा क्या उपाय करूं, जिससे इस महिषासुर का वध हो सके? जैसे व्याध मृगों को प्रलोभन देकर बुलाता है, वैसे ही मैं भी इसे मर्मभेदी मृदु दूत के द्वारा संदेश भेजकर इसका आकर्षण करके इसमें क्रोध उत्पन्न करूं। तब यह क्षणकाल में मेरे समक्ष आ जायेगा। अधर्म वृत्ति व्यक्ति में धर्मवाक्य सुनकर सदा क्रोध का उद्रेक हो जाता है और वही उसका मरण कारण बन जाता है। अथवा धर्मवाक्य को सुनकर जिसमें धर्मबुद्धि उत्पन्न हो जाये, तब उसे हितयुक्त उपदेश देकर धर्मरक्षा हो सकेगी। तपस्वी के लिए क्रोधत्याग ही सदैव कर्त्तव्य है, तथापि धर्महानि कदापि सहन योग्य नहीं है। धर्महानि रोकने के लिए तथा धर्मरक्षार्थ क्रोध करना भी श्रेष्ठ उपाय है। वह उत्तम तप है।।६८-७२।।

इति सञ्चिन्त्य सा गौरी नाम्नासुरगुरुं मुनिम्। सङ्कल्प्यवानरमुखंप्राहिणोदसुरं प्रति॥७३॥
गच्छ त्वं मायया युक्तो महर्षे वानरानन।
महिषं बोधयित्वा च वचनं शीघ्रमाव्रज॥७४॥
मैव त्वमरुणाद्रीशमुपपीडय दुर्मते। अत्र दुर्मनसां वीर्यमदृश्यं भवति क्षणात्॥७५॥
न कलेरुपतापोऽत्र नाऽसुरैरपि पीडनम्। न साहसं च शुभदं शिवभक्तिमतामपि॥७६॥
पूर्वजन्मकृतैः पुण्यैर्लब्धवीर्यमहोदयः। मा त्वं शोणाचलेशाग्नौ शलभत्वं भजाऽसुर!॥७७॥
शिवेन दत्ता विभवास्तव पूर्वतपोबलात्। दह्येरन्यत्र तरसा दाववह्नौ यथा द्रुमाः॥७८॥
अत्र धर्मात्मनां वासः शिवभक्तिमतां सदा। परपीडाप्रसक्तानां भवेद्रोगशतावृतः॥७९॥
ऐश्वर्यमतुलं प्राप्तो बलमन्यद्दुरासदम्। किमर्थं स्वल्पबुद्धिःसन्स्वदोषैर्नाशमेष्यसि॥८०॥

देवी गौरी ने यह चिन्तन करके मायाकल्पित सुरगुरु नामक मुनि को महिषासुर के पास भेजा। देवी ने भेजते समय उनसे कहा—"हे वानरमुख महर्षि! तुम मायायुक्त होकर महिषासुर से जाकर मेरा संदेश कहो तथा कहकर शीघ्र वापस आना। तुम उससे कहना "हे दुर्मति! तुम कदापि अरुणाचल को पीड़ित नहीं कर सकोगे। यहां दुर्बुद्धि तथा दुष्ट मन से आने वालों का बल-वीर्य क्षण में नष्ट हो जाता है। यहां कलि का ताप, असुरों का पीड़न नहीं होता तथा कोई दुःसाहसी प्रभुत्व नहीं पा सकता। यहां सदा शिवभक्तों का शुभ होता है। तुम पूर्वजन्मार्जित कृत्य से जो बल-वीर्य लाभ करके अभ्युदयशाली बने हो, हे असुर! शोणाचल पर तुम कदापि शलभत्व प्राप्त नहीं करो! (अर्थात् इस पर्वत रूप अग्नि में पतंग बनकर न गिरो)। तुम्हारे पूर्व तपबल के कारण शिव ने ही तुमको ऐश्वर्य प्रदान किया है। जैसे दावानल में वृक्ष दग्धीभूत हो जाते हैं, तुम्हारा समस्त ऐश्वर्य तत्काल उसी प्रकार दग्ध हो जायेगा! यह स्थान धार्मिक शिवभक्तों का सतत् निवास स्थल है। यहां परपीड़ा परायण व्यक्ति में ही सैकड़ों पीड़ायुक्त तथा उत्पन्न हो जाती है। तुमने अतुल ऐश्वर्य तथा दुर्द्धर्ष बललाभ किया है। अतएव किस कारण से अल्पबुद्धि प्रयुक्त अपने दोष से अपना ही नाश कर रहे हो?।।७३-८०।।

मया कन्या पुनर्दृष्टा विशेषादबलामता। अन्तर्गतोऽरुणाद्रीशएतस्मात्साविशिष्यते॥८१॥

अथवा युक्तिभेदैस्त्वं शास्त्रैर्वा शिवसम्मतैः। अनिग्राह्यमनोवृत्तिरात्मसैन्यं समानय॥८२॥
येन लोकान्समस्तांस्त्वंबाधसेबलगर्वितः। तत्सैन्यं तव वृद्धंचक्षणाद्धक्ष्यामितेजसा॥८३॥
आनीय सकलं सैन्यमग्रे स्थापय सायुधम्। सद्यस्त्वात्मबलैः सृष्टैः संहरिष्यामि तत्क्षणात्॥८४॥
मच्छस्त्रपरिकृत्तस्य ससैन्यस्यतवाऽऽयुषः। मुक्तिरत्रैवभविताको जानातिशिवेहितम्॥८५॥
चार्यमाणोऽपि पूर्वेण कर्मणा प्रेरितो जनः। अवशः कर्म कुरुते भुङ्क्ते च सदृशंफलम्॥८६॥
त्वयाऽपि करुणावाक्यं वक्तव्यंकिलभूरिभिः। अकार्यविनिवृत्त्यर्थंनित्यधर्मानुपालने॥८७॥

तुम तो देखते हो कि यह कन्या अबला है। विशेषतः वह अरुणाचलस्थ है। इसलिए दुर्द्धर्षा है। अतः विविध युक्ति तथा शिवसम्मत शास्त्रों से भी तुम उसे ग्रहण नहीं कर सकोगे, क्योंकि उसकी मनोवृत्ति तुम्हारे प्रति अर्पित नहीं है। यदि इस कथन से भी तुम सन्तुष्ट नहीं हो रहे हो, तब तुमने जिस सैन्य बल से लोकसमूह को पीड़ित किया है, उसे बुलाओ! मैं उस समस्त सैन्य के साथ तुमको भी क्षणकाल में ही तप द्वारा दग्ध करूंगी। तुम अपने समस्त सैन्य को अस्त्रों से सज्जित करके मेरे सामने खड़ा करो, आत्मबल प्रयोग से मैं तत्काल उसका संहार कर दूंगी। मेरे अस्त्रों से तुम्हारे साथ तुम्हारा सैन्यदल यहीं मुक्तिलाभ करेगा। कौन जानता है, संभवतः यह शिव की ही इच्छा हो। लोग गलत कार्य से रोके जानेपर भी पूर्व संचित कर्म के कारण अवश होकर कार्य करते हैं, तथापि ऐसे कार्य के फल को भी उनको ही भोगना पड़ जाता है। तुमने भी नित्य धर्मपालनार्थ अकार्य निवृत्ति हेतु अनेक करुणवाक्य का प्रयोग किया होगा।।८१-८७।।

इति गौर्या समादिष्टांवाचांकपिमुखोमुनिः। दूतःसन्सर्वमान्नष्टमहिषस्याग्रतः स्थितः॥८८॥
सोऽपि सर्वं समाकर्ण्य क्रोधवेगसमाकुलः। तं भक्षयितुमारेभेसोऽपिमायाबलाद्ययौ॥८९॥
अथ सैन्यं निजं सर्वं समाहूयदुराशयः। सन्नद्धंसायुधंयोद्धुमादिशल्लोकभीषणम्॥९०॥
युगान्तसमयोद्वेलचतुरर्णवसन्निभम्। सैन्यानां सैन्यमतुलं शोणाद्रिं पर्यवेष्टयत्॥९१॥
अथ गौरीसमालोक्यदैत्यानांसैन्यमद्भुतम्। ससर्जतैजसाञ्छूरान्घोरान्भूतगणान्बहून्॥९२॥
एकपादाक्षिचरणा लम्बकर्णपयोधराः। पाणिपादशिरःकुक्षिवक्त्राः केचिद्विनिर्गताः॥९३॥
अहं ग्रसामि सकलमपर्याप्तमिदं मम। अहमेव हनिष्यामि दैत्यसैन्यमशेषतः॥९४॥
किं त्वयाऽत्र पुनः कार्यं वीक्ष्य त्वं तिष्ठ केवलम्।
अहमेवाऽत्र योत्स्यामीत्यभाषन्त परस्परम्॥९५॥
तेषां कथयतां शङ्खं गणानां योगिनीगणैः। अधमत्सा भगवती हन्तुंतद्दैत्यमण्डलम्॥९६॥

वानरमुख मुनि दूतकार्य में नियुक्त होने के पश्चात् महिषासुर के पास आये तथा गौरी के आदेशानुसार उनका संवाद कहा। महिषासुर उनके वाक्यों को सुनकर क्रोध में भर गया तथा मुनि का भक्षण करने के लिए उद्यत हो गया। तब वे मुनि माया का सहारा लेकर वहां से अन्तर्हित हो गये! तत्पश्चात् वह दुष्ट आशय महिषासुर ने अपनी सेना के साथ आयुध तथा कवच धारण करके लोकभयंकर युद्ध हेतु आदेश दिया। तब युगान्तकालीन चारों समुद्र की लहरों से उद्वेलित संसार के समान अदम्य असंख्य असुर सेना ने अरुणाचल को घेर लिया। देवी ने भी अद्भुद् आसुरी सेना को देखकर तेजस्वी, घोररूपी, शूर एवं एक पैर वाले, एक आंख वाले, लम्बकर्ण लम्बित पयोधर

सम्पन्न नाना गणदेवताओं का सृजन किया। उनके हाथ, पैर, शिर, कोख तथा मुख से अनेक वीर निर्गत होकर एक दूसरे से कहने लगे—"मैं इस असुर सेना का अकेले ग्रास करूंगा। यह मेरे भोजनार्थ पर्याप्त नहीं है। मैं ही अकेले इसका संहार करूंगा। तुम केवल देखो, कुछ न करो। मैं ही युद्ध करूंगा।" देवी पक्ष की सेना में यही कथनोपकथन चलने लगा। तब देवी भगवती ने दैत्यकुल को निर्मूल करने हेतु योगिनीगण द्वारा शंखध्वनि कराया।।८८-९६।।

आलोक्यतांतथारूपामापतंस्तस्यसैनिकाः। दर्शयन्तःस्ववीर्याणिस्वामिनोऽग्रेधृतायुधाः॥९७॥
ववृषुः शस्त्रवर्षाणिदैत्याःप्रतिदिगन्तरम्। बाणैःकार्मुकनिर्मुक्तैस्तानिसातुन्यवारयत्॥९८॥
रथानां वारणेन्द्राणां हयानां लक्षकोटिभिः। युयुधुर्भूतवेतालादेव्या सृष्टास्तुदुर्जयाः॥९९॥
मातरोविविधाकाराडाकिन्योयोगिनीगणाः। सृष्टाश्चतेजसाभूयःपिशाचाःप्रेतराक्षसाः॥१००॥
देव्या सृष्टेन सैन्येन दुर्जयेनमहासुराः। भक्षिताश्चूर्णिताभिन्नादारितानिहताःक्षणात्॥१०१॥
देवी च सायुधा दृष्टा ज्वलन्ती निहतासुरैः। नृत्यद्भूतगणैर्भुक्तै रक्तैर्मांसैश्च तोषितैः॥१०२॥
यदा कैलासशिखरात्प्राप्ताकर्त्तुं तपोभुवम्। तदा समागताः काश्चिन्मातृकादेहगुप्तये॥१०३॥
दुन्दुभिःसत्यवत्याख्यातथाचान्तवतीपरा। सुन्दरीतिचतस्रस्ताअन्वयुःपरिचारिकाः॥१०४॥

महिषासुर सैन्य ने देवी का यह रूप देखकर देवी की सेना पर चढ़ाई कर दिया। वे आयुध धारण करके तथा अपने स्वामी के सामने होकर अपने-अपने पराक्रम का प्रदर्शन करने लगे। दैत्यसेना सभी दिशाओं से बाण वर्षा करने लगी। देवी ने भी अपने धनुष से छोड़े बाणों द्वारा उनके बाणों का निवारण कर दिया। लाखों-लाख कोटि रथ, हाथी तथा अश्व पर बैठे देवी द्वारा सृष्ट बेताल युद्ध करने लगे। देवी के तेज से उत्पन्न विविधाकार मातृका, डाकिनी, योगिनी, पिशाच, प्रेत तथा राक्षसादि दुर्जय सेनानीगण द्वारा क्षणमात्र में अनेक महान् असुर खा लिये गये। वे चूर्णित, भिन्न, विदारित तथा मृत होने लगे। देवी आयुधधारी होकर अत्यन्त दीप्तिमान् हो रही थीं। उनके असुर निहन्ता सैनिकगण भूतों के साथ नृत्य करते-करते असुरों का मांस-रक्त भक्षण करने लगे। देवी जब तप हेतु कैलास से यहां आई थीं, तब उनकी शरीर रक्षार्थ दुन्दुभि, सत्यवती, अन्तवती तथा सुन्दरी नामक चार मातृगण भी आई थीं।।९७-१०४।।

देव्या सृष्टा च चामुण्डा दंष्ट्रावलयभीषणा। दैत्यकृत्तिवसामांसरक्तृतृप्ताचचार सा॥१०५॥
असुरं कञ्चिदाक्रम्य नटनं सा चकार ह॥१०६॥
अथ तां समवेक्ष्य दुर्मदो हि ज्वलयामास च कोपवह्निना सः।
अतितीव्रविवृत्तभीष्मनेत्रश्रुति-शृङ्गाग्रविभिन्न-मेघजालः॥१०७॥
ज्वलदग्निशिखाभदीर्घजिह्वा-परिलीढोन्नतशैलशृङ्गभागः।
अवनिं दलयन्खुराभिघातैरसकृत्पांसुभिरास्वनन्दिगन्तान्॥१०८॥

देवी द्वारा सृष्ट भीषण चामुण्डा, जो भीषण दाढ़ों वाली, दैत्य चर्म का वस्त्र धारण करने वाली तथा दैत्यगण के मांस-रक्त से सराबोर थीं, वे भी रणभूमि में विचरण करने लगीं। वे असुरों पर आक्रमण करके नृत्य करने लगती थीं। दुर्मद महिषासुर उनको देखकर क्रोधाग्नि से जल उठा। वह अपने भीषण तीखे नेत्रों तथा कानों

को विकृत करके अपने सींगों से मेघमाला विच्छिन्न करने लगा। महिषासुर ज्वलंत अग्नि जैसी अपनी दीर्घ जिह्वा बाहर निकालता तथा लपलपाती यह जिह्वा किसी शैल शिखर जैसी प्रतीत होती थी। उसके खुरों के आघात से धरणी तल विदलित हो रहा था। उस खुराघात जनित शब्द से दिक्-दिगन्त प्रतिध्वनित होने लगा। खुराघात से उठती धूलि से दिशायें व्याप्त हो गईं।।१०५-१०८।।

अतिघर्घरदीर्घघोरनादस्फुटदण्डभ्रममोहितामरो यः।
धृतवालधिदण्डताड्यमानप्रतिशीर्णामितशस्त्रवर्षसङ्घः ॥१०९॥
मृतये व्यगमद्वलित्रयाढ्यां मृगराजस्थितिभासुरां भवानीम्॥११०॥

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्ये पूर्वार्धे देव्यास्तपश्चर्यायांमहिषासुरेण सह युद्धवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः।।१०।।

उसने अति दीर्घ घर्घर शब्द से तथा दण्ड घुमाकर देवसमूह को मोहित कर दिया। उसने चामर तथा दण्ड लेकर ताण्डव नृत्य करते-करते शस्त्र वर्षा द्वारा देवी के सभी अस्त्रों को शीर्ण कर दिया। तब त्रिवली रेखायुता सिंहवाहिनी भवानी उस असुर की मृत्यु कामना से पति के चरण का चिन्तन करने लगीं।।१०९-११०।।

।।दशम अध्याय समाप्त।।

एकादशोऽध्यायः

महिषासुर वध, गौतम-देवी वार्त्ता, अरुणाचल माहात्म्य

ब्रह्मोवाच

सतुसिंहस्थितां गौरीं ज्वलन्तीं विविधायुधाम्। शैलवर्षेणमहताकुपितः समपूरयत्॥१॥
शरवर्षेण महता तन्निवार्य विदूरतः। बिभेद निशितैः शस्त्रैरशेषं तस्य विग्रहम्॥२॥
भिद्यमानोऽपि दैत्येन्द्रः शैलसारप्रदुर्धरः। विषादं नागमत्किञ्चिद्ववृधे युद्धदुर्म्मदः॥३॥
भिद्यमानः स खड्गेन चक्रैरसिभिर्ऋष्टिभिः। शूलेन चाऽऽयुधैश्चान्यैरन्तर्धानमगाहत॥४॥
ततः सिंहाकृतिर्भीमः प्रचण्डनिनदाननः। तीक्ष्णदंष्ट्रः शितनखः परिबभ्राम केसरी॥५॥
देवीसिंहश्चपेटेनताडयामास पाणिना। दैत्यसिंहस्य च नखैस्तस्य वक्षो व्यदारयत्॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—क्रोधित महिषासुर ने विविध आयुधभूषणा सिंहवाहिनी दीप्तिमती गौरी को भीषण पत्थर वर्षा द्वारा ढंक दिया। देवी ने भी भीषण शर वर्षण से उन सब शैलसमूह को हटाकर उसके समस्त शरीर को क्षत-विक्षत कर दिया, तथापि पर्वत की तरह वह सारवान् युद्धदुर्मद दैत्यराज क्षत-विक्षत होकर भी और अधिक

दुर्द्धर्ष तथा वर्द्धित हो उठा। वह अणुमात्र भी पीड़ित नहीं था। तदनन्तर खड्ग, चक्र, तलवार, शूल एवं अन्य आयुधों से भीषण रूप से छेदन हो जानेपर युद्धभूमि से अन्तर्हित हो गया। महिषासुर ने १०० नखों वाले तथा तीखी दाढ़ों वाले प्रचण्ड नादकारी भीषण सिंह की वेश की रचना किया तथा रणभूमि में विचरण करने लगा। तब देवी वाहन केशरी ने उसे पंजे के आघात से ताड़ित करके उसका वक्षस्थल विदीर्ण कर दिया।।१-६।।

अथ व्याघ्रतया प्राप्तः स्फुटव्यात्ताननोमहान्। तं हन्तुं च बलाद्देवी वेगेनकरमक्षिपत्॥७॥
दीर्घाभिर्न्नीलरेखाभिः पूर्णःपिङ्गलविग्रहः। यानावलिभिराकीर्णःस्वर्णाद्रिरिवसञ्चरन्॥८॥
मृगैरिव परित्रातुं मुच्यमानोऽग्रतो बली। ज्वलन्तमिव रोषाग्निं जिह्वाहेतिभिरावहन्॥९॥
आगच्छन्तं रयाद्देवी भल्लेन शशिवर्चसा। प्रतिविव्याध तं व्याघ्रं पुरत्रयमिवेश्वरः॥१०॥
स बाणस्तन्मुखेमग्नस्तद्रक्तेन समुक्षितः। जगाहे गगनं भित्त्वादेहमस्यविनिर्गतः॥११॥
स दैत्यो वारणो भूत्वा देवीमाश्वभ्युपागमत्। बलिभिः पशुभिर्भिन्नैस्तस्याः प्रीतिमिवाऽवहन्॥१२॥
तं गजेन्द्रं समायान्तं मदक्लिन्नमहीतलम्। देवीसिंहस्तदा दृष्ट्वा ननर्द च जघान च॥१३॥
अथ खड्गधरो वीरश्चर्मपाणिःसमुद्गतः। वक्त्रं दधानो बभ्राम दंष्ट्राभ्रूकुटिभीषणम्॥१४॥
देवी च विलसत्खड्गचक्रचक्रलसत्करा। युयोध तेन वीरेण भग्रशीर्षाभ्यपद्यत॥१५॥

तदनन्तर उसने भीषण शार्दूल का रूप धारण किया तथा अपना भीमरूप मुख फाड़ कर रणभूमि में आया, तब देवी ने उसका वध करने के लिए अपने हाथों को प्रसारित किया। जैसे दुर्बल मृग भी अपने बचाव के लिए बली पशु के साथ संग्राम करता है, उसी प्रकार दीर्घ नीली रेखा से पूर्ण, पिंगल देह, यान समूह से घिरा, वह बली शार्दूल वेशधारी हो स्वर्ण पर्वत के समान विचरण करते-करते देवी के सामने आकर युद्ध करने लगा। प्रज्वलन्त अग्नि के समान जिह्वा लपलपाते उस शार्दूल को देखकर देवी ने त्रिपुरनाशक शिव के समान चन्द्रकान्ति वाले भल्लास्त्र से उस पर प्रचण्ड वेग से आघात किया। देवी द्वारा छोड़ा वह भल्लास्त्र शर उसके मुख में प्रवेश कर गया तथा शोणित से लिप्त होकर उसकी देह का भेदन करता हुआ बाहर निकला तथा आकाश में चला गया। महिषासुर हाथी का वेश धारण करके अपना पशुबल प्रदर्शित करते हुए अपने मदजल से भूमि को कीचड़ बनाता देवी के समक्ष आ पहुंचा। उस गजेन्द्र को आते देखकर देवी वाहन सिंह ने भीषण नाद करते हुए उसका वध कर दिया। तदनन्तर महिषासुर ३ उंगलियों से खड्ग पकड़ कर भ्रुकुटी तथा दाढ़ से भीषण मुख करके भ्रामित (घूमता) देवी के समक्ष आया। देवी भी खड्ग-चक्र धारण करके उस वीर से युद्धरत हो गयीं। देवी ने अस्त्र से उसका मस्तक काट दिया।।७-१५।।

भूयः स माहिषं रूपमास्थायासुरमायया। देव्या योद्धुं प्रववृते यथापूर्वमनाकुलम्॥१६॥
अथदेवैर्मुनीन्द्रैश्चचोदितो गौतमोमुनिः। प्रबोधयितुमारेभे स्तुतिभिर्जगदम्बिकाम्॥१७॥

तथापि मस्तक कट जानेपर भी आसुरी माया द्वारा महिषासुर पुनः महिष रूप धारण करके युद्धरत हो गया तथा अनाकुल भाव से उसी प्रकार युद्ध करने लगा। तदनन्तर देवता तथा मुनीन्द्रगण द्वारा भेजे गये महर्षि गौतम विविध स्तुतिवाक्य से जगदम्बिका को प्रबुद्ध करने लगे।।१६-१७।।

त्वयि स्वस्थः जगतः प्राणशक्तिः परा मता। ओजःशक्तिर्ज्ञानशक्तिर्बलशक्तिश्चगम्यते॥१८॥

किमेतदद्य मोहाय युद्धमारभ्यते त्वया। उपसंह्रियतामेष दैत्यो भुवनगुप्तये॥१९॥
भिन्नानामस्य देहानामुपसंहरणात्तव। बलयश्चोपदिश्यन्ते निगमोक्ता वरप्रदाः॥२०॥
अन्यथा तृणकल्पस्य शत्रोरस्य निबर्हणे। कालाग्निवर्चसो देवि! किमर्थं सम्भ्रमस्त्वियान्॥२१॥
स्वशक्तिमवसंस्तभ्य समाकर्षयतां रिपोः। प्राणशक्तिं त्रिशूलेन गुणत्रयवपुर्धृता॥२२॥

महर्षि गौतम कहते हैं—हे देवी! समस्त जगत् की ओजशक्ति, ज्ञानशक्ति, बलशक्ति तथा प्राणशक्ति आपके अन्दर अवस्थित है। आप मोहित होकर यह किस प्रकार का युद्ध कर रही हैं? हे देवी! त्रिलोकी की रक्षा के लिए आप इस असुर का संहार करें। आज इसका विभिन्न देह नष्ट करके वरप्रद निगमोक्त समस्त बलि का नियोग करना ही विधिविहित है। हे देवी! इस तृण के समान शत्रु का वध करने के लिए आप कालाग्निरूपा हैं। आपको आज भ्रम क्यों हो रहा है? आप अपनी शक्ति का अवस्तम्भ करके त्रिगुणरूपा हो जायें तथा इस त्रिशूल से शत्रु की प्राणशक्ति का आकर्षण करें।।१८-२२।।

इति स्म बोधिता तेन पुरा भगवती तदा। महिषासुरमाक्रम्यत्रिशूलेनाऽभ्यधारयत्॥२३॥
अनेकगिरिसङ्काशं देव्या विग्रहमात्मना। अशक्तस्तं धारयितुं ससाद महिषासुरः॥२४॥
निष्पिष्टो विलुठन्क्रोशन्नाक्रान्तश्चपरिस्फुरन्। निर्गन्तुमुद्गतशिरानशशाकासुराधिपः॥२५॥
त्रिशूलमुखभिन्नाङ्गरक्तधारासमुद्धतः। समुद्र इव सञ्जातः सन्ध्यारुणकलेवरः॥२६॥
अथ खड्गेन तीक्ष्णेन कर्तयित्वाचतच्छिरः। ननर्त्त तस्य शिरसितिष्ठन्तीमहिषार्दिनी॥२७॥
दुर्गां सिद्धाश्च गन्धर्वाः प्रशशंसुर्महर्षयः। पुष्पवृष्टिश्च महती देवैर्मुक्ता समन्ततः।
प्रणतः प्राञ्जलिर्देवीं तुष्टाव विबुधाधिपः॥२८॥

देवी भगवती ने गौतम द्वारा इस प्रकार प्रबोधित होकर महिषासुर पर त्रिशूल से आक्रमण करके उसे भूतल पर गाड़ दिया। तब महिषासुर स्वर्ण पर्वत के समान देवी के देहभार को धारण कर सकने में असमर्थ होकर विषादग्रस्त हो गया। वह भूमि पर लोटने लगा। अन्त में आक्रान्त एवं पिस सा गया। अब उसका उज्ज्वल मस्तक ऊपर नहीं उठ रहा था। त्रिशूल की नोक से छिन्न हो गये उसके देह से रक्तधारा बहने लगी। यह रुधिरधारा देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों सन्ध्याकीलन अरुण कलेवर समुद्र का आविर्भाव हो गया है। देवी महिषमर्दिनी ने तीक्ष्ण खड्ग से उसका मस्तक काट दिया तथा उस पर खड़ी होकर नृत्यरत हो गयीं। सिद्ध-गन्धर्व-महर्षिगण दुर्गा की प्रशंसा करने लगे। देवगण चतुर्दिक् से महान् पुष्पवर्षा करने लगे तथा देवराज इन्द्र प्रणत तथा अंजलिबद्ध होकर स्तव करने लगे।।२३-२८।।

इन्द्र उवाच

नमस्ते जगतां मात्रे भूतानां बीजसम्विदे!॥२९॥
भक्तिःश्रद्धाचभजतांशक्तिश्चासित्वमम्बिके। कारणंपरमाकीर्तिःशान्तिर्दान्तिःकलाक्षमा॥३०॥
एकैव विश्वरूपा त्वं नामभेदैर्निगद्यसे। तेषुतेषु पदेष्वस्मांस्तपोऽनुगुणसिद्धिषु॥३१॥
नियुज्य शत्रुंनिर्भिद्य शिवा ज्ञेयाप्रकाशसे। हतोऽयंमहिषोदुष्टो विनिकृत्तश्चशाम्भवि॥३२॥

छिन्नमेतस्यतु शिरः सजीवमिव लक्ष्यते। रक्तनेत्रं तीक्ष्णशृङ्गं ज्वलज्जिह्वं चलं शिरः॥३३॥
आक्रम्य तव तिष्ठन्त्या रूपमेव सदाऽस्तु नः। चक्रशृङ्गधनुर्बाणखड्गचर्मवराभयैः॥३४॥
शूलघण्टाङ्कुशकशाकपालकुलिशादिभिः। अशेषदेवतामूर्तिरशेषैर्देवतायुधैः॥३५॥

इन्द्र कहते हैं—समस्त प्राणी की बीजरूप जगदम्बा को नमस्कार! हे अम्बिके! आप अपने भक्तों के लिए भक्ति, श्रद्धा, शक्ति, कारण, परमा कीर्त्ति, शान्ति, दान्ति, कला तथा क्षमा हैं। आप एकमात्र विश्वरूपा हैं, तथापि आपका नामभेद कहा गया है। आप अपने तपोगुणसिद्ध विभिन्न पद से इन्द्रादिरूप से हमें नियुक्त करके शत्रु विनाश द्वारा शिवा नाम से प्रसिद्ध हैं। हे शंकरी! आपने इस दुष्ट महिषासुर का शिरच्छेदन करके इसे निहत किया है, तथापि इसका कटा मस्तक जीवित जैसा परिलक्षित हो रहा है। हे देवी! इसके रक्तनेत्र, तीक्ष्ण शृंग, प्रदीप्त जिह्वा तथा चञ्चल मस्तक पर आक्रमण करने से आप जो अवस्थान कर रही हैं, इससे आपका जो रूप हो रहा है, इसका हम दर्शन कर रहे हैं। आप चक्र-शृङ्ग-धनुष-बाण-खड्ग-ढाल-वरमुद्रा-अभयमुद्रा-शूल-घण्टा, अंकुश, कपाल, कुलिश आदि अनन्त देवास्त्र धारण करके असंख्य देवमूर्त्ति रूप से आविर्भूत होती हैं।।२९-३५।।

आपूरिता त्वमेवाऽम्बसर्वशत्रून्निहंसि नः। आयुधानां सहस्राणितन्मयास्तेविभूतयः॥३६॥
त्वज्जितारातयः सर्वे विविधायुधवाहनाः। रथनागहयैर्युक्ताः ससैन्या अपि भूभृतः॥३७॥
क्षणेन दग्धवीर्याः स्युस्त्वत्प्रसादविवर्जिताः। अपदोऽप्यल्पवीर्योऽपि त्वत्पादाम्बुजसेवकः॥३८॥
त्रिलोकनाथतां प्राप्तः प्रथते कीर्तिमण्डितः। तद्रूपमिदमत्युग्रं ध्यायतामर्चतां सदा॥३९॥
न शत्रुभ्यो भयं किञ्चिद्भवेद्विजयशालिनाम्। ईदृशं सर्वलोकेषु रूपं ते देववन्दितम्॥४०॥
पूज्यतामिष्टसिद्ध्यर्थं देवैर्भृत्यैश्च सर्वदा। मातरश्च त्वया सृष्टाः सर्वाभीष्टफलप्रदाः॥४१॥

आप इन आयुधों से हमारे शत्रुगण का विनाश करती हैं। ये सब आपके वशीभूत आयुध आपके भूषण रूप हैं। इन आयुधों द्वारा आप विविध आयुध तथा वाहनधारी शत्रुकूल को निर्मूल करती हैं। रथ, हाथी तथा अश्वयुक्त वाहन समन्वित ससैन्य राजा भी आपकी कृपा से विहीन हो जानेपर क्षण काल में हतवीर्य हो जाते हैं। समस्त पदहीन तथा अल्पबल विक्रमी भी आपके चरणकमलों की सेवा करके कीर्त्तिमान तथा त्रिलोकपति हो जाते हैं। आपके अत्युग्ररूप का जो ध्यान करे, उसके कोई शत्रु अथवा शत्रुता करने वाले नहीं रह जायें। वे विजयी होकर स्थित रहें। सभी लोकों में देव तथा मानवगण अपनी-अपनी इष्ट कामना की सिद्धि के लिए सतत् आपके देववन्दित इसी रूप की पूजा करें। आपने जिन मातृगण की सृष्टि किया है, वे भी सभी अभीष्ट फलों को देने वाली हो जायें।।३६-४१।।

सगणाः प्रतिपूज्यन्तां सर्वस्थानेषु सर्वदा। अयं च निहतोदैत्यस्त्वत्पादकृतलाञ्छनः॥४२॥
तव भक्तैः सदा पूज्यस्त्वत्प्रसादात्त्वदग्रतः। इत्थं सुरेन्द्रप्रणुता सर्वर्षिसुरसेविता॥४३॥
तथेति वरदा देवी ससर्ज च दिवं प्रति। स्वयमप्यात्मनस्तत्र तद्रूपं विविधायुधम्॥४४॥
संस्थाप्य मातृभिः सार्धं स्थानरक्षणमातनोत्। सङ्गृह्यविमलंरूपंसखीजनसमावृता॥४५॥
महिषस्य शिरोऽपश्यिद्विकृतं खड्गधारया। कथयन्तीपुनस्तस्यचित्रंलोकविभूषणम्॥४६॥
सखीभिःसहसाबालाकण्ठंतस्यव्यलोकयत्। अपश्यच्चतदालिङ्गंकर्त्तुं तस्य च पूजनम्॥४७॥

"वे भी अपने गणों के साथ सर्वत्र पूजित हों। हे देवी! आपके पद द्वारा लांछित असुर मृत हो गया है। अतः आपके भक्तगण इसे भी आपके सम्मुख रखकर पूजा करें।" इन्द्र द्वारा तथा देवगण द्वारा प्रणाम किये जाने तथा सप्तर्षियों से सेविता होकर देवी ने 'तथास्तु' कहा तथा देवगण को स्वर्गगमनार्थ विदा किया। देवी ने स्वयं भी मातृगण के साथ विविध आयुध युक्त अपना रूप वहां प्रतिष्ठित किया तथा स्थान की रक्षा करने लगीं। सखियों से घिरकर उन्होंने विमल रूप धारण किया, तदनन्तर खड्ग द्वारा विकृत बनाये गये (दो भाग में बंटे) महिष का मस्तक देखते-देखते भगवती अपनी सखियों से मनोरम आलाप करने लगीं। तदनन्तर एक दिन भगवती गौरी ने महिषासुर के गले का अवलोकन करते-करते देखा कि असुर के गले में एक शिवलिङ्ग है। गौरी ने पूजा करने के लिए वह लिंग ग्रहण किया।।४२-४७।।

आदत्त सहसा गौरी लिङ्गं तस्यगलेस्थितम्। आलोकयच्चसुचिरंरक्तधारापरिप्लुतम्।।४८।।
आसज्जत पुनर्लिङ्गमस्याः पाणितलं गतम्। विमोचयितुमुद्युक्ता नाशक्नोल्लग्नमञ्जसा।।४९।।
अचिन्तयच्च सा देवी किमेतदितिविस्मयात्। विषादेनच संयुक्तामहर्षीणांपुरःस्थिता।।५०।।

लेकिन तभी वह लिंग उनके हाथों से चिपक गया। गौरी यह देखकर विस्मित हो गईं। अनेक यत्न से भी वह लिंग हाथों से अलग नहीं हो रहा था। तभी उन्होंने देखा कि असुर का शरीर रक्तधारा से अभिषिक्त हो रहा है। गौरी यह देखकर विस्मित हो गईं तथा चिन्तित होकर महर्षिगण से कहने लगीं।।४८-५०।।

आहतःशिवभक्तोऽयमितिशोकंसमाविशत्। अगर्हतभृशंमौढ्यमात्मनःस्त्रीस्वभावजम्।।५१।।
अविचारसमारब्धं शिवभक्तनिवर्हणम्। उपतापपपरीताङ्गी गौतमं मुनिसत्तमम्।।५२।।
उपगम्याऽब्रवीद्बाला साहसं कृतमात्मना। भगवन्सर्वधर्मज्ञ गौतमार्यमुनीश्वर!।।५३।।
मान्यया धर्मरूपेण कोऽप्यधर्मः प्रकल्पितः। देवानां रक्षणं कर्तुमभयं दातुमुद्यता।।५४।।
अज्ञानान्महिषं दैत्यं शिवभक्तिममर्दयम्। रजसाक्रान्तबुद्धीनां न भवेद्धर्मसंग्रहः।।५५।।
गुरुप्रसादसुलभः स्फुरद्विघ्नशताकुलः। सुदुर्धर्षा निराचारदुर्दमाः शिवसंश्रयाः।।५६।।
विशेषतो लिङ्गधराः शिवस्तान्बहु मन्यते। पुरा पुरत्रयावासा दैतेया लिङ्गधारकाः।।५७।।
अजिताः शम्भुनापूर्वंमुक्तलिङ्गानिषूदिताः। अस्यकण्ठस्थितंलिङ्गं मम पाणि नमुञ्चति।।५८।।

देवी कहती हैं—मैंने इस शिवभक्त का वध करके शोक प्राप्त किया है। स्त्री स्वभाव के कारण मैंने मोहाच्छन्न होकर अत्यन्त गर्हित कर्म किया है। मैंने अविचार पूर्वक शिवभक्त को पीड़ित किया है। तदनन्तर तप्यमान हृदय से बाला पार्वती ने मुनिप्रवर गौतम के पास जाकर अपने अज्ञानकृत निन्दित कार्य के विषय में बतलाया। देवी ने कहा—हे भगवान् सर्वधर्मज्ञ! मैं धर्मरूपेण लोगों को मान्य हूं, तथापि हे मुनिप्रवर! आर्य गौतम! देवताओं के रक्षणार्थ तथा उनको अभय प्रदान करने में मुझसे एक अधर्माचरण हो गया है। मैंने अज्ञानतः शिवभक्त महिषासुर का वध कर दिया। जिसकी बुद्धि रजोगुण से आक्रान्त हो जाती है, उनका धर्मसंग्रह नहीं होता। यद्यपि वह गुरु की कृपा से भले ही सुलभ हो जाये, तथापि उसमें भी सैकड़ों विघ्न उपस्थित रहते हैं। यदि निशाचर व्यक्ति भी शिव का आश्रय ग्रहण कर लेता है, तब वह भी दुर्द्धर्ष हो जाता है। विशेषतः जो कण्ठ में लिङ्गधारी है, उसका शिव भी सम्मान करते हैं। पूर्वकाल में त्रिपुरवासी लिङ्गधारण के कारण विश्व में अजेय हो गये थे। जहां उन्होंने

लिंग का त्याग किया, तत्काल शिव ने उनका विनाश कर दिया। इस महिषासुर के कण्ठ में स्थित जो लिङ्ग था वह मेरी हथेली से अलग ही नहीं हो रहा है।।५१-५८।।

कथंपापंनिरस्यामिशिवभक्तवधाश्रितम्। अस्यकण्ठस्थितं लिङ्गंधारयन्तीतपोन्विता।।५९।।
तीर्थयात्रांकरिष्यामियावच्छम्भुःप्रसीदति। पुनः कैलासमुख्येषु शम्भुस्थानेषु भूरिषु।।६०।।
तीर्थेषुरचितस्नाना लप्स्ये पापविशोधनम्। इति तस्याः परिश्रान्तिं दुर्धर्मपरिशङ्क्या।।६१।।

हे मुनिवर! शिवभक्त वध जनित यह पाप कैसे दूर करूं, वह उपाय आप कहें। मैं तपःपरायण होकर असुर के कण्ठ में स्थित लिंग को इसी प्रकार हथेली में धारण किये हुए जबतक शंभु प्रसन्न नहीं हो जाते, तबतक तीर्थयात्रा करूंगी। तदनन्तर कैलासादि प्रमुख शिवतीर्थों में विचरण करके विशुद्धि प्राप्त करूंगी।।५९-६०।।

आकर्ण्यशिवधर्मज्ञो भयार्त्तां तामवोचत। माभैषीर्गिरिजेमोहाच्छिवभक्तोहतस्त्विति।।६२।।
धर्मसूक्ष्मार्थवेत्तारो दुर्लभा गिरिकन्यके। सदा शिवस्य वदनैः सद्योजातादिसंश्रितैः।।६३।।
आगमाःपञ्चभिःप्रोक्ताअष्टाविंशतिकोटयः। निर्णयाःशिवभक्तानां शिवमागस्यशोभनाः।।६४।।
तेषुतेषु मुनीन्द्रैश्च नत्वैव प्रतिपद्यते। कालो मुखं च कङ्कालं शैवं पाशुपतं तथा।।६५।।
महाव्रतं पञ्च चैताः शिवमार्गप्रवृत्तयः। भेदाश्चबहवस्तेषामन्योन्यस्य शिवे रताः।।६६।।
साध्य एको हि बलवान्सर्वैस्तैरनिशं शिवः। सर्व एव सदापूज्याः स्वधर्मपरिनिष्ठितैः।।६७।।
अमत्सरैः शिवे भक्तः शिवाज्ञापरिपालकैः। वेदैश्च बहुभिर्यज्ञैर्भक्त्या च परयाशिवः।।६८।।
आराध्यते महादेवः सर्वदा सर्वदायकः। जीवहिंसा न कर्त्तव्या विशेषण तपस्विभिः।।६९।।

निन्दित धर्माचरण से भयभीत पार्वती की इस प्रकार खेदपूर्ण उक्ति सुनकर शिवधर्मज्ञ गौतम ने उनसे कहा—"हे गिरिजे! आप भय न करें। आपने मोहवशात् शिवभक्त का विनाश किया है। हे गिरिकुमारी! धर्म के सूक्ष्मार्थ को जानने वाले दुर्लभ हैं। शिव के सद्योजात आदि पंचमुख द्वारा २८ आगमों का अर्थ निर्णीत हुआ है। इन सब आगमों में शिवभक्तगण का उत्तम शिवमार्ग कहा गया है। इन सब आगमार्थ का निर्णय क्या है, वह मुनिगण को भी अवगत नहीं है। काल, मुख, कंकाल, शैव, पाशुपत—ये शिवव्रतरत शिवमार्गगामी के ५ महाव्रत हैं। इनमें भी पारस्परिक अनेक भेदों का वर्णन किया गया है, तथापि चाहे कितने भी भेद क्यों न कहे गये हों, एकमात्र शिव ही सर्वविध व्रतों के साध्यदेव हैं। शिव की आज्ञा का पालन करने वाला साधक शिवभक्त जो स्वधर्म में निष्ठावान् हैं तथा मत्सर दोषरहित हैं, ऐसे व्यक्ति सभी शिवभक्तों का पूजन करते हैं। अनेक वेद तथा यज्ञ द्वारा परम भक्तिभाव से सर्वप्रदायक महादेव सर्वदा आराधनीय हैं। जीवहिंसा कर्त्तव्य न हो, विशेषतः तपस्वीगण जीवहिंसा न करें।।६१-६९।।

शिवधर्मस्य भेत्तारो निहन्तव्यास्तथाऽञ्जसा। न वेषजुषिवीक्षेतन लिङ्गं नैव सम्भवम्।।७०।।
शिवधर्मस्य भेत्तारं हन्यादेवाऽविचारयन्। बहुभिः स्फूर्तयाबुद्ध्याधर्मविद्भिर्निरूपिते।।७१।।
शिवधर्मस्य विलये सद्यः शक्तिः प्रवर्तते। अस्य कर्म पुनर्दिष्टं लिङ्गमैश्वर्यचर्चितम्।।७२।।
न जेतुं शक्यते देवि तेनाऽसौ सर्वदैवतैः। यदयं निहतो देवि त्वया शङ्करमान्यया।।७३।।
आक्रान्तः शापदोषेण महर्षीणां शिवाश्रयात्। अथ ते कुपितास्तस्य वैषम्यादवमानतः।।७४।।

शेपुर्महिषवद्दुष्टो महिषोऽयं भवत्विति। ततस्तद्वचनात्सद्यो महिषोऽभूत्क्षणात्तथा॥७५॥

तथापि जो शिवधर्म में हिंसा करता है, उसका तत्काल वध कर देना ही कर्त्तव्य है। जो केवल शिवभक्त का वेश धारण करते हैं, तथापि लिंगधारण नहीं करते, वे शिवधर्म के भेत्ता हैं। ऐसे व्यक्ति का तत्काल वध कर देना चाहिये। इसमें विचार न करे। धर्मवेत्ता व्यक्तियों ने प्रशस्त बुद्धि द्वारा जिस शिवधर्म को निर्दिष्ट किया है, उस शिवधर्म के विलयकाल में सहसा शक्ति का आविर्भाव होता है। महिषासुर का एकमात्र शिवार्चन कर्म ही निर्दिष्ट था, इसीलिए समस्त देवगण उसके वधार्थ सक्षम नहीं थे। हे देवी! आप तो शंकर से भी मान्य हैं। यह महिषासुर महर्षिगण के शाप से आक्रान्त हो गया था। तभी आप आज उसका विनाश कर सकीं। विषम कार्य करने वाले उस असुर द्वारा ऋषिगण का अपमान किया गया था। तब उन्होंने उसे महिष होने का शाप दिया था। तदनन्तर उन ऋषिगण के वचनानुरूप उस असुर ने सद्यः महिषशरीर प्राप्त किया।।७०-७५।।

प्रणम्य तोषयामास ययाचे शापमोचनम्। दत्वा प्रकामरूपत्वं ददुरस्मै प्रसादिताः॥७६॥
महिषत्वेऽपि संहारंस्वयं देव्या शिवाज्ञया। विषादो न च कर्त्तव्योअङ्गदर्शनतस्त्वया॥७७॥
सिद्धानां शिवरूपाणामवज्ञा कं न बाधते। महिषत्वे समुत्पन्ने दोषेण समुपस्थिते॥७८॥
सिद्धप्रसादाल्लब्धोऽयंशापनाशस्त्वयाकृतः। सर्वेलोकाश्चसन्त्रातादुष्टोऽयंपरिरक्षितः॥७९॥
शापदोषसमुत्पन्ने महिषत्वेःविमोचिते। त्वया च गिरिशप्रीत्यै तपः कुर्वाणयाऽद्रिजे॥८०॥
द्रष्टव्यं तैजसं लिङ्गमरुणाचलसञ्ज्ञितम्। पूर्वजन्मनिभक्तोऽयमरुणाद्रिपतेः स्फुटम्॥८१॥
महिषत्वे मदाक्रान्तः परं लिङ्गेन सङ्गतः। भक्त्या लिङ्गधरं हन्तुं कः समर्थो जगत्त्रये॥८२॥
दृष्टाः पुरत्रये पूर्वं रुद्रेण पूजितास्त्रयः। त्वत्खड्गपरिकृत्तेन कण्ठेनाऽस्य वरानने॥८३॥
दीक्षादिरहितं लिङ्गं दत्तं हन्तीति चोदितम्। कृतं हि महिषेणाऽपि भक्तितो लिङ्गधारणम्॥८४॥

उस समय इस असुर ने ऋषिगण को प्रणाम करके अपने शापविमोचनार्थ प्रार्थना किया था। ऋषिगण ने प्रसन्न होकर कामरूपत्व (इच्छानुरूप रूप धारण) प्राप्ति का विधान किया। यह भी ऋषियों ने बतलाया था कि शिव की आज्ञा से यह महिष शरीर भी देवी द्वारा निहत होगा। हे देवी! मैं आपमें विषाद का चिह्न देख रहा हूं। आप विषण्ण न हों। देखें! शिवरूपी सिद्धों की अवज्ञा किसे पीड़ित नहीं करती? शापदोष से इस असुर को महिष शरीर मिला। लेकिन सिद्धों की कृपा से आपने इसके शाप का नाश किया। इस महिषरूपी असुर ने सभी लोकों को संत्रस्त किया था। मैं देखता हूं कि शापदोष से महिषरूपी असुर को मुक्त करके आपने समस्त लोकों का रक्षण ही किया है। हे पर्वतनन्दिनी! अब आप शिव की प्रीति हेतु तपस्या करके उनके अरुणाचल पर्वतरूप तैजस लिंग का दर्शन करें। हे पर्वतपुत्री! यह महिषासुर पूर्वजन्म में शिवभक्त था। इसने तभी मदाक्रान्त महिष शरीर में भी उत्तम लिंग धारण किया था। हे जगन्मयी! भक्तिपूर्वक लिंगधारी का वध करने में कौन समर्थ है? इसका प्रमाण है त्रिपुर निवासी रुद्रपूजित तीनों असुर! हे वरानने! इस असुर ने बिना दीक्षा लिये लिंग धारण किया था। अदीक्षित व्यक्ति लिंग धारण करने से मृत्यु को प्राप्त होता है। तभी आप इसे मृत कर सकीं। महिषासुर ने भक्तिपूर्वक लिंग धारण किया था।।७६-८४।।

कदाचित्क्षपणोक्तानांविभाषात्प्रत्ययंगतः। पूर्वजन्मतपोयोगात्स्मरणोलिङ्गधारणात्॥८५॥

त्वत्पादपद्मसंस्पर्शादयं मुक्तो न संशयः। मदुक्तनिष्कृतीनान्तु पातकानाञ्च नाशनम्॥८६॥
दर्शनं शैलवर्यस्यप्रायश्चित्तंपरंमतम्। संस्थाप्य विविधाञ्छैवाञ्छिवसिद्धान्तवेदिनः॥८७॥
आवाह्य सर्वतीर्थानि सर्वदोषनिवृत्तये। सरः किमपि सम्पाद्य स्नात्वा तत्र वरानने॥८८॥
अघमर्षणसंयुक्ता सलिङ्गा स्नानमाचर। त्रिसन्ध्यं चैव मासान्ते देवयागमहोत्सवे॥८९॥
आराधयोपचारैस्त्वमरुणाद्रिमयं शिवम्॥९०॥

महिषासुर ने एक बार क्षपणक की उक्ति पर विश्वास करके भक्ति के साथ इस लिंग को धारण किया था। इस महिष ने पूर्वजन्म में तप द्वारा जातिस्मरत्व (पूर्वजन्म स्मृति) प्राप्त करके लिंग धारण किया था। आज आपके चरणों के स्पर्श से उसे मुक्ति मिली है। यह निःसंशय है। मैंने आपसे सभी वृत्तान्त कहा है। यह परम पावन है तथा मेरे मत से शैलश्रेष्ठ अरुणाचल का दर्शन ही उपयुक्त प्रायश्चित्त है। हे वरानने! आप विविध शिवसिद्धान्तवादी शैवगण को प्रतिष्ठित करें तथा सभी तीर्थों का आवाहन करके दोषों की निवृत्ति हेतु एक सरोवर का निर्माण करायें। वहां अघमर्षण मन्त्र से इस हाथ में संलग्न लिंग के साथ स्नान करके संक्रान्ति के दिन त्रिसन्ध्या याग आदि उत्सवों एवं विविध उपचार से अरुणाचलमय शिव की उपासना करिये।।८५-९०।।

एवं तस्य मुनेर्निशम्य वचनं शैवार्थसम्भावितं-
प्रीता देवनमस्कृता गिरिसुता देवीजगद्रक्षिका।
शैवं धर्ममिमं विधातुमुचितं शोणाचलस्याऽग्रत-
स्तीर्थागाहनबुद्धिमाशुविदधे कर्तुं त्वघक्षालनम्॥९१॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्ये पूर्वार्धे महिषासुरवधोत्तरं देवीपाणौ महिषासुरशिरःसैल्लग्नतावृत्तान्तवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥११॥

तत्पश्चात् देवी पार्वती ने मुनि का यह शिवार्थ सम्मत वचन सुना तथा प्रेमपूर्वक शंकर को प्रणाम किया। उन्होंने विचार किया कि शैवधर्म का ही अनुष्ठान करना है। उन्होंने शोणशैल के शिखर स्थित तीर्थ में स्नान किया तथा पापों का नाश करने हेतु निश्चय किया।।९१।।

॥एकादश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

द्वादशोऽध्यायः

देवी शिव समागम, सनवती तीर्थ स्थापना, शिवभक्त के प्रति विश्वास का उपदेश, अरुणाचल शोभा तथा शिवागमन वर्णन

ब्रह्मोवाच

इति सम्भाषमाणे तु महर्षौ मुनिसेविते। विजहौ गिरिजा शङ्कांशिवभक्तवधाश्रिताम्॥१॥
अथान्तरिक्षादुदभूद्वाणी कर्णमनोहरा। माऽगमः शैलकन्ये त्वं पापनिष्कृतिकारणात्॥२॥
गङ्गा च यमुना सिन्धुर्गोदाऽपि च सरस्वती।
नर्मदा सा च कावेरी शोणः शोणनदी च सा॥३॥
अत्रैव नवतीर्थानि सम्भवन्तु शिलातले। त्वत्खड्गदारिते देवि कुरु तत्राऽघमर्षणम्॥४॥
अस्मिन्नाश्वियुजेमासिज्येष्ठानक्षत्रआगते। निमज्ज्यखड्गतीर्थेत्वंसलिङ्गामासमावस॥५॥
निवर्त्य सावनं मासमत्र दिक्पालसम्मितम्। ततः पाणिस्थितं लिङ्गं लब्ध्वा पापविशोधनम्॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—मुनिगणपूजित महर्षि गौतम के इस प्रकार कहने पर गिरिजा ने शिवभक्त वध जनित पाप शंका का त्याग कर दिया। तदनन्तर अन्तरिक्ष से अन्तःकरण को मनोहर लगने वाली एक आकाशवाणी सुनाई पड़ी—"हे शैलसुते! पापनिवृत्ति के लिये तुम यहां इस स्थान का त्याग न करना। गंगा, यमुना, सिन्धु, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, कावेरी, शोणनद, शोणनदी, ये ९ तीर्थ यहां शिलातल में ही अवस्थित रहते हैं। अपने खड्ग से विदीर्ण इस तीर्थ में तुम अघमर्षण करो। आश्विन मास के ज्येष्ठा नक्षत्र आने पर इस खड्ग तीर्थ में हाथ में चिपके लिंग के साथ स्नान करते हुए १ मास निवास करो। दिक्पाल समस्त सावन मास के ३० दिन यहीं रहकर तदनन्तर हथेली में चिपके लिंग की मुक्ति से निष्पाप हो जाओगी"।।१-६।।

प्रतिष्ठापय तीर्थाग्रेलोकानुग्रहकारणात्। उत्तीर्यतीर्थवर्येऽस्मिन्स्नात्वालिङ्गेऽर्चितेशिवे॥७॥
तापत्रयोपशान्तिश्च त्रैलोक्यस्य न संशयः। सर्वपापहरं लिङ्गं स्थावरं तीर्थसन्निधौ॥८॥
स्थापय स्थिरया भक्त्या सदालोकहिताय च। नक्षत्रे वैश्वदैवत्येदेवक्याःसङ्गमाचर॥९॥

"हे देवी! तदनन्तर त्रैलोक्य के प्रति अनुग्रह हेतु इस लिंग को इसी तीर्थ में प्रतिष्ठित कर देना। तुम्हारे द्वारा इस तीर्थ की प्रतिष्ठा होनेपर इस तीर्थ में स्नान तथा शिवार्चन करने से त्रैलोक्य के आधिदैविकादि तापत्रय से मुक्ति प्राप्त होती है तथा मोक्ष मिलता है। हे देवी! तत्पश्चात् तुम लोकहितार्थ स्थिर (दृढ़) भक्ति के साथ इस तीर्थ के निकट सर्वपापहारी स्थावर लिंग की प्रतिष्ठा करो। उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में यहां देवकी आती हैं"।।७-९।।

महोत्सवसमायुक्तं यावद्दशदिनावधि। कृत्वा चाऽवभृथं पुण्यनक्षत्रे वह्निदैवते॥१०॥
सायमभ्यर्च्य विधिवच्छोणाचलवपुर्मम। ततस्ते दर्शयिष्यामि तैजसं रूपमात्मनः॥११॥

एतत्कृतन्ते लोकानां रक्षायै सम्भविष्यति। इति तद्वचनं श्रुत्वा महर्षिवचनं च सा॥१२॥
उभयं कर्तुमारेभे तपसा शैलकन्यका। खड्गेन दारयामास शिलातलमनाकुला॥१३॥
उदजृम्भत तीर्थानां नवकंतत्रतत्क्षणात्। तस्य कण्ठस्थितंलिंगंध्यायन्तीपर्वतात्मजा॥१४॥
तीर्थे ममज्ज तस्मिन्सा मुनीनामभ्यनुज्ञया। तीर्थानां नवकं तत्र सञ्जातंस्फटिकप्रभम्॥१५॥

"तुम उनके साथ १० दिन पर्यन्त महोत्सव करो तथा पुण्यप्रद कृत्तिका नक्षत्र में अवभृथ स्नानोपरान्त शोणपर्वत रूपी मेरे शरीर की पूजा करो। हे देवी! इस प्रकार करने से मैं तुमको अपने तेजोमय रूप का दर्शन प्रदान करूंगा। तुम्हारे इस कार्य से समस्त लोकों की रक्षा होगी।" तत्पश्चात् गिरिजा ने महर्षि के कथन तथा आकाशवाणी के अनुसार ही तप द्वारा अपना कार्य सम्पन्न करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने खड्ग द्वारा अनाकुल रूप से शिला को विदीर्ण किया, तत्क्षण उसमें से गंगा आदि तीर्थ आविर्भूत हो गये। देवी पार्वती ने मुनियों के आदेशानुरूप असुर के कण्ठस्थित उस लिंग का चिन्तन करते हुए उसे उस तीर्थजल में छोड़ दिया। देवी के उस तीर्थ में निवास करने के कारण तीर्थनवक (जल) तत्काल स्फटिक के समान हो गया तथा उसने विचित्र रूप धारण किया।।१०-१५।।

अन्तर्वसतितः कान्त्या मेचकी कृतमञ्जसा। वसन्त्यां शैलकन्यायांतीर्थेत्रिंशद्दिनंत्वथ॥१६॥
शम्भोर्विरहसन्तप्तं मनश्चञ्चलतां ययौ। तत्र श्रिया सरोजानि चक्षुषोत्पलकाननम्॥१७॥
मन्दस्मितेन कुमुदं ससर्ज सलिलस्य सा। देव्यास्तेनोदवासेन लोकास्तु निरुपद्रवाः॥१८॥

तदनन्तर शैलपुत्री पार्वती ने इस तीर्थ में ३० दिन पर्यन्त निवास किया। तत्पश्चात् शंभु के वियोग में कातर उनका मन अत्यन्त चंचल हो उठा। उस तीर्थ रूप सरोवर में कमल आदि नहीं थे तथापि देवी की अंगकान्ति से उस जल में कमल सृष्ट हो गया। देवी की चक्षुप्रभा से उसमें कमलवन तथा मन्द हास्य से कुमुद की सृष्टि हो गयी। तपस्विनी भगवती के उस जल में वास करने के कारण सभी लोग उस समय के उद्भूत् फल को प्राप्त करके तत्काल उपद्रव रहित एवं कृतार्थ हो गये।।१६-१८।।

कृतार्थास्सहसा जातास्तत्तत्कालफलान्विताः।
मासान्ते सा समुत्तीर्य कृत्वा देव्युत्सवं तथा॥१९॥
कार्तिके मासि नक्षत्रे कृत्तिकाख्ये निशोदये। पूजयित्वा तपः सिद्धैरुपचारैर्बहूदयैः॥२०॥
अरुणाद्रिमयं लिङ्गं तुष्टाव जगदम्बिका। नमस्ते विश्वरूपाय शोणाचलवपुर्भृते॥२१॥
तेजोमयाद्रिलिङ्गाय सर्वपातकनाशिने। ब्रह्मणा विष्णुना च त्वं दुष्परिच्छेद्यवैभवः॥२२॥
अग्निरूपोऽपि सञ्छान्तो लोकानुग्रहकल्पतये।
शक्त्या च तत्त्वसङ्घातकरः कालानलाकृतिः॥२३॥
अद्रिश्रेष्ठारुणाद्रीश रूपलावण्यवारिधे। विचित्ररूपमेतत्ते वेदवेद्यं सुरार्चितम्॥२४॥
तेजसां देव सर्वेषां बीजभूतं निगद्यसे। दिव्यं हि परमं तेजस्तव देव महेश्वर॥२५॥
यत्पुरा ब्रह्मणा दृष्टं विष्णुनाच विचिन्वता। अद्य पूताऽस्मि देवेशतवसन्दर्शनादहम्॥२६॥

तेजो दर्शय मे दिव्यं सर्वदोषहरं परम्। प्रार्थयन्त्यां तदा देव्यामरुणाद्रिमयःशिवः॥२७॥
आविर्बभूव तेजोभिरापूर्य भुवनान्तरम्। कोटिसूर्योदयप्रख्यं तुल्यं पूर्णेन्दुकोटिभिः॥२८॥
कालाग्निकोटिसङ्काशं तेजः परमदृश्यत।
प्रणम्य परया भक्त्या मुनिभिःसार्धमम्बिका॥२९॥

जगन्माता गौरी भी एक मास व्यतीत होनेपर उस जल से बाहर आईं। उन्होंने देवी का उत्सव सम्पन्न किया तथा कार्त्तिक मास के कृत्तिका नक्षत्र के रात्रिकाल में तपःसिद्ध अनेक उपचारों से अरुणाचल लिंग की पूजा तथा स्तव सम्पन्न किया। उन्होंने कहा—"शोणाचल शरीरधारी विश्वरूप सर्वपातक नाशन तेजोमय अद्रि (पर्वत) लिंग को प्रणाम। हे देव! ब्रह्मा तथा विष्णु ने पूर्वकाल में आपके ऐश्वर्य की सीमा जानने का असफल प्रयास किया तथा सीमा नहीं जान सके। आपने त्रैलोक्य के प्रति अनुग्रह के ही कारण यह पर्वतरूप धारण किया है। हे रूपलावण्य के समुद्र रूप पर्वतप्रवर अरुणाचलेश्वर! आप अपनी शक्ति द्वारा यथार्थ तत्व एक साथ योजित करते हैं तथा आप कालानल रूप हैं। आपका वेदवेद्य तथा देवगण से अर्चित यह रूप अतीव विचित्र तथा समस्त तेजों का कारणरूप है। हे देव महेश्वर! पूर्व में ब्रह्मा एवं विष्णु ने आपके इस दिव्य परमतेज के अन्वेषण का प्रयास किया था। हे देवेश! आज उस सर्वदोषहारी दिव्य तेज का दर्शन दीजिये। मैं उसका दर्शन करके पवित्र हो सकूं।" देवी की इस प्रार्थना से अरुणाचल रूपी शिव अपने तेज से त्रिभुवन को व्याप्त करते हुए प्रकट हो गये। उनका वह परमतेज कोटिसूर्य तथा कोटि पूर्णचन्द्र तथा करोड़ों कालाग्नि के उदयकालीन तेज जैसा परिलक्षित हो रहा था। उस तेज के दर्शन से विस्मितहृदया कमललोचना अम्बिका आनन्दित हो गईं तथा मुनियों के साथ उन्होंने उस तेज को प्रणाम किया।।१९-२९।।

विस्मयाक्रान्तहृदया ननन्द नलिनेक्षणा। अथ तेजोनिधेस्तस्मादरुणाद्रिः समुत्थितः॥३०॥
हिरण्मयोऽब्रवीद्वाचंपुरुषः कालकन्धरः। प्रसन्नोऽस्मितपोभिस्तेस्थानेषुममकल्पितैः॥३१॥
तेजोमयमिदं रूपमीक्षितं च त्वयाऽधुना। कारणैर्बहुभिर्लोकान्रक्षेथास्त्वं जगन्मयि॥३२॥
तपांसि कुरुषे भूमौ किमन्यत्प्रार्थितंतव। मल्लोचनत्विषातेऽद्यतमोराशिः समुत्थितः॥३३॥
अशेषोहि प्रशान्तोऽभूत्तेजसोऽस्यनिरीक्षणात्। अयं तु महिषोदुष्टोमद्भक्तिंलिङ्गपूजकः॥३४॥
जग्राह सहसा ह्येतत्तस्य लिङ्गं गले स्थितम्। अनेन भक्षितं तच्च नास्तिकस्योपदेशतः॥३५॥
अकरोन्मय्यविश्वासं लिङ्गरूपे गलेस्थिते। क्रमेण सोऽपिसम्प्राप्तोमुनिजन्ममनोहरम्॥३६॥
मामेवाभ्यर्चयन्ध्यायन्गणनाथत्वमावसन्। पूर्वजन्मनि भक्तोऽयंमहिषोऽपित्वयाहतः॥३७॥

उनके प्रणाम करने के उपरान्त उस तेजोराशि से अरुणाद्रिरूपी नीलकण्ठ हिरण्यय दिव्य पुरुष उत्थित होकर कहने लगे—"हे देवी! मेरे द्वारा कल्पित इस स्थान पर तुमने प्रभूत तप किया है। मैं तुम्हारे तप से प्रसन्न हो गया। हे जगन्मयी! तुमने अभी मेरे तेजोमय रूप का दर्शन किया है। हे देवी! अब तुम अनेक उपायों से त्रैलोक्य की रक्षा करो। तुमने पृथिवी पर दीर्घकालीन अनेक तप किया है, तथापि तुम्हारे द्वारा अन्य कुछ भी प्रार्थित नहीं है। तुमने मेरे नेत्रों को आच्छादित किया था। तब मेरे नयन तेज से जो तमोराशि निर्गत हुई, वह भी इस अरुणाचल के निरीक्षण से प्रशान्त हो गई। यह दुष्ट महिषासुर मेरे प्रति भक्तिमान् तथा लिंगपूजक तो था, तथापि इसने बिना

दीक्षा लिंग धारण किया था। मैं लिंगरूप से उसके कण्ठ में निवास करता हूं, यह विश्वास उसे नहीं था। उसने नास्तिक के उपदेश से (क्षपणक के उपदेश से) लिंग भक्षण कर लिया था। हे देवी! इस लिंग के प्रभाव से क्रमशः वह असुर मनोज्ञ मुनि का जन्मलाभ करेगा। तदनन्तर मेरी पूजा तथा ध्यान द्वारा गणनाथत्व प्राप्त करेगा। हे देवी! तुमने जिस महिषासुर का वध किया है, वह पूर्व जन्म में मेरा भक्त था।।३०-३७।।

चिरंमल्लिंगधृग्यस्मात्सिद्धिरस्याऽपिदेव्यतः। शिवलिङ्गेष्वविश्वासःशिवभक्तावमाननम्॥३८॥
न कर्त्तव्यं सदा भक्तैस्तस्माद्वै मुक्तिकाङ्क्षिभिः।
दीक्षया रहितं लिङ्गं येन सन्धार्य्यते बलात्॥३९॥
न तादृशं फलं दत्ते वज्रवत्तं निहन्ति च। न दोषस्तत्रकिञ्चित्तेशोणाचलनिरीक्षणात्॥४०॥
सफला नयनावाप्तिः सर्वदोषविनाशनात्। त्वत्पुत्रस्तन्यदानेन धात्र्योपकृतमात्मजे॥४१॥
त्वामपीतकुचां चक्रेवत्सलांभक्तरक्षिणीम्। नक्षत्रे कृत्तिकाख्येऽत्रतवसन्निधिलोभतः॥४२॥
प्रायश्चित्ताभिधानेन भवाऽपीतकुचाभिधा। पूजाशेषं समाधायभक्तानुग्रहहेतवे॥४३॥
भज मां करुणामूर्तिरपीतकुचनायिका। इति देवस्य वचनमाकर्ण्याऽत्यन्तशीतलम्॥४४॥

इसने तब सतत् मेरा लिंग धारण करके सिद्धियों की प्राप्ति की थी। मुक्ति चाहने वाले भक्तगण कदापि शिवलिंग के प्रति अविश्वास अथवा शिवभक्त की निन्दा न करें। लेकिन जो व्यक्ति दीक्षा रहित होकर बलपूर्वक लिंग धारण करता है, उसे वैसा फल नहीं मिलता, अपितु वज्र की भांति वह लिंग ही उसका विनाश कर देता है। हे देवी! महिषासुर वध में तुम्हारा कोई भी दोष नहीं है। अब तुम सर्वदोषनाशक अरुणाचल का दर्शन करो तथा अपने नेत्रों को सफल करो। तुम तो भक्तिरूपा तथा वत्सला हो। तुम धाय की तरह लोगों को स्तन प्रदान करती हो। तभी तुमको आपीतकुचरूप से स्थापित किया गया है। कृत्तिका नक्षत्र में इस तीर्थ में आने वाले लोगों का पाप नाश करके तुम आपीतकुचा नाम से प्रख्यात हो जाओ। हे आपीतकुचनायिके! भक्तों के प्रति अनुग्रह करो तथा पूजन सम्पन्न होनेपर उन पर करुणा करके मेरी सेवा करो।'' देवी अम्बिका ने प्रभु शंकर का इस प्रकार का सुशीतल वाक्य सुना।।३८-४४।।

प्रणम्य प्रार्थितवती प्रोवाच च तमम्बिका। देवदेव प्रसादेन त्वयाऽनुग्रहशालिना॥४५॥
एतत्ते दर्शितं तेजो दृष्टं देवैश्च मानवैः। प्रत्यक्षं कृत्तिकामासि मद्व्रतान्तमहोत्सवे॥४६॥
नक्षत्रे कृत्तिकाख्येऽस्मिंस्तेजस्ते दृश्यतां परम्। तद्वीक्षितमिदं तेजःपरमं प्रतिवत्सरम्॥४७॥
दृष्ट्वा समस्तैर्दुरितैर्मुच्यन्तां सर्वजन्तवः। तथेति देवदेवेन प्रोचेऽथाऽन्तर्दधे गिरौ॥४८॥

तदनन्दर देवी प्रभु शिवशंकर को प्रणाम करके प्रार्थना करने लगीं। यथा—''हे देवदेव! देवगण तथा मनुष्य आपके जिस तेज का दर्शन करते हैं, आपके अनुग्रह द्वारा आज उस तेज का मुझे दर्शन प्राप्त हो गया। हे देव! कार्त्तिक मास के व्रतोत्सव में मैंने आपका जो रूप प्रत्यक्ष किया है, आप प्राणियों को प्रतिवर्ष कृत्तिका नक्षत्र के दिन अपने उस परमतेज का प्रदर्शन करें। प्राणीगण आपके इस परम तेज का दर्शन पाकर समस्त दुरित से मुक्त हो जायें।'' देवी की प्रार्थना सुनकर देवदेव शम्भु ने कहा ''ऐसा ही हो!'' यह कहकर भगवान् अरुणाचल से अदृश्य हो गये।।४५-४८।।

प्रदक्षिणं चकारैनं सखीभिः सा ततोऽम्बिका।
घनश्यामलया कान्त्या परितो जृम्भमाणया॥४९॥

अरुणाद्रिमयं लिङ्गं चक्रे मरकतप्रभम्। मन्दं चरन्ती जाताभिः प्रभाभिः पादपद्मयोः॥५०॥
तस्तार परितो भूमिं पद्मपत्रैः सपल्लवैः। प्रफुल्लकनकाम्भोजनीलोत्पलदलोत्करैः॥५१॥
अर्चयन्तीव शोणाद्रिमभितोदृष्टिकान्तिभिः। इन्द्रादिलोकपालानामङ्गनाभिर्निषेविता॥५२॥

इसके पश्चात् देवी पार्वती ने सखीगण के साथ अरुणाचल की प्रदक्षिणा किया तथा उसकी घनश्यामल कान्ति को इतःस्ततः फैलाकर अरुणाचलमय लिङ्ग को मरकतमय प्रभावान् कर दिया। मन्थरगति से चलने वाली देवी के चरण कमलों की छटा से उसके पास की भूमि मानों प्रभूत पल्लवयुक्त कमल के दल के समान लग रही थी। प्रतीत हो रहा था कि मानो कनक दल तथा नीलोत्पल बिछे हों तथा देवी चतुर्दिक् उद्भासित अपनी अंगकान्ति से शोणाचल की अर्चना कर रही हैं। तब इन्द्रादि लोकपाल की पत्नियां उनकी सेवा करने लगीं॥४९-५२॥

प्रसादिता मातृगणैर्गन्धदानविभूषणैः। छत्रचामरभृङ्गारतालवृन्तफलाचिकाः॥५३॥
वहन्तीभिः सुरस्त्रीभिर्वृता मुनिवधूयुता। प्रदक्षिणं चकारैनमरुणाद्रिं स्वयम्प्रभम्॥५४॥
काङ्क्षन्ती शिवसायुज्यं विवाहाग्निमिवाऽद्रिजा।
तस्यां प्रदक्षिणं भक्त्या कुर्वाणायां पदे पदे॥५५॥
प्रेषिता शम्भुना देवाः परिवव्रुः सुरेश्वराः। सरस्वतीसमं धात्रा विष्णुनाच समं रमा॥५६॥
सर्वदिक्पालकान्ताभिः समेता शैलबालिका। निरुन्धतीव देवेन्द्रं सलिलैर्वरदानतः॥५७॥
अद्रिनाथस्वरूपस्य शीतत्वमिव कुर्वती। तपस्ययाऽविनाभावाद्देवस्येव कृतस्मृतिः॥५८॥
दुष्करस्योदवासस्य बोधयन्तीव साधुताम्। ऋषीणांदेवमानानामुपदेष्टुमिव क्रमात्॥५९॥
क्रीडामिवपुराभ्यस्तांतपसाऽपिच सङ्गत। आत्मानंविरहोत्तप्तामात्मस्थंतादृशंशिवम्॥६०॥
सञ्चिन्त्य चोभयोःकर्तुंशीतलत्वं जलेस्थिता। तीर्थानामिवसर्वेषामुद्भूतानांशिलातले॥६१॥
आधिक्यमथ लोकस्य वक्तुकामा स्वयं स्थिता।
दुरितघ्नं च पञ्चाग्निमर्थावासं सुदुष्करम्॥६२॥
अधिगम्य तपस्तस्यशान्तिंकर्तुमिवस्थिता। महिषासुरकण्ठोत्थरक्तधारापरिप्लुतम्॥६३॥
क्षालयन्तीव लिङ्गं तदमलैस्तीर्थवारिभिः। अरुणाख्यं पुरं रम्यं निर्मितं विश्वकर्मणा॥६४॥

मातृगण ने देवी को गन्ध आदि प्रदान करके उनके आभरण की रचना किया तथा देवी को प्रसन्न किया। हजारों मुनिपत्नियां उनका छत्र, चामर, भृङ्गार, तालवृन्त तथा ताम्बूल सम्पुटक (पान का बीड़ा) वहन करने लगीं। तब गिरिजा ने स्वयम्भु अरुणाचल की प्रदक्षिणा करके शिवसायुज्य की कामना किया, जैसे विवाहाग्नि से (पति की) कामना की जाती है। देवी जब भक्तिपूर्वक अरुणाचल की परिक्रमा कर रही थीं, तब सरस्वती के साथ ब्रह्मा, रमा के साथ हरि तथा अपनी-अपनी पत्नी के साथ समस्त दिक्पाल तथा शम्भु से प्रेरित देवगण ने आकर उनको घेर लिया था। जब शैलपुत्री देवी दिक्पालों से घिरी थीं, तब उनको देखकर प्रतीत हो रहा था कि मानों जलवर्षण

से देवेन्द्र भी निरुद्ध हो गये हों! अग्निवत् तेजमय अरुणाचल भी शीत प्रदान कर रहे थे। देवी को तपस्यालब्ध देवदेव का करस्पर्श शंभु साथ उनके अभेद का प्रदर्शन कर रहा था। देवी का दुष्कर उदकवास (जल में तप) साधुता का ज्ञापन कर रहा था। देवमान्य मुनिगण के उपदेशक्रम से देवी पूर्वाभ्यस्त क्रीड़ा की तरह तपस्या से संगत हो रही थीं। देवी ने मानों अपनी विरहग्रस्त आत्मा तथा अरुणाचल रूप शिव को शीतल करने के लिए (३० दिन) जल में निवास (तप) किया था! देवी ने खड्ग द्वारा शिला विदीर्ण किया था, उससे जिस जलमय तीर्थ का उद्भव हुआ, मानों उस तीर्थ (फल में) सबसे अधिकता के कारण तथा भुवनों के प्रयोजनार्थ वहां देवी अवस्थित हैं। मानों वहां देवी तपाश्रय लेकर सुदुष्कर मनोरथ प्रसाधक दुरित नाशक होनेपर पञ्चाग्नि को शान्त करने हेतु स्थित हैं। मानों देवी वहां स्थित होकर महिषासुर के कण्ठ से निकल रही रुधिर धारा से सराबोर उस लिंग को निर्मल तीर्थ जल से धो रही हैं। यह अरुणारण्य नामक पुर रम्य है तथा विश्वकर्मा द्वारा निर्मित है।।५३-६४।।

अपीतकुचनाथेशशोणाद्रीश्वरतुष्टये। शृङ्गेषु यस्य सौधेषु वसन्त्यो वारयोषितः।।६५।।
अधःकृताभ्रतडितो जिगीषन्तीव चामरीः। यत्तुङ्गसौधशृङ्गाग्रे गायन्तीर्वारयोषितः।।६६।।
सिद्धचारणगन्धर्वविद्याधरविराजितम्। अष्टापदरथाक्रान्तमष्टवीथिविराजितम्।।६७।।
अष्टापदयथाकारमष्टदिक्पालपूजितम्। अष्टसिद्धियुतैः सिद्धैरष्टमूर्तिपदाश्रयैः।।६८।।
अष्टाङ्गभक्तियुक्तैस्तैर्युक्तमष्टाङ्गबुद्धिभिः। चातुर्वर्ण्यगुणोपेतमुपवर्णपरिष्कृतम्।।६९।।
लसत्सुवर्णदुर्वर्णशालामालासमास्थितम्। शङ्खदुन्दुभिनिस्साणमृदङ्गमुरजादिभिः।।७०।।
वीणावेणुमुखैस्तालैः सालापैरुपरञ्जितम्। ब्रह्मघोषनिनादेन महर्षीणां शिवात्मनाम्।।७१।।
सेवितव्यं दिने दिव्यसमदर्शवृषध्वजम्। नवरत्नप्रभाजालैर्नवग्रहसमोदयैः।।७२।।
निशादिवसयोरेवं दर्शयन्निव सर्वदा। विष्णुः स्थितश्च तं प्रीत्यासिषेवेपुरतोविभुम्।।७३।।

इस अरुणारण्य पुरी से सौधमय शृंग पर आपीतकुचनाथ शोणपर्वत की तृप्ति के लिए जो वारांगनायें (नृत्य-गायन-वाद्यवादन करती) स्थित हैं, उनसे वे सुरनारीगण जिगीषा (प्रमुखता पाने की इच्छा) करती हैं, जो अपनी रूप छटा से विद्युत् को भी म्लान कर देती हैं। जिसके धवल उत्तुङ्ग, शिखर के आगे गणिकायें गायन करती हैं, जहां सिद्ध-चारण-गंधर्व-विद्याधर विराजमान हैं, जो स्थान अष्टपद रथ द्वारा आक्रान्त है तथा आठ वीथियों से शोभित है, जहां अष्टापद रथाकार रूप से आठों दिक्पाल पूजित होते हैं, अष्टमूर्त्ति शिव जिनके आश्रय हैं, ऐसे अष्टसिद्धियुक्त सिद्ध जिनकी अष्टमूर्त्ति को अष्टाङ्गभक्ति तथा अष्टाङ्ग ज्ञान द्वारा आश्रय करते हैं, जो स्थान चातुर्वर्ण्य गुणयुक्त है तथा अन्य वर्णों से भी शोभित है, जहां गृह श्रेणी के आगे प्रदीप्त स्वर्णवर्ण भी मलिन प्रतीत होने लगता है, जो शंख, दुन्दुभि, मृदङ्ग, वीणा, वेणु, मुखतालध्वनि तथा विभिन्न विचित्र आलाप द्वारा रंजित हैं, जो स्थान शिवात्मा महर्षियों के ब्रह्मघोष से निनादित है, जहां समदर्शी दिव्य वृषध्वज की नित्य पूजा की जाती है, जो स्थान नवरत्नप्रभ नववग्रहों के उदय से दिन-रात दोनों स्थिति में भी समान प्रतीत होता है, विष्णुदेव उस शोणपर्वत के सम्मुख भाग में अवस्थित होकर इन विभु देव की सेवा करते हैं।।६५-७३।।

शक्रः सुरगणैः सार्धं सहस्त्राक्षः समायतौ। पपात दिव्यगन्धाढ्यापुष्पवृष्टिःसमन्ततः।।७४।।
व्योमगङ्गाजलोत्सङ्गशीतलो मरुदाववौ। अतीव सौरभामोदवासिताखिलदिङ्मुखः।।७५।।

कनकाङ्कितशृङ्गाग्रपरिधूतवनावलिः। दर्पसम्भ्रमसन्नद्धो ननाद वृषभो मुहुः॥७६॥
वसन्तप्रमुखाः सर्वे सहर्षमृतवः पुरः। असेवन्त प्रियकरैः पुष्पैः स्वयमथोचितैः॥७७॥
गणैश्च विविधाकाराः सिद्धाश्च परमर्षयः। सुराश्च कुतुकोपेताः समागच्छन्दिदृक्षवः॥७८॥
कुङ्कुमक्षोदसम्मिश्रकर्पूररजसान्वितः। चर्यामुष्टिमहासारः समकीर्यत सर्वतः॥७९॥

सहस्राक्ष सुरराज इन्द्र अन्य देवताओं के साथ यहां आते हैं। यहां चतुर्दिक् से दिव्यगन्ध समन्वित पुष्पवृष्टि होती है। आकाशगंगा के तरंगसंगम से शीतल होकर वायु का यहां प्रवाह होता है तथा इस स्थान का अखिल दिक्मण्डल निरुपम सौरभ द्वारा वासित तथा आमोदित रहता है। यहां कनककान्ति शृंग के अग्रभाग से वनश्रेणी को कम्पित करते उच्छ्रिङ्खल गर्वपूर्ण युद्धकामी वृषभ बारम्बार निनाद करते हैं। यहां वसन्त आदि प्रमुख ऋतु, सभी एक साथ प्रियकारी पुष्पों का चयन करके स्वयं इन अरुणाचल की उपासना करते हैं। विविधाकार गणदेव, सिद्ध परमर्षि तथा देवगण कौतुक के साथ इसको देखने के लिए यहां आते हैं तथा इसकी परिचर्या के लिए परिचारक गण अपनी दृढ़ मुष्टि द्वारा कुंकुम चूर्ण मिश्रित कर्पूर रज युक्त गुटिकाओं को इधर-उधर फेंकते हैं।।७४-७९।।

अथ मृदङ्गकमर्दलझल्लरीपटहदुन्दुभितालसमन्वितैः।
जलजकीचककाहलनिःस्वनैः सुरकृतैर्भुवनं समपूरयन्॥८०॥
सुरवधूजननृत्त्यनिरन्तरोल्लुलिततुम्बरुगायनगीतिभिः ।
अभिवृतो मुनिदेवगणान्वितो वृषगतः समदर्शि वृषध्वजः॥८१॥
सरसमेत्य शिवः करुणानिधिर्नतमुखीमपि तामपलज्जया।
ललितमङ्कमनङ्गरिपुः शिवां धृतिमहानधिरोप्य जहर्ष सः॥८२॥
ललितया निजया प्रियया ऽन्वितः सुरमुनीन्द्रसमाजसमावृतः।
ललितमप्सरसां मुहुरादरान्नटनमैक्षत गीतिसमन्वितम्॥८३॥
अथ शिवः सुरराजसमर्पिताञ्छुभपटीरमुखानिलसौरभान्।
हिमगिरिप्रहितांश्च समग्रहीन्मृगमदैः सह गन्धसमुच्चयान्॥८४॥
समनुलेपितहारसुमण्डितावभिगतौ सिततां समलङ्कृतौ।
स्वयमपीतकुचाकुचकुड्मलावरणरम्भणचञ्चलसत्करौ ॥८५॥

तत्पश्चात् देवगण ने यहां मृदङ्ग, मर्दल, झल्लरी, पटह, दुन्दुभि ताल लय समन्वित, जलज वेणु, काहल आदि वाद्यों का वादन करके दिशाओं को आपूरित किया। तभी मुनियों तथा शिवगणों से घिरे हुए वृषारूढ़ वृषध्वज ने दर्शन दिया। देववधुओं ने उल्लासयुक्त होकर विविध नृत्य तथा तुम्बुरु ताल युक्त गीतों द्वारा प्रभु हर का स्वागत किया। तत्पश्चात् करुणानिधि-सरसरसिक शिव को देखकर देवी लज्जा के कारण अवनत मुख हो गयीं। उस समय धृतिमान कामशत्रु शिव उनको अपने कर कमल द्वारा अपने अंक में लिपटाकर प्रसन्न हो गये। इसके पश्चात् शिव सादर सुरगण तथा मुनियों से घिरकर अपनी प्रिया कोमलाङ्गी देवी के साथ अप्सराओं के गीत से युक्त नृत्य का बारम्बार अवलोकन करने लगे। तब शिव ने हिमगिरि की गुहा से उत्पन्न मनोहर सौरभसमन्वित वायु के साथ देवराज इन्द्र द्वारा प्रदत्त कस्तूरीवासित गन्ध को ग्रहण किया। उन्होंने अनुपेलपन लिप्त, हार से युक्त अपने दोनों

हाथों को प्रसारित करके उसे आपीतकुचा देवी के कुचद्वय पर लगाया। अब देवी के कुच पर लगे कुंकुम द्वारा प्रभु त्रिलोचन के करद्वय मनोहर शोभायुक्त हो गये।।८०-८५।।

कठिनतुङ्घनस्तनकोरकस्थगितमङ्गलगन्धमनोहराम् ।
गिरिसुतामधिगम्य शिवः स्वयं विरहतापमशेषमपाकरोत्।।८६।।
अथ विनोदशतैरुपलक्षितां निजवियोगजतापकृशान्विताम्।
अरुणशैलपतिः स्वयमद्रिजां वरमभीप्सितमर्थय चेत्यशात्।।८७।।
सकुतुकं प्रणिपत्य नगात्मजा पुररिपुं भुवनत्रयगुप्तये।
इममयाचत शोणगिरीश्वरं वरमुदारमनुग्रहसम्मुदम्।।८८।।

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्ये पूर्वार्धे देव्याः शिवसमागमवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः।।१२।।

तदनन्तर प्रभु शिवशंकर ने देवी के ऊंचे, कठोर कुचद्वय के ऊपर अपने हाथों को स्थापित किया तथा मंगलयुक्त, मनोहर गंधशालिनी शैलनन्दिनी को प्राप्त करके अपना अशेष विरहभाव विदूरित किया। उस समय अरुणाचलपति शिव ने अपने वियोगताप से कृश हो गई देवी को हर्ष के साथ देखते हुए उनसे कहा "हे देवी! अपना इच्छित वर मांगो।" शिव की कृपा देखकर देवी गिरिजा कुतूहल से भर गयीं। वे त्रैलोक्य रक्षणार्थ त्रिपुरारि शोणगिरीश्वर से उपाय की याचना करने लगीं।।८६-८८।।

।।द्वादश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

त्रयोदशोऽध्यायः

शिव द्वारा अरुणाचल को सर्वश्रेष्ठत्व प्रदान

ब्रह्मोवाच

अथ गौरी पुरारातिं प्रणम्य जगदम्बिका। अयाचत्तादृशा शम्भुमविनाभावमात्मनः।।१।।
इदं विज्ञापयामास लोकानुग्रहकारणात्। कृपया परया पूर्णा गौरी सम्वादसुन्दरी।।२।।
न त्याज्यमेतत्तेरूपमत्रदृष्टिमनोहरम्। अहंत्वया न च त्याज्या सापराधाऽपि सर्वदा।
मनोहरमिदं रूपमेतत्ते लोकमङ्गलम्।।३।।
आलोक्यतां सदा सर्वैर्दिव्यगन्धसमन्वितम्। भुजङ्गरलब्रह्मकपालशिवभस्मभिः।।४।।
भीषणैरलमीशान जय वेषपरिग्रहैः। सुकुमारो भवेर्दिव्यमाल्यगन्धाम्बरादिभिः।।५।।
भूषितो रत्नभूषाभिर्विहरस्व महेश्वर। आगता नित्यमीशान देवगन्धर्वकन्यकाः।।६।।

सेवन्तामत्र देवेशंनृत्यवादित्रगीतिभिः। गणाश्च मानुषाभूत्वासेवन्तां त्वामहर्निशम्॥७॥

ब्रह्मा कहते हैं—तदनन्तर जगन्माता गौरी ने त्रिपुरारि को प्रणाम किया तथा उनके साथ अपनी आत्मा के अभेद (ऐक्य) की कामना किया। त्रिलोक के प्रति कृपा के कारण मधुरभाषिणी गौरी ने और भी प्रार्थना किया कि "मैं अपने मनोहर रूप का त्याग न करूं तथा अपराध करने पर भी आप मेरा त्याग कदापि न करें। हे ईशान! त्रिलोक के लिए मंगलप्रद, सतत् दिव्यगन्धान्वित आपका यह मनोहर रूप मैं सदा देख सकूं। हे देव! भुजंग विष, ब्रह्मकपाल तथा भस्म के कारण आपका यह रूप अतीव भीषणाकार है। मैं इसका अवलोकन कर सकने में समर्थ नहीं हूं। अतः आप अन्य कोई रूप धारण करिये। अपना रूप सुकुमार करिये। हे महेश्वर! आपकी जय हो। आप दिव्य माला, उत्तम गन्ध तथा रत्नादि से भूषित होकर मेरे साथ विहार करें। देवता तथा देवकन्यायें नित्य यहां आकर नृत्य, वाद्य तथा गीतों से आपकी सदा सेवा करें तथा आपके गणदेवता भी मनुष्य रूप धारण करके नित्य आपकी सेवा करें। वे अहर्निश आपकी सेवा में रत रहें।।१-७।।

त्वत्प्रसादादयं देव सुगन्धिः पुष्टिवर्द्धनः। आवयोः सङ्गमो दृष्टोभूयात्सर्वार्थदायकः॥८॥
गृहीतमत्र देवेश सर्वमन्त्रात्मकं वपुः। चरितं तव कैङ्कर्यमस्तु भक्तिःसदा तव॥९॥
ज्ञानाज्ञानकृतं नित्यमपराधसहस्त्रकम्। क्षम्यतां तव भक्तानामनन्यशरणेक्षणात्॥१०॥
इतिदेव्या वचः श्रुत्वा शम्भुः शोणाचलेश्वरः। तमेव वरदः प्रादाद्वरंसर्वमभीप्सितम्॥११॥
आभाष्यगौरीं कुतुकाद्रन्तुकामः स्वयं शिवः। धारय त्वं मृगमदंमनोज्ञमिदमूचिवान्॥१२॥

हे देव! आपकी कृपा से सुगन्धि तथा पुष्टिवर्द्धक हमारा यह मिलन समस्त अभीष्टप्रद हो जाये। आपने यहां अखिल मन्त्रात्मक शरीर धारण किया है। अब आपके प्रति मुझमें ऐसी भक्ति हो जाये, जिससे मैं वस्तुतः सतत् आपकी दासी होकर आपके चरित्र के अनुकूल आचरण कर सकूं। हे देव! आपके जो सब भक्त केवल आपका ही दर्शन तथा आप द्वारा कथित आचरण करते हैं, आप सदा उनके ज्ञान तथा अज्ञान कृत अपराधों को क्षमा करें।" देवी का यह वचन सुनकर वरप्रद शोणाचलेश्वर शम्भु ने तद्रूप सभी वांछित वर उनको प्रदान किया। वे गौरी से सम्भाषण करने के उपरान्त कौतुक के कारण स्वयं रमणार्थ प्रवृत्त हो गये। उन्होंने देवी से कहा कि तुम इस मनोहर कस्तूरी को धारण करो।।८-१२।।

महादेव उवाच

पुलकाख्यो महान्दैत्योमृगरूपी तपोधिकम्। कृत्वाप्रापवरंमत्तःसौगन्ध्यंपरमाद्भुतम्॥१३॥
लब्ध्वा वरं स्वगन्धेनामोहयत्सुरयोषितः।
तथैवाधर्मसम्प्राप्तो बबाधे सकलं जगत्॥१४॥
देवैरभ्यर्थितः सोऽहमाहूयाऽसुरनायकम्। विमुञ्च लोकरक्षार्थमासुरं देहमित्यशाम्॥१५॥

महादेव कहते हैं—मृगरूपधारी पुलक नामक एक श्रेष्ठ दानव था। उसने कठोर तप द्वारा मुझसे वरलाभ किया। दानव ने उस वर के प्रभाव से अद्भुद् सुगन्ध प्राप्त किया था। वह उस सुगन्ध से देवगण की स्त्रियों को मोहित कर लेता था। असुर के उस पाप से समस्त जगत् व्यथित हो गया। तब देवगण मेरी शरण में आये। देवताओं की प्रार्थना के कारण मैंने उस असुरनायक को बुला कर कहा—"हे दानव! लोकरक्षार्थ तुम अपने असुर देह का त्याग करो।" तब पुलक कहने लगा।।१३-१५।।

पुलक उवाच

त्यक्ष्यामि देवदेवेश देहमेतं त्वदाज्ञया। प्रणम्य भक्तिमनसा मामप्यर्चेदमूचिवान्॥१६॥
मदङ्गसम्भवं दिव्यं सौरभं विश्वमोहनम्। धार्यतां देवदेवेश सदा सादरचेतसा॥१७॥
पुलकस्वेदजातो हि सदा प्रख्यायतां तव। अयं मृगमदो लोके शृङ्गाररसवर्द्धनः॥१८॥
त्वत्प्रियः कान्तिसौभाग्यरूपलावण्यदायकः। विसृजामि निजं देहं देवदेवजगत्पते॥१९॥
सदा बहुमतो देव्या दिव्यसौरभलुब्धया। मदंशसम्भवा ये स्युर्मत्तपोलब्धसौरभाः॥२०॥
लीयन्तां तव देवेश मूर्तावालेपनच्छलात्। तथेति मय्युक्तवति स दैत्यःपुलकाभिधः॥२१॥
विससर्ज निजं देहं मयि सन्यस्तजीवितः। ततस्तदङ्गसम्भूतं मदं बहुलसौरभम्॥२२॥
अधारयमहं प्रेम्णा शतशृङ्गारवर्द्धनम्। तपसा देवदेवशि तप्तं तव वपुःकृशम्॥२३॥

पुलक कहता है—हे देवदेव! मैं आपके आदेश से इस देह का त्याग करता हूं, तथापि हे देवदेवेश! लोक में सभी भक्तिपूर्वक प्रणाम द्वारा मेरी पूजा करें तथा विश्वविमोहन मेरे अंग से उत्पन्न इस गन्ध सौरभ को आदरपूर्वक आप सदा धारण करें। यह मुझ पुलक के पसीने से उत्पन्न मृगमद (कस्तूरी) शृङ्गाररस का वर्द्धन करने वाला, आपका प्रिय, कान्ति, सौभाग्य, रूप-लावण्यदायक हो। लोक में सर्वदा आप द्वारा इसकी प्रशंसा की जाये। हे देवदेव! जगत्पति! मैं अपना शरीर त्याग करता हूं। दिव्य सौरभ लोलुप देवी सदा इसका आदर करें। जो मेरे अंश से उत्पन्न तथा तप द्वारा प्राप्त मेरे इस सौरभ को प्राप्त करें, वे अनुलेप के समान मेरे शरीर में विलीन हो जायें। मेरे 'तथास्तु' कहने पर उस पुलक नामक दानव ने मुझमें अपना जीवन अर्पित करके शरीर त्याग दिया। मैंने प्रेम के साथ उस असुर के शरीर से उत्पन्न अतीव शृङ्गार बढ़ाने वाले विपुल सौरभयुक्त उस मद को धारण कर लिया। हे देवदेवेशी! तपस्या के कारण तुम अत्यन्त दुर्बल देह हो गयी हो।।१६-२३।।

मदङ्गं च वियोगात्त इदं निर्वापयाऽधुना। इति प्रशस्य बहुधा पुलकस्नेहमद्भुतम्॥२४॥
आलिलिम्प महादेवः पार्वतीं प्रेममन्दिरम्। अपृच्छच्च हसन्देवः पार्वतीं ललनाकृतिम्॥२५॥
किमेतदिति हस्तोत्थं दृष्ट्वा तं जगदम्बिका। अब्रवीदरुणाद्रीशमानम्य जगदम्बिका॥२६॥
आगतिं तस्य पुष्पस्य सदा स्वकरवर्तिनः॥२७॥

अतः अब यह मद शरीर पर लिप्त करो। महादेव ने पुलक से प्राप्त मद की ऐसी प्रशंसा किया तथा उसका लेपन पार्वती की देह पर कर दिया। तदनन्तर उन्होंने हंसते हुए लोलाकृति पार्वती से पूछा—"तुम्हारे हाथों में यह क्या उठा हुआ है?" शिव का प्रश्न सुनकर पार्वती ने हाथों को देखा तथा पुष्प का विवरण कहने लगीं।।२४-२७।।

देव्युवाच

अहं कैलासशिखराद्देवदेव त्वदाज्ञया। तपः कर्तुमनुप्राप्ता काञ्चीं कनकतोरणाम्॥२८॥
अवाप्यमानसोद्भूतं कह्लारमिदमुत्तमम्। आराधयं महादेवमम्लानगुरुसौरभम्॥२९॥
यदक्षयमविश्रान्तमर्चनायोजितं मया। अविच्छिन्नमहादीप्तिः कामधेनुघृताप्लुतः॥३०॥
अवेक्षणीयो भूपालैरनुपाल्यश्च सर्वदा। धर्मलक्षणमाधेयं लोकरक्षार्थमादरात्॥३१॥

सर्वाभीप्सितसिद्ध्यर्थं मत्प्रीतिकरणायच। मया संस्थापिताधर्माद्वात्रिंशल्लोकगुप्तये॥३२॥
रक्षणीया प्रयत्नेन तत्सन्निधिमुपागतैः। सर्वालङ्कारसंयुक्तं सर्वभोगकृतोत्सवम्।
आलोक्यतामिदं रूपं कन्यायां मम कान्तिमत्॥३३॥

देवी कहती हैं—हे देवदेव! आपके आदेशानुसार मैं तपस्यार्थ कैलासशिखर से कनकतोरण युक्त काञ्चीपुरी में गई। वहां मानस सरोवर में यह अम्लान कान्तिवाला उत्तम कमल प्राप्त करके काञ्चीपुर में महादेव की आराधना किया। जो अक्षय हैं, जिनकी पूर्वकाल में भी मैंने अविश्रान्त रूप से पूजा सम्पन्न किया था, जिनकी दीप्ति की कोई सीमा नहीं है, जो कामधेनु के दुग्ध से बने घृत द्वारा आप्लुत हैं, समस्त अभीष्ट सिद्धि तथा मेरी प्रीति हेतु भूपालगण सतत् इन महादेव का दर्शन तथा सेवा करते हैं। मैंने लोकरक्षार्थ ३२ प्रकार के धर्म की स्थापना की है। लोकहितार्थी राजागण उसे सादर धारण करते हैं तथा वे सभी धर्मरक्षार्थ महादेव के समीप आगमन करते हैं। हे देव! सर्वालङ्कार भूषित तथा विविध भोगों से आनन्दयुक्त मेरा दर्शन सभी आश्विन मास की संक्रान्ति तिथि पर करें।।२८-३३।।

ब्रह्मोवाच

इति देव्या वचः श्रुत्वा शम्भुः शोणाचलेश्वरः॥३४॥
तथेति वरदः प्रागाद्वरं सर्वमभीप्सितम्। एष शोणाचलः श्रीमान्दृश्यते लोकपूजितः॥३५॥
सर्वदा वरदागौर्या सर्वभोगैश्च सम्वृतः। य एतच्छाम्भवं रूपमरुणाद्रितयास्थितम्॥३६॥
सम्पश्यन्ति नमस्यन्ति कृतार्थाः सर्वएवते। अरुणाचलमाहात्म्यमेतच्छृण्वन्तियेभुवि॥३७॥
भवन्ति सततं तेषां समग्राः सर्वसम्पदः। श्रीमत्त्वं वाक्पतित्वञ्च रूपमव्याहतं बलम्॥३८॥
लभन्तेपापनाशञ्चमाहात्म्यस्याऽस्यधारणात्। सर्वतीर्थाभिषवणंसर्वयज्ञक्रियाफलम्॥३९॥
सदाशिवप्रसादञ्च दत्ते शोणाद्रिदर्शनम्॥४०॥

ब्रह्मा कहते हैं—शोणाचलेश वरप्रद शम्भु ने देवी का यह वाक्य सुनकर कहा—"ऐसा ही हो" यह कहकर उन्होंने सभी को वांछित वर प्रदान किया। शोणपर्वत सदा ही पार्वती से सेवित तथा नाना भोगसमन्वित है। यह लोकपूजित तथा श्रीमान् है। जो अरुणभूषण रूपी (अरुणाचल रूपी) इन शम्भु के रूप का दर्शन किंवा इनको प्रणाम करते हैं, वे कृतकृत्य हो जाते हैं। भूतल में जो कोई इन अरुणाचल माहात्म्य को सुनते हैं, वे प्रभूत सम्पत्तिवान्, श्रीमान् तथा वाक्पति हो जाते हैं। उनको रूप तथा बल की प्राप्ति होती है। इन शोणगिरि का माहात्म्य धारण करके मानव विगतपाप होकर समस्त तीर्थ स्नान तथा योगानुष्ठान जनित फल प्राप्त करता है तथा इसके दर्शन से सदाशिव प्रसन्न हो जाते हैं। इसके दर्शन से सर्व यज्ञफल भी प्राप्त हो जाता है।।३४-४०।।

इति कैलासशिखरात्प्राप्ता देवो शिवाज्ञया। शापमोक्षं गतवतीशोणाचलनिरीक्षणात्॥४१॥
स्थानेष्वन्येषु देवस्य विद्यमानेषु च क्षितौ। दिविचात्यन्तपुण्येषुशम्भुरत्र प्रसेदिवान्॥४२॥
अयं सदाशिवः साक्षादरुणाचलरूपतः। दृश्यते परमन्तेजः सर्गस्थित्यन्तकारणम्॥४३॥
एतत्तु तैजसं लिङ्गं सर्वदेवनमस्कृतम्। दृश्यते कर्मभूरेषा तेन धर्माधिका मता॥४४॥

शिव के आदेशानुसार देवी ने कैलास शिखर से आकर इस शोणाचल का निरीक्षण (दर्शन) किया तथा शापमुक्त हो गयीं। पृथिवी तथा स्वर्ग में शोणाचल के अतिरिक्त अन्य अनेक अतीव पावन स्थल होनेपर भी यह स्थान ऐसा है, जहां सदाशिव शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। यह धर्म का आचरण करने हेतु उत्तम स्थल है। यही कर्मभूमि

है। सदाशिव साक्षात् अरुणाचल रूप से यहां विराजमान हैं। इनका जो परम तेज दृष्ट होता है, वही सृष्टि-स्थिति-प्रलय का कारणरूप है। यही सभी देवताओं द्वारा नमस्कृत तैजस लिंग भी है।।४१-४४।।

अरुणाचलनाथस्य तेजसा धूतकल्मषाः। भक्तिमन्तोनरालोकेसुखमाप्यस्यन्तिसर्वतः॥४५॥
प्रदक्षिणैर्नमस्कारैस्तपोभिर्नियमैरपि। येऽर्चयन्त्यरुणाद्रीशं तेषां शम्भुर्वशङ्गतः॥४६॥
न तथा तपसा योगैर्दानैः प्रीणाति शङ्करः। यथा सकृदपि प्राप्तादरुणाचलदर्शनात्॥४७॥
स्वयम्भुवःसदावेदाःसेतिहासादिविस्थिताः। परितोगिरिरूपास्तेस्तुवन्त्यरुणपर्वतम्॥४८॥
एतस्य वैभवं सर्वं न मया न च शार्ङ्गिणा। वचसा शक्यते वक्तुं वर्षकोटिशतैरपि॥४९॥
देवाश्च हरिमुख्यास्ते कल्पकाद्याःसुरद्रुमाः। प्रच्छन्नरूपाःसेवन्तेसर्वदैवाऽरुणाचलम्॥५०॥
नतस्यकलिदोषःस्यान्नाधिव्याधिविजृम्भणा। यत्रसम्पूज्यतेलिङ्गमरुणाचलसञ्ज्ञितम्॥५१॥
इत्येतत्कथितं सर्वं तव शम्भुपदाश्रयम्। चरितंह्यरुणस्याऽस्य कल्पपुण्यदुरासदम्॥५२॥

अरुणाचल के तेज से पाप धुल जाते हैं। इसके प्रति भक्तिमान् होकर सभी लोग पुण्य प्राप्त (तथा सुख) करते हैं। जो यहां प्रदक्षिणा, नमस्कार, विविध तप तथा नियम पालन करके अरुणाचलनाथ की अर्चना करता है, शम्भु उसके वश में हो जाते हैं। एक बार अरुणाचल जाने से वे जितना संतुष्ट तथा प्रसन्न होते हैं, वे उतना दान, तप किंवा योग से भी प्रसन्न नहीं होते। स्वर्गस्थ स्वयम्भु चारों वेद गिरिरूपेण अरुणाचल के चारों ओर स्थित होकर अरुणाचल की स्तुति करते हैं। इनकी समस्त विभूति का वर्णन मैं किंवा शार्ङ्गधन्वा विष्णु शतकोटि वर्ष में भी कर सकने में समर्थ नहीं हैं। हरि आदि प्रमुख देवता तथा कल्पवृक्ष आदि पर्वत सर्वदेवरूपी अरुणाचल की सेवा करते हैं। जहां अरुणाचल नामक लिंग की अर्चना की जाती है, वहां पाप, व्याधि-आधि का आधिपत्य (अधिकार) नहीं होता। हे वत्स सनक! मैंने शंभुपदाश्रय, कल्पप्रमाण पुण्य से भी न प्राप्त होने वाले अरुणाचल के निखिल चरित्र का वर्णन तुमसे किया।।४५-५२।।

सूत उवाच

इति विधिमुखनिः सृतामुदारामरुणगिरिशकथासुधापगां हि।
श्रुतिपुटयुगलात्पिबन्मनोज्ञां सनकमुनिस्तपसां फलं स लेभे॥५३॥

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्ये पूर्वार्धे शिवेनाऽरुणाचलस्य सर्वश्रेष्ठ्यवरप्रदानवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः।।१३।।

।।इत्यरुणाचलमाहात्म्यम्पूर्वार्धं समाप्तम्।।

सूतजी कहते हैं—ब्रह्मपुत्र सनक ने विधाता ब्रह्मा से इस अरुणगिरिपति का उदार मनोहर कथामृत का अपने दोनों कानों से पान किया तथा अपने तपफल को प्राप्त किया।।५३।।

।।त्रयोदश अध्याय समाप्त।।

।।अरुणाचल माहात्म्य का पूर्वार्द्ध समाप्त।।

❖❖❖

अरुणाचलमाहात्म्यम्

(उत्तरार्धः)

।।श्रीगणेशाय नमः।।

अथ स्कान्देमहापुराणे प्रथमे माहेश्वरखण्डे

तृतीयमरुणाचलमाहात्म्यम्

तत्र उत्तरार्धः प्रारभ्यते

प्रथमोऽध्यायः

स्थानमाहात्म्य वर्णन

व्यास उवाच

वसन्तो नैमिषारण्ये मुनयः सूतमब्रुवन्।

मुनय ऊचुः

स्थानानामुत्तमं शैवं यत्स्थलं तद्वदस्व नः॥१॥

व्यासजी कहते हैं—नैमिषारण्य में रहने वाले मुनिगण ने सूत से पूछा।

मुनिगण कहते हैं—हे सूतजी! जो क्षेत्र समस्त क्षेत्रों से उत्तम है, आप उस शैव क्षेत्र के विषय में वर्णन करिये।।१।।

सूत उवाच

यूयं शृणुत यत्पूर्वं नन्दीश्वरमुखाच्छुतम्। मार्कण्डेयेन तद्वक्ष्ये मुनयः शृणुताऽऽदरात्॥२॥

सूतजी कहते हैं—हे मुनिगण! आप यत्नतः श्रवण करिये। पूर्व में भगवान् मार्कण्डेय ने नन्दीश्वर के मुख से जो सुना था, इस विषय में जो मुझे ज्ञात हुआ, वह आप सबसे यथायथ कहता हूं।।२।।

मार्कण्डेय उवाच

नन्दीश्वर त्वया प्रोक्तो महिमा माध्यमेश्वरः। मयाऽप्यवधृतःसर्वोभक्तिश्रद्धार्द्रचेतसा॥३॥
तथापि वद मे भूयो देवदेव दयानिधे। अहं यत्परिपृच्छामि भवन्तं विहितादरः॥४॥
त्वयाऽप्यविदितं किञ्चिन्नास्त्यत्र भुवनत्रये। सर्वागमपुराणेषु बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च॥५॥
स्वर्गापवर्गयोः पुंसां भूमिरेव विशिष्यते। सर्वकर्माणि निर्मातुं तत्तत्फलपरायणैः॥६॥
फलं च त्रिविधं पुंसां त्वयैव कथितं पुरा। भूमौ सुखं स्वर्गभोगःकैवल्यमितिभेदतः॥७॥
पुण्यक्षयेण क्षीयेत प्रायः प्राथमिकं द्वयम्। क्षीयते न तृतीयन्तु कर्मणामेव नाश्रयात्॥८॥

मार्कण्डेय कहते हैं—हे नन्दीश्वर! आपने मध्यमेश्वर का माहात्म्य यथायथ रूप से कहा था। मैंने भी उसे भक्ति एवं श्रद्धा के साथ सुना। हे देवदेव दयानिधि! तथापि पुनः आपसे जो पूछता हूं, वह यत्नतः मुझसे कहिये।

इस त्रिभुवन में तथा गुह्यतम निखिल आगम पुराणादि शास्त्रों में आपसे अज्ञात कुछ भी नहीं है। लोगों के लिए स्वर्ग तथा अपवर्ग दायक एवं तत्तत् फलपरायण व्यक्तियों के लिए सर्वकर्मनिष्पादक एक विशिष्ट क्षेत्र है। इस क्षेत्र में सुख, स्वर्गभोग तथा कैवल्यभेद से मनुष्य के लिए त्रिविध फल आप द्वारा अभिहित किया गया है। इन फलत्रय में से सुख तथा स्वर्गभोग प्रायः पुण्यक्षय से क्षीण हो जाता है, लेकिन तृतीय कैवल्य कदापि क्षीण नहीं होता। इसमें कर्मसम्पर्क नहीं है।।३-८।।

तत्सिद्धिस्तु त्वया प्रोक्ता विशुद्धज्ञानगोचरा। सर्वेषां दुर्लभं शुद्धज्ञानं देहभृताम्पुनः॥९॥
तज्ज्ञानंकुत्र वा क्षेत्रे शास्त्रादिपठनम्विना। शिवपूजनमात्रेणसिद्ध्येत्सर्वशरीरिणाम्॥१०॥
ज्ञानयोगक्रियाचर्यास्वशेषाणां शरीरिणाम्। अपिशैवागमोक्तासु न बुद्धिःसम्प्रवर्त्तते॥११॥
यस्य स्थानस्य माहात्म्यादल्पैरपि शरीरिणः।
लप्स्यन्ते नियमैः शुद्धज्ञानं तन्मम कथ्यताम्॥१२॥

यह कैवल्य सिद्धि विशुद्ध ज्ञानगोचरा है। आपने इसे कहा है। देहधारी के लिए विशुद्ध ज्ञान दुर्लभ है। शास्त्रपाठ आदि के बिना केवल शिवपूजन से देहधारीगण को ऐसा ज्ञान किस क्षेत्र में सिद्ध होता है? शैवागमोक्त ज्ञानयोग तथा क्रियाचर्या में मनुष्यों की बुद्धि सहसा प्रविष्ट नहीं हो सकती। अतः जिस क्षेत्र के माहात्म्य से अल्प प्रयास द्वारा मानवगण की बुद्धि को यमनियमादि के साथ शुद्ध ज्ञान प्राप्त होता है, आप उसे कहिये।।९-१२।।

भस्मरुद्राक्षवहनादीश्वरस्मरणात्सकृत्। यत्र मुग्धैरपि श्रेयो लभ्यंतत्स्थानमुच्यताम्॥१३॥
अबुद्धिपूर्वकेणाऽपियत्रवासेनदेहिनाम्। अविघ्नंसेत्स्यते श्रेयःस्थानंतन्मेऽनुगृह्यताम्॥१४॥
जातानांवर्णसाङ्कर्य्यैतैरश्चींयोनिमीयुषाम्। स्थावराणामपिश्रेयोयत्रतत्क्षेत्रमुच्यताम्॥१५॥
इतीरयित्वा स मृकण्डुनन्दनः समं मुनीन्द्रैरपरैर्महात्मभिः।
पपात तस्याऽङ्घ्रिसरोरुहद्वये शिलादसूनोरखिलागमाब्धेः॥१६॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे स्थानमाहात्म्यप्रस्तावववर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥१॥

"जहां भस्मलेपन, रुद्राक्ष धारण तथा एक बार मात्र ईश्वर स्मरण द्वारा मुग्ध (मोहमायाग्रस्त) व्यक्ति भी श्रेयः प्राप्त करने में सक्षम हो सके, जहां मानव अबुद्धिपूर्वक भी रहकर निर्विघ्न रूपेण श्रेय प्राप्त कर सकें, तथा जहां वर्ण की संकरता से उत्पन्न तिर्यक् योनिगत तथा स्थावर भी श्रेय प्राप्त कर सकें, ऐसे स्थान का वर्णन करिये।" यह कहकर मृकण्डुपुत्र अन्य महात्मा मुनिगण के साथ अखिल आगमों के समुद्र रूप शिलादनन्दन नंदी के चरणयुगल पर गिर पड़े।।१२-१६।।

।।प्रथम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

द्वितीयोऽध्यायः

नन्दीश्वर-मार्कण्डेय संवाद, विभिन्न सशक्ति शिवक्षेत्र वर्णन

नन्दिकेश्वर उवाच

स्थानं त्वया मुने पृष्टमस्ति माहेश्वराग्रणि। चराचराणां सर्वेषां भूतानामपिशर्मणे॥१॥
प्रकल्पितं हि देवेन तत्तत्कर्मानुगुण्यतः। शरीरभाजां जननं तासुतास्वपि योनिषु॥२॥
त्वया शुश्रूषितं तेषां हिताय महते ह्यलम्। अन्यथा संसृतेर्हानिः कल्पकोटिशतैर्नहि॥३॥
स्वल्पैर्हि कर्मभिर्ज्ञानैरपि प्राप्ता पुनःपुनः। घटीयन्त्रनयाज्जन्ममरणे नैव शाम्यतः॥४॥
कथं नु विरतो देही गर्भमोकसमागमात्। विश्रान्तये प्रकल्पेत विशुद्धज्ञानतो विना॥५॥
प्रदेशाः कथिताः पूर्वं प्रसङ्गवशतो मया। ऋषिभेदादिकं तेषु निवासः कृत्तिवाससः॥६॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—हे मुनिवर! आपके द्वारा पूछे गये महेश्वर प्रधान स्थानों की कल्पना समस्त प्राणियों के सुखलाभार्थ महेश्वर ने किया है। तत्तत् कर्मों तथा गुणों के कारण देहीगण उन-उन योनियों में जन्म लेते हैं। आपने पूर्वोक्त प्रश्न द्वारा इन सब प्राणीगण का अत्यन्त महत् हित साधन किया है। ऐसा प्रश्न किये बिना उनकी धारावाहिक संसृति (आवागमन) की निवृत्ति करोड़ों कल्पों में भी नहीं हो सकती। वे स्वल्प ज्ञानयुक्त कर्मों से युक्त होकर पुनः-पुनः संसार में आते हैं, तथापि घटीयन्त्र के ऊपर-नीचे सदा होते रहने की तरह वे भी जन्म-मरण से निवृत्त नहीं होते। विशुद्ध ज्ञान के बिना देही कैसे गर्भवास से विश्रान्ति पा सकेगा? मैं प्रसंगक्रमेण प्राणी के जन्म-मरण का निवारण करने वाले स्थानों का वर्णन, उन-उन स्थानों के ऋषिभेद तथा कृत्तिवास के निवास की कथा पूर्व में कह चुका हूं।।१-६।।

केचित्तीरेषु गङ्गायाः केचित्सारस्वतेतटे। कालिन्दीतीरयोरन्येकतिचिच्छोणरोधसि॥७॥
अपरे नर्मदातीरे परे गोदावरीतटे। कतिचिद्गोमतीतीरेष्वन्ये हैमवतीतटे॥८॥
समुद्रपार्श्वेष्वितरे द्वीपेष्वन्ये सरस्वताम्। मुखेषु केचित्सिन्धूनां सम्भेदेष्वपि केचन॥९॥
कृष्णवेणीतटे केचित्तुङ्गभद्रान्तिके परे। उपवेण्यां कतिपये परे शक्त्यापगान्तिके॥१०॥
कावेरीतीर इतरे केचिद्वेगवतीतटे। अन्ये तु ताम्रपर्ण्याश्च कतिचिन्मुरलातटे॥११॥
केचिदैरावतीतीरे त्वितरे यातुकाङ्क्षिके॥१२॥
कन्यातटेषु कतिचित्कतिचित्कुमारीतीरे परे च तमसावरुणान्तिकेऽन्ये।
मन्दाकिनीसविधयोरितरे परेऽपि शिप्रातटे परिसरेषु परे सरय्वाः॥१३॥
विपासाभ्याश इतरे शतद्रुतितटे परे। चर्मण्वत्युपकण्ठेऽन्ये केचिद्भीमरथीतटे॥१४॥

इनमें से कुछ गंगा तट पर, कतिपय सरस्वती तट पर, अनेक कालिन्दी के दोनों तट पर, कतिपय शोण अथवा नर्मदा तट पर, कतिपय गोदावरी तट पर, कुछ गोमती तट पर, कुछ हैमवती तट पर अथवा समुद्रतट पर, कतिपय सरस्वत द्वीप पर, कुछ सिन्धु मुख पर, कुछ सम्मेद पर, कुछ कृष्णवेणी के तट पर, कुछ तुंगभद्रांतिक

पर, कुछ उपवेणी, कुछ शक्त्यापगा के समीप, कुछ कावेरी तीर पर, कुछ वेगवती के तट पर, कतिपय ताम्रपर्णी तट पर, कुछ मुरला तट पर, कुछ ईरावती तीर पर, कुछ यातुकांक्षी के तट पर, कतिपय कन्या तट पर, कोई-कोई कुमारी तट पर तथा अन्य तमसा अथवा वरुणा तट पर, कुछ मन्दाकिनी के दोनों ओर, कुछ शिप्रातट पर, कुछ सरयू के पास, कुछ विपाशा के निकट, कुछ शतद्रु के तट पर, कुछ चर्मण्वती उपकण्ठ पर, कुछ भीमरथी के तट पर अवस्थित रहते हैं।।७-१४।।

केचिद्बिन्दुसरोऽभ्यर्णेपरेपम्पासरस्तटे। अभ्यर्णकेऽपिभैरव्याःकतिचित्कौशिकीतटे॥१५॥
अपरे मालिनीतीरे परे गन्धवतीतटे। कतिचिन्मानसोपान्ते केचिदच्छोदरोधसि॥१६॥
इन्द्रद्युम्नसरस्यन्य एके तु मणिकर्णिके। परे तु वरदातीरे ताप्यां कतिचनाऽपरे।
पातालगङ्गासविधे शरावत्यन्तिके परे॥१७॥
लोहित्याकूलयोः केचित्कतिचित्कालमातटे। वितस्तोपान्तिके त्वन्ये चन्द्रभागान्तिके परे॥१८॥
सुरलोपान्तिके केचित्पयोष्णीतीरयोःपरे। केचिन्मधुमतीतीरेकेचनाऽनुपिनाकिनीम्॥१९॥
उक्तंवाराणसीक्षेत्रं क्रोशपञ्चकपावनम्। देवस्तत्राऽविमुक्ताख्योविशालाक्ष्यासमर्चितः॥२०॥
कपालमोचनं यत्रयत्राऽऽस्तेकालभैरवः। मृतानांयत्र रुद्रत्वं काशींविद्धि हि तां मुने॥२१॥

कुछ बिन्दुसर के पास, कतिपय पम्पा तट पर, कतिपय भैरवी तट पर, कतिपय कौशिकी तट पर, कतिपय मालिनी तीर पर, कतिपय गन्धवती के तट पर, कतिपय मानस के निकट, कतिपय अच्छोद तट पर, कतिपय इन्द्रद्युम्न सरोवर के तट पर, कतिपय मणिकर्णिका पर, कतिपय वरदातीर पर, कतिपय तापीतीर पर, कतिपय पातालगंगा के निकट, कतिपय शरावती के समीप, कोई लोहिती नदी के दोनों तट पर, कोई कालमा के तट पर, कोई वितस्ता के तट पर, कोई चन्द्रभागा के निकट, कोई सुरलोपा के समीप, कोई पयोष्णि के उभय तट पर, कोई मधुमती के तट पर, कतिपय पिनाकिनी के तट पर रहते हैं। वाराणसी क्षेत्र में ५ क्रोश पावन कहा गया है (जहां पंचक्रोशी यात्रा होती है)। वहां विभुक्त नामक देवता देवी विशालाक्षी द्वारा अर्चित होते हैं। जहां पिशाचमोचन नामक कालभैरव विराजित रहते हैं, जहां मृत व्यक्तियों को रुद्रत्व मिलता है, उसी का नाम काशी है।।१५-२१।।

गयाप्रयागावपि ते कथितौ सर्वसिद्धिदौ। यत्र पिण्डप्रदानेन तुष्यन्ति पितरः किल॥२२॥
आकर्णितं च केदारं यस्मिन्महिषरूपधृक्। देवोऽपिच हतोदेव्यासर्वश्रेयस्करोनृणाम्॥२३॥
सर्वसिद्धकरं पुंसां क्षेत्रंबदरिकाश्रमम्। यत्राऽऽस्ते त्रयम्बको देव्या नरनारायणर्चितः॥२४॥
श्रुतं हि नैमिषं क्षेत्रं त्वया यत्र महेश्वरः। देवदेवाभिधः पुण्यो देवी सारङ्गधारिणी॥२५॥
अमरेशमिति स्थानं प्रोक्तं सर्वार्थसाधकम्। ॐकारनामातत्रेशश्चण्डिकाख्यामहेश्वरी॥२६॥
पुष्कराख्यं महास्थानं श्रुतं ते कथितं मया। यत्र देवो रुजोगन्धिः पुरुहूता महेश्वरी॥२७॥
आषाढीनाम ते स्थानं पावनं कथितं मया। आषाढेशो हरस्तत्र रतीशा परमेश्वरी॥२८॥
दण्डिमुण्डीसमाख्यां च स्थानं ते कथितं मया। यत्र मुण्डी महादेवो दण्डिका परमेश्वरी॥२९॥

गया-प्रयागादि का वर्णन आपसे किया था। इन दोनों स्थानों पर पिण्ड प्रदान करने से उस व्यक्ति के पितर सन्तुष्ट हो जाते हैं। आपने केदार नामक तीर्थ का वर्णन किया था। यह तीर्थ महिष रूपधारी देवता मनुष्यों

को श्रेयः प्रदान करते हैं। बदरिकाश्रम क्षेत्र मानवों के लिए सर्वसिद्धिदायक है। यहां देवत्र्यम्बक देवी के साथ नर-नारायण द्वारा पूजित होते हैं। आप नैमिषारण्य तीर्थ से अवगत हैं। यहां देव महेश्वर का नाम देवदेवाधिप हैं तथा देवी का नाम सारंगधारिणी हैं। सर्वार्थ साधक अमरेश नाम तीर्थ भी कहा गया है। इस तीर्थ में महेश्वर का नाम है ओङ्कार तथा महेश्वरी का नाम है चण्डिका। आपने पुष्कर तीर्थ का नाम अवश्य सुना होगा। यहां देवता का नाम है रजोगन्धि तथा देवी का नाम है पुरुहूता। आषाढ़ी नामक पवित्र स्थान का वर्णन मैंने आपसे कहा था। यहां हर का नाम है आषाढ़ेश तथा परमेश्वरी का नाम है रताशा। मैंने आपको दण्डिमुण्डि नामक तीर्थ की प्रशंसा पहले सुनाया था। यहां महादेव हैं मुण्डि तथा देवी हैं दण्डिका।।२२-२९।।

लाकुलंनाम ते स्थानं संशुद्धं कथितंमया। लाकुलीशो हरोयस्मिन्ननङ्गा सर्वमङ्गला॥३०॥
भारभूतिरितिस्थानं भवतोऽभिहितंमया। यत्रभाराभिधःशम्भुर्भूत्याख्याभूधरात्मजा॥३१॥
अरालकेश्वरंनाम स्थानं ते कथितंमया। यत्र सूक्ष्माभिधःशूलीसूक्ष्माख्याशैलनन्दिनी॥३२॥
गयानाम महाक्षेत्रं तव प्रस्तावितं मया। मङ्गलाख्या शिवा यत्र शङ्करः प्रपितामहः॥३३॥
कुरुक्षेत्रमिति स्थानं भवते विनिवेदितम्। यत्र स्थाणुप्रियादेवीदेवः स्थाणुसमाह्वयः॥३४॥

लाकुल नामक पवित्र स्थल का वर्णन आपसे किया था। यहां हर का नाम है लाकुलीश तथा देवी हरप्रिया का नाम है सर्वमङ्गला अनंगा। भारभूति नामक तीर्थ आपसे पहले कहा जा चुका है। यहां शम्भु हैं भार नाम वाले तथा पर्वतपुत्री का नाम है भूति। अरालकेश्वर तीर्थ का पहले वर्णन कर चुका हूं। यहां शिव का नाम है सूक्ष्म तथा पर्वतनन्दिनी हैं सूक्ष्मा नाम वाली। मैंने आपसे गयातीर्थ प्रस्तावित किया था। यहां शिव हैं प्रतिपामह तथा देवी का नाम है मङ्गला। कुरुक्षेत्र के सम्बन्ध में आपसे निवेदन पहले किया था। यहां देवी का नाम है स्थाणुप्रिया तथा देवदेव का नाम है स्थाणु।।३०-३४।।

उक्तं कनखलं नाम मया ते स्थानमुत्तमम्। उग्रो यत्र पुरारातिरुग्रा गिरिवरात्मजा॥३५॥
तालकाख्यं महाक्षेत्रं मार्कण्डेयमयोदितम्। देवी स्वायम्भुवी यत्र स्वयम्भूःपरमेश्वरः॥३६॥
अट्टहासमिति प्रोक्तं महास्थानं मया तव। यत्राऽर्कः पूजयित्वेशमासीत्पूर्णमनोरथः॥३७॥
कृत्तिवासाभिधं क्षेत्रमुक्तंतेवेदवित्तम!। यःकैलासादपिश्लाघ्योनिवासःकृत्तिवाससः॥३८॥
भ्रमराम्बिकया देव्या महेशो मल्लिकार्जुनः। श्रीशैले सृष्टिसिद्ध्यर्थंपूजितःपरमेष्ठिना॥३९॥
सुवर्णमुखरीतीरे कालहस्तीति शङ्करः। व्यासेनाराधितोभृङ्गमुखरालकयाऽम्बया॥४०॥
काञ्च्यामेकाम्रमूलस्थः कामाक्ष्या कामशासनः।
तपस्यन्त्याऽभिसंश्लिष्टो वलयेनाऽङ्कितोऽभवत्॥४१॥

कनखल नामक उत्तम तीर्थ का प्रसंग आपसे पहले कहा था। यहां शिव का नाम है पुरारति तथा देवी का नाम है उग्रा। तालकाख्य महाक्षेत्र आपसे पूर्वकाल में कहा गया है। यहां देवी का नाम है स्वायम्भुवी तथा देव का नाम है स्वयम्भु। अट्टहास महातीर्थ प्रसंग आपसे कहा जा चुका है। यहां अर्क (सूर्य) ने ईश्वर का पूजन किया था तथा पूर्णमनोरथ हो गये थे। हे वेदविद्! कृत्तिवास प्रसंग आपसे पहले कहा था। यह महादेव के लिए कैलास की अपेक्षा प्रिय भूमि है। यहां भ्रमरा नामक अम्बिका देवी के साथ देवदेव शिव ही मल्लिकार्जुन नाम से विराजित

रहते हैं। ब्रह्मा ने श्री शैलपर सृष्टि-सिद्धि हेतु महादेव का पूजन किया था। सुवर्णमुखरी के तट पर शंकर कालहस्ती नाम से विराजमान रहते हैं। भृङ्गमुखरालका नामक जगत्जननी दुर्गा के साथ विराजित हैं। काञ्ची में कामाक्षी के साथ देव कामशासन एकाम्रमूल में अवस्थित रहते हैं। तपश्चरण करती कामाक्षी देवी से अत्यन्त युक्त देव कामशासन यहां देवी द्वारा वलयांकित हो जाते हैं।।३५-४१।।

अस्ति व्याघ्रपुरंनाम तिल्लिकाननमध्यगम्। यत्र नृत्यन्तमीशानं पर्युपास्ते पतञ्जलिः॥४२॥
श्वेतारण्यमिति स्थानमुक्तं तव मया पुरा। भग्नमैरावतोदन्तं भेजे यत्र शिवार्चनातम्॥४३॥
सेतुबन्धमिति स्थानमवोचं तत्र राघवः। रामनाथाख्यया देवमंहोघ्नं प्रत्यतिष्ठिपत्॥४४॥
गतप्रत्याह्वयस्थानं विद्यते वृषभध्वजः। यत्र जम्बूतरोर्मूले जगद्रक्षार्थमाश्रितः॥४५॥

तिल्लिकानन के बीच व्याघ्रमुख नामक एक तीर्थ में पतञ्जलि नृत्यकारी महेश्वर की उपासना करते हैं। श्वेतारण्य तीर्थ के वृत्तान्त का मैंने आपसे वर्णन किया था। यहां ऐरावत ने अपने दांतों द्वारा महादेव की आराधना किया था। सेतुबन्ध नामक तीर्थ की कथा आपसे कह चुका हूं। यहां राघव ने रामनाथ नामक शंकर को प्रतिष्ठित किया था। गतप्रत्याह्वय नामक एक तीर्थ है, जहां जगत् रक्षणार्थ शम्भु जम्बु वृक्ष के नीचे अवस्थान करते हैं।।४२-४५।।

मणिमुक्तानदीमन्वक्क्षेत्रे वृद्धाचलाह्वये। नित्यं सन्निहितो देव इत्याकर्णित एव ते॥४६॥
श्रीमन्मध्वार्जुनंनाम श्रुतं स्थानमनुत्तमम्। यस्मिन्वरप्रदो नित्यं गौरीसहचरो हरः॥४७॥
आस्थितं सोमनाथेन सोमतीर्थं त्वया श्रुतम्। यत्र त्यक्तवतां देहं न भूयो भवबन्धनम्॥४८॥
आकर्णितंहि भवताक्षेत्रं सिद्धवटाह्वयम्। यत्र सिद्धाः समर्चन्तिज्योतिर्लिङ्गमनुत्तमम्॥४९॥
अश्रावि खलु ते क्षेत्रं कमलालयसञ्ज्ञकम्। वल्मीकेशार्चनाल्लेभेयत्रश्रीर्जीविता हरेः॥५०॥
श्रुतवानसि कङ्काद्रिं यत्र सन्निहितो हरः। इदानीमप्युपासाते मोक्षाय ब्रह्मकेशवौ॥५१॥

मणिमुक्ता नदी के निकट वृद्धाचल में देव शंकर नित्य सन्निहित रहते हैं। यह आप मुझसे सुन चुके हैं। श्रीमान् मध्यार्जुन नामक अनुपम स्थान का नाम भी आपने सुना है। यहां गौरी सहचर भगवान् हर सदा वर देते हैं। सोमनाथाश्रित सोमतीर्थ के सम्बन्ध में भी आपने सुना होगा। वहां देहत्याग करने वाला भवबन्धन से मुक्त हो जाता है। आपने सिद्धवट तीर्थ का वर्णन सुना था। यहां सिद्धगण नित्य ज्योतिर्लिङ्गार्चन करते हैं। कमलालय तीर्थ वार्त्ता भी आपने सुनी है। यहां पर वल्मीकेश नामक शिवार्चन करके श्रीदेवी ने हरि को जीवन लाभ कराया था। आपने कंकाद्रि तीर्थ की बात सुनी होगी। यहां भगवान् हर सन्निहित रहते हैं तथा ब्रह्मा एवं केशव भी यहां मोक्षलाभार्थ उपासनारत रहते हैं।।४६-५१।।

श्रीमद्द्रोणपुरं वेत्सि यस्मिन्कलियुगक्षये। नौकामारूढवानब्धौक्षुभिते पार्वतीपतिः॥५२॥
श्रुतं ब्रह्मपुरंनाम क्षेत्रं यत्रेन्द्रजित्पुरा। आर्यपुष्करिणीतीरे स्थापयामास धूर्जटिम्॥५३॥
श्रीकोटिकाख्यं ज्ञानाभिक्षेत्रं यत्रेन्दुशेखरः। समाराधयतां पुंसां पापकोटीर्व्यपोहति॥५४॥
आकर्णितं च गोकर्णं शिवं यत्सन्निधानतः। आरिराधयिषुः स्वर्गं जामदग्न्यो न काङ्क्षति॥५५॥
त्रिपुरान्तकमुक्तं ते क्षेत्रं यत्र त्रियम्बकः। निराकरोति निरयाद्भयं दृष्टवतां नृणाम्॥५६॥

उक्तं कालाञ्जनं क्षेत्रं यद्वासीकालकन्धरः। निर्वापयति भक्तानां घोरसंसारसंज्वरम्॥५७॥
प्रियालवणमाख्यातं क्षेत्रं यत्राऽम्बिकापतिः। पयोऽर्थिनेपयःसिन्धुं विततारोपमन्यवे॥५८॥
क्षेत्रं प्रभासमुक्तं ते यत्र खण्डेन्दुशेखरः। पूजितः शौरिसीरिभ्यां दत्तवानक्षयं फलम्॥५९॥
वेदारण्यं विजानीषेयस्मिन्प्रमथनायकः। अभ्यर्थितोऽभून्मोक्षार्थंदक्षेणप्राक्कृतागसा॥६०॥

आप द्रोणपुर तीर्थ से परिचित हैं न? यहीं कलियुग का क्षय होनेपर पार्वतिपति क्षुब्ध सागर में नौकारोहण करते हैं। ब्रह्मपुर तीर्थ आपको ज्ञात है। यहां पूर्वकाल में इन्द्रजीत ने आर्यपुष्करिणी तट पर धूर्जटि देव को स्थापित किया था। श्रीकोटिक नामक ज्ञानमय क्षेत्र है। यहां इन्दुशेखर की आराधना जो व्यक्ति करता है, उसकी पापराशि को वे दूर कर देते हैं। गोकर्ण तीर्थ का नाम आपने सुना होगा। यहां जामदग्न्य (परशुराम) ने शिवाराधन किया था तथा स्वर्गभाग को भी तुच्छ माना था। आपने त्रिपुरान्तक तीर्थ का भी प्रसंग मुझसे सुना था। इस तीर्थ में प्रभु त्र्यम्बक का दर्शन करने वाले का नरक भय वे निराकृत कर देते हैं। कालाञ्जन क्षेत्र की कथा आपसे कही गयी है। यहां स्थित कालकन्धर देवता भक्तों के घोर संसार भय का निवारण कर देते हैं। प्रियालवण क्षेत्र के सम्बन्ध में आपसे कहा गया था। यहां अम्बिकापति शम्भु ने दुग्धप्रार्थी उपमन्यु को दुग्ध सिन्धु प्रदान किया था। मैंने प्रभास तीर्थ का प्रसंग आपसे पहले कहा था। इस तीर्थ में खण्डेन्दुशेखर ने राम-कृष्ण से पूजित होकर अक्षय फल दिया था। आप वेदारण्य तीर्थ को जानते हैं। यहां प्रमथनायक देव ने वैर करने वाले दक्ष द्वारा अभ्यर्थना प्राप्त करके उसे मोक्ष प्रदान किया था।।५२-६०।।

हेमकूटं त्वमश्रौषीः स्थानं विषमचक्षुषः। पुंसां तपस्यतां यत्र पुनर्जननतो न भीः॥६१॥
क्षेत्रं वेणुवनंनाम विद्यते पापनाशनम्। यत्र वंशलतागर्भाज्जातो मुक्तामणिः शिवा॥६२॥
जालन्धरमिति स्थानमन्धकारेस्त्वयाश्रुतम्। लेभे गणपतां तत्र तपस्याभिर्जलन्धरः॥६३॥
ज्वालामुखमिति स्थानमज्ञासीः कथितं मया। यत्र ज्वालामुखी देवी कालरुद्रमपूजयत्॥६४॥
अस्ति भद्रवटोनाम क्षेत्रमुक्तं श्रुतं त्वया। त्र्यम्बकं यत्र हेरम्बः सम्पदे पर्यपूजयत्॥६५॥

आपने हेमकूट तीर्थ का प्रसंग सुना होगा। यहां पर विषमविलोचन का निवास है तथा यहां पर जो मनुष्य तप करता है, उसे पुनर्जन्म का भय नहीं रह जाता। वेणुवन नामक एक पापनाशक तीर्थ है। यहां वंशलता से मुक्तामणिधारिणी शिवा का प्रादुर्भाव हुआ। जालन्धर नामक प्रसिद्ध अन्धकारी तीर्थ आपने सुना होगा। यहां जलन्धर ने तप द्वारा गणपतित्व लाभ किया था। ज्वालामुख नामक मेरे द्वारा कथित स्थान आपको ज्ञात है, जहां कालरुद्र का पूजन ज्वालामुखी देवी ने किया था। भद्रवट नामक एक क्षेत्र का वर्णन मैं कर चुका हूं। आपने भी सुना है। यहां हेरम्ब ने सम्पदार्थ त्र्यम्बक का पूजन किया था।।६१-६५।।

न्यग्रोधारण्यमुक्तं ते यत्रोग्रोनिर्ममे किल। उच्चण्डताण्डवंकाल्यासाकंसङ्घर्षमेयिवान्॥६६॥
गन्धमादनसञ्ज्ञं तत्क्षेत्रमाकर्णितं त्वया। आञ्जनेयेन रचितं यत्र मृत्युञ्जयार्चनम्॥६७॥
गोपर्वतमिति स्थानं शम्भोः प्रख्यापितंमया। यत्रपाणिनिनालेभेवैयाकरणिकाग्र्यता॥६८॥
वीरकोष्ठमिति क्षेत्रस्थानं नन्ववधारितम्। यत्र प्रचेतसा लेभे तपसा कविमुख्यता॥६९॥
महातीर्थमिति प्रोक्तं जानीषेयत्र शम्भुना। अध्यापितास्सुपर्वाणःसर्वेऽपिद्रुहिणादयः॥७०॥

न्यग्रोधारण्य तीर्थ भी कहा गया है। यहां भगवान् ने उग्र उच्चण्ड ताण्डव के साथ काली से संघर्ष किया था। गन्धमादन संज्ञक तीर्थ को भी आपने सुना है। यहां आञ्जनेय ने मृत्युञ्जय की अर्चना किया था। गोपर्वत नामक शम्भुतीर्थ का भी प्रसंग आपको सुनाया था। यहां पाणिनि मुनि तप करके वैय्याकरणों में अग्रणी हो गये थे। वीरकोष्ठ तीर्थ का प्रसंग आपको अवश्य याद होगा। यहां प्रचेताओं ने तप करके कविप्रमुखत्व प्राप्त किया। महातीर्थ नामक तीर्थ के सम्बन्ध में आप जानते हैं। यहां ब्रह्मादि देवता भगवान् शम्भु द्वारा अध्यापित हुए थे।।६६-७०।।

मयूरपुरमुक्तं ते क्षेत्रं माहेश्वरं मया। लेभे यत्र व्रतस्थेन ह्यादिनी वज्रपाणिना।।७१।।
श्रीसुन्दरमिति क्षेत्रमुक्तं वेगवतीतटे। कलावपि युगे यस्मिन्देवदेवेन दीप्यते।।७२।।
कुम्भकोणमिति स्थानं शम्भोर्वेत्सि हि यत्र सा।
गङ्गाऽपि माघे सान्निध्यं कुरुते स्वाघशान्तये।।७३।।
अनुगोदावरीतीरं त्र्यम्बकंनाम ते श्रुतम्।
शक्तिं यत्र गुहो लेभे तारकासुरघातिनीम्।।७४।।
श्रीपाटलं व्याघ्रपुरमाख्यातं वेदवित्तम।
त्रिशङ्कुना जातिशुद्ध्यै यत्र गङ्गाधरोऽर्चितः।।७५।।
क्षेत्रं कदम्बपुर्य्याख्यंभवता चाऽवधारितम्। त्वत्कृतेयत्रशूलेन कृतान्तंशम्भुरक्षिणोत्।।७६।।
अविनाशाख्यमुक्तं ते क्षेत्रं यत्र वृषध्वजः। सान्निध्यं पडिकण्ठायवितितारप्रसेदिवान्।।७७।।
रक्तकाननमाख्यातं मया क्षेत्रं तवाऽनघ!। मित्रावरुणयोर्यत्र रुद्रोऽजनि वरप्रदः।।७८।।
श्रीहाटकेश्वरं क्षेत्रं पातालस्थं त्वया श्रुतम्। यत्र वैरोचनिर्देवं स्वपदप्राप्तयेऽर्चति।।७९।।
वेत्सि शम्भोः प्रियावासंकैलासंनित्यसेवकः। यत्रयक्षेश्वरस्त्र्यक्षमभ्यर्चयतिभक्तितः।।८०।।
स्थानानिखण्डपरशोरित्युक्तानिमयापुरा। त्वयाप्यवधृतान्येवकिम्भूयः श्रोतुमिच्छसि।।८१।।
इत्यूचिवानेष शिलादनन्दनो मुनेर्मृकण्डोस्तनयं मुनीश्वरम्।
भक्त्यानमन्तं पदयोः करेण पस्पर्श मौलौ करुणारसार्द्रः।।८२।।

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे महीमण्डलस्थविवधशिवक्षेत्रवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

मयूरपुर क्षेत्र नामक माहेश्वर क्षेत्र का वर्णन मैंने पूर्व में आपसे किया था। यहां तप करने से इन्द्र को वज्रलाभ हुआ था। वेगवती तटस्थ श्रीसुन्दर नामक तीर्थ का प्रसंग कहा जा चुका है। कलिकाल में भगवान् देवदेव को यहां दीप्ति प्राप्ति हुई थी। कुम्भकोण तीर्थ से आप अवगत हैं। यहां पर पावनी गंगा देवी माघ मास में लोगों की पापशान्ति हेतु सन्निहित हो जाती हैं। गोदावरी तीर्थस्थ त्र्यम्बक तीर्थ के सम्बन्ध में आपने सुना था। यहां देवसेनानी स्कन्द ने तारकासुर का वध करने वाली देवशक्ति को प्राप्त किया था। हे वेदवित्तम! व्याघ्रपुर श्रीपाटन तीर्थ प्रख्यात है, जहां त्रिशंकु ने जातिशुद्धि हेतु गंगाधरार्चन किया था। क्या कदम्बपुरी क्षेत्र आपकी स्मृति में है?

यहां आपके लिये शूली प्रभु शंकर ने शूल द्वारा यम का ताड़न किया था। मैंने अविनाश नामक तीर्थ प्रसंग आपसे कहा था। यहां वृषध्वज ने प्रसन्नतापूर्वक पतिकण्ठ को सान्निध्य प्रदान किया था। हे अनघ! मैंने आपसे रक्तकानन तीर्थवर्णन किया था। यहां भगवान् रुद्र ने मित्रावरुण को वर दिया था। पातालस्थ श्री हाटकेश्वर तीर्थ की कथा आपने सुनी है। यहां वैरोचनि ने शंकरार्चन स्वपद प्राप्त्यर्थ किया था। आप शम्भु के प्रिय निवासस्थल कैलास के सम्बन्ध में जानते हैं। यहां उनके नित्य सेवक यक्षेश्वर भक्तिभाव से नित्य त्रिलोचन देव की अर्चना करते हैं। खण्ड परशु के इन सभी स्थानों का वर्णन मैंने पूर्वकाल में किया था, जिसे आपने सुना था। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं? यह कहकर शिलादपुत्र नन्दी ने करुणार्द्र होकर अपने चरणों पर गिरे मृकण्डुपुत्र मार्कण्डेय का शिरस्स्पर्श किया।।७१-८२।।

।।द्वितीय अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

तृतीयोऽध्यायः

अरुणाचल रहस्य वर्णन

मार्कण्डेय उवाच

भगवन्वञ्चनेनाऽलंत्वदेकप्रवणेमयि। किंमादृशोऽस्तितेशिष्यस्तत्कृपैवाऽत्रसाक्षिणी।।१।।
स्थानेषु प्राक्त्वदुक्तेषु फलानिचपृथक्पृथक्। यत्र सर्वफलप्राप्तिः स्थानंतद्वदमेविभो।।२।।
चराचराणां भूतानां जानतामप्यजानताम्। यस्य स्मरणमात्रेण मुक्तिस्तद्वद देशिक।।३।।
पस्यैतेन मयैकेन भगवान्नानुराध्यसे। सर्वैरप्येतदर्थं हि मुनिभिः परिवार्यसे।।४।।

मार्कण्डेय कहते हैं—हे भगवान्! मैं आपका अनुगत हूं। अतः मेरे प्रति आपका कपट संभाषण प्रयोजनीय नहीं है। क्या मेरे ऐसा आपका कोई शिष्य है? इसका साक्ष्य है मेरे प्रति आपकी शिष्योपयोगी कृपा! आपने पूर्व में स्थान तथा उसके फलों का पृथक्-पृथक् वर्णन किया है। हे विभो! जहां पर सभी फल एकत्र एक ही जगह पर मिल जाते हैं, ऐसे स्थान का वर्णन करें। ज्ञानी किंवा अज्ञानी, सभी को जिस स्थान के स्मरण से ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है, आप उस स्थान के सम्बन्ध में कहिये। हे भगवान्! केवल मैं ही अकेला आपकी आराधना करता हूं, ऐसी बात नहीं है। आपसे मोक्षप्रद ज्ञान श्रवण करने हेतु सभी मुनिगण आपको घेर कर बैठे रहते हैं।।१-४।।

पुलहेन पुलस्त्येन वशिष्ठेन मरीचिना। अगस्त्येन दधीचेन नक्रुणा भृगुणाऽत्रिणा।।५।।
जाबालिना जैमिनिना धौम्येन जमदग्निना। उपयाजेन याजेन भरतेनार्वरीवता।।६।।
पिप्पलादेन कण्वेन कुमुदेनोपमन्युना। कुमुदाक्षेण कुत्सेन वत्सेन वरतन्तुना।।७।।
विभाण्डकेन व्यासेन कण्वरीषेण कण्डुना। माण्डव्येनमतङ्गेनकुक्षिणामाण्डकर्णिना।।८।।

चण्डकौशिकशाण्डिल्यशाकटायनकौशिकैः। शातातपमधुच्छन्दोगर्गसौभरिरोमशैः॥९॥
आपस्तम्बपृथुस्तम्बभार्गवोदङ्कपर्वतैः। भारद्वाजेन दाल्भ्येन दान्तेन श्वेतकेतुना॥१०॥
कौण्डिन्यपुण्डरीकाभ्यां रैभ्येण तृणबिन्दुना। वाल्मीकिना नारदेन वह्निना दृढमन्युना॥११॥
बोधायनसुबोधाभ्यां हारीतेन मृकण्डुना। दुर्वासमातितीक्ष्णेन जलपादेन शक्तिना॥१२॥
कांक्वार्येण नदन्तेन देवदत्तेन न्यङ्कुना। सुश्रुता चाऽग्निवेश्येन गालवेन मरुत्वता॥१३॥
लोकाक्षिणा विश्रवसा सैन्धवेन सुमन्तुना। शिशुपायनमौद्गल्यपथ्यचावनमातुरैः॥१४॥
ऋष्यशृङ्गैकपात्क्रौञ्चदृढगोमुखदेवलैः। अङ्गिरोवामदेवौर्वपतञ्जलिकपिञ्जलैः॥१५॥
सनत्कुमारसनकसनन्दनसनातनैः। हिरण्यनाभसत्याख्यवाताशनसुहोतृभिः॥१६॥
मैत्रेयपुष्पजित्सत्यतपःशालीष्यशौसिरैः। निदाघोतथ्यसम्वर्त्तशौल्कायनिपराशरैः॥१७॥
वैशम्पायनकौशल्यशारद्वतकपिध्वजैः। कुशस्वाचिरककैवल्ययाज्ञवल्क्याश्वलायनैः॥१८॥
कृष्णातपोत्तमानन्तकरुणामलकप्रियैः। चरकेण पवित्रेण कपिलेन कणाशिना॥१९॥
नरनारायणाभ्यां च दिव्यैश्चान्यैर्महर्षिभिः। मत्प्रश्नोत्तरशुश्रूषातत्परैः प्रत्यवेक्ष्यसे॥२०॥
माहेश्वराग्रगण्यस्त्वं समस्यागमपारगः। व्याप्तश्च सर्वलोकेषु यस्मात्तदनुसाधि नः॥२१॥

पुलह, पुलस्त्य, वसिष्ठ, मरीचि, अगस्त्य, दधीचि, नक्रु, भृगु, अत्रि, जाबालि, जैमिनि, धौम्य, जमदग्नि, उपयाज, याज, भरत, अर्वरीवत्, पिप्पलादि, व्यास, कण्व, कण्डु, माण्डव्य, कुमुद, उपमन्यु, कुमुदाक्ष, कुत्स, वत्स, वरतन्तु, विभाण्डक, कण्वरीश, माण्डव्य, मतंग, कुक्षि, माण्डकर्णि, चण्डकौशिक, शाण्डिल्य, शाकटायन, कौशिक, शातातप, मधुच्छन्द, गर्भ, सौभरि, रोमश, आपस्तम्बा भार्गव, उदङ्ग, पर्वत, भारद्वाज, दाल्भ्य, दान्त, श्वेतकेतु, कौण्डिन्य, पुण्डरीक, रैम्य, तृणबिन्दु, वाल्मीकि, नारद, वह्नि, दृढ़मन्यु, बोधायन, सुबोध, हारीत, मृकण्डु, दुर्वासा, अतितीक्ष्ण, जालपाद, शक्ति, काङ्क्र्य, नदन्तु, देवदत्त, न्यङ्कु, सुश्रुत, अग्निवेश्य, मालव, मरुत्वत्, लोकाक्षि, विश्रवा, सैन्धव, सुमन्तु, शिशुपायन, मौदगल्य, पथ्य, चावनमातुर, ऋष्यशृङ्ग, एकपात्, क्रौञ्च, दृढ़, गोमुख, देवल, अंगिरा, वामदेव, और्व, पतंजलि, कपिंजल, सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, हिरण्यनाभ, सत्यारण्य, वाताशन, सुहोड़, मैत्रेय, पुष्पजित्, सत्यतपा, शालीष्य, शौशिर, निदाध, उतथ्य, सम्वर्त्त, शोक्लायणि, पराशर, वैशम्पायन, कौशल्य, कपिध्वज, शारद्वत, कुशस्वार्चिक, कैवल्य, याज्ञवल्क्य, आश्वलायन, कृष्णातप, उत्तम, अनन्त, करुण, आमलक प्रिय, चरक, पवित्र, कपिल, कणाशी, नर-नारायण। इनके अतिरिक्त अन्य महर्षि भी मेरे प्रश्नों का उत्तर सुनने हेतु आपका मुखावलोकन कर रहे हैं। आप माहेश्वरों में अग्रगण्य हैं। समस्त आगमज्ञाता हैं। आप सर्वलोक व्याप्त भी हैं। कृपया मुझे उपदेश प्रदान करें।।५-२१।।

त्वन्मुखादेव भगवन्वयमेते सुशिक्षिताः। पूर्वमेव त्वया देव किं वाऽन्यदुपपद्यते॥२२॥
दिव्यागमपुराणानि द्रष्टव्यःपरमेश्वरः। कात्यायनीवास्कन्दोवाभगवान्वाथवाभवान्॥२३॥

हे भगवान्! पूर्व में आपके मुख से शास्त्रों का उपदेश सुन कर हम शिक्षित हुए हैं। अब आगमपुराणादि सम्बन्धित और क्या सुनें? अब हम परमेश्वर, कात्यायनी, स्कन्द तथा आपके ही दर्शनेच्छु हैं।।२२-२३।।

त्वयि यद्यस्ति नो भक्तिर्दया चाऽस्मासु ते यदि। रहस्यमिदमुद्घाट्य प्रसादं कर्तुमर्हसि॥२४॥
इत्थं मृकण्डुतनयेन स नन्दिकेशो विज्ञापितः सविनयं स्मयमानवक्त्रम्॥२५॥
तं प्राह चोन्नततरं शिवभक्तिमत्सु प्राग्भक्तितोषितशिवाप्तशरीरसिद्धिम्॥२६॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धेऽरुणाचलाख्यरहस्यस्थानप्रश्नवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥

यदि आपके प्रति हमारी भक्ति है, तब आपकी दया होनेपर उक्त रहस्य का उद्घाटन करके हमें अनुगृहीत करिये। नन्दिकेश्वर मृकण्डुपुत्र मार्कण्डेय का यह विनीत भाव देखकर अन्य भक्तिमान् मुनिगण के बीच भक्ति से तोषित शिव-शिवाप्तशरीर सिद्ध मृकण्डुतनय से उच्च स्वर में कहने लगे॥२४-२५॥

॥तृतीय अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

चतुर्थोऽध्यायः

अरुणाचल महिमा वर्णन, अरुणाचल का शिवरूपत्व

नन्दिकेश्वर उवाच

मुनेमनःपरीक्षार्थं तथा त्वं भाषितोमया। तवचेन्नाभिधास्यामिकस्यवान्यस्यकथ्यते॥१॥
त्वादृगन्योऽस्तिकिंलोकेशिवधर्मपरायणः। येनस्वल्पायुषाऽप्येवंनित्येनाभाविभक्तितः॥२॥
कस्यान्यस्यकृतेदेवःस्वस्यैवाज्ञाकरंयमम्। क्रुद्धो नियन्त्रयामास चरणाङ्गुष्ठपीडितम्॥३॥
त्वमेवशाङ्करान्धर्मान्सर्वान्विद्धिरहस्यतः। योऽग्रेऽसिकालवद्भ्रान्तःपरिपक्वोऽसिचेतसा॥४॥
त्वयैवाऽन्येनकेनाऽहमेवंशुश्रूषितश्चिरम्। त्वयीवकस्मिन्नन्यस्मिन्ममापिप्रीतिरीदृशी॥५॥
उपदेक्ष्यामिते क्षेत्रं गुप्तं तद्धर्मशासनैः। भक्त्याऽवधारणीयं यद्भक्तिकैवल्यकाङ्क्षिभिः॥६॥
आदरादनुयुञ्जानंशिष्यंयोदेशिकः स्वयम्। उपदेशेन सन्तुष्टं न करोति स किंगुरुः॥७॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—हे मुनिवर! मैंने आपके मन की परीक्षा हेतु ऐसा कहा था। यदि आपसे न कहूं तब अन्य किससे कहूंगा? आपके समान शिवभक्ति तथा शिवधर्म तत्पर कोई अन्य व्यक्ति क्या जगत् में है? स्वल्पायु होकर भी आप शिवभक्ति के कारण चिरजीवी हो गये। आपके अतिरिक्त अन्य किसी के लिए क्या देवाधिदेव शंकर अपने आज्ञाकारी भृत्य यम को चरणांगुष्ठ से दबाकर ताड़ित करते? आप ही सम्यक्तः समस्त रहस्यों के साथ शंकर रहस्य के ज्ञाता हैं। पहले आप कालवत् भ्रान्त थे। अब आपका चित्त परिपक्व है। आपकी तरह अन्य किसके द्वारा मैं दीर्घकाल सेवित हुआ हूं? आपके अतिरिक्त और किसके प्रति मेरी ऐसी प्रीति है?

इसलिए मैं धर्मशासन द्वारा आपको समस्त गुप्तक्षेत्र सम्बन्धित उपदेश दूंगा। भक्ति तथा कैवल्यकामी व्यक्ति इस उपदेश की भक्ति के साथ धारणा करते हैं। जो उपदेष्टा सादर जिज्ञासु शिष्य को स्वयं सदुपदेश से सन्तुष्ट नहीं करता, वह कुत्सित गुरु है।।१-७।।

समाहितमनाभूत्वा विश्वासं कुरु शाश्वतम्। मयोपदिश्यमानेऽस्मिन्नहस्ये पारमेश्वरे।।८।।
स्मर स्मरान्तकं देवं वन्दस्वाध्याय शाङ्करीम्। उपांशूच्चारयोङ्कारं श्रेयस्ते महदागतम्।।९।।

आप समाहित होकर मेरे द्वारा उपदेश दिये जा रहे इस शाश्वत पारमेश्वर रहस्य में विश्वास करें। आप देवदेव स्मरान्तक शिव का स्मरण करके ध्यानान्त काल में शंकर की शक्ति की भी वन्दना करें। तदनन्तर उपांशु रूप से (जिसमें उच्चारण सुनाई न पड़े, मन ही मन) ॐकार का उच्चारण करें। इससे आपमें महत् श्रेयः स्वयं आ जायेगा।।८-९।।

अस्ति दक्षिणादिग्भागे द्राविडेषु तपोधन। अरुणाख्यं महाक्षेत्रं तरुणेन्दुशिखामणेः।।१०।।
योजनत्रयविस्तीर्णमुपास्यं शिवयोगिभिः। तद्भूमेर्हृदयं विद्धि शिवस्य हृदयङ्गमम्।।११।।
तत्र देवः स्वयं शम्भुः पर्वताकारतां गतः। अरुणाचलसञ्ज्ञावानस्तिलोकहितावहः।।१२।।
आवासःसर्वसिद्धानांमहर्षीणांसुपर्वणाम्। विद्याधराणांयक्षाणांगन्धर्वाप्सरसामपि।।१३।।
सुमेरोरपि कैलासादप्यसौ मन्दरादपि। माननीयो महर्षीणां यः स्वयं परमेश्वरः।।१४।।
स्पृहयन्तियदीयेभ्योजन्तुभ्योऽपिदिवौकसः। अयत्नलभ्यमुक्तिभ्योदिवावासप्रवञ्चिताः।।१५।।
न कल्पवृक्षाःसदृशा यत्रात्यानाम्महीरुहाम्। पत्रपुष्पफलैर्नित्यं येऽर्चयन्तिगिरौहरम्।।१६।।
हिंसैकरुचयो व्याधा अपि रूपानुसारतः। अनन्ता यत्र देवस्य प्रादक्षिण्यफलास्पदम्।।१७।।

हे तपोधन! दक्षिणापथ में द्राविड़ नामक प्रसिद्ध स्थान है। यहां तरुणेन्दुशिखामणिधारी शम्भु का अरुणाख्य महाक्षेत्र स्थित है। यह ३ योजन विस्तीर्ण तथा शैवयोगीगण द्वारा उपास्य है। यह भूमि का हृदयदेश शंकर के हृदयस्थ है। (हृदयंगम है)। देव शम्भु स्वयं यहां पर्वताकृति होकर अरुणाचल नाम से प्रसिद्ध हैं तथा लोकहितकारी रूपेण विराजित हैं। यह स्थान समस्त सिद्ध, महर्षि, सुपर्ण (पक्षी), विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराओं का निवास स्थान है। ये साक्षात् परमेश्वर स्वरूप अरुणाचल यहां सुमेरु, कैलास, मन्दराचल से भी अधिक रूप में ऋषिगण को मान्य हैं। जो देवता स्वर्गवास से वंचित हो गये हैं, वे अरुणाचल में बिना प्रयत्न के मुक्ति पाने के लिए वहां जन्तु योनि में भी रहने की इच्छा करते हैं। कल्पवृक्ष भी इस अरुणाचल पर्वतस्थ वृक्षों की तरह नहीं है। क्योंकि यहां के वृक्ष अपने पत्र-पुष्प-फल गिरा कर इसी बहाने (अनजाने में) देवदेव अरुणाचल की अर्चना कर लेते हैं। विभिन्न रूपधारी हिंसारत बाघ भी नित्य (पशु-पक्षी का अन्वेषण करते हुए) अनजाने में इस पर्वत की प्रदक्षिणा करके देवता की प्रदक्षिणा का फल लाभ कर लेते हैं।।१०-१७।।

यदुद्देशचरामेघाः शिखराण्यभिबन्धकाः। गङ्गावतो हिमवतोऽप्यधिकंस्वं विजानते।।१८।।
कलारावाः खगा यत्र क्वणन्ते कीचका अपि। यक्षकिन्नरगन्धर्वैर्लभ्यते दुर्लभं पदम्।।१९।।
स्मरन्तो यत्र खद्योताः कृष्णपक्षेनिशागमे। आरार्तिकप्रदातॄणां देवस्याऽश्नुवते पदम्।।२०।।

इस अरुणाचल के कटि प्रदेश तक विचरणशील मेघदल शिखर तक न पहुंच सकने पर भी अपने को

गंगायुक्त हिमाचल से भी ऊर्ध्वस्थ तथा पवित्र मानते हैं। इस पर्वत पर स्थित चहचहाने वाले पक्षीगण, क्वणन करते कीचक समूह वाले यक्षगण, किन्नर तथा गन्धर्वगण ने भी दुर्लभ पद पाया है। खद्योत श्रेणी कृष्णपक्ष की रात्रि में मानों उड़ते हुए इस अचल पर्वत की आरति प्रदाता का कार्य करते हैं।।१८-२०।।

निष्प्रत्यूहकृताश्लेषा नित्यं यत्तटिनीरुहाः। सौभाग्यगर्वतो देवीमपर्णामवन्वते॥२१॥
यस्योत्तुङ्गस्य शृङ्गाग्रसङ्गमाअपितारकाः। आत्मनोलब्धसामान्याश्चन्द्रेण बहुमन्वते॥२२॥
मृगाः सर्वेऽपि सततं चरन्तो यत्र सानुषु। पाणिप्रणयिनं शम्भोरेणमप्यवजानते॥२३॥
यस्य पादान्तिकचरैः प्रायेण शबरैरपि। निकुम्भकुम्भसादृश्यमयत्नादुपलभ्यते॥२४॥
किं बहूक्त्याभ्यसूयन्ते द्वैमातुरकुमारयोः। यदङ्गरूढास्तरवस्तिर्यञ्चः शबरा अपि॥२५॥

इस अरुणाचल के निर्विघ्न आलिंगन से नदियां अपने सौभाग्यगर्व के कारण देवी अपर्णा की भी मानों अवमानना कर रही हैं। इस उत्तुङ्ग पर्वत के शिखरों का संगम करने के कारण चन्द्र अपनी पत्नी तारकादि को अपनी बराबरी करते देखकर उनको अत्यन्त सम्मान तथा मान-मनौवल के साथ ग्रहण कर रहे हैं। मृगसमूह इस अचल पर्वत की घाटी में विचरण करते हुए शंभु के हाथ में स्थित मृग की भी अवज्ञा कर रहे हैं। इस अरुणाचल पर्वत पर परिभ्रमण करने वाले शबरगण भी अनायास निकुम्भ-कुम्भ का सादृश्य प्राप्त कर रहे हैं और अधिक क्या कहूं। इस अरुणाचलस्थ वृक्ष, तिर्यक् प्राणी, शबरगण भी गणपति तथा कुमार स्कन्द के प्रति भी असूया प्रकट कर रहे हैं। अर्थात् उन एक ही पिता की सन्तान स्वयं को भी मान कर ईर्ष्या कर रहे हैं।।२१-२५।।

सिंहव्याघ्रद्विपायस्मिन्कालेत्यक्तकलेवराः। वासप्रदत्वान्मान्यन्तेध्रुवंशोणाद्रिशम्भुना॥२६॥
अस्यभास्करनामाद्रिः पूर्वस्यां दिशि दृश्यते। यत्रस्थितःसदावज्रीसेवतेशोणपर्वतम्॥२७॥
प्रतीच्यां दिशि दण्डाद्रिरिति कश्चिन्महीधरः। प्राचेतसस्तदगगः सेवतेऽरुणपर्वतम्॥२८॥
दक्षिणस्यां च शोणाद्रेरद्रिरस्त्यमराचलः। कालः शोणाद्रिसेवार्थमध्यास्ते तदधित्यकाम्॥२९॥
उत्तरेऽस्मिन्हरिद्भागे सिद्धाध्यासितकन्दरः। विराजतेत्रिशूलाद्रिः श्रीदेनपरिपालितः॥३०॥
तत्पर्यन्तप्रभूतानामन्येषामपि भूभृताम्। तटकेष्वपरे चैव दिक्पालाः पर्युपासते॥३१॥
धारिता येन सततं सर्वेऽपि धरणीरुहाः। आराधनादप्यधिकमधिगच्छन्ति वैभवम्॥३२॥

इस अरुणाचल पर विचरणरत सिंह, व्याघ्र तथा हाथी समय पर देहत्याग करते हैं तथा ये अरुणाचलरूपी शम्भु उन पर कृपा करते हैं। यहां से पूर्व की ओर भास्कर पर्वत अवस्थित है। वहां रहकर इन्द्रदेव शोणपर्वत की सेवा करते हैं। प्रतीचि दिशा में दण्डाद्रि पर्वत पर प्राचेतसगण स्थित रहकर अरुणाचल की सेवा करते हैं। शोणगिरि के दक्षिण में अमराचल है। काल भी शोण पर्वत की सेवार्थ वहां अधित्यकाम निवास करते हैं। उत्तर दिक्भाग में सिद्ध सेवित पर्वत है त्रिशूल पर्वत। वह श्रीप्रद देवतागण द्वारा परिपालित हैं। इसके पार्श्वस्थ अन्यान्य पर्वतों की तलहटी में अन्य दिक्पाल स्थित रहकर शोण पर्वत की उपासना करते हैं। यह अरुणाचल जब समस्त धरणी के पदार्थों को धारण किये रहता है, तब उसकी आराधना द्वारा जो प्रचुर वैभव प्राप्त होता है, उसके सम्बन्ध में क्या सन्देह!।।२६-३२।।

यस्मिन्गिरीशेसंदृष्टे मेनातुहिनभूभृतोः। समानसम्बन्धतया प्रमोदो वर्द्धतेतराम्॥३३॥

तरुपल्लवलक्षेण लक्ष्यमाणजटाधरः। स्थावरोऽयं स्वयं शम्भुरिहेश इव जङ्गमः॥३४॥
ज्योतिष्मत्तोयशृङ्गस्य द्विपार्श्वस्थेन्दुभास्करः।
व्यनक्ति स्वस्य लोकेभ्यस्तेजस्त्रितयनेत्रताम्॥३५॥
वर्षासुशिखराधस्तादभिनीलबलाहकः। विराजते यः कण्ठेन कालकूटमिवोद्वहन्॥३६॥
सहस्त्रपादः साहस्त्रशीर्षो यः पर्वतेश्वरः। उक्तो न केवलं श्रुत्या साक्षादप्युपलक्ष्यते॥३७॥
शिरोलीनामरसरित्स्त्रोताः प्रागिति नाद्भुतम्। गिरीसोऽद्याऽपि यः शृङ्गलीनानेकसरिद्गणः॥३८॥
आसादितापकटकः शारदैर्यः पयोधरैः। विडम्बयति गोश्रेष्ठमारूढवृषपुङ्गवम्॥३९॥
यत्र शृङ्गाग्रसँल्लग्नसँल्लग्ननीललोहितः। स्थाणुत्वं स्थावरत्वेन गहनत्वेन भीमताम्॥४०॥
सुदुर्गमत्वादुग्रत्वमपि धत्ते न नामतः। क्षुद्रा सरीसृपा यत्र कटकेषु कृतास्पदाः॥४१॥
तक्षकानन्तसर्पाद्यैः स्पर्धन्तेभुजगेश्वरैः। अष्टाभिर्योऽभितः कोणैराविर्भूतोविभूतिभिः॥४२॥

इस अरुणाचल पर गिरीश शिव का दर्शन होता है। इसलिए मेना तथा तुहिनाचल के साथ उसके समान सम्बन्ध के कारण महान् आनन्दवर्द्धन होता है। यह अरुणाचल साक्षात् स्थावर शंभुरूपी है। यह लाखों तरुपल्लव के कारण साक्षात् जटाधर जंगम महेश्वर की तरह शोभित होता रहता है। यहां के ज्योतिष्मान् तोयशृङ्ग के दोनों पार्श्व में सूर्य तथा चन्द्रमा अपने लोक से तेज का वितरण करके मानों इस शम्भु स्वरूप अरुणाचल को त्रिनेतत्व प्रदान कर रहे हैं। इस अरुणाचल के शिरोदेश (शिखर) को अतीव नील बलाहक (मेघ) श्रेणी विराजित रहने के कारण कालकूटधारी कृष्णवर्ण नीलकण्ठ के समान शोभित देखा जाता है। ये अरुणाचल सहस्त्रपाद तथा सहस्त्रशीर्ष हैं, यह बात मैं केवल सुनकर नहीं कहता, इसे मैंने प्रत्यक्ष देखा है तथा सभी देख सकते हैं। गिरीश महादेव के मस्तक के पूर्व में जो सुरनदी स्त्रोत विलीन होता है, यह अद्भुद् बात नहीं है। क्योंकि शम्भुस्वरूप इस अरुणाचल के शृङ्ग पर सुरनदी समूह विलीन होता है। शारदीय मेघवृन्द इस अचल के कटिदेश के अधोभाग का आश्रय लेकर वे वृषारूढ़ वृषभवाहन शिव का अनुकरण करते हैं। इस अरुणाचल के शिखर के अग्र में नीललोहित संलग्न हैं। वे नीललोहित शिव तथा अरुणाचल अभिन्न हैं, तथापि अरुणाचल स्थावर हैं, इसलिए उनका नाम स्थाणु है। गमनरत होने से वे भीम हैं। दुर्गम होने के कारण उनका नाम उग्र है। उनके ये नाम नाममात्र न होकर यथार्थ हैं। क्षुद्र सरीसृपादि इस पर्वत के मध्य में आश्रय लेने के कारण मानों ये सभी तक्षक, अनन्त सर्प प्रभृति भुजगेश्वरगण के साथ स्पर्द्धा ले रहे हैं। यह पर्वत दोनों ओर अष्टविभूतियुक्त अष्ट कोण के साथ आविर्भूत है।।३३-४२।।

सुस्पष्टं विशिनष्टीव स्वकीयामष्टमूर्तिताम्।
येण्र्या(आद्या)शक्तितरङ्गिण्योरिडापिङ्गलयोः स्वयम्॥४३॥
शिवस्यशृङ्गतो मध्येसुषुम्नाकमलापगा। ज्योतिः स्तम्भस्वरूपस्यमूलाग्रेयस्यवीक्षतुम्॥४४॥
कोलहंसाकृतीनालंब्रह्मविष्णूबभूवतुः। ताभ्यांचप्रार्थितःशम्भुस्तस्मिन्सांनिध्यवानभूत्॥४५॥
अरुणाचलनाथाख्यं प्रपन्नः प्रमदैः समम्। गौतमस्तत्र योगीन्द्रः सहस्त्रं परिवत्सरान्॥४६॥
तप्त्वा तपांसि तीव्राणिसाक्षाच्चक्रेसदाशिवम्। प्रालेयशैलकन्यापितत्रकृत्वातपःपुरा॥४७॥

अलब्धतपदेहार्द्धं मन्मथारेः प्रसेदुषः। गौर्या प्रतिष्ठितं तत्र प्रवालाद्रीश्वराभिधम्॥४८॥
लिङ्गं भोगप्रदं पुंसां कैवल्याय प्रकल्पते। तत्र गौरीनिदेशेन दुर्गा महिषमर्दिनी॥४९॥
साक्षाद्भूय सतां दत्ते मन्त्रसिद्धिमविघ्नतः। खड्गतीर्थमितिख्यातं तत्र गौर्याश्रमेनवम्॥५०॥

इस प्रकार से यह अपनी अष्टमूर्त्तता का स्पष्टतः प्रकाशन कर रहा है। इस अचल पर्वत पर इड़ा रूपी आद्याशक्ति तथा पिंगला रूपी तरंगिणी हैं तथा शिवस्वरूप शृंग के मध्यस्थल में सुषुम्नारूपी कमलापगा विराजमान हैं। कोलहंसाकृति भगवान् ब्रह्मा-विष्णु इन ज्योतिस्तम्भरूपी पर्वत के पाददेश में हैं तथा अग्रभाग में देख सकने में असमर्थ होने के कारण शम्भु से उन्होंने प्रार्थना किया कि वे सहर्ष अरुणाचलनाथ नाम से प्रसिद्ध होकर इस पर्वत के सन्निधान में संस्थापित रहे। योगिप्रवर गौतम ने यहां १००० वर्ष तीव्र तपःश्चरण द्वारा सदाशिव का साक्षात्कार किया था। पार्वती ने भी यहां पूर्वकाल में तप करके भी मन्मथ शत्रु शिव के वामार्द्ध भाग में निवास नहीं प्राप्त किया। तब उन्होंने यहां प्रवालाद्रीश्वर नामक लिंग स्थापित किया। यह लिंग मनुष्य हेतु भोगप्रद तथा कैवल्यप्रद है। यहां गौरी का आदेश पाकर महिषमर्दिनी दुर्गा साक्षात् आविर्भूत होकर साधुगण को निर्विघ्न मन्त्रसिद्धि देती हैं। इस गौरी आश्रम में खड्गतीर्थ नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ आविष्कृत हुआ है।।४३-५०।।

सकृन्निमज्जनान्नृणां पञ्चपातकनाशनम्। दुर्गया चार्चितं लिङ्गं पापनाशननामकम्॥५१॥
सकृत्प्रणाममात्रेण सर्वपापप्रणाशनम्। तत्र वज्राङ्गदो राजा वित्तसारो व्यतिक्रमात्॥५२॥
पुनस्तद्भक्तिमाहात्म्याच्छिवसायुज्यमाप्तवान्। तस्यप्रदक्षिणेनैवकान्तिशालिकलाधरौ॥५३॥
विद्याधरेश्वरौ मुक्तौ दुर्वासःशापबन्धनात्। नास्ति शोणाद्रितः क्षेत्रं नास्ति पञ्चाक्षरान्मनुः॥५४॥
नास्ति माहेश्वराद्धर्मो नास्ति देवो महेश्वरात्। नास्ति ज्ञानं शिवज्ञानान्नास्ति श्रीरुद्रतः श्रुतिः॥५५॥
नास्ति शैवाग्रणीर्विष्णोर्नास्ति रक्षा विभूतितः।
नास्ति भक्तेः सदाचारो नास्ति रक्षाकराद्गुरुः॥५६॥
नास्ति रुद्राक्षतो भूषा नास्ति शास्त्रं शिवागमात्।
नास्ति बिल्वदलात्पत्रं नास्ति पुष्पं सुवर्णकात्॥५७॥
नास्ति वैराग्यतः सौख्यं नास्ति मुक्तेः परं पदम्। नारुणाद्रेः समो मेरुर्न कैलासो न मन्दरः॥५८॥
ते निवासा गिरिव्याप्ताः सोऽयन्तु गिरीशः स्वयम्॥५९॥
इति वदति शिलादनन्दने मुदितमनाः स मृकण्डुनन्दनः।
पुनरपि बहुशः प्रणम्य तं चकितमना भवतो व्यजिज्ञपत्॥६०॥
किं किं नृणां कर्म भवाय जायते कथं नु तत्तन्नरकाय श्रूयते।
तेषां च तेषां च कथं प्रतिक्रिया कथं नु तत्तन्मम कथ्यतामिति॥६१॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धेऽरुणाचलस्थानमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

इस तीर्थ में मात्र एक बार स्नान करने से मनुष्य के पंच पातक नष्ट हो जाते हैं। दुर्गा यहां पापनाशन नामक लिंग की अर्चना करती हैं। इस लिंग को प्रणाम करने से ही सर्व पापराशि का नाश हो जाता है। यहां प्रभूत धनी राजा वज्राङ्गद ने विषय-भूषण त्याग करके इस लिंग के प्रति यथोचित भक्ति का प्रदर्शन किया था। इस लिंग के माहात्म्य से उनको शिव सायुज्य मिला। इस लिंग की प्रदक्षिणा करके विद्याधरराजद्वय कान्तिशाली तथा कलाधर ने दुर्वासा के शाप से मुक्तिलाभ किया था। शोण पर्वत से उत्तम क्षेत्र, पञ्चाक्षरी से उत्तम मन्त्र, माहेश्वर धर्म से उत्तम धर्म, शिवज्ञान से उत्तम ज्ञान, श्रीरुद्र से उत्तम श्रुति, विष्णु से उत्तम शैव, विभूति से उत्तम रक्षा, भक्ति से उत्तम सदाचार रक्षक से उत्तम गुरु, रुद्राक्ष से उत्तम भूषा, शिवागम से उत्तम शास्त्र, बिल्वपत्र से उत्तम पत्ता, सुवर्णक से उत्तम पुष्प, वैराग्य से उत्तम सौख्य, मुक्ति से उत्तम पद और नहीं है। मेरु, कैलास, मन्दर भी अरुणाचल के समान नहीं हैं। यहां गिरिनिवास सम्पूर्ण अरुणाचल पर्यन्त व्याप्त है। यह अरुणाचल साक्षात् गिरीश शम्भुस्वरूप है। इस प्रकार शिलानन्दन नन्दी ने प्रसन्न अन्तःकरण से यह रहस्योद्घाटन किया, जिससे मृकण्डुपुत्र मार्कण्डेय संसारभय से भीत होकर उनका अनेक अभिवादन करके कहने लगे—"कौन-कौन सा कर्म मानव के लिये संसार बन्धन का कारण होता है, किस प्रकार का कर्म उस मानव के लिए नरक का हेतु हो जाता है? उन-उन संसारकारक तथा नरकोत्पादक कर्मों का प्रतिकार किस प्रकार से संभव है? कृपया बतायें"।।५१-६१।।

।।चतुर्थ अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

पञ्चमोऽध्यायः

कर्मविपाक वर्णन

नन्दिकेश्वर उवाच

शुद्धसत्त्वगुणोपेतो लोकेऽस्मिन्दुर्लभःपुमान्। रजस्तमोगुणोपेताभवन्तिसुलभानराः।।१।।
सात्त्विकःपुण्यशीलत्वान्निःश्रेयसमवाप्नुयात्। वैचित्र्यात्कर्मणामेषामनुभोगायवेधसा।।२।।
वैचित्र्याण्येव सृष्टानिनरकाण्यत्रतत्र च। महारौरवभाग्भूत्वा खरःश्वाःशूकरोऽपिवा।।३।।
चण्डालो वा भवेत्प्रेत्य पुरुषो ब्रह्महत्यया। चिरं रौरववसंरुद्धः कृमिकीटपतङ्गताम्।।४।।
प्राप्नुयात्कर्मकर्तृत्वं सुरापानेन च द्विजः। ब्रह्मस्वहरणाद्ब्रह्मराक्षससत्वमवाप्नुयात्।।५।।
यद्यत्तु चोरयेत्तत्तच्छून्यं स्यादन्यजन्मनि। असिपत्रवने पीडामवाप्य सुचिरं पुनः।।६।।
नपुंसकत्वं सङ्गच्छेत्पुरुषो गुरुतल्पगः। तप्तैः कालायैर्दण्डैः पीडितो यमकिङ्करैः।।७।।
नरके कालसूत्राख्ये निवसेत्परदारगः। अग्निदो निवसेद्घोरे सुघोरे गरदायकः।।८।।

नन्दिकेश्वर कहते हैं—संसार में विशुद्ध सत्वगुण वाले लोग अतीव दुर्लभ हैं। रजः तथा तमः गुणयुक्त सर्वदा सुलभ हैं। सत्वगुणी व्यक्ति ही पुण्यस्वभाव के कारण मुक्तिपद प्राप्त करता है। कर्म की विचित्रता के कारण

मनुष्य के उपभोगार्थ इहलोक तथा परलोक में नरकसृष्टि विधाता ने किया है। मनुष्य ब्रह्महत्या करके कर्मविपाक के कारण महारौरव नरक में पतित होकर अन्त में गर्दभ, कुत्ता, शूकर तथा चाण्डालादि योनियों में गिरता है। द्विजगण यदि सुरापान करते हैं, तब वे रौरव नरक में पतित होकर अन्त में कृमिकीट तथा पतंगयोनि में जन्म लेते हैं। ब्रह्मस्वहारी ब्रह्मराक्षस होता है। जो जिस द्रव्य की चोरी करता है, वह द्रव्य उसे अगले जन्म में नहीं मिलता। गुरुपत्नीगामी मनुष्य असिपत्रवन में चिरकाल पर्यन्त दारुण पीड़ा भोग कर अन्त में नपुंसकत्व को प्राप्त होता है। परस्त्रीगामी व्यक्ति को जीवनान्त में यमदूतगण तप्त भीषण दण्ड से पीटते हैं। वह कालसूत्र नरक में गिराया जाता है। अन्त में वह नपुंसकत्व प्राप्त करता है। अग्नि से गृह आदि को जलाने वाला घोर नामक नरक तथा विष देने वाला सुघोर नामक नरक में पतित होता है।।१-८।।

महाघोरे च पिशुनोऽवीच्यां धर्मविनिन्दकः। ववसेत्कराले मित्रध्रुग्भीमे हिंसैकतत्परः॥९॥
संहारे छन्नपापिष्ठो मृषावादी भयानके। असिघोरे वसेद्वाऽपि कूपक्षेत्रनरादिहृत्॥१०॥
वज्रे परद्रोहरतो मांसाशी तरले द्विज। तीक्ष्णे मातृपितृद्रोही तापने जपदूषकः॥११॥
अश्वघ्नोऽपिनिरुच्छवासे वसेद्गोघ्नश्चदारुणे। भ्रूणहा निवसेच्चण्डेस्त्रीहत्याकृत्कुकूलके॥१२॥
देवस्वहारी दहने घोरघोरे परस्वहृत्। कृतान्तदूता नरके सर्वानेव हि पापिनः॥१३॥
बध्नन्तिपाशैर्निघ्नन्तिदण्डैर्विध्यन्तिशङ्कुभिः। तीक्ष्णायश्चञ्चवः कङ्काःक्रूरदंष्ट्रामहोरगाः॥१४॥
कालेयकाश्च व्याघ्राश्च हिंस्त्राश्चाऽन्ये दशन्त्यमून्। शकलीकुर्वते शस्त्रैर्दहन्ति देहमेव च॥१५॥

चुगलखोर महाघोर नरक में, धर्मनिन्दक अवीचि नरक में, मिथ्यावादी भयानक नामक नरक में, कूप-क्षेत्र तथा मनुष्य का हरण करने वाला असिघोर नरक में, मित्रघ्न कराल नरक में, हिंसक भीम नामक नरक में, जपदूषक तापन नरक में, परद्रोही वज्र नरक में, मांसभोजी तरल नरक में, पितृ-मातृ-द्रोही तीक्ष्ण नरक में, अश्वहन्ता निरुच्छ्वास नरक में, गौ हत्यारा दारुण नरक में, भ्रूणहत्यारा चण्ड नरक में, स्त्रीहत्यारा कुकूल नरक में, देवस्वहरण करने वाला दहन नरक में तथा परस्व का हरण करने वाला घोरघोर नरक प्राप्त करता है। अत्यन्त भीषण यमदूत नरकपतित पापियों को पाशबद्ध करके उस पर अत्यन्त भीषण दण्ड से निर्दयरूपेण प्रहार करते हैं। वे अतिदृढ़ शंकु से देह विद्ध करते हैं। तीखे लौहचञ्चुवाले काक, क्रूर दाढ़ वाले सर्प, कालेयक, व्याघ्र आदि अतीव हिंस्र जन्तु नरक पतित पापीगण का निरन्तर दंशन करते रहते हैं। यमदूतगण शस्त्र प्रहार से उसे खण्ड-खण्ड करके देह में अग्नि लगाते हैं।।९-१५।।

खनन्ति गहनेश्वभ्रेकशाभिस्ताडयन्तिच। तैलद्रोण्यां विपच्यन्तेतुद्यन्तेसूक्ष्मसूचिभिः॥१६॥
वाह्यन्ते दुर्वहान्भारान्यमदूतैर्हिपापिनः। ब्रह्महा क्षयरोगी स्यात्सुरापः श्यावदन्तकः॥१७॥
स्वर्णापहारी कुनखी दुश्चर्मा गुरुतल्पगः। अपस्मारी गुरुद्रोही चण्डालो वेददूषकः॥१८॥
कूटसाक्षी चाक्षिरोगी मन्दाग्निश्चाग्रभोजनः। विद्यापहारी मूकः स्यादन्धः पुस्तकचोरकः॥१९॥
परदाररतः पङ्गुर्बधिकः परनिन्दकः। विड्वराहो निराचारो जिह्वारोगी च तस्करः॥२०॥
अभ्यागतातिथित्यागीकपोलकण्टकोभवेत्। पर्वसुस्त्रीरतोमेहीपूत्यास्योऽभक्ष्यभक्षकः॥२१॥

यमदूत कभी उसे गहरे गड्ढे में गाड़ देते हैं। कभी दारुण रूप से चाबुक से मारते हैं। कभी तैल की कड़ाही

में फेंक कर तलते हैं। कभी देह में महीन से महीन सुई चुभाते हैं तथा कभी भारी से भारी भार वहन कराते हैं। ब्रह्मघाती क्षयरोगी, सुरा पीने वाला काले दांत वाला, स्वर्णचोर कुनख वाला, गुरुपत्नीगामी दुष्कर्मा, गुरुद्रोही अपस्मारी, वेददूषक चाण्डाल, कूट (झूठी गवाही) साक्षी आंख का रोगी, सबसे पहले खाने वाला मन्दाग्नि रोगी, विद्या हरण करने वाला मूक, पुस्तक चोर अन्धा, परदारारत लंगड़ा, परनिन्दक बहरा, कदाचारी वराह, तस्कर जिह्वारोगी, अभ्यागत तिथि का त्याग करने वाला कपोलकण्टक रोग वाला, पर्वकाल में स्त्रीगमन करने वाला प्रमेहरोगी तथा अभक्ष्य भक्षण करने वाला पूत मुख वाला (बदबूदार मुख वाला) होता है।।१६-२१।।

मर्यादाभेदको दासस्तटाकारमहत्खरः। प्रतिश्रुताप्रदातास्यादल्पायुः श्वा विकत्थनः॥२२॥
विष्णुद्रोही च सरठः शिवद्रोही च मूषकः। एवं पापफलं ज्ञात्वा प्रायश्चित्तंसमाचरेत्॥२३॥
तच्चाऽस्मिन्नरुणक्षेत्रे कर्त्तव्यं सम्यगास्तिकैः॥२४॥
इति निशम्य स दुष्कृतकारिणां बहुविधां नरकेषु नृणां व्यथाम्।
चरणयोः पतितश्च तदा पुनःपुनरयाचत तच्छमनक्रियाम्॥२५॥

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे कर्मविपाकवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः।।५।।

मर्यादा त्यागी व्यक्ति दास, तट तथा गृह हारी व्यक्ति गर्दभ होता है। जो कही गयी वस्तु कह कर भी नहीं देता वह अल्पायु होता है। विकत्थन (अपनी प्रशंसा करने वाला) व्यक्ति श्वान होता है। विष्णुद्रोही सरट (गिरगिट) तथा शिवद्रोही मूषक होता है। इस प्रकार पाप के फल से अवगत होकर सबको प्रायश्चित्त करना चाहिये। आस्तिक व्यक्तिगण ये सभी प्रायश्चित्त अरुणाचल क्षेत्र में करें। मृकण्डुपुत्र मार्कण्डेय नन्दीश्वर से दुष्कृतकारी मानवगण का नरक गमनकारी बहुविध उत्पीड़न की कथा सुन कर उनके चरणों में गिर गये। तब उन्होंने इस प्रकार की दारुण नरक यातना से निवारण उपाय विषयक उपाय बतलाने हेतु प्रार्थना किया।।२२-२५।।

।।पञ्चम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

षष्ठोऽध्यायः

पापनाशार्थ प्रायश्चित्त वर्णन

नन्दिकेश्वर उवाच

विस्तरात्कथयाम्यद्य प्रायश्चित्तं महांहसाम्। सर्वेषामवधत्स्व त्वमवलम्ब्याऽऽस्तिकीं धियम्॥१॥
ब्रह्महा प्राप्य शोणाद्रिं निमग्नः खड्गतीर्थके। जपन्पञ्चाक्षरं मन्त्रं भस्मरुद्राक्षधारकः॥२॥

कृतोपवासः सम्पूज्य प्रयतः परमेश्वरम्। ब्राह्मणान्भोजयेद्धर्षं भिक्षाशीनियतेन्द्रियः॥३॥
विशेषपूजाशुश्रूषां कुर्याद्देवस्य भक्तितः। ब्रह्महत्या विनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥४॥
सुरापोऽप्यरुणक्षेत्रे वर्षमेकं वसन्व्रति। प्राग्वत्कृतसमाचारः सम्पूज्यैवं महेश्वरम्॥५॥
क्षीरेण स्नापयेद्देवं शतरुद्रीयमुच्चरन्। सुरापानोद्भवेनाऽऽशु पापेन परिमुच्यते॥६॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—हे मृकण्डुनन्दन! अब मैं निखिल पापीगण की प्रायश्चित्त विधि विस्तृत रूप से कहता हूं। तुम आस्तिकी वृत्ति का अवलम्बन लेकर उसे श्रवण करो। ब्रह्मघाती व्यक्ति शोण पर्वत पर जाकर खड्गतीर्थ में स्नान करके भस्म तथा रुद्राक्ष धारण करे। उपवासी रहकर षडक्षर मन्त्र का जप करके प्रयत्नतः परमेश्वर का पूजन करे। तत्पश्चात् जितेन्द्रिय एवं भिक्षाभोजी होकर हर्ष के साथ ब्राह्मण को भोजन कराये तथा भक्तिपूर्वक देवदेव की विशेष रूप से पूजा तथा सुश्रूषा करे। ऐसा करने से वह ब्रह्महा व्यक्ति ब्रह्महत्या पाप से मुक्त होकर ब्रह्मलोक में पूजित होता है। सुरा पीने वाला व्यक्ति वर्ष पर्यन्त अरुणाचल पर निवास करके पूर्वोक्त नियमों से महेश्वर की पूजा करके शतरुद्रीय का पाठ करते-करते देवदेव को स्नान कराये। ऐसा करने से सुरापान जनित पाप से मुक्ति प्राप्त होती है॥१-६॥

सुवर्णस्तेयकृच्छोणक्षेत्रे बिल्वदलैर्हरम्। अभ्यर्च्यभोजयेद्विप्रन्यापान्मुच्येतदुष्करात्॥७॥
गुरुदाररतिर्गत्वा कृत्तिकास्वरुणाचलम्। यथापूर्वं व्रती भूत्वा सहस्त्रेण प्रदीपकैः॥८॥
मासत्रयं समाराध्य श्रीणोचालशङ्करम्। प्रदद्याद्भूषितां कन्यां ब्राह्मणायसुधीमते॥९॥
षडक्षरं जपेन्नित्यं तेन मुच्येत पाप्मना। शिवलोके च निवसेदासंसारं न संशयः॥१०॥

सुवर्ण चोर व्यक्ति शोणक्षेत्र में जाकर बिल्वदल से प्रभु हर की अर्चना करके ब्राह्मण भोजन कराये। ऐसा करने वाला दुष्कर स्वर्णचौर्य जनित पाप से मुक्त होता है। गुरुपत्नी गामी व्यक्ति कृत्तिका नक्षत्र में अरुणाचल जाकर यथापूर्व कहे व्रताचरण करे तथा १००० दीप द्वारा नित्य ३ मास तक शोणाचलस्थ महेश्वर की आराधना करके धीमान् ब्राह्मण को अलंकार युक्त कन्या प्रदान करके नित्य षडक्षर मन्त्र जपे। ऐसा प्रायश्चित्त करने से वह गुरुपत्नीगमन जनित पाप से मुक्त होकर जबतक संसार है, तबतक शिवलोक में निवास करता है। इसमें तनिक सन्देह नहीं है॥७-१०॥

परदारापहर्त्ता च क्षेत्रेऽस्मिन्नियतेन्द्रियः। मासमेकं नवैः पुष्पैरभ्यर्च्याऽरुणशङ्करम्॥११॥
माहेश्वराय वितरेद्धनं शक्त्यानुगुण्यतः। तत्क्षणेन विनिर्मुक्तस्तस्मात्पापाद्भविष्यति॥१२॥
गरदोऽप्यरुणक्षेत्रे व्रती भूत्वा यथापुरा। क्षीरोपहारं देवाय दत्त्वा दोषेण मुच्यते॥१३॥
पिशुनोऽप्यरुणक्षेत्रे व्रती वेदरतो नरः। अध्यापयेद्द्विजान्मुख्यांस्ततो निष्कल्मषो भवेत्॥१४॥
अग्निदोऽप्यरुणक्षेत्रे त्रीन्मासान्पूर्ववद्व्रती। दद्याच्छैवाय निर्माय गृहं तत्पापशान्तये॥१५॥

परस्त्रीगामी व्यक्ति उसी क्षेत्र में जितेन्द्रियतापूर्वक एक मास पर्यन्त नये पुष्पों से अरुणाचलस्थ शिव की अर्चना करे। स्वा वित्त शक्ति के अनुरूप महेश्वर के उद्देश्य से धन दान करके वह तत्क्षण परदारगमन जनित पाप से मुक्त हो जाता है। विषदाता व्यक्ति भी इस क्षेत्र में जाये। पूर्ववत् व्रतावलम्बन करके देवदेव को खीर प्रदान करे। वह विषदान के पाप से मुक्त हो जाता है। चुगलखोर व्यक्ति अरुणाचल में जाये। वहां पूर्ववत् व्रतावलम्बन करके

मुख्य ब्राह्मणों से वेद अध्यापना द्वारा निष्कल्मष हो जाता है। घर आदि अग्नि से जलाने वाला यहां आकर पूर्ववत् ३ मास व्रती रहे। देवदेव के उद्देश्य से गृह निर्माण (मन्दिर आदि) करे। इससे उसका पाप शान्त होता है।।११-१५।।

धर्मनिन्दाकरः शोणक्षेत्रे वर्षं व्रती वसन्। सत्रादिकं प्रकुर्वीतं यथाशक्त्यघशान्तये॥१६॥
पितृद्रोह्यरुणक्षेत्रे तिष्ठन्मासमतन्द्रितः। गिरीशाय द्विजेभ्योऽपि प्रदद्याद्गाः सहस्त्रशः॥१७॥
ग्रहोपरागकालेषु भोजयित्वा द्विजान्बहून्। विमुञ्चेद्वृषभं नीलं विमुच्यतेततसोंऽहसः॥१८॥

धर्मनिन्दाकारी अरुणाचल क्षेत्र में १ वर्ष पूर्ववत् व्रती रहे। वहां यथाशक्ति याग आदि का अनुष्ठान कराये। गिरिजापति गिरीश के उद्देश्य से पितृद्रोही व्यक्ति ब्राह्मणों को सहस्त्रों गोदान करे। १ मास पर्यन्त वहां आलस्य रहित होकर रहे तथा ग्रहोपराग काल में अनेक ब्राह्मणों को भोजन कराये तथा नीलवृष छोड़े। इससे पापमुक्ति होती है।।१६-१८।।

स्त्रीघ्नश्चाऽपि शिशुघ्नोऽपि शोणक्षेत्रमुपेयिवान्।
व्यतिपाते तिलान्दद्याद्द्विजेभ्योदुरितच्छिदे॥१९॥
प्रच्छन्नपापकृच्छोणक्षेत्रेऽस्मिन्नियतेन्द्रियः। गुप्तदानानि कुर्वीत भवेद्वै गतकल्मषः॥२०॥
मृषाभाष्यरुणक्षेत्रे षण्मासान्निवसन्व्रती। शोणाचलेश्वरस्तोत्रपाठेन स्यादकल्मषः॥२१॥

स्त्री हत्यारा व्यक्ति अपने पापनाशार्थ शोणक्षेत्र में आकर व्यतिपात के समय द्विजगण को तिलदान करे। छिपकर पाप करने वाला व्यक्ति शोणक्षेत्र में जाकर इन्द्रियों को संयमित रखकर गुप्तदान करने से निष्पाप होगा। मिथ्या बोलने वाला व्यक्ति छः मास पर्यन्त व्रतावलम्बी होकर शोणगिरी पर निवास करे तथा शोणाचलेश्वर का स्तवपाठ करे। इससे वह पाप रहित होगा।।१९-२१।।

कूपादिभेदकृच्छोणक्षेत्रमासाद्य भक्तितः। तटाकान्खानयेत्तत्र ध्रुवं निर्वृजिनो भवेत्॥२२॥
क्षेत्रापहारी देवाय क्षेत्रं दद्यान्महाफलम्। आरामकण्टकोऽप्यस्मै दद्यादुद्यानमुत्तमम्॥२३॥
गृहापहारी कुर्वीत देवस्यायतनं नवम्। अंहसा तेन निर्मुक्तः शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥२४॥
परद्रोही वसञ्छोणक्षेत्रेमाहेश्वरान्धनैः। प्रीणयित्वापरांल्लोकान्निःसंशयमवाप्नुयात्॥२५॥
पश्वादिमांसभुक्छोणक्षेत्रे पक्षत्रयं व्रती। प्रीणयेदरुणेशानं सोपहारैर्मनोहरैः॥२६॥
त्रिःशोणाचलनाथेति निनदन्ननघो भवेत्। निवसन्नरुणक्षेत्रे पूजयेदरुणेश्वरम्॥२७॥
अरुणेश्वरमन्त्रञ्च जपेन्मीक्षेच्छुरादरात्। यद्यस्याऽभिहितं तेन पद्भ्यामेव प्रदक्षिणाम्॥२८॥
कुर्वतारुणशैलस्य तत्प्राप्यं शुभमञ्जसा। क्षुतेषु स्खलितेष्वत्याहिते दुःस्वप्नदर्शने॥२९॥
प्रीत्युत्कर्षेऽपि च बुधैरुच्चार्योऽरुणशङ्करः। अपि वर्णाश्रमभ्रष्टः शिवद्रोहरतोऽपि वा॥३०॥
त्रीण्यहान्यरुणक्षेत्रे वसन्मुच्येत पातकैः। पार्थिवः शिवलोकोऽयंमूर्त्तमेतत्त्रयीशिरः॥३१॥

कूप आदि को भग्न करने अथवा नष्ट करने वाला शोणक्षेत्र में जाकर अपने पापनाशार्थ वहां तड़ाग (तालाब) खनन करे। खेत हरण करने वाला देवदेव को क्षेत्र प्रदान करे। आराम (बाग) उजाड़ने वाला व्यक्ति उत्तम उद्यान तथा गृह हरण करने वाला देवदेव को आयतन (मन्दिर, पवित्र स्थल) बनाकर प्रदान करे। ऐसा करने से

ये सभी पापमुक्त हो जाते हैं। साथ ही शिवसायुज्य प्राप्त करते हैं। परद्रोही व्यक्ति शोणक्षेत्र में वास करके (दानरूपी) धन से महेश्वर को सन्तोष प्रदान करके निःसन्देह (उत्तम) परलोक प्राप्त करता है। पशु आदि का मांस भक्षण करने वाला शोणक्षेत्र में जाकर ३ पक्ष (४५ दिन) तक व्रतावलम्बन करे। साथ ही मनोहर उपहारों से उन परमेश्वर को प्रसन्न करे। "हे शोणाचलनाथ" कहकर तीन बार उनका आह्वान करे। इससे वह निष्पाप हो जायेगा। मुक्ति चाहने वाला व्यक्ति अरुणाचल क्षेत्र में निवास करके अरुणेश्वर की पूजा करे। साथ ही परम आदरपूर्वक उनका जप भी करे। यदि कोई पैदल चल कर अरुणाचल पर्वत की प्रदक्षिणा करता महेश्वर का नामोच्चार करता है, तब शीघ्र ही श्रेय प्राप्ति करता है। क्षुत् (छींक आने पर), स्खलित (फिसलने पर), अत्याहित (दुर्घटना) होनेपर तथा दुःस्वप्न होने पर, प्रीति काल में, उत्कर्ष काल में बुधगण अरुण शंकर का नाम कीर्त्तन करें। वर्णाश्रम भ्रष्ट, शिवद्रोही भी यदि ३ वर्ष तक अरुणाचल क्षेत्र में निवास करते हैं, तब उनको पातक से मुक्ति मिल जाती है। यह अरुणाचल पार्थिव स्वर्ग है। यह मूर्त्तिमान् त्रयशिरः रूप है।।२२-३१।।

एष दक्षिणकैलासो योसावरुणपर्वतः। अन्येषु सिद्धक्षेत्रेषु तपोभिः सिद्धयो नृणाम्।।३२।।
अस्मिन्स्मरणमात्रेण तारतम्यं विचिन्त्यताम्। यद्गङ्गायां प्रयागे यत्काश्यां वै पुष्करेषु यत्।।३३।।
कर्म सेतौ च यत्पुंसां शोणक्षेत्रे ततोऽधिकम्। अग्निष्टोमं वाजपेयंवैराजंसर्वतोमुखम्।।३४।।
राजसूयाश्वमेधौ च कुर्याच्छोणाचलेबुधः। एकाहं वाऽरुणक्षेत्रे नरोयत्स्यादुपोषितः।।३५।।
तस्य चान्द्रायणशतं भवेत्सान्तपनायुतम्। षोडशापि महादानान्यरुणक्षेत्रसन्निधौ।।३६।।
अनुष्ठितानि कल्पोक्तं कुर्वन्ति द्विगुणं फलम्।।३७।।
इति नन्दिकेश्वरमुखेन शुश्रुवान्मुनिनन्दनोऽथ निरयप्रतिक्रियाम्।
अभिनन्द्य तं वद दिनर्तुवत्सरप्रमुखार्हणक्रममिति व्यजिज्ञपत्।।३८।।

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे पापापनोदकप्रायश्चित्तवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः।।६।।

यह दक्षिण का कैलास है। अन्य सभी शिवक्षेत्रों में तपःश्चरण से सिद्धिलाभ होता है। इस अरुणाचल क्षेत्र में स्मरण मात्र से सिद्धि प्राप्त हो जाती है। इसी से अन्य सिद्ध क्षेत्रों से इसका तारतम्य जान ले। गंगा, प्रयाग, काशी, पुष्कर, सेतुबन्ध में मनुष्य को जो सब कर्म करना पड़ता है, शोणक्षेत्र में उससे अधिक करना चाहिये। विद्वान् व्यक्ति शोणक्षेत्र में अग्निष्टोम, वाजपेय, वैराज, सर्वतोमुख, राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञ करें। यदि मनुष्य अरुणाचल क्षेत्र में एक दिन भी उपवासी रहता है, उसको १०० चान्द्रायण तथा १०००० सान्तपन व्रतानुष्ठान का फल मिलता है। जो अरुणाचल क्षेत्र में १६ महादान करता है, वह दूना फल प्राप्त करता है। मृकण्डुपुत्र मार्कण्डेय ने नन्दीश्वर से यह श्रवण करके उनका अभिनन्दन करते हुए कहा—"आप अब दिन-ऋतु-वर्ष भेद से पूजा क्रम कहें"।।३२-३८।।

।।षष्ट अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

सप्तमोऽध्यायः

काम्य कर्म वर्णन

नन्दिकेश्वर उवाच

रक्तोत्पलैरर्कवारे यः शोणाद्रीशमर्चयेत्। अवश्यं तस्य सिध्यन्ति सार्वभौममहर्द्धयः॥१॥
सौम्यवारेऽरुणाद्रीशं कस्तूरीकरवीरकैः। यः पूजयतितस्यस्यात्सत्यलोकेसुखासिका॥२॥
गुरुवारे सिताम्भोजैः शोणेशं वरिवस्यतः।
जनलोके चिरं वासः सिद्धैःसहभविष्यति॥३॥
चम्पकैर्मल्लिकाभिश्च शुक्रवारे समर्चयेत्। तपोलोकं प्रपद्यत ब्रहर्षिभिरभिष्टुतः॥४॥
सौरिवारे च जातीभिस्समाराध्याऽरुणेश्वरम्।
न जातु यमलोकानां पापीयानपि कल्पते॥५॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—जो व्यक्ति रविवार को रक्तकमल द्वारा शोणाद्रिनाथ की अर्चना करता है, निश्चय ही उस व्यक्ति हेतु सार्वभौम समृद्धि की सिद्धि हो जाती है। जो सोमवार को कस्तूरी-कनेर पुष्प के द्वारा अरुणाचलनाथ की पूजा करता है, उसे सत्यलोक में निवास प्राप्त होता है। गुरुवार के दिन श्वेत कमल द्वारा शोणेश्वर की अर्चना करने से सिद्धों के साथ वह जनलोक में वास करता है। जो व्यक्ति शुक्रवार के दिन चम्पा तथा मल्लिका पुष्प से शोणाचलनाथ की अर्चना करता है, वह ब्रह्मर्षिगण के साथ तपोलोक में स्थान प्राप्त करता है। शनिवार के दिन जातीपुष्प से अरुणाचलनाथ की पूजा करने से पापी भी यमलोक नहीं जाता।।१-५।।

प्रथमायां तिथौ देवस्योपहारं समर्पयेत्। यः पायसेन स भवेद्धनधान्यसमृद्धिमान्॥६॥
द्वितीयस्यां तिथौ भक्त्या यो दध्यन्नं निवेदयेत्।
स भवेद्भाग्यवाञ्छ्रेष्ठः सोमपाश्च भवेद्ध्रुवम्॥७॥
तृतीयायाञ्च योऽपूपैः शोणेशं परितर्पयेत्। तस्याऽव्याहतमारोग्यमाशरीरं भविष्यति॥८॥

जो व्यक्ति प्रतिपदा के दिन देवदेव की पूजा पायस प्रदान करके करता है, वह धन-धान्य समृद्धिवान् हो जाता है। जो द्वितीया तिथि के दिन भक्तिभाव के साथ देवदेव को दध्यन्न निवेदन करता है, वह मनुष्य श्रेष्ठ भाग्यवान् तथा सोमपायी निश्चित रूप से होता है। जो मानव तृतीया तिथि को अपूप (मालपुआ) द्वारा शोणदेव को तृप्त करता है, उसका सम्पूर्ण शरीर आरोग्य हो जाता है।।६-८।।

चतुर्थ्यामरुणेशाय पूर्वकुम्भोत्करादिकम्। निवेदयति यस्तस्य भवेत्पूर्णमनोरथः॥९॥
मुद्गौदनञ्च पञ्चम्यामुपहारंप्रकल्पयेत्। शोणेश्वराय भक्त्या यः स स्यादक्षय्यवैभवः॥१०॥

चतुर्थी के दिन अरुणेश्वर को जो पूर्णकुंभ तथा उत्कर (सुगन्ध द्रव्य) प्रदान करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। यदि कोई पञ्चमी तिथि के दिन भक्तिपूर्वक मूंग का ओदन प्रदान करता है, उसका वैभव अक्षय होगा।।९-१०।।

षष्ठ्यां गुडौदनंदद्यादरुणाचलशम्भवे। भक्त्या यस्तस्य सन्तानो न कदाचित्प्रहीयते॥११॥
तिलौदनं यस्सप्तम्यां शोणेशाय समर्पयेत्। स दीनोऽप्यधमर्णत्वमयत्नेन व्यपोहति॥१२॥

अष्टम्यां राजशाल्यन्नं यो दद्याच्छोणशम्भवे।
तस्य सेवां विनाऽपि स्याद्राजलोको वशीकृतः॥१३॥

जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक षष्ठी के दिन अरुणाचल शिव को गुड़-ओदन प्रदान करता है, उसका सन्तान वियोग कदापि नहीं होता। जो सप्तमी के दिन शोणदेव को तिलोदन प्रदान करता है, वह व्यक्ति भले ही दीन हो, उसका अधमर्णत्व अनायास खण्डित हो जाता है। जो व्यक्ति अष्टमी के दिन शोणशम्भु को राजशालि अन्न प्रदान करता है, बिना सेवा किये राजागण उसके वश में हो जाते हैं।।११-१३।।

गोधूमान्नंनवम्याञ्चशोणाद्रीशाययोऽर्पयेत्। राजयक्ष्मादयस्तस्यनभविष्यन्तिजातु च॥१४॥
दशम्यां शोणनाथाय यः करम्भंनिवेदयेत्। स भवेत्सर्वलोकानां सदैवप्रीतिभाजनम्॥१५॥
पृथुकैरुपहारान्य एकादश्यां प्रकल्पयेत्। अरुणाचलनाथस्य स भवेदकुतोभयः॥१६॥
द्वादश्यां शोणनाथाय सूपौदननिवेदनम्। यः करोति भवेत्तस्य निर्विघातो मनोरथः॥१७॥
यः सक्तूनरुणेशाय त्रयोदश्यां समर्पयेत्। तस्याव्याकुलचित्तत्वमश्रान्तमपि जायते॥१८॥
अर्पयेच्छोणनाथायफलानिविविधानियः। चतुर्दश्यांसमूढोऽपिसिद्धसारस्वतोभवेत॥१९॥
यः पौर्णमास्यां शोणाद्रिनाथाय विनिवेदयेत्। पनसस्य फलंतस्यचक्षूरोगोनजायते॥२०॥

जो व्यक्ति नवमी के दिन शोणगिरिनाथ को गेहूं का अन्न प्रदान करता है, उसे कभी भी राजयक्ष्मा आदि रोग नहीं होता। जो व्यक्ति दशमी तिथि के दिन अरुणाचलनाथ को करम्भ प्रदान करता है, वह सर्वदा सबकी प्रीतिलाभ करता है। जो व्यक्ति एकादशी के दिन पृथुक् (चिवड़ा) का अरुणाचलनाथ को उपहार प्रदान करता है, वह निर्भय हो जाता है। जो मनुष्य द्वादशी के दिन शोणनाथ को सूपोदन निवेदित करता है, उसके मनोरथ कदापि असिद्ध नहीं रहते। जो मनुष्य त्रयोदशी के दिन शोणदेव को सत्तू निवेदित करता है, उसे कभी चित्त वैकल्य नहीं होता। जो व्यक्ति चतुर्दशी के दिन शोणदेव को नाना फल प्रदान करता है, वह मूढ़ होनेपर भी सिद्ध सारस्वत विद्वान् हो जाता है। जो मनुष्य पौर्णमासी के दिन शोणभद्रनाथ को कटहल अर्पित करता है, उसे कभी भी नेत्ररोग नहीं होता।।१४-२०।।

कुह्वाञ्च सङ्गमे भक्त्या कन्दमूलादि योऽर्पयेत्।
शोणाचलेश्वरायाऽस्य तुष्यन्ति पितरः किल॥२१॥

अश्विन्यामरुणेशाय दद्याद्वासांसि भक्तिमान्। भरण्यामरुणेशायदद्यादाभरणान्यपि॥२२॥
कृत्तिकासु प्रदीपांश्च रोहिण्यां रौप्यमर्पयेत्। मृगशीर्षे मलयजमार्द्रायां हरिचन्दनम्॥२३॥
पुनर्वसौ मृगमदं पुष्ये कर्पूरमर्पयेत्। काश्मीरोद्भवमाश्लेषे मघायां तुहिनोदकम्॥२४॥
ताम्बूलं पूर्वफाल्गुन्यां धूपमुत्तरफाल्गुने। कालागुरूंश्च हस्तर्क्षे चित्रायां यक्षकर्दमम्॥२५॥
स्वात्यांसुवासिनीवृन्दंविशाखायांप्रकीर्णकम्। मैत्रेमुक्तातपत्रंचज्येष्ठायां धैनुकान्यपि॥२६॥
मूलेमुक्तासरान्पूर्वाषाढे मुकुटमर्पयेत्। रत्नानि चोत्तराषाढे श्रवणे भद्रपीठिकाम्॥२७॥

अष्टापदं धनिष्ठायां वासः शतभिषज्यपि।
पूर्वाभाद्रपदे भोगानुत्तरायां तुरङ्गमान्॥२८॥
रेवत्याञ्च रथं हैमं प्रदद्याच्छोणशम्भवे। दद्यात्कृत्वामहापूजां तत एवाऽर्पयेन्नरः॥२९॥

जो मनुष्य अमावस्या आने पर भक्ति भाव से शोणाचल देव को कन्दमूलादि प्रदान करता है, उसके पितर तृप्त हो जाते हैं। भक्तिमान् व्यक्ति अश्विनी नक्षत्र के समय अरुणाचलेश्वर को वस्त्र दे, भरणी में आभरण प्रदान करे, कृत्तिका में दीपक, रोहिणी में चांदी, मृगशिरा में चन्दन, आर्द्रा में हरि चन्दन, पुनर्वसु में कस्तूरी, पुष्य में कर्पूर, आश्लेषा में काश्मीर में उत्पत्र वस्तु, पूर्वा फाल्गुनी में ताम्बूल, उत्तरा फाल्गुनी में धूप, हस्ता में कृष्ण अगुरु, चित्रा में यक्ष कर्दम, स्वाती में सुवासिनी वृन्द, विशाखा में प्रकीर्णक, मैत्र में मुक्तातप, ज्येष्ठा में धैनुक, मूला में मुक्ता, पूर्वाषाढ़ा में मुकुट, उत्तराषाढ़ा में रत्न, श्रवणा में भद्रपीठिका, धनिष्ठा में स्वर्ण, शतभिषा में वास, पूर्वाभाद्रपद में भोग्य वस्तु, उत्तराभाद्रपद में तुरङ्गम तथा रेवती नक्षत्र में हेमरथ, शोण शम्भु को प्रदान करे। यह समस्त द्रव्य अरुणाचलेश्वर की महती पूजा के साथ प्रदान करे।।२१-२९।।

पूज्यो राशिषु मेषादिष्वरुणेशो विशेषतः। सिन्दुवारैः कुरबकैःककुभैःपाटलैःक्रमात्॥३०॥
कुटजैर्नीपकुसुमैर्जीवन्तीमल्लिकादिभिः। सरोरुहैर्दमनकैर्नन्द्यावर्तसरोरुहैः॥३१॥

सिन्धुवीर, कुरवक, ककुभ, पाटल, कुटज, कदम्ब, कुसुम, जीवन्ती, मल्लिका, सरोरुह, दमनक तथा नन्द्यावर्त्त इन १२ वस्तुओं से क्रमशः मेष आदि में अरुणेश्वर की विशेष पूजा करे। (जैसे मेष राशि के समय सिन्धुवार से, वृष में कुरपक से इत्यादि)।।३०-३१।।

पञ्चामृतेनस्नपयन्नुभयोरुपरागयोः। पञ्चाक्षरेण कुर्वीत शोणनाथस्य भक्तितः॥३२॥
स्नपनं पञ्चगव्येन द्वयोरयनयोरपि। षडक्षरेण कुर्वीत गव्येन स्नपनक्रियाम्॥३३॥
प्रणवेनैव कुर्वीत क्षीरेण स्नपनक्रियाम्। अरुणाचलनाथस्य भक्त्या विषुवयोर्द्वयोः॥३४॥
प्राह्णे स्याद्रुद्रतुलसी मध्याह्नेकृतमालकम्।
अपराह्णे मल्लिका च शोणाद्रीशस्यशस्यते॥३५॥
अर्द्धोदये च स्नपयेत्सहस्त्रकलशोदकैः। शतरुद्रीयमुच्चार्य श्रीशोणाचलशम्भवे॥३६॥
शिवरात्रौ विशेषेण त्रिशिखैर्बिल्वपत्रकैः। कमलैः कर्णिकारैश्च जागरूको यतेन्द्रियः॥३७॥
गीतवादित्रनृत्यैश्च दिव्यागमविधानतः। पूजयेपदवर्गार्थं शोणशैले महेश्वरम्॥३८॥

चन्द्र-सूर्य ग्रहण काल में पञ्चामृत से, पंचाक्षर मन्त्र का उच्चारण करते प्रभु शोणाचलनाथ को स्नान कराये। तत्पश्चात् भक्ति-भाव के साथ उनकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर षडक्षर मन्त्र द्वारा पञ्चगव्य से शोणाचलनाथ को स्नान कराये। दोनों विषुव के समय मात्र क्षीर से स्नान कराना उचित है। पूर्वाह्न में रुद्रतुलसी, मध्याह्न में कृतमाल तथा अपराह्न में मल्लिका पुष्प से शोणनाथ की पूजा प्रशस्त है। अर्द्धोदय काल में सहस्त्रकलश जल से शतरुद्रीय मन्त्रोच्चार के साथ शोण शैल पर श्री शोणाचल प्रभु को स्नान कराना कर्त्तव्य रूप है। शिवरात्रि तिथि के दिन जितेन्द्रिय व्यक्ति जागरण करे तथा तीन पत्ती वाला बिल्वपत्र, कमल तथा कर्णिका पुष्प से दिव्यागम

विधान द्वारा महेश्वर की पूजा सम्पन्न करके गीत-वाद्य-नृत्य से उनको सन्तोष प्रदान करे। इस प्रकार रात्रि जागरण करे। इस प्रकार की आराधना करने वाला अपवर्ग प्राप्त करता है।।३२-३८।।

मासि पौषे च देवस्य कुर्यादाग्नेयमुत्सवम्। नवान्नैरुपदंशाद्यैर्व्याहृतीरुच्चरन्बुधः।।३९।।
वैशाखेचविशाखायांशिवतन्त्रानुसारतः। शोणाचलेश्वरस्याऽस्यकुर्याद्दमनकोत्सवम्।।४०।।

पौषमास में व्याहृति मन्त्रोच्चार करके नवीन अन्न द्वारा महेश्वर की अर्चना करे। तदनन्तर उनका आग्नेय उत्सव सम्पन्न करना होगा। वैशाख मास में विशाखा नक्षत्र काल में शिव तन्त्रों के अनुसार दमनकोत्सव करना चाहिये।।३९-४०।।

प्राबोधिकं मार्गशीषे प्रातर्निर्माय सामभिः। महापूजां प्रकुर्वीतसोणसैलस्यभक्तिमान्।।४१।।
शनिप्रदोषेष्वार्द्रासु व्यतीपातेषु पर्वसु। सोमार्कवारयोश्चार्चेच्छोणादीशं यथागमम्।।४२।।
दीक्षोपनयनोद्वाहपुत्रजन्मादिकेष्वपि। विशेषपूजां कुर्वीत शोणनाथस्य भक्तिमान्।।४३।।
अपि स्वजन्मनक्षत्रे सम्पत्स्वापत्सु भीतिषु। प्रवेशनिर्गमनयोश्चार्चनीयोऽरुणेश्वरः।।४४।।
व्रतिचक्रागमे पादबन्धने नववैभवे। अरुणेशार्चनं कुर्यादभियानेषु च द्विषाम्।।४५।।
स्मरेदतिदवीयांश्चेत्पश्येत्पर्यन्तगो यदि। स्थितस्चेदरुणक्षेत्रे त्रिकालं पूजयेच्छिवम्।।४६।।

भक्तिमान् मानव मार्गशीर्ष के समय साममन्त्रों से प्रातःकाल शोणशैल का प्राबोधिक (प्रभात काल में जगाना) करके भक्तियुक्त होकर उनकी महापूजा सम्पन्न करे। शनिवार को प्रदोष काल में, व्यतीपात होनेपर, पर्वों में, सोमवार तथा रविवार को आगमोक्त विधि से शोणाचलनाथ की पूजा करे। भक्तिमान् मानव दीक्षा-उपनयन-उद्वाह (विवाह), पुत्र के जातकर्म के समय, मंगल तिथि पर शोणनाथ का विशेष पूजन सम्पन्न करे। अपने जन्मनक्षत्र में, सम्पदा पाने पर, विपत्ति में, भय, गृहप्रवेश, निर्गम आदि के समय शोणाचलनाथ का पूजन करे। भक्तियुक्त चित्त वाला मनुष्य पादबन्धन, नव वैभव प्राप्ति, व्रतिचक्रागम (?) तथा शत्रु अभियान के समय अरुणाचलेश्वर की अर्चना विहित है। जो अत्यन्त दूर रहता है, वह अरुणाचलेश्वर का स्मरण करे। सीमा पर स्थित व्यक्ति इनका दर्शन करे। उसी क्षेत्र में स्थित व्यक्ति इनका त्रिकाल पूजन करे।।४१-४६।।

किमन्यद्वद वत्सेति उद्धृत्य भुजमुच्यते। अरुणक्षेत्रतो नाऽन्यदलं स्वर्गापवर्गयोः।।४७।।
स्मरणेन मनःश्रोत्रे श्रवणाद्दर्शनाद्दृशोः। जिह्वाञ्च कीर्त्तनाच्छोणक्षेत्रंसद्यःपुनःत्यलम्।।४८।।
अरुणेऽस्मिन्महाक्षेत्रेदेहिभिर्लब्धजन्मभिः। जीवद्भिर्लभ्यतेभोगोमोक्षश्चोन्मुक्तजीवितैः।।४९।।
अन्यत्र मुक्तदेहानामप्यत्र श्राद्धकर्मणा। अपि पापात्मनां पुंसामपवर्गो भविष्यति।।५०।।
अयोध्यां मथुरां मायां काशीं काञ्चीमवन्तिकाम्। द्वारकां चाऽरुणक्षेत्रमतिशेते न संशयः।।५१।।

तदनन्तर भगवान् नन्दिकेश्वर ने हाथ उठा कर कहा—"वत्स! और क्या कहूं! स्वर्ग-अपवर्ग प्रदान करने में अरुणाचल के समान सामर्थ्य किसी में नहीं है। इनके स्मरण से मन का, श्रवण से दोनों कानों का, दर्शन से दोनों नेत्रों का तथा कीर्त्तन से जिह्वा का पवित्रता साधन होता है। यहां जन्म लेने वाले शरीरधारी जीवितावस्था में भोग प्राप्त करते हैं। मृत होनेपर मोक्ष लाभ होता है। अन्य क्षेत्रों में मृत पापी व्यक्ति का यहां श्राद्ध करे। इससे अपवर्ग प्राप्ति होती है। यह अरुणाचल क्षेत्र अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, अवन्ती, द्वारिका आदि क्षेत्रों से भी श्रेष्ठ है।।४७-५१।।

इत्युक्तवन्तं च शिलादपुत्रं मृकण्डुसूनुः पुनरप्युवाच।
माहात्म्यमेतन्महनीयकीर्ते! भूयोऽपि पृच्छामि वदस्व मह्यम्॥५२॥

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे काम्यकर्मवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः।।७।।

शिलादनन्दन नन्दिकेश्वर के यह कहने पर मार्कण्डेय ने पुनः कहा "हे महान् कीर्त्ति वाले! मैं पुनः पूछता हूं। आप पुनः यह माहात्म्य कहें"।।५२।।

।।सप्तम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अष्टमोऽध्यायः

सृष्टि वर्णन

नन्दिकेश्वर उवाच

अरुणाचलमाहात्म्यं विस्तरात्परिपृच्छता। मार्कण्डेयत्वयामन्येमयिन्यस्तोमहान्भरः॥१॥
स्थाने कुतूहलाक्षिप्तं मनस्तव महामते!। यः शोणाद्रीशचरितं न वेत्ति स नरः पशुः॥२॥
कथं वा शक्यते वक्तुं जानानैरपि कात्स्र्यतः। शोणाचलजुषःशम्भोर्माहात्म्यं महितोदयम्॥३॥
कथं वा श्रुतमप्येतदाश्चर्यरसभावितैः। अशेषमवधार्येत प्रज्ञावत्प्रवरैरपि॥४॥
इदानीं स्मर चित्रं तु चरित्रं स्मरवैरिणः। परामृतानुभूत्यैव सत्यं नृत्यति मे मनः॥५॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—हे मार्कण्डेय! आपके द्वारा विस्तार से अरुणाचल माहात्म्य के सम्बन्ध में पूछे जानेपर मुझे यह प्रतीत होता है कि आपने मुझमें अपनी महान् आत्मा को स्थापित किया है। हे महामति! उपयुक्त विषय के प्रति आपका मन कौतूहलाक्रान्त है। जो मानव शोणाचलनाथ की महिमा से अवगत नहीं है, वह पशुवत् है! मैं अवगत होनेपर भी किस प्रकार से शोणाचलनाथ की महनीय महिमा सम्पूर्ण रूपेण कह सकूंगा।? यह आश्चर्यरस भावित विषय मैं किस प्रकार से सुनाने में सक्षम हो सकूंगा? आप अब कामशत्रु शम्भु का विचित्र चरित्र स्मरण करिये। मेरा मन तो उस परमामृत रसानुभव द्वारा मानों वास्तव में नृत्य कर रहा है।।१-५।।

अद्भुतं शिवचारित्रमास्कन्दितमनोहरम्। मम वर्णयितुं कात्स्न्र्यान्नैव शक्नोति शेमुषी॥६॥
तथाप्येष प्रवक्ष्येऽहमंशांशेन यथामति। पुण्यं शोणाद्रिनाथस्य माहात्म्यं श्रूयतांमुने॥७॥
पुरादिदेवकल्पादौ निर्विकल्पो महेश्वरः। स्वेच्छया सकलं विश्वं पुनरप्युदभावयत्॥८॥
उद्भावितञ्च तद्विश्वं स्रष्टुं पातुञ्च सर्वदा। अन्विच्छन्नादिदेवोऽसौब्रह्मविष्णूविनिर्ममे॥९॥

यह आस्कन्दित (सबसे श्रेष्ठ) मनोहर शिव चरित्र अतीव दुर्लभ है। इसे सम्पूर्णतः वर्णन कर सकना मुझसे संभव हो सकेगा, इसमें सन्देह है, तथापि हे मुनिवर! मैं अंशांशरूप से यथाशक्ति इन शोणाचलनाथ की पावन महिमा का वर्णन करता हूं। सुनें! पूर्व कल्प में आदिदेव निर्विकल्प महादेव ने स्वेच्छा से पुनः समस्त विश्व का उद्भावन (उत्पत्ति) किया। उद्भूत विश्व का सर्वदा पालन तथा सृजन करने हेतु उन्होने ब्रह्मा तथा विष्णु का सृजन किया।।।६-९।।

असृजद्दक्षिणाङ्गेन त्र्यम्बकः परमेष्ठिनम्। विष्टरश्रवसं देवो वामाङ्गेन च सृष्टवान्॥१०॥
ब्रह्माणं रजसा विष्णुं सत्त्वेन समयूयुजत्। नियुक्तौ देवदेवेनतौ विरञ्च्यच्युतावुभौ॥११॥
ईशाते सर्वजगतां सृष्टिरक्षाविधानयोः। मनसैव मरीच्यादीन्ससर्ज ब्राह्मणान्दश॥१२॥
दक्षं च दक्षिणाङ्गुष्ठात्सृष्ट्यै प्रावर्तयद्विधिः। मुखेन ब्राह्मणान्दोर्भ्यां क्षत्रियानूरुतो विशः॥१३॥
शूद्रांश्च पद्भ्यां निरमात्स्वयञ्च कमलासनः। मरीचितनयाज्जज्ञुः कश्यपादसुरास्सुराः॥१४॥
मरुतः फणिनो गृधा गन्धर्वाप्सरसोऽपि च। मनुश्चयस्यसन्तानोमानवोऽयं प्रवर्त्तते॥१५॥

उन्होंने ब्रह्मा का सृजन अपने दक्षिणभाग से रजोगुण युक्त रूपेण किया तथा वामांग से सत्वगुण सम्पन्न विष्णु का सृजन किया। उन्होंने इस प्रकार सृष्ट विरिञ्चि ब्रह्मा को सर्व प्रकार के जगत् की सृष्टि कार्य में तथा अच्युत विष्णु को सृष्टि रक्षाकार्य में नियुक्त किया। इस प्रकार उन्होंने प्रभुत्व लाभ किया। ब्रह्मा ने सर्वप्रथम मन से मरीचि आदि १० ब्राह्मणों की तथा दक्षिणांगुष्ठ से दक्ष की सृष्टि करके सबको सृष्टिकार्य में नियुक्त किया। तत्पश्चात् उन्होंने मुख से ब्राह्मण, हाथों से क्षत्रिय, उरु से वैश्य तथा चरणयुगल से शूद्रों को सृष्ट किया। तत्पश्चात् मरीचि पुत्र कश्यप से देवता, असुर, मरुत्, सर्प, गृध्र, गन्धर्व, अप्सरा ने जन्म लिया। मनु से सन्तानरूपेण मानव प्रवर्त्तित हुए।।१०-१५।।

नानाज्ञातित्वमापाद्य नानाकर्मप्रवर्त्तकाः। अत्रेश्च समभूदार्षं क्षात्रं च द्विविधं कुलम्॥१६॥
पुलस्त्यपुलहाभ्यां च जज्ञिरे यक्षराक्षसाः। उतथ्यगीष्पतिमुखाजज्ञिरेऽङ्गिरिसो मुनेः॥१७॥
भृगोरग्निः समुदभूच्च्यवनाद्यास्तथर्षयः। वसिष्ठप्रमुखेभ्यश्च सम्बभूवुर्महर्षयः।
यत्पुत्रपौत्रैर्भुवनमिदमापूर्यतेऽखिलम्॥१८॥

ये सभी विभिन्न जातित्व प्राप्त करने के पश्चात् नाना कर्म प्रवर्त्तक हो गये। आर्ष तथा क्षात्र भेदात्मक अत्रि के कुलद्वय का प्रवर्त्तन हुआ। पुलस्त्य तथा पुलह से यक्ष-राक्षसों ने जन्म लिया। मुनि अंगिरा से उतथ्य तथा गीष्पति प्रभृति ने जन्मलाभ किया। भृगु से अग्नि तथा च्यवन आदि कवियों का जन्म हुआ। वसिष्ठ आदि प्रमुख ब्रह्मपुत्रों से महर्षिगण उत्पन्न हुए। इन महर्षियों के पुत्र-पौत्रादि से जगत् भर गया।।१६-१८।।

एवं ब्रह्माऽऽत्मजैः स्वीयैरिदमापूरयज्जगत्। कालेन वैभवेनाऽपि विसस्मारमहेश्वरम्॥१९॥
अच्युतोऽपिभृगोःपुत्रीमुद्वाह्यकमलालयाम्। मत्स्यादिरूपोजगतिभवन्नास्मरदीश्वरम्॥२०॥
सृष्टिस्थितिभ्यां द्रुहिणाब्जनाभौ स्वाधीनतां नूनमुपागताभ्याम्।
अतीव गर्वं दधतुर्न कस्य मदोऽधिकारेण भवेन्नरस्य॥२१॥

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे सृष्टिवर्णनंनामाऽष्टमोऽध्यायः।।८।।

इस प्रकार से ब्रह्मा ने अपने पुत्रों द्वारा इस जगत् को पूर्ण कर दिया तथा आश्चर्य तो यह है कि कालप्रभाव के कारण अपने वैभव की गरिमा में पड़ कर वे महेश्वर को भी भूल गये! अच्युत भी भृगुपुत्री कमलालया से विवाह करके इस जगत् में मत्स्यादि नाना अवतार लेकर ईश्वर की याद न कर सके। जगत् में स्वाधीनता की स्थिति प्राप्त सृष्टि के प्रभु ब्रह्मा तथा स्थिति के प्रभु विष्णु अतीव गर्वित हो गये थे। ऐसा अधिकार प्राप्त होनेपर किसे गर्व नहीं होता?।।१९-२१।।

।।अष्टम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

नवमोऽध्यायः

ब्रह्मा-विष्णु के विवाद का वर्णन

नन्दिकेश्वर उवाच

अहमेव प्रभुरिति प्ररूढाधिकगर्वयोः। विरञ्च्यच्युतयोरासीद्विवादो मोहसम्भवः॥१॥
रजोविकाराभ्यधिकोबाह्योनीलइवोत्थितः। विश्वसृष्टिकरोविष्णुंविरञ्चोऽब्रूतगर्वतः॥२॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—एक बार ब्रह्मा तथा अच्युत (विष्णु) के बीच "मैं ही प्रभु हूं" इस.गर्व के कारण मोहोत्पन्न विवाद छिड़ गया। रजोगुण विकार की अधिकता से बाह्य नीलवत् (विचित्ररूप) सृष्टि करने वाले ब्रह्मा ने कहा।।१-२।।

ब्रह्मोवाच

कथं त्वमधिकश्चासि विष्णो जनयितुर्मम। पितामहस्य लोकानांकिमेवमतिमोहितः॥३॥
त्वत्त एवोदितौ दैत्यौ निहत्य मधुकैटभौ। दैत्यारिरिति मुग्ध त्वं गर्ववहसि केशव॥४॥
त्वामेव सृजतो नित्यं बहुधामम वेधसः। अद्याप्यायासजां पीडां न परित्यजतःकरौ॥५॥
मम श्रमाम्भसोद्भूते महाम्भोधौ निमज्जतः। नैयग्रोधं न चोत्पन्नं कुतस्तेऽस्त्ववलम्वनम्॥६॥
मदुपज्ञे महाम्भोधौ स्त्रवते कोऽपि पन्नगः। तदाश्रयस्त्वमूर्ध्वं ते पद्मं तच्चासनं मम॥७॥

ब्रह्मा विष्णु से कहते हैं— "हे विष्णु! मैं सभी लोकों का पितामह तथा जन्म देने वाला हूं। मुझसे तुम किस प्रकार श्रेष्ठ हो गये? तुम तो मुग्ध हो गये हो। हे मुग्ध केशव! तुम अपनी ही देह से जन्मे मधु-कैटभ नामक दो दैत्यों का वध करके "दैत्यारि" कहे गये, इसका तुमको गर्व हो गया है। देखो! अनेक बार तुम्हारा सृजन करने से अभी भी मेरे दोनों हाथ इस श्रम जनित पीड़ा से छुटकारा नहीं पा सके! मेरे इस श्रमजल (पसीने) से महान् जलनिधि उत्पन्न हो गया, उसी में तुम निमज्जित होते हो। यदि मैं उस पर वटपत्र न तैराता, तब तुम उस अगाध समुद्र में किस पर स्थित रहते? मैं ही जिसका उत्पत्तिकर्त्ता हूं, उसमें एक नाग जन्मा था। उसी पन्नग पर तुम्हारा आश्रय (शेषशय्या) है। तुमसे ऊर्ध्व में उच्च स्थान पर जो पद्म है, वही मेरा आसन है।।३-७।।

कुतस्तमोमये ब्रूहि त्वयि सत्त्वगुणोदयः। स वेत्सि किंत्वं प्रकृतिंनिद्राजडिमनिर्भरः॥८॥
जलाशये प्रस्वपता दैत्यभीत्या जनार्दन!। कथं त्वया रक्षिताऽसौ मदधीना जगत्त्रयी॥९॥
चतुर्भ्यो मम वक्त्रेभ्यो वेदाः समुदयं गताः। चैतन्यरूपिणीशक्तिःकलत्रं मे सरस्वती॥१०॥
मया हि सृज्यते विश्वमिदं स्थावरजङ्गमम्। रक्ष्यते च तदिन्द्राद्यैर्मामकैःपुत्रपौत्रकैः॥११॥
ततः कथय वैकुण्ठ मन्नियोज्येषु कश्चन। जगतामीश्वरान्मत्तः कथंनामातिरिच्यसे॥१२॥

तुम तो तमोमय हो। तुम्हारे अन्दर किस प्रकार से सत्वगुण का आविर्भाव हो सकता है? हे जनार्दन! तुम तमोमय हो, क्योंकि (सर्वदा शेषशय्या पर) निद्रा की जड़िमा से आच्छन्न रहते हो! अतएव तुम प्रकृति को कैसे जानोगे? तुम तो दैत्यभय से समुद्ररूपी जलाशय में सोते रहते हो। तुम मेरी रक्षा कैसे कर पाओगे? यह त्रैलोक्य मेरे वश में है। चारों वेद मेरे ही चारों मुखों से प्रकाशित हैं। चैतन्यरूपा शक्ति सरस्वती मेरी पत्नी हैं। मैंने इस जंगम विश्व का सृजन किया है। मेरे इन्द्रादि पुत्र-पौत्र इसकी रक्षा करते हैं। हे वैकुण्ठ! तुम कहो कौन नियोज्य श्रेणीभुक्त हुआ? मैं जगदीश्वर हूं। तुम मुझसे श्रेष्ठ कैसे हो सकते हो?॥८-१२॥

नन्दिकेश्वर उवाच

इत्थं सरोषसंरम्भे विधौ पौरुषभाषिणि। नारायणोऽपि सासूयंस्मित्वैवंसमभाषत॥१३॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—रोषयुक्त होकर ब्रह्मा ने इस प्रकार अपने पौरुष का वर्णन किया। नारायण ने असूया से वशीभूत होकर मन्द हास्य के साथ कहा॥१३॥

विष्णुरुवाच

विरञ्चे! मुञ्च संरम्भं वृथा खलु विकत्थसे। नाभीसरोजसञ्जातो मम त्वमवधारय॥१४॥
योगनिद्रां मयोन्मुंच्य पुराह मधुकैटभौ। नचेद्यन्मथितौ ताभ्यां तथैवस्याःप्रणाशितः॥१५॥

विष्णु कहते हैं—"हे ब्रह्मन्! दम्भ का त्याग करो। वृथा क्यों अपनी प्रशंसा स्वयं कर रहे हो! तुम्हारा जन्म मेरे नाभिकमल से हुआ है, क्या यह स्मरण नहीं है? पूर्व में मैं योगनिद्रा त्यागकर यदि मधु-कैटभ को मथित न करता, तब तुम उन दैत्यों द्वारा यहीं विनष्ट कर दिये जाते!॥१४-१५॥

सोमकप्रमुखान्दैत्यान्हन्तुमात्मेच्छया मम। धृतमत्स्यादिरूपस्य को वाऽन्यः सृष्टिकारणम्॥१६॥
न किञ्चिदपि पश्यन्ति रजसारूढदृष्टयः रजोमयेन भवता किं निरूपयितुं क्षमम्॥१७॥

मैंने सोमक आदि प्रमुख दैत्यों के वधार्थ स्वेच्छा से मत्स्यादि शरीर को धारण किया था। मुझे अन्य सृष्टि करने का क्या कारण? जिनकी आंखें रजोगुण के आवरण से बन्द हैं, उसे कुछ भी परिलक्षित नहीं होता॥१६-१७॥

अविनाभाविनी शक्तिर्ननु मे पद्मवासिनी। यस्याः कटाक्षमात्रेण जगत्त्रितयमेधते॥१८॥
भूतान्यमूनि कालोऽयमात्मनोऽप्यहमेव हि। मया विरहितंकिम्वात्रिषुलोकेषुविद्यते॥१९॥
आदित्या वसवोरुद्रादिक्पालामनवोऽप्यहम्। भूर्भुवःस्वस्त्रयीमेनांमदधीनांविचिन्तय॥२०॥
ममैव विनियोगेन सृष्टिशक्तिः स्वयं स्थिता।
तन्मे त्रैलोक्यनाथस्य किं त्वं ज्येष्ठः समोऽथवा॥२१॥

तुम रजोमय हो। इस कारण तुम यह नहीं जानते कि पद्मालया मेरी नित्य सहचारिणी शक्ति हैं। उनके कटाक्ष मात्र से तीनों लोक पावन हो जाते हैं। चराचर समस्त भूतसमूह, काल तथा आत्मा, सब कुछ मैं ही हूं। मेरे बिना इस त्रिभुवन में और क्या बचा! आदित्य, वसु, रुद्र, दिक्पाल, मनु—यह सब मैं ही हूं। भूः-भुवः-स्वः भी त्रयी मेरे ही अधीन जानो। मेरे ही सम्पर्क के कारण सृष्टि शक्ति स्थितियुक्त होती है। अतः मैं ही लोकनाथ हूं। तुम किस प्रकार से मेरे समान किंवा मुझसे श्रेष्ठ हो सकते हो?।।१८-२१।।

नन्दिकेश्वर उवाच

एवं मोहान्धमनसोरन्योन्यं प्रतिगर्जतोः। यथावनल्पसमयः सम्वर्तसदृशस्तयोः॥२२॥
उदयास्तमयौ स्यातां न तदा चन्द्रसूर्ययोः। नक्षत्राणि च ताराश्चग्रहाश्चक्षीणतांययुः॥२३॥
नाववुर्मरुतो वा न जज्वलुर्जातवेदसः। नान्तरिक्षं न च क्षोणो नदिशोऽपिचकाशिरे॥२४॥
समुद्राश्चुक्षुभुस्सर्वे पर्वताश्च चकम्पिरे। औषध्यः शोषमासेदुखसेदुश्च जन्तवः॥२५॥
पक्षमासर्तुवर्षादिकालस्य नियमो गतः। अहोरात्रव्यवस्थाऽपि प्रणाशं समुपाययौ॥२६॥
इन्द्रादयो लोकपाला मरीच्याद्या महर्षयः। सर्वेप्यकालेसम्प्राप्तं कल्पान्तंमेनिरेतदा॥२७॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—ब्रह्मा तथा विष्णु मोह रूपी अन्धकार में पतित होकर संवर्त्तक मेघ के समान इस प्रकार गर्जन करने लगे। इसमें दीर्घकाल व्यतीत हो गया। चन्द्र-सूर्य उदय-अस्त रहित हो गये। नक्षत्र-तारा-ग्रह क्षयीभूत हो गये। वायु नहीं रह गयी। अग्नि ज्वलित नहीं हो रही थी। आकाश-पृथिवी-दिक् आदि सब अन्धकार से आच्छादित हो गये। सागर क्षुब्ध हो गया। पर्वत कांपने लगे। औषधियां सूख गयीं। जीव-जन्तु अवसन्न हो गये। वर्ष-पक्ष-मास-ऋतु-प्रभृति काल नियम नहीं रह गया। इन्द्रादि लोकपाल, मरीचि आदि महर्षिगण सभी अकाल में काल कवलित हो गये। मानों कल्पान्त उपस्थित हो गया हो।।२२-२७।।

एवं जाते महाक्षोभे भूताक्रन्दप्रचोदितः। भूतनाथो जगज्जातमविद्यायामबुध्यत॥२८॥
व्यचिन्तयच्च विश्वात्मा विश्वसंरक्षणोद्यतः। अबाह्ययादृशाऽपश्यदनयोर्मोहकारणम्॥२९॥
स्वामिनंसकलैश्वर्यदातारं मां मदोद्धतौ। विस्मृत्य स्वं स्वमेवैतावमंसेतांजगत्प्रभू॥३०॥
अहो मोहस्यमाहात्म्यंयदिमौद्रुहिणाच्युतौ। जानानावपि मां सम्यगभूतामेवमुद्धतौ॥३१॥
अज्ञानतिमिरोद्भूतिदूषिताशयलोचनः। जनः प्राप्तं स्तुतमपि प्रायो वस्तु न पश्यति॥३२॥
कृतापराधावप्येतौ निमग्नौ मोहसागरे। मया नोपक्षणीयौ हि लोकानांहितकाम्यया॥३३॥
इति निश्चित्य मनसा मायावैवश्यमेतयोः। देवो दयामहाम्भोधिर्व्यपोहयितुमैहत॥३४॥
अहोऽनुकम्पातरुणेन्दुमौलेः स्वभावसिद्धा भुवनत्रयेऽस्मिन्।
असौ प्रमोहाम्बुधिमध्यतोऽभूदाविर्निरस्तावपि धातृविष्णू॥३५॥

।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे शिवविष्णुविवादवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः।।९।।

इस प्रकार का महाक्षोभ उपस्थित होने तथा प्राणीसमूह में भय देखकर भूतात्मा भूतनाथ जगत् में उत्पन्न इस अविद्या के कारण प्रबोधित हो गये। उन्होंने विश्व के रक्षा सम्बन्धित उपाय का चिन्तन किया। उन्होंने दिव्य दृष्टि से ब्रह्मा-विष्णु के विवाद कारण का निरीक्षण करके स्वयं से कहा कि "ये दोनों मदोद्धत होकर निखिल ऐश्वर्य दाता मुझ स्वामी को विस्मृत कर चुके हैं। अहा! मोह की क्या महिमा है? ये स्वयं अपने-अपने को जगत्प्रभु समझ रहे हैं। ये दोनों मुझे सम्यक् जान कर भी ऐसे उद्धत हो रहे हैं। जिनका ज्ञान तथा नेत्र अज्ञानान्धकार से दूषित है, वे सम्मुख आये स्तुतिकारी व्यक्ति को भी नहीं देख पाते। अब मैं मोह समुद्र में निमज्जित इन अपराधी दोनों देवताओं की उपेक्षा नहीं कर सकता" यह विचार करके दया-वारिधि देव ईशान ने माया के वशीभूत हो गये ब्रह्मा-विष्णु को मोहरहित करने का प्रयत्न किया। अहा! इस त्रैलोक्य में चन्द्रमौलि देव की क्या अनिर्वचनीय स्वभाव-सिद्धा कृपा है। वे ब्रह्मा-विष्णु के मोहरूप सागर में जैसे ही आविर्भूत हुए, वैसे ही दोनों मोह से निवृत्त हो गये।।२८-३५।।

।।नवम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

दशमोऽध्यायः

विवादरत ब्रह्मा-विष्णु के मध्य लिंग प्रादुर्भाव

मार्कण्डेय उवाच

आज्ञापय विभो मह्यं यथा शम्भुः सनातनः। अनुजग्राह मोहान्धौ वैकुण्ठपरमेष्ठिनौ।।१।।

मार्कण्डेय कहते हैं—हे विभो! मोहान्ध ब्रह्मा-विष्णु के प्रति सनातन शम्भु ने जैसी कृपा किया था, आप कृपया उसका वर्णन करिये।।१।।

नन्दिकेश्वर उवाच

शृणुष्व सवरं वक्ष्यामि विस्तरेण यथातथम्। यदेव देवो विदधे दयया भक्तवत्सलः।।२।।
अथोदस्थात्तयोर्मध्येतथाविवदमानयोः। ज्योतिःस्तम्भत्वमभ्येत्यरोदोरन्ध्रनिरोधकः।।३।।
महता जृम्भमाणेन तस्य ब्रह्माण्डभेदिनः। अन्तरिक्षमतिश्यामं समुत्क्षिप्तमिवाभवत्।।४।।
विष्वग्विवर्णता तस्यज्योतिर्लिङ्गस्य तेजसा। दिशो विरेजिरेसद्योदूरविस्तारिताइव।।५।।

नन्दिकेश्वर कहते हैं—"श्रवण करें! भक्तवत्सल देव भवानीपति ने जिस प्रकार से ब्रह्मा-विष्णु के प्रति करुणा किया था, मैं वह सब विस्तृत रूप से यथायथ वर्णन करता हूं। भगवान् देवाधिदेव ज्योतिःतेजरूप लिङ्गरूपेण विराजित हो ब्रह्मा-विष्णु के मध्य में भूमि तथा स्वर्ग का जो अवकाश था उसे निरुद्ध करते प्रादुर्भूत हो गये। (अर्थात् बीच का समस्त स्थान घेर लिया) तब महान् विस्तृत ब्रह्माण्ड भेदी लिंग द्वारा अति श्याम अन्तरिक्ष भी मानों समुत्क्षिप्त प्रायः प्रतीत होने लगा। इस लिंग का तेज चारों ओर विकीर्ण हो रहा था। समस्त दिशाओं में यह विस्तारित हो गया था।।२-५।।

तीव्रैस्तस्यमहाज्वालैःशोषिता इवसागराः। विमुक्तवीचिसंक्षोभाःस्वामेवप्रकृतिंययुः।।६।।

व्यद्योतन्तदिविप्राग्वद्ग्रहास्तारागणैःसह। तेजःस्तम्भात्समुद्भिन्नाःस्फुलिङ्गाइवकेचन॥७॥
तेजसा तस्य शोणेन गैरिकेणेव रञ्जिताः। भौमरविश्रियं सर्वेऽप्यवहन्नवनीभृतः॥८॥

इस लिंग की अति तीव्र आलोकमाला से तो सागर तक शोषिवत् प्रतीत होने लगा। समुद्र भी लहरों के क्षोभ से रहित होकर प्रकृतभाव को प्राप्त हो गया था। तब आकाशमण्डल में ग्रह तथा तारकगण पुनः पूर्ववत् दीप्त होने लगे, तथापि उनमें से कोई लिंग के तेज से उत्तप्त होकर भिन्न रूप होकर स्फुलिंग जैसे लगने लगे। उसके (तेज के) गैरिक वर्ण जैसे लोहित वर्ण के प्रकाश से पर्वत समूह रंजित होकर पृथिवी पर उगे सूर्य जैसे कान्तियुक्त लग रहे थे।।६-८।।

समुद्रास्तत्प्रतिच्छायानिर्भराश्लिष्ट यादसः। पद्मरागशिलाखण्डे घटिता इव रेजिरे॥९॥
प्रवालगुच्छैः प्रत्यग्रैर्लम्बिता इव पादपाः। नद्यश्च निर्भरोत्फुल्लकह्लारा इव रेजिरे॥१०॥
मही कुङ्कुमलिप्तेव दिशः सिन्दूरिता इव। सर्वारुणमिव व्योम समन्तात्प्रत्यदृश्यत॥११॥
ब्रह्माण्डकर्परमभूत्तन्महःपूरितान्तरम्। शोणितेनेव सम्पूर्णं कपालं कृत्तिवाससः॥१२॥
एवंप्रवर्द्धमानेन तेजःस्तम्भेन तेन च। अरुणाकारतां भेजे विश्वं स्थावरजङ्गमम्॥१३॥
तेजोलिङ्गं तदाश्चर्यं दृष्ट्वा त्यक्तमिथःक्रुधौ। अचिन्तयेतामेकैकं चतुर्मुखचतुर्भुजौ॥१४॥

इस महान् लिंग की छाया सागर के जल में पड़ रही थी तथा उस छाया से सभी जलजन्तु आश्लिष्ट हो गये थे। तब सागर मानों पद्मराग शिलाखण्डवत् प्रतीत होने लगा। सभी पादप समूह इस लिंग की दीप्तिछटा से अभिनव प्रवाल गुच्छ जैसे प्रतीत हो रहे थे। सभी नदियां खिले हुए इसकी दीप्ति से कल्हार पुष्प जैसी लग रही थीं। भूमि मानों इस प्रभा के कारण कुंकुमलिप्त सी लगने लगी। सभी दिशायें सिन्दूर से रंगी लग रही थीं। आकाश अरुणाभ दृष्टिगोचर होने लगा। इस लिंगतेज के कारण ब्रह्माण्डमण्डल पूर्ण हो गया तथा कृत्तिवास का कपाल देश लोहित वर्णवत् विभासित होने लगा। तेजस्तम्भवत् महादेव का यह लिंग इस तरह से वर्द्धित हुआ, जिसके कारण समस्त विश्व अरुणाकार प्रतीत हो रहा था। तब चतुर्मुख ब्रह्मा तथा चतुर्भुज विष्णु इस अत्याश्चर्यमय तेजोमय लिंग को देखकर क्रोध त्याग के साथ परस्परतः विचार करने लगे।।९-१४।।

किमेष वसुधां भित्त्वा शेषादीनांफणाभृताम्। फणामाणिक्यमहसां राशिरुन्मुखतां गतः॥१५॥
किं वा कल्पान्तसुलभप्रादुर्भावाःप्रभाकराः। द्वादशापिनभोभूम्योर्मध्येयुगपदुत्थिताः॥१६॥
आहोस्विन्मेघसंघर्षाद्विततव्योममध्यतः। अन्योन्यं मिलिताःक्षिप्रानिपतन्त्यवनीतले॥१७॥

वे विचार कर रहे थे कि यह क्या फणयुक्त शेष का फण है जिसके मणि की तेजराशि भूमि का भेदन करके उठी है? ना! यह कल्पान्त काल में सुलभ सूर्य का प्रादुर्भाव है। द्वादश आदित्यगण भूमि तथा नभोमण्डल के बीच एक साथ उग गये हैं। अथवा आकाश में मेघ संघर्ष के कारण वितत् विद्युल्लता परस्परतः मिल कर पृथिवी पर गिर रही है?।।१५-१७।।

प्रतिघ्नन्नेष तेजोभिरक्ष्णोः शक्तिमनुक्षणम्। स्वनिर्विशेषिता शेषभूतजालः प्रवर्द्धते॥१८॥
एष उद्दीप्यमानोऽपि सन्तापायन कल्पते। नेदीयांस्यपि भूतानि न निर्दहति वह्निवत्॥१९॥
एतस्य कान्तिसङ्क्रान्त्या जगदेव न केवलम्। मदीयमपि शोणत्वमनुप्राप्तमहोवपुः॥२०॥
कस्मादेषसमुत्पन्नःकिंमूलःकिमुपाधिकः। कुतस्त्यःकिमुपादानःकयाशक्त्याप्रकाशते॥२१॥

कियानवधिरेतस्य विष्वक्तिर्यगधोर्ध्वतः। अवगाढश्च पातालं कियन्मात्रमसाविति॥२२॥
तदेतदखिलं ज्ञातुं मनः पर्युत्सुकं मुहुः। इच्छत्युत्पतितुं व्योम प्रवेष्टुं च रसातलम्॥२३॥
इति चिन्ताभराक्रान्तौ तेजःस्तम्भावलोकनात्। उभावप्यवकुलितौ वैकुण्ठपरमेष्ठिनौ॥२४॥
अभाषत च गोविन्दः सुतरामेव गर्वितम्। हिरण्यगर्भमालोक्य स्मयमानमुखाम्बुजः॥२५॥

विष्णुरुवाच

अयमेवावयोर्ब्रह्मन्नन्योन्यौत्कर्षकाङ्क्षिणोः। सत्यमेव परीक्षायै निकषःसमुपस्थितः॥२६॥
अमुष्य तेजसां राशेरपरिच्छेद्यसम्पदः। आद्यन्तौ ज्ञातुमेकेन न शक्यं ध्रुवमावयोः॥२७॥
यः पश्येन्मूलमग्रंवातेजसोऽस्यस्वयम्भुवः। सएव नावभ्यधिकोजगतांनाथकोऽपिसः॥२८॥

इसके तेज से प्रतिक्षण आंखों की शक्ति प्रतिहत हो जा रही है तथा यह तेज अन्तहीन भूतमय रूप से वर्द्धित हो रहा है, तथापि यह तेज इतना उद्दीप्त होकर भी क्लेशकारी नहीं है। भूतग्राम इसके निकट हैं, तथापि यह अग्नि के समान उनका दहन नहीं कर रहा है। इसकी कान्तिछटा से केवल यह जगत् लोहितवर्ण हो रहा हो, ऐसा नहीं है। अहो! यह मेरा शरीर भी लोहितवर्ण हो गया! यह किससे उत्पन्न तेज है? इसका उत्पत्ति केन्द्र क्या है? यह किसकी उपाधि है? इसका निवास कहां है? इसका उपादान क्या है? किस शक्ति से यह प्रकाशमान है? इसका चतुर्दिक् का तथा ऊर्ध्व-अधः का प्रमाण क्या है? यह पाताल की ओर कितना गहरा है? यह सब जानने हेतु मेरा मन नितान्त उत्कण्ठित होता जा रहा है। क्या यह आकाश में ऊपर उठने में प्रयत्नशील है, अथवा रसातल में प्रवेश करना चाहता है? ब्रह्मा-विष्णु दोनों ने तेजस्तम्भ लिंग का दर्शन किया, तब वे इस प्रकार की चिन्ता में पड़ गये तथा आकुल हो गये। गोविन्द (विष्णु) ने हिरण्यगर्भ ब्रह्मा को देखकर हंसते हुए गर्वपूर्ण वाक्य कहा—"हे ब्रह्मन्! परस्पर एक दूसरे से श्रेष्ठ होने की आकांक्षा के कारण यह हम दोनों के बीच में हमारी परीक्षा के लिए यह महान् पाषाणरूप उद्भूत है। यह सत्य बात है। हम दोनों में से एक भी इस अपरिच्छेद्य तेजराशि का आदि-अन्त जानने में समर्थ नहीं है। स्वयम्भु महादेव के इस तेजोमय लिंग का मूल अथवा अग्रभाग हममें से जो देखने में सक्षम होगा, वही हम दोनों में श्रेष्ठ तथा जगन्नाथ माना जायेगा।।१८-२८।।

नन्दिकेश्वर उवाच

इत्युभावपि विनिश्चिताशयौ मूलमग्रमपि तस्य वीक्षितुम्।
तेजसोऽतिमहतो बभूवतुः स्पर्धया विरचितोद्यमौ मिथः॥२९॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे ब्रह्मविष्ण्वोर्मध्ये तेजोमयलिङ्गप्रादुर्भाववर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥१०॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—ब्रह्मा-विष्णु इस आशय को स्वीकार करके पारस्परिक स्पर्द्धा के साथ उद्यम का वरण करके इस महान् ज्योतिर्मय लिङ्ग के मूल तथा अग्रभाग का दर्शन करने हेतु प्रवृत्त हो गये।।२९।।

॥दशम अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

एकादशोऽध्यायः

विष्णु द्वारा लिंग के अधोभाग के ज्ञान हेतु गमन

नन्दिकेश्वर उवाच

अथ हंसाकृतिं व्योमपदवीलङ्घनक्षमाम्। भेजे विरञ्चिस्तस्याग्रं द्रक्ष्यामीति कृतोद्यमः॥१॥
जग्राह विष्णुर्वाराहं विग्रहं दृढविग्रहः। विश्वम्भराविनिर्भेदक्रीडासुलभवैभवम्॥२॥
मूलं तस्य परिज्ञाय प्रत्यावर्तितुमुत्सुकः। कृत्रिमस्तब्धरोमैष दंष्ट्राभ्यामभिनन्महीम्॥३॥
विदारयन्स पोत्रेण भूतधात्रीमवाङ्मुखः। महावराहो ददृशे तेजःस्तम्भंनमन्निव॥४॥
क्रीडाक्रोडकठोरेण कण्ठघोषेण पूरयन्। पातालं बहुलोत्साहः प्रवेष्टुमुपचक्रमे॥५॥
विवेश यत्रयत्राऽसौ तत्र तत्र तथास्थितम्। अवेक्षिष्टानलस्तम्भं तमेव कुहनाकिटिः॥६॥
विदारितान्महीरन्ध्रात्प्रत्यदृश्यन्तभोगिनः। प्ररोहा इव शेषाद्यास्तेजःस्तम्भस्यकेचन॥७॥
प्रत्यदृश्यत हेमाद्रेर्मूलकन्द इव स्थितः। आधारतां गतो दृष्टोह्यच्युतेनाऽऽदिकच्छपः॥८॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—ब्रह्मा ने लिंग के अग्रभाग को देखने के लिए कृत प्रयत्न होकर व्योमपदवी का लंघन करने में सक्षम हंसरूप धारण किया। दृढमूर्ति विष्णु ने लिंग के मूल देश को देखकर पुनः वापस आने के विचार से पृथिवी भेदन में सक्षम वाराह मूर्ति धारण किया। स्तब्ध रोम वाले उस कृत्रिम वराह ने दांतों से पृथिवी का विदारण प्रारम्भ किया तथा मुख नीचा करके भूतसमूह को धारण करने वाली पृथिवी का विदारण करते-करते देखा कि यह लिंग और नीचे चला जा रहा है। तब उन्होंने कठोर कण्ठ घोष से दिशाओं को पूरित करके पाताल तल में प्रवेश का उपक्रम किया। वे जितना नीचे पहुंचते जाते, उस लिंग को उसी अवस्था में वहां विद्यमान देखते थे। तब वराह विदारित उस भूमिरन्ध्र से अनन्तादि महानागगण कतिपय अंकुर के समान लिंगस्तम्भ पर लिपटे दृष्टिगोचर होने लगे। खोदते-खोदते वराहरूपी अच्युत वहां से सुमेरु पर्वत की जड़ तक पहुंचे तथा वहां अबाधरूप से अवस्थित पृथिवी को धारण करने वाले कूर्म को एक कन्दवत् स्थित देखा।।१-८।।

आराद्वसुन्धरागुल्फे धुरन्धरतया स्थिताः। दिक्सिन्धुराश्चदृश्यन्तेमदमन्थरबन्धुराः॥९॥
मधुद्विषा च स महान्मण्डूकोऽपि विलोकितः। अखण्डमण्डलं भूमेर्यस्य पृष्ठे प्रतिष्ठितम्॥१०॥
आधारशक्तिमपि तामभ्यपश्यदधोक्षजः। यदनुग्रहतः शेषकूर्माद्या अपि धूर्वहाः॥११॥

उन्होंने उसी के समीप वसुन्धरा के मदमत्त मन्थर गति वाले धुरन्धर दिग्गजगण को भी वहां देखा। उन्होंने वहां महान् मण्डूक को भी देखा। उसकी पीठ पर यह अखण्ड मण्डल ब्रह्माण्ड स्थित है। उन्होंने आधार शक्ति को भी देखा। इन आधार शक्ति के प्रभाव से शेष-कूर्म-दिग्गजादि इस धुर का वहन करते हैं।।९-११।।

अतलं वितलं चैव सुतलं नितलं तथा। तलातलं च प्रतलं महातलमिति क्रमात्॥१२॥
ददर्श सप्त पातालानपि वारिजलोचनः। तत्रत्यान्विविधाकारान्सर्वानपि सविस्मयः॥१३॥
अत्यगाद्भोगवत्याख्यांपुरींवैरोचनीमपि। जगाहेऽन्यांश्चदैत्यानामावासानतिगह्वरान्॥१४॥

इदं दृष्टमिदं दृष्टमित्युपारूढकौतुकः। मूलं मुग्धाशयस्तस्य विचिनोति स्म माधवः॥१५॥
अधस्तादपि गाढेन पयोधेस्तेनपोत्रिणा। तथैव तेजःस्तम्भः स निर्विकारमवैक्ष्यत॥१६॥

दलिता केवलं पृथ्वी पाथोराशिर्विलोलितः।
नैवाऽलोक्यत तन्मूलं कोलरूपेण विष्णुना॥१७॥

इत्थंवर्षसहस्राणिभ्रान्त्यासम्भ्रान्तमानसः। नालम्बभूवतन्मूलंलीलाक्रोडोविलोकितुम्॥१८॥
अवरुग्णखुरः क्षुण्णदंष्ट्रो विध्वस्तविग्रहः। भग्नपोत्रः स भूदारो जगाहे बहुलं श्रमम्॥१९॥
श्रान्त्यानिश्वसतस्तस्यतादृग्दर्पोविशृङ्खलः। ननाशतत्क्षणात्साकंतन्मूलावेक्षणेच्छया॥२०॥
अनिर्व्यूढप्रतिज्ञोऽपि प्रत्यावर्तितुमुत्सुकः। न चक्षमे सरोजाक्षश्चलितुं च पदात्पदम्॥२१॥

कमलनयन विष्णुदेव ने वहां अतल, वितल, सुतल, नितल, तलातल, प्रतल, महातल रूप सात पाताल का दर्शन किया। उन्होंने इन सभी पातालों में स्थित वहां-वहां के जीव-जन्तुओं को विस्मय के साथ देखा। तब उन्होंने भोगवती नामक वैरोचनी पुरी को देखा, जहां दैत्यों के अत्यन्त गह्वरस्थ आवासों का अवलोकन किया। वे पृथिवी का विदारण करते कौतूहलाक्रान्त होकर यह सोचते थे कि अभी लिंग का मूल मिल जायेगा-यह अभी लिंग का मूल मिलेगा! इस प्रकार वे विमूढ़ चित्त होकर लिंगमूल को खोजते रहते थे। वे इस प्रकार क्षीरसागर के भी नीचे पहुंच गये, तथापि वहां भी वह लिङ्गस्तम्भ यथावत् विराजमान था। लिंग का मूल मिला ही नहीं। केवल पृथिवी विदारित की जाती रही तथा जलराशि विलोलित होती रही! लीलामय वराह इस प्रकार १००० वर्ष तक खनन करने पर भी लिंगमूल का अवलोकन नहीं कर सके। इस खनन कार्य में उनके खुर घिस गये, दांत क्षुण्ण हो गये, शरीर विध्वस्त हो गया, नथुना भी भग्न हो गया। उनको भूमि विदारण का अत्यधिक श्रम करना पड़ा। थकान के कारण उनका श्वास-प्रश्वास तेजी से चलने लगा। इससे उनका जो उच्छृङ्खल गर्व लिंगमूल दर्शन का था, वह विलीन हो गया। उनकी प्रतिज्ञा व्यर्थ हो गयी। अब वे कमलनयन वापस लौटने हेतु एक पग भी चल सकने में सक्षम नहीं थे!।।१२-२१।।

श्रमान्धचक्षुषस्तस्य पातालान्तरवर्त्तिनः। तत्तेज एव पन्थानं पुनरप्युदभावयत्॥२२॥
कथंकथञ्चिदुत्तीर्णोऽप्यकूपारादपारतः। स्वेदाम्भःसागरस्त्रावे मग्नोऽभूच्छद्मशूकरः॥२३॥

पाताल में रहकर कठोर परिश्रम के कारण उनकी नेत्रज्योति भी मन्द हो गई। तब वे उस तेजपूर्ण तेजःस्तप्त लिंग के पथ पर अतीव कष्ट से शनैः-शनैः अपार कष्ट से ऊपर उठने लगे। तब स्वेद जल से सागर भी बढ़ गया। ये छद्म शूकर रूप विष्णु उसमें डूबने लगे।।२२-२३।।

रज्ज्वेव तेजःस्तम्भस्य प्रभया सानुबद्धया।
लब्ध्वाचलं वनं कष्टंन्यवर्त्तिष्ट जनार्दनः॥२४॥

नावैक्षि यन्मया मूलममुष्य महसां निधे। ततः स्त्रष्टाऽपि नो दृष्टःशिरोभागःकथञ्चन॥२५॥
अमुष्य महसां राशेः प्रागभूद्यत्रसम्भवः। ततो निवृत्त्य यास्यामिशरणंशिवमीश्वरम्॥२६॥

स हि विश्वाधिको देवश्चिरं मोहान्धचक्षुषा।
यद्विस्मृतो मया तस्माद्दुर्विपाकोऽजनीदृशः॥२७॥

एवं विनिर्धार्य विमुक्तदर्पो निवृत्तवानाशु सरोरुहाक्षः।
तमेव देशं प्रबभूव यत्र स्तम्भः स तेजोमयतां दधानः॥२८॥

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे विष्णुना लिङ्गाधोभागशोधनवर्णनंनामैकादशोऽध्यायः।।११।।

ऐसी स्थिति में जनार्दन रज्जुवत् उस तेजःस्तम्भ रूपी लिंग की प्रभा का अवलोकन करते अत्यन्त कष्ट के साथ अरुणाचल पहुंचे। वहां आकर विचार करने लगे कि जब मैं इन तेजोनिधि के उद्गम मूल को नहीं देख सका, तब संभवतः ब्रह्मा भी इसके शिरोभाग को नहीं देख पायेंगे। इन तेजराशि की जहां पहले उत्पत्ति हुई थी, वहां जाकर मैं इन ईश्वर की शरण लेता हूं। मैं मोहान्ध होकर इन विश्वश्रेष्ठ देव को भूल गया था। इसीलिये मेरे ऊपर यह दुर्विपाक घटित हुआ। ऐसा निश्चय करके गर्व त्याग कर राजीवलोचन विष्णु वहां आये, जहां से इस तेजस्तम्भ का आविर्भाव देखा था।।२४-२८।।

।।एकादश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

द्वादशोऽध्यायः

ब्रह्मा द्वारा लिंग के ऊर्ध्वभाग अन्वेषण प्रयास का वर्णन, ब्रह्मा-केतक संवाद

नन्दिकेश्वर उवाच

ततस्तेजोमयं स्तम्भमनुसृत्य पितामहः। उत्पपातोन्मुखो वेगान्निरालम्बे नभस्तले॥१॥
द्रुतमुत्पततस्तस्य पक्षावेगेन वारिताः। व्यशीर्यन्त समुद्वर्त्ताः प्रणुन्ना इव वायुभिः॥२॥
स वेगादुत्पतन्दूरं नाक्ष्णोर्विषयतामगात्। केवलं दीर्घदीर्घैव रेखा व्योम्निव्यभाव्यत॥३॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—हंस रूपी पितामह तेजस्तम्भ रूप लिंग का अनुसरण करने की इच्छा से ऊर्ध्वमुख होकर अति वेग से निरालम्ब नभस्तल में पहुंचे। हंस द्वारा तेज गति से उड़ने के कारण मेघदल उसके पंखों के आघात से वैसे ही विलीन होने लगे, जैसे वायु प्रवाह से विलीन हो जाते हैं। वेग से जाते-जाते हंस इतनी दूर पहुंच गया, जहां से चक्षु का विषय जगत् रूप दर्शन की सीमा भी पार हो गयी और नभस्तल में (लिंग रूपी) दीर्घरेखा दृष्टिगोचर होने लगी।।१-३।।

मायामरालो ददृशे तेजःस्तम्भस्य पार्श्वतः। संधयापयोधराभ्यर्णचारीव रजनीकरः॥४॥
प्रागत्यगादुत्पततां ततोऽध्वानं पयोमुचाम्। विमानपदवीं पश्चात्तारावर्तं ततः परम्॥५॥

तेजसां यानिधामानिह्यत्युच्चान्यूर्ध्वचारिणम्। अतिचक्रामवेगेनतान्यसौकुहनाखगः॥६॥
मरुतो मनसो वापि जवः सूक्ष्मतराकृतेः। सोऽभूदधःकृतस्तेन हंसेन गमनादिना॥७॥
यथा यथा चोत्पपात सुदूरं श्रमितच्छदः।
तथा तथा च ददृशे तेजःस्तम्भः समुन्नतः॥८॥
अतीत्य मरुतां स्कन्धान्सप्त सम्प्राप्तविस्मयः। बिभेदाऽण्डकटाहंच ज्वलन्तंतमुदैक्षत॥९॥
कथं वाऽदृष्टमूलस्य स्थातव्यं पुरतो हरैः। अविमोचयतः शौरेरसमासमशीर्षताम्॥१०॥
अनिर्व्यूढप्रतिज्ञस्य दीर्घैं किंवाममाऽसुभिः। तदत्रौपयिकंकिंस्यात्कार्यंकावागतिर्मम॥११॥
अतिसन्धित्सतो विष्णुं कस्सहायो भविष्यति। आर्जवंनैवनिर्जेतुंप्रतिवादिनमक्षमः॥१२॥
छद्मनावातिरस्कुर्यान्मानोहि महतांधनम्। इतिसञ्चिन्तयत्येवविरिञ्चौव्याकुलात्मनि॥१३॥
आकाशे ददृशे नाऽतिदूरे किमपिनिर्मलम्।
ऐन्दवी किमियंरेखातस्याःकथमिहागमः॥१४॥

यह माया हंस पहले तेजस्तम्भ के पार्श्व में रहकर सान्ध्य समुद्र के ऊपर स्थित चन्द्रमा जैसे लगने लगे। इस मायामराल ने पहले पक्षीगण का पथ, तदनन्तर मेघों का पथ, तदनन्तर विमान पथ, तदनन्तर तारा पथ, तदनन्तर ऊर्ध्वचारी तेजयुक्त समस्त अत्युच्च धामों का अतिक्रमण किया। इस हंस ने सूक्ष्मतर मन की गति तथा वायु की गति को भी पीछे छोड़ दिया। जैसे-जैसे यह अमितच्छद हंस ऊपर उठता जाता, वैसे-वैसे वह लिंग भी उन्नततर दृष्ट होने लगा। तब वह मायाहंस (ब्रह्मा) विस्मित हो गये। उन्होंने मरुद्गण के सप्त स्तम्भों का भी अतिक्रमण करके अण्डकटाह भेदन किया और वहां भी उन्होंने वही जाज्वल्यमान लिंग स्थित देखा। तब वे सोचने लगे कि मैं किस प्रकार मूलस्थान विष्णु के वापस पहुंचने के पूर्व ही लिंगाग्र भाग देखकर पहुंच जाऊंगा? मैंने गर्व के कारण हरि के प्रति अत्यन्त बढ़ा-चढ़ा कर वाक् प्रदर्शन किया था। व्यर्थ प्रतिज्ञ हो जाने से अब इस दीर्घ परमायु का क्या प्रयोजन? मेरे पास अब क्या उपाय है? मैं क्या करूं? मैरी क्या गति होगी? जब विष्णु से मेरा सामना होगा, तब कौन मेरा सहायक होगा? आर्जव से कदापि प्रतिवादी को पराजित नहीं कर सकते! मनुष्य छल का अवलम्बन लेकर महान् को भी तिरस्कृत कर देता है। व्याकुलात्मा ब्रह्मा इस प्रकार चिन्ता कर ही रहे थे, तभी आकाश के निकटस्थ एक निर्मल वस्तु देखी। क्या यह इन्दुरेखा है? इससे समागम कैसे हो?॥४-१४॥

यद्वामृणालंतत्सिंधौवियत्यस्यां कुतस्तु सः। इति तस्मिन्ससंदेहेनेदीयस्तंतदागतम्॥१५॥
अबोधि केतकीबर्हमिति राजीवजन्मना। तत्पर्युषितमप्युद्यत्सौरभं वस्तुशक्तितः॥१६॥
हिरण्यगर्भो विमलमगृह्णात्केतकच्छदम्। गृहीतमात्रं तेनैतत्सचैतन्यं किलाऽब्रवीत्॥१७॥

अथवा यह मृणाल है, तथापि यह तो सिन्धु में जन्म लेता है! यहां यह कैसे आया? इस प्रकार संदेह में पड़े ब्रह्मा के निकट जब वह वस्तु पहुंची, तब ब्रह्मा ने उसे केतकी जाना। इस केतकी के पहुंचने पर उससे सौरभ आने लगी। हिरण्यगर्भ ने उस केतकीच्छद को ग्रहण किया। ग्रहण करते ही वह केतकीच्छद चेतन हो गया॥१५-१७॥

केतक उवाच

भो गृह्णासि किमर्थंत्वं मुञ्च मां विश्रमोद्यतम्। वर्षाणांशतसाहस्त्रमुत्पत्यैवंविहायसा॥१८॥

तथा वह कहने लगा—हे! तुमने मुझे ग्रहण क्यों किया? मैं विश्रामार्थी हूं। मुझे छोड़ दो। मैं एक लाख वर्षों से आकाश में उड़ रहा हूं॥१८॥

नन्दीश उवाच

तथा समेधमानं तं दृष्ट्वा श्रममखिद्यत। अचिन्तयत्पद्मसूतिरत्यन्तं विहताशयः॥१९॥
अनिर्व्यूढप्रतिज्ञावान्नीचतामपि संश्रितः। आक्रान्तरोदोविवरः क्व राशिस्तेजसामसौ॥२०॥
अहमेतत्परीक्षायां क्व परिच्छिन्नपौरुषः। भज्येते इव मे पक्षौ दृशा चान्धायते इव।
प्रध्वंसन्त इवाङ्गानि पतामीवाऽहमप्यधः॥२१॥
किंवाऽन्यद्बहुनोक्तेनसहनिश्वासवायुभिः। ममप्राणाश्चनियतंनिर्गच्छन्तीवसाम्प्रतम्॥२२॥
अहङ्कारमदग्रन्थिरयं त्रुटतु चित्ततः। मुकुन्देन सह स्पर्धा सा च शीघ्रं प्रणश्यतु॥२३॥
यदेष रोदःकुहरपरिणाहाधिकोद्यमः। औन्नत्यमयतेऽद्यापि तेजःस्तम्भो यथा पुरा॥२४॥
तदस्य तेजसां राशेर्नाऽहं नारायणोऽथवा। कारणं दूरतश्चान्ये महेन्द्रप्रमुखाःसुराः॥२५॥
इतो नोत्पतितुं शक्तिरस्ति मे तन्निवर्त्तये। इति निश्चित्यमनसाविधाताजातविस्मयः॥२६॥
प्रत्यभाषत तं कस्त्वं कुतो वा प्राप्तवानिति।
स च प्रत्यब्रवीदेनं वेधसं केतकच्छदः॥२७॥
केतकच्छदएवाऽऽसंसचैतन्यःशिवाज्ञया। तेजःस्तम्भात्मनःशम्भोरस्यमूर्ध्निचिरं स्थितः॥२८॥
भूलोक इच्छया वस्तुं ततः सम्प्राप्तवानहम्॥२९॥
इत्थं श्रुत्वा केतकीबर्हवाचं लब्ध्वाऽऽश्वासं तं किलाऽम्भोजभूतिः।
ब्रूहि त्वं मे तत्कियत्यन्तरे वा तेजःस्तम्भस्याऽग्रमित्याबभाषे॥३०॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे ब्रह्मणा लिङ्गोपरिभागशोधनवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—ब्रह्मा ने केतकीच्छद को इतना थका देखा तब दुःखित हो गये। वे स्वयं भी प्रतिज्ञाभंग की हताशा तथा नीरवता को लेकर अत्यन्त चिन्तित हो गये। स्वर्ग-मर्त्य सबको आक्रान्त करने वाली तेजोराशि कहां तक है? साथ ही इस परीक्षा में परिच्छिन्न पौरुष हो गया अब मैं कहां हूं? मेरे पंख मानों भग्न हो रहे हैं। चक्षु धुंधले हो चले हैं। अंग थकान से ध्वस्त हैं। मानों मैं पृथिवी पर ही पड़ा हूं। अधिक क्या कहूं? मेरे निःश्वास वायु के साथ तो प्राणवायु बाहर निकलती जा रही है! अहंकार तथा मदग्रन्थि मेरे चित्त से छूट जाये। मुकुन्द के साथ स्पर्द्धा का मेरा भाव दूर हो जाये। यह लिंग अन्तरिक्ष तथा पृथिवी के परिमाण से भी अधिक है।

वह तो अभी भी उसी उन्नत भाव से खड़ा है। इस तेजोराशि का आदि-अन्त जान सकने में मैं तथा नारायण तथा अन्य इन्द्रादि देवता कोई भी सक्षम नहीं है। अव यहां से और ऊपर जाने की मुझमें क्षमता नहीं है। अव मैं यहीं से लौटता हूं। विस्मयापन्न विधाता ने इस प्रकार निश्चय करके कहा— "तुम कौन हो? कहां से यहां आये?" केतकीच्छद ने उनको उत्तर दिया—"मैं केतकच्छद था। शिवाज्ञा से चैतन्य हो गया। मैं तेजस्तम्भ लिंग पर दीर्घकाल था। अव स्वेच्छा से भूलोक निवासार्थ यहां तक पहुंचा।" पद्मजन्मा ने केतकीवर्ह का यह वाक्य सुनकर आश्वस्त होकर कहा "तुम जव शिवमस्तक (लिंग मस्तक) से आये हो तव और कितनी दूर जानेपर इस स्तम्भ लिंग का अग्रभाग देखा जा सकेगा, यह वतलाओ"।।१९-३०।।

।।द्वादश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

त्रयोदशोऽध्यायः

लिंग के अग्रभाग न देख पाने के कारण ब्रह्मा का असत्य साक्ष्य देने के लिए केतकीच्छद से प्रार्थना

नन्दिकेश्वर उवाच

केतकीबर्हमप्येनं विहस्य पुनरब्रवीत्॥१॥

केतक्युवाच

अपि मूढ! किञ्चित्त्वं वेत्सि कस्त्वं कुतो न तत्॥२॥

ईदृश्यः परितोलग्ना यस्मिन्ब्रह्माण्डकोटयः। तस्य प्रमाणमेतावदिति को वेदितुं क्षमः॥३॥

चतुर्युगायुतैर्यातं ततो निपततो मम। इदानीमपि नाप्नोति तन्मध्यं किल भूतलम्॥४॥

इति ब्रुवाणमेनं च नमस्कृत्य सरोजभूः। हित्वा निजमहङ्कारमभाषत कृताञ्जलिः॥५॥

ब्रह्मोवाच

महात्मन्सत्यमेवाऽस्मिमूढोऽहंकेतकच्छद!। ब्रह्मणाहिमयास्पर्द्धाविष्णुनासहनिर्मिता॥६॥

द्वाभ्यामपीदमावाभ्यां विस्मृतं शिववैभवम्। यन्नौ महानभूद्गर्वस्सर्गसन्त्राणमात्रतः॥७॥

ह्रेपणी संकथा तावदास्तामद्याऽप्यहंयतः। स्पर्द्धयान विमुक्तोऽस्मिबद्धयागरुडध्वजे।

सख्यं साप्तपदीनं हि कथ्यते तद्भवान्मयि॥८॥

केतकी के गुच्छे ने हंसकर ब्रह्मा से कहा—हे मूढ़! तुम कौन हो? तुम क्या तेजःस्तम्भलिंग के सम्वन्ध में कुछ नहीं जानते? इस लिंग के सव ओर ऐसे अनेक कोटि ब्रह्माण्ड संलग्न हैं। इनका इसी प्रकार का परिमाण है। यह कौन जान सकता है? उनके मस्तक से यहां तक आने में ४०००० युग वीत गये, तथापि अभी भी लिंग

के मध्यदेश भूतल तक नहीं पहुंच सका। केतकीच्छद के यह कहने पर पद्मयोनि ब्रह्मा ने उसे प्रणाम करके अपने अहंकार का त्याग करते हुए उससे कहा—"हे महात्मन! केतकीच्छद! वास्तव में मैं मूढ़ ही हूं। मेरा नाम ब्रह्मा है। मैंने विष्णु के साथ स्पर्द्धा किया था। हम दोनों को शिव वैभव विस्मृत हो गया। इसका कारण यह है कि हम दोनों ने सृष्टि-स्थिति के एकमात्र अधिकारी स्वयं को समझ कर महान् गर्व किया। यह लज्जा की बात है। मैंने अभी भी विष्णु की स्पर्धा से मुक्ति नहीं पाई है और अधिक कहने का प्रयोजन नहीं है। जिसके साथ सात पद चल लेते हैं, उसे सखा कहा गया है। अतः तुम मेरे सखा हो।।१-८।।

असंस्तुतधियंहित्वाकर्तुमर्हस्यनुग्रहम्। अहंविष्णुश्चमोहान्धौतेजःस्तम्भस्यवीक्षणात्।।९।।
हंसकोलाकृती दध्वो मिथःसाम्यंव्यपोहितुम्। मूलं दिदृक्षुःसदशांकीदृशींयातवानिति।।१०।।
न जाने मम चाऽस्याऽग्रं दिदृक्षोरीदृशी दशा। गतमुड्डीयमानस्य मे सहस्त्रेण हायनः।।११।।
जातश्रमोऽस्मि नितरां वियुज्य इव चाऽसुभिः।
दिष्ट्याऽद्य भद्र! लब्धस्त्वं मयाऽऽलम्बोऽवसीदताम्।।१२।।
तन्मेकुरूष्वमित्रस्यसफलांयाचनाभिमाम्। सखाऽहंसहसञ्जल्पादस्मिदासोऽनुषञ्जनात्।।१३।।
तत्त्वया करणीयैवं प्रार्थनैषा कृताञ्जलिः। यदि पश्यति मूलं स जितोऽहममुना तदा।।१४।।
यद्वा न पश्यति तदाऽप्यस्मिसाम्यमुपेयिवान्। इदंद्वयमपिप्रायो ममाऽतिह्रेपणंसखे!।।१५।।

अब तुम अपनी अप्रशंसित वृत्ति का त्याग करके मेरे प्रति अनुग्रह करो। मैं तथा विष्णु दोनों मोहान्ध हो गये। हमने श्रेष्ठत्व निर्णयार्थ तेजःस्तम्भ लिंग के मूल तथा अग्रदेश के दर्शनार्थ हंस तथा वराह आकृति धारण किया था। वराह रूप धारी विष्णु लिंग मूल का अन्वेषण करने गये थे। उनकी दशा के सम्बन्ध में मुझे कुछ ज्ञात नहीं। मैं हंसरूप धारण करके लिंग का अग्रभाग खोजने जाकर इस दशा में पहुंच गया। इस प्रकार उड़ते हुए मुझे १००० वर्ष व्यतीत हो गये। मैं मृतवत् होकर अत्यन्त थक गया। हे भद्र! अब भाग्यवश अवलम्बन रूप तुम मिल गये। अब तुम इस अभिनव मित्र की प्रार्थना सफल करो। तुम्हारे साथ आलाप करके मैं तुम्हारा सखा दास तक इस साहचर्यवशात् हो गया हूं। अब मेरी प्रार्थना स्मरण करो। मैं तुम्हारी हाथ जोड़ कर वन्दना करता हूं। यदि विष्णु ने लिंगमूल देख लिया होगा, तब उसने मुझे जीत लिया। यदि उन्होंने लिंगमूल नहीं देखा, तब भी मैं तथा विष्णु समान हो गये। हे सखा! पराजित होना अथवा बराबर होना, दोनों ही मेरे लिये लज्जाप्रद है।।९-१५।।

त्वयैवपरिहार्यत्वमिदानीं समुपागतम्। अनृतामभिभाष त्वमुचितां च सुहृत्कृते।।१६।।
गिरमेकामिमामग्रे चक्रपाणेरुदीरय। एष हंसाकृतिर्ब्रह्मा तेजःस्तम्भस्वरूपिणः।।१७।।
अत्युच्चं दृष्टवानग्रमत्र साक्ष्ये स्थितोऽस्म्यहम्।
तेनाऽपि तेजःस्तम्भत्वमेयुषा चन्द्रमौलिना।।१८।।
सम्भावितोऽयं सुतरां पित्रेवहि पितामहः। अतोऽयमेवाऽभ्यधिकोभवतोविष्टरश्रवाः।।१९।।
इत्युक्त्वा मम साहाय्यं सुमहत्क्रियतां त्वया।।२०।।

हे सखे! सम्प्रति मेरी इस लज्जा के परिहारार्थ तुम्हारे पास यह अवसर है। तुम मुझ सुहृद के लिए समुचित

मिथ्या बात चक्रपाणि नारायण से कहो कि "हंसाकृति ब्रह्मा ने तेजःस्तप्त लिंग के अत्युच्च अग्रदेश का दर्शन कर लिया। तेजःस्वरूप चन्द्रमौलि ने पिता के समान पितामह को लिंग का अग्रभाग प्रदर्शित किया है। इसलिए ब्रह्मा तुमसे श्रेष्ठ हैं।" इस प्रकार से कहकर तुम मेरा माहात्म्य स्थापित करो।।१६-२०।।

नन्दिकेश्वर उवाच

एवं भूयः प्रार्थितोऽयं विधात्रा दाक्षिण्यार्द्रः केतकीबर्हकोऽपि।
तेजःस्तम्भाभ्यर्णभाजे तथैव प्राहाऽशेषं विष्णवे ब्रह्मवाक्यम्॥२१॥

।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे ब्रह्मणाऽसत्यसाक्ष्यार्थं केतकच्छदप्रार्थनावर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः।।१३।।

—❀—

नन्दिकेश्वर कहते हैं—ब्रह्मा द्वारा पुनः-पुनः यह प्रार्थना किये जानेपर केतकी ने भी तेजस्तम्भान्तिकस्थ विष्णु से यही ब्रह्मा द्वारा कहा वाक्य कह दिया।।२१।।

।।त्रयोदश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

चतुर्दशोऽध्यायः

ज्योतिलिंग में शंकर प्रादुर्भाव वर्णन

नन्दिकेश्वर उवाच

सोऽपि ब्रह्माणमुद्वीक्ष्यतावताद्विगुणंस्मयन्। नाग्रं दृष्टमनेनेति निश्चिकायविवेकवान्॥१॥
अनुग्रहीतुं मां मुग्धं हन्तुं चाऽस्य विधेर्मदम्। देवदेवः स एवाऽलं भूतभर्तेत्यमन्यत॥२॥
मूलसन्दर्शनाशक्त्यातेजःस्तम्भस्यमे मदः। व्यपेत एव मन्येऽद्ययद्भक्तिस्त्र्यम्बकेऽजनि॥३॥
स्तूयते वीतगर्वत्वात्स इदानीं महेश्वरः। यस्यदक्षिणवामाभ्यामङ्गाभ्यां नौ समुद्भवौ॥४॥
अद्याप्यवीतगर्वत्वाल्लब्ध्वाऽसौकूटसाक्षिणम्। हिरण्यगर्भोमामेवमतिसन्धातुमिच्छति॥५॥
तदद्य सकलस्याऽपि दुःखस्याऽपनये क्षमः। स एव शरणत्वेन प्राप्तव्यः शङ्करो मया॥६॥
तथा कृतापराधस्य कृतघ्नस्य गुरुद्रुहः। तमृते रक्षिता कोऽन्यस्तमेव स्तौमिशङ्करम्॥७॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—विवेकवान विष्णु ने ब्रह्मा को देखकर द्विगुण गर्व से यह तय किया कि "ये अग्रभाग का दर्शन नहीं कर पाये हैं। मुझ पर अनुग्रह करके तथा विधि (ब्रह्मा) का मद खण्डन करने के लिए भूतभर्त्ता देवदेव ही समर्थ हैं। उनका मूलदेश दर्शन न कर पाने के कारण मेरी मत्तता खण्डित हो गई तथा भगवान् त्र्यम्बक के प्रति मेरी भक्ति हो गई। मैं गर्व छोड़ कर अब महेश्वर का स्तव करता हूं। महेश्वर के दक्षिण तथा वाम अंग

से हम दोनों का उद्भव हुआ है। अब गर्व के कारण झूठी गवाही से हिरण्यगर्भ मुझे विड़म्बित कर रहे हैं। अब मैं सभी दुःखों का नाश करने में सक्षम हो गया। ये शंकर ही मेरे शरणरूप हों, यही उचित है। मैं अपराधी, कृतघ्न तथा गुरुद्रोही हूं। उनके अतिरिक्त कौन मेरा रक्षक है? अतएव मैं उनका स्तव करता हूं''।।१-७।।

विष्णुरुवाच

जय पृथ्वीमयाकार जय चापोमयाकृते!। जय प्रभाकराकार जयामृतकराकृते।।८।।
जय वैश्वानराकार जय गन्धवहाकृते। जय होतृमयाकार जयाकाशमयाकृते।।९।।
रक्ष मां त्रिगुणातीत रक्ष मां कालविग्रह!। रक्ष मामक्षयैश्वर्य रक्ष मां करुणाकर।।१०।।
स्त्रष्टा त्वं सर्वजगतांरक्षितासर्वदेहिनाम्। हर्ता च सर्वभूतानांत्वांविनैवास्तिकोऽपरः।।११।।
अणूनामप्यणीयांस्त्वं महांस्त्वं महतामपि। अन्तर्बहिस्त्वमेवैतज्जगदाक्रम्य वर्तसे।।१२।।
निगमास्तव निःश्वासा विश्वं ते शिल्पवैभवम्।
स त्वं त्वदीय एवाऽसि ज्ञानमात्मा तव प्रभो!।।१३।।
अमरा दानवा दैत्याः सिद्धा विद्याधरा नराः।
प्राणिनः पक्षिणः शैलाः शिखिनोऽपि त्वमेव हि।।१४।।

विष्णु कहते हैं—हे पृथिवीमय आकार, आपकी जय हो।हे प्रभाकराकार, अमृत कराकृते! आपकी जय हो, हे वैश्वानराकार! गन्धवहाकृते! आपकी जय हो। हे होतृमयाकार! हे आकाशमयाकृते! आपकी जय हो। हे त्रिगुणातीत कामविग्रह! मेरी रक्षा करें। आपके अतिरिक्त इस जगत् का स्त्रष्टा, रक्षाकर्त्ता, हर्त्ता अन्य कौन है? आप ही अणु से भी अणु तथा महत् से भी महान् हैं। आप ज़गत् के अन्दर, बाहर स्थित हैं तथा आपने जगत् को व्याप्त कर रक्खा है। समस्त निगम आपके निःश्वासरूप हैं। विश्व आपके शिल्प का वैभवरूप है। हे प्रभो! आप अपने से ही उत्पन्न हैं तथा समस्त ज्ञान तथा आत्मा आपका ही है। देवता, दानव, दैत्य, सिद्ध, विद्याधर, नर, प्राणी, पक्षी, शैल तथा शिखी—यह सब आप ही हैं।।८-१४।।

स्वर्गस्त्वमपवर्गस्त्वंत्वमोङ्कारस्त्वमध्वरः। त्वं योगस्त्वंपरासम्वित्किंत्वंनभवसीश्वर।।१५।।
त्वमादिर्मध्यमन्तश्च तस्थुषां जगमुषामपि। कालस्वरूपतांप्राप्यकलयस्यखिलं जगत्।।१६।।
परेशः परतः शास्ता सर्वानुग्राहकः शिवः। स एष मे कथङ्कारं साक्षाद्भवति धूर्जटिः।।१७।।
यं दृष्ट्वा शरणं प्राप्तो निःश्रेयसमवाप्नुयात्। अथवास्तौमि तद्धामजातमात्रंयथामति।।१८।।
तच्छ्रुत्वैष कृपां कुर्यादवश्यं सर्वतःश्रुतिः। इति निश्चित्य वैकुण्ठः स्तोतुं समुपचक्रमे।।१९।।
तमेव तैजसं स्तम्भं प्रणम्य परमेश्वरम्। आदिमध्यान्तरहितं मत्वा त्वं जगदीश्वरम्।
हठात्तेन विरञ्चेन वार्यमाणोऽपि सस्मितम्।।२०।।

आप ही स्वर्ग, अपवर्ग, ओंकार, यज्ञ, योग, परासंवित् हैं। आप क्या नहीं हैं? आप स्थावर-जंगम सबके आदि-मध्य तथा अन्त हैं। आप ही कालरूप होकर समस्त जगत् का कलन करते हैं। आप ही परेश, पर, शास्ता, सर्वानुग्राहक तथा शिव हैं। मैं किस प्रकार आपका साक्षात् लाभ कर सकूंगा? आपका दर्शन करके प्राणियों के

शरणरूप आपको प्राप्त होकर मुक्तिलाभ करूंगा। मैंने यथामति आपके तेज का स्तव किया। इसे श्रवण करके आप मुझ पर अवश्य दया करेंगे। ऐसा ही सर्वत्र सुना गया है।''

विष्णु इस प्रकार निश्चय करके विस्मित ब्रह्मा से अतार्किक भाव से निवारित होकर उन आदि-मध्य-अन्त रहित परमेश्वर तेजस्तम्भ शिव को प्रणाम करके स्तव करने का उपक्रम करने लगे।।१५-२०।।

श्रीविष्णुरुवाच

जय देव महादेव वामदेव वृषध्वज। कालान्तक क्रतुध्वंसिन्नीलकण्ठेन्दुशेखर।।२१।।
जय शम्भो शिवेशान शर्व त्र्यम्बकधूर्जटे। स्मरवैरिन्पुरारातेस्थाणो भव महेश्वर।।२२।।
जयेश खण्डपरशो शूलिन्पशुपते हर। सर्वज्ञ भर्ग भूतेश कपालिन्नीललोहित।।२३।।
जय रुद्र मखारातेपिनाकिन्प्रमथाधिप। गङ्गाधर व्योमकेश गिरीश परमेश्वर।।२४।।
जय भीम मृगव्याध कृत्तिवासः कृपानिधे। कृशानुरेतः कैलासे नित्यमेव हि वर्तसे।।२५।।
त्वदाज्ञया मरुद्वाति फणी वहति भूभरम्। दीप्यतः सूर्यशशिनौ ब्रह्माण्डं प्लवतेऽम्बुधौ।।२६।।
ज्योतींषि सञ्चरन्तेखे सर्वंत्वच्छासनात्प्रभो। अहं ब्रह्माच जगतांसर्गसन्त्राणयोरलम्।।२७।।

विष्णु कहते हैं—हे देव, महादेव, वामदेव, वृषध्वज, कालान्तक, दक्षयज्ञध्वंसिन, नीलकण्ठ, इन्दुशेखर! आपकी जय हो। हे शम्भु! शिव, ईशान, त्र्यम्बक, धूर्जटि, स्मरवैरी, पुराराते, स्थाणु, भव, महेश्वर, आपकी जय हो! हे ईश! खण्डपरशु, शूलिन्, पशुपते, हर, सर्वज्ञ, भर्ग, भूतेश, कपालि, नीललोहित, आपकी जय हो! हे रुद्र, मखारात, पिनाकि, प्रमथाधिप, गंगाधर, व्योमकेश, गिरीश, परमेश्वर, भीम, मगृव्याध, कृत्तिवास, कृपानिधि! आप कैलास पर नित्य विद्यमान रहते हैं। आपकी आज्ञा से ही वायु बहती है। सूर्य-चन्द्र आपकी आज्ञा से आलोक वितरण करते हैं। आपकी आज्ञा से सागरगण ब्रह्माण्ड प्लावित करते हैं। आपकी आज्ञा से ज्योतिर्मय ग्रह-नक्षत्रादि आकाश में विचरते हैं। हे प्रभो! यह सब आपके ही शासन से होता है। मैं तथा ब्रह्मा आपकी आज्ञा से जगत्पालन तथा जगत् सृष्टिकार्य करते हैं।।२१-२७।।

विधाय कल्पसे पुष्ट्यैसूतेसस्यानिमेदिनी। नाक्रामन्त्यब्धयःसीमांयच्चत्वन्महिरेवसः।।२८।।
अणिमादिमहासिद्धिनिःसाधारणवैभवः। कथं त्वाममरैरन्यैरुपेक्षे समभिष्टुतम्।।२९।।
विशुक्त्वे विस्मरामस्त्वां स्मरामः सङ्कटेऽपि च।
न रोषो जातु भक्तेषु प्रसादः सर्वदैव ते।।३०।।
यदाविधित्सेर्भक्तिंत्वंयदाचप्रावृणोषिताम्। मोहबोधौ तदापुंसांकल्पेतेबन्धमोक्षयोः।।३१।।
इति स्तुतस्साञ्जलिबद्धपाणिना पतिः पशूनामथ चक्रपाणिना।
कृतापहासे च सरोजसम्भवे मदोद्धते प्रादुरभूद्दयानिधिः।।३२।।

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्ये उत्तरार्धे शङ्करप्रादुर्भाववर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः।।१४।।

आपने जगत् की सृष्टि हेतु पृथिवी का सृजन किया है। यह पृथिवी समस्त शस्य उत्पन्न करती है। समुद्र सीमोल्लंघन नहीं करते। क्योंकि समुद्र तथा भूमि आपका ही स्वरूप है। अणिमादि सिद्धियां आपका ही असाधारण वैभव हैं। कैसे मैं आपकी उपेक्षा कर सकता हूं? हम शोकरहित अवस्था में आपको विस्मृत कर गये। जब संकट पड़ा, तब आपकी याद आई, तथापि आप अपने भक्त पर रोष नहीं करते, तथापि आपकी कृपा सदा विद्यमान है। जब आप प्राणी के लिए भक्ति का विधान अथवा आवरण करते हैं, तब वही आवरण मोहबोध तथा बन्धरूप है और भक्ति विधान मोक्षरूप है।'' अंजलिबद्ध होकर चक्रपाणि ने जब यह स्तुति किया, तब महेश्वर उपहास पूर्वक मदोद्धत ब्रह्मा के समक्ष प्रादुर्भूत हो गये।।२८-३२।।

।।चतुर्दश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

पञ्चदशोऽध्यायः

शिव द्वारा ब्रह्मा के प्रति रोष प्रकट करना, विष्णु के प्रति प्रेम सम्मान प्रकट करना, ब्रह्मा द्वारा शिव को प्रसन्न करने हेतु उद्यम

नन्दिकेश्वर उवाच

तेजःस्तम्भं विनिर्भिद्यसन्ध्याभ्रमिवचन्द्रमाः। कैलासकूटधवलं वृषेन्द्रमधितस्थिवान्।।१।।
जटाजूटवता बालचन्द्रचूडेन मौलिना। कपालमालिकां वैधीं स्रजं चारग्वधीं दधत्।।२।।
नागकुण्डलिभिः फालफलकोद्भासिलोचनैः। पञ्चभिर्वदनैर्दीप्तैः क्ष्वेडकल्माषकन्धरैः।।३।।
शूलं कपालं डमरुं सारङ्गं परशुं धनुः। खट्वाङ्गममलं खड्गं दोर्भिर्नागञ्च धारयन्।।४।।
श्वसितोद्धूलिताकारो गजचर्मोत्तरीयवान्। सर्वालङ्कारसम्पन्नः सर्वदेवैरभिष्टुतः।।५।।
परिधानीकृतव्याघ्रचर्मा ताभ्यामदर्शि सः। रूपं दृष्ट्वा स आनन्दं ननर्त्त नलिनेक्षणः।।६।।
न किञ्चिदपि जानानो मुमोह च सरोजभूः।।७।।

नन्दिकेश्वर कहते हैं—विष्णु तथा ब्रह्मा, दोनों ने शंकर का दर्शन किया। जैसे चन्द्रमा सन्ध्याभ्र का भेदन करके उदित होता है, वैसे ही भगवान् शंकर भी तेजस्तम्भमय लिंग का भेदन करके निकले। वे कैलासकूटवत् धवल वृषराज पर बैठे थे। उनकी मौलि में जटाजूट तथा बालचन्द्र शोभित था। उन्होने कपाल माला विशिष्ट वैधी आरग्वधी माला धारण किया था। नागकुण्डल तथा फालफलक से उद्भासित नेत्र शोभायमान थे। उनके कन्धों पर क्ष्वेड तथा कल्माष संरक्षित था। शूल, कृपाण, डमरु, सारंग, परशु, धनुष, खट्वांग तथा अमल खड्ग उनके आठों हाथों में स्थित थे। वे श्वसित धूलिताकार गजचर्म के उत्तरीय से शोभित थे। वे सर्वालंकार सम्पन्न तथा देवगण

द्वारा अभिष्ठुत (स्तुत) थे। उनका परिधान था व्याघ्रचर्म। भगवान् महेश्वर का यह अपरूप रूप देखकर (विष्णु) के नलिन नेत्र आनन्द से नृत्य करने लगे तथापि पद्मयोनि यह सब कुछ भी नहीं जान सके तथा मुग्धावस्था में कालयापन कर रहे थे।।१-७।।

दृशाऽभिनन्द्य माधवं प्रसन्नया महेश्वरः। अथोदतिष्ठिपच्च तं सहुङ्क्रियश्चतुर्मुखम्॥८॥
जगाद चाधिकारितामदाद्युवांसमुद्धतौ। न लज्जितव्यमत्रवामयं क्रमोऽधिकारिणाम्॥९॥

महेश्वर ने प्रसन्नता के साथ नयनों के संकेत से माधव को अभिनन्दित किया तथा ब्रह्मा को हुंकार के साथ उठाकर उनसे कहा—"तुम दोनों अधिकार के मद में उद्धत हो गये थे। तुमको इससे लज्जा नहीं है? क्या यही अधिकारी का कर्त्तव्य है"?।।८-९।।

परीक्ष्य वैभवं मम प्रबोधवानभूद्धरिः। अयं न जातु पद्मभूश्छलन्मनो दुरात्मवान्॥१०॥
अशासि पञ्चवक्त्रता यदोपहासितो ह्यहम्। पुनःस्वपुत्रिकारतिर्मयैष शिक्षितोऽभवत्॥११॥
तृतीय एष मन्तुरप्यहो कथं नु सह्यते। तदस्य तु प्रतिष्ठया क्वचिन्न भूयतां विधेः॥१२॥
अयं च केतकच्छदो यदाप कूटसाक्षितम्। अतःपरंनजातुतन्ममैतु मूर्ध्नि संस्थितिम्॥१३॥
शप्त्वैवमेतौ गिरिशः प्रीत्या विष्णुमभाषत॥१४॥

श्रीमहेश्वर उवाच

वत्स! मा भैः प्रसन्नोऽस्मि भवते भक्तिशालिने।
ननु त्वमङ्गान्मे जातस्सात्त्विकोऽसि विशेषतः।
माहेश्वराग्रगण्योऽसि जगत्यां हि यथा पुरा॥१५॥

हरि मेरा वैभव देखकर प्रबोधित हो गये तथापि तुम दुरात्मा पद्मजन्मा अभी भी प्रबोधित नहीं हो। यह ब्रह्मा मेरे पञ्चवक्त्रता (पंचमुखता) का उपहास करता है। अपनी पुत्री से ही रति का कार्य इसका अन्यतम अपराध है। तब भी मैंने इसे सदुपदेश दिया था। अब यह इसका तृतीय अपराध है। अहो! इसे कैसे सहन किया जाये। इस अपराध के कारण इस ब्रह्मा की कहीं प्रतिष्ठा नहीं होगी। इस केतकीच्छद ने झूठा साक्ष्य दिया। अतः यह पुष्प कभी मेरे मस्तक पर स्थान नहीं पायेगा।" इस प्रकार प्रभु शंकर ने केतकीच्छद तथा ब्रह्मा को शाप देकर प्रेमपूर्वक विष्णु से कहा—"हे वत्स! तुम भक्तिमान् हो। तुमको भय नहीं है। मैं तुम्हारे प्रति प्रसन्न हूं। तुम्हारा जन्म मेरे अंग से हुआ है तथा तुम विशेष सात्विक हो। अतः तुम जैसे पहले थे, तदनुरूप शिवभक्तों में अग्रगण्य होगे"।।१०-१५।।

न तवाऽतः परं जातु भक्तिहानिर्भवेन्मयि। प्रतिक्षणं वर्द्धमाना कल्पते च विमुक्तये॥१६॥
इत्यनुग्रहकृतं त्रिलोचनं भक्तिभाजि निरहङ्क्रिये हरौ।
भीतिमानवनतः स्वयं विधिः स्तोतुमारभत क्लृप्तवन्दनः॥१७॥

"मेरे प्रति तुम्हारी भक्ति कम नहीं होगी, वह प्रतिक्षण बढ़ती रहेगी तथा तुम्हारी मुक्ति का पथ स्वच्छ करेगी।" भगवान् त्रिलोचन ने अहंकार रहित हरि के प्रति ऐसा अनुग्रह किया। तब ब्रह्मा भयभीत चित्त से अवनत मस्तक होकर स्वरचित भाषा में भगवान् त्रिलोचन की स्तुति करने लगे।।१६-१७।।

।।पञ्चदश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

षोडशोऽध्यायः

ब्रह्माकृत शिव स्तव, ब्रह्मा-विष्णु को वर प्राप्ति, शिवाज्ञा से अरुणाचलेश मन्दिर निर्माण

ब्रह्मोवाच

देवदेव तवैश्वर्यं केन शक्येत वेदितुम्। विना भाग्यैक्यसुलभं भवदीयमनुग्रहम्।।१।।
अकर्तृकाणि वाक्यानि ऐस्वर्यन्ते निरत्ययम्। नस्तोतुंशक्यतेकिन्तुनमस्कुर्वन्तिदूरतः।।२।।
को विष्णुः कोऽहमेते वा दिक्पाला वासवादयः। त्वमेव देव कर्त्ताऽसि जगत्सृजनरक्षयोः।।३।।
पतिस्त्वं पावतीनाथपशवोवयमप्यमी। बद्धुंपाशेन मोक्तुम्वात्वमेवास्मान्प्रगल्भसे।।४।।
षड्विंशत्तत्त्वरूपस्त्वमभितश्चाभिवर्त्तसे। कोविदःको विनिर्णेतुंतवयाथात्म्यमीश्वरः।।५।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे देवदेव! भाग्य से सुलभ आपकी कृपा के बिना कौन आपकी महिमा जान सकता है? आपका निरत्यय ऐश्वर्य वाक्य से नहीं कहा जा सकता। तभी मानव आपका स्तव करने में असमर्थ होकर दूर से नमस्कार कर देते हैं। इस सृष्टि के पालनार्थ तथा रक्षणार्थ मैं कौन होता हूं, विष्णु कौन होते हैं? अथवा इन्द्रादि दिक्पाल कौन होते हैं? एकमात्र आप ही जगत् के सृजन-पालन को करने वाले हैं। हे पार्वतीनाथ! हम पशु हैं, आप हमारे पति हैं। आप ही हमको पाशबद्ध कर सकने में समर्थ हैं तथा आप ही मुक्त करने में सक्षम हैं। आप ही २६ तत्वरूप से सर्वत्र विराजित हैं। कौन पण्डित आपको यथार्थतः जान सकता है"।।१-५।।

किरातः किल देवस्त्वंसारमेयैःकिलागमैः। षड्वर्गहिंस्त्रान्संहर्तुंकरोष्याखेटकौतुकम्।।६।।
देव दक्षाध्वरे पूर्वं वीरभद्रस्त्वदाज्ञया। कां कां शिक्षामकार्षीन्नइतिकाऽपि विडम्बना।।७।।
तव कालाग्निरूपस्य सर्वब्रह्माण्डदाहिनः। पोषणात्पुष्पचापस्य प्रायो जिह्वेति शेमुषी।।८।।
कृतापराधः शूलेन त्वयादीर्णोजलन्धरः। अन्तकोऽन्धकदैत्यश्च प्रतिवीरश्चकोऽस्तिते।।९।।
आधारयिष्यत्कण्ठेन कालकूटं न चेद्भवान्। कतंच धारयिष्यामोवयंसर्वेऽपिजीवितम्।।१०।।
देवदारुवने पूर्वं मुनीन्केवलकर्मठान्। प्रक्षोभ्य धूर्तवेषस्त्वं दययाऽन्वग्रहीस्तथा।।११।।

काम-क्रोध आदि षड्वर्ग रूप हिंस्र जन्तुओं का संहार करने के लिए आप आगम रूपी किरात रूप

(व्याधरूप) से मृगया कौतुक सम्पन्न करते हैं। हे देव! दक्षयज्ञ विध्वंस काल में वीरभद्र ने आपके किस आदेश का पालन नहीं किया था, तथापि वह सब विडम्बना मात्र ही था। क्योंकि आपने कालाग्नि रूप से समस्त ब्रह्माण्ड दहन काल में उसकी रक्षा न करके पुष्पधन्वा की रक्षा किया था (कामदेव की रक्षा किया था)। आपने अपराधी जलन्धर का शूल से वध किया था तथा अन्धकासुर का भी विनाश किया था। आपका प्रतियोद्धा (आपका विपक्षी योद्धा) कौन है? यदि आप कण्ठ में कालकूट धारण न करते, तब हमसब किस प्रकार से बचते? आपने पूर्वकाल में पहले धूर्त्तवेश धारण करके देवदारु वन स्थित कर्मठ मुनियों को क्षुब्ध किया था, तदनन्तर कृपापरवश होकर उन पर अनुग्रह भी किया।।६-११।

अङ्घ्रिणाक्रान्तवान्नो चेदत्युग्रां त्वमपस्मृतिम्। तयाक्रान्तमिदं कृत्स्नमन्धकारायते जगत्॥१२॥
अर्धनारीश्वरं रूपं त्वया चेन्न प्रकाशितम्। प्रभवामि कथं स्रष्टुं जगदेतच्चराचरम्॥१३॥
भवता स्तम्भितःशम्भोसंरम्भाज्जम्भजिद्भुजः। कियन्तंहन्तकालन्तेजयस्तम्भइवस्थितः॥१४॥

यदि आप अपने पैर से आक्रमण न करते, तब यह समस्त जगत् अन्धकारपूर्ण हो जाता। यदि आप अपने अर्द्धनारीश्वर रूप को प्रकट न करते, तब इस चराचर जगत् की मेरे द्वारा सृष्टि कैसे हो पाती? हे शम्भु! आप क्रोध के साथ जम्भजित का हाथ स्तम्भित करें। हा हन्त! कितने काल तक वह जयस्तम्भ के समान स्थित था!।।१२-१४।।

भिक्षोः कपालमापूर्य रुधिरेणाऽऽत्मनो हरिः। शूलेनोक्षिप्य मुमुहे ह्येतत्त्वमवधारय॥१५॥
न चेदशिक्षयः सर्वशस्त्रास्त्राण्यनुकम्पया। निर्वापयेत्कथं वैरं क्रुद्धोऽपि जमदग्निभूः॥१६॥
नृहरिं शरभाकारः समहार्षीन्न चेद्भवान्। स एव संहरेद्विश्वं हिरण्यकशिपोरपि॥१७॥

किसी समय हरि ने अपना रक्त एक भिक्षुक के कपाल पात्र में भर दिया था। आपने शूल द्वारा उसका उत्क्षेपण किया। इससे उनको मोहप्राप्त हो गया। यदि आप कृपा परवश होकर परशुराम को सभी अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा प्रदान नहीं करते, तब वे क्रोधित होकर किस प्रकार से वैर का बदला ले पाते! यदि आप शरभ का रूप धारण करके नृसिंह का संहार न करते, तब वे हिरण्यकशिपु का संहार करके समस्त विश्व का ही हनन कर देते।।१५-१७।।

त्वमाचकृक्षःकल्पाब्धौ कैवर्त्तोमत्स्यकच्छपौ। हरिं बद्धाऽहिराट्सूत्रैर्नसिंहमथसूकरम्॥१८॥
एकोने पद्मसाहस्त्रे स्वनेत्रेण कृतार्चनम्। शूलिन्सुदर्शनं दत्त्वा दैत्यद्विषमतू तुषः॥१९।

आपने कल्प जल में (कल्प के प्रारम्भ में जब सब जलमग्न था) केवट बनकर मत्स्य तथा कच्छप का आकर्षण किया तथा नृसिंह-वराह प्रभृति रूपधारी ९९९ स्वनेत्र स्वरूप पद्मों से आपका अर्चन करने वाले हरि को सर्पराज सूत्र से बांधा तथा उनको आपने सुदर्शन चक्र प्रदान करके देवगण को सन्तुष्ट किया।।१८-१९।।

नन्दिकेश्वर उवाच

स्तुत्यैवमस्य विष्णोश्च प्रार्थनेन प्रसेदिवान्। धूर्जटिःसृष्टिकर्तृत्वंपुनरस्याऽभ्यमन्यत॥२०॥
समज्यासु द्विजानांच पूजनं चाऽनुशिष्टवान्। उभावप्यब्रवीदेतौवात्सल्याच्चन्द्रशेखरः॥२१॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—धूर्जटि शिव ने इस प्रकार ब्रह्मा तथा विष्णु की प्रार्थना से सन्तुष्ट होकर उनको पुनः

सृष्टि का कार्य करने तथा द्विजसभा में पूजा प्राप्ति का आदेश प्रदान किया। चन्द्रशेखर ने वात्सल्य के कारण ब्रह्मा-विष्णु को आदेश देते हुए कहा।।२०-२१।।

श्रीशिव उवाच

वत्सौ युवां न ज्ञात्वैवं भूयो भवतमुद्धतौ। गुरुं स्मरन्तौमामेव जाग्रतं सृष्टिरक्षयोः।।२२।।
इह प्रदेशे युवयोर्यन्मयाऽनुग्रहः कृतः। पुण्यक्षेत्रमिदं पुंसां ततो मोक्षाय कल्पताम्।।२३।।
योजनत्रयमात्रेऽस्मिन्क्षेत्रेनिवसतांनृणाम्। दीक्षादिकंविनाप्यस्तुमत्सायुज्यंममाज्ञया।।२४।।

शिव कहते हैं—"हे वत्सद्वय! तुमने अनजाने में औद्धत्य प्रकट किया था। अब मुझे गुरुरूपेण जानकर पुनः ब्रह्मा सृष्टिकार्य तथा विष्णु रक्षाकार्य करें। इस स्थान में मैंने तुमलोगों पर अनुग्रह किया है। अतएव यह स्थान मनुष्यों के लिए मुक्तिप्रद तथा पुण्यक्षेत्र रूप में प्रसिद्ध होगा। इस तीर्थक्षेत्र में ३ योजन पर्यन्त जो मनुष्य निवास करेंगे, वे मेरे आदेश से दीक्षा आदि न होनेपर भी मेरा सायुज्य प्राप्त करेंगे।।२२-२४।।

यद्वा तिरस्चामप्यत्र स्थावराणां च देहिनाम्। अबुद्धिपूर्विकाबुद्धिरपवर्गस्यजायताम्।।२५।।
नृणां च दर्शनाद्दूरे कैवल्यं स्मरणेन वा। अस्तु वेदान्तविज्ञानं नसाध्यंनिष्प्रयासतः।।२६।।

यहां रहने वाले तिर्यक् योनिवालों, स्थावर तथा सभी देहधारीगण में अपवर्गप्रदा बुद्धि का उदय होगा। दूर से ही इस स्थान के दर्शन से अथवा स्मरण मात्र से मनुष्य को कैवल्य लाभ होगा तथा अनायास उसे असाध्य वेदान्त विज्ञानलाभ भी होगा।।२५-२६।।

शुभाय तैजसीमूर्तिःस्थावराममशाश्वती। अरुणाद्रिरितिख्यातानित्यमेवाऽत्रवर्त्तताम्।।२७।।
युगात्थयेऽपि नैनं तु मज्जयेयुर्महाब्धयः। न चालयेयुर्मरुतो न दहेयुश्च वह्नयः।।२८।।
ज्योतिर्मयमिदं लिङ्गं ज्योतिःष्वपि न जातुचित्।
क्रमन्तां निर्गमागत्या खेचराणि समन्ततः।।२९।।
यस्यानुग्रहमिच्छामिजन्तोस्तस्याऽत्रसम्भवः। देहान्तेकल्पतांमुक्त्यैविनौपनिषदीगिरः।।३०।।
एष दुरात्प्रणामेन निकर्षाच्च प्रदक्षिणात्। अपि पापात्मनां पुंसामस्तुनिश्रेयसप्रदः।।३१।।

यह स्थान मेरी इस तैजस स्थावर शाश्वत मूर्त्ति स्वरूप अरुणाचल नाम से प्रख्यात होगा। यह महापर्वत युगक्षय काल में भी नष्ट नहीं होगा। उस समय का प्रचण्ड मरुत् भी इसे हिला नहीं सकेगा। प्रलयाग्नि इसे जला नहीं सकेगा। यहां का लिङ्ग ज्योतिर्मय है। समस्त ज्योतिर्मय पदार्थों में ऐसी ज्योति नहीं है। आकाशचारीगण इसके चतुर्दिक् स्थित रहेंगे तथा आवागमन करते रहेंगे। मैं जिस पर अनुग्रह की इच्छा करता हूं, उसी का यहां जन्म होता है। देहान्त काल में उसे उपनिषत् वाक्यों के बिना ही मुक्ति मिल जाती है। इस लिंग को दूर से ही प्रणाम करने से अथवा निकट आकर प्रदक्षिणा करने से पापात्माओं को भी मुक्ति मिल जाती है।।२७-३१।।

अत्रै वनियतंवासाः सम्भवन्तिमहात्मनाम्। तस्मात्स्थलमिदंहित्वानगन्तव्यंकदाचन।।३२।।
शोणाचलमनादृत्य क्वचित्स्थित्वाऽपिमुक्तये। तस्माद्युवांविधिहरीवसतंचात्रनित्यशः।।३३।।

महात्मा व्यक्ति ही यहां नित्य निवास करते हैं। इसलिये इस स्थान का त्याग करके अन्यत्र निवास करना

कदापि कर्त्तव्य नहीं है। शोणाचल का त्याग करके मुक्ति हेतु अन्यत्र जाना व्यर्थ है। अतः हे ब्रह्मा तथा विष्णु! तुम दोनों सदा यहीं निवास करो।।३२-३३।।

नन्दिकेश्वर उवाच

इत्युक्तवन्तं कामारिं प्रणम्य विधिमाधवौ। तौ व्यज्ञापयतां देवं दूरीभवदहङ्क्रियौ।।३४।।

विधिमाधवावूचतुः

एवमेतज्जगदाधार जगदाधारतांगतः। आस्तां गिरिरसौ किं तु तेजोह्यस्यसुदुस्सहम्।।३५।।
अतोऽयमुत्तमो रुद्र तेजः सामान्यशैलवत्। तिष्ठत्वभेद्यमहिमा निश्रेयसमहाखनिः।।३६।।
विवृणोति निजं ज्योतिर्विश्वस्याऽस्य समृद्धये। प्रत्यब्दं कार्त्तिके मासि कृत्तिकासु दिनात्यये।।३७।।
शर्मदोऽपिनृणांदेवशोणाद्रिस्तवशासनात्। महत्त्वादर्चितुंशक्योनस्याद्भक्तस्यकस्यचित्।।३८।।
एतस्योपत्यकायां तदद्यारभ्यास्मदर्थनात्। देवेन सन्निधातव्यमवन्यां लिङ्गरूपिणा।।३९।।

नन्दिकेश्वर कहते हैं—कामारि शंभु के यह कहने पर ब्रह्मा तथा माधव गर्वरहित होकर कहने लगे।

ब्रह्मा तथा विष्णु कहते हैं—"हे जगदाधार! आपने इस महाक्षेत्र के सम्बन्ध में जो कुछ कहा, वह उसी प्रकार से है। यह पर्वत जगत् का आधार स्वरूप है। यह इसी प्रकार विराजित रहे, परन्तु इसका तेज दुःसह है। हे रुद्र! इसलिए इसका तेज सामान्य पर्वत ऐसा हो। इसकी अभेद्य महिमा है तथा यह मुक्ति की खान है। यह पर्वत विश्व-समृद्धि के लिए अपनी ज्योति का विस्तार करता है। प्रतिवर्ष कार्त्तिकमासीय कृत्तिका नक्षत्र के दिन शोणपर्वत् आपके आदेश से मनुष्यों के लिए सुखप्रद हो जाये। कोई भी भक्त अत्यन्त महान् होने के कारण इस पर्वत की अर्चना में समर्थ नहीं हो पायेगा, अतएव इसकी उपत्यका भूमि में हमारी प्रार्थना से लिंगरूपी देव यहां विराजमान हैं।।३४-३९।।

तच्चारुणगिरीशानमावामाराधयावहे। अभिषेकानुलेपाद्यैरुपचारैर्यथाविधि।।४०।।
सन्त्यत्र केशराश्चूता नागपुन्नागकेसराः। आरग्वधाः कुरबका मालूराः पाटला अपि।।४१।।
अत्रैव सन्निधातव्यं देवदेव दयानिधे। यतस्त्वद्भक्तिदार्ढ्यं नौ भवतात्त्वदुपासनात्।।४२।।
नान्यथा चित्तशुद्धिर्नौ देवेऽप्येवं प्रसेदुषि। अनाद्यविद्यावृतये यो भविष्यतिनित्यशः।।४३।।
शोणाद्रेः पूर्वदिग्भागे स एष भृशमुन्नतः। स एवाऽलं निवासाय देवस्य हृदयङ्गमः।।४४।।
साङ्गवेदा धर्मशास्त्रं पुराणानि शिवागमाः। कृत्वाच सकलाःप्रोक्ताभवतैवभवावयोः।।४५।।

इन अरुणाचलेश्वर की हम दोनों अभिषेक-उपलेपनादि से यथाविधि आराधना सम्पन्न करेंगे। यहां पर केशर, आम्र, नाग, पुन्नाग, आरग्वध, कुरबक, मालूर तथा पाटल आदि पुष्पवृक्ष हैं। देवदेव दयानिधि यहां सन्निहित रहते हैं। हम यहीं सर्वेश्ववर शिव की उपासना करके उनकी भक्तिप्रगाढ़ता का अर्जन करेंगे। इसके विपरीत करने पर भगवान् शंकर हमारा चित्त शुद्ध नहीं करेंगे। अनादि अविद्या वृत्ति के शमनार्थ जो व्यक्ति नित्य शोणगिरि के पूर्वभाग में रहेगा, वह अतीव उन्नतिशाली होगा। ऐसे ही व्यक्ति को भगवान् यहां निवासार्थ मनोनीत करते हैं। हे भव! हम दोनों के ही लिये आपने अंग सहित वेद, धर्मशास्त्र, पुराण तथा सभी शिवागम का प्रणयन करके हमसे कहा है।।४०-४५।।

निःश्रेयसाय भक्तानांत्वयैव गुरुरूपिणा। अष्टाविंशतिराख्यातआगमाःशैवसञ्ज्ञिताः॥४६॥
तेषुकस्य प्रकारेणकुर्वाणौत्वदुपासनाम्। कदाप्यज्ञानजामार्तिंनाऽधिगच्छाव शङ्कर!॥४७॥

आप निःश्रेयस कामी भक्तों के गुरु ही हैं। शैवगम २८ संख्यक हैं। उनमें से किसके आधार पर हम आपकी उपासना करें? हे शंकर! हमें अब अज्ञानजनित् अशेष पीड़ा भोग न करना पड़े।।४६-४७।।

नन्दिकेश्वर उवाच

इति तौ धातृगोविन्दौ पादपद्मावलम्बिनौ। जगाद् करुणामूर्त्तिर्जगतीभृत्सुतापतिः॥४८॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—करुणामूर्त्ति जगतीभृत् सुतापति ने अपने चरणावलम्बी विधाता ब्रह्मा तथा विष्णु से कहा।।४८।।

श्रीमहादेव उवाच

युक्तमुक्तमिदं भद्रौ मयाऽप्येवं मनीषितम्। कामिकोक्तेन मार्गेण मामर्चयितुमर्हथः॥४९॥
मोहतो विस्मृता मन्ये भवद्भ्यां शैवसंहिता। अधुना मत्प्रसादेन पुनरुद्भासतां हृदि॥५०॥

श्रीमहादेव कहते हैं—हे भद्र! तुमने उपयुक्त प्रश्न किया है। मैंने भी यही विवेचना किया है। तुम कामिकागमोक्त पद्धति से मेरी पूजा करो। प्रतीत होता है कि मोह के कारण तुमलोग शिवसंहिता भूल गये। अब मेरी कृपा से वह तुम्हारे हृदय में पुनः उद्भासित हो जायेगी।।४९-५०।।

नन्दीश उवाच

इत्युक्त्वा श्रीशवागीशौ गिरिशोऽन्तरधादथ। तदा प्रादुरभूत्तत्रलिङ्गं किमपि मङ्गलम्॥५१॥
तच्चाऽवलोक्यसाश्चर्य्यौमुकुन्दकमलासनौ। मुहुः प्रणम्यसानन्दंप्रार्च्यतुष्टुवतुश्चिरम्॥५२॥
तावकारयतां शोणगिरिनाथस्य चाऽऽलयम्। नानाशिल्पाद्भुतंविश्वकर्मणा प्रचयेनच॥५३॥
खानयामासतुस्तत्र सरः किमपि पावनम्। अभिषेकाय देवस्य सर्वतीर्थमयं नवम्॥५४॥
अरुणाख्यं पुरं चारात्कल्पयामासतुश्चिरम्। सिद्ध्यै नोत्कण्ठते लब्ध्वा कैलासायाऽपि धूर्जटिः॥५५॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—श्रीभगवान् ईश गिरीश यह कहकर अन्तर्हित हो गये। उस समय उस स्थान पर एक अनिर्वचनीय मंगलमय लिंग प्रादुर्भूत हो गया। वह देखकर मुकुन्द तथा कमलासन आश्चर्य से बारम्बार उसे प्रणाम करने लगे। आनन्द से अर्चना करके अनेक क्षण स्तव भी करने लगे। उन दोनों ने विश्वकर्मा को बुलाकर विविध उपकरणों द्वारा शोणगिरि पर नाना शिल्पकला युक्त एक शिवालय का निर्माण किया। उन्होंने वहां एक पवित्र अनिर्वचनीय सरोवर भी खोदा। इस सर्वतीर्थमय अभिनव सरोवर में देवताओं की अभिषेक क्रिया सम्पन्न होती थी। इसके चतुर्दिक् अरुण नामक नगर बसाया गया। यहां रहने वाला कोई भी सिद्धि के लिए व्यग्र नहीं होता था (क्योंकि वह स्वयं प्राप्त हो जाती थी) यहां रहकर भगवान् धूर्जटि शिव कैलास जाने के लिए उत्कण्ठित नहीं होते थे।।५१-५५।।

तस्यां ब्रह्मर्षयो देवा गन्धर्वादिव्ययोषितः। सिद्धविद्याधरा यक्षाःपौरत्वंसमुपाययुः॥५६॥
तीर्थानि धार्य कूपत्वं गङ्गाद्याःसरितस्तथा। नन्दनादीनि च वनान्यभवन्निष्कुटत्वतः॥५७॥
गोलोको गोगोष्ठतयानैगमत्वंकिलागमाः। सैलाश्चगोपुरादित्वंस्मृतयोविधितांययुः॥५८॥

भूताः प्रेताः पिशाचाश्च वेताला: कटपूतनाः। प्रपन्ना मानुषं देहंतस्यांकिलपृथग्जनाः॥५९॥

देवोऽपि धूर्जटिस्तस्यां कौतुकी सिद्धरूपधृक्।
योगित्वंसमुपास्थाय मात्राकौपीनमुण्डधृक्॥६०॥

न केनचिदविज्ञातः सदा सर्वत्र दीप्यति। तौ च केशवलोकेशौजटिलौभस्मगुण्ठितौ॥६१॥
दान्तौ शोणाद्रिनाथं तमर्चयामासतुश्चिरम्। तत्रत्यानाञ्च सर्वेषांवर्णानामानुगुण्यतः॥६२॥
दीक्षादिकानि चक्राते स्वयमाचार्यतां गतौ। क्रमेण हृतनिर्माल्यौ सर्वागमरहोविदौ॥६३॥

यहां ब्रह्मर्षि, देवता, गन्धर्व, दिव्य स्त्रियां, सिद्ध, विद्याधर तथा यक्षगण इस नगरी के निवासी थे। यहां गंगादि सभी सरितायें ही कूपों में, नन्दनादि वन यहां के उपवनों में, गोलोक गोशाला में तथा सभी आगम नैगम में, सभी शैल गोपुर में तथा स्मृति समूह विधि-विधान में सन्निहित थे। भूत-प्रेत-पिशाच-बेताल-कटपूतना ने मनुष्य देह धारण किया। देव धूर्जटि ने भी कौतुक में भरकर इस नगर में लिंगरूपी होकर योगित्व का अवलम्बन किया। वे यहां कौपीन तथा मुण्ड धारण करके व्यक्त रूप में विचरते थे। ब्रह्मा तथा विष्णु ने यहां पर जटिल (जटाधारी), भस्मलिप्त तथा दान्त होकर दीर्घ काल तक शोणाद्रिनाथ की अर्चना किया। ये दोनों यहीं पर सभी वर्णों का दीक्षाकार्य आचार्य बन कर करते रहते थे। क्रमशः इन्होंने शिव निर्माल्य धारण करके आगम शास्त्र में पाण्डित्य प्राप्त किया।।५६-६३।।

प्रातः स्नात्वा समाहृत्य पुष्पपत्रादिकं फलम्। मन्त्रंचारुणनाथस्यततएव रहः श्रुतम्॥६४॥
जञ्जल्पाकौ जजपतुः सर्वमन्त्राधिकं सदा। धूपप्रदीपनैवेद्यैर्गीतवादित्रनर्तनैः॥६५॥
प्रदक्षिणानमस्कारैर्मुद्राबन्धैर्नवैर्नवैः। आसनेन च मूर्त्या च मूलेन च यथाविधि॥६६॥
पञ्चब्रह्मषडङ्गाद्यैरर्चयामासतुः शिवम्। एवं वर्षसहस्राणि षोडशारुणशङ्करम्॥६७॥
वेधोविष्णू समाराध्य शिवज्ञानमवापतुः॥६८॥
इतीदमश्रावि मया रहस्यं पितुः शिलादस्य मुखात्पुरा यत्।
निवेदितं चाऽद्य तदेव तुभ्यं किमन्यदाकर्णयितुं मनीषा॥६९॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे ब्रह्मविष्णुकृतारुणाचलेशमन्दिरवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥१६॥

यहां वे फल, पुष्प, पत्ते आदि का आहार, प्रातः स्नान करते तथा शोणाद्रिनाथ का सर्वोत्तम गुप्त मन्त्र उनसे सुन कर सदा जप करते रहते। वे दोनों ब्रह्मा-विष्णु धूप, प्रदीप, नैवेद्य, गीत, वाद्य, नर्त्तन, प्रदक्षिणा, प्रणाम, मुद्राबन्धन, नूतन आसन, मूर्त्ति तथा पञ्चब्रह्म एवं षडङ्ग द्वारा १६००० वर्ष पर्यन्त अरुणाचलेश्वर की आराधना करते हुए शिवज्ञान प्राप्त कर सके थे। मैंने पूर्व में शिलादपुत्र नन्दी के मुख से जिस शिवज्ञान-रहस्य को सुना था, वह आपसे कहा। अब आप क्या सुनना चाहते हैं?।।६४-६९।।

॥षोडश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

सप्तदशोऽध्यायः

शिवपार्वती-विहार

सूत उवाच

इति श्रुत्वाऽस्य वचनं मार्कण्डेयोऽभ्यभाषत।

मार्कण्डेय उवाच

श्रुतमेव मया देव! श्रोतव्यं भवतो मुखात्॥१॥
तथापिकौतुकेनाहमाक्रान्तोमुनयोऽप्यमी। गौर्याकथंतपस्तप्तंमहादेव्याऽत्रकथ्यताम्॥२॥

सूतजी कहते हैं—मार्कण्डेय शिलादनन्दन नन्दी का यह वचन सुनकर उनसे कहने लगे—"हे देव! मैंने आपके मुख से श्रोतव्य विषय को सुना, तथापि मैं तथा सभी मुनिगण यह सुनना चाहते हैं कि महादेवी गौरी ने यहां किस प्रकार से तपःश्चरण किया था। कृपया कहिये।।१-२।।

नन्दिकेश्वर उवाच

कथयामि तदप्येतद्यथाऽधिगतमात्मना। शृणु त्वमवधानेन मार्कण्डेय महामते॥३॥
ननु जानासि तत्पूर्वं यथा दाक्षायणीं शिवः। उपयेमेसतीं नाम सतीनामधिदेवताम्॥४॥
यथा च सा क्रुधा भर्तुर्द्रुहि दक्षप्रजापतौ। योगादहासीदात्मीयंवपुरित्यपि ते श्रुतम्॥५॥
तदा हराज्ञानिघ्नेन वीरभद्रेण यत्कृतम्। अध्वरध्वंसनं दक्षस्याऽपि ते विदितं महत्॥६॥
अश्रौषीस्तस्यदक्षस्यगणैःशीर्षासखण्डनम्। ब्रह्माच्युतेन्द्रमुख्यानांदेवानामपिशिक्षणम्॥७॥
दन्तघातं रवेः पाणिपाठनं जातवेदसः। अदितिप्रभृतीनाञ्च दिव्यस्त्रीणां पराभवम्॥८॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—हे महामति मार्कण्डेय! मैं इसे जिस प्रकार से जानता हूं, वह कहता हूं। आप सब लोग एकाग्रचित्त होकर श्रवण करें। आप सबको ज्ञात है कि पूर्वकाल में शिव ने जिस प्रकार से सतियों की अधिदेवता सती नामक दक्षपुत्री से विवाह किया था तथा जिस प्रकार उन सती ने अपने पति के द्रोही दक्ष प्रजापति के प्रति क्रोध करके योग के द्वारा अपने शरीर का त्याग किया था। उस समय देवदेव शम्भु के आदेश से वीरभद्र ने जिस प्रकार से दक्षक महत् यज्ञ का नाश किया था, वह भी सुना होगा। जिस प्रकार से शिवगणों द्वारा दक्ष का शिर खण्डित हुआ, ब्रह्मा-अच्युतादि प्रमुख देवताओं को जिस प्रकार से सबक मिला तथा जिस प्रकार से पूषा की दन्तपंक्ति उखाड़ी गयी, जातवेदा का जिस प्रकार से हस्त-भंग हुआ, जैसे अदिति आदि दिव्य स्त्रियों का पराभव हुआ—यह सब भी सुना होगा।३-८।।

सा च देवी पुनर्जन्म लेभे हिमवतो गृहे। उमेति पार्वतीत्याख्यां द्वितीयां बिभ्रतीपुनः॥९॥
देवः स्थाणुवने ताञ्च परिचर्यापरां रहः। अरुरोचयिषुः काममधाक्षीत्कालवह्निना॥१०॥
जितेन्द्रियञ्च तं देवं क्वाऽपियातंगणैःसह। तपोभिस्तोषयामास गौरी शिखरवासिनी॥११॥

उपयम्याऽथ तां देवो वृत्तान्तैश्चित्तखण्डिभिः।
रमयामास चैकान्ते मोदस्वेति विलासिनीम्॥१२॥
वैधव्यखिन्नयारत्याप्रार्थिताशैलनन्दिनी। कामपीठेतपस्यन्तीकामंप्रत्युददीपयत्॥१३॥

उन देवी ने हिमालय के गृह में पुनः जन्म लिया। इस जन्म में उनका नाम हुआ उमा अथवा पार्वती। एक बार देवाधिदेव शिव ने स्थाणुवन में एकान्त परिचर्या परायण गौरी के रुचिप्रद कार्य के प्रति अनिच्छा प्रकट करके कालाग्नि द्वारा कामदेव को दग्ध कर दिया। तब इन्द्रियजित् देवदेव को गणों के साथ किसी स्थान पर जाते देखकर शिखरवासिनी गौरी ने तप द्वारा उनको प्रसन्न किया। तब देवाधिदेव शंकर ने उनके साथ विवाह करके "मोदस्व" कहते-कहते एकान्त में उन विलासिनी के साथ रमण किया। तब उस समय वैधव्य से पीड़िता कामपत्नी रति ने शैलनन्दिनी से प्रार्थना करके कामपीठ पर तपस्या करते-करते कन्दर्प को प्रत्युद्दीपित किया।।९-१३।।

पुनश्च मेनया मात्रा पित्रा च हिमभूभृता। आनीता भवनं भर्त्रा साकंचिरमरंस्तसा॥१४॥
तदाशुम्भनिशुम्भाख्यौ लेभाते वेधसो वरम्। देवदानवमर्त्येषुमास्तु नौ पुरुषान्मृतिः॥१५॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा जातत्रासैः सुपर्वभिः। अभ्यर्थितोऽवदद्देवो रहश्चक्रधरादिभिः॥१६॥
माभैष्ट भद्र कालेन तथा प्रतिविधीयते। यथा निषूदितौ स्यातां तादृशौ दानवाविति॥१७॥
दत्ताऽभयान्मुकुन्दादीन्विसृज्याऽन्धकसूदनः। अन्तःपुरगतो रेमे देव्या सह यथापुरा॥१८॥

तदनन्तर माता मेनका तथा पिता हिमालय ने शैलसुता उमा को पति के साथ अपने भवन में बुलाया। वे यहां दीर्घकाल तक रमण करने लगे। इस समय शुंभ-निशुंभ ने ब्रह्मा से वरलाभ किया। उन्होंने स्पष्टतः यह वर मांगा कि "देव-दानव-मनुष्य में से किसी के द्वारा हमारी मृत्यु न हो।" इनका प्रसंग सुनकर चक्रधारी विष्णु आदि देवता त्रस्त हो गये। उन्होंने देवदेव सतीपति की आराधना किया। आराधित होकर उन्होंने कहा—"हे भद्रदेवगण! भय न करो। मैं समय पर इसका प्रतिविधान करूंगा, जिससे इन प्रचण्ड दानवद्वय का वध हो जायेगा।" मुकुन्द प्रभृति देवगण को अभय देकर भगवान् ने विदा किया। तब अन्धकहन्ता भगवान् हर अन्तःपुर जाकर देवी के साथ पूर्ववत् रमणरत हो गये।।१४-१८।।

कदाचिन्मर्मलक्ष्येण प्रीत्या कालीति निन्दिता।
तस्य प्रीत्यै कालिका च त्वचमेवाऽजहान्निजाम्॥१९॥
यत्रोत्क्षिप्तवती चर्म स्वेच्छया परमेश्वरी। महाकाशीप्रपाताख्यं तदभूत्क्षेत्रमुत्तमम्॥२०॥
सा च त्वक्कौशिकी नाम्ना काली विन्ध्याद्रिवासिनी।
तपस्यन्ती वृषस्यन्तौ तौ जघान महासुरौ॥२१॥
देवी च गौरी शिखरे तस्मिन्नेव मनोहरे। तपोभिर्लब्धगौरीत्वाद्भर्त्तारं समतोषयत्॥२२॥
क्रमेण दौर्हदवती भूत्वा प्रासूत पार्वती। गजाननं च हेरम्बं सेनान्यं च षडाननम्॥२३॥
तौ चागमविदः प्राहुर्नारायणचतुर्मुखौ। पूर्वापाधशुद्ध्यर्थं देवीगर्भसमुद्भवौ॥२४॥
वर्धमानौ च तौ बालौ पित्रोरालोकमानयोः। मग्नयोरिववर्षाब्धौ प्रेमग्रन्थिरभूद्दृढा॥२५॥

एक बार भगवान् हर ने परिहास में काली कहकर उनकी निन्दा किया। देवी ने इस प्रकार निन्दित होनेपर

शंकर की प्रसन्नता के लिए अपनी त्वचा शरीर से उखाड़ कर फेंक दिया। परमेश्वरी ने स्वेच्छा से इस त्वचा को जहां फेंका था, वह महाकाली प्रयात नामक अत्युत्तम क्षेत्ररूपेण प्रसिद्ध हो गया। तदनन्तर वे त्वक्कौशिकी नाम से प्रख्यात होकर विन्ध्याचल में तप करने लगीं तथा उसी समय उन्होंने अतीव कामुक दोनों असुरों का वध किया। तब उन्होंने मनोहर विध्याचलशिखर पर अपने तपःप्रभाव से गौरवर्ण प्राप्त किया (इससे पूर्व भगवती पार्वती कृष्णवर्णा थीं)। इस प्रकार उन्होंने अपने पति पशुपति को प्रसन्न किया। तत्पश्चात् दोहदवती होकर उन्होंने गजानन हेरम्ब तथा देवसेनानी षडानन स्कन्द को उत्पन्न किया। आगमवेत्ता कहते हैं कि नारायण तथा ब्रह्मा ही गजानन एवं षडानन के रूप में उत्पन्न हुए हैं। वे अपने पूर्वकृत् अपराध के निवारणार्थ देवी के गर्भ से उत्पन्न हुए। माता-पिता के देखते-देखते ये दोनों बालक वर्द्धित हो गये। वे हर्षमग्न माता-पिता की प्रेमग्रन्थिरूप में परिणत हो गये।।१९-२५।।

जातु वीणानिनादेन कादिचिच्चित्रलेखनैः। विजह्रतुश्शिवौ स्वैरमेकदा मण्डनैर्मिथः॥२६॥
जातुविद्यागमालापैःकदाचिच्चित्रवस्तुभिः। एकदालोकवृत्तान्तैर्दम्पतिभ्यांविनोदितम्॥२७॥
पुष्पावचयनैर्जातु कदाचिद्वारिखेलनैः। अदीव्यताञ्च रागाद्रौ दोलाकेलिभिरेकदा॥२८॥
मैनाकेनाऽर्चितौजातु मेनया जातु पूजितौ। जात्वर्हितौ हिमवतादम्पतीतौविनोदितौ॥२९॥
जातु द्यूतविनोदेन गीतगोष्ठ्या कदाचन। एकदादानलीलाभिःशिवौचिक्रीडतुश्चिरम्॥३०॥
द्यूतनिर्जितमाच्छिद्य पत्युरुत्सङ्गतां गतम्। वलयीकृतमेणाङ्कं ताटङ्कीकृतवत्युमा॥३१॥

इति तौ पितरौ चराचराणां निवसन्तौ कनकाचलादिकेषु।
रुचिरेषु पदेषु कामभोगानतिहृद्यान्सुचिरं किलाऽन्वभूताम्॥३२॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे शिवपार्वतीविहारवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥

इस समय हर-गौरी कभी वीणावादन से, कभी चित्रांकन से, कभी रमण-विहार से, कभी यत्न द्वारा तो कभी दिव्य आगमालाप करते आनन्दित होते थे। वे कभी विविध वस्तु निर्माण द्वारा, कभी लोक वृत्तान्त पर चर्चा द्वारा, कभी पुष्पचयन तथा जलक्रीड़ा द्वारा, कभी झूला झूलकर, कभी मैनाक पर्वत द्वारा अर्चित होकर, कभी मेना द्वारा (पार्वती की मां) अर्चित होकर, कभी हिमवान द्वारा विनोद किये जाने से, कभी द्यूत क्रीड़ा द्वारा, कभी गीतादि से तो कभी दानादि कार्य से दीर्घकाल तक क्रीड़ा करते रहते हैं। एक बार गौरी ने द्यूत क्रीड़ा में पति के शिर पर स्थित चन्द्रमा को जीत लिया तथा उसका अपने शिर का ताटङ्क बनाया। इस प्रकार जगत् के माता-पिता उमा-शंकर ने कनकाचल पर्वत के मनोरम प्रदेश में निवास करके दीर्घकाल तक अत्यन्त हृदयस्पर्शी सभी कामभोगों का उपभोग किया।।२६-३२।।

।।सप्तदश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अष्टादशोऽध्यायः

पार्वती द्वारा अरुणाचलेश्वर परिचरण, गौतम द्वारा अरुणाचल के स्थानों का वर्णन

नन्दिकेश्वर उवाच

गार्हस्थ्यं बिभ्रती भर्तुरिकाम्रतलवासिनः। पक्वान्नपानैस्सा तत्र पर्य्यतर्पयत प्रजाः॥१॥
जातु सन्ध्यानुसन्धानमुकुलीकृतलोचनम्। बद्धाञ्जलिपुटं देवमद्राक्षीदद्रिनन्दिनी॥२॥
ध्यायते नूनमधुनाकाऽपि सौभाग्यशालिनी। क्रियते यन्मयि-प्रेम-तन्मन्ये वञ्चनंमहत्॥३॥
कथंविज्ञायतेपुंसांकुटिलामानसीस्थितिः। मिथ्योपचाराद्दक्षेणवञ्चितास्म्यमुनाभृशम्॥४॥
मयिदाक्षिण्यमेवाऽस्यमन्येमनसि चेद्रहः। जनःसौभाग्यवान्यस्माद्भवतिस्नेहभाजनम्॥५॥
अद्यप्रभृति ते दासस्तपोभिःक्रीतइत्यपि। मुग्धेन्दुशेखरेणाऽस्मिविप्रलब्धास्मरारिणा॥६॥
असमानानुरागेषु नारीणां मूढचेतसाम्। सौभाग्यगर्वो लोकेषु परिहासाय केवलम्॥७॥
इति प्रणयरोषेण देव्याः कलुषचेतसः। हव्यवाहातपालीढमिवाननमलक्ष्यत॥८॥
वाष्पवारिप्लवे तस्या आताम्रे च विलोचने। नीलोत्पले जलापूर्णे इव भूम्ना विरेजतुः॥९॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—एकाम्र वनवासी पति के गार्हस्थ्य में भगवती गौरी सुपक्व अन्नपानादि से वहां प्रजामण्डली को तृप्त करती थीं। यहां पार्वती ने कभी सन्ध्या के अनुसन्धान काल में शिव को मुकुलीकृत नेत्र तथा हाथ जोड़े देखा। तब मन ही मन भगवती विचार करने लगीं कि ये किसी सौभाग्यशालिनी का ही मन ही मन चिन्तन कर रहे हैं। मेरे प्रति जो इनका प्रेम है, वह प्रवञ्चना मात्र है। पुरुषों के कुटिल मनोगतभाव को समझ पाना दुरूह है। अथवा मैं दक्ष के मिथ्याचार से (पूर्व जन्म में) अत्यन्त प्रताड़ित हो चुकी हैं। सम्भवतः प्रभु शंकर मन ही मन मेरा शुभ सोच रहे हैं। स्नेहभाजन व्यक्ति ही सौभाग्यशाली होता है। "तुम्हारी तपस्या के प्रभाव से मैं तुम्हारा क्रीत दास हो गया" यह शंकर ने पहले कहा था। मुग्धेन्दुशेखर ने यह कहा था। मैं तो इन कामदेव के शत्रु द्वारा ठगी गयी। (विप्रलब्धा हो गयी)। परस्परतः असमान अनुराग पर मुग्धचित्त नारीगण का सौभाग्यगर्व केवल परिहास का ही कारण हो जाता है। इस प्रकार से प्रयण कोप द्वारा कलुषित देवी का मुखमण्डल तब अग्नि के समान तमतमा उठा। वाष्पवारि परिपूरित उनका लोचनत्रय जलसिक्त नीलकमल के समान दीप्तिमान् हो उठा॥१-९॥

यत्तस्याधीनतिलकं भ्रुवोर्युगमभज्यत। द्वेधाकृतमिवाऽदर्शि मन्मथस्य शरासनम्॥१०॥
अन्तर्मन्युभरेणाऽस्याःकम्पतेस्माऽधरच्छदः। मुहुःप्रवालस्थायीवरक्ताशोकस्यपल्लवः॥११॥
अतीव रज्यमानं तत्पार्वत्या गण्डमण्डलम्। शाणावघर्षमाणिक्यदर्पणप्रतिमं बभौ॥१२॥
अन्तर्वेपधुतौ तस्याश्चकम्पाते पयोधरौ। पद्मकोशाविवान्तःस्थचञ्चरीकप्रचालितौ॥१३॥
अचिन्तयच्च सम्भूय सौभाग्याभावतो ननु। ममायमन्यस्त्रीचिन्तां कुरुते चन्द्रभूषणः॥१४॥
तदैषाक्वाऽपियास्यामिकिमत्राऽस्त्येकयामम। तपस्यन्तेचसौभाग्यमर्जनीयंमयाऽधुना॥१५॥

निमीलिताक्षिण्येवाऽस्य गन्तव्यंनिभृतंमया। न चेन्मांवारयत्येषकण्ठादुपरिभाषितैः॥१६॥
वत्सौ तु वर्धयत्येव गङ्गेयमतिवत्सला। देवस्तु न स्मरन्त्येव मामन्यस्त्रीपरायणः॥१७॥

भगवती का भ्रूयुगल मध्यवर्त्ती तिलक द्वारा दो भाग में विभक्त होने से कामदेव के धनुष की तरह शोभित हो रहा था। प्रवाल स्थित रक्तवर्ण अशोक के पत्ते की तरह उनके ओष्ठ आभ्यन्तरिक क्रोध से कम्पित हो रहे थे। सान से घिसे गये माणिक्य दर्पण के समान रंजित उनके गाल अतीव शोभायुक्त हो रहे थे। मध्यस्थित चञ्चरीक प्रचालित पद्मकोष युगल के समान (जैसे भौंरा कमलकोष के मध्य में जब मधुपान करता है, तब वह पद्मकोष हिलने लगता है) उनके स्तनयुगल आभ्यन्तरीण क्रोध के कारण कम्पित से होने लगे। वे सोचने लगीं—"मेरे दुर्भाग्य के कारण ही भगवान् चन्द्रशेखर अन्य स्त्री का चिन्तन कर रहे हैं। अतः अब मैं कहां जाऊं? अब मैं यहां एकाकिनी रहकर क्या करूंगी? मैं अब तप करके सौभाग्य का अर्जन करूंगी। जबतक शंकर ने नेत्र बन्द किये हैं, तबतक तो मैं एकान्त में यहां से चली जाऊंगी। अन्यथा ये मेरी मौखिक बात सुनकर ये जाने से रोक सकते हैं। अब गंगादेवी मेरे बालक कार्त्तिकेय तथा गणेश का लालन-पालन करके उनको योग्य करेंगी। वे उनसे अत्यन्त प्रेम करती हैं। देवदेव तो अब मेरा स्मरण करेंगे नहीं। वे तो अब अन्य स्त्री के प्रति प्रेम करने लगे हैं।।१०-१७।।

इति निश्चित्य देवस्य पार्श्वादाशु निवृत्त्य सा। अनिर्दिश्य दिशं काञ्चिद्यातुं व्यग्रा प्रचक्रमे॥१८॥

देवी ने एवंविध निश्चय किया तथा देवदेव शंकर के बगल से सहसा उठीं तथा जिधर उनके नेत्र उठे, उसी दिशा की ओर उन्होंने प्रस्थान कर दिया।।१८।।

चलावती माल्यवती मालिनी विजया जया। वारिताअपिसंरम्भात्स्वामिनीमन्वयुःस्वयम्॥१९॥
तत्र साऽपि गिरीन्पुण्यान्वनानि नगराणिच। सरांसि सरितश्चैषाविचचारसमन्ततः॥२०॥
भ्रमन्ती सह्यपादेषु द्राविडाख्ये सुनीवृति। तीर्त्वा शक्त्यापगां देवीविजयांसमभाषत॥२१॥
दृश्योऽयंनातिदूरेणपुरस्तात्सकलारुणः। शृङ्गैस्सँल्लक्ष्यतेऽष्टाभिर्नूनंमाहात्म्यवान्गिरिः॥२२॥
उपत्यकासु चैतस्य दृश्यन्ते तापसाश्रमाः। अतीव पावनःशान्ताःपुण्यारण्यमनोहराः॥२३॥
गत्वा निरूपयामस्तानिमान्पुण्याश्रमान्वयम्। प्रसीदतितरां चेत एषां सन्दर्शनेन मे॥२४॥

तब चलावती, माल्यवती, मालिनी, जया-विजया सभी वहां से किसी बाधा की परवाह किये बिना अपने आप अपनी स्वामिनी जगज्जननी का अनुगमन करने लगीं। तब देवी पुण्यगिरि, वन, नगर, सरोवर, नदी इत्यादि स्थानों पर इधर-उधर भ्रमणरत थीं। वे भ्रमण करते-करते सह्य पर्वत की घाटी में स्थित द्राविड़ नामक समृद्ध देश में आ पहुंचीं। वे स्वशक्ति के प्रभाव से वहां की नदी पार करके सखी विजया से कहने लगीं—यह जो निकट में हमारे सामने आठ शृङ्गों वाला अरुणवर्ण पर्वत परिलक्षित हो रहा है, यह सम्भवतः कोई महान् भाग्यशाली पर्वत है। इसकी उपत्यकाओं पर तपस्वियों का आश्रम परिलक्षित हो रहा है। ये आश्रम अत्यन्त पावन तथा शान्त हैं। यह पुण्य अरण्य मनोहर है। हम यहां जाकर इन पुण्याश्रमों का विशेष रूप से दर्शन करेंगे। इन आश्रमों को देखकर मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न हो रहा है।।१९-२४।।

एवमाह्लादयत्यालिं क्रमेण गिरिनन्दिनी। तस्याद्रेर्जग्मुषा पार्श्वरमपश्यत्कञ्चिदाश्रमम्॥२५॥
लूतास्तंतून्नयन्त्यत्रकुम्भीराः शैवलान्यपि। शिशून्पुष्णन्तिनीवारैःसफरान्भूरिमायवः॥२६॥

हरन्त्यवकरान्वालैश्चमराःस्फीतरोमभिः। समीकुर्वन्ति चोद्भूतैर्विषामैर्यत्र सैरिभाः॥२७॥
वानराः फलपुष्पाणि मधुपत्राणि भल्लुकाः।
क्रोडाः स्नानीयमृत्स्नां च यत्रर्षिभ्यो नयन्त्यहो॥२८॥

गिरिनन्दिनी पार्वती ने यह कहकर अपनी सखियों को अत्यन्त आनन्दित किया। तदनन्तर वे पूर्वदृष्ट अचल (पर्वत) के पार्श्व में गयीं, जहां उन्होंने एक आश्रम देखा। यहां मकड़ियां आश्रम के ऋषियों के लिए सूत एकत्र कर देती थीं। यह देखकर कुंभीरगण (मगर) यहां शैवाल ला देते थे। नीवार द्वारा शिशुगण पालित नीवर = अपने आप उगा धान) होते थे। शृगाल यहां पर शफरा का पालन करते थे। (शफरा = छोटी मछली)। चमरी गौ यहां अपनी घने बालों वाली पूंछ से यहां का मार्जन (सफाई) करती थीं। महिष अपने सींगों से ऊंचे-नीचे स्थानों को समतल करते थे। वानर फलपुष्प लाते, भालू मधु एवं शूकर समस्त स्नानद्रव्य ऋषियों के लिए संकलित करते थे।।२५-२८।।

काकोलूकैः शुकश्येनैर्मृगव्याघ्रैर्हरिद्विपैः। कलापिसर्पैर्यत्राखुमार्जारैः सौहृदं श्रितम्॥२९॥
हूयमानपुरोडाशद्रव्यसौरभ्यहारिणी। यत्र द्रुमान्तरालेभ्योधूम्या निर्याति पावनी॥३०॥
पठन्ति शतरुद्रीयंयत्रवायसवेरिणः। गृणन्तिकाकाःस्तोत्राणिसामगायन्तिसारिकाः॥३१॥
शाकशालिषु शार्दूलाश्चरन्ति च तथैव गाः।
सिञ्चन्ति पुष्कराम्भोभिः कुम्भिनो यत्र पादपान्॥३२॥
क्वचिच्च शोभने देशे पुण्ये पुण्यमनोहरे। ददर्श सा तपस्यन्तं यं कञ्चिदृषिसत्तमम्॥३३॥
अधस्तात्सप्तपर्णस्य चित्रव्याघ्रत्वगासने। बद्धवीरासनं सम्यक्पावने कुशविष्टरे॥३४॥
शालिशूकारुणाभाभिर्जटाभिर्भस्मपाण्डुरम्। अचञ्चलाभिर्विद्युद्भिरिव शारदवारिदम्॥३५॥

यहां काक-उलूक, शुक-बाज, मृग-व्याघ्र, सिंह-चीता, मयूर-सर्प, मूषक-बिडाल सदा सौहार्द्र से रहते थे। इस स्थान में हो रहे होम के पुरोडाश चरु की सौरभहारिणी पवित्र धूमराशि वृक्षों के बीच से निकलती थी। यहां कोकिलायें शतरुद्रीय, काकसमूह स्तोत्र, सारिकायें सामवेद गायन करती थीं। यहां पर शाक-शालिक्षेत्र में शार्दूल भी विचरण करते थे। साथ में गौयें भी विचरण करती थीं। गजगण यहां प्रचुर जल से पादपों का सिंचन करते थे। यहां देवी ने किसी शोभन पुण्य मनोरम देश में आसीन एक ऋषिश्रेष्ठ का अवलोकन किया। वे व्याघ्रचर्म पर सप्तपर्णासन तथा उसके ऊपर कुशासन बिछा कर इन पवित्र आसनों के ऊपर वीरासन से बैठे थे। वे शालि शुकारुणाभ जटापटल से युक्त तथा भस्म लेपन से पाण्डर वर्ण लग रहे थे। इस प्रकार वे स्थिर विद्युत् से युक्त शारदीय मेघ के समान प्रतीत हो रहे थे।।२९-३५।।

नासाग्रनिश्चलदृशं समप्रस्फुरिताधरम्। आवर्त्तयन्तं रुद्राक्षमालिकामग्रपाणिना॥३६॥
प्रत्यग्रनिर्णेजनतो ह्यत्यश्यानदशाञ्चले। वसानं वल्कलयुगे सन्ध्याभ्रे भूभृतां यथा॥३७॥
षड्वर्गहिंस्त्रबन्धाय स्थापितां वागुरामिव। उपवीतत्रयीमारादुरोगर्तस्य बिभ्रतम्।
कृतोचितोपचारा सा तमप्राक्षीत्तपोधनम्॥३८॥

उनकी दृष्टि नासाग्र पर निबद्ध थी। वे निश्चल भाव से विराजित थे। उनके ओष्ठ सम्भावेन स्फुरित हो

रहे थे (मन्त्रजाप कर रहे थे) उनकी उंगलियों में रुद्राक्ष माला फिराई जा रही थी। जैसे पर्वत सन्ध्या के बादल को धारण करता है, उसी प्रकार से उन्होंने दो वल्कल धारण कर रखा था। उन्होंने षड्वर्ग रूप हिंस्र जन्तु को शृङ्खला में बांधने के लिए मानों त्रितयरूप यज्ञोपवीत अपने हृदय के ऊपर धारण कर रखा था। तब देवी ने उस तपोधन से प्रश्न किया।।३६-३८।।

पार्वत्युवाच

कस्त्वं कोऽयं गिरिवरो यत्र त्वं कुरुषे तपः॥३९॥
स चाऽऽहाऽरुणशैलोऽयं पुण्यक्षेत्रेषु पूजितः।
गौतमोऽहं मुनिर्मुक्त्यै तपसाऽऽराधये शिवम्॥४०॥
इत्युक्त्वा विजयादीनां मुखेनैनामुमांविदन्। प्रणम्यभक्त्याबहुसोनीतवानुटजंनिजम्॥४१॥
कन्दमूलफलादैश्च कृतातिथ्यामिमां मुनिः। जगन्मङ्गलमूलाय तपसे चाऽन्वमन्यत॥४२॥
ज्योतिःस्तम्भस्यसम्भूतिमारभ्याऽनुक्रमेणसः। जगादचास्यैशोणाद्रेर्महिमानमशेषतः॥४३॥
शोणाद्रेः पूर्वदिग्भागे स्थलीश्वरमितिस्थलम्। यत्र सन्निहितः शम्भुज्ज्योतिर्लिङ्गात्मतां गतः॥४४॥
वैकुण्ठपरमेष्ठ्यादिगीर्वाणनिबिडीकृते। न तत्र मे तपः कर्तुमव्याक्षेपेण शक्यते॥४५॥
अयं शोणगिरेः पादः प्रवालाचलनामवान्। पुण्यारण्योपरुद्धत्वाद्रहस्यत्वं विगाहते॥४६॥

पार्वती कहती हैं—"आप कौन हैं? इस गिरिश्रेष्ठ का नाम क्या है, क्या आप यहां तप कर रहे हैं?" तब उन तपस्वी ने कहा—"इस गिरिवर का नाम अरुणाचल है। यह अन्य पुण्यक्षेत्रों में श्रेष्ठ स्थल है। मेरा नाम मुनि गौतम है। मैं मुक्ति हेतु तप द्वारा शिव की आराधना कर रहा हूं।" यह कहने के अनन्तर तपस्वी गौतम ने विजया आदि के मुख से सुनकर उनका नाम उमा जाना। भक्ति के साथ गौतम ने भक्तिपूर्वक पार्वती को अनेक प्रणाम किया तथा उनको कुटिया में ले जाकर कन्दमूल-फल आदि द्वारा भगवती का आतिथ्य किया।

इस प्रकार जगन्मङ्गल के मूल रूप की तपस्या से मन का समाधान किया। तदनन्तर ज्योतिःस्तम्भ की उत्पत्ति से आरम्भ करके शोणाद्रि की महिमा का वर्णन पर्यन्त की समस्त कथा का वर्णन देवी से करने लगे। शोणाद्रि के पूर्व की ओर स्थलीश्वर नामक एक स्थान है, जहां शम्भु सन्निहित रहकर शंभु ने ज्योतिर्लिङ्ग स्वरूप प्राप्त किया है। महर्षि ने कहा कि ब्रह्मा-विष्णु प्रभृति देवगण ने इस स्थान को अप्रवेश्य बनाया है। यहां तप कर सकने में सक्षम नहीं हूं। इस शोणपर्वत के पाददेश (घाटी) का नाम है प्रवालाचल। यहां अनेक पुण्यारण्य स्थित हैं। इसलिए यह अत्यन्त रहस्यपूर्ण स्थल है।।३९-४६।।

तत एवाहमत्रैव प्रतिष्ठाप्य त्रिलोचनम्।
आराधये यथाशक्ति तपोभिःकल्पितात्मभिः॥४७॥
ममाऽऽश्रमसमीपेऽस्मिन्पुण्यक्षेत्रमिदंमहत्। क्रियतामाश्रमोदेव्याकर्त्तव्यंहितपश्चिरम्॥४८॥
मुनेरेवमनुज्ञानात्कृताश्रमपरिग्रहा। उदयुङ्क्त तपः कर्त्तुं सुमहत्पर्वतात्मजा॥४९॥
आश्रमं रक्षितुं सत्यवतींकाननवासिनीम्। शुभगांधुन्धुमारिंचप्रागाद्याशास्वतिष्ठिपत्॥५०॥

तपोवनस्य सर्वस्य रक्षार्थं सा समादिशत्। दुर्गामनर्गलस्फूर्तिमाज्ञानिवारहणक्षमाम्॥५१॥
अनन्तरं सा धम्मिल्लं मन्दारप्रसवोचितम्। जटाभरत्वं तपसे गमयामास पार्वती॥५२॥
हंसचिह्नदशं हित्वा दुकूलं मिहकालघु। परुषं सुकुमाराङ्गी परिधत्तेस्म वल्कलम्॥५३॥
अपि प्रसूनावचयनिस्सहाङ्गुलिपल्लवा। अलावीदतितीक्ष्णाग्राण्यविकारं कुशानि सा॥५४॥

"तभी मैं यहां पर त्रिलोचन की प्रतिष्ठा करके संकल्पितात्मक तप द्वारा यहां यथाशक्ति उनकी आराधना कर रहा हूं। मेरे इस आश्रम के पास ही वह महान् पुण्य क्षेत्र विराजमान है। आप इसी स्थान पर रहकर दीर्घकाल तक तपःश्चरण करिये।" मुनि का यह वचन सुनकर देवी ने इसी स्थान पर आश्रम बनाकर महत् तप प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने पहले आश्रम के रक्षार्थ सत्यवती, सुभगा तथा धन्धुमारी को नियुक्त किया। उन्होंने सदा स्फूर्तिशालिनी आज्ञा निर्वहन में सक्षम दुर्गा को नियुक्त करके समस्त तपोवन की रक्षा का आदेश प्रदान किया। तदनन्तर उन्होंने मन्दार कुसुम से शोभित धम्मिल्ल को (जूड़े को) जटा का रूप प्रदान किया। सुकुमार होनेपर भी उन्होंने सूक्ष्म, चिकने, हंस चिह्न वाले दुपट्टे का त्याग करके अत्यन्त कठोर वल्कल धारण किया। जिनकी अत्यन्त कोमल उंगलियां पुष्पचयन का भी क्लेश सहन नहीं कर पाती थीं, आज वे ही उन उंगलियों से अति तीक्ष्ण कुशों के गुच्छे निर्विकार रूप से तोड़ती थीं।।४७-५४।।

वज्रसूचिनिर्भराङ्गैरवच्छिन्नानि कण्टकैः। शिरीषमृद्वीशाण्डिल्यपल्लवान्युच्चिकाय या॥५५॥
पावन्यां कमलानद्यां प्रातर्विहितमज्जना। अर्चयामास रक्ताब्जैर्यथाविधि विभाकरम्॥५६॥
दर्भाक्षततिलोन्मिश्रैर्गौरी श्रीनदिवारिभिः। देवी निर्वर्त्तयामास देवर्षिपितृतर्पणम्॥५७॥
वालुकामण्डले सूर्यमावाह्याऽभ्यर्च्य पङ्कजैः। कृतप्रदक्षिणा गौरी प्रणनाम सहस्त्रशः॥५८॥
स्वयमेव प्रतिष्ठाप्य लिङ्गं किमपि शङ्करम्।
आगमोक्तेन विधिना पूजयामास पार्वती॥५९॥
आसनेनच मूर्त्याचमूलेनाङ्गैश्चसारविम्। दण्डिपिङ्गलमुख्यांश्च शक्तीर्दीरप्तादिकाअपि॥६०॥
तत्तद्दिक्षुचसोमादीन्ग्रहान्धेन्वादिमुद्रया। तेजस्चण्डेचाऽर्चयित्वानिर्माल्यञ्चन्यवेदयत्॥६१॥

ये शिरीषमुखी वज्रसूची निर्भर अंगों वाली आज कंटक भरे शाण्डिल्य पल्लवों का चयन कर रही हैं। (शाण्डिल्य अर्थात् बिल्ववृक्ष)। वे पवित्र कमला नदी में प्रातः स्नान करके लोहितवर्ण पद्म द्वारा दिवाकर की यथाविधि अर्चना करने लगीं। वे कुश-अक्षत-तिल को कमला नदी के जल के साथ देव-ऋषि-पितृगण का तर्पण करती थीं। वे बालुका का मण्डल बना कर उसमें सूर्य का आवाहन करतीं तथा उसकी कमल से पूजा करके प्रदक्षिणा के साथ प्रणाम करतीं। वे स्वयं शंकर के लिंग की स्थापना करके आगमोक्त विधि से उसकी अर्चना करती थीं। आसन-मूर्त्ति-मूलमन्त्र तथा अंगमन्त्र से वे सूर्य, दण्डि तथा पिंगल आदि मुख्य गण, दीप्तादि शक्ति की तथा धेनु मुद्रा द्वारा उन-उन दिशाओं में ग्रहों की पूजा करके चण्डेश्वर को तेज (पूजा तेज) समर्पण करके निर्माल्य निवेदित करती थीं।।५५-६१।।

अर्घ्येणाऽतीवशुद्धेन सम्प्रोक्ष्यचसमन्ततः। द्वारवास्तु समभ्यर्च्यन्यासानपिचकारसा॥६२॥
भूतशुद्धिंविधायाऽन्वगन्तर्यागंचकारसा। हृदिपद्मासनेचाऽर्च्यज्ञानधर्मादिकान्क्रमात्॥६३॥

शक्तीर्दलेषु वामादीर्दलाऽग्रे सूर्यवेधसौ। केसराऽग्रे सोमविष्णू कर्णिकाग्रेऽग्निधूर्जटी॥६४॥
तदूर्ध्वे शक्तिचक्रं च विन्यस्तब्रह्मपञ्चका। अङ्गैर्दत्त्वा च पाद्यादीनुपचर्याभिषिच्य सा॥६५॥
प्रादाच्चन्दनपुष्पादि धूपदीपप्रदायिनी। भूयोऽपि पञ्चब्रह्माणि षडङ्गान्यप्यपूजयत्॥६६॥
तत्तद्दिक्षुचशक्रादीन्वज्रादींश्चविधानतः। कृत्वा सर्वोपचारांश्चवितताराऽष्टपुष्पिकाम्॥६७॥
पञ्चवक्त्राणि चाऽभ्यच्यकृतचण्डेश्वराऽर्चना। प्रदक्षिणाप्रणामाद्यैर्नित्यंशिवमपूजयत्॥६८॥
शिवागमोक्तविधिना द्रव्यैःसौभाग्यदायिभिः। सा जुहावचपूजान्तेप्रणीतेजातवेदसि॥६९॥

अतीव शुद्ध अर्घ्य द्वारा सभी दिशाओं की ओर प्रोक्षण करके वे द्वारपाल पूजन करके न्यास करती थीं। उन्होंने तदनन्तर भूतशुद्धि करके अन्नत्याग कर दिया। उन्होंने हृदय के पद्मासन के ऊपर क्रमानुरूप ज्ञान-धर्मादि की अर्चना करके दल में वामादि शक्ति, दलाग्र में सूर्य तथा वेधा की, केशराग्र में सोम तथा विष्णु की, कर्णिकाग्र में अग्नि तथा धूर्जटि की, उसके ऊर्ध्व में शक्ति चक्र एवं ब्रह्मपंचक का विन्यास करके अंगमंत्र द्वारा पाद्यादि प्रदान एवं उपचार आदि से अभिषेक प्रदान तथा चन्दन-पुष्पादि तथा धूप-दीप निवेदित करती थीं। पुनः देवी उन-उन दिशाओं में शक्रादि, वज्रादि, पञ्चब्रह्म तथा षडङ्ग पूजन करती थीं। तत्पश्चात् सभी उपचारों का संग्रह करके अष्ट पुष्प विस्तारोपरान्त चण्डेश्वर का पूजन करती थीं। इस प्रकार भगवती प्रदक्षिणा तथा प्रणाम करके शिव की आराधना करती थीं। वे शिवागमोक्त विधान से सौभाग्यप्रद द्रव्यों से पूजा करके पूजान्त में प्रणीत वह्नि में होम करती थीं।।६२-६९।।

परिकल्पितोपचारा च कन्दमूलफलादिकैः। स्वयं कृतोपचारेयमतिथीनभ्यपूजयत्॥७०॥
अङ्गुष्ठाऽग्रेण तिष्ठन्तीग्रीष्मेपञ्चाग्निमध्यतः। ह्रदेचसिशिरेचन्द्रपीयूषाप्यायिताऽभवत्॥७१॥
वर्षरात्रीषु धाराभिः सह वारिधरा पुनः। सौदामिनीव ददृशे तमसि स्तिमिताकृतिः॥७२॥

इस प्रकार उपचार की व्यवस्था करके वे कन्दमूल तथा फलों के द्वारा स्वयं अतिथि सेवा करती थीं। उन्होंने ग्रीष्मकाल में पंचाग्नि के बीच अंगुष्ठ पर खड़े होकर तथा शिशिर में शीतल जल के बीच चन्द्र-पीयूषान्वित होकर स्थित रहती थीं तथा वर्षा की रात में वारिधारावत् होकर सौदामिनी की तरह वर्षाधारा में भी दृढ़ता से रहती थीं।।७०-७२।।

पाणिपादेन पद्मानि मुखेन च कलानिधिम्। प्रदर्शयत्यनायासान्निन्येसाहैमनीनिशाः॥७३॥
नीवारबीजदानेन सा मृगानप्यपोषयत्। अज्ञातहिंसाभिभवानाश्रमोपान्तवर्तिनः॥७४॥
कृतालवालसलिलैः सुबालाकलशाहृतैः। वात्सल्याद्वर्द्धयामासपूर्णानाऽऽश्रमपादपान्॥७५॥

वे पाणिपाद में पद्म तथा मुख में चन्द्र का द्योतन कराती थीं (हथेली तथा चरण पद्म की तरह तथा मुखकमल चन्द्रमा की तरह प्रतीत होता था) इस प्रकार वे हेमन्त में अनायास हेमन्त में निशा यापन करती थीं। वे नीवार (स्वयं उगे धान के दानों से) प्रदान करके मृगों का पोषण करती थीं। वे मृगगण आश्रम के निकट विचरण करते थे। कदापि उनकी हिंसा अथवा उनका अभिनव (बन्धन) नहीं करती थीं। वे वात्सल्य भाव से जल आदि प्रदान करके पादपों को वर्द्धित करती थीं। इन पादपों की जड़ के पास जल सिंचन हेतु वृक्ष के चतुर्दिक् थाला बना रहता था। इसमें देने के लिए जल को सुन्दर बालायें कलस में लाती थीं।।७३-७५।।

प्रदक्षिणां कृतवती शोणशैलं गिरीन्द्रजा। सा मनोरथसंसिद्ध्यैनित्यंसह सखीजनैः॥७६॥
पञ्चाक्षरीं जजापैषा शिवस्तोत्राण्युदैरयत्। दध्यौ च देवं मनसा शोणपर्वतरूपिणम्॥७७॥
अनुदिनमरुणाचलेश्वरं सा प्रणतवती विहितप्रदक्षिणाद्यैः।
शिवनिगमविधानवेदिनी सा व्यरचयदद्रिसुता चिरं तपस्याम्॥७८॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे पार्वतीकृतारुणाचलेश्वरपरिचरणवर्णनं नामाऽष्टादशोऽध्यायः॥१८॥

वे देवी अपने मनोरथ की सिद्धि हेतु सखियों के साथ नित्य शोणपर्वत की प्रदक्षिणा करती थीं। वे पञ्चाक्षर मन्त्र जपती थीं। शिवस्तव पढ़तीं तथा शोणपर्वत रूपी देवदेव का मन ही मन ध्यान करतीं। वे दीर्घकाल तक अरुणाचलेश्वर की प्रदक्षिणा करके प्रणाम करतीं। उनकी यह तपस्या शिवागमानुरूप थी॥७६-७८॥

॥अष्टादश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

एकोनविंशोऽध्यायः

देवी का तप काल में महिषासुर वध वर्णन, मातृ द्वारा दुर्गा स्तुति

नन्दिकेश्वर उवाच

तावत्कुतश्चिदाकर्ण्य तत्रस्थां महिषासुरः। अवज्ञातसुरारातिर्विध्वंसितपुरन्दरः॥१॥
सर्वलोकजयी सिद्धविद्याधरभयावहः। दुर्निग्रहो वरादासीच्छस्त्रास्त्रैरखिलैरपि॥२॥
तीक्ष्णानामपि शापानामप्यगोचरतां गतः। दर्पद्धिर्दानवैर्दैत्यैः कौणपैश्च निषेवितः॥३॥
दूषको मुनिपत्नीनां धर्ममार्गोपघातकः। बलात्पुलोम्नो नमुचेर्वृत्रादपि बलाधिकः॥४॥
हिरण्यकशिपोर्वंश्यो हिरण्याक्ष इवाऽपरः। तां विलोभयितुं काङ्क्षित्प्राहिणोत्किल दूतिकाम्॥५॥
ततः सा तापसीवेषधारिणी गिरिजां प्रति। सखीसमक्ष एवेदमुवाचाऽनुचितं वचः॥६॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—महिषासुर ने किसी के द्वारा देवी की यहां अवस्थिति के विषय में सुना। उसने देवी को लोभ दिखलाकर वशीभूत करने के लिए उनके पास दूती को भेजा। इस समय महिषासुर ने देवगण की अवज्ञा करके इन्द्र को पराजित किया था। वह सर्वलोक जयी हो गया तथा सिद्ध तथा विद्याधरों के लिए भयावह हो गया। वह वरप्रभाव से अत्यन्त दृप्त तथा शस्त्रास्त्रों के कारण अवध्य हो गया। वह किसी से भी तीक्ष्ण शाप नहीं पाता था। इसलिए गर्वित दैत्य, दानव तथा कौणपगण सदा उसकी सेवा करते थे। वह मुनिपत्नियों को दूषित करके

धर्ममार्ग का निरोध करता था। उसका बल वृत्रासुर, पुलोमा तथा नमुचि से भी अधिक था। वह तो हिरण्यकशिपु के वश्य द्वितीय हिरण्याक्ष जैसा हो गया। महिषासुर द्वारा भेजी गई तापसी वेशधारिणी दूती ने सखियों के समक्ष ही देवी से कहना प्रारम्भ किया।।१-६।।

अरारु भीषणे भीरो निवसस्यत्र किं वने। विहर्तुमुचिता रम्येष्ववरोधनवेश्मसु।।७।।
किमर्थं वाऽद्य चित्तं ते यौवने भोगनिःस्पृहम्। निवेशितं तपसिच दैवतैरपि दुष्करे।।८।।
हंसतूलमयीं शय्यां मुक्तामयवितानिकाम्। हित्वा किमितिमृद्वङ्गिसुप्यतेपरुषाश्मसु।।९।।
तपोजडोमृडोदिष्ट्याप्रागेवास्तित्वयोज्झितः। तवानुरूपोनैवान्योविद्यतेदिविवत्सुच।।१०।।
किन्तु त्रैलोक्यनाथोऽस्ति महिषो दानवेश्वर।
यदि द्रक्ष्यसि तं सुभ्रू! त्यक्ष्यस्येव क्षणात्तपः।।११।।
किं निह्नवेन नन्वेष श्रुत्वा सर्वं चिरात्प्रभुः। स प्राहिणोदुपानेतुं दूतिकांमस्मांस्मरातुरः।।१२।।

दूती कहती हैं—हे भीरु! तुम तो अन्तःपुर में विहार करने योग्य हो। इस भीषण वन में क्यों निवास करती हो? इस तरुण वयः में ही तुम्हारा चित्त भोग रहित क्यों हो गया? तुम क्यों देवदुराचरणीय तपस्या में मन लगा रही हो? हे सुकुमार अंगों वाली! तुम क्यों मुक्तावितानयुक्त रुई से निर्मित कोमल शय्या को त्याग कर अतीव कठोर पाषाण पर शयन करती हो? तुमने तपोजड़ मृड (शिव) का पूर्व में ही त्याग कर दिया है। तुम्हारे अनुरूप पति देवताओं में है ही नहीं। तब भी एक है। वह त्रिलोकपति महिष दानवेश्वर है। यदि तुम उसे देख लो, तब तुम तत्काल तपस्या त्याग दोगी। अब बात को छिपाने से क्या लाभ? वे दीर्घकाल से सभी बातों को जानते हैं। सम्प्रति उन्होंने अत्यन्त कामातुर होकर मुझे दूती बनाकर तुम्हारे पास भेजा है।।७-१२।।

इत्यत्यन्तविरुद्धंतांब्रुवाणामसमञ्जसम्। देव्याश्चित्तस्थितिंज्ञात्वाविजयानिरकासयत्।।१३।।
सा चातिरोषेण कृतप्रतिज्ञा दैत्यरूपिका। गत्वा विदितवृत्तान्तमकरोन्महिषासुरम्।।१४।।
सोऽपि तत्सर्वमाकर्ण्यरुषाऽतीवारुणेक्षणः। देवींजिघृक्षुरभ्यागाद्वृतोदैतेयकोटिभिः।।१५।।
स्यन्दनैर्द्विरदैरश्वैः पत्तिभिश्च समन्ततः। भुवमाच्छादयामास ध्वजैश्च गगनान्तरम्।।१६।।
क्ष्वेलितैर्वाद्यघोषैश्च नभःस्फुटदिवाऽभवत्। पादाघातैश्च दैत्यानांविदद्रे वसुधातलम्।।१७।।

दूती ने इस प्रकार अत्यन्त विरुद्ध तथा असंगत बातों को कहा। विजया ने देवी की चित्तवृत्ति को जान कर दूती को वहां से भगा दिया। तब अत्यन्त क्रोधपूर्वक दूती ने अपना दैत्यरूप धारण करके प्रतिज्ञा किया तथा समस्त घटनाक्रम महिषासुर को बतलाया। महिषासुर उसे सुनते ही क्रोध से लाल आंखें करके देवी को पकड़ कर लाने हेतु कोटि सैन्यदल के साथ द्रुत वेग से चल पड़ा। तब हाथी, घोड़ों तथा रथ पंक्तियों द्वारा पृथिवी भर गई तथा ध्वजों से गननमण्डल आच्छादित हो उठा। वाद्यों के घोषणा से मानों आकाश मण्डल फट रहा था। दैत्यों के चलने से उनके पदाघात से वसुधातल विदीर्ण हो रहा था।।१३-१७।।

करालो दुर्द्धरस्तस्यविचष्णुर्विकरालकः। बाष्कलोदुर्मुखश्चण्डःप्रचण्डश्चाऽमरासुरः।।१८।।
महाहनुर्महामौलिरुग्रास्यो विकटेक्षणः। ज्वालास्यो दहनश्चेमे सेनान्योऽपिग्रतस्थिरे।।१९।।
कोलाहलमिमं श्रुत्वा देवी नियमविघ्नतः। शङ्किता दैत्यसंहत्यै दुर्गामादिशतिस्मसा।।२०।।

कराल, दुर्द्धर्ष, चण्ड, प्रचण्ड, अमारासुर, महाहनु, महायोनि, उग्राख्य, विकटक्षण तथा जालास्य नामक सेनापति उसके पीछे चल रहे थे। तब देवी ने दैत्यसैन्य का यह भयानक कलकल नाद सुनकर यह सोचा कि उनके नियम में विघ्न आ गया है। तब उन्होंने दैत्यगण के संहारार्थ दुर्गा को आदेश प्रदान किया।।१८-२०।।

साऽरुणाद्रिरहोद्रोण्यामदिरूढा मृगाधिपम्। दीप्तायुधधरैर्दोभिःकालिकेव महीं गता।।२१।।
घनाघनरवोदग्रं सिंहनादमचीकरत्। स्फुरद्दन्तच्छदोपान्तं वल्गदङ्गुलिपल्लवा।।२२।।
स्वाङ्गेभ्यो योगिनीचक्रंमातरोऽप्यसृजन्रुषा। देव्याः प्रियायदैतेयसंहारार्हाःसहस्त्रशः।।२३।।
काश्चित्तत्राऽरुणच्छायादण्डिन्योहंसवाहनाः। मुखैश्चतुर्भिराजग्मुःकोपप्रस्फुरिताधरैः।।२४।।
निर्ययुः काश्चन क्रुद्धा ज्वलत्त्रिशिखपाणयः। निस्वनद्भूषणाःपंसल्ललाटा वृषवाहनाः।।२५।।

दुर्गा अरुणाचल की एक गुप्त गुहा में गयीं। वहां एक सिंह दिखलाई पड़ा। दुर्गा ने उस पर आरोहण किया तथा प्रत्येक हाथ में एक-एक आयुध लेकर कालिका के समान सज्जित होकर रणभूमि में पहुंचीं। वे बादल की तरह घन-घन जैसा अत्युग्र सिंहनाद करने लगीं। तब उनका अधर तथा ओष्ठ स्फुरित हो रहे थे। उनकी उंगलियां कंपित हो रही थीं। क्रोध में भरी देवी ने अपने शरीर से योगिनी तथा मातृगण का सृजन किया। ये सहस्त्रों योगिनियां तथा मातृकायें सभी देवी के हितसाधनार्थ दैत्य हनन हेतु प्रस्तुत थीं। इनमें से कोई कोई अरुण वर्ण, कोई हंसवाहन दण्डधारी थी तथा क्रोध के कारण उनके अधर कांप रहे थे। कोई-कोई अतीव क्रोधित होकर ज्वलित धार वाला खड्ग लेकर आई थी। उसके सभी आभूषण विकट रूप से क्वणित हो रहे थे। उनके ललाट क्रोध से संकुचित हो रहे थे। वे सभी वृषभारूढ़ थीं।।२१-२५।।

निर्जग्मुरपराः सेनासहिताः शिखिवाहनैः। शक्तिदण्डाभयकराः शतशः षड्भिराननैः।।२६।।
निश्चक्रमुः परास्तार्क्ष्यमधिरुह्याधिकक्रुधा। शङ्खचक्रधराः सूर्यचन्द्रमोभ्यां दिवोयथा।।२७।।
प्रतिष्ठन्ते तथा व्याघ्रवाहाः कुवलयत्विषः। पोत्रैः सद्घर्घरारावैर्बिभ्रत्यो मुसलं हलम्।।२८।।

कोई-कोई सैन्य के साथ मयूर यान पर बैठकर आई थी। उनके हाथों में शक्ति, दण्ड तथा अभय मुद्रा विराजित थी। कोई-कोई गरुड़ पर बैठकर अत्यन्त क्रोधपूर्ण मुद्रा में आई थीं। वे सभी रवि-शशिशालिनी स्वर्गभूमि की तरह शंख-चक्रधारिणी थीं। कोई-कोई कुवलय कान्ति थीं। वे व्याघ्र पर बैठकर आई थीं। कोई-कोई घर्घर आवाज करने वाले शूकर वाहन पर बैठकर आईं तथा उसके हाथ में हल तथा मूषल था।।२६-२८।।

रोषाऽरुणसहस्त्राक्ष्यो वलक्षद्विपवाहनाः। प्रतस्थिरे शातकोटिशतकोटिधराः पराः।।२९।।
अश्वारूढाः समापेतुरेकाः सौदामिनीनिभाः। खड्गकेटकधारिण्यः कोपेन कपिलाननाः।।३०।।
ताश्च कोटिचतुःषष्टिमसुरानाश्रमाद्बहिः। अरुन्धन्प्रसभं ध्वान्तराशीनिवरवेस्त्विषः।।३१।।
ततश्च योगिनीचक्रदानवानीकयोर्मिथः। प्रावर्त्तत रणं घोरं मुष्टामुष्टि कचाकचि।।३२।।
सायकैर्योगिनीमुक्तैर्दलिता दैत्यमौलयः। आच्छादयन्महीपृष्ठं स्थलजानीव सर्वतः।।३३।।
प्रसस्त्रू रक्तसरितो लगत्कैशिकशैवलाः। लुठद्विपाठपाठीनाः स्मेरैर्देवीमुखाम्बुजैः।।३४।।

कोई-कोई श्वेत हाथी पर आई थीं। उनके नेत्र रोषपूर्ण होने के कारण अरुण वर्ण हो गये। उनकी संख्या करोड़ों में है। सौदामिनी के समान कई योगिनियां अश्वारूढ़ आई थीं। उनके हाथ में खड्ग तथा खेटक था। क्रोध

के कारण उनका मुखमण्डल कपिल वर्ण हो रहा था। ये संख्या में ६४ कोटि थीं। जैसे सूर्यकिरणें अन्धकार राशि पर आक्रामक होती हैं, तदनुरूप इन्होंने असुर सैन्य पर आक्रमण किया। तब देवी की विपुल योगिनी सेना तथा दानव सेना के बीच तुमुल युद्ध छिड़ गया। तब एक दूसरे का केश खींचते हुए मुष्टि प्रहार से पीड़ित करने लगे। योगिनीगण युक्त बाणों द्वारा छेदित होकर दानव सेना के मस्तक समूह से समस्त जगत् आच्छादित हो गया। रक्तनदी प्रवाहित होने लगी। कटे सिरों के केशसमूह उस रक्तनदी के शैवाल जैसे लग रहे थे। देवी के मुखकमल की मुस्कान उसके पाठीन के समान लग रही थी। (पाठीन = एक प्रकार की मछली।।२९-३४।।

वेतण्डतुण्डान्यारुह्य सौधानिवपिशाचिकाः। प्रचण्डताण्डवाःपीतरक्तमद्याश्चकाशिरे॥३५॥
कपालैर्दैत्यवीराणामघासुरसृगासवान्। क्रीडद्डुमरुकाकारैर्डामरैर्योगिनीगणाः॥३६॥
परिजह्रुस्तथान्त्राणिकङ्कौघाःपाशशङ्कया। क्षुधिताअपिमांसानिसशल्यान्यजहुःशिवाः॥३७॥

पिशाच समूह सौधवत् (हवेली के समान उच्च) हाथी की सूंड़ पर बैठ कर रक्तरूपी मदपान से मत्त होकर प्रचण्ड ताण्डव करने लगे। योगिनीगण इतःस्ततः फैले डमरु के समान वृहद्‌आकृति दैत्यकपाल द्वारा असुरों का रक्तपान करने लगीं। कङ्कगण (यमगण) पाश के समान दीर्घ-दीर्घ अस्त्र लेकर इधर-उधर खींचातानी कर रहे थे। शृगाल यद्यपि भूखे थे, तथापि वे वहां वाणवर्षा के कारण डर के कारण मांस उठाने में असमर्थ हो रहे थे।।३५-३७।।

सिद्धविद्याधरोन्मुक्तमन्दारप्रसवासवैः। इयाय शान्तिं भूरेणुः सङ्ग्रामे क्षोभसम्भवः॥३८॥
विरेजुर्योगिनीमुक्तैर्देहलग्नैर्द्विषां हयाः अमर्षातिशयोत्क्षिप्तैः शल्यैः शल्यमृगा इव॥३९॥
दण्डैः केचित्परे शूलैर्निशितैः केऽपि शक्तिभिः। चक्रैरन्ये हलैरेक कतिचिच्छतकोटिभिः॥४०॥
योगिनीनां परे खड्गैर्दलितादानवेश्वराः। निःशेषतामुपाजग्मुर्विनासेनाधिपान्निजान्॥४१॥
ब्राह्मीस्वयमुपागम्यविहितायोधनाऽवधीत्। करालंविकरालेनदण्डेनज्वलिताचिरात्॥४२॥
माहेश्वरी त्रिशूलेन सुचिरं कृतसङ्गरा। चकर्त दुर्द्धरस्याऽऽशु मूर्द्धानमतिरोषणा॥४३॥
शक्त्यालुलावकौमारीचिक्षुरासुरमस्तकम्। चक्रेणचालुनान्मौलिंविकरालस्यवैष्णवी॥४४॥
बाष्ककलस्याऽऽशु वाराही मुसलेनाऽलुनाच्छिरः।
दुर्मुखंचाऽऽशुवज्रेणव्यधादैन्द्रीगतायुषम् ॥४५॥
ख्यातंयस्याश्चनामेदंतयोरेवनिदूषनात्। चामुण्डाचण्डमुण्डौचमण्डलाग्रेणचिच्छिदे॥४६॥

संग्राम क्षेत्र में उड़ रही धूलिराशि सिद्धगण द्वारा बरसाये मन्दार पुष्प के प्रसवासव से भींगकर शान्त हो जा रही थी। (धूल मन्दार पुष्प के प्रसावासव से भींग कर जमीन में पुनः बैठ जा रही थी)। दैत्यों के सभी अश्व योगिनीगण द्वारा छोड़े गये बाणों द्वारा विद्ध होकर बाणों से विद्ध हिरणों के समान प्रतीत हो रहे थे। सेनापति बिना दैत्येश्वरगण में से कोई-कोई दण्ड द्वारा, कोई शूल द्वारा, कोई-कोई शक्ति द्वारा, कोई हल द्वारा, कोई शतकोटि अस्त्र द्वारा, कोई-कोई खड्ग द्वारा दलित होकर मृत हो रहा था। ब्राह्मी देवी ने स्वयं दण्ड की प्रभा से उद्‌भासित कराल नामक दैत्य का वध किया। माहेश्वरी ने दीर्घकाल युद्ध करके अत्यन्त क्रोध से दर्दुर दैत्य का वध किया। कौमारी शक्ति द्वारा चिक्षुर असुर का शिर दो खण्डों में काट दिया गया। वैष्णवी ने चक्र द्वारा विकराल का, वाराही

ने भूषल द्वारा वाष्कल का तथा ऐन्द्री ने वज्र द्वारा दुर्मुख का मस्तक छेदन किया। चामुण्डा ने मण्डलास्त्र से चण्ड-मुण्ड का शिर काट दिया। इन दैत्यों का हनन करके ही वे जगत् में प्रसिद्ध हो गयीं।।३८-४६।।

प्रचण्डचामरौ वीरौ महामौलिं महाहनुम्। उग्रास्यविकटाक्षौच ज्वालास्यदहनावपि।।४७।।
अनुजग्मुः क्रुधा यान्तं युद्धाय महिषासुरम्। कालनेमिप्रभृतयोविप्रचित्तिमिवासुराः।।४८।।
शिरस्त्रवन्तो रथिनः सुनिषङ्गा धनुर्धराः। उद्धूतकटकाः प्रापुर्युद्धभूमिं चलद्ध्वजाः।।४९।।
समन्तात्पूरितदिशः सिंहनादैर्भयङ्करैः। पृषत्कवर्षिणो मातृमण्डलान्यभिदुद्रुवुः।।५०।।

प्रचण्ड तथा चामर, महामौलि, महाहनु, उग्रास्य, विकटाक्ष, ज्वालास्य ने दहन दैत्य का अनुगमन किया। (अर्थात् दहन की तरह मृत हो गये)। जैसे कालनेमि ने विप्रचित्ति का अनुगमन किया था, तद्रूप अन्य शिरस्त्राण धारी रथी, सुनिषङ्ग, धनुर्धर, उद्यत् कटक चंचलध्वज असुरगण ने क्रोधान्ध महिषासुर का अनुगमन किया। तब भयंकर सिंहनाद से दिशायें गूंज उठीं! पृषत्कवर्षी असुरगण ने मातृगण पर चढ़ाई कर दिया।।४७-५०।।

ताश्च तैर्वलिभिः कृत्वा सङ्ग्रामं निस्सहत्वतः। दुर्गां प्रपेदिरे देवीं शरणं सिंहवाहनाम्।।५१।।

जब मात्र सप्त मातृगण असुर सैन्य के साथ संग्राम सहन नहीं कर सकीं, तब उन्होंने सिंहवाहिनी दुर्गा की शरण लिया। उन्होंने दुरात्मा मायावी असुरों के दुर्जय होने की बात दुर्गा से कह कर उनका स्तव करने लगीं।।५१।।

उक्त्वा मालालुलायस्य दुर्जयत्वं दुरात्मनः। देवीं तां तुष्टुवुर्दुर्गामेवं सप्ताऽपिमातरः।।५२।।
योगनिद्रेतिरूपेण विष्णोर्नयनपद्मयोः। त्वया निलीयते देवि मधुकार्येव लीलया।।५३।।
अमुमुहस्तं न तथा मातश्च मधुकैटभौ। कथं जघान तौ विष्णुस्तयोरेवाभ्यनुज्ञया।।५४।।
त्वं कौशिकी न चेज्जाता मृत्युः शुम्भनिशुम्भयोः।
कथं तु लोकपालानामैश्वर्यं देवि एष्यति।।५५।।
विन्ध्यवासिनिविन्ध्येनकिमवन्ध्यंकृतंतपः। यत्र मैत्रीकिरातीभिरपिलभ्यात्वयासमम्।।५६।।

मातृगण कहती हैं—हे देवी! आप लीलावशात् विष्णु के नयनकमलद्वय में योगनिद्रारूपेण विलीन रहती हैं तथा मधुकारी रूप से रहती हैं। हे माता! यदि आप मधु-कैटभ को इस प्रकार से मुग्ध न करतीं, तब क्या विष्णु उन दोनों की आज्ञा लेकर उनका वध कर पाते? हे माता! यदि आप शुम्भ-निशुम्भ की मृत्युरूपा नहीं होतीं, तब क्या लोकपालगण ऐश्वर्य भोग कर पाते! हे माता विन्ध्यवासिनी! आपने क्या विन्ध्याचल निवास करके समस्त तप अवश्य किया था, उसके फलस्वरूप आपसे किरात रमणियां भी मित्रता करती हैं?।।५२-५६।।

कापिशायनमापीतं धनदोपायनीकृतम्। त्वयाऽम्ब नीतं दैत्यानां रसैर्निंयतमानवैः।।५७।।
ब्रह्मणः सृष्टिशक्तिस्त्वं स्थितिशक्तिर्मधुद्विषः। अम्ब संहारशक्तिश्चरुद्रस्यापिप्रगल्भसे।।५८।।
यशोदानन्दजाता त्वमेकानंशेति नामतः। कंसाद्यसुरसंहारे हरैः साह्यं करिष्यसि।।५९।।

हे अम्बे! आपने धनद (कुबेर) द्वारा उपायनी कृत कापिशायन पान किया था। वह दैत्यगण द्वारा निश्चित मानव रस से युक्त है। ब्रह्मा की आप सृष्टि शक्ति, विष्णु की स्थिति शक्ति तथा रुद्र की अन्धक संहार शक्ति हैं। आप यशोदानन्द से उत्पन्न हैं। आपका ही नाम है "एकानंशा" आपने ही कंसादि नाशकारी श्रीहरि की सहायता किया था।।५७-५९।।

त्वं विद्या त्वं महामाया त्वं लक्ष्मीस्त्वं सरस्वती।
त्वं देवी पार्वतीशाऽपि दुर्गे किं वा न जायसे॥६०॥

आप विद्या, महामाया, लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती तथा ईश्वरी हैं। हे दुर्गे! आप क्या नहीं हैं?॥६०॥

नन्दिकेश्वर उवाच

स्तोत्रेणाऽनेन मातृभ्यो दुर्गा दत्ताभयास्वयम्। महिषासुरयुद्धायसन्तुष्टानिर्ययौतदा॥६१॥
प्रचण्डमण्डलाग्रेण भिन्दिपालेन चामरम्।
महामौलिं क्षुरिकया कर्परेण महाहनुम्॥६२॥
उग्रवक्त्रं कुठारेण शक्त्या विकटचक्षुषम्। ज्वालामुखं मुद्गरेण दहनं मुसलेन च॥६३॥
निहत्य महिषस्याग्रे सरोषं युध्यती स्वयम्। सिंहनादंमहाघोरं चक्रेण मुदिताशया॥६४॥
अथात्यमर्षितो दुर्गा विहिशैर्महिषासुरः। विव्याध फालफलके स्तनयोर्गण्डयोरपि॥६५॥
ततो दुर्गाऽथ संरम्भात्प्रजहाराऽसुरेश्वरम्। बाह्वोर्वक्षसि वक्त्रेचक्षुरप्रैःप्रज्वलत्फलैः॥६६॥
ततो दैत्यस्त्रिभिर्दुर्गांजघानविशिखैर्मुखे। पञ्चभिः पञ्चभिर्बाह्वोर्द्वाभ्यांद्वाभ्यांचनेत्रयोः॥६७॥
एकेन सारथिं रत्यानष्टभिः कार्मुकं त्रिभिः। चतुर्भिश्चध्वजंतस्यदुर्गाचिच्छेदसायकैः॥६८॥
पदातिरथ दैत्येन्द्रः शतघ्नींज्वलदाकृतिम्। कालदण्डप्रतीकाशां दुर्गांप्रतिविमुक्तत्वान्॥६९॥
हाहाकुर्वस्तु देवेषु विद्राणे मातृमण्डले। तामापतन्तीमादाय दुर्गा जग्राह लीलया॥७०॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—मातृगण के स्तव से सन्तुष्ट होकर देवी दुर्गा उनको अभय प्रदान करके प्रसन्न चित्त से महिषासुर से युद्ध हेतु आईं। उन्होंने प्रचण्ड मण्डलाग्र भिन्दिपाल से चामर को, क्षुरिकास्त्र से महामौलि को, कर्पर से महाहनु को, कुठार से उग्रवक्त्र को, शक्ति से विकटचक्षु को, मुद्गर से ज्वालामुख को, मूषल से दहन को महिषासुर के सामने क्रोध के साथ मृत करके युद्ध करने लगीं। उन्होंने मुदित मन से चक्र द्वारा सिंहनाद तथा महाघोर का वध कर दिया। महिषासुर ने अतीव क्रोधित होकर विशिख से दुर्गा के गाल तथा स्तनों को विद्ध कर दिया। तदनन्तर दुर्गा ने महान् उत्साह के साथ प्रज्वलित फलक वाले क्षुरप्र अस्त्र द्वारा महिषासुर के वक्ष, बाहु तथा मुख को विद्ध कर दिया। तब दैत्य ने तीन बाणों से दुर्गा के मुख पर प्रहार किया। इस पर देवी ने ५-५ बाणों से असुर की बाहुद्वय, दो बाणों से नेत्र पर प्रहार किया। तीन बाणों से धनुष तथा ४ बाणों से ध्वज का छेदन कर दिया। तब महिषासुर ने पैदल होकर अग्नितुल्य ज्वालामाला युक्त कालदण्डवत् अप्रतिम शक्ति छोड़ी। इस भयानक शक्ति को आता देखकर सभी देवता हाहाकार करने लगे। मातृमण्डल भग्न होने लगा, तथापि देवी ने उसे लीला मात्र से पकड़ लिया॥६१-७०॥

कृपाणमङ्कुशं पाशंभुशुण्डींकरवालिकाम्। शङ्कं शक्तिं गदांचक्रंतोमरंफलकंसृणिम्॥७१॥
परश्वधं भिण्डिपालं पट्टिशं लगुडंचसः। दुर्गां प्रति विचिक्षेपक्षयाम्भोदइवाऽशनिम्॥७२॥

तब महिषासुर कृपाण, अंकुश, पाश, भुशुण्डि, तलवार, शंकु, शक्ति, गदा, चक्र, तोमर, फलक, लगुड़, शृणि, परशु, भिन्दिपाल, पट्टिश का प्रहार दुर्गा पर करने लगा॥७१-७२॥

आपतन्त्येव शस्त्राणि क्षिप्तान्यादाय वैरिणाम्।
बभञ्ज पाणिभिः स्वैरं करिणीवेक्षुकाण्डकम्॥७३॥
दुर्गोपवाह्यः सिंहोऽपि लाङ्गूलाग्रेण मुद्रितम्। दंष्ट्रया दारयामास प्रहरन्नखपङ्क्तिजैः॥७४॥
क्षणं सिंहःक्षणंक्रोडःक्षणंव्याघ्रःक्षणंगजः। क्षणं च महिषीभूत्वादैत्योदुर्गामयोधयत्॥७५॥
महिषोऽथविषाणाभ्यां तीक्ष्णाभ्यामत्यमर्षितः। ताडयामाससिंहंचदेवीमपिमुहुर्मुहुः॥७६॥
क्षणं गगनमध्यस्थः क्षणं प्राप्तोमहीतले। क्षणं दिक्षु भ्रमन्प्राप्तःक्षणं चाऽदृश्यतांगतः॥७७॥
प्रार्थिता मातृचक्रेण दुर्गा महिषदानवम्। अमोघेन त्रिशूलेन दारयामाससस्मिता॥७८॥
मुक्तघर्घरनिर्घोषो यावत्पतति दानवः। तावदस्य हठेनाङ्घ्रिं स्कन्धपीठे न्यवेशयत्॥७९॥
कण्ठपीडनतो यातजीवितस्याऽमरद्रुहः। छिन्नं मूर्द्धानमादाय पाणिनाऽथ ननर्त्त सा॥८०॥
इति दुर्गया समिति कासरासुरे दलिते समस्तभुवनैककण्टके।
ननृतुः सुराः प्रजहृषुर्महर्षयो ववृषुश्च दिव्यकुसुमानि वारिदाः॥८१॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे देव्यास्तपश्चर्यायां दुर्गाकृतमहिषासुरवध वर्णनंनामैकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥

—❀—

दुर्गा ने भी शत्रु द्वारा छोड़े सभी शस्त्रों को उसी प्रकार भग्न कर दिया, जैसे हथिनी गन्ने के दण्ड को तोड़ देती है। दुर्गा का वाहन सिंह भी अपनी पूंछ, दाढ़ों तथा नख द्वारा प्रहार करने लगा। तब क्षणमात्र में महिष ने भी सिंह रूप धारण किया। वह कभी व्याघ्र, कभी हाथी, कभी महिष बन कर युद्धरत होने लगा। वह पुनः-पुनः अत्यन्त क्रोधपूर्वक देवी के वाहन पर तथा देवी पर प्रहार कर रहा था। वह महिषासुर कभी गगन में जाकर, कभी पातालस्थ होकर, कभी दिशाओं में विलीन होकर, कभी अदृश्य होकर युद्ध करने लगा। तब मातृगण की प्रार्थना सुनकर देवी ने हंसते हुए महिषासुर को त्रिशूल से दो भागों में काट दिया। यह दानव घर्घर शब्द करके जैसे ही गिरा, वैसे ही उसके कण्ठ, पीठ तथा अंघ्रि (टखना) निवेशित कर दिये गये। उस अमरद्रोही (देवद्रोही) महिष का शिर लेकर देवी दुर्गा नृत्य करने लगीं। देवी दुर्गा द्वारा वह भुवन कण्टक महिषासुर इस प्रकार से समर में निहत हो जाने से सुरगण नृत्य करने लगे तथा महर्षिगण हर्षित हो गये। मेघों द्वारा कुसुमवर्षण किया जाने लगा॥७३-८१॥

॥उनविंश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

विंशतितमोऽध्यायः

पार्वतीकृत अरुणाचलेश्वर स्तव

मार्कण्डेय उवाच

अहो महिषदैत्यस्य दुराचारत्वमीदृशम्। अहो दुरितहारिण्या दुर्गायाश्च पराक्रमः॥१॥
एवं तया भद्रकाल्या निहिते महिषासुरे। किं चकारगिरीन्द्रस्यनन्दिनीतपसिस्थिता॥२॥

मार्कण्डेय कहते हैं—महिषासुर का दुराचारत्व जितना विस्मयजनक है, दुरितहारिणी देवी दुर्गा का पराक्रम भी उतना ही आश्चर्ययुक्त है। पूर्वोक्त प्रकार से देवी भद्रकाली द्वारा महिषवध होनेपर तपश्चारिणी गिरिजा ने क्या किया?।।१-२।।

नन्दिकेश्वर उवाच

अनन्तरं सा हस्तेन दधतीदैत्यमस्तकम्। ननाम गौरीमन्येन पाणिना खड्गधारिणा॥३॥
अथ हर्षेण नृत्यन्तीं तामालोक्यदयार्द्रया। दृष्ट्या देवी जगादैनांदन्तांशुद्योतिताम्बरा॥४॥
त्वयाऽतिदुष्करंकर्म निर्मितं विन्ध्यवासिनि। जातं तव प्रभावेण निष्प्रत्यूहंचमे तपः॥५॥
अथैतन्माहिषं शीर्षमपवित्रं भयङ्करम्। जगत्पवित्रचारित्रे त्यक्तुमर्हसि हस्ततः॥६॥
इति गौर्योदिता दुर्गा जुगुप्साकुलमानसा। मूर्ध्नस्तस्य निपाताय व्यधुनोद्बहुशः करम्॥७॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—तदनन्तर देवी दुर्गा एक हाथ में तलवार तथा एक हाथ में दैत्यमस्तक धारण किये हुए नृत्य करते-करते भगवती गौरी के पास आईं। उन्होंने उनको प्रणाम किया। देवी गौरी ने दयार्द्रचित्त होकर उनको देखा तथा अपने हास्यजनित दांतों की छटा से अम्बरतल को आलोकित करते हुए कहने लगीं—"हे विन्ध्यवासिनी! तुमने तो अत्यन्त दुष्कर कर्म सम्पादित किया है। तुम्हारे प्रभाव से मेरा तप विघ्नरहित हो गया। अब तुम अतीव अपवित्र महिष मस्तक का त्याग करके इस जगत् को पवित्र करो। गौरी के यह कहने पर दुर्गा ने घृणापूर्वक इस महिष मस्तक का त्याग करने हेतु अनेक बार अपने हाथों को झटका दिया।।३-७।।

तीर्थमुत्पाद्यतां देवि नवं पापविनाशनम्। तस्मिन्निमज्जनाद्दुर्गेप्रायश्चित्तं भविष्यति॥८॥
इतीरिता गौतमेन दुर्गा दुरितशङ्किनी। पाटयामास खड्गेन शिलापट्टम्पटीयसा॥९॥
पातालावधि निर्भिन्नात्पाषाणतलतस्ततः। उदजृम्भत्तरङ्गाम्भः सच्चित्तमिव निर्मलम्॥१०॥
मज्जसाऽपिगम्भीरे तस्मिन्नम्भसिपावने। नमःशोणाद्रिनाथायेत्युक्त्वामन्त्रमनुत्तमम्॥११॥

तब गौतम मुनि देवी दुर्गा से कहने लगे—"हे देवी! आप पापनाशक नवतीर्थ का उत्पादन करिये। इस तीर्थ में स्नान करने से प्रायश्चित्त रूप फललाभ होगा।" दुरितनाशिनी दुर्गा ने यह सुनकर अपने खड्ग से शिलापट्ट पर प्रहार किया। पातालपर्यन्त आघात पहुंचने पर पाषाणतल से निर्मल चित्त के समान जलराशि निकलने लगी। तब उस पवित्र गहरी जलराशि में देवी दुर्गा ने "नमः शोणभद्रनाथाय" रूपी अत्युत्तम मन्त्रोच्चार करके स्नान किया।।८-११।।

तावन्महिषकण्ठस्थं लिङ्गं तद्गलितं तले। तटे प्रतिष्ठितं जातं पापनाशनसञ्ज्ञया॥
उन्ममज्ज ततो दुर्गा तीर्थाम्भोधूतकल्मषा। निपपाताऽथ तत्पाणेर्महिषासुरमस्तकम्॥१२॥
कृतप्रदक्षिणा नत्वापापनाशनमीश्वरम्। पुरस्तादस्ति सा गौर्या गौतमेनाभिनन्दिता॥१३॥
एवं प्रत्यक्षनिरतपापां तां वीक्ष्य पार्वती। जगाद दीर्घतपसं जगतीधरनन्दिनी॥१४॥
महिषासुरसंहारेऽञ्जसा स्वनुमतिः कृता। विन्ध्यवासिनीयमहो दुष्टमाहिषविग्रहम्॥१५॥
गृहीत्वा भक्षयामास तस्यलिङ्गमिदंशिवम्। प्रायश्चित्तं ततो ब्रूहि ममाऽपिमुनिसत्तम॥१६॥

जल में अवगाहन करते ही तत्क्षण महिष के कण्ठ में स्थित लिंग स्खलित होकर पापनाशन नाम से वहां की तटभूमि पर स्थित हो गया। तब दुर्गा इस तीर्थजल से कल्मषरहित होकर बाहर निकलीं। महिषासुर का मस्तक उनके हाथों से अलग हो गया। उन्होंने पापनाशन लिंग की प्रदक्षिणा किया तथा उसे प्रणाम किया। तब ऋषि गौतम द्वारा अभिनन्दित होकर वे गौरी के समक्ष अवस्थित हो गयीं। तब धरणीधरनन्दिनी दीर्घतपश्चारिणी दुर्गा को प्रत्यक्षतः महिषमस्तक से निरस्त प्रायः देखकर कहा—"मैंने महिषवधार्थ दुर्गा को अनुमति दिया था, परन्तु आश्चर्य की बात है कि इन विन्ध्यवासिनी ने दुष्ट महिष का भक्षण कर लिया। उसके कण्ठ में स्थित लिंग ही शिव हैं। हे मुनिप्रवर गौतम! आप दुर्गा के लिए प्रायश्चित्त विधान करें"।।१२-१६।।

गौतम उवाच

देवि सर्वजगत्सर्गस्थितिसंहारकारिणी। त्वद्ध्यानमेव जगतां सर्वपातकनाशनम्॥१७॥
अथापि लौकिकं वृत्तमवलम्ब्य त्वयेरितम्। स्वकृतापि हि मर्यादानमहद्भिर्विलङ्घ्यते॥१८॥
अन्तःकरणकालुष्यक्षालिनी काचनक्रिया। कथ्यतेऽद्य मया मातरवधानंविधीयताम्॥१९॥
अरुणाद्रिरयंसाक्षादनलाद्रिस्तिरोहितः। ज्वलतिज्योतिषास्वेनकृत्तिकापूर्णिमानिशि॥२०॥
तत्सपर्यातपश्चर्याकार्याकात्यायनि! त्वया। तज्ज्योतिर्दर्शनात्सर्वमभीष्टंतवसिध्यति॥२१॥

गौतम कहते हैं—हे देवी! आप समस्त जगत् की सृष्टि-स्थिति-लयकारिणी हैं। आपके ध्यान मात्र से सर्वपातक समूह नष्ट हो जाते हैं। आप तो लौकिक चरित्र धारण करके यह कह रही हैं। इसका कारण यह है कि महान् लोग अपनी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करते। हे माता! अब मैं अन्तःकरणस्थ कलुषनाशक एक कर्म का वर्णन करता हूं। आप अवहित होकर सुनें। यह अरुणाचल साक्षात् तिरोहित अग्नि के समान है। यह कृत्तिका नक्षत्रयुक्त पूर्णिमा की रात्रि में अपने तेज से प्रज्वलित होता है। हे माता कात्यायनी! आप इसकी पूजा तथा तप करें। उसकी ज्योति का दर्शन मिलने से आपका समस्त अभीष्ट साधित होगा।।१७-२१।।

इत्युक्ता गौतमेनाम्बा तदाप्रभृतिदारुणा। इयं च शिवभक्ता हि शिवपूजारता तदा॥२२॥
तपश्चचार पञ्चानामग्नीनांमध्यमाश्रिता। चतुर्णां शिखिनांमध्येस्थितासूर्यनिविष्टदृक्॥२३॥
रेजे हैमी शलाकेव द्योतमाना गिरीन्द्रजा। अथाकृष्टेवपार्वत्याः प्रेमपाशैर्निरायतैः॥२४॥
साकार्त्तिकीपौर्णमासीसमापेदेशुभा तिथिः। ततस्तस्यदिनस्यान्तेशृङ्गेशोणमहीभृतः॥२५॥
अदर्शि किमपि ज्योतिरनुपादिकवैभवम्। तदर्थोपगतैर्ब्रह्ममधुभिद्वासवादिभिः॥२६॥

उपास्यमानमभितो देवेर्दिव्यर्षिसङ्गतैः। तदनिन्धनमस्नेहमदशावर्तिसम्भवम्॥२७॥
महाप्रदीपमालोक्य विस्मयम्प्राप पार्वती। कृतप्रदक्षिणा साऽथ प्रणमन्ती पदेपदे॥२८॥
अरुणाद्रीश्वरं नाथं तुष्टा तुष्टाव शैलजा॥२९॥

गौतम का यह कथन सुनकर तब से माता दुर्गा एकान्तिक शिवभक्ता तथा शिवपूजानिरता हो गयीं। वे चतुर्दिक् पंचाग्नि जलाकर उसके बीच बैठकर पूजन करने लगीं। वे अग्निमध्यस्थिता होकर सूर्य से दृष्टि संलग्न करके वैसे ही शोभित हो गयीं, जैसे ज्योतिर्मयी मूर्त्ति में स्वर्णशलाका शोभित होती है। तब मानों पार्वती के प्रेमपाश से आकृष्ट होकर कार्त्तिकी पौर्णमासी तिथि आ गयी। इस दिन का अवसान होनेपर शोणाचल के शिखर पर एक अनुपम अनिर्वचनीय ज्योति परिलक्षित होने लगी। इसे उदित जानकर ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्रादि प्रधान देवता इस ज्योति के चतुर्दिक् स्थित होकर इस ज्योति की आराधना करने लगे। शैलपुत्री उमा प्रसन्न होकर इस इन्धन रहित, तैलादि स्नेहरहित, बिना बत्ती के सम्भूत महाप्रदीप रूप ज्योति को देखकर विस्मित हो गयीं। वे इसकी प्रदक्षिणा करके पुनः-पुनः प्रणाम करने लगीं। वे तदनन्तर प्रसन्नतापूर्वक इस ज्योतिरूप अरुणाचलेश्वर का स्तव करने लगीं।।२२-२९।।

नमस्ते मेरुचापाय कैलाशाचलवासिने। नीहारशैलजामात्रे शोणक्ष्माधररूपिणे॥३०॥
वरुणादिसुरार्च्याय तरुणादित्यवर्चसे। अरुणाचलनाथाय करुणामूर्त्तयेनमः॥३१॥
जय जह्नुसुताचन्द्रलेखालङ्कृशेखर। सौन्दर्यमोहिताशेषमुनिपत्नीजनाशय॥३२॥
जय शैलसुतासङ्गसम्भृतानङ्गवैभव। मायानारायणाभोगक्रीडाम्रेडनपण्डित॥३३॥
जयसन्ध्यासमोपेतसम्भृतानन्दताण्डव। जयगीर्वाणगन्धर्वसिद्धविद्याधरार्चित॥३४॥
जय हेरम्बजनक जय षण्मुखवत्सल। जय हैमवतीप्रार्थ्य जय पार्थिवदुर्लभ॥३५॥
इति स्तुत्वा मुहुस्तस्मिञ्ज्योतिषि न्यस्तलोचनाम्।
दृष्ट्वा देवीं दयाव्याजाद्विलिल्ये वृषभध्वजः॥३६॥
लयित्वा निजमास्थाय रूपमुत्कटसुन्दरम्। आस्थायवृषभंदिव्यममंदृष्टाशिवांशुभाम्॥३७॥
मानातिरेकादपहाय सर्वमैश्वर्यमेवं तपसि प्रवृत्ताम्।
मुग्धाः पुनः सान्त्वयितुं गिरीशः प्रचक्रमे पर्वतराजपुत्रीम्॥३८॥

।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथममाहेश्वरखण्डान्तर्गते द्वितीये कौमारिकाखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे पार्वतीकृतारुणा-चलेश्वरस्तुतिवर्णनं नाम विंशतितमोऽध्यायः।।२०।।

देवी कहती हैं—हे मेरुचाय, कैलासाचलवासी, नीहार (हिम) शैल के जामाता, शोणाचल रूपी, वरुणादि देवगण द्वारा अर्चनीय, तरुणादित्य के समान किरणों वाले, अरुणाचलेश्वर, करुणामूर्त्ति आपको प्रणाम! हे जन्हुपुत्री (गंगा) तथा चन्द्रलेखा द्वारा अलंकृत मस्तक वाले, आप अपने सौन्दर्य से समस्त मुनियों के अन्तःकरण को मुग्ध

करते हैं। आपको प्रणाम! आपकी जय हो। आप शैलपुत्री के साथ अनंग वैभव का पोषण करते हैं। आप मायानारायण के आभोगार्थ क्रीड़ा में पण्डित हैं। आपकी जय हो। हे सन्ध्यासमोपंत सम्भूतानन्द ताण्डव! आप देव-गन्धर्व-सिद्ध-विद्याधर द्वारा पूजित हैं। आपकी जय हो। हे हेरम्बजनक! सम्मुखवत्सल (पार्वती) हैमवती द्वारा प्रार्थित, पार्थिवदुर्लभ! आपकी जय हो।'' उन ज्योतिपदार्थ के अवलोकन में तत्पर देवी को यह स्तव करते देखकर वृषध्वज देवदेव शिव वहीं विलीन हो गये तथा सुन्दर रूप धारण करके वृषभारूढ़ होकर पार्वती को दर्शन देने वहीं प्रकट हो गये। उन्होंने यह दर्शन भगवती शिवा को प्रदान किया, जो अतिशय मान के कारण सभी ऐश्वर्य का त्याग करके तप कर रही थीं। वे शंकर के प्रति मुग्ध शिवा को सान्त्वना देने का प्रयास करने लगे।।३०-३८।।

।।विंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

एकविंशतितमोऽध्यायः

शिव द्वारा पार्वती प्रशंसा

नन्दिकेश्वर उवाच

तदा ब्रह्म सरस्वत्या महाविष्णुश्च पद्मया। शक्रः पुलोमसुतया परे दिक्पालकाअपि॥१॥
गन्धर्वाप्सरसांसङ्घा वसवोऽपि सुरा अपि। त्रयस्त्रिंशत्कोटिगणाःपरेमुनिगणाअपि॥२॥
एकादशमहारुद्रा आदित्या द्वादशाऽपिच। भैरवाश्च पिशाचाश्च वेताला: कटपूतनाः॥३॥
यक्षरक्षोरगा बूता ये चाऽन्येशिवकिङ्करा:। सन्तोषभाजःसर्वेऽपिविकटाकारवेष्टिताः॥४॥
परिवार्य महेशानं समाजग्मुः सहस्त्रशः। तद्वीराशंसनं दृष्ट्वा योगिनीदानवैः कृतम्॥५॥
अतीव विस्मयंभेजुःसर्वे कल्पान्तभीषणम्। कृतसान्निध्यमालोक्यदेवमानन्दयन्त्युमा॥६॥
चिररात्रप्ररूढां च तद्वियोगव्यथां जहौ। रोमाञ्चिता स्विन्नमुखी वेपमाना घनस्तनी॥७॥
पादाङ्गुलीषु नयने विनिवेशयति स्म सा। वृषभादवरुह्याऽथ गृहीत्वैनां करे शिवः।
स्मितशारीरकण्टश्रीप्रणयेनैवमब्रवीत्॥८॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—देवी पार्वती को शिव द्वारा सान्त्वना प्रदान करते समय सरस्वती के साथ ब्रह्मा, लक्ष्मी के साथ विष्णु, पुलोमा की कन्या के साथ इन्द्र, दिक्पाल, गन्धर्व, अप्सरायें, वसुगण, ३३ करोड़ गण, मुनिगण, ११ रुद्र, १२ आदित्य, भैरव, पिशाच, बेताल, वटपूतना, यक्ष, राक्षस, सर्प, भूत तथा अन्य शिवसेवक, विकटाकृति हजारों हजार सन्तोषशील गण, महेश्वर को घेर कर उनके साथ आये थे। योगिनीगण तथा दानवों के बीच का कल्पान्त काल के समान भीषण वीरोचित युद्ध देख कर वे विस्मित हो गये। इधर उमादेवी ने महेश को अपने निकट आया देखा। इससे वे आनन्दित हो गयीं। महेश्वर ने भगवती की अपने वियोग जनित अनेक रात्रि की व्यथा को तत्काल एक साथ तिरोहित कर दिया। वे तत्काल रोमांचिता, स्विन्नमुखी (स्वेदयुक्त)

वेपमाना (कम्पनयुक्त) धनस्तनी प्रतीत होने लगीं। वे लज्जा से अपने नेत्र अपने पैरों की उंगलियों की ओर अवनत करके स्थित हो गयीं। तब शिव भी वृषभ से नीचे उतरे तथा देवी के करकमल को पकड़ कर स्मित तथा शारीर (आत्मिक रूप से) कण्ठ से कहने लगे।।१-८।।

शिव उवाच

व्याकुलीक्रियते देवि! किमेवं कारणं विना।।९।।
सर्वैराराधनीयेतिमयाऽऽपिघटितोऽञ्जलिः। किंनवेत्स्यावयोरैक्यंज्योत्स्नाचन्द्रमसोरिव।।१०।।
अनादिसिद्धंदेवेशि तवेदं मौग्ध्यमीदृशम्। क्वेदं शिरीषमृद्वङ्गि! शरीरं ते गिरीन्द्रजे।।११।।
तपः समाधयश्चेति क्व कर्कशजनोचिताः। नारायणोऽहं लक्ष्मीस्त्वं ब्रह्माऽस्मि त्वं सरस्वती।।१२।।
वारुणीत्वंफणीन्द्रोऽहंरोहिणीत्वमहंशशी। स्वाहात्वंहव्यवाहोऽहंसूर्योऽहंत्वंसुवर्चला।।१३।।
जाह्नवी त्वं समुद्रोऽहंमेरुरस्मित्वमुर्वरा। पुलोमजा त्वं शक्रोऽहं त्वं रतिश्चित्तभूरहम्।।१४।।
बुद्धिस्त्वं राजराजोऽहं त्वं शमाऽहं समीरणः। पाथोधिपोऽहं वीचिस्त्वं प्रकृतिस्त्वं पुमानहम्।।१५।।
विद्यात्वंवेदितव्योऽहंवाक्त्वमर्थोऽपिपार्वती। ईश्वरोऽहंमदंशाऽसित्वयैत्राज्ञास्वरूपया।।१६।।
सृष्टिस्थित्युपसंहारविधानानुग्रहेश्वरे। न भेदोऽतस्त्वया कार्यः पृथग्जनवदावयोः।।१७।।

शिव कहते हैं—बिना कारण मुझे व्याकुल कर रही हो? सभी तो तुम्हारी आराधना कर रहे हैं। मैं भी तुम्हारे समक्ष अंजलियुक्त होता हूं। जैसे चन्द्रमा तथा उसकी ज्योत्स्ना में ऐक्य है, वैसे ही मेरा तुम्हारा जो ऐक्य है, क्या तुम उसे नहीं जानती? हे देवेशी! क्या तुम्हारी ऐसी मुग्धस्थिति चिरकाल रहेगी? हे गिरिपुत्री! कहां तुम्हारा शिरीष के पुष्प ऐसा कोमल शरीर और कहां यह कर्कश जनोचित कठोर तप! हे देवी! मैं नारायण तुम लक्ष्मी हो। मैं ब्रह्मा तुम सरस्वती, मैं फणीन्द्र तुम वारुणी, मैं चन्द्र तुम रोहिणी, मैं अग्निहव्यवाह तुम स्वाहा, मैं सूर्य तुम सूर्यरश्मि, मैं समुद्र तुम गंगा, मैं मेरुपर्वत तुम पृथिवी, मैं इन्द्र तुम शची, मैं कामदेव तुम रति, मैं राजराज तुम बुद्धि, मैं वायु तुम शमा, मैं समुद्र तुम तरंग, मैं पुरुष तुम प्रकृति, मैं वेदिकता तुम विद्या तथा मैं अर्थ तुम वाक्य हो। तुम आत्मस्वरूप के कारण ही मैं ईश्वर हूं। तुम मेरी अंश हो तथा तुम ही ईश्वर की सृष्टि-स्थिति-संहार विधान की अनुग्राहिका हो। अतएव प्राकृत लोगों की तरह मेरे साथ तुमको भेद करना उचित नहीं है।।९-१७।।

चित्प्रकाशात्मनोर्देवि स्वेच्छाधृतशरीरया। व्याकुली कुरुषेशश्वद्वथैवेर्ष्यायसेहिमाम्।।१८।।
दृष्टाप्रतिक्रियातस्यक्रियतेयाऽधुनामया। इत्युक्त्वेशोनिषण्णस्तांपार्श्वदेशेन्यवेशयत्।।१९।।
गौरीं स्वकीय एवाङ्के गूहमानामिव ह्रिया। अङ्गद्वयंतयोरैक्यमगात्प्रेम्णा च लीनयोः।।२०।।
अर्थद्वयमिवाऽहाय सन्निकर्षोपलम्भतः। अर्धेकर्पूरधवलमर्धे सिन्धूरपाटलम्।।२१।।
तद्विचित्रमभूदङ्गं शिवयोरेकतां गतम्। अर्धे कुन्तलदामार्धहारमध्ये तु कुञ्चिका।।२२।।
अङ्गादर्धेन्दुचूडस्य वपुरर्धेन्दुकूलितम्। एकनूपुरताटङ्कपरिहार्य मनोहरम्।।२३।।
एकपिङ्गलसध्रीचो गात्रमेकस्तनं बभौ। देव्यै दत्त्वाच धामार्धं वामदेवो जगादताम्।।२४।।
अवकाशो रुषो देवि मा भूरतः परंतव। स्तन्यार्थिनं गुहं हित्वा याताऽसितपसेयतः।।२५।।

तदपीतस्तनीनाम्ना निवसाऽत्र ममान्तिके। त्वामपीतस्तनींदेवींशोणाद्रीशं च मामपि॥२६॥
जनाः सर्वे समाराध्य रमन्तां भोगमोक्षयोः। इयं त्वदंशजा देवी दुर्गामहिषसूदिनी॥२७॥
अत्रैव सन्निधत्तां तु मन्त्रसिद्धिप्रदा नृणाम्। खड्गतीर्थमिदंपुण्यंसकृदेवनिमज्जनात्॥२८॥
सर्वरोगहरं पुंसामस्तुसर्वाघनाशनम्। प्रवालगिरिनाथश्च देवोऽयं पापनाशनः॥२९॥

"हे देवी! तुमने चित् प्रकाश रूप मन्त्र से स्वयं देह ग्रहण किया है। क्यों मुझे व्याकुल करती हो? क्यों मुझसे ईर्ष्या करती हो?" "देखकर यहीं इसका प्रतिकार करूंगा।" यह कहकर शंकर भी देवी पार्वती के पार्श्व में रोमांचित होकर बैठ गये तथा देवी को बगल में सटा लिया। देवी गौरी तब लज्जा से मानों अपने ही शरीर में छिपने सी लगीं। इस निकटता से जैसे शब्द का दो प्रकार का शब्दार्थ तत्काल एक ही अर्थ रूप में पर्यवसित हो जाता है, उसी प्रकार दोनों का प्रेम एक दूसरे में विलीन हो जाने से दोनों का अंग एक हो गया। आधा अंग (शिवांग) कर्पूर धवल था तथा अर्द्धांग सिन्दूर पाटलरूप (देवी का अंग) से शोभित हो रहा था। शिव-शिवानी का ऐकत्व प्राप्त अंग विचित्र शोभा से द्योतित होने लगा। आधा अंग कुन्तलदाम-हार-कुञ्चिका से शोभित था, तो आधा अंग अर्द्धेन्दुशेखर से अर्द्धेन्दुप्रभा से शोभित था। एक ओर नुपूर-ताड़ङ्क के न होने के कारण मनोहर शरीर द्योतित था तो अन्य ओर पिङ्गल रूप एक स्तन युक्त शरीर दीप्यमान था। तब देवदेव ने देवी से कहा—"हे देवी! अब तुमको क्रोधित होने का अवसर नहीं प्राप्त होगा। तुम स्तनपान के इच्छुक स्कन्द का त्याग करके तप करने आई थीं। इसलिए अब तुम अपीतस्तनी नाम से प्रसिद्ध होकर मेरे पास निवास करो। लोग मेरी आराधना शोणाद्रीश के नाम से तथा तुम्हारी आराधना अपीतस्तनी नाम से करेंगे। इस प्रकार वे भोग तथा मोक्ष दोनों प्राप्त करेंगे। ये दुर्गा तुम्हारे ही अंश से उत्पन्न हैं। ये महिषमर्दिनी यहीं सन्निहित होकर मनुष्यों को महासिद्धि प्रदान करती रहें। यहां जो खड्गतीर्थ स्थित है, (देवी ने खड्ग द्वारा शिला पर प्रहार करके इसे उत्पन्न किया था) मात्र एक बार इसमें स्नान करने से सभी रोगों से मुक्ति मिलती है तथा सभी पापों का नाश हो जाता है। यहां प्रवाल गिरिनाथ देव हैं। ये श्रद्धालु मनुष्यों के लिए पापनाशक तथा ऐश्वर्यदाता हो जायें।।१८-२९।।

भक्तिश्रद्धावतां नृणां भूयास्तां भूतये भृशम्। अयं च गौतमो देवित्वदनुग्रहभाजनम्॥३०॥
तपोनुरूपं भजतां लोकेष्वाचन्द्रतारकम्। इमाश्च मातरः सप्त सप्तलोकैकमातरः॥३१॥
अद्यप्रभृति कुर्वन्तु सान्निध्यं जगतां श्रियै। शास्तारो भैरवाःक्षेत्रपालका बटुकाअपि॥३२॥
अरुणक्षेत्र एवाऽत्र नित्यं कुर्वन्तु सन्निधिम्। अत्राऽहमरुणक्षेत्रे निवसाम्यरुणाह्वयः॥३३॥
त्वयाऽप्यरुणया देव्या स्थातव्यं करुणार्द्रया। ईप्सिनामरुणादेवौ सान्निध्यं कुरुतो यतः॥३४॥
तदस्मिन्नरुणक्षेत्रे सुलभाः सर्वसिद्धयः॥३५॥
इदं कृतं पर्वतराजपुत्र्या प्रसादनं शोणगिरीश्वरस्य।
शृणोति यः स द्विषतो विधूय स्वर्गापवर्गौ सुलभावुपेयात्॥३६॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे शिवकृतपार्वतीप्रशंसावर्णनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः॥२१॥

हे देवी! उस ओर गौतम ऋषि हैं। ये तुम्हारे अनुग्रह भाजन हैं। ये जबतक तारक-चन्द्र की स्थिति है, तबतक यहां तपोभागी रहेंगे। ये सप्तमातृका हैं, जो जगत् के श्री सम्पादनार्थ यहां स्थित हैं। भैरव-क्षेत्रपाल तथा बटुकगण इस अरुणाचल क्षेत्र के शासनकर्त्ता होकर यहां सर्वदा विराजमान रहेंगे। मैं अरुण नाम से प्रसिद्ध होकर यहां निवास करता हूं। तुम भी अरुणा नाम से प्रख्यात होकर यहां निवास करो। यहां अरुणदेव तथा अरुणादेवी का निवास है। अतः जो सिद्धिकामी हैं, वे यहां सर्वसिद्धि प्राप्त करेंगे।''

शोणगिरीश्वर ने इस प्रकार से पर्वतराज पुत्री को प्रसन्न किया। जो व्यक्ति यह प्रसंग सुनता है, वह शत्रु को पराजित करके अत्यन्त सुगमता से स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति करता है।।३०-३६।।

।।एकविंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

द्वाविंशतितमोऽध्यायः

वज्राङ्गद वृत्तान्त, पितृभक्ति का फल गणेश को प्राप्त होना

मार्कण्डेय उवाच

स्वामिन्नित्यशिवानन्दभगवन्नन्दिकेश्वर। आह्लादितोऽस्मि शोणेशमाहात्म्यसुधया त्वया।।१।।
कथंवज्राङ्गदः पाण्ड्यराजः शोणव्यतिक्रमम्। चक्रे कथं तद्भक्त्यैव प्राप्तवान्सम्पदं पुनः।।२।।
कथं विद्याधराधीशौकान्तिशालिकलाधरौ। दुर्वासःशापनिर्विद्धावतौशोणशम्भुना।।३।।

मार्कण्डेय कहते हैं—हे स्वामिन्! नित्य शिवानन्द भगवान् नन्दिकेश्वर—मैंने आपके द्वारा शोणेश माहात्म्य सुरा का पान किया तथा इससे आह्लादित हो गया। पाण्ड्यराज वज्राङ्गद किस प्रकार से शोणाचल को तुच्छ मानने के कारण सम्पद्भ्रष्ट हो गये तथा पुनः इनकी भक्ति से अपनी नष्ट सम्पत्ति को प्राप्त किया? किस प्रकार से विद्याधरराज कान्तिशाली तथा कलाधर ने दुर्वासा के शाप से ग्रस्त होकर शोणप्रभु द्वारा शापमुक्ति प्राप्त किया, कृपया कहिये।।१-३।।

नन्दिकेश्वर उवाच

दीर्घायुष्यत्वसाफल्यं लब्धवांस्त्वं मृकण्डुज। यदियं स्थेयसी भक्तिर्भवतोभूतनायके।।४।।
वक्ष्ये वज्राङ्गदोदन्तं वृत्तं विद्याभृतोरपि। यतोऽभून्महितो लोके शोणाद्रीश्वरवैभवः।।५।।
आसीद्वज्राङ्गदोनामपुरापाण्ड्येषुपार्थिवः। आस्ते यस्यभुजस्तम्भेवसुधासालभञ्जिका।।६।।
धार्मिको न्यायविज्ञाता गम्भीरो दक्षिणः क्षमः। शान्तो विनयवान्धीमानेकदारव्रतः कृती।।७।।
शिवपूजार्चनरतः श्रीमाञ्छीलवतां वरः। पृथ्वीमासेतुकेदाराच्छशास चितशात्रवः।।८।।
कदाचिन्मृगयाव्याजात्स चरन्सुतुरङ्गमः। अरुणाचलपर्यन्तं कान्तारं समगाहत।।९।।
स तत्र बहलामोदं कञ्चित्कस्तूरिकामृगम्। दृष्ट्वा तमन्वक्तुरगं प्रावर्तयत कौतुकात्।।१०।।

स मृगोऽनुद्रुतस्तेन अभितः शोणपर्वतम्। प्रादक्षिण्यात्परीयाय पपात च मनोजवः॥११॥
ततः स भग्नसारोऽपि राजा जातश्रमश्चरन्। पपात वाहाद्विच्छायः क्षीणपुण्यइवद्युतः॥१२॥
अज्ञातकारणेनैवं मातङ्गेनेव पीडितः। नाज्ञासीत्क्षणमात्मानं राजाग्रहगृहीतवत्॥१३॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—हे मृकण्डुपुत्र मार्कण्डेय! आपने इहलोक में दीर्घायु पाया है। यदि आपकी भगवान् भूतनाथ के प्रति अचला भक्ति है, तब आपसे वज्राङ्गद तथा विद्याधरों का वृत्तान्त कहता हूं। सुनिये। इस कथानक द्वारा ही शोणाद्रि का वैभव परिज्ञात होता है। पूर्व में पाण्ड्यराज वज्रांगद थे, जिनके भुजदण्ड में वसुधा एक क्रीड़ा की पुतली जैसी स्थित थी। ये धार्मिक, न्यायविद्, गंभीर, दाक्षिण्यवान्, क्षमाशील, शान्त, विनयी, एकपत्नीव्रती, कृती, शिवपूजक, श्रीमान् तथा शीलवान् राजाओं में प्रधान थे। ये शत्रुविजयी थे। ये सेतुबन्ध से लेकर केदार तक पृथिवी का शासन करते थे। एक बार इन्होंने मृगया (शिकार) के लिए घोड़े पर सवार होकर अरुणाचल पर्यन्त वन में विचरण किया। विचरण करते-करते इन्होंने अत्यन्त आमोदपूर्ण एक कस्तूरी मृग को देखा। उन्होंने कौतूहल के कारण उसका पीछा भी किया। तब यह मनोजव मृग राजा द्वारा पीछा किये जाने के कारण प्रदक्षिणाक्रमेण अरुणाचल के चतुर्दिक् दौड़ते-दौड़ते गिर पड़ा। राजा भी उसका पीछा करते हुए थक गये तथा घोड़े से उसी प्रकार गिर पड़े, जैसे पुण्यक्षीण हो जानेपर प्राणी स्वर्ग से पतित हो जाता है। वे बिना कारण मानों हाथी द्वारा पकड़े गये तथा पीड़ित किये गये व्यक्ति के समान क्षणकालार्थ आत्मविस्मृत हो गये। तदनन्तर सोचने लगे कि बिना कारण ऐसा सत्वविप्लव (बुद्धिमोह) कैसे घटित हो गया? अकस्मात् मेरा वाहन अश्व कहां गायब हो गया?।।४-१४।।

अचिन्तयच्च कोऽयंमे निर्हेतुः सत्त्वविप्लवः। क्व गतः स ह्यकस्मान्मे उपवाह्यस्तुरङ्गमः॥१४॥
इति चिन्ताकुले तस्मिंस्तज्ज्ञानेऽप्यपटीयसि। तडित्तटजटालेव सहसा द्यौरदृश्यत॥१५॥
निरीक्षमाण एवाऽस्मिन्हित्वा तिर्यक्कलेवरम्। तूर्णं तुरङ्गसारङ्गौ खेचरत्वमुपागतौ॥१६॥
किरीटिनौ कुण्डलिनौ हारकेयूरधारिणौ। क्षौमान्तरीयोत्तरीयौस्त्रग्विणौचविरेजतुः॥१७॥
अवोचताञ्च नृपतिमाश्चर्याकृष्टमानसम्। हरन्ताविव दन्तांशुजालैस्त्वस्यार्त्तिजं तमः॥१८॥
राजन्नलं विषादेन शोणाद्रीशप्रभावतः। एतां जानीहि सञ्जातां नवां नौ चेदृशींदशाम्॥१९॥
तदोवाच तयोः किञ्चिदाश्वस्तइव पार्थिवः। कृताञ्जलिरभाषिष्ट तावुभौ विनयान्वितः॥२०॥
कौ युवां निमितो याभ्यामभिषङ्गोममेदृशः। भद्रौभणतमार्त्तानांत्राणं हि महतां गुणः॥२१॥

वे इस प्रकार विचार कर रहे थे, तब भी उनकी समझ में कुछ नहीं आया। सहसा जैसे ही आकाश का अवलोकन किया, तभी उस तड़ित्-तट-जटाल देश आकाश में देखा कि उनका घोड़ा तथा वह कस्तूरी मृग अपना पशु शरीर त्याग कर तीव्रतापूर्वक आकाश में चले जा रहे हैं। यह भी देखा कि वे किरीट-कुण्डल-हर-केयूर धारी हैं। उन्होंने रेशमी दो-दो वस्त्र धारण किया है तथा माला से शोभित हो रहे हैं। तब उन्होंने आश्चर्य से दांतों पर दांत दबाये। उस विस्मयाकुल चित्त नृपति की बुद्धि पर छाया तमः दूर करने हेतु कहा—"हे राजन्! विषण्ण मन नहीं हो। शोणाद्रिनाथ की कृपा से हम दोनों को ऐसी अभिनव दशा मिली है।" तब राजा ने आश्वस्त होकर उनसे हाथ जोड़ कर विनीत भाव से कहा—अब तुम्हें क्या हुआ? तुम्हारे साथ मेरा यह इतने दिनों का साथ कैसे था? हे भद्रद्वय! यह रहस्य प्रकट करो। देखो! आर्त्तत्राण ही महान् लोगों का गुण है।।१५-२१।।

इति तेन कृते प्रश्ने तमुवाच कलाधरः। राजानं जनिताश्चर्यं निर्दिष्टः कान्तिशालिना॥२२॥
अवेहि राजन्नावां हि पुरा विद्याधरेश्वरौ। परस्परातिसौहार्दौ वसन्तमदनाविव॥२३॥
एकदा तु सुवर्णाद्रेः पार्श्वे दुर्वाससोमुनेः। तपोवनमगच्छाव मनसोऽपि दुरासदम्॥२४॥
क्रोशेद्धां तपसस्तस्य शिवाराधनसाधनीम्। पुष्पोज्ज्वलामपश्याव पुण्यामारामवाटिकाम्॥२५॥
विनीतावप्यसञ्जातौ तत्त्वोचितसुधीगणौ। प्राविशाव तदुद्यानं प्रसूनावचयोत्सुकौ॥२६॥

राजा के द्वारा यह प्रश्न किये जानेपर कलाधर कहने लगा—"हे राजन्! हम दोनों पहले विद्याधर थे। हम दोनों में वही सौहार्द्र था, जो वसन्त तथा कामदेव के बीच है। एक बार हम स्वर्णाद्रि के पार्श्वदेशस्थ दुर्वासा ऋषि के मनोरम तथापि दुरधिगम्य आश्रम पहुंचे। वहां हमने तपः के फल के समान १ कोस माप वाली शिवाराधना साधन करने वाली पुष्पों से उज्ज्वल हो रही पुष्पाराम वाटिका को देखा। तत्ववित् सुधी व्यक्ति की तरह हम दोनों विनीत भाव से वहां पुष्पचयन के विचार से कौतूहलाक्रान्त होकर वहां प्रवेश कर गये।।२२-२६।।

स्थलस्यतस्यसौहार्दात्कान्तिशाल्यतिगर्वितः। सञ्चचारमुहुःपादन्यासंराघट्टयन्महीम्॥२७॥
अहन्तु तत्र पुष्पाणां गन्धातिशयमोहितः। विकस्वरेषु पुष्पेषु न्यस्तहस्तो दुराशयः॥२८॥
ततःशाण्डिल्यमूलस्थोव्याघ्रचर्मासनेस्थितः। दुर्वासास्तपसांराशिर्ज्वलन्निवहुताशनः॥२९॥
अमर्षोत्कर्षनीरन्ध्रस्पन्दमानाधरच्छदः। करालभृकुटीबन्धसारालितविशालभूः॥३०॥
सरोषोऽभूत्तेजसाढ्योधर्मतन्तुरविग्रहः। दहन्निव दृशा पश्यन्नभर्त्सयत नौ मुनिः॥३१॥
आः पापौ प्रच्युताचारौ कौ युवामतिगर्वितौ। ज्वलतः कोपवह्नेर्मेशलभत्वमुपागतौ॥३२॥

यह स्थान हृदयग्राही, कान्तियुक्त था। हम गर्व के वशीभूत होकर पैदल धीरे-धीरे चलते वहां पृथिवी को रौंदते विचरण करने लगे। हमने पुष्पगन्ध से मोहित होकर खिले पुष्पों को हाथ में पहना। तभी शाण्डिल्य वृक्ष के नीचे (बिल्ववृक्ष के नीचे) व्याघ्रचर्मासनस्थ प्रज्वलित अग्निवत् तपोराशि दुर्वासा को देखा, जो क्रोध के कारण कम्पित अधर अपनी विशाल भौहों को टेढ़ा करके क्रोध प्रकट कर रहे थे। उन तेजनिधि धर्मतन्तुरविग्रह मानों अपनी दृष्टि से हमें दग्ध करते हुए हमारी भर्त्सना करने लगे—"आः! यह क्या पाप है? तुम आचारभ्रष्टों को तो अत्यन्त गर्व भरा देखता हूं। तुम तो मुझ प्रज्वलित क्रोधविग्रहरूपी कोपाग्नि में पतंगे की तरह आ पड़े हो!"।।२७-३२।।

तपोवनमिदं मत्कं पावनं भूतभावनम्। पादैर्न स्पृशतः क्वाऽपि सूर्याचन्द्रमसावपि॥३३॥
पुरवैरिसपर्यायाः पर्यायकमिदंवनम्। न स्पन्दतेऽत्रवातोऽपि न लिप्यन्तेऽत्रषट्पदाः॥३४॥
तदेतत्पादसञ्चारैर्दूषयन्नेषपातकी। हयो भवन्तु भूलोके परवाह्यत्वपीडितः॥३५॥
अपरोऽप्ययमत्युग्र पयत्वचलकन्दरे। प्रसूनगन्धलोभाद्यो गन्धसारङ्गतां गतः॥३६॥
इति तेनोग्ररोषेण शापव्रजे निपातिते। तत्क्षणाद्विगलद्गर्वावावां तं शरणं गतौ॥३७॥
अभिधाय च तं देवमाहिताङ्घ्रिपरिग्रहैः। अमोघ एषत्वच्छापस्तदस्यान्तोनिवेद्यताम्॥३८॥

"मेरा यह भूतभावन पावन तपोवन है। चन्द्र-सूर्य भी इसे पैरों से स्पर्श कर सकने में सक्षम नहीं हैं। त्रिपुरारि की अर्चना हेतु यह वन है। वायु भी यहां स्पन्दित नहीं होता। ऐसे ही भ्रमर पर्यन्त भी कभी यहां गुंजार का शब्द नहीं

कर पाते। तुम दोनों पातकी ने पदसंचार से इसे दूषित कर दिया। तुम वहां पृथिवी पर जाकर सवारी ढोने वाले अश्व हो जाओ। इसने पुष्पगन्ध का लाभ किया है, वह अत्युग्र कंदरा में पतित होकर कस्तूरी मृग होगा।'' इस प्रकार से दुर्वासा का श्राप मिलने से तत्काल हमारा गर्व खण्डित हो गया। हम उनके शरणागत हो गये। हम उनके चरणों पर गिर कर कहने लगे—''हे देव! आपका शाप अमोघ होता है। इससे कैसे मुक्ति होगी''?।।३३-३८।।

अथाऽतिदीनमनसावावामालोक्य पार्थिव!। सानुग्रहोऽभून्मुनिराट् कारुण्यादतिशीतलः॥३९॥
अभाषतच मैवं भो भवतोःक्वाऽपिदुर्धियोः। शापस्यभविताशान्तिररुणाद्रेःप्रदक्षिणात्॥४०॥
पुरा खलु पुरारातिरध्यतिष्ठच्छुभांसभाम्। पर्युपास्यतदिक्पालैरिन्द्रोपेन्द्रयमादिभिः॥४१॥
तदा च देवदेवाय नन्दनारण्यदेवता। उपायनीकृतवती फलं किमपि पाटलम्॥४२॥
बाल्यात्कुतूहलाक्रान्तौ गजाननषडाननौ। पितरं तदयाचेतां लोभनीयतरं फलम्॥४३॥
अथ तावदद्देवस्तनयौ फलतर्षितौ। गोपयित्वा फलं पाणिसम्पुटेन कुमारकौ॥४४॥
इमां समस्तां पृथिवीं लोकालोकेन वेष्टिताम्। यो वां प्रदक्षिणीकर्तुमीष्टे तस्मै ददाम्यहम्॥४५॥

हे राजन्! तत्पश्चात् उन मुनिराज ने हमें अत्यन्त दीन देखकर हमारे प्रति अनुग्रह करते हुए करुणावश शीतल होकर कहा ''तुम दुर्बुद्धि हो। तुम्हारे प्रति जो शाप प्रदान किया है, वह अन्यथा होने योग्य नहीं है। तब भी अरुणाचल प्रदक्षिणा द्वारा शाप समाप्त होगा। एक बार भगवान् त्रिपुरारि ने एक सभा का आयोजन किया था। इस शुभ सभा में वे इन्द्र-उपेन्द्र-यमादि दिक्पालों द्वारा पूजित हुए थे। तब नन्दनवन देवता ने एक पाटलवर्ण फल उन देवदेव को प्रदान किया। बालचापल्य के कारण गजानन तथा षडानन ने यह फल उनसे मांगा, तब देवदेव ने अपनी दोनों हथेली से उसे ढंक कर छिपाया तथा कहा ''जो लोकालोक से घिरी समग्र पृथिवी की प्रदक्षिणा पहले करेगा, उसे ही यह फल प्राप्त होगा''।।३९-४५।।

इत्युक्ते पार्वतीशेन स्मयमानमुखेन्दुना। स्कन्दः प्रदक्षिणीकर्तुं मेदिनीमुपचक्रमे॥४६॥
लम्बोदरस्तु देवस्य शोणशैलाकृतेः पितुः। प्रदक्षिणं ततः कृत्वापुरस्तादेवतत्क्षणात्॥४७॥
तद्दृष्ट्वा तस्य चातुर्यं हेरम्बाय त्रियम्बकः। फलं वितीर्णवानस्मै प्रणयाघ्रातमस्तकः॥४८॥
अद्यप्रभृति सर्वेषां फलानामधिनायकः। भवेत्यस्मै वरं दत्त्वा हौकदन्ताय शङ्करः॥४९॥
बभाषे च सभास्तारान्सर्वानपि सुरासुरान्। प्रसरद्दशनज्योत्स्नाकर्बुरीकृतमन्दिरः॥५०॥

स्थावरोऽयं ममाकारः शोणाद्रिर्योऽस्य भक्तितः।
प्रदक्षिणां वितनुते स मे सारूप्यभाग्भवेत्॥५१॥
गिरेः प्रदक्षिणेनाऽस्ययस्यधत्तः पदेरुजम्। स सम्राट् सकलोत्कृष्टं लभतेशाश्वतंपदम्॥५२॥

पिता का यह वाक्य सुनकर सस्मित मुद्रा में स्कन्द ने पृथिवी की प्रदक्षिणा का उपक्रम किया। इधर हेरम्ब गणपति ने शोणशैलाकृति अपने पिता की प्रदक्षिणा किया तथा उनके समक्ष आ गये। त्रिलोचन ने प्रभु गणेश की यह चतुरता देखकर उनको वह फल प्रदान किया तथा उनका मस्तक सूंघकर कहा—''आज से तुम समस्त फलों के अधिनायक हो गये।'' यह वर गणपति को प्रदान किया। तब उन्होंने अपनी दंतपंक्ति की किरणों से सभाभवन को कर्पूरीकृत करते हुए कहा—यह शोण पर्वत मेरा स्थावर आकार है। जो भक्तिपूर्वक इसकी प्रदक्षिणा करेगा,

उसे मेरा सारूप्य प्राप्त होगा। इसकी प्रदक्षिणा करते हुए जिसके पैर पीड़ित होंगे, वह सर्वोत्कृष्ट सम्राट पदवी पाकर अन्त में शाश्वत पद प्राप्त करेगा।।४६-५२।।

इतिशासनत शम्भोःशोणशैलप्रदक्षिणम्। विधायसर्वगीर्वाणालेभिरेस्वंस्वमीप्सितम्।।५३।।
युवामपिमदोद्भूतमालिन्यौशिक्षितौमया। प्रदक्षिणेनशोणाद्रेः सापान्तोवांभविष्यति।।५४।।
तिरश्चोरपि वां सिध्येदरुणाद्रेः प्रदक्षिणा। वज्राङ्गदस्य पाण्ड्यस्य नृपतेरनुबन्धतः।।५५।।
इत्यमर्षणमहर्षिमहाब्धेः शापहालहलशोषितगात्रौ। पातितौ बहुलपातकभारात्क्षिप्रमश्वमृगजातिषु जातौ।।५६।।
।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धेऽरुणाचल-प्रदक्षिणामाहात्म्ये वज्राङ्गदवृत्तान्तवर्णनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः।।२२।।

शम्भु के इस शासन वाक्य को सुनकर देवताओं ने शोणाचल की प्रदक्षिणा करके अपना-अपना वांछित वर प्राप्त किया। तुम भी मेरा उपदेश पाकर इस शोणगिरि की परिक्रमा करो। तुम्हारा भी शापान्त होगा। तुम तिर्यक् योनि में पड़ कर भी वज्राङ्गद नामक पाण्ड्यराज के कारण अरुणाचल की प्रदक्षिणा करोगे।'' इस प्रकार महर्षि रूप महासमुद्र के शापरूपी हलाहल से शोषित अंगों वाले हम दोनों विद्याधर अनेक पातक भार के कारण तत्काल अश्व एवं मृगरूपता को प्राप्त हो गये।।५३-५६।।

।।द्वाविंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

त्रयोविंशतितमोऽध्यायः

कलाधर कान्तिशालि वृत्तान्त

कलाधर उवाच

काम्बोजेषु हयो भूत्वा कान्तिशाली सुहन्मम। अयासीदौपवाह्यत्वं भवतोराजपुङ्गव।।१।।
अहं च गन्धमृगतांगतः स्वाङ्गप्रसूतिना। सुगन्धिनामदेनाऽस्यसञ्चारं चाऽऽचरंगिरेः।।२।।
धर्मात्मन्मृगयाव्याजादागतेन त्वयाऽधुना। आवां शोणाद्रिनाथस्य प्रापितौ हि प्रदक्षिणाम्।।३।।
वाहारोहणदोषेण तवाऽऽसीदीदृशी दशा। पादप्रचारपुण्येन प्राप्तं नौ प्राक्तनं पदम्।।४।।
राजेन्द्र! तव सम्बन्धादस्मात्तिर्यक्त्वबन्धनात्। मुक्तावावां स्वकं धाम प्राप्तौ स्वस्त्यस्तु ते सदा।।५।।
इत्युदीर्यनिजं धाम यियासन्तंकलाधरम्। कान्तिशालिनं चराजाजगादरचिताञ्जलिः।।६।।
एवं युवां शोणशैलशङ्करस्य प्रभावतः। शापार्णवं समुत्तीर्णौ कथं मे पुनरुच्छ्रय।।७।।
भ्राम्यतीव मम स्वां तमाधाय तदवेक्षणम्।
निर्यान्तीव मम प्राणास्तत्रदैवंबलोत्तरम् कलाधरकान्तिशालिनावूचतुः।
अवधारय निस्तारं कथयाव तवाऽऽस्पदम्।।८।।

समाहितेन मनसा निर्धूतनिखिलाधिना॥९॥
जगत्सर्गस्थितिध्वंसविधानानुग्रहेश्वरे। अरुणाद्रीश्वरे चित्तं निधेहि करुणानिधौ॥१०॥
प्रत्यक्षितं त्वयेदानीमस्य देवस्य वैभवम्। तिरश्चोरावयोरेतदीदृशत्वं वितन्वतः॥११॥

कलाधर कहते हैं—"हे राजश्रेष्ठ! मेरा मित्र कान्तिशाली काम्बोज देश में अश्वरूपेण जन्म लेकर आपका वाहन हो गया। मैं गन्धमृग होकर अपनी अंगगन्ध से प्रमत्त होकर इस पर्वत पर विचरण करता था। हे धर्मात्मन्! अब आपने मृगया के बहाने यहां आकर प्रकारान्तर से हमें शोणाद्रिनाथ की प्रदक्षिणा करवा दिया। यहां वाहन पर आरोहण के दोष से आपकी यह दशा हो गई है। हम भी इस पुण्य से (पैदल प्रदक्षिणा रूप पुण्य से) अपने-अपने पूर्वरूप को पा गये। हे राजेन्द्र! आपके सम्पर्क से हम इस तिर्यक् बन्धन से छूट कर अपने धाम जा रहे हैं। आपका सदा मंगल हो।" यह कहकर कलाधर एवं कान्तिशाली ने स्वधाम प्रस्थान करने की इच्छा करने लगे, तब राजा ने हाथ जोड़कर उनसे कहा "तुमलोग शोणदेवरूप शंकर के प्रभाव से किस प्रकार शापसमुद्र से मुक्त हो सके? मेरी उन्नति कैसे होगी? मेरा मन उनके दर्शनों की अपेक्षा कर रहा है। इसलिए मानों मेरे मन-प्राण देह से बाहर निकल रहे हैं, तथापि इस सम्बन्ध में तो दैव ही बली है। तब कलाधर तथा कान्तिशाली कहने लगे—"आप अपने उद्धार की अवधारणा करें। हम आपसे अपनी बात कहेंगे। आप समाहित होकर (निष्पाप) निर्द्धूत तथा निखिलादि होकर जगत् की सृष्टि-स्थिति-लयकारी, अनुग्रहेश्वर, अरुणाचलेश्वर रूप करुणानिधि के प्रति चित्तार्पण करे। आप अब इन देव के वैभव को जान गये हैं। देखिये! हम तिर्यक् योनि से मुक्त होकर इस रूप को पा गये!"।।१-११।।

कुरु प्रदक्षिणां पादचारी मृगमदादृतैः। कल्हारैः पूजयेशानं देवं मृगमदप्रियम्॥१२॥
यावती तव सम्पत्तिस्तावतीमखिलां विभो। प्रकारगोपुरागारनवीकाराय कल्पय॥१३॥
अचिरादेवसिद्धिस्ते भविष्यति गरीयसी। मनुमान्धातृनाभागभगीरथवदाधिका॥१४॥

आप पैदल इस पर्वत की प्रदक्षिणा करें। मृगमदाहत् कल्हार पुष्प द्वारा मृगमदप्रिय देव ईशान का पूजन करें। आपकी जितनी सम्पदा है, उस समस्त सम्पत्ति से इन देवता का प्राकार, द्वार, गोपुर, मन्दिर सब नवीन करें। शीघ्र ही आपको मनु-मान्धाता-नाभाग-भगीरथ को जैसी सिद्धि मिली थी, वैसी आपको प्राप्त होगी।।१२-१४।।

नन्दिकेश्वर उवाच

इत्थं निशम्य च तयोर्निजमेव धाम विद्याभृतोः सपदि संश्रुतयोनरिन्द्रः।
निःसंशयेन मनसा निरतस्तदानीं भक्तिं बबन्ध भगवत्यरुणाद्रिनाथे॥१५॥

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे कलाधरकान्तिशालिवृत्तान्तवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः।।२३।।

नन्दिकेश्वर कहते हैं—राजा ने इस प्रकार विद्याधरद्वय द्वारा स्वधाम प्राप्ति की कथा सुन कर तभी निःसंशय मन द्वारा देव अरुणाचलनाथ की भक्ति में निरत हो गये।।१५।।

।।त्रयोविंश अध्याय समाप्त।।

चतुर्विंशतितमोऽध्यायः

पुत्र को राज्य देकर वज्रांगद की सद्गति का तथा वरप्राप्ति का वर्णन

मार्कण्डेय उवाच

भगवन्भवमाहात्म्यरत्नाकरसुधाकरम्। नन्दीश चित्रं चारित्रं श्रुतं विद्यामृतोर्द्वयोः॥१॥
कदा वज्राङ्गदः सिद्धः कथं देवमपूजयत्। कथं चान्वग्रहात्प्रह्वं देवस्तमरुणेश्वरः॥२॥

मार्कण्डेय कहते हैं—हे भगवान् नन्दीश! मैंने भगवान् भव माहात्म्य रत्नाकर सुधाकर स्वरूप विद्याधर द्वय का चरित्र सुना। अब मैं यह सुनना चाहता हूं कि राजा वज्रांगद को कब सिद्धि प्राप्त हो सकी? उन्होंने देवदेव की अर्चना किस प्रकार से किया? तथा कैसे देवदेव अरुणाचलेश्वर ने उन पर अनुग्रह किया?॥१-२॥

नन्दिकेश्वर उवाच

निवर्त्तनेच्छां हित्वाऽथ नृपो निजपुरं प्रति। तस्यैव पादपर्यन्तेस्वस्य वासमरोचयत्॥३॥
अथाऽस्य महती सेना वाहमार्गानुसारिणी। प्राप्ता शताङ्गमातङ्गतुरङ्गभटसङ्कुला॥४॥
समदृश्यत भूपालस्तादृशो धैर्यसागरः। पुरोधोमन्त्रिसामन्तसेनापतिसुहृत्तमैः॥५॥
ततस्तामागतां सेनामवनीपतिरादृतः। अरुणाद्रेश्च सीमाया बहिरेव न्यवेशयत्॥६॥
स्वकीयमखिलंकोशंदेशानपिमहाफलान्। सोणाद्रिनाथपूजायैकल्पमयामासभक्तिमान्॥७॥
गौतमस्याऽऽश्रमाभ्याशेस्वयंकृततपोवनः। पुरोधोक्तः ससचिवःशिवार्चनरतोऽभवत्॥८॥
रत्नाङ्गदाख्यं तनयं स्थापयित्वा निजे पदे। तत्प्रेषितैरपर्याप्तैः शोणेशं पर्यतर्पयत्॥९॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—तब राजा ने अपनी पुरी वापस जाने की इच्छा को त्याग दिया तथा शोणाचल की घाटी के पार्श्व में रहने का विचार किया। तब उनके हाथी-घोड़ों तथा वीरों से संकुलित वाहनमार्गानुसारिणी शताङ्गयुता महती सेना भी वहां पहुंच गयी। पुरवासी, मन्त्री, सामन्त तथा सेनापतिगण ने वहां पहुंच कर राजा के धैर्यसागर रूप का दर्शन किया। तब नरपति ने समागत सेना का आदर करके अरुणाचल की सीमा के बाहर उनको ठहराया तथा उनसे अपने समस्त धनभंडार को तथा देश को शोणाचलनाथ की सेवा में उनकी पूजार्थ भक्ति के साथ अर्पित करने का संकल्प लिया। वे पुरोहित द्वारा निर्देश पाकर मुनिप्रवर गौतम के आश्रम के निकट अपने सचिव के साथ शिवार्चन तत्पर हो गये। उन्होंने अपने पद पर अपने पुत्र रत्नांगद को प्रतिष्ठित किया। उसके द्वारा भेजे अपर्याप्त पूजोपकरण से शोणदेवार्चन करने लगे॥३-९॥

परितः शोणसैलस्य परिपूर्णजलाशयान्। अग्रहारान्बहुफलान्ब्राह्मणेभ्योऽतिसृष्टवान्॥१०॥
तेजसाऽरुणनाथस्य ज्वलनस्तम्भरूपिणः।
धन्वप्रायेऽपि देशेऽस्मिन्दीर्घिकाः शतशो व्यधात्॥११॥

सौन्दर्यशालिनीरात्मपरिवारवराङ्गनाः। सेवार्थं शोणनाथस्य दत्तवान्दीर्घदर्शनः॥१२॥

उन्होंने शोणपर्वत के चतुर्दिक् अग्रहार, फलप्रद अनेक वृक्ष तथा जलाशयों को खनन कराकर वह सब ब्राह्मणों के नाम पर उत्सर्ग किया। उन्होंने ज्वलंत स्तम्भरूपी अरुणाचल के तेज से मरु प्रायः हो गये इस देश में शत-शत दीर्घिका का खनन कराया। यहां तक कि दीर्घदर्शी राजा ने सौन्दर्यशालिनी, आत्मपरिवार वाराङ्गनाओं को भी शोणदेव की सेवा हेतु नियुक्त किया।।१०-१२।।

अथागतेनाऽगस्त्येन लोपामुद्रासखेन सः। अभ्यनन्द्यत शोणाद्रिनाथपूजापरायणः॥१३॥
प्रत्यहं नवतीर्थाख्ये सरसि स्नानमावरन्। पापनाशप्रवालेशौ प्रयतः पर्यपूजयत्॥१४॥
महिषासुरसंहारकारिणीं मानवेश्वरः। नित्यमाराधयामास दुर्गां दुर्ग्गार्तिहारिणीम्॥१५॥
प्रतिक्षणं ब्रह्मविष्णुपूज्यस्य लिङ्गरूपिणः। आदिदेवस्य विविधाःसपर्याःपर्यकल्पयत्॥१६॥
प्रत्युषस्युत्थितःस्नातःपादाभ्यामेवपार्थिवः। जपन्पञ्चाक्षरीमन्त्रमकार्षीत्त्रिप्रदक्षिणाम्॥१७॥
पौर्णमास्यांस कार्तिक्यां पार्वतीवल्लभप्रियाम्। महादीपोत्सवं चक्रे महितं भुवनत्रये॥१८॥
सुगन्धसारकह्लारकर्पूरजलपूरितैः। सहस्रैः स्वर्णकुम्भानामभ्यषिञ्चत्त्रियम्बकम्॥१९॥
प्रतिमासद्वजारोहपूर्वंतीर्थोत्सवादिकम्। त्रैलोक्याभ्यर्हितं चक्रे रथारोहंमहोत्सवम्॥२०॥

तभी लोपामुद्रा के पति अगस्त्य ऋषि यहां आये तथा शोणाद्रिनाथ की पूजा में परायण राजा का अभिनन्दन भी किया। राजा भी प्रणत होकर नित्यानित्य नवतीर्थ नामक सरोवर में स्नान करके महिषासुरनाशिनी दुर्गतिहारिणी दुर्गा के साथ पापनाशेश तथा प्रवालेश शिव की अर्चना करने लगे। इस प्रकार राजा क्षण-क्षण में ब्रह्मा-विष्णु द्वारा पूज्य लिंगरूपी आदिदेव की विविध पूजा परिकल्पना करने लगे। इस प्रकार से वे नित्यप्रति प्रातःकाल पंचाक्षर मन्त्र जप करके पैदल तीन बार अरुणगिरि की परिक्रमा करते थे। वे कार्त्तिक पूर्णिमा के दिन शिव प्रीतिकारी त्रिभुवन पूजित महादीपोत्सव कर्म सम्पन्न करते थे। वे सुगन्ध तथा उत्तम सारवान् कल्हार फूल तथा कर्पूर जल से परिपूरित १००० कलसों से नित्य त्र्यम्बकदेव को स्नान कराते थे। वे वहां तीर्थसेवा तथा त्रैलोक्य पूजित रथोत्सव एवं नव ध्वजारोहण प्रतिमास अनुष्ठित करते थे।।१३-२०।।

अङ्गं प्रदक्षिणं चाऽस्य विदधे विशदाशयः। योजनत्रितयायामव्यापिनः शोणभूभृतः॥२१॥
अरुणाचलनाथेति करुणामृतसागरः। अरुणाम्बासनाथेति तुष्टाव च मुहुर्मुहुः॥२२॥
संलिप्य विविधैर्द्रव्यैर्नित्यं पञ्चामृतादिभिः। आचर्च्चयद्गन्धसारपङ्कैः कर्पूरपाण्डुरैः॥२३॥
अपूजयत कल्हारैः स्रवन्मृगमदद्रवैः। प्रातरारभ्यशोणाद्रिनायकं गणरूपिणम्॥२४॥
इतिवर्षत्रयं तस्य वशिनो वरिवस्यया। अरुणाद्रीश्वरस्तुष्टः प्रत्यक्षत्वमगाहत॥२५॥
नीहाराचलसङ्काशमारूढो वृषपुङ्गवम्। अन्वगासीनया देव्याकृतगाढोपगूहनः॥२६॥
ब्रह्मर्षिभिर्वसिष्ठाद्यैर्नारदाद्यैर्महर्षिभिः। गणैर्निकुम्भकुम्भाद्यैः क्रियमाणजयस्तुतिः॥२७॥
करुणासिन्धुकल्लोलैः कमलावासवेश्मभिः। कटाक्षपातैर्जगतां कालुष्यमिव वारयन्॥२८॥
दृष्ट्वा च देवदेवं तमष्टाङ्गं न्यस्य भूतले। प्रणनाम परं हृष्टो वज्राङ्गदमहीपतिः॥२९॥

व्यज्ञापयच्च भूपालो मौलीकृतशताञ्जलिः। क्षालयन्निव दन्तांशुजालैस्तत्पादपङ्कजे॥३०॥

वे विशदाशय ३ योजन विस्तृत त्रैलोक्यपूज्य शोणाचल की अंगप्रदक्षिणा करते थे। वे "हे शोणाचलनाथ! हे करुणामृतसार! हे अरुणाचलनाथ!" कहते हुए धीरे-धीरे देवदेव का पुनः-पुनः स्तव करते थे। वे नित्य पञ्चामृतादि विविध द्रव्यों से देवदेव का लेपन करके कर्पूर तथा गन्धसार लेप से उनका सर्वाङ्ग परिलिप्त करते थे। वे प्रातः से आरंभ करके क्षरित कस्तूरी द्रव्य तथा कल्हारपुष्पों से गणरूपी शोणाद्रिनायक की पूजा करते थे। इस प्रकार राजा ने तीन वर्ष पर्यन्त देवदेव की आराधना करके उनको सन्तुष्ट किया। तब देवदेव साक्षात् आविर्भूत हो गये। वे महादेव प्रभु नीहारचल (हिमालय) के समान वृषभश्रेष्ठ पर आरुढ़ थे। वे वामाङ्गस्थ देवी द्वारा गाढ़ रूप से आलिंगित थे। वसिष्ठादि ब्रह्मर्षि, नारदादि महर्षि तथा निकुम्भ-कुम्भ आदिगण द्वारा वे परितुष्ट थे। वे करुणारूपी सिन्धु के कल्लोल के समान तथा कमला (लक्ष्मी) के आवासरूप थे। वे अपने कटाक्षपात् से संसार के समस्त कलुष को धो रहे थे। वज्राङ्गद नरपति ने उनका दर्शन करते ही भूतल पर लोटते हुए प्रसन्न अन्तःकरण से उनको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। सौ बार अंजलि अपने मस्तक पर लगाकर उनका पाद प्रक्षालन करके कहा।।२१-३०।।

वज्राङ्गद उवाच

देवेश यदहं मोहाद्बहुपातकसञ्चयम्। अचारिषं स एकोऽयंक्षम्यतांमेव्यतिक्रमः॥३१॥
इतिवादिनमत्यन्तंदीनमेव दयानिधिः। जगाद जगतीनाथो देवः शोणाचलेश्वरः॥३२॥

राजा कहते हैं—हे देवेश! मैंने मोहवशात् अनेक पाप संचित किया है। आप उसका मार्जन करिये। आप उसका मार्जन करें। वज्राङ्गद ने अति दीनतापूर्वक यह प्रार्थना किया था। तब जगन्नाथ देव शोणाचलेश्वर राजा से कहने लगे।।३१-३२।।

श्रीमहेश्वर उवाच

मा भैषीर्वत्स भद्रं ते सन्त्यष्टौ मममूर्त्तयः।
ताः सर्वाः सर्वजन्तूनामत्यर्थंपरिकल्पिताः॥३३॥
पुरापुरन्दरस्त्वं हि कैलासशिखरेस्थितम्। गर्वितो मामवामंस्थाःस्तम्भितश्चतदामया॥३४॥
क्षणं गलितगर्वस्त्वं स्तम्भनाव्रीडितस्तदा। अयाचिष्ठाःशिवज्ञानमखिलैश्वर्यकारणम्॥३५॥
आदिष्टस्त्वं मया वज्रिन्नवतीर्याऽवनिं भवान्।
राजा वज्राङ्गदो भूत्वा लप्स्यसे मत्कृपामिति॥३६॥
जातं ततःप्रभावेणक्षेत्रमेतन्मदास्पदम्। शिक्षितोऽतीवमुग्धस्त्वंभक्तोऽसिच परं मयि॥३७॥
अधुनाऽतिसपर्याभिस्त्वत्कृताभिरहर्निशम्। परितुष्टोऽस्म्यहंराजन्नतस्त्वांबोधयाम्यहम्॥३८॥
खं वायुरनलो वारि भूः सूर्यशशिनौ पुमान्। इतिमन्मूर्त्तिभिर्विश्वंभासतेसचराचरम्॥३९॥
कालोहिकालयाम्यर्थान्सत्त्वानध्वनएवच। तत्त्वातीतःशिवश्चाऽहंनमत्तोऽस्तीहकिञ्चन॥४०॥

महेश्वर कहते हैं—हे वत्स! तुम भीत क्यों होते हो? तुम्हारा मंगल हो। मेरी जो अष्टमूर्त्ति है, उसे जीवगण के मंगल निमित्त परिकल्पित जानो। पूर्वजन्म में तुमने इन्द्र होकर गर्वित भाव से कैलासशिखरस्थ मेरी अवज्ञा किया

था। तब मैंने तुम्हारा स्तम्भन किया था। इससे पीड़ित होकर तुमने क्षणकाल में गर्भ त्याग दिया तथा समस्त ऐश्वर्य कारण शिवज्ञान हेतु प्रार्थना किया था। तब मैंने तुमको वर प्रदान किया था कि हे वज्रवर! तुम मेरे आदेश से वज्राङ्गद नामक नृपति होकर धरती पर जन्म लोगे। तदनन्तर तुम मेरे करुणाभाजन हो जाओगे। तब मेरे प्रभाव से शोणाचल नामक एक तीर्थ आविर्भूत होगा। तुम अत्यन्त सुशिक्षित तथा मुग्ध होकर मेरे परम भक्त हो जाओगे। हे राजन्! अब मैंने सन्तुष्ट होकर तुमको अहर्निश पूजा करते देखकर तुम्हारे भीतर चैतन्य संचार किया है। आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, सूर्य, यजमान तथा सोम मेरी अष्ट मूर्त्ति हैं। इसके द्वारा ही सचराचर विश्व प्रकाशित है। मैं ही काल रूप से जीव-जन्तुगण को उनके-उनके कर्म के प्रति सचेष्ट करता हूं। मैं ही उनका परमपथ विकार रहित करता हूं।।३३-४०।।

अपर्यन्तचिदानन्दसिन्धोर्मे केचिदूर्मयः। वेधोमुकुन्दरुद्रेन्द्रमुखानाहुरुदित्वराः।।४१।।
वाणीलक्ष्मीक्षमाश्रद्धाप्रज्ञास्वाहास्वधादयः। असङ्ख्येय महाशक्तेर्मम विसृष्टिशक्तयः।।४२।।
इयं मम महाशक्तिर्गौरी माया जगत्प्रसूः। अनयाऽऽच्छाद्यते विश्वं शश्वद्विस्तार्यतेऽपि च।।४३।।
शक्त्याऽनयान्वितःसर्गरक्षासंहृतिविभ्रमः। विचित्रमेतत्पश्यामि जगच्चित्रंनिजेच्छया।।४४।।
अपवाहितमोहस्त्वं महिम्ना मे विचारय।
आत्मानमविभिन्नं मे तरङ्गमिव वारिधेः।।४५।।
ततोमद्रूपशालिन्याआधिपत्यंक्षितेर्गतः। मत्प्रसादेन राजेन्द्रभुङ्क्ष्वभोगान्यथासुखम्।।४६।।
पुनः पुरन्दरत्वेन भुक्तदिव्यसुखश्चिरम्। मदेकरूपतां राजन्निश्चयात्त्वमवाप्स्यसि।।४७।।

मैं तत्वातीत शिव हूं। मैं ही 'एकमेवाद्वितीयम्' हूं। ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र-इन्द्र प्रभृति देवगण मुझ अनन्त चिदानन्द सिन्धु स्वरूप की उर्मि मात्र हैं। वाणी-लक्ष्मी-क्षमा-श्रद्धा, प्रज्ञा, स्वाहा, स्वधा—ये सब मेरी अपरिच्छिन्न महाशक्ति की ही विसृष्टि हैं। ये गौरी मेरी महाशक्ति हैं। ये माया तथा जगत् का प्रसव करने वाली हैं। ये ही इस महत् ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं। ये ही इस विश्व का विस्तार करती हैं। यह जो क्रमात्मक सृष्टि-स्थिति-लय है, यह भी इन शक्ति से ही संघटित होता है। मैं इच्छापूर्वक इस विचित्र जगच्चित्र का दर्शन करता रहता हूं। मेरी महिमा से तुम्हारा मोह कट गया। अब तुम ही विवेचना करके देखो, जैसे समुद्र से तरंग पृथक् नहीं है, वैसे ही मुझसे आत्मा पृथक् नहीं है। तभी तो मेरे रूप से युक्त पृथिवी का इतना आधिपत्य है। हे राजेन्द्र! सम्प्रति तुम मेरी कृपा से उत्तम सुख प्राप्ति हेतु सभी सुखदायक भोगों का त्याग करो। अब तुम शीघ्र इन्द्रपद प्राप्त करके दीर्घकाल पर्यन्त दिव्य सुखभोग के पश्चात् मेरे सारूप्य को प्राप्त करोगे।।४१-४७।।

नन्दिकेश्वर उवाच

इत्युक्त्वाऽन्तर्हिते देवे राजा वज्राङ्गदःकृती। शोणेशं पूजयन्नेवसर्वान्भोगानवाप्तवान्।।४८।।
इत्थं ते कथितं साधोशिवभक्तविजृम्भणम्। प्रदक्षिमाफलंचैवशोणशैलस्यशाश्वतम्।।४९।।
किं वाचां विस्तरेणाऽत्र शोणशैलप्रदक्षिणा। महतामश्वमेधानां शतादपि विशिष्यते।।५०।।
विषुवायनसंक्रान्तिव्यतीपातादिपर्वसु। प्रदक्षिणाच्छोणगिरेरसंख्येयं फलं लभेत्।।५१।।
न क्षेत्रमरुणादस्तिनास्तिदेवोऽरुणेश्वरात्। नापि प्रदक्षिणादन्यद्विद्यतेऽभ्यधिकं तपः।।५२।।

इति कथयति नन्दिकेश्वरेऽस्मिन्पुलकितसर्ववपुर्मृकण्डुपुत्रः।
मुहुरधिगतहर्षवाष्पवृष्टिर्महति निमग्न इवाऽभवत्सुधाब्धौ॥५३॥

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे वज्राङ्गदसद्गतिवर्णनं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः।।२४।।

॥ इत्यरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धः समाप्तः॥

।।इत्यरुणाचलमाहात्म्यं सम्पूर्णम्।।

शुभम्भूयात्

❋❋❋

नन्दिकेश्वर कहते हैं—तदनन्तर देवदेव द्वारा राजा से यह कहकर जब अन्तर्ध्यान हो गये, उसके पश्चात् कृती राजा ने शोणेश्वर की पूजा द्वारा समस्त भोग प्राप्त किया। हे साधु! इस प्रकार आपसे शिवभक्ति वैभव का मैंने वर्णन कर दिया। शोणशैल की प्रदक्षिणा का चिरकालीन फल मिलता है। उसकी फलकथा मैं और क्या कहूं? वह महान् १०० अश्वमेध से भी अधिक फलद है। विषुव, अयन, संक्रान्ति तथा व्यतिपात आदि पर्वकाल में शोणपर्वत की प्रदक्षिणा से अशेष फल लाभ होता है। अरुणाचल क्षेत्र से उत्तम क्षेत्र नहीं है। इन अरुणेश्वर से उत्तम देवता नहीं है। इनकी प्रदक्षिणा से उत्तम तप नहीं है।

नन्दिकेश्वर के यह कहने पर मृकण्डुनन्दन मार्कण्डेय पुलकित देह होकर हर्षजनित भाव प्रकट करते हुए भक्तिरस सुधासिन्धु में मग्न हो गये।।४८-५३।।

।।चतुर्विंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

।।अरुणाचल माहात्म्य समाप्त।।

।।माहेश्वर खण्ड समाप्त।।

❋❋❋